

मुद्रक तथा प्रबन्धक

दत्तमानप्रसाद पोद्दार

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०१७ प्रथम संस्करण १०,०००

मूल्य दोनों भागोंका १७५०
(सत्रह रुपया पचास नया पैसा)

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी विषय-सूचि.

(सुन्दरकाण्डम्)

सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या	सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	इनुमान्जीके द्वारा समुद्रका लङ्घन; मैनाके द्वारा उनका स्वागत; सुरसापर उनकी विजय तथा सिंहाका यश करन उनका समुद्रके उस पार पहुँचकर लङ्काकी शाना देखना	८४७		पानभूमिमें सीताका पता लगाना; उनके मनमें धर्मलपकी आशङ्का और स्वतः उसका निवारण होना	८८९
२-	लङ्कापुरीका वषण; उसमें प्रवेश करनेके विषयमें हनुमान्जीना विचार; उनका लघुरूपसे पुरीमें प्रवेश तथा चन्द्रोदयका वषण	८६१	१२-	सीताके मरणकी आशङ्कासे हनुमान्जीका चिन्तित होना फिर उत्साहका आशय लेकर अन्य स्थानोंमें उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगनेसे पुनः उनका चिन्तित होना	८९२
३-	लङ्कापुरीका अग्लोकन करके हनुमान्जीका विस्मित होना; उसमें प्रवेश करते समय निशाचरी लङ्काका उन्हें रोकना और उनकी भारते विह्वल होकर उन्हें पुरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना	८६५	१३-	सीताजीके नाशकी आशङ्कासे हनुमान्जीकी चिन्ता; भीरमको सीताके न मिलनेकी सूचना देनेसे अनयकी सम्भावना देप हनुमान्जीका न खोजनेका निश्चय करके पुनः खोजनेका विचार करना और आशङ्कावृत्तिकामें धूमनेके विषयमें तरह-तरहकी बातें सोचना	८९४
४-	हनुमान्जीका लङ्कापुरी प्रवेश रावणके अन्त पुर में प्रवेश	८६८	१४-	हनुमान्जीका अशोकवाटिकामें प्रवेश करके उसकी शोभा देखना तथा एक अशोक वृक्षपर छिपे रहकर वहीसे सीताका अनुसंधान करना	८९९
५-	हनुमान्जीका रावणके अन्त पुरमें घर-घरमें सीताको ढूँढना और उन्हें न देखकर दुःखी होना	८७०	१५-	वनकी शोभा देखते हुए हनुमान्जीका एक चैत्यप्रासाद (मन्दिर) के पास सीताको दयनीय अवस्थामें देखना; पहचानना और प्रसन्न होना	९०३
६-	हनुमान्जीका रावण तथा अन्याय राक्षसोंके घरोंमें सीताजीकी खोज करना	८७३	१६-	हनुमान्जीका मन ही-मन सीताजीके शील और शैन्दयमी सराहना करते हुए उन्हें कष्टमें पड़ी देख स्वयं भी उनका लिये शोक करना	९०६
७-	रावणका भवन एवं पुष्पकविमानका वषण	८७६	१७-	मयकर राक्षसियोंसे घिरी हुई सीताके दर्शनसे हनुमान्जीका प्रसन्न होना	९०९
८-	हनुमान्जीके द्वारा पुनः पुष्पकविमानका दशन	८७८	१८-	अपनी जियोसे घिरी हुई रावणना अशोक वाटिकामें आगमन और हनुमान्जीका उसे देखना	९११
९-	हनुमान्जीका रावणके श्रेष्ठ भवन; पुष्पक विमान तथा रावणके रहनेकी सुन्दर हवेलीको देखकर उसका भीतर लोभी हुई सहस्री सुन्दरी जियोका अवलोकन करना	८७९	१९-	रावणको देखकर दुःख, मय और चिन्तामें डूबी हुई सीताकी अवस्थाका वर्णन	९१३
१०-	हनुमान्जीका अन्त पुरमें सेये हुए रावण तथा गाढ निद्रामें पड़ी हुई उसकी जियोको देखना तथा मादोदरीकी सीता समक्षकर प्रसन्न होना	८८५	२०-	रावणका सीताधीको प्रबोधन	९१५
११-२१	सीता नहीं है—ऐसा निश्चय होनेपर हनुमान्जीका पुनः अन्त पुरमें और उसकी		२१-	सीताजीका रावणको समझाना और उसे भीरमके सामने नगम्य बताना	९१८

- २२-रावणका सीताको दो मासकी अवधि देना,
सीताका उसे क्यारना फिर रावणका उन्हें
घमकाकर राक्षसियोंके नियंत्रणमें रखकर खियों
सहित पुनः महलको लौट आना १२०
- २३-राक्षसियोंका सीताको समक्षाना १२३
- २४-सीताजीका राक्षसियोंकी मान माननेसे इनकार
कर देना तथा राक्षसियोंका उन्हें मारने काटनेकी
घमकी देना १२५
- २५-राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार करके शोक-
संतप्त सीताका विलम्ब करना १२८
- २६-सीताका कष्ट निराप तथा अपने प्राणोंको त्याग
देनेका निश्चय करना १२९
- २७-त्रिबन्गका रूप, राक्षसोंके विनाश और
श्रीरघुनाथजीकी विजयकी पुनः सूचना १३३
- २८-निराप करती हुई सीताका प्राण-त्यागके लिये
उद्यत होना १३६
- २९-सीताजीके पुनः शून्य १३८
- ३०-सीताजीसे वार्तालाप करनेके विषयमें हनुमान्जीना
विचार करना १३९
- ३१-हनुमान्जीका सीताको सुनानेके लिये श्रीराम
कपाना वर्णन करना १४२
- ३२-सीताजीका एक वितर्क १४४
- ३३-सीताजीका हनुमान्जीको अपना परिचय दते
हुए अपने वनगमन और अपहरणका वृत्तान्त
बताना १४५
- ३४-सीताजीका हनुमान्जीके प्रति संदेह और उसका
समाधान तथा हनुमान्जीके द्वारा श्रीरामचन्द्रजी
के गुणोंका गान १४७
- ३५-सीताजीके पुछनेपर हनुमान्जीका श्रीरामके
पारिवारिक चिह्नों और गुणोंका वर्णन करना तथा
नर-यानरकी मिश्रताका प्रसन्न सुनाकर सीताजीके
मनमें विश्वास उत्पन्न करना १४९
- ३६-हनुमान्जीका सीताको मुद्रिका देना, सीताका
‘श्रीराम कब मेरा उद्धार करेंग’ यह उमक
होकर पूछना तथा हनुमान्जीका श्रीरामके
सीता विषयक प्रेमका वर्णन करके उन्हें
तात्त्विक देना १५५
- ३७-सीताका हनुमान्जीसे श्रीरामको शीघ्र बुलानेका
आग्रह, हनुमान्जीका सीतासे अपने साथ
चलनेका अनुरोध तथा सीताका अस्वीकार
करना १५९
- ३८-सीताजीका हनुमान्जीको पहचानने के लिये
चित्रकूट पर्वतपर घटित हुए एक कौएके
प्रसन्नता सुनाना, भगवान् श्रीरामको शीघ्र बुला
लानेके लिये अनुरोध करना और चूड़ामणि
देना १६३
- ३९-चूड़ामणि लेकर आते हुए हनुमान्जीसे सीताका
श्रीराम आदि को उल्लासित करनेके लिये कहना
तथा समुद्र तरणके विषयमें शङ्कित हुई सीताको
यानगोका पराक्रम बताने पर हनुमान्जीका
आश्वासन देना १६८
- ४०-सीताका श्रीरामसे कहनेके लिये पुनः संदेश
देना तथा हनुमान्जीका उन्हें आश्वासन दे
उत्तर दिशारी और जाना १७१
- ४१-हनुमान्जी द्वारा प्रमदावन (अशोक
वाटिका) का विषय १७३
- ४२-राक्षसोंके मुखसे एक यानरके द्वारा
प्रमदावन के विस्तृत समाचार सुनकर रावणका
किंकर नामक राक्षसोंको भेजना और हनुमान्
जाते द्वारा उन सबका संहार १७५
- ४३-हनुमान्जीके द्वारा चैत्यप्रासादका विषय तथा
उसके राक्षसोंका वध १७८
- ४४-प्रहस्त पुत्र जम्बुवातीका वध १७९
- ४ -मन्त्री सात पुत्रोंका वध १८०
- ४६-रावणन पौत्र सेनापतियोंका वध १८२
- ४७-रावण पुत्र अशुमारका पराजय और वध १८४
- ४८-इन्द्रजित और हनुमान्जीका युद्ध, उसके
दिग्बालके बचनेमें बंधकर हनुमान्जीका
रावण के दरबारमें उपस्थित होना १८८
- ४९-रावण के प्रभावशाली स्वरूपको देखकर
हनुमान्जीक मनमें अनेक प्रकारके विचारोंका
उठना १९३
- ५०-रावणका प्रहस्त द्वारा हनुमान्जीसे लड़नेमें
आनेका कारण पुरुषाना और हनुमान्का अपने
को श्रीरामका दूत बताना १९५

- ५१-हनुमान्जीका भीरुपक्षे प्रभासा वर्णन करते हुए रावणको समझाना १०६
- ५२-विभीषणका दूतन वक्षस अनुचित बतारकर उसे दूसरा काढ़ दण्ड देनेके लिये कहना तथा रावणका उनसे अनुराधको स्वीकार कर लेना ११९
- ५३-राक्षसोंका हनुमान्जीकी पूँछमें आग लगाकर उड़ते नगरमें घुमाना १००२
- ५४-लङ्कापुरीका दहन और राक्षसोंका बिलाप १००५
- ५५-सीतानीक लिये हनुमान्जीकी चिन्ता और उसका निवारण १००९
- ५६-हनुमान्जीका पुन सीतानीमें मिलकर लौटना और समुद्रको लौपना १०११
- ५७-हनुमान्जीका समुद्रको लौपकर जम्बवान् और अन्नद आदि मुद्गदस्ति मिलना १०१४
- ५८-जम्बवान् पूछनेपर हनुमान्जीका अपनी लङ्काप्राका सारा वृत्तान्त सुनाना १०१७
- ५९-हनुमान्जीका सीताकी दुरदृष्टा दानकर वानरोंको लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना १०२८
- ६०-अन्नदका लङ्काको जीतकर सीताको ले आनेका उल्हासपूर्ण विचार और जम्बवान् द्वारा उसका निवारण १०३०

- ६१-वानरोंका मधुवनमें जाकर वहाँके मधु एवं फलोंका मनमाना उपभोग करना और वन रक्षक को घसीटना १०३२
- ६२-वानरोंद्वारा मधुवनके रक्षकों और दधिमुखका परामत्र तथा सेवकोंसहित दधिमुखका सुग्रीवके पास जाना १०३४
- ६३-दधिमुखसे मधुवनन विध्वंसका समाचार सुनकर सुग्रीवका हनुमान् आदि वानरोंकी सकलताके विषयमें अनुमान १०३७
- ६४-दधिमुखने सुग्रीवका सदेश सुनकर अन्नद हनुमान् आदि वानरोंका किङ्किणामें पहुँचाना और हनुमान्जीका भीरुपक्षे प्रणाम करके सीतादेवीका दशनका समाचार बताना १०४९
- ६५-हनुमान्जीका भीरुपक्षे सीताका समाचार सुनाना १०४२
- ६६-चूडामणिक देखकर और सीताका समाचार पार भीरुपक्षे उनसे लिये विचार १०४४
- ६७-हनुमान्जीका भावान् भीरुपक्षे सीताका सदेश सुनाना १०४५
- ६८-हनुमान्जीका सीताके सदेश और अपने द्वारा उनसे निवारणका वृत्तान्त बताना १०४८



चित्र सूची

(तिरंगा)

- १-अयोध्यावन विध्वंसके बाद मारुतिका लयन ८४७

(पम्परा)

- १-हनुमान्जीको जननीजीका प्रथम दशन ९०४

- २-हनुमान्जीकी जानकीजीसे बात चीत ९४५
- ३-रावणकी सभामें हनुमान् ९९३
- ४-समुद्रको लौपकर लङ्कासे लौगते हुए मारुति १०१४
- ५-वानरोंको समुद्रपारसे लौगते देखकर सुग्रीव भीरुपक्षे आधाखन दे रहे हैं १०४१



श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी विषय सूची

(युद्धकाण्डम्)

सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या	सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	हनुमान्जीकी प्रशंसा करके भीरामका उन्हें हृदयसे लगाना और समुद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना	१०५१	१-	पहले तो उसे फटकारना, फिर समस्त शत्रुओंके घबका स्वयं ही भार उठाना	१०७७
२-	सुग्रीवका भीरामको उत्साह प्रदान करना	१०५२	२-	महापातक रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उकसाना और रावणका शापके कारण अपनेको ऐसा करनेमें असमर्थ बताना तथा अपने पराक्रमके गीत गाना	१०८०
३-	हनुमान्जीका लड़ाके दुर्ग, काक, सेना विभाग और सक्रम आदिका घणन करने भगवान् श्रीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना	१०५४	३-	विभीषणका रामको अज्ञेय बताकर उनके पास सीताको लौटा देनेकी सम्मति देना	१०८२
४-	भीराम आदिके साथ वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र तटपर उसका पड़ाव	१०५६	४-	इन्द्रकित्वाय विभीषणका उपहास तथा विभीषणका उसे फटकारकर समामें अपनी उचित सम्मति देना	१०८४
५-	भीरामका सीताने लिये शोक और विलाप	१०५४	५-	राजपते द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फटकारकर चले देना	१०८६
६-	रावणका कर्तव्य निर्णयने लिये अपने मन्त्रियोंसे समुचिन् सलाह देनेका अनुरोध करना	१०६६	६-	विभीषणका भीरामकी गरणमें आना और भीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ उन्हें आभय देनेके नियममें विचार करना	१०८८
७-	राक्षसोंका रावण और इन्द्रकित्ते मन्त्र-पराक्रमका वजन करते हुए उसे रामपर विजय पानेका विश्वास दिलाना	१०६७	७-	भगवान् भीरामका क्षणगातकी रक्षाका महत्व एवं अपना मत बताकर विभीषणसे मिलना	१०९३
८-	प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, निजुग्म और वज्रहनुका राजपते घामने शत्रु सेनाको मार गिरानेका उत्साह दिखाना	१०६९	८-	विभीषणका आकाशसे उतरकर भगवान् भीरामके चरणोंकी गरण लेना, उनके पूछनेपर रावणकी शक्तिका परिचय देना और भीरामका राजपते की प्रतिज्ञा करके विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर उनकी सम्मतिसे समुद्र तटपर घटना देनेके लिये बैठना	१०९५
९-	विभीषणका रावणमें भीरामकी अज्ञेयता बताकर सीताको लौटा देनेके लिये अनुरोध करना	१०७१	९-	गान्धर्वके कहनेसे राजपते गुरुको दूत बनाकर सुग्रीवने पास सदेश भेजना, वहाँ पानपोंद्वारा उसकी बुद्ध्या, भीरामकी क्रियासे उसका संकष्टमें दृष्टना और सुग्रीवका राजपते लिये उत्तर देना	१०९८
१०-	विभीषणका रावणके महलमें आना, उसे अवशजनोंका भय दिलाकर सीताने लौटा देनेके लिये प्राथना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे विदा कर देना	१०७२			
११-	रावण और उसके समासदोषका समाश्रयनमें पक्ष होना	१०७३			
१२-	नगरकी रक्षाने लिये सेनिकोंकी नियुक्ति, रावणका सीताने प्रति अपनी आशक्ति बताकर उनके हरणका प्रसंग बताना और भारी कृतव्यके लिये समासलोक की सम्मति माँगना कुम्भकर्णका				

- २१-भीरामका समुद्रके तटपर कुशा बिठाकर तीन दिनोंतक घरना देनेपर भी समुद्र न दर्शन न देनेसे कुपित हो उमै बाण मारकर विभुषण कर देना ११०१
- २२-समुद्रकी सलाहके अनुसार नलके द्वारा सागरपर सौधोत्तन लवे पुलका निमाण तथा उसपर द्वाय भीराम आदिमहित वानरसेनाका उस पार पहुँचकर पड़ाव डालना ११०३
- २३-भीरामका लक्ष्मणसे उत्पानमूचक लक्ष्मणका वणन और लङ्कापर आक्रमण ११०५
- २४-भीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभावा वणन करके सेनाको प्रह्वद लड़ी होनेके लिये आदेश देना, भीरामकी अश्वसे बचनमुक्त हुए शुक्रका रावणके पास जाकर उनकी सैन्यशक्तिकी प्रबलता बनाना तथा रावणका अपने बन्दी डोंग हाँकना १११०
- २५-रावणका पुत्र और सारणको गुप्तरूपसे वानरसेनामें भेजना विभीषणद्वारा उनका पकड़ा जाना, भीरामकी वृत्तसे छुटकारा पाना तथा भीरामका सदेव लेकर लङ्कामें लौटकर उनका रावणको समझाना १११३
- २६-सारणका रावणको वृषभृषक् वानर सूपविवर्षाका परिचय देना १११६
- २७-वानरसेनाके प्रधान सूपविवर्षाका परिचय १११९
- २८-शुक्रके द्वारा सुमीवके मन्त्रियोंका, मेन्द्र और द्विविदका, हनुमान्का, भीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुमीवका परिचय देकर वानर सेनाकी सल्लाहा निरूपण करना ११२२
- २९-रावणका पुत्र और सारणको फटकारकर अपने दरबारसे निकाल देना, उसके भेजे हुए गुप्तरूपका भीरामकी दशाने वानरोंके चंगुलसे छूटकर लङ्कामें आना ११२५
- ३०-रावणके भेजे हुए गुप्तरूप एव शादूलका उसने वानरसेनाका समन्वय बनाना और मुख्य-मुख्य सौधों परीचय देना ११२७
- ३१-मायापुत्रित भीरामका कृपा मस्तक दिखाकर रावणद्वारा सीताको मोहमें डालनेका प्रयत्न ११२९
- ३२-भीरामके मारे जानेका विश्वास करके सीताका विलाप तथा रावणका सभामें जाकर मन्त्रियोंकी सलाहसे युद्धनिर्णय उद्योग करना ११३२
- ३३-सरमाका सीताको सन्त्वना देना, रावणकी मायाका भेद खोलना, भीरामके आग्रामनका प्रिय समाचार सुनाना और उनके विजयी होने का विश्वास दिलाना ११३५
- ३४-सीताके अनुरोधसे सरमाका उन्हें मन्त्रियोंसहित रावणका निश्चित विचार बताना ११३८
- ३५-माल्यवान्का रावणको भीरामसे संधि करनेके लिये समझाना ११४०
- ३६-माल्यवान्कर आशेन और नगरकी रक्षाका प्रवचन करके रावणका अपने अन्त पुरमें जाना ११४२
- ३७-विभीषणका भीरामसे रावणद्वारा किये गये लङ्काकी रक्षाके प्रवचनका वचन तथा भीराम द्वारा लङ्काके विभिन्न द्वारोंपर आक्रमण करनेके लिये अपने सेनापतियोंकी नियुक्ति ११४४
- ३८-भीरामका प्रमुख वानरों साथ सुबेल परतपर चढ़कर वहाँ रातमें निवास करना ११४६
- ३९-वानरोंसहित भीरामका सुबेल-शिलरसे लङ्का पुरीका निरीक्षा करना ११४८
- ४०-सुमीव और रावणका मन्त्रियुद्ध ११५०
- ४१-भीरामका सुमीवको दुःशाहसे रोकना, लङ्काके चारों द्वारोंपर वानरसैनिकोंकी नियुक्ति, रामदूत अङ्गदका रावणके महलमें पराक्रम तथा वानरोंके आक्रमणसे राक्षसोंकी भय ११५३
- ४२-लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंसे साथ उनका घेर युद्ध ११५९
- ४३-द्वन्द्वयुद्धमें वानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय ११६२
- ४४-रातमें वानरों और राक्षसोंका घेर युद्ध, अङ्गदके द्वारा इन्द्रजित्की पराजय, मायासे अहंय हुए इन्द्रजित्का नागमय बणोंद्वारा भीराम और लक्ष्मणको बाँधना ११६५

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी विषय सूची

(युद्धकाण्डम्)

सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या	सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	हनुमान्जीकी प्रशंसा करके श्रीरामका उन्हें हृदयसे लगाना और समुद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना	१०५१	१२-	महापादवका रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उकसाना और रावणका शापके कारण अपनेको ऐसा करनेमें असमर्थ बताना तथा अपने पराक्रमसे गीत गाना	१०७७
२-	सुग्रीवका श्रीरामको उत्साह प्रदान करना	१०५२	१३-	विभीषणका रामको अज्ञेय बताकर उनके पास सीताको लौटा देनेकी सम्मति देना	१०८०
३-	हनुमान्जीका लंकाके दुर्ग, फाटक, सेना विभाग और सक्रम आदिका घणन करने भगवान् श्रीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना	१०५४	१४-	इन्द्रजित्द्वारा विभीषणका उपहास तथा विभीषणका उसे फकारकर समामे अपनी उचित सम्मति देना	१०८२
४-	श्रीराम आदिके साथ वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र तटपर उतरका पड़ाव	१०५६	१५-	रावणके द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फकारकर चला देना	१०८४
५-	भीरमका सीताके लिये गोक और विलाप	१०५४	१६-	रावणके द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फकारकर चला देना	१०८६
६-	रावणका कतव्य निर्णयसे लिये अपने मन्त्रियोंसे समुचिन सलाह देनेका अनुरोध करना	१०६६	१७-	विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आना और श्रीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ उन्हें आभय देनेके प्रियमें विचार करना	१०८८
७-	राक्षसोंका रावण और इन्द्रजित्ने बल-पराक्रमका बज्र करते हुए उसे रामपर निजब पानेका विश्वास दिलाया	१०६७	१८-	भगवान् श्रीरामका शरणगतकी रक्षाका महत्त्व एवं अपना व्रत बताकर विभीषणसे मिलना	१०९१
८-	प्रह्लाद, दुमुख, वक्रदह, निकुम्भ और वक्रहनुका रावणने धामने शत्रु सेनाको मार गिरानेका उत्साह दिलाया	१०६९	१९-	विभीषणका आकाशमें उठकर भगवान् श्रीरामके चरणोंकी शरण लेना, उनके पूछनेपर रावणकी शक्तिपरिचय देना और श्रीरामका रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर उनकी सम्मतिसे समुद्र तटपर धरना देनेके लिये बैठना	१०९५
९-	विभीषणका रावणसे श्रीरामकी अज्ञेयता बताकर सीताको लौटा देनेके लिये अनुरोध करना	१०७१	२०-	गान्धर्वोंके कहनेसे रावणका शत्रुको दूत बनाने सुग्रीवके पास सदेश भेजना, वहाँ पानचोंद्वारा उसकी सुदर्शना, श्रीरामकी कृपासे उसका सङ्गसे घृणा और सुग्रीवका रावणक लिये उत्तर देना	१०९८
१०-	विभीषणका रावणके मदमें आना, उसे अपशकुनोंका भय दिखाकर सीताको लौटा देनेके लिये प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे विदा कर देना	१०७२			
११-	रावण और उससे सभासदोंका समामनमें एकत्र होना	१०७३			
१२-	नगरकी रक्षाके लिये सैनिकोंकी नियुक्ति, रावणका सीताके प्रति अपनी आसक्ति बताकर उनके हरणका प्रसंग बनाना और भावी कृत्यके लिये सभासदोंकी सम्मति माँगना, कुम्भकर्णका				

- २१-श्रीरामका समुद्रके तटपर कुगा बिठाकर तीन दिनोंतक धरना देनेपर भी समुद्रके दर्शन न देनेसे क्रुपित हो उसे बाण मारकर विधुब्ध कर देना ११०१
- २२-समुद्रकी सहाइके अनुगार नलके द्वारा सागरपर सौयोजन लंबे पुलका निमाण तथा उसके द्वारा श्रीराम आदिमहित वानरसेनाका उस पार पहुँचकर पड़ाव डालना ११०३
- २३-श्रीरामका लक्ष्मणमे उत्पत्तसूचक लक्षणोंका वणन और लङ्कापर आक्रमण ११०९
- २४-श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी गोभावा वणन करके सेनाको व्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना, श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए गुफका रावणके पास आकर उनकी सैन्यशक्तिकी प्रशंसा बताना तथा रावणका अपने धल्की डोंग हाँकिना १११०
- २५-रावणका गुफ और सारणको गुप्तरूपसे वानर सेनामें भेजना विभीषणद्वारा उनका पकड़ा जाना, श्रीरामकी वृत्तासे छुटकारा पाना तथा श्रीरामना सदेग लेकर लङ्कामें लौटकर उनका रावणको समझाना १११३
- २६-सारणका रावणको धृष्टकृष्टक वानर यूपपतियोंका परिचय देना १११६
- २७-वानरसेनाके प्रधान यूपपतियोंका परिचय १११९
- २८-गुफके द्वारा सुग्रीवके मन्त्रियोंका, मैन्द और द्विविदका, हनुमानका, श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीवका परिचय देकर वानर सेनाकी सख्याना निरूपण करना ११२२
- २९-रावणका गुफ और सारणको फकारकर अपने दरबारसे निगल देना, उसने भेजे हुए गुप्तचरोंका भीरामकी दयासे वानरोंके चगुलसे छूटकर लङ्कामें आना ११२७
- ३०-भारणके भेजे हुए गुप्तचरों एव मारुलका उसने वानरसेनाका समाचार बताना और मुख्य-मुख्य धीरोंका परिचय देना ११२७
- ३१-मानाचित श्रीरामका कटा मलक दिखाकर रावणद्वारा सीताको मोहमें डालनेका प्रयत्न ११२९
- ३२-श्रीरामके मारे जानेका विश्वास करके सीताका विलाप तथा रावणका सभामें जाकर मन्त्रियोंकी सहाइसे युद्धविषयक उद्योग करना ११३२
- ३३-सरमाका सीताको सान्त्वना देना, रावणकी मायाका भेद खोलना, श्रीरामके आगमनका प्रिय समाचार सुनाना और उनके विजयी होने का विश्वास दिलाना ११३५
- ३४-सीताके अनुरोधसे सरमाका उन्हें मन्त्रियोंसहित रावणका निश्चित विचार बताना ११३८
- ३५-माल्यवान्द्रा रावणको भीरामसे संधि करनेके लिये समझाना ११४०
- ३६-माल्यवान्द्रा आशेष और नगरकी रक्षाका प्रबंध करके रावणका अपने अन्त पुरमें जाना ११४२
- ३७-विभीषणका भीरामसे रावणद्वारा किये गये लङ्काकी रक्षाके प्रबंधका वर्णन तथा भीराम द्वारा लङ्काके विभिन्न द्वारोंपर आक्रमण करनेके लिये अपने सेनापतियोंकी नियुक्ति ११४४
- ३८-श्रीरामका प्रमुख वानरोंसे साथ सुवेल पर्वतपर चढ़कर यहाँ रातमें निवास करना ११४६
- ३९-वानरोंसहित भीरामना सुवेल-शिखरसे लङ्का पुरीका निरीक्षण करना ११४८
- ४०-सुग्रीव और रावणका मलयुद्ध ११५०
- ४१-श्रीरामका सुग्रीवसे दु सारसे रोकना, लङ्काके चारों द्वारोंपर वानरसैनिकोंकी नियुक्ति, रामदूत अद्भुतका रावणके महलमें पराक्रम तथा वानरों के आक्रमणसे राक्षसोंको भय ११५३
- ४२-लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंके साथ उनका घोर युद्ध ११५९
- ४३-द्वन्द्वयुद्धमें वानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय ११६२
- ४४-रातमें वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध, अद्भुतका द्वारा इन्द्रनिष्ठी पराजय, मायामे अन्य हुए इन्द्रनिष्ठा नागमय पाणोंद्वारा भीराम और लक्ष्मणको बाँधना ११६५

- ४५-इन्द्रचित्के बाणोंसे श्रीराम और लक्ष्मणका अचेत होना और वानरोंका शोक करना ११६८
- ४६-श्रीराम और लक्ष्मणको मूर्छित देख वानरोंका शोक; इन्द्रजित्का हथौड़ा; विभीषणका सुग्रीव को समझाना; इन्द्रजित्का लङ्कामें जाकर पितृको शत्रुवधका वृत्तान्त बताना और प्रसन हुए रावणके द्वारा अपने पुत्रका अग्निन्दन ११७०
- ४७-वानरोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणकी रक्षा; रावण की आज्ञासे राक्षसियोंका सीताको पुष्पवनमानद्वारा रणभूमिमें ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन करना और सीताना दुखी होकर रोना ११७३
- ४८-सीताका विलाप और निवृत्तका उद्द्वेग समझा हुआकर श्रीराम लक्ष्मणके ज्योति होनेका विश्वास दिलाकर पुन लङ्कामें ही लौटा लाना ११७५
- ४९-श्रीरामका सचेत होकर लक्ष्मणके लिये विलाप करना और स्वयं प्राणत्यागका निचार बरके वानरोंको लौट जानेकी आज्ञा देना ११७७
- ५०-विभीषणको इन्द्रजित् समझकर वानरोंका पलायन और सुग्रीवकी आज्ञासे जाग्रतगन्तुका उद्द्वेग सात्वना देना; विभीषणका विचाप और सुग्रीवका उद्द्वेग समझाना; राक्षसोंका आना और श्रीराम-लक्ष्मणको नागवासने मुक्त करके चला जाना ११८०
- ५१-श्रीरामके वधनमुक्त होनेका पता पाकर चिन्तित हुए रावणका धृष्टाक्षको युद्धके लिये भेजना और सेनासहित द्वा द्वारका नगरसे बाहर आना ११८४
- ५२-दूषाक्षका युद्ध और हनुमान्जीके द्वारा उसका वध ११८६
- ५३-वज्रदण्डका सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान; वानरों और राक्षसोंका युद्ध; वज्रदण्डद्वारा वानरोंका तथा अन्नद्वारा राक्षसोंका संहार ११८९
- ५४-वज्रदण्ड और अन्नद्वारा युद्ध तथा अन्नदके हाथसे उस निशाचरका वध ११९१
- ५५-रावणकी आज्ञासे अरुण्यन आदि राक्षसोंका युद्धमें आना और वानरोंके साथ उनका घोर युद्ध ११९४
- ५६-हनुमान्जीके द्वारा अरुण्यनका वध ११९६
- ५७-प्रह्लादा रावणकी आज्ञासे विशाल सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान ११९८
- ५८-नीलके द्वारा प्रह्लादाका वध १२०१
- ५९-प्रह्लादके मारे जानेसे दुःखी हुए रावणका स्वयं ही युद्धके लिये पधारना; उसके हाथ आये हुए मुख्य वीरोंका परिचय; रावणकी मारसे सुग्रीवका अचेत होना; लक्ष्मणका युद्धमें आना; हनुमान् और रावणमें बण्डोंकी मार; रावणद्वारा नीलका मूर्छित होना; लक्ष्मणका शक्तिसे आघातसे मूर्छित पद सचेत होना तथा भीरुमते पराजित होकर रावणका लङ्कामें घुस जाना १२०५
- ६०-अपनी पराजयसे दुःखी हुए रावणकी आज्ञासे सोये हुए कुम्भमण्डका बगावा जाना और उसे देखकर वानरोंका भयभीत होना १२१७
- ६१-विभीषणका भीरुमते कुम्भमण्डका परिचय देना और श्रीरामकी आज्ञासे वानरोंका युद्धके लिये सङ्काके द्वारोंपर डट जाना १२२४
- ६२-कुम्भमण्डका रावणने भवनमें प्रवेश तथा रावणका रामसे भय बताकर उसे शत्रुसेनाके विनाशने लिये प्रेरित करना १२२७
- ६३-कुम्भमण्डका रावणको उसके कुटुम्बोंके लिये उपालम्भ देना और उसे बंध बंधाते हुए युद्ध विषयक उत्साह प्रकट करना १२२८
- ६४-महेश्वरका कुम्भमण्डके प्रति आशेष करके रावणको बिना युद्धके ही अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका उपाय बताना १२३२
- ६५-कुम्भमण्डकी रणयात्रा १२३५
- ६६-कुम्भमण्डके भयसे मागे हुए वानरोंका आश्रय द्वारा प्रोत्साहन और आवाहन; कुम्भमण्डका वानरोंका संहार; पुन वानर-सेनाना पलायन और अगस्त्य उभे समान-दुष्कार-लौटाना १२३९
- ६७-कुम्भमण्डका भयकर युद्ध और श्रीरामके हाथसे उसका वध १२४२
- ६८-कुम्भमण्डका वधका समाचार सुनकर रावणका विलाप १२४५

६९-रावणके पुत्रों और भाइयोंका युद्धके लिये जाना और नरान्तर्गता अङ्गदन द्वारा वध	१२५७	दिलाना और लक्ष्मणका सेनासहित निकुम्भिला मन्दिरमें भेजनेके लिये अनुरोध करना	१२१९
७०-हनुमान्जीन द्वारा देवान्तर्गता और निशिगता, नीलन द्वारा महादरना तथा अग्रमने द्वारा महापातका वध	१२६४	८५-विभीषणन अनुरोधसे भीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणको इन्द्रजित्के वधके लिये जानेकी आज्ञा देना और सेनासहित लक्ष्मणका निकुम्भिला-मन्दिरके पास पहुँचना	१२२१
७१-अतिशयका भयकर युद्ध और लक्ष्मणन द्वारा उसका वध	१२६८	८६-वानरों और राक्षसोंका युद्ध, हनुमान्जीन द्वारा राक्षससेनाका संहार और उनका इन्द्रजित् को द्रष्टुद्धके लिये लक्ष्मणका तथा लक्ष्मण का उसे देखना	१२२३
७२-रावणकी चिन्ता तथा उसका राक्षसोंको पुरीकी रक्षाके लिये सावधान रहनेका आदेश	१२७६	८७-इन्द्रजित् और विभीषणकी रोपपूजा बातचीत	१२२५
७३-इन्द्रजित् ब्रह्मास्त्रसे दानरसेनासहित भीराम और लक्ष्मणका मूर्छित होना	१२७८	८८-लक्ष्मण और इन्द्रजित्की परस्पर रावणकी बातचीत और घोर युद्ध	१२२७
७४-ज्ञानवान्का आदेशसे हनुमान्जीका दिमागसे दिव्य आशयोंका पतनको लाना और उन अशयोंकी वृत्तिसे भीराम, लक्ष्मण एवं समस्त वानरोंका पुन स्वस्थ होना	१२८५	८९-विभीषणका राक्षसोंपर प्रहार, उनका वानर युद्धविषयोंको प्रोत्साहन देना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजित्के सारथिका और वानरोंद्वारा उसके घोड़ोंका वध	१२३३
७-लक्ष्मणपुरीका दहन तथा राक्षसों और वानरोंका भयकर युद्ध	१२९२	९०-इन्द्रजित् और लक्ष्मणका भयकर युद्ध तथा इन्द्रजित्का वध	१२३६
७६-अङ्गदक द्वारा रुम्भन और प्रजङ्गका, द्विविदके द्वारा शांतिवाञ्छा, मेन्दके द्वारा यूपशला और सुभीरने द्वारा कुम्भका वध	१२९७	९१-लक्ष्मण और विभीषण आदिका भीरामचन्द्रजी के पास आकर इन्द्रजित्के वधका समाचार सुनाना, प्रसन्न हुए भीरामक द्वारा लक्ष्मण को हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा तथा सुदेशद्वारा लक्ष्मण आदिकी चिन्तित	१२४२
७७-हनुमान्के द्वारा निकुम्भका वध	१३०३	९२-रावणका शोक तथा सुपातोंके समक्षानेसे उसका वीर-वधसे निवृत्त होना	१२४४
७८-रावणकी आज्ञासे मकराशय युद्धके लिये प्रस्थान	१३०४	९३-भीरामद्वारा राक्षससेनाका संहार	१२४८
७९-भीरामचन्द्रजीक द्वारा मकराशयका वध	१३०६	९४-राक्षसोंका विलाप	१२५१
८०-रावणकी आज्ञासे इन्द्रजित्का घोर युद्ध तथा उसने वधने विषयमें भीराम और लक्ष्मणकी बातचीत	१३०८	९५-रावणका अपने मन्त्रियोंको बुलाकर शत्रुवध निश्चय अपना उत्साह प्रकट करना और खड़े साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम दिखाना	१२५३
८१-इन्द्रजित् द्वारा मायामयी वीरताका वध	१३११	९६-सुभीरद्वारा राक्षससेनाका संहार और विष्णुका वध	१२५७
८२-हनुमान्जीक नेत्रोंमें वानरों और निशाचरोंका युद्ध, हनुमान्जीका भीरामक पास लौटना और इन्द्रजित्का निकुम्भिला-मन्दिरमें धाकर हार करना	१३१४	९७-सुभीरक साथ महा दरका घोर युद्ध तथा वध	१२५९
८३-वीरताके मारे जानेकी बात सुनकर भीरामका शोकसे मूर्छित होना और लक्ष्मणका उहाँ समक्षसे हुए पुरुषार्थके लिये उत्पन्न होना	१३१६	९८-अग्रदूत द्वारा महापातका वध	१२६२
८४-विभीषणका भीरामको इन्द्रजित्की मायाका रहस्य बताकर वीरताके वीरता होनेका विश्वास		९९-भीराम और रावणका युद्ध	१२६३

- १००-राम और रावणका युद्ध, रावणकी शक्तसे
लक्ष्मणका मूर्छित होना तथा रावणका
युद्धसे भागना १३६६
- १०१-भीरामका विलाप तथा हनुमान्जीकी लामी
हुई आपधिने सुपेणद्वारा किये गये प्रयोगसे
लक्ष्मणका सचेत हो उठना १३७०
- १०२-इन्द्रके भेगे हुए रथपर बैठकर भीरामका
रावणके साथ युद्ध करना १३७४
- १०३-भीरामका रावणको फटकारना और उनके
द्वारा घायल किये गये रावणको सारथिका
रणभूमिसे यादर ले जाना १३७८
- १०४-रावणका सारथिको फटकारना और सारथिका
अपने उत्तरसे रावणको समुद्र करके उसके
रथको रणभूमिमें पहुँचाना १३८१
- १०५-अगस्त्य मुनिका भीरामको विजयके लिये
'आदित्यहृदय' के पाठकी सम्मति देना १३८२
- १०६-रावणके रथको देख भीरामका मातलिङ्ग
सावधान करना, रावणकी पराजयके सूचक
उत्पातों तथा रामकी विजय सूचित करनेवाले
शुभ शकुनोंका वणन १३८५
- १०७-भीराम और रावणका घोर युद्ध १३८८
- १०८-भीरामके द्वारा रावणका वध १३९२
- १०९-विभीषणका विक्षय और भीरामका उन्हें
समस्तकर रावणके अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये
आदेश देना १३९४
- ११०-रावणकी स्त्रियोंका विलाप १३९६
- १११-मन्दोदरीका विलाप तथा रावणके शवका
दाह-संस्कार १३९८
- ११२-विभीषणका रा-साभिषेक और भीरुनाथजीका
हनुमान्जीके द्वारा सीताको पाछ सदेव
भेजना १४०५
- ११३-हनुमान्जीका सीताजीसे बातचीत करके
छोटना और उनका संदेह भीरामको सुनाना १४०७
- ११४-भीरामकी आज्ञासे विभीषणका सीताको उनके
रुमीप काना और सीताका प्रियतमके मुख
चुम्बका दर्शन करना १४११
- ११५-सीताके हरिषपर संदेह करके भीरामका उन्हें
ग्रहण करनेसे इन्कार करना और अयत्न
जानेके लिये कहना १४१३
- ११६-सीताका भीरामको उपालम्भपूर्ण उत्तर देकर
अपने सतीत्वकी परीक्षा देनेके लिये अग्निमें
प्रवेश करना १४१५
- ११७-मगवान् भीरामके पाछ देवताओंका आगमन
तथा ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्प्राप्ति
प्रतिपादन एवं स्तवन १४१७
- ११८-मूर्तिमान् अग्निदेवता सीताको लेकर चित्तसे
प्रकट होता और भीरामको समर्पित करके
उनकी पवित्रताको प्रमाणित करना तथा
भीरामका सीताको सहज स्वीकार करना १४१९
- ११९-महादेवजीकी आज्ञासे भीराम और लक्ष्मणका
विमानद्वारा आये हुए राजा दशरथको
प्रणाम करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा
सीताको आवश्यक सदेव दे इन्द्रलोकको जाना १४२१
- १२०-भीरामके अनुरोधसे इन्द्रका भरो हुए बानरोंको
जीवित करना, देवताओंका प्रस्थान और
बानरसेनाका विभाम १४२३
- १२१-भीरामका अयोध्या जानेके लिये उद्यत होना
और उनकी आज्ञासे विभीषणका पुष्करविमान
को मँगाना १४२५
- १२२-भीरामकी आज्ञासे विभीषणद्वारा बानरोंका
विशेष सत्कार तथा सुग्रीव और विभीषण
सहित बानरोंको साथ लेकर भीरामका पुष्कर-
विमानद्वारा अयोध्याका प्रस्थान करना १४२७
- १२३-अयोध्याकी यात्रा करते समय भीरामका
सीताजीको मागके स्थान दिताना १४२९
- १२४-भीरामका भरद्वाज आश्रमपर उतरकर महर्षिसे
मिलना और उससे वर पाना १४३२
- १२५-हनुमान्जीका निषादराज गुह तथा भरतजीको
भीरामके आगमनकी सूचना देना और प्रसन्न
हुए भरतका उन्हें उपहार देनेकी घोषणा करना १४३४
- १२६-हनुमान्जीका भरतको भीराम, लक्ष्मण और
सीताके वनवाससम्बन्धी बारे वृत्तान्तोंको
सुनाना १४३७

१२७-अयोध्यामें भीरामके स्वागतकी तैयारी, भरतके साथ सबका भीरामकी अगवाजीके लिये नन्दिग्राममें पहुँचना, भीरामका आगमन, भरत आदिके साथ उनका मिलन तथा

पृथक विमानकी कुबरेके पास भेजना १२४१
१२८-भरतका भीरामसे साथ लौटना, भीरामकी नगरयात्रा, रात्राभियेक, वानरोंकी विदाई तथा ग्रन्थका मागल्य १४४८

चित्र-सूची

(तिरगा)

- १-इन्द्र सारथि मालि भगवान् धारामसे रथपर आरुह्य हानेके लिये अनुरोध कर रहे हैं १०५१
२-अष्टाक्ष यन्त्रम सीताजी अपनी सखी सरमाने बातचीत ११५६
३-भीराम-लङ्कानकी गरुड़बाछे बात चीत ११८०

(पकरगा)

- १-भीराम सुग्रीवको लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये उत्साहित कर रहे हैं १०५२
२-आकाशमें स्थित होकर विभीषण उच्च स्वरसे अपना परिचय दे रहे हैं १०८८
३-भीरामद्वारा सद्युद्धका आरम्भ ११०५

- ४-इतुमान्जीके कचेपर आरुह्य भीरामका रावणके साथ युद्ध १२१५
५-रावणद्वारा साथे हुए कुम्भकर्णको बगानेका प्रयत्न १२१९
६-कुम्भकर्ण वध १२५४
७-परतका ज्ञापनपर लिये हुए इतुमान्का प्रत्यागमन १२९१
८-मेघनाद-वध १३४०
९-रावण-वधपर वानरोंका जय घोष १३९३
१०-विभीषणका रात्राभियेक १४०६
११-विमान लेकर उपस्थित हुए विभीषणसे भीराम वानरोंका सत्कार करनेको कह रहे हैं १४२७

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी विषय-सूची

(उत्तरकाण्डम्)

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या
१-भीरुमक दरबारमें महर्षियोंका आगमन, उनके साथ उनकी वात्सवी तथा भीरुमके प्रजन	१४५३		१६-नादीश्वरका रावणको शाप, भगवान् शङ्करद्वारा रावणका मान भङ्ग तथा उनमें चन्द्रहास नामक खड्गकी प्राप्ति	१४९३	
२-महर्षि अगस्त्यके द्वारा पुरुषके गुण और तपस्याका वर्णन तथा उनसे विभवा मुनीकी उत्पत्तिके कथन	१४५५		१७-रावणसे तिरस्कुत ब्रह्मर्षिकन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेश करना और दूसरे जन्म में सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना	१४९६	
३-विभवासे वैशंपयन (कुत्रे) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या, वरप्राप्ति तथा लङ्कामें नियास	१४५८		१८-रावणद्वारा मरुत्तरी पराजय तथा इन्द्र आदि देवताओंका मयूर आदि पक्षियोंका वरदान देना	१४९०	
४-राक्षस राजाका वर्णन—इति, विद्युत्क्षेत्र और सुवेशकी उत्पत्ति	१४६०		१९-रावणके द्वारा अनरण्यका वध तथा उनका द्वारा उसे शापकी प्राप्ति	१५०१	
५-सुवेशके पुत्र मात्स्यवान्, सुमाली और मालीकी सनानोंका वर्णन	१४६२		२०-नारदजीका रावणकी समझाना, उनका कहनेसे रावणका मुद्रके लिये यमलोकको जाना तथा तारदबीका वध मुद्रके विषयमें विचार करना	१५०३	
६-देवताओंका भगवान् शङ्करकी सहायसे राक्षसोंके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और उनसे आश्वासन पाकर लौटना, राक्षसोंका देवताओंपर आक्रमण और भगवान् विष्णुका उनकी सहायताके लिये जाना	१४६५		२१-रावणका यमलोकपर आक्रमण और उसके द्वारा यमराजक सेनिकोंका संहार	१५०५	
७-भगवान् विष्णुद्वारा राक्षसोंका संहार और परलयन	१४६९		२२-यमराज और रावणका युद्ध, यमका रावणके वधके लिये उठाया हुआ काल्दण्डकी मृदाकीके कहनेसे लौग लेना, त्रिजयीरावणका यमलोकसे प्रस्थान	१५०८	
८-मात्स्यवान्का युद्ध और पराजय तथा सुमाली आदि सब राक्षसोंका रक्षतलमें प्रवेश	१४७३		२३-रावणके द्वारा निवातकवचोंसे मैत्री, काष्ठकैयोंका वध तथा वरुणपुत्रोंकी पराजय	१५११	
९-रावण आदिका जन्म और उनका तपके लिये शोर्कण-आश्रममें जाना	१४७५		२४-रावणद्वारा अग्रदूत हुई देवता आदिकी कन्याओं और स्त्रियोंका बिलाप पर्व शाप, रावणका रोती हुई शूरणलाको आश्वासन देना और उसे खरके साथ दण्डकारण्यमें भेजना	१५१५	
१०-रावण आदिकी तपस्या और वर प्राप्ति	१४७८		२५-वशोंद्वारा मेघनादकी संकल्पता, विभीषणका रावणको परन्धी हृदयके दोष बताना, कुम्भीनदी को आगवान् दे मधुको साथ ले रावणका देवलोकपर आक्रमण करना	१५१७	
११-रावणका संदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका लङ्काको छोड़कर कैलासपर जाना, लङ्कामें रावणका रावणाभिषेक तथा राक्षसोंका निवास	१४८१		२६-रावणका रक्षापर बलारक्षण करना और नलकूबरका रावणको भयंकर शाप देना	१५२०	
१२-शूर्पणखा तथा रावण आदि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म	१४८४		२७-सेनासहित रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना, भविष्यमें रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रकी लौटना, देवताओं और राक्षसोंका युद्ध तथा वधके द्वारा सुमालीका वध	१५२४	
१३-रावणद्वारा बन्धुवधे गये क्षत्रपातारमें कुम्भकर्ण का सेना, रावणका अत्याचार, कुबेरका दूत भेजकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावण का उस दूतको मार डालना	१४८६				
१४-मन्त्रिगोष्ठित रावणका यक्षोंपर आक्रमण और उनकी पराजय	१४८९				
१५-मायिभद्र तथा कुबेरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पक विमानका अग्रहण	१४९०				

- २८-मघनाद और जयन्तका युद्ध, पुल्लमाका जयन्त-
का अन्यत्र लज्जाना, देवराज इन्द्रका युद्धभूमिमें
पदार्पण, रुद्रों तथा मरुद्गणोंद्वारा राक्षसेना
का संहार और इन्द्र तथा रावणका युद्ध १५२७
- २९-रावणका देवनेनाक कीचसे होकर निरुल्लास,
देवताओंका उससे वैद करनेके लिये प्रयत्न,
मेघनादका मायाद्वारा इन्द्रको बन्दी बनाना
तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काका
लौटना १ ३०
- ३०-ब्रह्माजीका इन्द्रविज्ज्वा परदान देकर इन्द्रको
उनकी कैदसे छुड़ाना और उनका पूरक
पारक्रमको याद दिलाकर उनसे वेणुय यज्ञका
अनुष्ठान करनेके लिये कहना, उस यज्ञसे पूण
करके इन्द्रका स्वालाकमें जाना १५ ३
- ३१-रावणका माहिष्मती पुरीमें जाना और वहाँ
राना अनुको न पारर मन्त्रियोंसहित उसका
विपत्तिरिक्त समीप नग्नमें नगकर भावान्
शिवकी आराधना करना १५ ३६
- ३२-अर्जुनकी भुजाओंसे नमदाके प्रवाहका अवरोध
हाना, रावणके पुष्पपहारका वह जाना फिर
रावण आदि निष्ठाचरोंका अनुको साथ युद्ध
तथा अर्जुनका रावणको कैद करके अपने नगरमें
लज्जाना १५ ३
- ३३-पुष्पमयीका रावणकी अनुको कैदसे छुटकारा
दिलाना १ ४४
- ३४-बालके द्वारा रावणका परामर्श तथा रावणका
उन्हें अपना मित्र बनाना १ ४५
- ३५-हनुमान्जीकी उत्पत्ति, चौधवावस्वामें इनका
सूय राहु और एरावतपर आक्रमण, इन्द्रके
वज्रने इनकी मूर्त्ति वायुका कपसे संहार
प्राणियोंका कष्ट और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये
दवनाओंसहित ब्रह्माजीका उनके पास जाना १५ ४८
- ३६-ब्रह्मा आदि देवताओंका हनुमान्जीको जीवित
करके नाना प्रकारके वरदान देना और वायुका
उन्हें लकर अम्बनाके घर जाना, श्रुतिगोत्र कापसे
हनुमान्जीका अपने बलकी विस्मृति, भीरुमत्ता
अगस्त्य आदि श्रुतिगोत्रोंसे अपने यत्नमें पधारनेके
लिये प्रन्नाय करके उन्हें विदा देना १५ ५२
- ३७-भीरुमत्ता समासदोके साथ राजवृत्तमें बैठना १५ ५६
- ३८-भीरुमत्ता द्वारा राजा जनक सुधावित्, प्रवर्द्धन
तथा अन्य नरेशोंकी विदाह १ ५८
- ३९-राजाओंका भीरुमत्ता लिये भेंट देना और
भीरुमत्ता वह सब लभ्य अपने मित्रों, वानरों,
रीछों और राक्षसोंका भेंट देना तथा वानर
आदिका वहाँ सुखपूर्वक रहना १५ ६०
- ४०-वानरों, रीछों और राक्षसोंकी विदाह १५ ६२
- ४१-कुबेरके भेजे हुए पुष्पक विमानका आना
और भीरुमत्तामें पूजित एवं अनुगृहीत होकर
अद्वयहा जाना, भरतके द्वारा भीरुमत्तायके
विलक्षण प्रभावका वर्णन १५ ६४
- ४२-अगोचरनिकामें श्रीराम और सीताका विहार,
गर्भिणी सीताका तबोजन देखनेकी इच्छा प्रकट
करना और भीरुमत्ता इस लिये स्वीकृति देना १५ ६५
- ४३-भद्रका पुरवानियोंके सुगमसे सीताके विषयमें
सुनी हुई अनुमत्त चर्चामें श्रीरामका अवगत
करना १५ ६७
- ४४-श्रीरामका सुगमसे सब भाव्योंका उनका पास आना १५ ६९
- ४५-श्रीरामका भाव्योंका समस्त सवन चले हुए
लाकापवादकी चर्चा करके सीताका वनमें छोड़
आनेके लिये लक्ष्मणको आदेश देना १५ ७०
- ४६-लक्ष्मणका सीताका रथपर बिठाकर उहाँ वनमें
छोड़नेके लिये लज्जाना और गङ्गाजीका तत्पर
पहुँचना १५ ७२
- ४७-लक्ष्मणका सीताजीको नावसे गङ्गाजीके तटपर
पहुँचाकर वड़े दुःखसे उहाँ उनका त्याग
जानेकी बात बनाना १५ ७४
- ४८-सीताका दुःखपूर्ण वचन श्रीरामके लिये उनका
सन्तान, लक्ष्मणका जाना और सीताका राना १५ ७५
- ४९-मुनिकुमारोंसे समाचार पाकर वाल्मीकिका सीताके
पास आ उन्हीं सान्त्वना देना और आश्रममें
लिया लज्जाना १५ ७७
- ५०-लक्ष्मण और सुमन्त्रकी बातचीत १५ ७८
- ५१-मागमें सुमन्त्रका दुवागके मुखसे सुनी हुई
श्रुत्युत्पत्ति की श्रापकी कथा कहकर तथा
भविष्यमें होनेवाली कुछ बातें बताकर दुस्ती
लक्ष्मणको घान्न करना १५ ८०
- ५२-अपेक्ष्य राजमन्त्रमें पहुँचकर लक्ष्मणका दुस्ती
भीरुमत्तासे मिलना और उहाँ सान्त्वना देना १५ ८२
- ५३-भीरुमत्ता कायाधी पुरुषोंकी उपेक्षित राजा
नृगको मिलनेवाली श्रापकी कथा सुनाकर
लक्ष्मणको देखमाहल लिये आदेश देना १५ ८३

- ५४-राजा नृगल। एक सुन्दर गङ्गा बनवाकर अपने पुत्रका राय दे स्वयं उसमें प्रवेश करके शाप भोगना १५८५
- ५५-राजा निमि और वसिष्ठका एक दूसरेके शापसे देहत्याग १५८६
- ५६-ब्रह्माजीके कहनसे वसिष्ठका वरुणने वीर्यमें आवेश, वरुणना उर्वशीके समीप एक कुम्भमें अपने वीर्यका व्याधान तथा मिथके शापसे उषशीका भूतलमें राजा पुरुरावक पास रहकर पुत्र उत्पन्न करना १५८७
- ५७-वसिष्ठका नूतन शरीर धारण और निमिवा प्राणियोंके नयनोंमें निवास १५८९
- ५८-ययातिका शूक्राचार्यका शाप १५९१
- ५९-ययातिका अपने पुत्र पूरुको अपना शृङ्गापा देकर बदलेमें उसका यौवन लेना और भोगों से तृप्त होकर पुन दीपकालके बाद उसे उसका यौवना लौटा देना, पूरुका अपने पिताकी गद्दीपर अभियेक तथा यदुको शाप १५९२
- प्रस्थित सर्ग १-श्रीरामके द्वारपर कावार्थी कुत्तेका व्यागमन और भीरुमका उठ दरवारमें लानेका आदेश १५९४
- २-कुत्तेके प्रति श्रीरामका न्याय, उसकी इच्छाके अनुसार उसे मारनेवाले ब्राह्मणको मठाधीन बना देना और कुत्तेका मठाधीन होनेका क्षोभ बताना १५९६
- ३०-श्रीरामके दरबारमें ज्यवन आदि श्रृंगियोंका शुभागमन, श्रीरामके द्वारा उनकी सत्कार करके उनका अभीष्ट कार्यकी पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा तथा श्रृंगियोंद्वारा उनकी प्रशंसा १५९९
- ३१-श्रृंगियोंका मधुका प्राप्त हुए वर तथा लवणा सुरके वर और अत्याचारका यथन करके उसने प्राप्त होनेवाला भयका दूर करनेके लिये श्रीरामाश्रयसे प्राधना करना १६००
- ३२-भीरमरा श्रृंगियोंसे लवणामुरक आहार विहारक विषयमें पूछना और शत्रुपक्षकी बलि बानकर उन्हें राण-वधक कार्यमें निरुत्त करना १६०२
- ३३-श्रीरामद्वारा शत्रुपक्षका रायाभियक तथा उन्हें लवणामुरके शूलसे वधनेके उपायका प्रतिपादन १६०३
- ३४-भीरामकी आशंक अनुसार शत्रुपक्षका सेनाको आगे भेजकर एक मासक पश्चात् स्वयं भी प्रस्थान करना १६०४
- ३५-महर्षि वाल्मीकिका शत्रुपक्षको सुदासपुत्र कल्याणपादकी कथा सुनाना १६०७
- ३६-सीताके दो पुत्रोंका जन्म, वाल्मीकिद्वारा उनकी रक्षाकी व्यवस्था और इस समाचारसे प्रसन्न हुए शत्रुपक्षका वहाँमें प्रस्थान करके यमुना तटपर पहुँचना १६०९
- ३७-ज्यवन मुनिका शत्रुपक्षको लवणामुरके शूलकी शक्ति का परिचय देते हुए राजा माघाताके वधका प्रसंग सुनाना १६१०
- ३८-लवणामुरका आहारके लिये निकलना, शत्रुपक्षका मधुपुरीके द्वारपर डट जाना और लौट हुए लवणामुरके साथ उनकी रोपमरी बातचीत १६१२
- ३९-शत्रुपक्ष और लवणामुरका युद्ध तथा लवणका वध १६१३
- ७-देवताओंसे वरदान पा शत्रुपक्षका मधुपुरीको बंधाकर बारहवें वर्षमें वहाँसे श्रीरामके पास जानेका निश्चार करना १६१६
- ७१-शत्रुपक्षका थोड़े-से सैनिकोंके साथ अयोध्याको प्रस्थान, मार्गमें वाल्मीकिके आश्रममें राम चरितका गान सुनकर उन स्वका आश्चर्य चकित होना १६१७
- ७२-वाल्मीकिजीसे निदा ले शत्रुपक्षकी अवोध्यामें जाकर भीराम आदिसे मिलना और सात दिनोंतक वहाँ रहकर पुन मधुपुरीका प्रस्थान करना १६१८
- ७३-एक ब्राह्मणका अपने मरे हुए बालकको राजा द्वारपर लाना तथा राजाका ही दापी बतारकर विलाप करना १६२०
- ७४-नारदजीका भीरामसे एक तपस्वी युद्धके अवमाचरणकी ब्राह्मणबालककी मृत्युमें कारण बताना १६२१
- ७५-श्रीरामका पुष्पक विमानद्वारा अपने रायकी सभी दिशाओंमें घूमकर दुष्कर्मका पता लगाना किंतु सर्वत्र दुष्कर्म ही देखकर दक्षिण दिशामें एक युद्ध तपस्वीके पास पहुँचना १६२२

- ७६-भीरामक द्वारा शम्भुकका वध, देवताओंद्वारा उनकी प्रशंसा, अगस्त्याधमपर महर्षि अगस्त्यन द्वारा उनकी सत्कार और उनके लिये आभूषणदान १६२४
- ७७-महर्षि अगस्त्यका एक स्वर्गीय पुरुषक शय भक्षणका प्रसंग सुनाना १६२७
- ७८-राजा श्वेतका अगस्त्यजीको अपने लिये धृष्टि आहारकी प्रातिका कारण बलाते हुए ब्रह्माजीके साथ हुई अपनी बातोंको उपस्थित करना और उन्हें दिव्य आभूषणका दान दे भूल प्यासे कष्टसे मुक्त होना १६२९
- ७९-इक्ष्वाकुपुत्र राजा दण्डका राज्य १६३१
- ८०-राजा दण्डका भागवत-कन्याके साथ बलात्कार १६३२
- ८१-शुकक शापसे सपरिवार राजा दण्ड और उनके राज्यका नाश १६३३
- ८२-भीरामका अगस्त्य आश्रमसे अयोध्यापुरीको लौटना १६३४
- ८३-भरतक कदनेसे भीरामका राजसूय यज्ञ करने के विचारसे निवृत्त होना १६३६
- ८४-लक्ष्मणका अश्वमेध यज्ञका प्रस्ताव करते हुए इन्द्र और वृत्रासुरकी कथा सुनाना, वृत्रासुर की तपस्या और इन्द्रका भगवान् विष्णुसे उसके वधके लिये अनुरोध १६३७
- ८५-भगवान् विष्णुने तेषका इन्द्र और वज्र आदिमें प्रवेश, इन्द्रके वज्रसे वृत्रासुरका वध तथा ब्रह्महत्याप्रसक्त इन्द्रका अन्धकारमय प्रदेशमें जाना १६३८
- ८६-इन्द्रके बिना जगत्में अशान्ति तथा अश्वमेध के अनुष्ठानसे इन्द्रका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना १६४०
- ८७-भीरामका लक्ष्मणकी राजा इलकी कथा सुनाना—इलकी एक-एक माघनक स्त्रीत्व और पुरुषत्वकी प्राप्ति १६४१
- ८८-इला और कुषका एक दूसरेकी देखना तथा बुधका उन सब क्रियाओंके किंपुरुषी नाम देकर पतनपर रहने के लिये आदेश देना १६४३
- ८९-कुष और इलाका समागम तथा पुरुषत्वकी उत्पत्ति १६४५
- ९०-अश्वमेधके अनुष्ठानमें इलाकी पुरुषत्वकी प्राप्ति १६४६
- ९१-भीरामने आर्द्रामे अश्वमेध यज्ञकी तैयारी १६४८
- ९२-भीरामके अश्वमेध यज्ञमें दान-मानकी विशेषता १६४७
- ९३-भीरामक यज्ञमें महर्षि वाल्मीकिका आगमन और उनका रामायणगानने लिये कुश और लवको आदेश १६५१
- ९४-लव कुशद्वारा रामायणकाव्यका गान तथा भीरामका उसे मरी समामें सुनना १६५२
- ९५-भीरामका सीतासे उनकी श्रद्धा प्रमाणित करनेके लिये शपथ करानेका विचार १६५४
- ९६-महर्षि वाल्मीकिकारा सीताकी गुदताका समर्थन १६५५
- ९७-सीताका शयन ग्रहण और रत्नलहमें प्रवेश १६५७
- ९८-सीताके लिये भीरामका खेद, ब्रह्माजीका उन्हें समझाना और उत्तरकाण्डका शेष अंश सुनने के लिये प्रेरित करना १६५८
- ९९-सीताके रत्नलह प्रवेशके पश्चात् भीरामकी जीवनचर्चा, रामरायकी स्थिति तथा माताओंके परलोकगमन आदिका वर्णन १६६०
- १००-चेक्यदेवसे ब्रह्मर्षि गायका भेंट लेकर आना और उनके सदेशसे अनुसार भीरामकी आशासे कुमारोंसहित भरतका गच्छन देशपर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान १६६१
- १०१-भरतका गन्धर्वोंपर आक्रमण और उनके सहर करके यहाँ दो सुन्दर नगर बसाकर अपने दोनों पुत्रोंको चौपना और शक्ति अयोध्याको लौट आना १६६३
- १०२-भीरामकी आशासे भरत और लक्ष्मणद्वारा कुमार अङ्ग और चन्द्रकेतुकी कारुण्यदेशक विभिन्न राशियोंपर नियुक्ति १६६४
- १०३-भीरामने यहाँ कालका आगमन और एक बडोर शक्ति साथ उनकी बातचीत लिय उद्यत होना १६६५
- १०४-कालका भीरामचन्द्रजीका ब्रह्माजीका सदेश सुनाना और भीरामका उसे स्वीकार करना १६६७
- १०५-दुर्वाचान शापक भयसे लक्ष्मणका नियम मङ्गल करके भीरामके पास इनके आगमनका समाचार देनेके लिये जाना, भीरामका दुर्वाचान मुनिकी आज्ञाकराना और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित होना १६६८
- १०६-भीरामका त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर स्वर्ग गमन १६६९
- १०७-वशिष्ठजीक कदनेसे भीरामका पुरयासियोंको अपने साथ ले जानेका विचार तथा कुश और लवरा रामायणन करना १६७०
- १०८-भीरामचन्द्रजीका भाइयों, सुग्रीव आदि वानरों तथा शीतल साथ परमधाम जानेका निश्चय और विभीषण, इन्द्रमान्, व्यसमान्, मन्द एव द्विविदका इस भूतलपर ही रहनेका आदेश देना १६७२

१०९-परमधाम जानेके लिये निकले हुए श्रीरामके

साथ समस्त अयोध्यावासीयोंका प्रस्थान

१६७४

११०-माइयोंतहित श्रीरामका विष्णुस्वरूपमें प्रवेश

तथा साथ आये हुए सब छोड़ोंको छत्तानक

छोकरी प्राप्ति

१६७६

१११-रामायण काव्यका उपसंहार और इसकी महिमा १६७८



चित्र सूची

(तिरगा)

१-भगवान् विष्णुक द्वारा मालीका यघ

१४७३

२-जानकीजीका वनमें छोड़कर लौटे हुए

लक्ष्मणकी श्रीरामसे भेंट

१५८२

(एकरंगा)

१-तपस्वि-कन्या वेदवतीक द्वारा रावणकी भत्सना

१४९८

एवं अग्निप्रवेशकी तैयारी

२-रावणद्वारा मुन्दरी कन्याओंका अपहरण

१५१५

३-विभिन्न दिशाओंसे आये हुए ऋषि मुनियोंद्वारा

भगवान् श्रीकोसलेन्द्रका अभिनन्दन

१५५६

४-जानकीजीको घोर वनमें छोड़कर लक्ष्मण लौटे

रहे हैं

१५७६

५-शत्रु तपस्वी गम्भीरकसे श्रीरामका वातचात

१६२४

६-राजा इसका चन्द्रपुत्र शुचके साथ सवाद

१६४५

७-निर्वासिता श्रीजानकीजीकी भूतलप्रवेशके लिये

तैयारी

१६५८

८-भगवान् श्रीरामकी महायात्रा

१६७५





अशोकवन विघ्नसके नाद मारुतिका जयघोष

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

मुन्दरकाण्डम्

प्रथम सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा समुद्रका लहान, मैनाकके द्वारा उनका स्वागत, सुरमापर उनकी विजय तथा सिंहिकाका बध करके उनका समुद्रके उस पार पहुँचकर लङ्काकी शोभा देखना

प्रतो रावणनीनाया सीताया शत्रुर्जयण ।
इयेव पद्मनेष्टु चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥

तदनंतर शत्रुओंका संहार करनेवाले हनुमान्जीने रावणद्वारा हरी गयी सीताके निवासस्थानका पता लगानेके लिये उस आकाशमार्गसे जानेका विचार किया, जिसपर चारण (देवजातिविशेष) विचरा करते हैं ॥ १ ॥

दुष्कर निष्प्रतिद्वन्द्व चिकीपन् कर्म धानर ।
समुद्रप्रशिरोप्रीयो गवा पतिरिवाधमौ ॥ २ ॥

कनिबर हनुमान्जी एसा कर्म करना चाहते थे, जो दूसरोंके लिये दुष्कर था तथा उस काममें उन्हें किसी भीरुकी सहायता भी नहीं प्राप्त थी। उन्होंने मत्स्य और ग्रीवा जैसी की। उस समय वे हृष्टपुष्ट शौङ्गके समान प्रवीत होने लगे ॥ २ ॥

मय पैद्वयषण्णु शाङ्गलेपु महागल ।
धीर सलिलकल्पेषु विचचार ययासुखम् ॥ ३ ॥

किर घोर स्वभाववाले वे महाबली पवनकुमार वैदूर्यमणि (नीलम) जैरे समुद्रक वज्रका भोंवि हरीहरी बावपर सुखपूर्वक विचरने लगे ॥ ३ ॥

द्विजान्त्रिजासयन् धीमानुरसा पादवान् हरन् ।
मृगाश्च सुवहन् निष्पन् प्रबुद्ध इव केसरी ॥ ४ ॥

उस समय बुद्धिमान् हनुमान्जी पशुओंको शास देते, इशकों बध सरलके आगतसे धराशायी करते तथा गह्वरसे मृगों (वन वस्तुओं) को कुचलते हुए पराक्रममें बने चले विहने समान शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

नीललोहितमाञ्जिष्टपद्मवर्णं सितपसिनैः ।
स्वभावासिद्धैर्मर्मैर्घातुमिं समललुप्तम् ॥ ५ ॥

उस पक्षतका लालतलप्रदेश था, वह पहाड़ोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न होनेवाली नीली, लाल, मश्रीठ और कमलरङ्गके रंगवाली द्रव तथा 'याम' वादानी निमज्ज वस्तुओंसे अच्छी तरह अलङ्कृत था ॥ ५ ॥

कामरूपिभिराविष्टमधीक्षन् सपरिच्छदै ।
यस्यकिनरगन्धर्वैर्वैवकल्यै सपन्नगै ॥ ६ ॥

उसपर देवोपम यक्ष किन्नर, गन्धर्व और नाग, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे, निरंतर परिवारसहित निवास करते थे ॥ ६ ॥

स तस्य गिरिवयस्य तले नागधरायुते ।
तिष्ठन् कपियरस्तत्र हृदे नाग इवाधमौ ॥ ७ ॥

बड़े-बड़े गजराजोंसे भरे हुए उस पर्वतक समतल प्रदेशमें खड़े हुए कपिबर हनुमान्जी वहाँ जलाधाममें स्थित हुए विशालकाय हाथके समान जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे ।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं हृत्या चकार गमने मतिम् ॥ ८ ॥

उन्होंने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा और भूतों (देवगणों) को भी हाथ जोड़कर उस पार जानेका विचार किया ॥ ८ ॥

अञ्जलिं प्राङ्मुख कुर्वन् पवनापात्मयोनये ।
ततो हि वयुषे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणादिशम् ॥ ९ ॥

धिर पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता पवनदेवको प्रणाम किया। तत्काल कार्यकुशल हनुमान्जी दक्षिण दिशामें जानेके लिये बढ़ने लगे (अपने शरीरको बटाने लगे) ॥ ९ ॥

पुनर्वगप्रवरैरहृष्टं पश्यन् कृतनिश्चय ।
वयुषे रामवृद्धार्थं समुद्र इव पथस्तु ॥ १० ॥

बड़े बड़े धानरोंने देखा जैसे पूज्यमाके दिन समुद्रमें चार जाने लगता है, उसी प्रकार, समुद्र-सङ्गनके लिये हृत्निश्चय करनेवाले हनुमान्जी भीरामकी काय सिद्धि के लिये बढ़ने लगे ॥ १० ॥

निष्प्रमाणशरीरं संहितद्वयिपुरणयम् ।
वाहुभ्या पीडयामास चरणभ्या च पथतम् ॥ ११ ॥

समुद्रको लौपनेकी इच्छामें उन्होंने अपने शरीरको

वेद दत्ता लिया और अपनी दोनों भुजाओं तथा चरणोंसे
उस पर्वतको दबाया ॥ ११ ॥

स च चालाचलध्याशु मुहूर्तं कपिपीडितः ।

तरुणा पुष्पिताप्राणा सर्वं पुष्पमशाययत् ॥ १२ ॥

कपियर हनुमानजीक द्वारा दबाये जानेपर तुरत ही वह
पर्वत काँप उठा और दो घड़ीतक डगमगाता रहा । उसके
ऊपर जो वृक्ष उगे थे, उनकी झालियोंके अग्रभाग फूलोंसे
लदे हुए थे, किंतु उन पर्वतके हिलनेसे उनके वे छारे
फूल झड़ गये ॥ १२ ॥

तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेन सुगन्धिना ।

सर्वतः सवृत्त शैले यभौ पुष्पमयो यथा ॥ १३ ॥

वृक्षोंसे झड़ी हुई उस सुगन्धित पुष्पराशिके द्वारा सब
ओरसे आच्छादित हुआ वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था,
मानो वह फूलोंका ही बना हुआ हो ॥ १३ ॥

तेन चोत्तमवीर्येण पीडयमानः न पर्वतः ।

सलिल सप्रसुक्ताव मदमत्त इव द्विप ॥ १४ ॥

महापराक्रमी हनुमानजीक द्वारा दबाया जाता हुआ
महेन्द्रपर्वत जल्के लोत बहाने लगा, मानो कोढ़ मदमत्त
गजराज अपने कुम्भस्पर्शसे मदकी धारा बहा रहा हो ॥ १४ ॥

पीडयमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः ।

रीतीर्निर्धेतयामास काञ्चनाञ्जनराजती ॥ १५ ॥

बलशाली पवनकुमारके भारसे दबा हुआ महेन्द्रगिरि
मुनहरे, रुपहले और काठे रंगके जल्लोत प्रकाशित
करने लगा ॥ १५ ॥

मुमोच च शिला शैलोविशाला समनःशिला ।

मध्यमेभार्त्विषा जुष्टो धूमराजीरिघानल ॥ १६ ॥

इतना ही नहीं, जैसे मध्यम ज्वालते युक्त अग्नि
लगातार घुओं छोड़ रही हो, उन्ही प्रकार वह पर्वत मैनसिल-
वहित बड़ी बड़ी शिलाएँ गिराने लगा ॥ १६ ॥

हरिणा पीडयमानेन पीडयमानानि सर्वतः ।

गुहाविष्टानि सत्त्वानि विननुविष्टनैः स्वरैः ॥ १७ ॥

हनुमानजीके उस पर्वत-पीड़नसे पीड़ित होकर वहाँक
समस्त और गुफाओंमें पुस गये और बुरी तरहसे
चिल्लाने लगे ॥ १७ ॥

स महान् सत्त्वसनादः दौलपीडानिमित्तज ।

पृथिग्निं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च ॥ १८ ॥

इस प्रकार पर्वतकी दबानेके कारण उत्पन्न हुआ वह
धीव जलुओंका महा कोजाल्ल घृन्नी, उपवन और
वर्ण दिशाओंमें भर गया ॥ १८ ॥

शिरोभिः पृथुभिर्नागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः ।

धमतः पायक घोर ददशुर्दशनैः शिला ॥ १९ ॥

जिनमें स्वस्तिक चिह्न स्पष्ट दितायी दे रहे थे, उन
स्थूल पर्वतोंसे विपकी भयानक आग उगलते हुए बड़े बड़े
सर्प उस पर्वतकी शिलाओंको अपने दाँतोंसे ढँसने लगे ॥ १९ ॥

तास्तदा सविपेक्षः कपितैस्तैर्महाशिला ।

जगन्नु पावकोद्दीप्ता विभिदुक्ष सहस्रधा ॥ २० ॥

कोपसे भरे हुए उन विपेक्ष सौंपोंके काटनेपर वे बड़ी
बड़ी शिलाएँ इस प्रकार जल उठीं, मानो उनमें आग लग गयी
हो । उस समय उन छत्रके सहस्रों टुकड़े हो गये ॥ २० ॥

यानि त्वौपचञ्जालानि तस्मिन्नातानि पर्वते ।

विपचनायपि नागानानशेष्टः शमितु विपम् ॥ २१ ॥

उस पर्वतपर जो बहुत-सी ओपधियाँ उगी हुई थीं, वे
विपको नष्ट करनेवाली होनेपर भी उन नागोंके विपको
शान्त न कर सकीं ॥ २१ ॥

भिद्यतेऽय गिरिभूतैर्गिति मत्वा तपस्विनः ।

प्रस्ता विद्याधरास्तसादुरूपेण खीर्णं सह ॥ २२ ॥

उस समय वहाँ रहनेवाले तपस्वी और विद्याधरोंने
समझा कि इस पर्वतको भूतलोग तोड़ रहे हैं, इससे
भयभीत होकर वे अपनी जियोंके साथ वहाँसे ऊपर उठकर
अंतरिक्षमें चले गये ॥ २२ ॥

पानभूमिगतं हित्वा हैममासवभाजनम् ।

पात्राणि च महार्हाणिकरकाक्ष हिरण्मयान् ॥ २३ ॥

लेहानुच्चावचान् भक्ष्यान् मांसानि विविधानि च ।

आयुभाणि च चामीणि खड्गाश्च कनकसङ्गन् ॥ २४ ॥

वृत्तकण्डगुणा क्षीया रक्तमाह्वानुलेपनाः ।

रक्षाक्षा पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥ २५ ॥

अधुपानक स्थानमें रकते हुए सुवर्णमय आसव पात्र,
बहुमूल्य बर्तन, सोनेके कलश, भौति भौतिके भक्ष्य पदार्थ
जन्नी, नाना प्रकारक फलोंक गूदे, पैलोंकी खादकी बनी
हुई दाँल और सुवर्णवर्तित मूढवाली तलवारें छोड़कर कण्डमें
मांसा धारण किये लाल रंगके फूल और अनुलपन (चंदन)
लगाये प्रफुल्ल कमलके सहस्र सुन्दर पद्म लाल नेत्रवाल वे
मत्तवाले विद्याधरगण भयभीत-से होकर आकाशमें
चले गये ॥ २५-२५ ॥

दान्पुष्टयेयूरपाग्निदायधरा स्त्रिय ।

विस्मिता सार्वमतास्तस्युराकाशे रमन् सह ॥ २६ ॥

उनकी जियों का गम हार, पैरोंमें रूख, भुजाओंमें
बाजूबंद और कन्धियोंमें बगल धारण किये आकाशमें

१ साँके पर्वतोंमें दितायी देनेवाली नील रेखाका
स्वस्तिक चक्रे हैं ।

अपने पतिपोंक साथ मन्द-मन्द मुस्कयता हुई चञ्चित-सी खड़ी
हा गयी ॥ २६ ॥

दशयन्तो महाविद्या विद्याधरमहर्षय ।
सहितास्तस्युरासाशे धीक्षाचक्रुश्च पततम् ॥ २७ ॥

विद्याधर और महर्षि अपनी महाविद्या (आकाशमें
मिगधार खड़े होनेकी शक्ति) का परिचय देते हुए अन्तरिक्षमें
एक साथ खड़े हो गये और उठ पवतकी ओर देखने
लगे ॥ २७ ॥

पुधुवुश्च तदा शब्दमृषीणा भावितात्मनाम् ।
चारणाना च सिद्धाना स्थिनाना विमलेऽम्बरे ॥ २८ ॥

उन्होंने उस समयनिमल आकाशमें खड़े हुए भावितात्मा
(पवित्र अन्तःकरणवाले) महर्षियों, चारणों और सिद्धोंकी
ये बातें सुनीं— ॥ २८ ॥

एष पवतसकाशो हनुमान् मारुतात्मज ।
तितीपति महावेग समुद्र धरणात्पयम् ॥ २९ ॥

‘महा ! ये पवतक समान विशालनाय महान् वेगशाली
पवनपुत्र हनुमान्वा वरुणात्पय समुद्रको पार करना
चाहते हैं ॥ २९ ॥

रामार्यशानराय च चिकीरन् कर्म दुष्करम् ।
समुद्रस्य पर पार दुष्प्राप प्राप्तुमिच्छति ॥ ३० ॥

‘राममहर्षी और शानरायके कार्यकी विद्विषे लिये
दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले ये पवनकुमार
समुद्रके तूफान पर पहुँचना चाहते हैं, जहाँ जाना अत्यन्त
कठिन है ॥ ३० ॥

इति विद्याधरावाच श्रुत्वातेषा तपस्थिनाम् ।
तमप्रमेय इह पृथगे ध्यानरर्पभम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार विद्याधरोंने उन तपस्वी महात्माओंकी कड़ी
इस बातें सुनकर पवतक ऊपर अनुलित बलशाली
वानरशिरोमणि हनुमान्जीको देखा ॥ ३१ ॥

दुधुषे च स रोमाणि चक्रमे चानलोपम ।
मनाद् च महानाद् सुमहानि त्र तोयद् ॥ ३२ ॥

उस समय हनुमान्जी अग्निके समान ज्ञान पड़ते थे ।
उन्होंने अपने शरीरको हिलाया और रोएँ झाड़े तथा महान्
मेघके समान बड़े बोर बोरसे गजना की ॥ ३२ ॥

मानुष्या च वृष्ट तल्लाङ्गल रोमभिश्चितम् ।
उत्पतिष्यन् विचिक्षेप पक्षिराज श्वोरगम् ॥ ३३ ॥

हनुमान्जी अब ऊपरको उछटना ही चाहते थे ।
उन्होंने क्रमशः गल्लाकार मुड़ी तथा रोमावलिसे भी हुई
अग्नीवृष्टको उसी प्रकार आकाशमें फेंका, जैसे पक्षिराज गरुड
सर्पको फेंकते हैं ॥ ३३ ॥

तस्य लाङ्गलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठत ।

दृष्टो गहडेनेष द्वियमाणो महोरग ॥ ३४ ॥

अत्यन्त वेगशाली हनुमान्जीके पीछे आकाशमें फैली
हुई उनकी कुछ-कुछ मुड़ी हुई वृद्ध गरुडके द्वारा ले
जाये जाते हुए महान् सर्पके समान दिखायी देती थी ॥ ३४ ॥

याह सस्तम्भयामास महापरिचयसन्निभौ ।
आससाद् अपि कथयाचरणौ सनुकोच च ॥ ३५ ॥

उन्होंने अपनी विशाल परिधके समान मुन्हाओंको
पर्वतपर जमाया । फिर ऊपरके सब अङ्गोंको इस तरह विकोड़
लिया कि वे कटिकी सीमामें ही आ गये, साथ ही उन्होंने
दोनों पैरोंको भी समेट लिया ॥ ३५ ॥

सह्य च भुजौ धीमास्तपैय च शिरोधरात् ।
तेज नरत्त तया वीर्यमाविशे स वीर्यवान् ॥ ३६ ॥

तपश्चात् तेजस्वी और पराक्रमी हनुमान्जीने अपनी
दोनों भुजाओं और गदनको भी विकोड़ लिया । इस समय
उनमें तेज, बल और पराक्रम—सभीका आवश हुआ ॥ ३६ ॥

मार्गमालोकयन् दूरदृष्ट्वप्रणिहितेक्षण ।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥ ३७ ॥

उन्होंने अपने लगे भागपर दृष्टि दीड़ानेके लिये
नेत्रोंको ऊपर उठाया और आकाशकी ओर देखते हुए
प्राणोंको हृदयमें रोका ॥ ३७ ॥

पट्टया दृढमवस्थान कृत्वा स कपिकुञ्जर ।
निःकुप्य कर्णा हनुमानुत्पतिष्यन् महाबल ॥ ३८ ॥

यानराज वानरछेष्ट इदं वचनमब्रवीत् ।
इस प्रकार ऊपरको छल्लों मानेकी तैयारी करते हुए
कपिश्रेष्ठ महा-छा हनुमान्ने अपने पैरोंको अच्छी तरह
जमाया और कानोंको विकोड़कर उन वानरशिरोमणिने अन्य
वानरोंसे इस प्रकार कहा— ॥ ३८ ॥

यथा राघवनिमुक्तः शरं भवसननिहम् ॥ ३९ ॥
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्का राघवपाशिताम् ।

जैसे श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ बाण बाधुवेराते
चलता है, उसी प्रकार मैं राघवद्वारा पाशित लङ्कापुरीमें
जाऊँगा ॥ ३९ ॥

नहि द्रक्ष्यामि यदि ता लङ्काया जनकात्मजाम् ॥ ४० ॥
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ।

यदि लङ्कामें जनकनन्दिनी साताकी नहीं देखूँगा तो
इसी वेगेमें मैं स्वर्गलोकमें चला जाऊँगा ॥ ४० ॥

यदि वा प्रिद्विषे साता न द्रक्ष्यामि वृत्तध्रम ॥ ४१ ॥
यद्व्या राक्षसपञ्जानमानयिष्यामि रावणम् ।

‘इस प्रकार परिभ्रम करनेपर यदि मुझ स्वर्गमें भी
सीताका दर्शन नहीं होगा तो राक्षसपञ्ज रावणको बाँधकर
लाऊँगा ॥ ४१ ॥

सवथा कृतकार्योऽहमेप्यामि सह सीतया ॥ ४२ ॥
मानयिष्यामि चालङ्का समुत्पाटय्य सरावणाम् ।

सवथा कृतकृत्य होकर मैं जीतके साथ लौटूँगा अथवा
रावणसहित लङ्कापुरीकी ही उत्पाटकर लाऊँगा ॥ ४२ ॥

पथमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तम ॥ ४३ ॥
उत्पलासाय वेगेन वेगवानविचारयन् ।

सुपर्णमिव चात्मान मेने स कपिकुञ्जर ॥ ४४ ॥

ऐसा कहकर वेगवाली वानरप्रवर श्रीहनुमान्जीने
विष्णु बाधाओंका कोई विचार न करके बढ़े वेगसे ऊपरकी
ओर छल्लोंग मारी । उस समय उन वानरशिरोमणिने अपने
को साक्षात् गरुड़के समान ही समझा ॥ ४३ ४४ ॥

समुत्पतति वेगात्तु वेगात् तं नगरोद्दिणः ।
सहृद्य विद्वान् सर्वान् समुत्पेतु समततः ॥ ४५ ॥

जिस समय वे दूढ़े, उस समय उनके वेगसे आइए हो
पर्वतपर उगे हुए सब दृष्ट उलड़ गये और अपनी लारी
ढालियोंने समेटकर उनके साथ ही सब ओरसे वेगपूर्वक
उड़ चले ॥ ४५ ॥

स मत्तकोयष्टिभक्तान् पादपान् पुष्पचालिनः ।

उहहन्तुरुपेगेन जगाम विमलेऽभ्यरे ॥ ४६ ॥

वे हनुमान्जी मतवाले कोयष्टि आदि पक्षियोंसे युक्त,
बहुसंख्यक पुष्पशोभित वृक्षोंको अपने महान् वेगसे
ऊपरकी ओर खींचते हुए निर्मल आकाशमें अग्रसर
होने लगे ॥ ४६ ॥

ऊहवेगोत्थिता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः ।

प्रस्थित दीर्घमघ्नान स्वयम्पुमिय बाधबाः ॥ ४७ ॥

उनकी बाँधोंके महान् वेगसे ऊपरको उठे हुए वृक्ष
एक मुहूर्तक उनके पीछे-पीछे इस प्रकार गये, जैसे दूर
देशके पथपर जानेवाले अपने माइ बचुकी उसके बंधु
बाधब पहुँचाने जाते हैं ॥ ४७ ॥

तमूहवेगो मथिताः सालाध्याये नगोत्तमा ।

वतुजमुहनुमत्तं सैया इव महीपतिम् ॥ ४८ ॥

हनुमान्जीकी बाँधोंके वेगसे उलड़े हुए साल तथा दूसरे
दूसरे श्रेष्ठ वृक्ष उनके पीछे पीछे उठी प्रकार चले, जैसे
राजके पीछे उसके सैनिक चलते हैं ॥ ४८ ॥

सुपुष्पिनाम्रैवहभिः पादपैरचितः कपि ।

हनुमान् पर्यताकारो यभ्याहृतदशन ॥ ४९ ॥

जिनकी ढालियोंके अग्रभाग फूलोंसे सुशोभित थे
उन यद्वतरे वृक्षोंसे समुक्त हुए पर्यताकार हनुमान्जी अद्भुत
शोभासे सम्पन्न दिखायी दिये ॥ ४९ ॥

सारथ्यतोऽथ ये वृक्षा न्यमज्जैल्लयणामभसि ।

भयादिव महेन्द्रस्य पर्यता वरुणालये ॥ ५० ॥

उन वृक्षोंमेंसे जो भारी थे, वे जोड़ी ही देरमें गिरकर
धारमुद्रमें डूब गये । ठीक उठी तरह, जैसे किन्तने ही

परपारी पर्वत देवराज इन्द्रके मयसे वरुणालयमें निमग्न
हो गये थे ॥ ५० ॥

स नानाकुसुमे कीर्णः कपि साङ्करकोरकै ।

शुशुभे मेघसकाश खद्योतैरिव पर्वत ॥ ५१ ॥

मेघके समान विशालकाय हनुमान्जी अपने साथ
खींचकर आये हुए वृक्षोंके अङ्कुर और कोरसहित फूलोंसे
आच्छादित हो शुशुभओंकी बगमगाहटसे युक्त पर्वतके
समान शोभा पाते थे ॥ ५१ ॥

विमुकास्तस्य वेगो मुपत्वा पुष्पाणि ते द्रुमा ।

व्यवशीयन्त सलिले निवृत्ता सुहृदो यथा ॥ ५२ ॥

वे वृक्ष जब हनुमान्जीके वेगसे मुक्त हो जाते (उनके
आकषणसे छूट जाते), तब अपने फूल बरसाते हुए इस
प्रकार समुद्रके जलमें डूब जाते थे, जैसे सुहृद्वरोंके लोग
परदेश जानेवाले अपने किसी बंधुको दूरतक पहुँचाकर
लौट आते हैं ॥ ५२ ॥

लघुत्वेनोपपन्नं तद् विचित्र सागरेऽपतत् ।

द्रुमाणा विविध पुष्प कपिवायुसमीरितम् ।

ताराचितमिवाकाश प्रबभौ स महाणयः ॥ ५३ ॥

हनुमान्जीके शरीरसे उठी हुई वायुसे प्रेरित हो वृक्षोंके
याँति मौँतिये पुष्प अत्यंत हल्के होनेके कारण जल समुद्रमें
गिरते थे, तब डूबते नहीं थे । इसलिये उनकी विचित्र
शोभा होती थी । उन फूलोंके कारण वह महासागर तारोंसे
भरे हुए आकाशके समान सुशोभित होता था ॥ ५३ ॥

पुष्पोद्येन सुगन्धेन नानावर्णेन वानर ।

बभौ मेघ इवोद्यन् वै विद्युद्गणविभूषित ॥ ५४ ॥

अनेक रंगकी सुगन्धित पुष्पराशिसे उपलब्ध वानर
बीर हनुमान्जी विजलीसे सुशोभित होकर उठते हुए मेघसे
समान जान पड़ते थे ॥ ५४ ॥

तस्य वेगसमुद्भूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत ।

ताराभिरिव रामाभिरुज्जिताभिरिधाम्बरम् ॥ ५५ ॥

उनके वेगसे लड़े हुए फूलोंके कारण समुद्रका जल
उगे हुए रमणीय तारोंसे खचित आकाशके समान दिखायी
देता था ॥ ५५ ॥

तस्याम्बरगतौ बाहू दृष्टशते प्रसारितौ ।

पथताम्राद् जिनिष्कृतौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ॥ ५६ ॥

आकाशमें फैलायी गयी उनकी दोनों मुजाएँ ऐसी
दिखायी देवी थीं, मानो किसी पर्वतके शिखरसे पाँच पनवाले
दो सर्प निकले हुए हों ॥ ५६ ॥

पियन्निव बभौ चापि सोमिजाल महाणवम् ।

विपासुरिव चाकाश दृष्टोऽत्र महाकपि ॥ ५७ ॥

उस समय महाकपि हनुमान् ऐसे प्रतीत होते थे, मानो
तरङ्गमात्राओंसहित महासागरको भी रदे हों । वे ऐसे

दिखायी देते थे, मानो आकाशको भी पी जाना चाहते हों ॥ ५७ ॥

तस्य त्रिशुलप्रभाकरे वायुमार्गानुस्मरणे ।

नयने विप्रकाशते पथतस्याविवामलौ ॥ ५८ ॥

वायुके मार्गका अनुसरण करनेवाले हनुमान्जीके विमर्शकी सी चमक पैदा करनेवाले दोनों नेत्र ऐसे प्रकाशित हो रहे थे, मानो पर्वतपर दो स्थानोंमें लगे हुए दावानल दहक रहे हों ॥ ५८ ॥

पिङ्गे विक्षाम्पमुख्यस्य बृहती परिमण्डले ।

चञ्चुरी सम्प्रकाशते चन्द्रसूर्याधिव स्थितौ ॥ ५९ ॥

पिंगल नेत्रवाले वानरोंमें भेद हनुमान्जीकी दोनों गोल बड़ी बड़ी और पीले रंगकी आँखें चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हो रही थीं ॥ ५९ ॥

मुख नासिकया तस्य ठाप्रया ताम्रमायभौ ।

सध्यया समभिस्फुटयथास्यात् सूर्यमण्डलम् ॥ ६० ॥

लाभाल नासिकाके कारण उनका सारा मुँह लाली लिये हुए था, अतः वह सभ्वाकालसे समुत् सूर्यमण्डलसे समान सुशोभित होता था ॥ ६० ॥

लाङ्गल च समाविद्ध प्रथमानस्य शोभते ।

अम्बरे वायुपुत्रस्य शशपञ्चज इवोच्छिद्रतम् ॥ ६१ ॥

आकाशमें तैरते हुए पवनपुत्र हनुमान्जी उठी हुई टेनी पूँछ इत्रकी ऊँची ध्वजाके समान जान पड़ती थी ॥

लाङ्गलचमो हनुमान्गुह्यदृष्टोऽनिलामज ।

न्यतोचत महाप्राज्ञ परिदेयीय भास्कर ॥ ६२ ॥

महाउद्दिमान् पवनपुत्र हनुमान्जीकी दाहिँ छपेद थी और पूँछ गोलाकार झुकी हुई थी । इसलिये वे परिचिते गिरे हुए सूर्यमण्डलसे समान जान पड़ते थे ॥ ६२ ॥

हित्वावेदोनातिताम्रेण रराज स महाकपि ।

महता द्योतितेनेष गिरितैरिक्कधातुना ॥ ६३ ॥

उनकी कमरसे नीचेका भाग बहुत लाल था । इससे वे महाकपि हनुमान् को हुए गेरुसे युक्त विद्याल पर्वतके समान शोभा पाते थे ॥ ६३ ॥

तस्य धानरसिहस्य प्रथमानस्य सागरम् ।

कृष्णाग्रगतो वायुर्ग्रामूत इय गजति ॥ ६४ ॥

ऊपर ऊपरसे समुद्रको पार करते हुए बानरसिंह हनुमान्जी कौलसे होकर निकली हुई वायु बादलके समान गजती थी ॥ ६४ ॥

खे यथा निपतत्युत्का उच्चरन्ताद् विनि स्तुता ।

दृश्यते स्तानुग्रन्था स तथा स कपिकुञ्जर ॥ ६५ ॥

जैसे ऊपरकी दिशासे प्रगट हुई पुच्छयुक्त उरका आकाशमें धानी देखी जाती है, उसी प्रकार अपनी पूँछके कारण कपिशत्रु हनुमान्जी भी दिखायी देते थे ॥ ६५ ॥

प्रतपतद्भस्काशो भ्यायतां शुशुभे कपि ।

प्रभृष्ट इय मातङ्ग कक्षयया वध्यमानया ॥ ६६ ॥

चलते हुए सूर्यके समान विशालकाय हनुमान्जी अपनी पूँछके कारण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो कोई बड़ा गजरात्र अपनी कमरमें बँधी हुई रस्तीसे सुशोभित हो रहा हो ॥ ६६ ॥

उपरिष्ठाच्छरीरेण च्छायया चावगादया ।

सागरे भासताविष्टा नौरिवासीत् तथा कपि ॥ ६७ ॥

हनुमान्जीका शरीर समुद्रसे ऊपर ऊपर चल रहा था और उनकी परछाईँ जलमें डूबी हुई सी दिखायी देती थी । इस प्रकार शरीर और परछाईँ दोनोंसे उल्लिखित हुए वे कपिवर हनुमान् समुद्रके घलमें पड़ी हुई उस नौकाके समान प्रतीत होते थे, जिसका ऊपरी भाग (पाल) वायुसे परिपूर्ण हो और निम्नभाग समुद्रके जलसे लगा हुआ हो ॥ ६७ ॥

य य देश समुद्रस्य जगाम स महाकपि ।

स तु तस्याङ्गणेन सो माद इय लक्ष्यते ॥ ६८ ॥

वे समुद्रके जिस जिस भागमें जाते थे, वहाँ वहाँ उनके अङ्गके वेगसे उच्चाल तरङ्गें उठने लगती थीं । अतः वह भाग उमच (विमुच)-वा दिखायी देता था ॥ ६८ ॥

सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्धनम् ।

अभिचस्तु महावेग पुप्फुने स महाकपि ॥ ६९ ॥

महान् वेगवाली महाकपि हनुमान् पर्वतोंके समान ऊँची महासागरकी तरङ्गमालाओंको अपनी छातीसे चूर चूर करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ६९ ॥

कपिवातश्च धलवान् मेघवातश्च निर्गत ।

सागर भीमनिर्हाद कम्पयामासतुभृशम् ॥ ७० ॥

कपिशत्रु हनुमान्के शरीरसे उठी हुई तथा मेघोंकी धारोंमें व्याप्त हुई प्रबल वायुने भीषण गजना करनेवाले समुद्रमें भारी हलचल मचा दी ॥ ७० ॥

विकपन्मूर्मिजालानि बृहन्ति लघणाम्भसि ।

पुप्फुने कपिशालूको विकिरन्निव रोदसी ॥ ७१ ॥

वे कपिशत्रु अपने प्रबल वेगसे समुद्रमें बहुत सी ऊँची ऊँची तरङ्गोंको आरपित करते हुए इस प्रकार उड़े जा रहे थे, मानो पृष्ठी और आकाश दोनोंको विमुच कर रहे हों ॥ ७१ ॥

मेरुमन्दरसकाशानुद्गतान् सुमहाग्नये ।

अत्यक्लाममहावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव ॥ ७२ ॥

वे महान् वेगवाली बानरवीर उस महासमुद्रमें उठी हुई सुमेरु और मन्दराचलके समान उच्चाल तरङ्गोंकी मानो गजना करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ७२ ॥

तस्य वेगसमुद्घुष्टं जल सजलद् तदा ।

अम्यदस्य विषम्राजे शरद्भ्रमिवाततम् ॥ ७३ ॥

उस समय उनके वेगसे ऊँचे उठकर मेघमण्डलके साथ आकाशमें स्थित हुआ समुद्रका जल शरकालके पैले हुए मेघोंके समान जान पड़ता था ॥ ७३ ॥

तिमिनक्रमया फूर्मा दृश्य ते विवृतास्तदा ।
वस्त्रापवर्पणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ७४ ॥

जल इट जानेके कारण समुद्रके भीतर रहनेवाले मगर,
नाकें, मछलियों और कटुए साफ-साफ दिखायी देते थे ।
जैसे वस्त्र लींच लेनेपर देहधारियोंके शरीर नग्न हो दीखने
लगते हैं ॥ ७४ ॥

क्रममाण समीक्षया भुजगा सागरगमाः ।
व्योमिन् त कपिशालू सुपणमिष मेनिरे ॥ ७५ ॥

समुद्रमें विचरनेवाले सर्प आकाशमें जाते हुए कपिश्रेष्ठ
हनुमान्जीको देखकर उन्हें गरुड़के ही समान समझने
लगे ॥ ७५ ॥

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
छाया धानरसिहस्य जघे चारुतराभवत् ॥ ७६ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीकी दस योजन चौड़ी और तीस
योजन लंबी छाया वेगके कारण अत्यन्त रमणीय जान
पड़ती थी ॥ ७६ ॥

क्षेपताभ्रघनराजीय चायुपुत्रानुगामिनी ।
तस्य सा शुशुभे छायापतितालवणाम्भसि ॥ ७७ ॥

खारे पानके समुद्रमें पड़ी हुई पवनपुत्र हनुमान्का
अनुसरण करनेवाली उनकी यह छाया श्वेत बादलोंकी
पंक्ति के समान शोभा पाती थी ॥ ७७ ॥

शुशुभे स महतेजा महाकायो महाकपि ।
चायुमार्गे निरालम्बे पक्षयानिव पर्वत ॥ ७८ ॥

वे परम तेजस्वी महाकाय महाकपि हनुमान् आलम्बन
हीन आकाशमें पलघारी पर्वतके समान जान पड़ते थे ॥

येमासौ याति यलयान् वेगेन कपिकुञ्जर ।
तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवाणय ॥ ७९ ॥

वे बलवान् कपिश्रेष्ठ जिस मार्गसे वेगपूर्वक निकल जाते
थे, उस मार्गसे समुत्त समुद्र सहसा कटौते या बड़ाहके
समान हो जाता था (उनके वेगसे ठठी हुई बापुके द्वारा
वहाँका जल इट जानेसे वह स्थान कटौते आदिके समान
गहरा सा दिखायी पड़ता था) ॥ ७९ ॥

आपाति पक्षिसङ्गाना पक्षिराज इव प्रजन् ।
हनुमान् मेघजालानि प्रक्षपन् मारुतो यथा ॥ ८० ॥

पक्षी-समूहोंके उड़नेपर मार्गमें पक्षिराज गरुड़की भाँति
जाते हुए हनुमान् बापुके समान मेरुमालाओंकी अपनी ओर
सींच लेते थे ॥ ८० ॥

पाण्डुरारुणघणानि नीलमज्जिष्ठकानि च ।
कपिनाऽऽदृश्यमाणानि महाभ्रानि घञ्चशिरे ॥ ८१ ॥

हनुमान्पक्षीके द्वारा सींचे जाते हुए ये श्वेत, अरुण,
नील और मञ्जीरय के रंगवाले बड़े-बड़े मेघ वहाँ बड़ी शोभा
पाते थे ॥ ८१ ॥

प्रविशानभ्रजालानि निष्पतन् पुन पुन ।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ८२ ॥

वे बार-बार बादलोंके समूहमें छुट जाते और बाहर
निकल आते थे । इस तरह छिपते और प्रकाशित होते हुए
चन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥ ८२ ॥

प्लवमान तु त दृष्ट्वा प्लवग त्वरित तदा ।
यत्पुस्तप पुष्पाणि देवग धर्धचारणा ॥ ८३ ॥

उस समय तीव्रगतिसे आगे बढ़ते हुए बानरवीर
हनुमान्जीको देखकर देवता, गन्धर्व और चारण उनके
ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८३ ॥

तताप नहि त सूर्य प्लवत धानरेक्षरम् ।
सिपेवे च तदा वायु रामकार्यायसिद्धये ॥ ८४ ॥

वे श्रीरामचन्द्रजीका काय सिद्ध करनेके लिये चारहे थे,
अतः उस समय वेगसे जाते हुए बानरराज हनुमान्को सूर्य
देवने ताप नहीं पहुँचाया और वायुदेवने भी उनकी
सेवा की ॥ ८४ ॥

जगुश्च देवग-घवा प्रशस्तो वनौकसम् ॥ ८५ ॥

आकाशमार्गसे यात्रा करते हुए बानरवीर हनुमान्की
श्रुति-मुनि स्तुति करने लगे तथा देवता और गन्धर्व उनकी
प्रशंसाके गीत गाते लगे ॥ ८५ ॥

नागाश्च तुष्टुधुर्यक्षा रक्षासि त्रिविधानि च ।
मेक्ष्य सर्वे कपिवर सहसा विगतह्रमम् ॥ ८६ ॥

उन कपिश्रेष्ठको बिना थकावटके सहसा आग बढ़ते
देख नाग, यक्ष और नाना प्रकारके रक्षस सभी उनकी
स्तुति करने लगे ॥ ८६ ॥

तस्मिन् प्लवगशालूले प्रवमाने हनूमति ।
इक्ष्वाकुबलमानार्थी चिन्तयामास सागर ॥ ८७ ॥

जिस समय कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी उछलकर समुद्र पार
कर रहे थे, उस समय इक्ष्वाकुबलका सम्मान करनेकी
इच्छासे समुद्रने विचार-विचार— ॥ ८७ ॥

साहाय्य धानरेद्रस्य यदि नाह हनूमत ।
करिष्यामि मविष्यामि न्यर्षेवाच्यो विपक्षताम् ॥ ८८ ॥

‘यदि मैं बानरराज हनुमान्जीकी सहायता नहीं करूँगा
तो बोलनेकी इच्छावाले सभी लोगोंकी दृष्टिमें मैं स्वयं
निन्दनीय हो जाऊँगा ॥ ८८ ॥

अहमिच्छाकुनायेन समरेण त्रिविधित ।
इक्ष्वाकुसचिवश्राय तनादृत्ययसादिनुम् ॥ ८९ ॥

‘मुझे इक्ष्वाकुकुलके महाराज समरने यन्त्राया था । इस
समय ये हनुमान्जी भी इक्ष्वाकुवंशी वीर भीरुनाथजी
की सहायता कर रहे हैं, अतः इन्हें इस यात्रामें किसी
प्रकारका बंध नहीं होना चाहिये ॥ ८९ ॥

तथा मया विधातव्यं विभ्रमेत यथा कपि ।
 शेषं च मयि विधातं सुखी सोऽनितरिष्यति ॥ ९० ॥
 'मुने ऐश कोइ उपाय करना चाहिये, जिससे शनरवीर
 यहाँ कुछ विराम कर लें । मेरे आभयमें विधाम कर लेने
 पर मेरे शेष मागको ये सुगमतासे पार कर लेंगे' ॥ ९० ॥
 इति वृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रदृष्टं नमम्भसि ।
 हिरण्यनामं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ॥ ९१ ॥
 यह शुभ विचार करके समुद्रने अपने जन्में छिपे हुए
 सुव्रजमय गिरिभेद मैनाकसे कहा— ॥ ९१ ॥
 त्वमिहासुरसङ्घानां देवराजा महारमना ।
 पातालनिलयानां हि परिघं सनिघेक्षित ॥ ९२ ॥
 'शैलधर ! महारमा देवराज इन्दने तुम्हें यहाँ पाताल
 बाधी असुरसमूहोंके निकलनेके मागको रोकनेके लिये
 परिघरूपसे स्थापित किया है' ॥ ९२ ॥
 त्वमेवां क्षातधीर्याणां पुनरेवोत्पत्तिप्यताम् ।
 पातालरूपप्रमयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि ॥ ९३ ॥
 'इन असुरोंका पराक्रम खज्र प्रसिद्ध है । वे फिर
 पातालसे ऊपरकी आना चाहते हैं, अतः उन्हें रोकनेके
 लिये तुम अपने पाताललोकके द्वारको बंद करके खड़े
 हो' ॥ ९३ ॥
 तिर्यग्ध्वंमघघ्नैश्च शक्तिस्ते शैलं यधितुम् ।
 तस्मात् सचोदयामि त्वामुत्तिष्ठ गिरिसत्तम ॥ ९४ ॥
 'शैल ! ऊपरनीचे और अग्र-वृत्तमें सब ओर बढ़ने
 की तुम्हमें शक्ति है । गिरिभेद ! इसीलिये मैं तुम्हें आशा
 देता हूँ कि तुम ऊपरकी ओर उठो' ॥ ९४ ॥
 स एव कपिदादूलस्त्वामुपयैति धीर्यान् ।
 हनुमान् रामकार्योर्ध्वं भीमकर्मा धमाप्लुत ॥ ९५ ॥
 'देखो, ये पराक्रमी कनिकेश्वरी हनुमान् तुम्हारे ऊपर
 होकर जा रहे हैं । वे बड़ा भयकर कर्म करनेवाले हैं, इस
 समय श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये इन्होंने आकाशमें
 छल्लों मारी है' ॥ ९५ ॥
 मस्य साहा मया कायमिक्ष्वाकुकुलपतिन ।
 मम इक्ष्वाकन पूजयाः परं पूज्यतास्तव ॥ ९६ ॥
 'ये इक्ष्वाकुवंशी रामने सेवक हैं, अतः मुझे इनकी
 सहायता करनी चाहिये । इक्ष्वाकुवंशके लोग मेरे पूजनीय हैं
 और तुम्हारे लिये तो वे परम पूजनीय हैं' ॥ ९६ ॥
 कुतः साविध्यमस्माकं न न कायमतिममेत् ।
 कतव्यमवृत्तं कार्यं सता मयुमुदीरयेत् ॥ ९७ ॥
 'अतः तुम हमारी सहायता करो । जिससे हमारे कतव्य
 कमका (हनुमान्जीके सकार रूपी कायका) अवसर भीत
 न जाय । यदि कर्तव्यका पात्रन नहीं किया जाय तो
 ॥ सपुरुषोंके प्राणको जगा देता है ॥ ९७ ॥

सलिलादूर्ध्वमुत्तिष्ठ तिष्ठेष कपिस्त्वयि ।
 अस्माकमतिथिश्चैव पूज्यश्च पृथक्ता वरः ॥ ९८ ॥
 'इसलिये तुम पानीसे ऊपर उठो, जिससे ये छल्लों
 मारनेवालोंमें भेद कपिवर हनुमान् तुम्हारे ऊपर कुछ काल-
 तक ठहरें—विधाम करें । वे हमारे पूजनीय अतिथि
 भी हैं' ॥ ९८ ॥
 चामीकरमहानामं देवगन्धर्वसेवित ।
 हनुमास्त्वयि विधान्तस्ततः शेषं गमिष्यति ॥ ९९ ॥
 देवताओं और गन्धर्वोंद्वारा सेवित तथा सुव्रजमय
 विशाल शिखरवाले मैनाक ! तुम्हारे ऊपर विधाम करने
 के पश्चात् हनुमान्जी शेष मागको सुलपूर्वक तय कर
 लेंगे ॥ ९९ ॥
 काकुत्स्थस्यानुशस्य च मैथिल्याश्च विवासनम् ।
 भ्रमं च ब्रूयतेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ॥ १०० ॥
 'ककुत्स्थवर्षी भीरामचन्द्रजीकी दयालुता, मिथिलेश
 कुमायी सीताका परदेशमें रहनेके लिये विवश होना तथा
 शनरराज हनुमान्का परिभ्रम देखकर तुम्हें अवश्य ऊपर
 उठना चाहिये' ॥ १०० ॥
 हिरण्यगर्भो मैनाको निशम्य लवणाम्भस ।
 उत्पपात जलात् पूर्णं महाद्रुमलनावृत ॥ १०१ ॥
 यह सुनकर बड़े-बड़े हथों और ल्वाओंसे आवृत
 सुव्रजमय मैनाक पर्वत तुरत ही द्वार समुद्रके जलसे ऊपरकी
 उठ गया ॥ १०१ ॥
 स सागरजलं भित्त्वा यभूवात्युच्छिष्टस्तदा ।
 यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तदिग्दिवाकर ॥ १०२ ॥
 जैसे उदीत किरणोंवाले दिवाकर (सूर्य) मेघोंके
 आवरणको भेदकर उदित होते हैं, उसी प्रकार उस समय
 महासागरके जलका भेदन करके वह पर्वत बहुत ऊँचा उठ
 गया ॥ १०२ ॥
 स महारमा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृत ।
 दर्शयामास शृङ्गाणि सागरेण नियोजितः ॥ १०३ ॥
 समुद्रकी आशा पाकर जलमें छिपे रहनेवाले उस विशाल
 काय पर्वतने दो ही शृङ्गोंमें हनुमान्जीको अपने शिखरोंका
 दधन कराया ॥ १०३ ॥
 शातकुम्भमयै शृङ्गैः सकिन्नरमशेरगैः ।
 आदिर्योदयसकाशौल्लिखित्तिरियाम्परम् ॥ १०४ ॥
 उस पर्वतके वे शिखर सुव्रजमय थे । उनपर किन्नर और
 बड़े-बड़े नाग निवास करते थे । सूर्योदयके समान तेज
 पुञ्जसे विभूषित वे शिखर इतने ऊँचे थे कि आकाशमें
 रेखा-सी खींच रहे थे ॥ १०४ ॥
 तस्य आभ्यूतदैः शृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः ।
 आकाशं शश्वत्सकाशमभवत् काञ्चनप्रभम् ॥ १०५ ॥
 उस पर्वतके उठे हुए सुव्रजमय शिखरोंके कारण पर्वतके

समान नील वज्रबाला आकाश सुनहरी प्रभासे उद्भासित
होने लगा ॥ १०५ ॥

जातरूपमयै शृङ्गेभोजमानैर्महाप्रभैः ।

आदित्यशतसकाश सोऽभयद् गिरिसत्तमः ॥ १०६ ॥

उन परम कान्तिमान् और तेजस्वी सुवज्रमय शिखरोंसे
वह गिरिश्रेष्ठ मैनाक सेकड़ों स्योंके समान देदीप्यमान हो
रहा था ॥ १०६ ॥

समुत्थितमसङ्गेन हनुमानप्रत स्थितम् ।

मय्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः ॥ १०७ ॥

हार स्रष्टृके बीचमें अविलम्ब उठकर सामने खड़े हुए
मैनाकको देखकर हनुमानजीने मन ही मन निश्चित किया कि
यह कोई विघ्न उपस्थित हुआ है ॥ १०७ ॥

स तमुच्चैर्जतमस्यर्धे महावेगो महाकपि ।

वरसा पातयामास अमूर्तमय मारुत ॥ १०८ ॥

अत वायु जैसे बादलके छिन्न भिन्न कर देती है, उभी
प्रकार महान् वेगशाली महाकपि हनुमान्ने बहुत ऊँच उठे
हुए मैनाक पर्वतके उस उच्चतर शिखरको अपनी छातीके
घनकेसे नीचे गिरा दिया ॥ १०८ ॥

स तदासावितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ।

बुद्ध्वा तस्य हरेर्ध्वं जह्वं च ननाद् च ॥ १०९ ॥

इस प्रकार कपिवर हनुमान्नीके क्षण नीचा देखनेपर
उनके उस महान् वेगका अनुभव करके पर्वतश्रेष्ठ मैनाक
बड़ा प्रणत हुआ और गर्जना करने लगा ॥ १०९ ॥

तमाकाशगत धीरमाकाशे समुपस्थितः ।

प्रीतो हृष्टमना पापयममयीच्च पर्वतः कपिम् ॥ ११० ॥

मानुष धारयन् रूपमात्मन शिखरे स्थितः ।

तव आकाशमें स्थित हुए उस पर्वतने आकाशगत वीर
वानर हनुमान्नीसे प्रचलचित होकर कहा । वह मनुष्यरूप
धारण करके अपने ही शिखरपर स्थित हो इस प्रकार
बोला— ॥ ११० ॥

दुष्कर हृत्तयान् कर्म त्वमिदं वानरोत्तम ॥ १११ ॥

निपात्य मम शृङ्गेषु सुखं विभ्रम्य गम्यताम् ।

‘वानरशिरोमणे ! आपने वह दुष्कर कर्म किया है ।
अब उतरकर मेरे इन शिखरोंपर सुखपूर्वक विभ्रम कर
लीजिये, फिर आगेकी यात्रा कीजियेगा ॥ १११ ॥

राघवस्य कुले जातैरुदधि परिपथित ॥ ११२ ॥

स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यचयति सागरः ।

‘भोगुणात्मनोके पूर्वजोंने समुद्रकी वृद्धि की थी, इस
समय भी उनका दित करनेमें लगे हैं; अतः समुद्र आपका
सहाय करना चाहता है ॥ ११२ ॥

कृते च प्रतिकर्तव्यमेव धमाः सनातनम् ॥ ११३ ॥

सोऽयं तत्प्रतिपादार्थं त्वयं सम्मानमर्हति ।

‘वृद्धिने उपकार किया हो तो वृद्धिमें उसका भी उपकार

किया जाय—यह सनातन धर्म है । इस दृष्टिसे प्रत्युपकार
करनेकी इच्छाथाला यह सागर आपसे सम्मान पानेके योग्य
है (आप इसका उत्कार ग्रहण करें, इतनेही इसका सम्मान
हो जायगा) ॥ ११३ ॥

तन्निमित्तमनेनाह बहुमागात प्रचोदितः ॥ ११४ ॥

योजनानां शतं चापि कपिरेव खमाप्नुतः ।

तव सानुषु विश्वात शेष प्रकमतामिति ॥ ११५ ॥

‘आपके उत्कारके लिये समुद्रने बड़े आदरसे मुझे
निपुत्र किया है और कहा है— ‘इन कपिवर हनुमान्ने लोकोत्तम
दूर जानेके लिये आकाशमें छलंग मारी है, अतः कुछ देर
तक तुम्हारे शिखरोंपर ये विभ्रम कर लें, फिर शेष भागका
छलन करेंगे’ ॥ ११४ ११५ ॥

तिष्ठ त्वं हरिशङ्ख मयि विश्रम्य गम्यताम् ।

तदिह गं धवत्स्वाङ्कुर्वन्मूलफलं बहु ॥ ११६ ॥

तदाभ्याघ्र हरिश्रेष्ठ विश्वातोऽयं गमिष्यसि ।

‘अतः कपिश्रेष्ठ ! आप कुछ देरतक मेरे ऊपर विभ्रम
कर लीजिये, फिर जाइयेगा । इस भ्यात्तर से बहुत से
सुगन्धित और सुखादु फल, मूल तथा पत्र हैं । वानर
शिरोमणे ! इनका आस्वादन करके थोड़ी देरतक मुत्ता
लीजिये । उसके बाद आगेकी यात्रा कीजियेगा ॥ ११६ ॥
अस्माकमपि सम्बन्धः कपिमुख्य त्वयास्ति वै ।

प्रययातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रह ॥ ११७ ॥

कपिवर ! आपके साथ हमारा भी कुछ सम्बन्ध है ।
आप महान् गुणोंका समूह करनेवाले और तीनों लोकोंमें
विख्यात हैं ॥ ११७ ॥

वेगवन्तः प्रग्तो ये ह्रवणा मादतात्मज ।

तेषां मुख्यतमं मय्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥ ११८ ॥

‘कपिश्रेष्ठ पवननन्दन ! जो-जो वेगशाली और छलंग
मारनेवाले वानर हैं, उन सबमें मैं आपहीको अश्वत्तम
मानता हूँ ॥ ११८ ॥

अतिथिं किल पूजार्हं प्राहृतोऽपि विजानता ।

धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भयान् ॥ ११९ ॥

‘धर्मकी जिज्ञासा रखनेवाले विश पुरुषके लिये एक
साधारण अतिथि भी निम्न ही पूजाके योग्य माना गया
है । फिर आप जैसे अश्वचारण शीघ्रगच्छी पुरुष कितने
सम्मानके योग्य हैं, इस विषयमें तो कहना क्या है ! ॥ ११९ ॥
स्य हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महारमनः ।

पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ॥ १२० ॥

‘कपिश्रेष्ठ ! आप देवशिरोमण महारामा वायुके पुत्र
हैं और वेगमें भी उन्हींके समान हैं ॥ १२० ॥

पूजिते त्वयि धर्मो पूजा प्राप्नोति मारुतः ।

तस्मात्स्त्वपूजनीयो मे श्वशुराचार्यकारणम् ॥ १२१ ॥

‘आप धर्मके सहा हैं । आपकी पूजा होनेपर सन्तान

वायुदेवका पूजन हो जायगा । इसलिये आप अत्राय ही मेरे
पूजनीय हैं । इसमें एक और भी कारण है, उसे सुनिये ॥१२१॥
पूर्व वृत्तयुगे तात पर्यता पश्चिमोऽभवत् ।
तेऽपि जग्मुर्दिश सर्वा गरुडा इव वेगिन ॥१२२॥

‘तात ! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है । उन दिनों
पर्वतोंके भी पल होते थे । वे भी गरुड़के समान वेगवाली
झर सभूष दिशाओंमें उड़ते फिरते थे ॥ १२२ ॥
ततस्तेषु प्रयातेषु देवसह्या सहर्षिभिः ।
भूतानि च भय जग्मुस्तेषा पतनशङ्कया ॥१२३॥

‘उनके इस तरह वेगवृद्ध उड़ने और आने-जानेपर
देवता, ऋषि और समस्त प्राणियोंके उनके गिरनेकी
आशङ्कते बड़ा भय होने लगा ॥ १२३ ॥

तत हुड सहस्राक्ष पथताना शतक्रतु ।
पनाश्चिच्छेद् यत्रेण तत शतसहस्रश ॥१२४॥

‘इससे सहस्र मैत्रोंवाले देवराज इन्द्र कुपित हो उठे
और उन्होंने अपने वज्रसे लाखों पर्वतोंके पल काट डाले ॥
स मामुपगत क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् ।
ततोऽह स्रहसा क्षित श्वसनेन महात्मना ॥१२५॥

‘उस समय कुपित हुए देवराज इन्द्र वज्र उठाये मेरी
ओर भी आये, किन्तु महामा वायुने सरसा मुझे इस
समुद्रमें गिरा दिया ॥ १२५ ॥

अस्मिन्ल्लयतोये च प्रक्षितं पृथगोत्तम ।
गुप्तपक्ष समग्रश्च तय पित्राभिरक्षित ॥१२६॥

‘बानरश्रेष्ठ ! इस क्षार समुद्रमें गिराकर आपके पिताने
मेरे पक्षोंकी रक्षा कर दी और मैं अपने सम्पूर्ण जघते
सुगन्धित वच गया ॥ १२६ ॥

ततोऽह मानयामि त्वामाशोऽस्मि मम मारुते ।
त्वया ममैव सम्पद्य कपिमुख्य महागुण ॥१२७॥

‘पवननन्दन ! कपिश्रेष्ठ ! इसीलिये मैं आपका आदर
करता हूँ, आप मेरे माननीय हैं । आपके साथ मेरा यह
सम्बन्ध महान् गुणोंसे युक्त है ॥ १२७ ॥

अस्मिन्नेवगते कार्ये सागरस्य ममैव च ।
प्रीतिं प्रीतिमया कर्तुं स्वमहसि महामते ॥१२८॥

‘महामते ! इस प्रकार निरकालके बाद जो यह
प्रत्युपकाररूप काय (आपके पिताके उपकारका बदला
जुमानेका अवसर) प्राप्त हुआ है, इसमें आप प्रयत्नचित्त
होकर मेरी और समुद्रकी भी प्रीतिका सम्पादन करें (हमारा
आतिथ्य ग्रहण करके हमें समुद्र करें) ॥ १२८ ॥

थम मोक्षय पूजा च गृह्णान हरिसत्तम ।
प्रीतिं च मम मान्यम्य प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥१२९॥

‘बानरश्रेष्ठमते ! आप यहाँ अपनी यज्ञान उदारिये,
हमारी पूजा ग्रहण कीजिये और मेरे प्रेमकी भी स्वीकार

कीजिये । मैं आरज्जने माननीय पुरुषके दर्शनसे बहुत
प्रसन्न हुआ हूँ ॥ १२९ ॥

एवमुक्त्वा कश्चिद्विप्रस्त नगोत्तममवधीत् ।
प्रीतोऽस्मि वृत्तमातिथ्यमयुरेयोऽपनीयताम् ॥१३०॥

मैनाकके ऐसा कहनेपर कपिश्रेष्ठ हनुमानजीने उस
उत्तम पर्वतसे कहा—‘मैनाक ! मुझे भी आपसे मिलकर
यही प्रयत्नता हुई है । मेरा आतिथ्य प्राप्त गया । अब आप
अपने मनसे यह दुःख अथवा विन्ता निकाल दीजिये कि
होने मेरी पूजा ग्रहण नहीं की ॥ १३० ॥
‘दरते कार्यकालो मे महश्चाप्यतिषतते ।

प्रतिष्ठा च मया दत्ता न स्यात्तव्यमिहातरा ॥१३१॥

‘मेरे कायका समय मुझे बहुत बल्दी करनेके लिये
प्रेरित कर रहा है । यह दिन भी बीता जा रहा है । मैंने
बानरोंके समीप यह प्रतिष्ठा कर ली है कि मैं यहाँ बीचमें
कहीं नहीं उतर सकता’ ॥ १३१ ॥

इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालम्ब्य हरिपुङ्गव ।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव ॥१३२॥

ऐसा कहकर महाबली बानरश्रेष्ठमणि हनुमान्ने हँसते
हुए वहाँ मैनाकका अपने हाथसे स्पर्श किया और
आकाशमें ऊपर उठकर चलने लगे ॥ १३२ ॥

स पर्वतसमुद्राभ्या बहुमानाद्वेक्षित ।
पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरभिनन्दित ॥१३३॥

उस समय पर्वत और समुद्र दोनोंने ही बड़े आदरसे
उनकी ओर देखा, उनका सकार किया और यथोचित
आशीर्वादोंसे उनका अभिनन्दन किया ॥ १३३ ॥

अयोध्यां दूरमागत्य हित्वा शैलमहाणघौ ।
पितु पयानमासाद्य जगाम विमलेऽम्बरे ॥१३४॥

फिर पर्वत और समुद्रको छोड़कर उनसे दूर ऊपर
उठकर अपने पिताने मापका आश्रय ले हनुमान्जी निमल
आकाशमें चलने लगे ॥ १३४ ॥

भूयश्चोर्ध्वं गतिं प्राप्य गिरि तमघलोकयन् ।
वायुसन्नुर्निचालभ्यो जगाम कपिकुक्षरम् ॥१३५॥

तत्पश्चात् और भी ऊँचे उठकर उस पर्वतको देखते
हुए कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्जी बिना किसी आधारके
आगे बढ़ने लगे ॥ १३५ ॥

तद् द्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ।
प्रशशंसुः सुरा सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१३६॥

हनुमान्जीका यह दृष्टा अत्यन्त दुष्कर कर्म देखकर
सम्पूर्ण देवता, सिद्ध और महर्षिगण उनकी प्रशंसा
करने लगे ॥ १३६ ॥

देवताश्चाभयन् हृष्टास्तत्रस्यास्तम्य कर्मणा ।
काञ्चनस्य मुनाभस्य सहस्राक्षस्य यासय ॥१३७॥

वहो आकाशमें उदरे हुए देवता तथा सहस्र नेत्रघारी
इन्द्र उस सुन्दर मध्य भागवाले सुवर्णमय मैनाक पर्वतके
उस कायसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ १३७ ॥

उयाच यचन धीमान् परितोपात् सगद्गदम् ।
सुनाम पर्वतश्रेष्ठ स्वयमेव शचीपतिः ॥ १३८ ॥

उस समय स्वयं बुद्धिमान् शचीपति इन्द्रने अत्यन्त
छट्ट होकर पर्वतश्रेष्ठ सुनाम मैनाकसे गद्गद वाणीमें
कहा— ॥ १३८ ॥

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम् ।
अभय ते प्रयच्छामि गच्छसौम्य यथासुखम् ॥ १३९ ॥

'सुवर्णमय शैलराज मैनाक ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न
हूँ । सौम्य ! तुम्हें अभय दान देता हूँ । तुम सुखपूर्वक
जहाँ चाहो, जाओ ॥ १३९ ॥

साक्षा कृत ते सुमहद् विभ्रान्तस्य हनूमतः ।
क्रमतो योजनशत निर्भयस्य भये सति ॥ १४० ॥

'सौ योजन समुद्रको लँघते समय जिनके मनमें कोई
भय नहीं रहा है, फिर भी जिनके लिये हमारे हृदयमें यह
भय था कि पता नहीं इनका क्या होगा ! उहाँ हनुमान्
जीको विभ्रामका अवसर देकर तुमने उनकी बहुत बड़ी
सहायता की है ॥ १४० ॥

रामस्यैव हितायैव याति दाशरथे कपि ।
सत्क्रिया कृपता शस्यतातोपितोऽस्मि दृढ स्वया ॥ १४१ ॥

'ये वानरश्रेष्ठ हनुमान् दशरथनन्दन श्रीरामकी सहायताके
लिये ही जा रहे हैं । तुमने यथाचित् इनका सत्कार करके
मुझे पूरा सतोष प्रदान किया है' ॥ १४१ ॥

स तत् प्रहर्षमलभद् त्रिपुल पयतोत्तम ।
देयतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्ट दातकतुम् ॥ १४२ ॥

देवताओंके स्वामी शतक्रतु इन्द्रको समुद्र देखकर
पर्वतोंमें श्रेष्ठ मैनाकको बड़ा हृय प्राप्त हुआ ॥ १४२ ॥

स वै दत्तवर शैलो बभूवावस्थितस्तदा ।
हनूमादश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् ॥ १४३ ॥

इस प्रकार इन्द्रका दिया हुआ वरपाकर मैनाक उस समय
जलमें स्थित हो गया और हनुमान्जी समुद्रके उध् प्रदेशकी
उड़ी मुहूर्तमें लौप गये ॥ १४३ ॥

ततो देवा सगर्घवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अभ्युयन् सूर्यसकाशा सुरसा नागमातरम् ॥ १४४ ॥

तब देवता, गणर्ष, सिद्ध और महर्षियोंने स्वयं
तेजस्विनी नागमाता सुरसाके कहा— ॥ १४४ ॥

अयं यातात्मजः धीमान् गृह्यते सागतोपति ।
हनूमान् नाम तस्य स्व मुहूर्ते विप्रमाचर ॥ १४५ ॥

'ये पवननन्दन श्रीमान् हनुमान्जी समुद्रके ऊपर होकर
जा रहे हैं । तुम दो पक्षीके लिये इनके मार्गमें विघ्न
काटो ॥ १४५ ॥

राक्षस रूपमास्थाय सुघोर पवतोपमम् ।
दंष्ट्राकरालं पिद्वाक्ष वस्त्रं कृत्वा नभ स्पृशम् ॥ १४६ ॥

'तुम पर्वतक समान अत्यन्त भयकर राक्षसीका रूप
धारण करो । उल्लेख विकराल दाढ़ें, पीछे नेत्र और जाकाशको
स्पृश करनेवाला विकट मुँह बनाओ ॥ १४६ ॥

वलमिच्छामहे पातु भूपश्चास्य पराक्रमम् ।
स्या विजेय्यत्युपायेन विषाद वा गमिष्यति ॥ १४७ ॥

'हमलोग पुन हनुमान्जीके बल और पराक्रमकी
परीक्षा लेना चाहते हैं । या तो किसी उपायसे ये तुम्हें जीत
लेंगे अथवा निषादमें पड़ जायेंगे (इससे इनके बलाबलका
ज्ञान हो जायगा)' ॥ १४७ ॥

पयमुक्त्वा तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता ।
समुद्रमये सुरसा विभ्रती राक्षस वपु ॥ १४८ ॥

विहृत च विरूप च सर्वस्य च भयावहम् ।
शुवमान हनूमतामृत्युदेमुवाच ह ॥ १४९ ॥

देवताओंके सत्कारपूर्वक इस प्रकार कहनेपर देवी
सुरसाने समुद्रके बीचमें राक्षसीका रूप धारण किया । उठका
वह रूप बड़ा ही विकट, बेडौल और सबके लिये भयावना
था । वह समुद्रके पार जाते हुए हनुमान्जीको घेरकर
उत्तरे इस प्रकार बोली— ॥ १४८ १४९ ॥

मम भक्ष्यं प्रदिष्टस्य भीमैर्वाोनरपथ ।
अहं त्वा भक्षयिष्यामि प्रविशेद् ममाननम् ॥ १५० ॥

'कपिश्रेष्ठ ! देवैश्चरोंने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर
मुझे अर्पित कर दिया है, अतः मैं तुम्हें खाऊँगी । तुम मेरे
इत मुँसे चले आओ ॥ १५० ॥

वर एव पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्परा ।
व्यादाय वक्त्रं विपुल स्थिता सा मावते पुरः ॥ १५१ ॥

'पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझे यह वर दिया था ।' ऐसा
कहकर वह पुरत ही अपना विद्याल मुँह फैलाकर हनुमान्जीके
सामने खड़ी हो गयी ॥ १५१ ॥

पयमुक्त्वा सुरसया प्रहृष्टवदनोऽप्यिवीत् ।
रामो दाशरथिनाम प्रविष्टो दण्डकाचनम् ॥ १५२ ॥

लक्ष्मणेन सह आत्रा धैर्यह्वा चापि भाषया ॥ १५२ ॥

सुरसाके ऐसा कहनेपर हनुमान्जीने प्रसन्नमुख होकर
कहा— 'देवि ! दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई
लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताजीके साथ दण्डकारण्यमें
आये थे ॥ १५२ ॥

अन्यकार्यविपक्तस्य धन्द्वैरस्य राक्षसै ।
तस्य सीता हता भार्या रावणेन यशस्विनी ॥ १५३ ॥

'वहाँ परहित-साधनमें लगे हुए श्रीरामका राक्षसोंके
साथ बँध बँध गया । अतः रावणने उनकी यशस्विनी भार्या
सीताको हर लिया ॥ १५३ ॥

तस्याः सकाश दृतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ।
 कर्तुमर्हसि रामस्य साह्य विषयवासिनि ॥१५४॥
 मैं श्रीरामकी आज्ञासे उनका दूत बनकर सीताजीके
 पास जा रहा हूँ । तुम भी श्रीरामसे रायमें निवास करती
 हो । अतः तुम्हें उनकी वहायता करनी चाहिये ॥ १५४ ॥
 अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा राम चाक्रेष्टकारिणम् ।
 आगमिष्यामि ते वक्त्र सत्य प्रतिश्रुणोमि ते ॥१५५॥
 अथवा (यदि तुम मुझे खाना ही चाहती हो तो)
 मैं सीताजीका दान करके अनायास ही महान् कर्म करनेवाले
 श्रीरामचन्द्रजीसे जय मिल लूँगा, तब तुम्हारे मुखमें आ
 जाऊँगा—यह तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ ॥१५५॥
 एवमुक्त्वा हनुमता सुरसा कामरूपिणी ।
 अग्रधीश्रतवित्तं मा कश्चिदेष यरो मम ॥१५६॥
 हनुमान्जीक ऐसा कहनेपर इच्छानुसार रूप धारण
 करनेवाली सुरसा बोली—‘मुझे यह बर मिला है कि कोई
 भी मुझे लौंकर आगे नहीं जा सकता’ ॥ १५६ ॥
 ॥ प्रयान्त समुद्रीक्ष्य सुरसा पापयमग्रवीत् ।
 यल जिशासमागता सा नागमाता हनूमत ॥१५७॥
 फिर भी हनुमान्जीकी जते देख उनसे बलको जाननेकी
 इच्छा रखनेवाली नागमाता सुरसाले उनसे कहा—॥१५७॥
 निविश्य वन मेऽद्य गतस्य यानरोचम ।
 यर एव पुरा वृत्तो मम धात्रेति सत्यरा ॥१५८॥
 व्यादाय विपुल वनस्थिता सा माकते पुर ।
 ‘वानरभेद । आज मेरे मुखमें प्रवेश करके ही तुम्हें
 आगे जाना चाहिये । पूर्वजालमें विघाताने मुझे ऐसा ही
 बर दिया था ।’ ऐसा कहकर सुरसा तुरत अपना विशाल मुँह
 फैलाकर हनुमान्जीके सामने खड़ी हो गयी ॥ १५८ ॥
 एवमुक्त्वा सुरसया कुक्षो यानरपुंगव ॥१५९॥
 अग्रधीत् कुक्ष वै वक्त्र येन मा त्रिपहिष्यसि ।
 इत्युक्त्वा सुरसा कुक्षो दशयोजनमायताम् ॥१६०॥
 दशयोजनविस्तारो हनूमानभयत् तदा ।
 त दृष्ट्वा मेघसकाश दशयोजनमायतम् ।
 यनार सुरसाप्यास्य विशदयोजनमायतम् ॥१६१॥
 सुरसाके ऐसा कहनेपर वानरशिरामणि हनुमान्जी कुपित
 हो उठे और बोले—‘तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना ले
 जिससे उधमें मेरा भार खदे सको’ यों कहकर जब वे मौन
 हुए, तब सुरसाले अपना मुख दस योजन विस्तृत बना
 लिया । यह देखकर कुपित हुए हनुमान्जी भी तत्काल दस
 योजन बढ़े हो गये । उन्हें मेघके समान दस योजन विस्तृत
 शरीरसे युक्त हुआ देख सुरसाले भी अपने मुखको बीस
 योजन बढ़ा बना लिया ॥ १५९—१६१ ॥
 हनूमास्तु तत मुहूर्त्तशिक्ष्योऽयोजनमायतम् ।
 यकार सुरसा वक्त्र चत्वारिंशत् तयोच्छ्रितम् ॥१६२॥

तब हनुमान्जीने मुँह होकर अपने शरीरको तीस योजन
 अधिक बढ़ा दिया । फिर तो सुरसाले भी अपने मुँहको
 चालीस योजन ऊँचा कर लिया ॥ १६२ ॥
 यमूय हनुमान् वीर पञ्चाशद् योजनोच्छ्रितम् ।
 यकार सुरसा वक्त्र पष्टि योजनमुच्छ्रितम् ॥१६३॥
 यह देख वीर हनुमान् पचास योजन ऊँचे हो गये ।
 तब सुरसाले अपना मुँह साठ योजन ऊँचा बना लिया ॥ १६३ ॥
 तदैव हनुमान् वीर सप्तति योजनोच्छ्रितम् ।
 यकार सुरसा पञ्चमशीति योजनोच्छ्रितम् ॥१६४॥
 फिर तो वीर हनुमान् उसी क्षण सत्तर योजन ऊँचे
 हो गये । अब सुरसाले अस्सी योजन ऊँचा मुँह बना लिया ॥
 हनूमाननलप्रप्यो नवति योजनोच्छ्रितम् ।
 यकार सुरसा वक्त्र शतयोजनमायतम् ॥१६५॥
 तदनन्तर अग्निके समान तेजस्वी हनुमान् नव्वे योजन
 ऊँचे हो गये । यह देख सुरसाले भी अपने मुँहका विस्तार
 सौ योजनका कर लिया ॥ १६५ ॥
 तद् दृष्ट्वा व्यादित त्वाद्य वायुपुत्र न बुद्धिमान् ।
 दीघजिह्व सुरसया सुभीम नरकोपमम् ॥१६६॥
 स सक्षिप्यामन काय जीमूत इव माकति ।
 तस्मिन् मुहूर्त्ते हनुमान् वमूयाङ्गुष्ठमात्रक ॥१६७॥
 सुरसाके फैलाये हुए उस विशाल जिह्वासे युक्त और
 नरकके समान अत्यन्त भयङ्कर मुँहकी देखकर बुद्धिमान्
 वायुपुत्र हनुमान्ने मेघकी भाँति अपने शरीरको सङ्कुचित कर
 लिया । वे उसी क्षण जगृङ्गेके बराबर छोटे हो गये ॥ १६६ १६७ ॥
 सोऽभिपद्याद्य तद्वक्त्र निष्पथ्य च महायल ।
 अतरिक्षे स्थित भीमानिद वचनमग्रवीत् ॥१६८॥
 फिर वे महाबली भीमान् पवनकुमार सुरसाके उस मुँहमें
 प्रवेश करके तुरत निकल आये और आकाशमें खड़े होकर
 इस प्रकार बोले—॥ १६८ ॥
 प्रविणोऽसि हि ते वक्त्र दासायणि नमोऽस्तु ते ।
 गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्वातद्वरस्तथ ॥१६९॥
 ‘दक्षकुमारी । तुम्हें नमस्कार है । मैं तुम्हारे मुँहमें
 प्रवेशकर सुका ले तुम्हारा बर भी सत्य होगया । अब मैं उस
 स्थानको जाऊँगा, जहाँ विदेहकुमारी सीता विद्यमान
 हैं’ ॥ १६९ ॥
 त दृष्ट्वा यदनामुक्त्वा चन्द्र राटसुरादिषु ।
 अग्रवीत् सुरसा देवी स्येन रूपेण वानरम् ॥१७०॥
 राहुके मुखसे छूट्टे हुए चन्द्रमाकी भाँति अपने मुखसे

• १६२ से लेकर १६५ तकके चार श्लोक कुछ टीकाकारोंने
 प्रक्षिप्त किये हैं किन्तु राजावशिरोमणि नामक टीकासे इनको
 स्मरत्या वक्तव्य होगी है । अतः यहाँ सूचने रुई सम्मिलित कर
 दिया गया है ।

मुक् द्रुप इनुमान्जीको देखकर सुरा देवीने अपने अस्त्री रूपमें प्रकट होकर उन वानरवीरसे कहा—॥ १७० ॥

मर्षसिद्धयै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥ १७१ ॥

‘कपिष्ठे । तुम भगवान् भीरुमके कार्यकी सिद्धिके लिये सुखपूर्वक जाओ । सौम्य । विदेहनिदनी सीताको महात्मा भीरुमसे शीघ्र मिलाने ॥ १७१ ॥

तत् तृतीय इनुमतो दृष्टा कर्म सुदुष्करम् ।
साधुसाध्विति भूतानि प्रशस्तसुस्तदा हरिम् ॥ १७२ ॥

कपिवर इनुमान्जीका यह तीसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म देख सब प्राणी बाह-बाह करके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥

स सागरमनाधूयमभ्येत्य वरुणालयम् ।
जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः ॥ १७३ ॥

वे वरुण सागरभूत भलदृष्ट्य समुद्रके निकट आकर आकाशका ही आश्रय ले गरुड़के समान वेगसे आगे बढ़ने लगे ॥

सेविते वारिधाराभिः पतनौघ च निपेविते ।
चरिते कैशिकाचार्यैराघतनिपेविते ॥ १७४ ॥

सिंहमुख जलशार्दूलपतगोरगघाहने ।
बिमाने समरतद्भिश्च विमले समलङ्घिते ॥ १७५ ॥

घञ्जशनिसमरुपशः पायकैरिय गोभिते ।
छतपुष्पैर्महाभागैः स्वगजिन्द्रिचिह्निते ॥ १७६ ॥

घहता ह्वयमत्पत सेविते चित्रभानुना ।
प्रहन्क्षत्रच द्वाकृतारागणविभूषिते ॥ १७७ ॥

महर्षिगणग धवनागयक्षसमाकुले ।
विदित विमले विद्ये निश्वायसुनिपेविते ॥ १७८ ॥

देवराजगजपाते चन्द्रस्यपथे शिवे ।
विताने जीवलोकस्य वितते प्रह्मनिर्मिते ॥ १७९ ॥

यद्गुह्य सेविते धीरैर्विद्राधरगैर्वृतैः ।
जगाम याधुमार्गे च गरुडमानिव माकृति ॥ १८० ॥

जो जलकी चारों ओर सेवित, पक्षियोंसे संयुक्त, गान विद्याके आचार्य तुभ्युक् आदि गणपतोंके विवरणका स्थान तथा देवान्तक आने-जानेका मार्ग है, सिंह, हाथी, बाघ, पक्षी और सर्प आदि वाहनसे युक्त और उड़ते हुए निमल विमान जिसकी शोभा घनाते हैं, बिनका स्पष्ट वज्र और अशक्तिके समान दुःख तथा तेज अग्निज समान प्रकाशमान है तथा जो स्वर्गलोकपर विजय पा चुक है, ऐसे महाभाग पुण्यात्मा पुरुषोंका जो निवासस्थान है, देवताके लिये अधिक मान्य है इत्येका भार वहन करनेवाला अग्निदेव जिसका वश धन करते हैं, अश्व, नयन, चन्द्रमा, सूर्य और तारे आभूषणकी भाँति बिजे सजाते हैं, महर्षियोंके समुदाय, गणप, नाग और यक्ष जहाँ मरे रहते हैं, जो अमृतका आश्रय स्थान, एकाद और निर्मल है, गणराज विश्वामु

जिसमें निवास करते हैं, देवराज इंद्रका हाथी जहाँ चलता फिरता है, जो चन्द्रमा और सूर्यका भी मङ्गलमय मार्ग है, इस जीव-जगत्के लिये विमल वितान (चँदोवा) है, साक्षात् परब्रह्म परमात्माने ही जिसकी सृष्टि की है, जो बहुसंख्यक वीरोंसे सेवित और विद्याधरगणोंसे आश्रित है, उस वायुपथ आकाशमें पवननन्दन इनुमान्जी गरुड़के समान वेगसे चले ॥ १७४—१८० ॥

इनुमान् मेघजालानि प्राकृपन् माकृतो यथा ।
कालागुरुसवर्णानि रक्तपीतसितानि च ॥ १८१ ॥

● वायुके समान इनुमान्जी अगरके समान काले तथा लाल, पीले और द्रव्य बादलोंके सींचते हुए आगे बढ़ने लगे ॥ १८१ ॥

कपिना हृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिते ।
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतश्च पुन पुन ॥ १८२ ॥
प्राकृपी-दुरिवाभाति निष्पतन् प्रविशस्तदा ।

उनके द्वारा सींचे जाते हुए वे बड़े बड़े बादल अद्भुत शोभा पा रहे थे । वे गरगर मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और बाहर निकलते थे । उस अवस्थामें बादलोंमें छिपते तथा प्रकट होते हुए वर्षाकालके चन्द्रमाकी भाँति उनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १८२ ॥

प्रहृष्टयमानः सर्वं इनुमान् माकृतात्मजः ॥ १८३ ॥
भेजेऽम्बर निरालम्ब पद्मयुक्त इन्द्रादिराट् ।

सर्वत्र दिशोपरी देते हुए पवनकुमार इनुमान्जी पक्षवारी गिरिराजके समान निराधार आकाशका आश्रय लेकर आगे बढ़ रहे थे ॥ १८३ ॥

गुह्यमान नु त दृष्टा सिद्धिं काम राक्षसी ॥ १८४ ॥
मनसा चिन्तयामास प्रयुद्धा कामरूपिणी ।

इस तरह जाते हुए इनुमान्जीकी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली विशालकाया सिद्धिका नामवाली राक्षसीने देखा । देखकर वह मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगी—॥ १८४ ॥

अथ दीघस्य कालस्य भविष्याद्यहमाशिता ॥ १८५ ॥
इदं मम महासत्त्वं चिरस्य पशमागतम् ।

‘आज दीर्घकालके बाद यह विशाल जीव मेरे वशमें आया है । इसे खा लेनेपर बहुत दिनोंके लिये मेरा पेट भर जायगा’ ॥ १८५ ॥

इति सचिन्त्य मनसा प्लायामस्य समासिपत् ॥ १८६ ॥
छायाया शृङ्गमाणाया चिन्तयामास धानर ।

समाश्रितोऽसि सहसा पद्मकृतपराक्रम ॥ १८७ ॥
प्रनिलोद्भूत घातेन महानौरिय सागरे ।

अपने हृदयमें ऐसा सोचकर उस राक्षसीने इनुमान्जीकी छाया पकड़ ली । छाया पकड़ी जानेपर वानरवीर इनुमान्ने

सोचा—‘अहो ! सहसा किन्तु मुझे पकड़ लिया, इस पकड़के
शामने मेरा पराक्रम पटु हो गया है। जैसे प्रतिकूल हवा
चलनेपर समुद्रमें जहाजकी गति अवरुद्ध हो जाती है, वैसी
ही दशा आज मेरी हो गयी है’ ॥ १८६ १८७ ॥

तियगूर्ध्वमधश्चैव धीक्षमाणस्तदा कपि ॥ १८८ ॥
ददर्श स महासत्त्वमुत्थित लवणाम्भसि ।

यही सोचते हुए कपिवर हनुमान्ने उस समय अगल
बगलमें, ऊपर और नीचे दृष्टि डाली। इतनेहीमें उन्हें
समुद्रके जलके ऊपर उठा हुआ एक विशालकाय प्राणी
दिखायी दिया ॥ १८८ ॥

तद् दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्जिताननाम् ॥ १८९ ॥
कपिराज्ञा यथाख्यात सत्त्वमद्भुतदर्शनम् ।

छायाप्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशय ॥ १९० ॥

उस विकराल मुखवाली राक्षसीको देखकर पवनकुमार
हनुमान् सोचने लगे—‘बानरराज सुप्रियने जिस महापराक्रमी
छायाप्राहि अद्भुत जीवकी चचा की थी, वह नि सदेह
यही है’ ॥ १८९ १९० ॥

स ता बुद्ध्वार्थतत्त्वेन सिंहिका मतिमान् कपि ।
व्यवधत महाकाय प्रावृषीव यलाहक ॥ १९१ ॥

तब बुद्धिमान् कपिवर हनुमान्जीने यह निश्चय करके
कि वास्तवमें यही सिंहिका है, क्याकालके मेषकी भाँति
अपने शरीरको ढाटना आरम्भ किया। इस प्रकार वे विशाल-
काय हो गये ॥ १९१ ॥

तस्य सा कायमुदीक्ष्य वर्धमान महाकपे ।
वक्षत्र प्रसारयामास पातालावरसनिभम् ॥ १९२ ॥
घनराजीन गर्जन्ती बानर समभिद्रवत् ।

उन महाकपिके शरीरको बढ़ते देख सिंहिकाने अपना
मुँह पाताल और आकाशके मध्यभागके समान फैला लिया
और मेषोंकी घटाके समान गर्जना करती हुई उन बानरवीरकी
ओर दौड़ी ॥ १९२ ॥

स ददर्श ततस्तस्या विवृत सुमहसुखम् ॥ १९३ ॥
कायमात्रं च मेधायी मर्माणि च महाकपि ।

हनुमान्जीने उसका अत्यन्त विकराल और बड़ा हुआ
मुँह देखा। उन्हें अपने शरीरके बराबर ही उसका मुँह
दिखायी दिया। उस समय बुद्धिमान् महाकपि हनुमान्ने
सिंहिकाके मर्मस्थानोंको अपना लक्ष्य बनाया ॥ १९३ ॥

स तस्या पिटृते वक्षसे ध्वजसहनन कपि ॥ १९४ ॥
सक्षिप्य सुदुरात्मान निपपात महाकपि ।

तदनन्तर यमोगम शरीरवाले महाकपि पवनकुमार
अपने शरीरको सङ्कुचित करके उसके विकराल मुखमें आ
गिरे ॥ १९४ ॥

आस्ये तस्या निमज्जत ददृशु सिद्धचारणा ॥ १९५ ॥
प्रस्यमान यथा चन्द्र पूर्णं पवणि राहुणा ।

उस समय भिक्षों और चारणोंने हनुमान्जीको सिंहिकाके
मुखमें उठी प्रकार निमग्न होते देखा, जैसे पूर्णिमाकी रातमें
पूर्ण चन्द्रमा राहुके ग्रास बन गये हैं ॥ १९५ ॥

ततस्तस्या नक्षैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युराकृत्य वानर ॥ १९६ ॥
उत्पपाताथ वेगेन मन सम्पातविषमः ।

मुखमें प्रवेश करके उन बानरवीरने अपने हीले
जलोंसे उस राक्षसीके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर डाला।
इसके पश्चात् वे मनुके समान गतिसे उछलकर वेगपूर्वक
बाहर निकल आये ॥ १९६ ॥

ता तु दिष्ट्या च घृत्या च दाक्षिण्येन निपाय स ॥ १९७ ॥
कपिप्रवीरो वेगेन घवृधे पुनरारम्बवान् ।

देवके अनुग्रह, स्वाभाविक धैर्य तथा कौशलसे उस
राक्षसीको मारकर वे मनस्वी बानरवीर पुनः वेगसे बढ़कर
बढ़े हो गये ॥ १९७ ॥

हतहस्ता हनुमता पपात विधुराम्भसि ।
स्वयभुवैव हनुमान् सृष्टस्तस्या निपातने ॥ १९८ ॥

हनुमान्जीने प्राणोंके आश्रयभूत उसने हृदयसल्लको
ही नष्ट कर दिया, अतः वह प्राणशून्य होकर समुद्रके जलमें
गिर पड़ी। विघाताने ही उसे मार गिरानेके लिये हनुमान्जीको
निमित्त बनाया था ॥ १९८ ॥

ता हता वानरेणाशु पतिता वीक्ष्य सिंहिकाम् ।
भूतायाकाशचारीणि तमुचू प्रवगोत्तमम् ॥ १९९ ॥

उन बानरवीरके द्वारा शीघ्र ही मारी जाकर सिंहिका
जलमें गिर पड़ी। यह देख आकाशमें विचरनेवाले प्राणी
उन कपिश्रेष्ठसे बोले— ॥ १९९ ॥

भीममद्य हत कर्म महत्सत्त्व त्वया हतम् ।
साधधार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्रवता वर ॥ २०० ॥

‘कपिवर ! तुमने यह बड़ा ही भयंकर कर्म किया है,
जो इस विशालकाय प्राणीको मार गिराया है। अब तुम
बिना किसी विघ्न बाधाके अपना अभीष्ट काय सिद्ध
करो ॥ २०० ॥

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ।
धृतिदृष्टिमतिदीक्ष्य स कर्मसु न स्तीदति ॥ २०१ ॥

‘वानरेन्द्र ! जिस पुरुषमें तुम्हारे समान धैर्य, दृढ़ता, बुद्धि
और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कर्ममें
कमी असफलता नहीं होती’ ॥ २०१ ॥

स तैः सम्पूजित पूज्य प्रतिपन्नप्रयोजनैः ।
जगामाकाशमादिप्य पन्नगादानवत् कपि ॥ २०२ ॥

इस प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध हो जानेसे उन आकाश

चारी प्राणियोने हनुमान्जीका बड़ा सफ़ार किया । इसके बाद वे आकाशमें चढ़कर गड़ड़के समान वेगसे चलने लगे ॥ २०२ ॥

प्रातःपूर्वधियापरस्तु सर्जतः परिलोकयन् ।

योजनाना शतस्याते चनराजी द्दश सं ॥ २०३ ॥

ही योजनाक अन्तमें प्रायः समुद्रके पार पहुँचकर जब उन्होंने सब ओर दृष्टि डाली, तब उन्हें एक ही भी वन भेरी दिखायी दी ॥ २०३ ॥

ददर्श च पतनेद्य विविधद्रुमभूषितम् ।

डीप शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥ २०४ ॥

आकाशमें उड़ते हुए ही शाखामृगोंमें श्रेष्ठ हनुमान्जीने भौँति भौँतिके वृक्षोंसे सुशोभित सङ्का नामक द्वीप देखा । उत्तर तटकी भौँति समुद्रक दक्षिण तटपर भी मलय नामक पर्वत और उसके उपवन दिखायी दिख ॥ २०४ ॥

सागर सागरानूपान् सागरानूपजान् हुमान् ।

सागरस्य च पत्नीना मुखा यपि विलोकयत् ॥ २०५ ॥

समुद्र, सागरतटवर्ती जलप्रायः देश तथा वहाँ बग हुए वृक्ष एवं सागरपत्नी सरिताओंके मुहानोंको भी उन्होंने देखा ॥ २०५ ॥

स महामेघसकाश समीक्ष्यात्मानमात्मना ।

निदग्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान् मतिम् ॥ २०६ ॥

मनको वशमें रखनेवाले बुद्धिमान् हनुमान्जीने अपने शरीरको महान् मेघोंकी बटाके समान विशाल तथा आकाश का अवकाश करता सा देल मन ही मन इस प्रकार विचार किया—॥ २०६ ॥

कायबुद्धि प्रयोग च मम हृद्द्वय राक्षसा ।

मयि कौद्वलं क्षुरुरिति मेने महामतिः ॥ २०७ ॥

‘अहो ! मेरे शरीरकी विशालता तथा मेरा यह तीव्र वेग देखते ही राक्षसोंके मनमें भरे प्रति बड़ा कौद्वल होगा—वे मेरा भेद जाननेके लिये असमर्थ हो जायेंगे ।’ परम बुद्धिमान् हनुमान्जीके मनमें यह धारणा पक्की हो गयी ॥ २०७ ॥

ततः शरीरं सक्षिप्य तमहीधरसन्निभम् ।

पुनः प्रष्टुमिमापदे धीतमोहं द्वात्मस्थान् ॥ २०८ ॥

मनस्वी हनुमान् अपने परीतावार शरीरको सकुचित करके पुनः अपने पाछाविक स्वरूपमें स्थित हो गये । ठीक उसी तरह, जैसे मनको वशमें रखनेवाला मोहरहित पुरुष अपने मूल स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २०८ ॥

अद्रुपममतिसक्षिप्य हनुमान् प्रष्टुतौ स्थित ।

वीन्वन्मानिय विमन्य यत्थिययद्वयो हरि ॥ २०९ ॥

हनुमान् अमद्गामायण वायुमीकीने आदिशब्दे सुन्दरशब्दे प्रथम सर्गः ॥ १ ॥

इह प्रकार शेषवाक्यनिर्मित आरम्भमायण आदिशब्दे सुन्दरशब्दे पहला सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

जैसे बलिके पराक्रमशायी अभिमानको हनुमान् नेनेवाले श्रीहरिने विराटरूपसे तीन पग चलकर तीनों शोकोंको नाप लेनेके प्रयास अपने उस स्वरूपकी समेत लिया था, उसी प्रकार हनुमान्जी समुद्रको छौंथ जनेके बाद अपने उस विशालरूपको सकुचित करके अपने वायुविक स्वरूपमें स्थित हो गये ॥ २०९ ॥

स चायनानाविधिरूपधारी

पर समासाद्य समुद्रतीरम् ।

परैरशक्य प्रतिपन्नरूप

समीक्षितारामा समवेक्षितार्थः ॥ २१० ॥

हनुमान्जी वही ही सुन्दर और नाना प्रकारके रूप धारण कर लेते थे । उन्होंने समुद्रके दूसरे तटपर, जहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव था, पहुँचकर अपने विशाल शरीरकी ओर दृष्टिपात किया । फिर अपने कर्तव्यका विचार करके छोटा सा रूप धारण कर लिया ॥ २१० ॥

ततः स लभ्यस्य गिरे समुद्रे

निक्षिप्तकूटे निपपात कूटे ।

सफेतकोद्दालकनारिकेले

महाधकूटमतिमो महात्मा ॥ २११ ॥

महान् मेघ-समूहके समान शरीरवाल महात्मा हनुमान्जी केवल, ललाड़े और नारियलके वृक्षोंव किम्बित लम्पपर्वतके विविध लघु शिखरोंवाले महान् समुद्रदिहाली शृङ्गपर बूढ़ पड़े ॥ २११ ॥

ततस्तु सम्प्राप्य समुद्रतीरं

समीक्ष्य लङ्का गिरिवर्धमूर्तिम् ।

कपिस्तु तस्मिन् निपपात पर्वते

विधूय कप वयथय-मृगद्विजान् ॥ २१२ ॥

तदनन्तर समुद्रके तटपर पहुँचकर वहाँसे उन्होंने एक श्रेष्ठ पर्वतके शिखरपर बसी हुई लङ्काको देखा । देखकर अपने पहले रूपको तिराहित करके वे वायुवीर यहाँके पशु-पक्षियोंको व्यापित करते हुए उधर पर्वतपर उतर पड़े ॥ २१२ ॥

स सागरं दानवपन्नगायुतं

बलेन विमन्य महोर्मिमालिनम् ।

निपत्य तीरे च मदोद्धेस्तदा

ददर्श लङ्काममरावतीमिय ॥ २१३ ॥

इस प्रकार दानवों और वन्योने भरे हुए तथा यहीं बड़ी उच्चाल तरङ्गमालाओंसे अलङ्कृत महासागरको बलपूर्वक बौंचकर वे उधर तटपर उतर गये और अमरावतीके समान सुशोभित सङ्कापुरीकी योगा देखने लगे ॥ २१३ ॥

द्वितीय. सर्गः

लङ्कापुरीका वर्णन, उसमें प्रवेश करनेके विषयमें हनुमान्जीका विचार, उनका लघुरूपसे पुरीमें प्रवेश तथा चन्द्रोदयका वर्णन

स सागरमाधृष्यमतिमम्य महायत्न ।

त्रिकूटस्य तटे लङ्का स्थित स्वस्थो ददर्श ह ॥ १ ॥

महायत्नी हनुमान्जी अष्टङ्गनीय समुद्रको पार करके त्रिकूट (लम्ब) नामक पर्वतके शिखरपर स्वस्थ भावसे खड़े हो लङ्कापुरीकी शोभा देखने लगे ॥ १ ॥

ततः पादपमुकेन पुष्पशय्येन वीर्यवान् ।

अभिवृष्टस्ततस्तत्र यमौ पुष्पमयो हरि ॥ २ ॥

उस समय उनके ऊपर वहाँ वृक्षोंसे शड़े हुए फूलोंकी यमों होने लगी । इससे वहाँ बैठे हुए पराक्रमी हनुमान् फूलके बने हुए वानरके समान प्रतीत होने लगे ॥ २ ॥

योजनानां शत श्रीमास्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रम ।

अनि श्वसन् अपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ ३ ॥

उत्तम पराक्रमी भीमान् वानरवीर हनुमान् सौ योजन समुद्र लौंकर भी वहाँ लंबी राँव नहीं खोंच रहे थे और न ग्लानिका ही अनुभव करते थे ॥ ३ ॥

शतायह योजनानां क्रमेण सुबद्धयपि ।

किं पुन सागरस्यात सख्यात शतयोजनम् ॥ ४ ॥

उल्लेखे ये यह सोचते थे, मैं सौ सौ योजनोंके बहुतसे समुद्र लौंकर आ रहा हूँ फिर इस गिने-गिनाय सौ योजन समुद्रको पार करना कौन बड़ी बात है ! ॥ ४ ॥

स तु वीर्यवता श्रेष्ठ प्रयत्नामपि चोत्तम ।

जगाम वेगवर्द्धलङ्का लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ ५ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ तथा वानरोंमें उत्तम वे वेगवान् पवन कुमार महासागरको लौंकर शीघ्र ही लङ्कामें आ पहुँचे ॥ ५ ॥

शाहलानि च भीलानि गच्यन्ति पनानि च ।

मधुमति च मध्येन जगाम नगवर्ति च ॥ ६ ॥

रास्तेमें हरी हरी दूध और वृक्षोंसे भरे हुए मकरन्द पूर्ण गुणवित्त वन देखते हुए वे मध्यमार्गसे जा रहे थे ॥ ६ ॥

दौलाक्ष तंरुसखानान् वनराजीश्व पुष्पिताः ।

अभिचक्राम तजस्थी हनुमान् प्रवर्ग्यभ ॥ ७ ॥

तेजस्वी वानरशिरोमणि हनुमान् वृक्षोंसे आच्छादित पर्वतों और फूलोंसे भरी हुई वन भेगियोंमें विचरने लगे ॥ ७ ॥

स तस्मिन्चले तिष्ठन् यनाभ्युपवनानि च ।

स नगामे स्थिता लङ्का ददर्श पयनात्मज ॥ ८ ॥

उस पर्वतपर स्थित हो पवनपुत्र हनुमान्ने बहुतसे वन

और उपवन देख तथा उस पर्वतके अग्रभागमें बसी हुई लङ्का भी अवलोकन किया ॥ ८ ॥

सरलान् कणिकाराक्ष यजूर्नाश्च सुपुष्पितान् ।

प्रियालान् मुकुलिन्दाश्च कुटजान्केतकानपि ॥ ९ ॥

प्रियङ्गून् गन्धपूर्णाश्च नीपान् सप्तच्छदास्तथा ।

असनान् कोविदारश्च करवीराश्च पुष्पितान् ॥ १० ॥

पुष्पभारनियन्दाश्च तथा मुकुलितानपि ।

पादपान् विहगाकीणान् पयनाधृतमस्तकान् ॥ ११ ॥

उन कपिभेदने वहाँ सरल (चीड़), केनर, खिले हुए खजूर, प्रियाल (चिरौजी), मुकुलिन्द (जम्बीरी नाभू), कुटज, केतक (केवड़े), गुग्गुलु, प्रियङ्गु (सिमली), नीप (कदम्ब या अशोक), छितवन, असन, काबिदार तथा खिले हुए करवीर भी देखे । फूलोंके भारसे लदे हुए तथा मुकुलित (अवखिल) बहुतसे वृक्ष उई दृष्टिगोचर हुए, जिनमें पड़ी भरे हुए थे और हवाक शोकेष जिनकी बालियाँ झूम रही थीं ॥ ९—११ ॥

हस्तकारण्डयाकीर्णं धापी पद्मोत्पलावृता ।

आम्नीडान् विविधान् रम्यान् निविधाश्च जलाशयान् ॥

हलें और कारण्डबोंसे श्यात तथा कमल और उत्पलसे आच्छादित हुई बहुवर्षी बावड़ियाँ, मौलि भौलत रमणीय श्रीहासान तथा नाना प्रकारके जलाशय उनके दृष्टिपथमें आये ॥ १२ ॥

सततान् विविधैवृक्षै सयर्तुफलपुष्पितै ।

उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जर ॥ १३ ॥

उन जलाशयोंके चारों ओर सभी ऋतुओंमें फलपूज देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्ष फले हुए थे । वन वानर शिरोमणि वहाँ बहुतसे रमणीय उद्यान भी देखे ॥ १३ ॥

समासाद्य च लक्ष्मीवर्द्धलङ्का राघवपालिताम् ।

परित्याग्य सपद्याभिं सात्पलाभिरल्लुप्ताम् ॥ १४ ॥

सीतापहरणात् तेन राघवेन सुरक्षिताम् ।

समन्ताद् विचरन्निदं राक्षसैरुपच्यभि ॥ १५ ॥

अद्भुत शोभासे सम्पन्न हनुमान्जी धीरे धीरे रावण पालित लङ्कापुरीके पास पहुँचे । उसके चारों ओर खुनी हुई खारियाँ उस नगरीकी शोभा बढ़ा रही थीं । उनमें उत्पल और पद्म आदि कई जातियोंके कमल खिले थे । सीताका हर लानेके कारण रावणने लङ्कापुरीकी रक्षाका विशेष प्रयत्न कर रखा था । उसके चारों ओर भयंकर घनुर घोरान करनेवाले राक्षस घूमते रहते थे ॥ १४ १५ ॥

काञ्चनेनावृता रम्या प्राकारेण महापुरीम् ।
युद्धैश्च गिरिसकाशे शारदाम्युद्धनिभै ॥ १६ ॥

यह महापुरा खानकी चहारदीवारीसे घिरी हुई थी तथा
पर्वतके समान ऊँचे और शरद श्रुद्धसे बादलोंके समान श्वेत
भवनोसे भरी हुई थी ॥ १६ ॥

पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुष्णभिरभिस्रुताम् ।
अट्टालकशताकीर्णैः पताकाच्यजशोभिताम् ॥ १७ ॥

इसने रंगकी ऊँची ऊँची सड़कें उस पुरीको सब ओरसे
बेरे हुए थीं । सैकड़ों अट्टालिकाएँ वहाँ शोभा पा रही थीं
तथा पहराती हुई भवजा पताकाएँ उस नगरीकी शोभा बढ़ा
रही थीं ॥ १७ ॥

तोरणैः काञ्चनैर्द्विभ्यस्तपङ्क्तिरिराजितैः ।
ददर्श हनुमानलङ्का देवो देवपुरीमिव ॥ १८ ॥

उसके बाहरी पाटक सोनेके बने हुए थे और उनकी
दीवारें लता बेलोंके विषये सुतोभित थीं । हनुमानजीने उन
पाटकोंसे सुशोभित लङ्काको उसी प्रकार देखा, जैसे कोई
देवता देवपुरीका निरीक्षण कर रहा हो ॥ १८ ॥

गिरिर्भूमिस्थिता लङ्का पाण्डुरैर्मयनैः शुभ्रैः ।
ददर्श स कपि श्रीमान् पुरीमाकाशगामिव ॥ १९ ॥

तेजस्वी कपि हनुमान् लुब्धक छत्र सदनोसे सुतोभित
और पर्वतक शिखरपर स्थित लङ्काको इस तरह देखा; मानो
यह आकाशमें विचरनेवाली नगरी हो ॥ १९ ॥

पालिता राक्षसेन्द्रेण निर्मिता विम्बकर्मणा ।
भूयमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान् कपि ॥ २० ॥

कपिक हनुमान्ने विम्बकर्मद्वारा निर्मित तथा राक्षस
राज रावणद्वारा सुरक्षित उस पुरीको आकाशमें तैरती
ही देखा ॥ २० ॥

धर्मप्राकारजयता रिपुलाम्युयनागराम् ।
शतपत्नीशूत्रकेदास्तामहालकायतसकाम् ॥ २१ ॥

मनसेबहुलता लङ्का निर्मिता विम्बकर्मणा ।
विभक्तमाकीर्णानी हुई लङ्का मानो उनसे आनन्दिक
सङ्घर्षसे रची गयी एक सुन्दरी स्त्री थी । चहारदीवारी
और उसके भीतरकी घेदी उसके अधनसली जान
पड़ती थी, समुद्रका विशाल जलराशि और वन उसके
वस्त्र थे; शतपत्नी और शूल नामक अस्त्र ही उसके पैर थे
और बड़ी बड़ी अट्टालिकाएँ उसके लिये कणभूषण ही प्रताप
हो रही थीं ॥ २१ ॥

द्वारमुत्तरमासाद्य चित्तयामास वानर ॥ २२ ॥
कैलासनिजप्रययामालिप्तमिधाम्बरम् ।

धियमाणमियाकाशमुच्चिष्टैर्मयनोत्तमैः ॥ २३ ॥
उस पुरीके उत्तर द्वारपर पहुँचकर वानरजी हनुमान्जी
चिन्तामें पड़ गये । यह द्वार कैलास पर्वतपर बड़ी हुई

अलकापुरीके बहिर्द्वारके समान ऊँचा था और आकाशमें
रेखासी खोचता जान पड़ता था । ऐसा जान पड़ता था
मानो अपने ऊँचे-ऊँचे प्राणदोंपर आकाशको ठट
रक्खा है ॥ २२ २३ ॥

सम्पूर्णैः राक्षसेर्घोरैर्नागैर्भोगवतीमिव ।

अचित्या सुकृता स्पष्टा कुबेराश्रयिता पुरा ॥ २४ ॥

दृष्टाभिर्वहुभिः शूरैः शूलपट्टिशपाणिभिः ।

रक्षिता राक्षसेर्घोरैर्गुहामाशीविपैरिव ॥ २५ ॥

लङ्कापुरी मयानक राक्षसों से उठी तरह भरी थी, जैसे
पातालकी भागवतीपुरी नागोंसे भरी रहती है । उसकी
निर्माणकला अचिन्त्य थी । उसकी रचना सुन्दर दृग्गते
की गयी थी । वह हनुमान्जीको स्पष्ट दिखायी देती थी ।
पूर्वकालमें साक्षात् कुबेर वहाँ निवास करते थे । हाथोंमें शूल
और पट्टिश लिये बड़ी बड़ी दाढ़ीवाले बहुतसे शूरवीर वहाँ
राक्षस लङ्कापुरीकी उसी प्रकार रक्खा करते थे, जैसे विषधर
सर्व अपना पुरीकी करते हैं ॥ २४ २५ ॥

तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरजनिरीक्ष्य स ।

रावण च रिपुं घोरं चित्तयामास वानर ॥ २६ ॥

उस नगरकी बड़ी भारी चौकसी, उसका चारों ओर
समुद्रकी खारें तथा रावण जैसे भयकर शत्रुको देखकर
हनुमान्जी इस प्रकार विचारने लगे— ॥ २६ ॥

आगत्यपरीक्ष्य हरयो भयिष्यन्ति निरर्थका ।

नदिमुज्ज्वलं वै लङ्का शफ्या जेतुं सुदूरैरपि ॥ २७ ॥

‘यदि वानर यहाँक आ जायें तो भी वे व्यर्थ ही छिड़
होंगे, क्योंकि युद्धके द्वारा देवता भी लङ्कापर विजय नहीं पा
सकते ॥ २७ ॥

इमा त्वविषमा लङ्का दुर्गा रावणपालिताम् ।

प्राप्यापि क्षुमहाबाहु किं करिष्यसि राघव ॥ २८ ॥

‘जिससे बदकर विषम (सकटपूर्ण) स्थान और कोई
नहीं है; उस रावणपालित इस दुर्गम लङ्कामें आकर महाबाहु
औरखुनाथकी भी क्या करेंगे ॥ २८ ॥

अथकाशे न सामनस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते ।

न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृढयते ॥ २९ ॥

‘राक्षसोंपर सामनीलिके प्रयागके लिये तो कोई
शुनाइश ही नहीं है । इनका दान, भेद और युद्ध
(दण्ड) नीतिका प्रयोग भी सफल होता नहीं
दिखायी देता ॥ २९ ॥

स्वतुणोमेव हि गतियानराणां तरसिनाम् ।

वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राघव धीमत ॥ ३० ॥

‘यहाँ चार ही बगलानी वानरोंकी पहुँच हो सकती
है—वालिपुत्र अह्वदधी, नीलकी, मेरी और मुदिमान्
राजा सुग्रीवकी ॥ ३० ॥

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा ।

तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा ता जनकात्मजाम् ॥ ३१ ॥

‘अच्छा, पहले यह तो पता लगाऊँ कि विन्धुसुमारी सीता जीवित है या नहीं। जनककिशोरीका दर्शन करनेके पश्चात् हाँ मैं इस विषयमें काह विचार करूँगा’ ॥ ३१ ॥

ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जर ।

गिरे शृङ्गे स्थितस्तस्मिन् रामस्याभ्युदय ततः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर उस पर्वत शिखरपर खड़े हुए कपिश्रेष्ठ हनुमानजी भीरुमन्दबुद्धि अम्युदयके लिये सीताजीका पता लगानेके उद्योगपर हो घबोहत विचार करते रहे ॥ ३२ ॥

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसा पुरी ।

प्रवेष्टुं राक्षसेलुप्ता क्रूररक्षसमण्डिते ॥ ३३ ॥

उन्होंने सोचा—‘मैं इस रूपसे राक्षसोंकी इस नगरीमें प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि बहुत से क्रूर और बलवान् राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं’ ॥ ३३ ॥

महौजसो महाधीया बलवन्तश्च राक्षसा ।

वञ्चनीया मया सर्वे जानकी परिमागता ॥ ३४ ॥

‘जानकीकी लोचन करते समयमुझे अपनेका छिपानेके लिये यहोंक सभी महातेजस्वी महापरशुमी और बलवान् राक्षसोंसे भौल बचानी होगी’ ॥ ३४ ॥

लक्ष्मालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया ।

मातृकाल प्रवेष्टुं मे हृत्य साधयितुं महत् ॥ ३५ ॥

‘अतः मुझे रात्रिसे समय ही नगरमें प्रवेश करना चाहिये और सीताका अन्वेषणरूप यह महान् समयोजित काय सिद्ध करनेके लिये ऐसे रूपका आभय लेना चाहिये, जो भौलसे देखा न जा सके। केवल कार्यसे यह अनुमान हो कि कोई आया था’ ॥ ३५ ॥

ता पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्मा सुरासुरैः ।

हनुमाश्रितयामास यिनिभ्यस्य मुदमुहुः ॥ ३६ ॥

देवताओं और भूतलोक लिये भी दुजय वैसी लङ्कापुरीके देखकर हनुमानजी बारबार लचीं लौं लौंचते हुए यों विचार करने लग— ॥ ३६ ॥

बेनोपायेन पश्येय मैत्रिलीं जनकाम्पाम् ।

मद्यो राक्षसेद्रुण राघवेन दुष्टात्मना ॥ ३७ ॥

‘किस उपायसे काम चूँ, जिससे दुष्टात्मा राक्षसपाव राक्षसी दृष्टिसे ओगल रहकर मैं निषिद्धानदिनी जनक किशोरी धीताका दर्शन प्राप्त कर सकूँ’ ॥ ३७ ॥

न विनश्येत् कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः ।

एकामेकस्तु पश्येय रहिते जनकात्मजाम् ॥ ३८ ॥

‘किस रीतिसे कार्य किया जाय जिससे गमद्विस्थात भीरुमन्दबुद्धि का काम भी न बिगड़ और मैं एकान्तमें अकेली जानकीजीसे भेंट भी कर सकूँ’ ॥ ३८ ॥

भूताद्वयार्थाग्निदयन्ति देशकालविरोधिता ।

विज्ञेय दूतमासाद्य तम सूर्यादये यथा ॥ ३९ ॥

‘कई बार कातर अथवा अविवेकपूर्ण कार्य करनेवाले दूतके हाथमें पड़कर देश और कालके विपरीत व्यवहार होनेके कारण बने बनाये काम भी उसी तरह बिगड़ जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अंधकार नष्ट हो जाता है’ ॥ ३९ ॥

अर्थानर्थोत्तरे बुद्धिनिश्चिततापि न शोभते ।

धातयन्तीह कार्याणि दूता पण्डितमानिनः ॥ ४० ॥

‘प्राज्ञ और मन्त्रियोंके द्वारा निश्चित किया हुआ कर्तव्याकर्तव्यविषयक विचार भी किसी अविवेकी दूतका आभय लेतेसे शोभा (सफलता) नहीं पाता है। अपनेको पण्डित माननेवाले अविवेकी दूत द्वारा काम ही खैराद कर देते हैं’ ॥ ४० ॥

न विनश्येत् कथं कार्यं वैकल्येन न कथं भवेत् ।

लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेत् दृष्ट्वा ॥ ४१ ॥

‘अच्छा तो किस उपायका अवलम्बन करनेसे स्वामीका काय नहीं बिगड़ेगा, मुझे परराष्ट्र या अन्वेषक नहीं होगा और मरा यह समुद्रका लौटना भी ‘पर्य’ नहीं होने पड़ेगा’ ॥ ४१ ॥

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।

भवेत् व्यथमिदं कार्यं राघवनाथमिच्छत ॥ ४२ ॥

‘यदि राक्षसोंने मुझे देख लिया तो रावणका अनर्थ चाहनेवाले उन विप्लवातनामा भगवान् श्रीरामका यह काय सकल न हो सकेगा’ ॥ ४२ ॥

नहि शक्यं कश्चित् स्थातुमविशतेन राक्षसैः ।

अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥ ४३ ॥

‘यहाँ दूसरे किसी रूपकी तो शान ही क्या है, राक्षसका रूप धारण करके भी राक्षसोंसे अशक्त रहकर कहीं ठहरना असम्भव है’ ॥ ४३ ॥

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।

नक्षत्राविक्षिप्तं किंचिद् रक्षसा भीमकर्मणाम् ॥ ४४ ॥

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि राक्षसोंसे छिप रहकर वायुदेव भी इस पुरीमें निचरन नहीं कर सकते। यहाँ काह भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ इन मयकर कम करनेवाले राक्षसोंको शान न हो’ ॥ ४४ ॥

इहाह यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण सन्नतः ।

विनाशमुपयास्यामि भर्तुरप्यश्च हास्यति ॥ ४५ ॥

‘यदि यहाँ मैं अपने इस रूपमें छिपकर भी रहूँगा तो माया बाजेंगा और मेरे स्वामिके कायमें भा शानि पहुँचेगी’ ॥ ४५ ॥

तदह स्वेन रूपेण रजया ह्रस्वता गतः ।

लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यासिद्धये ॥ ४६ ॥

अतः मैं भीष्मनामजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये रातमें अपने इसी रूपसे छांटा-खा शरीर धारण करके लङ्कामें प्रवेश करूँगा ॥ ४६ ॥

रात्रणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम् ।
प्रविश्य भवन सर्वं प्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ॥ ४७ ॥

यद्यपि रात्रणकी इस पुरीमें जाना बहुत ही कठिन है तथापि रातको इसके भीतर प्रवेश करके सभी घरोंमें घुसकर मैं जानकीकी लोचन करूँगा ॥ ४७ ॥

इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमय कपि ।
आचकाह्णे तदा धीरो वैदेह्या दशानोमुख ॥ ४८ ॥

ऐसा निश्चय करके वीर चानर हनुमान विदेहजन्मिनीके दर्शनके लिये उत्सुक हो उस समय सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ४८ ॥

सूर्यं धावन् गते रात्रौ देह सक्षिप्य भावति ।
धूपदशकमात्रोऽथ वभूवाद्भुतदर्शन ॥ ४९ ॥

मृशाम हो जानेपर रातके समय उन पवनकुमारने अपने शरीरको छांटा रक्ता लिया । वे किन्तीके बराबर होकर अत्यन्त अद्भुत शिखायी देने लगे ॥ ४९ ॥

प्रक्षोपफाले हनुमास्त्वर्णमुत्पत्य धीर्ययान् ।
प्रविधेश पुरीं रम्या प्रविभक्तमहापथाम् ॥ ५० ॥

प्रक्षोपफालमें पराक्रमी हनुमान झुटत ही उछलकर उस रमणीय पुरीमें घुस गये । वह नगरी पृथक् पृथक् बने हुए चौड़े और विशाल राजमार्गोंमें सुशोभित थी ॥ ५० ॥

प्रासादमालावितता स्मरमे काञ्चनसन्निभैः ।
ज्ञातकुम्भनिभैजालैश्च घननगरोपमाम् ॥ ५१ ॥

उसमें प्रासादोंकी लची पवित्रों दूरतक फैली हुई थी । सुनहर रंगके तारों और सोनेकी आलियोंसे विभूषित वह नगरी गन्धनगरके समान रमणीय प्रतीत होती थी ॥

सप्तमीमाष्टमीमैत्रेय स ददर्श महापुरीम् ।
तलै स्फटिकसकीर्णं कार्तस्वरधिभूषितं ॥ ५२ ॥

वैदूषमणिविधैश्च मुक्ताजालनिभूषितं ।
तैस्तै शुभ्रिरे तानि भयनाम्यय रक्षसाम् ॥ ५३ ॥

हनुमान्जीने उस पिता पुरीको उत्तमहृत्, जटमहल मन्त्री और सुवर्णवर्णित स्फटिक मणिकी पद्मोंमें सुशोभित देखा । उनमें वैदूर्य (नीलम) भी जड़े गये थे, जिससे उनकी निविध शोभा होती थी । मालियोंकी आलियों भी उन महलौरी शोभा बनाती थी । उन सबके कारण राक्षसोंके ये भवन बड़ी सुन्दर शोभा लम्पट हो रहे थे ॥ ५२ ५३ ॥

हृषार्फ श्रीमद्गामाण्ये वाक्मीरीये आत्मावये मुन्दरहाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

१० प्रकर श्रीरत्नकिर्तिर्निर्णि अत्रामाण्ये अर्द्धावक मुन्दरहाण्डे दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

काञ्चनानि विविधाणि तोरणानि च रक्षसाम् ।

लङ्कामुद्योतयामासु सर्वतः समलङ्कृतम् ॥ ५४ ॥

सोनेके बने हुए विविध पाटक सब ओरसे सभी हुए राक्षसोंकी उस लङ्काको और भी उनीत कर रहे थे ॥ ५४ ॥

अचित्यामद्भुताकारा दृष्ट्वा लङ्का मदाक्षयि ।
आसीद्विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दशानोमुख ॥ ५५ ॥

ऐसी अचिन्त्य और अद्भुत आकारवाली लङ्काको देखकर महाकवि हनुमान् विषादमें पड़ गये, परन्तु जानकी कीर्ति दर्शनके लिये उनके मनमें बड़ी उत्पत्ता थी, इसलिये उनका हर्ष और उत्साह भी कम नहीं हुआ ॥ ५५ ॥

स पाण्डुराविद्धिमानमालिनीं
महाहजाम्भूनदजालतोरेणाम् ।

यशस्विनीं राघवबाहुपालिता
हृषाचरैर्भाम्यलै सुपालिताम् ॥ ५६ ॥

परस्पर लगे हुए श्वेतवर्णके सनमिले महलोंकी पवित्रों लङ्कापुरीकी शोभा बढ़ा रही थी । बहुमूल्य जाम्बूनद नामक मुषणकी आलियों और बदनवर्तोंसे बहाँके घरोंको सजाया गया था । भयकर यशशाली निशाचर उस पुरीकी अच्छी तरह रक्षा करते थे । रात्रणके बाहुबलस भी वह सुरक्षित थी । उनके यशान्ती ख्याति सुदूरतक फैली हुई थी । ऐसी लङ्कापुरीमें हनुमान्जीने प्रवेश किया ॥ ५६ ॥

चन्द्रोऽपि साचिष्यमिवाव्य कुर्वे
स्तारागणैर्मध्यगतो निराजन् ।

ज्योतरसावितानेन वितत्य लोका
नुत्तिष्ठतेऽनकसहस्रारदिम् ॥ ५७ ॥

उस समय तारागणोंके साथ उनके बीचमें विराजमान अनेक सहस्र किरणोंवाले चन्द्रदेव भी हनुमान्जीकी महायत्ना की करते हुए समस्त लोकोंपर अपनी चोंदनीका चँदोवा छा तानकर उड़ित हो गये ॥ ५७ ॥

शुभ्रमम क्षीरमृणालार्णं
मुद्गरछमान व्ययभासमानम् ।

ददर्श चन्द्र स कपिप्रधीर
पोष्ण्यमान सरसीर हनम् ॥ ५८ ॥

जानकों प्रमुख क्षीर शीरहनुमान्जीने शङ्खकी मी कान्ति तथा दूध और मृणालके से बने चन्द्रमाको आकाशमें इस प्रकार उड़ित प्रथ प्रकाशित होते देखा, मानो किसी खिलवर्तमें कोई हथ तैर रहा हो ॥ ५८ ॥

तृतीय. सर्ग

लङ्कापुरीमा अवलोकन करके हनुमान्जीका विस्मित होना, उसमें प्रवेश करते समय निशाचरी लङ्काका उन्हें रोकना और उनकी भारसे विह्वल होकर उन्हें पुरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना

स लब्धशिखरे लये लवतोयदसनिमे ।
सत्त्वमास्याय मेधाग्री हनुमान् मादतात्मजः ॥ १ ॥
निशि लङ्का महासत्त्वो विवेश कपिबुध्वर ।
रम्यकाननतोपाख्या पुरीं रावणपालिताम् ॥ २ ॥

जैसे शिखरवाले लव (त्रिभूट) पर्वतपर जो महान् मेरोंकी धदाके समान जान पड़ता था; बुद्धिमान् महाशक्ति-शाली कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमान्ने सखगुणका आभय के रातके समय रावणपालित लङ्कापुरीमें प्रवेश किया । वह नगरी सुरम्य यन और बसाधर्षिते सुयोगित थी ॥ १२ ॥
शारदासुधधरमप्यैर्मयनैरुपशोभिताम् ।
सागरोपमनिर्घोषा सागरानिलसेविताम् ॥ ३ ॥

शरत्कालके बादलोंकी भाँति श्वेत कान्तिवाले सुन्दर भवन उलकी घोमा बढाते थे । वहाँ सश्रद्धकी गजनाके समान गम्भीर शब्द होता रहता था । समरकी लहरोंको धूकर बढनेवाली वायु इस पुरीकी सेवा करती थी ॥ ३ ॥
सुपुष्टवलसम्पुष्टा ययैव विटपावतीम् ।
चारुदोरणनिर्युद्धा पाण्डुरद्वारतोरणाम् ॥ ४ ॥

वह अल्कापुरीके समान शक्तिशालिनी सेनाओंसे सुरक्षित थी । उस पुरीके सुन्दर पाटकोंपर भवजाले हाथी घोमा पाते थे । उस पुरीके अन्तर्द्वार और बहिर्द्वार दोनों ही श्वेत कान्तिसे सुयोधित थे ॥ ४ ॥

भुजगाचरिता गुप्ता शुभा भोगयतीमिव ।
ता सविपुद्गनाकीर्णां स्थितिगणनिषेविताम् ॥ ५ ॥
चण्डमावतनिहादा यथा चाप्यमरावतीम् ।

उस नगरीकी रक्षाक लिये बड़े-बड़े सर्पोंका संवरण (आना-बाना) होता रहता है, इसलिये वह नगरीसे सुरक्षित सुन्दर भोगवती पुरीके समान जान पड़ती थी । अमरावती पुरीके समान वहाँ जाय-यक्ताके अनुसार विबलिबोसहित मेघ छाये रहते थे । मछों और नक्षत्रोंके वदश विपुल दीर्घक प्रकाशसे वह पुरी प्रकाशित थी तथा प्रचण्ड वायुकी ध्वनि वहाँ धदा होती रहती थी ॥ ५-७ ॥

शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ॥ ६ ॥
किट्टिणीजालघोषाभि पताकाभिरलङ्घिताम् ।

सानेके बने हुए निजाल परकोटेसे घिरी हुई लङ्कापुरा सुद पत्तिकाओंको सनकारसे युक्त पताकाओंद्वारा अलङ्कृत थी ॥ ६-७ ॥

आसाद्य सहसा हृष्ट प्राकारमभिषेदिषान् ॥ ७ ॥
विस्त्रयापिष्टदयः पुरीमालोक्य सतत ।

उस पुरीक समाप पहुँचकर हय और उल्लाहसे भरे हुए हनुमान्जी सहसा उल्लङ्घन उसके पङ्काटेपर चढ़ गये । वहाँ सब ओरस लङ्कापुरीका अवलोकन करके हनुमान्जी का चित्त आश्चर्यसे चकित हो उठा ॥ ७-८ ॥

जाम्बूनदमयैद्वारैर्वैद्युत्कृतयेदिकै ॥ ८ ॥
यज्ञस्कटिकमुक्ताभिमणिकुट्टिमभूपितै ।
ततश्चाडकनिर्युद्ध राजतामलपाण्डुरै ॥ ९ ॥
वैद्युत्कृतसोपानै स्फाटिकान्तरपासुभि ।
चारुसज्जवनेपितै खमिनोरपतितै शुभै ॥ १० ॥

सुवर्णके बने हुए द्वारोंसे उस नगरीकी अपूर्व घोमा हो रही था । उन सभी द्वारोंपर नीलमके चबूतरे बने हुए थे । वे सब द्वार हीरों, स्फटिकों और मोतियोंसे बड़े गये थे । मणिमया कर्णों उनकी घोमा बढा रही थी । उनका दर्जों और तपाये सुनरुद्ध बने हुए हाथी घोमा पाते थे । उन द्वारोंका ऊपरी भाग चाँदीसे निर्मित होनेके कारण स्वच्छ और श्वेत था । उनकी छिदियों नीलमकी बनी हुई थी । उन द्वारोंके भीतरी भाग स्फटिक मणिके बने हुए और धूसरे रहित थे । वे सभी द्वार रमणीय समा भवनोंसे युक्त और सुन्दर थे तथा इतने जैसे कि आकाशमें उठे हुए-से ज्ञान पड़ते थे ॥ ८-१० ॥

क्रौञ्चार्हणसमुष्टै राजहसनिषेवितै ।
तुर्याभरणनिर्घोषै सर्वत परिनादिताम् ॥ ११ ॥

वहाँ क्रौञ्च और मयूरोंके कलश गूँजते रहते थे; उन द्वारोंपर राजहस नामक पक्षी भी निवास करते थे । वहाँ भौति-भौतिके वाद्यों और आभूषणोंकी मधुर ध्वनि होती रहती थी; जिससे लङ्कापुरी सब ओरस प्रतिध्वनित हो रही थी ॥ ११ ॥

धस्वोक्तसारप्रतिमां समीक्ष्य नगरी नत ।
खमिचोत्पतिता लङ्का लङ्घय हनुमान् कपि ॥ १२ ॥

कुसेली अल्काके समान घोमा पानेवाली लङ्का नगरी त्रिभूटके शिखरपर प्रतिष्ठित होनेके कारण आकाशमें उठी हुई-सी प्रतीत होता थी । उसे देखकर कपिवर हनुमान्जी बड़ा हय हुआ ॥ १२ ॥

ता समीक्ष्य पुरीं लङ्का राक्षसाधिपते शुभाम् ।
अनुसमामुस्मिर्तां चिन्तयामास वीरवान् ॥ १३ ॥

राक्षसराजकी यह सुन्दर पुरी लङ्का सबसे उत्तम और समृद्धिवाली थी। उसे देखकर पराक्रमी हनुमान् इस प्रकार सोचने लगे—॥ १३ ॥

नेयमन्येन नगरी शक्या धर्ययितुं यत्नात् ।
रक्षिता रावणबलैश्चतानुधपाणिभिः ॥ १४ ॥

‘रावणके सैनिक हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये इस पुरीकी रक्षा करते हैं, अतः दूसरा कोई बलपूर्वक इसे अपने काबू में नहीं कर सकता ॥ १४ ॥

कुमुदाहृतयोवापि सुपेणस्य महाकपे ।
प्रसिद्धेय भवेद् भूमिर्मेघद्विद्वयोरपि ॥ १५ ॥
विचक्षतस्तन्मृजस्य हरेद्व्य कुशापवणः ।
श्रुक्षस्य कपिमुख्यस्य मम चैव गतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

‘केवल कुमुद, अह्मद, महाकपि सुपेण, मेन्द, द्विद्व, धर्मपुत्र सुमीव, वानर कुशपवा और वानरसेनाके प्रमुख वीर श्रुक्षराज जाम्बवान्की तथा मेरी भी पहुँच इस पुरीके भीतर हो सकती है’ ॥ १५ १६ ॥

समीक्ष्य च महाबाहो राघवस्य पराक्रमम् ।
लक्ष्मणस्य च विक्रांतमभवत् प्रीतिमान् कपि ॥ १७ ॥

‘किं महाबाहु श्रीराम और लक्ष्मणके पराक्रमका निवार करके कपिवर हनुमान्को वही प्रसजता हूँ ॥ १७ ॥

ता रत्नघसिनोपेता गोष्ठगारावतसिकाम् ।
यन्नागारस्तनीमृन्ना प्रमदामिष भूषिताम् ॥ १८ ॥
ता नट्टतिमिरा दीपैर्भास्वरैश्च महाप्रभैः ।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य स ददर्श महाकपि ॥ १९ ॥

महाकपि हनुमान्ने देखा, राक्षसराज रावणकी नगरी लङ्का बलभूषणोंसे विभूषित सुन्दरी युवतीके समान जान पड़ती है। रत्नमय परकोटे ही इससे बज्र हैं, गोष्ठ (गांधाल) तथा दूसरे-दूसरे मृग आभूषण हैं। परकोटोंपर लगे हुए यन्त्रोंके जो गूँह हैं, ये ही मानो इस लङ्कारूपी युवतीके स्तन हैं। यह सब प्रकारके समृद्धियोंसे सम्पन्न है। प्रकाश पूरा दीपों और मशान् महोंने यहाँका आश्चर्य नष्ट कर दिया है ॥ १८ १९ ॥

अथ सा हरिशाङ्ग प्रविशत् महाकपिम् ।
नगरीं स्वेन रूपेण ददश पवनारम्भजम् ॥ २० ॥

तदनन्तर वानरभेद महाकपि पवनकुमार हनुमान् उस पुरीमें प्रवेश करने लगे। इतनेमेंही उस नगरीकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मिने अपने स्वामाधिक रूपमें प्रकट होकर उन्हें देखा ॥ २० ॥

सा त हरिचर दृष्ट्वा लङ्का रावणपालिता ।
स्वयमेवोत्थिता तस्य विद्वत्ताननदशना ॥ २१ ॥

वानरभेद हनुमान्ने देखते ही रावणपालित लङ्का

स्वय ही उठ खड़ी हुई। उसका मुँह देखनेमें बड़ा विकट था ॥ २१ ॥

पुरस्तात् तस्य वीरस्य वायुसुनोरतिष्ठत् ।
सुखमाना महानादमघवीत् पवनात्मजम् ॥ २२ ॥

वह उन वीर पवनकुमारके सामने खड़ी हो गयी और यद्दे जोरसे गर्जना करती हुई उनसे इस प्रकार बोली—॥ २२ ॥

कस्य केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय ।
कथयस्वैह यत् तत्त्वं यावत् प्राणा धरति ते ॥ २३ ॥

‘वनचारी वानर ! तू कौन है और किस कार्यसे यहाँ आया है ? तुम्हारे प्राण जबतक बने हुए हैं, तबतक ही यहाँ आनेका जो यथार्थ रहस्य है, उस ठीक ठीक बता दो ॥ २३ ॥

न शक्य खल्वियं लङ्का मवेष्टु वानर त्वया ।
रक्षिता रावणयत्नैरभिगुता समन्तत ॥ २४ ॥

‘वानर ! रावणकी सेना सब ओरसे इस पुरीकी रक्षा करती है, अतः निश्चय ही तू इस लङ्कामें प्रवेश नहीं कर सकता’ ॥ २४ ॥

अथ तामघवीद् वीरो हनुमानप्रत स्थिताम् ।
कथयिष्यामि तत् तत्त्वं यन्मा त्व परिपृच्छसे ॥ २५ ॥
का त्व विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे ।
किमर्थं चापि मा क्रोधास्त्रिभन्त्यसि दादणे ॥ २६ ॥

तब वीरवर हनुमान् अपने सामने खड़ी हुई लङ्कासे बोले—‘कूर स्वभाववाली नारी ! तू मुझसे जो कुछ पूछ रही है, उसे मैं ठीक-ठीक बता दूँगा किंतु पहले यह तो बता, तू है कौन ? तेरी आँखें यही मयकर हैं। तू इस नगरके द्वारपर खड़ी है। क्या कारण है कि तू इस प्रकार क्रोध करके मुझे डाँट रही है ?’ ॥ २५ २६ ॥

हनुमद्वचन श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी ।
उधाच वचनं क्रुद्धा पश्य पवनात्मजम् ॥ २७ ॥

हनुमान्कीकी यह बात सुनकर इच्छाद्वारा रूप धारण करनेवाली लङ्का कुपित हो उन पवनकुमारके कठोर वाणीमें बोली—॥ २७ ॥

अह राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः ।
आज्ञाप्रतीक्षां युर्थयो रक्षामि नगरीमिमाम् ॥ २८ ॥

‘मैं महात्मना राक्षसराज रावणकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करने वाली उनकी सेविका हूँ। सुसपर आक्रमण करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है। मैं इस नगरीकी रक्षा करती हूँ ॥ २८ ॥

न शक्य मामघथाय प्रवेष्टु नगरीमिमाम् ।
अथ प्राणैः परित्यक्तः स्वपत्यसे निहतो मया ॥ २९ ॥

‘मेरी अवहेलना करके इस पुरीमें प्रवेश करना किसी

के लिये भी सम्मन नहीं है। आज मेरे हाथसे माया जाकर
तू प्राणहीन हो इस पृथ्वीपर शयन करेगा ॥ २९ ॥

अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्रवहाम् ।
सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया ॥ ३० ॥

‘वानर ! मैं स्वयं ही लङ्का नगरी हूँ, अतः सब ओरसे
इसकी रक्षा करती हूँ। यही कारण है कि मैंने तेरे प्रति
कठोर वाणीका प्रयोग किया है’ ॥ ३० ॥

लङ्कायाः वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
यत्नवान् स हरिश्चेष्टः स्थितः शूल इवापरः ॥ ३१ ॥

लङ्काकी यह बात सुनकर पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान्
उठे धीतनेक लिये यत्नशील हो दूसरे पर्वतके समान वहाँ
खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

स ता स्त्रीरूपविकृता दृष्ट्वा धानरपुङ्गवः ।
आवभाषेऽथ मेधावी सत्त्ववान् प्रवर्गपथः ॥ ३२ ॥

लङ्काको विकृतल राक्षसीके रूपमें देखकर बुद्धिमान्
धानरपिरोमणि शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने उठते इस
प्रकार कहा— ॥ ३२ ॥

द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्का साहस्रप्रकारतोऽरुणाम् ।
इत्यर्थमिह सम्प्राप्तः परं कौतूहलं हि मे ॥ ३३ ॥

‘मैं अट्टालिकाओं, परकोटों और नगरद्वारोंवहित
इस लङ्का नगरीको देखूँगा। इसी प्रयोजनके यहाँ आया हूँ।
इसे देखनेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ॥ ३३ ॥

यनान्युपयनानीह लङ्कायाः काननानि च ।
सर्वतो गृहमुत्पानि द्रष्टुमागमनं हि मे ॥ ३४ ॥

‘इस लङ्काके जो वन, उपवन, बानन और मुख्य
मुख्य भवन हैं, उन्हें देखनेके लिये ही यहाँ मेरा आगमन
हुआ है’ ॥ ३४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी ।
भूय एव पुनर्योक्य यभावे पठपाक्षरम् ॥ ३५ ॥

हनुमान्जीका यह कथन सुनकर हन्ध्यानुसार रूप धारण
करनेवाली लङ्का पुनः कठोर वाणीमें बोली— ॥ ३५ ॥

मामनिर्जित्य हुयुद्धे राक्षसेभ्यरपालिताम् ।
न शक्यं ह्यद्य ते द्रष्टुं पुरीयं यानराघमः ॥ ३६ ॥

‘खोटी बुद्धिवाला नीच वानर ! राक्षसेश्वर रावणके द्वारा
मेरी रक्षा हो रही है। तू मुझे परास्त किये बिना आज इस
पुरीको नहीं देख सकता’ ॥ ३६ ॥

ततः स हरिशादूलस्तामुपाच निशाचरीम् ।
दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनरास्ये यथागतम् ॥ ३७ ॥

तब उस वानरपिरोमणिने उस निशाचरीसे कहा—
‘भद्रे ! इस पुरीको देखकर मैं फिर आये आया हूँ, उसी
तरह सैत जाऊँगा’ ॥ ३७ ॥

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयकरम् ।
खलेन चानरश्चेष्टः ताडयामास वेगिता ॥ ३८ ॥

यह सुनकर लङ्काने बड़ी भयंकर गजना करके वानरश्रेष्ठ
हनुमान्को बड़े जोरसे एक थप्पड़ मारा ॥ ३८ ॥

ततः स हरिशादूलो लङ्कायाः ताडितो भृशम् ।
ननादः सुमहानादं धीर्यवान् मारुतात्मजः ॥ ३९ ॥

लङ्काद्वारा इस प्रकार जोरसे पीटे जानेपर उस परम
पराक्रमी पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने बड़े जोरसे सिंहाद
किया ॥ ३९ ॥

ततः सर्वतयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुली ।
मुष्टिनाभिजयानेना हनुमान् क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥

फिर उन्होंने अपने बायें हाथकी अङ्गुलियोंको मोड़कर
मुठी बाँध ली और अत्यन्त क्रुपित हो उस लङ्काको एक
मुका जमा दिया ॥ ४० ॥

स्त्री चेति मयमानेन नानिम्रोधं स्वयं वृत्तः ।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी ।
पपात सहस्रा भूमौ विकृताननदर्शना ॥ ४१ ॥

उठे स्त्री समझकर हनुमान्जीने स्वयं ही अधिक क्रोध
नहीं किया। किंतु उस लज्जु प्रहारेसे ही उस निशाचरीके सारे
अङ्ग व्याकुल हो गये। वह सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। उस
समय उसका मुख बड़ा विकारल दिखायी देता था ॥ ४१ ॥

ततस्तु हनुमान् वीरस्ता दृष्ट्वा विनिपातिताम् ।
कृपाचकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम् ॥ ४२ ॥

अपने ही द्वारा गिरायी गयी उस लङ्काकी ओर
देखकर और उसे स्त्री समझकर तेजस्वी वीर हनुमान्को
उसपर दया आ गयी। उन्होंने उसपर बड़ी कृपा की ॥

ततो वै भृशमुद्दिग्ना लङ्का सा गद्गदाक्षरम् ।
उवाचागर्वितः वाक्यं हनुमतः प्रवहाम् ॥ ४३ ॥

उपर अत्यन्त उद्दिग्द हुई लङ्का उस वानरवीर
हनुमान्से अभिमानशून्य गद्गदवाणीमें इस प्रकार बोली— ॥

प्रसीद सुमहायाहो आयमस्य हरिस्तत्तमः ।
समये सौम्यं तिष्ठन्ति सत्त्वयतो महाबला ॥ ४४ ॥

‘महायाहो ! प्रसन्न होइये। कपिश्रेष्ठ ! मेरी रक्षा
कीजिये। सौम्य ! महाबली सत्त्वगुणशाली वीर पुरुष शास्त्रकी
मयादापर स्थिर रहते हैं (शास्त्रमें स्त्रीको अवश्य बताया
है, इसलिये आप मेरे प्राण न लीजिये) ॥ ४४ ॥

अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवहाम् ।
निर्जिताहं त्वया वीरं प्रिक्रमेण महाबलः ॥ ४५ ॥

‘महाबल ! वीर ! वानर ! मैं स्वयं लङ्कापुरी ही हूँ, आपने
अपने पराक्रमसे मुझे परास्त कर दिया है ॥ ४५ ॥

इदं च तथ्यं शृणु मे ह्युपन्त्या वै हरीश्वरः ।

स्वयं स्वयम्भुजा वत्त वरदानं यथा मम ॥ ४६ ॥

‘वानरेश्वर ! मैं आपके एक सन्नी शाय कहती हूँ । आप हवे सुनिये । साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीने मुझे जैवा वरदान दिया था; यह बता रही हूँ ॥ ४६ ॥

यदा त्वा वानर कश्चिद् विप्रमाद् वशमानयेत् ।

तदा त्वया हि विज्ञेय रक्षसा भयमागतम् ॥ ४७ ॥

‘उन्होंने कहा था— जर कहीं वानर तुझे अपने पराक्रमसे वशमें कर ले, तब तुझे यह समझ लेना चाहिये कि अब राक्षसोंपर बड़ा भारी डर आ पहुँचा है’ ॥ ४७ ॥

स हि मे समयः सौम्य प्राप्नोऽद्य तव वर्शनात् ।

स्वयम्भुविहितं सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः ॥ ४८ ॥

‘सौम्य ! आपका दर्शन पाकर आज मेरे सामने बड़ी घड़ी आ गयी है । ब्रह्माजीने जिस सत्यका निश्चय कर दिया है, उसमें कोई उलट फेर नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

सीतानिमिषं राक्षस्तु रावणस्य दुरात्मनः ।

रक्षसा चैव सर्वेषां विनाशः समुपागतः ॥ ४९ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

इनुमान्जीका लङ्कापुरी एवं रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश

स निर्जित्यपुरीं लङ्कां श्रेष्ठां तामाकल्पिणीम् ।

विश्रमेण महातेजा हनुमान् कपिसत्तम ॥ १ ॥

अद्वारेण महावीर्यं प्राकारमवपुप्लुवे ।

निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ २ ॥

इच्छानुसार रूप चारण करनेवाली श्रेष्ठ राक्षसी लङ्कापुरी को अपने पराक्रमसे परास्त करके महातेजस्वी महावीरी महान् मत्स्यवाली बानरधियोमणि कपिकुञ्जर इनुमान् बिना दरवाजे के ही रातमें चहारदीवारी पोंद गये और लङ्काने भीतर घुस गये ॥ १ २ ॥

प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितकरः ।

चक्रेऽथ पादं सत्त्वं च दम्पणां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥

कपिराज सुमीवका हित करनेवाले इनुमान्जीने इस तरह लङ्कापुरीमें प्रवेश करके मानो रात्रुओंके सिपर अपना भार्यों पैर रख दिया ॥ ३ ॥

प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशाया माकनात्मजः ।

स महापद्ममास्थाय मुक्चपुष्पं निराजितम् ॥ ४ ॥

ततस्तु ता पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः ।

सत्त्वगुणसे सम्पन्न पद्मपुत्र इनुमान् उस रातमें परकोटेके भीतर प्रवेश करके बिछोरे गये पूज्यते सुशोभित राजमार्गका आग्रह दे देव रमणीय लङ्कापुरीका और चले ॥ ४ ॥

‘अब सीताके कारण दुरात्मा राजा रावण तथा समस्त राक्षसोंके विनाशका समय आ पहुँचा है ॥ ४९ ॥

तत् प्रविश्य हरिद्येष्टं पुरीं रावणपालिताम् ।

विषास्व सर्वकायाणि यानि यानीह चाच्छसि ॥ ५० ॥

‘कपिश्रेष्ठ ! अतः आप इस रावणपालित पुरीमें प्रवेश कीजिये और यहाँ जो-जो कार्य करना चाहते हों, उन सबको पूर्ण कर लीजिये ॥ ५० ॥

प्रविश्य शोषोपहतां हरीश्वर

पुरीं शुभा राक्षसमुख्यपालिताम् ।

यदृच्छया त्वं जनकामजा सर्तौ

विमार्गं सर्वत्र गतो यथाशुखम् ॥ ५१ ॥

‘वानरेश्वर ! राक्षसरज रावणके द्वारा पालित यह सुन्दर पुरी अभिशापसे नष्टप्राय हो चुकी है । अतः इसमें प्रवेश करके आप स्वेच्छानुसार शुखपूर्वक सर्वत्र घसी साध्वी जनकनन्दिनी सीताकी खोज कीजिये’ ॥ ५१ ॥

हसितोत्कृष्टनिर्देस्तूर्यघोषपुरस्कृतैः ॥ ५ ॥

वज्राकुशानिकाशैश्च वज्राजालनिर्मपितैः ।

गृहमेघे पुरी रम्या वभासे द्यौरिवान्जुह्वैः ॥ ६ ॥

जैसे आकाश द्रवत बादलोंसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार वह रमणीय पुरी अपने द्रवत मेघवदश गहोंसे उत्तम शोभा पा रही थी । वे यह अद्भुतदृश्यनित उत्कृष्ट शब्दों तथा वाद्यघोषोंसे मुखरित थे । उनमें वज्रों तथा अकुशोंके चित्र अङ्कित थे और शीरोक बने हुए फ़ोले उनकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ५ ६ ॥

प्रजग्वालं तदा लङ्कां रक्षोगणगृहैः शुभैः ।

सिताभ्रसदृशीदृष्यैः पद्मसस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥

वधमानगृहेश्चापि सद्यतं सुनिर्मपितैः ।

उस समय लङ्का “वेत बादलोंक समान सुन्दर एवं विचित्र राक्षस-गहोंसे प्रकाशित हो रही थी । उन गहोंमेंसे कीद ती कमलके आकारमें बने हुए थे । काद स्वस्तिक के चिह्न या आकारसे युक्त थे और किर्द्रीका निर्माण वधमानगृहक गहोंके रूपमें हुआ था । वे सभी सब ओरसे सजाये गये थे ॥ ७ ॥

१ २. माण्डविकिरिणी छविमें गृहोंके विभिन्न सम्पत्तियों (जाटियों) का वर्णन किया गया है । कहीं संस्कारोंके

ता चित्रमाह्व्याभरणा कपिराजहितकर ॥ ८ ॥
राघयायै चरध्यामान् ददर्श च ननन्द च ।

वानरराज सुग्रीवका हित करनेवाले भीमान् हनुमान्
भीरुनायकी की कायविधिके लिये विचित्र पुष्पमय
आभरणोंसे अलङ्कृत लङ्कामें विचरने लगे । उन्होंने उस
पुरीको अच्छी तरह देखा और देखकर प्रसन्नताका अनुभव
किया ॥ ८ ॥

भयनाद् भयन गच्छन् ददर्श कपिकुञ्जर ॥ ९ ॥
निविधावृत्तिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ।
शुभाच्चरित् गीतं त्रिस्थानस्वरभूयितम् ॥ १० ॥

उन कपिश्रेष्ठने जहाँ-तहाँ एक घरमें दूसरे घरपर जाते
हुए विविध आकार प्रकारके भवन देखे तथा हृदय, कण्ठ
और मूया—इन तीन स्थानोंसे निकलनेवाले मन्द, मध्यम
और उच्च स्वरसे निर्भूषित मनोहर गीत सुने ॥ ९ १० ॥

स्त्रीणा मदनविद्वानां विनि चाप्सरसामपि ।
शुभाच्च काञ्चीनिनद नूपुराणां च नि स्वनम् ॥ ११ ॥

उन्होंने स्त्रियों अप्सराओंके समान सुन्दरी तथा काम
वेदनासे पीड़ित कामिनीयोंकी करवनी और पायजवोंकी
मनकार सुनी ॥ ११ ॥

सोपाननिनदाद्यापि भवनेषु महात्मनाम् ।
आस्फोटितनिनादाश्च क्ष्येडिताश्च ततस्ततः ॥ १२ ॥

इसी तरह जहाँ-तहाँ महामनस्वी राजाओंके घरोंमें
सीढियोंपर चढ़ते समय स्त्रियोंकी काञ्ची और मञ्जीरी
मधुरस्वनि तथा पुरोंके ताल ठोकने और गर्जनेकी भी आवाजें
उड़ें सुनायी दीं ॥ १२ ॥

शुभाच्च जपता तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरताश्चैव यातुधानान् ददर्श सः ॥ १३ ॥

अनुष्ठार उनके ज्ञान लिये भये हैं । जहाँ स्तुतिकप्रस्थान और
वर्णनमन्त्रक गृहका उल्लेख हुआ है इनके लक्षणोंको स्पष्ट
करनेवाले बचनोंको यहाँ उद्धृत किया जाता है—

चतुःशतं चतुर्नरं सर्वभोगप्रसन्नम् ।
पश्चिमद्वारारहितं सन्धावर्जं हृष्यन्तु तन् ॥
दक्षिणद्वारारहितं बध्मानं धनमयम् ।
प्राग्द्वारारहितं खलिकारूपं पुनश्चनयन् ॥

चार शाखाओंसे युक्त गृहका जिसके प्रायेण दिशाओं एक
एक करके चार द्वार हो सर्वशाम्द' कहते हैं । जिसमें तीन ही
द्वार हो, पश्चिम दिशाकी ओर द्वार न हो समका नाम सन्धावर्ज
है । जिसमें दक्षिणके सिवा अन्य तीन दिशाओंमें द्वार हो, उसे
वर्धमान गृह कहते हैं । वह धन देनेवाला होता है तथा जिसमें
केवल पूर्व दिशाकी ओर द्वार न हो, उस गृहका नाम खलिक
है । वह पुन और धन देनेवाला होता है ।

राजशौके घरोंमें बहुतोंको तो उन्होंने वहाँ मात्र जपते
हुए सुना और किन्ने ही निगाचरोंको स्वाध्यायमें तत्पर
देखा ॥ १३ ॥

रावणस्तवसयुक्तान् गर्जतो राक्षसानपि ।
राजमार्गं समावृत्त्य स्थित रक्षोगण महत् ॥ १४ ॥

वह राक्षसोंको उन्होंने रावणकी स्तुतिसे साथ गर्जना
करते और निगाचरोंकी एक बड़ी भीड़को राजमार्ग रोककर
छड़ी हुई देखा ॥ १४ ॥

ददर्श मध्यमे गुल्मे रावसस्य चरान् बहून् ।
दीक्षिताल्लटिलान् मुण्डान् गोजिनाम्पर्याससः ॥ १५ ॥
दर्ममुग्रिप्रहरणानग्निकुण्डायुधास्तथा ।

कूटमुद्गरपाणौश्च दण्डायुधधरानपि ॥ १६ ॥

नगरकमध्यभागमें उन्हें रावणके बहुत-से गुप्तचर दिखायी
दिये । उनमें कोई योगकी दीक्षा लिये हुए, कोई बड़ा
बटाये, कोई मूढ़ मुँढ़ाये, कोई गोचर्म या मृगचर्म धारण
किये और कोई नग धड़ग थे । कोई मुडीभर कुशोंकी ही
अग्निरूपसे धारण किये हुए थे । किहीका अग्निकुण्ड ही
आयुध था । किन्हींके हाथमें कूट या मुद्गर था । कोई डढेको
ही हथियाररूपमें लिये हुए थे ॥ १५ १६ ॥

एकाक्षानेकवर्णाश्च लज्जोदरपयोधरान् ।
कपलान् भुग्नवक्त्राश्च विकटान् धामनास्तथा ॥ १७ ॥

किन्हींके एक ही आँख थी तो किन्हींके रूप बहुतो
थे । कितनोंके पेट और मन बहुत बड़े थे । कोई बड़े
विकराल थे । किन्हींके मुँह उड़े मेढ़े थे । कोई विकट थे
तो कोई बौने ॥ १७ ॥

धन्विन खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् ।
परिधोत्तमहस्ताश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥ १८ ॥

किन्हींके पाठ धनुष, खड्ग, शतघ्नी और मूसलरूप
आयुध थे । किन्हींके हाथोंमें उत्तम परिध विद्यमान थे
और कोई विचित्र कवचोंसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

नातिस्थूलान् मानिहृशान् नातिदीघातिह्रस्वान् ।
नातिगौरान् नातिहृष्णान् नातिज्ज्वालमानान् ॥ १९ ॥

कुल मित्राचर न तो अधिक मोटे थे, न अधिक दुबले,
न बहुत लम्बे थे न अधिक छोटे, न बहुत मोरे थे न
अधिक काले तथा न अधिक कुबड़ थे न विशेष बौने
ही ॥ १९ ॥

विरूपान् बहुरूपाश्च सुरूपाश्च सुवचसः ।
अजिनपताकिनश्चैव ददर्श विविचायुधान् ॥ २० ॥

कोई बड़े कुरूप थे, कोई अनेक प्रकारके रूप धारण
कर सकते थे, किन्हींका रूप सुन्दर था कोई बड़े तेजस्वी
थे तथा किन्हींके पाठ ध्वजा, पताका और अनेक प्रकारके
अश्व शस्त्र थे ॥ २० ॥

शचिबुक्षायुधाश्चैव पट्टिदाशनिधारिणः ।

क्षेपणीपाशहस्ताश्च ददर्श स महाकपि ॥ २१ ॥

कोई शक्ति और कृतरूप आयुध धारण किये देखे जाते थे तथा किन्हींके पास पट्टिदा, वज्र, गुलेल और पाश थे । महाकपि हनुमान् उन सबको देखा ॥ २१ ॥

सग्विषणस्त्वनुलिप्ताश्च वराभरणभूषितान् ।

नानावेषसमायुक्तान् यथाश्वैरघोरान् वहन् ॥ २२ ॥

किन्हींके गलेमें फूलोंके हार थे और छलट आदि वज्र चन्दनसे चर्चित थे । काद ओष्ठ आभूषणोंसे सजे हुए थे । कितने ही नाना प्रकारके वेषभूषासे सज्ज थे और बहुतेरे स्वेच्छानुसार विचरनेवाले जान पड़ते थे ॥ २२ ॥

क्षीक्षणशूलधराश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् ।

शतसाहस्रमण्यप्रसारह मध्यम कपि ॥ २३ ॥

रक्षोऽधिपतिनिर्दिष्ट ददर्शान्त पुराप्रतः ।

कितने ही राक्षस तीक्ष्ण शूल तथा वज्र लिये हुए थे । वे सबके-सब महान् बलसे सम्पन्न थे । इनके सिवा कपिवर हनुमान्ने एक लाल रक्षक सेनाको राक्षसराज रावणकी आज्ञासे वाचबान होकर नगरके मध्यभागकी रक्षामें लग्न देखा । व सारे सैनिक रावणके अन्त पुरके अग्रभागमें स्थित थे ॥ २३ ॥

स तदा तद् गृह दृष्ट्वा महाहादकतोरणम् ॥ २४ ॥

राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम् ।

पुण्डरीकाक्षतत्सामिः परिखाभि समावृतम् ॥ २५ ॥

प्राकारावृतमत्यन्त ददर्श स महाकपि ।

त्रिविष्टपनिभ दिव्य दिव्यनादविनादितम् ॥ २६ ॥

राक्षक सेनाके लिये जो विशाल भवन बना था, उसका पाटक बहुमूल्य सुवर्णद्वारा निर्मित हुआ था । उस आरक्षणभवनको देखकर महाकपि हनुमान्जीने राक्षसराज रावणके सुप्रसिद्ध राक्षमहलपर दृष्टिपात किया, जो त्रिकूट पर्वतके एक शिखरपर प्रतिष्ठित था । वह सब ओरसे द्रव्य

हरपार्श्वे भीमद्वामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीरामकीनिर्मित आर्यारामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

हनुमान्जीका रावणके अन्त पुरमें घर घूमें सीताको हूँदता और उन्हें न दखकर दुखी होना

तत स मध्यगतमनुभवत्

ज्योत्स्नायितान् मुहुर्मुखमत्तम् ।

ददर्श भीमान् भुवि भानुमन्त

गोष्ठे शृप मध्यामि भ्रमन्तम् ॥ १ ॥

तत्पश्चात् मुद्विमान् हनुमान्जीने देखा, जिस प्रकार गांशाश्वके भीतर गोभीके हाँडेमें मत्तवाला छोंड़ विचरता है

कमनोंद्वारा अलङ्कृत खाहयोंसे घिरा हुआ था । उसके चारों ओर बहुत ऊँचा परकाटा था, जिसने उस राजभवनको घेर रक्खा था । वह दिव्य भवन स्वर्गलोक समान मनोहर था और वहाँ संगीत आदिने दिव्य शब्द गूँज रहे थे ॥ २४-२६ ॥

याजिहेपितसमुष्ट नादित भूपणैस्तथा ।

रथैषानैविमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः ॥ २७ ॥

वारणैश्च चतुर्दन्तैः प्रयेताभनिचयोपमैः ।

भूपिणै रजिहरा मसैश्च मृगपक्षिभिः ॥ २८ ॥

घोड़ोंकी दिनदिनादृष्टकी आवाज भी वहाँ सब ओर फैली हुई थी । आभूषणोंकी कनकन भी कानोंमें पड़ती रहती थी । नाना प्रकारके रथ, पालकी आदि सवारों, विमान, सुन्दर हाथी, घोड़े, दन्त दादलोंकी घटाके समान दिखायी देनेवाले चार दोंतोंसे युक्त सज्जे-सज्जये मत्तवाले हाथी तथा मदमत्त पशु पक्षियोंके सचरणने उस राक्षमहलका द्वार बड़ा सुन्दर दिखायी देता था ॥ २७ २८ ॥

रक्षित सुमहावीर्यैर्गुप्तधानै सहस्रशः ।

राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविषेण गृह कपि ॥ २९ ॥

सहस्रों महापराक्रमी निद्याकर राक्षसराजके उस महलकी रक्षा करते थे । उस गुप्त भवनमें भी कपिवर हनुमान्जी जा पहुँचे ॥ २९ ॥

स हेमआम्बूनक्षत्रवाल

महाहंसुत्तममणिभूषितात्तम् ।

परार्थ्यकालागुरुचन्दनाहं

स रावणान्त पुरमाविषेण ॥ ३० ॥

तदनन्तर जिसके चारों ओर सुवर्ण एव आम्बूनक्षत्र परकोटा था, जिसका ऊपरी भाग बहुमूल्य मोती और मणियोंसे विभूषित था तथा अत्यन्त उच्चम काले अगुरु एव चन्दनसे जिसकी अर्चना की जाती थी, पवणके उस अन्त पुरमें हनुमान्जीने प्रवेश किया ॥ १ ॥

हरपार्श्वे भीमद्वामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीरामकीनिर्मित आर्यारामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

हनुमान्जीका रावणके अन्त पुरमें घर घूमें सीताको हूँदता और उन्हें न दखकर दुखी होना

तत स मध्यगतमनुभवत्

ज्योत्स्नायितान् मुहुर्मुखमत्तम् ।

ददर्श भीमान् भुवि भानुमन्त

गोष्ठे शृप मध्यामि भ्रमन्तम् ॥ १ ॥

तत्पश्चात् मुद्विमान् हनुमान्जीने देखा, जिस प्रकार गांशाश्वके भीतर गोभीके हाँडेमें मत्तवाला छोंड़ विचरता है

उसी प्रकार पृथ्वीके ऊपर बारबार अपनी चोंदनीका चोंदोना तानने हुए चन्दनदेय आकाशके मध्यभागमें तारिकाओंके बीच विचरण कर रहे हैं ॥ १ ॥

लोकस्य पापानि विनाशायत

महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।

मृतानि सवाणि विराजयत

इदंश शीतानुमयाभियान्तम् ॥ २ ॥

वे शीतर्षम चन्द्रमा अग्नृक् पापतापका नाश कर रहे हैं, महासागरमें न्धार उठा रहे हैं, समस्त प्राणियोंको नयी दीप्ति एवं प्रकाश दे रहे हैं और आकाशमें क्रमश ऊपरकी ओर उठ रहे हैं ॥ २ ॥

या भाति लक्ष्मीमुखि मन्दरस्था

यथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।

तथैव तोषेषु च पुष्करस्था

रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥ ३ ॥

भूतलपर मन्दराचलमें, सन्ध्याके समय महासागरमें और जलके भीतर कमलोंमें जो लक्ष्मी विस प्रकार सुशोभित होती हैं, वे ही उसी प्रकार मनोहर चन्द्रमामें शोभा पा रही थी ॥ ३ ॥

इतो यथा राजतपञ्जरस्थ

सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थ ।

वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ

इव द्रोऽपि यन्नाज तथाग्बरस्थः ॥ ४ ॥

जैसे चाँदीके पित्रमें हथ, मन्दराचलकी इन्द्राग्ने सिंह तथा मन्दच शायकी पीठपर बार पुरुष शोभा पाते हैं, उसी प्रकार आकाशमें चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे ॥ ४ ॥

स्थित ककुप्पानिब तीक्ष्णशृङ्गो

महाचल इवेत इतोर्ध्वशृङ्ग ।

हृत्पीथ जाम्बूनव्यञ्जशृङ्गो

निभाति चन्द्र परिपूर्णशृङ्ग ॥ ५ ॥

जैसे तीक्ष्ण शींगवाला बैठ खड़ा हो, जैसे ऊपरको उठे शिखरवाला महान् पर्वत शिखर (हिमालय) शोभा पाता हो और जैसे मुक्कबद्धित दाँतोंसे युक्त गजराज सुशोभित होता हो, उसी प्रकार शिखर शृङ्गरूपी चिह्नसे युक्त परिपूर्ण चन्द्रमा छवि पा रहे थे ॥ ५ ॥

चित्रप्रतीताम्बुतुषारपङ्क्तौ

महाप्रहाराहविनष्टपङ्क्तौ ।

प्रकाशालक्ष्म्याश्रयनिमलाङ्गौ

रराज चन्द्रो भगवांश्चाशङ्क ॥ ६ ॥

चित्रका शीतल अल और हिमरूपी पङ्क्तौ ससर्मा दोष नष्ट हो गया है अर्थात् जो इनके सङ्गमें बहुत दूर है, स्य किरणोंको ग्रहण करनेक कारण जिन्होंने अपने आचकार रूपी पङ्क्तौ भी नष्ट कर दिया है तथा प्रकाशरूप लक्ष्मी का आश्रयमान होनेके कारण चित्रकी कालिमा भी निमल प्रतीत होती है, वे भगवान् राघवाश्रय चन्द्रदेव आकाशमें प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६ ॥

शिलातल प्राप्य यथा मृगेन्द्रो

महारण प्राप्य यथा गजेन्द्र ।

राज्य समासाद्य यथा नेत्रेन्द्र

स्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्र ॥ ७ ॥

जैसे गुफाके बाहर शिलातलपर बैठा हुआ मृगराज (सिंह) शोभा पाता है, जैसे विशाल वनमें पहुँचकर गजराज सुशोभित होता है तथा जैसे राज्य पाकर राजा अधिक शोभासे सम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार निर्मल प्रकाशसे युक्त हृकर चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥

प्रकाशश्च द्रोदयनष्टदोष

प्रबुद्धरश्मि पिशिताशदोष ।

रामाभिरामेरितचित्तदोष

स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रदोष ॥ ८ ॥

प्रकाशयुक्त चन्द्रमाके उदयसे बिसका अशुभकारणी दोष दूर हो गया है, बिहमें राश्रुतोंके जीवहिता और मासमयणरूपी दोष बढ गये हैं तथा रमणियोंके रमण विषयक चित्तदोष (प्रणय-कलह) निवृत्त हो गये हैं, वह पूजनीय प्रदोषकाल स्वर्गसदृश सुलका प्रकाश करने लगा ॥ ८ ॥

तत्रीस्वरा कर्णसुखा प्रवृत्ता

स्वपतिनार्य पतिभिः सुवृत्ता ।

नक्षत्रराश्वपि तथा प्रवृत्ता

विहृतमत्यद्भुतरौद्रवृत्ता ॥ ९ ॥

वणाके भवनसुखद शब्द शङ्कत हो रहे थे, सदाचारिणी स्त्रियों पतियोंके साथ खे रही थी तथा अत्यन्त अद्भुत और भयकर शीघ्र त्वमात्रासे निशाचर निशाप कालमें विहार कर रहे थे ॥ ९ ॥

मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि

रयाभ्यभङ्गासनसङ्कुलानि ।

वीरधिया चापि समाकुलानि

दर्शनीधीमान् स कपि कुलानि ॥ १० ॥

मुद्रिमान् यानर इतुमान्ने वशी बहुवृत्ते घर देख ।
किन्हींमें ऐश्वर्य मन्दसे मत्त निशाचर निशाप करते थे,
किन्हींमें मदिरापानसे मत्तवाल राश्रुत भर हुए थे ।
कितने ही वीर राघव, धेड़ें आदि चाहनों और मद्राशनों
सम्पन्न थे तथा कितने ही वीरलक्ष्मीसे व्याप्त दिव्यादी
देते थे । वे सभी गृह एकदूषणसे मिल हुए थे ॥ १० ॥

परस्पर चाधिकमाशिक्षपति

मुनाद्यच्च पीतागधिक्षिपन्ति ।

मत्तप्रलापानधिक्षिपन्ति

मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ॥ ११ ॥

राश्रुतलोग आपसमें एक-दूसरेपर अधिक आश्रुत करते थे । अपनी मटी-मोटी मुखाओंको या हिलाते और

चलते थे । मतवालोंकी-सी बहकी-बहकी बातें करते थे और मंदिरासे उमत्त होकर परस्पर ऋद्ध वचन बोलते थे ॥ ११ ॥

रक्षासि वध्वासि च विक्षिपन्ति

गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति ।

रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति

ददानि चापानि च विक्षिपन्ति ॥ १२ ॥

इतना ही नहीं, वे मतवाले राक्षस अपनी छाती भी पीटते थे । अपने हाथ आदि अङ्गोंको अपनी प्यारी पत्नियोंपर रख देते थे । सुन्दर रूपवाले चित्रोंका निर्माण करते थे और अपने सुदृढ़ धनुषोंको कानतक खींचा करते थे ॥ १२ ॥

ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्य

स्तथापरास्तत्र पुन स्वपन्त्य ।

सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्य

कुन्दाः पराश्चापि विनिम्बसन्त्यः ॥ १३ ॥

इनुमान्जीने यह भी देखा कि नाथिकाएँ अपने अङ्गोंमें खन्दन आदिका अनुलेपन करती हैं । दूसरी बही होती हैं । तीसरी सुन्दर रूप और मनोहर मुखवाली छलनाएँ हैं वही हैं तथा अन्य बनिताएँ प्रणय-कलहसे कुपित हो लक्ष्मी सोंछें खाँच रही हैं ॥ १३ ॥

महागजैश्चापि तथा नदद्भि

सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भि ।

रराज वीरैश्च विविग्धसद्भि

हंसा भुजगैरपि नि श्वसद्भि ॥ १४ ॥

चित्राङ्गते हुए महान गजराजों, अत्यन्त सम्मानित श्रेष्ठ वभासदों तथा लक्ष्मी सोंछें छोड़नेवाले वीरोंके कारण यह लङ्कापुरी ऊँचकारते हुए सर्पोंसे युक्त सरोवरोंके समान शोभा पा रही थी ॥ १४ ॥

बुद्धिप्रधानान् रुचिराभिधानान्

सभृद्धानाञ्जगत प्रधानान् ।

नानाविधानान् रुचिराभिधानान्

ददश तस्या पुरि यातुधानान् ॥ १५ ॥

इनुमान्जीने उस पुरामें बहुत से उत्कृष्ट बुद्धिवाले, सुन्दर बोलनेवाले, सम्यक् भद्रा रखनेवाले, अनेक प्रकारके रूप रगवाले और मनोहर नाम धारण करनेवाले विरल विख्यात राक्षस देख ॥ १५ ॥

ननन्द दृष्ट्वा स च तान् सुरूपान्

नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।

विद्योतमानान् स च तान् सुरूपान्

ददश काश्चिच्च पुनर्विरूपान् ॥ १६ ॥

वे सुन्दर रूपवाले, नाना प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न, अपने गुणोंक अनुरूप स्वरूप धारण करनेवाले और तेजस्वी थे ।

उन्हें देखकर इनुमान्जी बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने बहुतरे राक्षसोंको सुन्दर रूपसे सम्पन्न देखा और कोई-कोई उन्हें बड़े क्रुप दिखायी दिये ॥ १६ ॥

ततो वपर्हा सुविशुद्धभावा

स्तेषा स्त्रियस्तत्र मद्धानुभावा ।

प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा

ददर्श तारा इव सुखभावा ॥ १७ ॥

तदनन्तर वहाँ उन्होंने सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करनेके योग्य सुन्दरी राक्षस-रमणियोंको देखा, बिनका भाव अत्यन्त विशुद्ध था । वे बड़ी प्रभावशालिनी थीं । उनका मन प्रियतममें तथा मधुपानमें आसक्त था । वे तारिकाओंकी भाँति कान्तिमयी और सुन्दर स्वभाववाली थीं ॥ १७ ॥

स्त्रियो ज्वलन्तीत्यपयोपगूढा

निशीथकाले रमणोपगूढाः ।

ददर्श काश्चित् प्रमदोपगूढा

यथा विदग्धा विद्वगोपगूढाः ॥ १८ ॥

इनुमान्जीकी दृष्टिमें कुछ ऐसी स्त्रियों भी आयीं, जो अपने रूप-सौन्दर्यसे प्रकाशित हो रही थीं । वे बड़ी लजीली थीं और आधी रातके समय अपने प्रियतमके आलिङ्गन पाशमें इस प्रकार बँधी हुई थीं जैसे पक्षिणी पक्षीक द्वारा आलिङ्गित होती है । वे सब के-सब आनन्दमें मग्न थीं ॥ १८ ॥

अन्या पुनर्हर्म्यतलोपविष्टा

स्तत्र प्रियाङ्गेषु सुखोपविष्टाः ।

भर्तु परा धर्मपरा निविष्टा

ददश धीमान् मदनोपविष्टाः ॥ १९ ॥

दूसरी बहुत सी स्त्रियाँ महलोंकी छतोंपर बैठी थीं । वे पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली, धर्मपरायणा, विवाहिता और कामभावनासे भावित थीं । इनुमान्जीने उन सबको अपने प्रियतमके अङ्गमें सुललूक बैठी देखा ॥ १९ ॥

अप्रावृता काञ्चनराजिवणा

काश्चित्पराध्यास्तपनीयवणा ।

पुनश्च काश्चित्छदालक्ष्मणयोः

कातप्रहोणा रुचिराङ्गवर्णा ॥ २० ॥

कितनी ही कामिनियाँ श्रवण रेखाके समान कान्तिमयी दिखायी देती थीं । उन्होंने अपनी ओदनी उतार दी थी । कितनी ही उत्तम बनिताएँ तथापे हुए श्रवणके समान रगवाली थीं तथा कितनी ही पतिवियोगिनी बालाएँ चन्द्रमाके समान श्वेत वक्त्रकी दिखायी देती थीं । उनकी अङ्गकान्ति बड़ी ही सुन्दर थी ॥ २० ॥

तत प्रियान् प्राप्य मनोऽभिरामान्
सुप्रोतियुक्ता सुमनोऽभिरामान् ।
गृहेषु हृष्टा परमाभिरामा
हरिषवीर स ददर्श रामा ॥ २१ ॥
तदनन्तर वानरोंके प्रमुख वीर हनुमान्जीने विभिन्न
एहोंने ऐसी परम सुन्दरी रमणियोंका अखिलोक्त किया, जो
मनोभिराम प्रियतमका उपयोग पाकर अत्यन्त प्रचन्न हो रही
थीं । फूलोंके हारसे विभूषित होनेके कारण उनकी रमणीयता
और भी बढ़ गयी थी और वे सब की-सब हृष्टसे उत्पुल्ल
दिखायी देती थीं ॥ २१ ॥

यद्भ्रमप्रकाशाश्च दि वक्त्रमाला
वक्त्राः सुपद्माश्च सुत्रमालाः ।
विभूषणाना च ददर्श मालाः
शतद्वह्नामिव चारुमाला ॥ २२ ॥
उन्होंने चन्द्रमने समान प्रकाशमान मुखोंकी पत्तियों,
सुन्दर पलकोंगले तिरछे नेत्रोंकी पत्तियों और चमचमाती
हुई बिलुल्लेखाओंके समान आभूषणोंकी भी मनोहर
पत्तियों देखीं ॥ २२ ॥

न त्वेव सीता परमाभिजाता
पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम् ।
लता प्रकुलामिव साधुजाता
ददश वर्ग्य मनसाभिजाताम् ॥ २३ ॥
किंतु जो परमात्माके मानसिक सकलरूपसे धर्ममार्गपर
सिर रहनेवाले राजकुलमें प्रकट हुई थीं, जिनका प्रादुर्भाव
परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाला है, जो परम सुन्दर रूपमें
उत्पन्न हुई प्रकुलल लताके समान शोभा पाती थीं, उन
कृपाज्ञी सीताको उन्होंने वहाँ कहीं नहीं देखा था ॥ २३ ॥

सनतने पार्त्तनि समिष्टिष्टा
रामेश्वर्या ता मदनाभिविषाम् ।
भर्तुर्मन धीमदनुमयिष्टा
स्त्रीम्य पराम्यश्च सदा विशिष्टाम् ॥ २४ ॥

इत्यादि श्रीमद्रामायणे बाबमीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे षष्ठम सर्ग ॥ ५ ॥

इस प्रकार धीवत्तमोद्भिनिर्मित आपरामायण आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग.

हनुमान्जीका रावण तथा अन्यान्य राक्षसोंके घरोंमें सीताजीकी खोज करना

स निकाम विमानेषु विचरन् कामरूपधृक् ।
विचचार कपिलेन्द्रा लाघवेन समचितः ॥ १ ॥
निर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कपिवर हनुमान्
जी बड़ी शीघ्रताके साथ लङ्काके सतमहले मकानोंमें यथेष्ट
विचरने लगे ॥ १ ॥

उष्णादिता सानुसृताक्षकण्ठी
पुरा वराहोत्तमनिष्ककण्ठीम् ।
सुजातपद्मामभिरककण्ठी
वने प्रनुत्तामिव नीलकण्ठीम् ॥ २५ ॥
अव्यक्तरेष्तामिव चन्द्रलेखा
पासुपदिग्धामिव हेमरेष्ताम् ।
क्षतप्रकुटामिव घर्णरेखा
वायुप्रभुननामिव मेघरेष्ताम् ॥ २६ ॥
सीतामपश्य मनुजेश्वरस्य
रामस्य पत्नीं वदता वरस्य ।
यभूष दु योपहृतश्चिरस्य
श्रवणमो मन्व इवाचिरस्य ॥ २७ ॥

जो सदा सनातन मार्गपर स्थित रहनेवाली, श्रीराम
पर ही दृष्टि रखनेवाली, श्रीरामविषयक काम या प्रेमसे
परिपूर्ण, अपने पतिसे तेजस्वी मनमें बसी हुई तथा दूसरी
सभी जिनसे सदा ही श्रेष्ठ थीं, जिन्हें विरहजनित ताप
सदा पीड़ा देता रहता था, बिनके नेत्रोंसे निरन्तर आँसुओंकी
झड़ी लगी रहती थी और कण्ठ उन आँसुओंसे गद्गद
रहता था, पहले सयोगक्षालमें जिनका कण्ठ श्रेष्ठ एव
बहुमूल्य निष्क (पदक) से विभूषित रहा करता था,
जिनकी पलकें बहुत ही सुन्दर थीं और कण्ठस्वर अत्यन्त
मधुर था तथा जो वनमें नृत्य करनेवाली मयूरीके समान
मनोहर लगती थीं, जो मेघ आदिसे आच्छादित होनेके
कारण अम्यक्त रेखावाली चन्द्रलेखाके समान दिखायी देती
थीं, धूलि धूसर सुवर्ण रेखा ही प्रतीत होती थीं, बाणके
आघातसे उत्पन्न हुई रेखा (चिह्न)-सी जान पड़ती थीं
तथा वायुके द्वारा उड़ायी जाती हुई बादलोंकी रेखा-सी
दृष्टिगोचर होती थीं । वक्ताओंमें श्रेष्ठ नरेश्वर श्रीरामचन्द्रजी
की पत्नी उन सीताजीको बहुत देरतक ढूँढनेपर भी जब
हनुमान्जी ने देख सके, तब वे तत्क्षण अत्यन्त दुखी और
शिथिल हो गये ॥ २४-२७ ॥

आससाद् च लक्ष्मीयान् राक्षसेन्द्रनिवेशानम् ।
प्राकारेणाकर्मणोर्न आस्वरेणाभिसंवृतम् ॥ २ ॥

अत्यन्त बल-वैभवसे सम्पन्न वे पवनकुमार राक्षसराज
राक्षसोंके महलमें पहुँचे, जो चारों ओरसे क्षयके समान चम
चमाते हुए सुवर्णमय परफोटोंसे घिरा हुआ था ॥ २ ॥

रक्षित राक्षसैर्ममै सिद्धैरिध महद् वनम् ।
समीक्षमाणो भवन चक्राशो कपिकुञ्जर ॥ ३ ॥

जैसे सिंह विशाल वनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार बहुतरे भयानक राक्षस राजणके उस महलकी रक्षा कर रहे थे । उस भवनका निरीक्षण करते हुए कपिकुञ्जर हनुमान् को मन ही मन हृषका अनुभव करने लगे ॥ ३ ॥

रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हमभूपणै
विनिन्नाभिश्च कक्ष्याभिद्वारैश्च रुचिरैवृतम् ॥ ४ ॥

वह महल चाँदीसे भरे हुए चित्रों, सोने बड़े हुए दरवाजों और बड़ी अद्भुत छोटियों तथा सुन्दर द्वारोंसे युक्त था ॥ ४ ॥

गजास्थितैर्महामात्रै शूरैश्च विगतशत्रुम् ।
उपस्थितमसहायैह्यै स्य-दनयायिभि ॥ ५ ॥

हाथीपर चढ़े हुए महावन तथा भमहीन शूरवीर वहाँ उपस्थित थे । जिनके वेगको कोई रोक नहीं सकता था, ऐसे रथवाहक अश्व भी वहाँ शोभा पा रहे थे ॥ ५ ॥

सिंहध्याप्रस्तनुप्राणैर्दातकाञ्चनपञ्जरी
घोषवद्विर्विचित्रैश्च सदा विचरित रथैः ॥ ६ ॥

सिंहों और मार्गोंके चमकोंके बने हुए कबचोंसे वे रथ ढके हुए थे, उनमें हाथी-दाँत, सुवर्ण तथा चाँदीकी प्रतिमाएँ रखी हुई थी । उन रथोंमें लगी हुई छोटी-छोटी घटिकाओंकी मधुर ध्वनि वहाँ होती रहती थी ऐसे विचित्र रथ उस रावण भवनमें सदा आ-जा रहे थे ॥ ६ ॥

बहुरत्नसमाकीर्ण परार्थ्यासन्नभूपितम् ।
महार्थसमाग्राप महार्थमहासनम् ॥ ७ ॥

रावणका वह भवन अनेक प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त था, बहुमूल्य आसन उसकी शोभा बढ़ाते थे । उसमें सब ओर बड़े-बड़े रथोंके ठहरनेके स्थान बने थे और महारथी वीरोंके लिये विशाल वाहस्थान बनाये गये थे ॥ ७ ॥

दृश्यैश्च परमोदारैस्तेस्तैश्च मृगपक्षिभि ।
निविष्टैश्चसुसाहसै परिपूर्ण समन्तत ॥ ८ ॥

दर्शनीय एव परम सुन्दर नाना प्रकारके सहस्रों पक्ष और पक्षी वहाँ सब ओर भरे हुए थे ॥ ८ ॥

विनीतेरन्तपालैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम् ।
मुप्याभिश्च घटलीभि परिपूर्ण समन्तत ॥ ९ ॥

सीमाकी रक्षा करनेवाले विनयशील राक्षस उस भवनको रक्षा करते थे । वह सब ओरसे मूल्य मुन्न्य सु-दरियोंसे भरा रहता था ॥ ९ ॥

मुदितप्रमदारत्न राक्षसे-प्रनिवेशनम् ।
परामरणसद्भादै समुद्रस्थन-स्थनम् ॥ १० ॥

पहोंकी रत्नस्तूपों युक्ती रमणियों सदा प्रवृत्त रह

करती थी । सुन्दर आभूषणोंकी क्षनकारोंसे श्रुत रावणराज का वह महल समुद्रके कलकलनादकी भाँति गुप्तरित रहता था ॥ १० ॥

तद् राजगुणसम्पन्न मुख्यैश्च घरचन्दनै ।
महाजनसमाकीर्णै सिद्धैरिध महद् वनम् ॥ ११ ॥

वह भवन राजोचित सामग्रीसे पूर्ण था, भेद एव सुन्दर चन्दनोंसे चर्चित था तथा सिंहोंसे भरे हुए विशाल वनकी भाँति प्रधान प्रधान पुत्रोंसे परिपूर्ण था ॥ ११ ॥

मेरीमृदङ्गाभिरुत शङ्खघोषनिनादितम् ।
निर्याचितं पर्वसुन पूजित राक्षसै सदा ॥ १२ ॥

वहाँ मेरी और मृदङ्गकी ध्वनि सब ओर फैली हुई थी । वहाँ शङ्खकी ध्वनि गूँज रही थी । उसी नित्य पूजा एक सजावट होती थी । पर्वोंके दिन वहाँ होम किया जाता था । राक्षसलोग सदा ही उस रावणभवनकी पूजा करते थे ॥ १२ ॥

समुद्रमिध गम्भीर समुद्रसमनि स्वनम् ।
महात्मनो महद् वेश्म महारत्नपरिच्छदम् ॥ १३ ॥

वह समुद्रके समान गम्भीर और उसीके समान कोलाहल-पूर्ण था । महामना राजणका वह विशाल भवन महान् रत्नमय अलंकारोंसे अलङ्कृत था ॥ १३ ॥

महारत्नसमाकीर्ण ददर्श स महाकपिः ।
विराजमान वपुषा गजाश्वरथसकुलम् ॥ १४ ॥

उसमें हाथी घोड़े और रथ भरे हुए थे तथा वह महान् रत्नोंसे व्याप्त होनेके कारण अपने स्वरूपसे प्रकाशित हो रहा था । महाकपि हनुमान्ने उसे देखा ॥ १४ ॥

लङ्काभरणमित्येव सोऽमभ्यत महाकपि ।
चचार हनुमास्तत्र रावणस्य समीपतः ॥ १५ ॥

देखकर कपिर हनुमान्ने उस भवनको लङ्काका आभूषण ही माना । तदनन्तर वे उस रावण भवनके आस पास ही निचरने लगे ॥ १५ ॥

गृह्णाद् गृह राक्षसानामुपानानि च सर्वशः ।
वीक्षमाणोऽप्यसन्नस्तः प्रासादाश्च चचार सः ॥ १६ ॥

इस प्रकार वे एक घरसे दूसरे घरमें जाकर राक्षसोंके बगीचोंके सभी स्थानोंको देखते हुए बिना किसी भयसे अन्तिकजोपर विचरण करने लगे ॥ १६ ॥

अथप्लुत्य महावेगः प्रदस्तस्य निवेशनम् ।
ततोऽप्यन्तपुण्ड्रवे वेष्टम महापादस्य धीर्यधानम् ॥ १७ ॥

महान् वेगशाली और पराक्रमी वीर हनुमान् वहाँसे नूदकर प्रदक्षिणे घरमें उतर गये । फिर वहाँसे उल्ले और महापादके मल्लमें पहुँच गये ॥ १७ ॥

अथ मेघप्रतीकाश कुम्भकणनिवेशनम् ।
विभीषणस्य च तथा पुण्ड्रवे स महाकपिः ॥ १८ ॥

तदनन्तर वे महाकपि हनुमान् मेघके समान प्रनीत होने वाले कुम्भकण्ठे भवनमें और वहाँसे विभीषणके महलमें नूत गये ॥ १८ ॥

महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि ।
विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युमालेस्तथैव च ॥ १९ ॥

इसी तरह क्रमशः वे महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व और विद्युमालिक घरमें गये ॥ १९ ॥

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुण्ड्रिके स महाकपिः ।
शुकस्य च महावेगं सारणस्य च धीमत ॥ २० ॥

इसके बाद महान् वेगशाली महाकपि हनुमान्ने फिर छल्लों मारी और वे वज्रदंष्ट्र, शुक तथा बुद्धिमान् सारणक घरोंमें जा पहुँचे ॥ २० ॥

तथा चन्द्रजितो घेहम जगाम हरिचूषप ।
जम्बुमाले सुमालेश्वर जगाम हरिसत्तम ॥ २१ ॥

इसके बाद वे वानर-भूषण कपिश्रेष्ठ इन्द्रजित्के घरमें गये और वहाँसे चन्द्रमालि तथा सुमालिके घरमें पहुँच गये ॥ २१ ॥

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशरोस्तथैव च ।
वज्रकायस्य च तथा पुण्ड्रिके स महाकपिः ॥ २२ ॥

तदनन्तर वे महाकपि उल्लेख-नूतने हुए रश्मिकेतु, सूर्यशु और वज्रकायके महलोंमें जा पहुँचे ॥ २२ ॥

धूम्राक्षस्याथ सम्पातेर्मथनं मरुतात्मजः ।
विद्युन्मूषस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च ॥ २३ ॥

शुकनाभस्य चन्द्रस्य शठस्य कपटस्य च ।
ह्रस्वकण्ठस्य दंष्ट्रस्य लोमशस्य च रक्षस ॥ २४ ॥

युद्धोत्तमस्य मत्स्यस्य ध्वजप्रायस्य सादिन ।
विद्युज्जिह्वजिह्वाना तथा हस्तिमुखस्य च ॥ २५ ॥

कपालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
भूयमानं भ्रमेणैव हनुमान् मरुतात्मज ॥ २६ ॥

तेषु तेषु मक्षाहंषु भगनेषु महायशा ।
तेश्चमृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः ॥ २७ ॥

फिर क्रमशः वे कपिभर पवनकुमार धूम्राक्ष, लम्पाति, त्रिगुण्ड, भीम, घन, विघन, पुष्पाभ, चक्र शठ, कपट, ह्रस्वकण्ठ, दंष्ट्र, लोमश, युद्धोत्तम, मत्स्य, ध्वजप्राय, त्रिगुज्जिह्व, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कपाल, पिशाच और शोणिताक्ष आदिके महलोंमें गये । इस प्रकार क्रमशः नूतने पाँदने हुए महा

यशाली पवनपुत्र हनुमान् उन उन बहुमुख्य भगनोंमें पधारे । वहाँ उन महाकपिने उन समृद्धिशाली राक्षसोंकी समृद्धि देखी ॥ २१—२७ ॥

सर्वेषां समतिष्ठस्य भयनानि समन्तत ।
आसत्सादाय लक्ष्मीयान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् सब वै.व.स.स्यन हनुमान् उन सब भयनों

का लोंधकर पुनः राक्षसराज रावणके महलपर आ गये ॥ २८ ॥
रावणस्योपशायि यो ददर्श हरिसत्तम ।
विचरन् हरिशादूले राक्षसीविष्टतेक्षणा ॥ २९ ॥

वहाँ निचले हुए उन वानरशिरोमणि कपिश्रेष्ठने रावणक निचट खोनेवाली (उठने परलगी रक्षा करनेवाली) राक्षसियोंको देखा, जिनकी ओलें बड़ी विकराल थीं ॥ २९ ॥

शूलमुग्रहस्ताश्च शक्तोमरधारिण ।
ददर्श विविधागुत्तमास्तस्य रक्षभूतेर्गृहे ॥ ३० ॥

साथ ही, उन्होंने उस राक्षसराजके भवनमें राक्षसियोंके बहुत-से समुदाय देखे, जिनके हाथोंमें शूल, मुद्गर, शक्ति और सोमर आदि अन्न शस्त्र विद्यमान थे ॥ ३० ॥

राक्षसाश्च महाकायान् नानाप्रहरणोद्यतान् ।
रक्ताब्धयेतान् सिताश्चापि हर्षाश्चापि महाजघान् ॥ ३१ ॥

उनके सिवा, वहाँ बहुत से विशालकाय राक्षस भी दिलायी दिये, जो नाना प्रकारके हथियारोंसे लैस थे । इतना ही नहीं, वहाँ छाल और रुधिर रंगक बहुत से अत्यन्त वेगशाली घोड़े भी गँधे हुए थे ॥ ३१ ॥

कुलीनान् रूपसम्पन्नान् गजान् परगजावजान् ।
शिक्षितान् गजशिक्षाधामैरायतसमान् युधि ॥ ३२ ॥

निहन्तून् परलैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श स ।
क्षरतश्च यथा मेघान् अयतश्च यथा गिरीन् ॥ ३३ ॥

मेघस्तनितनिर्घोषान् दुधर्षान् समरे परै ।

साथ ही अच्छी जातिके रूपवान् हाथी भी थे, जो शत्रु सेनाके हाथियोंको मार भगानेवाले थे । वे सब-सब गज शिक्षामें सुशिक्षित, युद्धमें परावतके समान पराक्रमी तथा शत्रुसेनाओंका संहार करनेमें समर्थ थे । वे परलते हुए मेघों और झाने बहाते हुए पर्वतोंके समान मदकी धारा बहा रहे थे । उनकी गजना मघ-नामनासे समान जान पड़ती थी । व समराङ्गणमें शत्रुओंके लिये दुःख य । हनुमान् भीने रावणने भवनमें उन सबको देखा ॥ ३२ ३३ ॥

सहस्रं घाहिनीलस्रं जाम्बूनदपरिहृता ॥ ३४ ॥
हेममालैरधिष्ठितास्तूरुणादित्यस्तान्भा ।

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ॥ ३५ ॥

राक्षसराज रावणके उस महलम उन्होंने वहाँसे देखी सेनाएँ देखीं, जो जाम्बूनदके आभूषणोंसे निर्भूषित थी । उनके सारे अन्न खोनेक गहनोंसे दम हुए थे तथा वे प्रातः कालके सूर्यकी भीति उहोत हो रही थी ॥ ३४ ३५ ॥

त्रिविक्रां त्रिविधापारां स पयिमारुतात्मज ।
लतागृह्णाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ॥ ३६ ॥

म्रीडागृह्णाणि चायानि दारुपर्यंतकानि च ।
कामस्य गृहक रम्यं दिवागृहकमेव च ॥ ३७ ॥

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ।

पवनपुत्र हनुमान्जीने राक्षसराज रावणके उस भवनम
अनेक प्रकारकी पालकियों, विचित्र लता-गृह, चित्रशालाएँ,
क्रीडामवन, काष्ठमय क्रीडापत्रतः, रमणीय निलासगृह और
दिनों उपयोगमें आनेवाले विलासभवन भी देखे ॥३६ ३७३॥

स मन्दरसमप्रख्य मयूरस्थानसकुलम् ॥ ३८ ॥
ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् ।
अनन्तरक्षनिचय निधिजाल समतल ।
धीरतिष्ठितकर्मज्ञ गृह भूतपतेरिव ॥ ३९ ॥

उन्होंने वह महल मन्दराचलके समान ऊँचा, क्रीडा
मयूरोंके रहनेके स्थानोंसे युक्त, ध्वजाओंसे व्याप्त, अनन्त
रत्नोंका भण्डार और सब ओरसे निधियोंसे भरा हुआ देखा ।
उसमें वीर पुरुषोंने निरिक्षाये उपयुक्त कमाङ्गोंका अनुष्ठान
किया था तथा वह साक्षात् भूतनाथ (भगेश्वर या कुबेर)
के भवनके समान जान पड़ता था ॥ ३८ ३९ ॥

अर्धिर्भिस्त्रापि रक्षाना तेजसा रावणस्य च ।
विरराज च तद्देहम् रश्मिमानिष रश्मिभि ॥ ४० ॥

रत्नोंकी किरणों तथा रावणके तेजसे कारण वह धर
किरणोंसे युक्त दृश्यके समान जगमगा रहा था ॥ ४ ॥

जाम्बूनदमपायेष शयनायासनानि च ।

हृत्पापै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

रावणके भवन एवं पुष्पक विमानका वर्णन

स वेद्मजाल बलवान् दक्ष
व्यासकवैद्यसुगणजालम् ।
यथा महर्षादृषि मेघजाल
विमुत्पिनख रुविहङ्गजालम् ॥ १ ॥

बलवान् वीर हनुमान्जीने नीलमसे जड़ी हुए सोनेकी
खिड़कियोंसे सुशोभित तथा पक्षि सम्पूर्णसे युक्त भवनोंका
समुदाय देखा, जो वषा झालमें विजलीमें युक्त महती मेघमाला
के समान मनोहर जान पड़ता था ॥ १ ॥

निवेशनाना विविधाश्च शाला
प्रधानशङ्खयुधचापशाला ।
मनोहरास्त्राणि पुनर्विशाला
ददश येदमाद्रिषु चन्द्रशाला ॥ २ ॥

उसमें नाना प्रकारकी बैठकें, शङ्ख, आयुध और धनुषों
की मुख्य मुख्य शालाएँ तथा पर्यंतोंके स्थान ऊँचे महलोंके
ऊपर मनोहर एवं विशाल चन्द्रशालाएँ (अग्निकाण्ड)
देखी ॥ २ ॥

भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथप ॥ ४१ ॥

धानरयूथपति हनुमान्ने वहाँके पलग, चौकी और
पात्र सभी अत्यन्त उज्ज्वल तथा जाम्बूनद सुवर्णन बने हुए
देखे ॥ ४१ ॥

मध्वासचवृत्तफलेद् मणिभाजनसकुलम् ।
मनोरमसम्बाध कुबेरभवन यथा ॥ ४२ ॥
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीना नि स्थनेन च ।
मृदङ्गतलनिर्घोषैर्घोषवह्निघनिनादितम् ॥ ४३ ॥

उसमें मधु और आसवके गिरनेसे वहाँकी भूमि गीली
हो रही थी । मणिमय गर्जोंसे भरा हुआ वह सुविस्तृत महल
कुबेर भवनके समान मनोरम जान पड़ता था । नूपुरोंकी
तनकाट, करघनियोंकी खनखनाहट, मृदङ्गों और तालियोंकी
मधुर ध्वनि तथा अग्न्यग्नीर घोष करनेवाले वाद्योंसे वह
भवन सुखरित हो रहा था ॥ ४२ ४३ ॥

प्रासादसघातयुत खीरक्षस्तनसकुलम् ।
सुगुह्यदृक्कथ्य हनुमान् प्रविशेश महाशुद्धम् ॥ ४४ ॥

उसमें सैकड़ों अट्टालिकाएँ थीं, सैकड़ों रमणीयतोंसे
वह व्याप्त था । उसकी छोटियों बहुत बड़ी बड़ी थीं । ऐसे
विशाल भवनमें हनुमान्जीने प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

गृहाणि तानासुराजितानि
देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।
सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि
कपिद्वर्षा स्वबलार्जितानि ॥ ३ ॥

कपिवर हनुमान्ने वहाँ नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित
ऐसे ऐसे घर देखे, जिनकी देवता और असुर भी प्रशंसा
करते थे । वे गृह सम्पूर्ण दण्डोंसे रहित थे तथा रावणने उन्हें
अपने पुरुषार्थसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥

तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि
मयेन न्नाक्षरदिषु निर्मितानि ।
महीतले सर्वमुणोत्तराणि
दक्षश लङ्काधिपतेगृहाणि ॥ ४ ॥

वे भवन बड़े प्रयत्नसे बनाये गये थे और ऐसे अद्भुत रूपसे
ये, मानो वाद्यमय धनयने ही उनका निर्माण किया हो ।
हनुमान्जीने उन्हें देखा, लङ्कापति रावणके घर में भूतल
पर सभी गुणोंमें सबसे बड़ा चन्द्रग्रे ॥ ४ ॥

ततो वदशोचिद्रूपमेघरूप
मनोहर काञ्चनचारुरूपम् ।

रक्षोऽधिगम्यात्मदटानुरूप
गृहोत्तम ह्यप्रतिरूपरूपम् ॥ ५ ॥

किर उठेंने राखराख राजनका उरकी शक्ति अनुसूच
अत्यन्त उत्तम और अनुसूच मन (पुष्पक विमान) देखा,
जो मेरके समान ऊँचा, सुवर्ण समान सुन्दर चान्तिवाला
तथा मनोहर था ॥ ५ ॥

महीतने स्वर्गमिय प्रकीर्ण
भ्रिया ज्वलत बहुरत्नकीर्णम् ।
नानातरूपा ह्यनुमायकीर्ण
तिरिखिवाग्र रजसावकीर्णम् ॥ ६ ॥

वह इस भूतपर स्त्रिरे हुए न्वाके समा धन
पड़ता था । अपना कान्तिसे प्रचलित था हा रहा था ।
अनेकानक रत्नने व्याप्त, भौति भौतिके रत्नने फूलों
आच्छादित तथा पुष्पोंक परामने भरे हुए पर्वत हिस्तरके
समान शोभा पाता था ॥ ६ ॥

नारीप्रवेकैरिय दीप्यमान
तद्विद्विस्मोधत्तमच्यमानम् ।
हस्तप्रवेकैरिय बाह्यमा
भ्रिया युत ये सुकृत निमानम् ॥ ७ ॥

वह निमानरूप मनन विगु मालाओंने पूजित मेघके समान
रमणी-रत्नने देदीप्यमान हो रहा था और अष्ट हस्तद्वारा
आच्छादने दाये बाये हुए विमानकी भौति जान पड़ता था ।
उस दिव्य विमानका बहुत सुन्दर दगसे बनाया गया था ।
वह अद्भुत शान्तिसे सम्पन्न दिखावा देता था ॥ ७ ॥

यया नगाग्र वरुधातुचित्र
यया नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम् ।
ददर्श युक्तीहृतचादमेघ
विप्र विमान बहुरत्नचित्रम् ॥ ८ ॥

बैठे अनेक बाहुओंके कारण पर्वतशिखर, ग्रहों और
चन्द्रमाके कारण आकाश तथा अनेक वर्षोंसे सुख होने
कारण मनोहर मेघ विचित्र शोभा धारण करत हैं, उन्हीं
तरह नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित होनेके कारण वह
विमान भी विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देता था ॥ ८ ॥

मही एता पञ्चराजिपूना
दीना एता वृक्षरितानपूना ।
वृक्षा एता पुष्पविमानपूना
पुष्प एत देसरपञ्चपूणम् ॥ ९ ॥

उस विमानका अष्टारभूमि (आठदिगोंके सह
होनेका स्थान) होने और मणियोंके द्वारा निर्मित वृक्षिम
पर्वत-मालाओंसे पूरा बनायी गया थी । वे पर्वत वृक्षोंकी

विस्तृत पत्तियोंने हरे भरे रचे गये थे । वे वृक्ष फूलोंके
बाहुल्यने व्याप्त बनाये गये थे तथा वे पुष्प भी केसर
पत्र पलुदियोंसे पूरा निर्मित हुए थे ॥ ९ ॥

एतानि वेदमानि च पाण्डुराणि
तथा सुवृष्णाण्यपि पुष्कराणि ।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि
चनानि चित्राणि सरोधराणि ॥ १० ॥

उस विमानमें वैतमयन धन हुए थे । सुन्दर फूलोंसे
सुशोभित पोखरे बनाये गये थे । वसरसुन्दर कमल, विचित्र
धन और जड़सुत सरोवोंका भी निमण किया गया था ॥ १० ॥

पुष्पाद्वय नाम विराजमान
रत्नप्रभाभिश्च विघृणमानम् ।
येदमोत्तमानामपि चोद्यमान
महाकपिस्तत्र महाधिमानम् ॥ ११ ॥

महाकपि हनुमान् जिस सुन्दर विमानकी वहाँ देखा,
उसका नाम पुष्पक था । वह रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशमान
था और इधर उधर घूमन करता था । देवताओंके
गृहाकार उत्तम विमानोंमें सबसे अधिक आदर उस महाविमान
पुष्पक ही होता था ॥ ११ ॥

एताश्च वैद्वयमया विद्वद्वा
रूप्यप्रवालैश्च तथा विद्वद्वा ।
चित्राश्च नानावस्तुभिर्भुज्ज्वा
जात्यानुरूपास्तुरगाश्चुभाङ्गा ॥ १२ ॥

उसमें नीलम, बौदी और मृगोंके आकाशचारी पक्षी
बनाये गये थे । नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र वर्णके
वर्षा निर्माण किया गया था और अच्छी आतिथ घोड़ोंक
समान ही सुन्दर अङ्गवाले अश्व भी बनाये गये थे ॥ १२ ॥

प्रवालजाम्बूनपुष्पपक्षा
सलीलमावर्णितजिह्वापक्षा ।
कामम्य साक्षादिव भान्ति पक्षा
एताविद्वद्वा सुमुखा सुपक्षा ॥ १३ ॥

उस विमानपर सुन्दर सुवर्ण और मनोहर पक्षवाले
पक्षुत वे ऐसे विद्वद्वा निर्मित हुए थे, जो साक्षात् कामदेवक

• वहाँ पूर्वकथित वस्तुओंमें प्रति पक्षुतपर कथित वस्तुओंके
विदेशों मासेसे आसन दिया अब वहाँ पक्षुतकी अन्तर
नाना रंगों के । हम वृक्षोंके अनुसर इस क्षेत्रमें पक्षुतकी
अन्तर है । वहाँ पक्षुत की विदेशों पवन पर्यन्त वृक्ष और
इष्टक विदेशों पुष्प आदि सम्पन्न पक्षुत है । विदेशोंमें
वहाँ कथित नानक अन्तर नाम है पक्षुत वहाँ आवासे
आनेकी विदेशों सम्पन्न गयी है वही अश्व विमान है वहाँ
देवी बाण नहीं है ।

वधायक जान पड़ते थे । उनकी पॉलें मूँगे और सुवर्णके
बन हुए फूलोंसे युक्त थीं तथा उन्होंने लीलापूर्वक अपने
बाँके पक्षोंको समेट रक्खा था ॥ १३ ॥

नियुज्यमानाश्च गञ्जा सुहस्ता

सकसराश्चोत्पलपत्रहस्ता ।

यभूव देवी च वृतासुहस्ता

लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता ॥ १४ ॥

उस विमानके कमलमण्डित सरोवरमें ऐसे हाथी बनाये
गये थे, जो लक्ष्मीके अभिप्रेक्ष्यार्थमें नियुक्त थे । उनकी
सँझ बड़ी सुन्दर थी । उनके अङ्गोंमें कमलोंके पत्रोंपर लगे
हुए थे तथा उन्होंने अपनी सँझोंमें कमल पुष्प धारण
किये थे । उनके साथ ही वहाँ तेजस्विनी लक्ष्मी
देवीकी प्रतिमा भी विराजमान थी, जिनका उन हाथियोंके
द्वारा अभिप्रेक्ष्य हो रहा था । उनके हाथ बड़े सुन्दर थे ।
उन्होंने अपने हाथमें कमलपुष्प धारण कर रक्खा था ॥ १४ ॥

हतीय तद्गृहमभिगम्य शोभन

सखिस्सथो नगमिव चारुकन्दरम् ।

पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दर

हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार सुन्दर कन्दराओंवाले पर्वतके समान तथा
घसतशुद्धमें सुन्दर कोटरोंवाले परम सुगन्धयुक्त वृक्षके

हृत्पापें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा पुन पुष्पक विमानका दशन

स तस्य मध्ये भयनस्य सखिस्थो

महद्भिमान मणिरक्षचित्रितम् ।

प्रतप्तप्राभ्रूतदजालहृत्रिम

ददश धीमान् पदनात्मज कपि ॥ १ ॥

रावणका भवनेका मध्यभागमें खड़े हुए बुद्धिमान्
पवनकुमार कपिवर हनुमान्जीके मणि तथा रत्नोंसे अटित
एवं तप्त हुए सुवर्णमय गजशौकी रचनासे युक्त उस
विशाल विमानको पुन देखा ॥ १ ॥

तद्दमेपप्रतिकारकृत्रिम

हृत्स्यस्यसाञ्चित विश्वकर्मा ।

दिग् गते वायुपथे प्रतिष्ठित

ध्वराजतादियपयस्य लक्ष्म तत् ॥ २ ॥

उपरी रचनाको शैन्दवं जादिकी दृष्टिसे माया नहीं
जा सकता था । उसका निमाण अनुपम रीतिसे किया गया था ।
स्वयं विश्वकर्माने ही उस बनाया था और बहुत उत्तम

समान उस शोभायमान भनोहर भवन (विमान) में
पहुँचकर हनुमान्जी बड़े विस्मित हुए ॥ १५ ॥

ततः स ताकपिरभिपरयपूजिता

चरन् पुरीं दशमुखबाहुपालिताम् ।

अदृश्यता जनकसुता सुपूजिता

सुदु खिता पतिमुणवेगनस्त्रिताम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर दशमुख रावणके बाहुबलसे पालित उस
प्रशस्त पुरीमें जाकर चारों ओर घूमनेपर भी पतिके गुणोंके
वेगसे पराजित (विमुग्ध) अत्यन्त दुःखिनी और परम
पूजनीया जनककिशोरी सीताको न देखकर कपिवर हनुमान्
बड़ी विन्तामें पड़ गये ॥ १६ ॥

ततस्तदा बहुविधमावितात्मन

कृतात्मनो जनकसुता सुवर्त्मन ।

अपदपतोऽभवत्सिद्धु स्त्रित मन

सख्युप प्रविचरतो महात्मन ॥ १७ ॥

महात्मा हनुमान्जी अनेक प्रकारसे परमाथ चिन्तनमें
तत्पर रहनेवाले कृतात्मा (पवित्र अतः चरणवाले)
समाधगामी तथा उत्तम दृष्टि रखनेवाले थे । इधर उधर
बहुत घूमनेपर भी जब उन महात्माको जानकीजीका पता
न लगा, तब उनका मन बहुत दुःखी हो गया ॥ १७ ॥

हृत्पापें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

पुष्पक विमानका दशन

बंदर उसकी प्रशंसा की थी । जब वह आकाशमें उड़कर
वायुमार्गमें स्थित होता था, तब सौर मार्गके बिह्वला
सुशोभित होता था ॥ २ ॥

न तत्र किञ्चिन्न कृत प्रयत्नतो

न तत्र किञ्चिन्न महाघरक्षयत् ।

न ते विशेषा नियता सुरेभ्यः

न तत्र किञ्चिन्न महाविशेषयत् ॥ ३ ॥

उसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं थी जो अत्यन्त प्रयत्नसे
न बनायी गयी हो तथा वहाँ कोई भी ऐसा स्थान या
विमानका अङ्ग नहीं था जो बहुतमूल्य रत्नोंसे अटित न
हो । उसमें जो विशेषताएँ थीं, वे देवताओंके विमानोंमें
भी नहीं थीं । उसमें कोई ऐसी चीज नहीं थी, जो यही
मारी विशेषतामें युक्त हो ॥ ३ ॥

तप समाधानपराक्रमान्न

मन समाधानविचारचारिणम् ।

अनेकसस्यानविशेषनिर्मित

ततस्तत्स्तुत्यविशेषनिर्मितम् ॥ ४ ॥

रावणने जो निराहार रहकर तब किया था और
मगवान् चिन्तनमें चित्तको एकाग्र किया था, इससे मिले
हुए पराक्रमके द्वारा उसने उस विमानपर अधिकार प्राप्त
किया था । मनमें नहीं भी जानेका संकल्प उठता, वहीं
वह विमान पहुँच जाता था । अनेक प्रकारकी विविध
निर्मा-कलाओंद्वारा उस विमानकी रचना हुई थी तथा
वहाँ-वहाँसे प्राप्त की गयी दिव्य विमान निर्माणोचित
विनोयताओंसे उसका निर्माण हुआ था ॥ ४ ॥

मन समाधाय तु शीघ्रगामिन

दुरासदं मातुतनुत्यगामिनम् ।

महात्मना पुण्यवृत्ता महर्षिना

यज्ञस्वितामप्यमुदाभिवालयम् ॥ ५ ॥

वह स्वामीके मनका अनुसरण करते हुए वहीं शीघ्रतासे
चलनेवाला, दूरपोंके शिघ्रे दुर्लभ और वायुके समान
वेगपूर्वक आये बढ़नेवाला था तथा भेष्ट आनन्द (महान्
मुक्त) के मागी, बन्धु-वन्धुके तपवाले, पुण्यकारी महात्माओंका
ही वह आश्रय था ॥ ५ ॥

निशेषमालम्ब्य विशेषसंस्थित

विचित्रकूटं यद्वृक्षमण्डितम् ।

मनोऽभिरामं शरदि-दुर्मिलं

विचित्रकूटं दिक्षर गिर्येया ॥ ६ ॥

वह विमान गतिविशेषका आश्रय ले व्योमस्थ देश-

हृत्पापैर्लामद्गामयणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टम सर्ग ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रवणमन्त्रिनिर्दिष्ट शरीरमयण अदिकाव्यक सुन्दरकाण्डने अठवीं सर्ग पढ़ा हुआ ॥ ८ ॥

नवम सर्गः

हनुमान्जीका रावणके श्रेष्ठ भवन पुष्पकविमान तथा रावणके रहनेकी सुन्दर हवेलीको देखकर

उमके भीतर सोयी हुई सहस्रों सुन्दरी स्त्रियोंका अवलोकन करना

तस्याल्यथयस्मिन् मध्ये विमलमायतम् ।

ददश भजनधेष्ट हनुमान् मातृतामज ॥ १ ॥

अधयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं महत् ।

भवनं राक्षसेन्द्रस्य यदुपसादसकुलम् ॥ २ ॥

लङ्कावर्ती सबभेष्ट महान् शरके मध्यभागमें पवनपुत्र
हनुमान्जीने देखा एक उत्तम भवन शोभा पा रहा है । वह
बहुत ही निर्मल एवं विस्तृत था । उसकी लम्बाई एक
योजनकी और चौड़ाई आधे योजनकी थी । राक्षसराज
रावणका वह विशाल भवन बहुत-सी अट्टश्लिकाओंसे
स्थापित था ॥ १ ॥ २ ॥

विशेषमें स्थित था । आश्चर्यजनक विचित्र वस्तुओंका समुदाय
उसमें एकत्र किया गया था । बहुत-सी शालाओंके कारण
उसकी बड़ी शोभा हो रही थी । वह शब्द-श्रुतक चन्द्रमार्गे
समान निर्मल और मनको आनन्द प्रदान करनेवाला था ।
विचित्र लोहे-छाटे दिखारोंसे युक्त किसी पर्वतके प्रधान
शिखरकी बेसी शोभा होती है, ठीसी प्रकार अद्भुत
शिखरवाला उस पुष्पक विमानकी भी शोभा हो रही थी ॥ ६ ॥

बहन्ति परकुण्डलशोभितानना

महाशना योमचरानिशाचरा ।

विनुत्तविष्वस्तदिशाललोचना

महाजवा भूतगणा सहस्रश ॥ ७ ॥

वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं

वसन्तमासादपि चारुदर्शनम् ।

स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तम

ददश तद् धानरधीरसत्तम ॥ ८ ॥

जिनके सुलभ-बल कुण्डलोंसे सुशोभित और नेत्र
धूमते या धूतते रहनेवाले, निमेषपर्यन्त तथा बड़े-बड़े थे,
वे अपरिमित मोहन करनेवाले, महान् वेगवाली, आकाशमें
विचरनेवाले तथा रातमें भी दिनके समान ही चमकनेवाले
सहस्रों भूतगण जिसका भार वहन करते थे, जो वसन्त-
कालिक पुष्प पुष्पके समान रमणीय दिखायी देता था और
वसन्त माससे भी अधिक सुहावना दृशिगोचर होता था,
उस उत्तम पुष्पक विमानको धानरधीरेमणि हनुमान्जीने
वहाँ देखा ॥ ७-८ ॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।

सर्वतः परिचक्षाम हनुमानरिसुदन ॥ ३ ॥

विशाललोचना विदेह-नन्दिनी सीताकी स्त्रीच करते हुए

शुभसुदन हनुमान्जी उस भवनमें सब ओर चक्कर लगाते

थिरे ॥ ३ ॥

उत्तम राक्षसावास हनुमानधलोक्तयन् ।

आससादाथ लक्ष्मीयान् राक्षसे द्रुमिवेशमम् ॥ ४ ॥

बलवैभवसे सम्पन्न हनुमान् राक्षसोंके उस उत्तम

आवासका अवलोकन करते हुए एक ऐसे सुन्दर घरमें जा

पहुँचे, जो राक्षसराज रावणका निजी निवास-स्थान था ॥ ४ ॥

चतुर्विंशतिर्द्विस्त्रिंशतिषाणैस्तथैव च ।

परिक्षिप्तमसम्प्राध रक्ष्यमाणमुदायुधै ॥ ५ ॥

चर दौत तथा तीन दौतोंवाले हाथी इस विस्तृत भवनको चारों ओरसे घेरकर रखे थे और हाथोंमें हथियार लिये बहुत-से राक्षस उसकी रक्षा करते थे ॥ ५ ॥

राक्षसीभिश्च पत्नीभी रात्रणस्य निवेशनम् ।

आहृताभिश्च विप्रस्य राजकन्याभिरावृतम् ॥ ६ ॥

रात्रणका वह मदल उसकी राक्षसजातीय पत्नियाँ तथा परक्रमपूर्वक हरकर लायी हुई राजकन्याओंसे भरा हुआ था ॥ ६ ॥

तत्रक्रमस्तराकीर्णं तिमिगिलक्षपाकुलम् ।

वायुवेगसमाधूत पद्मगैरिय सागरम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार नर नारियोंसे भरा हुआ वह कोलाहलपूर्ण भवन नाके और मगरोंसे यात, तिमिझरों और मत्स्योंसे पूरा, वायुवेगसे विक्षुब्ध तथा छपोंसे आवृत महासागरके समान प्रतीत होता था ॥ ७ ॥

या हि धैर्ययणे लक्ष्मीर्या च द्वे हरिवाहने ।

सा रात्रणगृहे रम्या नित्यमेवावधायिनी ॥ ८ ॥

जो लक्ष्मी कुबेर, चन्द्रमा और इन्द्रप वहाँ निवास करती हैं, वे ही और भी मुख्य रूपसे रात्रण घरमें नित्य ही निबल होकर रहती थी ॥ ८ ॥

या च राक्ष कुबेरस्य यमस्य यक्षस्य च ।

तादृशी तद्विदिता या ऋशी रक्षोगृहेष्विह ॥ ९ ॥

जो समुद्रि महाराज कुबेर, यम और यक्षके वहाँ दृष्टिगोचर होती हैं, वही अवका उससे भी बढ़कर राक्षसोंके घरमें देवी जाती थी ॥ ९ ॥

तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थवेदमचाभ्यस्तुनिर्मितम् ।

बहुनिर्वृहस्युच इदं पद्मनाभज ॥ १० ॥

उस (एक योजन लम्बे और आधे योजन चौड़े) महद्वारे मध्यभागमें एक दुष्ट भवन (पुष्प विमान) था। जिसका निमाण बड़े सुन्दर दंगरे किया गया था। वह भवन बहुछलक मजाले शिपियोंसे युक्त था। पवनद्वारा हनुमान्जीने फिर उसे देखा ॥ १० ॥

प्रक्षणोऽर्धं कृतदिव्य दिवि यद् दिव्यकम्पा ।

विमान पुष्पक नाम सवरत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥

यह सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित पुष्पक नामक दिव्य विमान स्वर्गलोकमें विश्वकर्माने ब्रह्माजीके लिये बनाया था ॥ ११ ॥

परेण तपसा लेभे यत् कुबेरः विनामहात् ।

कुबेरमोक्षता मिता लेभे तत् वाक्षसेष्वरः ॥ १२ ॥

कुबेरने बड़ी भारी तपसा करके उसे ब्रह्माजीसे प्राप्त

किया और फिर कुबेरको बलपूर्वक पकड़ करके राक्षसराज रात्रणने उसे अपने हाथमें कर लिया ॥ १२ ॥

इदमृगसमायुक्तैः कातस्वरहिरण्यैः ।

सुहृत्तैश्च विप्रैः स्वर्ग्यैः प्रदीप्तमिव च क्षिया ॥ १३ ॥

उपमें भेड़ियोंकी मृतियोंसे युक्त सोने चाँदीके सुन्दर स्वर्ग्ये बनाये गये थे, जिनके कारण वह भवन अद्भुत कान्तिसे उद्दीप्त हो रहा था ॥ १३ ॥

मेरुमादरसकाशैश्चिह्नवट्टिरियाम्बरम् ।

कूटगारैः शुभागारैः सर्वतः समलङ्कृतम् ॥ १४ ॥

उपमें मेरुश और मदराचमके समान ऊँचे अनेकानेक गुप्त यह और मङ्गल भवन बने थे, जो अग्नी ऊँचाईसे आकाशमें रखा ही खोचत हुए जान पड़ते थे। उनके द्वारा वह विमान सब ओरसे सुशोभित होता था ॥ १४ ॥

ज्वलनाक्षप्रतीकाशैः सुहृत्तैश्च विप्रैश्चर्मणा ।

हेमनोपातयुक्त च आदप्ररवेदिकम् ॥ १५ ॥

उनका प्रकाश अग्नि और सूर्यके समान था। विश्वकर्माने बड़ी कारीगरीसे उसका निमाण किया था। उसमें सोनेकी छोटियाँ और आभ्यन्त मनीहर उत्तम वैदियों बनायी गयी थी ॥ १५ ॥

जालयातायनैर्गुक् काञ्चनैः स्फाटिदैरपि ।

इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रथरवेदिकम् ॥ १६ ॥

सोने और स्फटिकके शरीरों और सिङ्कियों लगायी गयी थी। इन्द्रनील और महानील मणियोंकी अद्भुतम वैदियों रखी गयी थी ॥ १६ ॥

विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः ।

निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिराजितम् ॥ १७ ॥

उपरि पर्व विविध मूर्तों, बहुमुख्य मणियों तथा अनुपम गोल-गोल मोतियोंसे ढकी गयी थी, जिसे सब विमानकी यही शोभा हो रही थी ॥ १७ ॥

खन्दनेन च रत्नेन तपनीयनिमेत च ।

सुपुण्यगणिता युक्तामिदं तपनोपमम् ॥ १८ ॥

सुवर्णके समान लाल रंगके मुगधयुक्त चन्दनसे युक्त होनेके कारण वह वासस्थान समान जान पड़ता था ॥ १८ ॥

कूटगारैर्यराकारैर्विधैः समलङ्कृतम् ।

निमान पुष्पक दिव्यमाकरोद महाकपिः ।

तत्रस्थः सर्वतो गन्ध पानभक्ष्यानसम्भयम् ॥ १९ ॥

दिव्य सम्मूर्द्धितं जिघ्रन् रूपवत्तमिवानिलम् ।

महाकपि हनुमान्जी उस दिव्य पुष्पक विमानपर चढ़ गये, जो नाना प्रकारके सुन्दर कूटगारों (अश्लिकाओं) से अलङ्कृत था। वहाँ बैठकर वे सब और पृथी हुई नाना प्रकारके

पय, मन्थ और प्रलम्बी दिव्य गन्ध सूँघने लगे। वह गन्ध मूर्तिमान् पवन-सी प्रवेत होती था ॥ १९३ ॥

स गघस्त महासत्त्व यधुर्वधुमिवोत्तमम् ॥ २० ॥
इत पद्मीयुवाचेच तत्र यत्र स रावण ।

वैसे कोइ कण्ठ बाधय अपने उत्तम बहुको अपने पास बुलाता है, उसी प्रकार वह मुगध उन महाबली हनुमान्जी को मानो यह कहकर कि 'इधर चले आओ' वहाँ खड़ा था, वहाँ बुला रही थी ॥ २० ॥

ततस्ता प्रस्थित शाला द्दश महर्तो शिवाम् ॥ २१ ॥
रावणस्य महाकान्ता कातामित्र चरित्रियम् ।

तदनन्तर हनुमान्जी उस ओर प्रस्थित हुए। आग बढ़नेपर उन्होंने एक बहुत बड़ी हवेली देखी, जो बहुत ही सुन्दर और सुवद था। वह हवेली रावणको बहुत ही प्रिय थी ठीक वैश ही जैने पवित्रे कान्तिमयी सुन्दरी पत्नी अधिक प्रिय हाता है ॥ २१ ॥

मणिस्नोपानविहृता हेमनालजिराजिताम् ॥ २२ ॥
स्फाटिकैराबुततला दन्तातरितरूपिकाम् ।
मुकावजप्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ॥ २३ ॥

उसमें मणियोंकी छोटियाँ बनी थी और सोनेकी खिड़कियाँ उसकी सोमा बटाती थीं। उसकी पत्र स्फटिक मणिते बनायी गयी थी, जहाँ बीच-बीचमें हाथीके दाँतके द्वारा विभिन्न प्रकारका आकृतियों बनी हुए थीं। मोती, हीरे, मूंगे, चाँदी और ऐनेके द्वारा भी उसमें अनेक प्रकारके आकार अङ्कित किये गये थे ॥ २२ २३ ॥

विभूषिता मणिस्तम्भै सुबहुस्तम्भभूषिताम् ।
समैक्रजुभिरस्युच्चै समन्तात्सुविभूषितै ॥ २४ ॥

मणियोंके बने हुए बहुत से स्तम्भ, चा समान, सीधे, बहुत ही ऊँच और सब ओरसे विभूषित थे, आभूषणकी भाँति उस हवेलीकी सोमा बना रह थे ॥ २४ ॥

स्तम्भै पक्षैरिवायुच्चैर्दिव्य सप्रस्थितामिर ।
महत्या क्षुण्याऽऽस्तीर्णा पृथिवीलक्षणाह्वया ॥ २५ ॥

अनेक आयन्त ऊँचे स्तम्भरूपी पक्षोंसे मानो वह आकाशको उड़ती हुई-सी जान पड़ती थी। उसके भीतर पृथ्वीक घनपत्रत आदि विहोषे अङ्कित एक बहुत बड़ा कालान बिठा हुआ था ॥ २५ ॥

पृथिवामिव विस्तीर्णा सराष्ट्रगृहशालिनीम् ।
नादिता मत्तविहगैर्दियमपाधिवासिताम् ॥ २६ ॥

राष्ट्र और घर आदिके चित्रोंसे सुशोभित वह शाला पृथ्वान समान निमीग जान पड़ता थी। वहाँ भूतवाल निगमोक्त कन्यार सूँघने रहते थे तथा वह दिव्य मुगधसे मुचासित थी ॥ २६ ॥

पराध्यास्तरणोपेता रक्षोऽधिपनिषेधिताम् ।
धूध्रामगुरुधूपेन विमला हसपाण्डुराम् ॥ २७ ॥

उस हवेलीमें बहुमूल्य चिड़ोने दिये हुए थे तथा स्वय राक्षसराज रावण उसमें निवास करता था। वह अगुरु नामक धूप पर धूपें धूमिल दिखायी देनी थी, किंतु वास्तवमें इसके समान 'वैत एव निर्मल थी ॥ २७ ॥

पत्रपुष्पोपहारेण कलमाशीमिव सुप्रभाम् ।
मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम् ॥ २८ ॥

पत्र पुष्पके उपहारसे वह शाला चित्रकवरी की जान पड़ती थी। अथवा वसिष्ठमुनिजी रावण गौरी भाँति सम्पूर्ण कामनाओंकी देनेवाली थी। उसका कान्ति बड़ी ही सुन्दर थी। वह मनको आनन्द देनेवाली तथा रोमाको भी सुशोभित करनेवाली थी ॥ २८ ॥

सा शोक्नाशिर्ना दिव्या श्रिय सजननीमिव ।
इन्द्रियार्णोन्ध्रियार्थैस्तु पञ्च पञ्चभिरुत्तमै ॥ २९ ॥
तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता ।

वह दिव्य शाला शोकका नाश करनेवाली तथा सम्पत्ति की जननी-सी जान पड़ती थी। हनुमान्जीने उसे देखा। उस रावणाश्रित शालान उस समय माताकी भाँति शब्द, स्पर्श आदि पाँच नियंत्रित हनुमान्जीकी भ्रष्ट आर्ति पाँचों इन्द्रियोंको तृप्त कर दिया ॥ २९ ॥

स्वर्गोऽय देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत् ।
सिद्धिर्वैय परा हि स्यादित्यमन्यत मावति ॥ ३० ॥

उसे देखकर हनुमान्जी यह तर्क-वितर्क करने लगे कि सम्भव है, यही स्वर्गलोक या देवलोक हो। यह इन्द्रकी पुरी भी हो सकती है अथवा यह परमनिधि (प्रसन्नोक्तकी प्राप्ति) है ॥ ३० ॥

प्रध्यायत ह्यापदयत् प्रदीपास्तत्र काञ्चनान् ।
धूर्तानिर महाधूर्तैर्देवनेन परापितान् ॥ ३१ ॥

हनुमान्जीने उस गालामें सुवामय दापकोंको एकटार बलते देखा, मानो वे घनमन हा रहे हों, ठीक उठी तरह वैसे किसी बड़े लुआरीसे लुपमें हारे हुए छोटे उभारी घननाशकी चिन्ताक कारण घनमें डूबे हुए-से दिखायी देते हैं ॥ ३१ ॥

दीपाना च प्रनादोन तेजसा रावणस्य च ।
अर्चिर्भिर्भूषणाना च प्रदीपैर्यभ्यमन्यत ॥ ३२ ॥

दीपकोंके प्रकाश, शालाके तेज और आभूषणोंकी कान्तिसे वह लारी हवेली बलती हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ३२ ॥

ततोऽपदयत् क्षुधासीन नानाशयान्परस्परम् ।
सहस्य धरनरीपा नानाविधविभूषितम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर हनुमान्जीने शयनीनपर देनी हुए सहस्रो

मुदरी जियो देली, सो रग बिरगे सख और पुष्पमाला धारण किये अनेक प्रकारकी वेपभूषाओंके विभूषित थीं ॥ ३३ ॥

परिवृत्तेऽधराग्रे तु पाननिद्राशगतम् ।
क्रीडित्योपगत रात्रौ प्रसुप्त यत्न्यत् तदा ॥ ३४ ॥

आधी रात यीत जानेपर वे क्रीड़ासे उपरत हो मधुपानके मद और निद्राके बशीभूत हो उस समय गाली नौदमें सो गयी थीं ॥ ३४ ॥

तत् प्रसुप्त विरुचे नि शब्दात्तरभूषितम् ।
निःशब्दहसधमर यथा पद्मवन महत् ॥ ३५ ॥

उन सोयी हुई सखों नारियोंके वटिभागमें अब कल्पनीकी खनखनाहटका शब्द नहीं हो रहा था । इन्हींके कलरव तथा भ्रमरोंके गुञ्जारघसे रहित विशाल कमल-वनके समान उन सुप्त सुन्दरियोंका समुदाय बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ३५ ॥

तासां सवृतदां तानि मीलिताक्षीणि मारुति ।
अपश्यत् पद्मगन्धोनि वदनानि सुयोपिताम् ॥ ३६ ॥

पद्मकुमार हनुमानजीने उन सुन्दरी युवतियोंके मुख देखे, जिनसे कमलोंकी ही सुगन्ध फैल रही थी । उनके दाँत दँके हुए थे और ओँलें मुँद गयी थीं ॥ ३६ ॥

प्रबुद्धानीन पद्मानि तासां भूत्या क्षपाक्षये ।
पुन सवृतपत्राणि रात्राविव श्वसुत्तदा ॥ ३७ ॥

रात्रिके अन्तमें खिल हुए कमलोंके समान उन सुन्दरियोंके जो मुखारविन्द इन्हीं उच्छल दिवाधी देते थे, वे ही फिर रात आनेपर सो जानेके कारण मुँदे हुए दलबाल कमलोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

हमाणि मुखपद्मानि नियत मचपट्टपदा ।
अभ्युज्जानीन पुराणि प्राघयति पुन पुन ॥ ३८ ॥

इनि वामपत श्रीमानुपपत्त्या महाकपि ।
मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवै ॥ ३९ ॥

उन्हें देखकर श्रीमान् महाकपि हनुमान् यह सम्भावना करने लगे कि 'मतगले भ्रमर प्रकुञ्च कमलोंके समान इन मुखारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ही बारबार प्रार्थना करते होंगे—उनपर सदा स्थान पानेके लिये तरखते होंगे' क्योंकि वे गुणकी दृष्टिसे उन मुखारविन्दोंकी पानीसे उत्पन्न होनेवाले कमलोंके समान ही समझे थे ॥ ३८-३९ ॥

सा तस्य शुभे शालाताभि जीर्भिर्यजजिता ।
शरदीय प्रसन्ना घोस्ताराभिरभिशोभिता ॥ ४० ॥

रागकी यह दशवी उन जियोके प्रकाशित होकर वैसी ही शोभा पा रही थी, जैसे शरदऋतुमें निर्मल आकाश ताराओंके प्रकाशित एवं मुग्धोभित होता है ॥ ४० ॥

स च ताभि परिवृत शुभे राक्षसाविव ।

यथा हुडुपति श्रीमास्ताराभिरिव सवृत ॥ ४१ ॥

उन जियोसे घिरा हुआ शरदराज रागण ताराओंके घिरे हुए कान्तिमान् नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था ॥ ४१ ॥

यादव्यय तेऽय्यराख तारा पुण्यशेषसमावृताः ।
हमास्ता सगता कृत्वा इति मेने हरिस्तदा ॥ ४२ ॥

उस समय हनुमानजीको ऐसा मादम हुआ कि आकाश (स्वर्ग) से भोगावशिष्ट पुण्यके साथ जो ताराएँ नीचे गिरती हैं, वे रात्रि की सब मानो यहाँ इन सुन्दरियोंके रूपमें एकत्र हो गयी हैं ॥ ४२ ॥

ताराणामिव सुव्यक्त महतीनां शुभाचिंषाम् ।
प्रभाजणप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योपिताम् ॥ ४३ ॥

क्योंकि वहाँ उन युवतियोंके तेज, वर्ण और प्रकाश स्पष्ट सुन्दर प्रभावोंके महान् तारोंके समान ही सुशोभित होते थे ॥ ४३ ॥

व्यावृत्तकल्पपीनश्रकप्रकाणवरभूषणा ।
पानपायामकालेषु मित्रोपहतचेतसः ॥ ४४ ॥

मधुपानके अनन्तर पायाम (नृत्य, गान, मीठा आदि) के समय जिनके केश खलकर बिखर गये थे, पुष्पमालाएँ मँदित होकर छिन्नभिन्न हो गयी थीं और सुन्दर आभूषण भी शिथिल होकर इधर उधर खिसक गये थे, वे सभी सुन्दरियों वहाँ निद्रासे अचेत ही होकर सो रही थीं ॥ ४४ ॥

व्यावृत्ततिलका काश्चित्काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुरा ।
पादेषु गलितहाराश्च काश्चित् परमयोपिता ॥ ४५ ॥

किन्हींके मस्तककी (सिंदूर परतूरी आदिकी) बढियाँ पड़ गयी थीं, किन्हींकी नूपुर पैरोंसे निकलकर दूर जा पड़े थे तथा किन्हीं सुन्दरीयुवतियोंके शर दूटकर उनके बगलमें ही पड़े थे ।

मुक्ताहारवृताध्याया काश्चित् प्रक्षस्तयास्तसः ।
व्याधिद्वरशनाशमाः किञ्चोर्य इव वाहिता ॥ ४६ ॥

काइ मोतियोंके शर दूट जानेसे उनके थिखरे दाँतोंके आवृत थीं, किन्हींके वस्त्र खिसक गये थे और किन्हींकी कल्पनीकी लड़ दूट गयी थी । वे युवतियों दोश दोकर यकी हुई अधजातिकी भयी बटेदियोंके समान जान पड़ती थीं ॥ ४६ ॥

अवुष्टदलधराभ्यां चिच्छिन्नमृदितमजः ।
गजेन्द्रमृदित फुल्ल लता इव महाधने ॥ ४७ ॥

किन्हींके बनोंके कुण्डल गिर गये थे, किन्हींकी पुष्पमालाएँ मसकी जाकर छिन्नभिन्न हो गयी थीं । इधरे वे महान् धनमें गजराजद्वारा दली-मली गयी फूटी लताओंके समान प्रतीत होती थीं ॥ ४७ ॥

वद्राशुकिरणाभ्यङ्गहारः कासाचिदुद्रता ।
 सा इव यशुः सुता स्तनमध्येषु योषिताम् ॥ ४८ ॥

किन्हीके चद्रमा और सूर्यकी किरणोंके समान
 प्रकाशमान हार उनमें वध खलपर पड़कर उभरे हुए
 होतीं होतीं हैं । वे उन युवतियोंके स्तनमण्डलपर ऐसे
 जान पड़ते हैं मानो वहाँ हल हो रहे हों ॥ ४८ ॥

अपरस्ता च वैदुर्याः कादम्या इव पक्षिणः ।
 मसृग्नाणि चान्यासा चक्रवाका इवाभयन् ॥ ४९ ॥

दूसरी स्त्रियोंके स्तनोंपर नीलमय हार पड़े हैं, जो
 कादम्ब (चलका) नामक पक्षीके समान शोभा पाते हैं
 तथा अन्य स्त्रियोंके उपजोंपर जो सेनेके हार हैं, वे
 चक्रवाक (पुरवाक) नामक पक्षियोंके समान जान
 पड़ते हैं ॥ ४९ ॥

इसकारणद्वेषेताश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
 आभगा इव ता रेजुर्जघने पुलिनैरिव ॥ ५० ॥

इस प्रकार वे इस, कारणद्व (चलका) तथा
 चक्रवाकोंके सुशोभित नदियोंके समान शोभा पाती थीं ।
 उनके जनप्रदेश उन नदियोंक तटोंके समान जान
 पड़ते हैं ॥ ५० ॥

किङ्किणीजालसकाशास्ता हेमविपुलाश्रुजा ।
 भावप्राहायशस्तीरा सुता नद्य इवाभयन् ॥ ५१ ॥

वे सोयी हुई सुन्दरियों वहाँ सरिताओंके समान
 सुशोभित होती थीं । किङ्किणियों (घुँघुड़ियों) के समूह
 उनमें मुकुलके समान प्रतीत होते हैं । सेनेके विभिन्न
 आभूषण ही वहाँ बहुसंख्य स्वयम्भूतोंकी शोभा धारण
 करते हैं । भाव (सुत)वस्त्रोंमें भी बाजनावय इनेवाली
 शृङ्गार-वेष्टारों की मानो ग्राह्य हैं तथा यश (कान्ति)
 ही तटके समान जान पड़ते हैं ॥ ५१ ॥

मृदुपङ्क्त्युः कासाचिदुद्रतासु च सन्निभता ।
 यशुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजय ॥ ५२ ॥

किन्ही सुन्दरियोंके कोमल अङ्गोंमें तथा कुचोंके
 अप्रमाणपर उभरी हुई आभूषणोंका सुन्दर रेखाएँ नये
 गहनोंके समान ही शोभा पाती थीं ॥ ५२ ॥

अङ्गुलान्ताश्च कासाचिमुसमावृतकम्पिताः ।
 उपयुपरि चक्रवाणा व्याधूयन्ते पुन पुन ॥ ५३ ॥

किन्हीके मुखपर पड़े हुए उनकी शरीर की साक्षीक
 अश्रु उनकी नासिकाओं निकली हुई लोंछते कम्पित हो
 बारबार हिल रहे हैं ॥ ५३ ॥

ता पताका इन्दुधूता पत्नीना कविरप्रभा ।
 नानाधनसुधर्माणा यशमूलेषु रेजिरे ॥ ५४ ॥

नाना प्रकारके सुन्दर रूप-रंगवाली उन रावणपत्नियोंके

मुखोंपर हिलते हुए वे अश्रु सुन्दर कान्तिवाली पत्नीना
 हुई पताकाओंके समान शोभा पा रहे हैं ॥ ५४ ॥

यशस्युश्चात्र कासाचिदुद्रतासु शुभार्चिषाम् ।
 मुखमावृतकम्पैर्मन्दमन्द च योषिताम् ॥ ५५ ॥

वहाँ किन्ही-किन्ही सुन्दर कान्तिवाली कामिनियोंक
 कानोंके कुण्डल उनके निश्चायजनित कम्पनसे धीरे धीरे
 हिल रहे हैं ॥ ५५ ॥

शार्ङ्गसवगघ स प्रहृत्या सुरभि सुख ।
 तासा वदननिश्वास सिन्धवे रावण तदा ॥ ५६ ॥

उन सुन्दरियोंके मुखसे निकली हुई स्वभावसे ही
 सुगन्धित श्लाघासु शक्तनिर्मित आसवरी मनोहर गन्धसे
 युक्त हो और भी सुन्दर बनकर उस समय रावणकी सेवा
 करती थी ॥ ५६ ॥

रावणाननसाङ्गाश्च काश्चिद् रावणयोषिताः ।
 मुखानि च सपत्नीनामुपाजिघ्रन् पुन पुन ॥ ५७ ॥

रावणकी कितनी ही तरुणी पत्नियों रावणका ही मुख
 समझकर बारबार अपनी सौतोंके ही मुखोंको देख रही थीं ॥ ५७ ॥

अत्यर्थं सकम्पनसो रावणे ता यरक्षिण्यः ।
 अश्वत्था सपत्नीना प्रियमेवाचारस्तदा ॥ ५८ ॥

उन सुन्दरियोंका मन रावणमें अत्यन्त आसक्त था,
 इसलिये वे आसक्ति तथा मदिराके मदसे परवश हो उस
 समय रावणके मुखक भ्रमसे अपनी सौतोंका मुख देखकर
 उनका प्रिय ही करती थीं (अर्थात् वे भी उस समय अपने
 मुख छलन हुए उन सौतोंके मुखोंको रावणका ही मुख
 समझकर उसे देखनेका मुख ठठाती थीं) ॥ ५८ ॥

याह्नुपनिधायान्या पारिहायविभूषितान् ।
 अश्रुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र दिदिपरे ॥ ५९ ॥

अन्य मदमत्त युवतियों अपनी बलयविभूषित मुजाओंका
 ही तकिया लगाकर तथा कोह-कोई सिरके नीचे अपने
 मुखमें बल्लोंको रखकर वहाँ से रही थीं ॥ ५९ ॥

अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्या काश्चित् पुनमुजम् ।
 अपरा त्यङ्गमन्यस्यास्तस्याध्याप्यपरा कुचौ ॥ ६० ॥

एक स्त्री दूसरीकी छातीपर सिर रखकर सोयी थी तो
 कोई दूसरी स्त्री उसकी भी एक बाँहको ही तकिया बनाकर
 सो गयी थी । इसी तरह एक अन्य स्त्री दूसरीकी गोदमें
 सिर रखकर सोयी थी तो कोई दूसरी उसके भी कुचोंका
 ही तकिया लगाकर सो गयी थी ॥ ६० ॥

ऊरुपादर्वकटीपृष्ठमन्यो यस्य समाधिता ।
 परस्परनिविष्टाङ्गयो मदस्नेहयशानुगा ॥ ६१ ॥

इस तरह रावणविषयक स्नेह और मदिराजनित मदक
 यशोभूत हुई वे सुन्दरियों एक दूसरीके ऊरु, पात्रमाग,

तथा पृथमाका सदां ले आपसमें अहोति अह्न
वहाँ बेमुच पड़ी थी ॥ ६१ ॥

यस्याङ्गस्पर्शात् प्रीयमाणा सुमध्यमा।
तमुजा सर्वा सुषुप्तस्तत्र योयितः ॥ ६२ ॥
वे सुन्दर वटिप्रदेशवाली समस्त युवतियाँ एक-
के अङ्गस्पर्शको प्रियतमक। स्पर्श मानकर उससे मन
मन आनन्दका अनुभव करती हुई परस्पर बौह-से बौह
नये हो रही थी ॥ ६२ ॥

योन्यभुजस्त्रेण स्त्रीमाला प्रथिता हि सा।
तलेव प्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तपदपदा ॥ ६३ ॥
एक दूसरीके बाहुल्पी सूत्रमें गुँथी हुई काले-काले
केशोंवाली स्त्रियोंकी वह माला सूत्रमें पिरोयी हुई मत्तवाले
भ्रमरोंसे पुच्छ पुष्पमालाकी भाँति झोमा पा रही थी ॥ ६३ ॥
लताना माधवे मासि कुल्लाना चायुसेयनात्।
अयोयमालाप्रथित ससत्कुसुमोद्यमम् ॥ ६४ ॥
प्रतिवेष्टितसुस्वधमन्योन्यभ्रमराकुलम्।
भासीद् वनमिवोद्धत स्त्रीवन रावणस्य तत् ॥ ६५ ॥

माघवमाव (घसन्त) में मत्स्यानिलके सेजनेसे जैसे
खिली हुई लताओंका वन कम्पित होता रहता है, उसी
प्रकार रावणकी स्त्रियोंका वह समुदाय निःश्वासवायुके
चलनेसे अङ्गलोंके हिलनेके कारण कम्पित होता था जान
पड़ता था। जैसे लताएँ परस्पर शाखाएँ परस्पर छिपट
आनद हो जाती हैं, उनकी सुन्दर शाखाएँ परस्पर छिपट
जाती हैं और इसीलिये उनके पुष्पसमूह भी आपसमें मिले
हुए से प्रतीत होते हैं तथा उनपर बैठे हुए भ्रमर भी
परस्पर मिल जाते हैं, उसी प्रकार वे सुन्दरियों एक-दूसरीसे
मिलकर मालाकी भाँति गुँथ गयी थीं। उनकी मुजाएँ और
कचे परस्पर सटे हुए थे। उनकी वेणोंमें गुँथे हुए फूल भी
आपसमें मिल गये थे तथा उन सबके वेशकलाप भी एक
दूसरेसे जुड़ गये थे ॥ ६४ ६५ ॥

उचितेव्यपि सुव्ययक न तासा योयिता तदा।
विवेक शक्य आधातु भूषणाङ्गभरस्त्रजाम् ॥ ६६ ॥

यद्यपि उन युवतियोंके वज्र, अङ्ग, आभूषण और हार
उचित स्थानोंपर ही प्रतिष्ठित थे, यह बात स्पष्ट दिखायी
दे रही थी, तथापि उन सबके परस्पर गुँथ जानेके कारण
यह विवेक होना असम्भव हो गया था कि कौन वज्र,
आभूषण, अङ्ग भयवा हार किसके हैं ॥ ६६ ॥

रावणे सुप्रासयित्ते ता स्त्रियो विविधप्रभा।
उपलन्तः काञ्चना दीपाग्नेशततो निमिया इव ॥ ६७ ॥
रावणके मुखपूर्वक हो आनेपर यहाँ जलते हुए सुवर्ण

मय प्रदीप उन अनेक प्रकारकी कातिवाली काग्नियोंको
मानो एकटक दृष्टि देख रहे थे ॥ ६७ ॥
राजविधिप्रद्वेत्याना गार्धवाणा च योयितः।
रक्षसा चाभवन् कयास्तन्य कामवशगता ॥ ६८ ॥

राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, दैत्यों, गार्धवों तथा राक्षसोंकी
कयाएँ कामके बन्धीभूत होकर रावणकी पत्नियों बन
गयी थीं ॥ ६८ ॥

युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेन हृताः स्त्रियः।
समन्ता मदनैव मोहिता काञ्चिदागताः ॥ ६९ ॥
उन सब स्त्रियोंका रावणने युद्धकी इच्छासे अपहरण
किया था और कुछ मदमत्त रमणियों कामदेवसे मोहित
होकर स्वयं ही उसकी सेवामें उपस्थित हो गयी थीं ॥ ६९ ॥

न तत्र काञ्चित् प्रमदाः प्रसह्य
वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः।
न खान्यकामपि न खान्यपूर्वा
विना वरार्हा जनकात्मजा तु ॥ ७० ॥

वहाँ ऐसी कोई स्त्रियाँ नहीं थीं, जिन्हें बल-वराक्रमसे
सम्पन्न होनेपर भी रावण उनकी इच्छाके विरुद्ध बलात्कारसे
हर लाया हो। वे सब की-सब उसे अपने अलौकिक गुणसे
ही उपलब्ध हुई थीं। जो श्रेष्ठतम पुरुषोत्तम भीरुमचन्द्रजीके
ही योग्य थीं, उन जनकशिखरी सीताको छोड़कर दूसरी कोई
ऐसी स्त्री वहाँ नहीं थी, जो रावणके विना किसी दूसरी
इच्छा रखनेवाली हो, अथवा त्रिंशका पहले कोई दूसरा
पति रहा हो ॥ ७० ॥

न चाकुलीना न च हीनरूपा
नादक्षिणा नानुपचारयुता।
भार्याभयत् तस्य न हीनस्तथा
न चापिका तस्य न कामनीया ॥ ७१ ॥
रावणकी कोई भार्या ऐसी नहीं थी, जो उत्तम कुलमें
उत्पन्न न हुई हो अथवा जो कुरूप अनुत्तर या कील-
रहित, उत्तम वस्त्राभूषण एवं माला आदिसे वञ्चित,
शक्तिहीन तथा प्रियतमको अप्रिय हो ॥ ७१ ॥

यमूय बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य
यदीदृशी राघवधर्मपत्नी।
इमा महाप्राक्षसराजभावा
सुजातमस्येति हि साधुयुगे ॥ ७२ ॥

उक्त समय भेष्ट बुद्धिवाले वानरराज हनुमान्जी
मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि य महात्मा राघव
रावणकी भायाएँ शिव तरह अपने पतिके साथ रह
मुनी हैं, उसी प्रकार यदि शृणुयस्त्रीकी धर्मपत्नी सीता

भी इहीकी भौति अपने पतिव्रत साथ रहकर सुगन्धा
अनुभूत करती अर्थात् यदि रावण शीघ्र ही उहें
श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कर देता तो यह इष्टके
लिये परम मङ्गलकारी होता ॥ ७२ ॥

पुनश्च सोऽचितयदात्तरूपो
ध्रुव विशिष्टा गुणसो हि सीता ।

इत्यपि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे नवम सर्ग ॥ ९ ॥
इस प्रकार श्रीवाम्नीकिनिमित्त आधारमायण आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डमें नवौ सर्ग पूरा हुआ ॥

दशम सर्ग

हनुमान्जीका अतः पुरमें सोये हुए रावण तथा गाढ़ निद्रामें पड़ी हुई उसकी स्त्रियोंको
देखना तथा मन्दोदरीको सीता समझकर प्रसन्न होना

तत्र दिव्योपम मुख्य रूपाटिक रत्नभूषितम् ।
अवेक्षमाणो हनुमान् ददश शयनासनम् ॥ १ ॥

वहाँ इधर उधर दृष्टिपात करते हुए हनुमान्जीने एक
दिव्य एव भेद वेदी देखी, जिसपर पलग विछाया जाता
था । वह वेदी स्फटिक मणिकी बनी हुई थी और उधमें
अनेक प्रकारके रत्न जड़े गये थे ॥ १ ॥

दान्तकाञ्चनविभ्राङ्गैर्दूर्यैश्च वरासनै ।
महाह्रीस्तरणोपेतैरुपपन्न महाधनै ॥ २ ॥

वहाँ वैदूर्यमणि (नीलम) के बने हुए भेद आसन
(पलग) विछे हुए थे, जिनकी पाटी पाये आदि अङ्ग
हाथी दाँत और धुवर्धसे जटित होनेके कारण चितकबरे
दिखायी देते थे । उन महामूल्यवान् पर्वगोपर बहुमूल्यविछौने
विछाये गये थे । उन सबके कारण उस वेदीकी बड़ी शोभा
हो रही थी ॥ २ ॥

तस्य चैकतमे देदो दिव्यमालोपशोभितम् ।
ददश पाण्डुर छत्र ताराधिपतिसन्निभम् ॥ ३ ॥

उस पलगके एक भागमें उन्होंने चन्द्रमाके समान एक
नैव छत्र देखा, जो दिव्य मालाओंसे सुशोभित था ॥ ३ ॥

जातरूपपरिस्फिप्त चित्रभानो समग्रभम् ।
अशोकमालावितत ददर्श परमासनम् ॥ ४ ॥

वह उत्तम पलग सुगन्धसे जटित होनेके कारण अग्निके
समान देदीप्यमान हो रहा था । हनुमान्जीने उसे अशोक
पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत देखा ॥ ४ ॥

धाल यजनहस्ताभिर्वीज्यमान समन्तत ।
गणैश्च विविधैर्पुष्टं धरधूपेन धूषितम् ॥ ५ ॥

उसके चारों ओर सड़ी हुई बहुतसी स्त्रियों हाथोंमें
धूपकर लिये उठकर हवा कर रही थीं । वह पलग अनेक
प्रकारकी गन्धोंसे सेवित तथा उत्तम धूपसे सुवासित था ॥ ५ ॥

अथायमस्या कृतज्ञान् महात्मा
लङ्केश्वरः कष्टमनार्थकर्म ॥ ७३ ॥

फिर उन्होंने सोचा निम्न ही सीता गुणोंकी दृष्टिसे
इन सबकी अपेक्षा बहुत ही बर्त चत्कर है । इस महाबली
रक्षापतिने मायामय रूप धारण करके सीताको धोखा देकर इनके
प्रति यह अपहरणरूप महान् कष्टप्रद नीच कर्म किया है ॥ ७३ ॥

परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसञ्चतम् ।
दामभिर्वरमाल्याना समतादुपशोभितम् ॥ ६ ॥

उत्तर उत्तमोत्तम विछौने विछे हुए थे । उधमें भेदकी
खाल मदी हुई थी तथा वह सर ओरसे उत्तम फूलोंकी
मालाओंसे सुशोभित था ॥ ६ ॥

तस्मिन्मृतसकाश प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम् ।
लोहिताक्ष महाबाहु महारजतवाससम् ॥ ७ ॥

लोहितेनानुलिताङ्ग चन्दनेन सुगन्धिना ।
सध्यारक्तमिवाकाशे तोयद् सतडिहुणम् ॥ ८ ॥

वृत्तमाभरणैर्दिव्यैः सुरूप कामरूपिणम् ।
सबृक्षयनगुल्मालय प्रसुप्तमिय मन्दरम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मिलोपरत राशौ धराभरणभूषितम् ।
प्रिय राक्षसकन्याना राक्षसाना सुखावहम् ॥ १० ॥

पीत्याप्युपरत चापि ददश स महाकपि ।
भास्वरे शयने वीर प्रसुप्त राक्षसाधिपम् ॥ ११ ॥

उस प्रकाशमान पलगपर महाकपि हनुमान्जीने वीर
राक्षसराज रावणको सोते देखा, जो सुन्दर आभूषणोंसे
विभूषित, हृच्छानुसार रूप धारण करनेवाला दिव्य आभरणों-
से अलंकृत और सुरूपवान् था । वह राक्षस-कन्याओंका
मियतम तथा राक्षसोंको सुख पहुँचानेवाला था । उसके
अङ्गोंमें सुगन्धित लाल चन्दनका अनुलेप लगा हुआ था,
जिसे वह आकाशमें सध्याकालकी रानी तथा दिगुन्लेखासे
सुप्त मेघके समान शोभा पाता था । उसका अप्रकाशित
मेघके समान दयाम थी । उसके कानोंमें उज्ज्वल कुण्डल
झिलझिल रहे थे । आँखें लाल थीं और मुखाँरे बड़ी-बड़ी ।
उसके वस्त्र मुनदरे रंगके थे । वह राक्षस स्त्रियोंके साथ
क्रीड़ा करके मदिरा पीकर आराम कर रहा था । उसे देखकर
देखा जान पड़ता था, मानो वृक्ष, वन और लता-गुन्मोंसे
सम्पन्न मन्दराचल सो रहा हो ॥ ७—११ ॥

निःश्वसत यथा नाग रावण धानरोत्तमः ।

आसाद्य परमोद्धिगः सोपासर्पत् सुभीतवत् ॥ १२ ॥

अधारोद्धणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रित ।

क्षीय राक्षसशादूल प्रेक्षते स्म महाकपि ॥ १३ ॥

उक्त समय सोंस लेता हुआ रावण कुपकारसे हुए सर्पके समान जान पड़ता था । उसके पास पहुँचकर वानर शिरोमणि हनुमान् अत्यन्त उद्धिग हो मलीभाँति खरे हुएकी भाँति सहसा दूर हट गये और सीदियोंपर चक्कर एक दूसरी वेदीपर जाकर खड़े हो गये । वहाँसे उन महावपिने उक्त मतवाले राक्षसशिष्टका देवना आरम्भ किया ॥ १२ १३ ॥

शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपत् शयन शुभम् ।

गन्धहस्तिनि सविष्टे यथा प्रस्रवण महत् ॥ १४ ॥

राक्षसराज रावणके सोते समय वह सुन्दर पलंग उठी प्रकार शोभा पा रहा था, जैसे गन्धहस्तीके शयन करनेपर विशाल प्रस्रवणगिरि सुशोभित हो रहा हो ॥ १४ ॥

काञ्चनाङ्गदसनखौ दृश स महात्मन ।

विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजविष्वध्यजोपमौ ॥ १५ ॥

उन्होंने महाकाय राक्षसराज रावणकी पैलखी हुई दो भुजाएँ देखीं, जो सोनेके काजूदसे विभूषित हो इन्द्रवज्रके समान जान पड़ती थी ॥ १५ ॥

पेरावतयिषाणाग्नैरापीडनकृतमणौ ।

वज्रोल्लिखितपीनासौ विष्णुचक्रपरिक्षितौ ॥ १६ ॥

सुदकालमें उन भुजाओंपर पेरावत हाथीके दोनोंके अग्रभागसे जो प्रहार किये गये थे, उनके आपातका चिह्न बन गया था । उन भुजाओंके मूलभाग या कपे बहुत मोटे थे और उनपर वज्रद्वारा किये गये आघातके भी चिह्न दिखायी देते थे । भगवान् विष्णुके चक्रसे भी किसी समय वे भुजाएँ क्षत विक्षत हो चुकी थी ॥ १६ ॥

पीनौ समसुजातासौ सङ्गतौ बलसयुतौ ।

सुलक्षणनकाङ्क्षौ सङ्कुलीयकलक्षितौ ॥ १७ ॥

वे भुजाएँ सब ओरसे समान और सुन्दर कर्णोवाली तथा मोटी थीं । उनकी सधियों सुन्दर थीं । वे बलिष्ठ और उत्तम लक्षणवाले नखों एव अङ्गुलीसे सुशोभित थीं । उनकी अङ्गुलियों और ध्येयलियों गड़ी सुन्दर दिखायी देती थीं ॥ १७ ॥ सद्यतौ परिधाकारौ वृक्षौ वरिष्ठोपमौ ।

विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशोर्षाधिरोपणौ ॥ १८ ॥

वे सुगठित एव पुष्ट थीं । परिषेके समान गोलाकार तथा हाथीके गुण्डदण्डकी भाँति चत्वार उगारवाली एव लची थीं । उस उत्तम लक्षण परंपर पैली वे सौँहें पाँच पाँच पल वाले दो छोरोंसे समान दृष्टिगोचर होती थीं ॥ १८ ॥

दाशदशतजङ्करेण सुदीप्तेन सुगन्धिना ।

चन्द्रेण परार्धेन स्युल्लिप्ता स्वलङ्घितौ ॥ १९ ॥

खरगोशके रत्नकी भाँति लाल रंगके उत्तम, सुशीतल एवं सुगन्धित चन्दनसे चर्चित हुए वे भुजाएँ अलकारोंसे अलङ्कृत थीं ॥ १९ ॥

उत्तमस्त्रीनिम्बितौ गन्धोत्तमनिपेयितौ ।

यक्षपन्नगगन्धदेवदानधराधिणौ ॥ २० ॥

सुन्दरी युवतियों धीरे धीरे उन यौहोंका दवाती थी । उनपर उत्तम गन्ध द्रव्यका लेप हुआ था । वे यक्ष, नाग, गन्धर्व, देवता और दानव सभीका सुदुर्गन्ध दलाने वाली थीं ॥ २० ॥

ददर्श स कपित्थस्य बाहू शयनसस्थितौ ।

मन्दरस्यातरे सुप्तौ महाहीरुपितायिव ॥ २१ ॥

कपिबर हनुमान्ने पलंगपर पड़ी हुई उन दोनों भुजाओंको देखा । वे मन्दराचलकी गुफा में सोये हुए दो रोपमरे अजगरों के समान जान पड़ती थीं ॥ २१ ॥

साम्या स परिपूर्णाम्यामुभाभ्या राक्षसेश्वर ।

शुशुभेऽचलसकाशा शृङ्गाभ्यामिव मन्दर ॥ २२ ॥

उन बड़ी बड़ी और गोलाकार दो भुजाओंसे युक्त पर्वताकार राक्षसराज रावण दो शिखरोंसे समुक्त मन्दराचलके समान शोभा पा रहा था ॥ २२ ॥

चूतपुनागसुरभिर्वकुलोत्तमसयुतः ।

मृष्टाभ्ररससयुक्तः पानगन्धपुरासर ॥ २३ ॥

तस्य राक्षसराजस्य निष्क्राम महामुखात् ।

शयानस्य विनिश्वासः पूरयन्निव तद्गृहम् ॥ २४ ॥

वहाँ सोये हुए राक्षसराज रावणके विशाल मुखसे आम और नागकेसरकी घुग्घुसे मिश्रित, मोठसिरीके घुघाघसे युवाक्षित और उत्तम अक्षरसे समुक्त तथा मधुपानकी गन्धसे मिली हुई जो सौरभयुक्त सोंस निकल रही थी, वह उस सारे घरको सुगन्धसे परिपूर्ण वा कर देती थी ॥ २३ २४ ॥

सुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजिता ।

मुकुटेनापधुतेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम् ॥ २५ ॥

उसका कुण्डलसे प्रकाशमान मुखारविन्द अपने स्थानसे हटे हुए तथा मुकामणिके दृढित होनेसे कारण विचित्र आभावाले सुवर्णमय मुकुटसे और भी उद्भाषित हो रहा था ॥ २५ ॥

रत्नचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना ।

पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजिता ॥ २६ ॥

● वहाँ शयनागारमें सोये हुए रावणके एक ही मुख और दाहिने बाँहोंका वर्णन जाया है । इससे जान पड़ता है कि वह साधारण स्थितिमें रानी सरह रहता था । सुदृढ भागिके विशेष अवसरोपर ही वह रौप्यलङ्कार दस मुख और बीस भुजाओंसे समुक्त होता था ।

उसकी छाती लाल चन्दनसे चर्चित, हाते मुशमिल,
उम्मी हुद तथा लकी चौकी थी। उसके द्वारा उस राक्षसराजक
सम्पूना शरीरकी बड़ी गोभा हा रही थी ॥ २६ ॥

पाण्डुरेणापनिन्देन क्षौमेण क्षतजेश्मणम् ।
महाहौण सुसरीत पीतेनोत्तराससा ॥ २७ ॥

उसकी ओंखें लाल थीं। उसकी कटिफ नाचका माग
नीलेदाले श्वेत रेद्यमी बन्नेसे दका हुआ था तथा वह पील
रंगकी बहुमूल्य रेद्यमी चादर ओढ़े हुए था ॥ २७ ॥

मापराशिप्रतीकाश निभ्यसन्त मुजङ्गवत् ।
गाह्ने महति तोषाते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥ २८ ॥

वह स्वच्छ स्थानमें रखे हुए उद्धक नरक समान
जान पत्ता था और सत्रक समान सोंल रहा था। उस
उच्चर पलंगपर सेया हुआ शयण गङ्गाकी अगाध जल
राशिमें सोये हुए गजराजके समान दिखायी देता था ॥ २८ ॥

चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमान चतुर्विंशम् ।
प्रकाशीकृतसर्वाङ्ग मेघ विद्युद्गणैरिव ॥ २९ ॥

उसकी चारों दिशाओंमें चार सुवर्णमय दीपक जल रहे
थे, तिनकी प्रभासे वह दीदीप्यमान हो रहा था और उसके
सारे अङ्ग प्रकाशित होकर स्पष्ट दिखाया दे रहे थे। ठीक
उसी तरह, जैसे विद्युद्गणोंसे मेघ प्रकाशित एवं परिलक्षित
होता है ॥ २९ ॥

पादमूङ्गताश्चापि ददश सुमहात्मन ।
पत्नी स प्रियभार्यम्य तस्य रक्ष पतेगृहे ॥ ३० ॥

पतिव्रते प्रसी उस महाकाय राक्षसराजके घरमें हनुमान्
जीने उसकी पत्नियोंको भी देखा, जो उसके चरणोंक आश
पाव ही सा रही थीं ॥ ३० ॥

शशिप्रकाशयदन्ता घरकुण्डलभूषणा ।
अललामाल्याभरणा ददर्श हरिपुष्प ॥ ३१ ॥

बानरभूषणवि हनुमान् ने देखा, उन राक्षसपत्नियोंके
मुख चन्द्रमात्र समान प्रकाशमान थे। वे सुन्दर कुण्डलोंसे
विभूषित थीं तथा ऐसे फूलोंक शर पहने हुए थीं जो कभी
सुरक्षात नहीं थे ॥ ३१ ॥

नृत्यवादित्रकुशला राक्षसेद्रमुजाङ्गना ।
घराभरणधारिण्यो निष्पन्ना ददर्श कपि ॥ ३२ ॥

वे नाचने और बाने वज्रनेमें निपुण थीं, राक्षसरान
राजकी बाँहों और अङ्गमें स्थान पानेवाली थीं तथा सुन्दर
आभूषण धारण किये हुए थीं। कपिल हनुमान्ने उन
सबको वहाँ सेती देखा ॥ ३२ ॥

यज्ञवैत्यगभाणि धरणातपु योषिताम् ।
ददश तापनीयानि कुण्डलायुद्धदानि च ॥ ३३ ॥

उहाँने उन सुन्दरियोंक कानोंक लमीप हारे तथा
नीलम जड़े हुए सानक कुण्डल और बाजूबद दण्ड ॥ ३३ ॥

तासा चन्द्रोपमैरङ्गैः शुभैर्ललितकुण्डलैः ।
धिरराज विमान तन्मस्तारागणैरिव ॥ ३४ ॥

ललित कुण्डलोंसे अलङ्कृत तथा चन्द्रमाके समान
मनोहर उनके सुन्दर मुखोंसे यह विमानाकार पण्डित तारिकाओं
से मण्डित जाकाङ्गी भौति सुशमिल हो रहा था ॥ ३४ ॥

मद्व्यायामविधास्ता राक्षसेद्रस्य योषित ।
तेषु तेष्वधकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमा ॥ ३५ ॥

क्षीण कष्टप्रदेयाली वे राक्षसराजकी स्त्रियाँ मद तथा
रतिक्रीडाके परिणामसे थककर चली तहाँ जा जिन अवस्थामें
थी वैसे ही सो गया थीं ॥ ३५ ॥

अङ्गहारैस्तथैवाया कोमलैर्नृत्यशालिनी ।
विद्यस्तनुभसयाङ्गी प्रसुप्ता धरचर्चिणी ॥ ३६ ॥

विधानसे जिसक सार अङ्गोंको सुन्दर एवं विशेष
शोभासे सज्जन बनाया था, वह कोमल भावमें अङ्गोंके संचालन
(चढ़काने मढ़काने आदि) द्वारा नाचनेवाली कोई अन्य
नृत्यनिपुणा सुन्दरी स्त्री गाद निद्रामें सोकर भी वाचनावश
चापद अवस्थाकी ही भौति नृत्यक अभिनयसे सुशोभित हो
रही थी ॥ ३६ ॥

काचिद् बीणा परिष्वस्य प्रसुप्ता सप्रकाशते ।
महानदीप्रकीर्णव नलिनी पोतमाधिता ॥ ३७ ॥

काह बीणाको छातीसे लगाकर सोयी हुई सुन्दरी ऐसी
जान पड़ती थी, मानो महानदीमें पड़ी हुई काह कमलिनी
किसी नौकासे छट गयी हो ॥ ३७ ॥

अन्या कश्चगतेनैव मनुकेनास्तिनक्षणा ।
प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रवत्सला ॥ ३८ ॥

दूसरी कञ्जर नेत्रोंकाला भामिनी कौलमें दवे हुए
मधुबुक् (लघुवाय विशेष) क साथ ही सो गयी थी। वह
ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कोई पुत्रवत्सला जननी अपने
छोटेसे शिशुको गेदनें लिपे सो रही हो ॥ ३८ ॥

पटह चारुसयाङ्गी भ्यस्य देते शुभस्तनी ।
चिरस्य रमण लब्ध्वा परिष्वज्येय कामिनी ॥ ३९ ॥

कोई सवाहसुन्दरी एवं रुचिर कुञ्जराङ्गी कामिनी
पहलको अपने नीचे रखकर छा रही थी, मानो चिरकालके
पश्चात् प्रियतमकी अपने निकट पाकर कोई प्रदोष उने
हृदयसे ल्याये सो रही हो ॥ ३९ ॥

काचिद् बीणा परिष्वस्य सुप्ता कमललोचना ।
वर प्रियतम गृह सक्रामेय हि कामिनी ॥ ४० ॥

कोई कमललोचना सुवती बणाका आलिंगन करक
सोयी हुई ऐसी जान पड़ती थी, मानो काममावसे युक्त
कामिनी अपने श्रेष्ठ प्रियतमका मुखाश्रमें मग्न हो गयी
हो ॥ ४० ॥

विपश्चीं परिगृह्णाया नियता नृत्यशालिनी ।

निद्रावशमनुप्राप्ता सहकातेष्वभिमिनी ॥ ४१ ॥

नियमपूत्रक नृत्यकलासे सुगोभित हानेवाली एक अन्य युवती विपश्ची (विशेष प्रकारकी वीणा) को अङ्गमें भरकर म्रियतमके साथ सोयी हुई प्रपञ्चीकी भाँति निद्राके अवीन हो गयी थी ॥ ४१ ॥

अथा कनकसकाशैर्मृदुपानैर्मनोरमैः ।

मृदुङ्ग परिविद्धपङ्क्तैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥ ४२ ॥

कोई मतवाले नयनोंवाली दूसरी सुन्दरी अपने प्रवर्ण लहलहा गौर, कोमल, पुष्ट और मनोरम अङ्गोंसे मृदुङ्गको दशाकर गाढ निद्रामें सो गयी थी ॥ ४२ ॥

भुजपाशांतरस्थेन कङ्कणेन वृक्षोदरी ।

पणवेन सहानिद्या सुप्ता भद्रकृतभ्रमा ॥ ४३ ॥

नदीसे घसी हुई कोई वृक्षोदरी अनित्य सुन्दरी रमणी अपने भुजपाशोंक बीचमें स्थित और फाँलमें दबे हुए पणवके साथ ही सो गयी थी ॥ ४३ ॥

डिण्डिम परिगृह्णाया तथैवास्तकडिण्डिमा ।

प्रसुप्ता तरुण वत्समुपगृह्येय भामिनी ॥ ४४ ॥

दूसरी ली डिण्डिमके लेकर उसी तरह उसके लटी हुई सो गयी थी, मानो कोई भामिनी अपने गालक पुत्रको हृदयसे लगाये हुए नींद ले रही हो ॥ ४४ ॥

काचिदाडम्बर नारी भुजसम्भोगपीडितम् ।

कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ॥ ४५ ॥

मदिरान मदसे मोहित हुई कोई कमलनयनी नारी आडम्बर नामक वाद्यको अपनी भुजाओंके आलिङ्गनसे दशाकर प्रगाढ निद्रामें निमग्न हो गयी ॥ ४५ ॥

कलदीपमविद्धयाया प्रसुप्ता भाति भामिनी ।

यस्मिन् पुष्पशयला मालेष परिमार्जिता ॥ ४६ ॥

बाई दूसरी युवती निद्रावश जन्मसे भरी हुई सुपरीको छुटकाकर भीगी अवस्थामें ही बेचुप हो रही थी । उस अवस्थामें वह बल्लभ मृदुमें विभिन्न यणके पुष्पोंकी बनी और कण्ठके छीटसे सींची हुई मालाके समान प्रतीत होती थी ॥ ४६ ॥

पाणिभ्या च कुक्षौ काचिस्तुवणकलशोपमौ ।

उपगृह्णावला सुप्ता निद्रायलपराजिता ॥ ४७ ॥

निद्राके लक्ष्म पराजित हुई कोई अवला सुवर्णमय कलशक समान प्रतीत होनेवाला अपने कुक्षोंको दोनों हाथोंसे दशाकर सो रही थी ॥ ४७ ॥

अम्या कमलपत्राक्षी पूर्णदुसहस्रानना ।

अम्यामालिङ्गय सुधोर्णं प्रसुप्ता मदविह्वला ॥ ४८ ॥

पूर्ण चन्द्रमाक समान मनोहर मुखवाली दूसरी कमल-

हृत्पाद धीमन्वाल्मीकेय आदि काव्य सुन्दरकाण्डे दशमा सर्गः ॥ १ ॥

१म प्रकार धीमन्वाल्मीकेय आदि काव्य सुन्दरकाण्डे दशमा सर्गः ॥ १ ॥

लोचना कामिनी सुन्दर नितम्बवाली किसी अन्य सुन्दरीका आलिङ्गन करके मदसे विह्वल होकर सो गयी थी ॥ ४८ ॥

आतोद्यानि निचित्राणि परिष्वज्य धरस्त्रिय ।

निपीड्य स्वकुक्षैः सुप्ता कामिय कामुकानिव ॥ ४९ ॥

जैसे कामिनियों अपने चाहनेवाले कामुकीको छातीसे लगाकर सोती हैं, उसी प्रकार नितनी ही सुन्दरियों विचित्र विचित्र धार्योंका आलिङ्गन करके उन्हें कुचोंसे दबाये सो गयी थी ॥ ४९ ॥

तासामेकान्तविष्यस्ते शयाना शयने शुभे ।

ददश रूपसम्पन्नामथ ता स कपिः क्षिप्रम् ॥ ५० ॥

उन सबकी शय्याओंसे पृथक् एकान्तमें बिछी हुई सुन्दर शय्यापर सोयी हुई एक रूपती युवतीको बहों इनुमानजीने देखा ॥ ५० ॥

मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम् ।

विभूषयतीमिष्य स्वस्त्रिया भवनेत्तमम् ॥ ५१ ॥

वह मोती और मणियोंत जड़ हुए आभूषणोंसे भली भाँति विभूषित थी और अपनी शोभासे उस उत्तम भवनको विभूषित-सा कर रही थी ॥ ५१ ॥

गौरी कनकवर्णाभामिष्टामन्त पुरेभ्यरीम् ।

कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयाना चारुकपिणीम् ॥ ५२ ॥

स ता दृष्ट्वा महाबाहुभूषिता माकतात्मजः ।

तकयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा ।

हर्षेण महता युक्तो नन्द हरिचूषय ॥ ५३ ॥

वह गोरे रंगकी थी । उसकी भद्रकान्ति सुवर्णक समान दमक रही थी । वह रावणकी म्रियतमा और उसके अन्त पुरकी स्वामिनी थी । उलका नाम मन्दोदरी या । वह अपने फनोहर रूपसे सुगोभित हो रही थी । बहो बहों सो रही थी । इनुमानजीने उसीको देखा । रूप और यौवनकी सम्पत्तिसे युक्त और बल्लभाभूषणोंसे विभूषित मन्दोदरीकी देखकर महाबाहु पवनकुमारने अनुमान किया कि ये ही सीताजी हैं । फिर ता ये वातरूपपति इनुमान महान् रूपसे युक्त हो आनन्दमग्न हो गये ॥ ५२ ५३ ॥

आस्फोटयामास क्षुब्धश्च पुच्छं ननन्द चिम्रिड जगि शगाम ।

स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ निदर्शयन् स्वा प्रहृति कथानाम् ॥ ५४ ॥

व अपनी पूँछको पटकने और घूमने लग । अपनी जानतों जैसी प्रहृलिका प्रदशन करते हुए आनन्दित होने, खेलने और गाने लग, इसर उभर आने-जाने लग । वे कभी तमोपर चर भात और कभी पृथ्वीपर कूद पड़ते थे ॥ ५४ ॥

वह गोरे रंगकी थी । उसकी भद्रकान्ति सुवर्णक समान दमक रही थी । वह रावणकी म्रियतमा और उसके अन्त पुरकी स्वामिनी थी । उलका नाम मन्दोदरी या । वह अपने फनोहर रूपसे सुगोभित हो रही थी । बहो बहों सो रही थी । इनुमानजीने उसीको देखा । रूप और यौवनकी सम्पत्तिसे युक्त और बल्लभाभूषणोंसे विभूषित मन्दोदरीकी देखकर महाबाहु पवनकुमारने अनुमान किया कि ये ही सीताजी हैं । फिर ता ये वातरूपपति इनुमान महान् रूपसे युक्त हो आनन्दमग्न हो गये ॥ ५२ ५३ ॥

वह गोरे रंगकी थी । उसकी भद्रकान्ति सुवर्णक समान दमक रही थी । वह रावणकी म्रियतमा और उसके अन्त पुरकी स्वामिनी थी । उलका नाम मन्दोदरी या । वह अपने फनोहर रूपसे सुगोभित हो रही थी । बहो बहों सो रही थी । इनुमानजीने उसीको देखा । रूप और यौवनकी सम्पत्तिसे युक्त और बल्लभाभूषणोंसे विभूषित मन्दोदरीकी देखकर महाबाहु पवनकुमारने अनुमान किया कि ये ही सीताजी हैं । फिर ता ये वातरूपपति इनुमान महान् रूपसे युक्त हो आनन्दमग्न हो गये ॥ ५२ ५३ ॥

एकादशः सर्गः

वह सीता नहीं है—ऐसा निश्चय होनेपर हनुमान्जीका पुन अन्त पुरमें और उसकी पानभूमिमें सीताका पता लगाना, उनके मनमें धर्मलोपकी आशङ्का और स्वतः उसका निवारण होना

अथधूप च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा ।

अगाम चापरा चि तां सीतां प्रति मद्राकपि ॥ १ ॥

फिर उस समय इस विचारको छोड़कर मद्राकपि हनुमान्जी अपनी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हुए और ये सीताजीके विषयमें दूसरे प्रकारकी चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥

न रामेण विमुक्ता सा स्वप्नुमर्हति भामिनी ।

न भोक्तुं नाप्यलङ्घ्यं न पानमुपसेयितुम् ॥ २ ॥

(उन्होंने सोचा—) 'भामिनी सीता भीरामचन्द्रजैसे निद्रुद्ध गयी हैं । इस दशामें वे न तो सो सकती हैं, न भोजन कर सकती हैं, न मृद्गार एवं अलङ्कार धारण कर सकती हैं, फिर मदिरापानका सेवन तो किसी प्रकार भी नहीं कर सकती ॥ २ ॥

नान्य नमुपस्थातु सुराणामपि बोध्वरम् ।

न हि रामसमं कश्चिद् विद्यते त्रिदशेष्यपि ॥ ३ ॥

'वे किसी दूसरे पुरुषक पास, वह देवताओंका भी इश्वर क्यों न हो, नहीं जा सकती । देवताओंमें भी कोई ऐसा नहीं है जो भीरामचन्द्रजीकी समानता कर सके ॥ ३ ॥

अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार स ।

पानभूमौ हरिभ्रेष्ठ सीतासदृशानोरमुक् ॥ ४ ॥

'अतः अवश्य ही यह सीता नहीं, कोई दूसरी स्त्री है ।' ऐसा निश्चय करके वे कपिभ्रेष्ठ सीताजीके दानिके लिये उत्सुक हो पुन वहाँकी मधुशालामें विचरने लगे ॥ ४ ॥

क्रीडितेनापरा ह्यान्ता गीतेन च तथापरा ।

मृत्येन चापरा ह्यान्ता पानत्रिप्रहतास्तथा ॥ ५ ॥

वहाँ कोई जियोँ क्रीड़ा करनेसे यकी हुई थी तो कोई गीत गानेसे । दूसरी श्राव्य करके थक गयी थी और कितनी ही जियोँ अधिक मद्यपान करनेसे अचेत हो रही थी ॥ ५ ॥

सुरजेषु मृदङ्गेषु चेलिकासु च सस्थिता ।

तथाऽऽस्तरणमुत्प्रेषु समिधाश्चापरा स्त्रिय ॥ ६ ॥

बहुत-सी जियोँ ढोल, मृदङ्ग और चेलिका नामक वायोंपर अपने अङ्गोंको टैककर सो गयी थी तथा दूसरी महिलाएँ अच्छे अच्छे बिछौनोंपर सोयी हुई थी ॥ ६ ॥

अङ्गनाना सहस्रेण भूयितेन विभूषणैः ।

रूपसलापशालेन युक्तीताद्यभाषिणा ॥ ७ ॥

देशकालाभियुक्तेन युक्तापास्याभिधायिना ।

रताधिकेन सयुक्ता ददर्श हरियूथप ॥ ८ ॥

वानरयूथपति हनुमान्जीने उस पानभूमिमें ऐसी सहस्रों रमयियोंसे सयुक्त देखा, जो भौति भौतिके आभूषणोंसे विभूषित, रूप-लवण्यकी चचा करनेवाली, गीतके समुचित अभिप्रायको अपनी वाणीद्वारा प्रकट करनेवाली, देव और कालके समझनेवाली, उचित बात बोलनेवाली और रति-क्रीडामें अधिक भाग लेनेवाली थी ॥ ७ ॥

अन्यत्रापि वरस्त्रीणा रूपसलापशायिनाम् ।

सहस्र युवतीनां तु प्रसुप्त स ददर्श ॥ ९ ॥

दूसरे स्थानपर भी उन्होंने ऐसी सहस्रों सुन्दरी युवतियों को सोते देखा, जो आपसमें रूप-वैन्दव्यकी चचा करती हुई लेट रही थी ॥ ९ ॥

देशकालाभियुक्तं तु युक्तापास्याभिधायितम् ।

रताविरतसंस्तुतं ददर्श हरियूथप ॥ १० ॥

वानरयूथपति पवनकुमारने ऐसी बहुत-सी जियोँको देखा, जो देश-कालको जाननेवाली, उचित बात कहनेवाली तथा रति-क्रीडाके पश्चात् गाढ़ निद्रामें सोयी हुई थी ॥ १० ॥

तासां मध्ये मद्रायाहु शुशुभे राक्षसेश्वर ।

गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृष ॥ ११ ॥

उन सबक बीचमें महाबाहु राक्षसराज रावण विशाल गोशालामें भेद-गोओंके बीच-बीचमें सोये हुए साँड़की भाँति घामा पा रहा था ॥ ११ ॥

स राक्षसेन्द्र शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम् ।

करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विप ॥ १२ ॥

जैसे वनमें हाथियोंसे घिर हुआ कोई महान् गजराज सो रहा हो, वही प्रकार उस भवनमें उन सुन्दरियोंसे घिरा हुआ स्वयं राक्षसराज रावण सुशोभित हो रहा था ॥ १२ ॥

सर्वकामैरुपेता च पानभूमिं महामनः ।

ददर्श कपिशालूस्तस्य रक्षपतेर्युधैः ॥ १३ ॥

शृगाणां मद्विपाणां च घराहाणां च भागशः ।

तत्र यस्तानि मासानि पानभूमौ ददर्श स ॥ १४ ॥

उस महाकाय राक्षसराजके भवनमें कपिभ्रेष्ठ हनुमान्ने यह पानभूमि देखी, जो सम्पूर्ण मनोवामिष्ठ भोगोंसे सम्पन्न थी । उस मधुशालामें अलग-अलग मुँगाँ, भैंसों और सूअरोंके मांस रखा गये थे, जिन्हें हनुमान्जीने देखा ॥

रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेभ्यश्च्यभितान् ।

ददर्श कपिशालूने मयूरान् कुक्कुटास्तथा ॥ १५ ॥

धराहवाधोणसकान् धधिसौवर्चलायुतान् ।

शल्यान् मृगमयूराश्च हनुमानववैशत ॥ १६ ॥

वानरविह हनुमान्ने वहाँ सोनेके बड़े-बड़े पाषाणों मोर, मृगों, सूअर, गेंडा, साही, हरिण तथा मयूरोंके मांस देखे, जो दही और नमक मिलाकर रखे गये थे । वे अभी खाये नहीं गये थे ॥ १५-१६ ॥

कुकलान् विविधाद्दलागाञ्छशकानर्धभक्षितान् ।

महिषानेकशल्याश्च मेपाश्च कृतमिष्टितान् ॥ १७ ॥

लेह्यानुष्ठावचान् पेयान् भोज्यायुष्ठावचानि च ।

तथाश्लक्ष्णोत्तसैर्विविधै रागव्याण्डवै ॥ १८ ॥

कुकल नामक पक्षी, भोंति भोंतिके बकरे, खरगोश, आधे खाये हुए भैंसे एकशल्या नामक मत्स्य और भेड़े— ये सबके सब राँध पकाकर रखे हुए थे । इनके साथ अनेक प्रकारकी चटनियों भी थीं । भोंति भोंतिके पेय तथा मत्स्य पदार्थ भी विद्यमान थे । जीभकी चिथिलता दूर करनेके लिये खटाह और नमकके साथ भोंति भोंतिके राग और खाण्डव भी रखे गये थे ॥ १७-१८ ॥

महान्पुष्करैर्युरैर्यजिह्वैर्महाधनै ।

पानभाजनविक्षिप्तै फलैश्च विविधैरपि ॥ १९ ॥

कृतपुष्पोपहारा भूरधिका पुष्पति भियम् ।

बहुमूल्य बड़े-बड़े नूपुर और बाण्डव जहाँ-तहाँ पड़े हुए थे । मद्यपानके पात्र इधर-उधर छुटकाये हुए थे । भोंति भोंतिके फल भी बिखरे पड़े थे । इन सबसे उपलब्ध होनेवाली वह पानभूमि, जिसे फूलोंसे सजाया गया था, अधिक शोभाका पोषण एव सबधन कर रही थी ॥ १९ ॥

तत्र तत्र च विरयस्तैः सुष्ठिष्ठशयनासनै ॥ २० ॥

पानभूमिर्विना वडिं प्रदीप्तेषोपलक्ष्यते ।

यत्र-तत्र रखी हुई सुदृढ़ शय्याओं और सुन्दर स्वप्नमय विहासनोंसे सुशोभित होनेवाली वह मधुशाला पेसी जगमगा रही थी कि बिना आगके ही बलती हुई-सी दिखायी देती थी ॥ २० ॥

बहुप्रकारैर्विविधैरसस्कारसंस्त्रुतैः ॥ २१ ॥

मासैः कुशलसयुक्तै पानभूमिगतै पृथक् ।

दिव्या प्रसन्नाविविधाः सुरा हस्तसुरा अपि ॥ २२ ॥

१ अंगूर और अनारके रसमें मिश्री और मधु आदि मिश्रितसे वा मधुर रस तैयार होता है वह फलवा होता राग कल्लावा है और गाढ़ा हाँ गाढ़ा तो 'खाण्डव' नाम धारण करता है ।

मेवा कि कहा है—

मिगानवादिमधुरो द्राघाशक्तिमया रस ।

विरलपच क्लो राग सन्दरभेय खाण्डव रस्य ॥

शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलास्तथा ।

वासचूर्णैश्च निविधैर्मृष्टास्तैस्तै पृथक्पृथक् ॥ २३ ॥

अच्छी छाँक बघारसे तैयार किये गये नाना प्रकारके विविध मास चतुर रसोद्भवाँद्वारा बनाय गये थे और उस पानभूमिमें पृथक्-पृथक् सजाकर रखे गये थे । उनके साथ ही स्वच्छ दिव्य सुराएँ (जो कदम्ब आदि वृक्षोंसे स्वत उत्पन्न हुई थीं) और कृत्रिम सुराएँ (जिन्हें शराब बनानेवाले लोग तैयार करते हैं) भी वहाँ रखी गयी थीं । उनमें शर्करासर्व, मौध्वीक, पुष्पौखव और फलासर्व भी थे । इन सबको नाना प्रकारके सुगन्धित चूर्णोंसे पृथक्-पृथक् बाँधित किया गया था ॥ २१-२३ ॥

सतता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितै ।

हिरण्यमयैश्च कलशैर्भाजनै स्फाटिकैरपि ॥ २४ ॥

जाम्बूनदमयैश्चान्यै करकैरभिसंवृता ।

वहाँ अनेक स्थानोंपर रखे हुए नाना प्रकारके फूलों, सुवर्णमय कलशों, स्फटिकमणिके पात्रों तथा जाम्बूनदके बने हुए अन्यान्य कमण्डलुओंसे—पास हुई वह पानभूमि बड़ी शोभा पा रही थी ॥ २४ ॥

राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ॥ २५ ॥

पानश्रेष्ठा तथा भूमि कपित्थस्तत्र वृक्षः ॥

चौदी और सोनेके बर्तनों, जहाँ श्रेष्ठ पेय पदार्थ रखे थे, उस पानभूमिको कपित्थ हनुमान्जीने वहाँ अच्छी तरह घूम घूमकर देखा ॥ २५ ॥

सोऽपश्यच्छातकुम्भानिस्तीर्थोर्मणिमयानि च ॥ २६ ॥

तानि तानि च पूषानि भाजनानि महाकपिः ।

महाकपि पवनकुमारने देखा, वहाँ मदिरासे भरे हुए सोने और मणियोंके भिन्न भिन्न पात्र रखे गये हैं ॥ २६ ॥

कविद्वर्धायशेषाणि कचित् पीतान्यशेषत ॥ २७ ॥

कचिन्मैव प्रपीतानि पानानि स दृश ह ।

किसी बड़ेमें आधी मदिरा शेष थी तो किसी बड़ेकी सारी-की-सारी पी ली गयी थी तथा किन्हीं किन्हीं बर्तनोंमें रखे हुए मद्य सबका पीये नहीं गये थे । हनुमान्जीने उन सबको देखा ॥ २७ ॥

कचिद्भक्ष्याश्चविविधान्कचित्पानानि भागश्च ॥ २८ ॥

कचिद्विधावशेषाणि पश्यन् धै विचचार ह ।

कहीं नाना प्रकारक मत्स्य पदार्थ और कहीं पीनेकी वस्तुएँ अलग-अलग रखी गयी थीं और कहीं उनमेंसे

१ शर्करासे तैयार की हुई सुरा शर्करामय कहलाती है ।

२ मधुसे बनायी हुई मदिरा । ३ मधुकाके फूलसे तथा अन्यान्य वृक्षोंके मकरन्दसे बनायी हुई सुराको पुष्पासव कहते हैं । ४ द्राघा आदि फलोंके रससे तैयार की हुई सुरा ।

आधी आधी सामग्री ही यची थी । उन सबको देखते हुए
वे वहाँ सबत्र विचरने लगे ॥ २८२ ॥

शयनायत्र नारीणा शून्यानि बहुधा पुन ।
परस्पर समाश्लिष्य काश्चित् सृताधराङ्गना ॥ २९ ॥

उस अन्त पुरमें जियोंकी बहुत-सी गुप्ताएँ सूती पड़ी
यों और कितनी ही सुन्दरियों एक ही अगह एक-दूसरीका
आच्छिन्न किये सो रही थीं ॥ २९ ॥

काचिश्च वस्त्रमयस्या अपहृत्योपगुह्य च ।
वपगन्यावला मुता निद्रायलपराजिता ॥ ३० ॥

निद्राके बलसे पराजित हुईं कोई अबला दूसरी स्त्रीका
वस्त्र उतारकर उसे धारण किये उसके पास या उसीका
आच्छिन्न करके सो गयी थीं ॥ ३० ॥

तासामुच्छ्वासावतेन वस्त्र माल्य च गात्रजम् ।
नात्यर्थं स्पन्दते चित्र प्राप्य मन्दमिषानिलम् ॥ ३१ ॥

उनकी सौंझी हवासे उनके शरीरके विविध प्रकारके
वस्त्र और पुष्पमाला आदि बहुराँ उठा तरह धीरे धीरे
हिल रही थीं, वेने चोमी चोमी वायुके चञ्चलसे हिला
करती हैं ॥ ३१ ॥

चन्दनस्य च शीतस्य सीधोर्मधुरसस्य च ।
विविधस्य च माल्यस्य पुष्पस्य विविधस्य च ॥ ३२ ॥

बहुधा मारुतस्तस्य गन्ध विविधमुद्रहन् ।
ओमाना चन्दनानाश्च धूपाना चैव मूर्च्छित ॥ ३३ ॥

प्रवधौ सुरभिगन्धो विमाने पुष्पके तदा ।

उस समय पुष्पकविमानमें शातल चन्दन, मधु,
मधुरस, विविध प्रकारकी माला, मौन मौनिके पुष्प, लान
सामग्री, चन्दन और धूपकी अनेक प्रकारकी गन्धका भार
बढ़न करती हुई सुगन्धित वायुसब और प्रवाहित हो रही थी ॥

द्वयामावदातास्तत्रान्याः काश्चित् कृष्णा धराङ्गना । ३४ ।
काश्चित् काञ्चनरर्णाङ्गयाः प्रमदा राक्षसालये ।

उस राक्षसराजके भवनमें कोई सौवली, कोई गोरी,
कोई कांठी और कोई सुवर्णके समान अन्तवाली सुन्दरी
युवतियाँ सो रही थीं ॥ ३४ ॥

तासा निद्रावशतयाश्च मन्देन विमूर्च्छितम् ॥ ३५ ॥
पञ्चिनीना प्रसुतासा रूपमासीद् ययैव हि ।

निद्राके वशमें होनेके कारण उनका क्रममोहित रूप
मुँदे हुए मुखवाले कमलपुष्पोंके समान बान पत्ता या ॥

एव सर्वमशेषेण रावणान्तपुर कपि ।
ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार महातेजस्वी कपिवर हनुमान्ने रावणका
सरा अन्त पुर छान डाला तो भी वहाँ उई जनकनन्दिनी
सीताका दशन नहीं हुआ ॥ ३६ ॥

निरीक्षमाणश्च ततस्ता स्त्रिय स महाकपि ।
जगाम महर्तो शङ्का धर्मसाध्वसशङ्कित ॥ ३७ ॥

उन सोती हुई स्त्रियोंको देखते देखते महाकपि
हनुमान् धमक मयसे शङ्कित हो उठ । उनके हृदयमें यहाँ
भारी सँदे उपलित हो गया ॥ ३७ ॥

परदारावरोधस्य प्रसुतस्य निरीक्षणम् ।
इव खलु ममात्यर्थं धर्मलोप करिष्यति ॥ ३८ ॥

वे सोचने लगे कि इस तरह गात्र निद्रामें सोयी हुईं
परायी स्त्रियोंको देखना अच्छा नहीं है । यह तो मेरे धमका
अत्यन्त विनाश कर डालेगा ॥ ३८ ॥

न हि मे परदाराणा दृष्टिर्विषयमर्तिनी ।
अय चात्र मया दृष्ट परदारपरिग्रहः ॥ ३९ ॥

मेरी दृष्टि अवतक कभी परायी स्त्रियोंपर नहीं पड़ी
थी । यहाँ आनेपर मुझे परायी स्त्रियोंका अपहरण करनेवाले
इस पापी रावणका भी दशन हुआ है (ऐसे पापीको
देखना भी धमका लोप करनेवाला होता है) ॥ ३९ ॥

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरनया मनस्विन ।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥ ४० ॥

तदनन्तर मनस्वी हनुमान्जीके मनमें एक-दूसरी
विचार धारा उत्पन्न हुई । उनका चित्त अपने लक्ष्यमें
सुखिर या अत यह नयी विचारधारा उई अपने
कतप्यका ही निश्चय करानेवाली थी ॥ ४० ॥

काम दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणक्षिय ।
न तु मे मनस्ता किंचिद् वैहृत्यमुपपद्यते ॥ ४१ ॥

(वे सोचने लगे—) इसमें खदेह नहीं कि रावणकी
स्त्रियों नि शङ्क सो रही थीं और उसी अवस्थामें मैंने उन
सबको अच्छी तरह देखा है, तथापि मेरे मनमें कोई विकार
नहीं उत्पन्न हुआ है ॥ ४१ ॥

मनो हि हेतु सर्वेषामिन्द्रियाणा प्रवर्तने ।
शुभाशुभाभ्यवस्थासु तत्र मे सुस्थयस्थितम् ॥ ४२ ॥

धर्मपूज इन्द्रियोंको शुभ और अशुभ अवस्थाओंमें
लगनेकी प्रेरणा देनेमें मन ही कारण है, किन्तु मेरा वह
मन पूजित स्थिर है (उसका कहीं राग या द्वेष नहीं है
इसलिये मेरा यह एकाग्र-दशन धमका लोप करनेवाला नहीं
हो सकता) ॥ ४२ ॥

नायत्र हि मया शक्त्या वैदही परिमार्गितम् ।
स्त्रियो हि स्त्रीषु हृदयन्ते सदा सम्परिमाणे ॥ ४३ ॥

विदेहनन्दिनी कीताको दूसरी जगह ईँ दृष्ट भी तो
नहीं सकता था क्योंकि स्त्रियोंको ईँलते समय उई स्त्रियोंके
ही बीचमें देता जाना है ॥ ४३ ॥

यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्या तत् परिमार्गते ।
न शक्त्य प्रमदा नष्टा मृगाणु परिमार्गितम् ॥ ४४ ॥

‘मित्र जीवकी खो जाती होती है, उधरमें उसे खोजा जाता है। खोयी हुई युवकी खोकी हरिनियोंक बीचमें नहीं हँदा जा सकता है ॥ ४४ ॥

तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।
रावणान्तं पुर सर्वं दृश्यते न च जानकीम् ॥ ४५ ॥

‘अतः मैंने रावणके इस सारे अन्त पुरमें शुद्ध हृदयसे ही ऋग्वेद किया है किन्तु यहाँ जानकीजी नहीं दिखायी देती हैं’ ॥ ४५ ॥

वेद्यगन्धर्वकन्याश्च नागकयाश्च धीर्यधान् ।
अवेक्षमाणो हनुमान् नैयापदयत जानकीम् ॥ ४६ ॥

अतः पुरका निरीक्षण करते हुए पराक्रमी हनुमान्ने

हृत्पार्थे श्रीमद्रामायणे वाष्मकीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे एकादश सर्ग ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीद्वाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डमें स्यादहर्षां सर्ग पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादश सर्ग

सीताके मरणकी आशङ्कासे हनुमान्जीका शिथिल होना, फिर उत्साहका आश्रय लेकर अन्य स्थानोंमें उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगनेसे पुनः उनका चिन्तित होना

स तस्य मन्ये भवनस्य सस्थितो
लतागृहाक्षिप्रगृहान् निशागृहान् ।

जगाम सीता प्रतिदर्शानोत्सुको
न चैव ता पश्यति चारुदर्शनाम् ॥ १ ॥

उस राजभवनके भीतर स्थित हुए हनुमान्जी सीतानीचे दर्शनके लिये उत्सुक हो क्रमशः लता-मण्डपोंमें, चित्र शालाओंमें तथा रात्रिकालिक विश्राम-गृहोंमें गये; परन्तु वहाँ भी उन्हें परम सुन्दरी सीताका दर्शन नहीं हुआ ॥ १ ॥

स चिन्तयामास ततो महाकपि
प्रियामपश्यन् रघुनन्दनस्य ताम् ।

ध्रुव न सीता प्रियते यथा न मे
विचिन्तयतो दशममेति मैथिली ॥ २ ॥

रघुनन्दन श्रीरामकी प्रियतमा सीता अब वहाँ भी दिखायी न दी, तब ये महाकपि हनुमान् इस प्रकार चिन्ता करने लगे—‘निश्चय ही अब मिथिलेश्वरजीवारी सीता जीवित नहीं हैं इलीजिये बहुत खोजनेपर भी ये मर दृष्टिपथम नहीं आ रही हैं ॥ २ ॥

सा राक्षसानां प्रद्वारेण जानकी
स्यशीलसरक्षणतत्परः सती ।

अनेन नूनं प्रति दुष्टकमणा
हता भयेदार्पणे परे स्थिता ॥ ३ ॥

‘स्त्री-वाची सीता उत्तम आर्यमार्गपर स्थित रहनेवाली थी। ये अनेन शील और सदाचारकी रणामें तत्पर रही हैं

देवताओं, गणवों और नागोंकी कथाओंको वहाँ देखा, किन्तु जनकनन्दिनी सीताकी नहीं देखा ॥ ४६ ॥

तामपश्यन् कपिस्तत्र पश्यन्नान्या वरस्त्रियः ।
अपक्रम्य तदा धीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ ४७ ॥

दूसरी सुन्दरियोंको देखते हुए धीर वानर हनुमान्ने जब वहाँ सीताको नहीं देखा, तब वे वहाँसे हटकर अन्यत्र जानेको उद्यत हुए ॥ ४७ ॥

स भूय सर्वतः श्रीमान् मादतिर्यङ्गमाश्रित ।
आपामभूमिमुत्सृज्य ता विचेतुं प्रचक्रमे ॥ ४८ ॥

फिर तो श्रीमान् पवनकुमारने उस पानभूमिको छोड़कर अन्य सब स्थानोंमें उन्हें ढूँढ़े पतङ्गा आश्रय लेकर खोजना आरम्भ किया ॥ ४८ ॥

इच्छिये निश्चय ही इस दुराचारी राक्षसराजने उन्हें मार डाला होगा ॥ ३ ॥

विरूपरूपा विरुवा वियचसो
महानना दीर्घनिरुपदर्शना ।
समीक्ष्य ता राक्षसराजपोषितो
भयाद् विनष्टा जनकेभ्यः प्रमजा ॥ ४ ॥

‘राक्षसराज रावणके यहाँ जो दायकर्म करनेवाली राक्षसियों हैं उनके रूप बड़े यबोल हैं। वे बड़ी विकट और विकराल हैं। उनकी कान्ति भी मयकर है। उनके मुँह विशाल और ओंखें भी बड़ी बड़ी एवं भयानक हैं। उन सबको देखकर जनकराजनन्दिनीने भयके मारे प्राण त्याग दिये होंगे ॥ ४ ॥

सीतामदष्टा हानवाप्य पौरुष
विहृत्य कालं सह दानरैश्चिरम् ।
न मेऽस्ति सुप्रोत्सर्गमया गतिः
सुतीक्ष्णदण्डो यत्वाद्य दानरः ॥ ५ ॥

‘सीताका दर्शन न होनेसे मुझे अपने पुरुषार्थ फल नहीं प्राप्त हो सका। इधर दानरोंके साथ सुदीर्घकालतक इधर उधर भ्रमण करके मैंने जौनैकी अगति भी बिता दी है अब अब मेरा सुभीके का पथ जानेका भी मार्ग बंद हो गया क्योंकि यह दानर बड़ा यत्नवान् और अत्यन्त कटार दण्ड देनेवाला है ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा तं पुर सर्वं दृष्ट्वा रावणपोषित ।

न मीता दृश्यते साध्वी वृत्ता जातो मम भ्रमः ॥ ६ ॥

मैंने रावणका हारा अन्त पुर छान डाला, एक-एक करक रावणकी समस्त खिचोंको भी देख लिया, किंतु अभी तक साध्वा सीताका दर्शन नहीं हुआ अतः मेरा समुद्रलहन का हारा परिभ्रम व्यर्थ हो गया ॥ ६ ॥

किं नु मा वानरा सर्वे गत वक्ष्यन्ति सगताः ।

गत्या तथ त्वया धीर किं हृत तद् वदस्व नः ॥ ७ ॥

‘जब मैं लौटकर आऊँगा, तब सारे वानर मिलकर मुझसे क्या कहेंगे, वे पूछेंगे धीर ! वहाँ जाकर तुमने क्या किया है—मह मुझे बताओ ॥ ७ ॥

अहं ह्यु किं प्रवक्ष्यामि सामह जनकामजाम् ।

शुभ प्रायमुपासिष्ये कालस्य स्थितिपतने ॥ ८ ॥

‘किंतु जनकनन्दिनी सीताका न देखकर मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा । मुझीके निश्चित किये हुए समयका उल्लङ्घन कर देनेपर अब मैं निश्चय ही आभरण उपवास करूँगा ॥ ८ ॥

किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जान्म्ययानद्भक्ष सः ।

गत पार समुद्रस्य यानगच्छ समागताः ॥ ९ ॥

‘यह-वृद्ध बाणवान् और युवराज अङ्गद मुझसे क्या कहेंगे ! समुद्रके पार जानेपर अन्य वानर भी अब मुझसे मिलेंगे, तब वे क्या कहेंगे ॥ ९ ॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः पर सुखम् ।

मूपस्तत्र विचेष्ट्यामि न यत्र निषय हृतः ॥ १० ॥

(इस प्रकार येड़ी देरतक इलायचे होकर बैकिए सोचने लगे—) ‘इलाय न होकर उलाहकी बनाये रखना ही सम्पत्ति का मूल कारण है । उलाह ही परम सुख का हेतु है अतः मैं पुनः उन स्थानोंमें सीताकी खोज करूँगा, जहाँ अवतक अनुसंधान नहीं किया गया था ॥ १० ॥

अनिर्वेदो हि सतत सवाधेयु प्रवर्तकः ।

करोति सफल जन्तो कर्म यत्र करोति सः ॥ ११ ॥

‘उलाह ही प्राणियोंको सदा सब प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त करता है और वही उन्हें व वा कुल करते हैं उस कर्ममें सफलता प्रदान करता है ॥ ११ ॥

तस्मादनिर्वेदकर यत्न चेष्टेऽहमुत्तमम् ।

अहं ह्यु किं प्रवक्ष्यामि तेऽनन्तराजणपालितान् ॥ १२ ॥

इसलिये अब मैं और भी उत्तम एव उलाहयुद्धक प्रयत्नके लिये चेष्टा करूँगा । वहाँके द्वारा मुझपर जिन स्थानों को अवतक नहीं देखा था, उनमें भी पता लगाऊँगा ॥ १२ ॥

वापानशाला विचितालया पुष्पगृहाणि च ।

चित्रशालाश्च विचिता भूय श्रीशालागृहाणि च ॥ १३ ॥

निष्कुडान्तररण्याश्च विषणानि च सपदाः ।

इति सचित्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥

‘वापानशाला, पुष्पगृहा, विचितालया, श्रीशाला, गृहे यानकी गलियों और पुष्पक आदि विमान—इन सबका ता मैंने चप्पा चप्पा देख डाला (अब अन्यत्र खोज करूँगा) ॥ १३ ॥

भूमीगृहाश्चैत्यगृहान् गृहातिगृहकानपि ।

उत्पतन्निपतश्चापि तिष्ठन् गच्छन् पुनः क्वचित् ॥ १४ ॥

वे भूमिके भीतर बने हुए घरों (तहखानों) में, चौपहोंपर बने हुए मण्डपोंमें तथा घरोंका लौकर उनसे बाड़ी ही दूरपर बने हुए विलास भवनमें सीताकी खोज करने लगा । वे किसी घरके ऊपर चढ़ जाते, किसीसे नीचे नुद पड़ते, वहाँ ठहर जाते और किसीका चढते चढते ही देख लेते थे ॥ १४ ॥

अपधृष्यश्च द्वाराणि कपाटान्यवघट्टयन् ।

प्रविशन् निपतश्चापि प्रपतन्मुत्पतन्निव ॥ १५ ॥

घरोंके दरवाजोंको खोल देते, वहाँ किवाड़े भिड़का देते, किसीके भीतर घुसकर देखते और फिर निकल आते थे । वे गिरते-पड़ते और उठनत हुए-से सदा खोज करने लगे ॥ १५ ॥

सवमप्यवकाश स विचचार महाकपिः ।

चतुरङ्गुलमात्रेऽपि नावकाश स विद्यते ।

रावणान्तःपुरे तस्मिन् य कपिर्न जगाम सः ॥ १६ ॥

उन महाकपिने वहाँके सभी स्थानोंमें विचरण किया । वहाँके अन्त पुरमें कोर चार अङ्गुलका भी ऐसा स्थान नहीं रह गया, जहाँ कविर हनुमान्जी न पहुँचे हों ॥ १६ ॥

प्राकारान्तरबीध्यश्च वेदिकाश्चैत्यसभयाः ।

श्वभ्राश्च पुष्परिण्याश्च सर्वे तेनावलोकिनम् ॥ १७ ॥

उन्होंने परकोटेके भीतरकी गलियों, चौपहोंके बूझोंके नीचे बनी हुई वेदियों गद्दों और पेलरियों—सबको छान डाला ॥ १७ ॥

पक्षस्यो विविधाकारा विरूपा निहतास्तथा ।

इष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकामता ॥ १८ ॥

हनुमान्जीने आह-वगैह नाना प्रकारके आकारवाली, कुरूप और विचित्र राक्षसियों देखीं, किंतु वहाँ उन्हें जनकी का दर्शन नहीं हुआ ॥ १८ ॥

रूपेणाप्रतिमा लोके परा विद्याधरस्त्रियः ।

इष्टा हनुमता तत्र न तु राधयनदिनी ॥ २० ॥

संसारमें जिनके रूप-मौन्दपद्मी वहाँ ब्रह्मा नहीं थी ऐसी बहुतसी विद्याधरियों का हनुमान्जीका हृदय आदी परतु वहाँ उन्हें धरयुनाथजीका आनन्द प्रदान करनेवाली सीता नहीं दिखायी दी ॥ २० ॥

नागकेश यतोरोहा पूनचन्द्रनिभानना ।

दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥ २१ ॥

हनुमान्जीने सुन्दर नितम्ब और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली बहुत सी नागकन्याएँ भी वहाँ देखीं, किंतु जनककिशोरीका उन्हें दृष्टान नहीं हुआ ॥ २१ ॥

प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या घलाद्धता ।

दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनिदिनी ॥ २२ ॥

राक्षसराजके द्वारा नागसेनाको मथकर गलाकरसे हरकर लायी हुई नागकन्याओंका तो पवनकुमारने वहाँ देखा, किंतु जानकीजी उन्हें दृष्टिगोचर नहीं हुई ॥ २२ ॥

सोऽपश्यस्ता महाबाहु पश्यन्नान्या वरत्रिय ।

विपस्ताद् महाबाहुर्हनुमान् मारुतात्मज ॥ २३ ॥

महाबाहु पवनकुमार हनुमान्को दूसरी बहुत-सी सुन्दरियों

हृत्पार्थे श्रीमद्भारमार्णे वाकमीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वावशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित भारमार्णव आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्ग

सीताजीके नाशकी आशङ्कसे हनुमान्जीकी चिन्ता, श्रीरामको सीताके न मिलनेकी सूचना देनेसे अनर्थकी सम्भावना दंस हनुमान्जीका न लौटनेका निश्चय करके पुनः खोजनेका विचार करना और अशोकवाटिकामें दूँदनेके विषयमें तरह-तरहकी बातें सोचना

विमानात् तु स सकम्प प्राकार हरियूथप ।

हनुमान् वेगशानासीद् यथा विबुद् घनातरे ॥ १ ॥

वायुयूथपति हनुमान् विमानसे उतरकर महलके पर कोठेपर चढ़ आये । वहाँ आकर वे मेघमालाके अङ्गुमें चमकती हुई बिजलीके समान बड़े वेगसे इधर उधर घूमने लगे ॥ १ ॥

सम्परिक्रम्य हनुमान् रावणस्य निवेशमान् ।

अहङ्गा जानकीं सीतामग्रधीद् घचन कपि ॥ २ ॥

रावणके समीपोंमें एक बार पुन चकर लगाकर जब कपिवर हनुमान्जीने जनकनिदिनी सीताको नहीं देखा, तब वे मन हीमन इस प्रकार कहने लगे— ॥ २ ॥

भूयिष्ठ शोलिता लङ्का रामस्य चरता म्रियम् ।

न हि पश्यामि वैदेहीं सीता सचाद्गदोभनाम् ॥ ३ ॥

मैंने श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये फड़ बार अङ्काको छान डाला, किंतु सचाद्गदवी विदेहनिदिनी सीता मुझे कदा नहीं दिखायी देती है ॥ ३ ॥

पश्यन्तानि तटाकानि सरासि सरितस्तथा ।

० वनमात्रमें विपुलसे उपमासे यह ध्वनि होना है कि रावणका वह परकाटा इन्द्रनीलपत्रिका बना हुआ था और उसपर सुगन्धके समान गीत की आवाजें बहुत-सी विपुलके समान प्रतीत होते थे ।

दिखायी दीं; परंतु सीताजी उनके देखनेमें नहीं आयी । इतलिये वे बहुत दुःखी हो गये ॥ २१ ॥

उद्योग घानरेद्वाणा भुवन सागरस्य च ।

व्यर्थं धौक्ष्यानिलसुतस्थि ता पुनरुपागतः ॥ २४ ॥

उन घानरक्षितोमणि वीरोंके उद्योग और अपनेद्वारा किय गये समुद्रलङ्घनको व्यर्थ हुआ देखकर पवनपुत्र हनुमान् वहाँ पुन बड़ी भारी चिन्तामें पड़ गये ॥ २४ ॥

अवतोर्य विमानाद्य हनुमान् मारुतात्मज ।

चिन्तामुपजगामाद्य शोकोपहतचेतनः ॥ २५ ॥

उस समय वायुनन्दन हनुमान् विमानसे नीचे उतर आये और बड़ी चिन्ता करने लगे । शोकसे उनकी चेतनाशक्ति क्षिपिल हो गयी ॥ २५ ॥

नचोऽनूपयनात्तान्नु दुर्गाश्च घरणीघरा ॥ ४ ॥
लोलितावसुधा सर्वा न च पश्यामि जानकीम् ।

मैंने यहाँके छोटे ताडान, पालर, सरकार, सितारों, नदियों, पानीके आस पासके बगल तथा दुर्गम पहाड़—सब देख डाले । इस नगरके आसपासकी सारी भूमि खोज डाली, किंतु कहीं भी मुझे जानकीजीका दर्शन नहीं हुआ ॥ ४ ॥

इह सम्पातिता सीता रावणस्य निवेशान् ।

आख्याता युधराजेन न च सा दृश्यते न किम् ॥ ५ ॥

युधराज सम्पातिने तो सीताजीको यहाँ रावणक महलमें ही बताया था । फिर भी न जाने क्यों वे यहाँ दिखायी नहीं देती हैं ॥ ५ ॥

किं नु सीताय वैदेही मैथिली जनकात्मजा ।

अपत्तिष्ठेन त्रिशता राघणेन हता यत्नात् ॥ ६ ॥

क्या रावणके द्वारा बलपूर्वक हरकर लायी हुई विदेह कुलादिनी मिथिलाकुमारी जनककुलारी सीता कभी बिना होकर रावणकी सेवामें उपस्थित हो सकती हैं (यह अवश्यवदे) ॥ ६ ॥

क्षिप्रमुत्पततो मग्न्ये सीतामाश्रय रक्षस ।

क्षिप्र्यतो रामयाणानामतरा पतिता भवेत् ॥ ७ ॥

यों तो समझता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीने पाणोंसे भयभीत हो वह राघव जब सीताको लेकर शीघ्रतापूर्वक आकाशमें

उछला है, उस समय कहीं बीचमें ही वे छूटकर गिर पड़ी हैं ॥ ७ ॥

अथवा द्वियमाणायाः पथि सिद्धनिषेधिते ।
मये पतितमार्गया हृदय प्रेक्ष्य सागरम् ॥ ८ ॥

‘अथवा यह भी सम्भव है कि अब आया सीता विद्व सेवित आकाशमार्गमें ले जायी जाती रही हों, उस समय समुद्रको देखकर मयके मारे उनका हृदय ही फटकर नीचे गिर पड़ा हो ॥ ८ ॥

रावणस्योक्त्येनेन भुजाभ्या पीडितेन च ।
तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तजीवितमार्गया ॥ ९ ॥

‘अथवा यह भी मान्य होता है कि रावणके प्रबल बल और उसकी भुजाओंके दृढ़ बलसे पीड़ित होकर विशाल-कोचना आया सीताने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया है ॥ ९ ॥

उपर्युपरि सा नून सागर ममतस्तदा ।
विवेद्यमाना पतिता समुद्रे जनकामञ्जा ॥ १० ॥

‘ऐसा भी हो सकता है कि जिस समय रावण उन्हें समुद्रके ऊपर होकर ला रहा हो, उस समय जनककुमारी सीता छटपटाकर समुद्रमें गिर पड़ी हों। अवश्य ऐसा ही हुआ होगा ॥ १० ॥

आहो धुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमामनः ।
अधधुर्भक्षिता साता रावणेन तपस्विनी ॥ ११ ॥
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणया ।
अनुष्टुपुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भक्ष्यति ॥ १२ ॥

‘अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि अपने शीलकी रक्षामें तत्पर हुई किसी सहायक बंधुकी सहायनासे बखित तपस्विनी सीताको इस नीच रावणन ही खा लिया हो अथवा मनमें कुछ भावना रखनेवाली राक्षसराज रावणकी पत्नियोंने ही कशरारे नेत्रोंवाली साध्वी सीताको अपना आहार बना लिया होगा ॥ ११ १२ ॥

सम्पूणचन्द्रप्रतिम पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
रामस्य ध्यायती यक्षत्र पञ्चवटपुष्पा गता ॥ १३ ॥

‘हाय ! श्रीरामचन्द्रकी पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर तथा प्रकटल कमलदलके सदृश नवशले मुखका चिन्तन करती हुई दयनीया सीता इस स्थानसे चल बसी ॥ १३ ॥

हा राम लक्ष्मणेत्येय हायोभ्ये चेति मैथिली ।
विलप्य यद्दु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति ॥ १४ ॥

‘हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा नयाध्यापुत्री ! इस प्रकार पुकार पुकारकर बहुत विलाप करक मिलिलेझुझुकारी निःहृन्दिनी सीताने अपने शरीरको त्याग दिया होगा ॥ १४ ॥

अथवा निहिता मये रावणस्य निवेशने ।
भृशालालप्यते बाला पञ्चरस्थेय सारिका ॥ १५ ॥

‘अथवा मेरी समक्षमें यह आता है कि वे रावणके ही किसी गुप्त ग्रहमें छिपाकर रखी गयी हैं। हाय ! वहाँ वह बाला पीजरेमें बंद हुई मैनाकी तरह बारबार आर्तनाद करती होगी ॥ १५ ॥

जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा ।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वश प्रजेत् ॥ १६ ॥

‘जो जनकके कुलमें उत्पन्न हुई हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं, वे नीच कमलके से नेत्रोंवाली सुमध्यमा सीता रावणके अधीन कैसे हो सकती हैं ! ॥ १६ ॥

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ।
रामस्य प्रियभायस्य न निवेदयितु क्षमम् ॥ १७ ॥

‘जनककिशोरी सीता चाहे गुप्त ग्रहमें अदृश्य करके रखी गयी हों, चाहे समुद्रमें गिरकर प्राणोंसे हाथ धो बैठी हों अथवा श्रीरामचन्द्रजीके विरहका कष्ट न सह सकनेके कारण उन्होंने मृत्युकी शरण ली हो, किसी भी दशामें श्रीरामचन्द्रजी को इस बातका सूचना देना उचित न होगा क्योंकि वे अपनी पत्नीको बहुत प्यार करते हैं ॥ १७ ॥

निषेधमाले दोषः स्याद् दोष स्यादनिषेधेन ।
कथं तु खलु कृतव्य विषम प्रतिभाति मे ॥ १८ ॥

‘इस समाचारके बतानेमें भी दोष है और न बतानेमें भी दोषकी सम्भावना है, ऐसी दशामें किछ उपायसे काम लेना चाहिये ! मुझे तो ज्ञाना और न बताना—दोनों ही दुष्कर प्रतीत होते हैं ॥ १८ ॥

अस्मिन्नेवगते कार्ये प्राप्तकाल क्षम च किम् ।
भवेदिति मतिं भूयो हनुमान् प्रविचारयन् ॥ १९ ॥

‘ऐसी दशामें अब कोई भी कार्य करना दुष्कर प्रतीत होता है, तब मर लिये इस समयक अनुष्ठान क्या करना उचित होगा !’ इन्हीं बातोंपर हनुमान्जी बारबार विचार करने लग्य ॥ १९ ॥

यदि सीतामदृष्टाह चानरेन्द्रपुरीमितः ।
गमिष्यामि सत को मे धुरुकार्यो भविष्यति ॥ २० ॥

(उन्होंने फिर सोचा—) ‘यदि मैं सीताजीको देखे निना ही यहाँसे बानरराजकी पुरी किष्किन्धाको छोट बाँझा तो मेरा धुरकार्य ही क्या रह आयगा ! ॥ २० ॥
ममेदं लब्धनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ।
प्रवेशदक्षैव लङ्काया राक्षसताना च दशनम् ॥ २१ ॥

‘फिर तो मेरा यह समुद्रलङ्घन, लङ्कामें प्रवेश और राक्षसोंको देखना सब व्यर्थ हो आयगा ॥ २१ ॥

किं वा कथयति सुमायो हरयो चापि सगता ।
किष्किन्धामनुसम्प्राप्तौ तौ वा दशरथात्मजौ ॥ २२ ॥

‘किञ्चिदामे पट्टेनेपर मुह्यते मित्कर सुग्रीवः, दूसरे दूसरे वानर तथा वे दोनों दक्षरथराजकुमार भी क्या करेंगे ? ॥ २२ ॥

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुष वचः ।
न हरेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २३ ॥

‘यदि वहाँ जाकर मैं श्रीरामचन्द्रजीसे यह कठोर बात कह दूँ कि मुझे सीताका दर्शन नहीं हुआ तो वे प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ २३ ॥

परुष दारुण तीक्ष्ण मूर्धमिन्द्रियतापनम् ।
सीतानिमित्तं दुर्गोक्ष्य श्रुत्वा स न भविष्यति ॥ २४ ॥

‘सीताजीके विषयमें ऐसे रूखे, कठोर, तीक्ष्ण और इन्द्रियोंको संताप देनेवाले वृक्षचनक सुनकर वे कल्पि जीवित नहीं रहेंगे ॥ २४ ॥

त तु कृच्छ्रगत दृष्ट्वा पञ्चत्यगतमानसम् ।
भृशानुरक्तमेघावी न भविष्यति लक्ष्मण ॥ २५ ॥

‘उहँ सकटमें पड़कर प्राणोंके परित्यागका संकल्प करते देख उनके प्रति अत्यन्त अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान् लक्ष्मण भी जीवित नहीं रहेंगे ॥ २५ ॥

विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ।
भरत च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ॥ २६ ॥

‘अपने इन दो भाइयोंके विनाशका समाचार सुनकर भरत भी प्राण त्याग देंगे और भरतजी मृत्यु देखकर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे ॥ २६ ॥

पुत्रान् भृतान् समीक्ष्याय न भविष्यति मातरः ।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न सशयः ॥ २७ ॥

‘इस प्रकार चारों पुत्रीकी मृत्यु हुई देख कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी—वे तानों माताएँ भी निरसदेह प्राण दे देंगी ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा सत्यसंधश्च सुग्रीवः पृथगाधिपः ।
राम तथागत दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २८ ॥

‘दृष्ट्वा और सत्यप्रतिष्ठ वानरराज सुग्रीव भी वध श्रीरामचन्द्रजीके ऐसी अवस्थामें देखेंगे तो स्वयं भी प्राणविसर्जन कर देंगे ॥ २८ ॥

दुमना व्यथिता दीना निरपाना तपस्विनी ।
पीडिता भद्रशोकेन रमा त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २९ ॥

‘तत्पश्चात् पतिशोकसे पीड़ित हो दुःखितचित्त, दीन, व्यथित और अपान-दय्य हुई तपस्विनी रमा भी जान दे देगी ॥ २९ ॥

यात्तिजेन ॥ दुःखेन पीडिता शोककशिता ।
पञ्चत्यमागता राक्षी तारापि न भविष्यति ॥ ३० ॥

‘फिर तो रानी तारा भी जीवित नहीं रहेंगी । वे बान्नीके

विरहजनित ॥ खले तो पीड़ित थी ही, इस नूतन शोकसे यातर हो शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जायेंगी ॥ ३० ॥

मानापित्रोविनाशेन सुग्रीवस्यसनेन च ।
कुमारोऽप्यङ्गदस्तस्माद् विनहिष्यति जीवितम् ॥ ३१ ॥

‘माता पिताके विनाश और सुग्रीवक मरणजनित संकटसे पीड़ित हो कुमार अङ्गद भी अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ ३१ ॥

भर्तृजेन तु दुःखेन अभिभूता यनौकसः ।
शिराम्यभिहनिष्यति तर्लमुष्टिभिरेव च ॥ ३२ ॥
सात्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना ।
लालिताः कपिनायेन प्राणास्त्यक्ष्यति वानराः ॥ ३३ ॥

‘तदनन्तर स्वाधीके दुःखसे पीड़ित हुए सारे वानर अपने हाथों और मुकोंसे फिर पीटने लगेंगे । यशस्वी वानर राजके आत्मानुपूर्ण वचनों और दान मानसे बिनका लाठन पालन किया था, वे वानर अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ ३२ ३३ ॥

न घनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः ।
क्रोडामनुभविष्यति समेय कपिकुञ्जरा ॥ ३४ ॥

‘ऐसी अवस्थामें शेष वानर वनों, पर्वतों और गुफाओंमें एकत्र होकर फिर कभी क्रीड़ा विहारका आनन्द नहीं लेंगे ॥ ३४ ॥

सपुत्रदाया वामात्या भद्रव्यसापीडिताः ।
शैलामेव पतिष्यति समेषु विपमेषु च ॥ ३५ ॥

‘अपने राजाके शोकसे पीड़ित हो सब वानर अपने पुत्र, स्त्री और मन्त्रिबोधित पवनोंके शिखरोंसे नीच सम अवस्था विपम स्थानोंमें गिरकर प्राण दे देंगे ॥ ३५ ॥

विपमुद्ग्रन्थन चापि प्रवेश ज्यलनस्य वा ।
उपवासमग्नौ शस्त्र प्रचरिष्यति वानरा ॥ ३६ ॥

‘अथवा सारे विष भी लेंगे या कौसी लगा लेंगे या बलती आगमें प्रवेश कर जायेंगे । उपवास करने लगेंगे अथवा अपने ही शरीरमें कुछ भोज लेंगे ॥ ३६ ॥

शोरमारोदन म ये गते मयि भविष्यति ।
इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशद्वयैव यनौकसाम् ॥ ३७ ॥

‘मेरे यहाँ जानेपर मैं समस्ता हूँ वदा भयकर आर्तनाद होन लगेगा । इक्ष्वाकुकुलका नाश और वानरोंका भी विनाश हो जायगा ॥ ३७ ॥

सोऽह नैषगमिष्यामि किञ्चिद्वा नगरीमित ।
नहि शक्याम्यह द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ॥ ३८ ॥

‘इत्यन्ते मैं यहाँसे किञ्चिद्वापुरीको तो नहीं जाऊँगा । मिथिलजन्मसी सीताको देखा बिना मैं सुग्रीवका भी दर्शन नहीं कर सकूँगा ॥ ३८ ॥

मध्यगच्छति चेदस्ये धर्मात्मानौ महारथौ ।

आशया तौ धरिष्येते यानराष्ट्रं तरस्विन ॥ ३९ ॥

यदि मैं यहीं रहूँ और वहाँ न आऊँ तो मेरी आशा लगाये वे दोनों धर्मात्मा महारथी यन्त्र प्राप्त धारण किये रहेंगे और वे वेगशाली यानर भी ज्वित रहेंगे ॥ ३९ ॥

हस्तादानो मुखादानो नियतो घृक्षमूलिक ।

धानप्रस्थो भक्षिष्यामि ह्यष्टप्रा जनकात्मजाम् ॥ ४० ॥

‘ज्ञानकीबीजा दर्शन न मिलनेपर मैं यहाँ यानप्रस्थी हो जाऊँगा । मेरे हाथपर अपने आप खो फल आदि खाद्य वस्तु प्राप्त हो जायगी, उठीको खाकर रहूँगा । या परेच्छासे मेरे मुँहमें नो फल आदि खाद्य वस्तु पड़ जायगी, उठीसे निर्बाह करूँगा तथा दौघ, स्रोथ आदि नियमोंके पालन पूर्वक वृक्षके नीचे निवास करूँगा ॥ ४० ॥

सागरानूपजे देशे यद्भूमल्लब्धोदके ।

चित्ति ह वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ॥ ४१ ॥

‘अथवा सागरतटवर्ती स्थानमें, जहाँ फल-मूल और बकरी अधिकता होती है, मैं चित्ता बनाकर जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ४१ ॥

उपविष्टस्य वा सम्यग् लिङ्गिन साधयिष्यत ।

शरीर भक्षयिष्यन्ति चापसा श्वापदानि च ॥ ४२ ॥

अथवा आमरण उपवासके लिये बैठकर लिङ्गधारीधारी बीवात्माका शरीरसे वियोग करानेके प्रयत्नमें लगे हुए मेरे शरीरको कौड़े तथा हिरक जन्तु अपना आहार बना लेंगे ॥ ४२ ॥

इदमप्युपनिर्दिष्टं नियानमिति मे मति ।

सम्यगाप प्रवेक्ष्यामि न चेत्पदयामि जानकीम् ॥ ४३ ॥

‘यदि मुझे जानकीबीजा दर्शन नहीं हुआ तो मैं खुशी खुशी बल-वमात्रि ल लूँगा । मेरे विचारमें इस तरह जल प्रवेश करके परलोकगमन करना श्रुतिशोकी दृष्टिमें भी उत्तम ही है ॥ ४३ ॥

सुजातमूला सुभगा कौन्तिमाला यशस्विनी ।

प्रभञ्जा चिररात्राय मम सातामपश्यतः ॥ ४४ ॥

‘त्रिजका प्रारम्भ शुभ है, देखी सुभगा, यशस्विनी और मेरी कौन्तिमालारूपा यह दीधयनि भी सीताबीको देखे बिना ही बीत चली ॥ ४४ ॥

तापसो या भक्षिष्यामि नियतो घृक्षमूलिकः ।

नेत्र प्रतिगमिष्यामि तामष्टप्रासितेक्षणाम् ॥ ४५ ॥

‘अथवा अब मैं नियमपूर्वक वृक्षक नीचे निवास करनेशाला तपस्वी हो जाऊँगा किन्तु उस भस्मिलोचना सीताको देखे बिना यहाँसे कदापि नहीं छोड़ूँगा ॥ ४५ ॥

यदि तु प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् ।

अङ्गद सहित सर्वैर्ज्ञानैर्न भविष्यति ॥ ४६ ॥

‘यदि सीताका पता लगाये बिना ही मैं छोट जाऊँ तो समस्त वानरोंहित अङ्गद जीवित नहीं रहेंगे ॥ ४६ ॥

विनाशे यद्यप्यो दोषा जीवन् प्राप्नोति भद्रम् ।

तस्मात् प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति सगमः ॥ ४७ ॥

‘इस जीवनका नाश कर देनेमें बहुतसे दोष हैं । जो पुरुष जीवित रहता है, वह कभी न-कभी अवश्य कल्याण का भागी होता है अतः मैं इन प्राणोंको धारण किये रहूँगा । जीवित रहनेपर अभीष्ट वस्तु अव्या मुझकी प्राप्ति अग्न्यम्भावी है’ ॥ ४७ ॥

एष बहुविध दुःख मनसा धारयन् यदु ।

नाध्यगच्छत् तदा पार शोकस्य कपिकुञ्जर ॥ ४८ ॥

इस तरह मनमें अनेक प्रकारके दुःख धारण किये कपिकुञ्जर इतुमान्जी शोकका पार न पा सके ॥ ४८ ॥

ततो विक्रममासाद्य धैर्यवान् कपिकुञ्जर ।

रावणं वा बधिष्यामि दशप्रीय महायत्नम् ।

काममस्तु हता सीता प्रत्याक्षीर्णं भविष्यति ॥ ४९ ॥

तदनंतर धैर्यवान् करिभेद इतुमान्ने पयक्रमका सहाय लेकर बोला—‘अथवा महाबली दशमुख रावणका ही बध क्यों न कर डालूँ । भले ही सीताका अपहरण हो गया हो, इस रावणको मार डालनेसे उस वैरका भरपूर बदला उभ जायगा ॥ ४९ ॥

अथयैन समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम् ।

रामायोपहरिष्यामि पशु पशुपतेरिष ॥ ५० ॥

‘अथवा इसे उठाकर समुद्रक ऊपर ऊपरसे ले जाऊँ और बेसे पशुपति (इंद्र या अग्नि) को पशु अर्पित किया जाय, उठी प्रकार भीरुताके हाथमें इसको धौप दूँ ॥ ५० ॥

इति चिन्तासमापन्न सीतामनधिगम्य ताम् ।

ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास यानरः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार सीताबीको न पाकर वे चिन्तामें निमग्न हो गये । उनका मन सतते ध्यान और शोकमें डूब गया । फिर वे यानरवीर इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ ५१ ॥

यावत्सीतान पदयामि रामपक्षां यशस्विनीम् ।

तावदेता पुरीं लङ्का विचिनोमि पुन पुन ॥ ५२ ॥

‘इतक मैं यशस्विनी भीरुम-पत्नी सीताका दर्शन न कर दूँगा, तबतक इस लङ्कापुर में बारबार टनकी खोख करता रहूँगा ॥ ५२ ॥

सम्पातिवधमाद्यापि राम यद्यानयाग्रहम् ।

अपश्यन् राघवो भार्यां निदहेत्सयवानपान् ॥ ५३ ॥

‘यदि स्यातिके कहनेसे भी मैं भीरामको यहाँ मुला ले आऊँ तो अपनी पत्नीको यहाँ न देखनेपर भीरुनाथजी समस्त वानरोंको जलाकर मसू कर देंगे ॥ ५३ ॥

इदं नित्यताहारे घत्स्यामि निषतेन्द्रिय ।
न मस्मृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः ॥ ५४ ॥

‘अतः यहाँ नियमित आहार और इन्द्रियोंके व्यवयुक्त निवास करूँगा । मेरे कारण वे समस्त नर और वानर नष्ट न हों ॥ ५४ ॥

अशोकवनिका चापि महतीय महाद्रुमा ।
इमामधिगमिष्यामि नदीय विचिता मया ॥ ५५ ॥

‘इधर यह बहुत बड़ी अशोकवाटिका है, इसके भीतर बड़े बड़े वृक्ष हैं । इसमें मैंने अभीतक अनुसंधान नहीं किया है, अतः अब इसीमें चलकर हूँगा ॥ ५५ ॥

घत्सुं कद्रास्तथाऽऽदित्यानन्दिनौ मरुतोऽपि च ।
नमस्कृत्या गमिष्यामि रक्षसा शोकवधनः ॥ ५६ ॥

‘राक्षसोंके शोकको बहानेवाला मैं यहाँसे वधु, कद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और मरुद्वजोंको नमस्कार करके अशोकवाटिकामें चूँगा ॥ ५६ ॥

जित्वा तु राक्षसान् देवीमिक्षाकुङ्कुलनिदनीम् ।
सम्प्रदास्यामि रामाय सिद्धीमिष तपस्विने ॥ ५७ ॥

‘वहाँ समस्त राक्षसोंको जीतकर जैसे तपस्वीको सिद्धि प्रदान की जाती है, इसी प्रकार भीरामचन्द्रजीके हाथमें इक्ष्वाकुङ्कुलको भानन्दित करनेवाली देवी सीताको सौंप दूँगा ॥ ५७ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविम्रयितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन् महाबाहुर्हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ५८ ॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकामजायै ।

नमोऽस्तु रुद्रेऽयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्वजभ्यः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार दो वहीतक सोचविचारकर विन्ताये सिधिल इन्द्रियवाले महाबाहु पवनकुमार हनुमान् सहज उठकर खड़े हो गये (और देवताओंको नमस्कार करते हुए बोले—) ‘लक्ष्मणवदित भीरामको नमस्कार दे । जनकनन्दिनी सीता देवीको भी नमस्कार दे । कद्र, इन्द्र, यम और वायु देवताको नमस्कार दे तथा चन्द्रमा, अग्नि एवं मरुद्वजोंको भी नमस्कार दे ॥ ५८-५९ ॥

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्या सुप्रियाय च मारुति ।
दिशः सयाः समालोक्य सोऽशोकवनिकां प्रति ॥ ६० ॥

इस प्रकार उन सभीको तथा सुप्रियको भी नमस्कार करके पवनकुमार हनुमान्जी समूह दिशाओंकी ओर

दृष्टिपात करके अशोकवाटिकामें आनेकी उद्यत हुए ॥ ६० ॥

स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिकां शुभाम् ।
उत्तर चिन्तयाप्राप्त वानरो मारुतात्मजः ॥ ६१ ॥

उन वानरवीर पवनकुमारने पहले मनके द्वारा ही उष सुन्दर अशोकवाटिकामें आकर भावों कतव्यका इस प्रकार चिन्तन किया— ॥ ६१ ॥

ध्रुव तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला ।
अशोकवनिका पुण्या स्रवसस्कारसरहता ॥ ६२ ॥

‘वह पुण्यमयी अशोकवाटिका सींचने-बोझने आदि सब प्रकारके स्कारोंसे सँवारी गयी है । वह दूर दूरसे वनोंसे भी घिरी हुई है अतः उसकी रक्षाके लिये वहाँ निश्चय ही बहुत से राक्षस तैनात किये गये होंगे ॥ ६२ ॥

रक्षिणस्त्रात्र विहिता नून रक्षति पादपान् ।
भगवानपि विभ्रामा नातिहोम प्रवायति ॥ ६३ ॥

‘राक्षसराजके नियुक्त किये हुए रक्षक अवश्य ही वहाँके वृक्षोंकी रक्षा करते होंगे, इसलिये जागृके प्राणस्वरूप भगवान् वायुदेव भी वहाँ अधिक देगसे नहीं बहते होंगे ॥

सक्षितोऽयं मयाऽऽस्मा च रामार्थे रावणस्य च ।
सिद्धिं दिशतु मे सर्वे देवाः सर्विगणास्त्रिह ॥ ६४ ॥

‘मैंने भीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धि तथा रावणसे भद्रस्य रहनेके लिये अपने शरीरको समुचित करके छोटा बना लिया है । मुझे इस कार्यमें श्रुतिपौरुषदित समस्त देवता सिद्धि उपलब्धता प्रदान करें ॥ ६४ ॥

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् देवाश्चैव तपस्विनः ।
सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च यजमृत् ॥ ६५ ॥

‘स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, अथ देवगण, तपोनिष्ठ महर्षि, अग्निदेव, वायु तथा यजमारी इन्द्र भी मुझे उपलब्धता प्रदान करें ॥ ६५ ॥

वरुण पाशदस्तश्च सोमादित्यौ तथैव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ मरुत सर्वे एव च ॥ ६६ ॥

सिद्धिं सर्वार्णि भूतानिभूतानां चैव यः प्रभुः ।
दास्यति तममेवाप्येऽप्यहं पथि गोचरा ॥ ६७ ॥

‘प्राशचारी वरुण, सोम, आदित्य, महात्मा अश्विनी कुमार, समस्त मरुद्वज, समूह भूत और भूतोंके अधिपति तथा और भी जो मार्गमें दीलनेवाले एव न दीलनेवाले देवता हैं, वे सब मुझे सिद्धि प्रदान करेंगे ॥ ६६-६७ ॥

तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमग्रण
शुचिसित पद्मपलालोचनम् ।

भ्रूषे तदापावदनं कदा न्यह
प्रसन्नतराधिपतुस्तद्वचसम् ॥ ६८ ॥

जिसकी नाक ऊँची और दौत सपेद हैं, जिसमें चेचक आदिने दाग नहीं हैं, जहाँ पवित्र मुक्तकानकी छटा छायी रहती है, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुशोभित होते हैं तथा जो निष्कलङ्क कलाचरके शुभ्य कमनीय कान्तिसे युक्त है, वह आयाँ सीताका मुख मुझे कब दिखायी देगा ? ॥

सुद्रेण हीनेन नृशसमूर्तिना

सुदारुणालङ्कृतवेषधारिणा ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोदश सर्ग ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीवत्समिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्ग

हनुमान्जीका अशोकवाटिकामें प्रवेश करके उसकी शोभा देखना तथा एक अशोकवृक्षपर छिपे रहकर वहाँसे सीताका अनुसंधान करना

स मुहूर्तमित्रध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् ।

अप्युत्तो महातेजा प्राकार तस्य वेश्मन ॥ १ ॥

महातेजस्वी हनुमान्जी एक मुहूर्तक इसी प्रकार विचार करत रहे । तत्पश्चात् मन ही मन सीताजीका ध्यान करते वे रावणके महलसे नूद पड़े और अशोकनाटिकाकी चहारदीवारीपर चढ़ गये ॥ १ ॥

स तु सहृदयसर्वाङ्ग प्राकारस्थो महाकवि ।

पुष्पिताम्रान् वसन्तादौ दृष्ट्वा विविचान् ह्रमान् ॥ २ ॥

उस चहारदीवारीपर बैठे हुए महाकवि हनुमान्जीके अंगमें हृदयजनित रोमाञ्च हो आया । उन्होंने वृक्षके आरम्भमें वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष देखे, किन्तु इच्छितके अप्रमाण फूलोंके भारसे लदे थे ॥ २ ॥

सालानशोकान् भव्याश्च चम्पकाश्च सुपुष्पितान् ।

उद्दालकान् नागवृक्षाश्चूतान् कपिमुवाचपि ॥ ३ ॥

तथाऽऽब्रवणसम्पन्नैर्ललाताश्च तसमन्वितान् ।

ज्यामुक्त्वा च नापद्यः पुष्ट्यै वृक्षवाटिकाम् ॥ ४ ॥

वहाँ साल, अशोक, निम्ब और चम्पाके वृक्ष लूब लिये हुए थे । बहुवार, नागवृक्ष और बन्दरके गुँहकी मौल शल फल देनेवाले आम भी पुष्प एव मञ्जरियोंसे सुशोभित हो रहे थे । अमरावृक्षोंसे युक्त वे सभी वृक्ष उत घट कलाओंसे आवेष्टित थे । हनुमान्जी प्रत्यक्षसे छूटे हुए बाणके समान उड़ले और उन वृक्षोंकी वाटिकामें आ पहुँचे ॥ ३ ॥

स प्रविश्य विचित्रा ता जिह्वैरभिनादिताम् ।

राजते कान्तैश्चैव पादपैः सस्यतो वृताम् ॥ ५ ॥

विह्वैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रा चित्रकाननाम् ।

उदितादित्यसकाशा दृष्ट्वा हनुमान् वली ॥ ६ ॥

१४. विचित्र वाटिका होने और चौरोंके लगान बन्द करने

यलाभिभूता ह्यथला तपस्विनी

कथमु मे दृष्टिपथेऽद्य सा भवेत् ॥ ६९ ॥

‘हृष्ट सुदः’ नीच, नृशसस्पधारी और अत्यन्त दारुण होनेपर भी अलङ्कारयुक्त विश्वसनीय वेप घाणन करनेवाले रावणने उस तपस्विनी अचलाको बलात्कारसे अपने अधीन कर लिया है । अब किंग प्रकार वह मेरे दृष्टिपथमें आ सकती हैं ? ॥ ६९ ॥

वृक्षोंद्वारा सब ओरसे घिरी हुई थी । उसमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे थे, जिससे वह चारी वाटिका गूँब रही थी । उसके भीतर प्रवेश करके बलवान् हनुमान्जीने उसका निरीक्षण किया । मौलिक मौलिके विहगमों और मृगसङ्घोंसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी । वह विचित्र काननोंसे अलङ्कृत थी और नचोदित सूर्यके समान अरुण रंगकी दिसाथी देती थी ॥ ५६ ॥

वृता नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपमाफलोपगैः ।

कोकिलैर्मृङ्गराजैश्च मत्सैर्नित्यनिपेक्षिताम् ॥ ७ ॥

फूलों और फलोंसे लदे हुए नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त हुई उस अशोकवाटिकाका मतवाले कोकिल और भ्रमर सेवन करते थे ॥ ७ ॥

प्रहृष्टमनुजा काले मृगपक्षिमदाकुलाम् ।

मत्तवर्हिणससुष्टा नानाद्विजगणायुताम् ॥ ८ ॥

वह वाटिका ऐसी थी, जहाँ जानेसे हर सपय लोगोंके मनमें प्रसन्नता होती थी । मृग और पक्षी मदमग्न हो उठते थे । मतवाले मोरोंका कलनाद यहाँ निरन्तर गूँबना रहता था और नाना प्रकारके पक्षी वहाँ निवास करते थे ॥ ८ ॥

मार्गमाणो वराहोऽह राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।

सुखप्रसुप्तान् विहगान् शोचयामास वानरः ॥ ९ ॥

उस वाटिकामें सती-साथी सुन्दरी राजकुमारी सीताकी खोज करते हुए वानरोंकी हनुमान्ने पोंसलोंमें मुखपूर्वक सोये हुए पक्षियोंको अग्न दिया ॥ ९ ॥

उत्पतङ्गिर्द्विजगणैः पक्षेयातैः समाहता ।

अनेकवर्णा विविधा मुमुक्षु पुष्पवृष्टयः ॥ १० ॥

उड़ते हुए विहगमोंके पक्षोंकी द्रव्य लगनेसे वहाँके वृक्ष अनेक प्रकारके रंग बिरंगे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥

पुष्पावलीन शुशुभे हनुमान् मादतात्मजः ।

अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरि ॥ ११ ॥

उस समय पवनकुमार हनुमान्जी उन फूलों से आच्छादित होकर ऐसी शोभा पाने लगे, मागे उस अशोकवनमें कोई फूलों का बना हुआ पशुद शोभा पा रहा हो ॥ ११ ॥

दिश सर्वोभिधावन्त वृक्षवण्डन कविम् ।

दृष्ट्वा सखाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें दोड़ते और वृक्षसमूहोंमें घूमते हुए कविपर हनुमान्जीको देखकर समस्त प्राणी एवं राक्षस देखा मानने लगे कि वाशाद श्रुत राज वसन्त ही यहाँ वानरवैद्यमें विचार रहा है ॥ १२ ॥

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवलीर्णा पृथग्विधैः ।

रराज वसुधा तत्र प्रमदेष विभूयिता ॥ १३ ॥

वृक्षों से झड़कर गिरे हुए भौंति भौंति के फूलों से आच्छादित हुई वहाँकी भूमि फूलों के शृङ्गार से विभूयित हुई सुवती स्त्रीने समान शोभा पाने लगी ॥ १३ ॥

तरस्विता ते तरयस्तरसा बहु कम्पिता ।

कुसुमानि विवित्राणि सख्यु कविता तदा ॥ १४ ॥

उस समय उन वेगवाली वानरवीरों के द्वारा वेगवृक्ष धारधार दिलाये हुए व वृक्ष विविध पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १४ ॥

निधूतपद्मशिखराः शीर्णपुष्पफल्गुमा ।

निक्षिप्तवस्त्राभरणा भूता इव पराजिता ॥ १५ ॥

इस प्रकार शालियों पर पते झड़ जाने तथा फल फूल और पल्लवों के झूटकर बिखर जानेसे नग भङ्ग हो गयी देनेवाले वे वृक्ष उन शरीरों पर लुआरिगों से समान बान पड़ते थे, जिन्होंने अपने गहने और कपड़े भी दाँवपर रख दिये हों ॥ १५ ॥

हनुमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमा ।

पुष्पपत्रफलापात्र मुमुक्षु फलशालिनः ॥ १६ ॥

वेगवाली हनुमान्जीके दिलाये हुए वे वृक्षवाली ओष्ठ वृक्ष द्वार से अपने फल फूल और पत्तों की परित्याग कर देते थे ॥ १६ ॥

विहङ्गसङ्घर्षानास्ते स्फ धमाश्रयदा द्रुमा ।

वभूयुरगमा सर्वे मादतेन विनिर्मुक्ताः ॥ १७ ॥

पवनपुत्र हनुमान्द्रुमा कम्पित किये गये थे वृक्ष फल-फूल आदिके व हाने से केवल शालियों के आश्रय बने हुए थे। पक्षियों के समूह भी उन्हें छोड़कर चले दिये थे। उन अवस्थामें वे सब वृक्ष प्राणिमात्र के लिये अगम्य (अवेगनीय) हो गये थे ॥ १७ ॥

पिपूतकेदी युयुतियया मुदितपर्णका ।

मिपूतपुभदातोषी सट्टिर्गण विरुगा ॥ १८ ॥

तथा लाङ्गलहस्तैस्तु चरणाभ्या चमर्दिता ।

तथैवाशोकवनीका मभग्नवनपादपा ॥ १९ ॥

जिधके केश खुल गये हैं, अङ्गारा गिट गये हैं, सुन्दर दन्तावलीसे युक्त अक्षर-मुद्राका पान बर लिया गया है तथा जिधके कतिपय अङ्ग नलक्षत एवं दन्तशतसे उपलब्धिन ॥ रहे हैं, प्रियतमने उपभोगमें आयी हुई उस सुवतीके समान ही उस अशोकवाटिकाकी भी दशा हो रही थी। हनुमान्जीके हाथ पैर और पूँछसे रौंदी जा चुकी थी तथा उसके अच्छे अच्छे वृक्ष टूटकर गिर गये थे। इसलिये वह भीहीन हो गयी थी ॥ १८ १९ ॥

महालताना दामानि यद्यमत् तरसा कपिः ।

यथा प्रावृषि वेगेन मेघजालानि मादत ॥ २० ॥

जैसे वायु बरषा श्रुतमें अपने वेगसे मेघसमूहोंको छिन्न भिन्न कर देती है, उसी प्रकार कविपर हनुमान्ने वहाँ कैली हुई विशाल रता वनरविधियोंके वितान वेगपूर्वक तोड़ दिये ॥ २० ॥

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमा ।

तथा पाञ्चनभूमीश्च विचरन् दृष्टो कपिः ॥ २१ ॥

वहाँ विचरते हुए उन वानरवीरों के दृष्टकृष्टक ऐसी मनोरम भूमियोंका दर्शन किया, जिनमें मणि, चाँदी एवं सोने लड़े गये थे ॥ २१ ॥

वापीश्च विविधाकाटा पूर्णा परमवारिणा ।

महाहर्मणिस्तोपानैरुपपन्नारततस्तत ॥ २२ ॥

मुक्ताप्रवालसिक्ता स्फाटिकातरकुण्डिमा ।

काञ्चनैस्त्वक्मिश्रितैस्तीरजैरुपशोभिता ॥ २३ ॥

उस वाटिकामें उन्होंने जहाँ-तहाँ विभिन्न आकारोंकी बावड़ियों देखीं, जो उत्तम जलसे भरी हुईं और मणिमय तोपानोंसे युक्त थीं। उनमें भीतर मोती और मृगोंकी बालुछाई थी। जलके नीचेकी चट्टी स्फटिक मणिको बनी हुई थी और उन बावड़ियोंके तटोंपर तरङ्ग तरङ्गके विविध सुवर्णमय वृक्ष शोभा दे रहे थे ॥ २२ २३ ॥

सुरूपस्योत्पलवनाक्षयपाकोपशोभिता ।

वयूहकलससुष्ण हससारसनादिताः ॥ २४ ॥

उनमें जिक्रि हुए कमलोंके वन और चक्रवाकोंके झोड़े शोभा बढ़ा रहे थे तथा पद्मेश, हंस और शारङ्गोंके कलनाद गूँज रहे थे ॥ २४ ॥

दीपाभिद्रुमयुक्ताभिः सरिद्रिष्ट समस्त ।

अमृतोपमतोयाभिः शिषाभिपुष्पसरिता ॥ २५ ॥

अनेकानेक विशाल, तटवर्ती वृक्षोंसे सुशोभित, अमृतके समान प्रभुर जलसे पूर्ण तथा मुलगायिनी शरिताई चारों ओरके उन बावड़ियोंका हवा सस्कार करती थी (उन्हें स्वयं जलसे परिपूज बनाए रखती थी) ॥ २५ ॥

लताशतैरवतता सतानफुसुमावृता ।
नानागुल्मावृतवना करधीरवृतातरा ॥ २६ ॥
उनके तटोंपर सेऊँहों प्रकारकी लताएँ फैली हुई थीं ।
खिले हुए ऊनगुच्छोंने उन्हें चारों ओरसे घेर रखा था ।
उनके बल नाना प्रकारकी झाड़ियोंसे ढके हुए थे तथा
बीच-बीचमें खिले हुए कनेरेके वृक्ष गणघञ्जी-सी शोभा
पाते थे ॥ २६ ॥
ततोऽमृगघटसकाश प्रवृद्धशिखर गिरिम ।
विचित्रकूट कूटैश्च सर्वत्र परिवारितम् ॥ २७ ॥
शिलागुहैरवतत नानावृक्षसमावृतम् ।
ददर्श कपिशालूलो रम्य जगति पर्वतम् ॥ २८ ॥
गिर वहाँ कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने एक मेघके समान बाला
और ऊँचे शिखरोंवाला पर्वत देखा, जिसकी चोटियों वहाँ
विचित्र थीं । उसके चारों ओर दूसरे-दूसरे भा बहुत-से
पर्वत-शिखर शोभा पाते थे । उसमें बहुत-सी पत्थरकी
गुफाएँ थीं और उस पर्वतपर अनेकानेक वृक्ष उगे
हुए थे । वह पर्वत सगरमरमें बड़ा रमणीय था ॥ २७ ॥ २८ ॥
ददर्श च नगात् तस्मान्दर्श निपतिता कपि ।
सङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतिता प्रियाम् ॥ २९ ॥
कपिवर हनुमान्ने उस पर्वतसे गिरी हुई एक नदी
देखी, जो प्रियतमसे अङ्गसे उछलकर गिरी हुई प्रियतमके
समान जान पड़ती थी ॥ २९ ॥
जले निपतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
पायमाणामिव कृद्धा प्रमदा प्रियवधुभि ॥ ३० ॥
जिनकी बालियों नीचे झुककर पानीसे लग गयी थीं
ऐसे तटवर्ती वृक्षोंसे उस नदीकी वैठी ही शोभा हो रही थी,
मानो प्रियतमसे रुठकर अन्यत्र जाती हुई युवतीको उसकी
प्यायी बालियों उभे आगे बढनेसे रोक रही हों ॥ ३० ॥
पुनरावृत्ततोषा च ददर्श स महाकपि ।
प्रसन्नामिन कान्तस्य काता पुनरुपस्थिताम् ॥ ३१ ॥
फिर उन महाकपिने देखा कि वृक्षोंकी उन बालियोंसे
टकराकर उस नदीके जलका प्रवाह पीछेकी ओर मुड़ गया
है । मानो प्रसन्न हुई प्रियली पुन प्रियतमकी सेवामें
उपस्थित हो रही हो ॥ ३१ ॥
तस्यादूरात् स पश्चिम्यो नानाद्विजगणायुता ।
ददर्श कपिशालूलो हनुमान् माकनारमज ॥ ३२ ॥
उस पर्वतसे थोड़ी ही दूरपर कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्ने
बहुत-से कमलमण्डित खोबर देखे, जिनमें नाना प्रकारके
पक्षी चहचहा रहे थे ॥ ३२ ॥
हृदिमा दीर्घिका चापि पूर्णा शीतने वारिणा ।
मणिप्रवरसोपाना सुकासिकताशोभिहाम् ॥ ३३ ॥

उनके सिवा उन्होंने एक कृत्रिम तालाब भी देखा, जो
शीतल जल भरा हुआ था । उसमें श्रेष्ठ मणियोंकी सीटियाँ
बनी थीं और वह मोतियोंकी बाहुधारुपिसे सुशोभित
था ॥ ३३ ॥
विचिधैर्मृगसहैश्च विचित्रा विप्रकनानाम् ।
प्रासादै सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विथक्मणा ॥ ३४ ॥
काननै रुचिमैश्चापि सवत समलवृताम् ।
उस अशोकवाटिकामें विथक्मणिके बनाये हुए बड़े-बड़े
महल और हृषिम कानन सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ा
रहे थे । नाना प्रकारके मृगसमूहोंसे उसकी विचित्र शोभा
हो रही थी । उस वाटिकामें विचित्र वन उपवन शोभा दे
रह थे ॥ ३४ ॥
ये केचित् पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगा ॥ ३५ ॥
सच्छन्ना सवितर्का सब सौवर्णवेदिका ।
वहाँ जो कोई भी वृक्ष थे, वे सब फल-फूल देनेवाले
थे, लवणकी भाँति घनी छाया किये रहते थे । उन सबके
नीचे चाँदीकी और उसके ऊपर खनीकी वेदियाँ बनी हुई
थीं ॥ ३५ ॥
लताप्राननैर्युभि पूर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ॥ ३६ ॥
काञ्चनो दिशपामेका द्दश स महाकपि ।
वृता हेममयीभिस्तु वेदिकाभि समन्तत ॥ ३७ ॥
तदनन्तर महाकपि हनुमान्ने एक सुवर्णमयी शिन्धा
(अशोक) का वृक्ष देखा, जो बहुत-से लतावितानों और
अर्जुनित पत्तोंसे व्याप्त था । वह वृक्ष भी सब ओरसे
सुवर्णमयी वेदिकाओंसे विरा था ॥ ३६ ॥ ३७ ॥
सोऽपश्यद् भूमिभागाश्च नगप्रखण्डानि च ।
सुवर्णवृक्षानपरान् ददर्श शिन्धिसन्निभान् ॥ ३८ ॥
इसके सिवा उन्होंने और भी बहुत-से खूले मैदान,
पहाड़ी सरने और जन्मके समान दीप्तिमान् सुवर्णमय वृक्ष
देखे ॥ ३८ ॥
तेषा द्रुमाणा प्रभया मेरोरिव महाकपि ।
अमयत तस्या वीर काञ्चनोऽस्तीति सर्वत ॥ ३९ ॥
उस समय वीर महाकपि हनुमान्ने ने सुनेरके समान
उन वृक्षोंकी प्रमाक कारण अपनेको भी सब ओरसे
सुवर्णमय ही समझा ॥ ३९ ॥
तान् काञ्चनान् वृक्षगणान् मारुतेन प्रकम्पितान् ।
किङ्किणीशतनिर्घोरान् दृष्ट्वा विस्मयमागमम् ॥ ४० ॥
सुपुष्पिताग्रान् रुचिरास्तद्वर्णानुरूपवृक्षान् ।
वे सुवर्णमय वृक्षमनुह वष वायुने शोके खाबर दिल्ले
हमते, तब उनसे दैरहों सुँधुदोंके बरनेकी ही मधुर चनि

होती थी। वह सब देखकर हनुमान्जीको बड़ा विस्मय हुआ। उन कर्षोकी झलियोंने सुन्दर फूल खिळे हुए थे और नये-नये अक्षुर तथा पत्तन निकले हुए थे; जिससे वे यके सुन्दर दिखायी देते थे ॥ ४०३ ॥

तामाराह्य महाजग शिशपा पणसवृणाम् ॥ ४१ ॥

इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ।

इतश्चेतश्च दुःखार्ता सम्पत्तन्तो यहच्छ्रया ॥ ४२ ॥

महान् वेगशाली हनुमान्जी पत्तोसे हरी मरी उस शिशपापर यह लोचकर चढ़ गये कि 'मैं यहीसे श्रीरामचन्द्र जीके दर्शनके लिये उत्सुक हूँ उन विदेहमन्दिनी सीताको देखूँगा, जो दुःखसे आतुर हो इच्छातुष्टार इधर उधर जाती जाती होंगी ॥ ४१ ४२ ॥

अशोकयन्त्रिका चेत दृढ रम्या तुरात्मन ।

चन्दनैश्चम्पकैश्चापि बहुलैश्च विभूषिता ॥ ४३ ॥

इय च नलिनी रम्या व्रिजसङ्गनिषेविता ।

इमा सा राजमहिषी नूनमेष्यति जानकी ॥ ४४ ॥

'दुरात्मा रायणकी यह अशोकवाटिका बड़ी ही रमणीय है। चन्दन, चम्पा और मौलसिरीके कुछ इसकी झोमा बढा रहे हैं। इधर यह पक्षियोंके सवित कमलमण्डित सरोवर भी बड़ा सुन्दर है। राजरानी जानकी इसके तटपर निश्चय ही आती होंगी ॥ ४३ ४४ ॥

सा रामा राजमहिषी राघवस्य प्रिया सती ।

घनसचारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ॥ ४५ ॥

'रघुनायजीकी प्रियतमा राजरानी रामा सती-साध्वी जानकी वनमें घूमने फिरनेमें बहुत कुशल हैं। वे अत्यन्त इधर आवेंगी ॥ ४५ ॥

अथवा मृगशाखाक्षी वनस्यास्य त्रिचक्षणा ।

घनमेष्यति साचेह रामचित्तालुङ्गिता ॥ ४६ ॥

'अथवा इस वनकी त्रिचक्षणाओंके ज्ञानमें निपुण मृग शास्त्रज्ञानी सीता आत्र यहाँ इस तालाबके तटवर्ती घनमें अवश्य पक्षारोंकी क्योंकि वे रामचन्द्रजीके त्रियोगकी चिन्तासे अत्यन्त दुःखी हो गयी होंगी (और इस सुन्दर ज्ञानमें अन्तर्में उनकी चिन्ता कुछ कम हो चकेगी) ॥ ४६ ॥

रामशोकाभिसतता सा देवी धामलोचना ।

यनयासरता निरयमेष्यते यनचारिणी ॥ ४७ ॥

इराधे श्रीमद्रामायणे वाक्योक्तये आदिवाक्ये सुन्दरवाक्ये चतुर्थता सगरः ॥ १४ ॥

॥ प्रह्वर मन्त्रमितिनिमित्त आरामायण अदिकाम्ये सुन्दरवाक्ये चोदरवां सर्व पूरा हुआ ॥ १५ ॥

'सुन्दर नेत्रवाली देवी सीता भगवान् श्रीरामके निरह शोकसे बहुत ही संतप्त होंगी। वनवासमें उनका सदा ही प्रेम रहा है, अतः वे वनमें विचरती हुई इधर अथवा आवेंगी ॥ ४७ ॥

घनेचराणा सततं भूत स्पृहयते पुरा ।

रामस्य दयिता चाया जनकस्य सुता सती ॥ ४८ ॥

'श्रीरामकी प्यारी पत्नी सती साध्वी जनकनदिनी सीता पहले निश्चय ही वनवासी जन्तुओंसे सदा प्रेम करती रही होंगी। (इसलिये उनके लिये वनमें भ्रमण करना स्वाभाविक है, अतः यहाँ उनके दर्शनकी सम्भावना है ही) ॥ ४८ ॥

सध्याकालमना इयामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।

नक्षी चेमा शुभजला सध्याये वरवणिनी ॥ ४९ ॥

'यह प्रातः कालकी सध्या (उपासना) का समय है; इसमें मन लगानेवाली और सदा सोलह वषकी-सी अवस्थामें रहनेवाली अश्वयधौवना जनककुमारी सुन्दरी सीता सध्याकालिक उपासनाके लिये इस पुण्यसलिला नदीके तटपर अवश्य पचारेगी ॥ ४९ ॥

तस्याभ्यागन्तुरूपमशोकवनिना शुभा ।

शुभाया पाष्यिषेद्रस्य पत्नी रामस्य सम्मता ॥ ५० ॥

'ओ राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीकी समादरणीया पत्नी हैं, उन शुभलक्षणा सीताके लिये वह सुन्दर अशोकवाटिका भी सब प्रकारसे अनुकूल ही है ॥ ५० ॥

यदि जीवति सा देवी ताराधिपतिभानना ।

आगमिष्यति सायश्यमिमा शीतजला नक्षीम् ॥ ५१ ॥

'यदि चन्द्रमुखी सीता देवी जीवित हैं तो वे इस शीतल बलनाली वरिताके तटपर अवश्य पचारेगी ॥ ५१ ॥

एव तु मत्या हनुमान् महात्मा

प्रतीक्षमाणो मनुजेद्रूपानीम् ।

अवेक्षमाणश्च द्वादश सर्वे

सुपुष्पिणे एणघने निलीन ॥ ५२ ॥

ऐसा सोचते हुए महात्मा हनुमान्जी नरेन्द्रपत्नी सीताके शुभागमनकी प्रतीक्षामें सत्वर हो सुन्दर दूधोंसे सुशोभित तथा घने पक्षीवाले उध अशोकवृक्षपर लिये रहकर उस सम्पूर्ण वनपर दृष्टिपात करते रहे ॥ ५२ ॥

पञ्चदशः सर्ग

वनकी शोभा देखते हुए हनुमान्जीका एक चैत्यप्रासाद (मन्दिर) के पास सीताको दयनीय अवस्थामें देखना, पहचानना और प्रसन्न होना

स धीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।

अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामचवैक्षत ॥ १ ॥

उस अशोकवृक्षपर बैठे बैठे हनुमान्जी सम्पूर्ण वनको देखते और सीताको ढूँढते हुए वहाँकी सारी भूमिपर दृष्टिपात करने लगे ॥ १ ॥

सतानकल्पाभिश्च पाद्मैरुपशोभिताम् ।

दिव्यगन्धरसोपेता सर्वतः समलङ्कृताम् ॥ २ ॥

वह भूमि नल्पवृक्षकी लताओं तथा वृक्षोंसे सुशोभित थी, दिव्य गन्ध तथा दिव्य रससे परिपूज्य थी और सब ओरसे सजायी गयी थी ॥ २ ॥

ता स नन्दनसकाशा मृगपक्षिभिरावृताम् ।

हृन्मयासादसम्बाधा कोकिलाकुलनि स्नानाम् ॥ ३ ॥

मृगों और पक्षियोंसे व्याप्त होकर वह भूमि नन्दनवनके समान शोभा पा रही थी, अट्टालिकाओं तथा राजमवनोंसे युक्त थी तथा कोकिल-समूहोंकी काबलीसे कोलाहलपूर्ण जान पड़ती थी ॥ ३ ॥

काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिर्नृपशोभिताम् ।

वह्नासनकुयोपेता बहुभूमिगृहायुताम् ॥ ४ ॥

सुवर्णमय उत्पल और कमलोंसे भरी हुई बावड़ियों सहकी शोभा बढ़ा रही थी । बहुदृढ-से आसन और कालीन वहाँ बिछे हुए थे । अनेकानेक भूमिगृह वहाँ शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

सयत्कुसुमै रम्यै फलयद्विभ्रं पादपै ।

पुष्पितानामशोकाना भिया स्वर्णोदयप्रभाम् ॥ ५ ॥

सभी शृद्धाओंमें फूल देनेवाले और फलोंसे भरे हुए रमणीय वृक्ष उस भूमिको विभूषित कर रहे थे । खिले हुए अशोकोंकी शोभासे स्वर्णोदयप्रभालकी छटा थी छिटक रही थी ॥ ५ ॥

प्रदीप्तामित्र तत्रस्थो मारुति समुवैक्षत ।

निष्प्रश्नास्त्रा विद्वगै रियमाणामियासहृत् ॥ ६ ॥

पवाकुमार हनुमान्ने उस अशोकपर बैठे-बैठे ही उस दमकती हुई-सी वाटिकाको देखा । वहाँके पक्षी उस वाटिका को बारबार पनों और शाखाओंसे हीन कर रहे थे ॥ ६ ॥

विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतसकैः ।

समूलपुष्पपक्षितैरशोकैः शोकनाशनेः ॥ ७ ॥

पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् ।

कर्णिकारैः कुसुमितैः किङ्गुकैश्च सुपुष्पितैः ॥ ८ ॥

स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सत्ततः ।

वृक्षोंसे सजते हुए सैकड़ों विचित्र पुष्प-गुच्छोंसे नीचेसे ऊपरतक मानो फूलसे बने हुए शोकनाशक अशोकोंसे, फूलोंके मारी भारसे झुककर पृथ्वीका स्पर्श छा करते हुए खिले हुए कनेरोंसे तथा सुन्दर फूलवाले पलाशोंसे उपलक्षित वह भूभाग उनकी प्रभाके कारण सब ओरसे उद्दीप्त छा हो रहा था ॥ ७-८ ॥

पुनागा सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा ॥ ९ ॥

विचृद्धमूला बहवः शोभन्ते स सुपुष्पिता ।

पुनाग (रबेत कमल या नागकेसर), छितवन, चम्पा तथा बहुवार आदि बहुत-से सुन्दर पुष्पवाले वृक्ष; जिनकी जड़ें बहुत मोटी थीं, वहाँ शोभा पा रहे थे ॥ ९ ॥

शातकुम्भनिभाः केचित् केचित्प्रशिखिप्रभाः ॥ १० ॥

भीलाञ्जननिभाः केचित् तन्नाशोका सहस्रशः ।

वहाँ सहस्रों अशोकके वृक्ष थे; जिनमेंसे कुछ तो सुवर्णके समान कान्तिमान् थे; कुछ आगकी ज्वालाके समान प्रकाशित हो रहे थे और कोई-कोई काले काबलकी सी कान्तिवाले थे ॥ १० ॥

नन्दन विद्युधोषान चित्र चैत्ररथ यथा ॥ ११ ॥

अतिवृष्टमियाचित्य दिव्य रम्यभियायुतम् ।

वह अशोकवन देवोषान नन्दनके समान आनन्ददायी, कुबेरके चैत्ररथ वनके समान विचित्र तथा उन दोनोंसे भी बढ़कर अचिन्त्य, दिव्य एवं रमणीय शोभासे सम्पन्न था ॥ ११ ॥

द्वितीयमिव चाकाश पुष्पज्योतिर्गणायुतम् ॥ १२ ॥

पुष्परत्नशतैश्चिन्ना पञ्चम सागर यथा ।

वह पुष्परूपी नक्षत्रोंसे युक्त दूसरे आकाशके समान सुशोभित होता था तथा पुष्पमय सैकड़ों रत्नोंसे विचित्र शोभा पानेवाले पौंचवें समुद्रके समान जान पड़ता था ॥ १२ ॥

सर्वतुपुष्पैर्नक्षित पाद्मैर्मेघुराधिभिः ॥ १३ ॥

नानानिनादैरुद्यान रम्य मृगगणजितैः ।

अनेकगन्धप्रवह पुण्यगन्ध मनोहरम् ॥ १४ ॥

शैलेन्द्रमिथ गन्धाढ्य द्वितीय गन्धमादनम् ।

सब शृद्धाओंमें फूल देनेवाले मनोरम गन्धयुक्त वृक्षोंसे मग्य हुआ तथा मौंति मौंतिके फलरव करनेवाले मृगों और पक्षियोंसे सुशोभित वह उद्यान बढ़ा रमणीय प्रतीत होता था । वह अनेक प्रकारकी मृगपक्ष्य मार बधन करनेके कारण पवित्र गन्धसे युक्त और मनोहर जान पड़ता था । दूसरे

गिरिराज गन्धमादनके समान उत्तम सुगन्धसे व्याप्त था ॥ १५-१४३ ॥

अशोकान्निकाया तु तस्या गानरपुङ्गव ॥ १५ ॥
स ददशाविदुरस्थ चैत्यप्रासादमूर्जितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थित कैलासपाण्डुरम् ॥ १६ ॥
प्रवालकृतसोपान तप्तकाञ्चनघेदिकम् ।
मुष्णतमिव चक्षुषि द्योतमानमिव श्रिया ॥ १७ ॥
निर्मल प्राग्भाषत्वादुल्लिखन्तमिषामयरम् ।

उस अशोकवाटिका में गानर शिरोमणि हनुमान्ने योड़ी ही दूरपर एक गोलाकार ऊँचा मन्दिर देखा, जिसके भीतर एक हजार खम्भे लगे हुए थे । यह मन्दिर कैलास पर्वतके समान श्वेत वनका था । उसमें भूँके की छोटियाँ बनी थीं तथा तपाये हुए सोने की घंटियाँ बनायी गयी थीं । वह निर्मल प्रासाद अपनी शोभासे देदीप्यमान-सा हो रहा था । दशकों की दृष्टिमें चकार्चोष सा पैदा कर देता था और बहुत ऊँचा होनेके कारण आकाशमें रेखा खींचता सा जान पड़ता था ॥ १५-१७३ ॥

ततो मलिनसवीता राक्षसीभिः समावृताम् ॥ १८ ॥
उपवासकृशा दीना नि श्वसन्ती पुन पुन ।
ददर्श शुक्लपक्षादी चन्द्ररेणामिषामलाम् ॥ १९ ॥

यह चैत्यप्रासाद (मन्दिर) देखनेके अनन्तर उनकी दृष्टि यहाँ एक सुन्दरी स्त्रीपर पड़ी, जो मलिन बज्र धारण किये राक्षसियोंसे घिरी हुई बैठी थी । वह उपवास करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल और दीन दिखायी देती थी तथा बार-बार सिक्क रही थी । शुक्लपक्षक आरम्भमें चन्द्रमा की कला जैसी निर्मल और कृश दिखायी देती है, वैसी ही वह भी दृष्टिगोचर होती थी ॥ १८-१९ ॥

मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धा धूमजालेन शिखामिव विभावसो ॥ २० ॥
धुँवली-सी स्मृतिङ्ग आचारपर कुटकुछ पहचाने जानेवाले अपने रूपसे यह सुन्दर प्रभा बिलेर रही थी और धूर्धरे ढकी हुई अग्नि की ज्वालाके समान जान पड़ती थी ॥ २० ॥

पीतेनेकेन सधीता फ्लिप्तेनोत्तमयाससा ।
सपङ्कमनलकारा विषमामिव पद्मिनीम् ॥ २१ ॥

एक ही पीले रंगके पुराने रेशमी बज्जे उसका शरीर ढका हुआ था । वह मलिन, अलंकारशून्य होनेके कारण कमलोंसे रहित पुष्करिणीके समान भँदीन दिखायी देती थी ॥ २१ ॥

पीडिता दुःश्वसतता परिदीणा तपस्विनीम् ।
महेणाप्लावकेनेय पीडितामिव रोहिणीम् ॥ २२ ॥

यह तपस्विनी मंगलमद्वारे आक्रान्त रोहिणीके समान

शकते पीडित, दुःश्वसे सतत और सवया क्षीणकाय हो रही थी ॥ २२ ॥

अश्रुपूर्णमुखी क्षीणा वृशामनशनेन च ।
शोकध्यानपरा दीना नित्य दुःखपरायणाम् ॥ २३ ॥

उपवाससे दुर्बल हुई उस दुखिया नारीके मुखपर आँसुओं की धारा यह रही थी । वह शोक और चिन्तामें मग्न हो दीन दशामें पड़ी हुई थी एवं निरन्तर दुःखमें ही डूबी रहती थी ॥ २३ ॥

प्रिय जनमपश्य तौ पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृतां हीना श्वगणेनाधृतामिव ॥ २४ ॥

यह अपने प्रियजनोंको तो देख नहीं पाती थी । उसकी दृष्टिके समक्ष सदा राक्षसियोंका समूह ही बैठा रहता था । जैसे कोई मृगी अपने घूँसे बिलुङ्गकर कुत्तोंके छहसे घिर गयी हो, वही दशा उसकी भी हो रही थी ॥ २४ ॥

नीलनागाभया घेण्या जघन गतयैकया ।
नीलया नीरक्षपाये चनराज्या महीमिव ॥ २५ ॥

काली नागिनर समान कटिस नीचेतक लटकती हुई एकमान वाली घेणीके द्वारा उपलक्षित होनेवाली वह नारी बादलोंके दृढ़ बानेपर नीली वनभ्रगीसे घिरी हुई पृथ्वीके समान प्रतीत होती थी ॥ २५ ॥

सुखार्हा दुःखसतता व्यसनानामकोविशाम् ।
ता विलोक्य विशालाक्षीमचिक मलिना वृशाम् ॥ २६ ॥
तर्कयायास स्तितेति कारणैरपपादिभिः ।

यह मुख भोगनेके योग्य थी, किंतु दुःखसे सतत हो रही थी । इससे पहले उसे सखियोंका कोई अनुभव नहीं था । उस विशाल नेत्रोंवाली, अत्यन्त मलिन और क्षीणकाय अवस्थाका अवलोकन करके पुच्छिपुच्छ कारणोंद्वारा हनुमान्जीने यह अनुमान किया कि होन-दो यही सीता है ॥ २६ ॥

ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामकृपिणा ॥ २७ ॥
ययारूपा हि दृष्टा सा तथारूपेयमहता ।

इच्छातुसार रूप धारण करनेवाला वह राक्षस जब सीताजीको हरकर ले जा रहा था, उस दिन जिस रूपमें उनका दर्शन हुआ था, वस्याणी नारी भी वैसे ही रूपसे मुक्त दिखायी देती है ॥ २७ ॥

पूणचन्द्रानना सुधू चाकृच्छत्तपयोधराम् ॥ २८ ॥
कुयन्ती प्रभया देवी सया वितिमिरा दिश ।

देवी सीताका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था । उनकी भीड़ बढ़ी सुन्दर थी । दोनों स्त्रियें मनोहर और गोलाकार थे । वे अपनी अन्नक्रान्तिके सम्पूर्ण दिशाओंका अवधार दूर किये देती थीं ॥ २८ ॥

ता भीलकण्ठी विष्णोर्मा सुमर्या सुप्रतिष्ठिताम् ॥ २९ ॥



हनुमानजीको जानकी नीका प्रथम दर्शन



उनके केश काले-काले और ओष्ठ विम्बफलके समान खल थे । कटिभाग बहुत ही सुन्दर था । सारे अङ्ग सुबोले और सुगठित थे ॥ २१ ॥

सीता पद्मपलाशाक्षी ममयस्य रतिं यथा ।
इष्टा सवस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥ ३० ॥
भूमौ सुतनुमासीना नियतामिव तापसीम् ।

निश्वासबहुला भीरु भुजगेन्द्रधूमिव ॥ ३१ ॥
कमलनयनी सीता कामदेवकी प्रेयसी रतिके समान सुन्दरी थीं, पूष्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान समस्त जगत्के लिये मिय थीं । उनकी शरीर बहुत ही सुन्दर था । वे नियमपरायणा तापसीके समान भूमिपर बैठी थीं । यद्यपि वे स्वभावसे ही मीठ और चिन्ताके कारण बारबार लयी सोंछ खाँचती थीं तो भी दूसरोंके लिये नागिनके समान मयकर थीं ॥ ३० ३१ ॥

शोकजालेन महता चित्तेन न राजतीम् ।
ससक्ता धूमजालेन शिखामिव विभावसो ॥ ३२ ॥

वे विस्तृत महान् शोकजालसे आच्छादित होनेके कारण विशेष शोभा नहीं पा रही थीं । धूँएँके समूहसे मिली हुई अग्निशिखाके समान दिखायी देती थीं ॥ ३२ ॥
ता स्मृतीमिव सद्विग्रहानुद्धि निपतितामिव ।
विहतामिव च श्रद्धामाशा प्रतिहतामिव ॥ ३३ ॥
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलपामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥ ३४ ॥

वे सद्विग्रह अर्थात् स्मृति, भूतलपर गिरी हुई ऋद्धि, दृढी हुई अर्थात् भयन हुई आशा, विजयुक्त शिद्धि, कष्टमित बुद्धि और मिथ्या कलकसे भ्रष्ट हुई कीर्तिके समान जान पड़ती थीं ॥ ३२ ३४ ॥

रामोपरोधव्यथिता रक्षोगणनिपीडिताम् ।
अथला मृगशाबाक्षीं पीड्यमाणा ततस्तत ॥ ३५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें रुकावट पड़ जानेसे उनके मनमें बड़ी व्यथा हो रही थी । राक्षसोंसे पीड़ित हुई मृग शावकनयनी अबला सीता अशहायकी भाँति इधर-उधर देख रही थी ॥ ३५ ॥

याग्याभ्युपरिपूर्णेन कृष्णयक्षाक्षिपक्ष्मणा ।
यदनेनाप्रसन्नेन निःस्वसन्ती पुन पुन ॥ ३६ ॥

उनका मुख प्रसन्न नहीं था । उसपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और नेत्रोंकी पलकें काली एवं टेढ़ी दिखायी देती थीं । वे बारबार लयी सोंछ खाँचती थीं ॥ ३६ ॥

मलपङ्कधरा शीना मण्डनाहाममण्डिताम् ।
प्रभा नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥ ३७ ॥

उनक शरीरपर मेल जमा गयी थी । वे दीनताकी मूर्ति बनी बैठी थीं तथा मन्दार और भूषण चारण करनेके योग्य

होनेपर भी अलक्षाय थीं, अतः काले बादलोंसे ढकी हुई चन्द्रमाकी प्रभाके समान जान पड़ती थीं ॥ ३७ ॥
तस्य सद्विदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आस्तायानामयोगेन विद्या प्रशिथिलामिव ॥ ३८ ॥

अप्यास न करनेसे शिथिल (विस्मृत) हुई विद्याके समान क्षीण हुई सीताको देखकर हनुमान्जीकी बुद्धि सद्विद्वेहमें पड़ गयी ॥ ३८ ॥

तु खेन वधुधे सीता हनुमाननलकृताम् ।
सस्कारेण यथा हीना धाचमर्थांतर गताम् ॥ ३९ ॥

अलक्षर तथा स्नान अनुलेपन आदि अङ्गसंस्कारसे रहित हुई सीता व्याकरणादिज्ञित संस्कारसे शून्य होनेके कारण अर्थान्तरको प्राप्त हुई बाणीके समान पहचानी नहीं जा रही थीं । हनुमान्जीने बड़े कष्टसे उन्हें पहचाना ॥ ३९ ॥
ता समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिदिताम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥ ४० ॥

उन विशालसोचना सती साध्वी राजकुमारीको देखकर उन्होंने कारणों (युक्तियों) द्वारा उपपादन करते हुए मनमें निश्चय किया कि यही सीता हैं ॥ ४० ॥

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तत्र रामोऽन्यकीर्तयत् ।
तान्याभरणजालानि शाश्वतोभीन्यलक्षयत् ॥ ४१ ॥

उन दिनों श्रीरामचन्द्रजीने विदेहकुमारीके अङ्गोंमें बिन बिन आभूषणोंके होनेकी चचा की थी, वे ही आभूषण समूह इस समय उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे थे । हनुमान्जीने ॥ ४१ ॥ बातकी ओर लक्ष्य किया ॥ ४१ ॥

सुकृतौ कर्णवेष्टी च श्वद्वयौ च सुसंस्थितौ ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वभरणानि च ॥ ४२ ॥

सुन्दर बने हुए कुण्डल और कुत्तेके दाँतोंकी-सी आकृतिवाले त्रिकर्ण नामचारी कर्णफूल कानोंमें सुन्दर ढंगसे सुप्रतिष्ठित एवं सुशोभित थे । हाथोंमें कगन आदि आभूषण थे, बिनमें मणि और मूँगे जड़े हुए थे ॥ ४२ ॥

इयामानि चिरयुक्त्यात् तथा सस्यानवर्ति च ।
तान्येवैतानि मयेऽहं यानि रामोऽन्यकीर्तयत् ॥ ४३ ॥
तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नाथहीनानि तानीमानि न सशय ॥ ४४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पहने गये होनेके कारण वे कुछ काले पड़ गये थे, तथापि उनके आकारप्रकार वैसे ही थे । (हनुमान्जीने सोचा—) ‘श्रीरामचन्द्रजीने बिनकी चचा की थी, मेरी समझमें ये वे ही आभूषण हैं । सीताजीने जो आभूषण वहाँ गिरा दिये थे, उनको मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ । इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे, वे ही ये दिखायी देते हैं, इधमें सशय नहीं है ॥ ४३ ४४ ॥

कनकपट्टभिः स्रस्त तद्वसन शुभम् ।
पीय नगासक्त तदा दृष्टं प्रवृद्धम् ॥ ४५ ॥
गानि च मुखयानि दृष्टानि धरणीतले ।
पैवापत्रिद्वानि स्रनयन्ति महान्ति च ॥ ४६ ॥
‘उत्त समय वानरोंने पर्वतपर गिराये हुए मुखर्णपत्रके
न जो सुन्दर पीला वज्र और पृष्ठीपर पड़े हुए
उत्तम बहुमूल्य एव यजनेवाल आभूषण देखे थे, वे
के गिराये हुए थे ॥ ४५ ४६ ॥

शिरगृहीतत्वाद् वसनं क्षिप्यत्तरत् ॥
प्यनून तद्वर्णं तथा भीमयथेतरत् ॥ ४७ ॥
‘यह वज्र बहुत दिनोंसे पहन जानेके कारण यद्यपि
पुराना हो गया है, तथापि इसका पीला रंग अभी तक
नहीं है। यह भी वैशा ही कान्तिमान् है, जैसा वह
वज्र था ॥ ४७ ॥

कनकजर्णोज्जी रामस्य महिषी प्रिया ।
द्यापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥ ४८ ॥
‘ये सुवर्णके समान और अङ्गवाली श्रीरामचन्द्रजीकी
महारानी हैं, जो अहम्य हो जानेपर भी उनके मनमें
ग नहीं हुई हैं ॥ ४८ ॥

सा यत्कृते रामद्वचतुर्भिरिह तप्यते ।
हृष्येनानुशास्येन शोकेन मदनेन च ॥ ४९ ॥
‘ये वे ही सीता हैं, जिनके लिये श्रीरामचन्द्रजी इस
तमें कृष्ण, दया, शोक और प्रेम—इन चार कारणोंसे
त होते रहते हैं ॥ ४९ ॥

प्रणष्टेति कारुण्यादाधितेत्यानुशास्यत ।
ति नष्टति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ ५० ॥
‘एक ज़ी खो गयी; यह सोचकर उनके हृदयमें कष्टना
आती है। वह हमारे आश्रित थी, यह सोचकर वे

हृत्पार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्मीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकीनिर्मित आगरामायण आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

पोडशः सर्गः

हनुमान्जीका मन-ही मन सीताजीके शील और सौन्दर्यकी सराहना करते हुए उन्हें
कष्टमें पड़ी देख स्वयं भी उनके लिये शोक करना

तस्य तु प्रशस्तव्या सीता ता हरिपुङ्गवः ।
गामिराम राम च पुनश्चात्तापरोऽभवत् ॥ १ ॥
परम प्राणनीपा सीता और गुणभिराम श्रीरामजी
उठा करके वानरभेद हनुमान्जी फिर विचार करने
गे ॥ १ ॥

दयासे प्रवृत्त हो उठते हैं। मेरी पत्नी ही मुझसे विछुड़ गयी,
इसका विचार करके वे शोकसे व्याकुल हो उठते हैं तथा
मेरी प्रियतमा मेरे पास नहीं रही, ऐसी भावना करके उनके
हृदयमें प्रेमकी वेदना होने लगी है ॥ ५० ॥

अस्या देया यथारूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् ।
रामस्य च यथारूप तस्येयमस्तिक्षणा ॥ ५१ ॥
जैसा अलौकिक रूप श्रीरामचन्द्रजीका है तथा जैसा
मनोहर रूप एव अङ्ग-प्रत्यङ्गकी सुषुप्तता इन देवी सीतामें
है, इसे देखते हुए कश्चारे नेत्रोंवाली सीता उड़ीके योग्य
पत्नी हैं ॥ ५१ ॥

अस्या देव्या मनस्तस्मिस्तस्य चास्या प्रतिष्ठितम् ।
तेनेय स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीयति ॥ ५२ ॥
‘इन देवीका मन श्रीरामायणीमें और श्रीरामायणीका
मन इनमें लगा हुआ है, इसीलिये वे तथा धर्मात्मा श्रीराम
जीवित हैं। इनके मुहूर्तमात्र जीवनेमें भी यही कारण
है ॥ ५२ ॥

दुष्कर हृत्तवान् रामो हनिो यदनया प्रभु ।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनायसीदति ॥ ५३ ॥
‘इनके विछुड़ जानेपर भी भगवान् श्रीराम जो अपने
शरीरको धारण करते हैं, शोकसे चिथिल नहीं हो जाते हैं,
यह उन्होंने अत्यन्त दुष्कर काय किया है ॥ ५३ ॥

एव सीता तथा दृष्टा दृष्ट पवनसम्भवः ।
जगाम मनसा राम प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥ ५४ ॥
इस प्रकार उक्त अवस्थामें सीताका दर्शन पाकर पवनपुत्र
हनुमान्जी बहुत प्रसन्न हुए। वे मन ही मन भगवान्
श्रीरामके पास जा पहुँचे—उनका चिन्तन करने लगे तथा
सीता जैसी साध्वीको पत्नीरूपमें पानेसे उनके हौमय्यकी भूरि
भूरि प्रशंसा करने लग ॥ ५४ ॥

स मुहूर्तमपि ध्यात्वा याप्पपर्यायुलेक्षणाः ।
सीतामाधित्य तेजस्वी हनुमान् विल्लाप ह ॥ २ ॥
छगभग दो पड़ातक कुछ सोच विचार करनेपर उनके
नत्रोंमें और भर आये और वे तेजस्वी हनुमान् सीताके
नियमें इस प्रकार विलाप करने लगे— ॥ २ ॥

मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया ।
यदि सीता हि दुःखाता कालो हि दुःरतिक्रम ॥ ३ ॥

‘महो ! मित्रोंने गुरुबनोसे शिक्षा पायी है, उन लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीरामकी प्रियतमा पत्नी सीता भी यदि इस प्रकार दुःखसे आतुर हो रही हैं तो यह कहना पड़ता है कि कालका उल्लङ्घन करना समीचे लिये अव्यक्त कठिन है ॥

रामस्य ध्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमत ।
नात्यर्थं श्रुन्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥ ४ ॥

‘जैसे क्या श्रुतु आनेपर भी देवी गङ्गा अधिक सुख नहीं होती हैं, उसी प्रकार श्रीराम तथा बुद्धिमान् लक्ष्मणके अनोख पराक्रमका निश्चित ज्ञान रखनेवाली देवी सीता भी शोकसे अधिक विचष्टित नहीं हो रही हैं ॥ ४ ॥

तुल्यशीलचयोवृक्षा तुल्याभिजनलक्ष्णाम् ।
राघवोऽहंति वैदेहीं त चेत्यमसितेक्षणा ॥ ५ ॥

‘सीताके शील, स्वभाव, अवस्था और वताव श्रीरामके ही समान हैं। उनका कुल भी उन्हींके तुल्य महान् है, अतः श्रीरघुनाथकी विदेहकुमारी सीताके सर्वथा योग्य हैं तथा वे कज्जारे नेत्रोंवाली सीता भी उन्हींके योग्य हैं ॥ ५ ॥

ता दृष्ट्वा नवहेमाभा लोककान्तामिव धियम् ।
जगाम मनसा राम वचन खेदमग्रयोत् ॥ ६ ॥

नूतन सुवर्णके समान दीप्तिमती और लोककमनीया लक्ष्मीकीके समान शोभामयी भीसीताको देखकर हनुमान्जीने श्रीरामचन्द्रकीका स्मरण किया और मन ही-मन इस प्रकार कहा— ॥ ६ ॥

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो धाली महाबलः ।
राघवप्रतिभो धीर्यै कथंधृद्वच निपातित ॥ ७ ॥

‘इन्हीं विशाललोचना सीताके लिये भगवान् श्रीरामने महाबली यात्रीका वच किया और राघवके समान पराक्रमी कथकों की मार गिराया ॥ ७ ॥

त्रिराधद्व हत सख्ये राक्षसो भीमजिह्वम् ।
यने रामेण विह्वल्य महेद्रेणेव शम्बर ॥ ८ ॥

‘इन्हींके लिये श्रीरामने वनमें पराक्रम करते भयानक पराक्रमी राक्षस विराघका भी उसी प्रकार मुद्गमें मार डाला, जैने देवराज इन्द्रने शम्बरामुका वच किया था ॥ ८ ॥

चतुदश सहस्राणि रक्षसा भीमकमणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमै ॥ ९ ॥

एतद्वच निहत सख्ये त्रिशिराद्वच निपातित ।
दूषणद्व महातेजा रामेण त्रिदितात्मना ॥ १० ॥

‘इन्हींके कारण आत्मशानी श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें अपने अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी शरोंद्वारा भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको कालके गालमें भेज दिया

और मुद्गमें खर, त्रिशिरा तथा महातेजस्वी दूषणको भी मार गिराया ॥ ९ १० ॥

ऐश्वर्यं धानराणा च तुलभ वालिपालितम् ।
अस्या निमित्ते सुग्रीव प्राप्तघाँहोऽकविश्रुत ॥ ११ ॥

‘वानरोंका वह दुर्लभ ऐश्वर्य, जो वालीके द्वारा सुरक्षित था, इन्हींके कारण विश्वविख्यात सुग्रीवकी प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥

सागरद्वच मयाऽऽफ्रान्त भीमान् नन्दनदीपति ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या पुरीचेय निरीक्षिता ॥ १२ ॥

‘इन्हीं विशाललोचना सीताके लिये मैंने नदों और नदियोंके स्वामी भीमान् सद्रुद्रका उल्लङ्घन किया और इस लङ्कापुरीको छान डाला है ॥ १२ ॥

यदि राम समुद्राता मेदिनीं परिचर्तयेत् ।
अस्या कृते जगद्यापि युक्तमित्येव मे मति ॥ १३ ॥

‘इनके लिये तो यदि भगवान् श्रीराम सद्रुद्रपतन्त पृथ्वी तथा सारे सगरकी भी उल्लट देते तो भी वह मेरे विचारसे उचित ही होता ॥ १३ ॥

राज्य वाविपु लोकेषु सीता या जनकामजा ।
त्रैलोक्यराज्य सकल सीताया नाप्नुयात् कलाम् ॥ १४ ॥

‘एक ओर तीनों लोकोंका राज्य और दूसरी ओर जनक कुमारी सीताको राजकर तुलना की जाय तो त्रिलोकीका सारा राज्य सीताकी एक कलाके बराबर भी नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

इय सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मन ।
सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृहृदयता ॥ १५ ॥

‘ये धर्मशील मिथिलनरेश महात्मा राजा जनककी पुत्री सीता पतिव्रत धर्ममें बहुत दृढ़ हैं ॥ १५ ॥

उत्थिता मेदिनीं भिरवा क्षेत्रे हलमुखक्षते ।
पक्षरेणुनिभै कीणा शुभै केदारपासुभि ॥ १६ ॥

‘जब हलक मुख (फल) से खेत बोता जा रहा था, उस समय ये पृथ्वीको काटकर कमलके परगकी भाँति क्यारीकी सुन्दर धूलेंसे लिपटी हुई प्रकट हुए थीं ॥ १६ ॥

विक्रान्तस्यायंशीलस्य सयुरोप्यनिचर्तितम् ।
स्तुया दशरथस्यैवा ज्येष्ठा राक्षो यशस्विनी ॥ १७ ॥

‘जो परम पराक्रमी, अष्ट शील स्वभाववाले और मुद्गसे कभी पीडे न हटनेवाले थे, उन्हीं महाराज दशरथने ये यशस्विनी ज्येष्ठ पुत्रवधू हैं ॥ १७ ॥

धर्मस्य हृतप्रस्य रामस्य विदितात्मन ।
इय सा दयिता भायां राक्षसीयशामगता ॥ १८ ॥

‘धर्मज्ञ, कृता एव आत्मशानी भगवान् श्रीरामकी ये प्यारी पत्नी सीता इस समय राक्षसियों के वशमें पड़ गयी हैं ॥ १८ ॥

सर्गान् भोगान् परित्यज्य भर्तृस्नेहवलात् हृता ।

अचिन्तयित्वा कपानि प्रविष्टा निजं वनम् ॥ १९ ॥

ये केवल पतिप्रेमके कारण सारे भोगोंको लात मारकर विपत्तियोंका कुछ भी विचार न करके श्रीरघुनाथजीके साथ निज वनमें चली आयी थीं ॥ १९ ॥

सतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा ।

या परा भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ २० ॥

‘यहाँ आकर फल-मूलोंसे ही सतुष्ट रहती हुई पतिदेवकी सेवामें लगी रही और वनमें भी उसी प्रकार परम प्रसन रहती थीं, जैसे राजमहलोंमें रहा करती थीं ॥ २० ॥

सेय कनकवर्णाङ्गी नित्य सुस्थितभाषिणी ।

सहते यातनामेतानमनर्थानामभाषिणी ॥ २१ ॥

‘ये ही ये सुवर्णके समान सुन्दर अङ्गवाली और सदा मृत्कराकर बात कनेवाली सुन्दरी सीता, जो अनर्थ भोगनेके योग्य नहीं थीं, इस यातनाको सहन करती हैं ॥ २१ ॥

इमा तु शीलसम्पन्ना द्रष्टुमिच्छन्ति राघव ।

रावणेन प्रमथिता प्रपामिव पिपासिताः ॥ २२ ॥

‘व्यर्थपि रावणने इन्हें बहुत कष्ट दिये हैं तो भी ये अपने शील, सदाचार एवं सतीत्वसे सम्पन्न हैं । (उसके घसीभूत नहीं हो सकी हैं ।) अतएव जैसे प्यासा मनुष्य पाँसलेपर जाना चाहता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी इन्हें देखना चाहते हैं ॥ २२ ॥

अस्या नून पुनर्लाभाद् राघवः प्रीतिमेप्स्यति ।

राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥ २३ ॥

‘जैसे राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा पुनः पृथ्वीका राज्य पाकर बहुत प्रसन्न होता है, उसी प्रकार उनकी पुनः प्राप्ति होनेसे श्रीरघुनाथजीकी निश्चय ही बढ़ी प्रसन्नता होगी ॥ २३ ॥

कामभोनै परित्यक्ता हीना यशुजनेन च ।

धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥ २४ ॥

‘ये अपने बन्धु-भ्रातोंसे विरुद्धकर वियोगभोगोंकी तिलाञ्जलि दे केवल ममवान् श्रीरामचन्द्रजीके समागमकी आशासे ही अपना शरीर धारण किये हुए हैं ॥ २४ ॥

मैपा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान् ।

एकस्यहृदया नूनं राममेतानुपश्यति ॥ २५ ॥

‘ये न तो राक्षसियोंकी ओर देखती हैं और न इन फल-फूल-वाले वृक्षोंपर ही दृष्टि डालती हैं, सबथा एकप्रचित्त हो मनकी ओलोंसे केवल श्रीरामका ही निरन्तर दर्शन (प्यान) करती हैं—इसमें संदेह नहीं है ॥ २५ ॥

मर्ता नाम पर नायाः शोभन भूषणादपि ।

पया दि रक्षिता तेन शोभनाह्ना न शोभते ॥ २६ ॥

‘निश्चय ही पति नारीके लिये आभूषणकी अपेक्षा भी अधिक शोभाका हेतु है । ये सीता उहाँ पतिदेवसे विरुद्ध गयी हैं, इसलिये शोभाके योग्य होनेपर भी शोभा नहीं पा रही हैं ॥ २६ ॥

दुष्कर कुचते रामो हीनो यदनया प्रभु ।

धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनायसीदिति ॥ २७ ॥

‘भगवान् श्रीराम इनसे विरुद्ध जानेपर भी जो अपने शरीरको धारण कर रहे हैं, दुःखसे अत्यन्त शिथिल नहीं हो जाते हैं, यह उनका अत्यन्त दुष्कर कर्म है ॥ २७ ॥

इमामसितकेशांश्चा शतपत्रनिभेक्षणाम् ।

सुसार्हां दुःखिता शात्वा ममापि व्यथित मन ॥ २८ ॥

‘बाले केश और कमल-जैसे नेत्रवाली ये सीता बालबमें सुख भोगनेके योग्य हैं । इन्हें दुःखी जानकर मरा मन भी व्यथित हो उठता है ॥ २८ ॥

क्षितिक्षमा पुष्करसनिभेक्षणा

या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।

सा राक्षसीभिर्विद्वेतेक्षणाभि

सरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले ॥ २९ ॥

‘अहो ! वो पृथ्वीके समान क्षमाशील और प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रवाली हैं तथा श्रीराम और लक्ष्मणने जिनकी सदा रक्षा की है, ये ही सीता आज इस वृक्षके नीचे बैठी हैं और ये विकराल नेत्रवाली राक्षसियाँ इनकी रखवाली करती हैं ॥ २९ ॥

हिमहतनलिनी च नष्टशोभा

व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना ।

साहचररहितेव चक्रवाकी

जनकसुता वृषणा दशा प्रपन्ना ॥ ३० ॥

‘हिमकी मारी हुई कमलिनिके समान इनकी शोभा नष्ट हो गयी है, दुःख-पर-दुःख उठानेके कारण अत्यन्त पीड़ित हो रही हैं तथा अपने सहचरसे विरुद्धी हुई चक्रवीने समान पति वियोगका कष्ट सहन करती हुई ये जनककिशोरी सीता बड़ी दयनीय दशाको पहुँच गयी हैं ॥ ३० ॥

अस्या हि पुष्पायनताप्रदाया

शोक एव जनयन्त्यशोकः ।

हिमव्यपायेन च शीतरदिम

रम्यस्थितो नैकसहस्ररदिम ॥ ३१ ॥

‘फूलोंके भारसे जिनकी शालियोंके अग्रभाग छुक गये हैं, वे अशोकवृक्ष इस समय सीतादेवीने लिये अत्यन्त शोक उत्पन्न कर रहे हैं तथा शिशिरका अन्त हो जानेसे

वधन्तकी रातमें उदित हुए शीतल किरणोंवाले चन्द्रदेव भी इनके लिये अनेक सहस्र किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सय देवकी मूर्ति स्तम्भ दे रहे हैं ॥ ३१ ॥

इत्येवमर्थं कपिरन्यवेक्ष्य

सीतेयमित्येष नु जातबुद्धिः ।

इत्यर्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे षोडश सर्गः ॥ १६ ॥

इम प्रकार श्रीरामचरितमें कर्णरामायण आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे सोम्हवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

भयकर राक्षसियोंसे घिरी हुई सीताके दर्शनसे हनुमान्जीका प्रसन्न होना

तत कुमुदखण्डाभो निर्मल निर्मलोद्भव ।

प्रजगाम नभश्चन्द्रो हृन्मो नीलमिवोद्भक्म् ॥ १ ॥

तदनन्तर वह दिन शीतनेके पश्चात् कुमुदसमूहके समान श्वेत वर्णवाले तथा निमलरूपसे उदित हुए चन्द्रदेव स्वच्छ आकाशमें कुछ ऊपरको चमक आये । उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई हथ किरी नील जलराशिमें तैर रहा हो ॥

साक्षिष्यमिव कुर्वन् स प्रभया निर्मलप्रभ ।

चन्द्रमा रश्मिभि शीत सितेषु पवनारमजम् ॥ २ ॥

निमल कान्तिवाले चन्द्रमा अपनी प्रभासे शीताक्षीके दर्शन आदिमें पवनकुमार हनुमान्जीकी सहायता-शी करते हुए अपनी शीतल किरणोंद्वारा उनकी सेवा करने लगे ॥ २ ॥

स ददर्श तत सीता पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।

शोकभारैरिव न्यस्ता भारैर्नायमियाम्भसि ॥ ३ ॥

उस समय उन्होंने पूरा चन्द्रमाके समान मनोहर मुख वाली शीताको देखा, जो बलमें अधिक बोझसे कारण दबी हुई नौकाकी मूर्ति शोकके भारी भारसे मानो झुक गयी थी ॥

दिदृक्षमाणो घैदेर्ही हनुमान् मादृतात्मज ।

स ददर्शाविदूरस्था राक्षसीघोरदर्शना ॥ ४ ॥

बापुपुत्र हनुमान्जीने जब विदेहकुमारी शीताको देखनेके लिये अपनी दृष्टि दोहायी, तब उन्हें उनकी पास ही बैठी हुई भयानक दृष्टिवाली बहुत-सी राक्षसियों दिसायी दी ॥

एकान्तामेककर्णा च कणप्रावरणा तथा ।

अकर्णा शङ्कुकर्णा च मस्तकोच्छ्वासनासिकायाम् ॥ ५ ॥

उनमेंसे किसीके एक सौंथ थी तो दूसरीके एक कान । किसी-किसीके कान इतने बड़े थे कि वह उन्हें चादरकी मूर्ति ओढ़े हुए थी । किसीके कान ही नहीं थे और किसीके कान ऐसे दिसायी देते थे मानो नुँदें गड़े हुए हों । किसी-किसीकी सौंथ लेनेवाली नाक उगवें मस्तकपर थी ॥ ५ ॥

सुतिपायोत्तमार्हा च तनुदीपशिरोघराम् ।

प्र्यस्तनेर्ही तथाकेर्ही वेदाकम्बलधारिणीम् ॥ ६ ॥

सुतिपायोत्तमार्हा च तनुदीपशिरोघराम् । प्र्यस्तनेर्ही तथाकेर्ही वेदाकम्बलधारिणीम् ॥ ६ ॥

सभित्य तस्मिन् निपसाद् वृक्षे

थली हरीणामृषभस्तरस्यी ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरभेष्ट वेग-

शाली हनुमान्जी यह निश्चय करके कि 'ये ही शीता हैं' उठी

वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

एकहस्तैरुपादाश्च हरकर्ण्यश्चकर्णिका ।
गोकर्णहस्तिकर्णश्च हरिकर्णस्तथापरा ॥ ११ ॥

किन्हींके एक हाथ थे तो किन्हींके एक पैर । किन्हींके कान गदहके समान थे तो किन्हींके घोड़ोंके समान । किन्हीं किन्हींके कान गौओं, हाथियों और छिहोंके समान दृष्टियेकर होते थे ॥ ११ ॥

अतिनासाश्च काश्चिद्यतिर्यङ्नासा अनासिका ।
गजसनिभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिका ॥ १२ ॥

किन्हींकी नासिकाएँ चट्टान बड़ी थीं और किन्हींकी तिरछी । किन्हीं किन्हींके नाक ही नहीं थी । कोई-कोई हाथी की झुँड़के समान नाकवाली थीं और किन्हीं किन्हींकी नासिकाएँ ललाटमें ही थीं, जिनसे वे सँभ लिया करती थीं । हस्तिपादा महापादा शोपादाः पादचूलिका ।

अतिमात्रशिरोम्रीषा अतिमात्रकुचोदगी ॥ १३ ॥

किन्हींके पैर हाथियोंके समान थे और किन्हींके गौओंके समान । कोई बड़े बड़े पैर धारण करती थीं और कितनी ही ऐसी थीं जिनके पैरोंमें जोटीके समान केश उगे हुए थे । बहुत-सी राक्षसियाँ येहद लंबे सिर और गर्दनवाली थीं और कितनोंके घेठ तथा स्तन बहुत बड़े-बड़े थे ॥ १३ ॥

अनिमात्रास्यनेत्रादृश दीर्घजिह्वाननास्तथा ।
अजामुपीर्हस्तिमुखीगोमुखीः सूक्रीमुखी ॥ १४ ॥

हयोष्टलखण्डाश्च राक्षसीशौरदशीना ।
किन्हींके मुँह और नेत्र सीमासे अधिक बड़े थे, किन्हीं किन्हींके मुँहोंमें बड़ी-बड़ी जिह्वाएँ थीं और कितनी ही ऐसी राक्षसियाँ थीं, जो बकरी, हाथी गाय, खर, घोड़े, ऊँट और गदहोंके समान मुँह धारण करती थीं । इसीलिये वे देखनेमें बड़ी भयकर थीं ॥ १४ ॥

शूलमुष्टरश्मिनाश्च क्रोधनाः कल्हम्रिया ॥ १५ ॥
कराला धूषकेशिन्यो राक्षसीर्विकृताननाः ।

पिबन्ति सततं पानं सुरामांससदाग्रिषा ॥ १६ ॥
किन्हींके हाथमें शूल थे तो किन्हींके मुद्गर । कोई क्रोधी स्वभावकी थीं तो कोई कल्हसे प्रेम रखती थीं । घुँपे-बैठे केश और बिड़ल मुगवाली कितनी ही विकृत राक्षसियाँ सदा भक्षण किया करती थीं । मदिरा और मांस उन्हें सदा प्रिय थे ॥ १५ १६ ॥

मांसशोणितदिग्धाङ्गीमांसशोणितभोजना ।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहृषणदर्शनाः ॥ १७ ॥

कितनी ही अपने व्यङ्गोंमें रक्त और मांसका रेष लगाये रहती थीं । रक्त और मांस ही उनके भोजन थे । उन्हें देखते ही चंगा खड़े हो जाते थे । कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने उन सबको देखा ॥ १७ ॥

रुक्मयतमुपासीना परियाय धनस्पतिम् ।
तस्याधस्ताच्च ता देव्यो राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥ १८ ॥

लक्षयामास लक्ष्मीवान् हनुमाञ्जनकात्मजाम् ।
निष्प्रभा शोकसततां मलसङ्कुर्मूर्धजाम् ॥ १९ ॥

वे उत्तम शाखावाले उस अश्वपुत्रकी चारों ओरसे घेरकर उससे थोड़ी दूरपर बैठी थीं और छती घाघरी राजकुमारी सीता देवी उसी वृक्षक नीचे उधकी जड़से धरी हुई बैठी थीं । उस समय शोभाशाली हनुमान्जीने अनवकिशोरी जानकीजीकी ओर निर्योरूपसे लक्ष्य किया । उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी । वे शोकसे नतत थीं और उनके चेह्रोंमें मेल नम गयी थी ॥ १८ १९ ॥

क्षीणपुण्या ज्युता भूमी तारा निपतितामिव ।
चारित्र्यपदेषादृष्य भस्वदानवर्गताम् ॥ २० ॥

जैसे पुण्य क्षीण हा जानेपर कोई तारा स्वर्गसे दूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी हो, उसी तरह वे भी कान्तिहीन दिखायी देती थीं । वे आदर्श चरित्र (पातिव्रत्य) से सम्पन्न तथा इवके लिये मुनिस्नान थीं । उन्हें पतिके दर्शनके लिये लाले पड़ थे ॥ २० ॥

भूपणैरुत्तमैर्हाना भस्वत्सल्यभूविताम् ।
राक्षसाधिपसकृष्टा वधुभिश्च विनाकृताम् ॥ २१ ॥

वे उत्तम भूषणोंसे रहित थीं तो भी पतिके वात्सल्यसे विभूषित थीं (पतिका स्नेह ही उनके लिये शृङ्गार था) । राक्षसराज रावणने उन्हें खीनी बना रक्खा था । वे स्वजनोसे विरुद्ध गयी थीं ॥ २१ ॥

विप्यूषा सिंहसकृदा बद्धा गजघूमिष ।
चन्द्ररेगा पयोदाते चारदारौरिवावृताम् ॥ २२ ॥

जैसे कोई हथिनी अपने घूमते अलगा हो गयी हो, घूमपतिके स्नेहसे बँधी हो और उसे किसी सिंहने रोक लिया हो । रावणकी कैदमें पड़ी हुई सीताकी भी वैसी ही दशा थी । वे वर्षाकाल बीत जानेपर शरद् ऋतुके श्वेत बादलोंसे चिरी हुई चन्द्ररेखाके समान प्रतीत होती थीं ॥ २२ ॥

क्षिप्रकृपामसस्पशदयुक्तामिव यल्लकीम् ।
स ता भवद्विषे युक्तामयुक्ता रक्षसा वधो ॥ २३ ॥

अशोकयनिकाग्रये शोकसागरमाप्लुताम् ।
ताभिः परिचृता तत्र सप्तहामिव रोहिणीम् ॥ २४ ॥

जैसे घोषा अपने स्वामीकी अनुक्तिओंके स्पर्शसे बह्नि हो जादन आदिकी क्रियासे रहित अयोग्य अवस्थामें मूक पड़ी रहती है, उसी प्रकार सीता पतिके सम्पर्कसे दूर होनेके कारण महान् क्रोधमें पड़कर ऐसी अवस्थाकी पहुँच गयी थीं, जो उनके योग्य नहीं थी । पतिके दितमें तत्पर रहनेवाली सीता राक्षसोंके अधीन रहनेके योग्य नहीं थी किन्तु भी ऐसी दयामें पड़ी थीं । अशोकशारिकामें रहकर भी वे शोकसे सागरमें डूबी हुई थीं । दूर ग्रहसे आशान्त हुए रोहिणीरी

मौति वे वहाँ उन राक्षसियोंसे धिरी हुई थीं । हनुमान्जीने उन्हें देखा । वे पुष्पहीन लताकी मौति भीहीन हो रही थीं । ददर्श हनुमास्तत्र लतामकुसुमामिव । सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलङ्घिता । मृणाली पद्मदिग्धेव विभाति च न भाति च ॥ २५ ॥

उनके सारे अङ्गोंमें मेल घम गयी थी । केवल शरीर सौन्दर्य ही उनका अलंकार था । वे कीचड़से लिपटी हुई कमलनालकी मौति शोभा और अशोभा दोनोंसे युक्त हो रही थीं ॥ २५ ॥

मल्लिनेन तु यत्नेन परिक्रियेन भामिनीम् । सधृता मृगशावाह्रीं ददर्श हनुमान् कपि ॥ २६ ॥

मैले और पुराने वस्त्रसे ढकी हुई मृगशावकनयनी भामिनी सीताकी कपिवर हनुमान्ने उस अवस्थामें देखा ॥

ता वैर्षा दीनवदनामदीना भर्तृतेजसा । रक्षिता स्थेन शीलैः स्नीतामसितलोचनाम् ॥ २७ ॥

यद्यपि देवी सीताके मुखपर दीनता छा रही थी तथापि अपने पतिके तेजका स्मरण हो आनेसे उनके हृदयसे वह दैन्य दूर हो जाता था । कजरारे नेत्रोंवाली सीता अपने शीलसे ही सुरक्षित थीं ॥ २७ ॥

ता दृष्ट्वा हनुमान् सीता मृगशावनिभेक्षणाम् । मृगकन्यामिव प्रस्ता वीक्षमाणा समन्ततः ॥ २८ ॥ दहन्तीमिव नि श्वासैर्वृक्षान् पल्लवधारिणः ।

हृत्पार्श्वे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तदश सर्गः ॥ १७ ॥ इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सप्तदश सर्ग पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादश सर्ग

अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए रावणका अशोकवाटिकामें आगमन और हनुमान्जीका उसे देखना

तथा विप्रेक्षमाणस्य वर्नं पुष्पितपादपम् । विचि वतश्च वैदेहीं किञ्चिच्छेया निशाभवत् ॥ १ ॥

इस प्रकार फूले हुए वृक्षोंसे सुशोभित उस वनकी शोभा देखते और विदेहन्दिनीका अनुसन्धान करते हुए हनुमान्जीकी वह सारी रात प्रायः बीत चली । केवल एक पहर रात बाकी रही ॥ १ ॥

पङ्कजवेदविकुपा कतुप्रघरयाजिनाम् । शुश्राय प्रक्षोभोपान् स विरात्रे प्रह्वरक्षसाम् ॥ २ ॥

रातके उस पिछले पहरमें छटो अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वैदेहिके विश्रान् तथा भेष्ट यशोंद्वारा यवन करनेवाले ब्रह्म-राक्षसोंके घरमें वेदपाठकी ध्वनि होने लगी, जिसे हनुमान्जीने सुना ॥ अथ मङ्गलपादित्रै शङ्कैः श्रोत्रमनोहरै । प्रायोध्यत महाबाहुदरामीवो महाबलः ॥ ३ ॥

सघातमिव शोफाना दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ॥ २९ ॥ ता क्षमा सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् । प्रहर्षमतुलं लेभे मारुति प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ ३० ॥

उनके नेत्र भृगुछीनोंके समान चञ्चल थे । वे डरी हुई मृगकन्याकी मौति सब ओर सदाङ्क दृष्टिसे देख रही थीं । अपने उच्छ्वासोंसे परलवधारी वृक्षोंको दग्ध-शी करती जान पड़ती थीं । शोर्कोंकी मूर्तिमयी प्रतिमा-सी दिखायी देती थी और दुःखकी उठी हुई तरंग-शी प्रतीत होती थीं । उनके सभी अङ्गोंका विभाग सुन्दर था । यद्यपि वे विरट् शोकसे दुर्बल हो गयी थीं तथापि आभूषणोंके बिना ही शोभा पाती थीं । इस अवस्थामें मिथिलेशकुमारी सीताको देखकर पवन पुत्र हनुमान्को उनका पता लग जानेके कारण अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ ॥ २९-३० ॥

हर्षजानि च सोऽभूणि ता दृष्ट्वा मदिरक्षणां । सुमोच हनुमास्तत्र नमस्त्र्ये च राघवम् ॥ ३१ ॥

मनोहर नेत्रवाली सीताको वहाँ देखकर हनुमान्जी हर्षके आँसू बहाने लगे । उन्होंने मन ही मन औरधुनायत्रीको नमस्कार किया ॥ ३१ ॥

नमस्कृत्याय रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यधान् । सीतावर्चनसहस्रे हनुमान् सवृत्तोऽभवत् ॥ ३२ ॥

सीताके दर्शनसे उत्कृष्टित हो भीराम और लक्ष्मणको नमस्कार करके पराक्रमी हनुमान् वहीं छिपे रहे ॥ ३२ ॥

तदनन्तर मङ्गल बाणों तथा अश्व-मुल्लद शब्दोंद्वारा महाबली महाबाहु दध्नुमुख रावणको अगया गया ॥ ३ ॥ विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्र प्रतापयान् । स्वस्तमात्म्याभ्यरधरो वैदेहीमन्वचितयत् ॥ ४ ॥

आगनेपर महान् मायशाली एव प्रतापी राक्षसराज रावणने सबसे पहले विदेहन्दिनी सीताका चिन्तन किया । उस समय नींदके कारण उसके पुष्पहार और वस्त्र अपने स्थानसे खिसक गये थे ॥ ४ ॥

सुश नियुक्तस्तस्या च मदनेन मदीकटः । न सु तं राक्षस काम दाशाकात्मनि गूढितुम् ॥ ५ ॥

वह मदमत्त निशाचर कामसे प्ररित हो सीताके प्रति अत्यन्त आसक्त हो गया था । अतः उस कामभावको अपने गीतर छिपाये रखनमें असमर्थ हो गया ॥ ५ ॥

स सर्वाभरणैर्युक्तो विभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् ।
ता नगैर्विविधैर्जुष्टा सर्वपुष्पफलोपनी ॥ ६ ॥
वृता पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् ।
सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रा परमाद्भुतैः ॥ ७ ॥
ईदामृगैश्च विविधैर्वृता दृष्टिमनोहरैः ।
वीथी सम्प्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥ ८ ॥
नानामृगगणाकीर्णं फलैः प्रपतितैर्वृताम् ।
अशोकयनिकामेव प्राविशत् सततद्रुमाम् ॥ ९ ॥

उसने सब प्रकारके आभूषण धारण किये और परम उत्तम शोभासे सम्पन्न हो उस अशोकवाटिकामें ही प्रवेश किया; जो सब प्रकारके फूल और फल देनेवाले भौतिक भौतिक वृक्षोंसे सुशोभित थी। नाना प्रकारके पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। बहुत-से सरोवरोंद्वारा वह वाटिका घिरी हुई थी। सदा मतवाले रहनेवाले परम अद्भुत पक्षियोंके कारण उसकी विचित्र शोभा होती थी। कितने ही नयनाभिराम कीड़ाभूगोष्ठे मरी हुई वह वाटिका भौतिक भौतिक के मृगसमूहोंसे व्याप्त थी। बहुत-से गिरे हुए फलोंके कारण वहाँकी भूमि ढक गयी थी। पुष्पवाटिकामें मणि और मुरग के पाटक लगे थे और उसके भीतर पकिबद्ध वृक्ष बहुत दूरतक फैले हुए थे। वहाँकी गलियोंको देखता हुआ रावण उस वाटिकामें घुसा ॥ ६-९ ॥

अङ्गना शतमात्र तु त प्रज-तमनुमज्ज ।
महे द्रमिव पौलस्त्य वेद्यग-ध्वर्योपितः ॥ १० ॥

जैसे देवताओं और राक्षसोंकी स्त्रियों देवराज इंद्रके पीछे चलती हैं, उसी प्रकार अशोकवनमें जाते हुए पुलस्त्यन-इन रावणके पीछे-पीछे लगभग एक ही मुन्दरियों गयीं ॥ १० ॥

दीपिका काञ्चनीः काञ्चिजगृहस्तत्र योपितः ।
चालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापरा ॥ ११ ॥

उन सुवर्णियोंमेंसे किन्हींने सुवर्णमय दीपक ले रखे थे। किन्हींके हाथोंमें चँवर थे तो किन्हींके हाथोंमें ताड़के पंखे ॥ ११ ॥

काञ्चनैश्चैव भृङ्गारैर्जह्नु सलिलमप्रत ।
मण्डलाप्रा वृसीदवैव गृहान्याः पृष्ठतो ययुः ॥ १२ ॥

कुछ मुन्दरियों सोनेकी झारियोंमें जल लिये आगे आगे चल रही थीं और कई दूसरी स्त्रियाँ गोलाकार वृक्षी नामक आसन लिये पीछे-पीछे आ रही थीं ॥ १२ ॥

काचिद् रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य आश्रयिताम् ।
दक्षिणा दक्षिणेत्य तदा जग्राद पाणिना ॥ १३ ॥

कोई चतुर चाक्य सुकती दाहिने हाथमें पेशरखे मरी हुए रत्ननिर्मित चमचमाती कलशी चिन्त्य हुए थी ॥ १३ ॥
राजहंसप्रतीकाश्च छत्रं पूणशशिप्रभम् ।

सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥ १४ ॥

कोई दूसरी स्त्री सोनेके डण्डे से युक्त और पूण चन्द्रमा तथा राजहंसके समान श्वेत छत्र लेकर रावणने पीछे-पीछे चल रही थी ॥ १४ ॥

निद्रामदपरीताक्यो रावणस्योत्तमस्त्रिय ।
अनुजग्मुः पतिं वीर घन विद्युलता इव ॥ १५ ॥

जैसे बादलके छाया साथ बिजलियों चलती हैं, उसी प्रकार रावणकी मुन्दरी स्त्रियों अपने वीर पतिके पीछे-पीछे जा रही थीं। उस समय नौदिके नशेमें उनकी आँखें झपी जाती थीं ॥ १५ ॥

व्याविस्त्रहारकेयूरा समासृष्टिवर्णका ।
समागलितकेशान्ता सस्येदवदनास्तथा ॥ १६ ॥

उनके हार और बाजूबद अपने ह्यानसे खिचक गये थे। अङ्गराग मिट गये थे। चोटियों खुर गयी थीं और गुलपर पत्तीनेकी बूँदें छा रही थीं ॥ १६ ॥

धूणन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभानना ।
स्वेदक्षिणकुक्षुमा समाख्याकुलमूर्धजा ॥ १७ ॥

वे सुमुखी स्त्रियाँ अवशेष मद और निद्रासे झुमती हुईं ही चल रही थीं। बिभिन्न अङ्गोंमें धारण किये गये पुष्प पत्तीनेसे मीग गये थे और पुष्पमालाओंसे अलङ्कृत केश कुल-कुल टिल रहे थे ॥ १७ ॥

प्रयान्त नैर्धृतपतिं नार्यो मदिरलोचना ।
गङ्गुमानाश्च कामाच त्रियभार्यास्तम-ययुः ॥ १८ ॥

जिनकी आँखें मदमत्त बना देनेवाली थीं, वे राक्षस राजकी प्यारी पत्नियों अशोकवनमें जाते हुए पतिके साथ बड़े आदरसे और अनुरागपूर्वक आ रही थीं ॥ १८ ॥

स च कामपराधीनः पतिस्ताता महाबलः ।
सीतासक्तमना मदो मन्दश्चित्तगतिधमौ ॥ १९ ॥

उन सबका पति महाबली मन्दबुद्धि रावण कामके अधीन हो रहा था। वह सीतामें मन लगाये मन्दगतिसे आये बढ़ता हुआ अद्भुत शोभा पा रहा था ॥ १९ ॥

तत काञ्चीनिनाद च नृपुण्या च नि स्यन्म् ।
नुधाव परमस्त्रीणा कपिमास्तनन्दम् ॥ २० ॥

उस समय वायुनन्दन कपिवर इतुमान्ब्रीने उन परम मुन्दरी रावणपत्नियोंकी करपनोंका बलनाद और नृपुणोंकी झनकार सुनी ॥ २० ॥

त चापतिप्रकमाणमसि-त्ययलपौरुषम् ।
द्वारवेदामुप्राप्त ददश इतुमान् कवि ॥ २१ ॥

साथ ही, अनुपम कर्म करनेवाले तथा अचिन्त्य बल-पौरुषसे सम्पन्न रावणको भी कपिवर इतुमान्ने देला; जो अशोकवाटिकाके द्वारतक आ पहुँचा था ॥ २१ ॥

दीपिकाभिरनेकाभि समन्तादवभासितम् ।
गन्धतैलावसिकाभिर्प्रियमाणाभिरम्रत ॥ २० ॥

उत्तरे आगे-आगे सुमन्धित तेलसे मीगी हुई और
जियोद्राश हाथोंमें धारण की हुई बहुत-सी मशालें जल रही
थीं, जिनके द्वारा वह सब ओरमें प्रकाशित हो रहा था ॥

कामदम्पदैयुक् जिह्मताम्रायतेक्षणम् ।
समक्षमिव कदर्पमपविश्रशरासनम् ॥ २३ ॥

वह काम, दप और मन्दे युक्त था । उसकी आँखें
टेंदी, लाल और यक्षी बड़ी थीं । वह धनुषरहित साधारण
कामदेवके समान जान पड़ता था ॥ २३ ॥

मथितामृतकेनाभमरजोवक्षमुत्तमम् ।
सपुष्पमधकपत विमुक् सकमङ्गदे ॥ २४ ॥

उसका वक्ष मधे हुए दूधके फेनकी मोंतें रचेत, निमल
और उत्तम था । उसमें मोतीक दाने और फूल टेंके हुए
थे । वह वक्ष उसके वाष्पदममें उलझ गया था और रावण
उत्ते खोचकर सुलझा रहा था ॥ २४ ॥

त पत्रनिटपे लीनः पत्रपुष्पशलावृत ।
समीपमुपसक्नान्त विहातुमुपचक्रमे ॥ २५ ॥

अशोक वृक्षके पत्तों और झलियोंमें छिपे हुए हनुमान्जी
छेकड़ों पत्रों तथा पुष्पोंमें डूब गये थे । उसी अवस्थामें
उन्होंने निकट आये हुए रावणको पहचाननेका प्रयत्न
किया ॥ २५ ॥

अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुञ्जर ।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रिय ॥ २६ ॥

उसकी ओर देखते समय कपिभेष्ट हनुमान्ने रावणकी
सुन्दरी जियोको भी लक्ष्य किया, जो रूप और यौवनसे
सम्पन्न थीं ॥ २६ ॥

ताभि परिवृतो राजा सुरूपाभिमहायशा ।
तन्मृगजिज्ञसुष्टु प्रयष्ट प्रमदावनम् ॥ २७ ॥

उन सुन्दर रूपवाली युक्तियोंमें घिरे हुए महायशस्वी

हृत्कार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टादश सर्ग ॥ १८ ॥

इम प्रकार श्रीवल्मीकिनिमित्त आरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्ग

रावणको देखकर दुःख, भय और चिन्तामें डूबी हुई सीताकी अवस्थामें वर्णन

तस्मिन्नेव तत काले राजपुत्री स्वनिदिता ।
रूपयौवनसम्पन्ना भूगणोत्तमभूयितम् ॥ १ ॥

ततो दृष्ट्वा यदहो रावण राक्षसाधिपम् ।
मावेपत वरारोहा प्रयाते कदा युवा ॥ २ ॥

उस समय अनिन्दिता सुन्दरी रावकुमारी सीताने जब

राजा रावणने उस प्रमदावनमें प्रवेश किया, जहाँ अनेक
प्रकारके पशु-पक्षी अपनी-अपनी बोली बोल रहे थे ॥ १ ॥

क्षीयो विचित्राभरण शङ्कुकर्णो महाबल ।
तेन विभवस पुत्र स दृष्टो राक्षसाधिप ॥ २ ॥

वह मतवाला दिखायी देता था । उसके आभूषण
विचित्र थे । उसके कान ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वहाँ
खूँटे गाढ़े गये हैं । इस प्रकार वह निभरामुनिका पुत्र
महाबली राक्षसराज रावण हनुमान्की दृष्टिपथमें आया २८

वृत् परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमा ।
त ददर्श महातेजास्तेजोवत महाकपि ॥ २९ ॥

रावणोऽय महाबाहुरिति सचिन्त्य धामन ।
सोऽयमेव पुरा शोते पुरमथ्ये गृहोत्तमे ।

अव्युत्तो महातेजा हनुमान् मातृतामज ॥ ३० ॥

ताप-जोसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति वह परम सुन्दरी
युक्तियोंसे घिरा हुआ था । महातेजस्वी महाकपि हनुमान्ने
उस तेजस्वी राक्षसको देखा और देखकर यह निश्चय किया
कि यही महाबाहु रावण है । पहले यही नगरमें उत्तम महलके
भीतर आया हुआ था । ऐसा खोचकर वेधानरवीर महातेजस्वी
पवनकुमार हनुमान्जी जिस कालीपर बैठे थे, वहाँसे कुछ
नीचे उतर आये (क्योंकि वे निकटसे रावणकी छत्री चेष्टाएँ
देखना चाहते थे) ॥ २९ ३० ॥

स तथाप्युग्रतेजा सनिधूतस्तस्य तेजसा ।
पत्रे गुह्यातरे सक्तो मतिमान् सवृत्तोऽभवत् ॥ ३१ ॥

यद्यपि मतिमान् हनुमान्जी भी वड़े उग्रतेजस्वी थे,
तथापि रावणक तेजसे तिरस्कृत-से हाकर सदन पत्तोंमें घुसकर
छिप गये ॥ ३१ ॥

स तामसितकेशान्ता सुधोर्णा सहतस्तनीम् ।
दिदधुरसितापाङ्गीमुपावर्तत राजन ॥ ३२ ॥

उधर रावण काले बघा, कजरार नेत्र, सुन्दर कटिभाग
और परस्पर छटे हुए सनकाली सुन्दरी सीताको देखनेके
लिये उनक पास गया ॥ ३२ ॥

उत्तमाचम आभूषणोंसे विभूषित तथा रूप यौवनसे सम्पन्न
राक्षसराज रावणकी जाते देखा, तब वे प्रचण्ड हृदयमें
हिलनेवाली कदलीक समान मयक मारे घर पर कौपने
लगीं ॥ ३२ ॥

ऊरुम्यामुदर छाद्य बाहुभ्या च पयोधरौ ।

उपविष्टा निशालाक्षी रुदती धरवर्णिनी ॥ ३ ॥

सुन्दर कान्तिवाली विशाललोचना जानकीने अपनी नौधोंसे पेट और दोनों भुजाओंसे स्नान छिपा लिये तथा वहाँ बैठ-बैठी वे रोने लगी ॥ ३ ॥

दशमीवस्तु वैदेहीं रक्षिता राक्षसीगणै ।

ददर्श हीना दुःखार्ता नाय सन्नामिवाणंजे ॥ ४ ॥

असद्वृत्तायामासीना धरण्या सशितप्रताम् ।

छिन्ना प्रपतिता मूमौ शास्त्रामिव ननस्पते ॥ ५ ॥

राक्षसोंके पहरेमें रहती हुई विदेहराजकुमारी सीता अत्यन्त हीन और दुःखी हो रही थीं । वे समुद्रमें जीण जीण होकर हूयी हुई नौकाके समान दुःखके सागरमें निमग्न थीं । उस भयस्थामें दशमुख राक्षसोंने उनकी ओर देखा । वे बिना बिछोनेके खुली जमीनपर बैठी थीं और कटकर पृथ्वीपर गिरी हुई वृक्षकी शाखाके समान जान पड़ती थीं । उनके द्वारा बड़े कठोर प्रतका पालन किया जा रहा था ॥ ४ ५ ॥

मलमण्डनदिग्धाङ्गी मण्डनाहाममण्डनाम् ।

मृणाली पङ्कदिग्धेय विभाति न विभाति च ॥ ६ ॥

उनके अङ्गोंमें अङ्गरागकी जगह मेल जमी हुई थी । वे आभूषण धारण तथा शृङ्गार करने योग्य होनेपर भी उन शयसे वञ्चित थीं और कीचड़में सनी हुई कमलनालकी भाँति शोभा पाती थीं तथा नहीं भी पाती थीं । (कमलनाल जैसे सुकुमारताके कारण शोभा पाती है और कीचड़में सनी रहनेके कारण शोभा नहीं पाती, वैसे ही वे अपने सङ्ग शौन्दर्यसे सुशोभित थीं, किन्तु मलिनताके कारण शोभा नहीं देती थीं) ॥ ६ ॥

समीप राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मन ।

सकृदपहयस्युक्तैर्यातीमिष मनोरथै ॥ ७ ॥

सकृद्योंके बोझोंसे लुटे हुए मनोमय रथपर चढ़कर आत्मशानी राजसिंह भगवान् भीरामने पास जाती हुई-सी प्रतीत हाँती थीं ॥ ७ ॥

शुष्यती रुदतीमेका ध्यानशोकपरायणाम् ।

दुःखस्यातमपश्यन्ती रामा राममनुमताम् ॥ ८ ॥

उनका शरीर सूखता जा रहा था । वे अकेली बैठकर रोती तथा भीरामचन्द्रजीके ध्यान एवं उनके वियोगके शोकमें हूयी रहती थीं । उन्हें अपने दुःखका अन्त नहीं दिखायी देता था । वे भीरामचन्द्रजीमें अनुराग रखनेवाली तथा उनकी रमणीय भाषा थीं ॥ ८ ॥

चेष्टमानामपात्रिष्टा एणगेन्द्रयधूमिर ।

धूप्यमाना ग्रहेणैव रोहिणी धूमकेतुना ॥ ९ ॥

जैसे तागराजकी चपू (नाभि) मणि-मन्त्रादिसे अभिभूत हो घटपटाने लगती है उसी तरह सीता भी पतिके वियोगमें तड़प रही थी तथा धूमके समान वज्रबाल केद्व

ग्रहे प्रसूत हुई रोहिणीके समान सतत हो रही थीं ॥ ९ ॥

वृक्षशीले कुले जातामाचारवति धार्मिके ।

पुनः सस्कारमापना जातामिष च दुष्कुले ॥ १० ॥

यद्यपि सदाचारी और सुशील कुलमें उनका जन्म हुआ था । फिर धार्मिक तथा उत्तम आचार विचारवाले कुलमें वे व्याही गयी थीं—विवाह संस्कारसे सम्पन्न हुई थीं, तथापि दूषित कुलमें उत्पन्न हुई नारीके समान मलिन दिखायी देती थीं ॥ १० ॥

सन्नामिव महाकीर्तिं शस्त्रामिव विमानिताम् ।

प्रज्ञामिष परिक्षीणामाशा प्रतिहतामिष ॥ ११ ॥

आपतीमिव विष्वस्तामाशा प्रतिहतामिष ।

हीनामिव दिश काले पूजामपहतामिव ॥ १२ ॥

पौर्णमासीमिव निशा तमोप्रस्ते दुमण्डलाम् ।

पक्षिनीमिव विष्वस्ता हतशूरा चमूमिव ॥ १३ ॥

प्रभामिव तमोच्चस्तामुपक्षीणामिषापगाम् ।

वेदीमिव परामृष्टा शास्त्रामग्निशस्त्रामिव ॥ १४ ॥

वे जीण हुई विशाल कीर्ति, तिरस्कृत हुई भद्रा, सर्वथा हासको प्राप्त हुई बुद्धि, दूटी हुई आशा, नष्ट हुए भविष्य, उल्लङ्घित हुई राजशा, उल्लासकालमें दहती हुई दिशा, नष्ट हुई देवपूजा, चन्द्रग्रहणसे मलिन हुई पूर्णमासीकी रात, दुष्कारपातसे जीर्ण शीघ्र हुई कमलिनी, जिसका शूरवीर सेनापति मारा गया हो, ऐसी सेना, अन्धकारसे नष्ट हुई प्रभा, सूखी हुई सरिता, अपवित्र प्राणियोंके शवोंसे व्यास्रद हुई वेदी और बुझी हुई अग्निशिव्ताके समान प्रतीत होती थीं ॥ ११-१४ ॥

उत्कृष्टपणकमला विश्रासितचिह्नमाम् ।

हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलामिव पक्षिनीम् ॥ १५ ॥

जैसे हाथीने अपनी सूँड़से हँदर डाला हो, अतएव जिसके पंखे और कमल उलझ गये हों तथा जल्पधी मयके शरों ठटे हों, उस मथित एव मलिन हुई पुष्करिणीके समान सीता श्रीहीन दिखायी देती थीं ॥ १५ ॥

पतिशोकातुरा पुष्का नर्षा विस्त्रावितामिव ।

परया मृजया हीना कृष्णपक्षे निशामिव ॥ १६ ॥

पतिके विरह शोकेसे उनका हृदय यद्वा व्याकुल था । जिसका सब नरोंके द्वारा श्वर-उभर निकाल दिया गया हो, ऐसी नदीके समान वे सूख गयी थीं तथा उत्तम उत्पन्न आदि के न लगनेसे कृष्णपक्षकी रात्रिके समान मलिन हो रही थीं ॥ १६ ॥

सुषुमारौ सुजातार्त्ता रक्षगमगृहोचिताम् ।

तप्यमानामिषोष्णेन मृणालीमिव रोद्धृताम् ॥ १७ ॥

उनका अन्न बड़े सुकुमार और सुन्दर । वे सनप्रति राजमहलमें रहनेके योग्य थीं परन्तु गर्मियों की ओर द्वा

तोड़कर पेंकी हुई कमलिनीक समान दयनीय दशाको पहुँच गयी थी ॥ १७ ॥

गृहीतामालिता स्तम्भे यूथपेन विनाहृताम् ।
निश्वसन्ती सुदुःखार्ता गजराजवधूमिव ॥ १८ ॥

जैसे यूथपतिसे अलग करके पकड़कर खमेमें बाँध दिया गया हो, उस हथिनीके समान वे अत्यन्त दुःखसे आतुर होकर लगी बाँध खाँच रही थी ॥ १८ ॥

एकया दीघया घेण्या शोभमानामयन्तत ।
नीलया नीरदापाये चनराज्या महीमिव ॥ १९ ॥

बिना प्रयत्नके ही दँधी हुई एक ही लगी बेणीसे सीताजी वैसी ही शोभा हा रही थी, जैसे वर्षा ऋतु बीत जानेपर सुदूर तक फैली हुई हरी मरी बनभेणीसे पृथ्वी सुशोभित होती है ॥ १९ ॥

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणा कृशा दीनामलपाहारा तपोचनाम् ॥ २० ॥

वे उपवास, शोक, चिन्ता और भयसे आविर्भूत होकर, हृत्पापे श्रीमद्रामायणे बाबमीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वत्थामायण आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥



विंशः सर्गः

रावणका सीताजीको प्रलोभन

स ता परिकृता क्षीना निरानन्दा तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्धौक्यैर्व्यदर्शयत रावण ॥ १ ॥

राक्षसियोंसे तिरि हुई दीन और आनन्दशून्य तपस्विनी सीताको सम्मोहित करके रावण अभिप्राययुक्त मधुर वचनों द्वारा अपने मनका भाव प्रकट करने लगा— ॥ १ ॥

मा हृष्टा नागनासोद गृहमाना स्वनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मान भयानेतु त्वमिच्छसि ॥ २ ॥

‘हापीकी सँभके समान सुन्दर बाँधोंवाला सीते ! मुझे देखते ही दुःख अपने स्तन और उदरको इस प्रकार छिपाने लगी हो, मानो डरने मारे अपनेको अदृश्य कर देना चाहती हो ॥ २ ॥

कामये त्वा विशालाक्षि धनु मयस्य मा प्रिये ।
सथाङ्गयुगसम्पन्ने सख्यलोकमनोहरे ॥ ३ ॥

‘किन्तु विशाललोचने ! मैं तो तुम्हें चाहता हूँ—तुम्हसे प्रेम करता हूँ । समस्त सगरका मन मोहनेवाली सबाहुसुन्दरी प्रिये ! तुम भी मुझे विशेष आदर दो—मेरी प्रार्थना स्वीकार करो ॥ ३ ॥

नेह किञ्चिन्मनुष्या या राक्षसा कामरूपिणः ।
ध्वपसपतु ते सीते भय मत्त सगुन्यितम् ॥ ४ ॥

पृथकाय और दीन हो गयी थी । उनका आहार बहुत कम ॥ गया था तथा एकमात्र तप ही उनका धन था ॥ २० ॥

आयाचमाना दुःखार्ता प्राञ्जलि देवतामिव ।
भावेन रघुमुपस्य दशग्रीपरामभवम् ॥ २१ ॥

वे दुःखसे आतुर हो अपने कुलदेवतासे हाथ जोड़कर मन ही मन यह प्रार्थना-सी कर रही थी कि भीरामचन्द्रकीके हाथसे दशमुख रावणकी पराजय हो ॥ २१ ॥

समीक्षमाणा रुदतीमनिदिता
सुपक्षमताप्रायतशुक्ललोचनाम् ।

अनुमता राममतीव मैथिलीं
प्रलोभयामास वधाप रावण ॥ २२ ॥

सुन्दर बरौनियाँसे युक्त, लाल, श्वेत एवं विद्याल नेत्रोंवाली सती-साखी मिथिलशकुन्मात्र सीता भीरामचन्द्रजी में अत्यन्त अनुरक्त थीं और इधर उधर देखती हुई रा रही थीं । इस अवस्थामें उन्हें देखकर राक्षसराज रावण अपने ॥

वचने लिये उनको छुमानेकी चेष्टा करने लगा ॥ २२ ॥

हृत्पापे श्रीमद्रामायणे बाबमीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वत्थामायण आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

‘यहाँ तुम्हारे लिये कोई भय नहीं है । इस स्थानमें न तो मनुष्य आ सकते हैं, न इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दूरे राक्षस ही, केवल मैं आ सकता हूँ । परन्तु सीते ! मुझसे जो तुम्हें भय हो रहा है, वह तो दूर हो ही जाना चाहिये ॥ ४ ॥

स्वधर्मो रक्षसा भीरु सर्वदैव न सशय ।
गमनं वा परस्त्रीणा वरणं सम्प्रमथ्य वा ॥ ५ ॥

‘भीरु ! (तुम यह न समझो कि मैंने कोई अचर्म किया है) परायी स्त्रियोंके पास जाना अथवा बलात्कारपूर्वक उन्हें हर जाना यह राक्षसोंका सदा ही अपना धर्म रहा है—इसमें संदेह नहीं है ॥ ५ ॥

एव चैवमकामा त्वा न च स्पृक्ष्यामि मैथिलि ।
काम काम शरीरे मे यथाकाम प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥

‘मिथिलेशनदिनि ! ऐसी अवस्थामें भी जबतक तुम मुझे न चाहोगी, तबतक मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा । भले ही कामदेव मेरे शरीरपर इच्छानुसार आप्याचार करे ॥ ६ ॥

देहि नेह भय कार्यं मयि विव्यसिद्धि प्रिये ।
प्रणयस्य च तत्त्वेन मैत्र भू शोकलालसा ॥ ७ ॥

देनि । इस निपयमें तुम्हें भय नहीं करना चाहिये ।
प्रिये । मुझपर विश्वास करो और यथार्थरूपसे प्रेमदान दो ।
इस तरह शोकसे व्याकुल न हो जाओ ॥ ७ ॥

एकवेणी अधाशय्या ध्यान मलिनमग्न्यरम् ।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतायौपयिकानि ते ॥ ८ ॥

‘एक वेणी धारण करना; नीचे पृथ्वीपर सोना, चिन्ता
मग्न रहना; मेले वस्त्र पहनना और बिना अवसरके उपवास
करना—ये सब बातें तुम्हारे योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

विचित्राणि च भाल्यानि च दनायगुरुणि च ।
विविधानि च यासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥
महाहाणि च पानानि शयनायासनानि च ।
गीत नृत्य च वाद्य च लभ मा प्राप्य मैथिलि ॥ १० ॥

‘मैथिलेशकुमारी ! मुझे पाकर तुम विचित्र पुष्प माला,
चन्दन, अगुरु, नाना प्रकारके वस्त्र, दिव्य आभूषण, बहु
मूल्य पेय, शय्या, आसन, नाच, गान और वाद्यका
सुख भोगो ॥ ९-१० ॥

स्त्रीरत्नमसि मैथ भू कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मा प्राप्य हि कथं यास्यास्यमनहोऽसुविप्रदे ॥ ११ ॥

‘तुम स्त्रियोंमें रत्न हो । इस तरह मलिन वेषमें न रहो ।
अपने अङ्गोंमें आभूषण धारण करो । सुन्दरि ! मुझे पाकर भी
तुम भूषण आदिसे असम्मानित कैसे रहोगी ! ॥ ११ ॥

इदं ते चाद सजात यौवना ह्यतिघर्षते ।
यदतीत पुनर्नैति स्नोतः स्नोतस्विनामिय ॥ १२ ॥

‘यह तुम्हारा नवोदित सुन्दर यौवन बीता जा रहा है ।
जो बीत जाता है, वह नदियोंके प्रवाहकी भाँति फिर लौटकर
नहीं आता ॥ १२ ॥

स्या हृद्योपरतो मन्ये रूपकता स पिम्बहत् ।
नहि रूपोपमा ह्यया तवास्ति शुभदर्शने ॥ १३ ॥

‘शुभदर्शने । मैं तो ऐसा समझता हूँ कि रूपकी रचना
करनेवाला लोचरद्वारा तुम्हें बनाकर फिर उस कार्यसे
विरत हो गया । क्योंकि तुम्हारे रूपकी समता करनेवाली
दूसरी कोई स्त्री नहीं है ॥ १३ ॥

त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौघनशालिनीम् ।
कः पुनर्नातियतैत सासादपि पितामहः ॥ १४ ॥

‘वैदेहनन्दिनि ! रूप और यौवनसे सुशोभित होनेवाली
तुमको पाकर कौन ऐसा पुरुष है, जो वैदेहि विचलित न
होगा । मले ही वह साक्षात् ब्रह्मा क्यों न हो ॥ १४ ॥

यद् यद् पदयामि ते गात्रं दीतानुसदृशानने ।
तस्मिन्स्तस्मिन् पृथुघोषि चक्षुर्भ्रम निषण्यते ॥ १५ ॥

‘चन्द्रमाके समान सुन्दरवाली तुमझसे । मैं तुम्हारे जिस
जिस अङ्गको देखता हूँ, उखी-उखीमें मेरे नेत्र उलझ जाते हैं ॥

भव मैथिलि भार्या मे मोहमत निसर्जय ।
वह्नीनामुत्तमस्त्रीणा ममाग्रमहिषी भव ॥ १६ ॥

‘मैथिलेशकुमारी ! तुम मेरी भार्या बन जाओ ।
पातिव्रत्यके इस मोहको छोड़ो । मेरे यहाँ बहुत-सी सुन्दरी
रानियाँ हैं । तुम उन सबमें अग्र पटरानी बनो ॥ १६ ॥

लोकेभ्यो यानि रत्नानि सग्रमध्याहृतानि मे ।
तानि ते भीरु स्ववाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥ १७ ॥

‘भीरु ! मैं अनेक लोकोंसे उहें मयकर लो-लो
रत्न लाया हूँ, व सब तुम्हारे ही होंगे और यह राज्य भी मैं
तुम्हींको समर्पित कर दूँगा ॥ १७ ॥

विजित्य पृथिवीं सर्वाम् नानागरमालिनीम् ।
जनकाय प्रदास्यामि तप हेतोर्विलासिनि ॥ १८ ॥

‘विलासिनि ! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं विभिन्न
नगरोंकी मालाओंसे अलंकृत इस सारी पृथ्वीको धीतकर
राजा जनकके हाथमें सौंप दूँगा ॥ १८ ॥

नेह पदयामि लोकेऽन्ये यो मे प्रतिबलो भवेत् ।
पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाह्वये ॥ १९ ॥

‘इस सवारमें मैं किसी दूसरे ऐसे पुरुषको नहीं देखता,
जो मेरा सामना कर सके । तुम युद्धमें मेरा वह महान्
पराक्रम देखना; जिसके सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी टिक नहीं पाता ॥

अमल्लव सयुगे भग्ना मया विमृदिताध्वजाः ।
अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातु मम सुरासुरा ॥ २० ॥

‘मैंने युद्धक्षेत्रमें जिनकी ध्वजारें तोड़ डाली थीं, वे
देवता और अशुर मेरे सामने ठहरनेमें असमर्थ होनेके कारण
कई बार पीठ दिखा चुके हैं ॥ २० ॥

इच्छ मा क्षियतामथ प्रतिकर्म तपोत्तमम् ।
सुप्रभाष्यवसज्जग्तां तवाङ्गे भूषणानि हि ॥ २१ ॥

‘तुम मुझे स्वीकार करो । आज तुम्हारा उत्तम शृङ्गार
किया जाय और तुम्हारे अङ्गोंमें कमकील आभूषण
पहनाने जायें ॥ २१ ॥

साधु पदयामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकमला ।
प्रतिकामाभिसयुक्ता दाक्षिण्येन धरानने ॥ २२ ॥

‘सुयुक्ति । आज मैं शृङ्गारसे युक्तितुप्त तुम्हारे सुन्दर
रूपको देख रहा हूँ । तुम उदारतासे मुझपर कृपा करके
शृङ्गारसे सम्पन्न हो जाओ ॥ २२ ॥

भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामपिय भीरु रमस्व च ।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं या धनानि च ॥ २३ ॥

‘भीरु ! किरहन्तानुत्तर मौलि मोतिने भोग भोग, दिव्य

• यथा मयिपक्ष्य कर्मावकी मौलि नर्ना शनेसे मारिक
अन्यकार समानता चाहिये ।

रथवा पान करो; निद्रा तथा पृथ्वी या घनका यथेष्टरूपसे दान करो ॥ २३ ॥

ललस्य मयि विश्रान्ता घृष्टमाज्ञापयस्व च ।

मत्प्रासादाद्दुल्लस्यन्त्याश्च ललता वाधस्तप ॥ २४ ॥

‘तुम मुझपर विश्वास करने भोग भोगनेकी इच्छा करो और निर्मय होकर मुझ अपनी सेवाके लिय आशा दा । मुझपर कृपा करके इच्छानुसार भोग भोगनी हुई तुमजैसी पट्टानकी भाई-बन्धु भी मनमाने भोग भाग सकते हैं ॥ २४ ॥
‘अब मैं ममानुपदय त्व क्षिय भट्टे यज्ञास्मिनि ।
किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवासिना ॥ २५ ॥

‘भट्टे । यशस्विनि । तुम मेरी समृद्धि और घन-सम्पत्ति की ओर तो देखो । मुझसे । चीर-वस्त्र धारण करनेवाले रामको लेकर क्या करोगे ? ॥ २५ ॥

निश्चितविजयो रामो गतधीर्वनगोचरः ।

यती स्पर्णडलशायी च शङ्खे जीवति शानसा ॥ २६ ॥

‘रामने विजयकी आशा त्याग दी है । वे आहीन होकर वन-वनमें विचार रहे हैं; वृत्तका पालन करते हैं और मिट्टी की वेदीपर सोते हैं । अब तो मुझे यह भी सदेह होने लगा है कि वे जीवित भी हैं या नहीं ॥ २६ ॥

नहि वैदेहि रामस्त्वा द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते ।

पुरोयलादैरसितैर्मैधैर्ज्योत्स्नामियावृताम् ॥ २७ ॥

‘विदेहनन्दिनि । जिनके आगे बगुलेंकी पकियों चळती हैं, उन काले बादलोंत छिपी हुई चंद्रिकाके समान तुमकी अब राम पाना तो दूर रहा; दख भी नहीं सकते हैं ॥ २७ ॥
न चापि मम हस्तात् त्वा प्राप्नुमहि राघव ।
हिरण्यकशिपु कीर्तिमिद्रहस्तगतामिव ॥ २८ ॥

‘जैसे हिरण्यकशिपु इन्द्रक हाथमें गयी हुई कीर्तिको न पा सका; उसी प्रकार राम भी मेरे हाथसे तुम्हें नहीं पा सकते ॥ २८ ॥

‘चादस्मिते चादृष्टि चादनेत्रे विलासिनि ।

मनो हृत्सि मे भीरु सुपण पञ्चग यथा ॥ २९ ॥

‘मनोहर मुरझान; सुन्दर दन्तावलि तथा रमणीय नेत्रोंवाली विलासिनि । भीरु ! जैसे गरुड़ सपको उठा ले बात है; उसी प्रकार तुम मेरे मनकी हर लेती हो ॥ २९ ॥

‘हिष्टकीशेषपसना तन्वीमप्यनल्लृप्ताम् ।

त्वा दृष्ट्वा स्नेषु दारेषु रति नोपलभाभ्यहम् ॥ ३० ॥

‘तुम्हारा रेशमी पीताम्बर मेला हो गया है । तुम बहुत दुबली-पतली हो गयी हो और तुम्हारे अङ्गोंमें आभूषण भी नहीं हैं तो भी तुम्हें देखकर अपनी दूखी जियोंमें मेरा मन नहीं लगता ॥ ३० ॥

हृत्पापं धीमद्रागापण वाल्मीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे विंश सर्ग ॥ २ ॥

इस प्रकार अश्वत्थामाके निमित्त आश्वत्थामा के दिकृत्यक सुन्दरकाण्डने बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

अतः पुरनिवासिन्य स्त्रिय सन्मुणाविता ।

यावत्पयो मम स्यात्सामैश्वर्यं कुरु जानकि ॥ ३१ ॥

‘वनवनन्दिनि । मेरे यन्त पुरमें निवास करनेवाली जितनी भी सर्वगुणमय रानियाँ हैं, उन सबकी तुम स्वामिनी बन जाओ ॥ ३१ ॥

मम हासितकेशाते दैलोक्यप्ररक्षिय ।

तास्त्वा परिचरिष्यति श्रियमप्सरसो यथा ॥ ३२ ॥

‘काले केशोंवाली सुंदरी ! जैसे अप्सराएँ लक्ष्मीकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार तिसुअनकी भेट सुन्दरियों यहाँ तुम्हारी परिचर्या करेंगी ॥ ३२ ॥

यानि वैधवणे सुभ्रू रत्नानि च धनानि च ।

तानि लोकाश्च सुभ्राणि मया मुदृश्य यथास्तुतम् ॥ ३३ ॥

‘सुभ्रू । सुभाणि । कुदरेके यहाँ जितने भी अच्छे रत्न और धन हैं, उन सबका तथा सम्पूर्ण लोकोंका तुम मेरे साथ सुखपूर्वक उपभोग करो ॥ ३३ ॥

न रामस्तपसा देवि । यत्नेन च विक्रमैः ।

न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यथासापि वा ॥ ३४ ॥

‘देवि । राम तो न तपसे, न बलसे, न पराक्रमसे, न धनसे और न तेज अथवा यशके द्वारा ही मेरी समानता कर सकते हैं ॥ ३४ ॥

पियविहर रमस भुङ्क्व भोगान्

— धननिश्चय प्रदिशामि मेदिनीं च ।

मयि लल ललने यथास्तुत त्व

त्वयि च समेत्य लल तु वाधवास्ते ॥ ३५ ॥

‘तुम दिव्य रसका पान, विहार एवं रमण करो तथा अभीष्ट भोग भोगो । मैं तुम्हें धनकी राशि और सारी पृथ्वी भी समर्पित किये देता हूँ । ललने । तुम मेरे पास रहकर मोक्षसे मनवाही बस्तुएँ ग्रहण करो और तुम्हारे निकट आकर तुम्हारे माह-रघु मा सुखपूर्वक इच्छानुसार भोग आदि प्राप्त करें ॥ ३५ ॥

कुसुमिततरुजालस्ततानि

भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि ।

कनकमिमलहारभूषिताङ्गी

विह्वर मया सह भीरु काननानि ॥ ३६ ॥

‘भीरु । तुम खेनेके निमल हारोंसे अपने अङ्गको निभूषित करके मेरे साथ समुद्र-तीरवाँ उन काननोंमें विहार करो; जिनमें खिले हुए वृक्षोंके समुदाय एवं और फैले हुए हैं और उनपर भ्रमर मँहरा रहे हैं ॥ ३६ ॥

एकविंशः सर्गः

सीताजीका रावणको समझाना और उसे श्रीरामके सामने नगण्य बताना

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रम्यरक्षसः ।
भार्ता दीनस्तरा दीन प्रत्युवाच तत शनैः ॥ १ ॥

उठ भयंकर राक्षसकी वह बात सुनकर सीताको बड़ी
पीड़ा हुई । उन्होंने दान वाणीमें बड़े दुःखक साथ धीरे
धीरे उत्तर देना आरम्भ किया ॥ १ ॥

तु गार्ता रुदती सीता चेषमाना तपस्विनी ।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥ २ ॥

उठ समय दुःखद अश्रुवाली पतिव्रता देवी तपस्विनी
सीता दुःखसे आतुर होकर रोती हुई कौंप रही थीं और
अपने पतिदेवका ही चिन्तन कर रही थीं ॥ २ ॥

सृणुमत्तरत इत्था प्रत्युवाच शुचिस्मिता ।
निवर्तय मनो मत्त स्वजने प्रीयता मन ॥ ३ ॥

पवित्र मुस्कानवाली विद्वहन्निदिनीने तिनकेकी ओट
करके रावणको इस प्रकार उत्तर दिया—‘तुम मेरी ओरसे
अपना मन हटा दो और आत्मीय जनों (अपनी ही पत्नियों)
पर प्रेम करो ॥ ३ ॥

न मा प्रार्थयितुं युक्तम्य सिद्धिमिव पापहृत् ।
अकार्यं न भया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ ४ ॥

‘जैसे पापाचारी पुरुष सिद्धि की इच्छा नहीं कर सकता,
उसी प्रकार तुम मेरी इच्छा करनेके योग्य नहीं हो । जो
पतिव्रताके लिये निर्दिष्ट है, वह न करनेयोग्य कार्य मैं
कदापि नहीं कर सकती ॥ ४ ॥

कुल सम्प्राप्तया पुण्य कुले महति जातया ।
पद्ममुक्त्वा तु वैदेही राजन त यशस्विनी ॥ ५ ॥
रावण पृष्ठतः पृथ्वा भूयो वचनमप्रवीत् ।
नाहमौपयिकी भार्या परभाया सती तव ॥ ६ ॥

‘क्योंकि मैं एक महान् कुलमें उत्पन्न हुई हूँ और
व्याहृष्टके एक पवित्र कुलमें आयी हूँ ।’ रावणसे ऐसा कहकर
यशस्विनी विदेहराजकुमारीने उठकी ओर अपनी पीठ फेर
ली और इस प्रकार कहा—‘रावण ! मैं सती और परायी स्त्री
हूँ । तुम्हारी भार्या बनने योग्य नहीं हूँ ॥ ५ ॥

साधु धर्ममवेक्ष्य साधु साधुव्रत वर ।
यथा तव तथान्येषा रक्ष्या ह्यार निशाचर ॥ ७ ॥

‘निशाचर ! तुम भेद धर्मकी ओर दृष्टिमान करो और
सत्पुरुषोंके मतका अच्छी तरह धारण करो । जैसे तुम्हारी
श्रियों तुमसे संरक्षण पाती हैं, उसी प्रकार दुष्टोंकी श्रियोंकी
भी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

आरमानमुपमा पृथ्वा स्वेषु दारेषु रक्षयताम् ।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलैर्द्रियम् ॥ ८ ॥

नयति निष्ठतिप्रज्ञं परदारं पराभवम् ॥ ८ ॥

‘तुम अपनेको आदर्श बनाकर अपनी ही श्रियोंमें
अनुसर रहो । जो अपनी श्रियोंमें सटुष्ट नहीं रहता तथा
जिहवी बुद्धि विकार देने योग्य है, उस चपल इन्द्रियवाला
चञ्चल पुरुषको परायी श्रियों पराभवको पहुँचा देती हैं—उसे
फकीहतमें डाल देती हैं ॥ ८ ॥

इह सत्तो न या सति सतो या मातुवर्तसे ।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिाचारधर्जिता ॥ ९ ॥

‘क्या यहाँ सत्पुरुष नहीं रहते हैं अथवा रहनेपर भी
तुम उनका अनुसरण नहीं करते हो ! जिसने तुम्हारी बुद्धि
ऐसी विपरीत एवं सदाचारव्यर्थ हो गयी है ? ॥ ९ ॥

वचो मिथ्याप्रणीतामा पश्यमुक्तं विचक्षणैः ।
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥ १० ॥

‘अथवा बुद्धिमान् पुरुष जो तुम्हारे हितकी बात कहते
हैं, उसे निःसार मानकर राक्षसोंके विनाशपर तुले रहने
के कारण तुम ग्रहण ही नहीं करते हो ! ॥ १० ॥

अहतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
समृद्धानि विनश्यति राक्षानि नगराणि च ॥ ११ ॥

‘जिसका मन अपवित्र तथा सटुष्टदेवको नहीं ग्रहण
करनेवाला है, ऐसे अयोग्य राजाके हाथमें पड़कर बड़े-बड़े
समृद्धिशाली राज्य और नगर नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रक्षोघसकुला ।
अपराधात् तयैकस्य नचिराद् विनशिष्यति ॥ १२ ॥

‘इसी प्रकार यह रत्नराशिते पूर्ण लङ्कापुरी तुम्हारे हाथमें
आ जानेसे अब बनेले तुम्हारे ही अपराधसे पृथु जल्द
नष्ट हो जायगी ॥ १२ ॥

स्फुटैर्हृन्पमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः ।
अभिनन्दति भूतानि विनाशे पापकमणा ॥ १३ ॥

‘रावण ! अब कोई अदूरदर्शी पापाचारी अपनेदुष्कर्मोंसे
भरा जाता है, उस समय उसका विनाश होनेपर समस्त
प्राणियोंको प्रवृत्तता होती है ॥ १३ ॥

यस त्वा पापकमणा पश्यन्ति निहता जनाः ।
विष्टयैतद् ध्यसनं प्राप्ते रौद्र द्येयं हर्षिता ॥ १४ ॥

‘इसी प्रकार तुमने जिन लोगोंको नष्ट पहुँचाया है, वे
तुम्हें पारी कहेंगे और ‘बड़ा अच्छा हुआ’, जो इस आततायी
को यह कष्ट प्राप्त हुआ’ ऐसा कहकर हर्ष मनावेंगे ॥ १४ ॥

शक्या लोभयितुं नाहमभ्यर्थेण धनेन वा ।
अनया राधवेणाह आदरेण यथा भया ॥ १५ ॥

‘जैसे प्रमा स्यते अलग नहीं होती’, उसी प्रकार मैं भीरुनाथजीसे अभिन्न हूँ । ऐश्वर्य या धनके द्वारा तुम मुझे प्रमा नहीं सकते ॥ १५ ॥

उपधाय भुज तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ।
कथ नामोपधान्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥

‘जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मानित भुजापर रिर रसकर थव मैं किसी दूसरेकी गौहकी तकिया कैसे लगा सकती हूँ ? ॥ १६ ॥

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापते ।
प्रतज्ञातस्य विधेय निप्रस्य विदितात्मन ॥ १७ ॥

‘ब्रिज प्रकार वेदविद्या आत्मज्ञानी स्वातन्त्र्य माक्षणकी ही सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं केवल उन पृथ्वीपति रघुनाथजीकी ही माया होन योग्य हूँ ॥ १७ ॥

साधु रात्रण यमेण मा समानय दुःखिताम् ।
वने वासितया सार्धं करेण्वेय गजाधिपम् ॥ १८ ॥

‘रावण ! तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि ब्रिज प्रकार वनमें समागमका वासनासे मुक्त इयिनीका कोई गन्धपत्रसे मिठा दे, उठा प्रकार तुम मुझ दुःखिताको श्रीरघुनाथजीसे मिठा दो ॥ १८ ॥

मित्रमौपयिक कर्तुं राम स्थान परीप्सता ।
यद्य चानिच्छता घोर त्वयासौ पुरुषपथ ॥ १९ ॥

‘यदि तुम्हें अपने नगरकी रक्षा और दारुण वचनसे बचनेकी इच्छा हो तो पुरुषोत्तम भगवान् भीरामजी अपना मित्र बना उठा चाहिये, क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं ॥ १९ ॥

विदित सर्वधर्मस्य शरणागतवत्सल ।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीगृत्तुमिच्छसि ॥ २० ॥

‘भगवान् भीराम समस्त धर्मोंके शता और सुप्रसिद्ध शरणागतवत्सल हैं । यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो उनके साथ तुम्हारी मित्रता हो जानी चाहिये ॥ २० ॥

प्रसादयस्व त्वं चैन शरणागतजसत्पम् ।
मा चास्मै प्रयतो भूत्या निर्घोनयिनुमहसि ॥ २१ ॥

‘तुम शरणागतवत्सल भीरामजी शरण लेकर उन्हें प्रसन्न करो और उद्वेगद्वय रोककर मुझ जनक पर लोण दो ॥ २१ ॥

पय हि ते भजेत् स्वस्ति सम्प्रदाय रघूचमे ।
अन्यया त्वद्विक्रयाण पराप्राप्स्यसि चापदम् ॥ २२ ॥

‘इस प्रकार मुझे श्रीरघुनाथजीको धौन देनेपर तुम्हारा भग्य होगा । इसके विपरीत आचरण करनेपर तुम बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाओगे ॥ २२ ॥

यजयेद् यज्ञमुत्सृष्ट यजयेद् तद्विधिरम् ।
त्वद्विध न तु सजुक्लो लोकनाथ स राघव ॥ २३ ॥

‘तुम्हारे जैसे निशाचरको कदाचित् हाथसे छूटा हुआ वज्र बिना मारे छोड़ सकता है और काल भी बहुत दिनोंतक तुम्हारी उपेक्षा कर सकता है किंतु कौषमें भरे हुए लोक नाथ रघुनाथजी कदापि नहीं छोड़ेंगे ॥ २३ ॥

रामस्य धनुष शय्य श्रोण्यसि त्व महास्वनम् ।
शतव्रतुनिस्सृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥ २४ ॥

‘इन्द्रके छोड़े हुए सज्जकी गद्गड़ाहटके समान तुम भीरामचन्द्रजीके धनुषकी मोर टकार सुनोगे ॥ २४ ॥

इह शीघ्र सुपर्वाणो ज्जलितास्या इवोरगा ।
इपचो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिता ॥ २५ ॥

‘यहाँ भीराम और लक्ष्मणके नामोंसे अङ्कित और सुन्दर गोंडवाले बाण प्रचलित सुन्बवाले सर्पोंके समान शीघ्र ही गिरेंगे ॥ २५ ॥

रक्षासि निहनिष्यस्य पुण्यांस्य न सशय ।
असम्पात करिष्यति पतन्त कङ्कवासस ॥ २६ ॥

‘जो कङ्कपत्रवाले बाण इस पुण्यमें राक्षसोंका सहार करेंगे, इसमें सशय नहीं है । वे इस तरह बरसँगे कि यहाँ तिल रखनेकी भी जगह नहीं रहे बायगी ॥ २६ ॥

राक्षसे प्रमदासपात् स रामगच्छो महान् ।
उद्धरिष्यति वेगेन चैनतेय इवोरगान् ॥ २७ ॥

‘जैसे विनतानन्दन गरुड सर्पोंका सहार करते हैं, उसी प्रकार भीरामरूपी महान् गरुड राक्षसराक्षसी बड़े बड़े सर्पोंको वेगपूर्वक उच्छिन्न कर डालेंगे ॥ २७ ॥

अपनेष्यति मा भता त्वत्त शीघ्रमरिदुम् ।
असुरेभ्य श्रिय दीता विष्णुस्त्रिभिरिच क्रमै ॥ २८ ॥

‘जैसे भगवान् विष्णुने अपने तीन पुत्रोंद्वारा असुरोंसे उनकी उद्दीप्त राजलक्ष्मी छीन ली थी, उसी प्रकार मेरे स्वामी शत्रुघ्नन भीराम मुझे धीमे धीमे यहीसे निहाल ले जाएंगे ॥ २८ ॥

जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसा घटे ।
अशक्तेन त्वया रक्ष एतमेतद्वाधु वै ॥ २९ ॥

‘पाशु ! जब राक्षसोंकी सेनाका सहार हो जानेसे जनस्थान का तुम्हारा आश्रय नष्ट हो गया और तुम मुझ करनेमें असमर्थ हो गये, तब तुमने छल और चोराते यह नीच कर्म किया है ॥ २९ ॥

आश्रम तत्तयोः शून्य प्रविश्य नरसिंहयो ।
गोचर शतयोध्याशोरपनीता त्वयाघम ॥ ३० ॥

‘नीच निशाचर ! तुमने पुरुषिन्द भीराम और लक्ष्मण के घने आश्रममें घुसकर मेरा हरण किया था । वे दोनों उम समय मायाभूतोंके मन्त्रोंसे लिये वनमें गये हुए थे (नहीं तो तभी तुम्हें इसका फल मिल जाता) ॥ ३० ॥

नहि गन्धमुपाधाय रामलक्ष्मणयोस्त्यया ।

शक्य तद्वशान् स्थातु शुना शालूयोरिव ॥ ३१ ॥

श्रीराम और लक्ष्मण ही तो गंध पाकर भी तुम उनके सामने नहीं ठहर सकते । क्या कुत्ता कभी दादो बाणोंके सामने टिक सकता है ! ॥ ३१ ॥

तस्य ते विप्रहे ताभ्या युगप्रहणमस्थिरम् ।

वृत्रस्येचेद्रागदुष्पा याहोरेकस्य विप्रहे ॥ ३२ ॥

जैसे इंद्रकी दो बाँहोंके साथ युद्ध छिड़नेपर वृत्रासुर की एक बाँहके लिये रामके दोहातों सँवालना असम्भव हो गया, उसी प्रकार सम्राज्यमें उन दोनों भाइयोंके साथ युद्धका शुभा उठाये रखना या टिकना तुम्हारे लिये सर्वथा असम्भव है ॥ ३२ ॥

क्षिप्र तव स्यात्तो मे राम सौमित्रिणा सह ।

तोयमल्यमिवादित्य प्राणानादास्त्य शरैः ॥ ३३ ॥

इत्यार्ष श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे प्रथमोऽध्यायः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीरामकीनिर्मित आर्षरामायण आदिकाण्डे मुन्दराण्डमें इषोसर्वो सर्ग पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वार्विशः सर्गः

राजका सीताको दो मासकी अवधि देना, सीताका उसे फटकारना, फिर राजका उन्हें

धमकाकर राक्षसियोंके नियन्त्रणमें रखकर स्त्रियोंमहित पुनः महलको लौट जाना

सीताया वचन श्रुत्वा परुष राक्षसेश्वरः ।

प्रत्युवाच ततः सीता त्रिभ्रिय त्रियवर्णनाम् ॥ १ ॥

सीताके ये कठोर वचन सुनकर राक्षसराज रामणने उन त्रियवर्णना सीताको यह अभिय उत्तर दिया— ॥ १ ॥

यथायथा स्वास्वयित्ता वक्ष्यः स्त्रीणा तथा तथा ।

यथा यथा त्रिय वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥ २ ॥

आक्रमे पुरुष जैसे-जैसे स्त्रियोंके अनुनय विनय करता है, वैसे वैसे पद उनकी त्रिय होता जाता है परंतु मैं तुमसे क्योंकि-क्यों भी मीठे वचन बोलता हूँ, त्यों ही त्यों तुम मेरा तिरस्कार करती जा रही हो ॥ २ ॥

सनिपच्छति मे प्रोधययि काम समुत्थित ।

प्रवतो माममासाद्य इयानिध सुसारथि ॥ ३ ॥

परंतु जैसे अन्धा सारथि कुमार्गमें खोले हुए घोड़ों को रोक्ता है, वैसे ही तुम्हारे प्रति जो मेरा प्रेम उत्पन्न हो गया है, वही मेरे कोषों को रोक रहा है ॥ ३ ॥

धाम् कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निरुप्यते ।

अने तस्मिन्स्य पुनोऽशः स्नेहश्च किल जायते ॥ ४ ॥

मनुष्योंमें यह काम (प्रेम) बड़ा देगा है । यह प्रियके प्रति प्रेम जाता है, उगीने प्रति करुणा और रोह उत्पन्न हो जाता है ॥ ४ ॥

मैं मरे प्राणनाथ श्रीराम सुमित्राबु मार लक्ष्मणके साथ आकर अपने बाणोंद्वारा सीधे तुम्हारे प्राण हर लेंगे । ठीक उसी तरह, जैसे मूढ़ों को देखे जलको अपनी किरणोंद्वारा सीधे सुखा देते हैं ॥ २३ ॥

गिरिकुयेरस्य गतोऽथवाऽऽलय

सभा गतो वा वरुणस्य राजः ।

असह्य दाशरयेर्विमोदयसे

महाद्रुम कालहतोऽशमेरिव ॥ ३४ ॥

‘तुम कुंभेरके कैलासपर्वतपर चले आओ, अथवा वरुणकी समीप आकर छिप रहा; किंतु कालका माया हुआ विद्याल वृक्ष जैसे वज्रका आघात लगते ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम दशरथनन्दन श्रीरामके बाणसे मारे आकर तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठोगे, इसमें संशय नहीं है, क्योंकि काल तुम्हें पहलेसे ही मार चुका है’ ॥ ३४ ॥

एतस्मात् कारणात् स्वाघातयामि वरानने ।

घघार्हामवमानार्हो निष्पद्य प्रमज्जने रताम् ॥ ५ ॥

‘सुखि ! यही कारण है कि हट बैराग्यमें तपस तथा व्रत और तिरस्कारके योग्य होनेपर भी तुम्हारा मैं घब नहीं कर रहा हूँ ॥ ५ ॥

परुषाणि द्विधास्पानि यानि यानि प्रवीपिमाम् ।

तेषु तेषु वषो युक्तस्तथ मैथिलि दाहणः ॥ ६ ॥

‘मिथिलेशकुमारी ! तुम मुझसे जैसी जैसी कठोर बातें कह रही हो; उनके बदले तो तुम्हें कठोर प्राणदण्ड देना ही उचित है’ ॥ ६ ॥

ययमुक्त्या चैवर्द्धा राक्षसो राक्षसाधिप ।

क्रोधसम्भसयुक्तः सीतामुत्तरमप्रवीप्सु ॥ ७ ॥

विदेदराजकुमारी सीतासे एका बहुर मोक्षक आवेष्टमें मेरे हुए राक्षसराज वरुणन उन्हें फिर इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ७ ॥

ह्री मासौ रक्षितव्यौ मे योऽधिक्षिप्ते मया हत ।

ततः शयनमारोह मम त्व पर्यर्जिति ॥ ८ ॥

‘मुदरि ! मैंने तुम्हारे लिये जो अवधि निपुत्र को दे, उसके अनुसार मुझ दो महीने जीर प्रतीक्षा करती है । तब आगे तुम्हें मेरी शय्यापर आना होगा ॥ ८ ॥

द्वाम्यामूर्ध्वं तु मासाभ्या भर्तारं मामनिच्छतीम् ।
मम त्वा प्रातःप्राथम्यं सूदाश्लेष्टस्यन्ति खण्डशः ॥ ९ ॥

‘अतः याद रस्त्रो—यदि दो महोनेके बाद तुम मुझे अपना प्रति बनाना स्वीकार नहीं करोगी तो रसोदये मेरे कलेजेके लिये तुम्हारे दुकन्दे दुकन्दे कर डालेंगे’ ॥ ९ ॥

ता भक्त्यमाना समग्रेक्ष्य राक्षसे द्रेण जानकीम् ।
देवगन्धर्वकयास्ता विप्रेतुर्विहृतेक्षणा ॥ १० ॥

राक्षसराज राक्षसे द्वारा जनकनन्दिनी सीताको इस प्रकार घमकायी जाती देख देवताओं और गणोंकी कन्याओं को बड़ा विषाद हुआ । उनकी आँखें विहृत हो गयीं ॥ १० ॥

ओष्टप्रकारैरपरा नेत्रैश्चैत्रैस्तथापरा ।
सीतामाभ्यासयामासुस्तजिता तेन रक्षसा ॥ ११ ॥

तब उनमेंसे किसीने ओठोंसे, किसीने नेत्रोंसे तथा किसीने मुँहके चक्केतसे उस राक्षसद्वारा बाँटी जाती हुई सीता को घेरे बैठाया ॥ ११ ॥

ताभिः पश्चात् सीता रावण राक्षसाधिपम् ।
उवाचात्महितं चाक्य वृत्तशौटीसंगवर्तितम् ॥ १२ ॥

उनके धैर्य बैधानेपर सीताने राक्षसराज रावणसे अपने वदाचार (पातित्राय) और पतिवै शौर्यके अभिमानसे पूर्ण हितकर वचन कहा— ॥ १२ ॥

नूनं न ते जन कश्चिदस्ति भेद्यसि स्थित ।
निवारयति यो न त्वा कर्मणोऽस्माद् विगर्हितात् ॥ १३ ॥

‘निश्चय ही इस नगरमें कोई भी पुरुष तेरा मला चाहनेवाला नहीं है, जो तुझे इस निर्दिष्ट कर्मसे रोके ॥ १३ ॥ मा हि धर्मात्मनः पूर्णां शचीमित्र शचीपते । त्वद्यक्षिणु लोकेषु प्राथयेममसापि क ॥ १४ ॥

‘जैसे शची इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं, उसी प्रकार मैं धर्मात्मा भगवान् श्रीरामकी पत्नी हूँ । त्रिलोकीमें तूरे सिवा दूसरा कौन है, जो मनसे भी मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥ १४ ॥ राक्षसाधम रामस्य भायामभिततेजसः । उक्तवानसि यत् पापं क गतस्तस्य मोक्षये ॥ १५ ॥

‘नीच राक्षस ! तूने अमित तेजस्वी श्रीरामकी प्रायसे जो पापकी बात कही है, उसके परस्वरूप दण्डसे तू कहाँ आकर छुटकारा पायेगा ? ॥ १५ ॥ यया हस्तश्च मातङ्ग शशाश्च सहितौ घने । स्याद्विरदयद् रामस्तव नीच शशास्य स्मृत ॥ १६ ॥

‘जिस प्रकार घनमें कोई मगवाला हाथी और कोई खर गोश देववश एक दूसरेके णय मुकन्दे लिये तुल जायें, वैसे ही भगवान् श्रीराम और तू है । नीच निशाचर ! भगवान् राम तो गजराजके समान हैं और तू खरगोशके तुल्य है ॥ १६ ॥ स त्वमिन्द्राकुनाय वै क्षिपत्रिह न लज्जसे । चभुषो निषये तस्य न यायदुपगच्छसि ॥ १७ ॥

‘अरे ! इन्द्राकुनाय श्रीरामका तिरस्कार करते तुझे लज्जा नहीं आती । तू जबतक उनकी आँखोंके सामने नहीं आता, तबतक जो चाहे वह ले ॥ १७ ॥

इमे ते नयने कूरे विहृते कृष्णपिङ्गले ।
क्षितौ न पतिते कस्मा मामनार्य निरीक्षत ॥ १८ ॥

‘अनाथ ! मेरी ओर दृष्टि डालते समय तेरी ये कूर और विकारयुक्त काली-पीली आँखें पृथ्वीपर क्यों नहीं गिर पड़ीं ? ॥ १८ ॥ तस्य धर्मात्मनः पत्नीस्तु पा दशरथस्य च । कथं व्याहरतो मा ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥ १९ ॥

‘मैं धर्मात्मा श्रीरामकी धर्मपत्नी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू हूँ । पापी ! मुझसे पापकी बातें करते समय तेरी बीम क्यों नहीं गल जाती है ? ॥ १९ ॥ असद्वेशात्तु रामस्य तपसश्चात्तुपालनात् । न त्वा कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ २० ॥

‘दशमुख रावण ! मेरा तेब ही तुझे मस कर डालनेके लिये पयात है । केवल श्रीरामकी आज्ञा न हानिसे और अपनी तपस्याको सुरक्षित रखनेके विचारसे मैं तुझे मस नहीं कर रही हूँ ॥ २० ॥ नापहर्तुमह शक्या तस्य रामस्य घीमसः । विधिस्तव वधायाय विहितो नात्र सशय ॥ २१ ॥

‘मैं मतिमान् श्रीरामकी माया हूँ, मुझे हर ले आनेकी शक्ति तेरे अंदर नहीं थी । निःसंदेह तेरे वधके लिये ही विधाताने यह विधान रच दिया है ॥ २१ ॥ शूरेण धनदध्राया बलैः समुदितेन च । अपोह्य राम कस्माच्चिद् वारचौर्यं त्वया वृत्तम् ॥ २२ ॥

‘तू तो बड़ा शूरवीर बनता है, कुनेरका माई है और तेरे पास सेनाएँ भी बहुत हैं, फिर श्रीरामको छलसे वृद्धाकर क्यों तूने उनकी स्त्रीकी चोरी की है ? ॥ २२ ॥ सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः । विवृण्व नयने कूरे जानकीमन्यवैक्षत ॥ २३ ॥

सीताकी ये बातें सुनकर राक्षसराज रावणने उन जनक दुलारीकी ओर आँखें तरेकर देखा । उसकी दृष्टिसे मूरता टपक रही थी ॥ २३ ॥ नीलजीमूतसकाशो महामुजशिरोधरः । सिंहसख्यगतिः श्रीमान् दीप्तजिह्वोऽप्रलोचनः ॥ २४ ॥

वह नीलमेखक समान काला और विशालकाय था । उसकी मुखाँ और श्रोत्रा बड़ी थीं । वह गति और पराक्रमसे सिद्धके समान था और तेजस्वी दिशावी देहा था । उसकी बीम आपकी रूपके समान रूपवत्ता रही थी तथा नेत्र बड़े भयकर प्रतीत होते थे ॥ २४ ॥

खलाप्रमुकुटयाद्युक्षिप्रमाल्यानुलेपन ।
रक्तमातयाम्बरघरस्तताङ्गद्विभूषण ॥ २५ ॥
शोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसवृत ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मदरः ॥ २६ ॥

शोधके कारण उसके मुकुटका अग्रभाग हिल रहा था, जिससे वह बहुत ऊँचा जान पड़ता था । उसने तरह-तरह के हार और अनुलेपन धारण कर रखे थे तथा पक्के सोने के बने हुए जाजूबद उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । वह लाल रंग के फूलों की माला और लाल वस्त्र पहने हुए था । उसकी कमर के चारों ओर काले रंगका लंबा कटिमूत्र रैखा हुआ था, जिससे वह अमृत मय के समय वासुकिसे लिपटे हुए मन्दराचल के समान जान पड़ता था ॥ २५ २६ ॥

ताभ्या स परिपूर्णभ्या भुजाभ्या राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दर ॥ २७ ॥

पर्वत के समान विशालकाय राक्षसराज रावण अपनी दोनों परिपुष्ट भुजाओं से उसी प्रकार शोभा पा रहा था, मानो दो शिखरों से मन्दराचल सुशोभित हो रहा हो । २७ ।
तदुणावित्यवर्णाभ्या कुण्डलाभ्या विभूषितः ।
रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचल ॥ २८ ॥
प्रातः काल के सूर्य की भाँति अङ्गण-पीत कान्तिवाले दो कुण्डल उसके कानों की शोभा बढ़ा रहे थे, मानो लाल पल्लवों और फूलों से युक्त दो अशोक वृक्ष किसी पर्वत को सुशोभित कर रहे हों ॥ २८ ॥

स कटपवृक्षप्रतिमो वसन्त इव भूतिमान् ।
इमं शानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयकरः ॥ २९ ॥

वह अभिनव शोभा से संपन्न होकर वसपवृक्ष एवं मूर्तिमान् वसन्त के समान जान पड़ता था । आभूषणों से विभूषित होने पर भी इमं शानचैत्य (मरघट में बने हुए देवालय) की भाँति भयंकर प्रतीत होता था ॥ २९ ॥
अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसरकलोचनः ।
उशश्च रावण सीता भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥ ३० ॥

रावण ने शोध से लाल आँखें करके विदेहकुमारी सीता

१ प्राचीनकाल में नगर की इमं शानभूमि के पास एक गोलाकार देवालय था बना रहता था, जहाँ राजा की आवासे प्राणदण्ड के अन्तर्गत गोला अन्तर्गत के द्वारा वष कराया जाता था । जब वहाँ किसी का प्राणदण्ड देना अक्सर आता, तब उस देवालय को लोप पाकर फूलों की बन्दनवासी से सजाया जाता था । उस विभूषित इमं शानचैत्य के देखाते आग वद सोनकर भवभीन हो लठप दे कि आग वद किसी के जीवनदा अन्त होनेवाला है । इस तरह भेते वह इमं शानचैत्य विभूषित होने पर भी भयंकर लगता था वही मन्दार रावण सुन्दर गङ्गा के नीचे सीता को बचाने की प्रतीति होता था । क्योंकि वह वन्दन सीता को भेट करना चाहता था ।

की ओर देखा और फुफ्फुसारे हुए सूर्य के समान लम्बी आँखें खींचकर कहा— ॥ ३० ॥

अनयेनाभिसम्पन्नमर्धहीनमनुयते ।
नाशायाम्यहमद्य त्वा सूर्यः सध्यामिवौजसा ॥ ३१ ॥

‘अयायी और निर्धन मनुष्यका अनुसरण करनेवाली गारी । जैसे सूर्यदेव अपने तेजसे प्रातः कालिक सध्या के अंधकार को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार आज मैं तेरा विनाश किये देता हूँ’ ॥ ३१ ॥

इत्युपत्या मैथिली राजा रावण शत्रुरावणः ।
सर्वदर्श ततः सर्वो राक्षसीघोरदर्शनः ॥ ३२ ॥

मिथिलेशकुमारी से ऐसा कहकर शत्रुओं को डरानेवाले राजा रावण ने भयंकर दिखायी देनेवाली समस्त राक्षसियों की ओर देखा ॥ ३२ ॥

एकाक्षीमेककर्णा च कर्णप्रावरणा तथा ।
गोकर्णा हस्तिकर्णा च लग्नकर्णा मर्कटिका ॥ ३३ ॥
हस्तिपक्षध्वपक्षौ च गोपर्दा पादचूटिका ॥
एकाक्षीमेकपार्दा च पृथुपादीमपादिका ॥ ३४ ॥
अतिमात्रशिरोम्रीधामतिमात्रकुचोदरीम् ।
अतिमात्रास्यनेत्रा च दीर्घजिह्वानखामपि ॥ ३५ ॥
अनासिका सिंहमुखी गोमुखी सूकरीमुखीम् ।
यथा मधुशया सीता क्षिप्र भवति जानकी ॥ ३६ ॥
तथा कुन्त राक्षस्यः सर्वा क्षिप्र समेत्य वा ।
प्रतिलोमानुलोमैश्च सामानादिभेदैः ॥ ३७ ॥
आयजयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमेन च ।

उसने एकाक्षी (एक आँखवाली), एककर्णा (एक कानवाली), कर्णप्रावरणा (लंबे कानों से अपने शरीर को ढक लेनेवाली), गोकर्णा (गौ के से कानोंवाली), हस्तिकर्णा (हाथी के समान कानोंवाली), लग्नकर्णा (लगे कानवाली), अर्कणिका (बिना कान की), हस्तिपदी (हाथी के से पैरोंवाली), अश्वपदी (घोड़े के समान पैरवाली), गोपदी (गाय के समान पैरवाली), पादचूटिका (बेशयुक्त पैरोंवाली), एकाक्षी, एकपार्दा (एक पैरवाली), पृथुपादी (मोटे पैरवाली), अपादिका (बिना पैरों की), अतिमात्र शिरोम्रीया (विशाल शिर और मदनवाली), अतिमात्र कुचोदरी (बहुत बड़े-बड़े स्तन और पेटवाली), अतिमात्र स्यनेत्रा (विशाल मुख और नेत्रवाली), दीर्घजिह्वानखा (लंबी जीभ और नखोंवाली), अनासिका (बिना नाक की), सिंहमुखी (सिंह के समान मुखवाली), गोमुखी (गौ के समान मुखवाली) तथा सूकरीमुखी (सूकरी के समान मुखवाली)—इन सब राक्षसियों के कहा—‘नाशायामि ।’ इमं सब शोध मिसकर अथवा अन्ध-अन्ध गीम ही ऐसा प्रयत्न करे, जिससे अन्धकदिगोरी सीता बहुत अन्द भरे वध में आ जाय ।

अनुकूल-प्रतिकूल उपायोंसे, साम, दान और भेदनीतिसे तथा दण्डका भी भय दिखाकर विदेहकुमारी सीताको वशमें लानेकी चेष्टा करो ॥ ३३-३४ ॥

इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्र पुन पुन ॥ ३८ ॥
काममनुपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ।

राक्षसियोंको इस प्रकार बारबार आशा देकर काम और क्रोधसे व्याकुल हुआ राक्षसराज रावण जानकीजीकी ओर देखकर गजना करने लगा ॥ ३८ ॥

उपगम्य तत क्षिप्र राक्षसी धान्यमालिनी ॥ ३९ ॥
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ।

तदनन्तर राक्षसियोंकी स्वामिनी मादोदरी तथा धान्यमालिनी नामवाली राक्षस कन्या शीघ्र रावणके पास आयी और उसका आलिङ्गन करने लगी— ॥ ३९ ॥

मया क्रीड महाराज सीतया किं तधानया ॥ ४० ॥
विचर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ।

‘महाराज राक्षसराज ! आप मेरे साथ क्रीडा कीजिये । इस कान्तिहीन और दीन मानव कन्या सीतासे आपको क्या प्रयोजन है ? ॥ ४० ॥

नूनमस्या महाराज न देवा भोगसत्तमान् ॥ ४१ ॥
विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलजितान् ।

‘महाराज ! निश्चय ही देवभेद जगद्वाजीने इसके भाग्यमें आपके बाहुबलसे उपाक्षिप्त दिव्य एव उत्तम भोग नहीं लिखे हैं ॥ ४१ ॥

अकामा कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ॥ ४२ ॥
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्मयति शोभना ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बावमीकाये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वाविंशः सर्ग ॥ २२ ॥
इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आबरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

राक्षसियोंका सीताजीको समझाना

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावण शत्रुरावण ।
मदिश्य च तत सया राक्षसीर्भिर्जगाम ह ॥ १ ॥

शत्रुओंको हलानेवाला राजा रावण सीताजीसे पूछोक्त बातें कहकर तथा सब राक्षसियोंको उन्हीं वशमें लानेके लिये आदेश दे बहोसे निकल गया ॥ १ ॥

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुर गते ।
राक्षस्यो भीमरूपास्ता सीतां समभिदुद्रुषु ॥ २ ॥

अशोकवाटिकासे निकलकर जब राक्षसराज रावण अन्त पुरको चला गया, तब वहाँ जो भयानक रूपवाली

‘प्राणनाथ ! जो स्त्री अपनेसे प्रेम नहीं करती, उसकी कामना करनेवाले पुरुषके शरीरमें केवल ताप ही होता है और अपने प्रति अनुराग रखनेवाली स्त्रीकी कामना करनेवालेको उत्तम प्रसन्नता प्राप्त होती है’ ॥ ४२ ॥

एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो घली ।
प्रहसन् मेघसकाशो राक्षसः स ययर्तत ॥ ४३ ॥

जब राक्षसीने ऐसा कहा और उसे दूसरी ओर वह हटा के गयी, तब मेघके समान काल और बलवान् राक्षस रावण जोर-जोरसे हँसता हुआ महलकी ओर लौट पड़ा ॥ ४३ ॥

प्रस्थितः स दशग्रीव कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
ज्वलद्वास्करसकाश प्रविंश निवेशनम् ॥ ४४ ॥

अशोकवाटिकासे प्रस्थित होकर पृथ्वीको कम्पित करके हुए दशग्रीवने उड़ते सूर्यके सदृश प्रकाशित होनेवाले अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

द्वेषगन्धर्वकयाश्च नागकन्याश्च तास्ततः ।
परिवार्य दशग्रीव प्रविशुस्ता गृहोत्तमम् ॥ ४५ ॥

तदनन्तर देवता, गन्धर्व और नागोंकी कन्याएँ भी रावणको सब ओरसे घेरकर उसके साथ ही उस उत्तम राक्ष भवनमें चली गयीं ॥ ४५ ॥

स मैथिलीं धर्मपराभवस्थिता
प्रवेपमाना परिभर्त्स्य रावण ।

विहाय सीता मद्मेन मोहित
स्वमेव वेदम प्रविवेश रावण ॥ ४६ ॥

इस प्रकार अपने धर्ममें तत्पर, स्थिरचित्त और भयसे कौपती हुई मिथिलेशकुमारी सीताको धमकाकर काममोहित रावण अपने ही महलमें चला गया ॥ ४६ ॥

राक्षसियों थीं वे सब चारों ओरसे दौड़ी हुई सीताके पास आयीं ॥ २ ॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्य मोधमूर्च्छिता ।
पर परुषया घाचा सैदेहीमिदमनुवृत् ॥ ३ ॥

विदेहकुमारी सीताके समीप व्याकर क्रोधसे व्याकुल हुई उन राक्षसियोंने अत्यन्त कटोर वाणीद्वारा उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ ३ ॥

यौलस्त्यस्य घरिष्ठस्य रावणस्य महारमन ।
दशग्रीवस्य आयात्य सीते न षट् मम्यसे ॥ ४ ॥

धीते । तुम पुलस्त्यजीके कुल्में उत्पन्न हुए सर्वश्रेष्ठ
दशग्रीव महामना रावणकी भाषा बनना भी कोई बहुत बड़ी
बाध नहीं समझती ? ॥ ४ ॥

ततस्त्येकजटा नाम राक्षसी वाक्यमग्रवीत् ।
वामभ्य मोघताम्राक्षी सीता करतलोदरीम् ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् एकजटा नामवाली राक्षसीने मोघसे लाल
आँखें करते कुशोदरी सीताको पुकारकर कहा—॥ ५ ॥

प्रजापतीना वण्णा ॥ चतुर्थोऽय प्रजापति ।
मानसो ब्रह्मण पुत्र पुलस्त्य इति विश्रुत ॥ ६ ॥

विदेहकुमारी । पुलस्त्यजी छ' प्रजापतियोंमें चौथे हैं
और ब्रह्माक्षीके मानस पुत्र हैं । इस रूपमें उनकी सर्वत्र
ख्याति है ॥ ६ ॥

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिमानस सुतः ।
नास्ता स विश्रवा नाम प्रजापतिसमग्रभ ॥ ७ ॥

पुलस्त्यजीके मानस पुत्र तेजस्वी महर्षि विश्रवा हैं । वे
भी प्रजापतिके समान ही प्रकाशित होते हैं ॥ ७ ॥

तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः ।
तस्य त्व राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥ ८ ॥
मयोक्त श्रावसर्वाङ्गि वाक्य किं नातुमम्यसे ।

विशाललोचने । ये शत्रुओंके फलनेवाले महाराज रावण
उन्हींके पुत्र हैं और समस्त राक्षसोंके राजा हैं । तुम्हें इनकी
भार्या हो जाना चाहिये । सर्वाङ्गसुन्दरी । मेरी इस कही हुई
बातका तुम अनुमोदन क्यों नहीं करती ? ॥ ८ ॥

ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमग्रवीत् ॥ ९ ॥
विदुष्य नयने कोपाभाजारसदृशोक्षणा ।
येन देवास्त्रयस्त्रिंशद् देवराजश्च निर्जित ॥ १० ॥
तस्य त्व राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ।

इसके बाद बिल्लीके समान भूरे आँखोंवाली हरिजटा
नामकी राक्षसीने मोघसे आँखें काड़कर कदना आरम्भ किया—
'अरी । जिन्होंने तैंतीसों देवताओं तथा देवराज इन्द्रको भी
परास्त कर दिया है, उन राक्षसराज रावणकी रानी तो तुम्हें
अवश्य बन जाना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

धीर्योत्सिन्नस्य शूरस्य सप्रामोषनिर्वर्तन ।
यत्नितो धीययुक्तस्य भार्याय किं न लिप्तसे ॥ ११ ॥
'तुम्हें अपने पराक्रमपर गर्व है । वे युद्धसे पीछे न

१ मरीचि, अत्रि, अद्विज, पुनस्त्य पुनर और ऋगु—ये
७ प्रजापति हैं ।

२ शारद अदित्य शारद हय, जाठ वसु और ते अश्विनी
कुमार—ये तेरीच देवगण हैं ।

हटनेवाले शूरवीर हैं । ऐसे उल पराक्रमशाली पुरुषकी भार्या
बनना तुम क्यों नहीं चाहती हो ? ॥ ११ ॥

प्रिया बहुमता भार्या त्यक्त्वा राजा महाबलः ।
सर्वासा च महाभागा तामुपैष्यति रावण ॥ १२ ॥
समृद्ध स्त्रीसहस्रेण नानास्त्रोपशोभितम् ।
अत पुर बहुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ॥ १३ ॥

महाबली राजा रावण अपनी अधिक प्रिय और
सम्मानित भार्या मादोदरीकी भी, जो सबकी स्वामिनी है,
छोड़कर तुम्हारे पास पधारेंगे । तुम्हारा कितना महान्
सौभाग्य है । वे सख्तों रमणियोंसे भरे हुए और अनेक
प्रकारके शस्त्रोंसे सुशोभित उस अत पुरको छोड़कर तुम्हारे
पास पधारेंगे (अत तुम्हें उनकी प्रार्थना मान लेनी
चाहिये) ॥ १२ १३ ॥

अन्यानु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमग्रवीत् ।
असृष्ट् भीमवीर्येण नागा गार्धर्वादानवाः ।
निर्जिता समरे येन स ते पाद्वर्षमुपागत ॥ १४ ॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महारामनः ।
किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्याय नेच्छसेऽधमे ॥ १५ ॥

उदन'तर विकटा नामवाली दूसरी राक्षसीने कहा—
'जिन भयानक पराक्रमी राक्षसराजने नागों, गार्धर्वों और
दानवोंको भी समराङ्गणमें बारबार परास्त किया है, वे ही
तुम्हारे पास पधारेंगे । नीच नारी ! उन्हीं सम्पूर्ण पेशवसि
सम्पन्न महामना राक्षसराज रावणकी भार्या बननेके लिये तुम्हें
क्यों इच्छा नहीं होती है ? ॥ १४ १५ ॥

ततस्ता दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमग्रवीत् ।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य स मादतः ।
न वाति स्नायतापाङ्गि किं त्व तस्य न तिष्ठसे ॥ १६ ॥

फिर उनसे दुर्मुखी नामवाली राक्षसीने कहा—
'विशाललोचने । जिनसे भय मानकर सूर्य तपना छोड़ देता
है और वायुकी गति रुक जाती है, उनके पास तुम क्यों
नहीं रहती ? ॥ १६ ॥

पुण्यवृष्टिश्च तरयो मुमुचुर्यस्य वै भयात् ।
शैला मुकुलुषु पानीय जलशब्ध यदेच्छति ॥ १७ ॥
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि ।
किं त्व न धुक्ते युद्धि भाषार्थे रावणस्य हि ॥ १८ ॥

'भामिनि । जिनके मयसे वृक्ष वृक्ष बरछाने लगते हैं
और जो वर्षा इच्छा करते हैं, तभी पर्यंत तथा मेघ धरन्का
छोत बहाने लगते हैं । उन्हीं राजाबिराज राक्षसराज रावण
की भाषा बननेके लिये तुम्हारे मनमें क्यों नहीं विचार
होता है ? ॥ १७ १८ ॥

साधु ते तत्पत्यो देवि वक्षित स्नायु भामिनि ।

गृहाण सुसिते वाक्यमन्यया न भविष्यसि ॥ १९ ॥ कही है । सुन्दर मुस्कानवाली सीते । तुम मेरी बात मान लो,
'देवि । मैंने तुमसे उतम, यथाय और हितकी बात नहीं तो तुम्हें प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा' ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोविंश सर्गः ॥ २३ ॥
इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित अष्टमावध आदिकव्य सुन्दरकाण्डमें तईसवों सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंश सर्ग

सीतानीका राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार कर देना तथा राक्षसियोंका
उन्हें मारने-काटनेकी धमकी देना

तत सीता समस्तास्ता यज्ञस्यो विहृतानना ।
परुष पदयानहर्मासुस्तुल्लाक्यमप्रियम् ॥ १ ॥
तदनन्तर विकराल मुखवाली उन समस्त राक्षसियोंने जो
कटुवचन सुननेके योग्य नहीं थीं, उन सीतासे अप्रिय तथा
कठोर वचन कहना आरम्भ किया— ॥ १ ॥
किं त्वमन्त पुरे सीते सखभूतमनोरमे ।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥

'सीते । रावणका अन्त पुर समस्त प्राणियोंके लिये मनोरम
है । वहाँ बहुमुख दम्पादों विछी रहती हैं । उठ अन्त पुरमें
तुम्हारा निवास हो, इसके लिये तुम क्यों नहीं अनुमति
देती ? ॥ २ ॥

मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं यद्गु मन्यसे ।
प्रत्याहर मनो रामान्नैव जातु भविष्यति ॥ ३ ॥

'तुम मानुषी हो, इसलिये मनुष्यकी भायाका धो पद
है, उसीको तुम अधिक महत्त्व देती हो किन्तु अब तुम
रामकी ओरसे अपना मन हटा लो, अन्यथा कदापि जीवित
नहीं रहेगी ॥ ३ ॥

वैलोक्यरसुभोक्तार रावण राक्षसेश्वरम् ।
भतारमुपसगम्य विहरस्व ययास्तुलम् ॥ ४ ॥

'तुम विभोकोके ऐश्वर्यको भोगनेवाले राक्षसराज रावणको
पतिरूपमें पाकर आनन्दपूर्वक विहार करो ॥ ४ ॥

मानुषी मानुष त तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्रान्तमनिन्दिते ॥ ५ ॥

'अनिन्द्य सुन्दरि । तुम मानवी हो, इसीलिये मनुष्य
जातीय रामकी ही चाहती हो परन्तु राम इस समय राज्यसे
भ्रष्ट हैं । उनका कोई मनोरथ सफल नहीं होता है तथा वे
सदा व्याकुल रहते हैं' ॥ ५ ॥

राक्षसीना वच श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षण ।
नेत्राभ्यामधुपूर्णभ्यामिद वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

राक्षसियोंकी ये बातें सुनकर कमलनयनी सीताने औंछ
मरे नेत्रोंसे उनकी ओर देखकर दृढ़ प्रकार कहा— ॥ ६ ॥

यदिद लोकप्रिद्विष्टमुदाहरत सगता ।
नैतमनसि वाक्य मे किञ्चिद्य प्रतिष्ठिति ॥ ७ ॥

'तुम सब मिलकर मुझसे जो यह लोक विरुद्ध प्रस्ताव
कर रही हो, तुम्हारा यह पापपूर्ण वचन मेरे हृदयमें एक
छगके लिये भी नहीं उठर पाता है ॥ ७ ॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
काम आदित्वा सदा न करिष्यामि वो वच ॥ ८ ॥

'एक मानवकन्या किसी राक्षसकी भाया नहीं हो
सकती । तुम सब लोग भले ही मुझे खा जाओ, किन्तु
मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती ॥ ८ ॥

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरु ।
त नित्यमनुरक्तासि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ ९ ॥

'मेरे पति दीन हों अथवा राज्यहीन—वे ही मेरे स्वामी
हैं, वे ही मेरे गुरु हैं, मैं सदा उन्हें अनुरक्त हूँ और
रहूंगी । जैसे सुवर्चला सूर्यमें अनुरक्त रहती है ॥ ९ ॥

यथा शची महाभाग शक समुपतिष्ठति ।
अरुचती वसिष्ठ व रोहिणी शशिन यथा ॥ १० ॥

लोपामुद्रा यथागस्त्य सुक या ज्ययन यथा ।
सावित्री सत्यवन्त व कपिल श्रीमती यथा ॥ ११ ॥

सौदास मध्यवीर्य केशिनी सगर यथा ।
नैषध दमपन्तीव मैत्री पतिमनुमता ॥ १२ ॥

तथाहमिष्वाकुवर राम पतिमनुमता ।
'जैसे महाभाग शची इन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती हैं,
जैसे देवी अरुचती महर्षि वसिष्ठमें, रोहिणी चन्द्रमामें, लोपा
मुद्रा अगस्त्यमें, सुकन्या ज्ययनमें, सावित्री सत्यवानमें,
भीमती कपिलमें, मध्यवन्ती वीराजमें, केशिनी सगरमें तथा
भीमकुमारी दमपन्ती अपने पति निषधनरेश नलमें अनुयाग
रखती हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने पतिदेव इष्वाकुवर
शिरोमणि भगवान् भीराममें अनुरक्त हूँ' ॥ १०-१०३ ॥

सीताया वचन श्रुत्वा राक्षस्य क्षोभमूर्च्छिता ।
भत्सयति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिता ॥ १३ ॥

सीताकी बात सुनकर राक्षसियोंके क्रोधकी सीमान रही । वे
रावणकी आज्ञाके अनुसार कठोर वचनोंद्वारा उन्हें धमकाने
लगीं ॥ १३ ॥

अवलीन स निषाण्यो हनुमार्द्धिराशपादुमे ।
सीता सतर्जयन्तीस्ता राखसीरश्रुणोत् कपि ॥ १४ ॥

अवलीन स निषाण्यो हनुमार्द्धिराशपादुमे ।
सीता सतर्जयन्तीस्ता राखसीरश्रुणोत् कपि ॥ १४ ॥

अशोक वृक्षमें चुपचाप छिपे बैठ हुए वानर हनुमान्की सीताको पटककरती हुई राक्षसियोंकी बातें सुनते रहे ॥ १४ ॥
तामभिकम्य सरग्धा वेपमाना समन्तत ।

मृश सलिलिहुर्यीतान् प्रलम्बान् दशनच्छदान् ॥ १५ ॥

वे सब राक्षसियाँ कुपित हो वहाँ कौपती हुई सीतापर चारों ओरसे दूट पड़ीं और अपने लंबे एव चमकीले ओठों को बारबार चाटने लगीं ॥ १५ ॥

ऊचुश्च परममुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वघान् ।
नेयमर्हति भर्तार रावण राक्षसाधिपम् ॥ १६ ॥

उनका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था । वे सब की-सब दूरत हाथोंमें परसे लेकर धोल उठीं—‘यह राक्षसराज रावण को पतिरूपमें पाने योग्य है ही नहीं’ ॥ १६ ॥

सा भक्त्यमाना भीमाभी राक्षसीभिधराङ्गना ।

सा वात्पमपमार्ज ती शिशपा तामुपागमत् ॥ १७ ॥

उन भयानक राक्षसियोंके बारबार डाँटने और घमसाने पर सर्वोद्भुतदरी कल्याणी सीता अपने आँसू पोंछती हुई उसी अशोकवृक्षके नीचे चली आयी (जिसके ऊपर हनुमान् की छिपे बैठे थे) ॥ १७ ॥

ततस्ता शिशपा सीता राक्षसीभि समावृता ।
अभिमग्न्य विशालाक्षी तस्यौ शोकपरिप्लुता ॥ १८ ॥

विशालछोचना वैदेही शोक-वागरमें डूबी हुई थी । इसलिये वहाँ चुपचाप बैठ गयी । किंतु उन राक्षसियोंने वहाँ भी आकर उहाँ चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८ ॥

ता कृशा दीनयदना मलिनाम्बरवासिनीम् ।
भक्त्यपाचक्षिते भीमा राक्षस्यस्ता समन्तत ॥ १९ ॥

वे बहुत ही दुर्बल हो गयी थीं । उनके मुखपर दीनता छा रही थी और उन्होंने मलिन वस्त्र पहन रक्खा था । उस अवस्थामें उन जनकनन्दिनीको चारों ओर खड़ी हुई भयानक राक्षसियोंने फिर घमसाना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

ततस्तु विनता नाम राक्षसी भीमवर्दना ।
अग्रधीव् कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ॥ २० ॥

तदनन्तर विनता नामकी राक्षसी आगे बढ़ी । वह देखनेमें यड़ी भयकर थी । उसकी देह क्रोचकी सजीव प्रतिमा ज्ञान पड़ती थी । उस विकराल राक्षसीके पेट भीतरकी ओर घंसे हुए थे । वह बोली— ॥ २० ॥

सीते पर्याप्तमेतावद् भन्तु स्नेह प्रदर्शित ।
सद्यप्रतिष्ठत भद्रे व्यसनयोपकल्पते ॥ २१ ॥

‘सीते ! तूने अपने पतिके प्रति जितना स्नेह दिखाया है, इतना ही बहुत है । भद्रे ! अति करना तो सब अगह दुःख ही कारण होता है ॥ २१ ॥

परितुष्टासि भद्र ते मानुषस्ते एनो विधि ।
ममापि तु यवः पथ्य सुप-रया कुष्ठ मैथिलि ॥ २२ ॥

‘मिथिलशकुमारी ! तुम्हारा भला हो । मैं तुमसे बहुत सख्त हूँ क्योंकि तुमने मानवोचित शिक्षाचारका अच्छी तरह पालन किया है । अब मैं भी तुम्हारे दितक लिये जो बात कहती हूँ, उसपर ध्यान दो—उसका शीघ्र पालन करो ॥ २२ ॥

रावण भज भर्तार भर्तार सर्वरक्षसाम् ।
विकान्तमापतत च सुरेशमिव वासथम् ॥ २३ ॥

‘समस्त राक्षसोंका भरण-पोषण करनेवाले महाराज रावणको तुम अपना पति स्वीकार कर लो । वे देवराज इन्द्रके समान बड़े पराक्रमी तथा रूपवान् हैं ॥ २३ ॥

दक्षिण त्यागशील च सर्वस्य प्रियवादिनम् ।
मानुष कृपण राम त्यक्त्वा रावणमाश्रय ॥ २४ ॥

‘दीन-हीन मनुष्य रामका परित्याग करके सबसे प्रिय वचन बोलेवाले, उदार और त्यागी रावणका आश्रय लो ॥ २४ ॥

विष्याङ्गरागा वैदेहि विष्याभरणभूषिता ।
अद्यप्रभुति लोकाना सर्वेषामीश्वरी भय ॥ २५ ॥

‘विदेहराजकुमारी ! तुम आजसे समस्त लोकोंकी स्वामिनी बन जाओ और दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य आभूषण धारण करो ॥ २५ ॥

अग्नेः स्वाहा यथा देवी शची वेन्द्रस्य शोभने ।
किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ॥ २६ ॥

‘शोभने ! जैसे अग्निकी प्रिय पत्नी स्वाहा और इन्द्रकी प्राणवत्सला शची हैं, उसी प्रकार तुम रावणकी प्रेयसी बन जाओ । विदेहकुमारी ! भीयम तो दीन हैं । उनकी आयु भी अब समाप्त हो चली है । उनसे तुम्हें क्या मिलेगा ! ॥

पतदुक् च मे वाक्य यदि त्व न करिष्यसि ।
अस्मिन् मुहूर्ते सवास्यवा भक्षयिष्यामहे वयम् ॥ २७ ॥

‘यदि तुम मेरी कही हुई इस बातको नहीं मानोगी तो हम सब मिलकर तुम्हें इसी मुहूर्तमें अपना आहार बना लेंगी ॥ २७ ॥

अन्या तु विकृता नाम लज्जमानपयोधरा ।
अग्रधीव् कुपिता सीता मुष्टिमुद्यम्य तर्जती ॥ २८ ॥

तदनन्तर दूसरी राक्षसी घामने आयी । उसके लंबे-लंबे स्तन लटक रहे थे । उसका नाम विकृता था । वह कुपित हो मुक्ता तानकर डाँटती हुई सीतासे बोली— ॥ २८ ॥

यद्भ्यप्रतिरूपाणि धवनानि सुदुमते ।
अनुकीशा-मृदुत्याष सोढानि तय मैथिलि ॥ २९ ॥

‘अत्यन्त छोटी बुद्धिवाली मिथिलशकुमारी ! अबतक हमलोगोंने अपने बरमेल समावश तुमपर दया आ जानेके कारण तुम्हारी बहुत ही अनुचित बातें सह ली हैं ॥ २९ ॥

न च न कुरूपे वाक्य हित कालपुरस्कृतम् ।
आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुःपासदम् ॥ ३० ॥
रावणान्त पुरे घोरं प्रविष्टा चासि मैथिलि ।
रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता ॥ ३१ ॥

इतनेर भी द्रुम हमारी बात नहीं मानती हो । हमने
तुम्हारे हितके लिये ही समझोचित सलाह दी थी । देखो,
तुम्हें समुद्रक इस पार ले आया गया है, जहाँ पहुँचना
दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है । यहाँ भी रावणके भयानक
अन्त पुरमें तुम छान्द कर रखी गयी हो । मिथिलेशकुमारी ।
याद रखो, रावणके घरमें कैद हो और हम जैवी राक्षसियों
तुम्हारी नौकरी कर रही हैं ॥ ३० ३१ ॥

न त्वा शक्य परिश्रान्तमपि साक्षात् पुरदम् ।
कुरुष्व हितवादिन्या यच्चन मम मैथिलि ॥ ३२ ॥

मैथिलि । साक्षात् इन्द्र भी यहाँ तुम्हारी रक्षा करनेमें
समर्थ नहीं हो सकते । अतः मेरा कहना मानो, मैं तुम्हारे
हितकी बात बता रही हूँ ॥ ३२ ॥

मलमश्रुतिपातेन त्यज शोकमनर्थकम् ।
भज मूर्तिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैव्यताम् ॥ ३३ ॥

आँख बहानेसे कुछ होने-जानेवाला नहीं है । यह व्यर्थ
का शोक त्याग दो । सदा छापी रहनेवाली दीनताको दूर
करके अपने हृदयमें प्रसन्नता और उल्लासको स्थान दो ॥

सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथासुखम् ।
जानीमहे यथा भीरु स्त्रीणा यौवनमयुवम् ॥ ३४ ॥

सीते । राक्षसराज रावणके साथ सुखपूर्वक श्रीबाबहार
करो । मीर । हम सभी स्त्रियों जानती हैं कि नारियोंका
यौवन टिकनेवाला नहीं होता ॥ ३४ ॥

यावन्त ते व्यतिश्रामेत् तावत् सुखमवाप्नुहि ।
उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ॥ ३५ ॥
सह राक्षसराजेन चर स्य मन्दिरेक्षणे ।
स्त्रीसहस्राणि तं देवि वरो स्वास्त्यन्ति सुन्दरि ॥ ३६ ॥

जबतक तुम्हारा यौवन नहीं टूट जाता, तबतक सुख
भोग लो । मंदमच बना देनेवाले नेत्रोंसे शोभा पावेवाली
सुन्दरी । तुम राक्षसराज रावणके साथ लक्ष्मिके समन्वित उद्यानों
और पर्वतीय उपवनमें विहार करो । देवि । प्रसा करनेसे
सहस्रों स्त्रियों सदा तुम्हारी आशके अधीन रहेंगी ॥ ३५ ३६ ॥

रावण भज भतार भतार सयरक्षसाम् ।
उत्पाटय वा ते हृदय भक्षयिष्यामि मैथिलि ॥ ३७ ॥
यदि मे व्याहृत यान्य न यथावत् करिष्यसि ।

महाराज रावण समस्त राक्षसोंका भरण-पोषण करनेवाला
होना है । तुम उन्हें अपना पति बना लो । मैथिलि ।
याद रखो, मैंने बेटे बात कही है, यदि उसका ठीक-ठीक

पालन नहीं करोगी तो मैं अभी तुम्हारा कलेजा निकालकर
खा जाऊँगी ॥ ३७ ॥
ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी कृत्दर्शना ॥ ३८ ॥
आमयन्ती महच्छूलमिदं चचनमग्रवीत् ।

अब चण्डोदरी नामवाली राक्षसीकी बारी आयी ।
उसकी दृष्टिसे ही मूर्ता टपकती थी । उसने विशाल त्रिशूल
धुमाते हुए यह बात कही— ॥ ३८ ॥
हमा हरिणशार्वाक्षी आसोःकम्पपयोधराम् ॥ ३९ ॥
रावणेन हृता हृद्वा वीहृदो मे महानयम् ।
यक्षुत्प्रीह महत् क्रोध हृदय च सधनम् ॥ ४० ॥
गात्राण्यपि तस्या शीर्षं सादयिमिति मे मति ।

महाराज रावण जब इसे हरकर ल आये थे, उस समय
मयके मारे यह घर घर काँप रही थी, जिससे इसके दोनों
सन डिल रहे थे । उस दिन इस भृगुयावकनयनी मानव
कन्याको देखकर मरे हृदयमें मह बड़ी भारी इच्छा जाग्रत
हुई—इसके बिगल, तिल्ली, विशाल बस स्थल, हृदय, उसके
आधारस्थान, अन्यान्य अङ्ग तथा शिरको मैं खा जाऊँ ।
इस समय भी मेरा ऐसा ही विचार है ॥ ३९ ४० ॥

ततस्तु प्रयत्ना नाम राक्षसी वाक्यमग्रवीत् ॥ ४१ ॥
कण्ठमस्या नृशसाया पीडयाम किमास्यते ।
निवेष्टता ततो रात्रे मानुषी सा मृतेति ह ॥ ४२ ॥
नात्र कश्चन सदेहं खादतेति स वक्ष्यति ।

तदनन्तर प्ररणा नामक राक्षसी बोळ उठी—फिर तो
हमलोग इस क्रूर हृदया सीताका गला घोट दें, अब चुपचाप
बैठे रहनेकी क्या आवश्यकता है ? इसे मारकर महाराजको
सुचना दे दो जाय कि वह मानवकन्या मर गयी । इसमें कोई
सदेह नहीं कि इस समाचारको सुनकर महाराज यह आशा
दे देंगे कि तुम सर लोग उसे खा जाओ ॥ ४१ ४२ ॥

ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसीवाक्यमग्रवीत् ॥ ४३ ॥
विशस्येमा तत सधोन् समान् कुरुत पिण्डकान् ।
विभजाम तत सर्वा विद्यामो मे न रोचते ॥ ४४ ॥
प्रेयमानोयता क्षिप्र माल्य च विविध यदु ।

तपश्चात् राक्षसी अश्वमुखीने कही—मुझे तो स्पर्शका
वादविवाद अच्छा नहीं लगता । आओ, पहले इसे काटकर
इसके बहुतसे टुकड़े कर जाँयें । ये सभी टुकड़े चरवर मान-
तोलके होने चाहिये । फिर उन टुकड़ोंको हमलोग आपसमें
बाँट लेगी । साथ ही नाना प्रकारकी प्रेय-नामकी तथा फूल-
माला आदि भी शीघ्र ही प्रचुर मात्रामें भेगा ही जब ॥

ततः शूण्यवा नाम राक्षसी वाक्यमग्रवीत् ॥ ४५ ॥
अजामुखा यदुक् च तदेष मम रोचते ।
सुरा घानीयता क्षिप्र सज्जोक्थिनाशिनी ॥ ४६ ॥
मानुष मासमास्वाद्य नृत्यामोऽथ निरुम्भिटाम् ।

तदनन्तर राक्षसी शूर्पणखाने कहा—“अबामुखीने जो त कही है, वही मुझे भी अच्छी लगती है। समस्त शोकोंको मैं कर देनेवाली सुराको भी शीघ्र मँगवा लो। उसके साथ तुम्हके मासका आस्वादन करके हम निकुम्भिला देवीके अपने नृत्य करेंगी” ॥ ४५ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्विंश सर्गः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २४ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

राक्षसियोंकी बात माननेसे इन्कार करके शोक-सतप्त सीताका विलाप करना

जब तासां घटन्तीना परप दाहण यहु।
रक्षसीनामसौम्याना करोद् जगकात्मजा ॥ १ ॥

जब वे मूल राक्षसियों इस प्रकारकी बहुत सी कठोर व मूलतपूर्ण बातें कह रही थीं, उस समय जनकनन्दिनी गीता व्यधीर हो होकर रो रही थीं ॥ १ ॥

वमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी।
वाच परमव्रस्ता वाग्पगद्गदया गिरा ॥ २ ॥

उन राक्षसियोंके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त भयभीत हुई मनस्विनी विदेह्यमकुमारी सीता नेत्रोंके आँसू बहाती गद्गद वाणीमें बोली— ॥ २ ॥

मातुपी राक्षसस्य भाया भवितुमर्हति।
नाम खादत मा सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ३ ॥

राक्षसियों। मनुष्यकी कन्या कभी राक्षसी माया। हीं हो सकती। तुम्हारा जी चाहे तो हम सब लोग मिलकर इसे खा जाओ, परंतु मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी ॥ ३ ॥

ना राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा।
राम लेभे शोकात्ता रायणेनेय भर्त्सिता ॥ ४ ॥

राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई देवकन्याके समान सुन्दरी सीता रावणके द्वारा धमकायी जानेके कारण शोकसे आर्त शी होकर चैन नहीं पा रही थीं ॥ ४ ॥

वेपते स्माधिक सीता विशन्तीवाह्वामग्नः।
पने यूयपरिच्छेदा मृगी कोकैरिषादिता ॥ ५ ॥

जैसे वनमें अपने यूयसे थिड़की हुई मृगी भेड़ियोंसे पीड़ित होकर भयके मारे काँप रही हो, उसी प्रकार सीता शेर बोरसे काँप रही थीं और इस तरह सिकुड़ी जा रही थीं; मानो अपने अग्रिमों ही समा जाएंगी ॥ ५ ॥

सात्यशोकस्य विपुला शापामालम्ब्य पुण्यिताम्।
चित्तवामास शोकेन भठार भग्नमानसा ॥ ६ ॥

उनका मनोरथ भग्न हो गया था। वे हताश-ही होकर असोक-वृक्षों लिली हुई एक विशाल शापामाला सहारा ले लेके पीड़ित हो अपने पतिदेवका चिन्तन करने लगीं ॥

पथ निर्भस्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा।
राक्षसीभिर्विकृताभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ॥ ४७ ॥

उन विकराल रूपवाली राक्षसियोंके द्वारा इस प्रकार धमकायी जानेपर देवकन्याके समान सुन्दरी सीता धैर्य छोड़ कर फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ४७ ॥

सा स्नापयन्ती विपुली स्तनौ नेत्रजलस्रवैः।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदात्मधिगच्छति ॥ ७ ॥

आँसुओंके प्रवाहसे अपने स्थूल उरोजोंका अभिनेक करती हुई वे चित्तमें डूबी थीं और उस समय शोकका पार नहीं पा रही थीं ॥ ७ ॥

सा वेपमाना पतित प्रवाहे कदली यथा।
राक्षसीना अभयस्ता विवर्णयद्नाभयत् ॥ ८ ॥

प्रचण्ड वायुके चलनेपर कमिष्ट होकर गिरे हुए केलेके वृक्षकी भाँति वे राक्षसियोंके मयसे व्रक्ष हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उस समय उनके मुखकी कान्ति पीकी पड़ गयी थीं ॥

तस्या सा दीर्घपहुला वेपत्या सीतया तदा।
दृष्टे करिष्या वेणी ध्यालीच परिसर्पती ॥ ९ ॥

उस रत्नमें काँपती हुई सीताकी विशाल एव घनीभूत वणी भी कमिष्ट हो रही थी, इसलिये वह रँगती हुई सर्पिणीके समान दिखायी देती थी ॥ ९ ॥

सा निभ्यसन्ती शोकात्ता कोपोवहतचेतना।
आर्ता व्यसृजद्भूणि मैथिली विल्लाप च ॥ १० ॥

वे शोकके पीड़ित होकर लवी सोंठें खींच रहा थी और क्रोधसे अचेत-ही होकर आर्तभावसे आँसू बहा रही थीं। उस समय मिथिलेश्वरमारी इस प्रकार विलाप करने लगीं— ॥ १० ॥

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च।
हा भवभ्रमं कौसल्ये हा क्षुमिमेति भामिनी ॥ ११ ॥

हा राम। हा लक्ष्मण। हा मेरी ससु कौसल्ये। हा आर्ये मुमित्रे। बारबार ऐसा बहकर दु खसे पीड़ित हुई भामिनी सीता रोने बिलपने लगीं ॥ ११ ॥

लोकप्रयादा सत्योऽय पण्डिते समुदाहृत।
अकाले दुर्लभो मृत्यु क्षियाया पुरुषस्य या ॥ १२ ॥

हाय। पण्डितोंन यह लाकोति ठीक ही करी दे कि पंडिती भी क्षी या पुरुषकी मृत्यु बिना समय आये नहीं होती ॥ १२ ॥

यन्नाहमाभि कुराभी राक्षसीभिरिहादित्ता ।
जीवामि होना रामेण मुहूर्तमपि दु खिता ॥ १३ ॥
स्त्री तो मैं भीरामके दर्शनसे यन्त्रित तथा इन क्रूर
राक्षसियोंद्वारा पीडित होनेपर भी यहाँ मुहूर्तमर भी बी
रही हूँ ॥ १३ ॥

पपाहपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नोः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता ॥ १४ ॥

मैंने पूर्वजन्ममें बहुत योद्धे पुण्य किये थे, इसीलिये
इस दीन दशामें पड़कर मैं अनाथकी भाँति मारी जाऊँगी ।
जैसे समुद्रके भीतर सामानसे भरी हुई नौका वायुके वेगसे
आहत हो डूब जाती है, उसी प्रकार मैं भी नष्ट हो जाऊँगी ॥

भर्तार लमपश्यती राक्षसीवशमागता ।
स्तीदामि जल्लु शोकेन कूल तोयहत यथा ॥ १५ ॥

मुझे प्रतिदेवके दर्शन नहीं हो रहे हैं । मैं इन राक्षसियों
के चण्डालमें फँस गयी हूँ और पानीके थपड़ोंसे आहत हो
कटते हुए बगारोंके समान शोकसे क्षीण होती जा रही हूँ ॥

पथदलपत्राक्ष सिद्धिक्रान्तगामिनम् ।
धन्या पश्यन्ति मे नाथ हृतज्ञ म्रियवादिनम् ॥ १६ ॥

‘आज जिन लोगोंको सिद्धके समान पराक्रमी और सिद्ध
की सी चालवाले मेरे कमलदललोचन, कृतज्ञ और म्रियवादी
प्राणनाथके दर्शन हो रहे हैं, वे धन्य हैं ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पडविंशः सर्गः ॥ २५ ॥
इस प्रकार श्रीवामनकिर्तिर्निर्वाण आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥



पडविंशः सर्गः

सीताका करुण विलाप तथा अपने प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय करना

प्रसक्ताभ्युपजी त्वेव ह्यवती जनकात्मजा ।
अधोगतमुखी बाला विलपुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
उ-मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती ।
उपावृष्टा किशोरीय विवेचन्ती महीतले ॥ २ ॥

जनकनन्दिनी सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बह
रही थी । उन्होंने अपना मुख नीचेकी ओर झुका लिया
था । वे उपयुक्त बातें कहती हुई ऐसी आन पड़ती थीं मानो
उ-मत्त हो गयी हों—उनपर भूत सवार हो गया हो अथवा
पितृ यद् जानेसे पागलोंका-सा प्रलय कर रही हों अथवा
दिग्भ्रम आदिभे कारण उनका चित्त भ्रान्त हो गया हो ।
वे शोकमग्न हो धरतीपर लेटती हुई बड़े-छोटीके समान पड़ी
पड़ी छटपटा रही थीं । उठा अवलामें सरलद्वया सीताने
इतना प्रकार विलाप करना आरम्भ किया— ॥ १ ॥

राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामकृपिणा ।

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्ण त्रिपमिवास्वाद्य दुर्लभ मम जीवनम् ॥ १७ ॥

‘उन आत्मजानी भगवान् भीरामसे विद्युद्दकर मेरा
जीवित खना उसी तरह सखा दुर्लभ है, जैसे तेज विषका
पान करके किसीका भी जीना अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥

कीदृश तु महापाप मया देहातरे कृतम् ।
तेनेद प्राप्यते घोर महादुःख सुदारुणम् ॥ १८ ॥

‘पता नहीं, मैंने पूर्व जन्ममें दूसरे शरीरसे कैसा महान्
पाप किया था, जिससे यह अत्यन्त कठोर, घोर और महान्
दुःख मुझे प्राप्त हुआ है ॥ १८ ॥

जीवित त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता ।
राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नास्वाद्यते मया ॥ १९ ॥

‘इन राक्षसियोंके सखणमें रहकर तो मैं अपने प्राणाराम
भीरामको कदापि नहीं पा सकता, इसलिये महान् शोकसे
चिर गयी हूँ और इससे तग आकर अपने जीवनका अन्त
कर देना चाहती हूँ ॥ १९ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्य धिगस्तु परवश्यताम् ।
न शक्य यत् परित्यक्तुमात्मच्छ-देन जीवितम् ॥ २० ॥

‘इस मानव जीवन और परतन्त्रताको धिक्कार है, जहाँ
अपनी इच्छाके अनुसार प्राणोंका परित्याग भी नहीं किया
जा सकता’ ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पडविंशः सर्गः ॥ २५ ॥
इस प्रकार श्रीवामनकिर्तिर्निर्वाण आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥



पडविंशः सर्गः

सीताका करुण विलाप तथा अपने प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय करना

राघवेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती वलात् ॥ ३ ॥
‘हाय ! इच्छातुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस
मारीचके द्वारा जब शूनायजी दूर दूर दिये गये और मेरी
ओरसे अलगवाधन हो गये, उस अवस्थामें राघव मुझ सेती
चिन्ताती हुई अवलोकते बलपूर्वक उठाकर यहाँ ले
आया ॥ ३ ॥

राक्षसीवशमापन्ना मत्सर्वमाना च दारुणम् ।
चित्तयन्ती सुदुःखार्ता नाह जीवितमुत्सहे ॥ ४ ॥

‘अब मैं राक्षसियोंके वशमें पड़ी हूँ और इनकी बढोर
घमकियों सुनती एवं सहती हूँ । एषी दशामें अत्यन्त दुःखसे
आर्त एवं चिन्तित होकर मैं भीति नहीं रह सकती ॥ ४ ॥
महि मे जीवितेनार्थो नैवार्थेन च भूषणै ।
वसन्त्या राक्षसीमथ्ये विना राम मदारयम् ॥ ५ ॥

‘महारथी भीरामके बिना राक्षसियोंके बीचमें रहकर

न तो जीवनसे कोइ प्रयोजन है, न धनकी आवश्यकता और न आभूषणोंसे ही कोइ काम है ॥ ५ ॥

रामसारमिद नूनमपयाप्यजराभरम् ।
इयं मम येनेद् न दुःखेन विशीर्यते ॥ ६ ॥

‘अवयव ही मेरा यह हृदय रोहिका बना हुआ है
यथा अवर अवर है, जिससे इस महान् दुःखमें पड़कर भी
पटवा नहीं है ॥ ६ ॥

ह्यामनायामसर्तो याह तेन विना कृता ।
हर्तमपि जीजामि जीवित पापजीनिका ॥ ७ ॥

‘मैं बड़ी ही अनार्य और असती हूँ, मुझे भिन्न है,
उनसे अलग होकर मैं एक सुहृत् भी इस पापी जीवनको
रण किये हूँ । अब तो यह जीवन केवल दुःख देनेके
ये ही है ॥ ७ ॥

रणेनापि सख्येन न स्पृशेय निशाचरम् ।
विष किं पुनरहं कामयेय विगर्हितम् ॥ ८ ॥

‘उस लोकनिन्दित निशाचर रावणको तो मैं बोंबें पैरसे
नहीं छू सकती, फिर उसे चाहनेकी तो बात ही क्या
! ॥ ८ ॥

त्याख्यानं न जानाति नामान्नात्मन कुलम् ।
नृशस्त्रभायेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥

‘यह राक्षस अपने दूर स्वभावके कारण न तो मेरे
कारपर ध्यान देता है, न अपने महत्त्वको समझता है
और न अपने कुलकी प्रतिष्ठाका ही विचार करता है ।
तबहार मुझे प्राप्त करनेकी ही इच्छा करता है ॥ ९ ॥

उन्ना भिन्ना प्रभिन्ना यादीता यात्री प्रदीपिता ।
विषणोपतिष्ठेय किं प्रलापेन वक्षिरम् ॥ १० ॥

‘राक्षसियों ! तुम्हारे देरतक बकवाद करनेसे क्या
फाय ! तुम मुझे छोड़ो, चोरो, डकड़े-डकड़े कर डालो, आग
! एक दो अवयव सूर्याजगत्कार भस्म कर डालो तो भी
रावणके पास नहीं पटक सकती ॥ १० ॥

न्यात माह वृत्तव्यं सानुक्रोशश्च राघवः ।
रद्वृत्तो निरनुक्रोशश्चैव मङ्गाभ्यसक्षयात् ॥ ११ ॥

‘भीरघुनायत्री विश्वविख्यात ज्ञानी, वृत्तक, सदाचारी
और परम दयालु है तथापि मुझे सदेह हो रहा है कि कहीं
! मेरे भाग्यके नष्ट हो जानेसे मेरे प्रति निर्दय तो नहीं हो
वे ! ॥ ११ ॥

प्रक्षसाना जनस्थाने सदस्त्राणि
रक्षेनैव निरस्तानि स मां किं मां

‘अपया’ मने अकेले है
प्रक्षलोको का वे मेरे पा,
मा रहे हैं !
नदसा

समर्थ खलु मे भर्ता राघव हनुमादये ॥ १२ ॥

‘इसअल्प बलवाले राक्षस रावणने मुझे कैद कर रक्खा
है । निश्चय ही मेरे पतिदेव समरङ्गणमें इस रावणका वध
करनेमें समर्थ हैं ॥ १२ ॥

विराघो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुङ्गव ।
रणे रामेण निहत स मां किं नाभिपद्यते ॥ १४ ॥

‘जिन शोगमने दण्डकारण्यके भीतर राक्षसधिमोर्षि
विराघको युद्धमें मार डाला था, वे मेरी रक्षा करनेके लिये
यहाँ क्यों नहीं आ रहे हैं ! ॥ १४ ॥

काम मध्ये समुद्रस्य लङ्घेय दुष्प्रधवणा ।
न तु राघवयाणानां गतिरोचो भविष्यति ॥ १५ ॥

‘यह लङ्का समुद्रके बीचमें बसी है, अतः किसी दूसरेके
लिये यहाँ आक्रमण करना मजे ही कठिन हो, किंतु
भीरघुनायत्रीके काणोंकी गति यहाँ भी कुण्ठित नहीं हो
सकती ॥ १५ ॥

किं तु तत् कारणं येन रामो हृदयपराम्रम ।
रक्षसापहृता भार्यामिष्टा यो नाभिपद्यते ॥ १६ ॥

‘यह कौन-सा कारण है, जिससे बाधित होकर सुहृद्
परकमी भीराम राक्षसद्वारा अपहृत हुई अपनी प्राणपत्नी
वीणाको छुड़ानेके लिये नहीं आ रहे हैं ॥ १६ ॥

इहस्था मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूज ।
जानघ्रिपि स तेजस्वी धवणा मपयिष्यति ॥ १७ ॥

‘मुझे तो सदेह होता है कि लक्ष्मणजीके ज्येष्ठ भ्राता
भीरामचन्द्रजीको मेरे इस लक्ष्मण होनेका पता ही नहीं है ।
मेरे यहाँ होनेकी बात यदि वे जानते होते तो उनके ब्रैसा
तेजस्वी पुरुष अपनी पत्नीका यह तिरस्कार कैसे सह सकता
था ! ॥ १७ ॥

इतेति मां योऽधिगम्य राघवाय निवेद्येत् ।
गृधराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥ १८ ॥

‘जो भीरघुनायत्रीको मेरे हरे जानेकी खबर दे सकते
थे, उन गृधराज जटायुको भी रावणने युद्धमें मार मिराया
था ॥ १८ ॥

इत कर्म महत् तेन मां तथाभ्यपपद्यता ।
तिष्ठता रावणवधे वृत्तेनापि जटायुषा ॥ १९ ॥

‘जटायु यद्यपि बूढ़ थे तो भी गृधराज अनुग्रह करके
रावणका वध करनेके लिये उद्यत हो उठेने बहुत बड़ा
पुरुषार्थ किया था ॥ १९ ॥

यदि मामिह अयममाना हि राघव ।
अथ यागेरभि ॥ २० ॥

‘यदि भीरघु-
ही कु-
रहनेका पता लग जाता
तो राघवसे शून्य

निर्द्वेष्य पुरी लङ्का निर्द्वेष्य महोदधिम् ।

रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् ॥ २१ ॥

लङ्कापुरीको भी बड़ा देते, महासागरको भी भस्म कर
ढालते तथा इस नाच निशाचर रावणके नाम और यशका
भी नाश कर देते ॥ २१ ॥

ततो निहतनायाना राक्षसीना गृहे गृहे ।

यथाहमेव रुदती तथा भूयां न सशय ॥ २२ ॥

फिर तो नि सदेह अपने पतियोंका संहार हो जानेसे
घर घरमें राक्षसियोंका इसी प्रकार क्रन्दन होता, जैसे आज
मैं रो रही हूँ ॥ २२ ॥

अन्विष्य रक्षसा लङ्का कुर्पाद् राम सलक्ष्मण ।

नहि ताम्या रिपुद्वयो मुहूर्तमपि जीवति ॥ २३ ॥

भीराम और लक्ष्मण लङ्काका पता लगाकर निश्चय ही
राक्षसोंका संहार करेंगे । जिस शत्रुको उन दोनों माइयोंने
एक बार देख लिया, वह दो बड़ी भी खींचित नहीं रह
सकता ॥ २३ ॥

चिताधूमाकुलपथा गृध्रमण्डलमण्डिता ।

अचिरेणैव कालेन दमशानसदृशी भवेत् ॥ २४ ॥

‘अब थोड़े ही समयमें यह लङ्कापुरी ‘मशान-भूमिके
समान हो जायगी । यहाँकी सड़कोंपर चिताका धुआँ फैल
रहा होगा और गीघोंकी जमातें इस भूमिकी घोमा बढाती
होंगी ॥ २४ ॥

अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येन मनोरथम् ।

दुष्प्रस्थानोऽयमाभाति सर्वेषां वो विषयय ॥ २५ ॥

‘वह समय शीघ्र आनेवाला है जब कि मेरा यह मनोरथ
पूरा होगा । इस सब लोगोंका यह दुःस्वप्न-दृष्टिसे शीघ्र ही
विपरीत परिणाम उपस्थित करेगा, ऐसा स्पष्ट ध्यान पड़ता
है ॥ २५ ॥

यादृशानि तु दृश्यते लङ्कायामनुभानि तु ।

अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥ २६ ॥

लङ्कामें जैसे जैसे अशुभ लक्षण दिखायी दे रहे हैं,
उनसे ध्यान पड़ता है कि अब शीघ्र ही इसकी चमक-दमक
नष्ट हो जायगी ॥ २६ ॥

नून लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधिपे ।

शोपमेप्यति दुर्धर्मा प्रमदा पिबन्वा यथा ॥ २७ ॥

‘पापाकारी राक्षसराज रावणक भारे जानेपर यह दुर्धर्म
लङ्कापुरी भी निश्चय ही विषवा सुवतीकी भाँति खूब जायगी,
नष्ट हो जायगी ॥ २७ ॥

पुण्योत्सवसमृद्धा च नष्टभर्त्रा सराक्षसा ।

भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्रा यथाङ्गना ॥ २८ ॥

‘आज जिस लङ्कामें पुण्यमय उत्सव होते हैं, वह राक्षसों

के सहित अपने स्वामीके नष्ट हो जानेपर विषवा स्त्रीके समान
भीरीन हो जायगी ॥ २८ ॥

नून राक्षसकन्याना रुदतीना गृहे गृहे ।

अधोयामि नचिरादेव दुःखार्तानामिह घबनिम् ॥ २९ ॥

‘निश्चय ही मैं बहुत शीघ्र लङ्काके घर घरमें दुःखसे
आतुर होकर रोती हुई राक्षसकन्याओंकी क्रन्दन-ध्वनि
सुनूँगी ॥ २९ ॥

साधकारा हतघोता हतराक्षसपुङ्गवा ।

भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः ॥ ३० ॥

‘भीरामचन्द्रवीके सायकोंसे दण्ड हो जानेके कारण
लङ्कापुरीकी प्रमा नष्ट हो जायगी । इसमें अशकार छा
जायगा और यहाँके सभी प्रमुख राक्षस कालके गालमें बले
जायेंगे ॥ ३० ॥

यदि नाम स शूरो मा रामो रक्षान्तलोचन ।

जानीयाद् धर्तमाना या राक्षसस्य निवेशने ॥ ३१ ॥

‘यह सब सभी सम्भव होगा, जब कि लाख नेत्रप्रान्तवालि
शूरीर मगवान् भीरामको यह पता लग जाय कि मैं राक्षसके
अन्त पुरमें बंदी बनाकर रक्खी गयी हूँ ॥ ३१ ॥

अनेन तु नृशसेन रावणेनाधमेन मे ।

समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागत ॥ ३२ ॥

‘इस नीच और दुष्ट रावणने मेरे लिये जो समय
नियत किया है, उसकी पूर्ति भी निकट भविष्यमें ही हो
जायगी ॥ ३२ ॥

स च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुष्टेन वतते ।

अकार्यं ये न जानन्ति नैर्मुक्ता पापकारिणः ॥ ३३ ॥

‘उसी समय दुष्ट रावणने मेरे वचन निश्चय किया है ।
ये पापाकारी राक्षस इतना भी नहीं जानते हैं कि क्या करना
चाहिये और क्या नहीं ॥ ३३ ॥

अधर्मास्तु महोत्पातो भविष्यति हि सारप्रतम् ।

नैते धर्मे विजानन्ति राक्षसा पिच्छिताशना ॥ ३४ ॥

‘इस समय अधर्मसे ही महान् उत्पात होनेवाला है ।
ये मासमशी राक्षस धर्मको चित्कुल नहीं जानते हैं ॥ ३४ ॥

ध्रुव मा प्रातरागार्थं राक्षस कल्पयिष्यति ।

साह कथं करिष्यामि तं विना म्रियदशानम् ॥ ३५ ॥

‘वह राक्षस अवश्य ही अपने कलेबके लिये मेरे शरीरके
टुकड़े-टुकड़े करा ढालेगा । उस समय अपने म्रियदशन
पतिके बिना मैं अवश्य अवला क्या करूँगी ? ॥ ३५ ॥

राम रक्षान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता ।

क्षिप्र वैवस्वतं देयं पश्येय पतिना जिना ॥ ३६ ॥

‘जिनके नेत्रप्रान्त अरण वर्णके हैं, उन भीरामचन्द्रवी
का दर्शन न पाकर अत्यन्त दुःखमें पड़ी हुई ध्रुव अवश्य

मुने न तो जीवनसे कोह प्रयोजन है, न धनकी आवश्यकता
है और न आभूषणोंसे ही कोई काम है ॥ ५ ॥
ब्रह्मसारमिदं नूनमथवाप्यजराभरम् ।
हृदय मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ॥ ६ ॥

‘अस्य ही मेरा यह हृदय लोदेका बना हुआ है
अथवा अजर अमर है, जिससे इत महात् नु खमैं पड़कर भी
यह फटता नहीं है ॥ ६ ॥

चिह्नानामार्यामसर्तां याह तेन विना कृता ।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवित पापजीविका ॥ ७ ॥

‘मैं वही ही अनार्य और अचली हूँ, मुझे विकार है,
को उनसे अलगा होकर मैं एक मुहूर्त भी इस पापी जीवनको
चारण किये हूँ । अब तो यह जीवन केवल दुःख देनेके
लिये ही है ॥ ७ ॥

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेय निशाचरम् ।
रावण किं पुनरहं कामयेय विगर्हितम् ॥ ८ ॥

‘उक्त लोकनिन्दित निशाचर रावणको तो मैं क्यों पैरसे
भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहनेकी तो बात ही क्या
है ! ॥ ८ ॥

प्रत्याख्यान न जानाति नामान्नात्मन कुलम् ।
यो दृष्टासखभायेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥

‘यह राक्षस अपने कूल स्वभाषके कारण न तो मेरे
इन्कारपर ध्यान देता है, न अपने महत्त्वको समझता है
और न अपने कुलकी प्रतिष्ठाका ही विचार करता है ।
बारम्बार मुझे प्राप्त करनेकी ही इच्छा करता है ॥ ९ ॥

छिन्ना भिन्नाप्रभिक्षा वादीनां चाग्नी मदीपिता ।
रावण नोपतिष्ठेय किं प्रलापेन वक्षिरम् ॥ १० ॥

‘पाशवियो ! तुम्हारे देवतक बकवाद करनेसे क्या
लाम ! तुम मुझे छेदो, चीरो, डकड़ें-डकड़े कर डालो, आग
में सेंक दो अथवा सर्वथा बलाकर मरु कर डालो तो भी
मैं रावणके पास नहीं फटक सकती ॥ १० ॥

सयात प्राशः कृतशब्द सातुमोशब्द राघवः ।
सद्वृत्तौ निरनुमोश शब्दं मन्त्रायसक्षयात् ॥ ११ ॥

‘भीरुनायकी विशिष्टविख्यात शानी, कृतशब्द, सदाचारी
और परम दयालु हैं तथापि मुझे सदेह हो रहा है कि कहीं
वे मेरे भाषणके नष्ट हो जानेसे मेरे प्रति निर्दय तो नहीं हो
गये ! ॥ ११ ॥

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश ।
एकेनैव निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते ॥ १२ ॥

‘अथवा जिन्होंने जनस्थानमें अग्रे ले ही चौदह हजार
राक्षसोंको कालके गालमें डाल दिया, वे मेरे पास क्यों नहीं
आ रहे हैं ! ॥ १२ ॥

नैरुद्धा रावणेनाहमप्यधीर्षेण रक्षसा ।

समर्थं खलु मे भर्ता राघव हन्तुमाहवे ॥ १३ ॥

‘इसअस्य बलवाले राक्षस रावणने मुझे कैद कर रक्खा
है । निश्चय ही मेरे पतिदेव समराज्जणमें इत रावणका वध
करनेमें समर्थ हैं ॥ १३ ॥

विराधो वृण्हकारण्ये येन राक्षसपुङ्गव ।
रणे रामेण निहत स मां किं नाभिपद्यते ॥ १४ ॥

‘विन भीरुमने दण्डकारण्यके भीतर राक्षसशिरोमणि
विराधको युद्धमें मार डाला था, वे मेरी रक्षा करनेके लिये
यहाँ क्यों नहीं आ रहे हैं ! ॥ १४ ॥

कार्म मय्ये समुद्रस्य लङ्क्ये दुःप्रपणना ।
न तु राघवबाणानां गतिरोधी भविष्यति ॥ १५ ॥

‘यह लङ्का समुद्रके बीचमें बसी है, अतः किसी दूखरेके
लिये यहाँ आक्रमण करना भले ही कठिन हो, किन्तु
भीरुनायकीके बाणोंकी गति यहाँ भी कुण्ठित नहीं हो
सकती ॥ १५ ॥

किं नु तत् कारण येन रामो हृदपराम्भम् ।
रक्षसापहृता भार्यामिष्टा यो नाभिपद्यते ॥ १६ ॥

‘यह कौन-सा कारण है, जिससे बाधित होकर मुद्रद
पराक्रमी श्रीराम राक्षसद्वारा अपहृत हुई अपनी प्राणपत्नी
सीताको छुड़ानेके लिये नहीं आ रहे हैं ! ॥ १६ ॥

इदस्मा मा न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानस्यि स तेजस्वी धर्षणा मर्षयिष्यति ॥ १७ ॥

‘मुझे तो सदेह होता है कि लक्ष्मणजीके उद्येष्ठ भ्राता
भीरामचन्द्रजीको मेरे इस रङ्गमें होनेका पता ही नहीं है ।
मेरे यहाँ होनेकी बात यदि वे जानते होते तो उनके-जैसा
तेजस्वी पुत्र अपनी पत्नीका यह विरस्कार कैसे सह सकती
या ! ॥ १७ ॥

हृतेति मा योऽधिगम्य राघवाय निवेदयेत् ।
शुभ्ररातोऽपि स रणे रावणेन निपातित ॥ १८ ॥

‘को भीरुनायकीको मेरे हरे बानेकी सूचना दे सकते
ये, उन यश्रराज बटायुको भी रावणने युद्धमें मार गिराया
था ॥ १८ ॥

एत कर्म महत् तेन मा तथाभ्यवपद्यता ।
तिष्ठता रावणवधे धुन्देनापि जटायुषा ॥ १९ ॥

‘जटायु यद्यपि बूढ़े थे तो भी प्रसन्न अनुमद करके
रावणका वध करनेके लिये उष्यत हो उन्होंने बहुत यश
पुरुषार्थ किया था ॥ १९ ॥

यदि मामिह जानीयाद् घतमाना हि राघव ।
अथ बाणैरभिमुद्रः शूर्याङ्गो कमराक्षसम् ॥ २० ॥

‘यदि भीरुनायकीको मेरे यहाँ रहनेका पता लग जाता
तो ये आज ही कुनिन होकर खरे सगरको राक्षसोंसे ध्वंस
कर डालते ॥ २० ॥

निर्द्वेष्टा पुरी लङ्का निर्द्वेष्टा महोद्धम ।

रावणस्य च नीचस्य कीर्तिनाम च नाशयेत् ॥ २१ ॥

लङ्कापुरीको भी बड़ा देते, महाशमको भी मर कर
झलते तथा इस नाच निगानर रावणके नाम और यशस्व
भी नाश कर देते ॥ २१ ॥

ततो निहतनाथात्ता रामसीना गृहे गृहे ।

यथाहमेव रुदती तथा भूयां न सद्यः ॥ २२ ॥

फिर तो निःसंदेह अपने पतियोंका शहर हो जानेसे
घर घरमें राक्षसियोंका इसी प्रकार क्रन्दन होता, जैसे आज
मैं रो रही हूँ ॥ २२ ॥

अन्विष्य राक्षसा लङ्का कुर्पाद् राम सलहमण ।

नदि ताम्बा रिपुदष्टो मुहूर्तमपि जीवति ॥ २३ ॥

भीराम और लहमण लङ्काका पता लगाकर निम्न ही
राक्षसोंका शहर करेंगे । जिस शत्रुको उन दोनों भाइयोंने
एक बार देख लिया, वह दो बड़ी भी जीवित नहीं रह
सकता ॥ २३ ॥

चिताधूमाङ्गुलपथा गृहप्रमण्डलमण्डिता ।

अचिरेणैव कालेन इमशानसहस्री भवेत् ॥ २४ ॥

‘अब जोड़े ही समयमें यह लङ्कापुरी नगशान भूमिके
समान हो जायगी । यहाँकी लड़कोंपर चिताका धुआँ फैल
रहा होगा और गीर्घोंकी जमातें इस भूमिकी शोभा बढ़ाती
होंगी ॥ २४ ॥

अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येन मनोरथम् ।

दुष्प्रस्थानोऽयमाभाति सर्वेषां वो विपर्यय ॥ २५ ॥

‘वह समय शीघ्र जानेवाला है जब कि मेरा यह मनोरथ
पूर्ण होगा । इस सबलोगोंका यह दुःखचक्र तुम्हारे लिये शीघ्र ही
विराट परिणाम उपस्थित करेगा, ऐसा स्थल ध्वन पड़ता
है ॥ २५ ॥

यादृशानि तु हृदयन्ते लङ्कायामशुभानि तु ।

अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥ २६ ॥

लङ्कामें जैसे-जैसे अगम लक्षण दिखायी दे रहे हैं,
उनसे जान पड़ता है कि अब शीघ्र ही इसकी चमक-दमक
नष्ट हो जायगी ॥ २६ ॥

नून लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधिपे ।

शोषमेप्यति दुर्धर्मा प्रमदा निधना यथा ॥ २७ ॥

पापाचारी राक्षसराज रावणके मारे जानेपर यह दुर्धर्म
लङ्कापुरी भी निम्न ही विषया पुत्रतीक्ष्णी भोंति स्व जायगी,
नष्ट हो जायगी ॥ २७ ॥

पुण्योत्सवसमृद्धा च नष्टभर्त्री सराक्षसा ।

भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाहना ॥ २८ ॥

‘आज जिस लङ्कामें पुण्यमय उत्सव होते हैं, वह राक्षसों

के सहित अपने स्वामीके नष्ट हो जानेपर विषया स्त्रीके समान
भीरीन हो जायगी ॥ २८ ॥

नून राक्षसकन्याना रुदतीना गृहे गृहे ।

ओष्यामि भविष्यदेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् ॥ २९ ॥

‘निम्न ही मैं बहुत शीघ्र लङ्काके घर घरमें दुःखसे
आतुर होकर रोती हुई राक्षसकन्याओंकी क्रन्दन ध्वनि
झरूँगी ॥ २९ ॥

साधकारा हतघोता हतराक्षसपुङ्गवा ।

भविष्यति पुरी लङ्का निर्द्वेष्टा रामसायकैः ॥ ३० ॥

‘भीरामचन्द्रवीके सायकोंसे दण्ड हो जानेके कारण
लङ्कापुरीकी प्रभा नष्ट हो जायगी । इसमें अन्धकार छा
जायगा और यहाँक सभी प्रमुख राक्षस कालके गालमें चले
जायेंगे ॥ ३० ॥

यदि नाम स शूरो मा रामो रक्तातलोचन ।

जानीयाद् धर्तमाना या राक्षसस्य निवेशने ॥ ३१ ॥

‘यह सब तभी सम्भव होगा, जब कि लाल नेत्रप्रान्तवाले
शूरवीर भगवान् भीरामको यह पता लग जाय कि मैं राक्षसके
अन्त पुरमें बंदी बनाकर रक्खी गयी हूँ ॥ ३१ ॥

अनेन तु वृशसेन रावणेनाधमेन मे ।

समयो यस्तु निर्द्वेष्टस्य कालोऽयमागत ॥ ३२ ॥

‘इस नीच और दुरास रावणने मेरे लिये जो समय
नियत किया है, उसकी पूर्ति भी निकट भविष्यमें ही हो
जायगी ॥ ३२ ॥

स च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुष्टेन वर्तते ।

अकार्यं ये न जानन्ति नैर्ऋता पापकारिण ॥ ३३ ॥

‘ठही समय तुष्ट रावणने मेरे वधका निम्न किया है ।
ये पापाचारी राक्षस हवना भी नहीं जानते हैं कि क्या करना
चाहिये और क्या नहीं ॥ ३३ ॥

अधमास्तु महोत्पातो भविष्यति हि साध्वतम् ।

नैते धर्मे विजानन्ति रामसा पिशिताशना ॥ ३४ ॥

‘इस समय अधर्मसे ही भयान् उत्पात होनेवाला है ।
ये माधमयी राक्षस धर्मको बिस्मृत नहीं जानते हैं ॥ ३४ ॥

ध्रुव मा प्रातपशार्थं राक्षस कल्पविष्यति ।

साह कथं करिष्यामि ॥ विना प्रियदर्शनम् ॥ ३५ ॥

‘वह राक्षस अवश्य ही अपने कल्लेवेके लिये मेरे शरीरके
टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा । उस समय अपने प्रियदर्शन
पतिके विना मैं अरुण अवल क्या करूँगी ? ॥ ३५ ॥

राम रतान्तनयनमपदयन्ती सुदुःखिता ।

क्षिप्र वैषखत देव पदयेय पतिना विना ॥ ३६ ॥

‘जिनके नेत्रप्रान्त अरुण बँके हैं, उन भीरामचन्द्रवी
का दर्शन न पाकर अत्यन्त दुःखमें पड़ी हुई मुझ अरुण

अबलाको पतिना चरणस्पर्श किये गिना ही शीघ्र यमदेवताका दर्शन करना पड़ेगा ॥ ३६ ॥

नाजानास्त्रीवर्ती रामः स मा भरतपूर्वजः ।

जानन्ती तु न कुयाता नो यौ हि परिमार्जनम् ॥ ३७ ॥

‘भरतके बड़े भाई मगवान् भीराम यह नहीं जानते हैं कि मैं जीवित हूँ । यदि उन्हें इस बातका पता होता तो ऐसा सम्भव नहीं था कि वे पृथ्वीपर मेरी खोज नहीं करते ॥ ३७ ॥

नून ममैव शोकेन स धीरो लक्ष्मणाग्रजः ।

देवलोकमिहो पातस्यस्पर्त्वा देह महीतले ॥ ३८ ॥

‘मुझे तो यह निश्चित ज्ञान पड़ता है कि मेरे ही शोकसे लक्ष्मणके बड़े भाई वीरवर भीराम भूतलपर अपने गरीबका त्याग करके यहाँसे देवलोकको चले गये हैं ॥ ३८ ॥

धन्या देवा संगधर्या सिद्धाश्च परमपर्यय ।

मम पश्यन्ति ये धीर राम राज्ञीयलोचनम् ॥ ३९ ॥

‘वे देवता, गंधर्वा, विद्व और महर्षिगण धन्य हैं, जो मेरे पतिदेव वीर शिरोमणि कमलनयन भीरामका दर्शन पा रहे हैं ॥ ३९ ॥

अथवा नहि तस्यायौ धर्मकामस्य धीमत ।

मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मन ॥ ४० ॥

‘अथवा केवल धर्मकी कामना रखनेवाले परमात्म स्वरूप बुद्धिमान् राजर्षि भीरामको भावसे कोढ़ प्रयोजन नहीं है (इसीलिये वे मेरी सुख नहीं ले रहे हैं) ॥ ४० ॥

हृदयमाने भवेत् प्रीति सौहृद नास्त्यदृश्यत ।

नाशयन्ति हृत्तनास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥ ४१ ॥

‘जो स्वजन अपनी दृष्टिके सामने होते हैं, उन्हींपर प्रीति बनी रहती है । जो आँखसे ओझल होते हैं, उनपर लोगोंका स्नेह नहीं रहता है (शायद इसीलिये भीरघुनायजी मुझे भूल गये हैं, परन्तु यह भी सम्भव नहीं है क्योंकि) कृतप्न मनुष्य ही पीठ पीछे प्रेमको डुकरा देते हैं । मगवान् भीराम ऐसा नहीं करेंगे ॥ ४१ ॥

किं वा मय्यगुणा केचित् किं वा भाग्यक्षयो हि मे ।
या हि सीता घराहं हिना रामेण भामिनी ॥ ४२ ॥

‘अथवा मुझमें कोई दुःगुण है या मेरा भाग्य ही फूट गया है, जिससे इस समय मैं गमिनी सीता अपने परम पूजनीय पति भीरामसे विछुड़ गयी हूँ ॥ ४२ ॥

श्रेयो मे जीवितामर्तुं विहीताया महात्मना ।

रामाद्विपचारित्राच्छूराच्छुनिवर्धणात् ॥ ४३ ॥

हृत्पार्षे धीमद्गामायणे वायमीजीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रचार श्रीरामकीनिर्मित आपरामायण आदिकाम्यके सुन्दरकाण्डमें छौंसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

मेरे पति मगवान् भीरामका सदाचार अक्षुण्ण है । वे धूरवीर होनेके साथ ही शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं । मैं उनसे सरक्षण पानेके योग्य हूँ, परन्तु उन महात्मासे विछुड़ गयी । एसी दशार्म जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है ॥ ४३ ॥

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ घने मूलफलाशनौ ।

भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ चरन्तौ घागोचरौ ॥ ४४ ॥

‘अथवा वनमें फल-मूल खाकर निचरनेवाले वे दोनों वनवासी बघु नरश्रेष्ठ भीराम और लक्ष्मण अब अहिंसाका मत लेकर अपने अस्त्र शस्त्रोंका परित्याग कर चुके हैं ॥ ४४ ॥

अथवा राक्षसेन्द्रेण राज्ञेन दुरात्मना ।

छद्मना घातितौ शूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥

‘अथवा दुरात्मा राक्षसराज रावणने उन दोनों धूरवीर बघु भीराम और लक्ष्मणको छलसे मरवा डाला है ॥ ४५ ॥

साहमेवविधे काले मर्तुमिच्छामि सर्वत ।

न च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुःखेऽतिवर्तति ॥ ४६ ॥

‘अत ऐसे समयमें मैं सब प्रकारसे अपने जीवनका अन्त कर देनेकी इच्छा रखती हूँ, परन्तु मादम् होता है इस महान् दुःखमें होते हुए भी अभी मेरी मृत्यु नहीं लिखी है ॥ ४६ ॥

यथा खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्भवाः ।

मितात्मानो महाभागो येषां न स्त म्रियाप्रिये ॥ ४७ ॥

‘सत्यस्वरूप परमात्माको ही अपना आत्मा माननेवाले और अपने अन्त करणकी वशमें रखनेवाले वे महाभाग महात्मा महर्षिगण धन्य हैं, जिनके कोई प्रिय और अप्रिय नहीं हैं ॥ ४७ ॥

प्रियास्त सभयेद् दुःखमप्रियादधिक भवेत् ।

ताम्या हिते विमुज्यन्ते ममस्तेषां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥

‘जिन्हें प्रियके वियोगसे दुःख नहीं होता और अप्रियका सयोग प्राप्त होनेपर उससे भी अधिक कष्टका अनुभव नहीं होता—इस प्रकार जो प्रिय और अप्रिय दोनोंसे परे हैं, उन महात्माओंको मेरा नमस्कार है ॥ ४८ ॥

साह त्यक्त्वा प्रियेणैव रामेण विद्वितात्मना ।

प्राणास्त्यक्षयामिपापस्य रावणस्य गता यदाम् ॥ ४९ ॥

‘मैं अपने प्रियतम आरामगानी मगवान् भीरामसे विछुड़ गयी हूँ और पापी रावणके चंगुलमें आ पँसी हूँ । अत अब इन प्राणोंका परित्याग कर दूँगी ॥ ४९ ॥

सप्तविंश सर्ग

त्रिजटाका स्वप्न—राक्षसोंके विनाश और श्रीरघुनाथजीकी विजयकी शुभ सूचना

इत्युक्ता सीतया घोरराक्षस्य क्रोधमूर्च्छिता ।

काञ्चिज्जग्मुस्तदास्थायतु रावणस्य दुरात्मन ॥ १ ॥

सीताने खब ऐसी मयकर बात कही, तब वे राक्षसियों
क्रोधसे अनेक सी हो गयीं और उनमेंसे कुछ उस दुरात्मा
रावणसे वह स्वाद कहनेके लिये चल दीं ॥ १ ॥

तत सीतामुपागम्य राक्षस्यो भीमदर्शना ।

पुन पश्यमेकार्यमनयार्थमयाव्रुवन् ॥ २ ॥

तत्पश्चात् मण्कर दिखायी देनेवाली वे राक्षसियों सीताके
पास आकर पुन एक ही प्रयोजनसे सम्बन्ध रखनेवाली कठोर
बातें, जो उनके लिये ही अनधिकारिणी थीं, कहने लगीं—॥ २ ॥

अद्येदानीं तयानार्यै सीते पापविनिश्चये ।

राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद् यथासुखम् ॥ ३ ॥

‘पापपूज विचार रखनेवाली अनार्यें सीते ! आज इसी
समय ये सब राक्षसियाँ मौके काफ तेरा यह मांस खायेंगी’ ॥

सीतां ताभिरनार्याभिहृष्टा सतर्जिता तदा ।

राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रमुद्धा वाक्यमप्रयीत् ॥ ४ ॥

उन हुए निघाचरियोंके द्वारा सीताको इस प्रकार डरायी
जाती देख बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा, जो तत्काल छोकर उठी थी,
उन सबसे कहने लगी—॥ ४ ॥

आत्मान खादतानार्या न सीता भक्षयिष्यथ ।

जनकस्य सुतामिष्टा स्तुषा दशरथस्य च ॥ ५ ॥

‘नीच निघाचरियो ! तुमलोग अपने आपको ही खा
जाओ । राजा जनककी प्यारी बेटी तथा महाराज दशरथकी
प्रिय पुत्रवधू सीताजीको नहीं खा सकोगी ॥ ५ ॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षण ।

राक्षसानामभावाय भर्तुस्तस्या भवाय च ॥ ६ ॥

‘आज मैंने बड़ा मयकर और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा
है, जो राक्षसोंके विनाश और सीतापतिके अम्बुदयकी सूचना
देनेवाला है’ ॥ ६ ॥

एवमुक्तात्रिजटया राक्षस्य क्रोधमूर्च्छिता ।

सया पराबुधन् भीतात्रिजटा तामिद वचः ॥ ७ ॥

त्रिजटाके ऐसा कहनेपर ये सब राक्षसियाँ, जो पहले
क्रोधसे मूर्च्छित हो रही थीं, भयभीत हो उठीं और त्रिजटसे
इस प्रकार बोलीं—॥ ७ ॥

कथयस्व त्वया दृष्टः स्मोऽय कीदृशो निद्रि ।

तासा श्रुत्या न वचन राक्षसीना मुञ्चोद्गतम् ॥ ८ ॥

उवाच वचन काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रिता ।

‘अरी ! बताओ तो सही ! तुमने आज रातमें यह कैसा

स्वप्न देखा है !’ उन राक्षसियोंके मुखसे निकली हुई यह
बात सुनकर त्रिजटाने उस समय वह स्वप्न-सम्बन्धी बात
इस प्रकार कही—॥ ८ ॥

गजद तमर्यां दिव्या शिविकामन्तरिक्षगाम् ॥ ९ ॥

युक्ता वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघव ।

शुक्रमाह्वयाम्बरधरो लक्ष्मणेन समागत ॥ १० ॥

‘आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि आकाशमें चलनेवाली
एक दिव्य शिविका है । वह हापीदौतकी बनी हुई है ।
उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए हैं और श्वेत पुष्पोंकी माला
तथा श्वेत वस्त्र धारण किये स्वयं श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणके साथ
उस शिविकापर चढ़कर वहाँ पधारे हैं ॥ ९ १० ॥

स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्रान्तराष्टता ।

सागरेण परिक्षिप्त श्वेतपर्वतमास्थिता ॥ ११ ॥

रामेण सगता सीता भास्करेण प्रभा यथा ।

‘आज स्वप्नमें मैंने यह भी देखा है कि सीता श्वेत
वस्त्र धारण किये श्वेत पर्वतके शिखरपर बैठी हैं और वह
पर्वत समुद्रसे विरा हुआ है, वहाँ श्वेत सूर्यदेवसे उनकी प्रभा
मिलती है, उसी प्रकार सीता श्रीरामचन्द्रजीसे मिली हैं ॥

राघवश्च पुनर्हृष्टस्तुर्दन्त महानजम् ॥ १२ ॥

आरूढः शैलसकाश चकास सहलक्ष्मण ।

‘मैंने श्रीरघुनाथजीको फिर देखा, वे चार दौतवाले
विशाल गजराजपर, जो पर्वतके समान ऊँचा था, लक्ष्मणके
साथ बैठे हुए बड़ी घोमा पा रहे थे ॥ १२ ॥

ततस्तु सूर्यसकाशौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥ १३ ॥

शुक्रमाह्वयाम्बरधरो जानकीं पयुपस्थितौ ।

‘तदनन्तर अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होते
तथा श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किये वे दोनों
भाई श्रीराम और लक्ष्मण जानकीजीके पास आये ॥ १३ ॥

ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिन ॥ १४ ॥

भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकीं स्वधमाश्रिता ।

‘फिर उस पर्वत शिखरपर आकाशमें ही खड़े हुए और
पतिद्वारा पकड़े गये उस हाथीके कंधेपर जानकीजी भी आ
पहुँचीं ॥ १४ ॥

भर्तुरष्टात् समुत्पत्य तत कमललोचना ॥ १५ ॥

चन्द्रसूर्या मया दृष्टा पाणिभ्या परिमार्जता ।

‘इसके बाद कमलनयनी सीता अपने पतिके अङ्गुष्ठों
ऊपरकी उल्लङ्घन चन्द्रमा और सूर्यके पास पहुँच गयीं ।

वहाँ मैंने देखा वे अपने दोनों हाथोंसे चद्रमा और सूर्यको
पोंछ रही हैं—उनपर छाया पेर रही हैं ॥ १५३ ॥

ततस्ताम्या कुमाराम्यास्थित स गजोत्तम ।

सीतया च विमालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थित ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् त्रिवर वे दोनों रावकुमार और विमाल-
लोचना सीताजी विराजमान थीं, वह महान् गजराज लङ्काके
ऊपर आकर खड़ा हो गया ॥ १६ ॥

पाण्डुरर्धभयुक्तेन रथेनाप्रयुजा स्वयम् ।

इहोपयातः काकुत्स्थ सीतया सह भार्यया ॥ १७ ॥

शुक्लमात्म्याम्यरधरो लक्ष्मणेन सहामगत ।

फिर मैंने देखा कि आठ सफेद बैलोंसे जुते हुए एक
रथपर आरूढ़ हो ककुत्स्थकुलभूषण भीरामाद्रजी द्रवत
पुष्पोंकी माला और वस्त्र धारण कर अपनी चर्मपत्नी सीता
और माई लक्ष्मणके साथ वहाँ पचारे हैं ॥ १७३ ॥

ततोऽन्यत्र मया दृष्टो राम सत्यपराक्रमः ॥ १८ ॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह धीरयान् ।

आवृष्ट पुष्पक दिव्य विमान स्वयंसनिभम् ॥ १९ ॥

उत्तरा दिशमालोच्य प्रस्थित पुरुषोत्तमः ।

इसके बाद दूसरी जगह मैंने देखा सत्यपराक्रमी और
बल-विक्रमशाली पुरुषोत्तम भगवान् भीराम अपनी पत्नी
सीता और माई लक्ष्मणके साथ सूर्यवृत्त्य सेजसी दिव्य पुष्पक
विमानपर आरूढ़ हो उत्तर दिशाकी ल्य करके यहाँसे
प्रस्थित हुए हैं ॥ १८ १९३ ॥

एव खल्वेन मया दृष्टो रामो विष्णुपराक्रमः ॥ २० ॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ।

इस प्रकार मैंने स्वप्नमें भगवान् विष्णुके समान
पराक्रमी भीरामका उनकी पत्नी सीता और माई लक्ष्मणके
साथ दर्शन किया ॥ २०३ ॥

न हि रामो महातेजा शक्यो जेतु सुपुष्टरैः ॥ २१ ॥

राक्षसैवापि चान्यैर्वा भर्गं पापजनैरिव ।

भीरामवाद्रजी महातेजसी हैं । उन्हें देवता, असुर,
राक्षस तथा दूसरे लोग भी कदापि जीत नहीं सकते । ठीक
उसी तरह, जैसे पापी मनुष्य स्वर्गलोकपर विजय नहीं पा
सकते ॥ २१३ ॥

रावणश्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षित ॥ २२ ॥

• ओ सी या पुरुष स्वप्नमें अपने दोनों हाथोंसे सूर्यवृत्त
मदया चन्द्रमण्डल्यं दृष्ट्वा वैरा है, जैसे दिवाक रामकी प्राप्ति होती
है । वैरा हि स्वप्नाप्याका वचन है—

आदित्यमण्डलं चापि चन्द्रमण्डलमेव वा ।

स्वप्ने गृह्णाति इत्यादि रावणं सप्राप्त्यनुग्रहम् ॥

(गोविन्दराजविरचित रामायणभूषण)

रक्तवासा पियमस्त करवीरकृतश्रजः ।

विमानात् पुष्पकाव्यध रावण पतित क्षितौ ॥ २३ ॥

मैंने रावणको भी स्वप्नमें देखा था । वह मृदु मुद्रासे
तेलसे नहाकर लाल वस्त्र पहने हुए था । मदिरा पीकर
मतवाला हो रहा था तथा करवीरक फूलोंकी माला पहने हुए
था । इसी वेपभूषणमें आन रावण पुष्पक विमानसे पृथ्वीपर
गिर पड़ा था ॥ २२ २३ ॥

कृष्णमाणः खिया मुण्डो दृष्ट कृष्णाम्बर पुन ।

रथेन चरयुक्तेन रक्तमात्मानुलेपन ॥ २४ ॥

पियस्तैल हस नृत्यन् भ्रातृविचित्रालेक्ष्य ।

गर्दभेन ययौ शीघ्र दक्षिणा दिशमास्थित ॥ २५ ॥

‘एक छा उस मुण्डित मस्तक रावणको कहीं खींचे
लिये जा रही थी । उस समय मैंने फिर देखा रावणने काले
कपड़े पहन रखे हैं । वह गधे जुते हुए रथसे यात्रा कर रहा
था । लाल फूलोंकी माला और लाल चन्दनसे विभूषित था ।
तेल पीता, हँसता और नाचता था । पागलोंकी तरह उसका
चित्त भ्रान्त और इन्द्रियों व्याकुल थीं । वह गधेपर सवार
हो शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा था ॥ २४ २५ ॥

पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।

पतितोऽवाफ्दिश भूमौ गर्दभाद् भयमोदित ॥ २६ ॥

‘तदनन्तर मैंने फिर देखा राक्षसराज रावण गधेसे नीचे
भूमिपर गिर पड़ा है । उसका गिर नीचेकी ओर है (और
पैर ऊपरकी ओर) तथा वह भयसे मोहित हो रहा है ॥ २६ ॥

सहस्रोत्थाय सम्भ्रातो भयातो मदविह्वल ।

उन्मत्तकूपो दिग्वासा दुर्धर्षप्रलपन् दधु ॥ २७ ॥

उग्रार्ध दु सह घोर तिमिर नरकोपमम् ।

मलपङ्क्तु प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावण ॥ २८ ॥

फिर वह मग्रावुर हो बचराकर सहसा उठा और मदसे
विह्वल हो पागलसे समान नग चढ़ा गधेमें बहुत-से दुबचन
(गाड़ी आदि) बकता हुआ आगे बढ़ गया । सामने ही
दुर्ग-पशुव दु छह घोर अचकारपूर्ण और नरकदृश्य मल-
का पङ्क्तु था, रावण उसीमें घुसा और वहीं हूब गया २७ २८
प्रस्थितो दक्षिणामाशा प्रविष्टोऽकर्म हृदम् ।

कण्ठे यद्व्या दशार्धप्र प्रमदा रक्षयासिनी ॥ २९ ॥

काली कर्मलिताङ्गी दिश याम्या प्रकपति ।

एव तत्र मया दृष्ट कुम्भकर्णो महायल ॥ ३० ॥

‘तदनन्तर फिर देखा रावण दक्षिणकी ओर जा रहा
है । उसने एक ऐसे तालाबमें प्रवेश किया है, जिसमें बीच-
का नाम नहीं है । वहाँ एक काल रंगकी स्त्री है, जिसके
अङ्गोंमें बीच-द लिपटी हुई है । वह सुवती लाल वस्त्र पहने
हुए है और रावणका गला बाँधकर उस दक्षिण दिशाकी

और खींच रही है। वहाँ महाबली कुम्भकर्णको भी मैंने इसी अवस्थामें देखा है ॥ २९-३० ॥

रावणस्य सुता सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिता ।
घराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ॥ ३१ ॥
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणा दिशम् ।

‘रावणके सभी पुत्र भी मूढ़ मुहाये और तेलमें नहाये दिखायी दिये हैं। यह भी देखनेमें आया कि रावण एअरपर, इन्द्रजित् घँसपर और कुम्भकर्ण कँटपर सवार हो दक्षिण दिशाको गये हैं ॥ ३१३ ॥

एकस्तत्र मया हृष्ट इवेतच्छत्रो विभीषण ॥ ३२ ॥
शुक्रमाव्यामधरघराः शुक्रं घानुलेपन ।

‘राक्षसोंमें एकमात्र विभीषण ही ऐसे हैं, जिन्हें मैंने वहाँ श्वेत ठग लगाये, सफेद माला पहने, ‘वेत वस्त्र चारण किये तथा श्वेत चन्दन और अञ्जराग लगाये देखा है ॥ ३२३ ॥
शङ्खदुःसुमितिर्घोषैर्वृत्तगीतैरलकृत ॥ ३३ ॥
आवृष्टा शैलसकाश मेघस्तन्तितनि स्वनम् ।

चतुर्दन्त गज दिव्यमास्ते तत्र विभीषण ॥ ३४ ॥
चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थित ॥ ३५ ॥

‘उनके पास शङ्खध्वनि हो रही थी, नगाड़े बजाये जा रहे थे। इनके गम्भीर घोषके साथ ही नृत्य और गीत भी हो रहे थे, जो विभीषणकी शोभा बढ़ा रहे थे। विभीषण वहाँ अपने चार मन्त्रियोंके साथ पर्वतके समान विशालकाय मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा चार दैतोंवाले दिव्य गजराजपर आरुढ़ हो आकाशमें खड़े थे ॥ ३३-३५ ॥
समाजश्च महान् वृत्तो गीतवादिभिर्नि स्वन ।
पियता रक्तमात्रयाना रक्षसा रक्तवाससाम् ॥ ३६ ॥

‘यह भी देखनेमें आया कि तेल पीनेवाले तथा लाख माछा और लाख वस्त्र चारण करनेवाले राक्षसोंका वहाँ बहुत बड़ा समान जुटा हुआ है एवं गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनि हो रही है ॥ ३६ ॥
लङ्का चोप पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा ।
सागरे पतिता हृष्टा भग्नगोपुरतोरेणा ॥ ३७ ॥

‘यह रमणीय लङ्कापुरी छोड़े, रथ और हाथियोंसहित समुद्रमें गिरी हुई देखी गयी है। इसके बाहरी और भीतरी दरवाजे टूट गये हैं ॥ ३७ ॥
लङ्का हृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता ।
दग्धा रामस्य दूतेन धानरेण सरस्विना ॥ ३८ ॥

‘मैंने स्वप्नमें देखा है कि रावणद्वारा सुरक्षित लङ्कापुरी को भीरामचन्द्रजीका दूत बनकर आये हुए एक वेगवाली वानरने झलकर भस्म कर दिया है ॥ ३८ ॥
पीताम तैल प्रमत्ताश्च प्रहसन्त्यो महासना ।
लङ्काया भस्मरुक्षाया सवा राक्षसयोपिताः ॥ ३९ ॥

‘पाखसे रूखी हुई लङ्कामें सारी राक्षसरमणियाँ तेल पीकर मतवाली हो बड़े खोर खोरसे ठहाका मारकर हँसती हैं ॥ ३९ ॥

कुम्भकर्णादयमेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवा ।
रक्त निवसन गृष्टा प्रविष्टा गोमयहृद्गम् ॥ ४० ॥

‘कुम्भकर्ण आदि ये समस्त राक्षसशिरोमणि वीर लाल कपड़े पहनकर गोबरके कुण्डमें घुस गये हैं ॥ ४० ॥

अपगच्छत पश्यन्व सीतामाप्नोति राघव ।
घातयेत् परमामर्षी युष्मान् सार्धं हि राक्षसैः ॥ ४१ ॥

‘अतः अरु तुमलोग हट जाओ और देखो कि किस तरह भीरुपुनायकी सीताको प्राप्त कर रहे हैं। वे बड़े अमर्षशील हैं, राक्षसोंके साथ तुम सबको भी मरवा डालेंगे ॥ ४१ ॥

प्रिया बहुमत्ता भार्या वनवासमनुव्रताम् ।
भर्त्सिता रजिता घापि नानुमन्यति राघव ॥ ४२ ॥

‘जिन्होंने वनवासमें भी उनका साथ दिया है, उन अपनी पतिव्रता भार्या और परमादरणीया प्रियतमा सीताका इस तरह धमकाया और डराया जाना भीरुपुनायकी कदापि सहन नहीं करेंगे ॥ ४२ ॥

तद्वल कूरवाक्यैश्च सान्त्वमेवाभिधीयताम् ।
अभियाचाम वैदेहीमेतस्मि मम रोचते ॥ ४३ ॥

‘अतः अब इस तरह कठोर बातें सुनाना छोड़ो, क्योंकि इनसे कोई लाभ नहीं होगा। अब तो मधुर वचन का ही प्रयोग करो। मुझे तो यही अच्छा लगता है कि हम लोग विदेहनिदिनी सीतासे हूपा और क्षमाकी याचना करें ॥ ४३ ॥

यस्या ह्येव रिध स्वप्नोदु खिताया प्रदश्यते ।
सा तु खैयदुभिमुक्ता प्रिय प्राप्तेत्यनुत्तमम् ॥ ४४ ॥

‘जिस दुःखिनी नारीके विषयमें ऐसा स्वप्न देखा जाता है, वह बहुसम्पन्न दुःखोंसे छुटकारा पाकर परम उत्तम प्रिय वस्तु प्राप्त कर लेती है ॥ ४४ ॥

भर्त्सितामपि याचञ्च राक्षस्य किं चिदक्षया ।
राघवादि भय घोर राक्षसानामुपस्थितम् ॥ ४५ ॥

‘पाखण्डियों ! मैं जानती हूँ, इन्हें कुछ और कहने या बोलनेकी इच्छा है किंतु इससे क्या होगा ! यद्यपि द्रुमने सीताको बहुत धमकाया है तो भी इनकी शरणमें आकर इनसे अभयकी याचना करो क्योंकि भीरुपुनायकी ओरसे राक्षसों के लिये घोर भय उपस्थित हुआ है ॥ ४५ ॥

प्रणिपातप्रसूया हि मैथिली जनकात्मजा ।
अलमेया परित्रातु राक्षस्यो महतो भयात् ॥ ४६ ॥

‘पाखण्डियों ! जनकनिदिनी मिथिलेश्वरपुत्री सीता केवल प्रणाम करनेसे ही प्रपन्न हो जायेंगी। यही उस महान् मयसे दुःखारी रक्षा करनेमें समर्थ है ॥ ४६ ॥

वहाँ मैंने देखा वे अपने दोनों हाथोंसे चन्द्रमा और सूर्यको
पोंछ रही हैं—उनपर हाथ पेर रही हैं॥ १५३ ॥

ततस्ताभ्या कुमाराभ्यामास्थित स गजोत्तम ।

सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थित ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् त्रिशपर वे दोनों राजकुमार और विशाल
लोचना सीताकी विराजमान थीं, यह महान् गजराज लङ्काके
ऊपर आकर खड़ा हो गया ॥ १६ ॥

पाण्डुरर्पभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ।

इहोपयात काकुत्स्थः सीतया सह भार्यया ॥ १७ ॥

शुक्लमात्म्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहगत ।

‘फिर मैंने देखा कि आठ वफेद रैबोंसे जुते हुए एक
रथपर आरुढ़ हो कङ्कालकुलभूषण भीराम-‘द्वजी’ स्वेत
पुष्पोंकी माला और वस्त्र धारण किये अपनी धर्मपत्नी सीता
और भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ पधार हैं ॥ १७ ॥

ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः ॥ १८ ॥

लक्ष्मणेन सह धात्रा सीतया सह धीयवान् ।

आवृष्ट पुष्पक दिव्य विमान स्यस्तनिभम् ॥ १९ ॥

उत्तरां दिशमालोक्य प्रस्थित पुरुषोत्तम ।

‘इसके बाद दूसरी जगह मैंने देखा सत्यपराक्रमी और
बड़ विक्रमशाली पुरुषोत्तम भगवान् भीराम अपनी पत्नी
सीता और भाई लक्ष्मणके साथ सूर्यद्वस्त्र लेबली दिव्य पुष्पक
विमानपर आरुढ़ हो उत्तर दिशाको लक्ष्य करके यहाँसे
प्रस्थित हुए हैं ॥ १८ १९ ॥

यद्य स्वप्ने मया दृष्टो रामो विष्णुपराक्रम ॥ २० ॥

लक्ष्मणेन सह धात्रा सीतया सह भार्यया ।

‘इस प्रकार मैंने स्वप्नमें भगवान् विष्णुक समान
पराक्रमी भीरामका उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके
साथ दर्शन किया ॥ २० ॥

न हि रामो महातेजाः शक्यो जेतु सुरासुरैः ॥ २१ ॥

राक्षसैरापि बान्धवैरा स्वर्ग पापजनैरपि ।

‘भीरामभ-‘द्वजी’ महातेजसी हैं । उन्हें देवता, असुर,
राक्षस तथा दूसरे लोग भी कदापि जीत नहीं सकते । ठीक
उसी तरह जेठे पापी मनुष्य स्वर्गलोकपर विजय नहीं पा
सकते ॥ २१ ॥

रावणञ्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षित ॥ २२ ॥

• जो की या पुरख स्वप्नमें अपने दोनों हाथोंसे सूर्यवण्डल
जबदा चन्द्रवण्डल पू जेठा है, जेठे विशाल राजको प्राप्ति हाथी
है । जेठा कि सत्पापापाक बनन है—

आत्सिपगच्छं नापि चन्द्रमण्डलमेव वा ।

स्वप्ने गृह्णाति हस्ताभ्यां राज्यं सन्ध्यानुबान्धवः ॥

(गोविन्दराजविरचित रामायणभूषण)

रक्तवासा पिय-मस्तः करवीरवृत्तछत्र ।

विमानात् पुष्पकाक्ष्य रावणः पतित क्षितौ ॥ २३ ॥

‘मैंने रावणको भी स्वप्नमें देखा था । वह मूढ़ दुष्ट
तेलसे नहाकर लाल बपड़े पहने हुए था । मदिश पीले
मतवाला हो रहा था तथा करवीरके फूलोंकी माला पहने हु
था । इसी वेग-भूषामें आज रावण पुष्पक विमानसे पृथ्वी
गिर पड़ा था ॥ २२ २३ ॥

कृष्यमाणः क्षिया मुण्डो दृष्टः दृष्णाम्यतः पुन ।

रथेन क्षरयुक्तेन रक्तमात्म्यानुलेपेन ॥ २४ ॥

पियस्तैल हस्त-वृत्त्यन् धातविचाकुलेन्द्रिय ।

गर्दभेन ययौ शीघ्र दक्षिणा दिशमास्थित ॥ २५ ॥

‘एक जगह मुण्डित मस्तक रावणको कहीं लीं
लिये जा रही थी । उस समय मैंने फिर देखा रावणन का
कपड़े पहन रखे हैं । वह गधे जुते हुए रथसे यात्रा कर रहा
था । लाल फूलोंकी माला और लाल चन्दनसे विभूषित था
तेल पीता, हँसता और नाचता था । पागलोंकी तरह उसका
चित्त भ्रान्त और इन्द्रियों व्याकुल थीं । वह गधेपर सवार
हो शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा था ॥ २४ २५ ॥

पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।

पतितोऽवाक्षिशरा भूमौ गर्दभाद् भयमोहित ॥ २६ ॥

‘तदनन्तर मैंने फिर देखा राक्षसराज रावण गधेसे नीचे
भूमिपर गिर पड़ा है । उसका शिर नीचेकी ओर है (और
पैर ऊपरकी ओर) तथा वह भयसे मोहित हो रहा है ॥ २६ ॥

सहस्रोत्थाय सम्भ्रातो भयातौ मद्विह्वल ।

उमस्तकपो दिग्वासा दुर्धर्क्य प्रलपन् चतु ॥ २७ ॥

दुग्धगन्ध दु सह घोर तिमिर नरकोपमम् ।

मलपङ्क प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावण ॥ २८ ॥

‘फिर वह भयातुर हो बबराकर घबरा उठा और मदसे
विह्वल हो पागलक समान नग-महंग वेपमें बहुत से दुर्बचन
(गाली आदि) बकता हुआ आगे बढ़ गया । सामने ही
दुग्धधनुष दु सह घोर अचकारपूर्ण और नरकवृक्ष मल-
का पड़ गया, राजन उधममें घुसा और वहीं हूय गया २७ २८
प्रस्थितो दक्षिणामाशा प्रविष्टोऽकदम हृदम् ।

कण्ठे यद्ध्वा दशग्रीय प्रमदा रक्तयासिनी ॥ २९ ॥

काली कर्दमलिताङ्गी दिश यास्या प्रकपति ।

यद्य तत्र मया दृष्ट कुम्भकर्णो महायल ॥ ३० ॥

‘तदनन्तर फिर देखा रावण दक्षिणकी ओर जा रहा
है । उसने एक ऐसे तालाबमें प्रवेश किया है, जिसमें कीचड़
का नाम नहीं है । यहाँ एक बाल रगड़ी ली है, जिससे
अङ्गोंमें कीचड़ लिपटी हुई है । वह सुपती लाल बरत पहने
हुए है और रावणका गला कोंबकर उस दक्षिण दिशाकी

सुखाद् विहीन बहुदुःखपूर्ण

मिव तु नून हृदय स्थिर मे ।

विदीर्यते यत्र सदस्त्रधाघ

वज्राहत शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ४ ॥

‘मय यह हृदय मुझसे रहित और अनेक प्रकारके दुःखोंसे भरा होनेपर भी निश्चय ही अत्यन्त दृढ़ है । इसीलिये वक्त्रके मोरे हुए पर्वतशिखरकी भाँति आघ इधके इधरसे टुकड़े नहीं हो पाते ॥ ४ ॥

नैवास्ति नून मम दोषमत्र

वक्ष्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।

भाष न चास्याहमनुग्रहातु

मल द्विजो मन्त्रमिवादिजाय ॥ ५ ॥

‘मैं इस दुष्ट राक्षसके हाथसे मारी जानेवाली हूँ, इसलिये यहाँ आत्मघात करनेसे भी मुझे कोई दोष नहीं लग सकता । कुछ भी हो, जैसे दिन किसी शूद्रको वेदमन्त्र का उपदेश नहीं देता, उसी प्रकार मैं भी इस निशाचरको अपने हृदयका अनुराग नहीं दे सकती ॥ ५ ॥

तस्मिन्नागच्छति लोकनाथे

गर्मस्यजन्तोरेष शल्यकुन्त ।

नून ममाङ्गान्यचिरादानय

शाले शितैश्छेदस्यति राक्षसेन्द्र ॥ ६ ॥

‘हाय ! लोकनाथ मगवान् भीरामके आनेसे पहले ही यह दुष्ट राक्षसराज निश्चय ही अपने तीखे शङ्खोंसे मेरे अङ्गोंके शीर्ष ही टुकड़े-टुकड़े कर डालगा । ठीक जैसे ही, जैसे शल्यचिकित्सक किसी विरोध अवस्थामें गर्भस्य शिशुके टुकड़-टुकड़ कर देता है (अथवा जैसे हृद्मे दितिके गर्भमें स्थित शिशुके उनकाट टुकड़ कर डाले) ॥ ६ ॥

दुःख वतेद् ननु दुःखिताया

मासौ चिरायभिगमिष्यतेह्यौ ।

यदस्य वप्यस्य मया निशाते

राजोपतोधादिव तस्करस्य ॥ ७ ॥

‘मैं बड़ी दुःखिया हूँ । दुःखकी बात है कि मेरी अवधिके ये दो महीने भी बहरी ही समाप्त हो जायेंगे । राजाके कारागारमें कैद हुए और रात्रिके अन्तमें फाँसीकी सजा पानेवाले अपराधी चोरकी ओ दशा होती है, वही मेरी भी है ॥ ७ ॥

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे

हा राममात सह मे जनन्य ।

पया विपद्याम्यहमल्पभाग्या

महापथे नौरिष मृदवाता ॥ ८ ॥

‘हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सुमित्रे ! हा भीष्मकजननी कौसल्ये ! और हा मेरी माताजी ! जिस प्रकार नषट्रमें

या रा ५ ७ १०—

पड़ी हुई नौका महासागरमें डूब जाती है, उसी प्रकार आज मैं मन्दभागिनी सीता प्राणसङ्कटकी दशामें पड़ी हुई हूँ ॥ ८ ॥

तरस्विनौ धारयता मृगस्य

सत्त्वेन रूप मनुजेन्द्रपुत्रौ ।

नून विशस्तौ प्रम कारणात् तौ

सिंहर्षभी ह्याविष वैद्युतेन ॥ ९ ॥

‘निश्चय ही उस मृगरूपधारी जीवने मेरे कारण उन दोनों वेगशाली रानकुमारोंको मार डाला होगा । जैसे दो भेड़ सिंह बिजलीसे मार दिये जायें, वही दशा उन दोनों माद्योंकी हुई होगी ॥ ९ ॥

नून स कालो मृगरूपधारी

मामल्पभाग्या लुलुभे तदानीम् ।

यज्ञार्थपुत्रौ विससर्ज मृदा

रामानुज लक्ष्मणपूर्वज च ॥ १० ॥

‘अब यह ही उस समय कालने ही मृगका रूप धारण करके मुझ मन्दभागिनीको हमारा या, जिससे प्रभावित हो मुझ मूढ नारीने उन दोनों आयपुत्रों—भीराम और लक्ष्मणको उसके पीछे भेज दिया था ॥ १० ॥

हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो

हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।

हा जीवलेकस्य हित प्रियञ्च

वक्ष्या न मा वेरिसि हि राक्षसानाम् ॥ ११ ॥

‘हा सत्यव्रतधारी महाबाहु भीराम ! हा पूर चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले रघुनन्दन ! हा वीरजगत्के हितेशी और प्रियतम ! आपको पता नहीं है कि मैं राक्षसोंके हाथसे मारी जानेवाली हूँ ॥ ११ ॥

अनन्यदेवत्वमिय क्षमा च

भूमौ च शरण्या नियमञ्च धर्म ।

पतिव्रतात्य विफल ममेद्

हृत हृतस्नेपिविष मालुपाणाम् ॥ १२ ॥

‘मेरी यह अनन्योपासना, क्षमा, भूमिपूजन, धर्म सम्बन्धी नियमोंका पालन और पतिव्रतपरायणता—ये सबके सब कृतघ्नोंके प्रति किये गये मनुष्योंके उपकारकी भाँति निष्फल हो गये ॥ १२ ॥

मोघो हि धमश्चरितो ममाय

तथैकपत्नीत्यभिद निरयकम् ।

या त्वानपश्यामि कृशा विजया

ह्रीना स्यया सङ्गमने निराशा ॥ १३ ॥

‘प्रभो ! यदि मैं अत्यन्त दृढ़ और कान्तिहीन होकर आपसे बिछुड़ी ही रह गयी तथा आपसे मिलनेकी आशा खो बैठी, तब तो मैंने जिसका जीवनभर आचरण किया

अपि चास्या विशालाक्ष्या न किञ्चिदुपलक्षये ।

विरूपमपि चक्रेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥ ४७ ॥

‘इन विद्यालोकना सीताक अहोमैं मुझे कोई सुख-स
सुख भी विपरीत लक्षण नहीं दिखायी देता (विशेष
समझा जाय कि ये सदा कष्टमें ही रहेंगी) ॥ ४७ ॥

छायावैगुण्यमात्र तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् ।

अदुःखाहामिमा देवो वैद्यासमुपस्थिताम् ॥ ४८ ॥

‘मैं तो समझती हूँ कि इन्हें जो वर्तमान दुःख प्राप्त
हुआ है, वह ग्रहणके समय चन्द्रमापर पड़ी हुई छायाके
समान याही ही देरका है क्योंकि य देवी सीता मुझे स्वप्न
में विमान्तर बैठी दिखायी दी हैं, अतः य दुःख भोगनेके
योग्य कदापि नहीं हैं ॥ ४८ ॥

अर्थसिद्धि तु वैदेह्याः वक्ष्याम्यहमुपस्थिताम् ।

राक्षसेन्द्रजिनाशं च विजय राघवस्य च ॥ ४९ ॥

‘मुझे तो अब जानकीजीके अमीष्ट मनोरथकी सिद्धि
उपस्थित दिखाया देती है । राक्षसराज रावणके विनाश और
रघुनाथजीकी विजयमें अब अधिक निश्चय नहीं है ॥ ४९ ॥

निमित्तभूतमेतत् तु श्रोतुमस्या महत् प्रियम् ।

हृदयते च स्फुरच्छुः पद्मपत्रमिवायतम् ॥ ५० ॥

‘कमलदलके समान इनका विशाल बायो नेत्र कड़कता
दिखायी देता है । यह इत बातका सूचक है कि इन्हें क्षीम
ही अत्यन्त प्रिय सवाद सुननेका मिलेगा ॥ ५० ॥

हृदयि हृदितो यास्या इक्षिणाया ह्यदक्षिणः ।

अकलादेव वैदेह्या पादुरेकः प्रकम्पते ॥ ५१ ॥

‘हृत्पार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमि सर्ग ॥ २० ॥

इस प्रकार आवाल्मीकीनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्य सुन्दरकाण्डमें सप्तमिसर्ग पूरा हुआ ॥ २० ॥

अष्टाविशः सर्गः

विलाप करती हुई सीताका प्राण-त्यागके लिये उद्यत होना

सा राक्षसे द्रष्टव्य पक्षो निशम्य

तद् राघवस्य प्रियमप्रियातो ।

सीता वितप्रास यथा घनान्ते

सिंहाभिपद्मा गजराजक्या ॥ १ ॥

पतिने किरहके दुःखसे व्याकुल हुई सीता राक्षसराज
रावणके उन अग्रिय यक्षोंको याद करके उठी तरह
मगभीत हो गयी, जैस वनमें सिंहके पजेमें पड़ी हुई कोई
गजराजकी बच्ची ॥ १ ॥

सा राक्षसीमध्यगता च भीरु

वाग्भिर्भृश राघवसज्जिता च ।

कान्तात्मन्ये विजने विरुष्टा

वालेष कम्प्या विललाप सीता ॥ २ ॥

‘इन उदारहृदया विदेहराजकुमारीकी एक बाँधी बाँह
कुछ रोमाञ्चित होकर सहला कॉपने लगी है (यह भी श्रमका
ही सूचक है) ॥ ५१ ॥

करेणुहस्तप्रतिमः स्वयच्छोहरनुत्तमः ।

वेपन् कथयतीवास्या राघव पुरत स्थितम् ॥ ५२ ॥

‘हाथीकी सूँढ़के समान जो इनकी परम उत्तम बाँधी
बाँह है, वह भी कम्पित होकर मानो यह सूचित कर रही है
कि अब भीरुधनाथजी शीघ्र ही तुम्हारे सामने उपस्थित
होंगे ॥ ५२ ॥

पक्षी च शाखानिलय मण्डित

पुन पुनश्चोत्तममात्त्यवादी ।

सुखागता वाचमुदीरयाण

पुनः पुनश्चोदयतीथ हृष्टः ॥ ५३ ॥

‘देखो, धामने यह पक्षी शाखाके ऊपर अपने बाँसमें
बैठकर बारबार उत्तम शान्त्यनापूर्ण मीठी बोली बोल रहा
है । इसकी वाणीसे ‘सुखागतम्’ की ध्वनि निकल रही है और
इसके द्वारा यह हृदयमें भरकर मानो पुन पुन महलमांसि
की सूचना दे रहा है अथवा आनिपाल प्रियतमकी अगवाणी
के लिये प्रेरित कर रहा है ॥ ५३ ॥

ततः सा ह्रीमती याला भर्तुर्विजयहृदिता ।

अवोचद् यदि तत् तस्य भवेय शरणं हि यः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार पतिदेवकी विजयक सवादसे हृदयमें भरी हुई
लज्जीली सीता उन वक्षसे बोली—‘यदि तुम्हारी बात ठीक
हुई तो मैं अवश्य ही तुम सबकी रक्षा करूँगी’ ॥ ५४ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमि सर्ग ॥ २० ॥

इस प्रकार आवाल्मीकीनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्य सुन्दरकाण्डमें सप्तमिसर्ग पूरा हुआ ॥ २० ॥

अष्टाविशः सर्गः

विलाप करती हुई सीताका प्राण-त्यागके लिये उद्यत होना

राक्षसियोंके बीचमें बैठकर उनके कानोंसे
बारबार घमकायी और रावणद्वारा पटकरी गयी भीष
समावधारों सीता निजान दय बोद्ध वनमें अकेली पड़ी
हुई अत्ययवस्तुता पालिकाके समान विलाप करने लगी ॥ २॥

सत्यं यतेद् प्रयदन्ति लोच

नाकालमृगयुधयतीति सतः ।

यत्राहमेव परिभस्वमाना

जायामि यस्मात् क्षणमप्यपुण्या ॥ ३ ॥

ये बोली—‘सत्यजन लोकमें यह बात ठीक ही पड़ते
हैं कि बिना समय आये किसीकी मृत्यु नहीं होती, तभी तो
इस प्रकार घमकायी जानेपर भी मैं पुण्यहोना नारी धनमर
भी बीवित रह पाती हूँ ॥ ३ ॥

सुखाद् विहीन बहुदुःखपूर्ण
मिदं तु नून हृदय स्थिर मे ।

विश्रियते यत्र सहस्रधाद्य
वज्राहत शृङ्गमियाचलस्य ॥ ४ ॥

‘मरा यह हृदय सुखसे रहित और अनेक प्रकारके दुःखोंसे मरा होनेपर भी निश्चय ही अत्यन्त दृढ़ है । इसीलिये वज्रक मोरे हुए पर्वतशिखरकी भाँति आज इसके सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाते ॥ ४ ॥

नैवास्ति नून मम दोषमत्र
वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।

भाव न आस्याहमनुप्रदानु
मल द्विजो मन्त्रमिराद्विज्ञाय ॥ ५ ॥

‘मैं इस दुष्ट रावणके हाथसे मारी जानेवाली हूँ, इसलिये यहाँ आत्मघात करनेसे भी मुझे कोई दोष नहीं लग सकता । कुछ भी हो, मैंने द्विज किसी शूद्रको वेदमन्त्र का उपदेश नहीं देता, उसी प्रकार मैं भी इस निशाचरको अपने हृदयका अनुराग नहीं दे सकती ॥ ५ ॥

तस्मिन्नागच्छति लोकनाथे
गर्भस्थजन्तोरेव शय्यकृत ।

नून ममाङ्गायचिरादानाय
शलै शितैरङ्गैर्यति राक्षसेन्द्र ॥ ६ ॥

‘हाय ! लोकनाथ मगवान् भीरामके आनेसे पहले ही यह दुष्ट राक्षसराज निश्चय ही अपने तीव्र शस्त्रोंसे मेरे अङ्गोंके शीघ्र ही टुकड़े-टुकड़े कर डालगा । ठीक वेधे ही, जैसे शय्याचिकित्सक किसी विशेष अवस्थामें गमस्य शिष्टके टुकड़क कर देता है (अथवा जैसे शूद्रने दितिके गर्भमें स्थित शिशुके उनकाट टुकड़े कर डाले थे) ॥ ६ ॥

दुःख वतेद् ननु दुःखिताया
मासी चिरायामिगमिष्यतेह्यौ ।

यद्वस्य यद्यस्य यथा निशान्ते
राजोपरोधादिव तस्करस्य ॥ ७ ॥

‘मैं वही दुःखिया हूँ । दुःखही बात है कि मेरी अवशेषिके ये दो महाने भी बहरी ही लगता हो जायेंग । राजाके कारागारमें कैद हुए और रात्रिके अन्तमें फँसीकी सभा पानेवाले अपराधी चारकी ओ दया हाती है, वही मेरी भी है ॥ ७ ॥

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे
हा राममात सह मे जनन्य ।

एषा त्रिपद्याम्यहमल्पभाग्या
महापथे नौरिव मूढवाता ॥ ८ ॥

‘हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सुमित्रे ! हा भीष्मभजननी कोवले ! और हा मेरी माताओ ! जिस प्रकार नवद्वारमें या रा ५ ७ १०—

पड़ी हुई नौका महासागरमें डूब जाती है, उसी प्रकार आज मैं मन्दभागिनी सीता प्राणसङ्कटकी दशामें पड़ी हुई हूँ ॥ ८ ॥

तरस्मिनौ धारयता मृगस्य
सत्त्वेन रूप मनुजेन्द्रपुत्रौ ।

नून विशस्तौ मम कारणात् तौ
सिंहपुत्रौ द्वाविध वैयुतेन ॥ ९ ॥

‘निश्चय ही उस मृगरूपधारी जीवने मेरे कारण उन दोनों वेगशाही राजकुमारोंको मार डाला होगा । वेध दो भेद सिंह बिजलीसे मार दिये जायें, वही दशा उन दोनों माहवोंकी हुई होगी ॥ ९ ॥

नून स काले मृगरूपधारी
मामल्पभाग्या लुलुभे तदानीम् ।

यत्रापुत्रौ विससज मूढा
रामानुज लक्ष्मणपूर्वज च ॥ १० ॥

‘अवश्य ही उस समय कालने ही मृगका रूप धारण करके मुझ मदभागिनीकी उन्माया था, जिससे प्रभावित हो मुझ मूढ नारीने उन दोनों आयुधों—भीराम और लक्ष्मणको उसके पीछे भेज दिया था ॥ १० ॥

हा राम सत्यव्रत दीधवाहो
हा पूणचन्द्रप्रतिमानवपत्र ।

हा जीवलोकस्य हित प्रियस्व
वध्या न मा वेत्सि हि राक्षसानाम् ॥ ११ ॥

‘हा सत्यव्रतधारी महाबाहु भीराम ! हा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले रघुनन्दन ! हा जीवमग्नत्व हितेशी और प्रियतम ! आपको पता नहीं है कि मैं राक्षसोंके हाथसे मारी जानेवाली हूँ ॥ ११ ॥

अनयश्चेत्यमिय क्षमा च
भूमौ च शय्या नियमश्च भर्मे ।

पतिव्रताय विफल ममेद
कृतकृत्यनेष्विव मानुषाणाम् ॥ १२ ॥

‘मेरी यह अनन्योपासना, भूमा, भूमिचयन, भूमि सम्बन्धी नियमोंका पालन और पतिव्रतपरायणता—ये सबके सब कृतकृत्यके प्रति किये गये मनुष्योंके उपकारकी भाँति निष्फल हो गये ॥ १२ ॥

मोघो हि धर्मश्चरितो ममाय
तथैकपत्नीत्यभिद निरयकम् ।

या त्वानपदयामि कृष्णा वियणा
हीना त्वया सङ्गमने निराशा ॥ १३ ॥

‘प्रभो ! यदि मैं अदन्त क्रुद्ध और क्रान्तिहीन होकर आपसे बिटुड़ी ही रह गयी तथा आपसे मिटनेकी आज्ञा ली होती, तब तो मैंने जिसका जीवनभर आचरण किया

दे। यह धर्म मेरे लिये व्यर्थ हो गया और यह एकपक्षीमत भी किसी काम नहीं आया ॥ १३ ॥

वितुर्निदेश नियमेन कृत्वा
घनाभिवृत्तश्चरितमतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलक्षणाभि
सरस्यसे खीनभय कृतार्थः ॥ १४ ॥

मैं तो समझती हूँ आप नियमानुसार वितर्की आशावा
पारन करके अपने मतको पूरा करनेके पश्चात् जब वनसे
छोड़ेंगे, तब निर्मय एक सफलमनोरथ हो विशाल नेत्रोंवाली
बहुत-सी सुन्दरियोंके साथ विवाह करके उनके साथ
रमण करूँगा ॥ १४ ॥

अहं तु राम त्वयि जातकामा
चिर विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाथ तपो व्रतं च
त्यक्त्यामिधिर्जीरितमरुणभाग्याम् ॥ १५ ॥

[किं बहु श्रीराम] मैं तो कंचल आपसे ही अनुसंग
रक्षती हूँ। मेरा हृदय चिरकाल तक आपसे ही बँधा
रहेगा। मैं अपने विनाशके लिये ही आपसे प्रेम करती
हूँ। अबतक मैंने तप और व्रत आदि जो कुछ भी किया
है, वह मेरे लिये व्यर्थ सिद्ध हुआ है। उस अभीष्ट फलको
न देनेवाला धर्मका आचरण करके अब मुझे अपने प्राणोंका
परित्याग करना पड़ेगा। अब शून्य मन्दभागिनीको
बिकार है ॥ १५ ॥

स्तनीरित क्षिप्रमहं त्यजेय
विप्रेण शस्त्रेण शितेन वापि ।
विपस्य द्वातानं तु मेऽस्तिकश्चि
च्छस्त्रस्य वा चेद्रमनि राक्षसस्य ॥ १६ ॥

हृत्पापैः श्रीमद्भारमयण वाक्यीकाय आदिकार्य मुन्दरकाण्डेऽष्टाविंश सर्ग ॥ १८ ॥
इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित भारमयण आदिकावक मुन्दरकाण्डमें अष्टाविंशती सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकत्रिंश सर्गः

सीतानीके शुभ शत्रुन

तथागतता ता व्यपितामनिदिता
व्यतीतहर्षा परिदाममानसाम् ।
शुभा निमित्तानि शुभानि भेजिर
नर शिष्या जुष्टमिवोपसेविन ॥ १ ॥

इस प्रकार अभीष्टशत्रुके नीचे आनयन बहुतसे शत्रु
शत्रुन प्रष्ट हो उन व्यपितहर्षा, स्त्री-साधनी, दयान्वय,
दीनचित तथा गुमन्त्याणी शीघ्रात् उधो तरह सेवन
काने लगे, जैस भीष्मपुत्र पुरुषर पाव सेवा करनेवाले
भाग स्वयं बहुत जाते हैं ॥ १ ॥

मैं शीघ्र ही किसी तीरे पर आया अथवा विपसे अप
प्राण त्याग दूँगी, परन्तु इस रात्रिके यहाँ मुझे कोई वि
या शत्रु देनेवाला भी नहीं है ॥ १६ ॥

शोकामितता बहुधा विचिन्त्य
सांताथ घेणीग्रथनं गृह्णात्वा ।

उद्धृष्य घणयुद्धघनेन शीघ्र
महं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥ १७ ॥

शोकसे सतत हुई सीतान इसी प्रकार बहुत मु
विचार करके अपनी चौटीको पकड़कर निश्चय किया कि
मैं शीघ्र ही इस चौटीसे कौवा लगाकर यमलोकमें पहुँ
चाऊँगी ॥ १७ ॥

उपस्थिता सा मृदुसर्गगात्री
शाखा गृहीत्वा च नगस्य तटम् ।

तस्यास्तु राम परिचितयन्त्या
रामानुजस्वचकुलशुभाङ्गया ॥ १८ ॥

तस्या विशोकानि तदा वृहति
धैर्यजितानि प्रचराणि लोके ।

प्रादुर्निमित्तानि तदा घमूयु
पुरापि सिद्धाः पुपलक्षितानि ॥ १९ ॥

सीताजीके सभी अन्न बड़े कामल थे। वे उस अन्न
शुद्धके निकट उसकी शाखा पकड़कर खड़ी हो गयीं। इस
प्रकार प्राण-त्यागके लिये उद्यत हो जब य श्रीराम,
लक्ष्मण और अपने कुलके विषयमें विचार करने लगीं,
उस समय शुभाङ्गी सीताके समक्ष ऐसे बहुतसे लोकप्रसिद्ध
अष्ट शत्रुन प्रष्ट हुए, जो शोकजी निहृति करनेवाले
और उन्हें दान्व कौवाले थे। उन शत्रुनोंका दर्शन
और उनके शुभ कलोंका अनुभव उन्हें पहले भी हो
चुका था ॥ १८ १९ ॥

नस्या शुभ धाममरालपद्म
राज्यावृत कृष्णविशालशुभम् ।

प्राप्त्यन्तैकं नयनं सुखेदया
मोहाहतं पश्यन्निवाभिताम्रम् ॥ २ ॥

उस समय मुन्दर काँवाली सीताका चौड़ी घेनीयोग
पिता हुआ परम मनोहर काला, दन्त और विशाल बोंबा
नय कङ्कन लगा। जिस मछलीके आधामन सान कमल
दिलने लगा हो ॥ २ ॥

भुजश्च चार्धञ्चितवृत्तपीन
पराध्वकालागुरुच दमार्ह ।
अनुत्तमेनाधुपित प्रियेण
चिरेण धाम समवेपताशु ॥ ३ ॥

छाय ही उनकी सुन्दर प्रशस्ति गोलाकार मोठी, बहुत
मूल्य वाले अगुच और चन्दनसे चर्चित होने योग्य तथा परम
उत्तम प्रियतमद्वारा चिरकालसे सेवित बाँधी भुजा भी
तत्काल पड़क उठी ॥ ३ ॥

गजे ब्रह्मस्तप्रतिमश्च पीन
स्तयोर्द्वयो सहतयोस्तु जात ।
प्रस्पन्दमान पुनरूरुरस्या
राम पुरस्तात् स्थितमाचचक्षे ॥ ४ ॥

किर उनकी परस्पर जुड़ी हुई दोनों कोंचोंमेंसे एक बाँधी
बाँध, जो गजराक्षक। सँझके समान पीन (मोठी) थी,
बारबार कड़ककर मानो यह सूचना देने लगी कि भगवान्
भीराम तुम्हारे सामने खड़े हैं ॥ ४ ॥

शुभ पुनर्हंसमानवर्ण
मीपद्रजोध्वस्तमियातुलाक्ष्या ।
घास स्थितायाः शिखराप्रदस्याः
किञ्चित्परिचलस्त चारुगात्र्या ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् अनारके बीजकी भाँति सुन्दर दौँत, मनोहर
गान् और अनुपम नेत्रगानी सीताका, जो वहाँ वृक्षके नीचे
लुझी थी, सोनेके समान रगबाला किञ्चित् मलिन रेशमी
पीताम्बर तनिका-र्य खिसक गया और भावी शुभनी सूचना
देने लगा ॥ ५ ॥

हृत्पाथे श्रीमद्गामायेण वाक्मी-ऋषे आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पूर्वोक्तत्रिंश सर्गः ॥ १९ ॥

इत प्रकार भीमरत्नकिर्तिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

त्रिश सर्गः

सीताजीसे वार्तालाप करनेके विषयमें हनुमान्जीका विचार करना

हनुमानि विभ्रात सर्वे शुध्वाय तत्पत ।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीना च तजितम् ॥ १ ॥
पराक्रमी हनुमान्जीने भी सीताजीका विष्णु, त्रिजटाकी
स्वप्नचचा तथा राक्षसियोंकी हॉट हपट—ये सब प्रसंग
ठीक ठीक सुन लिये ॥ १ ॥

अवेक्षमाणस्ता देव्या देयतामिव नन्दने ।
ततो बहुविधा चिन्ता चिन्तयामास धानरः ॥ २ ॥

सीताजी ऐसी जान पड़ती थी मानो नन्दनयनमें मोड़
देवी ॥ उ-ई देखते हुए धानरजी हनुमान्जी तरह-तरहकी
चिन्ता करने लग— ॥ २ ॥

एनैर्निमित्तरपरैश्च सुभ्र
सचोदिता प्रागपि साधुसिद्धे ।
वातातपपद्मातमिव प्रणष्ट
सर्वेण धीज प्रतिसजह्य ॥ ६ ॥

इनसे तथा और भी अनेक शकुन्तोंसे, जिनके द्वारा
पहले भी मनोरथ सिद्धिका परिचय मिला चुका था, प्रेरित
हुई सुन्दर भाँहवाली सीता उसी प्रकार हर्षसे खिल उठी,
जैसे हवा और धूपसे खलहर नष्ट हुआ बीज वगैरे जलसे
खिंचकर हरा हो गया हो ॥ ६ ॥

तस्या पुनर्विषयफलोपमोऽथ
स्वक्षिप्तुर्नेशान्तमरालपक्ष्म ।
वक्त्र बभ्रासे सितशुक्रवद्र
राहोर्मुखाश्चन्द्र इय प्रमुक्त ॥ ७ ॥

उनका विश्वफलके समान लाल ओठों, सुन्दर नेत्रों,
मनोहर भाँहों, रुचिर केशों, बाँकी बरौनियों तथा इधेत
उज्ज्वल दाँतोंसे सुशोभित मुख राहुके प्राससे मुक्त हुए
चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित होने लगा ॥ ७ ॥

सा वीतशोका व्यपनीततद्ग्रा
शान्तज्वरा हर्षविपुलसत्त्वा ।
अशोभताया ध्वनेन शुषले
शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ ८ ॥

उनका शोक जाता रहा, सारी घकावट दूर हो गयी, मनका
ताप शांत हो गया और हृदय हर्षमें खिल उठा । उस
समय आया सीता शुक्लपक्षमें उठित हुए गीतरश्मि चन्द्रमा
से सुशोभित रात्रि की भाँति अपने मनोहर मुखसे अद्भुत
शोभा पाने लगी ॥ ८ ॥

या कपीना सहस्राणि सुवह्वययुतानि च ।
विशु सर्वस्य मागते सेयमासादिता मया ॥ ३ ॥
जिन सीताजीको हजारों लाखों धानर समस्त दिशाओंमें
हँद रहे हैं, आज उन्हें मैंने पा लिया ॥ ३ ॥

चारेण तु सुयुक्तेन शत्रो शक्तिमवेक्षता ।
गूढेन चरता सावद्वेषेक्षितमिदं मया ॥ ४ ॥
राक्षसाना विशेषश्च पुरी चेय निरीक्षिता ।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभायो राघवमप्य च ॥ ५ ॥

धर्म स्वामीद्वारा नियुक्त दूत बनकर गुप्तरूपसे शत्रुकी
शक्तिका पता लगा रहा था । इसी शिल्पिकमें मैंने राक्षसोंके

तारतम्यः। इस पुरीका तथा इस राक्षसराज रावणके प्रभावका भी निरीक्षण कर लिया ॥ ४५ ॥

यथा तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयाघता।

समाश्वासयितुं भार्या पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम् ॥ ६ ॥

‘भीरीताजी असीम प्रभावशाली तथा सब जीवोंपर दया करनेवाले मगवान् श्रीरामकी भार्या हैं। ये अपने पति देवका दर्शन पानेकी अभिलाषा रखती हैं, अतः इन्हें सान्त्वना देना उचित है ॥ ६ ॥

अहमाश्वासयाम्येना पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।

अहपुङ्गवा दुःस्वस्य न ह्यतमधिगच्छतीम् ॥ ७ ॥

‘इनका मुख पूर्णचन्द्राके समान मनोहर है। इन्होंने पहले कभी ऐसा दुःख नहीं देखा था, परन्तु इस समय दुःखका पार नहीं पा रही हैं। अतः मैं इन्हें आश्वासन दूँगा ॥ ७ ॥

यदि ह्यहं सतीमेना शोकोपहतचेतनानाम्।

अनाश्वास्य गमिष्यामि क्षोपवद् गमनं भवेत् ॥ ८ ॥

‘ये शोकके कारण अचेत हो रही हैं, यदि मैं इन सती साध्वी सीताको सान्त्वना दिये बिना ही चला जाऊँगा तो मेरा वह जाना दोषयुक्त होगा ॥ ८ ॥

गते हि मयि तत्रैव राजपुत्री यशस्विनी।

परित्राणमपश्यन्ती जानकी आविति त्यजेत् ॥ ९ ॥

‘मेरे चले जानेपर अपनी रत्नाका कोई उपाय न देख कर ये यशस्विनी राजकुमारी जानकी अपने जीवनका अन्त कर देंगी ॥ ९ ॥

यथा च स महाबाहु पूर्णचन्द्रनिभानन।

समाश्वासयितुं याप्य सीतादशनलालसः ॥ १० ॥

‘पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले महाबाहु श्री रामचन्द्रजी भी सीताजीके दर्शनके लिये उत्सुक हैं। जिस प्रकार उन्हें सीताका सदेश सुनाकर सान्त्वना देना उचित है, उसी प्रकार सीताको भी उनका सदेश सुनाकर आश्वासन देना उचित होगा ॥ १० ॥

निशाचरीणा प्रत्यक्षमक्षम चाभिभाषितम्।

कथं नु खलु कतव्यमिदं दृच्छूपतो ह्यहम् ॥ ११ ॥

‘परन्तु राक्षसियोंके सामने इनसे बात करना मेरे लिये ठीक नहीं होगा। ऐसी अवस्थामें यह कार्य कैसे सम्पन्न करना चाहिये, यही निश्चय करना मेरे लिये सबसे बड़ी कठिनाई है ॥ ११ ॥

अनेन रात्रिशोषेण यदि नाभ्यास्यते मया।

सत्वया नास्ति सदेहः परित्यज्यति जीवितम् ॥ १२ ॥

‘यदि इस रात्रिके भीतरे-भीतरे मैं सीताको सान्त्वना नहीं दे देता हूँ तो ये सत्वया अपने जीवनका परित्याग कर देंगी, इसमें सदेह नहीं है ॥ १२ ॥

रामस्तु यदि पृच्छेन्मा किं मा सीताव्रवीद्वचः।

किमहं तं प्रतिभूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम् ॥ १३ ॥

‘यदि श्रीरामचन्द्रजी मुझसे पूछें कि सीताने मेरे लिये क्या सदेश मेजा है तो इन सुमयमा सीतासे बात किये बिना मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ॥ १३ ॥

सीतासदेशरहितं मामितस्त्वयया गतम्।

निवृद्धेऽपि काकुत्स्थः क्रोधतीव्रेण चक्षुषा ॥ १४ ॥

‘यदि मैं सीताका सदेश लिये बिना ही यहाँसे दूर हो लौट गया तो ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीराम अपनी क्रोधमयी बुद्धि दृष्टिसे मुझे जलाकर भस्म कर डालेंगे ॥ १४ ॥

यदि बोधोजिप्यामि भर्तारं रामकारणात्।

व्ययमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥ १५ ॥

‘यदि मैं इन्हें सान्त्वना दिये बिना ही लौट जाऊँ और श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने स्वामी वानरराज सुग्रीवको उतेजित करूँ तो वानरसनाके साथ उनका यहाँतक आना ‘यर्थ हो जायगा (क्योंकि सीता इसके पहले ही अपने प्राण त्याग देंगी) ॥ १५ ॥

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थित।

शनैराश्वासयाम्यद्य सतापबहुलमिमाम् ॥ १६ ॥

‘अच्छा तो राक्षसियोंके रहते हुए ही अवसर पाकर आज मैं यहाँ बैठे बैठे इन्हें धीरे धीरे सान्त्वना दूँगा। क्योंकि इनके मनमें बड़ा सताप है ॥ १६ ॥

अहं ह्यतितनुश्चैव घनरश्मिं विशेपत।

वाचं चोद्गृह्णीष्यामि मानुषीमिह संरुक्ताम् ॥ १७ ॥

‘एक तो मेरा शरीर अत्यन्त दुःख है, दूसरे मैं वानर हूँ। विशेषतः वानर होकर भी मैं यहाँ मानवोचित संस्कृत भाषामें बोलूँगा ॥ १७ ॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संरुक्ताम्।

रावणं मयमानां मा सीतां भीतां भविष्यति ॥ १८ ॥

‘परन्तु ऐसा करनेमें एक बाधा है; यदि मैं द्विजकी भाँति संस्कृत-वाणीका प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायेंगी ॥ १८ ॥

अवश्यमेव यत्तं मानुषं यान्त्रमथयत्।

मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥ १९ ॥

‘ऐसी दशामें अवश्य ही मुझे उस साधक भाषाका प्रयोग करना चाहिये, जिस अयोध्याके आस-पासकी भाषाएँ जनता बोलती है, अन्यथा इन सती-साध्वी सीताको मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकूँगा ॥ १९ ॥

सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा।

रक्षोभिन्नासिता पूर्वं भूयस्त्रासमुपैष्यति ॥ २० ॥

‘यदि मैं सामने जाऊँ तो मेरे मुख वानररूपको देखकर

और मेरे मुखसे मानवोचित भाषा सुनकर ये जनकनन्दिनी
घोटा, जिहें पदलसे ही राक्षसोंने मयमीन कर रखता है,
और भी डर जायेंगी ॥ २० ॥

ततो जातपरिप्रासा शब्द कुर्यामनखिनी ।
जानाता मा विशालापीरावण कामरूपिणम् ॥ २१ ॥

भग्नमें मय उतरन हो जानेपर ये विशाललोचना
मनखिनी घोटा मुझे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला रावण
समस्तकर जोर जोरसे चीखने बिल्लने लगेंगी ॥ २१ ॥
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगण ।
नानाप्रहरणो घोर समेपादतक्रोपम् ॥ २२ ॥

सीताके विस्फलेपर ये यमराजके समान भयानक
राक्षसियों तरह-तरहके हथियार लेकर स्रष्टा आ घमकेंगी ॥
ततो मा सम्परिक्षिप्य सद्यतो निष्ठितानना ।
वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्न महाबला ॥ २३ ॥

चदनन्तर ये विक्रम मुखवाली महाबलवती राक्षसियों
मुझे सब ओरसे घेरकर मारने या पकड़ लेनेका प्रयत्न
करेंगी ॥ २३ ॥

त मा शाला प्रशालाश्च हकधाश्चोत्तमशालिनाम् ।
दृष्ट्वा च परिधावन्त भवेयु परिशङ्किता ॥ २४ ॥

जिन्हें मुझे वधे वधे हुनोंकी शाला प्रशाला और मोटी
मोटी डालियोंपर दीक्षा देख ये सबकी-सब सशङ्क हो
उठेंगी ॥ २४ ॥

मम रूप च सम्प्रेक्ष्य घने धिचरतो महत् ।
राक्षस्यो भयत्रिस्तता भवेयुरिहतस्त्रय ॥ २५ ॥

भग्नमें विचरते हुए मेरे इस विशाल रूपका देखकर
राक्षसियों भी मयमीन हो डुरी तरहमें बिस्फले लगेंगी ॥ २५ ॥
तत इयु समाधान राक्षस्यो रक्षसामपि ।
राक्षसेद्रनियुक्ताना राक्षसेद्रनिवेशने ॥ २६ ॥

इसके बाद ये निशाचरियों राक्षसराज रावणके सहलमें
उसके द्वारा नियुक्त किमे गय राक्षसोंका झुल लेंगा ॥ २६ ॥
ते शूराशरनिस्त्रिशयविधायुधपाणय ।
आपतेयुषिर्मदंऽस्मिन् वेगेनोद्वेगकारणात् ॥ २७ ॥

इस इलचलमें ये राक्षस भी उद्विग्न होकर शूल, बाण,
तलवार और तरह-तरहके शस्त्राल लकर बड़ वेगसे आ
घमकेंगे ॥ २७ ॥

सदृशस्तैस्तु परितो विधमे राक्षस बलम् ।
शफ्तयुता न तु सम्प्राप्नु पर पार महोदधे ॥ २८ ॥

उनक द्वारा सब ओरसे घिर जानेपर मैं राक्षसोंकी
ठेनाका सहर तो कर सकता हूँ परन्तु समुद्रक उस पार नहीं
पहुँच सकता ॥ २८ ॥

मा वा गृहीयुरावृत्य सद्यः शीघ्रकारिणः ।
स्यादिय चागृहीताया मम च ग्रहण भवेत् ॥ २९ ॥

यदि बहुत से फुर्तीले राक्षस मुझे घेरकर पकड़ लें तो
सीताकीका मनोरथ भी पूरा नहीं होगा और मैं भी बंदी बना
लिया जाऊँगा ॥ २९ ॥

हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमा वा जनकात्मजाम् ।
विपन स्यात् तत कार्य रामसुग्रीवयोरिदम् ॥ ३० ॥

इसके सिवा हिंसामें रुचि रखनेवाले राक्षस यदि
इन जनकदुलारीको मार डालें तो भीरुनाथजी और सुग्रीवका
यह सीताकी प्राप्तिरूप अमीध काय ही नष्ट हो जायगा ॥ ३० ॥
अदेशे नष्टमार्गोऽस्मिन् राक्षसे परिवारिते ।
सागरेण परिस्त्रिते गुप्ते वसति जानकी ॥ ३१ ॥

यह स्थान राक्षसोंसे घिरा हुआ है । यहाँ आनेका मार्ग
दूषणोंका देखा या जाना हुआ नहीं है तथा इस प्रदेशकी
समुद्रने चारों ओरसे घेर रखता है । ऐसे गुप्त स्थानमें
जानकीजी निवास करती हैं ॥ ३१ ॥

विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि सयुगे ।
नाश पश्यामि रामस्य सहाय कार्यसाधने ॥ ३२ ॥

यदि राक्षसोंने मुझे सम्राजमें मार दिया या पकड़ लिया
तो फिर भीरुनाथजीके कार्यको पूर्ण करनेके लिये कोई
दूसरा सहायक भी मैं नहीं देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥

विमृशश्च न पश्यामि यो हते मयि चानर ।
शतयोजननिस्तीर्ण लङ्घयेत महोदधिम् ॥ ३३ ॥

बहुत विचार करनेपर भी मुझे ऐसा कोई यानर नहीं
दिखायी देता है, जो मर मार जानेपर भी योजन विस्तृत
महासागरको लौंच सके ॥ ३३ ॥

काम इतुसमर्प्योऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम् ।
न तु शक्याम्यह प्राप्नु पर पार महोदधे ॥ ३४ ॥

मैं इच्छानुसार सहस्रो राक्षसोंको मार डालनेमें समर्थ
हूँ परन्तु मुझमें फँस जानेपर महासागरके उस पार नहीं जा
सकूँगा ॥ ३४ ॥

अस्त्यानि च युद्धानि सशयो मे न रोचते ।
कञ्च नि सशय कार्यकुर्यात् प्राश ससशयम् ॥ ३५ ॥

युद्ध अनिश्चयात्मक होता है (उसमें किंच पक्षकी
विजय होगी, यह निश्चित नहीं रहता) और मुझे सशययुक्त
कार्य प्रिय नहीं है । कौन ऐसा बुद्धिमान होगा, जो सशययुक्त
कार्यको सशययुक्त बनाना चाहेगा ॥ ३५ ॥
पपदोयो महान् हि स्यामम सीताभिभाषणे ।
प्राणत्यागश्च वैदेहा भवेदनभिभाषणे ॥ ३६ ॥

सीतानीसे बातचीत करनेमें मुझे बगी महान् शोष प्रतीत
होता है और यदि बातचीत नहीं करता हूँ तो विदेहनन्दिनी
सीताका प्राणत्याग भी निश्चिन ही है ॥ ३६ ॥
मृताभ्याया विरुध्यन्ति देशकालयिरोधिता ।
विह्वल दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३७ ॥

‘अविवेकी या असावधान दूतके हाथमें पड़नेपर बने बनाये काम भी देशकालके विरोधी होकर उभी प्रकार अवफल हो जाते हैं, वैसे सूर्यका उदय होनेपर सब ओर फैले हुए अन्धकारका कोई नश नहीं चलता; वह निशान्न हो जाता है ॥ ३७ ॥

अथानर्थातरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूता पण्डितमानिन ॥ ३८ ॥

‘कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें स्वाामीकी निश्चित बुद्धि भी अविवेकी दूतके कारण घोषा नहीं पाती है क्योंकि अपनेको उड़ा बुद्धिमान् या पण्डित समझनेवाले दूत अपनी ही नासमसीके कार्यको नष्ट कर डालते हैं ॥ ३८ ॥

न विनश्येत् कथं कार्यं वैफल्यं न कथं भयम् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं न बुधा भवेत् ॥ ३९ ॥
कथं नु खलु धान्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत् च ।
इति सचिन्त्य हनुमानश्चकार मतिमान् मतिम् ॥ ४० ॥

‘किर किस प्रकार यह काम न दिगड़े, किस तरह भुझने कोई असावधानी न हो, किस प्रकार मेरा समुद्र लौंघना व्यर्थ न हो बाय और किस तरह सीताजी मेरी सारी बातें सुन लें, किंतु घरघटमें न पड़े—इन सब बातोंपर विचार करके बुद्धिमान् हनुमान्जीने यह निश्चय किया ॥ ३९ ४० ॥

राममण्डितकर्मणा सुखधुमजुर्कीर्तयन् ।
नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्वधुगतचेतनाम् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिंश सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित श्रीरामायण आदिकाव्य सुन्दरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंश सर्गः

हनुमान्जीका सीताको सुनानेके लिये श्रीराम-कथाका वर्णन करना

एव बहुविधा चिन्ता चिन्तयित्वा महामति ।
सन्धये मधुर वाक्यं वैदेह्या प्याजहार ह ॥ १ ॥

इस प्रकार बहुतसी बातें सोच विचारकर महामति हनुमान्जीने सीताको सुनाते हुए मधुर वाणीमें ॥१॥ तरह कहना आरम्भ किया—॥ १ ॥

राजा दशरथो नाम रघुञ्जराजिमान् ।
पुण्यशीलो महाकातिरिद्व्याकृणा महायशः ॥ २ ॥

‘इत्याकुचगमे राजा दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक पुण्यात्मा राजा हो गये हैं । ये अत्यन्त कीर्तिमान् और महान् योग्य भी थे । उनके यहाँ रघु, शायी और गोड़े बहुत अधिक थे ॥ २ ॥

राजर्षीणां गुणश्रेष्ठतमना चर्चिभिः सम ।
चमयतिबुले जातः पुरन्दरसमो यत्ने ॥ ३ ॥

‘बिनका चित्त अपने जीवन बहुत भीरुमें ही लगा है; उन सीताजीको मैं उनके प्रियतम श्रीरामका जो अनायास ही महान् कर्म करनेवाले हैं, गुण गा-गाकर सुनाऊँगा और उन्हें उद्विग्न नहीं होने दूँगा ॥ ४१ ॥

इक्ष्वाकूणा वरिष्ठस्य रामस्य विदितामन ।
शुभानि धमयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ॥ ४२ ॥

‘मैं इक्ष्वाकुकुलभूषण विदितात्मा भगवान् श्रीरामके सुन्दर, भर्मानुकूल वचनोंको सुनाता हुआ यही बैठा रहूँगा ॥

श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरा प्रवृत्तं गिरम् ।
अस्त्रास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥ ४३ ॥

‘भीठी वाणी बोलकर श्रीरामके सारे सद्वैद्योंको इस प्रकार सुनाऊँगा, जिससे सीताका उन वचनोंपर विश्वास हो । जिस तरह उनके मनका सदेह दूर हो, उसी तरह मैं सब बातोंका समाधान करूँगा ॥ ४३ ॥

इति स बहुविध महाप्रभायो
अगतिपते प्रमदामवेक्षमाणः ।

मधुरमवितथ जगद् वाक्यं
ह्रस्वविटपास्तर्मास्थितो हनूमान् ॥ ४४ ॥

इस प्रकार मौलिक मौलिकसे विचार करके अयोग्य बृद्धकी शाखाओंमें छिपकर बैठे हुए महाप्रभावशाली हनुमान्जी पृथ्वीपति भीरुमन्दन्तीकी भावार्थी और देखते हुए मधुर एवं यथार्थ बात कहने लगे ॥ ४४ ॥

‘उन भेद नरेशमें राजर्षियोंके समान गुण थे । तपस्यामें भी वे श्रमियोंकी समानता करते थे । उनका जन्म नक्षत्रवर्ती नरेशोंन कुलमें हुआ था । वे देवराज इन्द्रके समान बलवान् थे ॥ १ ॥

अदिसात्परिभ्रष्टो घृणी सत्यपराक्रम ।
मुख्यस्येक्ष्वाकुपुत्रस्य लक्ष्मीर्षोऽद्विमवधन ॥ ३ ॥

पार्थिवव्यजनैर्युक्तः पृथ्वी पार्थिवपथः ।
पृथिव्या चतुरन्ताया विधुत सुखद सुखी ॥ ५ ॥

‘उनका मनमें अद्विष्टा धर्मके प्रति बड़ा अनुराग था । उनमें धुन्ताका गम नहीं था । य दयालु, शय-पराक्रमी और भेद इक्ष्वाकुवंशी घोषा करनेवाला थे । ३ लक्ष्मीरान् नरेश राजोचित लक्षणोंमें युक्त, परिपुष्ट घोषासे धाम्य और भूषणोंमें भेद थे । गाथें समुद्र जिसकी सीमा हैं उस लक्ष्मी

भूमिहर्म्ये सध ओर उतरी बड़ी रचाति थी । वे स्वयं तो
मुली थे ही । दूसरोंको भी मुल देनवाल थे ॥ ४- ॥
तस्य पुत्र प्रियो ज्येष्ठस्तागधिपनिभानन ।
रामो नाम विशेषश्च श्रेष्ठ सधधनुष्मताम् ॥ ६ ॥

‘उनके -यष्ट पुत्र भाराम-नामसे प्रविद्ध हैं । व तितारके
छाड़ले, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवान्, सम्पूर्ण धनु
धारियोंमें श्रेष्ठ और शस्त्र विद्याक विप्रेक्ष्य हैं ॥ ६ ॥
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षितः ।
रक्षिता जीरलोदस्य धमस्य च परतपः ॥ ७ ॥

‘धनुर्भोजी सदाय देनकाके आराम अपने सगचरक,
स्वजनके, इस बीच ब्रह्मत्क तथा धमके भी रक्षक हैं ॥ ७ ॥
तस्य सव्याभिसधस्य वृद्धस्य वचनात्पितु ।
सभाय सह च भ्रात्रा वीर प्रमजितो धनम् ॥ ८ ॥

उनके बड़े पिता महाराज दशरथ बड़े सत्यप्रतिष्ठ थे ।
उनकी आज्ञा से वीर भीरघुनायकी अपनी पत्नी और माई
लक्ष्मणके साथ वनमें चल आय ॥ ८ ॥

तेन तत्र महारण्ये शृगया परिधावता ।
राक्षसा निहता शूरा यदय कामरूपिण ॥ ९ ॥

‘वहाँ विशाल वनमें शिखर खेलते हुए भीरामने
इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुत से शूरवीर राक्षसोंका
वध कर डाला ॥ ९ ॥

जनस्थानवध श्रुत्वा निहतौ खररूपयौ ।
ततस्त्वयमरापहृता जानकी रावणेन तु ॥ १० ॥

‘उनके द्वारा जनस्थानके विघ्नक और खरदूतणके वधका
समाचार सुनकर रावणने अनपेक्षित जनकनन्दिनी सीताका
अपहरण कर लिया ॥ १० ॥

पञ्चपितृया धने राम शृगरूपेण मायया ।
स मार्गमाणस्ता देवीं राम सीतामनिन्दिताम् ॥ ११ ॥
आसत्ताद धने मित्र सुप्रिय नाम वानरम् ।

‘पहले तो उस राक्षसने मायाय शूरा देने हुए मायीचके
द्वारा वनमें धारमचन्द्रक को बाँटा दिया और स्वयं जानकी
को हर ल गया । भगवान् भीराम परम शक्ति शतादेवीकी
सौज्य करत हुए मनगन्धने आकर सुप्रिय नामक वानरने
मिल और उनका साथ उन्होंने मैत्री स्थापित करली ॥ ११ ॥

ततः स वालिन इत्या राम परपुरजय ॥ १२ ॥
आयच्छत् कपिपञ्च तु सुप्राज्ञाय महात्मने ।

‘तदनन्तर शत्रु-नागरीर विचार पानेवाले भीरामने वालो
का वध करके वानरीका राज महात्मा सुग्रीवका दे दिया ॥

सुग्रीयेणाभिसदिष्टा हरय कामरूपिण ॥ १३ ॥
दिभु सर्वोद्युता देवीं विचि वत सहस्रश ।

‘तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीवकी आज्ञाने इच्छानुसार रूप
धारण करनेवाले हजारों वानर सीतादेवीका पता लगाने-
लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें निरले हैं ॥ १३ ॥

अह सम्पातिवचनचछतयोजनमापयत् ॥ १४ ॥
तस्याद्वतोर्विशालाक्ष्या समुद्रयेगमान् प्लुत ।

‘उन्होंने एक र्म भी हूँ । मैं सम्पातिके कहनेसे विशाल
लोचना विदहनन्दिनीकी खोज-लिये ही शोकन विस्तृत
समुद्रको वेगपूर्वक लौंघकर यहाँ आया हूँ ॥ १४ ॥

यथारूपा यथावर्णा यथाक्षमर्णा च ताम् ॥ १५ ॥
अभौप राघवस्थाह सेवमासादिता मया ।
विरामैवमुक्त्वा स वाच वानरपुङ्गव ॥ १६ ॥

‘मैंने भीरघुनायकीके मुखसे जानकीजीका जैसा रूप,
जैसा रंग तथा जैसा लक्ष्य सुनेया, उनके अनुरूप ही इन्हें
पाया है ।’ इतना ही कहकर वानरशिष्टमणि इनुमानजी चुप
हो गये ॥ १५ ॥ १६ ॥

जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्रय परम गता ।
ततः सा यमकेशाता सुनेदी केशसदृशम् ।
उज्जम्य वदन भीरु शिष्टापामन्वयैवत ॥ १७ ॥

उनकी बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीताको बड़ा विस्रय
हुआ । उनके केश धुँए ल और बड़े ही सुन्दर थे । भीरु
सीताने कशोंसे देने हुए अपने मुँहको ऊपर उठाकर ठह
अशोक वृक्षकी ओर देखा ॥ १७ ॥

निशम्य सीता वचन कपेद्व
दिशश्च सत्रा प्रदिशश्च वीक्ष्य ।

स्वयं प्रहर्ष परम जगाम
सत्रा मना राममनुस्मरन्ती ॥ १८ ॥

कपिके वचन सुनकर सीताको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे
सम्पूर्ण वृत्तियों भगवान् भीरामका स्मरण करती हुई समस्त
दिशाओंमें दृष्टि दौड़ाने लगी ॥ १८ ॥

सा तियगूर्ध्व च तथा दधन्ता
प्रिरीक्षमाणा तमचित्यशुद्धिम् ।

ददश विद्वाधिपनस्मात्
वातात्मज सूर्यमियोदयस्यम् ॥ १९ ॥

उन्होंने ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर दृष्टिगन करके उन
अनित्य बुद्धिवाले पवनपुत्र इनुमानजी को वानरराज
सुग्रीवके मन्त्री थे, उदयार्चन्यर विराजमान मृदक समान
देखा ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वाक्योक्त्या आदिशस्य सुन्दरकाण्डे षष्ठिशतं सर्गः ॥ ३१ ॥

इमं प्रश्नं श्रीरामदेवनिर्दिष्टं श्रीरामायणं श्रीरामायणं सुन्दरकाण्डे इष्टोत्तमं सर्गं पूज्यम् ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः सीताजीका वरुं निर्वर्क

तत शास्त्रातरे लीन दृष्ट्वा चलितमानसा ।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं चिद्युत्सधातपिक्कलम् ॥ १ ॥
सा ददश कपिं तत्र प्रथितं प्रियवादिनम् ।
कुलाशोकोत्तराभासं ततश्चामीकरेक्षणम् ॥ २ ॥
तव शास्त्राके भीतर छिपे हुए, विद्युत्पुञ्जके समान
अप्यन्त पिक्कल वणवाले और श्वेत वस्त्रधारी हनुमान्जीपर
उनकी दृष्टि पड़ी । फिर तो उनका चित्र चञ्चल हो उठा ।
उन्होंने देखा, पूरे हुए अशोकके समान अरुण कान्तिसे
प्रकाशित एक विनीत और प्रियवादी बानर डालियोंके
भीचमें बैठा है । उसके नेत्र तपाये हुए सुवर्णके समान
चमक रहे हैं ॥ १ २ ॥

साध दृष्ट्वा हरिश्चेष्ट विनीतवद्व्यस्थितम् ।
मैथिली चिन्तयामास विस्मय परमं गता ॥ ३ ॥
विनीतभाषसे बैठ हुए बानरधेय हनुमान्जीको देखकर
मिथिलेशकुमारीको बड़ा आश्चर्य हुआ । ५ मन ही मन
सोचने लगी—॥ ३ ॥

अहो भोममिदं सत्यं बानरस्य दुरासदम् ।
दुर्निरीक्ष्यमिदं मत्वा पुनरेव मुमोह सा ॥ ४ ॥
‘अहो ! बानरयोनिका यह जीव तो यद्वा ही भयंकर
है । इसे पकड़ना बहुत ही कठिन है । इसकी ओर तो
औंख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं होता ।’ ऐसा
विचारकर वे पुनः भयसे मूर्च्छित-ही हो गयीं ॥ ४ ॥

विललाप भृशं सीतां कृष्ण भयमोहिता ।
रामरामेति दुःस्वार्तां लक्ष्मणेन च भामिनी ॥ ५ ॥
भयसे मोहित हुई भामिनी सीता आयत कृष्णारुणक
स्वरमें ‘हा राम ! हा राम ! हा लक्ष्मण !’ ऐसा कहकर
दुःस्वार्थे आह्वान ही अप्यन्त विलाप करने लगी ॥ ५ ॥

रुरोद सहसा सीता मन्दमन्दस्वरा सनी ।
साध दृष्ट्वा हरियरं विनीतवदुपागतम् ।
मैथिली चिन्तयामास स्वोऽप्यमिति भामिनी ॥ ६ ॥
उस समय सीता मन्द स्वरमें सहसा रो पड़ी । इतनेहीमें
उन्होंने देखा, यह भेठ बानर बड़ी विनयसे साथ निकट
आ बैठा है । तब भामिनी मिथिलेशकुमारीने सोचा—‘यह
पाई स्वप्न तो नहीं है’ ॥ ६ ॥

सा चीक्षमाणा पृथुभुग्नयक्त्र
शास्त्राभृगेन्द्रस्य यथोक्तकारम् ।
ददश पित्रप्रवरं महाहं
वातात्मजं बुद्धिमतां परिष्टम् ॥ ७ ॥
उपर दृष्टिगत करते हुए उन्होंने बानरराज मुपायने
आज्ञातवक्त्र विद्याय और देहे मुखवत्से, परम आदरणीय,

बुद्धिमानोंमें भेठ, बानरप्रवर पवनपुत्र हनुमान्जीको
देखा ॥ ७ ॥

सा तं समीक्ष्यैव भृशं विपन्ना
गतासुखल्लेषं वभूव सीता ।
चिरेण सखा प्रतिलम्प्य चैव
विचिन्तयामास विशालेनत्रा ॥ ८ ॥
उन्होंने देखते ही सीताजी अप्यन्त व्यथित होकर ऐसी
दशाको पहुँच गयीं, मानो उनके प्राण निकल गये हों ।
फिर बड़ी देरमें चेत होनेपर विशाललोचना विदेह
राजकुमारीने इस प्रकार विचार किया—॥ ८ ॥

स्वप्नो मयायं विकृतोऽद्य दृष्ट
शास्त्राभृगं शास्त्रगणैर्निषिद्धं ।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
तथा पितुर्मे अनकम्यं राक्षः ॥ ९ ॥

‘आज मैंने यह बड़ा बुरा स्वप्न देखा है । तबमें
बानरको देखना शास्त्रोंने निषिद्ध बताया है । मेरी मगवान्से
प्रार्थना है कि श्रीराम, लक्ष्मण और मेरे पिता जनकका
मङ्गल हो (उनपर इस दुःस्वप्नका प्रभाव न पड़े) ॥ ९ ॥

स्वप्नो हि नास्ति यतो विहीना
शोकेन दुःखेन च पीडिताया ।
छुल्ल हि मे नास्ति यतो विहीना

तेन दुर्पूर्णप्रतिमानेन ॥ १० ॥

‘परन्तु यह स्वप्न तो ही नहीं सकता, क्योंकि शोक और
दुःखसे पीड़ित रहनेके कारण मुझे कभी नींद आती ही नहीं
है (नींद उठे आती है, बिसे सुल्ल हो) । मुझे तो उन
पूर्वचन्द्रके समान मुखवाले भीरुपुत्रापजीसे विद्युद्द जलनेके
कारण अब मुख मुल्म ही नहीं है ॥ १० ॥

रामेति रामेति सदैव धुल्लया
विचिन्त्य वाचा सुधती तमेव ।

तस्यानुकूपं च कथा तदर्थो

मेघ प्रपश्यामि तथो भृष्टोमि ॥ ११ ॥
‘मैं बुद्धिसे सबदा ध्याम । राम !’ ऐसा चिन्तन करते
बाणीद्वारा भी राम नामका ही उन्मत्तारण करती रहती हूँ
अतः उस विचारके अनुरूप वेसे ही अर्धवाली यह कथा
देख और सुन रही हूँ ॥ ११ ॥

अहं हि तस्याद्य मनोभयेन
सम्पीडिता तद्गतस्यभावा ।

विचिन्तयन्ती सततं तमेव
तथैव पश्यामि तथा भृष्टोमि ॥ १२ ॥

‘मेघ हृदय सरदा भीरुपुत्राथमें ही रणा हुआ है,



हनुमान्नीरी जानरीजीसे यात-चाँत

अतः श्रीराम-दर्शनकी छाहछास अत्यन्त पीड़ित हो सदा उ-हीका चिन्तन करती हुई उ-हीकी देखती और उ-हीकी कथा सुनती हूँ ॥ १२ ॥

मनोरथ म्यादिति चिन्तयामि
तथापि युद्धयापि वितर्कयामि ।

किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं

सुख्यकरूपश्च वदत्ययं माम् ॥ १३ ॥

‘शेवती हूँ कि सम्भव है यह मेरे मनकी छाहकी भावना हो तथापि मुदिसे भा तक वितर्क करती हूँ कि यह छो-छुछ दिखाया देता है; इसका क्या कारण है ? मनोरथ या मनकी भावनाका कोई स्पष्ट रूप नहीं होगा; परन्तु इस

द्वार्याँ आमद्रामायण कास्मीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रनिर्णित आर्यरामायण आदिकाण्यक सुन्दरकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंश सर्ग

सीताजीका हनुमान्जीको अपना परिचय देते हुए अपने वनगमन और अपहरणका वृत्तान्त बताना

सोऽधवीयं द्रुमात् तस्माद् विदुमप्रतिमानन ।

विनीतवेप कृपणं प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥

तामप्रवा महातेजा हनुमान् मारुतात्मज ।

शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥

उत्तर नुंगेक समान छाल मुलवाल महातेजस्वा पवनकुमार हनुमान्जीने उस अशोक-वृक्षके नीचे उतरकर माथेपर अञ्जलि बाँध ली और विनीतभावसे दीनतापूर्वक निकट आकर प्रणाम करनेक अनन्तर छाताबीधे मधुर बाणोंमें कहा— ॥ १ २ ॥

का नु पद्मपलाशासिं ह्रिष्टकौशेयवासिनि ।

द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते ॥ ३ ॥

किमर्थं त्वं नम्राभ्याचारिं स्रवति शोकजम् ।

पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ॥ ४ ॥

‘प्रपुण्ड्रकमण्डलक समान विशालनेत्रोंवाली देवि ! यह मलिनदेवामी पीताम्बर धारणकिये आप कौन हैं ? अनिन्दित ! इस वृक्षकी शाखाका सहारा लिये आप यहाँ क्यों खड़ा हैं ? कमण्डके पत्तोंसे शरत् हुए षष्ठ विद्रुओंके समान आपकी आँखोंसे ये जोरक आँसू क्यों गिर रहे हैं ? ॥ ३ ४ ॥

सुतराणामसुराणां च नागगन्धर्वरक्षसाम् ।

यस्त्राणां किन्तराणां च का त्वं भवसि दोभन ॥ ५ ॥

का त्वं भवसि रुद्राणां भद्रतां या वरानने ।

यस्तु या वरारोहं देवतां प्रतिभासि मे ॥ ६ ॥

‘शोभने ! आप देवता, असुर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किम्बर, रुद्र, मरुद्रूप अथवा वसुओंमेंसे कौन हैं ? इनमेंसे किसीकी कन्या अथवा पत्नी हैं ? मुझमें ! वरारोह ! मुझ ला आप कदा दशनाम्नी खान पड़ती हैं ॥ ५ ६ ॥

खानरक्षा रूप तो स्पष्ट दिखायी दे रहा है और यह मुझने बातचीत भी करता है ॥ १३ ॥

ममोऽस्तु वाचस्पतये सवज्जिणे

खयम्भुवे चैव हुताशनाय ।

अनेन चोक्तं यश्चिद् ममाग्रतो

वनौकसा तथैतयास्तु नायथा ॥ १४ ॥

‘मैं वाणीके स्वामी बृहस्पतिको, वज्रधारी इन्द्रको, स्वयम्भू ब्रह्माज्ञाको तथा वाणीके अभिज्ञात देवता अग्नि-की भी नमस्कार करती हूँ । इस वनवासी खानरने मेरे सामने यह बातें कुछ कहा है; वह सब सत्य हो उसमें कुछ भी अन्वयाना है ? ॥ १४ ॥

किं नु चन्द्रमसा हाना पतिता विदुधालपाद् ।

रोहिणीं ज्योतिषा भ्रेष्टा भ्रेष्टा सद्यगुणाधिका ॥ ७ ॥

‘क्या आप चन्द्रमासे विदुधर देवलोकसे गिरी हुई नपर्वोंमें भ्रेष्ट और गुणोंमें खल्ले बली-चणी रोहिणी देवी हैं ? ॥

कोपाद् वा यदि वा मोहाद् भर्तारमसितेक्षणे ।

वसिष्ठं कोपयित्वा त्वयासि कल्याण्यरुच्यती ॥ ८ ॥

‘अथवा कबहार नेत्रोंवाली देवि ! आप कोप या मोहाते अपने पति वसिष्ठजीको कुपित कर चली आई हैं ? ॥ ८ ॥

को नु पुत्रं पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमभ्यमे ।

अस्माल्लोकादसु लोकं गतं त्वमनुशोचसि ॥ ९ ॥

‘सुमभ्यमे ! आपका पुत्र, पिता, माह अथवा पति कौन इस लोकसे चल्कर परलोकवासि हो गया है, जिसके लिये आप शोक करती हैं ॥ ९ ॥

रोदनादतिनिःश्वासाद् भूमिस्तरपदानादपि ।

न त्वां देखीमह मये राक्षं सञ्चारधारणात् ॥ १० ॥

व्यञ्जनानि हि ते यानि लक्षणानि च लक्ष्ये ।

महिषी भूमिपालस्य राजकन्या च म मता ॥ ११ ॥

‘याने, लक्षों सौं खोजने तथा पृथ्वाका स्पर्श करन-के कारण मैं आपका देवा नहीं मानता । आप बार-बार किसी राजाका नाम न रहा है तथा आपका चिह्न और लक्षण केशे दिखायी देते हैं उन खबर दृष्टिगत करनेसे यही अनुमान होता है कि आप किसी राजाका महारानी तथा किसी नरराक्षी कन्या हैं ॥ १० ११ ॥

राजणेन जनस्थानाद् यत्नात् प्रमथिता यदि ।

सीता त्वमसि भद्र ते तममाचक्ष्व पृच्छत ॥ १२ ॥

प्रायण जनस्थानसे जिहें यत्नपूर्वक हर लगा था, वे सीताजी ही यदि आप हों तो आपका क्याण हो । आप ठीक ठीक मुझे बताइये । मैं आपके विषयमें जानना चाहता हूँ ॥ १२ ॥

यथा हि तथ धै दैव्य रूप चाप्यतिमानुपम् ।

तपसा चाचिन्तो वेपस्त्व राममहिषी ध्रुवम् ॥ १३ ॥

‘हु’ एक कारण आपमें जैसी दीनता आ गयी है, जैसा आपका अलौकिक रूप है तथा जैसा तपस्विनीका छा वेप है, इन सबके द्वारा निश्चय ही आप श्रीरामचन्द्रजीकी महारानी जान पड़ती हैं’ ॥ १३ ॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहृषिता ।

उवाच धाक्य वैदेही हनुमन्तं द्रुमाभितम् ॥ १४ ॥

हनुमान्जीकी बात सुनकर विदेहनन्दिनी सीता श्रीरामचन्द्रजीकी चचाते बहुत प्रसन्न थीं अतः वृद्धका सहारा लिये खड़े हुए उन पवनकुमारसे इस प्रकार बोलीं— ॥ १४ ॥

पृथिव्या राजसिंहानां मुरत्यस्य विद्वितात्मन ।

स्तुपा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः ॥ १५ ॥

हुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मन ।

सीतेति नाम्ना चोक्ताहं भार्या रामस्य धीमता ॥ १६ ॥

‘कपिलर ! जो भूमण्डलके अष्ट राजाओंमें प्रधान थे, जिनकी सत्तन प्रसिद्धि थी तथा जो शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेमें समर्थ थे, उन महाराज दशरथजी मैं पुत्रवधू हूँ, विदेहराज महाराम जनककी पुत्री हूँ और परम बुद्धिमान् मगराज श्रीरामजी वधवली हूँ । मरा नाम सीता है ॥ १५ १६ ॥ समा द्वादश तन्नाहं राघवस्य निनेशने ।

भुज्जाला मानुषान् भोगान् सयन्ममसमृद्धिनी ॥ १७ ॥

‘अयोध्यामें श्रीरघुनाथजीक अतः पुरमें बारह वर्षोंतक मैं सब प्रकारसे मानवीय भोग भोगती रही और मरी सारी अभिलाषाएँ सन्तुष्ट पूरा होती रहीं ॥ १७ ॥

ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्ये चरद्व्याकुलं दनम् ।

अभिपेक्षयितुं राजा सोषाध्यायः प्रचक्रमे ॥ १८ ॥

‘तदनन्तर तसह्रवें वर्षमें महाराज दशरथने राजगुरु वसिष्ठजीक साथ इन्द्राकुलभूषण भगवान् श्रीरामक राज्याभिरुक्ती तैयारी आरम्भ की ॥ १८ ॥

तस्मिन् सन्निधयमाणे तु राघवस्याभिपेक्षेन ।

कैकेयी नाम भनारमिदं वचनमप्रणीत् ॥ १९ ॥

‘अब य श्रीरघुनाथजीसे अभिप्रेक्षक लिये आब-वक वामपक्षीका उलट कर रहे थे, उस समय उनकी कैकेयी नाम वाली भावने पतित इस प्रकार कहा— ॥ १९ ॥

न विप्रेय न रघोदय प्रत्यहं मम भोजनम् ।

एष मे जीवितस्यातो रामो यद्यभिपिच्यते ॥ २० ॥

‘अब न तो मैं जलपान करूँगी और न प्रतिदिनका भोजन ही ग्रहण करूँगी । यदि श्रीरामका रायाभिप्रेक्ष हुआ तो यही मेरे जीवनका अन्त होगा ॥ २० ॥

यत् तदुक्तं त्वया धाक्य प्रीत्या नृपसिस्सत्तम ।

तच्चेन्न त्रितथ कार्यं वनं गच्छतु राघव ॥ २१ ॥

‘नृपश्रेष्ठ ! आपने प्रसन्नतापूर्वक मुझे जो वचन दिया है, उसे यदि अवल्य नहीं करना है तो श्रीराम वनका चले जायें’ ॥ २१ ॥

स राजा सत्यवागं देव्या वरदानमनुसरन् ।

मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्या कृतमप्रियम् ॥ २२ ॥

‘महाराज दशरथ बड़े सत्यवादी थे । उन्होंने कैकेयी देवीको दा वर देनेके लिये कहा था । उस वरदानका स्मरण करके कैकेयीक मूर एष अप्रिय वचनको सुनकर वे मूर्छित हो गये ॥ २२ ॥

ततस्तस्मै स्वधियो राजा सत्यधर्मे व्यवस्थित ।

ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं कृदन् राज्यमयाचत ॥ २३ ॥

‘तदनन्तर वरधर्ममें स्थित हुए कृते महाराजने अपने यशस्वी ज्येष्ठ पुत्र श्रीरघुनाथजीसे भारतके लिये राय माँगा ॥ २३ ॥

स पितृवचनं धीमानभिपेक्षात् परं प्रियम् ।

मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान् ॥ २४ ॥

‘धीमान् रामको पिताके वचन रायाभिप्रेक्षसे भी बदकर प्रिय थे । इसलिये उन्होंने पहले उन वचनोंको मनसे ग्रहण किया, फिर वाणीसे भी स्वीकार कर लिया ॥ २४ ॥

दद्यान् प्रतिगृहीयात् सत्यं श्रूयान् चानृतम् ।

अपि जीवितहेतोर्हि रामं सत्यपराक्रमम् ॥ २५ ॥

‘सत्य पराक्रमी भगवान् श्रीराम केवल देते हैं, लेते नहीं । ये वदा सत्य बोलते हैं, अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये भी कभी झूठ नहीं बोल सकते ॥ २५ ॥

स त्रिहायोत्तरीयाणि महाहाणि मदायशा ।

विशुध्य मनसा राज्यं जनस्यै मा समादिशत् ॥ २६ ॥

‘उन महायशस्वी श्रीरघुनाथजीने बहुमूल्य उत्तरीय वस्त्र उतार दिये और मनस राज्यका त्याग करके मुझे अपनी माताके हवाले कर दिया ॥ २६ ॥

साहं तत्प्राप्तस्त्वनुर्णं प्रस्थिता वनचारिणी ।

नदि मे तनं दीर्घाया घासं स्वर्गोऽपि रोचते ॥ २७ ॥

‘चन्द्रिमा वरत ही उनके आग आग वनकी ओर चल दी क्योंकि उनके बिना मुझ स्वर्गमें भी रहना अच्छा नहीं लगता ॥ २७ ॥

प्रागेव तु मदाभागं सौमित्रिमित्रनन्दन ।

पूवस्थापुनयापार्थं कुदाचरैरलष्टतः ॥ २८ ॥

‘अपने मुट्ठीका आनंद नयाल सुमित्राकुमार महा

माग लक्ष्मण मी अपने वड़े माइका अनुसरण करनेके लिये
उत्तरे मी पहले कुछ तथा चीर-खच्च धारण करके तैयार
हो गये ॥ २८ ॥

ते वय भतुरादेश बहुमाय ददमता ।
प्रथिष्ठा स पुरादृष्ट वन गम्भीरुदशनम् ॥ २९ ॥

‘इस प्रकार हम लोनोंने अपने स्वामी महाराज दशरथ
की आज्ञाको अधिक आदर देकर दृष्टापूर्वक उत्तम व्रतका
पालन करते हुए उस वन वनमें प्रवेश किया, जिसे पहले
कभी नहीं देखा था ॥ २९ ॥

वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजस ।

हृत्पापै आनन्दाभाषणे वाक्यमीक्ष्य आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे त्रयाक्षिण सर्ग ॥ ३३ ॥
इम प्रकार श्रीवल्केनेनिर्णित अत्रामय्य आदिकण्ये सुन्दरकाण्डमें तैरुमर्वा मय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंश सर्ग

मीताजीका हनुमान्जीक प्रति मदेह और उमका समाधान तथा हनुमान्जीके
द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान

तस्यास्तद् वचन श्रुत्वा हनूमान् हरिपुत्रम् ।
दुःखाद् दुःख अभिभूताया मान्वमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

दुःख पर-दुःख उठानेके कारण पीड़ित हुए सीताका
उपयुक्त वचन सुनकर बानरजिरोमणि हनुमान्जाने उन्हें
सात्वतया देते हुए कहा— ॥ १ ॥

अह रामस्य संदिशाद् देवि दूतस्तगगत ।
वैदेहि कुशली राम स त्या कौशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

‘देवि ! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ और आपके लिये
उनका खेद लेकर आया हूँ । निदेहनन्दिनी ! श्रीरामचन्द्रजी
सकुशल हैं और उन्होंने आपका दुःख-समाचार पूछा
है ॥ २ ॥

यो ब्राह्मणश्च वेदाश्च वेद वेदविदा वर ।
स त्या दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥ ३ ॥

‘देवि ! जिहें ब्राह्मण और वेदोंका भी पूरा ज्ञान है, वे
वेदवेदाओंने भेट दशरथनन्दन श्रीराम स्वामि कुशल रहकर
आपकी भी कुशल पूछ रहे हैं ॥ ३ ॥

लक्ष्मणश्च महातेजा भनुस्तेऽनुचर प्रिय ।
वृत्तवाञ्छोजसतत शिरसा तेऽभिवादनम् ॥ ४ ॥

‘आपके पतिके अनुचर तथा प्रिय महातेजवी लक्ष्मण
ने भी शोकने उतत हो आपसे चरणोंमें स्पर्शक छुकाकर
प्रणाम करलाया है ॥ ४ ॥

सा तयो कुशल देवी निशम्य नरसिंहयो ।
प्रतिस्मृष्टसवाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५ ॥

पुरुषमिह श्रीराम और लक्ष्मणका समाचार सुनकर देवी
सीताके सम्पूर्ण अङ्गोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हा आया और वे
हनुमान्जीसे बोलीं— ॥ ५ ॥

गृहसाण्डता भावा रात्रेण दुरात्मना ॥ ३० ॥

‘वहाँ दण्डकारण्यमें रहते समय उन अमिततेजवी
मगवान् श्रीरामजी भावा भुल्ल स ताकी दुरात्मा राक्षस रावण
वहाँ हर लाया है ॥ ३० ॥

ह्री मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रह इत ।
ऊर्ध्व ह्यास्या तु मासाभ्या ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥

‘उत्तरे अनुग्रहपूर्वक मर जैन चरणके लिये दो मास
की अवधि निश्चित कर दी है । उन दो महीनोंके बाद मुझे
अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा ॥ ३१ ॥

कल्याणी यत गायेय लौकिकी प्रतिभानि मा ।
पति जीवन्तमानन्दो नर धपशतादपि ॥ ६ ॥

‘यदि मनुष्य अवित रहे तो उसे ही वर बाद भी
आनन्द प्राप्त होता ही है, यह लौकिक कहावत आब मुझे
विस्मृत स्व एव कल्याणमयी वान पत्नी है ॥ ६ ॥

तयो समागमे तस्मिन् प्रीतिरुपादितादृता ।
परस्पर्येण चालाप विम्बस्तौ नौ प्रचक्रतु ॥ ७ ॥

‘सीता और हनुमान् इस मिलाप (परस्पर दशन) से
दोनोंका हा अद्भुत प्रसन्नता प्राप्त हुई । वे दोनों विचल
होकर एक दूसरेसे बातलाप करने लग गये ॥ ७ ॥

तस्यास्तद् वचन श्रुत्वा हनूमान् मादतात्मज ।
सीताया शोकतप्ताया समीपमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

शोकउत सीताकी वे रातें मुनरर पवनकुमार हनुमान्
जी उनके कुछ निकट चले गये ॥ ८ ॥

यथा यथा ममीप स हनूमानुपसगनि ।
तथा तथा गवय सा त सीता परिशङ्कने ॥ ९ ॥

‘हनुमान्जी ‘यों-ज्यों निश्चि आते ‘यों ही-ज्यों सीताकी
यह शङ्का होती कि यह कहीं रावण न हो ॥ ९ ॥

अहो धिग धिगवृत्तमिदं कथितं हि यदस्य मे ।
रूपांतरमुपागम्य स एवायं हि गवय ॥ १० ॥

‘ऐसा विचार आते ही वे मन-हा-मन करने लग्यो—
‘अहो ! चिकार है, ओ इसके सामने मैंने अपने मनकी वान
कर दी । यह दूसरा रूप धारण करके आया हुआ यह
रावा ही है ॥ १० ॥

तामशोकस्य शारया तु यिमुक्तया शोकवर्दिता ।
तम्यामेवानुपयाङ्गी धरण्या समुपाविशत् ॥ ११ ॥

‘तमशोकस्य शारया तु यिमुक्तया शोकवर्दिता ।
तम्यामेवानुपयाङ्गी धरण्या समुपाविशत् ॥ ११ ॥

किर तो निर्दोष अङ्गोवाली सीता उठ अशोक वृक्षकी
शाखाको छोड़ शोकसे कातर हो वहीं जमीनपर बैठ गयी ॥
अथ दूत महाबाहुस्ततस्ता जनकात्मजाम् ॥

सा घन भयसग्रस्ता भूया नैनमुदैक्षत ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् महाबाहु हनुमान्ने जनकनन्दिनी सीताके
चरणोंमें प्रणाम किया, किन्तु वे भयभीत होनेके कारण फिर
उनकी ओर देख न गयी ॥ १८ ॥

त दृष्ट्वा घन्द्मान च सीता दाशिनिभानना ।

अग्रवीद् दीर्घमुच्छ्वस्य धामर मधुरस्वग ॥ १९ ॥

बानर हनुमान्को बारबार चन्दना करते देख चन्द्रमुखी
सीता लबी खींच खींचकर उनसे मधुरवाणीमें बोली—॥ १९ ॥

मायाप्रविष्टो मायावी यदि त्व राघवः स्वयम् ।

उत्पादयसि मे भूय सताप तत्र शोभनम् ॥ १९ ॥

‘यदि त्वम स्वय मायावी राघव हो और मायामय शरीर
में प्रवेश करके फिर मुझे कष्ट दे रहे हो तो यह दुःशहारे लिये
अच्छी बात नहीं है ॥ १९ ॥

स्व परित्यज्य रूप य परित्राजकरूपयान् ।

जनस्थाने मया दृष्टम्य स एव हि राघव ॥ १९ ॥

‘जिसे मैंने जनस्थानमें देखा था तथा जो अपने यथाथ
रूपको छोड़कर सन्यासीका रूप धारण करके आया था,
तुम वही राघव हो ॥ १९ ॥

उपधासृजशा दीना कामरूप निशानर ।

सतापयसि मा भूय सताप तत्र शोभनम् ॥ १९ ॥

‘दृच्छानुसार रूप धारण करनेवाले निराश्रय । मैं
उपवास करते-करते दुबली हो गयी हूँ और मन ही मन
हुली रहती हूँ । इतनेपर भी जो तुम फिर मुझे सताप दे
रहे हो, यह दुःशहारे लिये अच्छी बात नहीं है ॥ १९ ॥

अथवा नैतदेष्ट हि यमया परिदादितम् ।

मत्सो हि मम प्रीतिरप्यप्राप्त तव दर्शनात् ॥ १९ ॥

‘अथवा जिस बातकी मेरे मनमें शङ्का हो रही है, वह
न भी हो, क्योंकि तुम्हें देखनेसे मेरे मनमें प्रसन्नता हुई है ॥
यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते ।

पृच्छामि त्या दाक्षेष्ट मिया रामकथा हि मे ॥ १९ ॥

‘बानरप्रेष्ठ । सचमुच ही यदि त्वम भगवान् श्रीरामके
दूत हो तो तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुमसे उनकी बातें पूछती
हूँ, क्योंकि श्रीरामकी वचा मुझे बहुत ही प्रिय है ॥ १९ ॥

भुणान् रामस्य कथय त्रिपथ मम धामर ।

चिक्ष हरसि से सौम्य नदीफूल यथा रयः ॥ १९ ॥

‘बानर । मेरे प्रियतम श्रीरामके गुणोंका बानन कर ।
सौम्य । जैसे बालूका बेग नदीके तटकी हर रेखा है, उसी
प्रकार त्वम श्रीरामकी वचनसे मेरे चित्तको सुखसे लेते हो ॥
भद्रो स्पन्दस्य सुखता यादमेव चिरादृता ।
प्रेमित माम पदयामि राघवेण पत्नीकसम् ॥ २० ॥

‘अहो ! यह त्वम कैसा सुखद हुआ ? जिससे यहाँ
चिरकालसे हरकर छापी गयी मैं आज भगवान् श्रीरामके
मेरे हुए दूत बानरको देख रही हूँ ॥ २० ॥

स्वप्नेऽपि यद्यह धीर राघव सहलक्ष्मणम् ।

पश्येय नाघसौदेय म्यमोऽपि मम मत्सरी ॥ २१ ॥

‘यदि मैं स्वप्नसहित दीर्घर भीष्मनाथजीको स्वप्नमें
भी देख लिया कलें तो मुझे इतना कष्ट न हो, परन्तु स्वप्न
भी मुझसे बड़ा करता है ॥ २१ ॥

बाह स्वप्नमिम मये स्वप्ने दृष्टा हि यानरम् ।

न शक्योऽभ्युदय प्राप्तु प्राप्तश्चाभ्युदयोमम ॥ २१ ॥

‘मैं इसे स्वप्न नहीं समझती, क्योंकि स्वप्नमें बानरका
देख देनेपर किसीका अभ्युदय नहीं हो सकता और मैंने यहाँ
अभ्युदय प्राप्त किया है (अभ्युदयकालमें लैली प्रसन्नता
होती है, वैसी ही प्रसन्नता मेरे मनमें छा रही है ।) ॥ २१ ॥
किन्तु स्याद्विस्तमोहोऽय भवेद् वातगतित्तिथयम् ।

उमादजो विकारो वा स्याद्य मृगवृणिका ॥ २२ ॥

‘अथवा यह मेरे चित्तका मोह तो नहीं है । वात-विकारसे
होनेवाला भ्रम तो नहीं है । उमादका विकार तो नहीं उमड़
आया अथवा यह मृगवृणिका तो नहीं है ॥ २२ ॥

अथवा नायमुमादो मोहोऽन्युमादलक्षण ।

सम्बुध्ये चाहमात्मानमिम चापि धनौकसम् ॥ २३ ॥

‘अथवा यह उमादजनित विकार नहीं है । उमादके
समान लक्षणवाला मोह भी नहीं है, क्योंकि मैं अपने-आपको
देख और समझ रही हूँ तथा इस बानरको भी ठीक-ठीक
देखती और समझती हूँ (उमाद आदिकी अवस्थाओंमें
इस तरह ठीक-ठीक ज्ञान होना सम्भव नहीं है ।) ॥ २३ ॥
इत्येव बहुधा सीता सम्प्रधार्य यत्पलम् ।

रक्षसा कामरूपवाग्मेने त राक्षसाधिपम् ॥ २४ ॥

एतां बुद्धिं तदा दृष्ट्वा सीतां सा तनुमन्यमा ।

न प्रतिन्याजहापथ धामर जनकात्मजा ॥ २४ ॥

इत तरह सीता अनेक प्रकारसे राक्षसोंकी प्रसन्नता और
यानरकी निर्वलताका निश्चय करने के बाद राक्षसराज राघव ही
माना, क्योंकि राक्षसोंमें इच्छानुसार रूप धारण करनेकी
शक्ति होती है । ऐसा विचारकर मृग कलिप्रदेयवाली बनक-
कुमारी सीताने कपिवर हनुमान्कोसे फिर कुछ नहीं कहा ॥
सीताया निश्चित बुद्ध्या हनुमान् मारुतात्मज ।

श्रोत्रानुपूलयेचनैस्तदा सा भद्रप्रदयन् ॥ २५ ॥

सीताने इस निश्चयको समझकर पवनकुमार हनुमान्जी
उक्त समय कानोंको मुख पहुँचानेवाले अनुवृत्त दन्तौद्राय
उनका हाथ यदाते हुए बोले—॥ २५ ॥

आदिष्य इय तेजस्यी लोकयात राक्षी यथा ।

राजा सयस्य लोकस्य द्यौ वैश्वयणो यथा ॥ २६ ॥

‘धामरान् श्रीराम एवमेव समान वेवली, चन्द्रमाके

समान लोककमनीय तथा देव कुबेरकी मूर्ति सम्पूर्ण जगत्के राजा हैं ॥ २८ ॥

विश्वमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशः ।
सत्यवादी मधुत्वाग्देवो वाचस्पतियथा ॥ २९ ॥

‘महायशस्वी मगवान् विष्णुके समान पराक्रमी
तथा वृहस्पतिजीकी मूर्ति सत्यवादी एव मधुरभाषी हैं ॥
रूपवान् सुभग श्रीमान् कर्पूर इव मूर्तिमान् ।
स्थानक्रोधे प्रहता च श्रेष्ठो लोके महारथ ॥ ३० ॥

‘रूपवान्, शोभायशाली और कान्तिमान् तो वे इतने
हैं, मानो मूर्तिमान् कामदेव हों । वे क्रोधके पात्रपर ही प्रहार
करनेमें समर्थ और सवारके श्रेष्ठ महारथी हैं ॥ ३० ॥
बाहुकुञ्जामयपृष्ठो यस्य लोको महात्मन ।
अपकम्प्याश्रमपदा मृगरूपेण राघवम् ॥ ३१ ॥
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् ।

‘सम्पूर्ण विश्व ठन महात्माकी मुखाञ्जलि आभरण—
ठन्हीकी छत्रछायामें विश्राम करता है । मृगरूपधारी निशाचर
द्वारा भीरुनायकीको आभरणे दूर इटाकर बिठने खने
आभ्रममें पहुँचकर आपका अपहरण किया है, उम्मे उस
पापका जो फल भिन्नवाना है, उसको आप अपनी आँखों
देखेंगी ॥ २९ ॥

अचिराद् रावण सख्ये यो वधिष्यति धीर्यवान् ॥ ३२ ॥
क्रोधममुत्तरिषुभिर्ज्वलन्तिरिव पाथकैः ।

‘पराक्रमी भीरामचन्द्रकी क्रोधधूवक छोड़े गये प्रबलित
अग्निके समान तेजस्वी शशीद्वारा समपङ्कजमें जीम ही
रावणका बध करेंगे ॥ ३२ ॥

तेनाह मेवितो दूतस्त्वत्सकाशमहागत ॥ ३३ ॥
त्यद्वियोगेन दुःखात् स त्वा कौशलमवधीत् ।

‘मैं ठन्हीका भेजा हुआ दूत होकर यहाँ आपके पास
आया हूँ । मगवान् भीराम आपके वियोगजनित दुःखसे
पीड़ित हैं । उन्होंने आपके पास अपनी कुशल कहावारी है
और आपकी भी कुशल पूछी है ॥ ३३ ॥

हृत्पार्थ श्रीमद्रामायणे वाक्मीकीय आन्ध्रकाण्डे ऋतुकिं सर्ग ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्रामायण आन्ध्रकाण्डे सुन्दरकाण्डमें चौतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंश सर्ग

सीतानीके पृथनेपर हनुमान्जीका श्रीरामके शारीरिक चिह्नों और गुणोंका वर्णन करना तथा
नर वानरकी मित्रताका प्रमङ्ग सुनाकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न करना

सा तु रामकथा श्रुत्वा यदैही वानरपथात् ।

उथाच पचन सान्धमिदं मधुरया गिरा ॥ १ ॥

वानरभेद हनुमान्भीके मुखसे भीरामचन्द्रभीकी चचा

लक्ष्मणश्च महानेजा सुमित्रान्त्वयर्थन ॥ २५ ॥
अभिशाक महायाहु स त्वा कौशलमवधीत् ।

‘सुमित्राका आनन्द बरानेशाल महानेज्जी महाबाहु
लक्ष्मणने भी आपको प्रणाम करके आपकी कुशल पूछी है ॥

रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानर ॥ ३५ ॥
राजा वानरसुत्पाना स त्वा कौशलमवधीत् ।

नित्य स्मरति ते राम ससुग्रीव सलक्ष्मण ॥ ३६ ॥
देवि । शीघुनायकीके सखा एक सुग्रीव नामक वानर

हैं, जो मुख्य मुख्य वानरोंके राजा हैं, उन्होंने भी आपसे
कुशल पूछी है । सुग्रीव और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रकी
प्रतिदिन आपका स्मरण करते हैं ॥ ३५-३६ ॥

द्विष्टया जीवसि वैदेहि राक्षसीयशमागत ।
नचिराद् द्रक्ष्यसे राम लक्ष्मण च महारथम् ॥ ३७ ॥

‘विदेहनिदिनि । राक्षसियोंके जगलमें पैसकर भी आप
अभीतक जीवित हैं, यह बड़े शोभायकी बात है । अथ आप
श्रीम ही महारथी भीराम और लक्ष्मणका दशन करेंगी ॥
मध्ये वानरकोटीना सुग्रीव चामितौजसम् ।

अह सुग्रीवसखिवो हनुमान् नाम वानर ॥ ३८ ॥

‘चाय ही करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए अमिततेजस्वी
सुग्रीवको भी आप देखेंगी । मैं सुग्रीवका मन्त्री हनुमान्
नामक वानर हूँ ॥ ३८ ॥

प्रविष्टो नगरं लङ्का लङ्घयित्वा महोदधिम् ।
हत्वा मूर्ध्नि पद्म्याम रावणस्य दुरात्मन ॥ ३९ ॥

‘मैंने महाकाण्डको लौंचकर और दुरात्मा रावणके
विरपर पैर रखकर लङ्कापुरीमें प्रवेश किया है ॥ ३९ ॥

त्वा द्रष्टुमुपयातोऽह समाश्रित्य पराश्रमम् ।
नाहमसि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ।

विशङ्का त्यज्यतामेया अश्रुत्वा वदतो मम ॥ ४० ॥

‘मैं अपने पराक्रमका प्रयोग करके आपका दशन करने
के लिये यहाँ उपस्थित हुआ हूँ । देवि ! आप मुझे बैठा
समझ रही हैं, मैं बैठा नहीं हूँ । आप यह विररीत आग्रह
छोड़ दीजिये और मरी बातवर विश्वास कीजिये ॥ ४० ॥

धानपाणा नराणा च कथमासीत् समागम ॥ २ ॥

‘कपिवर ! तुम्हारा श्रीरामचन्द्रजीके साथ सम्बन्ध कहाँ हुआ ! तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो ? मनुष्यों और वानरोंका यह मेल किस प्रकार सम्भव हुआ ॥ २ ॥’

यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च धनर ।

तानि भूय समाचक्ष्व नमाशोक समाविशेत् ॥ ३ ॥

‘वानर ! श्रीराम और लक्ष्मणके जो चिह्न हैं, उनका किसे ध्यान करो, जिससे मेरे मनमें किसी प्रकारके शोकका समावेश न हो ॥ ३ ॥

कीदृश तस्य सस्यान रूप तस्य च कीदृशम् ।

कथमूक कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शस्त्र मे ॥ ४ ॥

‘मुझे बताओ मगवान् श्रीराम और लक्ष्मणकी व्याप्ति कैसी है ! उनका रूप किस तरहका है ! उनकी जाँघें और भुजाएँ कैसी हैं ?’ ॥ ४ ॥

पयमुक्त्वत्तु वैदेह्या हनूमान् मास्तामजः ।

ततो राम यथातत्त्वमाख्यातमुपसचक्रमे ॥ ५ ॥

विदेहराजकुमारी सीताके इस प्रकार पूछनेपर पवन कुमार हनुमान्जीने श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका यथान्वय ध्यान आरम्भ किया— ॥ ५ ॥

जानन्ती यत् द्विष्टया मा वैदेहि परिपृच्छसि ।

भर्तुं कमलपत्राक्षि सस्यान लक्ष्मणस्य च ॥ ६ ॥

‘कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली विदेहराजकुमारी ! आप अपने पतिदेव श्रीरामके तथा देवर लक्ष्मणजीके शरीरके विषयमें जाननी हुई भी जो मुझसे पूछ रही हैं, यह मेरे लिये बड़े सोमयायकी बात है ॥ ६ ॥

यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै ।

लक्षितानि विशालाक्षि वदत शृणु तानि मे ॥ ७ ॥

‘विशाललोचने ! श्रीराम और लक्ष्मणके जिन जिन चिह्नोंको मैंने लक्ष्य किया है, उन्हें बताता हूँ । मुझसे सुनिये ॥ ७ ॥

राम कमलपत्राक्ष पूणवद्रनिभानन ।

रूपदाक्षिण्यसम्पन्न प्रसूतो जनकारजमे ॥ ८ ॥

‘जनकनन्दिनि ! श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र प्रसूतकमल-दलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं । मुख पूर्णमासे चन्द्रमाके समान मनोहर है । वे जामकाष्ठसे ही रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न हैं ॥ ८ ॥

तेजसाऽऽदित्यसकाशा क्षमया पृथिवीसम ।

पृष्ठरूपतिसमो घुदस्था यशसा चास्योपमः ॥ ९ ॥

रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।

रक्षितस्वस्य घृत्तम्य धर्मस्य च परतप ॥ १० ॥

‘वे तेजमें सूर्यके समान, क्षमामें पृथ्वीके समान, मुझमें बृहस्पतिके सार और यशमें इन्द्रके समान हैं । वे सम्पूर्ण जीव जगत्के तथा स्वजनोंके भी रक्षक हैं । घनुओंको

मत्ताप देनेवाले श्रीराम अपने सदाचार और धर्मकी रक्षा करते हैं ॥ ११० ॥

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।

मयादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च स ॥ ११ ॥

‘भामिनि ! श्रीरामचन्द्रजी अमृतके चारों वर्णोंकी रक्षा करते हैं । लोकमें धर्मकी मयादाओंको बौध्दकर उनका पालन करने और करानेवाले भी वे ही हैं ॥ ११ ॥

अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यघते स्थित ।

साधूनामुपकारश्च प्रचारश्च कमणाम् ॥ १२ ॥

‘सर्वत्र अत्यन्त भक्तिभावसे उनकी पूजा होती है । ये कान्तिमान् एवं परम प्रकाशस्वरूप हैं, ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें लगे रहते हैं, साधु पुरुषोंका उपकार मानते और आचरणोंद्वारा सत्कर्मोंके प्रचारका दग जानते हैं ॥ १२ ॥

राजनीत्या विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः ।

ज्ञानवाङ्मयीलक्ष्मणश्चो विनीतश्च परतप ॥ १३ ॥

वे राजनीतिमें पूर्ण विनित, ब्राह्मणोंके उपासक, ज्ञानवाङ्मयी, श्रीरामचन्द्रजी, विनित तथा पशुओंको स्ताप देनेमें समर्थ हैं ॥ १३ ॥

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्वि सुपूजित ।

घनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठित ॥ १४ ॥

‘उन्हें यजुर्वेदकी भी अच्छी शिक्षा मिली है । वेदवेत्ता विद्वानोंने उनका बड़ा सम्मान किया है । वे चारों वेद, घनुर्वेद और छठों वेदाङ्गोंकी परिनिष्ठित विद्वान् हैं ॥ १४ ॥

विपुलास्तो महाबाहु कम्बुध्रीनः शुभानन ।

गूढजनु सुताप्राप्तो रामो नाम जनैर्भुत ॥ १५ ॥

‘उनके कंधे मोटे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी, गला शङ्खके समान जोर मुख सुन्दर है । गलेकी हँसरी मांसे दबरी हुई है तथा नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा है । वे लोगोंमें ‘श्रीराम’ के नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥

कुटुम्बिस्त्वनिर्घोष क्षिप्रधर्म्य प्रतापवान् ।

समश्च सुखिभक्ताहो वर्णं दयाम समाधित ॥ १६ ॥

‘उनका स्वर कुटुम्बिक समान गम्भीर और शरीरका रंग सुन्दर एवं चिकना है । उनका प्रताप बहुत बलवान् है । उनके सभी अङ्ग सुन्दर और बराबर हैं । उनकी कान्ति दयाम है ॥ १६ ॥

त्रिस्थिरक्षिप्रलस्यश्च त्रिसमक्षिप्रु चोन्नत ।

यिताघ्रिप्रिपुचक्षिगघो गम्भीरक्षिप्रु नित्यशः ॥ १७ ॥

‘उनके तीन अङ्ग (वक्षःस्थल, कला और मुट्ठी) स्थिर (स्थिर) हैं । मोहें, भुजाएँ और मूँह—ये तीन अङ्ग लम्बे हैं । वे जोका आग्रभाग, अङ्गुलीय और पुट्ट—ये तीन समान—बराबर हैं । वक्षःस्थल, नाभि किनारेका भाग और उदर—ये तीन उभरे हुए हैं । नेत्रोंके कोने, नख और हाथ के तन्त्रे—ये तीन लम्बे हैं । घिनका

अप्रमाण, दानों पैरोकी रखाएँ और बिरक बाल—ये तान चिन्ने हैं तथा स्वर चाट और नामि—ये तान गम्भीर हैं ॥ १७ ॥

त्रिवलीमान् यथनतश्चतुर्ध्वस्त्रिदोषवान् ।
चतुष्कलश्चतुर्लम्बश्चतुर्किष्कुश्चतुर्लम्बः ॥ १८ ॥

‘उनक उदर तथा गटमें तान रखाएँ हैं । तलकों मध्यभाग, पैरोकी रखाएँ और तनोंके अप्रमाण—य तीन घेते हुए हैं । गन्त, पीठ तथा दानों त्रिदोषों—ये चार अङ्ग छड़े हैं । मलकमें तान मँबरे हैं । पैरोंक अंगूठक नाच तथा लछामें चार चार रखाएँ हैं । वे चार हाथ जैज हैं । उनके काल, मुखाएँ, बोंबे और छुरने—ये चार अङ्ग ब्यबर हैं ॥ १८ ॥

चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्द्वन्द्वश्चतुर्दशः ।
महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्तिष्ठोऽष्टयत्नान् ॥ १९ ॥

‘छरीमें ज’ दो-दो की छत्यामें चोदई अन्न होते हैं, वे भी उनक परपर बन हैं । उनकी चारों कनोंक चारों दाढ़ें छात्रीय लछामें युक्त हैं । व जिह्वा, बाज, हाथा और सोड़—इन चारक समान चार प्रकारकी गतेसे चछते हैं । उनक अठ, ठगी और नाहिना—सभी प्रशस्त हैं । कथ, नेन, दौत त्वचा और पैरक तन्वे—इन पाँचों अन्नमें स्तिष्ठता भरा है । दानों मुखाएँ, दानों जोंबे, दोनों त्रिदोषों, हाथ और पैरोकी अंगूठियों—ये आठ अन्न उचम लक्षणीय सम्पन्न (छेव) हैं ॥ १९ ॥

दशपद्मो दशरुहमिभिव्याप्तो द्विगृहवान् ।
पटुश्चतो नरतनुस्त्रिभिर्व्याप्तोति राघवः ॥ २० ॥

उनक नेत्र, मुन विषय मुख-मण्डल, जिह्वा, अंग, ताट छान, नख हाथ और पर—ये दश अङ्ग कमलके समान हैं । छारी, मलक, लछा, गला मुखाएँ, कंधे, नामि चरण, पीठ और कान—य दश अङ्ग विराल हैं । वे भा, यथ और प्रता—इन तीनोंसे व्याप्त हैं । उनक मातृकुल और निरुद्ध दानों अल्लत गुरु हैं । पापंमाण, उदर, वट गल, नासना, कंध और लछा—य छ अङ्ग जैज हैं । कथ, नख, तान, त्वचा, अंगुष्ठियों पोर, चिन्न, बुद्धि और दृष्टि आदि भी गृह्य (पतल) हैं तथा वे भीरुतापवी पूषह, मण्डा और अपरह—इन तीन कालेंद्वारा हनय धर्म, अर्थ और कामका अनुष्ठान करते हैं ॥ २० ॥

सत्यधर्मतथीमान् सप्रहानुमहो रत ।
देशकालरिभावात् सर्वलोकाप्रियवद् ॥ २१ ॥

‘भीरमचन्द्राश्च सधनक अनुष्ठानमें सत्य, भीरमन्न, नापसङ्गत धनका सद्ग और प्रभाव अनुष्ठ

करनेमें तत्पर, देश और कालक विभागको समतनेवाले तथा सब हेतुष प्रिय वचन बोलनवाले हैं ॥ २१ ॥

धाता चास्य च वैमात्र सौमित्रिरमितप्रभ ।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाग्रिच ॥ २२ ॥

‘उनक छौतेठ भाइ सुमित्राङ्गुमार लम्पन भा बड़े तेजस्वी हैं । अनुराग, रूप और वदुगोंकी दृष्टिसे भी वे भीरमचन्द्राश्च ही समान हैं ॥ २२ ॥

स सुवर्णच्छत्रि धीमान् राम इयामो महायशाः ।
तावुभी नरशाट्टली त्वदर्शनहतोत्सवौ ॥ २३ ॥

‘त्रिचि यन्तौ महाहस्नामसाभि सहसगतौ ।
‘उन दानों माइयों अन्तर इतना ही है कि लम्पनक छत्रकी कान्ति सुवर्णक समान गौर है और महापद्मवी भीरमचन्द्राश्च त्रिह ‘वाम-मुन्दर है । वे दानों नरश्रेष्ठ आपके दर्शनक छिय उत्कण्ठित हैं छारी पृष्ठापर आपकी ही खाव करते हुए हमलोगोंसे मिले थे ॥ २३ ॥

त्यामेव मार्गमाणौ तौ विचरतौ धनुधराम् ॥ २४ ॥
ददंस्तुष्टमृगपतिं पूर्वजेनापरोपितम् ।

‘आपको ही दूँदेनेक छिये पृष्ठीपर विचरते हुए उन दानों माइयोंने वानरराज सुप्रबक्का सदाकार किया, छ अन्ने बड़े माइक द्वारा राक्षसे उतार दिये गये थे ॥ २४ ॥

श्रुत्यमृकस्य मूले तु घट्टपादपमकुले ॥ २५ ॥
आतुमयातमासीन सुप्राज प्रियदर्शनम् ।

‘श्रुत्यमृक पर्वतक मूलभागमें वा बहुतसे इकोंद्वारा गिरा हुआ है, माइक मन्दे पावित हा बैठे हुए प्रियदर्शन मुमोवते वे दोनों माइ मिल ॥ २५ ॥

वयं च हरियान त सुप्राज सत्यसङ्गतम् ॥ २६ ॥
परिचयामहे राज्यात् पूर्वजेनापरोपितम् ।

‘उन दिनों त्रिहें वड़े माइने राक्षसे उतार दिया था, उन सत्यप्रतिष्ठ वानरराज मुमोवकी सेवामें हम सब लोग रहा करते थे ॥ २६ ॥

तत्तस्मै चौरवसनां धनु प्रचरपाणिनौ ॥ २७ ॥
श्रुत्यमृकस्य शालस्थ रम्य देशमुपागतौ ।

‘उन दिनों त्रिहें वड़े माइने राक्षसे उतार दिया था, उन सत्यप्रतिष्ठ वानरराज मुमोवकी सेवामें हम सब लोग रहा करते थे ॥ २७ ॥

स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रो धन्विनीं वानरपम ॥ २८ ॥
अभिप्लुतो गिरिस्तस्य शिखर भवमोहितः ।

‘छतरपर बन्दवन्न तथा हाथमें धनुष धारण किये वे दोनों माइ जब श्रुत्यमृक पर्वतक रम्य देशमें आय, तब धनुष धरणा करनेवाले उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंकी वहाँ उपस्थित देख वानरशिखरमें मुमोव मन्दे धरता उठे और उलझकर उस पर्वतक लछान गिरिपर जा चरे ॥ २८ ॥

ततः स शिखरे तस्मिन् वानरेन्द्रो व्यग्रम्यितः ॥ २९ ॥
तयोः समीप मामेव प्रेषयामास सन्यस्रम् ।

‘उठ शिखरपर बैठनेके पश्चात् वानरराज मुमोने ऐसे हा छीप्रतापक उन दोनों बड़ोंके पास भजा ॥ २९ ॥

‘उठ शिखरपर बैठनेके पश्चात् वानरराज मुमोने ऐसे हा छीप्रतापक उन दोनों बड़ोंके पास भजा ॥ २९ ॥

तायह पुरुषव्याघ्री सुग्रीववचनात् प्रभू ॥ ३० ॥
रूपलक्षणसम्पन्नौ हृताञ्जलिरुपस्थित ।

‘सुग्रीवकी आशसे उन प्रभावशाली रूपवान् तथा शुभ
लक्षणसम्पन्न दोनों पुरुषसिंह बीरोंकी सेवामें मैं हाथ जोड़कर
उपस्थित हुआ ॥ ३० ॥

तौ परिश्रवतस्त्रयार्थं मया प्रीतिसमन्वितौ ॥ ३१ ॥
पृष्ठमारोप्य त देश प्रापितौ पुरुषर्षभौ ।

‘सुश्रेष्ठे यथाथ बातें जानकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता
हुई । फिर मैं अपनी पीठपर चढ़ाकर उन दोनों पुरुषोत्तम
बन्धुओंको उस स्थानपर ले गया (वहाँ बानरराज सुग्रीव थे) ॥
निवेदितौ च तत्रेव सुग्रीवाय महामने ॥ ३२ ॥
तयोर्योन्यसम्भाषाद् भृश प्रीतिरजायत ।

‘वहाँ महात्मा सुग्रीवको मैंने इन दोनों बन्धुओंका वयार्थ
परिचय दिया । तत्पश्चात् श्रीराम और सुग्रीवने परस्पर बातें
कीं, इससे उन दोनोंमें बड़ा प्रेम हो गया ॥ ३२ ॥
तत्र तौ कीर्तिसम्प भी हरीश्वरनरेश्वरौ ॥ ३३ ॥
परस्परवृत्ताभ्यासौ कथया पूर्ववृत्तया ।

‘वहाँ उन दोनों यशस्वी वानरेश्वर और नरेश्वरोंने अपने
ऊपर बीती हुई पहलेकी घटनाएँ सुनायीं तथा दोनोंने दोनोंको
आश्वासन दिया ॥ ३३ ॥

ततस्तान्त्वयामास सुमाव लक्ष्मणप्रजः ॥ ३४ ॥
छाहितोर्वालिना आश्रय निरस्त पुरुतेजसा ।

‘उस समय लक्ष्मणक बड़े भाई औरधुनायत्रीने लीके
छिपे अग्ने महातेजस्वी भाई वालीद्वारा घरसे निकाले हुए
सुग्रीवको सन्तवना दी ॥ ३४ ॥

ततस्त्वन्नाशज शोक रामस्याकिलष्टकमण ॥ ३५ ॥
लक्ष्मणो धानरेद्राघ सुग्रीवाय ययेदयत् ।

‘तत्पश्चात् अनायास ही महान् क्रम करनेवाले भगवान्
श्रीरामको आपन वियोगम का शोक हो रहा था, उसे लक्ष्मण
ने वानरराज सुग्रीवकी सुनाया ॥ ३५ ॥

स धुश धानरेद्रस्तु लक्ष्मणेनेरित यच्च ॥ ३६ ॥
तद्वालीन्निधमोऽत्यर्थं प्रहप्रस्त इवात्मान् ।

‘लक्ष्मणजीकी कही हुई वह बात सुनकर वानरराज
सुग्रीव उस समय प्रहमस्त सूयके समान अत्यन्त काँटिहीन
हो गये ॥ ३६ ॥

ततस्त्वद्भ्रात्रशामीनि रक्षसा द्वियमाणया ॥ ३७ ॥
याम्याभरणजालानि पातितानि महीतले ।

‘तानि स्रजानि रामाय आनीय हरियूषपा ॥ ३८ ॥
सहृष्ट ददायामासुर्गतं तु न विदुस्तथ ।

‘तदनन्तर बानर दूषपतिगोंने आपने शरीरपर जोधा
पनेवाल उन सब आभूषणोंको मैं आकर बड़ी प्रसन्नताके
साथ श्रीरामचन्द्रके दिलवाया, किन्तु आपने उस समय
दूषणपर गिराया था, जब कि राघव आपको इस्कर छिपे का

रहा था । बानरोंने आभूषण तो दिखाये, किन्तु उन्हें आपका
पता कुछ भी मालूम नहीं था ॥ ३७ ॥

‘तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ॥ ३९ ॥
स्वनयन्त्यवकीर्णानि तस्मिन् विदहतचेतसि ।

‘तान्येकैश्चक्षुर्दृशनीयानि हृत्वा बहुविध तत्र ॥ ४० ॥
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेधितम् ।

‘आपके द्वारा गिरये जानेपर वे सब आभूषण हान
हानकी आवाजके साथ जमीनपर गिरे और बिखर गये थे ।
मैं ही उन सबको जटोरकर ले आया था । उस दिन जब वे
गहने श्रीरामचन्द्रकीर्णों दिये गये, उस समय वे उन्हें अपनी
गोदमें लेकर अचल से हो गये थे । उन दर्शनीय आभूषणों-
को छातीसे लगाकर देखत य आभावाले भगवान् श्रीरामने
बहुत विलाप किया ॥ ३९ ॥

पश्यतस्तानि रुदतस्ताम्यतश्च पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
प्रादोषयद् वाशरथंस्तथा शोकहृताशनम् ॥ ४२ ॥
शायित च विर तेन दुःखार्तेन महात्मना ।
मयापि विविचैर्षाक्यै हृच्छ्रादुःखापात पुन ॥ ४३ ॥

‘उन आभूषणोंको बारबार देखते, रोते और तिला
उठते थे । उस समय दृगरथनन्दन श्रीरामकी शोक
प्रवृत्ति हो उठी । उस दुःखसे आतुर हो वे महात्मा रथ
बहुत देरतक मूर्छित अवस्थामें पड़े रहे । तब मैंने :
प्रकारके सन्तवनापूर्ण वचन कहकर बड़ी कठिनाईसे :
उठाया ॥ ४१-४३ ॥

‘तानि हृष्टा महाहोनि दर्शयित्वा सुदुःख ।
राघव सहस्रीमित्रि सुग्रीवे सन्यवेशयत् ॥ ४४ ॥

‘लक्ष्मणवहित औरधुनायत्रीने उन बहुमूल्य आभूषणों
बारबार देखा और दिखाया । फिर वे सब सुग्रीवको दे दिरे
स्त तत्वादर्शनादायै राघव परितप्यते ।

‘महता ज्यलता नित्यमग्निनेपाग्निपर्वत ॥ ४५ ॥

‘आपें । आपका न देल पानके कारण औरधुनायत्री
बड़ा दुःख और कष्टाप हो रहा है । जैसे ज्वालामुखी पर
जलती हुई बड़ी भाये आगने सदा तपता रहता है, उस
प्रकार वे आपकी विरहामित्तसे जल रहे हैं ॥ ४५ ॥

‘त्यरहते तमनिद्रा च शोकश्च ता च राघवम् ।

‘तापयति महात्मानमग्नयगारमिवाग्नय ॥ ४६ ॥

‘आपके छिपे महात्मा औरधुनायत्रीके अग्निद्रा (निरल
जागण) शोक और चिन्ता—ये तीनों उठी प्रकार उठा
देते हैं, जैसे आहवनीय आदि विविध अग्नियों अग्निशाला
की तपती रहती हैं ॥ ४६ ॥

‘तथादशानशोभेन राघवः परिचालयत् ।
महता भूमिकम्पेन महानिघ्नं दालोषय ॥ ४७ ॥

‘देवि । आरक्षो न देल पानेका शोक औरधुनायत्रीके

उसी प्रकार विचलित कर देता है, जैसे मारी भूकम्पसे महान् पर्वत भी हिल जाता है ॥ ४७ ॥

काननानि सुरभ्याणि नदीप्रस्रवणानि च ।

घरन् न रतिमाप्नोति त्यामपश्यन् नृपात्मजे ॥ ४८ ॥

‘राजकुमार ! आपको न देखनेके कारण रमणीय काननों, नदियों और झरनोंके पास विचरनेपर भी श्रीरामको सुख नहीं मिलता है ॥ ४८ ॥

स खा मनुजशालूः क्षिप्र प्राप्स्यति राघव ।

समिश्राध्व हत्वा राघव जनकात्मजे ॥ ४९ ॥

‘जनरुन्दिनि ! पुत्रपक्षि भगवान् श्रीराम रावणको उसके मित्र और बन्धु बाधवोंसहित मारकर शीघ्र ही आपसे मिलेंगे ॥ ४९ ॥

सहितौ रामसुग्रीवाधुभानकुक्कुता तदा ।

समय वालिन इतु तत्र चायेषण प्रति ॥ ५० ॥

‘उन दिनों श्रीराम और सुग्रीव जब मित्रभावसे मिले, तब दोनोंने एक दूसरेकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की । श्रीरामने वालीकी मारनेका और सुग्रीवने आपकी खोज करनेका वचन दिया ॥ ५० ॥

ततस्ताभ्या कुमाराभ्या धीराभ्या सह्रीश्वरः ।

किङ्किष्ठा समुपागम्य वाली युद्धे निपातित ॥ ५१ ॥

‘इसके बाद उन दोनों वीर राजकुमारोंने किङ्किष्ठासे जाकर वानरराज वालीको युद्धमें मार गिराया ॥ ५१ ॥

ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे ।

सर्वभ्रहरिसहाना सुग्रीयमकरोत् पतिम् ॥ ५२ ॥

‘युद्धमें वेगपूर्वक वालीको मारकर श्रीरामने सुग्रीवकी समस्त मात्सुओं और वानरोंका राजा बना दिया ॥ ५२ ॥

रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येष समजायत ।

हन्मन्त च मा विद्धि तयोर्दूतमुपागतम् ॥ ५३ ॥

‘देवि ! श्रीराम और सुग्रीवमें इस प्रकार मित्रता हुई है । मैं उन दोनोंका दूत बनकर यहाँ आया हूँ । आप मुझे इतुमान समझें ॥ ५३ ॥

स्य राज्यं प्राप्य सुग्रीव स्वानानीय महाकपीन् ।

त्वंदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महायलान् ॥ ५४ ॥

‘अपना राज्य पानेके अनन्तर सुग्रीवने अपने आश्रयमें रहनेवाले बड़े बड़े बलवान् वानरोंको बुलाया और उन्हें आपकी खोजके लिये दशों दिशाओंमें भेजा ॥ ५४ ॥

आदिष्टा वानरेऽष्टेण सुग्रीवेण महौजस ।

अद्रिराजप्रतीकाशा सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥ ५५ ॥

‘वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा पाकर गिरिराजके समान विशालकाय महाबली वानर पृथीपर सब ओर चल दिये । तत्काले मागमाणा वै सुप्राययवनामुपा ।

घरति घमुधा एष्टा वयमन्ये च वानरा ॥ ५६ ॥

‘सुग्रीवकी आज्ञासे भयभीत हो हम तथा अन्य वानर

आपकी खोज करते हुए समस्त भूमण्डलमें विचर रहे हैं ॥ अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान् वालिसुनुर्महाबलः ।

प्रस्थित कपिशार्दूलत्रिभागबलसवृत ॥ ५७ ॥

‘वालीके शोभाशाली पुत्र महाबली कपिश्रेष्ठ अगद वानरों की एक तिहाई सेना साथ लेकर आपकी खोजमें निकल ये (उहाँके दलमें मैं भी था) ॥ ५७ ॥

तेषां नो विप्रणष्टाना विन्धे पयतस्तन्मे ।

भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गता ॥ ५८ ॥

‘पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्वमें आकर खो खानेने कारण हमने वहाँ बड़ा कष्ट उठाया और वहाँ हमारे बहुत दिन बीत गये ॥

ते वयं कायमैराध्यात् कालस्यातिव्रमेण च ।

भयाच्च कपिराजस्य प्राणास्त्यक्तुमुपस्थिता ॥ ५९ ॥

‘अब हमें कार्य सिद्धि की कोई आशा नहीं रह गयी और निश्चित अवधिसे भी अधिक समय बिता देनेके कारण वानरराज सुग्रीवका भी भय था । इसलिये हम सब लोग अपने प्राण त्याग देनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ५९ ॥

विश्रित्य गिरिदुर्गाणि नदीप्रस्रवणानि च ।

अनासाद्य पदं देव्या प्राणास्त्यक्तुं वपस्स्थिता ॥ ६० ॥

‘पर्वतके दुर्गम स्थानोंमें, नदियोंके तटोंपर और झरनों के आस पासकी सारी भूमि छान ढाली तो भी जब हमें देवी सीता (आप) के स्थानका पता न चला, तब हम प्राण त्याग देनेको तैयार हो गये ॥ ६० ॥

ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वयं प्रायमुपास्रहे ।

दृष्ट्वा प्रायोपविष्टाश्च सर्वान् वानरपुङ्गवान् ॥ ६१ ॥

भृशं शोकार्णवे मग्नं पयदेवयदङ्गद ।

‘भरणान्त उपवासका निश्चय करके हम सब के सब उस पर्वतके शिखरपर बैठ गये । उस समय समस्त वानर शिरोमणियोंको प्राण त्याग देनेके लिये बैठे देख कुमार

अङ्गद अत्यन्त शोकके सदुद्रमें डूब गये और विलाप करने लगे ॥ ६१ ॥

तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा यधम् ॥ ६२ ॥

प्रायोपवेशमस्मात् मरणं च जटायुष ।

‘विदेहनन्दिनि ! आपका पता न लगने, वालीके मारे जाने, हमलोगोंके भरणान्त उपवास करने तथा जटायुके मरनेकी बातपर विचार करके कुमार अङ्गदको यद्वा डूब हुआ था ॥ ६२ ॥

तेषां न स्वामिस्त्वैशात्रिपशानां समूहताम् ॥ ६३ ॥

‘कार्यहेतोरिहायातः शकुनिर्विर्थावान् महान् । शृधराजस्य सोदर्यं सम्पातिनाम शृधराट् ॥ ६४ ॥

‘स्वामीके आशापालनसे निराश होकर हम मरना ही चाहते थे कि देववध हमारा कार्य सिद्ध करनेके लिये रामराज भगवुके यद्वा आई गम्पाति, जो स्वयं भी गीर्वाण राजा और महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३ ॥

॥ ६४ ॥

तायह पुरुषव्याघ्रौ सुग्राययचनात् प्रभू ॥ ३० ॥
रूपलक्षणसम्पन्नी एताञ्जलिरुपस्थित ।

‘मुषीवकी आशसे उन प्रभावशाली रूपवान् तथा शुभ-
लक्षणसम्पन्न दोनों पुरुषों की सेवा में मैं हाथ जोड़कर
उपस्थित हुआ ॥ ३० ॥
तौ परित्याततराधौ मया प्रीतिसमन्वितौ ॥ ३१ ॥
पृष्ठमारोप्य त दान प्रापितौ पुरुषपरमौ ।

‘मुससे यथाय कर्ते जानकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता
हूँ । फिर मैं अपनी पीठपर चढ़ाकर उन दोनों पुरुषोत्तम
पुरुषोंको उस स्थानपर ले गया (हाँ बानराज मुषीव ने) ॥
निषदितौ च तत्त्वेन सुग्रायाय महात्मन ॥ ३२ ॥
तयोऽयोन्यसम्भावाद् भृश प्रीतिरजायत ।

‘वहाँ महात्मा मुषीवको मैं इन दोनों पुरुषोंका यथा-
परिचय दिया । तत्पश्चात् भीराम और मुषीवने परस्पर बातें
कीं, इससे उन दोनोंमें बड़ा प्रेम हो गया ॥ ३२ ॥
तत्र तौ कीर्तिसम्पन्नौ हरिश्चरनरोधरौ ॥ ३३ ॥
परस्परहताभ्यासौ कथया पूषघृचया ।

‘वहाँ उन दोनों यक्षी बानरेश्वर और नरेश्वरोंने अपने
ऊपर बीती हुई परलकी घटनाएँ सुनायीं तथा दोनोंने दोनोंको
आश्वासन दिया ॥ ३३ ॥

ततः सान्त्वयामास सुग्रीव लक्ष्मणप्रज ॥ ३४ ॥
अद्वैतोर्धोलिना आत्रा निरस्त पुरुतेजसा ।

‘उस समय लक्ष्मण बड़े भाई भीष्मनाथजीने लीके
से अपने महातेजस्वी भाई वालीद्वारा परते निहाले हुए
बीवको सान्त्वना दी ॥ ३४ ॥

स्तव्यन्नाशज शक्र रामस्याकिलष्टकमण ॥ ३५ ॥
मणो यानरेद्राप सुग्रीवाय न्यवेदयत् ।

‘तत्पश्चात् अनायास ही महान् कम करनेवाले भगवान्
शक्र आपन विरोगमें जो शोक हो रहा था, उसे लक्ष्मण
को आपन सुग्रीवको सुनाया ॥ ३५ ॥

‘या यानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनरित घब ॥ ३६ ॥
‘अग्निप्रभोऽत्यर्थं प्रहमस्त इवाशुमान् ।

‘कमप्रीती की हुई बड़ बात सुनकर बानरराज
उस समय प्रहमस्त त्वर्कके समान अत्यन्त कान्तिहीन
हो ॥ ३६ ॥

‘राजशाभीनि रक्षसा द्वियमाणया ॥ ३७ ॥
‘राजालानि पातितानि मदीतले ।

‘मैं रामाय आनाय हरिवृषया ॥ ३८ ॥
‘तर बानर वृषपतियोंने आपके शरीरपर घोभा
सब आभूषणोंको ले आकर बड़ी प्रसन्नताके
‘न्द्रशेक’ दिखाया, जि हैं आपने उस समय
‘या, जब कि राघव आपको इरकर लिये था

रहा था । बानरोंने आभूषण तो दिखाये, किन्तु उन्हें आपका
पत्र कुछ भी मालूम नहीं था ॥ ३७ ॥

‘तानि रामाय वृक्षानि मयैषोपहतानि च ॥ ३९ ॥
‘स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन् विदतचेतसि ।
‘तान्यद्देशनीयानि एत्वा पशुविध तदा ॥ ४० ॥
‘तेन देयप्रकाशेन येन परिदेयितम् ।

‘आपके द्वारा गिरये जानेपर वे सब आभूषण हन
हानकी आवाज सुन लक्ष्मणनगर गिर और बिलर गये थे ।
‘मैं ही उन सबको बटोरकर ले आया था । उस दिन जब वे
‘गहने भीषमचन्द्राकी दिग्गय, उस समय वे उन्हें अपने
‘गोदमें लेकर अचल ले हो गये थे । उा दर्शनीय आभूषणों
‘को छातीसे लगाकर देखतुल्य आभावात् महान् भीषमने
‘बहुत बिलास किया ॥ ४० ॥

‘पदयतस्तानि कदतस्ताम्यतश्च पुनः पुन ॥ ४१ ॥
‘प्रादोपयद् दाशरथेस्तदा शोकदुताशनम् ॥ ४२ ॥
‘शापित च विर तेन दु मार्येन महात्मना ।
‘मयापि विविधैर्वाक्यैश्च हृद्भृशुः स्यात्त पुनः ॥ ४३ ॥

‘उन आभूषणोंको बारबार देखते, रेतें और तिलमिला
‘उठते थे । उस समय दाशरथनन्दन भीरामकी शोकानि
‘प्रवर्धित हो उठी । उस दु खसे आतुर हो वे महात्मा खुर्ब
‘बहुत देरतक मूर्छित अवस्थामें पड़े रहे । तब मैंने नान
‘प्रकारके सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर बड़ी कठिनाइसे उन्हें
‘उठाया ॥ ४१-४३ ॥

‘तानि हृष्टा महार्हाणि दर्शयित्वा मुदुर्मुह ॥
‘राघव सहसौमित्रि सुग्रीवे सन्त्यवेशयत् ॥ ४४ ॥

‘लक्ष्मणवहित भीष्मनाथजीने उन बहुमूल्य आभूषणोंको
‘बारबार देखा और दिखाया । फिर वे सब सुग्रीवको दे दिये ॥
‘स तथादशानादायै राघव परितप्यते ।

‘महता ज्वलता नित्यमग्निनेयानिपयत् ॥ ४५ ॥
‘‘आपें । आपको न देय पानेके कारण भीष्मनाथजी
‘बड़ा दु ख और क्लेश हो रहा है । जैसे ज्वालामुखी सब
‘जलती हुई बड़ी भापी जाते सदा तपता रहता है, उन्हीं
‘प्रकार वे आपकी विरहान्तिसे जल रहे हैं ॥ ४५ ॥

‘स्वतृष्टे समनिद्रा च शोकश्च ता च राघवम् ।
‘तापयति महात्मानमग्न्यागारमिवान्त्य ॥ ४६ ॥

‘आपने लिये महात्मा भीष्मनाथजीको अनिद्रा (नित्य
‘आगल) शोक और चिन्ता—ये तीनों उन्हीं प्रकार क्लेश
‘देते हैं, जैसे आहवनीय आदि निविध अग्निर्वा अनिद्रा
‘को तपती रहती है ॥ ४६ ॥

‘तथादशानादाकेन राघव परिचाल्यते ।
‘महता भूमिकम्पेन महानिच शिलोद्यय ॥ ४७ ॥
‘देवि । आपको न देख पानेका शोक भीष्मनाथजीको

उसी प्रकार विचलित कर देता है, जैसे मारी भूकम्पसे महान् परत भी हिल जाता है ॥ ४७ ॥

काननानि सुरम्याणि नदीप्रस्रवणानि च ।

शरन्न न रतिमानोति त्वामपश्यन् नृपा मजे ॥ ४८ ॥

‘राजकुमार ! आपको न देखनेके कारण रमणीय काननों, नदियों और झरनोंके पास विचरनेपर भी श्रीरामको मुल नहीं मिलता है ॥ ४८ ॥

स त्वा मनुजशालू क्षिप्र प्राप्स्यति राघव ।

समिप्रथाध्व हत्वा राघव जनकात्मजे ॥ ४९ ॥

‘जनकनन्दिनि ! पुरवर्तिष्ठ भगवान् श्रीराम राघवको उसके मित्र और बन्धु वाचबोधित मारकर शीघ्र ही आपके मिलेंगे ॥ ४९ ॥

सहितौ रामसुग्रीवाबुधवकुलता तदा ।

समय वालिन हन्तु तव शान्धेयण प्रति ॥ ५० ॥

‘उन दिनों श्रीराम और सुग्रीव वध विप्रभावसे मिले तब दोनोंने एक दूसरेकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की । श्रीरामने वालीको मारनेका और सुग्रीवने आपकी खोज करानेका वचन दिया ॥ ५० ॥

ततस्तान्या कुमापम्याधीराम्या सहोभर ।

किष्किंधा समुपागम्य वाली युद्धे निपातित ॥ ५१ ॥

‘इसके बाद उन दोनों वीर राजकुमारोंने किष्किंधामें आकर वानरराज वालीको युद्धमें मार गिराया ॥ ५१ ॥

ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे ।

सथसहरिसङ्घाना सुग्रीयमकरोत् पतिम् ॥ ५२ ॥

‘युद्धमें वेगपूर्वक वालीको मारकर श्रीरामने सुग्रीवको समस्त भाइयों और वानरोंका राजा बना दिया ॥ ५२ ॥

रामसुग्रीवयोरैक्य देवेष्व समजायत ।

हनुमन्त च मा विद्धि तयोद्धतमुपागतम् ॥ ५३ ॥

‘देवि ! श्रीराम और सुग्रीवमें इस प्रकार मित्रता हुई है । मैं उन दोनोंका दूत बनकर यहाँ आया हूँ । आप मुझे हनुमान् समझें ॥ ५३ ॥

स्य राज्य प्राप्य सुग्रीय स्वानानीय महाकपीन् ।

त्वदर्थं प्रेषयामास दितो दश महाबलान् ॥ ५४ ॥

‘अपना राज्य पानेके अनन्तर सुग्रीवने अपने आभयमें रहनेवाले बड़े-बड़े बलवान् वानरोंको बुलाया और उन्हें आपकी सौनजे लिये दत्तों दियाओंमें भेजा ॥ ५४ ॥

आदिष्ट वानरेष्ट्रेण सुग्रीवेण महौजस ।

अद्रिराजप्रताकाशा सर्वत प्रस्थिता महौम् ॥ ५५ ॥

‘वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा पाकर गिरिजाके समान विशालकाय महाबली वानर शृष्ठीपर वध और वन दिये ॥ तबस्ते भागमाणा ये सुग्रीववचनमातुरा ।

चरन्ति यमुधा वृक्षा घयमन्ये च वानरा ॥ ५६ ॥

‘सुग्रीवकी आज्ञासे भयभीत हो हम तथा अन्य वानर

आपकी खोज करते हुए समान भ्रमणदलमें विचर रहे हैं ॥

अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान् वालिसुनुमहाबल ।

प्रस्थित कपिशालूक्षिभागवत्सवृत् ॥ ५७ ॥

‘वालीके शोमाशाली पुत्र महाबली कपिभेद अगद वानरों की एक तिहाई सेना साथ लेकर आपकी खोजमें निकले थे (उन्हींके दलमें मैं भी था) ॥ ५७ ॥

तेषां नो विप्रणष्टाना विध्ये पर्वतसप्तमे ।

भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गता ॥ ५८ ॥

‘पर्वतभेद विध्यमें आकर सो बानेज कारण हमने वहाँ बड़ा कष्ट उठाया और वहाँ हमारे बहुत दिन बीत गये ॥

ते यय कायनैरप्यथात् कालस्यातिक्रमेण च ।

भयाच्च कपिराजस्य प्राणाभ्यस्यन्मुपस्थिता ॥ ५९ ॥

अब हमें कार्य-सिद्धिकी कोइ आशा नहीं रह गयी और निश्चित अवधिसे भी अधिक समय बिता देनेके कारण वानरराज सुग्रीवका भी भय था; इसलिये हम सब लोग अपने प्राण त्याग देनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ५९ ॥

विचित्य गिरिदुर्गाणि नदीप्रस्रवणानि च ।

अनासाद्य पदं देव्या प्राणास्त्यक्तुं हयस्थिता ॥ ६० ॥

‘पर्वतके दुर्गम स्थानोंमें, नदियोंके तटोंपर और झरनों के आस-पासकी सारी भूमि छान डाली तो भी वध हमें देवी सीता (आप) के स्थानका पता न चला; तब हम प्राण त्याग देनेको तैयार हो गये ॥ ६० ॥

ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वय प्रायमुपासहे ।

दृष्ट्वा प्रायोपविष्टाश्च सर्षान् वानरपुङ्गवान् ॥ ६१ ॥

मृश शोकार्णवे मग्न पर्यदेवपदङ्गद ।

‘मरणान्त उपवासका निश्चय करके हम सब के सब उस पर्वतके शिखरपर बैठ गये । उस समय समस्त वानर शिरोमणियोंको प्राय त्याग देनेके लिये बैठे देख कुमार

अङ्गद अत्यन्त शोकसे समुद्रमें डूब गये और विग्न करने लगे ॥ ६१ ॥

तव मादा च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम् ॥ ६२ ॥

प्रायोपवेशमस्माद्य मरणं च जटायुष ।

‘विदेहनन्दिनि ! आपका पता न लगने, वालिक मारे जाने, हमलोगोंके मरणान्त उपवास करने तथा जटायुके मरनेकी बातपर विचार करके कुमार अङ्गदको बड़ा दुःख हुआ था ॥ ६२ ॥

तेषां न स्वामिसंदेशाप्रिपशानां समूपताम् ॥ ६३ ॥

कार्यहेतोरीहायात शकुनिर्वायान् महान् ।

शुभराजस्य सोदर्य सम्पातिनाम गृधराट् ॥ ६४ ॥

‘स्वामीक आज्ञापालनमें निपट शोकर हम मरना ही चाहते थे कि देववध हमारा कार्य सिद्ध करनेके लिये गृधराज जटायुके बड़े भाई सम्पाति, जो स्वयं भी गीर्वाण राजा और

महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३ ॥

महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३ ॥

महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३ ॥

महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३ ॥

महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३ ॥

महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३ ॥

श्रुत्वा भ्रातृयथ कोपादिद् यचनमग्रवीत् ।
यवीयान् केन मे भ्राता हत व च निपातित ॥ ६५ ॥
एतद्वाक्यानुमिच्छामि भवद्विधानरोत्तमा ।

‘हमारे मुँहसे अपने भाद्वे कचरी चचा सुनकर वे
कुपित हो उठे और बोल—‘घानरशिरोमणि। यताओ,
मेरे छोटे भाद्व जगमुका कच किछने किया है । वह कहीं
मारा गया है । यह सब श्रुतान्त में तुमलोगोंसे सुनना चाहता
हूँ ॥ ६५ ॥

अद्भुतोऽकथयत् तस्य जनस्थाने महद्बधम् ॥ ६६ ॥
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः ।

‘एव अगदने जनस्थान में आपकी रक्षा के उद्देश्यसे जूझते
समय जटापुत्र। उस भयानक रूपधारी राक्षसके द्वारा जो
महान् बध किया गया था, वह सब प्रमग ज्यों कान्तों कह
सुनाया ॥ ६६ ॥

जटायोस्तु यथ श्रुत्वा दुःप्रित सोऽरुणामग्न ॥ ६७ ॥
त्वामाह स वरारोहे घस तौ राघणाल्ये ।

‘जगमुके कचका श्रुत्वा त सुनकर अरुणपुत्र सम्पातिकी
बड़ा दुःख हुआ । वरारोह । उ हौन ही हमें बताया कि
आप राघवके साथे निवास कर रही हैं ॥ ६७ ॥

तस्य तद् यचन श्रुत्वासम्प्राप्ते प्रीतियधनम् ॥ ६८ ॥
अद्भुतमुखा सर्वे ततः प्रस्थापिता घषम् ।

विध्यादुत्थाय सम्प्राप्ताः सागरस्या तमुचामम ॥ ६९ ॥
त्वद्दर्शनं वृत्तोत्साहा हृष्टा पुण पुषङ्गमाः ।

अद्भुतमुखा सर्वे घेलोपा तमुपागताः ॥ ७० ॥

‘सम्पातिका यह कचन यान्तोंके लिये बड़ा श्यवर्षक
था । उसे सुनकर उ हींके भेजनेसे अद्भुद आदि हम सभी
बानर आपके दशनक। आग्रासे उरगदित हो विच्यषवतले
उठकर समुद्रके उचमतपर आये । इस प्रकार अद्भुद आदि
सभी हृष्ट पुष्ट यानर समुद्रके किनारे आ पहुँच ॥ ६८-७० ॥

चिन्ता जग्मुः पुनर्भीमा त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः ।
अथाह हरिसैयस्य सागर इदय सीदतः ॥ ७१ ॥
व्यवधूय भय तीम योजनाना शत प्लुतः ।

‘आपके दशनके लिये उत्सुक होनेपर भी सामन अपार
समुद्रकी देलकर सब बानर फिर भयानक चिन्तामें पड़ गये ।
समुद्रकी देलकर यानर-सेना कष्टमें पड़ गयी है, यह जानकर
मैं उन सबके तीम भयको दूर करता हुआ सौ योजन समुद्र
को लँघक यहाँ आ गया ॥ ७१ ॥

लङ्का चापि मया रात्री प्रविष्टा राक्षसाकुला ॥ ७२ ॥
राघणक्ष मया हृष्टस्त्व च शोकनिपीडिता ।

‘उधगोंसे भरी हुई लङ्कामें मैंने रातमें ही प्रवेश किया
है । यहाँ आकर राक्षसको देला है और शोकसे पीडित हुई
आपका भी दर्शन किया है ॥ ७२ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यात यथावृत्तमनिदिते ॥ ७३ ॥

अभिभाषस्य मा देवि वृत्तो दाशरथेरहम् ।

‘स्तीशिरामणे । यह सारा वृत्ता तमैंने ठीक-ठीक आपके
सामने रखा है । देवि । मैं दशरथनन्दन श्रीरामका दूत हूँ,
अतः आप मुझसे बात कीजिये ॥ ७३ ॥

तमा रामवृत्तोद्योग त्वनिमित्तमिदु।गतम् ॥ ७४ ॥
सुप्रीरसचिच देवि शुद्धस्य पयनात्मजम् ।

‘मैंने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये ही यह
सारा उद्योग किया है और आपके दानके निमित्त मैं यहाँ
आया हूँ । देवि । आप मुझे सुप्रीरका मन्त्री तथा वायुदेवता
का पुत्र हनुमान् समझें ॥ ७४ ॥

कुशली तव काकुलस्य सद्यशस्त्रभृता वर ॥ ७५ ॥
शुरोराधाधने युक्ती लक्ष्मण शुभलक्षण ।

तस्य वीर्यवतो देवि भर्तृस्तय हिते रतः ॥ ७६ ॥

‘देवि । आपके पतिदेव समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ
ककुलस्यकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी समुशल हैं तथा बड़ भाद्व
की सेवामें सतन रहनेवाले शुभलक्षण लक्ष्मण भी प्रसन्न
हैं । वे आपके उन पराक्रमी पतिदेवके हित साधनमें ही
तत्पर रहते हैं ॥ ७५-७६ ॥

अहमेकस्तु सम्प्राप्त सुप्रीवयचनादिह ।
मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ॥ ७७ ॥
दक्षिणा दिगनुकाता त्वमार्गविचयैविणा ।

‘मैं सुप्रीवकी आलासे अकेला ही यहाँ आया हूँ ।
इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति रखता हूँ । आपका
पता लगानेकी इच्छासे मैंने बिना किसी सहायकके अकेले ही
धूम फिरकर इस दक्षिण दिशाका अनुसन्धान किया
है ॥ ७७ ॥

दिष्टथाह हरिसैयाना त्वनाशमनुशोचताम् ॥ ७८ ॥
अपनेप्यामि स्ताप तयाधिगमशासनात् ।

‘आपके विनाशकी सम्भावनासे जो निरन्तर शोकमें डूबे
रहते हैं उन यानरसैनिकोंकी यह वताकर कि आप मिल
गयीं, मैं उनका स्ताप दूर करूँगा । यह मेरे लिये बड़े
हर्षकी बात होगी ॥ ७८ ॥

दिष्टथा हि न मम स्वर्थे सागरस्येह लङ्घनम् ॥ ७९ ॥
प्राप्त्याम्यहमिदं देवि त्वद्दर्शनकृत यश ।

‘देवि । मेरा समुद्रको लँघक यहाँतक आना स्वर्थ नहीं
हुआ । सबसे पहले आपके दर्शनका यह पथ मुझे ही मिला ।
यह मेरे लिये शोभायकी बात है ॥ ७९ ॥

राघवश्च महावीर्यः क्षिप्र त्वामभिपत्स्यते ॥ ८० ॥
सपुत्रबाधय हत्वा राघण राक्षसाधिपम् ।

‘आशापाकमी श्रीरामचन्द्रजी राक्षसराज राघवको उसके
पुत्र और बन्धु-बा-बन्धोंसहित मारकर शीघ्र ही आपके आ
मिलेंगे ॥ ८० ॥

माल्यवान् नाम वैदेहि गिराणामुत्तमो गिरि ॥ ८१ ॥
ततो गच्छति गोकर्णे पर्वत केसरी हरिः ।
स च देवर्षिभिर्विष्ट पिता मम महाकपि ।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्भुसादनमुत्तरन् ॥ ८२ ॥
यस्याह हरिण क्षेत्रे जातो यातेन मैथिलि ।
हनुमानिति विषयतो लोके स्वेनैव कम्पना ॥ ८३ ॥

‘विदेहनदिनि । पर्वतोंमें माल्यवान् नामस प्रसिद्ध एक उत्तम पर्वत है । वहाँ कसरी नामक वानर निवास करते थे । एक दिन वे वहाँसे गोकर्ण पर्वतपर गये । महाकपि कसरी मेरे पिता हैं । उन्होंने समुद्रके तटपर विद्यमान उस पवित्र गोकर्ण तीर्थमें देवर्षियोंकी आज्ञासे शम्भुसादन नामक दैत्य का सहार किया था । मिथिलेशकुमारी । उन्हीं कपिराज केसरीकी छाके गर्भसे वायुदेवताके द्वारा मेरा जन्म हुआ है । मैं लोकमें अपने ही कर्मद्वारा ‘हनुमान्’ नामसे विख्यात हूँ ॥ ८१-८३ ॥

विश्वासार्य तु वैदेहि भर्तृरुक्ता मया गुणा ।
अचिरात् त्वामितो देवि राघवो नयिता ध्रुवम् ॥ ८४ ॥

‘विदेहनदिनि । आपको विश्वास दिलानेके लिये मैंने आपके स्वामीके गुणोंका वर्णन किया है । देवि । श्रीरघुनाथ जी शीघ्र ही आपको यहाँसे छे चलेगें—यह निश्चित बात है’ ॥ ८४ ॥

एव विश्वासिता सीता हेतुभि शोककषिता ।
उपपन्नैरभिनान्दूत तमधिगच्छति ॥ ८५ ॥

इस प्रकार दुःखिदुःख एव विश्वसनीय कारणों तथा पहचानके रूपमें बताये गये भीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंद्वारा हनुमान्जीने शोकसे दुःखल हुई सीता को अपना विश्वास दिलाया । तब उन्होंने हनुमान्जीकी भीरामका दूत समझा ॥ ८५ ॥

हर्यार्ये भोमद्रामायणे वाक्यमीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चत्रिंश सर्ग ॥ ३५ ॥

इस प्रकार धीवत्सर्गनिर्मित अर्धरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें पैंतीसवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

पटत्रिंश सर्ग.

हनुमान्जीका सीताको मुद्रिका देना, सीताका ‘श्रीराम कब मेरा उद्धार करेंगे’ यह उत्सुक होकर पृथ्वी तथा हनुमान्जीका श्रीरामके सीताविषयक प्रेमका वर्णन करके उन्हें सान्त्वना देना

भूय एव महातेजा हनुमान् पचनात्मज ।

अग्रवीत् प्रभित धाक्य सीताप्रत्ययकारणात् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्जी सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये पुन विनययुक्त बचन बोले— ॥ १ ॥

वानरोऽह महाभागे दूतो रामस्य धीमत ।

रामनामाद्वित चेद पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

अतुल च गता हर्षे प्रहर्षेण नु जानकी ।

नेत्राभ्या चक्रपद्माभ्या मुमोचान दज जलम् ॥ ८६ ॥

उस समय जनकनन्दिनी सीताको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ । उस महान् हृदयक कारण वे कुटिल वरोनियोंवाले दोनों नेत्रोंसे आनन्दके आँसु बहाने लगीं ॥ ८६ ॥

चाप तद् चवन तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।

अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुच द्योदुराट् ॥ ८७ ॥

उस अवसरपर विशाललोचना सीताका मन हर मुख, जो लाल, सफेद और बड़-बड़े नेत्रोंसे युक्त था, राहुके ग्रहणसे युक्त हुए चन्द्रमाके समान नाभा पर रहा था ॥ ८७ ॥

हनुमन्त कपि इयत् मन्वते नापयेति सा ।

अथोराच हनुमास्तामुत्तर प्रियदर्शनाम् ॥ ८८ ॥

अब वे हनुमान्को वास्तविक वानर मानने लगीं । इसके विपरीत मायामय रूपधारी राक्षस नहीं । तदनन्तर हनुमान् जीने प्रियदर्शना सीतासे फिर कहा— ॥ ८८ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यात समाश्वसिहि मैथिलि ।

किं करोमि कथं वा ते रोचते प्रतियाम्यहम् ॥ ८९ ॥

‘मिथिलेशकुमारी ! इस प्रकार आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया । अब आप वैय चारण करें । बताइये, मैं आपकी कैसे और क्या सेवा करूँ । इस समय आपकी रुचि क्या है, जाना हो ता अब मैं लौट जाऊँ ॥

इतेऽस्तुरे सयति शम्भुसादन

कपिप्रवीरण महर्षिचोदनात् ।

ततोऽस्मि वायुप्रभवोहि मैथिलि

प्रभावतस्तत्प्रतिमञ्च वानर ॥ ९० ॥

‘महर्षियोंकी प्रेरणासे कपिवर केसरीद्वारा बुद्धिमें शम्भु सादन नामक असुरक मारे जानेपर मन पवनदेवताके द्वारा जन्म ग्रहण किया । अत मैथिलि ! मैं उन वायुदेवताके समान ही प्रभावशाली वानर हूँ’ ॥ ९० ॥

‘महाभागे ! मैं परम बुद्धिमान् भगवान् भीरामका दूत वानर हूँ । देवि । यह भीरामनामसे अद्वित मुद्रिका है, इसे छेकर देखिये ॥ २ ॥

प्रत्ययार्थे तवानीत तेन दत्त महात्मना ।

समाश्वसिहि भद्र ते ह्रीणदु राफला हासि ॥ ३ ॥

‘आपको विश्वास दिलानेके लिये ही मैं इसे देता थाया

हूँ । महात्मा श्रीरामचन्द्रबाने स्वयं यह अगूठी मेरे हाथमें दी थी । आपका कल्याण हो । अब आप धैर्य धारण करें । आपको जो कुछ लक्ष्मी फल मिल रहा था, यह अब समाप्त हो चका है ॥ ३ ॥

गुह्यग्या प्रेममाणा सा भर्तुं करविभूषितम् ।

भर्तारमिव सम्प्राप्त जानकी मुदिताभवत् ॥ ४ ॥

पतिके हाथको गुरोभिन्त करनेवाली उस मुद्रिकाको लेकर सीताजी उसे ध्यानेसे देखने लगी । उस समय जानकीजीको इतनी प्रसन्नता हुई, मानो स्वयं इनके पतिद्वय ही उन्हें मिल गये हों ॥ ४ ॥

चाप तद् यद्न तस्यास्ताम्रशुभ्रायतेक्षणम् ।

यभूव हर्षोदय च राहुमुख ह्योडुराट् ॥ ५ ॥

उनका लाल, सफेद और विशाल नेत्रोंसे मुख मनोहर मुख हृदये लिल उठा, मानो चन्द्रमा राहुके माथेसे भुज हो गया हो ॥ ५ ॥

तत सा क्षीमती बाला भर्तु सदेशदक्षिता ।

परितुष्टा प्रिय हृत्वा प्रशशास महाकपिम् ॥ ६ ॥

वे लज्जाली विदेशवाला प्रियतमका वदेश पाकर बहुत प्रसन्न हुई । उनके मनको बड़ा सतोष हुआ । वे महाकपि हनुमान्जीका आदर करके उनकी प्रशंसा करने लगीं — ॥ ६ ॥

यिका तस्य समर्थम्य प्राक्षस्त्य धानरोक्षम् ।

येनेद् राक्षसपद् त्ययैकेन प्रार्थितम् ॥ ७ ॥

‘वानरश्रेष्ठ ! तुम यदि पराक्रमी, शक्तिशाली और बुद्धिमान् हो क्योंकि तुमने अबेक ही इस राक्षसपुरीको पददलित कर दिया है ॥ ७ ॥

दातयोजनविस्तीर्ण सागरो मकरालय ।

विजमन्मगधनायेन क्षमना गोपदीहृतः ॥ ८ ॥

‘तुम अपने पराक्रमके कारण प्रजलाके योग्य हो, क्योंकि तुमने मगर आदि ज वृक्षोंमें भरे हुए नौ योजन विस्तारवाला महासागरको लौंघते समय उसे गायत्री खुरीके बराबर क्षमता है । इसलिये प्रजलाके पात्र हो ॥ ८ ॥

नहि श्या प्राहृत मये धानर वानरपथ ।

यस्य ते नास्ति सप्राप्तो रावणावपि सम्भ्रमः ॥ ९ ॥

‘वानरशिरोमणे ! मैं तुम्हें कोई साधारण वानर नहीं मानती हूँ, क्योंकि तुम्हारे मनमें रावण—जैस राक्षस भी न तो भय होता है और न धक्काहट् ही ॥ ९ ॥

नहते च कपिध्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् ।

यद्यपि प्रेरितस्तेन रामेण विदिता मना ॥ १० ॥

‘कपिध्रेष्ठ ! यदि तुम्हें आमशान्ति मगवान् श्रीरामने प्रेषा है तो तुम अवश्य इस योग्य हो कि मैं तुमसे बातचीत करूँ ॥ १० ॥

प्रेययिष्यति पुर्ध्वो रामो नक्षपरीक्षितम् ।

पराक्रममित्राय मत्सकाश विदोषत ॥ ११ ॥

‘पुर्ध्वो यीर श्रीरामचन्द्रजी विशेषतः मर निकट ऐसे किसी पुरुषका नहीं भेजेंगे विधेय पात्रमका उद्देश जान न हो तथा जिसके नीलसमावर्ण उदोंने परीक्षा न कर ली हो ॥ ११ ॥

दिष्टया च कुशली रामो धमाराम सत्यमगर ।

लक्ष्मणश्च महातजा सुमित्रानन्दधन ॥ १२ ॥

‘सत्यप्रतिष्ठा एवं चर्मात्मा मगवान् श्रीराम सज्जुगल हैं तथा सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाला महातेजस्वी लक्ष्मण भी स्वयं एवं सुशील हैं, यह जानकर मुझे बड़ा हृदय हुआ है और यह पुत्र स्वाद भरे लिये होमायका सूचक है ॥ १२ ॥

कुशली यदि काकुत्स्थ किं न सागरमेवलात् ।

महर् दहति कोपन युगान्ताग्निरिवोद्यत ॥ १३ ॥

‘यदि ककुत्स्थकुटुम्भूय श्रीराम सज्जुगल हैं तो वप्रक कालमें उठ हुए प्रलयकर अग्निक समान कुपित हो समुद्र पिरि हुई सभी पृथ्वीको दण्ड क्यों नहीं कर देते हैं ॥ १३ ॥

अथवा शक्तिमती तौ सुराणामपि निग्रहे ।

ममेव तु न दुःखानामस्ति मये विपर्यय ॥ १४ ॥

‘अथवा वे दोनों भाई देवताओंको भी दण्ड देने शक्ति रखते हैं (ता भी अशक्त जो चुप बैठे हैं इस उनका नहीं भय ही मायका दाप है) । मैं समझती हूँ (अभी मेरे ही दुःखोंका अन्त नहीं आया है ॥ १४ ॥

कश्चिन्न व्यथते रामः कश्चिन्न परितप्यते ।

उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुढ्योत्तम ॥ १५ ॥

‘अच्छा, यदि तो यत्नाओं, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके मनमें कोई व्यथा ता नहीं है । वे उत्तम तो नहीं हाते । उां आगे जो कुछ करना है, उसे वे करत हैं या नहीं ॥ १५ ॥

कश्चिन्न दीनः सम्भ्रात कार्येषु च न मुह्यति ।

कश्चित् पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुत ॥ १६ ॥

‘उहें किसी प्रकारकी दीनता या धक्काहट् हो नहीं है । वे काम करते करते मोहके बशीभूत तो नहीं हो जाते । क्या राजकुमार श्रीराम पुरुषोचित कार्य (पुरुषार्थ) करते हैं ॥ १६ ॥

त्रिविध त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते ।

विजिगीषुः सुहृत् कश्चिमित्रेषु च परतपः ॥ १७ ॥

‘क्या शत्रुओंको स्थाप देनेवाले श्रीराम मित्रोंके प्रति मित्रभाव रखकर शांति और दान रूप दो उपायोंका ही अवलम्बन करते हैं । तथा शत्रुओंके प्रति उहें भीतनेकी इच्छा रखकर दान, भेद और दण्ड—इन तीन प्रकारके उपायोंका ही आशय लते हैं ॥ १७ ॥

कश्चिन्मित्राणि सभतेऽमित्रैश्चाप्यभिगम्यते ।

कश्चित् कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥ १८ ॥

‘क्या श्रीराम स्वयं प्रयत्नपुरुष मित्रोंका संग्रह करत

हैं ! क्या उनके शत्रु भी शरणागत होकर अपनी रक्षाके लिये उनके पास आते हैं ! क्या उन्होंने मित्रोंका उपकार करके उन्हें अपने लिये कल्याणकारी बना लिया है ! क्या वे कभी अपने मित्रोंसे भी उपहृत या पुरस्कृत होते हैं ? ॥ १८ ॥

कश्चिद्वाशस्ति देवानां प्रसादं पार्ष्णिधात्मज ।
कश्चित् पुण्यकारं च देव च प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥

‘क्या राजकुमार भाराम कभी देवताओंका भी कृपा प्रसाद चाहते हैं—उनकी कृपाके लिये प्रार्थना करते हैं ?
क्या वे पुण्यार्थ और देव दोनोंका आश्रय लेते हैं ? ॥ १९ ॥
कश्चित् विगतस्नेहो विशास्त्रान्मपि राघव ।

कश्चिन्मा न्यसनादस्मा मोक्षयिष्यति राघवः ॥ २० ॥

‘हुमाग्यवश मैं उनसे दूर हो गयी हूँ । इस कारण श्रीरघुनाथजी मुझपर स्नेहहीन तो नहीं हो गये हैं ? क्या वे मुझे कभी इस सकलसे छुड़ावेंगे ॥ २० ॥

सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनुचितः ।

तुल्यमुत्तरमासाद्य कश्चिद् रामो न सीवति ॥ २१ ॥

‘वे सदा सुख भोगके ही योग्य हैं, तुल्य भोगनेके योग्य कदापि नहीं हैं परतु इन दिनों तुल्य उत्तुल्य उठावनेके कारण भीषम अधिक खिन्न और शिथिल तो नहीं हो गये हैं ? ॥ २१ ॥

कौस्तुभ्यामास्तथा कश्चित् सुमित्रायास्तथैव च ।

अभीक्ष्णं भ्रूयते कश्चित् कुशलं भरतस्य च ॥ २२ ॥

‘क्या उन्हें माता कौस्तुभ्या, सुमित्रा तथा भरतका कुशल-समाचार बराबर मिलता रहता है ? ॥ २२ ॥

मन्त्रिमित्तेन मानार्हं कश्चिच्छोकेन राघव ।

कश्चिन्नायमना राम कश्चिन्मा तारयिष्यति ॥ २३ ॥

‘क्या सम्माननीय श्रीरघुनाथजी मेरे लिये होनेवाले शोकसे अधिक स्वतः हैं ? वे मेरी ओरसे अयमनस्क तो नहीं हो गये हैं ? क्या भीराम मुझे इस सकलसे उबारेंगे ? ॥ २३ ॥

कश्चिद्दक्षोर्दिणो भीमा भरतो भ्रातृवत्सल ।

ध्वजिनीं मन्त्रिमिगुतां प्रपयिष्यति मत्कृते ॥ २४ ॥

‘क्या भाइवर अतुराम रखनेवाले भरतजी मेरे उद्धारके लिये मन्त्रियोंद्वारा मुद्रित भयंकर अशौहिणी सेना भेजेंगे ? ॥ २४ ॥

यानराधिपतिं धीमान् सुग्रीवं कश्चिदेप्सति ।

महृते हरिभिर्वारिर्धृतो दत्तनखायुधैः ॥ २५ ॥

‘क्या भीमान् वानराणां सुग्रीव द्यौत और नखोंसे प्रसार करनेवाले वीर वानरोंको साथ ले मुझे छुड़ानेके लिये यशोवत आनेका कष्ट करेंगे ? ॥ २५ ॥

कश्चिद्वा लक्ष्मणः शूरो सुमित्रानन्दधन ।

अश्वविच्छरजालेन राक्षसान् विधमिष्यति ॥ २६ ॥

‘क्या सुमित्राका आनन्द बदनेवाल शूवीर लक्ष्मण, जो

अनेक व्यष्टोंके शता हैं, अपने बाणोंकी वर्षासे रानलोंका संहार करेंगे ? ॥ २६ ॥

रौद्रेण कश्चिद्रूपेण रामेण निहतं रणे ।

द्रव्याम्यल्पेन कालेन राघवं ससुहृज्जनम् ॥ २७ ॥

‘क्या मैं राघवको उसके वधु-नाथवोंसहित थोड़े ही दिनोंमें श्रीरघुनाथजीके द्वारा युद्धमें मयकर अल्प शत्रुसे माग गया देखूंगी ? ॥ २७ ॥

कश्चिन्न तलेमसमानवर्णं

तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।

मया विना श्रुप्यति शोकदीनं

जलभूये पद्मविवातपेन ॥ २८ ॥

‘जैसे पानी सुख जानेपर धूपसे कमल सूख जाता है उसी प्रकार मेरे विना शोकसे दुखी हुआ भीरामवा वह सुवर्णके समान कान्तिमान् और कमलके सदृश सुगन्धित सुल सुख तो नहीं गया है ? ॥ २८ ॥

धर्मोपदेशात् त्यजत स्वराज्यं

मा चाप्यरण्यं नयत पशून् ।

नासीद् यथा यक्ष्यत भीर्न शोकं

कश्चित् स धैर्यं हृदये करोति ॥ २९ ॥

‘धर्मपालनके उद्देश्यसे अपने राज्यका त्याग करते और मुझे वैदल ही बनमें लाते समय जिन्हें तनिक भी भय और शोक नहीं हुआ, वे श्रीरघुनाथजी इस सकलके समय हृदयमें धैर्य तो चारण करते हैं न ? ॥ २९ ॥

न चास्य माता न पिता न चान्य

स्नेहाद् विशिष्टोऽस्ति मया समोषा ।

तायद्वयह दूतं जिजीविषेय

याधत् प्रवृत्तिं शृणुया प्रियस्य ॥ ३० ॥

‘दूत ! उनके माता पिता तथा अन्य कोई सम्बन्धी भी ऐसे नहीं हैं, जिन्हें उनका स्नेह मुझसे अधिक अथवा मेरे बराबर भी मिठा हो । मैं तो तभीतक जीवित रहना चाहती हूँ, जबतक यहाँ आनेके सम्बन्धमें अपने प्रियतमकी प्रवृत्ति सुन रही हूँ ? ॥ ३० ॥

इतीथ देवी वचनं महार्थं

त वानरेन्द्रं मधुराधमुक्त्वा ।

भोतु पुनस्तस्य यत्रोऽभिराम

रामार्थयुक्तं विरराम रामा ॥ ३१ ॥

देवी सीता वानरश्रेष्ठ हनुमान्के प्रति इस प्रकार महान् अर्थसे युक्त मधुर वचन कहकर भीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी मनोहर बाणी पुन सुननेके लिये चुप हो गयीं ॥ ३१ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मादत्तिर्भामविक्षम ।

शिरस्यञ्जलिमाधाय धाम्यमुत्तरमप्रदीत् ॥ ३२ ॥

सीताजीका वचन सुनकर भयंकर पराक्रमी पवनकुमार

इनुमान मक्ताकर अञ्जलि बाँधे उद्धे इव प्रकार उत्तर देने लगे—॥ ३२ ॥

न त्वामिहस्या जानीते रामः कमललोचन ।

तेन त्या नानयत्यागु शचीभिष पुरंदर ॥ ३३ ॥

‘देवि । कमलनयन भगवान् भीरुगणको यह पता ही नहीं है कि आप लङ्का में रह रही हैं । इसीलिये जैसे इन्द्र दानवों के यहाँसे शचीको उठा ले गये, उठ प्रताप वे भीम यहाँसे आपको नहीं पकड़ रहे हैं ॥ ३२ ॥

श्रुत्वैव च घघो महा क्षिप्रमेव्यति राघवः ।

चमू प्रकर्षन् मदतीं द्यूक्ष्णगणसयुताम् ॥ ३४ ॥

‘जब मैं यहाँसे लौटकर आऊँगा, तब मेरी बात सुनते ही भीरुनायकी यानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर यहाँसे चल दूँगे ॥ ३४ ॥

विष्टम्भयित्वा घाणोघैरक्षोभ्य घरुणालयम् ।

करिष्यति पुरीलङ्काकाङ्क्षस्य शातराक्षसाम् ॥ ३५ ॥

‘कुत्खलकुलभूषण भीरुगण अपन बाण समूहोंद्वारा अक्षोभ्य महासागरको भी स्तम्भ कर उठपर सेतु बाँध कर लङ्कापुरीमें पहुँच जायेंगे और उठे राक्षसोंसे लूटी कर देंगे ॥ ३५ ॥

तत्र यद्यतरा मृत्युर्यदि देवा महासुराः ।

स्थास्यति पथि रामस्य स तानपि घमिष्यति ॥ ३६ ॥

‘उस समय भीरुगणों के मार्गमें यदि मृत्यु, देवता अथवा बड़े-बड़े असुर भी बिम्ब बनकर खड़े होंगे तो वे उन सबका भी सहार कर डालेंगे ॥ ३६ ॥

तवादर्शनजेतायै शोकेन परिपूरित ।

न शर्म लभते राम सिंहार्दित इव द्विप ॥ ३७ ॥

‘आपमें । आपको न देखने के कारण उत्पन्न हुए शोकसे इनका हृदय मरा रहता है। अतः भीरुगण सिंहसे पीड़ित हुए हाथीकी भौंति क्षणभरको भी चैन नहीं पाते हैं ॥ ३७ ॥

मन्दरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च ।

मलयेन च विध्येन मेरुणा द्दुरेण च ॥ ३८ ॥

यथा सुनयन घटगु विम्बोष्ठ चारुकुण्डलम् ।

मुख द्रक्ष्यसि रामस्य पूणवन्द्यमिवोदितम् ॥ ३९ ॥

‘देवि । मन्दर आदि पर्वत हमारे बासस्थान हैं और फल-मूल भोजन । अतः मैं मन्दराचल, मलय, विष्णु, मेरु तथा ददुर पर्वतकी ओर अपनी जीविकाके साधनफल-मूलकी शीघ्रता साकार कहता हूँ कि आप भीम ही भीरुगणका नवोदित पूर्ण चन्द्रमाके समान वह मनोहर मुख देखेंगी, जो सुन्दर नेत्र, विम्बफलके समान लाललाल ओठ और सुन्दर कुण्डलोंसे अलङ्कृत एव चित्ताकर्षक है ॥ ३८ ३९ ॥

क्षिप्र द्रक्ष्यसि वैदेहि राम प्रक्षणे गिरौ ।

शतकमुमिवासीन मागपृष्ठस्य मूधनि ॥ ४० ॥

‘वैदेहि! निम्न । ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए देवराज इन्द्र समान प्रक्षयण गिरि के शिखरपर विराजमान भीरुगण आप भीम दशन करेंगी ॥ ४० ॥

न मास राघवो भुट्क्ते न चैव मधु सेधने ।

घन्य सुविहित नित्य भक्षमन्नाति पञ्चमम् ॥ ४१ ॥

‘कोई भी रघुवशी न तो मास खाता है और न मधुका ही सेवन करता है; फिर भगवान् भीरुगण इन वस्तुओंका सेवन क्यों करते ? वे सदा चार समय उपवास करके पाँचवें समय शास्त्रविरहित जगली फल मूल और नीवार आदि भोजन करते हैं ॥ ४१ ॥

नैव द्वाञ्चान्मशकान् न कीटाञ्च न सरीसृपान् ।

राघवोऽपनयेद्दृग्ग्रात् त्वद्गतेनात्तरामना ॥ ४२ ॥

‘भीरुनायकीका चित्त सदा आपमें लगा रहता है; अतः उन्हें अपन खापीरपर चढ़े हुए शौल, मच्छर, कीड़ों और छपोंकी हडानेकी भी सुविधा नहीं रहती ॥ ४२ ॥

नित्य प्यानपरो रामो नित्य शोकपरायण ।

नायश्चित्तपते किञ्चित् स न कामचरा मत् ॥ ४३ ॥

‘भीरुगण आपके प्रेमके बशीभूत हो सदा आपका ही प्यान करते और निरन्तर आपके ही विरह शोकमें डूबे रहते हैं । आपको छोड़कर दूसरी कोई बात वे सोचते ही नहीं हैं ॥

अनिद्र सतत राम सुतोऽपि च नरोत्तम ।

सीतिति मधुरा घाणो घ्याह्वरन् प्रतिबुध्यते ॥ ४४ ॥

‘नरभेद । भीरुगणको सदा आपकी चिन्ताके कारण कभी नींद नहीं आती है । यदि कभी आँख लगी भी तो ‘सीता सीता’ इस मधुर वाणीका उच्चारण करते हुए वे जल्दी ही जाग उठते हैं ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा फल वा पुष्पं वा यश्चायत् श्रीमनोहरम् ।

बहुदो हा प्रियेत्येव श्वसस्त्वामभिभाषते ॥ ४५ ॥

‘किसी फल, फूल अथवा झिरोंके मनको सुमानेवाली दूसरी वस्तुको भी जब वे देखते हैं, तब लबी सोंस लेकर बार-बार ‘हा प्रिये ! हा प्रिये !’ कहते हुए आपको पुकारने लगते हैं ॥ ४५ ॥

स देवि नित्य परितप्यमान

स्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।

धृतप्रतो राजसुतो महान्मा

सर्वैव लाभाय हृतप्रयत्न ॥ ४६ ॥

‘देवि । राघवकुमार महात्मा भीरुगण आपके लिये सदा दुखी रहते हैं; सीता-छाता कहकर आपकी ही रट लगाते हैं तथा उत्तम प्रयत्नको पालन करते हुए आपको ही प्राप्ति के प्रयत्नमें लगे हुए हैं ॥ ४६ ॥

सा रामसकीर्तनवीतशोका

रामस्य शोकेन समानशोका ।

शर-मुखेनाभुदशोपघं द्वा

निशेच वैदेहसुता बभूव ॥ ४७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चासे सीताका अपना शोक तो दूर हो गया, किंतु श्रीरामके शोककी बात सुनकर वे पुन

द्वयार्थे श्रीमद्भारमयणे वाक्सीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रेष्ठमीर्कितनिर्मित भारमयण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छठसठों सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

सीताका हनुमान्जीसे श्रीरामको शीघ्र बुलानेका आग्रह, हनुमान्जीका सीतासे अपने माथ चलनेका अनुरोध तथा सीताका अस्वीकार करना

सा सीता यच्च न भुत्वा पूणचन्द्रनिभानना ।

हनुमन्तमुवाचेद् धर्मोऽसहित वचः ॥ १ ॥

हनुमान्जीका पूर्वोक्त वचन सुनकर पूषचन्द्रभाके समान मनोहर मुखवाणी सीताने उनसे धर्म और अर्थसे युक्त बात कही— ॥ १ ॥

अमृत विपक्षस्पृक्त त्वया यानर भाषितम् ।

यच्च मापमना रामो यच्च शोकपरायण ॥ २ ॥

‘यानर । तुमने जो कहा कि श्रीरघुनाथजीका चित्त दूबरी आर नहीं जाता और वे शोकमें डूबे रहते हैं, तुम्हारा यह कथन मुझे विषमिश्रित अमृतके समान लगा है ॥ २ ॥

प्रेम्भयं या सुविस्तीर्णं व्यसने या सुदारुणे ।

रज्ज्वेन पुरुषं यद्व्या कृतान्तं परिकर्षति ॥ ३ ॥

‘कैसे बड़े भारी ऐश्वर्यमें स्थित हो अथवा अत्यन्त भयकर विषयमें पड़ा हो, बाल मनुष्यको इस तरह खींच लेता है, मानो उसे रस्सीमें बाँध रक्खा हो ॥ ३ ॥

विधिन्नमलहाय प्राणिना प्रवगोत्तम ।

सौमित्रिमा च राम च व्यसने पश्यमोहितान् ॥ ४ ॥

‘यानरशिरामने । देखने विधानकी रोकना प्राणियोंके बड़ाई बात नहीं है । उदाहरणके लिये सुमित्राकुमार लम्पणकी, मुक्तकी और श्रीरामको भी देख लो । हमलोग किस तरह वियोग दुःखसे मोहित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

शोकस्थास्य कथं पार राघवोऽधिगमिष्यति ।

पुत्रमानं परिक्रान्तो हसनौ सागरे यथा ॥ ५ ॥

‘समुद्रमें नौका नष्ट हो जानेपर अपने हाथोंसे तैरने वाले पराक्रमी पुरुषकी मोति भोगुनायकी कैसे इस शोक सागरसे पार होंगे ॥ ५ ॥

राक्षसानां यद्य दृष्टा सुदृशित्वा च रावणम् ।

लङ्कासु मथिता कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मा पति ॥ ६ ॥

‘राक्षसीका वध, रावणका संहार और लङ्कापुरीका विजय करने में पतिदेव मुझे कब देखेंगे ॥ ६ ॥

स याच्य सत्यरस्येति यादव न पूर्यते ।

अयं सत्यरसः फलस्तावदि मम जीवितम् ॥ ७ ॥

वहीके समान शोकमें निमग्न हो गयी । उस समय विदेह नन्दिनी सीताशरद्-श्रुत आनेपर मेघोंकी षण और चन्द्रमा— दोनोसे युक्त (अक्षर और प्रकाशपूर्ण) रात्रिके समान हर्ष और शोकसे युक्त प्रतीत होती थी ॥ ४७ ॥

‘तुम उनसे जाकर कहना, वे शीघ्रता करें । यह वर्ष वर्ष तक पूरा नहीं हो जाता, समीतक मेरा जीवन क्षेप है ॥ ७ ॥

यत्नेन दशमो मासो ह्यै तु शेषौ प्रवक्ष्यम ।

राघवेन वृक्षसेन सप्तमो म वृत्तो मम ॥ ८ ॥

‘यानर । यह दसवों महीना चल रहा है । अब वर्ष पूरा होनेमें दो ही मास शेष हैं । निर्दयी रावणने मेरे जीवनके लिये जो अवधि निश्चित की है, उसमें इतना ही समय बाकी रह गया है ॥ ८ ॥

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति ।

अनुनीतं प्रयत्नेन न च तत् कुर्वते मतिम् ॥ ९ ॥

‘रावणके भाई विभीषणने मुझे लौटा देनेके लिये उठते यत्नपूर्वक बड़ी अनुनय विनय की थी, किंतु वह उनकी बात नहीं मानता है ॥ ९ ॥

मम प्रतिप्रदानं हि राघवस्य न रोचते ।

राघव मार्यते सत्ये सृष्ट्यु कालवशागतम् ॥ १० ॥

‘मेरा लौगाया जाना रावणको अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह कालके अधीन हो रहा है और युद्धमें मौत उठे ही रही है ॥ १० ॥

ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे ।

तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥ ११ ॥

‘कपे । विभीषणकी ज्येष्ठ पुत्रीका नाम कला है । उसकी माताने स्वयं उठे मेरे पास भेज या । उद्दिने ये सारी बातें मुझसे कही हैं ॥ ११ ॥

अविध्यो नाम मेघाया विद्वान् राक्षसपुङ्गव ।

घृतिमाच्छिन्नीवान् वृद्धो रावणस्य सुसम्मत ॥ १२ ॥

‘अविध्य नामका एक श्रेष्ठ राक्षस है, जो बड़ा ही बुद्धिमान् विद्वान्, घोर, मुशिल, वृद्ध तथा रावणका सम्मान पात्र है ॥ १२ ॥

रामात्क्षयमनुप्राप्तं रक्षसा प्रत्यक्षोदयत् ।

न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति पचनं हितम् ॥ १३ ॥

‘उसने रावणको यह बताकर कि श्रीरामका हावसे राक्षसोंके विनाशका अवसर आ पहुँचा है, मुझे लौटा देनेके

लिये प्रेरित किया था, किंतु वह दुष्टात्मा उसके हितकारी वचनोंको भी नहीं सुनता है ॥ १३ ॥

माहासेय हरिश्चंद्र क्षिप्र मा प्राप्स्यते पति ।

अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिन् यत्नो गुणा ॥ १४ ॥

‘कपिश्रेष्ठ । मुझे तो यह आशा हो रही है कि मेरे पति

देव मुझसे शीघ्र ही आ मिलेंगे, क्योंकि मेरी अन्तरात्मा शुद्ध है और भीरुपुत्राधीन यत्नोत्तम गुण हैं ॥ १४ ॥

उत्साह पीरूप सत्तमानुशस्य वृत्तता ।

विषमव्य प्रभावश्च सन्ति यानर राघवे ॥ १५ ॥

‘यानर ! भीराम’द्वजोत्तम उत्साह, पुरुषार्थ, बल, दयालुता, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव आदि सभी गुण विद्यमान हैं ॥ १५ ॥

वतुर्दश सहस्राणि राक्षसाना जघान य ।

जनस्याने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥ १६ ॥

‘जिन्होंने जनस्थानमें अपने भाईकी सहायता लिये बिना ही चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, उनसे कौन शत्रु भयभीत न होगा ॥ १६ ॥

न स शक्यस्तुल्यितु व्यसनै पुरुषर्षभ ।

बह तस्यानुभावश्च शक्यस्यै पुलोमजा ॥ १७ ॥

‘श्रीरामचन्द्रजी पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं । वे एकदोसे तोले या विचलित किये जायें, यह वर्षाया असम्भव है । जैसे पुलोम कन्या शची इन्द्रके प्रभावकी जानती हैं, उसी तरह मैं भी रघुनाथजीकी शक्ति-सामर्थ्यकी अन्धरी तरह जानती हूँ ॥ १७ ॥

शरजालाश्रुमाक्षूरः कपे रामविधाकर ।

शत्रुरक्षोमय तोयमुपशोष नयिष्यति ॥ १८ ॥

‘कपिवर । शरवीर भगवान् भीराम सर्वके समान हैं । उनके बाणधर्म ही उनकी किरणें हैं । वे उनके द्वारा शत्रुभूत राक्षसकी बलका शीघ्र ही तोल लेंगे ॥ १८ ॥

इति सज्जहपमाना ता रामार्थे शोककर्षिताम् ।

अधुसम्पूर्णवदनामुवाच हनुमान् कपि ॥ १९ ॥

इतना कहते कहते सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली । वे भीरामचन्द्रजीके लिये शोकसे पीड़ित हो रही थीं । उस समय कपिवर हनुमान्जीने उनसे कहा—॥ १९ ॥

शुचैव च वचो मद्य क्षिप्रमेष्यति राघव ।

चमू प्रकपन् महतीं हृष्टक्ष्मणसकुलाम् ॥ २० ॥

‘देवि ! आप धैर्य धारण करें । मेरा वचन सुनते ही भीरुपुत्राधीन यानर और माटुओंकी विशाल सेना लेकर शीघ्र यहाँके लिये प्रस्थान कर दूँगे ॥ २० ॥

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षमात् ।

अस्माद् दुःखादुपास्योह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥ २१ ॥

‘अथवा मैं अभी आपको इस राक्षसबलित दुःखसे छुटकारा दिला दूँगा । वनी-बाघी देवि ! आप मेरी पीठपर बैठ जाइये ॥ २१ ॥

स्या तु पृष्ठगता कृत्वा सतरिप्यामि सागरम् ।

शक्तिरस्ति हि मे घोडुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥ २२ ॥

‘आपको पीठपर बैठाकर मैं समुद्रकी लोप जाऊँगा । मुझमें राक्षसवहित सारी लङ्काको भी दो ले जानेकी शक्ति है ॥ २२ ॥

मह प्रव्रजणम्याय राघवायाच मैघिलि ।

प्रापयिष्यामि शम्भाय हृष्य हृतमिवानल ॥ २३ ॥

‘मिथिलेशकुमारी । रघुनाथजी प्रसवणगिरिपर रहते हैं ।

॥ आप ही आपको उनके पास पहुँचा दूँगा । ठीक उसी तरह, जैसे अग्निदेव हवन किये गये हरिष्कण्डे इन्द्रकी सेवामें ले जाते हैं ॥ २३ ॥

द्रव्यस्यैव वैदेहि राघव सहस्रक्षमम् ।

व्यवसायसमायुक्त विष्णु दैत्यवधे यथा ॥ २४ ॥

‘वैदेहि! देवोंके वधके लिये उसाह रत्ननेवाले भगवान् विष्णुकी भाँति राक्षसोंके संहारके लिये सचेष्ट हृष्ट भीराम और लक्ष्मणका आप आज ही दर्शन करेंगी ॥ २४ ॥

स्वहृशनदृष्टोत्साहमाधमस्य महाबलम् ।

पुरंदरमिधासीन नगराजस्य मूर्धनि ॥ २५ ॥

‘आपके दर्शनका उत्साह मनमें लिये महाबली भीराम पर्वत शिखरपर अपने आभरणमें उसी प्रकार बैठे हैं, जैसे देवराज इन्द्र गजराज ऐरावतकी पीठपर विराजमान होत हैं ॥ २५ ॥

पृष्ठमारोह मे देवि मा यिकाङ्क्षस्व शोभने ।

योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥ २६ ॥

‘देवि । आप मेरी पीठपर बैठिये । शोभने ! मेरे वधन की उपेक्षा न कीजिये । चन्द्रमासे मिलनेवाली रोहिणीकी भाँति आप भीरामचन्द्रजीके साथ मिलनेका निश्चय कीजिये ॥ कथयन्तीन शशिना सगमिष्यसि रोहिणी ।

मत्पृष्ठमधिरोह त्व वरपाश महापर्णवम् ॥ २७ ॥

‘मुझे भगवान् भीरामसे मिलना है, इतना कहते ही आप चन्द्रमासे रोहिणीकी भाँति भीरुपुत्राधीनसे मिल जायेंगी । आप मेरी पीठपर आरुढ़ होइये और आकाशमार्गसे ॥ महाबाणको पार कीजिये ॥ २७ ॥

नहि मे सम्प्रयातस्य स्वामितो नयतोऽङ्गने ।

अनुगन्तु गतिं शक्ता सर्वे लङ्कानियासिन ॥ २८ ॥

‘भक्त्याणि । मैं आपको लेकर वध यहाँके चढ़ूँगा, उस समय समूचे लङ्का-निवासी मिलकर भी मेरा पीछा नहीं कर सकते ॥ २८ ॥

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसशयम् ।

यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥ २९ ॥

‘वैदेहि! देवि ! जिन प्रकार मैं यहाँ आया हूँ, उसी तरह आपको लेकर आकाशमार्गसे चला जाऊँगा, इसमें रुकने नहीं है । आप मेरा पराक्रम देखिये ॥ २९ ॥

मैथिली तु हरिश्चेष्टाच्युत्वा वचनमद्भुतम् ।

हृषयस्वितसवाङ्गी हनुमन्तमयाग्रवीत् ॥ ३० ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्के मुखसे यह अद्भुत वचन सुनकर
मिथिलेशकुमारी सीताके खरि शरीरमें हर्ष और विस्मयके
कारण रोमाञ्च हो आया । उन्होंने हनुमानजीसे कहा— ॥ ३० ॥

हनुमन् दूरमन्वान कथं मा नेतुमिच्छसि ।

तदेष खलु ते मये कथित्व हरियूथप ॥ ३१ ॥

‘वानरयूथपति हनुमान् । तुम इतने दूरके मागपर मुझे
कैसे ले चलना चाहते हो ? तुम्हारे इस दुःसाहसको मैं
बानरोचित चपलता ही समझती हूँ ॥ ३१ ॥

कथं चाल्यशरीरस्थ मामितो नेतुमिच्छसि ।

सकाशं मानवेऽस्य भर्तुर्मे प्रवर्गर्भ ॥ ३२ ॥

‘वानरशिरोमणे । तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है ।
किर तुम मुझे मेरे स्वामी महाराज भीरामके पास ले जानेकी
इच्छा कैसे करते हो ?’ ॥ ३२ ॥

सीतायास्तु वच श्रुत्वा हनुमान् मारुतारमज ।

चिन्तयामास लक्ष्मीवान् नव परिभय कृतम् ॥ ३३ ॥

सीताजीकी यह बात सुनकर शोभाशाली पवनकुमार
हनुमान्ने इसे अपने लिये नया तिरस्कार ही माना ॥ ३३ ॥

न मे जानाति सरव वा प्रभाव वासितेक्षणा ।

तस्मात् पश्यतु वैदेही यद् रूपं मम कामत ॥ ३४ ॥

वे सीचने लगे—‘कबलरे नेत्रोंवाली विदेहनन्दिनी सीता
मेरे बल और प्रभावको नहीं जानती । इसलिये आज मेरे
उस रूपको, जिसे मैं इच्छानुसार धारण कर लेता हूँ, वे
देख लें’ ॥ ३४ ॥

इति सचिन्त्य हनुमास्तदा भ्रवगसत्तमः ।

दर्शयामास सीताया स्वरूपमरिमर्दनः ॥ ३५ ॥

ऐसा विचार करके शत्रुमर्दन वानरशिरोमणि हनुमान्ने
उस समय सीताको अपना स्वरूप दिखाया ॥ ३५ ॥

स तस्मात् पादपादधीमानास्तुल्य भ्रवगर्भम् ।

ततो वर्धितुमारोहे सीताप्रत्ययकारणात् ॥ ३६ ॥

वे बुद्धिमान् कथिवर उस वृक्षसे नीचे नुद पड़े और
सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये बढने लगे ॥ ३६ ॥

मेरुमन्दरसकाशो यभौ दीप्तानलप्रभः ।

अप्रतो व्यथतस्ये च सीताया वानरर्पणः ॥ ३७ ॥

बातकी शक्तिमें उनका शरीर मेरुपर्वतके समान लैंका
हो गया । वे प्रखलित अग्निके समान तेजस्वी प्रतीत होने
लगे । इस तरह विशाल रूप धारण करके वे वानरश्रेष्ठ
हनुमान् सीताजीके सामने खड़े हो गये ॥ ३७ ॥

हरि पर्यतसकाशस्तान्नयनो महाबलः ।

यज्रदन्तखो भीमो वैदेहीमिदमग्रवीत् ॥ ३८ ॥

यसम्पत् पर्वतके समान विशालकाय, गामेके समान लाल
मुख तथा वक्रके समान दाढ़ और नखवाले भयानक महाबली

वानरवीर हनुमान् विदेहनन्दिनीमें इस प्रकार बोल— ॥ ३८ ॥
सपर्यतधरोद्देशा साट्टप्राकारतोरणाम् ।

लङ्कामिमा सनाया वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥ ३९ ॥

‘देवि । मुझमें पर्वत, वन, अष्टालिका, चहारदिवारी
और नगरद्वारवहित इस लङ्कापुरीको रावणके साथ ही उठा
ले जानकी शक्ति है ॥ ३९ ॥

तदवस्थाप्यतां बुद्धिरल देवि विकाङ्क्षया ।

विशोकं कुरु वैदेहि राघव सहस्ररक्ष्मणम् ॥ ४० ॥

‘अतः आप मेरे साथ चलनेका निश्चय कर लीजिये ।
आपकी आकाङ्क्षा व्यर्थ है । देवि ! विदेहनन्दिनि ! आप मेरे
साथ चलकर रक्ष्मणवहित भीरुनायकीका शोक दूर
कीजिये’ ॥ ४० ॥

त हृष्टाचलसकाशमुवाच जनकारमजा ।

पद्मपत्रविशालाक्षी मादृतस्यौरस सुतम् ॥ ४१ ॥

वायुके ओस पुत्र हनुमानजीको पर्वतके समान विशाल
शरीर धारण किये देख प्रफुल्ल कमलदर्शक समान वड़े-वड़े
नेत्रोंवाली जनककिशोरीने उनसे कहा— ॥ ४१ ॥

तव सत्त्व यल नैव विजानामि महाकपे ।

वायोरिय गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवानुतम् ॥ ४२ ॥

‘महाकपे ! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रमको जानती
हूँ । वायुके समान तुम्हारी गति और अग्निके समान
तुम्हारा अद्भुत तेज है ॥ ४२ ॥

प्राकृतोऽयं कथं चेमा भूमिमागतुमर्हति ।

उद्धेत्प्रमेयस्य पार वानरयूथप ॥ ४३ ॥

‘वानरयूथपते ! दूसरा कोई साधारण वानर अपार
महासागरके पारकी इस भूमिमें कैसे आ सकता है ? ॥ ४३ ॥
जानामि गमने शक्तिं नयने चापि त मम ।

अवश्यं सम्प्रधायाशु कायसिद्धिरिवारमन ॥ ४४ ॥

‘मैं जानती हूँ, तुम समुद्र पार करने और मुझे ले जाने
में भी समर्थ हो, तथापि तुम्हारी तरह मुझे भी अपनी काय
सिद्धिके विषयमें अवश्य मन्वीमौति विचार कर लेना
चाहिये ॥ ४४ ॥

अमुक्तं तु कथिश्चेष्ट मया गन्तुं त्वया नृद ।

वायुवेगसंघर्गस्य वेगो मा मोहयेत् त्व ॥ ४५ ॥

‘कथिश्चेष्ट । तुम्हारे साथ मरा जाना किसी भी दृष्टिसे
उचित नहीं है क्योंकि तुम्हारा वेग वायुके वेगके समान तीव्र
है । जाते समय यह वेग मुझे मूर्छित कर सकता है ॥ ४५ ॥

अहमाकाशमासत्वा उपयुपरि सागरम् ।

प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भूयो वेगेन गच्छत ॥ ४६ ॥

‘मैं समुद्रके ऊपर ऊपर आकाशमें पहुँच जानपर अधिक
वेगसे चले हुए तुम्हारे पृष्ठभागसे नीचे गिर सकती हूँ ।
पतिता सागरे चाह तिमिनःशृङ्गाकुले ।

भयेयमानु विवशा यादसामग्रमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

‘इस तरह समुद्रमें, जो तिमि नामक बड़े-बड़े मत्स्यो,
नाको और मछलियोंसे भरा हुआ है, गिरकर पड़ने हो मैं
शीम ही जल-जन्तुओंका उत्तम आहार बन जाऊँगी ॥ ४० ॥

न च शक्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन ।
कलत्रवति सदेहस्तुयि स्यादप्यसशयम् ॥ ४८ ॥

‘इसलिये शत्रुनाशन हीर । मैं तुम्हारे साथ नहीं चल
सकूँगी । एक स्त्रीको साथ लेकर जब तुम जाने लगोगे, उस
समय राक्षसोंके तुमपर सदेह होगा, इसमें शक्य नहीं है ॥

द्वियमाणा तु मा दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमा ।
अनुगच्छेयुरादिष्टा राघवेन दुरात्मना ॥ ४९ ॥

‘युद्धे हारकर ले जायी जाती देख दुरात्मा राघवकी
आज्ञासे भयकर पराक्रमी राक्षस तुम्हारा पीछा करेंगे ॥ ४९ ॥

तैस्तव परिवृत्त शूरे शूलमुद्ररपाणिभि ।
भयेस्तव सशय प्राप्तो मया घोर कलत्रघातम् ॥ ५० ॥

‘हीर । उस समय कुछ जैसी राक्षणीय अबलाके साथ
हानेके कारण तुम हाथोंमें शूल और मुद्रर धारण करनेवाले
उन शीघ्रहाली राक्षसोंसे धिक्कर प्राणसहायकी अवस्थामें
पहुँच जाओगे ॥ ५० ॥

सायुधा यद्यप्येवमिन्द्राक्षसास्य निगयुध ।
कथं शक्यसि सयातु मा चैव परिरक्षितुम् ॥ ५१ ॥

‘आकाशमें अज राजबाणों बहुतसे राक्षस तुमपर
आक्रमण करेंगे और तुम्हारे हाथमें कोई भी यत्न न होगा ।
उस दृशमें तुम उन सबके साथ युद्ध और मरी रक्षा दोनों
कार्य कैसे कर सकोगे ? ॥ ५१ ॥

युध्यमानस्य रक्षोभिस्ततस्तै मृरकमभिः ।
प्रपद्येय हि ते पृष्ठाद् भयातां कपिसत्तम ॥ ५२ ॥

‘कविश्रेष्ठ ! उन मृरकर्म राक्षसोंके साथ जब तुम युद्ध
करने लगोगे, उस समय मैं भयसे पीड़ित होकर तुम्हारी
पीठसे अवश्य ही गिर जाऊँगी ॥ ५२ ॥

अथ रक्षासि भीमानि महाति वलवति च ।
कथंचित् सांपराये त्या जयेयुः कपिसत्तम ॥ ५३ ॥

अथवा युध्यमानस्य पतेय विमुखस्तथ ते ।
पतिता च युद्धेत्वा मा नयेयु पापराक्षसा ॥ ५४ ॥

‘कविश्रेष्ठ ! यदि कहीं वे महान् बलवान् भयानक
राघव किसी तरह तुम्हें सुद्रमें जीत ॥ अथवा युद्ध करते
समय मेरी रक्षाही और तुम्हारा ध्यान न रहेसे यदि
मैं गिर गयी तो वे पापी राक्षस मुझ गिरी हुई अवलाको फिर
पकड़ ले आदेंगे ॥ ५३-५४ ॥

मा धा हरेयुस्त्वयस्ताद् विशसेयुरयापि वा ।
अनयस्यौ हि हृदयेते युद्धे जयपराजयौ ॥ ५५ ॥

‘अथवा यह भी सम्भव है कि वे निशानर युद्धे तुम्हारे
हाथसे छीन ले जावें या मेरा वध ही कर डालें क्योंकि युद्ध
में विजय और पराजयको अनिश्चित ही देखा जाता है ॥ ५५ ॥

अहं चापि विपद्येय रक्षोभिरभितजिता ।

त्यत्रयस्यो हरिमेष्ट भवेन्निष्फल एव तु ॥ ५६ ॥

‘अथवा वानरगिरीमें यदि राक्षसोंकी अधिक बल
पटुनेपर मेरे प्राण निकल गये तो फिर तुम्हारा यह सारा
प्रयत्न निष्फल ही हो जायगा ॥ ५६ ॥

कामं त्यमपि पयोतो निहन्तुं सर्वगणसत्तम ।
राघवस्य यशो दीयस्व त्वया शस्तेस्तु राक्षसे ॥ ५७ ॥

‘यद्यपि तुम भी सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार करनेमें समर्थ
हो तथापि तुम्हारे द्वारा राक्षसोंका वध हो जानेपर भी शत्रुनाश
जीके श्रयसमें याथा आयेगी (लोग यही कहेंगे कि भीराम
स्वयं कुछ भी न कर सके) ॥ ५७ ॥

अथवाऽऽदाय रक्षासि ‘यनेयु सधृते हि माम् ।
यथ ते नाभिजानीमुर्दरयो नापि राघव ॥ ५८ ॥

‘अथवा यह भी सम्भव है कि राक्षसलोग मुझ से जाकर
किसी ऐसे गुप्त स्थानमें रह दें, जहाँ न तो वानरीको मेरा
पता लग और न भी शत्रुनाशकीको हो ॥ ५८ ॥

आरम्भस्तु मर्द्योऽयं ततस्तव निरयक ।
त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ॥ ५९ ॥

‘यदि ऐसा हुआ तो मेरे लिये क्या गया तुम्हारा यह
सारा उपाग व्यर्थ हो जायगा । यदि तुम्हारे साथ भीराम
चन्द्रजी यहाँ पधारें तो उनके आनेसे बहुत बड़ा लाभ होगा ॥
मयि जीवितमायस राघवस्यामितीजस ।

भ्रातृणा च महाबाहो तव राजकुलस्य च ॥ ६० ॥

‘महाबाही ! अमृत पराक्रमी भीरुनायकीका, उनके
माइयोंका, तुम्हारा तथा वानरास्य सुप्रवीक कुलका जीवन
मुझपर ही निर्भर है ॥ ६० ॥

तौ निराशौ मर्दयं च शोकसतापकर्षितौ ।
सह स्वस्वहृतिरिस्त्यक्षयतः प्राणसम्रदम् ॥ ६१ ॥

‘शोक और सतापसे पीड़ित हुए वे दोनों माई जब मेरी
प्राप्तिकी ओरसे निराश हो जायेंगे, तब सम्पूर्ण शीशों और
वानरोंके साथ अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ ६१ ॥

भर्तुर्मम किं पुरस्कृत्य रामाद्यस्य वानर ।
नाहं स्वपटुं स्वतो ग्रासमिच्छेय वानरोत्तम ॥ ६२ ॥

‘वानरश्रेष्ठ ! (तुम्हारे साथ मैं कुछ करनेका एक
प्रधान कारण और भी है—) वानरहीर । पतिमतिकी
ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् भीरामके सिवा दूसरे किसी
पुरुषके शरीरका स्वेच्छासे स्पर्श करना नहीं चाहती ॥ ६२ ॥

यद्वा ग्रासस्पर्शौ राघवस्य गता यत्नाम् ।
अतीना किं करिष्यामि विनाया विवशा सती ॥ ६३ ॥

‘वाचनके शरीरसे जो मेरा स्पर्श हो गया है, यह तो
उसके बलात्कारके कारण हुआ है । उस समय मैं असमर्थ,
अनाथ और बेवश थी, क्या करती ॥ ६३ ॥

यदि रामो दशग्रीवमिदं हत्वा सरागभसम् ।

मामितो गृह्य गच्छेन तत् तस्य सदृश भवेत् ॥६४॥

‘यदि भीरधुनायजी यहाँ राखसौंछहित दशमुख रावण का वध करके मुझे यहाँसे ले चले तो वह उनके योग्य कार्य होगा ॥ ६४ ॥

शुनाध्व दृष्टा हि मया पराक्रमा
महात्मनस्तस्य रणायमर्दिन ।

न देवगधर्भुजङ्गराक्षसा
भवन्ति रामेण समा हि सयुगे ॥ ६५ ॥

‘मैंने युद्धमें शत्रु-जोंका मर्दन करनेवाले महात्मा भीराम के पराक्रम अनेक बार देखे और झुके हैं । देवता, गधर्व, नाग और राक्षस सब मिलकर भी संग्राममें उनकी समानता नहीं कर सकते ॥ ६५ ॥

समीक्ष्य त सयति चित्रकामुक
महायल वासचतुल्यधिकमम् ।

सलक्ष्मण को विपहेत राघव
हुताशान दीप्तमिथानिलेरितम् ॥ ६६ ॥

‘युद्धस्थलमें विचित्र धनुष धारण करनेवाला हृदयस्थ पद्मक्री महायजी भीरधुनायजी लक्ष्मणके साथ रह बायुका सहारा पाकर प्रचण्डित हुए अग्निही भौति उड़ीत हो उठते

हृत्पार्थ भीमद्रामायणे वात्सीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्रिंश सर्ग ॥ ३७ ॥

इत प्रकार श्रीवल्मीकिनिमित्त भारद्वाज्यज ऋदिकाम्यक सुन्दरकाण्डमें सतीसवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंश सर्ग

सीताजीका हनुमान्जीको पहचानके रूपमें चित्रकूट पर्वतपर घटित हुए एक काँपके प्रमगको सुनाना,

भगवान् श्रीरामको शीघ्र बुला लानेके लिये अनुरोध करना और चूड़ामणि देना

तत स कविशार्दूलन्तेन धाक्येन तोषित ।

सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्य धाक्ययिहारदः ॥ १ ॥

छीताज इह बचनसे कपिभेष्ट हनुमान्जीको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे बातचीतमें कुशल थे । उन्होंने पूर्वोक्त बातें सुनकर छीताये कहा—॥ १ ॥

युक्तरूप स्वया देवि भाषित शुभदर्शने ।

सदृश स्त्रीस्वभावस्य साध्वीना विनयस्य च ॥ २ ॥

‘देवि ! आपका कहना किन्तु ठीक और मुक्तिस्मृत है । शुभदर्शने ! आपकी यह बात नारी-स्वभाव तथा पतिव्रताओंकी विनयशीलताके अनुरूप है ॥ २ ॥

स्त्रीन्याय एव समयास्ति सागर व्यतिवर्तितम् ।

मामपिष्टाय विस्तीर्ण शतयोजममायतम् ॥ ३ ॥

‘इसमें उद्देश नहीं कि आप अबल होनेके कारण मेरी पीठपर बैठकर सौ योजन विस्तृत समुद्रज पार जानेमें समथ नहीं हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय कारण यद्य धृयीपि विनयान्विते ।

रामादन्यस्य नाहामि ससर्गमिति जानकि ॥ ४ ॥

हैं । उक्त समय उन्हें देखकर उनका वेग कौन सह सकता है ! ॥ ६६ ॥

सलक्ष्मण राघवमाजिमदन

दिशागज मत्तमिव व्यवस्थितम् ।

सदेत को यानरमुख सयुगे

युगातस्यप्रतिम शराचिपम् ॥ ६७ ॥

‘वानरशिरोमणे ! समग्रद्वेषमें अपने बाणरूपी तेषसे प्रलयकारीन सुखके समान प्रकाशित होनेवाला और मतवाले दिग्गजकी भाँति खड़े हुए रणमर्दन भीराम और लक्ष्मणका सामना कौन कर सकता है ! ॥ ६७ ॥

स मे कपिध्रेष्ठ सलक्ष्मण प्रिय

सयुधप क्षिप्रमिहापपाद्य ।

बिराय राम प्रति शोककर्शिता

कुक्ष्यमा धानरघीर हर्षिताम् ॥ ६८ ॥

‘इसलिये कपिभेष्ट ! वानरवीर ! तुम प्रयत्न करके युयपति सुग्रीव और लक्ष्मणसहित मेरे प्रियतम भीरामचन्द्रजी को शीघ्र यहाँ बुला ले आओ । मैं भीरामज लिये चिरकालसे शोकाकुल हो रही हूँ । तुम उनके शुभागमनसे मुझे हर्ष प्रदान करो ॥ ६८ ॥

पतत् ते देवि सदृश पत्न्यास्तस्य महात्मन ।

का ह्यन्या त्वामृते देवि मृयाद् वचनमोदशम् ॥ ५ ॥

‘अनकनदिनि ! आपने जो दुःख कारण बताते हुए कहा है कि मेरे लिये भीरामचन्द्रजीक सिवा दूसरे किसी पुरुषका स्वेच्छापूर्वक लय करना उचित नहीं है, यह आपके ही योग्य है । देवि ! महात्मा भीरामकी धमपत्नीके मुससे ऐसी बात निकल सकती है । आपको छाँड़कर दूसरी कौन कौ ऐसा वचन कह सकती है ॥ ४-५ ॥

अप्येत्ये चैव काकुत्स्थ सर्वे निरपदोपत ।

चेष्टित यस्त्वया देवि भाषित च समाप्रत ॥ ६ ॥

‘देवि ! मेरे सामने आपने जो-जो पवित्र चेष्टाएँ कीं और ऐसी-वैसी उत्तम बातें कही हैं, वे सब पूर्णतः भीरामचन्द्रजी मुझसे सुनंगे ॥ ६ ॥

कारणैरुद्दिष्टैर्वि रामप्रियचिवापया ।

स्नेहप्रसक्तमनसा मयेतत् समुदीरितम् ॥ ७ ॥

‘देवि ! मैंने जो आपके अपने साथ ले जानेवाला आग्रह किया, उतने बहुतसे कारण हैं । एक ता मैं भीरामचन्द्रजीका

धीम ही प्रिय करना चाहता था । अतः स्नेहपूर्ण हृदयसे ही
मैंने ऐसी बात कही है ॥ ७ ॥

लङ्काया दुष्प्रवेशात्वाद् दुस्तरत्वात् महोदधे ।
सामथ्यादात्मनश्चैव मयेतत् समुदीरितम् ॥ ८ ॥

‘दूषरा कारण यह है कि लङ्कामें प्रवेश करना सबके
लिये अत्यन्त कठिन है । तीक्ष्ण कारण है, महासागरको
पार करनेकी कठिनाई । इन सब कारणोंसे तथा अपनेमें
आपको लो जानेकी शक्ति होनेसे मैंने ऐसा प्रस्ताव किया था ॥
हृच्छामि त्वा समानेतुमद्यैव रघुनन्दिना ।
गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथा तदुदाहृतम् ॥ ९ ॥

‘मैं जानूँ ही आपको भीरुपुत्राधीन मित्रा देना
चाहता था । अतः अपने परमाचार्य गुरु श्रीरामके प्रति
स्नेह और आपसे प्रति भक्तिक कारण ही मैंने ऐसी बात कही
थी, किसी और उद्देश्यसे नहीं ॥ ९ ॥

यदि नोत्सहसे पातु मया सार्धमनिन्दिते ।
अभिज्ञान प्रयच्छत्त्वजानीयात् राघवो हि यत् ॥ १० ॥

‘किन्तु सती साध्वी देखि । यदि आपस मनमें मेरे साथ
चलनेका उदाह नहीं है तो आप अपनी कोई पहचान ही
दे दीजिये, जिससे भीरामचन्द्रजी यह जान लें कि मैंने
आपका दर्शन किया है’ ॥ १० ॥

पथमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा ।
उवाच चर्चनं मन्द याप्यप्रश्रयिताक्षरम् ॥ ११ ॥

हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर देवकन्याके समान तेजस्विनी
सीता अभुगद्गदवाणीमें चिरी चिरी इस प्रकार बोली— ॥ ११ ॥

इदं भेषमभिज्ञान भूयास्त्य तु भम प्रियम् ।
शीलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे पदे ॥ १२ ॥

तापसाभ्रमयासिन्या प्राज्यमूलफलोदके ।
तस्मिन् सिद्धाश्रिते देशे म दाकि यविद्वृत ॥ १३ ॥

तस्योपवनलण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु ।
निहत्य सलिले द्विशो ममाङ्गे समुपाविश ॥ १४ ॥

‘वानरश्रेष्ठ । हम मेरे प्रियतमसे यह उच्चम पहचान
बताना— (नाथ) चित्रकूट पर्वतसे उत्तर-पूर्वदिशा मागपर, जो
मन्दाकिनी नदीके समीप है तथा जहाँ कर्म मूल और जलकी
अधिकता है, उस सिद्धसेवित प्रदेशमें तापसाभ्रमके भीतर
जब मैं निवास करती थी, उन्हीं दिनों नाना प्रकारक फूलों
की सुगन्धसे वासित उस आश्रमके उपवनमें मलयिहार
करते आप भीगे हुए आये और मेरी गोदमें बैठ
गये ॥ १२-१४ ॥

ततो माससमायुक्तो वायस पर्यनुपह्वयत् ।
तमहं लोष्टमुचम्य वारयामि स वायसम् ॥ १५ ॥

वारयन् स च मा काकस्तत्रैव परिलीयते ।
न चाप्युपारमन्मासाह भक्षार्थी वलिभोजनः ॥ १६ ॥

‘तदनन्तर (किसी दूसरे समय) एक मासलोगुप

कीआ आकर गुहापर चोंच मारने लगा । मैंने देखा उठा
कर उसे हड़ानेकी चेष्टा की, परन्तु मुझे बार बार चोंच मार
कर वह कीआ वहीं कहीं छिप जाता था । उस बलिभोजी
कोएकसे खानेकी इच्छा थी, इतन्मिन् वह मरा मांस नोचनेसे
निवृत्त नहीं होता था ॥ १५-१६ ॥

उत्कपन्त्या च दशना हुञ्जाया मयि पक्षिणे ।
ससमाने च घसने ततो दृष्टा त्वया हाडम् ॥ १७ ॥

‘मैं उस पक्षीपर बहुत कुपित थी । अतः अपने लहंगे
का हड़तापूर्वक कचनेके लिये कटिस्थ (नारे) की खींचने
लगी । उस समय मेरा वस्त्र कुछ नीचे खिसक गया और
उसी अवसामें आपने मुझे देख लिया ॥ १७ ॥

त्वया विहसिता चाहं क्रुद्धा सलज्जिता तदा ।
मक्ष्यगृहेन कावेन दारिता त्वामुपागतः ॥ १८ ॥

‘देखकर आपने मेरी हँसी उड़ायी । इससे मैं पढ़ने लो
कुपित हुई और फिर लज्जित हो गयी । इतनेहीमें उस
मक्ष्य लोष्टपर कौएने फिर चोंच मारकर मुझे क्षत विक्षत कर
दिया और उसी अवसामें मैं आपके पास आया ॥ १८ ॥

तत धान्ताहमुत्सङ्गमासीनस्य तयागिञ्चम् ।
मुप्यतीव प्रहृष्टेन त्वयाह परित्साविता ॥ १९ ॥

‘आप वहाँ बैठे हुए थे । मैं उस कौएकी हरकतसे
तप आ गयी थी । अतः थककर आपकी गोदमें आ बैठी ।
उस समय मैं कुपित ही हो रही थी और आपने प्रसन्न
होकर मुझे खान्खाना दी ॥ १९ ॥

वाप्यपूर्णमुखी मन्द चक्षुषी परिमार्जती ।
लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥ २० ॥

‘नाथ । कौएने मुझे कुपित कर दिया था । मेरे मुख
पर आँसुओंकी धारा बह रही थी और मैं चिरी चिरी आँसु
पोंछ रही थी । आपने मेरी उस अवस्थाको लक्ष्य किया ।
परिभ्रमाच्च सुप्ता हे राघवाङ्गेऽस्म्यहं चिरम् ।
पयायेण प्रसूतश्च ममाङ्गे भरताम्रजः ॥ २१ ॥

‘हनुमान् । मैं थक जानके कारण उस दिन बहुत
देरतक भीरुपुत्राधीनकी गोदमें छोयी रही । फिर उनकी
बारी आसी और वे मरतके बड़े भारी मेरी गोदमें खिर
रखकर सो रहे ॥ २१ ॥

स तत्र पुनरवाप्य वायस समुपागमत् ।
ततः सुतप्रभुत्वा मा राघवाङ्गात् समुत्थिताम् ॥ २२ ॥

‘वायस । सहस्रागम्य विद्वदार स्तमान्तरे ॥ २२ ॥

‘इसी समय वह कीआ फिर वहाँ आया । मैं सोकर
बगनेके बाद भीरुपुत्राधीनकी गोदसे उठकर बैठी ही थी कि
उस कौएने सहवा शपटकर मेरी छातीमें चोंच मार दी ॥ २२ ॥

पुनः पुनरथोत्पत्य विद्वदार स मा भूशम् ।
तत समुत्थितो रामो युक्तः शोणितपि कुम्भः ॥ २३ ॥

‘उपन बारबार उठकर मुझे अत्यन्त घायल कर दिया ।

मेरे शरीरसे रक्तकी बूँदें झरने लगीं; इससे श्रीरामचन्द्रकी
नींद खुल गयी और वे आगकर उठ बैठे ॥ २३ ॥
स मा दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्ना स्तनयोस्तथा ।
आशीर्विप इष द्रुद्धः भवसन् घाघममभापत ॥ २४ ॥
‘मेरी छातीमें घाव हुआ देख महाबाहु श्रीराम उस
समय क्रुपित हो उठे और कुपकारसे हुए विषपर सपके
समान चोर-चोरसे सौँस लेते हुए बोले— ॥ २४ ॥
केन ते नागनासोऽरु विश्वत वै स्तनान्तरम् ।
क क्रीडति सरोरेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ २५ ॥
‘हाथीकी सूँढ़के समान जोंगोंवाली झुदरी ! किसने
तुम्हारी छातीको खत बिखत किया है ! कौन रोपसे मेरे हुए
पाँच मुखवाले सपके साथ खेल रहा है ? ॥ २५ ॥
वीक्षमाणस्ततस्त वै वायस समचैक्षत ।
नलै सरधिरैस्तौक्ष्णैर्मैवाभिमुख स्थितम् ॥ २६ ॥
‘इतना कहकर जब उन्होंने इधर उधर दृष्टि डाली, तब
उस कौएकी देखा, जो मेरी ओर ही मुँह किये बैठा था ।
उसके तीले पजे खूनसे रँग गये थे ॥ २६ ॥
पुत्र किल स शक्रस्य वायस पतता वरः ।
घरातर गत शीघ्र पवनस्य गतौ सम ॥ २७ ॥
‘वह पड़ियोंमें भेड़ कौआ इन्द्रका पुत्र था । उसकी गति
वायुके समान तीव्र थी । वह शीघ्र ही स्वर्गसे उड़कर पृथ्वीपर
आ पहुँचा था ॥ २७ ॥
ततस्तस्मिन् महाबाहुः कोपसर्वतिरक्षेण ।
वायसे कृतवान् क्षूण मति मतिमता वरः ॥ २८ ॥
‘उस समय बुद्धिमानोंमें भेड़ महाबाहु श्रीरामने नेत्र
क्रोधसे घूमने लगे । उन्होंने उस कौएको कठोर दृष्टि देनेका
विचार किया ॥ २८ ॥
॥ दर्भसस्तदाद् गृह्य ब्रह्मणोऽल्लेख योजयत् ।
स दीप्त इव कालाग्निजज्वालाभिमुखो द्विजम् ॥ २९ ॥
‘श्रीरामने कुछकी चट्टाईसे एक कुछ निकाला और
उसे ब्रह्माक्षके मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया । अभिमन्त्रित करते
ही वह कालाग्निके समान प्रचलित हो उठा । उसका लक्ष्य
वह पक्षी ही था ॥ २९ ॥
स त प्रदीप्त विश्लेष दर्भे त वायस प्रति ।
ततस्तु वायस दर्भे सोऽप्यरेऽनुजगाम ह ॥ ३० ॥
‘श्रीरघुनाथजीने वह प्रज्वलित कुछ उस कौएकी ओर
छोड़ा । फिर तो वह आकाशमें उड़का पीछा करने
लगा ॥ ३० ॥
अनुष्टुप्स्तदा काको जगाम विविधा गतिम् ।
प्राणकाम इम लोक सर्वे वै विषचार ह ॥ ३१ ॥
‘वह कौआ कई प्रकारकी उड़ानें लगाता अपने प्राण
बचानेके लिये इस सम्पूर्ण जगत्में भागता फिरा; किन्तु उस
बाणने कहीं भी उसका पीछा न छोड़ा ॥ ३१ ॥

स पित्रा च परित्यक्त सर्वैश्च परमर्षिभि ।
त्रील्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरण गत ॥ ३२ ॥
‘उसके पिता इन्द्र तथा समस्त धेध महर्षियोंने भी
उसका परित्याग कर दिया । तीनों लोकोंमें घूमकर अन्तमें
वह पुन भगवान् भीरमन्त्री ही शरणमें आया ॥ ३२ ॥
स त निपतित भूमौ शरण्य शरणागतम् ।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥ ३३ ॥
‘रघुनाथजी शरणागतवशल हैं । उनकी शरणमें आकर
जब वह पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब उन्हें उसपर दया आ गयी,
अतः वचके योग्य होनेपर भी उस कौएको उन्होंने मारा
नहीं; उवाच ॥ ३३ ॥
परिधन विधर्षं च पतमान तमघ्नीत् ।
मोघमेव न शक्य तु ग्राह्य कर्तु तदुच्यताम् ॥ ३४ ॥
‘उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी और वह उदास होकर
सामने गया था । इस अवस्थामें उसको रक्ष्य करके भगवान्
बोले—‘ब्रह्माक्षको तो व्यर्थ किया नहीं जा सकता । अतः
बताओ, इसके द्वारा तुम्हारा कौन-सा अङ्ग भङ्ग किया
जाय’ ॥ ३४ ॥
ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स स दक्षिणम् ।
दत्त्वा तु दक्षिण नेत्र प्राणेश्य परिरक्षित ॥ ३५ ॥
‘फिर उसकी सम्मतिसे अनुसार श्रीरामने उस अङ्गसे
उस कौएकी दाहिनी आँख नष्ट कर दी । इस प्रकार दायों
नेत्र देकर वह अपने प्राण बचा सका ॥ ३५ ॥
स रामाय नमस्कृत्या राजे दशरथाय च ।
विस्तृष्टस्तेन क्षीरेण प्रतिपेदे स्वमालयम् ॥ ३६ ॥
‘तदनन्तर दशरथनन्दन राजा रामको नमस्कार करके
उन वीरशिरोमणिते विदा लेकर वह अपने निवासस्थानको
चला गया ॥ ३६ ॥
मरुते काकमात्रेऽपि ब्रह्माक्ष समुदीरितम् ।
कसाद् यो माहरत् त्यच क्षमसे त मदीपते ॥ ३७ ॥
‘कपिश्रेष्ठ ! तुम मेरे स्वामीसे बाहर कहना—‘प्राण
नाथ ! पृथ्वीपते ! आपने मेरे लिये एक साधारण अपराध
करनेवाले कौएपर भी ब्रह्माक्षका प्रयोग किया था; फिर जो
आपके पावसे मुझे ॥ ३७ ॥ आया, उसको आप कैधे धमा कर
रहे हैं ? ॥ ३७ ॥
स कुरुष्य महोत्साहा वृषा मयि नरपथ ।
त्वया नाययती नाथ ह्यनाया इव दृश्यते ॥ ३८ ॥
‘नरभेष्ठ ! मेरे ऊपर भयान् उत्साहसे पूछ गया कीजिये ।
प्राणनाथ ! जो वृद्धा आपसे सनाय है, वह धीला आठ अनाथ
ही दिखायी देती है ॥ ३८ ॥
आनुशस्य परो धमस्त्वच पव मया धृतम् ।
जानामि त्वा महाधीर्यं महोत्साह महाबलम् ॥ ३९ ॥
‘दया करना सबसे बड़ा धर्म है, वह मैंने आपसे ही

मुना दे । मैं आपको अच्छी तरह जानती हूँ । आपका बल,
पराक्रम और उत्साह महान् है ॥ १९ ॥

अपारवारमशोभ्य गाम्भीर्यात् सागरोपमम् ।
भर्तार ससमुद्राया धर्म्या वासवोपमम् ॥ ४० ॥

“आपका बर्ही आर पार नहीं है—आप अभीम हैं ।
आपको कोई क्षुभ या पराजित नहीं कर सकता । आप
गम्भीरतामें समुद्रके समान हैं । समुद्रप्रपन्न सारी पृथ्वीके
स्वामी हैं तथा इन्द्रके समान तेजस्वी हैं । मैं आपन प्रभाव
को जानती हूँ ॥ ४० ॥

पथमस्त्रिंशः श्रेष्ठो बलवान् सरजवानपि ।
त्रियर्थमस्त्र रक्षतु न योजयसि राघव ॥ ४१ ॥

“पुनः इत । इस प्रकार अवबेलाओंमें श्रेष्ठ, बलवान्
और क्षत्रिजानी होते हुए भी आप राक्षसोंपर अपने अस्त्रोंका
प्रयोग क्यों नहीं करते हैं ? ॥ ४१ ॥

न नारा नापि गन्धर्वा न सुरा न यक्षणा ।
रामस्य समरे वेग शक्ताः प्रतिसमीहितुम् ॥ ४२ ॥

“पवनकुमार । नाग, गन्धर्वा, देवता और यक्षगण—
कोई भी समराङ्गणमें श्रीरामचन्द्रजीका वेग नहीं सह
सकते ॥ ४२ ॥

तस्य धीर्ययतः कश्चिद् यदास्ति मयि सन्ध्याः ।
विमर्धे न शरैस्तीक्ष्णै र्हाय नयति राक्षसान् ॥ ४३ ॥

“उन परम पराक्रमी श्रीरामके हृदयमें यदि मेरी छिमे
कुछ व्याकुलता है तो वे अपने तीक्ष्ण लावणोंके इन राक्षसोंका
संहार क्यों नहीं कर डालते ? ॥ ४३ ॥

भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परतपः ।
कस्य हेतोर्न मा वीर परिघाति महाबल ॥ ४४ ॥

“अथवा शत्रुओंको उताप देनेवाले महाबली और रक्षक
ही अपने बड़े भाईकी आज्ञा लेकर मेरा उद्धार क्यों नहीं
करते हैं ? ॥ ४४ ॥

यदि तौ पुरुषभ्यामौ धार्मिद्रसमतेजसौ ।
सुराणामपि दुर्घर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ॥ ४५ ॥

“वे दोनों पुरुषविंद वायु तथा इन्द्रके समान तेजस्वी
हैं । यदि वे देवताओंके लिये भी दुश्मन हैं तो किस छिमे मेरी
उपेक्षा करते हैं ? ॥ ४५ ॥

ममैव दुष्टत किंचिन्मददस्ति न सशयाः ।
समर्थोयपि तौ यन्मा नपेक्षेते परतपौ ॥ ४६ ॥

“मैं उद्दह मेरा ही कोई महान् पाप उदित हुआ है,
जिससे वे दोनों शत्रुघटापी वीर मेरा उद्धार करनेमें समर्थ
होते हुए भी मुझपर कृपादृष्टि नहीं कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

सैदेष्टा यच्चन ध्रुत्वा कथन साधु भाषितम् ।
अथाप्रवीणमहातेजा हनुमान हरियूथ ॥ ४७ ॥

निदेष्टुमारी धीताने औष बहावे हुए जब यह कहणा

युक्त बात कही, तब इमे मुनकर वानरयूथपति महातेजसी
हनुमान् इस प्रकार बोले— ॥ ४७ ॥

वच्छ्रेकविमुखो रामो देवि सत्येन ते श्रेपे ।
रामे दुःखाभिपन्ने तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥ ४८ ॥

“देवि । मैं सत्यकी शपथ लाकर आपसे कहता हूँ कि
श्रीरामचन्द्रजी आपसे विरह शोकमें पीड़ित हो अन्य सब
कारणों विमुक्त हो गये हैं—केवल आपका ही चिन्तन करते
रहते हैं । श्रीरामने दुःखी होनेसे लक्ष्मण भी उदा सतत
रहते हैं ॥ ४८ ॥

कथंचिद् भवती दृष्टा न कालः परिशोबितुम् ।
इमं मुहूर्ते दुःखानामनं द्रक्ष्यसि शोभने ॥ ४९ ॥

“किसी तरह आपका दर्शन हो गया । अब शोक करनेका
अवसर नहीं है । शोभने । इसी वहीसे आप अपने दुःखोंका
अन्त होता देखेंगी ॥ ४९ ॥

साधुभौ पुरुषभ्यामौ राजपुत्रौ महाबलौ ।
त्यदशनदृष्टोत्साहौ लोकान् भस्मीकरिष्यतः ॥ ५० ॥

“व दोनो पुरुषविंद राजकुमार बड़े बलवान् हैं तथा
आपको देखनेके लिये उनके मनमें विशेष उत्साह है । अतः
वे समस्त राक्षस जातोंको भस्म कर डालेंगे ॥ ५० ॥

हत्वा च समरध्वं राघव सहवाभ्वम् ।
राघवस्त्वा विशालाक्षि स्वापुरी प्रतिनेष्यति ॥ ५१ ॥

“विशाललोचने । रघुनाथजी समराङ्गणमें हूँता प्रकट
करनेवाले राघवका उसके बाबू बाबूँसहित मारकर आपको
अपनी पुरीमें ले जायेंगे ॥ ५१ ॥

श्रद्धि यद् राघवो धाच्योलक्ष्मणश्च महाबल ।
सुप्रवीणो यापि तेजस्वी हरयो वा समागता ॥ ५२ ॥

“अब भगवान् श्रीराम, महाबली लक्ष्मण, तेजस्वी
सुमीन तथा वहाँ एकत्र हुए वानरोंके प्रति आपको को कुछ
कहना हो, वह कहिये ॥ ५२ ॥

इत्युक्तवति तस्मिन् सीता पुनरथाग्रयीत् ।
कोलक्ष्ण लोकभर्तारं सुपुत्रे य मनस्विनी ॥ ५३ ॥

त ममायं सुखं पृच्छ शिरसा चाभिविवाद्य ।
हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर देवी सीताने फिर कहा—
“कश्चित् । मनस्विनी कोलक्ष्णा देवीने बिहें धर्म दिया है
तथा जो सखीयें बगलके स्वामी हैं, उन श्रीरघुनाथजीको मेरी
ओरसे मस्तक झकाकर प्रणाम करना और उनका सुख-
समाचार पृच्छना ॥ ५३ ॥

सज्जश्च सवरत्नानि प्रिया यादृश पराङ्गनाः ॥ ५४ ॥
देव्यश्च विशालाक्ष्या पृथिव्यात्पि दुर्लभम् ।

पितर मातर चैव सम्मायाभिप्रसाद्य च ॥ ५५ ॥
अनुग्रमजितो राम सुमित्रा येन सुप्रजाः ।

आनुकूल्येन धमात्मा त्यक्त्या सुखमनुसमम् ॥ ५६ ॥
अनुगच्छति काकुत्स्थ आतर पालयन् वने ।

सिंहस्कन्धो मध्यावाहुमनस्वी प्रियदर्शन ॥ ५७ ॥
 पितृवद् उर्वते रामे मातृवमा समाचरत् ॥
 द्विपमाणा तदा वीरो न तु मा वेद लक्ष्मण ॥ ५८ ॥
 वृद्धोपसेवी लक्ष्मीयान्शचो न बहुभाषिता ।
 राजपुत्रप्रियश्रेष्ठ सट्टशः श्वनुरग्न्य मे ॥ ५९ ॥
 मत्तः प्रियतरो नित्य भ्राता रामस्य लक्ष्मण ।
 नियुक्तो धुरि यस्या तु तामुद्वहति धीर्यवान् ॥ ६० ॥
 य दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत् ।
 स ममार्याय कुशलं वक्ष्यो वक्ष्यमा मम ॥ ६१ ॥
 नृदुर्नित्य शुचिदक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः ।
 यथा हि यानरश्रेष्ठ दुःस्वप्नयकरो भवेत् ॥ ६२ ॥

तत्तत्प्राप्तं विद्यालं भूमण्डलं मी जित्वा मिलना कठिन
 है ऐसे उत्तम देशर्षका, भौति भौतिके हारो, सब प्रकारक
 रत्नो तथा मनोहर सुन्दरी जियोंका भी परिचाय कर पिता
 माताको सम्मानित एवं राजी करके जो भीरुमचन्द्रजीके
 साथ यन्त्रमें चले आये, जिनके कारण मुनिजा देवी उत्तम
 शतानवाली कही जाती हैं, जिनका चित्त सदा धर्ममें लगा रहता
 है, जो सर्वोत्तम सुखको त्यागकर यन्त्रमें बड़े भाई भीरामकी
 रक्षा करते हुए सदा उनके अनुकूल चलते हैं, जिनके कंधे
 पिट्टके समान और सुहाएँ यकी-वकी हैं, जो देहनेमें प्रिय लगते
 और मनको बधमें रखते हैं, जिनका भीरुमक प्रति पिताका
 समान और मेरे प्रति माताके समान भाव तथा बढाव रहता
 है, जिन धीर लक्ष्मणको उस समय मेरे हरे जानेकी बात नहीं
 माख्म हो सकी थी, जो बड़े-भूतोंकी सेवामें लक्ष्मण रहनेगए, शोभाशाली, शक्तिमान् तथा कम बोलनेवाले हैं,
 राजकुमार भारामके प्रिय व्यक्तियोंमें जिनका सबसे ऊँचा
 स्थान है, जो मेरे शत्रुके वटख पराक्रमी हैं तथा भीरुनाथ
 बीका जिन छोट भाद लक्ष्मणके प्रति सदा मुझमें भी अधिक
 प्रेम रहता है, जो पराक्रमी वार अपने ऊपर डाले हुए
 कार्यभारको बड़ी योग्यताके साथ वहन करते हैं तथा जिन्हें
 देहतर भीरुनाथजी अपने मेरे हुए पिताको भी भूल गये
 हैं (अर्थात् जो पिताके समान भीरामके पालनमें दक्षचित्त
 रहते हैं) । उन लक्ष्मणसे भी मुझ मेरी ओरसे कुशल पूछना
 और वनभेद । मेरे कथनानुसार उनके ऐसी बातें कहना,
 जिन्हें मुनिकर नित्य कोमल, पवित्र, दक्ष तथा भीरुमक प्रिय
 वपु लक्ष्मण मेरा दुःख दूर करनेको तैयार हो जायें ॥
 त्वमस्मिन् कायनिर्वाहं प्रमाण हरियूयप ।
 राघवस्त्वत्समारम्भागमयि यत्नपरो भवेत् ॥ ६३ ॥

वानरयूपयते । अधिक क्या कहूँ ! जिस तरह यह
 काय सिद्ध हो सके, वही उपाय तुम्हें करना चाहिये । इस
 निरयमें तुम्हारी प्रमाण हो—इसका धारा भार तुम्हारे
 ही ऊपर है । तुम्हारे प्रत्याह्वन देनेसे ही भीरुनाथजी

मेरे उद्धारके लिये प्रयत्नशील हो सकते हैं ॥ ६३ ॥
 इदं न्याय्य मे नाथ शूर राम पुन पुन ।
 जावित धारयिष्यामि मास दशरथात्मज ॥ ६४ ॥
 ऊर्ध्वं मासान जीयेय सत्येनाह प्रवीमि ते ।
 'द्वम मेरे स्वामी 'शूरवीर भगवान् भीरामसे बारबार
 कहना—'दशरथनन्दन । मेरे जीवनकी अवधिके लिये जो
 मास नियत हैं, उनमेंसे जितना देय है, उतने ही समयतक
 मैं जीवन धारण करूँगी । उन अवशिष्ट दो महीनोंके बाँ में
 जीवित नहीं रह सकती । यह मैं आपसे हत्यकी शपथ स्वीकार
 कह रही हूँ ॥ ६४ ॥

राघवोपेकृता मा निरुत्या पापकर्मणा ।
 ब्रातुमहसि वीर त्व पातालादिव कौशिकीम् ॥ ६५ ॥

वीर । पापाचारी राघवने मुझे कैद कर रक्ता है ।
 अतः राक्षसियोंद्वारा शठतापूर्वक मुझे बड़ी पीड़ा दी जाती
 है । जैसे भगवान् विष्णुने इन्द्रकी लक्ष्मीका पाताले से उद्धार
 किया था, उसी प्रकार आप यहाँसे मेरा उद्धार करें ॥ ६५ ॥
 ततो यत्नगत मुक्त्या दिव्य चूडामणिं शुभम् ।
 प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥ ६६ ॥

ऐसा कहकर सीताने कपड़ेमें घँघी हुए सुन्दर दिव्य
 चूडामणिको खोलकर निकाला और 'इसे भीरामचन्द्रजीको
 दे देना' ऐसा कहकर हनुमान्जीके हाथपर रख दिया ॥
 प्रतिगृह्य ततो धीरो मणिरत्नमनुत्तमम् ।
 अहुरत्या योजयामास नरास्य प्राभवद्भुज ॥ ६७ ॥

उस परम उत्तम मणिरत्नको लेकर धीर हनुमान्जीने
 उसे अपनी जहुलीमें डाल लिया । उनकी यौह अत्यन्त
 स्तम्भ होनेपर भी उनके छेदमें न आ सकी (इससे जान
 पड़ता है कि हनुमान्जीने अपना विद्याल रूप दिलानेके
 बाद फिर स्वम्भ रूप धारण कर लिया था) ॥ ६७ ॥
 मणिरत्न कपिधर प्रतिगृह्याभिषाद्य च ।
 सीता प्रदग्निं गृह्यत्वा प्रणतः पादयत् स्थित ॥ ६८ ॥

वह मणिरत्न लेकर कपिधर हनुमान्जीने सीताको प्रणाम
 किया और उनकी प्रदक्षिणा करके व विनोदभावसे उनके
 पाद छुई हो गये ॥ ६८ ॥
 हर्षेण महता युक्तः सातादशनजेन स ।
 हृदयन गतो राम लक्ष्मण च सलक्ष्णम् ॥ ६९ ॥

सीताजीका दर्शन होनेसे उन्हें महान् हर्ष प्राप्त हुआ
 था । वे मन-ही-मन भगवान् भीराम और रामलक्ष्मणप्रभ
 लक्ष्मणका पादपूज्य गये थे । उन दोनोंका चिन्तन करने लगा था ॥
 मणियत्पुनरगृह्य त महार्हं
 जनकनृपात्मजया घृत प्रभायात् ।
 गिरिवरपथनावधूतमुक्

सुखितमना प्रतिसकाम प्रपदे ॥ ७० ॥
 राधा जनककी पुत्री सीताने अपन विरह प्रभावसे जिसे

लियाकर धारण कर रक्ता था। उस बहुमूल्य मणि-रत्नको प्रथम वायुके वेगसे कम्पित होकर पुनः उसके प्रभावसे मुक्त होकर हनुमान्जी मन ही मन उस पुरुषके समान सुखी एवं हो गया हो। तदनन्तर उन्होंने यहाँसे छोट आनेकी महत्त हुए, जो किसी श्रेष्ठ पर्वतके ऊपरी भागसे उठी हुई तैयारी की ॥ ७० ॥

इत्थार्थे श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टाश्रित सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अष्टाश्रित सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

चूड़ामणि लेकर जाते हुए हनुमान्जीसे सीताका श्रीराम आदिको उत्साहित करनेके लिये कहना तथा समुद्र-तटणके निषयमें शङ्कित हुई सीताको वानरोंका पराक्रम बताकर हनुमान्जीका आश्वासन देना

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाग्रवीत् ।

अभिज्ञानमभिज्ञातमेतत् रामस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥

मणि देनेके पश्चात् सीता हनुमान्जीमें बोली—मेरे इस चिह्नकी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भलीभाँति पहचानते हैं ॥

मणिं दृष्ट्वा तु रामो मे प्रयाणाः सस्मरिष्यति ।

वीरो जन्तव्या मम च रामो दशरथस्य च ॥ २ ॥

‘इस मणिका देवकर वीर श्रीराम निश्चय ही तीन व्यक्तियोंका—मेरी माताका, मेरा तथा महाराज दशरथका एक साथ ही स्मरण करेंगे ॥ २ ॥

स भूयस्व समुत्साहचोदितो हरिसत्तम ।

अस्मिन् कार्यसमुत्साहे प्रव्रिन्तय यदुत्तरम् ॥ ३ ॥

‘कसिभेद ! तुम पुनः विशेष उत्साहसे प्रेरित हो इस कार्यकी विदिके लिये जो भावी कल्पमें हो, उसे सोचो ॥ ३ ॥

त्वमस्मिन् कार्यनियोगे प्रमाण हरिसत्तम ।

तस्य विन्तय यो यत्नो बुधक्षयकरो भवेत् ॥ ४ ॥

‘वानरघिरोमणे ! इस कार्यको निभानेमें तुम्हीं प्रमाण हो—तुमपर ही सारा भार है। तुम इसके लिये कोई ऐसा उपाय सोचो, जो मेरे दुःखका निवारण करनेवाला हो ॥

हनूमन् यत्नमास्थाय बुधक्षयकरो भव ।

स तथेति प्रतिप्राप्य मातुर्भीमविषमम् ॥ ५ ॥

शिरस्ताऽऽप्यध वैदेहीं गमनायोपपन्नम् ।

‘हनूमन् ! तुम विशेष प्रयत्न करनेसे मेरा दुःख दूर करनेमें सहायक बनो ।’ तब ‘बहुत अच्छा’ कहकर सीताजी की आज्ञाके अनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करके वे भयकर पराक्रमी पवनकुमार विदेहनादिनीके चरणोंमें मल्लक छुका कर बहोते आनेको तैयार हुए ॥ ५ ॥

ज्ञात्वा सप्रस्थित देवी धामर पयनात्मजम् ॥ ६ ॥

वाग्पद्मद्रव्या यावा मेथिली वाक्पयमग्रवीत् ।

पयनपुत्र वानरवीर हनुमान्को यहाँसे छोटनेके लिये उद्यत जान लियेछकुमारकी गला भर माया और वे अग्र गद्गद वाणीमें बोली— ॥ ६ ॥

हनूमन् कुशलं ब्रूया सहितो रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥

सुमीय च सहस्रमाय सवान् वृद्धाश्च वानराः ।

ब्रूयात्स्य वानरश्रेष्ठ कुशलं धर्मसहितम् ॥ ८ ॥

‘हनूमन् ! तुम श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको एक साथ ही मेरा कुशल-समाचार बताना और उनका कुशल मङ्गल पूछना । वानरश्रेष्ठ ! फिर मन्त्रियोलहित सुमीय तथा अन्य सब बड़े-बड़े वानरोंसे धर्मयुक्त कुशल समाचार कहना और पूछना ॥ ७ ८ ॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघव ।

अस्माद्दुःखामुत्तरोधात्त्य समाधातुमर्हसि ॥ ९ ॥

‘महाबाहु श्रीरघुनाथजी जिस प्रकार इस दुःखके समुद्रसे मेरा उद्धार करें, वैसा ही वानर श्रेष्ठ करना चाहिये ॥ जीवर्तमा यथा राम सम्भावयति कीर्तिमान् ।

तत् त्वया हनुमन् वाच्यं वाचा धर्ममधाम्नि ॥ १० ॥

‘हनूमन् ! बरखी रघुनाथजी जिस प्रकार मेरे जात-की यहाँ आकर मुझसे मिलें—मुझे सँभालें वेही ही बातें तुम उनसे कहो और ऐसा करके वाणीक द्वारा धर्माचरणका फल प्राप्त करो ॥ १० ॥

नित्यमुत्साहयुक्तस्य वाचं धृत्या मयेरिता ।

परिष्यते दशरथे पौत्रप मद्वातये ॥ ११ ॥

‘ज्यों तो दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम सदा ही उत्साह से मेरे रहते हैं, तथापि मरी कही हुई बातें सुनकर मेरी प्राणिके लिये उनका पुरुषार्थ और भी बढ़ेगा ॥ ११ ॥

मत्संदेशयुता वाचसंयुतः श्रुत्यैव राघव ।

पराक्रमे मतिं वीरो विधिवत् सविधास्यति ॥ १२ ॥

‘तुम्हारे मुखसे मेरे संदेशसे युक्त बातें सुनकर ही वीर रघुनाथजी पराक्रम करनेमें विधिवत् अपना मन लगायेंगे ॥ सीतायास्तद्वत् धृत्या हनूमान् मातुर्तामजः ।

शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्पयमुत्तरमग्रवीत् ॥ १३ ॥

सीताकी यह बात सुनकर पवनकुमार हनुमान् माथेपर अञ्जलि बाँधकर विनम्रपूर्वक उनकी बातका उत्तर दिया— ॥ १३ ॥

क्षिप्रमेत्यात काकुत्स्थो हयैक्षप्रवरैषुत ।
 यस्ते युधि विजित्यारिण्डशोकं द्यपनयिष्यति ॥ १४ ॥
 'रवि । जो युद्धमें वारे द्युओंको जीतकर आपके शोक का निवारण करेंगे, वे ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीराम भद्र वानरों और भालुओंके साथ शीघ्र हीयहाँ पधारेंगे ॥ १४ ॥
 नहि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुतेषु वा ।
 यस्तस्य धमतो धाणान् स्यान्मुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १५ ॥
 'मैं मनुष्यों, असुरों अथवा देवताओंमें भी किसीको ऐसा नहीं देखता, जो वाघोंकी वधा करते हुए भगवान् श्रीरामके सामने उभर सके ॥ १५ ॥
 अथैकमपि पञ्चमपि यैवस्यत यमम् ।
 स हि सोऽहं रणे शक्तस्तत्र हतोऽपिशेषतः ॥ १६ ॥
 'भगवान् श्रीराम विशेषतः आपके लिये तो युद्धमें सूर्य, इन्द्र और द्युपुत्र यमका भी सामना कर सकते हैं ॥ १६ ॥
 स हि सागरपथं ता महर्षिं साधितुमर्हति ।
 त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनिदिनि ॥ १७ ॥
 'वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीको भी जीत देने योग्य हैं । जनकनिदिनि ! आपके स्थि युद्ध करते समय श्रीरामचन्द्रजी की निश्चय ही विजय प्राप्त होगी' ॥ १७ ॥
 तस्य तद् व्यसनं भृत्या सम्यक् सत्यं सुभाषितम् ।
 जानकी बहु मेने त व्यसनं चेदमग्रवीत् ॥ १८ ॥
 'हनुमान्जीक। कथन उत्ति युक्त, सत्य और सुन्दर था । उठे सुनकर जनकनिदिनीने उनका बड़ा आदर किया और वे उनसे फिर कुछ कहनेको उचित हुई ॥ १८ ॥
 ततस्त प्रस्थितं सीता पीक्षमाणं पुन पुनः ।
 भर्तृस्नेहायितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् ॥ १९ ॥
 तदनन्तर वहाँसे प्रस्थित हुए हनुमान्जीकी आर बार बार देखती हुई सीताने सौहार्दवश स्वामीके प्रति स्नेहसे युक्त सम्मानपूर्ण बात कही— ॥ १९ ॥
 यदि धा मयस्य धीरं वसैकाहमरिन्दम ।
 कस्मिंश्चित्संवृते देशे विधान्तं श्रोगमिष्यसि ॥ २० ॥
 'द्युओंका दमन करनेवाले धीर । यदि तुम ठीक समयसे तो यहाँ एक दिन किसी गुप्त स्थानमें निवास करो । इस तरह एक दिन विराम करके कल चले जाना ॥ २० ॥
 मम वैवालयभाग्याया सानिध्यात् तव धानर ।
 मय्य शोकस्य मदतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् ॥ २१ ॥
 'वानरवीर । तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्दभागिनीके महान् शोकका थोड़ी देरसे लिये निवारण हो जायगा ॥ २१ ॥
 ततो हि हरिशाङ्गुलं पुनरागमनाय तु ।
 प्राणानामपि सदृशो मम स्याद्यत्र सदाय ॥ २२ ॥
 'कपिश्रेष्ठ ! विरामसे पश्चात् यहाँसे यात्रा करनेके अनन्तर यदि फिर तुमयोगोंक आनेमें सदैव या निम्नहुआ तो मेरे प्राणोंपर भी उच्छ्रित आ जायगा, इसमें शयन नहीं है ॥

तवादर्शनजं शोको भूयो मा परितापयेत् ।
 तु खादु खपामृष्टा दीपयन्निधं वानर ॥ २३ ॥
 'वानरवीर । मैं दुःख-पर दुःख उठा रही हूँ । तुम्हारे चले जानेपर तुम्हें न देख पानेका शोक मुझ पुन दग्ध करता हुआ सा सताप देता रहेगा ॥ २३ ॥
 अयं च वीर सदैवस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
 सुमहास्त्वत्सहायेषु हयैक्षपु हरीश्वर ॥ २४ ॥
 कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यति महोदधिम् ।
 तानि हयैक्षसैन्यानि तौ वा नरचराधमजौ ॥ २५ ॥
 'वीर वानरेश्वर । तुम्हारे साथ राठों और वानरोंके विषयमें मेरे सामने अब भी यह महान् सदैव तो विद्यमान ही है कि वे रीछ और वानरोंकी सेनाएँ तथा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण इस दुष्पार महासागरको कैसे पार करेंगे ॥ २४-२५ ॥
 त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घनं ।
 शक्तिं स्याद्वैनतेयस्य तव वा मातुलस्य वा ॥ २६ ॥
 'इस सगरमें समुद्रको लॉघनेकी शक्ति तो केवल धीन प्राणियोंमें ही देखी गयी है । हममें, गरुडमें अथवा वायु देवतामें ॥ २६ ॥
 तदस्मिन् कायनिर्योगे धीरैव दुरतिक्रमे ।
 किं पश्यसे समाधानं त्वं हि कायविदा घर ॥ २७ ॥
 'वीर । इस प्रकार इस समुद्रलङ्घनरूपी कायको निमाना अत्यन्त कठिन हो गया है । ऐसी दशामें तुम्हें कार्यसिद्धिका कौन-सा उपाय दिखायी देता है ? यह बता-जा क्योंकि कार्य सिद्धिका उपाय जाननेवाले लोगोंमें तुम वरसे श्रेष्ठ हो ॥ २७ ॥
 काममस्य त्यमेवैक कायस्य परिस्त्रयन ।
 पर्याप्तं परवीरान्न यदास्यस्त फलोदय ॥ २८ ॥
 'द्युओंका सहरा करनेवाले पवनकुमार । इसमें सदैव नहीं कि तुम अकेले ही मेरे उद्धाररूपी कार्यको सिद्ध करनेमें पूज्यत समय हा, परन्तु ऐसा करनेसे जो विजयरूप फल प्राप्त होगा, उसका यद्य केवल तुम्होंको मिलना भगवान् श्रीरामको नहीं ॥ २८ ॥
 यैः समग्रेयुधि मा राघव जित्य सयुगे ।
 विजयौ म्यपुर यायात् तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ २९ ॥
 'यदि यधुनाथजी सारी सेनाके साथ रावणको युद्धमें पराजित करके विजयी हो मुझ साथ में अपनी पुरीको पधारें तो वह उनके अनुरूप काय होगा ॥ २९ ॥
 यैस्तु सङ्कटा दृष्ट्या लङ्का परयत्पदन ।
 मा नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ ३० ॥
 'द्युसेनाका सहर करनेवाला श्रीराम यदि अपनी सेनाओंद्वारा लङ्काको पदरुहित करते मुझे अपने साथ ले चलें तो वही उनके योग्य होगा ॥ ३० ॥
 तद्यथा तस्य चिन्तान्तमनुरूपं महात्मनः ।

भवेदाहवशूत्स्य तथा त्वमुषपादय ॥ ३१ ॥

‘अन तुम ऐसा उपाय करो जिससे समरशूर महात्मा

श्रीरामका उनके अनुरूप पराक्रम प्रकट हो’ ॥ ३१ ॥

तदर्थोपहित वाक्य प्रश्रित हेतुसहितम् ।

निशम्य हनुमान्शेय वाक्यमुत्तरमग्रधीत् ॥ ३२ ॥

देवी सीताकी उपयुक्त बात अग्रयुक्त, स्नेहयुक्त तथा

युक्तियुक्त थी । उनही उस अवशिष्ट बातको सुनकर हनुमान्

जीने इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ३२ ॥

देवि हृषीकेशैयानामीश्वर भूयता घर ।

सुग्रीव सत्यमग्नधस्तवायै श्रुतनिश्चय ॥ ३३ ॥

‘देवि ! यानर और मातृभ्रात्री सेनाके स्वामी कपिश्रेष्ठ

सुग्रीव तावदादा हैं । वे आपके उद्धारके लिये हृद निश्चय कर

चुके हैं ॥ ३३ ॥

स यानरसहस्राणा कोटाभिरभिसघृत ।

क्षिप्रमेध्यति वैदेहि राक्षसाना नियर्हण ॥ ३४ ॥

‘विदेहिन! दिन ! उनमें राक्षसोंका संहार करनेकी शक्ति

है । वे सहस्रों कोटि यानरोंकी सेना साथ लक्ष्मण शीघ्र ही

लङ्कापर चढ़ाई करेंगे ॥ ३४ ॥

तस्य विक्रमसम्पन्ना सर्वथेतो महाबला ।

मम सकटपक्ष्मपाता निदेशे हरथ स्थिताः ॥ ३५ ॥

‘उनके पास पराक्रमी, वैयर्थ्याशी, महाबली और मानसिक

सकलपक्ष समान बहुत दूरतक उड़सकर जानेवाले बहुत-से

यानर हैं, जो उनकी आलाका पालन करनेके लिये वदा

तैयार रहते हैं ॥ ३५ ॥

येषा मोपरि नाधस्तात् तिर्यक् सञ्जते गति ।

न च कमस्तु सौदन्ति महत्समिन्तजस ॥ ३६ ॥

‘जिनकी ऊपर-नीचे तथा इधर उधर कहीं भी गति

नहीं सकती । वे बहु-से-बड़े काबोके आ पड़नेपर भी कभी

हिम्मत नहीं हारते । उनमें महान् तेज है ॥ ३६ ॥

असह्य तैमहोत्साहै ससागरधराधरा ।

प्रदक्षिणावृता भूमिषामुमार्गानुसारिभिः ॥ ३७ ॥

‘उन्होंने अश्वन्त डाकाहट भूल होकर वायुपथ (आकाश)

का अनुसरण करते हुए समुद्र और पर्वतोंवर्हित इस पृथ्वीकी

अनेक बार परिभ्रमा की है ॥ ३७ ॥

मक्षिशिष्टाश्च तृतायाश्च सन्नि तत्र यनौकस ।

मत्त प्रयत्नर नक्षिणास्ति सुग्रीवसन्निधौ ॥ ३८ ॥

‘सुग्रीवकी सेनामें मेरे समान तथा मुझसे भी शक्ति

पराक्रमी यानर हैं । उनके पास कोई भी ऐसा यानर नहीं है

जो बल-पराक्रममें मुझसे कम हो ॥ ३८ ॥

अह तावद्दिह प्राप्त कि पुनस्ते महाबला ।

नदि प्रकृष्टा प्रेयन्ते प्रेयन्ते हीतरे जनाः ॥ ३९ ॥

‘जब मैं ही यहाँ आ गया, तब अज महाबली वीरोंके

आनेमें क्या संदेह है ! जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, उन्हें संदेह

वाहक दूत बनाकर नहीं भेजा जाता । साधारण कोटि लोग

ही भेज जाते हैं ॥ ३९ ॥

तदल परितोषेन द्वि शोको व्यपैतु ने ।

एकोपातेन ते लङ्कामेध्यन्ति हरियुधता ॥ ४० ॥

‘अन देवि ! आपको मंत्राण करनेकी आवश्यकता नहीं

है । आपका शोक दूर हो जाना नारिय । यानरयूयपति एक

ही छलोगमें लङ्का पहुँच जायेंगे ॥ ४० ॥

मम पृथगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।

त्वत्सक्ता महासङ्घौ नृसिद्धाधागमिष्यत ॥ ४१ ॥

‘उदयकालके सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति लोभा यानेवाल

और महान् यानर सङ्घदायक साथ रहनेवाले वे दोनों पुरुष

सिंह श्रीराम और लक्ष्मण मेरी चान्पर बैठकर आपके पास

आ पहुँचेंगे ॥ ४१ ॥

तौ हि वीरौ नरवरो सहितौ रामलक्ष्मणौ ।

आगम्य नगरं लङ्का सायकैर्द्विधमिष्यत ॥ ४२ ॥

‘वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मण एक साथ

आकर अपने वायकोंके लङ्कापुरीका निश्चय कर दालेंगे ॥ ४२ ॥

सगण रावण हत्वा राघवो ह्यनुन्दनः ।

त्वामादाय चरारोहे स्वपुरीं प्रति यास्यति ॥ ४३ ॥

‘चरारोहे ! सुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीरघुनाथ

जो रावणको उठके सेनिकोंवर्हित मारकर आपके साथ छे

अपनी पुरीको लौटेंगे ॥ ४३ ॥

तदाश्वसिद्धि मत्त वे भव त्व कालकाङ्क्षिणी ।

नखिराद् द्रक्ष्यसे राम प्रज्यत्तममिवानलम् ॥ ४४ ॥

‘इसलिये आप धैर्य धारण करें । आपका कल्याण हो ।

आप समयकी पतंग काँ । प्रबलित अग्निके समान तेजस्वी

श्रीरघुनाथकी आपको शीघ्र ही दहन देंगे ॥ ४४ ॥

निहत राक्षसेभ्यो च सपुत्रामात्ययाधवे ।

त्य समेप्यसि रामेण शशाङ्गेनेव रोहिणी ॥ ४५ ॥

‘पुत्र, माँ और बच्चे शत्रुओंवर्हित राक्षसराज रावण

के मारे जानेपर आप भीरमचन्द्रकीट्टे उसी प्रकार मिलेंगी,

जैसे रोहिणी चन्द्रमासे मिलती है ॥ ४५ ॥

क्षिप्र त्व देवि शोकस्य पारं द्रक्ष्यसि मैथिलि ।

रावणैव रामेण द्रक्ष्यसे निहत बलात् ॥ ४६ ॥

‘देवि ! मिलिशुभकारी ! आप शीघ्र ही अपने शोक

का अन्त हुआ देखेंगी । आपको यह भी दृष्टिगत होगा

कि श्रीरामचन्द्रजीने रावणको बलपूर्वक मार डाला है’ ॥ ४६ ॥

एवमाभ्यास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतामज ।

गमनाय मति श्रया वैदेहीं पुनरग्रवीत् ॥ ४७ ॥

विदेहिनन्दिना सीताको इस प्रकार आशान दे पवन

कुमार हनुमान्जीने वहाँसे श्रेष्ठतया निश्चय करके उनसे फिर

कहा— ॥ ४७ ॥

तमरिण हतात्मान क्षिप्र द्रक्ष्यसि राघवम् ।

लक्ष्मण च धनुष्याणि लङ्काद्वारमुपागतम् ॥ ४८ ॥
 'देवि ! आप शीघ्र ही दलेंगे कि शुद्ध हृदयवाले धनु
 नाशक आरुणायजी तथा लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये लङ्काके
 द्वारपर आ पहुँच हैं ॥ ४८ ॥

नखदंष्ट्रायुधान् वीरान् सिंहादूलविक्रमान् ।
 यानरान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्रद्रव्यसिसंगतान् ॥ ४९ ॥

'नख और दाढ़ ५। भिनके अन्न शस्त्र हैं तथा जो सिंह
 और वृषाक्ष समान पराक्रमी एवं गजराजों समान विशाल
 काय हैं, ऐसे वानरोंको भी आप शीघ्र ही एकत्र हुआ
 देखेंगी ॥ ४९ ॥

शैलान्मुदुनिकाशानां लङ्कामल्पसानुषु ।
 नदता कपिमुख्यानामार्यै रूपायनेकश ॥ ५० ॥
 'आर्ये ! पवन और मेघके समान विंगलकाय मुख्य
 मुख्य वानरोंके बहुदन्ते छट लङ्कावर्ती मलयपर्वतके शिखरोंपर
 गजते दिखायी देंगे ॥ ५० ॥

स तु मर्मणि घोरैर्न ताडितो ममयेषुणा ।
 न शम लभते राम सिंहादित इष द्विष ॥ ५१ ॥
 'भीरामवद्वनीक ममम्यलमें कामदेवके भयकर बाणोंसे
 चोट पहुँची है। इसलिये वह विह्वले पीड़ित हुए गजराजकी
 मौति चैन नहीं पाते हैं ॥ ५१ ॥

हृषीकेशं धीमद्रामायणे पाण्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंश सर्ग ॥ ३९ ॥
 इस प्रकाश श्रीवल्मीकिनिर्मित ऋषीरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अन्तर्हीसर्गों का पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्ग

मीताका धीरामसे कहनेके लिये पुनः सदेश देना तथा हनुमान्जीका
 उन्हें आश्वासन दे उत्तर दिशाकी ओर जाना

श्रुत्वा ॥ यच्चन तस्य चायुस्तेजोमहात्मन ।
 उवाचात्महितं यापय सीता सुरसुतोष्मा ॥ १ ॥
 बापुपुत्र महात्मा हनुमान्जीका यच्चन सुनकर
 देवकन्याके समान वैष्णविनी सीताने अपने हितके विचारते
 इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

त्वा दृष्ट्वा प्रियवक्त्रार सम्प्रहृष्ट्यामि वानर ।
 अघसज्जातसस्येय वृष्टिं प्राप्य धनुषधरा ॥ २ ॥
 वानरवीर ! तुमने मुझे यक्षा ही प्रिय सगाद सुनाया
 है। तुम्हें देखकर हृषीकेश मार मेरे शरीरमें रोमाञ्च ॥
 आया है। जोक उसी तरह, जैसे वर्षाका पानी पड़नेसे
 आसी बमी दूर ऐलीकाली भूमिद्वारा मरी हो जाती है ॥
 यथा त पुरुषव्याघ्र गात्रं शोकाभिकर्शितं ।
 सस्पृशेय सकामाद् दया कुरु दया मयि ॥ ३ ॥
 'मुझपर ऐसी दया करो जिससे मैं जोकके कारण
 दुर्बल हुए अपने अङ्गोद्धार नरक्षेत्र भीयमका प्रभपूर्वक
 रस्य कर सकूँ ॥ ३ ॥

रुद्र मा दधि शोकेन मा भूत् त मन्सो भयम् ।
 शचीव भग्न शक्रेण सङ्क्रमेयसि शोभने ॥ ५२ ॥
 'देवि ! आप जोकके कारण रादन न करें। आपके
 मनका मय दूर हो जाय। शोभने ! जैव शची देवराज इन्द्र
 से मिलती हैं, उसी प्रकार आप अपने पतिदेवसे
 मिलेंगी ॥ ५२ ॥

रामाद्विशिष्ट कोऽयोऽस्ति कश्चित्सौमित्रिणा सम ।
 अग्निमारुतकल्पौ तौ श्रातरौ तव सधर्यौ ॥ ५३ ॥

मला, भीरामचन्द्रजीसे बटकर दूसरा कौन है ! तथा
 लक्ष्मणजीक समान मी कौन हो सकता है ! अग्नि और
 वायुके मुख्य तेजस्वी वे दोनों माइ आपके आभय हैं (आपको
 कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये) ॥ ५३ ॥

नासिन्धिर वात्यसि देवि देशे
 रक्षोगर्जरघुपितेऽतिरिद्धे ।
 न ते विराडागमन प्रियस्य
 ह्यमस्व मत्सगमकालमात्रम् ॥ ५४ ॥

'देवि ! रणशोद्धार सेवित इव अत्यन्त भयकर देखमें
 आपको अधिक दिनोंतक नहीं रहना पड़ेगा। आपके प्रियतम
 के आनेमें विलम्ब नहीं होगा। बरतक मेरी उनसे भेंट न हो,
 उतने समय तकके विलम्बको आप क्षमा करें ॥ ५४ ॥

हृषीकेशं धीमद्रामायणे पाण्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंश सर्ग ॥ ३९ ॥
 इस प्रकाश श्रीवल्मीकिनिर्मित ऋषीरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अन्तर्हीसर्गों का पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

अभिज्ञान च रामस्य दद्या हरिगणोत्तम ।
 क्षिप्तामिषीका काकस्य कोपादेकाक्षिशतानीम् ॥ ४ ॥
 'वानरश्रेष्ठ ! भीरामने श्रोत्रघट जो कोणकी एक
 आँखको फोड़नेवाली लौकिका बाण चलाया था उस प्रसङ्गकी
 तुम पहचानक रूपमें उन्हें याद दिलाया ॥ ४ ॥

मन शिलायास्तिलको गण्डपादौ निवेशित ।
 त्वया प्रणष्टे तिलके त किल सन्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
 'मेरी जागरे यह भी कहना कि प्राणनाथ ! पट्टेकी
 उस बातको मी याद कीजिये, जब कि मेरे कपेलमें छो
 हुए तिलकेके मिट बाजेपर आपने अपने हाथसे मैसिलका
 तिलक लगाया था ॥ ५ ॥

स धीयवान् कथं सीतां हता समनुमयसे ।
 यस्तर्ता रणसा मय्ये महेश्वरुणोपम ॥ ६ ॥
 'महेन्द्र और वरुणक समान पराक्रमी प्रियतम ! आप
 बलवान् हाथ भी अग्रहत होकर राक्षसोंके घरमें निवास
 करनेवाली मुझ सीताका निरन्तर कैसे सहन करते हैं ! ॥ ६ ॥

एष चूडामणिर्दियो मया सुपरिचित ।

एन हृष्टा प्रदृशामि ध्यस्ते त्वामिनाय ॥ ७ ॥

‘नयाप्राप्तेश्वर । इस दिव्य चूडामणिको मैंने यद्ये मन्त्रे सुराति रक्ता था और सफ़्तके समय इसे देखकर मानो मुझे जापका ही दर्शन हो गया हो, इस तरह मैं इसका अनुभव करती थी ॥ ७ ॥

एष निर्यातित धीमान् मया ते धारितम्भय ।

मत् पर न शङ्कामि जीवितु शोकलालसा ॥ ८ ॥

‘समुद्रके जलसे उठाया हुआ यह कान्तिमान् मणिरत्न आज आपके लोटा रही हूँ । अब जोकरे आतुर होनेके कारण मैं अबिक समयतक जीवित नहीं रह सकूँगी ॥ ८ ॥ असह्यानि च दुःखानि याचञ्च हृदयच्छिद ।

राक्षसैः सह सशस्त्र उल्लूते मर्याम्यहम् ॥ ९ ॥

‘इस तरह दुःख, हृदयको छेदनेवाली बातें और राक्षसियों का साथ निवार—यह सब कुछ मैं आपके लिये ही रह रही हूँ ॥ ९ ॥

धारयिष्यामि मास तु जीवित शत्रुसूदन ।

मासदूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥ १० ॥

‘राजकुमार । शत्रुसूदन । मैं आपकी प्रतीकामें किसी तरह एक मासतक जीवन धारण करूँगी । इसका बाद आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूँगी ॥ १० ॥

घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि ।

रमा च भुत्वा विपञ्चस्त न जीवेयमपि क्षणम् ॥ ११ ॥

‘यह राक्षसराज शत्रु बड़ा क्रूर है । मरे प्रति इसकी दृष्टि भी अच्छी नहीं है । अब यदि आपको भी विलम्ब करते हुए दूँगी तो मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती ॥ ११ ॥

वैदेह्या वचन भुत्वा कठण साधुभाषितम् ।

अथाग्रवीं महातेजा हनुमान् मादत्तात्मजः ॥ १२ ॥

सीताजीके यह औस बहाते बड़े दुःख कठणात्मक वचन सुनकर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्जी बोले—॥ त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।

रामे शोकाभिभूते न लक्ष्मण परितप्यते ॥ १३ ॥

‘देवि । मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरघुनाथजी आपके शोकमें ही सब कामों पर विग्रह हो रहे हैं । भीरामके शोकातुर होनेसे लक्ष्मण भी बहुत दुखी रहते हैं ॥ १३ ॥

हृष्टा कथंचिद् भवती न काल परिदेवितुम् ।

इम मुहूर्ते तु ज्ञानाभित प्रीक्ष्यसि भामिनि ॥ १४ ॥

‘अब किसी तरह आपको दर्शन हो गया, इसलिये रोने बोलने का शोक करनेका अवसर नहीं रहा । भामिनि । आप इसी मुहूर्तमें अपने सारे दुःखों का अन्त हुआ देखेंगी ॥ १४ ॥

तायुना पुदयस्याग्रौ राजपुत्रावनिन्दितौ ।

रज्जुशान्ततोत्साहौ लङ्का भस्मीकरिष्यत ॥ १५ ॥

‘वे दोनों माद पुत्रासि राजकुमार भीराम और लक्ष्मण स्वयं प्रशस्ति की हैं । अपने दर्शनसे लिये उत्साहित होकर वे लङ्कापुत्रों को भस्म कर देंगे ॥ १५ ॥

हत्वा तु समरे रक्षो रावण सह्याध्वै ।

राघवीं रमा विशालाक्षिंश्च पुरीं प्रति नेष्यतः ॥ १६ ॥

‘विशाललोचने राक्षस रावणको समग्रज्जनों उधके बहुत बाधवैशिष्ट्ये मारकर वे दोनों रघुवशी व धु आपको अपनी पुरीमें ल जायेंगे ॥ १६ ॥

यसु रामो विज्ञानीयाद्भिमानमनिर्दिते ।

प्रीतिमजनन भूयस्तरय त्व दानुमर्हसि ॥ १७ ॥

‘सती-सम्पत्ती देवि । जिसे भीरामचन्द्रको जान सकें और जो उनके हृदयमें प्रेम एवं प्रसन्नताका संचार करने वाली हो, ऐसी कोई और भी पहचान आपका पास हो तो वह उनसे लिये आप मुझे दें ॥ १७ ॥

साग्रवीद् दत्तमेवाहो मयाभिज्ञानमुत्तमम् ।

यतदेव हि रामस्य हृष्टा यत्नेन भूयणम् ॥ १८ ॥

अदेयं हनुमन् धान्यं तव धीर भविष्यति ।

तव सीताजीने कहा—‘कविभट्ट । मैंने तुम्हें उत्तम से उत्तम पहचान तो दे ही दी । धीर हनुमन् । इसी आभूषणकी यज्ञपूर्वक देल देनेपर भीरामके लिये तुम्हारी लारी बातें विश्ववर्णीय हो जायेंगी ॥ १८ ॥

स त मणिवर गृह्य श्रीमान् पयगस्तमः ॥ १९ ॥

प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे ।

उस श्रेष्ठ मणिको लेकर वानाशियेमणि भीमान् हनुमान् देवी सीताको लिये हृष्टा प्रणाम करनेके पश्चात् बहोते जानेको उद्यत हुए ॥ १९ ॥

तमुत्पातहतोत्साहमवेक्ष्य हरियूयपम् ॥ २० ॥

धर्ममान महावेगमुवाच जनकाम्भजा ।

अधुपूर्णमुखी रौना बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २१ ॥

‘जानियूयपति महावेगवती हनुमान्जी बहोते छल्लोंग मारनेके लिये उल्लासित हो बहते देल जनकनन्दिनी सीताके मुखपर औसुओंकी बारा बहने लगी । व दुखी हो अश्रु गद्गद वाणीमें बोली—॥ २० २१ ॥

हनुमन् सिंहसकाशौ भ्रातरो रामलक्ष्मणौ ।

सुप्रोच च सहामात्य स्वान् नृपा अनामयम् ॥ २२ ॥

‘हनुमन् । सिंहके समान पराक्रमी दोनों माद भीराम और लक्ष्मणसे तथा मन्त्रिवैशिष्ट्य सुप्रोच एवं अन्य सब वानरोंसे मरा कुशल मङ्गल कहना ॥ २२ ॥

यथा च स महाबाहुर्मौ सारयति राघव ।

मसाद् दुःखान्युसरोधात्स्व समाधातुमर्हसि ॥ २३ ॥

‘महाबाहु भीरघुनाथजीको तुम्हें इस प्रकार वचनाना

काहिये, जिससे वे दुःखने इस महासगरसे मश उद्धार करें ॥

इह च ताव मम दोषकृतेषु
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सन च ।

नृपास्तु रामस्य गत समीप
शिवश्च तेऽध्यास्तु हरिप्रवीर ॥ २४ ॥

बानरोंके प्रमुख वीर ! मेरा यह दुःख होके वेग
जैसे इन राक्षसोंकी यह दौड़ दण्ड भी तुम भीरुसक सगीप
जाकर कहना । बाध, दुश्मन माग महत्त्वमय हो ॥ २४ ॥

हृषीकेश श्रीगङ्गानायक वाल्मीकीये सादिकाण्डे सुन्दरकाण्डे चत्वारिंश सर्ग ॥ २४ ॥

इस प्रकार द्वैतार्थनिर्दिष्ट अर्थनायक अदिक जेके सुन्दरकाण्डमें बानरसर्ग सँ पूरा हुआ ॥ ४ ॥

एकचत्वारिंश सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा प्रमदावन (अशोकवाटिका) का विध्वन

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन् पूजितस्तथा ।

तस्माद् दशाद्वयप्रसूत विंशतयामास यानर ॥ १ ॥

सीताबाने उत्तम बचनोंद्वारा समादर पाकर बानरवीर
हनुमान्जी जब वहाँसे बाने लगे, तब उस स्थानमें दूसरी
जगह इतकर वे इस प्रकार विचार करने लगे—॥ १ ॥

अल्पदोषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा ।

प्राप्तुपायानतिप्रसूत चतुर्थं ॥ २ ॥ दृश्यते ॥ २ ॥

मैंने कब्रारे नेत्रोंबाला सीताजीका दर्शन तो कर
लिया, अब मेरे इस कायका योद्धा-शत्रु अथ (शत्रुकी
शक्तिका पता लगाना) ऐसा रह गया है । इसके लिये
चार उपाय हैं—लाम, दान, भेद और दण्ड । यहाँ लाम
आदि तीन उपायोंको लौंचकर फल चौथे उपाय (दण्ड)
का प्रयोग ही उपायगा दिखायी देता है ॥ २ ॥

न साम रक्षस्तु गुणाय कल्पने

न क्षान्तमयोपचितेषु पुन्यते ।

न मेदसाध्या बलदर्पिता जना

पराक्रमरूपेण ममेह रोचते ॥ ३ ॥

पाशोंके प्रति सामनीतिका प्रयोग करनेसे कोई लाभ
नहीं होता । इनके पास धन भी बहुत है, अतः इन्हें दान
देनेका भी कोई उपदेश नहीं है । इसके सिवा वे बलके
अभिमानमें चूर रहत हैं अतः भेदनीतिये द्वारा भी इन्हें
बचमें नहीं किया जा सकता । ऐसी दशामें मुझे यहाँ
पराक्रम दिखाना ही उचित बन पड़ता है ॥ ३ ॥

न चास्य कायस्य पराक्रमाद्वते

विनिधाय कश्चिद्दोषोपपद्यते ।

दत्तप्रवीराश्च रणे तु राक्षसा

कथंचिदीयुर्दिदाद्य मादयम् ॥ ४ ॥

इस कार्यकी विदिक लिये पराक्रम सिखा यहाँ और
किसी उपायका अवलम्बन ठीक नहीं बैठता । यदि

स राजपुत्राया प्रतिवेदिताय

कपि कृताय परिहृष्टचेता ।

तदल्पदोष प्रसमीक्ष्य कार्यं

दिश ह्युदीर्च्य मनसा जगाम ॥ २५ ॥

राजकुमार सीताक उक्त अभिप्रायको बानर कपिवर
हनुमान्ने अपनेको कृताय समझा और प्रसन्नचित्त होकर
योद्धे-से ऐसे गद्दे कायका विचार करते हुए वहाँमें उत्तर
दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥ २५ ॥

युद्धमें राक्षसोंक मुख्य-मुख्य वीर मारे बाँधें तो वे लगे किसी
तरह कुछ नरम पड़ सकते हैं ॥ ४ ॥

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो यद्वन्मपि साधयेत् ।

पूर्वकापाशिरोधेन स कार्यं कतुमहति ॥ ५ ॥

जो पुरुष प्रधान कार्यके सम्पन्न हो जानेपर दूसरे
दूसरे बहुत-से कार्यको भी सिद्ध कर लेता है और पहलेके
कार्योंमें बाधा नहीं आने देता, वही कार्यको सुचारु रूपमें
कर सकता है ॥ ५ ॥

न होकर साधको हेतु स्वल्पस्यापीह कर्मण ।

यो हार्यं बहुधा वेद स समर्थोऽयसाधने ॥ ६ ॥

छोटे-से-छोटे कमझी भी विदिके लिये कोई एक ही
साधक हेतु नहीं हुआ करता । जो पुरुष किसी काय या
प्रयोजनको अनेक प्रकारसे सिद्ध करनेकी कला जानता हो,
वही कार्य-साधनमें समर्थ हो सकता है ॥ ६ ॥

इहैव सायत्नतनिष्ठयो ह्यह

प्रजेषमद्य मृगमेभ्वरालयम् ।

पराक्रमसम्पद्विशेषतरविविद्

तत ह्यनस्यामम भद्रशासनम् ॥ ७ ॥

यदि इसी यात्रामें मैं इस बानरको ठीक-ठीक समझ
लूँ कि मरने और शत्रुपक्षमें युद्ध होनेपर कौन प्रबल होगा
और कौन निबल, तबकातु भविष्यमें कायका भी निम्न
करके आस मुझीवने पास चर्चें तो मेरे द्वारा स्वामीकी
आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन हुआ सम्पन्न जायगा ॥ ७ ॥

कथं नु सत्त्वय भवेत् सुधागत

प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह ।

तथैव नन्द्यात्मवलं च सारयत्

समानयेमा च रूपे दशानन ॥ ८ ॥

परशु आस मेरा यहाँतक आना सुनकर अपना श्रम
परिणामका बलक कैसे होगा । राक्षसोंके साथ हटा

न च त जानकी सीता हरि हरिणलोचना ।

अस्माभिषट्पुष्पा पृष्ठा निवेदयितुमिच्छति ॥ १४ ॥

‘हमने बहुत पुष्पा तो भी बनककिशोरी मृगनयनी सीता

उस जानकीके निषयमें हमें कुछ बताना नहीं चाहती हैं ॥ १४ ॥

घासवन्मय भवेद् दूतो दूतो वैभवणस्य घा ।

प्रेषितो घापि रामेण सीतावेवणकाङ्क्षया ॥ १५ ॥

‘सम्भव है वह हट्ट या कुंजरका दूत हो अथवा भोयाम

ने ही उसे सीताकी खोजके लिये भेजा हो ॥ १५ ॥

तेनैवाद्भुतकृपेण यत्तत्तय मनोहरम् ।

नानामृगयणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम् ॥ १६ ॥

‘अद्भुत रूप धारण करनेवाले उस जानकी आपके

मनोहर प्रमदावनकी, जिसमें नाना प्रकारके पशु-पक्षी रहते

करते थे; उखाड़ दिया ॥ १६ ॥

न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः ।

यच्च सा जानकी देवी स तेन न विनाशितः ॥ १७ ॥

‘प्रमदावनका कोई भी देवा भाग नहीं है, जिसको

उसने नष्ट न कर डाला हो । वैषल्य वह स्थान; जहाँ जानकी

देवी रहती हैं; उसने नष्ट नहीं किया है ॥ १७ ॥

जानकीरक्षणार्थं वा अमाद्या नोपलक्ष्यते ।

अथवा कः अमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षितः ॥ १८ ॥

‘जानकीजीकी रक्षाके लिये उसने जड़स्थानको बचा दिया

है या परिभ्रमसे थककर—यह निश्चित रूपसे नहीं जान पड़ता

है । अथवा उसे परिभ्रम तो क्या हुआ होगा ! उसने उस

स्थानको बचाकर सीताकी ही रक्षा की है ॥ १८ ॥

व्याकपल्लवपत्राढ्यं च सीता स्वयमास्थिता ।

प्रबुद्धः शिक्षापावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः ॥ १९ ॥

‘मनोहर पत्रकों और पत्तोंसे भरा हुआ वह विद्याल

अथवा वृक्ष; जिसके नीचे सीताका निवास है; उसने सुरक्षित

रख छोड़ा है ॥ १९ ॥

तस्योत्क्रमत्स्योम त्व दण्डमात्रातुमर्हसि ।

सीता सम्भाषिता येन वर्त तेन विनाशितम् ॥ २० ॥

‘जिसने सीतासे वार्तालाप किया और उस वनकी उजाड़

डाला; उस उग्र रूपधारी जानकी आपके कोई कठोर दण्ड

देनेकी आज्ञा प्रदान करें ॥ २० ॥

मन परिगृहीता सा तव रक्षोगणेश्वर ।

कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात्स्यकज्जीवितः ॥ २१ ॥

‘भाषणशत्रु ! जिन्हें आपने अपने हृदयमें स्थान दिया

है, उन सीता देवीसे कौन बातें कर सकता है ? जिसने अपने

प्राणोंका मोह नहीं छोड़ा है; वह उनसे वार्तालाप कैसे कर

सकता है ? ॥ २१ ॥

राक्षसीना यच्च धुर्या रायणो राक्षसेश्वर ।

चिताग्निरिव जग्वाल कोपसर्जितेतक्षण ॥ २२ ॥

यद्यवियोंकी यह बात सुनकर राक्षसोंका राजा रावण

प्रज्वलित चिताकी भाँति क्रोधसे जल उठा । उसका नेत्र रोपसे

धूमने लगे ॥ २२ ॥

तस्य कुक्षस्य नेत्राभ्यां प्रापतश्रुविन्दय ।

दीप्ताभ्यामिव क्षीपाभ्यां सार्जिप स्नेहविन्दय ॥ २३ ॥

‘क्रोधमें भर हुए रावणकी आँखोंसे ओंखी बूँदें टपकने

लगीं; मनो जलते हुए दो दीपकीसे आगकी लपटोंसे साथ

तेलकी बूँदें सर रही हैं ॥ २३ ॥

आमनः सदृशान् धीरान् क्रिकरान्नाम राक्षसान् ।

व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनुमत ॥ २४ ॥

उस महातेजस्वी निशाचरन हनुमान्जीको कैद करनेके

लिये अपने ही समान वीर किंकर नामधारी राक्षसोंको जाने

की आज्ञा दी ॥ २४ ॥

तेपामशीतिसाहस्रं किंकराणां तरस्विनाम् ।

निर्गन्तुमर्धनात् तस्मात् कूटमुद्गरपाणयः ॥ २५ ॥

राजकी आशा धारर असी हजार वेगवान् किंकर हाथोंमें

कूट और मुद्गर लिये उस महत्पसे बाहर निकल ॥ २५ ॥

महोदरा महादृष्टा घोररूपा महायन्त्रा ।

युद्धाभिमनस सर्वे हनुमद्ग्रहणोमुपा ॥ २६ ॥

उनकी दाढ़ें विशाल, पेट बड़ा और रूप भयानक था ।

वे सब वे-सब महान् बली, युद्धके अभिलाषी और हनुमान्

जीको पकड़नेके लिये उत्सुक थे ॥ २६ ॥

ते कपिं त समासाद्य तोरणस्थमयस्थितम् ।

अभिपेतुमर्हावेगा पतङ्गा इव पावकम् ॥ २७ ॥

प्रमदावनके काठकपर लड़े हुए उन जानकीरके पास

पहुँचकर वे महान् वेगवाली निशाचर उनपर चारों ओरसे

प्रकार झपटे, जैसे जड़िते आगपर दूट पड़ें हैं ॥ २७ ॥

ते गदाभिर्विविचित्राभि परिषे काञ्चनाङ्गवै ।

आजगुम्बानरभेष्टं शरैरादित्यसन्निभै ॥ २८ ॥

वे विविध गदाओं, सानेस मढ़ हुए परिधों और सूर्यके

समान प्रज्वलित बाणोंक साथ जानकीपर चढ़

आय ॥ २८ ॥

मुहुरे पट्टिशै शूलै प्रासतोमरपाणयः ।

परिचार्य हनुमत् सहसा तस्थुरग्रतः ॥ २९ ॥

हाथमें प्रास और तोमर लिये मुद्रात, पट्टिश और शूलोंसे

सुसज्जित हो वे सहसा हनुमान्को चारों ओरसे घेरकर उसके

धामने लड़े हो गये ॥ २९ ॥

हनुमानपि तेजस्वी धीमान् पर्वतसन्निभ ।

क्षितायाविन्दय लाङ्ग्यनाद च महाग्रनिम् ॥ ३० ॥

तब पर्वतके समान विशाल शरीरवाले तेजस्वी धीमान्

हनुमान् भी अपनी पूँछको प्रणयीपर पटककर बड़े धारध

गजने लगे ॥ ३० ॥

स भूया तु महाकायो हनुमान् मारुतात्मजः ।

पुच्छमास्फोटयामास लङ्का शम्भेन पूरयन् ॥ ३१ ॥

पवनपुत्र हनुमान् अल्पन्त विद्याल शरीर धारण करके
अपनी पूँछ फटकारने और उठन शब्दसे लछाको प्रतिध्वनित
करने लग ॥ ३१ ॥

तस्यास्कोटितशब्देन महता चानुनादिना ।
पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्छेदमधोपयत् ॥ ३२ ॥

उनका पूँछ फटकारनेका गम्भीर घोष बहुत दूर तक
गूँब उठता था । उससे मयभीत हो पक्षी आकाशसे गिर पड़ते
थे । उस समय हनुमान्जान उच्च स्वरसे इस प्रकार धपणा
की—॥ ३२ ॥

जपत्यतिरला रामो लक्ष्मणश्च महाबल ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालित ॥ ३३ ॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याकिल एकमण ।
हनुमाच्छत्रुसन्धाना निहन्ता माकुतात्मज ॥ ३४ ॥
न रावणसहस्र मे युद्धे प्रतियलं भवेत् ।
शिलाभिश्च प्रहरत पादपैश्च सहस्रशः ॥ ३५ ॥
अदयित्वा पुरीं लङ्कामभियाद्य च मैथिलीम् ।
समुद्धार्यो गमिष्यामि मिपता सर्वरक्षसाम् ॥ ३६ ॥

‘अत्यन्त बलवान् मगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मण
की वय हो । श्रीछुनायजीके दाप सुरक्षित राजा सुग्रीवकी
भी वय हा । मैं अनायास हो महान् पराक्रम करनेवाले
काञ्चनरेख भीरुचन्द्रजीका दास हूँ । मया नाम हनुमान्
है । मैं बाणकु पुत्र तथा यशुसेनाका सहार करनेवाला हूँ ।
जब मैं हथारों वृक्ष और परपरीसे प्रहार करने लूँगा, उस
समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा
मेरा सामना नहीं कर सकते । मैं लङ्कापुरीकी तह-नहस कर
बाईंगा और मिथिलशकुमारों सीताको मणाय करनेके
अनन्तर सब राक्षसोंके दखत देखते अपना काम विद्व करके
जाऊँगा’ ॥ ३३—३६ ॥

तस्य सनादशम्भुन तेऽभवन् भयशङ्किता ।
दृष्टुं च हनुमन्त सध्यानधर्मियोल्लसत् ॥ ३७ ॥

हनुमान्जीका इस गवनाश समस्त राक्षसोंपर भय एवं
आतंक छा गया । उन सबने हनुमान्जीका देखा । वे अध्या
कालके ऊँच मेनक समान लाल एवं विशालकाय दिखायी
देते थे ॥ ३७ ॥

सामिसदेशानि शङ्कास्ततस्ते राक्षसा कपिम् ।
चित्रे-प्रहरणीभूमैरभिपतुस्ततस्ततः ॥ ३८ ॥

हनुमान्जीने अपने स्वामीका नाम लेकर स्वयं ही अपना
परिचय दे दिया था । इतलिय राक्षसों को उन्हें पहचाननेमें

हृत्पापें धामद्रामाये बाकमोडीये आदिवाये सुन्दरफाण्टे द्विचत्वारिंश सर्ग ॥ ३८ ॥

इस प्रकार आदिवायेके निमित्त अर्धनग्न अर्धकनक सुन्दरफाण्टे बगान्तरों सर्व पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

कह सदैव नहीं रहा । वे नाना प्रकारके भयकर भय शक्तों
का प्रहार करते हुए चारों ओरसे उनपर दृष्ट पड़े ॥ ३८ ॥

स तैः परिवृत्त शूरैः सर्वतः स महाबलः ।
आससादायस भीम परिघ तोरणाधितम् ॥ ३९ ॥

उन शूरवीर राक्षसोंद्वारा सब ओरसे घिर आनपर महा
बली हनुमान्ने पाटकपर रक्खा हुआ एवं भयकर लोहेका
परिघ उठा लिया ॥ ३९ ॥

स त परिघमादाय जघान रजनीचरान् ।
सपन्नगमिवादाय स्फुरन्त चिन्तासुत ॥ ४० ॥

जैसे विनयानन्दन गहकने छटपटगते हुए सर्वको पत्रोंमें
दाब रक्खा हो, उही प्रकार उस परिघको हाथमें लेकर
हनुमान्जीने उन निशाचरोंका सहार आरम्भ किया ॥ ४० ॥

विचचाराम्बरे वीर परिगृह्य च माहति ।
सुदयामास वज्रेण दैत्यानिव सहस्रदम् ॥ ४१ ॥

वीर परनकुमार उस परिघको लेकर आकाशमें विचरने
लगे । जैसे सहस्रेनत्रधारा इन्द्र अपन वज्रसे दैत्योंका वध
करते हैं, उही प्रकार उन्होंने उस परिघसे सामने आये हुए
समस्त राक्षसोंको मार डाला ॥ ४१ ॥

स हत्वा राक्षसान् वार किंकरान् माकुतात्मज ।
युष्माकाङ्क्षी महावीरस्तोरण समवस्थित ॥ ४२ ॥

उन किंकर नामधारी राक्षसोंका वध करके महावीर
पवनपुत्र हनुमान्जी युद्धकी इच्छासे पुन उस फटकपर लड़
हो गये ॥ ४२ ॥

ततस्तस्माद् भयान्मुखा इतिचित्तत्र राक्षसा ।
निहन्तान् किंकरान् सथान् रात्राणाय-यवेद्यन् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर वहाँ उस मयवे मुक् हुए कुछ राक्षसोंने
आकर रावणकी यह समाचार निवेदन किया कि समस्त किंकर
नामक राक्षस मार डाल गये ॥ ४३ ॥

स राक्षसाना निहत महाबल
निशम्य राजा परिवृत्तलोचन ।

समादिदेशाप्रतिम पराक्रमे
प्रहस्तपुत्र समरे सुदुजयम् ॥ ४४ ॥

राक्षसोंकी उस विशाल सेनाको मारी गयी मुनकर राक्षस
राज रावणकी आँखें चढ़ गयीं और उग्रने मरत्ये पुत्रको
विश्व पराक्रमकी कही तुलना नहीं थी तथा युद्धमें किते
परास्त करना नितात फणिन था, हनुमान्जीका सामना
करनेके लिये भया ॥ ४४ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

हनुमान्जीके द्वारा चैत्यप्रासादका विध्वंस तथा उसके रक्षकोंका वध

तत स किंकरान् हत्वा हनुमान् ध्यानमास्थितः ।

घन भग्न मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ॥ १ ॥

इधर किंकरोंका वध करके हनुमान्जी यह सोचने लगे कि मैंने वनको तो उबार दिया, परन्तु इस चैत्यप्रासादको नष्ट नहीं किया है ॥ १ ॥

तस्मात् प्रासादमघैरग्निम विध्वंसयाम्यहम् ।

इति सखिम्य हनुमान् मनसा दर्शयन् यत्नम् ॥ २ ॥

चैत्यप्रासादमुत्प्लुत्य मेरुभृङ्गमिधोऽतम् ।

आरुरोह हरिश्चेष्टो हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ३ ॥

अत आन इस चैत्यप्रासादका भी विध्वंस किये देता हूँ । मन ही मन ऐसा विचारकर पवनपुत्र वानरभेष्ट हनुमान् जी अपने यत्नका प्रदर्शन करते हुए मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति ऊँचे उस चैत्यप्रासादपर उछलकर चढ़ गये ॥ २ ॥ आरुह्य गिरिसंज्ञास प्रासाद हरियूथपः ।

यमौ स सुमहातेजा प्रतिस्वर्ग इयोदितः ॥ ४ ॥

उस पवताकार प्रासादपर चढ़कर महातेजस्वी वानर यूथपति हनुमान् दूरतके उगे हुए दूसरे स्वर्गकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ ४ ॥

सम्प्रभूष्य तु दुर्धर्षश्चैत्यप्रासादमुन्नतम् ।

हनुमान् प्रज्वलंल्लक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत् ॥ ५ ॥

उस ऊँचे प्रासादपर आक्रमण करके दुर्धर्ष वीर हनुमान् जी अपनी सहज शोभासे उद्भासित होते हुए पारियात्र पर्वत के समान प्रतीत होने लगे ॥ ५ ॥

स भूत्वा सुमहाकाय प्रभावान् मारुतात्मजः ।

धृष्टमारुतोऽयामास लङ्का शब्देन पूरयन् ॥ ६ ॥

वे तेजस्वी पवनकुमार विशाल शरीर धारण करके लङ्काको प्रतिध्वनित करते हुए पृष्ठतापूर्वक उस प्रासादको तोड़ने फोड़ने लगे ॥ ६ ॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता धोत्रघातिना ।

पेतुर्विहङ्गमास्त्र चैत्यपालाश्च मोहिताः ॥ ७ ॥

और जोरसे होनेवाला वह तोड़ फोड़का शब्द कानोंसे ठक्कारक बड़े बहरा किये देता था । इससे भूँछित हो बहौँक पक्षी और प्रासादरक्षक भी पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७ ॥

अस्त्रविज्ययता रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।

रामा जयति सुमीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ८ ॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।

हनुमान् शत्रुसैन्यानां निहता मारुतात्मजः ॥ ९ ॥

न राघवसदृश मे युद्धे प्रतिपल भवेत् ।

शिलाभिश्च प्रहरत पादपैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥

ध्वपयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाच च मैथिलीम् ।

समृद्धार्थो गमिष्यामि मितता सयश्चक्षुसाम् ॥ ११ ॥

उस समय हनुमान्जीने पुन यह घोषणा की—

वेत्ता भगवान् धीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो ।

श्रीशुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुमीवकी भी जय हो । मैं

अनायास ही महार पराक्रम करनेवाला कोठलनेश शूराम

चन्द्रजीका दाढ़ हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । मैं वायुका पुत्र

तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ । जब मैं हजारों वृद्धों

और पथरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय वहाँ राघव

मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना

नहीं कर सकते । मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा

और मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम करनेके अनन्तर सब

राज्योंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा ॥ ११

पञ्चमुपस्था महाकायश्चैत्यस्थो हरियूथप ।

ननाद् भीमनिहायो रक्षसा जनयन् भयम् ॥ १२ ॥

ऐसा बहकर चैत्यप्रासादपर खड़े हुए विशालकाय

वानरयूथपति हनुमान् राज्योंके मनमें भय उत्पन्न करते हुए

म्यानक आवाजमें गर्जना करने लगे ॥ १२ ॥

तेन नादेन महता चैत्यपाला शत ययुः ।

शुशीत्यायिधिधानस्त्रान् प्रासान् खड्गान् परश्वन्धान् ॥ १३ ॥

उस मीथण गमनासे प्रभावित हो धक्कों प्रासादरक्षक

नाना प्रकारके प्रास, खड्ग और परसे लिये बहौँ आये ॥ १३ ॥

विश्रुजन्तो महाकाया मारुति पयधारयन् ।

ते गदाभिर्विंशिराभिः पतितैः काञ्चनाद्भैः ॥ १४ ॥

आजगमुर्धोनरक्षेष्ट बाणैश्चादित्यसंनिभैः ।

उन विशालकाय राक्षसोंने उन सब भक्षकोंका प्रहार करते

हुए बहौँ पवनकुमार हनुमान्जीको घेर लिया । विचित्र

गदाओं, सोनेके पत्र जड़े हुए परियों और सूर्यतुल्य तेजस्वी

बाणोंसे सुसज्जित होने सब के सब उन वानरभेष्ट हनुमान्पर

चढ़ आये ॥ १४ ॥

आवत इह गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान् ॥ १५ ॥

परिक्षिप्य हरिश्चेष्ट स चभौ रक्षसा गणः ।

वानरभेष्ट हनुमान्जी चारों ओरसे घेरकर खड़ा हुआ

राखलोंका यह महान् समुदाय गङ्गाजीक बटमें उठी हुई बड़ी

भारी मैदान समान जग पड़ता था ॥ १५ ॥

ततो यातात्मजं हुन्दो भीमरूप समास्थितः ॥ १६ ॥

प्रासादस्य महास्तस्य स्तम्भ हेमपरिष्कृतम् ।

उत्पादयित्वा वेगेन हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १७ ॥

ततस्त भ्रामयामास शतध्वज महाबलः ।

तत्र चाग्निं समभयत् प्रासादश्चाप्यदह्यत ॥ १८ ॥

तब राउठोके इस प्रकार आक्रमण करते देख पवन कुमार हनुमान्ने कुपित हो बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उन महावीरन उस प्रासादक एक मुवणभूषित खमके, जिसमें सो धारें थीं, बड़े वेगस उल्लाह लिया। उल्लाहकर उन महावीर कीने ठमे घुमाना आरम्भ किया। घुमानेपर उठते आग प्रकट हो गयी, जिससे यह प्रासाद जलने लगा ॥ १६ ॥ १८ ॥ दह्यमान ततो दृष्ट्वा प्रासाद हरियूयप ॥

स राक्षसघन हत्वा वज्रेणेन ह्यासुरान् ॥ १९ ॥

अन्तरिक्षस्थित भीमानिदं वचनमग्रवीत् ॥
प्रासादको बलसे देख बानरयूपति हनुमान्ने वज्रेसे अशुरोंका संहार करनेवाले इन्द्रकी भौति उन सैकड़ों राक्षसों को उस खमसे ही मार डाला और आकाशमें खड़े होकर उन तेजस्वी वीरने इस प्रकार कहा— ॥ १९ ॥

माह्वाना सहस्राणि विमुद्यन्ति महात्मनाम् ॥ २० ॥

बलिना वानरेन्द्राणां सुग्रीवशयतिनाम् ॥

पाउठो । मुम्रानके वधमें रहनेवाल मेरेजैमे सहस्रों विद्यालकाय बलवान् बानरभेठ सब ओरमेरे गये हैं ॥ २० ॥

भदन्ति वसुधा कृत्स्ना वयमन्ये च वानरा ॥ २१ ॥

दशनागपला केचित् केचिद् दशगुणोत्तरा ॥

केचिन्नागसहस्रस्य यमूवस्तुत्यधिकमा ॥ २२ ॥

हत्वापि धीमद्रामायणे वास्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिचत्वारिंश सर्ग ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्याभारत आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तैंठावीमर्तों सर्व परा हुआ ॥ २३ ॥

चतुश्चत्वारिंश सर्ग

प्रहस्त पुत्र जम्बुमालीका वध

सद्विद्यो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो यती ॥

जम्बुमाली महादूषो निर्जंगम धनुर्धर ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणकी आशा पाकर प्रहस्तका बलवान् पुत्र जम्बुमाली, जिसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं, हाथमें धनुष लिये राजमहलसे बाहर निकला ॥ १ ॥

रत्नमाल्यामृतधर अग्नी रुचिरकुण्डल ॥

महान् विधुत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जय ॥ २ ॥

वह लाल रंगके फूलोंकी माला और लाल रंगके ही बज्र पहने हुए था। उसकी गर्बमें हार और कानोंमें सुन्दर कुण्डल सोमा दे रहे थे। उसकी आँखें घूम रही थीं। वह विशाल-काय, क्रोधी और समाममें दुजय था ॥ २ ॥

धनु शकधनु प्रप्य महद् रुचिरसायकम् ॥

विस्फारयाणो धेगेन यज्ञाशानिसमस्वनम् ॥ ३ ॥

उसका धनुष इन्द्रधनुषके समान विशाल था। उससे द्वारा छोड़े जानेवाले बाण भी बड़े सुन्दर थे। जब वह वेग-से उस धनुषको खींचता, तब उसने वज्र और अशनिसे समान गड़गड़ाहट पैदा होती थी ॥ ३ ॥

‘हम तथा दूसरे सभी बानर समूची पृथ्वीपर घूम रहे हैं। किन्हींमें दसहाथियोंका बल है तो किन्हींमें सो हाथियोंका। कितने ही बानर एक सहस्र हाथियों समान उल-विप्रमसे सम्पन्न हैं ॥ २६ २२ ॥

सति चौधथला केचित् सन्ति क्षायुयलोपमा ॥

अप्रमेयबला केचित् तत्रासन् हरियूयपा ॥ २३ ॥

‘किन्हींका बल बल्क महान् प्रवाहकी भौति असह्य है। कितने ही बाणसे समान बलवान् हैं और कितने ही बानर यूपपति अपने भीतर अग्नीम बल धारण करते हैं ॥ २३ ॥

इहग्निधैस्तु हरिभिवृत्तो दत्तनययुधि ॥

शतै शतसहस्रैश्च कोटिभिर्भग्युतैरपि ॥ २४ ॥

आगमियति सुग्रीव सर्वेषां सो निपूदन ॥

‘दौत और नख ही जिनके आयुध हैं ऐसे अनन्त बलशाली सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों बानरोंसे घिरे हुए बानर राव सुग्रीव यहाँ पधारेंगे, जो तुम सब निशाचरोंका संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ २४ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

‘अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रहे सकेगा; जिसने इस्वाकुवशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है ॥ २५ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूय न च रावणः ॥

यस्य त्विष्वाकुवीरेण बध्न वैर महात्मना ॥ २५ ॥

एक बाणसे मस्तकपर और दग नाराचों। उन कपीश्वरी
दानों भुजाओंपर गहरी चोट की ॥ ७ ॥

तस्य तच्छुश्रुमे ताम्र शरेणाभिहतं मुखम् ।
शरदीधाम्युज्जु पुरत्तं धिक्क भास्कररश्मिना ॥ ८ ॥

उधने बाणसे घायल हुआ हनुमान्जीका लाल मुँह
शब्द श्रद्धामें द्युकी किरणोंसे विद हो खिले हुए लाल कमल
के समान शोभा पा रहा था ॥ ८ ॥

तत्तस्य रक्त रक्तेन रञ्जितं शुश्रुमे मुरम् ।
यथाऽऽकाशे महापद्मसिक्तं काञ्चनविदुभि ॥ ९ ॥

रक्तसे रञ्जित हुआ उनका वह रक्तवर्णका मुख ऐसी
शोभा पा रहा था; मानो आवाधमें लाल रंगके विशाल
कमलको सुवर्णमय जलकी बूंदोंसे धींच दिया गया हो—उस
पर सोनेका पानी चढ़ा दिया गया हो ॥ ९ ॥

शुकोप वाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः ।
ततः पादपैऽतिविपुला ददर्श महतीं शिलाम् ॥ १० ॥

तत्तदा ता समुत्पाठ्य विश्लेष जयवद् धली ।
राक्षस जम्बुमालीके बाणोंकी चोट खाकर महाकपि
हनुमान्जी कुपित हो उठे । उन्होंने अपने पाद ही पर्यन्तकी
एक बहुत बड़ी चट्टान पड़ी देखी और उसे वेगसे उठाकर
उन बलवान् वीरने बड़े जोरसे उस राक्षसकी ओर
फेंका ॥ १० ॥

ता शरैर्दशभिः क्रुद्धस्ताडयामास राक्षसः ॥ ११ ॥
विपन्नकाम तद् दृष्ट्वा हनूमाश्चण्डविक्रमः ।
साल विपुलमुत्पाठ्य भ्रामयामास धीर्यवान् ॥ १२ ॥

किं बहुमै मरे उस राक्षसने दस बाण मारकर उस
प्रकार शिलाको तोड़ फोड़ डाला । अपने उस कर्मका अर्थ
हुआ देख प्रवण्ड पराक्रमी और बलशाली हनुमान्ने एक
विशाल सालका वृक्ष उखाड़कर उसे घुमाना आरम्भ
किया ॥ ११ ॥

भ्रामयन्त कपि दृष्ट्वा सालधृष्टं महाबलम् ।
विश्लेष सुनह्नं वाणाजम्बुमाली महाबल ॥ १३ ॥

उन महान् बलशाली वानरवीरको सालका वृक्ष घुमाते
देख महाबली जम्बुमालीने उनके ऊपर बहुतसे बाणोंकी
वर्षा की ॥ १३ ॥

साल चतुर्भिश्चिच्छेत्थ यानर पञ्चभिर्भुजे ।
उरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे ॥ १४ ॥

दृष्ट्वायै भीमप्रामाण्ये वाल्मीकीये आदिकाव्ये
इस प्रकार भीमप्रामाण्ये वाल्मीकीये आदिकाव्यक

उधने चार बाणोंसे सालवृक्षको काट गिराया; पाँचसे
हनुमान्जीकी मुजाओंमें, एक बाणसे उनकी छातीमें और
दस बाणोंसे उनकी दोनों स्तनोंक मध्यभागमें चोट पहुँचायी ॥
स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता धृतः ।

तमव परिघं गृह्य भ्रामयामास योगित ॥ १५ ॥
बाणोंसे हनुमान्जीका सारा शरीर भर गया । फिर तो
उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उसी परिघको उठाकर
उसे बड़े वेगसे घुमाना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा घलोत्कटः ।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥ १६ ॥
अत्यन्त वेगवान् और उत्कट बलशाली हनुमान्ने बड़े
वेगसे घुमाकर उस परिघको जम्बुमालीकी विशाल छातीपर
दे मारा ॥ १६ ॥

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाह्व जानुनी न च ।
न घनुर्न रथो ताभ्यास्तत्रादृश्यन्त नेपथ्य ॥ १७ ॥
फिर तो न उसके मस्तकका पता लगा और न दोनों
मुजाओं तथा घुटनोंका ही । न घनुप बचा न रथ, न वहाँ
बाँड़े दिखायी दिये और न बाण ही ॥ १७ ॥

स हतस्तत्सा तेन जम्बुमाली महारथः ।
पपात निहतो भूमौ चूर्णितस्तद् इव द्रुमः ॥ १८ ॥
उस परिघसे वेगपूर्वक मारा गया महारथी जम्बुमाली
चूर चूर हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १८ ॥

जम्बुमालिं सुनिहतं किंकराश्च महाबलान् ।
शुकोप रावणं श्रुत्वा क्रोधसरत्नलोचन ॥ १९ ॥
जम्बुमाली तथा महाबली किंकरोंके मारे जानेका समाचार
सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ । उसकी आँखें रोपटे रक्त
वर्णकी हो गयीं ॥ १९ ॥

स रोषसर्वार्तितताम्रलोचनः
प्रहस्तपुत्रे निहतो महाबले ।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान्
समाविदेशानु निशाचरेभ्यः ॥ २० ॥

महाबली प्रहस्तपुत्र जम्बुमालीके मारे जानेपर निशाचर
रान रावणके नेत्र रोपसे लाल होकर घूमने लगे । उसने
दूरत ही अपने मन्त्रीके पुत्रोंको, जो बड़े बलवान् और
पराक्रमी थे, बुद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी ॥ २० ॥

सुदूरकाण्डे चतुर्ध्वजारिः सर्ग ॥ ४४ ॥
सुदूरकाण्डमें चौद्वजारिः सर्ग परा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चत्वारिंश सर्गः

मन्त्रीके सात पुत्रोंका वध

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिण सुता ।
निर्युर्भवनान् तस्मात् सप्त सप्ताश्विचस ॥ १ ॥
राक्षसोंके राजा रावणकी आज्ञा पाकर मन्त्रीके सात
बेटे, जो अग्निके समान तेजस्वी थे, उस राक्षसहल्ले
बाहर निकले ॥ १ ॥

महद्वलपरीवारा धनुष्मतो महाबलाः ।

हतास्त्राग्रविदा श्रेष्ठा परस्परजयैविण ॥ २ ॥
 उनक साथ बहुत यही सेना था । वे अत्यन्त मन्थान्,
 धनुवर, अक्षवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा परस्पर होइ लगाकर
 शत्रुपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले थे ॥ २ ॥
 हेमजालपरिक्षित्तै-वज्रघट्टि- पताकिभि ।
 तोयइत्वननिघोषैवाजिमुत्तैमहारयै ॥ ३ ॥
 ततकाञ्चनचित्राणि चापायमितप्रिमा ।
 त्रिस्फारयत् सहस्रास्तदिह त इषागुदा ॥ ४ ॥
 उनके घोड़े सुते हुए विशाल रथ सेनेकी बालीसे
 ढके हुए थे । उनपर चञ्चल-वशाचाएँ पहन रही थीं
 और उनके पहियोंके चडनेसे मेघोंकी गम्भीर गर्जनके
 समान श्रुति होती थी । ऐसे रथोंपर सवार हो वे अमित
 पराक्रमी मन्त्रिजुमार तपाये हुए सेनेसे विजित अपने
 धनुषोंकी टङ्कार करते हुए बड़े हथ और उग्राहके साथ
 आगे बढ़े । उस समय वे सज्ज-सज्ज विद्युत्सहित मेघके
 समान शोभा पाते थे ॥ ५ ॥
 जनन्यस्तास्ततस्तेपाक्षिदिनाकिंकरान् हतान् ।
 बभूवुः शोकिनमभ्रान्ता सजाघवसुहृजना ॥ ५ ॥
 तप, पहले वो किंकरनामक राजस मारे गये थे,
 उनकी मृत्युका समाचार पाकर इन सबकी माताएँ
 अभ्रजलकी आशङ्काने माह-बाधु और सुहृदोंसहित शोकते
 धवरा उठीं ॥ ५ ॥
 ते परस्परसघर्षात् ततकाञ्चनभूषणा ।
 अभिपेतुहन्मत्त तोरणस्थमवस्थितम् ॥ ६ ॥
 तपाये हुए सेनेके आभूषणोंसे विभूषित वे छातों
 वीर परस्पर होइ-ही लगाकर फटनपर लड़े हुए हनुमान्की
 पर दूट पड़े ॥ ६ ॥
 सृजतो वाणवृष्टिं ते रथगर्नितनि स्रवा ।
 प्रावृद्धकाल इगम्भोदा विवेदनेर्श्रुतामृषदा ॥ ७ ॥
 जैसे वर्षाकालमें मेघ बरषा करते हुए विचरते हैं,
 उसी प्रकार वे राजहत्थी बादल बाणोंकी बरषा करते हुए
 वहाँ विचरण करने लगे । ग्योंकी वर्षासदृश है उनकी
 गजना थी ॥ ७ ॥
 अयकीणस्ततस्ताभिर्हनुमान्शरवृष्टिभि ।
 अभमत् सधृताकार शरपाडिव वृष्टिभि ॥ ८ ॥
 तदनन्तर राजशेंद्राय भी गयी उस बाण बरषा
 हनुमान्की उसी तरह आन्ध्रसदृश हो गये, जैसे कोई
 गिरिजाल की बरषासे ढक गया हो ॥ ८ ॥
 स शतान् वज्रयामास तेयामाशुचर कपि ।
 रथवेगाद्य धीराणा निचरन् धिमलेऽम्बरे ॥ ९ ॥
 उस समय निर्मल आकाशमें वीरनापुनक विचरते
 हुए कपिपर हनुमान् उन राजहत्थीगोंने बाणों तथा रथके
 वेगोंकी व्यर्थ करते हुए अपने आपको बचाने लगे ॥ ९ ॥

स तै व्रीडन् धनुष्मद्भि-यौत्रि वीर प्रकाशते ।
 धनुष्मद्भि-यौत्रि मधेमर्षित प्रमुग्धरे ॥ १० ॥
 जैसे व्योममण्डलमें शक्तिशाली वायुदेर इन्द्रधनुष
 युक्त मेघोंके साथ झीझा करत हैं, उसी प्रकार वीर पवन
 कुमार उन धनुर्धर वीरोंके साथ खेल-खा करत हुए
 आकाशमें अद्भुत शोभा पा रहे थे ॥ १० ॥
 स शृत्वा निन्द घोर त्रासयस्ता महाचमूम् ।
 चकार हनुमान् वेग तेपु रक्ष सु वीर्यवान् ॥ ११ ॥
 पराक्रमी हनुमान्ने राजशेंद्रा की उस विशाल वाहिनीकी
 मयमीत करते हुए घोर गजना की और उन राजशेंद्रा
 बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ११ ॥
 तलनाभिहनत् काश्चिद् पादै काश्चित् परतप ।
 मुष्टिभिश्चाहनत् काश्चिन्नसै फाष्टिद्ध्यदारयत् ॥ १२ ॥
 शत्रुओंको छूटाप देनेवाले उन वानरवीरने किहींको
 थपड़ते ही मार गिराया, किहींको पैरोंसे कुचल डाला,
 किहींका घुँमेंसे काम तमाम किया और किहींको नखोंसे
 फाड़ डाला ॥ १२ ॥
 प्रममायोरसा काश्चिद्दृष्टव्यामपतनपि ।
 केचित् तस्यैव नादेन तत्रैव पतितो भुवि ॥ १३ ॥
 कुछ शत्रुओंकी छातीसे दबाकर उनका कचुमर निकाल
 दिया और किहीं किहींको दोनों बाँधोंसे दबाकर मल
 डाला । कितने ही निशाचर उनकी गर्जनासे ही प्राणहीन
 होकर वहीं धृष्टीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥
 ततस्तेष्वपवनेषु भूमौ निपतितेषु च ।
 ततस्तेभ्यमगमत् सर्वे दिशो दश भयादितम् ॥ १४ ॥
 इस प्रकार जब मन्त्रीके सारे पुत्र मारे आकर बराशायी
 हो गये, तब उनकी बची-खुची सारी सेना मयमीत होकर
 दशों दिशाओंमें भाग गयी ॥ १४ ॥
 त्रिनेदुर्विस्तर नागा निपेतुर्भुवि घाजिन ।
 भग्ननीडध्वजचट्टयैभूक्ष कर्णाभिवद् रथै ॥ १५ ॥
 उस समय हाथी वेदनाके मारे दुरी दरहते चिंगाड़
 रहे थे, घोड़े भरतीपर मरे पड़े थे तथा जिनके बैठक,
 ध्वज और छत्र आदि लक्षित हो गये थे, ऐसे दूटे हुए
 रथोंसे मन्त्री रथभूमि पर गयी थी ॥ १५ ॥
 क्षवता रुधिरपाथ क्षयत्यो दर्शिता पथि ।
 विनिधैद्य स्वनैर्लेह्य ननाद् गित्त तदा ॥ १६ ॥
 भागमें खूनकी जदियाँ बहनी दितायी दीं तथा
 लङ्कापुरी राजशेंद्रके विविध शत्रुओंके कारण मरने उस समय
 विह्वल स्वरसे चीत्कार कर रही थी ॥ १६ ॥
 सतान् प्रवृजान् निनिहत्य यानसान्
 महाबलश्चण्डपपम कपि ।
 युयुत्सुन्यै पुनरेव राक्षसै
 स्तेदेव वीरोऽभिनगाम तोरणम् ॥ १७ ॥

प्रचण्ड पराक्रमी और महायत्नी बानरवीर हनुमान्जी राखलेंके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे फिर उठी पाटकपर उन बड़े चढ़े राखलेंको मोतके घाट उतारकर दूसरे जा पहुँचे ॥ १७ ॥

इसपर श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग परा हुआ ॥ ४५ ॥

पट्चत्वारिंशः सर्गः

रावणके पाँच सेनापतियोंका वध

हनान् मञ्जुसुतान् युद्धावापारेण महात्मना ।

रावण सद्युताकारश्चकार मतिमुक्तमाम् ॥ १ ॥

महात्मा हनुमान्जीके द्वारा मञ्जीके पुत्र भी मारे गये—यह बानरक रावणने भयभीत होनेपर भी अपने आकारको प्रत्यपूर्वक छिपाया और उत्तम बुद्धिका आशय ले आगेके वर्तव्यका निश्चय किया ॥ १ ॥

स विरुपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरौ चैव राक्षसम् ।

प्रघस भासकर्म च पञ्च सेनाग्रनायकान् ॥ २ ॥

सद्विदेश दशमीषो धीमान् नयविशारदान् ।

हनूमदप्रहणेऽयमार वायुवेगसमान् युधि ॥ ३ ॥

दशमीषने विरुपाक्ष, यूपक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्म—इन पाँच सेनापतियोंको, जो बड़े वीर, नीति निपुण, पैयवान् तथा युद्धमें वायुके समान बगछाली थे, हनुमान्जीकी पकड़नेके लिये आका दी ॥ २ ॥

यात सेनाग्रगा सर्वे महाबलपरिग्रहाः ।

सथाजिरथमातङ्गाः स कपि शास्यतामिति ॥ ४ ॥

उसने कहा—‘सेनाके अग्रगामी वीरों । तुमलोग घोड़े, रथ और हाथियोंसहित बड़ी भारी सेना साथ लेकर जाओ और उक्त बानरको घलपूर्वक पकड़कर उने अच्छी तरह शिक्षा दो ॥ ४ ॥

यत्तैश्च खलु भाव्य स्यात् समासाघवनालयम् ।

कर्म चापि समाघेय देशकालाविरोधितम् ॥ ५ ॥

‘उक्त वनचारी बानरके पास पहुँचकर तुम सब लोगोंको सावधान और अत्यन्त प्रयत्नशील हो जाना चाहिये तथा काम यही करना चाहिये, जो देश और कालके अनुरूप हो ॥ ५ ॥

न ह्यह त कपि मये कर्मणा प्रति तर्कयन् ।

सर्वथा समहद् भूत महाबलपरिग्रहम् ॥ ६ ॥

‘जब मैं उसके अलौकिक कर्मको देखते हुए उसके स्वरूपपर विचार करता हूँ, तब यह मुझे बानर नहीं बान पड़ता है । यह सबका कोई महान् प्राणी है, जो महान् बलसे सम्पन्न है ॥ ६ ॥

धान्येऽयमिति स्नात्वा नहि शुद्धयति मे मन ।

नैवाह त कपि मये यथेय प्रस्तुता कथा ॥ ७ ॥

‘यह बानर है’ ऐसा समझकर मेरा मन उसकी ओरसे

शुद्ध (विशुद्ध) नहीं हो रहा है। यह वैसा प्रबल उपस्थित है, या जैसी बात चल रही है उहँ देखते हुए मैं उसे बानर नहीं मानता हूँ ॥ ७ ॥

भवेद्विद्वेण या खट्वमसदर्थं तपोयत्नात् ।

सनागयक्षगन्धर्वदेवासुरमहर्षयः ॥ ८ ॥

युष्माभि प्रहितै सर्वमया सह विनिर्जिता ।

तेरथद्वय विधातव्यं स्थलीक किञ्चिदेव न ॥ ९ ॥

‘सम्भर है इन्द्रने हमलोगोंका विनाश करनेके लिये अपने तपोबलसे इसरी सृष्टि की हो। मेरी आकासे तुम सब लोगोंने मेरे साथ रहकर नागोंसहित यक्षों, गन्धर्वों, देवताओं, असुरों और महर्षियोंको भी अनेक बार पराजित किया है, अतः वे अवश्य हमारा कुछ अनिष्ट करना चाहेंगे ॥

तदेव नाम नन्देहः प्रसङ्गः परिगृह्यताम् ।

यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ॥ १० ॥

सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति ।

‘अत यह उन्हींका रत्ना हुआ प्राणी है, इसमें संदेह नहीं। तुमलोग उसे हठपूर्वक पकड़ ले आओ। मेरी सेनाके अग्रगामी वीरों। तुम हाथी, घोड़े और रथोंसहित बड़ी भारी सेना साथ लेकर जाओ और उक्त बानरको अच्छी तरह शिक्षा दो ॥ १० ॥

नाघमन्यो भयङ्गिश्च कपिर्धौरपरक्रमाः ॥ ११ ॥

इष्टा हि हरयः पूर्वं मया विपुलविक्रमाः ।

‘बानर समझकर तुम्हें उसकी अवदेखना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि यह वीर और पराक्रमी है। मैंने पहले बड़े बड़े पराक्रमी बानर और भालू देखे हैं ॥ ११ ॥

वाली च सह सुग्रीवो जाग्रथवाक् महाबलः ॥ १२ ॥

नीलः सेनापतिश्च ये चाम्ये द्विविदादयः ।

‘जिनके नाम इस प्रकार हैं—वाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि अन्य बानर ॥ १२ ॥

मैव तेषा गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ॥ १३ ॥

न मतिर्न बलोत्साहो न रूपपरिकल्पनम् ।

‘किन्तु उनका वेग ऐसा मयकर नहीं है और न उनमें ऐसा तेज, पराक्रम, बुद्धि, बल, उत्साह तथा रूप भारण करनेकी शक्ति ही है ॥ १३ ॥

तयोर्वैगवतोर्वैग निहत्य स महाबलः ।
निपपात पुनर्भूमौ सुपर्ण इव वेगितः ॥ ३१ ॥
उन दोनों वेगवान् वीरोंक वेगको विफल करके
महाबली हनुमान्जी वगशाही गबड़वे समान पुन पृथ्वीपर
वृद्ध पड़े ॥ ३१ ॥

स सालवृक्षमासाद्य समुत्पाद्य च धानम् ।
वायुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मज ॥ ३२ ॥
यहाँ वानरशिरोमणि पवनपुमारने एक साल वृक्षवे
पास बाकर उसे उल्टाई लिया और उधीर द्वारा उन दोनों
राक्षसवीरोंको मार डाला ॥ ३२ ॥

ततस्तास्त्रीनृहताञ्जात्या धानरेण तरस्त्रिमा ।
अभिपेदे महावेगः प्रहस्य प्रघसो बली ॥ ३३ ॥
भासकर्णश्च स्रष्टुञ्च शूलमादाय धीर्यवान् ।
एकत कपिशालूय यशस्विनमजस्थिती ॥ ३४ ॥

उन वेगशाही वानरवीरक द्वारा उन तीनों राक्षसोंको
मारा गया देख महान् वेगस युक्त बलवान् वीर प्रघस
हँसता हुआ उनके पास आया । दूधरी ओरसे पराक्रमी
वीर भासकण भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर शूल दाघमें लिये
यहाँ आ पहुँचा । वे दोनों वगशी कपिशैष्ठ हनुमान्जीके
निकट एक ही ओर खड़े हो गये ॥ ३३ ३४ ॥

पट्टिशेन शिताम्रेण प्रघस प्रत्यपोययत् ।
भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिकुञ्जरम् ॥ ३५ ॥

प्रघसने तेज धारवाले पट्टिशवे तथा राक्षस भासकर्णने
शूलसे कपिकुञ्जर हनुमान्जीपर प्रहार किया ॥ ३५ ॥

स ताभ्या निक्षतैर्गात्रैरस्तुनिग्धतनूरुह ।
अभयद् वानर कुन्धो बालस्यैस्तमप्रभः ॥ ३६ ॥

उन दोनोंके प्रहारोंसे हनुमान्जीके शरीरमें कई बगह
घाव हो गये और उनके शरीरकी रोमावली रक्तसे रँग
गयी । उस समय क्रोधमें भरे हुए वानरवीर हनुमान् प्रात
कालके स्यकी भौति अरुण कान्तिसे प्रकाशित हो रहे थे ॥

समुत्पाद्य गिरि शृङ्ग समुगम्याल्पावधम् ।
जघान हनुमान् वीरा राक्षसौ कपिकुञ्जर ।

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे धारमोकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे पट्वत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आर्यरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डम छिपातीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

सप्तत्वारिंशः सर्गः

रावणपुत्र अशकुमारका पराक्रम और वध

सेनापतीन् पञ्च स तु प्रमापितान्

हनुमता साजुचरान् सबाहवान् ।

निशम्य राजा समरोद्धतोमुख

कुमारमक्ष प्रसमैस्तदाक्षम् ॥ १ ॥

हनुमान्जीके द्वारा अपने पाँच सेनापतियोंको घेवकों और
बाहनोंवहित मारा गया मुनकर राजा रावणने अपने सामने

गिरिशृङ्गसुनिष्पिष्टौ तिलशस्ती यभूवतु ॥ ३७ ॥

तप मृग, सर्प और वृक्षोंवहित एक पत्रत शिखरको
उल्टाईकर कपिशैष्ठ वीर हनुमान्ने उन दोनों राक्षसोंपर
दे मारा । पर्वत शिखरक आघातसे वे दोनों पिस गये और
उनके शरीर तिलवे समान खण्ड खण्ड हो गये ॥ ३७ ॥

ततस्तेप्पसनेषु मेनापतिषु पञ्चसु ।

बल तद्वशेषे तु नाशयामास धानरः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार उन पाँचों सेनापतियोंक नष्ट हो जानेपर
हनुमान्जीने उनकी यची खुचों सेनाका भी संहार
आरम्भ किया ॥ ३८ ॥

अखैरभ्यान् गमैर्गान् योधैर्योधान् रथैरथान् ।

स कपिशाययामास सहस्राक्ष इयातुरान् ॥ ३९ ॥

जैसे दैवराज इंद्र असुरोंका विनाश करते हैं, उसी
प्रकार उन वानरवीरने योद्धोंसे योद्धोंका, हाथियोंसे
हाथियोंका, योद्धाओंसे योद्धाओंका और रथोंस रथोंका
संहार कर डाला ॥ ३९ ॥

हृयैर्नगैस्तुरगैश्च भग्नाश्चेष्ट महारथैः ।

हतैश्च राक्षसैर्मूर्ध्नि हृदमार्गा समतत ॥ ४० ॥

भरे हुए हाथियों और तीव्रगामी योद्धोंसे, टूटी हुई
धुरीवाके विशाल रथोंस तथा मारे गये राक्षसोंकी लाशोंसे
वहाँकी घाटी भूमि चारों ओरसे इस तरह पट गयी यी
कि आने जानेका रास्ता बंद हो गया था ॥ ४० ॥

तत कपिस्तान् धृजिर्नोपतीन् रणे

निहत्य वीरान् सखलान् सबाहवान् ।

तथैव वीर परिगृह्य तोरण

हतक्षणः काल इय प्रजाक्षये ॥ ४१ ॥

इस प्रकार वेना और बाहनोंवहित उन पाँचों वीर
सेनापतियोंको रणभूमिमें मौतके घाट उतारकर महावीर
वानर हनुमान्जी पुन युद्धके लिये अवसर पाकर पहलेंकी
ही भौति पाटकर बाकर खड़े हो गये । उस समय वे
प्रजाका संहार करनेके लिय उद्यत हुए कालके समान जान
पड़ते थे ॥ ४१ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे धारमोकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे पट्वत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आर्यरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डम छिपातीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

वैते हुए पुत्र अशकुमारकी ओर देखा, जो युद्धमें उद्यत
और उसके लिये उत्कण्ठित रहनेवाला था ॥ १ ॥

स तस्य दृष्ट्यपणसम्प्रचोदित

प्रतापवान् काश्चनश्चिन्तकानुकम् ।

समुत्पाताय सदस्तुदीरितो

द्विजासिमुखैद्वियेव पायकः ॥ २ ॥

पिताके दृष्टिपात मात्रसे प्रेरित हो यह प्रतापी वीर युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठा । उसका धनुष सुवर्णजटित होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करता था । जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा यज्ञशालामें हविष्यकी आहुति देनेपर अग्निदेव प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार वह भी समामें उठकर खड़ा हो गया ॥ २ ॥

ततो महान् धालदिवाकरप्रभ
प्रतप्तजाम्बूनदजालसततम् ।

रथ समास्थाय ययौ स धीर्यवान्
महाहरि त प्रति नैर्ऋतपभ ॥ ३ ॥

वह महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि अश्व प्राप्त करालीन सूक्ष्मे समान कान्तिमान् तथा तपस्वि हूए सुवर्णके बालसे आच्छादित रथपर आरोह हो उन महाकपि हनुमान्जीके पास चल दिया ॥ ३ ॥

ततस्तप सप्रहसचयार्जित
प्रतप्तजाम्बूनदजालचिन्तितम् ।
पताकिन रत्नविभूषितध्वज
मनोजवाष्टाभ्यधरैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥

सुरासुरपृथ्व्यमसङ्गचारिण
तडिरप्रभ व्योमचर समाहितम् ।
सत्तूणमष्टालिनिवद्धय धुर
ययाक्रमावेक्षितशक्तितोमरम् ॥ ५ ॥

विराजमान प्रतिपूर्णवस्तुना
सदेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।
दिवाकारभ रथमास्थितस्ततः
स निर्जंगामामरतुल्यविक्रम ॥ ६ ॥

वह रथ उसे बड़ी भारी तपस्याओंके सप्रहसे प्राप्त हुआ था । उसमें तपे हुए जाम्बूनद (सुवर्ण) की बाली बड़ी हुई थी । पताका पट्टा रही थी । उसका ध्वजदण्ड रत्नोंसे विभूषित था । उसमें मनके समान वेगगले आठ घोड़े अच्छी तरह जुटे हुए थे । देवता और असुर कोई भी उस रथको नष्ट नहीं कर सकते थे । उसकी गति कहीं रुकती नहीं थी । वह निजलीके समान प्रकाशित होता और आकाशमें भी चलता था । उस रथको सब सामग्रियों से सुश्रुजित किया गया था । उसमें तरकश रखे गये थे । आठ तलवारोंके बँधे रहनेसे यह और भी सुन्दर दिखायी देता था । उसमें ययास्थान शक्ति और तोमर आदि अश्व शस्त्र क्रमसे रखे गये थे । चन्द्रमा और सूर्यके समान दीप्तिमान तथा सोनेकी रस्तीसे युक्त युद्धके क्षमस्त उपकरणों से सुशोभित उस सुप्रतुल्य तेजस्वी रथपर बैठकर देवताओंके हुए पराक्रमी अञ्जुमार राक्षसहस्ते बाहर निकला ॥ ४-६ ॥

स पूरयन् सख महीं च साचला
तुरङ्गमातङ्गमहारथस्वने ।

या० घ० ५ ७ १६—

बलै समेतै सहतोरणस्थित
समयमासीनमुपागमत् कपिम् ॥ ७ ॥

घोड़े, हाथी और बड़े-बड़े रथोंकी भवकर आवाजसे पर्वतोंसहित पृथ्वी तथा आकाशकी गुंजाता हुआ यह बड़ी भारी सेना साथ लेह । वाटिकाके द्वारपर बैठे हुए शक्तिशाली वीर वानर हनुमान्जीके पास जा पहुँचा ॥ ७ ॥

स त समासाद्य हरिं हरीक्षणो
युगान्तकालाग्निमिष प्रजाक्षये ।
अवस्थित विस्मितजातसम्भ्रम
समैक्षताक्षो बहुमानचभूपा ॥ ८ ॥

सिंहके समान भयकर नेत्रबाल अश्वने बहाँ पहुँचकर लोकशहरके समय प्रचलित हुई प्रत्याग्निसे समान स्थित और विस्मय एव सम्भ्रममें पड़े हुए हनुमान्जीको अत्यन्त गवमरी दृष्टिसे देखा ॥ ८ ॥

स तस्य वेग च कपेर्महारमन
पराक्रम चारिषु रायणात्मज ।
विचारयन् स्व च बल महाबलो
युगक्षये स्य इवाभिवधत ॥ ९ ॥

उन महारमा कपिभेदके वेग तथा शत्रुओंके प्रति उनके पराक्रमका और अपने बलका भी विचार करके वह महाबली रावणकुमार प्रलयकालके सूर्यकी भाँति बढ़ने लगा ॥ ९ ॥

स जातमयु प्रसमीक्ष्य विक्रम
स्थित स्थिर सयति दुर्निवारणम् ।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे
प्रचोदयामास शितैः शरैस्त्रिभिः ॥ १० ॥

हनुमान्जीके पराक्रमपर दृष्टिपात करके उसे क्रोध आ गया । अतः सिरतापूवक स्थित हो उसने एकाम्रचिह्ने तीन तीक्ष्ण बाणोंद्वारा रणदुःख हनुमान्जीको मुद्देके लिये प्रेरित किया ॥ १० ॥

ततः कपि त प्रसमीक्ष्य गयित
जितधम शत्रुपराजयोचितम् ।
अवैक्षताक्ष समुदीणमानस
सवाणपाणि प्रवृद्धीतकामुक ॥ ११ ॥

तदनन्तर हाथमें धनुष और बाण लिय अश्वने यह जान कर कि मैंने सोद या यकायटके भीत चुके हैं, शत्रुओंको पराजित करनेकी योग्यता रखते हैं और मुद्देके लिये इनके मनका उत्साह बढ़ा हुआ है, इसीलिये ये गर्वील दिखायी देते हैं, उनकी ओर दृष्टिपात किया ॥ ११ ॥

स हेमनिष्काहदचारकुण्डल
समाससादागुपराक्रम कपिम् ।
तयोर्धूम्याप्रतिम समागम
सुरासुराणामपि सम्भ्रमप्रद ॥ १२ ॥

गलमें सुवर्णक निष्क (पदक), बाँहोंमें बाणवृन्द और

कानोमं मनोहर कुण्डल धारण क्रिये चह शीघ्रपराक्रमी रावण
कुमार हनुमान्जीके पास आया । उस समय उन दोनों धीरो
में जो टकरा हुई, उसकी कहीं तुलना नहीं थी । उनका युद्ध
देवताओं और असुरोंके मनमें भी घबराहट पैदा कर देने
वाला था ॥ १२ ॥

ररास भूमिर्न तत्ताप भानुमान्
घनी न धायु प्रचञ्चल चाचलः ।

कपेः कुमारस्य च धीर्यसयुग
ननाद् च यौस्वधिभ्य चुभुभे ॥ १३ ॥

कपिभेद हनुमान् और अशक्तुमारका वह सामान देखकर
भूतलके सारे प्राणी चीर उठे । सूर्यका ताप कम हो गया ।
बायुकी गति रुक गयी । पर्वत हिलने लगे । आकाशमें
मयकर शब्द होने लगा और समुद्रमें तूफान आ गया ॥ १३ ॥

स तस्य धीरः सुमुपान् पतत्रिण
सुवणपुष्पान् सविगानिबोरगान् ।

समाधिसयोगविमोक्षतत्त्ववि
च्छरानथ घनी कपिमूर्ध्वस्ताडयत् ॥ १४ ॥

अशक्तुमार निशाना साधने, बाणकी घनुपपर बढाने
और उसे लक्ष्मणी और छोड़नेमें बड़ा प्रवीण था । उस सीने
विषया सगोके समान मयकर, सुवर्णमय पत्थोंसे युक्त, सुन्दर
अममगवाले तथा पञ्चमुख तीन बाण हनुमान्जीके मस्तकमें
गरे ॥ १४ ॥

स तैः शरैर्मूर्ध्नि सम निपातितै
क्षरक्षत्रिद्विधविघ्नघनेभ्यः ।

नधोवृत्तादित्यनिभः शराशुमान्
हपराजतादित्य इयाशुमलिक ॥ १५ ॥

उन तीनोंकी चोट हनुमान्जीके माथमें एक साथ ही
लगी, इसके खूनकी पाप गिरने लगी । वे उस रक्तसे नहा
उठ और उनकी ओरें घूमने लगी । उस समय बाणरूपी
किरणोंसे युक्त हो वे दूरतके उगे हुए अशुभाली एकके समान
शोभा देने लगे ॥ १५ ॥

ततः स्रवद्वाधियमप्रसक्तमः
समीक्ष्य ॥ राजशरात्मज रणे ।

अदम्रचिप्रायुधविश्रक्तमुक्त
जहर्ष चापूयत धाद्योन्मुखः ॥ १६ ॥

तदनन्तर बानरराजके श्रेष्ठ मन्त्री हनुमान्जी राक्षसराज
रावणके राजकुमार अशक्तु अति उत्तम विचित्र वायुध यस्य
अद्वुत घनुष धारण क्रिये देख हर्ष और उत्साहसे भर गये
और युद्धके लिये उत्कण्ठित हो अपने शरीरको बगाने लगे ॥

स मन्वदारमस्थ इयागुमाली
त्रिवृद्धकोपो बलवीर्यसमृत्तः ।

कुमारमक्ष सफलं सवाहन
वदाह नेत्राग्निमयीचिभ्रिस्तथा ॥ १७ ॥

हनुमान्जीका क्रोध बहुत घना हुआ था । वे बल और
पराक्रमसे सम्पन्न थे, अतः मन्दराचलके शिखरपर प्रकाशित
होनेवाले सूर्यदेवके समान व अपनी नेत्राग्निमयी किरणोंसे
उस समय सेना और शत्रुविरोधित राजकुमार अशक्तु
का करने लगे ॥ १७ ॥

ततः स याणासनशक्रकार्मुकः
शरप्रवर्षो युधि राक्षसागुद ।

शरान् मुमोचानु हरीश्वराचले
बलाद्धको वृष्टिमिवाचलोत्तमे ॥ १८ ॥

तब जैसे बादल श्रेष्ठ पर्वतपर जल बरसता है, उसी
प्रकार युद्धस्थलमें अपने शरासनरूपी इन्द्र-यनुपसे युक्त वह
राक्षसरूपी श्रेष्ठ बाणवर्षी होकर कपिभेद हनुमान्जीके पर्वतपर
बड़े वेगसे बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १८ ॥

कपिस्तत्तरतं रणबण्डविक्रम
प्रवृद्धतेजोबलधीर्यसायकम् ।

कुमारमक्ष प्रसमीक्ष्य सयुगे
ननाद् हर्षाद् घनतुल्यनिःस्वन ॥ १९ ॥

रणभूमिमें अशक्तुमारका पराक्रम वहाँ प्रचण्ड दिखायी
देता था । उसके तेज, बल, पराक्रम और बाण सभी बढ़-बढे
थे । युद्धस्थलमें उसकी ओर दृष्टिपात करके हनुमान्जीने
हर्ष और उत्साहमें भरकर मेघक समान भयानक गजना
की ॥ १९ ॥

स बालभावादयुधि धीर्यदर्पितः
प्रक्षुब्धमन्यु क्षतजोपमेक्षणः ।

समाससादाप्रतिम रणे कपि
गजो महाकूपमिवावृत्त एजे ॥ २० ॥

समराजगणमें बलके घमटमें भर हुए अशक्तुमारकी उनकी
गर्जना सुनकर बड़ा क्रोध हुआ । उसकी ओरें रक्तके समान
लाल हो गयी । वह अपने बालोचित अशानके कारण अनु
पम पराक्रमी हनुमान्जीका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ।
ठीक उसी तरह, जैसे कोई हाथी तिनकोंसे ढके हुए विद्याल
कूपकी ओर अग्रसर होता है ॥ २० ॥

स तेन बाणे प्रसप्त निपातितै
अकार नाद् घननादनिःस्वन ।

समुत्सहेनानु नभः समावृजन्
भुजोरुधिशेषणघोरदर्शन ॥ २१ ॥

उठके बलपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे विद्ध होकर
हनुमान्जीने दूरत ही उत्साहपूर्वक आकाशको निर्दीन करते
हुए-से मेघके समान गम्भीर स्वरसे सीधण गजना की । उस
समय दोनों गुणाओं और बाँधोंको चला देनेके कारण वे बड़े
मयकर दिखायी देते थे ॥ २१ ॥

तमुत्पतत समभिद्रवद् बली
स राक्षसानां प्रवतः प्रतापयान् ।

रथी रथधेष्टनर किरच्छरै

पयोधर शैलमिवाद्मवृष्टिभि ॥ २२ ॥

उहें आकाशमें उछलते देख रथियोंमें भेष्ट और रथपर चढ़े हुए उस बहवान्, प्रतापी एवं खड्गसशिरोमण वीरने बाणोंकी बर्षा करते हुए उनका पीछा किया। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो कोई मेघ किसी पर्वतपर ओले और पत्थरोंकी बर्षा कर रहा हो ॥ २२ ॥

तत्ताच्छरास्तस्य हरिर्विमोक्षय

अचार वीर पथि वायुसेविते।

शरान्तरे मारुतपद् विनिपतन्

मनोजय सयति भीमबिह्वम ॥ २३ ॥

उस युद्धस्थलमें मनके समान वेगवाला वीर हनुमान्जी मयकर पराक्रम प्रकट करने लगे। वे अश्वकुमारके उन बाणोंको व्यर्थ करते हुए वायुके पथपर विचरते और दो बाणोंके बीचसे इसकी मौलि निकल जाते थे ॥ २३ ॥

तमात्तबाणासनमाहवोमुप

समास्वृणन्त विविचै शरोत्तमै।

अवैक्षताक्ष बहुमानचक्षुषा

जगाम चिन्ता स च मारुतात्मज ॥ २४ ॥

अश्वकुमार हाथमें धनुष लिये युद्धके लिये ठाम्बुल हो नाना प्रकारके उत्तम बाणोंद्वारा आकाशको आच्छादित किये देता था। पवनकुमार हनुमान्ने उठे चढ़े आदरकी दृष्टिसे देखा और वे मन ही मन कुछ सोचने लगे ॥ २४ ॥

तत शरैर्भिन्नुज्जतर कपि

कुमारवर्षेण महारमना नन्दन्।

महासुज कमविशेषतत्त्वविद्

विशितयामास रणे पराक्रमम् ॥ २५ ॥

इतनहीमें महामना वीर अश्वकुमारने अपने बाणोंद्वारा कपिशेष्ट हनुमान्जीकी दोनों मुन्धोंको मध्यभाग—छातीमें गहरा आघात किया। वे महाबाहु वानरवीर समभोचित कर्तव्यविशेषको ठीक ठीक जानते थे, अतः वे रणक्षेत्रमें उस चोटकी सहकर विह्वल करते हुए उसके पराक्रमके विषयमें इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ २५ ॥

अथालयद् बालद्विधाकरप्रभ

करोत्यय कर्म महमहाबल।

न चाम्य सपाहवश्चमशालिन

प्रमाणे मे मतिरत्र जायते ॥ २६ ॥

‘यह महाबली अश्वकुमार बालवृषके समान तेजस्वी है और बालक होकर भी बड़ोंके समान महान् कर्म कर रहा है। युद्धस्थली समस्त कर्मोंमें कुशल होनेके कारण अद्भुत शोभा पानेवाले इस वीरको यहाँ मार डालनेकी मेरी इच्छा नहीं हो रही है ॥ २६ ॥

अय महारमा च महाश्वधीर्यतः

समाहितस्मातिसहस्र सयुगे।

असंशय कर्मगुणोद्घाटय

सनत्गयक्षैर्मुनिभिश्च पूजित ॥ २७ ॥

‘यह महामनस्वा राजकुमार बलपराक्रमकी दृष्टिसे महान् है। युद्धमें सावधान एवं एकाग्रचित्त है तथा शत्रुके बेगकी सहन करनेमें अत्यन्त समर्थ है। अपने कर्म और गुणोंकी उल्लेखताके कारण यह नागों, पक्षों और मुनियोंके द्वारा भी प्रशंसित हुआ होगा, इसमें शक्य नहीं है ॥ २७ ॥

पराक्रमोऽसाहयिवृद्धमानस

समीक्षते मा प्रमुञ्चोऽग्रत स्थित।

पराक्रमो ह्यम्य मनासिक्कम्पयेत्

सुरासुराणामपि शीघ्रकारिण ॥ २८ ॥

‘पराक्रम और उल्हासे इसका मन बड़ा हुआ है। यह युद्धके मुहानेपर मेरे सामने खड़ा हो मुझे ही देख रहा है। शीघ्रतापूर्वक युद्ध करनेवाले इस वीरका पराक्रम देवताओं और अशुरोंके हृदयको भी कम्पित कर सकता है ॥ २८ ॥

न खल्वय नाभिभवेदुपेक्षित

पराक्रमो ह्यम्य रणे निर्वर्धते।

प्रमाणे ह्यस्य ममाद्य रोचते

नवर्धमानोऽग्निरुपेक्षितु क्षमः ॥ २९ ॥

‘किंतु यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह मुझे पराजित किये बिना नहीं रहेगा क्योंकि सग्राममें इसका पराक्रम बढ़ता जा रहा है। अतः अब इसे मार डालना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है। बटवी हुई आगकी उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है’ ॥ २९ ॥

इति प्रवेग तु परम्य तर्कयन्

स्यकर्मयोग च विधाय वीर्यवान्।

चकार वेग तु महाबलस्तदा

मतिश्च चक्रेऽस्य वधे तदानीम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार शत्रुके वैरका विचार कर उठके प्रतीवारके लिये अपने कर्तव्यका निश्चय करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हनुमान्जीने उस समय अपना वेग बढ़ाया और उस शत्रुको मार डालनेका विचार किया ॥ ३० ॥

स तस्य तानष्ट वरान् महाह्वयान्

समाहितान् भारतसहान् धिवर्तने।

अघान वीर पथि वायुसेविते

तलप्रहारै पथनात्मज कपिः ॥ ३१ ॥

सर्वथात् आकाशमें विचरते हुए वीर वानर पवनकुमारने सप्पक्षोंकी मारसे अश्वकुमारके उन आँठों उल्लेख और विच्छाद कोड़ोंको, जो मार सहन करनेमें समर्थ और नाना प्रकारके वृद्धोंके हृदयोंमें प्रशंसित थे, यमघटे पड़ना दिया ॥

ततस्तले गमिदतो महारथ
सतस्य पिङ्गधिपमि प्रनिजित ।
स भग्ननीहः परिवृत्सकूधर
पपात भूमी दतवाजिरम्परात् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर वानराज सुभीतके मन्त्री हनुमानजीने अक्ष
कुमारके उस विशाल रथको भी अभिभूत कर दिया, उन्होंने
हाथसे ही पीटकर रथकी बैठक तोड़ डाली और उसने हस्ते
को उल्टा दिया । फोड़े तो पहले ही गर चुने थे, अतः यह
महान् रथ आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

स त परित्यज्य महारथो रथ
सकामुक रजधर रमुत्पतर ।
ततोऽभियोगाद्विपन्नधीर्यथा
विहाय देह मरुतामिचारयम् ॥ ३३ ॥

उस समय महारथी अक्षकुमार घनुष और तलवार ले
रथ छोड़कर अन्तरिक्षमें ही उड़ने लगा । ठीक वैसे ही, जैसे
कोई उग्रशक्ति सम्पन्न महर्षि योगमार्गसं गरीर स्थापक
स्वगलोककी ओर चला जा रहा हो ॥ ३३ ॥

कपित्तस्त विचरन्तमग्नये
पतत्रिराजानिलसिद्धसेविते ।
समेत्य त माहृतयेगविक्रमः
क्रमेण जग्राह पादयोर्द्वन्द्वम् ॥ ३४ ॥

उस वायुके समान वेग और पराक्रमवाले कपिवर
हनुमानजीने पक्षिराज गरुड, वायु तथा विद्वोषे सेवित न्योम
मार्गमें विचरते हुए उस राक्षसके पादपङ्क्तिक्रमशः उसके
दोनों पैर दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये ॥ ३४ ॥

स त समाविष्य सहस्रशः कपि
महोरग शुद्ध ह्वाण्डजेश्वरः ।
मुमोच वेगात् पितृतुल्यविक्रमो
महीतले संयति घानरोत्तम ॥ ३५ ॥

किर तो अपने पिता वायु देवताक तुल्य पराक्रमी वानर
शिरोमणि हनुमान्ने जिस प्रकार गरुड पकड़े-पकड़े सभीको धुमाये

ह्वाण्डं भीमद्रामायणे वाचमीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तचारिणः सग ॥ ४७ ॥
इत प्रकार भीमा-मीकीनिर्मित आर्यसामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें संततीसवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रजित् और हनुमान्जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके बन्धनमें बँधकर
हनुमान्जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
हनुमताक्षे निहत्य कुमारैः ।
मन समाधाय स देवकृत्य
समादिदेशो प्रजित सरोप ॥ १ ॥

है, उसी तरह उसे हजारों बार धुमाकर पड़े वेगो उम युद्ध
भूमिमें पटक दिया ॥ ३५ ॥

स भगवाद्भक्तकटीपयोधर
क्षरप्रसृष्टमिधितास्थिलोचन ।
सम्भिनसधिः प्रविषीर्णधन्वो

दत्त क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥ ३६ ॥
नीचे गिरते ही उसकी युवा, आँख, कमर और छातीने
टुकड़ टुकड़े हो गये, रक्तकी घागा बहने लगी, गरीरकी
हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं,
अस्थियाँ फोड़ टूट गये और नष्ट नाडियोंके बन्धन स्थिच्छिन्न
हो गये । इस तरह वह राक्षस पवनकुमार हनुमान्जीके हाथसे
मारा गया ॥ ३६ ॥

महाकपिभूमितले निपीड्य
चकार रक्षोऽधिपतिर्महद्भयम् ।
महर्षिभिश्चक्षुरैः समागतैः
समेत्य भूतैश्च सयक्षपणैः ।

सुरैश्च सेन्द्रैर्भुजजातविरम्यै
हते कुमारे च कपिर्निरीक्षित ॥ ३७ ॥

अक्षकुमारको पृथ्वीपर पटककर महाकपि हनुमान्जीने
राक्षसराज रावणके हृदयमें बहुत बढ़ा मय उत्पन्न कर दिया ।
उसके मारे जानेपर नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले महर्षियों,
यक्षों, नागों, भूतों तथा इन्द्रसहित देवताओंने वहाँ एकत्र
होकर बड़े विलम्बके साथ हनुमान्जीका दर्शन किया ॥ ३७ ॥

निहत्य त यज्ञसुतोपम रणे
कुमारमक्ष क्षतजोपमेक्षणम् ।
तदेव धीरोऽभिन्नमाम तोरण

हृतक्षण काल इव प्रजाक्षये ॥ ३८ ॥
युद्धमें इन्द्रपुत्र वयं तके समान पराक्रमी और लाल-लाल
आँखोंवाले अक्षकुमारका काम तमाम करके बीरवर हनुमान्
जी प्रजाके संहारके लिये उद्यत हुए कालकी भौंति पुन युद्ध
की प्रतीक्षा करते हुए वानिकाके उसी द्वारपर जा
पहुँचे ॥ ३८ ॥

सप्तचारिणः सग ॥ ४७ ॥
इत प्रकार भीमा-मीकीनिर्मित आर्यसामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें संततीसवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रजित् और हनुमान्जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके बन्धनमें बँधकर
हनुमान्जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
हनुमताक्षे निहत्य कुमारैः ।
मन समाधाय स देवकृत्य
समादिदेशो प्रजित सरोप ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान्जीके द्वारा अक्षकुमारके मारे जानेपर
राक्षसोंका स्वामी महाकाय रावण अपने मनको किसी तरह
सुखिर करके रोपसे बल उठा और देवताओंके मुख्य पराक्रमी
कुमार इन्द्रजित् (मेघनाद) को इस प्रकार आशा दी—॥

त्वमखविच्छन्नभृता सरिष्ठ
सुप्रसुरणामपि शोकदाता ।

सुरेषु सेत्रेषु च हृष्टकमा
पिनामहाराधनसचिताम् ॥ ७ ॥

येन । तुमने ब्रह्मादीकी आराधना करके अनेक प्रकार के अन्नोका गन प्राप्त किया है । तुम अस्त्रवेत्ता, शस्त्र चारिणों में श्रेष्ठ तथा देवताओं और असुरोंको भी शोक प्रदान करनेवाले हो । इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंने समुदायमें तुम्हारा पराक्रम देखा गया है । २ ॥

त्वद्वत्स्यलमासाद्य ससुरा समरुद्रणा ।
न दोक्षु समरे स्थानु सुहृत्स्वरसमाभिता ॥ ३ ॥
इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले देवता और मरुद्गण भी समरभूमिमें तुम्हारे अस्त्र-बलका सामना होनेपर टिक नहीं सके हैं ॥ ३ ॥

न कश्चित् त्रिषु लोकेषु सयुगेन गतधम ।
मुञ्जनीयाभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षित ।
देशकालप्रधानश्च स्वमेव मतिस्तत्तमः ॥ ४ ॥
प्राणों लोकोमें तुम्हारे विना दूरका कोई ऐसा नहीं है, जो युद्धमें शक्यता न हो । तुम अपने बाहुबलसे तो सुरक्षित हो हो । तपस्याके बलसे भी पूर्णतः निगूढ हो । देश कालका शान रखनेवालोंमें प्रधान और बुद्धि की दृष्टिसे भी सर्वश्रेष्ठ तुम्हीं हो ॥ ४ ॥

न तेऽस्त्रयशस्य समरेषु कर्मणा
न तेऽस्त्रयकार्यं मतिपूर्वमन्वजे ।
न सोऽस्ति कश्चित् त्रिषु समरेषु
न चेद् यस्तेऽस्त्रयलं बलं च ॥ ५ ॥
युद्धमें तुम्हारे नीरोचित कर्मके द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है । शस्त्रानुसृत बुद्धिपूर्वक राक्षसाका विचार करते समय तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है । तुम्हारा कोई भी विचार ऐसा नहीं होता, जो कार्यका साधक न हो । त्रिलोकी में एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हारी शारीरिक शक्ति और अस्त्र बलके न जानता हो ॥ ५ ॥

ममानुरूपं तपसो बलं च ते
पराक्रमश्चास्त्रबलं च सयुगे ।
न तथा समासाद्य रणावमर्धं
मन धम गच्छति निश्चिंतायम् ॥ ६ ॥
तुम्हारा तपोबल, युद्धविषयक पराक्रम और अस्त्र बल मेरे ही समान है । युद्धस्थलमें तुमको पाश्चर्य्य मन कभी ऐद या विशादको नहीं प्राप्त होगा क्योंकि इन्हे यह निश्चित विश्वास रहता है कि विजय तुम्हारे पक्षमें होगी ॥ ६ ॥
निहता किंकरा सयै जम्भुमाली च राक्षसाः ।
भमार्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाप्रगामिनः ॥ ७ ॥
देखो, किंकर नामवाले समस्त राक्षस मार डाले गये ।

जम्भुमाला नामका राक्षस भी जीवित न रह सका, मन्त्रीके सारों वीर पुत्र तथा मेरे पाँच सेनापति भी काटके मारलें चले गये ॥ ७ ॥

यलानि सुसमृद्धानि साय्वनागरणानि च ।
सहोदरस्ते दयितं कुमारोऽक्षश्च सुदित ।
न तु तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यतिनिघ्नून ॥ ८ ॥
उनके साथ ही हाथी, घोड़े और रथोहित मेरी बहुतसी बल-वीरसे सम्पन्न सेनाएँ भी नष्ट हो गयीं और तुम्हारा प्रिय बाल्य कुमार अश्व भी मार डाला गया । शत्रु सूदन ! सुझमें वे तीनों लोकोंपर विजय पानेकी शक्ति है, वह तुम्हींमें है । पहले वो लोग मारे गये हैं, उनमें वह शक्ति नहीं थी (इच्छित्वे तुम्हारी विजय निश्चित है) ॥ ८ ॥

इदं च हृष्टा निहत महद् बलं
कथं प्रभाव च पराक्रम च ।
त्वमात्मनश्चापि निरीक्ष्य सार
कुर्वन् वेगं स्वयलानुरूपम् ॥ ९ ॥
इस प्रकार अपनी विशाल सेनाका संहार और उस बानरका प्रभाव एवं पराक्रम देखकर तुम अपने बलका भी विचार कर लो फिर अपनी शक्ति अनुसार उद्योग करो ॥ बलावमर्दस्त्वयि सनिहृष्टे
यथा गते शाम्यति शान्तशत्रौ ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च
समारभस्वास्त्रभृता वरिष्ठ ॥ १० ॥
प्राश्नचारिणों में श्रेष्ठ वीर । तुम्हारे सब शत्रु शान्त हो चुके हैं । तुम अपने और परपरे बलका विचार करके ऐसा प्रयत्न करो, जिससे युद्धभूमिके निकट तुम्हारे पहुँचते ही मेरी सेनाका विनाश हो जाय ॥ १० ॥

॥ वीर सेना गणशो च्यवन्ति
न घञ्जमादाय विशालसारम् ।
न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं
न चाग्निकल्पः कारणेन हन्तुम् ॥ ११ ॥
वीरवर ! तुम्हें अपने साथ सेना नहीं ले जानी चाहिये क्योंकि वे सेनाएँ समूह-की-समूह या तो भाग जाया हैं या मारी जाती हैं । इसी तरह अधिक तीक्ष्णता और कठरतासे युक्त वज्र लेकर भी जनेही कोई आत्म-पक्षता नहीं है (क्योंकि उसके ऊपर वह भी व्यर्थ सिद्ध हो चुका है) । उस बाहुपुत्र इतुमानुकी गति अथवा शक्ति का कोई माप-तक या सीमा नहीं है । वह अग्नि-युक्त तेजस्वी बानर किसी क्षणविक्षेप से नहीं मारा जा सकता ॥ ११ ॥

तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्
स्वकर्मसाध्यादि समाहितात्मा ।
स्वस्व दिव्य धनुषोऽस्य धीर्यं
प्रजापतं कम समारभस्य ॥ १२ ॥

ततस्तोताभिहतो महारथ
स तस्य पित्राधिपमि त्रिनिर्जित ।

स भग्ननीड परिवृत्तकूथरः
पपात भूमौ हतवाजिरम्यरात् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर वानरराज सुश्रीवके मन्त्री हनुमान्नीने अप
कुमारके उस विद्याल रथको भी अभिभूत कर दिया। उन्होंने
हाथसे ही पीटकर रथकी बैठक तोड़ डाली और उसने हस्ते
को उलट दिया। घोड़े तो पहले ही मर चुने थे, अतः वह
महान् रथ आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

स त परित्यज्य महारथो रथ
सक्तार्मुक अङ्गधरः सन्मुत्पतन् ।
ततोऽभियोगाहपिरुप्रवीर्यवान्
विधाय देह मरुतामिवालयम् ॥ ३३ ॥

उस समय महारथी अशक्तुमार घनुप और तलवार ले
रथ छोड़कर अन्तरिक्षमें ही उड़ने लगा। ठीक वैसे ही, जैसे
कोई उग्रशक्तिसे सम्पन्न महर्षि योगमार्गसे शरीर त्यागकर
खगोलोक्की ओर चला जा रहा हो ॥ ३३ ॥

कपिस्ततस्त विचरन्तमन्धरे
पतत्रिराजानिलसिद्धसेजिते ।
समेत्य तं मारुतवेगविक्रम
क्रमेण जग्राह च पादयोददम् ॥ ३४ ॥

वह बाघुके समान वेग और पराक्रमवाले कपिवर
हनुमान्नीने पक्षिराज गरुड, बाघु तथा शिदोंसे सेवित व्योम
मार्गमें विचरते हुए उस राक्षसके पादपङ्क्तिकर क्रमशः उसके
दोनों पैर हन्तापूर्वक पकड़ लिये ॥ ३४ ॥

स त समाविष्य सहजरा कपि
महोरग गृह्य द्वाण्डजेश्वर ।
मुमोच वेगात् पितृतुल्यविक्रमो
महीतले सयति वानरोत्तम ॥ ३५ ॥

फिर तो अपने पिता बाघु देवताके तुल्य पराक्रमी वानर
शिरोमणि हनुमान्ने जिस प्रकार गरुड वड़े-बड़े शरीरको घुमाते

हूयार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥
एत श्रद्धा मोक्षमोर्निर्मितं नार्थरामायण आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सैतार्लिखितं सर्वं पुरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्ग

इन्द्रजित् और हनुमान्जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके घनघनमें बँधकर
हनुमान्जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
हनुमताये निहते कुमारे ।
मनः समाधाय स देवकल्प
समादिदेवोद्गमजित सरोपः ॥ १ ॥

हैं, उगी तरह उसे दज्जों बार घुमाकर वड़े वेगसे उस युद्ध
भूमिमें पटक दिया ॥ ३५ ॥

स भग्नबाहुरुकटीपयोधर
शरभसुङ्गिर्मथितास्थिलोचन ।

समिभनसधिः प्रविकीर्णवधनो
हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षस ॥ ३६ ॥
नीचे गिरते ही उसकी मुजा, बाँध, वजार और छातीने
टुकड़ टुकड़े हो गये, शून्यी भाग रहने लगी, शरीरकी
हड्डियों चूर-चूर हो गयीं, ओंलें बाहर निकल आयीं,
अस्थियोंके जोड़ टूट गये और मज-नादियोंके बन्धन टिपिल
हो गये। इस तरह वह राक्षस पवनपुमार हनुमान्जीके हाथसे
मार गया ॥ ३६ ॥

महाकपिर्मूमितले निपीड्य त
चकार रक्षोऽधिपतेर्महङ्गयम् ।

महर्षिभिश्चकचरे समागतैः

समेत्य भूतैश्च सयक्षपण्यै ।

सुरैश्च से-प्रैर्भृशजातविस्मयै
हन्ते कुमारे स कपिर्निरीक्षित ॥ ३७ ॥

अशक्तुमारको पृथ्वीपर पटककर मरुतकपि हनुमान्नीने
राक्षसराज रावणके हृदयमें बहुत बड़ा मय उत्पन्न कर दिया।
उसके मारे जानेपर नक्षत्र मण्डलमें विचरनेवाले महर्षियों,
यक्षों, नागों, भूतों तथा इन्द्रसहित देवाओंने वहाँ एकत्र
होकर वड़े विस्मयके साथ हनुमान्जीका दर्शन किया ॥ ३७ ॥

निहत्य त यज्ञिसुतोपम रणे
कुमारमक्ष क्षतजोपमेक्षणम् ।

तदेव धीरोऽभिजगाम तोरण
हृत्तक्षणाः काल इव प्रजाक्षये ॥ ३८ ॥

युद्धमें हृदयुक्त बध्नातके समान पराक्रमी और लाल-लाल
आँखोंवाले अशक्तुमारका काम तमाम करके धीरवर हनुमान्
जी प्रजाके संहारके लिये उद्यत हुए कालकी भाँति पुन युद्ध
की प्रतीक्षा करते हुए वायुकाके उठी द्वारपर जा
पहुँचे ॥ ३८ ॥

तदनन्तर हनुमान्नीके द्वारा अशक्तुमारके मारे जानेपर
राक्षसोंका स्वामी महाबाय रावण अपने मनकी किसी तरह
मुशिर करके रोपते जल उठा और देवताओंके तुल्य पराक्रमी
कुमार इन्द्रजित् (मेघनाद) को इस प्रकार आशा दी—॥

रमस्त्रवि उल्लभृता वरिष्ठः
सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेद्रेषु च दृष्टकमा
पितामहाराधनसचिताम् ॥ २ ॥

येय । तुमने ब्रह्माजीजी आराधना करके अनेक प्रकार के भस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है । तुम अस्त्रवेत्ता, अस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ तथा देवताओं और असुरोंको भी शोक प्रदान करनेवाले हो । इन्द्रवर्षित सम्पूर्ण देवताओंके समुदायमें तुम्हारा पराक्रम देखा गया है । २ ॥

त्वदस्त्रयलमासाद्य समुराः समरद्वणा ।
न शोकु समरे स्यात् सुरेश्वरसमाधिता ॥ ३ ॥
इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले देवता और मरुद्गण भी समरभूमिमें तुम्हारे अस्त्र-बलका सामना होनेपर टिक नहीं सके हैं ॥ ३ ॥

न कश्चित् त्रिषु लोकेषु संयुगेन गतधम ।
मुजनीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षित ।
देशकालप्रधानश्च त्यमेव मत्तिसत्तमः ॥ ४ ॥

तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो युद्धमें शक्ता न हो । तुम अपने बाहुबलमें तो सुरक्षित हो ही, तपस्याके बलमें भी पूर्णतः निरालस हो । देश कालका ज्ञान रखनेवालोंमें प्रधान और बुद्धिकी दृष्टिसे भी सर्वश्रेष्ठ तुम्हीं हो ॥ ४ ॥

न तेऽस्त्यशक्य समरेषु कमणा
न तेऽस्त्यकार्यं मत्तियुर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित् त्रिषु समरेषु

न चेद् यस्तेऽस्त्रयलं बलं च ॥ ५ ॥
तुम्हमें तुम्हारे शीरोचित कर्मोंके द्वारा कुछ भी अशक्य नहीं है । शास्त्रानुसृत बुद्धिपूर्वक राजकार्यका विचार करते समय तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है । तुम्हारा कोई भी विचार ऐसा नहीं होता, जो कार्यका साधक न हो । त्रिलोकी में एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हारी धार्मिक शक्ति और अस्त्र बलको न जानता हो ॥ ५ ॥

ममानुरूप तपसो बलं च ते
पराक्रमश्चास्त्रयलं च संयुगे ।
न त्वा समासाद्य रणावमर्दे

मनःधममच्छति निश्चितार्थम् ॥ ६ ॥
तुम्हारा तपोबल, युद्धविषयक पराक्रम और अस्त्र बल मेरे ही समान है । युद्धमयलमें तुमको पाकर मेरा मन कभी छेद वा विषादको नहीं प्राप्त होता क्योंकि इसे वह निश्चित विश्वास रहता है कि विजय तुम्हारे पक्षमें होगी ॥ ६ ॥
निहता क्रिहराः सर्वे अभ्युमाली च राक्षस ।
समारयपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाप्रगामिन ॥ ७ ॥

देवता, क्रिहर नामवाले समस्त राक्षस मार खाये गये ।

अभ्युमाली नामका राक्षस भी नीवित न रह सका, मन्त्रीके शत्रों वीर पुत्र तथा मेरे पाँच सेनापति भी वाशके गालमें चले गये ॥ ७ ॥

बलानि सुसमृद्धानि साम्यनागरयानि च ।
सहोदरस्ते दयित कुमारोऽक्षय्य सुदित ।
न तु तेष्वेव मे सारो यस्तव्ययरिनिपूदन ॥ ८ ॥

उनके साथ ही हाथी, घोड़े और रथोंवहित मेरी बहुत-सी बल-वीर्यसे सम्पन्न सेनाएँ भी नष्ट हो गयीं और तुम्हारा प्रिय बन्धु कुमार अश्व भी मार डाला गया । शत्रु सुदन । मुझमें जो वीरों कोकोंपर विजय पानेकी शक्ति है, वह तुम्हींमें है । पहले जो लोग मारे गये हैं, उनमें वह शक्ति नहीं थी (इच्छित्ये तुम्हारी विजय निश्चित है) ॥ ८ ॥

इदं च दृष्ट्वा निहत महद् बलं
कपे प्रभाष च पराक्रम च ।
त्वमात्मनश्चापि निरीक्ष्य सारं

कुक्ष्य वेगं स्वयलानुरूपम् ॥ ९ ॥
इस प्रकार अपनी विशाल सेनाका संहार और उस वानरका प्रभाव एवं पराक्रम देखकर तुम अपने बलका भी विचार कर ले, फिर अपनी शक्तिके अनुसार उद्योग करो ॥

बलावमर्दस्त्ययि सनिष्टष्टे
यथा गते शान्त्यति शान्तशत्रौ ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च

समारभस्वास्त्रभृता वरिष्ठ ॥ १० ॥
यस्तवधारियोंमें श्रेष्ठ वीर । तुम्हारे सब शत्रु शान्त हो चुके हैं । तुम अपने और पराये बलका विचार करके ऐसा प्रयत्न करो, जिससे युद्धभूमिके निकट तुम्हारे पहुँचते ही मेरी सेनाका विनाश कर जाय ॥ १० ॥

न वीर सेना गणसो व्यवन्ति
न धञ्जमादाय विशालसारम् ।
न मावतस्यास्ति गतिप्रमाणं

न चाग्निक्षत्प करणेन हन्तुम् ॥ ११ ॥
वीरवर । तुम्हें अपने साथ सेना नहीं ले जानी चाहिये क्योंकि वे सेनाएँ समूह-बी-समूह या तो भाग जाती हैं या मारी जाती हैं । इसी तरह अधिक तीक्ष्णता और कठारतासे युक्त वज्र छेकर भी आग्नेयी कोट आश्रयशक्ता नहीं है (क्योंकि उसके ऊपर वह भी व्यर्थ छिद्र हो चुका है) । उस वायुपुत्र हनुमान्जी गति अथवा शक्तिका कोई माप-तोल या सीमा नहीं है । वह अग्नि-वृक्ष्य वैजन्वी वानर किसी साधनविशेष से नहीं मारा जा सकता ॥ ११ ॥

तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्
स्वकमसाम्यादि समाहितात्मा ।
सरश्च दिव्य धनुषोऽयं धीर्यं

यज्ञाशनं कम समारभस्व ॥ १२ ॥
तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक् स्वकमसाम्यादि समाहितात्मा । सरश्च दिव्य धनुषोऽयं धीर्यं यज्ञाशनं कम समारभस्व ॥ १२ ॥

ततस्तलेनाभिहतो महाग्न्य
स तस्य पिङ्गाक्षिपमग्निर्जित ।

स भग्ननीह परिकृत्तकूथर
पपात भूमौ दत्तवाजिरम्बरात् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर वानरराज छुभीये मन्त्री हनुमान्जीने अक्ष
कुमारके उस विशाल रथको भी अभिभूत कर दिया। उन्होंने
हाथसे ही पीटकर रथकी बैठक तोड़ डाली और उसने इसे
को उलट दिया। घोड़े तो पहले ही मर चुके थे, अब वह
महान् रथ आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

स त परित्यज्य महारथो रथ
सकामुकं स्वगन्धरं जमुत्पतन् ।

ततोऽभियोगाद्विरुप्रवीर्यथा
विहाय देहं मरुतामियालयम् ॥ ३३ ॥

उस समय महारथी अक्षकुमार घनुष और तलवार ले
रथ छोड़कर अन्तरिक्षमें ही उड़ने लगा। ठीक वैसे ही, जैसे
कोई उम्रशक्तिसे सम्पन्न मर्दपि यागमार्गसे शरीर त्यागकर
खगोलकक्षी और चला जा रहा हो ॥ ३३ ॥

कपिलस्तस्त विचरन्तमग्नये
पतत्रिराजानिलसिद्धसेविते ।

समेत्य त मासुतवेगविक्रम
क्रमेण जग्राह च पादयोद्वहम् ॥ ३४ ॥

तब वायुक क्षमान वेग और पराक्रमवाले कपिवर
हनुमान्जीने पश्चिम गच्छ, वायु तथा शिदोसे सेवित ध्योम
मार्गमें विचरते हुए उस राक्षसके पाश पहुँचकर क्रमशः उसके
दोनों पैर दृढतापूर्वक पकड़ लिये ॥ ३४ ॥

स त समाविध्य सहस्रश कपि
महोरगं गृह्य द्वाण्डजेश्वर ।

मुमोक्ष वेगाद् पितृतुल्यविक्रमो
महीतले सयति वानरोत्तम ॥ ३५ ॥

किर तो अपने पिता वायु देवताके तुल्य पराक्रमी वानर
धिरामणि हनुमान्ने जिस प्रकार गच्छ बड़े-बड़े खोंकी शुभाते

हृत्पापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्वारिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्याभारत रामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सैतत्वारिंशोऽंशः सर्गः पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रनिव और हनुमान्जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके बन्धनमें बंधकर
हनुमान्जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
हनुमताक्षे निहतो कुमारे ।

मन समाधाय स देवकल्प
समादिदेशो द्रजित सरोषः ॥ १ ॥

हैं, उभी तरह उसे द्वाजरी बार घुमाकर बड़े वेगसे उस युद्ध
भूमिमें पटक दिया ॥ ३५ ॥

स भग्नयाहुकटीपयोधर
क्षरप्रसङ्गनिर्मथितास्थिलोचन ।

सम्भिनसधिः प्रविकीर्णयन्धनो
हम क्षितौ घायुसुतेन राक्षस ॥ ३६ ॥

नीचे गिरते ही उसरी भुजा, गोंध, कमर और छातीने
टुकड़े टुकड़े हो गये; रानकी घागा बहने लगी; घरीरकी
हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, ओंखें बाहर निकल आयीं,
अस्तिपाँखें जोड़ टूट गये और नभ नाभिपाँखें बन्धन स्थिम्बल
हो गये। इस तरह वह राक्षस पन्नकुमार हनुमान्जीके हातसे
मारा गया ॥ ३६ ॥

महाकपिमुमितले निपीड्य त
स्वकार रक्षोऽधिपतेमहद्भयम् ।

महर्षिभिश्चाम्बरे समागतै
समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नै ।

सुरैश्च सैर्द्रैश्चजातविस्मयै
हते कुमारे स कपिनिरीक्षितः ॥ ३७ ॥

अक्षकुमारको पृथ्वीपर पटक कर महाकपि हनुमान्जीने
राक्षसराज रावणके हृदयमें बहुत बड़ा मय उत्पन्न कर दिया।
उसने मारे जानेपर नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले महर्षियों,
यक्षों, नागों, भूतों तथा इन्द्रवहित देवताओंने सबों एकत्र
होकर बड़े विस्मयके साथ हनुमान्जीका दर्शन किया ॥ ३७ ॥

निहत्य ॥ यस्मिन्नुतोपम रणे
कुमारमक्ष क्षतजोपमेक्षणम् ।

तदेव वीरोऽभिजगाम तोरण
वृत्तक्षण काल इव प्रजाक्षये ॥ ३८ ॥

युद्धमें हनुमान् जीवन्तके समान पराक्रमी और छाल-छाल
ओंखोंवाले अक्षकुमारका काम तमाम करके वीरवर हनुमान्
जी प्रजाके संहराके लिये उद्यत हुए कालकी मूर्ति पुन युद्ध
की प्रतीक्षा करते हुए वायुनामके उसी द्वारपर जा
पहुँचे ॥ ३८ ॥

हृत्पापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्वारिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्याभारत रामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सैतत्वारिंशोऽंशः सर्गः पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रनिव और हनुमान्जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके बन्धनमें बंधकर
हनुमान्जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
हनुमताक्षे निहतो कुमारे ।

मन समाधाय स देवकल्प
समादिदेशो द्रजित सरोषः ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान्जीके द्वारा अक्षकुमारके मारे जानेपर
राक्षसोंका स्वामी महाबाह्य रावण अपने मनको किसी तरह
शुद्धि करके रोपके बल उठा और देवताओंके तुल्य पराक्रमी
कुमार इन्द्रवित् (गेष्मनाद) को इस प्रकार आधा दी—॥

रत्नमलविन्दमभूता वरिष्ठः

सुरासुराणामपि शोकदाता ।

सुरेषु सेत्रेषु च दृष्टकर्मा

पितामहाराधनसचिताम् ॥ २ ॥

वेद्य । तुमने ब्रह्माजीकी आराधना करके अनेक प्रकार के अन्नोष्ण भोजन प्राप्त किया है । तुम अस्त्रवेत्ता, अस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ तथा देवताओं और असुरोंको भी शोक प्रदान करनेवाले हो । इन्द्रवर्षित सम्पूर्ण देवताओंके समुदायमें तुम्हारा पराक्रम देखा गया है । २ ॥

स्वदत्तयत्नमासाद्य ससुराः समरद्वेषा ।

न दोषु समरे स्यात्तु सुरेश्वरसमाधिष्ठा ॥ ३ ॥

इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले देवता और मरुद्गण भी समरभूमिमें तुम्हारे अस्त्र-बलका सामना होनेपर टिक नहीं सके हैं ॥ ३ ॥

न कश्चित् त्रिषु लोकेषु सयुगेन गतभ्रम ।

भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षित ।

देशकालप्रधानञ्च त्वमेव मतिस्तत्तम ॥ ४ ॥

तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो युद्धसे यत्ना न हो । तुम अपने बाहुबलसे तो सुरक्षित हो ही, तपस्याके बलसे भी पूर्णतः निरापद हो । देश कालका गान रखनेवालोंमें प्रधान और बुद्धि की दृष्टिसे भी सर्वश्रेष्ठ तुम्हीं हो ॥ ४ ॥

न तेऽस्त्यशक्य समरेषु कमणा

न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमत्रणे ।

न सोऽस्ति कश्चित् त्रिषु समरेषु

न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ॥ ५ ॥

युद्धमें तुम्हारे शरीरचित कमोंके द्वारा कुछ भी अशक्य नहीं है । आस्त्रानुकूल बुद्धिपूर्वक राजकायका विचार करते समय तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है । तुम्हारा कोई भी विचार ऐसा नहीं होता, जो कार्यका साधक न हो । निलोकी में एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हारी शारीरिक शक्ति और अस्त्र बलको न जानता हो ॥ ५ ॥

ममानुरूप तपसो बलं च ते

पराक्रमश्चास्त्रबलं च सयुगे ।

न त्वा समासाद्य रणावमर्दे

मन धम गच्छति निश्चितार्थम् ॥ ६ ॥

तुम्हारा तपोबल, युद्धविषयक पराक्रम और अस्त्र बल मरे ही समान है । युद्धसमयमें तुमको पाकर मेरा मन कभी खेद या विषादको नहीं प्राप्त होता क्योंकि इसे यह निश्चित विश्वास रहता है कि विजय तुम्हारे पक्षमें होगी ॥ ६ ॥

निहता क्रिपयाः सर्वे जम्बुमाली च राक्षस ।

समारयपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाप्रगामिन ॥ ७ ॥

देखो, किंकर नामवाले समस्त राक्षस मार डाले गये ।

जम्बुमाली नामका राक्षस भी जीवित न रह सका, मन्त्रीके सारों वीर पुत्र तथा मेरे पाँच सेनापति भी काटके गालमें चले गये ॥ ७ ॥

बलानि सुसमृद्धानि साध्वनाग्रधानि च ।

सहोदरस्ते दयित कुमारोऽक्षक्ष सुदित ।

न तु तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिपूदन ॥ ८ ॥

उनके साथ ही हाथी, घोड़े और रथोंसहित मेरी बहुत-सी बल-वीर्यसे सम्पन्न सेनाएँ भी नष्ट हो गयीं और तुम्हारा प्रिय बन्धु कुमार अक्ष भी मार डाला गया । शत्रु सुदन । युद्धमें जो तीनों लोकोंपर विजय पानेकी शक्ति है, वह तुम्हींमें है । पहले जो लोग मारे गये हैं, उनमें वह शक्ति नहीं थी (इच्छित्ये तुम्हारी विजय निश्चित है) ॥ ८ ॥

इदं च दृष्ट्वा निहत महद् बलं

कपे प्रभावं च पराक्रमं च ।

त्वमात्मनश्चापि निरीक्ष्य सार

कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् ॥ ९ ॥

इस प्रकार अपनी विशाल सेनाका संहार और उस वानरका प्रभाव एवं पराक्रम देखकर तुम अपने बलका भी विचार कर लो फिर अपनी शक्तिके अनुसार उद्योग करो ॥

बलावमर्दस्त्वयि सनिहृष्टे

यथा गते शास्यति शान्तशत्रौ ।

तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च

समारभस्वास्त्रभृता वरिष्ठ ॥ १० ॥

आस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर । तुम्हारे सब शत्रु शान्त हो चुके हैं । तुम अपने और पराये बलका विचार करके ऐसा प्रयत्न करो, जिससे युद्धभूमिके निकट तुम्हारे पहुँचते ही मेरी सेनाका विनाश रुक जाय ॥ १० ॥

न वीर सेना गणशो च्यवन्ति

न यज्ञमादाय विशालसारम् ।

न मातृस्वास्ति गतिप्रमाण

न चाग्निकल्पं करणेन हन्तुम् ॥ ११ ॥

वीरवर ! तुम्हें अपने साथ सेना नहीं ले जानी चाहिये क्योंकि वे सेनाएँ समूह-बी-समूह या तो मारा जाती हैं या मारी जाती हैं । इसी तरह अधिक तीक्ष्णता और कठारतासे युक्त वज्र लेकर भी जानेकी कोई आस-यत्ना नहीं है (क्योंकि उसके ऊपर वह भी व्यर्थ सिद्ध हो चुका है) । उस वायुपुत्र हनुमान्की गति अथवा दाक्षिणा कोट्य मापनोक या सीमा नहीं है । वह अग्नि-तुल्य तेजस्वी वानर किसी लावनविरोध से नहीं मारा जा सकता ॥ ११ ॥

तमेयमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्

स्वकमसाभ्यादि समाहितात्मा ।

सस्त्रं दिव्य धनुषोऽस्य वीर्यं

प्रजाज्ञानं च समारभस्व ॥ १२ ॥

‘इमं यं यातोका अच्छी तरह विचार करके प्रतिपत्तिमें अपने समान ही पराक्रम समझकरतुम अपने चित्तको एकाग्र कर लो—सावधान हो जाओ। अपने इस धनुषके दिव्य प्रभावको याद रखते हुए आगे बढ़ो और ऐसा पराक्रम करके दिखाओ, जो खाधी न जाय ॥ १२ ॥

न परित्रय मतिश्रेष्ठ यत्त्वा सम्प्रेयाम्यहम् ।
इयं च राजधमाणा क्षत्रस्य च मतिमता ॥ १३ ॥

‘उत्तम बुद्धिवाले वीर ! मैं तुम्हें जो ऐसे सफटमें भेज रहा हूँ, यह यद्यपि (स्नेहकी दृष्टिसे) उचित नहीं है, तथापि भय यह विचार राजनीति और क्षत्रिय धर्मके अनुकूल है ॥ १३ ॥

नानाशालेषु सग्रामे वैशारद्यमस्मिन् ।
अवश्यमेव बोद्धव्यं कार्यपक्षं विजयो रणे ॥ १४ ॥

‘धनुस्मन ! वीर पुरुषको संग्राममें नाना प्रकारके शत्रुओं की कुशलता अवश्य प्राप्त करनी चाहिये, साथ ही युद्धमें विजय पानेकी भी अभिलाषा रखनी चाहिये’ ॥ १४ ॥

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य
प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः ।

चकार भर्तारमतिप्रेरेण
रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः ॥ १५ ॥

अपने पिता राक्षसराज रावणके इस वचनकी सुनकर देवताओंके समान प्रभावशाली वीर मेघनादने युद्धके लिये निश्चित विचार करके जल्दीसे अपने स्वामी रावणकी परिक्रमा की ॥ १५ ॥

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैर्द्रुजिषु प्रतिपूजितः ।
युद्धोद्धतकृतोरसाद् सग्रामं सम्प्रपद्यत ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् सभामें बैठे हुए अपने दलके प्रिय राक्षसों द्वारा भूरि भूरि प्रशंसित हो इन्द्रजित् विकट युद्धके लिये मनमें उत्साह भरकर संग्रामभूमिकी ओर जानेको उद्यत हुआ ॥ श्रीमान् पद्मविशालाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः ।

निर्जंगाम महातेजः समुद्र इयं पथिणि ॥ १७ ॥

उस समय प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाला राक्षसराज रावणका पुत्र महातेजस्वी श्रीमान् इन्द्रजित् पूर्वके दिन उमड़े हुए समुद्रके समान विशेष रूप और उत्साहसे पूर्ण हो राजमहलसे बाहर निकला ॥ १७ ॥

स पश्चिराजोपमत्तरपथे गै
व्याघ्रैश्चतुर्भिः स तु सीक्षणवृष्टे ।

रथं समायुक्तमसहवेगः
समादरोद्दे द्रुजिदि द्रुक्पथ ॥ १८ ॥

विशका वेग धनुओंके लिये अवलम्ब था; वह इन्द्रके समान पराक्रमी मेघनाद पश्चिराज गड्ढके समान तीव्र गति तथा तीरे दाशेवाले चार सिंहोंसे जुने हुए उत्तम रथपर आरुढ़ हुआ ॥ १८ ॥

स रथी धीयना श्रेष्ठ शस्त्रशोऽस्त्रविदा वर ।

रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनुमान् यत्र सोऽभवत् ॥ १९ ॥

अब शत्रुओंका शत्रु, अस्त्रवेत्तानोंमें अग्रगण्य और धनुर्धरमें श्रेष्ठ वह रथी वीर रथके द्वारा शीघ्र उस स्थानपर गया, जहाँ हनुमान्जी उसकी प्रतीक्षामें बैठे थे ॥ १९ ॥

स तस्य रथनिर्घोषं ज्याह्वयं कार्मुकस्य च ।
निशम्य हरितीरोऽसौ सम्प्रहृष्टतरोऽभवत् ॥ २० ॥

उधरे रथकी घर्षावह और धनुषकी प्रत्यक्षाका गम्भीर घोष सुनकर वानरवीर हनुमान्जी अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे भर गये ॥ २० ॥

इन्द्रजिष्वायमादाय शितशह्याश्च सायकान् ।
हनुमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डित ॥ २१ ॥

इन्द्रजित् युद्धकी कतामें प्रवीण था । वह धनुष और तीले अग्रभागवाले सायकोंको लेकर हनुमान्जीको लक्ष्य करके आगे बढ़ा ॥ २१ ॥

तस्मिन्ततः सपति जातहर्षे
रणाय निर्गच्छति याणवाणौ ।

दिशश्च सर्वाः कलुषा यभूदु
सृंगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः ॥ २२ ॥

हृदयमें हर्ष और उत्साह तथा हाथोंमें बाण लेकर वह ज्यों ही युद्धके लिये निकला, त्यों ही सम्पूर्ण दिशाएँ मलिन हो गयीं और भयानक पशु नाना प्रकारसे व्यार्तनाद करने लगे ॥ २२ ॥

सभागतास्तत्र तु नागपक्षा
महपर्यंश्चक्रचराश्च सिद्धा ।

नभः समावृत्तं च पक्षिसङ्घा
विनेदुर्बुध्नैः परमप्रहृष्टाः ॥ २३ ॥

उस समय वहाँ नाग, यक्ष, महर्षि और नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले सिद्धगण भी आ गये । साथ ही पक्षियोंके समुदाय भी आकाशकी आच्छादित करके आवन्त ह्वमें भरकर उषस्त्रसे बहवहाने लगे ॥ २३ ॥

आयातं स रथं द्रष्टुं तूर्णमिन्द्रश्च जपि ।
मनाद् च महानाद् व्यवधत् च वेगवान् ॥ २४ ॥

इन्द्राकार चिह्नवाली ध्वनासे सुशोभित रथपर बैठकर शीघ्रतापूर्वक आते हुए मेघनादको देखकर वेगवाली धानर वीर हनुमान्ने बड़े आरसे गधना की ओर अपने घटीरको बढ़ाया ॥ २४ ॥

इन्द्रजित् स रथं दिव्यमाश्रितश्चिप्रकार्मुकः ।
धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनि स्वनम् ॥ २५ ॥

उस दिव्य रथपर बैठकर विचित्र धनुष धारण करनेवाळ इन्द्रजित्ने विजलीकी गड़गड़ाहटके समान टकड़ करनेवाले अपने धनुषकी सींचा ॥ २५ ॥

तत समेतावसितीक्ष्णवेगौ
महायत्नौ तौ रणनिर्विशङ्कौ ।

कपिश्च रक्षोऽधिपतेस्तनुज
हुराहुरेद्राविष बद्धवैरौ ॥ २६ ॥

फिर तो अत्यन्त दुःख वेग और महान् बलसे सम्पन्न
हो युद्धमें निर्भय होकर आगे बढनेवाले वे दोनों वीर कपिवर
हनुमान् तथा राघवराजकुमार मेघनाद परस्पर वैर बाँधकर
देवराज इन्द्र और दैत्यराज बलिकी भाँति एक दूसरेसे
भिड़ गये ॥ २६ ॥

स तस्य वीरस्य महारथस्य
धनुष्मतः सत्यति सम्मतस्य ।

शरप्रवेग व्यहनत् प्रबुद्ध
अचार मार्गे पितृप्रमेय ॥ २७ ॥

अप्रमेय शक्तिशाली हनुमान्जी विशाल शरीर धारण
करके अपने पिता बापुके मार्गपर विचरने और युद्धमें सम्मानित
होनेवाले उस धनुर्धर महारथी राक्षसवीरके बाणोंके महान्
वेगको व्यय करने लगे ॥ २७ ॥

तत शरामायततीक्ष्णशक्त्यान्
सुपन्निग काञ्चनचित्रपुङ्गवा ।

मुमोच धीर परवीरहन्ता
सुसततान् यज्ञसमानवेगान् ॥ २८ ॥

इतनेहीमें धनुर्वीरोंका सहर करनेवाले इन्द्रजित्ने बड़ी
और तीखी नोक तथा सुन्दर परेवाले, खानेकी विविध
पखौड़े मुद्योभित और बज्रके समान वेगशाली बाणोंको लगा
तार छोड़ना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

तत स तत्स्यन्दन्निस्त्वन च
मृदङ्गमेरीपटहस्वन च ।

विहृष्यमाणस्य च कार्मुकरस्य
निशङ्ग्य घोष पुनरुत्पपात ॥ २९ ॥

उस समय उठक रणकी पवणहट, मृदङ्ग, मेरी और
पट्ट आदि बाजोंन शब्द एक साथ आते हुए धनुषकी
टकार सुनकर हनुमान्जी फिर ऊपरकी ओर उछल ॥ २९ ॥
शरानामासरेष्यापु श्याचतत महाकपि ।

हरिस्तस्याभिलक्ष्यस्य मोक्षयल्लक्ष्यसप्रहम् ॥ ३० ॥

ऊपर झटकर वे महाकपि वानरवीर लक्ष्य वेधनेमें
प्रसिद्ध मेघनादक सापे हुए निशानेको स्पर्श करते हुए
उसके छोड़े हुए बाणोंके बीचसे शीघ्रतापूर्वक निकलकर
अपनेको बचाने लगे ॥ ३० ॥

शरानामप्रतस्तस्य पुन समभियर्षत ।
प्रसाय हस्तौ हनुमात्पुनपातानिलाभम् ॥ ३१ ॥

वे पवनकुमार हनुमान् बारबार उठते बाणोंके खाने
आकर लड़े हो आते और फिर दोनों हाथ फैलाकर बात-की
बातमें उड़ आते थे ॥ ३१ ॥

तावुभौ वेगसम्पन्नौ रणकर्मविशारदौ ।
सर्वभूतमनोग्राहि चक्षुर्दुःखमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

वे दोनों वीर महान् वेगसे सम्पन्न तथा युद्ध करनेकी
कलामें चतुर थे । वे सम्पूर्ण भूतोंके घितको आकर्षित करने
वाला उत्तम युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तर
न मादतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।

परस्पर निर्विपद्दौ यभूषतु
समेत्य तौ देवसमानविभ्रमौ ॥ ३३ ॥

बह राक्षस हनुमान्जीपर प्रहार करनेका अवसर नहीं
पाता था और पवनकुमार हनुमान्जी भी उस महामनस्वी
वीरको घर बचानेका मौका नहीं पाते थे । देवताओंके समान
पराक्रमी वे दोनों वीर परस्पर भिड़कर एक दूसरेके लिये
दुःख हो उठे थे ॥ ३३ ॥

ततस्तु लक्ष्ये स विहृष्यमाने
शरेष्वमोघेषु च सम्पतस्तु ।

जगाम चिन्ता महर्तो महारमा
समाधिसयोगसमाहितारमा ॥ ३४ ॥

लक्ष्यवेधके लिये बलापे हुए मेघनादके वे अमोघ बाण
भी जब स्पर्श होकर गिर पड़े, तब लक्ष्यपर बाणोंका सधान
करनेमें सदा एकाग्रचित्त रहनेवाले उस महामनस्वी वीरको
बड़ी चिन्ता हुई ॥ ३४ ॥

ततो मतिं राक्षसराजसु
अकार तस्मिन् हरिबीरमुत्प्रे ।

अन्यथा तस्य कपे समीक्ष्य
कथं निगच्छेदिति निप्रहायम् ॥ ३५ ॥

उन कपिभेदको अवश्य समझकर राघवराजकुमार मेघ
नाद वानरवीरोंमें प्रमुख हनुमान्जीक विषयमें यह विचार
करने लगा कि 'इन्हें किसी तरह कैद कर लेना चाहिये; परन्तु
वे मेरी पकड़में आ कैसे सकते हैं ?' ॥ ३५ ॥

तत पैतामह धीर सोऽरुममप्रविदा घर ।
सदृशे सुमहातेजस्त हरिप्रवर प्रति ॥ ३६ ॥

फिर तो अलवेजाओंमें भेष्ट उस महातेजस्वी धीरने उन
कपिभेदको लक्ष्य करके अपने धनुषपर ब्रह्माक्षीके दिपे हुए
अक्षका सधान किया ॥ ३६ ॥

अवधयोऽयमिति क्षात्वा तमखेनाजततत्त्वचित् ।
निजग्राह महाबाहु मारुतामजमिन्द्रनिवृ ॥ ३७ ॥

अजततत्त्वके ज्ञाता इन्द्रजित्ने महाबाहु पवनकुमारको
अवश्य जानकर उड़े उस अक्षसे बाँध लिया ॥ ३७ ॥
तेन बद्धस्ततोऽखेण राक्षसेन स वानर ।
अभयनिर्विघ्नेष्वपपात च महोत्प्रे ॥ ३८ ॥
राघवद्वारा उस अभयसे बाँध जिये जानेपर वानरवीर
हनुमान्जी निःचेष्ट होकर धृवीर गिर पड़े ॥ ३८ ॥

ततोऽयं युद्धात् स तदस्त्राय
प्रभो प्रभावाद् विगतात्परायः ।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च
विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ॥ ३९ ॥

पनेको ब्रह्माज्ञसे बँपा हुआ जानकर भी उन्हीं ममवान्
प्रभावसे हनुमान्जीको थोड़ी-सी भी वीरका अनुभव
आ । वे प्रभुन वानरवीर अपने ऊपर ब्रह्माजीके
अनुग्रहका विचार करने लगे ॥ ३९ ॥

शायम्भुवैर्मैत्रैर्ब्रह्माज्ञा चाभिमन्त्रितम् ।
चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥ ४० ॥

उन मनमें के देवता साक्षात् स्वप्नमें ब्रह्मा हैं, उनके
मन्त्रित हुए उस ब्रह्माज्ञको देखकर हनुमान्जीको
ह ब्रह्मासे अपने लिये मिले हुए वरदानका स्मरण हो
(ब्रह्माजीने उन्हें वर दिया था कि मेरा अस्त्र तुम्हें
मुहूर्तमें अपने बचनसे मुक्त कर देगा) ॥ ४० ॥

तमेऽस्य यच्चस्य च शक्तिरस्ति
विमोक्षणे लोकगुरोः प्रभावात् ।
इत्येवमेव विहितोऽस्त्रयद्यो
मयाऽऽत्मयोनेरनुवर्तितव्यः ॥ ४१ ॥

किर वे सोचने लग्य (लोकगुरु ब्रह्माक प्रभावसे मुझमें इस
बचनसे छूटकारा पानेकी शक्ति नहीं है—ऐसा मान
ने इन्द्रकित्ने मुझे इस प्रकार बँधा है, तथापि मुझे
अब ब्रह्माके सम्मानार्थ इस अस्त्रयघनका अनुकरण करना
पड़ेगा) ॥ ४१ ॥

स धीर्यमस्त्रस्य कपिर्धियायं
पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षार्थां परिचिन्तयित्वा
पितामहानामनुवर्तते स्म ॥ ४२ ॥

कपिभेद हनुमान्जीने उस अस्त्रकी शक्ति, अपने ऊपर
महकी कृपा तथा अपनेमें उसके बचनसे छूट जानेकी
शक्ति—इन तीनोंपर विचार करके अन्तमें ब्रह्माजीकी
कृपा का अनुकरण किया ॥ ४२ ॥

येणापि हि यज्ञस्य भयं मम न जायते ।
रामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्थानितेन च ॥ ४३ ॥

उनके मनमें यह बात आयी कि इस अस्त्रसे बँध
पर भी मुझे कोई भय नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र और
देवता तीनों मेरी रक्षा करते हैं ॥ ४३ ॥

एते चापि रक्षोभिर्महामै गुणदर्शनम् ।
उत्सेह्येण सनादस्तासाद् गृह्णन्तु मा परे ॥ ४४ ॥

(राक्षसोंद्वारा पकड़ जानेसे भी मुझे महान् श्रम ही
लागी देता है क्योंकि इससे मुझे राक्षसद्वारा रावणके साथ
जुट करके करनेका अवसर मिलेगा । अतः शत्रु मुझे पकड़
ले चले) ॥ ४४ ॥

स निश्चितार्थं परवीरहृता
समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः ।
परैः प्रसह्यभिगतैर्निगृह्य
ननाद तैस्ते परिभर्त्स्यमानः ॥ ४५ ॥

ऐसा निश्चय करके विचारपूर्वक कार्य करनेवाले शत्रु
वीरोंके सहारक हनुमान्जी निश्चेष्ट हो गये । फिर सो सभी
शत्रु निकट आकर उन्हें बलपूर्वक पकड़ने और डोंट बताने
लगे । उस समय हनुमान्जी, मानो कष्ट या रद्द हो, इस
प्रकार चीखते और कटकटते थे ॥ ४५ ॥

ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिष्केष्टमर्चिवन् ।
वचधुः शणवत्सैश्च द्रुमचौरैश्च सहते ॥ ४६ ॥

राक्षसोंने देखा भय यह हाथ पैर नहीं दिखता, तब वे
शत्रुहन्ता हनुमान्जीको सुतरी और शृंगोंके बरकलको घटक
बनाये गये रथोंसे बँधने लगे ॥ ४६ ॥

स रोचयामास परैश्च वध
प्रसह्य धीरैरभिगर्हण च ।
कौतूहलान्मा यदि राक्षसेन्द्रो
द्रष्टुं व्ययस्येदिति निश्चितार्थः ॥ ४७ ॥

शत्रुवीरोंने जो उन्हें इतपूर्वक बँधा और उनका गिरकार
किया, यह सब कुछ उस समय उन्हें अच्छा लगा । उनके
मनमें यह निश्चित विचार हो गया था कि ऐसी अवस्थामें
राक्षसराज रावण सम्भवतः कौतूहलवश मुझे देखनेकी इच्छा
करेगा (इसीलिये वे सब कुछ सह रहे थे) ॥ ४७ ॥

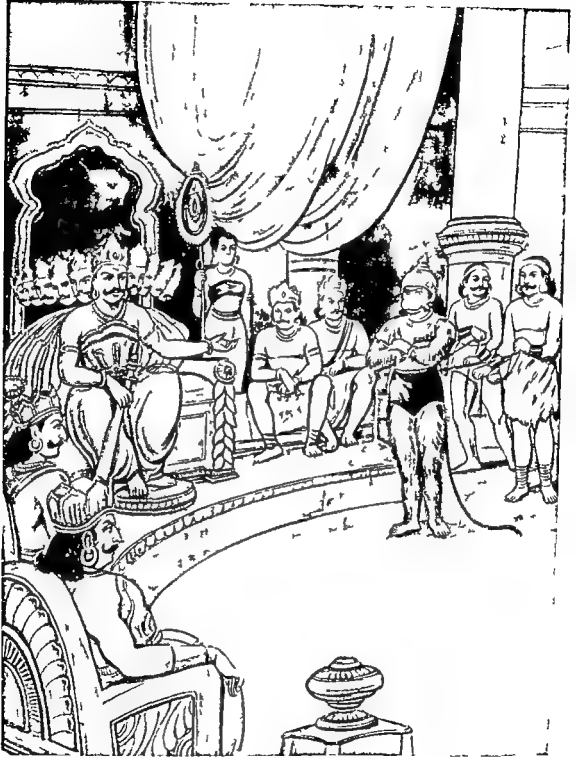
स बद्धस्तेन वरकेन विमुक्तोऽस्त्रेण धीर्यवान् ।
अस्त्रयघः स चान्य हि न य घमनुवर्तते ॥ ४८ ॥

यस्कलके रस्तेसे बँध जानेपर पराक्रमी हनुमान् ब्रह्मा
के बचनसे मुक्त हो गया, क्योंकि उस अस्त्रका बचन किसी
दूसरे बचनके साथ नहीं रहता ॥ ४८ ॥

अथेन्द्रजित् ॥ द्रुमचौरव्यद
विचार्य धीरः कपितत्तम तम् ।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्ता
मन्येन वक्षोऽप्यनुवर्ततऽस्त्रम् ॥ ४९ ॥

अहो महत् काम हृत निरर्थं
न राक्षसैर्मन्त्रयतिमृष्टा ।
पुनश्च नास्ते विहतेऽस्त्रमन्यथ
प्रवर्तते सञ्चयिता स सर्वे ॥ ५० ॥

धीर इन्द्रजितने अब देखा कि ॥ बानरधियोमणि तो
केवल शृंगोंके बरकलसे बँधा है, दिग्मात्रके बचनसे मुक्त
हो चुका है, तब उसे बड़ी चिन्ता हुई । वह सोचने
लगा—(दूसरी यस्तुओंसे बँधा हुआ होनेपर भी यह अस्त्र
बचनमें बँधे हुएकी भौति यथावत् कर रहा है । ओह !
हन् राक्षसोंने ऐसा किया हुआ बहुत बड़ा काम जोर
कर दिया । इन्होंने यन्त्रकी शक्तिपर विचार नहीं किया ।



राज्यकी सभामें हनुमान्

यह अन्न जब एक बार व्यय हो जाता है, तब पुन
दुबरी बार इसका प्रयोग ही हो सकता। अब तो विजयी
ह'कर भी हम सब स्नेह सशयमें पड़ गये ॥ ४९ ५० ॥

अन्धेण हनुमान् मुक्तो नाम्नानमचबुध्यते ।
रूपमाणस्तु रम्भोभिस्तैश्च यथैर्निर्णीहित ॥ ५१ ॥
हन्यमनस्तन क्रूरै राक्षसै कालमुष्टिभि ।
समीप राक्षसेद्रूप्य प्राकृष्यत स वानर ॥ ५२ ॥
हनुमान् भी यद्यपि अन्धके बचनसे मुक्त हो गये थे
तो भा उन्होंने ऐसा बताव दिया, मानो वे इस बातकी
बानते ही न हों। क्रूर राक्षस उन्हें बचनोंसे पीड़ा देते
और कठोर मुक्कोंस मारत हुए स्त्रीचक्र से चले। इस
तरह वे वानरस राक्षसराज रावणके पास पहुँचाये गये ॥ ५१ ५२ ॥

अथ द्रष्टुं त प्रसमीक्ष्य मुक्त
मन्धेण यद्ध द्रुमबीरसूत्रै ।
दृग्दृश्यन् तत्र महायत्न त
हरिप्रवीर सगणाय राक्षे ॥ ५३ ॥
तत्र द्रष्टुं तत्ते उन महाबली वानरबीरको महाछले
मुक्त तथा दृष्टके बन्कलोंकी रस्सियोंसे बंधा देल उन्हें
वहाँ समस्तदृग्गोचरहित राजा रावणको दिखाया ॥ ५३ ॥
त मत्तमिष मातङ्ग वत्त कपिवरोत्तमम् ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेक्ष्यन् ॥ ५४ ॥
मत्तवाल हाथीके समान कैव दृष्ट उन वानरशिरोमणिको
रात्रवीने राक्षसराज रावणकी स्वायें समर्पित कर दिया ॥ ५४ ॥
कोऽय कस्य कुतो नापि किं कार्यं कोऽभ्युपाश्रय ।
इति राक्षसवीराणा हृष्टा सचक्षिरे कथा ॥ ५५ ॥
उन्हें देखकर राक्षसीर आपसमें कहने लगे—व्यह
कोन है ? किशका पुत्र या सेवक है ? कहाँसे आया है ?
यहाँ इसका क्या काम है ? तथा इसे सहारा देनेवाला
कोन है ? ॥ ५५ ॥

हन्यता दृष्टता चापि भक्ष्यतामिति चापरे ।
राक्षसास्तत्र सकुन्दा परस्परमथाब्रुवन् ॥ ५६ ॥
कुल दूतसे राक्षसों अत्यन्त क्रोधसे भरे थे, परस्पर
इस प्रकार शीन्—'इस वानरको मार डालो, बला डालो
या खा डालो' ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्यमीदीप आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टाध्यायिर्ग संग ॥ ४८ ॥
इस प्रकार श्रीरामचरितमिश्र अष्टाध्यायिक सुन्दरकाण्डमें अन्तागीसर्वो सर्ग पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाश सर्ग

रावणरु प्रभायगाली ग्वम्पको देखकर हनुमान्जीके मनमें अनेक प्रकारके विचारोंका उठना
गतः स वमणा तस्य विस्मिन्नो भीमत्रिमः ।
हनुमान् प्राध्याप्रा रा राक्षसाधियमवेक्ष्यत ॥ १ ॥

अतीत्य मार्गे सहसा महात्मा
स तत्र रक्षेऽधिरापाश्मूले ।
वद्दर्शं राक्ष परिचारवृन्दान्
गृह महारत्नविभूषित च ॥ ५७ ॥
महात्मा हनुमान्भी सारा राक्षसों के रूप जब सहसा
राक्षसराज रावणके पास पहुँच गये, तब उन्होंने उसके
चरणोंके समीप बहुतसे बड़े-बड़े सेवकोंको और बहुमूल्य
रत्नोंसे विभूषित समामवनको भी देखा ॥ ५७ ॥
स वद्दर्शं महातेजा रावण कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्विहृताकारै रूष्यमाणमितस्तत् ॥ ५८ ॥
उस समय महातेजसो रावणने निकट आकारवाज
राक्षसोंके द्वारा श्वर-उश्वर घसीटे जाते हुए कपिश्रेष्ठ
हनुमान्जीको देखा ॥ ५८ ॥

राक्षसाधिपतिं चापि वद्दर्शं कपिसत्तम ।
तेजोयलसमायुक्त तपठमित्र भास्करम् ॥ ५९ ॥
कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने भी राक्षसराज रावणको तपत हुए
सूर्यके समान तेज और बलसे सम्पन्न देखा ॥ ५९ ॥

स रोपसवर्तितसाम्रदृष्टि
दर्शाननस्त कपिमन्ववेक्ष्य ।
अयोपविष्टान् कुन्शीलवृन्दान्
समादिशत् त प्रति मुप्यमघोन् ॥ ६० ॥
हनुमान्भीको देखकर दगासुल रावणकी आँखें रोपते
चञ्चल और झल हो गयीं। उसने वहाँ बैठे हुए कुलीन,
मुशील और मुख्य मन्त्रियोंको उनसे परिचय पूछनके लिये
आज्ञा दी ॥ ६० ॥

यथाक्रमं तै स कपिश्च पृष्ट
कायायमयस्य च मूलमादा ।
निवेक्ष्यामास हरीश्वरस्य
दूतं सकाशाद्दहमागतोऽस्मि ॥ ६१ ॥
उन सबने पहले क्रमश कपिवर हनुमान्ने उन्का
काय, प्रयोजन तथा उसके मूल कारणके विषयमें पूछा।
तब उन्होंने यह बताया कि मैं वानरराज मुभीके पाससे
उनका दूत होकर आया हूँ ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्यमीदीप आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टाध्यायिर्ग संग ॥ ४८ ॥
इस प्रकार श्रीरामचरितमिश्र अष्टाध्यायिक सुन्दरकाण्डमें अन्तागीसर्वो सर्ग पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाश सर्ग

रावणरु प्रभायगाली ग्वम्पको देखकर हनुमान्जीके मनमें अनेक प्रकारके विचारोंका उठना
गतः स वमणा तस्य विस्मिन्नो भीमत्रिमः ।
हनुमान् प्राध्याप्रा रा राक्षसाधियमवेक्ष्यत ॥ १ ॥

इन्द्रविभू उष नीतपूष कर्मसे विस्मित तथा रावणके
सीतहरण आदि कर्मोंने कुपित हो राखे लाल आँखें

किये भयंकर पराक्रमी हनुमान्जीने रावणराज रावणकी ओर देखा ॥ १ ॥

भ्राजमान महाह्वेन काञ्चनेन विराजता ।
मुक्ताजालवृनेनाथ मुकुटेन महाधुतिम् ॥ २ ॥

वह महातेजस्वी राक्षसराज सोनेके बने हुए बहुमूल्य एव रीतिमान् मुकुटसे, जिसमें मोतियोंका काम किया हुआ था, उज्जासित हो रहा था ॥ २ ॥

वज्रसयोगसयुक्तेर्महाहमणिविप्रद्वैः ।
हैमैराभरणैश्च जैमनसेध प्रकल्पिते ॥ ३ ॥

उसके विभिन्न अङ्गोंमें सोनेके विविध आभूषण ऐसे सुन्दर लगते थे मानो मानसिक सम्पत्तियों द्वारा बनाये गये हों । उनमें हीरे तथा बहुमूल्य मणिरत्न जैसे हुए थे, उन आभूषणोंसे रावणकी अद्भुत शोभा होती थी ॥ ३ ॥

महार्हक्षौमसबीन रक्तचन्दनरूपितम् ।
स्वनुल्लिख विवित्राभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः ॥ ४ ॥

बहुमूल्य रेशमी वस्त्र उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे । वह लाल चन्दनसे चर्चित था और मौनित्तोत्की विविध रचनाओंसे युक्त सुन्दर अङ्गरागोंसे उसका सारा अङ्ग सुशोभित हो रहा था ॥ ४ ॥

विविध दशनीयैश्च रत्नाक्षैर्भीमद्वजैः ।
दीप्तरीक्षणमहादट्ट प्रलम्ब दशनच्छदैः ॥ ५ ॥

उसकी आँखें देखने योग्य, लाल-लाल और मणवनी थीं जिनसे और चमकीली तीली एव बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ लगे लगे ओठोंके कारण उसकी विविध शोभा होती थी ॥ ५ ॥ शिरोभिर्दशभिर्वीरो भ्राजमान महाजसम् ।

नानाव्यालसमाकीर्णं शिखरैरिव मन्दरम् ॥ ६ ॥

वीर हनुमान्जीने देखा, अपने दस मस्तकोंसे सुशोभित महाबली रावण नाना प्रकारके सपोंसे भरे हुए अनेक शिखरोंद्वारा शोभा पानेवाला मन्दराचलके समान प्रतीत हो रहा है ॥ ६ ॥

नीलाञ्जनचयप्रस्थ हारेणोरसि राजता ।
पूर्णचन्द्राभवक्प्रेण सपालाकमिवाम्युद्धम् ॥ ७ ॥

उसका गूरी काले कोमलके तैरकी मौति काला था और यक्ष लाल चमकीले हास्ते निर्भूषित था । वह पूर्ण चन्द्रके समान मनोरम मुखद्वारा प्रातः कालके स्थले युक्त मेघकी मौति शोभा पा रहा था ॥ ७ ॥

बाहुभिश्चरुकेयुरेक्ष्यन्दनोत्तमरूपिते ।
भ्राजमानाद्दैर्भाभिः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ॥ ८ ॥

जिनमें केयूर बँधे थे, उत्तम चन्दनका लेप हुआ था और चमकीले अङ्गर शोभा दे रहे थे, उन भयंकर मुखाओंसे सुशोभित रावण देखा जान पड़ता था, मानो पाँच विरगाले अनेक सपोंसे सेजित हो रहा हो ॥ ८ ॥

महति स्फाटिके चित्रे रत्नसयोगचित्रिते ।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे सुपविष्टं वरासने ॥ ९ ॥

बड़े स्फटिकमणिके बने हुए विशाल एव सुर सिंहासनपर, जो नाना प्रकारके खोंके सयोगसे चित्रित, विचित्र तथा सुन्दर विछोनोंसे आच्छादित था, बैठे हुआ था ॥ ९ ॥

अलङ्कृताभिरत्यर्थं प्रमदाभि समतत ।
चालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् ॥ १० ॥

वस्त्र और आभूषणोंसे रस लगी हुई बहुतकी सुवर्तियों हाथमें चँवर लिये सब ओरसे आसपास खड़ी हो उसकी सेवा करती थीं ॥ १० ॥

दुष्परेण प्रहस्तेन महापाद्भ्येन रक्षसा ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वनैतिकुम्भेन च मन्त्रिणा ॥ ११ ॥

उपोषयिष्ट रक्षोभिश्चतुर्भिर्यत्नद्वर्षितम् ।
कृत्स्न परिधुन लोकचतुर्भिरिव सागरैः ॥ १२ ॥

मन्त्रतत्त्वको जाननवाले दुर्बर, महान्, महापाद्वे तथा निकुम्भ—ये चार राक्षसजातीय मन्त्री उसके पास बैठे थे । उन चारों राक्षसोंसे किरा हुआ बलाभिमानी रावण चार समुद्रोंसे किरा हुए समस्त भूलोककी मौति शोभा पा रहा था ॥ ११ १२ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्ववैरन्वैश्च शुभद्विभिः ।
आभ्यास्यमान सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् ॥ १३ ॥

जैसे देवता देवराज इन्द्रको सान्त्वना देते हैं, उसी प्रकार मन्त्रतत्त्वके शाता मन्त्री तथा दूतों दूतों शुभचिन्तक सचिव उसे आश्वासन दे रहे थे ॥ १३ ॥

अपद्रवद् राज्यसर्पति हनुमानसितेजसम् ।
वेष्टित मेरुशिखरे सतोयमिव तोयवम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार हनुमान्जीने मनियोंसे किरा हुए अत्यन्त तेजस्वी, सिंहासनात् रावणराज रावणको मेरुशिखरपर विराजमान सज्जल जलधरके समान देखा ॥ १४ ॥

स तैः सम्पीड्यमानोऽपिरक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
विस्मय परम गत्वा रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥ १५ ॥

उन भयानक पराक्रमी राक्षसोंसे पीड़ित होनेपर भी हनुमान्जी अत्यन्त विस्मित होकर राक्षसराज रावणको बड़े गौरसे देखते रहे ॥ १५ ॥

भ्राजमान सतो दृष्ट्वा हनुमान् राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥ १६ ॥

उस दीक्षिणाली राक्षसराजको अच्छी तरह देखकर उसके तेजसे मोहित हो हनुमान्जी मन हीमन इस प्रकार विचार करने लगे—॥ १६ ॥

यदो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो धृति ।
महो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥ १७ ॥
'अहो ! इस राक्षसराजका रूप कैसा अद्भुत है । कैसा
अनेसा धैर्य है । कैसी अनुपम शक्ति है । और कैसा
आश्चर्यजनक तेज है । इसका सम्पूर्ण राजचिन्ह लक्षणोंसे
सम्पन्न होना कितने आश्चर्यकी बात है । ॥ १७ ॥
यद्यधर्मो न बलवान् स्याद्य राक्षसेश्वर ।
स्याद्य सुरलोकस्य सशस्त्रस्यापि रक्षिता ॥ १८ ॥
'यदि इसमें प्रवल अधर्म न होता तो यह राक्षसराज
रावण इन्द्रदेवित सम्पूर्ण देवलोकका संरक्षक हो सकता था ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वाक्यमीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ १९ ॥
इस प्रकार श्रीब्रह्मोक्तिनिमित्त आरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें एकादशवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

पञ्चाश सर्गः

रावणका प्रहस्तके द्वारा हनुमान्जीसे लङ्कामें आनेका कारण पुछवाना और
हनुमान्का अपनेको श्रीरामका दूत बताना

तमुद्गीक्ष्य महाबाहु पिह्लाक्ष पुरत स्थितम् ।
रोषेण महताऽऽविष्टो रावणो लोकरावण ॥ १ ॥
समस्त लोकोंको इलानेवाला महाबाहु रावण भूरी
आँसोंवाले हनुमान्जीको सामने खड़ा देख महान् रोषसे भर
गया ॥ १ ॥
शङ्काहृतात्मा दृष्ट्वा स कपीन्द्र तेजसावृतम् ।
किमेव भगवान् नदीभवेत् साक्षाद्विहागत ॥ २ ॥
येन शतोऽस्त्रि कैलासे मया ग्रहसिते पुरा ।
सोऽयं वानरमूर्तिर्यथाकिंस्विद्वाणोऽपि वासुर ॥ ३ ॥
राज ही तब-तबकी आशङ्काओंसे उसका दिल बैठ
गया । प्रत्यक्ष देखकर वानरराजके दिव्यमें विचार करने
लगा—'क्या इस वानरके रूपमें छात्र मयवान् नन्दी यहाँ
पक्षी हुए हैं, जिन्होंने पूर्वकालमें कैलास पर्वतपर अब कि
सँने उनका उपहास किया था, मुझे आज दे दिया था ।
वे ही तो वानरका स्वरूप धारण करके यहाँ नहीं आये
हैं ! अथवा इस रूपमें वाणामुका आगमन तो नहीं हुआ
है ? ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥

स राजा रोपताम्राक्ष प्रहस्त मन्त्रिसत्तमम् ।
कालयुक्तमुवाचेद् यत्तो त्रिपुलमधवत् ॥ ४ ॥
इस तरह तब निर्वर्ण करते हुए राजा रावणने क्रोधसे
लाल आँसुं करके मन्त्रिवर प्रहस्तसे सम्पातुक गम्भीर एवं
अपयुक्त बात कही— ॥ ४ ॥
दुरात्मा पृच्छयतामेव कुत किं नास्य कारणम् ।
यनभङ्गे च कोऽस्याप्यो राक्षसानां च तर्जनम् ॥ ५ ॥

अस्य क्रूरैर्नृशसैश्च कमभिलोककुत्सितैः ।
सर्वे विन्यसितस्तस्माद्भोका सामरदानवा ॥ १९ ॥
अयं ह्यस्तहते क्रुद्धं कतुमेकार्णव जगत् ।
इति चिन्ता बह्विधामपरोमतिमान् कपि ।
हृष्टा रावणसराजस्य प्रभावममितीजस ॥ २० ॥
'इसके लक्ष्मिनिन्दित क्रूरतापूर्ण निष्ठुर कर्मोंके कारण
देवताओं और दानवोंसहित सम्पूर्ण लोक इसत भयभीत रहते
हैं । यह कुपित होनेपर समस्त जगत्को एकार्णवमें निमग्न
कर सकता है— उसारमें प्रलय मचा सकता है ।' अमितेजस्वी
राक्षसराजके प्रभावको देखकर व बुद्धिमान् वानरवीर ऐसी
अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करते रह ॥ १९ २० ॥

'अमात्य ! इस दुरात्मासे पूछो तो सही, यह कहो
आया है ? इसके आनेका क्या कारण है ! प्रमदावनको
उबाड़ने तथा राज्यकोंको मारनेमें इसका क्या उद्देश्य था ! ॥
मत्पुरीममधुर्या है रामने किं प्रयोजनम् ।
आयोधने था किं कार्यं पृच्छयतामेव धुमति ॥ ६ ॥
'मेरी दुःख प्रतीमें जो इसका आना हुआ है, इसमें
इसका क्या प्रयोजन है ! अथवा इसने जो राक्षसोंके साथ
युद्ध छेड़ दिया है, उसमें इसका क्या उद्देश्य है ! ये सारी
बातें इस बुद्धि वानरसे पूछो ॥ ६ ॥

रावणस्य उचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ।
समाश्वसतिष्ठ भद्र ते न भी कयात्स्वया कपे ॥ ७ ॥
रावणकी बात सुनकर प्रहस्तने हनुमान्जीसे कहा—
'बानर ! तुम घबराओ न, भय रहलौ । तुम्हारा मल हो ।
तुम्हें करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७ ॥
यदि तावद्य स्थितिरेव प्रेषितो रावणालयम् ।
तत्त्वमाप्यादि मा ते भूद्भययातरमोक्ष्यस ॥ ८ ॥
'यदि तुम्हें इन्द्रने महाराज राजाकी नगरीमें भेजा दे
तो ठीक ठीक बता दो । बानर ! करो न । छेड़ दिने
जाओगे ॥ ८ ॥
यदि वैधर्यणस्य त्व यमस्य यदणस्य च ।
चादरूपमिदं हत्वा प्रविष्टो न पुरीमिमाम् ॥ ९ ॥
'अथवा यदि तुम बुद्धेय यम या यरणके दूत हो और

यश्च सुन्दर रूप धारण करके हमारी इस पुरीमें घुस आये हा
तो यह भी बना दो ॥ ९ ॥

विष्णुना प्रेषितो घापि दूने विजयकाङ्क्षिणा ।

महि त यानर तेजो रूपमात्र तु वानरम् ॥ १० ॥

‘अथवा विजयकी अभिलाषा रखनेवाले विष्णुने तुम्हें
दूत बनाकर भेजा है ? तुम्हारा तेज यानरीवा था नहीं है ।
बसल रूपमात्र यानरका है ॥ १० ॥

तत्त्वन कथयस्वाद्य ततो यानर मोक्षयसे ।

अनुत् घत्तथापि दुर्लभ नच जीवितम् ॥ ११ ॥

यानर ! इस समय यहाँ बात कह दो, फिर तुम छोड़
दिये जाओग । यदि छूट बोलोगे तो तुम्हारा जीना अवश्य
हो जायगा ॥ ११ ॥

अथ वा अग्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये ।

एवमुक्त्वा हरिश्चरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ॥ १२ ॥

अथवीनास्ति शशस्य धमस्य घटनस्य च ।

घनदेन न मे सख्य विष्णुना नास्ति खोदित ॥ १३ ॥

‘अथवा और क्या यहाँ छोड़ो । तुम्हारा इस रावणके
नगरमें आतेका क्या उद्देश्य है ? यही बता दो ।’ प्रहस्यके इस
प्रकार पृच्छेपर उस समय यानरभेष्ट इनुमान् न राक्षसोंके
स्वामी रावणके कहा—‘मैं इन्द्र, यम अथवा यक्षका दूत
नहीं हूँ । कुबेरके साथ भी मेरी मैत्री नहीं है और भगवान्
विष्णुने भी मुझे यहाँ नहीं भेजा है ॥ १२ १३ ॥

जातिरेव मम त्वेया यानरोऽहमिहागत ।

वर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिव दुर्लभ मया ॥ १४ ॥

घन राक्षसराजस्य दर्शनार्थं विनाशितम् ।

इत्यार्षे भीमद्वामाणे वाक्मीन्निवे आदिकाम्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चम सर्ग ॥ ५० ॥

इस प्रकार भीमद्वाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाम्यके सुन्दरकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

इनुमान्जीका श्रीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रावणकी ममज्ञाना

त समीक्ष्य महासस्य सख्यवान् हरिस्तप्तमः ।

वाक्यमथयद्व्यप्रस्तमुवाच दशाननम् ॥ १ ॥

महायन्त्री दशमुख रावणकी ओर देखते हुए शक्तिशाली
यानरतिरोमणि इनुमान्ने दान्तभावसे यह अर्थयुक्त बात
कही—॥ १ ॥

अह सुग्रीवसदेशादिह प्राप्तस्तवान्तिके ।

राक्षसेश दरीरास्त्वा आता कुशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

‘आज्ञातार ! मैं सुग्रीवका सदेन सकर यहाँ तुम्हारे
पाद आया हूँ । यानरराव सुवीर तुम ले आहूँ हैं । इसी बात
उन्होंने तुम्हारा कुशल समाचार पूछा है ॥ २ ॥

ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता वलिने युद्धकाङ्क्षिण ॥ १५ ॥

रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे ।

‘मैं बचने ही यानर हूँ और राक्षस राक्षस मित्र के
उद्देश्यसे ही मने उनका इस दुर्लभ यनकी उद्घाटना है । इस
बाद तुम्हारे बलवान् राक्षस युद्धकी इच्छासे मेरे पास आये
और मैंने अपने शरीरकी रक्षा के लिये रणभूमि में उनका
सामना किया ॥ १५ १५ ॥

अजपाशैर्न शक्योऽहं बहु देवासुरैरपि ॥ १६ ॥

विनामहादेव चरो ममापि हि समागत ।

‘देवता अथवा अश्वर भी मुझे अलक्ष अथवा पादासे बाँध
नहीं सकते । इसके लिये मुझ भी महाबीरो बरदान मि
त्रका है ॥ १६ ॥

राजानं द्रष्टुकामं मयाऽहमनुवर्तितम् ॥ १७ ॥

यिसुकोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैर्मयभिवर्दित ।

‘राक्षसराजकी देखनेकी इच्छासे ही मैंने अलक्ष पंच

स्त्रीकार किया है । यद्यपि इस समय मैं अलक्ष युद्ध

तपापि इन राक्षसोंने मुझे पंचा समझकर ही यहाँ लाकर टा

रौपा है ॥ १७ ॥

केनचिद्रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम् ॥ १८ ॥

कृतोऽहमिति विज्ञाय राक्षसस्यामितौजस ।

श्रूयतामेव श्वचन मम पृथग्निदं प्रभो ॥ १९ ॥

‘भगवान् श्रीरामवन्दनीय कुछ धार्य है, जिसके लि

मैं तुम्हारे पास आया हूँ । प्रभो ! मैं अमित तेजस्वी भी

रघुनाथजीका दूत हूँ, ऐसा समझकर मरे इस हितकारी बचन

की अवश्य सुनो ॥ १८ १९ ॥

इत्यार्षे भीमद्वामाणे वाक्मीन्निवे आदिकाम्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चम सर्ग ॥ ५० ॥

इस प्रकार भीमद्वाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाम्यके सुन्दरकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

इनुमान्जीका श्रीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रावणकी ममज्ञाना

त समीक्ष्य महासस्य सख्यवान् हरिस्तप्तमः ।

वाक्यमथयद्व्यप्रस्तमुवाच दशाननम् ॥ १ ॥

महायन्त्री दशमुख रावणकी ओर देखते हुए शक्तिशाली
यानरतिरोमणि इनुमान्ने दान्तभावसे यह अर्थयुक्त बात
कही—॥ १ ॥

अह सुग्रीवसदेशादिह प्राप्तस्तवान्तिके ।

राक्षसेश दरीरास्त्वा आता कुशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

‘आज्ञातार ! मैं सुग्रीवका सदेन सकर यहाँ तुम्हारे
पाद आया हूँ । यानरराव सुवीर तुम ले आहूँ हैं । इसी बात
उन्होंने तुम्हारा कुशल समाचार पूछा है ॥ २ ॥

आतुः शृणु समादेश सुग्रीवस्य महात्मनः ।

धर्मार्थसहितं वाक्यमिह चासुभ च क्षमम् ॥ ३ ॥

‘अब तुम अपने भाई महात्मा सुग्रीवका सदेन—धर्म

और अर्थयुक्त बचन, जो इहलोक और परलोकमें भी लाभ

दायक है, सुनो ॥ ३ ॥

राजा दशरथो नाम रघुध्वरवाजिमान् ।

पितेव यधुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युति ॥ ४ ॥

‘अभी हालमें ही दशरथनाम प्रसिद्ध एक राजा हो

गय हैं जो नित्यकी गति प्रजाक हितैषी, ब्रह्म समान उज्ज्वल

तथा रम, हाथी, घोड़े आदि सत्पन्न थे ॥ ४ ॥

ज्येष्ठस्तस्य महाबाहु पुत्र प्रियतर प्रभु ।
पितुर्निर्देशाभिष्ठा त प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ५ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भायया ।
रामो नाम महतेजा धर्म्य पचानमाश्रित ॥ ६ ॥

‘उनके परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र महतेजस्वी, प्रभावशाली
महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी पिताजी आज्ञासे घगभार्गव आश्रय
लेकर अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ दण्ड
कारण्यमें आये थे ॥ ५ ६ ॥

तस्य भार्या जनस्थाने भ्रष्टा सत्तेति विश्रुता ।
वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मन ॥ ७ ॥

‘सीता विदेहदेवके राजा महात्मा जनकजी पुत्री हैं ।
जनस्थानमें आनेपर श्रीरामपत्नी सीता कहीं खो गयी हैं ॥ ७ ॥

मार्गमाणस्तु ता देवीं राजपुत्रं सहानुज ।
ऋष्यमूकमनुप्राप्त सुप्राणिं च संगत ॥ ८ ॥

‘राजकुमार श्रीराम अपने भाईके साथ उहाँ सीतादेवीकी
खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वतपर आये और सुग्रीवसे
मिल ॥ ८ ॥

तस्य तेन प्रनिश्चात सीताया परिमाणम् ।
सुग्रीयस्यापि रामेण हरिराज्य निवेदिताम् ॥ ९ ॥

‘सुग्रीवने उनसे सीताको ढूँढ निकालनेकी प्रतिज्ञा की
और श्रीरामने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिलानेका वचन
दिया ॥ ९ ॥

ततस्तेन मृचे हत्वा राजपुत्रेण वाल्मिक ।
सुग्रीवः स्यारितो राज्ये ह्यृक्षाणा गणेश्वर ॥ १० ॥

‘तत्पश्चात् राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें बालीको
मारकर सुग्रीवको किरिच पाके रायपर स्थापित कर दिया ।
इस समय सुग्रीव वानरों और मानवोंके समुदायके स्वामी
हैं ॥ १० ॥

त्वया विज्ञातपूषध वाली वानरपुङ्गव ।
म तेन निहत सख्ये शरैरेकेन वानर ॥ ११ ॥

‘वानरान वालीको तो तुम पहलेसे ही जानते हो । उस
वानरवीरको युद्धभूमिमें श्रीरामने एक ही बाणसे मार गिराया
था ॥ ११ ॥

स सीतामागणे व्यग्रः सुग्रीव सत्यसगर ।
हरीन् सम्येयमास दिश सर्वा हरीश्वर ॥ १२ ॥

‘अब यहप्रतिज्ञा सुग्रीव सीताको खोज निकालनेके लिये
व्यग्र हो उठे हैं । उन वानरराजने समस्त दिशाओंमें वानरोंको
भेजा है ॥ १२ ॥

ता हरीणा सहस्राणि शतानि नियुनानि च ।
दिशु सवाप्तु मार्गान्ते लक्षश्रोपरि व्याग्रे ॥ १३ ॥

‘इस समय सेकड़ों, हजारों और लाखों वानर सम्पूर्ण

दिशाओं तथा आकाश और पातालमें भी सीताजीकी खोज
कर रहे हैं ॥ १२ ॥

वैनतेयसमा वेचित् वेचित् तत्रानिलोपमा ।
असङ्गमस्य शीघ्रा हरिचोरा महायत्ना ॥ १४ ॥

‘उन वानरवीरोंमें कोई मरुद्वज समान वेगवान् है तो
कोई वायुके समान । उनकी गति कहीं नहीं रुकती । वे कपि
वीर शीघ्रगामी और महान् बली हैं ॥ १४ ॥

अहं तु हनुमाश्रम माकृतस्यौरस सुत ।
सीतायास्तु हृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ॥ १५ ॥

समुद्र लङ्कायिवैव त्वा दिदृक्षुरिहागत ।
भ्रमता च मया हृष्टा गृहे ते जनकात्मजा ॥ १६ ॥

‘मेरा नाम हनुमान् है । मैं वायुदेवताका औरत पुत्र हूँ ।
सीताका पता लगाने और तुमसे मिलनेके लिये ही योजन
विलुप्त समुद्रको लौंचर लीम गतिसे यहाँ आया हूँ । घूमते
घूमते तुम्हारे अन्त पुरमें मैंने जनकमन्दिनी सीताको देखा
है ॥ १५ १६ ॥

तद् भवान् हृष्टधर्मार्थस्तपःकृतपरिग्रह ।
परदारान् महाप्राण नोपरोद्धु त्वमर्हसि ॥ १७ ॥

‘महायत्न । तुम धर्म और अर्थके तपकी जानते हो ।
तुमने बड़े भारी तपका समर्थ किया है । अतः दूरेकी लीको
अपने घरमें रोक रखना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं
है ॥ १७ ॥

नहि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कमस्तु ।
मूलधातुषु सज्जने शुद्धिम तो भवद्विधा ॥ १८ ॥

‘धर्मविरुद्ध कार्योंमें बहुतसे अनर्थ भरे रहते हैं । वे
कताका बहुमूलसे नाश कर डालते हैं । अतः तुम जैसे
शुद्धिमान् पुरुष ऐसे कार्योंमें नहीं प्रवृत्त होते ॥ १८ ॥

कक्ष लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् ।
शराणामप्रत स्थातुं शक्नो देवासुरैरपि ॥ १९ ॥

‘देवताओं और असुरोंमें भी कौन ऐसा वीर है, जो
श्रीरामचन्द्रजीके श्रेष्ठ करनेके पश्चात् लक्ष्मण के छाड़ हुए
बाणोंके सामने डरकर सके ॥ १९ ॥

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन् विद्येत कश्चन ।
राघवस्य व्यलीकं य हत्वा सुखमयानुयाय ॥ २० ॥

‘राजन् । तीनों लोकोंमें एक भी ऐसा प्राणी नहीं है,
जो मगवान् श्रीरामका अपराध करने सुखी रह सके ॥ २० ॥

तत् त्रिकालहितं चाक्य धर्ममयानुयायि च ।
मन्यस्य नरवैधाय जानकी प्रतिदीयताम् ॥ २१ ॥

‘इसलिये मेरी घम और नर्यक अनुकूल बात, जो तीनों
कालोंमें हितकर है, ज्ञान हो और जानकीका श्रीरामचन्द्र
जीके पास लौटा दो ॥ २१ ॥

दृष्टा हीय मया देवी लब्ध यदिह दुर्लभम् ।

उत्तर कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघव ॥ २२ ॥

मैंने इन देवी सीताका दशन कर लिया । जो दुर्लभ वस्तु थी, उसे यहाँ पा लिया । इसके बाद जो कार्य जोय है, उसके साधनमें भीरघुनाथजी ही निमित्त हैं ॥ २२ ॥

लक्षितेय मया सीता तथा शोकपरायणा ।

गृहे या नाभिजानासि पञ्चास्यामिध पन्नमीम् ॥ २३ ॥

मैंने यहाँ सीताकी अवस्थाको लक्ष्य किया है । वे निरन्तर शोकमें डूबी रहती हैं । सीता तुम्हारे घरमें पाँच पन्नवाली नारिनके समान निवास करती हैं, किन्हीं तुम नहीं जानते हो ॥ २३ ॥

नेय जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि ।

विपस्वस्पृष्टमत्यर्थं भुक्कामान्मिथौजसा ॥ २४ ॥

जैसे अत्यन्त विपमिभित् अन्नको खाकर फोह उने बलपूर्वक नहीं पचा सकता, उसी प्रकार सीताजीका अपनी शक्तिसे पचा जना देवताओं और अमुओंके लिये भी असम्भव है ॥ २४ ॥

तप सतापलब्धस्ते सोऽयं धमपरिग्रहः ।

न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः ॥ २५ ॥

तुम्हें तपस्याका कष्ट उठाकर धर्मक फलस्वरूप जो यह देशर्षका समग्र किया है तथा शरीर और प्राणीको चिर कालतक धारण करनेकी शक्ति प्राप्त की है, उसका विनाश करना उचित नहीं ॥ २५ ॥

अवध्यता तपोभिर्यो भवान् समनुपश्यति ।

आत्मनः सासुरैर्वैधैर्दुस्तप्राप्य मदान् ॥ २६ ॥

तुम तपस्याके प्रभावसे देवताओं और अमुओंद्वारा जो अपनी अवध्यता देख रहे हो, उसमें भी तपस्याजनित यह धर्म ही महान् कारण है (अथवा उस अवध्यताक होते हुए भी तुम्हारे वक्ता दूसरा महान् कारण उपस्थित है) ॥ २६ ॥

सुग्रीवो न च देवोऽयं न यक्षो न च राक्षस ।

मानुषो राघवो राजन् सुग्रीवश्च हरीश्वरः ।

तस्मात् प्राणपरिप्राणं कथं राजन् करिष्यसि ॥ २७ ॥

राघवराज ! सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजी न तो देवता हैं, न यक्ष हैं और न राक्षस ही हैं । भीरघुनाथजी मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरोंके राजा । अतः उनके हाथसे तुम अपने प्राणोंकी रक्षा कैसे करोगे ! ॥ २७ ॥

न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसहितम् ।

तदेव फलमचेति धर्मोपाधमनाश्रमः ॥ २८ ॥

जो पुरुष प्रयत्न अधर्मके फलमें वैषा हुआ है, उसे धर्मका फल नहीं मिलता । यह उस अपद्रवफलको ही पाता है । हाँ, यदि उस अधर्मके बाद किसी प्रयत्न धर्मका अनुष्ठान

किया गया हो तो वह पहलेके अधर्मका नाशक होता है ॥ २८ ॥

प्राप्त धमफलं तावद् भवना नात्र संशयः ।

फलमन्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे । २९ ॥

तुम्हें पहले जो धर्म किया था, उसका पूरा-पूरा फल तो यहाँ पा लिया, अब तब सीताहरणरूपी अधर्मका फल भी तुम्हें भी ही मिलेगा ॥ २९ ॥

जमस्थानवधं युद्धाया धालिनश्च धध तथा ।

रामसुग्रीवसस्य च युद्धस्य हितमात्मनः ॥ ३० ॥

जमस्थानके राक्षसीका संहार, वालीका वध और भीरम तथा सुग्रीवकी मैत्री—इन तीनों कार्योंके अच्छी तरह समझो । उसके बाद अपने हितका विचार करो ॥ ३० ॥

काम सत्यहमप्येकं सचाक्षिश्यकुञ्जराम् ।

लङ्का नाशयितुं शक्यस्तस्यैव तु न निश्चयः ॥ ३१ ॥

व्यथि मैं अक्ला ही हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लङ्काका नाश कर सकता हूँ, तथापि भीरघुनाथजीका ऐसा विचार नहीं है—उन्होंने तुम्हें इस कार्यके लिय आशा नहीं दी है ॥ ३१ ॥

रामेण हि प्रतिज्ञातं ह्यर्पक्षगणसन्निधौ ।

उत्सादनमभिप्राणा सीतां यैस्तु प्रचर्यिताः ॥ ३२ ॥

किन लोगोंने सीताका तिरस्कार किया है, उन शत्रुओं का स्वयं ही संहार करनेके लिये भीरमचन्द्रजीने वानरों और भाइयोंके सामने प्रतिज्ञा की है ॥ ३२ ॥

अपकुचन हि रामस्य साक्षादपि पुरंदर ।

न सुखं प्राप्नुयात्कस्यः किं पुनस्तवद्विद्यो जनः ॥ ३३ ॥

भगवान् भीरमका अपराध करके साक्षात् इन्द्र भी सुख नहीं पा सकते, फिर तुम्हारे जैसे साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है ! ॥ ३३ ॥

या सीतेरपभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे ।

कालरात्रीति तां विक्षिप्तबलङ्कायिनाशिनीम् ॥ ३४ ॥

जिनको तुम सीताके नामसे जानते हो और जो इस समय तुम्हारे अंतःपुरमें मौजूद हैं, उन्हें सम्पूर्ण लङ्काका विनाश करनेवाली कालरात्रि समझो ॥ ३४ ॥

तद्वलं कालपादोन सीताविग्रहरूपिणा ।

स्वयं स्क्वावसत्तेनसेममात्मनि चिन्त्यताम् ॥ ३५ ॥

सीताका शरीर धारण करके तुम्हारे पास कालकी पाँसी आ पहुँची है, उसमें स्वयं यथा पँचाना ठीक नहीं है । अतः अपने कल्याणकी चिन्ता करो ॥ ३५ ॥

* जैसा कि मुनिवक्ता बयन है—जैसेमैं पापनशुद्धि, नश्वर धर्मसे अनुपन्न करने पापको दूर करता है । शत्रुकोमें मारने लगे मार्गस्थि कृष्णमन आदि भी इसी वादके समर्थक हैं ।

सीतायास्नेहसा दग्धा रामकोपप्रदीपिताम् ।
 दहमानामिमा पश्य पुरीं सादृप्रमोलिकाम् ॥ ३६ ॥
 'देखो, अट्टालिकाओं और गलियोंसहित यह लहड़पुरी
 सीताजीके तेज और श्रीरामकी ओघाग्निसे खलकर मरस होने
 जा रही है (वचा सको तो बचाओ) ॥ ३६ ॥
 स्वामिभ्रात्राणि मन्त्रीश्च नातीन् भ्रातृन् सुतान् हितान् ।
 भोगान् दाराश्च लङ्का च मा विनाशमुपानय ॥ ३७ ॥
 'इन मित्रों, मन्त्रियों, कुटुम्बीजनों, भाइयों, पुत्रों,
 हितकारियों, स्त्रियों, मुल योगके साथनों तथा समूची लङ्का
 को भीनके वृत्तमें न छोड़ो ॥ ३७ ॥

तस्य राक्षसराजोद्भूतश्च वचन मम ।
 रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषत ॥ ३८ ॥
 'राक्षसोंके राजाधिराज । मैं भगवान् श्रीरामका दास हूँ,
 दूत हूँ और विशेषत वानर हूँ । मेरी सबी बात सुनो—॥
 सर्वाहलोकान् सुखदृष्ट्य सभूतान् सचराचरान् ।
 पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्नो रामो महाव्यशा ॥ ३९ ॥
 'महाव्यवहारी श्रीरामन्दब्रवी चराचर प्राणियोंसहित
 सम्पूर्ण लोकोंका सहर करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण
 करनेकी शक्ति रखते हैं ॥ ३९ ॥
 देवासुरनरेद्रेषु यक्षरक्षोरोगेषु च ।
 विद्याधरेषु नागेषु गन्धर्वेषु मृगेषु च ॥ ४० ॥
 सिलेषु किनरे द्रेषु पतत्रिषु च सर्वत ।
 सर्वत्र सर्वमूनेषु सचकालेषु नास्ति स ॥ ४१ ॥
 यो राम प्रति युज्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम् ।

'भगवान् श्रीराम श्रीविष्णुके तुल्य पराक्रमी हैं । देवता,
 अमुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, सप, विद्याधर, नाग, गन्धर्व,
 मृग, सिद्ध, किनर, पत्नी एवं अन्य समस्त प्राणियोंमें कहीं
 किसी समय कोई भी ऐसा नहीं है, जो श्रीगुणाधजाके साथ
 लोहा ले सके ॥ ४० ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाक्यमीकोपे आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥
 इस प्रकार श्रीहस्तकीर्तिनिर्मित आचरामायण आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डमें इक्यावनवौं सर्ग पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाग सर्ग

त्रिभीषणका दूतके वधको अनुचित बताकर उसे दूसरा कोई दण्ड देनेके लिये
 कहना तथा रावणका उनके अनुरोधको स्वीकार कर लेना

स तस्य वधन धृत्वा यानरस्य महात्मन ।
 आशापयद् वध तस्य रावण क्रोधमूर्च्छित ॥ १ ॥
 बानरशिरोमणि महारमा हनुमान्भीका वचन मुनकर
 क्रोधसे समतमाये हुए रावणने अपने सेवकोंको आश दी—
 'इस बानरका वध कर डालो ॥ १ ॥
 वधे तस्य समाहिते रावणेन दुरात्मना ।

सर्वलोकेश्वरस्येह हृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
 रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ॥ ४२ ॥
 'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर राजसिंह श्रीरामका ऐसा महान्
 अपराध करके तुम्हारा जीवित रहना बठिन है ॥ ४२ ॥
 देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेद्र
 गन्धर्वविद्याधरनागयक्षा ।
 रामस्य लोकप्रयनायकस्य
 स्थानं न शक्ता समरेषु सर्वे ॥ ४३ ॥
 'निशाचरराज । श्रीरामचन्द्रजी तीनों लोकोंके स्वामी हैं ।
 देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष—ये सब
 मिलकर भी युद्धमें उनके सामने नहीं टिक सकते ॥ ४३ ॥

ब्रह्मा स्वयम्भूस्तुराननो वा
 रद्रक्षिनेत्रस्त्रिपुरातको वा ।
 इन्द्रा महेन्द्र सुरनायको वा
 स्थानं न शक्ता युधि राघवस्य ॥ ४४ ॥
 'चार मुखोंवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रोंवाले त्रिपुर
 नाशक ब्रह्म अथवा देवताओंके स्वामी महान् ऐश्वर्यशाली
 इन्द्र भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर
 सकते ॥ ४४ ॥

स सौमित्रोपेतमदीनप्रादिन
 कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रिय वच ।
 दशाननः कोपविष्टलोचन
 समादिशत् तस्य वध महाकपे ॥ ४५ ॥
 बोरभावसे निययतापूर्वक माषण करनेवाले महाकपि
 हनुमान्भीकी बातें रङ्गी मुन्दर एवं युक्तियुक्त थीं, तथापि वे
 रावणको अप्रिय लगीं । उर्हैं मुनकर अनुपम मल्लिशाली
 दशानन रावणने क्रोधसे ओल्लें तरेरकर सेवकोंको उनके वधक
 लिये आश दी ॥ ४५ ॥

निधेदित्यतो दीप्य मानुमेने विभीषण ॥ २ ॥
 दुरात्मा रावणने जब उनके वधकी आश दी, तब
 विभीषण भी वहीं थे । उन्होंने उस आशका अनुमोदन नहीं
 किया, क्योंकि हनुमान्भी अपनेको सुघोष एवं श्रीरामका दूत
 बता चुके थे ॥ २ ॥
 स रक्षोऽधिपति मुन्द सद्य कायमुपस्थितम् ।

विदिरा वि तयामास कार्यं कार्यविधौ स्थितः ॥ ३ ॥

एक ओर राक्षसराज राजन कोषसे भरा हुआ था, दूसरी ओर यह दूतके वचन का फल उपस्थित था । यह सब जानकर यमोचिन कार्यके सम्पादनमें लगे हुए विभीषणने समयोचित कर्तव्यका निश्चय किया ॥ ३ ॥

निश्चितार्थस्ततः साक्षा पूज्य शत्रुजिह्वप्रजम् ।

उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

निश्चय हो जानेपर यमोचिनपुत्राल विभीषणने पूजनीय वषेटे भ्राता शत्रुविजयो राजनसे शान्तिपत्रक यह हितकर वचन कहा— ॥ ४ ॥

क्षमस्व रोप त्यज राक्षसे द्र

प्रसीद मे वाक्यमिदं शृणुष्व ।

वध न कुर्वन्ति परावरत्रा

दूतस्य स तो वधुभाषिणे द्रा ॥ ५ ॥

‘परावराज ! क्षमा कीजिय, मोषको त्याग दीजिये, प्रव्रत होइये और मेरी यह बात सुनिये । ऊँच-नीचका शान रखनेवाले भेट राजालोग दूतका वध नहीं करते हैं ॥ ५ ॥

राजन् धर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गदितम् ।

तस्य चासदृशं धीरं कपेरस्य प्रमाणम् ॥ ६ ॥

‘धीरं महाशान ! इस वानरको मारना धर्मके विरुद्ध और लोकवाचकी दृष्टिसे भी निन्दित है । आप जैसे धीरके लिये तो यह कदापि उचित नहीं है ॥ ६ ॥

धमस्य हतस्य राजधर्मविशारदः ।

परावरत्रो भूतानां त्वमेव परमाधयित्वा ॥ ७ ॥

गृह्णाते यदि रोपेण त्यादृशोऽपि विचक्षणः ।

नत शास्त्रविपश्चित्स्य धम पय हि केयलम् ॥ ८ ॥

‘आप धर्मके शाता, उपकारको माननेवाला और राजधर्मके विशेषज्ञ हैं, मन्त्र बुरेका शान रखनेवाले और परमायके शाता हैं । यदि आप जैसे विद्वान् भी रोपके बधीभूत हो जायें तब तो समस्त शास्त्रोंका शान्तिव प्राप्त करना केवल धम ही होगा ॥ ८ ॥

तस्मात् प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसे द्र दुरासदः ।

युचायुक्तं विनिश्चित्य दूतदण्डो विधीयताम् ॥ ९ ॥

‘अतः शत्रुओंका हार करनेवाले दुष्टय राक्षसराज ! आप प्रव्रत होइये और उचित अनुचितका विचार करके दूतके योग्य किसी दण्डका विधान कीजिये ॥ ९ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रायणो राक्षसेश्वरः ।

कोपेन महताऽऽविष्टो वाक्यमुचरमश्रुधीम् ॥ १० ॥

विभीषणकी बात सुनकर राजसौका स्वामी राजन महान् कोपसे मारकर उड़ उठर देता हुआ बोला— ॥ १० ॥

न पापानां वधे पापं विघटतः शत्रुसूदन ।

तस्मादिमं वधिष्यामि घातर पापकारिणम् ॥ ११ ॥

‘शत्रुघ्नदत्त ! पापियोंका वध करनेमें पाप नहीं है । इस वानरने शांतिका विध्वंस तथा राजसौका वध करके पाप किया है । इसलिये अवश्य ही इसका वध कहेंगे ॥ ११ ॥

अधर्ममूल बहुदोषयुक्तं मनार्यशुष्टं वचनं निशम्य ।

वधाच्च वाक्यं परमार्थतत्त्वं विभाषणो बुद्धिमता परिष्ट ॥ १२ ॥

राक्षसका वचन अनेक दोषोंसे युक्त और पापका मूल था । वह भेट पुरुषोंने योग्य नहीं था । उधे सुनकर बुद्धिमानोंमें भेट विभीषणने उत्तम कर्तव्यका निश्चय काली बात कही— ॥ १२ ॥

प्रसीद लक्ष्मण राक्षसे द्र

धमार्थतत्त्वं वचनं शृणुष्व ।

दूता न वध्या समयेषु राजन्

सर्वेषु सवय वदन्ति सतः ॥ १३ ॥

‘लक्ष्मण ! प्रव्रत होइये । राक्षसराज ! मेरे धर्म और धर्मार्थतत्त्वसे युक्त वचनको ध्यान देकर सुनिये । राजन् ! सपुरुषोंका कथन है कि दूत कहीं किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होते ॥ १३ ॥

असहाय शत्रुरयं प्रवृद्ध

हतं हानेनामियमममेयम् ।

न दूतवध्या प्रवृन्ति स तो

दूतस्य दण्डं बहयो दि दण्डा ॥ १४ ॥

‘इतने सदेह नहीं कि यह बहुत बड़ा शत्रु है क्योंकि इतने यह अपराध किया है जिसकी कहीं तुलना नहीं है, तथापि सपुरुष दूतका वध करना उचित नहीं बताते हैं । दूतके लिये अय प्रकारका बहुत से दण्ड देले गये हैं ॥ १४ ॥

वैरूप्यमहेषु कशाभिघातो

मौण्ड्य तथा लक्षणस्तन्निपातः ।

यताम् हि दूते प्रवृन्ति दण्डान्

वधस्तु दूतस्य न न श्रुतोऽस्ति ॥ १५ ॥

‘किसी अन्नको भक्षण या विधुत कर देना, कोड़ेसे पिटबलना, छिर प्रहार देना तथा धीरमें कोई विद्वत् दाग देना—ये ही दण्ड दूतके लिये उचित बताये गये हैं । उठने लिये वधका दण्ड तो मैंने कभी नहीं सुना है ॥ १५ ॥

कथं च घमाद्यविनीतयुद्धिः

परापरप्रत्ययनिश्चिताद्यः ।

अवद्विधं कोपवशा दि निष्ठम्

कोपं न गच्छति हि सत्त्ववन्तः ॥ १६ ॥

‘आपकी बुद्धि धर्म और अर्थकी शिक्षासे युक्त है। आप कैच-नीचका विचार करके कतम्यका निश्चय करनेवाले हैं। आप-जैसा नीतिशु पुण्य कोषके अधीन कैसे हो सकता है? क्योंकि शक्तिशाली पुण्य कोष नहीं करते हैं ॥ १६ ॥

न धमनादे न च लोम्बुत्ते
न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु चापि।
विद्येत कश्चित्तव वीर तुल्य
स्व ह्युत्तम सर्वसुरासुराणाम् ॥ १७ ॥

(वीर ! धर्मकी इष्टाख्या करने, लोकचारका पालन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्तको समझनेमें आपके समान दूसरा काइ नहीं है। आप सम्पूर्ण देवताओं और अशुरोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

पराक्रमोत्साहमनस्विना च
सुरासुराणामपि दुर्जयेन।
त्वयाप्रमेयेण सुरेन्द्रसघा
जिताश्च सुखेष्वसहृष्टरेन्द्रा ॥ १८ ॥

‘पराक्रम और उत्साहसे सम्पन्न जो मनस्वी देवता और अशुर हैं, उनके लिये भी आपपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। आप अग्रमेय शक्तिशाली हैं। आपने अनेक युद्धोंमें बारबार देवैश्वर्यों तथा नरेशोंको पराजित किया है ॥

इत्थनिधस्यामरदैत्यशत्रो
दूरस्थ धीरस्य तवाजितस्य।
कुर्वति धीरा मनसाप्यलीक
प्रणैर्विमुक्ता न तु भो पुरा ते ॥ १९ ॥

‘देवताओं और दैत्योंके भी शत्रुता रखनेवाले ऐसे आप अमराश्रित दूरधीरका पहलू कभी शत्रुपक्षी वीर मनसे भी पराभव नहीं कर सके हैं। जिन्होंने सिर उठाया, वे कत्तान प्राणोंसे शपथ हो बैठे ॥ १९ ॥

न चाप्यस्य कपेघाते कश्चित् पदयाम्यह गुणम्।
तेष्वप पात्यता दण्डो वैरस्य प्रेषितः कपि ॥ २० ॥

‘इस वानरकी मारनेमें मुझे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। जिन्होंने इसे भेजा है, उन्हींको यह प्राणदण्ड दिया था ॥ २० ॥

साधुवा यदि वासाधुः परैरप्य समर्पित।
सुवन् परार्य परधान न दूतो घघमर्हति ॥ २१ ॥

‘यह भला हो या बुरा, ‘जुआँने इसे भेजा है अतः यह उन्हींके स्वार्थकी बात करता है। दूत वदा परार्थन ऐसा है, अतः यह वक्ते योग्य नहीं होता है ॥ २१ ॥

अपि ध्यास्मिन् हस्ते नान्य राजन्पदयामिमेचरम्।
इह य पुनरागच्छेत् पर पार महोदधे ॥ २२ ॥

‘प्राज्ञ ! इसके मोरे जानेपर मैं दूसरे किसी सेते

आश्रयकारी प्राणीको नहीं देखता, जो शत्रुके समीपसे महासागरके इस पार पार आ सके (देखी दशामें शत्रुकी गति विधिक्रम आपको पता नहीं लग सकेगा) ॥ २२ ॥

तस्मान्नास्य वधे यत्न कार्य परपुरुजय।
भवान् सेद्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति ॥ २३ ॥

‘अतः शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाराज ! आपको इस वृत्तक वधके लिये कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिये। आप तो इस योग्य हैं कि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंपर चला कर सकें ॥ २३ ॥

अस्मिन् विनष्टे नहि भूतमन्य
पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ।
युद्धाय युद्धप्रिय दुर्विनीता
बुधोजयेद् वै भवता विरुद्धौ ॥ २४ ॥

‘युद्धप्रेमी महाराज ! इसके नष्ट हो जानेपर मैं दूसर किसी प्राणीको ऐसा नहीं देखता, जो आपसे विरोध करनेवाले उन दोनों स्वतन्त्र प्रकृतिके राजकुमारोंको युद्धके लिये तैयार कर सके ॥ २४ ॥

पराक्रमोत्साहमनस्विना च
सुरासुराणामपि दुर्जयेन।
त्वया मनोमन्दन नैश्रुताना
युद्धाय निर्नाशयितु न युक्तम् ॥ २५ ॥

‘प्राज्ञोंके हृदयको आनन्दित करनेवाले वीर ! आप देवताओं और दैत्योंके लिये भी दुःख हैं; अतः पराक्रम और उत्साहसे भरे हुए हृदयवाले इन प्राज्ञोंके मनमें जो युद्ध करनेका होसला बदा हुआ है, उसे नष्ट कर देना आपके लिये कदापि उचित नहीं है ॥ २५ ॥

हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च
कुलेषु जाताश्च महागुणेषु।
मनस्विन शास्त्रभृता परिष्ठा
कोपप्रशस्ता सुभृताश्च योधा ॥ २६ ॥

‘तद्देकदेशेन यत्न्य तावत्
केचित् तदादेशहृतोऽच पातु।

‘तौ राजपुत्रावुपगृह्य मूढौ
परेषु ते भावयितु प्रभाषम् ॥ २७ ॥

मेरी राय तो यह है कि उन विरह दुःखमें विफलचित्त राजकुमारोंको बंद करके शत्रुओंपर आरक्षा प्रमान दान्ते— दबदबा घमानेके लिये आपकी आशासे कोई भी सेनाक साथ कुछ ऐसे योद्धा यहाँमें यात्रा करें, जो शिरीरी, शूरीरी, सायवान, अधिक गुजवाले महान् कुलमें उत्पन्न, मनस्वी, शास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, अपने रोय और क्षेत्रक लिये प्रशस्ति तथा अधिक वेतन देख कर अच्छी तरह पान पोते ग्य हों ॥

निशाचराणामधिपोऽनुजस्य

विभीषणस्योत्तमवाक्यमिष्टम् ।

जग्राह बुद्ध्या सुरलोचशत्रु

महायलो राक्षसराजमुख्यः ॥ २८ ॥

इत्यर्थे भीमद्रामायणे व्याल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

॥ प्रहार भीमात्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डमें बानरवों सग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥



त्रिपञ्चाशः सर्गः

राक्षसोंका हनुमान्जीकी पूँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें घुमाना

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा वृक्षधीयो महात्मन ।

देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमध्वरीत् ॥ १ ॥

छोटे भाई महात्मा विभीषणकी बात देव और कालने लिये उपयुक्त एवं हितकर थी। उसको सुनकर दशाननने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १ ॥

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता ।

अवश्यं तु घञायाम्य म्रियतामस्य निग्रहः ॥ २ ॥

‘विभीषण ! दुम्हार करना ठीक है। वातावरणमें दूतके वधकी बड़ी निन्दा की गयी है, परन्तु वधके अतिरिक्त दूसरा कोई दण्ड इसे अवश्य देना चाहिये ॥ २ ॥

कपीना किल लाङ्गलमिष्टं भवति भूषणम् ।

तदस्य दीप्यता शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ३ ॥

‘बानरोंको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है। बड़ी इनका आभूषण है। अतः जितना जल्दी हो सके, इसकी पूँछ जला दो। जली पूँछ लेकर ही यह यहाँसे जाय ॥ ३ ॥

ततः पश्यन्धनुमु दीनमङ्गयैकप्यकर्शितम् ।

सुमित्रहातयः सर्वे बाधया सहस्रहज्जनाः ॥ ४ ॥

‘वहाँ इसने मित्र, कुटुम्बी, भाई-बन्धु तथा हितेयी सुहृद् इत्ते अङ्ग महान्के कारण पीड़ित एवं दीन अवस्थामें देखें’ ॥ ४ ॥

आज्ञापयद् राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् ।

लाङ्गलेन प्रदीतेन रक्षोभिः परिणीयताम् ॥ ५ ॥

किर राक्षसराज रावणने यह आज्ञा दी कि ‘वायसगण इसकी पूँछमें आग लगाकर इसे सड़कों और चौराहोंपर हित समूचे नगरमें घुमावें’ ॥ ५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः ।

वेष्टन्ते तस्य लाङ्गलं जीर्णं कार्पासिकं पटैः ॥ ६ ॥

स्वामीका यह आदेश सुनकर क्रोधके कारण कठोस्ता पूरा धर्ताप करनेवाले राक्षस हनुमान्जीकी पूँछमें पुराने सूती कपड़े लपेटने लगे ॥ ६ ॥

अपने छोटे भाई विभीषणके द्वारा उत्तम और प्रिय

वचनको सुनकर निशाचरोंके स्वामी तथा देवलोकेके शत्रु

महाबली राक्षसराज रावणने बुद्धिसे सोच विचारकर उसे

स्वीकार कर लिया ॥ २८ ॥

॥ प्रहार भीमात्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डमें बानरवों सग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

॥ प्रहार भीमात्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डमें बानरवों सग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

सवेष्टयमाने लाङ्गले इत्यधत् महाकवि ।

शुक्लमिचनमासाद्यं घनेरिव द्रुताशनम् ॥ ७ ॥

जब उनकी पूँछमें वस्त्र लपेटा जाने लगा, उस समय बनेमें खूबी लकड़ी पाकर भ्रमक उठनेवाली आगझी भौंति उन महाकपिोंका शरीर बंदकर बहुत बढ़ा हो गया ॥ ७ ॥

तैलेन परिचिच्याध तेऽग्निं तत्रोपपादयन् ।

लाङ्गलेन प्रदीतेन राक्षसास्तानताडयत् ॥ ८ ॥

रोषामर्षपरीतात्मा बालसूर्यसमानन ।

राक्षसोंने वस्त्र लपेटनेके पश्चात् उनकी पूँछपर ठिक्क दिया और आग लगा दी। तब हनुमान् हृदय रोषसे भर गया। उनका मुख प्रातः कालके भौंति अदृश आभासे उद्भासित हो उठा और वे बलवती हुई पूँछसे ही राक्षसोंको पीटने लगे ॥ ८ ॥

स भूय सगतैः क्रूरैः राक्षसैर्हरिपुङ्गवः ॥ ९ ॥

सहस्रायालवृद्धाश्च जम्बुः प्रीतिं निशाचराः ।

तब क्रूर राक्षसोंने मिलकर पुनः उन बानरशिरोमां

कवकर बाँध दिया। यह देख जियो, बालकों और

वहिल समस्त निशाचर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ९ ॥

निबद्धं हृत्तवान् धीरस्तत्कालसदृशं मतिम् ॥ १० ॥

काम खलु न मे शका नियत्स्यापि राक्षसाः ।

छिन्त्या पाशान् समुत्पत्य हन्यामहमिमान् पुनः ॥ ११ ॥

तब बोरघर हनुमान्जी बँधे-बँधे ही उस समयके योग्य वि

करने लगे—‘व्यथामें मैं बँधा हुआ हूँ तो भी इन राक्षस

मुझपर जोर नहीं चल सकता। इन पापनोंको तोड़कर

ऊपर उठल जाऊँगा और पुनः यह मार सकूँगा ॥ १० ॥

यदि भवद्विस्तार्याय चरत भवशासनात् ।

निबध्नते दुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः हता ॥ १२ ॥

‘मैं अपने स्वामी भीरामके हितके लिये विचर रहा

तो भी ये दुरात्मा राक्षस यदि अपने राजाके आदेशसे !

बाँध रहे हैं तो इससे मैं जो कुछ कर सकूँगा, उसका बंद

नहीं पूरा हो सका है ॥ १२ ॥

सर्वेषामेष पयातो राक्षसानामह युधि ।

किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विरहिष्येऽहमीदृशम् ॥ १३ ॥

मैं युद्धस्थलमें अकेला ही इन समस्त राक्षसोंका संहार करनेमें पूर्णतः समर्थ हूँ, किन्तु इस समय भीरुमन्दशीकी प्रसन्नताके लिये मैं ऐसे बचनको चुनचाप सह दूँगा ॥

लङ्का चारयितव्या मे पुनरेव भवेद्विति ।

रात्रौ नहि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः ॥ १४ ॥

‘ऐसा करनेमें मुझे पुनः सन्धी लङ्कामें विचरने और इसके निरीक्षण करनेका अवसर मिलेगा, क्योंकि रातमें घूमने का कारण मैंने दुर्गरचनाकी विधिपर दृष्टि रखते हुए इसका अच्छी तरह अवलोकन नहीं किया था ॥ १४ ॥

भवद्वयमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये ।

काम घनतु मे भूय पुच्छस्योद्दीपनेन च ॥ १५ ॥

पीडा कुर्वन्ति रक्षांसि न मेऽस्ति मनस भयम् ।

‘अतः खोप हो जानेपर मुझे अवश्य ही लङ्का देखनी है । मन्त्र ही ये राक्षस मुझे बारबार बाँधें और पूँछमें आग लगाकर पीडा पहुँचायें । मेरे मनमें इसका कारण तनिक भी कष्ट नहीं होगा’ ॥ १५ ॥

ततस्ते सङ्घाताकार संस्वबन्त महाकपिम् ॥ १६ ॥

परिवृष्टा मयुहुष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् ।

राक्षसेरीतिनादैश्च घोषयन्त स्वकर्मभिः ॥ १७ ॥

राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति सः तां पुरीम् ।

तदनन्तर वे क्रूरकमा राक्षस अपने दिग्ग आकारको दिखाये रखनेवाले सवगुणशाली महान् बान्धवीर कपिकुञ्जर हनुमान्जीको पकड़कर बड़े हफ्फे साथ ल चले और राक्षस एव मेरी सहायक उनको (रावण-सीह आदि) अपघर्षोंकी धारणा करते हुए उन्हें लङ्कापुरीमें सब ओर घुमाने लगे ॥ १६ १७ ॥

अन्वीयमानो रक्षोभिर्ययौ सुखमरिचम् ॥ १८ ॥

हन्माञ्छारयामास राक्षसानां महापुरीम् ।

अपापदयद् विमानानि विचित्राणि महाकपिः ॥ १९ ॥

शत्रुदमन हनुमान्जी बड़ी मौजसे आगे बढ़ने लगे । समस्त राक्षस उनके पाँटे-पीठ चरते थे । महाकपि हनुमान् जी राक्षसोंकी उध विनाश पुरीमें विचरते हुए उसे देखने लगे । उन्होंने वहाँ बड़े विचित्र विमान देखे ॥ १८ १९ ॥

सङ्घातान् भूमिभागाश्च सुविभक्ताश्च चत्वरान् ।

रथ्याश्च शृङ्गसम्बाधाः कपिः शृङ्गाटकानि च ॥ २० ॥

तथा रथ्योपररथ्याश्च तथैव च शृङ्गान्तरान् ।

परकटेने विरे हुए क्रिने ही भूभाग, पृथक्-पृथक् बने हुए सुन्दर चक्करे, पनीभूत शृङ्गपत्तियोंकी चिड़ी हुए सड़कें,

चौराहे, छोटी-बड़ी गलियों और घरोके मध्यभाग-इन सबको वे बड़े गौरसे देखने लगे ॥ २० ॥

सत्वरं चतुष्केषु राजमार्गेषु तथैव च ॥ २१ ॥

घोषयन्ति कपिः सर्वे चार इत्येष राक्षसाः ।

सब राक्षस उन्हें चौराहोंपर, चार खम्बेवाले मण्डपोंमें तथा सड़कोंपर घुमाने और आवाज बहाकर उनका परिचय देने लगे ॥ २१ ॥

लीलाङ्गुलानि निजमुत्सृज्य तत्र कुसुहलात् ॥ २२ ॥

तः प्रदीपितलाङ्गुलं हनूमन्तं दिदृक्षत ।

‘मिन्न-मिन्न स्थानोंमें जन्ती पूँछवाले हनुमान्जीको देखनेके लिये वहाँ बहुतसे बालक, बृद्ध और ब्रिजों की नृहल-बन्ध बरसे बाहर निकल आती थीं ॥ २२ ॥

दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गुलानि हनूमन्तः ॥ २३ ॥

राक्षसस्तां विरूपाक्ष्य शस्त्रैर्व्यास्तम्भयन् ।

हनुमान्जीकी पूँछमें बच आग लगायी जा रही थी, उस समय मयकर नेत्रोंवाली राक्षसियोंने शीतादेवीक पाश ब्याकर उनसे यह अभिय सभाचार कहा— ॥ २३ ॥

यस्तस्या कृतसवाद् सीते ताम्रमुख कपिः ॥ २४ ॥

लाङ्गुलेन प्रदीप्तेन स एव परिणायते ।

‘सीते ! जिस लाल मुँहवाले बन्दरने तुम्हारे साथ बात चीत की थी, उसकी पूँछमें आग लगाकर उसे सारे नगरमें घुमाया जा रहा है’ ॥ २४ ॥

श्रुत्वा तद् वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ॥ २५ ॥

वदेहः शोकसतता हुताशनमुपागमत् ।

अपने अपहरणकी ही भौंति सुन देनेवाली यह क्रूरता पूरा बात सुनकर विदेहमन्दिनी सीता शोकसे स्वतः हो उठीं और मन ही-मन अग्निदेवकी उपासना करने लगीं ॥ २५ ॥

मङ्गलाभिमुखी तस्य सा सदासीमहाकपे ॥ २६ ॥

उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हृदयवाहनम् ।

उस समय विशालदेवना पवित्रहृदया सीता महाकपि हनुमान्जीक लिये मङ्गलधमना करती हुई अग्निदेवकी उपासनामें लग्न हो गयीं और इस प्रकार बठीं— ॥ २६ ॥

यद्यस्ति पतिगुणेषु यद्यस्ति चरितं तपः ।

यदि वा त्येकपत्नीत्यं दीतो भव हनूमन्तः ॥ २७ ॥

‘अग्निदेव ! यदि मैंने पतिव्रता सेवा की है और यदि प्रथम कुछ भी तपसा तथा पातिव्रतका बर है तो तू मम हनुमान्के लिये सीतल हो जाओ ॥ २७ ॥

यदि किंचिदनुमोदास्तस्य मन्यस्ति धीमतः ।

यदि वा भाग्यदोषो मे दीतो भव हनूमन्तः ॥ २८ ॥

‘यदि बुद्धिमान् भगवान् भारामके मनमें मेरे प्रति

किंचिन्माय भी दया है अथवा यदि मेरा सौभाग्य शेष है तो
तुम हनुमान्ने लिये शीतल हो जाओ ॥ २८ ॥

यदि मा वृत्तसम्पन्ना तत्समागमलालसाम् ।
स विजानाति घमात्मा शीतो भव हनुमतः ॥ २९ ॥

‘यदि धर्मात्मा भीरुनाथभी मुने सदाचारसे सम्पन्न
और अपनेसे मिलनेके लिये तय्युक्त जानते हैं तो तुम हनुमान्
के लिये शीतल हो जाओ ॥ २९ ॥

यदि मा तारयेदार्य सुग्रीव सत्यसगर ।
अस्माद् दुःखारुसरोघाच्छीतो भव हनुमतः ॥ ३० ॥

‘यदि सत्यप्रतिष्ठा भाव सुग्रीव इस दुःखके महासागरसे
मेरा उद्धार कर सकें तो तुम हनुमान्के लिये शीतल हो
जाओ’ ॥ ३० ॥

ततस्तीक्ष्णाचिरव्यग्रः प्रदक्षिणक्षिप्तोऽनल ।
जज्वाल मृगशावाक्या शसन्निव शुभ कपे ॥ ३१ ॥

मृगनयनी सीताके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तीक्ष्ण
लपटोंवाले अग्निदेव मानो उन्हें हनुमान्के मङ्गलकी सूचना
देते हुए शातभावसे जलने लगे । उनकी शिक्षा प्रदक्षिण
भावसे उठने लगी ॥ ३१ ॥

हनुमज्जनकश्चैव पुच्छानलपुत्रोऽनिल ।
पथी स्वास्थ्यकरो देव्या प्रालेयानिलशीतल ॥ ३२ ॥

हनुमान्के पिता वायुदेवता भी उनकी पूँछमें लगी हुई
आगसे युक्त हो बर्फीली हवाके समान शीतल और देवी
सीताके लिये स्वास्थ्यकारी (सुखद) होकर बहने लगे ॥ ३२ ॥

दह्यामाने च लाङ्गले चिन्तयामास वानरः ।
प्रवीतोऽशिरयः कक्षान् मा दहत सजत ॥ ३३ ॥

उपर पूँछमें आग लगायी जानेपर हनुमान्की सोचने
लगे—‘अहो ! यह आग सब ओरसे प्रचलित होनेपर भी
मुझे जलाती क्यों नहीं है ? ॥ ३३ ॥

दह्यते च महाज्वाल करोति च न मे रुजम् ।
शिशिरस्येव सम्पातो लाङ्गलामे प्रतिष्ठित ॥ ३४ ॥

‘इसमें इतनी ऊँची ज्वाला उठती दिखायी देती है,
तथापि यह आग मुझे पीड़ा नहीं दे रही है । मालूम होता है
मेरी पूँछके अग्रभागमें बर्फा ढेर छा रख दिया गया है ॥ ३४ ॥

अथ ता दिदृष्ट्यक यद् दृष्टं भूयता मया ।
रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतं सरितां पती ॥ ३५ ॥

‘अपना उस दिन समुद्रको लौंफते समय मैंने समरमें
भीरामचन्द्रकी प्रभावसे पर्वतके प्रकट होनेकी जो आश्चर्य
जनक घटना देखी थी, उसी तरह आज यह अग्निकी
शीतलता भी व्यक्त हुई है ॥ ३५ ॥

यदि तावत् समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः ।

रामार्थं सम्भ्रमस्तादृक्किमग्निनं करिष्यति ॥ ३६ ॥

‘यदि भीमके उपकारके लिये समुद्र और बुद्धिमान्
मैनाकके मनमें वैसी आदरपूर्ण उतावणी देखी गयी तो क्या
अग्निदेव उन भगवान्के उपकारके लिये शीतलता नहीं प्रकट
करेंगे ? ॥ ३६ ॥

सीतायाश्चानृशस्येन तेजसा राघवस्य च ।
वितुक्ष मम सख्येन न मा दहत पायकः ॥ ३७ ॥

‘निश्चय ही भगवती सीताकी दया, भीरुनाथजीके तेज
तथा मेरे पिताकी मैत्रीके प्रभावसे अग्निदेव मुझे जला नहीं
रहे हैं’ ॥ ३७ ॥

भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जर ।
कथमस्मद्विधस्येह यथैनं राक्षसाधमै ॥ ३८ ॥
प्रतिक्रियास्य युक्ता स्यात्सति महा पराक्रमे ।

तदनन्तर कपिकुञ्जर हनुमान्ने पुन एक मुहूर्तक
इस प्रकार विचार किया ‘मेरे जैसे पुरुषका यहाँ इन नीच
निशाचरोंद्वारा बाँधा जाना कैसे उचित हो सकता है ? पराक्रम
रखते हुए मुझे अवश्य इसका प्रतीकार करना चाहिये’ ३८
ततश्छिन्त्या च तान् पाशान् वेगवान् चैव महाकपिः ॥ ३९ ॥
उत्पपाताथ वेगेन ननाद् च महाकपिः ।

यह सोचकर वे वेतशाही महाकपि हनुमान् (जिन्हें
राजलौने पकड़ रखा था) उन बन्धनोंको तोड़कर बड़े वेगसे
ऊपरको उछल और गहना करने लगे (उस समय भीउनका
शरीर रक्षियोंमें फैला हुआ ही था) ॥ ३९ ॥

पुच्छात् ततः श्रीमांश्चैल्लङ्घ्यमिवोन्नतम् ॥ ४० ॥
विभक्तश्च सम्बाधमाससादा निलाम्ज ।

उछलकर वे धीमान् पवनकुमार पवन शिखरके समान
ऊँचे नगरद्वारपर जा पहुँचे, जहाँ राक्षसोंकी मीढ़ नहीं
थी ॥ ४० ॥

स भूत्वा शैलसकाश क्षणेन पुनारामवान् ॥ ४१ ॥
ह्रसता परमा प्राप्तो यथान्ययशातयत् ।
विमुक्तश्चाभयच्छ्रीमान् पुनः परतसन्निभः ॥ ४२ ॥

पर्वताकार होकर भी वे मनस्वी हनुमान् पुन क्षणभरमें
बहुत ही छोटे और पतले हो गये । इस प्रकार उन्होंने
अपने सारे बन्धनोंको निभाल फेंका । उन बन्धनोंसे मुक्त
होते ही वेबखली हनुमान्भी फिर पर्वतके समान विशालकाय
हो गये ॥ ४१ ४२ ॥

वीर्यमाणश्च दृढो परिघ तोरणाश्रितम् ।
स त गृहा मदायाहुः कालायसपरिपृष्टम् ॥ ४३ ॥
रक्षिणस्तान् पुन सर्वान् सुदयामासमारुति ॥ ४३ ॥

उस समय उन्होंने अब इधर-उधर दृष्टि डाली, तब
उन्हें पाटकके सहारे रक्ता हुआ एक परिघ दिखायी दिया ।

काले लोहेने बने हुए उस परिपक्वो लेकर महाबाहु पवन
पुत्रने वहाँके समस्त राक्षसोंको फिर मार गिराया ॥ ४३ ॥

स तान् निहत्या रणचण्डनिक्रम
समीक्षमाण पुनरेव लङ्काम् ।
प्रदीपलाङ्गलकृतार्चिमाली
प्रकाशितादित्य इवार्चिमाली ॥ ४४ ॥

हवायें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आचरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डने त्रिपञ्चसौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५३ ॥



चतुःपञ्चाशः सर्गः

लङ्कापुरीका दहन और राक्षसोंका विलाप

वीक्षमाणस्ततो लङ्का कपि हृतमनोरथ ।
यधमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ १ ॥

हनुमान्जीने सभी मनोरथ पूरा हो गये थे । उनका
उत्साह बढ़ता जा रहा था । अतः वे लङ्काका निरीक्षण करने
हुए दोप कार्यके सम्पन्नमें निचारा करने लगे— ॥ १ ॥

किं नु सहजवशिष्टमेकतयमिह साम्प्रतम् ।
यदेवा रक्षसा भूय सतापज्जनन भवेत् ॥ २ ॥

‘अब इस समय लङ्कामें मेरे लिये कौन सा ऐसा कार्य
बाकी रह गया है, जो इन राक्षसोंको अधिक स्ताप देनेवाला
हो ॥ २ ॥

यत तावत्प्रमथित प्रहृष्टा राक्षसा हता ।
यत्कैकेदेश क्षपित शीर्षं दुग्मविनाशनम् ॥ ३ ॥

‘प्रमदावनको तौ मैंने पहले ही उजाड़ दिया था, बड़े
बड़े राक्षसोंको भी मौतने घाट उतार दिया और राक्षसी
सेनाके भी एक अंशका संहार कर बाला । अब दुर्गका विध्वंस
करना शेष रह गया ॥ ३ ॥

तुर्गो विनाशिते कम भवेत् सुखपरिधमम् ।
अल्पयत्नेन कार्योऽस्मिन् मम स्यात् सफलं ध्रम ॥ ४ ॥

‘दुर्गका विनाश हो जानेपर मेरे द्वारा समुद्र-स्तन
आदि कर्मके लिये किया गया प्रयास सुखद एवं सफल
होगा । मैंने सीताजीकी खोजके लिये जो परिश्रम किया है,
वह थोड़े-से ही प्रयत्नद्वारा सिद्ध होनेवाले लङ्कादहनके
सफल हो जायगा ॥ ४ ॥

यो ह्ययं मम लाङ्गले दीप्यते ह्ययवाहनः ।
अस्य सतपण न्योप्य कर्तुमभिगृह्योत्तमै ॥ ५ ॥
‘मेरे घुँटमें जो य अग्निदेव देदीप्यमान हो रहे है,
इससे इन भेड़ पशुओंकी आहुति देकर वृत्त करना न्यायसंगत
जान पड़ता है’ ॥ ५ ॥

उन राक्षसोंको मारकर रणभूमिमें प्रवेश पराक्रम प्रकट
करनेवाले हनुमान्जी पुन लङ्कापुरीका निराक्षण करने लगे ।
उस समय जलनी हुई घुँटमें जो आग-आँसी माला सी
बैठ रही थी, उससे अलङ्कृत हुए वे वानरवीर तेज
पुञ्जसे देदीप्यमान मृगदेवके समान प्रकाशित हो रहे
थे ॥ ४४ ॥

तत प्रदीपलाङ्गल सन्निधुदिव तोयद् ।
अघनाग्नेषु लङ्काया विचचार महाकपि ॥ ६ ॥

एक सेचकर जलती हुई घुँटने कारण विज्जोसहित
मेघकी भाँति शोभा पानेवाले कपिग्रेष्ठ हनुमान्जी लङ्काके
महलपर घूमने लगे ॥ ६ ॥

शृद्वाद् शृद्वा राक्षसानामुपानानि च धानर ।
वीक्षमाणो ह्यस्तत्रस्त प्रासादाश्च चचार स ॥ ७ ॥

वे वानरवीर राक्षसोंके एक बरसे दूसरे धरपर पहुँचकर
उपानों और राजभवनोंका देखते हुए निभय होकर निचरने
लगे ॥ ७ ॥

अप्युच्य महादेव प्रहस्तस्य निधेशतम् ।
अग्निं तत्र विनिक्षिप्य भवसेनेन समो यत्नी ॥ ८ ॥

ततोऽयत्पुण्ड्रवेधेदममहापादरस्य वीरयान् ।
सुमोच हनुमानगमि कालानलशिखोपमम् ॥ ९ ॥

धूमते धूमते वायुच समान बलवान् और मद्गन्धैवावाली
हनुमान् उछलकर प्रहस्तके महत्पर आ पहुँच और उसमें
आग लगाकर दूसरे धरपर कूद पड़े । वह महान ब्रह्मा
निवासस्थान था । पराक्रमी हनुमान्ने उसमें भी कावामित्री
लपटोंके समान प्र-उलित होनेवाली आग फैला दी ॥ ८ ॥
यज्जट्टस्य च तथा पुण्ड्रुजे स महाकपि ।

नुक्कम्प्य च महतेजा सारणस्य च धीमत ॥ १० ॥

तत्पश्चात् वे महतेजस्वी महाकपि प्रमथ बज्रदंष्ट्र,
गुरु और बुद्धिमान् सारणके धरपर कूद और उनमें आग
लगाकर आग बट गये ॥ १० ॥

तथा चेद्भजितो येदम ददाह हरियूथप ।
जम्बुमाले सुमालेष्ट ददाह भयन तत ॥ ११ ॥

इससे बाद वानरयूथपति हनुमान्ने हरिबन्धी
मेघनादका धर जलाया । फिर जम्बुमाली और सुमालीके
धरोंको कूक दिया ॥ ११ ॥

रश्मिकेतोश्च भवन सूर्यशोस्तथैव च ।
 हलकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षस ॥ १२ ॥
 युद्धोर्मत्तस्य मत्तस्य चज्जप्रीधस्य रक्षस ।
 विद्युजिह्वस्य घोरस्य तथा हस्तिमुखस्य च ॥ १३ ॥
 करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
 पुष्पकणस्य भयन मकराक्षस्य चैव हि ॥ १४ ॥
 नरान्तकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य दुरात्मनः ।
 यज्ञशत्रोश्च भवन ब्रह्मशत्रोस्तथैव च ॥ १५ ॥

तदनन्तर रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, हलकर्ण, दंष्ट्र, राक्षस
 रोमश, रणोर्मत्त मत्त, चज्जप्रीध, भयानक विद्युजिह्व,
 हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष,
 नरान्तक, कुम्भ, दुरात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु
 आदि राक्षसोंके घरोंमें जा-आकर उठोने आग लगायी ॥

वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृह प्रति ।
 क्रममाणः क्रमेणैव द्वाह हरिपुङ्गव ॥ १६ ॥

उस समय महातेजस्वी कपिभेष्ट हनुमान्ने केवल
 विभीषणका घर छोड़कर अन्य सब घरोंमें क्रमशः पहुँचकर
 उन सबमें आग लगा दी ॥ १६ ॥

तेषु तेषु महाहँसु भयनेषु महायशसः ।
 गृहेष्वुद्धिमतामृद्धि द्वाह कपिकुञ्जर ॥ १७ ॥

महायशस्वी कपिकुञ्जर पवनकुमारने विभिन्न बहुमुख्य
 भयनेमें जा-आकर समृद्धिवाली राक्षसोंके घरोंकी गरीबगति
 जलाकर मस कर डाली ॥ १७ ॥

सर्वेषां समतिग्रम्य राक्षसेद्रस्य धीर्यवान् ।
 भाससादाथ लक्ष्मीवान् रावणस्य निवेशनम् ॥ १८ ॥

सबके घरोंकी लॉबते हुए शोभाघापी पराक्रमी हनुमान्
 राक्षसराज रावणके महलपर जा पहुँचे ॥ १८ ॥

ततस्तस्मिन् गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते ।
 मेरुमन्दरसकाशे नानामङ्गलशोभिते ॥ १९ ॥
 प्रदीप्तमग्निमुत्तुज्य लाङ्गलाग्रे प्रतिष्ठितम् ।

ननाद हनुमान् धीरो युगोत्तजलदो यथा ॥ २० ॥

वही लङ्काके सब महलोंमें भेष्ट, भौतिक भौतिके रत्नोंसे
 विभूषित, मेरुपर्वतके समान ऊँचा और नाना प्रकारके
 माङ्गलिक उल्लसोंसे सुशोभित था । अपनी पूँठके अग्रभागमें
 प्रतिष्ठित हुई प्रज्वलित अग्निको उस महलमें छोड़कर
 धीरवर हनुमान् प्रलयकालके मेघकी भाँति भयानक गर्जना
 करने लगे ॥ १९ २० ॥

श्वसनेन च सयोगादतिवेगो महाबलः ।
 कालाग्निरिव अज्ज्वाल प्रावधत हुताशनः ॥ २१ ॥

हवाका सहाय पाकर वह प्रबल आग बहे वेगसे
 बढ़ने लगी और कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठी ॥ २१ ॥

प्रदीप्तमग्निं पवनस्तेषु वेदमस्तु चारयन् ।
 तानि काञ्चनजालानि मुक्तमणिमयानि च ॥ २२ ॥
 भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवर्जित महान्ति च ।
 तानि भग्नाविमानानि निपेतुषुधातले ॥ २३ ॥

वायु उस प्रज्वलित अग्निको सभी घरोंमें फैलाने
 लगी । सोनेकी खिड़कियोंसे सुशोभित, मोती और मणिचोंदरा
 निर्मित तथा रत्नोंसे विभूषित ऊँचे ऊँचे प्रासाद एवं सतमहले
 भवन फट फटकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २२ २३ ॥

भयनानीय सिद्धानामम्बरात् पुण्यसंशये ।
 सज्जोत्तुमुल शब्दो राक्षसानां प्रघावताम् ॥ २४ ॥
 स्वेस्वे गृहपरिघाणे भग्नास्ताहोर्ग्नितभियाम् ।

वे गिरते हुए भयन पुण्यका क्षय होनेपर आकाशसे
 नीचे गिरनेवाले खिड़कों के घरोंके समान जान पड़ते थे ।
 उस समय राक्षस अपने अपने घरोंकी बचाने—उनकी
 आग बुझानेके लिये इधर उधर दौड़ने लगे । उनका उत्साह
 जाता रहा और उनकी भी नष्ट हो गयी थी । उन सबका
 द्रुमुल आर्तनाद चारों ओर गूँजने लगा ॥ २४ ॥

नूनमेवोऽग्निरायात कपिरूपेण हा इति ॥ २५ ॥
 श्वन्दस्य सहसा पेतु स्तमधधरा क्षिप ।

वे कहते थे—‘हाय ! यह वानरके रूपमें आया,
 अग्नि देवता ही आ पहुँचा है ।’ कितनी ही स्त्रियों गोदमें
 बच्चे लिये सहसा क्रन्दन करती हुई नीचे गिर पड़ीं ॥ २५ ॥
 काश्चिदग्निरायात कपिरूपेण हा इत्येवमुक्तमधुजा ॥ २६ ॥
 पतन्त्योरेजिरेऽन्धेभ्यः सौदामन्य इवाम्बरात् ।

कुछ राक्षसियोंके घारे अन्न आगकी लपेटमें आ गये,
 वे बाळ बिलेरे अट्टालिकाओंसे नीचे गिर पड़ीं । गिरते
 समय वे आकाशमें स्थित मेघोंसे गिरनेवाली बिजलियोंके
 समान प्रकाशित होती थीं ॥ २६ ॥

वस्रविद्रुमवेद्यमुक्तारजतसहताम् ॥ २७ ॥
 विचित्रान् भयनास्त्रास्यस्यम्भानान् ददर्श स ।

हनुमान्जीने देखा बलसे हुए घरोंसे हीरा, मूँगा,
 नीलम, मोती तथा सोने, चाँदी आदि विचित्र विचित्र
 चातुओंकी राशि पिघल पिघलकर बही जा रही है ॥ २७ ॥
 नास्त्रिस्तप्यति काष्ठानां घृणानां च यथा तथा ॥ २८ ॥
 हनूमान् राक्षसेद्राणां वधे किञ्चिदुप्यति ।

न हनूमाद्विशालानां राक्षसानां वस्तुधरा ॥ २९ ॥

कैसे आग घूँसे काट और तिनकोंको बलानेसे कभी
 तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार हनुमान् बड़े बड़े राक्षसोंके
 वध करनेसे तनिक भी तृप्त नहीं होते थे और हनुमान्जीके
 बारे हुए राक्षसोंकी अपनी गोदमें धारण करनेसे हट वस्तुधरा
 का भी जी नहीं मरता था ॥ २८ २९ ॥

हनूमता वेगवता धानरेण महात्मना ।
लङ्कापुर प्रदग्ध तद् रुद्रेण त्रिपुर यथा ॥ ३० ॥
जैसे भगवान् रुद्रने पूर्वकालमें त्रिपुरको दग्ध किया था, उसी प्रकार वेगवाली धानरवीर महात्मा हनुमान्जीने लङ्कापुरीको जला दिया ॥ ३० ॥

तत स लङ्कापुरपवताप्रे
समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।
प्रसार्य चूडावलय प्रदीप्तो
हनूमता वेगयतोपसृष्ट ॥ ३१ ॥
तत्पश्चात् लङ्कापुरीके पर्वत शिखरपर आग लगी, वहाँ अग्निदेवका बड़ा भयानक परक्रम प्रकट हुआ । वेगवाली हनुमान्जीकी लगायी हुई वह आग चारों ओर अपने ज्वाला मण्डलको फैलाकर बड़े जोरसे प्रचलित हो उठी ॥ ३१ ॥

युगान्तकालानलतुल्यरूप
समाकृतोऽग्निर्ववृधे दिवस्पृक् ।
विधूमरश्मिमयनेषु सको
रह्यशरीराज्यसमर्पिताक्षि ॥ ३२ ॥
हवाका सहाय पाकर वह आग इतनी बढ गयी कि उसका रूप प्रलयकालीन अग्निके समान दिखायी देने लगा । उसकी जैँची लपटें मानो स्वर्गलोकका रम्य कर रही थीं । लङ्काके भवनोंमें लगी हुई उस आगकी ज्वालामें धूमका नाम भी नहीं था । राक्षसोंके शरीररूपी चोकी आहुति पाकर उसकी ज्वालाएँ उत्तरोत्तर बढ रही थीं ॥ ३२ ॥

आदित्यकोटीसहस्रा सुतेजा
लङ्का समस्ता परिधाय तिष्ठन् ।
शब्दैरनेकैरशनिप्रकटै

भिन्न्निवाण्ड प्रयभौमहानिन् ॥ ३३ ॥
समूची लङ्कापुरीको अपनी लपटोंमें लपेटकर पैछी हुई वह प्रचण्ड आग करोड़ों सुरोंके समान प्रज्वलित हो रही थी । मकानों और पर्वतोंके गटने आदिसे होनेवाले नाना प्रकारके भद्दातोंक शब्द विजलीकी कड़कको मी मात करते थे, उस समय वह विशाल अग्नि प्रसाण्डको फोड़ती हुई वी प्रकाशित हो रही थी ॥ ३३ ॥

सप्राग्न्यरादग्निरतिप्रवृद्धो
रूपप्रभः किंप्रुकपुष्पचूड ।
निवाणधूमाकुलराजपञ्च
नीलोत्पलाम्बा प्रचकाशितेऽम्बा ॥ ३४ ॥

वहाँ बतलते आकाशतक फैली हुई अत्यन्त जनी-चुड़ी आगको प्रभा बड़ी तीखी प्रतीत होती थी । उसकी लपटें टेवके फूलकी भौंति लाल दिखायी देती थी । नीचेसे त्रिनका धूमधन दूट गया था, व आकाशमें फैली हुई धूम

पकियों नील कमलके समान रंगवाले मेघोंकी भौंति प्रकाशित हो रही थी ॥ ३४ ॥

वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा
साक्षादयमो वा वरुणोऽनिलो वा ।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो
न वानरोऽय स्वयमेव काल ॥ ३५ ॥
किं ग्रहण सवपितामहस्य
लोकस्य धातुश्चतुपाननस्य ।
इहागतो धानररूपधारी
रक्षोपसहस्रकर प्रकोप ॥ ३६ ॥
किं घैष्णय धा कपिरूपमेत्य
रक्षोविनाशाय पर सुनेज ।
अचिन्त्यमव्ययमन तमेक
समायया साम्प्रतमागत वा ॥ ३७ ॥
इत्येवमूर्ध्वर्धयो विशिष्टा
रक्षोगणास्तत्र समेत्य सवै ।
सप्राणिसह्रा सगृहा सवृक्षा
दग्धा पुरीता सहसा समीक्ष्य ॥ ३८ ॥

प्राणियोंके समुदाय, यह और दुर्भेदित समस्त लङ्कापुरीको सहसा दग्ध हुई देख बड़े-बड़े राक्षस छटपट्ट एकत्र हो गये और वे सब के-सब परस्पर इस प्रकार कहने लगे—‘यह देवताओंका राजा वज्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् यमराज तो नहीं है ? वरुण, वायु, रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर या चन्द्रमामेंसे तो कोई नहीं है ? यह वानर नहीं साक्षात् काल ही है । क्या सम्पूर्ण जगत्क पितामह चतुर्मुख ब्रह्माजीका प्रचण्ड कोप ही वानरका रूप धारण करके राक्षसोंका संहार करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ है ? अथवा भगवान् विष्णुका महान् तेज बो अचिन्त्य, अमर, अनंत और अद्वितीय है, अपनी मायासे वानरका शरीर ग्रहण करके राक्षसोंके विनाशके लिये तो इस समय नहीं आया है ॥’

ततस्तु लङ्का सहसा प्रदग्धा
सराससा साम्बरया सनागा ।
सपक्षिसह्रा समृगा सवृक्षा
रुणेद दीना नुमुल सशम्भम् ॥ ३९ ॥
इस प्रकार चाड़े, हाथी, रथ, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा कितने ही राक्षसोंवहित लङ्कापुरी सहसा दग्ध हो गयी । वहाँन निवासी दीनमावसे दुर्मुल नाद करत हुए फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ३९ ॥

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र
हा जीवितेशाश्रुत हत सुपुण्यम् ।
रक्षोभिरेव बहुधा मुवद्विः
शब्द फुटो घोरतरः सुभीम ॥ ४० ॥

वे धोल—'हाय रे वप्पा / हाय रेटा / हा स्वामिन् ।
हा मित्र । हा प्राणनाथ । हमारे सब पुण्य नष्ट हो गये ।' इव
तरह भौंति भौंतिसे निहाय करते हुए राक्षसोंने बड़ा भयकर
एव घोर आतनाद किया ॥ ४० ॥

हुताशनज्वालसमावृता सा
द्वप्रधीरा परिवृत्तयोधा ।
द्यूमत मोधबलाभिभूता
चभूय शापोपहतेव लङ्का ॥ ४१ ॥
हनुमान्श्रीने कोष चलते अभिभूत हुई लङ्कापुरी
आगकी ज्वालाये घिर गयी थी । उसके प्रभुस्त प्रभुस्त वीर
मार डाले गये थे । समस्त योद्धा तितर बितर और उद्दिन्न
हो गये थे । इव प्रकार वह पुरी शापव आगान्त हुई थी
जान पड़ती थी ॥ ४१ ॥

ससम्भ्रम प्रस्तविषणराक्षसा
समुज्ज्वलज्वालहुताशनाङ्गिताम् ।
ददर्श लङ्का हनुमान् महामना
स्यभुरोपोपहतामियायनिम् ॥ ४२ ॥

महामनस्वी हनुमान्ने लङ्कापुरीको स्यम्भू प्रहानीक
रोपते नष्ट हुई पृथ्वीके समान देला । वहाँके समस्त राक्षस
बड़ी घबराहटमें पड़कर प्रस्र और विपादग्रस्त हो गये थे ।
अत्यन्त प्रज्वलित ज्वालामालाओंसे अलङ्कृत अग्निदेवने
उत्तर अपनी छाप लगा दी थी ॥ ४२ ॥

भङ्कत्या घन पादपरत्नसङ्कुल
हत्वा तु रक्षांसि महाति सयुगे ।
दग्घ्ना पुरीं ता शृहरत्नमालिनीं
तस्थौ हनूमा रघुनात्मजः कपि ॥ ४३ ॥

परनकुमार वानरवीर हनुमान्जी उच्चमोत्तम शृङ्खले
रे हुए वनको उखाड़कर, युद्धमें बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर
या सुन्दर महलोंसे सुशोभित लङ्कापुरीको जलाकर शान्त
गये ॥ ४३ ॥

स राक्षसास्तान् सुवहृष हत्वा
घन च भङ्कत्वा यदुपावप तत् ।
विजुज्य रक्षोभयनेषु चार्निम
जगाम राम मनसा महात्मा ॥ ४४ ॥

यहामा हनुमान् बहुवृत्त-स राजशौका बध और बहुसुखक
भरे हुए प्रमदानुका विघ्नस करके निशाचरोप
नाग लगाकर मन ही मन श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण
गये ॥ ४४ ॥

हृत्पापै श्रीमद्रामायणे वाचमीकीये आदिकाव्ये
राम प्रकार श्रीरामकीर्तिनिमित्त अर्पणामायण अर्पिकार्यके सुन्दरकाण्डमें जोनवौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

ततस्तु त वानरवीरमुख्य
महाबल मारुततुल्यवेगम् ।
महामति वायुसुत वरिष्ठ
प्रतुष्टुद्वैयगणाश्च सर्वे ॥ ४५ ॥

तदनंतर सम्पूर्ण देवताओंने वानरवीरोंमें प्रधान,
महाबलवान्, वायुके समान वेगवान्, परम बुद्धिमान् और
वायुदेवताये श्रेष्ठ पुत्र हनुमान्जीका स्तवन किया ॥ ४५ ॥

देवाश्च सर्वे मुनिपुङ्गवाश्च
गार्धर्वविद्याद्यपन्नगाश्च ।
भूतानि सर्वाणि महाति तत्र
जग्मुः परा भीतिगुणतुल्यरूपां ॥ ४६ ॥

उन्ने इव कार्ये सभी देवता, मुनिवर, गार्धर्व,
विद्याधर, नाग तथा सम्पूर्ण महान् प्राणी अत्यन्त प्रसन्न
हुए । उनके उब हृषकी कहीं डरना नहीं थी ॥ ४६ ॥
भङ्कृत्या घन महावेजा हत्या रक्षांसि सयुगे ।
दग्घ्वा लङ्कापुरीं भीमा रराज स महाकपि ॥ ४७ ॥

महावेगवली महाकपिपवनकुमार प्रमदानुको उखाड़कर,
युद्धमें राक्षसोंको मारकर और भयकर लङ्कापुरीको जलाकर
बड़ी शोभा पाने लगे ॥ ४७ ॥

शृहाभ्यभृङ्गाप्रतले विचित्रे
प्रतिष्ठिते पानरराजसिंह ।
प्रदीप्तलाललहतार्चिमाली
व्यराजतादित्य इवार्चिमाली ॥ ४८ ॥

श्रेष्ठ भवनोंके विचित्र दिखलपर लड़े हुए वानरराज
सिंह हनुमान् अपनी जलती पूँछसे उठती हुई ज्वाला
मालाओंसे अलङ्कृत हो तेज पुञ्ज देदीप्यमान सूर्यदेवके
समान प्रकाशित होने लगे ॥ ४८ ॥

लङ्का समस्ता सम्पीड्यलाङ्गलानि महाकपि ।
निर्यापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गव ॥ ४९ ॥
इव प्रकार सारी लङ्कापुरीको पीड़ा दे वानरशिरोमणि
महाकपि हनुमान्ने उस समय समुद्रव जलमें अपनी पूँछकी
आग बुझायी ॥ ४९ ॥

ततो देवाः सगर्धवाः सिद्धाश्च परमपथः ।
हृष्टा लङ्का प्रदग्घ्वा ता विसर्य परम गता ॥ ५० ॥
तत्पश्चात् लङ्कापुरीको दग्ध हुई देख देवता, गन्धर्व,
सिद्ध और महर्षि बड़े विस्मित हुए ॥ ५० ॥

त हृष्टा वानरद्येष्ट हनूमन्त महाकपिम् ।
कालाग्निरिति सचित्य सर्वभूतानि तत्रसुः ॥ ५१ ॥
उस समय वानरश्रेष्ठ महाकपि हनुमान्को देख कर
कालाग्नि है ऐसा मानकर समस्त प्राणी भयसे घरा उठे ॥ ५१ ॥

सुन्दरकाण्डे चतुःपञ्चाश सर्गाः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत् सर्गः.

सीतानीक लिये हनुमान्जीकी चिन्ता और उमका निवारण

सदीप्यमाना विवस्ता प्रस्तरक्षोगणा पुरीम् ।

वनेक्ष्य हनुमाल्लङ्का चितयामास धानर ॥ १ ॥

वानरवीर हनुमान्बाने बष देखा कि सारी लङ्कापुरी
वह रही है, वहाँके निवासियोंपर श्राप छा गया है और
राक्षसगण अत्यन्त भयभीत हो गये हैं, तब उनके मनमें
सीताके दम्प होनेका आशङ्किते बड़ी चिन्ता हुई ॥ १ ॥

तस्याभूत् सुमहात्मास कुलात्तामन्यजायत ।

लङ्का प्रदृष्टा कर्म किञ्चित् कृतमिदं मया ॥ २ ॥

साथ ही उनपर महान् श्राप छा गया और उन्हें अपने
प्रति घृणा-सी हाने लगा । वे मन हो मन धरने लगे—‘हाय !
मैंने लङ्काका बलाते समय यह कैसा क्रूरकृत कर्म कर
ढाला ? ॥ २ ॥

धन्या एतु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् ।
निरुध्वाति महात्मानो दासमनिमिषाग्भसा ॥ ३ ॥

‘ओ महान्तरी महात्मा पुरुष उठे हुए कोपको अपनी
बुद्धिके द्वारा उस प्रकार राक्ष देते हैं, जैसे सत्कारण लाग
बलाते प्रवर्धित अर्निको गान्त कर देते हैं, वे ही इस सगर
में धन्य हैं ॥ ३ ॥

कुन्द पाप न कुर्यात् कुन्दो हन्याद् गुरुनपि ।
कुन्दं पश्यया याचा नर साधून्धिक्षिपत् ॥ ४ ॥

‘क्रोधते नर आनर कौन पुरुष पाप नहीं करता ? श्राप
के बशीभूत हुआ मनुष्य पुरुषोंकी भी हत्या कर सकता
है । नोकी मनव साधु पुरुषोंपर भी क्रुद्धबनोकरा आक्षेप
करने लगता है ॥ ४ ॥

याचयायाच्य प्रकुपितो न निनानाति किञ्चित् ।
नाकायमस्ति कुन्दस्य नायाच्य विचत क्वचित् ॥ ५ ॥

‘अधिक क्रुति हुआ मनुष्य कभी इस बातका विचार
नहीं करना कि मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं ?
श्रापको लिये कोई ऐसा कुप काम नहीं, जिसे वह न कर
सके और काइ ऐसी बुरी बात नहीं, जिन वह मुँहसे न निकाल
सके ॥ ५ ॥

य समुत्पत्तिं क्रोध क्षमयैव निरस्यति ।
ययोरगत्यच जीर्णो वा वै पुरुष उच्यते ॥ ६ ॥

‘जो हृदयमें उरमन हुए श्रापको क्षमाके द्वारा उठी तर
निदान देता है, जैसे सौंप अपनी पुराना कँचुको छान देता
है, वही पुरुष कहलाता है ॥ ६ ॥

धिगस्तु मा सुदुर्मुदि निलज्ज पापकृतमम् ।
अचिन्तयित्वा ता सातामग्निदस्यामिघातकम् ॥ ७ ॥

‘मेरी बुद्धि बनी सारी है, मैं निर्लज्ज और महान् पाप
कारी हूँ । मैंने सीताभी रखाका काइ विचार न करके लङ्कामें

आग लगा दी और इस तरह अपने स्वामीकी ही हत्या कर
ढाली । मुझे पिकार है ॥ ७ ॥

यदि दग्धा त्रिव्य सर्वा नूनमार्यापि जानकी ।
दग्धा तेन मया भतुहत् कार्यमजानता ॥ ८ ॥

‘यदि यह सारी लङ्का बल गयी तो आया धानकी भी
निधय ही उसमें दग्ध हो गयी होगी । ऐसा करके मैंने अन
धानमें अपने स्वामीका सारा काम ही चौपट कर डाला ॥ ८ ॥
यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम् ।

मया हि दृष्टा लङ्का न सीता परिरक्षिता ॥ ९ ॥

‘जिस कायकी सिद्धिके लिये यह सारा उद्योग किया गया
था, वह कार्य हा मैंने नष्ट कर दिया क्योंकि लङ्का बलाते
समय मैंने सीताकी रक्षा नहीं की ॥ ९ ॥

ईपत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न मशय ।
तस्य प्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षय कृत ॥ १० ॥

‘इसमें संदेह नहीं कि यह लङ्का-ध्वन एक छोटा-सा
कार्य होर रह गया था, जिते मैंने पूर्ण किया परन्तु मशय
पागल होनेके कारण मैंने श्रीरामचन्द्रजीके कायकी तो बड़
ही काट डाली ॥ १० ॥

विनष्टा जानकी व्यक्त न हादग्ध प्रदृश्यते ।
लङ्काया कश्चिदुद्देश सर्वा भस्माहता पुरी ॥ ११ ॥

‘लङ्काका कोई भी भाग ऐसा नहीं दिखायी देता, वहाँ
आग न लगी हा । सारी पुरी ही मैन भस्म कर डाली है,
अत आनकी नष्ट हा गयी, यह बात स्वत स्वरु हो जाती
है ॥ ११ ॥

यदि तद्विहत कार्यं मया प्रज्ञाविषययात् ।
इहव प्राणसन्त्यासो ममापि हाद्य रोचते ॥ १२ ॥

‘यदि अपनी निरपीत बुद्धिके कारण मैंने सारा काम
चौपट कर दिया तो यहाँ आब मेरे प्राणोंका भी विधवन हा
जाना चाहिये । यही मुझे अच्छा जान पड़ता है ॥ १२ ॥

किमनो निपताम्यद्य आहोस्विद् घटवामुखे ।
शरीरमिह सत्त्वाना दग्नि सागरयासिनाम् ॥ १३ ॥

‘मया मैं अब जड़की आगमें कूट पड़ूँ या घटवानछके
मुखमें ? अथवा समुद्रमें निवास करनेवाला बल-बलुओंकी हो
यहाँ अपना शरीर समर्पित कर दूँ ॥ १३ ॥

कय नु जीरता शम्भो मया द्रष्टुं हरीश्वर ।
तौ वा पुरुषदादृलौ कायसवसघातिना ॥ १४ ॥

‘अब मैंने क्या काम हा नष्ट कर दिया, तर अब भीत-भी
केते वानराय मुद्रव अवका उन दोनों पुरुषों भीरान जीर
लम्पनका दर्शन कर सकता हूँ या उन्हें अपना मुँह दिखा
सकता हूँ ॥ १४ ॥

मया खलु तदेवेद रोपनोपात् प्रज्ञासितम् ।
प्रथित त्रिषु लोकेषु कपित्थमनवस्थितम् ॥ १५ ॥

‘मैंने रोपके दोषसे तीनों लोकोंमें विख्यात इस वानरो
वित चपलताका ही यहाँ प्रदर्शन किया है ॥ १५ ॥

धिगस्तु राजस भावमनोऽमनवस्थितम् ।
ईश्वरेणापि यद् रागा मया सीता न रक्षिता ॥ १६ ॥

‘यह राजस भाव कार्य-साधनमें असमर्थ और असम्बलित
है, इसे धिकार है, क्योंकि इस रजोगुणमूलक मोषके ही

कारण समर्थ होते हुए भी मैंने सीताकी रक्षा नहीं की ॥ १६ ॥
विनशाया तु सीताया नायुभौ विनशिष्यतः ।

तयोर्विनाशे सुमीषः सद्यः पुचिंनशिष्यति ॥ १७ ॥

‘सीताके नष्ट हो जानेसे वे दोनों भाई भीराम और
लक्ष्मण भी नष्ट हो जायेंगे । उन दोनोंका नाश होनेपर बांधु

बांधवोंवदित सुमीष भी जीवित नहीं रहेंगे ॥ १७ ॥
पतदेव वक्षः भुत्वा भग्नो आतृषरसल ।

धर्मात्मा सह्यायुषः कथं शक्यति जीवितुम् ॥ १८ ॥

‘फिर इसी समाचारको सुन लैनेपर आतृषरसल धर्मात्मा
भगत और शत्रुघ्न भी कैसे जीवन धारण कर सकेंगे ॥ १८ ॥

इक्ष्वाकुपुत्रो धर्मिष्ठे गते नाशमसहायम् ।
भविष्यति प्रजा सदाः शोकसतापपीडिता ॥ १९ ॥

‘इस प्रकार धर्मनिष्ठ इक्ष्वाकुपुत्रके नष्ट हो जानेपर
सारी प्रजा भी शोक-संतापसे पाड़ित हो जायगी, इसमें सहाय

नहीं है ॥ १९ ॥
तद्वद् भाग्यरहितो लुप्तधर्मोऽथसप्रहः ।

रोपदोषपरीतात्मा वषट्क लोकविनाशन ॥ २० ॥

‘अतः सीताकी रक्षा न करनेका कारण मैंने धर्म और
अपक सप्रहको नष्ट कर दिया, अतएव मैं बड़ा मायवीन

हूँ । मेरा हृदय रोपदोषके बन्धाभूत हो गया है, इसलिये
मैं अक्षर ही समस्त लोकका विनाशक हो गया हूँ—मुझे

सम्पूर्ण जगत्के विनाशके पापका भाग जाना पड़ेगा ॥ २० ॥
इति चिन्तयतस्तस्य निमित्तान्युप्येदिरे ।

पूर्वमन्युपलब्धानि साक्षात् पुनरविन्यतयत् ॥ २१ ॥

‘इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए हनुमान्जीको कई श्रम
शकुन दिलायी पड़े, बिनके अन्धे फलोका वे पहले भी

प्राप्य अत्रुपय कर चुके थे अतः वे फिर इस प्रकार सोचने
लगे— ॥ २१ ॥

अथ वा वायसर्वाङ्गी रक्षिता स्येन तेजसा ।
न नशिष्यति कल्याणी नागिरिष्यौ प्रवतते ॥ २२ ॥

‘अथवा सम्भव है सर्वाङ्गद्वन्द्वी सीता अपने ही तेजसे
सुरक्षित हों । कल्याणी जनकनन्दिनीका नाश कदापि नहीं

होगा क्योंकि भाग आगको नहीं जलाती है ॥ २२ ॥
नहि धर्मात्मनस्तस्य भाग्योऽभिततेजसः ।

स्वचरित्राभिमुता ता स्मन्दुमध्वति पायक ॥ २३ ॥

‘अतः धर्मात्मनस्तस्य भाग्योऽभिततेजसः ।
स्वचरित्राभिमुता ता स्मन्दुमध्वति पायक ॥ २३ ॥

‘सीता अभिततेजसी धर्मतमा भगवान् श्रीरामकी पत्नी
हैं । वे अपने चरित्रके बलमें—पातिव्रत्यक प्रभावसे सुरक्षित

हैं । आग उन्हें दू भी नहीं सकती ॥ २३ ॥
नून रामप्रभाषेण वैदेह्या सुकृतेन च ।

यमा दहनकर्मण नादहद्व्यप्याहन ॥ २४ ॥

‘अथवा श्रीरामके प्रभाव तथा विदेहनन्दिनी सीताके
पुण्यबलसे ही यह दाहक अग्नि युक्त नहीं बल सकती है ॥ २४ ॥

अयमेषा भरतादीना आभूणा द्यता च या ।
रामस्य च मन कान्ता सा कथं विनशिष्यति ॥ २५ ॥

‘फिरको भरत आदि तीनों भाइयोंकी आराध्य देवी और
श्रीरामचन्द्रजीकी हृदयवत्सला हैं, वे भागसे कैसे नष्ट हो

सकेंगी ॥ २५ ॥
यद् वा दहनकर्मण सद्यं प्रमुख्ययः ।

न मे दहति लाङ्गल कथमर्थो प्रधक्ष्यति ॥ २६ ॥

‘यह दाहक एव अविनाशी अग्नि सबन अपना प्रभाव
रखती है, सबको जला सकती है, तो भी यह जिनके प्रभावसे

मेरी पूँछकी नहीं अञ्ज पाती है, उन्हीं आक्षात् माता जानकी
को कैसे जला सकेंगी ? ॥ २६ ॥

पुनश्चाविन्यतयत् तत्र हनूमान् विस्मितस्तदा ।
हिरण्यनाभस्य गिरेजलमभ्य प्रदर्शनम् ॥ २७ ॥

‘उस समय हनुमान्जीने वहाँ विस्मित होकर पुनः उस
पटनाको स्मरण किया, जब कि सपुत्रके बलमें उन्हें मैनाक

पर्वतका दर्शन हुआ था ॥ २७ ॥
तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्त्तरि ।

मसौ विनिर्देहेदस्मि न तामग्निं प्रधक्ष्यति ॥ २८ ॥

‘वे सोचने लगे—‘तपसा, सत्यवाक्य तथा पतिमें अनन्य
मतिके कारण माया सीता ही अग्निको जला सकती हैं,

आग उन्हें नहीं जला सकती’ ॥ २८ ॥
स तथा चिन्तयस्तत्र देव्या धमपरिग्रहम् ।

शुभाव हनुमास्तत्र चारणाना महात्मनाम् ॥ २९ ॥

‘इस प्रकार भगवती सीताकी धन्यपरायणताका विचार
करते हुए हनुमान्जीने वहाँ महत्तमा चारणोंके मुखमें निकली

हुई ये बातें सुनीं— ॥ २९ ॥
अहो खलु इत कम दुर्विगाह हनूमता ।

अग्नि विरुज्जता तीक्ष्ण भीम राक्षससङ्गनि ॥ ३० ॥

‘अहो ! हनुमान्जीने राक्षसोंके धर्मों में दुःख एवं भयंकर
आग लगाकर बड़ा ही अमृत और दुष्कर काय किया

है ॥ ३० ॥
प्रपलायितरक्ष स्त्रीपालवृद्धसमाकुला ।

जनकोलाहलाधमाता भ्रष्टतीचाद्रिकन्दरे ॥ ३१ ॥

‘दग्धेय नगरी लङ्का साहस्रपाकारतोऽणा ।
जातकी न च दग्धेनि तिस्रोऽनुत् पथ न ॥ ३२ ॥

‘धर्मसे भागे हुए राक्षसों, जियों, बालकों और इन्द्रों

‘धर्मसे भागे हुए राक्षसों, जियों, बालकों और इन्द्रों

‘धर्मसे भागे हुए राक्षसों, जियों, बालकों और इन्द्रों

‘धर्मसे भागे हुए राक्षसों, जियों, बालकों और इन्द्रों

मरी हुई सारी लह्मा जन कोलाहलमे परिपूर्ण हो चीत्कार करती
हुई सी जान पड़ती है । परंतु की कन्दराओं, अंगारियों, पर
कोठों और नगरके फाटकोंवहित यह सारी लह्मा नगरी दग्ध
होगयी परन्तु सीतापर आँच नहीं आयी । यह हमारे लिये
बड़ी अद्भुत और आश्चर्यकी बात है ॥ ११ ३२ ॥

इति शुभाय हनुमान् वाच ताममृतोपमाम् ।

यभूष चास्य मनसो हर्षस्तत्कालसम्भवः ॥ ३३ ॥

हनुमान्जाने जब चारणोंके कहे हुए ये अमृतके समान
मधुर बचन सुने, तब उनके हृदयमें तत्काल हर्षोल्लास छा
गया ॥ ३३ ॥

स निमित्तैश्च हृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणै ।

अपिवाक्यैश्च हनुमानभक्त्य प्रीतमानसः ॥ ३४ ॥

हृष्टार्थै श्रीमद्रामायणे वाक्मीमीये आदिकान्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकान्यके सुन्दरकाण्डमें पञ्चपनवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

पट्पञ्चाशः सर्ग

हनुमान्जीका पुन सीताजीसे मिलकर लौटना और ममुद्रको लौघना

ततस्तु शिष्टायामुले जानकीं पयश्स्थिताम् ।

अभिवाद्यामरीदृष्टिपथा पदयामि त्वामिहाक्षताम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान्जी अशोकवृक्षके नीचे बैठी हुई
जानकीजीक पाद गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—
‘आर्ये ! सीतामयकी बात है कि इस समय मैं आपकी
चक्रुशल देख रहा हूँ ॥ १ ॥

ततश्च प्रस्थित सीता धीममाणा पुन पुन ।

भतुः स्नेहाधिता वाक्य हनूमन्तमभाषत ॥ २ ॥

कृता अपने पतिके स्नेहमें डूबी हुई थी । वे
हनुमान्जीका प्रस्थान करनेके लिये उद्यत जान उन्हें
बारबार देखती हुई बोली— ॥ २ ॥

यदि त्व म पसे तात वसैकाहमिहानघ ।

कचित् सुसज्जते देशे विश्रान्त श्योगमिष्यसि ॥ ३ ॥

‘श्राव ! निष्पाप बानरबीर ! यदि त्वम उचित समझो
तो एक दिन और यहाँ ठिठी गुप्त स्थानमें डहर जाओ,
आज विश्राम करके फल चरु खाना ॥ ३ ॥

मम चैत्रालपभाग्याया सानिध्यात् तव वानर ।

शोकस्यास्याममेयस्य मुहूर्ते स्यादपि क्षय ॥ ४ ॥

‘वानरप्रभ ! तुम्हारे निकट रहनेसे गुप्त मन्दभागिनीका

अगर शोक भी यही देखे लिये कम हो जायगा ॥ ४ ॥

गते हि हरिशादूल पुन सप्रयात्ते त्वयि ।

प्राणेष्वपि न विश्वासो मम वानरपुङ्गव ॥ ५ ॥

‘अनिश्चित ! बानरजीसमझे ! जब त्वम चले जाओगे,
तब फिर तुम्हारे आनेनक मेरे प्राण रहेंगे या नहीं, इसका
कोई विश्वास नहीं है ॥ ५ ॥

अनेक बारके प्रत्यक्ष अनुभव किये हुए छम शकुनों,
महान् गुणदायक कारणों तथा चारणोंके कहे हुए प्रशोक्त
वचनोंद्वारा सीताजीके क्षीणित होनेका निश्चय करके हनुमान्जी-
के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १४ ॥

सतः कपिः प्राप्तमनोरथार्थ

स्तामस्तता राजसुता विदित्वा ।

प्रत्यक्षतस्ता पुनरेव हृष्टा

प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥ ३५ ॥

राजकुमारी सीताको कोई क्षति नहीं पहुँची है, यह जान
कर कपिवर हनुमान्जीने अपना सम्पूर्ण मनोरथ सफल
समझा और पुन उनका प्रत्यक्ष दशन करके लौट जानेका
विचार किया ॥ ३५ ॥

अदर्शनं च ते वीर भूयो म दादयिष्यति ।

दुःखाद् दुःखतरमाप्ता दुर्मन शोककशिताम् ॥ ६ ॥

‘वीर ! मुझपर दुःख-पर दुःख पड़ते गये हैं । मैं मानसिक
गोचरे दिन-दिन दुर्बल होती जा रही हूँ । अब तुम्हारा
दशन न होना मेरे हृदयको और भी विदीर्ण करता रहेगा ॥
अथ च वीर सदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।

सुमहत्सु सहायेषु हृष्टक्षेपु महाबल ॥ ७ ॥

कथं नु खलु दुष्पार सतरिप्याति सागरम् ।

तानि हृष्टक्षेपसैन्यानि तौ चानरघरात्मजौ ॥ ८ ॥

‘भार ! मेरे सामने यह सरेह अमौलिक बना ही हुआ
है कि बड़े बड़े वानरों और रीझोंके सहायक होनेपर भी
महाबली सुग्रीव इस दुलहूप समुद्रको कैसे पार करेंगे ?
उनकी सेनाके वे वानर और भाइ तथा वे दोनों राजकुमार
भीरम और लक्ष्मण भी इस महासागरको कैसे लौघ
सकेंगे ? ॥ ७-८ ॥

प्रयाणमेष भूताना सागरस्यापि लङ्घने ।

शक्ति स्याद् वैनतेयस्य तथ चा मादतस्य वा ॥ ९ ॥

‘श्रीन ! प्राणियोंमें इस समुद्रको लौघनेकी शक्ति है—

तुममें, गण्डर्भमें अथवा वायुदेवतामें ॥ ९ ॥

तद्वच कायनियधे समुत्पन्ने दुरासदे ।

किं पदपसि समाधानं त्व हि कायमिशारद ॥ १० ॥

‘इस का-लम्ब-पी दुष्कर प्रतिवचके उपस्थित होनेपर
तुम्हें क्या समाधान दिखायी देता है ! वतामो, क्योंकि
तुम कायकुल हो ॥ १० ॥

काममस्य त्वमेवैक कायस्य परिसाधने ।

पर्याप्त परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदय ॥ ११ ॥
 धातुवीरको सहार वरनेवाल पवित्रेष्ठ । इषमें सन्देह

नहीं कि इन कार्यको सिद्ध करनेमें तुम नवल ही पूण
 समर्थ हो परतु दुष्टद्वारा को विषयरूप फलकी प्राप्ति
 होगी, उधते दुष्टद्वारा ही यश यत्नेगा, भगवान् श्रीराम
 का नहीं ॥ ११ ॥

यत्नेस्तु सकुला हृत्वा लङ्का परयलादन ।
 मानयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्स्य सहस्र भवेत् ॥ १२ ॥

परतु धनुसेनाको पीडा देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी यदि
 लङ्काको अपनी सेनासे पदरहित करने मुझे यहाँसे ल चले
 तो वह उनक योग्य पराक्रम होगा ॥ १२ ॥

तद् यथा तस्य विघ्ना तमनुरूप महामन ।
 भवत्याहवशूरस्य तथा त्यनुपपादय ॥ १३ ॥

‘अतः तुम ऐसा उपाय करो, जिससे युद्धवीर महामना
 श्रीरामचन्द्रजीका उनके योग्य पराक्रम प्रकट हो’ ॥ १३ ॥

तदर्थोपहित वाक्य प्रथित हेतुसहितम् ।
 निशम्य हनुमान् वीरो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १४ ॥

सीताजीकी यह बात स्नेहपुत्र तथा विशेष अभिप्रायसे
 मरी हुई थी । इसे सुनकर वीर हनुमान्ने इस प्रकार
 उत्तर दिया—॥ १४ ॥

देवि हयुक्षसैयानामीश्वर सूचता यत् ।
 सुग्रीवः सत्यसम्पन्नस्तयार्थं हतनिश्चय ॥ १५ ॥

‘देवि । बानर और माछभोंकी सनाभोंके स्वामी
 कपिश्रेष्ठ सुग्रीव यहे शक्तिशाली पुत्र हैं । वे दुष्टद्वारे उद्धारके
 लिये प्रतिशठा कर चुके हैं ॥ १५ ॥

न बानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृत ।
 विदेहनन्दिनि । अतः वे बानरगण सुग्रीव सहस्रों

विदेहनन्दिनि । अतः वे बानरगण सुग्रीव सहस्रों
 च वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
 तस्य नगरं लङ्का सायकैर्विधमिष्यत ॥ १७ ॥

‘साय ही वे दोनों वीर नरभेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण भी
 साय आकर अपने सायकोंसे इस लङ्कापुरीका विध्वंस
 करेंगे ॥ १७ ॥

राक्षस हत्वा नचिराद् रघुनन्दनः ।
 तस्य यरातोहे स्वा पुरीं प्रति याम्यति ॥ १८ ॥

‘तोहे । राक्षसराज रावणको उधते सनिकोंसहित
 पुरीको पधारंगे ॥ १८ ॥

अदि भद्र ते भव त्व कालकाङ्क्षिणी ।
 त्वि रामेण निहत रावण रणे ॥ १९ ॥

‘तुम आप हीसे पारण करो । आपका मरण हो ।
 ही प्रतीक्षा करो । रावण भीम ही रणभूमिमें

भीरुमके शायन मारा जायगा, यह आप अपनी ओस
 देखेंगी ॥ १९ ॥

निहत रावणसे त्रे च सपुत्रामात्यवाचये ।
 त्व समेप्यसि रामेण दशदेनेव रोहिणी ॥ २० ॥

‘पुत्र, मन्त्री और भाई बंधुओंसहित राक्षसराज रावणक
 मारे जानेपर आप श्रीरामचन्द्रजीके साथ उछी प्रकार
 मिलेंगी, जैसे रोहिणी चन्द्रमासे मिलती है ॥ २० ॥

शिममेप्यसि काशुरस्यो हयप्रमवैयुत ।
 यस्ते युधि विजित्यारीगच्छो क व्यपनयिष्यति ॥ २१ ॥

‘जानसे और मातुओंके मङ्गल कीर्तन साथ
 श्रीरामचन्द्रजी भीम ही यहाँ पधारंगे और युद्धमें धनुओंको
 जीतकर आपका सारा नोक दूर कर देंगे ॥ २१ ॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान् मावतामज ।
 गमनाय मतिं हृत्या वैदेहामभ्यवादयत् ॥ २२ ॥

विदेहनन्दिनी सीताको इस प्रकार आश्वासन दे वहाँसे
 जानेका विचार करने पवनकुमार हनुमान्ने उन्हें
 प्रणाम किया ॥ २२ ॥

राक्षसान्प्रथयान् हत्वा नाम विश्वाप्यचात्मन ।
 समाश्वास्य च वैदेहीं दशयित्वा पर यत्नम् ॥ २३ ॥

नगरीमाकुला कृत्वा यज्ञयित्वा च रावणम् ।
 दर्शयित्वा बल धोर वैदेहीमभिवाद्य च ॥ २४ ॥

प्रतिगतु मन्त्रको पुनमप्येन सागरम् ।
 वे बहे बहे राखलोंको भारकर अपने महान् बलका

परिचय दे वहाँ रुपाति प्राप्त कर चुके थे । उन्होंने सीताको
 आश्वासन दे, लङ्कापुरीको ग्राकुल कर, रावणको चक्षमा
 देकर, उधे अपना भयानक बल दिला, वैदेहीका प्रणाम

करके पुन सङ्ग्रके बीचसे होकर लोट जानेका विचार किया ॥
 ततः स कपिशार्दूल स्वाभिसदर्शनोत्सुष ॥ २५ ॥

‘ततः स कपिशार्दूल स्वाभिसदर्शनोत्सुष ॥ २५ ॥
 (अब यहाँ उनके लिये कोई फाय बाकी नहीं रह गया
 था अतः) अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये
 उत्सुक हो वे शत्रुमर्दन कपिश्रेष्ठ हनुमान पक्षोंमें उत्तम

अरिष्ट गिरिपर चट गये ॥ २५ ॥
 तुङ्गपद्मकज्जुष्टाभिर्निलाभिर्वनराजिभिः ॥ २६ ॥

‘तुङ्गपद्मकज्जुष्टाभिर्निलाभिर्वनराजिभिः ॥ २६ ॥
 सोचरीयमिवाम्भोर्दे शृङ्गातररिलम्बिभिः ।
 ऊँचे-ऊँचे पक्षों—पक्षोंके समान वणजाले वृक्षोंसे

सोचरीयमिवाम्भोर्दे शृङ्गातररिलम्बिभिः ।
 ऊँचे-ऊँचे पक्षों—पक्षोंके समान वणजाले वृक्षोंसे
 सेजित नीची वनश्रेणियों मानो उस पर्वतका परिचान वज्र
 यी । शिखरोंपर शृङ्गेके हुए प्याय मेघ उग्रक लिये उछरीय

वज्र (चादर) से प्रतीत होते थे ॥ २६ ॥
 बोध्यमानमिय प्रात्या दिशाककरे शुभैः ॥ २७ ॥

‘उन्मिय तमिवोदृतैर्लोचनैरिव धातुभिः ।
 तोयोधनि स्वर्नर्मन्ने प्राधीतमिव पथतम् ॥ २८ ॥

‘सूर्यकी कस्यापमयी किरणें प्रेम्पूर्वक उधे बगाती-सी

जान पड़ती थी । नाना प्रकारके चातु मानो उसने खुले हुए नष्ट थे, जिनसे वह सब कुछ देखता हुआ सा स्थित था । पत्रतीय नदियोंकी जलराशिके गम्भीर धोपठे देखा लगता था, मानो वह पत्रत सस्तर वेदपाठ कर रहा हो ॥ २७ २८ ॥ प्रगीतमिव विरूपष्ट नातामस्त्रयणस्वनैः ।

देनदाकभिरद्भूतरूध्वयाहुमिः स्थितम् ॥ २९ ॥

अनेनानेक क्षरन्तेके कलकल नादसे वह अखिगिरि स्पष्टतया गीत सा गा रहा था । ऊँचे-ऊँचे देव ऋषीक कारण मानो हाथ ऊपर उठाये लगा था ॥ २९ ॥

प्रपातजलनिर्घोषैः प्राकृष्टमिव सर्वतः ।

वेपमानमिव श्यामैः कम्पमानैः क्षरद्भनैः ॥ ३० ॥

सब ओर जल-प्रपातोंकी गम्भीर ध्वनिसे व्याप्त होनेके कारण बिछाता या इरला मचाता सा जान पड़ता था । झूमते हुए सरकड़ोंसे 'याम बनोसे वह कौपला-सा प्रतीत होता था ॥ ३० ॥

वेणुभिर्मोहतोद्घूतैः फूजन्तमिव कीचकैः ।

निभ्यस्तन्मिनामर्पाद् धोरैराशीधियोत्तमैः ॥ ३१ ॥

बायुके झोंक साकार हिलते और मधुरध्वनि करते बाँझोंसे उपलजित होनेवाला वह पर्वत मानो बाँझों बना रहा था । भयानक विषयर सगोषे फुकारसे लची साँस खींचता सा जान पड़ता था ॥ ३१ ॥

नीहारहतगम्भीरैर्यथा-तमिव गह्वरैः ।

मेघपादनिभैः पादैः प्रकान्तमिव सचतः ॥ ३२ ॥

बुहारेके कारण गहरी प्रतीत होनेवाली निश्चल गुच्छों द्वारा वह ध्यान-सा कर रहा था । उठते हुए मेघोंके समान शोभा पानेवाले पार्श्वतों पर्वतोंद्वारा सब ओर विचरत-सा प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥

जम्भमाणमिषाकाशे शिखरैरभ्रमालिभिः ।

कूटैश्च यदुधा कीर्णं शोभितं यदुक्कन्दैः ॥ ३३ ॥

मेघमालाओंसे अलङ्कृत शिखरोंद्वारा वह आकाशमें अँगड़ा-सी ले रहा था । अनेनानेक शृङ्गोंसे ध्याम तथा बहुत ही कन्दराओंसे सुशोभित था ॥ ३३ ॥

सालतालैश्च कर्णैश्च यदौश्च यदुभिर्वृतम् ।

लतावितानैर्धिततैः पुष्पचक्रिरल हृतम् ॥ ३४ ॥

साल, ताल, कण और बहुसंख्यक शोषित वृक्ष उठे सब ओर। धरे हुए थे । फूलोंके मारते लदे और फले हुए सदा विद्वान उस पत्रतके अलङ्कार थे ॥ ३४ ॥

नानामृगगणैः कीर्णं चातुनिष्पन्दमूषितम् ।

यदुमस्रवणोपेतं शिलासचयसकटम् ॥ ३५ ॥

नाना प्रकारके पशु वनों सब ओर भरे हुए थे । शिविध चातुओंके विपन्नेसे उसकी बड़ी शायमा हा रही थी । वह पत्रत बहुसंख्यक क्षरन्तेके विभूषित तथा राशि राशि शिलाओंसे भरा हुआ था ॥ ३५ ॥

महर्षिं यश्च घटकिन्नरोरगसेवितम् ।

लतापादपसम्याद्य सिंहाधिष्ठितकन्दरम् ॥ ३६ ॥

महर्षि, यक्ष, गधर्व, किन्नर और नागगण वहाँ निवास करते थे । लताओं और वृक्षोंद्वारा वह सब ओरसे आच्छादित था । उसकी कन्दराओंमें सिंह दहाइ रहे थे ॥

व्याघ्रादिभिः समाकीर्णं स्वादुमूलफलद्रुमम् ।

आरुरोहानिलसुत पर्वतं ध्रुवगोत्तमम् ॥ ३७ ॥

रामदर्शनश्रेष्ठेण प्रहर्षेणाभिबोधितम् ।

व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु भी वहाँ सब ओर फैल हुए थे । स्वादिष्ट फलोंसे लदे हुए वृक्ष और मधुर कन्द-मूल आदिकी वहाँ बहुतायत थी । ऐसे रमणीय पत्रतपर वानर शिरोमणि पवनकुमार हनुमान्की भीरामचन्द्रजीके दर्शनकी शीघ्रता और अत्यन्त हर्षसे प्रेरित होकर चढ़ गये ॥ ३७ ॥

तेन पादतलक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु ॥ ३८ ॥

सद्योपा समशीर्यत शिलाक्षणीकृतास्ततः ।

उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर जो शिलायें थीं, वे उनके पैरोंसे आघातमें भारी आवाजके साथ चूर चूर होकर बिखर जाती थीं ॥ ३८ ॥

स तमारुह्य शैलेन्द्र व्यवर्धत महाकपि ॥ ३९ ॥

दक्षिणानुत्तर पार प्रार्थयैल्लवणाम्भसः ।

उस शैलराश अखिरपर आरुढ़ हो महाकपि हनुमान्जीने समुद्रके दक्षिण तटसे उत्तर तटपर जानेकी इच्छासे अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया ॥ ३९ ॥

अथिरुह्य ततो धीर पर्वत पवनारमज ॥ ४० ॥

दृष्ट्वा सागर भीम भीमोरगनिपेवितम् ।

उस पर्वतपर आरुढ़ होनेके पश्चात् वीरवर पवनकुमाने भयानक सगोषे सेवित उस मीथण महासागरकी ओर दृष्टिपात किया ॥ ४० ॥

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः ॥ ४१ ॥

प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणानुत्तरा दिशम् ।

बायुदेवताके औरत पुत्र कपिश्रेष्ठ हनुमान् जैसे बायु आकाशमें तीव्रगतिसे प्रवाहित होती है, उसी प्रकार दक्षिणसे उत्तर दिशाकी ओर बढ़े वेगसे (उड़कर) चले ॥ ४१ ॥

स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमम् ॥ ४२ ॥

ररास विविधैर्मूतैः प्राविशद् यमुधातलम् ।

कम्पमानैश्च शिखरैः पतङ्गिरपि च द्रुमैः ॥ ४३ ॥

हनुमान्जीके पैरोंका दबाव पड़नेके कारण उस श्रेष्ठ पर्वतसे बड़ी मयकर आवाज हुई और वह अपने कौपते हुए शिखरों, टूटकर गिरते हुए वृक्षों तथा मीन मीनिके प्राणिवैरहित हात्काल घसीमें घँस गया ॥ ४२ ॥

तस्योरुयेभो-मथिता पादपा पुष्पतालिनः ।

निपेतुमृतले भग्ना शक्यायुधदत्ता इव ॥ ४४ ॥

उनके महान् वेगसे कम्पित हो फूलोंसे लदे हुए
बहुसङ्ख्य वृक्ष ॥४४॥ प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े; मानो उन्हें वज्र
मार गया हो ॥ ४४ ॥

कन्दरोदरसस्याना पीडिताना महौजसा ॥
सिंहाना निनदो भीमो नभो भिन्दन् हि सुधुवे ॥४५॥

उस समय उस पर्वतकी चन्द्राओंमें रहकर दवे हुए
महाबली सिंहोंका मथकर नाद आकाशका पाङ्कता हुआ सा
सुनायी दे रहा था ॥ ४५ ॥

प्रस्तव्यादिद्वयसना ध्याकुलीकृतभूषणा ।
विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरा ॥ ४६ ॥

भयके कारण जिनके बाल ढील पड़ गये थे और
आभूषण उलट पलट गये थे, वे विद्याधरियों सहसा उस
पर्वतसे ऊपरकी ओर उड़ चलीं ॥ ४६ ॥

अतिप्रमाणा बलिनो वीरजिह्वा महाविपा ।
निपीडितशिरोम्रीया ध्वघेष्ट महाहय ॥ ४७ ॥

बड़े बड़े आकार और चमकीली जीभवाला महाविघेले
बलवान् सर्प अपने पन तथा गलेको दबाकर कुण्डलाकार
हो गये ॥ ४७ ॥

इसार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पटपञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥
इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्ग

हनुमान्जीका समुद्रको लौपकर जाम्बवान् और अह्वद आदि सुहृदोंसे मिलना

आधुत्य च महावेगः पक्षयानिव पक्षत ।
भुजङ्गपक्षगन्धर्वप्रयुक्तमलोत्पलम् ॥ १ ॥
स चन्द्रकुमुद रम्य सार्ककारण्डव शुभम् ।
तिपभयणकादम्बमध्रौषलश्चाद्रलम् ॥ २ ॥
पुनर्वसुमहामीन लोहितान्नमहाप्रहम् ।
पेरायतमहादीप स्वातीहसविलासितम् ॥ ३ ॥
वानसघातजालेर्मिष्वन्द्वानुशिवायशुभम् ।
हनुमानपरिभ्रात पुण्ड्रव गगनाजवम् ॥ ४ ॥

पक्षधारी पर्यंतक समान महान् वेगवाली हनुमान्जी
बिना थके-मँदे उस सुन्दर एवं रमणीय आकाशरूपी समुद्र
को पार करने लगा, जिसमें नाग, यक्ष और गंधर्व जिनके हुए
कमल और उत्पलक समान थे । चन्द्रमा कुमुद और स्यं
वलकुण्डलके समान थे । पुण्य और भवण नक्षत्र कलहंस
तथा बादल सेवार और पाखके द्रव्य थे । पुनर्वसु विशाल
मत्स्य और मंगल बड़े भारी ग्राहके सदृश थे । पेरायत हाथी
परी महान् द्वीप-सा प्रतीत होता था । यह आकाशरूपी
समुद्र स्वातीरूपी इंद्रके विद्यालये सुशोभित था तथा वायु

किनरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तथा ।
पीडित त नगधरा त्यक्त्वा गगनमास्थिता ॥ ४८ ॥

किन्नर, नाग, गंधर्व, यक्ष और विद्याधर उस घँसे
हुए पनको छोड़कर आकाशमें स्थित हो गये ॥ ४८ ॥

स च भूमिधराः श्रामान् बलिना तनपीडित ।
सधुदशिक्षरोद्यम प्रविशेश रसातलम् ॥ ४९ ॥

बलवान् हनुमान्जीने वेगसे दबकर यह गोमाशाली
महीभर जूनें और ऊँचे शिलरोहित रसातलमें चला गया ॥

दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रित ।
घरण्या समता पात स यभूय घराधर ॥ ५० ॥

अष्ट पर्वत तीव्र योजन ऊँचा और दृढ़ योजन
चौड़ा था । फिर भी उनसे पैरोसे दबकर भूमिने बराबर
हो गया ॥ ५० ॥

स लिङ्गविपुर्भोम सलील लघणार्णयम् ।
बलोलोत्फालवेलाप्तमुत्पपात नभो हरि ॥ ५१ ॥

त्रिभुज ऊँची-ऊँची ताँके उठकर अपने किनारोंका
सुम्भन करती थीं, उस लारे पानीके भयानक समुद्रको
लीलापूर्वक लौप जानेकी इच्छासे हनुमान्जी आकाशमें
उड़ चले ॥ ५१ ॥

सुहृदरूप तरङ्गौ और चन्द्रमाकी किरणरूप झील बलसे
भरा हुआ था ॥ १-८ ॥

प्रसमान इवाकाश ताराधिपमिवोल्लिखन् ।
हरणिव सनक्षत्र गगन साकमण्डलम् ॥ ५ ॥

अपारमपरिधान्तस्त्राम्बुधि समगाहत ।
हनुमान् मेघजालानि विकर्पन्निव गच्छति ॥ ६ ॥

हनुमान्जी आकाशकी अपना प्राप्त बनाते हुए, चन्द्र
मण्डलको नक्षत्रोंसे खरोचते हुए, नक्षत्रों तथा सूर्यमण्डलसहित
अन्तरिक्षके सङ्गते हुए और बादलोंके समूहको खींचते
हुए से अनायास ही अपार महासागरके पार चले आ रहे
थे ॥ ५-६ ॥

पाण्डुरारुणयणानि नीलमाञ्ज्रिकानि च ।
हरितारुणयणानि महाभ्राणि चकाशिरै ॥ ७ ॥

उस समय आशमानमें खेद, लाल, नीले, मजीठके
रंगके, हर और अरुण बणने बड़े बड़े मेघ घोमा पा
रहे थे ॥ ७ ॥

प्रविशद्यभ्रजालानि निष्यमद्य पुनः पुनः ।



समुद्रको लॉपकर लङ्कासे लौटते हुए मारुति

प्रकाशाप्रकाशाश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ८ ॥

वे कभी उन मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और कभी बाहर निकलते थे। बार-बार ऐसा करते हुए हनुमान्भी छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ८ ॥

त्रिविधाभ्रघनापन्नगोचरो भवलाभ्यम् ।
दद्याददृश्यतनुर्धौस्तथा च द्रायतेऽग्नये ॥ ९ ॥

नाना प्रकारके मेघोंकी घटाओंके भीतर होकर जाते हुए, धनलाभ्यरक्षा की शीघ्र हनुमान्भीका शरीर कभी दीखता था और कभी जटस्थ हो जाता था अतः वे आकाशमें बादलोंकी आड़में छिपते और प्रकाशित होते चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥ ९ ॥

तार्क्ष्यायमाणो गगने स यमौ वायुनन्दन ।
दारपन् मेघवृन्दानि निष्पतन् पुन पुन ॥ १० ॥

बार-बार मेघ-समूहोंको विदीर्ण करने और उनमें होकर निकलनेके कारण वे पवनकुमार हनुमान् आकाशमें गड़गड़े समान प्रतीत होते थे ॥ १० ॥

नदन् नादेन महता मेघस्वनमहास्वन ।
प्रनरान् राक्षसान् हत्वा नाम विश्राव्य चात्मन ॥ ११ ॥
आकुला नगरीं हत्वा व्यथयित्वा च रावणम् ।
अर्धयित्वा महावीरान् वैदेहीमभिधाप्य च ॥ १२ ॥
आजगाम महातजा पुनर्मथ्येन सागरम् ।

इस प्रकार महातेजस्वी हनुमान् अपने महान् सिंहादसे मेघोंकी गम्भीर गवनाकी भी आत करते हुए आगे बढ़ रहे थे। वे प्रबल राक्षसोंको मारकर अपना नाम प्रसिद्ध कर चुके थे। बड़े बड़े गीलोंको रौंदकर उन्होंने लहानगीको ब्याकुल तथा रावणको व्यथित कर दिया था। तत्पश्चात् विदेहनिदिनी सीताको नमस्कार करके वे चले और तीन गतिसे पुनः समुद्रके मध्यमार्गमें आ पहुँच ॥ ११ १२ ॥

पततेन्द्र सुनाभ च समुपस्पृश्य धीयवान् ॥ १३ ॥
उपामुक् इव नापद्यो महावेगोऽभ्युपागमत् ।

वहाँ पतताम सुनाभ (मैनाक) का स्पर्श करके वे पराक्रमी एवं महान् वेगवाली बानर-बीर धनुषसे छूट हुए बाणकी भाँति आगे बढ़ गये ॥ १३ ॥

स किंचिदासौ सम्प्राप्तः समालोभ्य महागिरिम् ॥ १४ ॥
महेन्द्र मेघसकाश मनाद् स महाकवि ।

उत्तर तरफे कुछ निकट पहुँचनेपर महागिरि महेन्द्रपर दृष्टि पड़ते ही उन महाकविने मेरुके समान बड़े जोरसे गवना की ॥ १४ ॥

स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्तत ॥ १५ ॥
नदन् नादेन महता मेघस्वनमहास्वन ।

उस समय मेघकी भाँति गम्भीर स्वरसे बड़ी भारी गवना

करके उन बानरबीरने सब ओरसे दशों दिशाओंको कोलाहल पूर्ण कर दिया ॥ १५ ॥

स त देशमनुप्राप्त सुहृद्शनलालस ॥ १६ ॥
ननाद सुमहानाद् लाङ्गल चाप्यकम्पयत् ।

निर वे अपने मित्रोंको देखनेके लिये ठसुठ होकर उनके विश्रामस्थानकी ओर बढ़े और घूँट हिलान एवं जोर जोरसे सिंहाद करने लगे ॥ १६ ॥

तस्य नानद्यमानस्य सुपणाचरिते पथि ॥ १७ ॥
फलतीयास्य धोयेण गगन सार्कमण्डलम् ।

वहाँ गड़गड़ चलते हैं, उली मागपर बार-बार सिंहाद करते हुए हनुमान्भीके गम्भीर शोरसे सूक्ष्मण्डलवर्तित आकाश मानो फटा जा रहा था ॥ १७ ॥

ये तु तथोचरे कूले समुद्रस्य महाबला ॥ १८ ॥
पूर्वं सविष्टिता शूरा वायुपुत्रदिहक्षव ।
महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्थेष नि स्वनम् ।
शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूकवेग हनूमत ॥ १९ ॥

उस समय वायुपुत्र हनुमान्के दर्शनकी इच्छासे जो शूरीर महाबली बानर समुद्रके उत्तर तटपर पहलेसे ही बैठे थे, उन्होंने वायुसे टकराये हुए महान् मेघकी गवनाके समान हनुमान्भीका जोर-जोरसे सिंहाद सुना ॥ १८ १९ ॥

ते दीनमनस सर्वे शुश्रुवु काननौकस ।
यानरेन्द्रस्य निर्घोष पतन्पनिनदोपमम् ॥ २० ॥

अनिष्टकी आवाह्लासे जिनके मनमें दीनता छा गयी थी, उन समस्त वनवासी बानरोंने उन बानरभेद हनुमान्का मेघ गवनाके समान सिंहाद सुना ॥ २० ॥

निशम्य नदवो माद् धानरास्ते समन्तत ।
बभूवुरासुका सर्वे सुहृद्शनकाङ्क्षिण ॥ २१ ॥

गर्जते हुए पवनकुमारका वह सिंहाद सुनकर सब ओर बैठे हुए वे समस्त बानर अपने मुहद् हनुमान्भीकी देखनेकी अभिलाषासे उत्कण्ठित हो गये ॥ २१ ॥

जाम्बवान् स हरिधेष्ट प्रीतिरहृष्टमानस ।
उपामाश्रय हरीन् सर्वानिद धचनमप्रवीन् ॥ २२ ॥

बानर भाइयोंमें भेद धाम्बवान्के मनमें बड़ी प्रचलता हुई। वे हर्षसे मिल उठे और सब बानरोंकी निकट बुलाकर इस प्रकार बोले— ॥ २२ ॥

सवया हतकार्योऽसौ हनुमान्नाथ सदाय ।
न ह्यस्याहतकायस्य माद् पत्रिषो भवेत् ॥ २३ ॥

हृष्टमें सदेह नहीं कि हनुमान्भी कष्ट प्रकारसे अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। इतक्याप्य हुए बिना उनकी ऐसी गवना नहीं हो सकती ॥ २३ ॥

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च च द्रुमा इव हृद्यते ॥ ८ ॥

वे कभी उन मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और कभी बाहर निकलते थे । बार-बार ऐसा करते हुए हनुमान्जी छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ८ ॥

विनिधाम्नघनापत्रगोचरो धवलाम्बर ।
हृदयाहृदयतनुर्व्यास्तया च द्रायतेऽग्नये ॥ ९ ॥

नाना प्रकारके मेघोंकी घटाओंके भीतर होकर जाते हुए धवलाम्बराधी वीरवर हनुमान्जीका शरीर कभी दीखता था और कभी अदृश्य हो जाता था अतः वे आकाशमें बारलोंका आङ्गमें छिपते और प्रकाशित होते चन्द्रमाके समान बान पड़ते थे ॥ ९ ॥

तादर्यायमाणो गगने स यमौ वायुनन्दन ।
क्षायन् मेघवृन्दानि निपतश्च पुन पुन ॥ १० ॥

बार-बारमेघ-समूहोंको विदीर्ण करने और उनमें होकर निकलनेके कारण वे पवनकुमार हनुमान् आकाशमें गड़गड़े समान प्रवीर होते थे ॥ १० ॥

नदन् नादेन महता मेघम्यनमहास्वन ।
प्रवरान् राक्षसान् हन्ता नाम विश्राट्य चामन ॥ ११ ॥
आकुला नगरीं हन्त्या व्यथयित्वा च रात्रणम् ।
अदयित्वा महावीरान् वैदेहीमभिवाद्य च ॥ १२ ॥
आजगाम महातडा पुनर्मध्येन सागरम् ।

इस प्रकार महावज्रवी हनुमान् अपने महान् सिंहनादसे मेघोंकी गम्भीर गवनाको भी भात करते हुए आगे बढ़ रहे थे । वे प्रवृत्त राक्षसोंको मारकर अपना नाम प्रसिद्ध कर चुके थे । वह वड़े वीरोंको रौंदकर उन्होंने लहानगरीको व्याकुल तथा रात्रणको व्यथित कर दिया था । तत्पश्चात् विदेहलक्ष्मी मीठाको नमस्कार करके वे चले और तीस गदिने पुनः समुद्रके मध्यभागमें आ पहुँचे ॥ ११ १२ ॥

पर्येतन्द्र सुनाभ च समुपस्पृश्य धीयवान् ॥ १३ ॥
ज्यामुक इव नापचो महाजोगोऽम्बुपागमत् ।

वहाँ पवनराज सुनाभ (नैराक) का स्पर्श करके वे पराक्रमी एवं महान् वीरशाली बानर-वीर बनने लगे हुए बाणकी मौति आगे बढ़ गये ॥ १३ ॥
संक्षिप्तपत्तु सग्रास समालोक्य महागिरिम् ॥ १४ ॥
महेन्द्र मेघसकाश ननाद स महाकपि ।

उत्तर तट पर कुछ निश्चय पहुँचनेपर महागिरि महेन्द्रपर दृष्टि पड़ते ही उन महाकपिने मरकट समान बड़े जोरसे गवना की ॥ १४ ॥

स पूर्यामास कपिर्दिशो दश समन्तत ॥ १५ ॥
नदन् नादेन महता मेघम्यनमहास्वन ।

उस समय मेघकी मोँटि गम्भीर स्वरसे बड़ी भारी गवना

करके उन बानरबाने सब ओरसे दशों दिशाओंको कोलाहल पूर्ण कर दिया ॥ १५ ॥

स त देशमनुप्राप्त सुहृद्दानलालस ॥ १६ ॥
ननाद सुमहानाद् लाङ्गल चाप्यकम्पयत् ।

निर वे अपने मित्रोंको देखनेके लिये ठगुका होकर उनके विधामस्थानकी ओर बढ़ और घूँट दिलाएँ एवं ओर ओरसे सिंहनाद करने लग्ये ॥ १६ ॥

तस्य नानघमानस्य मुपणाचरिते पथि ॥ १७ ॥
फलतीरास्य धोयेण गगन सार्कभण्डलम् ।

वहाँ गड़गड़ चलते हैं, उली मागपर बार-बार सिंहनाद करते हुए हनुमान्जीके गम्भीर धोये से सूक्ष्म-ढलल-हल आकाश मानो फटा जा रहा था ॥ १७ ॥

ये नु तत्रोत्तरे कूले समुद्रस्य महाबल ॥ १८ ॥
पूर्वं सविष्ठिता शूरा वायुपुत्राश्चक्षुः ।

महतो वायुपुत्रस्य तोयदस्येव नि सनम् ।
शुश्रुवस्ते तत्र धोपमूकवेग हनूमत ॥ १९ ॥

उस समय वायुपुत्र हनुमान्क दर्शनकी इच्छासे जो शूरीर महाबली बानर समुद्रक उत्तर तटपर पहलसे ही बैठे थे, उन्होंने वायुसे टकराये हुए महान् मेघकी गवनाके समान हनुमान्जीका जोर-जोरसे सिंहनाद सुना ॥ १८ १९ ॥

ते दीनमनस सर्वे शुश्रुवुः काननौकस ।
बानरेन्द्रस्य निर्घोष पनन्पनिनदोपमम् ॥ २० ॥

अनिष्टकी आवाज़से बिनके मनमें दीनता आ गयी थी, उन समस्त बनबासी बानरोंने उन बानरभेष्ट हनुमान्का मध गवनाके समान सिंहनाद सुना ॥ २० ॥

निशम्य नदतो नाद् बानरास्ते समन्तत ।
बभूवुस्तुका सर्वे सुहृद्दण्डनकाङ्क्षिण ॥ २१ ॥

गते हुए पवनकुमारका वह सिंहनाद सुनकर सब ओर बैठे हुए वे समस्त बानर अपने मुहद् हनुमान्जीको देखनेकी अभिलाषासे उत्कण्ठित हो गये ॥ २१ ॥

जाम्बवान् स हरिष्ठेष्ट प्रीतिसहृदमानस ।
उपागम्य हरीन् सवानिदं बचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

बानर भाइयोंमें भेष्ट धाम्बवान्के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । वे हर्षसे खिल उठे और सब बानरोंको निकट बुलाकर इस प्रकार बोले— ॥ २२ ॥

सयया वृत्कार्योऽसौ हनुमान्नात्र सशय ।
न ह्यस्यावृत्कार्यस्य नाद पचरिषो भवेत् ॥ २३ ॥

‘रखने वदेह नहीं कि हनुमान्जी सब प्रकारसे अपना काय निद्रा करके आ रहे हैं । वृत्कार्य हुए बिना इनकी ऐसी गवना नहीं हो सकती ॥ २३ ॥

तस्य बाहुरुवेग च निनाद च महात्मन ।
निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेत्युर्वतस्ततः ॥ २४ ॥

महात्मा हनुमान्जीकी मुजामों और ओंघोंका महान् वेग
देख तथा उनका सिंहाद झुन सभा वानर हपमें भरकर इधर
उधर उछलने कूदने लगे ॥ २४ ॥

ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च ।
प्रहृष्टा समपद्यन्त हनूमन्त दिदृक्षुः ॥ २५ ॥

हनुमान्जीको देखनेकी इच्छासे वे प्रसन्नतापूर्वक एक हृष्टसे
दूधरे घुँघोँपर तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरोंपर चढ़ने लगे ॥

ते प्रीता पादपद्मेषु गृह्य शाखामवस्थिताः ।
वासासि च प्रकाशानि समाविध्यन्त वानरा ॥ २६ ॥

घुँघोँकी सशसे ऊँची शाखापर खड़े होकर व प्रीति
सुक वानर अपने स्पष्ट दिखायी देनेवाले वस्त्र पहिने
लगे ॥ २६ ॥

गिरिगह्वरसलीने यथा गर्जति मारुत ।
एव जगर्ज बलवान् हनूमान् मारुतात्मज ॥ २७ ॥

जैसे पथकी गुफाओंमें अवरुद हुआ वायु बड़े जोरसे
शब्द करती है, उसी प्रकार बलवान् पवनकुमार हनुमान्ने
गर्जना की ॥ २७ ॥

तमध्वनसकाशमापन्नत महाकपिम् ।
हृष्टा ते वानराः सर्वे तत्पुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ २८ ॥

मेघोंकी घटावे समान पाठ आते हुए महाकपि
हनुमान्को देखकर वे सब वानर उस समय हाथ जोड़कर
खड़े हो गये ॥ २८ ॥

ततस्तु वेगवान् धीरो गिरेर्गिरिनिभ कपिः ।
निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाङ्कुले ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् पर्वतके समान विशाल शरीरवाले वेगवाली
धीरवानर हनुमान् जो अस्थि पर्वतसे उछलकर गले थे,
घुँघोँसे भरे हुए महेन्द्र गिरिसे शिखरपर कूद पड़े ॥ २९ ॥

हर्षेणापूर्वमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिहरे ।
छिन्नपक्ष इयाकाशात् पपात धरणीधरः ॥ ३० ॥

हर्षसे भरे हुए हनुमान्जी पर्वतके रमणीय क्षरनेके
निष्कट पक्ष कटे हुए पर्वतके समान आकाशसे नीचे आ
गये ॥ ३० ॥

ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवा ।
हनूमन्त महात्मान् परिषायापतस्थिरे ॥ ३१ ॥

उस समय वे सभी भेष्ट वानर प्रसन्नचित्त हो
महात्मा हनुमान्जीको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो
गये ॥ ३१ ॥

परिवार्य च ते सर्वे परा प्रातिमुपागताः ।
प्रहृष्टयवनाः सर्वे तमागतमुपागमन् ॥ ३२ ॥

उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च ।
प्रत्यचयन् हरिधेष्ठ हरयो मादताम्रजम् ॥ ३३ ॥

वहाँ घेरकर खड़े होनेसे उन सबको बड़ी प्रसन्नता
हुई । वे सब वानर प्रसन्नमुख होकर तुरतके आये हुए
पवनकुमार कपिशेष्ठ हनुमान्के पाठ मौँति मौँतिकी भेंट
सामग्री तथा फल मूल लेकर आये और उनका स्वागत
सम्कार करने लगे ॥ ३२ ३३ ॥

विनेदुमुदिताः केचिन् केचिन् किलकिला तथा ।
हृष्टाः पादपशाखाश्च आनि युवानिरपभा ॥ ३४ ॥

कोई आनन्दमग्न होकर गर्जने लगे, कोई किलकारियों
मने लगे और कितने ही भेष्ट वानर हर्षसे भरकर हनुमान्जी
के बैठनेके लिये घुँघोँकी शाखाएँ तोड़ लाये ॥ ३४ ॥

हनूमास्तु गुरुन् वृक्षास्त्राम्ययममुखास्तदा ।
कुमारमङ्गल चैव सोऽवन्दत महाकपि ॥ ३५ ॥

महाकपि हनुमान्जीने जाम्बवान् आदि वृद्ध गुरुजनों
तथा कुमार अङ्गदको प्रणाम किया ॥ ३५ ॥

स ताम्बा पूजितः पूज्य कपिभिश्च प्रसादित ।
हृष्टा देवीति विक्ताः तक्षपेण न्ययेदयत् ॥ ३६ ॥

किर जाम्बवान् और जह्नदने भी आदरणीय हनुमान्जी
का आदर-सम्कार किया तथा दूधरे-दूधरे वानरोंने भी उनका
सम्मान करके उनको सद्गुष्ट किया । तत्पश्चात् उन पराक्रमी
वानरवीरने तक्षपेमें निवेदन किया—‘मुझे सीतादेवीका दर्शन
हो गया’ ॥ ३६ ॥

नियसाद् च हस्तेन शुदीत्वा घालिन सुतम् ।
रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ॥ ३७ ॥
हनूमानध्वीत् पृष्टस्तदा तान् वानरपमान् ।
अशोकवनिकासस्था हृष्टा सा जनकात्मजा ॥ ३८ ॥

तदनन्तर बाणिकुमार मङ्गदका हाथ अपने हाथमें लेकर
हनुमान्जी महेन्द्रगिरिके रमणीय वनप्रान्तमें जा बैठे और
वधके पूछनेपर उस वानर(शिरोमणि)से इस प्रकार बोले—
‘जनकान्दिनी सीता लङ्काक अशोकवनमें निवास करती हैं ।
वहाँ मैंने उनका दर्शन किया है’ ॥ ३७ ३८ ॥

रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता ।
पक्षपेणीधरा वाला रामदर्शनलालसा ॥ ३९ ॥
उपवासपरिधाम्ना मलिना जटिला हृष्टा ।

‘अत्यन्त मयकर आकारवाली राक्षसियों उनकी रक्षवाली
करती हैं । साष्ठी सीता बड़ी मोड़ी भाली हैं । वे एक वेणी
धारण किये वहाँ रहती हैं और भीरामचन्द्रकी दधानके लिये
बहुत ही उत्सुक हैं । उपवासकारण बहुत यत्न गयी हैं,
दुर्बल और मलिन हो रही हैं तथा उनके केश जटाक रूपमें
परिणत हो गये हैं’ ॥ ३९ ॥

ततो दृष्टेति यच्चन महार्थममृतोपमम् ॥ ४० ॥
निशम्य माहते सर्वे मुदिता वानरपमवन् ।

उत्त समय 'माताका दर्शन हो गया' यह वचन वानरों
को अमृतक समान प्रदात हुआ । यह उनके महान् प्रयोजन
की सिद्धि का सूचक था । हनुमान् का के मुखसे यह शुभ
संवाद सुनकर सब वानर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४० ॥
ह्येहान्त्यन्ये नन्द्यन्ये गजन्त्यन्य महाबला ॥ ४१ ॥
षड्कु शिल्किलामन्ये प्रतिगर्नित चापारे ।

कोई हर्षनाद और कोई विह्वलाद करने लगे । दूसरे
महाबली वानर गजने लगे । कितने ही शिल्किलारिषों मरने लगे
और दूसरे वानर एक-दूसरे गजना के उत्तरमें स्वयं भी गजना
करने लगे ॥ ४१ ॥

केचिदुच्छिन्नलाङ्गला प्रहृष्टा कपिकुञ्जरा ॥ ४२ ॥
सायताञ्जितदीघाणि लाङ्गलानि प्रविष्यधु ।

बहुतेरे कपिकुञ्जरा हृष्ट उच्छ्वसित हो अपनी पूँछ ऊपर
ठठाकर नाचने लगे । कितने ही अपनी लंबी और मोटी
पूँछें घुमाने या हिलाने लगे ॥ ४२ ॥

अपरे तु हनूमन्त भीमत् वानरोत्तमम् ॥ ४३ ॥
मात्सल्य गिरिभृङ्गेषु ससृष्टशक्ति स हर्षिता ।

कितने ही वानर हर्षोल्लासे भरकर छल्लों भरते हुए
पर्वतशिखरोंपर वानरशिरोमणि श्रीमान् हनुमान् को घूटने
लगे ॥ ४३ ॥

उक्तवाक्य हनूमन्तमहदस्तु तदाज्यवीत् ॥ ४४ ॥
सर्वेया हरिबीराणा मध्ये वाचमनुत्तमाम् ।

हनुमान् जोड़ी उपयुक्त बात सुनकर अह्वाने उत्त समय
समस्त वानरोंके बीचमें यह परम उत्तम बात कही— ॥ ४४ ॥
सत्ये वीर्ये न ते कश्चित् समो वानर विद्यते ॥ ४५ ॥
यद्वचस्तुल्य विस्तीर्ण सागर पुनपगत ।

'वानरभेद' बल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई
नहीं है, क्योंकि तुम इस विशाल समुद्रको लौंकर फिर इस
पार लौट आये ॥ ४५ ॥

जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम ॥ ४६ ॥
त्वप्रसादात् समेष्याम सिद्धाया राघवेण ह ।

कविशिरोमणे । एकमात्र तुम्हीं हम लोगों के जीवनदाता

हूँ। आपने श्रीमन्नारायण वाक्मन्त्रीके आश्रयमें सुन्दरकाण्डे सप्तपञ्चाश सर्ग ॥ ४६ ॥

इस प्रकार वरन्तर्जित नित्य आर्यजनस्य आश्रयक सुन्दरकाण्डे सप्तपञ्चाश सर्ग पूरा हुआ ॥ ५० ॥

अष्टपञ्चाश सर्ग

जाम्बवान् के पृष्ठनेपर हनुमान् जीका अपनी लङ्कायात्राका सारा वृत्तान्त सुनाना

ततस्तस्य गिर भृङ्गे महेन्द्रस्य महाबला ।

हनुमन्मुखाः प्रीति हरयो जम्बुकचाम् ॥ १ ॥

हो । तुम्हारे प्रसादे ही हम सब लोग सफलमनोरथ होकर
श्रीरामचन्द्रजीसे मिलेंगे ॥ ४६ ॥

अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो घृति ॥ ४७ ॥
दिष्टया दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी ।

दिष्टया त्वय्यति काकु स्थ शोक सीताविशोगजम् ॥ ४८ ॥

'अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीके प्रति तुम्हारी भक्ति
अद्भुत है । तुम्हारा पराक्रम और वीर्य मा आश्चर्यजनक है ।
बड़े सीमाव्यप्ये बात है कि तुम श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी
पत्नी सीतादेवीका दर्शन कर आये, अब मगवान् श्रीराम
सीताके विशेषसे उत्सन्न हुए चोकरों त्याग देंगे, यह भी
सीमाव्यप्य ही विषय है' ॥ ४७-४८ ॥

ततोऽह्म हनूमन्त जाम्बवन्त च वानरा ।
परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुला शिला ॥ ४९ ॥

उपविष्टा गिरिस्तस्य शिलासु विपुलासु ते ।

ओतुकामा समुद्रस्य लङ्घन वानरोत्तमा ॥ ५० ॥

दर्शन चापि लङ्काया सीताया राघवस्य च ।

तस्युः प्राञ्जलय सर्वे हनूमद्भवान्मुखा ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् सभी भेद वानर समुद्रलङ्घन, लङ्का, राघव एवं
सीताके दर्शनका समाचार सुननेके लिये एकत्र हुए तथा अह्वद,
हनुमान् और जाम्बवान्को चारों ओरसे घेरकर पर्वतकी पड़ी
बड़ी शिलाओंपर आनन्दपूर्वक बैठ गये । वे सब-कु-सब हाम
बेदे हुए ये और उन सबकी आँखें हनुमान्की मुखपर
लगी थीं ॥ ५१-५२ ॥

तस्यो तत्राह्म भीमान् वानरैषुभिर्भूत ।

उपास्यमानो विबुधैर्विधि देवपतिर्यथा ॥ ५२ ॥

वेधे देवराज इन्द्र स्वर्गमें देवताओंद्वारा सेवित इन्द्र
बैठते हैं, उसी प्रकार बहुतेरे वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान्
अह्वद वहाँ बीचमें नियोजन हुए ॥ ५२ ॥

हनूमता कीर्तिमता यशस्विना

तथाह्वेनाह्वदनाह्वदबाहुना ।

मुदा तदायासितमुन्त मह

'महीधरराम क्वलित त्रियाभयत् ॥ ५३ ॥

कीर्तिमान् एवं यशस्वी हनुमान्जी तथा शीरोमें सुवन्द
धारण किये अह्वदक प्रसन्नतापूर्वक बैठनेसे वह उँचा एवं
महान् पर्वतशिखर दिग्भ्रमन्ति प्रकाशित हो उठा ॥ ५३ ॥

प्रीतिमत्सुपविष्टेषु घानरेषु महात्मसु ।
ततः प्रतिसहस्रः प्रीतियुक्त महाकपिम् ॥ २ ॥
जाम्बवान् कार्यवृत्तान्तमपृच्छदन्नितात्मजम् ।
कथं दृष्ट्वा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते ॥ ३ ॥
तस्या चापि कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः ।
तत्त्वतः सर्वमेतन्मनः प्रब्रूहि त्वं महाकपे ॥ ४ ॥

जब सभी महामनस्वी घानर वहाँ प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये, तब हर्षमें भरे हुए जाम्बवान् ने उन पवनकुमार महाकपि हनुमान्से प्रेमपूर्वक कार्यचिद्विदा सभाचार पूछा—
‘महाकपे ! तुमने देवी सीताको कैसे देखा ? वे वहाँ किस प्रकार रहती हैं ? और क्रूरकर्मा दशानन उनके प्रति कैसा वर्ताव करता है ? ये सब बातें तुम हमें ठीक ठीक बताओ ॥ २—४ ॥

सम्मार्गिता कथं देवी किं च सा प्रत्यभाषत ।
श्रुतार्थोऽस्मि तयिष्यामि भूयः कार्यचिन्निश्चयम् ॥ ५ ॥

‘तुमने देवी सीताको किस प्रकार ढूँढ निकाला और उन्होंने तुमसे क्या कहा ? इन सब बातोंको सुनकर हम लोग आगेके कार्यक्रमका निश्चितरूपसे विचार करेंगे ॥ ५ ॥

यक्षार्थस्तत्र यच्छब्दो गतैरस्माभिरात्मवान् ।
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद् भवान् व्याकरोतु न ॥ ६ ॥

‘वहाँ किफिचामें चलनेपर हमलोगोंको कौन-सी बात कहनी चाहिये और किस बातको गुप्त रखना चाहिये ? तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये तुम्हीं इन सब बातोंपर प्रकाश डालो ॥ ६ ॥

स नियुक्तस्तस्तेन सम्प्रदृष्टतनूह ।
नमस्यद्भिरस्ता देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत ॥ ७ ॥

जाम्बवान्के इस प्रकार पूछनेपर हनुमान्जीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । उन्होंने सीतादेवीको मन ही मन मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा— ॥ ७ ॥

प्रत्यक्षमेव भवता महेन्द्राप्रान् खामान्नुतः ।
उद्धेदेक्षिणीं पारं काङ्क्षमाणं समाहितम् ॥ ८ ॥

‘मैं आपलोगोंके सामने ही समुद्रके दक्षिण तटपर घानेकी इच्छासे सावधान हो महन्द्रपर्वतके शिखरसे आकाशमें उड़ला था ॥ ८ ॥

गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिषाभवत् ।
काञ्चन शिखरं दिव्यं पद्मयामि सुमनोहरम् ॥ ९ ॥
स्थितं पथानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम् ।

‘आगे बढते ही मैंने देखा एक परम मनोहर दिव्य सुवर्णमय शिखर प्रकट हुआ है, जो मेरी यह रोककर खड़ा है । वह मेरी यात्राके लिये भयानक विघ्न-आ प्रतीत हुआ । मैंने उसे मूर्तिमान् विघ्न ही माना ॥ ९ ॥

उपसगम्य तं दिव्यं काञ्चन नगमुत्तमम् ॥ १० ॥
हृता मे मनसा बुद्धिर्मेच्छव्योऽयं मयेति च ।

‘उस दिव्य उत्तम सुवर्णमय पर्वतके निकट पहुँचनेपर मैंने मन-ही-मन यह विचार किया कि मैं हूँ विदीर्ण कर बाँटूँ ॥ १० ॥

प्रहसस्य मया नस्य लाङ्गलेन महागिरिः ॥ ११ ॥
शिखरं सूर्यसकाशं द्यौर्शीर्यत सहस्रधा ।

‘फिर तो मैंने अपनी दूँछते उठपर प्रहार किया । उसकी टकर लगते ही उस महान् पर्वतके सूर्यमुख्य तेजस्वी शिखरके सहस्रों टुकड़े हो गये ॥ ११ ॥

व्यवसायं च तं बुद्ध्या स होवाच महागिरिः ॥ १२ ॥
पुत्रेति मधुरा वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव ।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिभ्वन ॥ १३ ॥

‘मेरे उस निश्चयको समझकर महागिरि मैनाकेने मनको आह्लादित सा करते हुए मधुर वाणीमें ‘पुत्र’ कहकर मुझे पुकारा और कहा—‘मुझे अपना चाचा समझो । मैं तुम्हारे पिता वायुदेवताका मित्र हूँ ॥ १२-१३ ॥

मैनाकमिति विषयात् निवसन्तं महोदधौ ।
पक्षवन्तः पुत्रं पुत्रं यमूहं पथतोत्तमा ॥ १४ ॥

‘मेरा नाम मैनाक है और मैं यहाँ महासागरमें निवास करता हूँ । वेग ! पूरकालमें सभी श्रेष्ठ पक्ष पक्षुघारी हुआ करते थे ॥ १४ ॥

छन्दसं पृथिवीं चेरुवाचमानां समततः ।
श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रं पाकशासनः ॥ १५ ॥

वज्रेण भगवान् पक्षौ विच्छेदेत् साहस्रधा ।
बहून्तु मोचितस्तस्मात् तव पित्रा महात्मना ॥ १६ ॥

‘ये समस्त प्रजाको पीड़ा देते हुए अपनी इच्छाके अनुसार सब ओर विचरते रहते थे । पक्षोंका एका अचारण सुनकर पाकशासन भगवान् इन्द्रने वज्रेसे इन सहस्रों पक्षोंके पङ्क काट डाले, परन्तु उस समय तुम्हारे महात्मा पिताने मुझे इन्द्रके हाथसे बचा लिया ॥ १५-१६ ॥

मादृतेन तद्वा धत्सु प्रक्षिप्तो वरुणालये ।
राघवस्य मया साहो वर्तितव्यमरिद्रम् ॥ १७ ॥
रामो धर्ममृता भ्रेष्टो महेन्द्रसमविक्रमः ।

‘वेदा । उस समय वायुदेवताने मुझे सुदुर्दमें लाकर डाल दिया था (जिससे मेरे पङ्क बच गये) अतः यद्युपमन नीर । मुझे भीखुनायकीकी सहायताक कार्यमें अवश्य तत्पर होना चाहिये, क्योंकि भगवान् भीराम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा इन्द्रमुख्य पराक्रमी हैं ॥ १७ ॥

एतच्छ्रुत्वा मया सस्य मैनाकस्य महात्मनः ॥ १८ ॥
कार्यमाधेयं च गिरिकुदतं वै मनो मम ।
तेन चाहमनुकृतो मैनाकेन महारमना ॥ १९ ॥

‘महामना मैनाकही यह बात सुनकर मैंने अपना काम
उई बताया और उनकी आज्ञा लेकर फिर मेरा मन वहाँसे
आगे सानेकी उल्लासित हुआ । महाकाय मैनाकने उस समय
मुझे बानेकी आज्ञा दे दी ॥ १८ १९ ॥

स चाप्यनर्हित शैले मानुषेण वपुष्मता ।
शरीरेण महाशैल शैलेन च महोदधौ ॥ २० ॥

‘वह महात्मा पर्वत भी अपने गानवशरीरसे तो अन्तर्हित
हो गया; परन्तु पथररूपसे महासागरमें ही स्थित रहा ॥ २० ॥

उत्तम जवमास्थाय शेषमज्ञानमास्थित ।
ततोऽहं सुचिरं कालं जवेनाभ्यगमयामि ॥ २१ ॥

‘फिर मैं उत्तम वेगका आभय ले शेष मार्गपर आगे
बढ़ा और दीघकालतक बड़े वेगसे उस पथपर चला
था ॥ २१ ॥

ततः पद्मामयह देवीं सुरसा नाममातरम् ।
समुद्रमध्ये सा देवी बचनं चेदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

‘तत्पश्चात् बीच समुद्रमें मुझे नाममाता सुरसा देवीका
दयान हुआ । देवी सुरसा मुझसे इसप्रकार बोली—॥ २२ ॥

मम भक्ष्यं प्रदिष्टस्त्वममरैर्हरिसत्तम ।
ततस्त्वा भक्षयिष्यामि विहितस्य हि मे सुदौ ॥ २३ ॥

‘‘कविभेदः । देवताओंने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताया है,
इसलिये मैं तुम्हें भक्षण करूँगी क्योंकि सार देवताओंने
आज तुम्हें ही मेरा आहार नियत किया है’ ॥ २३ ॥

पञ्चमुक्त्वा सुरसया प्राञ्जलिं प्रणत स्थितः ।
विवर्णयद्गो भूत्वा वाक्यं चेदमुदीरयम् ॥ २४ ॥

‘सुरसाके ऐसा कहनेपर मैं शाय बाँहकर विनीतभावसे
उसके सामने खड़ा हो गया और उदासमुख होकर यों
बोला—॥ २४ ॥

रामो दाक्षरयि भीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
रक्षमणेन सह भ्रात्रा सीतया च परतपः ॥ २५ ॥

‘देवि ! शत्रुओंको सजा देनेवाले दशरथनान्न भीमान्
राम अपने माँई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ दण्डकावण्य
में आये थे ॥ २५ ॥

तस्य सीता हता भाया रावणेन दुरात्मना ।
तस्या सजाशब्दतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ॥ २६ ॥

‘‘वहाँ दुरात्मा रावणेन उनकी पत्नी सीताको हर लिया ।
मैं इस समय भीरुमचन्द्रकी आज्ञासे दूत होकर उहाँ
सीतादेवीके पास जा रहा हूँ ॥ २६ ॥

कतुमहसि रामस्य साहाय्यं विषये सती ।
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्रिण्वारिणम् ॥ २७ ॥
भागमिष्यामि ते यक्षत्रं सत्यं प्रतिभृणोमि ते ।

‘तुम भी भीरुमचन्द्रकाकी ही रायमें रहती हो, इस
लिये तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिये । अथवा मैं मिथिलेश
कुमारी सीता तथा अनायास ही महान् कर्म करनेवाले
भीरुमचन्द्रकीका दयान करके तुम्हारे मुखमें आ बाँझा, यह
तुमसे सची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ’ ॥ २७ ॥

पञ्चमुक्त्वा मया सा तु सुरसा कामरूपिणी ॥ २८ ॥
अप्रयन्नातिवर्तत कश्चिदेष वरो मम ।

‘अरे ऐसा कहनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली
सुरसा बोली—‘मुझे यह बर मिला हुआ है कि मेरे आहारके
रूपमें निकट आया हुआ कोई भी प्राणी मुझे डालकर आगे
नहीं जा सकता’ ॥ २८ ॥

पञ्चमुक्त्वा सुरसया दशयोजनमायत ॥ २९ ॥
ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाह क्षणेन तु ।
मत्प्रमाणाधिकं चैव व्यादितं तु मुखं तया ॥ ३० ॥

‘जब सुरसाने ऐसा कहा—उस समय मेरा शरीर दस
योजन बढ़ा था, किन्तु एक ही क्षणमें मैं उससे ब्योला
बढ़ा हो गया । तब सुरसाने भी अपने मुँहको मेरे शरीरकी
अपेक्षा अधिक फैला लिया ॥ २९ ३० ॥

तत् दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्य ह्रस्व हाकरय पुनः ।
तस्मिन् मुहूर्ते च पुनर्यमूलाद्भुतसंमितः ॥ ३१ ॥

‘उसके फैले हुए मुँहको देखकर मैंने फिर अपने स्वरूप
को छोटा कर लिया । उसी मुहूर्तमें मेरा शरीर अँगूठेके
बराबर हो गया ॥ ३१ ॥

अभिपत्याशु तद्वक्त्रं निर्गतोऽहं तत क्षणात् ।
अब्रवीत् सुरसा देवी स्येन रूपेण मा पुनः ॥ ३२ ॥

‘फिर तो मैं सुरसाके मुँहमें शीघ्र ही घुस गया और
तत्क्षण बाहर निकल आया । उस समय सुरसा देवीने अपने
दिव्य रूपमें स्थित होकर मुझसे कहा—॥ ३२ ॥

अथसिद्धौ हरिष्टोष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥ ३३ ॥

‘‘सौम्य ! कविभेदः । अब तुम कायविदिके लिये मुख
पूषक यात्रा करो और विदेहदेशी सीताको महाराम राघवाय
जासे मिलाना ॥ ३३ ॥

सुखी भव महायाहो प्रीतार्त्सि तव यानर ।
ततोऽहं साधुसाध्वीति सद्यभूते प्रदासितः ॥ ३४ ॥

‘‘महायाहू यानर ! तुम सुखी रहो । मैं तुमपर बहुत
प्रसन्न हूँ ।’ उस समय सची प्राणियोंने साधु साधु कहकर
मेरी भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ ३४ ॥

ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गच्छो यया ।
छाया मे निपृहीता च न च पश्यामि किञ्चन ॥ ३५ ॥

‘तलभात् मैं गरुडकी भौति उस विद्याल आकाशमें
जिर उड़ने लगा । उस समय बिंहीने मेरी परछाईं पकड़
ली, किंतु मैं किसीको देख नहीं पाता था ॥ ३५ ॥
सोऽह विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन् ।
न किंचित् तत्र पश्यामि येन मे विहता गति ॥ ३६ ॥

‘छाया पकड़ने जानेसे मेरा वेग अवरुद्ध हो गया, अतः
मैं दसों दिशाओंकी ओर देखने लगा परन्तु बिंहीने मेरी
गति रोक दी थी, ऐसा कोई प्राणी मुझे वहाँ नहीं दिखायी
दिया ॥ ३६ ॥

अथ मे सुद्विरूपना किनाम गमने मम ।
इदृशो विष्णु उत्पन्नो रूपमत्र न दृश्यते ॥ ३७ ॥

‘तब मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि मेरी यात्रामें ऐसा
कौन सा विष्णु पैदा हो गया, जिसका यहाँ रूप नहीं दिखायी
दे रहा है ॥ ३७ ॥

अथोभागे तु मे वदति शोचत पतिता तदा ।
तत्राद्राक्षमह भीमा राक्षसीं सलिलशायाम् ॥ ३८ ॥

‘वही बोचमें वड़े-पड़े मैंने जब नीचेकी ओर दृष्टि डाली,
तब मुझे एक मयानक राक्षसी दिखायी दी, जो जलमें निवास
करती थी ॥ ३८ ॥

प्रहस्य च महानादमुक्तोऽह भीमया तया ।
अवस्थितमस्तमन्त्रान्तामिदं पाष्यमशोभनम् ॥ ३९ ॥

‘उस भीषण निशाचरीने वड़े जोरसे अट्टहास करके
निर्भय खड़े हुए मुझसे गरज-गरजकर यह अमङ्गलजनक
बात कही— ॥ ३९ ॥

कासि गन्ता महाकायधुधिताया ममेप्सित ।
भक्षः प्रीणय मे देह चिरमाहारयजितम् ॥ ४० ॥

‘‘विद्यालकाय वानर ! वहाँ जाओगे ! मैं भूली हुई हूँ ।
तुम मेरे लिये मनोवाञ्छित भोजन हो । आओ, चिरकालसे
निपहार पड़े हुए मेरे शरीर और प्राणोंको व्रत करो’’ ॥ ४० ॥
बाढमित्येव ता धार्णां प्रत्यशुद्धान्द ततः ।
आर्यप्रमाणान्दधिकं तस्या कायमपूरयम् ॥ ४१ ॥

‘तब मैंने ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसकी बात मान ली
और अपने शरीरको उसके मुखके प्रमाणसे बहुत अधिक
बना लिया ॥ ४१ ॥

तस्याश्वास्य महद् भीमवर्धते मम भक्षणे ।
न तु मा सा तु धुधुचे मम वा त्रिष्टत हृतम् ॥ ४२ ॥

‘परन्तु उसका विद्याल और मयानक मुख भी मुझे
मध्य करनेके लिये बढ़ने लगा । उतने मुझे था मेरे प्रभाव
का नहीं जाना तया मैंने जो छल किया था, वह भी उसकी
छमसमें नहीं आया ॥ ४२ ॥

ततोऽह विपुल रूप सक्षिप्य निमिषा तरात् ।
तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभ रक्षलम् ॥ ४३ ॥

‘फिर तो पलक मारते मारते मैंने अपने निशाक
रूपको अत्यन्त छोटा बना लिया और उसका कलेझ
निशाककर आकाशमें उड़ गया ॥ ४३ ॥
सा विस्तृष्टभुजा भीमा पपात लघणाग्मसि ।
मया पर्वतसकाया निहृच्छद्दया सती ॥ ४४ ॥

‘मेरे द्वारा कलेजे का छिड़ने जानेपर पर्वतके सम
मयानक शरीरवाली वह कुछ राक्षसी अपनी दोनों बाँ
सिधिल हो जानेके कारण समुद्रके जलमें गिर पड़ी ॥ ४४ ॥
शृणोमिन्नगताना च पाव सती भीमा महात्मनाम् ।
राक्षसीं सिद्धिका भीमा क्षिप हनुमता हता ॥ ४५ ॥

‘उस समय मुझे आकाशचारी विद्वद् महात्माओंकी
यह चौम्य वाणी सुनायी दी—‘अहो ! इस सिद्धिका नामवाली
मयानक राक्षसीको हनुमान्जीने शीघ्र ही मार डाला’ ॥ ४५ ॥
सा हत्या पुनरेवाह कृत्यामात्ययिक स्मरन् ।
गत्वा च महदप्यान पश्यामि नगमण्डितम् ॥ ४६ ॥

‘उस मारकर मैंने फिर अपने उस आवश्यक कापपर
ध्यान दिया, जिसकी पूर्वमें अधिक विलम्ब हो चुका था
तब विद्याल मार्गको समस्त करके मैंने पर्वतमालाओं
गण्डित समुद्रका वह दक्षिण किनारा देखा, जहाँ लङ्कापुरी
वसी हुई है ॥ ४६ ॥

अस्त दिनकरे याते रक्षसा निलय पुरीम् ॥ ४७ ॥
प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमनिर्ममैः ।

‘सूर्यदेवके अस्ताचलको चले जानेपर मैंने राक्षसोंकी
निवासस्थानभूता लङ्कापुरीमें प्रवेश किया, किन्तु वे मयानक
पराक्रमी राक्षस मेरे विषयमें कुछ भी जान न सके ॥ ४७ ॥
तत्र प्रविशतयापि कल्पातयनसम्प्रभा ॥ ४८ ॥
अट्टहास विमुञ्चती नारी काप्युत्थिता पुरः ।

‘मेरे प्रवेश करते ही प्रलयकालके मेघवती भौति काली
गन्तिवाली एक स्त्री अट्टहास करती हुई मेरे सामने खड़ी
हो गयी ॥ ४८ ॥

जिघासतीं ततस्ता तु ज्वलद्ग्निसारोक्तहाम् ॥ ४९ ॥
सम्यमुष्टिप्रहारेण पराजित्य सुभैरयाम् ।

‘उसके सिरके बाल प्रज्वलित अग्निये लगातार दितायी
देते थे । वह मुझे मार डालना चाहती थी । यह देख
मैंने बायें हाथके मुक्केसे प्रहार करके उस मयकर
निशाचरीको परास्त कर दिया और प्रदोषकालमें पुरीके

मीतर प्रविष्ट हुआ। उस समय उस हरी हुई निशाचरीने मुझे इस प्रकार कहा—॥ ४९५० ॥

अहं लङ्कापुरी वीर निजिता विक्रमेण ते।

यस्मात् तस्माद् विजेतासि सर्वैरक्षास्यशेषतः ॥ ५१ ॥

‘वीर! मैं साक्षात् लङ्कापुरी हूँ। तुमने अपने पराक्रमसे मुझे जीत लिया है; इसलिये तुम समस्त राक्षसोंपर पूर्णतः विजय प्राप्त कर लोगे’ ॥ ५१ ॥

तत्राह सर्वैरात्र तु विचरन्जनकात्मजाम्।

रावणात् पुरगतो न चापश्य सुमध्यामाम् ॥ ५२ ॥

‘वहाँ सारी रात नगरमें घरघर घूमने और रावणके अन्त पुरमें पहुँचनेपर भी मैंने सुन्दर कटिप्रदेशवाली जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखा ॥ ५२ ॥

ततः सीतामपश्यस्तु रावणस्य निवेशने।

शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्ष्ये ॥ ५३ ॥

‘रावणके महलमें सीताको न देखनेपर मैं शोक-सागरमें डूब गया। उस समय मुझे उस शोकका कहीं पार नहीं दिखायी देता था ॥ ५३ ॥

शोचता च मया दृष्टं प्राकारेणभिसंवृतम्।

काञ्चनेन विवृत्तेन शोषपवनमुष्णमम् ॥ ५४ ॥

‘शोचने पड़े पड़े ही मैंने एक उत्तम शोषधान देखा, जो सोनेके बने हुए सुन्दर परकोठेसे घिरा हुआ था ॥ ५४ ॥

सप्राकारमवल्लुप्य पश्यामि बहुपापवपम्।

अशोकवनिकामध्ये शिशपापादपो महाव ॥ ५५ ॥

‘तब उस परकोठेको लौंघकर मैंने उस शोषधानको देखा, जो बहुलपक्ष्पक्षीसे मरा हुआ था। उस अशोक बाटिकाके बीचमें मुझे एक बहुत ऊँचा अशोक वृक्ष दिखायी दिया ॥ ५५ ॥

तमारुह्य च पश्यामि काञ्चन कदलीवनम्।

अदूराच्छिशपावृक्षाद् पश्यामि वर्यणिनीम् ॥ ५६ ॥

‘उपर चढ़कर मैंने मुजूर्णमय कदलीवन देखा तथा उस अशोक वृक्षके पास ही मुझे श्वेताश्वत्थवृक्ष की सीताजीका दृश्य हुआ ॥ ५६ ॥

श्यामा कमलपत्राक्षीमुपपासहशाननाम्।

तदेकधास सचीता रजोप्यस्तशिरोकहाम् ॥ ५७ ॥

‘वे सदा लेलह बगकी-सी अवस्थासे चुप दिखायी देती हैं। उनके नेत्र प्रज्ज्वल कमलदलके समान सुन्दर हैं। सीताजी उपवास करनेक कारण व्यास त दुःख हो गयी हैं और उनकी यह दुर्बलता उनका मुख देखते ही स्पष्ट हो जाती है। वे एक ही वस्त्र पहने हुए हैं और उनके कंठ धूलसे धूँस हो गये हैं ॥ ५७ ॥

योकसत्पापदीनार्हं सीता भर्तृहिते स्थिताम्।

राक्षसीभिर्विरूपाभि वृत्रभिर्भिसवृणाम् ॥ ५८ ॥
मासशोणितभक्ष्याभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणी यथा।

‘उनके सारे अन्न शोक सत्तापसे दीन दिखायी देते हैं। वे अपने स्वामीके हित चिन्तनमें तत्पर हैं। रक्त-मांसका भोजन करनेवाली क्रूर एवं क्रूरप राक्षसियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर उनकी रखवाली करती हैं। ठीक उसी तरह जैसे बहुत सी बाघिनें किसी हरिणीको घेरे हुए खड़ी हों ॥

सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहर्मुहुः ॥ ५९ ॥

एकवेणीधरा दीना भर्तृच्छितापरायणा।

भूमिशय्या विजृण्णाङ्गी पद्मिनीव हिमाम्बे ॥ ६० ॥

‘मैंने देखा, वे राक्षसियोंके बीचमें बैठी थीं और राक्षसियाँ उन्हें बारबार घमका रही थीं। वे शिरपर एक ही वेणी धारण किये दीनमावसे अपने पतिके चिन्तनमें तल्लीन हो रही थीं। घरती ही उनकी शय्या है। जैसे हेमन्त-ऋतु आनेपर कमलिनी सुलकर भीदीन हो जाती है, उसी प्रकार उनके सारे अन्न कान्तिहीन हो गये हैं ॥ ५९ ६० ॥

रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्त्ये कृतनिश्चया।

कथञ्चिन्मृगशावाक्षीं सूर्णमासादिता मया ॥ ६१ ॥

‘रावणकी आरसे उनका हार्दिक भाव सर्वथा दूर है। वे मरनेका निश्चय कर चुकी हैं। उगी अवनस्थामें मैं किसी तरह शीघ्रतापूर्वक मृगनयनी सीताके पास पहुँच सका ॥ ६१ ॥

ता दृष्ट्वा साहसो नारी रामपत्नीं यशस्विनीम्।

तत्रैव शिशपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थित ॥ ६२ ॥

‘वैसी अवस्थामें पड़ी हुईं उन यशस्विनी नारी श्रीरामपत्नी सीताको अशोकवृक्षके नीचे बैठी देख मैं भी उस वृक्षपर स्थित हो गया और उन्हें वहींसे निहारने लगा ॥ ६२ ॥

ततो हलहलाशब्द काञ्चीनूपुरमिभितम्।

शृणोम्यधिकगम्भीर रावणस्य निवेशने ॥ ६३ ॥

‘इतनेहीमें रावणके मरलमें कचनी और नूपुरोंकी शनकारसे मिला हुआ अधिक गम्भीर कालारु सुनायी पड़ा ॥ ६३ ॥

ततोऽहं परमोद्विग्न स्वरूप प्रत्यसहरम्।

अहं च शिशपावृक्षे पक्षीय गहने स्थित ॥ ६४ ॥

‘फिर तो मैंने अत्यन्त उद्विग्न होकर अपने स्वरूपसे समेट लिया—छाटा बना लिया और पक्षीक समान उस गहन शिंघरा (अशोक) वृक्षमें छिपा बैठा रहा ॥ ६४ ॥

ततो रावणद्वाराद्य रावणस्य महायत्नः।

त देशमनुसम्प्राप्तो यत्र सीताभवत् स्थिता ॥ ६५ ॥

‘इतनेहीमें रावणकी श्रियाँ और महापत्नी रावण—ये

सर्व के-सर्व उव स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ सीतादेवी
विराजमान थी ॥ ६५ ॥

त दृष्ट्वा यत्परोक्षा सीता रक्षोगणेश्वरम् ।
सकुच्योरुस्तनी पीनी पादुभ्या परिरम्य च ॥ ६६ ॥

पासलोकें स्वामी रावणको देखते ही सुन्दर कटि
प्रदेयवाली सीता अपनी बाँधोंको विकोड़कर और उमरे
हुए दोनों सनोको मुखाओसे टककर बैठ गयी ॥ ६६ ॥

विप्रस्ता परमोद्धिद्रा धीक्ष्यमाणामितस्तत् ।
प्राण कचिदपश्यन्तो वेपमाना तपस्विनीम् ॥ ६७ ॥

तामुवाच दशग्रीय सीता परमदुःखिताम् ।
अवाकिशरा प्रपतितो बहुमयस्य मामिति ॥ ६८ ॥

वे अत्यंत मयमोत और उद्ध्विग होकर इधर उधर
देखने लगीं । उन्हें कोई भी अपना रक्षक नहीं दिखायी
देता था । मयसे सँपटी हुई अत्यन्त दुःखिनी तपस्विनी
सीताके धामने का दशमुख रावण नीचे खिंचे उनके
चरणोंमें गिर पड़ा और इत प्रकार बोला—‘विदेहकुमारी ।
मैं तुम्हारा सेवक हूँ । इस मुझे अधिक आदर दो’ ॥ ६७ ६८ ॥

यदि चेद्वत् तु मा दशप्राभिमन्दसि गर्विते ।
द्रिमासानन्तरं सीते पास्यामि कश्चिदपि तव ॥ ६९ ॥

‘(इतनेपर भी अपने प्रति उनकी उपेक्षा देख वह
कुपित होकर बोला—) ‘गर्वाली सीते ! यदि तू धमकमें
आकर मेरा अभिनन्दन नहीं करेगी तो आजसे दो महीनेके
बाद मैं तेरा खून पी जाऊँगा’ ॥ ६९ ॥

पचक्षुष्ट्वा वचस्तस्य रावणस्य तुरागमन ।
उवाच परममुक्ता सीता वचनमुत्तमम् ॥ ७० ॥

‘तुरागम रावणकी यह बात सुनकर सीताने अत्यन्त
कुपित हो यह उत्तम वचन कहा—’ ॥ ७० ॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजस ।
इक्ष्वाकुचशानाधस्य स्नुषा दशरथस्य च ॥ ७१ ॥

अवाच्य वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव ।
‘‘नीच निशाचर ! अमिततेजस्वी भगवान् श्रीरामकी
पत्नी और इक्ष्वाकुकुलके स्वामी महाराज दशरथकी पुत्र
नरुते यह न कहे शायं बात कहते समय तेरी भीम करो
नहीं गिर गयी ! ॥ ७१ ॥

किंलिखीयं त्वानाय ये मा भनुरसनिधौ ॥ ७२ ॥
अपहृष्ट्यागत पाप तेनादष्टो महात्मना ।
‘‘दुष्ट पापी ! तुझमें क्या परमकर्म है ! मेरे पतिदेव
जब निरुक्त नहीं थे, तब तू उन महात्माकी दृष्टिसे छिपकर
चोरी-चोरी मुझे हर लाया ॥ ७२ ॥

न त्वरामस्य सदृशो राक्षस्येऽप्यस्य न युज्यसे ॥ ७३ ॥
अत्रेयाः सत्यवाक् शूरो रणश्लाघी च रामय ।
‘‘तुम रामस्य सदृशो राक्षस्येऽप्यस्य न युज्यसे ॥ ७३ ॥
अत्रेयाः सत्यवाक् शूरो रणश्लाघी च रामय ।

‘‘तू भगवान् श्रीरामकी समानता नहीं कर सकता ।
तू तो उनका दास होने योग्य भी नहीं है । भोरधुनायभी
सवथा अत्रेयः सत्यमापी, शूरवीर और युद्धके अभिलाषी
एव प्रसक्त है ॥ ७३ ॥

जानक्या पठ्य वाक्यमेवमुचो दशानन ॥ ७४ ॥
जज्वाल सहसा कोपाचितास्य इव पावक ।
विवृत्य नयने हरे मुष्टिमुचम्य दक्षिणम् ॥
मैथिलीं हतुमारुघ्य स्त्रीभिर्हाहृत तदा ।
स्त्रीणामप्यावुसमुपत्यतस्य भार्यां तुरागमनः ॥
वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिवेधितः ।
उल्लङ्घ्य मधुरा वार्णां तया स मदनादितः ॥ ७५ ॥

‘‘जनकनिदिनीके ऐसा कठोर बात कहनेपर दया
रावण बितामें लगी हुई आगकी भाँति सहसा क्रोधसे जल उ-
भर और अपनी मूर्त ओंति पाद काङ्कर देखता हुआ दाहिने
मुका तानकर निषिद्धेकुमारीको मारनेके लिये तैयार हो
गया । यह देख उस समय वहाँ खड़ी हुई स्त्रियों हाहाकार
करने लगीं । इतनेहीमें उन स्त्रियोंके बीचसे उस तुरागमकी
सुन्दरी भार्या मन्दोदरी झपटकर आगे आयी और उसने
रावणकी ऐसा करनेसे रोका । साथ ही, उस कामपीड़ित
निशाचरसे मधुर वाणीमें कहा— ॥ ७४-७५ ॥

सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम ।
मया सह रमत्साध मद्रिशिष्टा न जानकी ॥ ७८ ॥

‘‘महेन्द्रके समान पराकमी राक्षसराज ! सीतासे तुम्हें
क्या काम है ! आब मेरे साथ रमण करो । जनकनिदिनी
सीता तुझसे अधिक सुन्दरी नहीं है ॥ ७८ ॥

देवगर्ध्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरिव च ।
सार्धं प्रभो रमस्वेति सीतया किं करिष्यसि ॥ ७९ ॥

‘‘प्रभो ! देवताओं, गणवों और यक्षोंका साथ
है, इनके साथ रमण करो सीताको लेकर क्या करोगे ? ॥
ततस्तस्मिन् समेतानिनांरौभि स्त महाधल ।
उत्थाप्य सहसा नीतो भवनस्य निशाचरः ॥ ८० ॥

‘‘उदनन्तर वे सब स्त्रियों मिलकर उस महाधली
निशाचर रावणको उधरा बहाते उठाकर अपने महारम
ले गयीं । ८ ॥

याते तस्मिन् दशग्रीये राक्षस्यो विहृतानना ।
सीता निर्मत्सवाभासुवाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ॥ ८१ ॥

दशमुख रावणके चले जानेपर विक्राल मुखवाली
राक्षसीयों अत्यंत दारुण मूर्तापूर्ण वचनोंद्वारा सीताको
हराने चमकाने लगीं ॥ ८१ ॥

एणवद् भाषित तासा गणयामास जानकी ।
गर्जित व तया तासा सीताप्राप्य निरपचम् ॥ ८२ ॥

एणवद् भाषित तासा गणयामास जानकी ।
गर्जित व तया तासा सीताप्राप्य निरपचम् ॥ ८२ ॥

‘परतु जानकीने उनकी बातोंको तिनकेके समान तुच्छ समझा । उनका सारा गर्जन-तर्जन सीताके पास पहुँचकर व्यर्थ हो गया ॥ ८२ ॥

धृष्या गर्जितनिष्प्रेष्टा राक्षस्य पिशिताशना ।
रावणाय शशसुस्ता सीताव्ययसित महत् ॥ ८३ ॥

‘इस प्रकार गवना और सारी चेष्टाओंके व्यर्थ हो जानेपर उन माघमक्षिणी राक्षसियोंने राक्षसके पास जाकर उसे सीताका कहान् निश्चय कह सुनाया ॥ ८३ ॥

सतस्ता सहिता सर्वा विहताशा निरुद्यमाः ।
परिक्षिप्य समस्तास्ता निद्रावशमुपागता ॥ ८४ ॥

‘फिर वे सब-की-सब ठहरे अनेक प्रकारसे कष्ट दे हताश तथा उद्योगरहित हो निद्राके बधीभूत होकर सो गयीं ॥ ८४ ॥

तासु चैव प्रसुतासु सीता भर्तृहिते रता ।
विलप्य कृष्ण दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ॥ ८५ ॥

‘उन सबके सो जानेपर पतिके हितमें तत्पर रहनेवाली सीताभी कृष्णापूर्वक विलापकर अत्यन्त दीन और दुखी हो रोकर करने लगीं ॥ ८५ ॥

तासा मध्याह्न समुत्थाप भिज्जटा वाक्यमप्रचीत् ।
आत्मान धावत क्षिप्र न सीतामसितेक्षणाम् ॥ ८६ ॥
जनकस्यात्मजा साध्वी स्तुपा दशरथस्य च ।

‘उन राक्षसियोंके बीचसे भिज्जटा नामवाली राक्षसी उठी और अन्य निशाचरियोंसे इस प्रकार बोली—‘अभी । तुम सब अपने आपको ही जल्दी जल्दी खा जाओ, क्योंकि नेत्रोंवाली सीताको नहीं । ये राजा दशरथकी पुत्रवधू और जनककी स्वदुखी सती साध्वी सीता इस योग्य नहीं हैं ॥ ८६ ॥

स्वज्जो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहृषण ॥ ८७ ॥
रक्षसा च विनाशाय भर्तुरस्या जयाय च ।

‘आज अभी मैंने बड़ा मयकर तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाला स्वप्न देखा है, ॥ राक्षसोंके विनाश तथा इन सीतादेवीके पतिकी विजयका सूचक है ॥ ८७ ॥

अलमस्मान् परित्रातु राघवाद् राक्षसीगणम् ॥ ८८ ॥
अभिपाचाम यैदेहीमेतस्मि मम रोचते ।

‘ये सीता ही भोखुनापत्रके रोपसे हमारी और इन सब राक्षसियोंकी खा करनेमें समर्थ हैं, अतः हमलोग विदेह नन्दिनीसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा याचना करें—यही मुझे अच्छा लगता है ॥ ८८ ॥

यदि होयविध स्वज्जो दुर्मितायाः प्रहृष्यते ॥ ८९ ॥
सा दुःखैर्विधिमुक्ता सुप्रमाणोयनुसमम् ।

‘यदि किसी ऋषिनीके स्निग्धमें ऐसा स्वप्न देखा जाता है तो वह अनेक विधनु खोमे दृष्टकर परम उत्तममुख पाती है ८९ ॥
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकामजा ॥ ९० ॥

अलमेपा परित्रातु राक्षस्यो महतो भयात् ।

‘‘राक्षसियों । केवल प्रणाम करनेमात्रसे मिथिलेशकुमारी जानकी प्रचन हो जायँगी और ये महान् मयसे मेरी खा करेंगी ॥ ९ ॥

ततः सा हीमती बाला भतुर्विजयहर्षिता ॥ ९१ ॥
अयोधेयं यदि तत् तस्य भवेय शरणं हि व ।

‘तब लज्जालती बाला सीता पतिकी निषयकी सम्भावनासे प्रचन्न हो बोली—‘यदि यह बात सच होगी तो मैं अवश्य तुमझागोंकी खा करूँगी ॥ ९१ ॥

ता चाह तादृशी दृष्ट्वा सीताया दारुणा दशाम् ॥ ९२ ॥
चिन्तयामास विधान्तो न च मे निर्धुत मन ।
सम्भाषणार्थं च मया ज्ञानक्यास्त्रिन्तितो विधि ॥ ९३ ॥

‘कुछ विश्रामक पश्चात् मैं सीताकी वैसी दारुण दशा देखकर बड़ी चिन्तामें पड़ गया । मेरे मनको शान्ति नहीं मिलती थी । फिर मैंने जानकीजीके साथ बातलाप करनेके लिये एक उपाय सोचा ॥ ९२ ॥

इवाकुकुलवशस्तु स्तुतो मम पुरस्सृत ।
श्रुत्वा तु गदिता वाच राजर्षिगणभूषिताम् ॥ ९४ ॥
प्रत्यभापत मा देवी वार्ष्णेः पिहितलोचना ।

‘पहले मैंने इवाकुलवशकी प्रशंसा की । राजर्षियोंकी स्तुतिसे विभूषित मेरी वह वार्ष्णी मुनकर देवी सीताके नेत्रोंमें ओम् भर आया और वे मुझसे बोलीं— ॥ ९४ ॥

वस्य केन कथं खेदं प्राप्तो वानरपुङ्गव ॥ ९५ ॥
का च रामेण ते प्रीतिस्ते मे शस्तिनुमहसि ।

‘‘कपिश्रेष्ठ । तुम कौन हो ? किन्तु तुम्हें भेजा है ? यहाँ कैसे आये हो ? और भगवान् श्रीरामके साथ तुम्हारा कैसा प्रेम है ? यह सब मुझे बताओ ॥ ९५ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा बहमप्यनुव वच ॥ ९६ ॥
देखि रामस्य भनुस्ते सहायो भीमविप्रम ।
सुप्राप्तो नाम विष्णोः धारणेन्द्रो महाबल ॥ ९७ ॥

‘‘उनका वह वचन सुनकर मैंने भी कहा— देवि । तुम्हारे पतिदेव श्रीरामक सहायक एक मयकर पराक्रमी दल विक्रमसम्पन्न महाबली वानरराज हैं, बिनका नमः सुप्रोप है ॥ ९६ ॥

तस्य मा विद्धि भृत्यं त्वं हनुमन्तमिहागतम् ।
भजा सम्प्रहितस्तुभ्य रामेणाङ्घ्रिप्टकमणा ॥ ९८ ॥

‘‘उहाँका मुझे सेवक समझो । मेरा नाम हनुमान् है । अनायास ही महान् कर्म करनेवाण तुम्हारे पति श्रीरामने भेजा है । इहलिये मैं यहाँ आया हूँ ॥ ९८ ॥

इत्तु पुरुषव्याघ्रः श्रीमान् दाशरथि स्वयम् ।
अहूल्यमभिज्ञानमदात् तुभ्यं यशस्विनि ॥ ९९ ॥

‘‘मशस्विनि । पुरुषसिंह दशरथनन्दनः सखात् श्रीमान्
रामने पहचानके लिये यह अँगूठी मुझें दी है ॥ १९ ॥

तदिच्छामि त्वयाक्षतं देवि किं करवाण्यहम् ।

रामलक्ष्मणयोः पार्श्वे नयामि त्वा किमुत्तरम् ॥ १०० ॥

‘‘देवि । मैं चाहता हूँ कि आप मुझे आशा दें कि मैं
आपकी क्या सेवा करूँ ? आप कहें तो मैं अभी आपको
भीराम और लक्ष्मणके पास पहुँचा दूँ । इस विषयमें आपका
क्या उत्तर है ? ॥ १०० ॥

एतच्छ्रुत्वा चित्त्वा च सीता जनकनन्दिनी ।

आह रावणमुत्पादय राघवो मा नयतिवति ॥ १०१ ॥

‘‘मेरी यह बात सुनकर और सोच-समझकर जनकनन्दिनी
सीताने कहा—‘‘मेरी इच्छा है कि भीरघुनायजी रावणका
संहार करके मुझे यहाँ से चले ॥ १०१ ॥

प्रणम्य शिरसा देवीमहमायामनिन्दिताम् ।

राघवस्य मनोह्लादमभिधानमयाचिषम् ॥ १०२ ॥

‘‘तब मैंने उन सती-साखी देवी आर्या सीताको सिर
झुकाकर प्रणाम किया और कोई ऐसी पहचान माँगी, जो
भीरघुनायजीके मनको आनन्द प्रदान करनेवाली हो ॥ १०२ ॥

अथ मामग्रवीत् सीता गृहतामयमुचम ।

मणिर्येन महाबाहु रामस्त्वा यहू मन्यते ॥ १०३ ॥

‘‘मेरे माँगेपर सीताजीने कहा—‘‘लो, यह उत्तम चूड़ा-
मणि है, जिसे पाकर महाबाहु भीराम तुम्हारा विशेष आदर
करेंगे ॥ १०३ ॥

इत्युक्त्वा तु वरारोहः मणिप्रवरमुचमम् ।

प्रायच्छत् परमोक्षिना याचा भासविदेवशः ॥ १०४ ॥

‘‘ऐसा कहकर सुन्दरी सीताने मुझे वह परम उत्तम चूड़ा
मणि दी और अत्यन्त उद्धिग्ण होकर वाणीद्वारा अपना सदेव
कहा ॥ १०४ ॥

ततस्तस्यै प्रणम्याह राजपुत्र्यै समाहितः ।

प्रदक्षिणं परिक्राममिहाम्युन्नतमानसः ॥ १०५ ॥

‘‘तब मन ही-मन यहाँ आनेके लिये उत्सुक हो एकाम
चिह्न होकर मैंने राजकुमारी सीताका प्रणाम किया और
उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की ॥ १०५ ॥

उत्तरं पुनरेवाह निश्चित्य मनसा तदा ।

हनुमन् मम वृत्तात् जकुमहसि राघवे ॥ १०६ ॥

यथा ध्रुवैश्च नचिरात् तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।

सुमीवसदितौ वीरादुपेयाता तथा कुङ्कु ॥ १०७ ॥

‘‘उस समय उन्होंने मनसे कुछ निश्चय करके पुनः मुझे
उत्तर दिया—‘‘हनुमन् । इस भीरघुनायजीके मेरा सारा
इच्छान्त सुनाना और ऐसा प्रयत्न करना, जिससे सुमीवसदित

वे दोनों वीर-घु भीराम और लक्ष्मण मेरा हाल सुनते ही
अविलम्ब यहाँ आ जायें ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

यद्ययथा भवेदेतद् द्वौ मासौ जीवितं मम ।

न मा द्रक्ष्यति काकुत्स्थो द्रिये साहमनायवत् ॥ १०८ ॥

‘‘यदि इसके विपरीत हुआ तो दो महीनेतक मेरा जीवन
और शेष है । उसके बाद भीरघुनायजी मुझे नहीं देख सकेंगे ।
मैं अनायकी भौति मर जाऊँगी ॥ १०८ ॥

तच्छ्रुत्वा कण्ठं वाक्प्य कोधो मामम्यवर्तत ।

उत्तरं च मया हृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् ॥ १०९ ॥

‘‘उनका यह कण्ठाजनक वचन सुनकर राक्षसोंके प्रति
मेरा क्रोध बहुत बढ़ गया । फिर मैंने शेष बचे हुए भावी
कार्यपर विचार किया ॥ १०९ ॥

ततोऽवर्धत मे कायस्तत्र पयतसनिभः ।

युष्माकाक्षी वन तस्य विनाशयितुमारने ॥ ११० ॥

‘‘उदन्तर मेरा शरीर बढ़ने लगा और तत्काल पर्वतके
समान हो गया । मैंने युद्धकी इच्छासे रावणके उस वनको
उजाड़ना आरम्भ किया ॥ ११० ॥

तद् भग्नं वनखण्डं तु भ्रान्तप्रस्तम्भद्विजम् ।

प्रतिशुद्धं निरीक्षन्ते राक्षसो विकृतानना ॥ १११ ॥

‘‘जहाँके पशु और पक्षी बचगये और डरे हुए थे, उस
उजड़े हुए वनखण्डको वहाँ से उठाई हुई विकृत मुख
वाली राक्षसियोंने देखा ॥ १११ ॥

मा च हृष्टा वने तस्मिन् समामम्य ततस्ततः ।

ता समम्यागता क्षिप्रं रावणायाचक्षक्षिरे ॥ ११२ ॥

‘‘उस वनमें मुझे देखकर वे सब इधर उधरसे छुट गयीं
और द्रुत रावणके पास जाकर उन्होंने वनविषयका सारा
समाचार कहा— ॥ ११२ ॥

राजन् वममिदं दुर्गं तव भग्नं पुरातमना ।

वानरेण हाविषाय तव वीर्यं महाबल ॥ ११३ ॥

‘‘महाबली राक्षसराज । एक पुरातना वानरने आपके
बल-पराक्रमको कुछ भी न समझकर इस दुर्गम प्रमदावनको
उजाड़ डाला है ॥ ११३ ॥

तस्य दुर्बुद्धितया राजस्तव विभियकारिणः ।

वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथासौ न पुनर्मर्जेत् ॥ ११४ ॥

‘‘महाराज । यह उसकी दुर्बुद्धि ही है, जो उसने आप
का अपराध किया । आप शीघ्र ही उसके वधकी आज्ञा दें,
जिसे वह फिर बचकर बला न जाय ॥ ११४ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विस्मृता बहुदुर्जया ।

राक्षसाः किंरा नाम राघणस्य मनोऽनुया ॥ ११५ ॥

‘यह सुनकर राक्षसराजने अपने मनके अनुकूल चलने वाले किंकर नामक राक्षसोंको भेजा, जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन था ॥ ११५ ॥

तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्ररूपाणिनाम् ॥ ११६ ॥
मया तस्मिन् धनोद्देशे परिधेण निपूयितम् ॥ ११६ ॥

‘ये शायेंगे शूल और मुद्रर लेकर आये थे । उनकी सख्या अच्छी हजार थी, परन्तु मैंने उस वनप्रान्तमें एक परिधे ही उन सबका संहार कर डाला ॥ ११६ ॥

तेषां तु हतशिष्टा ये ते गताः सधुषिकमा ।
निहतं च मया सैन्यं राक्षणायाचक्षिरे ॥ ११७ ॥

‘उनमें जो मरनेसे बच गये, वे बलदी जल्दी पैर बढ़ाते हुए भाग गये । उन्होंने रावणको भेरेहारा घारी सेनाके बारे जानेका समाचार बताया ॥ ११७ ॥

ततो मे सुखितरपन्ना चैत्यप्रासादमुत्तमम् ।
तत्रस्थान् राक्षसान् हतवांशतस्तप्तेन वै पुनः ॥ ११८ ॥
ललाममृतो लङ्काया मया विध्वंसितो रुपा ।

‘तबभ्रातृ मेरे मनमें एक नया विचार उत्पन्न हुआ और मैंने शेषपूवक वहाँके उत्तम चैत्यप्रासादको, जो लङ्काका सबसे सुन्दर भवन था तथा जिसमें छो खम्भे लगे हुए थे, वहाँके राक्षसोंका संहार करके तोड़-फोड़ डाला ॥ ११८ ॥

ततः प्रहस्तस्य द्युत जम्बुमालिनमादिशत् ॥ ११९ ॥
राक्षसैर्बहुभिः सार्धं घोररूपैर्मयानकैः ।

‘तब रावणने घोर रूपवाले मयानक राक्षसोंके साथ बिनकी सख्या बहुत अधिक थी, प्रहस्यके बेटे जम्बुमालीकी युद्धके लिये भेजा ॥ ११९ ॥

तमहं बलसम्पन्नं राक्षसं रणकोविदम् ॥ १२० ॥
परिधेणातिघोरेण सुदयामि सद्धानुगम् ।

‘यह राक्षस बड़ा बलवान् तथा युद्धकी कलामें कुशल था वो भी मैंने अत्यन्त घोर परिधे मारकर सेवकोंवहित उठे काळके गालमें डाल दिया ॥ १२० ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसे प्रेम्स्तु मन्त्रिपुत्रान् महाबलान् ॥ १२१ ॥
पदातिबलसम्पन्नान् प्रेषयामास रावण ।
परिधेणैव तान् सर्वान् नयामि यमसादनम् ॥ १२२ ॥

‘यह सुनकर राक्षसराज रावणने वैदल सेनाके साथ अपने मन्त्रीके पुत्रोंको भेजा, जो बड़े बलवान् थे किन्तु मैंने परिधे ही उन सबको यमलोक में भेज दिया ॥ १२१-१२२ ॥

मन्त्रिपुत्रान् हताङ्गुत्वा समरे लघुषिकमान् ।
पञ्च सेनाप्रमाण्डूरान् प्रेषयामास रावण ॥ १२३ ॥

‘समराङ्गणमें क्षीमतापूर्वकपराक्रम प्रकट करनेवाले मन्त्रि कुमारोंको मारा गया सुनकर रावणने पाँच छद्मशिर सेना पतियोंको भेजा ॥ १२३ ॥

तानह सहसैन्यान् वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् ।
ततः पुनर्दशग्रीष पुत्रमक्ष महाबलम् ॥ १२४ ॥
बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रेषयामास सगुणे ।

‘उन सबको भी मैंने सेनासहित मौतके घाट उतार दिया । तब दशमुख रावणने अपने पुत्र महाबली अक्षकुमार को बहुसंख्यक राक्षसोंके साथ युद्धके लिये भेजा ॥ १२४ ॥

तं तु मन्दोदरीपुत्रं कुमारं रणपण्डितम् ॥ १२५ ॥
सहसा च समुद्यतं पादयोश्च गृहीतवान् ।
तमासीनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेययम् ॥ १२६ ॥

‘मन्दोदरीका वह पुत्र युद्धकी कलामें बढ़ा प्रवीण था । वह आकाशमें उड़ रहा था । उसी समय मैंने सहसा उसके दोनों पैर पकड़ लिये और वो बार घुमाकर उसे धृष्णीपर पटक दिया । इस तरह वहाँ पड़े हुए कुमार अक्षको मैंने पीछ डाला ॥ १२५-१२६ ॥

तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशानन ।
ततश्चेन्म्रमितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् ॥ १२७ ॥
व्यादिदेश सुसकुन्दो यलिनं युद्धदुर्मदम् ।

‘अक्षकुमार युद्धभूमिमें आया और मारा गया—यह सुनकर दशमुख रावणने अत्यन्त क्रुपित हो अपने दूसरे पुत्र हन्द्रवित्तको, जो बड़ा ही रणदुर्मद और बलवान् था, भेजा ॥ १२७ ॥

तस्याप्यहं यत् सर्वं तच्च राक्षसपुङ्गवम् ॥ १२८ ॥
मण्डोजसं रणे कृत्वा परं हयमुपागतम् ।

‘उसके साथ आयी हुई सारी सेनाको और उस राक्षस शिरोमणिको भी युद्धमें हतोत्साह करके मुझे बढ़ा हर्ष हुआ ॥ १२८ ॥

महतापि महाबाहु प्रत्ययेन महाबल ॥ १२९ ॥
प्रहितो रावणेनैव सह धीरैर्मदोद्धतैः ।

‘रावणने इस महाबली महाबाहु धीरोंके अनेक मदमत्त धीरोंके साथ बड़े विश्वाससे भेजा था ॥ १२९ ॥

सोऽधिपश्च हि मां बुद्ध्या स्वसैन्यं चावमर्दिताम् ॥ १३० ॥
महाणोऽखेण स तु मां प्रबद्ध्वा घातियोगिन ।

रज्जुभिश्चापि यम्रति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥ १३१ ॥

‘हन्द्रवित्तने देखा, मेरी सारी सेना कुचल डाली गयी, तब उसने समझ लिया कि इस धानरका धामना करना असम्भव है । अतः उसने बड़े वेगसे मद्राक्ष पलाकर मुझे बाँध लिया । फिर तो वहाँ राक्षसोंने मुझे रस्सियोंसे भी बाँधा ॥ १३०-१३१ ॥

रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपागमन् ।
बध्ना सम्भाषितश्चाह रावणेन दुरात्मना ॥ १३२ ॥

पृष्ठश्च लङ्कागमन राक्षसानां च त यधम् ।

तत्सर्थं च रणे तत्र सीतार्थमुपजत्पितम् ॥१३३॥

‘इस तरह मुझे पकड़कर वे सब रावणके समीप ले आये । दुरात्मा रावणने मुझे देखकर बातालाप आरम्भ किया और पूछा—‘तू लङ्कामें क्यों आया ? तथा राक्षसोंका क्या करने का किया ?’ मैंने वहाँ उत्तर दिया, ‘यह सब कुछ मैंने सीताजीके लिये किया है’ ॥ १३२ १३३ ॥

तस्यास्तु दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भवन विभो ।

माकृतस्यौरस पुत्रो यानरो हनुमानहम् ॥१३४॥

रामदूतं च मा विद्धि सुग्रीवसचिध कपिम् ।

सोऽहं दीव्येन रामस्य त्वत्सकाशमिहागतः ॥१३५॥

‘प्रभो ! जनकनन्दिनीके दर्शनकी इच्छासे ही मैं तुम्हारे महलमें आया हूँ । मैं वायुदेवताका औरस पुत्र हूँ, जातिका बानर हूँ और हनुमान् मेरा नाम है । मुझे श्रीरामचन्द्रजीका दूत और सुग्रीवका मन्त्री समझो । श्रीरामचन्द्रजीका दूत कार्य करनेके लिये ही मैं यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ ॥ १३४ १३५ ॥

शृणु चापि समादेशं यदहं प्रपद्यमि ते ।

राक्षसेषु हरीशस्या वाक्यमाह समाहितम् ॥१३६॥

‘तुम मेरे सामीप्य लक्ष्य, जो मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो । राक्षसराज ! बानरराज सुग्रीवने तुमसे एकामगपुर्वक जो बात कही है, उसपर ध्यान दो ॥ १३६ ॥

सुग्रीवश्च महाभागः स त्वा कौशलमवधीत् ।

धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुवाच ॥१३७॥

‘महाभाग सुग्रीवने तुम्हारी कुशल पूछी है और तुम्हें सुनानेके लिये यह धर्म, अथ एव कामसे युक्त हितकर तथा कामदायक बात कही है— ॥ १३७ ॥

घसन्तो अग्रप्यमूके मे पर्यंत विपुलद्रुमे ।

राघवो रणविक्रांतो मित्रत्वं समुपागतः ॥१३८॥

‘जब मैं बहुदृष्ट्यक्त वृक्षोंसे हरे भरे अग्रप्यमूक पथपर निवास करता था, उन दिनों रणमें महाव पराक्रम प्रकट करनेवाले रघुनाथजीने मेरे साथ मित्रता स्थापित की थी ॥ १३८ ॥

तेन मे कथित राजन् भार्गो मे रक्षसा हता ।

तत्र साहाय्यहेतोर्मै समयं कनुमर्हसि ॥१३९॥

‘राजन् ! उन्होंने मुझे बताया कि ग्राह्य रावणने मेरी पत्नीका हर लिया है । उसके उद्धारके कर्ममें सहायता करनेके लिये तुम मेरे सामने प्रतिष्ठा करो’ ॥ १३९ ॥

वालिनो हतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभु ।

वकेऽश्लिषाक्षिक सख्यं राघवः सहलक्ष्मण ॥१४०॥

‘वालीने जिनका राज्य छीन लिया था, उन सुग्रीवक

साथ (अर्थात् मेरे साथ) लक्ष्मणसहित भगवान् भीरामने अग्निमें वासी बनाकर मित्रता की है ॥ १४० ॥

तेन वालिनमाहृत्य शरेणैवेन सयुगे ।

यानराणां महाराजं कृतः सम्प्लवता प्रभु ॥१४१॥

‘श्रीरघुनाथजीने युद्धस्वरूपमें एक ही बाणसे वालीको मारकर सुग्रीवको (युद्धको) उछलने कूदनेवाले बानरोंका महाराज बना दिया है ॥ १४१ ॥

तस्य साहाय्यमस्माभि कार्यं सचात्मना त्विह ।

तेन प्रस्थापितस्तुभ्य समीपमिह धमतः ॥१४२॥

‘अन हमलाओंको सम्पूर्ण हृदयसे उनकी सहायता करनी है । यही सोचकर सुग्रीवने धर्मानुसार मुझे तुम्हारे पास भेजा है ॥ १४२ ॥

क्षिप्रमातीयतां सीता दीयता राघवस्य च ।

यायन्न हृत्पयो वीरं विधमन्ति यत्नं तथ ॥१४३॥

‘उनका कहना है कि तुम द्रुत सीताको ले आओ और जबतक वीर बानर तुम्हारी सेनाका रुद्धार नहीं करते हैं तभीतक उन्हें श्रीरघुनाथजीको लौप दो ॥ १४३ ॥

यानराणां प्रभावोऽयं न केन विदितः पुरा ।

देषतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः ॥१४४॥

‘कौन ऐसा वीर है जिस बानरोंका यह प्रभाव पहलसे ही ज्ञात नहीं है । ये वे ही बानर हैं, जो युद्धके लिये निमन्त्रित होकर देवताओंके पास भी उनकी सहायताके लिये जाते हैं’ ॥ १४४ ॥

इति बानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया ।

मामैक्षत ततो रुष्टश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥१४५॥

‘इस प्रकार बानरराज सुग्रीवने तुमसे उद्देश कहा है । मेरे इतना कहते ही रावणने रुष्ट होकर मुझे इस तरह देखा, मानो अपनी दृष्टिसे मुझे दग्ध कर डालेगा ॥ १४५ ॥

तेन यथोऽहमाकृतो रक्षसा रौद्रकर्मणा ।

मरप्रभावमविज्ञाय राघवेन दुरात्मना ॥१४६॥

‘प्रत्येक काम करनेवाले दुरात्मा राघव रावणने मेरे प्रभावको न जानकर अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी कि इस बानरका (मेरा) वध कर दिया जाय ॥ १४६ ॥

ततो विभीषणो नाम तस्य भ्राता महामति ।

तेन राक्षसराराजश्च याचितो यम कारणात् ॥१४७॥

‘तब उसके परम बुद्धिमान् भाई विभीषणने मेरे लिये राक्षसराज रावणसे प्रार्थना करते हुए कहा— ॥ १४७ ॥

नैव राक्षसशत्रुत्वं त्वज्यतामय निक्षय ।

राजशास्त्रव्यपेता हि मायः सलक्ष्यते त्वया ॥१४८॥

‘राक्षसशिरोमणे ! एसा करना उचित नहीं है । आप

अग्ने हम् निधयको रत्नग दीजिये । आपकी दृष्टि इस समय
राजनीतिके विरुद्ध मार्गपर जा रही है ॥ १४८ ॥

दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।
दूतेन वेदितव्यं च यथाभिहितवादिना ॥ १४९ ॥

‘‘माधवराज । राजनीति-सम्बन्धी शास्त्रोंमें कहीं भी दूतके
वधका विधान नहीं है । दूत तो वही कहता है, वेश कदूनेके
झिये उसे बताया गया होता है । उसका कर्तव्य है कि वह
अपने स्वामीके अभिप्रायका ज्ञान करा दे ॥ १४९ ॥

सुमहत्पराधेऽपि दूतस्यातुल्यविक्रम ।
विरूपकरणेन दृष्टं न धनोऽस्ति हि शास्त्रतः ॥ १५० ॥

‘‘अनुपम पराक्रमी कीर । दूतका महान् अपराध होनेपर
भी शास्त्रों उसके वधका दण्ड नहीं देखा गया है । उसके
किसी अङ्गको विकृत कर देनामात्र ही बताया गया है ॥ १५० ॥

विभीषणनैवमुको रावण सद्विदेश तान् ।
राक्षसानेतदेवाद्य लाङ्गूलं दक्षतामिति ॥ १५१ ॥

‘‘विभीषणके ऐसा कहनेपर रावणने उन राक्षसोंको आहवा
दी—‘‘अच्छा तो आज इसकी यह पूँछ ही बना दो ॥ १५१ ॥

तनस्तस्य ध्वजं श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः ।
वेष्टितं शणवदक्षैश्च पट्टैः कार्पासकैस्तथा ॥ १५२ ॥

‘‘उसकी यह आज्ञा सुनकर राक्षसोंने मेरी पूँछमें सब
ओरसे सुनरीकी रस्तियों तथा रेशमी और सूती कपड़े लपेट
दिये ॥ १५२ ॥

राक्षसा सिद्धसनादास्ततस्ते खण्डविग्रहाः ।
तदादीप्यन्त मे पुच्छं हनन्तं काष्ठमुष्टिभिः ॥ १५३ ॥

‘‘इस प्रकार बाँध देनेके पश्चात् उन प्रचण्ड पराक्रमी
राक्षसोंने काठके ढंढों और मुक्कड़ोंके भारसे हुए मेरी पूँछमें
आग लगा दी ॥ १५३ ॥

बद्धस्य यदुभिः पादौर्वचिव्रतस्य च राक्षसैः ।
न मे पीडाभवत् काचिद् दिक्षुनगरां दिशा ॥ १५४ ॥

‘‘मैंने दिनमें लङ्कापुरीको अच्छी तरह देखना चाहता था,
इसलिये राक्षसोंद्वारा बद्धतयी रस्तियोंसे बाँधे और कड़े जनेपर
भी मुझे काद पीडा नहीं हुई ॥ १५४ ॥

ततस्ते राक्षसाः दूरा पद्म भामग्निसततम् ।
मधोययन् राजमार्गे नगरद्वारमागता ॥ १५५ ॥

‘‘तत्पश्चात् नगरद्वारपर आकर वे शरीर राक्षस पूँछमें
लगी हुई आगसे घिरे और वैसे हुए मुक्तकी तरहकपर
पुमाते हुए धन और भरे अपराधकी भेजना करने
लगे ॥ १५५ ॥

ततोऽहं सुमहद्वारं सन्निपत्य पुनरात्मनः ।
विमोचयित्वा तं पद्मं प्रहृष्टस्य स्थितं पुनः ॥ १५६ ॥

‘‘इतनेहीमें अपने उमंगाल रूपके अनुचित करके
मैंने अपने आपको उस वधनेसे छुड़ा लिया और फिर
स्वाभाविक रूपमें आकर मैं वहाँ रुका हो गया ॥ १५६ ॥

आयस्य परिधं गृह्य तानि रक्षास्यसुदयम् ।
तनस्तनमगच्छार वेगनं स्तुतयानहम् ॥ १५७ ॥

‘‘फिर पाटकपर रखत हुए एक लाहिके परिधको उठाकर
मैंने उन सब राक्षसोंको भार डाला इसके बाद बड़े वेगसे
कूत्कर मैं उस नगरद्वारपर चला गया ॥ १५७ ॥

पुच्छेन च प्रदीप्तं तां पुरीं साष्टगोपुरात् ।
दहाम्यहमसम्भ्रातो युगान्ताग्निरिव प्रजा ॥ १५८ ॥

‘‘तत्पश्चात् समस्त प्रजाको दह्य करनेवाली प्रलयान्तिके
समान मैं बिना किसी घबराहटके अग्निका और गोपुरसहित
उस पुरीको अपनी जलती हुई पूँछकी आगसे जलाने
लगा ॥ १५८ ॥

चिनष्टा ज्ञानकी व्यक्तं न ह्यदृग्धः प्रहृद्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशं सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥ १५९ ॥

‘‘बहुता च मया लङ्का दग्धा सीता न सशय ।
रामस्य च महत्कार्यं मयेदं विपलीकृतम् ॥ १६० ॥

‘‘फिर मैंने सोचा ‘लङ्काका कोई भी स्थान ऐसा नहीं
दिखायी देता है, जो बला हुआ न हो, सारी नगरी जलकर
भस्म हो गयी है । अतः अवश्य ही जानकीजी भी नष्ट हो
गयी होगी । इसमें संदेह नहीं कि लङ्काको जलाने लगने
मैंने सीताजीको भी जला दिया और इस प्रकार भगवान्
श्रीरामक इस महान् कार्यको मैंने निष्फल कर
दिया ॥ १५९ १६० ॥

इति शोकसमारिष्टश्चिन्तामहमुपागतः ।
ततोऽहं वाचमग्रीय चारणानां शुभाक्षराम् ॥ १६१ ॥

‘‘जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽन्तर्भाषिणाम् ।
‘इस तरह शोककुल होकर मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया ।
इतनेहीमें आश्चर्यपूर्ण हुआ तबका वचन करनेवाले चारणोंकी
श्रम अश्रुतोंसे विभूषित यह वाणी मेरे कानोंमें पड़ी कि जानकी
जी इस आगसे नहीं जली हैं ॥ १६१ ॥

ततो मे मुञ्चिद्वत्पन्ना श्रुत्या तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

‘‘इस प्रकार मुझे अद्भुत श्रुतिसे तबकी तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

‘‘इस प्रकार मुझे अद्भुत श्रुतिसे तबकी तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

‘‘इस प्रकार मुझे अद्भुत श्रुतिसे तबकी तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

‘‘इस प्रकार मुझे अद्भुत श्रुतिसे तबकी तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

‘‘इस प्रकार मुझे अद्भुत श्रुतिसे तबकी तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

‘‘इस प्रकार मुझे अद्भुत श्रुतिसे तबकी तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

‘‘इस प्रकार मुझे अद्भुत श्रुतिसे तबकी तामद्भुता गिरम् ॥ १६२ ॥
अदग्धा ज्ञानकीत्येष निमित्तोऽपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गुले न मा ददति पावकम् ॥ १६३ ॥

मरा हुआ है और उत्तम गुणवत्से युक्त मन्द मन्द वायु चल रही है ॥ १६२ १६३ ॥

तेर्निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महारुणैः ॥ १६४ ॥
श्रुतिषाक्यैश्च दृष्टार्थैर्भव दृष्टमातसः ।

‘जिनके फलोंका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका था, उन उत्तम शकुनों, महान् गुणशाली कारणों तथा श्रुतियों (चारणों) की प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंसे भी सीतानीके सकुशल होनेका विश्वास करके मेरा मन हर्षसे भर गया ॥ १६४ ॥

पुनर्दृष्टा च वैदेही विस्मृष्टश्च तथा पुन ॥ १६५ ॥

ततः पर्यन्तमासाद्य तन्नारिष्टमह पुन ।
प्रतिप्लव्यतमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया ॥ १६६ ॥

‘तत्पश्चात् मैंने पुन विदेहनन्दिनीका दर्शन किया और फिर उनसे विदा लेकर मैं अरिष्ट पर्वतपर आ गया । वहींसे आपलोगोंके दर्शनकी इच्छासे मैंने प्रतिप्लवन (दुबारा आकाशमें उड़ना) आरम्भ किया ॥ १६५ १६६ ॥

इत्यर्थे भीमद्रामायणे वाय्मीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रचार भीमदधाल्मीकीयमित आर्यरामायणे आदिकाण्यके सुन्दरकाण्डमें अष्टादशवर्गों सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनपष्टितमः सर्गः

इनुमान्जीका सीताकी दुरवस्था बताकर वानरोंको लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना

एतदाख्याय तत् सर्वं हनूमान् मारुतात्मज ।

भूय समुपचक्राम वचन वचमुत्तरम् ॥ १ ॥

यह सब पृच्छन्त बताकर पवनकुमार इनुमान्जीने पुन उत्तम बातें कहनी आरम्भ की— ॥ १ ॥

सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च सम्भ्रमः ।

शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणित मनः ॥ २ ॥

‘कविबरो ! भीरामचन्द्रजीका दयोग और सुग्रीवका उदाह सफल हुआ । सीताजीका उत्तम शील-स्वभाव (पातिव्रत्य) देखकर मेरा मन अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ है ॥ २ ॥

आर्याया सहस्र शील सीताया ह्युषगर्वभाः ।

तपसा धारयेल्लोकान् मुक्ता या निर्वहेदपि ॥ ३ ॥

‘शानरशिरोमणियो ! जिस नारीका शील-स्वभाव आर्या सीताके समान होगा, वह अपनी तपस्यासे सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर सकती है अथवा कुण्ठित होनेपर तीनों लोकोंको बला सकती है ॥ ३ ॥

सर्वधातिप्रष्टोऽसौ रावणो राज्ञसेश्वरः ।

यस्य ता स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥ ४ ॥

‘राजसराज रावण सर्वथा महान् तपोबलसे सम्पन्न जान पड़ता है । जिसका अग्न सीताका स्पर्श करते

ततः श्वसनचन्द्रार्कसिद्धमघर्षसेनितम् ।

पथानमहमामभ्य भवतो दृष्टवानिह ॥ १५ ॥

‘तत्पश्चात् वायु, चन्द्रमा, सूर्य, सिद्ध और मघर्षसेनित मार्गोंका आभय छे यहाँ पहुँचकर मैंने आपलोगोंका दर्शन किया है ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रसादेन भवता चैव तेजसा ।

सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ १६ ॥

‘भीरामचन्द्रजीकी कृपा और आपलोगोंक प्रभावसे मैंने सुग्रीवके कार्यकी सिद्धिके लिये सब कुछ किया है ॥ १६ ॥

एतत् सर्वं मया तत्र यथायदुपपादितम् ।

तत्र यन्न कृत शेष तत् सर्वं कियतामिह ॥ १७ ॥

‘यह सारा कार्य मैंने यहाँ यथोचित रूपसे सम्पन्न किया है । जो कार्य नहीं किया है अथवा जो शेष रह गया है, वह सब आपलोग पूर्ण करें ॥ १७ ॥

इत्यर्थे भीमद्रामायणे वाय्मीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रचार भीमदधाल्मीकीयमित आर्यरामायणे आदिकाण्यके सुन्दरकाण्डमें अष्टादशवर्गों सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनपष्टितमः सर्गः

इनुमान्जीका सीताकी दुरवस्था बताकर वानरोंको लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना

एतदाख्याय तत् सर्वं हनूमान् मारुतात्मज ।

भूय समुपचक्राम वचन वचमुत्तरम् ॥ १ ॥

यह सब पृच्छन्त बताकर पवनकुमार इनुमान्जीने पुन उत्तम बातें कहनी आरम्भ की— ॥ १ ॥

सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च सम्भ्रमः ।

शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणित मनः ॥ २ ॥

‘कविबरो ! भीरामचन्द्रजीका दयोग और सुग्रीवका उदाह सफल हुआ । सीताजीका उत्तम शील-स्वभाव (पातिव्रत्य) देखकर मेरा मन अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ है ॥ २ ॥

आर्याया सहस्र शील सीताया ह्युषगर्वभाः ।

तपसा धारयेल्लोकान् मुक्ता या निर्वहेदपि ॥ ३ ॥

‘शानरशिरोमणियो ! जिस नारीका शील-स्वभाव आर्या सीताके समान होगा, वह अपनी तपस्यासे सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर सकती है अथवा कुण्ठित होनेपर तीनों लोकोंको बला सकती है ॥ ३ ॥

सर्वधातिप्रष्टोऽसौ रावणो राज्ञसेश्वरः ।

यस्य ता स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥ ४ ॥

‘राजसराज रावण सर्वथा महान् तपोबलसे सम्पन्न जान पड़ता है । जिसका अग्न सीताका स्पर्श करते

ततः श्वसनचन्द्रार्कसिद्धमघर्षसेनितम् ।

पथानमहमामभ्य भवतो दृष्टवानिह ॥ १५ ॥

‘तत्पश्चात् वायु, चन्द्रमा, सूर्य, सिद्ध और मघर्षसेनित मार्गोंका आभय छे यहाँ पहुँचकर मैंने आपलोगोंका दर्शन किया है ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रसादेन भवता चैव तेजसा ।

सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ १६ ॥

‘भीरामचन्द्रजीकी कृपा और आपलोगोंक प्रभावसे मैंने सुग्रीवके कार्यकी सिद्धिके लिये सब कुछ किया है ॥ १६ ॥

एतत् सर्वं मया तत्र यथायदुपपादितम् ।

तत्र यन्न कृत शेष तत् सर्वं कियतामिह ॥ १७ ॥

‘यह सारा कार्य मैंने यहाँ यथोचित रूपसे सम्पन्न किया है । जो कार्य नहीं किया है अथवा जो शेष रह गया है, वह सब आपलोग पूर्ण करें ॥ १७ ॥

इत्यर्थे भीमद्रामायणे वाय्मीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रचार भीमदधाल्मीकीयमित आर्यरामायणे आदिकाण्यके सुन्दरकाण्डमें अष्टादशवर्गों सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनपष्टितमः सर्गः

इनुमान्जीका सीताकी दुरवस्था बताकर वानरोंको लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना

एतदाख्याय तत् सर्वं हनूमान् मारुतात्मज ।

भूय समुपचक्राम वचन वचमुत्तरम् ॥ १ ॥

यह सब पृच्छन्त बताकर पवनकुमार इनुमान्जीने पुन उत्तम बातें कहनी आरम्भ की— ॥ १ ॥

सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च सम्भ्रमः ।

शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणित मनः ॥ २ ॥

‘कविबरो ! भीरामचन्द्रजीका दयोग और सुग्रीवका उदाह सफल हुआ । सीताजीका उत्तम शील-स्वभाव (पातिव्रत्य) देखकर मेरा मन अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ है ॥ २ ॥

आर्याया सहस्र शील सीताया ह्युषगर्वभाः ।

तपसा धारयेल्लोकान् मुक्ता या निर्वहेदपि ॥ ३ ॥

‘शानरशिरोमणियो ! जिस नारीका शील-स्वभाव आर्या सीताके समान होगा, वह अपनी तपस्यासे सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर सकती है अथवा कुण्ठित होनेपर तीनों लोकोंको बला सकती है ॥ ३ ॥

सर्वधातिप्रष्टोऽसौ रावणो राज्ञसेश्वरः ।

यस्य ता स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥ ४ ॥

‘राजसराज रावण सर्वथा महान् तपोबलसे सम्पन्न जान पड़ता है । जिसका अग्न सीताका स्पर्श करते

ततः श्वसनचन्द्रार्कसिद्धमघर्षसेनितम् ।

पथानमहमामभ्य भवतो दृष्टवानिह ॥ १५ ॥

‘तत्पश्चात् वायु, चन्द्रमा, सूर्य, सिद्ध और मघर्षसेनित मार्गोंका आभय छे यहाँ पहुँचकर मैंने आपलोगोंका दर्शन किया है ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रसादेन भवता चैव तेजसा ।

सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ १६ ॥

‘भीरामचन्द्रजीकी कृपा और आपलोगोंक प्रभावसे मैंने सुग्रीवके कार्यकी सिद्धिके लिये सब कुछ किया है ॥ १६ ॥

एतत् सर्वं मया तत्र यथायदुपपादितम् ।

तत्र यन्न कृत शेष तत् सर्वं कियतामिह ॥ १७ ॥

‘यह सारा कार्य मैंने यहाँ यथोचित रूपसे सम्पन्न किया है । जो कार्य नहीं किया है अथवा जो शेष रह गया है, वह सब आपलोग पूर्ण करें ॥ १७ ॥

वेगपूर्वक विषय करने तथा महाबली रावणको मार डालनेके लिये पयात हूँ । फिर यदि सम्पूर्ण अस्त्रोंको जाननेवाले आप जैसे वीर, बलवान् शुद्धात्मा, शक्तिशाली और विजया मित्रापी वानरोंकी सहायता मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है ॥ ७८ ॥

अहं तु रावण युद्धे ससैन्य सपुरःसरम् ।
सहपुत्र वधिष्यामि सहोदरयुत युधि ॥ ९ ॥

‘युद्धन्यसे सेना, अग्रगामी सैनिक, पुत्र और सगे भाइयोंसहित रावणका तो मैं ही बध कर दालूँगा ॥ ९ ॥

प्राक्षमस्त्र च रौद्र च वायव्य चारुण तथा ।
यदि प्राक्षितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्ष्याणि सयुगे ।
तां वह निहतप्यामि विधमिष्यामि राक्षसान् ॥ १० ॥

‘यद्यपि इन्द्रजितके ब्राह्म अस्त्र, रौद्र, वायव्य तथा चारुण आदि अस्त्र युद्धमें दुर्लभ होते हैं—किसीकी दृष्टिमें नहीं आते हैं, तथापि मैं ब्रह्मास्त्रीके वरदानसे उनका निवारण कर दूँगा और राक्षसोंका संहार कर दालूँगा ॥ १० ॥

भयतामस्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणहि तम् ।
मयातुला विस्तृप्ता हि शीलकृष्टिर्निरन्तरा ॥ ११ ॥
देवानपि रणे हन्यात् किं पुनस्तान् निशाचरान् ।

‘यदि आपलोगोंकी आशा मिल जाय तो मेरा पराक्रम रावणको कुण्ठित कर देगा । मेरेद्वारा लगातार बरबादे जानेवाले परचरोंकी अनूपम वृष्टि रणभूमिमें देवताओंकी भी मौतके घाट उतार देगी; फिर उन निशाचरोंकी तो बात ही क्या है ! ॥ ११ ॥

भयतामननुज्ञातो विक्रमो मे रुणहि माम् ॥ १२ ॥
सागरोऽप्यतिथ्याद् घेला मन्दर प्रचलेष्वपि ।
आनन्दवन्त समरे कम्पयेद्विराहिनी ॥ १३ ॥

‘आपलोगोंकी आशा न होनेके कारण ही मेरा पुरुषार्थ भ्रष्ट हो रहा है । वयुद्ध अपनी मर्यादाको लौंघ जाय और मन्दराचल अपने स्थानसे हट जाय, परन्तु समराङ्गणमें शत्रुओंकी सना बान्धवान्की विचलित कर दे, यह कमी सम्भव नहीं है ॥ १२ ॥

सपरराक्षससहाना राक्षसा ये च पूर्वशाः ।
अलमेकोऽपि नाशाय वीरो वालिमुत्त कपि ॥ १४ ॥

‘सम्पूर्ण राक्षसों और उनके पूर्वजोंकी भी यमलोक पहुँचानेके लिये वानरों वीर पुत्र कपिश्रेष्ठ अर्जुन अकेले ही काफी हैं ॥ १४ ॥

भूयगस्योरुवेगेन नीलम्ब च महात्मन ।
मन्दरोऽप्यवशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसा ॥ १५ ॥

‘वानरवीर महात्मा नीलक महात्मा वेगसे मन्दराचल भी विदीर्ण हो सकता है फिर युद्धमें राक्षसोंका नाश करना उनके लिये कीन बड़ी बात है ! ॥ १५ ॥

सडेवासुरस्येषु गन्धर्वोत्तपमिषु ।
मैन्दस्य प्रतियोद्धार दासत द्विविद्स्य वा ॥ १६ ॥

‘तुम सब-जे-सब बताओ तो घरी—देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, नाग और पक्षियोंमें भी कौन ऐसा वीर है, जो मैन्द अथवा द्विविदके साथ लोहा ले सके ! ॥ १६ ॥

अश्विपुत्रौ महावेगावेतौ भूवगससमौ ।
पतयोः प्रतियोद्धार न पद्यामि रणाजिरे ॥ १७ ॥

‘वे दोनों वानरशिरोमणि महान् वेगशाली तथा अश्विनीकुमारोंके पुत्र हैं । समराङ्गणमें इन दोनोंका सामना करनेवाला मुझे कोई नहीं दिखायी देता ॥ १७ ॥

मयैव निहता लङ्का बन्धा भस्मीकृता पुरी ।
राजमार्गेषु सर्वेषु नाम विधायित मया ॥ १८ ॥

‘मैंने अकेले ही लङ्कावासियोंको मार गिराया; नगरमें आग लगा दी और शरी पुरीको बल्लकर भस्म कर दिया । इतना ही नहीं, वहाँकी सब सबकुंवर मैंने अपने नामका डका पीट दिया ॥ १८ ॥

जयत्यतिबलौ रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ १९ ॥

अहं कोसलराजस्य दास पवनसम्भव ।
हनूमानिति सर्वत्र नाम विधायित मया ॥ २० ॥

‘अत्यन्त बलशाली भीरुम और महाबली लक्ष्मणकी जय हो । श्रीधुनायकीके द्वारा सुरक्षित रामा सुग्रीवकी भी जय हो । मैं कोसलनरेश भीरुमचन्द्रबीका दास और वायुदेवताका पुत्र हूँ । हनुमान् मरा नाम है—इत प्रकार सब अपने नामकी घोषणा कर दी है ॥ १९ ॥

अशोकप्रतिकामप्ये रावणस्य दुरात्मनः ।
अधस्ताच्छिन्नशपांमूले सापश्रीकवणमास्थिता ॥ २१ ॥

‘दुरात्मा रावणकी अशोकवाटिकाके मध्यभागमें एक अशोक वृक्ष नीचे शान्नी सीता बड़ी दयनीय अवस्थामें रखी हैं ॥ २१ ॥

राक्षसीभिः परिवृता शोकस्ततापकर्दिता ।
मेघरेखापरिवृता च द्रवेत्सेव निःप्रभा ॥ २२ ॥

‘वायसियोंसे घिरी हुई शोकनेके कारण व शोक मत्वापन दुर्बल होती जा रहा है । बादलोंकी पवित्र चिरी हुई चन्द्रलेखाकी मौन भीदीन हो गयी हैं ॥ २२ ॥

अचिन्तयन्ती वैदेही रावण बलदुर्पितम् ।
पतिप्रता च सुभोगी अयष्ट्या च जानकी ॥ २३ ॥

‘शुन्दर कटिप्रदेशवाली विदरनन्दिनी जानकी पतिप्रता है । वे बलक पमदमें मर रहनेवाले रावणकी कुछ भी नहीं समझती हैं ता भी उसीकी कैदमें पड़ी हैं ॥ २३ ॥

अनुरक्ता हि वैदेही रामे सर्वात्मना शुभा ।
अन पचिसा रामेण पौलोमीव पुरन्दरे ॥ २४ ॥

‘कम्पाणी छीता श्रीराममें समग्र हृदयसे अनुरक्त हैं,
जैसे शची देवराज इन्द्रमें अनन्य प्रेम रखती हैं, उसी
प्रकार छीताका चित्त अनन्यभावसे श्रीरामके ही चित्तमें
लगा हुआ है ॥ २४ ॥

तदेकवास सधीता रजोव्यस्ता तथैव च ।
सा मया राक्षसीमथ्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ २५ ॥
राक्षसीभिर्विरूपाभिष्टा हि प्रमदायने ।
एकचेणीधरा सीता भर्तृवितापरायणा ॥ २६ ॥

‘वे एक ही लक्ष्मी पहले भूलि धूलित हो गयी हैं ।
राक्षसियोंके बीचमें रहती हैं और उन्हें बारबार उनकी होंट
कटकार सुननी पड़ती है । इस अवस्थामें कुरुप राक्षसियोंसे
घिरी हुई छीताको मैंने प्रमदायनमें देखा है । वे एक ही
वेणी धारण किये दीनभावसे केवल अपने पतिदेवके
चिन्तनमें लगी रहती हैं ॥ २५ २६ ॥

अथ शय्या विवर्णाङ्गी पश्चिनीय हिमोदये ।
रावणाद् निनिष्ठुषार्था मर्त्यवृत्तनिश्चया ॥ २७ ॥

‘वे नीचे भूमिपर सोती हैं । हेमन्तशुद्धमें कमलिनीकी
मौलि उनके अङ्गोंकी कान्ति पीकी पड़ गयी है । रावणसे
उनका कोई प्रयोजन नहीं है । वे मरनेका निश्चय किये
बैठी हैं ॥ २७ ॥

कथंचि नृगशावाङ्गी विश्वासमुपपादिता ।
तत सङ्भाषिता सैव सर्वमर्थे प्रकाशिता ॥ २८ ॥

‘उन नृगनयनी छीताको मैंने बड़ी कठिनाईसे किसी
तत्त सङ्भाषिता दिलाया । तब उनसे बातचीतका
इरापमें श्रीमद्भारमणने वाक्सीकीये आदिकाव्ये

इस प्रकार श्रीवत्सकिनिमित्त भार्वातावण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डे एकौनपष्ठिमा सर्ग ॥ ५९ ॥
‘इस प्रकार महाभाग छीता उदा शोकमें डूबी रहती
हैं । अतः इस समय जो प्रतीकार करना हो, वह सब
आपलोग करें’ ॥ ३२ ॥

पष्ठितमः सर्ग

अङ्गदका लङ्काको जीतकर सीताको ले आनेका उत्साहपूर्ण विचार
और जाम्बवान्के द्वारा उसका निवारण

तस्य तद् घबनं धृत्या वाल्मिस्तुरभायत ।
मथियुपुत्री महावेगी बल्यतौ पुत्रयगमौ ॥ १ ॥
हनुमान्प्रीकी यह बात सुनकर वाल्मिपुत्र अङ्गदने
कहा—‘अश्विनीकुमारके पुत्र ये मैर और द्विविद दोनों
बानर अत्यन्त वेगशाली और यलवान् हैं’ ॥ १ ॥
वितामहवरोत्सेकास् पश्च दपमास्थितौ ।
मथिनोमाननार्थं हि सपलोषपितामहः ॥ २ ॥

सषावध्यस्यमनुलमनयोर्दत्तवायु पुरा ।
वरोत्सेकेन मर्चा ख प्रमथ्य महर्तो चमूम् ॥ ३ ॥
सुराणाममृतं पौरी पीलयन्तौ महायलौ ।
‘पुष्पकलमें नरदाजीकी घर मिलनेसे इनका अविमान
बढ़ गया और ये बड़े घमटने भर गये थे । सगुर्ज
लोकोंके पितामह नरदाजीने अश्विनीकुमारोंका मान रखनेके
लिय पहले इन दोनोंको यह अनुपम वरदान दिया था कि

अवसर मिला और सारी बातें मैं उनके समक्ष रख सका ॥
रामसुग्रीवसख्य स श्रुत्वा प्रीतिसुपागता ।
नियत समुदाचारो भविर्मर्तारि चोत्तमा ॥ २९ ॥

‘श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रताकी बात सुनकर उन्हें
बड़ी प्रसन्नता हुई । छीताभीमें मुष्ट वदाचार (पातिवत्य)
निश्चयमान है । अपने पतिके प्रति उनके हृदयमें उत्तम
भक्ति है ॥ २९ ॥

यस हर्ति दशप्रोव स महात्मा दशानन ।
निमित्तमात्र रामस्तु यथे तस्य भविष्यति ॥ ३० ॥

‘छीता स्वयं ही जो रावणको नहीं मार छाडती हैं,
इससे जान पड़ता है कि दशमुख राज्ञ महात्मा है—
तपोबलसे सम्पन्न होनेके कारण आप पानेके अर्थ
(तथापि छीताइरावणके पापसे वह नष्टप्राय ही ।
श्रीरामचन्द्रजी उसके वचनमें केवल निमित्तमात्र हींगे ॥ ३० ॥
सा प्रहृत्यैव तयङ्गी तद्वियोगाच्च कशिता ।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुता गता ॥ ३१ ॥

‘भगवती छीता एक तो स्वभावसे ही दुबली-पतल
हैं, दूसरे श्रीरामचन्द्रजीके नियोगसे और भी कम हो गयी
हैं । जैसे प्रतिपदाके दिन स्वाप्याय करनेवाले विधायीकी
विधा क्षीण हो जाती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी
अत्यन्त दुर्बल हो गया है ॥ ३१ ॥

एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा ।
यद्य् प्रतिकर्तव्यं तत् सर्वमुपकरप्यताम् ॥ ३२ ॥

‘इस प्रकार महाभाग छीता उदा शोकमें डूबी रहती
हैं । अतः इस समय जो प्रतीकार करना हो, वह सब
आपलोग करें’ ॥ ३२ ॥



तुम्हें कोई भी मार नहीं सकता। उस वरके अमिमानने मत हो इन दोनों महाबली बीरोंने देवताओंकी विद्याल सेनाको मथकर अमृत पी लिया था ॥ २ ३३ ॥

पतावेय हि सश्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ४ ॥
लङ्का नाशयितुं शक्नो सधै तिष्ठतु धानरा ।

ये ही दोनों यदि श्रममें मर जायें तो हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लङ्काका नाश कर सकते हैं। मले ही और सब वानर बैठ रहें ॥ ४३ ॥

अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणा पुरीम् ॥ ५ ॥
ता लङ्का तरसा हन्तु रावणं च महाबलम् ।
किं पुनः सहितो धीरैर्यत्नवद्भिः कृतात्मभिः ॥ ६ ॥
कृतात्मा ध्रुवगैः शक्तैर्भयद्विषिजैर्वैभिः ।

मैं अकेला भी राक्षसगणोंसहित समस्त लङ्कापुरीका वेगपूर्वक विध्वंस करने तथा महाबली रावणको मार डालनेके लिये पर्याप्त हूँ। किं यदि सम्पूर्ण अज्ञोंको जाननेवाले आप जैसे बीर, बलवान्, बुद्धात्मा, शक्तिशाली और विनयामितापी वानरोंकी सहायता मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है ॥ ५ ६३ ॥

वायुस्तोर्वलेनैव दग्धा लङ्केति न श्रुतम् ॥ ७ ॥
ष्ट्वा देवी न चानिता इति तत्र निवेदितुम् ।
न युक्तमिदं पद्यामि भयद्विष्यातपीरुपै ॥ ८ ॥

वायुपुत्र हनुमान्जीने अकेल जाकर अपने पराक्रमसे ही लङ्काको झूँक गला—यह बात हम सब लोगोंने श्रुत ही की। आप जैसे व्यावनामा पुरुषार्थी बीरोंके रहते हुए मुझे मरवान् भीरुमके सामने यह निवेदन करना उचित नहीं जान पड़ता कि 'हमने सीतादेवीका दशन तो किया, किंतु उन्हें वा नहीं सके' ॥ ७-८ ॥

नहि च द्रवने कश्चिन्नापि कश्चित् पराक्रमे ।
तुल्य सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमा ॥ ९ ॥

'वानरशिरोमणि' ! देवताओं और दैत्योंसहित सम्पूर्ण लोकमें कोई भी ऐसा बीर नहीं है, जो दूरतककी छलीग मारने और पराक्रम दिखानेमें आपलोगोंकी समानता कर सके ॥ ९ ॥

जित्वा लङ्का सरक्षीया हत्वा त रावणं रणे ।
सीतामादाय गच्छाम सिद्धया हृष्टमानसा ॥ १० ॥

'अतः निशाचरसमुदासहित लङ्काको भीतकर, युद्धमें रावणका वध करके, सीताको साथ ले, सफलमनोरथ पथ प्रवर्तनविध दाकर हमलोग भीरुमचन्द्रजीके पास चर्चें ॥ १० ॥
तेचेव हतधारेषु राक्षसेषु हनूमता ।
किमयदत्र कतम्य गृहीत्वा याम ज्ञातव्यम् ॥ ११ ॥

'अब हनुमान्जीने राक्षसोंके प्रमुख धीरोंको मार डाला

है, ऐसी परिस्थितिमें हमारा इससे ठीका और क्या कृतव्य हो सकता है कि हम जनकनिदिनी सीताको साथ लेकर ही चले ॥ ११ ॥

रामलक्ष्मणयोमये न्यस्याम जनकात्मजांम् ।
किं व्यलीक्षेस्तु तान् सर्वान् वानरान् वानरपभान् ॥
वयमेव हि गत्वा तान् हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
राघव द्रष्टुमर्हाम सुग्रीव सहलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥

'कविबरो ! हम जनककिशोरीको ले चलकर भीराम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी कर दें। किन्तिन्धामें लुटे हुए उन सब वानरोंको कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है। हमलोग ही लङ्कामें चञ्जर बहोंके मुख्य मुख्य राक्षसोंका वध कर डालें, उनके बाद लौटकर श्रीराम, लक्ष्मण तथा सुग्रीवका दर्शन करें' ॥ १२ १३ ॥

तमेव हृतसकलप आम्यवान् हरिसत्तम ।
उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदर्थयित् ॥ १४ ॥

अङ्कदा ऐसा उत्कल्प जानकर वानर भाइयोंमें भ्रष्ट और अर्थतत्त्वके शाता बाधकवान्ने अत्यन्त प्रवर्तन होकर यह सार्थक बात कही—॥ १४ ॥

नैया बुद्धिर्महाबुद्धे यद् व्रजीय महाकपे ।
विचेतुं वयमाहता दक्षिणा दिशमुत्तमा ॥ १५ ॥
नानेतु कपिराजेन नैव रामेण धीमता ।

'महाकप ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो तथापि इस समय जो कुछ कह रहा हो; यह बुद्धिमानोंकी बात नहीं है क्योंकि वानरराज सुग्रीव तथा परम बुद्धिमान् भगवान् भीरुमने हमें उत्तम दक्षिण दिशामें केवल सीताको ढोनेकी आशा दी है, साथ ही अनेकी नहीं ॥ १५ ॥

कथंचिन्निजिता सीतामस्माभिर्नाभिरोचयेत् ॥ १६ ॥
राघवो नृपशालुल कुलव्यपदिशान् स्वकम् ।

यदि हमलोग किसी तरह सीताको जीतकर उनका पाव ले भी सकें तो नृपशठ भीराम अपने कुलके व्यवहारका स्मरण करते हुए हमारा इस कायको पसंद नहीं करेंगे १६३ प्रसिद्धाथ स्वयं राजा सीताविजयमप्रत ॥ १७ ॥
सर्वेण कपिमुत्थाना वध मित्य्य करिष्यति ।

'राजा भीरुमने सभी प्रमुख वानरशेठोंके सामने स्वयं ही सीताको जीतकर आनेकी प्रतिज्ञा की है, उधे ये मित्या कैसे करेंगे ॥ १७ ॥

निष्फल कम च कृतं भवेत् तुष्टिं तस्य च ॥ १८ ॥
गृथा च दर्शित धीर्यं भवद् वानरपुङ्गवा ।

'अतः वानरशिरोमणिया ! एही अवस्थामें हमारा किया-कराया कार्य निष्फल हो जायगा। भागवान् भीरामको खतिय भी नही होगा और हमारा पराक्रम सिक्ता भी व्यर्थ सिद्ध होगा ॥ १८ ॥

तस्माद् गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सख्यमणः ।
सुग्रीवश्च महातेजाः कार्यस्यास्य निवेदने ॥ १९ ॥
‘इच्छामि इमं सख्यं लोके इव कार्यं कृत्वा देवैके लिये
यही चले, जहाँ सम्मन्यवहित मगवान् श्रीराम और महादेवकी
शुभीय विद्यमान हैं ॥ १९ ॥

न तावदेवा मतिरक्षमा नो
यथा भवान् पश्यति राजपुत्र ।

हृत्पार्थे भीमप्रामाण्ये वात्समीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पष्ठितमः सर्गः ॥ १० ॥
इतः प्रकारं भवात्माफेनिर्मितं कार्यरामायणं आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे साठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६० ॥

एकपठितमः सर्गः

वानरोंका मधुवनमें जाकर वहाँके मधु एव फलोंका मनमाना उपभोग
करना और धनरक्षकको घसीटना

ततो आस्यधनो धाक्यमपृच्छन्त यनौकसः ।
महदप्रमुखा वीरा हनूयाद्वय महाकपिः ॥ १ ॥
तदनन्तर अग्रद आदि सभी वीर वानरों और महाकपि
हनुमान्ने भी आन्ववात्की बात जान ली ॥ १ ॥

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसरा ।
महेन्द्राग्राम् समुत्तरय पुच्छुः सुवर्गभाः ॥ २ ॥

किर वे सब भेद वानर पवनपुत्र हनुमान्को आगे करके
मनही-मन प्रमनस्तका अनुग्रह करते हुए महेन्द्रमिरिके
शिलारते उछलते-कूदते चले दिये ॥ २ ॥

मेघमन्दरसकाशा मत्ता इव महागजाः ।
छाद्यन्त हयाकाश महाकाया महाबलाः ॥ ३ ॥

वे मेघ पर्वतके समान विशालकाय और बड़े-बड़े मद
मत्त शत्रुजनोंके समान सहायकी वानर आकाशको आच्छादित
करते हुए-वे जा रहे थे ॥ ३ ॥

समाज्यमान मूर्तैस्तमामवधत महाबलम् ।
हनूमन्त महावेग बहन्त इव दृष्टिभिः ॥ ४ ॥

उस समय सिद्ध आदि भूतगण आपन्न वेगवाली महा
बली इक्षिमान् हनुमान्की भी भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे और
अपलक नयोंसे उनकी ओर इस तरह देख रहे थे, मानो
अपनी दृष्टियोंद्वारा ही उन्हें दो रहे हों ॥ ४ ॥

राष्ट्रे चार्धतिवृत्तिं कर्तुं न परमं यशः ।
समाधाप्य समुद्रार्धां कर्मसिद्धिभिर्दक्षताः ॥ ५ ॥
प्रियावयानो मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिन ।
सर्वे रामप्रतीकारे मिश्रितार्था मनस्विनः ॥ ६ ॥

भीषुनायजोंके कायकी सिद्धि करना उसम यश पाकर
उन वानरोंका मनोरथ सफल हो गया था । उस कार्यकी सिद्धि

यथा तु रामस्य मतिर्निवृत्तिरा
तथा भवान् पश्यतु कार्यसिद्धिम् ॥ २० ॥

ग्राह्यभुम्भार । तुम जैसा देखते या सोचते हो, यह
विचार हमलोगोंके योग्य ही है—हम इसे न कर सकें; ऐसी
बात नहीं है; तथापि इस विषयमें भगवान् श्रीरामका जैसा
निश्चय हो, उसीके अनुसार हममें कार्यसिद्धिपर दृष्टि रखनी
चाहिये ॥ २० ॥

हो जानसे उनका उत्साह बढ़ा हुआ था । वे सभी मगवान्
श्रीरामको यिच सबाद सुनानेके लिये उत्सुक थे । सभी
युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे । श्रीरामवत्कीके द्वारा
रावणका पराभव हो—ऐसा सबने निश्चय कर लिया था
तथा वे सब के सब मनस्वी वीर थे ॥ ५ ॥

सुखमाना याम्पुत्रय ततस्ते काननौकसः ।
नन्दनोपममालेखुर्वनं दूमशतायुतम् ॥ ७ ॥

आकाशमें छल्लों मारते हुए वे बनवासी वानर लैक्यों
हल्लोंसे भरे हुए एक सुन्दर वनमें जा पहुँचे, जो नन्दनवनके
समान मनोहर था ॥ ७ ॥

यत् तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् ।
अपूप्य सर्वभूतानां सधभूतमनोहरम् ॥ ८ ॥

उसका नाम मधुवन था । सुग्रीवका वह मधुवन सर्वथा
सुरक्षित था । समस्त प्राणियोंमेंसे कोई भी उसको हानि नहीं
पहुँचा सकता था । उसे देखकर सभी प्राणियोंका मन खुश
जाता था ॥ ८ ॥

यद् दक्षति महावीरं सदा धिमुल कपिः ।
मातुल कपिमुल्यस्य सुग्रीवस्य महायमन ॥ ९ ॥

कपिभेद महात्मा सुग्रीवसे मामा महावीरदधिमुल नामक
वानर सदा उस वनकी रक्षा करते थे ॥ ९ ॥

ते तद् वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटा ।
धामरा धामरेन्द्रस्य मन कान्त महायमनम् ॥ १० ॥

वानरानां सुग्रीवके उस मनोरम महावनके पास पहुँच
कर वे सभी वानर वहाँका मधु पीने और फल खाने आदिके
लिये आपन्न उत्कण्ठित हो गये ॥ १० ॥

ततस्ते वानरा हृष्टा हृष्टा मधुवन महत् ।

कुमारमभ्ययाचत मधूनि मधुपिङ्गला ॥ ११ ॥

तत्र र्षसे भरे हुए तथा मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले उन वानरोंने उस महान् मधुवनको देखकर कुमार अङ्गदसे मधुपान करनेकी आज्ञा माँगी ॥ ११ ॥

तत कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्भवत्प्रमुखान्कपीन् ।

अनुमान्य यदौ तेया निसर्गं मधुभक्षणे ॥ १२ ॥

उस समय कुमार अङ्गदने जाम्बवान् आदि बड़े-बूढ़े वानरोंकी अनुमति लेकर उन सबको मधु पीनेकी आज्ञा दे दी ॥ १२ ॥

ते निहृष्टा कुमारेण धीमता वालिचनुना ।

हरय समपद्यन्त द्रुमान् मधुकराकुलान् ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् बालिपुत्र राजकुमार अङ्गदकी आज्ञा पाकर वे वानर भीरोक छहते भरे हुए वृक्षोंपर चढ़ गये ॥ १३ ॥

भक्षयत् सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च ।

जम्बु प्रहर्षं ते सर्वे यभूवुश्च मयोत्कठा ॥ १४ ॥

वहाँके सुगन्धित फल मूलोंका भक्षण करते हुए उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे सभी मदसे डगमग हो गये ॥ १४ ॥

ततश्चानुमता सर्वे सुलहृष्टा धनौकस ।

मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यति ततस्तत ॥ १५ ॥

सुवराजकी अनुमति मिल जानेसे सभी वानरोंको बड़ा र्ष हुआ । वे आनन्दमग्न होकर इधर उधर नाचने लगे ॥

गायन्ति केचित् प्रहसन्ति केचि

भृत्यन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित् ।

पतन्ति केचित् प्रचरन्ति केचित्

छलन्ति केचित् प्रलपन्ति केचित् ॥ १६ ॥

कोई गाते, कोई हँसते, कोई नाचते, कोई नमस्कार करते, कोई गिरते पड़ते, कोई कोर-कोरसे चलेते, कोई उछलते-बूढ़ते और कई प्रलाप करते थे ॥ १६ ॥

परस्पर केचिदुपाधयन्ति

परस्पर केचिदसित्ववन्ति ।

द्रुमाद् द्रुम केचिदभिद्रुधन्ति

क्षितीनगाग्रान्निपतन्ति केचित् ॥ १७ ॥

कोई एक दूसरेक पास आकर मिलते, कोई आपसमें विवाद करते, कोई एक दूसरे दूसरे वृक्षपर दौड़ जाते और कोई वृक्षोंकी डालियोंमें छूटकर बूढ़ पड़ते थे ॥ १७ ॥

महातलात् केचिदुदीणयेगा

महाद्रुमाप्राण्यभिसम्पतन्ति ।

यां १० ५ ८ ५—

गायन्तमन्य प्रहसन्तुपैति

हसतमन्य प्रहसन्तुपैति ॥ १८ ॥

कितन ही प्रचण्ड वेगवाला वानर पृथ्वीसे दौड़कर बड़े बड़े वृक्षोंकी चोटियोंतक पहुँच जाते थे । कोई गाता तो दूसरा उसके पास हँसता हुआ जाना था । कोई हँसते हुए के पास जोर जोरसे रोता हुआ पहुँचता था ॥ १८ ॥

तुदन्तमय प्रणदनुपैति

समाकुलतत् कपितैयमासीत् ।

न चात्र कश्चि न यभूय मत्तो

न चात्र कश्चि न यभूय हस ॥ १९ ॥

कोई दूसरेको पीड़ा देता तो दूसरा उसके पास बड़े जोर से गहना करता हुआ जाता था । इस प्रकार वह सारी वानर सेना मदोमत्त होकर उसके अनुरूप चेष्टा कर रही थी । वानरोंके उस समुदायमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो मतवाला न हो गया हो और कोई भी ऐसा नहीं था, जो दर्पसे भर न गया हो ॥ १९ ॥

ततो वन तत् परिभक्ष्यमाण

द्रुमाश्च निष्वसितपत्रपुष्पान् ।

समीक्ष्य कोपाद् दधिवपन्ननामा

निवारयामास कपि कर्षोस्तान् ॥ २० ॥

तदनंतर मधुवनके फल-मूल आदिका भक्षण होता और वहाँके वृक्षोंके पत्तों एवं फूलोंका नष्ट किया जाता देख दधि मुख नामक वानरको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उन वानरोंको वैशा करनेसे रोका ॥ २० ॥

स तै प्रवृद्धै परिभर्त्स्यमानो

यनस्य गोप्ता हरिवृद्धवीर ।

चकार भूयो भक्तिमुप्रतेजा

यनस्य रक्षा प्रति वानरेभ्य ॥ २१ ॥

जिनपर अधिक नगा चढ़ गया था, उन बड़े बड़े वानरों ने वनकी रक्षा करनेवाले उस बृद्ध वानरवीरको उलट डौट बतानी शुरू की, तथापि उम तेजस्वी दधिवुलने पुन उन वानरोंसे वनकी रक्षा करनेका निवार किया ॥ २१ ॥

उवाच काश्चित् पदपाप्यभीन

मसत्तमयाश्च तलैवधान ।

समेत्य कैश्चित् कल्ह चकार

तथैव सामोपजगाम काश्चित् ॥ २२ ॥

उन्होंने निर्मम होकर किसी किसीको बड़ी बातें मुनादीं । कितनोंको बपहोसे मारा । बहुतोंने हाथ भिड़कर झगड़ा किया और किसी किसीको प्रति शान्तिपूष उपाय ही काम लिया ॥ २२ ॥

स तैमदाप्रनियययगै

रंलाभ्य तेन प्रतियायमाणै ।

प्रधपणे त्यक्तभये समेत्य
प्रकृष्यते चाप्यनयेक्ष्य दोषम् ॥ २३ ॥

मदके कारण जिनके वेगको रोकना असम्भव हो गया था, उन वानरोंको जब दधिमुख बलपूर्वक रोकनेकी चेष्टा करने लगे, तब वे सब मिलकर उन्हें बलपूर्वक इधर उधर घसीटने लगे। वनरक्षकपर आक्रमण करनेसे राक्षसदण्ड प्राप्त होगा, इसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी। अतएव वे सब निर्भय होकर उन्हें इधर उधर खींचने लगे ॥ २३ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे पाठमीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दृक्पटितम् सर्गः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डम् इहसठवौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विपटितम्. सर्ग

वानरोंद्वारा मधुवनके रक्षकों और दधिमुखका पराभव तथा सेवकोंसहित
दधिमुखका सुग्रीवके पास जाना

तानुवाच हरिश्चेष्टो हनुमान् वानरपथम् ।
अव्यग्रमनसो ध्रुव मधु सेवत वानरा ॥ १ ॥
अहमावर्जयिष्यामि युष्माकं परिपथिनम् ।

उस समय वानरधरोमणि कपिलर हनुमान्ने अपने साथियों से कहा—‘वानरो! तुम सब लोग बैलढंके मधुका पाल करो। मैं तुम्हारे विरोधियोंको रोक्ूँगा’ ॥ १ ॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गद ॥ २ ॥
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु ।
अनश्य कृतकायस्य वाक्यं हनुमानो मया ॥ ३ ॥
अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्ग पुनरीदृशम् ।

हनुमान्जीकी बात सुनकर वानरप्रवर अङ्गदने भी प्रसन्न चित्त होकर कहा—‘वानरगण अपनी इच्छाके अनुसार मधुपान करें। हनुमान्जी इस समय वाय विज्र करके लौटे हैं, अतः इनकी बात स्वीकार करनेके योग्य न हो तो भी युद्धों अवश्य माननीय चाहिये। फिर ऐसी बातके लिये तो कहना ही क्या है?’ ॥ २ ३ ॥

अङ्गदस्य मुपाबुध्त्वा वचनं वानरपथम् ॥ ४ ॥
साधु साचित्तिं सहृष्टा वानरा प्रत्यपूजयन् ।

अङ्गदके मुखसे ऐसी बात सुनकर सभी श्रेष्ठ वानर हृष्ये लिल उठे और ‘साधु साधु’ कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४ ॥

पूजयित्वाङ्गदं सर्वे वानरा वानरपथम् ॥ ५ ॥
जगुर्मधुपानं यत्र नदीवेण इयं द्रुमम् ।

वानरधरोमणि अङ्गदको प्रशंसा करके वे सब वानर

नयैस्तुदन्तो दशनैर्दंशतः
स्तलैश्च पादैश्च समापयन्त ।

मदात् कपि ते कपय समन्ता
महाघनं निर्विषयं च चक्रुः ॥ २४ ॥

मदके प्रभावसे वे वानर कपिलर दधिमुखको नखोंसे बकोटने, दौंतीसे काटने और थप्पड़ों तथा लातोंसे मार-मार कर अभयमा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने उस विशाल वनकी सब ओरसे फल आदिसे शून्य कर दिया ॥ २४ ॥

जहाँ मधुवन था, उस मागपर उसी तरह दौड़ गय, जैसा नदीके बल्ला वेग तटवर्ती वृक्षों और जाता है ॥ २३ ॥

ते प्रविष्टा मधुवनं पालानाम्मन्यशक्तिम् ॥ ६ ॥
अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीम् ।
पथु सर्वे मधु तदा रसयत् फलमाददुः ॥ ७ ॥

मिथिलशुक्रमायी सीताका हनुमान्जी तो देखकर आये थे और अन्य वानरोंने ऊँचीक मुखसे यह सुन लिया था कि ये लक्ष्मण हैं, अतः उन सबका उत्साह बढ़ा हुआ था। इधर सुवराज अङ्गदका आदेश भी मिल गया था, इसलिये वे सामर्थ्यशाली सभी वानर वनरक्षकोंपर पूरी शक्तिसे आक्रमण करके मधुवनमें धुल गये और वहाँ इच्छानुसार मधु पीने तथा रसील फल खाने लगे ॥ ६ ७ ॥

उत्पत्य च ततः सर्वे घनपालान् समागतान् ।
ते ताडयन्त शतशः सत्त्वा मधुघने तदा ॥ ८ ॥

रोकनेके लिये अपने पाव आये हुए रक्षकोंको वे सब वानर सेकड़ोंकी सख्यामें पुनः उड़ल-उड़लकर मारते थे और मधुवनके मधु पीने एवं फल खानेमें लगे हुए थे ॥ ८ ॥

मधूनि द्रोणमात्राणि यादुभिः परिगृह्यते ।
पियन्ति कपयः केचिद् सत्त्वशास्तत्र दृष्टवत् ॥ ९ ॥
कितने ही वानर छद्म कर्तृद एकत्र ही वहाँ अपनी मुखाओंद्वारा एक एक द्रोण मधुसे भर हुए छत्तोंको पकड़ लते और सहप पी जात थे ॥ ९ ॥

१ आठ आठक या बरीस सरके मापको द्रोण कहते हैं। यह प्राचीनकालमें प्रचलित था ।

जन्ति स सहिता सर्वे भग्न्यन्ति तथापरे ।

केचित् पीत्वापचिष्यन्ति मधूनि मधुगिह्वा ॥ १० ॥

मधुचिउष्टेन केचिच्च जघ्नन्त्योन्यमुक्तदा ।

अपरे घृण्ममूलेषु शाय्या गृह व्यधस्थिता ॥ ११ ॥

मधुके समान निद्राल वण्वाले वे सब बानर एक साथ होकर मधुच छत्रोंकी पीरते, दूसरे बानर उस मधुको पीते और कितने ही पीकर बचे हुए मधुको पेंक देते थे । कितने ही मदमत्त हो एक दूसरेको मोझने मारने थे और कितने ही बानर घृणोंके नीचे टालियों पकड़कर लड़े हो गए थे ॥ १० ११ ॥

अत्यर्थं च मदगलाना पर्णान्यान्तीर्य शेरते ।

उमत्तवेगा नयगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् ॥ १२ ॥

कितने ही बानर मदक कारण अत्यन्त ग्लानिवा अनुभव कर रहे थे । उनका वेग उमत्त पुरुषोंके समान देखा जाता था । वे मधु पी-पीकर मतवाले हो गये थे, उमत्त बड़े हर्षके साथ पत्ते बिछाकर सो गये ॥ १२ ॥

क्षिपन्त्यपि तथाम्योन्य मल्लन्ति च तथापरे ।

केचित्स्वेडान् प्रकुपन्ति केचित्कूयन्ति हृष्टयत् ॥ १३ ॥

कोई एक दूसरेपर मधु पेंकते, कोई लड़कड़ाकर गिरते, कोई गरबते और कोई हर्षके साथ पक्षियोंकी भाँति कल्लव करते थे ॥ १३ ॥

हरयो मधुना मत्ता केचित्मुक्ता महीनले ।

घृष्टा केचिदसन्नयन्ये केचित्कूयन्ति चेततरत् ॥ १४ ॥

मधुने मतवाच हुए कितने ही बानर घृष्ठीपर सो गये थे । कुछ दीठ बानर हँसते और कुछ उड़न करते थे ॥ १४ ॥

छन्वा केचिद् घन्म्यये केचिद्वुष्यन्ति चेततरत् ।

येऽप्यत्र मधुपाला न्यु प्रेध्या दधिमुगस्यन्तु ॥ १५ ॥

तेऽपि तैयानरैर्ममै प्रतिपिडा दिशा गता ।

जानुभिश्च प्रघृणाश्च देवमार्गं च दर्शिता ॥ १६ ॥

कुछ बानर दूसरा काम करके दूसरा बताते थे और कुछ उस बातका दूसरा ही अर्थ समझते थे । उस वनमें जो दधिमुगक शेरक मधुकी गन्धमें विमुक्त थे, वे भी उन भयकर बानरोंद्वारा रोके या पीटे जानेपर सभी दिशाओंमें भाग गये । उनमेंसे कई रणपालोंको अद्भुत दन्तगजने समीपपर पटककर घुटनेने खूब रगड़ा और कितनोंको पैर पकड़कर आकाशमें उछाल दिया था अथवा उन्हें पीठके बल गिराकर आकाश दिया दिया था ॥ १५ १६ ॥

मनुवन् पमोक्तिम्ना गग्या दधिमुगं यच्च ।

दन्मता दक्षपरैर्देत मधुवनं वलात् ।

यच्च जानुभिघृष्टा देवमार्गं च दर्शिता ॥ १७ ॥

वे सब श्वक अत्यन्त उद्विग्न हो दधिमुगके पास जाकर बोले—‘प्रभा । इनुमानजीके बतावा देनेसे उनके दलके सभी बानरोंने बन्धूवृक मधुवनका विध्वंस कर डाला, हमलोगोंको गिराकर घुटनेमें रगड़ा और हमें पीठके बल पटककर आकाशका दर्शन करा दिया’ ॥ १७ ॥

तदा दधिमुग मुञ्चो यनपस्तत्र धानरः ।

हत मधुवनं श्रुत्वा सान्त्वयामास तान् हरीन् ॥ १८ ॥

तब उस वनके प्रधान शक दधिमुग नामक बानर मधुवनके विध्वंसका समाचार सुनकर बहो कुरित हो उठे और उन बानरोंको सान्त्वना देते हुए बोलें— ॥ १८ ॥

पतागच्छत गच्छामो धानरानतिर्पितान् ।

यत्नेनागारयिष्यामि प्रमुञ्जानान् मधुतमम् ॥ १९ ॥

‘आओ आओ, चलो इन बानरोंके पास । इनका घमंड बहुत कम गया है । मधुवनके उच्चम मधुको लूटकर खानेवाले इन सबको मैं बन्धूवृक रोडूंगा’ ॥ १९ ॥

श्रुत्वा दधिमुगस्येदं यच्चन धानरपभा ।

पुनर्गोप मधुवनं तेनैव सहिता ययुः ॥ २० ॥

दधिमुगका यह वचन सुनकर वे बौर कपिभेष्ट पुन उड़ीके साथ मधुवनको गये ॥ २० ॥

मध्ये चैषा दधिमुग सुप्रगृह्य महातरुम् ।

समभ्यधायन्त वेगेन सर्वे ते च लुब्धगमाः ॥ २१ ॥

इनके बीचमें लड़े हुए दधिमुगने एक विशाल वृक्ष हाथमें लेकर बड़े वेगसे इनुमानजीके दलपर धावा किया । साथ ही वे सब बानर भी उन मधु पानेवाले बानरोंपर दृष्ट पड़े ॥ २१ ॥

ते शिला पादपाक्षेय पायाणानपि वानरा ।

गृहीत्वाम्यागमन् मुन्दा यत्र ते कपिकुञ्जरा ॥ २२ ॥

कोषमें भरे हुए वे बानर शिला, वृक्ष और पायाय लिये उस जगहपर आये, वहाँ वे इनुमान आदि कपिभेष्ट मधुका सेवन कर रहे थे ॥ २२ ॥

यत्नाग्रिगारयन्तश्च आसेदुर्हरयो हरीन् ।

मदरीष्टपुटा मुन्दा भग्नस्यन्तो मुदमुद ॥ २३ ॥

अने ओठोंको दाँतोंसे दबाते और कोषवृक बारबार घमड़ते हुए ये सब बानर उन बानरोंको बन्धूवृक रोडूनेके लिये उनका पंथ आ पहुँच ॥ २३ ॥

अथ ह्यत्र दधिमुग मुञ्च धानरपुह्वया ।

अभ्यधायन्त वेगेन हनुमन्प्रमुखास्तदा ॥ २४ ॥

दधिमुगका कुरित हुआ देख इनुमान आदि सभी भेष्ट बानर उस समय बड़े वेगने उनकी ओर दौड़े ॥ २४ ॥
मधुग त महाबाहुमापन्न महाधनम् ।

येगवत् विजग्राह यादुभ्या कुपितोऽङ्गद ॥ २५ ॥

वृक्ष लेकर आते हुए जेगधाली महाबली महाराहु
दधिमुलको कुपित हुए अङ्गदने दोनों हाथोंसे पकड़
लिया ॥ २५ ॥

मदाधो न हृषा चक्र आर्यकोऽय ममेति स ।

अथैत निरपिपेपाशु घेगेन यमुघातले ॥ २६ ॥

वे मधु पीकर मदाध हो रहे थे, अतः 'ये मेरे नाना
हैं' ऐसा समझकर उन्होंने उनपर दया नहीं दिखायी । वे
तुरत बड़े वेगसे पृथ्वीपर फटकर उड़ रहे रगड़ने लगे ॥ २६ ॥

स भग्नयाहुकमुखो विह्वल शोणितोन्मित ।

प्रमुमोह महावीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जर ॥ २७ ॥

उनकी मुखाप, आँखें और मुँह सभी दूट-फूट गये ।
वे स्तब्ध नहा गये और व्याकुल हो उठे । वे महावीर
कपिकुञ्जर दधिमुल वहाँ हो यहीतक मूर्छित पड़े रहे ॥ २७ ॥

स कथञ्चिद् विमुक्तस्तैर्धानैर्योनैर्यभ ।

उवाचैकान्तमागत्य स्थान् भूयान् समुपागतान् ॥ २८ ॥

उन वानरोंके हाथसे किसी तरह छुटकारा मिलनेपर
वानरभेद दधिमुल एकान्तमें आये और वहाँ एकत्र हुए
अपने सेवकोंसे बोले— ॥ २८ ॥

पतागच्छत गच्छामो भर्ता नो यत्र वानर ।

सुग्रीवो विपुलग्रीव सह रामेण तिष्ठति ॥ २९ ॥

'आओ आओ, अब वहाँ चलो, जहाँ हमारे स्वामी
मोटी गर्दनवाले सुग्रीव भीरामचन्द्रजीके साथ विराजमान
हैं ॥ २९ ॥

सर्वं चैवाङ्गदे दोष भावयिष्याम पार्थिवे ।

अमयीं वचन भूत्या घातयिष्यति वानरान् ॥ ३० ॥

'राजाके पास चलकर छारा दोष अङ्गदके माथे मढ़
देंगे । सुग्रीव बड़े क्षत्रीय हैं । मेरी बात सुनकर वे इन सभी
वानरोंको मरवा डालेंगे ॥ ३० ॥

इष्ट मधुघन होतस् सुग्रीवस्य महात्मन ।

पिष्टपैतामह विष्य देवैरपि दुरासदम् ॥ ३१ ॥

'महाराज सुग्रीवको यह मधुघन बहुत ही प्रिय है ।

यह उनका बाप-दादोका दिव्य वन है । इसमें प्रवेश करना
देवताओंके लिये भी कठिन है ॥ ३१ ॥

स वानरानिमान् सर्वान् मधुलुब्धान् गतायुष ।

घातयिष्यति दण्डेन सुमात्रं ससृहज्जनान् ॥ ३२ ॥

'मधुका लोभी इन सभी वानरोंकी आयु समाप्त हो
चली है । सुग्रीव इन्हें कठोर दण्ड देकर इनके मुहूर्तकालित
इन सबको मरवा डालेंगे ॥ ३२ ॥

यथ्या ह्येते दुरात्मनो नृपाणापरिपथित ।

अमर्षप्रभवो राघ सफलो मे भविष्यति ॥ ३३ ॥

'राजाकी आशाका उल्लङ्घन करनेवाले ये दुरात्मा
राजद्रोही वानर वचके ही योग्य हैं । इनका वध होनेपर
ही मेरा अमर्षनशित होय सकल होगा' ॥ ३३ ॥

पवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान् महानलः ।

जगाम सहस्रोत्पथ्य वनपालैः समन्वित ॥ ३४ ॥

वनके रक्षकोंस एका कहकर उन्हें साथ ले महाबली
दधिमुल सहजा उगलकर आकाशमार्गसे चले ॥ ३४ ॥

निमेषान्तमात्रेण स हि प्राप्तो वनालय ।

सहस्राशुततो घीमान् सुग्रीवो यत्र वानर ॥ ३५ ॥

और एकक मारते-मारते वे उस स्थानपर जा पहुँचे,
जहाँ बुद्धिमान् संपुत्र वानरराज सुग्रीव विराजमान थे ॥ ३५ ॥
राम का लक्ष्मण चैव दृष्ट्वा सुग्रीनमेव च ।

समप्रतिष्ठा जगतीमाकाशान्निपपात ॥ ३६ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवको दूरसे ही देखकर वे
आकाशसे समतल भूमिपर कूद पड़े ॥ ३६ ॥

स निपत्य महावीरः सर्वस्ते परिवारित ।

हरिर्दधिमुखः पालैः पालाना परमेश्वर ॥ ३७ ॥

सहीनबदनो भूत्वा हृता शिरसि चाञ्जलिम् ।

सुग्रीवस्याशु सौ मूर्ध्ना वरणौ प्रत्यधीदयत् ॥ ३८ ॥

वनरक्षकोंके स्वामी महावीर वानर दधिमुल पृथ्वीपर
उतरकर उन रक्षकोंसे घिरे हुए उदास मुख किये सुग्रीवके
पास गये और किरपर अञ्जलि बोधे उनके वरणोंमें सदाक
हुकमकर उड़ने प्रणाम किया ॥ ३७ ३८ ॥

हृषार्थे श्रीमद्भारमयणे वाक्यमीक्ये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विपठितम् सग ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीश्रीमिकिर्निर्मित आश्वरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६२ ॥



त्रिपश्चित्तम सर्ग.

दधिमुखसे मधुवनके विध्वंसका समाचार सुनकर सुग्रीवका हनुमान्
आदि वानरोंकी सफलताके विषयमें अनुमान

ततो मूढा निपतित वानर वानरपथ ।

दृष्ट्वोद्विग्नहृदयो धाक्यमेतदुवाच ॥ १ ॥

वानर दधिमुखको माया टेक प्रणाम करते देख वानर
शिरोमणि सुग्रीवका हृदय उद्विग्न हो उठा । वे उनसे इस
प्रकार बोले—॥ १ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कृत्स्नात्त्व पादयो पतितो मम ।

अभय ते प्रशस्यामि सत्यमेवाभिधीयताम् ॥ २ ॥

‘ठठो ठठो । तुम मरे पैरोपर कैसे पड़े हो ? मैं तुम्हें
अभयदान देता हूँ । तुम सबी बात बताओ ॥ २ ॥

किं सम्भ्रमादित हृत्स्मिन् ब्रूहि यद् वचुर्महसि ।

कश्चि मधुयने स्थस्ति श्रोतुमिच्छामि वानर ॥ ३ ॥

‘कहा, किसके भयंश यहाँ आये हो । जो पूर्णतः हितकर
बात हो, उसे बताओ क्योंकि तुम सब कुछ करनेके
योग्य हो । मधुवनमें कुछ तो है न ? वानर । मैं तुम्हारे
मुखसे यह सब सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

स समावसितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।

उत्थाय स महाप्राज्ञो धाक्य दधिमुखोऽप्रवीत् ॥ ४ ॥

महामा सुग्रीवके इस प्रकार आवाहन देनेपर महा
बुद्धिमान् दधिमुख खड़े होकर बोले—॥ ४ ॥

नैष शूरजला राजन् न रयया न च घालिना ।

वनं निवृणुष्वै ते नाशितं तत्तु वानरैः ॥ ५ ॥

‘पावन । आपके पिता शूराजलाने, वालीने और
आनेने भी पहले कभी जिस वनके मनमाने उपभोगके
लिये किसीका आग नहीं दी थी, उसीका हनुमान् आदि
वानरोंने आज नाश कर दिया ॥ ५ ॥

न्यवारयमहं सयान् सदैर्भिर्यनचारिभिः ।

अचिंतयित्वा मां दृष्ट्वा भक्षयन्ति पिबन्ति च ॥ ६ ॥

‘मैंने इन वनरघक वानरोंके साथ उन सबको रोक्नेकी
बहुत चेष्टा की, परन्तु वे मुझे कुछ भी न समझकर बड़े
हफ्तें साथ वन खाते और मधु पीते हैं ॥ ६ ॥

एभिः प्रथयणाया च चारितं यनपालकैः ।

मामप्यजिन्तयन् देव भक्षयन्ति धनौकसः ॥ ७ ॥

‘देव । इन हनुमान् आदि वानरोंने सब मधुवनमें दूट
मचाना आरम्भ किया, तब हमारे इन वनरघकोंने उन
सबको रोक्नेकी चेष्टा की परन्तु वे वानर इनको और

मुझे भी कुछ नहीं गिनते हुए वनोंक फल प्रादिका भक्षण
कर रहे हैं ॥ ७ ॥

शिष्टमन्वापयिष्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे ।

निवार्यमाणास्ते सर्वे भुङ्क्तिं दर्शयन्ति हि ॥ ८ ॥

‘दूखे, वानर वहाँ खाते पीते तो हैं ही, उनके सामने
जो कुछ बच जाता है, उसे उठाकर फेंक देते हैं और सब
हमलोग रोक्ते हैं, तब वे जब हमें टेढ़ी मोड़ें दिखाते हैं ॥ ८ ॥

इमे हि सरधतपस्तदा तैः सम्प्रधर्षिता ।

निवार्यन्ते वनात् तस्मात् कुर्वीरानरपुङ्गवै ॥ ९ ॥

‘जब ये रक्षक उनपर अधिक कुपित हुए, तब उन्होंने
इनपर आक्रमण कर दिया । इतना ही नहीं, क्रोधसे मरे
हुए उन वानरपुङ्गवोंने इन रक्षकोंको उस वनसे बाहर
निकाल दिया ॥ ९ ॥

ततस्तेर्वृषभिर्वाँरैर्वानरैर्वानरर्षभा ।

सरत्तनयनैः क्रोधात्तरयः सम्प्रधर्षिता ॥ १० ॥

‘बाहर निकालकर उन बहुदुष्टक वीर वानरोंने क्रोधसे
लाठ खोंसे करके वनकी रक्षा करनेवाले इन श्रेष्ठ वानरोंको
घर दबाया ॥ १० ॥

पाणिभिर्निहता केचित् केचिज्जानुभिर्गृहता ।

प्रहृष्टाश्च तदा कामं देवमार्गं च दर्शिता ॥ ११ ॥

‘किं हीको गण्यहोते माय, किं हीको घुनोवे राग
दिया, बहुतोंको इच्छानुसार घसीटा और जिनोंको पीठके
बल पटककर आश्रयमान दिखा दिया ॥ ११ ॥

एवमेते हता शूरास्त्वपि तिष्ठति भर्तारि ।

हृत्स्मिन् मधुयनं चैव प्रकामं तैश्च भक्षयते ॥ १२ ॥

‘प्रभो ! आप जैसे क्षामीके रहते हुए ये शूरीर
वनरघक उनके द्वारा इस तरह मारे-पीटे गये हैं और वे
अपघाती वानर अपनी इच्छाके अनुसार शरीर मधुवनका
उपभोग कर रहे हैं ॥ १२ ॥

एव विस्मय्यमानं तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।

अपृच्छत् तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परधीरहा ॥ १३ ॥

वानरशिरोमणि सुग्रीवकी जब इस प्रकार मधुवनने
दृष्टे जानेका वृत्तान्त बताया जा रहा था, उस समय
सुग्रीवकी स्तब्ध रहनेवाले परम बुद्धिमान् लक्ष्मणने
उन्हीं पूछा—॥ १३ ॥

किमयं वानरो राजन् यनपं प्रयुपस्थितः ।

किं चार्धमभिनिर्दिश्य तु जितो वाक्पथमवतीत् ॥ १४ ॥

राजन् । वनही रक्षा करनेवाला यह वानर यहाँ किस लिये उपस्थित हुआ है ? और किस विषयकी ओर चकेत करके इसने दुस्ती होकर बात की है ? ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
लक्ष्मण प्रत्युवाचेद् वाक्यं वाक्यविशारद ॥ १५ ॥

महामा लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल सुग्रीवने उन्हें यों उत्तर दिया— ॥ १५ ॥
आर्य लक्ष्मण सम्प्राह धीरो दधिमुख कपि ।
अह्मदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षित मधु वानरैः ॥ १६ ॥

‘आर्य लक्ष्मण । वीर वानर दधिमुखने मुखसे यह कहा है कि ‘अह्मद आदि वीर वानरोंने मधुरनका सारा मधु खा-पी लिया है’ ॥ १६ ॥

नैवामहतकार्याणामीदृश स्याद् व्यतिक्रम ।
घन यदभिपद्यस्ते साधि० कर्म तद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥

‘इसकी बात सुनकर मुझे यह अनुमान होता है कि वे किस कार्यके लिये गये थे, उसे अवश्य ही उन्होंने पूरा कर लिया है । तभी उन्होंने मधुवनपर आक्रमण किया है । यदि वे अपना कार्य सिद्ध करके न आये होते तो उनके द्वारा देवा अपराध नहीं बना होता—वे मेरे मधुवनको लूटनेका साहस नहीं कर सकते थे ॥ १७ ॥

वारयतो भृश प्राप्ता पाला जानुभिराहता ।
यथा न गणितद्वयाय कपिर्वधिमुखो बली ॥ १८ ॥

तिर्मम घनस्यायमस्माभिः स्थापित स्वयम् ।
घा देवी न सदेहो न चान्येन हनूमता ॥ १९ ॥

‘मह रक्षक उन्हें वारवार रोकनेके लिये आये, तब मैं इन सबको पटककर घुटनोंसे रगड़ा है तथा इन

स वनके मालिक या प्रधान रक्षक हैं । मैंने स्वय ही

स कार्यमें नियुक्त किया है (फिर भी उन्होंने इनकी

ही मानी है) । इससे जान पड़ता है, उन्होंने देवी

दशम अवश्य कर लिया । इसमें कोई संदेह नहीं

काम और किसीका नहीं, हनुमान्जीकी ही है

ही सीताका दर्शन किया है) ॥ १८ १९ ॥

साधने हेतु कर्मणोऽस्य हनूमत ।
हर्षेणुमति मतिद्वय हरिपुङ्गवे ॥ २० ॥

द्वय च धीर्यं च श्रुत चापि प्रतिष्ठितम् ।
नयको सिद्ध करनेमें हनुमान्जीके शिवा और

बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है । वानरशिरोमणि

कार्य सिद्धि की शक्ति और बुद्धि है । उन्हींमें

न और गालगलन भी प्रतिष्ठित है ॥ २० ॥

जाम्बवान् यत्र नेता स्यादह्मदस्य महाबल ॥ २१ ॥
हनूमादवाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा ।

‘जिस दलके नेता जाम्बवान् और महाबली अह्मद हैं तथा अधिष्ठाता हनुमान् हैं, उस दलको विपरीत परिणाम—

असफलता मिले, यह सम्भव नहीं है ॥ २१ ॥

अह्मदप्रमुखैर्वीरैर्हृत मधुवन किल ॥ २२ ॥

दक्षिणामारागामगतैर्हरिपुङ्गवै ।
आगतैश्चाप्रधृष्य तद्धत मधुवन हि तैः ॥ २३ ॥

घर्षितं च घनं हृत्तन्मुपयुक्तं तु वानरैः ।
पातिता घनपालास्ते तदा जानुभिराहता ॥ २४ ॥

एतद्वर्गमय प्राप्तो यस्तु मधुरवाणिह ।
नास्मा दधिमुखो नाम हरि प्रख्यातविम्वम ॥ २५ ॥

‘दक्षिण दिशासे सीताजीका पता लगाकर लौटे हुए

अह्मद आदि वीर वानरपुङ्गवोंने उस मधुवनपर प्रहार

किया है, जिते पददक्षित करना किछीने लिये भी असम्भव

था । उन्होंने मधुवनको नष्ट किया, उनाड़ा और सब वानरोंने

मिलकर समूचे वनका मनमाने ढंगसे उपभोग किया ।

इतना ही नहीं, उन्होंने वनके रक्षकोंको भी दे मारा और उन्हें

अपने घुटनोंसे मार मारकर धाया किया । इसी बातको

बतानेके लिये ये विख्यात पराक्रमी वानर दधिमुख, जो बड़े

मधुरभाषी हैं यहाँ आये हैं ॥ २२-२५ ॥

हृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वत ।
अभिगम्य यथा सर्वे पिबन्ति मधु वानरा ॥ २६ ॥

‘महाबाहु सुमित्रानन्दन । इस बातको आप ठीक

समझे कि अब सीताका पता लग गया क्योंकि वे सभी

वानर उस वनमें जाकर मधु पी रहे हैं ॥ २६ ॥

न चाप्यहृष्टा वेदेर्हो विधुता पुरुषर्षभ ।
वन दत्तवर दिव्य धनयेयुर्धनीकस्तः ॥ २७ ॥

‘पुरुषप्रवर । विदेहनन्दिनीका दर्शन किये बिना उस

दिव्य वनका, जो देवताओंसे मेरे पूर्वजको धरदानके

रूपमें प्राप्त हुआ है, वे विख्यात वानर कभी विष्वध नहीं

कर सकते थे’ ॥ २७ ॥

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मण सहराधय ।
श्रुत्वा कर्णसुखावाणीं सुग्रीवमदनाञ्जयताम् ॥ २८ ॥

प्राहृष्यत भृश रामो लक्ष्मणादय महायशः ।
सुग्रीवके मुखसे निकली हुई कानोंको सुन देनेवाली

यह बात सुनकर धर्मात्मा लक्ष्मण भीगमचन्द्रकीके साथ

बहुत प्रसन्न हुए । भीरुमके हर्षकी सीमा न रही और

महायशस्वी लक्ष्मण भी हर्षसे खिल उठे ॥ २८ ॥

श्रुत्वा दधिमुखस्यैव सुग्रीवस्तु ग्रह्य च ॥ २९ ॥
वनपाल पुनर्वाक्य सुग्रीव प्रत्यभाषत ।

‘श्रुत्वा दधिमुखस्यैव सुग्रीवस्तु ग्रह्य च ॥ २९ ॥

वनपाल पुनर्वाक्य सुग्रीव प्रत्यभाषत ।

दधिमुखकी उपयुक्त बात सुनकर सुमीवको बड़ा हय हुआ । उन्होंने अपने वनराक्षकों को फिर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २१३ ॥

प्रीतोऽस्मि सोऽहयद्भुक्त वन तै वृतकमभि ॥ ३० ॥
धर्यत मयणीय च चेष्टित कृतकर्मणाम् ।
गच्छ शीघ्र मधुवन सरसस्य त्वमेव हि ।
शीघ्र प्रेषय सर्वोस्तान् हनूमन्मुखान् कपीन् ॥ ३१ ॥

‘मामा ! अपना काय सिद्ध करके लौटे हुए उन वानरोंने जो मेरे मधुवनका उपयोग किया है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, अतः तुम्हें भी वृत्तव्य होकर आय हुए उन कपियोंकी टिठाई तथा उद्दण्डवापूर्ण चेष्टाओंको समा कर देना चाहिये । अब शीघ्र जाओ और तुम्हीं उस मधुवनकी रक्षा करो । साथ ही हनुमान् आदि सब वानरोंको बन्दी यहाँ भेजो ॥ ३ २१ ॥

इच्छामि शीघ्र हनुम मघाना

इशालामृगास्तान् मृगराजदर्शान् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाष्मीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे त्रिपटितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

एष प्रकार श्रीरामचरितमित्र आचार्यविरचित आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डमें त्रिसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःपटितमः सर्गः

दधिमुखसे सुमीवका सदेश सुनकर अङ्गद हनुमान् आदि वानरोंका किष्किन्धामें पहुँचना और हनुमान्जीका श्रीरामको प्रणाम करके सीता दबीके दर्शनका समाचार बताना

सुमीयेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुख कपि ।
राघव लक्ष्मण चैव सुमीय चाम्यनादयत् ॥ १ ॥

सुमीरके ऐसा कहनेपर प्रसन्नचित्त वानर दधिमुखने भीरु लक्ष्मण और सुमीवको प्रणाम किया ॥ १ ॥
स प्रणम्य च सुमीर राघवौ च महाबली ।
वानरै सहित शरैर्दिव्यमेजोत्पपात ह ॥ २ ॥

सुमीव तथा उन मराबली रघुपत्नी बन्धुओंको प्रणाम करके वे शरवीर वानरोंके साथ आकाशमार्गसे उड़ चले ॥ २ ॥

स यथैवागत पूर्वं तथैव त्वरित गत ।
निपत्य गगनाद् भूमौ तद् घन प्रविशेत् ॥ ३ ॥

जैसे पहले आय थे उतनी ही शीघ्रतासे वे वहाँ जा पहुँचे और आकाशसे पृथ्वीपर उतरकर उन्होंने उस मधुवनमें प्रवेश किया ॥ ३ ॥

स प्रविष्टो मधुवन ददश हरिवृषपान् ।
निमग्नानुत्तान् सवान् मेहमानान् मधूदक्म् ॥ ४ ॥

मधुवनमें प्रविष्ट होकर उन्होंने देखा कि समस्त वानर

मष्ट वृत्तार्थान् सह राघवाभ्या

श्रोतु च सीताधिगमे प्रयत्नम् ॥ ३२ ॥

‘मैं सिद्ध समान दर्पसे भर हुए उन हनुमान् आदि वानरोंसे शीघ्र मिलना चाहता हूँ और इन दोनों रघुपत्नी बन्धुओंके साथ मैं उन वृत्तार्थ होकर लौटे हुए वीरोंसे यह पूछना तथा सुनना चाहता हूँ कि सीताकी प्राप्तिके लिये क्या प्रयत्न किया जाय’ ॥ ३२ ॥

प्रीतिस्फीताक्षी सम्प्रहृष्टौ कुमारौ

हृष्टा सिद्धार्थौ वानराणा च राजा ।

अङ्गे प्रहृष्टे कार्यसिद्धि निदिष्ट्या

वाह्योपासनामतिमात्र ननन्द ॥ ३३ ॥

वे दोनों राजकुमार भीरु और लक्ष्मण पूर्वोक्त समाचारसे अपनेको सफलमनोरथ मानकर हृष्टसे पुलकित हो गये थे । उनकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठी थीं । उन्हें इस तरह प्रसन्न देख तथा अपने हर्षोत्फुल्ल अङ्गोंसे काय सिद्धिकी हायोंमें आयी हुई जान वानरराज सुमीव अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो गये ॥ ३३ ॥

यूपति जो पहले उद्दण्ड हो रहे थे, अब मरदहित हो गये हैं—इनका नया उत्तर गया है और वे मधुभिन्न बल्का मेहन (मूषेन्द्रियद्वारा त्याग) कर रहे हैं ॥ ४ ॥

स तानुपागमद् वीरो यद्व्याप्य करपुटाञ्जलिम् ।
उवाच वचन म्लक्ष्णमिदं हृष्टवदद्भुम् ॥ ५ ॥

वीर दधिमुख उनके पास गये और दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँध आग्रसे हृष्टवृत्त मधुर वाणीमें इस प्रकार बोल— ॥ ५ ॥

सौम्य रोपो न कर्तव्यो यदेभि परिचारणम् ।
अमानाद् दक्षिभि मोधाद् भवन्त प्रनिपेधिता ॥ ६ ॥

‘सौम्य ! इन राजकुंने जो अशुभकथ आपकी रोका या, क्रोधपूर्वक आपलोगोंको मधु पीनेसे मना किया था, इसका खिन्ने आन अरने भवने क्रोध न करें ॥ ६ ॥

आन्तो दूरादनुप्रातो अभयस्य सख मधु ।
युवराजस्त्वमीनाथ यन्मयास्य मदायत् ॥ ७ ॥

‘आपलोग दूरसे यहाँ-मैंने आप हैं, अतः पक्ष खाइये

और मधु पौत्रिये । यह एक आपकी ही सम्पत्ति है । महाबली
बीर । आप हमारे सुवराज और इस वनके स्वामी हैं ॥ ७ ॥

मौख्यात् पूर्वं हतो रोपस्तद् भग्नं क्षतमुत्तमम् ।

यथैव हि पिता तेऽभूत् पूर्वं हरिगणेश्वर ॥ ८ ॥

तथा त्वमपि सुग्रीवो नाप्यस्तु हरिसत्तम ।

‘कपिश्रेष्ठ ! मैंने पहले मूर्खतावश जो रोप प्रकट किया
था, उसे आप क्षमा करें क्योंकि पूर्वकालमें जैसे आपके
पिता वानरोंके राजा थे, उसी प्रकार आप और सुग्रीव भी
हैं । आपलोगोंके पिता दूसरा कोई हमारा स्वामी नहीं है । ८ ॥

आख्यात हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ ॥ ९ ॥

इहोपयान सर्वमेतेषां घनचारिणाम् ।

भयदागमनं श्रुत्वा सर्वैर्भिर्यन्धारिभिः ॥ १० ॥

प्रहृष्टो न तु हृष्टोऽसौ घन श्रुत्वा प्रभर्षितम् ।

‘निष्ठाप सुवराज ! मैंने यहीसे जाकर आपके जाचा
सुग्रीवसे इन सब वानरोंके यहाँ पधारनेका हाल कहा था ।
इन वानरोंके साथ आपका आगमन सुनकर वे बहुत प्रसन्न
हुए । इस वनके विष्णुसका समाचार सुनकर भी उन्हें रोप
नहीं हुआ ॥ ९ १० ॥

प्रहृष्टो मा पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ११ ॥

दक्षिण प्रेयस्य सर्वोत्तानिति होवाच पार्थिव ।

‘आपके जाचा वानरराज सुग्रीवने बड़े हर्षके साथ मुझसे
कहा है कि उन सबका शीघ्र यहाँ मेजो’ ॥ ११ ॥

श्रुत्वा दक्षिमुखस्यैतद् वचनं ऋक्षमभद्रम् ॥ १२ ॥

अप्रवीत तान् हरिश्रेष्ठो वाक्यं धाम्न्यविदारद ।

दक्षिमुखकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें कुछल
कपिश्रेष्ठ अश्रुदले उन सबसे गुरुर वाणीमें कहा— ॥ १२ ॥

शङ्के भुक्तोऽयं वृक्षास्तो रामेण हरियूथपा ॥ १३ ॥

अथ च ह्वादाययाति तेन जानामि हेमुना ।

तत् क्षम नेद न स्यात् हते कार्ये परतपा ॥ १४ ॥

‘वानरपूषपतियो ! जान पड़ता है भगवान् श्रीरामने हम
स्रोतोंके छोटनेका समाचार सुन लिया, क्योंकि ये बहुत
प्रसन्न होकर वहाँकी बात सुना रहे हैं । इससे मुझे ऐसा शक
होना है । अतः अनुसूचोंकी सहाय देनेवाले बीरो ! कार्य पूरा
हो जानेपर अब हमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना
चाहिये ॥ ११ १४ ॥

पान्या मधु यथाकाम विप्रान्ता घनचारिण ।

किं शय गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ १५ ॥

‘प्राप्तमो वानर इच्छासुखार मधु पी चुके । अब यहाँ
कोन-सा काम थाप दे । इसलिये यहाँ रुकना चाहिये, जहाँ
वानरराज सुग्रीव हैं ॥ १५ ॥

सर्वे यथा मा वक्ष्यन्ति समेत्य हरिपुङ्गवा ।

तद्यास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम् ॥ १६ ॥

‘वानरपुङ्गवो ! आप सब लोग मिलकर मुझसे ज्ञेय
कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा, क्योंकि कर्तव्यके विषयमें मैं आप
लोगोंके अधीन हूँ ॥ १६ ॥

नाशापयितुमाशोऽहं सुवराजोऽस्मि यद्यपि ।

अयुक्तं छतकर्मणो यूयं धपयितुं धलात् ॥ १७ ॥

‘यद्यपि मैं सुवराज हूँ तो भी आपलोगोंपर हुकम नहीं
चला सकता । आपलोग बहुत बड़ा कार्य पूरा करके आये
हैं, अतः बहुतपूर्वक आपपर शासन चलाना कदापि उचित
नहीं है’ ॥ १७ ॥

सुवनञ्ज्वाद्दस्यैव श्रुत्वा रजनमुत्तमम् ।

प्रहृष्टमनसो वापयमिदमुच्यनौकस ॥ १८ ॥

उस समय इस तरह बोझते हुए अङ्गदका उत्तम वचन
सुनकर सब वानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इस
प्रकार बोले— ॥ १८ ॥

एव वक्ष्यति को राजन् प्रभुः सन् वानरपथ ।

ऐश्वर्यममममो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥ १९ ॥

‘वाक्य ! कपिश्रेष्ठ ! स्वामी होकर भी अपने अधीन
रहनेवाले लोगोंसे कौन इस तरहकी बात करेगा ! प्रायः सबलोग
ऐश्वर्यके प्रदत्त उन्मत्त हो अहंकारवश अपनेको ही सर्वोपरि
मानने लगते हैं ॥ १९ ॥

तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित् ।

स नतिर्हितयाक्याति भजिष्यच्छुभयोग्यताम् ॥ २० ॥

‘आपकी यह बात आपके ही योग्य है । दूसरे किसीके
झूठे प्रायः ऐसी बात नहीं निकलती । यह नम्रता आपकी
वाणी शुभयोग्यताका परिचय दे रही है ॥ २० ॥

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं वृत्तक्षणा ।

स यत्र हरिवीराणां सुग्रीव पतिरग्नयः ॥ २१ ॥

‘हम सब लोग भी जहाँ वानरक्षेत्रोंके अतिनाशी पति सुग्रीव
निराजमान हैं, वहाँ चलनेके लिये उन्मादित हो यहाँ आपके
समीप आये हैं ॥ २१ ॥

स्यथा ह्यनुसूचैरिभिर्नयं शक्यं पदात् पदम् ।

कचिद् गन्तुं हरिश्रेष्ठं वृत्तं सत्यमिदं तु ते ॥ २२ ॥

‘वानरश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा प्राप्त हुई बिना हम वानर
गण कहीं एक पग भी नहीं आ सकते, यह आपसे सही बात
कहते हैं’ ॥ २२ ॥

पथं तु यदता तेषामभद्रं प्रत्यभाषत ।

साधु वाच्छाम इत्युक्त्वा रामप्रेतुर्महापला ॥ २३ ॥

वे वानरगण अब ऐसी बातें कहने लगे, तब अश्रुद

और मधु पीजिये । यह उस आपकी ही सम्पत्ति है । यहामली
धीर । आप हमारे युवराज और इस वनके स्वामी हैं ॥ ७ ॥

मौख्यात् पूर्वं कृतो रोपस्तद् भगवान् क्षतमर्हति ।
यथैव हि पिता तेऽभूत् पूर्वं हरिगणेश्वर ॥ ८ ॥
तथा त्वमपि सुग्रीवो नायस्तु हरिसत्तम ।

‘कपिश्रेष्ठ ! मैंने पहले मूर्खतावश जो रोप प्रकट किया
था, उसे आप क्षमा करें, क्योंकि पूर्वकालमें जैसे आपके
पिता वानरोंके राजा थे, उसी प्रकार आप और सुग्रीव भी
हैं । आपलोगोंके शिवा दूसरा कोई हमारा स्वामी नहीं है । ८ ॥
आर्यात् हि मया गत्या पितृव्यस्य तवानघ ॥ ९ ॥
इहोपयान सर्वपामेतेषा यनचारिणाम् ।
भयदागमन भ्रुत्वा सहैर्भिर्यनचारिभिः ॥ १० ॥
महष्टो न तु वधोऽसौ यन भ्रुत्वा प्रधर्षितम् ।

‘निष्पाप युवराज ! मैंने यहाँसे जाकर आपके चाचा
सुग्रीवसे इन सब वानरोंके यहाँ पधारनेका हाल कहा था ।
इन वानरोंके साथ आपका आगमन सुनकर वे बहुत प्रसन्न
हुए । इस वनके विष्वक्का समाचार सुनकर भी उन्हें रोप
नहीं हुआ ॥ ९ १० ॥

महष्टो मा पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वर ॥ ११ ॥
शीघ्र प्रप्रेय सर्वास्तानिति होवाच पार्थिव ।

‘आपके चाचा वानरराज सुग्रीवने बड़े हर्षके साथ मुझसे
कहा है कि उन सबको शीघ्र यहाँ भेजो’ ॥ ११ ॥

भ्रुत्वा दधिमुखस्यैतद् वचन नृक्षणमङ्गद ॥ १२ ॥
अग्रधीत् तान् हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारद ।

दधिमुखकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें कुशल
कपिश्रेष्ठ अङ्गदने उन सबसे मधुर वाणीमें कहा— ॥ १२ ॥

शङ्के भुक्तोऽय वृत्तान्तो रामेण हरियूथपा ॥ १३ ॥
अयं च हवादावयाति तेन जानामि हेतुना ।

तत् क्षम नेह न स्यात् कृते कार्ये परतपा ॥ १४ ॥

‘वानरमुपपत्तियो ! जान पड़ता है भगवान् श्रीरामने हम
लोगोंके लौटनेका समाचार सुन लिया क्योंकि ये बहुत
प्रसन्न होकर वहाँकी बात सुना रहे हैं । इसीसे मुझे ऐसा शक
होता है । अतः अनुओंको संताप देनेवाला स्रोत । कार्य पूरा
हो जानेपर अब हमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना
चाहिये ॥ १३ १४ ॥

पीत्वा मधु यथाकाम निजान्ता यनचारिणः ।

किं शोप गमन तत्र सुग्रीवो यत्र वानर ॥ १५ ॥

‘क्याजमी वानर इच्छानुसार मधु पी चुके । अब यहाँ
कोन-सा काप शोप दे । इसलिये बड़ी चढना चाहिये, जहाँ
वानरराज सुग्रीव है ॥ १५ ॥

सर्वे यथा मा वक्ष्यन्ति समेत्य हरिपुङ्गवा ।

तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम् ॥ १६ ॥

‘वानरपुङ्गवो ! आप सब लोग मिलकर मुझसे बैठा
कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा, क्योंकि कर्तव्यके विषयमें मैं आप
लोगोंके अधीन हूँ ॥ १६ ॥

नात्रापयितुमीशोऽहं युवराजोऽस्मि यद्यपि ।

अयुक्त हतकर्माणो यूय धपयितुं वलात् ॥ १७ ॥

‘यद्यपि मैं युवराज हूँ तो भी आपलोगोंपर हुकम नहीं
चला सकता । आपलोग बहुत बड़ा कार्य पूरा करके आते
हैं, अतः वरपूर्वक आपपर शासन चलाना कदापि उचित
नहीं है’ ॥ १७ ॥

मुयतश्चाङ्गदस्यैव धुत्वा वचनमुत्तमम् ।

महष्टमसो वाक्यमिदमूच्यर्षनौकस ॥ १८ ॥

उस समय इस तरह बोले हुए अङ्गदका उत्तम वचन
सुनकर सब वानरोंका चित्त प्रधन हो गया और वे इस
प्रकार बोले— ॥ १८ ॥

एष वक्ष्यति को राजन् प्रभु सन् धानरपभ ।

प्रेम्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥ १९ ॥

‘राजन् ! कपिश्रेष्ठ ! स्वामी होकर भी अपने अधीन
रहनेवालेलोगोंसे कौन इस तरहकी बात करेगा ! प्रायः सब लोग
प्रेम्वर्यके मदसे उमत्त हो अहंकारवश अपनेको ही सर्वोपरि
मानने लगते हैं ॥ १९ ॥

तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नाभ्यस्य कस्यचित् ।

स नसिद्धिं तवावयाति भविष्यच्छुभयोग्यताम् ॥ २० ॥

‘आपकी यह बात आपके ही योग्य है । वृद्धे किसीके
मुखसे प्रायः ऐसी बात नहीं निकलती । यह नम्रना आपकी
माजी शुभयोग्यताका परिचय दे रही है ॥ २० ॥

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गतुं कृतक्षणाः ।

स यत्र हरिवीराणां सुग्रीव पतिरयय ॥ २१ ॥

‘हम सब लोग भी जहाँ वानरलोकके अविनाश पति सुग्रीव
विराजमान हैं, वहाँ चलनेके लिये उत्साहित हो यहाँ आपके
समीप आये हैं ॥ २१ ॥

तथा क्षनुकैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात् पदम् ।

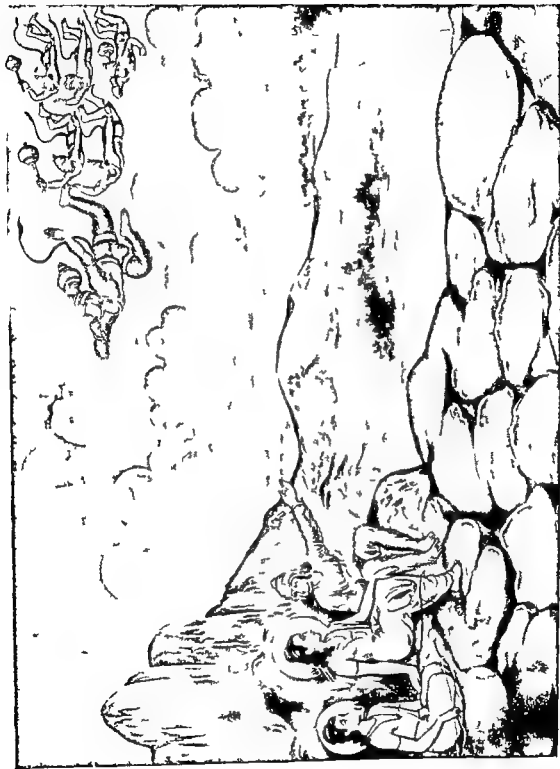
कचिद् गतुं हरिश्रेष्ठं ब्रूम सत्यमिदं तु ते ॥ २२ ॥

‘वानरश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा प्राप्त हुई यिना हम वानर
गण कहीं एक पग भी नहीं जा सकते, यदि आपसे छड़ी बात
कहते हैं ॥ २२ ॥

एष तु यद्वता तेषामङ्गद प्रत्यभाषत ।

साधु गच्छाम इत्युक्त्वा रामपुत्रेण महावत्या ॥ २३ ॥

वे वानरगण सब ऐसी बातें कहने लगे, तब अङ्गद



वानरोंने मधुद्रुपारसे लौटते देखकर सुग्रीव श्रीरामको आश्चयन दे रहे हैं

बोले—(वहृत अच्छा, अब हमयोग चले ।) इतना कहकर
वे महाशली वानर आकाशमें उड़ चले ॥ २१ ॥

उत्पन्नन्तमनूपेतु सर्वे ते हरियूयपा ।
कृत्याऽऽकाशनिराकाशय त्रोल्लसताश्चोपला ॥ २४ ॥

आगे आगे अङ्गद और उनके पीछे वे समस्त वानर
यूयपति उड़ने लगे । वे आकाशको आच्छादित करने लगे
से फेंके गये पत्थरोंकी भाँति तीव्रगतिसे आरंभ थे ॥ २४ ॥

अङ्गद पुरत कृत्या हनूमतश्च वानरम् ।
तेऽभ्यर सहस्रोत्पत्य योगयत्त प्रवृक्षमा ॥ २५ ॥
विनदन्तो महानाद् घना घोरैरिता यथा ।

अङ्गद और वानरों हनुमान्को आगे करके सभी
वेगवान् वानर सहसा आकाशमें उछलकर बाहुसे उछाये गये
बादलोंकी भाँति उड़े जोर जोरसे गजना करते हुए किष्किष्वा
के निकट जा पहुँच ॥ २५ ॥

अङ्गदे समनुप्राप्ते सुमीनो वामरेभ्यर ॥ २६ ॥
उयाच्च शोकसतत राम कमललोचनम् ।

अङ्गदके निकट पहुँचते ही वानरराज सुमीनने शोक
सतत कमलनयन श्रीरामसे कहा— ॥ २६ ॥

समाश्वसिहि भद्र ते दृष्टा देवी न सशय ॥ २७ ॥
नागनुमिह शम्भय वैरतीतसमयैरिह ।

‘प्रभो ! धैर्य धारण कीजिये । आपका कल्याण हो ।
श्रीवादेवीका पता लगा गया है, इसमें सशय नहीं है क्योंकि
कृतकार्य हुए बिना दिय हुए समयकी अवधिकी बिताकर ये
वानर कदापि यहाँ नहीं आ सकते थे ॥ २७ ॥

अङ्गदस्य प्रहर्षाच्च जानामि शुभदशन ॥ २८ ॥
न मत्सकाशमागच्छेत् कृत्ये हि विनिपातिते ।

युधराजो महाबाहु स्रवतामङ्गदो वर ॥ २९ ॥

‘शुभदशन श्रीराम ! अङ्गदकी अत्यन्त प्रशंसासे
भी मुझे इसी बातकी सूचना मिल रही है । यदि काम बिगाड़
दिया गया होता तो वानरोंमें श्रेष्ठ युधराज महाबाहु अङ्गद
मेरे पास कदापि लौटकर नहीं आते ॥ २८ २९ ॥

यद्यप्यहृतकृत्यानामीदृश स्यादुपक्रम ।
भवेत् तु दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानस ॥ ३० ॥

‘यद्यपि कार्य सिद्ध न होनेपर भी इस तरह लोगोंका
अग्ने घर छोटाना देखा गया है, तथापि उस दशामें अङ्गदके
मुक्कप उदासी छापी होती और उनके चित्तमें घबराहटके
कारण उथल पुथल भया होता ॥ ३० ॥

पिष्टपैतामह घैतत् पूवकैरभिरञ्जितम् ।
त मे मधुवन हन्यादृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥ ३१ ॥

‘मेरे चाप-दादों इस मधुवनका, जिसकी पूर्वजोंने भी

धरा रखा की है, कोइ जनककिसीवीका दर्शन किये बिना
विध्वंस नहीं कर सकता था ॥ ३१ ॥

कौसल्या सुप्रजा राम समाश्वसिहि सुप्रत ।
दृष्टा देवी न सदेहो न चान्येन हनूमता ॥ ३२ ॥

‘उत्तम व्रतका पावन करनेवाले श्रीराम ! आपको पाकर
माता कौसल्या उत्तम सतानकी जननी हुई हैं । आप धैर्य
धारण कीजिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि देवीसीताका दर्शन
हो गया । किसी औरने नहीं, हनुमान्जीने ही उनका दर्शन
किया है ॥ ३२ ॥

नह्यय कर्मणो हेतु साधनेऽस्य हनूमत ।
हनूमतीह सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ॥ ३३ ॥
व्यवसायश्च शौर्यं च श्रुत चापि प्रतिष्ठितम् ।
जाम्यवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च हरीश्वर ॥ ३४ ॥
हनूमादचाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा ।

‘मतिमानोंमें श्रेष्ठ रतुनन्दन ! इन कार्यको सिद्ध करनेमें
हनुमान्भीक विरा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव
नहीं है । वानरशिरोमणि हनुमान्में ही कार्यसिद्धीका धृति
और बुद्धि है । उहाँमें उद्योग, पराक्रम और शास्त्रज्ञान भी
प्रतिष्ठित है । जिस दलके नेता जाम्यवान् और महाशली अङ्गद
हों तथा अधिष्ठाता हनुमान् हों उस दलको विपरीत परिणाम—
असफलता मिले, यह सम्भव नहीं है ॥ ३३ ३४ ॥

मा भूद्विचिन्तासमायुक्त सम्प्रत्यमितनिग्रम ॥ ३५ ॥
यदा हि द्धिपितोद्रेमा सगता काननौकस ।
नैवामहतकार्याणामीदृश स्यादुपक्रम ॥ ३६ ॥
वनभङ्गेन जानामि मधूना भक्षणेन च ।

‘अमित पराक्रमी श्रीराम ! अब आप चिन्ता न करें ।
ये वनवासी वानर जो इतने अहंकारमें भरे हुए आ रहे हैं,
काय सिद्ध हुए बिना इनका इस तरह आना सम्भव नहीं था ।
इनके मधु पीने और वन उखाड़नेसे भी मुझे ऐसा ही प्रतीत
होता है ॥ ३५ ३६ ॥

तत क्लिकिलादाप्युत्थायास नमस्यरे ॥ ३७ ॥
हनूमत्कमदसना नदता काननौकसाम् ।

किष्किष्वाधुमुपयाताना सिद्धि कथयतामिन् ॥ ३८ ॥

ये इस प्रकार कह ही रहे थे कि उन्हें आकाशमें निकटसे
वानरोंकी क्लिक्कारियों सुनायी दी । हनुमान्जीके पराक्रमपर
गव करके किष्किष्वाके पास आ गजना करनेवाले ये
वनवासी वानर माने सिद्धिची सूचना दे रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

तत श्रुत्वा निनाद त कपीना कपिसत्तम ।
आयताञ्जितलाङ्गूल सोऽभ्यवर्ज्यमानस ॥ ३९ ॥

उन वानरोंका वह सिहनाद सुनकर कपिभेठ मुग्धका

दृढप हर्षते खिल उडा । उहोंने अपनी पूँछ लबी एव जैची
कर दी ॥ ३९ ॥

आतमुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाक्षिण ।

अङ्गद पुरत रत्ना हनूमन्त च वानरम् ॥ ४० ॥

इतनेमे हा भीरामचन्द्रकी दर्शनी इच्छासे अङ्गद
और वानरवीर हनुमान्को आगे करके वे सब वानर वहाँ
आ पहुँच ॥ ४० ॥

तेऽङ्गदप्रमुखा वीरा प्रहृष्टाश्च मुदान्विता ।

निपेनुहरिराजस्य समीपे राघवस्य च ॥ ४१ ॥

वे अङ्गद आदि वीर आनन्द और अलखित भरकर
वानरराज सुमीय तथा रघुनाथका सभाप आवाहल नीच
उतर ॥ ४१ ॥

हनूमाश्च महाघातु प्रणम्य शिरसा तत ।

नियतामक्षता देवीं राघवाय न्यवेद्यत् ॥ ४२ ॥

महाबाहु हनुमान्ने श्रीरघुनाथकी चरणों में मस्तक
रत्नकर प्रणाम किया और उन्हें यह बताया कि 'देवी सीता

हृत्पापै श्रीमद्भारमण वाल्मीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्ये चतुःपठितम सर्गः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित भारमण आदिकाण्य सुन्दरकाण्य चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चपठितम सर्गः

हनुमान्जीका श्रीरामको सीताका समाचार सुनाना

तत प्रकथय शैल ते गत्वा चित्रकाननम् ।

प्रणम्य शिरसा राम लक्ष्मण च महाबलम् ॥ १ ॥

सुवराज पुरस्सृज्य सुमीयप्रभिवाद्य च ।

प्रवृत्तिमय सीताया प्रयत्नमुपचक्रमु ॥ २ ॥

तदनन्तर विचित्र काननोंसे सुशोभित प्रसन्न पर्वतपर
काकर सुवराज अङ्गदको आगे करके भीराम, महाबली
लक्ष्मण तथा सुमीयको मस्तक हाककर प्रणाम करनेके
अनन्तर सब वानरोंने सीताका समाचार बताना आरम्भ
किया—॥ १-२ ॥

राघवान्त एदे रोध रामसीभिद्वय तर्जनम् ।

रामे समनुराग च यया च नियम हत ॥ ३ ॥

पतदाक्षाय ते सर्वे हरयो रामसनिधौ ।

विदेहीमक्षता ध्रुत्वा रामस्तृत्तरमग्रवीत् ॥ ४ ॥

सीता देवा राघवक अन्त पुरमें रोक रखी गयी है ।
राघवियों उन्हें धमकाती रहती हैं । भीरामके प्रति उनका
अनन्य अनुराग है । राघवने सीताके भीवित रहनेके लिये
केवल दो माहकी अवधि दे रखी है । इस समय विदेह

पातिमयके पठार नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे
उकुचल है ॥ ४२ ॥

दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम् ।

आकर्ष्य वचन रामो हयमाप सलक्ष्मण ॥ ४३ ॥

'मैंने देवी सीताका दर्शन किया है' हनुमान्जीके मुखसे
यह अमृतवै समान मधुर वचन सुनकर लक्ष्मणउदित भीराम
को बढ़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४३ ॥

निविद्यताये ततस्तस्मिन् सुमीय पवनात्मजे ।

लक्ष्मणः प्रीतिमान् प्रीत बहुमानाद्वैक्षत ॥ ४४ ॥

पवनपुत्र हनुमान्ने विषयमें सुमीयने पहलसे ही निश्चय
कर लिया था कि उन्हींके हाथ काय सिद्ध हुआ है । इसलिये
प्रसन्न हुए लक्ष्मणने प्रीतिपुक्त सुमीयकी ओर बढ़े आदरसे
देखा ॥ ४४ ॥

प्राप्या च परयोपेतो राघव परधारहा ।

यद्बुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत ॥ ४५ ॥

शत्रुघ्नियोंका सहर करनेवाले भीरघुनाथजीने परम प्रीति
और महान् सम्मानके साथ हनुमान्जीकी ओर देखा ॥ ४५ ॥

कुमारीको कोई छति नहीं पहुँची है—वे उकुचल हैं ।'

श्रीरामचन्द्रकी निजत से सब बातें बताकर वे वानर सुप
हो गये । विदेहकुमारीके उकुचल होनेका वृत्तान्त सुनकर
भीरामने आगेकी बात पूछत हुए कहा—॥ १४ ॥

क सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तत ।

पतमे स्वयमाक्षयत वेदेहीं प्रति वानरा ॥ ५ ॥

'मानरो ! देवी सीता कहाँ है ? मेरे प्रति उनका कैसा
भाव है ? विदेहकुमारीके विषयमें य लगी बातें सुनके
कहो' ॥ ५ ॥

रामस्य गदित श्रुत्वा हरयो रामसनिधौ ।

खोद्यन्ति हनूमन्त सीतावृत्तातकोविदम् ॥ ६ ॥

भीरामचन्द्रकी यह कथन सुनकर वे वानर भीरामके
निकट सीताके वृत्तान्तका उन्हीं तरह जाननेवाले हनुमन्जी
का उत्तर देनेक लिये प्रति करने लगे ॥ ६ ॥

ध्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान् मादतात्मज ।

प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै ता दिश प्रति ॥ ७ ॥

उन वानरोंकी बात सुनकर पवनपुत्र हनुमानजीने पहले दक्षी शीताङ्ग उदश्यते दक्षिण दिशाङ्गी ओर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥

उवाच वाक्य वाक्यस्य सीताया दर्शनं यथा ।

॥ मणिं काञ्चन दिव्यं धीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ८ ॥

दत्त्वा रामाय हनुमास्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।

जिरे बातचीतकी कलाको जाननेवाले उन वानरवीरने सीतानीका दर्शन जिस प्रकार हुआ था, वह साथ वृत्तान्त कह सुनाया । तत्पश्चात् अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाली उस दिव्य काञ्चनमणिको भगवान् श्रीरामके हाथमें देकर हनुमान्जी हाथ जोड़कर बोले— ॥ ८ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् ॥ ९ ॥

अगच्छ जानकीं सीतां मागमाणो दिदृक्षया ।

प्रभो ! मैं जनकनन्दिनी सीताके दर्शनकी इच्छाने उनका पता लगाता हुआ छौ योजन विस्तृत समुद्रको सौंघकर उसके दक्षिण किनारपर जा पहुँचा ॥ ९ ॥

तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥ १० ॥

दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ।

वहीं दुरात्मा रावणकी नगरी लङ्का है । वह समुद्रके दक्षिण तटपर ही बसी हुई है ॥ १० ॥

तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ॥ ११ ॥

त्वयि सत्यस्य जायन्ती रामा राम मनोरथम् ।

दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥

राक्षसीभिर्विरूपाम्नी रक्षिता प्रमदान्ने ।

श्रीराम ! लङ्कामें पहुँचकर मैंने रावणके अन्तःपुरमें प्रमदावनने भीतर राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई सती-साम्नी सुन्दरी देवी शीताका दर्शन किया । वे अपनी सारी अभिलाषाओंको आपमें ही केंद्रित करके किसी तरह जीवन धारण कर रही हैं । विकराल रूपवाली राक्षसियों उनकी रक्षाकानी करती हैं और बारम्बार उन्हें डोंटती फटकारती रहती हैं ॥ ११ १२ ॥

दुःखमापद्यते देवी त्वया चारं सुखोचिता ॥ १३ ॥

रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।

एकदशवीचरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ॥ १४ ॥

वीरवर ! देवी सीता आपको साथ मुझ मंगनके योग्य हैं, परन्तु इस समय यहाँ दुःखसे दिन बित्ता रही हैं । उन्हें रावणने अन्तःपुरमें रोक रक्खा गया है और वे राक्षसियों परदेमें रहती हैं । फिरपर एक बेजी धारण किने दुखी हो सदा आपकी चिन्तामें हूयी रहती हैं ॥

अथ शय्या निवणानी पथिनीन् हिमामगे ।

रावणाद् विनिवृत्तार्था मत्तस्य हतनिदधया ॥ १५ ॥

वे नीचे भूमिपर सोती हैं । जैसे जाड़ेके दिनोंमें पाला पड़नेके कारण कमलिनो सूख जाती है, उसी प्रकार उनके अङ्गोंकी वान्ति पीकी पड़ गयी है । रावणसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है । उन्होंने प्राण त्याग देनेका निश्चय कर लिया है ॥ १५ ॥

देवीकथंचित् काकुत्स्थत्वं मना मार्गिता मया ।

इषाण्डुःशविष्याति शनैः कीर्तयतानघ ॥ १६ ॥

सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ।

ततः सम्भाषिता देवी सर्ममर्थं च दर्शिता ॥ १७ ॥

‘काकुत्स्थकुलभूषण ! उनका मन निरन्तर आपमें ही लगा रहता है । निष्पाप नरभेद्य ! मैंने बड़ा प्रयत्न करके किसी तरह महारानी शीताका पता लगाया और धीरे धीरे इच्छाकुलशरीर कीर्तिका वर्णन करते हुए किसी प्रकार उनके हृदयमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न किया । तत्पश्चात् देवीसे वार्तालाप करके मैंने यहाँकी सब बातें उन्हें बतलायी ॥

रामसुप्रीयसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता ।

नियतं समुदाचारो भक्तिद्वयास्था सदा त्वयि । १८ ॥

आपकी सुप्रीयके साथ मित्रताका समाचार सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ । उनका उच्चकोटिका आचार-विचार (पातिव्रत्य) सुदृढ है । वे सदा आपमें ही भक्ति रखती हैं ॥ १८ ॥

एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ।

उभेण तपसा युक्ता त्वरुपत्त्या पुरुषपथ ॥ १९ ॥

महाभाग ! पुरुषोत्तम ! इस प्रकार जनकनन्दिनीको मैंने आपकी भक्तिसे प्रेरित होकर कठोर तपस्या करते देखा है ॥ १९ ॥

अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तयान्तिके ।

चित्रकूटे महाप्राज्ञं वायसं प्रति राघव ॥ २० ॥

महाप्रभे ! श्रुतवन्त ! चित्रकूटमें आपके पास दक्षीके रहते समय एक चौएको स्वर को घटना धटित हुई थी, उस वृत्तांतको उन्होंने पहचानकर रूपमें प्रकट कर दिया था ॥ २० ॥

विश्राप्य पुनरप्यथ रामो वायुसुत त्वया ।

अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥ २१ ॥

अथ चास्मै प्रदातव्यो पन्नात् सुपरिरक्षितः ।

‘जानकीजीने आते समय मुझसे कहा— वायुनन्दन ! तुम यहाँ जैसी मरी हालत देख चुके हो, वह सब भगवान् श्रीरामको बताना और इस मणिधरे बड़े यत्नसे गुरजिनरूपमें छे स्वर उनको हाथमें देना ॥ २१ ॥

सुवता यच्चनान्येय सुप्रापस्योपशृङ्खनः ॥ २२ ॥

एवं चूडामणिः श्रीमान् मया ते यत्नरक्षितः ।

मन शिलायास्तिलक तत् स्मरन्वेति चाग्रवीत् ॥ २३ ॥

एष निर्यातित धीमान् मया ते चारिसम्भव ।

एन दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवाग्रव ॥ २४ ॥

‘‘ऐसे समयमें देना, जब कि सुग्रीव भी निकट बैठकर

दुम्हारी कही हुई बातें सुन रहे हों। साथ ही भी ये बातें

भी उनसे निवेदन करना—‘‘प्रभो! आपकी ही हुई यह

कात्तिमती चूड़ायणि मैंने यदे यज्ञसे सुरक्षित रखी थी।

जलसे प्रकट हुए इस दीप्तिमान् रत्नको मैंने आपका सेवामें

सौटाया है। निष्पाप रघुनादन। संकटक समय इसे देखकर

मैं उठी प्रकार आनन्दमय्य हो जाना। यी, जैसे आपके

दशवसे आर्पित होती हूँ। आपने मेरे ललाटमें जो

मैनसिलका तिलक लगाया था, इसको स्मरण कीजिये।’’

ये बातें जानकीजीने कही थीं ॥ २२-२४ ॥

जीवित धारयिष्यामि मास दशरथात्मज ।

ऊर्ध्व मासाद्य जीवेय रक्षसा घशामगता ॥ २५ ॥

‘‘उन्होंने यह भी कहा—‘‘दशरथनन्दन। मैं एक

मास और जीवित धारण करूँगी। उससे बाद राक्षसोंके

घशमें पड़कर प्राण त्याग दूँगी—किन्ती तरह जीवित

नहीं रह सकूँगी ॥ २५ ॥

इति मामग्रवीत् सीता दृष्ट्वाही धर्मचारिणी ।

इत्यायं श्रीमद्भारमयणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चपटितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भारमयणे आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

पट्षष्टितम सर्गः

चूडामणिको देवकर और सीताका समाचार पाकर श्रीरामका उनके लिये विलाप

एषमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः ।

त मणिं हृदये हृत्वा करोद् सहलक्ष्मणः ॥ १ ॥

हनुमाजीके देखा कहनेपर दशरथनन्दन श्रीराम

हस मणिको अपनी छातीसे लगाकर रोने लगे। साथ ही

लक्ष्मण भी रो पड़े ॥ १ ॥

त तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठ राघवः शोककर्षितः ।

नेत्राभ्यामधुपूर्णाभ्या सुमीवमिदमग्रवीत् ॥ २ ॥

उस श्रेष्ठ मणिकी आर देखकर शोकसे व्याकुल हुए

भीरपुनायजी अपने दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर सुगीयसे

इस प्रकार बोले— ॥ २ ॥

यद्येव धेनु स्रयति स्नेहाद् यत्तस्य यत्तसलः ।

तथा ममापि हृदय मणिप्रथस्य दशनात् ॥ ३ ॥

‘‘मित्र! जैसे बत्तल धेनु अपने बछड़ेके स्नेहसे यन्तोंसे

दूध बनने लगती है, उठी प्रकार इस उत्तम मणिका देखकर

रावणान्त पुरे रुद्धा सुमीवोत्पुल्ललोचना ॥ ३६ ॥

‘‘इस प्रकार दुपले पतल श्रीरक्षासी घर्मपरायणा सीताने

मुझे आपसे कटनेके लिये यह संदेश दिया था। वे रावण

अन्त पुरमें कैद हैं और भयसे मारे आँसू पाइ भरकर

हथर उभर देखनेवाली हरिजोके समान वे लगाइ दृष्टिसे

सब ओर देखा करती हैं ॥ २६ ॥

एतदेव मयाऽऽख्यात सर्वं राघव यद् यथा ।

मयथा सागरजले स्तार प्रविधीयताम् ॥ २७ ॥

‘‘रघुनन्दन। यही वहीँका वृत्तांत है, जो सब का-सब

मैंने आपकी सेवामें निवेदन कर दिया। अब सब प्रकारसे

समूद्रको पार करनेका प्रयत्न कीजिये ॥ २७ ॥

तौ जाताभ्यासौ राजपुत्रौ विदित्वा

तथाभिमान राघवस्य प्रयाय ।

वेदथा चाख्यात सयमेवानुपूर्वयोद्

याचा सम्पूर्णं वायुपुत्र शाश्वत ॥ २८ ॥

राजकुमार भीरम और लक्ष्मणको कुछ आश्वासन

मिल गया, देखा जानकर तथा वह पड़वान भीरपुनायजीके

हाथमें देकर वायुपुत्र हनुमान्ने दबी सीताकी कही हुई खरी

बातें क्रमशः अपनी वाणीद्वारा पूनकरसे कह सुनायीं ॥ २८ ॥

आज मेरा हृदय भी दबीभूत हो रहा है ॥ ४ ॥

मनिरक्षामिद् दक्ष धिदेह्या श्वशुरेण मे ।

वधूकाले यथा यत्नमधिक मूर्ध्नि शोभते ॥ ४ ॥

‘‘मेरे श्वशुर राजा जनकने बियाहके समय वैदेहीको यह

मणिरत्न दिया था, जो उसके मस्तकपर आरबद होकर बढ़ी

शोभा पाता था ॥ ४ ॥

अय हि जलसम्भूतो मणि प्रवरपूजितः ।

यस्य परमपुष्टेन दक्ष द्राकेण धीमता ॥ ५ ॥

‘‘जलसे प्रकट हुई यह मणि श्रेष्ठ देवताओंद्वारा पूजित

है। किसी यज्ञमें बहुत सज्जत हुए बुद्धिमान् इन्द्रने राजा

जनकको यह मणि दी थी ॥ ५ ॥

इम दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठ तथा तातस्य दर्शनम् ।

अद्यास्म्यद्यमत सौम्य वैदेहस्य तथा विभो ॥ ६ ॥

‘‘शोभ्य। इस मणिरत्नका दर्शन करके आज मुझे मानो

अपने पूज्य पिताका और पित्रेहराज महाराज जनकका भी दर्शन मिल गया हो, ऐसा अनुमन हो रहा है ॥ ६ ॥

अथ हि शोभते तस्या प्रियाया मूर्ध्नि मे मणि ।
अद्यास्य दर्शनेनाह प्राप्ता सामिव चिन्तये ॥ ७ ॥

‘यह मणि सदा मेरी प्रिया सीताके सीमन्तपर शोभा पाती थी । आश हूँ देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो सीता ही मुझे मिल गयी ॥ ७ ॥

किमाह सीता वैदेही गृही सौम्य पुन पुन ।
परास्तुमिव तोयेन सिञ्चति वाक्प्यवारिणा ॥ ८ ॥

‘सौम्य पवनकुमार । जैसे जेहोड़ हुए मनुष्यको होठमें लानेके लिये उसपर जलके छंटे दिये जाते हैं, उसी प्रकार विदेहनन्दिनी सीताने मूर्च्छित हुए मे मुझ रामका अपने वाक्यरूपी शीतल जलसे शींचते हुए क्या-क्या कहा है ! यह बारबार बताओ’ ॥ ८ ॥

इतस्तु किं दुःखतर यदिम वारिसम्भयम् ।
मणि पद्मयामि सौमित्रे वैदेहीमागता विना ॥ ९ ॥

(अब वे लक्ष्मणसे बोले—) ‘सुमित्रानन्दन । सीताके यहाँ आये बिना ही जो जलसे उत्पन्न हुए इस मणिको मैं देख रहा हूँ । इससे बढकर दुःखकी बात और क्या हो सकती है’ ॥ ९ ॥

खिर जीयति वैदेही यदि मास धरिष्यति ।
क्षण वीर न जीयेय विना तामसितेश्वर्याम् ॥ १० ॥

(फिर व हनुमान्जीसे बोले—) ‘वीर पवनकुमार । यदि विदेहनन्दिनी सीता एक मासतक जीवन धारण कर लेगी, तब तो वह बहुत समयतक जी रही है । मैं तो कबराटे नेत्रोंवाली जानकीक बिना अब एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता ॥ १० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बासीकीर्षी आदिकाव्य सुन्दरकाण्डे सप्तपष्ठितम सर्ग ॥ ६६ ॥

इय प्रकार आदर्शचित्रिर्मित आर्च्यरामायण आदिकाव्यक सुन्दरकाण्डम उठाठठा सग परा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तपष्ठितम सर्ग

हनुमान्जीका भगवान् श्रीरामजी सीताका सदेश सुनाना

एवमुक्त्वन्तु हनुमान् राघवेण महात्मना ।
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत् राघवे ॥ १ ॥

महाराम श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्जीने शतांशकी बरी हुई सब बातें उनसे निवेदन कर दी ॥ १ ॥

इदमुक्तयती देयी जानकी पुरुषरथम् ।
पृथ्वीरथमभिमान विप्रकूटे यथातथम् ॥ २ ॥

मय मामपि त देश यत्र दृष्ट मम प्रिया ।
न तिष्ठेय क्षणमपि प्रभृत्सिमुपलभ्य च ॥ ११ ॥

‘मुझने जहाँ मेरी प्रियाका देखा है, उसी देशमें मुझे भी भे चला । उसका समाचार पाइए अब मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकता ॥ ११ ॥

कथं सा मम सुधोणी भीरभीरु सती तदा ।
अयावहाना घोराणा मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥ १२ ॥

‘हाय ! मेरी सती-शाष्वी सुमध्यमा सीता बही भीरु है । वह उन घोर रूपवारी मयकर राक्षसोंके बीचमें कैसे रहती होगी ! ॥ १२ ॥

शास्त्रस्तिमितो मुक्तो नून चन्द्र इवाम्बुदै ।
आवृतो बद्धन तस्या न विराजति सागम्रतम् ॥ १३ ॥

‘निश्चय ही अंधकारसे मुक्त किंतु बादलोंसे ढके हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान सीताका मुख इस समय छाया नहीं पा रहा होगा ॥ १३ ॥

किमाह सीता हनुमस्तत्त्वतः कथयस्व मे ।
यत्नेन खलु जीविष्ये मेघजेनातुरो यथा ॥ १४ ॥

‘हनुमन् । मुझे ठीक-ठीक बताओ, सीताने क्या-क्या कहा है । जैसे रोगी दवा लेनेसे जीता है, उसी प्रकार मैं सीताके इस सदेश-वाक्यको सुनकर ही जीवन धारण करूँगा ॥ १४ ॥

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी ।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे ।

दुःखाद् दुःखतर प्राप्य कथं जीयति जानकी ॥ १५ ॥

‘हनुमन् । मुझसे बिटुड़ी हुई मरी सुन्दर कटिप्रदेश वाली मधुरप्राणिणे सुन्दरी प्रियतमा जनकनन्दिनी सीताने मेरे लिये कौन-सा सन्देश दिया है ! यह तु त्व पर दुःख उठाकर भी कैसे जीवन धारण कर रही है ! ॥ १५ ॥

वे शाल—‘पुरुषोत्तम । जानकीदेवीने परम चित्रदूत

पर सीता हुई एक घनाकाश वषावत् रूपसे वषन किया था । उसे उड़ाने पटवानेके लोपर इस प्रकार कहा था ॥ २ ॥

सुखसुता त्वया साधे जानकी पूजमुचिता ।

वायस सहस्रोत्पत्य त्रिदशर स्तनान्तरम् ॥ ३ ॥

‘यह चित्रदूतमें कभी जानकी देवी आपने साप मुक्त

पूवक सोयी थी । वे सोकर आपसे पहल उठ गयी । उस समय किसी कोएने सहसा उठकर उनकी छातीमें बोंच मार दी ॥ ३ ॥

पर्यायेण च सुतस्त्व देव्यङ्गे भरताग्रज ।

पुनश्चकिल पक्षी स देव्या जनयति ध्याया ॥ ४ ॥

‘भरताग्रज । आपलोग भारी भारीसे एक दूसरेके अङ्गमें धिर रखकर सोते थे । अब आप देवीके अङ्गमें मस्तक रखकर सोये थे, उस समय पुन उसी पक्षीने आकर देवीको कण देना आरम्भ किया ॥ ४ ॥

तत पुनरुपागम्य विद्दार भृश किल ।

ततस्त्व बोधितस्तस्या शोणितेन समुग्रित ॥ ५ ॥

‘कहते हैं उसने फिर आकर बोधिते बोंच मार दी । तब देवीने शरीरसे रक्त बहान लगा और उससे भीम जानेके कारण आप जाग उठे ॥ ५ ॥

वापसेन च तेनेध सतत बाध्यमानया ।

बोधित किल देव्या त्व सुखस्तुत पनय ॥ ६ ॥

‘शत्रुओंको सताप देनेवाला रघुनन्दन । उस कोएने अब लगातार इस तरह पीड़ा दी, तब देवी सीताने मुखसे सोये हुए आपको बला दिया ॥ ६ ॥

ता च ह्यय महाबाहो दारिता च स्तनाम्तरे ।

वादीपिय इव कुन्डस्ततो घापयत्वमुचिवा ॥ ७ ॥

‘महाबाहो । उनकी छातीमें पाव हुआ देख आप बिषपर सपक समान कुपित हो उठे और इस प्रकार बोले ॥ ७ ॥

नन्वाग्ने कन ते भीरु दारित घै स्तनाम्तरे ।

कः प्रीडति सरोपेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ ८ ॥

‘भीरु । किसी अपने नाकोंय अग्रभागवे तुम्हारी छाती में शोच कर दिया है । कौन कुपित हुए पाँच मुखवाले सर्पके साथ खेल रहा है ?’ ॥ ८ ॥

निरीक्षमाण सहसा वायस ससुवैक्षया ।

नको सचधिरैस्तीक्ष्णैस्तामेवाभिमुखस्थितम् ॥ ९ ॥

‘देखा कहकर आपने जब सहसा इधर उधर दृष्टि डाली, तब उस कोएका देखा । उसने सीते पके खूनमें रंगे हुए थे और वह सीता दधीकी ओर मुँह कर कर ही कहीं बैठे था ॥ ९ ॥

श्रुतः किल स शम्भस्य वायसः पतता यर ।

धरातरगत शीघ्र पनस्य गतौ सम ॥ १० ॥

‘सुना है उड़नेवालोंमें श्रेष्ठ वह कौआ छात्राई इन्द्रका पुत्र था, जो उन दिनों पृथ्वीपर विचर रहा था । वह यात्रु देवतावे समान क्षीमगामी था ॥ १० ॥

ततस्तस्मिन् महाबाहो कोपस्यन्तिनेक्षणः ।

वायसे त्व व्यधा शूरा मति मतिमता धर ॥ ११ ॥

‘प्रतिमानोंमें श्रेष्ठ महाबाहो । उस समय आपके नय मोचने धूमने लगे और आपने उस कोएको कठोर दण्ड देनेका विचार किया ॥ ११ ॥

स दर्भसस्तपाद् गृह्य घृष्टाग्नेण ययौल्य ।

स दीप्त इव कालारितर्ज्ज्वालाभिमुख खगम् ॥ १२ ॥

‘आपने अपनी बटाईमेंसे एक कुशा निकालकर हाथमें ले लिया और उसे बलावृत्ते अभिमन्त्रित किया । फिर तो वह कुछ प्रलयकालकी अपरिच्ये समान प्रज्वलित हो उठा । उसका लक्ष्य वह कौआ ही था ॥ १२ ॥

स तघ प्रदीप्त विश्लेष दर्भं त वायस प्रति ।

ततस्तु वायस दीम स दर्भोऽनुजगाम ह ॥ १३ ॥

‘आपने उस जलते हुए कुशकी कोएकी ओर छोड़ दिया । फिर तो वह दीप्तिमान् दम उस कोएका पीछा करने लगा ॥ १३ ॥

भीतैश्च सम्परित्यक्त सुरै सवैद्वधवायसः ।

जीहोकाय सपरिमम्य ज्ञातार्दनाधिगच्छति ॥ १४ ॥

‘आपके मयसे डरे हुए समस्त देवताओंने भी उस कोएका त्याग दिया । वह तीनों लोकोंमें चकर लगाता फिर, किंतु वही भी उसे कोई शक्क नहीं मिला ॥ १४ ॥

पुनरप्यागतस्तत्र त्वरसकाशमरिदम् ।

त्व त निपतित भूमौ शरण्य शरणागतम् ॥ १५ ॥

वधाईमपि काकुत्स्थ रूपया परिपालयः ।

‘शत्रुदमन भीरव । सब ओरसे निराश होकर वह कौआ फिर वहाँ आपकी धरणमें आया । गरणमें आकर पृथ्वीपर पड़े हुए उस कोएको आपने शरणमें ले लिया, क्योंकि आप शरणागतवत्सल हैं । यद्यपि वह बधने योग्य था तो भी आपने कृपापूर्वक उसका रक्षा की ॥ १५ ॥

मोघमग्न न शक्य तु कतुमित्येव राघव ॥ १६ ॥

भवास्तस्यास्ति कादस्य हिनस्ति स्स स दक्षिणम् ।

‘रघुनन्दन । उस बलाघ्नको व्यर्थ नहीं किया जा सकता था, इसलिये आपने उस कोएकी दाहिनी ओर फेंक डाली ॥ १६ ॥

राम त्वा स नमस्तुत्य राघो द्वापस्य च ॥ १७ ॥

विश्वस्तु तदा वाक प्रतिपेदे स्वमालम्बम् ।

‘भीरव । तदनन्तर आपसे विदा ले वह कौआ मूल-पर आपका और स्वयंमें राजा दशरथको नमस्कार करते अपने घरको चला गया ॥ १७ ॥

एवमख्यविदा श्रेष्ठ सत्त्ववाञ्छील्लघानपि ॥ १८ ॥
किमथमख रक्ष ह्य न योजयसि राघव ।

(सीता कहती है—) अघुनन्दन । इस प्रकार अख
वेत्ताओंमें श्रेष्ठ, शक्तिशाली और शीलवान् होते हुए भी
आप राक्षसोंपर अपने अखका प्रयोग क्यों नहीं
करते हैं ? ॥ १८ ॥

न दानवा न गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणा ॥ १९ ॥
तव राम रणे शक्रास्त्रया प्रतिसमासितुम् ।

“भीराम । दानव, गन्धर्व, असुर और देवता कोई भी
समराङ्गणमें आपका सामना नहीं कर सकते ॥ १९ ॥

तव वीर्यवत कश्चिन्मपि यद्यस्ति सम्भ्रम ॥ २० ॥
क्षिप्रं सुनिश्चितबाणैर्हैन्यथा युधि राघव ।

“आप बल पराक्रमसे सम्पन्न हैं । यदि मेरे प्रति
आपका कुछ भी आदर है तो आप शीघ्र ही अपने तीखे
बाणोंसे रणभूमिमें राघवको मार डालिये ॥ २० ॥

घ्रातुराश्वेक्षमाहाय लक्ष्मणो वा परतप ॥ २१ ॥
स किमर्थं नरवरो न मा रक्षति राघव ।

“हनुमन् । अथवा अपने भाईकी आज्ञा लकर शत्रुओं
को घातप देनेवाले रघुकुलतिलक नरश्रेष्ठ लक्ष्मण क्यों नहीं
मेरी रक्षा करते हैं ? ॥ २१ ॥

शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमवेजसो ॥ २२ ॥
सुपणामपि दुधर्पा किमर्थं मासुपेक्षत ।

‘वे दोनों पुरुषविह् भीरुम और लक्ष्मण वायु तथा
अग्निसे तुल्य तेजस्वी एवं शक्तिशाली हैं, देवताओंके लिये
भी दुश्मन हैं । फिर किसलिये मेरी उपेक्षा कर रहे हैं ? ॥ २२ ॥
ममैव दुष्टत किञ्चिन्महदस्ति न सशय ॥ २३ ॥
समर्था सहितौ यन्मा न रक्षते परतपी ।

“इसमें संदेह नहीं कि मेरा ही कोई देहा महान् पाप
है, जिसके कारण वे दोनों शत्रुघनापी वीर एक साथ रहकर
समर्थ होते हुए मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं ? ॥ २३ ॥

वैदेह्या ध्वजं ध्रुवा कण साधुभाषितम् ॥ २४ ॥
पुनरप्यहमार्या तामिदं ध्वजं नमनुवम् ।

“अघुन २१ । विदेहनदिनीका करुणाजनक उत्तम ध्वज
मुनकर मैंने पुन आपा वीतासे यह बात कहा— ॥ २४ ॥

त्वच्छोकविमुखो रामा दपि सत्येन त शपे ॥ २५ ॥
रामे दुःखाभिभूतं च लक्ष्मण परितप्यते ।

‘देवि । मैं उत्पत्ती शपथ खाकर कहता हूँ कि
भीरामचन्द्रजी गुम्हारे शोकसे कारण ही सब कार्यसे निरत
हो रहे हैं । भीरामके दुःखी होनेसे लक्ष्मण भी उतत हो
रहे हैं ॥ २५ ॥

कथंचिद् भयती दृष्टा त काल परिशोचिषुम् ॥ २६ ॥
अस्मिन् मुहूर्ते दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ।

‘किसी तरह आपके दर्शन हो गया (आपके निवास
स्थानका पता लग गया), अतः अब शोक करनेका अवसर
नहीं है । भामिनि । आप इसी मुहूर्तमें अपने सारे दुःखोंका
अन्त हुआ देखेंगी ॥ २६ ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रौ परतपी ॥ २७ ॥
स्वदर्शनकृतोत्साहौ लङ्का भस्मीकरिष्यत ।

‘शत्रुओंको स्ताप देनेवाले वे दोनों नरश्रेष्ठ राजकुमार
आपके दर्शनके लिये उत्साहित हो लङ्कापुरीको जलाकर भस्म
कर देंगे ॥ २७ ॥

हत्वा च समरे शौद्र राघव सहबाधवम् ॥ २८ ॥
राघवस्तथा वरारोहे स्वपुरीं नयिता ध्रुवम् ।

‘वरारोहे । समराङ्गणमें शौद्र राघव राघवको बहुत
बाधवशोदित मारकर खूनाथजी अवश्य ही आपको अपनी
पुरीमें ले जायेंगे ॥ २८ ॥

यत् तु रामो विज्ञानीयाद्भिज्ञानमनिन्दिते ॥ २९ ॥
प्रीतिसज्जनन तस्य प्रदातु तत् त्वमर्हसि ।

‘श्वती साध्वा देवि । अब आप मुझे कोई ऐसी पद्वान
दीजिये, जिससे भीरामचन्द्रजी जानते हों और जो उनके मनको
प्रसन्न करनेवाला हो ॥ २९ ॥

साभिरीक्ष्य दिशं सखा वेणुद्रुपनमुत्तमम् ॥ ३० ॥
मुस्त्या चक्राद् ददौ महा मणिमेतं महाबल ।

‘महाबली वीर ! तब उ होने चारों ओर देखकर
वेणीमें घोंघने योग्य इस उत्तम मणिको अपने बलसे
खालकर मुझे दे दिया ॥ ३० ॥

प्रतिगृह्य मणिं दोर्म्यां तव हेतो रघुमित्र ॥ ३१ ॥
शिरस्ता सम्प्रणय्यैनममहामागमने त्वरे ।

‘रघुमित्रोंक मित्रतम भीराम । आपके लिये इस
मणिज्झ दोनों हाथोंमें लेकर मैंने सीतादेवीको मस्तक
झुकाकर प्रणाम किया और यहाँ आनेके लिये मैं उठावटा
हो उठा ॥ ३१ ॥

गमने च कृतोत्साहमत्रेक्ष्य चरचरिणी ॥ ३२ ॥
विषधमानं च हि मामुवाच अतःकालम् ।

अधुपूणमुखी दीना याप्यगद्गदभाषिणी ॥ ३३ ॥
ममोत्पलनसम्भ्राता शोचनेगसमाहता ।

मामुवाच ततः साता सभाग्योऽसि मदाकपे ॥ ३४ ॥
यद् द्रक्ष्यसि महापादु दवर मे यदाभ्यन्तम् ॥ ३५ ॥

लक्ष्मणं च महापादु दवर मे यदाभ्यन्तम् ॥ ३५ ॥
‘लौटनेके लिये उत्साहित हो मुझे अपने घरीरको बढ़ाते

देख सुदरी जनकनन्दिनी धीतर बहुत दुखी हो गयी ।
उनके मुखपर ओसुओंकी घारा बह चली । मेरी उठछने
नी तैयारीसे ये घरा गयी और शोकके वेगसे आदत हो
उठी । उस समय उनका स्वर अत्युद्गद हो गया था । वे
मुझसे कहने लगीं—‘महाकपे ! तुम बड़े सौभाग्यवाली हो,
जो मेरे महाबाहु प्रियतम कमलनयन भीरुमको तथा मेरे
यशस्वी देवर महाबाहु लक्ष्मणको भी अपनी ओंछोंसे
देवोगे’ ॥ ३२—३५ ॥

सीतयाप्येवमुक्तेऽहमश्रुय मैथिलीं तथा ।
पृष्ठमारोह मे देवि क्षिप्र जनकनन्दिनि ॥ ३६ ॥
यावत्ते दर्शयाम्यद्य ससुग्रीव सलक्ष्मणम् ।
राघव च महाभागे भतारमसितेक्षण ॥ ३७ ॥

‘सीतानीके ऐसा कहनेपर मैंने उन मिथिलेशकुमारीसे
कहा—‘देवि ! जनकनन्दिनी ! आप शीघ्र मेरी पीठपर
चढ़ जाइये । महाभागे ! क्यामोचने ! मैं अभी सुग्रीव
और लक्ष्मणवहित आपके पतिदेव भीरुनाथजीका आपको
दर्शन कराता हूँ’ ॥ ३६ ३७ ॥

साम्प्रमीमा ततो देवी नैव धर्मो महाकपे ।
यत्ते पृष्ठ सिपेवेऽह स्वपदा हरिपुङ्गव ॥ ३८ ॥

यह सुनकर सीतादेवी मुझसे बोली—‘महाकपे ! वानर
शिरोमणे ! मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं अपने वरमें जाती
हुई भी स्वेच्छासे तुम्हारी पीठका आभय हूँ’ ॥ ३८ ॥

पुरा च पश्य धीर रघुपुत्रा गात्रेषु रक्षसा ।
तत्राह किं करिष्यामि कालेनोपनिपीडिता ॥ ३९ ॥
गच्छ त्व कपिदाहूल यद्य तौ नृपतेः सुतौ ।

‘धीर ! पहले जो राक्षस रावणके द्वारा मेरे अङ्गोंका
स्पर्श हो गया, उस समय वहाँ मैं क्या कर सकती थी ?
तुझे तो कालने ही पीड़ित कर रखा था । अब वानर
प्रवर ! जहाँ वे दोनों राजकुमार हैं, वहाँ तुम जाओ’ ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वात्सीकीये आदिकाण्डे सप्तपष्ठितमः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरंभरामायण आदिकाण्डे सुन्दराकाण्डे सप्तपष्ठितमः सर्ग पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टपष्टितमः सर्गः

इनुमाञ्जीका मीठाके सदेह और अपनेद्वारा उनके निराकरणका वृत्तान्त बताना

अपाहमुत्तर देया पुनर्यत् ससम्भ्रमम् ।
तप स्नेहान्नरव्याघ्र सौहाय्यपुत्रमाय च ॥ १ ॥
‘पुत्रसिंह शुनन्दन ! आपको प्रति स्नेह और सौहाय्यके

इत्येव सा समाभाष्य भूष सदेष्टुमास्थिता ॥ ४० ॥
हनुमन् सिंहसफाशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीव च सहामात्य सयान् ब्रूया मनामयम् ॥ ४१ ॥

‘ऐसा कहकर वे फिर मुझे सदेष्ट देने लगीं—
‘हनुमन् ! सिंहके समान पराक्रमी उन दोनों भाई भीरुम
और लक्ष्मणसे, मजिरीछदित सुग्रीवसे तथा अन्य सब
जोगोंसे भी मेरा कुशल-व्यवहार कहना और उनका
पूछना’ ॥ ४० ४१ ॥

यथा च स महाबाहुर्मा तारयति राघव ।
मसाह्नु खाम्बुसरोधात्तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥

‘‘तुमवहाँ ऐसी बात कहना, जिससे महाबाहु खुनाय
भी इस दुःखलागरसे मरा उद्धार करें’ ॥ ४२ ॥

इदं च तीव्रमम शोकवेग
रक्षोभिरेभि परिभर्त्सनं च ।

ब्रूयास्तु रामस्य गत समीप
शिवश्च तेऽन्वास्तु हरिप्रवीर ॥ ४३ ॥

‘‘वानरोंके प्रमुख धीर ! मेरे इस तीव्र शोक-वेगसे
तथा इन राक्षसोंद्वारा जो मुझे बराबा घमकाया जाता है,
इसको भी उन श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर कहना ।
तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो’ ॥ ४३ ॥

पठत् तवार्थो नृप सपता सा
सीतर घट प्राह विषादपूर्वम् ।
यतश्च बुद्ध्या गदितं यथा त्व
अद्वरख सीता कुशला समग्राम् ॥ ४४ ॥

‘‘नरधर ! आपको प्रियतमा समयशीला आपां छीताने
बड़े विषादके साथ य खारी बातें कही हैं । मेरी कही
हुई इन सब बातोंपर विचार करके आप विश्वास करें कि
सतीशिरोमणि सीता सकुशल हैं’ ॥ ४४ ॥

कारण देवी छीताने मेरा उत्कार करके जानके लिये उतावल
हुए मुझे पुन यह उत्तम बात कही—॥ १ ॥
यद्य बहुनिघ याद्यो रामो दाशरथिस्थया ।

यथा मा प्रान्त्याच्छीघ्रं हत्वा रावणमाह्वये ॥ २ ॥

“पवनकुमार । तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामसे
अनेक प्रकारसे ऐसी बातें कहना, जिससे वे समराङ्गणमें शीघ्र
ही रावणका वध करके मुझे प्राप्त कर लें ॥ २ ॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैवाहमरिदम् ।
कस्मिदिच्छस्वदृते देशे विश्रान्तं श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥

“शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर । यदि तुम ठीक समझो
ता यहाँ किसी गुप्त स्थानमें एक दिनके लिये ठहर जाओ ।
आज विश्राम करके कल सबेरे यहाँसे चले जाना ॥ ३ ॥

मम चाप्यल्पभागयाया सानिष्यात्तत्त्वचानर ।
अस्य शोकविपाकस्य मुहुर्ते स्याद् विमोक्षणम् ॥ ४ ॥

“बानर । तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्दभागिनीको इस
शोकविपाकसे थोड़ी दूरके लिये भी छुटकारा मिल जाय ॥ ४ ॥

गते हि त्वयि त्रिजान्ते पुनरागमनाय वै ।
प्राणानामपि न्यदेहो मम स्थान्नात्र सशय ॥ ५ ॥

“तुम पराक्रमा वीर हो । जब पुन आनेके लिये यहाँसे
चले जाओगे, तब मेरे प्राणोंके लिये भी सदेह उपस्थित हो
जायगा । इसमें शय्य नहीं है ॥ ५ ॥

तयादशनज शोको भूयो मा परितापयेत् ।
दुःखाद् दुःखपरामृता दुर्गता दुःखभागिनीम् ॥ ६ ॥

“तुम्हें न देखनेसे होनेवाला शोक दुःख पर-दुःख उठाने-
से परामभव तथा दुर्गतिमें पड़ी हुई मुझ दुखियाको और भी
वताप देता रहगा ॥ ६ ॥

अयं च वीर सदेहस्तिष्ठतीत्य ममाग्रत ।
सुमहास्त्वत्सहायेषु हर्षुक्षेपु हरीश्वर ॥ ७ ॥

कथं नु खलु दुष्पार तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्ष्यन्ते स्यान्ति तौ या नरवरत्नजौ ॥ ८ ॥

“वीर । बानरराज । मेरे सामन यह महान् सदेह सा
खड़ा हो गया है कि तुम जिनके सहायक हो, उन बानरों और
मादृओंके होते हुए भी रीतों और चालोंकी वे सन्तानें तथा
वे दोनों राक्षसकुमार भीराम और लक्ष्मण इस अपार पारवार
को कैसे पार करेंगे ! ॥ ७-८ ॥

प्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने ।
शक्तिं स्याद् धैर्यतपस्य वायोवा तत्र चानघ ॥ ९ ॥

“निष्पार पवनकुमार । तीन ही भूतोंमें इस समुद्रको
सोफनेकी शक्ति देली जाती है—विनयानन्दन गरुड़में, वायु
देवतामें और तुममें ॥ ९ ॥

तस्मिन् कायनियोगे वीरस्य दुरतिप्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं मूढि कायविदा यत ॥ १० ॥

“वीर । जब इस प्रकार इस कार्यका साधन दुष्पर हो गया
है, तब इसकी सिद्धिके लिये तुम कौन-सा समाधान (उपाय)
देखत हो । “अभिहितके उपाय बाननेवालोंमें तुम श्रेष्ठ हो
अतः मेरी बातका उत्तर दो ॥ १० ॥

काममस्य त्वमेवैक कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तं परावीर्य यशस्यस्ते बलोदय ॥ ११ ॥

“विजयी वीरोंका नाथ करनेवाले कविभेद । इसमें सदेह
नहीं कि इस कार्यकी सिद्धिके लिये तुम एकल ही बहुत हो,
तथापि तुम्हारे बलका यह उद्रेक तुम्हारे लिये ही यशकी वृद्धि
करनेवाला होगा (भीरामके लिये नहीं) ॥ ११ ॥

बलै समग्रैर्यदि मा हत्वा रावणमाह्वये ।
विनयी स्वपुरीं रामो नयेत्तत्त्वस्याद् यशस्करम् ॥ १२ ॥

“यदि भीराम अपनी सम्पूर्ण सेनाक साथ यहाँ जाकर
युद्धमें रावणका मार डाले और विजयी होकर मुझ अपना
पुरीको ले चले तो यह उनके लिये यशकी वृद्धि करनेवाला
होगा ॥ १२ ॥

यथाह तस्य वीरस्य वनादुपधिना हता ।
रक्षसा तद्व्यादेय तथा नाहति राघव ॥ १३ ॥

“जिस प्रकार राक्षस रावणने वीरवर भगवान् भीरामके
भयसे ही उनके सामने न जाकर छलपूर्वक वनमें मेरा अप-
हरण किया था, ठव तरह भीरुनाथजीको मुझे नहीं प्राप्त
करना चाहिये (वे रावणको मारकर ही मुझे ल चले) ॥ १३ ॥

यलैस्तु सङ्कुला कृत्वा लङ्का परबलादन ।
मा नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्त्वस्य सटश भवेत् ॥ १४ ॥

“शत्रुसेनाका शहर करनेवाले कङ्कुल-सङ्कुलभूषण भीराम
यदि अपने सेनिकोंद्वारा सङ्कापा पददलित करके मुझे अपने
साथ ले जायें तो यह उनके योग्य पराक्रम होगा ॥ १४ ॥

तद् यथा तस्य त्रिजान्तमनुकृप महारामन ।
भवन्त्याह्वयशूरस्य तथा स्वमुपपादय ॥ १५ ॥

“महाराम भीराम गङ्गाधरमें शीघ्र प्रवृत्त करनेवाले हैं,
अतः जिस प्रकार उनका कुरूप पराक्रम प्रवृत्त हो सके,
वैधा ही उपाय तुम करो ॥ १५ ॥

तदर्थोपहित गान्धर्व प्रथित हेतुसहितम् ।
निदाम्याह तत शेष गान्धर्वमुत्तरमग्रम् ॥ १६ ॥

“सौतादशोके उस अभिप्रायपुक्त, विनयपूर्ण और युक्ति-
संगत वचनको धनकर अन्तमें मैंने उद्धृत इस प्रकार उत्तर
दिया— ॥ १६ ॥

देवि हर्ष्यन्ते स्यान्नामीश्वर पथता उर ।
सुधीय सत्यसम्पन्नस्य दयै हतनिदचय ॥ १७ ॥

“देवि । बानर और मादृओंकी सेनाक सामो कविभेद

सुप्रोव बड़े शक्तिशाली हैं। वे आपका उद्धार करनेके लिये
दृढ निश्चय कर चुके हैं ॥ १७ ॥

तस्य विक्रमसम्पन्ना सत्त्ववत्तो महाबला ।
मन सकल्पसदृशा निदेशे हरय स्थिता ॥ १८ ॥

“उनके पास पराक्रमी, शक्तिशाली और महाबली वानर
हैं, जो मनक सकल्पके समान तीव्र गतिसे चलते हैं। वे
सब के सब सदा उनकी आज्ञाके अधीन रहते हैं ॥ १८ ॥

येषा नोपरि नाधस्तात्प्रतिर्यक्सज्जते गति ।
न च कर्मसु सोऽन्ति महत्स्वमिततेजस ॥ १९ ॥

“नीचे, ऊपर और अगल-बगलमें कहीं भी उनकी गति
नहीं रुकती है। वे अमिथतेजस्वी वानर बड़े से बड़े कार्य
आ पड़नेपर भी कभी थिथिल नहीं होते हैं ॥ १९ ॥

असङ्कतैर्महाभागैर्वानरैर्यलसयुतै ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमागोनुसारिभिः ॥ २० ॥

“वायुमार्ग (आकाश) का अनुसरण करनेवाले उन
महाभाग यत्नवान् वानरोंने अनेक बार इस पृथ्वीकी परिक्रमा
की है ॥ २० ॥

महिषाघ्नश्च तुर्याश्च सन्ति तत्र धनौकस ।
मत्त प्रत्यथर कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसनिधौ ॥ २१ ॥

“वहाँ मुझसे बढकर तथा मेरे समान शक्तिशाली बहुतसे
वानर हैं। सुग्रीवके पास कोई ऐसा वानर नहीं है, जो मुझ
से किसी बातमें कम हो ॥ २१ ॥

बह तावदिह प्राप्त किं पुनस्ते महाबला ।
नहि प्रकृष्टा प्रेक्ष्यन्ते प्रेक्ष्यन्ते हीतरे जना ॥ २२ ॥

“जब मैं ही यहाँ आ गया, तब फिर उन महाबली वानरों
क आनेमें क्या सदेह हो सकता है? आप जानती होंगी कि
दूत या घावन बनाकर वे ही लोग भेजे जाते हैं, जो निम्न
श्रेणीके होते हैं। अच्छी श्रेणीके लोग नहीं भेजे जाते ॥ २२ ॥

तद्वल परितोषेन देवि मयुरैतु ते ।
पकोत्पातेन ते लङ्कामेप्ययि हसिष्यथा ॥ २३ ॥

“अत देवि! मय स्तुताप करनेकी आवश्यकता नहीं
है। आपका मानधिक कुछ दूर ॥ जाना चाहिये। ये वानर
यूथपति एक ही छलोगमें लङ्कामें पहुँच जायेंगे ॥ २३ ॥
मम पृष्ठगतीं तौ च चन्द्रसूर्योपि योदितौ ।
त्वत्सकाशा महाभागे नृसिंहायामभिप्यत ॥ २४ ॥

इस कार्ये श्रीमहामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टपष्ठितम सर्ग ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीनिर्मित आरंभरामायण आदिकाव्य सुन्दरकाण्डमें अठसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६८ ॥



सुन्दरकाण्ड सम्पूर्णम्



“महाभाग! वे पुरुषसिंह भीराम और लक्ष्मण भी
उदयान्वरूप उदित होनेवाले चन्द्रमा और सूर्यकी भाँति मेरी
पीठपर बैठकर आपके पास आ जायेंगे ॥ २४ ॥

अरिचन सिंहसकाशा क्षिप्र द्रक्ष्यसि राघवम् ।

लक्ष्मण च धनुष्मन्त लङ्काद्वारमुपागतम् ॥ २५ ॥

“आप शीघ्र ही देखेंगे कि सिंहके समान पराक्रमी शत्रु
नायक भीराम और लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये लङ्काके द्वार
पर आ पहुँचे हैं ॥ २५ ॥

नजघ्नयुधान्न धीरान् सिंहशार्दूलविभ्रमान् ।

वानरान् चारणे द्वाभान् क्षिप्र द्रक्ष्यसि सगता ॥ २६ ॥

“नल और दास ही जिनका आग्रह है, जो सिंह और
बाघके समान पराक्रमी हैं तथा बड़े-बड़े गजराजोंके समान
झिनकी विशाल काया है, उन वीर वानरोंको आप शीघ्र ही
यहाँ एकत्र हुआ देखेंगे ॥ २६ ॥

शैलाम्बुदनिकाशाना लङ्कामलयसालुपु ।

नर्दता कपिमुष्याना नचिराच्छ्रोष्यसे स्वनम् ॥ २७ ॥

“लङ्कावर्ती मलयपर्वतके शिखरोंपर पहाड़ों और मेघोंके
समान विशाल शरीरवाले प्रधान प्रधान वानर आकर गजना
करेंगे और आप शीघ्र ही उनका सिंहाद सुर्नेंगी ॥ २७ ॥

निवृत्तचयनवास च त्वया सार्धमरिदमम् ।

अभिविक्तमयोध्याया क्षिप्र द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ २८ ॥

“आपको बल्दी ही यह देखनेका भी सीमाय प्राप्त
होगा कि शत्रुओंका दमन करनेवाले और शत्रुनाशनी बनवावकी
अवधि पूरी करके आपके साथ अयोध्यामें जाकर वहाँके राज्य
पर अभिषिक्त हो गये हैं ॥ २८ ॥

ततो मया धाग्भिरदीनभाषिणी

शिराभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।

उवाच शान्तिं मम मैथिलतात्मजा

तथातिशोकेन तथातिथीकृता ॥ २९ ॥

“आपके अत्यन्त शोकसे बहुत ही पीड़ित होनेपर भी
झिनकी वाणीमें कभी दीनता नहीं आने पाती, उन मिथिलेश
कुमारीको जब मैंने म्रिय एव मद्गलमय वचनोंद्वारा शांतवना
देकर प्रसन्न किया, तब उनके मनकी कुछ शान्ति
मिली ॥ २९ ॥

सुमाव बद्ध शक्तिशाली है। वे आपका उद्धार करनेके लिये
हृद निश्चय कर चुके हैं ॥ १७ ॥

तस्य विक्रमसम्पदा सत्त्वयतो महाबला ।
मन सकल्पसदृशा निदेशो हरय स्थिता ॥ १८ ॥

“उनके पास पराक्रमी, शक्तिशाली और महाबली बानर
हैं, जो मनके सङ्कल्पके समान तीव्र गतिसे चलते हैं। वे
सब क समय सदा उनका आश्रय अभीन रहते हैं ॥ १८ ॥

येषा नोपरि नाधस्तात् तिर्यक् सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु लोड्ढा मद्भक्त्यामृततज्जस ॥ १९ ॥

“नीचे, ऊपर और अगल-बगलमें कहीं भी उनकी गति
नहीं रुकती है। वे अमितवेगकी बानर बड़े-से बड़े कार्य
आ पड़नेपर भी कभी शिथिल नहीं होते हैं ॥ १९ ॥

असङ्कुट् तैर्महाभार्योर्नरैर्यलसयुतै ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिवांयुमागानुसारिभिः ॥ २० ॥

“बायुमार्ग (आकाश) का अनुसरण करनेवाले उन
महाभाग बलवान् बानरोंने अनेक बार इस पृथ्वीकी परिक्रमा
की है ॥ २० ॥

मद्दिशिग्राह्यं तुल्याच्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्त प्रत्ययः कदिविधास्ति सुमीनसनिधौ ॥ २१ ॥

“उहाँ वृक्षसे बढ़कर तथा भरे समान शक्तिशाली बहुत-से
बानर हैं। सुमीवक पास कोई ऐसा बानर नहीं है, जो वृक्ष
से किसी बातमें कम हो ॥ २१ ॥

मह साधविह प्राप्त किं पुनस्ते महाबला ।
नहि प्रकृष्टा प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जना ॥ २२ ॥

“जब मैं ही यहाँ आ गया, तब फिर उन महाबली बानरों
के आनेमें क्या संदेह हो सकता है। आप जानती होंगी कि
दूर या घाबन बनाकर वे ही लोग भेजे जाते हैं, जो निम्न
श्रेणीके होते हैं। अच्छी श्रेणीके लोग नहीं भेजे जाते ॥ २२ ॥

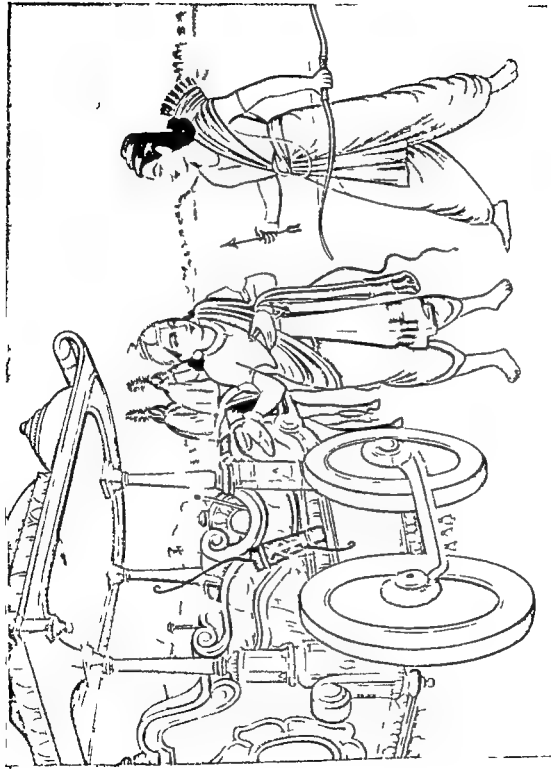
तदल परितापेन वेरि मन्युपैतु ते ।
पकोत्पातेन ते लङ्कामेप्यन्ति हरियूथपा ॥ २३ ॥

“अतः देवि ! अब स्तान् बननेकी आवश्यकता नहीं
है। आपका मानसिक दुःख दूर हो जाना चाहिये। वे बानर
यूथपति एक ही छलोगमें लङ्कामें पहुँच जायेंगे ॥ २३ ॥

मम पृष्ठगती तौ च चन्द्रय्यापिबोदितौ ।
त्वत्सकाश महाभाग नृसिंहापागमिष्यत ॥ २४ ॥

हरायें श्रीमन्नारामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टपद्यम सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अष्टादशों सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥



इन्द्र-सारथि मातलि भगवान् श्रीरामसे रथपर आरूढ होनेक लिये अनुरोध कर रहें हैं

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

युद्धकाण्डम्

प्रथम सर्गः

हनुमान्जीकी प्रशंसा करके श्रीरामका उन्हें हृदयसे लगाना और समुद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथाश्रमिभाषितम् ।
राम प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

हनुमान्जीके द्वारा यथावतरूपसे कहे हुए इन वचनोंको
सुनकर भगवान् श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार
उत्तम वचन बोले— ॥ १ ॥

कृत हनुमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम् ।
मनसापि यद्व्येन न शक्यं धरणीतले ॥ २ ॥

‘हनुमान्ने बड़ा भारी कार्य किया है। भूतत्पर ऐसा
कार्य होना कठिन है। इस भूमण्डलमें दूसरा कोई तो ऐसा
कार्य करनेकी शक्त मनके द्वारा सोच भी नहीं सकता ॥ २ ॥
नहि त परिपद्यामि यस्तरेत महोदधिम् ।

अन्यत्र गरुडाद् वायोरप्यत्र च हनुमत ॥ ३ ॥

गरुड़, बायु और हनुमान्को छोड़कर दूसरे किसी
को मैं ऐसा नहीं देखता, जो महासागरको रूँध सके ॥ ३ ॥

देवदानवपक्षाणां गन्धर्वाङ्गरक्षसाम् ।
अप्रच्युता पुरीं लङ्कां वायणेन सुरक्षिताम् ॥ ४ ॥

प्रविष्टः सत्त्वमाधित्य जीमन्कोनामनिष्क्रमेत् ।

‘देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इनमेंसे
किसीके लिये भी जिसपर आक्रमण करना असम्भव है तथा
जो राणके द्वारा मनीमौलि सुरक्षित है, उस लङ्कापुरीमें अपने
बलसे मराने प्रवेष्ट करने यौन यहाँमें जीवित निकल
सकता है’ ॥ ४ ॥

को निरोत्तु सुदुराधर्मां राक्षसैश्च सुरक्षिताम् ॥ ५ ॥
यो धीर्ययत्नस्वप्नो न सम म्याडनूमत ।

‘आ हनुमान्को समान वक्तृपराक्रमसे सम्पन्न न हो, ऐसा
कोन पुरुष राक्षसोंद्वारा सुरक्षित अत्यन्त दुजय लङ्कामें प्रवेश
कर सकता है ॥ ५ ॥

भृत्यकार्ये हनुमता सुभीकस्य हत महन् ।
पय विधाय स्वयल सद्यः प्रियमस्य च ॥ ६ ॥

‘हनुमान्ने समुद्र-रुहून आदि कार्योंके द्वारा अपने
परक्रमक अनुसूय बल प्रकट करके एक सच्चे सेवकने योग्य
सुभीकका बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया है ॥ ६ ॥

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्ता कर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहु पुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥

‘जो सेवक स्वामीके द्वारा किसी दुष्कर कार्यमें नियुक्त
होनेपर उसे पूरा करके तदनुसूय दूसरे कार्यको भी (यदि वह
मुख्य कार्यका विशेषी न हो) सम्पन्न करता है, वह सेवकोंमें
उत्तम कहा गया है ॥ ७ ॥

यो नियुक्तः पर कार्ये न कुर्यान्नुपते प्रियम् ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहु मध्यम नरम् ॥ ८ ॥

‘जो एक कार्यमें नियुक्त होकर योग्यता और सामर्थ्य
होनेपर भी स्वामीके दूसरे प्रिय कार्यको नहीं करता (स्वामीने
जितना कहा है, उतना ही करने लौट आता है) वह मध्यम
श्रेणीका सेवक बताया गया है ॥ ८ ॥

नियुक्तो नृपते कार्ये न कुर्याद् यः समाहितः ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहु पुरुषाधमम् ॥ ९ ॥

‘जो सेवक मालिकके किसी कार्यमें नियुक्त होकर अपनेमें
योग्यता और सामर्थ्यके होते हुए भी उसे साधनानि पूरा
नहीं करता, वह अधम कोटिका कहा गया है ॥ ९ ॥

तन्निग्रोगे नियुक्तेन हत इत्य हनुमता ।
न चात्मा रघुता नीत सुभीरश्चापि तापित ॥ १० ॥

‘हनुमान्ने स्वामीर एक कार्यमें नियुक्त होकर उसका
साथ ही दूसरे महाव्यूषण कार्योंका भी पूरा किया, अपने
गौरवमें भी कमी नहीं आने दी—अपने आपका दुस्संपूर्ण
हर्षमें छाग नहीं करने दिया और सुभीरका भी पूजन संतुष्ट
कर दिया ॥ १० ॥

अहं च रघुवशश्च तदमणश्च महायत्नः ।
वैदेह्या दशनेनाय धमत परिरिमिता ॥ ११ ॥

‘जात्र हनुमान्ते विदेहनिदिनी सीताम पता लगाकर—
उन्हें अपनी आँखों देकर घमस बनार गयी, समस्त
खुनशरी और महानली लगमणी भी रणा की है ॥ ११ ॥

इदं तु मम दीतस्य मनो भूय प्रकर्षति ।
यदिहाम्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृश प्रियम् ॥ १२ ॥

‘जात्र मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुका अमान है,
यदि बात मेरे माम बड़ी कसब पैदा कर रही है कि यहाँ
जिसे मुझे ऐसा प्रिय संगीद सुनाया, उसका मैं कोई वैसा
ही प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १२ ॥

एष सर्वसम्भूतस्तु परिप्यङ्को हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मन ॥ १३ ॥

‘इस समय इन महात्मा हनुमान्को मैं फल अपना
प्रमाण आलिङ्गन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा
सर्वस्व है’ ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्को रामस्त पण्डितः ।
हनूमन्तं कृतात्मानं कृतस्वयमुपागतम् ॥ १४ ॥

ऐसा कहते-कहते खुनशरीके अङ्ग प्रत्यङ्ग प्रमत्ते पुलकित
हो गये और उन्होंने अपनी आँखों के पालनमें सफलता पाकर
लौटे हुए पवित्रात्मा हनुमान्जीको हृदयसे लगा लिया ॥ १४ ॥

ध्यात्वा पुनरुवाचेद वचनं रघुसत्तम ।
हरीणामीश्वरम्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वत ॥ १५ ॥

हरपापें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीके आदिकाण्डे प्रथम सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिमित्त भारगरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पट्ठा सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

सुग्रीवका श्रीरामको उत्साह प्रदान करना

तं तु शोकपरिहृतं रामं दशरथात्मजम् ।
उवाच वचनं श्रीमान् सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ १ ॥

इस प्रकार शोकसे संतप्त हुए दशरथनन्दन श्रीरामसे
सुग्रीवने उनके शोकका निवारण करनेवाली बात कही—॥ १ ॥

किं स्वया तप्यते वीर यथान्य प्राकृतस्तथा ।
मेघ भूस्तयज सतापं तत्पन्न इव सौहृदम् ॥ २ ॥

‘वीरर ! आप दूसरे लक्षण मनुष्योंकी भाँति क्यों
सताप कर रहे हैं ? आप इस तरह चिन्तित न हों । जैसे
कृताप पुरुष सौहादको त्याग देता है, उसी तरह आप भी
इस सतापसे छोड़ दें ॥ २ ॥

सतापस्य च ते स्थानं नहि पदयामि राघव ।
मनुस्तापुपलम्भाया शक्ते च निलये रिपो ॥ ३ ॥

फिर थोड़ी देरतक विचार करके खुनशरीरामणि श्रीराम
ने वानरराज सुग्रीवका सुनाकर यह बात कही—॥ १ ॥

संस्था सुदृढ तावत् सीताया परिमामगम् ।
सामरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ १६ ॥

‘बहुआ ! सीताकी खोजका काम तो सुचारुरूपसे सम्पन्न
हो गया किंतु समुद्रतकनी दुस्तरतासे निवार करके मेरे
मनका उत्साह फिर नष्ट हो गया ॥ १६ ॥

कथं नाम समुद्रम्यं दुष्पारस्य महान्भस ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागता ॥ १७ ॥

‘महान् जलपानिसे परिपूर्ण समुद्रको पार करना तो बड़ा
ही कठिन काम है । यहाँ एकत्र हुए ये वानर समुद्रके दक्षिण
तटपर कैसे पहुँचेंगे ॥ १७ ॥

यद्यप्येषु तु वृत्तांतो वैदेह्या गदितो मम ।
समुद्रपारगमने हरीणा किमिदोत्तरम् ॥ १८ ॥

‘मेरी सीताने भी यही सदेह उठाया था, जिसका वृत्तान्त
अभी-अभी मुझसे कहा गया है । इन वानरोंके समुद्रके पार
जानेके विषयमें जो प्रश्न खड़ा हुआ है, उसका वास्तविक
उत्तर क्या है ?’ ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो राम शत्रुनिवर्हण ।
हनूमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागतम् ॥ १९ ॥

हनुमान्जीसे ऐसा कहकर शत्रुमदन महाबाहु श्रीराम
शोकालु होकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणे आदिकाण्डे प्रथम सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिमित्त भारगरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पट्ठा सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

‘खुनन्दन ! जब सीताका समाचार मिल गया और शत्रु
के निवास-स्थानका पता लग गया, तब मुझे आपके इस दुःख
और चिन्ताका कोई कारण नहीं दिखायी देता ॥ ३ ॥

मतिमाञ्जास्मरितं प्राप्तं पण्डितश्चासि राघव ।
त्यजेतां प्राणानां युद्धं हन्तामेघान्पण्डितम् ॥ ४ ॥

‘पण्डितशरण ! आप बुद्धिमान्, शास्त्रोंसे शास्त्रा
विचारकुशल और पण्डित हैं, अतः कृतात्मा पुरुषकी भाँति
इस अयधूपन प्राप्त बुद्धिका परित्याग कर दीजिये ॥ ४ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु महान्नसमाकुलम् ।
लङ्घ्यामरोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम् ॥ ५ ॥

‘यदि-यदि नामेंसे भरे हुए समुद्रको लँघन हमलगा
लङ्घ्याम चढ़ाई करेंगे और आपका शत्रुको नष्ट कर देंगे ॥



श्रीराम सुग्रीवको लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये उत्साहित कर रह है

निरुन्ताहस्य वीनस्य शोकपर्याकुलामन ।
मयाया व्यरसीदन्ति व्यसन चाधिगच्छन्ति ॥ ६ ॥

आ पुरुष उल्हास्यन्, वीन और मन-ही-मन शोकसे
व्याकुल रहता है, उसके बारे काम बिगड़ जाते हैं और वह
बड़ी विनम्र पड़ जाता है ॥ ६ ॥

इमे शूरा समग्राश्च सर्वतो हरियूथपा ।
स्वप्रियार्यै हृतोन्ताहा प्रवेष्टुमपि पावकम् ।
एषा ह्येषं जानामि तर्कस्यापि ददो मम ॥ ७ ॥

ये बानरपुंगवति सब प्रकारसे सनय एव शूवीर हैं ।
अपका प्रिय करनेके लिये इनके मनमें बड़ा उत्साह है । ये
अपके लिये बन्धु आगमें भी प्रवेश कर सकते हैं । सुन्दर
छात्रों और रावणको मारनेका प्रसंग चञ्चेपर इनका मुँह
प्रसन्नतासे बिल बन्द है । इनके इस हर्ष और उत्साहसे ही
मैं इस बातको जानता हूँ तथा इस विषयमें मेरा अपना तर्क
(निश्चय) भी कुछ है ॥ ७ ॥

त्रिक्रमेण समानेप्ये सीता हत्वा यथा रिपुम् ।
रावण पापकमाण तथा त्व कर्तुमहसि ॥ ८ ॥

आज ऐसा कीजिये, जिससे हमलोग पण्डितगुरु अपने
गुरु पानाचारी रावणका वध करके सीताका यहाँ ल आँ ॥
सेतुरथ यथा बद्धेद् यथा पश्येम ता पुरीम् ।
तस्य राक्षसराजस्य तथा त्व कुरु रावण ॥ ९ ॥

मधुनन्दन ! आप ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे
सुन्दरर नेतृ बंधु सके और हम उस राक्षसराजकी लड़ापुरीको
देख सकें ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा ता हि पुरीं लब्ध्वा त्रिकुटशिखरे स्थिताम् ।
हस्त च रावण युद्धे दर्शनादपधारय ॥ १० ॥

त्रिकुटपर्वतसे गिरतरफ बनी हुई लड़ापुरी एक बार
दीन क्षण तो आप यह निश्चित करणिये कि मुझमें रावण
शिखानी दिया और माय गया ॥ १० ॥

अयदध्या सागरे सेतु घोरं च यरुणान्ये ।
लब्ध्वा न मर्दितु शम्भ्या सेन्द्रैरपि सुरासुरै ॥ ११ ॥

वधवारने निवसन्त धर सुन्दर पुत्र बोधे बिना तो
इन्द्रसैन समूह देवता और असुर भी लड़ाको पददन्ति
नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

सेतुरथ समुद्रे च यागुह्वात्ममोषन ।
सर्वे तीर्णे च मे सैन्य जितमियुषधारय ।

इमे हि समर धीरा हरय कामरूपिण ॥ १२ ॥

अतः अब लड़ा निश्चय सुन्दर पुत्र बोधे बिना तो
वरुणकी सारी सेना उस पर चड़ी जायगी । फिर तो आप
यही समझिये कि अभी दीन ह गये क्योंकि इन्द्रानुसर

मय धारण करने लगे वे बानर युद्धमें उड़ी गयी दिवाने
जा रहे ॥ १२ ॥

तत् त्रिह्वया बुद्धिं गन्तुं सत्रायनादिनीम् ।
पुरुषस्य हि लोकेऽसिञ्चोक्त शौर्यापकरण ॥ १३ ॥

अतः राजन् ! आप इस व्याकुल बुद्धिका आश्रय न लें—
बुद्धिकी इस व्याकुलताका त्याग दें क्योंकि यह समस्त काशों
को बिगाड़ देनेवाली है और नौक इस प्यासमें पुष्कर गौरिका
नष्ट कर देता है ॥ १३ ॥

यत् तु कार्यं मनुष्येण शीर्षमवलम्बयताम् ।
तद्वलकरणैश्च कर्तुमर्हति सत्वरम् ॥ १४ ॥

मनुष्यको क्षिप्र आश्रय लेना चाहिये, उस शीघ्रका
ही ब अवलम्बन करें क्योंकि वह कठिनो ग्रीष्म ही अवलम्बन
कर देता है—उसके अमीर फली सिद्धि कर देता है ॥ १४ ॥

असिन् काले महाप्राज्ञ सत्त्वमातिष्ठ तेजसा ।
शूराणां हि मनुष्याणां त्वद्विधाना महामनाम् ।
विनष्टे वा प्रणष्टे वा शोकं स्वकार्यनाराज ॥ १५ ॥

अतः महाप्राज्ञ श्रीराम ! आप इस समय तेजस क्षय
ही वैषय आश्रय लें । कोई वस्तु खो गयी हो या नष्ट
हो गयी हो, उसके लिये आप-जैसे शूवीर महान् पुत्रोंका
शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि गुरु सब कामोंको गिरा
देता है ॥ १५ ॥

तस्य बुद्धिमता श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थकोविन् ।
मद्विधौ सचिवै सार्धमर्हति जेतुं समर्हति ॥ १६ ॥

आप बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंक मर्मज्ञ हैं ।
अतः हम-जैसे मन्त्रियों एव सहायकों साथ रहकर अवश्य
ही शत्रुवर विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥ १६ ॥

नहि पश्याम्यह कश्चित् रिपु लोकेषु रात्रय ।
गृहीतधनुरो यस्ते तिष्ठेन्भिमुखो रणे ॥ १७ ॥

मधुनन्दन ! मुझे तो तीनों लोकोंमें ऐसा कोई वार नहीं
दिखानी देता, जो रात्रिमें धनुष लेकर गड़े हुए आकर
खाने दख सके ॥ १७ ॥

धानरेषु समासक्त न ते कार्य निपन्थने ।
अचिराद् द्रष्टव्यमे सीतानां रा मागमन्ययम् ॥ १८ ॥

धानरेषु सिद्धा भर रखता गया है, नौका रा काय
बिगाड़ने ना पारगा । अतः अब ही इस अशन मनुष्य पर
करन सीताका दर्शन करे ॥ १८ ॥

तद्वत् शोकमालम्ब्य श्रेयनालम्ब्य भूपते ।
निद्वेषे क्षयिष्यामन्दा सर्वचण्डमयिष्यन्ति ॥ १९ ॥

भूवनाप ! अने हृदयमें अक्षय नान देना क्षय
है । इस समय तो आप गुरुओं प्रति क्रोध धरना चाहिये ।

जो क्षत्रिय मन्द (श्रोत्रदूष्य) होते हैं, उनसे कोई चेष्टा नहीं बन पाती परन्तु जो दायुके प्रति आवश्यक रूपसे भय होता है, उससे सब डरत हैं ॥ १९ ॥

लहृन्नाथं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपते ।
सहास्राभिरिहोपेतः सुहृन्मुद्गिर्विचारय ॥ २० ॥

अदिशोकं म्यामी घोर समुद्रको पार करने लिये क्या उपाय किया जाय; इस विषयमें आप हमारे साथ बैठकर विचार कीजिये; क्योंकि आपकी बुद्धि बड़ी सुहृन् है ॥ २० ॥

लङ्घिते तत्र ते सैन्यैर्जितमित्येव निश्चिनु ।
सर्वे तीर्णे च मे सैन्य जितमित्यपधार्यताम् ॥ २१ ॥

अदि हमारे सैनिक समुद्रको लौंच गये तो यही निश्चय रखिये कि अपनी जीत भव्य होगी । सारी सेनाका समुद्रके उस पार पहुँच जाना ही अपनी विजय समझिये ॥ २१ ॥
इमे हि हरय दूरा समरे कामरूपिण ।

हर्यापे श्रीमद्भारमायमे वाकमीकीये आदिकाव्ये मुद्रकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित भारमायमे आदिकाव्यके मुद्रकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥



तृतीयः सर्गः

हतुमान्जीका लकाके दुर्ग, फाटक, सेना विभाग और सक्रम आदिका वर्णन करके भगवान् श्रीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना

सुग्रीरह्य वच श्रुत्वा हेतुमत् परमार्थवत् ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनूमन्तमयाग्रवीत् ॥ १ ॥

सुग्रीवके ये युक्तिमुक्त और उत्तम अभिप्रायसे पूर्ण ध्वनन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें स्वीकार किया और फिर हनुमान्जीसे कहा— ॥ १ ॥

तपसा सेतुसंघेन सागरोच्छेदयेन च ।
सर्वथापि समर्थोऽसि सागरस्सम्य लङ्घने ॥ २ ॥

मैं तपस्यासे पुल बाँधकर और समुद्रको सुलाकर सब प्रकारसे महासागरको लौंच जानेमें समर्थ हूँ ॥ २ ॥

कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद् प्रधीष्य मे ।
हातुमिच्छामि तत् सर्वं दशनादिव बानर ॥ ३ ॥

बानरवीर ! तुम मुझे यह सा यत्ताओ कि उस दुर्गम लङ्कापुरीने रितने दुर्ग हैं । मैं देख हुएच समान उसका साग विवरण स्वरूपसे जानना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

यत्स्य परिमाणं च द्वारदुर्गमियामपि ।
मुक्तिकम च लङ्काया रक्षसा सन्तानि च ॥ ४ ॥

यथासुख यथासुख लङ्कायामसि दृष्टवान् ।
सर्वमाचक्ष्य तत्त्वेन सर्वेषां कुडालो ह्रासि ॥ ५ ॥

तुमने सगणही सेनाका परिमाण, पुरीर दरवाजोंका

तानरीन् विधिमिप्यन्ति शिल्पापादपवृष्टिभि ॥ २२ ॥

ये बानर संग्राममें बड़े शूरीर हैं और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं । ये पत्थरों और पेड़ोंकी पत्ता करने ही उन शत्रुगोत्रा संहार कर डाले ॥ २२ ॥

कथंचित् परिपश्यामि लङ्कितं धरुणालयम् ।
हतमित्येव त मन्ये युद्धे शत्रुनिवर्हण ॥ २३ ॥

शत्रुसूदन श्रीराम ! यदि किसी प्रकार मैं इस बानर सेनाको समुद्रके उस पार पहुँची देख सकूँ तो मैं शत्रुको युद्धमें मरा हुआ ही समझता हूँ ॥ २३ ॥

किमुपस्था यमुधा वापि सयथा विजयी भवान् ।
निमित्तानि पश्यामि मनो मे सम्प्रहृष्यति ॥ २४ ॥

बहुत कहनेसे क्या काम ! मेरा तो विश्वास है कि आप स्वया विजयी होंगे क्योंकि मुझे ऐसे ही शत्रुन दिखायी दते हैं और मेरा हृदय भी हर्ष एवं उत्साहसे भर है ॥ २४ ॥

दुर्गम बनानेके साधन, लङ्काकी रक्षाके उपाय तथा शस्त्रोंके भवन—इन सबको सुलपूर्वक यथावत् रूपसे यहाँ देला है । अतः इन सबका ठीक-ठीक वर्णन करे, क्योंकि तुम सब प्रकारसे कुशल हो ॥ ४५ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान् मरुतात्मजः ।
धाप्य धाप्यविद्वां श्रेष्ठो राम पुनरथाग्रवीत् ॥ ६ ॥

श्रीरामनाथजीका यह वचन सुनकर वाणीके मर्मको समझनेवाले विद्वानोंमें अग्र पवनहनुमान् हनुमान्ने श्रीरामसे फिर कहा— ॥ ६ ॥

अथवा सर्वमाष्याम्ये दुर्गकम विधानतः ।
शुभो पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा यत्ने ॥ ७ ॥

राक्षसाश्च यथा शिग्धा रायणस्य च तेजसा ।
परा समुद्धि लङ्काया सागरस्य च भीमताम् ॥ ८ ॥

विभाग च यलीषस्य निन्दित यादनस्य च ।
पयमुन्त्वा कपिशेष्ठ कथयामास तत्त्वतः ॥ ९ ॥

भगवान् ! मुनिव । मैं सब बातें बता रहा हूँ । लङ्काके दुर्ग किस विधिसे बने हैं, किस प्रकार लङ्कापुरीकी रक्षाकी व्यवस्था की गयी है, किस तरह यह सेनाओंसे मुष्टिमें है, शत्रुगोत्रों के प्रति प्रभावित हो शत्रुस उधेके प्रति कैसा स्नेह रखते

है, लड़ाई समुद्र कितनी उत्तम है, समुद्र कितना भयकर है, वैदल सैनिकों का विभाग करके कहाँ कितने सैनिक रखे गये हैं और वहाँके याहनों की कितनी सख्या है—इन सब बातों का मैं चणन करूँगा। ऐसा यहकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने वहाँ की बातों को ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया ॥ ७-९ ॥

दृष्टमनुविता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला ।

महती रथसम्पूणा रक्षोगणनिपेयिता ॥ १० ॥

प्रभो ! लङ्कापुरी हर्ष और आमोद प्रमोदसे पूर्ण है। वह विद्याल पुरी मतवाले हाथियोंसे व्याप्त तथा असंख्य रथोंसे भरी हुई है। राक्षसोंके समुदाय वहाँ उसमें निवास करते हैं ॥

दृढयक्षकपाटानि महापरिघचन्ति च ।

चत्वारि विपुलान्यस्या द्वारानि सुप्रहान्ति च ॥ ११ ॥

उत्त पुरीके चार बड़े-बड़े दरवाजे हैं, जो बहुत लम्बे चौड़े हैं। उनमें बहुत मजबूत किवाड़ लगे हैं और मोटी-मोटी भगवाएँ हैं ॥ ११ ॥

तत्रेवपुल्यत्राणि धलयन्ति महान्ति च ।

आगत प्रतिसैन्य तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते ॥ १२ ॥

उन दरवाजोंपर बड़े तिनाल और प्रबल यन्त्र लगे हैं। जो तीर और पथरोके गोले बरसाने हैं। उनसे द्वारा आक्रमण करनेवाली शत्रुसेनाओं आगे बढनेसे रोका जाता है ॥ १२ ॥

द्वारेषु सस्रुता भीमा कालासमया शिता ।

शतशो रचिता धीरै शतस्यो रक्षसा गणै ॥ १३ ॥

जिन्हें वीर राक्षसगणोंने बनाया है, जो काल लोहेकी बनी हुई, भयकर और तीक्ष्ण हैं तथा जिनका अच्छी तरह सस्कार किया गया है, ऐसी सैन्धों शतजिन्यों (लोहेके काँटों से भरी हुई चार हाथ लम्बी गदाएँ) उन दरवाजोंपर सजाकर रखी गयी हैं ॥ १३ ॥

सौरणस्तु महास्तस्या प्राकारो दुष्प्रध्वण ।

मणिनिष्ठमनैदूर्यमुक्तागिरिचितान्तर ॥ १४ ॥

उत्त पुरीके चारों ओर सेनेका बना हुआ बहुत ऊँचा परकाटा है, जिससे तोड़ना बहुत ही कठिन है। उसमें मणि, मृगे, नीलम और मातियोंका काम किया गया है ॥ १४ ॥

सजतश्च महाभीमा शीतलोया महानुभा ।

अगाधा प्राहवत्यश्च परिखा मीनसेयिता ॥ १५ ॥

परकोटोंक चारों ओर महामयकर, शत्रुओंका महान् अमर्दल करनेवाली, ठंडे जलत भरी हुई और अगाध गहराने युक्त बड़े गायों बनी हुई हैं, जिनमें प्राह और बड़े-बड़े मत्स्य निवास करते हैं ॥ १५ ॥

द्वारेषु तासा चत्वार सक्त्रमा परमायता ।

यत्रैरुपेता बहुभिमहन्निर्गृहपङ्क्तिभि ॥ १६ ॥

उत्त चारों दरवाजोंके सामने उन लाइयोंपर मचानोंके रूपमें चार सक्त्र (लकड़ीके पुल) हैं, जो बहुत ही मिल्तुत हैं। उनमें बहुतसे बड़े-बड़े यन्त्र लगे हुए हैं और उनके आस-पास परकोटर बने हुए मकानोंकी पतियाँ हैं ॥ १६ ॥

शायन्ते सक्त्रमास्तत्र परसैन्यागते सति ।

यत्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखास्तु समन्तत ॥ १७ ॥

अत्र शत्रुकी सेना आती है, तब यन्त्रोंके द्वारा उन सक्त्रोंकी रक्षा की जाती है तथा उन यन्त्रोंके द्वारा ही उन्हें सब ओर गायोंमें गिरा दिया जाता है और वहाँ पहुँची हुई शत्रु-सेनाओंको भी सब ओर पँक दिया जाता है ॥ १७ ॥

एकस्त्वकम्प्यो बलवान् सक्त्रम सुमहादृढ ।

काञ्चनैर्बहुभि स्तम्भैर्वैदिकाभिश्च शोभित ॥ १८ ॥

उनमेंसे एक सक्त्र तो बड़ा ही सुदृढ और अमेघ है। वहाँ बहुत बड़ी सेना रहती है और वह सेनेक अनेक खम्भों तथा चबूतरोंसे सुशोभित है ॥ १८ ॥

स्वय प्रहृतिमापन्नो युयुत्सु राम राजन ।

उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदशने ॥ १९ ॥

युनायजी ! रावण युद्धके लिये उत्सुक होता हुआ स्वयं कभी क्षुब्ध नहीं होता—स्वस्थ एव धीर बना रहता है। वह सेनाओंक बारबार निरीक्षण के लिये सदा खानधान एव उद्यत रहता है ॥ १९ ॥

लङ्का पुननिरालम्बा देवदुर्गा भयानहा ।

नादिय पार्वत धाय कृत्रिम य चतुर्विधम् ॥ २० ॥

लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये कई अलम्ब नहीं हैं। वह पुरी देवताओंके लिये भी दुर्गम और बड़ी भयानगी है। उसके चारों ओर नदी, पर्वत, वन और कृत्रिम (खाई, परकोटा आदि)—ये चार प्रकार के दुर्ग हैं ॥ २० ॥

स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव ।

नौपयश्चापि नास्यत्र निरुद्देश्य सजत ॥ २१ ॥

युगनन्दन ! वह बहुत दूरतक फैल हुए समुद्र के दक्षिण किनारेपर बसी हुई है। वहाँ जानेके लिये नायका भी मार्ग नहीं है क्योंकि उसमें लक्ष्यका भी किसी प्रकार पता रहना सम्भव नहीं है ॥ २१ ॥

दीलापे रचिता दुर्गा सा पूर्वैयपुरोपमा ।

१ यावत्त होय है सक्त्रम एव प्रकरके पुन ये, जिन्हें जब आवश्यकता होती तभी यन्त्रों-गिरा गिरा दिया जाता था। इसीसे शत्रुकी सेना आनेपर उसे खाई में गिरा देनेकी चान करी गयी है।

जो क्षत्रिय मन्द (मोक्षशून्य) होते हैं, उनमें कोई चेष्ट नहीं बन पाती, परन्तु जो शत्रुके प्रति आवश्यक रोषसे भरा होता है, उससे सब डरते हैं ॥ १९ ॥

लङ्घनार्थं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपते ।
सहाम्नाभिरिहोपेतं सूक्ष्मवृद्धिर्विचारय ॥ २० ॥

नदियोंके स्वामी पार समुद्रको पार करनेके लिये क्या उपाय किया जाय; इस विषयमें आप हमारे साथ बैठकर विचार कीजिये, क्योंकि आपकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म है ॥ २० ॥

लङ्घिते तत्र तै सैन्यैर्जितमित्येव निश्चिनु ।
सर्वे तीर्थे च मे सैन्य जितमित्यवधार्यताम् ॥ २१ ॥

यदि हमारे सैनिक समुद्रको लौंघ गये तो यही निश्चय रहिये कि अपनी जीत अवश्य होगी । सभी मैनाका समुद्रके उस पार पहुँच जाना ही अपनी विजय समझिये ॥ २१ ॥

इमे हि हरय शूरा समरे कामरूपिण ।

इत्यायें श्रीसहाम्नायने बाह्यकीये आदिकायने युद्धकाण्ड द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिकायने युद्धकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीय सर्गः

हनुमान्जीका लकाके दुर्ग, फाटक, सेना विभाग और मकम आदिका वर्णन करके भगवान् श्रीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्या हेतुमत् परमावधत् ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनूमन्तमयाग्रगीत् ॥ १ ॥

सुग्रीवके ये श्रुतिश्रुत और उत्तम अभिप्रायसे पूर्ण वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें स्वीकार किया और फिर हनुमान्जीके कहा— ॥ १ ॥

तपसा सेतुदघेन सागरोच्छोषणेन च ।
सर्वथापि समर्थोऽसि सागरस्यास्य लङ्घने ॥ २ ॥

मैं तपसासे पुल बंधकर और समुद्रको सुखाकर सब प्रकारसे महासागरको लौंघ करनेमें समर्थ हूँ ॥ २ ॥

कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद् ग्रामीष्व मे ।
कानुमिच्छामि तन् सर्वं दर्शनादिव यासर ॥ ३ ॥

भगवन्! तुम मुझे यह ता बताओ कि उस दुर्गमें लङ्कापुरीके कितने दुर्ग हैं । मैं देख दुष्टके समान उसका सात विवरण स्पष्टरूपसे जानना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गभियामपि ।
शुक्तिमं च लङ्काया रक्षसा सदनानि च ॥ ४ ॥

ययासुखं पयावधं लङ्कायामस्ति दृष्टवान् ।
सर्वमावक्ष्य तत्त्वेन सर्वथा बुद्धालो हासि ॥ ५ ॥

तुमने रावणकी सेनाका परीक्षण, पुरीष दरगाओंको

तानरीन् विधमिष्यन्ति शिलापादपशुभिः ॥ २२ ॥

ये बानर सभ्राममें बड़े शूवीर हैं और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं । वे पत्थरों और पेड़ोंकी उग्रां करते ही उन शत्रुओंका संहार कर डालेंगे ॥ २२ ॥

कथञ्चित् परिपद्यामि लङ्घितं घरुणालयम् ।
हतमित्येव त मन्ये युक्ते शत्रुनिवर्हणं ॥ २३ ॥

शत्रुबुद्धन श्रीराम । यदि किसी प्रकार मैं इस कानर सेनाको समुद्रके उस पार पहुँची देय सकूँ तो मैं रावणको युद्धमें मरा हुआ ही समझता हूँ ॥ २३ ॥

किमुक्त्या बहुधा चापि सर्वथा विजयी भवान् ।
निमित्तानि च पद्यामि मनो मे सम्प्रहृष्यति ॥ २४ ॥

बहुत कहनेसे क्या लाभ ! मरा तो विशाल है कि आप सगथा निकषी होंगे क्योंकि मुझे ऐसे ही शत्रुन दिखायी देते हैं और मेरा हृदय भी हर्ष एव उत्साहसे भरा है ॥ २४ ॥

दुर्गम बनानेके साधन; लङ्काकी रक्षाके उपाय तथा राक्षसोंके भयन—इन सबको सुलभपूर्वक यथावत्स्मरते वहाँ दला है । अतः इन सबका ठीक-ठीक वर्णन कर क्योंकि तुम सब प्रकारसे कुशल हो ॥ ४५ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान् मारुतात्मज ।
वाक्यं वाक्यविदा श्रेष्ठो राम पुनरयाग्रगीत् ॥ ६ ॥

श्रीपुनाषजीका यह वचन सुनकर वाणीके मर्मको समझनेवाले विद्वानोंमें अग्र वचनबुझार हनुमान्ने श्रीरामसे फिर कहा— ॥ ६ ॥

ध्रुवता सधमाख्यास्ये दुर्गाकम् विधानतः ।
गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा यत्ने ॥ ७ ॥

राक्षसाश्च यथा क्षिप्त्वा रावणस्य च तेजसा ।
परां समृद्धिं लङ्काया सागरस्य च भीमताम् ॥ ८ ॥

विभागं च बलौघस्य निर्देशं वाहनस्य च ।
पद्ममुत्तया कपिश्रेष्ठ कथयामास तत्त्वन ॥ ९ ॥

भगवन् ! मुनिये । मैं उस बातें बता रहा हूँ । लङ्का दुर्ग किसे कियेने बने हैं, किस प्रकार लङ्कापुरीकी रक्षाकी व्यवस्था की गयी है, किस तरह वह सेनाओंसे युद्धिन है रावणके तेजसे प्रभावित हो उससे उसके प्रति कैसा स्नेह रहते

है, लङ्काकी समृद्धि कितनी उत्तम है, समुद्र कितना भयंकर है, पैदल सैनिकोंका विभाग करके कहाँ कितने सैनिक रखे गये हैं और वहाँके वाहनोंकी कितनी सख्या है—इन सब बातोंका मैं वर्णन करूँगा। ऐसा बहकर बरिषेष्ठ हनुमान्ने वहाँकी बातोंको ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया ॥ ७-९ ॥

हृत्प्रमुदिता लङ्का मत्तद्विषसमाकुला ।
महती रथसम्पूणा रक्षोगणनिप्रेयिता ॥ १० ॥

‘प्रमो । लङ्कापुरी हर्ष और आमाद प्रमोदसे पूर्ण है । वह विशाल पुरी मतवाल हाथियोंसे व्याप्त तथा असंख्य रथोंसे भरी हुई है । राक्षसोंके समुदाय सदा उसमें निवास करते हैं ॥

हृदबद्धरूपाद्यानि महापरिघवन्ति च ।
चत्वारि निपुलान्यस्या छाराणि सुमहान्ति च ॥ ११ ॥

‘उस पुरीमें चार बड़े बड़े दरवाजे हैं, जो बहुत लम्बे चौड़े हैं । उनमें बहुत मजबूत किण्वह लगे हैं और मोटी-मोटी अगव्यएँ हैं ॥ ११ ॥

तत्रैवपुल्यप्राणि धलवन्ति महान्ति च ।
आगत प्रतिसैन्य सैस्तत्र प्रतिनिरार्यते ॥ १२ ॥

‘उन दरवाजोंपर बड़े विशाल और प्रबल यन्त्र लगे हैं । जो तौर और पत्थरोंके गाल बरसते हैं । उनसे द्वारा आक्रमण करनेवाली शत्रुसेनाका आगे बढनेसे रोक रखा जाता है ॥ १२ ॥

द्वारेषु संहृता भीमा कालायसमया शिता ।
शतशो रजिता वीरै शतघ्न्यो रक्षसा गणै ॥ १३ ॥

‘जिनहैं वीर राक्षसगणोंने बनाया है, जो काल लोहेकी बनी हुई, भयंकर और तीक्ष्ण हैं तथा जिनका अच्छी तरह सस्कार किया गया है, एसी सैकड़ों शतघ्नियों (लोहेके काँचों-में भरी हुई चार हाथ लम्बी गद्गदें) उन दरवाजोंपर सजाकर रक्षकी गयी हैं ॥ १३ ॥

सौरणस्तु महास्तस्या प्राकारो दुष्प्रधयण ।
मणिभिद्रुमवैद्रुयमुक्ताभिरचितान्तरा ॥ १४ ॥

‘उस पुरीमें चारों ओर खेदिका बना हुआ बहुत ऊँचा परकाष्ठ है, जिसका ताड़ना बहुत ही कठिन है । उसमें मणि, मैंगो, नीलम और मातियोंका काम किया गया है ॥ १४ ॥

सयन्त्रा महाभीमा शीतनोया महागुभा ।
अगाधा प्राहवत्पथ परितः मीनसेयिता ॥ १५ ॥

‘परकाष्ठोंके चारों ओर महाभयंकर, शत्रुओंका महान् अमर्ल करनेवाली, ठंडे बजने वाली हुई और अगाध गहिराये युन कर पाद्यों बनी हुई हैं, जिनमें प्राह और बड़े-बड़े मत्स्य निवेश करते हैं ॥ १ ॥

द्वारेषु तासा चत्वार सक्रमा परमायता ।
यत्ररुपेता बहुभिमहद्भिर्गृहपट्टिभिः ॥ १६ ॥

‘उक्त चारों दरवाजोंने खामने उन लाइयोंपर मचानोंके रूपमें चार सक्रम (लकड़ीन पुल) हैं, जो बहुत ही विस्तृत हैं । उनमें बहुत-से बड़े-बड़े यन्त्र लगे हुए हैं और उनके आस-पास परकोटेपर बने हुए मचानोंकी पतियाँ हैं ॥ १६ ॥

त्रायन्ते सक्रमास्तत्र परसैन्यागते सति ।
यत्रैतैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः ॥ १७ ॥

‘जब शत्रुकी सेना आता है, तब यन्त्रोंके द्वारा उन संक्रमोंकी रक्षा की जाती है तथा उन यन्त्रोंके द्वारा ही उन्हें सब ओर लाइयोंमें भिन्न दिया जाता है और वहाँ पहुँची हुई शत्रु-सेनाओंको भी सब ओर फेंक दिया जाता है ॥ १७ ॥

एकस्त्यकम्प्यो चलान् सक्रम सुमहादृढ ।
काञ्चनैवबुभिः स्तम्भैर्यैदिकाभिश्च शोभितः ॥ १८ ॥

‘उनमेंसे एक संक्रम तो बड़ा ही सुदृढ और अमोघ है । वहाँ बहुत बड़ी सेना रहती है और वह खानेके अनेक खम्भों तथा चबूतरोंसे सुशोभित है ॥ १८ ॥

स्वय प्रहृतिमापन्नो युयुत्स्व राम रावण ।
उत्थितस्त्राप्रमत्तश्च चलानामनुदर्शने ॥ १९ ॥

‘युवनाथजी । रावण युद्धके लिये उत्सुक होना हुआ स्वयं कभी क्षुब्ध नहीं होता—स्वस्थ एवं धीर बना रहता है । वह सेनाओंके बार-बार निरीक्षणके लिये सदा सावधान एवं उद्यत रहता है ॥ १९ ॥

लङ्का पुननिरालम्बा देवदुगा भयानका ।
नदेष पावत धान्य दृष्टिम च चतुर्विधम् ॥ २० ॥

‘लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये कई अत्रलम्ब नहीं हैं । वह पुरी देवताओंके लिये भी दुर्गम और बड़ी भयानकी है । उसने चारों ओर नदी, पर्वत, वन और इन्निम (साढ़, परकाठा आदि) —य चार प्रकारके दुर्ग हैं ॥ २० ॥

स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव ।
नीपथश्चापि नास्त्यत्र निर्वहेश्च सजतः ॥ २१ ॥

‘युवुन्दन । वह बहुत दूरतक फैल हुए समुद्रके दक्षिण किनारेपर बसी हुई है । वहाँ जानेके लिये नारना भी मार्ग नहीं है क्योंकि उसमें लम्पका भी किसी प्रकार पता रहना सम्भव नहीं है ॥ २१ ॥

शीलामे रचिता दुगा सा वृद्धैरुपरोपमा ।

१ मातुल हाथ है ‘संक्रम’ इस प्रकारके पुल थे, जिन्हें जब आवश्यकता होती तभी बन्देगाता भिन्न दिया जाता था । इसीसे शत्रुकी सेना जानेपर ठंडे बजने लगे देवकी वान बनी गयी है ।

१ रावणों के चतुर्दश लोहकरीकी वान । इन देवकी वान ।

वाजिधारणसम्पूर्णं लङ्का परमदुर्जया ॥ २२ ॥

‘वह दुर्गम पुरी पर्वतों शिखरपर बसायी गयी है और देवपुरीके समान सुन्दर दिखायी देती है, हाथी, घोड़ोंसे भरी हुई यह लङ्का अत्यन्त दुर्जय है ॥ २२ ॥

परिखाश्च शतध्वजश्च यत्राग्निविविधानि च ।

शोभयन्ति पुरीं लङ्का रावणस्य दुरात्मन ॥ २३ ॥

‘एकद्वारों, शतध्वजों और तरह-तरहके यन्त्र दुरात्मा रावणजी उस लङ्कानगरीकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ २३ ॥

अयुत रक्षसामग्रे पूर्वद्वारं नमोऽधितम् ।

शूलहस्ता दुराधराः सर्वे खड्गामयोधिनः ॥ २४ ॥

‘लङ्काके पूर्व द्वारपर दस हजार राक्षस रहते हैं, जो सब के सब हाथोंमें शूल धारण करते हैं । वे अत्यन्त दुर्जय और युद्ध के मुहानेपर तलवारोंसे जूझनेवाले हैं ॥ २४ ॥

नियुत रक्षसामग्रे दक्षिणद्वारमाधितम् ।

चतुरङ्गेण सैन्येन योधास्तत्राप्यनुत्तमा ॥ २५ ॥

‘लङ्काके दक्षिण द्वारपर चतुरांगिणी सेनाके साथ एक लाख राक्षस योद्धा बडे रहते हैं । यहाँके सैनिक भी बड़े बहादुर हैं ॥ २५ ॥

अयुत रक्षसामग्रे पश्चिमद्वारमाधितम् ।

चर्मयुद्धरा सर्वे तथा सर्वास्त्रकोविदाः ॥ २६ ॥

‘पुरीके पश्चिम द्वारपर दस लाख राक्षस निवास करते हैं । वे सर्व-सशस्त्र ढाल और तलवार धारण करते हैं तथा सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं ॥ २६ ॥

न्यर्बुद रक्षसामग्रे उत्तरद्वारमाधितम् ।

रयिन्ध्राभ्यवाहाश्च कुलपुत्राः सुपूजिताः ॥ २७ ॥

‘उस पुरीके उत्तर द्वारपर एक अर्बुद (दस करोड़) राक्षस रहते हैं । जिनमेंसे कुछ तो रथी हैं और कुछ युद्ध संगार । वे सभी उत्तम कुलमें उत्पन्न और अपनी वीरताके लिये प्रसिद्ध हैं ॥ २७ ॥

शतशोऽथ सहस्राणि मध्यम स्पर्धमाधिताः ।

यातुधाना दुराधराः सामकोटिश्च रक्षसाम् ॥ २८ ॥

‘हजारों श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये मुद्रकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीरामजीनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यके मुद्रकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥



चतुर्थ सर्गः

श्रीराम आदिके साथ वानर सेनाका प्रस्थान और समुद्र तटपर उसका पड़ाव

धृत्वा हनुमतो पाप्म यथावदनुपूज्यः ।

नतोऽग्रधीमहातेजः राम नन्त्यधराक्रमः ॥ १ ॥

‘हनुमानजीने वनवास का क्रम समाप्तकरके मुनिकर

स्वयंप्रपन्नकी महातेजस्वी मगराज श्रीरामने कहा—॥ १ ॥

यन्निरेदयसे लङ्का पुरीं भीमस्य रक्षसः ।
क्षिप्रमेना चधिप्यामि सत्यमेतद् व्रीहिमे ते ॥ २ ॥

‘धनुमन् । मैं तुमसे सब कहता हूँ—तुमने उस भयानक राक्षसी जिस लङ्कापुरीरा कणन किया है, उसे मैं शीघ्र ही नष्ट कर डालूँगा ॥ २ ॥

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय ।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्ते मध्य दिवाकर ॥ ३ ॥

‘सुग्रीव ! तुम इसी मुहूर्तमें प्रस्थानकी तैयारी करो ।
सूर्यदेव दिनभर मध्य भागमें जा पहुँचे हैं । इसलिये इस विजय नामक मुहूर्तमें हमारी यात्रा उपयुक्त होगी ॥ ३ ॥

सीता हत्वा तु तद् यातु कासौ यास्यति जीवित ।
सीता भुत्वाभियान मे आशामेष्यति जीविते ।
जीवितान्तेऽमृत स्पृष्ट्वा पीत्वामृतमियातुर ॥ ४ ॥

‘रावण सीतासे हरकर ल जाय किंतु वह जीवित बचकर
कहाँ जायगा ! सिद्ध आदिके मुँहसे लङ्कापर मरी चढ़ाईका
समाचार सुनकर सीताको अपने जीवनकी आशा बँध जायगी
ठीक उसी तरह जैसे बीनका अन्त उपस्थित होनेपर यदि
रणी अमृतका (अमृतत्वरा साधनभूत दिव्य ओषधिका)
स्पर्श कर ल अथवा अमृतोपम द्रवभूत ओषधिके पी ल ता
उसे जीनेकी आशा हो जाती है ॥ ४ ॥

उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योष्यते ।
अभिप्रयाम सुग्रीव सगानीकसमायुता ॥ ५ ॥

‘आज उत्तराफाल्गुनी नामक नक्षत्र है । वह चन्द्रमाका
हस्त नक्षत्रसे योग होगा । इसलिये सुग्रीव ! हमलगा आज
ही सारी सेनाओंक साथ यात्रा कर दें ॥ ५ ॥

निमित्तानि च पश्यामि यानि प्रादुर्भवन्ति यै ।
निहत्य रावण सीतामानयिष्यामि जानकीम् ॥ ६ ॥

‘इस समय जा राहुन प्रकाश हो रहे हैं और जिन्हें मैं
देख रहा हूँ, उनमें यह विश्वास होता है कि मैं अग्न्य ही
रावणका तप करके जनकनन्दिनी सीताको ल आऊँगा ॥ ६ ॥

उपरिष्ठादि नयन स्फुरमाणमिम मम ।
विजय समनुप्राप्त क्षस्तीरा मनोरथम् ॥ ७ ॥

‘ध्वज सिंग मरी दाहिनी ओंछरा ऊपरी भाग पड़क

रहा है । व भी मानो मेरी विजय प्राप्ति और मनोरथछि
को सूचिन कर रहा है ॥ ७ ॥

तता वानराजेन लक्ष्मणेन सुपूजित ।
उग्राच रामो धमात्मा पुनरप्यर्थमोदि ॥ ८ ॥

यह सुनकर वानराज सुग्रीव तथा लक्ष्मणने भी उनका
बड़ा आदर किया । तत्पश्चात् अर्धरात्रा (नातिनिपुण)
धमात्मा श्रीरामने फिर कहा— ॥ ८ ॥

अग्रे यातु वलस्यास्य नीले मार्गमवेक्षितुम् ।
वृत्त शतसहस्रेण धानराणा तरखिनाम् ॥ ९ ॥

‘इस सेनापर आगे-आगे एक लाख बेगवान् वानरोंसे घिरे
हुए सेनापति नील मार्ग देखनेपर लिये बचें ॥ ९ ॥

फलमूलरता नील शीतकाननपारिणा ।
पथा मधुमता चातु सेना सेनापते नय ॥ १० ॥

‘सेनापति नील ! तुम सारी सेनाको ऐसे मार्गमें शीघ्रता
पूर्वक ल चलो, जिसमें फल मूलरी अधिकता हो, शीतल
छायामें सुक सन वन हो, वहाँ जल मिल सक और मधु भी
उपलब्ध हो सके ॥ १० ॥

दूषयेयुदुरात्मान पथि मूलफलोदरम् ।
राक्षसा पथि रक्षेथास्तेभ्यस्त्र नित्यमुद्यत ॥ ११ ॥

‘सम्प्रति है दुरात्मा राक्षस राक्षस फलमूल और जलरा
शिप आदिमें दूषित कर दें, अन तुम मार्गमें स्तन साधना
रहकर उनसे इन वस्तुओंकी रक्षा करना ॥ ११ ॥

निम्नेषु वनदुर्गेषु घनेषु च वनौकस ।
अभिप्लुत्याभिपश्येषु परेषा निहित वल्म ॥ १२ ॥

‘वानरोंका चाहिय कि जहाँ गड्ढे, दुर्गम जग और साधारण
जंगल हों, वहाँ नर अर बुद्ध कोंदकर यह देखत रहें कि कहीं
घनुओंकी मेना ता नहीं छिपी है (ऐसा न हो कि हम आगे
निम्न जायें और रातु अस्मात् पीछेसे आक्रमण कर दें) ॥

यत्तु फल्य वल निचित् तद्वैरोपपद्यताम् ।
एतदि हन्य धोर नो विषमेण प्रयुज्यताम् ॥ १३ ॥

‘जिस सेनामें बाल, वृद्ध आदिक कारण दुर्बलता हो, यह
यहाँ निष्क्रियता ही रह जाय क्योंकि हमारा यह युद्धभी
हृत्त बड़ा भयंकर है, अन इसर निय बल-विजयमग्न
सेनाकी ही यात्रा करनी चाहिय ॥ १३ ॥

सागरतीरनिभ भीममघानीक महायन्त्र ।
वर्षिंसिंहा प्रकयन्तु शतगोऽथ सहस्रम् ॥ १४ ॥

‘संक्रुद्ध और दृढ़जग माल्पनी करिगरी पीर मगल्लार
का जगल्लार सागन भरकर एवं अगार वानर-मनार अग्र
भागका अपने साथ जागे बनाय चले ॥ १४ ॥

मनश्च गिरिमिश्राण गययद्य महापथः ।
गयापथ्याप्रतो यातु गया दम ह्ययम् ॥ १५ ॥

१ दिनमें दापरीके समय अभिभिन् मुहूर्त होगा है रानी
का विजय मुहूर्त भी पड़े है । यह यात्राके लिये बहुत उत्तम
माना गया है । वधरि— मुक्तो दक्षिणायना प्रसिद्धा निजनिज ।
आयाने च वधराट शत्रुः स्वाय मशामिज ॥ हम यानिज
रत्नाकरके बचनक अनुसार उक्त मुहूर्तमें दक्षिणायन निजि है,
वधरि बिंछपाछे लङ्का दक्षिणपक्षके ओल्ले होनेके कारण यह
दोष यहाँ नहीं पाया जा ॥ १५ ॥

पर्यन्ते समान विद्यालयाय गच्छः मदावनी गवय तथा
मतवाल सौदकी भौति पराक्रमी गवय सेनाके आग आगे चलै ॥

यातु धानरवाहिन्या धानर गृह्णता पति ।
पालयन् दक्षिण पादरेमृषभो धानरयभ ॥ १६ ॥

उछल-बूदकर चलनेवाले कपिलके पालक धानर
शिरोमणि श्रृंगम इस धानर-सेनाक दाहिने मागरी रक्षा करत
हुए चलै ॥ १६ ॥

गन्धहस्तीन् दुर्धर्षस्तरस्त्री गन्धमादन् ।
यातु धानरवाहिन्या सख्य पादर्वमधिष्ठित ॥ १७ ॥

गन्धहस्तीन् समान दुर्धर्ष और बेगवाली धानर गन्ध
मादन इस धानर-वाहिनीके वामभागमें रहकर इसकी रक्षा
करते हुए आगे चलै ॥ १७ ॥

यास्यामि यलमघ्येऽह वलौघमभिहपयन् ।
अत्रिकुहा हनुमन्तमैरावतमिवेश्वर ॥ १८ ॥

जैसे दबराज हनुमन्त ऐरावत हाथीपर आलूट होने हैं,
उसी प्रकार मैं हनुमान्के कपेपर चढ़कर सेनाके बीचमें रहकर
सारी सेनाका हर्ष बढ़ाता हुआ चर्चंगा ॥ १८ ॥

अङ्गवेनैव सयातु लक्ष्मणध्यान्तकोपम ।
सर्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा ॥ १९ ॥

जैसे पनाय्यङ्ग पुत्रेरा सागमौम नामक दिग्गजकी पीठपर
बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार गालव समान पराक्रमी
लक्ष्मण अंगदपर आलूट होकर यात्रा करें ॥ १९ ॥

जाम्यबाह्य सुपेणश्च वगदशीं च धानरः ।
शृङ्गराजो महाबाहु कुक्षि रक्षतु ते त्रय ॥ २० ॥

महाबाहु शृङ्गराज नामवान्, सुपेण और तनुर वेगदर्शी-
य तीनों धानर सेनाक पदमागरी रक्षा करें ॥ २० ॥

राघवस्य बच तुल्या सुग्रीवो धाहिनीपति ।
व्यादिदिश महावीर्यो जगिरान् धानरयभ ॥ २१ ॥

राघुनाथजीका यह बचन सुनकर महापराक्रमी धानर
शिरोमणि सेनापति सुग्रीवने उन धानरोंको यथाचित आज्ञा दी।
ने धानरगणा सबें समुत्पत्य महीजस ।
शुद्धभ्य शिखरेभ्यश्च आद्रु पुण्डुविर तदा ॥ २२ ॥

तब व समस्त महानगी धानरगण अपनी गुफाओं और
शिरोंमें शीघ्र ही निकलकर उछलते-कूटते हुए चलने लगे ॥
ततो धानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजित ।
जगाम रामो धमात्मा सर्वेभ्यो दक्षिणा दिशम् ॥ २३ ॥

तबधातु धानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणक सादर अनुरोध
करनेपर सेनासहित धमात्मा भीरुमचन्द्रजी दक्षिण दिशाकी ओर
प्रस्थित हुए ॥ २३ ॥

दाते शतसहस्रीश्च कोटिभिश्चायुतैरपि ।

चारणाभैश्च हरिभिर्ययौ परिश्रुतस्तदा ॥ २४ ॥

उस समय सैन्धवों, हजाराँ, लायों और बराहों धानरोंने,
जो हाथीके समान विद्यालयाय थे, निरे हुए क्षीरकुनाथजी
आगे बढ़ने लगे ॥ २४ ॥

त यान्तमनुयान्ती सा महती हरिवाहिनी ।
दृष्टा प्रमुदिता सर्वे सुमीनेणापि पालिता ॥ २५ ॥

याना करते हुए भीरुमचन्द्र पीछे वह विद्यालयाय धानर
वाहिनी चलने लगी । उस सेनाके सभी वीर सुग्रीवसे पालित
होनेके कारण हुए पुष्ट एवं प्रसन्न थे ॥ २५ ॥

आशुवन्त सुवन्तश्च गर्जन्तश्च सुवगमा ।
ह्येतन्तो नितदन्तश्च जगमुर्षु दक्षिणा दिशम् ॥ २६ ॥

उनमेंसे कुछ धानर उस सेनाकी रक्षाके लिए उछलत
कूटते हुए चारों ओर चक्कर लगाते थे; कुछ मार्गसाधनके
लिए कूटते-कूटते आगे बढ़ जाते थे; कुछ धानर मेंमें
समान गर्जते; कुछ सिंहोंके समान दहाइते और कुछ क्रि-
कारियों भरत हुए दक्षिण दिशाकी ओर अग्रसर हो रहे थे ॥

भक्षयन्त सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च ।
उद्धन्तो महाबुक्षान् मज्जरपुञ्जधारिण ॥ २७ ॥

वे सुगन्धिन मधु पीते और मीठे फल खाते हुए मज्जरी
पुञ्ज धारण करनेवाले विद्यालयाय बूझोंको उखाड़कर कचौर
लिए चल रहे थे ॥ २७ ॥

अन्योन्य सहसा दृष्टा निवहन्ति त्रिपन्ति च ।
पतन्तश्चोत्पतन्त्यन्ये पातयन्त्यपरे परान् ॥ २८ ॥

कुछ मतवाल धानर धिनोदके लिये एक दूसरेको दौ रहे
थे । कोई अपने ऊपर चढ़े हुए धानरको सटक्कर दूर फेंक
देते थे । कोई चलते-चलते ऊपरको उछल पड़ते थे और
दूसरे धानर दूसरों-दूसरोंको ऊपरसे धक्के देकर नीचे गिरा
देते थे ॥ २८ ॥

रावणो नो निहन्तय सर्वे च रजनीचरा ।
इति गर्जन्ति हरयो राघवस्य समीपत ॥ २९ ॥

आशुनाथजीक समीप चलते हुए धानर यह कहते हुए
गबना करते थे कि 'हम राघवको मार डालना चाहिये ।
समस्त विद्यालयाँ भी सहार कर देना चाहिये' ॥ २९ ॥

पुरस्तादपभो नीलो वीर कुमुद एव च ।
पन्यान् शोधयन्ति स धानरैर्यदुभि सह ॥ ३० ॥

समने आगे श्रृंगम, नील और वीर कुमुद—ये बहुत
सज्जन धानरोंके साथ राक्षा ठीक करत जाते थे ॥ ३० ॥
मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च ।
यत्किमिदंभूमिभिर्मिहूतः शत्रुनिग्रहण ॥ ३१ ॥

सनाके मध्यभागमें राजा सुग्रीव, भीरुमचन्द्र और लक्ष्मण—

ये तीनों गजुमदन वीर अनेक कलागाली एव भयकर वानरोंसे
धिरे हुए चल रहे थे ॥ ३१ ॥

हरि शतशतवर्षात् कोटिभिर्दशभिर्धृत ।
सगमेभ्यो ह्यवष्टय्य ररम्य हरिवाहिनीम् ॥ ३२ ॥

गजवलि नामका एक वीर वानर दस करोड़ यानरों का साथ
अनेक ही सारी सेनाको अपने नियन्त्रण स्वरूप उसकी
रक्षा करता था ॥ ३२ ॥

कोटीशतपरीमार केसरी पनसो गज ।
अर्कश्च बहुभि पादमैक तस्याभिरम्यति ॥ ३३ ॥

सौ करोड़ यानरोंसे धिरे हुए कछी और पनस—ये
सेनाके एक (दक्षिण) भागकी तथा बहुतेरे वानर सैनिकोंको
साथ लिये गज और अर्क—ये उस वानर-सेनाके दूसरे
(वाम) भागकी रक्षा करते थे ॥ ३३ ॥

सुप्रेणो जाम्यवाक्ष्यैः ऋक्षैर्गुह्यमिरावृत्तौ ।
सुप्रीय पुनत कृत्वा जघन सररक्षतु ॥ ३४ ॥

बहुसंख्यक भाहुओंसे भिर हुए सुप्रेण और जाम्यवान्—
ये दोनों सुप्रीयको आते करते सेनाके पिछले भागकी रक्षा कर
रहे थे ॥ ३४ ॥

तेषा सेनापतिर्गिरो नीलो वानरपुंगव ।
सम्पत्तन् प्रज्जा श्रेष्ठस्तद् बल पयवारयत् ॥ ३५ ॥

उन सबके सेनापति कपिश्रेष्ठ वानरपुंगवमणि वीरवर नील
उस सेनाकी सब आरसे रक्षा एवं नियन्त्रण कर रहे थे ॥ ३५ ॥

दरीमुख प्रजङ्गम्य जम्भोऽथ रभस कपि ।
सजतश्च ययुरीराम्यवयन्त प्रगमान् ॥ ३६ ॥

दरीमुख, प्रजङ्ग, जम्भ और रभस—य वीर सब ओरसे
वानरोंको गीम आगे बढनेकी प्रेरणा देते हुए चल रहे थे ॥

एव ते हरिदादूला गच्छन्ति यत्नदपिता ।
अपश्यन्ति गिरिधेष्ठ सहा गिन्दितायुतम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार व वानरसब कपि कछी वीर बगल आगे
बढते गये । चलते-चलते उन्होंने पनभृष्ट सहायिकों देखा,
किन्तु वे आस-पास और भी सैन्धों पन थे ॥ ३७ ॥

मगसि च सुपुह्वानि तयाकानि वराणि च ।
रामस्य दासन प्राया भीमकेपस्य भीतयत् ॥ ३८ ॥

यजयन् नागराम्याशास्तया जनपदानपि ।
सागरीप्रनिभ भीम तद् वानरबल महत् ॥ ३९ ॥

निःससप महाघोर भीमघोरमियाणम् ।
रामने उन्हें बहुतसे सुन्दर स्वरूप और तात्त्व दिखायी
दिये, किन्तु मनदर कमल गिर हुए थे । श्रीरामचन्द्रजीकी
आज्ञा थी कि रामने काँ स्त्री प्रशङ्गा न करना न कर ।
भयकर वरणा श्रीरामचन्द्रजी इस आदेशका जनर

समुत्प्रे कप्रवाहकी भाँति अपार एव भयान दिखायी देने
वाली वह विशाल वानर-सेना भयभीत-सी हाकर नगराज
समीपगर्वा स्थानों और जनपदोंसे दूरसे ही डाँढ़ती चली जा
रही थी । त्रिभुवर्गना करनेक कारण भयानक गदवाले
समुत्प्रेकी भाँति यह महाघोर जान पड़ती थी ॥ ३८ ३ ॥

तस्य नाशये पादये शूरास्ते कपिजुङ्गा ॥ ४० ॥
तुर्णमापुष्टुस्तु सर्वे सदम्भा इव चोदिता ।

वे सभी शूरावीर कपिजुङ्गा होने गये अच्छे प्राहोंकी
भाँति उछलते दूदते हुए तुरत ही दगरधनन्दन श्रीरामके
पास पहुँच जाते थे ॥ ४० ॥

कपिम्यासुरामानौ तौ गुह्यभाते नरपभौ ॥ ४१ ॥
महद्भ्यामिव ससृष्टौ प्राहभ्या च द्रभास्करो ।

हनुमान् और अगद—इन दो वानर वीरोंद्वारा होये
जाने हुए वे नरभेष्ट श्रीराम और लक्ष्मण गुह्य और बृहस्पति
इन दो महाप्रानोंसे संयुक्त हुए चन्मा और सर्वसे समान
गोभा पा रहे थे ॥ ४१ ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन सुसृजित ॥ ४२ ॥
जगाम रामो धमात्मा ससैन्योऽक्षिणा विशम् ।

उस समय वानरराज सुप्रीव और लक्ष्मणसे सम्मानित हुए
चमात्मा श्रीराम सेनासहित दक्षिण दिशाकी आर वर जा
रहे थे ॥ ४२ ॥

तमद्भुतगते राम लक्ष्मण शुभया गिरा ॥ ४३ ॥
उयाच परिपूर्णं पूषणप्रतिभानान् ।

लक्ष्मणजी अगदके कपेर बैठे हुए थे । वे शत्रुनोंके द्वारा
कायसिद्धिकी गान अच्छी तरह ध्यान करते थे । उन्होंने पूष
काम मगवान् श्रीरामसे मङ्गलमयी वाणीमें कहा— ॥ ४३ ॥

हनामशाय वैदेहीं क्षिप्र हन्ता च रावणम् ॥ ४४ ॥
समृद्धाय समृद्धायामवोष्या प्रतियाम्यसि ।

महान्ति च निमित्तानि दिवि भूमौ च राघव ॥ ४५ ॥
गुह्यानि तत्र पश्यामि मगस्येयार्थानिदये ।

पुनरुत्पन्न । मुझे पृथ्वी और आकाशमें बहुत अच्छे
अच्छे गजुन दिखायी देत हैं । य सब आरक मनरपरी
सिद्धि का मूलक वरत हैं । इनसे निश्चय होता है कि अपर
गीम हा वरगद मारकर ही ही सैन्य का प्राप्त करे और
सकल मनरप हाकर समृद्धि-प्राप्ति अत्राप्या पधारगे ॥

अनुगतिं दिशो यायु मना मृदुदित सुग ॥ ४६ ॥
पूषण्युत्पन्नराद्येव प्रत्यन्ति मृगदिना ।

प्रमदाद्य दिश मना प्रिमल्य दिशकर ॥ ४७ ॥
उदना च प्रमदाविरनु न्या भागये गत ।

प्रमदाविरनुगदय गुदय परमरय ।
अभिपन्न प्रकान्ते ध्रुव सर्वे प्रदक्षिणम् ॥ ४८ ॥

देविये सेनाने पीउं नील, गद, दितर और सुखमय समीर चल रहा है। ये पउ और पपी पूर्ण प्रभुर स्वरमें अपनी अपनी योगी बोल रहे हैं। सर दिगार् प्रसन्न है। सूर्यदेव निमल दिव्यापी दग्धे हैं। भृगुनन्दन पुत्र भी अपनी उज्ज्वल गमाने प्रसाग्न हो आषक पीउकी शिष्या प्रकाशित हो रहे हैं। जहाँ सप्तर्षिगोत्रा समुदाय शोभा पाता है, वह भुवतारा भी निर्मल दिव्यापी देता है। पुत्र और प्रसाग्नान समान सप्तर्षिगण भुवको अपने दाहिने स्वरकर उदरी परिक्रमा करत हैं ॥ ४६-४८ ॥

त्रिाङ्गुर्विमलो भाति राजर्षिः सपुरोहितः ।
पितामहः पुरोऽस्माकमिच्छाकृणा महात्मनाम् ॥ ४९ ॥

हमार साथ ही महामना इन्द्राङ्गुशिष्योंने पितामह राजर्षि विशाङ्गु अपने पुरोहित वसिष्ठजीक साथ हमलोगोंने सामने ही निर्मल कान्तिते प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४९ ॥

विमले च प्रकाशने विशाखे निरुपद्रवे ।
नक्षत्र परमस्माकमिच्छाकृणा महात्मनाम् ॥ ५० ॥

हम महामन्त्री इच्छाङ्गुशिष्योंके लिये जो सन्तत उसम है, वह विशाखानामक युगल लवण निर्मल एवं उपद्रवशून्य (मंगल आदि दुष्ट ग्रहोंकी आश्रान्तिते रहित) होकर प्रकाशित हो रहा है ॥ ५० ॥

नैर्घ्नत नैर्घ्नताना च नक्षत्रमतिपीड्यते ।
मूले मूलयता स्पृष्टो ध्रुव्यते धूमकेतुना ॥ ५१ ॥

राश्वोरा नक्षत्र मूल, जिसके देवता निर्यति हैं, अन्यन्त पीडित हो रहा है। उस मूलेने नियामक धूमकेतुने आश्रान्त होकर वह सनापका भागी हो रहा है ॥ ५१ ॥

सर्वं चैतद् विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम् ।
काले कालगृहीताना नक्षत्र ग्रहपीडितम् ॥ ५२ ॥

एवम् स्व कुछ राक्षसोंके विनाशक लिय ही उपस्थित हुआ है, क्योंकि जो लग्न कालपात्रमें बंधे होते हैं, उन्हींका नक्षत्र समानुसार महासे पीडित होता है ॥ ५२ ॥

प्रमत्ता सुरसाध्याया यनानि फलवन्ति च ।
प्रगन्ति नाधिका गधा यथतुष्टुसुमा हुमा ॥ ५३ ॥

जल स्वच्छ और उत्तम रखने पूरा दिलायी देता है, जलमें प्रयात फल उल्लेख होते हैं, सुगन्धित वायु अधिक तीनगतिन नहीं बढ़ रही है और धूमोंमें श्रुतश्रुत अनुसार फल लगे हुए हैं ॥ ५३ ॥

भूदानि कपिसन्यानि प्रकाशन्तेऽधिक प्रभो ।
देवानामिव सैन्यानि सग्रामे तारकामये ।

पथमार्थं समीक्ष्यैतत् प्रीतो भजितुमहसि ॥ ५४ ॥

प्रभो! भूदान वानरी सेना बड़ी शोभायमान जान पड़ती है। तारकामय सग्रामक अन्तर्गत देवताओंकी सेनाएँ

जिस तरह उत्साहसे सम्पन्न थी, इसी प्रकार आम य वानर सेनाएँ भी हैं। आप! ऐसे सुभ लक्षण देवकर आपका प्रसन्न होना चाहिये ॥ ५४ ॥

इति भ्रातरमाश्रयाम्य हृष्ट सौमित्रिरध्वीत् ।
अथावृत्य महीं कृत्वा जगाम हरिवाहिनी ॥ ५५ ॥

अपने माई श्रीरामको आश्रान्त देते हुए हर्षिते भरे सुमित्राङ्गुमार लक्षण जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय यानोंकी सेना गहाँकी लारी भूमि पर घेरकर आगे बढ़ने लगी ॥ ५५ ॥

शृङ्गानरेशाङ्गैर्नखद्वयप्रयुधैरपि ।
कराप्रक्षरणाभिध्वं वानरैरुद्धत रजः ॥ ५६ ॥

उस सेनाम पुत्र रीठ थे और कुछ सिंहके समान पराक्रमी वानर। नख और दाँत ही उनके गज थे। वसमी वानर सैनिक हाथों और पैरोंकी अगुलियोंमें बनी धूत उड़ा रहे थे ॥ ५६ ॥

भीममन्तदधे लोक निर्गर्घं सन्निह प्रभाम् ।
सपर्वतजनाकाङ्क्षा दक्षिणा हरिवाहिनी ॥ ५७ ॥
छद्रयन्ती ययौ भीमा घामिवायमुदसतति ।

उनकी उड़ापी हुई उस भयकर धूलने सूर्यकी प्रभा का दककर सम्पूर्ण जगत्को छिपा सा दिया। वह भयानक वानरसेना पर्वत, वन और आकाशहित दक्षिण शिखा आच्छादित करती हुई उसी तरह आगे बढ़ रही थी, जैसे मधोंकी घटा आकाशसे दककर अग्रसर होती है ॥ ५७ ॥

उत्तरन्त्याध सेनाया सतत बहुयोजनम् ॥ ५८ ॥
नदीस्रोतासि सद्योणि सस्यदुर्विपरीतजम् ।

वह वानरी सेना जब किसी नदीको पार करती थी, उस समय समानातर कई बाजनोंतक उसकी समल धाराएँ उल्टी बढ़ने लगती थी ॥ ५८ ॥

सरासि विमलाम्भासि हुमाकीर्णीध्वं पथताम् ॥ ५९ ॥
समान् भूमिमदशाध्वं यनानि फलवन्ति च ।
मयेन च समन्ताध्वं निर्यक् बाधध्वं भाविशद् ॥ ६० ॥
समाधृत्य महीं कृत्वा जगाम महती चम्बु ।

वह विशाल सेना निमल जलबाल शरीर, बूझते दबे हुए पर्वत, भूमि पर समस्त प्रदेश और खल्लोंमें भरे हुए वन—इन सभी स्थानोंका मण्यमें, इधर-उधर तथा ऊपर-नीचे सब ओरकी लारी भूमिका घेरकर चल रही थी ॥ ५९-६० ॥
ते हृष्टवदना सर्वे जग्मुमादतरहस ॥ ६१ ॥
हरयो राघवमय्यै समारोपितजिहमा ।

उस सेनाके सभी वानर प्रसन्नमुख तथा वायु पर समान वेगवाला थे। सुनापजीरी कायैतिहिये लिये उनका पथक्रम अपना पदच था ॥ ६१ ॥

हर्षं वीर्यं यलोद्रेकान् दृश्यन्त परस्परम् ॥ ६० ॥
वीरानोत्तेजनाद् दृषाद् विविधाश्चक्रुर्ध्वनि ।

य जवानिक जोग और अभिमानजनित दाह कारण
रुस्तमें एक दूसरेका उत्साह, पराक्रम तथा नाता प्रकाशक
वर्णसम्बन्धी उत्कण्ठ दिखा रहे थे ॥ ६० ॥

तत्र केचिद् द्रुत जम्बुसत्पेतुश्च तथापरे ॥ ६१ ॥
केचित् किलकिला चक्रानरा धनगोचरा ।
प्रस्तोदयश्च पुच्छानि सनिजम्बु पदान्यपि ॥ ६४ ॥

उनमेंमें काह तो बड़ी तजीसे भूतलपर चलते थे और
दूसरे उछलकर आकाशमें उड़ जाते थे । किन्तु ही वन
वासी बानर किलकारियों भरते, पृथ्वीपर अपनी पूँछ फ
कारते और पैर पटकते थे ॥ ६१ ६४ ॥

मुजान् विक्षिप्य शैलाश्च द्रुमानान्ये यमजिरे ।
आरोहन्तश्च शृङ्गाणि गिरिणा गिरिगोचरा ॥ ६५ ॥

किन्तु ही अपनी बाँहें फैलाकर पर्यटनियों और
वृक्षोंको ताड़ डालते थे तथा पर्यटन विचरनेवाले बहुतेरे
बानर पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़ जाते थे ॥ ६५ ॥

महानादान् प्रमुञ्चन्ति ह्येवामन्ये प्रचक्षिरे ।
ऊरुवेगैश्च ममृदुलतानालान्येकशः ॥ ६६ ॥

कोई बड़ेकोसे गड़ते और कोई सिंहाद फरते थे ।
किन्तु ही अपनी नाँकों के वेगमें अनेकानेक लता-समूहोंको
मल डालते थे ॥ ६६ ॥

जम्भमाणाश्च विमान्ता विचिकीडु शिलाद्रुमी ।
तत शतसहस्रैश्च फेदिभिश्च सहस्रशः ॥ ६७ ॥
धानराणां सुघोराणां क्षीमत्यरिषृता मही ।

वे सभी बानर बड़े पराक्रमी थे । अँगड़ाई लते हुए
परपरी चानों और बड़-बड़े वृक्षोंसे खेल करत थे । उन
छायों, छावों और फरोहों बानरोंसे गिरी हुई खरी पृथ्वी
बड़ी गामा पाली थी ॥ ६७ ॥

सा स याति दियाराश्च महती हरिवाहिनी ॥ ६८ ॥
प्रहृष्टमुदिता सर्वे सुप्रविण्णाभिपालिता ।
यानरास्त्वरिता यान्ति सर्वे युद्धाभिनन्दिन ।
प्रमोक्षयिष्य स्तीना मुहूर्ते षापि नायसन् ॥ ६९ ॥

इत प्रकार यह गिवाल बानरसेना दिन-रात चलती रही ।
सभीने मुसुझि सभी बानर हृष्ट पुष्ट और प्रसन्न थे । सभी
बड़ी उत्तारणाई साथ चल रहे थे । सभी युद्धका अभिमान
फरोशाल थे और सभी सीतासीमा राक्षसी कैने सुझाना
नाहते थे । इतलिय उहोंने शत्रुमें बड़ी दो बड़ी भी विमान
नहीं लिया ॥ ६८-६९ ॥

तत्र पादपसम्याध नानाजनसमायुतम् ।
सहस्रतमासाद्य धानरास्ते समारुहन् ॥ ७० ॥

चरते-चलते धने वृक्षोंमें व्याप्त और अनेकानेक बानरों
में संयुक्त सभा पर्यटन घाम पर्यटनर वे सब बानर जमन ऊपर
चढ़ गये ॥ ७० ॥

काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च ।
पद्म्यद्रपि ययौ रामः सहास्य मलयस्य च ॥ ७१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सदा और मलयत्र विचित्र काननों, नदियों
तथा झरनोंकी गोमा देखते हुए यात्रा कर रहे थे ॥ ७१ ॥
चम्पकास्तिलकाद्वृक्षानसोकान् सि दुवारकान् ।
तिनिशान् करवीराश्च भञ्जन्ति स प्रगमा ॥ ७२ ॥

वे बानर मार्गमें भिन्ने हुए चम्पा, तिन्त्रक, आम, अशोक,
सिन्दुवार, तिनिग और करवीर आदि वृक्षोंको तोड़ देते
थे ॥ ७२ ॥

अङ्गोलाश्च करञ्जाश्च मृक्षम्यद्रोधपादपान् ।
जम्बूकामलकान् नीपान् भञ्जन्ति स प्रगमा ॥ ७३ ॥

उछल-उछलकर कलनेवाल वे बानरसैनिक रास्ते अकोल,
करज, पाकर, बरगद, जनुन, आँवले और नीप आदि वृक्षों
को भी ताड़ डालते थे ॥ ७३ ॥

प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधा काननद्रुमा ।
वायुवेगप्रचलिता पुष्पैरवकिरन्ति तान् ॥ ७४ ॥

रमणीय पर्वतोंपर उगे हुए नाता प्रकारके जंगली वृक्ष
वायुके सौँकेने क्षम क्षमकर उन बानरोंपर फूलोंकी बरसा करते
थे ॥ ७४ ॥

मारुत सुखसस्पर्शो यानि चन्दनशीतल ।
पट्पदैर्गनुक्षुब्धजिह्वेनपु मधुगन्धिषु ॥ ७५ ॥

मधुने सुगन्धित बनोंने गुनगुनाते हुए मीठोंके साथ
चन्दनक समान शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही थी ॥

अधिक शैलप्राज्ञस्तु धातुभिस्तु निभूरित ।
धातुभ्य प्रयुतो रेणुमायुवेगेन घटित ॥ ७६ ॥
सुमहद्वानराणीक छादयामास मरुत ।

बड़े परतपत्र गैरिक आदि धातुओंमें विभूरित ही बड़ी
शोभा पा रहा था । उन धातुओंमें फैली हुई चूल वायुके
वेगम उलझर उग गिराल जनमेनाका सब अंगोंमें आच्छादित
कर गयी थी ॥ ७६-७७ ॥

गिरिप्रस्थेषु रम्येषु मरुत सम्प्रपुष्पिता ॥ ७८ ॥
केनम्य सिन्धुसाराश्च वामन्यश्च मनोगमा ।

माधवयोगधनुषाण्डाङ्गुन्दरगुम्मादत्र पुष्पिता ॥ ७९ ॥
रमण्य परतपत्रोंपर सब अंग गिरी गई जाती,
सिन्धुसार और वाक्सी लताएँ सभी मनोरम जन पड़ी थीं ।
प्रसन्न माधवी लताएँ सुगन्धने मरी थीं और गुन्दरी
हादियों की फूलोंमें लगी हुई थी ॥ ७८ ७९ ॥

विरिवित्वा मधुकाश्च वञ्जुला वकुलास्तथा ।
रञ्जनास्तिलयाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिता ॥ ७९ ॥

विरिवित्वा, मधुक् (मधुआ), वञ्जुल, वकुल, रञ्जक,
तिलक और नागकेसरके वृक्ष भी वहाँ खिल हुए थे ॥ ७९ ॥

चूता पाटलिकाश्चैव कोविदारश्च पुष्पिता ।
मुकुलिन्दार्जुनाश्चैव शिशापा कुटजास्तथा ॥ ८० ॥

हिन्तालास्तिनिराशश्च चूर्णका नीपकास्तथा ।
नीलादोकाश्च सरला अद्रोला पद्मकास्तथा ॥ ८१ ॥

आम, पाडर और कोविदार भी फूलते छदे थे । मुकु
लिन्द, अर्जुन, शिशापा, कुटज, हिताल, तिनिसा, चूर्णक,
से सुरोभित थे ॥ ८० ८१ ॥

प्रीयमायै हयगैस्तु तयै पर्याकुलीकृता ।
वायस्तस्मिन् गिरौ रम्या पल्यन्मिन् तथैव च ॥ ८२ ॥

चक्राकातुचरिता कारण्डचनिपेविता ।
ह्रै क्रौञ्चैश्च सकीणा वराहसृगसेविता ॥ ८३ ॥

प्रधनतासे भरे हुए बानरोंने उन सब वृक्षोंको घेर लिया
था । उस परतपर बहुत सी रमणीय बागद्विषों तथा छोटे-छोटे
जलाशय थे, जहाँ चक्रे विचरते और जलमुकुट निगाह
करते थे । जलकाक और क्रौञ्च भरे हुए थे तथा सूअर और
हिरन उनमें पानी पीते थे ॥ ८२ ८३ ॥

श्रुसैस्तरक्षुभि र्निहै शार्ङ्गलैश्च भयावहै ।
व्यालेश्च बहुभिर्भीमै सेव्यमाना समन्तत ॥ ८४ ॥

रिड, तरक्षु (लकड़बग्घे), निह, भयकर बाघ तथा
बहुलव्यक्त हुए हाथी जो बड़े भीषण थे, सर औरसे आ-
आकर उन जलाशयोंका भेदन करते थे ॥ ८४ ॥

पक्षै सौगन्धिर्षु कुल्लै हुनुदैशोत्पलेस्तथा ।
चारिजैर्विविधैः पुष्पै रम्यास्तत्र जलाशया ॥ ८५ ॥

निले हुए सुगन्धित कमल, कुसुम, उत्पल तथा जलमें
होनेवाले भीति भौतिने अन्य पुष्पोंसे बहोके जलाशय बड़े
रमणीय दिलायी देते थे ॥ ८५ ॥

तस्य सातुषु वृजन्ति नानाद्रिजगणास्तथा ।
क्वात्वा पीभोदक्रान्ध्र जने प्रीडन्ति यानरा ॥ ८६ ॥

उस परतमें गिराएँपर नाना प्रकारके पक्षी कपूर करते
थे । बानर उन जलाशयोंमें नहाते, पानी पीने और जलमें
प्रीति करते थे ॥ ८६ ॥

अन्योन्य ग्रायन्ति स्म शङ्खमारुहा शनरा ।
भञ्जुयानरास्तत्र मूगानि हुञ्जुमानि च ॥ ८७ ॥

जगामयप्रमाणानि गम्यमानानि यानरा ॥ ८८ ॥

पिबन्त स्वस्थास्ते मधूनि मधु पिङ्गा ।

वे आपसमें एक दूसरेपर पानी भी उछालते थे । कुछ
बानर परतपर चढ़कर वहाँने वृक्षोंक अमृततुल्य मीठे फलों,
मूलों और फूलोंका तोड़ते थे । मधुके समान वणवाले कितने
ही मदमत्त बानर वृक्षोंमें लटके और एक एक द्रोण शहदसे
भरे हुए मधुक छत्तोंको तोड़कर उनका मधु पी लेते और
स्वस्थ (समुष्ट) होकर चलते थे ॥ ८७-८८ ॥

पादपानवभञ्जन्तो विकपन्तस्तथा लता ॥ ८९ ॥

विधमन्तो गिरिविरान् प्रययु लुवगर्भभा ।
पेङ्गोको ताड़ते, लताओंको रगचते और बड़े बड़े परतोंको
प्रतिघ्नित करते हुए वे श्रेष्ठ बानर तीन गतिसे आगे बढ़
रहे थे ॥ ८९ ॥

वृक्षेभ्योऽन्ये तु कपयो नवतो मधु दपिताः ॥ ९० ॥

अन्ये वृक्षान् प्रपद्यन्ते प्रपियन्त्यपि चापने ।
दूरे बानर दर्वमें भरकर वृक्षसे मधुने छत्ते उतार
और जोर-जोरसे गर्जना करते थे । कुछ बानर वृक्षोंपर
जाते और कुछ मधु पीने लगते थे ॥ ९० ॥

बभूव वसुधा तैस्तु सम्पूर्णा हरिपुङ्गवै ।
यथा कल्मषेदारी पन्धैरिव वसुधरा ॥ ९१ ॥

उन बानरविधमणियोंसे भरी हुई उहाँकी भूमि पने हुए
बालवाले कलमी धारोंकी क्यारियोंसे ढकी हुई धरतीके समान
सुबोभित हो रही थी ॥ ९१ ॥

महेन्द्रमथ सम्प्राप्य रामो राजीवलोचन ।
आरुरोह महाबाहु शिखर हुममूषितम् ॥ ९२ ॥

कमलनयन महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी महेन्द्र परतसे पाद
पट्टचक्र भौति भौतिने वृक्षोंसे सुबोभित उठके गिराएँपर
चढ़ गये ॥ ९२ ॥

तत शिखरमारुहा रामो दशरथामज ।
हूममीनसमाकीर्णमपदयत् सलिलाशयम् ॥ ९३ ॥

महेन्द्र परतसे गिराएँपर आरु हो दशरथनन्दन भगवान्
श्रीरामने कछुओं और मत्स्योंसे भरे हुए समुद्रको देखा ॥

ते सहा समतिक्रम्य मलय च महागिरिम् ।
आलेदुरातुपूय्येण समुद्र भीमनि स्वनम् ॥ ९४ ॥

इस प्रकार वे सहा तथा मलयका लोंघर क्रमग गहे-
पतने समीपवर्ती समुद्र तटपर जा पहुँचे, जहाँ बड़ा भयकर
धक्का हो रहा था ॥ ९४ ॥

अवरुहा जगामाशु घलाग्नमनुत्तमम् ।
रामो रमयता श्रेष्ठ ससुग्रीव मल्लक्ष्मण ॥ ९५ ॥

उस परतसे उतरकर भगवान् मनमो रमानेगल्लोंमें श्रेष्ठ
भगवान् श्रीराम सुग्रीव और लक्ष्मणने साथ साथ ही सगर
तटकी परम उत्तम यन्त्रों जा पहुँचे ॥ ९५ ॥

अथ धीनोपलन्ता तोयौघे सहस्रोत्थित ।
घेलामासाद्य त्रिपुला रामो वचनमग्रवीह ॥ ९६ ॥

जहाँ सखा उठी हुई जलनी तरङ्गोंने प्रमत्तरी पिलवै
घुल गया था; उस विस्तृत स्त्रिपुलपर पहुँचकर श्रीरामने
कहा— ॥ ९६ ॥

एते वयमनुप्राता सुग्रीव वरुणालयम् ।
इहेदानीं विचिन्ता सा या न पूवमुपस्थिता ॥ ९७ ॥

सुग्रीव । हा, हम सब लोग समुद्र किनारे ता आ गये ।
अब यहाँ मनमें फिर वहा चिन्ता उत्पन्न हो गयी, जो हमारे
सामने पहले उपस्थित थी ॥ ९७ ॥

अन परमर्तनोऽय सागर सरिता पनि ।
न चायमनुपायेन दान्यस्तस्तरितुमण ॥ ९८ ॥

इसने आगे ता यह सरिताओंका स्वामी महासागर ही
विद्यमान है; जिसका कहा पार नहीं दिखायी देता । अब
बिना किसी अनुचित उपायका सागरका पार करना असम्भव है ।
तद्दिहैर निवेशोऽस्तु मय प्रसूयनामिह ।
यथेद वानरवल पर पारमगानुयात् ॥ ९९ ॥

इसलिये यहाँ मनाका पड़ा पड़ जाय और हमन्थय
यहाँ बैठकर यह विचार आरम्भ करें कि किस प्रकार यह
वानर-सेना समुद्र उत पारक पहुँच सकती है? ॥ ९९ ॥

इतीर न महायादु सीताहरणकृतित ।
राम सागरमासाद्य वानमाश्रययत् तदा ॥ १०० ॥

इस प्रकार सीताहरणक नाकय दुर्वर्ण हुए महाबाहु
शायमने समुद्र किनारे पहुँचकर उस समय सारी सेनाका
वहाँ ठहरनेकी आज्ञा दी ॥ १०० ॥

सय मना निरेदयन्ता घेलाया हरिपुङ्गव ।
सम्प्रातो मयकागे न सागरम्येह लहने ॥ १०१ ॥

वे था—अनिष्ट । समस्त मनाओंका समुद्र तत्पर
नहयाय जाय । न यहाँ हमारे स्थि समुद्र-तटपर उपायकर
निबर करनेका अवसर प्राप्त हुआ है ॥ १०१ ॥

सा न्वा सना समुस्त्य मय कथित् कुतो वजेत् ।
ग-उत्तु जानरा ग्रा मेष छल भय च न ॥ १०२ ॥

इस समय फाड़ भी सेनापति किसी भी कारणवश अपनी
अन्ती मना। छोड़कर यहाँ अन्यत्र न जाय । समस्त यह
पार वानर-सेनाही रखकर लिये यथास्थान चले जायें । सरकारी
यह जान सना चाहिये कि हमन्थगौर राक्षसोंका मायाय गुप्त
मय आ सकता है? ॥ १०२ ॥

रामस्य यजन धुन्या सुग्रीव सहलक्ष्मण ।
सेना नियशयत् तार सागरस्य द्रुमायुत ॥ १०३ ॥

शायमचन्द्रबाहा यह वचन सुनकर लम्बनासहित सुग्रीव
ने वृक्ष-रज्जियोंसे मुकुटित शगर-तत्पर सेनाका ठहरा दिया ॥

शिराज समीपस्थ सागरस्य च तद् बलम् ।
मधुपाण्डुजल धीमान् द्वितीय इव सागर ॥ १०४ ॥

समुद्रक पास उठवी हुई यह विगल गनर-सेना मधुक
समान पिङ्गलवर्णके जलमें भर हुए दूसरे सागरनी-सी शोभा
धारण करती थी ॥ १०४ ॥

वेलानमुपागम्य ततस्ते हरिपुङ्गवा ।
निविष्टाश्च पर पार काङ्क्षमाणा महोदधे ॥ १०५ ॥

सागर-तटकर्त्ता वनम पहुँचकर वे सभी भेड़ गनर समुद्रक
उत पार जानेका अभिलाषा मनमें लिये वहाँ ठहर गये ॥ १०५ ॥

तेषा निशिश्ममानाना सैन्यसनाहनिखन ।
अन्तर्धाय महानादमणयस्य प्रभुधुवे ॥ १०६ ॥

वहाँ डेर डालते हुए उन श्रीराम आदिनी सेनाओंक
सचरणोंसे जो महान् कंपल हुआ; वह महासागरकी गम्भीर
गञ्जाओ भी दबाकर मुनायी देने लगा ॥ १०६ ॥

सा वानराणा चञ्जिनी सुग्रीवेणाभिपालिता ।
त्रिधा निविष्टा महती रामस्यायपराभत् ॥ १०७ ॥

सुग्रीवद्वारा सुपुङ्गव वह वानरोंकी विद्याय सेना श्रीराम
चन्द्रबाह काय-साधनम तत्पर हा पीठ, लंगूर और वानरीक
भेदन तीन भागोंमें विभक्त होकर ठहर गयी ॥ १०७ ॥

सा महाजगमासाद्य हृष्टा धानरगाहिनी ।
वायुजगसमाभूत परममना महाजगम् ॥ १०८ ॥

महासागरक तत्पर पहुँचकर वह वानर-सेना वायुक वेग-
म क्षिप्त हुए समुद्रकी शोभा देखती हुई वह हयका
अनुभव करता थी ॥ १०८ ॥

दूरपारमसम्प्राध रक्षोऽगणनिषेधितम् ।
पदयन्तो वरुणागस निषेदुहरियूषपा ॥ १०९ ॥

जिसका दूषक तट रहन दूर था और दीर्घमें बाढ़ आभन
नहा था तथा जिसने राक्षसों समुद्राय निषेध करत था; उस
वरुणाग समुद्रक दम्बन हुए न वानर-पूधनने उसका तत्पर
कर रहे ॥ १०९ ॥

चण्डनमग्राहघोर क्षपाद्दं दिग्ममये ।
हसन्तमिद फेनधनुत्यन्तमिद चोमिभि ॥ ११० ॥

चन्द्रोदये समुद्भूत प्रविचन्द्रसमाकुलम् ।
क्षण्डानिद्रमहाग्राह कर्ण निमिनिमिगले ॥ १११ ॥

क्षधमें भर हुए नाकों कारण समुद्र वहा भरकर
दिशा देता था । निरभ्य और गनर अरम्भमें—
प्रशंकर समस्त चलाय होकर उठने चार आ गता था ।
उत समय वह वन-सन्मोहक कारण हस्या और उत्कल नरकों
क कारण नाचन-स्थ प्रतीत होता था । चन्द्रमाक प्रविचन्द्रमें
भय-शान्तिन पड़ना था । प्रचण्ड वायुन समस्त वायुनी
बढ़-बढ़ करान और निमि नमक मशानमें भी निमि

जानेवाले महाभयकर जलजतुओंसे व्याप्त दिखायी देता था ॥

दीप्तभोगैरिवार्क्यं भुजङ्गैर्वदणालयम् ।

अयगाढ महासत्त्वैर्नागैरुत्समाकुलम् ॥११२॥

वह उदणालय प्रदीप्त फणोंवाले सर्पों, विशालवाय जल-
चरों और नाना परतोंमें व्याप्त जान पड़ता था ॥ ११२ ॥

सुदुर्गं दुर्गमार्गं तमगाधमसुरालयम् ।

मकरैर्नागभेदैश्च विगाढा घातनेतिहा ।

उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्रहृष्ट जलराशयः ॥११३॥

शूलोंका निवासभूत यह अगाध महासागर अत्यन्त
दुर्गम था । उस पार करनेका कोई मार्ग था साधन दुर्लभ था ।
उसमें बाघकी प्रेरणासे उठी हुई चञ्चल तरङ्गों, जो मगरों
और विशालनाथ सर्पोंसे व्याप्त थीं, बड़े उत्पलसे ऊपरको
उठती और नीचेको उतर आती थी ॥ ११३ ॥

अनिचूणमिवायिद्ध भास्वराम्बुमहोरगम् ।

सुराग्निलय घोर पातालत्रिपय मदा ॥११४॥

सागर चाम्बरप्रख्यमम्यर सागरोपमम् ।

सागर चाम्यर चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥११५॥

समुद्रक जल-क्षण बड़े चमकीले दिखायी देते थे । उन्हें
देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो सागरमें आगवी चिनारियाँ
विलेर दी गयी हों । (फैले हुए नक्षत्रोंक कारण आकाश
भी वैसा ही दिखायी देता था ।) समुद्रमें बड़े-बड़े सर्प थे
(आकाशमें भी राहु आदि खपाकार ही देखे जात थे) । समुद्र
देवदोही देखा और राक्षसोंका आवास स्थान था (आकाश भी
वैसा ही था क्योंकि वहाँ भी उनका संचरण देखा जाता था) ।
दोनों ही देखनेमें भयकर और पातालके समान गम्भीर थे ।
इस प्रकार समुद्र आकाशके समान और आकाश समुद्रके
समान जान पड़ता था । समुद्र और आकाशमें कोई अन्तर
नहीं दिखायी देता था ॥ ११४ ११५ ॥

सम्पुक्क नभसाप्यम्भः सम्पृच्छ नभोऽम्भसा ।

तादृग्मे स दृश्येते तारातरनसमाकुले ॥११६॥

हरिचार्च श्रीमद्रामायणे वाक्यमीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे चतुर्थे सर्ग ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्कीर्तिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्गः

श्रीरामका सीताक लिये शोक और विलाप

सा ॥ नीलेन विधित्तवारसा सुसमाहिता ।

सागरस्योत्तरे तत्र साधु सा गिनियेदिता ॥ १ ॥

नीलेन, जिम्हीं विधिवत् रखाकी व्यवस्था की गयी थी,
उस परम साजधान बनार-संग्रहा समुद्रक उत्तर तटपर अच्छे
ढंगसे उठपया ॥ १ ॥

जल आकाशसे मिला हुआ था और आकाश जलसे,
आकाशमें तारे छिटेक हुए थे और समुद्रमें माती । इसलिये
दोनों एकसे दिखायी देते थे ॥ ११६ ॥

समुत्पतितमेघस्य धीचिमालाकुलस्य च ।

विशेषो न द्वयोपानीत् सागरस्याम्बरस्य च ॥११७॥

आकाशमें मघोंकी घटा फिर आयी थी और समुद्र तरङ्ग
मालाओंमें व्याप्त हो रहा था । अतः समुद्र और आकाश
दोनोंमें कोई अन्तर नहीं रह गया था ॥ ११७ ॥

अन्योन्यैरहता सका सस्वनुर्भमनिःस्वना ।

ऊर्मयः सिंचुराजस्य महामेघ इवाम्भगे ॥११८॥

परस्पर टकराकर और सटकर सिंचुराजकी लहरें
आकाशमें बजनेवाली देवताओंकी बड़ी-बड़ी मेरियोंके समान
मयानक शब्द करती थीं ॥ ११८ ॥

रत्नौघजलसनाद् विपकमिध वायुना ।

उत्पतन्तमिव क्रुद्ध यादोगण्यसमाकुलम् ॥११९॥

वायुसे प्रेरित हो रत्नोंके उछालनेवाली जलकी तरङ्गोंके
कलकल नादसे युक्त और जल-ज्झुमेंगोंसे भरा हुआ समुद्र
इस प्रकार ऊपरको उछल रहा था; मानो रोपते भरा
हुआ हो ॥ ११९ ॥

दृष्टुं स्नेहमात्मनो घाताहतजलाशयम् ।

अनिलोद्भूतमाकाशे प्रलान्तमिवोर्मिभि ॥१२०॥

उन महामनस्वी वानरवीर्येने देखा, समुद्र बाघके थपड़े
झाकर परनई प्रेरणासे आकाशमें ऊँचे उठकर उछाल तरङ्गों
के द्वारा नृत्य-ना कर रहा था ॥ १२० ॥

तता विसयमापन्ना हरयो दृष्टु स्थिता ।

आन्तोभिजातसनाद् प्रलेलमिव सागरम् ॥१२१॥

तदनन्तर वहाँ लड़े हुए वानरोंने यह भी देखा कि
चक्रर काण्ठे हुए तरङ्ग-समूहोंके कल-कल नादसे युक्त महा
सागर अत्यन्त चञ्चल-सा हो गया है । यह देखकर उन्हें बड़ा
आश्चर्य हुआ ॥ १२१ ॥

मैन्दश्च क्षिप्रिदधोभी तथ वानरपुङ्गवौ ।

विचैरनुद्ध ता सेना रक्षार्थं सर्वतोदिशम् ॥ २ ॥

मेन्द्र और क्षिप्रि—य दो प्रमुख वानरवीर उन सेनाकी
रक्षाक लिये सब ओर निचरत रहते थे ॥ २ ॥

निशिप्राया तु सेनाया रीरि नदनदीपते ।
 पार्श्वेभ्य लक्ष्मण दृष्ट्वा रामो चचनमग्रवीत् ॥ ३ ॥
 समुद्रक किनारे सेनाया पड़ाव पड़ जानेपर श्रीरामचन्द्र
 बीने अपने पास बैठ हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा—
 शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति ।
 मम चापश्यत कान्तामहन्त्यहनि वचेत ॥ ४ ॥
 भूमिगानन्दन । कहा जाता है कि गाक चीनत हुए
 समयक साथ साथ भी दूर हो जाता है परन्तु मेरा शोक तो
 अपनी प्राणवल्दमाका न देखनेके कारण दिनोदिन बढ़
 रहा है ॥ ४ ॥
 न मे दुःख प्रिया दूरे न मे दुःख हतेति च ।
 पतदेगानुशोचामि ययोऽस्या हातिवनेते ॥ ५ ॥
 भुक्ते इव वातका दुःख नहीं है कि भरी प्रिया मुझसे
 दूर है । उसका अपहरण हुआ—इसका भी दुःख नहीं है । मैं
 तो बारबार इसीलिये शोकमें डूबा रहता हूँ कि उसका जीवन
 रहनेक लिये जो अवधि नियत कर दी गयी है, वह क्षीप्रता
 पूर्वक बीती जा रही है ॥ ५ ॥
 बाहि पात यत कान्ता ता स्पृष्ट्वा मामपि स्पृष्टा ।
 त्वयि मे गात्रसम्पर्शश्च दृष्टिसमागम ॥ ६ ॥
 'हवा ! तुम यहाँ बह, जहाँ मेरी प्राणवल्दमा है । उसका
 स्पर्श करके मेरा भी स्पर्श कर । उस दशामें तुझमें जो मर अङ्गोंका स्पर्श होगा, वह चन्द्रमासे होने
 वाल दृष्टियोगी भौति मेरे सारे स्नायको दूर करनेवाला
 और आह्लादजनक होगा ॥ ६ ॥
 तस्मै दहत गानाणि त्रिष पीनमिश्राण्ये ।
 हा नाधेति प्रिया सा मा श्रियमाणा यदग्रवीत् ॥ ७ ॥
 'अगरण होने समय मेरी प्यारी सीताने जो भुक्ते का
 नाथ ।' वहकर पुराण था, वह पीये हुए उदरस्थित त्रिषकी
 भौति मेरे सारे अङ्गोंका दग्ध त्रिष देता है ॥ ७ ॥
 तद्विषयो धनयता तन्निन्तामिमलान्विता ।
 रान्निदिश शरीर मे दहत मदनान्विता ॥ ८ ॥
 'प्रियतमारा त्रिषण ही जिसका ईश्वर है, उसकी चिन्ता
 ही जिसकी दासिनी लयें हैं, वह प्रमानि मेरे शरीरका
 रान्निन जलती रहती है ॥ ८ ॥
 अयगाष्टाण्य सप्त्ये सौमित्रे भजता विना ।
 एष च प्रयत्नफामो न मा सुप्त जले दहेत् ॥ ९ ॥
 भूमिगानन्दन । तुम यहाँ रहो । मैं तुम्हारे बिना अरुण
 ही समुद्रक भीतर घुसरर भऊँगा । इस तरह जलमें गिरन
 करनेपर वह प्रयत्न प्रमानि मुझ दग्ध नहीं कर सकगा ॥
 पद्मेनत् कामयानस्य दास्यमेतन जीवितुम् ।
 यद्द सा च पामोररका धरणिमाधिता ॥ १० ॥
 यद्द सा च पामोररका धरणिमाधिता ॥ १० ॥

मैं और वह वामार सीता एक ही भूतत्पर होते हैं ।
 प्रियतमारा सपाङ्गी इच्छा रखनेवाला मुझ विरणीक लिये
 इतना ही बहुत है । इतनेमें भी मैं जीवित रह सकता
 हूँ ॥ १० ॥
 केदारस्येय केदार सोदकस्य निरुदक ।
 उपस्नेहेन जीवामि जीवन्ती यन्त्रुणेमि ताम् ॥ ११ ॥
 'जैसे जलसे भरी हुई क्यारीक समझमें मिना जलकी
 क्यारीका धान भी जीवित रहता है—सूखता नहीं है, उसी
 प्रकार मैं जो यह सुनता हूँ कि सीता अभी जीवित है,
 इसीसे जी रहा हूँ ॥ ११ ॥
 कदा तु खलु सुश्रोणी शतपञ्चायतेक्षणाम् ।
 विजित्य शत्रून् द्रक्ष्यामि सीता स्मृतामिष धियम् ॥ १२ ॥
 'कब यह समय आयेगा, जब शत्रुओंका पराजय करके मैं
 समुद्रिशास्त्रि राजकीर्मीर समान कमलनयनी मुमयमा सीता
 को देखूँगा ॥ १२ ॥
 कदा सुचारुदन्तोष्ट तस्या पश्यामिगाननम् ।
 इषुदुष्टास्य पास्यामि रसायनमिगानुर ॥ १३ ॥
 'जैसे यमी रखानका पान करता है, उसी प्रकार मैं कब
 सुन्दर दाँतों और बिम्बवदय मनोहर ओठोंमें सुख सीताक
 प्रफुल्लकमलजैसे मुखक कुण्ड ऊपर उठाकर चूँगा ॥ १३ ॥
 तौ तस्या सहितौ पीनौ स्तनौ तालफलेपयौ ।
 कदानु पलु सोत्कम्पौ श्लिष्यन्त्यामा भविष्यत ॥ १४ ॥
 'मय आलङ्घन करती हुई प्रिया सीताने व परस्पर सने
 हुए, तालकन समान गले और मांसे दाँतों मन कब
 किंचित् कम्पनेक साथ मय सस्य करेंगे ॥ १४ ॥
 सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता स्तती ।
 मन्ताया नायर्हनेन त्रातार नाधिगच्छति ॥ १५ ॥
 'रक्षणे नेत्रगानवाली वह सखी-सापी सीता, जिसका
 मैं ही नाथ हूँ, आज अनाथरी भौति रा-सो-र बीचमें पड़
 र निश्चय ही काइ रक्षक नहीं पा रही होगी ॥ १५ ॥
 कथ जनकरानस्य दृष्टिता मम च प्रिया ।
 राक्षसीमध्यगा नेते स्तुया दशरथस्य च ॥ १६ ॥
 'प्राय जनकरी पुत्रा, महापुत्र दशरथकी पुत्रपू और
 मेरी प्रियतमा सीता राक्षसोंक धाचमें कम सता हगा ॥ १६ ॥
 अशिश्येभ्यणि रक्षासि मा विभूयोपनिष्यति ।
 विभूय जलदान नीलान्दादिलेखा नारस्य ॥ १७ ॥
 'कब समय कब अयगा, जब कि सीता नर हाथ उन
 दुष्य राक्षसोंक विना करर रणप्रकार अन्ता पदार करर,
 जैसे शतकर्ममें चन्द्रमा का सा-सो-र मित्रा करर
 उनक आरगन मुक्त हो जाती है ॥ १७ ॥

स्वभावननुक्ता नून शोकैरानशनेन च ।
भूयस्तनुतरा सीता देवकालविपर्ययात् ॥ १८ ॥

ध्वमात्रसे हो दुचले-फलसे शरीरवाली सीता विपरीत देव
कालमें पड़ जानेक कारण निश्चय ही शोक और उपवास करने
और भी लड़ गयी होगी ॥ १८ ॥

कदा नु राक्षसेद्रम्य निधायोरसि सायकाद्रि ।
शोक प्रत्याहरिष्यामि शोकमुत्सृज्य मानसम् ॥ १९ ॥

मैं राक्षस राजकी छातीमें अपने सायकौंस धँसाकर
अपने मानसिक शाकका निराकरण करव कब सीताका शोक
दूर करूँगा ॥ १९ ॥

कदा नु खलु मे माधुरी सीतामरसुतोपमा ।
सोत्कण्ठा कण्डमालमय मोक्षयत्यानन्दज जलम् ॥ २० ॥

‘देवकन्याके समान सुन्दरी मेरी सौ-सा-ची सीता कब
उत्कण्ठापूजक मरे गछेसे लगाकर अपने नेत्रोंसे आनन्दक
भँसू बहायेगी ॥ २० ॥

इत्यादि श्रीमद्रामायण बाहमीकीये आदिकाव्य मुद्रकाण्ये पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

इयं काला श्रीरामायणे निर्मिन् आर्यरामायण आदिकाव्यक मुद्रकाण्ये पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पष्ठः सर्गः

रावणका कर्तव्य निर्णयके लिये अपने मन्त्रियोंसे समुचित गलाह देनेका अनुरोध करना

लङ्काया तु हत कर्म घोर दृष्ट्वा भयावहम् ।
राक्षसं द्रो हनुमता शमोणेय महात्मना ।
अग्रदीप्त राक्षसान् सवान् द्विषा किंचिद्वाह मुख ॥ १ ॥

इधर हनुमान् पथकमी महात्मा हनुमानजीने लङ्कामें
जो अत्यन्त भयावह घोर कर्म किया था, उसे देखकर राक्षस
राज रावणका मुख लज्जाम कुछ नीचेका झुक गया और
उत्तने समस्त राक्षसोंसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

धर्मिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी ।
नेन वानरमात्रेण दृष्टा मीता च जानकी ॥ २ ॥

‘निगाचरो ! यह हनुमान्, जो एक वानरमात्र है, अकेला
इस दुर्धन पुरीमें घुस आया। उसने इसे तहस-नहस कर डाला
और जनककुमारी सीतामें भेंट भी कर लिया ॥ २ ॥

प्रासादो धपितश्चैत्य प्रतरा राक्षसा हता ।
आगिला च पुरी लङ्का सर्वो हनुमता हता ॥ ३ ॥

‘प्रतना ही नहीं, हनुमान् चैत्यप्रासादको भग्न-पथी कर
दिया, मुख्य-गुप्त राक्षसों का मार मियमा और सारी लङ्का
पुरीमें खलनी मचा दी ॥ ३ ॥

किं करिष्यामि भद्रं य किं वो युक्तमनन्तरम् ।
अध्याना नः समर्थं यत्कृतं च सुहृत् भवेत् ॥ ४ ॥

कदा शोकमिमं योगं मैथिलीविप्रयोगजम् ।
सहसा निप्रमोक्षयामि वामं पुन्येतरं यथा ॥ २१ ॥

‘ऐसा समय कब आयेगा, जरा मैं मिथिलशुमारों
विषयमें होनेवाले इस भयकर ‘जोकरों मलिन वस्त्रवी भोजि
सहसा त्याग दूँगा ?’ ॥ २१ ॥

एव विरपतस्तस्य तत्र रामस्य धीमत ।
दिनश्रया मन्वचपुर्भास्फरोऽस्तमुपागमत् ॥ २२ ॥

बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी वहाँ इस प्रकार विरप कर
ही रहे थे कि दिनका अन्त होनेक कारण मन्त्र किरणोंवात
सूर्यदेव अस्तावलका जा पहुँचे ॥ २२ ॥

आश्वासितो लक्ष्मणेन राम सध्यामुपासत ।
सरन् कमलपत्रादौ सीता शोकाकुलीकृत ॥ २३ ॥

उस समय लक्ष्मणक धैर्य बँधानेपर ‘गान्धर्व’ व्याकुल हुए
श्रीरामने कमलपत्रानी सीताका चिन्तन करत हुए सध्यापासना
की ॥ २३ ॥

इत्यादि श्रीमद्रामायण बाहमीकीये आदिकाव्य मुद्रकाण्ये पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

इयं काला श्रीरामायणे निर्मिन् आर्यरामायण आदिकाव्यक मुद्रकाण्ये पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

‘भुमलांगका भया है। अब मैं क्या करूँ ? तुम्हें जो
कार्य उचित और समर्थ जान पड़े तथा जिसे करनेपर कोई
अच्छा परिणाम निकले, उसे बताओ ॥ ४ ॥

यच्चमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनसिनः ।
तस्माद् द्रु रोचये माम् राम प्रति महात्मना ॥ ५ ॥

‘महात्मी वीर ! मनसी पुरुषोंका पहना है कि विजय
का मूल कारण मन्त्रियोंकी ही हुई अच्छी सलाह ही है।
इसलिय मैं श्रीरामक विषयमें आपजोंसे सलाह लेना अच्छा
समझता हूँ ॥ ५ ॥

त्रिविधा पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमा ।
तेषां तु समधत्तानां गुणदोषौ धर्माव्यहम् ॥ ६ ॥

‘सर्वधर्मे उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारक पुरुष
होत हैं। मैं उन सबक गुण-दोषोंका ध्यान करता हूँ ॥ ६ ॥

मन्त्रिभिर्हि सयुक्तं समर्थमन्यनिजये ।
मित्रैवापि ममानार्थेष्वधैरपि याधिकैः ॥ ७ ॥

सहिता मन्त्रियत्वा य कमारम्भान् प्रजयन्त ।
द्वेधे च बुद्धते यन तमाद्गः पुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥

‘विजय मन्त्र आगे बनाय जानेवाले तीन लक्षणोंक युक्त
होता है तथा जो पुरुष मन्त्रनिजयमें समर्थ मित्रों, समान

दुःख-सुख-बाल-वा-धवाँ और उनमें भी कतर अपने लित
कारियोंने साथ मयह करक धार्यना आरम्भ करता है तथा
देवके नरारे प्रयत्न करता है, उने उत्तम पुरुष कहते
हैं ॥ ७८ ॥

एकोऽयं विमृशेदेको धर्मं प्रवृत्ते मन ।
एकं कार्यणि कुरुते तमाहुर्मध्यम नगम् ॥ ९ ॥

‘जो अकेला ही अपने कर्तव्यना विचार करता है,
अकेला ही धर्ममें मन लगाता है और अकेला ही सर काम
करता है, उसे मध्यम श्रेणीका पुरुष कहा जाता है ॥ ९ ॥

गुणवोपौ न निश्चित्य त्यक्त्या दैव-यथाधयम् ।
करिष्यामीति य कार्यमुपेक्षेत् स नराधमः ॥ १० ॥

‘जो गुण-दापना विचार न करने देवका भी आश्रय
छोड़कर केवल ‘इच्छा’ इसी बुद्धिसे कार्य आरम्भ करता है
और फिर उसकी उपेक्षा कर देता है, वह पुरुषोंमें अधम
है ॥ १० ॥

यद्येमे पुरुषा नित्यमुत्तमाधममध्यमा ।
एव मन्त्रोऽपि विज्ञेय उत्तमाधममध्यमः ॥ ११ ॥

‘जैसे वे पुरुष सदा उत्तम, मध्यम और अधम तीन
प्रकारके होते हैं, वैसे ही मन्त्र (निश्चित क्रिया हुआ विचार)
भी उत्तम, मध्यम और अधम भेदने तीन प्रकारका समझना
चाहिये ॥ ११ ॥

येकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा ।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मनुचमम् ॥ १२ ॥

‘ब्रह्म शास्त्रोक्त दृष्टिने सब मन्त्री एकमत होकर प्रवृत्त
होते हैं, उने उत्तम मन्त्र कहते हैं ॥ १२ ॥

यद्दीरपि मतीगत्या मन्त्रिणामयनिणयः ।
पुनरप्यैकता प्राप्त स मन्त्रो मध्यम स्मृतः ॥ १३ ॥

‘जहाँ प्रारम्भमें कई प्रकारका मतभेद होनेपर भी अन्त
में सब मन्त्रियोंका कर्तव्यनिर्णयक निणय एक हो जाता

हूयार्थे श्रीमद्रामायण बालमीकीय आदिहोम्ये युद्धकाण्डे षष्ठ सर्ग ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीभारतमिनिर्मित भवभारामायण आदिहोम्ये युद्धकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

सप्तम सर्ग

राक्षसोंका रावण और इन्द्रजित्के बल शराक्रमका वर्णन करते हुए उसे
रामपर विचय पानेना निशाम दिलाया

इत्युना राक्षसद्रेण राक्षसात्म महातरुना ।
उच्च प्राचल्य स्यै रावण राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
द्विपत्यक्षमग्निनाय नीतिग्राह्यास्त्वयुद्धय ।
राक्षसे न ता नीतिश्च हन था और न य शत्रु-भर

है, यह मन्त्र मध्यम माना गया है ॥ १३ ॥

अन्योन्यमतिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते ।
न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्र सोऽधम उच्यते ॥ १४ ॥

‘जहाँ भिन्न-भिन्न बुद्धिका आश्रय ल सब आसने स्पष्टा
पूर्वक भाषण किया जाय और एकमत होनेपर भी बिमने
कन्याणकी सम्भाषना न हो, वह मन्त्र या निश्चय अधम
कहलाता है ॥ १४ ॥

तस्मात् सुमन्त्रित साधु भग्नो मतिस्तत्तमा ।
कार्यं सम्प्रतिपन्नत्मेनत् दृष्ट्य मत मम ॥ १५ ॥

‘आप सर लोग परम बुद्धिमान हैं इसलिये अच्छी तरह
सलाह करके कोई एक कार्य निश्चित करें। उसीमें मैं अपना
वचन्य समझूँगा ॥ १५ ॥

यानराणा हि धीराणा सहस्रै परिवारितः ।
रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥ १६ ॥

‘(ऐसे निश्चयी आश्रय-यस्ता इसलिये पत्नी है कि)
राम सहस्रों धीरवीर वानराके साथ हमारी लङ्कापुर्वीर चढ़ाह
करनेके लिये आ रहे हैं ॥ १६ ॥

सरिष्यति च सुयच राघव सागर सुजम् ।
सरसा युक्तरूपेण सानुन सयलानुग ॥ १७ ॥

‘यह बात भी भलीभाँति स्पष्ट हो चुकी है कि वे सुयुद्धी
राम अपने समुचित बलके द्वारा माई, सेना और सेनानेसहित
सुखपूर्वक समुद्रमें पार कर लेंगे ॥ १७ ॥

समुद्रमुच्छेदयति धार्येणान्यत्करोति या ।
तस्मिन्नवरिधे कार्यं त्रिरुद्धे यानरै सह ।

हित पुरे च सैन्ये च सर्वे सम्मन्त्र्यता मम ॥ १८ ॥

‘य था ता समुद्रका ही सुना डालेंगे या अपने पराक्रमसे
काह दूसरा ही उपाय करेंगे। ऐसी स्थितिमें यानरोंसे विरुद्ध
आ पड़नेपर नगर और सेना-र लिय जा भी निकर हा,
वैसी स्थिति आपणाग दीजिये ॥ १८ ॥

वगलगा ही समझत ॥ १५ वलगा ॥ ता बहुत ॥ किनु
नीतिनी दृष्टिने महामूर्ख ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

वगलगा ही समझत ॥ १५ वलगा ॥ ता बहुत ॥ किनु
नीतिनी दृष्टिने महामूर्ख ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

वगलगा ही समझत ॥ १५ वलगा ॥ ता बहुत ॥ किनु
नीतिनी दृष्टिने महामूर्ख ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

वगलगा ही समझत ॥ १५ वलगा ॥ ता बहुत ॥ किनु
नीतिनी दृष्टिने महामूर्ख ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

राजन् परिघरास्तृष्टिशूलपट्टिशकुन्तलम् ॥ ७ ॥
सुमहजो बल कसाद् निपाद भजन भग्नम् ।

‘राजन् ! हमारे पास परिघ, शक्ति, शूरा, पट्टिश और मोथोंसे लैत बहुत बड़ी नेला मौजूद है फिर आप विपात क्यों करने हैं ॥ २३ ॥

त्वया भोगवर्ती गन्वा निर्जिता एषगा युधि ॥ ३ ॥
कौलसशिखरायानी यक्षैर्वहुभिरावृत्त ।
सुमहत्कन्दन कृत्वा चद्रपस्ते धनद कृत ॥ ४ ॥

‘आपने तो भोगवर्ती पुरीमें जाकर नारोंमें भी युद्धमें पराजित कर दिया था । बहुतसक्यन यहाँसे घिरे हुए कैलस शिखरक निवासी कुंजरको भी युद्धमें भारी मार-काट मचाकर वधमें कर लिया था ॥ ३४ ॥

स महेश्वरसत्त्वेन श्लाघमानस्तथा विभो ।
निर्जित समरे गोपालोक्तपाले महाबल ॥ ५ ॥

‘प्रभो ! महाबली लालपाल कुंजर महादेवजीके साथ मित्रता होनेके कारण आपने साथ बड़ी स्पर्धा मन्ते थे, परन्तु आपने समयक्रममें संपूर्णक उन्हें हरा दिया ॥ ५ ॥

विनिपात्य च यक्षौघान् विक्षोभ्य त्रिनिगृह्य च ।
त्वया कैलसशिखराद् विमानमिदमाहृतम् ॥ ६ ॥

‘यक्षोंकी सेनाको विचलित करके बड़ी बना लिया और कितनोंको घरायशी करके कैलसशिखरमें आप उनका यह विमान जिन लब्धे थे ॥ ६ ॥

मयेन दानवेद्रेण स्वद्वयात् सख्यमिच्छता ।
दुहिता तव भायार्ये दत्ता राक्षसपुङ्गव ॥ ७ ॥

‘राक्षसशिरोमणे ! दानवजब मयने आपने भयभीत होकर ही आपको अपना मित्र बना लेनेकी इच्छा की और इसी उद्देश्यसे आपको धर्मपत्नीके रूपमें अपनी पुत्री समर्पित कर दी ॥ ७ ॥

दानवेद्रो महाबाहो धीर्योस्सितो दुरासद ।
विगृह्य यदामानीत शुम्भीनस्या सुखाग्रह ॥ ८ ॥

‘महाबाहो ! अपन पराक्रमका प्रसन्न रखनेवाला दुर्बल दानवजब मधुको भी, जो आपकी पहिल शुम्भीनखीकी सुख देनेवाला उनका पति है, आपने युद्ध छेड़कर वधमें कर लिया ॥

निर्जितास्ते महाबाहो नागा गत्वा रसातलम् ।
घातुकिसंश्रक्त दक्षो जटी च वरमाहता ॥ ९ ॥

‘विनालबाहु धीर ! आपने रसातलपर चलाइ करके घातुके, तथक, दक्ष और जटी आदि नागोंना युद्धमें जीता और अपने अधीन कर लिया ॥ ९ ॥

यक्षया पल्लवन्तश्च दूरा लम्घयता पुन ।
त्वया सत्यतर युद्ध्या स्वमेव दानया विभो ॥ १० ॥

स्वबल समुपाश्रित्य नीता वरामर्दिदम् ।
मायाप्राधिगतास्तत्र उद्धयो रे राक्षसाधिप ॥ ११ ॥

‘प्रभो ! “सुदमन राजमराज ! दानरत्नेरा बड़े ही बलवान्, किसीने नष्ट न होनेवाले, शूरपर तथा वर पाकर अद्भुत शक्तिसे सम्पन्न हो गये थे, परन्तु आपने समयक्रम में एक वरतक युद्ध करके अपने ही बलक मरसे उन सबको अपने अधीन कर लिया और वहाँ उनसे बहुतसी मायाएँ भी प्राप्त कीं ॥ १० ११ ॥

दूराश्च पल्लवन्तश्च वरुणस्य सुता रणे ।
निर्जितास्ते महाभाग चतुर्विधगलानुगा ॥ १२ ॥

‘महाभाग ! आपने वरुणदेव शूरी और शलवान् पुत्रों को भी उनकी चतुरमिणी सेनासहित युद्धमें पराजित कर दिया था ॥ १२ ॥

मृत्युदण्डमहाप्राह्ण शाल्मलीद्रुममण्डितम् ।
कालपाशमहावीर्यं यमकिंकरपद्मगम् ॥ १३ ॥

महान्वरेण दुर्धर्पं यमलोकमहार्णवम् ।
अग्रगण्य त्वया राजन् यमस्य बलसागरम् ॥ १४ ॥

जयश्च त्रिपुलं प्राप्नो मृत्युश्च प्रतिपेधितः ।
सुयुद्धेन च ते सर्वे लोकस्तत्र सुतोषिता ॥ १५ ॥

‘यवन ! मृत्युका दण्ड ही जिसमें महान् प्राहणे समान है, जो यम-यातना-सम्बन्धी शाल्मलि आदि वृक्षोंसे मण्डित है, कालपाशरूपी उच्छाल तरङ्गों जिसकी गोभा बढ़ाती हैं, यमवृत्त रूपी सर्व विषमें निवास करत हैं तथा जो महान् वन्दने का कारण बुरज है, उस यमवृत्तरूपी महासागरमें प्रवेश करने आपने यमराजकी लागर-जैनी सेनाको मथ डाला, मृत्युको रोक दिया और महान् विजय प्राप्त की । वही नहीं, युद्धकी उत्तम कला से आपने वहकि सब लोगोंको पूर्ण सहाय कर दिया था ॥

क्षत्रियैर्वहुभिर्नरे शक्रतुल्यपराक्रमैः ।
आसीदं चतुर्मुनी पूर्णा महश्चिरिच पादपै ॥ १६ ॥

‘बहाल यह पृथ्वी विशाल वृक्षोंकी भाँति इन्द्रतुल्य पराक्रमी बहुसंख्यक क्षत्रिय वीरोंस मरी हुई थी ॥ १६ ॥

तेषा धीयगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे ।
प्रसह्य ते त्वया राजन् हता समरदुजया ॥ १७ ॥

‘उन वीरोंमें जो पराक्रम, गुण और उल्लाह थे, उनकी हस्तिसे सम रणभूमिमें उनसे समान कल्पि नहीं दे राजन् ! अब आपने उन समरदुर्बल वीरोंको भी संपूर्णक मार डाला, तब यमपर विजय पाना आपके लिये कौन बड़ी बात है ॥

निष्ठ या किं महाराज भ्रमेण तत्र दानराज ।
अयमेकैव महाबाहुर्निर्जित क्षयविव्यति ॥ १८ ॥

‘अथवा महाराज ! आप सुननाप वहाँ बस रहें । आपको परिभ्रम करनेकी क्या आवश्यकता है । अनेक मे

महाबाहु इन्द्रजित् ही सय वानरोंस सहार कर डालेंगे ॥ १८ ॥
अनेन च महाराज माहेश्वरमनुत्तमम् ।
इष्ट्वा यत्न यतो लब्धो लोके परमदुर्लभ ॥ १९ ॥

महाराज ! इन्होंने परम उत्तम माहेश्वर यज्ञान अनुष्ठान करके यह वर प्राप्त किया है, जो सत्सर्गमें वृत्तोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १९ ॥

शक्तितोमरमीन च शिनिर्वीर्णाप्रसौलम् ।
राजकच्छपसम्याधमभयमङ्कसकुलम् ॥ २० ॥
रुद्रादित्यमहाप्राह मरुद्वसुमहोरगम् ।
रथाभ्यगजतोयैव पश्चात्तिपुलिन महत् ॥ २१ ॥
अनेन हि समासाद्य देवाना बलसागरम् ।
शुहीतो दैवतपतिर्लङ्घा चापि प्रवेशित ॥ २२ ॥

देवताओंकी सेना समुद्रके समान थी । शक्ति और तोमर ही उसमें मल्ल थे । निकालकर पैंथी हुई आँतों सेवार का काम देती थीं । हाथी ही उस सैन्यसागरमें वस्तुओंके समान भरे थे । घोड़े मत्तकोंके समान उत्तम सब ओर व्याप्त थे । रुद्रागण और आदित्यगण उस सेनाकी समुद्रक बड़े-बड़े प्राह थे । मरुद्गण और वसुगण यहाँके विशाल नाव थे । गन्ध, हाथी और घोड़े जल्यदिके समान थे और पैदल सैनिक

इत्यादि भीमव्रामावणे बाह्मीकीये आदिकाये युद्धकाण्डे सप्तम सर्ग ॥ ७ ॥

इम प्रकार बीरान्मर्कितनित आचरामावण आदिकाम्य युद्धकाण्डमें सप्तमो सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदट्ट, निकुम्भ और वज्रहनुका रावणके सामने शत्रु-सेनाको मार गिरानेका उत्साह दिखाना

ततो नीलाम्बुदप्रप्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ।
अग्रधीत् प्राङ्गलिङ्गपय शूरः सेनापतिस्तदा ॥ १ ॥
इत्थे वाद नील मेघे मेमल श्यामरथदा शूर सेना
पति प्रहस्त नामक राक्षसे हाथ जाहवर कहा— ॥ १ ॥

द्वैवदानगन्धरा पिशाचपत्नोरगगा ।
सर्वे धययितुं शक्या किं पुनमाननौ रणे ॥ २ ॥

महाराज ! हमलोग देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्प सभीका पराजित कर सकत हैं फिर उन दो मनुष्योंस राक्षसोंमें हजना कौन पक्षी याव है ॥ २ ॥

सर्वे प्रमत्ता शिष्यस्ता यज्जिता स्म हनूमता ।
नहि मे जीवतो गच्छेज्जीवन्स यमगोचरः ॥ ३ ॥

पहल हमारा अज्ञानवान थे । हमारे मनमें शत्रुओंकी भेजे वाद खटका नहीं था । इक्ष्वाकु हम निश्चिन्त बैठ थे । पक्षी कारण है कि हनुमान हमें चोखा दे गया । नहीं तो

उत्तर विशाल तब थे परंतु इस इन्द्रजित्ने देवताओंने उस सैन्य-समुद्रमें घुसकर देवराज इन्द्रको कैद कर लिया और उन्हें लङ्कापुर्षीमें लाकर उद कर दिया ॥ २०-२२ ॥

पितामहिनियोगाद्य मुक्ता शम्भरघृष्टहा ।
गतस्त्रिगिष्णु राजन् सर्वदेवनमस्यत ॥ २३ ॥

पावन् ! फिर ब्रह्माजीके रूपने इन्होंने शम्भर और वृत्रासुरको मारनेवाले सर्वदेववन्दित इन्द्रको मुक्त किया । तब वे स्वर्गलोकमें गये ॥ २३ ॥

तमेव त्व महाराज निरुज्जेद्रजित सुतम् ।
यानद् यानर सेना ता सरामा नयति क्षयम् ॥ २४ ॥

अत महाराज ! इस क्षणके लिये आप राजकुमार इन्द्र जित्को ही भेजिये, जिससे ये रामसहित वानर-सेनाका यहाँ आनेसे पहले ही सहार कर डालें ॥ २४ ॥

राजभाषय्युक्तेयमागता प्राहताज्जनात् ।
हृदि नैव त्वया काया त्व वधिष्यसि राघवम् ॥ २५ ॥

पावन् ! साधारण नर और वानरोंसे प्राप्त हुई इस आपत्तिके निवारणमें विन्ता करना आपके लिये उचित नहीं है । आपसो तो अपने हृदयमें इसे खान ही नहीं देना चाहिये । आप अवश्य ही रामका वध कर डालेंगे ॥ २५ ॥

मेरे जीते-जी वह वानर यहाँसे जीता-जागता नहीं जा सकता था ॥ १ ॥

सर्वी सागरपयन्ता सदौलम्बनकाननाम् ।
करोम्यधानरा भूमिमासापयतु मा भयान् ॥ ४ ॥

यदि आपसी आशा हो ना पारंग, यन और काननौठहैत समुद्रतक्की खरी भूमिका में वानरोंसे मृत्ती कर दूँ ॥ ४ ॥

रथा घेव पिशाच्यामि धानराद् रजनीर ।
नामिम्यसि ते दु ख विजिद्दामापाधजम् ॥ ५ ॥

प्राक्षस्मान् ! मैं वानरमावणे आरसी गथा करूँगा, अत अपनेद्वारा क्रिय गये सीता हरणकी अवस्थाके कारण चरद दुःख आरसर नहीं आने पाएगा ॥ ५ ॥

अग्रधीत् तु सुसम्बुद्धो दुमुजो नाम राक्षसः ।
हृद न हसणीय हि सर्वया न प्रथरगम् ॥ ६ ॥

तबपहल दुर्मुख नामक राक्षसे अत्यन्त बुद्धि शक्ति

कहा—मह शमा करनेयोग्य अपराध नहीं है, क्योंकि इसने
द्राघ हम सब लोगका तिरस्कार हुआ है ॥ ६ ॥

अथ परिभवो भूय पुरस्यान्त पुरस्य च ।
श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य वानरेण प्रधर्षणम् ॥ ७ ॥

‘वानरक द्राघ हमलोगोंपर जो आक्रमण हुआ है, यह
धमका लङ्कापुरीका, महाराजके अर्थात् पुरका और श्रीमान्
रामसबान रावणका भी भारी पराभव है ॥ ७ ॥

अस्मिन् मुहूर्ते गत्वेको निवर्तिष्यामि वानरान् ।
प्रविशन् सागर भीममन्थर या रसानलम् ॥ ८ ॥

‘मैं अभी इसी सुहूर्तमें अनेक ही जाकर सारे वानरोंके
मार भगाऊँगा । मरे ही वे मयकर समुद्रमें, आगमें अथवा
रसातलमें ही क्यों न डुब गये हों ॥ ८ ॥

नतोऽप्रवीत् सुसकुब्धो यज्ञदृष्टो महाबल ।
प्रगृह्य परिघ घोर मांसशोणितरुवितम् ॥ ९ ॥

इतनेहीमें महाराज वज्रदहू अत्यन्त कापसे ढाकर रक्त,
मारसे सने हुए, भयानक परियत्र हाथमें लिब हुए बोले—
किं नो हनूमता कार्यं दृपणेन तपसिना ।

रामे तिष्ठति दुर्धर्षे सुग्रीवेऽपि सलक्ष्मणे ॥ १० ॥

‘दुर्धर्ष घोर राम, सुग्रीव और लक्ष्मणके रहते हुए हमें
उस बेचारे तपस्वी हनुमान्के क्या काम है ॥ १० ॥

अथ राम ससुग्रीव परिघेण सलक्ष्मणम् ।
मागमिष्यामि हत्वैको विश्वोभ्य हरिचाहिनीम् ॥ ११ ॥

‘आज मैं अकेला ही वानर-सेनामें तहल्ला भवा दूँगा
और इस परिघसे सुग्रीव तथा लक्ष्मणहित रामका भी काम
तमाम करके लूँ आऊँगा ॥ ११ ॥

इदं ममापर धाक्य शृणु राजन् यत्रिच्छसि ।
उपायकुशलो होय जयेच्छत्रुनन्दित ॥ १२ ॥

‘राजन् ! यदि आपकी इच्छा हो तो आप यह मेरी
दूसरी बात सुने । उपायकुशल पुरुष ही यदि आलस छोड़
कर प्रयत्न करे तो वह शत्रुओंपर विजय पा सकता है ॥ १२ ॥

कामरूपधराः शूरा सुभीमा भीमदर्शना ।

राक्षसा या सहस्राणि राक्षसाधिप निक्षिता ॥ १३ ॥

काकुत्स्थमुपसगम्य विद्यतो मानुष वपुः ।

सर्वे ह्यसम्भ्रमा भूत्वा सुगन्तु रघुसत्तमम् ॥ १४ ॥

प्रेषिता भरतेनैव ज्ञाया तत्र यवीयसा ।

न हि सेना समुद्राध्याग निप्रमेयोपयाम्यति ॥ १५ ॥

‘अतः राक्षसराज ! मेरी दूसरी सच यह है कि इच्छा
नुसार रूप धारण करनेवाला, अत्यन्त भयानक तथा भयकर
दृष्टिकाले सभी शूरीय राक्षस एक निश्चित विचार करन
मनुष्यरा रूप धारण कर श्रीरामन पास जायें और सब लोग

बिना किसी धक्काहट्टे उन रघुवंशशिरोमणिले कहें कि हम
आपका गैरिज हैं । हम आपका छोटे भाई भरतने भेजा है ।
इतना सुनते ही वे वानर-सेनाको उठाकर तुरत लङ्कापर
आक्रमण करनेके लिये बहसि चढ़ द्यो ॥ १-१५ ॥

ततो ययमितस्तूर्णं शूलशक्तिगदाधरा ।
त्रापयान्नासिहस्ताश्च त्वरितास्तत्र यामहे ॥ १६ ॥

‘तत्कालात् हमलोग यहाँसे शूल, शक्ति, गदा, धनुष,
बाण और खड्ग धारण किए ‘गीत ही मार्गमें उनके पास जा
पहुँचें ॥ १६ ॥

आकारो गणरा स्थित्वा हत्वा ता हरिचाहिनीम् ।
अमशक्नन्महावृष्ट्या प्रापयाम यमक्षपम् ॥ १७ ॥

‘फिर आकाशमें अनेक द्रुप बनाकर राखे हा जायें और
फयों तथा शस्त्र-समूहोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उस वानर
सेनाको यमव्यक्त पहुँचा दें ॥ १७ ॥

एष चेदुपसर्पेत/मनय रामलक्ष्मणौ ।
अवश्यमपनीतेन जहत्सामेव जीवितम् ॥ १८ ॥

‘यदि इस प्रकार हमारी बातें सुनकर वे दोनों भाई श्रीराम
और लक्ष्मण सेनाको दूब करनेकी आज्ञा दे देंगे और बहसि चल
दगे तो उन्हें हमारी अनीतिका धिक्कार होना पड़ेगा, उन्हें
हमारे छलपूर्ण प्रहारसे पीड़ित होकर अपने प्राणोंका परित्याग
करना पड़ेगा ॥ १८ ॥

कौम्भकर्णस्ततो वीरा निकुम्भो नाम धीर्यवान् ।
अग्रवीत् परशुकुब्धो रावण लैकरावणम् ॥ १९ ॥

‘तदनन्तर पराक्रमी वीर कुम्भकर्णकुमार निकुम्भने
अत्यन्त द्रुपित होकर समस्त क्षेत्रोंको बलनेवाल राजगते
कहा—॥ १९ ॥

सर्वे भयन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन सगता ।
अहमेने हनिष्यामि रामं सहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥

सुग्रीय सहनूमन्त सग्रीवौवाच वानरान् ।

‘आप सब लोग यहाँ महाराजके साथ जुपचाप बन्दे रहें ।
मैं अकेला ही राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् तथा अन्य सब
वानरोंका भी यहाँ मौनने पात्र उतार दूँगा ॥ २० ॥

ततो वज्रहनुमन्त राक्षस परतोपम ॥ २१ ॥
कुष्ठ परिलिहन् शूरा जिह्वा धाम्यमप्रवीण ।

‘तब परतके समान विद्यान्वाय वज्रदन्त नामक राक्षस
द्रुपित हो जीमसे अपने कबड़का चापला हुआ बोला—॥
स्वैर कुशन्तु कार्याणि भवन्तो विगतज्वरा ॥ २२ ॥

यकोऽहं भक्षयिष्यामि ता सर्वौ हरिचाहिनीम् ।

‘आप सब लोग निश्चित होकर इच्छानुसार अपना अपना
काम करें । मैं अनेक ही सारी वानर-सेनाका रा भऊँगा ॥

जस्या भीडन्तु निश्चिन्ता पिबन्तु मधुवारणीम् ॥ २३ ॥
महमेको यधिष्यामि सुग्रीव सहलक्ष्मणम् ।
साङ्गं च हनूमन्त सर्वोद्धवात्र चानरान् ॥ २४ ॥

जापल्य नवस रत्नकर ब्रह्मा करें और निश्चित हो
वारुणा मदियका पिबें । मैं अमल ही सुग्रीव, लक्ष्मण, जगद
हनुमान् और अन्य सब वानरोंका भी यों वध कर डारूँगा ॥

इष्यार्ये श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आदिकाव्य युद्धकाण्ड अष्टम सर्ग ॥ ८ ॥

॥ प्रकार शरत्कर्मिणीत अष्टाध्याय आदिकाव्य युद्धकाण्डे आठवाँ मग पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

विभीषणस्य रावणसे श्रीरामकी अजेयता बताकर सीताको लौटा देनेके लिये अनुरोध करना

ततो निजुम्भो रभस स्वयशुर्महायल ।
सुप्तो यन्नकोपश्च महापार्श्वमहोदरौ ॥ १ ॥
अग्निकेतुश्च दुधर्यो रत्निकेतुश्च राक्षस ।
इन्द्रनिश्च महातेजा बलवान् रावणा मज्ज ॥ २ ॥
प्रहस्तोऽपि निरुपायो यज्ञद्रव्यो महायल ।
धूम्राक्षश्चातिकायश्च सुसुलक्ष्णश्चैव रावस ॥ ३ ॥
परिधानं पट्टिद्राङ्गलान् प्रासादशक्तिपरश्च धान् ।
चापानि च सुयाणानि खड्गाश्च त्रिपुलाम्बुभान् ॥ ४ ॥
प्रवृष्टा परमनुद्धा समुत्थस्य च राक्षसा ।
अव्रुवन् रावण सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् निजुम्भ, रभस, महाबली स्वयशु, सुप्त, यन्नकोप, महातक्त्वा बलवान् परगुमार इन्द्रजित्, प्रहस्त, धूम्राक्ष, मणारी यज्ञद्रव्य धूम्राक्ष अतिकाय और निशाचर दुद्रुल—य सब राक्षस अत्यन्त रुचि हा हाथोंमें परिण, पट्टिद्राङ्गल, प्रासाद, शक्ति, परम, पनुप, बाण तथा वेनी धारवाह बड़े-बड़े खड्ग लिपि उल्लर रावणक सामने आय और अपन तबने उड़ीमसे हारर वे मर-क-र उखने बाल—॥ १-॥

अथ राम यधिष्याम सुग्रीव च सहलक्ष्मणम् ।
वृषण च हनूमन्त लङ्का येन प्रवर्षिता ॥ ६ ॥
हमलाग भाव ही राम, सुग्रीव लक्ष्मण और उष कायर हनुमान् भी मार डालेंगे, मित्रने लङ्कापुरी जययी है ॥ ६ ॥

तान् गृहीतान्मुधान् सजान् चारयित्वा विभीषण ।
अग्रतः प्राखिलिप्य पुन प्रत्युपेक्ष्य तान् ॥ ७ ॥

हाथोंमें अस्त्रधर लिय खड़े हुए उन सब राक्षसोंको
खेनेर लिय उग्रत देव विभीषण राक्ष और पुन उन्हें
विडाकर दोनों हाथ अड यमान करा—॥ ७ ॥

अन्युपर्यस्त्रिभिस्तान् योऽपि प्राप्नुव शक्यते ।
तस्य विग्रहमालास्तान् युक्तानाहुर्मनीषिण ॥ ८ ॥

कान् । श मनरय सम, दान और भद—इन तीन

उपायोंमें प्राप्ति न हो सके, उसीका प्राप्ति के लिय नीतिशास्त्रक
ज्ञान मनाये विद्वानोंने पराक्रम करनेक साम्य अनवर बनाये
हैं ॥ ८ ॥

प्रमत्तैष्वभिमुक्तेषु दवेन प्रहतेषु च ।
त्रिक्रमास्तात सिद्धयन्ति परीक्ष्य विधिना कृता ॥ ९ ॥

प्रात । ज रात्र अक्षयचान हों, किनर दूखे-दूखे
शत्रुओंने आक्रमण किया । तथा ज महाराग आदिसे प्रल
हनेक कारण देवन मार गय हों, उन्होंने मन्त्रीमौलि परीक्षा
करक विधिपूर्वक किय गय पराक्रम मकल होते हैं ॥ ९ ॥

अप्रमत्त कथं त तु त्रिनिर्गोषु वले स्थितम् ।
नितरोप दुराधरं त धरयितुमिच्छथ ॥ १० ॥

आक्रमकच्छरी पर नही हैं । व विजयकी इच्छा न आ
रहे हैं और उनर नाथ बना भी हैं । उन्होंने ब्राधका स्वया
जीन लिया है । अन व सर्वया दुजय हैं । ऐसे अवय वीर
का तुमलोग पराक्रम करना चाहत हा ॥ १० ॥

समुद्र लङ्घयित्वा तु घोर नन्दपतिम् ।
गतिं हनूमतो लोके को निघात् तर्कयत वा ॥ ११ ॥
बलाम्यपरिमयानि धीयानि च निशाचरा ।
परोषा सहस्रायज्ञा न कन्या कथयन् ॥ १२ ॥

निगावध । नगों और नरिबोर स्वभा मयवर महा
सागरस्य ज एक ही उल्लंगन लोंवर यौनिक आ पुँच थ
उन हनुमान् श्रीरी गतिना इव सनारम कोन ज्ञन सक्ता है
अथवा कोन उसका अनुमान लग सक्ता है । 'गुप्तोंन पान
असक्य भनारें हैं उनम अग्रम कन और पराक्रम है इव
बानक नुमलगा अच्छी तरह ज्ञन ल । दूरीकी शक्तिसे
भुलकर किसी तरह भी सक्ता उनका अरहेल्ला नहीं करती
चाहिय ॥ ११ १२ ॥

किं च रायमरागस्य रामजापट्टन पुरा ।
आनहार जनम्यानाद् यस्य भार्या यन्मियन् ॥ १३ ॥

अग्रमकच्छरीने पराक्रमक गनान कोन-म
अवय किय ग । किन न यन्वा मनाकारी पनका य
कनसानम हर ल ॥ १३ ॥

खरो यद्यतिघृत्तस्तु स रामेण हतो रणे ।

भवद्य प्राणिना प्राणा रक्षितव्या यथायलम् ॥ १४ ॥

‘यदि वहाँ कि उन्होंने खरको मारा था तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि रार अत्याचारी था । उसने स्वयं ही उन्हें मार डालनेके लिये उनपर आक्रमण किया था । इसलिये श्रीरामने रणभूमिमें उसका वध किया क्योंकि प्रत्येक प्राणीको यथाशक्ति अपने प्राणोंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये ॥

एतन्निमित्तं वैदेही भयं न सुमहद् भवेत् ।

आहता सा परित्याज्या कल्हायै छते तु किम् ॥ १५ ॥

‘यदि इसी कारणसे सीताको हरकर लाया गया हो तो उन्हें जल्दी ही लौटा देना चाहिये अन्यथा हमलोगोंपर महान् भय आ सकता है । जिस कर्मका फल केवल कलह है, उसे करनेसे क्या लाभ ? ॥ १५ ॥

न तु हम वीर्यवता तेन धमावुद्यतिना ।

वैर निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥ १६ ॥

‘श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं । उनके साथ व्यर्थ वैर धरना उचित नहीं है । मिथिलेशकुमारी सीताको उनके पास लौटा देना चाहिये ॥ १६ ॥

यावत् सगजा साध्वा यद्वृत्तसमाबुलाम् ।

पुरीं दारयते यावैर्दीयतामस्य मैथिली ॥ १७ ॥

‘जबतक शायी, घोड़े और अनेकों रत्नोंमें भरी हुई लट्ठा पुरीका श्रीराम अपने बाणोंद्वारा विघटित नहीं कर डालते, तबतक ही मैथिलीको उहाँ लौटा दिया जाय ॥ १७ ॥

यावत् सुघोरा महती दुर्धर्मा हरिवाहिनी ।

नावस्कन्दति नो लट्ठा तावत् सीता प्रदीयताम् ॥ १८ ॥

‘जबतक अत्यन्त भयङ्कर, विगल और दुर्बल बाहर वाहिनी हमारी लट्ठाका पददलित नहीं कर देती, तभीतक सीताको वापस कर दिया जाय ॥ १८ ॥

यित्तयेद्धि पुरीं लट्ठा शूरा सर्वे च राक्षसा ।

रामस्य दयिता पत्नी न स्वयं यदि दीयते ॥ १९ ॥

‘यदि श्रीरामकी प्राणरक्षिता सीताको हमलोग स्वयं ही

इत्यादि श्रीमद्वाल्मीके बाणमीकीये आदिकाव्ये सुदकाण्डे मन्त्र सप्त ॥ १ ॥

इत प्रका श्रीमद्वाल्मीके निर्मित आरामायण आदिकाव्यके सुदकाण्डमें नवों सर्गें पूरा हुआ ॥ १ ॥



दशम सर्गः

विभीषणका रावणके महलमें जाना, उसे अपशकुनोंका भय दिखाकर सीताका लौटा देनेके लिये

प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे रिदा कर देना

नत प्रत्युपति प्राप्ते प्राप्तधर्मायनिश्चय ।

राक्षसापिपतेर्येदम् भीमकमा विभीषण ॥ १ ॥

शैलप्रचयसकाश

सुप्रियममहाकर

शैलप्रचयमिदमप्रतम् ।

महाजनपरिमहम् ॥ २ ॥

नहीं लौटा देते हैं तो यह लट्ठापुरी नष्ट हो जायगी और समस्त शरवीर राक्षस मार डाले जायेंगे ॥ १९ ॥

प्रसादये त्वा यद्युत्थात् कुरुष्व घचन मम ।

हितं तस्य त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥ २० ॥

‘आप मरे बड़े भाई हैं । अतः मैं आपका वित्तपूर्ण प्रसन्न करना चाहता हूँ । आप मेरी बात मान लें । मैं आप हितके लिये सच्ची बात कहता हूँ—आप श्रीरामचन्द्रजीव उनकी सीता वापस कर दें ॥ २० ॥

पुरा शरत्सूर्यमरीचिसनिभा

नयाग्रपुद्गलं सुदृढान् नृपात्मज ।

रजज्यमोग्यान् विशिष्टान् वधाया ते

प्रदीयता दाशरथाय मैथिली ॥ २१ ॥

‘राजकुमार श्रीराम जबनक आपके वधके लिये शरत् कालके सूर्यकी निरणोंके समान संजली, उल्लङ्घन अग्रभाग एवं पक्षोंसे सुगोमित, सुदृढ तथा अमोघ बाणोंकी बर्षा करें, उससे पहले ही आप उन दशरथनन्दनकी सेवामें मिथिलेशकुमारी सीताको लौटा दें ॥ २१ ॥

त्यजानु कोपं शुद्धधर्मनाशन

भजस्य धर्मं रतिकीर्तिवर्धनम् ।

प्रसीद् जीवेम सपुत्रयाधवा

प्रदीयता दाशरथाय मैथिली ॥ २२ ॥

‘भैया ! आप कोपको त्याग दें क्योंकि वह सुख और धर्मका नाश करनेवाला है । धर्मका सेवन कीजिये क्योंकि वह सुख और सुखशक्ती बढानेवाला है । हमपर प्रसन्न होइये, जिससे हम पुत्र और वधु का वधोत्पत्ति कीर्ति रह सके । इसी हस्तिसे मेरी प्रार्थना है कि आप दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीवमें मिथिलेशकुमारी सीताको लौटा दें ॥ २२ ॥

विभीषणवचं श्रुत्वा राजगो राक्षसेश्वर ।

विस्तजथिन्वा तान् सर्वान् प्रविशेद स्वकं गृहम् ॥ २३ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण उन सब सम्भासकोंका विदा करके अपने महलमें चला गया ॥ २३ ॥

मतिमद्भिर्महामाघैरनुरचैरधिष्ठितम् ।
राक्षसैरातपयासैः सततं परिरक्षितम् ॥ ३ ॥
मत्तमातङ्गनिःश्वसैर्याबुलीकृतमास्तम् ।
शङ्खघोषमहाघोषं तृपसम्याधनादितम् ॥ ४ ॥
प्रमदाजनसम्याधं प्रजल्पितमहापथम् ।
तप्तफाञ्जननिद्रुहं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ ५ ॥
गन्धराणामिन्द्रासमालयं मन्दतामिरम् ।
रत्नसचयसम्याधं भजनं भोगितामिरम् ॥ ६ ॥
तं महाभूमिनादित्यस्तेजोविस्तृतदिग्मवान् ।
अप्रजस्यालयं धीरः प्रविशेश महाश्रुतिः ॥ ७ ॥

दूसर दिन खेय हात ही धर्म और अपने तत्त्वज्ञाननेगले भीमकमा महातेजस्वी वीर विभीषण अपने बड़ माइ राक्षसराज रावणर घर गये । वह घर अनेक प्रान्दोदक कारण परतशिखरोंने समूहशी भोति नामा पाता था । उमड़ी ऊँचाई भी पहाड़की चोटीना लजित करती थी । उसमें अलग अलग वनी-वड़ी वन्याएँ (कपाशियाँ) सुन्दर दंगने बनी हुई थीं । बहुतरे भेष्ट पुरुषास यहाँ आना जाना लगा रहता था । अनेकानेन बुद्धिमान् महामन्त्री, ज्ञ राख व प्रति अनुराग रत्ननेगाल थे, उसमें बैठ थे । विश्व स्नीय, हितैरी तथा फायदाधने कुशल बहुसख्यक राक्षस रा आरसे उस भवनकी रक्षा करते थे । वहाँकी वायु मतगले हाथियोंके नि आरसे मिजित हो वनर-सी जान पड़ती थी । गल प्पनिने समान राखोंना गम्भीर धर यहाँ पूँजा रहता था । नाना प्रकार राखोंन मनोरम गद उस भवनका निनादित करते थे । रूप और वीरनेने मन्दने मतगाले युवतिगेंनी वहाँ भीड़-सा लगी रहती थी । वहाँर व-यड़ माग लेगार बालालाभमे सुपरित जान पड़त थे । उसर फाटक तथाय हुए मुखीय धन हुए थे । उत्तम सजावकी वस्तुओंमे बड़ महल अच्छी तरह सजा हुआ था, अनपय वह गन्धरों आवास और दयताओंन निवास स्थान हा मनारम प्रतीत होता था । रनराणमे वसिएण हने व कारण व नागमनन समान उज्जालि हाता था । जैस ठकमे रिस्तुन रिशोंगाल सृष्ट महान् मेगेंनी फगमें प्रयेग करत है, उमी प्रकार तबस्वी विभीषणने रावणर उस भवनमे पदापय किया ॥ १-७ ॥

पुण्यान् पुण्याहघोगास्य धेदिभिर्दिग्गदादनाम् ।
पुथाय सुमहातेजा आतुविजयमन्त्रितान् ॥ ८ ॥
गणैर्पुँवचर उन महातेजस्वी विभीषणने अपने माइकी निजरा उदे-पने येवता ब्राह्मणोंद्वारा किये गये पुन्याह पावनर परित्र फग मुने ॥ ८ ॥
पूजितान् दधिपायैश्च सपिभिः सुमनोर्गनैः ।
मन्त्रयेद्विदो विमान् ददता स महाबलः ॥ ९ ॥

तत्तत्प्रातः उन महाज्जी विभीषणने वदमन्त्रां शात ब्राह्मणोंका दान किया, जिनर हाथोंमे दही और चीर पात्र थे । फूलों और अक्षतोंसे उन सबरी पूजा की गयी थी ॥ ९ ॥

स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानः स्वतेजसा ।
आसनस्थः महाराहुचरन्ते धनदानुजम् ॥ १० ॥
यहाँ जानेपर राखणने उनका स्वागत सत्कार किया । फिर उन महाराहु विभीषणने अपने तेजसे देगीप्यमान और सिंहासनपर विराजमान कुदेरके छात्र भाइ रावणने प्रणाम किया ॥ १० ॥

स राजदृष्टिस्सम्पन्नमासनं हेमभूषितम् ।
जगाम समुद्राचारं प्रयुज्याचारफेन्द्रिः ॥ ११ ॥
तदनन्तर शिखारार नाता विभीषण विजयता महाराज (महाराजरी बय हा) इत्यादि रूपने राखने प्रति परम्परा प्राप्त पुत्राद्यसूचक वचनका प्रयोग करके राजाके द्वारा दृष्टि सन्तमे बताये गये सुवर्णभूषित सिंहासनपर बैठा गये ॥ ११ ॥

न रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसनिधौ ।
उवाच हितमन्ययं वचनं हेतुनिश्चितम् ॥ १२ ॥
प्रसाद्य भ्रातरं ज्येष्ठं सान्त्वेनोपस्थितप्रभम् ।
देशकालाधसयादि दृष्टलोक्परावरः ॥ १३ ॥

विभीषण जगतरी मली-दुरी बार्तांरा अच्छी तरह जानते थे । उन्होंने प्रणाम आदि व्यवहारका वयार्थरूपमे निराह करन सान्त्वनापूण वचनोंद्वारा अपने बड़ माइ महामना रावणने प्रसन्न किया और उसने एकदन्तम मन्त्रियों निकट देवा, काल और प्रयाजनर अनुरूप, सुविधोंद्वारा निश्चित तथा अव्यत हितराख बात बरी-— ॥ १२ १३ ॥

यदाप्रभृति धैदेही सम्प्राप्तह परतप ।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्ताभ्युपगानि न ॥ १४ ॥
यद्युप्राप्त सत्प्राप्तेन महाराज । वरने निदेदुसारी शीता यहाँ आयी हैं तभीम हस्तगोंरा अनेक प्रकारर अमङ्गलसूचक अंगानुन दिग्गयी दे रह हैं ॥ १४ ॥

सस्फुलिङ्गं सधूमाचि सधूम्रकदुरोदय ।
मन्त्रसमुपस्थितोऽप्यमिनः सम्यगभिययन्ते ॥ १५ ॥

मन्त्रोंद्वारा विधिरूक चपरातेर भी अग अच्छी तरह प्रज्वलि नहीं है रही है । उममे जिनगरियों निच्छने स्थानी हैं । उसरी लक्षण साथ पुत्रों करने लगता है और मन्त्रनामोंमे बय अभि प्रज्वलती है उस समय भी वर भूएँमे मलिन ही रहती है ॥ १ ॥

अग्निप्रेष्यमिन्नालास्तु तथा प्रहस्यनीपु च ।
सरीसृपाणि दृश्यन्ते दृष्ट्येषु च पिपीलिकाः ॥ १६ ॥

‘रखौं परांय, अग्निगालाओंमें तथा वेदाध्ययनके स्थानोंमें भी सोंप देले जाते हैं और इनन-सामग्रियोंमें चौरियों पड़ी दिखायी देती हैं ॥ १६ ॥

गवा पयासि स्कन्धानि विमदा वरकुञ्जरा ।
दीनमध्वा प्रहेपन्ते नवमासाभिनन्दिन ॥ १७ ॥

‘गायोंना दूध सूज गया है, बड़े-बड़े गजराज मदरहित हो गये हैं, घोड़े नये आससे आनन्दित (भोजनसे सतृप्त) होनेपर भी दीनतापूर्ण स्वरमें दिनदिनाते हैं ॥ १७ ॥

खरोट्राभ्वतरा राजन् भिद्यरोमा झवन्ति च ।
न स्वभावेऽवतिष्ठते विधानैरपि चिन्तिता ॥ १८ ॥

‘गजन् ! गायों, ऊँचों और खच्चरोंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं । उनके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगते हैं । विधिपूर्वक निष्क्रियता की जानेपर भी वे पूर्णतः स्वस्थ हो नहीं पाते हैं ॥

वायसा सद्यश मृरा ध्याहरन्ति नमन्तत ।
समवेताश्च दृश्यन्ते विमानाग्रेषु सद्यश ॥ १९ ॥

‘कूज कौए छुटके छुट एकत्र होकर ककना स्वरमें काँप काँप करने लगते हैं तथा वे सतमहले मकानोंपर समूह-वे-समूह झुकते हुए देखे जाते हैं ॥ १९ ॥

मूध्राश्च परिलीयन्ते पुरीमुपरि पिण्डिता ।
उपपक्षाश्च मध्ये द्वे व्याहरन्त्यशिव शिवा ॥ २० ॥

‘लङ्कापुरीके ऊपर छुटके-छुट गीध उमका स्था करते हुए-से मड़गते रहते हैं । दोनों सव्याओंके समय शिवागिमें नगरके समीप आकर अमङ्गलसूचक शब्द बरती हैं ॥ २ ॥

प्रव्यादाना मृगाणा च पुरीद्वारेषु सद्यश ।
ध्रूयन्ते विपुला घोषा सविस्फूर्जितनिःस्वना ॥ २१ ॥

‘नगरके समीप काजकोंपर समूह-के-समूह एकत्र हुए मात म्भी पशुओंके ज़ोर-जोरसे शिंघे जानेवाले चीत्कार बिजलीरी गड़गड़ाहटके समान सुनायी पड़ते हैं ॥ २१ ॥

स्तेव्य प्रस्तुते कार्ये प्रापश्चित्तमिदं क्षमम् ।
रोचये धीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम् ॥ २२ ॥

‘धीरवर ! ऐसी परिस्थितिमें मुझे ता यही प्रायश्चित्त अच्छा जान पड़ता है कि निवेदितकुमारी गीता श्रीरामचन्द्रजीका लौटा दी जायें ॥ २२ ॥

इदं च यदि वा मोहालोभाद् न व्याहतं मया ।
तत्रापि च महाराज न दोषं कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

‘महाराज ! यदि यह बात मैंने मोह या लोभसे कही हो तो भी आपको मुझमें दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अथ हि दोष सर्वस्य जन्मस्यास्योपलक्ष्यते ।
रक्षसा राक्षसीना च पुरस्यान्तःपुरस्य च ॥ २४ ॥

‘इसमें भीमद्वामाचने बाफ्मीकीये जात्रिकार्ये बुद्धकाण्डे दत्तार्थ ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिभिरावर्तमान आदिकाण्ड मुद्रकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

‘शीताका अपहरण तथा इसमें होनेवाला अपराधकुनस्वी दोष यहाँकी सारी जनता, राक्षस-राक्षसी तथा नगर और अन्त पुर—सभीके लिये उपलब्ध होता है ॥ २४ ॥

प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ता सर्वमन्त्रिण ।
अवश्यं च मया वाच्यं यद् दृष्टमथवा श्रुतम् ।

सम्प्रधार्य यथान्यायं तद् भवान् कर्तुमर्हति ॥ २५ ॥

‘यह बात आपके कानोंतक पहुँचानेमें प्राय सभी मन्त्री खोच करते हैं परन्तु जो बात मैंने देखी या सुनी है, वह मुझे तो आपके आगे अग्रस्य निवेदन कर देनी चाहिये; अतः उसपर यथाचित्त निचार करके आप जैसा उचित समझें, वैसा करें ॥ २ ॥

इति स्वमन्त्रिणा मध्ये भ्राता भ्रातरमूचिवान् ।
गणन रक्षसा द्येष्टं पथ्यमेतद् विभीषण ॥ २६ ॥

इस प्रकार माई विभीषणने अपने मन्त्रियोंके बीचमें उड़े माई राक्षसराज राघवसे ये हितकारी वचन कहे ॥ २६ ॥

हितं महार्थं मुहुः हेतुसहितं
व्यतीतकालायतिसम्प्रतिक्षमम् ।

निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वर
प्रसङ्गानुत्तरमेतद्वदन्तीत् ॥ २७ ॥

‘भय न पड़यामि कुतश्चिद्व्यह
न राघवं प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् ।

सुनै सहै द्वैरपि सगरे कथं
ममाग्रतः स्थास्यतिलक्ष्मणाग्रज ॥ २८ ॥

विभीषणकी ये हितकर महान् अर्थकी साधक, कोमल, युक्तिस्मन तथा भूत, भविष्य और वर्तमान-कालमें भी काय साधनमें समर्थ बात सुनकर राघवका बुलार च आया ।

श्रीरामके साथ वैर बढ़ानेमें उसकी आवृत्ति ॥ गयी थी ।

इसलिय उसने इस प्रकार उत्तर दिया— ‘विभीषण ! मैं तो कहींसे भी काई भय नहीं देखता । राम मिथिलेशकुमारी सीताका कभी नहीं पा सकत । इन्द्रसहित देवताओंकी सहायता प्राप्त कर लेनेपर भी लक्ष्मणके बड़े भाई राम मेरे सामने नग्नमम कैसे निक सकेंगे ? ॥ २७ २८ ॥

इत्येवमुक्त्वा सुरसैन्यनाशने
महायत्नं सपति चण्डनिग्रम ।

दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं
विसञ्जयामास तदा विभीषणम् ॥ २९ ॥

ऐसा कहकर देवसेनाके नाशक और समग्रद्वारमें प्रचण्ड पराक्रम प्रकट करनेवाले महाबली दशाननने अपने यथार्थवाणी माई विभीषणको तत्काल विदा कर दिया ॥ २९ ॥

इत्येवमुक्त्वा सुरसैन्यनाशने
महायत्नं सपति चण्डनिग्रम ।

दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं
विसञ्जयामास तदा विभीषणम् ॥ २९ ॥

एकादश सर्ग

राज्य और उसके महासदोंका सभाभवनमें एकत्र होना

न यभूर वृद्धो राजा मैथिलीकाममोहित ।

असमानाद्य मुह्यन् पाप पापेन क्षमणा ॥ १ ॥

राजसोका राजा यथा मैथिलीकामारी सीताक प्रति
क्षमते मोहित हो रहा था, उसने हितैरी मुह्यद् विभीषण
आदि उसका अन्याय करने लगे थे—उसके कुटुम्बीसी मिला
करते थे तथा वह सीताहरणकी जग्य पापकर्मों कारण
पापी धरित किया गया था—इन सब कारणोंने वह अपना
हृद्य (चिन्तायुक्त धन दुःख) हो गया था ॥ १ ॥

मनीय काममम्यभ्यो धैदेहीमनुचिन्तयन् ।

अतस्तसमये काले तस्मिन् वै युधि राज्यम् ।

अमात्यैश्च मुह्यद्भिश्च प्राप्तकालममन्यन् ॥ २ ॥

यन् अमन्य कामने पीड़ित होकर बारबार विदेहकुमार
व्यचिन्तन करता था इसलिये युद्धका अवसर वन जानेर
भी तबने उस समय मंत्रियों और मुह्यदोंने साथ सव्यह करके
युद्धको ही समवेधित वनव्य माना ॥ २ ॥

स हेमनालजित मणिविद्रुमभूषितम् ।

उपगम्य विनीताभ्यमारोह महारथम् ॥ ३ ॥

रा मनेकी कालने आच्छादित तथा मणि एव मूर्गोंने
विभूषित एक विगाण रथम्, जिनमें मुनिभिन बड़े बुत हुए
थे, जा चला ॥ ॥

नमाम्याय रथधेष्ठ महामन्त्रममन्यन् ।

प्रययौ रथसा धेष्टा द्वाप्रीय सभा प्रति ॥ ४ ॥

महान्मरौरी गन्तार मनन करवाह वैदा करनेकर
उस उत्तम रथपर आकर हो रथमण्डपमणि द्वाप्राय सभा
भवनकी ओर प्रस्थित हुआ ॥ ४ ॥

असिप्रमथरा योधा सगयुधधरास्तव ।

राजसा राज्यमेन्द्रस्य पुरस्ताद् सञ्चरन्त्यिरे ॥ ५ ॥

उस समय रथप्रयाग रागाय आगे-आगे टाल-टालकर
एव सब प्रकार आनुष धरा करने-कर बहुरंगर रथम्
चला जा रहे थे ॥ ५ ॥

नानारित्नेयैश्च नानाभूषणभूषिता ।

पादयन् पृष्ठतर्धेन परियाय ययुस्तदा ॥ ६ ॥

इन सब भौने मौलिक आभूषणोंने विभूषित और नला
प्रकार विराल देगा-अमली मिशानर जने दाई-बाई
और पीछेकी ओर फाकर चल रहे थे ॥ ६ ॥

मधैषानिरथा दीप्य मत्तैश्च धार्याण्यम् ।

मनूपेनुद्वापीयमार्पाडिश्च प्राचिभिः ॥ ७ ॥

यराके प्रज्जन् करते ही बहुतने अनिरथा बार रथों
मनवाले गवयों और खेल-खेलने तर-तरकी चालें दिखाने
वाले धाँवर सवार हो दुर्गन्ध-पड़े चले दिये ॥ ७ ॥

गवापरिधहस्ताश्च शक्तिहोमरपाणय ।

परम्बधधराश्चान्ये तथान्ये शून्पाणय ।

तत्सूर्यसहस्राणा सज्जते निस्सनी महान् ॥ ८ ॥

किन्तु हाथोंमें रण और परिध जेमा पा रहे थे ।

कोई रथ और तन्त्र लिय हुए थे । कुछ लगेने कसे

धारा कर रखे थे तथा अन्य जामों-हाथोंमें धूल चमक

गरे थे, निर तो वहाँ सूर्य-वर्णोंका महान् धन होने लगा ॥

तुमुल शङ्खराद्वय सभा पचउति राज्ये ।

स नेमियोपेग महान् सहस्राभिनिनादयन् ॥ ९ ॥

राजमार्ग धिया जुष्ट प्रतिपेद महारथम् ।

यवगक सभाभवनकी ओर यात्रा करने समय तुमुल
शङ्खधनि होने लगी । उसका वह विशाल रथ अपने पश्चिमी
धपराहने सम्पूर्ण शिवाभ्रोंका प्रतिप्रतिन करता हुआ महासा
शामशाली उबमागोर जा पहुँचा ॥ ९ ॥

विमल चातपत्र च प्रगृहीतमशोभत ॥ १० ॥

पाण्डुर गम्यसदृश्य पूणस्तगधिपो यया ।

उस समय रथप्रयाग यवगक ऊपर तना हुआ निम्न

रथ धन पूण चामार मनन गम्य पा रहा था ॥ १० ॥

हेममञ्जरिगर्भे च गुह्यन्दटिकविग्रहे ॥ ११ ॥

चामरव्यज्जने तस्य रजतु सयन्निगे ।

उसका दाहिने और बाई भगने गुह्यन्दटिक विग्रह
चैवर और चमक, जिनमें स्पेक्ष नञ्जरी की हुई थी
वही धामा पा रहे थे ॥ ११ ॥

ते हृताञ्जलय सर्वे रथस्य पृथिवीम्विता ॥ १२ ॥

राजसा राज्यसधेष्ठ शिगेभिस्त यन्निरे ।

नामने पृथिवीर गह हुए सभी रथम् जनों हाथ ऊपर
रथपर बैठे हुए राज्यमण्डपमें रागाय निर मुकाकर बन्दना
कल थे ॥ १२ ॥

गम्यसै न्ययमान सञ्चयानाभिर्गतिदम् ॥ १३ ॥

आममाद् महानेजा सभा शिरगिता तदा ।

सूर्योद्गाय सी सी स्त्री कर दाहर और अचर
मुक्ता हुआ शङ्खमन महानेजा सभा उस समय विषयमा
दाय निरित गम्यनने पहुँचा ॥ १३ ॥

सुरागजनाम्नीणां विमुह्यन्मन्त्रिजनगम् ॥ १४ ॥

विराजमानो वपुषा रुक्मपद्मेत्तरच्छदम् ।
ता पिशाचशैले पडभिरभिगुप्ता सदाप्रभाम् ॥ १५ ॥
प्रविशेन महातेजा सुकृता शिष्यकमणा ।

उस समाजे फर्वाम साने चाँदीसा काम लिया हुआ था
तथा बीच-बीचमें निगूढ़ स्फटिक भी जड़ा गया था । उसम
सोनेने रामगाल रामी वज्रासी चारदर निजी हुई थी । उस
सभा सदा अपनी प्रभासे उद्भासित होती रहती थी । छ से
पिशाच उधरी रथा वरत थे । निष्क्रमसे उस बहुत ही
सुन्दर बनाया था । अपने घरीरसे गुणाभिन होनेवाले महा
तेजसी रक्षणने उस समामें प्रवेश किया ॥ १४ ॥ १५ ॥
तस्या तु वैदूर्यमय प्रियकाजिनसवृतम् ॥ १६ ॥
महत्सोपाधय मेजे राखण परमासनम् ।
तत शशास्तेष्वरपद्भुजैर्ह्युपरपाकमान् ॥ १७ ॥

उन सभामनमें वैदूर्यमणि (नीलम) का रत्न हुआ
एक निशाल और उत्तम सिंहासन था, जिसपर अत्यन्त
सुख्यम चमड़ेवाले 'प्रियक' नामक मृगरा चम बिछा था
और उत्तर पर मल्लेंद भी रत्न हुआ था । राखण उसीपर बैठ
गया । फिर उसने अपने भीमगामी दूताभे आज्ञा दी—
समानयत मे क्षिप्रमिहैतान् राक्षसानिति ।
दृत्यमस्ति महज्जाने कतयमिति शत्रुभि ॥ १८ ॥

तुमलोग शीघ्र ही यहाँ बैठनेवाले सुनिश्चयत राक्षसोंको
मेरे पास डूला ले आओ क्योंकि शत्रुओंका साथ करने योग्य
महान् काय सुक्षर आ पड़ा है । इस बातसे मैं अच्छी तरह
समस्त रहा है (अत इतपर निचार करनेके लिये सब सभा
सदोंका यहाँ आना अत्यन्त आवश्यक है) ॥ १८ ॥

राभसास्तद्वच श्रुत्वा लङ्काया परिक्रममु ।
अनुगेहमवस्थाप्य निहारशयनेषु च ।
उद्यानेषु च रक्षासि चोदयन्तो ह्यभीतवत् ॥ १९ ॥

रावणरा यह आदेश सुनकर वे राक्षस लङ्काम सब ओर
चकर लगाने लगे । वे एक एक घर, निहारस्थान, गणनागार
और उद्यान जा जाकर वहाँ निर्मयतासे उन सब राक्षसोंका
राजवसाम चलनेके लिये प्रेरित करने लगे ॥ १९ ॥

त रथान्तरा एजे हतानेजे हृदान् ह्वयान् ।
नागानेकेऽधिररुद्रजगमुदचैरे
तप उन राक्षसोंमें कोई रथपर चढ़कर चले कोई
मतारा हाथोंपर और कोई मजबूत यादोंपर सगर हासर
अपने अपने स्थानसे प्रस्थित हुए । बहुत-से राक्षस पैदल ही
चल गये ॥ २० ॥

सा पुरी परमाकाणा रथङ्कुरवाजिभि ।
ममपतद्विर्विररन्ने गरुमन्त्रिरिवाभ्यरम् ॥ २१ ॥
जम मय दोहत हुए रथों, हाथियों और घोड़ोंमें थात

दूर वह पुरी बहुखल्वन गरुहासे आच्छादित हुए आकाश
की भाँति घोभा पा रही थी ॥ २१ ॥

त वाहनान्वयस्थाय यानानि विनिधानि च ।
सभा पक्षि प्रविशन्ति सिंहा गिरिगुहाभिरम् ॥ २२ ॥

मन्त्र्य स्थानतः पर्वतराज्यने अपने अपने वाहनों और
नाना प्रकारकी सगारियोंको बाहर ही रखकर व सब सभासद्
पैदल ही उस सभामनमें प्रविष्ट हुए माना बहुत से सिंह
निजी परतकी कन्दरामें घुस रहे हा ॥ २२ ॥

राक्ष पाद्री गृहीता तु राक्षसे प्रतिपूजिता ।
पीतेऽन्ये वृक्षीयन्ते भूमौ केचिदुपाविशान् ॥ २३ ॥

वहाँ पर्वतराज उन सने राजान पौत्र पड़ तथा राजनें
भी उनका उत्कार लिया । तत्पश्चात् कुछ लोग छाने
विहासनापर, कुछ लोग कुशकी चपाइयोंपर और कुछ लोग
साधारण विजैनासे ढकी हुई भूमिपर ही बैठ गए ॥ २३ ॥

ते समेत्य सभाया वे राभसा राजशासनात् ।
यथाहंमुपतस्थुस्ते राखण राक्षसाधिपम् ॥ २४ ॥

राजसी आगते उस समामें एकर होकर वे सब राक्षस
राक्षसराज राखणने आसपास यथापाप आसनोंपर बैठ गए ॥

मन्त्रिणश्च यथामुखा निश्चितापेषु पण्डिता ।
अमात्याश्च गुणोपेता सत्रज्ञा बुद्धिदर्शना ॥ २५ ॥
समीयुस्तत्र शतश शूराश्च यद्वहस्तथा ।
सभाया हेमवणाया सर्वोपस्य सुखाय वै ॥ २६ ॥

यथायोग्य भिन्न भिन्न विषयों लिये उचित सम्मति देने
वात मुख्य मुख्य मन्त्री, कर्तव्य निष्पन्नमें पाण्डित्यज्ञा परिचय
देनेवाले सचिव, बुद्धिदर्शी, सत्रज्ञ, सद्गुण-सम्पन्न उपमन्त्री
तथा और भी बहुत से शरीर समूर्ण अर्थोंका निष्पन्न लिये
और सुलभासिक उपायपर निचार करनेके लिये उन सुनहरी
काजिगाली समाने भीतर बैठकोंकी सख्याम उपस्थित थे ॥

ततो महात्मा निपुत्र सुपुत्र
रथ वर हेमविक्रिन्ताङ्गम् ।
शुभ समास्थाय ययौ यशस्वी
किरीणण ससदमप्रजस्य ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् वाल्मी महात्मा निमीगण भी एक मुष्णजति,
सुन्दर अभासे युक्त, निशान् भद्र एव गुमाराय रथपर
आरुह्य हा अपने यह भारही समामें ज पहुँच ॥ २७ ॥

स पूर्वाचारान्न नारात
नामाय पश्चाच्छरणो ध्वन्द ।
शुक्र प्रहस्तश्च तत्रैव तभ्यो
वदौ यथाहं पृथगात्मजानि ॥ २८ ॥

छात्र भाद निमीगणन पत्र अपना नाम बताया, फिर
बड़े भारक नरगोंमें मनक छराया । इसी तरह शुक्र और

प्रहसने भी किया । तब रावणने उन सखा यथाशक्त प्रयत्न
पृथक् जानन दिय ॥ २८ ॥

सुगुणनानामणिभूषणाना

सुगोसस्ता ससदि रावसानाम् ।

तेषा परायागुरुचन्दनाना

स्रजो चमूचा प्रयु समन्तात् ॥ २९ ॥

सुगुण एव नाना प्रकारकी मणियोंसे आभूषणोंसे विभूषित
उन सुन्दर यन्त्रधारी राक्षसोंकी उक्त सभामें सब आर बहुमूल्य
अगुरु, चन्दन तथा पुष्पहारोंकी सुगंध छा रही थी ॥ २९ ॥

न चुक्रुतानृतमाह रश्मिन्

सभासदो नापि जल्युत्तमै ।

मसिद्धाया स एवोपनीया

भतु सर्वे दृष्टुञ्जानन ते ॥ ३० ॥

इत्यपि धीमद्रामायण बाणमीकीये आदिकाव्य युद्धकाण्डे पञ्चाश सर्ग ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीरामकीनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें स्वरहीन सप्त पदा हुआ ॥ ११ ॥



द्वादश सर्ग

नगरकी रक्षाके लिये सैनिकोंकी नियुक्ति, रावणका सीताके प्रति अपनी आसक्ति बतानेके
हरणका प्रसंग उताना और भावी कर्तव्यके लिये सभासदोंकी सम्मति माँगना, कुम्भकर्णका
पहले तो उसे फटकारना, फिर समस्त शत्रुओंके वधका स्वयं ही भार उठाना

स ता परिपद्ये हृत्ता समीक्ष्य समितिजय ।

प्रचोदयामास तदा प्रहस्त वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥

गुनुनिक्षी रावणने उक्त समूह सभाकी आर दृष्टिगत
करन सेनापति प्रहस्तका उन समय इस प्रकार आदेश
लिया— ॥ १ ॥

सेनापते यथा ते स्यु हृत्प्रियाश्चतुर्निधा ।

योधा नगररक्षया तदा यदेषुमहसि ॥ २ ॥

सेनापति ! तुम सैनिकोंका एसी जाग दा, जिससे
तुम्हारे अन्धविद्याम पारगत सभी, युद्धकार, क्षीमाकार और
पेदल बाढ़ा नगरकी रक्षामें तत्पर रहें ॥ २ ॥

म प्रहस्त प्रणीतामा प्रियंयन् राज्ञासनम् ।

प्रिनिष्पिपद्ये यत् सर्वं घटिहन्तश्च मन्दिरे ॥ ३ ॥

अपने मनका वामें रखनेका प्रहसनेगजा आदेश
का पालन करनेकी इच्छाम साथी सेनाका नगर बाहर और
भीतर यथाशक्त स्थानोंपर नियुक्त कर दिया ॥ २ ॥

ततो प्रिनिष्पिपद्ये यत् सर्वं नगरगुमये ।

प्रहस्त प्रमुने गतो निगम्याद् जगत् च ॥ ४ ॥

नगरकी रक्षाके लिये साथी सेनाका तैना करन प्रहस्त
गया रावण सामने आदेश और इस प्रकार बताना— ॥ ४ ॥

उन समय उन सभाका कोई भी सदस्य अक्षय नहीं
बाल्ता था । वे सभी सभासद् न तो चिल्लाते थे और न
जोर-जोरसे बातें ही करते थे । वे सब व-सत्र सकलमनोरथ
एव मयस्वर पराक्रमी थे और सभी अपने स्वामी रावणर मुँह
की आर देत रहे थे ॥ ३० ॥

स रावण शरत्भृता मनस्विना

महायलाना समितौ मनस्वी ।

तस्या सभाया प्रभया चक्षोरो

मये वसूतामिव घञ्जहस्त ॥ ३१ ॥

उन सभामें गजधारी महाशली मनस्वी वीरोंका समागम
हानेपर उनका बीचमें बैठा हुआ मनस्वी रावण अपनी प्रभावे
उन्नी प्रकार प्रचलित हो रहा था, जैसे वसुओंके बीचमें वज्र
धारी इन्द्र देदीप्यमान होते हैं ॥ ३१ ॥

प्रिहित यहिरन्तश्च यत् यत्तन्तस्व ॥

कुप्यादिमना क्षिप्र यदभिप्रेतमस्मि ते ॥ ५ ॥

यक्ष्मराज ! आप महाशली महाराजकी सेनाकी मीने
नगर बाहर और भीतर यथाशक्त नियुक्त कर दिया है ।
अब आप स्वयंचित होकर सीमा ही अपने अभीष्ट कार्यका
सम्पानन कीजिये ॥ ५ ॥

प्रहस्तस्य वर श्रुत्वा राजा राज्यहितैरिण ।

सुरेष्णु सुहृदा मये व्यानहार स रावण ॥ ६ ॥

रावण हित चाहनेका प्रहस्तकी यह बात सुनकर अपने
मुखकी इच्छा रखनेका रावणने मुहूर्तों काचमें यह बात
कही— ॥ ६ ॥

प्रियाप्रिये मुख दुःखे लभालभे हितहिते ।

धमसमापद्येऽरेषु यूयमहथ यदिनुम् ॥ ७ ॥

प्रियप्रिय ! धन अथ और वामरिणर सत्र
उपस्थित होनेपर आपका प्रिय अप्रिय मुख-दुःख, स्वभ-
हानि और हितदिनका विचार करनेमें समय है ॥ ७ ॥

मयहृत्यानि युष्माभि समागच्छानि स्वदा ।

मयत्रमनियुनानि न जानु विरलानि म ॥ ८ ॥

अनृत्याने मया परम्पर विचार करन निर्दिष्ट कार्य

का आरम्भ किया है, वे सब कसप में लिये कमी निष्फल
नहीं हुए हैं ॥ १ ॥

सन्तोमग्रहनक्षत्रैर्मघज्जिरिय वासव ।
भवज्जिरहमत्यर्थं घृत ध्रियमग्राप्नुयाम् ॥ ९ ॥

जैसे चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रागणित मन्त्रागणितों से
हुए इन्द्र स्वर्गाय संपत्ति का उपभोग करत है, उसी भाँति
आपलोगों में शिरा रहने में भी लक्ष्मी की प्रचुर राजलक्ष्मी का
सुख भोगता रहूँ—यही मेरी अभिलाषा है ॥ * ॥

अहं तु खलु स्यान् य समर्थयितुमुद्यत ।
कुम्भकर्णस्य तु स्पृष्टानेयमर्थमयोदयम् ॥ १० ॥

‘मैंने जो काम किया है, उस में घटने की आश सब
सामने रखकर आपके द्वारा उसका समर्थन चाहता था परन्तु
उस समय कुम्भकर्ण सोच हुए थे, इसलिये मैंने इसकी चर्चा
नहीं की थी ॥ १० ॥

अथ हि सुप्त पद्मास्मान् कुम्भकर्णो महाजल ।
नर्यशस्त्रभृता मुर्य म इदानीं समुत्थित ॥ ११ ॥

‘समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महाजरी कुम्भकर्ण छ महीने
से सो रहे थे । अभी इनकी नींद खुली है ॥ ११ ॥

इयं च दण्डकारण्याद् रामस्य महिषी श्रिया ।
रक्षोभिन्नरितोद्देशादानीत्ता जानकात्मजा ॥ १२ ॥

‘म दण्डकारण्य में जो रक्षोभों ने चलेका स्थान है
राम की प्याप रानी जनकलक्ष्मी की तात्कालीन इत लया है ॥ १२ ॥

सा म न दायामारोदुमिच्छत्यलसगामिनी ।
त्रिषु लोकेषु चान्धा मे न सीतासदृशी तथा ॥ १३ ॥

‘किन्तु वह म दायामिनी सीता मर गम्याभर आकाश
हाना नहीं चाहती है । मेरी दृष्टि में तीनों लोकों के भीतर सीता
च समान सुन्दरी दूसरी कोई स्त्री नहीं है ॥ १३ ॥

ननुमथ्या पृथुश्रणी दारदुनिभानना ।
हेमविन्पनिभा सीम्या मायेव मयनिर्मिता ॥ १४ ॥

‘उसका शरीरका मध्यभाग अत्यन्त सुन्दर है, कटि के पीछे
का भाग शूल है, मुख शरजाल के चन्द्रमाका लज्जित करता
है, वह सीम रूप और स्वभाववाली सीता से देवी बनी हुई
प्रतिमासी जान पड़ती है । ऐसा लगता है, जैसे वह मया
सुखी रची हु—पाई माया हो ॥ १४ ॥

सुलेहितल्लो रुरक्ष्णो चरणी सुप्रतिष्ठितौ ।
वृष्टा साधनसौ मया रूष्यत म शरीरज ॥ १ ॥

‘उसका चरणों लगे लाल रंग के हैं । दोनों पैर सुन्दर,
चिह्नों और सुगन्ध हैं तथा उनका नख तावे जैसे खल है ।
सीतार का चरणों का रंगवत् मेरी शायानि प्रज्वलित हो
उठती है ॥ १५ ॥

हृत्पानेरसिखादात्मना सारीमित्र प्रभाभ ।

उन्मल विमल यत्सु वदन् नारुलेचनम् ॥ १६ ॥
पदयस्तद्व्यशस्तम्या कामस्य यशमयिषान् ।

‘जिसमें धीरी आहुति वाली गयी हो, उस अंगिका रूप
और सुखी प्रभा के समान इस तेजस्विनी सीताका देलकर
तथा ऊँची नाक और विशाल नेत्रों से सुशोभित उसके निर्मल
एव मनोहर मुख का अवलोकन करूँ मैं अपने यश में नहीं रह
गया हूँ । कामने मुझे अपने अधीन कर लिया है ॥ १६ ॥

क्रोधहर्षसमनेन दुर्वर्णकरणेन च ॥ १७ ॥
शोकमतापनित्येन कामेन क्लृप्तीकृत ।

‘जो क्रोध और हर्ष दोनों अवस्थाओं में समान रूप से बना
रहता है, शरीर की कान्तिका धीरे धीरे बर देता है और शोक
तथा स्वापक समय भी कभी मनसे दूर नहीं होता, उस
कामने मेरे हृदय को कल्पित (व्याकुल) कर दिया
है ॥ १७ ॥

सा तु सगसर फल मामयाचत भामिनी ॥ १८ ॥
प्रतीक्षमाणा भर्तार राममायनल्लोचना ।

‘तमया चारुनेत्राया प्रतिज्ञान वच शुभम् ॥ १९ ॥

‘विशाल नेत्रोंवाली यानसीय सीताने मुझसे एक वचन
मनस्य मँग है । इस बीच में वह अपने पति श्रीरामकी प्रतीक्षा
रुप्री । मैंने मनोहर नेत्रोंवाली सीताक उस सुन्दर वचनकी
सुनकर उसे पण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है ॥ १८ ॥

आन्तोऽह स्वतन कामाद् यातो ह्य इच्छाग्नि ।
कथं सगारमग्नेभ्य तरिष्यन्ति वनोक्त ॥ २० ॥
यह्मन्तरज्जयाकीर्णं तौ वा वशरथा मजौ ।

‘जैसे वह मार्ग में चलकर चले पाँदा पर जाता है, उसी
प्रकार मैं भी कामकी वृत्ति बरारना अनुभव कर रहा हूँ ।
उस का मुझे शत्रुभाई आरस का डर नहीं है क्योंकि वे
गाम्भी शनर अथवा वे दाना दारभट्टमार औराम और
लक्ष्मण असंख्य बर-जन्तुओं तथा मत्स्यों से भर हुए अन्धक्य
महासागरों के से फर फर रहेंगे ॥ २० ॥

अथवा कथितेनैव हृत न क्वन् महत् ॥ २१ ॥
दुर्मेया कायगतयो भूत दम्प ययामति ।

‘मातुषाग्रो भय नास्ति तथापि तु विवृदयनाम् ॥ २२ ॥

अथवा एक ही यानने आरर हमारे यहाँ मशान्

‘यहाँ राजने सभासदों के सामने जानी छठी हठारता
दिखाने के लिये सबका कथन कहा है । लोगोंने कभी अपने मुँह
से यह नहीं कहा था कि ‘मुझे एक वचन समय हो । यदि अपने
दिनों के भीतर नहीं जाने का मैं सुनारो हो जाऊँगी । सीताने
या सभा शिखरपूर्वक वक्ता के अन्त्य प्रलापको दुष्टता की था ।
इसने स्वयं ही जानी औरते उन्हें एक वचन अवसर दिया था ।
(देखिये कायकायक सर्ग ॥ ४ श्रीक १४ १५)

सग्न मचा दिया था । इसलिये कायसिद्धि के उपायों का समस्त
हना अत्यन्त क्षति है । अब जिसका अपना बुद्धि
अनुसार ऐसा उचित जान पड़े, वह ऐसा ही बनाये । तुम सब
लग अपने विचार अन्तर्ग व्यक्त करो । यद्यपि हमें मनुष्यने
काइ भय नहीं है, तथापि तुम्हें विजयक व्यापार विचार तो
करना ही चाहिये ॥ २१ २२ ॥

तदा देवासुरे युद्धे युष्माभि सहितोऽजयम् ।
ते मे भयन्तश्च तथा सुग्रीवमुखान् हरीन् ॥ २३ ॥
परे पाते समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपामजौ ।
सीतायाः पदर्थी प्राप्य सप्तप्रातरे वरुणात्म्यम् ॥ २४ ॥

‘‘तन दिनों बर दवनाओं और असुरोंका युद्ध चल रहा
था, उसमें आप सब लोगोंकी महायत्नासे ही मैंने विजय प्राप्त
की थी । आज भी आप मेरे जैसी प्रकार महायत्न हैं । व
दोनों राजकुमार सीतारा पता पाकर सुग्रीव आदि बानरोंका
साथ लिये समुद्रके उस तटतक पहुँच चुके हैं ॥ २३ २४ ॥

अदेया च यथा सीता घण्ट्यौ द्धारः प्रात्मनौ ।
भग्नमिभ्यता मत्र सुनील चाभिधीयताम् ॥ २५ ॥

‘‘अब आपलगा आपसमें सहाई कीजिये और काइ ऐसी
सुन्दर नाति बनाइये, किन्तु सीताको लौगना न पड़े तथा वे
दोनों दशरथकुमार मारे जायें ॥ २ ॥

नहि शक्ति प्रपद्यामि जगत्पथस्य कस्यचित् ।
स्वागतं चानरेस्तीत्या निश्चयेन जयो मम ॥ २६ ॥

‘‘बानरों काय समुद्रका पार करके यहाँतक आनेकी शक्ति
जगतमें शम्भु मित्र और निस्सीमें नहीं देवता हैं (किन्तु राम और
बानर यहाँ आकर भी मर चुके विनाइ नहीं मरते) अब
यह निश्चय है कि जीत मैंने ही होगी ॥ २६ ॥

तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकण प्रमुमोद यवन चेदमप्रगीत् ॥ २७ ॥

‘‘कामातुर यवनरा यद पददण प्रलाप मुनिरा कुम्भकण
का प्रथम आ गया और उसने इस प्रकार कहा— ॥ २७ ॥

यदा तु रामस्य मल्लमणस्य
प्रसहा सीता रघुस्त इहाहता ।

महत्समीक्ष्यैव मुनिश्चित तदा
भनेन चित्तं यमुनेव यामुनम् ॥ २८ ॥

अब तुम लम्बकणहट श्रीरामक आश्रममें एक बारस्वत
ही मनमाना विचार करके साक्षात् यहाँ कल्पवृक्ष हर लये
थे, उसी समय तुम्हारे चित्तमें हमलोगों काय इस
विषयमें मुनिश्चित विचार कर देना चाहिय था । ठीक उसी
तरह जैसे यमुना जब पृथ्वीपर उतरनेसे उद्यत हुई, तभी
उन्होंने यमुनेत्री पतङ्ग पुष्पविपरीत अपने जन्मे पूज
तिथ था (पृथ्वीपर उतर जानेके बाद उनका वेग जब समुद्र

में जाकर शान्त हो गया, तब वे पुन उस कुण्डका नहीं
भर सकतः) उस प्रकार तुमने भी जब विचार करनेका
असर था, तब तो हमारे साथ बैठकर विचार लिया
नहीं । अब अस्सर विचार काय काम सिद्ध जानेसे बाद
तुम विचार करने लगे हो ॥ २८ ॥

सर्वमेतन्महाराज वृत्तमप्रतिम तत्र ।
विधीयते सहास्राभिराद्यधेयास्य फणम् ॥ २९ ॥

‘‘महाराज ! तुमने जो यह छद्मपूर्ण डिपार परकीकरण
आदि कार्य लिया है, यह सब तुम्हारे लिय बहुत अशुचित
है । इस पापकर्मका करनेसे पहले ही आपको हमारे साथ
परामर्श कर देना चाहिय था ॥ २९ ॥

न्यायेन राजकायाणि य करोति दधानम् ।
न स सनप्यन्ते पश्चात्प्रतिनार्यमतिनृप ॥ ३० ॥

‘‘दधान ! जो राजा मर राजकार्य न्यायपूर्ण करता है
उसकी बुद्धि निश्चयपूर्ण हानर कारण उसे पाछे पड़ताना नहीं
पड़ता है ॥ ३० ॥

अनुपायेन कसणि रिपरीतानि यानि च ।
त्रियमाणानि दुष्यन्ति हर्षोप्यप्रयतन्ति ॥ ३१ ॥

‘‘च कर्म उचित उपायका अलम्बन नियमिना ही किंच
जते हैं तथा जो लाल और गान्धर्व नियमित हान हैं वे पाप
कर्म उसी तरह दोषकी प्राप्ति करात हैं, जैसे अरात्रि आभि
चारिक यशमें हमें गये हयिय ॥ ३१ ॥

य पश्चात्पूरकायाणि कमाप्यभिचिरीयति ।
पूर्व वापरकायाणि स न वेद मयातयी ॥ ३२ ॥

‘‘जो पहले करने योग्य कार्योंसे पाठ बना चाहता है
और पाछे करने योग्य काम पन्ना ही कर जान्ता है वह
नानि और अनीतिना नहीं जानता ॥ ३२ ॥

चपलस्य तु हृत्पेषु प्रसमीक्ष्याधिर यत्नम् ।
छिद्रमन्ये प्रपचान् प्रीक्षस्य खमिप्र द्विजा ॥ ३३ ॥

‘‘गुलुग अपने विपरीत बलका अनेकमें अधिर देख
कर भी यदि वह हर काममें चाल (जल्दबाज) है तो उसका
दमन करने लिये उसी तरह उसका छिद्र दृढ़त रहत है जैसे
कभी दुर्लभ्य श्रेष्ठ पतङ्ग लोचकर आग पन्नेके लिये ग्लर
(उस) चिद्रका आश्रय लते हैं (जिने तुममें कर्मिजन्मे
अभी शान्ति प्रसार करके बनाया था) ॥ ३३ ॥

न्ययेद् महदारथं कायमप्रतिनितितम् ।
दिप्यात्वा नारधीदशमो त्रियमिधमिगमिरम् ॥ ३४ ॥

‘‘महाराज ! तुमने अभी परगेनका चिनर हिय किना
१. लुब्धक कापकेवने कपनी छिद्रके दाग, शोचरकण
विहीनकरके उहाँ छे कर । वा वा—यह मया कामात्परे
जाग है न (देखिये कल्प ४६ । ८४)

ही यह बहुत बड़ा दुष्कर्म आरम्भ किया है। जैसे विपमिश्रित भोजन खानेवालेके प्राण हर लेता है, उसी प्रकार श्रीराम चन्द्रजी तुम्हारा वध कर डालेंगे। उन्होंने अमीतक तुम्हें मार नहीं डाला, इसे अपने लिये सौभाग्यकी बात समझो ॥ ३४ ॥

तस्मात् त्वया समारब्ध कर्म ह्यप्रतिम परै ।

अहं समीकरिष्यामि हत्वा शशूस्तवानघ ॥ ३ ॥

‘अनघ ! यद्यपि तुमने शत्रुओं के साथ अनुचित कर्म आरम्भ किया है; तथापि मैं तुम्हारे शत्रुओंका संहार करके सबको ठीक कर दूँगा ॥ ३१ ॥

अहमुत्सादयिष्यामि शत्रुस्तव निशाचर ।

यदि शत्रुविषसन्तौ यदि पापस्मारुतौ ।

तावह योधयिष्यामि कुयेरचरुणाऽपि ॥ ३६ ॥

‘निशाचर ! तुम्हारे गुण यदि इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, कुयेर और वरुण भी हों तो मैं उनसे साथ युद्ध करूँगा और तुम्हारे सभी शत्रुओंको उखाड़ फेंकूँगा ॥ ३६ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य महापरिधयोधिन ।

नर्वतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य निर्भीयाद् वै पुरंदर ॥ ३७ ॥

‘मैं पतक समान विशाल एन तीपती दाढ़ीसे युक्त शरीर धारण करके महान् परिध शायमें ले समरभूमिमें जूझता हुआ जब गजना फूँकेगा, उस समय देवराज इन्द्र भी भयभीत हो जायेंगे ॥ ३७ ॥

हृष्यायै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे द्वादश सर्ग ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाण्डके युद्धकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदश सर्ग

महापार्श्वका रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उक्ताना और रावणका शापके कारण अपनेको ऐसा करनेमें असमर्थ बताना तथा अपने पराक्रमके शीत गाना

रावण कुब्जमाज्ञाय महापार्श्वो महाबल ।

मुहूर्तमनुसचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

तब रावणने कुपित हुआ जान महारथी महापार्श्वने दो पदीतक कुछ शेष विचार करने के बाद हाथ जाड़कर कहा—॥ १ ॥

यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगध्यालनिपेयितम् ।

न पिये मधु सम्प्राप्य स नरो बालिशो भवेत् ॥ २ ॥

‘जो हिंसक पशुओं और समुद्र में भरे हुए दुर्गम वनमें जाकर यहाँ पीने योग्य मधु पाकर भी उसे पीता नहीं है; वह पुरुष मूर्ख ही है ॥ २ ॥

ईश्वरस्तेष्वर कोऽस्ति तत्र शत्रुनिर्हण ।

रमल सह धैर्येण शत्रूनाक्रम्य मूढसु ॥ ३ ॥

‘शत्रुसूदन महाराज ! आप तो स्वयं ही ईश्वर हैं। आप

पुनर्मां स द्वितीयेन शरेण निहनिष्यति ।

ततोऽहं तस्य पास्यामि रुधिरं काममाश्वस ॥ ३८ ॥

‘राम मुझे एक बाणसे मारकर दूसरे बाणसे मारने लगे, उसी बीचमें मैं उनका खून पी लूँगा। इसलिए तुम पूर्णतः निश्चिंत हो जाओ ॥ ३८ ॥

यद्येन वै दाशरथे सुखाऽह

जयं तवाहर्तुमहं यतिष्ये ।

हत्वा च राम सह लक्ष्मण

त्वादामि सर्वान् हरिषूथमुष्यान् ॥ ३९ ॥

‘मैं दशरथनन्दन श्रीराम का वध करके तुम्हारे लिये सुग दायिनी निजय सुलभ कण्ठनेत्र प्रयत्न करूँगा। लक्ष्मणसहित रामको मारकर समस्त शत्रुसूथपत्तियोंको खा जाऊँगा ॥ ३९ ॥

रमल काम पित्र चाप्यवारुणौ

कुप्यन्कायति हिताति विन्धर ।

मया तु रामे गमिते यमक्षय

चिराय सीता वशाया भविष्यति ॥ ४० ॥

‘राम मौजसे विहार कर। उत्तम वारुणीका पान करो और निश्चिंत होकर अपने स्थिर हितकर कार्य करते रहो। मेरे द्वारा रामने यमलोक भेज दिये जानेपर सीता चिरकाल लिये तुम्हारे अधीन हो जायगी ॥ ४० ॥

हृष्यायै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे द्वादश सर्ग ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाण्डके युद्धकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदश सर्ग

महापार्श्वका रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उक्ताना और रावणका शापके कारण अपनेको ऐसा करनेमें असमर्थ बताना तथा अपने पराक्रमके शीत गाना

रावण कुब्जमाज्ञाय महापार्श्वो महाबल ।

मुहूर्तमनुसचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

तब रावणने कुपित हुआ जान महारथी महापार्श्वने दो पदीतक कुछ शेष विचार करने के बाद हाथ जाड़कर कहा—॥ १ ॥

यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगध्यालनिपेयितम् ।

न पिये मधु सम्प्राप्य स नरो बालिशो भवेत् ॥ २ ॥

‘जो हिंसक पशुओं और समुद्र में भरे हुए दुर्गम वनमें जाकर यहाँ पीने योग्य मधु पाकर भी उसे पीता नहीं है; वह पुरुष मूर्ख ही है ॥ २ ॥

ईश्वरस्तेष्वर कोऽस्ति तत्र शत्रुनिर्हण ।

रमल सह धैर्येण शत्रूनाक्रम्य मूढसु ॥ ३ ॥

‘शत्रुसूदन महाराज ! आप तो स्वयं ही ईश्वर हैं। आप

का ईश्वर कौन है ? आप शत्रुओंके शिरपर पैर रखकर निरिह सुमारी सीताके साथ रमण कीजिये ॥ २ ॥

बलात् कुक्कुटवृक्षेन प्रयतस्व महारथ ।

आक्रम्यामस्य सीतां वैतामुद्भूय च रमलस्य ॥ ४ ॥

‘महारथी वीर ! आप कुक्कुटोंके बतारका अपनाकर सीता के साथ बलान्तर कीजिये। बारबार आक्रमण करते उनसे साथ रमण एवं उपभोग कीजिये ॥ ४ ॥

लब्धकामस्य ते पञ्चाङ्गमिष्यति किं भयम् ।

प्राप्तमप्राप्तकालं या सर्वे प्रतिनिधाम्यसे ॥ ५ ॥

‘जब आपका मनोरथ सफल हो जायगा, तब फिर आपका कौन-सा भय आयेगा ? यदि वर्तमान एवं भविष्यकालमें कोई भय आया भी तो उस समस्त भयना यथोचित प्रतीकार किया जायगा ॥ ५ ॥

कुम्भकणः सहासाभिगिज्जिञ्च महारत्न ।

प्रतिपेयितुं शक्नोति मरुजमपि वज्रिणम् ॥ ६ ॥

“मद्रगे के माय यदि महारत्नी कुम्भकण और इन्द्रकिं
मदे हा ज्ये ता ये दोनों वज्रपायी इन्द्रकी भी जागे करने
एक सक्ते हैं ॥ ६ ॥

उपप्रदानं सान्त्वयामेद वा कुशले हतम् ।

ममतिप्रस्य दृष्टेन सिद्धिमयेषु रोचये ॥ ७ ॥

“मैं तो नातिनिपुण पुरुषों के द्वारा प्रसुक्त मम, मल
और मेदका छाड़कर काल दृष्टके द्वारा काम बना बना हा
अच्छा समझता हूँ ॥ ७ ॥

इह प्राप्तान् वप्य मवाञ्छन्त्यस्य महारत्न ।

वर्णे गामप्रतापेन करिष्यामि न मन्त्राय ॥ ८ ॥

“महारत्नी राक्षसराज । वहाँ आपक च भा गनु आयेगे,
उन्हें हमारा अपने गुणों के प्रदाने नामें कर लेंगे हममें
छाप नहीं है” ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तथा रात्रा महापादयेन गवण ।

तस्य सम्पूजयन् वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

महापादये देवा कठोरत एव सम्यक् लङ्घने चान् रात्रा
ने उक्त वचनों की प्रणाम करने हुए इस प्रकार कहा—

महापादय निरोध त्व रहस्यं किञ्चिन्मनः ।

चिरवृत्तं नदाप्याम्ये यद्वाजं पुग मया ॥ १० ॥

“महापाद ! बहुत दिन हुए पूवकालमें एक गुप्त घटना
घटित हुई था—उसने गार प्राप्त हुआ था । अपने जीवनक
एक गुप्त सम्पत्ता आज मैं बना रहा हूँ, नये सुना ॥ १० ॥

पितामहस्य भवनं गच्छन्तीं पुञ्जिकस्यलम् ।

वञ्चयमाणामद्राक्षमाकाशोऽग्निप्रतामिव ॥ ११ ॥

एक बार मैंने आश्रयमें अग्नि-गिणाक समान प्रकाशित
होती हुई पुञ्जिकस्य नामकी अश्वगच्छ देखा, जो स्थान
प्रकाशीक भवनका ओर था रही थी । वह अजगत् मेरे भवन
लुप्त-लुप्त की ओर था रही थी ॥ ११ ॥

मा प्रमह्य मया मुक्ता एता विरसता तन ।

म्यपमृभवन प्राप्ता लेलिता नलिनी यथा ॥ १२ ॥

“मैंने वञ्चन उठके वञ्च उतार दिय और हमान्
उसका उपभोग किया । इसका वञ्च वञ्च ब्रह्मादिक भवनमें
गयी । उसकी दया हापादाय ममत्त्व देवी हुई वञ्चनीक
घनान हा रही थी ॥ १२ ॥

तस्य तस्य तथा मन्ये ज्ञातमाम्नीमहामन ।

मय सङ्गपितो घेषा मामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

“मैं समझता हूँ कि मोक्षार्थ उसकी ओर दुर्दान की गयी
थी, वह निमग्न ब्रह्मादीक शक्त हा गयी । इसने वे अजगत्

कृत हा गत् जाग नुमन मम प्रसाद वञ्च— ॥ १३ ॥

अद्यप्रभृति यामन्या पलान्तासौ गमिष्यसि ।

तथा ते शतधा मूधा फलिष्यति न मन्त्राय ॥ १४ ॥

“आजने यदि तू सिंग दूधों नारीक हाय वञ्चवक
समाप्त करोग तो तब मन्त्रक से दुष्ट हा अयेगे, इनमें
सहाय नहीं है” ॥ १४ ॥

इत्यह तस्य ज्ञापस्य भीतं प्रमथमेव ताम् ।

नागेहये यत्नत् सीता वैदेहीं शपते शुभे ॥ १५ ॥

इस तरह मैं ब्रह्मादीक जाने मरमीत हूँ । स्त्रीलिय
अम्मा गुप्त शप्यर विदेहकुमां माताकी हमान् एव वञ्च
दूरक नहीं चगता हूँ ॥ १५ ॥

सागरस्येव मे वेगो मरुतस्य म गति ।

नैनद् दान्तरधिरेद् हासाडयति तेन माम् ॥ १६ ॥

वेग वेग मनुज समान है और मरी गति वापुके तुल्य
है । इस वातरा दशरथनन्दन यन नहीं जानते हैं इसीने
वे सुहृत्त चगाइ करने हैं ॥ १६ ॥

को हि मिहमिगामीनं सुजं गिरिगुहाशये ।

कुञ्जं मृत्युमिगामीनं प्रगेधयितुमिच्छति ॥ १७ ॥

“अन्या परतरी कुञ्जगमें मृत्युवक वये हुए निहक
समान गया कृति होकर पैरी हुई मृत्युके तुल्य मरकर
सुप्त वातरा कांन जाणा चादेण ॥ १७ ॥

न मत्तो निगतान्वाणान् द्विजिह्वान पक्षगानिव ।

गमं पश्यति समग्रामे तन मामभिगच्छति ॥ १८ ॥

“मेरे घनुरन धूर हुए दा वञ्चमन्त्र वरीके समान मरकर
बागोंका समग्रामें आगने देवी देखा नहीं है, इसीलिय
वे मुझ वद जा रह हैं ॥ १८ ॥

विप्रं वञ्चममैरणै शतधा कामुकच्युते ।

गममाणीपयिष्यामि उल्लसभिगिज्जुञ्जम् ॥ १९ ॥

“मैं अपने घनुरने गाम्मापूरक धूर हुए वृद्धों वञ्च
कहा वञ्चगत यमरा उठी प्रकार जडा दाईर मैंने लगे
वञ्चाभेद हापाका गने मनेने लिये करते हैं ॥ १९ ॥

नथास्य दलमादास्ये चलेन महता धृत ।

उदित मरिता काले नयप्राण्या प्रभामिर ॥ २० ॥

“मैंने प्राप्त दल उचित हुए गृहेर नयप्राणी प्रभको
छीन लये हैं, उठी प्रभय अनी निम्न नेमने लिय हुआ
मैं उनकी उस मन्त्र-मन्त्रा आनन्द कर दूँ ॥ २० ॥

न वासवेनापि सहस्रचतुरा

मुयाग्निशक्त्यो वरुणेन वा पुनः ।

मया विष बाहुषेन निर्दिता

पुग पुरी वैद्यशेन पालिता ॥ २१ ॥

‘युद्धम तां दृश्य नैत्रोमाल इन्द्र और वरुण भी मर्य हुए इन लङ्कापुरीको मैंने अपने बाहुवन्ध हा जीना मामना नहीं कर सकते । पूर्वसालमें कुचेरक द्वारा पालित था’ ॥ २१ ॥

इत्थार्यै श्रीमद्दामायणे वाक्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे प्रयोद्गाः समाः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्कीर्तिनिर्मित आपरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तरहवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ११ ॥

चतुर्दश सर्गः

विभीषणका रामको अजेय बताकर उनके पास सीताको लौटा देनेकी सम्मति देना

निशाचरेन्द्रस्य निशाम्य वाक्य

स कुम्भकर्णस्य च गजितानि ।

विभीषणो राक्षसराजमुच्य

मुवाच वाक्य हितमर्ययुक्तम् ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणके इन वचना और कुम्भकर्णकी गवनाओंको सुनकर विभीषणने रावणसे ये सार्यक और हितकारी वचन कहे—॥ १ ॥

वृत्तो हि चाहन्तरभोगराशि

श्चिन्तामिष सुस्मिततीक्ष्णदृष्ट ।

पञ्चाङ्गुलीपञ्चशिरोऽतिक्रम्य

सीतामहाहिस्तत्र केन राजन् ॥ २ ॥

‘राजन् ! माता नामधारी विनालकाय महान् सर्पके क्लिष्टने आपके गलेमें बाँध दिया है ! उसक हृदयका भाग ही उस सर्पका शरीर है, किन्ता ही निप है, सुन्दर मुक्तान ही सीत्वी दाढ है और प्रत्येक हाथकी पाँच-पाँच अङ्गुलियाँ ही इस सर्पके पाँच निर हैं ॥ २ ॥

यावन्न लङ्का समभिद्रवन्ति

यलीमुला पर्वतकूटमात्रा ।

वद्राघुधाक्षौ नखायुधाक्ष

प्रदीपता दादारयाय मैथिली ॥ ३ ॥

‘जबतक पवन शिखरक समान ऊँच बातें, जिनके दौँत और नख ही आयुध हैं, लङ्कापर चढ़ाई नहीं करते तभीतक आप दशरथमन्दन औरगमक हाथमें मिथिला-फुमारी नीताको बाँध हीजिय ॥ ३ ॥

यावन्न गृह्णन्ति शिरासि याणा

रामेरिना राक्षसपुगवानाम ।

यस्योपमा वायुसमानवेगा

प्रदीपता दादाय्याय मैथिली ॥ ४ ॥

‘जबतक श्रीरामचन्द्रजीक चलये हुए वायुस समान वेगशाली तथा पत्रउत्स्य बाण राखमधिरोगिणियोंके निर नहीं बरद रहे हैं, तभीतक आप दशरथमन्दन श्रीरामकी सेवामें सीताजीको समर्पित कर दीजिये ॥ ४ ॥

न कुम्भकर्णेऽजितौ च राज

स्तथा महापाद्वर्ममहोदरौ वा ।

निकुम्भकुम्भौ च तयातिकाय

म्यातु समया युधि राघवस्य ॥ ५ ॥

राजन् ! ये कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और भतिकाय—काई भी समराङ्गमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं उठर सकते हैं ॥ ५ ॥

जीवस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्व

गुम सवित्राप्ययवा मरुदिः ।

न वासउत्साङ्कानतो न मृत्यो

नभो न पातालमनुप्रविष्ट ॥ ६ ॥

‘यदि सूर्य या वायु आपका रक्षा करें, इन्द्र या वन आपको गोदम छिपा लें अथवा आप आकाश या पातालमें घुस जायें तो भी श्रीरामके हाथसे जीवित नहीं बच सकेंगे’ ॥

निशाम्य वाक्य तु विभीषणस्य

तत्र प्रहस्तो घञ्चन घभाये ।

न नो भय त्रिष न दैतभ्यो

न दानवेभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥ ७ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर प्रहलाने कहा—‘हम देवताओं अथवा दानवोंने कभी नहीं डरते । भय क्या बल है ? यह हम जानते ही नहीं हैं ॥ ७ ॥

न यस्माद्भयमहोरोगेभ्यो

भय न सत्ये पतोरुदरेभ्य ।

कथं नु रामाद् भविता भय नो

नरेन्द्रपुत्रात् समरे कदाचित् ॥ ८ ॥

‘हम युद्धमें यशों, राक्षसों, बन्देदे नागों, पक्षियों और नरोंसे भी भय नहीं डरता है । फिर समराङ्गमें राजकुमार रामसे हमें कभी भी डरते भय होगा ? ॥ ८ ॥

प्रहस्तयाक्य स्थहित निशाम्य

विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी ।

ततो महार्घं घञ्चन घभाये

धर्मार्थकामेषु निविण्युदि ॥ ९ ॥

विभीषण राजा रावक मन्त्र दितैषी मे । उनकी बुद्धि का बन् अर्थ और काममें अच्छा प्रयोग था । उन्होंने प्रह्लाद के भक्तिकर बचन सुनकर यह महान् अर्थमें सुन कर कही—॥ ० ॥

प्रहस्त राजा च महोत्तरश्च
त्व कुम्भकर्णश्च यथायनात्म ।
प्रसीत राम प्रति तत्र शम्भ
यथा गति स्वर्गमधममुदे ॥ १० ॥

प्रह्लाद ! महाराज रावक, महोदर, तुम और कुम्भकर्ण—
श्रीरामक प्रति का कुछ कर रहे हो, वह सब सुमारे किये नहीं
हो सकता । ठीक उठी तरह जैसे पाना पुरुषका स्वर्गमें
पहुँच नहीं हो सकता है ॥ १० ॥

वधस्तु रामस्य मया त्वया च
प्रहस्त सर्वैरपि गन्तव्यैः ।
कथं भवन्त्यविदारद्वय
महार्णव ततुमिवापुत्रस्य ॥ ११ ॥

प्रह्लाद ! श्रीराम अर्थविशाल हैं—समस्त कार्यके
सम्पन्नमें कुशल हैं । जैसे बिना बहाव या नौकाक काम महा
सागरका पान नहीं कर सकता, तभी प्रकार तुमने तुममें
अपना समस्त सम्पत्ति भी श्रीरामका वध होना कैसे
सम्भव है ? ॥ ११ ॥

धमप्रधानस्य महारथस्य
इन्द्राकुन्दप्रभवस्य राम ।
पुनोऽस्य त्रैवाक्ष तथाविधस्य
हृत्प्रेषु शक्य भवन्ति मूढा ॥ १२ ॥

‘आधम धमका ही प्रचन बहुत मानत है । उनका
प्रादुर्भाव इन्द्राकुन्दमें हुआ है । व सभी कार्यके सम्पन्नमें
समर्थ और महाराज वार हैं (जहाँने निरुप कवच और
बलीजैव बाणों का लक्ष्य करने यन्त्रक क्षेत्र दिया था) ।
एने प्रविष्ट पण्डितों राजा आधमने सम्पत्ता पड़नेपर तो
देवता भी आना देखेई नूँ बढेंगे (तिर इनपै-तुम्हारी
त बत ही करे है ?) ॥ १२ ॥

तीक्ष्णा न तावत् तत्र कद्रुपथा
दुर्गमना राघवप्रियमुखा ।
भित्वा शरीरं प्रविशन्ति बाणा
प्रहस्त तनैव विक्रयसे त्वम् ॥ १३ ॥

प्रह्लाद ! अर्धशत अथवा चन्द्र हुए कद्रुपथका,
दुर्गम एवं तीव्र का तुम्हारे शरीरका शरीरक करके मीन
नहीं सुने हैं इन्होंने तुम का बड़का बन् २६ है ॥ १३ ॥

भित्वा न तावत् प्रविशन्ति बाण
प्राणान्निधमऽनित्यवशात् ।

निता शरा राघवप्रियमुखा
प्रहस्त तनैव विक्रयसे त्वम् ॥ १४ ॥

प्रह्लाद ! श्रीरामक बाण बलक समस्त के शरीर होने हैं ।
व प्राणोंक अन्त कर हा छेड़त हैं । श्रीरामपथीके धनुष
में छूट हुए व ताव बन् तुम्हारा शरीरक फाड़कर अदर
नहीं सुने हैं इसलिये तुम इनका शरा बचत हो ॥ १४ ॥

न रावणो नानिधलक्षिणीर्गो
न कुम्भकर्णस्य मुनो निकुम्भ ।
न चेन्द्रपिद् दाशरथिं प्रोदु
त्व वा रणे गङ्गामम समर्थ ॥ १५ ॥

पराव ! महाबल विजिण कुम्भकर्णकुमार निकुम्भ और
इन्द्रविजयी मेघनाद भी समग्रद्वारे इन्द्रतुल्य नेत्रवी दशरथ
नन्त श्रीरामका वग समस्त करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १५ ॥

उवाचको चापि नरान्तको वा
तथातिशयोऽनिरयो महामा ।
अकम्पनश्चाद्रिस्मानसार
स्मात् न गता युधि राघवस्य ॥ १६ ॥

‘इवान्तक नरान्तक, अतिक्रम महाबल अनिरथ तथा
पवनक समान गुणित्वाथ अकम्पन भी युद्धभूमिमें श्रीरामनाथ
काफ समने नहीं ठहर सकते हैं ॥ १६ ॥

अथ च राजा व्यमनाभिमुनो
मिश्रैर्मिश्रप्रतिमैर्भगि
अन्धाम्यने गन्धसनादानां
नीक्ष्य प्रहृष्या ह्यमर्षीकपरी ॥ १७ ॥

‘य महाव राजा न कर्मोंक बामूत हैं इसलिये
सब-विचारकर काम नहीं करत हैं । इनक सिवा य स्वभावने
ही करत हैं तथा शम्भोंक सम्पत्ताक लि तुम-जैसे शत्रु
तुल्य मित्रका न करने परानिद रत हैं ॥ १७ ॥

अमन्मभोगेन सहस्रमूढा
नागेन भीमेन महापलेन ।
बलात् परिगृह्यतमिम भवन्तो
रानानमुनिरप्य विमोचयन्तु ॥ १८ ॥

‘अमन् इत्यधिक बल सम्पन्न सभ्य पवनक और
महान् बलशाली नरान्तक ने इस राक्षस को बन्धक अपने

१ राक्षसेने सग स्वयं करते गये है—

बाण-टकाण्ड दशपद-द्वन्द्व-व ।

एतं का स्वयं दत्त स्वयं सत्ता प्रवा ॥

(कान्तक नेमिक बचन शक्तिशाली टोका राक्षस
मुक्ते)

बाण और दण्ड छेड़कर बलक सम्पन्न पवनक
भी बलक और दण्ड—दे गच्छे मग प्रकाशके अपने है ।

गरीरसे आवेष्टित वर रक्ता है । तुम सब लोग मिलकर इसे चपनसे बाहर करके प्राणतन्त्रने बचाओ (अर्थात् धीरम चन्द्रजीक साथ योग बौधना महान् मयने गरीरसे आवेष्टित होनेके समान है । इस भावना व्यक्त करनेके कारण यह निश्चाना अलङ्कार व्यर्थ है) ॥ १८ ॥

यावद्वि केदारप्रदयात् सुहृद्वि
समेव्य सर्वं परिपूर्णकामं ।

निरुद्ध राजा परिरक्षितयो
भूतैर्यथा भीमउल्लेखहीत ॥ १९ ॥

इस राजाके भयना आप शत्रुगारी सभी कामनाएं पूर्ण हुई हैं । आप सब लोग इसका विनोद सुहृद् हैं । अब जैसे भयंकर बलशाली भूतासे घृहीत हुए पुण्यका उल्लेख हीतियी आत्मीयजन उत्तम प्रति बलात्कार करन भी उत्तरी रण करन हैं, उली प्रकार आप सब लोग एकमत होकर—आव यकता हा तो इसने कश परहकर भी इसे अनुचित मार्गपर जानेम एक और सब प्रकारने इसकी रक्षा करें ॥ १९ ॥

सुधारिणा राघवसागरेण
प्रच्छाद्यमानस्तरसा भवद्वि ।

युक्त्स्वय तारयितु समेव
काष्ठरस्थपातालमुखे पतन स ॥ २० ॥

हृकार्ये श्रीमद्भारतमार्के आदिकाव्ये बुद्धकाण्डे जगुर्दत्ता सर्ग ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भारतमार्के आदिकाव्ये बुद्धकाण्डे जगुर्दत्ता सर्ग ॥ १४ ॥

पञ्चदश सर्ग.

इन्द्रजित्द्वारा विभीषणका उपहास तथा निभीषणका उसे कटकारकर
सभामें अपनी उचित सम्मति देना

बृहस्पतस्तुल्यमतेयचक्षुस्त
त्रिदास्य यनेन विभीषणस्य ।
ततो महात्मा घणन उभावे
तथेन्द्रजित्नेर्भतवृक्षमुख्य ॥ १ ॥

निभीषण बृहस्पतिने समान बुद्धिमान् थे । उनका बचनों का जेने-तेसे यह कइसे शूरकर रखतवृक्षपतिवैद्यम प्रपात महाकाय इन्द्रजित्ने यहाँ यह बात कही—॥ १ ॥

किं नाम ते तात कनिष्ठ चाक्षय
मनयक ये यदुभीतयः ।

अस्मिन् कुले योऽपि भयंघ जात
सोऽपीहस नैव वदेत्त जुयात् ॥ २ ॥

भर छोटे नाथा । आप बहुत बड़े हुएकी ओति यह ईदी निरर्थक बात कह रहे हैं । जिसने इस कुलमें जन्म न

उत्तम चरित्ररूपी जन्मे परिपूर्ण भीरपुनायकरी समुद्र
इस दुआ रहा है अथवा यों समझा कि यह भीरुमरूपी पाताल-
के गहने गतम पिर रहा है । ऐसी दशास तुम सब श्रेणीका
मिलकर इसका उद्धार करना चाहिये ॥ २० ॥

इदं पुरस्यास्य सरान्सस्य
राक्षस्य परस्य समुद्रजनस्य ।
सम्पगपि चाक्षय स्वमत प्रवीमि
नेत्रेऽपुत्राय वदातु मेयिनीम् ॥ २१ ॥

यम ता यन्मोहहित इस सारे नगरके और मुद्रदानहित
म्वय महाजन हितक (तब अपनी यही उत्तम सम्मति देता
हूँ कि मैं राजकुमार श्रीरामक हाथोंमें मिलितकुमारों सेता
वा सौंप दूँ ॥ २१ ॥

परस्य धीर्ये स्वयत्त व बुद्ध्या
स्यान क्षय धैर्य तथैव बुद्धिम् ।
तथा स्वपश्येऽप्यनुमृदय बुद्ध्या
वनेत् क्षम स्वामिहित स मन्त्री ॥ २२ ॥

गालवम सभा मन्त्री बही हूँ जो अपने और शत्रु पक्षने
बल-वैद्यमको समझकर तथा दोनों पक्षोंकी स्थिति, शक्ति और
बुद्धिका अपने बुद्धिके द्वारा विचार करने का स्वामीके लिये
हितकर और उचित हो वही बात कहे ॥ २२ ॥

हृकार्ये श्रीमद्भारतमार्के आदिकाव्ये बुद्धकाण्डे जगुर्दत्ता सर्ग ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भारतमार्के आदिकाव्ये बुद्धकाण्डे जगुर्दत्ता सर्ग ॥ १४ ॥

लिया शला, यह पुरुष भी न तो पली बात करेगा और न
ऐसा काम ही करेगा ॥ २ ॥

सत्तघ्न वीर्येण पराक्रमेण
धैर्येण शौर्येण च तजस्ता व ।

एकः कुलेऽस्मिन् पुरुषो विमुक्तो
निभीषणस्ततः कनिष्ठपथ ॥ ३ ॥

विजितजी । हमारे इस शत्रुजित्ने एकमात्र से छोटे
चाचा विभीषण ही बन्, धीर्य, परक्रम, धैर्य, शौर्य और तेज
से रहित हैं ॥ ३ ॥

किं नाम तौ मानुषराजपुत्रा
यन्मात्रमेकेन दि राक्षसत ।

मुपहृतनापि निहन्तुमेतौ
शक्यौ युता भीमपते क्त भीरा ॥ ४ ॥

‘र दाना मानव राजकुमार क्या है ? उन्हें तो हमारा एक साधारण-सा राजस भी मार सकता है फिर मेरे डरपन नाचा ! आप हमें क्या उपाय रहे हैं ? ॥ ४ ॥

त्रिलोकनाथो ननु देवराज
शक्तो मया भूमितले निविष्ट ।
भयार्पिताश्चापि दिशः प्रपन्ना
सर्वे तदा देवगणाः समप्रा ॥ ५ ॥

‘मैंने तीनों लोकों के स्वामी देवराज इंद्रका भी स्वर्गमें हराकर इस भूतलपर लाने दिया था । उस समय सारे देवताओं में सबभूमि का भागकर समस्त त्रिगात्रोंकी गण ली थी ॥ ॥

परावतो निम्नमनुमदन् स
निपातितो भूमितले मया तु ।
विहृष्य दन्तौ तु मया प्रमह्य
त्रिगामिता देवगणाः समप्रा ॥ ६ ॥

‘मैंने दंतपूर्व परागत हाथीन दानों दौल उठाकर उस स्वर्गमें पृथ्वीपर गिरा दिया था । उस समय वह जार-जार से चिन्ताग्रस्त था । अपने इस पराजयमद्भाग मैंने समस्त त्रिगात्रोंका अन्तर्भाग डाल दिया था ॥ ६ ॥

सोऽहं सुराणामपि क्षपहन्ता
दैत्योत्तमानामपि शोककृता ।
कथं नरेन्द्रा मज्जयेत् शक्तो
मनुष्ययोः प्राहृतयोः सुवीर्य ॥ ७ ॥

‘आ दयनाश्रुं भी दर्पना दलन कर सकता है ; बड़-बड़ दैत्यों भी शोकमय कर देनेवाला है तथा जो उत्तम वर पराक्रमसे सम्पन्न है यही मुक्त-जैसा वीर मनुष्य जैसा न साधारण राजकुमारोंका सामना देनेवाला कर सकता है ॥ ७ ॥

अर्धेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य
महीजम्स्तद् वरुण निशम्य ।
ततो महार्घं यचन बभौ
त्रिभीषणः शस्त्रभृता वरिष्ठ ॥ ८ ॥

‘इन्द्रतुल्य तेजस्वी महापराक्रमी दुर्जय वीर इन्द्रचिह्नी यह बात सुनकर शस्त्रधारियों के श्रेष्ठ त्रिभीषणने यह महान् अर्थ मे युक्त यचन करे— ॥ ८ ॥

न तात मन्त्रे तत्र निश्चयोऽस्ति
यत्तत्स्वमद्याप्यपि युधि ।
तस्मात् त्वयाप्यामित्रिनादानय
यतोऽपहीनं यद् विप्रलम्भम् ॥ ९ ॥

‘तात ! अभी तुम बता रहे हैं कि युद्धमें युधि कभी है । युधि में भी तुम बता रहे हैं कि युद्धमें युधि कभी है । युधि में भी तुम बता रहे हैं कि युद्धमें युधि कभी है ।

हुआ है । इसीलिये तुम भी अपने हाँ बिनागक लिये बहुत भी निरर्थक बातें बत गये हैं ॥ ॥

पुत्रप्रयादेन तु रात्रणस्य
त्वमिन्द्रनिमित्तमनुमदोऽस्ति शत्रु ।
यस्येष्टस्य राघवतो विनाश
निशम्य मोहादनुमन्यसे त्वम् ॥ १० ॥

‘इन्द्रजित् ! तुम रात्रणक पुत्र बहलकर भी ऊपरसे ही उलके मित्र हो । भीतरसे तो तुम शत्रु शत्रु ही जान पड़ते हैं । यही कारण है कि तुम श्रीरघुनाथजीक द्वारा राक्षसराज विनाशकी बातें सुनकर भी मान्य उहाँकी हाँ में हाँ मिला रहे हो ॥ १० ॥

त्वमेव चप्यथ सुदुर्मतिश्च
स चापि वप्योय इहानयत्त्वाम् ।
यत्तत् इह साहसिकं च योऽद्य
प्रावेशयामाहता समोपम् ॥ ११ ॥

‘तुम्हीं बुद्धि बहुत ही बुरी है । तुम स्वयं तो मार डालने का योग्य हो ; जो तुम्हें यहाँ भुल गया है ; वह भी यथक ही योग्य है । जिसने आज तुम जैसे आनन्द साहसी बालकका इन मन्त्रहारोंपर समीर आने दिया है वह प्रादुर्भाव ही अपराधी है ॥ ११ ॥

मूढोऽप्रगल्भोऽग्निवोपपन्न
स्तौक्ष्ण्यसम्भोऽल्पमतिदुरात्मा ।
भूरस्त्वमप्यन्तमुदुर्मतिश्च
त्वमिन्द्रिन्दु यालनया द्रवीरि ॥ १२ ॥

‘इन्द्रजित् ! तुम अतिरिक्ती । तुम्हीं बुद्धि परितक्व नही है । निज तो तुम्हें दूत नही मनी है । तुम्हीं स्वभाव बड़ा तीव्र और बुद्धि बहुत धाँसी है । तुम अत्यन्त दुर्बुद्धि ; दुरात्मा और मूर्ख हो । इसीलिये बालकोंकी भाँति निरंतर की बातें करत हो ॥ १२ ॥

को ब्रह्मण्डप्रतिमप्रकाश
नीरिप्यतः कालनिकान्तपान् ।
सहेतु बाणान् यमदण्डकल्पान्
समक्षमुक्तान् युधि राघवण ॥ १३ ॥

‘ममवाक्यं श्रीरामस्य द्वारा युद्धस्य मुहूर्तस्य अनुमोदकम् । इह गव तस्मै वरुण सन्तु ब्रह्मण्डस्य समस्त प्रकाश इति है । कालस्य सन्तु वरुण इति है और यमदण्डस्य सन्तु भयकर इति है । भगवन् इति वरुण सन्तु इति है ॥ १३ ॥

धनानि रत्नानि सुभूषणानि
वासास्त्रिययानि मणौघा विप्रान् ।
सीता च रामाय निषेधं कर्तुं
यत्तत् राघवादि यौगन्धेयः ॥ १४ ॥

‘धनानि रत्नानि सुभूषणानि वासास्त्रिययानि मणौघा विप्रान् । सीता च रामाय निषेधं कर्तुं यत्तत् राघवादि यौगन्धेयः ॥ १४ ॥

‘अत रावन् । इमल्येण भनः, रत्नः, सुन्दर आभूषणः, म समर्पित करक ही गोकरहित होकर इय नगरम निवास कर दिव्य वज्रः निचित्र मणि और देवी सीताको श्रीरामकी सेवा सकृते हूँ ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे पाञ्चदश सर्ग ॥ १५ ॥

इत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आर्यरामायण आदिकाण्डे पाञ्चदशमे पत्रद्वौ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥



षोडश सर्ग

रावणके द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फटकारकर चल देना

सुनिविष्ट हित वाक्यमुक्तवन्त विभीषणम् ।

अग्रधीत् परुष वाक्यं रावण कालचोदित ॥ १ ॥

रावणके विरपर काल में इरा राहा था, इसलिये उसने सुन्दर अर्थसे युक्त और हितकर बात कहनेपर भी विभीषणसे कठोर वाणीमें कहा— ॥ १ ॥

वसेत् सह स्वपत्नेन हृद्वेनाशीरिषेण च ।

न तु मित्रप्रवादेन मयसेच्छत्रुसेविना ॥ २ ॥

‘भाई ! शत्रु और कुविन विरपर साथ रहना पड़े तो रहूँ परन्तु जो मित्र कहछाकर भी शत्रुकी सेवा कर रहा हो, उससे साथ कदापि न रहे ॥ २ ॥

जानामि शीलं ज्ञातीनां स्वलोकेषु राक्षस ।

हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥ ३ ॥

‘राक्षस ! सम्पूर्ण लोकाम सज्जानीय बन्धुओंका जो स्वभाव होता है, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ । जातिवाले सज्जन अपने अन्य सज्जानीवासी आपत्तियामही हृष्य मानते हैं ॥ ३ ॥

प्रधान साधकं वैद्यं यमशीलं च राक्षस ।

ज्ञातयोऽप्यमन्यन्ते शूरा परिभ्रजन्ति च ॥ ४ ॥

‘निशाचर ! जो व्यष्ट होकर कारण रा य पाकर मयम प्रधान हो गया हो, राक्षसायता अच्छी तरह चग रहा हो और निष्ठानः भगशील तथा शूरवीर हो, उसे भी कुटुम्बीनन अपमानित करते हैं और अवसर पाकर उसे नीचा दिखानेकी भी चेष्टा करते हैं ॥ ४ ॥

नित्यमन्योन्यसहृण व्यसनेष्वाततायिनः ।

प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयानरा ॥ ५ ॥

‘जातिवाल सदा एक दूसरेपर सख्त आनेपर हृष्यक अनुमान करते हैं । य बड़े आततायी होते हैं—मोक्ष पड़नेपर आग लगाने, जन्म देने, शस्त्र चलयने, धन हड़पने और भेज तथा क्रीका अपहरण करनेम भी नहीं हिचकते हैं । अपना मनोमान छिपाय रहते हैं’ अतएव क्रूर और भयकर होते हैं ॥ ५ ॥

भूयन्ते हस्तिभिर्गताः इलेका पद्मपते पुरा ।

पादाहस्तान् नरान् दृष्ट्वा शृणुष्व गदतो मम ॥ ६ ॥

पूर्वकालकी बात है, पद्मवनम हाथियोंने अपने हृदयने

उद्गार प्रकट किये थे, जो अब भी ‘लोकिक रूपम गाये और सुने जात हैं । एक बार कुछ लोगोंका हायम कंदा लिये आते देख हाथियोंने जो बातें कही था, उन्हें बता रहा हूँ, सुनने सुना ॥ ६ ॥

नामिनोन्मानि शस्त्राणि न पश्या भयावहा ।

घोरा स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयानरा ॥ ७ ॥

‘हम अग्नि, दूसरे-दूसरे शस्त्र तथा पाग भय नहीं दे सकते । हमारे लिये तो अपने स्वार्थी जति भाई ही भयानक और खतरेकी वस्तु हैं ॥ ७ ॥

उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र नशय ।

हृत्स्नाद् भयानरातिभयं कुक्कटं विहितं च न ॥ ८ ॥

‘ये ही हमारे परहू जानेका उपाय बना दगे, इसम नशय नहीं अत सम्पूर्ण मर्यादी अपेक्षा हमें अपने जति भाइयाने प्राप्त शस्त्रवाद्य भय ही अधिक कल्याणक जान पड़ता है’ ॥ ८ ॥

विघते गोपु नम्यन्त विघते ज्ञातितो भयम् ।

विघते स्त्रीषु चापत्य विघते ब्राह्मणे तपः ॥ ९ ॥

‘जने गौत्रम इव्य कश्यपी लग्नति दूध होता है, जियोंमें चपलता हाती है और ब्राह्मणमें तपस्या रहा करती है, उसी प्रकार जति भाइयोंसे भय अवश्य प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

ततो नेष्टमिदं सौम्य यद्दह लोकसत्कृतः ।

प्रेक्षयमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थित ॥ १० ॥

‘अन सौम्य ! आज जो सारा सगर मेरा सम्मान करता है और मैं जो एवम्यवान्, कुलान और शत्रुओंका विरपर स्थित हूँ, यह सब तुम्हें अभीष्ट नहीं है ॥ १० ॥

यथा पुण्यरपयेषु पतितास्तोयविन्द्व ।

न ह्येषमभिगच्छन्ति तयानार्थेषु स्वीहृद्म् ॥ ११ ॥

‘जैसे कमलने पत्तेपर गिरी हुई पानीकी बूँदें उसमें सती नहीं हैं, उसी प्रकार अनार्थोंके हृदयमें गोहार्म नहीं पड़ता है ॥ ११ ॥

यथा शरदि मघाना सिञ्चलामपि गजताम् ।

न भयमुत्सन्नेदस्तगलायेषु सौहृदम् ॥ १० ॥

जैसे शत्रु मृतुमें गवन और बरसन हुए मर्षों जग
मे घली गीली नहीं होती है, उसी प्रकार अनायों हृदयमें
स्नेहजनित आर्द्रता नष्ट होती है ॥ १२ ॥

यथा मधुकरस्तपाद् रसं विन्दन्ति तिष्ठति ।
तथा त्वमपि तत्रैव तयानायेषु सौहृदम् ॥ १३ ॥

जैसे मीठा बड़ी चाहते फूलों का रस पीता हुआ भी यहाँ
गहला नहीं है, उसी प्रकार अनायोंमें सुहृदजनित स्नेह नहीं
रिक्त पता है । तुम भी ऐसे ही अनाथ हो ॥ १३ ॥

यथा मधुकरस्तपात् काशपुष्पं पियत्रपि ।
रसमत्र न विन्देत् तयानायेषु सौहृदम् ॥ १४ ॥

जैसे भ्रमर खड़ी इच्छामें काश फूल का रस कर तो
रसमें रस नहीं पा सकता, उसी प्रकार अनायोंमें जो स्नेह
होता है, वह किछक लिए लाभदायक नहीं होता ॥ १४ ॥

यथा पूर्वं गजं स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
नृपयत्यात्मनो देहं तयानायेषु सौहृदम् ॥ १५ ॥

जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर दूँहसे धूल उछालकर
अपने शरीर का गंदह्व कर लेता है उसी प्रकार दुर्जनो की मेघो
दूषित होती है ॥ १५ ॥

योऽप्यस्त्वेवमिदं घृणाद् वाग्यमेतन्निशाचर ।
अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत् तेषां धिक् कुलपामन ॥ १६ ॥

‘गुणलङ्घन निगानर । तुसे पिबारा है । यदि तरे सिवा
दुष्ट काई एसी बातें कहता तो उसे इसा मुहूर्तमें अपने प्राणा
में हाथ धाना पड़ता’ ॥ १६ ॥

इत्युक्तं पश्य वाक्यं न्यायवादी विभीषण ।
उपपातं गदापाणिधनुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १७ ॥

विभीषण न्यायानुबल्ल बाव कह रहे थे ता भा रावणने
जब उनने ऐसे प्रकार बचन कहे, तब वे हाथमें गदा लेकर
अन्य चार राक्षसों साथ उनी समय उठकर आकाश
चले गये ॥ १७ ॥

अग्रवीर्य तदा वाक्यं जातमेधा विभीषण ।
अन्तरिगगतं धीमान् भ्राता वै गार्ग्यमाधिपम् ॥ १८ ॥

जब समय अन्तरिपमें खड़े हुए तेजस्वी भ्राता विभीषण
न कुणित होकर राक्षसरायणमें गया— ॥ १८ ॥

स त्वं भ्राताऽस्मि मे रावन्महर्षि मा यद् यदिच्छसि ।
ज्येष्ठो मान्यं पितृममो न च धमपथे स्थितः ॥ १९ ॥

इदं हि परम वाक्यं न क्षमास्पृष्टजस्य ते ॥ २० ॥
परम । तुम्हारी बुद्धि भ्रमने पड़ी हुई है । तुम धर्मके
मार्गपर नहीं हो । मैं तो मेरा बड़े भर्षा होनेके कारण तुम
जितना समान आश्रयी हूँ । इसलिए मुझे खेद-खेद नहीं, बर

ले परतु अग्रज होनेपर भी तुम्हारा इन प्रकार बचनना कदापि
नहीं कह सकता ॥ १ ॥

मुनीव हितकामेन वाग्यमुक्तं दशानन ।
न शृङ्खल्यहतात्मानं कालस्य यशमागता ॥ २० ॥

‘दशानन । जो अजिह्विष्ठि पुरुष गालर गणीभूत हो
जाते हैं, वे हितकी कामनामें कहे हुए सुन्दर नातिमुक्त
बचनों को भी नहीं ग्रहण करते हैं ॥ २० ॥

सुलभां पुर्या रावन् सततं प्रियवादिन ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता धोता च दुलभ ॥ २१ ॥

पावन । मया प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें कहने
गान लगता तो मुगमगमें मिल सकता है परतु जो सुनेमें
अप्रिय किंतु परिणामम गितकर हो, ऐसी बात कहने और
मुनेवाला दुलभ होते हैं ॥ २१ ॥

यद्वा काव्यं पापेन सधभूतापहारिण ।
न नदयन्त्यमुपेक्षे त्वा प्रदीपि शरणं यथा ॥ २२ ॥

तुम गमल प्राणियों का शरण करनेवाला कालके पापमें
बैच चुक हो । जिसमें आग लग गयी हो, उस परकी मोति
नष्ट हो रहे हो । ऐसी स्थिति में तुम्हारी उपेक्षा नहीं कर
सकता था, इसीलिये तुम्हें हितकी बात सुना दी थी ॥ २२ ॥
दीक्षपात्रकर्मकागै निनि काञ्चनभूषणैः ।

न स्वामिन् ग्राम्यहं द्रष्टुं गमेण निहत शक्तिः ॥ २३ ॥

आपमर सुवर्णभूति बाण प्रचलित अभिनय समान
तजस्वी और तापे हैं । मैं भीषमर बाण नन शक्तिसे तुम्हारी
मुख्य नहीं देखना चाहता था, इसीलिये तुम्हें समझानेकी चेष्टा
की थी ॥ २३ ॥

शूराश्च बलवन्तश्च हतात्माश्च नरा रणे ।
कालभिरपक्षां सदिदिनं यथा वातुरमेव ॥ २४ ॥

‘कालर गणीभूत होनेपर यह-यह गुर-गुर करके बलवान् और
अचचेता भी वा दूरी भाते या बाँधकर गमल नष्ट हो जाते हैं ।

तत्राययतु यद्येतं शूरत्वादितमिच्छता ।
आमानं सर्वथा रज्यं पुरीं चेमां सरावन्माम् ।

स्वस्ति तेऽस्तु रामिण्यामि सुखी भव मया विना ॥ २५ ॥

गालवाव । मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ । इसीलिये जो
तुम भी कहा है वह यदि तुम्हें अपना नहीं लगता तो उनक
लिए मुझे ऐसा करना पड़ेगा कि तुम मेरे बंधू भाई हो । अब
तुम अपनी तथा शत्रुओंके हित इस समान लक्षणपुत्री सब
प्रकारने रखा करो । तुम्हारा कल्याण हो । अब मैं यहाँसे चला
दऊँगा । तुम मेरे बिना सुखा हो जाओ ॥ २५ ॥

निशयमाणस्य मया हितरिणः
न शोभते ते धनं निशाचर ।

परान्तरादे हि गतायुषो नरा
हितं न शृण्वन्ति मुहुरिदं विस्मृतम् ॥ २६ ॥

निशचरगव । मैं तुम्हारा मित्र हूँ । इसीलिये मैंने

तुम्हें धार-वार अनुचिन्तनार्थ पर चलनेसे राका है, किन्तु तुम्हें मेरा
शत अच्छी नहीं लगती है। वास्तवमें जिन लोगोंकी आयु

समाप्त हो जाती है, वे जीवात्क अन्तर्मलम अपने सुदृढात्म
कही हुई हितकर बात भी नहीं मानते हैं॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यमीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आनंदरामायण भाटिकाव्यक युद्धकाण्डमें सोह्रवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आना और श्रीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ
उन्हें आश्रय देनेके विषयमें विचार करना

इत्युक्त्वा पश्य वाक्य रावण राजानुज ।

आजगाम मुहूर्तेन यत्र राम सलक्ष्मण ॥ १ ॥

राजपते ऐसे कठोर वचन कहकर उमक गये भाई
विभीषण दो ही वहीमें उस स्थानपर आ गये, जहाँ लक्ष्मण
सहित श्रीराम विराजमान थे ॥ १ ॥

त मेकशिखराकारं धीमतामित्रं शतह्वयम् ।

गगनस्थं महीस्थास्ते दृष्टुमवानराधिपा ॥ २ ॥

विभीषणका शरीर सुमेक पर्यंतके शिखरके समान ऊँचा
था। वे आकाशम चमकती हुई शिखरके समान जान पड़ते
थे। पृथ्वीपर उड़े हुए वानरयूथपतियोंने उन्हें आकाशम
स्थित देखा ॥ २ ॥

ते चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भामत्रिक्रमा ।

तेऽपि यमायुधोपेता भूषणोत्तमभूषिता ॥ ३ ॥

उनके साथ जो चार अनुचर थे। न आ बड़ा भयकर
परक्रम प्रकट करनेवाला था। उद्धान भी वचन धारण करके
अन्न शाल ले रखे थे और ये सब के-सब उत्तम जाभूषणोंसे
विभूषित थे ॥ ३ ॥

स च मेघाचलप्रख्यो यस्यायुधसमप्रभः ।

वरायुधधरो धीरो दिव्यभरणभूषितः ॥ ४ ॥

वीर विभीषण भी मेघ और पर्यंतके समान जान पड़ते
थे। वज्रधारी इन्द्रके समान तेजस्वी, उत्तम आयुधधारी और
दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थे ॥ ४ ॥

तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो यानराधिपः ।

धानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

उन चारों रक्षकोंके साथ पाँचव विभीषणका देखकर दुर्धर्ष
एवं बुद्धिमान् वीर यानराज सुग्रीवने वानरोंके साथ विचार
किया ॥ ५ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्ते तु यानरास्तानुवाच ह ।

हनुमत्प्रमुखान् सयानिद् वचनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

मोड़ी देतक सेवकर उठाने हनुमान् आदि सब यानरों
से यह उत्तम बात कही—॥ ६ ॥

एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ।

राक्षसाऽप्येतैः पदय शमस्तान् हन्तुन सक्षयः ॥ ७ ॥

(देखो) सब प्रकारके अन्न गलोंसे सम्पन्न यह राक्षस दूखरे
चार निशाचरोंके साथ आ रहा है। इसमें संदेह नहीं कि यह
हम मारनेके लिये ही आता है ॥ ७ ॥

सुग्रीवस्य वचं श्रुत्वा सर्वे ते यानरोत्तमाः ।

शालानुधम्य वीलाश्च इदं वचनमब्रुवन् ॥ ८ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर ये सभी श्रेष्ठ यानर सालूष
और पर्यंतकी शिलाएँ उठान् इस प्रकार बोले—॥ ८ ॥

शीघ्रं व्याविशन्नो राजन्वधापैवा दुरात्मनाम् ।

निपतन्ति हता यावद् धरण्यामल्पचेनना ॥ ९ ॥

(राजन्! आप शीघ्र ही हमें इन दुरात्माओंके वधकी
आज्ञा दीजिये, जिससे ये मन्दमति निगाचर मरकर ही इस
पृथ्वीपर गिरें ॥ ९ ॥

तेषां सम्भाषमाणानामन्योन्यं स विभीषणः ।

उत्तरं तीरमास्ताय खस्य एव व्यतिष्ठत ॥ १० ॥

आपसमें ये इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि विभीषण
गुप्तके उत्तर तटपर आकर आकाशमें ही लड़े हो गये ॥ १० ॥

स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महत् ।

सुग्रीव ताश्च सस्पर्क्ष्य खस्य एव विभीषणः ॥ ११ ॥

महाबुद्धिमान् महापुरुष विभीषणने आकाशमें ही खित
रुद्धकर सुग्रीव तथा उन वानरोंकी ओर गेवते हुए उभर खर
से कहा—॥ ११ ॥

रावणो नाम दुर्बुद्धो राक्षसो राक्षसेश्वरः ।

तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ १२ ॥

(रावण नाममा जो दुराचारी राक्षस निशाचरोंका राज
है, उसीका मैं छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है ॥ १२ ॥

तेन सीता जनम्यानादृता हत्या जटायुषम् ।

रुद्धा च विषया रीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ १३ ॥

(रावणने जटायुकी मातरर कन्यानेसे सीताका अपहरण



आराधने स्थित होकर विभीषण उच्च स्वरसे अपना परिचय द रहे हैं

तुम्हें बार बार अनुचित मागपर चलनेसे राका ह; कि तुम्हें मेरा
गत अच्छी नहीं लगती है। वास्तवम जिन लोगों की आयु

समाप्त हो जाती है, वे जीवनक अन्तरालम अपने मुद्गोंकी
बहा हुइ हितकर गत भी नहीं मानते हैं ॥ २६ ॥

इसार्थ श्रीमद्भारमयण धारमीकीये आदिवाक्ये युद्धकाण्डे षोडश सर्ग ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीराक्षसीनिर्मित आरामायण आदिकाव्यक युद्धकाण्डमे सोहर्दों सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥



सप्तदश सर्ग

विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आना और श्रीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ

उन्हें आश्रय देनेके विषयमें विचार करना

इयुक्त्या एकद वाक्य रावण रावणानुज ।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र राम सलङ्गमण ॥ १ ॥

रागसे ऐमे कठार वचन कहकर उनके छोटे भाई
विभीषण दो ही बहीम उस स्थानपर आ गया, जहाँ लङ्कामण
सहित श्रीराम विराजमान थे ॥ १ ॥

त मेरुशिखराकार दीप्तामित्र शतहृद्दाम् ।
गगनस्थ महीस्थाले दृष्टशुभानराधिप ॥ २ ॥

विभीषणका शरीर सुमेरु पत्रके णिखरके समान ऊँचा
था। वे आनाशम चमकती हुई त्रिज्जनीके समान जान पड़ते
थे। पृथ्वीपर खड़े हुए बलरयूषपतियोंने उन्हें आकाशमें
स्थित देखा ॥ २ ॥

ते चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भीमशिरसा ।
तेऽपि वमायुधोपेता भूषणोत्तमभूषिता ॥ ३ ॥

उनके साथ जो चार अनुचर थे। वे भी वन भण्डार
परकम प्रकट करनेवाले थे। उहान भा फवच धारण करके
अस्त्र शस्त्र ले रखे थे और वे सबके-सब उत्तम आभूषणोंसे
विभूषित थे ॥ ३ ॥

स च मेघाचलप्रणयो वज्रायुधसमप्रभ ।
वरायुधधरो धीरो दिव्याभरणभूषित ॥ ४ ॥

धीर विभीषण भी मेघ और पर्यन्ते समान जान पड़ते
थे। वज्रधारी इन्द्रके समान तेजस्वी, उत्तम आयुधधारी और
दिव्य आभूषणोंसे अलङ्कृत थे ॥ ४ ॥

तमात्मपञ्चम दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिप ।
धानैः सह दुर्धर्गश्चित्तयामास सुदिमान् ॥ ५ ॥

उन चारों राक्षसोंके साथ पाँचवें विभीषणको देखकर दुर्धर्ग
एवं सुदिमान् धीर वानराज सुग्रीवने वानरोंके साथ विचार
किया ॥ ५ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्ते तु वानरास्तानुवाच ह ।
हनुमत्प्रमुखान् सवानिष्ट वचनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

धोड़ी देरतक सोचकर उन्होंने हनुमान् आदि सब वानरों
से यह उत्तम बात कही—॥ ६ ॥

एष सत्रायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ।
राक्षसोऽभ्येति पश्यधर्मस्मान् हन्तुम सशय ॥ ७ ॥

येलो! सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे सज्जन यह राक्षस दूतों
चार निशाचरोंके साथ आ रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि यह
हमें मारनेके लिये ही आता है ॥ ७ ॥

सुग्रीवस्य चक्षुः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमा ।
शाल्लोलुपस्य शील्यश्च हृद् वचनमनुवन् ॥ ८ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ वानर बालक
और पर्यन्तकी त्रिज्जनी उठाकर इस प्रकार बोले— ॥ ८ ॥

श्रीघ्न व्यदिश नो राजन्वधायैवापुरात्मनाम् ।
निपतन्ति हता यावद् धरण्यामलपचेतना ॥ ९ ॥

भाजन! आप श्रीघ्न ही हमें इन दुष्ट-माओंके वधकी
आज्ञा दीजिये, जिससे ये मन्त्रमणि निगाचर मरकर ही इन
पृथ्वीपर तिरें ॥ ९ ॥

तेषा मन्भाषमाणानामन्योन्य स विभीषण ।
उत्तर तीरमानाद्य खलस्य पद व्यतिष्ठन् ॥ १० ॥

आपसम ने इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि विभीषण
मनुष्य उत्तर तटपर आकर आकाशमें ही गढ़े हो गये ॥ १० ॥

स उवाच महामाघ स्यरेण महता महान् ।
सुग्रीव ताश्च सस्मेक्ष्य खलस्य पद विभीषण ॥ ११ ॥

महाहृदिमान् महापुरुष विभीषणन आकाशमें ही स्थित
रखकर सुग्रीव तथा उन वानरोंकी ओर देखने हुए उच्च स्वर
से कहा—॥ ११ ॥

रावणो नाम दुर्धृत्तो राक्षसो राक्षसेदरः ।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ १२ ॥

रावण नामरा जो दुष्टचारी राक्षस निशाचरोंका राजा
है, उसीरा मैं छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है ॥ १२ ॥

तेन सीता जनस्थानाद्धता हत्वा जटायुपुम् ।
रुद्धा च विजया वीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ १३ ॥

रावणने जटायुकी मायकर जनस्थानसे सीताका अपहरण



आमामें मित होकर विभीषण उच खासे अपना परिचय द रह हैं

Case	Age	Sex	Occupation	Duration of illness	Onset	Course	Outcome
1	25	Male	Farmer	10 days	Acute	Recovery	Good
2	30	Female	Teacher	15 days	Subacute	Recovery	Good
3	35	Male	Engineer	20 days	Chronic	Recovery	Good
4	40	Female	Homemaker	25 days	Acute	Recovery	Good
5	45	Male	Businessman	30 days	Subacute	Recovery	Good
6	50	Female	Retired	35 days	Chronic	Recovery	Good
7	55	Male	Farmer	40 days	Acute	Recovery	Good
8	60	Female	Teacher	45 days	Subacute	Recovery	Good
9	65	Male	Engineer	50 days	Chronic	Recovery	Good
10	70	Female	Homemaker	55 days	Acute	Recovery	Good
11	75	Male	Businessman	60 days	Subacute	Recovery	Good
12	80	Female	Retired	65 days	Chronic	Recovery	Good
13	85	Male	Farmer	70 days	Acute	Recovery	Good
14	90	Female	Teacher	75 days	Subacute	Recovery	Good
15	95	Male	Engineer	80 days	Chronic	Recovery	Good

क्रिया या । उगाने दान एव अस्त्राय सत्ताको रोक्क रक्ता
हे । इन दिनों सीता राक्षसियों पहलेमें रहती हैं ॥ १३ ॥

तमह हेतुभिराक्यैर्विनिधैश्च न्यदशायम् ।
साधु नियात्यता सीता रामयेति पुन पुन ॥ १४ ॥

‘मैंने भौंति भौंति युक्तिरूपन वचनोंद्वारा उमे बारबार
समझाया कि तुम श्रीरामचन्द्रजी की सेवामें सीताको सादर
लौटा दो—इसीमें मगढ़ है ॥ १४ ॥

स च न प्रतिजग्राह राखणं कालजोदित ।
उच्यमान हित वाक्य निपरीत इतीयधम् ॥ १५ ॥

‘व्यपि मैंने यह बात उसन हिनके लिये ही कही थी;
तथापि कालने प्रेरित होनेर राखण राखणने मेरी बात नहीं
मानी । ठीक उसी प्रकार, जैसे मरणाल्पन पुरुष औरष नहीं
लेता ॥ १५ ॥

सोऽह परुषितस्तेन दासराज्याग्रमानित ।
त्यक्त्वा पुत्राश्च दाराश्च राखण शरण गतः ॥ १६ ॥

‘यही नहीं, उसने मुझे बहुत-सी कठोर बातें सुनायीं और
दासरी भौंति मेरा अग्रमान किया । इसलिये मैं अपने स्त्री
पुत्रोंको वहीं छोड़कर श्रीरघुनाथजी की शरणमें आया हूँ ॥ १६ ॥

निवेद्यत मा विप्र राघवाय महात्मने ।
सरलोकशरणाय निर्भीषणमुपस्थितम् ॥ १७ ॥

‘वाग्यो ! जो समस्त लोकोको शरण देनेवाले हैं, उन
महात्मा श्रीरामचन्द्रजीर पास जाकर गीम मेरे आग्रमनरी
सूचना दो और उनमें बहो—‘गरणाथी विमार्ण सेवामें
अस्थित हुआ है’ ॥ १७ ॥

पतत्तु वचन ध्रुवा सुप्रीतो लघुग्रिमः ।
लक्ष्मणस्याग्रतो राम सरधमिदमग्रित् ॥ १८ ॥

निभीषणरी यह बात सुनकर श्रीप्रणामी सुप्रीतने उरत
ही भगवान् श्रीरामर पास जाकर लक्ष्मणर सामने ही कुछ
आवेदान् नाथ इस प्रकार कहा— ॥ १८ ॥

प्रविप्र शत्रुमैत्र्य हि प्राप्तः शत्रुरतकृतिः ।
निहन्त्यादन्तर लब्ध्या उलूको वायसान्निः ॥ १९ ॥

‘प्रभो ! आज कोइ वैरी, जो राक्षस होनेर कारण पहले
हमार शत्रु राखणरी सेनामें सम्मिलित हुआ था; अब
अहम्नात् हमारी सेनामें प्रवेश पानेक लिय आ गया है । वह
मोका पाकर हमें उसी तरह मार डाल्या, जैसे उलूक कौआका
काम तमम कर देता है ॥ १९ ॥

मन्त्रे व्यूह नये चारे युक्तो भरितुमहसि ।
यानराणा च भद्र ते परया च परतपः ॥ २० ॥

‘गानुओंका स्थाप देनेवाला युनन्तन ! अब अग्रध
अग्ने बनरतनिर्घोर अनुग्रह और शत्रुओंका निग्रह करनेक

लिय बाधाकायक विचार, सेनारी मार्चरी, नीतियुक्त उपायों
के प्रयोग तथा युगचरणी नियुक्ति आदिक विषयमें सतत
सावधान रहना चाहिये । ऐसा करनेसे ही आपका मल
होगा ॥ २० ॥

अन्तधानगता होने राक्षसा कामरूपिण ।
शूराश्च निहृतिशस्त्रा तेया जातु न विभ्वसेत् ॥ २१ ॥

‘ये राक्षसयोग मनमाना रूप धारण कर सकते हैं । इनमें
अन्तधान होनेकी भी गति होती है । शूरवार और मायारी ता य
होते ही हैं । इसलिये इनका कभी निगमन नहीं करना
चाहिये ॥ २१ ॥

प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य राखणस्य भवेद्यम् ।
अनुग्रहिद्य सोऽस्मात्तु भेद कुयात्त सदाय ॥ २२ ॥

‘सम्भव है यह राक्षसराखणराक्षस काइ गुमचर हो । यदि
ऐसा हुआ तो हमलोगोंमें घुसकर यह कूट पैदा कर दगा,
इसमें सदेह नहीं ॥ २२ ॥

अथ वा स्वयमेवैव लिङ्गद्रमासाद्य बुद्धिमान् ।
अनुग्रहिद्य विभ्वस्ते कदाचित् प्रहरेदपि ॥ २३ ॥

‘अथवा यह बुद्धिमान् राक्षस छिद्र पाकर हमारी विभन्न
सेनार भीतर घुसकर कभी स्वर ही हमलोगोंपर प्रहार कर
बैठेगा, इस बातरी भी सम्भावना है ॥ २३ ॥

मिश्राट्रविचल चैव मौल्यमृन्मयः तथा ।
सममेतद् बलं प्राह्य यजनिव्या द्विपहलम् ॥ २४ ॥

‘मिश्रोंकी, जंगली जानियोंकी तथा परम्परागत भूत्वोंकी
जो सेनाएँ हैं, इन सररा समग्र ता किया जा सकता है त्रिपु
जो शत्रु-बले मित्र हुए हों, ऐसे सैनियोंका समग्र कदापि नहीं
करना चाहिये ॥ २४ ॥

प्रष्टव्या राक्षसो ह्येव भ्रातामित्रस्य वै प्रभो ।
आगतश्च त्रिपु साक्षात् कथमस्मिन् विभ्वसेत् ॥ २५ ॥

‘प्रभो ! यह स्वभाक्ने ता राक्षस है हा; अनेका गानुरा
भाइ भी बता रहा है । इस दृष्टिमें यह शत्रु हमारा शत्रु ही
यही आ पहुँचा है त्रि इतर कैम विश्वस किया जा सकता
है ॥ २५ ॥

राखणस्यानुतो भ्राता निर्भीषण इति श्रुत ।
चतुर्भि सह रक्षोभिभयन्त शरण गतः ॥ २६ ॥

‘पराकाश दृष्टा भाइ जो निर्भीषणक नामक प्रसिद्ध है
चार राक्षसोंर साथ आकरा शरणमें आता है ॥ २६ ॥

राखणने प्रणीत हि तमरहि निर्भीषणम् ।
तस्याह निग्रह मन्ये क्षम क्षमयता यः ॥ २७ ॥

‘अन्य राक्षसोंका योकाश नष्ट हुआ है । मन्सी ।
जिना व्यनर कानरागोंमें भेड रखना । मैं तो उसका
कैद कर लेता ही उचित समझता हूँ ॥ २७ ॥

राक्षसो जिह्वाया बुद्ध्या सन्निधौऽयमिहागतः ।

प्रहृतो मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥ २८ ॥

निधाय श्रीराम । मुझ तो ऐसा जान पड़ता है कि यह राक्षस राजपते कहनेसे ही यहाँ आया है । इसकी बुद्धिमें सुविष्टता भरी है । यह मायासे जिहा गेगा तथा जब आप इसपर पूर्ण विश्वास करके इसकी ओरसे निश्चिन्त हो जायेंगे, तब यह आपहीपर चोट कर बैठेगा । इसी उद्देश्यसे इसका यहाँ आना हुआ है ॥ २८ ॥

यथ्यतामेव तीव्रेण दण्डेन नचिवै सह ।

गवणस्य नृशसस्य भ्राता होय त्रिभीरण ॥ २९ ॥

‘यह महात्मा रावणका भाई है, इसलिये इसे कठोर दण्ड देकर इसके मन्त्रियासहित मार डालना चाहिये’ ॥ २९ ॥

यवमुक्त्वा तु त राम सरब्धो वाहिनीपति ।

धान्यशो धान्यबुद्ध्या ततो मौनमुपागमत् ॥ ३० ॥

बातचीतकी कला जाननेवाले एव रोपमें भरे हुए मेनापति मुग्धीन प्रवचनकुशल श्रीरामसे ऐसी बातें कहकर चुप हो गये ॥ ३० ॥

सुमीरयस्व तु तद् धान्य श्रुत्वा रामो महागल ।

समीपस्थानुवाचेद् द्रुमम्यमुखाद् कपीन् ॥ ३१ ॥

सुमीरका यह वचन सुनकर महाकली श्रीराम अपने निकट बैठे हुए द्रुमान् आदि जानरोंसे इस प्रकार बोले—॥ ३१ ॥

यदुच्च कपिराजेन राजणावरज प्रति ।

धाक्य हेतुमदात्ययं भगद्विरपि च भुतम् ॥ ३२ ॥

‘जानरा । जानरराज सुमीरने रावणके छांट भाई त्रिभीरण के नियममें जो अत्यन्त बुद्धियुक्त पातें कही हैं, वे द्रुम स्त्रियों भी सुनी हैं ॥ ३२ ॥

सुहृदामर्षिहृत्पु युक्त बुद्धिमता सदा ।

समर्थनोपसर्देः शाश्वती भूतिमिच्छता ॥ ३३ ॥

‘मित्रोंकी स्थायी उन्नति चाहनेवाले बुद्धिमान् एव समर्थ पुरुषों दत्तव्याकर्तव्यर विषयमें सदा उपस्थित होनेपर सदा ही अपनी समझि दनी चाहिये’ ॥ ३३ ॥

इत्येव परिपृष्टास्ते स्व स्व मतमतीव्रता ।

मोपचार तदा राममूधुः प्रियचिकीर्षय ॥ ३४ ॥

इस प्रकार सगह पूछी जानेपर श्रीरामने प्रिय करनेकी इच्छा रखनेवाले वे सब जानर आपस छोड़ उत्साहित हो स्मर अपना-अपना मत प्रस्तुत करने लगे—॥ ३४ ॥

अज्ञान नास्ति ते किञ्चित् शिषु लोकेषु राघव ।

आत्मा पूजयन् राम पृच्छम्यस्मान् सुहृत्तया ॥ ३५ ॥

‘अज्ञानन । तीनों व्यक्तियोंमें शत्रु एषी बात नहीं है, जो आपका शत्रु न हो, तथापि हम आपसे अपने ही अङ्ग हैं,

अत आप मित्रभावसे हमारा सम्मान करने हुए हमसे सलाह पूछते हैं ॥ ३५ ॥

त्व हि सत्यमत शूरो धार्मिको दृढविक्रम ।

परीक्ष्यकारी म्मृतिमान् निष्पण्णता सुहृत्सु च ॥ ३६ ॥

‘आप सत्यवती, शूरवीर, धर्मात्मा, सुदृढ पराक्रमी, जोंच बूझकर काम करनेवाले, स्मरणशक्तिसे सम्पन्न और मित्रोंपर निष्वास करके उन्हाक हाथोंमें अपने आपको साप देनेवाले हैं ॥ ३६ ॥

तस्मादेकैकरास्ताग्दं ब्रुवतु मन्त्रिवास्तव ।

हेतुतो मत्तिसम्पन्ना मन्मथोऽप्य पुन पुन ॥ ३७ ॥

‘इसलिये आपको सभी बुद्धिमान् एव सामर्थ्यशाली मन्त्रि एक एक करके गरी-गरीसे अपने बुद्धियुक्त विचार प्रस्तुत करें’ ॥ ३७ ॥

इत्युक्ते राघवायाथ मतिमान्द्रुदोऽग्रज ।

त्रिभीरणपरीक्षार्थमुवाच वचन हरि ॥ ३८ ॥

जानरोंसे ऐसा कहनेपर सबसे पहले बुद्धिमान् जानर अङ्गद त्रिभीरणकी परीक्षाके लिये मुस्ताव देते हुए भीरुनायकीसे बोले—॥ ३८ ॥

शयो सकाशान् सभ्यात् सर्वायातम्यपय हि ।

विश्वामनीय सहसा त कर्तव्यो त्रिभीरण ॥ ३९ ॥

‘भगवान् । त्रिभीरण बहुत पासमें आया है, इसलिये उसपर अपनी हाइका ही करनी चाहिये । उसे छद्म विधासपात्र नहीं बना लेना चाहिये ॥ ३९ ॥

छादयित्वाऽऽत्मभाव हि चरन्ति शठबुद्धयः ।

प्रहरन्ति च रघ्रेषु सोऽनर्थं सुमहान् भवेत् ॥ ४० ॥

‘बहुतसे शठवर्ण विचार रखनेवाले लोग अपने मनमें धाकती जिपाकर विचरने रहते हैं और मौका पाते ही प्रहार कर बैठते हैं । इसमें बहुत बड़ा अनर्थ हो जाना है ॥ ४० ॥

अर्थानर्थो विनिश्चित्य व्यग्रसाय भजेत् ॥

गुणतः समग्रं बुधाद् योगतस्तु विसर्जयेत् ॥ ४१ ॥

‘अतः गुण दोषका विचार करके पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि इस व्यक्तिमें अर्थकी प्राप्ति होगी या अनर्थकी (यह हितकर साधन करण या अहितकर) । यदि उसमें गुण हो तो उसे स्वीकार करे और यदि दोष दिखायी दें तो त्याग दे ॥ ४१ ॥

यदि दोषो महास्तसि सत्यन्यतामनिदादितम् ।

गुणान् वापि यद्वृत्तं श्रुत्वा समग्रं प्रियता नृप ॥ ४२ ॥

‘महाराज । यदि उसमें महान् दोष हो तो निश्चय ही उसका त्याग कर देना ही उचित है । गुणोंकी दृष्टिसे यदि उसमें बहुतसे सद्गुणोंन होनेका पता लगे, तभी उस व्यक्तिसे अपनापना चाहिये’ ॥ ४२ ॥

शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्यं वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमस्मिन् नरव्यात्र चारुं प्रतिविधीयताम् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर शरभने सोच विचारकर यह सार्यक बात कही—
'पुरुषसिंह ! इस विभीषणने ऊपर शीम ही कोई गुप्तचर
नियुक्त कर दिया जाय ॥ ४३ ॥

प्रणिधाय हि चारेण यथावत् सूक्ष्मबुद्धिना ।
परीक्ष्य च तत् कार्यो यथान्याय परिग्रहः ॥ ४४ ॥

'सूक्ष्म बुद्धिवाले गुप्तचरको भेजकर उसने द्वारा यथावत्
रूपसे उसकी परीक्षा कर ली जाय । इसने जाद यथोचित
रीतिसे उसका संग्रह करना चाहिये' ॥ ४४ ॥

जान्यासस्त्वथ सन्प्रेक्ष्य शस्त्रशुद्ध्याविचक्षणं ।
धान्य विज्ञापयामास गुणवद् दोगर्जितम् ॥ ४५ ॥

इसने बाद परम चतुर जाम्बवान्ने शास्त्रीय बुद्धिसे विचार
करने के गुणयुक्त दोगरहित वचन कहे—॥ ४५ ॥

यद्धवैराघ्यं पापाद्यं राक्षसेन्द्राद् विभीषण ।
अदेहाकाले सम्प्राप्तं सर्वथा शङ्क्यतामयम् ॥ ४६ ॥

'पक्षराज राजन बड़ा पापी है । उसने हमारे साथ वैर
थाँप रक्खा है और यह विभीषण उसीने पासे आ रहा है ।
वास्तवमें न तो इसने आनेका यह समय है और न स्थान ही ।
इसलिये इसने नियमों से प्रभारसे सहाई ही रहना चाहिये' ॥

ततो मैन्दस्तु सन्प्रेक्ष्य नयापनयकोद्दि ।
धान्यं वचनसम्पन्नो यभाये हेतुमत्तरम् ॥ ४७ ॥

तदनन्तर नीति और अनीतिने शला तथा वाग्भवे
सम्पन्न मैन्दने सोच विचारकर यह युक्तियुक्त उत्तम बात
कही—॥ ४७ ॥

अनुजो नाम तस्यैव राजस्य विभीषण ।
पृच्छयता मधुरणाय शनैर्नगपतीश्वरः ॥ ४८ ॥

'महाराज ! यह विभीषण राजराज लोग भाई ही तो
है, इसलिये इसने मधुर व्यवहार साथ धीरे धीरे कर बैठें
पृच्छनी चाहिये ॥ ४८ ॥

भागमस्य तु विशय तत्त्वतस्त कर्त्तव्यसि ।
यदि दुष्टे न दुष्टे वा बुद्धिपूर्वं नगमः ॥ ४९ ॥

'नगपति ! फिर इसने भारते सम्राट् आप बुद्धिपूर्वक यह
ठाक गीत निश्चय करे कि यह दुष्ट है या नहीं । उसका बाद ऐसा
उचित हा, ऐसा करना चाहिये' ॥ ४९ ॥

अथ सस्वारसम्पन्नो हनूमान् सन्विशोत्तरम् ।
उवाच राजन शृणुमर्थममधुरं त्वयि ॥ ५० ॥

तत्त्वभात् सन्विशोमें श्रेष्ठ और समूह शास्त्रोंक अनुव्रतित
संस्कारसे युक्त हनुमान्जीने ये शरणमपुत्र सार्यक, गुप्तर
और सन्विश प्रश्न कहे—॥ ५० ॥

न भवन्त मतिश्रेष्ठ समर्थे वदता वरम् ।
अतिशययितुं शक्ते बृहस्पतिरपि ध्रुवः ॥ ५१ ॥

'प्रभो ! आप बुद्धिमानोंमें उत्तम, सामान्यगाली और
वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । यदि बृहस्पति भी भाग्य दें ता वे अपने
को आपसे बल्कर बक्ता नहीं सिद्ध कर सकते ॥ ५१ ॥

न वादान्नापि सधयाप्राधिक्यान्न च फामत ।
वक्ष्यामि उचन राजन् यथार्थं राम गौरवात् ॥ ५२ ॥

'महाराज भीम ! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा, वह
बाद विवाद या तर्क, स्पष्टा, अधिक बुद्धिमत्ताने अभिमान
अपना किसी प्रकारकी कामनासे नहीं करूँगा । मैं तो कार्यकी
गुस्तापर दृष्टि रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही बात
कहूँगा ॥ ५२ ॥

अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सन्धिरेस्तर ।
तत्र दोगं प्रपद्यामि क्रिया नह्युपपद्यते ॥ ५३ ॥

'आपके मन्त्रियोंने जो अर्थ और अनर्थने निगमन लिये
गुण-दोगकी परीक्षा करनेका मुझाय दिया है, उसमें मुझे दोग
दिखायी देता है क्योंकि इस समय परीक्षा लेना कर्नापि
सम्भव नहीं है ॥ ५३ ॥

श्रुते निषेधात् सामर्थ्यमरबोद्धुं न शक्यते ।
सहसा नितियोदोऽपि शोयजान् प्रतिभाति मे ॥ ५४ ॥

'विभीषण आभय देनेका शाय्य हैं या नहीं—इसका निर्णय
उसे किसी काममें नियुक्त क्रियविना नहीं हो सक्ता और वरुण
उसे किसी काममें लगा देना भी मुझे सगेय ही प्रतीत होता
है ॥ ५४ ॥

वारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सन्धिरेस्तर ।
अर्थव्यासम्भवात् तत्र कारणं नोपपद्यते ॥ ५५ ॥

'आपके मन्त्रियोंने जो गुप्तचर नियुक्त करनेकी बात कही
है, उसका कोई प्रयोजन न होनेमें ऐसा करनेका यह युक्तियुक्त
कारण नहीं दिखायी देता । (जो दूर रहता हा और निगा
वृत्तान्त ज्ञान न हो) उसीर लिये गुप्तचरकी नियुक्ति ही जानी
है । जो सामने व्यवहार और सम्पर्कमें अपना वृत्तान्त ज्ञान
रहा है, उसका लिये गुप्तचर भेजनेकी क्या आवश्यकता
है) ॥ ५५ ॥

अदेहाकाले सम्प्राप्तं इत्ययं यद् विभीषण ।
विगम्य तत्र मेऽस्त्रीयं ता निरोधं यथामति ॥ ५६ ॥

'इसने सिखा जो यह कहा गया है कि विभीषणका इस
समय यहाँ आना देश-कालसे अनुत्पन्न नहीं है । उमर लिये
भी मैं अस्त्री बुद्धि अनुगार उक्त करना चाहूँगा । अन
मुर्ते ॥ ५६ ॥

अथ देहाद्य कालेभ्यः भवतीति यथा तत्र ।
पुरुषान् पुरुषं शाय्य तथा गौरवगुणरपि ॥ ५७ ॥

दौरात्म्य राज्ञे दृष्ट्वा विक्रम च तथा त्वयि ।
युक्तमागमन एव सहस्र

युक्तमागमन एव सद्दशा तस्य बुद्धित ॥ ५८ ॥

उसने यहाँ आनेका यही उत्तम देण और बाल है, यह बात जिस तरह सिद्ध होती है, वैसा बता रहा हूँ। निमीषण एक नीच पुरुषने पाससे चलकर एक श्रेष्ठ पुरुषने पास आया है। उसने दोनोंके दोषों और गुणाका भी निम्नचन किया है। तत्पश्चात् राजनमें दुष्टता और आपमें पराक्रम देस वह राजन को छोड़कर आपके पास आ गया है। इसलिये उसना यहाँ आगमन सर्या उचित और उसरी उत्तम बुद्धिने अनुरूप है ॥ ५७ ५८ ॥

यदुत्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति ।

यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता ॥ ५९ ॥

अपविचिन पुरुषोंद्वारा इस्ते सारी बातें पट्टी जायें । उधरें आपने सामने रखत हूँ ॥ ५९ ॥

तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या ।

तत्र मित्र प्रवृत्त्येत मिथ्या पृष्ट सुखागतम् ॥ ६० ॥

हो, कहें आये हो ! किसलिये आये हो ! इत्यादि, तब कोई और यदि उसे यह भाव हो जायगा कि अब कुछ जानते हुए भी मुझसे छूटे ही पूजा आ रहा है, तब सुखने लिये आये हुए उस नवागत मित्रका हृदय कछुपित हो जायगा (इस प्रकार हमें एक मित्रके लाभमें वञ्चित होना पड़ेगा) ॥ ६० ॥

शक्य सहसा राजन् भायो योद्धु परस्य वै ।
तरेण स्वैर्भिन्नैर्नैपुण्य

स्वर्गैर्भिन्नैर्नैर्पुण्य पदयता मृशाम् ॥ ६१ ॥

“इहमे विद्या महापुण्यं पश्यता भृशम् ॥ ६१ ॥
 समस्त ज्ञेना अभ्यस्यते । निश्ची दूरेके मनवी सावको
 तस्य यह निश्चय कर है कि यह साधुभागे आया है
 साधुभागे ॥ ६१ ॥

स्य वृत्तो जातु लक्ष्यते दुष्प्रभायता ।
घटन चापि तस्मात्ते

धनं चापि तस्मात् नैव नास्ति सदाय ॥ ६२ ॥
 नी वातवीतमे भी कभी इवम्

नी बातचीतमें भी कभी इसका दुभान नहीं लक्षित
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे

इत्यार्ये धीमतामहे दुमान नहीं लक्षित

सप्तमः सर्गः

आर्षरामायण आदिक
पुरा हुमा ॥ १७ ॥

होता । इसका मुख्य भी प्रयत्न है । इसलिये मेरे मनम हल
प्रति कोई सदेह नहीं है ॥ ६२ ॥
अशक्तिसमिति

अशङ्कितमति स्वस्थो न शठ परित्वर्पति ।
न चास्य दुष्प्रागस्ति तस्मात्मे

‘दुष्ट पुरुष कभी नि शङ्क पय स्वस्थिति नहीं आ सकता ।’ ॥ ६३ ॥

‘दुष्ट पुरुष कभी निराश्रय स्वसचिit होकर सामने नहीं आ सकता। इसने बिना इसकी वाणी भी योग्यतु नहीं है। अतः मुझे इसने नियमों कोई सिद्ध नहीं है। ६३ ॥

आकारद्वयमात्रोऽपि न शक्यो निनिर्गूहितुम् ।
यलादि निवृणोत्येव भाग्यमात्रम् ॥

यत्नादि विवृणोत्येय भागमन्तर्गतं नृणाम् ॥ ६४ ॥
कोऽप्यपने आकारको कितना ही व्यर्थ है ॥ ६५ ॥

मीतरका भाव कभी छिप नहीं सकता। बाहरका आकार पुरखों के आन्तरिक भावसे ब्याप्त प्रकट कर देता है ॥ ६४ ॥

देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदा वर ।
सफलं कुरुते शिघ्रं प्रयोक्तव्यम् ॥ ६४ ॥

कार्यवित्ताओंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन । विभीषण

कार्यविधाओंमें श्रेष्ठ सुखनन्दन । विभीषणका यहाँ आग
कार्य यदि योग्य पुरुषने द्वारा सम्पादित हो तो अपने आपको
शीघ्र सफल बनाता है ॥ ६५ ॥

उद्योग तत्र सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रात्रणम् ।
यातिन च हत श्रुत्या समीपं

यातिन च हत श्रुत्वा सुग्रीव चाभिप्रेतम् ॥ ६६ ॥
राज्य प्रार्थयमानस्तु कृत्वा

पतानत् तु परस्मैपदम् बुद्धिपूर्वमिहागतम् ।

आपके उद्योग, श्रवणने मिथ्या

‘आपके उद्योग, यवणने मिथ्याचार, वालीने वध और सुभीने रायाभिनेत्रका समाचार जान-मुनकर राय पानेकी इच्छासे यह समझ-बूझकर ही यहाँ आपने राय पानेकी मनमें यह निश्चय दे कि शराणागततत्त्व पाल आया है (इसने मेरी रक्षा करेगी और राय भी दे दंगे)। इसी सब बातोंके ऐसे रसकर निभीषणका समझ करना—उसे अपना देना मुझे बेत जान पण्डा है ॥ ६६ ६७ ॥

ययाशक्ति मयोक्त तु राक्षसस्यार्जव प्रति ।
प्रमाणं त्व हि शेषस्य ।

बुद्धिमानोंम श्रेष्ठ खुनाथ । इस वर ॥ ६८ ॥

‘बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ खुनाथ । इस प्रकार इस राक्षसरी
सखला और निर्दोषताके विषयमें मैंने यथाशक्ति निम्नन्त किया।
इसे सुनकर आगे आप जैसा उचित समझें, वैसा करें’ ॥ ६८ ॥

गुदकाण्डे सप्तशतः सर्गः
प्रायण आदिकाव्यक गुदकाण्डम्
॥ १७ ॥

अष्टादश सर्ग

भगवान् श्रीरामका शरणागतकी रक्षाका महत्त्व एव अपना व्रत बताकर विभीषणसे मिलना

अथ राम प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुमुनस्य ह ।
प्रत्यभाषत दुर्धर श्रुतवानामनि स्थितम् ॥ १ ॥

वायुमुनः श्रुत्वा तस्मै मुखे अपने मनम वैठी हुई
बात सुनकर दुर्धर वीर भगवान् श्रीरामका चित्त प्रसन्न हो
गया । ये इस प्रकार बोलें— ॥ १ ॥

ममापि च निर्यास्ति काचित् प्रति विभीषणम् ।
श्रोतुमिच्छामि तन् सर्वं भद्रं श्रेयसि स्थितं ॥ २ ॥

मिना ! विभीषण सम्बन्धमें मैं भी कुछ कहना चाहता
हूँ । आप स्व लेगे मेरे हितवाचनमें सम्मिलन करनेवाला हूँ ।
अतः मेरी इच्छा है कि आप भी उमे सुन लें ॥ २ ॥

मित्रभावेन सम्प्राप्त तत्प्रेयस्य कथनम् ।
दोषो यद्यपि तस्य न्यायः सतामेन दर्शाहेतुम् ॥ ३ ॥

जो मित्रभावेन मेरे पास आ गया हो, उसे मैं किसी तरह
त्याग नहीं करता । सम्भव है उसमें कुछ दोष भी हों, परन्तु
दोषीका आश्रय देना भी सपुत्रोंके लिये निन्दित नहीं है
(अतः विभीषणको मैं अत्रय अन्ताज्जग) ॥ ३ ॥

सुग्रीवस्त्वय तद्वाक्यमाभाष्य च निमुह्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गव ॥ ४ ॥

वायुराज सुग्रीवने भगवान् श्रीरामने इस कथनका मुनकर
स्वयं भी उमे दाखया और उसपर विचार करके परम
सुन्दर बात कही— ॥ ४ ॥

स दुष्टे वाक्यदुष्टे वा किमेव रजनीरुर ।
इदं वाक्यं प्राण भ्रातर यः परित्यजेत् ॥ ५ ॥
को नाम स भवेत्तस्य यमेव न परित्यजेत् ॥

प्रमा ! यह दुष्ट हा वा अनुष्टुप्, इसमें क्या है ता यह
निवाचन ही । फिर जो पुरुष ऐसे सम्बन्धमें पड़े हुए अपने
माइरा छोड़ सकता है, उसका दूसरा ऐसा तीन सम्बन्धी
हममें, जिन वह लाग न करे ॥ ५ ॥

यानगाधिपतस्य श्रुत्वा सगानुदीक्ष्य तु ॥ ६ ॥
इदं स्वयमात्मनः लक्ष्मण पुण्यलक्षणम् ।
इति होय काहुम्हो वाक्य सत्यपराक्रम ॥ ७ ॥

यानगाध सुग्रीवरी यः कत सुनकर सत्यपराक्रमी श्री
रामाधारी स्वयं अर दंगरर कुछ मुसक्य और पवित्र
लक्षणर लक्षण इत प्रकार बोलें— ॥ ६ ॥

अनधीन्य च शास्त्राणि यद्वातानुपमेय्य च ।
न शक्यमिह यन् यदुवाच हरिभक्त ॥ ८ ॥

मुनिपान्थन ! इस समय यनरावने जेनी बत कही है,

वैसी कहें भी पुरुष शास्त्रोंमें अभ्यस्त और गुह्यज्ञोंकी सेवा
किये बिना नहीं कह सकता ॥ ८ ॥

अस्ति सूक्ष्मतर किंचिद् यथाय प्रतिभाति मा ।
प्रत्यक्ष लौकिक चापि वर्तते सत्यपराक्रम ॥ ९ ॥

परन्तु सुग्रीव ! तुमने विभीषणमें जो माइरा परित्यागम्प
दोषी उद्भावना की है, उस विषयमें मुझे एक ऐसे अत्यन्त
सूक्ष्म अर्थकी प्रतीति हो रही है, जो सम्भव गुह्यज्ञोंमें प्रत्यक्ष
देखा गया है और सभी लोगोंमें प्रसिद्ध है (मैं उसीको तुम
स्व लेगेमें कहना चाहता हूँ) ॥ ९ ॥

अमित्रास्तन्तुलीनाश्च प्रतिदेद्याश्च क्रीतिता ।
व्यसनेषु प्रहृष्टास्तस्मादप्यभिहागत ॥ १० ॥

भगवाञ्छ किन्तु दो प्रकारसे बताये गये हैं—एक तो
उसी कुलमें उत्पन्न हुए जनि-भाइ और दूसरे पड़ोसी देशोंमें
निवासी । ये सम्बन्धमें पड़नेपर अपने विपक्षी राजा या राजपुत्र
पर प्रहार कर बैठते हैं । इसी भयने यह विभीषण यहाँ आया
है (इसे भी अपने जनि माइयोंमें भय है) ॥ १० ॥

अपापास्तन्तुलीनाश्च मानयन्ति स्वपान् हितात् ।
एव प्रायो नरेद्राणा शङ्कनीयस्तु शोभन ॥ ११ ॥

अनितरे मलमें पार नहीं है, ऐसे एक कुलमें उत्पन्न हुए
माइ-बन्धु अपने कुटुम्बीजोंका हितका मानते हैं, परन्तु यही
संजानीय बापु अच्छा होनेपर भी प्रायः सबभेद लिये शत्रु
नीय होता है (यद्यपि भी विभीषणको गद्गारी होनेसे देखने
लगा है इसलिए इसका जन्मी स्थान लिये यहाँ अपना
अनुक्ति नहीं है । अतः तुम्हें इस ऊपर भयानक लागता
दाप नहीं लगाना चाहिये) ॥ ११ ॥

यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो शास्त्रेणऽपि गम्य च ।
तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥ १२ ॥

तुमने शत्रुस्त्वया प्रोक्तो शास्त्रेणऽपि गम्य च ।
तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥ १२ ॥

न वयं तन्तुलीनाश्च राज्यमार्हता यः शक्यम् ।
पण्डितादिभिरप्यन्ति तस्माद् प्राप्ता विभीषण ॥ १३ ॥

एतन्नाम इयं कुम्भी ता है नही (जो हममें स्वयं
हानिही आशङ्कता हमें नहीं है) और जो राज्य काय करनेका
अभिलाषा है (इच्छा भी वह हममें नहीं है)
सम्बन्ध) । इन सम्बन्धमें बहुतम काय काय निम्न की होने

है, (अत वे मित्र होनेपर बड़े कामसे सिद्ध होंगे) इसलिये विभीषणको अपने पक्षमें मिला लेना चाहिये ॥ १६ ॥

अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च ते भविष्यन्ति सगता ।

प्रणादश्च महानिगोऽन्योन्यस्य भयमागतम् ।

इति भेद गमिष्यन्ति तस्माद् प्राणो विभीषण ॥ १४ ॥

इससे मिल जानेपर ये विभीषण आदि निम्नित एव प्रवृत्त हो जायेंगे । इनकी जो यह शरणागतिक लिपि प्रबल पुनर है, इससे मादूम होता है, राक्षसोंमें एक दूसरेमें भय बना हुआ है । इसी कारणसे इनमें परस्पर फूट होगी और ये नष्ट हो जायेंगे । इसलिये भी विभीषणको ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ १४ ॥

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमा ।

महिधा वा पितु पुत्रा सुहृदो न भवद्विधा ॥ १५ ॥

तात सुमीव ! सभारमें सब भाई भरतसे ही समान नहीं होते । आपसे सब बेटे भरे ही जैसे नदी इतले और सभी मित्र हृद्धार ही समान नहीं हुआ करते हैं ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सुमीव सहस्रप्रण ।

उत्थायेद् महामास प्रणतो वाक्यमग्रवीक्ष ॥ १६ ॥

भीषमक ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित प्रहृष्टाश्चिमात् सुमीरने उठकर उठे प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—

राजणेन प्रणिहित तमवेहि निद्रप्रचरम् ।

तस्याह निद्रह मन्त्ये क्षम क्षमयता वर ॥ १७ ॥

उचित कार्य करनेवालोंमें भेद खुलन्दन । आप उस राक्षसको रावणका भेजा हुआ ही समझें । मैं तो उस कैद कर देना ही ठीक समझता हूँ ॥ १७ ॥

राजसो जिह्वाया बुद्ध्या सविष्टोऽयमिहागत ।

प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते त्रिभस्ते मयि वानघ ॥ १८ ॥

लक्ष्मणे या महाराष्ट्रो स वष्य सचिवै सह ।

रावणस्य वृदासस्य भ्राता होय विभीषण ॥ १९ ॥

निष्पार औराम ! यह निष्ठाचर राक्षस कहनेसे मनमें कुत्रिल विचार लेकर ही यहाँ आया है । जब हमस्य इसपर निष्ठास करके इसकी ओरसे निम्नित हो जायेंगे, उस समय यह अपार, मुहूर्त अमरा ए मणपर भी प्रहार कर सकता है । इसलिये मन्त्रादा । मूर रावणर भर्ते इस विभीषणका मन्त्रिणांछित वष कर देना ही उचित है ॥ १८ १९ ॥

एवमुक्त्वा रघुधेष्ठ सुमीरो वाहिनीपति ।

वाक्यसो वाक्यपुत्राल ततो मौनमुपागमत् ॥ २० ॥

प्रबन्धपुत्राल रघुलक्षित श्रीराममें ऐसा कहकर वात चीनकी बल जाननेवालेसेनापति सुमीर मौन हो गया ॥ २० ॥

स सुमीरस्य तद् वाक्य राम भुञ्जा रिमुद्रय च ।

ततः शुभतर वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम् ॥ २१ ॥

सुमीरका वह वचन सुनकर और उसपर मलीमाँति विचार करके श्रीरामन उन वातपरिणामणिते यह परम मङ्गल-मयी वात कही— ॥ २१ ॥

स दुष्टो वाक्यदुणे वा किमेव रजनीवर ।

सूक्ष्ममप्यहित कर्तुं मम शक् कथंचन ॥ २२ ॥

‘वातराज ! विभीषण दुष्ट हो या शुभ । क्या यह निष्ठाचर किसी तरह भी मय सूक्ष्म से-सूक्ष्मपक्षमें भी अहित कर सकता है ? ॥ २२ ॥

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्या चैव राक्षसान् ।

अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥ २३ ॥

‘वातरघुवपते ! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने भी पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षस हैं, उन सबको एक अंगुलि-के अग्रभागसे मार सकता हूँ ॥ २३ ॥

भूपते हि कपोनेन शत्रु शरणमागत ।

अचित्तश्च यथान्याय स्वैश्च मानैर्निमग्नित ॥ २४ ॥

‘सुना जाता है कि एक कबूतरने अपनी ‘गरणमें अपने हुए अपने ही शत्रु एक व्याघ्रका बधोचित आतिथ्य-सत्कार किया था और उसे निमग्नण के अपने शरीरके मातरा भोजन कपा था ॥ २४ ॥

स हि त प्रतिजग्राह भाषाहृत्तरामागतम् ।

कपोतो वागर्थेष्ट किं पुनर्मिद्धो जन ॥ २५ ॥

‘उस व्याघ्रने उस कबूतरकी भाषा कबूतरको पकड़ लिया था तो भी अपन कर आनेपर कबूतरने उसका आहार किया फिर मरे-जैसा मनुष्य शरणागतपर अनुग्रह कर, इससे खिन्ने नो कहना ही क्या है ? ॥ २५ ॥

आपे कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा ।

शृणु गायत्र पुरा गीता धर्मिष्ठा सत्यवादिना ॥ २६ ॥

भूरचालमें कण्व मुनिके पुत्र सत्यवादी मर्दरि कण्डुने एव धर्मरिपयक गाथाका गान किया था । उसे बताना हूँ तुना ॥ २६ ॥

यदाञ्जलिपुट दीन याचन्त शरणागतम् ।

न हन्यादन्तदासायमपि शत्रु परतप ॥ २७ ॥

‘परतप ! यदि शत्रु भी ‘गरणमें आये और दीनभावेने हाथ आड़कर दयाही याचना कर तो उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥

आर्तो वा यदि वा दस परेषा शरण गत ।

अरि प्राणान् पटियन्त्य रक्षितय हृत्तमना ॥ २८ ॥

‘शत्रु दुष्टी हो या अधिमाणी, यदि वह अपने रिरिजी की शरणमें जाय तो पुत्र हृदयगत भेद पुरुषको अपने प्राणी का भाई छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न गच्छति ।
सया शक्त्या यथान्यायतत् पापलोकगर्हितम् ॥ २९ ॥
एदि वह भयः मोह अथवा किञ्चि कामनामे न्यायानुसार
यथाशक्ति उसकी रक्षा नहीं करना तो उसने उस पापकर्मकी
श्रेष्ठमे बड़ी निन्दा हाती है ॥ २९ ॥

निनय पश्यन्तस्तस्य रक्षिण शरण गत ।
आनाय सुश्रुत तस्य सर्वं गच्छेद्गच्छति ॥ ३० ॥

एदि शरणमें आया हुआ पुरुष शरणाग न पाकर उस
रक्षकने देखत देखत नष्ट हो जाय तो वह उसके बारे पुनश्च
अपने साथ ले जाता है ॥ ३० ॥

एष दोषो महान्न प्रपन्नानामरक्षणे ।
अस्वर्ग्यं चायशस्य च चरवीर्यविनाशनम् ॥ ३१ ॥

एष प्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें महान् दोष
कहा गया है । शरणागतका त्याग स्वर्ग और सुखकी प्राप्ति
को भिन्न देना है और मनुष्यक बल और वीर्यका नाश करता
है ॥ ३१ ॥

करिष्यामि ययार्यं तु कण्ठोर्ध्वनमुत्तमम् ।
धर्मिष्ठं च यशस्य च स्वर्ग्यं स्यात्तु फलोद्भवे ॥ ३२ ॥

इसलिय मैं ता महर्षि कण्ठके उच ययाय और उत्तम
बचनका ही पालन करूँगा क्योंकि वह परिणाममें धर्म, यश
और स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला है ॥ ३२ ॥

सहदेव प्रपथाय तजालीति च याजने ।
अभय मयमूतेभ्यो दद्याम्येनद् व्रत मम ॥ ३३ ॥

‘वह एक बार भी शरणमें आकर मैं तुम्हारा हूँ’ ऐसा
बहकरमुक्ते रहकी प्रथना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियों
से अभय कर देता हूँ । यह मया गदाके लिये व्रत है ॥ ३३ ॥
आनयैत हरिश्चेष्ट दत्तमभ्याभय मया ।
त्रिभीरणो वा सुप्रीन यदि वा राजण स्वयम् ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यीकीष आदिकाण्ये युद्धकाण्डेऽष्टाश्व सर्ग ॥ १८ ॥

एष प्रकार भावार्थकीनिमित्त आश्रयस्थान अदिकाण्ये युद्धकाण्डे अष्टाश्वी सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंश सर्ग

त्रिभीषणका आकाशसे उतरकर भगवान् श्रीरामके चरणोंसे शरण लेना, उनके पूछनेपर राजणकी
शक्तिका परिचय देना और श्रीरामका राजण-बधकी प्रतिज्ञा उसके त्रिभीषणको लङ्काके
राज्यपर अभिषिक्त कर उनकी सम्मतिसे समुद्रतटपर धरना देनेके लिये बैठना

राषयेणाभये दृष्टे सनतो राजणानुज ।
त्रिभीषणो महाप्राज्ञो भूमि समन्तोक्तयन् ॥ १ ॥

इस प्रकार भीयुनायदेकअभय देनेपर निश्चित मया

अतः कपिश्रेष्ठ सुप्रीन । वह त्रिभीषण हो या स्वय
राजण आ गया हो । तुम उमे ह आओ । मैंने उमे अभय
दान दे दिया ॥ १ ॥

रामस्य तु वच श्रुत्वा सुप्रीन हृत्प्रगोश्वर ।
प्रत्यभापत काकुत्स्थ सौहार्देनाभिपूरित ॥ २ ॥

भगवान् भीषणका य वचन सुनकर वानरराज सुप्रीनने
सौहार्दने भरकर उनको कहा— ॥ २ ॥

किमत्र शिष्य धर्मग लोभनायशिवामणे ।
यन्त्वमार्थेप्रभाषेया सत्त्वगाम् सन्पदे स्थित ॥ ३ ॥

‘धर्मज्ञ ! दोषरहितशिवामणे ! आपने जो यह श्रेष्ठ धर्मकी
बात कही है, इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि आप महान्
शक्तिशाली और सन्मार्गपर स्थित हैं ॥ ३ ॥

मम चाप्यन्तपमाय शुद्ध वेत्ति त्रिभीरणम् ।
अनुमानाच्च भाषाच्च सर्जत सुपरीक्षित ॥ ४ ॥

यह मेरी अन्तःपत्मा भी त्रिभीषणको शुद्ध समझती है ।
हनुमान्जीने भी अनुमान और मात्रने उनकी भीतर-बाहर सब
अरने मदीमौलि परीक्षा कर ली है ॥ ४ ॥

तस्मात् क्षिप्र सहासाभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
त्रिभीषणो महाप्राज्ञ सखित्व चाभ्युपैत ॥ ५ ॥

‘अतः श्वनन्दन ! अर त्रिभीषण दीप्त ही महौ हमारे
जैसे हाकर रहें और हमारी मित्रता प्राप्त करें’ ॥ ५ ॥

तस्तु सुप्रीनश्चो निशम्य त
द्वितीयेरेणाभिहित नरेभ्यः ।

त्रिभीषणेनापु जगाम स्वगम
पतत्रिराजेन यया पुरदत् ॥ ६ ॥

तदनन्तर वानरराज सुप्रीनकी कही हुई बात सुनकर
गया भीषण दीप्त आगे बढ़कर त्रिभीषणने मिल, माला देकरय
इन्द्र पट्टराज गदहने मिल रहे हैं ॥ ६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यीकीष आदिकाण्ये युद्धकाण्डेऽष्टाश्व सर्ग ॥ १८ ॥

एष प्रकार भावार्थकीनिमित्त आश्रयस्थान अदिकाण्ये युद्धकाण्डे अष्टाश्वी सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यीकीष आदिकाण्ये युद्धकाण्डेऽष्टाश्व सर्ग ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यीकीष आदिकाण्ये युद्धकाण्डेऽष्टाश्व सर्ग ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यीकीष आदिकाण्ये युद्धकाण्डेऽष्टाश्व सर्ग ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यीकीष आदिकाण्ये युद्धकाण्डेऽष्टाश्व सर्ग ॥ १८ ॥

स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषण ॥ २ ॥
पादयोनिपपातय चतुर्भिः सह राक्षसैः ।

वे अपने भक्त सेवकोंके साथ हर्षसे भस्कर आकाशमें
पृथ्वीपर उतर आये । उतरकर चारों राक्षसोंके साथ घमामा
विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें शिर पड़े ॥ २३ ॥

अग्रवीच्य तदा वास्य राम प्रति विभीषण ॥ ३ ॥
धर्मयुक्त च युक्त च साम्प्रत सम्प्रहर्षणम् ।

उस समय विभीषणने श्रीरामसे धर्मानुकूल युक्तियुक्त,
समनेचित और हर्षरदक बात कही— ॥ ३३ ॥

अनुजो रात्रस्याह तेन चाम्भ्यवमानित ॥ ४ ॥
भयन्त सर्वभूताना शरण्य शरण गत ।

‘भगवन् ! मैं रावणका छोटा भाई हूँ । रावणने मेरा
अपमान किया है । आप समस्त प्राणियोंका शरण देनेवाले हैं,
इसलिये मैं आपसी शरण ली है ॥ ४३ ॥

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥ ५ ॥
भवद्गत हि मे राज्य जीवित च सुखानि च ।

‘अपने सभी मित्र, धन और लङ्कापुरीमें मैं छोड़ आया
हूँ । अब मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके ही अधीन
है ॥ ५३ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्या रामो पचनमग्रवीत् ॥ ६ ॥
वचसा सान्त्वयित्वान् लोचनाभ्या पित्रिभिर ।

विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरामने मधुर वाणीद्वारा
उन्हें सान्त्वना दी और नेत्रोंसे मानो उन्हें पी जायेंगे, इस प्रकार
प्रसन्नकर उनको और देखते हुए कहा— ॥ ६३ ॥

आस्थाहि मम तत्त्वेन राक्षसाना चलानम् ॥ ७ ॥
एवमुक्त तदा रक्षो रामेणाकृष्टकर्मणा ।

रावणस्य बल सवमाण्यातुमुपचममे ॥ ८ ॥

‘विभीषण ! तुम मुझे डीङ्गी-डीङ्गी राक्षसोंका बलाबल
बताओ ।’ अनायास ही महान् प्रेम करनेवाले श्रीरामने ऐसा
कहनेपर राक्षस विभीषणने रावणके सन्पूर्ण बलका परिचय देना
आरम्भ किया— ॥ ७-८ ॥

अवध्य सर्वभूताना गन्धर्वैरगपक्षिणाम् ।
राजपुत्र दशमीरो वरदानान् स्वयम्भुज ॥ ९ ॥

‘गन्धर्वमार ! स्वामीने परदानके प्रभावसे दशमुख रावण
(केवल मनुष्यों छोड़कर) गन्धर्व, नाग और पक्षी आदि
सभी प्राणियों लिये अवश्य है ॥ ९ ॥

रावणानन्तरं श्रुता मम ज्येष्ठस्य वीरवान् ।
कुम्भकर्णो महातेजा शक्रप्रतिवलो युधि ॥ १० ॥

रावणने छोटा और मुझसे बड़ा जो मेरा भाई कुम्भकर्ण
है, यह महातेजस्वी और पराक्रमी है । युद्धमें यह इन्द्रके
समान बरखाती है ॥ १० ॥

राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुत ।
वैलामे येन समरे मणिभद्र पराजित ॥ ११ ॥

‘श्रीराम ! रावणका सेनापतिका नाम प्रहस्त है । शायद
आपने भी उसका नाम सुना होगा । उसने कैलाशपर घात हुए
युद्धमें कुन्नेरके सेनापति मणिभद्रको भी पराजित कर दिया
था ॥ ११ ॥

चन्द्रगोधाङ्गुलिघ्राणस्ववर्धनरुचो युधि ।
धनुरादाय यस्तिष्ठन्नदयो भवतीद्रजित् ॥ १२ ॥

‘रावणका पुत्र का इन्द्रजित् है, वह गोहने चमकक बने
हुए दस्तान पहनकर अन्य कपड धारण करके हाथमें धनुष
ले जब युद्धमें लड़ा होता है, उस समय अदृश्य हो जाता
है ॥ १२ ॥

सम्राटे सुमहद्व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम् ।
अन्तर्धानगत धीमानिद्रजिद्धन्ति रावय ॥ १३ ॥

‘एधुनन्दन ! श्रीमान् इन्द्रजित्ने अग्निदेवको तृप्त करके
ऐसी ‘गति’ प्राप्त कर ली है कि वह बिनाल व्युहमें युक्त
सम्राटमें अदृश्य होकर ‘तुऔपर’ प्रसार करता है ॥ १३ ॥

महोदरमहापादवीं राक्षसश्चाप्यक्रम्यन् ।
अनीकपास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥ १४ ॥

‘महोदर महापार्श्व और अक्रम्यन्—ये तीनों राक्षस
रावणने सेनापति हैं और युद्धमें लोकपालोंके समान पराक्रम
प्रकट करते हैं ॥ १४ ॥

दशकोटिसहस्राणि रक्षसा कामरूपिणाम् ।
मासशोणितभक्ष्याणा लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥ १५ ॥
स तैस्तु सहितो राजा लोकपालानबोधयत् ।
मह देवैस्तु ते भन्ता राजणेन दुरामना ॥ १६ ॥

‘लङ्काम रक्ष और मावस भोजन करनेवाले और इच्छा
नुसार रूप धारण करनेमें समर्थ जो दस कोटि सहस्र (एक
लक्ष) राक्षस निवास करते हैं, उन्हें साथ लकर रावण
ने लोकपालोंसे युद्ध किया था । उस समय देवनागोंसहित वे
सब लोकपाल दुराम रावणसे पराजित हो गये खड़े हुए’ ॥ १५-१६
विभीषणम्भुज त्व वचस्तच्छ्रुत्वा रघुसन्तम ।
अन्वीक्ष्य मनसा मरमिद वचनमग्रवीत् ॥ १७ ॥

विभीषणजी यह बात सुनकर स्फुटलिंग श्रीरामने मन
हीमन उस राक्षस वारवार विचार किया और इस प्रकार
कहा— ॥ १७ ॥

यानि कामपदानि रावणस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्त्वेन हावयच्छमि तान्यहम् ॥ १८ ॥

‘विभीषण ! तुमने रावणका मुदविषयक जिन-जिन
पदानोंमें रावण किया है, उन्हें मैं अच्छी तरह जानता
हूँ ॥ १८ ॥

अहं हत्वा दशग्रीव सप्रहस्त सहात्मजम् ।
राजानं त्वा करिष्यामि सन्त्यमनच्छणोतु मे ॥ १९ ॥

परतु मुना । मम कदाहूँ नि प्रहस्त और शुभोने सहित
राजपक्ष वध करन मैं तुम्हें लड़ाका राजा बनाऊँगा ॥ १९ ॥

रसातल या प्रविशेत् पातालं वापि राजन ।
पितामहसफादा या न मे जीयन् तिमोक्ष्यते ॥ २० ॥

पराग रसातल या पातालमें प्रवेश कर जाय अथवा
पितामह ब्रह्माज्ञान प्राप्त चला जाय तो भी वह अब मरे हाथमें
जीवन नहीं छूट सकेगा ॥ २० ॥

अहंरा राजन सत्ये सपुनजनयाध्वम् ।
अयोध्या न प्रवेक्ष्यामि विभीक्ष्णैश्चातुभिः क्षपे ॥ २१ ॥

मैं अपने तीना भाईयोंकी मौगच खाकर कहता हूँ कि
युद्धमें पुनः भूलवन और बधुआचयोंसहित रावणका वध
किये बिना अयोध्यापुरीमें प्रवेश नहीं करूँगा ॥ २१ ॥

श्रुत्वा तु यत्न तस्य रामस्याङ्गिष्मणम् ।
दिग्गन्ताऽऽय च धर्मात्मा यत्तुमेव प्रचक्रमे ॥ २२ ॥

अनायास ही महान् यत्न करनेवाले श्रीधर्मचन्द्रजीने य
वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषणने मन्त्रक हुरारत उठे प्रणाम
किया और फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ २२ ॥

राजसत्ताया वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रथमणे ।
करिष्यामि यद्यप्राण प्रवेक्ष्यामि च चाहिनीम् ॥ २३ ॥

‘प्रभो ! यद्यनोके महायत्ने और लङ्कापुरीपर आक्रमण
करके उसे जीतनेमें मैं आपकी यथाशक्ति सहायता करूँगा तथा
प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धके लिये राजगरी मेंनामैं भी प्रवेश
करूँगा’ ॥ २३ ॥

इति ध्रुवाण रामस्तु परिचर्य्य विभीषणम् ।
अमरीलक्ष्मणं प्रीतं समुद्राञ्जलमानय ॥ २४ ॥

ततः केम महाप्राणमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसा विप्रं प्रमन्त्रे मयि मानन्द ॥ २५ ॥

विभीषणक एका कदनेपर भगवान् श्रीरामने उठे हृदयमें
लगा लिया और प्रमन्त्र होकर लक्ष्मणमें कहा—‘दूखयोंसे मान
देनेवाले सुमित्रानन्दन ! तुम समुद्रसे जल आओ और
उसके द्वारा इन परम बुद्धिमान् राक्षसराज विभीषणका लङ्का
राज्यपर शीघ्र ही अभिषेक कर दो । मरे प्रमत्त शत्रुपर इन्हें
यह काम मित्रों ही चाहिये’ ॥ २४ २५ ॥

एवमुक्तस्तु सान्निधिरिग्न्यग्निवत् विभीषणम् ।
मये धान्तमुग्याम राजानं राजागमनात् ॥ २६ ॥

उक्त एका कदनेपर सुमित्राद्वारा लक्ष्मणने मुख्य-मुख्य
वातवर्तन बीच भगवान् श्रीरामसे आगेन विभीषणका सम्पर्क
य राक्षस राज्यपर अभिषेक कर दिया ॥ २६ ॥

त प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः पुरस्कृतम् ।

प्रचुक्षुः शुभहात्मानं साधुस्माच्छ्रितिं चाग्र्यम् ॥ २७ ॥

भगवान् श्रीरामका यह तात्कालिक प्रसाद (अनुग्रह) देखकर
सब यानर हृष्यन्ति करने और भगवान् श्रीरामका साधुवाद
देने लगे ॥ २७ ॥

अथवीच हनूमाश्च सुग्रीवश्च विभीषणम् ।
कथं सागममक्षोभ्य तराम वरुणालयम् ।
सैन्यं परिवृत्ता सर्वे वानराणां महोजसाम् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् हनुमान और सुग्रीवने विभीषणसे पूछा—‘वृक्ष
राज ! हम सब लोग इस अशुभ समुद्रको महाकली वानरगरी
सेनाओंके साथ किस प्रकार पार कर सकेंगे ?’ ॥ २८ ॥

उपायैरभिगच्छाम यथा नदन्दीपतिम् ।
तराम तरसा सर्वे ससेन्या वरुणालयम् ॥ २९ ॥

‘जिस उपायमें हम सब लोग मेनासहित नौयों और नदियों
के स्वामी वरुणालय समुद्रके पार जा सकें, वह बताओ’ ॥ २९ ॥

परमुचस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच विभीषण ।
समुद्रं राघवो राजा क्षरणं गन्तुमर्हति ॥ ३० ॥

उक्त इस प्रकार धर्मात्मा धर्मात्मा विभीषणने यों उत्तर
दिया—‘रघुवर्गी राजा श्रीरामको समुद्रकी ‘क्षरण’ लकी चाहिये ॥

‘हानिन्’ सगरेणायमप्रमेयो महोद्धि ।
कतुमर्हति रामस्य श्रुतिं कार्यं महोद्धि ॥ ३१ ॥

‘श्रुत अथवा महासागरका राजा नगरने सुदृशया था ।
श्रीधर्मचन्द्रकी सागर राजा हैं । इसलिये समुद्रका इनका
काम अवश्य करना चाहिये’ ॥ ३१ ॥

एव विभीषणेनोक्ते राजसत्तन निपश्चिता ।
जाजगामाथ सुग्रीवो यत्र राम सलक्ष्मण ॥ ३२ ॥

विद्वान् राक्षस विभीषणक एका कदनेपर सुग्रीव उस स्थान
पर आये, जहाँ लक्ष्मणसहित धर्मात्मा विद्यमान थे ॥ ३२ ॥

ततश्चात्त्यातुमारभे विभीषणराजं शुभम् ।
सुग्रीवो विपुग्रीवः सागरस्योपदेशानम् ॥ ३३ ॥

वहाँ विद्वान् श्रीराजान् सुभारने समुद्रपर धरना देनेर
क्रियामें जब विभीषणका ‘शुभ’ वचन था उसे कहना आरम्भ
किया ॥ ३३ ॥

प्रवृत्त्या धर्मद्वीपस्य रामस्याप्याप्यरोचत ।
सलक्ष्मण महातेजा सुग्रीवश्च हरिद्वारम् ॥ ३४ ॥

भगवान् श्रीराम स्वमानमें ही धर्मद्वीप के आ गये
भी विभीषणकी यह बात अच्छी लगी । व मानव्यी रघुनाथ
जी लक्ष्मणसहित वानरा राजा सुग्रीव के गन्धर्व बन
हूए जल सुखगणक थे— ॥ ३४ ॥

विभीषणस्य मन्त्राऽयं मम लक्ष्मण रोचत ॥ ३५ ॥

सुग्रीव पण्डितो नित्य भवान् मन्त्रचिक्षण ।

उभाभ्या सम्प्रधार्यो रोचत यत्तदुच्यताम् ॥ ३६ ॥

लक्ष्मण । निभी गणकी यह सम्पत्ति मुझे भी अच्छी लगती है परंतु सुग्रीव राजनीतिक वड़े पण्डित हैं और तुम भी सम्योचित सलाह देने में सक्षम ही तुम हो । इसलिये तुम दोनों प्रस्तुत कार्य पर अच्छी तरह विचार करन जो ठीक जान पड़े, यह बताओ ॥ ३५ ३६ ॥

पयमुक्त्वा ततो वीराबुधौ सुग्रीवलक्ष्मणी ।

समुदाचारसयुक्मिदं यचनमूचतु ॥ ३७ ॥

भगवान् श्रीरामने ऐसा कहने पर वे दोनों वीर सुग्रीव और लक्ष्मण उनसे आदरपूर्वक बोले— ॥ ३७ ॥

किमर्थं नो नरव्याघ्र न रोचिष्यति राघव ।

विभीषणेन यत् दूतमस्मिन् काले सुखावहम् ॥ ३८ ॥

‘पुत्रपक्षिं रघुनन्दन । इस समय विभीषणने जो सुख दायक बात कही है, यह हम दोनों को क्यों नहीं अच्छी लगती ? ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आरिकाण्ये मुद्रकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीवाम्नीकिनिमित्त आर्यरामायण आरिकाण्ये मुद्रकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

विशः सर्गः

शार्दूलके कहनेसे रावणका शुकको दूत बनाकर सुग्रीवके पास सदेश भेजना, वहाँ वानरोंद्वारा उसकी दुर्दशा, श्रीरामकी रूपासे उसका सकटसे छूटना और सुग्रीवका रावणके लिये उत्तर देना

तो विनिष्ठा प्रजिर्जा सुग्रीवेणाभिपालिताम् ।

शं गक्षसाऽभ्येत्यशार्दूलो नाम धीर्यवान् ॥ १ ॥

तो राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मन ।

इद्धा सर्जतोऽव्यग्रा प्रतिगम्य स राक्षसः ॥ २ ॥

वेदय लङ्का वेगेन राजानमिदमब्रवीत् ।

इसी बीचमें दुरात्मा राक्षसराज रावणक गुप्तचर पपनमी शार्दूलने वहाँ आकर नागरनटपर छावनी डाल पड़ी हुई

॥ १ २३ ॥

वानरद्वारा लङ्का समभिवर्तत ॥ ३ ॥

रामप्रपेक्ष द्वितीय इव सागर ।

राज । लङ्का की ओर वानरों और भाउओंका एक

तत्र असीम है ॥ २३ ॥

पुत्रौ दशरथहयेमी भ्रातरी रामलक्ष्मणी ॥ ४ ॥

उत्तमौ रूपसम्पन्नौ सीताया वदमागतौ ।

याने ही रूपराज और भद्र वीर हैं । वे सीताका उद्धार करनेने

लिये आ रहे हैं ॥ ४३ ॥

पती सागरमासाद्य सन्निविष्टौ महायुते ॥ ५ ॥

वल् वाकाशमातृत्य नवसौ दशयोजनम् ।

तत्त्वभूत महाराज क्षिप्रं येदितुमर्हसि ॥ ६ ॥

महातमवौ महाराज । य दोनों रघुनदी बन्धु भी इस

समय समुद्र तटपर ही आकर उठर हुए हैं । वानरोंकी यह

मेना सब आरामे हम योजन तक नाली स्थानका घेरकर

यहाँ उठरी हुए हैं । यह किन्तु ठीक बात है । आप भी इस

तत्र दूता महाराज क्षिप्रमर्हति यदितुम् ।

उपमदान सान्त्वया भेदा वान प्रयुज्यताम् ॥ ७ ॥

‘पाशसस्रमाट् । आपनं दूतं शीघ्रं सारीं वानोवा पता
लगा लेनेके योग्य है, अतः उन्हें भेजें । तत्पश्चात् जैसा
उचित समझें, वैसा करें—चाहे उन्हें सीताको लौग दें, चाहे
सुग्रीवसे भीगी-भीठी बातें करे उन्हीं अपने पक्ष में मिला लें
अथवा सुग्रीव और भीषमम वृद्ध डरवा दें ॥ ७ ॥

शार्दूलस्य वचं श्रुत्वा राज्ञो राक्षसेश्वर ।
उवाच सहसा व्यग्रः सम्प्रधायार्थमात्मनः ।
शुक्रं साधु तदा रक्षो वाक्यमर्थयिदा वरम् ॥ ८ ॥

‘शार्दूल’ की बात सुनकर राक्षस राजा सहसा व्यग्र
हो उठा और अपने वक्तव्यका निश्चय करन अत्यन्त आत्म
भेद गुप्त नामक राक्षससे यह उत्तम वचन बोला—॥ ८ ॥

सुग्रीव ब्रूहि शब्दाऽऽशु राजानं वचनाम्रम ।
यथासंदेशमङ्गीय रूढणया परया गिरा ॥ ९ ॥

‘दूत । तुम मेरे कहनेमें गोप ही बानरराज सुग्रीव पर
जाओ और मधुर एवं उत्तम वाणीद्वारा निर्भीकतापूर्वक उनसे
मेरा यह संदेश करो—॥ ९ ॥

तव धैः महाराजकुम्भप्रसूतो
महाराजधर्शरजसुनन्ध ।
न कश्चनार्थस्तत्र नास्त्यनर्थ
स्तथापि मे भ्रातृममो हरीश ॥ १० ॥

‘बानरराज । आप बानरों में महाराजके कुलमें उत्पन्न
हुए हैं । आन्तराणीय श्रद्धास्वरूपे पुत्र हैं और स्वयं भी बड़े
बलवान् हैं । मैं आपका अपने भाई के समान समझता हूँ ।
यदि मुझसे आपका कोई लाभ नहीं हुआ है तो मेरे द्वारा
आपकी कोई हानि भी नहीं हुई है ॥ १० ॥’

अहं यद्यहं भार्या राजपुत्रस्य धीमतः ।
किं तत्र तत्र सुग्रीवं किञ्चिद्भा प्रति गम्यताम् ॥ ११ ॥

‘सुग्रीव । यदि मैं बुद्धिमान् राजपुत्र रामकी स्त्रीको हर
लगा हूँ तो इसमें आपकी क्या हानि है ! अतः आप
सिध्दियारो लौट जाइये ॥ ११ ॥

नहीय हरिभिल्लुः प्राप्तुं दाक्या कथंचन ।
देवेरपि संगर्धर्षं किं पुनरवयानरैः ॥ १२ ॥

‘‘हमारा इस लक्ष्मण बानरलोक की किसी तरह भी नहीं
पहुँच सकत । यहाँ देवताओं और गन्धर्वाका भी प्रवेश होना
असम्भव है फिर मनुष्यों और बानरोंकी ता राह हा क्या
है ॥ १२ ॥

स तदा गणसेट्रेण सदिष्टो रजनीयः ।
गुरो र्हिगमो भूत्वा तूष्णमाप्नुय चाग्ररम् ॥ १३ ॥

राजपुत्र राजगण इस प्रकार संदेश देनेपर उस समय
निगार गुप्त नामक पक्षीका रूप धारण करके तुरन्त
आकाशमें उड़ पला ॥ १३ ॥

स गत्वा दूरमग्नानमुपयुपरि सागम् ।
संस्थितो हृष्यते वास्य सुग्रीवमिदमवधीत् ॥ १४ ॥
सर्वमुक्तं यथाऽऽदिष्टं रागणेन दुरात्मना ।

समुद्रं ऊपरही ऊपर बहुत दूरका समुद्र तै करके वह
सुग्रीवसे बातें जान पढ़ेचा और आशानाम ही उद्दरकर उमने
दुरात्मा रागणी आशान अनुसार वे सारी बात सुग्रीवसे
कहा ॥ १४ ॥

तत् प्रापयन्तं पवनं तूष्णमाप्नुय वानरा ॥ १ ॥
प्रापयन्तं तदा क्षिप्रं लोनु हतुं च मुष्टिभिः ।

जित समय वह संदेश सुना रहा था, उन्ही समय बानर
उड़लकर तुरन्त उमन पान जा पहुँचे । वे चाहते थे कि हम
शीघ्र ही इसकी पूर्णों नाच ल और इसे धूमिले ही मार
काटें ॥ १ ॥

सर्वं प्रयत्नं प्रसभं निरुह्यतो निशाचर ॥ १६ ॥
गगनाद् भूतले चागु प्रतिगृह्यायनारितः ।

इस निश्चयसे साथ साथ बानरोंने उस निशाचरका बल
पुनरु पकड़ लिया और उसे कैद करने तुरन्त आकाशमें भूतल
पर उतार ॥ १६ ॥

वानरैः पीड्यमानस्तु गुरो वचनमवधीत् ॥ १७ ॥
न दूतान् चान्तिं काङ्क्षस्य वयन्ता साधु वानराः ।
यस्तु हिरण्यमतं भर्तुं स्वमतं सम्प्रधारयेत् ।
अनुकयादी दूतं सन् स दूतो यद्यमर्हति ॥ १८ ॥

इस प्रकार बानरोंके पीड़ा देनेपर गुप्त पुरार उठा—
‘‘युनन्दन ! राजाज्य दूतोंका वध नहीं करते हैं, अतः
आप इन बानरोंको भलीभाँति रक्षिये । जो स्वामीने अभिप्राय
को छोड़कर अपना मत प्रकट करने लगता है, वह दूत निरा
करी हुआ बात रूढ़नेस अपयधी है अतः यही वचन योग्य
होना है ॥ १७ १८ ॥

गुरुस्य वचनं यमं श्रुत्वा नृ परिदेवितम् ।
उवाच मायधिष्ठेति ध्वनः शावाभृगमभान् ॥ १९ ॥

गुरुस्य वचन और विलापकी सुनकर भगवान् भीषमने
उसे पीडेनेस प्रत्युत बानरोंका पुकारकर कहा—‘‘इने मन
माय ॥ १९ ॥

स च पत्रलघुभूत्वा हरिभिर्दग्धितेऽभये ।
अन्तरिक्षं स्थितो भूत्वा पुनरवगममवधीत् ॥ २० ॥

उस समयकत गुरुस्य पक्षोंस मार कुछ हल्का हो गया
था (क्योंकि बानरोंने उन्हें नाच डाला था) फिर अपने
अमर देनेपर गुरु आकाशमें गया शीघ्र और पुन
पला—॥ २० ॥

सुग्रीवः सत्यमग्नयः सदायत्नयगमः ।
किं मया हतुं वन्यो वरणा लोकराज ॥ २१ ॥

प्राहन् बल और पराक्रमसे युक्त गविचाली तुमीव !
समस्त हाथोंको कलशेशल यशस्यको मुझे आपकी ओरसे क्या
उत्तर देना चाहिये ॥ २१ ॥

स परमुक्त ध्रुवगाधिपस्तदा
ध्रुवगमानामृगभो महाबल ।

उवाच चाकथ रजनीचरस्य
चार शुक शुद्धमदीनसत्त्व ॥ २२ ॥

शुक इम प्रकार पृथ्वीपर उस समय कविप्रियेगमि महा
बली उदारचला वानरराज सुमान उम निशाचरक दूतसे यह
स्वप्न दृष्टि निःश्रुत वान वही— ॥ २२ ॥

न मेऽस्ति मित्र न तथानुकम्प्यो
न चोपकर्मिणि न मे प्रियोऽस्ति ।

भरिष्ठ रामस्य सहानुबन्ध
स्ततोऽस्ति वालीय दधाह वध्य ॥ २३ ॥

‘दूत ! तुम रावणसे इस प्रकार कहना—’ वधने योग्य
दधान ! तुम न तो मेरे मित्र हो, न दयाके पात्र हो, न
मेरे उपकारी हो और न मेरे प्रिय व्यक्तियोंमें से हो कोह हो ।
भगवान् श्रीरामके शत्रु हो, इस कारण अपने सगे-सम्बन्धियों
वहित तुम वालीकी भक्ति ही मेरे लिये वध्य हो ॥ २३ ॥

निहम्यह त्वा ससुन सयधु
सस्रतिवर्गे रजनीचरेश ।
रक्षा व सर्वो महात बलेन
सर्वै करिष्यामि समेत्य भस्म ॥ २४ ॥

‘निशाचरराज ! मैं पुनः, शत्रु और कुटुम्बीजनीवहित
हुन्हाए खर कल्लंग और बही भारी मेनाक सप आकर
समस्त लक्ष्मणकी भस्म कर दारुणा ॥ २४ ॥

न मोक्षयेन रावण राघवस्य
सुरै सहैन्दैरपि मूढ गुण ।
अन्तर्हितः सूपय गतोऽपि
तवैव पातालमनुप्रविष्ट ।
गिरीशपादाभ्युजसगतो वा
हतोऽस्ति रामेन सहानुजसत्त्वम् ॥ २५ ॥

‘मूर्ख रावण ! यदि इंद्र आदि समस्त देवता तुम्हारी
रक्षा करें तो भी श्रीरामनाथजीने हाथसे उन तुम जीवित नहीं
हूँ सक्षम । तुम अन्तर्धान हो जाओ, आगरामें च जाओ,
पातालमें पुन जाओ अथवा महादेवजीके चरणारविन्दोंमें
आमय हो फिर भी अपने भाइयोंवहित तुम अवश्य भीरु
चन्द्रजीन हाथोंमें मार जाओ ॥ २५ ॥

तस्य ते त्रिषु लोकेषु ॥ पिशाच न राक्षसम् ।
प्रानार नातुपदयामि न राधर्मे न चानुरम् ॥ २६ ॥
क्षीनो नरोम मुने बाद भी पिशाच, यक्ष, गन्धर्व या

असुर ऐसा नहीं दिखायी देना, जो तुम्हारी रक्षा कर सके ॥
अधोस्त्व जरायुद्ध शुभराज जटायुपम ।
किं नु ते रामसान्निध्ये सकाशे लक्षणस्य च ।
हता सीता निराश्रयसी या त्व गृह्यत बुध्यसे ॥ २७ ॥

‘चिरकारण बड़े यशराज जटायुको तुमने क्यों मारा ?
यदि तुमम बड़ा यत्न था तो भीरुम और लक्षणके पासमें तुमने
निगललचना सीताना नष्टकर क्यों नहीं किया ? तुम सीता
कोनो लक्षण अपने छिपर आपी दुई विपत्तिको क्यों नहीं
समस्त रहे हो ! ॥ २७ ॥

महाबल महात्मान दुराधर्मे सुगैरपि ।
न बुध्यसे रघुधेष्ठ यस्ते प्रणार हरिष्यति ॥ २८ ॥

‘युद्धकालिक भीरुम महाबली, महात्मा और देवताओं
के लिये भी दुर्बल हैं, किंतु तुम उन्हें अभीतक समस्त नहीं
सक । (तुमने छिपकर सीताका हरण किया है, परंतु) वे
(रामने आकर) तुम्हारे प्रार्थनोंका अपहरण करेंगे ॥ २८ ॥

ततोऽधर्मीद् वालिसुतोऽव्यहर्णे हरिष्यन्तम् ।
नाय दूतो महाराज चारक प्रतिभाति मे ॥ २९ ॥
तुलित हि यल सर्वमनेन तत्र तिष्ठता ।

शृण्वता मागमल्लङ्घितेहि मम रोचत ॥ ३० ॥

तत्प्रभात वानरशिपमणि वालिकुमार अहदने कहा—
‘महाराज ! मुझे तो यह दूत नहीं, काहें गुप्तचर प्रतीत होता है । इतने
यहो खड़े-खड़े आपकी सारी सेनाका माप-तौल कर लिया है—
पूरा-पूरा अनायास लपटा लिया है । अतः इतने पकड़ लिया
जाय, लक्षाको न आने पाये । मुझे यही डीक जान पड़ता
है ॥ २९ ३० ॥

ततो राजा समादिष्ट समुपपन्न यलीमुखा ।
जगद्गुह्यं यव-पुच्छं विलपन्तमनाधनम् ॥ ३१ ॥

‘किं तो राजा श्रीविक्रम आदेशने वानरसे उछलकर उठे
पकड़ लिया और बंध दिया । वह बेचाप अनामकी भोजी
निलप करत रहा ॥ ३१ ॥

शुकस्तु वानरैश्चाण्डस्तापै तं समप्रपीडित ।
व्याचुमोक्ष महामानं रामं ददारात्मजम् ।
लुप्येते न बलान् पत्नीं भिक्षेते मे तथाक्षिणी ॥ ३२ ॥
या च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम् ।
एतस्मिन्तरे काले यमया ह्यनुभूतम् ।
सर्वं तदुपपन्नेया जहाम चेद् यदि जीवितम् ॥ ३३ ॥

उन प्रचण वानरोंत पीडित हो तुमने दारामन्त्र
महाया भीरुमको बड़े नामने पुराण मार कहा—‘ममो !
बलपूर्वक मरी पाँतों नारी और आँखों फाड़ो आ रही है ।
यदि आज मैंने प्रार्थनोंका त्याग किया तो फिर तुमने मर नम

हुआ था और जिस रातको मैं मलंगा, कम और मरणके इस
मध्यराती कालमें; मैंने तो भी पाप किया है। यह सब आपसे
ही लगेगा ॥ ३२ ३३ ॥

नाघातयत् तदा राम श्रुत्वा तत्परिवेष्टितम् ।

हृत्पाथे श्रीमद्भगवत्पुत्रेण आदिशब्दे युद्धकाण्डे विंश सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीवत्सीनिर्मित श्रीभगवत्पुत्र आदिशब्दे युद्धकाण्डमें बीसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

एकविंश सर्ग

श्रीरामका समुद्रके तटपर हुआ विछाड़कर तीन दिनतक धरना देनेपर भी समुद्रक दर्शन
न देनेसे क्रुपित हो उसे बाण मारकर विबुध कर देना

तत सागररेखाया दभानास्तीय गद्यम् ।
अर्चिं प्राङ्मुखं दृष्ट्वा प्रतिदिश्ये महोदधे ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीपुनाथजी समुद्रके तटपर हुआ पिछा
महासागर समक्ष होकर जोड़ प्रणामसुख ॥ वहाँ देख गया ॥

यादु भुजह्मभागाभसुपथायारिखट्वा ।
जातरुपमयैश्चैव भूयणैर्भूषित पुरा ॥ २ ॥

उस समय गजुसूदन श्रीरामने सख दायरही मौल
कामल और वनवासन पहन खनिर बने हुए सुन्दर
आभूषणोंसे सजा विभूषित रहनेवाली अपनी एक (दाहिनी)
बाँहना तर्किया बना रख्य था ॥ २ ॥

मणिकाञ्चनपेयूरमुक्ताप्रवरभूषणे ।
भुजै परमनागीणामभिसुष्टमनेकधा ॥ ३ ॥

अपणामे रहत समय मातृकादिही अनक उत्तम नारियाँ
(धार) मणि और सुवर्णके बने हुए कयूँ तथा मोतीके
श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित अपने कर-कमलोंद्वारा नालने
धुलने आदिर समय अनक बार श्रीरामर उस बाँहका
छटलनी और खाली थी ॥ ३ ॥

चन्द्रनागसुभिर्धैर्य पुरस्तादभिसेवितम् ।
धालसुष्टमप्रदीप्य चन्दनैरुपदोषितम् ॥ ४ ॥

पहल चन्दन और अगुम्मे गग बाँहरी मरा हली थी ।
प्रात कालर सूर्योसी कालियाग लाल चन्दन खसरी गाभा
बालन थे ॥ ४ ॥

शयने घोषमाह्वेन भीताया शोभित पुरा ।
तक्षरस्येय सम्भोग गङ्गाजगन्निवेशितम् ॥ ५ ॥

साराइरणन पाल शयनकालमें सीतासा फिर गग बाँहरी
गाभा बालना था और खन गण्यर स्थित पालन
चन्दनमें चर्चित हुए वह बाँह गङ्गाजगन्निवेशित
तक्षर नारीजी मौल सुष्ठमनिवेशित थी ॥ ५ ॥

धानरानत्राद् रामो मुच्यता दूत आगत ॥ ३४ ॥
उस समय उसका वह विलास सुनकर श्रीरामने उसका
वच नहीं होने दिया । उन्होंने वानरोंसे कहा—गडाइ दो । यह
दूत हारर ही आया था ॥ ३४ ॥

सयुगे युगसकाश शशूणा शोकयन्तम् ।
सुहृदा नन्दन दीर्घे सागरान्त्यपात्रयम् ॥ ६ ॥

युद्धसल्लभे गूणर समान वह विगात्र भुज शमुभोका
शोर बगनेवाली और सुहृदोंका दीर्घसागर अन्तर्दित
करनेवाली थी । समुद्रपथन अपात्र भूमण्डली खसम
भार उनरी खी मुञ्चपर प्रतिष्ठित था ॥ ६ ॥

अम्यता च पुन सय ज्याघातप्रिहतस्वन्नम् ।
क्षिणो दक्षिण यादु महापथिसनिभम् ॥ ७ ॥
गोसहस्रप्रदानां ह्युपधाय भुज महत् ।
अय मे तरण पाथ मरण सागरस्य था ॥ ८ ॥
इति रामो धृतिं दृष्ट्वा महागजुमहोदधिम् ।
अधिशिश्ये च विधिरन् प्रयतो नियतो मुनि ॥ ९ ॥

बायीं ओरका बागबार बण नालेर कारण प्रत्यक्षर
आघातने निमरी त्वचार खाल वग गरी थी; आ विगात्र
परिपने समान सुन्दर था बल्लि थी तथा शिकर द्वाप
उहोन सखों गोभोका तान रिरा था; उस विगात्र नाली
भुजका तर्किया लगाकर उगाला आगे गुणोंसुत महाबाहु
श्रीराम आब था ता मैं समुद्र पर खसका था मेरेद्वारा
समुद्रका सार हागा एसा निश्चय करर मौल हा मा;
गाणी और नारीका शयममें खकर महासागरा अनुदित
करनर उहयत्र विधिरन धगा नन हन मग हनननन
था गय ॥ ७- ॥

तस्य रामस्य सुमम्य युगास्तीर्णं मर्तिते ।
नियमाद्रप्रमत्तस्य निरासास्त्रोऽभिजगमुत ॥ १० ॥

उस विधी हुए सुष्ठमनर निमन अलगाय न
हन हुए अपमरी गग गाग रतीरा हा गय ॥ १० ॥
न धिराशानिस्तत्र नयस्य धमरन्त्यम् ।
उपामन तदा राम सागरा स्मरिता पानिम् ॥ ११ ॥
न च स्मरण रूप मन्त्र रामस्य सागर ।
प्रयतनारि रामण यथाहमभिपूर्तिम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार उस समय वहाँ तीन रात छेडे रहकर
नीति के शाता, धर्मनस्सल श्रीरामचन्द्रजी सतिआओंके स्वामी
समुद्रजी उपासना करते रहे परतु नियमपूर्वक रहते हुए
श्रीरामने द्वारा यथोचित पूजा और उत्कार पाकर भी उस
मन्दमति महासागरने उन्हें अपने आधिदैविक रूपका दर्शन
नहीं कराया—वह उनके समस्त प्रकट नहीं हुआ ॥१११॥ १२॥

समुद्रस्य तत मुद्रो रामो रक्तान्तलोचन ।
समीपस्थमुवाचेद् लक्ष्मण शुभलक्षणम् ॥ १३ ॥

तत अरुणनेयप्रान्तराले भगवान् श्रीराम समुद्रपर
बुडित हो उठे और पास ही खड़े हुए शुभलक्षणयुक्त
लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले— ॥ १३ ॥

अत्रलेप समुद्रस्य न दर्शयति य स्वयम् ।
प्रशमश्च क्षमा खैव आर्जव प्रिययादित ॥ १४ ॥

असामर्थ्यफल्य ह्येते निर्गुणेषु सता गुणा ।
समुद्रको अपने ऊपर बड़ा अहङ्कार है, जिससे
वह स्वयं मेरे सामने प्रकट नहीं हो रहा है। शान्ति, क्षमा,
लज्जा और मधुर भाषण—ये जा कृत्युओंके गुण हैं,
तुणहीनता प्रति प्रयोग करनेपर यही परिणाम होता
है वे उस गुणवान् पुत्रको भी असमर्थ समझ लेते हैं ॥

ममशसिन दुष्ट धृष्ट विपरिधानकम् ॥ १५ ॥

जो अपनी प्रशंसा करनेवाला, दुष्ट, धृष्ट, स्वप्न पाषाण
ला और अच्छे डूरे सभी लोगोंपर कठोर दण्डका
रनेवाला होता है, उस मनुष्यका उन लोग उत्कार
॥ १५ ॥

शक्यते कीर्तिर्नास्मान् शक्यते यश ॥ १६ ॥

मण लोकेऽस्मिज्यो वा रणमूर्धनि ।
नामनीति (शान्ति) के द्वारा इस लक्ष्मण
मात की जा सकती है, न यशका प्रसार हो
न उसप्रामम विजय ही पायी जा सकती है ॥

महापनिर्भर्त्तनमरुतैमकरालयम् ॥ १७ ॥

सौमित्रे छत्रदिग् पश्य सर्वत ।
दन् । आज मेरे बाणोंसे दण्ड-खण्ड हो मगर
और उतपरन रहने लगेंगे और उनकी
मल (समुद्र) का जल आच्छादित हो
होगा आज अपनी आँखों देख लो ॥ १७ ॥

गानि मया भिन्नानि लक्ष्मण ॥ १८ ॥

याना करिणा च करानिह ।
देगो कि मैं यहाँ जलमें रहनेवाले
विशाल कलेवर और जलरश्मियोंने
मद दुबड़े डुबड़े कर शलता हूँ ॥

सशङ्कशुक्तिकाजाल समीनमकर तथा ॥ १९ ॥

अथ युद्धेन महता समुद्र परिशोषये ।
आज महान् युद्ध ठानकर शङ्खों और सीपोंके
समुदाय तथा मत्स्यों और मगरोंसहित समुद्रको मैं
सुपाये देता हूँ ॥ १९ ॥

क्षमया हि समायुक्त मामय मरालय ॥ २० ॥

असमर्थे विजानाति धिर् क्षमामीदृशो जने ।
भगवतोंका निरासभूत यह समुद्र मुझे क्षमासे युक्त देख
असमर्थ समझने लगा है। देने मूल्योंके प्रति की गयी क्षमासे
धिका है ॥ २० ॥

न दर्शयति साम्ना मे सागरो रूपमात्मन ॥ २१ ॥

चापमानय सौमित्रे शराश्चाशीविशोपमान् ।
समुद्र शोषयिष्यामि पद्भ्या यातु ह्यवगमा ॥ २२ ॥

‘सुमित्रान दन । सामनीतिरा आश्रय लनेस यह समुद्र
मेरे सामने अपना रूप नहीं प्रकट कर रहा है, इसलिये
धनुष तथा बिषकर वर्षोंके समान भगवन् बाण ले आओ।
मैं समुद्रको मुला ढाँूंगा फिर वानरलगा पैदल ही
लङ्कापुरीको चले ॥ २१ २२ ॥

अपाशोभ्यमपि कुन्द शोभयिष्यामि सागरम् ।
बेलसु हृतमयाद् सहस्रोमिसमाडुलम् ॥ २३ ॥

निर्मर्याद् करिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ।
महार्णव शोभयिष्ये महादानरसडुलम् ॥ २४ ॥

व्यापि समुद्रको अशोभ्य कहा गया है फिर भी आज
उपित होकर मैं इसे विधुष कर दूँगा। इसमें खड्गों तरफ़ें
उठती रहती हैं फिर भी यह उदा अपने तटकी मर्षाणा
(सीमा) में ही रहता है। त्रिभु अपने बाणोंसे मारकर मैं
इसकी मयादा नष्ट कर दूँगा। बड़े-बड़े दानगते मेरे हुए
इस महासागरमें हलचल मचा दूँगा—नृपान ला दूँगा ॥

एवमुक्त्वा धनुष्पाणि क्रोधप्रतिष्ठागतिभूषण ।
धभून् रामो दुधर्षो गुगान्तागिरिज ज्वलन् ॥ २५ ॥

गों कहकर दुधर्ष गीर भगवान् श्रीरामने हाथमें धनुष
ल लिया। व क्षापसे आँवें फाड़ फाड़कर देगने लगे और
प्रस्थागिने समान प्रज्वलित हो उठे ॥ २ ॥

सम्पीड्य च धनुर्घोरं कम्पयिष्या शरैजगाम् ।
मुमोच विशिषानुप्रान यज्ञानिव शतमनु ॥ २६ ॥

उन्होंने अपने मर्षकर धनुषकी धीरेसे दबाकर उलस
प्रत्यक्षा चढ़ा दी और उसकी टङ्काने सार जगत्को कम्पित
करते हुए बड़े मधकर बाण छाड़े, मानो इन्द्रने बरुतने
कर्मोंका प्रहार किया ॥ २६ ॥

ते ज्वलन्तो महावेगास्तेजसा सायकोत्तमा ।
प्रविशन्ति समुद्रस्य जल विनस्तपन्नगम् ॥ २७ ॥

तेजसे प्रज्वलित होते हुए व महान् वेगशाली भेड़ बाण समुद्र नलमें घुस गये । वहाँ रहनेवाले सर्प भयसे पथ उठे ॥ २७ ॥

तोयवेग समुद्रस्य समीनमकरो महान् ।
स यभूय महाघोर समास्तवस्तथा ॥ २८ ॥

‘मत्स्यों और मगरोंसहित महासागरक जलका महान् वेग सहसा अत्यन्त भयंकर हो गया । वहाँ तूफानका कोलाहल छा गया ॥ २८ ॥

महोर्मिमालान्वितत शङ्खगुचिसमावृत ।
सधूम परिष्टुतोमि सहसास्निमहोद्भि ॥ २९ ॥

बड़ी-बड़ी तरङ्ग-मालाओंसे छाए समुद्र व्याप्त हो उठा । शङ्ख और शीपियों पानीने ऊपर छा गया । वहाँ धुआँ उठने लगा और सारे महासागरमें सहसा बड़ी-बड़ी लहरें चकर काटने लगीं ॥ २९ ॥

व्यथिता पन्नगाश्वासन् दीप्ताम्या दीप्तलोचना ।
दानराश्च महारीया पातालतलरासिन ॥ ३० ॥

चमकीन् पत्त और दीप्तिगाली नेत्रोंवाले सब व्यथित हो उठे तथा पातालम रहनेवाले महापराक्रमी दानव भी व्याकुल हो गये ॥ ३० ॥

ऊमय' सिधुराजस्य सनजमकरास्तथा ।
विध्यमन्दरसकाशा समुत्पेतु सहस्रश ॥ ३१ ॥

क्षिपुपजरी सहस्रो लहरें जो विष्याचल और मन्दपचलर समान विद्याल पर निरुत थीं, नारों और मगरोंको साथ लिये ऊपरका उठने लगीं ॥ ३१ ॥

आधूर्णिततरङ्गीय सम्भ्रान्तोरगराक्षस ।
उद्धर्तनमहाप्राह सघोरो परुणालय ॥ ३२ ॥

सागरकी उच्चाल तरङ्ग-मालाएँ झूमने और चकर काटने लगीं । वहाँ निवास करनेवाले नाग और राक्षस घबरा गये ।

इत्यपि धीमद्भ्रातृवणे वाक्मोकोय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार अबद्वन्द्वीचिनिमित्त आरंभमन्त्र आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकसवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंश सर्ग

समुद्रकी सलाहके अनुसार नलके द्वारा सागरपर सौ योवन लँबे पुलका निर्माण तथा उमके द्वारा श्रीराम आदिसहित वानरसेनाका उस पार पहुँचकर पड़ाव डालना

अथाश्व रघुधेष्ठ सागर दारुण यय ।
अथ न्या गोपविष्यामि सपाताल महाणय ॥ १ ॥

तब रघुलालका भगवन्ने समुद्रम कन्धर गलामें कहा—
‘महासागर ! आज मैं पातालस्थ तुझे दुःख दूँगा ॥ १ ॥

बड़े-बड़े प्राह ऊपरको उठलने लगे तथा वरुणने निरासमूत उस समुद्रमें सब ओर भारी कोलाहल मच गया ॥ ३२ ॥

ततस्तु त राघवमुप्रवेग
प्रमर्षमाण धनुरप्रमेयम् ।
सौमित्रिकृत्यय त्रिनि श्वसन्त
मामेति चोन्त्या धनुरालम्ब्ये ॥ ३३ ॥

तदनन्तर श्रीरघुनायकी योगने लची शॉस टटे हुए अपने भयंकर वेगशाली अनुपम धनुषका पुन खींचने लगे । यह देख मुमिनाकुमार लक्ष्मण उठकर उनसे पास जा पहुँचे और ‘बस, बस, अब नहीं, अब नहीं’ ऐसा कहते हुए उन्होंने उनका धनुष पकड़ लिया ॥ ३३ ॥

एतद्विनापि ह्युदधेस्तग्राह
सम्पत्स्यते वीर्यतमस्य कायम् ।
भवद्विधा क्रोधवश न यान्ति
दीर्घं भगन्पश्यतु साधुवृत्तम् ॥ ३४ ॥

(फिर वे बोले—) ‘भैया ! आप वीर शिरोमणि हैं । इस समुद्रको नष्ट किये बिना भी आपका कार्य सम्पन्न हो जायगा । आप-जैसे महापुरुष क्रोधने अभीन नहीं होते हैं । अब आप सुदीर्घकालतक उपयोगमें लाय जानेवाले किसी अच्छे उपायपर हटि जाइें—बाद दूसरी उत्तम युक्ति सोचें ॥

अन्तर्हितैश्चापि तथान्तरिणे
ब्रह्मर्षिभिश्चैव सुरर्षिभिश्च ।
शस्त्रं हत कष्टमिति द्रुवद्वि
मामेति चोन्त्या महता स्वरेण ॥ ३ ॥

इसी समय अन्तरिक्षमें अव्यक्तरूपमें स्थित महर्षियों और देवर्षियोंने भी ‘हाय ! यह तो बन् बन्ना बात है’ ऐसा कहते हुए ‘अब नहीं, अब नहीं’ कहकर बड़ ज़रने कोलाहल किया ॥ ३५ ॥

इत्यपि धीमद्भ्रातृवणे वाक्मोकोय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार अबद्वन्द्वीचिनिमित्त आरंभमन्त्र आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकसवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ २१ ॥

इत्यपि धीमद्भ्रातृवणे वाक्मोकोय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इत्यपि धीमद्भ्रातृवणे वाक्मोकोय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इत्यपि धीमद्भ्रातृवणे वाक्मोकोय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इत्यपि धीमद्भ्रातृवणे वाक्मोकोय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

नष्ट हो जायेंगे। उस दंगाम तैरे यहाँ जल्ने स्थानमें निगल
बाह्यप्रतिपदा हो जायगी ॥ २ ॥

मत्कामुकविरुद्धेन शरवर्षेण नगरम् ।
पर तीर गमिष्यन्ति पङ्क्तिरेव प्रथमम् ॥ ३ ॥

समुद्र । मर घातद्वारा की गयी बाण-वर्षासे जब तेरी
ऐसी दंगा हो जायगी, तब आनरलोक पैदल ही चलकर तर
उस पार पहुँच जायेंगे ॥ ३ ॥

रिचिन्वन्नाभिजानासि यैरुप नापि विक्रमम् ।
दानमालय सताप मत्तो नाम गमिष्यसि ॥ ४ ॥

दानचोरों निगलस्थान । तू ये सब चारों ओरने बहकर
आयी हुई जन्मदायिका समझ करता है। तुझे मेरे बल और
परबलका पता नहीं है। किंतु याद रख (इस उपेक्षाके
कारण) तुझे मुझसे भारी क्षाप प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

ब्राह्मणस्त्रेण सयोज्य ब्रह्मदण्डनिभ शरम् ।
सयोज्य धनुषि धेष्टे विचक्षणं महाबलम् ॥ ५ ॥

या कहकर महाशूरी श्रीरामने एक ब्रह्मदण्डके समान
भयकर बाणको ब्राह्मणसे अभिमर्शित करके अपने श्रेष्ठ धनुष
पर चढ़ाकर छाँटा ॥ ५ ॥

तस्मिन् विष्टे सदा सा राक्षसेण शरासने ।
रोन्सी सम्पफालेन पञ्चतन्त्र चक्रिरे ॥ ६ ॥

श्रीरामनाथजीके द्वारा सदा उस धनुषके रौन्ने जलते ही
हृन्नी ओर भाषाण मानो करने लगे और परंतु डगमगा
उठे ॥ ६ ॥

तमश्च सेवमात्रे दिशश्च न चक्रिरे ।
प्रतिबुधुभिरे चापु सरासि सगितस्तथा ॥ ७ ॥

सारे संसार में अथवा छ गथा । मिनीना निगाओंका
ज्ञान न रहा । सरिताओं और नद्योंमें तत्काल हलचल पैदा
हो गयी ॥ ७ ॥

तिक् च सह नदीसं संगती चन्द्रभास्करौ ।
भास्कराशुभिरादीत तमसा च समावृतम् ॥ ८ ॥

चन्द्रमा और तूने नगप्राक साथ तिक्-गतिमें चलने
लगा । सूर्यकी प्रिरणोंस प्रकाशित होनेपर भी आकाशमें
अंधकार छा गया ॥ ८ ॥

प्रचक्रादो तन्नासाद्रामुल्लङ्घनमिदं पितम् ।
अन्तरिक्षाद्य निपता निर्जन्मुरतुल्यता ॥ ९ ॥

उस समय आकाशमें सेरङ्गा उड़ानों प्रचलित होकर
उमे प्रकाशित करने लगा तथा अन्तरिक्षमें अनुपम पर भारी
गद्गद्वाहवा साथ बरसत होने लगा ॥ ९ ॥

यधुप्रारण यधुदियमलनष्टय ।
पमञ्च च तदा शुभ्रान्वातानुप्रहन्मु ॥ १० ॥

आरुजद्वेय शैलाप्राप्तिखराणि घमञ्च च ।

परिभ्रष्ट आदि वायुवेदोंका समूह बड़े वेगसे उड़ने लगा ।
वह वेधोंका घातो उड़ाता हुआ बारबार घुमाते लाहने, बड़े
बड़े परतले टकराने और उनमें गिरावोंको स्पष्टित करने
गिरने लगा ॥ १० ॥

द्विनि च मम महामेघा सहता समहासना ॥ ११ ॥
मुमुक्षुर्वैद्युतानग्नीस्त महाशयस्तदा ।

यानि भूतानि दृश्यानि क्षुमुशुश्यानि समम् ॥ १२ ॥
अदृश्यानि च भूतानि मुमुक्षुर्भयस्तनम् ।

आकाशमें महान् वेगावली निगल दम्र भारी गद्गद्वाह
व साथ टकराकर उस समय वैद्युत अग्निकी वर्षा करने लगे ।
जा प्राणी दिखायी दे रहे थे और जो नहीं दिखायी देते थे,
वे सब बिजलीकी कड़कई समान भयकर शब्द करने
लगे ॥ ११ १२ ॥

शिथिराणि भूतानि सप्रस्ताव्युडिजन्ति च ॥ १३ ॥
सम्प्रविच्यधिरे चापि न च परस्मिन्दि भयात् ।

उनमेंसे कितने ही अभिभूत होकर घरायायी हो गये ।
कितने ही भयभीत और उड्डिन्न हो उठे । कोई व्यथान व्याकुल
हो गये और कितने ही भयंकर मार जहजह हो गये ॥ १३ ॥

सह भूतै सतोयोमि सनाग सहस्राक्षस ॥ १४ ॥
सहस्रभूत ततो वगाद् भीममेघो महोदधिः ।

योजन व्यतिचक्राम वेलात्मन्यथ मरुद्व्यात् ॥ १५ ॥

समुद्र अपने भीतर रहनेवाले प्राणियों, तरङ्गों, सर्पों और
राक्षसोंवहिन सहस्र भयानक वेगसे हुक्का गया और प्रलय
कालके चिन्ता ही तीव्रगतिसे अपनी मयाग लोंपर एक एक
गोचन अगो बढ गया ॥ १४ १५ ॥

त तथा समतिकास्त नातिचक्राम रायव ।
समुद्रतममिचक्रो रामो नदनदीपतिम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार नदों और नदियोंने स्वामी उस उग्रत छत्रके
मयादा लोंपर बढ जानेपर भी शुकुद्धन श्रीरामचन्द्रकी
अपने स्थानसे धीरे नहीं हटे ॥ १६ ॥

ततो मयात् समुद्रस्य सागर सयमुत्थित ।
उदयाद्रिमहातीलात्मनोरिव दिवाकर ॥ १७ ॥

तब समुद्रके बीचमें गहर खरं मूर्तिमान् होकर प्रकट
हुआ, माना महातील मेरुपर्वतने अभूत उदयाचलसे सूर्यदेव
उदित हुए हैं ॥ १७ ॥

पनमौ सह दीप्ताम्यं समुद्र प्रत्यदृश्यत ।
स्निग्धवैद्युत्समवाशो जायन्तदनिभूषण ॥ १८ ॥

चमरील सुखवाले शोषण साथ समुद्रका दर्शन हुआ ।
उमगा वण निगध वैद्युत्समिग समान गम था । उसने
जम्बूनक्षामर सुगन्धके बने हुए आभूषण पहन रखे थे ॥

श्रीरामद्वारा समुद्रका आसन



रत्नमाल्याभ्यङ्गः पद्मपत्रनिमेषः ।
सप्तपुष्पमयी त्रिधा शिरसा धारयन् खड्गम् ॥ १९ ॥

गल रगत फूलों की माल्य तथा लाल ही खड्ग धारण किये थे । उसक नभ प्रच्छन्न कमण्डलेन समान सुन्दर थे । उसने शिरपर एक दिव्य पुष्पमाला धारण कर रक्ता था; जैसा सब प्रकार फूलों से बना गयी था ॥ १९ ॥

जानरूपमयैश्वर्ये तपनीयविभूषणे ।
व्यामनाना च रत्नाना भूषितो भूषणोत्तमैः ॥ २० ॥

सुग्री और तन हुए साधनक आभूषण उसकी गाम्भीर्यपूर्ण थे । वह अपने ही नीतिर रखन हुए ग्लौर उत्तम आभूषणों से विभूषित था ॥ २० ॥

धातुभिर्मण्डितः शैले विविधैर्हर्मयान्निभः ।
एकाग्रलीमध्यगतः तरलः पाण्डुरप्रभम् ॥ २१ ॥
विपुलनोरसा विभ्रन्कीम्बुभस्य सहोदरम् ।

इसीप्रिय नाना प्रकार धातुओं से अङ्कित मिश्रित पर्वत के समान शैला जाता था । वह अपने विशाल वनस्पतपर कौस्तुभ मणिक सहोदर (संग) एक-द्वेन प्रमाने युक्त मुख्य रत्न धारा सिरे हुए था; जो मानिषों की इच्छा मन्त्रमध्यभागमें प्रसारित हो रहा था ॥ २१ ॥

आघूणिततन्मौघः कालिकानिलसकुलः ॥ २२ ॥
गङ्गासिन्धुप्रधानाभिरापगाभिः समानृतः ।

चञ्चल तरङ्गों में घरे हुए था । मरुमाला और वायुने वह व्याप्त था तथा गङ्गा और सिन्धु आदि नदियों ने सब अस्त्रों से भरकर गड़ा था ॥ २२ ॥

उद्धतितमहाप्राहः सम्भ्रान्तोत्तराक्षम् ॥ २३ ॥
देवतामा सुरूपाभितानाकपाभिरीदरः ।

सागरः समुपक्रम्य पूरमामन्य वायवान् ॥ २४ ॥
अग्रशीर्षः प्रावृण्मिनाभ्य रायः शङ्खाणिनम् ॥ २५ ॥

उत्तर भीतर बढ़े-बड़े प्राह उद्धान्त हो रहे थे नाम और रायन धनपये हुए थे । देवताओं के समान सुन्दर रूप धारा करत आगे हुए विभिन्न रूपों की नदियों का साथ गति गाला नगानि समुद्रने निष्ठ अक्षर पत्ते धनुष और सुनाथ कीरो सम्पन्नित द्विध आर तिर हाथ जड़कर कहा— २५

पृथिवी वायुराशिशामो ज्योतिश्च गन्धः ।
स्यभावः सौम्य निष्ठानि शाश्वत मागमाश्रिताः ॥ २६ ॥

भूमि स्तुनन्तः । पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तत्र—य सर्वा अनन्तमयमें स्थित रहने हैं, अपने स्वरूप में गन्ध सभी नहीं छोड़ते—संग उन्हीं अस्त्रों से रहने हैं ॥ २६ ॥

तन्वभासो ममाभ्यः यद्वायोऽहमग्रः ।
विश्वरम्भु भवेद्वायव्यं तन्वभासम् ॥ २७ ॥

मया भी यह स्वभाव ही है जो मैं अग्र और अग्रही हूँ—वायु नभ पार नहीं जा सकता । यदि मया थाह मित्र ज्ये तो यह विश्वर—मन्वभास—निर्जन ही होगा । इसलिये मैं अपने पार क्षान्ता यह अग्र वत्ता हूँ ॥ २७ ॥

न शमात्र चलोभाद्धान भयात्प्राथियामनः ।
प्राहन्तस्कुलान् स्तम्भयेय कथञ्चन ॥ २८ ॥

पातुमार । मैं मार और नान आने में भय हुआ अपने अस्त्रों के विना कामनामें, लम्बे अथवा भयने किसी तरह क्षमिन् नहीं होने दूंगा ॥ २८ ॥

विश्वाम्ये येन गन्तासि त्रिगिह्येऽप्यहं तत्र ।
न प्राहा त्रिगिह्यन्ति यावत्सेना तरिष्यति ।

हरीणा तर्ण राम कर्णियामि यथा स्थलम् ॥ २९ ॥

श्रीराम ! मैं ऐसा उदाह वनाऊँ किन्ने आप मेरे पार चर जाऊँगे, वह वानरों का कथ नहीं दूँगे, सारी सेना पार उत्तर जङ्गलों और युद्धों का गेद नहीं होगा । मैं आशानीने सब कुछ कर दूँगा । वानरों पार जाने के लिये जिस प्रकार पुल बन लगे, वैसा प्राच मैं करूँगा ॥ २९ ॥

तमग्रशीर्षं तत्र राम शङ्ख मे उरुणालयः ।
अमोघोऽय महाबाणः कसिन् मेरो नि गन्धताम् ॥ ३० ॥

तत्र श्रीरामचन्द्रगन उमन कहा—(वर्णालय) ! मेरी कन सुनी । नभ यह विशाल वा अनेक है । वनाभा, इस किम स्थानपर छोड़ा कर ॥ ३० ॥

रामस्य वचन श्रुत्वा तच्च दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोन्मिर्हानेजा गन्धः गन्धमग्रशीर्षं ॥ ३१ ॥

श्रीरामचन्द्रकी यह वचन सुनकर आर नभ मगन वनाभा देवदत्त मन्त्रकी मगगगन रघुनाथने कहा— ॥

उत्तरेणाशशोऽस्ति कश्चिन् पुण्यतरो मम ।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यत्र भवान् ॥ ३२ ॥

प्रम ! मैं जानूँ आप मया विशाल एव पुण्यता है उदा प्रकार मेरे उत्तरका आर द्रुमकुल्य नामन विख्यात एक वृक्षा ही पर्वत देता है ॥ ३२ ॥

उग्रदशनरुमापो यद्दत्तस्तद् दम्भः ।
आभीरप्रमुखा पापा विरन्ति मल्लि मम ॥ ३३ ॥

यहाँ आकर अस्त्रों के बहुत मनुष्य निराम करत हैं किन्तु रूप आर कम बर ही मानक है । नभ कम्ब तथा आर गद है । ये तथा मया पर्वत है ॥ ३३ ॥

नैन तन्मगन पाप मोय गणकमभिः ।
अमोघः त्रिपता राम अथ तत्र गगानम् ॥ ३४ ॥

नैन तन्मगन पाप मोय गणकमभिः ।
अमोघः त्रिपता राम अथ तत्र गगानम् ॥ ३४ ॥

नैन तन्मगन पाप मोय गणकमभिः ।
अमोघः त्रिपता राम अथ तत्र गगानम् ॥ ३४ ॥

नैन तन्मगन पाप मोय गणकमभिः ।
अमोघः त्रिपता राम अथ तत्र गगानम् ॥ ३४ ॥

पापको में नहीं सह सकता । श्रीराम ! आप अपने इस उत्तम बाणसे वहीं सप्त कीजिये ॥ ३४ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा सागरस्य महात्मन ।
सुमोच त दास दीत पर सागरदर्शनात् ॥ ३५ ॥

महामना समुद्रका यह वचन सुनकर सागरके दिव्याय अनुमत्त उसी देनामें श्रीरामचन्द्रजीने वह अत्यन्त प्रज्वलित बाण उड़ दिया ॥ ३५ ॥

तेन तन्मरुफान्तर पृथिव्या क्रिल विधुसम् ।
निरातिन शरौ यत्र वज्रागनिममप्रभ ॥ ३६ ॥

वह उन्न और अशनिके समान तेजस्वी बाण जिस स्थान पर गिरा था, वह स्थान उस बाणके कारण ही पृथ्वीमें दुर्गम मरुभूमिके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३६ ॥

ननाद् च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता ।
तस्माद् घणमुखात् तोयमुत्पपात रसातलात् ॥ ३७ ॥

उस बाणसे पीड़ित होकर उस समय वसुधा अर्तनाद कर उठी । उसी चाँदसे जो छेद हुआ, उसमें होकर रसातल का जल ऊपरको उछलने लगा ॥ ३७ ॥

स यमूर तदा कूपो घण इत्येव विधुत ।
सतत चोत्थित तोय समुद्रस्येव दृश्यते ॥ ३८ ॥

वह छिद्र कुँदके समान हो गया और ऋणके नामसे प्रसिद्ध हुआ । उस कुँदसे सदा निकलता हुआ जल समुद्रके जलकी भाँति ही दितायी देता है ॥ ३८ ॥

अयनारणशब्दश्च दारुण समपद्यत ।
तस्मात्तद् गाणपतेन अप कुक्षिष्वशोयत् ॥ ३९ ॥

उस समय यहाँ भूमिके निदीन होनेका भयकर शब्द सुनायी पड़ा । उस बाणको गिराकर यहाँके भूतलकी कुक्षिमें (तालाब-घोखरे आदिमें) घतमान जलको श्रीरामने सुखा दिया ॥ ३९ ॥

विषयात त्रिषु लोकेषु मदशान्तरमेव च ।
शोपयित्वा तु त कुप्ति रामो वशरथात्मज ॥ ४० ॥

पर तस्मै ददौ विद्वान् मरुत्येऽमरविग्रह ॥ ४१ ॥

तस्ये वह स्थान तीनों लोकोंमें मरुभूमिवाले नामसे ही विख्यात हो गया । जो पहले समुद्रका कुक्षिप्रदेश था, उसे सुखाकर देवोपम पराक्रमी विद्वान् दारुणचन्दन श्रीरामने उस मरुभूमिको वरदान दिया ॥ ४०-४१ ॥

पराव्यश्चात्यगोमघ फल्गुलसामुत्त ।
यदुस्तेहो यदुस्तीर सुगन्धित्विधौपधि ॥ ४२ ॥

यह मरुभूमि पशुआर लिय हिनकारी शमी । वहाँ राग कम हागे । यह भूमि फल, मूल और रमोन गन्धन शमी । यहाँ की आदि विजन पदार्थ अधिक गुल्म होगे ।

दूधकी भी बहुतायत होगी । यहाँ सुगन्ध छापी रहेगी और अनेक प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होंगी ॥ ४२ ॥

एवमेतैश्च समुक्तो यदुभि समुतो मरु ।
रामस्य वरदानान्त्व शिप पत्न्या यभूव ॥ ४३ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामने वरदानसे वह मरुप्रदेश इस तरहके बहुसंख्यक गुणोंसे सज्जन हो सबके लिये मङ्गलकारी भाग बन गया ॥ ४३ ॥

तस्मिन् दग्धे तदा कुक्षौ समुद्र सरिता पति ।
राघव सर्वशालक्षमिद वचनमप्रवीत् ॥ ४४ ॥

उस कुक्षिस्थानके दग्ध हो जानेपर सरिताओंके स्वामी समुद्रने सम्पूर्ण शाखाके शाखा श्रीरघुनाथजीसे कहा— ॥ ४४ ॥

अप सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मण ।
पिशा दक्षवर श्रीमान् प्रीतिमान् विश्वकर्मण ॥ ४५ ॥

सौम्य । आपकी सेनाम जो वह नल नामक कान्तिमान् बानर है, साधाल् विचक्रमाका पुत्र है । इसे इनके पिताने यह वर दिया है कि तुम मेरे ही समान समस्त गिल्बकलमें निपुण होओगे । प्रभो । आप भी तो इस विश्वके सग विश्वकर्मा हैं । इस नलके हृदयमें आपके प्रति बड़ा प्रेम है ॥ ४५ ॥

एव सेतु महोत्साह करोतु मयि वानर ।
तमह धारपिप्यामि यथा ह्येप पिता तथा ॥ ४६ ॥

यह महान् उत्साही बानर अपने पिताने समान ही गिल्बकर्ममें समर्थ है, अतः यह मेरे ऊपर पुलका निमाण करे । मैं उस पुलके कारण कहूँगा ॥ ४६ ॥

एव महान् उत्साही बानर अपने पिताने समान ही गिल्बकर्ममें समर्थ है, अतः यह मेरे ऊपर पुलका निमाण करे । मैं उस पुलके कारण कहूँगा ॥ ४६ ॥

एवमुक्तोवर्धिर्नर समुत्थाय नलस्तत ।
अब्रवीद् वानरघ्रेष्ठो वाक्य राम महाबलम् ॥ ४७ ॥

यों कहकर समुद्र अटपट हो गया । तब वानरभेष्ट नल उठकर महाबली भगवान् श्रीरामसे बोला— ॥ ४७ ॥

अह सेतु करिष्यामि विस्तीर्ण मकरालये ।
पितु सामध्यमासाद्य तत्त्वमाह महाधि ॥ ४८ ॥

प्रभो । मैं पितार की हुई शक्तिका पाकर इस बिल्दुन समुद्रपर सेतुका निमाण करूँगा । महाभागने ठीक कहा है ॥ ४८ ॥

एव यव वरो लोके पुरुषस्येति मे मति ।
धिक् क्षाममहवसेषु सान्त्व दानमपायि चा ॥ ४९ ॥

एतस्मिन् पुरुषन निय अह्नहन प्रति एतन्तीति प्रयाग ही स्वने बड़ा अपसखक है, ऐसा मरु निमाण होगा । वेने लोकों प्रति क्षमा, सान्त्वना और दाननीति प्रयोगका धिक्कार ॥ ४९ ॥

अय हि मागग भीम मनुकमद्विद्वज्जया ।
ददौ दग्धभयाद् गाध राघवाय महोदधि ॥ ५० ॥

अय हि मागग भीम मनुकमद्विद्वज्जया । ददौ दग्धभयाद् गाध राघवाय महोदधि ॥ ५० ॥

इस भवानक समुद्रको राजा समरके पुत्रोंने ही बनाया है। फिर भी इसने वृत्तवशासे नहीं, दण्डक भयमे ही समुद्रकर्म देखनेकी इच्छा मनमें लाकर श्रीरघुनाथजीको अपनी याद ही है ॥ ५० ॥

मम मातुरिते दत्तो मन्दरे त्रिदशकर्मणा ।
मया तु सदृशः पुनस्तव देवि भविष्यति ॥ ५१ ॥

भन्द्राचलपर विश्वमाजीने मरी माताको यह वर दिया था कि 'देवि । तुम्हारे गर्भमें मेरे ही समान पुत्र होगा' ॥ ५१ ॥

औरसस्तम्य पुत्रोऽहः सदृशो विश्वकर्मणा ।
स्मारितोऽस्म्यहमेतेन तत्त्वमाह महोदधि ।
न चाप्यहमनुको न प्रव्यामामनो गुणान् ॥ ५२ ॥

इस प्रकार मैं विश्वकर्मा औरत पुत्र हूँ और शिल्प कर्ममें उन्हींके समान हूँ। इस समुद्रने आज मुझे इन सब बातोंका स्मरण दिला दिया है। महासागरने जो कुछ कहा है, ठीक है। मैं बिना पूछे आपलोगसे अपने गुणोंका नहीं बता सकता था, इसीलिये अनेक क्षुब्ध था ॥ ५२ ॥

समयश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं धै वरुणालये ।
तस्मादप्यहं यन्मनु सेतुं वानरपुङ्गवा ॥ ५३ ॥

मैं महासागरपर पुल बाँधनेमें समर्थ हूँ, अतः सब वानर आज ही पुल बाँधनेका कार्य आरम्भ कर दें ॥ ५३ ॥
ततो विद्युष्टा रामेण सर्वतो हरिपुङ्गवा ।
उत्पेततुमहारण्यं हृष्टा दानसहस्रदा ॥ ५४ ॥

तब मगान् औरमन मेरुनेसे लालों बड़े-बड़े वानर हर्य और उत्साहम भरकर सब ओर उछलते हुए गये और बड़े-बड़े बगलोंमें घुस गये ॥ ५४ ॥

ते नगान् नगसकाशा शास्त्राभ्युगगणर्था ।
यभञ्जु पादपास्तत्र प्रचक्षुः सागरम् ॥ ५५ ॥

वे परतन समान रिघालजाय वानरविशमणि परत निचरों और वृद्धोंको ताड़ देते और उन्हें समुद्रतक खींच लाते थे ॥ ५५ ॥

ते सालैश्चाभ्यकर्णैश्च धवैर्वैशैश्च वानराः ।
कुटजैरजुनैस्तालैस्तिलकैस्तिनिन्दैरपि ॥ ५६ ॥
विद्वक्त्रैः सप्तपर्णैश्च कर्णिकरैश्च पुष्पिनैः ।
चूतैश्चाशोककुटुम्बैश्च सागरं समपूरयन् ॥ ५७ ॥

वे साल, अभरण, धव, बौल, कुज, अजुन, ताल, निम्ब, निमिना, पल, छितमन, निर हुए फनेर, आम और अशोक आदि वृक्षोंने समुद्रको पूरने लगे ॥ ५६ ५७ ॥

ममूलाश्च मिमूलाश्च पादपान् हरिसत्तमा ।
इन्द्रयैनुनिगद्यस्य प्रजह्यथानरास्तनून् ॥ ५८ ॥

वे भेद वानर पाद वृक्षोंको जड़ने लगाइ छत्ते या जड़ने उपरने भी छड़ लाते थे। इन्द्रपशव समान ऊँच

ऊँचे वृक्षोंको उठाये लिये चर आते थे ॥ ५८ ॥

तालान् दाडिमगुल्माश्च नारिकेलान्निभीतकान् ।
करीगन् वधूलान् निम्बान् समाजह्वरितस्तन ॥ ५९ ॥

ताड़ों, अनारकी झाड़ियों, नारियल और मोड़के वृक्षों, करीर बहूल तथा नीमका भी इधर उधरसे ताड़-ताल्फर लाने लगे ॥ ५९ ॥

हस्तिमात्रान् महाकायाः पापाणाश्च महायत्नाः ।
पनताश्च समुपाष्ट्य यत्रै परिवहन्ति च ॥ ६० ॥

महाजाय महाबली वानर हाथीय समान बड़ी-बड़ी गिलाभा और पर्यंतोंको उठाइकर यत्रों (निमित्त माथनों) द्वारा समुद्रतक ल आते थे ॥ ६० ॥

प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धतम् ।
समुत्सर्प्य चाकाशमवासापत् तत पुन ॥ ६१ ॥

शिलाखण्डोंको फेंकनेसे समुद्रका जल सहसा आसमान उठ जाता और फिर वहाँसे नाचेंगे गिर जाता था ॥ ६१ ॥

समुद्रं सोभयामासुर्निपतन्त समन्ततः ।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायत शनयोजनम् ॥ ६२ ॥

उन वानरोंने सब ओर पधर गिराकर समुद्रमें हलचल मचा दी। कुछ दूसरे वानर सौ योजन लंबा सूत पकड़े हुए थे ॥ ६२ ॥

नलक्ष्मणे महासेतुं मध्ये नदनदीपते ।
स तदा म्रियते सेतुगनैर्यौरकर्मभिः ॥ ६३ ॥

नल नदी और नदियोंके स्वामी समुद्रके बीचमें महान् सेतुका निमाण कर रहे थे। भयकर कर्म करनेवाले वानरोंने मिल-जुलकर उन समय सेतुनिमाणका कार्य आरम्भ किया था ॥ ६३ ॥

इण्डानन्ये प्रगृह्णन्ति विविन्वन्ति तथापरे ।
यानरैः शतदास्तत्र रामम्यामापुःस्रैः ॥ ६४ ॥
मेघाभैः पर्वताभैश्च तृणैः फाटैरयधिरैः ।
पुष्पितामैश्च तदभिः सेतुं यजन्ति यानराः ॥ ६५ ॥

कोई नापनने लिये दण्ड पकड़ते थे ता काइ गाममी जुड़ते थे। भीरमचन्द्रजीकी आज्ञा निष्पादन करने केन्द्रों वानरका पत्तों और गंधोंके समान प्रतीति लाते थे, यहाँ निनकों और काष्ठोंद्वारा भिन्न भिन्न स्थानोंम पुन बाँध रहे थे। भिन्न अप्रमाण कुन्धेन लदे थे जमे वृक्षोंद्वारा भी वे वानर मनु बाँधते थे ॥ ६४ ६५ ॥

पापाणाश्च गिरिप्रख्यान गिरीणां शिरमणिच ।
दृश्यते परिधानतो गृष्ट दानयमनिभा ॥ ६६ ॥

पर्यंतों बड़ी-बड़ी चट्टानें और परत निगर लहर सब ओर दौड़ते वानर दानदोष समान दिग्गयी देते थे ॥

शिलाणां शिष्यमाणां शैलानां तत्र पात्यताम् ।
यभूय तुमुलं शब्दस्तथा तस्मिन् महोदधी ॥ ६७ ॥

उस समय उस महासागरमें बंकी जाती हुई शिलाओं
और गिराये जात हुए पहाड़ों गिरनेसे बड़ा भीषण शब्द
हो रहा था ॥ ६७ ॥

एतानि प्रथमेनाह्ना योनानि चतुर्दश ।
प्रहृष्टैर्गजसङ्घैस्त्वरमाणैः

हाथीने समान निचालकाय वानर बड़े उत्साह और
तेजीन साथ काममें लगे हुए थे । पहले दिन उन्होंने
चौदह याजन लगा पुत्र बाँधे ॥ ६८ ॥

द्वितीयेन तथैवाह्ना योजनानि तु त्रिंशति ।
एतानि स्रवणैस्तुर्ण भीमकार्यमहाबलं ॥ ६९ ॥

फिर दूसरे दिन मयूर शरीरवाला महाबली वानरोंने
तृतीयेन काम करन तीन योजन लगा पुल बाँध दिया ॥ ६९ ॥
अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे ।
त्वरमाणैर्महाकार्यैरेकत्रिंशतिरेव

तीसरे दिन शीघ्रतार्पण काममें उठ हुए महाकाय
कपिगोत्रे समुद्रमें इक्ष्वाकू याजन लगा पुल बाँध दिया ॥ ७० ॥

चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि वा ।
योजनानि महाबलैः एतानि त्वरितैस्ततः ॥ ७१ ॥

चौथे दिन महान् वेगवाली और शीघ्रगती वानरोंने
पाँच याजन लगा पुल और बाँध दिया ॥ ७१ ॥

पञ्चमेन तथा चाह्ना स्रवणे क्षिप्रकारिभिः ।
योजनानि प्रयोरिन्द्रा सुषेलेमधिष्ठित्य वै ॥ ७२ ॥

तथा पाँच दिन शीघ्रता करनेवाले उन वानर वीरोंने
सुषेले परतने निरुत्तक तेईस योजन लगा पुल बाँधे ॥ ७२ ॥

स वानरवर श्रीमान् विभक्तमामजो बली ।
यवध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा ॥ ७३ ॥

इस प्रकार विश्वामित्रे बन्वान् पुत्र कस्तिमान् कपिश्रेष्ठ
नलने समुद्रमें लौ योजन लगा पुल तैयार कर दिया । इस
काममें वे अपने पिताने समान ही प्रसिद्धावाली थे ॥ ७३ ॥

स नलेन हृत नेतु सागरे मकरालय ।
शुशुमे सुभग श्रीमान् स्वातीपथ इवाभ्यरे ॥ ७४ ॥

मकरालय समुद्रमें नलन द्वारा निर्मित हुआ यह
सुन्दर और शोभावाली सेतु आगरामें स्वातीपथ (छाया
पथ) का समागम स्थान होता था ॥ ७४ ॥

ततो ह्वा सगन्धरा सिद्धाथ परमशय ।
आगम्य गगने तस्मिन् पुष्पासात्तद्भुतम् ॥ ७५ ॥

उस समय देवता गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि उस
भूतपुत्र कायका देवनेत्र लिय आगरामें जाकर रह गये थे ॥

दशयोजनविस्तीर्णं
दृष्टुर्दैन्यं भया

नलने कनाये हुए लौ योजन लगे और दस योजन
चौदह उध पुलों देवताओं और गन्धर्वोंने देखा, जिसे
बनाया बहुत ही कठिन काम था ॥ ७६ ॥

आप्लवन्त प्लवन्तश्च गर्गन्तश्च सुवगमा ।
तमचिन्त्यमसह्य च ह्यद्भुत लोमहृषणम् ॥ ७७ ॥

वानरलोग भी इधर उधर उल्लूकगर्जन करने
हुए उस अचिन्त्य, असह्य, अद्भुत और रोमांचक
पुलमें देख रहे थे । समस्त प्राणियोंने ही समुद्रमें
बाँधनेका वह कार्य देखा ॥ ७७ ॥

तानि कोटिसहस्राणि वानराणां महोजसाम् ॥ ७८ ॥
वज्रन्त सागरे सेतुं जम्बु पार महोदधे ।
इस प्रकार उन सहस्र कोटि (एक लाख) महाकाय
वानरोंने जम्बु पार पहुँच गया ॥ ७८ ॥

विद्यालं सुवृत्त श्रीमान् शुभूमि सुम्नमाहित ॥ ७९ ॥
अशोभत महान् सेतुं सीमन्त इव सागरे ।
बड़े पुल बड़ा ही निचाल, सुन्दरतासे बनाया हुआ,
शोभासम्पन्न, समतल और सुसम्भ्रम था । वह महान् सेतु
सागरमें सीमन्त समान गोभा जाता था ॥ ७९ ॥

ततः पारे समुद्रस्य गन्दापाणिर्विभीषण ॥ ८० ॥
परेषामभिधातायमतिष्ठत् सचिवैः सह ।
पुल तैयार हो जानेपर अपने सचिवोंका साथ निभीषण
गन्दापाणिवर समुद्रमें दूसरे तटपर लड़के हो गये, जिन
का पक्षीय राक्षस यदि पुल तोड़नेन लिय आये ता उन्हें
दण्ड दिया जा सके ॥ ८० ॥

हनुमन्त त्वमारोह अह्ना त्वय लक्ष्मण ।
अथ हि विपुले गीर सागरो मकरालय ॥ ८१ ॥
वैहायसी युवामेती धानरी धारविप्यत ।
तदनन्तर शुभोने नलपराक्रमी भीषणसे कहा—
वीरवर ! आप हनुमान् कंधपर उठ जाइय और लक्ष्मण
अश्वदधी पीठपर सवार होइं कथा कि यह मकरालय समुद्र
बहुत लंबा-चौड़ा है । ये दोनों वानर आराध-मार्गसे
चरणग्राह हैं । अतः ये ही दोनों आप दोनों मादपोंछ
धारण कर रहोगे ॥ ८१ ॥

अप्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान् राम सङ्गमण ॥ ८२ ॥
जगाम धन्वी धमात्मा सुग्रीवेण समन्वित ।
इस प्रकार चतुर्थी एतं पमात्रा भगवान् भीषण

छमण और मुग्रीवके साथ उस सेनाके आगे-आगे चले ॥
अन्ये मध्येन गच्छन्ति पादर्थतोऽन्ये ध्रुवगमा ॥ ८४ ॥
सलिल प्रपतन्त्यन्ये मागमन्ये प्रपेदिरे ।
केचिद् यैहायसगता सुपणा इव पुच्छुधु ॥ ८५ ॥

दूसरे वानर सेनाएं बीचमें और अलग-अलगमें होकर
चलने लगे । किन्तु ही वानर जलमें नूढ़ पड़ते और तैरते
हुए चलने लगे । दूसरे पुलका माग पकड़कर जाते थे और
किन्तु ही आकाशमें उड़कर गरुड़ों समान उड़ने लगे ॥ ८४ ८५ ॥

घोषेण महता घोष सागरस्य समुद्भूतम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा सरन्ती हरिवाहिनी ॥ ८६ ॥

इस प्रकार पार जाती हुई उस मयकर वानर-सेनाके
अगले महान् घोषमें समुद्रकी बनी हुई मीरणा गजनाको भी
दबा दिया ॥ ८६ ॥

घानराणा हि सा तीणा वाहिनी नल्लसेमुखा ।
तीरे निविदिशे राज्ञो बहुमूलफल्लोदके ॥ ८७ ॥

घोरे घोरे गानराजी मारी सेना नल्लसे बनाय हुए पुलमें
खुद्रके उस पार पहुँच गयी । राजा मुग्रीवने फल, मूल

हृत्पापे भीमद्रामायणे वास्मीकीय आदिकाण्ये युद्धकाण्डे द्वविंश सर्गः ॥ २२ ॥

इम प्रकार आग्रहनीकिनिमित्त भावनामय आदिकाण्ये युद्धकाण्डे बाह्यसौ सर्ग पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंश सर्ग

श्रीरामका लक्ष्मणसे उत्पातसूचक लक्ष्मणोंका वर्णन और लङ्कापर आक्रमण

निमित्तानि निमित्तशो हृद्गु लक्ष्मणपूर्वजः ।
सौमित्रि सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

उत्पन्नपुत्र लक्ष्मणोंका ज्ञाता तथा लक्ष्मणसे बड़े भाई
श्रीरामने बहुतसे अवगतुन देवसर सुमित्राहूतार छमणछ
हृदयमें लगाया और इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

परिगृह्योदक शीत वनानि फण्यन्ति च ।
बलौघ सविष्येयम् गूरा निठेम न्दमण ॥ २ ॥

लक्ष्मण ! जहाँ शीतल जलकी सुविधा हो और फलोंमें
भर हुए जग हैं, उन स्थानोंका आश्रय लेकर हम अन
सैन्यमूला फल मागमें बोल दें और हम व्यूषद कर
इगदी स्थान लिय सग सागरान रहें ॥ २ ॥

लोभयस्व भीम भय पदयाम्पुस्यितम् ।
प्रवट्ण प्ररीराणाभृत्तानगव्यन्ताम् ॥ ३ ॥

भी देवता हैं मन्वा ह्यतोंका सगल करनेका मारा
भय डरानि हुआ है जो रीडा वानरा और राजाओं प्रमुग
पीरों विनागा मूला ॥ ३ ॥

घाताथ कन्दुग पान्ति कम्पते च यमुधरा ।

और जलकी अधिकता देख सागरक तत्पर ही मेनावा
पड़ा डाला ॥ ८७ ॥

तदद्भुत राघवकर्म दुष्कर
समीक्ष्य मेवा सह सिद्धचारुणै ।
उपेत्य राम सहसा महर्षिभि
स्त्वमभ्यपिञ्चन् सुगुभैर्जैः पृथक् ॥ ८८ ॥

भावान् श्रीरामका वह अद्भुत और दुष्कर कर्म
देखकर सिद्ध, चारुण और महर्षियों साथ देवनालग
उनके पास आय तथा उन्होंने अलग-अलग पत्रिण एव
गुम कलमें उनका अभिरा किया ॥ ८८ ॥

जयस्य शत्रून् नरदेव मेदिनीं
ससागरा पाल्य शाश्वती समा ।
हीनो राम नरदेवसत्कृत
गुभैर्योभिर्विधिर्धरपूजयन् ॥ ८९ ॥

किर बाल—नरदेव ! तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर
और समुद्रपर्यन्त मारी पृथ्वीका सदा पालन करते रहो । इस
प्रकार भीति भौति मङ्गलमूचक वक्ताओंद्वारा राजाभमानि
श्रीरामका उन्होंने अभिनन्दन किया ॥ ८९ ॥

पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति च महीरहा ॥ ४ ॥
धूलसे मरी हुई प्रवण बायु चल रहा है । घरा
कौपनी है । पर्वतों गिर रहे हैं और पड़ गिर रहे
हैं ॥ ४ ॥

मेधा प्रयादस्तकाशा परया परयस्यना ।
भूरा भूर भ्रमयन्ति मिथ शानितविदुभि ॥ ५ ॥

मधोरी घट गिर अगी है, जो मानकी रगुमन खान
लियाया तनी है । वे मध देखनेमें ता भर है ही इतरी
गवना भी बनी करार । य भूराभूरा रानी भूरा नि
हुए बगी दगा करते हैं ॥ ५ ॥

रत्नचन्द्रनसकाशा सख्या परमगणना ।
ज्वलत प्रपन्त्येनदादित्यादन्तिमगुलम् ॥ ६ ॥

बृह सख्या लक्ष चन्द्रन समान रानी धारा करर बड़ी
मयकर दिगायी तना है । प्रपन्ति मूमें य अतरी उगल
दृष्ट दृष्टकर गिर रही हैं ॥ ६ ॥

दीना दीर्घवरा भूरा सन्ता मृगपाणि ।
प्रयादित्य विनदन्ति जनयन्ता मदयम् ॥ ७ ॥

शिलाना क्षिप्यमाणाना शैलाना तत्र पात्यताम् ।

यभूव तुमुल शब्दस्तथा तस्मिन् महोदधी ॥ ६७ ॥

उस समय उस महासागरमें पानी जानी हुई शिलओं और मिट्टी के आते हुए पहाड़ों के गिरनेसे बड़ा भीषण शब्द हो रहा था ॥ ६७ ॥

कृतानि प्रथमेनाह्वा योजनानि चतुर्दश ।

प्रहृष्टैर्गजसफारीस्त्वरमाणैः सुवह्नुभिः ॥ ६८ ॥

हाथीयें समान निशाल्काय वानर बड़े उत्साह और तेजीसे साथ कामम लगे हुए थे । पहले दिन उन्होंने चौदह योजन लंबा पुल बाँध दिया ॥ ६८ ॥

द्वितीयेन तथैवाह्वा योजनानि तु विंशति ।

तृतीयैस्तूर्णं भीमान्यैर्महाबलैः ॥ ६९ ॥

फिर दूसरे दिन भयंकर घोरबाल महाबली वानरोंने तेजीसे काम करके बीस योजन लंबा पुल बाँध दिया ॥ ६९ ॥

अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे ।

स्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेव च ॥ ७० ॥

तीसरे दिन शीमतापूर्ण कामम पुत्र हुए मरानाय कपियोंने समुद्रमें इक्कीस योजन लंबा पुल बाँध दिया ॥ ७० ॥

चतुर्थेन तथा चाह्वा द्वाविंशतिरथापि वा ।

योजनानि महाबलैः कृतानि त्वरितैस्ततः ॥ ७१ ॥

चौथे दिन महान् धेग्याली और शीमकारी वानरोंने बाँधे योजन लंबा पुल और बाँध दिया ॥ ७१ ॥

पञ्चमेन तथा चाह्वा सुवह्नु क्षिप्रकारिभिः ।

योजनानि त्रयोविंशत् सुबेलमधिहत्य वै ॥ ७२ ॥

तथा बाँचने दिन शीमता करनेवाले उन वानर वीरोंने सुबेल पत्रतः निकटतक तेईस योजन लंबा पुल बाँधा ॥ ७२ ॥

स वानरवरः श्रीमान् विषयकमात्मजो धर्मा ।

यद्यप्य सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा ॥ ७३ ॥

इस प्रकार विश्वस्मरने योग्य पुत्र कान्तिमान् कविश्रम नलने समुद्रमें सौ योजन लंबा पुल तैयार कर दिया । इस कामम वे अपने पिताके समान ही प्रतिभावाली थे ॥ ७३ ॥

स नलेन कृत सेतुं सागरे मकरालये ।

शुभे सुभग श्रीमान् स्वातीपथ इवागरे ॥ ७४ ॥

मकरालय समुद्रम तलर द्वारा निर्मित हुआ वह सुन्दर और शोभावाली सेतु आसामें स्वातीपथ (छाया पथ) पर समान मुखाम्नि होता था ॥ ७४ ॥

ततो दद्या संगद्यसा सिद्धाश्च परमपथः ।

आगम्य गगने तस्मिन्नुष्णामाल्लसद्भुतम् ॥ ७५ ॥

उस समय देवता, गणेश, सिद्ध और मर्त्य उस अद्भुत पार्वती देवताके लिये आसामें आकर रहने थे ॥

दशयोजनविस्तीर्णं

शतयोजनमापतम् ।

वह पुर्वेका धर्मो

नलसेतुं सुदुष्करम् ॥ ७६ ॥

नलके बनाये हुए सौ योजन लंबे और दस योजन चौड़े उस पुलको देवताओं और गन्धर्वोंने देखा, जिसे बनाना बहुत ही कठिन काम था ॥ ७६ ॥

आप्लवन्त पचन्तश्च गजन्तश्च सुधममा ।

तमचिन्त्यमसह्य च ह्यद्भुत लोमहपणम् ॥ ७७ ॥

ददशु सखभूतानि सागरे सेतुय धनम् ।

वानरलोग भी इधर उधर उछल दूधकर गर्माना करत हुए उस अचिन्त्य, असह्य, अद्भुत और लोमाच्छदारी पुलको देख रहे थे । समस्त प्राणियोंने ही समुद्रमें सेतु बाँधनेका यह कार्य देखा ॥ ७७ ॥

तानि फोटिसहस्राणि वानराणा महौजसाम् ॥ ७८ ॥

यच्चन्त सागरे सेतुं जम्मु पार महोदधे ।

इस प्रकार उन सहस्र कौटि (एक लाख) महाबली एवं उत्साही वानरोंका दल पुल बाँधते बाँधते ही समुद्रके उस पार पहुँच गया ॥ ७८ ॥

विशालं सुकृतं श्रीमान् सुभूमिं सुसमाहितं ॥ ७९ ॥

अशोभत महान् सेतुं सीमन्त इव सागरे ।

वह पुल बड़ा ही विशाल, सुन्दरतासे बनाया हुआ, शोभास्पन्न, समतल और सुसम्बद्ध था । वह महान् सेतु सागरम सीमन्तने समान बोभा पाता था ॥ ७९ ॥

ततः परे समुद्रस्य गद्वापाणि विभीषणः ॥ ८० ॥

परेषामभिघाताय मतिष्ठत् सचिरे सह ।

पुल तैयार हो जानवर अपने सचिनों साथ विभीषण गद्वा धावमें लकर समुद्रके दूसरे तटपर लड़े हा गये, जिनमें गजपुखीय राक्षस यदि पुल तोड़नेके लिये आये तो उन्हें दण्ड दिया जा सके ॥ ८० ॥

सुग्रीयस्तु ततः प्राह राम सत्यपराक्रमम् ॥ ८१ ॥

हनुमन्त त्वमारोह अहम् त्वय लक्ष्मण ।

अथ हि विपुले धीर सागरो मन्त्रालयः ॥ ८२ ॥

वैहायसी युवामेती वानरी धारयिष्यत ।

तदनन्तर सुग्रीवने मत्वरणमी श्रीरामसे कहा— वीरवर ! आप हनुमान् पर कंधपर चढ़ जाइय और लक्ष्मण अत्रदक्षी पीठपर सवार हो लें क्योंकि यह मन्त्रालय समुद्र बहुत लंबा-चौड़ा है । ये दोनों वानर आसामें मार्गसे चल्नेवाले हैं । अब ये ही दोनों आप दोनों भाइयोंसे धारण कर लेंगे ॥ ८१ ८२ ॥

अप्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान् रामः सङ्गमणः ॥ ८३ ॥

जगाम धन्वी धमात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ।

इस प्रकार शत्रुघ्न एवं धर्मात्मा भगवान् श्रीराम

लम्पण और सुमीवके साथ उस सेनान आगे-आगे चल ॥
अन्ये मध्येन गच्छन्ति पादुतौऽन्ये पृथगमा ॥ ८४ ॥
सलिल प्रपतन्त्यन्ये मागमन्ये प्रवेदिरे ।
केचिद् वैहायसगता सुपणा इव पुच्छु ॥ ८५ ॥

दूधरे यानर मेनाम बीचमें और अगल-अगलमें होकर
चलने लगे । कितने ही यानर त्रयमें बूढ़ पड़ते और तैरते
हुए चलने थे । दूधरे पुलसा माग पकड़कर आते थे और
कितने ही आकाशमें उड़लकर गरुड़के समान उड़ते थे ॥ ८४ ८५ ॥

घोषेण मदता घोष सागरस्य समुत्कृतम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिजाहिनी ॥ ८६ ॥

इस प्रकार पार लीं हुए उस मगर यानर-सेनाने
अग्ने महान घोषने समुद्रकी गयी हुए भीमग गवनाको भी
दबा दिया ॥ ८६ ॥

घानराणा हि सा तीष्णा वाहिनी नलसेनुता ।
तीरे नित्रिदिशे रागे यदुमूर्च्छलेदके ॥ ८७ ॥

धीरे धीरे यानरकी गयी सेना नलसेनुता बनाय हुए पुलसे
समुद्रने उस पार पहुँच गयी । राजा सुमोहन कल मूल

हृत्पापै श्रीमद्रामायणे वाग्वीक्रीप आदिकाये गुदकाण्डे द्वविंशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस प्रकार अटलीक्रीमेनिर्मित आभरामायण आदिकायके गुदकाण्डन बादसर्वो सा पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

श्रीरामरा लक्ष्मणसे उत्पातघृच्छर लसणोका वर्णन और लङ्कापर आक्रमण

निमित्तानि निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपुत्रज ।
भीमिभिः सङ्गरिष्यज्य इव वज्रमप्रतीत् ॥ १ ॥

उत्पातघृच्छर लङ्कापर जाता तथा लक्ष्मण बड़े भाद
भीममने बहुतने अग्रातुन देवसर सुमिश्रकुमार लक्ष्मणरा
हृदयने लयाया आर इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

परिगृह्योदकं दानं यनानि फल्गन्ति च ।
सर्लोष सविभयेम व्यूह निपेड्य नृदमज ॥ २ ॥

लक्ष्मण ! जो जाना जल्दी हरिषा हा आर कलमें
मेरे हुए लक्ष्मण हा उन सानोंका अभय लक्ष्मण हा अग्न
सैन्यगूह्य व भोगमें बौं दे और इसे व्यूह नृदमज कर
इसरी लक्ष्मण लिय सग साधन रहे ॥ २ ॥

लोकमयसर भीम भय पदयामुपस्थितम् ।
प्रनहण प्रवीरणाभूतयानरग्नसाम् ॥ ३ ॥

भी देगा हा सैन्य हा लोका लक्ष्मण वदेरग्न मोरा
भय लक्ष्मण हा हा है अ वीरा दास जोर लक्ष्मण प्रमुग
धीरुप पितारा गूह्य हा ॥ ३ ॥

याताय कतुया यान्ति कम्पने न यदुधरा ।

और जल्दी अधिकता देस सागरस तत्पर ही मेनाम
पड़ान डाल ॥ ८७ ॥

सद्वहृत राघवकम दुष्कर
समीक्ष्य मैत्रा सह सिद्धचारुणैः ।

उपेत्य राम सहसा महपिभि
स्वाम्यभिश्च न सुगुर्भैर्जलैः पृथक् ॥ ८८ ॥

मगवान् भीममरा वद अद्भुत और दुष्कर कर्म
देवकर सिद्ध, चारुण और महर्षियों साथ देवनाल्लग
उनके पास आप तथा उन्होंने अग्न अग्न पत्रि एन
घुम कने उनका अभिमत किया ॥ ८८ ॥

जयस्य शत्रून् नरदेन मेदिनी
ससामरा पालयशाधती समा ।

इतीर राम नरदेनसत्तत
गुर्भैर्योभिर्निर्गिरपूजयन् ॥ ८९ ॥

छि बाहे—नरदेन । तुम गुर्भैर निजय प्राप्त कर
और मनुष्यपरन्त गयी पृथ्वीका सग पालन करते रही । इस
प्रकार मौलि मौलि मङ्गलपूजन यचनांदाग राजसम्मानित
भीरामरा उन्होंने अभिमत इन किया ॥ ८९ ॥

पथताम्रणि खेपन्ते पतन्ति च महीरहा ॥ ४ ॥

धूलने भी हुए प्रचण्ड वायु चल रही है । घटती
पौंसी है । पतनीर गिरर हिल रहे है और पड़ गिर रहे
है ॥ ४ ॥

मेघा प्रयादमरादा परया परायव्यता ।
भूरा भूरा प्रययन्ति मिश्र दानितरिदुभि ॥ ५ ॥

मेघोंकी घग गिर आयी है, ज मागलगी गगनोंक सगान
गिगाया ली है । ये भर देवयन तो भर है, हा इसरी
गन्ता भा बड़ा चक्र हा । य क्रान्तिक गन्ता घूर्णन मि
हुए जल्दी घरा कने है ॥ ५ ॥

रजचन्दनसरादा सख्या परमगणना ।
ज्वलन्त प्रपन्नेतद्दति यद्दतिमग्नलम् ॥ ६ ॥

सह सख्या लक्ष्मण नन्दन गमन दति । परा करण बड़ी
भरकर गिगीरी गता है । प्रपन्नेतद्दति मृग य अग्न
ग्न ग्न गिर रहा है ॥ ६ ॥

दीना दीनमरा भृग सदा मृगपत्रिण ।
प्रयादित्य निन्दन्ति जायन्तो मत्तपम् ॥ ७ ॥

भूत पशु और पक्षी दीन आकार धारण कर सूर्यकी ओर
मुँह करके दीनतापूर्ण स्वरमें चिल्लाकर करते हुए महान् भय
उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ७ ॥

रजन्यामप्रकाशस्तु सतापयति चन्द्रमा ।
सृष्णरक्ताश्रुपर्यन्तो लोकक्षय इवोदित ॥ ८ ॥

रातमें भी चन्द्रमा पूर्णतः प्रकाशित नहीं होते और
अपने स्वभावके विपरीत ताप दे रहे हैं । ये काली और लाल
किरणोंसे व्याप्त हो इस तरह उदित हुए हैं, मानो जगत्के
प्रलयका काल आ पहुँचा हो ॥ ८ ॥

हृत्सोऽप्रशस्तश्च परिचेपस्तु लोहित ।
आदित्ये विमले नील लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ ९ ॥

लक्ष्मण ! निर्मल सूर्यमण्डलमें नीला चिह्न दिखायी देता
है । सूर्यके चारों ओर ऐसा घेरा पड़ा है, जो छोटा, रूखा,
अशुभ तथा लाल है ॥ ९ ॥

रजसा महता चापि नक्षत्राणि हतानि च ।
युगान्तमिव लोकाना पश्य शसन्ति लक्ष्मण ॥ १० ॥

सुमित्रानन्दन ! देखो ये तारे बड़ी भारी धूलिराशियों
आच्छादित हो हतप्रभ हो गये हैं, अतएव जगत्के भावी
संशयकी सूचना दे रहे हैं ॥ १० ॥

काका इयेनास्तथा नीचा गुग्गुलुः परिपतन्ति च ।
शिवाश्चाप्यशुभान् नादात् नदन्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥

‘कोए’ बाज तथा अवम गीध चारों ओर उड़ रहे हैं
और शिवारिजं अक्षुभसूचक महाभयकर बोली बोल रही
हैं ॥ ११ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाक्यमीकीये आदिकाव्ये बुदकाण्डे त्रयोविंश सर्गः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यके बुदकाण्डमें तेईसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभाका वर्णन करके सेनाको ब्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना,
श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुकका रावणके पास जाकर उनसे सैन्यशक्तिकी
प्रबलता बताना तथा रावणका अपने बलकी डींग हॉकना

सा धीरस्तमिती राघवा विरराज व्यग्रचित्ता ।
शशिना शुभनन्त्रा पौष्णमासीन् शारदी ॥ १ ॥

सुयोगने उस धीर बानरसेनाकी यथोचित व्यवस्था की
थी । उनके कारण यह वैशी ही शोभा पाती थी जैसा चन्द्रमा
और शुभ नक्षत्रोंसे युक्त शरत्कालकी पूर्णिमा सुयोगिन हो
रही हो ॥ १ ॥

प्रज्वाल च वेगेन प्रस्ता चैव यशुधरा ।
पीड्यमाना यदौघेन तेन सागरयर्चिता ॥ २ ॥

शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुक्तैः कपिराक्षसैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितवर्द्धमा ॥ १२ ॥

जान पड़ता है वानरों और राक्षसोंके चलाये हुए शिला
खण्डों, शूलों और तलवारोंसे यह सारी भूमि पत्र जायगी तथा
यहाँ मांस और रक्तकी कीच जम जायगी ॥ १२ ॥

क्षिप्रमद्यैव दुर्धर्मा पुरा रात्रणपालिताम् ।
अभियाम जवेनैव सर्वैर्हगिरावृता ॥ १३ ॥

‘हमलक्ष्य आन ही मितनी बस्ती हो छत्र’ इस रावण
पात्रि दुर्जय नगरी लङ्कापर समस्त वारोंके साथ वेगपूर्वक
धाया बाल दें ॥ १३ ॥

इत्येवमुक्त्वा धन्वी स राम सप्रामाधरण ।
प्रतस्थे पुरतो रामो लङ्कामभिमुखो विभु ॥ १४ ॥

देवा कहकर सप्रामादित्वी भगवान् श्रीराम हाथमें धनुष
लिये सबसे आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १४ ॥

सविभीषणसुग्रीवा सर्वे ते वानरर्षभा ।
प्रतस्थिरे विनर्दन्तो धृताना द्विपता वधे ॥ १५ ॥

फिर विभीषण और सुग्रीव साथ वे सभी अश्व बानर
गर्जना करते हुए बुदका ही निक्षय रत्ननेगले शत्रुओंका वध
करनेके लिये आगे बढ़े ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रियार्थं तु सुतरा धीमशालिताम् ।
हरीणा कर्मचेष्टाभिस्तुतोप रघुनन्दन ॥ १६ ॥

वे सबके-सब रघुनायकीका प्रिय करना चाहते थे । उन
बलशाली वानरोंके कर्मों और चेष्टाओंमें रघुकुलनन्दन श्रीराम
को बड़ा स्तोत्र हुआ ॥ १६ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाक्यमीकीये आदिकाव्ये बुदकाण्डे त्रयोविंश सर्गः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यके बुदकाण्डमें तेईसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभाका वर्णन करके सेनाको ब्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना,
श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुकका रावणके पास जाकर उनसे सैन्यशक्तिकी
प्रबलता बताना तथा रावणका अपने बलकी डींग हॉकना

सा धीरस्तमिती राघवा विरराज व्यग्रचित्ता ।
शशिना शुभनन्त्रा पौष्णमासीन् शारदी ॥ १ ॥

सुयोगने उस धीर बानरसेनाकी यथोचित व्यवस्था की
थी । उनके कारण यह वैशी ही शोभा पाती थी जैसा चन्द्रमा
और शुभ नक्षत्रोंसे युक्त शरत्कालकी पूर्णिमा सुयोगिन हो
रही हो ॥ १ ॥

प्रज्वाल च वेगेन प्रस्ता चैव यशुधरा ।
पीड्यमाना यदौघेन तेन सागरयर्चिता ॥ २ ॥

बढ़ विशाल सैन्य-समूह समुद्रय समान जान पड़ता था ।
उसके भारसे दक्षी दुर्द यमुषा भयभीन हो उठी और उसका
वेगसे डोलने लगी ॥ २ ॥

ततः शुशुभुरावृष्ट लङ्काया फानवीकस ।
मेरीमृदङ्गसद्युष्ट तुमुल लोमहृषणम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर बानरोंने लङ्कामें महान् को-प्रहल मना, जो भेरी
और मृदङ्गके गम्भीर धावने मिलकर बड़ा ही भयंकर और
रोमाञ्चकारी जान पड़ता था ॥ ३ ॥

धम्युस्तेन घोषेण सहृष्टा हरियूयया ।
ममृष्यमाणस्तास्तद् घोष विनेदुर्घोषवत्तरम् ॥ ४ ॥

उत्त तुमुल्नादका मुनकर वानरयूयपति ह्य और उत्साह
में मर गये और उने न क सक्तेन करण उसमे भी बंदकर
परन्दरे गजना करने लगे ॥ ४ ॥

राक्षसास्तद् श्रवणान् शुश्रुषुस्तेऽपि गजितम् ।
मर्त्तामित्र दृष्टाना मेघानामन्वरे स्वनम् ॥ ५ ॥

राक्षसोंने वानरोंकी वद् गजना सुनीं जो दर्पमें मरकर
हिंदनादकर रह ये । उनकी आवाज आकाशमें मधोंकी गजना
क समान स्वन पड़ती थी ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्का चित्रध्वजपताकिनीम् ।
जगाम मनसा सीता द्रुयमानेन चेतसा ॥ ६ ॥

दृष्ट्वापनन्दन श्रीरामने चित्रध्वजपताभ्रमे सुग्रे
भित लङ्कापुरीका देखकर व्यथितचित्तमे मन हीमन सीताका
स्मरण किया ॥ ६ ॥

अत्र सा मृगदायान्त्री रागणेनोपद्रुष्यते ।
अभिभूता प्रहेणोव लोहिताङ्गेन रोहिणी ॥ ७ ॥

वे भीतर ही भीतर कहने लगे—हाय ! यहीं वह मृग
लंबना सीता रावणन वैदमे पड़ी है । उसकी दया मग्नग्रहने
आक्रमण हुई यहिगाव समान हो रही है' ॥ ७ ॥

दीधमुण्य च निःश्वस्य समुद्रीक्ष्य च लक्ष्मणम् ।
उयाच ध्वनन वीरस्ताकालहितमामन ॥ ८ ॥

मन हीमन एका चहकर बार श्रीराम गरम-गरम लंबी
मौन मौनिकर लक्ष्मणकी ओर देखने लुण अपने लिय समया
नुकूल हितकर वचन बोलें— ॥ ८ ॥

आलिखन्तीमिश्राफादासुचिन्ता पश्य लक्ष्मण ।
मनमेव हृता लङ्का नगामे निश्चकमणा ॥ ९ ॥

'लक्ष्मण ! इस लङ्काई ओर ता देखा । यह अपना
ऊँचाइन आकाशमें देगा मौनकी हुई-सी जन पन्ता है । जान
पड़ता है पुरालम्बे विश्वमनने अपने मनमे ही इस परत
निम्बरपर लङ्कापुरीका निमाग किया है ॥ ९ ॥

चिन्तानैवकुम्भिलङ्का सखीणा रचिता पुरा ।
विष्णो पद्मिनाकाश छादित पाण्डुभिघर्ने ॥ १० ॥

शुर्गालने यह पुरी अनेक समग्र मरानोंमें मरीचुर्ग
स्फा गयी थी । इन 'नेन एव सन विमानाकर
मरानोंमें भगान् विष्णु चरणाम्बिका स्थानभूत आकाश
आच्छादित गहा गा ॥ १० ॥

पुष्पिनं शोभिता लङ्का धनद्विधघोषैर्ग ।
नातापतगसमुद्रलपुष्पापम शुभे ॥ ११ ॥

फूलम न हुए चैरय दाय सगा सुन्दर ज्ञाननों

लङ्कापुरा सुशोभित हो रही है । उन ज्ञाननोंमें नन्ना प्रकारके
पक्षी कल्प कर रहे हैं तथा फूलों और फूलोंकी प्राप्ति करने
के कारण वे बड़े सुन्दर ज्ञान पड़ते हैं ॥ ११ ॥

पश्य मत्तविहगानि प्रलीनभ्रमराणि च ।
कीकिलङ्कुलखण्डानि योधनीति शिवोऽनिल ॥ १२ ॥

देखा, यह ज्ञान सुन्दर वायु इन बनोंका, जिनमें मत्त
वाल पक्षी चहचहा रहे हैं, मोरे पत्तों और फूलोंमें छिने हो
रहे हैं तथा जिनक प्रत्यक्ष खण्ड कीटिलों समूह एव सगानने
व्याप्त हैं, बारबार कम्पित कर रहा है' ॥ १२ ॥

इति दाशरथी रामो लक्ष्मण समभाषत ।
रत्न च तत्र विभक्तच्छाखदृष्टेन कर्मणा ॥ १३ ॥

दाशरथनन्दन मगवान् श्रीरामने लक्ष्मणने एका कहा और
सुदक्ष शास्त्रीय नियमानुसार सेनास विभाग किया ॥ १३ ॥

दाशास कपिलेना ता यत्नादादाय वीर्यवान् ।
अह्मद् सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्नय ॥ १४ ॥

उस समय भावमने वानरवैनीकीचे यह आदेश दिया—
'इस विद्याल सेनामेंने अपनी सेनाका साथ लेकर दुर्नय एव
परक्रीमी वीर अह्मद् नीलक साप वानरसेनाक पुरा पुरमें हृदय
क स्थानमें स्थित हों ॥ १४ ॥

तिष्ठेद् वानरवाहिन्या वानरीधसमावृत ।
आश्रितो नृनिन पाद्मवसुरभो नाम धानर ॥ १५ ॥

उगा तरह शृंगर नामक वानर रूपिओंक खटुमारने दिरे
रहकर इस वानरवाहिनीन दाहिन पापमें न्ये रहे ॥ १५ ॥

गन्धहस्तीय दुधयस्तरम्बी गन्धमादन ।
निष्ठेद् वानरवाहिन्या सत्य पादमभिधित ॥ १६ ॥

जो गन्धहस्तीके समान दुग्ध एव वेगालनी हैं, वे कति
थेदु गन्धमादन वानरसेनान वाम पापमें न्ये हों ॥ १६ ॥

मूर्ध्नि म्यास्याम्यह यत्तो लक्ष्मणेन समन्वित ।
आश्वराध सुपेणध वेगदृष्टी च वानर ॥ १७ ॥

क्रममुत्था महामान कुम्भि रथनु त त्रय ।

जो लक्ष्मणन साथ गन्धमन रहकर इस मूर्धन मनकर
स्थानमें न्ये हाऊंगा । आश्वान, सुपेण और वानर वेगालनी—
य तीन महामानवी वीर जो रीछोंकी सेनान प्रधान हैं, वे केन्द्र
स्थाने कुम्भिमागका रख कर ॥ १७ ॥

जयन कपिलेनाया कपिगजाऽभिरम्बतु ।
पद्माधमिज लोकस्य प्रचलास्तजम्वा वृत् ॥ १८ ॥

जयनराज सुपेण वानरवैनीन किछ भगनी लक्ष्मण
रमा प्रकार हो रहे हैं जैन तन्त्रका बरग इस सन्तुष्ट पक्षि
निगास करता है ॥ १८ ॥

सुभिन्नमहापूहा महायानररक्षिता ।

भूर पद्म और पत्नी दोनों आकार धारण कर सूखी ओर
मुँह करके दीनतापूर्वक स्त्रमे चीत्कार करते हुए महान् भय
उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ७ ॥

रजन्यामप्रकाशस्तु सतापयति चन्द्रमा ।
दृष्ट्वास्काशुपर्यन्तो लोकश्च इवोदिन ॥ ८ ॥

प्लवमें भी चन्द्रमा पूर्णता प्रकाशित नहीं होने और
अरने स्वभावके निपटीत ताप दे रहे हैं । ये पत्नी और लाल
किरणोंसे व्याप्त हो इस तरह उदित हुए हैं, मानो जगत्क
प्रलयका काल आ पहुँचा हो ॥ ८ ॥

हस्तो रक्षोऽप्रशस्तश्च परिधेयस्तु लोहित ।
आदित्ये निमले नील लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ ९ ॥

लक्ष्मण ! निर्मल सूर्यमण्डलमें नीला चिह्न दिखाया देता
है । सूर्यके चारों ओर ऐसा घेरा पड़ा है, जो छेदा, कृता,
अशुभ तथा लाल है ॥ ९ ॥

रजसा महता चापि नक्षत्राणि हतानि च ।
युगान्तमिव लोकाना पश्य दासन्ति लक्ष्मण ॥ १० ॥

सुमित्रानन्दन ! देखो ये तारे बड़ी भारी धूलिगणिते
आच्छादित हो इतप्रम हो गये हैं, अनएव जगत्के भावी
पंहासी सूचना दे रहे हैं ॥ १० ॥

काका ह्येनास्तथा नीचा शुभा परिपतन्ति च ।
शियाश्चाप्यनुभान्नादान् नन्दन्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥

मौए, बाज तथा अकम गीध चारों ओर उड़ रहे हैं
और विशातिन अशुभसूचक महामयकर जेली बोल रही
हैं ॥ ११ ॥

इत्वार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे त्रयोविंश सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाण्डके बुद्धकाण्डके त्रयोविंश सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्विंश सर्गः

श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी दोभाका वर्णन करके सेनाको व्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना,

श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुकका रावणके पास जाकर उनकी सैन्यशक्तिकी

प्रबलता बताना तथा रावणका अपने बलकी खीं गड़ौकना

सा धीरसमिती राणा विरराज व्यवस्थिता ।

शशिना शुभनक्षत्रा पूर्णमासीव शारदी ॥ १ ॥

सुशोबने उस वीर बानरसेनाकी यथाचित व्यवस्था की
थी । उनके कारण वह पैसी ही शोभा पाती थी जैसे चन्द्रमा
और शुभ नक्षत्रोंसे युक्त गलफालकी पूर्णिमा सुशोभित हो
रही हो ॥ १ ॥

प्रचचाल च सेगेन प्रस्ता चैव यमुधरा ।

पीड्यमाना यलोद्येन तेन सागरचर्यसा ॥ २ ॥

शैलेः शूलैश्च खट्वैश्च विमुक्तैः कपिरासैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिमांसशोणितरन्ध्रमा ॥ १२ ॥

जान पड़ता है वानरों और राक्षसोंके चलाये हुए शिखर
खण्डों, शूलों और तलवारोंमें पड़ घायी भूमि पर जड़गी तथा
यहाँ मांस और रक्तकी बौन जम जगनी ॥ १२ ॥

क्षिप्रमद्यैः दुर्धर्गैः पुरां रात्र्यपान्तिताम् ।
अभियाम जयेनैव सर्वैर्हरिभिरावृता ॥ १३ ॥

भूमलोग आज ही बिजनी ज्यही हो सर, इन रात्र
पान्ति दुर्जन नगरी लङ्कापर समस्त वानरान् मांस वेगपूर्वक
धावा बल दें ॥ १३ ॥

हृदयेमुक्त्वा धन्यो स राम सग्रामधरण ।
प्रतस्थे पुरतो रामो लङ्कामभिमुखो विभुः ॥ १४ ॥

ऐसा कहकर सग्रामविवक्षी भगवान् श्रीराम हाथमें धनुष
लिये सबसे आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १४ ॥

सन्निभीरणसुग्रीवा सर्वे ते वानरर्षभा ।
प्रतस्थिरे विनर्न्तो धृताना द्विपता पथे ॥ १५ ॥

सिर विभीषण और सुग्रीव साथ वे सभी भेद बनन
गर्जना करते हुए युद्धका ही निश्चय रखनेवाले सुशुभोक्ता वध
करनेके लिय आगे बढ़े ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रियार्थं तु सुतरा वीर्यशान्तिनाम् ।
हरीणा कर्मचेष्टाभिस्तुतोप रघुनन्दन ॥ १६ ॥

वे सब के-सब रघुनाथकी प्रिय धरना चाहते थे । उन
बलशाली वानरोंके कर्मों और चेष्टाओंसे रघुकुलानन्द श्रीराम
को बड़ा संतोष हुआ ॥ १६ ॥

वह विशाल सैन्य-समूह समुद्रर समान जान पड़ता था ।

उनके भारसे दबी हुई यमुना भयभीत हो उठी और उसके
वेगसे डोलने लगी ॥ २ ॥

तत शुशुषुराशुष्ट लङ्काया फाननौक्ता ।

मेरीभृद्वद्वत्सघुष्ट तुमुल लोमहर्षणम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर वानरोंने लङ्कामें महान् क्षत्राहल सुना, जो मेरी
और भृद्वद्वत्सघुष्ट तुमुल लोमहर्षण पड़ा ही भयकर और
रोमाञ्चकारी जान पड़ता था ॥ ३ ॥

चभ्रुवुस्तेन घोषेण सहृण हरियूषपा ।

अमृष्यमाणास्तद् घोष विनेदुर्योयवधरम् ॥ ४ ॥

उभ तुमुल्लादको सुनर वानरयूषपति हय और उल्लाह म भर गये और उमे न सह सक्तेने कारण उल्ले मी बढकर जोर-जोरसे गजना करने लगे ॥ ४ ॥

रक्षसास्तत् श्रुत्वा गाना शुभ्रुवुस्तेऽपि गर्जितम् ।

नर्दतामिव हताना मेघानामम्बरे स्वनम् ॥ ५ ॥

राक्षसोंने वानरोंको यह गजना सुनी, जो दर्पमें भरकर निरनादकर रहे थे । उनकी आवाज आकाशमें मेघोंकी गजना के समान जून पड़ती थी ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा दशरथिलङ्का चित्रपञ्जपताकिनीम् ।

जगाम मनसा सीता द्रुममलेन ज्वेतसा ॥ ६ ॥

दशरथनन्दन श्रीरामने शिविश पञ्ज-पताकाओंसे सुशो भित लङ्कापुरीको देखकर व्यथितचित्तमें मन ही-मन सीतारा स्मरण किया ॥ ६ ॥

अथ सा मृगशाराक्षी गजणेनोपदध्यते ।

अभिभूता प्रहेण्य रोहिताङ्गेन रोहिणी ॥ ७ ॥

वै भीतर ही भीतर कहने लगी—‘शाय ! यहीं वह मृग लेवना सीता राजगण कैदम पड़ी है । उसकी दया मगलग्रहसे आक्रान्त हुई राहिणीने ममान हो रही है’ ॥ ७ ॥

धीधमुण्य च निःश्वस्य समुद्रीक्ष्य च लक्ष्मणम् ।

उपाच घञन धीरस्तर्कालहितमात्मन ॥ ८ ॥

मन-ही-मन ऐसा कहकर धीर श्रीराम गरम-गरम लवी नौम म्भीरर लक्ष्मणकी ओर देखते हुए अपने लिय समया मुड़ल हितर वचन बोलें— ॥ ८ ॥

आलिखन्तीमिराफाशामुत्थिता पदय लक्ष्मण ।

मनमेव कृता लङ्का नगाग्रै विश्वकम्पणा ॥ ९ ॥

‘लक्ष्मण ! इस ाङ्कारी ओर तो देखो । यह अपनी ऊँचाईमें आकाशमें रेखा सांचती हुई-सी जून पड़ती है । जून पड़ता है पूर्वकालमें विश्वरामने अपने मनमें ही इस पतल शिखरपर लङ्कापुरीका निमाण किया है ॥ ९ ॥

विमानैरदुभिङ्गा सर्वाणा रचिता पुरा ।

विष्णो पद्मिमाकशर छद्रित पाण्डुभिञ्जने ॥ १० ॥

शूर्पगालमें यह पुरी अनेक लक्ष्मण मरानोंमें भयपूरी बनायी गयी थी । इस पुरी एवं लक्ष्मण विमानावर भातोंने भगवान् विष्णु चरणस्थानमा स्थाननूत आकाश आच्छादित किया गया ॥ १० ॥

पुष्पिर्न शोभिता ाङ्गा पनञ्चियग्यापमै ।

नानापतगमसुष्ठुपुष्पागार्य नृभिः ॥ ११ ॥

‘हृष्ट भय हुए वैभरय पाप मन्त्र सुन्दर वननोंमें

लङ्कापुरी सुशोभित हो रही है । उन वाननोंमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे हैं तथा फलों और फूलोंकी प्राप्ति करने के कारण वे बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं ॥ ११ ॥

पदय मत्तविहगानि प्रलीनध्रमराणि च ।

कोकिलकुलखण्डानि दोधयीति शिनोऽनिल ॥ १२ ॥

देखा, यह शीतल सुखद वायु इन वनोंका, जिनमें मत गाल पक्षी चहचहा रहे हैं, भारे पतों और फूलोंमें धीन हो रहे हैं तथा जिन प्रत्येक खण्ड कोकिलोंक समूह एक समीतसे ग्यास हैं, बारबार कण्ठित कर रहा है’ ॥ १२ ॥

इति दशरथी रामो लक्ष्मण समभाषत ।

यत्त च तत्र विभज्जच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १३ ॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे ऐसा कहा और उदक शास्त्रीय नियमानुसार सेनारा विभाग किया ॥ १३ ॥

शशास कपिसेना सा बलादादाय धीयवान् ।

अह्मद सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्जय ॥ १४ ॥

उम समय श्रीरामने वानरतैनिकोंको यह आदेश दिया— ‘इस विभाग सेनामेंमें अपनी सेनारा साथ लेकर दुजय एवं परकमी वीर अह्मद नीले साथ वानरसेनाक पुरुषस्यूद्धमें हृदय के स्थानमें स्थित हों ॥ १४ ॥

तिष्ठेद् वानरवाहिन्या वानरीयसमावृत ।

आश्रितो दग्धिण पादयमृषभो नाम वानर ॥ १५ ॥

इसी तरह शृगभ नामक वानर कपियोंने समुदायमें तिर रहकर इस वानर-वाहिनीर दाहिने पादमें गढ़े रहें ॥ १५ ॥

गन्धहस्तीर दुधयस्तरवी गन्धमादन ।

तिष्ठेद् वानरवाहिन्या स्वय पादयमधिष्ठित ॥ १६ ॥

जो गन्धहस्तीर समान दुजय एर वेगाली हैं, वे कपि श्रेष्ठ गन्धमादन वानरसेनार साथ पादमें बड़े हों ॥ १६ ॥

मूर्ध्नि ग्याम्याम्यह यत्तो लक्ष्मणेन समीजित ।

जाम्ययाय्य सुयेणय्य वेगादशी च वानर ॥ १७ ॥

ग्रन्थमुख्या महात्मान कुम्भि रक्षतु त त्रय ।

जो लक्ष्मणर साथ साथवान रहकर इस म्यूद्ध मन्त्रक स्थानम बड़ा हाऊंगा । जम्बरान्, मुखण और वानर वेगाली— ये तीन महामन्त्री वीर और शीर्षकी सेनाक प्रधान हैं, वे सैन्य म्यूद्धमें बुझिमागरी रक्ष कर ॥ १७ ॥

जघन कपिमनाया कपिगजोऽभिरम्बतु ।

पद्माधमिय लोकस्य प्रचत्तान्नचमा मृत ॥ १८ ॥

व्यानरयज मुखीर वानरानीक शिष्ट भागकी लक्ष्मण गला प्रार ल रहे तैम नक्षत्रा वरग इस अन्तर्ग पद्मम निगना कष्टा वरग है ॥ १८ ॥

शुविभज महापूहा

महापानररभिता ।

भूत पशु और पक्षी दीन आकार धारण कर सूर्यकी ओर
घूँट करने दीनतापूर्ण स्वरमें चीत्कार करते हुए महान् भय
उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ७ ॥

रजन्यामप्रकाशस्तु सतापयति ध्वजम् ।
पृष्णरक्षानुपर्यन्तो लोपक्षय इयोदित ॥ ८ ॥

रातमें भी चन्द्रमा पूर्णतः प्रकाशित नहीं होने और
अपने स्वभावाके विपरीत ताप दे रहे हैं । ये काली और लाल
किरणोंसे व्याप्त हो इस तरह उदित हुए हैं, मानों जगत्के
प्रलयका काल आ पहुँचा हो ॥ ८ ॥

ह्रस्वो रुद्रोऽप्रशस्तश्च परिचेपस्तु लोहित ।
आदित्ये निमले नील लक्ष्म लक्ष्मण इदयत ॥ ९ ॥

लक्ष्मण ! निर्मल सूर्यमण्डलमें नीला चिह्न दिखायी देता
है । पूर्वक चारों ओर ऐसा घेरा पड़ा है, जो छोटा, रुखा,
अनुभूत तथा लाल है ॥ ९ ॥

रजसा महता चापि नक्षत्राणि हतानि च ।
युगान्तमिव लोकाना पदय शसन्ति लक्ष्मण ॥ १० ॥

भूमिधानन्दन ! देखो य तारे बड़ी भारी धूलिखिसे
आच्छादित हो हतप्रभ हो गये हैं, अतएव जगत्त्रय भावा
सहारकी सूचना दे रहे हैं ॥ १० ॥

फक्का इयेनास्तथा नीचा गृध्रा परिपतति च ।
शियाक्षाप्यनुभान्नादान् नदन्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥

कौट, बाज तथा अवम गीध चारों ओर उड़ रहे हैं
और विचारित अभ्युत्पन्नक महामयकर बाली बाल रही
हैं ॥ ११ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मुद्रकाण्डे प्रयोविंशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके मुद्रकाण्डमें त्रयोविंशः सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्विंशः सर्ग

श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभाका वर्णन करके सेनाको व्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना,
श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुक्रका रावणके पास जगकर उनकी सैन्यशक्तिकी
प्रबलता बताना तथा रावणका अपने बलकी डींग हाँकना

सा धीरसमिती राक्ष विरगज व्यवस्थिता ।
शशिना शुभनक्षत्रा पूर्णिमासीन शारदी ॥ १ ॥

शुभीवने उस धीर वानरसेनाकी मनोचिन्त व्यवस्था की
थी । उनका कारण यह थी ही शोभा पानी थी, जैसे चन्द्रमा
और शुभ नक्षत्रोंसे युक्त शरत्कालका पूर्णिमा सुशोभित हो
रही हो ॥ १ ॥

प्रचञ्चल च वेगेन प्रस्ता चैव वसुधरा ।
पीड्यमाना यलौघेन तेन सागरधर्वसा ॥ २ ॥

शैले शूलैश्च खल्लैश्च विमुचैः कपिराक्षसैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मोक्षदोणितकर्मदा ॥ १२ ॥

जान पड़ता है वानरों और राक्षसों चलाय हुए शिला
गण्डों, शूलों और तलवारोंसे यह सारी भूमि पर जायगी तथा
यहाँ मांस और रक्तकी बीच जम जायगी ॥ १२ ॥

निप्रमद्येन दुर्धर्गे पुरी रावणपालिताम् ।
अभियाम जघेनेव मर्हतिभिराघृता ॥ १३ ॥

इहमल्येग आज ही जितनी जन्टी हो घर, इस रावण
पालित कुबज नगरी लङ्कापर गमन वानरोंका साथ वेगपूर्वक
भाग चल है ॥ १३ ॥

इत्येवमुक्त्वा धन्वी स राम सप्रामधयण ।
प्रतस्थे पुरतो रामो लक्ष्मभिमुजो विभु ॥ १४ ॥

ऐसा कहकर सप्रामर्जयी भगवान् श्रीराम हाथमें धनुष
लिये सवने आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १४ ॥

सन्निभीयणसुग्रीवा सर्वे ते वानरर्षभा ।
प्रनस्थिरे विनर्दन्तो धृताना द्विपता यधे ॥ १५ ॥

किर निभीयण और सुग्रीव साथ वे सभी श्रेष्ठ वानर
गमना करते हुए युद्धका ही निश्चय रखनेवाले शत्रुओंका वध
करनेके लिये आगे बढ़े ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रियार्थं तु सुतरा वीरशालिनाम् ।
हरीणा कर्मबेद्यभिस्तुतोप रघुनन्दन ॥ १६ ॥

वे राघवके-सब रघुनाथजीका प्रिय करना चाहते थे । उन
बलवाली वानरोंने कर्मों और चेष्टाओंसे रघुकुल्लेखन श्रीराम-
को बड़ा स्तोत्र हुआ ॥ १६ ॥

वह विशाल केय-समूह समुद्रक समान जान पड़ता था ।
उसके भारसे दबी हुई वसुधा भयभीत हो उठी और उसके
वेगसे खोलने लगी ॥ २ ॥

तत शुश्रुवुराकुष्ट लङ्काया काननीकस ।
मेरीमृदङ्गसधुष्ट तुमुल लोमहर्षणम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर वानरोंने लङ्कायें महान् कोलाहल मचा, जो मेरी
और मृदङ्गके गम्भीर कोपसे मिलकर बड़ा ही भयंकर और
रोमाञ्चकारी जान पड़ता था ॥ ३ ॥

यभ्रुवुस्तेन घोषेण सहृण हरियूयपा ।
भमृष्यमाणस्तद् घोष विनेदुर्ध्वोपचरम् ॥ ४ ॥

उत्त तुमुल्लाहको सुनकर बानरयूयपति ह्य और उत्साह
म मर गये और उसे न ह् सख्नेर कारण उससे भी बन्कर
बार-बार गम्ना करने लगे ॥ ४ ॥

राक्षसास्तत् सुवगाना शुभ्रुवुस्तेऽपि गर्जितम् ।
नदतामिष दहान्ता मेघानामभ्यरे खनम् ॥ ५ ॥

राक्षसोंने बानरोंकी वह गम्ना सुनी; जो दर्पमें भरकर
सिंहनादकर रहे थे । उनकी आवाज आकाशमें मेघोंकी गम्ना
व समान जान पड़ती थी ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा दाशारथिर्द्धा चित्रचजपताकिनीम् ।
जगाम मनसा सीता दूयमानेन चेतसा ॥ ६ ॥

दशरथनन्दन भीरुमने विचित्र ध्वज-भताकाओंसे सुनो
भित लङ्कापुरीको देखकर व्यथितचित्ते मन ही-मन सीताका
स्मरण किया ॥ ६ ॥

अत्र सा मृगशाश्वी रात्रेणोपपश्यते ।
अभिभूता ग्रहेणैव रोहिताङ्गेन रोहिणी ॥ ७ ॥

वे भीतर ही-भीतर कहन लगी—'हाय ! यहीं वह मृग
लोचना सीता रात्रणक कैदमें पड़ी है । उसकी दशा मग्नग्रहने
आक्रमित हुई राशिगण समान हो रही है' ॥ ७ ॥

दीघमुण्य च निःश्वस्य समुद्रीक्ष्य बलक्ष्मणम् ।
उवाच घञन धीरस्तत्कालहितमात्मनः ॥ ८ ॥

मन ही-मन ऐसा कहकर वीर भीरुम गम-गम लकी
नों गोंचकर लक्ष्मणकी ओर देखते हुए अपने लिय समया
नुकूल हितकर बचन बोले— ॥ ८ ॥

आलिङ्गन्तीमिराकाशमुत्थिता पश्य लक्ष्मण ।
मनसेन हृता लङ्का नगाग्रि त्रिभङ्गमणा ॥ ९ ॥

लक्ष्मण ! इस लङ्काका ओर तो देखा । यह अपनी
ऊँचाईमें आकाशमें देगा लीचली हुई-सी जान पड़ती है । जान
पड़ता है पूर्वकालमें विभक्तमने अपने मनमें ही इस परत
शिवरपर लङ्कापुरीका निमाण किया है ॥ ९ ॥

विमानैरुभिर्लङ्का सफीणा रचिता पुरा ।
विष्णो पद्मिशाश्वो छादित पाण्डुभिघन ॥ १० ॥

पुराणमें यह पुरी अनेक समय मरानोंमें भरी-पूरी
क्याही गयी थी । इस पुरी एव सन विमानाघर
भरनोंमें भगवान् विष्णु चरणस्थानका स्थानभूत आकाश
आच्छादित हो रहा गया ॥ १० ॥

पुष्पिर्न शोभिता लङ्का घनक्षिप्रम्योपमे ।
नानापतगसमुष्टन्पुष्पोपग ॥ ११ ॥

हृदयमें यह हुए वैभव काय सगुन सुन्दर बनती-सी

लङ्कापुरी सुशोभित हो रही है । उन काननोंमें नाना प्रकार
पक्षी कलख कर रहे हैं तथा फलों और फूलोंकी प्राप्ति करने
के कारण वे बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं ॥ ११ ॥

पश्य मत्तविहगानि प्रलीनभ्रमराणि च ।
कोकिलकुलखण्डानि दोधवीति शिरोऽनिल ॥ १२ ॥

देखा; यह शीतल सुखद वायु इन बनाका; जिनमें मन
वाले पक्षी चहचहा रहे हैं; मोरे पतों और फूलोंमें लीन हो
रहे हैं तथा जिनक प्रत्यक खण्ड कोकिलोंक समूह एव लगीनेमें
व्याप्त हैं; बार-बार कथित कर रहा है ॥ १२ ॥

इति दाशारथी रामो लक्ष्मण सभभापत ।
उत् च तत्र त्रिभञ्जच्छाखदृष्टेन कमणा ॥ १३ ॥

दशरथनन्दन भगवान् भीरुमने लक्ष्मणसे ऐसा कहा और
युद्ध काशीय नियमानुसार सेनाका विभाग किया ॥ १३ ॥

दाशरथ कपिसेना ता बलादावाय धीर्यवान् ।
अद्भुत सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्जये ॥ १४ ॥

उस समय भीरुमने बानरसैनिकोंको यह आदेश दिया—
'इस विशाल सेनामेंमें अपनी सेनाका साथ लेकर दुर्जय एव
परक्रमी वीर अद्भुत नीलेन साथ बानरसेनाके पुबपयूहमें हृदय
के स्थानमें स्थित हों ॥ १४ ॥

तिष्ठेद् वानरवाहिन्या वानतौघसमावृत ।
आधितो दक्षिण पादर्वमृषभो नाम वानर ॥ १५ ॥

इसी तरह 'शुभ नामक वानर कपियोंक सङ्घाटने विरे
रहकर इस बानर-वाहिनीक दाहिने पादमें खड़े रहें ॥ १५ ॥

गणहस्तीय दुर्धर्षस्तरवी गणमादन ।
तिष्ठेद् वानरवाहिन्या सज्य पादप्रमथिष्ठित ॥ १६ ॥

जो गणहस्तीय समान दुर्धर्ष गण वेगवाली हैं; वे कपि
श्रेष्ठ गणमादन वानरसेनाक बाय पादमें खड़े हों ॥ १६ ॥

मूर्ध्नि म्याम्याम्यह यत्तो लक्ष्मणेन समन्वित ।
जाग्ययाद्य सुप्रेणद्य वेगदर्शी च वानर ॥ १७ ॥

अश्वमुख्या महात्मान कुम्भि रहतु ते त्रय ।

जो लक्ष्मण काय साथपावन रहकर इस व्यूहक मन्त्रक
स्थानमें पड़ा होऊँगा । आध्वरान्, सुरग और बानर सेना-
के तीन महामन्त्र्या वीर जो शीलोंकी सेनाक प्रधान हैं; वे केव
व्यूहके कुम्भभगरी रह्य करें ॥ १७ ॥

जयन कपिसनाया कपिराजोऽभिरभ्यनु ।
पद्याधमिष लक्षस्य प्रज्जानन्जसा युन ॥ १८ ॥

बानरराज सुबाहू बानर-हीनक शिष्ट भागकी सङ्घमें
जमा प्रकार हो रहे हैं तैम वज्रका बहान् इग उगता पथिम
शिवाका अन्धता बना है ॥ १८ ॥

सुशिभन्महाद्यूहा महापावररक्षिता ।

अनीकिनी सा विद्यया यथा र्थी साधनमश्रया ॥ १० ॥

इम प्रगर सुन्दरास विगा हा विगा धूम्य वद हृद
वद सेना। जिम ३। वद वदे यानर रथा करत ये। मर्षे वि
हुण आशरक ममान जान पणी थी ॥ १० ॥

प्रगृह्य गिरिशृङ्गाणि महतश्च महौकरान् ।

आसेदुर्वानरा उद्धा मिमर्शयिष्ये रणे ॥ २० ॥

यानरलाय पर्वतों गिर और वद वदे वृष
बुडके लिये लङ्कापर नद आय। वज्र पुरीस पदमि
वरष धूमे मिला देना चाहते थे ॥ २० ॥

शिरावैरैर्विकिरामेना लब्धा मुष्णिभिरेव वा ।

इति स्म दधिरे सर्वे मनासि हरिपुङ्गवा ॥ २१ ॥

सभी यानरपुष्पति म ही मनम्य बौधते थे कि हम लङ्का
पर पर्वत शिरावैरी क्या करें आर लङ्काविर्षोंका मुष्णि
मार-मारकर यमलोक पहुँचा दें ॥ २१ ॥

ततो रामो महातेजा सुग्रीमिदमब्रवीत् ।

सुविभक्तानि सैन्यानि शुक् यय विमुच्यताम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर महातज्जी रामन सुग्रीरसे कहा—इमअगेंने
अपनी सेनाओंको मुदर रगसे विभक्त करके उन्हें ब्यूदबद
कर लिया है। अत अब इस पुत्रका छाड़ दिया जाय ॥ २२ ॥

रामस्य तु यच्च श्रुत्वा यानरेन्द्रो महापलः ।

मोक्षयामास त दूतं शुक् रामस्य जासनात् ॥ २३ ॥

श्रीपमचन्द्रजीका यह वचन सुनकर महापली यानरपजने
उनका आदेशसे राजगदूत पुत्रको बचनसुक्त कर दिया ॥

मोचितो रामराक्षसेन यानरेव निपीडित ।

शुक् परमसप्रसूतो रक्षोधिपमुपागमत् ॥ २४ ॥

श्रीपमचन्द्रजीकी आज्ञासे छुटकारा पाकर यानरसे पीडित
हमके कारण अमृत भयभीत हुआ शुक् राक्षसराज पस
गया ॥ २४ ॥

रावणः प्रहसन्नेव शुक् वाक्यमुवाच ह ।

किमिमी ते सिती पत्नी लूनपश्रब्ध दृश्यसे ॥ २ ॥

कश्चिन्नानेकचिचिचाना तेना त्व वदामागत ।

उस समय रावणने हँसे हुएसे ही शुक्से कहा—ये
तुम्हारी दाना पौलें बौध क्यों दी गयी हैं। इसने तुम इस तरह
दिरापी देते हैं। माता दुम्हार पल नाच लिये गये हों। कहीं
तुम उन चञ्चलचित्तवाले यानरसे चगुलम तो नहीं पँन गये
थे ॥ २५ ॥

तत स भयसविनमस्तेन राजाभिचोदित ।

यचन प्रत्युवाचे रक्षसाधिपमुत्तमम् ॥ २६ ॥

राजा रावणने इम प्रकार पछनेपर भयसे धराय हुए
शुक्ने उस समय उस भोष्ट राक्षसराजसे इस प्रकार उत्तर
दिया—॥ २६ ॥

सागरम्योत्तर तारेऽमुष्य ते घञन तथा ।

यथा मर्दिनामष्टि सा त्वपञ्चदण्या गिरा ॥ २७ ॥

महापज। मी समुद्रप उत्तर तार पर पहुँचकर आर।
सदेग बहुत स्थ क्षमंम मरु वाणीडाए गानना देते हुए
शुनाया ॥ २७ ॥

मुदंस्तेरदमुत्प्लुत्य दृष्ट्वाप स्रवगमै ।

गृहीतोऽस्यपि चारुधो हन्तुलोसु च मुष्टिभि ॥ २८ ॥

परिंतु मुक्षपर दधि पड़त ही उपनि हुए यानरने उल्ल-
कर मुने पनइ लिया और मुष्णि मारना एव पौलें मोक्ष
आरम्भ किया ॥ २८ ॥

न ते सभागितु शक्याः सम्प्रभोऽत्र न गियते ।

महत्या कोपनास्तीक्ष्णा यानरा राक्षसाधिप ॥ २९ ॥

महापज। य यानर स्वभावसे ही कपी और तीले हैं।
उनसे बात भी नहीं की जा सकती थी। फिर यह पछनेना
अपवर पहाँ था कि तुम मुने क्यों मार रहे हो ॥ २९ ॥

स च हन्ता शिराधस्य वयभस्य पुरस्य च ।

सुग्रीवसरितो राम सीताया यदमागत ॥ ३० ॥

जो पिपध, वयभ और पुरका वध कर चुके हैं, वे
श्रीराम सुग्रीवका साथ सीतारक्षानका पता पाकर उनका
उदार करनेके लिये आय हैं ॥ ३० ॥

स हत्वा सागरे सेतुं सीताया च लवणोद्धृम् ।

यप रक्षासि निर्भूय धन्यी तिष्ठति रावय ॥ ३१ ॥

जो खुनापजो समुद्रपर पुल बौध लवणवगरकी पार
कर राक्षसोंका विनश्वर समान समसकर धनुष शरमें
लिये यहाँ पास ही खड़े हैं ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा राक्षसाह्वानमनीकानि सहस्रशः ।

गिरिमेघनिकाशाना छादयन्ति यस्तुधराम् ॥ ३२ ॥

पर्वत और मर्षाक समान निगागाय रीछों और
यानर-समुद्रोंकी सदसा सेनाएँ इस पृथ्वीपर छा गयी हैं ॥ ३२ ॥

राक्षसाना बहौघस्य यानरेन्द्रयउस्य च ।

नैतयोर्विचते सधिर्देवदानवयोरपि ॥ ३३ ॥

भक्त और दानवोंमें जैसे मल होना असम्भव है,
उसी प्रकार राक्षसों और यानरराज सुग्रीवके सैन्योंमें
सधि नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

पुरा प्राकारमायानि क्षिप्रमेकतर कुरु ।

सीता चास्मै प्रयच्छातु मुष्टयापि प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥

अन अकन वे सङ्गापुरीकी चदारिदारपर नहीं
च आते, उसक पल ही जाय शीघ्रापूर्वक दोस्तों एक
काम कर लिये—या ता मुद ही यह सीतारक्षेय
दीकिये या फिर लामन राहें होकर मुद कीकिये ॥ ३४ ॥

शुकस्य वचन श्रुत्वा रावणो वास्यमत्रवीत् ।

रोगसरसनयनो निर्दरस्मिन् चक्षुषा ॥ ३ ॥

शुकश्च बह बल मुनकर रावणकी ओँलें रागमे लाल
हा गयो । यह इस तरह धूर-धूरकर देखने लगा मानो
अग्नी दृष्टिमे उसको दग्ध कर देगा । वह बोल— ॥ ३ ॥

यदि मा प्रति युद्धेन देवगन्धवानवा ।

नैव सीता प्रदाम्यामि सवलेकभयादपि ॥ ३६ ॥

यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझमे युद्ध
करनेको तैयार हो जायें तथा सार सकारण हो मुझ भय
दिशाने लगे तो भी मैं सीताका नहीं लेगाऊँगा ॥ ३६ ॥

कदा समभिधायन्ति मामत्रा रावण शरा ।

वसन्ते पुष्पिन मत्ता भ्रमरा इव पादपम् ॥ ३७ ॥

जैसे मन्त्राल भ्रमर वसन्त ऋतुमे फूलमे भर हुए इधर
हूट पड़ते हैं, उसी प्रकार मेरे बाग कब उस खुरपापर
घात करेगा ? ॥ ३७ ॥

कदा शोणितस्त्रिधाङ्ग दीन कामुकविच्युतै ।

शरैरादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुङ्कुमम् ॥ ३८ ॥

वह भयकर कब आयेगा जब मर घनुषमे हूट हुए
तबन्धी बाणोंद्वारा धावत होकर रामका शरीर लूटलान हो
जायगा और बने जल्ता हुई दुर्गारिमे लग हाथाको जलाते
हैं, उसी तरह मैं उन बाणोंसे रामको दग्ध कर दूँगा ॥

तद्यास्य यत्नमादास्ये यत्नेन महता वृत् ।

ज्योतिरामिव सख्ये प्रभामुच्यन् दियकर ॥ ३९ ॥

जबसे सूर अग्ने उदयक साथ ही समान नक्षत्रोंकी
प्रभा हर लट हैं, उसी प्रकार मैं निराल मेनाक साथ
राभूमिमे खड़ा हो रामकी समान चानर-मेनाको आनसू
कर दूँगा ॥ ३९ ॥

सागरस्येव मे घगो मास्तस्येव मे वाम् ।

न च दादार्थिरेद् तेन मा योद्धुमिच्छति ॥ ४० ॥

द्वारपटुमार रामने अभी समरभूमिमे समुद्रक समान
मेरे वेग और बाणक समान मर दण्डक अनुभव नहीं दिया

हृषीकेशं शोभद्रामायने वाक्योदीय आदिशब्दे युद्धकाण्डे चतुर्विंश सर्ग ॥ २४ ॥

इम प्रकार शब्ददर्शननिमित्त आशान्तक कविकव्यक युद्धकाण्डे चतुर्विंश सर्ग पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंश सर्ग

रावणका शुक और मारणसे गुप्तरूपसे वानरसेनामे भेजना, विभीषणद्वारा उनका पकड़ा

जाना, श्रीरामकी कृपासे छुटकारा पाना तथा श्रीरामका सदेव लेकर लङ्कामे

लौटकर उनका रावणको समझाना

मयले सागर तीरें गम दशरथासज ।

अमान्दी रावण धीमानप्रसीच्छुक्सारणो ॥ १ ॥

दशरथनन्दन मन्त्रक भण्डन कर मन्त्रकृत समुद्र

दर कर चुक तब भीमक यवान भवन हनी

मन्त्री पुत्र और मारणसे फिर कहा—॥ १ ॥

समग्र सागर तीर्थें दुस्तर बानर बलम् ।

अभूतपूर्व रमेण सागरे सेतुयधनम् ॥ २ ॥

यद्यपि समुद्रका पार करना अत्यन्त कठिन था तो भी सारी बानरसेना उसे लोंचकर इस पार लगी आयी । रामर द्वारा सागरपर सेतुका बाँधा जाना अभूतपूर्व काय है ॥ २ ॥

सागरे सेतुयधनं न भद्रव्या कथयन् ।

अत्रय चापि सत्येयं तमया बानर बलम् ॥ ३ ॥

सागर में सेतुनेपर भी मुझे किसी तरह यह विश्वास नहीं होता कि समुद्र पर पुल बाँधा गया होगा । बानरसेना कितनी है ? इसका ज्ञान मुझे अत्रय प्राप्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

भ्रान्तो बानर सैन्यं प्रदिश्यानुपलक्षितो ।

परिमाणं च धीर्यं च ये च मुख्या पृथगमा ॥ ४ ॥

मन्त्रिणो ये च रामस्य सुप्रज्ञस्य च सम्मतः ।

ये पृथग्भियन्तते ये च दूरा पृथगमा ॥ ५ ॥

स च सेतुयथा यद्वा सागरं सलिंगयिष्ये ।

निवेशं च यथा तथा बानराणां महात्मनाम् ॥ ६ ॥

रामस्य व्यवसायं च धीर्यं प्रहरणानि च ।

लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतोऽनुमहय ॥ ७ ॥

कश्च सेनापतिस्तेषां बानराणां महात्मनाम् ।

तच्च ज्ञात्वा यथातथ्यं शीघ्रमागतुमहय ॥ ८ ॥

‘तुम दोनों इस तरह बानर-सेनामें प्रवेश करो कि हाई कोइ पहचान न सके । यहाँ जाकर यह पता लगाओ कि बानरोंकी सख्या कितनी है । उनकी शक्ति कैसी है ? उनमें मुख्य-मुख्य बानर कौन कौन हैं । भीरु और सुशील मनोऽनुपल मन्त्री कौन कौन हैं । कौन कौन दूरबीर बानर सेनामें भागे रहते हैं । अगाध जंगलस्थिते भरे हुए समुद्रम यह पुल किस तरह बाँधा गया । महात्मन्वी बानरोंकी छात्रनी कैसे पड़ी है । भीरु और वीर लक्ष्मणका निश्चय क्या है ?—ये क्या करना चाहते हैं । उनके बल परक्रम कैसा है । उन दोनोंका पास कौन कौनसे अस्त्र दाल है । और उन महामत्वा बानरोंका प्रधान सेनापति कौन है । इन सब बातोंकी तुमलोग ठीक ठीक जानकारी प्राप्त करो और सबका यथाथ ज्ञान हो जानेपर शीघ्र लौट आओ ॥ ८ ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुरुसारणौ ।

हरिरूपधरो वीरौ मन्त्रिणौ बानर बलम् ॥ ९ ॥

ऐसा आदेश पाकर दोनों वीर राक्षस पुत्र और सारण बानरोंपर धारण करके उस बानरी सेनामें सुल गये ॥ ९ ॥

ततस्तद् बानरं सैन्यमनित्य लोमहपणम् ।

संस्थातु नाप्यगच्छेत्ता नदां तौ शुरुसारणौ ॥ १० ॥

बानरोंकी यह सेना कितनी है ! यह गिनना तो बुराहा मनमें उगता अदावा स्थाना भी असम्भव था । उस अपार सेनाका देखाकर रोंगटे खड़े हो जाते थे । उस समय पुत्र और सारण किसी तरह भी उसकी गणना नहीं कर सके ॥

तत् स्थितं पथतटेषु निश्वसेषु गुहासु च ।

समुद्रस्य च तीरेषु धनेषूपजनेषु च ।

तरमाणं च तीर्थं च तनुयामं च सर्वशः ॥ ११ ॥

यह मेना पथतर तिवरापर, झरनोंमें आसपास, गुहाआम, समुद्रक किनारे तथा बनों और उपवनमें भी फैली हुई थी । उसका कुछ भाग समुद्र पार कर रहा था, कुछ पार कर चुका था और कुछ सब प्रकारसे समुद्रकी पार करनेकी तैयारीमें लगा था ॥ ११ ॥

निश्चितं निश्चितश्चैव भीमनाम् महाबलम् ।

तद्दलाणामस्त्राभ्यं दृष्ट्वाते निशाचरौ ॥ १२ ॥

भयकर कोयल करनेवाली यह गिनाई सेना कुछ स्थानोंपर छात्रनी डाल चुकी थी और कुछ जगहोंपर डालती जा रही थी । दोनों निशाचरोंने देखा, यह बानर पहिली समुद्रक समान अशोभ्य थी ॥ १२ ॥

तौ दृष्ट्वा महातेजा प्रतिच्छिन्नौ विभीषण ।

आपश्ये स रामाय गृहीत्वा शुरुसारणौ ॥ १३ ॥

बानरदोशमें छिपकर सेनाका निरीक्षण करते हुए दोनों राक्षस पुत्र और सारणका महातेजस्वी विभीषणने देखा, देखते ही पहचाना और उन दोनोंको पकड़कर भागमबद्ध बौने कहा— १३ ॥

तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुरुसारणौ ।

लङ्कायां समनुप्राप्तौ चारौ परपुरजय ॥ १४ ॥

‘शत्रुनामरीपर विजय पानेगले नरेश्वर ! ये दोनों लङ्कामें आये हुए गुप्तकर एवं राक्षसराज राज्यके मन्त्री पुत्र तथा सारण हैं’ ॥ १४ ॥

तौ दृष्ट्वा व्यथितौ राम निराशी जीविते तथा ।

वृत्ताञ्जलिपुटौ भीतौ ध्वजं चेदमूचतु ॥ १५ ॥

वे दोनों राक्षस भीरुगच्छबीरोंसे देखकर अत्यन्त व्यथित हुए और जीवन्तसे निराश हो गये । उन दोनोंके मनम भय सभा गया । वे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले— ॥ १५ ॥

आयामिहागतौ सौम्य रात्रणप्रदितामुभौ ।

परिज्ञातु वलं सर्वं तदिह रघुनन्दन ॥ १६ ॥

‘सौम्य ! रघुनन्दन ! हम दोनोंका रात्रणन भय है और हम इस सारी सेनाके नियममें आपस्यक जानकारी प्राप्त करनेके लिये आये हैं’ ॥ १६ ॥

तयोस्तद् ध्वजं श्रुत्वा रामो दक्षरथात्मजः ।

अत्रागन् प्रहसन् चाक्य सप्रभूतहिते स्त ॥ १७ ॥

उन दानारी वह रात सुनकर सभ्य प्राणियों हितम
लगे रहनेवाल दारभ्यनन्दन भगवान् आराम हैंवते हुए
गये—॥ १७ ॥

यदि हृष्ट यत् सर्वं वयं या सुसमाहिता ।

ययोक्तं या तु न कार्यं छन्दत प्रतिगम्यताम् ॥ १८ ॥

‘यदि तुमने सारी सेना देख ली हो, हमारी सैनिक
शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तथा राजगण के च्यनानुसार
सब काम पूरा कर लिया हो तो अब तुम दानों अपनी इच्छाओं
अनुसार प्रमत्ततापूर्वक लेंगे जाओ ॥ १८ ॥

अत्र निचिद्वदष्ट वा भूयस्तद् द्रष्टुमर्ह्य ।

निभीषणो वा कात्स्न्येन पुन सद्शयिष्यति ॥ १९ ॥

‘अथवा यदि अभी कुछ देखना बारी रह गया हो तो
फिर देख लो । निभीषण तुम्हें सत्र कुछ पुन वृत्तरूपसे
लिखा दगे ॥ १९ ॥

न चेद् बहुण प्राप्य मेतय जीवितं प्रति ।

न्यस्तदास्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्ह्य ॥ २० ॥

‘इस समय जो तुम परकृ लिये गय हो, इसने तुम्हें अपने
जीवन के विषयमें कौन मय नहीं होना चाहिये’ क्योंकि शस्त्र
हीन अवस्थामें पकड़े गये तुम दोनों दूत वधके योग्य नहीं
हो ॥ २० ॥

प्रच्छेदौ च निमुञ्चेमो चारौ रात्रिचगुभौ ।

शत्रुपक्षस्य सततं निभीषणं निर्वर्षिणी ॥ २१ ॥

‘निभीषण ! ये दोनों राक्षस राजगण गुप्तचर हैं और
छिपरर यहाँ से भेद करने के लिये आये हैं । ये अपने ‘गुप्तपक्ष
(यानसेना) में पूरा डालनका प्रयास कर रहे हैं । अब तो
इनका फूट ही गया’ अब इन्हें छोड़ दो ॥ २१ ॥

प्रविश्य महर्तां लङ्का भयङ्करा धनदानुज ।

यत्कन्यो रक्षसा राजा ययोक्तं वयं न मम ॥ २२ ॥

‘गुप्त और गारग ! अब तुम दोनों लङ्कामें पहुँचो, तब
तुम्हारे छाट भाई राक्षसराज राजका मरी आराम यह सदेव
मुता देना—॥ २२ ॥

यद् यत् त्वं समाग्रियं मीता मे ह्यनगानाम् ।

तद् ददाय यथाकामं ससैन्यश्च मया चरन् ॥ २३ ॥

‘यारा ! जिस वस्तु भगने तुमने मेरी मीतारा आहरण
किया है, उसे अब सेना और सैन्यसहित आकर इच्छा
नुसार लीजो ॥ २३ ॥

अथ काल्ये नगरं लङ्का सप्राकारा ससोरणाम् ।

रक्षसा च यत् पदय दारैर्विषयसि मया ॥ २४ ॥

‘अब प्रातः काल ही तुम परकृ और शत्रुओंके सहित

लङ्कापुरी तथा राक्षसी सेनाका भरे बाणोंमें निरम हाना देगोगे ॥

प्रोद्य भीममह मोक्ष्ये ससेन्ये त्वयि रायण ।

अथ काल्ये वज्रान् उज्ज दानवेष्विन्द्र वास ॥ २५ ॥

‘यारा ! उमे उजधारी इन्द्र दानवोंपर अपना वज्र डाढ़ते
हैं, उसी प्रकार मैं कल खोरे ही सेनासहित तुम्हारे अपना
मथर काष छोड़ूँगा’ ॥ २५ ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुक्रस्मारणौ ।

जयेति प्रतिनयनं राघव धमजत्पलम् ॥ २६ ॥

आगम्य नगरं लङ्कामृता राक्षसाधिपम् ।

भगवान् भीरुमका यह सदेव पाकर दोनों राक्षस गुप्त और
सारण धर्मजस्त भीरुगुणाधीना ‘आपसी जय हा’ ‘आप
चिरबीरो हो’ इत्यादि वचनोंद्वारा अभिन्न मन करक लङ्कापुरी
में आकर राक्षसराज राजगणे बाध—॥ २६ ॥

निभीषणगृहीतो तु वधार्थं राक्षसेश्वर ॥ २७ ॥

हृष्टा धमात्मना मुक्तौ रामेणामिततोत्तसा ।

‘राक्षसेश्वर ! हमें तो निभीषणने वध करने के लिये परकृ
लिया था’ किंतु अब अभित तक्षनी धमात्मा भीरुमने देता,
तब हमें छुड़वा दिया ॥ २७ ॥

एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषाश्च ॥ २८ ॥

लोम्पालसमा गुरा वृताला वदन्निमा ।

रामो दाशरथिः श्रीमालैक्ष्मणश्च निभीषण ॥ २९ ॥

सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमन्विता ।

एते शक्ता पुरीं लङ्का सप्राकारा ससोरणाम् ॥ ३० ॥

उत्पात्य सभामपि तु सर्वे तिष्ठन्तु यानरा ।

‘दशरथनन्दन भीरुम, श्रीमान् लम्का, निभीषण तथा
महेन्द्रतुल्य पवनमीमक्षनेक्यी सुग्रीव—य चारोंधीर स्वरापालों
के समान ‘गौरवशाली’ हए पवनमी और अश्व गजों के शक्ता
हैं । जहाँ ये चारों पुरुषप्रवर एकर जगत् एकत्र हो गय हैं,
यहाँ निज्य निभिन है । और सत्र यानर आया रहें तो भी ये
चार ही परमेश्वर और दशरथों के सहित सारी लङ्कापुरीका उत्पाद
कर पत्र गछने हैं ॥ २९ ३० ॥

यादृशं नदि रामस्य रूपं प्रहरणानि च ॥ ३१ ॥

वधिष्यति पुरं लङ्कामेरुस्तिष्ठन्तु ते त्रय ।

‘भीरामचन्द्रजरा जगत् रूप है और जय उतर अश्व
शक्ता हैं, उनमें तो यही मान्य होता है कि ये अश्व ही सारी
लङ्कापुरीका वध कर जायेंगे । मर ही ये शक्ती तीन कीर भी
न ही रहें ॥ ३१ ॥

रामलक्ष्मणगुता आ सुग्रीवेण च पाहिनी ।

यमूर दुधयतगं सर्वं तपि सुगमुरे ॥ ३२ ॥

‘यमूर ! भीरुम, लम्का और सुग्रीव सुग्रीव यद
वनपरी सेना का समान जेकभी और अन्तरादि भी
अत्यन्त दुजर है ॥ ३२ ॥

ग्रहण्योधा ध्वजिनी महामना

वनौकसा सम्प्रति योद्धुमिच्छाम् ।

अल् विरोधेन शमो निधीयता

प्रदीयता दादाग्याय मैथिनी ॥ ३३ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्भारमयणे वाक्मीकीये आदिकाण्ये युद्धकाण्डे पञ्चविंश सर्ग ॥ २५ ॥

इति प्रकार श्रीमद्भारमयणे आदिकाण्ये युद्धकाण्डे पञ्चविंश सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥

पड्विंश सर्ग

सारणका रावणको पृथक्-पृथक् वानरयूथपतियोंका परिचय दना

तद्वच सत्यमहतीय सारणेनाभिभाषितम् ।

निशम्य राज्ञो राजा प्रत्यभाषत सारणम् ॥ १ ॥

(शुन और) सारणके वचने और जगोले शब्द सुन कर रावणने सारणसे कहा — ॥ १ ॥

यदि मामभियुज्जीरन् देवगर्ध्वदानना ।

नैव सीतामह दद्या सर्वलोभभयादपि ॥ २ ॥

(यदि देवता, गन्धर्व और हानव भी मुझसे युद्ध करने आ जायें और समस्त लालच भय दिलावे लगे तो भी मैं सीता को नहीं दूँगा ॥ २ ॥)

त्व तु सौम्य पतिवस्तो हरिभि पीडितो धृशम् ।

प्रतिप्रदानमयैव सीताया साधु मन्यसे ॥ ३ ॥

को हि नाम सपत्नो मा समरे जेतुमर्हति ।

(सौम्य ! जान पड़ता है कि तुम्हें बदरौने बहुत तप किया है । इसीसे भयभीत होकर हम आज ही सीताको लौटा देना ठीक समझने लगे हो) भल कौन ऐसा वायु है, जो हमपक्षमें तुम्हें जीत सके ॥ ३ ॥

इत्युक्त्वा परव सायण रावणो राक्षसाधिप ॥ ४ ॥

आद्यरोह तत श्रीमान् प्रासाद हिमपाण्डुरम् ।

पट्टालस्तमुत्सेध रावणोऽथ दिदृक्षया ॥ ५ ॥

ऐसा कठोर वचन कहकर श्रीमान् राक्षसराज रावण वानरोंकी सेनाका निरीक्षण करने लगे लिये अपनी कई ताल ऊँची और बर्च समान श्वेत रंगकी अजलाकार चमक गया ॥ ४ ॥

वाभ्यावराभ्या सहितो रावण क्रोधमूर्च्छित ।

पश्यमान समुद्र त पर्वताश्च धनानि च ॥ ६ ॥

बदरौ पृथिवीदेहा सुसम्पूर्ण ध्रुवगमे ।

उत्त समग्र रावण भाषते तमत्रा उवा या । उत्तन उत्त दोनों गुप्तचरोंने साथ भव समुद्र, पर्वत और वनोंपर दृष्टिगत किया; तब पृथ्वीका सागर मदेध वानरोंने भरा दिया ॥ ६ ॥

महामात्री वानर इत गमय युद्ध करने लगे लिये उत्तुङ्ग हैं । उनकी सेनाका सभी वीर वादा यही प्रचलन है । अतः उनसे साथ निराधर करनेसे आपको कोई लाभ नहीं होगा । इच्छित्य सधि कर लीजिय और सीताका लौटा दीजिये ॥ ३३ ॥

महामात्री वानर इत गमय युद्ध करने लगे लिये उत्तुङ्ग हैं । उनकी सेनाका सभी वीर वादा यही प्रचलन है । अतः उनसे साथ निराधर करनेसे आपको कोई लाभ नहीं होगा । इच्छित्य सधि कर लीजिय और सीताका लौटा दीजिये ॥ ३३ ॥

तदपामसह्य च वानराणा महाबलम् ॥ १ ॥

आलोक्ष्य राज्ञो राजा परिपन्न छ सारणम् ।

वानरोंकी यह विद्याल सेना अगर और अच्छ थी । देखकर राजा रावणने सारणसे पूछा— ॥ ७ ॥

एषा के वानरा मुख्य के शूष के महाबल ॥ ८ ॥

(वारण ! इन वानरोंमें कौन-कौनसे मुख्य हैं ? कौन शूष वीर हैं और कौन बलमें बहुत बढ़े-बढ़े हैं ? ॥ ८ ॥)

के पूर्वमभियन्तन्ते महोत्साहा समन्तत ।

केया ध्रुणोति सुभीय के वा यूपपयूयया ॥ ९ ॥

सारणाचक्ष्व मे सर्वे किंप्रभावा भ्रमगमा ।

(कौन-कौनसे वानर महान् उत्साहसे सम्पन्न होकर युद्धमें आगे-आगे रहते हैं ? युष्मिन् जिनी की बातें सुनते हैं और कौन यूपपतियों भी यूपपति हैं ? सारण ! ये खरी बातें तुम्हें दे ॥ ९ ॥)

सारणो राक्षसेद्रस्य वचन परिपुच्छत ॥ १० ॥

आवभाषेऽथ मुख्यतो मुख्यास्तत्र वनौकसा ।

इत प्रकार पूछते हुए राक्षसराज रावण वचन सुनकर मुख्य-मुख्य वानरोंका जाननेवाले सारणने उन मुख्य वानरोंका परिचय देते हुए कहा— ॥ १० ॥

एष योऽभिमुखो लङ्का नदीस्तिति वानर ॥ ११ ॥

यूपपाना सहस्राणा धातेन परिवारित ।

लङ्का प्रतिहता सवा समौलवनकानना ।

सधराखासुगेन्द्रस्य सुभीयस्य महात्मन ॥ १२ ॥

पलायने तिष्ठते वीरो नीलो नामैव यूपप ।

(यह जो लङ्कासी और मुख करने लडा है और गरज रहा है, एक लाख यूपपोंसे विरा हुआ है तथा जिसकी गन्नाके अत्यन्त गम्भीर घोषसे परकोटे, दरवाजे, पर्वत और वनोंसे सहित खरी लङ्का प्रतिहत हो गूँब उठी है,

इक्ष्वा नाम नील है। यह वीर यूथपनिगोमने है। समस्त वानरों राजा महामना सुधायत्री मेनाने आगे यही स्वाहा रोना है ॥ ११-१२ ॥

वाह्य प्रहृष्ट य पदभ्या महीं गच्छन्ति वीथवान् ॥ १४ ॥
लङ्कामभिमुख कोपादर्भीक्ष्ण च विप्रभते ।
गिरिः पृथ्वाकाशः पर्वतश्चिह्नसन्निभः ॥ १५ ॥
स्फोटयत्यतिसरभ्यो लाङ्गल च पुनः पुनः ।
यस्य लाङ्गलदानेन म्वनन्ति प्रविशो दश ॥ १६ ॥
एष वानरराजेन सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
युवराजोऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति सयुगे ॥ १७ ॥

एष पराक्रमी वानर दानों उठा हुई बौछाँछ एक दूसरी से पकड़कर दानों पैरोंने पृथ्वीपर टहल रहा है, लाङ्गली आर मुख करक क्षत्रपूवक दक्षता है आर बारबार आँगड़ाई लेता है, जिसका शरीर पर्वतशिखरक समान ऊँचा है, जिसकी कान्ति कमलसरक समान सुनहल रंगकी है, जो राखे मर कर बारबार अपना पूँछ फाँक रहा है तथा जिसकी पूँछने पत्तनकी आवाजने दर्शो दिशाएँ गूँच उठती हैं, यह युव राज अङ्गद है। वानरराज सुग्रीवने इसका युवराज पदपर अभिषेक किया है। यह अपने साथ युद्धक लिये आपका छल-कारता है ॥ १४-१७ ॥

वालिन सहस्र पुत्र सुग्रीवस्य सदा मित्रः ।
राघवायै पराजान् शत्रूयै वरुणो यथा ॥ १८ ॥

वालीरा यह पुत्र अपने मित्रक समान ही बलशाली है। सुग्रीवको यह सदा ही मित्र है। जैसे वरुण इन्द्रक लिये पराक्रम प्रकट करते हैं, उसी प्रकार वह भीरुमन्त्रजान लिये अपना पुरुषार्थ प्रकट करनेक लिय उद्यत है ॥ १८ ॥

एतस्य सा मतिः सदा यद् दृष्ट्य जनकात्मजा ।
हन्मता घेगता राघवस्य हितैरिणा ॥ १९ ॥

भीरुनापञ्चिका दित चन्देवाल वग्याली हनुमान्जने जो यहाँ आकर जनकनन्दिनी सीताका दर्शन किया, उसक भीतर इस अङ्गदकी ही वरी बुद्धि काम कर रही थी ॥ १९ ॥

यहनि वानरेन्द्राणामेव यूयानि वीथवान् ।
परिरूपाभिप्राति त्वा म्येनानीकेन मर्दितुम् ॥ २० ॥

पराक्रमी अङ्गद वानरधरामगियों बहुत-से यूथलिय अन्ती सनाक साथ आरका कुचल हावनेक लिय आ रहा है ॥ २० ॥
अनुयायिसुतम्पायि चलन महता धृत ।
धीरस्तिष्ठति सप्रामे सेनुहेतुस्य नत् ॥ २१ ॥

अद्भुत कीछे क्षणान्मृगिने जो वीर विशाल मेनाने पिया हुआ राधा है इक्ष्वा नम नत् है। यही सेनुनिमान्धक प्रभान देव है ॥ २१ ॥
ये तु विप्रभ्य गात्राणि क्ष्येडयन्ति नन्ति च ।

उत्थाय च विप्रभन्ते प्राघेन हरिपुङ्गवा ॥ २२ ॥
एते दुष्प्रसह्य घोराश्चन्द्राश्चन्द्रपराक्रमाः ।
अष्टौ शतसहस्राणि दशकोटिशतानि च ।
य एनमनुगच्छन्ति वीराश्चन्द्रनगासिनः ॥ २३ ॥
एषैवादासते लङ्का स्वेनानीकेन मर्दितुम् ।

जो अपने अङ्गारा सुखिर करने सिन्हाद करते और गर्जते हैं तथा जो कपिशेष्ट वीर अपने आत्मने पत्तर कथ पृथक आँगड़ाई लेते हैं, इनके वेगस सह देना अत्यन्त कठिन है। ये बड़े मयंक, अत्यन्त काधी और प्रचंड पराक्रमी हैं। इनकी सख्या दस अरब और आठ लाख है। ये सब वानर तथा चन्द्रनवनमें निवास करनेवाले वीर वानर इस यूथ पनिनलका ही अनुसरण करते हैं। यह नल मी अपनी सेना द्वारा लङ्कापुरीको कुचल देनेका हौमन रखता है ॥ २२ २३ ॥
इतेतो रजतसकाशश्चपलो भीमविग्रहः ॥ २४ ॥
बुद्धिमान् धानः शूरशिपु लेकेषु विश्रुतः ।
तुर्णं सुग्रीवमागम्य पुनगच्छति वानरः ॥ २५ ॥
विभजन् धानर्ण सेनामानीकानि प्रहयन् ।

यह जो चौंकीके समान खेद रंगका चञ्चल वानर दिग्वायी देता है, इसका नाम 'वैत' है। यह मगर पराक्रम करनेवाला, बुद्धिमान्, शूरवीर और तीनों लक्ष्मोंमें विख्यात है। 'वैत' बड़ी तेजीने सुग्रीवक पास आकर निर छैट बनाता है। यह वानरीसेनाका विभाग करता और छैनिकमें हर्ष तथा उत्साह भरता है ॥ २४ २५ ॥

यः पुरा गोमतीतीरे रम्य पर्यति पर्यतम् ॥ २६ ॥
नाम्ना सरोवणे नाम नानानगयुतो गिरिः ।
तत्र राज्यं प्रशास्येष कुमुदो नाम यूथपः ॥ २७ ॥

वामनीके तम्पर जो नाना प्रकारक वृक्षोंमें बुद्धि बढेवन नामक पर्वत है, उसी रमणीय पर्वतके चारों ओर जो परले निचल करना था और वहाँ अपने वानरराज्यक प्रभन करना था, वही यह कुमुदनामक यूथपति है ॥ २६ २७ ॥

योऽस्मी दानवहस्त्राणि सहर्षं परिकल्पति ।
यस्य बाह्यो धनुष्यामा दौघलाङ्गलमाधिताः ॥ २८ ॥
ताप्रा पीना सिता देवना प्रकीणा घोरदशनाः ।
अदीनो धानरश्चन्द्र सप्राममभिप्राहति ।
एषोऽप्यादासत लङ्का स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २९ ॥

एष जो लायों वानर सेनेछोंछ साथ अपने कथ स्वैवे लाता है, जिसकी लंबी दुमने बहुत बड़े-बड़े लक्ष्, पीना, भूष और खे-रंगक बाज लक्ष् हुए हैं और दशनमें बर मगर हैं तथा जो बड़ी दीनता न विश्वाकर सग पुत्रकी ही इच्छा रखता है, उस वानरका नाम चान है। यह चान भी अन्ती मेनद्वारा लङ्काक कुचल देनेकी इच्छा रखता है ॥ २८ २९ ॥

यस्त्वपि सिंहस्यकाशं कपिने दीक्षयस्व ।
निभूतं प्रक्षतं लङ्का दिधक्षन्वित्रं चक्षुषा ॥ ३० ॥
त्रिष्य दृष्णगिरिं सह्य पर्यंतं च सुदृशानम् ।
राजन् सततमध्यास्ते स रम्भो नाम यूथप ।
शतं शतसहस्राणां त्रिदाश हरिपुङ्गवा ॥ ३१ ॥
यः पान्तं यानरा घोराश्चण्डाश्चण्डपरजमा ।
परिचापागुणं छान्तिं लङ्कां मर्दितुमोजन्मा ॥ ३२ ॥

राजन् ! जो विश्व समान परानभी और कपिल वर्षका है, जितनी गहनतम लगे-लगे चाल हैं और जो ध्यान लगाकर लङ्काकी ओर इस प्रकार देग रहा है, मानो इसे भस्म कर देगा, वह रम्भनामक यूथपति है। वह निरन्तर त्रिष्य, कृष्ण गिरि, तक्ष और सुन्सान आदि पर्वतों पर रहा करता है। अब वह युद्ध के लिये चलता है, उस समय उसका पीछे एक बराह तीस भेड़ भयंकर, अत्यन्त क्रोधी और प्रबन्ध पराक्रमी यानर चलते हैं। वे सब एक मग्न अपने-अपने लङ्काको भस्म डालने के लिये रम्भका सब आस धर हुए आ रहे हैं ॥ ३०-३२ ॥

यस्तु कर्णां विनृणुते जृम्भत च पुन पुन ।
न तु सजिजते मृत्योर्न च सेना प्रधावति ॥ ३३ ॥
प्ररम्भ्यते च रोपेण तिर्यक् च पुनरक्षते ।
पश्य लाङ्गूलविशेषं क्वेदस्येव महाबल ॥ ३४ ॥

जो कर्णों की चलाता है, बारबार जैमाद करता है, मृत्युसे भी नहीं डरता है और सेनाके पीछे न जाकर अथात् सेनाका भरोसा न करके अन्त ही युद्ध करना चाहता है, रोपसे काँप रहा है, तिरछी नजरसे देखता है और पूँछ काँकारकर सिंहावर करता है, इसका नाम गरभ है। देखिये, वह महाबली यानर वैसी गमना करता है ॥ ३३ ३४ ॥

महाजयो वीतभयो रम्यं सारथ्येवपथतम् ।
राजन् सततमध्यास्तं शरभो नाम यूथप ॥ ३५ ॥

इसका योग महान् है। मय तो इसे छू तक नहा गया है। राजन् ! यह यूथपति गरभ सदा रमणीय सारथ्य पर्वतपर निवास करता है ॥ ३५ ॥

पतस्य यन्त्रितं सर्वं विहारो नाम यूथपाः ।
राजन् सततसहस्राणि चत्वारिंशस्यैव च ॥ ३६ ॥

इससे पास जो यूथपति हैं, उन सबकी विहार सहा है। व यहे चक्रान् हैं। राजन् ! उनकी संख्या एक लाख चालीस हजार है ॥ ३६ ॥

यस्तु मेघ इवाकाशं महानावृत्य तिष्ठति ।
मये यानरवीराणां सुराणामिव वासव ॥ ३७ ॥
मेरीणामिव सनादो यस्थियं भ्रूयते महान् ।
घोरं शाखामृगे ट्राणां समाममभिकाङ्क्षताम् ॥ ३८ ॥
एष पर्वतमध्यास्ते पारियात्रमनुत्तमम् ।
युक्ते दुष्पसहो नित्यं पनसो नाम यूथप ॥ ३९ ॥

एनं नान्तराकाशां शनारं पयुषाम् ।
यूथपा यूथपत्रं यथा यूथानि भागता ॥ ४० ॥

जो विहार बार भयं समान आकाशके परे हुए लङ्का तथा यानरवीरों की भाँति एका जगत् पड़ता है, जैसे दानाओं में इन्ट में, युद्धकी इच्छासे गनराज कीचमें जिसकी गम्भीर गर्जना एसी सुनायी देती है, मानो बहुत सी मेरियाँस लुलुब नाद हो रहा हो, तथा जो युद्धमें दुल्ल है, वह 'पनस' नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। यह पनस परम उत्तम परिचाय पर्वतपर निवास करता है। यूथपतियों में भेड़ पनसकी सेवाम पचास लाख यूथपति रहते हैं, जिनसे अपने अपने यूथ अलग-अलग हैं ॥ ४०-४० ॥

यस्तु भीमा प्ररम्भन्तीं वम् तिष्ठति शाभयन् ।
ध्विना तारे समुद्रस्य द्वितीय इव सागर ॥ ४१ ॥
एष ददुरसरासो धिनो नाम यूथप ।
पिबध्वरति यो वेणा नदीनामुत्तमा नदीम् ॥ ४२ ॥
पष्टि शतसहस्राणि यलमस्य ह्यवगमा ।

जो समुद्र तत्पर स्थित हुई इस उछलती-बूढ़ती भीमा सेनाका दूसरे मूर्तिमान् समुद्रकी भाँति मुखाभि करता हुआ लड़ा है, वह ददुर पर्वत समान विशाल-काय यानर नित नित नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। वह नदियों में भेड़ वेणा नदीका पानी पीता हुआ पिब करता है। साठ लाख यानर उसका सेनिक हैं ॥ ४१ ४२ ॥

त्वामाह्वयति युष्ठाप क्रोधनो नाम यानर ॥ ४३ ॥
विश्रान्ता यलन्तश्च यथा यूथानि भागता ।

जो युद्धके लिये सदा आपसो ललराता रहता है तथा जिनसे पास यल-निकमशाली जनेर यूथपति रहते हैं और उन यूथपतियों के पास पृथक्-पृथक् बहुतसे घूष हैं, वह 'क्रोधन' नामसे प्रसिद्ध यानर है ॥ ४३ ॥

यस्तु गैरिकरणाभं यपुं पुण्यति यानर ॥ ४४ ॥
अयमस्य सदा सयान् यानरान् यलद्वर्षित ।
गवयो नाम तेजस्वी त्वां क्रोधाद्भिवर्तत ॥ ४५ ॥
एनं शतसहस्राणि सन्ति पयुषास्तन ।
एषैवाशसते लङ्कां म्वेनार्नकेन मदितुम् ॥ ४६ ॥

यह जो गेरुके समान लाल रंगके शरीरका पोषण करता है उस तेजस्वी यानरका नाम 'यपय' है। उसे अपने रूपपर बड़ा घमट है। वह सदा सब यानरोंका निररक्षर किया करता है। देखिये, जिनसे रास वह आपसी और बढ़ा आ रहा है। इसकी सेवाम सचर लाख यानर रहते हैं। यह भी अपनी नेका द्वारा लङ्काका धूलमें मिला देनेकी इच्छा रखता है ॥ ४४-४६ ॥

पते दुष्पसहा वीरा येप सख्या न विद्यते ।

यूथपा यूथपप्रेष्टास्तेषा यूथानि भारता ॥ ४७ ॥

ये सारे के-सारे वानर दुष्ट वीर हैं । इनकी गणना

इत्थार्थे श्रोमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पदविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रोमद्रामायण आदिकाव्ये युद्धकाण्डे छबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्ग

वानरसेनाके प्रधान यूथपतियोंका परिचय

तास्तु ते सम्प्रक्षयामि प्रेम्भमाणस्य यूथपान् ।

राघवाय पराक्रान्ता ये न रस्मिन् जीवितम् ॥ १ ॥

(सारणने कहा—) पण्डितराज । आप वानरसेनाका निरीक्षण कर रहे हैं, इसलिय मैं आपसे उन यूथपतियोंका परिचय दे रहा हूँ, जो धीरपुनायवीरों लिये पराक्रम करनेकी उद्यत हैं और अपने प्राणोंका भाव नहीं रखते हैं ॥ १ ॥

जिन्हा यस्य बह्व्ययामा दीर्घलाङ्गलमाधिता ।

ताम्रा पीता सिता द्यवेता प्रकीणा घोररमण ॥ २ ॥

प्रगृहीता प्रसादात्ते स्वस्थेन मरीचय ।

पृथिव्या चानुरप्यन्ते हरो नामैव वानर ॥ ३ ॥

य वृष्टोऽनुगच्छन्ति शतशोऽप्य सहस्रशः ।

वृक्षानुचम्य सहसा लङ्कारोहणतत्पर ॥ ४ ॥

यूथपा हरिराजस्य किंकरा समुपस्थिता ।

इधर यह हर नामका वानर है । भयकर कर्म करनेवाला इस वानरकी तनी पूँछपर लाल, पीले, भूरे और सफेद रंगने लगे तीन-तीन हाथ बड़े-बड़े चिड़ने रोएँ हैं । य इधर-उधर कैले हुए रोम उठ होनेज कारण सूखी त्रिरणोंज समान चमक रह हैं तथा चलते समय भूमिपर लज्जत रहते हैं । इसने पीछे वानरराजज किंकर रूप लकड़ों और हजारों यूथपति उपस्थित हैं । कुछ उठाय महसू लङ्कापर आक्रमण करनेज लिय चल आ रहे हैं ॥ २ ४ ॥

नालानिय महामेवास्तिष्ठतो यास्तु पश्यसि ॥ ५ ॥

असिताञ्जनसकाशान् युद्धे सत्यपरान्मान् ।

अमरस्येयाननिर्देवान् पर पारमिजोद्धे ॥ ६ ॥

पथतपु च ये वेजिद् विजयेषु नदीषु च ।

एते त्वयामभियन्त राजन्त्युक्ता सुदाग्णा ॥ ७ ॥

एषा मध्ये स्थितो राजन् भीमानो भीमदशज ।

पत्न्य इव जीमूतैः समन्तान् परिवारितः ॥ ८ ॥

प्राग्भूतं गिरिघटमप्यास्म नमदा पियन् ।

सयज्ञानामधिपतिर्धृष्टा नामैव यूथप ॥ ९ ॥

उपर नाल महामय और आकार समान काल रंगज तिन पीठों आर एक एक रहे हैं, १ युद्धमें मया पराक्रम प्रदर्श करनेवा हैं । समुद्रक दूसरतपर शिर हुए

करता भी असम्भव है । यूथपतियोंमें श्रेष्ठ जो यूथप हैं,

उन सबने अलग-अलग यूथ हैं ॥ ४७ ॥

बाहुका-जणोंके समान इनकी गणना नहीं की जा सकती इसीलिये वृषक-वृषक नाम लेकर इनज त्रिरणमें कुछ बताना सम्भव नहीं है । ये सत्र पक्षों, त्रिभिन्न देगों और नलियोंके तटोंपर रहते हैं । राजन् ! य अत्यन्त भयकर स्वभाववाले रीठ आपपर चढ़े आ रहे हैं । इनज बीचमें इनका राजा लड़ा है, त्रिमकी आँखें बड़ी भयानक और जो दूसरोंके देहमें भी बड़ा भयकर जान पड़ता है । यह काल मथोंसे घिरे हुए हड्डी मोंति चारों ओरसे इन रीठोंद्वारा धिरा हुआ है । इसका नाम धूम्र है । यह समस्त रीठोंका राजा और यूथपति है । यह रीठराज धूम्र पवतश्रेष्ठ श्रुधनान्तर रहता और नमदाका जल पीता है ॥ ५-९ ॥

यजीयानस्य तु भ्राता पश्यैन परतोपमम् ।

भ्रात्रा समानो रूपेण विशिष्टस्तु परानमे ॥ १० ॥

स एष जाम्बवान् नाम महायूथपयूथप ।

प्रशान्तो गुरुरर्ता च सम्प्रहाराप्यमरण ॥ ११ ॥

इस धूम्रके छाट भाई जाम्बवान् हैं, जो महान् यूथपतियों भी यूथपति हैं । देखिय य कते परताकार दितायी देते हैं । य रूपमें तो अपने भाईज समान ही हैं किंतु पराक्रममें उसमें भी बन्कर हैं । इनका स्वभाव शान्त है । ये बड़े भाई तथा युद्धजनोंकी आशान् अधीन रहत हैं और उनकी सेवा करत हैं । युद्धक अनवरणर इनका राज और अमय बहुत बढ़ जाता है ॥ १० ११ ॥

एतेन साष्टा तु महत् रज शम्भस्य धीमता ।

देवासुरे जाग्रयन्ता त्रधाष्टा बहवो धरा ॥ १२ ॥

इन बुद्धिमान् जाम्बवान् देवासुर-सामर्थ्यमें इन्द्रकी बहुत बड़ी महापता की थी और उनमें इन्द्र के पुरासे वर भी प्राप्त हुए थे ॥ १२ ॥

आपदा परताप्रेम्यो महाधृतिपुत्रा दिता ।

मुञ्चन्ति त्रिपुल्लारारा न मृयादृष्टिन्ति च ॥ १३ ॥

राजसत्ता य सदृशा पितागता र रामता ।

एतस्य सैन्या बहवो शिरान्यमिताजस्य ॥ १४ ॥

इनर बहुत-से सैनिक शिरान्ति किन्तु एक पराक्रमी बन्धु भीमा नर है । इन सत्ता परीर बड़ा-बड़ा समर्थ हैं ।

भरे हुए हैं। ये राजाओं और पिशाचानों समान बुर हैं और बड़े-बड़े परंतु शिवरात्रि पर चंद्रकर बहोते महान् यथोक्त समान भिन्न एव भिन्नतु शिवालय शत्रुओं पर छोड़ते हैं। इन्हें मृत्युसे कभी भय नहीं होता ॥ ११-१४ ॥

य पनमभिसरब्धं युवमानमवस्थितम्।
प्रेक्षन्ते चानराः सर्वे स्थिता यूथपयूथपम् ॥ १५ ॥
एव राजन् सहस्राक्षं पशुपतस्ते हरीश्वर।
यलेन यलसयुक्तो दम्भो नामैव यूथप ॥ १६ ॥

‘जो खेल-रोल्म ही कभी उछलता और कभी खड़ा होता है, वहाँ रह हुए सब चानर जिसरी और आभय पूथक देवते हैं, जो यूथपतिगोत्र भी सरदार है और राजसे भय दितानी देता है, यह दम्भ नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। इसका पात बहुत बड़ी सेना है। राजन्! यह चानर राज दम्भ अपनी सेनाद्वारा ही सहाय्य इन्द्रजी उपायमा करता है—उनकी सहायता के लिये सेनाएँ भेजता रहता है ॥ १५-१६ ॥

यः स्थित योजने शैल गच्छन् पाद्वर्णन सेवते।
ऊर्ध्वं तथैव कायेन गतः प्राप्नोति योजनम् ॥ १७ ॥
यस्मात्तु परम रूपं चतुष्पातसु न विद्यते।
ध्रुव सनादनो नाम चानराणां पितामहः ॥ १८ ॥
येन युद्धं तदा दत्तं रणे शकस्य भीमता।
पराजयश्च न प्राप्तिः सोऽयं यूथपयूथपः ॥ १९ ॥

‘जो चलते समय एक योजन दूर तक हुए परंतु भी अपने पादभागसे छू लता है और एक योजन ऊँचेकी वस्तु तक अपने शरीरसे ही पहुँचकर उसे ग्रहण कर लता है, चौपायों जिसमें बड़ा रूप कहीं नहीं है, वह चानर सनादन नामसे विख्यात है। उसे चानरोंका पितामह कहा जाता है। उस बुद्धिमान् चानरने किसी समय इन्द्रका अपने साथ युद्धका अवसर दिया था, किंतु वह उनसे पराजित नहीं हुआ था, वही यह यूथपतिगोत्र भी सरदार है ॥ १७-१९ ॥

यस्य विक्रममाणस्य शकस्येव पराममः।
एव गार्ध्वकन्यायामुत्पन्नं कृष्णवर्तमानम् ॥ २० ॥
तदा देवास्तु युद्धे साहाय्यं त्रिदिवीकसाम्।
यत्र वैद्यरणो राजा जम्बुमुपनिषेधते ॥ २१ ॥
यो राजा पर्यते द्वाणां यदुक्तिरसेविनाम्।
विहारस्तुल्यो नित्यं आनुस्ते राक्षसाधिपः ॥ २२ ॥
तत्रैव रमते भीमान् यन्वान् चानरोत्तमः।
युद्धेष्वकल्पानो नित्यं क्रयणो नाम यूथपः ॥ २३ ॥
घृतं कोटिसहस्रं हरीणां समवस्थितं।
पदेष्वारासने लङ्का स्वर्गनीकेन मर्दितम् ॥ २४ ॥

‘युद्ध के लिये जाते समय जिसका पराक्रम इन्द्रक समान हथिगोचर होता है तथा देवताओं और असुरोंके युद्धमें देवताओंकी सहायताके लिये जिसे अग्निदेवने एक गर्ध्व

कन्याके गर्भमें उत्पन्न किया था, वही यह अप्रपन्न नामक यूथपति है। यहसराज! बहुतसे विचार विचार मेवक करता है, उन बड़े-बड़े परंतुका जो राजा है और आपके माद कुचेरों सदा विहायका युव प्रदान करता है तथा जिस पर उगे हुए जामुनके वृक्षके नीचे राजाधिप राजे बैठा करते हैं, उसी परतपर यह तेजवी यवान् चानरशिरोमणि भीमान् कथन भी रमण करता है। यह युद्धमें कभी अपनी प्रशंसा नहीं करता और दस भय चानरोंसे रिय रहता है। यह भी अपनी सेना के द्वारा लङ्काका पीढ़ डालनेका होला रहता है ॥ २०-२४ ॥

यो गङ्गाधनुषैवैति शासयन् गजयूथपान्।
हस्तिना चानराणां च पूषयैरमुनुस्मरन् ॥ २५ ॥
एव यूथपतिर्नेता गजन् गिरिगुहाशयः।
गजान् रोधयते घन्यानामज्जं महीरुहान् ॥ २६ ॥
हरीणां वाहिनीमुपयो नदीं ईमवनीमनु।
उशीरपीजमाधित्य मन्दरं परंतोत्तमम् ॥ २७ ॥
रमते चानरश्रेष्ठो दिनि शम्भु इव स्वयम्।

एव शतसहस्राणां सहस्रमभिवर्तते ॥ २८ ॥
वीर्यविश्रमहसानां नदीनां बाहुशालिनाम्।
स एव नेता चैतेषां चानराणां महात्मनाम् ॥ २९ ॥
स एव बुधरो राजन् प्रमाधी नाम यूथपः।
यातनेवोद्धत मेघं यमनमनुपश्यति ॥ ३० ॥
अनीकमपि सरब्धं चानराणां तरयिनाम्।
उद्धृतमरुणाभासं पथेनैव समस्ततः ॥ ३१ ॥
विद्युत्प्रमानं यदुशां यथैतद्बहुलं रजः।

‘जो हाथियों और चानरोंके पुराने बैरका स्मरण करके गज-यूथपतिगोत्र भयभीत करता हुआ गङ्गाके किनारे विचार करता है, बंगली पेड़ोंको तोड़ उखाड़कर उनका छाप हाथियोंको आग बढाने से रोक देता है, परंतुकी कन्दारमें बाण और ज्वर-ज्वरेने गर्जना करता है, चानरगोत्रका स्वामी तथा सहायक है, चानरोंकी सेनामें जिस प्रमुख वीर माना जाता है, जो गङ्गातटपर विद्यमान उशीरबीज नामक परंतु तथा गिरिभेद मन्दराचलका आश्रय लेकर रहता एव रमण करता है और जो चानरोंमें उसी प्रकार भेद स्थान रहता है जैसे स्वर्गमें देवताओंमें सखान् इन्द्र, वही यह युद्ध वीर प्रमाधी नामक यूथपति है। इसके साथ बल और पराक्रमपर सर्व रजकर रजका करनेवाला दस करोड़ चानर रहते हैं, जो अपने बाहुबलमें सुरागित होते हैं।

१ इत्युपासीके विना चानरान् केसरीने क्षमसादन जायक राक्षसको, जो हाथोंका रूप चारन करके भावा था, मार डाला था। इसीसे पूर्वकर्म हाथियोंसे चानरोंका वर वष गया था।

यद् प्रमाथी इव सती महात्मा वानरैका मेना है। वायु
वेगेने उठे हुए मेनही मौलि जिस वानरही और आप वा
वार देख रहे हैं, जिसने सम्बन्ध रखना वेगाली वानरों
की सेना भी रंगने मरी दिखायी देती है तथा जिसकी मेना
द्रोण उड़ायी गयी धूमिल रगड़ी बहुत बनी धूलिपि
वायुने सब ओर फैलकर जिसका निकट गिर रही है, वही य
प्रमाथी नामक वार है ॥ २५-३१ ॥

पनेऽसितमुखा घोरा गोलाङ्गला महाबल ॥ ३२ ॥
शत शतसहस्राणि ह्यद्रा वै सेतुयधनम् ।
गोलाङ्गल महाबाहू गवाक्ष नाम यूथपम् ॥ ३३ ॥
परियायाभिनन्दन्ते तद्वा मर्तुमोजसा ।

य काल में बाले लंगूरजालिक वानर हैं । इनमें महान्
बल है । इन भयंकर वानरोंकी सख्या एक करोड़ है । महा
बाहू । जिसने सेतु बाँधनेमें महायत्न का है, उस लंगूरजालि
क गवाक्ष नामक यूथपति का बाँध आसन धरकर ये वानर
चल रहे हैं और लङ्काके शत्रुपक्ष के लङ्का के लिये व
आरने गर्तना करते हैं ॥ २२-३१ ॥

अमरावतिरा यत्र सर्वकालफलद्रुमा ॥ ३४ ॥
य स्यस्तुल्यगणाभमनुपपत्ति पयतम् ।
यस्य भासा सदा भान्ति तद्वणा मृगपथिण ॥ ३५ ॥
यस्य प्रस्थ महागमनो न त्यजन्ति महयय ।
सर्वकामकला वृक्षा सदा फलसमन्विता ॥ ३६ ॥
मधूनि च महाहाणि वस्मिन् परतमसुमे ।
तत्रैव गमत राजन् गग्ये काञ्चनपर्वति ॥ ३७ ॥
सुख्यो वानरसुख्याना कैसरी नाम यूथप ।

जिस परतार मभी शत्रुओंमें फल देनेवाला वृक्ष अमरावति
में ही दिखायी देने है, सुख के भयने ही ममान वनवा
निल परतार प्रगति परिक्रमा करने हैं जिसकी कान्ति
गह्वरे भग और कभी मना सुतरा वग प्रगत होने है,
महामा मर्गिण जिसका निगरका कभी त्याग नहीं करने है,
जहाँ सभी वृक्ष समूह मनागठित शत्रुओंका वक्
रूपमें प्रगत करने हैं और गगने मना वक् लगे रहते हैं,
जिन भद्र परतार बहुत लम्बे मनु के हात हैं, उसी
रमणीय सुखमय परतार मनेनेपर य प्रमुख वानरोंम प्रधान
यूथपति कभी रमण करने हैं ॥ २४-३६ ॥

परिमिरितसहस्राणि रम्या काञ्चनपर्वता ॥ ३८ ॥
तेषा मये गिरियरस्यमिगानघ रक्षसाम् ।

भाट हजार आ रमणीय सुखमय परतार हैं, उनका बीचमें
एक भेड़ परतार है, जिसका नाम है मर्गिण । निपाय
निगारने । नेने रक्षकोंमें आप भेड़ है, गी प्रशार परतारोंमें
वह मर्गिण उतार है ॥ ८-॥

तत्रैके कपिला श्वेतास्त्रास्रस्या मधुपिङ्गला ॥ ३९ ॥
नियमन्त्यन्तिमगिरा रौषणद्रुमा नखायुधा ।
सिंहा इव चतुर्दश व्याघ्रा इव दुर्गसदा ॥ ४० ॥

सर्वे वैभ्यनरसमा ज्वलद्गारीरिगेपमा ।
सुदीपाञ्जितलाङ्गला मत्समातङ्गसन्निभा ॥ ४१ ॥
महापतसकारा महाभीमूतनि सन्ना ।
वृषपिङ्गलनेत्रा हि महाभीमगतिस्वना ॥ ४२ ॥
मर्दयतीति ते सर्वे तस्थुलङ्का समोक्ष्य ते ।

जहाँ ना परतार अन्तिम गिरि है, उसपर कपिल
(भूरे), नेत्र, लाल मुखाल और मधुन समान पिङ्गल वर्ण
गले वानर निरास करने हैं जिनका दाँत बल तीव्र है और
नख ही उनका आयुध है । ये सब गिरि समान चार दाँतों
वाले, व्याघ्र समान लङ्का, जाम्बव समान तंजवी और
प्रज्वलित मुखवा निरास करने समान कपि होने हैं ।
उनकी वृद्ध बहुत बड़ी ऊपरकी उगी हुई और मुन्दर होती है ।
ये मनवाला हाथीर समान परतारी, महान् परतार समान, ऊँचे
और सुन्दर शरीरवाला तथा महान् मेघ समान गम्भीर गवका
करनेवाला हैं । उनका नेत्र गाल-गाल एवं पिङ्गल वर्ण होते
हैं । उनका चन्नेसर बड़ा भयानक गन्धहाता है । वलभी वानर
यहाँ आकर इस तरह लड़े हैं, माना आरकी लङ्काकी देखने
ही मल लालो ॥ ३-४२ ॥

एव चैषामधिपतिमप्ये तिष्ठति वीथयान् ॥ ४३ ॥
अयार्थो नित्यमादित्यमुपतिष्ठति वीथयान् ।
नाम्ना पृथिव्या त्रिपथानो राजन्शतयान्ति यः ॥ ४४ ॥

देखिय उनका बीचमें य उनका परतारी मनावति गङ्गा
है । य बड़ा बलवान् और त्रिपथी प्रगति लिय स
सुदृढता उगमना करना है । राजन् । यह वार इस भूमि
में गिराने नामने गिराना है ॥ ४-४४ ॥

परैवादासने लङ्का म्येनानीकेन मर्दिमुम् ।
विक्रान्तो रलयाम्भूर पौरये स्थ ध्वस्तस्थित ॥ ४५ ॥
रामप्रियाय प्राणाना दया न कुरुत हृदि ।

जवान्, परतारी तथा गिरार य गिराने भा भयन
ही पुरुषाधन मनेने युद्ध लिय लड़ा है और अन्ना मेना
द्रोण लङ्कापुरीश मल लङ्का चाहता है । यह वानरवीर
आयाम्भुजका मिय करने लिय अन प्राणोंपर भा दया
नहीं करता है ॥ ४-४५ ॥

गनो गराभा गययो नलो नीलश्च घानर ॥ ४६ ॥
एकैकमय योधाना कोटिभिर्दग्धिभूत ।

पात्र गराभा, गयय, नल और नील-जनेने एक-एक
मनावति दम-दम करके दग्धिभूत लिय हुआ है ॥ ४६ ॥
तथान्ये घानरश्चेष्टा त्रिष्यपरतयामिन ।
न दास्यन्त यद्व्यान् त्रु मर्यायान् लघुयुधमा ॥ ४७ ॥

इस तरह त्रिष्यपरतार निरास करनेवाले और भा
दग्धिभूत म परतारी भेड़ वानर हैं जो अग्धिभूत म
कारण मिन नहीं कर मरने ॥ ४७ ॥

सर्वे महाराज महामायाः ।

सर्वे महाशैलनिकाशकाया ।

सर्वे समर्था पृथिवी क्षणेन

पुनः प्रविश्वस्तत्रिकीणशैलम् ॥ ४८ ॥

महाराज । ये सभी जानर बड़े प्रभावशाली हैं । सभीने

गरीर बड़े बड़े पर्वतोंन समान रिगाल हैं और सभी क्षणभर

में भूगण्डलन मग्न पर्वतोंन चूर-चूर करने लप अर

बिम्बर दननी क्षति रखत हैं ॥ ४८ ॥

इसपर धीमत्वात्मीकीये आदिकाम्य सुदृढकाण्डे सप्तविंश सर्ग ॥ २७ ॥

इस प्रकार धीमत्मीरिमिति आर्यरामायण आदिकाम्य सुदृढात्मने सप्तईसवों सर्ग का हुआ ॥ २७ ॥



अष्टाविंशः सर्गः

शुकके द्वारा सुग्रीवके मन्त्रियोंका, मन्द और द्विविदका, हनुमान्का, श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीवका परिचय देकर बानरसेनाकी सभ्याका निरूपण करना

सारणस्य ध्वज ध्वन्या रायण राक्षसाधिपम् ।

पलमादिश्य तत् सर्वं पुत्रो वाक्यमथाग्रवीह् ॥ १ ॥

उस शरी बानरसेनाका परिचय देकर जब सारण चुप हो गया, तब उसका कथन सुनकर पुत्रने रामराज रायणसे कहा— ॥ १ ॥

मितान् पदयन्ति मानेताम् मत्तानि महाद्रिपारम् ।

न्यमोत्रानिच गात्रेयान् सागरान् हैमवतानि ॥ २ ॥

पते दुष्प्रमहा राजन् वलिन् कामरूपिण ।

दैत्यदानवसफाशा युगे देवपरावना ॥ ३ ॥

राजन् । किन्हें आप मनबाल महागङ्गाओंके समान बहों लड़ा देस रहे हैं, जो गङ्गातटके बगवत्सी और हिमालयके गालवृणोंके समान जान पड़ते हैं, इनका वेग दुस्तह है । ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बलवान् हैं । दैत्यों और दानवोंन समान शक्तिवाली तथा युद्धमें दयालाओंन समान पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं ॥ २ ॥

एषा कोटिसहस्राणि नर पञ्च च सप्त च ।

तथा शङ्खसहस्राणि तथा वृन्दशतानि च ॥ ४ ॥

पते सुग्रीवसचिवा किष्कि धानिलया सदा ।

हरयो देवगर्भैर्यन्त्राणां कामरूपिण ॥ ५ ॥

इनकी सख्या इक्कीस कोटि सहस्र, सहस्र शङ्ख और दो वृन्द है ॥ ४ ॥ यसर के-सब जानर सग किष्किन्धाम रहनेवा सुग्रीवके मन्त्री हैं । इनकी उत्पत्ति देवताओं आर गन्धर्वोंसे हुई है । य सभी इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं ॥ ५ ॥

यो सौ पदयसि निघ्नन्तो कुमारो वृन्तरूपिणो ।

मैत्रक्ष द्विदिदद्वैष ताम्या नास्ति नमो मुधि ॥ ६ ॥

प्रहणा समनुसालान्मृतप्राशिनानुभी ।

आशसेते यया लङ्गामेतौ मर्दितुमोजसा ॥ ७ ॥

राजन् । आप इन बानरोंमें दानाओंके समान रूपगाने जिन दो बानरका लड़ा देख रहे हैं उनका नाम है मैल और द्विदि । युद्धमें उनकी बगवत् करनवाला काद नहीं है । महावीरों आत्मासे उन दोनोंने अमृतपान किया है । ये दोनों बीर अपने बल-पराक्रममें लङ्काका कुच डालनेकी इच्छा रखते हैं ॥ ६ ॥

य तु पदयसि तिघ्नन्त प्रभिभविष कुञ्जरम् ।

या वलाक्ष क्षोभयेत् वृद्ध समुद्रमपि बानर ॥ ८ ॥

एषोऽभिगन्ता लङ्काया वैदेहास्तन च प्रभो ।

यन पदय पुरा दृष्ट बानर पुनरागतम् ॥ ९ ॥

ज्येष्ठ-केसरिण पुत्रो बानामज इति क्षुत् ।

हनूमानिति विज्याता लङ्कित्वा येन भागर ॥ १० ॥

इधर जिनसे आप मन्त्री घात रहनेवाके मतवाल हाथी सी भोंति लड़ा देख रहे हैं, वो बानर क्षुपित होनपर समुद्रों भी बिपुच कर सकता है, जो लङ्कामें आपने पास आया था और निदेहनदिनी वीरसे भी मिलकर गया था, उस देखिये । पहलेका देखा हुआ यह बानर फिर आया है । यह केसरिका बना पुत्र है । परनपुत्र भी नामने विख्यात है । उसे लोग हनुमान् कहत हैं । इनने पहले समुद्र लंका था ॥ ८—१० ॥

कामरूपो हरिश्चेष्टो बलरूपसमन्वित ।

अनिर्धार्यगतिद्वैष यथा सततम् प्रभु ॥ ११ ॥

बल और रूपसे मग्न यह भेष्ट बानर अपनी इच्छासे अनुहार रूप धारण कर सकता है । इसकी गति कहीं नहीं रुकती । यह धायुज समान सर्वत्र जा सकता है ॥ ११ ॥

उद्यन्त भाम्कर दृष्ट्वा बालं विल उभुक्षित ।

त्रियोजनसहस्र तु अञ्जानमस्तीय हि ॥ १२ ॥

आदित्यमाहरिष्यमि न मे क्षुत् प्रतिपास्यति ।

इति निश्चिन्त्य मनसा पुष्पुन्वे त्रलर्पित ॥ १३ ॥

जब यह बालक या उस समयकी यात है, एक दिन इसका बहुत भूत लगी थी । उस समय उगति हुए स्वर्ग

* इन संक्षेपश्लोका स्पष्टीकरण इसी भागके अन्तमें दी हुई परिभाषाके अनुसार समझना चाहिये ।

दम्बकर यह तीन हजार योजन ऊँचा उठल गया था । उस समय मन-ही-मन यह निश्चय कर कि 'यहाँ से फल आदिने मरी भूमि नहीं बायगा; इन्जिय सूर्यका (जो आकाशका दिव्य फल है) ल आऊँगा' यह बलाभिमाना मनर ऊपरका उठला था ॥ १०१ ॥

अनाधृष्यतम देवमपि देवगिराक्षसैः ।
अनासाद्यैर पतितो भास्वरोदयने गिरौ ॥ १०४ ॥

देवपि और राक्षस भी जिन्हें परम नहीं कर सकत, उन सूर्यदेवतक न पहुँचकर यह वानर उदयगिरिपर ही गिर पड़ा ॥ १०४ ॥

पतितस्य कपेरस्य हनुरेका दिलातले ।
किञ्चिद् भिन्ना ददहनुर्हनुमानेन तेन वै ॥ १०५ ॥

यहाँ से गिरावत्पर मिलनेका कारण इस वानरकी एक हनु (गली) कुछ बल गया साथ ही अत्यन्त दृढ़ गरी, इन्जिय यह 'हनुमान्' नामने प्रसिद्ध हुआ ॥ १ ॥

सत्यमागमयोगेन समैव विदितो हरिः ।
नाम्य दाम्य बल रूप प्रभाशे यानुभाषितम् ॥ १०६ ॥

एव आदासते लङ्कामेको मण्डितमोजसा ।
येन जान्यल्यतेऽस्ती वै धूमकेतुस्तत्राप वै ।

गङ्गाया निहितश्चापि काज प्रिसग्ने कपिम् ॥ १०७ ॥

निश्चयताप्य व्यवस्थित सम्पत्तये मेने इस गानरका वृत्तान्त टीका-नीक बना है । इसका रूप और प्रभावका पूरणरूपने गगन करना विमान जिय सा भगवान् है । यह अकेला ही मारी लङ्काका मनत्र देना चढ़ा है । जिने आपने लङ्कामे एक रक्षता था; उस भक्तिका भा विजय अस्ती वृद्धाव प्रचलित करने मारा लङ्का जय दाय उष गानरका आप लूने कैने है ॥ १०६ १०७ ॥

यथैवेऽनन्तरं गृह इयाम् पद्मनिमेषण ।
इक्ष्वाकुनामनिस्था लेके विभुत्पौराय ॥ १०८ ॥

हनुमान्देव वन ही दृष्ट सम्मान नेत्राणि सौराष्ट्रगार गिराव रहे हैं; वे इक्ष्वाकुवदन अतिरूपी हैं । इनका पौराय सङ्गुल लङ्कामे प्रसिद्ध है ॥ १०८ ॥

यस्मिन् न चलत धर्मो यो धर्म नातिगते ।
यो ब्राह्मणस्य यदाश्च येद येदविदा यर ॥ १०९ ॥

धर्म उनम कभी अग्य नहीं होता । यह धर्मका कभी उन्मुक्त नहीं करत तथा ब्रह्मण और यद दनों गता है । यदनेत्राणि इनका बहुत ऊँचा गगन है ॥ १०९ ॥

यो भिन्नाद् गगन कार्पण्येर्दिनीं यापि क्षारयेत् ।
यस्य सृणोरिव श्रेष्ठ दामस्येव पराक्रमः ॥ ११० ॥

यह भगवान् काय आकाश की भग्न कर सके हैं;

प्रथीतो भी विगैण करनेका क्षमता गवते हैं । इनका श्रेष्ठ मृत्युक् समान और पराक्रम इन्द्रज तुल्य है ॥ १० ॥

यस्य भाया जनन्यानात् स्त्रीना चापि हतात्म्या ।
स एव रामस्या गपन् योद्धु समभिवर्तते ॥ ११ ॥

पावन् ! किसी भाया गताका आप जनन्यानासे हर लगे हैं; वे ही य आराम आपने युद्ध करनेक लिय सामने आकर लड़ रहे हैं ॥ ११ ॥

यस्यैव दक्षिणे पादौ शुद्धजाम्बूनदप्रभ ।
विशालरश्मास्ताम्राभौ नीलकुञ्जितमूषज ॥ १२ ॥

एगो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातु प्रियहित एत ।
नये युद्धे च कुटाल सत्रशस्त्रभृता यर ॥ १३ ॥

उनका दाहिने भागने का गुद सुवर्णे समान शान्तिमान्; विशाल बन्धुल्लभ मुग्धाभिः, कुछ-कुछ लाल नेत्राल तथा समरपर बाल-बाल सुषण्ड रूप धारण करनेवाला है; इनका नाम लक्ष्मण है । यह अपने भाईक मिय और निम्ने लगे रहनेवाला है; राजनीति और युद्धमें कुशल है तथा सङ्पूर्ण शस्त्रधारिणोंमें भद्र है ॥ १२ १३ ॥

अमर्गो दुजयो जेता विजलन्तश्च जयौ यली ।
गमस्य दक्षिणो गार्हर्निय प्राणो यहिश्चर ॥ १४ ॥

यह अमरगाल, दुर्बल, विजयी, पराक्रमी, गद्युक्ते पराजित करनेवाला तथा बलवान् है । लक्ष्मण मग ही श्रीरामक दाहिने हाथ और बाहर विजनेवाला है ॥ १४ ॥

नरोर गद्यस्यायौ चरित परिरम्बति ।
पर्यवादात्मन युद्धे निहन्तु सत्रशस्त्रमान् ॥ १५ ॥

जुद्धे आरुणाधका लिय भजन प्रार्थना रक्षाकी भी प्यान नहीं रहता । यह अत्र ही युद्धमें सङ्पूर्ण राक्षसोंका वध कर देनेकी इच्छा रखत है ॥ १५ ॥

यस्तु सत्यमसी पत्र रामस्याधिन्य निष्ठति ।
रम्भोगणपरिगते रात्रा होर विभाषण ॥ १६ ॥

धीमता गनराजेन लङ्कायामभिषेजित ।
त्वाममा प्रतिमरक्ष्यो युद्धायोऽभिवर्तते ॥ १७ ॥

आगमन-दक्षी कर्णों और लक्ष्मणों ने निरुद्ध लड़ रहे हैं; यह रात्रा विभाषण है । रात्रिपर भीरमन इन्हें लङ्काक राक्षस अभिषेक कर गिा है । अब यह अन्तर युद्धि हारर युद्धक लिये सम्मन आ रहा है ॥ १६ १७ ॥

य नु पदयमि निष्ठल मध्ये गिरिमिश्राजम् ।
सत्रशस्त्रासृगट्राण भनारममिनीनमम् ॥ १८ ॥

जिन्हें अब मग सम्मन कर लाने पराक्रम गमन अतिरूप भगवान् लङ्का लगे हैं; यह सम्मन यत्नेर सम्मन अन्तिन तन्वी मुपीर है ॥ १८ ॥

ते जसा यशसा सुद्धा घलेनाभिजनेष्व ।

य कपीननिवध्राज हिमजानिष पर्यत ॥ २९ ॥

जैसे हिमालय मय परतोंमें श्रेष्ठ है, उन्ही प्रकार य तेज, यश, बुद्धि, बल और कुलही हथिमें गमन यानरोंमें सर्वोपरि विपक्वमान है ॥ २९ ॥

किष्किंधा य समप्यास्ते गुहा स्वगहनद्रुमाम् ।

दुर्गा पर्यतदुर्गम्या प्रधाने सह गृयै ॥ ३० ॥

ये गहन वृक्षमें सुख किष्किंधा नामक दुर्गम गुहाम निवास करते हैं । परतारों कारण उसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है । इनमें साध वहाँ प्रधान प्रधान वृक्षपति भी रहते हैं ॥ ३० ॥

यस्यैषा काञ्चनी माला शोभते शानपुष्करा ।

कान्तादेवमनुष्याणा यस्या लक्ष्मी प्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥

इनके शालमें जो श्री कमलकी सुवर्णमयी माला सुशोभित है, उसमें सर्वदा लक्ष्मीदेवीका निवास है । उसे देवता और मनुष्य सभी पाना चाहते हैं ॥ ३१ ॥

एता माला च तारा च कविराज्य च द्वाभ्यतम् ।

सुग्रीवो धालिन हन्वा रामेण प्रतिपादित ॥ ३२ ॥

भगवान् श्रीरामने वालीको भारकर यह माला, तारा और यानरोंका राज्य—ये सब उस्तुएँ सुग्रीवरा समर्पित कर दीं ॥ ३२ ॥

शत शतसहस्राणा कोटिमाहुमनीषिणः ।

शान कोटिसहस्राणा शङ्कुरित्यभिधीयते ॥ ३३ ॥

मनीषी पुरुष सौ लाखका सत्प्राज्ञ एक कोटि कहते हैं और सौ सहस्र कोटि (एक नील) को एक शङ्कु कहा जाता है ॥ ३३ ॥

शत शङ्कुसहस्राणा महाशङ्कुरिति स्मृत ।

महाशङ्कुसहस्राणा शत वृन्दमिहोच्यते ॥ ३४ ॥

एक लाख शङ्कुको महाशङ्कु नाम दिया गया है । एक लाख महाशङ्कुका वृन्द कहते हैं ॥ ३४ ॥

शत वृन्दसहस्राणा महावृन्दमिति स्मृतम् ।

महावृन्दसहस्राणा शत पद्ममिहोच्यते ॥ ३५ ॥

एक लाख वृन्दका नाम महावृन्द है । एक लाख महावृन्दको पद्म कहते हैं ॥ ३५ ॥

शत पद्मसहस्राणा महापद्ममिति स्मृतम् ।

महापद्मसहस्राणा शत खरमिहोच्यते ॥ ३६ ॥

एक लाख पद्मको महापद्म माना गया है । एक लाख महापद्मका खर कहते हैं ॥ ३६ ॥

शत खरसहस्राणा महाखरमिति स्मृतम् ।

महाव्यवसहस्राणा समुद्रमभिधीयते ।

शत समुद्रसाहस्रमोष इत्यभिधीयते ॥ ३७ ॥

शतमोषसहस्राणा महोषा इति विभुत ।

एक लाख खरका महाखर होता है । एक सहस्र महाखरको समुद्र कहते हैं । एक लाख समुद्रको ओष कहते हैं और एक लाख ओषको महोष कहा है ॥ ३७ ॥

एष कोटिसहस्रेण शङ्कुना च शतेन च ।

महाशङ्कुसहस्रेण तत्र वृन्दशतेन च ॥ ३८ ॥

महावृन्दसहस्रेण तथा पद्मशतेन च ।

महापद्मसहस्रेण तथा खरशतेन च ॥ ३९ ॥

समुद्रेण च तनैव महोषेन तयैव च ।

एष कोटिमहोषेन समुद्रसहस्रेण च ॥ ४० ॥

विभीषणेन धारेण सखिषै परिवारित ।

सुग्रीवो जानरेद्रस्या युद्धार्थमनुवर्णते ।

महावल्गुतो नित्य महावल्गुपराक्रमः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार सहस्र कोटि, सौ शङ्कु, सहस्र महाशङ्कु, सौ वृन्द, सहस्र महावृन्द, सौ पद्म, सहस्र महापद्म, सौ खर, सौ समुद्र, सौ महोष तथा सषट्-सहस्र (सौ) कोटि महोष ऐतिहासिक, वीर विभीषणने तथा अपने सखियोंमें विरे हुए जानरान् सुग्रीव आपको युद्धके लिये ललकारत हुए सामने आ रहे हैं । विशाल सेनासे विरे हुए सुग्रीव महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ ३८-४१ ॥

इमा महाराज समीक्ष्य चाहिनी

मुपस्थिता प्रज्वलितप्रहोपमाम् ।

तत प्रयत्न परमो निधीयता

यथा जय स्यात् परे परपक्षः ॥ ४२ ॥

महाराज ! यह सेना एक प्रकाशमान ग्रहके समान है । इसे उपस्थित देख आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे आपकी विजय हो और शत्रुओंपर सामन आपको नीचा न देखना पड़े ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मुद्रकाण्डेऽष्टाविंश सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीनारदकृतितुल्य आर्यातमायण आदिकाव्य मुद्रकाण्ड अष्टाविंश सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

रावणका शुक और सारणको फटकारकर अपने दरबारसे निफाल देना, उसके भेजे हुए गुप्तचरोंका श्रीरामकी दयासे वानरोंके चंगुलसे छूटकर लङ्कामें आना

शुकेन तु समादिपान् दृष्ट्वा स हरियूथपान् ।
लक्ष्मण च महार्थं भुज रामस्य दक्षिणम् ॥ १ ॥
समीपस्थ च रामस्य भ्रातर च निभीषणम् ।
सर्पगणरराज च सुग्रीव भीमप्रियमम् ॥ २ ॥
अहं चापि यत्नि वस्रहस्तामज्जा मजम् ।
हनुमन्त च प्रिकान्त जारगन्त च दुर्जयम् ॥ ३ ॥
सुषेण कुमुद नील न च प्रजगर्पभम् ।
गज गन्धर्व शरभ मैन्द च द्विविद तथा ॥ ४ ॥

शुकके बताये अनुसार रावणने समस्त यूथपतिवोंको देखकर श्रीरामकी दाहिनी बाँह महापराक्रमी लक्ष्मणका, श्रीरामक निकट बैठे हुए अपने माँ निभीषणको, समस्त वानरोंने राजा भयंकर पराक्रमी सुग्रीवको, इन्द्रपुत्र कालीने बेटे बलवान् अह्नदको, पर निमग्नशाली हनुमान्को, दुजय जीर काम्बराव्को तथा सुषेण, कुमुद, नील, चानरश्रेष्ठ नर, गज, गन्धर्व, शरभ, मैन्द एव द्विविदको भी देखा ॥ १—४ ॥

किंचिदाग्निहृदयो जातप्रोधश्च रावणः ।
भत्सयामास तौ धीरौ कथान्ते शुकसारणौ ॥ ५ ॥

उन हरनो देवदर रावणरा हृदय कुछ उद्विग्न हो उठा । उने प्रोध आ गया और उछने बाल समाप्त होनेपर धीर शुक और सारणको फटकाए ॥ ५ ॥

अधोमुखौ तां प्रणतान्ग्रीभुङ्क्त्वा रणौ ।
रोगगद्गदया याचा सरब्ध परुष तथा ॥ ६ ॥

बेचारे शुक और सारण निनात मांसे नीचे मुँह किये लड़े रहे और रावणन रावणगद्गद वाणीम प्रोधपूर्वक यह फटकार बाल करी— ॥ ६ ॥

न तावत् सदृश नाम सचिर्वरुणजीविभि ।
विप्रिय रूपतेयवु निग्रहे प्रग्रहे प्रभो ॥ ७ ॥

प्राजा निग्रह और अनुग्रह करनेम भी समर्थ होता है । उसर सार जीविका जलनग्न मन्त्रियोंका एसी बाद बाल नहीं पढ़ती चादिय, जो उन अभिय लगे ॥ ७ ॥

रिपूणा प्रतिशूलाना युद्धार्थमभियतताम् ।
उभाभ्या सदृश नाम यत्तुमप्रस्तव्य स्तम् ॥ ८ ॥

जो 'गुप्त' भवन विरुद्धी हैं और युद्धन लिय सामने आय है, उननी बिना किसी प्रमद्वज ही स्तुति करना क्या तुम दोनोंन लिय उरिग था ! ॥ ८ ॥

आगया गुप्तो युद्धा पृथा या ययुषानिता ।
सार यद् राजशारङ्गानामनुजीष्य न शृणुते ॥ ९ ॥

तुमलोगोंने आचाप, गुरु और वृद्धोंकी व्याप ही सेवा की है क्याकि राक्षसीतिहा जो समदृणीय सार है, उसे तुम नहीं ग्रहण कर सके ॥ ९ ॥

ग्रहीतो वा न विज्ञातो भागेऽज्ञानस्य याहने ।
ईदृशौ सचिर्वैयुक्तौ मूर्खद्विषया धराभ्यहम् ॥ १० ॥

अदि तुमने उसे ग्रहण भी किया हो तो भी इस समय तुम्हें उसका ज्ञान नहीं रह गया है—तुमने उसे भुला दिया है । तुमलोग केवल अज्ञानता बोझ धा रहे हो । ऐसे मूर्ख मन्त्रिवाच सम्पत्तमें रहते हुए भी जो मैं अपने रायग्र सुरक्षित रख सका हूँ, यह सौभाग्यकी ही बात है ॥ १० ॥

किं नु मृत्योर्भयं नास्ति मा वक्तु परुष उर ।
यस्य मे शासतो जिहा प्रयत्नति गुभागुभम् ॥ ११ ॥

मैं इन रायका शासक हूँ । मरी जिहा ही तुम्हें गुप्त था अगुभकी प्राप्ति क्या मक्ती है—मैं वाणीमात्रने तुमपर निग्रह और अनुग्रह कर सकता हूँ फिर भी तुम दोनोंने मेर सामने बठोर बात कहनेका साहस किया । क्या तुम्हें मृत्युका भय नहीं है ! ॥ ११ ॥

अप्येष दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपा ।
राजदण्डपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिन ॥ १२ ॥

जबमें दावानलरा स्पृष्ट करने भी नहीं बूझ सका रह जाय, यह सम्भर है परन्तु राजदण्डन अभिशारी अपराधी नहीं निक सवने । वे सगया नष्ट हो जात हैं ॥ १२ ॥

हत्यामह त्विमो पापी शत्रुपक्षप्रहासिनी ।
यदि पूर्वोपकारमै प्रोधो न मृदुता प्रजेत् ॥ १३ ॥

अदि इनने पहलेने उपशरीता था करने मय क्रोध नम न पड़ जाता तो शत्रुपक्षमें प्रमत्ता करनेवा 'ह' दाना पापियोंको मैं अभी मार डालता ॥ १३ ॥

अपच्यसत नदपथ्य सनिक्रयादितो मम ।
नदि या हन्तुमिच्छामि सराम्युपहृतानि याम् ।
हतावय हृत्पानो द्वौ मयि स्नेहपगद्गदसुरी ॥ १४ ॥

अर तुम दोनों मरी सभने प्रवेगन अभिशालर पठित हा । मेर पक्षमें नष्ट ज्ञान छि कभी मुझ अन्ना मुँह न दिग्गना । मैं तुम दोनोंका यथ करना नहीं चाहता क्योंकि तुम दोनोंन किय हुए उपशरीत मय स्मरण लपका हूँ । तुम दोनोंने मेर स्नेहसे मित्र और हृदय हा, भी मेर गुण ही समान हा ॥ १४ ॥

ययुषां नु समीचीनं तौ दृष्ट्वा शुकसारणौ ।

राजं जयशब्देन प्रतिनन्वाभिनि स्तूते ॥ १५ ॥

उसने ऐसा कहनेपर राज और सारण बहुत रुचित हुए और जय-जयकारके द्वारा राजरा अभिनन्दन करते वहाँसे निकल गये ॥ १५ ॥

अग्रशीघ्र दशशीघ्र समीपस्थ महोदरम् ।
उपस्थापय मे शीघ्र चारानिति निशाचरम् ।
महोदरस्त्योक्तस्तु शीघ्रमाशपयश्चगन् ॥ १६ ॥

इसने पश्चात् दामुस राजगने अपने पास बैठे हुए महोदरमे कहा—परे सामने शीघ्र ही गुप्तचरों को उपस्थित होनेकी आज्ञा दो । यह आदेश पाकर निशाचर महोदरने शीघ्र ही गुप्तचरों को हाजिर होनेकी आज्ञा दी ॥ १६ ॥

ततश्चारा स्ववर्तिता प्रसा पाथिगदासनात् ।
उपस्थिता प्राज्ञल्यो वर्षयित्वा जयाशिर ॥ १७ ॥

राजानी आज्ञा पाकर गुप्तचर उठी समय रिजयपूरा आशीर्वाद दे हाथ जाड़े सेनाग उपस्थित हुए ॥ १७ ॥

तानग्रवीत् ततो वाक्य राजणे राक्षसाधिप ।
चारान् प्रत्यापिकाञ्चरान् धीगान् निगतसाध्वमान् ॥ १८ ॥

वे सभी गुप्तचर निष्कापण, धूर्वीर, धीर एवं निर्मय थे । राक्षसराज राजगने उनसे यह बात कही— ॥ १८ ॥

इतो गन्तुं रामस्य यत्रसाय परीक्षितुम् ।
मन्त्रेष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागता ॥ १९ ॥

(सुमन्त्र) अभी वानरसेनाग रामका क्या निश्चय है, यह जाननेके लिये तथा गुप्तमन्त्रणामे भाग लेनेवाले जो उनसे अन्तरङ्ग मन्त्री हैं और जो लोग प्रेमपूरन उनसे मिले हैं—उनने मित्र हो गये हैं उन अपने भी निश्चित विचार क्या है, इसकी जाँच करनेके लिये यहाँसे जाओ ॥ १९ ॥

कथ स्वपिति जागति किमद्य च करिष्यति ।
विद्याय निपुण सर्वमागन्तव्यमशेषत ॥ २० ॥

(ये कैसे सोते हैं ?) किछ तरह जागते हैं और आज क्या करेंगे ?—इन सब बातोंका पूर्णरूपसे अच्छी तरह पता लगाकर लौट आओ ॥ २० ॥

चारेण विदितं दाशु पण्डितैर्गुप्ताधिपे ।
युद्धे स्वल्पेन धत्तेन समासाद्य निरम्यते ॥ २१ ॥

(गुप्तचरोंके द्वारा यदि शत्रुकी गति-विधिका पता चल जाय तो बुद्धिमान् राजा गोड़ेमे ही प्रयत्नके द्वारा युद्धमें उसे घर दबाते और भार मगाते हैं) ॥ २१ ॥

चारान्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।
शार्दूलमप्रत हृत्वा ततश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमे अन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २९ ॥

तत्र 'बहुत अच्छा' कहकर हर्षमें भरे हुए गुप्तचरोंने शार्दूल को आगे करके राजपुत्र राजगनी परिक्रमा की ॥ २२ ॥

ततस्तु महात्मान चार राक्षसमत्तमम् ।
हृत्वा प्रदक्षिण जम्भुयत्र राम सलक्ष्मण ॥ २३ ॥

इस प्रकार वे गुप्तचर राक्षसगिरामणि महाकाय राजगनी परिक्रमा करते उस स्थानपर गये, जहाँ लक्ष्मणसहित भीराम विराजमान थे ॥ २३ ॥

ते सुषेलेभ्य शैठभ्य समीपे रामलक्ष्मणौ ।
प्रच्छन्ना दृष्ट्वा गत्वा भ्रमुग्रीवकिपीणौ ॥ २४ ॥

सुगल पर्वतसे निकट जाकर उन गुप्तचरोंने छिपे रहकर भीराम, लक्ष्मण, सुभीर और विभीषणको देखा ॥ २४ ॥

प्रेक्षमाणश्चामू ता च यमृधुर्भयत्रिहला ।
ते तु धमतमना दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रेण गक्षसा ॥ २५ ॥

वानरोंकी उस सेनाको देखकर वे भयसे व्याकुल हो उठे । इतनेहीमें घमात्ता राक्षसराज विभीषणने उन सब राक्षसोंको देख लिया । २५ ॥

विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया ।
शार्दूलो घ्रादितरुषेक पापोऽयमिति राक्षसः ॥ २६ ॥

तब उन्होंने अकस्मात् वहाँ आये हुए राक्षसोंको फँकारा और अनेक शार्दूलोंसे यह साबकर पकड़वा लिया कि यह राक्षस बड़ा पापी है ॥ २६ ॥

मोक्षित सोऽपि रामेण यध्यमान युवगमै ।
आनुशम्येन रामेण मोक्षिता राक्षसा परे ॥ २७ ॥

फिर तो वानर उसे पीटने लगे । तब भगवान् भीरामने दशरथ उसे तथा अन्य राक्षसोंकी भी मुझा दिया ॥ २७ ॥

धानैरर्द्धितास्ते तु विप्रान्तैर्लघुविक्रमैः ।
पुनर्लङ्घ्यामनुप्राप्ता श्वसन्तो नष्टचेतसः ॥ २८ ॥

बल-विक्रमसम्पन्न शीघ्र पराक्रमी वानरोंने पीड़ित हो उन राक्षसोंके हाथ उड़ गये और वे हॉकते हॉकते फिर लड़कामें जा पहुँचे ॥ २८ ॥

ततो दशशीघ्रमुपस्थितास्ते
चार बहिनित्यचरा निशाचरा ।

गिरे सुषेलेभ्य समीपवासिन
न्यवेद्यन् रामसल महाबला ॥ २९ ॥

तदनन्तर राक्षसकी सेनामें उपस्थित शत्रुचर वेशमें सदा ग्राह्य निचरनेवाले उन महाबली निशाचरोंने यह सूचना दी कि भीरामचन्द्रजीकी सेना सुगल पर्वतके निकट डेर डाले पड़ी है ॥ २९ ॥

त्रिग सर्ग

रावणके मेने हुए गुप्तचरों एव शार्दूलका उमसे बानर सेनाका समाचार बताना
और मुख्य मुख्य वीरोंका परिचय देना

तनस्तमशोभ्यथल लङ्काधिपतये चरा ।

सुयले राघव शैले निविष्ट प्रत्ययेदयन् ॥ १ ॥

गुप्तचरोंने लङ्कापति रावणका यह बताया कि श्रीरामचन्द्र
कासी सेना सुबेल पतन पाव आकर गहरी है और वह सर्वाथा
अज्ञ है ॥ १ ॥

चारणा राजण श्रुत्वा प्राप्त राम महाबलम् ।

जातोद्देशोऽभयत् किंचिदशार्दूल बान्धवमप्रवीत् ॥ २ ॥

गुप्तचरों सुंते यह सुनकर कि महाबली श्रीराम आ
पहुँच है, राजका कुछ भय हो गया। वह शार्दूलसे बला—॥

अथधारय त यणो दीनश्चानि निराजर ।

नासि कश्चिद्विप्राणा मृद्धाना यशमागत ॥ ३ ॥

‘निराजर ! मुझार शरीर की कानि पहले-जैसी नहीं

रह गयी है। तुम दीन (दुर्ग) दिक्तायी दे रहे हो। कहीं

कुपित हुए ‘गुप्त’ोंके वामने तो नहीं पड़ गये थे ?’ ॥ ३ ॥

इति तेनानुशिष्टस्तु यात्र मन्दमुदीरयन् ।

तदा राक्षसदाम्ना शार्दूलो भयविह्वल ॥ ४ ॥

उक्त इस प्रकार पूछनेपर मयवे परस्ये हुए ‘शार्दूल’ने
राक्षसप्रवर राजगणे मन्द स्वरमें कहा—॥ ४ ॥

न ते वारयितुं शक्या राजन् धानरपुङ्गवा ।

विनास्ता घलन्तश्च राघवेण च रक्षिता ॥ ५ ॥

‘राजन् ! उन भेद धानरोंकी गति निषिद्धा पना गुप्तचरों
द्वारा नहीं लगाया जा सकता। वे बड़े पराक्रमी, बलवान् तथा

श्रीरामचन्द्रजीन द्वारा सुरक्षित हैं ॥ ५ ॥

नापि सम्भाषितुं शक्या समग्रद्वन्द्वे नलम्प्यते ।

सयतो रक्ष्यन् पथा धानरं पतनोपमै ॥ ६ ॥

‘उनसे बातलाय करना भी असम्भव है अतः ‘अप
कीन है, आगरा इना विचार है’ इत्यदि प्रमाणों लिये यहाँ

असंगत ही नहीं मिलता। पराक्रमी मन्त्र विनाशनाय

पुनर मर अरुत मगरी रण करत हैं अतः यों प्रयाग

हना भी कानि ही है ॥ ६ ॥

प्रतिष्ठामात्रे शलाऽहं पले तस्मिन् निगति ।

पलाद् गृहीतो रक्षोभियदुधासि निगति ॥ ७ ॥

‘उग मेनामें प्रयाग करक ‘यों ही उधरी ‘रूपिदिषिद्धा
विचार करता अरुत निगति, ‘यों ही विधिनाय सफी ‘रूपों

न मुस पचनकर ‘रूप’क पद लिये और बावबर इधर

उपर पुमाता ॥ ७ ॥

जानुभिर्मुष्टिभिर्दन्तैस्तैश्चाभिहतो भृशम् ।

परिणीतोऽसि हरिभिर्यत्नमध्ये अमरणे ॥ ८ ॥

‘उम मेनान बीच अमरणे भर हुए बानरोंने गुप्तों,
मुक्तों, दंतों और यन्त्रासे मुझ बहुत मारा और सारी मेना
में मरे अपराधकी योगणा करते हुए सर अर मुझे
पुमाता ॥ ८ ॥

परिणीय च सत्रय नीतोऽहं रामससदि ।

रथिरेकापिदीनाहो गिहलश्चलितेन्द्रिय ॥ ९ ॥

‘अत्र पुमाकर मुझे श्रीरामने दरबारमें ल जाया गया।
उठ समय मर शरीरमें खून निकल रहा था और अन्न अन्नमें

दीनता छा रही थी। मैं व्याकुल हो गया था। मरा हृदयों

विचलित हो रही थीं ॥ ९ ॥

हरिभिर्यथ्यमानश्च याचमानं घृताञ्जलि ।

राघवेण परिप्रातो मा मति च यदृच्छया ॥ १० ॥

‘गानर पीठ रह थे और मैं हाथ जड़कर रखर लिये
याचना कर रहा था। उठ दगोंमें श्रीरामने अन्नमात्र भन

माग, मन माग’ कहकर मरी रक्षा की ॥ १० ॥

एष शैलशिलाभिस्तु पूरयित्वा महाणयम् ।

द्वारमाश्रित्य लङ्काया गमस्तिष्ठति सायुध ॥ ११ ॥

‘श्रीराम पतनी गिलाग’होंद्वारा मनुकी पत्थर लङ्का
क दरबारपर आ बस है और हाथमें धनु र लिये खड़े

हैं ॥ ११ ॥

गच्छन्मूहमाश्रय सजतो हरिभिर्गुन ।

मा निखन्त्य महानजा लङ्कामेवातिवत ॥ १२ ॥

‘वे महानकवी राजापत्री गच्छन्मूह आश्रय ले बानरों
क बीचमें निगजनान हैं और मुझे निग करन व लङ्कापर चढ़े

चल आ रहे हैं ॥ १२ ॥

पुरा प्राप्तास्मायानि निमग्नरागं कुरु ।

सता जापि प्रयच्छन्पु युद्धं वापि प्रदायताम् ॥ १३ ॥

‘अतस्तु वे लङ्का परराज्यर पहुँचें, उनके प्राग ही
अन ‘गच्छन्मूह’ होनेमें एक काम अरुत कर दिये—‘ग’

उहें गतायेता लीग ‘गच्छन्मूह’ या युद्धकाममें यदि शरत उता

समना कजिय ॥ १३ ॥

मनसा तन्मदा प्रेष्य तच्छ्रुत्वा रागमाधिर ।

शार्दूल मुमददास्वमयायाय स राजण ॥ १४ ॥

‘मरी इन सुनकर महाका उगार निग करन—

पश्चात् राक्षसराज रावणने गार्हृल्ले यह महारूपेण वात
पही—॥ १४ ॥

यदि मा प्रतियुध्यते देवगन्धदानरा ।
नेत्र सीता प्रदाम्यामि मर्जलेकभयादपि ॥ १५ ॥

‘यदि देयाः। गार्धर् और दाग मुझसे युद्ध करें और
गमूण लेक मुझ भय दे। लगे तो भी मैं सीताको नहीं
लौकाला’ ॥ १५ ॥

पुनमुक्त्या महातेजा रावण पुनर्यधीत् ।
वरिता भगना सेना केऽत्र शूरा ह्यगमा ॥ १६ ॥

एष कृत्वर महातेजसी रावण फिर गेला—‘तुम तो
वारोंकी सेनामें विचारण कर चुके हो। उक्त कौन-कौन-से
यानर अधिक शूरवीर हैं ? ॥ १६ ॥

किंप्रभा कीदृशा सौम्य जानरा ये दुरासदा ।
कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च तत्त्वमाख्यादि राक्षस ॥ १७ ॥

‘सौम्य । जो दुजय यानर हैं, वे कैसे हैं ? उनका प्रभाव
कैसा है ? तथा वे निम्ने पुत्र और पौत्र हैं ? राक्षस । वे सब
बातें ठीक-ठीक बताओ ॥ १७ ॥

तथात्र प्रतिपत्स्यामि श्रुत्या तथा यत्नान्तरम् ।
अनय एतु सख्यान कतव्य युद्धमिच्छता ॥ १८ ॥

‘उन वानरोंका बलाबल जानकर तदनुसार कर्तव्यका
निष्पत्ती लेंगा । युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपने तथा
‘पुत्रपत्नी सेनाकी गणना—उसने विषयकी आवश्यक जानकारी
अनय करनी चाहिये’ ॥ १८ ॥

अयैरमुक्त्वा शार्दूलो रावणोत्तमधर ।
इदं पचनमारमे यत् रावणसनिधी ॥ १९ ॥

रावणके इस प्रकारपूछनेपर श्रेष्ठ गुप्तचर शार्दूलने उसने
समीप यों कहना आरम्भ किया—॥ १९ ॥

शार्ध्वरजस्य पुत्रो युधि राजन् सुदुर्जय ।
गद्वदस्याथ पुत्रोऽत्र जाम्यवानिति विश्रुत ॥ २० ॥

‘राजन् । उस वानरसेनामें जाम्यवान् नामसे प्रसिद्ध एक
वीर है, जिसको युद्धमें पराजित करना बहुत ही कठिन है ।
वह शूराका तथा गद्वदा पुत्र है ॥ २० ॥

गद्वदस्याथ पुत्रोऽन्यो गुरुपुत्र शतक्रतो ।
फन्दन यस्य पुत्रेण ह्यमेकेन रक्षसाम् ॥ २१ ॥

पात्रदका एक दूसरा पुत्र भी है (जिसका नाम भूध
है) । इन्द्रने गुरु बृहस्पतिको पुत्र केशरी है, जिसके पुत्र
हनुमान्ने अकेले ही यहाँ आकर पहल घटुन-से राक्षसोंका
संहार कर डाला था ॥ २१ ॥

सुपेणश्चात्र धर्मात्मा पुत्रो धर्मस्य वीरवान् ।
सौम्य सोमामजश्चात्र राजन् दधिमुखः कपि ॥ २२ ॥

‘धर्मात्मा और पराक्रमी सुपेण धर्मात्मा पुत्र है । राजन् ।
दधिमुख नामक सौम्य वानर चन्द्रमाका पेटा है ॥ २२ ॥

सुमुखो दुमुखश्चात्र वेगदर्शी च यानर ।
मृत्युजानररूपेण नूनं ह्यष्ट स्वयमुया ॥ २३ ॥

‘सुमुख । दुमुख और वेगदर्शी नामक यानर-ये मृत्युके
पुत्र हैं । निम्न ही स्वप्न-ब्रह्मने मृत्युकी ही इन वानरोंने
स्वप्नमें सृष्टि की है ॥ २३ ॥

पुत्रो हतवहस्यात्र नील सेनापतिः स्वयम् ।
अनिलस्य तु पुत्रोऽत्र हनुमानिति विश्रुत ॥ २४ ॥

‘स्वय सेनापति नील अस्मिन् पुत्र है । सुगिन्यान् वीर
हनुमान् वायुका बग है ॥ २४ ॥

नत्ता शमस्य दुर्धरो यत्नान्तरदो युवा ।
मैन्दश्च द्विषिद्व्योभौ बलिनादयिसम्भवी ॥ २५ ॥

‘यत्नान् एतं दुर्जय गीर अद्भुत इन्द्रका नानी है । वह
अभी नौव्रान है । यत्नान् वानर मैन्द और द्विषिद्व्यो—ये दोनों
अश्विनीकुमारोंके पुत्र हैं ॥ २५ ॥

पुत्रा वैयस्यतस्याथ पञ्च कालान्तकोपमा ।
गजो गजक्षो गजय शरभो गन्धमादन ॥ २६ ॥

‘गज, गयाक्ष, गजय, शरभ और गन्धमान—ये पाँच
वमराजक पुत्र हैं और काल एत अन्तकक समान पराक्रमी
हैं ॥ २६ ॥

दश वानरकोट्यश्च शूराणा युद्धक्राङ्गिणाम् ।
श्रीमता देवपुत्राणा शेष नाख्यातमुत्सहे ॥ २७ ॥

‘इस प्रकार दशकोटोंसे उत्पन्न हुए तेजस्वी शूरवीर
वानरोंकी सख्या दस कराड़ है । वसन्त-क-स्य युद्धकी इच्छा
रखनेवाले हैं । इनसे अतिरिक्त जो शेष वानर हैं, उनके विषय-
में मैं कुछ नहीं कह सकता क्योंकि उनकी गणना अममत्र
है ॥ २७ ॥

पुत्रो दशरथस्यैव सिंहसहननो युग ।
दूषणो निहतो येन रारश्च भिशिरासया ॥ २८ ॥

‘दशरथनन्दन श्रीरामक श्रीविग्रह सिंहके समान सुगठित
है । इनकी मुवावस्था है । इन्होंने अकेले ही वर-दूषण और
भिशिराका संहार किया था ॥ २८ ॥

नास्ति रामस्य सहस्रो विजये भुयि कश्चन ।
विषाधो निहतो येन कच-धक्षान्कोपमा ॥ २९ ॥

‘इस भूगण्डलमें श्रीरामचन्द्रजीने समान पराक्रमी वीर
दूषण कोई नहीं है । इन्होंने ही विषाधरा और कालके समान
विजयल कच-धका भी वध किया था ॥ २९ ॥

यत् न शक्नो रामस्य गुणान् कश्चिन्नरः क्षितिः ।
जनस्थानगता येन तान्तो रक्षसा हताः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवत्सर्गनिर्मित अर्चामयण मा^३हायक पुद्गलाष्टमे तैस्वा स पूरा हुआ ॥ ३० ॥

॥ प्रसार मेने मुक्ते परानर ठहरी हुद धानर-भेनार ।
पूय-पूय वणन पर दिया । अर ज ॥ काय है यह आनक
ही हाय है ॥ १५ ॥

एकत्रिंशः सर्गः

मायारचित श्रीरामदा कथा मन्त्रक दिग्वाकर रावणद्वारा सीताको मोहमे डाल्नेका प्रयत्न

हमर सभी मन्त्री पञ्चाप्रचित हुकर दाम यगें आ
जयें। राक्षस ! यह हमर लिय गुप्त मन्त्रणा करनका
असर आ ग्या है ॥ ३ ॥

ततो राभ्यममाशाय त्रिभुजिह्व महाबलम् ।
मायायनि महामाय शशिदादयश्च भविर्न् ॥ ६ ॥

सि यमुन भगवत् महाप्रसादात्, भगवत्पुत्रस्य
विभुजिह्वासाध त्कर यम प्रभवात्मने प्रयेग सि ज्ञो
निधेयशुभायी भग्न विद्यमान थो ॥ ६ ॥

[illegible]

पथात् राक्षसराज रावणेन शार्ङ्गलये यह महारण्यं यात
परी—॥ १४ ॥

यदि मा प्रतियुध्यन्ते देवगर्धनदानयाः ।
तत्र सीता प्रदाम्यामि सखलोकभयादपि ॥ १५ ॥

‘यदि देवाः, गर्धर और दानव मुझसे युद्ध करें और
रण्य लोका मुझे भय देन लगे तो भी मैं मीनाका नहीं
लोकजंगा’ ॥ १५ ॥

परमुक्त्वा महातेजा रावण पुनरप्यधीत् ।
चरिता भजता सेना फेड्य दूरा शरगमा ॥ १६ ॥

एगा कहकर महातेजस्वी रावण फिर चला—‘तुम तो
यानरोंकी सेनामें विचरण कर चुके हो उतमें बौन-बौन-मे
यानर अधिक गुरवीर हैं’ ॥ १६ ॥

किंप्रभा कीदृशा सौम्य यानरा य दुरासदा ।
यस्य पुत्राश्च पौत्राश्च तत्त्वमाख्याहि गच्छस ॥ १७ ॥

‘सौम्य’ जो दुजय बाहर हैं, वे कैसे हैं ? उनका प्रभाव
कहा है ? तथा य निचरे पुत्र और पौत्र हैं ? राक्षस । ये रा
यात ठीक नीक बनाओ ॥ १७ ॥

तथात्र प्रनिपत्स्यामि द्वात्या तया बलयालम् ।
अरक्ष्य पशु सत्त्यान कतव्य युद्धमिच्छता ॥ १८ ॥

‘उन यानरोंका बलाबल जानकर तदनुसार कर्तव्यका
निश्चय करूँगा । युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषका अपने तथा
गुरुपुत्री सेनाकी गणना—उसके गिरगरी आग्रह-यत्न बानरारी
अरक्ष्य करनी चाहिये’ ॥ १८ ॥

अत्रैवमुक्त शार्ङ्गलो राजणेनोत्तमधरः ।
इदं यत्नमारेमे वचु रावणसन्निधौ ॥ १९ ॥

रावणक इस प्रकार पृष्ठनेपर श्रेष्ठ गुप्तचर शार्ङ्गलने उसने
समीप में कहना आरम्भ किया—॥ १९ ॥

अधश्मरजस पुत्रो युधि राजन् सुदुजय ।
गद्वदस्यायं पुत्रोऽत्र जाग्रयानिति विश्रुत ॥ २० ॥

‘राजन् ! उस यानरसेनामें जाग्रयान नामसे प्रसिद्ध एक
वीर है जिसने युद्धमें पराजित करना बहुत ही कठिन है ।
वह शरक्षर तथा गद्वदका पुत्र है ॥ २० ॥

गद्वदस्यायं पुत्रोऽन्यो गुरुपुत्र शतप्रतो ।
कदन यस्य पुत्रेण दृढमेकेन रक्षसाम् ॥ २१ ॥

‘गद्वदका एक दूसरा पुत्र भी है (जिसका नाम धूध
है) । इदके गुरु बृहस्पतिका पुत्र केशरी है, जिसके पुत्र
हनुमानने अपेक्ष ही यहाँ आकर पहले बहुत-से राक्षसोंका
संहार कर डाला था ॥ २१ ॥

सुपेणश्चात्र धमात्मा पुत्रो धमस्य धीर्यवान् ।
सौम्य सोमामजश्चात्र राजन् दधिमुख कपिः ॥ २२ ॥

‘धमात्मा और पराक्रमी सुपेण धमका पुत्र है । राजन् !
दधिमुख नामक सौम्य बानर चन्द्रमाका बेटा है ॥ २२ ॥

सुमुखो दुमुपश्चात्र वेणुदर्शी च यानर ।
मृदुयानररूपेण नूनं सृष्टं स्वयभुया ॥ २३ ॥

‘सुमुख, दुर्मुख और उग्राशी नामक यानर-ये मृत्युके
पुत्र हैं । निश्चय ही स्वयम्भु ब्रह्मने मृत्युकी ही इन यानरोंके
रूपमें सृष्टि की है ॥ २३ ॥

पुत्रो हतवहस्यात्र नील सनापति स्वयम् ।
अनिलस्य तु पुत्रोऽत्र हनुमानिति विश्रुत ॥ २४ ॥

‘स्वय सनापति नील अनिला पुत्र है । मुखियात वीर
हनुमान् वायुका बेटा है ॥ २४ ॥

नत्ता शशस्य दुर्धर्षो बलवान्नदो युग ।
मेन्द्रश्च द्विदिशोभी रत्निलानयिसम्भवौ ॥ २५ ॥

‘बलवान् एव दुर्धर्ष वीर अद्भुत इन्द्रका नाती है । वह
अभी नौबयान दे । बलवान् यानर मेन्द्र और द्विदिश—ये दोनों
अक्षिणीयुमारोंने पुत्र हैं ॥ २५ ॥

पुत्रा धैर्यवत्स्याथ पञ्च कालान्तकोपमा ।
गजो गवाक्षो गयय शरभो गधमादन ॥ २६ ॥

‘पातः गवाक्षः गययः शरभ और गधमान—ये पाँच
धमराजके पुत्र हैं और का-एवं अन्तक समान पराक्रमी
हैं ॥ २६ ॥

दश यानरकोरुषश्च दूराणा युद्धकाङ्क्षिणाम् ।
श्रीमता दग्धुयाणा श्रेय नाप्यातुमुत्तरे ॥ २७ ॥

‘इस प्रकार देवताओंमें उत्तम हुए तेजस्वी शूरवीर
यानरोंकी सख्या दस करोड़ है । वरुष के-रुष युद्धकी इच्छा
रखनेवाले हैं । इनका अनिरुद्ध जो गेय यानर हैं, उनका विषय
म मैं कुछ नहीं कह सकता क्योंकि उनकी गणना असम्भव
है ॥ २७ ॥

पुत्रो दशरथस्यैव सिंहसहननो युग ।
दूषणो निहतो येन खरश्च त्रिशिरास्तया ॥ २८ ॥

‘दशरथनन्दन श्रीरामका भीमिष्ठ सिंह समान युगठित
है । इनकी युवारक्षा है । इन्होंने अपेक्ष ही खर-वृष्ण और
त्रिशिरका संहार किया था ॥ २८ ॥

नास्ति रामस्य सहरो विक्रमे भुवि कश्चन ।
त्रिराथो निहतो येन कथंचनान्तकोपमा ॥ २९ ॥

‘वृष्ट भूगण्डलमें श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी वीर
दुसरा कोई नहीं है । इन्होंने ही विषयका और कालके समान
विकराल कथचना भी बच किया था ॥ २९ ॥

यत्तु न शक्नो रामस्य गुणान् कश्चिन्नरं पितृ ।
अनस्थानगता येन तावन्तो राक्षसा हता ॥ ३० ॥

त्रिगुञ्जिह्व च मायात्मप्रवीद् रात्रस्ताधिप ।
मोहयिष्याग्रे सीता मायया जनकजन्मजाम् ॥ ७ ॥

उस समय राघवराज रात्रिने माया जाननेवाला त्रिगुञ्जिह्व से कहा—‘हम दोनों मायाद्वारा जनकजन्मिनी सीतासे मोहित करेंगे ॥ ७ ॥

शिरो मायामय गृध राघवस्य निशाचर ।
मा एव समुपतिष्ठस्य महश्च सदाश्च धनु ॥ ८ ॥

‘निशाचर ! तुम भीरुमचन्द्रजीरा मायानिर्मित मनस
लेकर एक महान धनुष बाणस साथ मरे पान आओ ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तथेत्याह त्रिगुञ्जिह्वे निशाचर ।
दर्शयामास ता मायाः समुपयुता स रात्रे ॥ ९ ॥

रात्रिणी यह आशा पाकर निशाचर त्रिगुञ्जिह्वने
कहा—‘बहुत अच्छा’ । फिर उसने रात्रिणी को वही कुशलतासे
प्रकाश की हुई अपनी माया दिखायी ॥ ९ ॥

तस्य तुणेऽभिरुद् राजा प्रद्वी च त्रिभूयणम् ।
अशोकप्रनिकाया च सीतादशनलालस ॥ १० ॥
नैर्घ्रतानामधिपति स्वयिष्य महाबल ।

इसने राजा रात्रिण उसपर बहुत प्रसन्न हुआ और उठे
अपना आभूषण उतारकर दे दिया । फिर वह महाबली
राघवराज सीताजीको देखनेके लिये अशोकप्रनिकायमें गया ॥

ततो दीनामर्दन्त्याहो ददना धनदानुज ॥ ११ ॥
अधोमुखो शोकपरासुपयिषा महानिले ।

भतार समनुध्यान्तीमशोकप्रनिका गताम् ॥ १२ ॥

कुचेरक होने भाई रात्रिणने वहाँ सीताका दीन दगामें
पड़ी देखा, जो उस दीनतासे योग्य नहीं थीं । वे अपना
पाटिकामें रद्दकर भी शोकमग्न थीं और सिर नीचा किये
पृथ्वीपर बैठकर अपने पतिदेवका चिन्तन कर रही थीं ॥ ११ १२ ॥

उपास्यमाना घोराभी राक्षसीभिरद्वरत ।
उपसृत्य तत सीता प्रहर्षे नाम क्लियन् ॥ १३ ॥
इदं च धनन धृष्टमुखा जनकजन्मजाम् ।

उनका आरागम बहुतही मर्याद रात्रिणीों नेही थी ।
रात्रिणने बड़े हर्षसे साथ अपना नाम बताते हुए जनकजन्मिणी
सीतासे पास जाकर धृष्टपुत्र वचनोंमें कहा— ॥ १३ ॥

सान्त्वयमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे ॥ १४ ॥
खरहन्ता स ते भता राघव समरे हत ।

‘भद्रे ! मेरे बार-बार सान्त्वना देने और प्रार्थना करनेपर
भी तुम क्रिन्ना आश्रय लेकर मेरी बात नहीं मानती थीं,
वरन्ना वध करनेवाले वे तुम्हारे पतिदेव श्रीराम समरभूमिमें
मारे गये ॥ १४ ॥

छिन्न ते मर्यादा मृत कर्षश्च निहतो मया ॥ १५ ॥
ध्यसनेनामन संति मम भाया भगिष्यसि ।
चिरञ्जिता मर्नि मूढे किं मृतन करिष्यसि ॥ १६ ॥

‘तुम्हारी जो जड़ थी, मर्यादा कट गयी । तुम्हारे दफ्तरे
मेंने चूण कर लिया । अब अपने ऊपर आधे हुए इस
संक्रमे ही विश्वास होकर तुम स्वयं मरी भाया बन जाओगी ।
मूढ़ सीने ! अब यह समजियक चिन्तन छोड़ दो । उस
मरे हुए रामको लेकर क्या करोगी ॥ १५ १६ ॥

भयस्य भद्रे भायाणा सजातामीध्वरी मम ।
अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि ।
दृष्टुं भर्तृवध संति घोर धृष्टकथ यथा ॥ १७ ॥

‘भद्रे ! मरी सप रानियोंकी स्वामिनी बन जाओ । मूढे !
तुम अपनेको वही बुद्धिमती समझती थी न । तुम्हारा पुण्य
बहुत कम हो गया था । इसीलिये ऐसा हुआ है । अब रामके
मारे जानसे तुम्हारा जो उनकी प्राप्तिरूप प्रयोजन था, वह
समाप्त हो गया । सीते ! यदि मुनना चाहो तो दृष्टासुरक
वधकी भयकर घटनाका समान अपने पतिके मार जानेका
घार समाचार सुन लो ॥ १७ ॥

समायात समुद्रान्त हन्तु मा किल राघवः ।
घानरेन्द्रप्रणीतेन घलेन महता द्रुत ॥ १८ ॥

‘कहा जाता है राम मुझे मारनेके लिये समुद्रके तिनारे
तक आये थे । उनसे साथ वानरराज सुग्रीवनी लायी हुई
विशाल सेना भी थी ॥ १८ ॥

सन्निविष्ट समुद्रस्य पीड्य तीरमधोत्तरम् ।
घलेन महता रामो प्रजल्पस्त दिनाकरे ॥ १९ ॥

‘उस विशाल सेनाके द्वारा राम समुद्रके उत्तर तटके
दबाकर ठहरे । उस समय सूर्यदेव अस्त्राचारमें चल गये थे ॥

अथाभ्रानि परिध्रान्तमधरात्रे स्थित बलम् ।
सुखसुप्त समासाद्य चरित प्रथम चरै ॥ २० ॥

‘जब आधी रात हुई, उस समय रात्रिकी घनी मौनी
सारी सेना सुखपूर्वक सो गयी थी । उस अवस्थामें वहाँ
पहुँचकर मेरे गुप्तचरोने पहले तो उसका भलीभाँति निरीक्षण
किया ॥ २० ॥

तत्प्रहस्तप्रणीतेन घलेन महता मम ।
बलमप्य हत रात्री यत्र राम सलक्ष्मण ॥ २१ ॥

‘शिर प्रहस्तके सेनापतित्वमें वहाँ गयी हुई मेरी बहुत
बड़ी सेनाने रात्रिके वहाँ राम और लक्ष्मण थे, उस वानर
सेनाको नष्ट कर दिया ॥ २१ ॥

पट्टिहान् परिघाद्यक्रान्तीन् दण्डान् महायुधान् ।

वाणजालानि शूलानि भास्वरान् कूटमुद्रान् ॥ २२ ॥

यपीश्वर तोमरान् प्रासादध्वजाणि मुसलानि च ।

उद्यम्योद्यम्य गश्तोभिर्गणैरेषु निपानिता ॥ २३ ॥

एतस्य समय राक्षसोंने पशु, परशु, चक्र, शूल, दण्ड, बड़े-बड़े आयुध, वाणान् सुदृढ़, विधूल, चमकील कूट और मुद्र, डण्ड, तमोर, प्रास तथा मूसल उठा उठाकर वानपैर प्रहार किया था ॥ २२-२४ ॥

अथ सुमनस्य रामस्य प्रहस्तन प्रमाथिना ।

असक्त कृतहस्तेन शिरदिष्टन महासिना ॥ २४ ॥

‘तदनन्तर गुरुओं को मथ डालनेवाले प्रहस्तन, जिसपर हाथ लूब मथे हुए हैं, बहुत बड़ा नटवर हाथमें लेकर उसने बिना किसी रुकावट रामरा मनकर काट डाला ॥ २४ ॥

त्रिभीरण समुत्पन्त्य निरुह्यतो यदृच्छया ।

दिश प्रजातिन सैर्यैश्चमण प्रगै मह ॥ २५ ॥

‘फिर अस्सात् नटलकर उठने त्रिभीरणका पकड़ लिया और बालगैरिनिको हटित रामगको त्रिमिल दिशाओंमें भाग जानेका विवश किया ॥ २५ ॥

सुमीरो श्रीयया सीते भन्त्या प्रगधिप ।

निरस्तहसुक् सीते हनूमान् राममहता ॥ २६ ॥

‘सीते ! बानरगज सुमीरकी आग काट गी सीते, हनुमान्सी हनु (गंगा) नष्ट करके रामे राक्षसोंने मार डाला ॥ २६ ॥

जाम्यवानथ जानुभ्यामुत्पन्न निहतो युधि ।

पट्टिहान्गुभिर्दिग्गो निरुत्त पादपो यथा ॥ २७ ॥

‘जाम्यवान् ठगरका गडग रहे थे उसी समय सुदृढ्यने राक्षसोंने बहुतने पशुओंका उतर दलों घुस्सेपर प्रहार किया। वे छिन्न भिन्न हावर का हुए पेड़का भाँति बरगानी हो गये ॥ २७ ॥

मैन्दद्य द्विदिद्योभौ ना यानव्यगर्भौ ।

निश्वसन्तौ रुदन्तौ च गश्त्रेण पण्डितौ ॥ २८ ॥

असिना श्यायती छिद्यौ मये हरिनिरुदन्तौ ।

‘मैन्द और द्विदि दलों के द्वे द्वे वनर लूनन लपक कर पड़े हैं। ये लयी लोमें लोचन और रते थे। उन्मा अश्वामे उन रनों रिक्तका गुरुकन वनरोंका लपकड़ाया चीकन हा काट डाला गया है ॥ २८-३० ॥

मनुभसिति मेदिन्या एतस्य एतमा यथा ॥ २९ ॥

नापाचबहुभिदिष्टन दोन द्यौ दृष्टिमुख ।

कुमुदस्तु मदाना निष्कृन् सायकहत ॥ ३० ॥

‘एतस्य नामका यानर पक्षर का हुए एतस्य (कण्टक) का समान प्रत्यार पड़ा-पड़ा अन्तर्म सँसे ल रग है। दयमुख जेके नापचोने छिन्न भिन्न हा किया दरी (चरय) में पड़ा सो रहा है। महानन्त्या कुमुद मयकोने शायक हा चीकन-चिन्ता हुआ मर गया ॥ २९-३० ॥

अद्भुतो बहुभिदिष्टन नरैरगसाद्य राधमे ।

परितो रुधिगेष्टन विनी निपतितोऽद्भुत ॥ ३१ ॥

‘अद्भुतवाच अद्भुतपर नरमन करन बहुतसे राक्षसोंने उन्हें बाणोंका छिन्न भिन्न कर दिया है। व मन अद्भुतने रुध गने हुए प्रयास पड़े हैं ॥ ३१ ॥

हरयो मथिना नयै रथनास्तेत्यापरे ।

शायाना मुद्रितास्तस्य थायुर्गैरिगाम्मुदा ॥ ३२ ॥

‘जैने बदल गायने गने का व्यत है उसी प्रकार बड़े-बड़े हाथियों तथा रथमनुहोंने वहाँ क्षय हुए वानपैको रींदकर मथ डाला ॥ ३२ ॥

प्रसूनाञ्च परे प्रस्ता हन्यमाना जघन्यन ।

अनुनुतास्तु गश्तोभि मिहगिन् महाहिपा ॥ ३३ ॥

‘जैने सिद्ध लखेइनेने बड़े-बड़े हाथी मारत हैं, उसी प्रकार राक्षसों पीडा करनेपर बहुतने वनर पांखर बाणोंका मार खात हुए मग गये हैं ॥ ३३ ॥

सागरे पतिना केचिन् कचिद् गगनमाथिना ।

अक्षा वृक्षानुपारुद्धा यानर्ग वृत्तिमाथिना ॥ ३४ ॥

‘अक्ष सुन्दन का परे और कक्ष आकाशमें उड़ गये हैं। बहुतने वीठ बनरी वृत्तिरा आश्रय ल पेड़ोंपर चढ़ गये हैं ॥ ३४ ॥

सागरस्य च नरैरेषु शङ्खु च घनेषु च ।

पिङ्गलास्ते रिकुपार्थ रामस्यहयो हता ॥ ३५ ॥

‘निकुप नरोंका लपकेन इन वृक्षका भूरे बरोंका समुत्पन्न, परत और रनोंमें लखे-लखेकर मार डाला है ॥ ३५ ॥

एतत्त हतो भना समस्यो मम मनया ।

अनवाट् रणोघस्यविद् व्याम्याहन गिर ॥ ३६ ॥

‘एतत्त प्रसार मग मनन मनेहोकरे गुफार पनिधो मनन का उल्लाप दिया। मूलन भाव और धूने मना हुआ उनका यह मनक यहाँ लगा गया है ॥ ३६ ॥

तत परममुपयो राज्ञो राममेधर ।

संतापामुपदाग्न्या राधर्मानिदमन्तरी ॥ ३७ ॥

‘एता बहिर अन्त हुआ उल्लाप एतन अन्त अन्त-मुनद एत उल्लाप रहा— ॥ ३७ ॥

राक्षस धूरकमाण त्रिभुजिह्व समानय ।

येन तद्वाघप्रसार म्भ्रामात् स्वयमाहृतम् ॥ ३८ ॥

‘तुम धूरकमा राक्षस त्रिभुजिह्वको बुला ले आओ, जो स्वयं सभामभूमिमे रामका सिर यहाँ ले आया है’ ॥ ३८ ॥

विद्युजिह्वस्तदा दृष्ट्वा शिरस्तस्तदारासनम् ।

प्रणाम शिरसा कृत्वा रावणम्याग्रत स्थित ॥ ३९ ॥

तमग्रवीत् ततो राजा रावणो राक्षस स्थितम् ।

विद्युजिह्व महाजिह्व समीपपरिव्यतिनम् ॥ ४० ॥

तब त्रिभुजिह्व धनुषसहित उस मस्तकको लेकर आया और सिर छुटा रावणको प्रणाम करके उसने सामने पड़ा हो गया । उस समय अपने पान लड़े हुए त्रिगाल जिह्वाग्रे राक्षस विद्युजिह्वने राजा रावण यों बोला—॥ ३९ ४० ॥

अग्रत कुच सीताया द्वाघ्र दाशरथे शिरः ।

अवस्था पश्चिमा भनु रूपाणा साधु पश्यतु ॥ ४१ ॥

‘तुम दशरथकुमार रामका मस्तक धीम ही सीताने आगे रख दो, जिससे यह बेवारी अपने पतिग्री अन्तिम अवस्थाका अच्छी तरह दर्शन कर स’ ॥ ४१ ॥

एवमुक्त्वा तु तद् रक्ष शिरस्तत् प्रियदर्शनम् ।

उपनिक्षिप्य सीताया क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंश सर्गः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहर्षिकेनिर्मित भारंगमायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमे इक्कीसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्ग

श्रीरामके मारे जानेका विश्वास करके सीताका विलाप तथा रावणका सभामें जाकर मन्त्रियोंक सलाहसे युद्धविषयक उद्योग करना

सा सीता तन्निष्ठो हृष्टा तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।

सुग्रीवप्रतिसर्गमाख्यात च हनुमता ॥ १ ॥

नयने मुखवर्णं च भनुस्तस्तद्वशा मुखम् ।

केशान् केशान्तदेश च तच्च चूडामणिशुभम् ॥ २ ॥

एतै सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदु क्तिता ।

विजगद्दृष्ट्वा कैकेयीं प्रोशन्ती कुरुरी यथा ॥ ३ ॥

सीताजीने उस मस्तक और उस उत्तम धनुषको देखकर तथा हनुमानजीकी कही हुई सुग्रीवके साथ मैत्री-सम्बन्ध होने की बात याद करके अपने पतिक-जैसे ही नेत्र, मुलका वण, मुन्हाड़िन, चेना, ललाट और उस सुन्दर चूडामणिको लक्ष्य किया । इन सब विद्योति पतिको पढ़ानकर वे बहुत

रावणके ऐसा कहनेपर यह राक्षस उस सुन्दर मस्तकको सीतार निरुद्ध रखकर तत्काल अदृश्य हो गया ॥ ४२ ॥

रावणश्चापि विश्लेष भास्वरकार्मुक महत् ।

त्रिषु लोकेषु विख्यात रामम्यैतदिति मुनू ॥ ४३ ॥

रावणने भी उस त्रिशूल चमकीले धनुषको यह कहकर सीताने सामने डाल दिया कि यही रामका त्रिभुवनविख्यात धनुष है ॥ ४३ ॥

इदं सत् तत्र रामस्य कामुक ज्यासमाधृतम् ।

इह प्रहस्तेनानीत त हत्वा निशि मानुषम् ॥ ४४ ॥

किर बाला—‘भीते’ । यही तुम्हारे रामका प्रत्यक्षा सहित धनुष है । रावने समय उस मनुष्यको मारकर प्रहस्त इस धनुषको यहाँ ले आया है’ ॥ ४४ ॥

स त्रिभुजिह्वेन सहैव तच्छिद्यो

धनुश्च भूमौ निनिकीयमाण ।

विदेहगजस्य सुता यशस्विनी

ततोऽग्रवीत् ताभय मे वशानुगा ॥ ४५ ॥

जब त्रिभुजिह्वने मस्तक वहाँ रक्ता, उसने साथ ही रावणने वह धनुष पृथ्वीपर डाल दिया । तत्पश्चात् वह विदेहपद्मकुमारी यशस्विनी सीतासे बोला—‘अब तुम मेरे वशमें हो जाओ’ ॥ ४५ ॥

डुप्री हुई और कुरुरी भाँति से-सेकर कैकेयीकी निन्दा करने लगा—॥ १-३ ॥

सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दन ।

कुलमुत्सादित सर्वं त्वया कल्हशील्या ॥ ४ ॥

‘कैकेयि ! अब तुम सकलमनोरथ हो जाओ, खुदकुलो आनन्दित करनेवाले ये मेरे पतिदेव मारे गये । तुम स्वभावसे ही कल्हकारिणी हो । तुमने समस्त खुदकुलका संहार कर डाला ॥ ४ ॥

आर्येण किं तु कैकेय्या कृत्वा रामेण विप्रियम् ।

यमया खीरवसन दत्त्वा प्रयाजितो वनम् ॥ ५ ॥

‘आर्य श्रीरामने कैकेयीका कौन-सा अपराध किया था,

त्रिभुने उठने इहैं वीरभक्त देकर मरे साथ बनमें भेज दिया था ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं चेषमाना तपस्विनी ।

जगाम जगतीं याला छिन्ना तु कदली यथा ॥ ६ ॥

ऐसा कहकर दु लकी मारी तपस्विनी वैदेही बाला भरपर कौपनी हुइ कटी कदलीन गमान पृथ्वीपर भिज पड़ी ॥ ६ ॥

सा सुहृतात् समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम् ।

तच्छिरः समुपाध्याय विललाषायनेक्षणा ॥ ७ ॥

निर दा पड़ीमें उनकी चेतना लौटी और वे विगल लेखना सीता कुछ धीरज धारणकर उस मन्त्रकको अपने निकट रखकर विराम करने लगीं— ७ ।

हा हतासि महाराहो वीरप्रतमनुप्रत ।

इमा ते पश्चिमायस्था गतासि त्रिधना कृता ॥ ८ ॥

‘हाय ! महाप्राहो ! मैं मारी गयी । आप वीरजन का पालन करनेवाले थे । आपकी इस अन्तिम अवस्थाको मुझे अपनी आँखोंने देखना पड़ा । आपने मुझे विषया बना दिया ॥ ८ ॥

प्रथम मरण नाथा भतुर्वैगुण्यमुच्यते ।

सुपुत्र साधुवृत्ताया सवृत्तमन्य ममाग्रतः ॥ ९ ॥

‘श्रीने पहले पतिका मरना उसके लिये महान् अनर्थकारी दोष बनाया जाता है । मुझ मनी-साध्वीके रहते हुए मेरे सामने आप जैसे सन्तानवादी पतिना निधन हुआ ; यह मेरे लिये महान् दु लकी बात है ॥ ९ ॥

महद् दुःख प्रपन्नाया मन्नाया शोकमागरे ।

यो हि मामुद्यतव्यानु सोऽपि त्व विनिपातिनः ॥ १० ॥

‘मैं महान् संशयमें पड़ी हूँ, गुनक अनुक्रममें हूँ, जो मेरा उद्धार करने लिये उठा था, उन आप जैसे वीरको भी ‘गुन’ोंने मार दिया ॥ १० ॥

सा श्वधूमम कीमत्या त्वया पुत्रेण राघव ।

यत्सेनेन यथा घेनुर्विंसा यन्मल कृता ॥ ११ ॥

‘एतन्मद ! जैसे बाढ़ बढेन वति खेतमें मरी हुई गायका मल बढेन मिला कर दे, यही दगा मेरी सग कीमत्याकी हुई है । वे ‘ययमी’ जन्मी आप जैसे पुत्रने बिपुड गरी ॥ ११ ॥

उद्दिप दीधमायुस्ते दीनमैरपि राघव ।

मनूत यान तेगमलगायुरमि राघव ॥ १२ ॥

‘एतरी ! ‘विनि’ने तो अपनी आनु बहुत बड़ी पायी थी, किन्तु उनकी बाढ़ हटी बिड हुई । एतन्मद ! आप बड़े ‘अयु’ निराल ॥ १२ ॥

अयया नययति प्रया प्रागम्यापि सतस्तत् ।

पचत्येन तथा कालो भूताना प्रभगे हयम् ॥ १३ ॥

‘अथवा बुद्धिमान् हारर भी आपकी बुद्धि मारी गयी । तभी तो आप खेतें हुए हा शत्रु’ वशमें पड़ गय अपना यह काल ही समस्त प्राणिपोंने उद्भवमें हेतु है । अतः यही प्राणि मात्रको पकना है—उन्हें शुभाशुभ कर्मों पर कस्ते खुलत करता है ॥ १३ ॥

अदृष्ट मृत्युमापन्न कस्मात् त्व नयशास्त्रित् ।

व्यसनानामुपायस्य कुशलं ह्यसि यजने ॥ १४ ॥

‘आप तो नीतिशास्त्रने विद्वान् थे । सकटसे बचनेके उपायोंको जानते थे और व्यसनोंन निवारणमें कुशल थे तो भी कैसे आपको ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई ; जो दुखरे किसी वीर पुरुष को प्राप्त होती नहीं देखी गयी थी ? ॥ १४ ॥

तथा त्व सम्परिप्लव्य रौद्रयातिवृशसया ।

कालया ममाच्छिद्य हत कमलगेचन ॥ १५ ॥

‘कमलनयन ! भीरु और अत्यन्त मूढ काल्यापि आपरा हृदयने लगाकर मुझने हतात् छीन ल गयी ॥ १५ ॥

इह शेये महाप्राहो मा विहाय तपस्विनीम् ।

प्रियामिह यया नारी पुरिर्गो पुरनरम् ॥ १६ ॥

‘पुरुषोत्तम ! मयाकाग ! आप मुझ तपस्विनीको त्यागकर अपनी प्रियतमा मारीरी भौति इस पृथ्वीका आशिर्जन करन यहाँसे रहे ॥ १६ ॥

अर्चित स्तुत यन्नाद् गन्धमाल्यमया तत ।

इद ते मप्रिय वीर धनु काञ्चनमूर्धितम् ॥ १७ ॥

‘वीर ! त्विहा मैं मन्मथक गन्ध और पुष्पमाला आदिक ह्याय नित्यरति पूजन करता थी तथा जो मु । बहुत प्रिय था ; यह ‘अनका’ यही स्वर्गभूति धनुष है ॥ १७ ॥

पित्रा दशरथेन त्व शत्रुरेण ममानत ।

स्वैर्यस्य पिहभि नार्थ नून मयें समागत ॥ १८ ॥

‘निष्पन्न एतन्मद ! निमग्न ही भय स्वर्गमें बरकर मेरे ‘शत्रु’ तथा अपने पिता महाशत्रुदशरथने और अन्य मय निरुपे भी मित्र होंगे ॥ १८ ॥

दिपि नम्रप्रभूत च मदनमरुत तथा ।

पुण्य राजर्षियश त्वमामनः समुपेयमे ॥ १९ ॥

‘अतः त्विही अन्ध कर्मका मदान्ध बन करन अर्धुन पुनश्च दयान्न कर यहाँमें अपने उस शत्रु-पुत्र-पुत्री दण्डा करन (उने छड़कर) दारु है, ये ‘अन्ध’ने

नश्यत वनस्य प्रगतिना होता है (आपसी ऐसा नहीं करना चाहिये) ॥ १९ ॥

किं मा न प्रक्षसे राजन् किं वा न प्रतिभासते ।

यातायातेन सम्प्राप्ता आर्या मा सहचारिणीम् ॥ २० ॥

‘यजन् । आपने अपनी छोटी अरण्या में ही जर मि मरी भी छोटी ही अरण्या थी, मुझे पत्नीरूप में प्राप्त किया । मैं उदा आपके साथ विचरनेवाली मदभूमिणी हूँ । आप मेरी ओर क्यों नहीं देखते हैं अथवा मेरी शानता उत्तर क्यों नहीं देते हैं ? ॥

सश्रुत वृद्धता पाणि चरिण्यामीति यत् स्वया ।

स्मर तन्नाम फाकुत्स्य नप मामपि दु स्मिताम् ॥ २१ ॥

‘फाकुत्स्य । मेरा फणिग्रहण करते समय जो आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे साथ धर्मात्तरण करूँगा, उनका स्मरण कीजिय और मुझ दु गिनीको भी साथ ही ले चलिए ॥ २१ ॥

कस्मा मामपहाप त्व गतो गतिमता वर ।

नस्माहोनाद्रमु लोक त्वकस्या मामपि दु स्मिताम् ॥ २२ ॥

‘गतिमान्ते मे श्रेष्ठ सुनन्दन । आप मुझे अपने साथ वनमें लाकर और यहाँ मुझ दु गिनीका छोड़कर इस लोकमें परलोक में क्यों उल गये । ॥ २२ ॥

कल्याणो रश्मि रात्रि पण्यिक मयैव तु ।

मदयादस्तच्छरीर ते नून विपणिकृष्यते ॥ २३ ॥

‘मैंने ही अनेक महत्त्वपूर्ण उपचारोंसे सुन्दर आपके विश्वीविग्रहका आलिंगन किया था, आज उसीका मासमयी हिलक कन्तु अकल्प इक्षर-उक्षर कमीट रहे होंगे । ॥ २३ ॥

अग्निगोमादिभिषयैरिष्टानासद्विज्ञेयै ।

अग्निहोत्रेण सस्कार फेन त्व न तु लप्स्यसे ॥ २४ ॥

‘आपने तो पयात दक्षिणाओंमें सुख अग्निधाम आदि मन्त्रोद्धार भगवान् यक्षपुरुषकी आराधना की है फिर क्या कारण है कि अग्निहोत्रकी अग्निसे दाद-सस्कारका सुयोग आपको नहीं मिल रहा है ॥ २४ ॥

प्रमज्यामुपपन्नाना प्रपाणामेकमागतम् ।

परिप्रेक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मण शकलालम्बा ॥ २५ ॥

‘हम तीन व्यक्ति एक साथ वनमें आये थे परन्तु अब शोकाकुल हुई माता कौसल्या केवल एक व्यक्ति लक्ष्मण को ही घर लौटा हुआ देख गर्वगी ॥ २५ ॥

स तस्या परिपृच्छन्त्या घघ मिश्रबलम्य ते ।

तव चाख्यास्यते नून निराशया राक्षसैर्वधम् ॥ २६ ॥

‘इकानुपशब्दे राजा भिर्दुःख भावसे बहुत होकर प्रकटित होते हैं, क्योंकि कारण खोजनासे समाप्त कुलको ही नष्टकृतक बनाया है ।

‘उनका पूछनेपर लक्ष्मण उन्हें रात्रि समय राक्षसोंसे हाथसे आपने मिश्रणी सेजाने तथा खोले हुए आपने भी वष का गमनाचार अत्रय मुनाथी ॥ २६ ॥

सा स्या सुप्त हत श्रान्ता मा च रक्षोगृह गताम् ।

हृदयेनाद्दर्शितं न भविष्यति राघव ॥ २७ ॥

‘रघुनन्दन ! जब उन्हें यह बात होगी कि आप अति समय मोरे गये और मैं रक्षकने धर्म हर लापी गयी हूँ तो उनका हृदय विदीर्ण हो जायगा और वे अपने प्राण त्याग देंगी ॥ २७ ॥

मम हेतोराजाया अनघ परिणामज ।

राम सागरमुत्तीय धीपवान् गोपदे हत ॥ २८ ॥

‘हाय ! मुझ अनाथाने लिये निष्पाप राजकुमार श्रीराम, जो महान् पराक्रमी थे, समुद्रतटन-जमा महान् कर्म करने भी आपकी पुरीके बरबर कलमें डूब गये—बिना युद्ध विजय खोले समय मोरे गये ॥ २८ ॥

मह द्वाधरधेनोदा मोहात् म्बकुलपासनी ।

आर्यपुत्रस्य रामस्य भाया मृत्युरजापन ॥ २९ ॥

‘हाय ! दशरथनन्दन श्रीराम मुझ-बेटी कुलकण्ठिनी नारीको मोहबध म्बाह लगे । पत्नी ही आर्यपुत्र श्रीरामने लिये मृत्युरूप बन गयी ॥ २९ ॥

नूनमन्या मया जतिं चारित दानमुत्तमम् ।

याहमप्यैव शोचामि भाया सवातिधेरिह ॥ ३० ॥

‘किन्तु ये यहाँ सब लण याचक बनकर आते थे परन्तु सभी अतिथि किन्हें प्रिय थे, उन्हीं श्रीरामकी पत्नी होकर जो मैं आज शोक कर रही हूँ, इसने आज पड़ता है कि मैंने दूखे जन्ममें निश्चय ही उत्तम दानधर्ममें बाधा डाली थी ॥ ३० ॥

साधु धातय मा क्षिप्र रामम्योपनि राघव ।

समानय पतिं पत्न्या कुल कल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

‘राघव ! मुझे भी श्रीराम गवन ऊपर रखकर मेरा वष कर डाल इस प्रकार पतिको पत्नीसे मिल दो यह उत्तम कल्याणकारी कार्य है, इसे अत्रय करो ॥ ३१ ॥

शिरसा मे शिरश्चास्य काय कायेन योजय ।

रावणानुगमिष्यामि गतिं भन्तुमहात्मन ॥ ३२ ॥

‘यक ! मेरे शिरसे पतिके शिरसा और मेरे शरीरसे उनके शरीरका संयोग करा दो । इस प्रकार मैं अपने महात्मा पतिकी गतिका ही अनुसरण करूँगी ॥ ३२ ॥

हीन दु खसक्तता नित्यलापयतेक्षणा ।

भन्तु शिरो धनुश्चैव द्दश जनकामजा ॥ ३३ ॥

‘इस प्रकार दु खसे घुल डूब पिराकलचना अनन्यनन्दिनी

सेना पतिव्रत ममक तथा धनुषका देखने और निन्द्य करने लगी ॥ ३ ॥

पर लालच्यमानाया मीनाया तत्र राक्षसः ।
अभियुक्तम भनारमनीकस्थ वृन्नावलि ॥ ३४ ॥

जब मीन इस तरह डिलच कर रही थी, उन्हा समय वहाँ राक्षसी सेनाका एक राक्षस हाथ जड़े हुए अपने स्वामी के पास आया ॥ २४ ॥

विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च ।
न्यवेद्यद्वन्द्वप्राप्त प्रहस्त याहिनीपतिम् ॥ ३५ ॥

उसने 'आर्षपुत्र महाराजजी जय हूँ' कहकर राक्षसका अभिराग्न किया और उसे प्रणम करके यह सूचना दी कि मेनारति प्रहस्त पधार है ॥ २५ ॥

भमान्यै सहित सैन्यं प्रहस्तन्यामुपस्थित ।
तेन द्वाशनकामेन सह प्रस्थापित प्रभो ॥ ३६ ॥

'प्रभो ! सब मन्त्रियोंके साथ प्रहस्त महाराजजी सेवामें उपस्थित हुए हैं । य आयाका दंगन करना चाहते हैं, इसीलिये उन्होंने मुझे यहाँ भजा है ॥ ३६ ॥

नूनमस्ति महाराज राजभाजान् क्षमायित ।
किञ्चिदान्वयिक कार्यं तेया त्व न्द्वान् कुरु ॥ ३७ ॥

'क्षमागान् महाराज ! निम्न ही काई अनन्त आरग्यक राक्षसीकाय आ पड़ा है, अत आप उन्हें द्वाशन देनका क्या करें ?' ॥ ३७ ॥

एतच्छ्रुत्वा न्दामीरो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अदोकरनिका त्यक्त्या मन्त्रिणा द्वाशन ययौ ॥ ३८ ॥

राक्षसी कही हुई यह बात सुनकर दशप्रार शवा आकरनिका छड़कर मन्त्रियोंने मिलनेके लिय चला गया ॥ ३८ ॥

स तु सर्वे समर्थ्यर मन्त्रिभिः कृत्यमासन ।
सभा प्रविश्य विदधे विदित्या रामयिकमम् ॥ ३९ ॥

दुर्घर्षे श्रीमद्रामायण वाक्यमीदीय आदिक्काण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार सब मन्त्रियोंने श्रीरामायण आदिक्काण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥



त्रयस्त्रिंशः सर्गः

मरुमार गीताकी भावना देना, राक्षसी मायाका भेद खोजना, श्रीरामके आगमनका प्रिय समाचार सुनाना और उनके विषयी होनेका विश्वास दिलाना

सीता तु मोहिता दृष्ट्वा सख्या नाम राक्षसी ।
आसस्तादृशं यदहो प्रिया प्रणयिनी स्मराम् ॥ १ ॥

विदेहदेवी क्षणको भयने पड़ी हुई देख ख्या नाम

उत्तम मन्त्रियोंमें आने सार कृतका समर्पण करवा और श्रीरामचन्द्रजीके परामर्शका पता लगाकर समाभयनमें प्रवेश करके वह प्रस्तुत कायकी व्यवस्था करने लगा ॥ १ ॥

अन्तधानं तु तन्त्रीयैः तच्च कामुकमुत्तमम् ।
जगाम राक्षसस्यैव नियणसमनन्तरम् ॥ ४० ॥

राक्षस वहाँमें निकलत ही वह फिर और उत्तम धनुष दोनों अग्य हो गया ॥ ४० ॥

राक्षसेन्द्रस्तु तै सार्धं मन्त्रिभिर्भामिनिभैः ।
समज्यामास तदा रामकायजिनिधायम् ॥ ४१ ॥

राक्षसपुत्र राक्षसे भयन उन भयानक मन्त्रियोंके साथ बैठकर रामके प्रति रिये जानेवाले तत्कालचित कृत्यका निम्न किया ॥ ४१ ॥

अत्रिदूरस्थितान् सखान् यलाध्यक्षान् हिर्नमिण ।
अग्र्यान् कालम्बुश राखणो राक्षसाधिप ॥ ४२ ॥

छिद्र राक्षस्यत्र राक्षसे पास ही लड़े हुए अपने जिनैय सेनातिथोंमें इस प्रकार समयातुकुल बात बड़ी-॥ ४२ ॥

दीप्त मेरीनिनादेन स्फुट कोणाहतेन मे ।
समानयध्य सैन्यानि धनव्य च न कारणम् ॥ ४३ ॥

'युध सर लगा शम ही टहने पाँच पीछकर घोंग बजने हुए समान सेनारका एकत्र कर परतु उन्हें इसका कारण नहीं बताना चाहिये' ॥ ४३ ॥

ततस्तथेति प्रतिगृह्य तद्वचः
सदैव कृता सहस्रमहदयम् ॥

समानयद्वैव समागत
न्यवेद्यन् भनारि मुद्रकाङ्गिणि ॥ ४४ ॥

सब दूतोंने 'न्यास्तु' कहकर राक्षसी आग श्रीराम की ओर उठी समय महान विद्याल मेनाद्य एकत्र कर दिया फिर युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले आन स्वामीका यह सूचना दी कि 'आरी मना आ गये' ॥ ४४ ॥

ही राक्षसी युद्ध वच उठी लड़े आगे, जेन मना रखनेवाले मना अन्ती पारी मना आग मना ॥ २ ॥

मोहिता राक्षसेन्द्रेण सीता परमदुःखिताम् ।

आभ्यासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी ॥ २ ॥

गीता राघवराजरी मायासे मोहित हो बड़े दुःखमें पड़ गयी थी । उस समय मृदुभाषिणी सरमाने उन्हें अपने बचनों द्वारा खाल्यना दी ॥ २ ॥

सा हि तत्र कृता मित्र सीतया रक्ष्यमाणया ।

रक्षन्ती राजणादिषा सानुबोधा ददमता ॥ ३ ॥

सरमा राजगरी आशसे सीताजीरी तथा करती थी । उसने अपनी राजगीया सीताक साथ मैत्री कर ली थी । वह बड़ी दयालु और दृढ-सकल्य थी ॥ ३ ॥

सा वदर्श सारी सीता सरमा नष्टचेतनाम् ।

उपावृत्त्योत्थिता ध्वस्ता बडयामिष पासुषु ॥ ४ ॥

सरमाने सखी सीताको दखा । उनकी चेतना नष्ट-ही हो रही थी । जैने परिश्रमसे थकी हुई पाद्री परतीकी धूलमें लटक कर लड़ी हुई हो; उसी प्रकार सीता भी पृथ्वीपर लटक कर रोने और विलप कर देने कारण धूलि-धूसरित हो रही थी ॥

ता समाभ्यासयामास सखीस्नेहेन सुप्रताम् ।

समाभ्यसिहि वैदेहि मा भूत् त्वे मनसो व्यथा ।

उक्ता यद् राजणेन त्व प्रत्युक्तञ्च स्वय त्वया ॥ ५ ॥

सखीस्नेहेन तद् भीरु मया सर्वं प्रतिधुतम् ।

लीनया गहने दान्ये भयमुत्सृज्य राजणात् ।

तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे राजणाद् भयम् ॥ ६ ॥

उसने एक सखीके स्नेहसे उत्तम व्रतका पाठन करन वाली सीताको आश्वासन दिया—'विदेह-नन्दिनी ! भयं धारण करो । तुम्हारे मनमें व्यथा नहीं होनी चाहिये । भीरु ! राजणने तुमने जो कुछ कहा है और स्वयं तुमने उसे जो उत्तर दिया है; वह सब मने सखीके प्रति स्नेह होनेके कारण झुन गिया है । विशाललोचने ! तुम्हारे लिये मैं राजणका भय छोड़कर अशोकाटिकाके सने गहन खानम उड़कर सारी बातें सुन रही थी । मुझे राजणसे कोई डर नहीं है ॥ ५-६ ॥

स समभ्रातृन्तश्च निष्प्रान्तो यत्नते राक्षसेश्वरः ।

तत्र मे विद्रित सयमभिनिर्गम्य मैथिलि ॥ ७ ॥

'मिथिलेशाकुमारी ! राक्षसराज रावण जिस कारण यहँसे बबरार निकल गया है, उसका भी मैं यहाँ जाकर पूर्णरूपसे पता लगा आयी हूँ ॥ ७ ॥

न शक्य सौप्तिक कर्तुं रामस्य विदितत्वन ।

यद्यप्य पुरुषन्यासे तस्मिन् नैरोपपद्यते ॥ ८ ॥

'भगवान् श्रीराम अपने स्वप्नको जाननेवाला सर्वज्ञ परमात्मा हैं । उनका सोते समय बंध करना किसीके लिये भी राग्य असम्भव है । पुरुषसिंह श्रीरामके विषयमें इस तरह उनके बंध होनेकी बात युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती ॥ ८ ॥

न त्वेव यानरा हन्तु शक्या पादपयोधिन ।

सुरा देवपमेणैव रामेण हि सुरक्षिता ॥ ९ ॥

'यानरत्नमा वृद्धोऽयं मुद करनेवाला है । उनका भी इस तरह मारा जाना कदापि सम्भव नहीं है क्योंकि वेने देवतालोग देवराज इन्द्रसे पालित होते हैं; उसी प्रकार वे यानर श्रीराम-रक्षणीसे मनी-मोति सुरक्षित हैं ॥ ९ ॥

दीर्घवृक्षमुज श्रीमान् महोरस्कः प्रतापमान् ।

धन्यो सनहानोपेनो धमत्मा भुवि शिशुतः ॥ १० ॥

जिमान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुलीनो नयदात्मनि ॥ ११ ॥

हन्ता परशलोघानामचिन्त्यरत्नपौरुष ।

न हतो राघव श्रीमान् सीतं शत्रुनिग्रहण ॥ १२ ॥

'सीते ! श्रीमान् राम गोलाकार बड़ी-बड़ी बुद्धिओंसे सुराभित; चौड़ी छातीवाले; प्रतापी, धनुर्धर, सुराजित दायरेसे युक्त और भूमण्डलमें सुनिम्नान घमात्मा हैं । उनमें महान् पराक्रम है । वे भाई लक्ष्मणकी सहायतासे अपनी तथा दूसरे की भी रक्षा करनेमें समर्थ हैं । नीतिशास्त्रने शता और कुलीन हैं । उनका बल और पौरुष अचिन्त्य हैं । य शत्रुपक्षने केन्द्रमूर्च्छाका संहार करनेकी शक्ति रखते हैं । शत्रुघ्नराम भीरुम कदापि मारे नहीं गये हैं ॥ १०-१२ ॥

अयुक्तबुद्धिहृत्प्रेन सर्वभूतविरोधिना ।

एव प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि ॥ १३ ॥

'रावणकी बुद्धि और कर्म्म दोनों ही बुरे हैं । वह समस्त प्राणियोंका विरोधी; क्रूर और मायावी है । उसने तुमपर वह माया का प्रयोग किया था (वह मल्लक और धनुष मायाद्वारा रचे गये थे) ॥ १३ ॥

शोकस्ते निगत सनकल्याण त्वामुपस्थितम् ।

शुभ त्वा भजते लक्ष्मी प्रिय ते भवति शृणु ॥ १४ ॥

'अब तुम्हारे शोकके दिन बीत गये । सब प्रकारने कल्याणका अन्तर उपस्थित हुआ है । निश्चय ही लक्ष्मी तुम्हारा सेवन करती है । तुम्हारा प्रिय कार्य होने जा रहा है । उसे बनाती हूँ; सुनो ॥ १४ ॥

उत्तम सागर रामः सह यानरत्सेनया ।

सनिग्रह समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥ १५ ॥

'श्रीरामचन्द्रजी यानरसेनाक साथ समुद्रको तीरपर हल पार आ गये हैं । उन्होंने सागरके दक्षिणतटपर पड़ाव डाला है ॥ १५ ॥

दृष्टो मे परिपूर्णायाः काकुत्स्थ सहलक्ष्मणः ।

सहितै सागरान्तस्थैरैस्तिष्ठति रक्षितः ॥ १६ ॥

'जैने स्वयं लक्ष्मणसहित पूर्णकाम श्रीरामका दर्शन किया है । वे समुद्रतटपर ठहरी हुई अपनी सगठित सेनाओंद्वारा सर्वथा सुरक्षित हैं ॥ १६ ॥



अंगोरु-वनमें मीताकी अपनी मम्मी मरमासे बातचीत

4

1 - - - - -

अनेन प्रेरिता ये च राक्षसा लघुयिक्त्रमा ।

राघवस्तीण इत्येव प्रवृत्तिस्तस्मिन्निहाहता ॥ १७ ॥

प्रायः कने को जा गीलाभी राक्षस भवे थे, वे सब यों यहा समाचार लाय है कि आरुणाक्षजी मुद्रका पार करक आ गये ॥ १७ ॥

स ता श्रुत्वा त्रिगालात्प्रवृत्तिं राक्षसाधिप ।

एव मन्त्रयते सर्वं सत्रियं सह रायण ॥ १८ ॥

त्रिगालाक्षने । इस समाचारको सुनकर यह राक्षसराज रायण अपने सभी मंत्रियों साथ गुप्त परामर्श कर रहा है ॥ १८ ॥

इति तुराणात् स्वस्मा राक्षसी मृतया सह ।

सर्वाद्योगान् सैन्यानां दाद गृध्राय भैरवम् ॥ १९ ॥

जब राक्षसों स्वमा मृतये से चोरी कर रहा थी, उसी समय उसने मुद्रक लियेपुनः उरुगंगील मलिकोंका भैरव नाम मुना ॥

दृष्टनिघान्तादिन्या श्रुत्वा मेघा महात्मनम् ।

उराय स्वस्मा सीतामिन् मधुरभाषिणी ॥ २० ॥

इहकी चोरी बचनेवाले धर्मेश गम्भीर नाद सुनकर मधुरभाषिणी स्वमाने मानने क्या— ॥ २० ॥

सनाहजननी होरा भैरवा भीरु मेरिका ।

मेरीनाद च गम्भीर शृणु तोयद्गतिम्बनम् ॥ २१ ॥

भीरु ! यह भगतव भयनाद मुद्रक लिय तैयारीकी सूचना दे रहा है । मरकी गन्ताक समान रागभैरवा गम्भीर ध्वनि सुन ला ॥ २१ ॥

कल्पयन्ते मत्तमान्ता युच्यन्त रथजाचिनः ।

दृश्यन्ते तुङ्गाक्षः प्राग्महस्ता महस्त्रदा ॥ २२ ॥

भयनात् हाया सज्जय आ रहे हैं । रथमें पालक जग रहे हैं और इहकी मुद्रक हाथमें भय लिय इष्टिगन्त हा रहे हैं ॥ २२ ॥

तत्र तत्र च सनडा सम्पन्नानि महस्त्रदा ।

आपूयन्त राजमागा सैन्यैरद्भुतदृशैः ॥ २३ ॥

धेगाद्रिभद्रिदृष्टि तापैर्धमिच सागर ।

ज्योंतहाँमें मुद्रक लिय सनडा हुए सग्यों सनिक नैद ॥ आ रहे हैं । सग्य सङ्घों अद्भुत वेगमें सब ओर बढ़ वेगमें गन्ता बरत हुए सैनिकोंमें उठी तपद् भली जा रहा है जैन जल अमर प्रवाह सगरमें मिल रहे हैं ॥ २३ ॥

दाभाणा च प्रसन्नानां चमणा चमणा तथा ॥ २४ ॥

रथजाचिनानां च राक्षसैर्दानुयायिनाम् ।

सम्भ्रमो रक्षसामेव इष्टितानां सन्निनाम् ॥ २५ ॥

प्रभा रिष्टुता पश्य नानारणममुष्मिनाम् ।

यत्निद्रहता यो यथा रूप विभारमो ॥ २६ ॥

जना प्रारकी प्रभा विभारमो नानारण हुए अन्ध

शर्मों, दाहों और करवासी वह चमक देता । राक्षसराज राघवका अनुगमन करनेवाला सग्यों, सग्यों, हाथियों तथा राक्षसों हुए राक्षसों राक्षसोंमें समय यह बढ़ा इहकी दिखायी देती है । राक्षस शत्रुमें यन्त्रा ज्ञान हुए दावानलका जैसा जालन्धमान रूप होता है, वगैरे ही प्रभा इन अन्ध राक्षसों आदिकी दिखाया देती है ॥ ४-२६ ॥

घण्टानां शृणु निर्घोरं रथानां शृणु निम्बनम् ।

हयानां ह्येयमानानां शृणु तृणधनिं तथा ॥ २७ ॥

हाथियोंकर बजने हुए घण्टोंका गम्भीर ध्वनि सुन, रथोंका चरवाह सुना और शिनिनात हुए घोड़ों तथा भौंल भौंलिक बाजोंकी आवाज भी सुन ला ॥ २७ ॥

उद्यतायुधहस्तानां राक्षसैर्दानुयायिनाम् ।

सम्भ्रमो रक्षसामेव तुमुगे लोमहर्षणम् ॥ २८ ॥

श्रीश्रुत्या भवति शोश्पर्चा रक्षसा भयमागतम् ।

हाथोंमें हाथोंकर लिय राघवक अनुगामी राक्षसोंमें इस समय बढ़ी चरवाह है । इसमें यह जान ला कि जन्तु बर्दा बढ़ा भारी रमाभवासी मा उपस्थित हुआ है और गुस्का निवारण करनेवाली लम्बी तुम्हारी सेना उपस्थित हो रही है ॥ राम कमलपद्मयो दैत्यानामिव धास्य ॥ २९ ॥

अजित्य नितरोधस्तमस्त्रिपराक्रमः ।

रायण समरे हत्वा भता न्याधिमिष्यति ॥ ३० ॥

तुम्हारा पति कमलपद्म भागम शत्रुधर्म जैन तुम्हारे है । जन्तु पराक्रम अचिन्त्य है । यह दैत्योंका पराक्रम करनेवाला इन्द्रका भौंल राक्षसोंका इन्द्र पराक्रम करनेवाला गन्तु यह करके तुम्हें प्राप्त कर लेंगे ॥ २९-३० ॥

त्रिभिमिष्यति रक्षसु भता ते सहस्रदमणः ।

यथा शत्रुषु शत्रुघ्नां रिपुना सह याम्य ॥ ३१ ॥

जैने त्रिभूमि इन्द्रने उन्नीकी सगदतम त्रिभूमि पराक्रम प्रयत्न या उल्ल प्रकाश तुम्हारे पतिदेव भगवत अपने भाई लक्ष्मण मदद करनेवाले राक्षसों अपने बन् विजयका प्रमाण करेंगे । ॥ ३१ ॥

आगतस्य हि रामस्य विप्रमद्भागना सतीम् ।

अह द्रक्ष्यामि मिडायां त्वा शत्रो विनिगतिम् ॥ ३२ ॥

राघु रागका महा हा जन्तु में गीत ही मुन जैने सगल्लोकी सग्य राघु भीमगुणपदवीकी सग्य सग्य वेगी दम्भी । अब राघु हा तुम्हारे सग्य दूरा दूरा ॥ ३२ ॥

अस्त्राभ्यान्तज्जानि न्य यन्त्रियिष्यति जलनि ।

समागम्य परिष्यत्ता तम्यारनि महाग्नम् ॥ ३३ ॥

अस्त्रज्जानि । राघु बल सग्य त्रिभूमि भगवत मित्रदेव उन्नीका सग्य लक्ष्मण तुम्हारे हीनेमें भगवत व अन्ध दम्भी ॥ ३३ ॥

अचिरामोक्ष्यते सीते देवि ते जघन गताम् ।

धृतामेका यद्वन् मासान् वर्षां रामो महाबल ॥ ३४ ॥

‘देवि सीते ! यह मैं महीनासे तुम्हारे कर्णों की एक ही वेणी जगान रूपमें परिणत हो जो वस्त्रप्रदेताय लय रही है, उसे महाबली श्रीराम शीघ्र ही अपने हाथोंमें खाली ॥ ३४ ॥

तस्य हृद्गु सुख देवि पूर्णचन्द्रमिरोदितम् ।

मोक्ष्यसे शोकजं चारि निर्मोक्षमिव पत्नी ॥ ३५ ॥

‘देवि ! जैसे नागिन केंचु छोड़ती है, उसी प्रकार तुम उदित हुए पूर्णचन्द्रक समान अपने पतिना मुक्ति मुख देख कर शान्त और यहाना छोड़ दोगी ॥ ३५ ॥

रावण समग्रं हत्वा नचिगद्येयं मैथिलि ।

त्वया समग्रं प्रियया सुखाहो लक्ष्यसे सुखम् ॥ ३६ ॥

‘मैथिलिशकुमारी ! समराङ्गणमें शीघ्र ही रावणका वध करके सुख भोगनेके योग्य श्रीराम सङ्गमनोरथ हो तुझ प्रियतमाके साथ मनाविच्छिन्न सुख प्राप्त करेंगे ॥ ३६ ॥

हरपार्थे श्रीमद्भारमावणे वाक्सीकीये आदिवाक्ये सुन्दरकाण्डे प्रवक्षिता सर्ग ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भारमिनिर्मित आदिवाक्य आदिवाक्ये सुन्दरकाण्डमें तैत्तिरीयों सर्ग पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

सीताके अनुरोधसे सरमाका उन्हें मन्त्रियोंसहित रावणका निश्चित विचार बताना

अथ ता जातमताया तेन वाक्येन मोहितम् ।

सरमा ह्लादयामास महीं दग्धामिवाम्भसा ॥ १ ॥

रावणक पूर्वोक्त वचनसे मोहित एवं स्तब्ध हुई सीताको सरमाने अपनी वाणीद्वारा उसी प्रकार आह्लाद प्रदान किया, जैसे प्रीत्यन्तमुष्टसे तापसे दग्ध हुई पृथ्वीको यषाकालकी मधमाला अपने जलसे आह्लादित कर देती है ॥ १ ॥

ततस्तस्या हितं सख्यस्थिर्कीर्यन्ती सखी यच्च ।

उवाच फाले कालहस्तस्मिन्पूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥

तदनन्तर समयको पहचानने और मुसकराकर बात करनेवाली सखी सरमा अपनी प्रिय सखी सीताका हित करनेकी इच्छा रखकर यह समयोचित वचन बोली— ॥ २ ॥

उत्सहेयमहं गत्वा त्वद्वाक्यमसितेक्षणे ।

निवेद्य कुशलं रामे प्रतिच्छन्ना नियतिर्तुम् ॥ ३ ॥

‘कञ्जारे नेत्रोंगली सखी ! मुझमें यह साहस और उत्साह है कि मैं श्रीरामके पास जाकर तुम्हारा उद्देश और कुशल-समाचार निवेदन कर दूँ और फिर उषी हुई बहोसे लौट आऊँ ॥ ३ ॥

नहि मे क्षममाणाया निराशये विहायसि ।

समर्थो गतिमन्येतु पथनो गरुडोऽपि वा ॥ ४ ॥

‘निराधार आकाशमें तीव्र वेगसे जाती हुई मेरी गतिका अनुगमन करनेमें वायु अथवा गरुड भी समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥

मभाजिता त्व रामेण मोक्षिष्यसि महात्मना ।

सुखयेण ममायुक्ता यथा सन्त्येन मेदिनी ॥ ३७ ॥

‘जैसे पृथ्वी उत्तम वरमि अभिहित होनेपर हरी भरी खेतीमें लहलहा उठती है, उसी प्रकार तुम महात्मा श्रीरामसे सम्मानित हो आनन्दमय हो जाओगी ॥ ३७ ॥

गिरिवरमभितो विप्रतमानो

हयश्च मण्डलमायुय करोति ।

तमिह शङ्गणमभ्युपैहि देवि

द्विवसकरं प्रभवो हय प्रजानाम् ॥ ३८ ॥

‘देवि ! जो गिरिवर मन्त्र चारों ओर घूमने हुए अवनकी भोंति श्यामापूर्यक मण्डलाकार-गतिमें चलते हैं, उन्हें भगवान् सर्वज्ञ (जो तुम्हारे कुरूपे नेत्रता हैं) तुम यहाँ रागण लक्ष्यके ये प्रजाजनोंको सुख देने तथा उनका दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं ॥ ३८ ॥

एव हुवाणा ता सीता सरमामिदमब्रवीत् ।

मधुरं श्रुत्वनया वाचा पूर्वशोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

ऐसी बात कहती हुई सरमासे सीतान उस स्नेहभरी मधुर वाणीद्वारा जो पहले शोकसे व्याप्त थी, इस प्रकार कहा— ॥ ५ ॥

समर्था गगनं गन्तुमपि च त्व रसातलम् ।

अवगच्छन्नपि कर्तव्यं कर्तव्यं त मन्दन्तरे ॥ ६ ॥

‘सरम ! तुम आकाश और पाताल सभी जगह जानेमें समर्थ हो । मरे लिये जो कर्तव्य तुम्हें करना है, उस अवगत रही हूँ, सुनो और समझो ॥ ६ ॥

मत्प्रिय यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव ।

ज्ञातुमिच्छामि ॥ गत्वा किं करोतीति रावण ॥ ७ ॥

‘यदि तुम्हें मेरा प्रिय कार्य करना है और यदि इस विषयमें तुम्हारी बुद्धि स्थिर है तो मे यह अनुरोध चाहती हूँ कि रावण यहाँसे आकर क्या कर रहा है ? ॥ ७ ॥

स हि मायायलं क्रूरो रावणः शत्रुपवण ।

मा मोहयति दुष्टात्मा पीतमात्रेयं यादृणी ॥ ८ ॥

‘शत्रुओंका कलनेवाला रावण मायायलसे सम्पन्न है । वह दुष्टात्मा मुझ उसी प्रकार मोहित कर रहा है, जैसे वादृणी अधिक मात्रामें पी लेनेपर वह पीनेवालेको मोहित (अचेत) कर देती है ॥ ८ ॥

तजापयति मा नित्य भत्सापयति चासदृत् ।

गक्षस्मीभि सुद्योताभिर्धौ मा रक्षति नित्यदा ॥ ९ ॥

‘यह राक्षस अत्यन्त भयानक राक्षसियोंद्वारा प्रतिदिन मुझे डोंग बनाता है। घमघमा है और सग मरी रक्तवाली करता है ॥ ॥

उद्धिन्ना दक्षिणा चास्मि न स्वस्थ च भ्रमो मम ।

तद्गुप्याद्याहमुद्धिन्ना अशोकुरनिष्ठा, गता ॥ १० ॥

‘मैं सग उससे उद्धिन् और गङ्गित रहती हूँ । मग चित्त स्वस्थ नहीं हो पाता । मैं यमीक भयसे व्याकुल होकर अशोकवाटिकाम चली आयी थी ॥ १० ॥

यदि नाम कथा तस्य निश्चित यापि यद् भवेत् ।

निवेद्येथा सर्वं तद् वगे मे स्यादनुग्रह ॥ ११ ॥

‘यदि मन्त्रियों काय उसकी बातचीत चल रही है तो यहाँ जो कुछ निश्चय हो गया रावणराज जो निश्चित विचार हो। वह मग मुझे बनाती रहा। यह मुझपर तुम्हारी बहुत बड़ी कृपा होगी ॥ ११ ॥

साध्येय ध्रुवर्ता मीना सगमा मृदुभाषिणी ।

उयाच यदन तस्या मृदुदान्ती याप्यविक्रमम् ॥ १२ ॥

ऐसी बात कहती हुई मीतासे मधुरभाषिणी सरमाने उनका आँसुओं में भीगे हुए मुखमण्डलको हाथमें पोंछते हुए इन प्रश्नर कहा— ॥ १२ ॥

एष ते यद्यभिप्रायस्तस्माद् गच्छामि जानकि ।

मृष्टा गत्रोर्गभिप्रायमुपायनामि मैथिलि ॥ १३ ॥

‘मिथिलानुसारी जनकनन्दिनि । यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं जाना हूँ और गानुन अभिप्रायका जानकर अभी लगती हूँ ॥ १३ ॥

पश्यमुन्मत्ता ततो गन्वा सर्वाम्प नम्य रम्यस ।

गुप्याद्य कथित तस्य रावणस्य समप्रणिण ॥ १४ ॥

जना कहकर सरमाने उस रावणराज समीप जाकर मन्त्रियोंसहित रावणकी वही हुई मारी बातें सुनीं ॥ १४ ॥

सा ध्रुव्या निश्चय तस्य निश्चयशः दुरामन ।

पुनरेवागमत् मिप्रमशोकजनिका गुभाम् ॥ १५ ॥

उस दुराकार निश्चयका सुनकर उसने अच्छी तरह समझ लिया और फिर य गानवी ही सुन्दर अशोकवाटिकाम लौट आयी ॥ १५ ॥

सा प्रविष्टा ततस्तत्र यद्दा जनकामजात् ।

प्रतीक्षमाणा स्वामेव अग्र्यप्राप्तिश्च धियम् ॥ १६ ॥

यहाँ प्रया परत उसने अच्छी ही प्रतीक्षामें बैठी हुई ऊपरनिगरीका देखा। जो उस लम्बाई समान जेन पड़ती थी, जिसका हाथका समान वही लिय गया हा ॥ १६ ॥

ता तु सीता पुन प्राप्ता सरमा प्रियभाषिणीम् ।

पण्डित्य च मुक्तिं ददौ च स्वयमासनम् ॥ १७ ॥

फिर लौकर आयी हुई प्रियभाषिणी सममाका बड़े स्नेहसे गङ्ग लगाकर सागने स्वयं उसे बैठने का स्थान दिया और कहा— ॥ १७ ॥

इहासीना सुख सगमाख्याहि मम तत्त्वत ।

दूरस्य निश्चय तस्य रावणस्य दुरामन ॥ १८ ॥

‘सखी ! यहाँ सुखमें बैठकर मारी बातें ठीक ठीक बनाओ । उस दूर पर दुरात्मा रावणने क्या निश्चय किया ॥ ॥

एवमुक्ता तु सगमा सीतया घेपमानया ।

कथित स्वयमावष्ट रावणस्य समप्रणिण ॥ १९ ॥

कॉपती हुई मीतार इन प्रकार पृष्ठनेपर सरमाने मन्त्रियोंसहित रावणकी वही हुई मारी बातें बतायीं— ॥ १९ ॥

जनन्या रावसेन्द्रो वै त्वमोक्षार्थं बृहद्वय ।

अतिस्निग्धेन वैदेहि मन्त्रिद्वन्द्वेन चोदित ॥ २० ॥

‘विदेहिन्यानि । राक्षसराज रावणकी मन्त्रान तथा रावणके प्रति अत्यन्त स्नेह रखनेवाले एक बड़े मन्त्रीन भी बड़ी-बड़ी बात रखकर तुम्हें छान्द देनेके लिय रावणका प्रेरित किया ॥ २० ॥

दीयतामभिसन्मृत्यु मनुजैर्द्राय मैथिली ।

निर्दान न पयात जनम्याय यद्वृत्तम् ॥ २१ ॥

‘एषराज ! तुम महापराज भागमरा मन्त्रारपूरन उनकी पत्नी मीना लौग दो । जनम्यायन जो अद्भुत पटना कल्पित हुई थी। गरी भीषमर पराक्रमरा समन्वयेक लिय पयात प्रमाण पर ग्राह्यर है ॥ २१ ॥

लङ्घन च समुद्रस्य दानं च हनूमत ।

यद्य च रम्यसा युद्धे च पुण्यामानुग युधि ॥ २२ ॥

(‘नर मरहोम भी अद्भुत गति है) हनुमानने जो समुद्रका लौपाभनामे भेंट का और युद्धमें बहुत-से राक्षसों का रथ किया—यह सब कार्य दूसरा चीन मनुष्य कर सकता है ॥ २२ ॥

एष स मन्त्रिद्वन्द्वेन माया च यदुराधित ।

न त्यामुन्महत मोक्षममयपर यथा ॥ २३ ॥

‘इन प्रकार बूढ़ मन्त्रिका तथा मायाय बहुत समझानेपर भी यह युद्धमें यमी तरह छान्दनेकी इच्छा नहीं करता है, जैसा धनका लम्बा धनका लम्बाना नहीं करता है ॥ २३ ॥

नास्तदव्यमृता मोक्ष युद्धे त्यामिति मैथिलि ।

सामान्यस्य मृत्युस्य निश्चयस्य ह्यर यनेन ॥ २४ ॥

‘मिथिलानुसारी । यह युद्धमें मरना युद्धे छान्दनेका मरण नहीं कर सकता । मन्त्रिका मरना उस मरण निश्चयका यती निश्चय है ॥ २४ ॥

तदेव सुख्यरा बुद्धिमत्पुलोभादुपस्थिता ।
भयात्त शक्तस्त्वा मोक्तुमनिर्गस्त स मयुग ॥ २० ॥
राक्षसानां च सर्वेणमात्मनश्च वधेन हि ।

राजने सिरपर बाल नाच रहा है । इसलिए उमर
मनमें मृत्युन प्रति लभ पैग हा गया है । यही कारण है
कि तुम्हें न लौगनेन निधयपर उमरी बुद्धि सुखिर हा
गयी है । यह जवतन युद्धम राक्षमाने सहर और अपन
वधक दाय (नष्ट) नह। हा जायगा केवल भय दिगानने
तुम्हें नहीं छाड़ मरता ॥ १ ॥

निहत्य राजन स्वये स्वया निशिते शरे ।
प्रतिप्रेष्यति गमस्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २६ ॥

रजारे नश्रीगली सीत । इसन परिणाम यही होगा
कि भगवान् श्रीराम अपने संधा सीने बाणमें युद्धस्वरुम
रावणका वध करके तुम्हें अयोध्यामें ल जायगे ॥ २६ ॥

इत्यार्षे धीमद्वाल्मीक्ये वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे ऋषिर्वाः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार धावाल्मीकिनिर्मित आषारामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

माल्यवान्का रावणको श्रीरामसे संधि करनेके लिये समझाना

तेन दृष्टविमिश्रेण भेरीशब्देन नादिना ।
उपयाति महानाहं गम परपुरजय ॥ १ ॥

गजुगपीपर विजय धानेगले महाबाहु श्रीरामने गङ्गा
परनिसे म्भित हा तुमुल नाद करनेगली भेरीकी आवाजक
साथ लङ्कापर आनमन किया ॥ १ ॥

त निनाद निद्राम्याय राजणे राक्षसेश्वर ।
मुहूर्ते ध्यानमास्थाय सच्चिदानन्दभुदैश्वर ॥ २ ॥

उस भेरीनादको सुनकर राक्षसराज राजणने दा घड़ीतक
कुछ सोच निचार करनेके पश्चात् अपने मन्त्रियोंकी
आर देखा ॥ २ ॥

अथ तान् सन्धिगस्तत्र सजानाभाष्य रावण ।
सभा सनादयन् सवामित्युपाय महानर ॥ ३ ॥
जगत्सतापनं दूरोऽमहयन् गक्षसेश्वर ।

उन सब मन्त्रियोंको सम्बोधित करके जगत्का सताप
देनेवाले, महाबली, दूर राक्षसराज रावणने सारी सभाको
प्रतिपन्नित करके स्त्रीपर आप्नेम करके हुएकहा— ॥ ३ ॥
तएव सागरस्यास्य त्रिजम्ब यत्पीरुपम् ॥ ४ ॥

यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तमया श्रुतम् ।
भयतश्चाप्यहं वेधि युद्धे सत्यपराक्रमान् ।
तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यविदित्वा रामविक्रमम् ॥ ५ ॥

आपलगाते रामने परक्रम, नल पौरुष तथा समुद्र
लङ्घनकी जो बात बतायी है, वह सब मैंने सुन ली परतु मैं

पतस्मिन्नन्तरे शब्दो भेरीशब्दसमाकुलः ।
श्रुतो वै सर्वसैन्यानां कम्पयन् धरणीतलम् ॥ २७ ॥

इसा समय भेरीनाद और गङ्गापरनिसे मिला हुआ
समस्त सैनियोंका महान् कावाह- सुनायी दिया, जो भूकम्प
पैग कर रहा था ॥ २७ ॥

श्रुत्वा तु तं घानरसैन्यनादं
द्वागता राक्षसराजभृत्या ।

हनीजसो दैन्यपरीतचेण
श्रेयो न पश्यन्ति नृपस्य दोग्धम् ॥ २८ ॥

यानरसैन्यनाद उन भीषण खिन्नादको सुनकर लङ्काम
रहनेवा- राक्षसराज राजणने सेन- हतेत्साह हो गय । उनकी
सारी चेज दीनतामें व्याप्त हा गयी । राजणने दोनमें उर्हो
भी कोई कल्याणका उपाय नह। दिलायी देता था ॥ २८ ॥

तो आपलगाते भी, जो इस समय रामन परक्रमकी बात
जानकर चुपचाप एक दूसरेका मुँह दल रहे हैं, समामभूमिमें
सत्यपयनमी गीर समझता हूँ ॥ ४० ॥

ततस्तु सुमहामाशो माल्यवान् नाम राक्षस ।
रावणस्य वचं श्रुत्वा इति मातामहोऽग्रणीत् ॥ ६ ॥

रावणक इस आछेपट्टण वचनको सुननेके पश्चात्
महाबुद्धिमान् माल्यवान् नामक राक्षसने, जो राजणका ताना
था, इस प्रकार कहा— ॥ ६ ॥

त्रिष्यम्भिविनीतो यो राजा राजन् नयानुग ।
न दास्ति चिरमैश्वर्यमर्षिश्च कुरुते यशे ॥ ७ ॥

राजन् । जो यसा चौदहों त्रिषाभाम मुगक्षित और
नीतिका अनुमरण करनेवाला होता है, वह दीनकालतन
वायका क्षासन करता है । वह गजुआका भी वामें कर
लेता है ॥ ७ ॥

सद्धानो हि कालेन विगृह्यारिभि सह ।
स्वपक्षे घधनं कुरमहदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥

जो समयके अनुसार आरम्भक होनेपर गजुओंके साथ
संधि और विग्रह करता है तथा अपने पक्षकी बुद्धिमें लगा
रहता है, वह महान् ऐश्वर्यका मागी होता है ॥ ८ ॥

हीयमानेन कृत्यो राक्षसं संधि समेन च ।
न दापुमवमन्येत ज्यायान् कुर्वीत विग्रहम् ॥ ९ ॥

अत्रि राज्ञी गति श्रीग हा री हा अयया जो
गयुष समान ही गति रयया हा, उमे सधि नर लेनी चाहिये।
अनने अधिक या समान गतिगाल गयुषा कभी अपमान
न करे। यदि स्वय ही शक्तिमें यत्न चला हो, तभी गयुष
साथ वह युद्ध ठाने ॥ ॥

नमहा रोचत सधि सह रामेण रायण।
यदर्थमभियुक्तेऽसि मीता तस्मै प्रदीयताम् ॥ १० ॥

इत्येवै रायण ! मुझे तो भीरामक साथ सधि करना
ही अच्छा लगता है। जिसन लिय मुझसे ऊपर आक्रमण
हा रहा है, वह सीता तुम भीरामका लोग दा ॥ १० ॥

तस्य देवर्षय सर्वे गंधराश्च जयैषिण।
विरोध मा गमस्तेन सधिस्ते तेन रोयताम् ॥ ११ ॥

देवगो, ऋषि, श्रुति और गंधर सभी भीरामकी
विजय चाहते हैं, अतः तुम उनसे विरोध न करो। उनका
साथ सधि कर लेनी ही इच्छा करो ॥ ११ ॥

अष्टजद् भगवान् पक्षी द्वात्रेण हि पितामह।
सुराणामसुराणा च धमाधर्मो तदाधरौ ॥ १२ ॥

भगवान् ब्रह्मणे सुर और असुर दो ही पक्षोंकी
सृष्टि की है। धर्म और अधर्म ही इनका आधार है ॥ १२ ॥

धर्मो हि श्रूयते पञ्च अमराणा महात्मनाम्।
अधर्मो रक्षसा पयो ह्यसुराणा च राक्षस ॥ १३ ॥

धुना जाना है महात्मा स्वर्गाओंका पक्ष धर्म है।
राक्षसा, राक्षसों और असुरोंका पक्ष अधर्म है ॥ १३ ॥

धर्मो वै प्रसतेऽधर्मो यदा हतमभूद् युगम्।
अधर्मो प्रसते धर्मो यदा तप्य प्रवर्तते ॥ १४ ॥

जब ऋषियुग होता है, तब धर्म बलवान् होता है अधर्मका
प्रस होता है और जब कलियुग आता है, तब अधर्म ही
धर्मो दबा देता है ॥ १४ ॥

तन् स्वया चरता लोकान् धर्मोऽपि निहतो महान्।
अधम प्रगृहीतश्च तनासद् रलिन परे ॥ १५ ॥

धुमन विजिम्बयन लिय सर लोकोमें भ्रमण करते हुए
महान् धर्मका नाश किया है और अधमका गल लगाया है,
इसलिये हमारा ययु हमने प्रचल है ॥ १५ ॥

स प्रमादान् प्रवृद्धस्तेऽधर्मोऽहिप्रसते हि न।
विवधयति पक्ष च सुराणा सुरभाजन ॥ १६ ॥

मुग्धद्वार प्रमाणन बना हुआ अधर्मकी अवसर अव
हमें निगल जाना चाहता है और दशनाओंद्वारा कलिन धर्म
उनका पक्षी वृद्धि कर रहा है ॥ १६ ॥

शिवेषु प्रसक्तेन यन्त्रिज्जकारिणा स्वया।
प्रवीणामग्निहस्तामामुद्रेणा जनिता महान् ॥ १७ ॥

विषयोंमें आसन हाकर चा पुण भी कर डालनेका
तुमने जो मनमाना आचरण किया है इसमें अग्निह
तज्ज्वी श्रुतियोंका क्या ही उद्देश्य प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥

तेया प्रभावो दुधय प्रयति इय पायक।
तपसा भावितामानो धमस्यानुमदे रता ॥ १८ ॥

उनका प्रभाव प्रचलित अग्निह समान दुर्धर है। वे
श्रुति-मुनि तपस्यान द्वारा अपने अन्त रणगा गुद करने
धर्म ही समझमें तपन रहते हैं ॥ १८ ॥

मुख्यैर्यज्ञैर्यजन्त्येते तैस्तयस्ते द्विजातय।
शुद्धन्यन्माश्च विधिर्द् वेदाधोऽप्यधीयते ॥ १९ ॥

ये द्विजगण मुख्य-मुख्य यज्ञद्वारा यज्ञ करत
विधियन् अग्निम आहुति न और चबखरन वगैरा पद
करते हैं ॥ १९ ॥

अभिभूय च रयामि ब्रह्मयोषानुदीरयन्।
विशो विप्रद्रुता सखा स्तनयितुरिषोष्णगे ॥ २० ॥

उनोंने राक्षसोंका अभिभूत करन वेदमन्त्रोंकी पनिका
निगार किया है, इसलिये शीघ्र श्रुतम मपनी भाति राक्ष
सगुण दिशाओंमें भगवद् हुए हैं ॥ २० ॥

श्रुयीणामग्निहस्तामग्निहोत्रसमुत्थित।
आदत्ते रयसा तेजा धूमा यय्य दिशो ददा ॥ २१ ॥

अग्निवृत्त्य तन्मा श्रुयीणों अभिहोत्रम प्रकृ हुआ
धूम देखे शिवाओंमें व्याप्त होकर राक्षसों तज्ज्वी हर लगा है ॥
तपु तेषु च दशेषु पुण्येभ्यश्च ददमर्त ॥ २२ ॥

उपमाण तपस्तीव्र सनापयानि रावसान् ॥ २३ ॥

विषमिभ देवोंमें पुण्य रमोंमें हा लो रक्षर
ददतापूरक उत्तम मवेश पान्न करनेका श्रुतिगण जो
ताप तपस्या करत हैं, वहा राक्षसों वंताप र रही है ॥ २४ ॥

देवदानयज्ञेभ्यो गृहीतश्च धरम्यया।
मनुष्या धानर श्रुत्या गोलाङ्ग महात्मन ॥ २५ ॥

यलन्त इहगम्य गजन्ति ददशिनम् ॥ २६ ॥

धुमन देवताभा, शिव और यज्ञ ही अत्य धानका
कर प्राप्त किया है मनुष्य अग्नि नहीं। तपु यज्ञ का मनुष्य
धानर गीठ और लंगूर आकर करत रह रहे हैं। पक्षर-पक्ष
हैं भी बड़े बलवान् मने-मनेमि कमल तथा मुद्र
पक्षी ॥ २७ ॥

उत्पातान् त्रिभिधान् द्यूत धारान् यदुग्धिधान् यदुग्ध।
विनाममनुष्ययामि मय्या रक्षसामहम् ॥ २८ ॥

धाना प्रकार हैं बहुतोंमें मने-मनेमि रक्षर करत
मैं हा इन रक्षस लक्ष्मण विनामम ॥ २९ ॥
रक्षगभिस्तन्निता नैरा मया प्रतिभयकरा ॥

शोणितेनाभिर्चरन्ति तन्नामुष्णेन सवर्धन ॥ २ ॥

‘घोर एव मयस्वर मय प्रचण्ड गजतनजनक साथ
लङ्कापर मय आरमे गम ग्वनरी क्या कर रह हैं ॥ ’ ॥

रुद्रता चाहनाना च प्रपन्नन्यथुधित्त्व ॥
गजोध्वस्ता विजगत्ता न प्रभान्ति यथापुरम् ॥ २६ ॥

‘गड़े हाथी आदि गजिन रा रह हैं और उक्त नश्वमे
अभ्रविन्दु भर रह हैं । दिग्गार्ध धूल भर जानमे मलिन हो
अब पशुली भौंति प्रकाशित नही हो रही हैं ॥ २६ ॥

व्याला गामायज्ञा गृध्रा वाद्यन्ति च सुभग्वचम् ॥
प्रथिन्य लङ्कागाम समवायाश्च कुचन ॥ २७ ॥

‘मातृभभी हिमन पशु, गोदह और गीध भयकर वाली
बालत हैं तथा लङ्का न्ययनम घुसकर छुट यनाकर
बैठन हैं ॥ २७ ॥

कालिका पाण्डुरदन्तं प्रहृमन्त्यप्रतः स्थिताः ।
स्त्रिय स्वनपु मुष्णन्त्यो गृहाणि प्रतिभास्य च ॥ २८ ॥

‘घावनेम काल रंगरी स्त्रिया अपने पीठ दात दिग्गती
हुइ सामन आकर गड़ी हो जानी और प्रतिकूल बातें कहकर
घरक सामान चुराती हुइ आर जोरम हैंछनी हैं ॥ २८ ॥

गृहाणा वल्किमणि भवान पशुपमुज्जत ।
खरा गोपु प्रजापन्त मूषका नकुलेषु च ॥ २९ ॥

‘घरोंम जा वल्किर्म किं जात हैं, उस बलि-सामग्रीको
उक्त रंग जान हैं । गौत्रोमे गध और नेत्रनेसे चूद पैदा
होने हैं ॥ २ ॥

माजारा द्वापिभि साधै सुकरा नृनकं सह ।
फिन्नरा रात्रसैश्चापि स्मेयुमनुयै सह ॥ ३० ॥

‘माषाध साथ रिलन, कुत्तान साथ सुअर तथा राक्षसों
आर मनुष्यान् साथ निन्नर समागम करने हैं ॥ ३० ॥

पाण्डुरा रक्षपाद्राश्च विहगा कालवादिता ।
गक्षलाता त्रिनाशाय कपोता त्रिचरन्ति च ॥ ३१ ॥

‘जिनरी पोंव सन्द आर पत्र लाल हैं, वे ननुतर
पक्षी दन्ते प्रदिन हो राक्षसां भावी त्रिनाश मन्विन करने
रिंय यहाँ सन आर त्रिचरने हैं ॥ ३१ ॥

हृत्पापै श्रीमद्रामायणे वाक्सीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ ३५ ॥
इस प्रकार भावार्थमितिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

पट्विंशः सर्ग

माल्यवान्पर आशेष और नगरकी रक्षाका प्रबन्ध करके रावणका अपने अन्त पुरमें जाना
तन्नु माल्यवानो वाक्य हितमुक्त वशान्न ।
मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागत ॥ १ ॥
दुष्टात्मा दाम्पत्य रावण कालके अधीन हो रहा था

चाञ्चीकृचीति घातन्त्यः दारिद्र्या नेदमसु स्थिता ।
पतन्ति प्रथिताश्चापि निजिता कल्हैरिभि ॥ ३२ ॥

‘घराम रहनेवाली खरिपाएँ उल्टकी इच्छाकरे,
बूझ पथिपामें पै पै करती हुइ गुँथ जाती हैं और नाने
पराजित हो प्रथीपर गिर पड़ती हैं ॥ ३२ ॥

पक्षिणश्च मृगा सर्वे प्रयादित्य रुद्रित त ।
करालो विकटा मुण्ड पुण्य कृष्णपिङ्गल ॥ ३३ ॥
कालो गृहाणि सर्वेया फात्रे काऽन्यवेभ्यते ।

‘पक्षी और मृग सभी गूथकी आर मुँह करक रह हैं ।
विमल, विकट, काल और भूरा रंगके मूढ़ दुहाइ हुए
पुण्यकी रंग धारण करक काल समय समयपर हम सब
घरोंकी ओर देवता हैं ॥ ३३ ॥

पतन्त्यन्यानि दुष्टानि निमित्तान्युपतन्ति च ॥ ३४ ॥
विष्णु मन्यामहे गम मानुष रूपमास्थितम् ।
नहि मानुषमाज्ञाऽसौ राघवो रुद्रविग्रह ॥ ३ ॥
येन षष्ठ समुद्रे च सेतु स परमाद्भुत ।
कुरुष्व नगरजेन सधि रामेण रावण ।
शान्वाग्धाय कमाणि विजयतामायतिभमम् ॥ ३५ ॥

‘य तथा और भी मृतमे अपातुन हो रहे हैं । मैं
एक स्मरता हूँ किं सत्ता भगवान् विष्णु ही मानवरूप
धारण करके राम होकर आये हैं । किन्होंने समुद्रमे अत्यन्त
अद्भुत सेतु बाँधा है, व इत्परकमी खुबीर साधारण
मनुष्यप्राप्त नहीं हैं । रावण ! तुम नरराज श्रीरामक साथ
सधि कर ल । श्रीरामन अलौकिक कर्मा और लङ्कामें
हनेवाल उत्पाना जानकर जा काय भविष्यम मुख
देनेवाला हो, उद्यम त्रिभय नरक गरी कर ॥ ३४-३५ ॥

इद वपुस्तस्य निगद्य माल्यवान्
परीक्ष्य रम्योधिपतर्मेन पुन ।

अनुत्तमेपूतमपीर्यो बली
बभूव मूर्ण्णां समवक्ष्य रावणम् ॥ ३७ ॥

यह बात कहकर तथा रावणराज रावणके मनभावक्री
परीक्षा करके उत्तम मतिवाम श्रेष्ठ पौरवशाली महाबली
माल्यवान् रावणकी ओर गेलता हुआ चुप हो गया ॥ ३७ ॥

इस प्रकार भावार्थमितिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

अमयान् परिधृत्ताभ्यो मात्यवन्तमाश्रयन् ॥ ७ ॥

यः क्रमके वशीभूतः हा गया । अमयं च नत्र
धूमने लगे । उसने भाई के घर मात्यान्त कहा—॥

हितयुद्धया यद्विहितं यत् पश्यमुच्यते ।

पश्यन् प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रगतं मम ॥ ३ ॥

धूमने गुफा पर लहर हित बुद्धि से जा मर जहित
की कठोर बात कही है । वह पूरी तोरने मर कानों तक
नहीं पहुँची ॥ ॥

मानुषं रूपं गमयन् शास्त्राभ्याश्रयम् ।

समर्थं मन्यसे केन त्यक् पिशा यनाश्रयम् ॥ ४ ॥

पेशाव राम पर मनुष्य ही ता है । किन्तु सहाय
लिया है कुछ बर्तिका । पिनाक त्याग देनेसे उसने
बनकी कारण ली है । उसम कौनसी एसी विनयता है ।
स्मित तुम जे बड़ा सामर्थ्यानी मान रहे हो ॥ ४ ॥

रक्षसाम्भीश्वर मा च द्याना च भयकरम् ।

हीन मा मन्यसे केन अहीनं सचक्रिमे ॥ ५ ॥

मैं राक्षसों का स्वामी तथा सभी प्रकारक परक्रमी
समर्थ हूँ, देवताओं के मनम भी भय उत्पन्न करता हूँ
किर किस कारणसे तुम मुझ रामकी अपेक्षा हिन
समझते हो ? ॥ ५ ॥

वीरक्षेपेण वा शङ्के पक्षपानन वा रिपा ।

त्ययाह पश्यत्युक्तं परमोन्माहनेन वा ॥ ६ ॥

धूमने जो मुझ कठोर बातें सुनायी हैं, उनक विषय
मुझ शङ्का है कि तुम या तो मुझ जैसे वीरसे हेय रखने
हा या शत्रुसे मिल हुए हो । अथवा शत्रुओंसे ऐसा करने
या करने लिय मुझ शङ्काहिन लिया है ॥ ६ ॥

प्रभवन्त पदस्य हि पश्य कऽभिभावत ।

पण्डितं शास्त्रतत्त्वमा विना प्रोन्माहनेन वा ॥ ७ ॥

जो प्रभावशाली शीघ्र साथ ही अपने राज्यपर प्रतिष्ठित
है, ऐसे पुरुषका कौन शास्त्रतत्त्व विद्वान् शत्रुका प्रकाशनपाप
विना बतारवने मुझ समझता है ? ॥ ७ ॥

अनीयं च यतान् सीता पद्महीनामिव त्रियम् ।

किमर्थं प्रतिशम्यामि गद्यस्य भयादहम् ॥ ८ ॥

हमारीन कमजोरी भाते मुन्दरी सताका यन्ने
आकर भय केत रामक भयन मैं कैसे लपट हूँ ॥ ८ ॥

यत् यानकाटीभिः सगुप्तीष्य सन्तुमणम् ।

पश्य वैश्विद्वहोभिः राधय निहतं मया ॥ ९ ॥

सगुप्तों शत्रुसे फिर हुए मुझी और सम्मगनहित
गमन मैं कुछ ही निमीन मर जाईश पर तुम अपनी
अर्थों देण कता ॥ ॥

इदं यस्य न तिष्ठन्ति दैवतान्यपि सयुग ।

स कस्माद् गवणो युद्धे भयमाहायिष्यति ॥ १० ॥

विजय सामने इन्द्रयुद्धसे देवता भी यहां नष्ट पाते हैं
वही रावण युद्धमें निम्ने भयभीत होगा ॥ १० ॥

द्विधा भज्येयमप्येष न नमय तु कस्यचित् ।

यय म सहजो दोष सभासो दुरतिरम ॥ ११ ॥

मैं बीचमें न दूँ हा 'जऊँ' पर निम्न गमन
सक नहीं सङ्गा, यह मय सहज गी है और स्वभाव
किसीक लिय भी दुर्लभ गता है ॥ ११ ॥

यदि तावत् समुद्रे तु सेतुयुद्धो यदृच्छया ।

रामेण विस्मय कोऽयं यत् ते भयमागतम् ॥ १२ ॥

यदि रामन देवराज समुद्र पर सेतु बंध लिया ता तम
विस्मयकी कौन बात है जिसम तुम्ह कता भय हो
गया है ? ॥ १२ ॥

स तु तन्वापणय राम सह जानस्मनया ।

प्रतिजानामि त सत्यं न जीयन् प्रतिशम्यामि ॥ १३ ॥

मैं तम्हार आगे सभी प्रतिज्ञा करन कता हूँ कि
समुद्र पार करक बानरमनामने आय हुए राम योनि
जीवित नहीं लौक सकन ॥ १३ ॥

यय भुषण सख्यं रूपं रिपाय गरणम् ।

श्रीडितो मात्यवान् वाक्यं तस्मात् प्रत्यययत् ॥ १४ ॥

एसी बातें कहन हुए रावणका नाथन भग हुआ पर
रूप गनकर मात्यवा । बहुत ललित हुआ और जम्मे बा
उत्तर नहीं लिया ॥ १४ ॥

जयादिगो तु गानान् यशसिन्वा यथाश्रितम् ।

मात्यवान्भ्यनुजाना जगाम स्व नियताम ॥ १५ ॥

मात्यवानन 'महारक्षी नर हा' इस विषयबुक
आशीर्वात रावणका यथाश्रित बग लिया और जम्मे अश
लहर वह अपने पर बण गया ॥ १५ ॥

गणयन्तु सहामात्या मप्रयित्वा विमृश्य च ।

लङ्कायान्तु तत्र शुभि कार्यामाप्त गणयन् ॥ १६ ॥

नगनर मन्त्रिसौमिहा राज्ञ रावण परस्पर विचार
विमर्श करक तहा लङ्काका रावण प्रसारण ॥ १६ ॥

व्यादिदेवा च पूज्या प्रहस्य हानिं राक्षसम् ।

स्वियमया महावीर्यो महापापमादादुरो ॥ १७ ॥

पश्चिमायामथ हानिं पुत्रमिद्रवित नदा ।

व्यादिदेवा महामाया गणसंघकभिवृतम् ॥ १८ ॥

उमने पूर्व द्वार पर जम्हा रावण किं रूप प्रहस्य
तनन किन् स्त्रिया द्वार पर जम्हा जम्हा और
महाराज विपुल विजयता अभिन इकार अपने पुत्र का

रस्ता, जो महान् मायावी था । वह बहुतसे राजर्षीद्वारा
धिरा हुआ था ॥ १७ १८ ॥

उत्तरस्यां पुनरिति व्यादिश्य पुनःसारणी ।
स्य चात्र गमिष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ॥ १९ ॥

तदनन्तर नगरम् उत्तर द्वारपर पुनः और राणको
रक्षाये लिये जानेरी आशा दे मन्त्रियोंने राजाने कहा—मैं
स्वयं भी उत्तर द्वारपर जाऊँगा ॥ १९ ॥

राक्षस तु विरूपाक्ष महावीरपराक्रमम् ।
मध्यमेऽस्यापयद्गुप्ते उहृषि सह रात्रौ ॥ २० ॥

नगरके बीचरी छावनीपर ग्यने बहुतसम्बर रात्रौके
साथ महान् बन्धनमसे सगुप्त राक्षस विरूपाक्षसे
ग्यापित किया ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्त्रिंश सर्गः ॥ १६ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमे छतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

विभीषणका श्रीरामसे रावणद्वारा किये गये लङ्काकी रक्षाके प्रबन्धका वर्णन तथा श्रीरामद्वारा
लङ्काके विभिन्न द्वारोंपर आक्रमण करनेके लिये अपने सेनापतियोंकी निशुक्ति

नरवानरराजानो स तु वायुसुत कपि ।

जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषण ॥ १ ॥

अङ्गदो वानिपुत्रश्च नैमिषि शरम् कपि ।

सुवेण सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च ॥ २ ॥

गञ्जो गवाक्ष कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा ।

अमित्रविषय प्राता समवेता समर्थयन् ॥ ३ ॥

शत्रुक देगमें पहुँचे हुए नरराज श्रीराम, सुमिनाकुमार

लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, वायुपुत्र हनुमान्, शृङ्गराज जाम्बवान्

राक्षस विभीषण, बालिपुत्र अङ्गद, शरम्, बन्धु-नाचगौतहित

सुवेण, मैन्द, द्विविद, गञ्ज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस—ये

सब आपसमें मिलकर निचार करने लगे— ॥ १ ॥

इयं सा लक्ष्यते लङ्का पुरी रावणपालिता ।

सासुरोत्तरागन्धर्वैर्मरैरपि दुजया ॥ ४ ॥

यही वह लङ्कापुरी दिखायी देती है, जिसका पालन रावण

करता है । असुर, नाग और गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके

लिये भी इसपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है ॥ ४ ॥

कायसिद्धिं पुनस्कृत्य भ्रम्यन् नितिनये ।

नित्य सनिहिता यत्र रावणो राक्षसाधिप ॥ ५ ॥

भ्रातृसङ्ग रावण इस पुरीमें सदा निवास करता है । अब

आपणोंमें इसपर विजय पानेने उपायोंमें नित्य करनेके लिये

परस्पर निचार करें ॥ ५ ॥

अथ तेषु ह्ययनेषु रावणान्नजोऽप्रवीत् ।

एव विधानं लब्ध्वा दृत्वा राक्षसपुंगव ।

दृत्तदृष्ट्यमिवात्मानं मन्यते, कालचोदित ॥ २१ ॥

इस प्रकार लङ्कामें पुरीकी रक्षासे प्रबन्ध करने वाल-

प्रतिन राक्षसिरामणि रावण अपने आपसे दृढहृत्त्व

मानने लगा ॥ २१ ॥

विसर्जयामास तत्र स मन्त्रिणो

विधानमालाप्य पुरस्य पुष्कलम् ।

जयाशिया मन्त्रिगणेन पूजितो

विवेश सोऽन्तः पुरमृद्धिममहत् ॥ २२ ॥

इस तरह नगरके सरङ्गरी प्रचुर व्ययसाक लिये

आशा देकर रावणने सब मन्त्रियोंका विदा कर दिया और

स्वयं भी उनका निययस्वरूप आशीर्वादसे सम्मानित हो अपने

समुद्रिहाली एव निगल अन्तः पुरमें चला गया ॥ २२ ॥

याक्यमप्राम्यपदवत् पुष्कलार्थं विभीषण ॥ ६ ॥

उन सबके इस प्रकार कहनेपर रावणने छोटे भाई विभीषण

ने स्फुरावत् पद और प्रचुर अर्थसे भरी हुई बाणोंमें

कहा— ॥ ६ ॥

अनलं पनसश्चैव सम्पातिं प्रमत्तिस्तथा ।

गत्वा लङ्का ममामात्याः पुरीं पुनरिहागता ॥ ७ ॥

अग्निमन्त्री अनल, पनस, सम्पाति और प्रमत्ति—ये चारों

लङ्कापुरीमें जाकर फिर यहाँ लौट आये हैं ॥ ७ ॥

भूत्वा शकुनय सर्वं प्रविष्टाश्च रिपोबलम् ।

विधानं निहितं यच्च तद् दृष्ट्वा समुपस्थिता ॥ ८ ॥

ये सब लोग पक्षीका रूप धारण करके शत्रुकी सेनामें

गये थे और यहाँ जा ब्यवस्था की गयी है, उसे अपनी आँखों

देखकर फिर यहाँ उपस्थित हुए हैं ॥ ८ ॥

सविधानं यथादृष्टे रावणस्य दुरात्मनः ।

राम तद् द्रुतं सर्वं याचातभ्येन मे शृणु ॥ ९ ॥

श्रीराम । इन्होंने दुरात्मा रावणने द्वारा किय गयेनगर

रक्षाके प्रबन्धका जैसा यणन किया है, उसे मैं ठीक-ठीक

बताना हूँ । आप यह सब मुझसे सुनिये ॥ ९ ॥

पूर्वं प्रहस्ताः सख्यो द्वारमासाद्य तिष्ठति ।

दक्षिणं च महावीर्यो महापादर्वमहोदरी ॥ १० ॥

सेनासहित प्रहस्त नगरके पूर्वद्वारका आभय लेकर खड़ा

१६ । महाशक्तमी महाशक्त्य और महादर दक्षिण द्वारर पद
है ॥ १० ॥

रन्निव पश्चिम द्वार यस्यसैरुभिर्वृत ।
 पट्टिनासिधनुष्मद्भिः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥ ११ ॥
 नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो यस्यामन ।

बहुसंख्य राशयोंमें मिल हुआ इन्तर्गत नाशक अभिन्न
 द्वारत वरा है। उसमें सभी राशय पन्च, स्वप्न धनुः,
 शूल और तुरा अदि अन्न दान्ना हाथोंमें मिल हुआ है। नाना
 प्रकार जातुर घाता करनेवाले शरीरोंमें मिल हुआ वह
 यन्त्राङ्गना अभिन्नद्वारकी स्फुट मिल उगा है ॥ ११ ॥

राज्यमाता सहस्रंस्तु यदुभिः नम्नपाणिभिः ॥ १० ॥
युक्तं परममग्निनो राक्षसं सह मजन्ति ।
उत्तरं नगरद्वारं राज्यं न्ययमास्थितं ॥ १३ ॥

अथ मन्त्रवेत्ता यथा पुत्र, धन, इति इदं सन् गन्धर्वः
 यस्मैकं सद्यः नगरक उत्तर द्वारम् शङ्कयानीह स्य तदा
 हे । इह मन-श-मन अभ्यन्त उदिम जन पठता है ॥ १ ॥

त्रिरूपायस्तु महता शूलसङ्गधनुष्मता ।
यत्नेन यक्षसै न्नायं मध्यम शुल्ममाश्रित ॥ १० ॥

शिवगाउ झुल, गव्ह जेर धनुष धारा करनेगली
विगल राखलेनार सय नगरन बचवन्न छाननार गव्हा
हे ॥ १४ ॥

पतानेन विधानं गुल्महृदाया समुदीक्ष्य त ।
मामस्य मन्त्रिण सर्वे दीप्य पुनरिहागता ॥ १० ॥

इस प्रकार भरे घर सभी गानों विभिन्न गानों
 निरुत हुइ इन सेनाओंका निरुता परत निर शत्रुओं
 सैन्य है ॥१॥

गन्ताना दशमाहश्च रथानामप्युन तत्र ।
हयानामप्युन ते च साग्रराटिश्च गन्तव्यम् ॥ १८ ॥

पराधीन मैताने दस हज़र हाथा दस हज़र रथ, दस
हज़र पद और एक बराबरी भी ऊपर पैर लाने हैं ॥

विश्रान्ता यत्नदन्ध सशुभप्रदानतापिन ।
इष्ट शान्तमरणस्य निव्यसन निशागरा ॥ १७ ॥

ये सभी बड़े बड़े राजा-राज्य-सैन्य और युद्धमें
अपवृत्त हैं। ये सभी निगलर राजा-राज्य-सैन्य ही
प्रति हैं ॥ १७ ॥

एकैकस्याय युजायै गनसम्य िगायत ।
परीता सहस्रगा सहस्रमुपनिष्टन ॥ १८ ॥

अब नमः ! इनमें एक एक रत्न का नाम मुद्रा लि-
खकर नीचे के स्थानों में भरें ॥ १८ ॥

एता प्रवृत्तिं नृणां मयिप्रोक्ता विनीता ।
 एवमुक्त्या महाशुभं रायमाप्नान्दशयन् ॥ १० ॥

नृदाया सचिने सर्वे रामाय प्रत्येदयत् ।

मन्त्रादु विष्णोर्नामैर्नित्यं कृत्यं गद्य लङ्काविराज
समाचारस्य इत्येव प्रकाशं कृत्यं न नमोऽन्यथा राक्षसं भी
श्रावनेन विष्णोर्नामैर्नित्यं कृत्यं गद्य लङ्काविराज
पुन उतने कृत्यं ॥ १ ३ ॥

सान दमल्पशरमिदमुत्तरमशरीन् ॥ २० ॥
 सान्नापरज श्रिमान् गमप्रियन्दिर्गया ।

तन्मन्त्रं यदाहं ह्यहं भवान् विमाराणे स्मृत्यनन
भीराममे उतसा प्रिय जनन त्विं मय भी दं गतम दत्त
करी-॥ २० ॥

कुपेर तु यत्र राम राक्षसं प्रनियुद्ध्यति ॥ २१ ॥
यष्टि शतम्बहस्राणि तदा नियान्ति रामसा ।

पराक्रमेण धर्मेण तेनसा सत्त्वगुणान् ।
सदृशा ह्यत्र रूपेण गणयन्त्य दुरात्मनः ॥ ७७ ॥

‘आत्म । बर गगाने दुस्तर साथ युद्ध दिन’ था,
उस समय लड़ लागे पड़ते यन्त्र साथ गए थे । वे स्वयं
सब वन ‘अजन्त’, तब, धैर्य ही अभिरक्षा और दारुकी दृष्टिसे
दुर्गम गगान ही समन थे ॥ १७२ ॥

अथ मन्युन कृत्य कोषे त्वा न भीषये ।
समग्रां ह्यसि धीरेण सगणामपि निषे ॥ २३ ॥

मैंने आ सवारी गुनिसा बणन किया है। इसका पद

पर उप ही ज्ञाना चापिय । न भगव इयता नगे धनुर प्रति
 भगव प्रपद्य उमाद रहा हैं क्योंकि अप भजन क
 परममद्वारा ज्ञेय भोगी भी भजन करनेमें समथ हैं ॥२३॥

तद्वाद्यतुरङ्गेण उल्लन महता वृत्तम् ।
 ध्येद्वा यानगनीर निमथिष्यमि रात्रणम् ॥ ३५ ॥

मन्त्रे भव मन्त्रमेनाम् नृणां सनकर ही निष्ठा
चतुर्भिः मनसि । इह ह्युपायान् विनाश कर संशय । २६।

रायणागजे धान्यमर शुचि गयः ।
शक्रा शनिघातामिदं यजनमन्त्रात् ॥ ५ ॥

विभागात् एव वन वननर मातुः भवन्ते
शुभ्रैश्च वननर इव प्रवृत्तः ॥ ॥

पूजहार तु न्याया नीतिं चानपुङ्गव ।
प्रहस्य प्रतियोक्षा म्यादं चानप्यदभिज्ञत ॥ २६ ॥

धृष्टकेतुर्वृषस्यै नमस्तुभ्यः ।
 यः प्रथमः स त्वां वीक्ष्य ॥ २६ ॥

महर्षेः धर्मिषु बभूवुः स्येन महता वृत्तः ।
दक्षिणे गगना द्वात् महासामन्तरात् ॥ ३ ॥

निम्न दृष्टिः तु - कुरा नरः नरः
 निम्न दृष्टिः तु - कुरा नरः नरः ॥ ३ ॥

हनुमान् पश्चिमद्वार निष्पीड्य पयनात्मज ।
प्रतिशत्वप्रमेयात्मा बहुभि कपिभिर्वृत ॥ २८ ॥

‘पयनुमार हनुमान् अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न है ।
ये बहुतने वानरों के साथ लड़ा पश्चिम पाटक्रम प्रवेश
करें ॥ २८ ॥

दैत्यदानयसङ्घानामृषीणा च महात्मनाम् ।
त्रिभुवनत्रयं तुद्रो धरदानरत्नान्वित ॥ २९ ॥
पश्चिममति य सर्गोद्घोषान् सतापयन् प्रजा ।
तस्याह गहसङ्क्रम्य मयमेव यथे धृत ॥ ३० ॥
उत्तर नगरद्वारमह सौमिषिणा सह ।
निरीह्यभिप्रयेक्ष्यामि सख्येने यत्र रावण ॥ ३१ ॥

‘दैत्यों, दानवसङ्घों तथा महात्मा ऋषियों के अप्पन्न
करना ही जिनने मिय लगाना है, जिसरा स्वभाव क्षुद्र है, जा
वरदानवी शक्तिने सम्पन्न है और प्रजावनों का सताप देता हुआ
सम्पूर्ण लोगोंमें घूमता रहता है, उस राक्षसराज रावणके यत्र
का हृद निश्चय लक्ष्मण में स्वयं ही मुमिप्राप्तुमार लक्ष्मणके साथ
नगर के उत्तर पाटनपर आक्रमण करके उसने भीतर प्रवेश
करेंगा;—जहाँ सेनासहित रावण निधमान है ॥ २९-३१ ॥

वानरेद्रक्ष्य पलानुक्षरराजश्च धीयवान् ।
राजसेप्रानुजश्चैव गुल्मे भवतु मय्यमे ॥ ३२ ॥

‘वलवान् वानरराज सुग्रीव, राजोंके परक्रमी राजा
जम्बवान् तथा राक्षसराज रावणके छोटे भाई निभीषण—ये
लगा नगरके बीचन मार्चकर आक्रमण करें ॥ ३२ ॥

न चैव मानुष रूप कार्यं हरिभिराहये ।
एषा भवतु न सखा युद्धेऽस्मिन् वानरे वले ॥ ३३ ॥

‘वानरोंका युद्धम मनुष्यना रूप नहीं धारण करना

हृत्पापै श्रीगङ्गामायणे वाक्यश्रीके आदिकार्ये शुद्धकाण्डे सप्तविंश सर्गः ॥ ३० ॥

‘स प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकार्यके शुद्धकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३० ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः.

श्रीरामका प्रमुख वानरोंके साथ सुबल पर्वतपर चढ़कर वहाँ राजमें निवास करना

स तु कृत्वा सुबेलस्य मतिमारोहण प्रति ।
लक्ष्मणानुगतो राम सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
विभीषण च धमक्षमनुराज निशावरम् ।
मन्त्रश्च स विधिश्च ऋक्षण्या परया गिरा ॥ २ ॥

सुबेल पर्वतपर चढ़नेका निवारकरके जिनके पीछे लक्ष्मण
जी चल रहे थे, वे भगवान् श्रीराम सुग्रीवसे और धर्मके
ज्ञान, मन्त्रवेत्ता, विधिश्च एव अनुगामी निशावर निभीषणसे
भी उत्तम एवं मधुर वाणीमें श्रोते— ॥ १ ॥

सुबेल साधु शैलेद्रमिम धानुशतैश्चित्तम् ।

चाप्ये । इस युद्धमें वानरों की सेनाका हमारे लिये यही सख
या चिह्न होगा ॥ ३३ ॥

वानरा एव नश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन् भविष्यति ।
यद्यपि मानुषेणैव सत योत्स्यामहे परान् ॥ ३४ ॥

‘यस स्वजनगण वानर ही हमारे चिह्न होंगे । यद्यः
हम सत व्यक्ति ही मनुष्यरूपमें रहकर शत्रुओंके साथ युद्ध
करेंगे ॥ ३४ ॥

अहमेव सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महोजसा ।
आत्मना पञ्चमश्चाय सत्ता मम त्रिभीषण ॥ ३५ ॥

‘मैं अपने महातेजस्वी भात्रा लक्ष्मणके साथ रहूँगा और वे
मेरे मित्र निभीषण अपने चार मन्त्रियोंके साथ पोंचवें होंगे
(इस प्रकार हम सत व्यक्ति मनुष्यरूपमें रहकर युद्ध करेंगे)’

स राम कृत्वासिद्धयथमेवमुक्त्वा विभीषणम् ।
सुबेलारोहणे युद्धं चकार मतिमान् प्रभु ।
रमणीयतर दृष्ट्वा सुबेलस्य गिरिस्तदम् ॥ ३६ ॥

अपने निवाररूपी प्रयाजनकी सिद्धिके लिये निभीषणसे
एसा कहकर बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने सुबेल पर्वतपर चढ़ने
का निवार किया । सुबेलपर्वतका तटप्रान्त बड़ा ही रमणीय
था; उसे देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३६ ॥

ततस्तु रामो महता वलेन
प्रच्छन्नय सर्वो पृथिवीं महात्मा ।
ग्रहपुरुषोऽभिजगाम लङ्का
कृत्वा मतिं सोऽस्तिवथे महात्मा ॥ ३७ ॥

तदनन्तर महामना महात्मा श्रीराम अपनी विद्याल सेनाके
द्वारा वहाँकी सारी पृथ्वीका आच्छादित करके ‘गुरुवचना निश्चय
किये बड़े हर्ष और उल्लाससे लङ्काश्री और चले ॥ ३७ ॥

अभ्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ॥ ३ ॥

‘मित्रो । यह पर्वतपत्र सुबेल शैलीका घातुओंसे मलीमोति
भरा हुआ है । हम सब लोग इसपर चढ़ें और आक्रमी इस
राजमें यहाँ निवास करें ॥ ३ ॥

लङ्का चालोक्यविष्यामो निलय तस्य रक्षस ।
येन मे मरणान्ताय हता भाया दुरामना ॥ ४ ॥

‘यहाँसे हमलोग उस राक्षसकी निवासभूत लङ्कापुरीका भी
अवलोकन करेंगे, जिस दुरात्मानने अपनी मृत्युके लिये ही मेरी
मायाका अपहरण किया है ॥ ४ ॥

येन धर्मो न विज्ञातः न वृत्तः न कुलः तथा ।
राक्षस्यानीचया बुद्ध्या यत्नं तद् गहितवृत्तम् ॥ ५ ॥

‘विद्यते न ता धर्मः’ ज्ञातः है, न सत्कारता ही कुल
कमला है और न कुल ही विचार किया है कल राक्ष
सचित नाच उद्धिर कारण ही यह निन्दित कर्म किया है ॥ ॥

तस्मिन् म वतन रोष कीतिने राक्षसाधमे ।
यस्यापराधार्थमप्य वध इत्यामि रम्यसाम् ॥ ६ ॥

‘उस नीच’ राक्षस नाम सेत ही उमर मय राक्ष जग
ठता है । कल उसी अपम निगावरण अराधसे में समन
राक्षसों का वध देवों का ॥ ६ ॥

एको हि कुर्वते पाप कालपाशवश गतः ।
नीचेनामापचारेण कुल तेन विनश्यति ॥ ७ ॥

‘काल’ पापमें बैठा हुआ एक ही पुण्य पाप करता
है, किन्तु उस नीचने अपने ही दाससे सब कुल नष्ट हो जाता
है ॥ ७ ॥

एतं सम्मन्त्रयन्नेव सद्योपो राक्षसं प्रति ।
रामः सुबेलं वासाय चित्रसानुमुपाकृतम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए ही श्रीराम राक्षसक प्रति
कुर्तित हो निचित्र गिरगाल सुबेल परतार निगास करनेके
लिये चला गया ॥ ८ ॥

पृष्ठतो लक्ष्मणश्चैनमम्यगच्छन् समाहितः ।
सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विषममे रतः ॥ ९ ॥

उत्तरे पीठे लक्ष्मण भी महान् पराक्रमसे तत्पर एत
एकामचित ॥ धनुष-बाण लिये हुए उस परतार आया है
गये ॥ ९ ॥

तमन्यारोहत् सुग्रीवं सामान्यं समीचीनम् ।
हनुमानद्भद्रो नीलो मन्दो द्विविध एव च ॥ १० ॥

गणो गयानो गयः शरतो गयमादन ।
पवनं कुमुदधरं हरो रम्यं यूप ॥ ११ ॥

जाम्बवाथ सुपेणथ श्रृंगभय महामति ।
कुमुदधरं महातेजास्तथा शनः कपि ॥ १२ ॥

एतं चाम्यं च सहयो वानरा दीघगामिनः ।
ते वायुगमप्रशान्त गिरि गिरिगामिणः ॥ १३ ॥

समभान् सुग्रीवः मन्त्रिगोमन्त्रि विभीषणः हनुमान्
अद्भुतः नीलः मन्दः द्विविधः शरः शरः शरः शरः
गन्धमादनः पवनः कुमुदः हरो यूपगति रम्यः जाम्बवान्
सुग्रीवः महामति श्रृंगभयः महातेजो दुर्मुख तथा कपि

शनः कपि—य शर लक्ष्म भी बहुतसे गांगामी वानर जो
वायुन समान गेयस चन्देरा तथा परापर हा विचरनसा
ये, उस मुलेपरिपर चला गया ॥ १०—१२ ॥

अध्यागेहन्त शनरा सुबेल यथ राक्षस ।
तं त्यगीयेण काचन गिरिगामिणः सजतः ॥ १४ ॥

सुबेल परतार चली श्रीरामाधी विजयमान थे, य
केन्द्रों वानर बाही हा रम्य चला गया और चक्कर लगा
आर विचरने लगे ॥ १४ ॥

दृष्टुं निखरे तस्य शिखामित्रं ये पुरीम् ।
ता शुभा प्रवरद्वारा प्राप्तापरशोभिताम् ॥ १५ ॥
लङ्का राक्षससम्पूर्णा दृष्टुं हरिपूषपा ।

उन वानर-यूयनिगोंने मुक्कपतनम शिखरपर गइ हा
उस सुन्दर लङ्कापुरीसा निरीक्षण किया, जा आकाशम ही बनी
हुई थी जान पड़ती थी । उमर चटक चला माहर थे ।
उत्तम परश्वर उस नगरीकी गाभा कानत थ तथा यह पुरी
राज्यमें भरी-पूरी थी ॥ १५ ॥

प्राकारवरस्तस्यैव तथा नीचैश्च राक्षसैः ॥ १६ ॥
दृष्टुं स्ते हरिषेष्टां प्राप्तापरमपर कृतम् ॥ १७ ॥

उत्तम परागोंपर गये हुए नालरण राक्षस एते जान
पड़ते थे, माना उन परकीयोंपर दूसरा परकाग बना लिया गया
हो । उन भेड वानरोंने यह सब कुछ देखा ॥ १६ १७ ॥

ते हृष्टा वानरा सर्वे राक्षसान् युद्धपाक्षिणः ।
सुमुखगिरिधानं नादास्तस्य रामस्य पश्यन् ॥ १८ ॥

सुद्धरी इच्छा रखनेवाले राक्षसों का देखकर ये वानर
श्रीरामने देखते देखत नाना प्रकारसे चिन्ता करने लगे ॥

ततोऽस्तमगमन् स्युः सन्ध्या प्रतिगजितः ।
पूणचन्द्रप्रदीता च श्रृंग समनिरततः ॥ १९ ॥

तदनन्तर सन्ध्या की सलील रंग हुए सन्ध्या अन्तान
का चले गये और पूणचन्द्रमाग प्रकाशित उज्ज्वली एत वहाँ पर
आर छा गया ॥ १९ ॥

ततः स रामो हरिवाहिनीरति
विभीषणेन प्रतिनन्द्य सन्तुष्टः ।

सन्धमणो यूयपयूयसपुन
सुबेलपृष्ठे न्ययसद् यथासुखम् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् विभीषणास्य सन्धमणी हा वानरों का
समी श्रीरामने अपने भाई लक्ष्मण और यूयपयूयस
के साथ सुबेलपृष्ठ पर दृष्टान्तराष्ट्रगृह निगास किया ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्यमीहिये आदिषाये सुद्धकाण्डाष्टाविंशः सर्गः ॥ १८ ॥

इमं प्रकाशं यः पश्यति तेनैव कृतं कृतं कृतं कृतं कृतं कृतं ॥ १८ ॥

एकोनचत्वारिंश सर्ग

वानरोंसहित श्रीरामका सुपेल शिखरसे लङ्कापुरीका निरीक्षण करना

ता रात्रिमुपितास्तत्र सुपेले हरियूथपा ।
लङ्काया दृष्टुमीरा उन्मत्पुष्यवनानि च ॥ १ ॥

वानर यूथपनिशाने व रात उस सुपेलपरतपर ही निगीही
और वहामे उा वीरोंने लङ्काका वन और उपवन भी
देखे ॥ १ ॥

समसौम्यानि रम्याणि प्रियालान्यायतानि च ।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुजातविस्मया ॥ २ ॥

य वदे ही चौरसः शान्तः सुन्दरः विद्याल और विस्तृत
ये तथा देखनेमें अत्यन्त रमणीय जान पड़त थे । उहें देख
कर उन सब वानराको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २ ॥

चम्पकाशोकवकुलशालतालसमाकुला ।
तमालभनसद्यश्च नागमालासमावृता ॥ ३ ॥
हिन्तालैर्जुनेर्नारैः सप्तपर्णैः सुपुष्पितैः ।
तिलकैः कणिकारैश्च पाटलैश्च समन्ततः ॥ ४ ॥
शुशुभे पुष्पिताम्रैश्च रत्नापरिगतैर्दुर्गैः ।
लङ्का बहुविधैर्दिव्यैर्यथेद्रस्यामरावती ॥ ५ ॥

चम्पा, अशोक, बकुल, शाल-और ताल वृक्षोंसे व्याप्त;
तमाल-वनने आच्छादित और नागनेछरोंसे आवृत लङ्कापुरी
हिताल, अर्जुन, नीप (बदाम), तिल हुए उतनक
तिलक, कनेर तथा पाटल आदि नाना प्रकारके दिव्य वृक्षोंसे
जिनके अग्रभाग फूलोंके भारसे लदे थे तथा जिनपर लता
बल्लरियों कैंची हुई थीं, इद्रकी अमरावतीने समान शोभा
पाती थी ॥ ३-५ ॥

विविधकुसुमोपेतैः रक्तकोमलपल्लवैः ।
शाकलैश्च तथा नीलैश्चिन्नाभिर्वनराजिभिः ॥ ६ ॥

विचित्र फूलोंसे युक्त लाल कोमल पल्लवों, हरी हरी
घासों तथा विचित्र वन-शियोंसे भी उस पुरीकी बड़ी शोभा
हो रही थी ॥ ६ ॥

गन्धाढ्यान्त्यतिरम्याणि पुष्पाणि च फलानि च ।
धारयन्त्यगमास्तत्र भूषणानीन मानवा ॥ ७ ॥

जैसे मनुष्य आभूषण धारण करते हैं, उसी प्रकार
वहाँके वृक्ष सुगन्धित फूल और अत्यन्त रमणीय फल धारण
करते थे ॥ ७ ॥

तच्चैश्वर्यसफारा मनोऽहं नन्दनोपमम् ।
यन सर्वतुल्य रम्य शुशुभे पट्पदायुतम् ॥ ८ ॥

चैश्वर्य और नन्दनवने समान वहाँका मनोहर वन
सभी श्रुतजनों के मनमें व्याप्त हो रमणीय शोभा धारण
करता था ॥ ८ ॥

शान्त्यूहकायप्रियकैर्नृत्यमानैश्च वहिर्णैः ।
वन परमृताना च शुशुभे वननिहरे ॥ ९ ॥

दास्यूह, कायष्टि, वक् और नाचते हुए मार उस वनको
मुगधित वन थे । वनमें हारनोंके आस्पाव काटिली बूक
मुनायी पड़ती थी ॥ ९ ॥

नित्यमन्त्रविह्वलानि भ्रमराचरितानि च ।
कोकिलाकुलखण्डानि विह्वगाभिरुतानि च ॥ १० ॥
भ्रमराज्जाभिर्गीतानि कुरुरस्सनितानि च ।
कोणालकविधुगानि सारसाभिरुतानि च ।
विविशुस्ते ततस्तानि वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥

लङ्काका वन और उपवन नित्य मन्त्रवाले विह्वलमें
विभूषित थे । वहाँ वृक्षाधी डालिंपार भारे मेंडराते रहते
थे । उनका प्रत्यक्ष खण्डमें काकिलोंके कुह-कुह बोला करती
था । पक्षी चढ़चढ़ाते रहते थे । भ्रमराजन गीत मुखरित
होते थे । कुरुरके शब्द गूँजा करते थे । कोणालकके कछर
होते रहत थे तथा सारसोंकी स्वरलहरी स्रग् और छापी
रहती थी । कुछ वानरवीर उन वनों और उपवनोंमें
सुख गये ॥ १०-११ ॥

हृष्टा प्रमुदिता वीरा हरय कामरूपिण ।
तेषा प्रविशता तत्र वानरणा महौजसाम् ॥ १२ ॥
पुष्पसखसंगसुरभिर्यैः घ्राणसुखोऽनिल ।
अन्ये तु हरिबीराणा यूथाक्षिप्सन् यूथपा ।
सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता लङ्का जम्मु पताकिनीम् ॥ १३ ॥

य सभी वीर वानर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले;
उत्साही और आनन्दमग्न थे । उन महातेजस्वी वानरोंके
वहाँ प्रवेश करते ही फूलोंके सखसंगे सुगन्धित तथा प्राणेश्वरोंकी
मुख देनेवाली मन्द वायु चलने लगी । दूसरे बहुतसे
यूथपात उन वानर वीरोंके समूहसे निकलकर सुग्रीवकी आज्ञा
ले ध्वज-भताकाओंसे अलङ्कृत लङ्कापुरीमें गये ॥ १२-१३ ॥

विश्रासयन्तो विह्वलान् व्यापयन्तो भृगुद्विपात्र ।
कम्पयन्तश्च ता लङ्का नादैः स्वैर्नदता वरा ॥ १४ ॥

गर्जनेवाले व्यापोंमें भ्रष्ट वे वानरवीर अपने विह्वलादते
पक्षियोंको डपट, भृगों और हाथियोंके हर्ष छीनते तथा
लङ्काको कम्पित करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ १४ ॥

कुर्वन्तस्ते महावेगा मर्हौ चरणपीडिताम् ।
रजश्च सहसैर्योर्ध्वं जगाम चरणोत्थितम् ॥ १५ ॥

वे महान् वेगशाली वानर पृथ्वीका जब चरणोंसे दबात
थे, उस समय उनके पैरोंसे उठी हुई पूल स्रक्ष करस्र
उड़ जाती थी ॥ १५ ॥

अथा सिंहाद्य महिषा धारणाद्य मृगा रक्षा ।

तेन शब्देन विप्रस्ता जम्भुभौता दिशो दश ॥ १६ ॥

वानरैश्च उच्यते सिंहादने श्रम एव भयभीतं हृष्टं वीर्यं,
हिंस्रं, भस्ति, हापी, मृग और पक्षी दसों दिशाओं की ओर
भाग गये ॥ १६ ॥

शिखरं तु विवृट्पुत्रं प्राणु चैव दिविस्पृशम् ।

समन्तात् पुष्पसदृशं महारजतमनिभम् ॥ १७ ॥

निवृट् परतरा एव निरतरं वृत्तं ऊँचा था । वह
देखा जान पड़ता था; माना स्वर्गलोकों से रहा हो । उसपर
सब ओर पील रंगक फूल सिल हूए थे; जिनसे वह खनेरा
सा जान पड़ता था ॥ १७ ॥

शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदशनम् ।

रक्ष्यन् धीममहच्चैव दुष्प्रापं शत्रुनैरपि ॥ १८ ॥

उच्यते शिखरं नितारं सौ योजनं था । वह दृष्टनेमें बढ़ा
ही सुन्दर, स्वच्छ, स्निग्ध, कान्तिमान् और विप्राप्य था ।
पक्षियोंके लिये भी उसकी चौदीतन पहुँचना कठिन
होता था ॥ १८ ॥

मनसापि दुरारोहं हि पुनः कम्पना जनैः ।

निविष्टा तस्य शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥ १९ ॥

लेग निवृट्क उच्यते शिखरं मनः द्वारा चानेकी
कल्पना भी नहीं कर सकते थे । फिर निपाटारा उसपर
आरुढ़ होनेकी ता यान ही क्या है ! रावणद्वारा पालित
लङ्का निवृट्क उसी शिखरपर बसी हुई थी ॥ १९ ॥

दशयोजनविस्तीर्णा निशायोजनमायता ।

सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसनिभैः ।

काञ्चनेन च शालेन राजतेन च शोभत ॥ २० ॥

वह पुरी दस योजन चौड़ी और बीस योजन लम्बी थी ।
छन्द शालेन समान ऊँचे-ऊँचे गोपुर तथा खाने और
चौकीय परमार उमारी शाला खाने थे ॥ २० ॥

प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ।

धनैरिवानपापाय मध्यम वैष्णव पन्म ॥ २१ ॥

जैन प्रोप्ता अन्तराल—वशा श्रुतमे पनाभूत शाल
आरागरी शाला बढ़ाते हैं, उसी प्रकार प्रासादों और

विमानोंमें लङ्कापुरी अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥ २१ ॥

यस्या स्तम्भसदृशेण प्रामाद समल्लटत ।

कैलासशिखरमारोह्यते समिधोद्धिगन् ॥ २२ ॥

उच्यते पुरीमें सदृश स्तम्भोंसे अल्लट एक कैलासशिखर
था, जो कैलासशिखर समान दिखाने देता था । वह
आरागरी मापता हुआ-सा जान पड़ता था ॥ २२ ॥

चैत्यं स राक्षसेन्द्रस्य यभूव पुग्भूषणम् ।

शतेन रक्षसा नित्यं य समग्रेण रक्ष्यत ॥ २३ ॥

राक्षसराज रावणरा वह चैत्यशिखर लङ्कापुरीरा
आभूषण था । वह सौ राक्षस रक्षक सभी राक्षसानों सम्पन्न
होकर प्रतिदिन उसकी रक्षा करते थे ॥ २३ ॥

मनोशा काञ्चनरत्नं परतैरुपशोभिताम् ।

नानाधातुविविधैश्च उद्यानैरुपशोभिताम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार वह पुरी बढ़ी ही मनाहर, सुशोभनी,
अनेकानेक पत्तनोंसे अल्लट, नाना प्रकारकी विविध
धातुओंसे चित्रित और अनेक उद्यानोंसे सुशोभित थी ॥ २४ ॥

नानाविहगमसुधा नानामृगनिवेयिताम् ।

नानाकुसुमसम्पन्ना नानाराक्षससेयिताम् ॥ २५ ॥

मौलि भौतिर निरुद्धम बहों अपनी मधुर बली बाल
रहे थे । नाना प्रकारक मृग आदि पशु उसका भोजन करते थे ।
अनेक प्रकारक फूलोंकी सम्पत्ति वह सम्पन्न थी और विविध

चन्द्राक्षरं वृष, वृषाक्षरं और अष्टाक्षर । इनका जान बमच
वेराज सुषक, देवता सारक और विविध हैं । भूमि अष्टक
और शिखर आन्धी मृगना-अधिकारके कारण इन लोकोके
नी नी भू माने गये हैं । जैस वेराक्षरके मेघ, मन्दर, विमान
अदक सर्वलोकके बचक मन्त्र नाना-वचन और शिवम्
सुषकन बलवी गृहस्थ, शालागृह, मन्दिर, विमान मन्दिर,
अनन उष्ण और विविधरूप वेराक्षरके बन्धु दुःखि वम
महावद अदक सर्वलोकके बचक मन्त्र, मन्त्र और
गवाहक मालके मन्त्र वृष, वृष गृह निह भू-प भू-प
और वृषोपर तथा विविधरूप वम वम दुःखि वम वम
वम स्तनिक छत्र वम, वृष और विविध ।

२ आद्यप्रमाणसे जान सकते हैं । एव ओ देवता आदि के
पात्र होना है विमान कहलाना है । मन्त्र मन्त्रिक मन्त्रिक
और विमान कहते हैं । प्राचीन काण्डिकाके अनुसार उच्यते
दशनिर्वाह विमानकी संज्ञा दी गयी है का उद्धरी और प हा
हाहा पहा गवा हा । मन्त्रकार जायक मन्त्रिक मन्त्रिक अनुसार
विमान मन्त्र और मन्त्रिक और मन्त्रिक मन्त्रिक है । मन्त्रिक मन्त्रिक
मन्त्रिक मन्त्रिक और मन्त्रिक मन्त्रिक कहते हैं (विनि
प्रमाणसे) ।

१ अमरशब्दके अनुसार देवताओंके मन्त्रों तथा राक्षसोंके
मन्त्रोंके प्रामाद कहते हैं । प्राचीन काण्डिकाके अनुसार वरुण कथा
और, कथा और वरुण भूविषय कथा या वरुणक कथा वृष
मध्य भवन मन्त्रोंके अनेक गृह, गृहस्थ और अष्टक आदि हो
प्राप्ता कहा गया है जगने वरुणके वरुणोमे सुक वरुण
चन्द्राक्षर मन्त्र और वृषाक्षर बनी होती है । अष्टकिके
मन्त्रे वरुणके प्रामादके वरुण मन्त्रिक मन्त्रिक—चन्द्राक्षर,

प्रसार आनारस्य राधग यत् नित्यं वरते ॥ २५ ॥

ता समृद्धा समृद्धा लक्ष्मीर्वाहुक्षमणाग्रज ।

रावणस्य पुरीं रामो ददश सह वानरे ॥ २६ ॥

धन धान्यमे सभन्न तथा सगुणं मनाऽच्छित्त वस्तुओंसे
मरी शरी उस रावण पुरीमें लक्षण बड़े भाई लक्ष्मीयन्
श्रीरामन वानरोंसे साथ देखा ॥ २६ ॥

ता महायुहसम्वाधा दृष्ट्वा लक्ष्मणपूज ।

नगरीं त्रिदिचमस्या विस्मय प्राप धीयवान् ॥ २७ ॥

बड़े-बड़े महलेंसे तथा बनी हुई उस स्वर्गलस्य

दृष्टाये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये भाविकाये युद्धकाण्डे पञ्चोत्तराध्यायः सर्ग ॥ २७ ॥

इत प्रकार प्रोवा मीकिनेर्मित आपरामायण अदिकायक युद्धकाण्डमे अताऽध्यायः सर्ग पूरा हुआ ॥ २७ ॥

चत्वारिंश सर्ग

सुग्रीव और रावणका मछपुद्

ततो राम सुधेलाप्र योजनद्वयमण्डलम् ।

उपारोहत् ससुग्रीवो हरियुधै समन्वित ॥ १ ॥

तदनन्तर वानरयूयाने युक्त सुग्रीवपदित श्रीराम सुवेष्ट-
पत्रके सरसे ऊँचे गिरपर चले, जिसका विस्तार दो
योजनका था ॥ १ ॥

स्थित्वा मुहूर्तं तत्रैव दिशो दश विलोकयन् ।

त्रिकूटशिखरे रम्ये निमिता विभ्रकमणा ॥ २ ॥

ददश लङ्का सुन्यस्ता रम्यमाननशोभिताम् ।

वहाँ दो घड़ी ठहरकर दसों दिशाओंकी ओर दृष्टिपत
करते हुए श्रीरामने त्रिकूट पर्वतसे रमणीय शिखरपर सुन्दर
ढगले उठी हुई विश्वकमाद्वारा निमित लङ्कापुरीको देखा,
जा मनोहर काननोंसे सुशोभित थी ॥ २ ॥

तस्य गोपुरभृङ्गस्थ राक्षसेन्द्र दुरासदम् ॥ ३ ॥

ध्वेतचामरपयन्त विजयन्छत्रशोभितम् ।

रक्षचन्दनसलिल रत्नाभरणभूषितम् ॥ ४ ॥

उस नगरके गोपुरकी छत्रभ ऊँचे बुलब राक्षसराज
राग्य नैठा दिखायी दिया, जिसके दाना और ध्वेत चमर
डुल्लये जा रहे थे, छिरपर विजय-छत्र शोभा दे रहा था ।
रावणका सारा शरीर रक्षचन्दनसे चर्चित था । उसने अङ्ग लाल
रंगके आभूषणसे विभूषित थे ॥ ४ ॥

नीलजीमूतसकाश हेमसञ्छादिताम्रवरम् ।

पेरारवतविपाणान्निष्ठप्रणिणवक्षसम् ॥ ५ ॥

बढ़ काले मेरक समान ज्ञान पड़ता था । उसने बल्लोपर
सोनेके काम किया गये थे । ऐरावत हाथीके दाँतोंके
मर्मभागमे आहत होनेके कारण उसने बल ग्यलमे व्यापत-
चिह्न बन गया था ॥ ५ ॥

गरीरो देवसर पराजमी श्रीराम बड़ मिमित हुए ॥ २७ ॥

ता रक्षापूणा बहुसन्निधाना

प्रासादमालभिरल्लृप्ता च ।

पुरीं महायत्रकथाट्मुत्था

ददश रामो महता वलेन ॥ २८ ॥

इस प्रकार अपनी गिराल सेनाके साथ श्रीरामानयनीने
अनेक प्रकार रलेंसे पूजा, तरह-तरहकी रचनाओंसे
सुसजित, ऊँचे-ऊँचे महलोंकी पत्तिले अट्ट और बड़े-बड़े
यंत्रोंसे युक्त मजबूत किराणोंवाली बड़ अद्भुत पुरी देखी ॥ २८ ॥

शशलोहितरागेण मनीन रक्षसासता ।

सध्यातेन सञ्जल मेघपशिमिवाभ्यरे ॥ ६ ॥

सरागोने रक्षे समान लाल रंगसे रंगे हुए बल्लसे
आच्छादित होकर बड़ आकाशम सध्याकालकी धूपसे ढकी हुई
मेघमालासे समान दिखायी देता था ॥ ६ ॥

पश्यता वानरेऽपि राघवस्यापि पश्यत ।

दर्शनाद् राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीव सहस्रोत्थित ॥ ७ ॥

मुख्य-मुख्य वानरों तथा श्रीरामानयनीके सामने ही
राक्षसराज रागपर दृष्टि पड़ते ही सुग्रीव सहसा खड़े हो
गये ॥ ७ ॥

श्रोधधेगेन सयुक्त नत्वेन च वलेन च ।

अचलाप्राक्ष्योत्थाय पुप्सुवे गोपुरस्थले ॥ ८ ॥

वे श्रोधधे वेगसे युक्त और शारीरिक एवं मानसिक बलसे
प्रेरित हो सुलेके गिरसे उठकर उस गोपुरकी छतपर
बूढ़ पड़े ॥ ८ ॥

स्थित्वा मुहूर्तं सम्प्रेक्ष्य निर्भयेनान्तरालम्ना ।

तृणीहृत्य च तद् रक्ष सोऽग्रनीत् पठय धव ॥ ९ ॥

वहाँ बड़े होकर वे कुछ देर तो रावणको देखते रहे । फिर
निर्मलचित्तसे उस राक्षसको निनकसे समान समझकर वे बठोर
बाणीमें बोले— ॥ ९ ॥

लोकनाथस्य रामस्य सखा वासोऽसि राक्षस ।

न मया मोक्षयेऽद्य त्व पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥ १० ॥

राक्षस ! मैं लोकनाथ भगवान् श्रीरामका सखा और
दास हूँ । महाराज श्रीरामके तेजसे आज तू मेरे शास्त्रसे छूट
नहीं चरेगा ॥ १० ॥

इत्युक्त्या सहस्रोत्पन्नं पुष्ट्युत्तमं चोपरि ।

आरुप्य मुकुटं चित्रं पानयामास तद् भुवि ॥ ११ ॥

ऐसा कहकर ये अस्सन् उठकर रागात् ऊपर जा
कूदे और उसमें विचित्र मुकुटों का खोचकर उन्होंने पृथ्वीपर
मिला दिया ॥ ११ ॥

समीक्ष्य तृणमायान्तं यथापे त निशाचर ।

सुप्रारम्भं परीक्ष्य महीनामो भविष्यसि ॥ १२ ॥

उह इस प्रकार तीन गणिते करने ऊपर आनमण करने
देण रागने कहा—अर! जगत वू मेरे सामने नहीं आया
था। तभीतक सुप्रार (सुन्दर रूपमें युक्त) था । अर ता वू
अनी इस प्रागमे रणित हो जायगा ॥ १२ ॥

इत्युक्त्यो याय त क्षिप्रं यादृश्यामाक्षिपत् तले ।

यदुबत् स समुद्रं यय यादृश्यामाक्षिपद्वरि ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर रागने अनी दा मुजाओंद्वारा उन्हें धीमे
ही उगारके उस छतरी फहरा दे मारा । फिर बानरराव मुमीय
ने भी गैदकी तरह उठकर रागना। कनों मुजाओंसे उठा
लिया और उनी फहरा करने पड़ दिया ॥ १३ ॥

परस्पर स्वेदयिद्विधगात्री

परस्पर शोणितरुद्धदेही ।

परस्पर ह्लिष्टनिरुद्धदेही

परस्पर शाल्मलिर्किङ्किणयि ॥ १४ ॥

फिर ता ये दोनों आपसमें मुँह गव । दोनों ही गरीर
पशनेमें तर और लुत्तने लयय हा गय तथा दोनों ही एक
दूसरे का पकड़में आनेक कारण निचेष्ट हार लिङ्ग हुए सेमल
और पगल नामक वृद्धों समान निचापी देने लगे ॥ १४ ॥

मुष्टिप्रहारंश्च तलप्रहारं

ररन्तिगर्भंश्च करामर्धान ।

तौ चरन्तुमुडमसरारूपं

महारणं रायसजानेद्वी ॥ १५ ॥

उभयतर राग और बानरराव मुष्टा दनों ही बड़े
बलवान् थे। अतः दोनों घुँस, घाँड़, बान्नी और पञ्जोंकी
मारक साथ साथ अगण युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

एत्या नियुद्धं भृशमुपवेगौ

कालं विर मोषुरावदिमये ।

उन्मिष्य घोमिष्य निमिष्य देहौ

पादप्रमादं गापुत्पेदिलग्नौ ॥ १६ ॥

रागुर चक्रात्तर वलुन दलक मण मन्त्रयुद्ध करके
य मन्त्रयुद्ध दोनों गरीर बरकर एक दूसरे का उछाट
और छारा हुए पड़ों विषय क्षारवैर लय लय
चलत उस चक्राते गये ॥ १६ ॥

अन्योन्यमापोष्य निमिष्यदेही

तौ पेतु साग्नित्पानमये ।

उत्पेतुभूमितलं मृगान्तो

स्थित्या मुहूर्तं त्वभिनिष्यसन्तौ ॥ १७ ॥

एक दूसरे का दबाकर परस्पर मण हुए गरीराल व दोनों
बाधा निमिष परसा और सादर बीचमें मिर गय । यहाँ
होंते हुए दो घड़ानक वृद्धी का अभिनिष्य क्रिय पड़ रहे ।
तन्मयात् उठकर खड़े हो गय ॥ १७ ॥

यात्लिङ्गयन्वालिङ्गयन् राहुयोर्नम्रं

सपोजयामासनुगहय तौ ।

सरम्भशिंगारलसम्प्रयुक्ती

सुखेरतु सम्प्रति युद्धमार्गं ॥ १८ ॥

फिर ये एक दूसरे का गरीर आलिङ्गन कर उनमें बाहु
पागमें जकड़ने लगे । गनों ही साथ गिगा (मन्त्रयुद्ध
विषय अन्याव) तथा गरीर लयसे सान्निधे अतः उठ
युद्धस्थलमें कुत्तीर अनेक हों पच निगात हुए भ्रमण करने
लगे ॥ १८ ॥

शाल्मलिर्किङ्किणयि जानद्वी

गजेन्द्रपोतायि सम्प्रयुक्ती ।

सहस्य संयय च तौ कगम्या

तौ पतन्तु युगपद् धगयाम् ॥ १९ ॥

जितर नयनय दोनों निरुद्ध हों। एम बार और शिंक
बयों तथा परस्पर लड़त हुए गम्यकर छाट छानों समान
ये गनों वीर अनेक यन्त्रालम् एन दूसरे का दबात और
हाथोंमें परस्पर बल आक्रमण हुए कर साथ ही प्रचार
मिर पड़ ॥ १९ ॥

उद्यम्य चान्यात्यमधिगम्यन्तौ

सम्प्रतमानं यद् युद्धमार्गं ।

व्यायामिगारलसम्प्रयुक्ती

इमं न तौ जम्भतुगुगु दीर्घौ ॥ २० ॥

दनों हा फहरा जगन य आर युद्धा गिग तथा दल
से सम्प्रति ये। अतः युद्ध जगनर क्रिय यदमार्ग हा एक
दूसरे का अग्न करत हुए युद्धमार्ग पर अनेक प्रकारसे निगा
करत ये तथापि उन योंका जम्भ धरन्त नहीं हवा था ॥

यादृशमैशरणधारणार्थं

निशायन्तौ पराशरणार्थं ।

विरेप कालेन भृशं प्रयुज्ज

समन्तमुपगच्छन्त्यामायुः ॥ २१ ॥

मार्ग हाथों समान मन्त्र अतः राग परस्पर
उछाटकर ही मर्ति मण एन दल परस्पर एक दूसरे
का दबात छारा हुए वलुन पड़ा दल मन्त्र लय
युद्ध करत और मन्त्रालम् मण दल ॥ २१ ॥

तै। परस्परमासाद्य यत्ताप्यन्येयसुदने ।
माजरायिन भक्षार्थेऽतस्तथा मुहुमुहु ॥ २० ॥

वे परस्पर भिन्नर एक दूसरेको मार डालनेका प्रयत्न कर रहे थे । जैसे दा विलागि सिंधी भक्ष्य उस्तुवे लिये क्रोध प्रकट म्पित हा परस्पर दण्णित कर बारबार गुरते रहते हैं, उसी तरह रावण और सुग्रीव भी लड़ रहे थे ॥ २१ ॥

मण्डलानि त्रिचित्राणि स्थानानि विविधानि च ।
गोमूत्राणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ २३ ॥

त्रिचित्र मण्डल और भौति भौति स्थानेन प्रदर्शन करते हुए गोमूत्र की रेखाएं समान पुच्छल गतिसे चलते और त्रिचित्र गतिसे कभी आगे चले और कभी पीछे हटते थे ॥ २३ ॥

तिरस्त्रीनगताम्येय तथा यमगतानि च ।
परिमोक्ष प्रहाराणा वजन परिधानम् ॥ २४ ॥
अभिद्रवणमाश्रयमस्थान सविग्रहम् ।

परानुत्तमपाउत्तमपद्रुतमग्लुतम् ॥ २५ ॥

उपन्यस्तमपन्यस्त युद्धमार्गविशारदौ ।
तौ त्रिचरतुल्येन्य धान्तेऽप्य रात्रम् ॥ २६ ॥

वे कभी तिरछी चालसे चलते, कभी देड़ी चालसे दायें बायें घूम जात, कभी अपने स्थानसे हटकर शत्रुके प्रहारको रोक कर देते, कभी उदलमें स्वयं भी दौड़ पंचरा प्रयोग करके शत्रुके आक्रमणसे अपनेको बचा लते, कभी एक खड़ा रहता तो दूसरा उसके चारों ओर दौड़ लगाता, कभी दोनों एक दूसरेके समुद्र शीमतापूर्ण दौड़कर आक्रमण करते, कभी छनकर या मेढ़ककी भाँति धीरेसे उठकर चलते, कभी लड़ते हुए एक ही जगहपर खिर रहते, कभी पीछेकी ओर लौट पड़ते, कभी सामने गड़-खड़े ही पीछे हटते, कभी विपक्षीको पकड़नेकी इच्छासे अपने शरीरको सिंगेड़कर या छत्राकर उसकी ओर दौड़ते, कभी प्रतिद्वंद्वीपर रैखे प्रहार करनेके लिये नीचे मुँह निते उसपर टूट पड़ते, कभी प्रतिपक्षी थोड़ाकी बौद्ध पकड़नेके लिये अपनी बौद्ध फैला देते और कभी निपक्षीकी पकड़ने उचनेके लिये अपनी गोंहोंकी पीछे खींच लेते । इस

द्वारायें श्रीमद्भारमयणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चत्वारिंश सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चत्वारिंश सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

प्रभार मल्लयुद्धकी कलमें परम प्रीति वानरराज सुग्रीव तथा रात्रण एक दूसरेपर आगत करनेके लिये मण्डलान्तर निचर रहे थे ॥ २४-२६ ॥

एतस्मिन्तन्त्रे गच्छो मायायलमगतम् ।
आरम्भमुपसम्पदे ज्ञात्वा त वानगधिप ॥ २७ ॥
उत्पपात तदाऽऽकाश जितभाशी जितह्वम् ।
रावणः स्थित एषाथ हरिराजेन वञ्चित ॥ २८ ॥

इसी बीचम राक्षस रात्रणने अपनी मायापत्तिने कम छेने का विचार किया । वानरराज सुग्रीव इस बातको ताड़ गये इसलिये रहता आराधमें उठल पड़े । वे विजयोन्मासे सुग्रीवनि होते थे और यन्त्राटको जीत चुक थे । वानरराज रात्रणको चक्रमा देकर निहल गये और वह खड़ा-खड़ा देखता ही रह गया ॥ २७-२८ ॥

अथ हरिवरनाय प्राप्तसमामकीर्तिं
निशिचरपतिमजौ योजयित्वा श्रेणम् ।

गगनमतिगिशालं लङ्घयित्वा र्क्षसु
हरिणयलमगये तमपाद्वर्जजगाम ॥ २९ ॥

जिन्हें सामने कीर्ति प्राप्त हुई थी, वे वानरराज सूर्यपुत्र सुग्रीव निशिचरपति रात्रणसे युद्धमें यन्त्राट अत्यन्त विशाल आकाशमाग्रा लङ्घन करके वानरोंकी सेनाके बीच भीरुम चन्द्रजीने पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

इति स सविदुस्सुस्तत्र तत्कम वृत्त्या
पवनगतितनीक प्राविशत्सम्प्रहृष्ट ।

रघुवरपुसत्सोर्धयन् युद्धहर्षे
तदमुगगणमुख्ये पूज्यमानो हरीद्र ॥ ३० ॥

इस प्रकार यहाँ अद्भुत कम करक वायुक समान शीम-गामी सूर्यपुत्र सुग्रीवने दशरथपञ्चकुमार भीरामके युद्धविषयक उत्साहको बताते हुए बड़े हर्षके साथ वानरसेनामें प्रवेश किया । उस समय प्रधान प्रधान वानरोंने वानरराजका अभि नन्दन किया ॥ २ ॥

१ भरतने मल्लयुद्धमें चार प्रकारके मण्डल बताये हैं । इनके नाम हैं—चारिमण्डल, करणमण्डल, खण्डमण्डल और महा मण्डल । इनके लक्षण इस प्रकार हैं—एक पैरसे आगे कण्ठकर चकर बाटते हुए शत्रुपर आक्रमण करना चारिमण्डल कहा जाता है । दो पैरसे मण्डलाकार घूमते हुए आक्रमण करना करणमण्डल कहा गया है । अनेक करणमण्डलोंका संयोग होनेसे खण्डमण्डल होता है और तीन या चार खण्डमण्डलोंके संयोगसे महामण्डल कहा गया है ।

२ भरगुनिने मल्लयुद्धमें छ स्थानोंका उल्लेख किया है—वैष्णव, समपाद वैज्ञान मण्डल, प्रसादीली और वनाली । वेरोंको आगे पीछे अगकमलमें चलाते हुए विशेष प्रकारसे उन्हें यथास्थान स्थापित करना ही स्थान कहा जाता है । कोई कोई वाप सिंह आदि जगुओंके समान खड़े होनेकी शक्तनी ही स्थान कहते हैं ।

एकचत्वारिंशः सर्गः

श्रीरामका सुग्रीवको दुःसाहससे रोकना, लङ्काके चारों द्वारोंपर वानरमैत्रियोंकी नियुक्ति, रामदत्त अङ्गदका रावणके महलमें पराक्रम तथा वानरोंके आक्रमणसे रावणको भय

अथ तस्मिन् निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूजम् ।

सुग्रीव सत्परिष्वज्य रामो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सुग्रीव गरीमें युद्धक विह्वल देखकर लक्ष्मणसे बड़े भाई श्रीरामसे उहँ दृढ़दमने लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

असम्भ्रम मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम् ।

एतं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनैश्चरा ॥ २ ॥

‘सुग्रीव ! तुमने मुझसे सहाई लिये जिना ही यह बड़े साहसका काम कर डाला । राजालोग ऐसे दुःसाहसपूर्ण कार्य नहीं किया करते हैं ॥ २ ॥

सहाये स्थाप्य मा चेदं नलं चेम विभीषणम् ।

कष्टं दृष्टमिदं पीतं साहसं साहसप्रिय ॥ ३ ॥

‘साहसप्रिय वार ! तुमने मुझको, इस जानसेनाको और विभीषणको भी सज्जम डाँटकर जो बड़े साहसपूर्ण कार्य किया है, इनसे हमें बड़ा कष्ट हुआ ॥ ३ ॥

इदानीं मा दृष्ट्वा वीर एवविधमस्मिन् ।

त्वयि विचिन्तयामासे किं कार्यं सीतया मम ॥ ४ ॥

भारतेन महाराष्ट्रो लक्ष्मणेन ययिष्या ।

शत्रुजेन च शत्रुघ्न स्वशरारेण वा पुनः ॥ ५ ॥

‘शत्रुघ्नो दमन करनेवाला वीर ! अब फिर तुम ऐसा दुःसाहस न करना । ‘शत्रुघ्न’ महाशत्रु ! यदि तुम्हें कुछ हो गया तो मैं सीता, भरत, लक्ष्मण, छान्दास भाई ‘शत्रुघ्न’ तथा अपने इस ‘शरार’ भी लाने क्या करूँगा ? ॥ ४ ॥

त्वयि चानागतं पूरमिति मे निश्चिता मतिः ।

जानतश्चापि तं वीर्यं मेहेन्द्रशरणोपमं ॥ ६ ॥

हत्वात् रावणं शुद्धे सपुत्रवशाहनम् ।

अभिविज्य च लङ्कायां विभीषणमयापि च ॥ ७ ॥

भक्तं राज्यमाप्त्यै त्यक्त्य देहं महाबलम् ।

‘मेहेन्द्र और वरुण समान महाशक्ति ! यद्यपि मैं तुम्हारा वरुणाक्रमण जानता हूँ, तथापि अनेक तुम यहाँ लाने की आज्ञा से, उद्यम पढ़ा मैंने यह निश्चित किया कि तुम्हें पुत्र, सत्ता और शत्रुघ्नद्वारा रावण का विजय करने का साहस विभीषणका अभिरुह कर डूँगा और अन्तर्गत रावण भोजन कर अपने इस शरीरको त्याग दूँगा ॥ ६ ७ ॥

तस्य यादिन राम सुग्रीव प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥

तत्र भाषयत्पुनरु दृष्ट्वा रावणं रावणम् ।

मर्यापि वधं पीर जानन् विप्रमामन ॥ ९ ॥

ऐसी बातें करने हुए श्रीरामको सुग्रीवने यों उत्तर दिया—‘वीर रघुनन्दन ! अपने पराक्रमी जान रावण हुए मैं आपको भाषाया अदृष्ट करदेगा रावणको देखकर मैंने भ्रमा कर सकता था ॥ ८ ॥

इत्येव यादिन वीरमभिनय च राघव ।

लक्ष्मण लक्ष्मिसम्पत्तिमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

वीर सुग्रीवने जब ऐसी बात कही तो तबरा अभिनन्दन करन श्रीरामचन्द्रजीने क्षाप्रालम्बन लक्ष्मणसे कहा—॥ १० ॥

परिशुद्धोदकं शीतं वनानि पलवन्ति च ।

यत्पौष्ट्यं सतिभज्येयं व्यूहं निष्ठाम लक्ष्मण ॥ ११ ॥

‘लक्ष्मण ! शीतल जलसे भरे हुए जंगल और पत्तोंसे कम्पन करनेवाला आशय लक्ष्मण इस विधान वानरसेनाका विभाग करन व्यूहरचना कर ल और युद्धक स्थिति उद्यत हो जायें ॥ ११ ॥

लोकभयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।

निरहणं प्रसीरणाभ्युपगमनस्ययाम् ॥ १२ ॥

‘जिस समय मैं लक्ष्मणसे शत्रुसेना के दमन भयानक अराजक स्थिति पश्या है जिसमें मित्र शत्रु ही नहीं, बल्कि और शत्रुओं सुख-सुख वीरोंका शत्रु होगा ॥ १२ ॥

घाता हि परयं यान्ति कम्पनं च वसुधरा ।

परतापानि यपन्ते नन्दन्ति धरणीं चरा ॥ १३ ॥

‘प्रचलन आधी गल रही है, जमीन कांपने लगी है, परतों गिरने लगे हैं और जंगल काँपने लगे हैं ॥

मया पश्यादसंशया परया परम्परा ।

दूरा दूरं प्रपन्नं मिथं नोतिनयिष्यति ॥ १४ ॥

‘अब शत्रु वीरों समान दूर हो गये हैं । य वरुण अपने विरुद्ध गमना करने हैं तथा रत्न विभूषणों में हुए वीरों की दूरतारी पता कर रहे हैं ॥ १४ ॥

रत्नचन्दनमणानां स्वध्या परमदातृणां ।

उपलब्धं निपत्येनैर्दृष्टिर्न्याद्विमग्ना ॥ १५ ॥

‘अनेक रत्न तथा रत्नचन्दन समान रत्न विभूषणों में हैं । यही रत्न उज्ज्वल भाग्य पुत्रों के हैं ॥ १५ ॥

आनन्दमभिरुचयानि जनयन्ता मन्त्रयम् ।

दीप्ता दीनमया घाता अग्रान्ता मृगहिजा ॥ १६ ॥

‘निर्गन्ध पुत्र और रत्न समान दीप्ता मन्त्रय—मन्त्रों में हैं । यही अनेक रत्न इन्हें प्राप्त हैं, इन्हें पश्या अनेक रत्न और मन्त्र अनेक रत्न हैं ॥ १६ ॥

रजन्यामप्रकाशश्च सनापयति चन्द्रमा ।
छण्णरक्तानुपर्यन्तो यथा लोम्स्य सङ्घये ॥ १७ ॥

प्राप्तं चन्द्रमा प्रकाश क्षीण हो जाता है। ये शीतल्लापी जगह स्ताप देते हैं। उनके किनारे का भाग काफ़ा और लाल दिखायी देता है। समस्त लोकों का सारकालमें चन्द्रमा का जैसा रूप रहता है, वैसा ही इस समय भी देखा जाता है ॥ १७ ॥

हृस्यो रुक्षोऽप्रदास्तश्च परिचेय सुलोहित ।
आदित्यमण्डले नील लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ १८ ॥

लक्ष्मण ! सूर्यमण्डलमें छोटा, रुखा, अमङ्गलकारी और अत्यन्त लाल पैरा दिखायी देता है। साथ ही यहाँ काल चिह्न भी दृग्गन्तर होता है ॥ १८ ॥

दृश्यते न यथाऽथ नक्षत्राण्यभिवर्तते ।
युगान्तमिव लोम्स्य पदय लक्ष्मण शसति ॥ १९ ॥

लक्ष्मण ! ये नक्षत्र अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हो रहे हैं—मलिन दिखायी देते हैं। यह अनुभूत लक्षण ससारका प्रलय-सा सूचित करता हुआ मेरे सामने प्रकट हो रहा है ॥ १९ ॥

काका इयेनास्तथा गुप्रा नीचैः परिपतन्ति च ।
शिशश्चाप्यनुभा पात्र प्रदन्ति महास्वना ॥ २० ॥

कौए बाज और गीध नीचे गिरत हैं—भूतलपर आ आ बैठते हैं और गीदहियों बड़े जोर जोरसे अमङ्गल सूचक बोली बोलती हैं ॥ २० ॥

शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुचैः क्षपिराश्रुतैः ।
भविष्यत्यानुता भूमिर्मांसशोणितशर्दमा ॥ २१ ॥

भूतसे सूचित होता है कि वानरों और राक्षसों द्वारा चलाये गये गिलाखड्गों, शूलों और राक्षसों से यह धरती पट जायगी और यहाँ रक्त-मांस की बीच जम जायगी ॥ २१ ॥

क्षिप्रमद्य दुराधर्मा पुंर्य रात्रणपालिताम् ।
अभियाम जयेनैव सर्गतो हरिभिर्वृता ॥ २२ ॥

रात्रणके द्वारा पालित यह लङ्कापुरी शत्रुओंके लिये दुःख है; तथापि अत्र हम गीध ही वानरों के साथ इसपर सब आरसे वेगपूर्वक आक्रमण करेंगे ॥ २२ ॥

इत्येव तु घटन् वीगे लक्ष्मण लक्ष्मणाग्रज ।
तस्माद्वातरच्छीघ्र पर्यताम्रा महाबल ॥ २३ ॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहते हुए वीर महाशूरी श्रीरामचन्द्रजी उस पत्रत गिरासे तत्काल नीचे उतर आये ॥ २३ ॥

अवतीय तु धमात्मा तस्माच्छलात् स राघव ।
परैः परमदुर्धर्षे ददर्श बलमात्मन ॥ २४ ॥

उस पर्यन्तसे उतरकर धमात्मा श्रीरघुनाथजीने अपनी

मेनाता निरीक्षण किया, जो शत्रुओं के लिये अत्यन्त दुःख थी ॥ २४ ॥

सनत्ता तु ससुग्रीव क्षपिराजबल महत् ।
कालशो राघव काले सयुगायाभ्यचोदयत् ॥ २५ ॥

क्षिप्र सुग्रीवजी सहायतासे क्षपिराजजी उस गिराल सेनाको मुग्नित करके समयका शान रखने-काल श्रीरामने प्यातिपदास्त्रात् गुप्त समयमें उसे बुद्धके लिये बूच करने की आज्ञा दी ॥ २५ ॥

तत काले महाबाहुर्बलेन महता वृत् ।
प्रस्थित पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुख पुरीम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर महाबाहु धनुषधर श्रीरघुनाथजी उस विशाल सेनाके साथ शुभ सुहृत्तमें आगे आगे लङ्कापुरी की ओर प्रस्थित हुए ॥ २६ ॥

त विभीषणसुग्रीवौ हनूमाज्जाम्बवान् नल ।
शृङ्गाराजस्तथा नीलो लक्ष्मणध्यान्ययुस्तदा ॥ २७ ॥

उस समय विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, शृङ्गाराज जाम्बवान्, नल, नील तथा लक्ष्मण उनमें पीछे-पीछे चले ॥

तत पश्चात् सुमहती पृतनभयनौकसाम् ।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स राघवम् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् रीजों और बानरों की यह विशाल सेना बहुत बड़ी भूमिका आच्छादित करके श्रीरघुनाथजीने पीछे-पीछे चली ॥ २८ ॥

शैलशृङ्गाणि शतश प्रवृद्धाश्च महीरुहान् ।
जगृहूः कुञ्जरप्रख्या वानराः परदारणा ॥ २९ ॥

शत्रुओंके आगे बढनेसे रोक्ने-वाले हाथीके समान विशालमाय वानरोंने सैकड़ों गैलशिवरो और बड़े-बड़े वृक्षोंसे हाथमें ले रक्खा था ॥ २९ ॥

तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
राघवस्य पुरीं लङ्कामासेदुत्तरदिशौ ॥ ३० ॥

शत्रुओंका दमन करने-वाले ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण थाड़ी ही देरमें लङ्कापुरीके पास पहुँच गये ॥ ३० ॥

पताकामालिनीं रम्यामुद्यानधनशोभिताम् ।
चित्रवामा सुदुष्प्रापामुच्चैः प्राकारतोरणाम् ॥ ३१ ॥

यह रमणीय धनजा-पताराओंसे अलङ्कृत थी। अनेकानेक उद्यान और वन उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके चारों ओर बड़ा ही अद्भुत और ऊँचा परकोट था। उस परकोटसे मिला हुआ ही नगरका खदर फाटक था। उन परकोटों के कारण लङ्कापुरीमें पहुँचना कठिन लिये भी अत्यन्त कठिन था ॥ ३१ ॥

ता सुदैरपि दुर्धर्मा राममक्षयप्रोदिताः ।

यथानिदेश सर्गादय न्यविदन्त यनैकस ॥ ३२ ॥

यद्यपि देवताओं लिये भी लङ्कारा आक्रमण करना कठिन काम था ता भी भीरुमकी आशने प्ररित हो वानर यथाव्यान रहकर उस पुरीर घेरा छालकर उसर भीतर प्रवेश करने लगे ॥ ३२ ॥

लङ्काराम्नुत्तरद्वार शैलशृङ्गमिश्रोघनम् ।
राम सहानुनो धन्वी जुगोप च रुधेध च ॥ ३३ ॥

लङ्कारा न्तर द्वार परतगिरर समान ऊँचा था । भीराम और लम्हने धनुष हाथमें लंर उसरा मार्ग रूँक लिया और वनी रहकर न अनी मेनाकी रखा करने लगे ॥

लङ्कारामुपनिश्रुन्तु रामो दशरथात्मज ।
लक्ष्मणानुनो धीम पुरीं गगनपालिताम् ॥ ३४ ॥
उत्तरद्वारमासाद्य यत्र तिष्ठति राजग ।
नान्यो रामादि तद् द्वार समथ परिरक्षितुम् ॥ ३५ ॥

दशरथनन्त वीर भीराम लक्ष्मणरा साथ ले राजग पालि लङ्कारापर पास जा उत्तर द्वारपर पहुँचर वहाँ स्वय राज राहा था, वही इ गय । भीरामने सिवा दूसरा काइ उन द्वारपर अने धनियोंकी रण करनेमें समय नहीं हा उरना था ॥ ३४ ३५ ॥

राजणाधिष्ठित भीम यरणेन सागरम् ।
स्वायुधे रायसैर्भीमैरभिगुल समन्त ॥ ३६ ॥

अब गजधारी भयकर शङ्खोंद्वारा सब अरेने सुखित उस भयानर द्वारपर राजग उठी तर राहा था, अने वरग देवता समुद्रमें अधिष्ठित होने हैं ॥ ३६ ॥

गूढता श्रामजनन पानालमिद दानै ।
स्त्रियस्तानि च योषाना बहुनि विविधानि च ॥ ३७ ॥
दशरायुधजालानि तथैव कवचानि च ।

वह उत्तर द्वार अन्य बलशाली पुरुषोंन मनमें उठी प्रकार भय जन्य बन रहा था, जेने दानोंद्वारा सुखित पानाल भयानर जन पड़ता है । उस द्वार भीतर यशोभोर वस्तुने मीति मीतिर अर गन्ध और वचन रखे गय थे, जिन्हें भगवान् भीरामने देगा ॥ ३७ ॥

पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीले हरिचमूपनि ॥ ३८ ॥
मतिष्ठत् सह मैन्देन द्विदिन च धीयन्त ।

वनरसेनागने पराक्रमी नर मैन्द और द्वित्रिने साथ लङ्कार पूर्वांगपर खरर रट गय ॥ ३८ ॥

अद्भुतो दग्निद्वार जगद् सुमहाबल ॥ ३९ ॥
आग्नेय गवाक्षं गत्रेण गयेन च ।

महानी अद्भुत श्रेष्ठ गराय गत्र और गराय साथ दग्नि द्वार अरकर बना लिया ॥ ३९ ॥

हनुमान् पश्चिमद्वार ररक्ष यत्नान् कपि ॥ ४० ॥
प्रमाथिप्रघसत्प्रया च वीररन्वैश्च सगत ।

प्रमाथी, प्रघस तथा अन्य वानरोंन साथ बलवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने पश्चिम द्वारका मार्ग रन लिया ॥ ४० ॥

मध्यमे च स्वय गुल्मे सुग्रीव समतिष्ठत् ॥ ४१ ॥
सह सर्वैर्हरिधैर्ध सुपणपनोपमै ।

उत्तर और पश्चिम मध्यभागमें (वायव्यभागमें) जो शङ्खसेनाकी जानी थी, उत्तर गरुड़ और वायुन समान वेगशाली श्रेष्ठ वानरोंन साथ सुग्रीवने आक्रमण दिया ॥

वानराणां तु पट्टिदशकोट्य प्रत्यानयूथपा ॥ ४२ ॥
निरीक्ष्योपनिशितश्च सुग्रीवो यत्र वानर ।

वहाँ वनराज सुग्रीव थे, वहाँ जानरोंन छलक करुड़ नियान यूपरने यधोंन पाहा देने हुए अभित रहते थे ॥ ४२ ॥

शासनेन तु रामस्य लक्ष्मण सन्निभीरण ॥ ४३ ॥
द्वारे तरे हरीणां तु कोटि कोटीन्यवेशयत् ।

भीरामकी आशने विभागमगने लक्ष्मणने लङ्कार प्रत्येक द्वारपर एक एक करुड़ जानरोंन नियुक्त कर दिया ॥

पश्चिमेन तु रामस्य सुपेण सहचाम्ययान् ॥ ४४ ॥
अदूरा मध्यमे गुल्मे तस्थौ बह्व्यालानुग ।

सुरेण और जम्बरान् बहुनसी मनार साथ भीरामवत्त जीन पीठ बाही ही दूरर खरर वीरर मक्की रण करने र ॥ ४४ ॥

ने तु वानरादूला शालूला इव दग्नि ।
गृहीत्वा द्रुमशैलाग्रान् हृण युद्धाय तस्थिरे ॥ ४५ ॥

य वानरोंन बाधार समान बलवान् गणोंन युक्त थे । य हय और उल्कामें भरर हा ठोने वृष और परत गिरर लिय युद्धन लिय रट गय ॥ ४५ ॥

सर्वे विहृतलाङ्गूला सर्वे दधानरायुधा ।
सर्वे विहृतत्रिशूला सर्वे च विहृतानना ॥ ४६ ॥

सभी वानरोंन वृँठें शयक धारा अन्धभाविन रूपने नि रही थी । दाढ़ और नग ही न नगर आयुध थे । उन सरर सुर आदि अद्वार शयक विकारक विविध विन परिक्षित हत थे तथा सरर सुर रिद्ध एर रिद्धन लिया देन थे ॥ ४६ ॥

दधानागधला बेरिन् बेरिन् दामुगोत्तराः ।
बेरिन्नागसहस्रस्य बभूयुस्तुल्यविममा ॥ ४७ ॥

इनमें द्विती वनरमें दम हरिच च था, वर उनमें भी दम्बुन अधिक बलवान् । तथा द्वि में एक हदर हरिच समान बन था ॥ ४७ ॥

सन्ति वीधयः केचित् केचिच्छत्रगुणोत्तरा ।

अग्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन् हरियूथपा ॥ ४८ ॥

किन्नाम दस हजार हाथियों की गति थी, काह इनसे भी
सौ गुने उत्तमान थे तथा अन्य बहुततर यानर यूथपतियोंम
तो बलका परिमाण ही नहीं था । वे अभीम वज्राली थे ॥

अद्भुतश्च विचित्रश्च नेपाभासीत् समामगम ।

तत्र यानरसैन्यानां शलभानामिवोद्यमः ॥ ४९ ॥

वहाँ उन गानसेनाओंका टिड्डीदल ज उद्यमज समान
अद्भुत एव विचित्र समामग हुआ था ॥ ४९ ॥

परिपूर्णमिशकाशं सम्पूर्णैव च मेदिनी ।

लङ्कामुपनिर्दिष्टं सम्पतद्भिश्च यानरैः ॥ ५० ॥

जङ्गम उल्लङ्घनर आने हुए गानरोंमें आग
भर गया था और पुरीमें प्रवेश करके लङ्का हुए रसिद्धोंमें
वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी थी ॥ ५० ॥

शत शतसहस्राणां घृतनक्षत्रनौकसाम् ।

जङ्गाङ्गागन्धुपाजम्बुरये योद्धुः समन्ततः ॥ ५१ ॥

रीठों और यानरोंकी एक करोड़ सेना तो लङ्का चारों
द्वारोंपर आकर बदी थी और अन्य सैनिक सब ओर युद्धके
लिये चल गये थे ॥ ५१ ॥

आवृत्त सगिनि सङ्गस्तैः समन्तात् प्लुगद्भ्यः ।

अयुतानां सहस्रं च पुरीं तामभ्यजततः ॥ ५२ ॥

समस्त गानरों चार ओरसे जस निरुद्ध परतको
(निरपर लङ्का बसी थी) घेर लिया था । सख अयुत
(एक करोड़) यानर तो उस पुरीमें सभी द्वारोंपर लङ्गी
हुई सेनाका समाचार लनेके लिये नगरमें सर और घूमते
रहते थे ॥ ५२ ॥

यानरैर्यलज्जिभिश्च नभूष दुग्मपाणिभिः ।

सर्वतः स्रवृता लङ्का बुध्रवेशापि यायुना ॥ ५३ ॥

हाथमें बृद्ध लिय रत्नान् यानरोंद्वारा सब ओरसे घिरी
हुई लङ्कामें वायुके लिय भी प्रवेश पाना कठिन हो गया था ॥

राक्षसा विस्मय जम्भुः सहस्राभिनिपीडिता ।

यानरैर्मैघमकारौ शम्भुतुल्यपगादभौ ॥ ५४ ॥

मेघके समान काले एव मयकर तथा इन्द्रतुल्य पराक्रमी
यानरोंद्वारा सहस्रा पीडित होनेके कारण राक्षसोंको बड़ा
विस्मय हुआ ॥ ५४ ॥

महाज्ज्योत्सोऽभयत् तत्र यलोधस्यभिव्रततः ।

सागरस्येव भिक्षस्य यथा स्यात् सलिलस्य ॥ ५५ ॥

जैसे सेतुकी निदीर्घ कर अगत्या मण्डानको तोड़कर
बहनेवाले समुद्रके जलका महान् आद होता है, उसी प्रकार

वहाँ आनमण करनी हुई विगल यानरोंका महान् कोलहल
हो रहा था ॥ ५५ ॥

तेन शब्देन महता सप्रमाणा सनेवणा ।

लङ्का प्रचलिता भवत् समीकषनकानना ॥ ५६ ॥

उस महान् कोलहलसे परागों, फटकों, पतलों,
बलों तथा यानरोंसहित समूची लङ्कापुरीमें हलनल मच गयी ॥

रामश्चमणमुमांसा मुमुर्षिणि च वाहिनी ।

यभूज दुधन्तरा सर्वगपि मुरासुरैः ॥ ५७ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवसे सुरभि उह विगल यानर
वाहिनी समस्त देवताओं और असुरोंके लिय भी अत्यन्त दुःख
हो गयी थी ॥ ५७ ॥

राघवः सनिवेद्यैव स्वसैन्य रमसा वधे ।

सम्मन्य मन्त्रिभिः सार्वे निश्चित्य च पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

आनन्तर्यमभिप्रेत्यु व्रतयोगोऽतस्त्विति ।

त्रिभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुसरन् ॥ ५९ ॥

अङ्गद वालितनयः समाह्वयेदमग्रिन् ।

इस प्रकार गङ्गछोंके बचके लिय अपनी सेनाको यथा
रमान लङ्गी करके उसके बादक कर्तव्यको जाननेकी इच्छासे
श्रीरघुनाथजीने मन्त्रियोंके साथ बारबार सलाह की और एक
निश्चयपर पहुँचकर साम, दान आदि उपायोंके क्रमशः प्रयोग
से मुलभ होनेवाला अर्थतः जाने आता श्रीराम विभीषणकी अनु
मति से राजधर्मका निचार करते हुए वालिपुत्र अङ्गदके बुल
कर उनमें इस प्रकार बोले— ५८-५९ ॥

गत्वा सौम्य दशग्रीव बृहि मद्रचनात् कपे ॥ ६० ॥

लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भय त्यक्त्वा गतयथ ।

अष्टग्रीवः गतैर्भवैः मुमुषानपवेतनम् ॥ ६१ ॥

‘सौम्य [कपिपत्न] दशमुख रावण रायलक्ष्मीसे भ्रष्ट
हो गया, अब उसका ऐश्वर्य समाप्त हो चला, वह मरना ही
चाहता है, इसलिये उसकी चेतना (विचार शक्ति) नष्ट हो
गयी है । तुम परशुमे लौघर लङ्कापुरीमें भय छोड़कर आओ
और व्यापारहित हो उसके मेरी ओरसे ये बातें कहो— ६०-६१
अष्टग्रीवा देवतानां च गन्धर्वाप्सरसा तथा ।

नागानामथ यक्षाणां राक्षसां च रजनीवर ॥ ६२ ॥

यद्यपि पाप हत मोहादवलितेन राक्षसः ।

नूनं ते विगतो दुर्गः स्वयभूवरदानजः ।

तस्य पापस्य सम्प्राप्ता व्युष्टिरस्य मुरासदा ॥ ६३ ॥

‘निशाचर ! राक्षसराज ! तुम्हने मोहवशा घमस्में आकर
श्रुति, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और राक्षसोंका
वधा अपराध किया है । ब्रह्माजीसे वरदान पाकर तुम्हें जो
अभिमान हो गया था, निश्चय ही उससे नष्ट होनेका अब समय
आ गया है । इसलिए उस पापका दुःख फल आज उपस्थित
है ॥ ६२-६३ ॥

यस्य दण्डधरस्नेहः नगरहरणमर्शित ।
दण्ड धार्यमाणस्तु लङ्काद्वारे ध्वजस्थित ॥ ६४ ॥

“मैं अराधितों का दण्ड देनेवाला प्राप्त हूँ । तुमने जो
मरी मायाका प्रत्यक्ष किया है, इसने मुझे बड़ा कष्ट पहुँचा
है अतः तुम्हें उसका दण्ड देने के लिये मैं लङ्का के द्वार पर आकर
तला हूँ ॥ ६४ ॥

पदार्थों देवताता च महर्षीणा च राक्षस ।
रात्र्यर्षणा च सर्वेषां गमिष्यमि युधि स्थिर ॥ ६५ ॥

“रात्रि । यदि तुम युद्धमें स्थिरतापूर्वक रहें रहें तो मैं समस्त
देवताओं, महर्षियों और राक्षसों की पदवीता पहुँच आऊँगे—
उदासी भौंते तुम्हें परितोषाधी होना पड़ेगा ॥ ६५ ॥

बलेन येन वै मीमा मायया राक्षसाधम ।
मामतिशमयिष्या त्वं हनवास्तत्रिदशाय ॥ ६६ ॥

“मैंने निश्चय । जिस बल से मरने तुमने मुझे धन्य
देकर माया की ताका हर्षा किया है, मैंने आज युद्ध में मैंने
मं लिया ॥ ६६ ॥

अगमसमिमि जैक कवासि निशितं शतै ।
न च उरणमभ्येति तामादाय तु मेयिगीम् ॥ ६७ ॥

“यदि तुम मिल्के युद्धमारी को हार मरी गरणम नहीं
आते तो मैं अरने नीचे बाणों द्वारा इस संकर को राखोंमें सुना
कर दूँगा ॥ ६७ ॥

धर्मात्मा राक्षसप्रभु सम्प्रानाऽय विभाषण ।
लङ्काध्यामिदं धीमान् भुय प्राप्नोत्यवष्टकम् ॥ ६८ ॥

“राखोंमें अष्ट व धीमान् धर्मात्मा विभाषण भी मरे
जाय वहाँ आय है, निश्चय ही लङ्का का निष्पट्ट काय है
ही प्राप्त होगा ॥ ६८ ॥

नदि राज्यमधर्मेण भोक्तु क्षणमपि न्यया ।
शस्य मूरमहायेन पापनाविदितामना ॥ ६९ ॥

“तुम पता है । तुम्हें अरने स्वर्ग का रत्न नहीं है और
उधारे क्षीरसागरी भी मूर है अतः इस प्रकार अपमानार्थक
अतः तुम एक क्षण भी इस राक्षस नहीं मरने लगने ॥ ६९ ॥

मुष्यस्य मा घृति वृद्धा शीयमाज्यस्य राक्षस ।
मच्छरैर्यस्य रणे दान्तस्तन वृत्तो भविष्यति ॥ ७० ॥

“मरण । शूराता आश्रय लक्ष्य पाण कर मर साथ
मुद कर । राक्षसोंमें मरे वहाँमें दान्त (मायास्थ) है कर
तुम वृत्त (उद एव निष्ठा) है अरने ॥ ७० ॥

यथाविदामि तेराक्षीन् पत्नीभूतो निनागर ।
मम उन्मुपश प्रत्य न जीयन् प्रतियस्यमि ॥ ७१ ॥

“निनागर । मरे दृष्टिमें अतः पक्षी यदि तुम
पत्नी शत्रु लोगों के हाँमें उड़ें और डिगा दिया तो भी अरने
पराजित नहीं होऊँगे ॥ ७१ ॥

प्रवामि त्वा हित वक्ष्य मियतामीनेद्विष्टम् ।
सुहृष्टा त्रियता लङ्का जीयित ने मयि स्थितम् ॥ ७२ ॥

“अतः मैं तुम्हें हित की बात बताता हूँ । तुम अन्ता भाद
कर दाल—फलकमें मूर देने का दान पुत्र कर ली और
लङ्का की मस्कर दान ली अतः तुम्हारा बीजन मरे अर्धन
हो चुका है” ॥ ७२ ॥

इत्युक्तं स तु तारेयो रामेणाहिष्ममणा ।
जगामाश्रमाविश्य मूर्तिमानिव ह्यशब्द ॥ ७३ ॥

अतावाध ही महान् वम करनेवाले भगवान् धीरामने
एक रत्न के तापुमार अर्धन मूर्तिमान् अन्तिरी भौंते
आराधनामें चले गये ॥ ७३ ॥

सोऽपिप्य मुहूर्तेन धीमान् रात्रमन्दिरम् ।
दृष्ट्वासीनमध्यम रात्रि सज्जित ॥ ७४ ॥

धीमान् अर्धन एव ही मुहूर्ते परकोण लापर रात्रि
रात्रमन्तमें चले गये । वहाँ उदाहने मन्त्रियों साथ गान्त
मारने वेश हुए रात्रि देखा ॥ ७४ ॥

तनस्तस्याविदूरण निपत्य हरिषुगव ।
ईतागिनिरदशस्तस्याध्वद्द वनकाह्म ॥ ७५ ॥

यानरभद अर्धन कनेर बाहुन पने हुए थे और
प्रशस्ति अन्तिर समान प्रशस्ति हा रहे थे, वे रात्रि
निकट पहुँचकर गड़े हो गये ॥ ७५ ॥

तद् रामत्रय नमस्म्युनाधिरमुत्तमम् ।
सामान्य आचयामास निदेशमानमात्मना ॥ ७६ ॥

उन्होंने एव अन्ता परिचय दिया और मन्त्रियों के
रात्रि की शीरमन्त्रिणी की वरी हृद छाड़ी उत्तम दान रात्रि
लो मुना दौ । न ता एक मा शब्द कम रात्रि और न
बनाया ॥ ७६ ॥

दूतोऽह कोमलेन्द्रस्य रामस्याहिष्ममणा ।
यान्तिपुत्रोऽहो नाम यदि त धाममागत ॥ ७७ ॥

वे वर—मैं अन्तराह है वर वर उत्तम कर्म करने का
वशस्त्र मरण शीरमणा दूत और वलीता पुत्र अर्धन
है । सम्मर है कभी मर ना भी तुम्हारे हाँमें पड़ा
है ॥ ७७ ॥

याह त्वा रात्रयो रामे कामत्यानन्दप्रथन ।
निपत्य प्रतिमुष्यस्य नृत्तस्य पुत्रो भव ॥ ७८ ॥

यात्रा वेशस्त्र अन्तराह वरनेरा रात्रिणी वर भी
रामने तुम्हारे लिये वर वर दित है—“तुम्हारा रात्रि । अतः
मर का और मने वर निष्पट्ट दूतने मर गान्ता
कर ॥ ७८ ॥

हन्तानि रम सहामान्य मयुधमतिराधयम् ।

निरुद्धिन्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हत त्वयि ॥ ७९ ॥

“मैं मन्त्री, पुत्र और बन्धु-बा-पोंसहित तुम्हारा वध करूँगा क्योंकि तुम्हारे मारे आनेमें क्षीनों लोगोंके प्राणी निर्मय हो जायेंगे ॥ ७९ ॥

देवदानधयक्षाणा गार्ध्वोरगरक्षसाम् ।
शशुमरोद्विरिप्यामि त्वामृषीणा च ऋष्टकम् ॥ ८० ॥

“तुम देवता, दानव, यक्ष, गार्ध्व, नाग और राक्षस—
सभीने शत्रु हो । ऋषियोंके लिये तो वटकरूप ही हो अतः
आज मैं तुम्हें उगवाइ फँडूँगा ॥ ८० ॥

निभीरणस्य चैभ्यै भविष्यति हत त्वयि ।
न चेत् सत्पुत्र्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि ॥ ८१ ॥

“अतः यदि तुम मेरे चरणोंमें गिरकर आन्दर्जक क्षीता
का नहीं लौटाओगे तो भर हाथसे मार जाओगे और तुम्हारे
मारे जानेपर लड्डाका सारा देश्य निभीरणको प्राप्त होगा” ॥ ८१ ॥

इत्येष परप वाक्य सुशाने हरिपुङ्गवे ।
अमर्षवशमापन्नो निज्ञाचरणेभ्यः ॥ ८२ ॥

वानरगिरमणि अङ्गदके ऐसे कठोर वचन कहनेपर
निज्ञाचरणोंका राजा राजग अत्यन्त अमर्षित भर गया ॥ ८२ ॥

ततः स नेपथमापन्न दशशस सवित्रास्तदा ।
शृङ्गनामिति दुर्मेधा धृष्यतामिति चासहत् ॥ ८३ ॥

ऐसेसे भरे हुए रावणने उस समय अपने मन्त्रियोंसे बार
बार कहा—“पकड़ ले इस दुर्बुद्धि वानरको और मार
बाल” ॥ ८३ ॥

रावणस्य वच श्रुत्वा वीरताग्निमित्र तेजसा ।
जघृक्षुस्त ततो घोराश्चत्वारो रजनीचरा ॥ ८४ ॥

रावणजी यह बात सुनकर चार मयकर निज्ञाचरणोंने
प्रज्वलित अग्निमें समस्त तेजस्वी अङ्गदकी पकड़ लिया ॥ ८४ ॥

प्राहयामास तारेय स्वयमात्मानमात्मवान् ।
बल दशयितुं धीरो यातुधानगणे तदा ॥ ८५ ॥

आत्मनसे सम्पन्न ताराकुमार अङ्गदने उस समय राक्षसों
को अपना बल दिवानेके लिये स्वयं ही अपने-आपको
पकड़ा दिया ॥ ८५ ॥

स तान् याहुड्यासक्तानादाय पतगानिव ।
प्रासाद् दौलसकाशमुत्पपाताङ्गदस्तदा ॥ ८६ ॥

भिर वे पक्षियोंकी तरह अपनी दोनों थुनाओंसे जकड़े हुए
उन चारों राक्षसोंको लिये दिये ही उड़ले और उस महलकी
छतपर, जो पतशिखरक समान ऊँची थी, चढ़ गये ॥ ८६ ॥

तस्योत्पतनयेगेन निधूतास्तत्र राक्षसा ।
भूमौ निपतिता सर्वे राक्षसेद्रस्य पश्यत ॥ ८७ ॥

उनके उठलनेके बेगसे झटका खाकर वे सब राक्षस

राक्षसराज रावणने दग्धते देखते पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥

ततः प्रासादशिखरं दौलशृङ्गमिमेक्षतम् ।
चक्राम राक्षसेद्रस्य वालिपुत्र प्रतापवान् ॥ ८८ ॥

तदनन्तर प्रतापी वालिकुमार अङ्गद राक्षसराजे उस
महलकी खाड़ीपर, जो पतशिखरक समान ऊँची थी, पैर
पतते हुए घूमने लगे ॥ ८८ ॥

पफात् च तदामान्तं दशग्रीवस्य पश्यत ।
पुरा हिममतं शृङ्ग उज्जेणव निदारितम् ॥ ८९ ॥

उनके पैरोंसे आगान्त झरकर वह छत रावणके देखते
देखते पड़ गयी । ठीक उसी तरह, जैसे पुराकाल घन
आगलने दिमाग्रस्य शिखर विदीन हो गया था ॥ ८९ ॥

भङ्गकृत्वा प्रासादशिखरनामविधाय चाल्मन ।
विनय मुमहानादमुत्पपात विहायसा ॥ ९० ॥

इस प्रकार महलकी छत तोड़कर उन्होंने अपना नाम
मुनात हुए यह जाने सिंहाद किया और वे आकाशमार्गसे
उड़ चले ॥ ९० ॥

ध्यययन् राक्षसान् सयान् हपयथापि यानरान् ।
स वानरपाणा मध्ये तु रामपार्श्वमुपागत ॥ ९१ ॥

राक्षसोंको पीड़ा देते और समस्त यानरोंका हप बनाते
हुए वे वानरसेनाने बीच भीरमचन्द्रजीके पास लौट
आये ॥ ९१ ॥

रावणस्तु पर चक्रे क्रोधं प्रासादध्वपणात् ।
विनाशं चाल्मन पश्यन् निःश्वासपरमोऽभवत् ॥ ९२ ॥

अपने महलके टूटनेसे रावणको बड़ा क्रोध हुआ; पर
विनाशकी बड़ी आगी देख वह लची चैत छोड़ने लगा ॥ ९२ ॥

रामस्तु यदुभिर्हृदैर्विनन्दि गृह्यक्रमै ।
घृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभ्ययतत ॥ ९३ ॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी हृष्यते भरकर गवना करते हुए बटु
सत्यक वानरोंसे फिर रहकर युद्धके लिये ही डटे रहे । वे
अपने शत्रुका वध करना चाहते थे ॥ ९३ ॥

सुषेणस्तु महावीर्यो निरिफूटोपमो हरिः ।
यदुभिः सञ्चतस्तत्र वानरैः कामरूपिभिः ॥ ९४ ॥

स तु द्वाराणि सयस्य सुग्रीवचक्रनात् क्षपि ।
पर्यप्राप्त तदुधर्षो नक्षत्राणीव चन्द्रमा ॥ ९५ ॥

इसी समय पर्वतशिखरक समान बिगालकाय महापराक्रमी
दुर्जय वानर वीर सुषेणने इन्द्रानुसार रूप धारण करनेवाले
बहुसंख्यक वानरोंके साथ लड़ाई सभी दरवाजोंको काटने कर
लिया और सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार वे (अपने सेनिकोंकी
रक्षा करने एवं सभी द्वाराका समाचार जाननेके लिये) बारी
बारीसे उन सखर विचरने लगे, जैसे चन्द्रमा क्रमशः सब
नक्षत्रोंपर गमन करते हैं ॥ ९४ ९५ ॥

तेषामशौहिणिशत समप्रेक्ष्य धनौकसाम् ।
लङ्कामुपनिप्रिथना सागर चाभिजनताम् ॥ ९६ ॥
राक्षसा विस्मय जग्मुस्त्रास जग्मुस्तपोररे ।
अपरे समरे ह्यारद्धप्रेमोपपेदिरे ॥ ९७ ॥

लङ्कापर परा हालर समुद्रतः कैः हुए उन वनवासी
वनरों की ओ अप्रेषिणा सेनाओंका देख राउओंका बड़ा विस्मय
हुआ । बहुतसे निशायर भयभीत हो गये तथा अन्य कितने
ही राक्षस समराद्रगमें हय और उन्हाहमें मर गये ॥ ९६ ॥ ७७ ॥

वृस्न हि कपिभिर्गता प्राकारपरिखान्तरम् ।
दृष्ट्वा रावन्मा दीना प्राकार वानरीरुतम् ।
हाहाभारतमुपैन्त राक्षसा भयमागता ॥ ९८ ॥

हयार्ये भीमद्वानावने वाक्योकीय आदिवाक्ये युद्धकाण्डे एकचत्वारिंश सर्गः ॥ ९९ ॥
इस प्रकार कीर्तनमकर्मिणित आशामात्रण आदिवाक्यक युद्धकाण्डे इकतीसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

द्विचत्वारिंश सर्ग

लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंके साथ उनका घोर युद्ध

तप्तस्ने रात्रसास्त्रप्र गत्या रात्रणमन्दिरम् ।
न्यप्रेक्ष्य पुरीं रुद्धा रामेण सह वानरैः ॥ १ ॥

तदनन्तर उन राउओंने रात्रग मन्दिरमें जाकर यह
निषदन किया कि प्थानयें साथ भीगमने लङ्कापुरीका
चारों अरसे घेर लिया है ॥ १ ॥

रुद्धा तु नगरं ध्रुव्या जाननोपो निशायर ।
त्रिगुण द्विगुण वृन्त्या प्रासादं न्यप्यरोहत् ॥ २ ॥

लङ्का परे जानेकी बात सुनकर रात्रगका बड़ा क्रोध
हुआ और वह नगरकी रक्षाका पदमें भी दुगुना प्रयत्न
कर मन्दिर अगरीर चढ़ गया ॥ २ ॥

स दृष्ट्वा घृता लङ्का सङ्गमनमननाम् ।
अमरप्रेषहर्गिणी सज्जते युद्धवाह्निभिः ॥ ३ ॥

वहीने उसने देखा कि पर्वत, वन और वानरोंकित
करी लङ्का का अरसे अगरीर युद्धाभिष्यं वानरोंका
निरी हुए है ॥ ३ ॥

स दृष्ट्वा वानरैः सङ्गमुधा कपिलीरुताम् ।
वध क्षपयित्वा स्युरिति त्रिनापरोडभयन् ॥ ४ ॥

इस प्रकार समग रात्रेण अच्छरित वपुषा
कपिल वनकी दूर गेय का हय चिन्तमें पड़ गया कि इन
गरका निना वन हगा ॥ ४ ॥

स त्रिस्तयिन्वा सुविधैरमालम्ब्य रात्रम् ।
रात्रं हरियूषाध दृष्ट्वाभ्यन्तरम् ॥ ५ ॥

वृता देगा त्रिस्तयनर पक्ष पक्ष परा कर

उस समय लङ्काकी चारदीवारी और रात्र सर्ग की स्त्री
वानरोंमें व्याप्त हो रही थी । इस तरह राउओंने चारदीवारी
का जब वानराकार हुइ देगा, तब वे दीन दुर्ग और भयभीत
हो हाहाभार करने लगे ॥ ९८ ॥

तस्मिन् महाभीषणके प्रवृत्ते
कोलाहले रात्रसरारजयोधा ।
प्रगृह्य रक्षासि महायुधानि
युगान्तयाना इव सत्रिजेर ॥ १० ॥

वह महाभीषण कोलाहल आरम्भ होनेपर राक्षसरा रात्र
का बाधा निशायर बड़े-बड़े आयुध हाथमें लेकर प्रत्यक्ष
की प्रचण्ड वायुका समान साथ और निरन्तर लगे ॥ ९ ॥

विशाल नेत्रोन्मल रात्रने भीषम और वानरनेनाओंकी
अर पुन देखा ॥ ५ ॥

रात्र सह सैन्येन मुद्रितो नाम पुपुषुय ।
लङ्का दृष्ट्वा गुमा रै मन्त्रतो रात्रमधृताम् ॥ ६ ॥

इसपर भीषमचन्द्रकी अनी मन्त्र काय प्रमत्तवाचक
आगे बढ़े । उन्होंने देखा, लङ्का का अरसे रात्रोंका
आहत और मुद्रित है ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा दादारयिलङ्का त्रिप्रच्यवपताकिनीम् ।
जगाम सहसा सीता दूयमानेन घेतमा ॥ ७ ॥

विचित्र पल पत्ताराओंने अन्वृत लङ्कापुरीका देखकर
दन्तरपन्दन भीषम रक्ति चित्ते मन ही मन धीरा
मरण करने लगे—॥ ७ ॥

अथ सा मृगशास्त्री मन्त्र जनरा मज्जा ।
पीयते शोकमन्त्रा दृष्टा मृगिष्टलशायिनी ॥ ८ ॥

शायी का मृगशास्त्रीकी अन्वृत्तिना मृग मृगों
में लिय मृगमन्त्र हा पीड़ा लान करती है और मृगोंकी
वनीर मृगी है । मृगना हूँ बहुत दुःख हा मृगी ॥ ८ ॥

निर्पीयमाना धमामा धैर्यमनुजितयन् ।
त्रिप्रमात्रायद् रामा वानरान् द्विपता वध ॥ ९ ॥

इस प्रकार रात्रोंका रात्रि चित्ते निरन्तर
करकर चिन्त करत हुए धमामा भयमन लङ्का
का रात्र मनुज रात्रोंका वध करने चित्ते अन्वृत्ति ॥ ९ ॥

यस्मिन्ने तु यस्मिन्ने रामातिप्रममा ।

सधर्माणां मृगया सिंहनादैरनादयन् ॥ १० ॥

अकिण्टकमां श्रीरामके इष प्रसार आशा देते ही आगे
वतनेने लिये परस्पर होइ-सी लगानेगल वापने अपने
सिंहनादोंसे वहाँनी धरतो और आकाशको गुँजा दिया ॥
दिलखेरैजिकिरामैता लड़ा मुष्टिभिरेय वा ।

इति सा दधिरे सयें मनासि हरियूथपा ॥ ११ ॥

वे रामल यानर यूथपति अपने माम यह निश्चय किये
खड़े थे कि हमलोग परंतु शिलरानी वर्षा करके लड़ाई
महलोंको चूर चूर कर देंगे अपना मुकामे ही मार-मारकर
ढहा देंगे ॥ ११ ॥

उद्यम्य गिरिच्छिन्नानि महान्ति शिलरानि च ।

तरुह्योत्पाम्य शिवास्तिष्ठन्ति हरियूथपा ॥ १२ ॥

व वानरसेनापति परंतोन बड़े बड़े शिलर उठाकर और
गला प्रकारके वृक्षोंको उग्राइकर प्रहार करनेय लिये खड़े थे ॥
प्रेक्षतो रामसेन्द्रस्य तान्यनीफानि भागदा ।

राघवप्रियकामार्थे लङ्कामरुदुस्तदा ॥ १३ ॥

राक्षसज रावणके देखते देखते विभिन्न भागोंमें दौटे
हुए वे वानर सैनिक श्रीरघुनाथजीका प्रिय करनेसी इच्छासे
तत्काल लङ्कान् परजोगैर चले गये ॥ १३ ॥

ते तान्नयकथा हेमाभा रामार्थे त्यजजीविता ।

लङ्कामेगम्यवर्तन्त सालभूधरयोधिन ॥ १४ ॥

तोंनेजैते लाल मुँह और मुण्णैनीसी कान्तिगले वे
वानर श्रीरामचन्द्रजीके लिये प्राण निछावर करनेको तैयार
थे । वे सब केसब साल वृक्ष और शैल शिखरोंसे युद्ध करने
वाले थे इतलिये उन्होंने लङ्कापर ही आक्रमण किया ॥ १४ ॥

ते हुमै परंतप्रेक्ष्य मुष्टिभिश्च मृगयमा ।

प्राकाराग्राह्यसख्यानि ममन्युस्तोरणानि च ॥ १५ ॥

वे सभी वानर वृक्षों, परंतु शिलरों और मुकामे असख्य
परकोठों और दरवाजोंको तोड़ने लगे ॥ १५ ॥

परिखान् पूरयन्तश्च प्रसन्नसलिलाशयान् ।

पासुभिः परंतप्रेक्ष्य तृणैः काष्ठैश्च वानरा ॥ १६ ॥

उन वानरोंने खच्छ जलसे भरी हुई खाइयोंको धूल,
परंतु शिलर, घास-फूस और काठोंसे पाट दिया ॥ १६ ॥

ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपा ।

कोटियूथशताब्धान्ये लङ्कामरुदुस्तदा ॥ १७ ॥

किर तो सहस्र यूथ, काटि यूथ और सौ कोटि यूथोंको साथ
लिये अनेक यूथपति उस समयलङ्काके निलपर चले गये ॥ १७ ॥

क्रान्तानि प्रमदन्तस्तोरणानि प्लवगमाः ।

कैलासशिखराग्राणि गोपुराणि प्रमथ्य च ॥ १८ ॥

आप्लवन्त प्लवन्तश्च गुनन्तश्च प्लवगमा ।

लङ्का तामभिधावन्ति महाधारणसनिभा ॥ १९ ॥

बड़े-बड़े गजराजोंके समान विशालकाय वानर सैनिक
वने हुए दरवाजोंको धूलम मिलाने, कैलाशशिखरके समान

ऊँचे-ऊँचे गोपुरोंमें भी दहाते, उछलते-कूटते एवं गजने
हुए लङ्कापर धावा बोलने लगे ॥ १८ १० ॥

जयत्युत्थुराले रामो ऋक्षमण्य महायल ।

राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालित ॥ २० ॥

इत्येय योगयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवगमा ।

अभ्यधावन्त लङ्काया प्रसार वामरुपिण ॥ २१ ॥

‘अत्यन्त बलशाली श्रीरामचन्द्रजीकी अपेक्षा महायली
लक्ष्मणजी जय हा और श्रीरघुनाथजीन द्वारा सुरक्षित राजा
सुग्रीवकी भी जय हा’ पूरी धावणा नरत और गजने हुए
इच्छानुसार रूप धारण करनेगले वानर लङ्काके परकापर
दूट पड़े ॥ २० २१ ॥

वीरयादु सुबाहुश्च नलश्च पनसस्तथा ।

निपीट्योपनिश्रिप्तस्त प्राकार हरियूथपा ।

एतस्मिन्नन्तरे चक्रुः स्वबाचारनिशेधनम् ॥ २२ ॥

इसी समय वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस—य
वानरयूथपति लङ्काके परकापर चक्कर बैठ गये और उसी
बीचम उन्होंने वहाँ अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया ॥ २२ ॥

पूर्वद्वारं तु कुमुदं कोटिभिदशभिर्बुध् ।

आवृत्य प्लवगस्तस्यौ हरिभिर्जितकाशिभि ॥ २३ ॥

बलवान् युद्ध विजयभीसे सुगोभित होनेगले दस
करोड़ वानरोंके साथ (इशानकाणमें रहकर) लङ्काके पूर्व
द्वारको घेरकर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥

सहायार्थे तु तस्यैव निश्रिप्त प्रचलो हरि ।

पनसश्च महायादुर्ध्वार्तरभिसंवृत ॥ २४ ॥

उसीरी वहायताके लिये अन्य वानरोंके साथ महायादु
पनस और प्रचल भी जाकर बट गये ॥ २४ ॥

दक्षिणद्वारमासाच वीर शतवलि कपि ।

आवृत्य प्लवगस्तस्यौ शिवात्वा कोटिभिर्बुध् ॥ २५ ॥

वीर गजराजने (आग्नेयमणमें रित हा) दक्षिण द्वारपर
आनर गीस करोड़ वानरों साथ उसे घेर लिया और वहाँ पड़ाव
डाल दिया ॥ २५ ॥

सुपेणः पश्चिमद्वारं गत्वा तारापिता नली ।

आवृत्य प्लवगस्तस्यौ कोटिभेदिभिरावृत ॥ २६ ॥

ताराक बलवान् पिता सुपेण (नैऋत्यकोणम स्थित हा)
कोटि कोटि वानरोंके साथ पश्चिम द्वारपर आक्रमण करने
उसे धरकर खड़े हो गये ॥ २६ ॥

उत्तरद्वारमागम्य रामं सौमित्रिणा सह ।

आवृत्य प्लवगस्तस्यौ सुग्रीवश्च हरीश्वर ॥ २७ ॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणसहित महायलवान् भीरव तथा वानर
राज सुग्रीव उत्तर द्वारको घेरकर खड़े हुए (सुग्रीव पूर्वाग्रहने

१ २ ३, ४—वहाँ आ पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर
द्वार माने हा, वे क्रमशः ईशान, जगिन, नैऋत्य और वायव्यकोणका
अर्ध करानेवाले हैं क्योंकि पहले (४१ ने लीये) पूर्व भाग

राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत् ।

राजजयजयेत्युक्त्वा स्वमनामकथा तत ॥ ४४ ॥

वानरसेनामें 'वानरराज सुग्रीवजी जय हो' यह महान् शब्द होने लगा । उधर राजसन्नाम भी 'महाराज राजग्रीव जय हो' ऐसा कहकर अपने अपने नाममा उल्लेख करने लगे ॥ ४४ ॥

राक्षसास्त्यपरे भीमा प्राकारस्थान् महीं गतान् ।

धानरान् भिन्दिपालैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन् ॥ ४५ ॥

दूसरे बहुतसे भयानक राक्षस जो परकागपर चढ़े हुए थे, पृथ्वीपर रखे हुए गारोंग भिन्दिपालों और शूलोंसे निर्दोष करने लगे ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे धीमन्नामायणे वास्मोकीय आदिक्कापे युद्धकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार शिवदत्तमीर्षिनिर्मित आर्यरामायण आदिक्कापके युद्धकाण्डमें बयायैसवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

द्रुन्दयुद्धमें वानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय

शुध्यता तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।

रक्षसा सम्भूवाय चलरोय सुदाहणः ॥ १ ॥

तदनन्तर परस्पर युद्ध करत हुए मगमना गारों और राक्षसोंको एक दूसरेकी सेनाको देखकर बड़ा भयकर रोप हुआ ॥ १ ॥

ते हयैः काञ्चनापीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः ।

गृधैश्चादित्यसफादौ कञ्चैश्च मनोरमैः ॥ २ ॥

निययू राक्षसा गीरा नादयन्तो दिशो दश ।

राक्षसा भीमकर्माणो गगनम्य जयैषिणः ॥ ३ ॥

सेनेने आभूषणोंमें निर्भूषित घोड़ों, हाथियों, अग्निसी ज्वालाक समान देदीप्यमान रथों तथा सूर्यतुल्य तेजस्वी मनोरम कचकों से युक्त वे वीर राक्षस दश दिशाओंमें अपनी गर्जनसे गुँजाते हुए निकले । भयानक कर्म करनेवाले वे सभी निशाचर राक्षस की विजय चाहते थे ॥ ३ ॥

वानराणामपि चमूर्ध्वती जयमिच्छताम् ।

अभ्यधावत ता सेना रक्षसा घोरकर्माणाम् ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीरामकी विजय चाहनेवाले वानरोंकी उम निगाह सेनाने भी घोर कर्म करनेवाले राक्षसोंकी सेनापर धावा किया ॥ ४ ॥

पतस्त्रिचन्तरे तेषामन्योन्यमभिधातताम् ।

रक्षसा वानराणां च ह ह्ययुद्धमवतत ॥ ५ ॥

इसी समय एक दूसरेपर धावा बालते हुए राक्षसों और वानरोंमें द्रुन्दयुद्ध उड़ गया ॥ ५ ॥

धानराक्षापि सफुद्धा प्राकारस्थान् महीं गता ।

राक्षसान् पातयामासु खमाप्नुव्य मयाहृषि ॥ ४६ ॥

तब पृथ्वीपर रखे हुए वानर भी अत्यन्त दुःखित हो उठे और आनासमें उठलफेर परकागपर बैठे हुए राक्षसोंको अपनी बाँहोंमें पकड़-पकड़कर गिराते लगे ॥ ४६ ॥

स सम्प्रहारागन्तुमुखो मामनशोणितकर्दम ।

रक्षसा वानराणां च सम्भूमाद्भुतोपम ॥ ४७ ॥

इस प्रकार राक्षसों और वानरोंमें बड़ा ही अद्भुत घमासान युद्ध हुआ, जिसमें वहाँ रक्त और मांसकी कीच बरस गयी ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे धीमन्नामायणे वास्मोकीय आदिक्कापे युद्धकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार शिवदत्तमीर्षिनिर्मित आर्यरामायण आदिक्कापके युद्धकाण्डमें बयायैसवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

अहर्दने प्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः ।

अयुष्यत महातेजास्त्र्यम्बवेण यथाघक् ॥ ६ ॥

वालिपुत्र अहर्दने साथ महातेजस्वी राक्षस इन्द्रप्रित उठी तरह भिड़ गया, जैसे जिनप्रधारी महादेयजीव साथ अघासुर लड़ रहा हो ॥ ६ ॥

प्रजह्वेन च सम्पातितित्य दुर्धपणो रणे ।

जम्बुमालिनमारब्धो हनूमानपि वानरः ॥ ७ ॥

प्रजब नामक राक्षस साथ खदा ही रणदुर्जब वीर सम्पातिने और जम्बुमालीके साथ वानर वीर हनुमानजीने युद्ध आरम्भ किया ॥ ७ ॥

सगतन्तु महालोधो राक्षसो रावणानुजः ।

समरे तीक्ष्णवेगेन शत्रुत्वेन विभीषणः ॥ ८ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भर हुए रावणानुज राक्षस विभीषण समराङ्गणम प्रचण वेगवाली शत्रुत्पत्तये साथ उलझ गये ॥ ८ ॥

तपनेन गज साध राक्षसेन महायलः ।

निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुष्यत ॥ ९ ॥

महाबली गज तपन नामक राक्षसके साथ लड़ने लगे ।

महानेकवी नील भी निकुम्भमें बहाने लगे ॥ ९ ॥

वानरे द्रुस्तु सुग्रीव प्रवसेन सुसगतः ।

सगतः समरे धीमान् विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥ १० ॥

वानरराज सुग्रीव प्रवसके साथ और धीमान् लक्ष्मण समरभूमिमें विरूपाक्षने साथ युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

अग्निवैतु सुदुर्धर्षो रक्षिषेनुध राक्षसः ।

सुसन्नो यक्षकोपश्च रामेण सह सगतः ॥ ११ ॥

दुर्ग्यं चार भूमिस्तु रुमिस्तु सुमप्य और यज्ञा-
य स्य रात्रि भागमनःशरीरं साथ चूने लगे ॥ ११ ॥

यज्ञमुष्टिश्च मैत्रेण द्विविनाशनिग्रम ।
रायस्ताम्या सुयोगाभ्या कपिमुत्थौ समागतौ ॥ १२ ॥

मन्त्र लय यज्ञमुष्टि और द्विविदर साथ अग्रनिग्रम युद्ध
करने लगे । यह प्रार इन दोनों भयानक यज्ञोंन साथ थे
दोनों कपिगणमण पर मिड़ हुए थे ॥ १२ ॥

धीर प्रतपनो घोरो रात्रसो रणदुधर ।
समरे तीक्ष्णरेगेन नगेन समुप्युत्त ॥ १३ ॥

प्रतप नामने प्रविष्ट एक घर रात्र था किने रगभूमि
में पलाय करना श्रवण कर्त्तव्य था । वह धीर निगावर
समरद्वारेमें प्रवृत्त नेगागी नलक साथ युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥

धर्मस्य पुत्रो यत्नान् सुप्रेण इति विभुन ।
स विद्युमालिना साधमप्युत्थत महाकपि ॥ १४ ॥

धर्मने यत्नान् पुत्र महाकपि सुप्रेण रात्र स विद्युमालिने
साथ रहा देने लगे ॥ १४ ॥

जानगच्छापरे घोरा गत्यमैगपरं सह ।
दृष्टं समीपु सहसा युद्धया च गृह्णि मह ॥ १५ ॥

इसी प्रकार अन्त्य भयानक जानर बहुतों साथ युद्ध
करने पक्षात् दूसरे-दूसरे रात्रोंन साथ रात्रा दृष्टयुद्ध
करने लगे ॥ १५ ॥

तर्जनीन् सुमहद् युद्धं तुमुन् रामहयणम् ।
रामसा धानगण च बाणणा जयमिच्छन्ताम् ॥ १६ ॥

दो रात्र और जानरीर अनी-अनी निग्र बाण
ने । उनन वहा भयान और उमा-बाणी युद्ध होने लग्य ॥

हरिरात्रमदहेभ्य प्रभूता वेशशाठला ।
शरीरस्वघाटवहा प्रमुद्यु द्रोणितारणा ॥ १७ ॥

यज्ञों और रात्रोंन नीचे निराकर बहुत-सी शून
पी नष्टों बन लगी । उनन फिर वहा ही वहाँ शीतल
(मगर) व स्मन जन वदन था । व नष्टों सनेकोंही
प्रभुगी बाटमूर्त्तों बाण लिये जनी थी ॥ १७ ॥

अनशनेनान् मुष्टौ यज्ञेयं शतत्रयम् ।
अह्म गदया धीर शमुनेन्यविदारणम् ॥ १८ ॥

शिव प्रार इन्द्र रत्ने प्रार करत हैं, उही तरह
इन्द्रिय मफात्रे मुनेन दियन करने-न कीर अह्म
पर गता अन्न दिया ॥ १८ ॥

तस्य कश्चनविश्राद् गद्य सादर समागमिम् ।
जया गदया धीमानह्मदा यगवात् हरि ॥ १९ ॥

सिंघ बाणोंन बनर भयान अह्मने उमरी रात्र हाथन
पक्ष ही और गद्य रात्रने इन्द्रिय शतत्रय रपद्य

स्वयं और घेहोंमनि चूर चूर कर डाल ॥ १ ॥

सम्पानिस्तु प्रवृत्तेन प्रियवर्णः समाहृत ।
निनयानाभ्यकर्षेण प्रवृत्त रणमूधनि ॥ २० ॥

प्रवृत्तेन सगानिना तन गानोंमे बाण कर दिया । तर
सगानिने भी अश्वकर्ष नामक दृष्टने सुदर मुहानर प्रवृत्त
मार डाला ॥ २० ॥

अमुमान् रथस्थान् रथशक्त्या महारण ।
विमेद समरे मुष्टौ हनूमन्त स्नानान्तर ॥ २१ ॥

माराज अमुमानी रथर दैग हुआ था । उसने तुष्टि
हाकर समरद्वारेमें एक रथ शक्ति द्वारा हनुमानवीर की छाती
पर चोट का ॥ २१ ॥

तस्य ज्ञेयमाभ्यास हनूमान् माह्ला मन् ।
प्रममाय तलेनापु सह तनेन रहसा ॥ २२ ॥

परतु पननन्दन हनुमान् उठाकर गहन उस रथर
चर गय और तुरन ही थपड़न मारकर उन्होंने उस शक्ति
साथ ही यह रथ भी चौर कर दिया (अमुमानी मर
गया) ॥ २२ ॥

नदन प्रतपनो घोरा नल मोऽभ्यनुधावत ।
नल प्रतपनस्यापु पानियामास चतुर्षी ॥ २३ ॥

भिन्नगात्र शरीरलोहर्ष निग्रहस्तन रणसा ।

दुर्ग्य अर भयानक रात्र प्रतप भीम गर्वना कर
नली अर गैरा । गीतपुत्रक साथ चलाता उस रात्र-
ने आने तीन बाणोंन नल गहरक छन फिट कर दिया ।
तर नलन तला हा उमरी दोनों बाण निरा ली ॥ २३ ॥
प्रमन्मिर मैत्र्यानि प्रथम धानगधिप ॥ २४ ॥
सुर्याव सतपथेन निनयान जन च ।

यत्र रात्र प्रम वनस्तनाग काला प्रम बना रहा
था । यह देख मनरात्र मुहाने प्रमन्मन्मक दृष्टने उस
वेगपुत्र मर गिया ॥ २४ ॥

प्रवीण्य शरवर्षण रात्रस भीमदानम् ॥ २५ ॥
निनयान विरुपाक्ष शरेणकन लक्ष्मण ।

मन्ने पन वनोंही रात्र करत मारकर हरि-
रात्र निनयान बहुत पीड़ा था । फिर एक रात्र मरकर
उम मीत वहा गता ॥ २५ ॥

अनिष्टनुद्य दुधर्षो रमिस्तुद्य रात्रस ।
सुमप्यो यमकपथय गम निविभिन्दु शर ॥ २६ ॥

अन्त्य दुधर रमिस्तु सुमप्य और यज्ञन नमक
रात्रने भीम-नमक आन वनेन बाण कर दिया ॥

तया चतुर्णां गमस्तु निगमि समर गी ।
मुष्ट्यनुभिभिच्छेद भारनिशितारण ॥ २७ ॥

तत्र श्रीरामने युजित हा अग्निगिरास समान भयर
बाणाद्वारा समराङ्गम उन चारों सिर का लिये ॥ २७ ॥
वज्रमुष्टिस्तु मन्त्रेन मुष्टिना निहता ग्ण ।
पपात मरध स्वाध सुगट इव भूतते ॥ २८ ॥

उस युद्धस्थलम मन्त्रेने वज्रमुष्टिपर मुक्ताका प्रहार किया,
नितसे वह रथ और बाहोंछान्ति उसी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा,
मानो देवताओंका विमान धरापायी हो गया हो ॥ २८ ॥

निमुम्भस्तु ग्णे नील नीलाञ्जनचयप्रभम् ।
निर्विमेद शरैस्तीक्ष्णैर् बर्रमेषमिडाशुमान ॥ २९ ॥

निमुम्भने काय कायलेन सपृङ्की भौति नील वणजने
नीलको रणजेयम अपने पन बाणोंद्वारा उसी तरह उन्नत भिन्न
कर दिया, जैसे रणदेन अपनी प्रचण्ड निर्रणोंद्वारा वादलों
को काट देते हैं ॥ २९ ॥

पुन शरशतेनाथ मिग्रहस्तो निशाचर ।
विमेद समरे नील निमुम्भ प्रजहास च ॥ ३० ॥

परछ श्रीमत्पापूरक हाथ चलनेपर उस निगानरने सम
रङ्गणमें नीलका पुन सी बाणोंने धावल रर दिया। ऐसा करने
निमुम्भ जोर-जोरसे हँसने लगा ॥ ३० ॥

तस्यैव रथचमेण नीलो विष्णुरिडाहये ।
शिरश्चिच्छद समरे निमुम्भस्य च सारथे ॥ ३१ ॥

यह देख नीलने उसीर रथक पहियेने युद्धस्थलम निमुम्भ
तथा उसने लरधिगा उसी तरह सिर का लिया, जैसे भगवान्
विष्णु सग्रामभूमिम अपने चक्रसे दैवोंक मन्त्र उठा देते
हैं ॥ ३१ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शां द्विविद्भेऽप्यशनिप्रभम् ।
जघान गिरिच्छिन्नेण मियता सचरक्षसाम् ॥ ३२ ॥

द्विगिरिका रथक वज्र और अग्निक समान दु छ था ।
उन्होंने सब रा शकोंके देखते देखते अग्निस्रभ नामक निशाचर
पर एक परतगिरासने प्रहार किया ॥ ३२ ॥

द्विविदं धानरेद्र तु दुमयोधिनमाहवे ।
शरैरशनिस्तकाशै स विद्याधाशनिप्रभ ॥ ३३ ॥

तय अग्निस्रभने युद्धस्थलमे वृक्ष लेख युद्ध करनेवाले
धानराज द्विविदका वज्रमुल्ल वनली बाणोंद्वारा धावल कर
दिया ॥ ३३ ॥

स शरैरभिविद्धाग्नौ द्विविद् क्रोधमूर्च्छित ।
सालेन सरथ साधय निजघानाशनिप्रभम् ॥ ३४ ॥

द्विगिरिका सारा शरीर बाणोंसे क्षत विघ्न हो गया था,
ससे उन्हें बड़ा मोक्ष हुआ और उन्होंने एक सालवृक्षस रथ
और चोड़ोंसहित अशनिप्रभका मार मिया ॥ ३४ ॥

युमाली रथस्यस्तु शरै काञ्चनभूषणै ।

सुपेण ताडयामास ननाद च मुटमुट ॥ ३५ ॥

रथपर बैठे हुए निमुमालीने अपने सुपभूमि का
द्वारा सुपणका बाणधार धावल किया। सिर बड़ जोर का
गवा करने लगा ॥ ३५ ॥

त रथस्थमथो दृष्ट्वा सुपणो वानरोत्तम ।
गिरिच्छिन्नेण महता रथमानु न्यपातयत् ॥ ३६ ॥

उसे रथपर बैठा रथ वानरशिरोमणि सुपेगने एक विगास
परान निरर चलाकर उतर रथको ग्नेम ही चूर चूर कर
डाल ॥ ३६ ॥

लाघवनं तु सयुक्तो विष्णुमाली निशाचर ।
अपक्रय्य रथात् नृणं गदापाणि क्षितौ म्रियत ॥ ३७ ॥

निशाचर निमुमाली तुरत ही बड़ी कुर्तीने साथ रथसे नीचे
बूट पड़ा और हाथमें गदा लेकर पृथ्वीपर पड़ा हो गया ॥ ३७ ॥

तत्र क्रोधसमाविष्ट सुपेणो हरिपुङ्गव ।
शिलां मुमहर्तां शृष्ट निशाचरमभिद्रवत् ॥ ३८ ॥

तत्पन्तर कथसे भरे हुए वानरशिरोमणि सुपेण एक
बहुत बड़ी पिला लेकर उस निशाचरकी ओर दौड़े ॥ ३८ ॥

तमापन्न गदया विष्णुमाली निशाचर ।
वशस्यभिजघानानु सुपण हरिपुङ्गवम् ॥ ३९ ॥

कणिष्ठेष्ट कुल्लका आक्रमण करते देख निशाचर विष्णु
मालीने तत्काल ही गदासे उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ ३९ ॥

गदाग्रहारं त धारमचिन्त्य ह्यधगोत्तम ।
ता नृप्यां पातयामास तस्योरसि महामृधे ॥ ४० ॥

गदाके उस भीषण प्रहारकी कुछ भी परवा न करके
वानरप्रवर सुपेणने उसी पहिलेवाली पिलाको चुपचाप उठा
टिपा और उस महासमरम उने निमुमालीकी छातीपर दे
मार ॥ ४० ॥

शिलाप्रहाराभिहतो विष्णुमाली निशाचर ।
निष्पिष्टहृदयो भूमीं गतासुनिपपात ह ॥ ४१ ॥

शिलाक प्रगसे धावल हुए निशाचर निमुमालीकी छाती
चूर चूर हो गयी और वह प्राणशून्य हाकर पृथ्वीपर गिर
पड़ा ॥ ४१ ॥

एव तैर्गनरै शरै शरपस्त रजनीचरा ।
द्वन्द्वे विमथितास्तत्र दैत्या इव द्विवीक्ष्ये ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वे शरवीर निशाचर गौरवसम्पन्न वानर योदों-
द्वारा यहाँ द्वन्द्वयुद्धम उसी तरह कुचल दिय गये जैसे
देवताओंद्वारा दैत्य मथ डाले गये थे ॥ ४२ ॥

मल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्च शक्तितोमरस्तायकै ।
अपविदैश्चापि रथैस्तथा सामासिकै हयै ॥ ४३ ॥

निहतै कुजरेमसैस्तथा वानरराक्षसै ।

चक्रायुगदण्डैश्च भर्तृर्धरणिस्तत्रैः ॥ ४७ ॥
यभूयायोधन घोर गोमायुगणसेवितम् ।
कथयानि समुत्पेतुर्दिभु यानरश्मसाम् ।
विमर्दे तुमुने तस्मिन् देवामुरगणोपमे ॥ ४८ ॥

उस समय मारों, अन्यान्य बाणों, गण्डों, शिखियों, तोमरों, कायों, दूतों और कब हुए रथों, घोड़ों घोड़ों, मरे हुए मत्तग्राहियों, वानरों, राक्षसों, पहियों तथा दूत हुए त्रुओं, जो धरतीपर चिक्के पड़ थे, व युद्धभूमि बड़ी भयानक हो रही थी । गीदकों समुदाय वहाँ सब ओर चिक्के रहे थे । देवातुर समामर समान उस भयानक मार-काटमें

यानरों और राक्षसों कबध (मस्तकहति धम) सम्पूर्ण दिग्गाओंमें उड़ल रहे थे ॥ ४३-४८ ॥

निहन्यमाना हरिपुत्र्यस्तदा
निशात्रा ञ्जितगधमूर्च्छिता ।
पुन सुयुद्ध तस्मा समाधिता
दिवाकरम्यास्तमयाभिकाक्षिण ॥ ४६ ॥

उस समय उन वानरशिरोमणियाद्वारा मारे जाते हुए निशाचर रक्तकी गंधसे मनगले हो रहे थे । व सूर्यसे अस्त होनेकी प्रतीक्षा करते हुए पुन बड़े बगमे घमासान युद्धमें तत्पर हो गये ॥ ४६ ॥

हरिपुत्रे धीमद्रामायणे काकमीकीय आदिकाण्ये युद्धकाण्डे त्रिचत्वारिंश सर्गः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार धीमदमीकिनिर्मित आर्याभारतमें युद्धकाण्डमें तैत्तरीयसर्गों का पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

चतुश्चत्वारिंश सर्ग

रातमें वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध, अङ्गदके द्वारा इन्द्रजित्की पराजय, मायासे अदृश्य हुए इन्द्रजित्का नागमय बाणोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणसे बोधना

युध्यतामैव तेया तु तदा वानररक्षस्ताम् ।
रविरस्त गतो रात्रि प्रवृत्ता प्राणदाणि ॥ १ ॥

इस प्रकार उन वानर और राक्षसों युद्ध का ही रहा था कि मूषेदेन अन्त हो गये तथा प्राणोंका सहर करनेवाली रात्रि आगमन हुआ ॥ १ ॥

अन्योन्य यक्षधैराणा घोराना जयमिच्छाम् ।
सम्प्रवृत्त निशायुद्ध तदा वानररक्षस्ताम् ॥ २ ॥

काट और राक्षसोंमें परस्पर घेर बैठ गया था । दोनों ही पक्षोंमें यक्षा बड़े मनकर थे तथा अपनी अपनी विजय चाहते थे अतः उन समय उनमें रात्रियुद्ध होने लगा ॥ २ ॥

रात्रस्तोऽस्मीति हृष्यो वानरोऽस्मीति रात्रिमा ।
अन्योन्य समर जप्नुस्तस्मिस्तममि क्षणेषु ॥ ३ ॥

उस क्षण अचरासम वानरलगा अपने निराश्रित पृष्ठते थे, क्या तुम राक्षस हो ! और राक्षसलगा भी पृष्ठते थे, क्या तुम वानर हो ! इस प्रकार पूरा-पूरा समराङ्गणमें वे एक दूसरेपर प्रहार करते थे ॥ ३ ॥

हम क्षत्र्य सौहीति कथं विद्रवसीति च ।
एव सुतमुत्तं शब्दस्तस्मिन् सैन्ये तु युधुरे ॥ ४ ॥

मनामें सब अर-भार, काटा, आधा काट, क्यों भागे जाते हो—य मगर पन्ध्र मुत्ता दे रहे थे ॥ ४ ॥

काल्य कश्चनसनादास्तस्मिस्तममि रात्रिमा ।

सम्प्रदृश्यन्त शैलेन्द्रा क्षीरीयधिवन्ता इव ॥ ' ॥

काल-काल राक्षस सुराजमय वानरोंमें विभूति होकर उस अचरासमें एमें निश्वासी देते थे, मानो समुद्री बूढ़ आश्रितों वनमें पुन काट पड़ा हो ॥ ५ ॥

तस्मिस्तममि दुष्पार रात्रिमा मोधमूर्च्छिता ।
परिपेतुमर्थायेगा भव्यन्त प्ररुहमान् ॥ ६ ॥

उस अचरासमें पार पाना कठिन हो रहा था । उनमें क्षणमें अधीर हुए महान् वेगवाली राक्षस वनरोंका पाने हुए उनपर सब अरसे पट पड़े ॥ ६ ॥

ते हयान्वाञ्जनापीडान् प्रजालासीतिरोपमान् ।
आवृण्वन् दधानैर्लाक्ष्यैर्भूमिरोपा यदागन् ॥ ७ ॥

तब वानरोंका बाण बड़ा भयानक हो उठा । वे उड़ल उड़लकर अपने तीव्र दौड़ोंवा सुन्दर सबने सब हुए राक्षस-दल घाँसे और विषपर सारे समान गिरावी देनेवाला उताव प्रजालों भी पीछी कर देता था ॥ ७ ॥

वानरा वलिना युद्धोभोभयन् रात्रिमा यमम् ।
कुञ्जराण् कुञ्जरोदान् पनाकाभ्यजितो रथान् ॥ ८ ॥

चक्रपुंश्च ददगुध दानै मोधमूर्च्छिता ।

काल्य वानरोंने युद्धमें राक्षस-मैत्रा और हलचल मचा दी । वे चक्र-चक्र क्षत्र्य पाला हो ॥ ८ ॥ आश्रितों एव हाथ-भारोंका तथा घाट-काट-काट मुत्ता

० पूर्वसर्गे बार में त्रिधासे कर पूर्वी राक्षस रात्रिमा का कथित काट हो गया है इतिदिदे वे पूर्वोक्त ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

रणोको भी व्यां लेने और दोंते का काकर क्षनविध कर देते थे ॥ ८३ ॥

लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीरिणोपमै ॥ ९ ॥
दृश्यदृश्यानि रक्षासि प्रवर्णणि निजघ्नतु ।

बड़े-बड़े राक्षस कभी प्रभु हार कर युद्ध करते थे और कभी अग्न्य हो जाते थे परन्तु श्रीराम और लक्ष्मण निषध सरोत्र समान अपने बाणोंद्वारा दृश्य और अग्न्य सभी राक्षसोंको मार डालते थे ॥ ९३ ॥

तुरगपुरविभस्त्र रथनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥
रथोप कर्णेनेत्राणि शुष्यता धरणीगज ।

बाणोंकी टापसे चूण हार रथने पहियोंने उड़ाये हुए धरणीकी धूल यादवाओंके बान और नेत्र बंद कर देती थी ॥

वर्तमाने तथा घोरे सप्रामे लोमहृषण ।
रुधिरौघा महाघोरा नद्यस्तत्र तिसुख्यु ॥ ११ ॥

इस प्रकार रामाश्वरारी भयकर सप्रामे जिड़ जानेपर वहाँ रक्त प्रवाहको वहानेवाली प्लुकी बड़ी भयकर नदियों बहने लगी ॥ ११ ॥

ततो मेरीमृदङ्गाना पणवाना च निस्त्रन ।
शङ्खनेमिस्त्रनेमिश्च सम्बभूवाद्भुतेपम ॥ १२ ॥

तदनन्तर मेरी, मृदङ्ग और पणप आदि वाजोंकी ध्वनि होने लगी, जो शङ्खोंने शब्द तथा रथने पहियोंकी घरराहटसे मिलकर बड़ी अद्भुत जान पड़ती थी ॥ १२ ॥

हताना स्तनमानाना राक्षसाना च निस्त्रन ।
शस्ताना गनराणा च सम्यभूवाद्भुतेपम ॥ १३ ॥

बायल हारकर कराहते हुए राक्षसों और शस्त्रोंने छत विध्न हुए बानरोंका आननाद वहाँ बड़ा भयकर प्रतीत होता था ॥ १३ ॥

हृत्तवानरमुख्यैश्च शक्तिशूलपरभ्रष्टै ।
निहनै पर्वताकारै राक्षसै कामरूपिभि ॥ १४ ॥

शस्त्रपुष्पोपहारा च तत्रासीद् युद्धमेदिनी ।
दुर्गेया दुर्निवेशा च शोणितान्नावकदमा ॥ १५ ॥

शक्ति, शूल और फरोंसे मारे गये मुख्य-मुख्य बानरों तथा बानरोंद्वारा कालङ्ग गालमें डाले गये इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ पर्वताकार राक्षसोंसे उपलब्धित उस युद्धभूमिमें रक्तके प्रवाहसे क्रीन हो गयी थी । उसे पहचानना कठिन हो रहा था तथा वहाँ डहलना तो और मुश्किल हो गया था । ऐसा जान पड़ता था उस भूमिको शस्त्ररूपी पुष्पोंका उपहार अर्पित किया गया है ॥ १४ १५ ॥

सा यभूय निशा घारा हरिराक्षसहारीणि ।
कालरात्रीष भूताना सरोपा दुरतिक्रमा ॥ १६ ॥

यानरों और राजाओंका सहाय करनेवाली वह भयकर रजनी कालरात्रिज समान समान प्राणियोंने लिय दुल्लभ हो गयी थी ॥ १६ ॥

ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिन्तमसि दारुणे ।
राममेवाभ्यजतन्त सहृद्य दारुघृदिभि ॥ १७ ॥

तदनन्तर उस दारुण अन्धकारमें वहाँ वे सब राक्षस हर्ष और उत्साहमें भरकर बाणोंकी बणा करते हुए श्रीरामपर ही धारा करन लगे ॥ १७ ॥

तेषामापतता शब्द कुड्गानामपि गर्जताम् ।
उद्धत इव सप्ताना समुद्राणामभूत् स्वन ॥ १८ ॥

उस समय कुपित हो गनना करते हुए उन आक्रमणकारी राक्षसोंका शब्द प्रलयन समव सत्तों समुद्रोंने महान् कोलाहल का जान पड़ता था ॥ १८ ॥

तेषां राम शरैः पङ्क्तिः पङ्क्तिः जघान निशाचरान् ।
निमेवान्तर्गमात्रेण शरैरग्निशिखोपमै ॥ १९ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने पलन मारते-मारते अग्निशालाके समान छ भयानक बाणोंसे निम्नाहित छ निशाचरोंको पायल कर दिया ॥ १९ ॥

यज्ञदानुश्च दुर्धर्षं महापार्दमहोदरौ ।
वज्रदण्डो महाकायस्तौ चोभौ शुक्रसारणौ ॥ २० ॥

उनका नाम इस प्रकार है—दुर्धर्ष वीर यज्ञदानु, महापार्द, महोदर, महाकाय; वज्रदण्ड तथा वं दोनों शुक्र और सारण ॥

ते तु रामेण गणौघैः सयमममु ताडिता ।
युद्धापस्ततास्तत्र सायशेषायुषोऽभयन् ॥ २१ ॥

श्रीरामके बाणसमूहसे सारे मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचनेके कारण वे छहों राक्षस युद्ध छोड़कर भाग गये इसीलिये उनकी आयु शेष रह गयी—जान बच गयी ॥ २१ ॥

निमेयान्तरमात्रेण योरैरग्निशिखोपमै ।
दिशश्चकार विमला प्रदिशश्च महारथ ॥ २२ ॥

महारथी श्रीरामने अग्नि निराके समान प्रज्वलित भयकर बाणोंद्वारा पलक मारते मारते संपूर्ण निशाचरों और उनके कोणोंको निर्मल (प्रकाशपूर्ण) कर दिया ॥ २२ ॥

ये त्वन्ये राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिता ।
तेऽपि नद्य समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥ २३ ॥

दूसरे भी जो-जो राक्षसवीर श्रीरामके सामने खड़े थे; वे भी उसी प्रकार नष्ट हो गये, जैसे आगमें पड़कर पतिते जल जाते हैं ॥ २३ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः सम्पतद्भिः समन्ततः ।
धमूच रजनी वित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥ २४ ॥

चातों और सुवर्णमय पङ्खवाले बाण गिर रहे थे । उनकी

प्रमाने वर रत्ना जुजुभने निविध दिव्यारी दनेगय
शरद् श्रुत्वा राखि समन अद्भुत प्रकट होत था ॥ ८॥
राममाना च निनर्दभैरवा चैव निम्बने ।
सा वभूव निशा घोरा भूयो घोरागभयन् ॥ ९॥

रामचन्द्र सिन्हाओं और भरियेका आगवोंने वह
मयनरु रात्रि और मा मयकर हा ठग था ॥ २ ॥

तन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्तत ।
प्रिहृष्ट कर्त्तवार्कण प्रयाहग्न्याचल ॥ २६ ॥

स्य अरं ह्यु एष महान् शस्त्रमे प्रतिरतिन ॥
 यन्द्राश्रमे व्याप्त त्रिकू पत माना विष्का याना उत्तर
 दना-या ज्ञान पदना या ॥ २६ ॥

गोलाहला महाकायास्तमसा तुल्यज्वल ।
समर्पित्वन्य यादव्या भयवन् गजनीचरान् ॥ २७ ॥

लगूर जैनिक विग्रहकाय बनर जे अशकारर स्तन
 काय यः निमबपेरा दनो मुजभेने फसर मार हाल
 और उहो पुत्ते आदिका निव्रत दत थ ॥ २७ ॥

भक्तदस्तु रणे शत्रून् निहन्तु समुपस्थितः ।
 रात्रिं निनयानां सारथि च हयानपि ॥ २८ ॥

દુનયે ધર અદ્વદ ગામીમે ગુણેકા મહાર કરને
 નિય અને વદ । ઠાંને યાનુય દ્યનિગા ધાન વ
 યિયા તથા ઉતર મયધિ નોર ધર્મોના મી યનદ્ર
 પાંચ દિવા ॥ ૨૯ ॥

इदं निन्दतु रथ त्यक्त्या हता ग्राहकसारथिः ।
महत्तेन महायस्तस्मै यन्त्रयान्तर्गधीयत ॥ २९ ॥

अज्ञान द्वारा पद और लक्ष्य मर जाने के कारण
कामे पड़ा हुआ शक्ति रखने उड़कर ही अन्तर्धान
होता ॥ २ ॥

तत् क्षमया लिपुत्रस्य सर्वे देवा महागिभिः ।
तुष्टुषु पूजनाह्वयता चार्भा रामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥

प्रारम्भः सन्तुष्टान्तर अद्भुत उम पण्डित
स्वर्णिमेन इवामो ता दत्तो माद आराम मे
लज्जन भी भूति भूति प्राला की ॥ २० ॥

प्रभार मयभूतानि विदुरिद्रवितो युधि ।
तन्मन्त महामान एषा तुष्टा प्रशयेनम् ॥ ३१ ॥

मन्त्रा श्री गुरुभ्यो नमः ॥ इति श्री गणेश उपासना ॥ १ ॥
अन अद्भुत इय उमका पतिवित्तु इय देव उन मन्त्र
अद्भुत इति वर मन्त्रा इय मन्त्रा इय ॥ १ ॥

ततः प्रहृष्टा वपयः समुप्राशयिर्भाषणा ।
मायुमाश्रयिने दुष्टे दृष्ट्वा शत्रु परान्वितम् ॥ ३२ ॥

गधुस पराजित हुआ देव मुघल और विभीषण सहित
सब बचक बड़े प्रसन्न हुए और अन्नदास लघुगन्धर्व बन ला ॥
इन्द्रविजय त तपनेन विजितो भीमकम्पणा ।

मयुगे बालिपुत्रेण प्रोथ चत्रे सुदाग्णम् ॥ ३३ ॥
यदन्यत्ने भगवन् कर्त्तुं कृणुते बलिपुत्रं भद्रम्

परमेश्वर इन्द्राग्निने यदा मयस्य माघ प्रकटयिष्यति ॥३५॥
सोऽप्यन्यथागत पापो गम्यीत्यर्थः ।

ब्रह्मन्तरो र्वगे गणि प्रोद्यमूत्त ॥ २३ ॥
अदृश्यो निशितान् याणान् ममाशानिदम ।

राधाकृष्णनर इन्द्राग्नि ब्रह्मर्षि के घर प्रातः कर चुका था। सुद्धमें अधिक कर पनक राग य पना गरादुय मधमे

अचेतना ही रहा या' अतः अन्तर्धान विनिरा अभय न
अग्न्य ही जप्ते ब्रह्म सन्तान नृत्त्या और तीरे का
दरमन आरम्भ दिये ॥ ४० ॥

राम च लक्ष्मण चैव धीरैर्नागमयैः शरैः ॥ ३ ॥
विभेदं समरे ब्रह्म सखायापु रामसः ।

मनसाङ्गाने कृपित हुण्डरिने धर सन्त्य बाँ
द्वारा भागम और सम्पादक घयल कर गिया । ये दानों

खुशी खुश करने सभी अश्वोंमें नर व्याह्न मन विभन
हो रहे य ॥ ५५ ॥

मायया सगृह्णन् मोहयन् गगरी युधि ॥ ३६ ॥
अदृश्यः सगृह्णन्ता कृष्टयोर्धी निगच्छन् ।

नमः नम्यन्ते आनरी गमन्तुमर्ण ॥ ३७ ॥
भावन आवृत हा समस्त प्रतीति नित्य अन्तः हृदय

बाँ बूबुद करेवाँ यम निगमने सुदमने गनी
रुमनी रुनु भंगन और लमनास ममने गमन हुन टहने
साकर बाँर बधनने बाँध लिया ॥ ६ ७ ॥

ती तन पुश्ययाग्रो मुद्धानागिनि नग ।
सहमाभितो राग तन भ्रमन्त धानग ॥ २८ ॥

इस प्रकार अपने भर हुए इच्छाओं में जीना पुरुष
प्रत्येक क्षण मग्न रहता है। उस
काल में वह अपने अपने बन्धन में ८ ॥

श्रद्धांरुपन्तु यग न नक्त
स्मौ याधितु गगमगन्तुत्र ।

यथा यः नो गन्तुनी दुर्गमा ॥ ३० ॥
प्रशस्तं बुद्धं बरतं गन्तं उर गन्तुनीदुर्गमा

महा तपः स्नानं कृत्वा प्रोक्ता वचनां यथा ह्यसौ
 और यत् शब्दो भगवतो यत् शब्दो यत् ॥ ॥

इत्यपि श्रीमद्भागवत वाक्यार्थे श्रीशारदाय यदुवाचैवमुवाचरिषाः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

[illegible]

पञ्चत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रजित्के बाणोंसे श्रीराम और लक्ष्मणका अचेत होना और वानरोंका शोक करना

स तस्य गतिमन्विच्छन् राजपुत्रं प्रतापवान् ।
दिदेशातिपत्ने रामो दश वानरयूथपान् ॥ १ ॥

तदनन्तर अत्यन्त बलशाली प्रतापी राजकुमार श्रीरामने
इन्द्रजित्ना पना लगानेके लिये दस वानर-यूथपतियोंको आशा
दी ॥ १ ॥

ह्यौ सुपेणस्य द्वायादौ नील च प्लवगाधिपम् ।
अद्भुत बालिपुत्र च शरभ च तर्खिनम् ॥ २ ॥
द्विविध च हनूमन्त सानुग्रस्य महानलम् ।
शृगपभ चपभस्वधमादिदेश परतप ॥ ३ ॥

उनमें दो तो सुपेणसे पुत्र थे और गेय आठ वानरराज
नील, बालिपुत्र अद्भुत, वेगशाली वानर शरभ, द्विविध,
हनुमान्, महाबली सानुग्रस्य, शृगपभ तथा चपभस्वच थे ।
शमुभ्रोंको सनाप देनेवाले इन दसोंको उसका अनुसंधान करने
के लिये आशा दी ॥ २ ॥

ते सम्प्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान् ।
आकाश त्रिनिशु सर्वे मागमाणा दिशो दश ॥ ४ ॥

तब वे सभी वानर भयकर वृक्ष उठाकर दलों दिशाओंमें
खोजने हुए यद्दे हर्षके साथ आकाशमार्गसे चले ॥ ४ ॥

तेषां वेगवता वेगमिषुभिर्गन्तव्यै ।
अखचित् परमाखस्तु धारयामास रावणि ॥ ५ ॥

किन्तु अखोंके शक्ता रावणकुमार इन्द्रजित्ने अत्यन्त
वेगशाली बाणोंकी क्या करके अपने उत्तम अस्त्रोंद्वारा उन
वेगवान् वानरोंसे रागसे रोक दिया ॥ ५ ॥

त भीमवेगा हरयो नाराचै क्षतनिश्वता ।
अधकारे न दृष्टुर्मैधै सूर्यमियावृत्तम् ॥ ६ ॥

बाणोंसे क्षत निश्चित हो जानेपर भी वे मयानक वेगशाली
वानर अधकारमें मेधोंसे ढके हुए सूर्यकी भाँति इन्द्रजित्को
न देख सके ॥ ६ ॥

रामलक्ष्मणयोरेव सधेदेहभिव् शरान् ।
शुशामायेशयामास रावणि समितिजय ॥ ७ ॥

तबश्राव्य सुद्विजयी रावणपुत्र इन्द्रजित् फिर श्रीराम और
लक्ष्मणपर ही उनके समूह अश्रोंको विदीर्ण करनेवाले बाणोंकी
बारबार बर्षा करने लगा ॥ ७ ॥

निरन्तरशरीरी तु तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
हुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पद्मगै शरता गतौ ॥ ८ ॥

उपित हुए इन्द्रजित्ने उन दोनों वीर श्रीराम और
लक्ष्मणको बाणरूपधारी स्रोंद्वारा इस तरह बौंधा कि उनक

शरीरमें थाड़ा-सा भी ऐसा स्थान नहीं रह गया; जहाँ राण गले
हों ॥ ८ ॥

तयो क्षतजमार्गेण सुस्त्राज रुधिर घटु ।
तावुभौ च प्रक्रमेते पुष्पितविष किमुनी ॥ ९ ॥

उन दोनोंने अङ्गम का घाव हो गये थे; उनसे मार्गसे
बहुत रक्त बहने लगा । उस समय वे दोनों भाइ ज़िल हुए
दो पणश वृक्षोंसे समान प्रस्रावित हो रहे थे ॥ ९ ॥

तत पयन्तरस्ताशो भिन्नाङ्गनयोपम ।
रावणिर्भर्तारौ याक्यमन्तधानगतोऽग्रीव ॥ १० ॥

इसी समय जिधेने नेत्रप्रान्त कुछ लाल थे और शरीर
खानसे काटकर निराल गये क्षयलोक डेररी भाँति काला था;
वह रावणकुमार इन्द्रजित् अन्तधान अन्तस्थामें ही उन दोनों
भाइयोंमें इस प्रकार बोला—॥ १० ॥

युध्यमानमनालक्ष्य शस्त्रोऽपि त्रिदशेश्वर ।
द्रष्टुमासादितु वापि न शक्त् किं पुनयुधम् ॥ ११ ॥

‘युद्धके समय अश्रय हो जानेपर तो मुझे देवराज इन्द्र
भी नहीं देख या पा सकता’ फिर तुम दोनोंकी क्या नियात
है ॥ ११ ॥

प्रापिताविपुजालेन राघवौ कङ्कपजिना ।
एष रोपपरीतात्मा नयामि यमसादनम् ॥ १२ ॥

‘मैंने तुम दोनों खुशियाँकी ककपत्रपुत्र बाणके जाल
में कैसा लिया है । अब रागसे भरकर मैं अभी तुम दोनोंको
यमलोक भेजे देता हूँ’ ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा तु धर्मश्री आतरी रामलक्ष्मणौ ।
निर्विमेद शितैराणै प्रजहप ननाद च ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर वह धर्मके शक्ता दोनों भाइ श्रीराम और
लक्ष्मणको वेने बाणोंसे बौंधने लगा और हर्षका अनुभव करते
हुए जोर-जोरसे गज्जा करने लगा ॥ १३ ॥

भिन्नाङ्गनचयश्यामो विस्फाय विपुल धनु ।
भूय एष शरान् घोराण् विससर्ज महामृष्टे ॥ १४ ॥

कटछटे कोयलेकी राखिफ समान काला इन्द्रजित् फिर
अपने विशाल धनुषको फैलाकर उस महाधमरमें धोर बाणोंमें
क्या करने लगा ॥ १४ ॥

ततो ममसु ममशो मज्जयन् निशितान्शरान् ।
रामलक्ष्मणयोर्मयो ननाद च मुहुमुहु ॥ १५ ॥

मममलको जाननेवाला वह वीर श्रीराम और लक्ष्मणने
ममस्थानोंमें अपने पैने बाणोंको डुबोना हुआ बार-बार गज्जा
करने लगा ॥ १५ ॥

वद्धो तु शरवधेन तायुभौ रणमूधनि ।

निमेषान्तरमात्रेण न शेक्तुरवेक्षितुम् ॥ १६ ॥

सुदन मुगलिनर बगच बघनमे बैसे हुए थे दोनों बच्चे
पलक भारत-भारत ऐसा दराका पहुँच गये कि उनमें आँख
टटाकर देखनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी (बम्बयमे यह
उनकी मनुष्यताका नाश करनेवाली सीलमात्र थी। व ता
कादर भी काल है। उन्हें कौन बॉध सकता था ?) ॥ १६ ॥

तनो विभिन्नमवाह्नौ दारदात्याचिती कृनौ ।

घृजागिव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पिनी ॥ १७ ॥

इम प्रकार गनक सार भद्र विधि गय थ । बगोने
व्याप्त हा गय थ । वेरमनी मुक्त हुए देवराज इन्द्रक ॥
ध्वजक समान कर्तित हाने छो ॥ १७ ॥

तौ सम्प्रचलितौ धीरौ मममेदेन वदितौ ।

निपेतुमहेष्टासः जगत्या जगर्तापनी ॥ १८ ॥

वे महान् धनुर्धर वीर भूतल मर्मगलन भदनमे विज-
जित्वा एव कृत्वा राव हा र्ण्यान्तर मित पदे ॥ १८ ॥

तो घाएदायने धारी दायनी दधिगेमितौ ।

शरघेष्टिनमयाद्वाशर्तौ परमपीडितौ ॥ ६९ ॥

सुदन्मिमे वारुण्यार सय हए व दानो बीर रनमे
नहा ज ये । उनके सारे अङ्गोमे वाग्वपारी नाम लिखे
हए थ तथा वे अन्न पाहेन एन व्ययित हा रह थ ॥११॥

नन्विद सयोगिने वभूवाङ्गमन्तरम् ।

नानिर्विण्णं न चाध्वस्तमाकरामादनिहर्गं ॥ २० ॥

उनके शरीरमें एक अद्भुत मी जगह ऐसी नहीं थी
जहाँ वे किसी भी वस्तु को छुँसकर उसे अपने
आस पास नहीं ला सकते थे। वे बस अपने
हस्तों से ही उसे छुँस सकते थे ॥ २० ॥

तौ तु धृष्टेण निहतौ रथमा कामरूपिणा ।

अथ वसुधैव कुटुम्बकम् अथ प्रसन्नवर्णाविश्व ॥ २१ ॥

जैन धर्म का निगल रूप है सभी प्रकार के दलों
का इच्छापूर्वक रूप धारण करनेवाला उसका लक्ष्य है
मे ~~का~~ हा तीर्थ केने रत्नी धारा बहा रह्य ॥ २१ ॥

पुनत प्रथम रामो विदो ममसु मागण ।

श्रेयादिन्द्रजिना यन पुग शयो विनिर्निन ॥ २२ ॥

मिलने पूर्ण होने इत्यादि शब्दों से या मन्त्र
 निरुद्धे प्रभृति चार्पण कृत शक्तियों मन्त्रोत्पत्ति
 शक्ति शक्ति परम शक्ति ही शक्ति ही ॥ २ ॥

रक्षमपुत्रं प्रमन्नायै रजोगतिभिर्गन्तुम् ।

नमः प्रथमगमनल्लरञ्जिहैरि

विज्याध वन्मदन्तैश्च मिहद्वेष्टे ध्रुवंस्तथा ॥ २३ ॥

इन्द्रविजने उन्हें खनन पत्र, लच्छ अग्रमा और धूल
 क समान गन्ध (अर्थात् धूलही मूर्ति छिद्रछिन्नम्य
 में मी प्रवेश करनेवाले) शीघ्रान्ति नाशक अभयनाशक,
 मन्त्र, अञ्जलि, वस्त्र, सिद्धि और धुर इति
 साक्षात् फल कर दिया था ॥ २३ ॥

स घीरक्षयने दिक्ष्येऽग्रिन्यमाविध्य क्यमुरुम् ।

भिन्नमुष्टिपरीणाह विन्न रुक्मभूषितम् ॥ २५ ॥

शिवरी प्रपञ्चा चरा हृद दो स्ति मुदीरा बधन
दीला पड़ गया था, ज दोनो पञ्चाभाग और सप्तमस
तानों स्थानों हुका हुआ तथा मुजमे नृति था म्म घनुर
अ त्वाकर मंगान् श्रीम वारमवार रुद हए थ ॥

थाणपानान्तरे राम पतित पुरुषदभम् ।

स तत्र लक्ष्मणो दृष्ट्वा निराशो जीरितः प्रभयम् ॥ २० ॥

पंच हुआ का जितना दूर र गिना है, अनेने उन्नी
ही दूर पर घटान कर पड़े हुए पुरुष पर भीमरा दगर
रक्षा वहाँ अने ज्ञानने निराश हा गन ॥ २ ॥

राम कमलपत्राय नमः शरण्य रणतारिणम् ।

नुशोर भ्रानर ह्द्व पनित धर्णतिले ॥ २६ ॥

स्वयं शरा देनेवा और युद्धमें मृत्यु देनेवा अने
 भद्र कर्मजन भीमराज प्रणाम वहा पर लम्बाय वहा
 शक्ति हुआ ॥ १६ ॥

हरयश्चापि त द्वा मनाय परम गता ।

शोफनादचक्रपुष्पोग्मथुपरित्येयना ॥ २७ ॥

उई उस अग्नाने दण्डर नण्डा भी बड़ा सना
हुआ । बे शकम अदुर हा नयों अँगू मरकर प' आन'
 करने लगे ॥ २७ ॥

यस्यै न नै। यैग्यै शयाना

ते घानगा सम्परिचाय तस्यु ।

ममोगना धायुमुनप्रमुग्या

शिशुदमात् पश्य य जन्तु ॥२८॥

[illegible]

नागपाशमें बँधकर वीरश्यापार सोये हुए उन दोनों आये हुए हनुमान् आदि मुख्य मुख्य वानर व्यथित हो बड़े भाइयोंको चारों ओरसे घेरकर सब वानर सङ्गे हो गये । वहाँ निपादम पड़ गये ॥ २८ ॥

हर्याये श्रीमद्भारमयणे वाल्मीकीये आदिवाक्ये युद्धकाण्डे पञ्चत्वारिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

१५ प्रकाश श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यभट्टमयण आदिवाक्यक युद्धकाण्डमे पँतालिसवौ सर्ग पू। हुआ ॥ २९ ॥

पट्चत्वारिंशः सर्गः

श्रीराम और लक्ष्मणको मूर्छित देख वानरोंका शोक, इन्द्रजित्का हर्षोद्गार, विभीषणका सुग्रीवको समझाना, इन्द्रजित्का लङ्कामें जाकर पिताको शत्रुवधका वृत्तान्त बताना और प्रसन्न हुए रावणके द्वारा अपने पुत्रका अमिनन्दन

ततो घा पृथिवीं चैत्र धीममणा धनौकसः ।

दृष्टुं सन्तो वाणैश्चातरो रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

तदनन्तर १२ उपयुक्त दस वानर पृथ्वी और आसानी छानबीन करके लीट, तब उन्होंने दोनों भाइ श्रीराम और लक्ष्मणका बाणोंसे निभा हुआ देखा ॥ १ ॥

वृद्धेघोपरते दधे हृतकर्मणि राक्षसे ।

आजगामाथ त देहा ससुग्रीवो विभीषण ॥ २ ॥

जैसे बया नरन देवगन इन्द्र शान्त हो गये हैं, उसी प्रकार यह राक्षस इन्द्रजित् जब अपना काम बनाने बाणरों से निज हो गया, तब सुग्रीवसहित विभीषण भी उन स्थानपर आये ॥ २ ॥

नीलश्च छिविदो मेन्दु सुपेण कुमुदोऽद्भुतः ।

तूष्णं हनुमता साधमवशोचन्त राघवी ॥ ३ ॥

हनुमान्जीन साथ नील, द्विविध, मेन्दु, सुपेण, कुमुद और अद्भुत तरह की औसनायजीके छिपे शोक करने लगे ॥ ३ ॥

अचेष्टो मन्दनि दगाली शोणितेन परिप्लुनी ।

शरजालचित्तौ स्तब्धी शयानी शरतल्पगौ ॥ ४ ॥

उस समय वे दोनों भाइ खूनसे लथपथ होकर बाणशय्या पर पड़े थे । बाणोंसे उनका सारा शरीर व्याप्त हो रहा था । वे निश्चल होकर धीरे धीरे सँस ले रहे थे । उनकी चेष्टाएँ बंद हो गयी थीं ॥ ४ ॥

नि द्युसन्तौ यथा सपौ निद्वेष्टौ मन्दविक्रमौ ।

शरिरेक्षामदिग्वाङ्मौ तपनीयायिव ध्वजौ ॥ ५ ॥

सपौने समान सँस खाँचते और निश्चेष्ट पड़े हुए उन दोनों भाइयोंका पराक्रम मन्द हो गया था । उनके शरीर अद्भुत बहादुर उछीम सन गये थे । वे दोनों दृढ़कर गिरे हुए दो सुगमय ध्वजोंक समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ मन्दवेष्टौ ।

यूथपै स्वं परिप्लुतौ वाष्पव्याकुललोचनौ ॥ ६ ॥

वीरश्यापार सोये हुए मन्द चेष्टावाले वे दोनों वीर और

भरे नेनावाल अपने यूपपतियसे चिर हुए थे ॥ ६ ॥

राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमन्वितौ ।

यभूवुष्यथिता सर्वे वानरा हविभीषणा ॥ ७ ॥

बाणोंके जालमें आश्रित हानरप्रचीनर पड़े हुए उन दोनों खुशमी नयुओंसे देखकर विभीषणसहित सब वानर व्यथित हो उठे ॥ ७ ॥

अन्तरिक्ष निरीक्षन्तो विशः सर्वार्थं वानरा ।

न चैन मायया छन्द दृष्ट्वा रात्रिं रणे ॥ ८ ॥

समस्त वानर सम्पूर्ण दिशाओं और आसानीमें बारबार दृष्टिगत करनेपर भी मायाच्छन्ना रात्रणुमार इन्द्रजित्को रण भूमिमें नही देख पात थे ॥ ८ ॥

त तु मायाप्रतिच्छन्त माययैव बिभीषण ।

रीक्षमाणो दृशामे भ्रातु पुत्रमवस्थितम् ।

तमप्रतिमकर्मणमप्रतिद्वं द्रमाहवे ॥ ९ ॥

तब विभीषणने मायसे ही देखना आरम्भ किया । उस समय उन्होंने मायाने ही छिपे हुए अपने उस भतीजाक समने खड़ा देखा, जिसके कर्म अनुपम थे और युद्धस्थलमें जिनका कामना करनेवाला कोई योद्धा नही था ॥ ९ ॥

दृशान्तर्हितं वीरं वरदानाद् विभीषण ।

तेजसा यदात्ता वैव विक्लमेन च ससुतः ॥ १० ॥

तेज, बल और पराक्रमसे युक्त विभीषणने मायाके द्वारा ही परदानके प्रभावसे छिपे हुए वीर इन्द्रजित्को देख लिया ॥ १० ॥

इन्द्रजित् स्वात्मन कमतौ शयानौ समीक्ष्य च ।

उवाच परमप्रीतो हययन् सङ्गराज्यसन् ॥ ११ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणका युद्धभूमिमें छिपे देख इन्द्रजित्को बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने समस्त राक्षसोंका हर्ष बढ़ाते हुए अपने पराक्रमका वर्णन आरम्भ किया— ॥ ११ ॥

कृपणस्य च हन्तारौ खरस्य च महायत्नौ ।

साक्षितौ मामवैवाणैश्चातरो रामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥

पह देता, जिहोने मर और दूषणता यष त्रिया था,
वे दोनों भाग महावली भीराम और लम्पण मरे बाणोने मारे
गये ॥ १२ ॥

नेमौ मोक्षयितु शक्यानेनस्मादिपुत्रधनात् ।
सर्वैरपि समगम्य सर्विमद्वै सुरासुरैः ॥ १३ ॥

यदि सार दुनिमद्वास्तवि समन देमा और अमुर भी
आ जायें तो व इस बाण-बधनने इन दोनोंको छुट्टाकर नहीं
दिला सकते ॥ १४ ॥

यत्कृते शिल्लयानस्य शोकानस्य पितुभम् ।
अस्तुष्ट्वा शयन गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ॥ १४ ॥
हस्तस्येय यत्कृते लङ्का नदी घषास्त्रिगुल ।
सोऽय मूलहरोऽनर्थ सर्वेषा दामितो मया ॥ १५ ॥

जिमन कारण चित्ता और शरसे पीड़ित हुए मरेपिता
को छोटी रात गप्पाका सग त्रिये त्रिया ही त्रियानी पड़ती थी
तथा निष्ठन कारण यह छोटी लङ्का घषारालम नदीरी मौनि
व्याकुल रहा करती थी, हम स्वरी जड़का काटनेवाल उस
अनर्थको भान मीने दामित कर दिया ॥ १४ १५ ॥

रामस्य लक्ष्मणस्यैव सर्वेषा च घनैकसाम् ।
त्रिफला निफल सर्वेषा शरदि तोषदा ॥ १६ ॥

जैने धारद्वयन सारे बादल पानी न बरसानेने कारण
व्यथ होते हैं, उही प्रकार भीराम, लम्पण और सग्युध वानरों
के सारे बल-विम निफल हो गये ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु तान् सयान् रागसान् परिपद्यत ।
यूयपानपितान् सर्वोस्ताडयत् स च रावणि ॥ १७ ॥

अनी अर देवत हुए उा सब राक्षसे एका बहकर
रागकुमार इन्द्रविन्दने वानरोंन उन समन मुपसिद्ध यूय
पतियोंका भी मारना आरम्भ किया ॥ १७ ॥

नील नमभिराहत्य मैन्द मडिबिद् तथा ।
त्रिभिस्त्रिभिरमिषस्तनाप परमपुभिः ॥ १८ ॥

उस गुप्सूतन निगावर वीरन नीलरो नी बाणोने घाय
करके मन्द और दिग्गिरो तीन-तीन उत्तम बाणोंद्वारा मार
कर सप्त कर दिया ॥ १८ ॥

आम्ययन्त मदेवामो विदूषा बाणन वक्षसि ।
हनुमतो घेगवतो विसमन शयान् ददा ॥ १९ ॥

मगधुनार इन्द्रविन्दने जगन्नाथी छतामे एक काम
गया चा वहुतार वगन्ना हनुमन्नीभी भी मर गया
मर ॥ १९ ॥

गवाय शतम रैर ताग्यमितिश्रमो ।
हाम्याहाम्यामगाम्या त्रिधाधयुधि रावणि ॥ २० ॥

गवाहाम्या फा उस काय वहुन बड़ा हुआ ॥

उसने युद्धमन्त्रे अभिन पराङ्गी गगन और गरमता भी
दोना बाण मारकर पायल पर दिया ॥ २० ॥

गोलाहलेद्वय चैव वालिपुत्रमगद्वदम् ।
त्रियाध प्रभुभिर्बाणैस्त्वरमाणोऽथ रावणि ॥ २१ ॥

तन्त्रर बड़ी उतावलीर साथ बाण चलान हुए रावण
कुमार इन्द्रविन्दने पुन बहुसम्पन्न बाणोंद्वारा लङ्कारन रावण
(गगन) को और वालिपुत्र अन्नदता भी गन्ती नोट
पहुँचायी ॥ २१ ॥

तान् वानरवरान् भित्ता शरीरमिज्जोपमै ।
ननाद् बलवास्तत्र महाम्बर स रावणि ॥ २२ ॥

इस प्रकार अभिनृत्य तेजस्वी बाणोंसे उन मुग्य-मुग्य
वानरोंका पायन करने महान् धैर्यगाली और बलवान् रावण
कुमार यहाँ और-आगे गजना करने लगा ॥ २२ ॥

तान्द्वितया बाणौघैस्त्रासयिष्या च वानरान् ।
प्रजहास महाबाहुजन चेद्वमप्रभीत् ॥ २३ ॥

अपन बाणसमूहोंसे उन वानरोंको पीड़ित तथा मयमीन
करके महाबाहु इन्द्रविन्द अन्दास करने लगा और इस प्रकार
बाला— ॥ २३ ॥

शरपञ्चन घोरेण मया यद्यौ चममुये ।
सहितौ ध्यानरागेनौ निद्रामयन राक्षसा ॥ २४ ॥

राक्षसों । देत लः मीने युद्ध गुणनेर मयकर बाणोंने
पागने इन दोनों माइयों भीराम और लम्पणको एक साथ
ही बंध लिया है ॥ २४ ॥

एगमुनास्तु ते सर्वे रागसाः कृडयोधिन ।
पर विस्मयमापन्ता कम्पना नत हविना ॥ २५ ॥

इन्द्रविन्द एका बहनेर वृत्त-युद्ध करनेशाने ये सब
राक्षस बड़ चिन्त हुए और वरत उम कम्पने उड़ें बड़ा हर्ष
भी हुआ ॥ २५ ॥

त्रिनेदुध महानादान् सर्वे ते जलक्षोपमा ।
हतो राम इति धाया रावणि वमपूनयन् ॥ २६ ॥

व सब कम्पन सर्वे नमन गम्भीर वरन मन्त्र निगा
करने लगे तथा यह समसारा नि भीराम मर गा वगनेने
गवाहाम्या बड़ा अभिनृत्य दिया ॥ २६ ॥

निपन्दौ तु तदा दृष्ट्वा धातरं रामलक्ष्मणौ ।
वसुधाया निराधुधासो हतादिपञ्चमयन ॥ २७ ॥

इन्द्रविन्द भी जग लङ्का दि मरण और लम्पण-
मरते भाव पण्यार निगा य द तथा वनस मर भी न
मर गे मर वगनेने मर हुआ ही गया ॥ २७ ॥

हरेण तु समाश्रित इन्द्रविन्द समितिष्य ।
प्रतिशत पुरी पदा दायन् सधनक्रान् ॥ २८ ॥

इससे सुदृगिनी इन्द्रिजिरो बड़ा हर्ष हुआ तथा वह समस्त राक्षसोंका हृष बनाता हुआ लङ्कापुरीमें चला गया ॥ २८ ॥

रामलक्ष्मणयोद्वेष्टा शरीरि सायकैश्चिते ।
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीउ भयमाशिशत् ॥ २९ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरों तथा सभी अङ्ग-उपाङ्गोंको बाणोंसे व्याप्त देख सुग्रीउके मनमें भय समा गया ॥ २९ ॥

तमुवाच परिग्रस्त यानरेद्र विभीषण ।
सयापवदन दीन शोकज्याकुललोचनम् ॥ ३० ॥
अल्प्र प्रसेन सुग्रीउ यापपथेगो निर्गृह्यताम् ।

उनका मुखपर दीनता छा गयी; आँसुओंकी धारा वह चली और नेत्र शोकसे व्याकुल हो उठे । उस समय अत्यन्त भयभीत हुए यानरराजने विभीषणने कहा—'सुग्रीउ ! डरो मत । इन्होंने कोई ल्यम नहीं । आँसुओंका यह वग रोने ३०-३१

एवमापणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिका ॥ ३१ ॥
सभाभ्यश्रोपतास्माक यदि वीर भविष्यति ।
मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानो महाबलौ ॥ ३२ ॥
पयवस्थापया मानमनाथ मा च यानर ।

सन्धधमाभिरचाना नास्ति मृत्युहृत भयम् ॥ ३३ ॥

'वीर ! सभी युद्धोंकी प्राय ऐसी ही स्थिति होती है; उनमें विजय निश्चित नहीं हुआ करती । यदि हमलोगोंका भाग्य शोष होगा तो ये दोनों महावीर महात्मा' अवश्य मूर्छा ल्याग देंगे । यानरराज ! तुम अपनेको और मुझ अनाथको भी हँसालो । जो लोग मल्य धर्ममें अनुराग रखते हैं; उन्हें मृत्यु का भय नहीं होता है' ॥ ३१-३२ ॥

पयमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना ।
सुग्रीवस्य गुणे नेत्रे प्रममार्जं विभीषण ॥ ३४ ॥

ऐसा कहकर विभीषणने जलसे भीगे हुए हाथसे सुग्रीव के दोनों सुन्दर नेत्र पोंछ दिये ॥ ३४ ॥

तत सलिलमादाय विधया परिजप्य च ।
सुग्रीवनेत्रे धमात्मा प्रममार्जं विभीषण ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर उठे सज्जपूत करके धर्मात्मा विभीषणने सुग्रीवके नेत्रोंमें लगाया ॥ ३५ ॥

निमृज्य घदन तस्य कपिपञ्चस्य धीमत ।
अब्रवीत् कालसम्प्राप्तमसम्प्राप्तमिदं घच ॥ ३६ ॥

किर बुद्धिमान् यानरराज ! भीगे हुए मुखको पोंछकर उन्होंने विना किसी घवरहटके यह सम्प्रेषित बात कही—३६।

न काल कपिराजेद्र वैकुण्ठमयलम्बितम् ।
अतिस्नेहोऽपि कालेऽस्मिन् मरणायोपकरपते ॥ ३७ ॥

'यानरसम्प्राट् ! यह समय घवरहेतय नहीं है । ऐसे समय

में अधिक स्नेहना प्रदर्शन भी मौनका भय उपस्थित कर देता है ॥ ३७ ॥

तस्मादुत्सृज्य वैकुण्ठ्य सर्वापायविनाशनम् ।
दित रामपुरोगाणा सैन्यानामुचिन्तय ॥ ३८ ॥

'प्रस्थित्ये सव कामाग्रे विगाड देनेवाली इस घवरहटको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी जिनके आगुआ अपना स्वामी हैं; उन सेनाओंके हितका विचार करो ॥ ३८ ॥

अथ वा रक्षयता रामो यावत्सहाविपर्यय ।
लब्धसङ्गो हि काष्ठुत्स्यो भय नो व्यपनेष्यत ॥ ३९ ॥

'अथवा जनक श्रीरामचन्द्रजीका चेत न हो; तबतक इनकी रक्षा करनी चाहिये । होमैं आ जानेपर ये दोनों खुशंशी वीर हमारा साथ भय दूर कर देंगे ॥ ३९ ॥

नैतत् किञ्चन रामस्य न च रामो मुमुर्षति ।
नद्येन हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥ ४० ॥

'श्रीरामके लिये यह संका कुछ भी नहीं है । वे मर नहीं सकते हैं क्योंकि जिनकी आयु समाप्त हो चली है; उनके लिये जो दुर्लभ लक्ष्मी (छोमा) है; वह इनका त्याग नहीं कर रही है ॥ ४० ॥

तस्मादास्थासयात्मान वल चाभ्यासय स्वकम् ।
यावत् सैन्यानि सवाणि पुन सस्थापयाम्यहम् ॥ ४१ ॥

'अतः तुम अपनेको संभालो और अपनी सेनाको आश्वासन दो । तबतक मैं इस घवरपी हुई सेनाको फिरसे वैय बैठाकर सुखिर करता हूँ ॥ ४१ ॥

एते हि फुल्लनयनास्मादागतसाध्वसा ।
कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिस्तत्तम ॥ ४२ ॥

'अभिप्रेष्ट ! देखो; इन वानरोंके मनमें भय समा गया है; इसीलिये ये आँखें काढ़ काढ़कर देखते हैं और आपसमें कानाफूसी करते हैं ॥ ४२ ॥

मा तु दृष्ट्वा प्रधाबन्तमनीक सम्प्रहर्षितम् ।
त्यजतु हरयस्त्राशु भुक्पूर्वामिष अजम् ॥ ४३ ॥

'(अतः मैं इन्हें आश्वासन देने जाता हूँ) मुझे श्पपूर्वक हृष उचर दीहते देख और मेरे हाथ धैय दैधायी हुई सेना को प्रसन्न होती जान ये सभी वानर पहलेकी भोगी हुई माला की भाँति अपनी लारी मय शङ्काको त्याग दें' ॥ ४३ ॥

समाध्यास्य तु सुग्रीउ राक्षसेद्रो विभीषण ।
विद्रुत यानरानीक तत् समाध्यासयत् पुन ॥ ४४ ॥

इतः प्रक्षार सुग्रीवको आश्वासन दे राक्षसरज विभीषणने मागनेके लिये उच्यत हुई वानर-सेनाको फिरसे सन्तवना दी ॥ ४४ ॥

इन्द्रजित् तु महामाय सजसैन्यसमावृतः ।
विवेश नगरीं लङ्का पितर चाभ्युपागमत् ॥ ४५ ॥

इधर मगमायाही इन्द्रजित् सारी सेनाये साथ लड़ापुर्णमें
लौग और अपने विना पास आया ॥ ४५ ॥

तत्र रावणमासाद्य अभिप्राय कृताञ्जलि ।
आग्रचसे प्रिय पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४६ ॥

यहाँ रावण पास पहुँचकर उठने उसे हाथ जाड़कर
प्रणाम किया और श्रीराम-लक्ष्मण मारे जानेका प्रिय समाद
सुनाया ॥ ४६ ॥

उत्पपात तनो हृष्ट पुत्र च परिपक्वजे ।
रागणो रमसा मध्ये धुगा दशू निपातितौ ॥ ४७ ॥

राक्षसों की बीचमें अपने दोनों 'गुबुओंके मार जानेका
समाचार सुनकर रागण हर्षमें उछल पड़ा और उठने अपने
पुत्रका हृदयमें लगा लिया ॥ ४७ ॥

उपाधाय च त मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानस ।
पृच्छते च यथावृत्त पित्रे तस्मै न्यरेदयत् ॥ ४८ ॥

उपाधाय च त मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानस ।
पृच्छते च यथावृत्त पित्रे तस्मै न्यरेदयत् ॥ ४८ ॥

हाथों के आगमनापण वासोकीये आदिकाव्य युद्धकाण्डे सप्तचत्वारिंश सर्ग ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भवप्रसूतिनिमित्त भगवत्पदम अदिकाव्य युद्धकाण्डे सप्तचत्वारिंश सर्ग पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंश सर्गः

वानरोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणकी रक्षा, रावणकी आज्ञासे राक्षसियोंका सीताको
पुष्पकरिमानद्वारा रणभूमिमें ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन
कराना और सीताका दुखी होकर रोना

तस्मिन् प्रविष्टे लक्ष्मणा कृतार्थे रागणाग्रजे ।
राघव परिधापाद्य ररभुवानरपभा ॥ १ ॥

रागणद्वारा इन्द्रजित् जब अपना काम बनाकर लड़ाईमें
चला गया, तब उसी भेद यानर भीखुनापडाका चर्च अरसे
धरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ १ ॥

हनुमानकदो नील सुयेण कुमुदो नल ।
गजो गरायो गयय दामो गधमादल ॥ २ ॥
जाम्बवानुपभ म्य यो रमभ शनयलि पृथु ।
ध्यूतनीशश्च यताश्च द्रुमानादाय मयन ॥ ३ ॥

हनुमान्, अमर, नील सुयेण, कुमुद, नल, गज
गणेश गयय, गधमा, गधमा, गधमा, गधमा, गधमा,
रमभ, शनयलि और पृथु—य सब गजपथन हा बानी सेनाही
म्यूरजना पररु हाथोंमें हाथ लिये सब अरसे पहर देने
लगे ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥

धीक्षमाणा दिदा सवास्तिपगूर्धं च यानगा ।
रुणप्रपि च येणसु रावसा इनि मेजिने ॥ ४ ॥

ये सब यन्त्र सम्पूज निजाओंमें ऊपरनीचे और भग्न
भग्नमें भी देखने लगे थे तथा निजाओं भी निज यन्त्रों
वरी समस्त थे कि सम्पूज भग्न ॥ ४ ॥

यथा तौ शरयचेन निशेधौ निष्पधौ कृतौ ॥ ४९ ॥

किर उसका मस्तक सूँधकर उठने प्रसन्नचित्त होकर उस
घरनाका पूरा नियरण पूरा । पृच्छनेर इन्द्रजित्ने निशेध
साय कृतान्त व्योना-स्थों निवेदन किया और यद बनाया कि
निश प्रसार थाणों बचनमें बांधकर श्रीराम और लक्ष्मणको
निशेध एवं निशेध किया गया है ॥ ४९ ॥

स ह्यवेगानुगतान्तरामा
श्रुत्वा गिर तस्य महारघस्य ।

जहौ उबर दादाये समुप्य
प्रहृष्टयाचामिनन्द पुत्रम् ॥ ५० ॥

महारथी इन्द्रजित् उस यानरी सुनकर रागणी अन्त
रामा हर्षमें उद्रेकमें लिप्त उनी । दशरथनन्दन श्रीरामरी और
से जो उसे भय और चिन्ता प्राप्त हुई थी, उसे उठने त्यागदिया
और प्रसन्नपुष्प वचनोंद्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन किया ॥

रावणश्चापि सहये विसृज्येन्द्रजित सुतम् ।
आनुहाय तत सीतारक्षणी राक्षसीलदा ॥ ५ ॥

उपर हर्षमें भरे हुए रावणने भी अपने पुत्र इन्द्रजित्को
बिदा करके उस समय सीताकी रक्षा करनेवाली राक्षसियोंको
मुक्तया ॥ ५ ॥

राक्षस्यभिजय चापि दासनात् तमुपम्यता ।
ता उवाच तनो हृष्टो राक्षसी रावसाधिप ॥ ६ ॥

आज्ञा पाने ही विजय तथा प्रत्य राक्षसी उठने वस
आयी । तब हर्षमें भरे हुए राक्षस्यने उन राक्षसियोंको
कहा— ॥ ६ ॥

हताविन्द्रिगतायाल वैदहा रामलक्ष्मणौ ।
पुष्पक तन्समासाय द्वापय रणे हतौ ॥ ७ ॥

पुष्पक विदेहमासी सीताने उबर कहा कि इन्द्रजित्ने
राम और लक्ष्मणको मार दया । किर पुष्पकमिनन्दन सीत
को बचाकर रणभूमिमें ले जाये और उन सब गज दोनों
वपुओंका टो गिरा दो ॥ ७ ॥

यथायथावदवस्था नेय मामुपनिष्टे ।
सोऽस्या भवा मरु आना जिता रणभूमिनि ॥ ८ ॥

विजिते आश्रयते गम्ये भरकर यह मेरे पास नहीं आनी थी; वह इससे पनि अपने भाईके साथ युद्धक मुहानेपर मारा गया ॥ ८ ॥

निर्विदाहानि निरुत्तिना नितपेक्षा च मैथिली ।
मामुपस्थायते सीता सवाभरणभूषिता ॥ ९ ॥

अथ मिथिलानुमारी सीताको उसरी अपेक्षा नहीं रहेगी । वह समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो भय और दाहाने त्यागकर मेरी सेवामें उपस्थित होगी ॥ ९ ॥

अथ कालवश प्राप्त रणे राम सलक्ष्मणम् ।
अनेक्ष्य विनिवृत्ता सा चान्या गतिमपश्यती ॥ १० ॥
अनपेक्षा निशालाक्षी मामुपस्थायते स्वयम् ।

आज रणभूमिमें बाल्य अधीन हुए राम और लक्ष्मण का देखकर वह उनकी आरसे अपना मन हटा लगी तथा अपने लिये वृत्ता कोई आश्रय न देखकर उधरसे निराग हो निशालोचना सीता स्वय ही मेरे पास चली आवेगी ॥ १० ॥

तस्य तद् यत्नन भुत्वा रावणस्य दुरात्मन ॥ ११ ॥
राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जम्बुर्वै यत्र पुष्पकम् ।

दुरात्मा रावणरी वह जान मुनकर वे सब राक्षसियों बहुत अच्छा कह उस स्थानपर गया। वहाँ पुष्पक-विमान था ॥ ११ ॥

तत पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥ १२ ॥
अशोकवनिकास्था ता मैथिली समुपानयन् ।

पुष्पककी आज्ञासे उस पुष्पकविमानको वे राक्षसियों अनोखानिकाम बैठी हुई मिथिलानुमारीके पास ले आयी ॥

तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम् ॥ १३ ॥
सीतामारोपयामान्मुनिमान पुष्पक तथा ।

उन राक्षसियोंने पतिके शोकसे व्याकुल हुई सीताको तत्काल पुष्पकविमानपर चढ़ाया ॥ १३ ॥

तत पुष्पकमारोप्य सीता विजटया सह ॥ १४ ॥
जम्बुवृंशयितु तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ ।

रावणआज्ञासे पताकावजमालिनीम् ॥ १५ ॥

सीताको पुष्पकविमानपर बिजटत्रिजगत्स्थित व राक्षसियों उई रामलक्ष्मण का दान करानेके लिये चला । इस प्रकार रावणने उई ध्वजा-पताकाओंसे अश्रुत लङ्कापुर्वीक ऊपर चित्रण कराया ॥ १४ ॥

प्राद्योपयत हृष्ट्य लङ्काया गन्धसेध्वर ।
राद्यो लक्ष्मणश्चैव हस्ताविभ्रजिता रणे ॥ १६ ॥

इधर हर्षसे मेरे हुए राक्षसराज रावणने लङ्कामें स्वयं यह घोषणा करा दी कि राम और लक्ष्मण रणभूमिमें हस्तविभ्रजे हाथसे मार गये ॥ १६ ॥

विमानेनापि गतम् तु सीता विजटया सह ।
ददश चानराणा तु सर्वे सैन्य निपातितम् ॥ १७ ॥

विजगके साथ उस विमानद्वारा वहाँ जाकर सीताने रणभूमिमें जो गानवोंकी सेनाएँ मारी गयी थीं, उन सबका देया ॥ १७ ॥

प्रहृष्टमनस्त्वापि ददर्श पिशिताशानान् ।
वानगच्छातिदु खानान् रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १८ ॥

उन्होंने मासभङ्गी राक्षसोंकी तो भीतरसे प्रहृत देखा और भीरु तथा लक्ष्मणके पास खड़े हुए गानवोंका अत्यन्त दुःखसे पीड़ित पाया ॥ १८ ॥

तत सीता ददर्शभी शयानौ शरत्तत्पगौ ।
लक्ष्मण नैव राम च प्रित्तौ शरपीडितौ ॥ १९ ॥

तदनन्तर सीताने बाणशय्यापर सोय हुए दोनों भाई भीरु और लक्ष्मणसे भी देखा; जो बाणोंमें पीड़ित हो संशयपूर्ण होकर पड़े थे ॥ १९ ॥

विष्यस्तकवचौ धीरौ विप्रविद्धशरासनौ ।
सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तस्यमयी क्षितौ ॥ २० ॥

उन दोनों धीरोंके कवच टूट गये थे; घनुष-बाण अलग पड़े थे; सयकौसे शर अङ्ग छिद गये थे और वे बाणसमूहके बने हुए पुतलोंकी भाँति पृथ्वीपर पड़े थे ॥ २० ॥

तौ हृष्टा भ्रातरौ तत्र प्रक्षीरौ पुरुषभौ ।
शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कुमारविव पावकौ ॥ २१ ॥

शरत्तत्पगतौ धीरौ तयामूतो नरपभौ ।
दुःखार्ता करुण सीता सुभृश बिल्लप ॥ २२ ॥

जो प्रसन्न वीर और समस्त पुरुषोंमें उत्तम थे, वे दोनों भाई कमलनयन राम और लक्ष्मण अग्निपुत्र कुमार शाल और निशालकीमौलि शरसमूहमें सारहे थे । उन दोनोंनर-पुरुषोंकी उस अवस्थामें बाणशय्यापर पड़ा देख हुआसे पीड़ित हुई सीता करुणाजनक स्वरमें जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥ २१-२२ ॥

भतारमनघाही लक्ष्मण चास्तितेक्ष्ण ।
प्रेक्ष्य पासुषु जेष्टौ रगेद जनकात्मजा ॥ २३ ॥

निर्णय अङ्गागली स्वामलोचना जनकान्तिनी सीता अपने पति भीरु और देव लक्ष्मणको धूलमें लगते देख पूर-फूकर रोने लगी ॥ २३ ॥

सयाप्यशोकभिदता समीक्ष्य
तौ भ्रातरौ देवसुतप्रभावौ ।

वितर्कयन्ती निधन तयोः सा
दुःखान्विता वाक्यमिदं जगात् ॥ २४ ॥
उनके नेत्रोंसे आँसू यह रहे थे और हृदय शोक

आने पीड़ित था। दोनोंओंक तुम्ह प्रसारण उन आइ कती हु" व टु ख एर विनामे डूव गरी और दनों भाइयों उस अन्धामे देखकर मन मरणी इस प्रसार बगी॥ ८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणं बालमीकीयं आदि काण्डं मुद्रकाण्डं सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

इति रघुराश्रयान्निमित्तं च तत्प्रसंगे अष्टचत्वारिंशः मुद्रकाण्डे महाभारतं सप्त पूरा दुष्म ॥ ४० ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

सीताका विलाप और मित्रदाका उन्हें ममसा-बुझाकर श्रीराम-रक्ष्मणके जीवित होनेका विश्वास दिलाकर पुन लङ्कामें ही लौटा लाना

भतल निहत दृष्टा लक्ष्मण च महायत्नम् ।
विललाप श्रुता सीता करुण शोककशिता ॥ १ ॥

अने स्वामी भागमरु। तथा महायत्न लम्पारों की मार गरा देव ग्राम पड़ित हुइ सता वा बार कदवावनक नियर करने गल॥ १ ॥

ककुलाम्पिकस्य ये मा पुत्रिम्यभिधेयति च ।
तस्य सर्वे हत रामे भानिनेऽनृतशक्तिन ॥ २ ॥

ककुलाम्पिकस्य राजा मित्रदाने मुक्त पुत्रकी और कदवा बतवा था। अब भीममर मारे करने थे सर लङ्का राजा पुत्र अल्लु॥ २ ॥

यन्मनो नशिर्वाये मामृचु पर्मा च सधिण ।
तस्य सर्वे हत रामे भानिनेऽनृतशक्तिन ॥ ३ ॥

बिहोंने मुक्त मनगरा तथा निषि सधिका सचान्न करनेवा राक्षसिपुत्री की बतवा था। अब भीममर मारे करने थे सभा सधिका पुत्र ह। गय ॥ ३ ॥

धौरपाधिगपनीना ये रिदुभयपूजिताम् ।
तस्य सर्वे हत रामे भानिनेऽनृतशक्तिन ॥ ४ ॥

धौरपाधिगपनीना मुक्त बाग राक्षसों की पतिने पुत्रार और पतिर हय सम्पत्ति समरा ॥ अब भीममर न करने थे स। लक्ष्मण पुत्र मिनी। हा गय ॥ ४ ॥

ऊचु सधयौ य मा द्विजा कान्तिकस्य शुभाम् ।
तस्य सर्वे हत रामे भानिनेऽनृतशक्तिन ॥ ५ ॥

ऊचु सधयौ य मा द्विजा कान्तिकस्य शुभाम्। तस्य सर्वे हत रामे भानिनेऽनृतशक्तिन ॥ ५ ॥

इमानि स्युः पद्मानि पादयोः कुन्तिरिय ।
माधिगपधमिरियत नर द्वै पतिभिः सह ॥ ६ ॥

इमानि स्युः पद्मानि पादयोः कुन्तिरिय। माधिगपधमिरियत नर द्वै पतिभिः सह ॥ ६ ॥

पदर अभिपत्त हनी हैं। वे मर दनों पैरों में निमित्त लम्प विषमान हैं ॥ ६ ॥

पुत्रस्य यान्ति यनायोऽल्लुपणैर्भान्यदुल्भा ।
नामनस्तानि पदयामि पदयन्ता हतलम्पणा ॥ ७ ॥

पुत्रस्य यान्ति यनायोऽल्लुपणैर्भान्यदुल्भा। नामनस्तानि पदयामि पदयन्ता हतलम्पणा ॥ ७ ॥

सत्यनामानि पद्मविस्मृतामुक्तानि लम्पणैः ।
ताम्यच निहते रामे पितृयानि भयन्ति मे ॥ ८ ॥

सत्यनामानि पद्मविस्मृतामुक्तानि लम्पणैः। ताम्यच निहते रामे पितृयानि भयन्ति मे ॥ ८ ॥

केदां सुक्ता ममा नाथ्य भूरी चामहत मम ।
शूते चागेमवे जहे दन्ताधारिरला मम ॥ ९ ॥

केदां सुक्ता ममा नाथ्य भूरी चामहत मम। शूते चागेमवे जहे दन्ताधारिरला मम ॥ ९ ॥

शाने नम करी पादौ शुक्लरूप मम पित ।
अनुत्तनवत् मिधा ममाद्याहुया मम ॥ १० ॥

शाने नम करी पादौ शुक्लरूप मम पित। अनुत्तनवत् मिधा ममाद्याहुया मम ॥ १० ॥

स्वामी चारिस्ता पीना मामयः ममच्युष्टा ।
महा घातेधनी नभि पागेरका ममचिन्म ॥ ११ ॥

स्वामी चारिस्ता पीना मामयः ममच्युष्टा। महा घातेधनी नभि पागेरका ममचिन्म ॥ ११ ॥

गहरी और उसके आधराखे के भाग ऊँचे हैं । मेरे पार्श्वभाग तथा छाती माखल हैं ॥ ११ ॥

मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गहृदि च ।
प्रतिष्ठिता द्वादशभिर्मासूच्य शुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

मेरी अङ्गुष्ठान्ति खरादी हुई मणिके समान उज्ज्वल है । शरीरके रोहँ कोमल हैं तथा पैरोंकी दसों अँगुलियों और दोनों तलवों—ये बारहों पृथ्वीसे अच्छी तरह सट जाते हैं । इन सबके कारण लक्षणोंने मुझे शुभलक्षणा बताया था ॥

समप्रयथमच्छिद्र पाणिपाद च धनयत् ।
मन्दसितेत्येष च मा कन्यालक्षणा विदुः ॥ १३ ॥

मेरे हाथ-पैर लाल एव उत्तम वाक्यसे युक्त हैं । उनमें चौकी समूची रेखाएँ हैं तथा मेरे हाथोंकी अँगुलियों सब परस्पर सटी होती हैं, उस समय उनमें तनिक भी छिद्र नहीं रह जाता है । कन्याके शुभलक्षणोंको जाननेवाले विद्वानोंने मुझे मन्द-मुस्कानवाली बताया था ॥ १३ ॥

आधिराज्येऽभिषेको मे ब्राह्मणे पतिना सह ।
वृत्तान्तुदाहारेव तत् सर्वं दित्यर्थीकृतम् ॥ १४ ॥

अ्योतिषके सिद्धान्तसे जाननेवाले निपुण ब्राह्मणोंने यह बताया था कि मेरा पतिके साथ राज्याभिषेक होगा, किन्तु आज वे सारी बातें छठी हो गयीं ॥ १४ ॥

शोधयित्वा जनस्थान प्रवृत्तिमुपलभ्य च ।
तीर्था सागरमक्षोभ्य भ्रातरी गोपपदे हतौ ॥ १५ ॥

इन दोनों भाइयोंने मेरे लिये जनस्थानको छान डाला तथा मेरा समाचार पाकर अशोभ्य समुद्रको पार किया, किन्तु शाय ! इतना सब कर लेनेके बाद थोड़ी-सी राखसेनाके द्वारा जिते हरना इनके लिये गोपदको लॉपनेके समान था, वे दोनों मारे गये ॥ १५ ॥

ननु धारणमानेयमैद्र धायव्यमेध च ।
अथ ब्रह्मशिरदक्षैव राघवौ प्रत्यपघत ॥ १६ ॥

परन्तु ये दोनों खुरग्री बन्धु तो धारण, आग्नेय, ऐन्द्र, धायव्य और ब्रह्मशिर आदि अर्वाको भी जानते थे । मरनेसे पहले इन्होंने उन अशोभ्य प्रयोग क्यों नहीं किया ? ॥

अहद्वयमानेन रणे मायया वासवोपमौ ।
मम नाथायनायाया निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥

भुरग अन्ताषाके रखवा श्रीराम और लक्ष्मण इन्द्रतुल्य पराक्रमी थे, किन्तु इन्द्रजित्ने स्वयं मायासे अहद्वय रहकर ही इन्हें रणभूमिमें मार डाला है ॥ १७ ॥

नहि दृष्टिपत्र प्राप्य राघवस्य रणे रिपुः ।
जीवन् प्रतिनिवर्तत यद्यपि स्यामनोजय ॥ १८ ॥

अन्यथा युद्धस्थलमें इन श्रीरघुनाथजीने दृष्टिपत्रमें आकर

कोई भी शत्रु, यह मनने समान वेगवाली क्यों न हो जीवित नहीं लौट सकता था ॥ १८ ॥

न कालस्यातिभारोऽस्ति वृत्तान्तश्च सुदुर्जयः ।
यत्र राम सह भ्रात्रा शेते युधि निपातित ॥ १९ ॥

परन्तु फालवे लिये कुछ भी अधिक बोस नहीं है (यह सब कुछ कर सकता है) । उसके लिये दैवको भी जीवन विशेष कठिन नहीं है । इस फालने ही घटमें पड़कर आज श्रीराम अपने भाईके साथ मारे जाकर युद्धभूमिमें सो रहे हैं ॥ १९ ॥

न शोचामि तथा रामलक्ष्मण च महारथम् ।
नात्मान जननीं चापि यथा इवभूतपत्स्विनीम् ॥ २० ॥
सा तु चिन्तयते नित्यं समाप्तयतमागतम् ।
कदा प्रक्ष्यामि सीता च लक्ष्मण च सराघवम् ॥ २१ ॥

मैं श्रीराम, महारथी लक्ष्मण, अपने और अपनी माताके लिये भी उतना शोक नहीं करती हूँ जितना अपनी तपस्विनी सखुमीके लिये कर रही हूँ । वे तो प्रतिदिन यही सोचती होंगी कि यह दिन पच आयेगा जब कि वनवासका व्रत समाप्त करके वनसे लौटें हुए श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको मैं देखूँगी ॥ २०-२१ ॥

परिदेययमाना ता राक्षसी त्रिजटाप्रवीत् ।
मा विपाद हृद्या देवि भताय तथ जीयति ॥ २२ ॥
इष प्रकार विवक्षप करती हुई सीतासे राक्षसी त्रिजटाने कहा—देवि ! विपाद न करो । तुम्हारे ये पतिदेव जीवित हैं ॥ २२ ॥

कारणानि च वक्ष्यामि महासन्ति सदृशानि च ।
यथेयौ जीवतो देवि भ्रातरी रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥

देवि ! मैं तुम्हें कई ऐसे महान् और उचित कारण बताऊँगी, जिसे यह सूचित होता है कि ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जीवित हैं ॥ २३ ॥

नहि कोपपरीतानि हर्षपयुत्सुकानि च ।
भवन्ति युधि योधाना मुखानि निहतं पतौ ॥ २४ ॥

युद्धमें स्वामीके मारे जानेपर सोदाओंके मुँह क्रोध और हर्षकी उल्लुक्तासे युक्त नहीं रहते (किन्तु यहाँ वे दोनों बातें पायी जाती हैं । इसलिये ये दोनों जीवित हैं) ॥ २४ ॥

इह विमान वैदेहि पुण्यक नाम नामतः ।
दिव्यत्वा धारयेन्नेदं यथेयौ गतजीवितौ ॥ २५ ॥

वैदेहनन्दिनि ! यह पुण्यक नामक विमान दिव्य है । यदि इन दोनोंके प्राण चले गये होते तो (वैद्यव्यावसामों) यह दुर्घट धारण न करता ॥ २५ ॥

हृत्थीरप्रधाना हि गतोत्साहा निरुद्यमा ।
सेना भ्रमसि सक्थेयु हतकर्ण्य नौजले ॥ २६ ॥

इय पुनरस्मभ्रान्ता निरुद्धिमा तपस्विनि ।
सेना रक्षति काकुस्थी मया प्रीत्या निरेवितो ॥ २७ ॥

इसच सिरा जय प्रधान वीर माया जाता है, तब उसकी मेना उल्लाह और उद्योगमे हीन हा युद्धस्थलमे उसी तप्य मायी स्थिता है, जेमे वषणधारक ना हो जानेपर नौसा जन्म हा बहती रहती है । परतु तपस्विनि ! इस सेनामा किसी प्रकार की घबराहट या उद्वेग नहीं है । यह इन दोनों राजकुमारोंकी रण कर रही है । इस प्रकार मने प्रमत्तपर तुम्हें यह बताया है कि य दोनों भाइ जीवित ह ॥ २६ २७ ॥

मा त्व भय सुविभ्रान्ता अनुमानै सुखोदय ।
अहतौ पश्य काकुस्थी स्नेहादेतद् घ्नीमि त ॥ २८ ॥

इसलिय अन तुम इन भागो सुपरी सूचना देनेवाला अनुमानों (हेतुओं) मे निश्चित हो जाओ— विश्वास करो कि य जीवित हैं । तुम इन दोनों सुपरी राजकुमारोंका इसी रूप म देखा कि य मार नहीं गय ह । यह बात मैं तुममे स्नेहकर कह रही हूँ ॥ २८ ॥

अहत नोकपूर्व मे न च यक्ष्यामि मयिलि ।
यागिभुजशालिवात् प्रयिष्टामि मनो मम ॥ २९ ॥

मियिलेराकुमारी ! तुम्हाय शील-स्वभाव तुम्हारे निर्मल चरित्रके कारण बड़ा सुखदायक जान पड़ता है, इसीलिय तुम मरे मनमें धर कर गयी हो । अतएव मैंने तुम्हमे न तो पहल कभी छूट कहा है और न आगे ही कहूँगी ॥ २९ ॥

नेनौ शस्त्र्यै रणे जेतु से श्रेष्ठरपि सुरासुरै ।
तादृश दशान दृष्ट्वा मया खोदीरित तत्र ॥ ३० ॥

इन दोनों वीरोंका रणभूमिम इद्रक्षित समूह देवता और असुर भी नहीं थीन सज्ज । वैशा लक्षण देगकर ही मैंने तुममे य बातें कही ह ॥ ३० ॥

इद तु सुमहद्यिन्न शरै पश्यस्य मयिलि ।
विमन्त्री पतितायेनौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ ३१ ॥

मियिलेराकुमारी ! यह महान् आश्चर्यकी बात ता देना । क्योंकि लगनेमे य अचन हारर पड़े हा भी लक्ष्मी

इत्यर्थे श्रीमद्रामायणे बास्मीकीये आदिकाण्डेष्टकाध्याये सर्ग ॥ ३८ ॥

इम प्रकार श्रीरामकीकर्मिनिर्मित कर्षरमयण अदिकामात्र युद्धकाण्डमे अरतागीमर्दों की पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशे सर्ग

धीरामका सचेत होकर लक्ष्मणके लिये विलाप करना और मय प्राण-यागका विचार करके वानरोंको लौट जानेकी आगा देना

धारण शरपथन यदी द्वापथमजौ ।

मिदयस्त्री यथा जगौ गयानौ रघिगेरिना ॥ १ ॥

(गीरिणी सहज कान्ति) इनका त्याग नहीं कर रही है ॥ ३१ ॥

प्रायेण गतसत्त्वाना पुरुषाणा गतायुषाम् ।

दृश्यमानेषु यन्त्रेषु पर भक्ति वैदितम् ॥ ३२ ॥

धिनरे प्राण निकल जात हैं अपना जिनकी आयु समाप्त हा जाती है, उनरे सुखोंपर यदि हलियात किया जय तो प्राय यनों वही निरुति िगायी देती है (इन दोनोंने मुरगोंकी गामा यों-की-त्या बनी हुई है इसलिये य जीवित ह) ॥ ३१ ॥

त्यज शोक च दुःख च मोह च जनकामजे ।

रामलक्ष्मणयोर्ग्रे नाद्य शन्यमर्जवितुम् ॥ ३३ ॥

जनकश्रीगरी ! तुम भीराम और लक्ष्मण लिय शोक, दुःख और मोह त्याग दो । य अब मर ना सकन ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा तु वचन तस्या सीता सुरसुतोपमा ।

हृताञ्जलिदवाचेमामेयमस्त्विति मैथिली ॥ ३४ ॥

त्रिजगरी यह बात सुनकर दमन्यार समान सुन्दरी मियिलेराकुमारी सीतान हाथ जोड़कर उसमे कहा—'वदित' एसा ही हो' ॥ ३४ ॥

विमान पुण्य तत्तु सनिधय मनोनयम् ।

सीता यिजटया सीता लङ्कामय प्रवेदिता ॥ ३५ ॥

किर मनक समान वेगवार पुनरविमानका लौटकर त्रिजग दु जिनकी सीतारका लङ्कापुरीमें ही म आया ॥ ३५ ॥

ततस्त्रिजटया सार्धे पुण्यपादवहसा सा ।

अशोकवनिशामेय राक्षसीभि प्रवेदिता ॥ ३६ ॥

तत्पचात्र त्रिजगत् त्रय विमानमे उतरनेपर राक्षसोंमें उह पुन अशोकवनिशामे ही पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥

प्रविश्य सीता यद्वृक्षमत्यण्डा

ता राक्षसेष्टस्य विहारभूमिम् ।

सम्प्रेक्ष्य सचिन्त्य च राजपुत्री

पर विषाद समुपायनाम ॥ ३७ ॥

बहुसंख्यक वृक्षमण्डलोंमे घुमावित राक्षसबन्धरी उस विहार भूमिम पहुँचकर सगले उमे देखा और उन दोनों राजकुमारों का चिन्तन करके वे मगन गाममें दूख गयी ॥ ३७ ॥

और पुष्कराक्ष हुए सर्वोंके समान सौँस ल रहे थे ॥ १ ॥
सँ त वानरश्रेष्ठा ससुग्रीममहायुता ॥
परिवार्य महात्मनौ तस्य शोकपरिप्लुता ॥ २ ॥

उन दोनों महात्माओंको चारों ओरसे धरकर सुग्रीव आदि सभी श्रेष्ठ महाशली वानर गान्धम द्वय सह थे ॥ २ ॥

एतस्मिन्प्रतरे राम प्रत्ययुध्यत धीयवान् ॥
म्विग्न्यात्सस्त्रयोगाद्य शरैः सदानिनेऽपि सन् ॥ ३ ॥

इसी बीचम पराक्रमी भीरु राम नागपाशसे बँधे हानगर भी अपने शरीरकी हन्ता और गतिमत्ताक कारण मृगसे जाम उन ॥ ३ ॥

तनो दृष्ट्वा सखिर्न निदग्धः गाढमपितम् ॥
भ्रातरं दीनवदनं पयदेवयदातुर ॥ ४ ॥

उन्होंने देखा कि भाई लम्पण बाणसे अत्यन्त घायल होकर खूनसे लथपथ हुए पड़े हैं और उनका चहरा बहुत उतर गया है अतः आतुर होकर तिलप करन लगे—॥४॥

किं नु मे सीतया कार्यं लब्धया जीविनेन वा ॥
शयानोऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधिनिर्जितम् ॥ ५ ॥

‘हाय ! यदि मुझे सीता मिल भी गया तो मैं उन्हें लेकर क्या करूँगा ? अपना इस जीवनरा ही रखकर क्या करना है ? जब कि आज मैं अपने परजित हुए भाईको युद्धस्थलमें पड़ा हुआ देख रहा हूँ ॥ ५ ॥

शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिम्बता ॥
न लक्ष्मणसमो भ्राता सखिप साम्परायिक ॥ ६ ॥

‘मर्त्यलोचन दूँदनेपर मुझे सीता-वैसी दूसरी स्त्री मिल सकती है परन्तु लक्ष्मण समान सहायक और युद्धकुशल भाई नहीं मिल सकता ॥ ६ ॥

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां नु पश्यताम् ॥
यदि पञ्चत्वमापन्नं सुमित्रानन्दवर्धन ॥ ७ ॥

‘सुमित्राके आनन्दका बढ़ानेगल लक्ष्मण यदि जीवित न रहे तो मैं वानरोंके देखते देखते अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा ॥ ७ ॥

किं नु वक्ष्यामि कौसल्या मातरं किं नु कैकेयीम् ॥
कथमग्न्या सुमित्रा च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥
विद्यता वेपमाना च वेपन्ती कुरुरीमिव ॥
कथमाभ्वासयिष्यामि यदि यास्यामि त विना ॥ ९ ॥

‘लक्ष्मणके बिना यदि मैं अयोध्याको लौटूँ तो माता कौसल्या और कैकेयीको क्या अवाध दूँगा तथा अपने पुत्रको देखनेके लिए ठसुफ हो बहड़ेसे बिटुड़ी गायके समान कॉफती और कुरुरीकी मौंति रोती बिलम्बती माता सुमित्रासे क्या करूँगा ? उई किम तरह पैर्यँ बैचाऊँगा ? ॥ ८ ॥

कथं वक्ष्यामि शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ॥
मया सह धनं यातो विना तेनाहमागत ॥ १० ॥

‘मैं यगली भरत और शत्रुघ्नसे किम तरह यह कह सकूँगा कि लम्पण मेरे साथ बनका गये थे तब मैं उन्हें वहीं स्त्रोक उनक बिना ही लौट आया हूँ ॥ १० ॥

उपालम्भ न शक्यामि सोढुमग्न्यासुमित्रया ॥
इहैव देहं त्यक्ष्यामि नहि जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥

‘दोना मानाओसहित सुमित्रा उपालम्भ मैं नही सह सकूँगा, अन यही इस देहका त्याग दूँगा । अब मुझमें जीवित रहनेका उत्साह नहीं है ॥ ११ ॥

धिष्ठा दुष्पृतकमाणमनार्यं यत्कृतं ह्यसौ ॥
लक्ष्मणं पतितं शेते शरतल्प गतासुरम् ॥ १२ ॥

‘मुझ-जैसे दुष्कर्मा और अनायक धिक्कार है, जिसक कारण लक्ष्मण मेरे हुएक समान बाण शय्यापर सा रहे हैं ॥ १२ ॥

न्य नित्य सुविषण्ण मामाधासयसि लक्ष्मण ॥
गतासुराद्यं शकोऽसि मामातमभिभाषितुम् ॥ १३ ॥

‘लक्ष्मण ! अब मैं अत्यन्त विषादम झूय जाता था, उस समय तुम्हीं सदा मुझ आशालन देते ॥ परन्तु आज तुम्हारा प्राण नहीं रहे, इसलिये आज तुम मुझ दुःखियास बात करने में भी असमर्थ हो ॥ १३ ॥

येनाद्य यहवो युद्धे निहता राक्षसा क्षितौ ॥
तस्यामेवाद्य शूरस्त्व शेषे विनिहता शरैः ॥ १४ ॥

‘मेया ! जिस रणभूमिमें आज तुमने बहुतसे राक्षसोंको मार गिराया था, उसीमें शूरवीर होकर भी तुम बाणोंद्वारा मार जाकर सो रहे हो ॥ १४ ॥

शयानं शरतल्पेऽस्मिन् मनोऽणितपरिहृतं ॥
शरभूतस्ततो भासि भास्करोऽस्तमिव प्रजन् ॥ १५ ॥

‘इस बाण शय्यापर तुम खूनसे लथपथ होकर पड़े हो और बाणोंसे व्यात होकर अस्ताचलको आते हुए सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे हो ॥ १५ ॥

याणाभिहतमर्मत्वाद्य शक्तेरपीह भाषितुम् ॥
कजा चाब्रुवतो यस्य हृष्टिरागेण सूच्यते ॥ १६ ॥

‘बाणोंसे तुम्हारा मर्मस्थल चिदीण हो गया, इसलिये तुम यहाँ बात भी नहीं कर सकते । यद्यपि तुम बोल नहीं रहे हो, तथापि तुम्हारे नेत्रोंकी लालीसे तुम्हारी मार्मिक पीड़ा सूचित हो रही है ॥ १६ ॥

यद्यैव मा धनं यान्तमनुयातो महायुति ॥
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैव यमप्यम् ॥ १७ ॥

‘जिस तरह वनकी यात्रा करत समय महातेजसी लम्पण

मं पीठेपाठे चरे अये थे, यथा प्रकार मं भा यमलसमे
नका अनुसरा कर्मगा ॥ १७ ॥

इष्यधुवनो नित्य मा च नित्यमनुयत ।
ममामय गतोऽवस्था ममानायस्य दुनय ॥ १८ ॥

आ मं प्रिय वधुनन थे और सग मुमन अनुगम गग
मनिमार रवत थे, ये हा लमग अत मुम अनापरी
दुर्नितियोर कारण रस अमन्याता पुर्वेच गय ॥ १८ ॥

सुदृष्टेनापि धीरेण लक्ष्मणेन ॥ सस्मर ।
परम विप्रिय आपि धावित नु कदाचन ॥ १९ ॥

मुसे एका कद प्रमग याद नही आता, जर कि बीर
लमगन अत्यन्त कुपित होनेर भी मुसे कभी कोह कदार या
अप्रिय बात मुनायी हा ॥ १ ॥

यिम्ससर्जकवेगेन पञ्च यागदातानि य ।
इष्येत्प्रधिकस्तस्मात् कानवीयाथ लक्ष्मण ॥ २० ॥

लमग एक ही वेगने पाँच सौ यागांय बना करत ।
इहलिय धनुर्निघाते कार्तीय अणुने भी बन्कर थे ॥ २० ॥
मधैरेखाणि यो हन्याच्छनस्यापि महा मम ।
नोऽयमुर्ध्वा हत दोन महाईशयनोवित ॥ २१ ॥

आ अरन अर्धोदाग मगमा इन्द्र भी अर्धोदा यार
सजने य, व हा बटुमन्य गायार सने यम्य लमग आज
मय मारे जाकर उन्नीस मा रहे हैं ॥ २१ ॥

तद्यु मिथ्या प्रलभ मा प्रधत्स्यति न सदाय ।
यमया न कृतो राता गम्भसाना विभीषण ॥ २२ ॥

मै निमीराय राक्षसों का राज न बना मग अन मग
यह हन्य प्रलभ मुते सग जगता रहेग इनमें सगय नहा दे ॥

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमिनोऽहसि ।
मन्या हीन मया राजन् रावणोऽभिभविष्यति ॥ २३ ॥

‘तानराय सुमार ! तुम इसा मुहूर्तने यमौ लैय ऊअ
कमौकि मरे विना तुम्हें अगदार ममसर गगय तुम्हग
निरन्कार करगा ॥ २३ ॥

अहं तु पुरस्कृत्य सर्वस्य स्पर्धिच्छदम् ।
मागं तां सुग्रीवं नीलन च नलन च ॥ २४ ॥

‘मिय सुग्रीव ! मना और कामप्रवृत्ति अहंरका
आगे करव न ओ नान्य लय तुम सवृत्त लय
नय ऊअ ॥ २४ ॥

एतं हि मुमहत्तम यद्वन्द्युत्तर रणे ।
आभगनेन तुष्यामि गोलाङ्गलाधिपन च ॥ २५ ॥

हवार्य भीमद्रामाये बासोर्ध्व आदिवाप्य सुदृष्टाये पृथेनरायाः सर्व ॥ २६ ॥

१म २६ता दारदर-दिनिर्दि । आर्गमनस्य अर्धकाले सुदृष्टाये उन्नामर्मा मग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

म लक्ष्मण स्वामी गगय तथा अक्षराय उन्मदानगे
भी बटुन सगु हैं । तुम सब गगाने मुहूर्ते न मशन
पुरवार्य कर गियाया है, न दूस्मर लिय अत्यन्त
दुःकर था ॥ ॥

अहंनेन हत कम मैन्देन द्विजितं च ।
युद्ध केसरिणा सत्य घोर मग्नातिना कृतम् ॥ २६ ॥

‘अहंन’ मैन् और द्विजितं भा महान् पयनम प्रस
क्रिया है । कसरी आर सम्पान भी ममगङ्गम पर युद्ध
किया है ॥ २६ ॥

गयेन गवायेण शरमेण गनेन च ।
अन्येष्ट हरिभियुद्ध मदयै त्यक्तनीतिरे ॥ २७ ॥

पायः गगय गरम, गव तथा अन्य शानरोंने भी
मर लिय प्राणोंय मोह छाड़कर सगम किया है ॥ २७ ॥

न चातिव्रामितु शक्य दैव सुग्रीवं मानुर्य ।
यत्तु शक्य ययस्येन सुहृन्वा वा पर मम ॥ २८ ॥
हृत सुग्रीवं तत् सर्व भयता धमनीरुणा ।
मित्रकार्य कृतमिदं भवद्विषयानयभा ॥ २९ ॥
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्ट गतुमहय ।

किंतु सुमार ! मनुष्येंक लिय दवर विधानरा लाफा
अवगमर है । मर परम मित्र अपना उतन सुदृष्टे नाते तुम
नैने कमभीक पुरगर द्राग या कुछ किया जा सजता था,
यह हर तुमने किया है । वनरणिगमिता । तुम स्वन
मित्रकर मित्र इन बापका ममग किया है । अब मैं अज्ञ
देता हूँ—तुम सबकोइच्छा हा ‘नीच’ ऊअ ॥ २८ ॥

शुधुबुल्लस्य ये सर्वे शनरा परिव्रितम् ॥ ३० ॥
वतयात्रमिरेऽधूणि मेघैः कृष्णतरेमणा ॥ ३१ ॥

मगान् भीमका य लिय भूरी अगौरा म्नि
मि वानरोंने मुना, ये सब अरन मेघोंय आँसु बगने लय ॥

तत सदाप्यनीकानि स्पर्धयिषा विभीषण ।
अज्ञगाम गदापाणिस्वरिति यय राघव ॥ ३२ ॥

तन्तन्तर समन सेनाओंय मिरलदूरक मर्गि क
विमग हायने हन्य लिय तुम उअ गगान लय ऊअ,
जहाँ आगमनद्वी विममन य ॥ ३२ ॥

त दृष्ट्वा त्यजित यान्त नीलवज्रनयपोषमम् ।
यानरा दुद्रुषु सर्वे मन्यमानास्तु शरणिम् ॥ ३३ ॥

काय बज्रलोक यमिष कमन कृपा शानरा
विभागाय छात्रादूक अत दम कर सार उई यानरा
इन्द्रमि कमसर इपर उपर मने लय ॥ ३ ॥

पञ्चाशः सर्गः

विभीषणको इन्द्रजित् समक्षकर वानरोंका पलायन और सुग्रीवकी आज्ञासे जाम्बवान्का उन्हें सान्त्वना देना, विभीषणका विलाप और सुग्रीवका उन्हें समझाना, गरुड़का आना और श्रीराम लक्ष्मणको नागपाशसे मुक्त करके चला जाना

अथोपाच महातेजा हरिराजो महाबल ।
त्रिमिथ व्यथिता नेना मृत्युतेज नौजले ॥ १ ॥

उत्त समय महातेज्यी महाबली वानरराज सुग्रीवने पूजा—‘वानर ! जेमे जन्मे बनहरकी मारी हुई नीरा बगमगाने लगती है, उसी प्रकार जो यह हमारी सेना सहसा व्यथित हो उठी है, इसका क्या कारण है ?’ ॥ १ ॥

सुग्रीवस्य वच त्रुया घालिपुत्रोऽङ्गदोऽग्रवीत् ।
न त्व पश्यसि राम च लक्ष्मण च महारथम् ॥ २ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर गालिपुत्र अङ्गदोने कहा—
‘क्या आप श्रीराम और महारथी लक्ष्मणकी दगा नहीं देख रहे हैं ?’ ॥ २ ॥

शरत्जालाक्षितौ धीराबुधौ द्वाशरथात्मजौ ।
शरत्तले महात्मानौ शयानौ रुधिरौक्षितौ ॥ ३ ॥

‘य दोनों वीर महात्मा दशरथद्वारा रक्तने भीगे हुए पाण शय्यापर पड़े हैं और बाणोंके समूहसे व्याप्त हो रहे हैं’ ॥

अथाग्रवीद् वानरेन्द्र सुग्रीव पुत्रमङ्गदम् ।
नानिमित्तमिदं मत्वे भवितव्य भवेन तु ॥ ४ ॥

तब वानरराज सुग्रीवने पुन अङ्गद कहा—‘ये ! मैं ऐसा नहीं मानता कि सेनाम अकारण ही भगदड़ मच गयी है । किसी न किसी भयके कारण ऐसा होना चाहिये ॥ ४ ॥

विषण्वयदना ह्येते त्यक्तप्रहरणा दिवा ।
पलायन्तेऽत्र हरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचना ॥ ५ ॥

‘ये वानर उदास मुँहसे अपने-अपने हथियार फँकर सम्पूर्ण दिशाओंम भाग रहे हैं और भयके कारण ओलें फाड़ फाड़कर देख रहे हैं ॥ ५ ॥

अन्योन्यस्य न लज्जन्ते न निरीक्षन्ति पृष्ठत ।
विप्रकणन्ति चान्योन्य पतित लङ्घयन्ति च ॥ ६ ॥

पलायन करते समय उन्हें एक दूसरेसे लजा नहीं होती है । वे पीछेकी ओर नहीं देखत हैं । एक दूसरेकी घसीटते हैं और जो गिर जाता है, उसे सँफेर चले देते हैं (भयके मारे उठातेक नहीं हैं)’ ॥ ६ ॥

पतसिप्रन्तरे धीरो गदापाणिर्विभीषण ।
सुग्रीव वधयामास राघव च अयाशिषा ॥ ७ ॥

इसी बीचमें वीर विभीषण हाथमें गदा लिए वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने विजयसूचक आगीवाद देकर सुग्रीव तथा श्रीरामपाशवीर अमरुदय-नामका भी ॥ ७ ॥

विभीषण च सुग्रीवो हृष्टा वानरभीषणम् ।
शृष्टराज महात्मान समीपस्मयवाच ह ॥ ८ ॥

वानरका भयभीत करनेवाले विभीषणका देखकर सुग्रीवने अपने पास ही खड़े हुए महात्मा शृष्टराज आन्यगन्ते कहा—‘८ ॥

विभीषणोऽथ सम्प्राप्तो य हृष्टा वानरभवा ।
द्रव त्वायतसंप्राप्ता रावणात्मजदाह्वया ॥ ९ ॥

‘ये विभीषण आये हैं, जिन्हें देखकर वानरगिरेमणियोंका यह खदेड़ हुआ है कि रावणका बेटा इन्द्रजित् आ गया । इसीलिये इनका भय बहुत बढ़ गया है और वे भागे आ रहे हैं ॥ ९ ॥

शीघ्रमेतान् सुसन्नस्तान् बहुधा धिप्रधावितान् ।
पयवस्थापयास्याहि विभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥

‘तुम शीघ्र जाकर यह बताओ कि इन्द्रजित् नहीं, विभीषण आये हैं । ऐसा कहकर बहुधा भयभीत हो पलायन करत हुए इन सब वानरोंसे सुखिर फरो—‘भागनेवे रोको’ ॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु जाम्बवानुक्षपायिव ।
वानरान् सान्त्वयामास सनिर्जत्य प्रधायत ॥ ११ ॥

सुग्रीवर ऐसा कहनेपर शृष्टराज जाम्बवान्ने भागते हुए वानरोंको लौटाकर उन्हें सान्त्वना दी ॥ ११ ॥

ते निवृत्ता पुन सर्वे वानरास्त्यक्तपाशसा ।
शृष्टराजवचः श्रुत्वा त च हृष्टा विभीषणम् ॥ १२ ॥

शृष्टराजकी बात सुनकर और विभीषणने अपनी ओलों दलकर वानरोंने भयने त्याग दिया तथा वे सबके सब तिर लौट आये ॥ १२ ॥

विभीषणस्तु रामस्य हृष्टा गात्र दारैश्चितम् ।
लक्ष्मणस्य तु धमात्मा उभूथ व्यथितस्तदा ॥ १३ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरको बाणोंसे व्याप्त हुआ देख धमात्मा विभीषणका उस समय बड़ी व्यथा हुई ॥ १३ ॥

जलक्षिन्नेन हस्तेन तपोनेत्रे त्रिमृज्य च ।
शोकसम्पीडितमना क्रुद्धो विललाप च ॥ १४ ॥

उन्होंने जलसे भीगे हुए उन दोनों भाइयोंके नेत्र पीछे और मन-ही-मन ‘गोकर्णे पीडित हा व रोने और विलाप करने लगे—‘१४ ॥

इमौ तौ सत्यसम्पदौ विक्रान्तौ प्रियसयुगौ ।
इमामयस्या गमितौ राक्षसैः कृट्योपिभिः ॥ १५ ॥

प्राण । जिह्वे युद्ध अधिक प्रिय था और जो बन्
विक्रमे सग्न थे, वे ही थे दोनों भाइ भाएय और लक्ष्मण
मायामे युद्ध करनेवा राक्षसोंद्वारा इन अरव्याको पर्वना
दिये गये ॥ १५ ॥

आद्यपुत्रेण चैतेन दुष्पुत्रेण दुःखमना ।
गन्ध्या जितया युद्धया वञ्चिताधृतुविप्रमौ ॥ १६ ॥

ये दोनों वीर कल्लापूक पराक्रम प्रकट कर रहे थे ।
परन्तु भाइ इस दुरामा दुष्पुत्रने अपनी कुत्रिण राक्षसी
मुद्रिक द्वारा इन दोनों को साथ धावा किया ॥ १६ ॥

दूरैरिमाबल विजौ रुधिरं समुक्षितौ ।
वस्तुधायामिमौ सुनौ हृदयेत शल्यकविर ॥ १७ ॥

एन दोनों वीर बाणोंद्वारा पूरन छिद गये हैं । ये
दोनों भाइ खूनने नहा डठे हैं और इस अरव्याने घृषीर
सय हुए ये दोनों राक्षसोंद्वारा कोंठों मर हुए छरी नामक
जन्तुन छाना पिखाये दत्ते हैं ॥ १७ ॥

ययोर्बायमुपाधिन्य प्रतिष्ठा क्राहिता मया ।
ताविम। देहनाशाय प्रसुनौ पुरुषप्रभौ ॥ १८ ॥

जिन वस्त्रयुक्तका आभय लक्ष्मण ने लड़ाई
राक्षस प्रतिष्ठित होनेकी अभिलाषा की थी, वे ही दोनों
भाइ पुष्पाणिमणौ भीष्म और लक्ष्मण देहसंगक लिय
मरे हुए हैं ॥ १८ ॥

जीमन्त्य विपन्नोऽसि नष्टराज्यमनोरथ ।
प्राप्तप्रतिभद्वय रिपु मरामा रात्रण एत ॥ १९ ॥

आज मैं जीन-जी मर गया । मेरा राज्यविनाश
मनोरथ नष्ट हो गया । तुम रात्रणने अ हीनाका त डोनेकी
प्रतिष्ठा की थी, उसकी यह प्रतिष्ठा पूरी हुई । अब पुत्रने
उमे सन्तानरथ बना लिया ॥ १९ ॥

पथ विलपमान त परिष्वज्य विभीषणम् ।
सुभीग सन्धसम्पन्नो हरिगणोऽप्रवीदिदम् ॥ २० ॥

इस प्रकार लिय करन हुए विभीषणका हृदयने आकर
गनिजाय शानरात्र सुभीने स्नान यों कहा— ॥ २० ॥

राज्य प्राप्त्यसि धमस लङ्काया नेह सदाय ।
रात्रण सह पुत्रेण स्वकाम नेह लप्स्यसि ॥ २१ ॥

धमस ! तुम्हें लङ्काका राज प्राप्त होगा । इसने सग्न
नहीं । पुत्रद्वारा राज प्राप्त अपनी कामना पूरी नहीं
कर सकया ॥ २१ ॥

गुरुद्विधितयिताधुर्भी राघवल्हमणौ ।
त्यक्त्या मोह धधिष्येत सगण रात्रण एते ॥ २२ ॥

य दोनों भाइ भीष्म और लक्ष्मण मृदा सन्ताने
पश्चात् गुरुकी दीनर देखकर रात्रणने लक्ष्मणनेहित
रात्रणका यथ कर्त्तव्य ॥ २२ ॥

तमेव सान्त्वयित्वा तु समादशस्यतुरागसम् ।
सुपेण भग्नुर पादौ सुभीधम्नमुगार ह ॥ २३ ॥

राक्षस विभीषणका इस प्रकार सन्त्वना और आशान्न
दकर सुभीने अपने शग्नने मदे हुए भग्नुर सुपेणने
कहा— ॥ २३ ॥

सह दूरेहरिगणल धसहापरिदमौ ।
गच्छ त्व आतरी गृह्य विष्णिवा रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

आज हमने आ शानेन इन दोनों गुरुदमन भीष्म
और लक्ष्मणका साथ ल शूवीर शानरात्रोंन साथ किर्त्तिकाका
बन्नाइय ॥ २४ ॥

मह तु रात्रण हत्वा सपुत्र सहयाधयम् ।
मैथिलीमानपिप्यामि शत्रो नष्टमिदं श्रियम् ॥ २५ ॥

मैं रात्रणका पुत्र और बन्धु-बापशौचित मारकर
उसका हाथने मिथित शत्रुमात्री हीनाका उसी प्रकार हीन लाऊँगा
जैसे देवरात्र इन्द्र अपनी गायी हुई राजसीका देवरा
यहाने हर लय थे ॥ २५ ॥

धुनैतद् धानेद्रस्य सुपेणो वास्यमत्रयात् ।
देवासुर महायुद्धमनुमृत पुरातनम् ॥ २६ ॥

शानरात्र सुभीकी यह बात सुनकर क्रोधने कहा—
पूर्वकालने अ देवासुर-महायुद्ध हुआ था, उमे इमन देवा
था ॥ २६ ॥

तदा स शानरा देवाभ्यारम्भस्यशकोतिवान् ।
निजघ्नु शस्त्रविदुषद्वयदन्तो मुहुमुहु ॥ २७ ॥

एक समय अन्ध गणोंन शत्रु तथा लक्ष्मणने कुशल
दयनाओंका शानरात्र बगैने आच्छादित करन हुए शानरात्र
बहुत घायल कर दिया था ॥ २७ ॥

तान्नातान् नष्टमहादध गतासुखं बृहस्पति ।
विद्याभिम प्रयुक्ताभिरौघपीभिधिक्षिति ॥ २८ ॥

उस युद्धने अ देवता अन्ध गणोंने पीड़ित, अन्ध अथ
प्राप्त्यसि हा जन थे, उन सबकी रक्षा लिय बृहस्पति
भक्त्युक्त विद्याओं तथा पित्र अर्थविद्वान् । उनकी
जिह्व करन थे ॥ २८ ॥

सान्त्वयिष्याम्यनयितुं क्षीरात् यान्तु सागरम् ।
अयन शानरा दक्षिण सग्यातिनस्तादय ॥ २९ ॥

अथ रात्र देखि उन अर्थविद्वान् अ अनेक दिव सग्न
और प्लग अर्द्ध दानर अथ ही बग्नद्वारा लक्ष्मणने
पर कर्त्तव्य ॥ २९ ॥

हरयन्तु विजगन्ति पायनी न महीरणी ।
सजीवकण्ठो दिप्या विपत्या द्यपनिर्मितम् ॥ ३० ॥

अथ अथ शानरा दक्षिण सग्यातिनस्तादय ॥ ३० ॥

प्रसिद्ध महोपधियोंको जानते हैं। उनमें एकमात्र नाम है
रज्ज्वरणी और दूसरीवा नाम है गित्यावरणी। इन दोनों
दिव्य ओपधियोंका निमाण साक्षात् ब्रह्माजीने किया है ॥३०॥

बन्द्रश्च नाम द्राणश्च क्षीरोदे सागरात्तम ।
अमृतं यत्र मयितं तत्र ते परमौपर्य ॥ ३१ ॥
तो तत्र विहितौ वैधे पर्यंतौ तौ महोदधौ ।

अथ वायुसुतो राजन हनुमास्तत्र गच्छतु ॥ ३२ ॥

प्रागर्मे उत्तम क्षीरसमुत्पत्तपर चन्द्र और द्राण
नामक दो पर्यंत हैं, जहाँ पूरकालम अमृतवा मयन किया
गया था। उन्हीं दोनों पर्यंतोंपर य श्रेष्ठ ओपधियाँ वसतम हैं।
महासागरमें देवताओंने ही उन दोनों पर्यंतोंका प्रतिष्ठित किया
था। यन्तु। य वायुपुत्र इत्युक्तं उन दिव्य ओपधियोंका
लानेके लिय वहाँ जायें ॥ ३१ ५२ ॥

इत्सिस्मन्तर वायुमैघाद्यापि मरिद्युत ।
पर्यस्य सागरे तोय कम्पयन्तिऽ पर्यताम् ॥ ३३ ॥

ओपधियोंका लानेकी वाताय वहाँ चल ही रही थी कि वड़ ज्वर
ने वायु प्रकट हुई, मेघोंकी घटा फिर आयी और बिजलियाँ
चमकने लगीं। वह वायु सागरके जलमें हलचल मचाकर
ज्वरोंको कमिज सी करने लगी ॥ ३३ ॥

महता पद्मवातन सर्वहीपमहाध्रुमा ।
नियंतुभद्रप्रियटपा सलिले लघणाग्निम् ॥ ३४ ॥

गुरुत्व पलने उठी हुई प्रचण्ड वायुने समूह क्षीरक
बड़े-बड़े वृक्षोंको डालिया तोड़ डाली और उड़ लक्षणसमुत्पत्त
जलमें गिरा लिया ॥ ४ ॥

अभयन् पन्नगात्मस्ता भोगिनस्तप्रवासिन ।
शीघ्र सवाणि यादासि जम्मुक्ता लघणाणैरम् ॥ ३५ ॥

लङ्कावासी महाराज सब भयमे मरा उठे। समूर्ण जल
चनु शीघ्रतापूर्वक समुद्रक जलम पुत्र गय ॥ ३५ ॥

ततो मुहूर्ताद् गरुड वेननेय महावलम् ।
घनरा दृष्टु सर्वे उल्लन्तमिव पावकम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें समस्त जानवरोंने प्रवृत्त अभि
न समान तेजस्वी महाशरीर विनतानन्दन गरुडको वहाँ उपस्थित
देखा ॥ ३६ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रबुधुषु ।
यस्तु तौ पुर्यौ वन्दौ शरभूनेमहावले ॥ ३७ ॥

उन्हें आया देख जिन महाबली नागोंने बाणके रूपमें
आकर उन दोनों महापुरुषोंको बांध रक्खा था, य सब कसम
बहोमि माग सड़े हुए ॥ ३७ ॥

सत सुपण काकुत्स्थी स्पृष्टा प्रत्यभिन्नच ।
निमग्ना च पाणिभ्या मुखे चन्द्रसमप्रमे ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् गरुडने उन दोनों सुपणों बंधुओंको स्वयं
करके अभिनन्दन किया और अपने हाथोंमें उनमें चन्द्रमाक
समान कान्तिमान् मुखोंको पोंछा ॥ ३८ ॥

यनतेयेन सरूपेष्टस्तयो सरुक्कुर्मणा ।
सुवर्णे च तन् स्निग्धे तयोऽप्युधमूयतु ॥ ३९ ॥

गरुडजीका स्पर्श प्राप्त होते ही क्षीरम और लक्ष्मणके
गार पात्र भर गय और उनके शरीर तत्काल ही सुन्दरकान्तिमें
सुक प्रय लम्पि हो गये ॥ ३९ ॥

तेजो धीर्ये वल चीज उत्साहस्य महागुणा ।
प्रदधान च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयो ॥ ४० ॥

उनमें तेज, धीर्य, बल, ओज, उत्साह, दृष्टिक्रि, बुद्धि
और स्मरणशक्ति आदि महान् गुण पहलेमें भी दुगुने हो
गये ॥ ४० ॥

तावुपाय्य महातेजा गरुडो वासयोपमी ।
उभौ च स्वयजे इष्टा रामद्वैतमुवाच ह ॥ ४१ ॥

जिन्हें महाशक्ती गरुडने उन दोनों माद्योंको जो वास्तव
इद्वैत समान थे, उठाकर हृदयमें लगा लिया। तब क्षीरमणी
ने प्रसन्न होकर उनसे कहा— ॥ ४१ ॥

भगप्रसादाद् व्यसन रावणिप्रभय महत् ।
उपायेन व्यतिमत्सौ शीघ्र च यत्नितौ हृत्तौ ॥ ४२ ॥

इद्वैतके कारण हमलोगपर जो महान् शत्रु आ
गया था, उसे हम आपकी कृपामें लौंच गये। आप विशिष्ट
उपायपर शक्ता हैं जो आपने हम दोनोंको शीघ्र ही पूर्ववत्
बलमें सम्पन्न कर दिया ॥ ४२ ॥

यथा तात दशरथ यथाज च पितामहम् ।
तत्र भयन्तामासाद्य हृदय मे प्रसीदति ॥ ४३ ॥

जैसे पिता दशरथ और पितामह अजक पाल ज्ञाने
मरा मन प्रसन्न हो सक्ता था, वैसे ही आपको पाकर मरा
हृदय हममें खिल उठा है ॥ ४३ ॥

का भयान् रूपस्वरूपन्तो दिव्यश्रगालेपन ।
वसन्तो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषित ॥ ४४ ॥

आप बड़े रूपवान हैं, दिव्य पुष्पाकी माला और दिव्य
आभरणसे विभूषित हैं। आपने दो स्वच्छ वस्त्र धारण कर
रक्ते हैं तथा दिव्य आभूषण आपकी गोमा बनाते हैं। हम
जाना चाहते हैं कि आप कौन हैं? (सर्वज्ञ हात हुए भी
भगवान्ने मानवभाषण आश्रय लेकर गरुडने ऐसा प्रश्न
किया) ॥ ४४ ॥

तमुवाच महातेजा धीनतेयो महावर ।
पतत्रिराज भीतात्मा हर्यपयाकुलेक्षणम् ॥ ४५ ॥

तब महाशक्ती महाबली पतिव्रत विनतानन्दन गरुडने
मन-हीन प्रसन्न हो आनन्दक आँसुओंमें भरे हुए नेत्रका
आपसे कहा— ॥ ४५ ॥



श्राम-रक्ष्मारी गरुडजसे वातचान

अहं सखा ते काकुः स्य प्रियः प्राणो यदिदचर ।
गन्तुमिति सम्प्राप्तो युवयोः साहायकारणात् ॥ ४५ ॥

काकुः स्व । मैं आपका प्रिय मित्र गरुड हूँ । बाहर
चित्रनवालय आपन्न प्राण हूँ । आप दोनों की सहायकारण
ही मैं इस समय यहाँ आया हूँ ॥ ४५ ॥

असुराया महावीर्या दानवा या महाबला ।
सुराद्यापि सगंधवा पुरस्तस्य शतव्रतुम् ॥ ४७ ॥
नेम मोक्षयितुं शक्वाः शरयश्च सुदारुणम् ।

महापराक्रमी असुर, महाबली दानव, देवता तथा गंध-
वा भी यदि इन्द्रको अपने करके यहाँ आते तो वे भी इस भयंकर
सहायकारणक यथनने आपसे युद्धनिमित्त समर्थ नहीं हो सके-
न ॥ ४७ ॥

मायायलदिद्रजिता निमित्त धृक्कमणा ॥ ४८ ॥
एते नागा काद्रवेयास्तीक्ष्णदृष्टा चियोत्थना ।
रक्षोमायाप्रभावेण शरभूतास्त्वद्दृष्टया ॥ ४९ ॥

धृक्कमा इन्द्रजित् न मायाय बलमे जित नागस्थीबाणोंका
यथन तैपार किया था; वे नाग व पक्षी पुत्र ही थे । इन
दोनों बड़े तीक्ष्ण दृष्ट हैं । इन नागोंका स्त्रिय यज्ञ भयंकर होता
है । वे राक्षसी मायाके प्रभावने बाण बनकर आपने गरीम
लिय गये थे ॥ ४८ ४९ ॥

सम्भार्यथासि धमस राम सन्धपराक्रम ।
लक्ष्मणन सह आश्रमा समरे गिपुषाणिना ॥ ५० ॥

धर्मने शान्ता सन्धपराक्रमी भीष्म । समग्रजयमें शत्रुओं
का शत्रु करनेवाला अपने माह लक्ष्मणन साथ ही आश्रम बड़े
लौभायवाली हैं (जो अनायास ही इस नागगाममें मुक्त हो
गये) ॥ ५० ॥

इमं भुत्वा तु घृत्तान्तं न्यरमाणाऽहमागत ।
महत्संघारयोः स्नेहात् सखि घममुपागच्छ ॥ ५१ ॥

मैं देवताओंके मुगम आपलगाँव नागगाम बँधनेका
तमाचार मुनकर यही न्यायलीन साथ यहाँ आया हूँ । इस
जनोंमें जो स्नेह है; उसमें प्रगति हो मित्रधमका पालन करना
होआ सदा आ पहुँचा हूँ । ॥ ५१ ॥

मोक्षितौ च महाघोरादस्मात् सायकयधनम् ।
मममादश्च वनस्थो युवाय्या नित्यमथ हि ॥ ५२ ॥

आश्रम मैंने इस महाभयंकर बाणस्थानने आश्रम दोनोंका
पुष्टा किया । अब अन्धका सभा ही सारधान रहना
चाहिये ॥ ५२ ॥

प्रत्यूषा राक्षसा सर्वे समाम कृष्टपाणिन ।
नृणां पुस्तभायानां भयतामापय चटम् ॥ ३ ॥

पक्ष्मन राक्षस सम्भार ही पक्ष्ममे करगर्जित युद्ध करने

वाग हात हो; परन्तु युद्धभावना आप जैसे शूरवीरोंका सज्जता
ही बल है ॥ ५२ ॥

तन्न त्रिभुवसनीयं वा राक्षसानां गणाजिने ।
एतेनैवापमानेन नित्यं जिह्वा हि राक्षसा ॥ ५४ ॥

इत्यत्र इसी दृष्टान्तका सामने स्वरूप आश्रम गणाजिने
राक्षसोंका कभी विधात नहीं करना चाहिये । क्योंकि राक्षस
उदा ही उठित होत है ॥ ५४ ॥

एवमुक्त्वा तदा राम सुपणं स महायत्न ।
परिष्वज्य च सुम्निग्धमाग्रमुपचक्रम ॥ ५५ ॥

एसा कहकर महाबली गरुडन उस समय परम स्तरी भी
रामका हृदयने लगाकर उनमें जानेकी आशा एतका विचार
किया ॥ ५५ ॥

सखे गंधर्वा धमस गिपूषामपि वसतः ।
अभ्यनुब्रातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुगम् ॥ ५६ ॥

य श्रोत— गुरुभार भी क्या दिव्यनेवाला धमस मित्र
शुनदत । अब मैं सुगमसर यहाँ प्रस्थान करूँगा । इसका
लिय जाररी आशा चाहता हूँ ॥ ५६ ॥

न च कौतूहलं कार्यं सखिभ्य प्रति राघव ।
कृतकमा रणे धीमं स्मरिभ्य प्रतिवेक्ष्यमि ॥ ५७ ॥

न्याय शुनदत । मैंने जो अनेका आपका सखा बनाया
है; इसका विषय आपका अगम मनस ही बालुन नहीं
रहना चाहिये । आप युद्धमें सज्जता प्राप्त कर गौरव मग
इस सम्भवभारका स्वयं समझ लेंगे ॥ ५७ ॥

वायुवृद्धावरोपा तु तदा हृत्वा दागामिभि ।
राघव तु गिपुः सखा मीनां ममुपलक्ष्यमे ॥ ५८ ॥

आप समुद्रही लहरों समान अगम बाणोंका पराक्रम
लक्ष्मण। ऐसा दाग कर दोगे कि यहाँ काल बलन और बूढ़
ही शेष रह जायगा । इस तरह अपने गुरु शत्रुका महार
करन आश्रमका अन्धका प्राप्त कर लेंगे ॥ ५८ ॥

इत्येवमुक्त्वा घटन सुपणं दीपप्रियमम ।
राम च नीरजं हृत्वा मध्ये तथा घनाकस्मात् ॥ ५९ ॥

प्रदन्विण तत हृत्वा परिष्वज्य च शीयराज ।
जगामाकदात्माविदय सुपणं परमा यथा ॥ ६० ॥

एसी यहाँ कहकर दीपप्रियमम गरुडन भी
रामका नाभय करन उन वनगर्जना शीयने । यही परिष्कमा की
और उठते हृत्वा लगाकर व वायुवृद्धा समान अन्धका
न्याय कर ॥ ५९ ६० ॥

नीरजों राघवों लक्ष्मण तथा वायव्ययुगल ।
सिंहना तदा नकुलान् कुपुपुषु न ॥ ६१ ॥

धीमन और सज्जता न्याय हुआ तब उस समय

घारे यानर-यूथपति सिद्धान्त करने और पूँछ हिलाने लगे ॥ ६१ ॥

ततो मेरी समाजधुर्मदङ्गाध्याप्यथादयन् ।
दम्भु शाहान् सम्प्रहृष्ट्य क्ष्येत्तन्त्यपि यथापुरम् ॥ ६२ ॥

किन् तो वानरोंने डक् पीट, मृदङ्ग बजाय, शङ्खनाद किये और हर्षोल्लासने भरकर पहलेकी भौति से गर्जने और ताल ठोकने लगे ॥ ६२ ॥

अपरे स्फोट्य विप्रान्ता घानरा नगयोधिन ।
द्रुमानुत्पाट्य विविधास्तस्युः शतसहस्रश ॥ ६३ ॥

दूसरे पराक्रमी वानर जो जूझों और परंत शिखरोंका हाथ में लाने युद्ध करने थे, नाना प्रकारक वृक्ष उलाड़कर लावों की सन्ध्याम युद्धक लिये लड़े हो गये ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्यकीय आदिकाण्डे प्रश्नाष्टाः सर्गः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीरामचरितमिर्मित आरंभमाण आदिकाण्डे युद्धकाण्डमें पचासवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्ग

श्रीरामके बन्धनमुक्त होनेका पता पाकर चिन्तित हुए रावणका धृत्राक्षको युद्धके लिये मेजना और सेनासहित धृत्राक्षका नगरसे बाहर आना

तथा तु तमुल शब्द घानराणा महौजसाम् ।
नर्दता राक्षसैः सार्षे तदा शुभाश्व रावण ॥ १ ॥

उत्त समय भीषण गर्जना करते हुए महाशरी वानरोंका वह तमुल्लास राक्षसोंसहित रावणने सुना ॥ १ ॥

लिङ्गधमभीरनिर्घोषं श्रुत्वा त निन्द धृशम् ।
सचिदाना ततस्तेषा मध्ये वचनमप्रवीत् ॥ २ ॥

मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणने जब वह लिङ्गध गम्भीर घोष, वह बच्चसरसे किया हुआ सिद्धान्त सुना, तब वह इस प्रकार बोला—॥ २ ॥

यथासौ सम्प्रहृष्टाना घानराणामुपस्थित ।
बहूना सुमहान् नावो मेघानामिव गजताम् ॥ ३ ॥
सुम्यक्त महती प्रीतिरितेषा नाम सशयः ।
तथाहि विपुलैर्नदैश्चसुभे लवणार्णव ॥ ४ ॥

‘इस समय गर्जते हुए भयोंके समान जो अधिक हर्षमें भर हुए बहुसङ्ख्यक वानरोंका यह महान् कोलाहल प्रकट हो रहा है, इससे स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि इन सबको बड़ा भारी हर्ष प्राप्त हुआ है इसमें सन्देह नहीं है। तभी इस तरह बारबार की गयी गजनाओंसे यह श्वारे पानीका समुद्र विस्तृत हो उठा है ॥ ३-४ ॥

तो तु यद्दौ शरैस्तीक्ष्णैश्चातुरी रामलक्ष्मणौ ।
अथ च सुमहान् नाव शङ्का जनयतीव मे ॥ ५ ॥

विजृजन्तो महानाद्रास्त्रासयन्तो निशाचरान् ।
लङ्काद्वाराभ्युपाजमुयौद्धकामा ह्ययमाः ॥ ६४ ॥

जोर-जोरसे गर्जते और निशाचरोंको डराते हुए ॥
वानर युद्धवी इच्छासे लङ्काके दरवाजोंपर आकर डट गये ॥

तेषा सुभीमस्तुमुलो निनादो
धम्भश्च शास्त्रामृगयूथपानाम् ।
क्षये निद्राघस्य यथा घनाना
नाद् सुभीमो नदता निद्राय ॥ ६५ ॥

उत्त समय उन वानरयूथपतियोंका बड़ा भयकर ए
तमुल सिद्धान्त सब ओरमेंजने लगा, मानो प्रीत्य श्रुतक अन
म आधी रातक समय गर्जते हुए मेघोंकी गम्भीर गजना स
ओर व्याप्त हो रही हो ॥ ६५ ॥

‘परन्तु वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तो सील
बाणोंसे बँधे हुए हैं। इन्हें वह महान् हृषनाद भी हो रहा
है, जो भरे मनमें शङ्का-सी उत्पन्न कर रहा है’ ॥ ५ ॥

पथ च वचन चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वर ।
उवाच नैश्वृतास्तत्र समीपपरिवर्तिन ॥ ६ ॥

मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने अपने पास ही
लड़े हुए राक्षसोंसे कहा—॥ ६ ॥

श्रयता तूष्मतेतेषा सर्वेषा च वनौकसाम् ।
प्रोक्तकाले ससुत्पन्ने हर्षकारणमुत्पितम् ॥ ७ ॥

धूमलगे श्रीराम हो जाकर इस बातक पता लगाओ
कि शोरका अवसर उपस्थित होनेपर मी इन सब वानरोंके
हृषका कौन-सा कारण प्रकट हो गया है? ॥ ७ ॥

तथोकास्ते सुसम्भ्रान्ताः प्राकारमधिरोह्य च ।
वृहन्नु पालिता सेना सुग्रीवेण महात्मना ॥ ८ ॥

रावणके इस प्रकार आदेश देनेपर ये राक्षस घबराय
हुए गये और परकटेपर चढ़कर महात्मा सुग्रीवके द्वारा
पालित वानरसेनाकी ओर देखने लगे ॥ ८ ॥

तौ च मुक्ती सुघोरेण शरव्यधेन राघवौ ।
समुत्थितौ महाभागी विधेदुः सधराक्षसाः ॥ ९ ॥

जब उन्हें मान्य हुआ कि महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण
उत्त अत्यन्त भयकर नागरूपी बाणोंके बधनसे मुक्त होकर
उठ गये हैं, तब समस्त राक्षसोंको बड़ा डर हुआ ॥ ९ ॥

मन्त्रस्तद्वदया नये प्राकाशद्वन्द्वं ते ।
विशणा राक्षसा घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिता ॥ १० ॥

उत्तरा हृदय भन्ने यत्ता ॥ वे स्व मयनक राक्षस
परमर्धे उत्तर उत्तर ॥ राक्षसा राक्षसी मेवने
उत्तर हु ॥ १ ॥

तद्विषय मीनमुखा राक्षसस्य च राक्षसा ।
शस्त्र निवेदयामासुयथाशु चाम्यकोविदा ॥ ११ ॥

वे शस्त्रावता कलने दुःख ॥ उत्तर सुवन्त दानता
छा रही थी । उन निगावरने यह माग अभिय समाचार
गनाका यथाशु रूप वताया ॥ ११ ॥

यौ तावद्विचिता युध भ्रातरा गमन्कुमरा ।
निषङ्गा शस्त्रधन निप्रकम्पयुर्नौ, हृत्तौ ॥ १२ ॥
निमुखा शस्त्रधन हृदयेन तौ गणाजिते ।
पाशानिष गजौ त्रिभुजा गजेन्द्रममविश्रम्यौ ॥ १३ ॥

(व दन्त —) महापरा । उत्तर इन्द्रजित् जिन राम
आर रामग गौ । भाइयों सुदकाण्ड नाम्नी बगैव
मधने बौधव हाथ हिलनेम भी सम्मर्ष कर दिया था,
व गजपदा सम्मान परकमा दोनों बार जैन हाथ सम्मका
तद्वन्त स्वन्त हा जौ, उता तद्वन्त बगैवधन मुन ह
समपद्मान स्व निमापी देते हैं ॥ १२ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा घबरा तथा राक्षसेन्द्रो महापरा ।
चिन्ताशोकतमाक्रान्ते विजयवन्दोऽभवत् ॥ १४ ॥

उनका यह स्वन सुनकर महापरा एकपरा राक्षस
चिन्ता तथा शोक वशान्त ॥ गण और स्वन्त चेष्टा
उतर गया ॥ १४ ॥

घोरैश्चघोरैश्चौ चरैराक्षीविशेषम् ।
भगवै स्यमकाशे प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥ १५ ॥
तद्वन्तपथमासाद्य यदि मुखा गिषू मम ।
सायम्यमिदं सजमनुपदयाम्यहं बन्धुम् ॥ १६ ॥

(यह मन ही मन हाथने लगा —) उत्तर राक्षस
समन्त मन्त्र, रक्षणम प्रम हुए और अभय व तथा
हिन्ना तत्र युक्त समन्त व, उद्देश्य द्वारा सुदकाण्ड
इन्द्रजित् किहो बौध दिया व, वे मर जानो शत्रु व
उत्तर अभयधने पद्वन्त भी गणा हूट गन्त व तथा अब
मैं अपनी स्त्री मेनाका सम्पत्ति ही देना हूँ ॥ १५ १६ ॥

निष्कला रात्रि सवृत्ता दारा पावकनजम् ।
भाद्रा येन सप्रामे रिषुणा जीवित मम ॥ १७ ॥
किन्तुने पत्नी सुदकाण्डे मर गयुर्भोज दाना व निष
॥ व अभियुक्त गन्धी व निष हा अत्र निष्क
रा गणा ॥ १७ ॥

पथमुत्था तं सवृत्तो निष्कमन्तुगता यथा ।

अग्र्यीद् राक्षसा मध्ये धृष्टान्त नाम गन्धमम् ॥ १८ ॥

पथा वदन्त अन्त युक्ति हुआ तथा पुनराते हुए
मरके समन्त उत्तर-उत्तरने मर लने उत्तर और राक्षस
बीचने धृष्टान्त नामक निगावरन बन्त — ॥ १८ ॥

वलेन महता युक्तो राक्षसा भीमविश्रम ।
न्य वधायागु निवाहि गमम्य मर जर्जर ॥ १९ ॥

भानक पगम्भी वार । तुम राक्षसी बहुत बड़ा
मेना उत्तर उत्तर राक्षसदिन समाना व राक्षस
गीम वध ॥ १ ॥

पथमुत्तु धृष्टान्तो गमन्मन्त्रेण धीमता ।
परिपश्य तत्र दीघ निनगाग नपाल्यान् ॥ २० ॥

सुदिना राक्षसावन्त इस प्रकार भग्न भेदन रूषधने
उत्तरा परिक्रमा का तथा यह तुम गमन्मन्त्र वद
निरा गता ॥ २० ॥

अभिनिष्कम्य तद् द्वार यन्नाप्यभमुवाच ह ।
न्यरम्य वल गीम किं चिरेण युयुत्सत ॥ २१ ॥

राक्षस वदन्त उत्तर उत्तर समन्त वदन्त
मनाका उता गन्त वध गीम तैव वद । सुदरी इष्टा
रक्षने उत्तर उत्तरा निष्क वनेन का लाभ ॥ १ ॥

धृष्टान्तवन्त धृष्टा यन्नाप्यभो यन्नाग ।
यन्मुवाजयामास राक्षसगणायाम् ॥ २२ ॥

धृष्टान्त वन्त सुवन्त उत्तरा अन्त अन्त
सन्तानि किन्त पीठ बहुत बड़ा मना व, अत्र सम्मने
हेनकोर तैव कर दिया ॥ २ ॥

ने वदधन्ता यन्तो घोररूपा निगाचरा ।
विनयमाना महान् धृष्टान्त पथारयन् ॥ २३ ॥

वे भन्तक स्वपरी उत्तर निगाव प्रम और गन्त
अत्र अन्तने वत् बौधव उत्तर और गन्तने सुन ह उत्तर
दरम गन्त हुए अन्त और धृष्टान्त देवन्त गन्त ह गन्त ॥

विशिषायुधहन्ताय नृमुद्ररूपाय ।
गदाभि पट्टिन्दुर्दारायममुमर्गरे ॥ २४ ॥
परिधर्मिणिपालेभ्य भूले पाणी पथयधै ।
निययू राक्षसा घोरा नन्दने जल्दा यथा ॥ २५ ॥

न्य हाथने नना प्रारम्भ अभय व । हुए
रक्षने अन्त हाथने हुए और सुवन्त वरके व । गन्त
पट्टि, उत्तर हुए नृमुद्र रूप निष्क गन्त गन्त
और वने निष्क सुवन्त मन्त्रक गन्त सुवन्त निष्क ।
व कन्ती नन्दने गन्त गन्त गन्त वरके व ॥ १ ॥

गन्त वदन्तमन्त्रेण चरैराक्ष ममज्जने ।
मुवपान्तवित्ति राक्षस विविधनदे ॥ २६ ॥

हये परमशीघ्रैश्च गजैश्चैव मनेन्दैः ।

निययुर्नैर्मनयाद्या याद्या ॥ १७ ॥

कितने ही निगावर घञ्जोंमे अञ्जुत तथा खनेरी
जालीमे आच्छादित रथोंद्वारा युद्ध लिय बाहर आय । वे
सक सक बयच धारण हिये हुए थे । कितने ही श्रेष्ठ राक्षस
नाता प्रसारवे सुपगाल गथों, परम शीघ्रगामी घोड़ों तथा
मदमत्त हाथियोंपर सवार हैं। दुर्बल व्याघ्रान समान युद्ध
लिय नगरसे बाहर निकले ॥ १६ २७ ॥

घृक्षिहमुदैर्युक् गवैः कनकभूपितैः ।

आरगेह गन्ध दिव्य धूम्राक्ष रत्नस्य ॥ १८ ॥

धूम्राक्ष रथम खनेच आभूषणोंसे विभूषित ऐसे गध
नधे हुए ये जिनके मुँह भड़ियों और सिंघों समान ॥
गधेरी भौंति रँधनेवाला धूम्राक्ष उस लिय रथपर
सवार हुआ ॥ २८ ॥

न नियतो महारिषौ धूम्राक्षो राक्षसैरुत ।

हसन् वै पश्चिमद्वारादनुमानं यत्र निष्ठित ॥ २९ ॥

इस प्रकार बहुत से राजर्षियों साथ महापराक्रमी धूम्राक्ष
रहता हुआ पश्चिम द्वारमे, जहाँ हनुमान्जी दासुषा समना
करनेच लिय गइ थे, युद्धके लिये निरला ॥ २९ ॥

गन्धप्रथमाम्नाय खरयुक् खरस्वनम् ।

प्रयात न महाघोर राक्षस भीमदर्शनम् ॥ ३० ॥

अन्तरिक्षगता दूरा शङ्कुना प्रत्येषधयन् ।

गदहोंसे जुते और गदहोंकीसी आगाव करनेवाला उस
श्रेष्ठ रथपर बैठकर युद्धके लिये जाते हुए महाघोर राक्षस
धूम्राक्षको, जो बड़ा भयानक दिखायी देता था, आकाशचारी मूर
पक्षियोंने अगुमत्तूचक बोली बोलकर आगे बढनेसे मना
किया ॥ ३० ॥

गन्धरीषे महाभीमो गृध्रश्च निपपात ह ॥ ३१ ॥

५३जामे प्रथिताश्चैव निषेनु कुणपाशना ।

रथिरात्रौ महाब्धनेत ऊबध पतितो भुवि ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे भीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य युद्धकाण्डे एकपञ्चाश सर्गः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमे एकपञ्चाश सर्ग पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाश सर्ग

धूम्राक्षका युद्ध और हनुमान्जीके द्वारा उसका वध

धूम्राक्ष प्रेक्ष्य निपान्त राक्षस भीमप्रिक्रमम् ।

विनेदुधानरा सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिण ॥ १ ॥

भयकर पराक्रमी निगावर धूम्राक्षको निकटसे देख
युद्धकी ईच्छा रखनेवाले समस्त जानर हय और उत्साहमे
मरकर सिहनाद करते लगे ॥ १ ॥

उसके रथके ऊपरी भागपर एक महामयान गीध
आ गिरा । पञ्च अश्वभागपर बहुतसे मुशवार पक्षी
परस्पर गुंथे हुएसे गिर पड़े । उसी समय एक बहुत बड़ा
वन कचध (बड़) मृत्से लथपथ होकर पृथ्वीपर गिरा ॥

विस्मर चोत्सृज्यश्वदान धूम्राक्षस्य निपातित ।

यवन रथिर दध सचचाल च मेदिनी ॥ ३३ ॥

उह कचध बड़ जोर ज़रसे नीतरार करता हुआ
धूम्राक्ष पास ही गिरा था । बाग रनरी वन करने लगे
और पृथ्वी डोलने लगी ॥ ३३ ॥

प्रतिलोम चयौ वायुनिर्घातसमनिम्वन ।

तिमिरीघावृतास्तत्र विशाश्च न च्छादिते ॥ ३४ ॥

वायु प्रतिकूल दिशारी आरने बहने लगा । उसमे
यज्ञपातक समान गणगाड़ाहट पैदा होनी थी । सम्यक्
गिराई अधराते आच्छाद हो जानेच कारण प्रकाशित नहीं
होनी थी ॥ ३४ ॥

स तृपातास्ततो हृष्टा राक्षसाना भयावहान् ।

प्रादुर्भूतान् सुघोराश्च धूम्राक्षो व्यथितोऽभवत् ।

सुमुहं राक्षसा सर्वे धूम्राक्षस्य पुरस्मर ॥ ३५ ॥

राक्षसोंके लिये भय देनेवाले नहीं प्रकट हुए उन भयकर
रूपातोंको देखकर धूम्राक्ष व्यथित हो उठा और उसके आगे
बलनेवाला सभी राक्षस अचंचल हो गये ॥ ३५ ॥

तत सुभीमो बहुभिनिशचरै

वृत्तोऽभिनिःक्रम्य रणोत्सुको धली ।

दर्शं ता राघवबाहुपालिता

महौघकल्पा बहु धानरीं चमूम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार बहुसंख्यक निशाचरोंसे घिरे हुए और युद्ध
लिये उत्सुक रहनेवाले महाभयकर बलवान् राक्षस धूम्राक्षने
नगरसे बाहर निकलकर औरमचद्रवीक बाहुबलसे सुरक्षित
एक प्रलयकालिक समुद्रके समान गिराल बानरी सेनाको
देखा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे भीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य युद्धकाण्डे एकपञ्चाश सर्गः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमे एकपञ्चाश सर्ग पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाश सर्ग

धूम्राक्षका युद्ध और हनुमान्जीके द्वारा उसका वध

धूम्राक्ष प्रेक्ष्य निपान्त राक्षस भीमप्रिक्रमम् ।

विनेदुधानरा सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिण ॥ १ ॥

भयकर पराक्रमी निगावर धूम्राक्षको निकटसे देख
युद्धकी ईच्छा रखनेवाले समस्त जानर हय और उत्साहमे
मरकर सिहनाद करते लगे ॥ १ ॥

तेषां सुतमुल युद्ध सज्जो कपिरत्नसाम् ।

अन्योन्य पादपैर्घोरैर्निर्भता दालमुहरे ॥ २ ॥

उस समय नून जानरों और राजर्षीमे मलयत भयकर
युद्ध बिड़ गया । वे घोर वृष्टों तथा शूलों और मुहरोंसे एक
दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २ ॥

राक्षसेधानरा घोरा विनिवृत्ता समन्तत ।
वानरैः राक्षसाश्चापि दुर्मैभूमिषमोदता ॥ ३ ॥

राक्षसेन चारो अग्रे चार वानरोंको जानना अरम्भ
हिया तथा जानने भी राक्षसोंका कृपेन मार-मारकर
परायासी कर दिया ॥ ॥

राक्षसाभ्यभित्तकुटा वानरान् विनिर्निर्गन् ।
विज्यघुषोर्मकारौ कङ्कपत्रैरनिहयौ ॥ ४ ॥

कापने मर हुए राक्षसेन आन कङ्कपत्रयुत, सधे
जानेवाल, धर एत नीच कणोंम वानरोंका गहरी चार
पकैचाया ॥ ४ ॥

त गदाभिश्च भीमाभिः पट्टिद्वौ कूटमुद्वरे ।
घोरैश्च परिघैश्चैत्रिण्यैश्चापि सन्धिते ॥ ५ ॥
विदायमाणा रज्जोभिधानगस्त महाजला ।
भमरजनिनोद्धवाश्रमु कमाप्यभीनयन् ॥ ६ ॥

राक्षसोंद्वारा मयकर गलाआ, पट्टि, कूट, मुद्रक, चार
परिघों और हाथमें लिय हुए त्रिचिन विज्यलैस निगल लिय
जान हुए व मागवा एत अमरजनी उन्हाइने निमयका
भीनि महान दम करने लगे ॥ ६ ॥

गदनिर्मिषगात्राम्न गूलनिर्मिषदेहिनि ।
जगृहृन्ते दुमाल्पसि शिलाश्च हरियूथया ॥ ७ ॥

बाणोंन चटमे उनक गरि उठ गय थ । गूलर्षी
मारते देह निगल हा गय था । इस अस्थामें उन वानर
यूथरिपाने हथोंम द्रुप और गिलाई जगया ॥ ७ ॥

त भीमयगा हत्यो नदमानास्ततस्तन ।
ममयू राक्षसान् धीरान् नामानि च यथावि ॥ ८ ॥

उत समय उनरा वग बढ़ा भाग था । व जर जरन
गमना करत हुए जयै-नरा । गर राक्षसेन पटक-पटककर
मयने लगे और अपने नामोंन भा पगवा करने लगे ॥ ८ ॥

तद् यथुवाद्भुत धार युज वानरक्षसाम् ।
शिलाप्रभिविधाभिश्च यदुदावैश्च पार्द्वे ॥ ९ ॥

नाना प्रकारक शिलाओं और बहुतस गायत्रा
वृक्षप्रकारके बड़ा पत्थरों और राक्षसेन धर एत अद्भुत
मुद्र इन लगे ॥ ९ ॥

राक्षसा मथिता केचिद् वानरजितप्रधानिभिः ।
प्रयम् रधिग कचिन्मुख रधिगभोजना ॥ १० ॥

विज्यलैसम मुग्धभि हनेरान् राक्षसेन छिन हा
राक्षसोंक मर हाया । छिन हा रनभर्यी राक्षस उनहा
मर गकर आन मुखोंम रन बमन करने लगे ॥ १० ॥

पाणेषु दाहिता केचिन् कचिद् गान्धिरादुमैः ।

गिलाभिधार्पिता केचिन् केचिद् व्यथिता ॥ ११ ॥

कुछ राक्षसों पल्लवों कट्ट डाली गयो । छिन हा
हृषीकी चार गदाए कर हा गय, किन्हीं हा पथरोंकी बगम
चूष बन गयो और किन्हीं हा जंतीने विगल कर दिय गयो ॥

धनैर्विमर्शितैर्भूमैः गङ्गैश्च विनिर्निर्गन् ।
रज्जोविध्वंसितैः केचिद् व्यथिता गन्तरीयग ॥ १२ ॥

छिननोंर एत राक्षसेन मर गय हा गय ।
तलवारों छीनकर नीच गिर गी गयो और रथ चौर कर
दिय गय । इस प्रकार दुर्गममें पड़कर वानर-मे राक्षस जगिन
हा गय ॥ १२ ॥

गजेष्टैः पत्रासारैः पत्राप्रैः प्रनीक्षसाम् ।
मथिनेयानिभिः कीर्णैः सागाह्यमुधानाम् ॥ १३ ॥

जानरोंक लाल हुए पत्र निगलने कल्ल गय
पत्रासार गजराजों कट्टों और मुद्राकारोंमें क गरी राक्षसि
पग गया ॥ १३ ॥

वानरैर्भीमविमलैर्गन्धर्वोन्मुद्युतैः यतिभिः ।
राक्षसा कचनस्तनैर्मुपुषु विनिद्रागता ॥ १४ ॥

भगनक परक्रम प्ररट करनेवा राक्षसी वानर
जल उठकर अना कदम राक्षसक मुद्र नरा एत व
विगल कर जे ॥ १४ ॥

विगणवदना भूया विप्रकाणशिरादृष्टा ।
मूढा शोणितगन्धन पिपतुधार्पिता ॥ १५ ॥

एत राक्षसक मुद्रास निगल हा क । उन
बाल सब भर विवर बन आन गयो । राक्षस दृष्टिग हा
प्रचीरक ग कन ग ॥ १५ ॥

अन्ये तु परमकुटा राक्षसा भीमविप्रता ।
तल्लेयाभिधार्पिता यजस्तगामैर्हरिन् ॥ १६ ॥

एत भारा परक्रम राक्षस अना मुद्र हा आन
क्रमहा कचन राक्षसेन मरत हुए हा । जानरोंक पाक
करत ॥ १६ ॥

वानर वानयन्तस्त यतिना यगश्चर ।
मुष्टिभिधार्पिता पार्द्वध्यावपायिता ॥ १७ ॥

प्रतिघट्ट हा राक्षस गिगल उन राक्षसोंक बहुतस
अन वानसी वानरोंन लगे मुद्रों गेने एत मुद्रा
मग कूसर निगल दिय ॥ १७ ॥

सैन्य तु विद्रुत दृष्टा पृष्ठासो राक्षसगण ।
गेषण कन्द जवै वानराणा युयुत्सवाम् ॥ १८ ॥

अन्य सैन्य राक्षसेन मग हा एत राक्षस
विज्यलैस पूषास मुद्रा इच्छने लगे भा एत वानरा
राक्षसक मर अरुने दिय ॥ १८ ॥

प्राप्तैः प्रमथिता केचिद् वानरा शोणितधरा ।
मुदुरैरगहता केचिन् पतिता धग्णीतले ॥ १९ ॥

कुछ वानरोंका उमने झालोंसे गोंध दिया, जिससे वे
गुनकी धारा बहाने लगे । फिटने ही वानर उसन मुदुरासे
आहत होकर धरतीपर लगे गये ॥ १९ ॥

परिधैर्मथिता केचिद् भिन्निपालैश्च दग्गिता ।
पट्टिशैर्मथिता केचिद् विहलन्तो गतासव ॥ २० ॥

कुछ वानर परिधोंसे चुनचुन डाले गये । कुछ
मदिपालसे चीर दिय गये और कुछ पट्टियोंसे मथे जाकर
चाबुल हा अपने प्राणोंसे हाथ धा डेढे ॥ २० ॥

केचिद् विनिहता भूमौ दधिराद्रा वनौकस ।
केचिद् विद्रागिता तदा सकुटुं गक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥

कितने ही वानर राक्षसोंद्वारा मारे जाकर खूनसे लथ
पथ हो पृथ्वीपर सो गये और कितने ही क्रोधभरे राक्षसोंद्वारा
युद्धक्षलम खदेड़े जानेपर कहीं भागकर छिप गये ॥ २१ ॥

विभिन्नहृदया केचिदेकपादधेन शायिता ।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदाग्नेयिनि सृता ॥ २२ ॥

कितनोंके हृदय निदीन हो गये । कितने ही एक पर
बटसे मुला दिये गये तथा कितनोंको त्रिशूलसे त्रिणीर्ण करके
धूम्राक्षने उनकी आँतों वाहर निकाल दी ॥ २२ ॥

तत् सुभीम महद्युध हरिगक्षससकुलम् ।
प्रयभौ शल्लवकुल शिलापादपसकुलम् ॥ २३ ॥

वानरों और राक्षसोंसे भरा हुआ वह महान् युद्ध नदी
म्यानक प्रतीत होता था । उसमें अन्न गलोंकी बहुलता थी
तथा शिलाओं और वृक्षोंकी वपसि लारी रणभूमि भर गयी
थी ॥ २३ ॥

धनुज्यातत्रिमधुर हिक्कातालसमथितम् ।
मन्दस्तनितगीत तद् युद्धगाधवमायभौ ॥ २४ ॥

वह युद्धरूपी गार्धर्ध (संगीतमहोत्सव) अद्भुत प्रतीत
होता था । धनुषकी प्रत्यञ्चसे जो टनार ध्वनि होती थी, वही
मानो वीणाका मधुर नाद था, हिचकियों तालका फास देती
थी और मन्दस्वरसे घायलका जो कराहना होता था वही गीत
का म्यान ल रहा था ॥ २४ ॥

धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणियानरान् रणमूर्धनि ।
हसन् विद्रागयामास दिशस्ताञ्जलमृष्टिभि ॥ २५ ॥

इस प्रकार धनुष हाथमें लिये धूम्राक्षने युद्धके मुहानपर
बाणोंकी कथा करके वानरोंको हैसते हैसते मण्ण दिशाओंमें
मार मारया ॥ २५ ॥

धूम्राक्षेणाविंश सैन्यं व्यथित प्रेक्ष्य मादतिः ।
अभ्यवसत सकुटु प्रमुष्ट विपुला शिलाम् ॥ २६ ॥

धूम्राक्षकी मारने अपनी सेनाकी पीड़ित एवं व्यथित हुए
देख पवनकुमार हनुमान्जी अन्यन्त मुपित हो उठे और एक
त्रिगाल गिला हाथमें छ उसका सामने आये ॥ २६ ॥

क्रोधाद् द्विगुणताम्राक्ष पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
दिला ता पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ २७ ॥

उस समय क्रोधने कारण उनमें नेत्र दुगुने लाल हो रहे
थे । उसका पराक्रम अपने पिता तपुदेवताके ही समान था ।
उन्होंने धूम्राक्षने रथपर यह त्रिगाल गिला दे मारी ॥ २७ ॥

आपतन्तो शिला दष्टा गदामुद्यम्य सम्भ्रमात् ।
ग्यादाप्नुत्य येनो न वसुधाया व्यतिष्ठत ॥ २८ ॥

उस गिलान्न रथरी और आनी देल धूम्राक्ष दहकड़ीमें
गदा लिये उठा और बेगमूक रथमें दूदकर पृथ्वीपर लड़ा
गया ॥ २८ ॥

सा प्रमथ्य रथ तस्य निपात शिला भुवि ।
सचक्रकूर साह्य सध्वज सदापासनम् ॥ २९ ॥

वह गिला पहिये, कुबरे, अधः, ध्वज और धनुषसहित
उसमें रथको चूर चूर करने पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २९ ॥

स भङ्क्त्वा रथ तस्य हनूमान् मादतात्मज ।
रक्षसां वदन चक्षे सस्कधविटपैर्दुमैः ॥ ३० ॥

इस प्रकार धूम्राक्षने रथका चौपा करके पवनपुत्र हनुमान्
ने छोटी-बड़ी शालियोंसहित वृक्षाद्वारा राक्षसोंका तगर आरम्भ
किया ॥ ३० ॥

विभिन्नशिरसो भूरा राक्षसा दधितोक्षिता ।
दुमैः प्रमथिताश्चान्ये निपेतुधरणीतले ॥ ३१ ॥

बहुतरे राक्षसोंने सिर फूट गये और वे रक्तसे नहा डेढे ।
वृक्षों बहुतने निगाकर वृक्षाकी मारसे कुचके जाकर धरतीपर
लेग गये ॥ ३१ ॥

विद्राग्य राक्षस सैन्यं हनूमान् मादतात्मज ।
गिते शिखरमावाय धूम्राक्षमभिमुद्रये ॥ ३२ ॥

इस प्रकार राक्षसेनाको खदेड़कर पवनकुमार हनुमान्ने
एक परतका गिन्वर उठा लिया और धूम्राक्षपर धावा
किया ॥ ३२ ॥

तमापसन्त धूम्राक्षो गदामुद्यम्य धीर्यवान् ।
विनर्दमान सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥

उन्हें आते देख पराक्रमी धूम्राक्षने भी गदा उठा ली
और गकना करता हुआ वह सहसा हनुमान्जीकी ओर
दौड़ा ॥ ३३ ॥

तस्य कुदस्य रोपेण गदा ता बहुकण्टकात् ।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽयं हनूमतः ॥ ३४ ॥

धूम्राक्षने कुपित हुए हनुमान्जीक मस्तकपर बहुकण्टक
नाँटोंसे मरी हुई वह गदा दे मारी ॥ ३४ ॥

ताडितं स तथा तत्र गदया भीमयेया ।
स कपिमारुतयलम्न प्रह्वामचिन्तयन् ॥ ३ ॥
धृष्टाश्रम्य दिगेमस्य गिरिदाह्रमपातयत् ।

भयनं वगवात्ता यस्तथासा चोत्साकर मी तुल्य
ममन बलवात्ता कविर इनुमानेन वही इम प्रहारो कुश मी
नदा गिता और धूमशक ममनर रह पवनगिर चला
दिया ॥ २ ॥

स विस्फारितस्राहो गिरिदाह्रेण ताडितः ॥ ३६ ॥
पपात सहसा भूमौ विर्कीण इव पवन ।

पतन्निर्वाका गरी चात् साकर धूमशक सरे अन्न
छिन्न भिन्न हा गन और वह विस्फर हुए पवनकी भाँति सल
प्रसार गिर पड़ा ॥ ३६ ॥

हृत्पाथे श्रीमद्रामायण वाक्योक्तौय आदिकाण्डे युद्धकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

इम पञ्चाशः श्रीरामचरितमित्र आचार्यमदन आदिकाण्डे युद्धकाण्डे वचनार्थः सः पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

पञ्चदष्टका सेनामहित युद्धके लिये प्रस्थान, वानरा और राक्षसोंका युद्ध,

वज्रदष्टद्वारा वानरोंका तथा अन्नदष्टद्वारा राक्षसोंका महार

धृष्टाश्रम निहत धृष्ट्या राखणे राक्षसेदवर ।
प्रोधन महत्ताऽऽरिषो निभ्यमनुरगे यथा ॥ १ ॥

धूमशक मार करनेवा सनाकर सुनकर शकुन्तल राख
वा महान् क्रोध हुआ । यह पुरगारने हुए मार मलन कर
करने ही लगे ॥ १ ॥

दीघमुष्ण विनिभ्यस्य प्रोद्येन कटुर्गठित ।
भ्रजर्षाद् राक्षस ह्य वज्रदष्ट महारम्भ ॥ २ ॥

क्रोधने कटुता ह गर्मजल गरी मीम सौनवर ठमन
मर निगवर मन्वरा उन्नतून द्या— ॥ २ ॥

गच्छत्य धार निपाति राक्षसं परिवारित ।
जहि क्षारगि रान मुम्राय वानरं सह ॥ ३ ॥

हार ! तुम लगे लगे और क्षारगि मार रान
और वानरों गहन मुम्राय मार द्या ॥ ३ ॥

तथेयुस्तथा द्रुततः माषाः राक्षसध्वज ।
निजगाम यत् साधं पशुभिः परिवारित ॥ ४ ॥

तब वह मन्वा लला बहुत अच्छा कहकर बहुत बड़ा
गनाक रूप तुम युद्ध के लिए चले ॥ ४ ॥

क्षारद्वयं गरीशं सयुजं सुसमाहित ।
पताकपञ्चचक्रिष्य पशुभिः समललित ॥ ५ ॥

वह क्षार, पशु, गरीश और उर मी सारम सुन
म स्तिता पूरा दसम दिव हुए म और पताका ध्वज

धृष्ट्याश्रम निहत धृष्ट्या हतयेया निगाचरा ।
यन्मा प्रविशितुं द्वा वध्यमाना परगम ॥ ३७ ॥

धूमशका मार गवा दग मनेन वन हुए निगानर
मभर्षित ग लगेरी मार वन हुए लडान पुन गन ॥ ३७ ॥

स तु पवनमुनो निहत्य गवृत्
क्षतवहा मग्नित्य मरिचीय ।

गिपुरधननिग्रमो महामा

मुदमगमत्कपिभिः सुपूज्यमान ॥ ३८ ॥

इम प्रकार गुरुओं मारकर और रनका धारा बगनाया
बहुनमी नयेय प्रवहित कर मन्वा मनुमार इनुमान
यपने गुरुधननेन परिभमने था गर । मन्वा वानरदाए
पूजित एर प्रशंसित होनेने ठाई बही प्रवजता हुआ ॥ ३८ ॥

अत्रिचिन्तित गमा पानात् बहुन मनायध गरी
गमा वानेय ॥ ५ ॥

तनो विचित्रकयमुमुदत विभूति ।
तनुश्च समाश्रय सधनुनियया द्रुतम् ॥ ६ ॥

विचित्र वृत्त और मुदतम निभूत हा वच पतरा
कर हायमे वनुर लिय म म ही निभूत ॥ ६ ॥

पताकललित दीप्त तनसञ्ज्ञतभूतिम् ।
स्य प्रदग्निष्य धृष्ट्या समारोह्यमूपति ॥ ७ ॥

पताका ललित दीप्त तनसञ्ज्ञतभूति मन्वा
क्षयने मुदत गन । निभूत वरक भवने वज्र मन्वा
अन्ना हुआ ॥ ७ ॥

श्रुतिभिस्तोमगधियं शूलैर्धय मुमलंगि ।
भिन्दिपाल्य चापश्च क्षतिभिः पट्टिगर्भि ॥ ८ ॥

शूलैर्धयैर्गदाभिश्च निभूतश्च परमर्ध ।
पदानपद्य निपाति विविधा गव्यपाणय ॥ ९ ॥

मन्वा मन्वा श्रुति विचित्र मन्वा विचित्र मुष्ण निभूत
द्वय, पशु, क्षार, क्षार, गरीश च मन्वा और क्षार
क्षारो मुष्णित वानरन मन्वा दद्या म । मन्वा मन्वा
अनेक प्रकार और मन्वा मन्वा पा र द्या ॥ ८ ॥

विचित्रशामस सर्वे दीप्ता गव्यमपुत्रा ।
गजा महान्द्रा गुगधल्लव इव पान ॥ १० ॥

प्रामै प्रमथिता केचिद् धानरा शोणितघ्नया ।

मुद्रैराहता केचित् पतिना धरणीतले ॥ १९ ॥

कुछ धानरोंको उसने भाल्ले गोंय दिया, जिससे वे
मृत्तमी धारा पहाने लगे । किन्तु ही यन्त्र उसर मुद्रमग्न
आहत हानर धरणीपर लट गये ॥ १९ ॥

परिधर्मयिता केचिद् भिन्दिपालैश्च वृगिता ।

पट्टिसौमथिता केचिद् रिहलन्तो गतासव ॥ २० ॥

कुछ धानर परधर्मो के कुल डाल गये । कुछ
भिदिपालोंसे नीर दिय गये और कुछ पण्णिते मये धानर
‘पाट्टु’ ॥ अपने प्रणोते हाथ भी देते ॥ २० ॥

केचिद् विनिहता भूमौ रथिराद्रा यनौत्स ।

केचिद् विद्राजिता नद्या समुद्धे गक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥

किन्तु ही धानर रथसाधारा मारे जाकर मृत्तसे रथ
पथ हो पृथ्वीपर लगे गये और किन्तु ही काचमरे रथधर्मोद्वारा
युद्धसलम खदेहे जानेपर कहा भाङ्गर छिप गये ॥ २१ ॥

विभिन्नहृदया केचिदेकपाद्वेन द्रायिता ।

विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदाधैर्विनि स्मृता ॥ २२ ॥

किन्तु ही हृदय विदीर्ण हो गये । किन्तु ही एक पर
चरने मुला दिये गये तथा किन्तु ही त्रिशूलसे विदीर्ण करके
धूम्राक्षने उनकी ओतें बाहर निकाल दाँ ॥ २२ ॥

तत् सुभीम महद्युध हरिगक्षससकुलम् ।

प्रयभौ शस्त्रयदुल शिलापादपसकुलम् ॥ २३ ॥

धानरों और राक्षसोंसे भर हुआ यह महान् युद्ध बड़ा
भयानक प्रतीत होता था । उसमें अस्त्र गलाकी बहुलता थी
नया गिलावा और कड़ोंकी बपत्ति सारी रणभूमि भर गयी
थी ॥ २३ ॥

धनुज्यातनिमधुर हिकातालसमन्वितम् ।

मन्दस्तनिगनी तद् युद्धगाधर्यमायभौ ॥ २४ ॥

यह युद्धरूपी गाधन (समीत-महोत्सव) अद्भुत प्रतीत
होता था । धनुषकी प्रयत्नान्ति जो नकार ध्वनि होती थी, वही
मानो चीगाका मधुर नाद था, हिकानियों तालरा काम देती
थी और मन्दस्तरसे धायलोंका जो काहना होता था वही गीत
का स्तन ले रहा था ॥ २४ ॥

धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिवानरान् रणमूचनि ।

हसन् विद्राजयामास विशस्ताच्छरवृष्टिभि ॥ २५ ॥

इस प्रकार धनुष हाथमें लिये धूम्राक्षने युद्धके मुहानेपर
बाणाक्षी यपा करके धानरोंको हँसते हँसते मृत्तों दिशाओंमें
मार मगाया ॥ २५ ॥

धूम्राक्षेणादित सैन्य व्यथित प्रेक्ष्य मारुतिः ।

अभ्यवतत सकुल प्रमृष्टा विपुला शिलाम् ॥ २६ ॥

धूम्राक्षकी मारने अपनी सेनानो पीडित एव व्यथित हुए

देख पवनकुमार हनुमान्जी अत्यन्त दुःखित हो उठे और एक
निगाह गिला हाथम ल गला सामने आये ॥ २६ ॥

धूम्राक्षः क्रिगुणताम्राक्षः पिशुस्तुल्यपराक्रम ।

शिला ता पातयामास धूम्राक्षस्य स्य प्रति ॥ २७ ॥

उस समय मोक्ष काण उनक नेत्र दुगुने लाल हो रहे
थे । उनका पराक्रम अपने पिता मधुदेवतासे ही समान था ।
उन्होंने धूम्राक्षसे रथपर वह निगाह गिला दे मारी ॥ २७ ॥

आपतन्ती शिला दृष्ट्वा गदामुद्यम्य सम्प्रमात् ।

रथादास्तुत्य धमेन वसुधाया व्यतिष्ठत ॥ २८ ॥

उस निगाह देखी और आती देख धूम्राक्ष दहबहीम
गदा लिये उठा और वेगायुक्त रथसे बहकर पृथ्वीपर लड़ा
हो गया ॥ २८ ॥

सा प्रमथ्य रथ तस्य निपपात शिला भुवि ।

सचक्रकूर साधन सभ्रज सशरसन्म ॥ २९ ॥

यह शिला पहिले, कूर, अध, ध्वज और वनगवहन
उसक रथको चूर चूर करने पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २९ ॥

स भङ्गक्षया तु रथ तस्य हनुमान् मायतामज ।

रक्षसा कदन चमे सस्वधनिटपैर्दुर्मै ॥ ३० ॥

इस प्रकार धूम्राक्षने रथका चौपट करके पवनपुत्र हनुमान्
ने छापी-बड़ी टालियोंवहित बृक्षोंद्वारा राक्षसा का शहर भारम्भ
किया ॥ ३० ॥

विभिन्नशिरसो भूतभ राक्षसा रथिरोक्षिता ।

दुर्मै प्रमथिताश्चान्ये नित्येनुधरणीतले ॥ ३१ ॥

बहुतर राक्षसों के शिर फूट गये और वे रथसे नष्ट उठे ।
दुर्मे बहुतसे निगाचर बृक्षोंकी मारसे कुचले जाकर धरतीपर
लेट गये ॥ ३१ ॥

विद्राज्य राक्षस सैन्य हनुमान् मारुतात्मज ।

गिरे शिलगमादाय धूम्राक्षमभिबुद्धये ॥ ३२ ॥

इस प्रकार राक्षसेनाको खदेड़कर पवनकुमार हनुमान्ने
एक पर्यंतका शिखर उठा लिया और धूम्राक्षपर बाण
बिगाया ॥ ३२ ॥

समापतन्त धूम्राक्षो गदामुद्यम्य धीर्यवान् ।

विनर्दमान सहसा हनुमन्तमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥

उन्हें आत देल पराक्रमी धूम्राक्षने भी गला उठा सी
और गला करता हुआ वह सहसा हनुमान्जीकी ओर
दौड़ा ॥ ३३ ॥

तस्य मुखस्य रोपेण गदा सा यदुक्पटफ्रम ।

पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनुमत ॥ ३४ ॥

धूम्राक्षने बुझित हुए हनुमान्जीक मस्तकपर बहुसंख्या
बाँटोसे गरी हुई वह गदा दे मारी ॥ ३४ ॥

ताडितं स तथा तत्र गद्या भीमवेगया ।
स पपिमास्तनरुलम्नं प्रहाम्विन्त्यन् ॥ ३ ॥
धृष्टाश्रम्य शिरामण्ये गिरिशङ्खमपातयत् ।

मयानरुधगवाली नमगदारी चात्र स्वावर भी वायुन
ममान वग्यान् कपिर हनुमानन यहाँ इस प्रहारो कुछ भी
नहा गिना और धृष्टाश्रम मन्थनर यह पवनगिरि चग
गिया ॥ २ ३ ॥

स विस्फारितमहाहा गिरिशङ्खेण ताडितः ॥ ३ ॥
पपात सहस्रा भूमी विर्कीर्णः ॥ ४ ॥ पवनः ।

पवनगिरिवादी गरी चात्र स्वावर धृष्टाश्रम सर अह
छिन्न भिन्न हा गने और वह विस्फार हुए पवनका भोंते सग
प्रवीर गिर पड़ा ॥ ३ ४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण काव्यमीश्वर आदिछाण्डे युद्धकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

इमं वक्ष्यामि शौचार्णवैर्निर्मितं मातृगमयम् अदिकल्पिक युद्धकाण्डम वचनार्थं सः पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

पञ्चाष्टका सेनामहितं युद्धके लिये प्रस्थानं, वानरों और राक्षसोंका युद्ध,

वज्रप्रहरा वानरोंका तथा अहङ्गद्वारा राक्षसोंका संहार

धृष्टाश्रमं निहतं धृष्ट्या रावणो गणसेदिवरः ।
मौर्धन्यं महताऽऽसिष्ठो निभ्रमन्तुरगो यथा ॥ १ ॥

धृष्टाश्रम मरे जनेरा समानर सुनर राक्षसात्र रावण
स महान् कष हुआ । वह पुनराते हुए सर ममान नर
इते सँग सने लग ॥ १ ॥

दीर्घमुष्णं विनिभ्रम्य मौर्धन्यं कटुगहनं ।
अप्रधीद् रावणस्य दूरं वज्रदृष्टं महाशरम् ॥ २ ॥

कषणे कटुपित हा गमनम गदी सैम सौनर उखने
मूर निगार मगबला वज्रधूम द्या—॥ २ ॥

गच्छत्य ध्यात्वा नियामि राक्षसं परिवारितः ।
जह्नि दानार्णयं गमं सुप्राय वानरैः सह ॥ ३ ॥

धर । तुम राक्षस कष जश और दूरगदुमार गम
और वनगहनित सुप्राय मर हा ॥ ३ ॥

तथेयुक्तं वा द्रुततरं मायावी राक्षसेभ्यः ।
निजगाम यत्नं सार्धं यदुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥

तय वह मयावा उछ मनुन अच्छा कहार वनत वहा
गनाक सय तुम सुद्वय लिये वग गिया ॥ ४ ॥

नगरं ददौ गच्छतु सयुजं सुममार्हितः ।
पतापत्रवज्रविषयं यदुभिः समलट्टनः ॥ ५ ॥

यह हाथा यह गद और ऊट अदि सगरसेम पुन
न विना पुन पतापत्र विष हुए न और पतापत्र वज्र

धृष्टाश्रमं निहतं धृष्ट्या हनतेन निराश्रमः ।
यन्मा प्रविशितुल्लाघ्यमाना परगमः ॥ २७ ॥

धृष्टाश्रम मार गरा दग मनेन वन हुए निगानर
मयभीत हा वानरों मार खान हुए लहाम पुन गर ॥ ३१ ॥

स तु पवनसुतो निहत्य गधून्
क्षतनयवा सन्तिष्ठ सविर्कीर्णः ।

गिपुरधननिजगमे महामा
सुदमगमन् रपिभिः सुपूज्यमानः ॥ ३१ ॥

इम प्रहार गधुओंका मारनर और रनका पाठ बगान गग
बहुतभी नपेयोंका प्रगहित करर मगना पवनकुमार हनुमान
यघनि गधुपधनेन परेभनम यह गर । तथा वानरगाव
पूजेन घर प्रगन्ति हनेमे उहे वरी प्रवजना हुए ॥ २८ ॥

नामि रित्ति गभा पानरा बहुतन मनावध गगना
गमा बगने थ ॥ ५ ॥

ततो विप्रियेयुगमुकुटनं विमुक्तिः ।
तनुष च समादृत्य सधनुनियया द्रुतम् ॥ ६ ॥

रित्ति धुन और मुकुटन विभूत हा करन धरा
करक हायमे धनु लिये यह गाव ही निहला ॥ ६ ॥

पताकालट्टनं गतं ततश्चञ्चनभूषितम् ।
रथं प्रदन्विष्य दृष्ट्या समागतेषामूपतिः ॥ ७ ॥

पताकालाभेन अलट्टन गनिमान तथा सनर सत्र
वजने मुकुटन गगना गिहला वर भनरनि वज्रक मम
आल्ट हुआ ॥ ७ ॥

श्रुष्टिभिस्सामगधिरैश्च दृष्ट्याश्च मुमुक्षुरपि ।
भिन्दिपात्यश्च चारुश्च गतिभिः पट्टिगपि ॥ ८ ॥

सर्पद्वयैर्गदाभिश्च निनिर्गद्यैश्च परावधः ।
पदानयश्च नियान्ति विविधा गान्धपाणयः ॥ ९ ॥

गमर सय श्रुति, विविध सय विरन मुष्ण मिनि
दय धनुन सनि पट्टि गद, वज्र गग और टो
परसेम मुकुटन बहुतन पैर पडा था । उनर हापेन
अनेक प्रकारक अस्त्र सय सन ॥ १६ ॥ ८ ॥

त्रिपिशकसमं सर्वे दीप्ता राक्षसपुङ्गवाः ।
गजा महावज्रा गुणधन्वन् इव परताः ॥ १० ॥

विचित्र यन्त्र धारण करनेवाले सभी राक्षस गीर अपने तन्त्रों उद्भासित हो रह थे । तीर्थसम्पन्न मदमत्त गजराज चले-फिरे पर्याप्त समान जान पड़ते थे ॥ १० ॥

त युद्धकुशलं रुद्रास्तोमराद्गुहापाणिभिः ।

भन्ये लक्षणमयुक्ताः शूरास्त्वं महायन्त्र ॥ ११ ॥

हाथों तामर, अंगु धारण करनेवाला महायन्त्र जिनकी गर्जनपर सगर थे तथा जो युद्धकी वृत्तमान गुणालय य हाथी युद्धमें लिय आगे थे । उत्तम लक्षणोंसे युक्त जो दूत दूत महायन्त्री घोड़े थे, जिनके ऊपर शूरीर सैनिक सवार थे, व भी युद्धके लिय निकल ॥ ११ ॥

तद् राक्षसयन्त्रं सर्वं निप्रस्थितमज्ञोभत ।

प्रावृट्काले यथा मैथा नर्दमाना नविद्युत ॥ १२ ॥

युद्धक उद्देश्यमें प्रस्थित हुए राक्षसार्थ यह सारी सेना रात्रिकालमें राजत हुए विजयिण्योसहित मेवक समान शोभा पा रही थी ॥ १२ ॥

निस्तृता दक्षिणद्वारादद्गता यत्र शूयथ ।

तेषां निष्प्रममाणानामगुणं समजायत ॥ १३ ॥

उह सेना लङ्काके दक्षिणद्वारसे निरगनी, जहाँ यानरभूयपति अद्गद राह रोके पड़ थे । उपरस निकलते ही उन राक्षसों के सामने अगुमसूचक अपनाहुन होने लगा ॥ १३ ॥

भाकाशाद् विघ्नानात् तीव्रा उल्काश्चाप्यपतस्तदा ।

वमन्तः पावकज्वाला दिवा घोरा यथागिरे ॥ १४ ॥

मेघरहित आकाशसे तत्काल कुछ उल्कापात होने लगे । मयानर गीदह मुँहमें आगकी ज्वाला उगलते हुए अपनी बोली बोलने लगे ॥ १४ ॥

ध्याहरन्त मृगा घोरा रक्षसा निधन तदा ।

समापतन्तः योधास्तु प्रास्वल्स्तन शरुणम ॥ १५ ॥

घोर पशु एसी बोली बोलने लगे, जिनसे राक्षसों के शहर की सूचना मिल रही थी । युद्धके लिय आत हुए योद्धा कुटी तरह लड़थेड़ाकर मार पड़ते थे । वसते उनकी बड़ी दारुण अवस्था हो जाती थी ॥ १५ ॥

एतानौत्पातिकान् दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रो महाबल ।

धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी निजगाम रणोत्सुक ॥ १६ ॥

इन उत्पातसूचक लक्षणोंके देखकर भी महाबली वज्र दंष्ट्रने धैर्य नहीं छोड़ा । उह तेजस्वी वीर युद्धके लिये उत्सुक होकर निकला ॥ १६ ॥

तास्तु विप्रयतो दृष्ट्वा धानया जितकाशिन ।

प्रणेदु सुमहानादान् विशा शम्भेन पूरयन् ॥ १७ ॥

तीव्रगतिसे आत हुए उन राक्षसोंका देखकर विजयलक्ष्मी ने सुगोभित होनेवाला यानर बड़े जल-जोरसे गजना करने

लगे । उन्होंने अपने भिन्नान्तरे समूह निगाओंको मुँह दिया ॥ १७ ॥

तत प्रवृत्त तुमुल हरीणा राक्षस सह ।

घोराणा भीमरूपाणामन्योन्यवधकाक्षिणाम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर भयानक रूप धारण करनेवाले घोर यानरोंका राक्षसों साथ तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ । मैना दलोंके योद्धा एक दूसरेका घब करना चाहते थे ॥ १८ ॥

निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेशिरोधरा ।

रथिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतन् धरणीतले ॥ १९ ॥

उह उल्लाहमें युद्धके लिये निकलत, परन्तु देह और गदन कर जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़ते थे । उस समय उनके शरीर अङ्ग रक्तमें भीग जाने थे ॥ १९ ॥

केचिद्वन्योन्यमासाद्य शूरा परिघयाहवः ।

चिभिमुर्विधाभ्यास्त्राण्य समरेष्वनिवृत्तिम् ॥ २० ॥

युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले और परिघ-जैसी बाँहोंवाले कितने ही शूरीर एक दूसरेके निवृत्त पहुँचकर परस्पर नाना प्रसन्नक अङ्ग-शस्त्रोंका प्रहार करते थे ॥ २० ॥

द्रुमाणा च शिलाणा च शस्त्राणा चापि नि स्वत ।

भूयन् सुमहास्तत्र घारो हृदयमेव ॥ २१ ॥

उस युद्धस्थलमें प्रयुक्त होनेवाले वृक्षा, गिलाओं और शस्त्रोंका महान् एव घोर धक्का जब जानाम पड़ता था तब वह हृदयका विदीर्ण कर देता था ॥ २१ ॥

रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि घोरवत् ।

शङ्खमेरिमृदङ्गाना यभूव तुमुल स्वन ॥ २२ ॥

वहा रथके पहिवासी घबराहट, धनुषकी भयानक कवा तथा शङ्ख, मेरी और मृदङ्गोंका गद्द एकत्र मिलकर बड़ा भयकर प्रतीत होता था ॥ २२ ॥

केचिद्व्यापि मृत्युम्य बाहुयुद्धमकुचत ॥ २३ ॥

तल्लिख चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च हुमैरपि ।

जालुभिश्च हला केचिद् भग्नेदेहाश्च राक्षसा ।

शिलाभिश्चयूषिता केचिद् बानरैर्युद्धदुमदै ॥ २४ ॥

कुछ योद्धा अपने हथियार पकड़ कर हाथयुद्ध करने लगते थे । मण्डपा, लाता, मुका, वृक्षां और घुटनोंकी मार लाकर कितने ही राक्षसोंकी शरीर चूर चूर हो गये थे । रणदुर्म बानरों ने गिलाओंसे मार मारकर कितने ही राक्षसोंका चूरा बना दिया था ॥ २३ २४ ॥

वज्रदंष्ट्रो शूरा बाणै रणे विप्रासयन् हरीन् ।

चचार लोकसहारे पाशहस्त इयान्तक ॥ २५ ॥

उस समय वज्रदंष्ट्र अपने बाणोंकी मारसे बानरोंका अन्त्यय भयभीत करता हुआ तीनों लोकोंके संहारके लिये उठे हुए पाण्डुपारी यमराजके समान रणभूमिमें निचरने लगा ॥ २५ ॥

यत्नन्तोऽस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे ।
जन्तुर्वानरसैन्यानि रात्रसा मोधमूच्छता ॥ २५ ॥

स्रष्टु ही मोघमे भरे तथा नाना प्रकारक अस्त्र नाम्ब लिय
अन्य अस्त्रता यन्त्रान् रात्रस भी वानरसेनाओंका रणभूमिमें
सहार करने लगे ॥ २६ ॥

अधे तान् राक्षसान् स्रवान् धृते यान्ति सुतो रणे ।
मोघेन द्विगुणाविष्ट स्रवतश्च इवानल ॥ २७ ॥

किन्तु प्रत्येकालम मरनक आनि जैने प्राणियोंका सहार
करती है, उसी तरह यान्तिपुत्र अस्त्र और भी निभय हो दूने
प्राधेन भरकर उन सब राक्षसोंका वध करने लगे ॥ २७ ॥

तान् रात्रसगणान् स्रान् वृक्षसुघम्य र्थययान् ।
अह्मद् मोधेताप्राक्ष सिंह भुद्रमृगानि ॥ २८ ॥
चकार कन्दन घोर शम्भुल्यपराक्रम ।

गनकी ओंका मोधम लाल हो रही था । २ इन्द्रक तुल्य
पराक्रमी थे । जैने सिंह छोट वन पशुओंका अनायास ही नष्ट
कर देता है उसी तरह पराक्रमी अह्मदने एक वृक्ष उठाकर
गन समस्त राक्षसगणोंका घोर संहार आरम्भ किया ॥ २८ ॥

अह्मदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमनिग्रमा ॥ २९ ॥

हृषार्थे भीमनामागे वाक्मोकीये आदिकार्ये सुदकाण्डे त्रिपञ्चाशे सर्ग ॥ ५३ ॥

इस प्रकार भीमहर्षेकेनिमित्त आर्त्तामायण आदिनामक सुदकाण्डमें विरचनहीं मर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

चतु पञ्चाशे सर्ग

यज्ञान्द्र और अह्मदका युद्ध तथा अह्मदके हाथसे उम निशाचरका वध

स्रवत्स्य च घातन अह्मदस्य वलन च ।
रात्रस मोधमाविष्टो यज्ञदष्टो महावल ॥ १ ॥

अह्मदक पराक्रममें अपनी मनाका संहार हुआ जैने महा
बली राक्षस यज्ञान्द्र अथवा तुर्गि हो उठा ॥ १ ॥

विस्फाय च धनुर्घोरा शम्भुदानिसमप्रभम् ।
यानराजामनीकानि प्राक्रिच्छरघृष्टिभि ॥ २ ॥

वह इन्द्रक वक्रक समान तजर्गी अपना भयकर धनुष
गोबरन यानरोंकी सत्तारक काणोंकी वधा करने लगा ॥ २ ॥

राक्षसाध्यापि मुल्यास्त रणेषु समवस्थिता ।
नानाप्रहरणा शूरा प्रायुष्यन्त तदा रणे ॥ ३ ॥

उक्त रूप अन्य प्रधान प्रधान शूरोंके राक्षस भी रात्रस
वक्रक हाथोंमें तरह-तरह हाथोंके लिये सामानभूमिमें युद्ध
करने लगे ॥ ३ ॥

यानराणां च शूरास्तु त सर्वे पृथगावभा ।
भयुष्यन्त दिगादस्ता समवेता समन्तत ॥ ४ ॥

वनरोंमें भी वे विद्वान् शूरोंके व व मनी वनरोंके

विभिन्नदिगम् पतुर्निहता इय पादपा ।

अह्मदकी माग आरर व भयानक पराक्रमी रात्रस सिंहर
जानेके कारण वह कुछ कृशोंके समान पृथीपर गिरने लगे ॥ १ ॥

रथेधिषैघ्रजैरदौ दारिगैहिरभ्यसाम् ॥ ३० ॥
रथिरोघेण सद्यत्रा भूमिभयकरी तदा ।

जस समय रथा विप्र गिन्नन धरज, धारा, रात्रस
और वानराय गरीरा तथा रनकी धाराओंमें भर जानेके कारण
वह रणभूमि वन भयानक जान पड़ती थी ॥ ३० ॥

हारकयूरवस्त्रैश्च शालैश्च समन्तत ॥ ३१ ॥
भूमिभाति रण तत्र शार्ङ्गद्वयं यथा निदा ।

बादाआर हार, कयूर (बाण) वस्त्र और गन्धान
अलङ्कृत हुए रणभूमि परल्लापका रात्रिस समान गाभा पानी
थी ॥ ३१ ॥

अह्मदस्य च घगन तद् रात्रससथल महत् ।
प्राक्स्पत तदा तत्र पशन्नाभ्युगे यथा ॥ ३२ ॥

अह्मदके वगमें रहा वह रात्रस रात्रसमना जस समय
उसी तरह फायन लगा, जस रात्रस जस भय रगिन हो
उठता है ॥ ३२ ॥

मणि मध आरम एकत्र हो हाथोंमें गिलाए लिय जुहन
लगे ॥ ४ ॥

तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्प्रायोधन भुशाम् ।
राक्षसा कपिमुरख्येषु पातयारत्रिण तदा ॥ ५ ॥

जस समय इन रणभूमिमें रात्रसोंने मृग मृग वानरोंके
हथों अथ गन्धारा वधा की ॥ ५ ॥

यानराधैर वक्षस्तु गिरिवृक्षान महागिला ।
प्रवीरा पातयामासुमन्तवाग्गणमनिभा ॥ ६ ॥

मनेत्र हाथोंके मन्त्रे गिलाए वान वानरोंने भी
रात्रसोंके अनेकानेक पशु वृक्ष और वहावही गिलाए
गिराये ॥ ६ ॥

शूराणां युष्यमानानां समस्प्यनिशानाम् ।
तद् रात्रसगणानां च सुयुद्ध समयतन ॥ ७ ॥

युद्धमें लिये गिराये और उल्लापके रूपमें
शूरोंके वगों और रात्रसका व युद्ध रात्रसका व
गया ॥ ७ ॥

प्रभिन्नशिरस्त केचिच्छिन्नै पादैश्च ग्राहुभि ।

शस्त्रैरर्दितदेहास्तु रुधिराण समुक्षिता ॥ ८ ॥

किन्हापि निर कृते, किन्हापि हाथ और पैर फट गये और बहुत से योद्धाओंके शरीर गलोंके आघातसे पीड़ित हो रक्तसे नहा गये ॥ ८ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव शेरते गा समाधिता ।

पङ्कगृध्रयलादराश्च गोमायुकुलसकुला ॥ ९ ॥

घानर और राक्षस दोनों ही घराणायी हो गये । उनपर नङ्क गीध और घोर टूट पड़े । गौदहोत्री जमानें छा गयीं ॥ ॥

कथ धानि नमुत्पेतुर्भोक्षणा भीरुणानि वै ।

भुजपाणिशिरदिष्ठानादिष्ठभक्रायाश्च भूतरे ॥ १० ॥

यहाँ जिनका मल्लन बट गये थे, ऐसे घड़ मल्ल और उठलने लगे, जो भीड़ म्यमात्राके सैनिकोंको भयभीत करने में । योद्धाओंकी कनी हुई भुजाएँ, हाथ, सिर तथा शरीरव मध्यभाग पृथ्वीपर पड़े हुए थे ॥ १० ॥

घानरा राक्षसाश्चापि निपेतुस्तत्र भूतले ।

ततो घानरसैन्येन हन्यमान निद्राचरम् ॥ ११ ॥

प्राभज्यत यत् सर्वं वज्रदण्डस्य पश्यत ।

घानर और राक्षस दोनों ही दलोंके लोग उहाँ घराणायी हो रहे थे । तत्पश्चात् कुछ ही देरमें घानर-सैनिकोंके प्रहारोंसे पीड़ित हो सारी निद्राचरसेना वज्रदण्ड देरत देखते भाग चली ॥ ११ ॥

राक्षसान् भयनिवृत्तान् हन्यमानान् प्लवगमैः ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा स रोपताम्राक्षो वज्रदण्डं प्रतापमान् ।

घानरोंकी मारसे राक्षसको भयभीत हुआ देख प्रतापी वज्रदण्डकी ओलें मोधसे लाल हो गयीं ॥ १२ ॥

प्रतिवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन् हरिवाहिनीम् ॥ १३ ॥

शरैर्विशारयामास कङ्कपत्रैरजिह्वयै ।

यह हाथमें धनुष ले घानरसेनाको भयभीत करता हुआ उसके मीतर घुस गया और सीधे जानेवाले कङ्कपत्रयुक्त बाणोंद्वारा शत्रुओंको विदीर्ण करने लगा ॥ १३ ॥

विमेद घानरास्तत्र सप्ताष्टौ नर पञ्च च ॥ १४ ॥

विश्याथ परमकुक्षो वज्रदण्डं प्रतापयान् ।

अत्यन्त क्रोधसे भरा हुआ प्रतापी वज्रदण्ड वहाँ एक एक प्रहारसे पोंच खात आठ और नौनौ घानरोंको बाधल कर देता था । इस तरह उसने घानर सैनिकोंको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १४ ॥

प्रस्ता सर्वे हरिगणा शरै सहचन्देहिनि ।

अद्भुत सम्प्रधावति प्रजापतिमिव प्रजा ॥ १५ ॥

बाणोंसे जिनका शरीर छिन्न-मिश्र हो गये थे, वे समस्त घानरगण मयभीत हो अद्भुतकी ओर दौड़े, मानो प्रजा प्रजापतिजी शरणमें जा रही हो ॥ १ ॥

ततो हरिगणान् भग्नान् दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा ।
प्रोघेन वज्रदण्डं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥ १६ ॥

उस समय घानरोंका भागल देख वालिकुमार अद्भुत अपनी ओर देरते हुए वज्रदण्डका क्रोधजनक देखा ॥ १६ ॥

वज्रदण्डोऽद्भुदधोभी योगुघ्येते परम्परम् ।

चेरतु परमकुक्षौ हरिमत्तगजाग्रि ॥ १७ ॥

सिर ता वज्रदण्ड और नद्भुत अत्यन्त दुःखित । एक दूसरेसे वेगपूर्ण युद्ध करने लगे । वे दोनों रणभूमिमें पाप और मत्तगले हाथीव समान विचर रहे थे ॥ १७ ॥

तत शतसहस्रेण हरिपुत्र महाबलम् ।

जघान मर्मदेशेषु शरैरग्निशिरोरुपैर्म ॥ १८ ॥

उस समय वज्रदण्डने महाबली वालिपुत्र अद्भुत मर्मस्थानोंमें अग्नि शिराके समान तेजस्वी एक लाल बाण मारे ॥ १८ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो वालिसुतमहाबल ।

विश्लेष वज्रदण्डाय वृक्ष भीमपराक्रम ॥ १९ ॥

इससे उनका सारे अङ्ग लहू-लहान हो उठे । तब मयानक पराक्रमी महाबली वालिकुमारने वज्रदण्डपर एक वृक्ष चढ़ाया ।

दृष्ट्वा पतन्त त वृक्षमसम्भ्रान्तश्च राक्षस ।

विच्छेद वधुषा सोऽपि मथितः प्रापतव्भुभि ॥ २० ॥

उस वृक्षको अपनी ओर आते देखकर भी वज्रदण्डक मनमें घबराहट नहीं हुई । उसने बाण मारकर उस वृक्षक कई टुकड़े कर दिये । इस प्रकार खण्डित होकर वह वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २० ॥

त दृष्ट्वा वज्रदण्डस्य विक्रमं प्लवगर्भव ।

प्रवृष्टा त्रिपुल शैल विश्लेष च ननाद च ॥ २१ ॥

वज्रदण्डके उस पराक्रमको देखकर घानरशिरोमणि अद्भुतने एक विशाल चट्टान लेकर उसका ऊपर दे मारी और बड़े जारसे गवैना की ॥ २१ ॥

तमापतन्त दृष्ट्वा स रथादाप्लुत्य वीरवान् ।

गदापाणिरसम्भ्रान्तं पृथिव्या ममतिष्ठन् ॥ २२ ॥

उस चट्टानको आती देख यह पराक्रमी राक्षस किना चिली घबराहटके रूपसे बूढ़ पड़ा और केवल गदा हाथमें लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ २२ ॥

अक्षेन शिला क्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनि ।

सत्त्वक्रूरं साधनं प्रमाथय रथं तदा ॥ २३ ॥

अद्भुतकी पेंची हुई वह चट्टान उसके रथपर पहुँच

गभी और युद्धके मुहानेपर उसने पहिले चूर तथा पाँव
छेदी उस रथको तत्काल चूर चूर कर डाला ॥ २३ ॥
ततोऽन्यच्छिवर गृष्ट त्रिपुलं दुग्धभूषितम् ।
चञ्चद्रूपं दिगसि पानयामास धानरः ॥ २४ ॥
तदाभान् पानवीर अद्भुते वृद्धोऽने अमृतं दूषण
विगल शिवर हाथम लहर उमे वज्रद्वार मनकर
दे मारा ॥ २४ ॥
अभवच्छोणितोद्गारी वज्रद्वारं सुमूर्च्छित ।
सुहर्नमभवामूढो गदामालिङ्गय निःश्वसन् ॥ २५ ॥
वज्रद्वार उसकी चोखे मूर्च्छित हो गया और रक्त
वसन धरने लगा । वह गंगाके हृदयसे लगाये दाँ पड़ीनक
अनेक पहा रहा । केवल उसकी साँठ चलती रही ॥ २ ॥
सः प्रससो गदया बलिपुत्रमस्थितम् ।
जघान परममूढो घनोदेवो निदाघरः ॥ २६ ॥
हाथमें गानेपर उठ निगाबने अत्यन्त मुक्ति हो
सामने लड़ हुए बलिपुत्रकी छातीमें गाने प्रहार किया ॥
गदा त्यक्त्या तनस्तत्र मुष्णिपुत्रमधुयत ।
अन्यास्य जघनस्तत्र तापुमी हरिगणपती ॥ २७ ॥
सिर गदा त्यागकर यह यहाँ मुक्कने युद्ध करने लगा ।
ये धानर और शङ्ख दोनों धीर एक दूसरेको धुक्कोने
मारने लगे ॥ २७ ॥
रुधिरोग्राहिणी तौ तु प्रहारैर्जनितग्रमी ।
घमूयतु सुविदालाघङ्गायुधाधिरः ॥ २८ ॥
दनों ही बड़े पराक्रमी थे और परस्पर पहने हुए
मन्द्रक एवं युधन लमान जल पड़ने थे । अग्रतः प्रहारोंने
पातित हो दोनों ही पड़ गये और मुँहसे रक्त वमन
करने लगे ॥ २८ ॥
ततः परमनेत्र्यो अद्भुतं प्रवगायत ।
उत्पाद्य वृत्रं स्विनगतासाजं पुष्पकजैयुत ॥ २९ ॥
तदाभान् परम तेजस्वी धानरणिमयि अद्भुत एक
वृष्ट उगाड़र लड़े ॥ गये । व वनों उस वृष्टमयी
काम्युद्धे कण स्वयं भी कल और पूज्यसे युक्त विगाय
देने ॥ २९ ॥
जघ्रात धारत धम रक्तं च त्रिपुलं गुभम् ।
निर्दिष्टानाममलन धमणा च परिप्लुतम् ॥ ३० ॥
उपर वज्रद्वारे धारत चर्मों की हुर दाँ और
गुजर जय विगत तन्वर ल ही । वह तन्वर छड़ी-छड़ी
परितोष करने अधोपति तथा समझी धनो
मुक्तिमी ॥ ३० ॥
विप्राध रजिगन् मार्गोद्युक्तुः करिगणपती ।

जघनतुष्ट तदान्योन्यं दन्तौ जयकक्षिणी ॥ ३१ ॥
तत्र समय परस्पर निदर्शी वृष्टा रणेनान् व धानर
और शङ्ख धीर सुन्दर एव विविध धनर वल्लभ तथा
गर्वित हुए पर दूसपर चर करने लगे ॥ ३१ ॥
यणे मानैश्चोभेना पुष्पिताविषं किमुदी ।
युध्यमानो परिग्राह्यौ जानुभ्यामग्रनीं गतौ ॥ ३२ ॥
दोनों ने गले रक्ती पाए करने लगी, जिसे व
विष्ट हुए पलायन वृद्धों समान जाना गने लगे । लड़ते-
लड़ते धर जानेर कारण दोनोंने ही धृष्टीपर धुने
रक गये ॥ ३२ ॥
निमैर्गन्तरमात्रेण अद्भुतं कपिपुत्रः ।
उद्विग्न दीनायो दण्डाहत इयोगा ॥ ३३ ॥
किन्तु एक मारन-मारत कपिश्रेष्ठ अद्भुत उग्रर गड़े
होगा । तत्र नेत्र राने उदीत हो उग्र प और वे
दंडा चर लाप हुए सति समान उत्तेजित हो रहे ॥ ३३ ॥
निमैर्न सुयतेन रक्तेनास्य मालिखितः ।
जघान वज्रद्वारं बलिपुत्रमग्रनीं ॥ ३४ ॥
मार्गरी वल्लुमारने अनी निर्मै एव तत्र धरगली
चमरीनी तन्वार वज्रद्वार विगत मनक पाट डाला ॥
रुधिरोक्षितगामस्य घमूय पतित छिधा ।
तस्य तस्य परितापं गुभं खड्गहतं दिगः ॥ ३५ ॥
गुले न्याय गरीबान् न राक्षसा वर राक्षसे
कय दुआ सुन्दर कल्ल, निर नैव गल्ल दय थे,
धरतीपर गिरार दा रक्तेमें विभक्त हो गया ॥ ३५ ॥
वज्रद्वार हत द्वा रागमा भयमोहित ।
प्रस्ता राक्षसैर्लङ्का घन्यमाना जयङ्गम ।
विपण्यादना दीना द्विधा निविद्धाङ्गारा ॥ ३६ ॥
वज्रद्वार नग रण रण रण भयने अनन हो
गये । व धानरों मार गार भरत मरे जहाँ मान
गये । तत्र गुप्त विद छा रहा था । य वृष्ट दुग्धो
और द्वा रारा राने अना दुर्दुष्ट नाया कर
गिया था ॥ ३६ ॥
निहत्य त वज्रधरां प्रतापवान्
स कपिपुत्रं करिगणपतयः ।
नगाम एव मतिना माधन
वज्रधरप्रदेशे विरहितः ॥ ३७ ॥
वज्रधरी द्वा रान प्रानी कल्ल वल्लुमार
अद्भुत नग निगार रक्त द्वा ररर वमारजने
रानित हो गेगमा । त्रि द्वा रण नेत्ररा, द्वा र
मना वर हत वर द्वा ॥ ३७ ॥

हाथों अमरामावय वाक्कीर्ण्य अन्धकार युद्धकाण्डे चतुष्पञ्चाशत् सर्ग ॥ ११९३ ॥
सा प्रहार भीमोर्ध्वनिनिर्दिष्ट कपिपुत्राय अन्धकार युद्धकाण्डे चतुष्पञ्चाशत् सर्ग ॥ ११९३ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः.

रावणकी आह्वासे अकम्पन आदि राक्षसोंका युद्धमें आना और वानगोंके साथ उनका घोर युद्ध

वज्रदण्ड हत श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावण ।

वलाध्यन्मुवाचेद् दृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ १ ॥

वालिपुत्र अन्नदने हाथसे वज्रदण्डके मारे जानेना

स्मात्कार सुनकर रावणने हाथ जोड़कर अपने पास राह हुए
सेनापति प्रहमसे कहा—॥ १ ॥

शीघ्र नियातु दुर्धरा राक्षसा भीमजिन्मा ।

अरम्पन पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रमोजिद्म् ॥ २ ॥

‘अरम्पन सम्पूर्ण अस्त्र गम्भीर जाना हैं, अत उन्हींसे

आगे धरके भयकर पराक्रमी दुर्धरे राक्षस शीघ्र यहाँसे
युद्धके लिये जायें ॥ २ ॥

एष शास्ता च गोता च नेता च युधि सत्तम ।

भूतिकात्मश्च मे नित्य नित्य च समरप्रिय ॥ ३ ॥

‘अरम्पनका युद्ध सग ही प्रिय है । ये सर्वदा मेरी

उन्नति चाहते हैं । इह युद्धमें एष श्रेष्ठ यादव माना गया
है । ये गजुओंका दण्ड देने, अपने सैनिकोंकी रक्षा करने
तथा रणभूमिमें सेनाका संचालन करनेमें समर्थ हैं ॥ ३ ॥

एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवे च महानरम् ।

वानराश्चापरान् घोरान् हनिष्यति न सग्य ॥ ४ ॥

‘अरम्पन दोनों भाई श्रीगम और लक्ष्मणको तथा

महानली सुग्रीवका भी पराज कर देंगे और दूसरे दूसरे
भयानक वानरोंका भी संहार कर डालेंगे, इसमें सग्य
नहीं है ॥ ४ ॥

पनिगृह्य स तामाश्वा रावणस्य महाबल ।

यल सस्त्रेरयामास तदा लघुपराक्रम ॥ ५ ॥

रावणकी उस आह्वासे गिराधार्य करके शीघ्रपराक्रमी

महाबली सेनाध्यक्षने उन समय युद्धके लिये सेना भेजी ॥ ५ ॥

ततो नानाप्रहरणा भीमाश्वा भीमदशाना ।

निष्पेद् राक्षसा मुप्या वलाध्यन्मज्जेदिता ॥ ६ ॥

सेनापतिसे प्रेरित हो मयानक नेत्रोंवाले मुख्य-मुख्य भयंकर

राक्षस नाना प्रकारके अस्त्र गन्ध लिय नगरसे बाहर निकले ॥ ६ ॥

रथमास्थाय विपुल तमराञ्जनमूपणम् ।

मेघाभो मेघदर्णश्च मेघसनमहात्वन ॥ ७ ॥

राक्षसे सत्ततो घोरस्तदा नियात्यकम्पन ।

उसी समय तबे हुए, सेनेसे निर्गमित विपुल रथपर आरुढ़

हो घोर राक्षसोंसे निरा हुआ अरम्पन भी निकल । वह मेघके
समान निगल था; मेघके समान ही उसका रथ था और
मेघने ही तुल्य उसकी गजना थी ॥ ७ ॥

नहि कम्पयितु शक्य सुरैरपि महामृधे ॥ ८ ॥

अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव तेजसा ।

महासमर देवता भी उसे कणित नहीं कर सकते थे,

इसीलिये वह अरम्पन नामसे विख्यात था और रथमेंमें सूर्य
के समान तेजस्वी था ॥ ८ ॥

तस्य निचाग्रमानस्य सरब्धस्य युयुत्सया ॥ ९ ॥

अकसाद् दैन्यमागच्छद्दयाना रथगहिनाम् ।

रथगेशसे भरकर युद्धकी इच्छात धावा करनेवाले

अकम्पनके रथम जुन हुए पाइँका मन अकसात् दीनभाव
का प्राप्त हो गया ॥ ९ ॥

व्यस्फुरन्नयन चाम्य सय युद्धाभिनन्दिन ॥ १० ॥

विषणो मुखयणश्च गद्गदश्वाभनत् स्वन ।

यद्यपि अरम्पन युद्धका अभिनन्दन करनेवाला था;

तथापि उस समय उसकी धारों और फड़कने लगी । मुखकी
काचि चीरी पड़ गयी और वाणी गद्गद हो गयी ॥ १० ॥

अभयत् सुदिने फले दुर्दिन कक्षमाद्यतम् ॥ ११ ॥

ऊचु खगमृगा सर्वे वाच क्रूर भयावहा ।

यद्यपि यह समय सुदिनका था; तथापि महदा कृती हवा

से कुछ दुर्दिन छा गया । सभी पशु और पक्षी क्रूर एवं
भयदायक बाली बालने लगे ॥ ११ ॥

स सिंहोपचिनत्कृध शादूलसमन्वितम् ॥ १२ ॥

तादुत्पातामचिन्त्यैव निर्जगाम रणाजिरम् ।

अकम्पनके कथे सिंहके समान पुष्ट थे । उसका पराक्रम

व्यापके समान था । वह पशुओंके उत्पातोंकी काई परवा न करने
रणभूमिकी ओर चला ॥ १२ ॥

तथा निर्गच्छनस्तस्य रक्षस सह राक्षसै ॥ १३ ॥

यमूव सुमहान् नाद शोभयन्निन नागरम् ।

जिस समय वह राक्षस दूसरे राक्षसोंसे साथ लड़ते निरन्तर

उस समय ऐसा महान् नागाहल हुआ कि समुद्रम भी हलचल
शी मच गयी ॥ १३ ॥

तेन शत्रून् विप्रस्ता वानगणा महाचमू ॥ १४ ॥

द्रुमशैलप्रहारणा योद्धु समुपनिष्ठताम् ।

तेषा युद्ध महाशैल सज्जे कपिरक्षसाम् ॥ १५ ॥

उस महान् फोलाहलसे वानगोंकी वं विद्या सेना भयभीत

हो गयी । युद्धके लिये उपस्थित हो वृक्षा और शैल-शिखरोंका
प्रहार करनेवाले उन वानरा और राक्षसोंमें महामयकर युद्ध
होने लगा ॥ १४ १५ ॥

रामरावणयोर्ध्वं समभित्यक्तदेहित ।
सर्वे ह्यतिशला शूरा सर्वे पर्यनसनिभा ॥ १६ ॥

श्रीराम और रावणन निमित्त आत्मत्यागन लिये उद्यन
रूप व समन दूररीर अत्यन्त बलाली और परतन समन
विशालनाय थे ॥ १६ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव परस्परनिग्राहया ।

तेषां विनश्वता शब्दः सद्युगेऽनिरन्विनाम् ॥ १७ ॥

शुभ्रये सुमहान् कोपादन्योन्यमभिगताम् ।

यानर तथा राउस एर दूसरर उधरी इच्छाने वहाँ एकत्र हुए थे । व युद्धस्थाने अन्तर वेगाला थे । कालाहल करते और एक दूसरा लय्य करेये प्रणष्टर मज्जे थे । उनका महान् राष्ट्रे सुदुरन्त सुनाय देता था ॥ १७३ ॥

रजश्चारुण्यनाभ सुभीमिमभयद् भृशम् ॥ १८ ॥

उद्धृत हस्तिक्षोभि सरुगेध दिशो ददा ।
 यानरा और रात्रोंद्वारा उड़ायी गयी लाल रंगकी धूल
 बड़ी भयंकर जान पवती थी । जमेले दमों निगाभोंका आच्छा
 दित कर लिया था ॥ १८८ ॥

अन्योन्य रजसा तेन कौशेयोद्धतपाण्डुना ॥ १९ ॥
समृतानि च भूतानि नृणां रणानिरे ।

परस्पर उदासी हुई यह धूल दिनेत हुए राखी बन्धन
समान पाण्डुवर्ण की दिखायी देती थी । उसन हाथ समराज्य
में खमन प्राणी दक गय थे । आ पानर और राखन उहै
देर ननों पते थे ॥ १०२ ॥

न एनो न पताका धा उम वा नुरगोऽपि वा ॥ २० ॥
आयुध स्यन्दनो यापि दृष्टो तेन रेणुना ।

उस घूलने आच्छाति होने कारण पत्र, पत्रादा,
टाल, घेडा अत्र अत्र अपरा पत्रादा भी वस्तु दिग्गामी
नहीं होती ॥ २०६ ॥

शब्दश्च सुमहास्तेन नदतामभिधायताम् ॥ २१ ॥
 ध्रुवते तुमुगे मुदे न रुपाणि चक्रशिरे ।

उन गरी और दीदा हुए प्रणियों का महाभावर शब्द
मुद्रस्वर्त्म श्रवण मुनी पदनाश परतु उनसे रूप नहीं
निगाही देने में ॥ २१० ॥

हरिनेय मुसरथ हरयो जज्जगादये ॥ ३३ ॥

रागसा रागसाधयि निनघ्नुस्तिमिर सदा ।

अथारम अष्टांति युद्धात्मेभ्यस्तुतिं कृत्वा
 यत्नोद्गीर्णं प्रदत्तं यत्नं यत्नं यत्नं यत्नं ॥
 मारुते ह्यहं ये ॥ २२ ॥

ते पराद्य विनिष्पन्त म्याद्य पानराभरसा ॥ २३ ॥

रुधिराद्रौ तदा चक्ष्महौ पद्मानुलेपनाम् ।

अग्ने तथा शशुपथश्च यद्वाञ्छामां मारुते हुण यानरौ तथा
शशुपथेनै उच रणभूमिक्का रात्री घारमे भिगा ग्मिया और नशौ
कीच मया दी ॥ २५३ ॥

ततस्तु रुधिरौघेण मित्वा द्वापगत रजः ॥ २४ ॥

शरीरशयस्पर्शणा यभूय य वसुधगा ।

तदनन्तर रत्नस प्रग्रहमे सिन्धु जनेस कारण वहाँकी धूल
बैठ गयी और सारी सुद्धभूमि लान्गोने भर गया ॥ २४६ ॥

द्रुमशक्तिगदाप्राप्तौ शिलापरिघनामरं ॥ २५ ॥

राक्षसा हरयस्तूर्णं जघ्नुर्गन्धोन्मज्जसा ।

वानर और राक्षस एक दूसरेपर क्रुध गति, गला, प्रायः
गिला, परिघ और तामर भातिसे बल्लूचन जन्दी जन्दी प्रहार
करने लगे ॥ १७३ ॥

यादृभि परिष्कारैर्यज्यन्त परस्तापमान् ॥ २६ ॥

हरयो भीमकमाणो राक्षसाक्षन्नुगहय ।

भयहर कर्म करनेवाला धानर अपनी परिहार समान
मुशमोदाय पर्यन्तकार राक्षसों के साथ युद्ध करन हुआ रणभूमि
में उन्हें मारने लगे ॥ २६ १ ॥

राक्षसाभ्यभिसङ्घाः प्राप्तोमरपाणयः ॥ ५७ ॥

कपीन् निनज्जिरे^७ तत्र शङ्खं परमदारुणं ।

उपर शुद्धि भी अयन युक्ति है। हाथों में दास और ताम्रज्य अयन भयंकर शङ्कोदाय पातपंथा यथ करने ल्यो ॥ ३७^३ ॥

अथर्वण सुमश्तो रायसाना धर्मपति ॥ २८ ॥

सहययति तान् सगान् राश्वसान् भीमिश्च मान् ।

इस समय अधिक गाने भरा हुआ राजमन्तारि
अरम्यन भी मथानर पयनम प्रष्ट करनेका उन सभी
राजमन्तारि का बने लगा ॥ २८ ॥

हरयन्वपि रक्षासि महाद्रुममहान्मभिः ॥ २० ॥

विदारयन्त्यभिधत्स्य नान्नाग्याच्छिद्य धीयत ।

यनर भी बागूतक अतनन करन राने-अनन
 एननर बह-बह नृते और नननननन नन ननन
 करन राने ॥ २०३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे यीग द्रव्य पुमुदो न ॥ ३० ॥

मैन्दस्य द्विरिदं सुखाद्युपेगमनुत्तमम् ।

इति यन्त्रं धरं धारयन्तु न मन्त्रा इति चे
कृत्वा हा अन्ता एव तान् पेयं प्रस्थाप्य ॥ ३ ॥

त नृ परैर्महायुगं शम्भुना चममुरे ॥ २१ ॥

बदन सुमहदभुम्भोग्या तत्पुगश ।

ममयू रागसान् सयै मनाशङ्कभृताम् ॥ ३२ ॥

उन महावीर वानरधिरामणियाने युद्धके मुहानेपर वृथा सवने नाना प्रकारके अस्त्र-गोलोंद्वारा राक्षसोंको मलीभोंति मथ
द्वारा खेल-खेलमें ही राक्षसोंका बड़ा भारी संहार किया । उन डाल ॥ ३१ ३२ ॥

इत्यर्थे धीमद्वामायणे वाक्यमीकीये आदिशब्दये युद्धकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकान्तके युद्धकाण्डमें पञ्चपद्यों सर्ग पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

पट्पञ्चाश सर्ग.

हनुमान्जीके द्वारा अकम्पनका वध

तव हृष्टा सुमहत् कर्म कृत वानरसत्तमः ।
क्रोधमाहरयामास युधि तीव्रमकम्पन ॥ १ ॥

उन वानरधिरामणियोंद्वारा किय गये उस महान् पराक्रम
को देखकर युद्धस्थलमें अकम्पनको बड़ा भारी एव दुःख
क्रोध हुआ ॥ १ ॥

प्रोधमूर्च्छितरूपस्तु धुन्वन् परमशामुकम् ।
हृष्टा तु कर्म शशूणा सारथि वाक्यमग्रीत् ॥ २ ॥

धनुर्भोंका कर्म देख रोपते उसका साथ शरीर व्याप्त हो
गया और अपने उत्तम धनुषका हिलते हुए उसने राखिते
कहा—॥ २ ॥

तस्यैव तावत् स्वरितो रथ प्रापय सारथे ।
एते च वलिनो ध्वन्ति सुयद्गन् राक्षसान् रणे ॥ ३ ॥

सारथे ! ये बलवान् वानर युद्धमें गृह्णते शस्त्रोंका वध
कर रहे हैं, अतः पहले वहाँ श्रीप्रतापूर्वक मेरा रथ
पहुँचाओ ॥ ३ ॥

एते च बलवन्तो वा भीमक्रोधाध वानराः ।
द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुखा मम ॥ ४ ॥

ये वानर बलवान् तो हैं ही, इनका क्रोध भी बड़ा
मयानक है । ये वृक्षों और शिलाओंका प्रहार करते हुए मेरे
सामने खड़े हैं ॥ ४ ॥

एतान्निह तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ।
एतै प्रमथित सर्व रक्षासा हृदयते बलम् ॥ ५ ॥

ये युद्धकी सृष्टा रखनेवाले हैं, अतः मैं इन सबका वध
करना चाहता हूँ । इन्होंने सारी राक्षसोंका मथ डाला है ।
यह शक्त दिखायी देता है ॥ ५ ॥

ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिना धरः ।
हरीनभ्यपवद् दूराच्छरजालैरकम्पन ॥ ६ ॥

तदन्तर वेज चलनेवाले घोड़ोंसे लुते हुए रथके द्वारा
रथियोंमें भेड़ अकम्पन दूरसे ही वाणसमूहोंकी वर्षा करता हुआ
उन वानरोंपर दूट पड़ा ॥ ६ ॥

न स्यात् वानरा श्रेष्ठ किं पुनर्योद्धमाहवे ।
अकम्पनशरीरभा सर्व एवाभिरुद्रयुः ॥ ७ ॥

अकम्पन वाणोंस घायल हो सभी वानर भाग चल । वे
युद्धस्थलमें खड़े भी न रह सके— फिर युद्ध करनेकी तो बात ही
क्या है ? ॥ ७ ॥

तान् मृत्युवशमापन्नानकम्पनशरानुगान् ।
समीक्ष्य हनुमाञ्चातीनुपतस्थे महाबल ॥ ८ ॥

अकम्पनके बाण वानरोंके पीछे लगे थे और वे मृत्यु
के अधीन होते जाते थे । अपने जाति भाइयोंकी यह दशा देखकर
महाबली हनुमान्जी अकम्पनके पास आये ॥ ८ ॥

त महाशू्रव हृष्टा सर्वे ते शू्रवगर्भभा ।
समेत्य समरे वीरा सहृष्टा पयवारयन् ॥ ९ ॥

महाकृपि हनुमान्जीको आया देख वे समस्त वीर वानर
शिरोंमणि एकत्र हो हर्षपूर्वक उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े
हो गये ॥ ९ ॥

व्यवस्थित हनुमन्त ते हृष्टा शू्रवगर्भभा ।
यभूषुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाधिता ॥ १० ॥

हनुमान्जीको युद्धके लिये इटा हुआ देख वे सभी भेड़
वानर उन बलवान् वीरका आश्रय ले स्वयं भी बलवान् हो
गये ॥ १० ॥

अकम्पनस्तु शैलभ हनुमन्तमवस्थितम् ।
महेन्द्र इष धाराभिः शरैरभिवर्ण ह ॥ ११ ॥

पनतके समान निखालकाय हनुमान्जीको अपने सामने
उपस्थित देख अकम्पन उनपर बाणोंकी फिर वर्षा करने
लगा, मानो देवराज इन्द्र जलकी धारा बरस रहे हों ॥ ११ ॥

अचिन्तयित्वा यापौधाश्चरारैर पातितान् कपिः ।
अकम्पनवधाधार्थ्य मनो हृद्धे महाबल ॥ १२ ॥

अपने शरीरपर गिराये गये उन बाण-समूहोंकी परवा न
करके महाबली हनुमान्ने अकम्पनको मार डालनेका विचार
किया ॥ १२ ॥

स प्रहस्य महातेजा हनुमान् माघतामज ।
अभिरुद्राव तद्रक्ष कम्पयच्चिव मेदिनीम् ॥ १३ ॥

फिर तो महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान् महान् अट्टहास
करके पुष्पीकी कँपाते हुए-से उस राक्षसी ओर दौड़े ॥ १३ ॥

तस्याय नर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ।
ध्रुव रूप दुर्धर्ष दीप्तस्येव विभाजसो ॥ १४ ॥

उस समय वहाँ गङ्गे और तेजसे देखीपमान होते हुए
हनुमान्जीका रूप प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष होगया
या ॥ १४ ॥

आत्मान त्वप्रहरण ज्ञात्वा श्रोधसमन्वित ।
शैलमुत्पाटयामास वेगेन हरिपुङ्गव ॥ १५ ॥

अने हाथमें कोई हथियार नहीं है, यह जानकर क्रोधसे
भरे हुए बानरविपमान हनुमान्ने बड़े वेगसे परत उखाड़
दिया ॥ १५ ॥

गृहीत्वा सुमहाशैल पाणिनैकेन मादति ।
स विनद्य महानाद आमयामास धीर्यवान् ॥ १६ ॥

उस महान् परतसे एक ही हाथसे ढकर पकड़ी पवन
कुमार बड़े जोर-जोरसे गडगडा करत हुए उसे घुमाने लगे ॥
ततस्तमभिदुद्धार राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।

पुरा हि नमुचि सत्ये यज्ञेण पुरन्दर ॥ १७ ॥

जि उन्हींने पण्डित अकम्पनकर धारा किया, ठीक उसी
तरह, जैसे पूर्वजालमें देवैन्द्रने यज्ञ ढकर सुदन्त्यलमें नमुचिपर
आक्रमण किया था ॥ १७ ॥

अकम्पनस्तु तद् दृष्ट्वा गिरिः समुपतम् ।
दूरदेव महागौरीरधचक्रैर्यदारयत् ॥ १८ ॥

अकम्पने उस ठाँव हुए पनरिगरके देव अथक्का
कार विद्याल बागौर बाप उसे दूरसे ही निरीक्षण कर
दिया ॥ १८ ॥

स पयताप्रमाक्यदो रक्षोवाणविदारितम् ।
विकीर्ण पतित दृष्ट्वा हनुमान् श्रोधमूर्च्छित ॥ १९ ॥

उस राक्षस बाने निरीक्षण हो व पनरिगर व्यापारमें
ही विगडकर गिर पड़ा । यह देख हनुमान्की क्रोधकी क्षीमा
न रही ॥ १९ ॥

सोऽभ्यर्च्य समास्ताप योगदान्धिनो हरि ।
तूष्णमुत्पाटयामास महागिरिमिजोत्प्लूतम् ॥ २० ॥

जि एव और हमने उन बनरगीले महान् पवनर
छान ऊँचे अभक्षण नामक वृद्धों पाथ बाहर उसे शीघ्र
पूक उठाई ॥ २० ॥

त गृहीत्वा महास्वल्प सोऽभ्यर्च्य महायुति ।
प्रगृहा परया प्रीत्या आमयामास सयुगे ॥ २१ ॥

विगत तनेर उग अभक्षणसे हाथों ढकर महोत्प्लूत
हनुमान्ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे सुदुर्धर्षने घुमना
आरम्भ किया ॥ २१ ॥

प्रयागनुकुरेगेन यमञ्ज तरसा हुमान् ।
हनुमान् परमकुद्विषणुद्वारयन् महाम् ॥ २२ ॥

प्रचण्ड क्रोधसे भरे हुए हनुमान्ने बड़े वेगसे दोड़कर
जिनने ही वृद्धोंको ताड़ डाला और पैरोंकी घमरने के पृथ्वीका
भी निरीक्षण करने लगे ॥ २२ ॥

गणाश्च भगजागेहान् सरथान् रथिनस्तथा ।
जयान हनुमान् धीमान् राक्षसाश्च पदातिगान् ॥ २३ ॥

सवारोंद्विषणुद्वारयन् रथिणो तथा पैदल राक्षसों
को भी बुद्धिमान्, हनुमान्नी मौन पाट उठाने लगे ॥ २३ ॥

तमन्तरमिह कुब्ज मद्रुम प्राणहारिणम् ।
हनुमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुष्टयु ॥ २४ ॥

क्रोधसे भरे हुए यमरवरी भौने वृष हाथमें लिये प्रा
हारी हनुमान्का देख राक्षस भागने लगे ॥ २४ ॥

तमापतन्त सकुब्ज राक्षसाना भयाहम् ।
दृश्याकम्पनो धीरदुश्चोभ च ननाद च ॥ २५ ॥

राक्षसोंने भय देनेवाल हनुमान् अत्यन्त कुविन शर
शुभ्रोंकर आक्रमण कर रहे थे । उस क्षण धीर अकम्पने
उन्हें देता । देखत ही वह क्षमने भर गया और जड़-जोरेने
गर्जना करने लगे ॥ २५ ॥

स चतुर्दशभिर्गणैर्निशितैर्दहदारणैः ।
निर्मिषेद् महादीर्घ हनुमन्तमकम्पन ॥ २६ ॥

अकम्पने देहश शीघ्र कर देनेवाल चौद गैने बा
मारकर महान्पकड़ी हनुमान्का पकण कर दिया ॥ २६ ॥

स तथा विप्ररीणत्तु नारायै दितशक्तिभिः ।
हनुमान् दृष्ट्वा धीर प्रकट इव स्नातुमान् ॥ २७ ॥

इस प्रकार नारायण और शीघ्र शक्तिसे जिद हुए धीर
हनुमान् उस समय वृद्धोंसे व्यस्त पवनर छान दिगामी देते
थे ॥ २७ ॥

विराज महादीर्घो महाकायो महाबलः ।
पुष्पितादोक्तसक्यदो निधुम इव पाशक ॥ २८ ॥

वज्रस हठ धीर रत्नने रत्न एव, इन्द्रिय के
महान्पकड़ी महादीर्घ और महाकाय हनुमान् जिद हुए
अकम्प एव धूमरहित अग्नि के समान धमका रहे थे ॥

ततोऽन्य शृम्भुपाठ्य हत्वा धगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजयान् राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥ २९ ॥

तदनन्तर महान् पण प्रकट कर हनुमान्ने एक
दृष्ट्वा वृष उठाई जिद और शृम्भ ही उसे पण्डित अकम्प
क शिर दे मण ॥ २९ ॥

स शूरेष हतमेन सप्रयथेन मदानना ।
राक्षसो बानरैरेव पयान च मज्जर च ॥ ३० ॥

कोपेते भरे वानरभेष्ट महात्मा हनुमान् चल्पये ह्यु
उत्त वृक्षस्य गह्वरी चोद रात्रर राक्षस अरम्भन पृथीपर गिरा
और मर गया ॥ ३० ॥

त ह्यु निहत भूमौ राक्षसेद्रमकम्पनम् ।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमा ॥ ३१ ॥

जैसे भूम्प आनेपर भारे वृक्ष फँपने लगात हैं, उन्ही
प्रकार राक्षसराज अरम्भनरो रणभूमिमें माघ गया देरत समस्त
राक्षस व्यथित हो उठे ॥ ३१ ॥

त्यक्तप्रहरणा सर्वे राक्षसास्ते पराजिता ।
लङ्कामभिययुस्त्रासाद् वानरैस्तेरभिद्रुता ॥ ३२ ॥

वानरार रावेइनेपर वहाँ परात हुए व सब राक्षस
अपने अन्ध शस्त्र पत्रर डार करे लङ्कामें भाग गये ॥ ३२ ॥

ते मुक्पेक्षा सम्भ्राता भयमाना पराजिता ।
भयाच्छ्रमजलेरहै प्रस्रवद्विविद्रुद्रु ॥ ३३ ॥

उनके चेष्टा खुले हुए थे । वे घबरा गये थे और पराजित
हानेते उनका घमट चूर-चूर हो गया था । भयक कारण
उनके अज्ञात पक्षीने चूर रहे थे और इसी अज्ञान व माग
रहे थे ॥ ३३ ॥

अन्यान्य ये प्रमथन्तो निगिगुनगर भयात् ।
पृष्ठतस्ते तु सम्मूढा प्रक्षमाणा मुष्टमुष्ट ॥ ३४ ॥

भयक कारण एक दूसरेको कुचलते हुए व भागकर
लङ्कापुरीमें घुस गये । भागते समय वे बारबार पीछे घूम घूमकर
देखत रहत थे ॥ ३४ ॥

तेषु लङ्का प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबला ।
समेत्य हरयो सर्वे हनुमन्तमपूजयन् ॥ ३५ ॥

उन राक्षसोंके लङ्कामें घुस जानेपर समस्त महाबली वानरों
ने एकत्र हा वहाँ हनुमानजीका अभिनन्दन किया ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पाकीये आदिकाण्डे प्रथमोऽध्यायः सर्गः ॥ ५६ ॥

इत प्रकार आवात्मोक्तिनिर्मित आरंभामायण आदिकाण्डे प्रथमोऽध्यायः संपन्नो सती पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः

प्रहस्तका रावणकी आज्ञासे विशाल सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान

अकम्पनय ध्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वर ।
किंचिद् दीनमुखश्चापि सचिवास्तानुदैर्यत ॥ १ ॥

अकम्पनये पक्का समानार पाकर राक्षसराज रावणको
बड़ा मोप हुआ । उसके मुखपर कुछ दीनता छा गयी और
वह मन्त्रियोंकी आद देखने लगा ॥ १ ॥

स तु प्यात्वा मुहूर्ते तु मन्त्रिभि सविचाय च ।
तनस्तु रावण पूरदिवसे राक्षसाधिपः ।
पुरीं परिययौ लङ्का सञ्चान शुल्मानवेक्षितुम् ॥ २ ॥

सोऽपि प्रयुद्धस्तान् सञ्चान् हरीन् सम्प्रत्यपूजयत् ।
हनुमान् सत्त्वसम्पद्यो ययार्हमनुकूलत ॥ ३६ ॥

उन मन्त्रियोंकी हनुमानजीने भी उत्साहित हो यथायोग्य
अनुकूल वताव करत हुए उन समस्त वानरोंका समादर
किया ॥ ३६ ॥

यिनेदुश्च यथामाण हरयो जितवाशिना ।
चहृपुश्च पुनस्तत्र सप्राणानेव राक्षसान् ॥ ३७ ॥

तत्पञ्चाद विजयान्तरसे सुगोभित होनेलग करनएने
पूरा बल लगाकर उत्तमस्वरसे गर्जना की और वहाँ जीवित
राक्षसोंको ही पकड़ पकड़कर धसीटना आरम्भ किया ॥ ३७ ॥

स वीर्योभासमभज महाकपि
समेत्य राक्षसि निहत्य मारुति ।

महासुर भीमममिन्द्रनाशन
निष्पुण्यमैरुवल चमुमुये ॥ ३८ ॥

जैसे भयान्क निष्पुणे शत्रुनाशन, महाबली, मयकर एवं
महान् अक्षुर मधुरैरभ आदिवा वध करने वीर योमा
(विजयान्तर) का वरण किया था, उन्ही प्रकार महाकपि
हनुमान्ने राक्षसों पर पहुँचकर उन्हे मौत पाट उतार
वीरचित शोभासे चारण किया ॥ ३८ ॥

अपूजयन् देवगणस्तदा कपि
स्वयं च रामोऽतियल्लक्ष्मण ।

तथैव सुभावमुखा सुवगमा
निभीषणदक्षैव महानलस्तदा ॥ ३९ ॥

उत्त समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुभाव आदि
वानर तथा अत्यन्त बलशाली निभीषणने भी कपि व हनुमान्की
व मयोचित स्मरण किया ॥ ३९ ॥

उत्त समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुभाव आदि
वानर तथा अत्यन्त बलशाली निभीषणने भी कपि व हनुमान्की
व मयोचित स्मरण किया ॥ ३९ ॥

उत्त समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुभाव आदि
वानर तथा अत्यन्त बलशाली निभीषणने भी कपि व हनुमान्की
व मयोचित स्मरण किया ॥ ३९ ॥

उत्त समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुभाव आदि
वानर तथा अत्यन्त बलशाली निभीषणने भी कपि व हनुमान्की
व मयोचित स्मरण किया ॥ ३९ ॥

उत्त समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुभाव आदि
वानर तथा अत्यन्त बलशाली निभीषणने भी कपि व हनुमान्की
व मयोचित स्मरण किया ॥ ३९ ॥

उत्त समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुभाव आदि
वानर तथा अत्यन्त बलशाली निभीषणने भी कपि व हनुमान्की
व मयोचित स्मरण किया ॥ ३९ ॥

उत्त समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुभाव आदि
वानर तथा अत्यन्त बलशाली निभीषणने भी कपि व हनुमान्की
व मयोचित स्मरण किया ॥ ३९ ॥

रुद्धा तु नगरी दध्रा रात्र्यो राक्षसम्भर ।
उवागमहित काले ग्रहस्त युद्धनोविष्णुम् ॥ ४ ॥

लङ्कापुरी चारों आरसे धनुओंद्वारा घेर ली गयी थी । यह
देखकर राक्षसराज रात्र्यने अपने द्वितीय युद्धकलाक्रोधि
ग्रहस्तसे यह समवेचन बात कही—॥ ४ ॥

पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह ।
नान्ययुद्धान् प्रपद्यामि मोक्ष युद्धविशारदम् ॥ ५ ॥

‘युद्धविशारद वीर ! नगर अत्यन्त निरक्षर धनुओंकी सेना
छावनी दाटे पड़ी है, इन्हींके द्वारा नगर सहज व्यथित हो
टगा है । अब मैं दूसरे किन्हीं युद्ध करनेमें इसका छुटकारा
होना नहीं देवता हूँ ॥ ५ ॥

अथ वा कुम्भकर्णो वा त्य वा सेनापतिमम ।
इन्द्रजित्वा निजुम्भो वा वहेयुर्भारसीदहम् ॥ ६ ॥

‘अब तो इस तरह युद्धका भार मैं, कुम्भकर्ण अथवा सेना
पति तुम, वेग इन्द्रजित्वा अथवा निजुम्भ ही उठा सकते
हैं ॥ ६ ॥

म त्व चलमम निग्रमानाय पणिगृह्य च ।
त्रिजयापानिनियाहि यत्र नयै यनौकम् ॥ ७ ॥

‘अब तुम गीत ही सेना लेकर निजयन लिय प्रस्थान
कर और वहाँ यत्र वत्र नगर उठा हूँ, वहाँ जाओ ॥ ७ ॥

नियानादेव तूर्णं च चलिता हरिवाहिनी ।
नदता रात्र्यसेद्राणां क्षुजा नां द्रविष्यति ॥ ८ ॥

‘तुम्हारे निरक्षर ही सही यानसेना तुम निकलित हो
उगेगी और गर्भित हुए राक्षसशिरमणिधोत्रा निनाद सुनकर
भाग लड़ी होगी ॥ ८ ॥

चपला हरिनीताश्च चलचिन्ताश्च जानरा ।
न सहिष्यन्ति ते नात् निहनादमित्र छिपा ॥ ९ ॥

‘बनलगा बड़ चला गीत और हरक हत है
जैसे दापी निष्क । जानरा नगी लो सकते, उभी प्रकार व नगर
तुम्हारा निनाद नगी लो सकते ॥ ९ ॥

विद्रुते च तले तस्मिन् राम सोमिशिवा सह ।
अरदास्ते निराश्रयः ग्रहस्त वदामिष्यति ॥ १० ॥

‘ग्रहस्त ! अब बनसेना भाग लगी तब कद लगी
न रहने पर रात्र्य समग्र दिन आयम विरह हावर तुम्हारे
अपीन हा जदगे ॥ १० ॥

आपन्मशयिता धेयो नात्र निम्नार्थीरुता ।
प्रतिलोमानुलोम वा यत् नो मन्त्रये हितम् ॥ ११ ॥

‘युद्धमें मूलु मन्त्र हाजी है हा भी सच्य है और न
भी हो । मि धेयो मूलु ही भेद है । (इस विरत) दान
को बिना उपाय (विना) में दान (विना युद्धका)

आ मूलु हाजी है, यह भेद नगी हाजी (ऐसा मत निचार है,)
इस अनुकूल या प्रतिकूल आ कुछ तुम हमारे लिये द्विपक्ष
समझने हो, उने पताआ ॥ ११ ॥

रात्र्येनैमुक्स्तु ग्रहस्तो गहिनीपति ।
राक्षसेद्रमुवाचेदमसुरेद्रमिशोना ॥ १२ ॥

रात्र्यण ऐसा कहनेपर सेनापति प्रश्नने उस राक्षसराजके
समक्ष उठीतए अपना निचारव्यक्त किया जैसे तुमचाप अनुर
रात्र्य बलिओ अपनी सहा दिया करते हैं ॥ १२ ॥

रात्र्य मन्त्रितपूर्व न कुशलै सह मन्त्रिभि ।
विवादश्चापि नो भूत समवेक्ष्य परस्परम् ॥ १३ ॥

(उसने कहा—) ‘रात्र्य ! हमलोगोंने तुम्हारे मन्त्रियों
क साथ पहले ही इस नियमपर निचार किया है । उन जिनों
एक दूसरे मतकी आलोचना कर हमलोगोंने विवाद भी
सहा हा गया था (हमलोगोंमें मन्त्रि एक नियमपर
नहीं पहुँच सकते थे) ॥ १३ ॥

प्रदानेन तु सीताया श्रेयो ध्ययसित मया ।
अप्रदाने पुनयुद्ध दृष्टमेव तत्र न ॥ १४ ॥

‘मय प्रदाने ही यह निश्चय रहा है कि सीतासेना लौटा
देनेम ही हमलोगोंका कल्याण होगा और न लौटनेपर युद्ध
अवश्य होगा । उस निश्चय अनुसार ही हमें आम यह युद्ध
का सन्त दिलाया दिया है ॥ १४ ॥

सोऽह दानेन मर्नन सतत पूजितस्मृत्या ।
सामन्वयं त्रिविधं काले किं न कुर्या हित तत्र ॥ १५ ॥

‘परतु आने दान, मान और त्रिविध सन्तानाओं
द्वारा मन्त्र-समयपर सदा ही मेरा सन्तान दिया है । कि मैं
आपरा निगमन को नहीं करूँगा (अपरा आपर दिन
लिये कोनका कार्य नहीं कर सकूँगा) ॥ १५ ॥

नहि म जीरित रक्ष्य पुनदाधनानि च ।
त्व पश्य मा सुहृत्स्व त्वदप्ये जीरित युधि ॥ १६ ॥

‘तुम अपने जीवन, सौ, पुत्र और धन अन्तिम सदा
नहीं करनी है—अन्तिम रक्षा लिय तुम कर बिना नहीं ।
आप भेजिय कि मैं दिन तरह अपर लिय मुझरी सन्तानें
अन्ते जीवन की आहुति दल हूँ ॥ १६ ॥

यस्मिन्वा तु भता रात्र्य याहिनापति ।
उवाचेद्रात्र्यप्ययान् ग्रहस्त पुरत म्पितान् ॥ १७ ॥

अने स्वामी रात्र्य पण कहकर प्रश्न सन्तानें प्रश्न
ने अपने सन्तानें यह हूँ सन्तानें इस प्रकार
कहा—॥ १७ ॥

समानयन म नित रात्र्यसना मापयन्म् ।
मद्राणां तु घेगन हतना च रक्ष्यन्ति ॥ १८ ॥

अथ त्वय्यनुमासादा पणिण करनानासाम् ।

ध्रुमलोम शीम मेरे पाश राक्षसोंकी विशाल सेना ले
आओ । आज माताहारी पक्षी समराङ्गणमें मेरे बाणों वगसे
मारे गये धानरोंके मास खाकर वृत्त हो जायें ॥ १८३ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा यलाध्यक्षा महाबला ॥ १९ ॥
बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन् राक्षसमन्दिरे ।

प्रह्लादी यह बात सुनकर महाबली सेनाध्यक्षोंने राणके
उस महलके पास विशाल सेनाको युद्धके लिये तैयार
किया ॥ १९३ ॥

सा यभूय मुहूर्तेन भीमैर्नानाविधायुधैः ॥ २० ॥
लङ्घ्य राक्षसरीरैस्तेजैरिच समाकुल ।

दो ही घड़ीमें नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये हाथी-जैसे
भयानक राक्षसवीरोंसे लङ्कापुरी भर गयी ॥ २०३ ॥

हुताशन तर्पयता ब्राह्मणाश्च नमस्यताम् ॥ २१ ॥
आज्यगन्धप्रतिबन्धं सुरभिर्माकृतो यवौ ।

कितने ही राक्षस धीकी आहुति देकर अग्निदेवको तुल
बने लगे और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके आगीजोद देने
लगे । उस समय धीकी गन्ध लेकर सुगन्धित घायु ख्य और
बहने लगी ॥ २१३ ॥

स्वजग्धं निनिधाकारा जगृह्णुस्त्वभिमन्त्रिता ॥ २२ ॥
समामस्तज्जा सहस्रा धारयन् राक्षसास्तदा ।

राक्षसोंने मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित नाना प्रकारकी मालायें
ग्रहण कीं और हर्ष एवं उत्साहसे युक्त हो युद्धोपयोगी वेश-भूषा
धारण की ॥ २२३ ॥

सधनुष्का क्वचिन्नो वेगादाप्लुत्य राक्षसा ॥ २३ ॥
रावण प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्त पर्यवारयन् ।

धनुष और कवच धारण किये राक्षस वेगसे उछलकर
आगे बढ़े और राजा रावणका दर्शन करते हुए प्रहस्तको
चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ २३३ ॥

अयामन्य तु राजानं मेरीमाहृत्य भैरवाम् ॥ २४ ॥
बाहरोह रथ युक्त प्रहस्त सज्जकल्पितम् ।

तदनन्तर राजाकी आज्ञा ले भयकर भेरी बजाकर कवच
आदि धारण करके युद्धके लिये उषण हुआ प्रहस्त अस्त्र
शस्त्रोंसे सुसज्जित रथपर आरोह हुआ ॥ २४३ ॥

हयैर्महाजवैर्युक्तं सम्यक्सुतं सुसयतम् ॥ २५ ॥
महाजलवनिर्घोषं साक्षाद्यद्रार्कभास्वरम् ।

प्रह्लादे उस रथमें बड़े वेगशाली घोड़े जुते हुए थे,
उसका सारथी भी अपने कार्यमें कुशल था । वह रथ पूर्णतः
धारयिक नियन्त्रणमें था । उसके चत्पलेपर महान् मेघोंकी
गर्जनाके समान पर्यंर ध्वनि होती थी । वह रथ साक्षात् चन्द्रमा
और सूर्यके समान प्रकाशमान था ॥ २५३ ॥

उरगध्वजदुर्धर्षं सुवक्ष्य स्वप्सरम् ॥ २६ ॥
सुवर्णजालसयुक्तं प्रहस्तन्तमिव श्रिया ।

सर्पांश्रया या सर्पचिह्नित ध्वजने कारण वह दुर्धर्ष प्रतीत
होता था । उस रथकी रक्षाके लिये जो कवच था, वह बहुत
ही सुन्दर दिखाली देता था । उसने सारे अङ्ग सुन्दर थे और
उसमें अच्छी-अच्छी सामग्रियाँ रखी गयी थीं । उस रथमें
सोनेकी जाली लगी थी । वह अपनी कान्तिसे हँसता-सा प्रतीत
होता था (अथवा दूसरे कान्तिमान् पदार्थोंका उपहास-सा कर
रहा था) ॥ २६३ ॥

ततस्त रथमास्थाय राक्षणापतिरासन ॥ २७ ॥
लङ्काया निर्ययी तूर्णं बलेन महता वृत् ।

उस रथपर बैठकर राणकी आज्ञा शिरोधार्य करके
विशाल सेनासे घिरा हुआ प्रहस्त व्रत लङ्कासे बाहर
निकला ॥ २७३ ॥

ततो दुःधुभिर्निर्घोषं पर्जन्यनिनद्रोपमः ॥ २८ ॥
यादित्राणा च निनद् पूरपन्निय मेदिनीम् ॥ २८ ॥

उसने निकलते ही मेघकी गम्भीर गज्जनाके समान धौला
बजने लगा । अन्य राणराजोंका निनाद भी पृथ्वीको परिपूर्ण
करता-सा प्रतीत होने लगा ॥ २८ ॥

शुधुवे शङ्कराब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ ।
निनन्तः स्वरान् घोरां राक्षसां जगमुरग्रतः ॥ २९ ॥
भीमरूपा महाकाया प्रहस्तस्य पुरस्तार ।

सेनापतिके प्रस्थानकालमें शङ्खोंकी ध्वनि भी सुनायी देने लगी।
प्रहस्तके आगे चलनेवाले भयानक रूपधारी विशालकाय राक्षस
भयंकर स्वरसे गर्जना करते हुए आगे बढ़े ॥ २९३ ॥

नरान्तकं कुम्भहनुर्महानाद् समुन्नत ।
प्रहस्तसचिवा ह्येते निययु परिचार्य तम् ॥ ३० ॥

नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—ये प्रहस्त
के चार सचिव उसे चारों ओरसे घेरकर निकले ॥ ३० ॥

व्यूढैवैव सुघोरेण पूर्णद्वारात् स निर्ययी ।
गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृत् ॥ ३१ ॥

प्रह्लादी वह विशाल सेना हाथियोंके समूह-सी अत्यन्त
भयकर जान पड़ती थी । उसकी व्यूह रचना हो चुकी थी ।
उस व्यूहबद्ध सेनाके साथ ही प्रहस्त लङ्काके पूर्वद्वारसे
निकला ॥ ३१ ॥

सागरप्रतिमौघेन वृत्स्तेन बलेन स ।
प्रहस्तो निययी ह्रुदः कालान्तकयमोपम ॥ ३२ ॥

समुद्रके समान उस अथार सेनाके साथ जब प्रहस्त बाहर
निकला, उस समय वह क्रोधसे भरे हुए प्रलयकालके क्षारकारी
यमराजके समान जान पड़ता था ॥ ३२ ॥

तस्य नियामधोषेण राखसाना च नदताम् ।
लङ्काया मज्जमानि भिन्दुर्निहन्ते स्मरैः ॥ ३३ ॥

उक्त प्रमाण करते समय जो भी आदि बाजों और
गजों के हुए राखसानों गम्भीर धार हुआ, उसमें भयभीत हो
लङ्का सब प्राणी विह्वल स्वरों से चीखने करने लगे ॥ ३३ ॥
व्यध्रमात्रादामादिष्व मास्योपणितभोजना ।
मण्डलान्यपमन्यानि खगाश्चन्द्र रथ प्रति ॥ ३४ ॥

उस समय बिना बाणों के आकाशमें उड़कर रक्त मांस
भोजन करनेवाले पक्षी मण्डल बनाकर प्रह्वाने लगे दड़िया
वत परिक्रमा करने लगे ॥ ३४ ॥

वमस्य पातकज्वाला शिवा घोरा पञ्चाशिरे ।
अन्तरिक्षान् पपातोल्का वायुश्च परर घमैः ॥ ३५ ॥

मयानक गाददिनों में उड़ते आगरी ज्वाला उगलती हुई
अग्निमय चक्रे चलाते लगे। आकाशमें उल्कावत हान
लगा और प्रचण्ड वायु चलने लगी ॥ ३५ ॥

अन्योन्यमभिसत्त्वा प्रहास्य न चकाशिरे ।
मेघाश्च धरनिर्घोषा रथस्योपरि रक्षसः ॥ ३६ ॥

बनघू रक्षिण चान्य सिचिबुद्ध पुत्तरान् ।
केतुमूषनि गृध्रस्तु गिरिलो दक्षिणामुग ॥ ३७ ॥
नदनुभवत पादौ समग्रा ध्रियमाहरत् ।

प्रह रात्रिके आपनमें सुद्ध करने लगे, जिसमें उनका
प्रवास मज्ज गया तथा मेघ उत राखसाने अपने ऊपर गधों
की-सी आगजमें गाना करने लगे, रक्त बरसाने लगे और
आगे चलनेवाले केतुमूषों को चीखने लगे। उक्त पक्षी ऊपर
गीघ पक्षी और मुँह कर आ बैठा। उसने दोनों ओर
अपनी अगुम बोली बोलकर उस राखसी साथी घाभा-सम्पत्ति
हरी ॥ ३६ ३७ ॥

सारथ्येन्द्राद्यान्व सप्राममगाहत ॥ ३८ ॥
प्रतोदो न्यपतस्तान् घ्नन्त्य ह्यसदिन ।

उग्रामभूमिमें प्रवेश करते समय पड़ेको बाधों से अपने-
उग्र गतिधर हथम बड़े बार बाहुक गिर पड़ा ॥ ३८ ॥
नियामधीश्व या च स्याद्भास्वरान् सुदुल्भा ॥ ३९ ॥
सा ननादा मुहूर्तं समे न स्वल्पिता ह्या ।

हृषार्थे धीमद्रामायण वात्समाय आश्रित्य सुदृक्छः मन्त्राणां सर्गः ॥ ५० ॥

इस प्रकार धीमन्त्र-विनित अष्टपञ्चाशः सुद्धकाण्डे मन्त्राणां सर्गः समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

नीके द्वारा प्रह्वान्य वध

ततः प्रहस्त नियान्त हृष्टा रणरमोचयम् ।
उदार मस्तिन रामः शिरीषमर्षिदम् ॥ १ ॥

(राम दर्श) प्रह्वान्य सुदृष्टी नीके करके हृष्ट

सुद्ध त्रिपे निरन्तरे समय प्रह्वान्य नीके परम दुर्लभ और
प्रसादमन्त्र शोभा थी, वह दो ही पंक्ति में नष्ट हो गयी। उसने
बाड़े समस्त भूमिमें भी हड़गद्गार गिर पड़े ॥ ३९ ॥

प्रहस्त त हि नियान्त प्रख्यातगुणपीरयम् ।
युधि नानाप्रहरणा कपिमेनाभ्यजत ॥ ४० ॥

जिम्ह गुण और पीरय विख्यात थे, वह प्रहस्त नीके ही
सुद्धभूमिमें उन्मिन्न हुआ, क्योंकि ही गिला, वृद्ध अदि नाना
प्रहारन प्रहार-ग्राधना। वानरसेना उग्रामामना करने
के लिये आ गयी ॥ ४० ॥

अथ घोष सुतुमुले हरीणा समपायत ।
वृभानारजता वर गुर्गुरं गृह्णता दिला ॥ ४१ ॥

तदनन्तर वृद्धों। तद्वत और भारी गिलाओं उन्मिन्न
हुए वानरों। अत्यन्त भयानक बलाहल यहाँ तक और छा
गया ॥ ४१ ॥

नदता राखसाना च वानराणां च गजताम् ।
उमे प्रमुदित सैन्यं रक्षमाणनीकसाम् ॥ ४२ ॥

एक ओर राखसा सिन्हाद कर रहे थे तो दूसरी ओर
गानर गरज रहे थे। उन सबका तुमुल नाद यहाँ फैल गया।
राखों और वानरों के दोनों सेनाएँ हर ओर उल्लासमें भरी
थी ॥ ४२ ॥

वेगिताना समयानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ।
परस्पर आहतयता निनात्त श्रूयन् महान् ॥ ४३ ॥

अत्यन्त वेगाली समय तथा एक दूसरे का बर्षा हृष्टा
बल बढ़ा परस्पर लश्कार रहे थे। उनका महान् घोनाहल
सबसे सुनायो गेता था ॥ ४३ ॥

ततः प्रहस्त कपिराजगतिनी
मभिप्रनन् विजयाय दुमति ।

विहृदयगा च विदेश ता चम्
यथा सुमुख शत्रुभोविभारमुम् ॥ ४४ ॥

इसी समय सुदृष्टि प्रहस्त निम्नरी अभिप्रनन्। वानरएव
सुप्रसारी रणारी और वान और उमे पतन करने के लिये
आकर उग्र गति के नीके प्रहार करने हुए वानरी उन
शत्रुओं में सुप्रसारी वान करने लगे ॥ ४४ ॥

आगच्छति महावेगं किरूपप्रलीप ॥ २ ॥
याचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्त निशाचरम् ।

‘महाबाहो ! यह बड़े शरीर और महान् वेगवाला तथा बड़ी भारी सेनासे घिरा हुआ यौन योद्धा आ रहा है ! इसका रूप, बल और पौरुष कैसा है ! इस पराक्रमी निशाचरका मुझे परिचय दो’ ॥ २ ॥

रात्रम्य वच श्रुत्वा प्रत्युवाच निभीषण ॥ ३ ॥
एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षस ।
लङ्काया राक्षसेद्रक्ष्य निभागधरमनुत ।
वीरयानत्रविच्छूर सुप्रपातपराक्रम ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीना यवन सुनकर निभीषणने इस प्रकार उत्तर दिया—‘प्रभो ! इस राक्षसका नाम प्रहस्त है। यह राक्षसराज रात्रम्य सेनापति है और लङ्का की एक तिहाई सेना से घिरा हुआ है। इसका पराक्रम भलीभाँति विख्यात है। यह नाना प्रकारके अन्न शस्त्रोंका शाता, बल-त्रिमसे सम्पन्न और शूरवीर है’ ॥ ४ ॥

तत प्रहस्तं निपान्त भीम भीमपराक्रमम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंचृतम् ॥ ५ ॥
वदन् महतीं सेनां वानराणां वलीयसाम् ।
अभिसज्जतयोपाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥

इसी समय महारत्नवान् वानरोंकी विनाल सेनाने भी मयानक पराक्रमी, भीषण रूपधारी तथा महाकायप्रहस्तको बड़े गजन-तजनने साथ लङ्कासे बाहर निकलते देखा। यह बहुत सख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ था। उठे देखते ही वानरोंके दलमें भी महान् कोलाहल होने लगा और वे प्रहस्तकी ओर देख देखकर गजने लगे ॥ ५ ॥

खड्गशचयष्टिगूलाश्च याणानि मुसलानि च ।
गदाश्च परिचां प्रासादा विविधाश्च परश्वधा ॥ ७ ॥
धनुर्वि च विचित्राणि राक्षसानां जयैपिणाम् ।
प्रगृहीतान्यराजन्त वानरानभिधावताम् ॥ ८ ॥

विजयकी इच्छावाले राक्षस वानरोंकी ओर दौड़े। उनके हाथोंमें खड्ग, शक्ति, श्रेष्ठि, शूल, बाण, मुसल, गदा, परिष, प्रास, नाना प्रकारने करते और विविध-विविध चतुष्टय शोभा पा रहे थे ॥ ७ ॥

जग्रुहु पादपाश्चापि पुष्पितास्तु गिरिस्तथा ।
शिलाश्च त्रिपुला दीघा योद्धुकामा ज्वगमा ॥ ९ ॥

तस्य वानरोंने भी युद्धकी इच्छासे सिले हुए वृक्ष, पर्वत तथा बड़े-बड़े पत्थर उठा लिये ॥ ९ ॥

तेषामन्यो यमासाद्य संगमं सुमहानभूत् ।
यद्गनामममृष्टिं च शरवर्षं च यपताम् ॥ १० ॥

किर दोनों पक्षोंन बहुतसख्यक वीरोंमें पत्थरों और बाणों

की वर्षासे साथ-साथ आपसमें बढ़ा भारी समाम छिड़ गया ॥ यहवो राक्षसा युद्धे गहनं धानरपुङ्गवान् ।
वानरा रात्रसाश्चापि निजचतुर्गहो गहन ॥ ११ ॥

उस युद्धमयलमें बहुतसे राक्षसोंने बहुतसे वानरोंका और बहुतसख्यक वानरोंने बहुतसे राक्षसोंका संहार कर डाला ॥ शूरे प्रमथिता वेचित् वेचित् तु परमायुधं ।
परिघैराहता वेचित् वेचिच्छिन्ना परश्वधै ॥ १२ ॥

वानरोंमेंसे कोई शूलोंसे और कोई चर्मोंसे मर डाले गये। कितने ही परिघोंकी मारसे आहत हो गये और कितनोंके फल्लोंसे टुकड़-टुकड़े कर डाले गये ॥ १२ ॥

निरुच्छासा पुन वेचित् पतिता जगतीतले ।
निभिगहदया वेचिदिपुसधानसाधिता ॥ १३ ॥

नितने ही योद्धा सँतर्हित हा पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही बाणोंने लक्ष्य बन गये, जिससे उनका हृदय विदीर्ण हो गये ॥ १३ ॥

वेचिद्विधाहता रङ्गै रुरन्त पतिता मुनि ।
वानरा राक्षसै शूरे पार्श्वतश्च जिह्वारिता ॥ १४ ॥

कितने ही वानर तन्त्रालोंकी मारमें दो टुक टाकर पृथ्वीपर गिर पड़े और तक्ष्णने लगे। कितने ही शूरवीर राक्षसोंने वानरोंकी पंथियों काट डालीं ॥ १४ ॥

वानरैश्चापि समुद्रै राक्षसौघा समन्तत ।
पादपैगिरिशङ्खै सम्पिण यत्सुधातले ॥ १५ ॥

इसी तरह वानरोंने भी अत्यन्त कुपित हो वृक्षों और पत्र शिखरोंद्वारा सब ओर भूतलपर छड़ फ छड़ राक्षसोंको पीस डाला ॥ १५ ॥

यज्ञस्पशतलैहस्तैमुष्टिभिश्च हता भृशम् ।
यमश्शोषितमास्येभ्यो जिशोर्णदशनेभ्यः ॥ १६ ॥

वानरोंके वज्रतुल्य कठोर थण्डों और मुक्कोंसे भलीभाँति पीटे गये राक्षस मुँहसे रक्त वमन करने लगे। उनका दाँत और नेत्र छिन्न भिन्न होकर बिखर गये ॥ १६ ॥

आतस्वन च स्यन्ता सिंहनाद च नृताम् ।
यभूय तुमुल शब्दो हरीणा रक्षसामपि ॥ १७ ॥

कोई आर्तनाद करते तो कोई भिँसे समान दहाड़ते थे। इस प्रकार वानरों और राक्षसोंका मयन्न कोलाहल वहाँ सब ओर गूँब उठा ॥ १७ ॥

वानरा राक्षसा मुन्दा वीरमागमयुवता ।
त्रिवृत्तवदनां घ्राणकु कमाग्यभीतान् ॥ १८ ॥

क्षोषसे मरे हुए वानर और राक्षस वीरोचित मार्गका अनुसरण करने युद्धमें पीठ नहीं दिखाने थे। वे मुँह का-साफर निर्भयके समान क्रूरतापूर्ण कर्म करते थे ॥ १८ ॥

नरान्तकं कुम्भहनुमहानाद् समुन्नत ।

एते प्रहस्तसजिग सयै जघ्नुयनौकस ॥ १९ ॥

नरान्तकः कुम्भहनु महानाद और समुन्नत—ये प्रहस्ते
सरे सचिव वानरोंका वष करने लगे ॥ १९ ॥

तेषां निपतना शीघ्र निघ्नता चापि वानरान् ।

द्वित्रिदो गिरिदाह्नेष जघानैर नरान्तकम् ॥ २० ॥

शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करते और वानरोंको मारते हुए
प्रहस्ते सचिवोंमेंसे एकको, जिसका नाम नरान्तक था,
द्वित्रिदो एक पत्थर गिराकर मार डाला ॥ २० ॥

उमुख पुनरुचयाप कपि सचिवुःद्रुमम् ।

पक्षस क्षिप्रहस्त तु समुन्नतमपोययत् ॥ २१ ॥

फिर दुर्बलते एक गिराल वृक्ष लिये उठकर शीघ्रता
पूर्वक हाथ चलातेवाले वृक्ष समुन्नतका कुचल डाला ॥ २१ ॥

जाम्बयास्तु सुसमुद्धं प्रवृष्टा महतीं शिलाम् ।

पातयामास तेजसवी महानादप्य वक्षसि ॥ २२ ॥

तबआतु अत्यन्त क्रुद्ध हुए तेजस्वी जाम्बवान्ने एक
बड़ी भारी गिरा उठा ली और उसे महानादकी छातीपर डे
मारा ॥ २२ ॥

अथ कुम्भहनुस्तथ तारेणासाद्य पीपमान् ।

धृष्टेण महता सद्यः प्राणान् सत्यानयद् रणे ॥ २३ ॥

पानी रहा पराक्रमी कुम्भहनु । वह तार नामक वानरमें
मिठा और अन्तमें एक गिराउ वृक्षकी चपटमें आकर उसे
भी रणभूमिमें अपने प्राणोंसे हाथ धाने पड़े ॥ २३ ॥

अमृत्यमाणस्तत्कम् प्रहस्तो रथमास्थित ।

चकार कन्द घोर धनुष्पाणिर्नीकृत्साम् ॥ २४ ॥

रथपर बैठे हुए प्रहस्ते वानरोंका वह अद्भुत पराक्रम
नदी बहा गया । उसने हाथमें धनुष लेकर वानरोंका घोर
हठार आरम्भ किया ॥ २४ ॥

आगत इष सज्जे सेनयोऽभयोस्ताद् ।

क्षुभितप्राग्मेयस्य सागरस्येव निम्न ॥ २५ ॥

उस समय दोनों सेनाएँ जंगल मेंसजी मीन चकर
कर रही थीं । निपुण और दक्षिणपटवी गर्जनका समान
उनकी रणना मुनवी दे रही थी ॥ २ ॥

महता हि शरीरघण रागसो रणदुमद् ।

अदयामास समुद्रो वानरान् परमाह्वये ॥ २६ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भर हुए राहुमें राग प्रहस्ते अपने
पाशान्दोंद्वारा उस महापराक्रममें वानरोंका दहृत करवा
आरम्भ किया ॥ २६ ॥

पानगणा शरीरैस्तु रागस्ताना च मेदिनी ।

यभूयानिगिता घोः परसैरिय सगृता ॥ २७ ॥

पृथ्वीपर वानरों और राहुमेंकी लड़ाई नेर लगा मद ।
उनसे आच्छादित हुए रणभूमि भयानक पराक्रमोंमें डकी हुई थी
वान पड़ती थी ॥ २७ ॥

सा मदी रुधिरौघेण प्रच्छन्ना सप्रराशते ।

सच्छन्ना माधवे मासि पलाशैरिय पुष्पितैः ॥ २८ ॥

रक्त प्रवाहसे आच्छादित हुए वह सुदृग्नि वानर
माथमें खिल हुए पल्लव-वृक्षोंमें डकी हुए वन्य भूमि की
सुकोपित होती थी ॥ २८ ॥

हृत्शरीरघ्नानां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् ।

शोणितौघमहातोषा यमसागरागमिनाम् ॥ २९ ॥

यहलक्ष्मीहमहापद्मा विनिर्जिता प्रदीपलाम् ।

भिन्नराशिशिरोमीनामहावपयशाद्वलाम् ॥ ३० ॥

वृक्षहसवरासीर्णा कङ्कसारससंविताम् ।

मेदं पेनसमाशीषामातस्तनितनिम्बनाम् ॥ ३१ ॥

ता कापुरुषदुस्तारा युद्धभूमिमर्षा नदीम् ।

नदीमिदं घनापाये हससारससंविताम् ॥ ३२ ॥

राक्षसा कपिमुत्प्यास्तेतेपस्ता दुस्तारा नदीम् ।

यथा पक्षरजोऽवस्ता नलिनी गजयूथपा ॥ ३३ ॥

मदे गये वीरोंकी लड़ाई की जिसपर दोनों तरफ । राक्षसा
प्रवाह की जिसकी महान् व्यपत्ति थी । दूर दूर अलग अलग
ही जिसपर तटवर्ती गिराल वृक्षक समान जा पड़ते थे ।
जो यमलोकस्थी समुद्रसे मिली हुई थी । शीतल पड़ान्
और वृक्ष (हृदयक दाहिने और बाएँ भाग) जिसपर महान्
पक थे । निराली हुई और जहाँ जहाँ सेनारका पाग देती थी ।
कट हुए फिर और यह जहाँ मलयमें प्रतीत होत थे । गिर
के छाट-छाट अवसर एक क्या जिसमें पावरा भ्रम डगल
करत थे । जहाँ गीध ही हथ बनकर बैठ थे । कङ्करी गारु
जिसका सेवन करते थे । मदे ही वन बनकर जहाँ रूप और
पेल थे । शीतलवर्ती कपल जिसकी कल्पना धनि थी और
कापलें लिये जिसे पार करना अत्यन्त कठिन था उस युद्ध
भूमिस्थिती नदीका प्रवाहित करण राग और भेद वानर
बाणोंने अन्तमें हल्ले और छरवोंका सचिव हरिपारी में । उस
दुम्बर नगीच उमो तरह वर कर रहे थे जग यमभूमि
कमलें परागने आच्छादित शिथी पुष्पितारा वर कर । दै॥
ततः सृजन्त पाणौपाण्प्रहस्तम्यन्दनम्यन्तम् ।

ददत्ता तरसा नीति विधमन्त जयगमान् ॥ ३४ ॥

तबतब नीति देता, तरसर देता हुआ प्रहस्त वानर
सुनौती वना करण कङ्करी वनपोंका छर करनता दे ॥

उद्धृत इय वायु मे महदध्वजं पलात् ।

समीक्ष्याभिद्रुत युद्ध प्रदम्ना पार्श्वपत्नि ॥ ३५ ॥

रथनादित्यर्जन नीलमेगाभिद्रुत ।

तव जैते उठी हुई प्रणष्ट बाधु आनाशमें महान्
पौकी पनाको छिन्न भिन्न करत उड़ा देती है, उसी प्रकार
ल भी बलपूर्वक राक्षस-सेना का संहार करने लगे। इससे उस
द्रव्यलमें राक्षसी सेना भाग राखी हुई। सेनापति प्रहलन्ने
व अपनी सेना ही पेरी दुरात्म्या देखी, तब उसने मृत्युल्लस्य
जम्बी रसके द्वारा नीलपर ही धारा किया ॥ ३० ॥

धनुर्धनिना श्रेष्ठो विदुष्य परमाहवे ॥ ३६ ॥
तोलाय स्यसृजद् दानान् प्रहस्ते वाहिनीपति ।

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ और निपातोंकी सेना का नायक
हलन्ने उस महासमरमें अपने धनुषको सौचर नीलपर
पौकी बना आरम्भ कर दी ॥ ३६ ॥

प्राप्य विशिखा नील विनिर्भिद्य समाहिना ॥ ३७ ॥
ह्रीं जग्मुमहाविगा रोपिता इव पद्मगा ।

रोपते भरे हुए खोंके समान वे महान् वेगशाली बाण
तोलाय पहुँचकर उन्हें निदीर्ण करत बढ़ी काजधानीके साथ
रतीमें समा गये ॥ ३७ ॥

नील शनैरभिहतो निशितेजस्त्वनोपमं ॥ ३८ ॥
स त परमदुःखमापतत महापति ।
प्रहस्तं ताडयामास दृक्षमुत्पाठ्य धीर्यवान् ॥ ३९ ॥

प्रहलन्ने पैने बाण प्रचलित अभिने समान जान पड़ते
थे। उनकी चोटसे नील बहुत घायल हो गये। इस तरह उस
परम दुःख राक्षस प्रहलन्ने अपने ऊपर आक्रमण करते देख
बल विम्वशाली महान्पति नीलने एक पक्ष उलाहकर उठी
द्वारा उसपर आघात किया ॥ ३८ ॥

स तनाभिहत दृष्टो नर्दन् राक्षसपुत्रग ।
वयर्ष शरवपाणि प्रवगाना चमूपतौ ॥ ४० ॥
नीलनी चोट खाकर कुपित हुआ राक्षसशिरोमणि
प्रहल बड़े जोरसे गजना हुआ उन बानर सेनापतिपर बाणोंकी
बपा करने लगा ॥ ४० ॥

तस्य बाणगणानेव राक्षसस्य दुरात्मन ।
अपारयन् दारयितुं प्रत्यगृह्णाक्षिमीलित ।
यथैव गोवृषो वर्षे शारद शीप्रमागतम् ॥ ४१ ॥
पयमेव प्रहस्तस्य शरवपात् दुरात्मदान् ।
निमीलितारक्ष सहसा नील सेहे दुःखवान् ॥ ४२ ॥

उस दुरात्मा राक्षसके बाण-समूहों का निवारण करनेमें
समर्थ न हो सकनेपर नील आँसु बंद करत उन सब बाणों
को अपने अङ्गोंपर ही प्रहरण करने लगे। जैसे सौँद रहस्य
आयी हुई शरद ऋतुकी बपाको चुपचाप अपने शरीरपर ही
सह लेता है, उसी प्रकार प्रहलनी उस दुःख बाणवपाको
नील चुपचाप नेत्र बंद करत सहन करते रहे ॥ ४१ ॥

रोपित शरवर्षेण सालेन महता महान् ।
प्रजघान हयान् नील प्रहस्तस्य महायत् ॥ ४३ ॥
प्रहलकी बाणवपासे कुपित हो महाबली महान्पति नीलने
एक विशाल सालवृक्ष द्वारा उसके कोहों का मार डाला ॥
ततो रोपपरितात्म धनुस्तस्य दुरात्मन ।
वभञ्ज तरसा नीलो ननाद् च पुन पुन ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् शरसे भरे हुए नीलने उस दुरात्मा पर धनुषको
भी वेगपूर्वक तोड़ दिया और बाणधार ये गर्जना करने लगे ॥

विधनु स दृष्टस्तेन प्रहस्ते वाहिनीपति ।
प्रगृह्य मुसल घोर स्यन्दनाद्बपुस्त्युवे ॥ ४५ ॥

नीलक द्वारा धनुषरहित किया गया सेनापति प्रहल एक
मयानक मुसल हाथमें लेकर अपन रसमे दूढ़ पड़ा ॥ ४५ ॥
तावुभी धाहिनीमुख्यो जातवैरी तरस्विनौ ।
म्यितौ क्षतजस्त्रिणाङ्गो प्रभिन्नाविध कुञ्जरी ॥ ४६ ॥

वे दोनों वीर अपनी-अपनी सेनामें प्रघात थे। दोनों
ही एक दूसरेके वैरी और वेगशाली थे। वे मदकी धारा
बहानेवाले दो गजपणोंके समान स्वस्ते नहा उठे थे ॥ ४६ ॥

उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्वैप्रभिरितरेतरम् ।
सिंहशार्दूलसदृशी सिंहशार्दूलचेतितौ ॥ ४७ ॥

दोनों ही अपनी तीक्ष्ण दाढ़ीसे फाट-फाटकर एक-दूसरेके
अङ्गोंको घायल किये देते थे। वे दोनों सिंह और बाघके समान
शक्तिशाली और उन्नीक समान विजयक लिय सचेष्ट थे ॥
विप्रान्तरिजयी धीरौ समरेष्वनितर्हिनी ।
काङ्क्षमाणी यदा प्राप्नु वृत्रासवयोरिव ॥ ४८ ॥

दोनों वीर पराक्रमी, विजयी और युद्धमें कभी पीठ न
दिलानेवाले थे तथा शूरासुर और इन्द्रके समान युद्धमें परा
पानेकी अभिलाषा रखते थे ॥ ४८ ॥

आजघान तदा नील ललटे मुसलेन स ।
प्रहस्त परमायसस्तव सुखान् शोणितम् ॥ ४९ ॥

उस समय परम उद्योगी प्रहलने नीलने लघाटम मुसल
आघात किया। इससे उनने छलासे रक्त की धारा बह चली ॥
तत शोणितविग्धाङ्ग प्रगृह्य च महातरुम् ।
प्रहस्तस्योसि क्रुद्धो विससज महाकपिः ॥ ५० ॥

उसके बारे अङ्ग रक्तसे भीग गये। तब प्रहलने भरे हुए
महान्पति नीलने एक विशाल वृक्ष उड़ाकर प्रहलकी छातीपर
दे मार ॥ ५० ॥

तमचिन्त्यप्रहार स प्रगृह्य मुसल महत् ।
अभिदुष्टान घलिन घलाशील पयवामम् ॥ ५१ ॥

उस प्रकारकी बौद्ध परमा न करके प्रहल महान् मुसल
हाथमें लिये बलवान् बानर नीलकी ओर बढ़े वेगसे दौड़ा ॥

तमुग्रचेन सरब्धमापतन्त महाजपि ।
ततः सम्प्रेक्ष्य जग्राह महायोगो महाशिलाम् ॥ ५२ ॥

उस भयंकर वेगवाली राखसा राख भरकर आक्रमण करते देख मगान् वेगवाला मशकवि नीचे एक बड़ी भारी गिला हाथमें ली ॥ ५२ ॥

तस्य युद्धाभिज्ञानस्य मृधे मुसल्योधिन् ।
प्रहस्यन्तिलो नीलो मूर्ध्नि तूष्णमपानयत् ॥ ५३ ॥

उस शिलाका नीचे राभूमिमें सद्गमकी इच्छावान्
मुक्यदधी निराचर प्रह्वर मन्त्रर तत्काल दे माय ॥
नीचे फणमुप्येन विमुक्ता महती शिला ।
यिमेद यदुधा घोरा प्रह्वस्व शिरस्नदा ॥ ७४ ॥

कस्मिन्नर नील्य द्वाय च्छादी गौ उष मयकर एव
निगल शिलाने प्रहन्त मल्लच्छा द्वाय उषसे कश्
दुष्टे कर दाय ॥ ५४ ॥

स गतासुगतार्थीनो गतमत्यो गतेन्द्रिय ।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुम ॥ ५ ॥

उसके प्राण-परेर उड़ गये । उसका कान्ति उसका दया
और उसकी सारी इन्द्रियों भी चली गयीं । यह राक्षस जड़से
कट हुए इसकी मौति एक ही पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ७७ ॥

विभिन्नशिरस्सस्य बहु सुध्नाय शोणितम् ।
 शरीरादपि सुध्नाय निरे प्रस्रवणं यथा ॥ ५६ ॥

उपरि उल्लिखित हुए मन्त्र और शरीर भी बहुत
बल गिरने लग्य, माना परन्तु पानीका क्षरणा क्षर रहा हो ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यनार्ये आदिकण्ये सुदक्षणेऽष्टमः सर्गः ॥ ५८ ॥

इति प्रथम धर्मस्त्वर्धनेनेन अभिमानात् अभिवायकं कुरुताम् अष्टादशो मं दश ह्य ॥ ५८ ॥

एकोनपष्टितम सर्ग

प्रहस्तेके मारे जानेसे दुग्धी दृष्ट रावणका स्वयं ही युद्धके लिये पधारना, उसके साथ आये दृष्ट मुख्य वीरोंका परिचय, रावणकी मांगसे मुगीवका अंगत होना, लक्ष्मणका युद्धमें आना, हनुमान् और रावणमें ध्वजद्वोकी मार, रावणद्वारा नीलका मूर्च्छित होना, लक्ष्मणका गतिके आपातसे मूर्च्छित एवं मरेत होना तथा श्रीरामसे परामर्श होकर रावणका लक्ष्मणमें घुस जाना।

सस्मिन् दत्ते रात्रममन्यपाले
प्रगमानामृतमेण यदे ।

भीमायुध मागर्गेगतुल्य
शिदुद्रय राभमराजसैन्यम् ॥ १ ॥

एनरमेड नीम दय मुदममे उम राखनाति
 प्रमाद मरे दनेर सुनुन सनन वेदुति और मनन
 भवुपेने पुन व राखरावे भन म राती ॥ १ ॥

हते प्रहस्ने नीलेन तदङ्ग्य महात्मम् ।
राक्षसानामदृष्टिना लङ्कामभिनगाम ह ॥ ५७ ॥

नीलकं द्वाय प्रह्मस्य मारं जानेस्य दुग्धं द्रुप रघुशेखरी
बह्वर्धनीयं विशालसेनां सङ्गम्य लौक्यं गन्धिं ॥ ५७ ॥

न शेक्षु समग्रस्यातु निहते वाहिनीपतौ ।
सेतुरध ममामाद्य शिरीर्णं सलिलं यथा ॥ ' ८ ॥

नेना निर मार जनेसर घा मना ठहर न सरी । देने
बाँध दूट जनेसर नदीना पानी रुक नगी पावा ॥ ५८ ॥

दत्ते तस्मिन्मूमुस्ये राक्षसास्ते निरुपमा ।
रक्षपनिगृह्ण गत्वा ध्यानमूढ्यमागता ॥ १९ ॥

प्राप्ता शोकाण्य तीव्र विस्मय इव तऽभवत् ॥ ६० ॥
सैनानां ह्यभारं जनेने वे सरे रुधिर आना मुद्र

विशेष उपाय खाये और राखसुख बनाए भजनमें लय कर विनान कारण सुख हो गये । तीस शास्त्रसूत्र में हूँ अपने कारण सब रचन अन्तर्गत हो गये थे ॥ ७९६० ॥

ततस्तु नीलो विनयी मदायल
प्रदाम्यमान सुरतेन वमणा ।

समेन्य रामेण सलदमणेन
प्रष्टष्टरूपस्तु यम्भूर युयप ॥ ६१ ॥

तदनन्तर विजयी होना न मिली थी अतः हम महान्
कर्मों द्वारा प्रशस्ति हन हुए भीष्म और द्रुपद ने आकर
मिल और यह हथका अनुमति करने लग ॥ ६१ ॥

गन्वा तु रक्षोधिपत शत्रु
मेनापति पारश्वस्तम्।

तथापि संग घटन निरास्य
स्मृतिषु प्रोचयन् जगाम ॥ २ ॥

एतन्ने निम्नगात्र एव एतन्ने अस्मिन्
नैव ह्यन्ये शब्दोऽत्र एतन्ने अस्मिन् । अत्र
एतन्ने अस्मिन् एतन्ने अस्मिन् ॥२॥

सत्ये प्रहस्त निहत निशम्य
योधादित शोरुपरीतचेता ।

उवाच तान् राक्षसयूयमुखा
निद्रो यथा निजसूयमुप्यान् ॥ ३ ॥

‘युद्धस्थलमें प्रहस्त मारा गया’ यह सुनते ही वह श्रेष्ठसे तमतमा उठा, किंतु थोड़ी ही देरमें उसका चित्त उसके लिये शोकसे व्याकुल हो गया । अतः यह मुख्य-मुख्य देवताओंसे बातचीत करनेवाला इन्द्रजी भीति राक्षसगणाके मुख्य अधिपारियोंसे बोला—॥ ३ ॥

नायका रिपये काया येरि द्रघल्सादन ।
सुदित सैन्यपाले मे सानुयायः सङ्गुजर ॥ ४ ॥

‘शत्रुओंको नगण्य समझकर उनकी अन्तर्देलना नहीं करनी चाहिये । मैं जिह्म बहुत छोटा समझता था, उन्होंने शत्रुओंमें मेरे उस सेनापतिको सेवकों और हाथियोंसहित मार गिराया, जो इन्द्रजी सेनाका भी संहार करनेमें समर्थ था ॥ ४ ॥

सोऽह रिपुविनाशाय निजयायात्रिचारयन् ।
स्वयमेव गमिष्यामि रणक्षीर्णे तद्द्रुतम् ॥ ५ ॥

‘अब मैं शत्रुओंके संहार और अपनी विजयके लिये बिना कोई विचार किये स्वयं ही उस अद्भुत युद्धके मुहानेपर जाऊँगा ॥ ५ ॥

अथ तद् वानरानीक राम च सहलक्ष्मणम् ।
निर्द्विष्यामि धाणौघैर्न दक्षैरिवाग्निभिः ।

अथ सतपथिष्यामि पृथिवीं कपिशोणितैः ॥ ६ ॥

‘जैसे प्रज्वलित आग वनको जला देती है, उसी तरह आज अपने बाणसमूहोंसे वानरोंकी सेना तथा लक्ष्मणसहित श्रीरामको मैं मस कर ढाऊँगा । आज वानरोंके रक्तसे मैं इस पृथ्वीको लुप्त करूँगा’ ॥ ६ ॥

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाश
रथ तुरगोत्तमराजियुक्तम् ।

प्रकाशमान ययुषा ज्वलन्त
समारुहोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर यह देवराजका शत्रु रावण अग्निके समान प्रकाशमान रथपर सवार हुआ । उसने रथमें उत्तम घोड़ोंके समूह जुते हुए थे । वह अपने गरीबसे भी प्रज्वलित अग्निज समान उद्भासित हो रहा था ॥ ७ ॥

स शङ्खमेरीषण्वप्रणादै
रास्फोटितद्बुडितसिंहनादै ।

पुण्यै स्तनैश्चापि सुपूज्यमान
स्तदा ययौ राक्षसराजमुख्य ॥ ८ ॥

उसने प्ररधान करते समय शङ्ख, मेरी और पणव आदि बाजे बजने लगे । योद्धालोग ताल ठोकने, गजों और सिंह

नाद करने लगे । पन्दीजन पवित्र स्तुतियोंद्वारा राक्षसराज-शिरोमणि राजाजी भरीमूर्ति समारुधना करने लगे । इस प्रकार उसने यात्रा की ॥ ८ ॥

स शैलजीमूतनिष्कारुणै
मौसाशनै पात्रक्षदीप्तनेत्रै ।

यभी घृतो राक्षसराजमुख्यो
भूतघृतो रुद्र इयामरेश ॥ ९ ॥

पर्वत और मेघोंने समान काल एवं विशाल रूपवाले माछाहारी राक्षसोंसे, जिनने नेत्र प्रज्वलित अग्निसे समान उद्दीप्त हो रहे थे, चिरा हुआ राक्षसराजाधिपति राजा भूतगणोंसे घिरे हुए देवेश्वर रुद्रज समान घोभा पाता था ॥ ९ ॥

ततो नगया सहसा महौजा
निष्कम्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।

महाणयाश्रस्तनित ददर्श
समुद्यत पादपशैलहस्तम् ॥ १० ॥

महातेजस्वी राजपने लङ्कापुरीसे सहसा निनलकर महा सार और मेघों समान गबना करनेवाली उस मथुरवानर सेनाको देखा, जो हाथोंमें पर्वत शिखर एवं वृक्ष लिये युद्धके लिये तैयार थी ॥ १० ॥

तद् राक्षसानीकमतिप्रचण्ड
मालोक्ष्य रामो भुजगोद्रयाहु ।

त्रिभीषण शस्त्रभृता वरिष्ठ
मुवाच सेनानुगत पृथुधी ॥ ११ ॥

उस अत्यन्त प्रचण्ड राक्षसेनाको देखकर नागराज शेष के समान भुजगाले, वानर सेनासे घिरे हुए तथा पुष्ट घोभा सम्पत्तिसे युक्त श्रीरामचन्द्रजीने शस्त्रधारियोंमें भेद विभीषणसे पूछा—॥ ११ ॥

नानापताकाभ्यजलप्रजुष्ट
प्रासासिशूलयुधशस्त्रजुष्टम् ।

कस्येदमक्षौभ्यमभीरुजुष्ट
सैन्य महेद्रोपमनागजुष्टम् ॥ १२ ॥

‘जो नाना प्रकारकी ध्वजा पताकाओं और छत्रोंसे सुशोभित, प्रास, खड्ग और क्षल आदि अस्त्र शस्त्रोंसे सम्पन्न, अन्य, निम्बर योद्धाओंसे सेवित और महेद्रपत-जैसे विशालकाय हाथियोंसे भरी हुई है, ऐसी यह सेना किसकी है ?’ ॥ १२ ॥

ततस्तु रामस्य विशम्य वाक्य
त्रिभीषण शस्त्रसमानरीर्य ।

शशस रामस्य यत्प्रत्येक
महात्मना राक्षसपुगयानाम् ॥ १३ ॥

इन्द्रके समान बलशाली विभीषण श्रीरामको उपयुक्त बात सुनकर महामना राक्षसशिरोमणियोंसे बल एवं सैनिक-गणिका परिचय देते हुए उनसे बोले—॥ १३ ॥

योऽसौ गजस्त्रागतो महामा
नरोदितार्कपमताम्रपक्ष ॥

सकम्पयन्नागशिरोऽभ्युपेत
हाकम्पन त्वेनमवेहि राजन् ॥ १४ ॥

राजन् ॥ यह जो महामन्थी वीर हाथीरी पीठपर बैठा है, जिसका मुख नम्रदित सूर्यके समान लाल रंगका है तथा जो अपने भारसे हाथीने ममकर्म बन्धन उत्पन्न करता हुआ इधर आ रहा है, इसे आप अकम्पन समझें ॥ १४ ॥

योऽसौ रथस्थो मृगगाजनेतु
धुन्वन् धनु नाभधनुःप्रकाशम् ॥

करीर भायुप्रतिवृत्तदृष्ट
स इन्द्रजिन्नाम यत्प्रधान ॥ १५ ॥

यह जो रथपर बैठा हुआ है, जिसकी चक्रापर सिद्धा चिह्न है, जिसका दाँत हाथीने समान उम्र और बाहर निकले हुए हैं तथा जो इन्द्रधनुषने समान कान्तिमान् धनुः दिखाता हुआ आ रहा है, उसका नाम इन्द्रजिन् है। वह बरदानर प्रमाणसे बना प्रलय हो गया है ॥ १५ ॥

यक्षैर विध्यास्तमहेन्द्ररूपो
धनी रथस्थोऽतिरथोऽतिरीर ॥

रिक्कारथश्चापमनुत्पमान
नान्नातिकथोऽतिविबुद्धकाय ॥ १६ ॥

यह जो विध्याच, अन्नाचल और महेन्द्रगिरिने ममान रियालराय, अनिरथी एव अतिरथ वीर धनुष लिय रथपर बैठा है तथा अपने अनुपम धनुषको बारबार गींच रहा है, इसका नाम अनिरथ है। इसकी काया बहुत बड़ी है ॥ १६ ॥

योऽसौ नराकौदितताम्रपुत्र
राजरा घण्टानिनदप्रणादम् ॥

गज एव गजनि धौ महामा
महोदगे नाम न एव वीर ॥ १७ ॥

जिसने नेत्र प्रातः शाल उदित हुए सूर्यके समान लाल हैं तथा जिसकी आगम घण्टाकी घण्टिसे भी उत्पृष्ट है, ऐसे मूरम्भमारका गजपत्तन आनन्द हारण आ जौर शरत गजना कर रहा है, वह महामन्थी बार महान्त नामसे प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥

योऽसौ हय काञ्चनचिप्रभाण्ड
मारण सध्याश्रमिप्रियवाम् ॥

प्राण समुपगम्य मरीचिनः
विगत एषोऽशनितुल्ययोग ॥ १८ ॥

जो सध्याश्रम गमने युद्ध पराङ्गीरी आभाण्ड और

१ यह महान्त इन्द्रजिन् नाम मरे नन्दे ब्रह्मन्ते निध

सुर्गमय आभूषणोंसे विभूषित थाड़ेपर चक्कर चमकीले प्रास (मार) के हाथमें लिय इधर आ रहा है, इसका नाम विद्याच है। यह यमर समान वेगधारी यादा है ॥ १८ ॥

यक्षैर शूल निशित प्रमृष्ट
विद्युत्प्रभ विक्करवज्रचंगम् ॥

वृष्टेद्रमास्थाय शशिप्रकाश
मायाति योऽसौ त्रिशिरा यशस्वी ॥ १९ ॥

जिसने यमरके वेगसे भी अपना दास बना लिया है और जिससे विज्जीरीकी प्रभा छिन्नचरी रहती है, ऐसे तीक्ष्णप्रिय के हाथमें लिय आ यह चक्रमार समान वेग कान्तिवाले बाँध पर चक्कर युद्धभूमिमें आ रहा है, वह यशस्वी वीर विद्याच है ॥ १९ ॥

असौ ज जीमूतनिरादारूप
कुम्भ पृथुःपूढसुजातयथा ॥

समाहित पद्मगगजकेतु
रिक्कारथ्यन् यानि धनुर्विधुन्वन् ॥ २० ॥

जिसका रूप मयूर समान साफ है, जिसकी छाती उमड़ी हुई, चौड़ी और सुन्दर है, जिसकी चक्रापर नागपद बाहुनि का चिह्न बना हुआ है तथा जो पद्मावचित हा अपने धनुषको दिखाता और साँवला आ रहा है, वह कुम्भ नामक योद्धा है ॥ २० ॥

यक्षैर जाग्रुनदयज्ञपुष्ट
क्षीत सधूम परिध प्रमृष्ट ॥

मायाति रथोत्पलेतुमूत्रो
योऽसौ निकुम्भाऽद्भुतयोरफमा ॥ २१ ॥

जो मुरग और यमरके जन्तु होनेसे कारण दीप्तिमान् तथा इन्द्रनीलमणिमण्डित होनेसे कारण धूमयुक्त अग्निरश्मि प्राणित होता है, ऐसे परिध हाथमें स्तर जो यममोनासी चक्रने खनन आ रहा है, उसका नाम निकुम्भ है। उसका पण्डम पर पण्ड अद्भुत है ॥ २१ ॥

यक्षैर नापागिनागधनुष
पताकिन पारङ्गदीतरूपम् ॥

रथ ममास्थाय रिभायुद्धमे
नरान्तकोऽसौ नगपट्टयोधी ॥ २२ ॥

यह जो धनुष, यम और नागधनुष मर हुए, पण्ड पतागिने अङ्कुर तथा प्राङ्गि अभिध खनन दीप्तिमान् रथपर आकर हा अतिरथ स्तरा ल रहा है, वह ऊँची कक्षा योद्धा नगपट्ट है। वह पण्डोरी चक्रने युद्ध करता है ॥ २२ ॥

१ यह विद्याच ब्रह्मन्ते मरे निधिता निध है।

२ यह पण्डपुत्र और यह पण्ड है।

३ यह पण्डपुत्र परमयुद्ध है।

यश्चैव नानाविधघोररूपै
व्याघ्रोद्भवागेद्रमुग्राभ्यवन्त्रे ।
भूतैर्वृतो भाति त्रिघृत्तनेत्रे
यौऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता ॥ २३ ॥
यत्रैतदिदुप्रतिम त्रिभाति
छन्न सित सूक्ष्मशालकमग्र्यम् ।
अत्रैव रक्षोधिपतिमहात्मा

भूतैर्वृतो रुद्र इवात्रभाति ॥ २४ ॥

यह जो व्याघ्र, कैं, हाथी, हिरन और चाहेकसे मुँहवाले,
चड़ी हुई आँखवाले तथा अनेक प्रकारक मयकर रूपवाले
भूतोंसे घिरा हुआ है, जो देवकाओंका भी दर्प दहन करनेवाला
है तथा जहाँ, जिसने ऊपर पूज चन्द्रमाके समान श्वेत एवं
पतली कमानीवाला सुन्दर छत्र मोभा पाता है, वही यह राक्षसराज
महामना रावण है, जो भूतोंसे घिरे हुए रुद्रदेवक समान
मुशोभित होता है ॥ २३ २४ ॥

असौ किरीटी चल्कुण्डलास्यो
नगोद्भिन्नप्योपमभीमनाय ।

महेन्द्रधैर्यन्वतद्रुपहता
रक्षोधिप स्य इवात्रभाति ॥ २५ ॥

यह विरपर मुकुट धारण किय है । इसका मुख कानोंमें
हिलते हुए कुण्डलोंसे अलङ्कृत है । इसका शरीर गिरियज
हिमालय और विष्णुचलके समान त्रिगालएव मयकर है तथा
यह हथ और यमराजने की घमड़को चूर करनेवाला है ।
देखिये, यह राक्षसराज साक्षात् सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा
है ॥ २५ ॥

प्रत्युयाच ततो रामो विभीषणमरिदम् ।
अहो दीप्तमहातेजा राजणो राक्षसेश्वर ॥ २६ ॥

तब अनुदमन श्रीरामने विभीषणको इस प्रकार उत्तर
दिया—‘अहो ! राक्षसराज रावणका तेज तो बहुत ही बढ़ा
चला और बेदीप्यमान है ॥ २६ ॥

आदित्य इव तुप्प्रेदयो रदिमभिर्भाति राजण ।
न व्यक्त लम्ब्ये हास्य रूप तेज समावृतम् ॥ २७ ॥

रावण अपनी प्रमाते सूर्यकी ही भाँति ऐसी योगा पा
रहा है कि इसकी ओर देखना कठिन हो रहा है । तेजोगण्डले
व्याप्त होनेके कारण इसका रूप मुझे स्पष्ट नहीं दिखता
देता ॥ २७ ॥

देवदानवरीराणा वपुर्नैवनिध भवेत् ।
यादृश राक्षसेद्रस्य वपुरेतद् निराजते ॥ २८ ॥

‘इस राक्षसराजका शरीर जैसा मुशोभित हो रहा है, वसा
छो देवता और दानव वीरोंका भी नहीं होगा ॥ २८ ॥

सर्वे पर्यंतसकाशा सर्वे परतयोधिन ।
सर्वे क्षीमायुधधरा योधास्तस्य महात्मन ॥ २९ ॥

‘इस महाबाय राक्षसक सभी मोदा परतोंने समान
विशाल हैं । सभी परंतोंसे युद्ध करनेवाले हैं और सब के-सब
चमकीले अस्त्र शस्त्र लिये हुए हैं ॥ २ ॥

विभाति रक्षोराजोऽसौ प्रदीप्तिर्भीमदर्शनै ।
भूतैः परिवृतस्तीक्ष्णदर्पहवन्निरिवात्क ॥ ३० ॥

जो दीप्तिमान्, भयानक दिग्गामी देनेवाले और तीक्ष्ण
स्वभाववाले हैं, उन राक्षसोंसे घिरा हुआ यह राक्षसराज रावण
देहवासी भूतोंने घिरे हुए यमराजक समान खान पड़ता है ॥

विष्टयायमद्य पापात्मा मम दृष्टिप्य गत ।
अद्य क्रोध तिमोदयामि सीताहरणसम्भयम् ॥ ३१ ॥

क्षीमाग्र्यी बात है कि यह पापात्मा मेरी आँखोंके
आगे आ गया । सीताहरणके कारण मेरे मनम जो क्रोध
संचित हुआ है, उसे आज इसने ऊपर छोड़ूँगा ॥ ३१ ॥

परमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय धीयवान् ।
लक्ष्मणानुचरस्तस्यै समुद्रृत्य शरोत्तमम् ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर उत्तम-विनमशास्त्री श्रीराम धनुष लेकर
उत्तम बाण निशालकर युद्धने लिय डग गया । इस कार्यमें
लक्ष्मणने भी उनका साथ दिया ॥ ३२ ॥

तत स रक्षोधिपतिर्महात्मा
रक्षासि ताम्बाह महाप्रलानि ।
द्वारेषु चयागृहगोपुरेषु
सुनिवृत्तास्तिस्रस्त निर्विशङ्का ॥ ३३ ॥

तदनन्तर महामना राक्षसराज रावणने अपने साथ आये
हुए उन महाबली राक्षसोंसे कहा—‘तुमलोग निर्भय और
सुप्रसन्न होकर नगरके द्वारों तथा राजमार्गोंके मकानोंकी
छपादियोंपर खड़े हो जाओ ॥ ३३ ॥

इहागत मा सहित भवन्नि
यनौत्सदिउत्तमिद निदित्वा ।
शून्या पुरीं दुष्प्रसहा प्रमध्य
प्रधर्पयेयु सहसा समेता ॥ ३४ ॥

ज्योंकि बानरलोग मेरे साथ तुम सबने यहाँ आया
देख इसे अपने लिये अच्छा मौना समझकर सहसा एकत्र हो
मेरी सूची नगरीमें, जिसने भीतर प्रवेश होना दूखोंके लिये
बहुत कठिन है, घुस जायेंगे और इसे मयकर जौष्ट कर
दालेंगे ॥ ३४ ॥

यिसर्जयित्वा सचिगस्ततस्ताव
गतेषु रक्षसु यथानियोगम् ।
व्यवहारयद् बानरस्तापरीष
महाक्षयः पुणमियाणवीचम् ॥ ३५ ॥

इमं प्रत्यक्षं तत्र अग्रे मन्त्रिणो विना करं दत्ता और
व पश्य उभयोः अन्तरं अनुसारं उभयं न्यायं च
गच्छेत् तत्र रात्रौ त्रैलोक्यं (त्रिनिद्रा) पूरे महासगर
यं विमुक्तं करं देता है, उद्यो प्रसारं सुप्रदं दैवी वानरिणां
विनाशं करे ल्या ॥ ३५ ॥

तमापन्नं सहसा समीक्ष्य
दीनेषु चापं युधि राक्षसेन्द्रम् ।
महान् समुत्पन्नं महीधराय
दुष्टान् रक्षोधिपानि हरीदा ॥ ३६ ॥

चमकितं धनुषाणां त्रिं राक्षसानां रात्रौ युद्धसलने
सन्ना आना देव वानराश्च सुप्रबन्धं एकं दृष्ट्वा भारी पवन
गिब्र उल्का इति और उभे स्तरं च निगाच्छरद्वय
आक्रान्ता क्रिया ॥ ३६ ॥

तच्छ्रेष्ठं बहुवृत्तानु
प्रवृत्ता विनेष निदायगाय ।
तमापन्नं सहसा समीक्ष्य
त्रिच्छ्रेष्ठं यणैस्तपनीयपुङ्गव ॥ ३७ ॥

अनेक वृष्टौ और शिखरैने युक्त उभयं गन्धं गन्ध-गिब्र
॥ सुप्रबन्धे रात्रौ दं भया । उभे शिखरा अने उभे
आना देव रात्रौने एका सुप्रबन्धं पञ्चरात्रं वृत्त-से रात्रौ
माकर उभे दुष्टे दुष्टं करं दत्ता ॥ ३७ ॥

तस्मिन् प्रवृत्तोत्तमसामुद्र
शृङ्गे विदीर्णे पतिने पृथिव्याम् ।
महाहिकल्य दामन्तकाम
समादध राक्षसलोकनाथ ॥ ३८ ॥

उत्तम वृष्ट और शिखराणां वं महान् वृष्टशृङ्ग उभे
विदीर्णं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वा, तत्र राक्षसलोकैके स्वामी
रात्रौने महान् एव और वमगद्वयं समान एकं माकर रात्रौ
का वपनं विना ॥ ३८ ॥

स तं शृण्वान्निनुत्ययेग
सविष्णुर्निद्रावन्तप्रसाधम् ।
पापं मेदं द्रागानिनुत्ययेग
त्रिनेश सुप्रबन्धाय दत्ता ॥ ३९ ॥

उभे रात्रौ पा वपुश्च समानं दत्ता । उभे चिन्तितो
दृष्ट्वा दीर्घं और दृष्ट्वा अनेक समानं प्रवृत्तं दृष्ट्वा
इन्द्र वपुश्च मने मकर देवरात्रौ उभे रात्रौ रात्रौने
करं देव सुप्रबन्धं पञ्च विदं दत्ता ॥ ३९ ॥

तं सापशो रात्रौ सुप्रबन्ध
प्राप्तानिद्रावन्तपुष्पकादम् ।
सुप्रबन्धाय विमेदं वेगाद्
गुणैः शौचमिन्द्रावन्तपुष्पकादम् ॥ ४० ॥

रात्रौ सापशो दृष्ट्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वा, तत्र रात्रौ दृष्ट्वा
मने वानिनाम् रात्रौ सुप्रबन्धं पञ्च पञ्चरात्रं गच्छेत्
वेगपुष्पक उभे रात्रौ करं दत्ता उभे स्वामी वानिनाम्
चन्द्रा इन्द्र माकर रात्रौने शौचमिन्द्रावन्तपुष्पकादम्
दत्ता दत्ता ॥ ४० ॥

स सापशो विप्रावन्त
वृत्तं पृथिव्या निप्रावन्त दीर्घ ।
तं दीर्घं भूमौ पतिने विप्रा
नेदुं प्रवृत्तं युधि यानुधाना ॥ ४१ ॥

उभे रात्रौ चन्द्रा दीर्घ सुप्रबन्ध अने दृष्ट्वा और
अनन्त कर्तव्य दृष्ट्वा प्रवृत्तं गिब्र दत्ता । दृष्ट्वा दृष्ट्वा
वृत्तं गिब्र देव उभे युद्धमन्त्रं अन्तं दत्ता दृष्ट्वा दृष्ट्वा
दृष्ट्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वा ॥ ४१ ॥

ततो गगनात् गगनं सुप्रेष
स्यधराभा व्यानिमुगो नल्लभ ।
दीर्घान् समुत्पन्नं विप्रावन्त
प्रवृत्तं युधि प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४२ ॥

तत्र रात्रौ दृष्ट्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वा, तत्र रात्रौ दृष्ट्वा
नल्लभ—ये विप्रावन्त रात्रौ परावन्त रात्रौ दृष्ट्वा दृष्ट्वा
रात्रौ दृष्ट्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वा ॥ ४२ ॥

तेषां प्रवृत्तान् स चक्रा मोघान्
स्योधिषो वापानां विनाशम् ।
तान् वानरैर्द्रावन्तं यानां
विमेदं चामुद्रावन्तपुष्पकादम् ॥ ४३ ॥
तान् वानरैर्द्रावन्तं यानां
विमेदं चामुद्रावन्तपुष्पकादम् ॥ ४३ ॥

ततो गगनात् गगनं सुप्रेष
स्यधराभा व्यानिमुगो नल्लभ ।
दीर्घान् समुत्पन्नं विप्रावन्त
प्रवृत्तं युधि प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४४ ॥

ततो गगनात् गगनं सुप्रेष
स्यधराभा व्यानिमुगो नल्लभ ।
दीर्घान् समुत्पन्नं विप्रावन्त
प्रवृत्तं युधि प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४५ ॥

ततो गगनात् गगनं सुप्रेष
स्यधराभा व्यानिमुगो नल्लभ ।
दीर्घान् समुत्पन्नं विप्रावन्त
प्रवृत्तं युधि प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४६ ॥

ततो गगनात् गगनं सुप्रेष
स्यधराभा व्यानिमुगो नल्लभ ।
दीर्घान् समुत्पन्नं विप्रावन्त
प्रवृत्तं युधि प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४७ ॥

ततो महात्मा न धनुर्धनुष्मा
नादाय गम सहसा जगाम ।

त लक्ष्मण प्राजलिरभ्युपेत्य

उज्जर राम परमार्थयुक्तम् ॥ ४६ ॥

रावण रावणसे पीड़ित हो बहुतसे वानर शरणागत
बत्सल भगवान् श्रीरामकी गरणमें गये । तब धनुषर महात्मा
श्रीराम सहसा धनुष लेकर आगे बढ़े । उसी समय लक्ष्मणजी
ने उनके सामने आकर हाथ जाड़ उनसे ये वार्थ वचन कहे—॥

काममाय सुपयातो यथायाम्य दुर्गमन ।
विधमिष्याम्यह चैतमनुजानीहि मा शिभो ॥ ४७ ॥

‘आर्य ! इस दुर्गमका यद्य करनेसे लिये तो मैं ही
पयात हूँ । प्रभो ! आप मुझे आशा दीजिये । मैं इसरा नाग
करूँगा’ ॥ ४७ ॥

तमग्रवीमहातेजा गम सत्यपराक्रम ।
गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण सयुगे ॥ ४८ ॥

उनकी बात सुनकर महातेजस्वी सत्यपराक्रमी श्रीराम
कहा—‘अच्छा लक्ष्मण ! जाओ । विनु सग्राममें त्रिबय पाने
के लिये पूरा प्रयत्नशील रहना’ ॥ ४८ ॥

गवणो हि महानीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रम ।
त्रैलोक्येनापि समुद्धो दुष्प्रसङ्गो न सशय ॥ ४९ ॥

‘कर्मों के रावण महान् बल त्रिकुलसे सम्पन्न है । यह
युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिलाता है । रावण यदि अधिक उग्र
होकर युद्ध करने लगे तो तीनों ‘गेट्टों’ लिये इसने वगना
सहन करना कठिन हो जयगा’ ॥ ४९ ॥

तस्य छिद्राणि मागम्यस्वच्छिद्राणि च लक्ष्य ।
अधुना धनुषाऽऽत्मान गोपायसमाहितः ॥ ५० ॥

तुम युद्धमें रावणके छिद्र देखना । उसकी कमजोरियोंसे
छाम उगाना और अपने छिद्रोंपर भी दृष्टि रखना (वहाँ
शत्रु उनमें छाम न उठाने पाये) । एकामर्षित हो पूरी
सावधानीके साथ अपनी दृष्टि और धनुषसे भी आत्मरक्षा
करना’ ॥ ५० ॥

राघवस्य वचं श्रुत्वा सम्प्रतिव्यत्य पूत्य च ।
अभियाद्य च गमाम ययौ नौमित्रिपहये ॥ ५१ ॥

श्रीरामावनी ॥ बात सुनकर समिधाकुमार लक्ष्मण
उत्तरे हृदयसे लगा गये और श्रीरामना पूजन एवं अभिवादन
करके वे युद्धने लिये चल दिये ॥ ५१ ॥

स रावण चारणहस्तमाह
ददश भीमोद्यतवृत्तचापम् ।

प्रच्छाद्यन्त शरवृष्टिजालै
स्तान् यानरान् भिन्नविधिर्देहान् ॥ २ ॥

उन्होंने देखा, रावणकी सुजाएँ हाथीके शृङ्खल दण्डक

समान हैं । उसने बड़ा मयकर एवं दीप्तिमान् धनुष उठा
रक्ता है और राण-समूहोंकी वधा करने वानरोंको दण्डता तथा
उन शरीरोंसे छिन्न भिन्न लिये डालता है ॥ ५२ ॥

तमालोक्य महानेजा हनूमान् मारुतात्मज ।
निगार्य शरजालानि त्रिदुद्राग स रावणम् ॥ ५३ ॥

रावणना इस प्रकार पराक्रम करते देख महातेजस्वी
पवनपुत्र हनुमानजी उसने राण-समूहोंका निगारण करते हुए
उसकी ओर गौड़े ॥ ५३ ॥

ग्य तस्य समासाद्य बाहुमुग्रम्य दक्षिणम् ।
शासयन् रावण धीमान् हनूमान् वान्यमग्रवीत् ॥ ५४ ॥

उत्तरे रखने पाम पट्टुबन्ध अपना दायाँ हाथ उठा
बुद्धिमान् हनुमान्ने रावणको मयभीत करते हुए कहा—॥

देखानरा धर्मपक्षैश्च सह राक्षसैः ।
अश्वत्य त्याग प्राप्त वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥ ५५ ॥

‘निशाचर ! तुमने देवता, दानव, राक्षस, यक्ष और
राक्षसोंसे मैं भरे जानेवा रा प्राप्त कर लिया है परतु वानरोंसे
तो तुम्हें भय है ही’ ॥ ५५ ॥

एष मे दम्भिणो बाहु पञ्चशाप समुद्यत ।
विधमिष्यति ते वृद्ध भूतात्मान चिरोपितम् ॥ ५६ ॥

‘देखो, पाँच भोगुलियासे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ
उठा हुआ है । तुम्हारे शरीरमें चिरकालसे जो जीरात्मा निवास
करता है, उसे आज यह इस देहसे अलग कर देगा’ ॥ ५६ ॥

श्रुत्वा हनूमतो गान्य रावणो भीमत्रिभ्रम ।
नरत्तनयन प्रोधादिद वचनमग्रवीत् ॥ ५७ ॥

हनुमान्जीना यह वचन सुनकर भयानक पराक्रमी
रावणक नेत्र श्रेष्ठसे लाल हो उठे और उसने रोपवृक्ष
कहा—॥ ५७ ॥

निप्र प्रहर निःशङ्क स्थिरा कर्तिमशानुहि ।
नतस्त्या प्रातर्विक्रान्त नादायिष्यामि वानर ॥ ८ ॥

‘वानर ! तुम नि शङ्क हाकर सीप भरे ऊपर प्रहार करो
और मुखिर वध प्राप्त कर लो । तुममें कितना पराक्रम है !
यह जान लोनेपर ही मैं तुम्हारा नाग करूँगा’ ॥ ५८ ॥

रावणस्य ययः श्रुत्वा बाधुसुतुजोऽग्रवीत् ।
प्रहृत हि मया पूर्वमश्र तप सुत स्मर ॥ ५९ ॥

रावणजी बात सुनकर पवनपुत्र हनुमान्जी बोले—‘मैंने
ता पहले ही तुम्हारे पुत्र अशको मार डाला है । इस बातको
याद तो करो’ ॥ ५९ ॥

एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेभ्यर ।
आजधानानिःसुत मलेनोऽसि वीरवान् ॥ ६० ॥

उत्तरे इतना कहत ही वरत्रिभ्रमसम्पन्न महातेजस्वी

उपधम्य राजान उ न पनकुमारो ज्ञातमै एक तमाचा
नइ दिया ॥ ६० ॥

स तलामिहस्तनेन घचाल च मुहुमुहु ।
म्रितो मुहते तेजस्वी स्थैर्यं श्रुत्वा महामति ॥ ६१ ॥
आजघान च समुद्रस्तलेनैवामरद्विपम् ।

उस थपइरी चांसे हनुमान्जी बारबार इधर उधर
चकर वाजने लगे, परन्तु वे बड़े बुद्धिमान् और तज्जवी थे,
अब दो ही पक्षोंमें अपनेका सुन्धिर फरक नइ हा गय ।
किर उहोंने भी अत्यन्त दुःखि होकर उस देवद्वीपको थपज्जने
ही मारा ॥ ६१ ॥

तत स तेनाभिहतो यानरेण महात्मना ॥ ६२ ॥
दशग्रीव समाधूतो यथा भूमितलेऽचल ।

उन महात्मा यानरन थपज्जनी मार लाकर दशगुप्त
रावण उखी तरह बाँध उठा, जैसे भूकम्प आनेपर पर्वत हिलने
लगता है ॥ ६२ ॥

सप्रामे त तथा हृष्टा रावण तलनाडितम् ॥ ६३ ॥
श्लेष्यो यानरा सिद्धा नेदुर्दशा सहसुरै ।

समामभूमिमें रावणको थपइ खाते देख श्रुति, बानर
सिद्ध, देवता और अनुर सभी हर्षानि करने लगे ॥ ६३ ॥

अयाम्भस्य महातेजा रावणो यान्यमग्रवीत् ॥ ६४ ॥
साधु यानरा धीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपु ।

तदनन्तर महातेजस्वी रावणने सैमन्तर कहा—“जबारा
यानर ! क्षाराय, तुम पराक्रमी हस्ति मेरे प्राक्कीय प्रति
द्वी ही ॥ ६४ ॥

रावणेनैवमुचस्तु मारुतिनाभयमग्रवीत् ॥ ६५ ॥
यिगस्तु मम धीयस्य यत् त्व जीयसि रावण ।

रावण ऐला पहनेपर परनकुमार हनुमान्ने कहा—
“भय ! तू अब भी जाति है, इतलिय मर पराक्रमका
बिकार है ॥ ६५ ॥

सहस्तु प्रहरेदानीं दुबुद्धे किं विजयम् ॥ ६६ ॥
तत्स्थ्या मामरी मुष्टिनिषिध्यति यमनयम् ।

“दुबुद्धे ! अब तुम एक बार और मुझपर प्रहार करो ।
बन्धुधर बाते क्यों बना रहे हो । तुम्हारे प्रहारसे पमान्
अब मर मुका पण्डित, तब बा तुम्हें तत्काल यमलोक
पहुँचा देगा ॥ ६६ ॥

ततो मारुतिनाभ्यं वापस्तस्य प्रजन्वत ॥ ६७ ॥
सहस्तनयो यसामुष्टिमाश्रुत्य दग्निणम् ।

पातयामास योगेन यानरोरसि धीयान् ॥ ६८ ॥

हनुमान्द्वीरी इस काम काका मथ मारिहा हा
उठा । उखी ओंरें लय हा गयो । उस पराक्रमी दण्डने

बड़ यन्त्र दानिना मुक्ता तानर हनुमान्जीरी छानमें वेग
पूरक प्रहार किया ॥ ६७ ॥

हनुमान् वपसि ध्यूदे सञ्चार पुन पुन ।
विह्वल तु तदा हृष्टा हनुमन्त महात्मन् ॥ ६९ ॥
ग्येनातिरथ शीघ्र नीत् प्रति समभ्यगात् ।

छानोंमें चां लयनेपर हनुमान्जी पुन विनहित
उठ । महात्मी हनुमान्जीका उस समय विह्वल देप अतिरथी
रावण रथर द्वारा शीघ्र ही नीत्पर जा चला ॥ ६९ ॥

रायसानामधिपतिदशग्रीव प्रतापवान् ॥ ७० ॥
पद्मगप्रतिमैर्भाभि परमभाभिमेदुर्न ।
शरैरादीपयामास नील हरिचमूपतिम् ॥ ७१ ॥

राखोंन राजा प्रतापी दशग्रीवने दशग्रीव मर्मरों निरीज
करनेवाल सानुत्य भयपर बाणोंद्वारा यानर-सेनापति नीलका
संताप देना आरम्भ किया ॥ ७० ॥

स शरौघसमायस्तो नीलो हरिचमूपति ।
करेणैकेन शैलाग्र रक्षोधिपतयेऽहजत् ॥ ७२ ॥

उस बाण-समुहसे पीड़ित हुए यानर-सेनापति नीलने
उन राखसवारर एक ही हाथने पतका एक गिरा उठाकर
चलाया ॥ ७२ ॥

हनुमानपि तज्जवी समाम्भस्यो महामना ।
विमेशमाणो युद्धेषु सरोयमिदमग्रवीत् ॥ ७३ ॥
नीलेन सह समुक् रावण रायसेध्वरम् ।
अन्येन युष्पमानस्य न युक्तमभिधापनम् ॥ ७४ ॥

इतनीमें तेजस्वी महामना हनुमान्जी भी सैमन्त गये
और पुन युद्धी इच्छान रावणरी और देराने लगे । उस
समय राखसवार रावण नीलका साथ लला हुआ था ।
हनुमान्जीने उसने रोनाकार कहा—“ओ मित्रार ! इस समय
तुम दूसरे साथ युद्ध कर रहे हो, अब अब तुमपर पारा
करना भर लिय उचित न होगा ॥ ७३ ॥

रावणोऽथ महानज्जान् शूद्रस्तमभि शरं ।
आनघान मुनीक्ष्णाग्रैस्तद् विरिणं पयान ॥ ७५ ॥

उपर ज्ञानज्जवी रावणने नीलका चलाव हुए शरी
गिरापर तीव्र अभयगाता मथ मार गये, जिनने बर इट
पुनकर शूचीर गिरार गता ॥ ७५ ॥

तद् विरिणं मित्र शूद्र हृष्ट हरिचमूपति ।
कालाग्निरिय ज्ञाना कपयन परपीरहा ॥ ७६ ॥

उस विरिणरथ गिराव हुआ देन दशग्रीवरी शरीर
करनेरत यानर-सेनापति नील प्रकाशनी अतिरथ मन्त्र
मथमे प्रजन्वित हा उठा ॥ ७६ ॥

सोऽभ्यक्षकद्रुमाशालादधुमाधापि सुपुष्पिणम् ।
अन्याथ विविधान् गृहान् नी गद्यस्य सयुग ॥ ७७ ॥

उहोंने युद्धस्थलमें अभङ्गण, खाल, पिल हुए आग्न तथा अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंको उखाड़ उखाड़कर रावणपर चलाया आरम्भ किया ॥ ७७ ॥

स तान् वृक्षान् समासाद्य प्रतिविच्छेद रावण ।

अभ्यवर्षेण घोरेण शरवर्षेण पावकिम् ॥ ७८ ॥

रावणने उन सब वृक्षोंको सामने आनेपर काट गिराया और अग्निपुत्र नीलपर बाणोंकी भयानक वर्षा की ॥ ७८ ॥

अभिवृष्ट शरीरेण मेघेनेन महाचल ।

ह्रस्व कृत्वा ततो रूप ध्वजाग्रे निपपात ॥ ७९ ॥

जैसे मेघ किसी महान् पत्रपर जलकी बरस करता है, उसी तरह रावणने जब नीलपर ग्राणसमूहोंकी वर्षा की, तब वे छोटा-सा रूप बनाकर रावणकी ध्वजाके शिखरपर चढ़ गये ॥

पावकात्मजमालेन्य ध्वजाग्रे समयस्थितम् ।

जञ्चाल रावण प्रोधात् ततो नीलो ननाद च ॥ ८० ॥

अपनी ध्वजाके ऊपर बैठ हुए अग्निपुत्र नीलको देख कर रावण क्रोधसे जड़ उठा और उधर नील जोर-जोरसे गजना करने लगा ॥ ८० ॥

ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च त हरिम् ।

लक्ष्मणोऽथ हनुमाश्च रामश्चापि सुविस्मिता ॥ ८१ ॥

नीलके कभी रावणकी ध्वजापर, कभी धनुषपर और कभी मुकुटपर बैठ देख श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान्जी को भी बड़ा विस्मय हुआ ॥ ८१ ॥

रावणोऽपि महातेजा कपिलाघवनिस्सित ।

अलमाहारयामास वीतमानेन्यमद्भुतम् ॥ ८२ ॥

बानर नीलकी यह कुतर्क महातेजस्वी रावणको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने अद्भुत तेजस्वी आग्नेयास्त्र हाथमें लिया ॥ ८२ ॥

ततस्ते चुक्रुमुहृण लघ्वलक्ष्मा हृषगमा ।

नीललाघवसम्भ्रान्त दृष्ट्वा रावणमाहये ॥ ८३ ॥

नीलनी कुतर्क रावणको घबराया हुआ देख हृषगमा अवसर पाकर सब बानर बड़ी प्रसन्नतासे साथ क्लृप्तारियों मरने लगे ॥ ८३ ॥

धानराणा च नादेन सरब्धो रावणस्तदा ।

सम्भ्रमाविष्टदृष्टो न विचिन्त प्रत्यपघत ॥ ८४ ॥

उस समय धानरोंने हानादसे रावणको बड़ा क्रोध हुआ। साथ ही हृदयमें पचराहट छा गयी थी; इसलिये वह कर्तव्य का कुछ विचार नहीं कर सका ॥ ८४ ॥

आग्नेयेनापि सयुक्त गृहीत्वा रावण शरम् ।

ध्वनदीपस्थित नीलमुदैक्षत निशाचर ॥ ८५ ॥

तदनन्तर निशाचर रावणने आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित

वाण हाथमें लेकर ध्वज अग्रभागपर बैठ हुए नीलको देखा ॥ ८५ ॥

ततोऽग्रवीमहातेजा रावणो राक्षसेश्वर ।

कपे लगवयुक्तोऽसि मायया परया सह ॥ ८६ ॥

देखकर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने उनसे कहा— 'बानर ! तुम उद्योगिकी मायाय साथ ही अपने भीतर बड़ी कुतर्क भी रखते हो ॥ ८६ ॥

जीवित खलुरक्षस्य यदि शक्तोऽसि धानर ।

तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकदा ॥ ८७ ॥

तथापि त्वा मयामुक्त सायकोऽस्त्रप्रयोजित ।

जीवित परिरहन्त जीविताद् भ्रशयिष्यति ॥ ८८ ॥

'धानर ! यदि शक्तिशाली हो तो मेरे बाणसे अपने जीवन की रक्षा कर । यद्यपि तुम अपने पराक्रमक योग्य ही भिन्न भिन्न प्रकारके कर्म कर रहे हो तथापि मेरा छोड़ा हुआ दिव्यास्त्र प्रेरित बाण जीवन-रक्षाकी चेष्टा करनेपर भी तुम्हें प्राणहीन कर देगा' ॥ ८७ ८८ ॥

पथमुक्त्वा महायाह रावणो राक्षसेश्वर ।

सन्धाय याणमस्त्रेण चमूपतितताडयत् ॥ ८९ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु राक्षसराज रावणने आग्नेयास्त्रमुक्त बाणका सधान करनेके उससे द्वारा सेनापति नीलको मारा ॥ ८९ ॥

सोऽस्त्रमुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडित ।

निर्दहामास सहसा स पपात महीतले ॥ ९० ॥

उसके धनुषसे छूटे हुए उस बाणने नीलकी छातीपर गहरी चोट की । वे उसकी ओँचते जलते हुए सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९० ॥

पितृमाहृत्यस्तयोर्गादात्मनश्चापि तेजसा ।

जानुभ्यामपतद् भूमी न तु प्राणैर्विद्युज्यत ॥ ९१ ॥

यद्यपि नीलने पृथ्वीपर घुटने टक दिये, तथापि पिता अग्निदेवके माहात्म्यसे और अपने तेजने प्रभावसे उनके प्राण नहीं निकले ॥ ९१ ॥

विस्मय धानर दृष्ट्वा दशमीयो रणोत्सुक ।

रथेनाभ्युदनादेन सौमित्रिमभिद्रुचे ॥ ९२ ॥

बानर नीलको अचेत हुआ देख रणोत्सुक रावणने मेघर्षी गजनाके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले रथने द्वारा सुमित्रा कुमार लक्ष्मणपर धावा किया ॥ ९२ ॥

आसाद्य रणमध्ये त वारयित्वा स्थितो ज्वलन् ।

धनुर्विस्फारयामास राक्षसेन्द्र प्रतापवान् ॥ ९३ ॥

युद्धभूमिमें खड़ी बानरसेनाको आगे बढ़नेसे रोककर वह लक्ष्मणके पास पहुँच गया और प्रचलित अग्निफे समान सामने खड़ा हो प्रतापी राक्षसराज रावण अपने धनुषकी टक्कार करने लगा ॥ ९३ ॥

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वा
रिस्फुरयन्त धनुरग्रमेयम् ।
अथेहि मामद्य निशाचरोन्द्र

म वानराग्र्य प्रतिषेधमुहसि ॥ ९४ ॥

उत्त समय अपने अनुग्रह धनुषको खींचते हुए यशसे
उत्तर गतिगाली लगाने कहा—'निशाचररथ ! समस्त लो-
क मैं आ गया । अब अब तुम्हें वानरों का युद्ध नहीं करना
चाहिये' ॥ ९४ ॥

स तस्य वाक्य प्रतिपूणघोष
ज्याशब्दमुद्य च निशम्य राजा ।

आसाद्य सौमित्रियुपस्थित त
रोयावित वाचमुवाच रक्ष ॥ ९५ ॥

लक्ष्मणकी यह बात गम्भीर ध्वनिसे युक्त थी और उनका
प्रत्यक्षान्ते भी भयानक टकार पड़ने लगा रही थी । उसे सुनकर
युद्धरथ लिये उपस्थित हुए सुमित्राकुमार ने निराशा वाक्यों
यथा यशसे रोकर कहा— ॥ ९५ ॥

द्विष्टयासि मे राघव दृष्टिमात्रं
प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतवृद्धिः ।

अस्मिन् क्षणे यात्यसि मृत्युलोके
सन्नाद्यमानो मम याणञ्जाले ॥ ९६ ॥

प्युपरी उबड़मार । लोभाप्यरी बात है कि तुम मेरी
औरतों खाने आ गए । तुम्हारा नीम ही अन्य शनिगल
है, इसीलिए तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी है । अब तुम मेरे
बागमनहोसे पीड़ित हो इसी क्षण यन्त्रावली यात्रा करोगे ।

तमाह सौमित्रिरस्मियानो
गन्तमुद्रतशिताग्रदृष्टम् ।

राजन् न गगन्ति मदाग्रभागा
रिन्धमे पापघ्ना परिष्ट ॥ ९७ ॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणा उधारी बात सुनकर बड़बुल्लस
नहीं हुआ । उसका दोन बड़ ही तीनों और उत्तराध और
यह बड़-बड़स गन्ना कर रहा था । उस समय सुमित्राकुमार
ने उसका कहा— यज्ञ ! मरान् प्रमत्तगाली पुरुष तुम्हारी
तरफ पल गन्ना नहीं करत है (कुछ पराक्रम करके
दिया है) । पापारिषेमे अग्रगण्य यश ! तुम तो छूट
ही दोन होठे हो ॥ ९७ ॥

जानामि धीर्यं तप रात्रमेन्द्र
यत् प्रतापं च पराक्रमं च ।

अग्रगण्योऽहं दारचापपाणि
रागच्छ किं मोघविकल्पनम् ॥ ९८ ॥

पराक्रम ! (तुमने गत परा-
क्रम और नवीन अग्रगण्य) मैं तुम्हारे बड़,

वीर्य, प्रताप और पराक्रम अथवा तरफ जानना है । इसलिये
हृषिकेश धनुष-बाण लहर खाने लगा है । आभा युद्ध कर ।
व्यर्थ बातें बोलने के बजा हाथ ॥ ९८ ॥

स परमुक्तं कुपितं समन्
रक्षोधिपं सप्त द्रवणं सुपुहान् ।

तौल्लक्ष्मणं बाधनचित्रपुङ्गवं
धिच्छेदं वाप्यनिशिताग्रधारे ॥ ९९ ॥

उनका ऐसा कहनेपर कुपित हुए राक्षसपक्ष ने उनका
मुन्तर पक्षगल काट बग छोड़े परत लगाने करने पर
हुए विचित्र पक्षोंमें सुगमिन और तब धरवाल बाणों उन
सबको काट डाला ॥ ९९ ॥

तान् प्रेयमाणं सहसा निरुत्तान्
निरुत्तभागानि पन्नगैर्द्वान् ।

लक्ष्मणं प्रोद्यतं जगाम
समन् चान्यान्निशितान्पृथक्त्वन् ॥ १०० ॥

जैसे बड़-बड़ सारे गिरने डूबने डूबने कर लिये ऊपर,
उसी प्रकार अपने समस्त बाणों से लक्ष्मण गिरा दिया और
लक्ष्मणों यश बाधन बाणीभूत हो गए और उधने दूसरे
तीनों का छोड़े ॥ १०० ॥

स याणयन्तु यशं तम
रामानुजं कानुकसम्प्रयुक्तम् ।

धुराध्वं द्रोतमकणिर्भरतं
शराद्य विच्छेदं तं युनुभ च ॥ १०१ ॥

परत भीरुमर छाट भाद लक्ष्मण इन्ने विच्छेद नहीं
हुए । उन्होंने अपने धनुषमें बाणों की भरत कर की और
छुट अर्धचन्द्र, उत्तम कर्ण तथा भरत और लक्ष्मण
यश का छोड़े हुए उन सब बाणों का काट डाला ॥ १०१ ॥

स याणालान्यपि तानि तानि
मोचानि पश्यन्मृदुशारिणम् ।

विमिस्मये लक्ष्मणालयगतं
पुनश्च याणान् निशितान्मुमाच ॥ १०२ ॥

उन सभी बाण-बाणों का निरुत्त हुआ देग टपकपक्ष
यश लक्ष्मण की पुनर्निर्माण नष्ट रह गया और उनका
पुनर्लग बग छोड़ने लगा ॥ १०२ ॥

स लक्ष्मणश्चापि निशितान्निशितान्
मोदन्तुल्योऽशनिभीमयान् ।

मध्यायं चापं ज्वलनप्रशाम्भान्
समन् रक्षोधिपनयथाय ॥ १०३ ॥

देखकर लक्ष्मण अपने पराक्रम लक्ष्मण की लक्ष्मण
कक्ष लिये बड़ लक्ष्मण भयानक बग और लक्ष्मण परत
वेन बाणीः वह अर्धचन्द्र लक्ष्मण दृष्टिगोचर होकर धनुष
रक्षा ॥ १०३ ॥

न तान् प्रचिच्छद् दि राक्षसत्र
शितान्शरालक्ष्मणमाश्रयान् ।
रावण पात्राग्निसमप्रभेण

स्वयमुदत्तेन ललाटदेशे ॥१०४॥

परतु राक्षसराज ! उा सभी तीरे बाणोंका घाट डाल
और ब्रह्माजीन दिये हुए पावाप्तिन समान तेजस्वी बाणने
लक्ष्मणजीके ललाटपर चाट की ॥ १०४ ॥

स लक्ष्मणो रावणसायकात्
अचाप चाप शिखिल प्रगृह्य ।

पुनश्च सगा प्रतिलभ्य वृच्छा

विच्छेद चाप शिखिन्द्रशयो ॥१०५॥

रावणक उस बाणसे पीड़ित हो लक्ष्मणजी निश्चित हो
उठे । उन्होंने शयमें जा धनुष र रक्ता था, उसकी मुठ्ठी
ढीली पड़ गयी । फिर उन्होंने वड़े कसे होश सँभाला और
देबद्रोही रावणके धनुषको घाट दिया ॥ १०५ ॥

निवृत्तचाप विभिराजधान
बाणैस्तदा दशरथि शिताग्रै ।

स सायनातो विचयाल राजा

वृच्छाश्च सहा पुनराससाद ॥१०६॥

धनुष कट जानेपर रावणको लक्ष्मणने तीन बाण मार
जे बहुत ही तीक्ष्ण थे । उन बाणोंसे पीड़ित हो राजा रावण
व्याकुल हो गया और बड़ी पठिनाइसे वह फिर सचेत ॥
रहा ॥ १०६ ॥

स वृत्तचाप शरताडितश्च

मेदाद्राग्नौ रुधिरावसिक्त ।

जग्राह शक्ति स्वयमुग्रशक्ति

स्वयमुदचा मुधि देवशत्रु ॥१०७॥

जब धनुष कट गया और बाणोंकी गहरी चोट खानी
पड़ी; तब रावणका शरीर गहरी मेदे और रक्तसे भीग गया ।
उस अवस्थामें उस भयङ्कर शक्तिशाली दशद्रोही राक्षसने मुद्र
स्थलमें ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति उठा ली ॥ १०७ ॥

स ता सधुमानलसुनिकाशा

विश्रासना सयति वानराणाम् ।

विशेष शक्ति तरसा ज्यलन्ती

सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथ ॥१०८॥

वह शक्ति धूमधुत्त अग्निक समान दिशापी देवी थी और
मुद्रमें धानरोंको भयभीत करनेवाली थी । राक्षसराजके स्वामी
रावणने यह जलती हुई शक्ति बड़े वेगसे सुमित्राकुमारपर
चलायी ॥ १०८ ॥

तामापतन्ती भरतानुजोऽरुह्यै

अग्रान बाणैश्च द्रुताग्निकत्यै ।

तत्रापि सा तस्य त्रिदेश शक्ति

भुजान्तर दाशार्धोर्ध्वशालम् ।

अपनी ओर आती हुई उस शक्तिपर लक्ष्मणने ३
तर्फी बहुतसे बाणों तथा अर्धोंका प्रहार किया
शक्ति दशरथकुमार लक्ष्मणन जिगाह पड़
गयी ॥ १० ॥

स शक्तिमाश्रितसमाहृत सन्

जज्जाल भूमौ स रघुप्रसीरः ।

त निहन्त सहसाम्भुपेत्य

जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम् ॥११॥

रघुकुलक प्रधान वीर लक्ष्मण यद्यपि वड़े शक्तिशाली
तथापि उस शक्तिसे स्पर्हत हो पृथ्वीपर गिर पड़ और जलने
लगे । उन्हें बिहल हुआ देख राजा रावण घबरा उनका
जा पहुँचा और उनकी वेगपूर्वक अपनी दोनों भुजाओंसे
उठाने लगा ॥ ११० ॥

हिमरान् मन्दो मेरुजैलेक्य या सहामरै ।

शक्य भुजाभ्यामुद्धतुं शक्यो भरतानुज ॥१११॥

जिस रावणने देवताओंसेदित हिमालय, मन्दराचल, मेरु
गिरि अथवा तीनों लोकोंको भुजाओंद्वारा उठा खेरी शक्ति
थी, वही भरतके छोटे भाई लक्ष्मणको उठानेमें समर्थ न हो
सका ॥ १११ ॥

शक्त्या ब्राह्मणा तु सौमित्रिस्ताडितोऽपि स्तनात्तर ।

विष्णोर्मीमास्यभागमात्मान प्रत्यनुस्मरत् ॥११२॥

ब्रह्मारी शक्तिसे छातीमें चोट खानेपर भी लक्ष्मणने
भगवान् विष्णुके अचिन्त्य अङ्गरूपसे अपना किन्त
किया ॥ ११२ ॥

ततो दानवदर्पण सौमित्रि देवकण्ठक ।

त पीडयित्वा बाहुभ्या न प्रभुलङ्घनेऽभवत् ॥११३॥

अत देवशत्रु रावण दानवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले
लक्ष्मणको अपनी दोनों भुजाओंमें दबाकर हिलानेमें भी समर्थ
न हो सका ॥ ११३ ॥

तत हृद्धो वायुमुतो रावण सन्नभिद्रवत् ।

आज्जगानोरसि क्रुद्धो यज्ञकल्पेन मुष्टिना ॥११४॥

इसी समय क्रोधसे भरे हुए वायुपुत्र हनुमान्जी रावणकी
और दोड़े और अपने वज्र-सरीसे मुक्केसे रावणकी छातीमें
मार ॥ ११४ ॥

तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेध्वरा ।

जानुभ्यामगमद् भूमौ चचाल च पपात च ॥ ११५॥

उस मुक्केकी मारसे राक्षसराज रावणने
टक दिया । वह क्रोधने लगा और अन्ततोगत्या

वशापसाक्यत

मुद्रा

अन्ती अर अरु हुन
नरु नरु नरु नरु नरु
दरु नरु नरु नरु
॥ १०९ ॥

स राक्षसाभिरुक्त
ज राक्षस भूतः
विद्वत् सदाभूत
जगद् पञ्चतन्त्र

प्रथम वीर उक्त
उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु
॥

उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु

उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु

उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु

उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु

उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु

उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु

उक्त अरु नरु
उक्त अरु नरु

सि ॥

णम् ।

गदर क

दैत्योक्त

र इत्यर

नम् ॥ १२

पिम् ।

र भीरुना

गये ॥ १२०

यप ॥ १२१

गम् ।

ध ॥ १२२

र पैडा देवा

उसी प्रसार

चन उठाये

॥

म् ।

॥ १२८ ॥

ये वज्रही

रीणमचद्र

२८ ॥

२ ।

॥ १२९ ॥

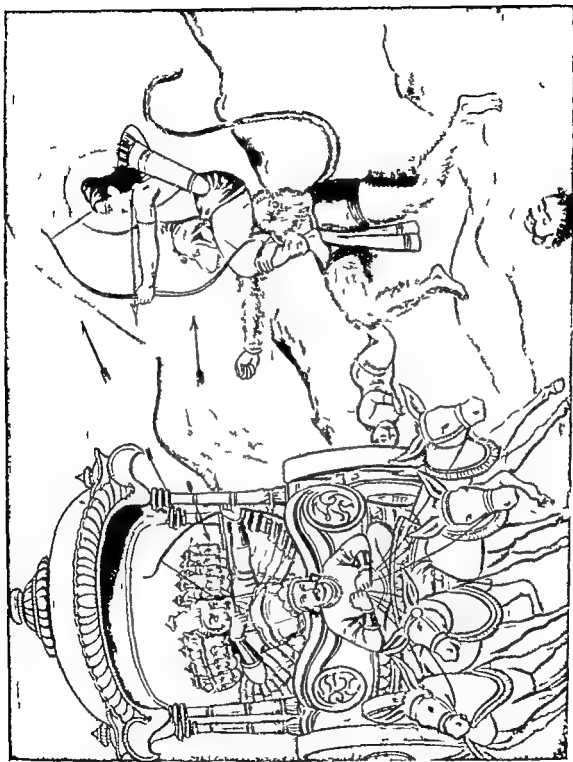
गदा रर ।

मुद्राण

॥ १३० ॥

॥ अरु

उक्त



हनुमानजीके वधेपर आरुढ़ श्रीरामवना रावणके साथ युद्ध

आस्यैष नेत्रै धरणे पपात स्थित बटु ।
विष्णुमानो निक्षेष्टो ग्योपस्य उपाविशत् ॥११६॥

उत्तर मुनः, नत्र और जानोने बहुत-सा रत्न मिलने
लगा और वह चक्कर कागता हुआ रथर पिठले भागने
निचेट होकर जा बैठा ॥ ११६ ॥

निसरोमूर्च्छितधामीश्रव स्थान समालभत् ।
निसर रात्रण दृष्टा समरे भीमजित्तमम् ॥११७॥
श्रुपयो वानरादस्यैव नेदुर्द्वेषाद्य मामुरा ।

वह मूर्च्छित हस्तर अपनी मुप-मुप जा बैठा । वहाँ भी
वह मिर न रह सका—तड़पता और छटपटाना रहा । समर
क्षणे भरकर पताली रात्राका अवन हुआ दंग श्रुति,
देवता, अमुर और वानर हयनाद करो लगे ॥ ११७ ॥

हनुमानय तेजस्वी लक्ष्मण रात्रणादित्तम् ॥११८॥
आनयद् राघवाभ्यां वाटुभ्या परिगृह्य तम् ।

इधर पक्षात् तनवी हनुमान रात्रादीकित लक्ष्मणका
दनों हाथोंम उठाकर श्रीरघुनाथजी निकट आये ११८
वायुसुतो सुहृत्स्वेन भक्त्या परमया च स ।

दात्राणामप्यकन्योऽपि लघुतरमगमत् कपे ॥११९॥

हनुमान्दीके लोहा और उक्त मणिमात्र कारा
लक्ष्मणकी उतर लिय हार हा गया । शत्रुओं लिय ता वे
अब भी अक्षमनीय थे—य उहँ लिला नहीं मन्ने थे ॥११९॥

त स्मनुवृज्य सा शक्तिः सौमित्रि युधि निर्जितम् ।
रात्रणस्य रथ तस्मिन् स्थान पुनरुपागमत् ॥१२०॥

पुद्गे पराजित हुए लक्ष्मणकी छात्रक व गति पुन
रवाते रथर लैव आयी ॥ १२० ॥

रात्रणोऽपि महातजा प्राप्य सत्ता महाह्वय ।
आहूद निदिनान् याणावप्राह च महदनु ॥१२१॥

याही देखते हागने अनेक महातेजस्वी रात्राते सि
गिगा घनुष उठाए और पने दगा हाथों गि ॥ १२१ ॥

आभ्यस्तद्य शिखल्यद्य त्वमग दात्रुमूदन ।
शिखाभागममीमांशमाभान प्रत्यनुस्मरन् ॥१२२॥

गुप्तमून लक्ष्मणकी भी मन्त्र निष्ठुक्त अचिन्त्या
अशक्तने अन्ना तित्त करत गत्य और नीटा हा
गन ॥ १२२ ॥

निपातितमहाशय वानराणा महाउमू ।
राघवस्तु ग्ये दृष्टा रात्रा समभिद्रवन् ॥१२३॥

वनपेशी निष्ठा वरिनीय बह-बह वर भर निष्ठा
गद यह दलकर रात्राभिने गुनपयने रात्राकर व
गि ॥ १२३ ॥

अथननुसमस्य हनुमान वाक्यमप्रसीत् ।

मम पृष्ठ समाग्रा रात्रस्य दास्तुमहसि ॥१२४॥
विष्णुर्यथा गरमन्तमाग्राह्यमर्यैरिणम् ।

उस सनर हनुमान्जीने तनर वाम आकर कहा—
प्रभा । जैने मगान् गिगु गरुडपर चक्कर दैयोरा सहा
करने हैं, उमी प्रहार आप नेरी पीठपर चक्कर इस रात्र
का दण्ड दें ॥ १२४ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्य वायुपुत्रेण भागितम् ॥१२५॥
अथाग्नोह सहसा हनुमन्त मराकपिम् ।

पवनसुमारकी कही हुई य बात सुनकर श्रीरघुनाथ
की सखा उन महातरि हनुमान्जी पीठपर चक्कर १२५ ॥

रथस्य रात्रण सत्ये दृष्टा मनुवाधिप ॥१२६॥
तमालोदय महातेजा प्रुष्टाय स रात्रणम् ।

वैरोचनमिय कुब्जे विष्णुरभ्युत्तायुध ॥१२७॥

महातज श्रीरघुने सनरद्वगने रात्रा रथर बैठा देवा ।
उने देखते ही मगान्की श्रीरघुनाथकी अर उठी प्रकार
दीप, जैने कुनित हुए मगान् गिगु अन्ना चक्कर उठाए
विरोचनसुमार रथर १२६ ॥

ज्याशान्मरगेत् तीम यज्ञनिपरानितम् ।
गिरा गम्भीरया गमा रात्रसेन्द्रमुदाय ॥१२८॥

जहने अरन घनुसरी तीम उतर प्रर पी न बरकी
गङ्गाहाउम भी अधिक कर पी । इस वर श्रीरघुनाथ
की रात्रणका रगने गम्भीर वगने व— ॥ १२८ ॥

तिष्ठ तिष्ठ मम त्व दि दृष्टा विप्रियमिहाम् ।
अ नु रात्रस्यदाहृत् गत्या मागमराग्यनि ॥१२९॥

आगुप्तोने वर बने हुए रात्रा । गदा रह, गदा रह ।
नग पका अरण्य वर नु वरों रात्र प्रर १२९ ॥

यदीन्द्रास्यमन्त्राभ्याम् या
स्यमुपैवावन्त्राभ्याम् या ।

गमिष्यति य दग्धा दिग्वा या
तथापि म नात्र रात्रा विमोक्ष्यम् ॥१३०॥

यदि नु इन्द्र, दन अन्ना रात्र दण ब्रह्म, अन्नि
वा शरकर सनर अथवा ग्ये निष्ठाभने रात्रा रात्र
त भी अर नर हागन वर नहीं गर ॥ १३० ॥

यदीन्द्रास्यमन्त्राभ्याम् या
गमिष्यति य दग्धा दिग्वा या

म एव रात्रागारा रात्रा
मनुप्रपश्यत रात्रा युद्ध ॥१३१॥

न अत्र अन्ना रात्रा दण युद्धने वर हुए नि
मन्त्रा अन्ना रात्रा दण युद्धने वर हुए नि

मूर्च्छित हो गये थे, उन्हींके उस तिरस्कारका बदला लेनेके लिये आज मैं युद्धभूमिमें उपस्थित हुआ हूँ। राक्षसराज ! मैं पुत्र-पौत्रोंसहित तेरी मौत बनकर आया हूँ ॥ १३१ ॥

पनेन चात्यहुतदर्शानि

शरैर्जनस्थानवृत्ताल्लयानि ।

चतुर्दशान्यात्तवरायुधानि

रथ सहस्राणि निपूदितानि ॥ १३२ ॥

प्रायण । तरे सामने खड़े हुए इस खुशबू की राजकुमारने ही अपने पाणोंद्वारा जनस्थाननिग्राही उन चौदह हजार राक्षसोंका वहाकर डाला था, जो अद्भुत एव दर्शनीय योद्धा थे और उत्तमोत्तम आस्त्र शस्त्रोंसे सम्पन्न थे ॥ १३२ ॥

राघवस्य वच श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबल ।

घायुपुत्र महावेग वहत राघव रणे ॥ १३३ ॥

रोवेण महताऽऽसिष्ट पूर्वैरमनुस्मरन् ।

आजघान शरैर्दक्षैः कालानलशिखोपमैः ॥ १३४ ॥

भीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर महाबली राक्षसराज राघव महान् रोपने भर गया। उसे पहलेसे घेरका स्मरण हो आया और उसने कालानिली शिखाक समान दीप्तिशाली बाणोंद्वारा रणभूमिमें भीरकुशाघत्रीका वाहन बने हुए मग्न वेगशाली घायुपुत्र हनुमान्को अत्यन्त घायल कर दिया ॥ १३३ १३४ ॥

राक्षसेनाह्वये तस्य ताडितम्यापि सायकैः ।

स्वभातेजोयुक्तस्य भूयस्तेजोऽभ्यवधत ॥ १३५ ॥

युद्धस्थानमें उस राक्षसेके सायकोंसे आहत होनेपर भी स्वभाविक तेजस्व सग्न हनुमान्जीका शौर्य और भी बढ़ गया ॥ १३५ ॥

ततो रामो महातेजा राघणेन हृतघनम् ।

हृष्टा पृथगशार्दूल क्रोधमय वशमेयिजान् ॥ १३६ ॥

बानरशिरोमणि हनुमान्को राघवने घायल कर दिया, वह देखकर महातेजवी श्रीराम क्रोधके वर्णीभूत हो गये ॥

तम्याभिसक्रम्य रथ सचक्र

साय्यच्चजच्छत्रमहापताकम् ।

ससारथि साशनिशूलखट्वा

रामः प्रविच्छेद दितौ शराभौ ॥ १३७ ॥

फिर तो उन भगवान् भीरामने आक्रमण करके पहिले, पीछे, पक्ष, छत्र, पताका, सारथि, अशनि, शूल और खट्वा सहित उसके रथके अग्निदेवने बाणोंसे तिल तिल करके काट डाला ॥

अये द्रशन्तु तरसा जघान

पाणौ पञ्चाशानिसनिभेन ।

भुजातरे व्यूहसुजातरूप

पद्मेण मेरु भगवानिवेन्द्र ॥ १३८ ॥

जैसे भगवान् इन्द्रने वज्रने द्वारा मेरु पर्वतपर आपात किया हो, उन्हीं प्रकार प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने वज्र और अग्निये समान तेजस्वी पाणसे इन्द्रायु राघवकी विशाल एवं सुन्दर छातीमें वेगपूर्वक आपात किया ॥ १३८ ॥

यो वज्रपाताशानिसनिपाता

च चुश्रुभे नापि चचाल राजा ।

स रामराणाभिहतो भृशार्त

श्चचाल चाप च मुमोच धीर ॥ १३९ ॥

जो राजा राघव वज्र और अग्निये आपातने भी कभी क्षुब्ध एव निचलित नहीं हुआ था, वही वीर उस समय श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे घायल हो अत्यन्त आर्त एव कम्पित हो उठा और उसके हाथसे चतुर छूटकर गिर पड़ा ॥ १३९ ॥

त विह्वलन्त प्रसमीपय राम

समादत्ते क्षीतमथाध्वज द्रुम् ।

तेनार्क्युण सहसा विरीट

चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥ १४० ॥

राघवकी व्याकुल हुआ देव महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने एक चमकमाता हुआ अर्धचन्द्राकार बाण हाथमें लिया और उसके द्वारा राक्षसराजका सूर्यके समान देनीप्यमान मुकुट सहसा काट डाला ॥ १४० ॥

त निगिराशीरिपसनिनाश

शान्ताविधिं स्यमिवाप्रकाशाम् ।

गतधिय एच्छन्निरीटकूट

मुवाच रामो युधि रामसेन्द्रम् ॥ १४१ ॥

उस समय चतुर न होनेसे राघव निग्रीहीन सर्वके समान अपना प्रभाव खो बैठा था। सायकालम जिसरी प्रभा गान्त हो गयी हो, उस सूर्यदेवने समान निस्तान हो गया था तथा मुकुटोंका समूह कानिसे भीहीन दिखायी देता था। उस अवस्थामें श्रीरामने युद्धभूमिमें राक्षसराजसे कहा— ॥ १४१ ॥

हृत त्वया कम महत् सुभीम

हृतप्रवीरश्च हृतस्त्वयाहम् ।

तस्मात् परिश्रान्त इति ध्यवस्य

न त्वा शरैर्मृत्युवशा नयामि ॥ १४२ ॥

प्रायण । तुमने आज बहुत भयंकर कर्म किया है, मेरी सेनाके प्रधान प्रधान वीरोंसे मार डाला है। इतनेपर भी क्या हुआ समझकर मैं बाणोंद्वारा तुझे मौतके अधीन नहीं कर रहा हूँ ॥ १४२ ॥

प्रयाहि ज्ञानामि एणादितस्त

प्रविश्य रात्रिचरराज लङ्काम् ।

आश्वस्य नियाहि रथी च धन्वी

तदा यस्य प्रेक्ष्यसि मे रथस्थ ॥ १४३ ॥

‘निशाचरराज ! मैं जानता हूँ तु यद्मेन पीडित है।
इशान्य आशा देता हूँ, जा, लङ्कामें प्रवेश करके कुछ
दर विभ्रान कर ल। फिर रथ और धनुषके साथ
निःकलना। उस समय रथाभ्यां रहकर तू फिर मेरा वर
देखना’ ॥ १४३ ॥

न परमुक्तो हतदपहर्षो
निवृत्तचाप स हताश्वसूतः ।

शरादितो भग्नमहाकिरीटो

विदेश लङ्का सहस्रा स्म शन्ता ॥१४४॥

मगान् श्रीरामन् एता कन्देनेर रात्रा रात्रि सदन
हृदये धृत गता । उक्ता हर्ष और अभिमान मित्रमे निज
सुखा या, अनुप वात् दिया गया था; घड़े तथा कारखी
मार जात गन थ, मगान् किरीट स्वर्णिन हा सुजा या और
क श्वय भी बागेनि बहुत पीडित था ॥ १४५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वास्मीर्चय आदिच्छन्त्य युद्धकाण्डे षष्ठानुष्ठितम् मग ॥ ५१ ॥

इमं प्रचार्य श्रवत्स्नैनिमित्तं आपराधायकं अस्ति वाचकं युद्धकामं तन्मन्त्रं सप्त पुरा हुता ॥ ॥

पष्टितम० मर्ग

अपनी परगनयसे दुखी हुए रावणजी आज्ञासे मोये हुए कुम्भकर्णका जगाया जाना और उसे देखकर वानरोंका भयभीत होना

न प्रविश्य पुरीं लङ्का गमगणभयादित ।
भग्नदपस्तदा राजा यभूज ययितेन्द्रिय ॥ १ ॥

भगवान् श्रीरामन् यागो और भवने पद्धित हा
 राक्षसराय राणा जन लद्दापुरीमें पहुँचा, तब उसका अभिमान
 चूर-चूर हो गया था । उसकी लकी इन्द्रियों ब्ययने
 व्याकुल थी ॥ १ ॥

मातङ्ग इव सिद्धेन गरुडेन च पद्मगा ।

अभिभूतोऽभयद् राजा रायवर्ष महामना ॥ २ ॥

जैने विं गनगब्रह्म और गुरु गिराज तपस्यो पंडित
ए पयति कर बता दे उन्ही प्रकार महामा गुनापटीने
सग योको अभिभूत कर दिया था ॥ २ ॥

महदण्डप्रतीकना विपुषलित्वयसाम् ।

स्मरन् राघवपाणानां शिष्यथ राघवेभ्यः ॥ ३ ॥

भगवन् भगवते वाग्येन ब्रह्मदेवेन ब्रह्म देव पश्य
यः । उतरी दीति वाग्येन ब्रह्म देवः । उतरी वा
परक दधयवक वाग्येन ब्रह्म देवः ॥ ३ ॥

स वरुणमप दिव्यमाधिय परमासनम् ।

विष्णुमाता रक्षानि रायणो याकयनप्रवीण ॥ ४ ॥

एतत् पत्रं पुरः स्मि एव भट्ट विगमनर रेखर

तस्मिन् प्रणिष्टे रजनीचरेष्टे
महारले दानदेवराष्ट्री ।

हरीन् विदाल्यान् मह लक्ष्मणेन

चक्रार राम परमाह्वारे ॥१४॥

देवताओं और दानोंन शुभ मंगली निशानरूप
 रात्रिके लक्ष्मीमें चन्द्र बनेर हस्तमन्त्रि धीरुमे उर
 महासुदके मुनिर वानरुं गरीमे दान निशान ॥ १४ ॥

तस्मिन् प्रभग्ने त्रिदशे दशग्री

सुरासुरा भूतगणा दिशश्च ।

ससागरा मणिमहोदय

तथैव भूम्यनुग प्रहण ॥४६॥

देवराज इन्द्रा गजु राग जग मुदन्ता भाग गय,
तर उरत पणभग विनर रर दन्ता, अमृत, भूत,
गिणै, सुदु, श्रिगिगः बह-बह नग तपा नूवर और
जन्वर द्रणी भी बहन प्रवत हण ॥ १४६ ॥

श. य. ५ १ ९—

इक्ष्वाकुकुलजातेन अनरण्येन यत् पुग ॥ ८ ॥
उत्पत्त्यति हि महशपुरुषो रात्रसाधम ।
यस्त्या सपुत्र सामात्य सयत्न साध्वसारथिम् ॥ ९ ॥
निहिनप्यति सप्रामे त्वा घुराधम दुर्मते ।

‘पुर्वाकालम् इक्ष्वाकुपुत्री राजा अनरण्येन सुते शाप देते
हुए कहा था कि ‘व्याससाधम । कुलप्राप्त । दुर्मते । मरे ही
घाममें एक ऐसा भेष्ट पुरुष उत्पन्न होगा, जो तुझे पुत्र, सञ्जीवनी,
मैना, अश्व और सारथिके सहित समग्रद्वन्द्वमें मार डालेगा ।’
मादूम होता है कि अनरण्येने त्रिहरी और उनेत्र किया था,
यह दशरथपुमार राम वही मनुष्य है ॥ ८ १३ ॥

शस्तेऽह धेदयत्या च यथा सा धर्षिता पुग ॥ १० ॥
नेय सीता महाभाग जाता जनकनन्दिनी ।

‘इसने सिता पूर्वाकालमें मुझ वेदपत्नीने भी शाप दिया
था क्योंकि मैंने उसने साथ बलात्कार किया था । जान
पड़ता है वही यह महाभाग जनकनन्दिनी सीता होकर प्रकट
हुई है ॥ १० ॥

उमा नन्दीश्वरश्चापि रम्भा वरुणकन्यका ॥ ११ ॥
यथोक्तस्तमया प्राप्त न मिथ्या भ्रमिभाषितम् ।

‘वही तप उमा, नन्दीश्वर, रम्भा और वरुण-कन्याने
भी जैसा जैसा कहा था, वैसा ही परिणाम मुझे प्राप्त हुआ
है । ॥ ११ ॥ सच है श्रितियोंकी बात कभी झूठी नहीं होती ॥ ११ ॥
एतदेव ममामग्नय यत्न कर्तुमिहाहय ॥ १२ ॥
राक्षसाश्चापि तिष्ठन्तु श्यामागोपुरभूषणम् ।

‘ये शाप ही मुझपर भय अथवा सकट रूपमें कारण
हुए हैं । इस बातको जानकर जन तुमलोग आये हुए सकट
का छालनेका प्रयत्न करो । राक्षसलोग राजमार्गों तथा गोपुरोंके
शिखरोंपर उतरनी रक्षाके लिये बटे रहें ॥ १२ ॥

स चाप्रतिमगाम्भीर्यो देवदानववर्षहा ॥ १३ ॥
भक्षशापाभिभूतस्तु कुम्भकर्णो विरोध्यताम् ।

‘साथ ही त्रिहरे गाम्भीर्यकी कही तुलना नहीं है, जो
देवताओं और दानवोंका दण्ड दहन करनेवाला है तथा ब्रह्माजीक
‘गाम्भीर्य’ प्राप्त हुई निद्रा जिते सदा अभिभूत किये रहती
है, उस कुम्भकर्णकी भी समाया जाय’ ॥ १३ ॥

* उमाने कैलास पठानेके समय मण्डीन होनेसे राक्षसों
शाप दिया था कि ‘तेरी मृत्यु तूनेके कारण होगी । नन्दीश्वरकी
वाचन-मूर्ति देखकर रात्रा हुआ था श्रमियों उहोंने कहा था—
‘मरे उमान रूप और परान्तकाले ही तेरे कुलका नाश करेगे ।
रामके निनिष्ठ सन्-मूर्तने और बल्लभ-कन्या पुत्रिक-कन्या के निनिष्ठसे
भ्रम-मूर्तने शाप दिया था कि ‘अनिच्छामे सिता तूनेके साथ सम्मान
करनेपर उरी मृत्यु हा आयगी ।

समरे जितमात्मान प्रहस्त च निवृद्धितम् ॥ १४ ॥
ज्ञात्वा रक्षोऽल भीममादिदेश महागल ।
द्वारेषु यत्नः नियता प्रवारश्चाधिवह्यताम् ॥ १५ ॥
निद्राप्रशसमायिष्ट कुम्भकर्णो विरोध्यताम् ।

‘प्रहस्त मारा गया और मैं भी समग्रद्वन्द्वमें परास्त हो
गया’ ऐसा जानकर महागली रात्रने राक्षसोंकी भयानक
सेनाको आदेश दिया कि ‘तुमलोग नगरके दरवाजोंपर रह
कर उनकी रक्षाके लिये यत्न करो । परकोर्गेपर भी चढ़
जाओ और निद्राके अधीन हुए कुम्भकर्णका बला दो’ ॥
सुख स्वपिति निश्चित कामपहतचेतन ॥ १६ ॥
नन सम ददाणी च मासान् न्यपिति राक्षस ।
मन्त्र कृत्वा प्रसुप्तोऽयमितस्तु नमरेऽहनि ॥ १७ ॥

‘(मैं तो दुखी, चिन्तित और अगुणराम होकर
जाग रहा हूँ और) वह राक्षस कामभोगसे अचेत हो चढ़ी
निश्चितताके साथ सुखपूर्वक सो रहा है । वह कभी नौ, कभी
साल, कभी दश और कभी आठ मासतक सोता रहता है ।
वह आकरने नौ महीने पहले मुझमें छल्ला करण छोड़ा था ॥

त तु योधयत क्षिप्र कुम्भकर्ण महागलम् ।
स हि सत्ये महाबाहु ककुद् सर्वरक्षसाम् ।
धानरान् राजपुत्री च क्षिप्रमेव हनिष्यति ॥ १८ ॥

‘अतः तुमलोग महाबली कुम्भकर्णका शीघ्र बला दो ।
महाबाहु कुम्भकर्ण सभी राक्षसोंमें भय है । वह युद्धस्थलमें
बानरों और उन राजकुमारोंकी भी शीघ्र ही मार डालेगा ॥ १८ ॥
एष केतुः पर सत्ये मृत्पौ वै सर्वरक्षसाम् ।
कुम्भकर्ण सदा शेते मूढो भ्राम्यसुखे रत ॥ १९ ॥

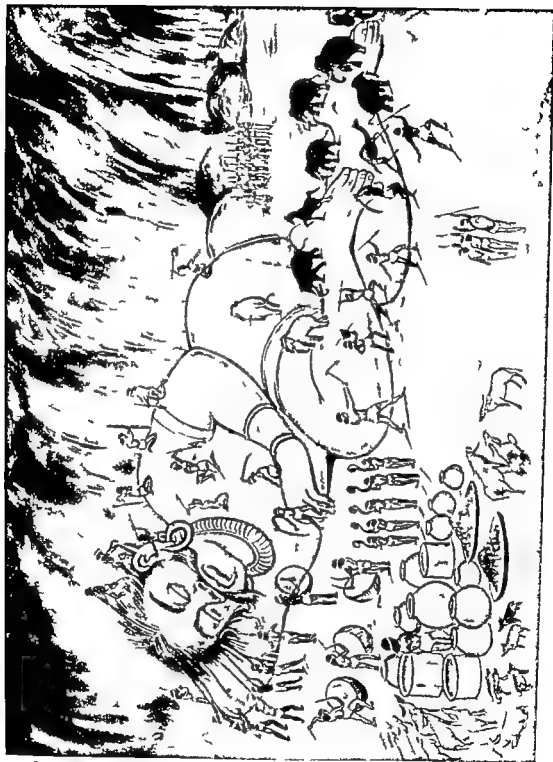
‘समस्त राक्षसोंमें प्रधान वह कुम्भकर्ण समस्तभूमिमें हमारे
लिये सर्वोत्तम विजय-वैजयन्तीके समान है, किन्तु खेदकी
बात है कि वह मूढ़ भ्राम्यसुखमें आसन होकर सदा सोता
रहता है ॥ १९ ॥

रामेणभिनिरस्तस्य सप्रामेऽस्मिन् सुदाहणे ।
भविष्यति न मे शोक कुम्भकर्णो विरोधिते ॥ २० ॥

‘यदि कुम्भकर्णका अन्ना दिया जाय तो इस मयकर
उग्राममें मुझ रामसे पराजित होनेका शोक नहीं होगा ॥ २० ॥
किं परिष्याम्यह तेन शत्रुतुल्यवलेन हि ।
इहयो व्यसने घोरे यो न साहाय्य कथ्यते ॥ २१ ॥

‘यदि इस घोर सकटक समय में कुम्भकर्ण मेरी सहायता
करनेमें समर्थ नहीं हो रहा है तो इन्द्रके तुल्य बलशाली होने
पर भी उससे मेरा प्रयोजन ही क्या है—मैं उने लड़कर क्या
करूँगा ?’ ॥ २१ ॥

ते तु तद् घचन श्रुत्वा रामसेद्रस्य राक्षसा ।
अम्बु परमसम्भ्रान्ता कुम्भकर्णनियेशनम् ॥ २२ ॥



राक्षसोंद्वारा सोये हुए कुम्भकर्णको जगन्नेका प्रयत्न

रक्षन्वाच यन्माद्यै व दन मुनिर सन्त राक्ष बद्धी
 वराग्ये पद्मर कुम्भकर्णै पर गते ॥ २२ ॥

ते रायणसमाग्नि मासशोणिभोनन् ।

गन्ध माल्य महद्भक्ष्यमादाय महसा ययुः ॥ २३ ॥

रत्न-मण्डपं मन्त्रं करिष्येति वे रत्नं रावन्ती अश्व
पद्मं गच्छः मन्त्रं तदा सावित्री-पुनः कुरुते सन्मयी विद्
सत्यं कुम्भकारं पद्मं गच्छ ॥ २५ ॥

ता प्रसिद्ध महाद्वारा सरतो योजनायताम् ।

कुम्भकपगुहा रम्या पुष्पाद्यवग्राहिर्नाम् ॥ २३ ॥

कुम्भफणस्य निधामादस्थिता महायला ।

प्रतिष्ठमाना रुच्छ्रेण यक्षाद्भवविविगुहाम् ॥ २० ॥

कुम्भकण एक कुम्भमें रहता था, वह बड़ा ही सुन्दर थी और वहाँ वातनरामों की सेवा सुगन्ध छोड़ते रहता था। उसकी लड़ाई-बैधवा सब आते एक-एक बन्नीकी या तथा उसका दरवाना बहुत बड़ा था। उसने प्रवृत्ति करत ही व महा-श्री यक्ष कुम्भकणकी सौख्य बने लहलहा पाठमें टक पिप गप। तिर वषा कनिन्दने पैर बनात हुए व दूए मरण करत उस गुच्छर मरत हुने ॥ २४ ॥

ता प्रविश्य गुहा रम्या रत्नकाञ्चनकुट्टिमाम् ।

दहगुर्नैर्ज्ञतयात्रा दायान भीमविप्रमम् ॥ २६ ॥

उस पुछकी फाँसे रन और मुक्कां जड़ गये निम्ने
 टाँकी रत्नाना बहून दान गयी था। उसर भातर प्रवेश
 करत उन भद्र राक्षसोंने दस्ता, भगानक पयारना कुम्भकण
 का रग है ॥ २६ ॥

तनुत प्रित सुप्त प्रिर्णमिप्र पयठम्।

शुम्भकर्णं महानिद्रं जमेतां प्रत्यबोधयन् ॥ २७ ॥

मन्त्रिणानि निमग्नं हुआ कुम्भकप विवर हुए परितः
मग्नं हितान्त्याने मकर मुष्टि ल रहा था अन्तः व
धर एवम् एकत्र ह। उने जानेका वा बने ला ॥ २५ ॥

कथ्यलोमाञ्चितनन् भवसन्तमित्र पद्मगम् ।

भामयन्त्र विनिश्चयस्य दायान भामयिप्रमन् ॥ २८ ॥

ત્રસકા સ્વયં દરર કાર ઠાને હુદ રત્નવર્ણને મળ્યા
 યા। વાં સરિ સમન સંસ લગા ઓર અને નિ જર્મને
 સ્વેશ વચ્ચને દાન દેતા યા। વર્ણ સ્વ હુમા વાં રત્ન
 મનદ રત્નવર્ણને સમપ્ર દા ॥ ૨૮ ॥

भीमनासायुट त तु पातालमिदुलाननम् ।

गपने न्यस्तमशङ्क मेक्षेऽधिरगधिनम् ॥ २९ ॥

जमीन नमस्कार दानों दिए हैं और भक्ति से भक्ति
 का गन्तव्य मिलाने का। उसने अन्तर्गत और अन्तर्गत का
 रक्षा का और उसका दोन तक और जहाँ-जहाँ सत्य प्रकाश
 फैले थे ॥ २० ॥

काञ्चनाक्षनडाक्ष क्षिरटिनाक्षरगमम् ।

दहगुनै श्रतयात्र कुम्भकणमगिन्म ॥ ३० ॥

[illegible]

ततश्चकुम्हानान् शुम्भकणम्य नाग्रत ।

भूताना मेरुमक्षरा राशि परमतरंगम् ॥ ३१ ॥

तदन्तरं जनमहास्य निगन्तं कुमह्यं सन्ने
प्रतिपदं मह्यं वैभवं नरकं दि, न तमे अयनं वृत्ति
प्रानं कनेव थ ॥ २१ ॥

मृगाग महिषाग च रणहाग च सवयान् ।

चक्रनेत्रतडादुला रादिनक्षत्रा चान्तम् ॥ ३७ ॥

उन भद्र राक्षसों को मृतों में और सुभयों में
खड़ा कर दिए तथा अन्नही भी नष्ट करने एवम
कर दो ॥ १२ ॥

तत्र शोणितकुम्भाश्च मामानि विविधानि च।

पुरस्तात् कुम्भकणस्य ऋषिदशशत्रय ॥ ३३ ॥

इतना ही नहीं, उन सन्तों ने बुद्धिपूक और मन से भरे हुए बहुततर घड़े और नाना प्रकारक मत्स्य आदि दिये ॥ ३२ ॥

लिङ्गिषुष्य परार्थ्येन यन्दनन परतरम् ।

दिव्यराश्यामयामासुमाल्यां धंध गतिभिः ॥ ३५ ॥

धूपगधाक्ष मरुतुन्नुष्टुबुध पातरम् ।

जल्दा इव ज्ञानदुषातुधनास्तनस्तन ॥ ३ ॥

[illegible]

शङ्काय पूरयानासु शङ्कादमदनाश्रयान् ।

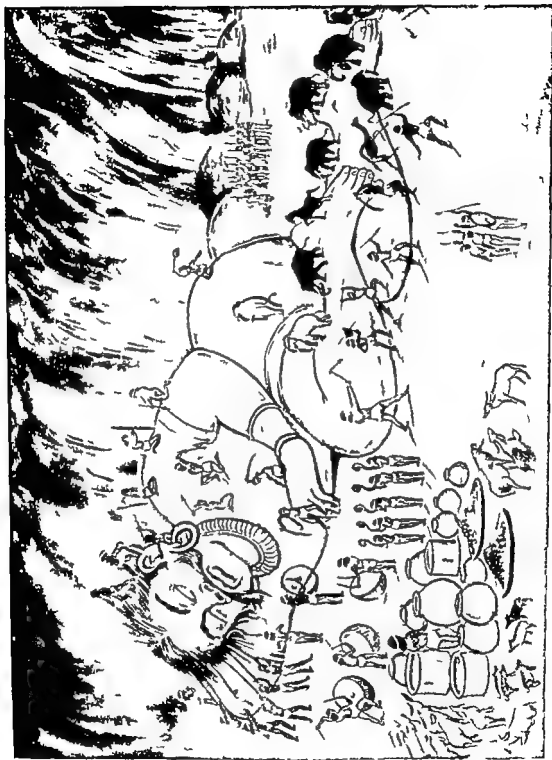
तुनुल् युगयषारि विन्दुद्यन्मयिता ॥ ३६ ॥

(इति श्री महाभारतस्य अष्टमोऽध्यायः समाप्तः)

नेदुरास्फाटयानामुधिभिपुम्न निगायग ।

कुम्भकप्रतिपाद्यं चक्रम् त्रिंशत् स्तम्भम् ॥ २५ ॥

य मित्र मित्रा वान ता ह्येन भौ कुमन्त-
मित्र भौरे वाक्त्रान्ते । तेन कुमन्त । दाने
य मि बह् दार दाने वाक्त्रान्ते ॥ १७ ।



राक्षसोंद्वारा सोये हुए कुम्भकर्णको जगनेका प्रयत्न

राक्षसराज रावणभी यह बात सुनकर समस्त राक्षस वही
परराष्ट्रमें पड़कर कुम्भकर्णक घर गये ॥ २२ ॥

ते रावणसमादिषु मासशोणितभोजना ।
गन्धमाल्यमहद्रक्ष्यमादाय सहसा ययुः ॥ २३ ॥

रत्न-मासना भोजन करनेवाले वे राक्षस रावणभी आशा
पाकर गन्ध, माल्य तथा खाने पीनेकी बहुत सी सामग्री लिये
सहसा कुम्भकर्णने पास गये ॥ २३ ॥

ता प्रदिश्य महाद्वारां सर्पतो योजनायताम् ।
कुम्भकर्णगुहा रम्या पुष्पगन्धप्राहिनीम् ॥ २४ ॥
कुम्भकर्णस्य निश्वासादबधृता महाबला ।
प्रतिष्ठमाना कृच्छ्रेण यदात्तप्रविशिशुर्गुहाम् ॥ २५ ॥

कुम्भकर्ण एक गुफामें रहता था, जो बड़ी ही सुन्दर थी
और वहाँने वातावरणमें फूलोंकी सुगन्ध छापी रहती थी ।
उसकी लगाई-बोड़ाई सब आसरे एक-एक योजनकी थी
तथा उसका दरवाजा बहुत बड़ा था । उसमें प्रवेश करते ही
वे महाबली राक्षस कुम्भकर्णकी सोँहने वेगसे सड़ा पीछेने
ठेल दिये गये । फिर बड़ी कठिनाईसे पैर जमाते हुए वे पूरा
प्रयत्न करके उन गुफामें भीतर घुसे ॥ २४ २५ ॥

ता प्रदिश्य गुहा रम्या रत्नपञ्चनकुट्टिमाम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतय्याद्या शयानभीमजिक्रमम् ॥ २६ ॥

उस गुफाकी चर्चमें रत्न और सुवर्ण जड़े गये थे, जिससे
उसकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी । उसके भीतर प्रवेश
करके उन श्रेष्ठ राक्षसोंने देखा, मयानज पराक्रमी कुम्भकर्ण
सो रहा है ॥ २६ ॥

ते तु त विवृतस्तु विषीर्णमित्र पर्यतम् ।
कुम्भकर्णं महानिद्रां स्मृता प्रत्यबोधयन् ॥ २७ ॥

महानिद्रामें निमग्न हुआ कुम्भकर्ण विलंबे हुए पर्यतने
समाप्त विह्वलतास्थामें सोकर खुरीटे ले रहा था, अतः व
सब राक्षस एकत्र हो उसे जगानेकी चेष्टा करने लगे ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वलोमाञ्चिततनु श्वसन्तमित्र पन्नगम् ।
भ्रामयन्त विनिग्यासैः शयानभीमजिक्रमम् ॥ २८ ॥

उसका साफ शरीर लम्बे उठी हुई रोमानलियोंमें भरा
था । वह सर्पने समान साँस खाता और अपने निश्वासेसे
छोगोंको चक्करमें ला देता था । वहाँ चेष्टा हुआ वह राक्षस
मयानज बल-जिक्रममें कण्ठज था ॥ २८ ॥

भीमनासापुटं तु पातात्रिपुलाननम् ।
शयने न्यस्तासराह मेघोदधिरगन्धनम् ॥ २९ ॥

उसकी नासिकाके दोनों छिद्र बड़े भयंकर थे । मुँह पातात्र-
प समान विशाल था । उसने अपना साफ शरीर गन्धपात्र जाल
रक्ता था और उसकी देहमें रक्त और खसीरी-सी गन्ध प्रकट
होती थी ॥ २९ ॥

काञ्चनाङ्गदन्दाहं किरिटिनार्कघर्वसम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतय्याद्या कुम्भकर्णमर्दिदम् ॥ ३० ॥

उसकी मुखाञ्जमें शङ्खचन्द्र गोमय पाते थे । मलकपर
तेजस्वी किरिट घाटन करनेसे कारण वह सूर्यदेवसे समान
प्रभापुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था । इस रूपमें निगानरभेष्ट
शत्रुदमन कुम्भकर्णना उन राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥

ततश्चकुर्महात्मान कुम्भकर्णस्य चाग्रतः ।
भूताना मेघसकाशा राशि परमतर्पणम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर उन महाजय निशानचरेन कुम्भकर्णने सामने
प्राणियोंन मेघपरत जैसे ऋ लग्न दिये, जो उसे अत्यन्त तृप्ति
प्रदान करनेवाला थे ॥ ३१ ॥

सृगाणा महिषाणा च वराहाणा च सचयान् ।
चक्रुर्नैर्ऋतय्याद्या राशिमन्त्रस्य चाद्भुतम् ॥ ३२ ॥

उन श्रेष्ठ राक्षसोंने वहाँ सुगौ, भैंसों और सूअरोंने समूह
खड़े कर दिये तथा अन्तर भी अद्भुत राशि एकत्र
कर दी ॥ ३२ ॥

तत शोणितकुम्भाश्च मासानि विनिधानि च ।
पुरस्तात् कुम्भकर्णस्य नमुस्त्रिदशशत्रवः ॥ ३३ ॥

इतना ही नहीं, उन देवद्रवियोंने कुम्भकर्णक आगे रक्त
से भरे हुए बहुतेरे बड़े और नाना प्रकारके मांस भी रख
दिये ॥ ३३ ॥

ललिपुश्च परार्थेन चन्दनेन परतपम् ।
दिव्यैराश्वासयामासुमासुमाल्यैर्गन्धैश्च गन्धिभिः ॥ ३४ ॥

धूपगन्धाश्च सस्रजुस्तुपुष्पश्च परतपम् ।
जलद्रा इव चानेदुयातुधानास्ततस्तनः ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने गन्धुक्तापी कुम्भकर्णने शरीरमें बहुमूल्य
चन्दनका लप रिया । नित्य सुगन्धित पुष्प और चन्दन
सुगंध । धूपोंकी सुगन्ध फैलायी । उस गन्धमन वीरकी स्थिति
की तथा जहाँ-तहाँ पड़ हुए राक्षस भेद्योस समान गम्भीर च्यति
से गर्जना करने लगे ॥ ३४ ३५ ॥

शङ्खाश्च पुरयामासु दशद्वन्द्वसहस्राग्रभाज् ।
तमुल सुगणधापि त्रिनेदुधाय्यमपिता ॥ ३६ ॥

(इतनेपर भी जब कुम्भकर्ण नहीं उठा तब) आगेने
भरे हुए राक्षस चन्द्रमासे समान "उन राग" बहुतसे गान
फैरने तथा एक साथ तुमुल च्यतिये गन्ना करने लगे ॥ ३६ ॥

नेदुरास्रोष्टयामासुश्चित्रिपुष्पे निशाग्रम् ।
कुम्भकर्णविषोधायां चमुस्त त्रिपुत्रं ध्वजम् ॥ ३७ ॥

वे निशागर मिहनाद करने, ताँ खीरने और कुम्भकर्णने
विभिन्न अङ्गोंको शरस्रोने लगे । उन्होंने कुम्भकर्णको आगेने
च लिये बड़े और-जलते गम्भीर च्यति की ॥ ३७ ॥

सदाहमेरीपणपणनाद
सास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादम् ।

विशो घ्रगन्तखिदिव किरन्त

श्रुत्वा निहगाः सहसा निपेतु ॥ ३८ ॥

शङ्ख, भेरी और पणपण बजने लगे । ताल ठोकने, गजने और सिंहनादका शब्द सब ओर गूँज उठा । वह तुमुल नाद सुनकर पक्षी समस्त दिशाओंकी ओर मागने और आकाशमें उड़ने लगे । उड़ते उड़ते वे सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥

यदा भृश तैनिनदैर्महात्मा

त कुम्भकर्णो वुवुधे प्रसुप्त ।

ततो भुगुण्डीमुसलानि सर्वे

रक्षोगणास्ते जगृहुर्गदाश्च ॥ ३९ ॥

जब उस महान् कोलाहलसे भी खोया हुआ गिरालायण कुम्भकर्ण नहीं जग सना; तब उन समस्त राक्षसोंने अपने हाथोंमें भुगुण्डी, मुसल और गदाएँ ले लीं ॥ ३९ ॥

त शैलभृङ्गैर्मुसलैर्गदाभि

र्वक्ष स्थले मुहुरमुपिभिध ।

मुखप्रसुप्तं मुनि कुम्भकर्ण

रक्षास्युदप्राणि तदा निजघ्नु ॥ ४० ॥

कुम्भकर्ण भूतलपर ही मुखसे खो रहा था । उसी अवस्था में उन प्रचण्ड राक्षसोंने उस समय उसकी छातीपर पर्वतशिखरों, मुसलों, गदाओं, भृङ्गों और मुकरोंसे मारना आरम्भ किया ॥ ४० ॥

तस्य निभ्यासनातेन कुम्भकर्णस्य रक्षसा ।

राक्षसा कुम्भकर्णस्य स्थातु दोकुन चाप्रत ॥ ४१ ॥

किंतु राक्षस कुम्भकर्णकी निभ्यासनापुष्टि प्रेरित हो वे सब निशाचर उसके आगे ठहर नहीं पाते थे ॥ ४१ ॥

ततः परिहिता गाढ राक्षसा भीमत्रिकमा ।

मृदङ्गपणयान् भेरीः शङ्खकुम्भगणालया ॥ ४२ ॥

दश राक्षससाहस्र युगपत्पयवारयत् ।

नीलाञ्जनचयाकार ते तु त प्रत्यवोधयन् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर अपन यशोंको खूब कसकर बोंध लेनेके पश्चात् वे भयानक पराक्रमी राक्षस जिनकी संख्या लगभग दस हजार थी; एक ही समय कुम्भकर्णको घेरकर पड़े हो गये और काले घोषलेके देरने समान पड़े हुए उस निशाचरको अगाने का प्रयत्न करने लगे । उन सबने एक साथ मृदङ्ग, पणपण, भरी, शङ्ख और कुम्भ (घँस) बजाने आरम्भ किये ४२ ४३ अभिप्रान्तो नदन्तश्च न च समुद्युधे तदा ।

यदा चैन न शेकुस्ते प्रतिबोधयितु तदा ॥ ४४ ॥

ततो गुरतः यत्न दारुण समुपावमन् ।

इस तरह वे राक्षस नाच बजाते और गजने रहे तो भी

कुम्भकर्णकी निद्रा नहीं टूटी । जब वे उसे किसी तरह जगान सके; तब उन्होंने पहलसे भी भारी प्रयत्न आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

यथानुष्ठानं खरान् नागाञ्जघ्नुर्दण्डकाङ्कुरौ ॥ ४५ ॥

भेरीशङ्खसुदृढाश्च सर्वप्राणैर्वादयन् ।

निजघ्नुव्यास्य गाघाणि महाकाष्ठकटकैः ॥ ४६ ॥

मुहुरैर्मुसलैश्चापि सर्वप्राणसमुद्यतैः ।

तेन नदिन महता लङ्का सर्वा प्रपूरिता ।

सपर्यतयना सया सोऽपि नैव प्रबुध्यते ॥ ४७ ॥

वे घोड़ों, जैनों, गदाहों और हाथियोंको डकैतों, बोगैतों तथा अङ्कुरोंसे मार मारकर उसके ऊपर डेलने लगे । छारी गति लगाकर भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख बजाने लगे तथा पूरा बल व्यापकर उठाये गये बड़े-बड़े काष्ठोंक समूहों, भृङ्गों और घुसलोंसे भी उसके अङ्गोंपर प्रहार करने लगे । उस महान् कोलाहलसे परतों और बनोंसहित छारी लङ्का गूँज उठी; परंतु कुम्भकर्ण नहीं जागा, नहीं जागा ॥ ४५-४७ ॥

ततो भेरीसहस्रं तु युगपत् समहन्वत ।

मृष्टकाञ्चनकोणानामसक्ताना समन्तत ॥ ४८ ॥

तदनन्तर सब ओर सहस्रों घँसि एक साथ बजाये जाने लगे । वे सब-के-सब लगातार बजते रहे । उन्हें बजानेके लिये जो डके थे, वे सुन्दर घुमर्णके बने हुए थे ॥ ४८ ॥

परमप्यनिनिद्रस्तु यदा नैव प्रबुध्यते ।

शापस्य यदामापन्नस्तत् कुडा निशाचरा ॥ ४९ ॥

इतनेपर भी शापके अधीन हुआ वह अतिशय निद्रालु निशाचर नहीं जागा । इसने वहाँ आये हुए सब राक्षसोंको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४९ ॥

ततः कोपसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमा ।

तद् रक्षो बोधयिष्यन्तश्चमुरत्ये पराक्रमम् ॥ ५० ॥

फिर वे रोषसे भरे हुए सभी भयानक पराक्रमी निशाचर उस राक्षसकी जगानेके लिये पराक्रम करने लगे ॥ ५० ॥

अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चकुमहाखनम् ।

वेदानन्ये प्रलुप्तु कर्णानन्ये द्रान्ति च ॥ ५१ ॥

कोई घँसि बजाने लगे, कोई महान् कोलाहल करने लगे;

कोई कुम्भकर्णके सिरेके बाल नोचने लगे और कोई दाँतोंसे उसके कान काटने लगे ॥ ५१ ॥

उदङ्मुम्भशतानन्ये समसिञ्चन्त फणयोः ।

न कुम्भकर्ण पस्पन्दे महानिद्रावशा गत ॥ ५२ ॥

दूरे राक्षसोंने उसके दोनों कानोंमें ली पड़े पानी डाल दिये तो भी महानिद्राके वशमें पड़ा हुआ कुम्भकर्ण उससे-मग्न नहीं हुआ ॥ ५२ ॥

अन्ये च यत्निस्तस्य कूटमुद्गरपाणय ।
मूर्ध्नि यक्षसि गात्रेषु पातयन् कूटमुद्गरपाण ॥ ५३ ॥
दूसरे बलवान् राक्षस कौटदार मुद्गर हाथमें लेकर
उन्हें उसके मस्तक, छाती तथा अन्य अङ्गोंपर गिराने
लगे ॥ ५३ ॥

रज्जुबन्धनपद्माभिः शतज्जीभिश्च सर्वतः ।
वध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षस ॥ ५४ ॥
तत्पश्चात् रस्त्रियोंसे बँधी हुई शतजिह्वोंद्वारा उसपर सब
ओरसे चोटें पड़ने लगीं । फिर भी उस महाकाय राक्षसकी
नींद नहीं टूटी ॥ ५४ ॥

घाटणाना सहस्र च शरीरेऽस्य प्रधावितम् ।
कुम्भकणस्तदा युद्ध्या स्वर्शं परमबुध्यत ॥ ५५ ॥
हथके बाद उसने शरीरपर हजारों हाथी दौड़ाये गये ।
तब उसे कुछ स्वर्श मालूम हुआ और वह जाग उठा ॥ ५५ ॥

स पात्यमानैर्गिरिभृद्बह्वक्षै
रचिन्त्यस्तान् निपुलान् प्रहारान् ।
निद्राक्षयात् धुक्पपीडितश्च

त्रिजम्भमाण सहस्रोत्पपात ॥ ५६ ॥
यद्यपि उसके ऊपर पर्वतशिखर और बृक्ष गिराये जाते
थे, तथापि उसने उन मारी प्रहारोंको कुछ भी नहीं गिना ।
हाथियोंके स्पर्शसे जब उसकी नींद टूटी, तब वह भूलके भयसे
पीडित हो अँगड़ाई लेता हुआ वहाँ उठकर खड़ा हो
गया ॥ ५६ ॥

स नागभोगाचलभृद्भक्त्यौ
विक्षिप्य बाहू जितयज्ञसारौ ।
विवृत्य घफत्र बद्धवामुक्ताभ

निशाचरोऽसौ रिक्त जङ्गमे ॥ ५७ ॥
उसकी दोनों भुजाएँ नागोंके शरीर और पर्वतशिखरोंके
समान घटती थीं । उन्होंने यज्ञही वस्तुओंको पराजित कर
दिया था । उन दोनों बाँहों और मुँहको पैलकर जब वह
निशाचर जगहों लेने लगा, उस समय उसका मुख बद्धबालन-
के समान विकराल जान पड़ता था ॥ ५७ ॥

तस्य जाजम्भमाणस्य घफत्र पातालसन्निभम् ।
दृष्टो मेरुदृष्टाग्रे दियाकर ह्योदित ॥ ५८ ॥
बम्हारें लेते समय कुम्भकणका पाताल-जैसा मुख मेरु
पर्वतके शिखरपर उगे हुए सूर्यके समान दिखायी देता
था ॥ ५८ ॥

स जृम्भमाणोऽतिबल प्रयुद्धस्तु निशाचर ।
निश्वासश्चास्य सज्जे पवतादिव मादत ॥ ५९ ॥
इस तरह बम्हारें लेता हुआ वह अत्यन्त बलशाली

निशाचर अब जगा, तब उसके मुखसे जो सँस निकलती थी,
वह पर्यंत से चली हुई वायुके समान प्रतीत होती थी ॥ ५९ ॥
रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् यभो ।
युगान्ते सर्वभूतानि बालस्येन दिधक्षत ॥ ६० ॥

नींदसे उठे हुए कुम्भकर्णका वह रूप प्रत्येकालमें समस्त
प्राणियोंके सहारपी इच्छा रखनेवाले बालके समान जान
पड़ता था ॥ ६० ॥

तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशचर्चसी ।
दृष्टाते मृदानेत्रे दीप्ताग्नि महाग्रहौ ॥ ६१ ॥

उसकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें प्रज्वलित अग्नि और
विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं । वे ऐसी लगती
थीं मानो दो महान् ग्रह प्रकाशित हो रहे हों ॥ ६१ ॥

ततस्तदृशयन् स्वार् भूष्याश्च त्रिभिधान् बहून् ।
वराहान् महिषाश्चैव यभश्च स महाबल ॥ ६२ ॥
तदनन्तर राक्षसोंने वहाँ जो अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी
बस्तुएँ प्रचुर मात्रामें रखी यथी थीं, वे सब-की-सब कुम्भरगको
दिखायीं । वह महाबली राक्षस बात-की-बातमें बहुतेरे भँहों
और सूअरोंको चट कर गया ॥ ६२ ॥

आदद् धुमुक्षितो मास शोणित वृषितोऽपिबत् ।
मेद कुम्भाश्च मयाश्च पपी शक्ररिपुस्तदा ॥ ६३ ॥

उसे बड़ी भूख लगती थी; अतः उसने भरपेट मास
खाया और प्यास बुझानेके लिये रक्त पान किया । तदनन्तर
उस इन्द्रोद्गी निशाचरने चर्चसी भरे हुए निम्नने ही घड़े चढ़
कर दिये और वह कद घड़े मदिग भी पी गया ॥ ६३ ॥

ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुनिशाचरा ।
दिशोभिश्च प्रणम्येन सचत पर्यवारयन् ॥ ६४ ॥

तब उसे तृप्त जानकर राक्षस उछल-उछलकर उसने
सामने आये और उसे चिर छुका प्रणाम करके उसके चारों
ओर खड़े हो गये ॥ ६४ ॥

निद्रानिशदनेत्रस्तु कलुषीकृतलोचन ।
चारयन् सर्वतो दृष्टि तान् दर्श निशाचरान् ॥ ६५ ॥

उस समय उसने नेत्र निद्राके कारण अग्रछन्न—कुछ
कुछ खुले हुए थे और मस्तिष्क जान पड़ते थे । उसने सब
ओर दृष्टि डालकर वहाँ खड़े हुए निशाचरोंको देखा ॥ ६५ ॥

स सजान् सान्त्वयामास नैर्जतान् नैर्जतबभ ।
योधनाद् विसितश्चापि राक्षसानिदममरीत् ॥ ६६ ॥

निशाचरोंमें अष्ट कुम्भकर्णने उन सब राक्षसोंको
सान्त्वना दी और अपने जगह अपनेने कारण बिसिन हो
ऊनसे इस प्रकार पूछा— ॥ ६६ ॥

विमथमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिपोषित ।

सदाहमेवीपणवप्रणाद

सारफोटितश्चेत्सिंहनादम् ।

दिशो द्रवन्तस्त्रिदिव किरन्त

श्रुत्वा विहगाः सहसा निपेतु ॥ ३८ ॥

गङ्गा, मेरी और पणव बजने लगे । ताल ठोंकने, गर्जने और सिंहनादका शब्द सब ओर गूँज उठा । वह द्रुमल नाद सुनकर पक्षी समस्त दिशाओंकी ओर भागने और आकाशमें उड़ने लगे । उड़ते-उड़ते वे सदसा पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥

यदा भृश तैनिनदैर्महात्मा

न कुम्भकर्णो ध्रुवध्रु प्रसुप्त ।

ततो ध्रुवुष्ठीमुसलानि सर्वे

रक्षोराणास्ते जगद्भुगदाश्च ॥ ३९ ॥

जब उस महान् कोलाहलसे भी सोया हुआ निशाचरघाय कुम्भकर्ण नहीं जाग सका, तब उन समस्त राक्षसोंने अपने हाथोंमें ध्रुवुष्ठी, मुसल और गदाएँ ले लीं ॥ ३९ ॥

त शैलभृद्भैरुमुसलैर्गदाभि

घंक्ष स्थले मुदरमुष्टिभिश्च ।

ध्रुवप्रसुप्त भुवि कुम्भकर्ण

रक्षास्युदप्राणि तदा निजघ्नुः ॥ ४० ॥

कुम्भकर्ण भूतलपर ही मुसलसे घेर रहा था । उसी अवस्था में उन प्रचण्ड राक्षसोंने उस समय उसकी छातीपर पर्वतशिखरों, मुसलों, गदामों, मुद्गरों और मुक्करोत्ते भागना आरम्भ किया ॥ ४० ॥

तस्य निध्वासघातेन कुम्भकर्णस्य रक्षस ।

राक्षसा कुम्भकर्णस्य स्यात् शोकुन चाग्रतः ॥ ४१ ॥

किन्तु राक्षस कुम्भकर्णकी निश्वास-यायुसे प्रेरित हो वे सब निशाचर उसने आगे ठहर नहीं पाते थे ॥ ४१ ॥

तत परिहिता गाढ राक्षसा भीमत्रिकमा ।

मृदङ्गपणवाश्च मेरी शङ्खकुम्भगणास्तथा ॥ ४२ ॥

दश राक्षससाहस्र युगपत्पयनारयत् ।

नीलाञ्जनचयाकार ते तु त प्रत्ययोधयन् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर अपने यत्नोंको खूब बरकर बाँध लेनेके पश्चात् वे भयानक पराक्रमी राक्षस त्रिकरी गल्लगलमा दस हजार भी, एक ही समय कुम्भकर्णको धरकर खड़े हो गये और फाले कोपलेके देरके समान पड़े हुए उस निशाचरको जगने का प्रयत्न करने लगे । उन उसने एक साथ मृदङ्ग, पणव, मेरी, शङ्ख और कुम्भ (घण्टी) बजाने आरम्भ किये ४२ ४३ अभिप्रान्तो नदन्तश्च न च सम्मुमुचे तदा ।

यदा चैन न शोकुस्ते प्रतिबोधयितु तदा ॥ ४४ ॥

ततो गुह्यतर यत्न दाहण समुपागमन् ।

एष वरर न राक्षस नाज बजते और गर्जते रहे तो भी

कुम्भकर्णकी निद्रा नहीं टूटी । जब वे उसे किसी तरह जगा न सके, तब उन्होंने पहलेसे भी भारी प्रयत्न आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

अध्वानुध्वान् सपान् नागाञ्जघ्नुर्दण्डकाङ्कुरौ ॥ ४५ ॥

मेरीशङ्खमृदङ्गाश्च सर्वप्राणैरवादयन् ।

निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटकरै ॥ ४६ ॥

मुद्गरैर्मुसलैश्चापि सर्वप्राणसमुद्यतै ।

तेन नादेन महता लङ्का सर्वा प्रपूरिता ।

सर्पतवनया सर्वा सोऽपि नैव प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥

वे घोड़ों, ऊँटों, गदहों और हाथियोंको बड़ों, कीर्तों तथा भङ्गुओंसे मार-मारकर उसने ऊपर टेकने लगे । सारी कति लगाकर मेरी, मृदङ्ग और शङ्ख बजाने लगे तथा पूरा बल लगाकर उठाये गये बड़े-बड़े काष्ठोंने समूहों, मुद्गरों और मुसलोंसे भी उसके अङ्गोंपर प्रहार करने लगे । उस महान् कोलाहलसे परतों और बनोंसहित सारी लङ्का गूँब उठी, परन्तु कुम्भकर्ण नहीं जागा, नहीं जागा ॥ ४५-४७ ॥

ततो मेरीसहस्र तु युगपत् समहयत् ।

मृष्टफाञ्चनकोणानामसत्त्वाना समन्ततः ॥ ४८ ॥

तदनन्तर सब ओर सहस्रों घंटी एक साथ बजाने लगे । वे सर-के-सर लगातार बजते रहे । उन्हें बजानेके लिये जो बड़े थे, वे सुन्दर सुवर्ण बने हुए थे ॥ ४८ ॥

एवमप्यतिनिद्रस्तु यदा नैव प्रमुच्यते ।

शापस्य वशमापन्नस्तत् क्रुद्धा निशाचरा ॥ ४९ ॥

इतनेपर भी शापने अधीन हुआ वह अतिशय निद्राल निशाचर नहीं जागा । इसने वहाँ आये हुए सब राक्षसोंको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४९ ॥

तत कोपसमाविष्टा सर्वे भीमपराक्रमा ।

तद् रक्षो बोधयिष्यन्तश्चक्रुन्त्ये पराक्रमम् ॥ ५० ॥

क्रि वे रोपते भरे हुए सभी भयानक पराक्रमी निशाचर उस राक्षसको जगानेके लिये पराक्रम करने लगे ॥ ५० ॥

अन्ये मेरी समाजघ्नुरन्ये चक्रुमहात्पनम् ।

वैशानन्ये प्रलुपु कर्णान्ये दशान्ति च ॥ ५१ ॥

कोई घंटी बजाने लगा, कोई महान् कोलाहल करने लगे, कोई कुम्भकर्णोंके सिरके बाल नोचने लगे और कोई दौंतीसे उसके कान काटने लगे ॥ ५१ ॥

उद्धुम्भशतानन्ये समस्तश्चन्त कणयो ।

न कुम्भकर्ण पस्पन्दे महातिद्रावश गत ॥ ५२ ॥

दूरे राक्षसोंने उसके दोनों बानोंमें सी पड़े पानी डाल दिय तो भी महानिद्राने वशमें पड़ा हुआ कुम्भकर्ण टप-से-मघ नहीं हुआ ॥ ५२ ॥

अन्ये च यलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणय ।
मूर्ध्नि वक्षसि गात्रेषु पातयन् कूटमुद्गरान् ॥ ५३ ॥

दूरे यवान् राक्षस कौटदार मुद्गर शयमै लेकर
उन्हें उठने मस्तक, छाती तथा अन्य अङ्गोंपर गिराने
ला ॥ ५३ ॥

रज्जुबन्धनयन्त्राभि शतघ्नीभिश्च सर्जत ।
धध्यमानो महाकायो न प्राप्नुष्यत राक्षस ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् रस्तिर्योते वैधी हुई शतभिर्गोद्वारा उभरकर सब
ओरसे चोटें पड़ने लगीं । फिर भी उस महाकाय राक्षसकी
नाद नहीं दूरी ॥ ५४ ॥

धारणाना सहस्र च शरीरेऽस्य प्रधातितम् ।
कुम्भकणस्तदा युद्ध्या स्वर्गो परमयुष्यत ॥ ५५ ॥

इसके बाद उसने शरीरपर हजारों हाथी दौड़ाये गये ।
तब उसे कुछ स्वर्ग मालूम हुआ और वह जाग उठा ॥ ५५ ॥

स पात्यमानैर्गिरिभृद्भ्यश्चै
रचिन्तयस्तान् गिरुलान् प्रहारात् ।
निद्राशयात् भुङ्क्ष्यपीडितश्च

त्रिभूभमाण सहस्रोत्पत्ता ॥ ५६ ॥

यद्यपि उसने ऊपर परतशिखर और वृक्ष गिराये चाहे
थ; तथापि उसने उन भारी प्रहारोंकी कुछ भी नहीं गिना ।
हाथियोंके स्पर्शसे जब उसकी नाद दूरी, तब यह भूलके भयसे
पीडित हो अंगड़ाई लगा हुआ सदा उछलकर खड़ा हो
गया ॥ ५६ ॥

स नागभोगाचलभृद्भक्तल्यौ
विक्षिप्य बाहू जिनमग्नसारौ ।

निवृत्त्य यक्त्र घट्टयामुखाभ

निशाचरोऽसौ विवृत्त जङ्गमे ॥ ५७ ॥

उसकी दोनों भुजाएँ नागोंके शरीर और परतशिखरोंके
समान जान पड़ती थीं । उन्होंने यक्त्रकी शक्ति को पराजित कर
दिया था । उन दोनों बाँहों और मुँहका पैलकर अब वह
निगाचर अग्राह होने लगा; उस समय उसका मुख बड़बानल-
के समान विकराल जान पड़ता था ॥ ५७ ॥

तस्य जात्रुभमाणस्य यक्त्र पातालसनिभम् ।
दृष्टो मेघशृङ्गाये दिवाकर इयोदित ॥ ५८ ॥

जगहार्दने समय कुम्भकणका पाताल-जैसा मुख मेघ
पर्यन्तके शिखरपर उगे हुए सूर्यके समान दिखायी देता
था ॥ ५८ ॥

स जूम्भमाणोऽतिबलं प्रयुद्धस्तु निशाचर ।
निश्वासास्त्रास्य सन्ने परंतादिन् मारुत ॥ ५९ ॥

हम तरह घमड़ा करता हुआ वह अत्यन्त बलशाली

निशाचर जब लगा, तब उसने मुखसे जो सौंख निकलती थी,
वह परतसे चली हुई वायुके समान प्रगीत होती थी ॥ ५९ ॥

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् वभौ ।
युगान्ते सचभूतानि कालस्येन दिधक्षत ॥ ६० ॥

नींदसे उठे हुए कुम्भकर्णका वह रूप प्रलयकालमें समस्त
प्राणियोंके सदस्यी इच्छा रखनेवाले कालने समान जान
पड़ता था ॥ ६० ॥

तस्य दीप्ताग्निसदृशो त्रिद्युत्तदृशश्चरती ।
दृष्टदाते महानेत्रे दीप्तावित्र महाप्रहौ ॥ ६१ ॥

उसकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें प्रज्वलित भग्नि और
त्रिद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थी । वे ऐसी लगती
थीं मानो दो महान् ग्रह प्रगणित हो रहे हों ॥ ६१ ॥

ततश्चन्द्रशायन् सगार भक्ष्याश्च त्रिभिधान् बहून् ।
यराहान् महिषाश्च यभक्ष स महाबल ॥ ६२ ॥

तदनन्तर राक्षसोंने वहाँ जो अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी
वस्तुएँ प्रचुर मात्रामें रखी गयी थीं, वे स-कड़ी-सब कुम्भकणको
दिखायीं । वह महाबली राक्षस बात-की-बातमें बहुतेरे भैंसों
और सूअरोंको चट कर गया ॥ ६२ ॥

आदृशुशुभितो मास शोणित क्षयितोऽपिबत् ।
मेघकुम्भाश्च मयाश्च पयौ शक्रिरेपुस्तदा ॥ ६३ ॥

उसे बड़ी भूख लगी थी; अतः उसने भरपूर मास
खाया और प्यास बुझानेके लिये रक्त पान किया । तदनन्तर
उस इन्द्रोशी निशाचरने चबसि मर हुए कितने ही बड़े साफ
कर दिये और वह कड़ कड़े मदिरा पी भी गया ॥ ६३ ॥

ततस्तस्य इति धात्वा समुत्पेतुनिशाचरा ।
शिरोभिश्च प्रणम्यैन सचत पर्यन्तरयन् ॥ ६४ ॥

तब उसे दृप्त जानकर राक्षस उछल-उछलकर उसके
सामने आये और उसे सिर छुँवा प्रणाम करके उसके चारों
ओर खड़े हो गये ॥ ६४ ॥

निद्रानिद्रादनेवस्तु कलुषीकृतलोचन ।
चारयन् सयतो हृदि तान् दृष्टा निशाचरान् ॥ ६५ ॥

उस समय उसका नेत्र निद्राके कारण अशुभ—कुछ-
कुछ खुरा हुए थे और मलिन आन पड़ते थे । उसने सब
आर हृदि डालकर वहाँ खड़े हुए निशाचरोंको देखा ॥ ६५ ॥

स सगान् सान्त्वयामास नैऋतान् नैऋतभ ॥
धोधनाद् रस्तिस्तथापि राक्षसानिदममरीत् ॥ ६६ ॥

निगाचरोंमें भेद कुम्भकर्णने उन सब राक्षसोंको
सान्त्वना दी और अपने अगाध अनेक कारण निमित्त जो
उन्हीं इस प्रकार पूजा— ॥ ६६ ॥

किमर्थमहमादृत्य भवन्ति प्रतियोगिनः ।

यचित् सुकुशल राक्षो भय चा नेह किंचन ॥ ६७ ॥

‘तुमलोगोंने इस प्रकार आदर करके मुझे किस लिये जगाया है ? राक्षसगण राक्षस बुझलगे हैं न ? यहाँ कोई भय तो नहीं उपस्थित हुआ है ? ॥ ६७ ॥

अथवा ध्रुवमन्येभ्यो भय परमुपस्थितम् ।
यद्धमेव त्वरितैर्भवद्भिः प्रतिपेक्षितम् ॥ ६८ ॥

‘अथवा निश्चय ही यहाँ दूसरोंसे कोई महान् भय उपस्थित हुआ है, जिसके निवारणके लिये तुमलोगोंने इतनी उतावलीके साथ मुझे जगाया है ॥ ६८ ॥

अथ राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम् ।
दारयित्ये मेहेन्द्र वा शीतयित्ये तथातलम् ॥ ६९ ॥

‘अच्छा तो आज मैं राक्षसराजसे भयसे उठाड़ूँ वेंडूँगा । मेहेन्द्र (परांत या इन्द्र) को भी नीरवार दूँगा और अग्निही को ठंडा कर दूँगा ॥ ६९ ॥

न ह्यतृष्णारणे नुत बोधयिष्यति मादशम् ।
तदाप्यातायतत्त्वेन भद्रप्रोधनकारणम् ॥ ७० ॥

‘मुझ जैसे पुरुषको किसी छोटे मोटे कारणवश नींदसे नहीं जगाया जायगा । अतः तुमलोग ठीक-ठीक जताओ, मरे जगाने जानका क्या कारण है ? ॥ ७० ॥

यव हुगण सराध कुम्भकर्णमरिदमम् ।
यूपाक्ष सचिवो रक्त वृताञ्जलिरभाषत ॥ ७१ ॥

शनुसुदन कुम्भकर्ण जब रोयमें भरकर इस प्रकार पृच्छने लगा, तब राजा राक्षसे सचिव यूपाक्षने हाथ जाड़कर कहा— ॥ ७१ ॥

न नो देवराज किंचिद् भयमस्ति कदाचन ।
मानुषाक्षो भय राजस्तुमुल सम्प्रधाधते ॥ ७२ ॥

‘महाराज ! हमें देवताओंकी ओरसे तो कभी कोई भय हो ही नहीं सकता । इस समय केवल एक मनुष्यसे तुमुल भय प्राप्त हुआ है, जो हम सता रहा है ॥ ७२ ॥

न दैत्यदानयेभ्यो वा भयमस्ति न न कचित् ।
यादश मानुष राजन् भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७३ ॥

पान्डु ! इस समय एक मनुष्यसे हमारे लिये जेष्ठा भय उपस्थित हो गया है, ऐसा तो कभी दैत्यों और दानवोंसे भी नहीं हुआ था ॥ ७३ ॥

धानंरा परातकारैल्लेय परिवारिता ।
सीताहरणमतताद् रामाभस्तुमुल भयम् ॥ ७४ ॥

‘परांतकार बानरोंने आकर इस लड्डापुत्रोंको चारों ओर घेर लिया है । सीताहरणसे संतप्त हुए श्रीरामकी ओरसे हम तुमुल भयभी प्राप्ति हुए हैं ॥ ७४ ॥

एवेन पानेजेप पूर्व दग्धा महापुरी ।

कुमानो निहतश्चाप्य भानुयान् मकुञ्जर ॥ ७५ ॥

‘पहले एक ही बारने यहाँ आकर इस महापुरीको नष्ट दिया था और हाथियों तथा सर्पियोंमहित राजकुमार वानरों भी मार डाला था ॥ ७५ ॥

स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्ठक ।
यजेनि सयुगे मुक्तो रामेणादित्यर्चसा ॥ ७६ ॥

‘श्रीराम स्वयंके समान तेजस्वी हैं । उन्होंने देवानु पुरस्त्यकुल्लन दन सखात् राक्षसगण रावणको भी युद्धमें हरा कर जीवित छोड़ दिया और कहा—‘लड्डाको लौट जाओ’ ॥

यग देवे हृतो राजा नापि दैत्यैर्न हाननै ।
हत स इह रामेण जिमुक्त प्राणसमायात ॥ ७७ ॥

‘महापराजी को दशा देवता, दैत्य और दानव भी नहीं कर सके थे, वह रामने कर दी । उनके प्राण बड़े सज्जसे बचे हैं ॥ ७७ ॥

स यूपाक्षश्चा भुत्वा भानुपुंथि पराभवम् ।
कुम्भकर्णो विमुक्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७८ ॥

युद्धमें माईकी पणवसे सम्पन्न रखनेवाली यूपाक्षकी यह बात सुनकर कुम्भकर्ण आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा और यूपाक्षसे इस प्रकार बोला— ॥ ७८ ॥

सर्वमयैव यूपाक्ष हरिसैम्य सलक्ष्मणम् ।
राघव च रणे जित्वा तनो द्रक्ष्यामि रात्रणम् ॥ ७९ ॥

‘यूपाक्ष ! मैं अभी सारी बानरसेनाको तथा लक्ष्मणसहित रामको भी रणभूमिमें पराजित करके रात्रिका दान करूँगा ॥

राक्षसास्तपयिष्यामि हरीणा मासशोणितैः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि स्वयं पाश्यामि शोणितम् ॥ ८० ॥

‘आज बानराँ मांस और रक्तसे राक्षसोंको वृत्त करूँगा और स्वयं भी राम और लक्ष्मणराँ लुट पीऊँगा’ ॥ ८० ॥

तत् तस्य वाक्यं श्रुत्वा नृपतो निशम्य
सर्गर्विन रोपनिवृद्धवोपम् ।

महोदरो नैश्रुतयोधमुल्य
वृताञ्जलियाक्यमिदं वभाषे ॥ ८१ ॥

कुम्भकर्णके बड़े हुए रोप दोपसे युक्त अहङ्कारपूर्ण वचन सुनकर राक्षस-योद्धाओंमें प्रधान महादरने हाथ जाड़कर यह बात कही— ॥ ८१ ॥

रात्रणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषौ निमृश्य च ।
पश्चादपि महाराहो शत्रून् युधि रिजेयसि ॥ ८२ ॥

‘महाबाहो ! पहले चलकर महाराज रावणकी बात सुन लीजिये । फिर गुण-दोषों का विचार करनेके पश्चात् युद्धमें शत्रुओंका पराजित कीजियेगा’ ॥ ८२ ॥

महोदरवच श्रुत्वा राक्षसैः परिवारित ।
कुम्भकर्णो महातेजा सम्प्रतस्थे महाबलः ॥ ८३ ॥

महोत्तरी यत् यत् सुनकर राक्षसेषु पितृ हुआ महा
तेजसी महाशली कुम्भकण घटाने चरनेत्री तैयारी करने
लगा ॥ ८२ ॥

सुतमुत्पाप्य भीमाक्ष भीमरूपपराक्रमम् ।
राक्षसास्वरिता जम्बुदशग्रीवनिदेशनम् ॥ ८४ ॥

इस तरह सोय हुए भयानक नेत्र, रूप और पराक्रमवाले
कुम्भकणको उठाकर वे राक्षस शीघ्र ही दशमुख रावणके
महलमें गये ॥ ८४ ॥

तेऽभिगम्य दशग्रीवमासीन परमासने ।
ऊचुर्बद्धाङ्गलिपुटा सर्वे एव निशाचरा ॥ ८५ ॥

दशग्रीव नाम शिखरपर पड़ा हुआ था, उसके पास
बा सभी निगाचर हाथ जोड़कर बोले— ॥ ८५ ॥

कुम्भकण प्रबुद्धोऽसौ आता ते राक्षसेश्वर ।
कथं तत्रैव निर्यातुं द्रव्यसे तमिहागतम् ॥ ८६ ॥

राक्षसेश्वर! आपन भाई कुम्भकण जाग उठ हैं ।
कहिये, व क्या करें? सीधे युद्धस्थलमें ही पधारें या आप
उन्हें यहाँ उपस्थित देखना चाहते हैं? ॥ ८६ ॥

रावणस्त्वग्रीवदृष्टो राक्षसास्तानुपस्मिन् ।
द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथाम्याय च पूज्यताम् ॥ ८७ ॥

वर रावणने उड़े हरन साथ उन उपस्थित हुए राक्षसें
कहा—‘मैं कुम्भकर्णको यहाँ देखना चाहता हूँ, उनका यथो
चित सत्कार किया जाय’ ॥ ८७ ॥

तथैत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसा ।
कुम्भकर्णमिदं धान्यमूखं रावणचोदिता ॥ ८८ ॥

तब ‘आ आता’ कहकर रावणने भेजे हुए वे सब राक्षस
पुन कुम्भकर्णने पास आ इस प्रकार बोले— ॥ ८८ ॥

द्रष्टुं त्वा पाह्वते राजा सत्रराक्षसपुङ्गव ।
गमने नियता बुद्धिर्भातर सम्ग्रहणाय ॥ ८९ ॥

धर्मो! सर्वराक्षसशिरोमणि महाराज रावण आपको देखना
चाहते हैं। अत आप यहाँ चलनेका विचार करें और पधार
कर अपने भाईका हाथ बढ़ावें’ ॥ ८९ ॥

कुम्भकणस्तु दुधर्मा आतुराण्य शसनम् ।
तथैत्युक्त्वा महाशयं दानादुत्पपात ह ॥ ९० ॥

भाईका यह आदेश पाकर महापराक्रमी दुजग वीर कुम्भकर्ण
‘बहुत अच्छा’ कहकर दान्यामें उड़कर खड़ा हो गया ॥

प्रक्षाल्य वदनं हृष्ट स्नात परमहर्षित ।
पिपासुस्त्वरयामास पानं यत्समीगणम् ॥ ९१ ॥

उत्तने बड़े हँस और प्रसन्नतासे साथ यँह धाकर स्नान
किया और पीनेकी इच्छामें तुरत बर्षर्षक पेय से आनेकी
आशा थी ॥ ९१ ॥

ततस्ते त्वरितास्तत्र राक्षसा रावणाश्रया ।
मद्यभक्ष्याश्च त्रिविधान् क्षिप्रमेतेषां हारयन् ॥ ९२ ॥

तब रावणने आदेशसे व सब राक्षस तुरत मद्य तथा
नाना प्रकारके मद्य पदार्थ ले आये ॥ ९२ ॥

पीत्वा घटसहस्रे स्त्रे गमनायोपचक्रमे ।
ईपत्समुत्फटो मत्तस्तेजोयत्समन्वित ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्ण दो हजार घड़े मद्य गटककर चलनेको उद्यत
हुआ। इससे उसमें कुछ ताकती आ गयी तथा वह मनगाल,
तेजस्वी और शक्तिसम्पन्न हो गया ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्णो बभौ कष्टं कालान्तक्यमोपम ।
आतु स भवनं गच्छन् रक्षोयत्समन्वित ।
कुम्भकर्णं पदम्यासेरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ९४ ॥

किर जब राक्षसेंकी सेनाके साथ कुम्भकर्ण भाईके महल-
की ओर चला, उस समय वह रोपने भरे हुए प्रलयकालके
विनाशकारी यमराक्षसे समान जान पड़ता था। कुम्भकर्ण
अपने पैरोंकी धमकसे सारी पृथ्वीको कंपित कर रहा था ॥

स राजमार्गं वपुषा प्रकाशयन्
सहस्ररश्मिर्धरणीमिवानुभि ।
जगाम तत्राङ्गलिमालया घृत
शतभक्तुर्गदमिव स्वयमुव ॥ ९५ ॥

जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे भूतलको प्रकाशित करते
हैं, उसी प्रकार वह अपने तेजस्वी शरीरसे राजमार्गको उज्ज्वलित
करता हुआ हाथ जोड़े अपने भाईके महलमें गया। ठीक
उसी तरह, जैसे देवराज इंद्र ब्रह्माजीके घाममें जाते हैं ॥ ९५ ॥

॥ राजमार्गस्थमभिप्रधातिन
धनौकसस्ते सहस्रा बहि स्थिता ।
हृष्टाग्रमेय गिरिभृङ्गकल्प
नितत्रसुस्ते सह यूथपालै ॥ ९६ ॥

राजमार्गपर चलने समय शत्रुघोषी कुम्भकण पतंगविभर
के समान जान पड़ता था। नगरके बाहर रखे हुए बानर
सहस्र उस विशालनाय राक्षसको देखकर सेनापतियोंसहित
सहम गये ॥ ९६ ॥

केचिच्छरण्य शरणं स राम
अजन्ति केचिद् व्यथिता पतन्ति ।
केचिद् दशश्च व्यथिता पतन्ति
केचिद् भयात्ता भुवि शेरते स्म ॥ ९७ ॥

उनमेंसे कुछ बानरोंने शरणाग्ररत्न भगवान्
श्रीरामकी शरण ली। कुछ व्यथित होकर गिर पड़े। कोईपीतित
हा सन्तुष दिशाओंमें भाग गये और जहाँ-तहाँ परप्रायी हो
गये और हिम्मे ही बानर अपने पीड़ित हा धरतीपर लेट
गये ॥ ९७ ॥

तमद्रिष्टप्रतिम किरीटिन

स्पृशन्तमादित्यमिवात्मतेजसा ।

यनौकस प्रेक्ष्य विवृद्धमद्भुत

भयादिता दुद्रुनिरे यतस्ततः ॥ ९८ ॥

हृत्पार्यै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६० ॥

एकपष्टितमः सर्गः

विभीषणका श्रीरामसे कुम्भकर्णका परिचय देना और श्रीरामकी आज्ञासे

चानराँका युद्धके लिये लङ्काके द्वारोंपर डट जाना

तो रामो महातेजा धनुरावाय वीर्यवान् ।

किरीटिन महाकाय कुम्भकर्णे वदशो ह ॥ १ ॥

तदनन्तर हाथमें धनुष लेकर वह निकलते सम्पन्न महा
तेजस्वी श्रीरामने किरीटधारी महाकाय राक्षस कुम्भकर्णसे
देखा ॥ १ ॥

त दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठ पर्वताकारदर्शनम् ।

प्रममाणाभिराकाशं पुरा नारायण यथा ॥ २ ॥

सतोयाम्बुदसकाशं काञ्चनान्नदभूषणम् ।

दृष्ट्वा पुनः प्रवृद्धान् वानराणां महाचमू ॥ ३ ॥

वह पवनके समान दिखायी देता था और राक्षसोंमें सबसे
बड़ा था । जैसे पूरनालमें भगवान् नारायणने आकाशको
नापनेके लिये ढग भरे थे; उसी प्रकार यह भी ढग बनाता
था रहा था । सजल जलधरके समान काश कुम्भकर्ण सोनेके
घाङ्गनन्दसे निर्भूषित था । उसे देखकर वानराँवों यह विद्याल
सेना पुनः बड़े वेगसे भागने लगी ॥ २ ॥

विद्रुता आहिनीं दृष्ट्वा धर्ममानं च राक्षसम् ।

सन्निस्सितमिदं रामो विभीषणमुवाच ह ॥ ४ ॥

अपनी सेनाको भागते तथा राक्षस कुम्भकर्णको बढते
देख श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने
विभीषणसे पूछा— ॥ ४ ॥

कोऽसौ पयतसकाशां किरीटी हरिलोचन ।

लङ्काया दृढपते धीर सन्निमुदिय तोयद् ॥ ५ ॥

‘यह लङ्कापुरीमें पतते समान विद्यालय वीर कौन है,
जिसे मस्तकपर त्रिरी गोभा पाता है और नेत्र भरे हैं ? यह
देखा दिग्यायी देता है मानो त्रिजलीचहित मेघ हो ॥ ५ ॥

पृथिव्या केतुभूतोऽसौ महानेकोऽय दृढपते ।

य दृष्ट्वा चानरा सयै विद्रयन्ति ततस्ततः ॥ ६ ॥

इस भूतलपर यह एकमात्र महान् ध्वजरा दृष्टिगोचर
होता है । इसे देखकर सारे वानर इधर-उधर भाग चले हैं ॥

यह पर्वतशिखरके समान ऊँचा था । उसके मस्तकपर
त्रिभुज गोभा देता था । वह अपने तेजसे सूर्यका स्पर्श करता
था जान पड़ता था । उस बड़े हुए विद्यालयाय एन अद्भुत
राक्षसों देखकर सभी वनवासी वानर भयसे पीड़ित हो इधर
उधर भागने लगे ॥ ५ ॥

आचक्ष्व सुमहान् कोऽसौ राक्षो या यदि वासुरः ।

न मयैव निधं भूत दृष्टपूर्वं कदाचन ॥ ७ ॥

‘विभीषण । बताओ । यह इतने बड़े डील-डौलका कौन
पुरुष है ? कोई राक्षस है या असुर ? मैंने ऐसे प्राणीको पहल
कभी नहीं देखा था’ ॥ ७ ॥

सम्पृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्षिप्तकमणा ।

विभीषणो महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अनायास ही बड़े-बड़े कर्म करनेवाले राजकुमार श्रीरामने
जब इस प्रकार पूछा; तब परम बुद्धिमान् विभीषणने उन
काकुत्स्थकुलभूषण रघुनाथजीसे इस प्रकार कहा— ॥ ८ ॥

येन वैरस्यतो युद्धे वासवश्च पराजितः ।

सौप विश्ववस पुत्रं कुम्भकर्णं प्रतापवान् ।

अस्य प्रमाणसदृशो राक्षसोऽन्यो न विद्यते ॥ ९ ॥

‘भगवान् । जिसने युद्धमें वैशम्पत यम और देवराज
इन्द्रको भी पराजित किया था, वही यह विभवाका प्रतापी
पुत्र कुम्भकर्ण है । इसके बराबर क्वा दूसरा कोई राक्षस नहीं
है ॥ ९ ॥

पतेन देवा शुधि वानयाश्च

यक्षा भुजगा पिशिताशानाश्च ।

गन्धर्वविद्याधर्गकिन्नराश्च

सहस्रशो राक्षस सम्प्रभङ्गा ॥ १० ॥

‘रघुनन्दन । इतने देवता, दानव, यक्ष, नाग, राक्षस,
गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंको सहस्रों बार युद्धमें मार
भगाया है ॥ १० ॥

शाल्पाणिं धिक्पापश्च कुम्भकर्णं महायत्नम् ।

हतु न दोषस्त्रिदशाः कालोऽयमिति मोहिता ॥ ११ ॥

‘इतने नेत्र बड़े भयंकर हैं । यह महाबली कुम्भकर्ण
जब हाथमें शूट लेकर युद्धमें लड़ा हुआ; उस समय देवता

भी इसे मारनेमें समर्थ न हो सके । यह कालरूप है, ऐसा समझकर वे सब केसर माहित हो गये थे ॥ ११ ॥

प्रहृत्या होय तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबल ।
अन्येषा राक्षसेद्राणां वरदानहतं यत्नम् ॥ १२ ॥

‘कुम्भकर्ण स्वभावसे ही तेजस्वी और महाबलवान् है । अन्य राक्षसपतिवर्गों पास जा बच है, यह वरदानमें प्राप्त हुआ है ॥ १२ ॥

घालेन जातमात्रेण शुभानेन महामना ।
भक्षितानि सहस्राणि प्रजानां सुगृह्ण्यपि ॥ १३ ॥

‘इस महाकाय राक्षसे जन्म लभे ही बाल्यावस्थामें भूल से पीड़ित हो कई सहस्र प्रजाजनकों खा डाला था ॥ १३ ॥

तेषु सम्मध्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिता ।
पान्ति स्म शरणं शक्रं तमप्यर्थं न्यवेदयन् ॥ १४ ॥

‘जब सहस्रों प्रजाजन इसका आहार बनने लगे, तब मयमें पीड़ित हो वे सप-सप देवराज इन्द्रकी शरणमें गये और उन सने उनके समक्ष अपना कष्ट निवेदन किया ॥ १४ ॥

स कुम्भकर्णं द्रुपितो मेहेद्रो
जघान यज्ञेण शितेन यज्ञी ।

स शान्वज्राभिहतो महात्मा
चचाल कोपाद्य भृदा ननाद् ॥ १५ ॥

‘इससे वज्रधारी देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने तीक्ष्ण वज्रसे कुम्भकर्णको घायल कर दिया । इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर यह महाकाय राक्षस क्षुब्ध हो उठा और रोय-रुय क्रूर-क्रूरमें सिहनाद करने लगा ॥ १५ ॥

तस्य नातयमानस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः ।
श्रुत्वा निनादं त्रिषस्ता प्रजा भूयो वितथसु ॥ १६ ॥

‘राक्षस कुम्भकर्णक शरधार गर्वना करनेपर उसका मर्यकर सिहनाद सुनकर प्रजाजनगने लगे मयमीन हो और भी डर गये ॥ १६ ॥

तत मुद्दो मेहेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबल ।
निहृष्यैरासताद् दन्तं जघानोरसि याम्बुम् ॥ १७ ॥

‘तदनन्तर कुपित हुए महाबली कुम्भकर्णने इन्द्रक घेर-उत के मुँहसे एक दाँत उखाड़ लिया और उसीसे देवेन्द्रकी छाती पर प्रहार किया ॥ १७ ॥

कुम्भकर्णप्रहारात्तो विजज्वाल स वासप ।
ततो भिषेदु महसा देवा ब्रह्मपिदानया ॥ १८ ॥

‘कुम्भकर्णने प्रहारेने इन्द्र व्याकुल हो गये और उनके हृदयमें कलन होने लगी । यह देखकर सब देवता, ब्रह्मर्षि और दानव सहसा विगर्भमें डूब गये ॥ १८ ॥

प्रजाभि सह शत्रवश्च ययो स्थान स्वयमुग्र ।

कुम्भकर्णस्य दौताय्य दशसुस्ते प्रजापते ॥ १९ ॥

‘सत्यव्रत इन्द्र उन प्रजाजनकों साथ ब्रह्माजन धाममें गये । वहाँ जाकर उन सबने प्रजापतिक समक्ष कुम्भकर्णकी दुष्टता विमर्शपूर्वक वणन किया ॥ १९ ॥

प्रजानां भक्षणं चापि दानां चापि धरणम् ।
आश्रमध्यसनं चापि परस्त्रीहरणं भृशम् ॥ २० ॥

‘इसके द्वारा प्रजाके भक्षण, देस्तावक धरण (तिरस्कार), स्त्रियोंके आश्रममें निध्न तथा पत्नी स्त्रियोंके शरधार हरण होनेकी भी बात कनायी ॥ २० ॥

एव प्रजा यदि त्वेयं भक्षयिष्यति नित्यशः ।
अचिरेणैव कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥ २१ ॥

‘इन्द्रने कहा—‘मयाजन् । यदि यह नित्यप्रति इसी प्रकार प्रजाजनका भक्षण करता रहा तो याइ ही समयमें साथ मसार सता हो जायगा’ ॥ २१ ॥

वासवस्य वचं श्रुत्वा सत्रलोरपितामह ।
रक्षास्याग्राहयामास कुम्भकर्णं द्वादश ह ॥ २२ ॥

‘इन्द्रकी यह बात सुनकर सर्वलोरपितामह ब्रह्मने सब राक्षसोंको बुलाया और कुम्भकर्णसे भी मँट की ॥ २२ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव वितप्रास प्रजापति ।
कुम्भकर्णमथाभ्यास्त स्वयभूरिदमप्रवीत् ॥ २३ ॥

‘कुम्भकर्णको देखते ही स्वयम्भू प्रजापति धर्मा डठे । फिर अपनेको सँभाकर वे उस राक्षससे बाले— ॥ २३ ॥

ध्रुव लोकविनाशाय वीलस्त्येनास्ति निमित्त ।
तस्मात् त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पं शयिष्यसे ॥ २४ ॥

‘‘कुम्भकर्ण । निश्चय ही इस जगत्का विनाश करनेने लिये ही विवशाने तुझे उत्पन्न किया है अतः मैं शाप देता हूँ; आजमें तू मुद्देन समान सोना रहेगा’ ॥ २४ ॥

ब्रह्मशापाभिभूतोऽथ निपपाताप्रत प्रभो ।
तत परमसम्भ्रान्तो राखणो वाय्ममप्रवीत् ॥ २५ ॥

‘ब्रह्माजीन शापने अभिभूत होकर वह राखणने स्वमने ही गिर पड़ा । इसने राखणका बड़ी घराष्ट्र हुई और उसने कहा— ॥ २५ ॥

प्रवृद्धं काञ्चनो घृण फलकाले निहृन्यते ।
न नस्तार स्वकं न्याय्यं शशुमेव प्रजापते ॥ २६ ॥

‘‘प्रवृद्धपते । अपने द्वारा लयाया और कपाया हुआ मुरण रूप कष्ट देनेवाला वृक्ष कष्ट देनेक समय नहीं काटा जाता है । यह आपस नानी है; इसे इस प्रकार शाप देना कल्पि उचिन नहीं है ॥ २६ ॥

न मिथ्यावचनञ्च त्वं स्वस्थत्वेन न सशय ।

कालस्तु कियतामस्य शयने जागरे तथा ॥ २७ ॥

“आपनी बात कभी झूठी नहीं होती। इसलिये अब इसे सोना ही पड़ेगा। इसमें शयन नहीं है परन्तु आप इसने सोने और जागनेका कोई समय नियत कर ६” ॥ २७ ॥

राजस्य च च भुत्वा स्वयभूरिदमघवीत् ।

शयिना होय पण्मासमेकाह आगरिष्यति ॥ २८ ॥

“रावणका यह कथन सुनकर स्वयम्भू ब्रह्माने कहा—‘यह ६ मासतक सोता रहेगा और एक दिन जागेगा ॥ २८ ॥

एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन् भूमिं युमुभित ।

व्यासास्यो भक्षयेद्वेदोक्तान् सवृद्ध इव पायक ॥ २९ ॥

“उस एक दिन ही यह वीर भूरा होकर पृथ्वीपर निचरेगा और प्रशस्ति अथवा खाना मुँह पैलाकर बहुत-से लोगोंको खा जायगा” ॥ २९ ॥

सोऽसौ व्यसनमापन्न कुम्भकर्णमयोधयत् ।

त्वत्पराक्रमभीतश्च राजा सम्प्रति रावणः ॥ ३० ॥

“महाराज ! इस समय आपत्तिमें पड़कर और आपके पराक्रमसे भयभीत होकर राजा रावणने कुम्भकर्णको जगाया है ॥ ३० ॥

न एव निर्गतो वीर शिबिराद् भीमश्रियम् ।

धानराजं भृशसङ्कुब्धो भक्षयन् परिधावति ॥ ३१ ॥

“यह भयानक पराक्रमी वीर अपने शिबिरमें निकला है और अत्यन्त क्रुपित हो वानरोंका खा जानेके लिये सब ओर घूँड़ रहा है ॥ ३१ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव हरयोऽहं प्रमुमुषु ।

कथमेन रथे कुब्धं धारयिष्यन्ति धानरा ॥ ३२ ॥

“जब कुम्भकर्णको देखकर ही आज सार वानर माग चले तब रामभिमैं क्रुपित हुए इस वीरको ये आगे बढ़नेसे कैसे रोक सकेंगे ? ॥ ३२ ॥

उत्थन्ता धानरा सर्वे यत्रमेतत् समुच्छ्रितम् ।

इति विहाय हरयो भ्रियन्तीह निभया ॥ ३३ ॥

“सब वानरोंने यह कह दिया था कि यह काह व्यक्ति नहीं। यायाद्वारा निर्मित ऊँचा यन्त्रमात्र है। ऐसा जानकर वानर निमग्न हो जायेंगे” ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणं वाक्यमीकीये आदिछन्दो मुद्रकाण्डे षष्ठ्यष्टितमं सर्ग ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिमित्त आत्मारामायण आदिछन्दोके मुद्रकाण्डमें षष्ठ्यष्टाई सर्ग पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

विभीषणवचं श्रुत्वा हेतुमत् सुमुखोद्वृतम् ।

उवाच राघवो वाक्यं नील सेनापति तदा ॥ ३४ ॥

विभीषणं सुन्दर मुखसे निकली हुई यह वृत्तियुक्त बात सुनकर भीष्मराजजीने सेनापति नीलसे कहा— ॥ ३४ ॥

गच्छ सैन्यानि सर्वाणि व्यूहं तिष्ठस्व पाण्डके ।

द्रागण्यादाय लङ्कायाश्चाध्यास्याय सक्रमान् ॥ ३५ ॥

“अग्निनन्दन ! जाओ। समस्त सेनाओंकी मोर्चेवरी करके युद्धके लिये तैयार रहो और लङ्का के द्वारों तथा राजमार्गोंपर अधिकार जमाकर वही ठहरो ॥ ३५ ॥

शैलशृङ्गाणि वृक्षाश्च शिलाश्चाप्युपसहरन् ।

भयन्तं सायुधा सर्वे धानरा शैलपाणय ॥ ३६ ॥

“पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और गिर्राएँ एकत्र कर लो तथा तुम और सब वानर अन्न शस्त्र एवं पत्थर लिये तैयार रहो” ॥

राघवेण समादिष्टो नीलो हरिश्चमूपति ।

शशशतं वानरानीकं यथागत् कपिकुञ्जर ॥ ३७ ॥

भीष्मराजजीकी यह आज्ञा पाकर वानरसेनापति कपिभेड नीलने वानरसेनिकोंका यथाचित् कायक लिये आदेश दिया ॥ ३७ ॥

ततो गवाक्षं शरभो हनूमानह्रदस्तथा ।

शैलशृङ्गाणि शैलाभा गृहीत्वा द्वारमभ्ययु ॥ ३८ ॥

तदनन्तर गवाक्ष, शरभ, हनुमान् और अह्रद आदि पर्वतकार वानर पर्वतशिखर लिये लङ्काके द्वारपर बढ़ गये ॥ ३८ ॥

रामवाक्यमुपश्रुत्य हरयो जितकाशिन ।

पादपैरर्दयन् वीरा धानरा परवाहिनीम् ॥ ३९ ॥

विजयाख्यासे सुग्रीवसेतनेवाले वीर वानर भीष्मचन्द्र जीकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर वृद्धोंद्वारा शत्रुसेनाको पीड़ित करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो हरीणा तदनीकमुग्र

रराज दौगेचतपूषहस्तम् ।

गिरि समीपात्तुगत यथैव

महन्महाभोधरजालमुग्रम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर हरीयोंमें शैल शिखर और वृक्ष लिये वानरोंकी यह भयकर सेना पयतक समीप गिरी हुई भेड़ोंकी वही मारी उग्र पयतक समान सुग्रीवसेतने लगी ॥ ४० ॥

द्विपष्ठितम सर्ग

कुम्भकर्णका रावणके भवनमें प्रवेश तथा रावणका रामसे भय घटाकर उसे शत्रुसेनाके विनाशके लिये प्रेरित करना

स तु राक्षसशादूले निद्रामदसमाकुल ।
राजमार्गे त्रिया जुष्ट ययौ विपुलविक्रम ॥ १ ॥

महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि कुम्भकर्ण निद्रा और मदसे व्याकुल ॥ अलसाया हुआ-या शोभाशाली राजमार्गसे जा रहा था ॥ १ ॥

राक्षसाना सहस्रैश्च द्रुत परमदुर्जय ।
गृहेभ्य पुण्यर्पणं कीर्यमाणस्तदा ययौ ॥ २ ॥

वह परम दुजय वीर हजारों राक्षसोंसे त्रिग हुआ यात्रा कर रहा था । सड़कने किनारेपर जो मकान थे, उनमेंसे उसके ऊपर कूल बरसाये जा रहे थे ॥ २ ॥

स हेमजालजित भातुभास्वरदर्शनम् ।
ददर्श त्रिपुल रम्य राक्षमेन्द्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥

उसने राक्षसराज रावणके रमणीय एवं विशाल भवनका दर्शन किया, जो छीनेकी जालीसे आच्छादित होनेर कारण सूर्यदेवके समान दीप्तिमान् दिखायी देता था ॥ ३ ॥

स तत्तदा सूर्य इयाभजाल
प्रदिश्य रक्षोधिपतेर्निवेशनम् ।

ददर्श दृष्टेऽप्रजमासनस्थ

स्वयमुय दात्र इयासनस्थम् ॥ ४ ॥

जैसे सूर्य मघौली परगमें छिप जायें, उसी प्रकार कुम्भकर्णने राक्षसराजके महलमें प्रवेश किया और राजसिंहासनपर बैठे हुए अपने भाईका दूरसे ही देखा, मानो देवराज इन्द्रने दिव्य कमलासनपर विराजमान स्वयम्भू ब्रह्माका दर्शन किया हो ॥ ४ ॥

भ्रातु स भयन गच्छन् रक्षोगणसमन्वित ।
कुम्भकर्णः पदत्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ५ ॥

राक्षसोंसहित कुम्भकर्ण अपने भाईके भवनमें जाते समय बल-बल एक-एक पैर आगे बढ़ाता था, तब-तब पृथ्वी काँप उठती थी ॥ ५ ॥

सोऽभिगम्य गृह भ्रातु कक्षामभिधिगाहा च ।
ददर्शोद्विग्नमासीन निमाने पुण्यके शुक्रम् ॥ ६ ॥

भाईके भवनमें आकर अब वह भीतरकी कक्षामें प्रविष्ट हुआ, तब उसने अपने बड़े भाईका उद्विग्न अवस्थामें पुण्यक निमानपर विराजमान देखा ॥ ६ ॥

अथ दृष्ट्वा दराभीय कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
तृणमुत्थाय सङ्घं सनिकर्षमुपायत ॥ ७ ॥

कुम्भकर्णको उपस्थित देख ददामुख रावण पुरत उठकर खड़ा हो गया और बड़े हृषके साथ उसे अपने समीप बुला लिया ॥ ७ ॥

अयासीनस्य पर्यङ्गे कुम्भकर्णो महाबल ।
भ्रातुगण्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

महाबली कुम्भकर्णने सिंहासनपर बैठे हुए अपने भाईके चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'कौन-सा कार्य भा पड़ा है ?' ॥ ८ ॥

उत्पत्य चैन मुदितो रावण परिपश्यजे ।
स भ्रात्रा सम्परिपश्यको यथावच्छाभिनन्दित ॥ ९ ॥

रावणने उठकर बड़ी प्रसन्नतासे साथ कुम्भकर्णको हृदयसे लगा लिया । भाई रावणने उनका आलिंगन करने यथावत् रूपसे अभिनन्दन किया ॥ ९ ॥

कुम्भकर्णं शुभ दिव्य प्रतिपेदे वरासनम् ।
स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबल ॥ १० ॥
सरस्वनयन क्रोधाद् रावण वाक्यमग्रवीत् ।

इसके बाद कुम्भकर्ण सुन्दर दिव्य सिंहासनपर बैठा । उस आसनपर बैठकर महाबली कुम्भकर्णने क्रोधसे लाल आँखें किये रावणसे पूछा—॥ १० ॥

किमथमहमादृत्य त्वया राघव प्रबोधित ॥ ११ ॥
शस कसाद् भयतेऽयं को वा प्रेतो भविष्यति ।

पराग्न ! किस लिये तुमने बड़े आदरन साथ मुझे बगया है ? बताओ, यहाँ वहाँ किससे भय प्राप्त हुआ है ? अथवा कौन परलोकका पथिक होनेला है ? ॥ ११ ॥

भ्रातर रावणं हृन्व कुम्भकर्णमग्रस्थितम् ॥ १२ ॥
रोपेण परिपृच्छाभ्या नेत्राभ्या चाक्षयमग्रवीत् ।

तब रावण अपने पास बैठे हुए कुतूहल भाव कुम्भकर्णने रावणसे चञ्चल आँखें किये बोला—॥ १२ ॥

अथ ते सुमहान् कालं शयानस्थ महाबल ॥ १३ ॥
सुपुनस्थ न जानीये मम रामदृष्ट भयम् ।

'महाबली वीर ! तुम्हारे सोय सोय दीर्घकाल ध्वनीत हो गया । तुम गाल निद्रामें निमग्न होनेर कारण नहीं जानते कि मुझे रामसे भय प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥

एष दाशरयि धीमान् सुग्रीवमदितो धरी ॥ १४ ॥
समुद्र लङ्घयित्वा तु मूलं न परिहृन्तति ।

ये दशरथकुमार बलवान् भोग्मान् राम सुग्रीवक साथ

समुद्र लोपनर यहाँ आये हैं और हमारे कुलका निनाश कर रहे हैं ॥ १४३ ॥

हन्त पदयस्य लङ्काया घनान्युपजनानि च ॥ १५ ॥
सेतुना सुखमागत्य चानरैकाग्रं वृत्तम् ।

‘हाय ! देखो तो सही, समुद्रमें पुल बौघकर सुखपूर्वक यहाँ आये हुए चानरोंने लङ्काके समस्त वनों और उपननोंको एकान्वयमय बना दिया है—यहाँ चानरलुपी जल्का समुद्र-सा लहर रहा है ॥ १५३ ॥

ये राक्षसा मुख्यतया हस्तास्ते चानरैर्युधि ॥ १६ ॥
घानगणा क्षय युद्धे न पदयामि कथञ्चन ।
न चापि घानरा युद्धे जितपूर्वो वदाञ्चन ॥ १७ ॥

‘हमारे जा मुख्य मुख्य राक्षस वीर थे, उन्हें चानरोंने युद्धमें मार डाला किंतु राक्षसोंमें चानरोंका क्षय होता मुझे किसी तरह नहीं दिखायी देता । युद्धमें कभी काइ चानर पहले जीते नहीं गये हैं ॥ १६ १७ ॥

तद्देनद् भयमुत्पन्नं प्रायस्येह महायत्न ।
नाशाय त्वमिमानद्य तदर्थं घोषितो भवान् ॥ १८ ॥

‘महाबली वीर ! इस समय हमारे ऊपर यही भय उपस्थित हुआ है । तुम इससे हमारी रक्षा करो और आज इन चानरोंको नष्ट कर दो । इसीलिये हमने तुम्हें जगाया है ॥ १८ ॥

सर्वक्षपितकोदा च स त्वमभ्युपपद्य माम् ।
प्रायस्येमा पुर्णं लङ्का वाल्मद्विवाशेषिताम् ॥ १९ ॥

‘हमारा साथ राजा खाली हो गया है अतः मुझपर अनुग्रह करके तुम इस लङ्कापुरोरी रक्षा करो अन्य यहाँ केवल वालक और वृद्ध ही गैर रह गये हैं ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विपष्ठितमं सर्ग ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें वास्तवमें सर्ग पूरा हुआ ॥ ६२ ॥



त्रिपष्ठितमं सर्ग

कुम्भकर्णका राजाकी उमके कुत्तरोंके लिये उपालम्भ देना और उसे धैर्य बँधाते हुए युद्धविषयक उत्साह प्रकट करना

तस्य राक्षसरजस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो यभापेद् यच्चन प्रजहास च ॥ १ ॥

राक्षसराज राजका यह शिलाप सुनकर कुम्भकर्ण ठहाका मारकर हँसने लगा और इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥

दृष्टो दोगो हि योऽस्माभि पुरा मन्त्रनिर्णये ।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥ २ ॥

‘माइराक्ष ! पहले (निभीषण आदिन साथ) निचा

भ्रातुरर्थे महाबाहो ह्युच कर्म मुदुष्करम् ।
मयैव नोत्तपूर्वो हि भ्राता कश्चित् परतप ॥ २० ॥

‘महाबाहो ! तुम अपने इस मार्गके लिये अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करो । परतप ! आजमे पहले कभी किसी मार्गसे मैंने ऐसी अनुनय विनय नहीं की थी ॥ २० ॥

त्वय्यस्ति मम च स्नेह परा सम्मानना च मे ।
देवासुरेषु युद्धेषु बहुशो गन्तव्यसम् ॥ २१ ॥
त्वया देवा प्रति-यूहा निजिताश्वासुरा युधि ॥ २२ ॥

‘तुम्हारे ऊपर मम बड़ा स्नेह है और मुझे तुमसे बड़ी आगाह है । राक्षसशिरोमणे ! तुमने देवासुर सभामें अवसरों पर अनेक बार प्रतिद्वंद्वीका स्थान लेकर राक्षसोंमें देवताओं और असुरोंको भी परास्त किया है ॥ २१ २२ ॥

तदेतत् सर्वमातिष्ठ धीर्य भीमपराक्रम ।
नहि ते सर्वभूतेषु दृश्यते स्वहशो यत्नी ॥ २३ ॥

‘अब भयकर पराक्रमी वीर ! तुम्हीं यह साथ पराक्रम पूर्ण कार्य सम्पन्न करो क्योंकि समस्त प्राणियोंमें तुम्हारे समान बलवान् मुझे दूसरा कोई नहीं दिखायी देता है ॥ २३ ॥

कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तम
यथाप्रिय प्रियरण नाभवप्रिय ।
स्वतेजसा ध्येयस्य सपन्नवाहिनीं
शरद्वधनपन्न इवोद्यतो महात् ॥ २४ ॥

‘तुम युद्धमें ही हो ही, अपने बचु-बा-धकोंसे भी बड़ा प्रेम रखते हो । इस समय तुम मेरा यही प्रिय और उत्तम हित करो । अपने तेजसे शत्रुओंकी सेनाको उसी तरह ध्वंशित कर दो, जैसे वेगसे उठी हुई प्रचण्ड वायु शरद्वृष्टिके बादलोंकी छिन्न भिन्न कर देती है ॥ २४ ॥

कते समय हमलोगोंने जो दोष देखा था, वही तुम्हें इस समय प्राप्त हुआ है क्योंकि तुमने द्वितीय पुरुषों और उनकी बातोंपर विश्वास नहीं किया था ॥ २ ॥

शीघ्र खल्वभ्युपेत त्वा फल् पापस्य कमण ।
निरयेष्वेय पतन यथा दुष्फुलकमण ॥ ३ ॥

‘तुम्हें शीघ्र ही अपने पापकर्मका फल मिल गया । जैसे कुम्भर्मा पुरुषोंका नरकोंमें पड़ना निश्चित है, उसी प्रकार

तुम्हें भी अपने दुष्कर्मका फल मिलना अवश्यम्भावी था ॥

प्रथम वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् ।

केवल धीयदपेण मानुषधो विचारित ॥ ४ ॥

‘महाराज । केवल बलने धमझसे तुमने पहले इस पाप कर्मकी कोई परवा नहीं की । इसके परिणामका कुछ भी विचार नहीं किया था ॥ ४ ॥

य पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थित ।

पूर्वे चोत्तरकायाणि न स वेद नयानयौ ॥ ५ ॥

‘जो ऐश्वर्यके अभिमानमें आकर पहले करनेयोग्य कार्योंको पीछे करता है और पीछे करनेयोग्य कार्योंको पहले कर डालता है; वह नीति तथा अन्यायको नहीं जानता है ॥ ५ ॥

देशकालनिहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।

त्रियमाणानि दुष्यन्ति हर्वाप्यप्रयत्नेष्विज ॥ ६ ॥

‘जो कार्य उचित देश काल न होनेपर विपरीत स्थितिमें किये जाते हैं, वे संस्कारहीन अग्निधर्मों होम गये इतिव्यकी भाँति केवल दु खने ही कारण होते हैं ॥ ६ ॥

श्रयाणा पञ्चधा योग कर्मणा य प्रपद्यते ।

सचिवै समय कृत्वा स सम्यग् वर्तते पथि ॥ ७ ॥

‘जो राजा सचिवोंके साथ विचार करने क्षय, वृद्धि और स्थानान्तरणसे उपलब्धि लाभ, दान और दण्ड—इन तीनों कर्मोंके पाँच प्रकारके प्रयोगोंको काममें लाता है, वही उत्तम नीति-भागपर विद्यमान है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ७ ॥

यथागम च यो राजा समग्र च विकीर्षति ।

दुष्यते सचिवैर्बुद्ध्या सुहृदधानुपदयति ॥ ८ ॥

‘जो नरोध नीतिशास्त्रके अनुसार मन्त्रियोंके साथ खर्च आदिसे लिये उपयुक्त समयका विचार करते तदनुरूप कार्य करता है और अपनी बुद्धिसे सुहृदोंकी भी पहचान कर लेता है, वही कृतव्य और अकृतव्यका विवेक कर पाता है ॥ ८ ॥

धममर्ये हि काम या स्त्राना या रम्पसा पते ।

भजेत पुरूप काले श्रीणि द्रष्टानि वा पुन ॥ ९ ॥

‘प्रासदाय । नीतिविरुद्ध पुरुषको चाहिये कि धर्म, अर्थ या कामका अथवा स्वयं अपने समयपर सेवन करे अथवा

१ कार्यको बारम्बार करनेका उपाय पुरुष और द्रव्यरूप मन्थति देशकालविना विपत्तिसे दानके उपाय और काय को निदि—ये पाँच प्रकारके योग हैं ।

२ जब अपनी बुद्धि और शत्रुकी हानिकर समय हो तब दण्डोपयोगी यान (युद्धयान) खरिद है । अपनी और शत्रुकी समान स्थिति हो तो सान्त्वयक संधि कर लेना उचित है । तथा जब अपनी हानि और शत्रुकी वृद्धिकर समय हो तब उसे कुछ देकर उग्रवद व्यस्य प्रवृत्त करना उचित होता है ।

तीनों द्रष्टव्य—धम अर्थ, अथ धम और काम-अर्थ इन सबका भी उपयुक्त समयमें ही सेवन कर ॥ ९ ॥

त्रिपु चैतेषु यच्छ्रेष्ठ श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ।

राजा या राजमात्रो वा व्यर्थे तस्य बहुश्रुतम् ॥ १० ॥

‘धर्म, अर्थ और काम—इन तीनोंमें धर्म ही श्रेष्ठ है अतः निरोध अस्वर्षपर अर्थ और कामकी उपेक्षा करके भी धमका ही सेवन करना चाहिये—इस बातको विश्वसनीय पुरुषों से सुनकर भी जो राजा या राजपुरुष नहीं समझता अथवा समझकर भी स्वीकार नहीं करता, उसका अनेक शत्रुओंका अप्ययन व्यर्थ ही है ॥ १० ॥

उपप्रदान सान्त्व च मेद काले च विनमम् ।

योग च रक्षसा श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥ ११ ॥

काले धर्मायकामान्य सम्मन्य सचिवै सह ।

निपेधेतात्मगोत्रलोके न स ध्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

‘प्रासदायिणे । जो मनस्वी राजा मन्त्रियोंसे अच्छी तरह सलाह करने समयके अनुसार दान, मेद और पराक्रमका; इनके पूर्वोक्त पाँच प्रकारके योगका, तप और अनपरा तथा ठीक समयपर धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह इस लोके कभी दु ख या विपत्तिरा भागी नहीं होता ११ १२ दितानुबन्धमालोक्य कुर्यात् कार्यमिहात्मन ।

राजा सहायतत्त्वज्ञै सचिवैर्गुडिजीविभि ॥ १३ ॥

‘राजाको चाहिये कि वह अथतत्त्व एव बुद्धिजीवी मन्त्रियोंकी सलाह लेकर जो अपने लिये परिणाममें हितकर दिखायी देता हो; वही कार्य करे ॥ १३ ॥

अनभिधाय शास्त्रार्थान् पुरुरा पशुबुद्धयः ।

प्रागदभ्याद् बहुमिच्छति मन्त्रिष्वभ्यन्तरीकृता ॥ १४ ॥

‘जो पशुसे समान बुद्धिवाले किसी तरह मन्त्रियोंके भीतर सम्मिलित कर लिये गये हैं, वे शास्त्रके अर्थको तो जानत नहीं; केवल घृष्टावश बातें बताना चाहते हैं ॥ १४ ॥

अशास्त्रविदुषा तेषा कार्ये नाभिहित वच ।

अथशास्त्रानभिज्ञाना विपुला धियमिच्छताम् ॥ १५ ॥

‘शास्त्रके ज्ञानसे शून्य और अर्थशास्त्रसे अनभिज्ञ होते हुए भी प्रचुरसम्पत्ति चाहनेवाले उन अयोग्य मन्त्रियोंकी कही हुई बात कभी नहीं माननी चाहिये ॥ १५ ॥

● वहाँ यह बात कही गयी है कि शास्त्रके अनुसार प्राप्त करने परन्तु मन्त्रादिकार्यमें अथवा और राज्यों के समेदवयव विधान है अतः उन-उन समयमें धर्म शास्त्र सेवन करना चाहिये अथवा प्राणकालमें धर्म और अथवा शास्त्र मन्त्रादिकार्यमें अथ और धन वर और राज्यों के ज्ञान और अथवा सबन करे । जो हर समय केवल अथवा ही सेवन करता है, वह पुरुषोंमें अथवा अथवा है ।

अहित च हिताकारं धाष्ट्याजल्पन्ति ये नरा ।

अश्वय मन्त्रग्राह्यस्ते कनया वृत्त्यदृष्टका ॥ १६ ॥

‘जो लोग घृष्टानके कारण अहितकर बातको हितका रूप देकर करते हैं, वे निश्चय ही सलाह देने योग्य नहीं हैं। अतः उन्हें इस कार्यसे अलग कर देना चाहिये। वे तो काम बिगाड़नेवाले ही होते हैं ॥ १६ ॥

विनाशयन्तो भतार सहिता शत्रुभिर्वुचै ।

विपरीतानि वृत्त्यानि कारयतीहि मन्त्रिण ॥ १७ ॥

‘कुछ बुरे मन्त्री काम आदि उपायोंके शाता शत्रुओंके साथ मिल जाते हैं और अपने स्वामीका विनाश करनेके लिये ही उससे विपरीत कर्म करवाते हैं ॥ १७ ॥

तान् भर्ता मित्रसकाशानमिशान् मन्त्रनिर्णये ।

व्यवहारेण जानीयात् सचिदानुपसहितान् ॥ १८ ॥

‘अब किसी वस्तु या कार्यके निश्चयके लिये मन्त्रियोंकी सलाह ही जा रही है। उस समय राजा व्यवहारके द्वारा ही उन मन्त्रियोंको पहचाननेका प्रयत्न करे, जो घूस आदि लेकर शत्रुओंसे मिल गये हैं और अपने मित्र से बने रहकर बालबलमें शत्रुका काम करते हैं ॥ १८ ॥

चपलस्तेह वृत्त्यानि सहसानुप्रधावतः ।

छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते प्रौढस्य खमिय द्विजा ॥ १९ ॥

‘जो राजा चञ्चल है—आपातरमणीय यत्नानोंसे मुनकर ही शत्रु हो जाता है और सहसा बिना सोचे-विचारे ही किसी भी कार्यकी ओर दौड़ पड़ता है, उसने इस छिद्र (दुर्बलता) को शत्रुलोग उसी तरह ताड़ जाते हैं, जैसे कौश्ल परतके छेद का पत्थी। (कौश्लपरतके छेदसे होकर पत्थी जैसे पर्वतके उस पार आत-जाते हैं, उसी तरह ‘तु’ भी राजाके उस छिद्र या कमजोरीसे लाभ उठाते हैं) ॥ १९ ॥

यो हि शत्रुमशाय आत्मान नाभिरक्षति ।

अज्ञानेति हि सोऽनगान् स्थानाद्यप्यकरोष्यते ॥ २० ॥

‘जो राजा ‘तु’की अश्वेलना करनेके अपनी रक्षाका प्रबंध नहीं करता है, वह अनेक अनपेक्षा भागी होता और अपने स्थान (राज्य) से नीच उतार दिया जाता है ॥ २० ॥

यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च ।

सदैव नो दित वाक्यं यथेच्छसि तत्रा कुच ॥ २१ ॥

‘तुम्हारी प्रिय पत्नी मन्शदरी और मेरे छोटे भाई निमीरगने पहले तुमसे वा कुट कहा था, वही हमारे लिये हितकर था। यों तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो’ ॥ २१ ॥

तत्तु धृतादराग्रीन कुम्भरूपस्य भाषितम् ।

भुवुटि चैव सचमो सुन्दरौनमभाषत ॥ २२ ॥

कुम्भरूपकी पर बात मुनकर दशमुख शयगने भौंहे ली कर ली और मुनिन हाकर उससे कहा— ॥ २२ ॥

मान्यो गुरुरिवाचार्यं किं मा त्वमनुशासते ।

किमेव वाक्यम वृत्त्या यद् युक्तं तद् विधीयताम् ॥ २३ ॥

‘तुम माननीय गुरु और आचार्यकी भौंति मुझे उपदेश क्यों दे रहे हो। इस तरह मापण देनेका परिश्रम करनेसे क्या लाभ होगा। इस समय जो उचित और आवश्यक हो, वह काम करो ॥ २३ ॥

विभ्रमाश्चिन्मोहाद् वा घटनीर्याधयेण वा ।

नाभिपथमिदानीं यद् व्यर्था तस्य पुन कथा ॥ २४ ॥

‘मैंने भ्रमसे, चित्तने माहसे अपना अपने बल-पराक्रमके भरोसे पहले जो तुमलोगोंकी बात नहीं मानी थी, उसकी इस समय पुन चर्चा करना व्यर्थ है ॥ २४ ॥

अस्मिन् काले नु यद् युक्तं तदिदानीं गिचिन्त्यताम् ।

गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ २५ ॥

ममापनयज दोष विव्रमेण समीक्षुः ।

‘जो बात बीत गयी, सो तो बीत ही गयी। दुःखिमात्र लोभ बीती बातके लिये बारबार शोक नहीं करते हैं। अब इस समय हमें क्या करना चाहिये, इसका निवार करो। अपने पराक्रमसे मेरे अनीतिजनित दुःखोंको दान्त कर दो ॥ २५ ॥

यदि पल्वस्ति मे स्नेहो विव्रमं वाधिगच्छसि ॥ २६ ॥

यदि कार्यं ममैतत्ते हृदि कायतम मतम् ।

‘यदि मुझपर दुःखका स्नेह है, यदि अपने भीतर यथेष्ट पराक्रम समझते हो और यदि मर इस कार्यका परम कर्तव्य समझकर हृदयमें स्थान देव हो तो युद्ध करो ॥ २६ ॥

स तुहद् यो शिप्राय दीनमभ्युपपद्यते ॥ २७ ॥

स यधुयोऽपनीतेषु साक्षात्प्रायोपक्रम्यते ।

‘वही तुहद् है, जो सारा कार्य नष्ट हो जानेसे कुली हुए स्वजनपर अपना अनुग्रह करता है तथा वही यधु है, जो अनीतिके मागपर चलनेसे सड़कमें पड़े हुए पुरुषोंकी सहायता करता है’ ॥ २७ ॥

तमयैव ह्युवाच स खचन धीरदारुणम् ॥ २८ ॥

करोऽयमिति विश्राय शनैः ऋक्षणमुवाच ह ।

रावणको इस प्रकार धीर एवं दारुण वचन बोलते देख उसने यह समझकर कुम्भरूप धीरे-धीरे मधुर वाणीमें कुछ कहनेसे उत्तर हुआ ॥ २८ ॥

अतोय हि समालक्ष्य आतर लुभितेन्द्रियम् ॥ २९ ॥

कुम्भरूप शनैःप्राप्य वभापे परितस्तन्वयत् ।

उसने देखा मेरे माईकी सारी इन्द्रियों अत्यन्त विद्युत् हो उठी हैं अतः कुम्भरूपने धीरे-धीरे उसे सन्त्वना दी है हुए कहा— ॥ २९ ॥

शृणु राजप्रवहितो मम वाक्यमरिदम् ॥ ३० ॥

बाल राक्षसराजेन्द्र सतापमुपपद्यते ।

रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्यो भवितुमर्हसि ॥ ३१ ॥

शत्रुदमन महाराज ! गायधान हाकर मेरी बात सुनो ।
राक्षसराज ! सनाप करना व्यर्थ है । अब तुम्हें रोष त्यागकर
स्वस हाजना चाहिये ॥ ३० ३१ ॥

नैतमनसि कर्तव्य मयि जीवति पार्थिव ।
तमह नाशयिष्यामि यत् हृते परितप्यते ॥ ३२ ॥

पृथ्वीनाथ ! मेरे बात भी तुम्हें मनमें ऐसा भाव नहीं
लाना चाहिये । तुम्हें जितना कारा सनम हाना पड़ रहा है,
उसे मैं नष्ट कर दूँगा ॥ ३२ ॥

अश्वत्थ तु हित वाच्य सवाचस्य मया तव ।
यद्युभायादभिहित भ्रातृस्नेहाद्य पार्थिव ॥ ३३ ॥

महाराज ! अवश्य ही सब अवस्थाओंमें मुझे तुम्हारे
हितकी बात कहनी चाहिये । अब मैंने यद्युभाव और भ्रातृ
स्नेहके कारण ही य बातें कही हैं ॥ ३३ ॥

सहस्र यच्च कालेऽस्मिन् कर्तुं स्नेहेन यद्युता ।
शत्रूणां पद्म पण्य क्रियमाण मया रणे ॥ ३४ ॥

इस समय एक भाइयों स्नेहवश या कुछ करना उचित
है, वही कहूँगा । अब रणभूमिमें मेरे द्वारा क्रिया करनेवाला
शत्रुओंका संहार देखो ॥ ३४ ॥

अथ पश्य महाबाहो मया समरभूषणि ।
हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्ती हरिचाहिनीम् ॥ ३५ ॥

महाराजो ! आज युद्धके मुहानिपर मेरे द्वारा भाईवृद्धि
रामके मारे जानेक पश्चात् तुम देखोगे कि बनरोंकी सेना
कित तबह भगी जा रही है ॥ ३५ ॥

अथ रामस्य तद् दृष्ट्वा मयाऽऽनीत रणान्तिष्ठ ।
सुखी भय महाबाहो सीता भयतु दुःखिता ॥ ३६ ॥

महाराजो ! आज मैं सग्रामभूमिमें रामका सिर काट
करूँगा । उन्ने देखकर तुम सुखी होना और सीता दुःखमें
डूब जायगी ॥ ३६ ॥

अथ रामस्य पश्यतु निधन सुमहत् प्रियम् ।
लक्ष्म्या राक्षसा सर्वे ये त निहतगन्धरा ॥ ३७ ॥

लक्ष्मिमें जिन राक्षसों सगो-सम्बाधी मारे गये हैं वे भी
आज रामकी मृत्यु देख लें । यह उनक लिये बहुत ही प्रिय
बात होगी ॥ ३७ ॥

अथ शोकपरीताना म्वरधुन्यदोचिनाम् ।
शत्रोयुधि विनाशेन करोम्यभ्युपगमजन्म ॥ ३८ ॥

अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेके लिये लोग अत्यन्त
शोकमें डूबे हुए हैं । आज युद्धमें शत्रुका नाश करके मैं उनक
भोग्य कर दूँगा ॥ ३८ ॥

अथ परतलकाश मस्यमिष तोषदम् ।
विकीर्णं पश्य समरे सुमीय प्रयोगध्वजम् ॥ ३९ ॥

आज परतल समान विप्लवकाय बनरराज सुमीयके
समराङ्गणमें मृत्युके लक्षणपय हानर गिरे हुए देखोगे, जो मृत्यु
सहित मरने समान दृष्टिगोचर होंगे ॥ ३९ ॥

कथं च राक्षसैरेभिर्मया च परितान्वित ।
निधामुभिदाशरयि ध्ययसे त्व सदानय ॥ ४० ॥

निष्पाप निशान्तराज ! य राक्षस तथा मैं-सब लोग
दशरथपुत्र रामका मार डालनेकी इच्छा रखते हैं और तुम्हें
इस बातक लिये आवाहन देने हैं ता भा तुम सदा व्यथित क्यों
रहते हो ? ॥ ४० ॥

मा निहत्य किल त्या हि निहन्ति यति राघव ।
नाहमाभनि सताप शच्छेय रागसाधिप ॥ ४१ ॥

राक्षसराज ! यह मेरा वष करक ही राम तुम्हें मार
सकेंगे किन्तु मैं अपने शिष्योंमें रामने सनाप का भय नहीं
मानना ॥ ४१ ॥

काम त्विदानीमपि मा व्यादिश त्व परतप ।
न पर प्रेक्षणीयस्ते युद्धायानुलम्बिम ॥ ४२ ॥

रात्रुओंको सनाप देनेवाला अनुपम पराक्रमी वीर ! इस
समय तुम इच्छानुसार मुझे युद्धक लिय आयेस दो । रात्रुओंमें
चूल्मनेके लिये तुम्हें दूसरे किसीकी ओर देखनेकी आवश्यकता
नहीं है ॥ ४२ ॥

अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूस्तथ महानलान् ।
यदि शक्नो यदि यमो यन्ति पात्रकमादतौ ॥ ४३ ॥

तानह योधयिष्यामि कुचेरवरुणायपि ।
तुम्हारे महावली शत्रु यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु,
कुचेर और वरुण भी हों ता मैं उनमें भी युद्ध करूँगा तथा
उन सबको उलाह कर दूँगा ॥ ४३ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य शितानुधरस्य मे ॥ ४४ ॥
नर्दतस्तीक्ष्णद्रुमस्य निर्भीयाद् वै पुरन्दर ।

येव दन्तके समान विप्लव शरीर है । मैं हाथमें तीला
विशाल धारण करता हूँ और मेरी लक्ष्मी बहुत तीव्री हैं ।
मेरे निहनाद करनेपर इन्द्र भी मरने परा उठेगा ॥ ४४ ॥

अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्वतस्तस्ता रिपून् ॥ ४५ ॥
न मे प्रतिमुख कञ्चित् स्यात्तु शक्नो निजीरिषु ।

अथवा यदि मैं शस्त्र त्याग करके भी वेगवान् शत्रुओं
को रोता हुआ रणभूमिमें निचरने लूँगा ता बाद भी जीवित
रहनेकी इच्छावाला पुरुष मेरे सामने नहीं टहर सकता ॥ ४५ ॥

नैव शक्न्या न गदया नास्त्रिनिदिने शरैः ॥ ४६ ॥
हस्ताभ्यामेव सरभ्य हनिष्यामि सत्रजिणम् ।

मैं न तो शक्तिने न शस्त्रों, न तलवारों और न पत्थरों
बाणोंकी बान करूँगा । अपने भस्त्रक शस्त्रों दलों शघोम ही
बलशाली इन्द्र जैसे शत्रुओं भी मारक पात्र उदार दूँगा ॥ ४६ ॥

यदि मे सुष्टिवेग स राघवोऽद्य सहिष्यति ॥ ४७ ॥
तत पात्यन्ति चाणौघा रुधिर राघवस्य मे ।

‘यदि राम आज मेरी मुदीका वेग सह लेंगे तो मेरे बाण समूह अन्ध ही उनका रक्त पान करेंगे ॥ ४७ ॥

चिन्तया तप्यसे राजन् क्रिमये मयि तिष्ठति ॥ ४८ ॥
सोऽह शत्रुनिनाशाय तव नियातुमुद्यत ।

‘राजन् ! मेरे रहते हुए तू कितलिये चिन्ता की आगसे झलक रहे हो ! मैं तुम्हारे शत्रुओंका विनाश करनेके लिये अभी रणभूमिमें जानेको उद्यत हूँ ॥ ४८ ॥

मुञ्च रामाद् भय घोर निहनिष्यामि सयुगे ॥ ४९ ॥
राघव लक्ष्मण चैव सुग्रीव च महाबलम् ।

‘तुम्हें रामसे जो घोर भय हो रहा है, उसे त्याग दो । मैं रणभूमिमें राम, लक्ष्मण और महारली सुग्रीवको अवश्य मार डालूँगा ॥ ४९ ॥

हनुमन्त च रक्षोघ्न येन लङ्का प्रदीपिता ॥ ५० ॥
हरीश्च भक्षयिष्यामि सयुगे समुपस्थिते ।
अस्त्राधारणमिच्छामि तव दातु महद् यश ॥ ५१ ॥

‘युद्ध उपस्थित होनेपर मैं राक्षसोंका संहार करनेवाले उस हनुमान्को भी जीवित नहीं छोड़ूँगा, जिसने लङ्का जलायी थी । साथ ही अन्ध यानकों भी खा जाऊँगा । आज मैं तुम्हें अत्यधिक एवं महान् यश प्रदान करना चाहता हूँ ॥ ५० ५१ ॥

यदि चेन्म्राद् भय राजन् यदि चापि स्वयभुज ।
ततोऽह नाशयिष्यामि नैश तम इयाशुमान् ॥ ५२ ॥

‘राजन् ! यदि तुम्हें इन्द्र अथवा स्वयम्भू ब्रह्मसे भी भय है तो मैं उस भयसे भी उखी तरह नष्ट कर दूँगा, जैसे सूर्य राक्षिक अंधकारको ॥ ५२ ॥

अग्नि देवा शायिष्यन्ते मयि भुन्दे महीतले ।
यम च शमयिष्यामि भक्षयिष्यामि पात्रकम् ॥ ५३ ॥

‘अग्नि कुपित होनेपर देवता भी भयभीत हो जायेंगे । (फिर मनुष्यों और वानरोंकी तो बात ही क्या है !) मैं यम

इष्याप्ये भीमद्वामाये वाक्मीकीये आदिकव्ये युद्धकाण्डे त्रिपटितम सगः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीव्याल्मीकिनिर्मित आ रामायण अदिकाव्यके युद्धकाण्डमें त्रिपटितसर्वं पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

चतु पटितम सर्गः

महोदरका कुम्भकर्णके प्रति आक्षेप करके रावणको बिना युद्धके ही अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका उपाय बताना

तदुनमतिरायस्य यत्किनो यादुशान्तिन ।

कुम्भकर्णस्य पचन भुजोपाय महोदर ॥ १ ॥

राजको भी शान्त कर दूँगा । सर्वश्रेष्ठ अम्बिका भी भक्षण कर जाऊँगा ॥ ५३ ॥

आदित्य पातयिष्यामि सनक्षत्र महीतले ।
शतशत्रु वधिष्यामि पास्यामि घरुणालयम् ॥ ५४ ॥

‘नक्षत्रोंसहित सूर्यको भी पृथ्वीपर मार गिराऊँगा, इन्द्रका भी बध कर डालूँगा और समुद्रको भी पी जाऊँगा ॥ ५४ ॥

पर्वताश्रयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ।
धीयकाले प्रसुप्तस्य कुम्भकर्णस्य विक्रमम् ॥ ५५ ॥
अद्य पश्यन्तु भूतानि भक्षयमाणानि सर्वश ।
न त्विदं विविधं सर्वमाहारो मम पूयते ॥ ५६ ॥

‘पर्वतोंको चूर चूर कर दूँगा । भूमण्डलको निदीर्ण । डालूँगा । आज मेरे द्वारा खाये जानेवाले सब प्राणी दीर्घका तक सोकर उठे हुए सुप्त कुम्भकर्णका पराक्रम देखें । यह सब जिलेकी आहार बन जाय तो भी मेरा पेट नहीं : सक्रत ॥ ५५ ५६ ॥

यद्येन ते दाशरथे सुखावह
सुख समाहर्तुमह व्रजामि ।

निहत्य राम सह लक्ष्मणेन
खादामि सत्रान्हरियुयसुख्याम् ॥ ५७ ॥

‘दाशरथकुमार श्रीरामका बध करके मैं तुम्हें उत्तरेत सुखकी प्राप्ति करनेवाले सुख-सौभाग्यको देना चाहता हूँ । लक्ष्मणसहित रामका बध करके सभी प्रधान प्रधान वानरपूत पतियोंको खा जाऊँगा ॥ ५७ ॥

रमस्य राजन् पिय चाद्य वारुणी
कुरुष्व हृत्यानि विनीय दुःखम् ।

मयाद्य रामे गमिते यमस्य
चिराय सीता वशना भविष्यति ॥ ५८ ॥

‘राजन् ! अब मौज करो, मदिरा पीओ और मानसिक दुःखको दूर करके सब कार्य करो । आज मेरे द्वारा यम यम लोक पहुँचा दिये जायेंगे फिर तो सीता चिरकाल (छदा के लिये तुम्हारे अधीन हो जायगी) ॥ ५८ ॥

इष्याप्ये भीमद्वामाये वाक्मीकीये आदिकव्ये युद्धकाण्डे त्रिपटितम सगः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीव्याल्मीकिनिर्मित आ रामायण अदिकाव्यके युद्धकाण्डमें त्रिपटितसर्वं पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

चतु पटितम सर्गः

महोदरका कुम्भकर्णके प्रति आक्षेप करके रावणको बिना युद्धके ही अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका उपाय बताना

तदुनमतिरायस्य यत्किनो यादुशान्तिन ।

कुम्भकर्णस्य पचन भुजोपाय महोदर ॥ १ ॥

अपनी भुजाओंसे गुणाभित होनेवाले विशालराज एव महाराज रावणकुम्भकर्णका यह वचन सुनकर महोदरने कहा—

कुम्भकर्णं कुले जातो धृष्टः प्राहृतदर्शनः ।
अवलितो न दाक्षेति हृन्त्य सर्वत्र वेदितुम् ॥ ७ ॥

कुम्भकर्ण ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो परतु
तुम्हारी रुचि (बुद्धि) निम्नश्रेणीक लोगोंक समान है । तुम
पाठ और धर्मही हो, इसलिये सभी विषयोंमें क्या कनव्य है—
इस बातको नहीं जान सन्ते ॥ २ ॥

नहि राजा न जानीत कुम्भकर्ण नयानयौ ।
त्वत्तु कैशोरकादृष्टं केवल यक्षमुच्यते ॥ ३ ॥

कुम्भकर्ण ! हमारा महाराज नानि और अनानिका नहीं
जानते हैं; ऐसा बान नहीं है । तुम फल अपने बचपन
कारण धृन्नायुक्त इस तरहकी बातें कहना चाहते हो ॥ ॥

स्थान वृद्धि च हानि च देशकालविधानि च ।
आमनश्च परपा च द्युष्यते राक्षसपथ ॥ ४ ॥

राक्षसीरामणि रावण देश-कालके लिये उचित कर्तव्य
का जानते हैं और अपन तथा अनुपपन्न स्थान, बुद्धि एवं
व्ययक अच्छी तरह समझते हैं ॥ ४ ॥

यत्त्वशाप्य चलन्ता यक्षुः प्राहृतदुष्टिना ।
अनुपासितवृद्धेन कं कुयात्तादृशं बुध ॥ ५ ॥

जिनने वृद्ध पुरुषोंकी उपासना या सल्लाह नहीं किया है
और किसी बुद्धि गंवारोंक समान है, ऐसा बलवान् पुरुष
भी जिस कर्मका नहीं कर सकता—जिसे अनुचित समझता
है, वैसे कर्मका को बुद्धिमान् पुरुष कैसे कर सकता है ? ॥

यास्तु धर्मायकामास्त्य श्रवीषि पृथगाश्रयान् ।
अयोद्ध स्वभावेन नहि लक्षणमस्ति तान् ॥ ६ ॥

जिन अर्थ, धर्म और कामको तुम पृथक्-पृथक् आश्रय
बाल बना रहे हो; उन्हें ठीक ठीक समझनेकी तुम्हारे भीतर
शक्ति ही नहीं है ॥ ६ ॥

कम चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजनम् ।
श्रेय पापीयसा चात्र फल भवति क्षमणाम् ॥ ७ ॥

शुद्धके लक्षणभूत का विचार (धर्म, अर्थ एवं काम)
है, उन सबका एकमात्र काम ही प्रयोजक है (क्योंकि जो
कमानुष्ठानमें रहित है, उसका धर्म, अर्थ अथवा काम—किस
भी पुरुषार्थफल नहीं होता) । इसी तरह एक पुरुष
प्रयत्नमें सिद्ध होनेवाला सभी गुणागुम व्यापारोंका फल यहाँ
एक ही कर्ताके प्राप्त होता है (इस प्रकार जब परस्पर विरुद्ध
होनेपर भी धर्म और कामका अनुष्ठान एक ही पुरुषके द्वारा
होता देखा जाता है; तब तुम्हारा यह कहना कि कवल धर्म
का ही अनुष्ठान करना चाहिये, धर्मविरोधी कामका नहीं,
कैसे समझ हो सकता है ?) ॥ ७ ॥

निःश्रेयसफलवेद्य धर्मापाधिनरायणि ।
अधमानपथो प्राप्त फलं च प्राप्यवायिकम् ॥ ८ ॥

निष्कर्मभावसे किये गये धर्म (जप, ध्यान आदि)
और अर्थ (धनसाधन, यज्ञ, दान आदि)—ये चित्तगुद्धि
द्वारा यद्यपि निःश्रेयस (मोक्ष) रूप फलकी प्राप्ति करनेवाला
है तथापि कामना विनाशसे स्वयं एवं अभ्युदय आदि अन्य
फलकी भी प्राप्ति करने हैं । पूर्वोक्त जगदिरूप या क्रियामय
नित्य धर्मका लोप होनेपर अधर्म और अपन प्राप्त होते हैं और
उनके रहत हुए प्रत्यवायजनित फल भोगना पड़ता है (परतु
काम्य-कर्म न करनेसे प्रत्यवाय नहीं होता; यह धर्म और
अधर्म अथवा कामकी निगेरता है) ॥ ८ ॥

ऐहलौकिकपारम्पर्य कम पुमिनिषेयत ।
कामाप्स्यति तु कल्याणि लभत काममास्थित ॥ ९ ॥

जोवोंको धर्म और अधर्मन फल इस लोक और परलोक
में भी भोगने पड़ते हैं । परतु जो कामना निगेरक उद्देश्यम
यन्तर्गत कर्मोंका अनुष्ठान करता है उसे यहाँ भी उसका
मुख-भोगारयकी प्राप्ति हो जाती है । धर्म आदिक फलका भोग
उसके लिये कालान्तर या लोकान्तरकी अपेक्षा नहीं होती है
(इस तरह काम धर्म और अधर्म विलक्षण सिद्ध होता है) ॥

तत्र हृष्टमिच्छा राक्षस इति कार्यं मतं च न ।
वाचो हि साहस यत्तत् किमियात्रापनीयते ॥ १० ॥

यहाँ राजक लिये कामरूपी पुरुषपायका सेवन उचित
है ही । ऐसा ही राजसवजने अपने हृदयमें निश्चित किया
है और यही हम मन्त्रियोंकी भी सम्मति है । शत्रुक प्रति
वाहलक्षण कार्य करना कौन-सी अनीति है (अतः इन्होंने जो
कुछ किया है, उचित ही किया है) ॥ १ ॥

एकस्वैराभिधाने तु हेतुर्यं प्राहृतस्त्यया ।
तत्राप्यनुपपन्नं ते वक्ष्यामि यदसाधु च ॥ ११ ॥

धुमने युद्धके लिये अनेके अपने ही प्रस्ताव करनेक
विराममें जो हेतु दिया है (अपने महान् बलक द्वारा शत्रुका
परान्न कर देनेकी जो घोषणा की है) उसमें भी अब असमन
एवं अनुचित बात कही गयी है; उस में तुम्हारा समन
रखता हूँ ॥ ११ ॥

येन पूर्वं जनग्याने बह्व्योऽतिथिला हता ।
राक्षसा राघव तत्त्व कथमेको जयिष्यति ॥ १२ ॥

जिन्होंने पहले जनसामने बहुतने अपन बलवान्
राक्षसोंक मार डाला था; उन्होंने खुषी कीर भोगमक इस
अर्थ ही कैसे परान्न कराया ? ॥ १२ ॥

• यहाँ मनेनेने राजकीय बलबुद्धी करनेके लिये बलवान्
की स्थापना या प्रशंसा की है । यह आत्मा मज नहीं है । बलवान्
धर्म अर्थ और कामन धर्म ही प्रधान है अतः उनको सेवनेसे प्रशंसा
मात्रका कामना ही प्रशंसा है ।

ये पूर्व निश्चितास्तेन जनस्थाने महीजस ।

राजसास्तान् पुरे सर्वान् भीतानघ न पश्यसि ॥ १३ ॥

जनस्थानमें श्रीरामने पहलू जिन महान् बलगाली निगाचरोंको मार भगाया था, वे आज भी इस लङ्कापुरीमें विपमान हैं और उनका यह भय अतक दूर नहीं हुआ है । क्या तुम उन राक्षसोंको नहीं देखते हो ? ॥ १३ ॥

त सिंहमित्र समुद्ध राम वधारथात्मजम् ।

सप सुप्तमहो युवध्या प्रयोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥

वधारथकृमार श्रीराम अत्यन्त क्रुपित हुए सिंहके समान परानमी एवं भयंकर हैं, क्या तुम उनसे मित्रनेका साहस करते हो ? क्या जान बूझकर सोये हुए सर्वको जगाना चाहते हो ? तुम्हारी मूलतापर आश्रय होता है ॥ १४ ॥

उपलन्त तेजसा नित्य प्राचेन च दुरासवम् ।

कस्त मृत्युमियासहसासाव्यितुमर्हति ॥ १५ ॥

श्रीराम वधा ही अपने तेजसे दबीप्यमान हैं । वे प्राण करनेपर अत्यन्त दुर्जय और मृत्युके समान असह्य हो उठते हैं । मर्या कौन थोड़ा उनका सामना कर सकता है ? ॥ १५ ॥

सशयस्थमिदं सर्वं दान्त्रो प्रतिसमासने ।

एकस्य गमनं तात नहि मे रोचते भृशम् ॥ १६ ॥

हमारी यह सारी सेना भी यदि उस अजेय शत्रुका सामना करनेके लिये खड़ी हो तो उसका जीवन भी सशयमें पड़ सकता है । अतः तात ! युद्धके लिये तुम्हारा अकेला जाना मुझे विन्दुल अच्छा नहीं लगता है ॥ १६ ॥

हीनार्यस्तु समुद्धार्यं को रिपु प्राप्नुत यथा ।

निश्चित जीवितव्यागे वशमानेतुमिच्छति ॥ १७ ॥

जो सहायकोंसे सम्पन्न और प्राणोंकी बाजी लगाकर शत्रुओंका संहार करनेके लिये निश्चित विचार रखनेवाला हो, ऐसे शत्रुका अत्यन्त साधारण मानकर कौन असह्य थोड़ा वशमें लानेकी इच्छा कर सकता है ? ॥ १७ ॥

यस्य नास्ति मनुष्येषु सदृशो राक्षसोत्तम ।

कथमाशसते योद्धुं तुल्येनैव प्रविवस्वतो ॥ १८ ॥

राक्षसगिरामणे ! मनुष्योंमें जिनकी समता करनेवाला वृत्त कोई नहीं है तथा जो इन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी हैं, उन श्रीरामके साथ युद्ध करनेका होश्या नुई कैसे हो रहा है ? ॥ १८ ॥

एयमुपत्या तु सरम्भं कुम्भकर्णं महोदर ।

उप्रात्र रक्षसा मध्ये राज्यं लोकारावणम् ॥ १९ ॥

रोगक आवेशमें युक्त कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर महोदरने समस्त राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए लोगोंको रत्ननेवाले रावण मे कहा— ॥ १९ ॥

रम्भं पुरस्ताद् धैवेर्हो विमर्षं त्व विलम्बसे ।

यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति ॥ २० ॥

महाराज ! आप विदेहकुमारीका अपने सामने पकर भी किसलिये विलम्ब कर रहे हैं ? आप जब चाहें तभी सीता आपके वशमें हो जायगी ॥ २० ॥

दृष्ट कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारक ।

रुचिताश्चेत् स्वया युद्ध्या रामसेन्द्र ततः ॥ २१ ॥

राक्षसराज ! मुझे एक ऐसा उपाय सूझा है, जो सीताका आपकी सेवामें उपस्थित करने ही रहेगा । आप उसे सुनिये । मुनकर अपनी बुद्धिसे उत्तरपर विचार कीजिये और ठीक जैसा ता उसे काममें लाय्य ॥ २१ ॥

अहं द्विजिह्वं सहादी कुम्भकर्णो वितर्दन ।

पञ्च रामवधायेन नियन्तव्यवशेष ॥ २२ ॥

‘आप नगरमें यह घोषित कर दें कि महोदर ! द्विजिह्व ! सहादी ! कुम्भकर्ण और वितर्दन—य पाँच राक्षस रामका वध करनेके लिये जा रहे हैं ॥ २२ ॥

ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः ।

जेष्वाभो यदि ते शत्रून् नोपायै कायमस्ति न ॥ २३ ॥

‘हमलोग रणभूमिमें जाकर प्रयत्नपूर्वक श्रीरामके साथ युद्ध करेंगे । यदि आपका शत्रुआपर हम विजय पा गये तो हमारे लिये सीताको वशमें करनेके निमित्त दूसरे किसी उपाय की आवश्यकता ही नहीं रहे जायगी ॥ २३ ॥

अथ जीवति न शत्रुर्वयं च हतस्तयुगा ।

तत्न समभिपत्स्यामो मनसा यत् समीक्षितम् ॥ २४ ॥

‘यदि हमारा शत्रु अजेय होनेका कारण जीवित ही रह गया और हम भी युद्ध करते-करते मार नहीं गये तो हम उस उपायको काममें लायेंगे, जिसे हमने मनसे सोचकर निश्चित किया है ॥ २४ ॥

वयं युद्धादिद्विष्यामो कधिरेण समुत्तिता ।

विदाय स्वतनुं याषी रामनामाङ्कितैः शतैः ॥ २५ ॥

भक्षितो राघवोऽस्माभिलक्ष्मणश्चेति यादिन ।

ततः पादौ प्रहीप्यामस्तस्य न कामः प्रपूरय ॥ २६ ॥

‘रामनामसे अङ्कित बाणोंद्वारा अपने शरीरको घायल करार करतसे लक्ष्यपथ हो हम यह करते हुए युद्धभूमिमें यहाँ लौटने कि हमने राम और लक्ष्मणको खा लिया है । उस समय हम आपके पैर पकड़कर यह भी कहेंगे कि हमन शत्रुको मारा है । इसलिये आप हमारी इच्छा पूरी कीजिये ॥

ततोऽवशेषाय पुरे गजस्कन्धेन पाथिव ।

इतो रामं सह आश्रमं ससैन्यं इति सयत ॥ २७ ॥

‘शृथीनाथ ! तब आप हाथीकी पीठपर किसीसे विठाकर

गरे नगरमे यद् घोषणा क्व ॥ किं भाई और मनाक नष्टि
राम मारा गया ॥ २० ॥

प्रीनो नाम ततो भूत्वा भृत्याना त्वमरिन्दम ।
भोगाश्च परिवाराश्च कामान् वसु च दापय ॥ २८ ॥
ततो माल्यानि वासांसि धीराणामनुलेपनम् ।
पेष च बहू योधेभ्य स्व्य च मुदित पिप ॥ २९ ॥

‘शत्रुदमन ! इतना ही नहीं, आप प्रसजता दिखात हुए
अग्ने और सेरकोंका उनकी अभीष्ट वस्तुएँ, तरह-तरहकी आग
सामग्रियाँ, दास-दासी आदि, धन-रत्न, आभूषण, वस्त्र और
अनुलेपन दिलावें । अन्य यादार्थोंको भी बहुत-से उपहार
दें तथा स्वयं भी लुघी मनाते हुए मधुपान करें ॥ २८ २ ॥

ततोऽस्मिन् बहुलीभूते कौलीन सर्वतो गते ।
भक्षितं ससुहृद् रामो राक्षसैरिति विभुने ॥ ३० ॥
प्रविद्याभ्यास्य चापि त्व सीता रहसि सान्त्वयन् ।
धनधान्यैश्च कामैश्च रत्नैश्चैना प्रलोभय ॥ ३१ ॥

अतन्तर जब लखौन सब ओर यह चचा पैच जाय
कि राम अपने सुहृद्गणहित राक्षसोंके आहार बन गये और
भीमके कानोंमें भी यह बात पड़ जाय, तब आप सीताका
समसानेक लिय एकान्तमें उठन वागव्यानपर जायें और
तब-तबसे धीरज वैधानर उभे धन धान्य, भोजि भोजन
मांग और रत्न आदिका लोभ दिखावें ॥ ३० १ ॥

मनयोपधया राजन् भूय शोकानुवधया ।
भक्तास्त्यद्वदरा सीता नपनाथा गमिष्यति ॥ ३२ ॥

‘राजन् ! इन मरझनाने अग्नेको अनाथ माननगली सीता
का शोक और भी बड़ जायगा और वह इच्छा न होनेपर मा
आपका अधीन हो जायगी ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यनकाये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे ऋतुपष्ठितमः सर्गः ॥ २४ ॥

इम प्रकार आवाहनकिन्तिमत आ रामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे बाह्यनकाये सर्ग पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चपष्ठितमः सर्गः

कुम्भकर्णकी रणयात्रा

स तपोवन्तु निर्भेत्य कुम्भकर्णो महोरम ।

अभवीद् राजसस्येष्ठ आनर रावण तत ॥ १ ॥

महोरसे ऐरावतनेर कुम्भकर्णने उभे डारा और अग्ने
भाई राक्षसिणमणि रागसे कहा— ॥ १ ॥

सोऽह तप भय योग यथात् तस्य पुरामन ।
रामस्याद्य प्रमानामि निर्जने हि सुखी भव ॥ २ ॥

‘राजन् ! आज मैं उस दुष्टमा रावण का करण दुष्टार
ऐर भयने दूर कर दूँगा । तुम बरमासे मुन हानन सुखी
हो जाओ ॥ २ ॥

रमणीय हि भर्तार विनष्टमधिगम्य सा ।

नैराद्यात् स्त्रीलघुत्वाच्च त्वद्वदरा प्रतिपत्स्यत ॥ ३३ ॥

‘अग्ने रमणीय पतिरा विनष्ट हुआ जान वह निष्ठा
तथा नारी-सुगम चल्नका कारण आपके वशमें आ जायगी।
सा पुरा सुखसबुद्धा सुखाहा दुःखकोशिता ।
त्वय्यधीन सुख ज्ञान्वा सगयैर गमिष्यति ॥ ३४ ॥

‘वह पहले सुखमें पड़ी हुई है और सुख भोगनेक योग्य
है परंतु इन दिनों दुःखसे दुर्बल हो गयी है । पत्नी दगामें
अब आपके ही अधीन अपना सुख समझकर सरया आपकी
मेवामें आ जायगी ॥ ४ ॥

एतत् सुनीत मम दशनेन
राम हि हृष्टैव भवेदन्ध ॥

हृष्टं नै सेत्स्यति मोक्षुका भू

महानयुद्धेन सुखस्य लाभ ॥ ३५ ॥

‘पर देखनेमें यही सबम सुन्दर नीति है । युद्धम तो
भीरमका दगन करते ही आपका अनर्थ (मृत्यु) की प्राप्ति
हो सकती है अत आप युद्धसलमें जानेक लिय उल्लुख
न हों । वहाँ जायन अभीष्ट मनारपकी सिद्धि हो जायगी ।
बिना युद्धक ही आरामे सुखका महान् लाभ होगा ॥ ३५ ॥

अतश्चैतन्मोक्षुका दानराससदायो
रिपुः सयुद्धेन जपञ्चनाधिप ।

यदाश्च पुण्यं च महामहीपत

थिपचकीति यच्चिर समस्तुत ॥ ३६ ॥

‘महायज्ञ ! जो राक्ष विना युद्ध ही ‘जुवर विजय
पाता है, उसकी सेना नष्ट नहीं होता । उसका जीवन भी
सदायमें नहीं पड़ता, वह पचैर एव महान् यज्ञ पाता तथा
रीपकाण्डन लक्ष्मी एव उच्चम कीर्तिना उपभोग करता है’ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यनकाये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे ऋतुपष्ठितमः सर्गः ॥ २४ ॥

इम प्रकार आवाहनकिन्तिमत आ रामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे बाह्यनकाये सर्ग पूरा हुआ ॥ २४ ॥

गजन्नि न वृथा शूर निवृत्ता ह्य तोयदा ।

पश्य सम्पद्यमानं तु गर्जितं बुधि कम्पना ॥ ३ ॥

‘शरीर अश्रुती बादलक समान घ्यर्ष गर्जना नहीं किया
करत । तुम देखना, अब युद्धस्वल्पमें मैं अग्ने ‘राक्षसके द्वारा
ही गजना करूँगा ॥ ३ ॥

न मय्यस्ति चात्मान सम्भावितुमात्मना ।

अदृशयित्वा शूरस्तु कम बुयस्ति दुष्करम् ॥ ४ ॥

‘शूरवीरोंको अग्ने ही मुझसे अपनी ताकत करना सहन
नहीं होता । व बाणीके द्वारा प्रदशन न करन युज्यन दुष्कर
पथकम प्रवर्त करते हैं ॥ ४ ॥

विष्णुः शाना ह्यधुनीना रात्रा पण्डितमानिनाम् ।

रात्रत त्वद्वचो नित्य कथ्यमान महोदर ॥ १ ॥

‘महोदर ! जा भीरु; मूर्ख और छूटे ही अपनेको पण्डित माननेवाले होंगे; उन्हीं राजाओंको तुम्हारे द्वारा कही जानेवाली ये चिकनी चुपड़ी बातें सदा अच्छी लगेंगी ॥ ५ ॥

युद्धे कापुरुषैर्नित्य भयङ्गि म्रियवादिभिः ।

राजानमनुगच्छन्नि सर्वे कृत्य विनाशितम् ॥ ६ ॥

‘युद्धम कायरता दिसानेवाले तुम-जैसे चाप-दखने ।
सर्ग राजाकी हों में हों मिलाकर सारा काम चौपट किया है ॥

राजशेया कृता लङ्का क्षीणः कोशो बल हतम् ।

राजानमिममासाद्य सुदृष्टिह्रमभिप्रवम् ॥ ७ ॥

‘अब तो लङ्कामें केवल राजा गेय रह गये हैं । खजाना खाली हो गया और सेना मार डाली गयी । इस राजाको पाकर तुमलोगोंने मित्रके रूपमें शत्रुका काम किया है ॥ ७ ॥

एष नियाम्यह युद्धमुद्यत शत्रुनिर्जये ।

तुनय भवतामद्य समीकर्तुं महाहवे ॥ ८ ॥

‘यह देखा; अब मैं शत्रुको जीतनेके लिये उद्यत होकर समरभूमिम जा रहा हूँ । तुमलोगोंने अपनी खाटी नीतिके कारण अब विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी है; उसका आज महासमरमें समीकरण करना है—इस विषम सकलको सर्वदाके लिये टाल देना है ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वतो वाक्य कुम्भकर्णस्य धीमत ।

प्रत्युयाच ततो वाक्य प्रहसन् राक्षसाधिप ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् कुम्भकर्णने जय ऐसी वीरचित बात कही; तब राक्षसराज रावणने हँसते हुए उत्तर दिया— ॥ ९ ॥

महोदरोऽयं रामात् तु परिरक्तो न सद्यः ।

न हि रोचयते तात युद्ध युद्धनिशारद् ॥ १० ॥

‘युद्धनिशारद तात ! यह महोदर श्रीरामसे बहुत डर गया है; इसमें सद्यः नहीं है । इसीलिये यह युद्धका पसंद नहीं करता है ॥ १० ॥

कश्चिन्मे त्यक्तमो नास्ति सौहृदेन बलेन च ।

गच्छ शत्रुनाथाय त्वं कुम्भकर्ण अयाय च ॥ ११ ॥

‘कुम्भकर्ण ! मेरे आत्मीयजनोंमें सौहार्द और बलकी दृष्टिसे कुछ भी तुम्हारी समानता करनेवाला नहीं है । तुम शत्रुओंका बध करने और विजय पानेके लिये युद्धभूमिम जाओ ॥ ११ ॥

शायान शत्रुनाशार्थं भयान् सम्योधितो मया ।

अप हि कालः सुमहान् राक्षसानामरिदम् ॥ १२ ॥

‘शत्रुदमन वीर ! तुम तब से थे । तुम्हारे द्वारा शत्रुओं का नाश करनेके लिये ही मैंने तुम्हें प्रजाया है । एकलौकी युद्धपात्राण लिये यह खन्ने उच्चम समय है ॥ १२ ॥

सगच्छ शूलमादाय पौशहस्त इवान्तक ।

वानरान् राजपुत्रौ च भक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥

‘तुम पात्राधी यमपञ्चकी मौति शूल लेकर जाओ और सूर्यके समान तेजस्वी उन दोनों राक्षसकुमारों तथा धानराके मारकर खा जाओ ॥ १३ ॥

समालोक्य तु ते रूप विप्रविष्यन्ति धानरा ।

रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यत ॥ १४ ॥

‘धानर तुम्हारा रूप देखते ही भाग जायेंगे तथा राम और लक्ष्मणके हृदय भी विदीर्ण हो जायेंगे ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा कुम्भकर्णं महाबलम् ।

पुनजातमिदामान मेने राक्षसपुङ्गव ॥ १५ ॥

महाबली कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने अपना पुन नया जन्म हुआ-सा माना ॥ १५ ॥

कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानस्तस्य पराक्रमम् ।

यभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मल ॥ १६ ॥

राज रावण कुम्भकर्णके बलको अच्छी तरह जानता था; उसके पराक्रमसे भी पृथ पविचिन था इसलिये वह निर्मल चद्रमाके समान परम आह्लादसे भर गया ॥ १६ ॥

इत्येवमुक्त सहृष्टो निजगाम महाबल ।

राक्षस्तु ध्वजन् धृत्वा योद्धुमुद्युक्तयास्तदा ॥ १७ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर महाबली कुम्भकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ । वह राजा रावणकी बात सुनकर उस समय युद्धके लिये उद्यत हो गया और लङ्कापुरीसे बाहर निकल ॥ १७ ॥

आददे निशित शूल वेगाच्छत्रुनिर्हण ।

सर्वे कालायस क्षीत ततकाञ्चनभूयणम् ॥ १८ ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाला उस वीरने बड़े वेगसे तीखा शूल हाथमें लिया; ओ सब-का-सब काले लड़ैका बना हुआ; चमकीला और तपान हुए सुवर्णसे विभूषित था ॥ १८ ॥

इन्द्राशानिस्त्रमस्य वज्रप्रतिमगौरवम् ।

देवदानयग धर्षयक्षपन्नगसूदनम् ॥ १९ ॥

उसकी शान्ति इन्द्रके अशानिके समान थी । यह वज्रके समान भारी था तथा देवताओं; दानवों; गन्धर्वों; यक्षों और नागोंका संहार करनेवाला था ॥ १९ ॥

रक्तमाल्यमहादाम स्वतश्चोद्गतपावकम् ।

आदाय विपुल शूल शत्रुशोणितरञ्जितम् ॥ २० ॥

कुम्भकर्णों महातेजा रावण वाक्यमग्रवीध ।

गमिष्याम्यहमेकाकी तिष्ठत्विव चल् मम ॥ २१ ॥

उसमें खाल फूलोंकी बहुत बड़ी माला लटक रही थी और उसके आगरी चिनगावियों सज्ज रही थी । शत्रुओंका संहार करने हुए उस विनाश शूलका हाथमें लेकर महातेजस्वी कुम्भकर्ण

रावणसे बोला—'मैं अकेला ही युद्धके लिये जाऊँगा । अपनी यह सारी मेना यहाँ रहे ॥ २० २१ ॥

अब तानु भुधितः कुम्भो भक्षयिष्यामि वानरात् ।
कुम्भकर्णाय च श्रुत्वा रावणो वाक्यमग्रहीत् ॥ २२ ॥

'आज मैं भूला हूँ और मेरा क्रोध भी गया हुआ है ।
इसलिये समस्त वानरोंको भक्षण कर जाऊँगा ।' कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर रावण बोला—॥ २२ ॥

सैन्ये परिवृतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः ।
वानरा हि महात्मान इरा सुदुष्यन्सायिन ॥ २३ ॥
एकाकिन प्रमत्त वा नयेयुर्दुर्शनैः क्षयम् ।
तस्मात् परमदुर्धर्यं सैन्ये परिवृतो व्रज ।
रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्षं निवृद्धय ॥ २४ ॥

'कुम्भकर्ण ! तुम हाथोंमें शूल और मुद्गर धारण करने वाल सैनिकोंसे घिरे रहकर युद्धके लिये यात्रा कर; क्योंकि महामनस्वी वानर बड़े वीर और अत्यन्त उद्योगी हैं । वे तुम्हें अकेला या असावधान देख दौंतेसे काट-काटकर नष्ट कर दालेंगे इसलिये सेनासे घिरकर सब ओरसे सुरक्षित हो रहो । उस दक्षमें तुम्हें पराजय करना शत्रुओंके लिये बहुत कठिन होगा । तुम राक्षसाका अहित करनेवाले समस्त शत्रुदल या संहार करो ॥ २३ २४ ॥

अयासनात् समुत्पत्य व्रज मणिकृतान्तराम् ।
माययध महातेजा कुम्भकर्णस्य रावण ॥ २५ ॥

मैं कहकर महातेजस्वी रावण अपने आसनसे उठा और एक छानेकी माला; जिसके बीच-बीचमें मणियाँ पिरोयी हुई थी; लेकर उसने कुम्भकर्णके गलेमें पहना दी ॥ २ ॥

अह्नदायुर्हृल्लोषेष्टान् वराण्याभरणानि च ।
हात् च शशिसकाशामाययध महात्मन ॥ २६ ॥

शायन, अंगूठियों, अच्छे-अच्छे आभूषण और चन्द्रमा के समान चमकीला हार—इन सबको उसने महाकाय कुम्भकर्णके अङ्गोंमें पहनाया ॥ २६ ॥

दिव्यानि च सुगार्धानि माल्यवामानि रावण ।
गात्रेषु सज्जयामास शोभयोश्चास्य कुण्डले ॥ २७ ॥

उठना ही नहीं; रावणने उसके विभिन्न अङ्गोंमें दिव्य सुगन्धित फूलोंकी माल्यार्थी भी वैषया दी और दोनों कर्तोंमें कुण्डल पहना दिये ॥ २७ ॥

काञ्चनाङ्गुलकेयूरनिष्पाभरणभूषितः ।
कुम्भकर्णो वृद्धत्वेन सुदुतोऽग्निरिवाधमौ ॥ २८ ॥

सनेक अङ्गद; केयूर और पद्म आदि आभूषणोंसे भूषित तथा पड़ेक समान विद्याल कानोंगाल कुम्भकर्ण पीकी उत्तम आहुति पाकर प्रज्वलिता हुई अग्निर समान प्रकाशित हो उठा ॥ २८ ॥

धोणीसूत्रेण महता मेघकेन व्यराजत ।
अमृतोत्पादने नञ्जो भुजङ्गेनेव मन्दर ॥ २९ ॥

उसके कटिप्रदेशमें काट रंगकी एक विशाल परधनी थी; जिसमें बड़े अमृतकी उत्पत्तिके लिये किये गये समुद्रमयन के समय नागराज वासुकिने लिप्त हुए मन्दराचलके समान गामा पाता था ॥ २९ ॥

स काञ्चन भारसह निरात
विद्युत्प्रभं श्रीसमिदात्मभासा ।

आवध्यमान कवच रराज
सन्धाभ्रसखीन इवाद्विराज ॥ ३० ॥

तदनन्तर कुम्भकर्णकी छातीमें एक छानेका कवच बाधा गया; जो भारी-से-भारी आगव सहन करनेमें समर्थ; अन्न दात्रोंसे अनेक तथा अपनी प्रमासे विद्युत्के समान देदीप्यमान था । उसे धारण करने कुम्भकर्ण सन्धाकालके लाल बादलोंसे समुक्त गिरिपथ अस्ताचलके समान भूगोमित हो रहा था ॥ ३० ॥

सर्वाभरणसर्वाङ्गं शूलपाणि स गन्तस ।
त्रिविक्रमकृतोत्साहो नारायण इवाग्रही ॥ ३१ ॥

सारे अङ्गोंमें सभी आवश्यक आभूषण धारण करके हाथोंमें शूल लिये वह राक्षस कुम्भकर्ण अब आगे बढ़ा; उस समय त्रिलोकीको नापनेके लिये तीन डग बनानेका उत्साहित हुए भगवान् नारायण (राम) के समान जान पड़ा ॥ ३१ ॥
अतएव सम्परिप्यज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।

प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबल ॥ ३२ ॥

भार्गवो हृदयसे ल्याकर उसकी परित्रिणा करके उस महा बली वीरने उसे मस्तक स्पर्शकर प्रणाम किया । तत्पश्चात् वह युद्धके लिये चला ॥ ३२ ॥

तमाशीर्षिं प्रदास्ताभिः प्रेययामास रावण ।
शङ्खदुडुभिर्निघोषे सैन्येश्चापि वरायुधे ॥ ३३ ॥

उस समय रावणने उसमें आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आयुधोंसे सुवर्जित सेनाओंके साथ उसे युद्धके लिये बिदा किया । यात्रा के समय उसने शङ्ख और दुडुभि आदि शान् भी ध्वजगये ॥ ३३ ॥

त गजैश्च तुरगैश्च स्यन्दनैश्चाम्युदसनी ।
अनुजग्मुमहात्मानो रथिनो रथिता वरम् ॥ ३४ ॥

हाथी, घोड़े और मर्जोंकी गर्जनान समान परंपराट वेदा करनेवाले रथीयार सवार हो अनेकानेक महामनस्वी रथी वीर रथियोंमें श्रेष्ठ कुम्भकर्णके साथ गये ॥ ३४ ॥

सर्वैरुष्टैः खरैश्चैव सिंहद्विपमृगाद्विजैः ।
अनुजग्मुथ त धोर कुम्भकर्ण महाबलम् ॥ ३५ ॥

जितने ही राक्षस खों, ऊँट, गधे, सिंह, हाथी, मृग और

पक्षिणोपर सगर हो-होकर उस भयकर महाबली कुम्भकर्णक
पीछे-पीछे गये ॥ ३ ॥

स पुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो

धृतातपश्च शितशूलपाणि ।

मदोत्कट शोणितगन्धमसो

विनिर्ययौ दानवदेवशत्रुः ॥ ३६ ॥

उस समय उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रही थी । सिरपर
रश्मि छत्र तना हुआ था और उसने हाथमें तीखा विशूल ले
रक्खा था । इस प्रकार देवताओं और दानवोंका शत्रु तथा रक्तकी
गन्धसे मतवाला कुम्भकर्ण, जो स्वाभाविक मदसे भी उमस
हो रहा था, मुद्रके लिये निकला ॥ ३६ ॥

पद्मातपश्च बहवो महानादा महाबला ।

अभ्ययू राक्षसा भीमा भीमास्त्रा शूलपाणय ॥ ३७ ॥

उसके साथ बहुतसे पैदल राक्षस भी गये, जो बड़े
बलवान्, जोर-जोरसे गजना करनेवाले, मीण नेशधारी और
मयानक रूपवाले थे । उन सबके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र
शस्त्र थे ॥ ३७ ॥

गवाक्षा ह्युषुह्युयामा नीलाञ्जनचयोपमा ।

शूलानुघम्य खड्गाश्च निशिताश्च पराधधान् ॥ ३८ ॥

भिन्दिपालाश्च परिघान् गदाश्च मुसलानि च ।

तालस्कधाश्च विपुलान्क्षेपणीयान् दुरासवान् ॥ ३९ ॥

उनके नेश रोपमे लाल हो रहे थे । वे सभी कई व्याम
ऊँच और काल कोयलके ढेरकी भोंति काल थे । उन्होंने
अपने हाथाम शूल, तलवार, तीरती धारवाले फरसे, भिन्दिपाल,
परिघ, गदा, मुसल, बड़े बड़े ताड़के वृक्षोंके तने और बिन्दे
कोई कान न देने, एसी गुल्लें ल रक्खी था ॥ ३८ ३९ ॥

भयान्यहपुरादाय दारुण घोरदशनम् ।

निष्पपान महातेजा कुम्भकर्णो महाबल ॥ ४० ॥

तदनन्तर महातनवी महाबली कुम्भकर्णने उदा उम
रूप धारण किया, जिसे देखनेपर भय मन्दम होता था । इस
रूप धारण करय वह मुद्रक लिय चल पड़ा ॥ ४० ॥

धनुःशतपरीणाह स पटशतसमुच्छ्रित ।

रीद्र शकटचक्रमक्षो महापयतसनिभ ॥ ४१ ॥

उस समय वह ॥ सौ धनुषक बराबर विस्तृत और सौ
धनुषके बराबर ऊँचा हो गया । उसकी आँखें दो गाड़ीके
परियोंके समान जल पड़नी थीं । वह विनाल पर्यंतके समान
भयकर शिलापी देता था ॥ ४१ ॥

स्निपत्य च रक्षासि दग्धशैलोपमो महान् ।

कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निद्रमग्रवीत् ॥ ४२ ॥

पहले तो उसने राक्षस-सेनाकी व्यूह-रचना की । फिर
दावानलसे दग्ध हुए पर्यंतके समान महाकण्य कुम्भकर्ण
अपना विशाल मुख फैलाकर अन्हास करता हुआ इस
प्रकार नील— ॥ ४२ ॥

अथ वानरमुख्याना तानि यूयानि भागश ।

निर्वह्निष्यामि सकुद्ध पतङ्गानिष पावक ॥ ४३ ॥

बाक्षो ! जैसे आग पतंगोंको जलती है, उसी प्रकार मैं
भी कुपित होकर आज प्रधान प्रधान वानरोंके एक एक छद्म
को भस्म कर डारूँगा ॥ ४३ ॥

नापरान्यन्ति मे काम वानरा घनचारिण ।

जातिरसद्विधाना सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥

प्रा तो वनमें बिचरनेवाले बेचारे वानर ज्येच्छासे मग
कोई अपराध नहा कर रहे हैं अतः ये वक्त्रे योग्य नहीं हैं ।
वानरोंकी जाति तो हम जैसे लोगोंके नगरेयानका आभूषण है ॥

पुररोधस्य मूल तु गघन सहलक्ष्मण ।

हते तस्मिन् हत सर्वे त वधिष्यामि समुग्रे ॥ ४५ ॥

बासवम लङ्कापुरीपर घेय जालनेके प्रधान कारण हैं—
लक्ष्मणसहित राम । अतः सबसे पहले मैं उन्हींको युद्धमें
मार्हूँगा । उनके मारे जानेपर सारी वानर-सेना स्वतः मरी हुई
सी हो जायगी ॥ ४५ ॥

पथ तस्य श्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसा ।

नाद बहुमहाघोर कम्पयन्त इवाणवम् ॥ ४६ ॥

कुम्भकर्णके ऐसा कहनेपर राक्षसोंने समुद्रको कम्पित-ना
करत हुए बड़ी भयानक गर्जना की ॥ ४६ ॥

तस्य निष्पततस्त्रूर्ण कुम्भकर्णस्य धीमत ।

यभूवर्धोररूपाणि निमित्तानि समन्तत ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् राक्षस कुम्भकर्णके रणभूमिकी ओर पैर बढ़ाते
ही चारों ओर बार वर्षावतुन होने लगे ॥ ४७ ॥

उत्क्राशानियुक्ता मेघा धन्वुगदभारुणा ।

समागरचना सैव यमुधा स्तमकम्पत ॥ ४८ ॥

गदहोंक समान भूर रगताले बादल घिर आये । साथ ही
उत्क्रापात हुआ और पित्रिलियों गिरों । समुद्र और कनोतहित
सारी प्रन्थी कॉपने लगी ॥ ४८ ॥

घोररूपा शिरा नेत्रु सज्जालकधलैमुलै ।

मण्डलान्यपसव्यानि यय-धुध्र विहगमा ॥ ४९ ॥

मयानक गीदहियों मुँहसे आग उगलनी हुई अमङ्गल-
मूचक बोली चलने लगी । पक्षी मण्डल बोंबरकर उनकी दक्षिणा
बर्त परिहृमा करने लगे ॥ ४९ ॥

१ लक्ष्मण एक नाथ । दाना मुनाचक्रि दाना और फैलनेपर

२ बाक्षी जंगलियाँ । तिरने दुलरे बाक्षी जंगलियाँ तिरने

मिलनी दूरी दानो ई उसे व्याप्य कहते हैं ।

निष्पत्तौ च गृध्रोऽस्य शूले वै पथि गच्छति ।

प्रास्फुरध्वनौ चास्य सज्ज्यो बाहुविकम्पत ॥ ० ॥

रास्तेमें चले समय कुम्भकणके शूलर ग्रीव आ बैठा ।
उनकी बायीं ओल फड़कने लगी और बायीं भुजा कम्पित
हान लगी ॥ ० ॥

निष्पत्तौ तदा चोत्का ज्वलन्ती भीमनिःश्वना ।

आन्त्यो निष्प्रभञ्जासीप्र याति च सुखोऽनिल ॥ १ ॥

फिर उसी समय चलती हुई उल्का मयकर आवाजके
साथ गिरी । सूर्यकी प्रभा सीम हो गया और हवा इनने बेगसे
चल रही थी कि मुलद नहीं जान पड़ती थी ॥ १ ॥

भविष्यन्तपद्म महोत्पातानुदितान् रोमहृषणान् ।

निययौ कुम्भकणस्तु कृतान्तजलचोदित ॥ २ ॥

इस प्रकार रोंगट लड़के कर देनेवाले बहुतने बड़े-बड़े
उत्पन्न प्रकट हुए किन्तु उनकी कुछ भी परवा न करके
काल्की शक्तिसे प्रतिन हुआ कुम्भकण युद्धके लिये
निकल पड़ा ॥ २ ॥

स लङ्घयित्वा प्राकार पट्टभ्या पर्वतसन्निभ ।

ददृशाभ्रघनप्रप्लव्य धानरात्रीकमद्भुतम् ॥ ३ ॥

वह पर्वतके समान ऊँचा था । उसने लङ्काकी चहार
दायाँका दोनों पैरोंसे लोंचकर देखा कि वानरोंकी अद्भुत
सेना मेघोंकी बनाभूत पदोंके समान छा रही है ॥ ३ ॥

त दृष्ट्वा राक्षसघ्नेषु धानरा पवतोपमम् ।

वायुजुगा इव घना ययु सवा दिशस्तदा ॥ ४ ॥

उस पर्वताकार श्रेष्ठ राक्षसों के देखते ही समस्त वानर

हवापैरे भीमप्रामाण्यसे बाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पट्टपठितम सर्ग ॥ ६५ ॥

* त प्रकार श्रीवल्मीकिर्निर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यक युद्धकाण्डने पट्टपठितम सर्ग ॥ ६५ ॥

पट्टपठितम सर्ग

कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए वानरोंका अंगदद्वारा श्रोताहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा वानरोंका
सहार, पुनः वानर-सेनाका पलायन और अंगदका उसे समझा-बुझाकर लौटाना

स लङ्घयित्वा प्राकार गिरिकूटोपमो महान् ।

निययौ नगरात् पूर्ण कुम्भकर्णो महाबल ॥ १ ॥

महाबली कुम्भकण पर्वत-शिखरोंके समान ऊँचा और
गिरालकाय था । वह परकोटा छोंकर बड़ी तेजीके साथ
नगरमें बाहर निकला ॥ १ ॥

ननाद च महाना समुद्रमभिनादयन् ।

विजयप्रिय निघातान् विधमन्त्रिय पर्वतान् ॥ २ ॥

बाहर आकर पर्वतोंको कैंगना और समुद्रको गुंथना

हवाने उद्गम्य गये बादलोंके समान तत्काल सम्पूर्ण दिशाओंमें
भाग चले ॥ ५४ ॥

तद् वानरानीकमतिप्रचण्ड

दिशो द्रवद्भिन्नमिनाभ्रजालम् ।

स कुम्भकर्ण समयेक्ष्य हर्षा

ननाद भूयो घनवदधनाभ ॥ ५५ ॥

छिन्न भिन्न हुए बादलोंक सम्पूर्ण भौति उस अतिम
प्रचण्ड वानर-वाहिनीक सम्पूर्ण दिशाओंमें भागनी देख मेघोंक
समान काल कुम्भकण बड़े हर्षक साथ सजल जलधरा सदा
गम्भीर स्वरमें बारबार गर्जना करने लगा ॥ ५५ ॥

त तस्य घोर निनद निशम्य

यथा निनाद द्विवि वारिदस्य ।

पतुधरण्या बहव प्रयङ्गा

निष्ठसमूला इव शालवृक्षा ॥ ५६ ॥

आकाशमें जैसी मेघोंकी गर्जना होती है, उसीक समान
उस राक्षसका धार सिहनाद सुनकर बहुत से वानर जन्मे कर
हुए शालवृक्षोंके समान पत्तीपर गिर पड़े ॥ ५६ ॥

विपुलपरिघवान् स कुम्भकर्णो

रिपुनिधनाय विनि स्तुतो महात्मा ।

कपिगणभयमाददत् सुभीम

प्रसुरिष किकरदण्डवान् युगान्ते ॥ ५७ ॥

महाकाय कुम्भकर्णने शूलकी ही मौति अपने एक हाथमें
विनाल परिघ भी ले रक्खा था । वह वानर-समूहोंका अत्यन्त
घोर भय प्रदान कला हुआ प्रलयकालमें सहायक साधनभूत
कालदण्डोंमें युक्त भगवान् कालवन्दके समान शत्रुओंका विनाश
करनेके लिये पुरीसे बाहर निकल्य ॥ ५७ ॥

इत्यापै भीमप्रामाण्यसे बाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पट्टपठितम सर्ग ॥ ६५ ॥

* त प्रकार श्रीवल्मीकिर्निर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यक युद्धकाण्डने पट्टपठितम सर्ग ॥ ६५ ॥

पट्टपठितम सर्ग

कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए वानरोंका अंगदद्वारा श्रोताहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा वानरोंका
सहार, पुनः वानर-सेनाका पलायन और अंगदका उसे समझा-बुझाकर लौटाना

स लङ्घयित्वा प्राकार गिरिकूटोपमो महान् ।

निययौ नगरात् पूर्ण कुम्भकर्णो महाबल ॥ १ ॥

महाबली कुम्भकण पर्वत-शिखरोंके समान ऊँचा और
गिरालकाय था । वह परकोटा छोंकर बड़ी तेजीके साथ
नगरमें बाहर निकला ॥ १ ॥

ननाद च महाना समुद्रमभिनादयन् ।

विजयप्रिय निघातान् विधमन्त्रिय पर्वतान् ॥ २ ॥

बाहर आकर पर्वतोंको कैंगना और समुद्रको गुंथना

हुआ-था वह उच्च स्वरसे गम्भीर नाद करने लगा । उनकी
वह गर्जना बिजलीकी कड़कधा भी मान कर रही थी ॥ २ ॥

समग्रपथ मधवता यमन पररणेन था ।

प्रेक्ष्य भीमाश्रमायान्त धानरा विप्रदुदुषु ॥ ३ ॥

इन्द्र, यम अथवा वरुणक द्वारा भी उसका बच इना
असम्भव था । उस भयानक नेत्रवाला निगावरको आत देख
सभी वानर भाग खड़े हुए ॥ ३ ॥

तास्तु विप्रदुतान् दृष्ट्वा गजपुत्रोऽहरोऽग्रवीत् ।

पक्षिपापर सगर हो-होकर उस मयकर महाबली कुम्भकण
पिंछे-पीछे गये ॥ ३ ॥

स पुष्पवर्णरत्नकीयमाणो

धृतातपत्र शितशूलपाणि ।
मदोत्कट शोणितगन्धमत्तो

विनिर्ययी दानधदेवशत्रु ॥ ३६ ॥

उस समय उसके ऊपर फूलकी वर्षा हो रही थी । सिरपर
द्वेते छत्र तथा हुआ था और उसने हाथम तीखा त्रिशूल ले
रखा था । इस प्रकार देवताओं और दानवोंका शत्रु तथा रक्तकी
गणसे मतवाला कुम्भकण, जो स्वाभाविक मदसे भी उन्मत्त
हो रहा था, युद्धके लिये निकला ॥ ३६ ॥

पदासयक्ष बहवो महानादा महाबला ।
भन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षा शस्त्रपाणय ॥ ३७ ॥

उसके साथ बहुतसे वैदल राक्षस भी गये, जो बड़े
बलवान्, जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले, भीषण नेत्रधारी और
भयानक रूपवाले थे । उन सबका हाथोंम नाना प्रकारके अस्त्र
गज थे ॥ ३७ ॥

रक्षास सुषड्व्यामा नीलाञ्जनचयोपमा ।
शालातुघम्य खड्गाश्च निशिताश्च परम्बधान् ॥ ३८ ॥
भित्तिपालाश्च परिचान् गदाश्च मुसलानि च ।
तालस्क धाश्च विपुलान् क्षेपणीयान् दुरासवान् ॥ ३९ ॥

उनके नेत्र रंगने लाल हो रहे थे । वे सभी कई व्याम
जैच और काल कोयलेक डेरकी भाँति काले थे । उन्होंने
भरने हाथोंम धूल, तलवार, तीली धारवाले फरसे, मिन्दिल,
परिश, गजा, मुसल, बड़े बड़े ताड़क इन्होंने तने और जिहें
कोई काट न कर, ऐसी गुल्लें ल रखकी थी ॥ ३८ ३९ ॥

अभान्यद्वपुरादाय दारुण धारदशनम् ।
निष्पपात महातेजा कुम्भकर्णो महाबल ॥ ४० ॥

तदनन्तर महातज्ज्वी महाबली कुम्भकणने बड़ा उग्र
रूप धारण किया किन्तु देखनपर भय मद्रम होता था । ऐसा
रूप धारण करके वह युद्धके लिये चल पड़ा ॥ ४० ॥

धनुदातपरीणाह स पटशतसमुच्छिन्न ।
सौद्र शकटचक्रप्रक्षा महापयतसनिभ ॥ ४१ ॥

उस समय वह छ छौ धनुषक बणकर विलुप्त और सौ
धनुषके बणकर जैचा हो गया । उसकी आँतें दो गाड़ीके
बिचोंके समान जान पड़ती थी । वह विनाल पर्वतके समान
पक्कर लिखायी देता था ॥ ४१ ॥

१. अश्वारोह एक नाव । गजो मुक्तमाला दोनों ओर फैलानेपर
हाथी बैंगनियों के विरामे दूसरे हाथों उँगलियोंके छिलेक
से दूरी हाथी के उसे व्याम करते हैं ।

सनिपत्य च रक्षासि दग्धशैलोपमो महान् ।
कुम्भकर्णो महावक्त्र प्रहसन्निदमप्रवीक्ष ॥ ४२ ॥

पहले तो उसने राक्षस-सेनाकी व्यूह-रचना की । फिर
दागनल्लसे दग्ध हुए पर्वतके समान महाकाय कुम्भकर्ण
अपना विशाल मुख फैलाकर अहात करता हुआ इस
प्रकार बोला— ॥ ४२ ॥

अथ धानरमुख्याना तानि यूधानि भागशाः ।
निर्दहियामि सकृद पतद्भानि पयक ॥ ४३ ॥

पक्षले ! जैसे आग पतंगोंको जलती है, उसी प्रकार मैं
भी युक्ति होकर आज प्रधान प्रधान यानरोंके एक एक छद्म
को भस्म कर दूँगा ॥ ४३ ॥

नापराध्यान्ति मे काम धानरा यनचारिण ।
जातिरसद्भिधाना सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥

यों तो वनम विचरनेवाले चंचारे धानर स्वेच्छासे मर
कोई अपराध नही कर रहे हैं अतः वे वक्त्रके योग्य नहीं हैं ।
यानरोंकी जाति तो हम-जैसे लोगोंके नगरोद्यानरा आभूषण है ॥

पुररोधस्य मूल तु राघव सहलक्ष्मण ।
हते तस्मिन् हत सर्वे त पथिप्यामि सयुगे ॥ ४५ ॥

‘बालवम हृद्धापुरीपर धय डालनेके प्रधान कारण हैं—
लक्ष्मणलहित राम । अतः सबसे पहले मैं उन्हींको युद्धम
मार्दंगा । उनके मारे जानेपर सारी धानर-सेना स्वतः मरी हुई
सी हो जायगी’ ॥ ४५ ॥

पथ तस्य वृषाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसा ।
नाद वधुमहाघोर कम्पयन्त इवाणयम् ॥ ४६ ॥

कुम्भकणके ऐसा बहनेपर राक्षसोंने समुद्रको कम्पित-भा
करते हुए बड़ी भयानक गर्जना की ॥ ४६ ॥

तस्य निष्पततस्त्रूण कुम्भकर्णस्य धीमत ।
यभूतुघोररूपाणि निमित्तानि समन्तत ॥ ४७ ॥

उद्दिमान् राक्षस कुम्भकर्णके रणभूमिरी और पैर बढ़ाते
ही चार ओर चार अपघटन होने लगे ॥ ४७ ॥

उत्काशनियुता मेघा वसुमुगदभारणा ।
सत्सागरयना सौध वसुधा समकम्पत ॥ ४८ ॥

गदहोंक समान भूरे रंगवाले बादल फिर आये । साथ ही
उत्काषात हुआ और विज्रलियों गिरी । समुद्र और पर्वतोंके
सारी प्रथी काँपने लगी ॥ ४८ ॥

घोररूपा शिवा नेदु सज्जालकलैमुक्ती ।
मण्डलान्यपसप्यानि यष-पुष्प विहगमाः ॥ ४९ ॥

भयानक गीदहियों मुँहसे आग उगलती हुई अमल्ल-
मूचन वाली बोलने लगी । पक्षी मण्डल बाँधकर उनकी दक्षिण
वर्त परिक्रमा करने लगे ॥ ४९ ॥

निष्पत्तय च गृध्रोऽस्य शूले वै पथि गच्छन् ।

प्रास्तुरक्षयन चास्य सज्यो बाहुरकम्पत ॥ ५० ॥

राष्ट्रमे चले समय कुम्भकर्णैः शूलर ग्रीव आ बैठा ।
उमकी बायीं आँस फूटने लग्यो और बायीं मुझ कम्पित
हम लगी ॥ ० ॥

निष्पत्तय तदा चोल्का ज्वलन्ती भीमनिष्पत्ता ।

आन्वित्यो निष्पन्नश्चासीन्न याति च सुखोऽनिलः ॥ ५१ ॥

फिर उसी समय जलती हुई उल्का भयंकर आवाजके
साथ गिरी । सुपकी प्रभा हीन हो गयी और हवा इनने बेगसे
चल रहा थी कि सुखद नहीं जान पड़नी या ॥ १ ॥

आन्वित्यन् महोत्पातानुवितान् रोमहृषणान् ।

निययौ कुम्भकणस्तु कृतान्तयत्नोदितः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार रौंगत खड़े कर देनेवाले बहुत-से बड़े-बड़े
उत्पन्न प्रकट हुए किंतु उनकी कुछ भी परवा न करके
कान्क्षी क्षितिमें प्रतिन हुआ कुम्भकण युद्धक लिय
निकल पड़ा ॥ २ ॥

स लङ्घयित्वा प्राकार पट्ट्या पर्वतसन्निभः ।

द्व्यशाश्रयनप्रप्य धानरानीकमद्रुसम् ॥ ५३ ॥

वह पर्वतके समान ऊँचा था । उसने लङ्काकी चहार
दागरीका दोनों पैरोंमें लौंफर देखा कि कान्छेकी अद्भुत
मेला मणियों धनाभूत घटान समान छा रही है ॥ ३ ॥

त दृष्ट्वा रागसन्नेष्ट धानरा पर्वतोपमम् ।

बापुनुशा इव घना यमु सखा दिशस्तदा ॥ ५४ ॥

उस पराङ्गाकार भेष्ट रागवत्ता देखते ही समस्त वानर

हवायें श्रीमद्रामायणे बाह्यकीय आन्वित्य युद्धकाण्डे षट्पष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

म ल्का श्रवणैर्निर्निर्गता अर्गनायग अदिवाय युद्धकाण्डे षट्पष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

षट्पष्ठितमः सर्गः

कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए वानरोंका अंगदद्वारा प्रोत्साहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा वानरोंका
सहार, पुन वानर-सेनाका पलायन और अंगदका उसे समझा-बुझाकर लौटाना

स लङ्घयित्वा प्राकार गिरिकूटोपमो महान् ।

निययौ नगरात् तूष्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥

महाबली कुम्भकण पवन-प्रवरक समान ऊँचा और
विशालकाय था । वह परकटा लौंफर बड़ी तेजीके साथ
नगरमें बाहर निकला ॥ १ ॥

मनाद्य च महाना ममुद्रमभिनादयन् ।

विजयप्रिय निपातान् निधमश्रिय पथतान् ॥ २ ॥

रहर अहर परीक्षा केंपता और ममुद्रका मुद्रना

हवासे उड़ाये गये बादलोंके समान तन्नाल सम्पूर्ण दिशाओंमें
भाग चल ॥ ५४ ॥

तद् धानरानीकमतिप्रचण्ड

दिशो द्रवङ्गिग्रमिगभ्रजालम् ।

म कुम्भकण ममघट्टस्य हवा

न्नना भूयो घनउदघनाभ ॥ ५५ ॥

छिन्न भिन्न हुए बादलोंके समूहकी भांति उस अनिष्टाय
प्रचण्ड वानर-बाहिनीका सम्पूर्ण दिशाओंमें भागती देख नभोंके
समान बाल कुम्भकण बड़े ईर्ष्य साथ मजबूत बलधरके सह
गम्भीर स्वरमें बारबार गजना करने लग्य ॥ ५ ॥

त तस्य घोर निनद निशम्य

यथा निनाद दिवि वारिदस्य ।

पतुधरण्या यहव प्रयद्वा

निरुचमूला इव शालवृन्ता ॥ ५६ ॥

आकाशमें जैसी मेघोंका गजना होती है, उतनी समान
उस राक्षसका धार सिंहनाद सुनकर बहुत-से वानर बहने कर
हुए शालवृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५६ ॥

त्रिपुलपरिघवान् स कुम्भकर्णो

रिपुनिधनाय गिति स्त्रतो महात्मा ।

कपिगणभयमादत्त सुभीम

प्रभुरिव किकरदण्डयान युगान्ते ॥ ५७ ॥

महाकाय कुम्भकर्णने शूलकी ही भांति अपने एक हाथमें
विशाल परिघ भी ले रक्ता था । वह वानर-समूहोंको अत्यन्त
धार भय प्रदान करता हुआ प्रलयकालमें सहायक शक्तिभूत
कालदण्डोंमें युक्त भगवान् कालदण्डके समान शत्रुओंका विनाश
करनेके लिये पुरीसे बाहर निकल्य ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्यकीय आन्वित्य युद्धकाण्डे षट्पष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

म ल्का श्रवणैर्निर्निर्गता अर्गनायग अदिवाय युद्धकाण्डे षट्पष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

हुमा-व्य वह उच्च स्वरसे गम्भीर नाद करने लग्य । उनकी
वह गर्वना विजयीकी कड़कछा भी मान कर रही थी ॥ २ ॥

तमउत्थ मधयता यमन धरुपेन था ।

प्रेक्ष्य भीमासमायान्त धानरा त्रिपुदुधु ॥ ३ ॥

इन्द्र, यम अथवा वरुणके हाथ भी उसका बल इतना
असमर्थ था । उस भयानक नेत्रवाले निपातको आत देख
सभी वानर भाग खड़े हुए ॥ ३ ॥

तास्तु विप्रदुतान् दृष्ट्वा राजपुत्रोऽङ्गनेऽमयीत् ।

पश्चिमीर सगर हो हाकर उस भयकर महाबली कुम्भकर्णक
पीछे-पीछे गये ॥ ३ ॥

स पुण्यवर्गैर्यकीर्यमाणो

धृतातपत्र शितमूलपाणि ।

मदोत्कट शोणितगन्धमत्तो

विनिर्ययो दानवदेवराज ॥ ३६ ॥

उस समय उद्यत ऊपर मूलकी क्या हा रही थी । छिरपर
द्वेत छत्र तना हुआ था और उसने हाथम तीला त्रिशूल ले
रक्ता था । इस प्रकार देवताओं और दानवोंका शत्रु तथा रक्तकी
गणसे मतवाला कुम्भकर्ण, जो स्वाभाविक मदसे भी उमत्त
हो रहा था, युद्धके लिये निवला ॥ ३६ ॥

पद्मातयश्च बहुयो महानादा महाबला ।

अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षा शस्त्रपाणय ॥ ३७ ॥

उसक साथ बहुतसे पैदल राक्षस भी गये, जो बड़े
बलवान्, जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले, भीषण नेत्रधारी और
भयानक रूपवाले थे । उन सबके हाथोंम नाना प्रकारके अस्त्र
ग्राह्य थे ॥ ३७ ॥

रक्षाक्ष सुप्रहृष्यामा नीलाक्षनचयोपमा ।

शलानुघम्य खट्वाक्ष निदिताक्ष परम्भधान् ॥ ३८ ॥

भिक्षिपालाक्ष परिधान् गदाश्च मुसलानि च ।

तालस्कन्धाश्च विपुलान् क्षेपणीयान् दुरासदान् ॥ ३९ ॥

उनके नेत्र रंगने लाल हो रहे थे । वे सभी कई अस्त्र
ऊँच और काट कोयलेक शस्त्री भोंति फाल थे । उन्होंने
भयने हाथम धूल, तन्त्रवार, तीरती धारवाल फरस, मिन्दिपाल,
परिघ, गदा, मुसल, बड़े बड़े ताड़के वृक्षाके तने और जिर्द
कोई काट न लग, ऐसी गुन्ड ल रक्खी थी ॥ ३८ ३९ ॥

अभान्यद्वपुरादाय दारुण घोरदशनम् ।

निष्पपान महातजा कुम्भकर्णो महाबल ॥ ४० ॥

तदनन्तर महातज्जली महाबली कुम्भकर्णने बड़ा उग्र
रूप धारण किया, मित्र देवनेपर भय मादम होता था । ऐसा
रूप धारण करक वह युद्धक लिय चले पड़ा ॥ ४० ॥

धनुःशतपरीणाह स पद्मातपसुमिषूत ।

रौद्र शाकटक्रमाक्ष महापर्यतसनिभ ॥ ४१ ॥

उस समय वह छ लौ धनुषक बरपर बिलुत और लौ
भनुषके बरपर ऊँचा हो गया । उसकी आँखें दो गाड़ीन
विपोंके समान जान पड़ती थीं । वह विनाल परतके समान
परर निखायी देता था ॥ ४१ ॥

१. महाश्वर एक नाम । शर्मा मुनाभाक्ष दोनों ओर फौजानपर
हाथी उगड़ियाके छिरोके दूसरे हाथी उगड़ियाके छिरोके
तीं दूरी हाथी ६ उस स्थान पर रह ६ ।

सनिपत्य च रक्षासि दग्धशैलेपमो महान् ।

कुम्भकर्णो महावक्त्र प्रहसन्निदमप्रवीत् ॥ ४२ ॥

पहल तो उसने राक्षस-सेनाकी ब्यूह-रचना की । फिर
दावानलमे दग्ध हुए परतके समान महाकाय कुम्भकर्ण
अपना विशाल मुख फैलाकर अन्हास करता हुआ हल
प्रकार बोला— ॥ ४२ ॥

अथ वानरमुख्याना तानि यूधानि भागशः ।

निर्दहिष्यामि समुद्र पतङ्गानि पायक ॥ ४३ ॥

पक्षी । जैसे आग पतंगोंको जलती है, उसी प्रकार मैं
भी जूझित होऊँ आज प्रधान प्रधान वानरोंके एक एक छत्र
को भस्म कर डूँगा ॥ ४३ ॥

नापरायन्ति मे काम वानरा घनचारिण ।

जातिरसद्विधाणा सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥

यों तो वनर्म विचरनेवाले बेचारे वानर स्वेच्छते मय
कोई अपराध नहीं कर रहे हैं अत वे वयके पाप नहीं हैं ।
वानरोंकी शक्ति तो हम-जैसे लोगोंके नगरवानरका आभूषण है ॥

पुरोधस्य मूल तु राघव सहलक्ष्मण ।

हते तस्मिन् हत सर्वे त वधिष्यामि सयुगे ॥ ४५ ॥

वासवान्मं हङ्गापुरीपर वेप डालनेके प्रधान कारण हैं—
लक्ष्मणवहित राम । अत सबसे पहले मैं उहाँको युद्धमें
मारेगा । उनके भारे जानेपर सारी वानर सेना स्वत मरी हुई
सी हो जायगी? ॥ ४५ ॥

एष तस्य भुजास्य कुम्भकर्णस्य राक्षसा ।

नाद चकुमहाघोर कण्ठयन्त इषारण्यम् ॥ ४६ ॥

कुम्भकर्णके ऐसा बहनेपर राक्षसोंने समुद्रको कम्पित-
करत हुए बड़ी भयानक गर्जना की ॥ ४६ ॥

तस्य निष्पततस्पूर्ण कुम्भकर्णस्य धीमत ।

यभ्रुवुधोररूपाणि निमित्तानि समन्तत ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् राक्षस कुम्भकर्णके रणभूमि की ओर वैर बहात
ही चाप और धार अपचक्रुन होने लगे ॥ ४७ ॥

उत्काशानियुता मेघा यभ्रुवुगर्दभारुणा ।

ससागरयना श्वैः बसुधा समकम्पत ॥ ४८ ॥

गदहोके समान भूर रगवाले बादल फिर आय । साथ ही
उत्काषात हुआ और विजलियाँ गिरी । समुद्र और वनोंलित
सारी प्रची कोंपने लगी ॥ ४८ ॥

घोररूपा शिवा नेदु सज्जालकयलैमुखै ।

मण्डलान्यपसप्यानि वधभुक्ष विह्वलमा ॥ ४९ ॥

भयानक गीर्दियों मुँहसे आग उगलती हुई अमङ्गल-
रूचक कोली बालने लगी । पक्षी मण्डल नोंचकर उगगी दक्षिण
वर्त परिक्रमा करने लगे ॥ ४९ ॥

निष्पपात च घृष्टोऽस्य शूले धै पथि गच्छत ।
प्रास्फुरप्रपन्न चास्य सध्वो वाहुरकम्पत ॥ १० ॥

रास्तेमें चलते समय कुम्भकर्णके शूलपर गीध आ बैठा ।
उमकी बायीं ओंस फड़कने लगी और बायीं भुजा कम्पित
होन लगी ॥ १० ॥

निष्पपात तदा चोत्का ज्वलन्ती भीमनिःस्रता ।
आद्रित्यो निष्प्रभश्चासीन्न प्राति च सुखोऽनिल ॥ ५१ ॥

किर उसी समय जलती हुई उत्का मयकर आवाजके
साथ गिरी । स्वर्णकी प्रभा हीन हो गयी और हवा इतने बेगसे
चल रही थी कि सुखद नहीं जान पड़ती थी ॥ १ ॥

अचिन्तयन् महोत्पानानुदितान् रोमहर्षणान् ।
निययौ कुम्भकर्णस्तु कृतातयलजोदित ॥ ५२ ॥

इस प्रकार रौंगट खड़े कर देनेवाले बहुतसे बड़े-बड़े
उत्पन्न प्रकट हुए किंतु उनकी कुछ भी परवा न करके
कात्की शक्तिले प्रेरित हुआ कुम्भकर्ण युद्धके लिये
निकल पड़ा ॥ ५२ ॥

स लङ्घयित्वा प्राकार पट्भ्या पर्वतसन्निभ ।
ददद्वाभ्रघनप्रख्य धानरानीकमद्रुतम् ॥ ५३ ॥

वह पर्वतके समान ऊँचा था । उसने लङ्काकी चहार
दीवारोंका दोनों पैरोंसे लोंचकर देखा कि वानरोंकी अद्भुत
सेना मर्षोंकी धनाभूत घट्टके समान छा रही है ॥ ५३ ॥

त दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठ धानरा पर्वतोपमम् ।
यायुजुष्टा इध घन्य ययु सखा दिशस्तदा ॥ ५४ ॥

उस पर्वताकार श्रेष्ठ राक्षसके देखते ही समस्त वानर

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

म प्रकार भीमद्रामाणिर्निर्मित आरामाण्य आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

पट्षष्टितम सर्ग

कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए वानरोंका अंगदद्वारा प्रोत्साहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा वानरोंका
सहारा, पुन वानर-सेनाका पलायन और अंगदका उसे समझा-बुझाकर लौटाना

स लङ्घयित्वा प्राकार गिरिकूटोपमो महान् ।
निययौ नगरात् पूर्ण कुम्भकर्णो महावल् ॥ १ ॥

महापरी कुम्भकर्ण पर्वत शिखरके समान ऊँचा और
विशालकाय था । वह परक्रेण लोंचकर बड़ी तेजीके साथ
नगरसे बाहर निकला ॥ १ ॥

मनाद च महानाद समुद्रमभिनादयन् ।
विजयतिथि निपातान् विधमन्निव पर्वतान् ॥ २ ॥

बहर आकर पर्वतोंका टैंगना और गमुद्रको गुँझना

हवासे उड़ाने गये बादलोंके समान तत्काल सम्पूर्ण दिशाओंमें
भाग चले ॥ ५४ ॥

तद् धानरानीकमतिप्रचण्ड
दिशो द्रवद्विधमिवाभ्रजालम् ।
स कुम्भकर्ण समवेक्ष्य हर्षा
न्ननाद भूयो घनप्रदघनाभ ॥ ५५ ॥

छिन्न भिन्न हुए बादलों समूहकी भाँति उस अतिप्रचण्ड
प्रचण्ड वानर-बाहिनीका सम्पूर्ण दिशाओंमें भागती देख मेघाक
समान काला कुम्भकर्ण बड़े हर्षक साथ मज्ज जलधरके सट्टा
गम्भीर स्वरमें बारबार गजना करने लगा ॥ ५ ॥

ते तस्य घोर निनद निशम्य
यथा निनाद् दिवि चारिदम्य ।
पनुधरण्या बहव प्रयङ्गा
निहृचमूला इव शालवृक्षा ॥ ५६ ॥

आकाशमें जैसी मेघोंकी गजना होनी है, उसीक समान
उस राक्षसका घोर सिंहाद झुनकर बहुतसे वानर जड़ने कर
हुए शालवृक्षोंके समान प्रणीपर गिर पड़े ॥ ५६ ॥

विपुलपरिघवान् स कुम्भकर्णो
रिपुनिधनाय विनि स्रतो महात्मा ।
कपिपणभयमाददत् सुभीम
प्रभुरिव किंकरदण्डवान् युगान्ते ॥ ५७ ॥

महाकाय कुम्भकर्णने शूलकी ही भाँति अपने एक हाथमें
विशाल परिघ भी ले रक्खा था । वह वानर-समूहोंको अत्यन्त
घोर भय प्रदान करता हुआ प्रलयकालम् संहारक साधनभूत
कालदण्डोंसे युक्त भगवान् कालदण्डके समान शत्रुआंसा बिनाश
करनेके लिये पुरीसे बाहर निकल्य ॥ ५७ ॥

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

म प्रकार भीमद्रामाणिर्निर्मित आरामाण्य आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

इत्थार्पे भीमद्रामाण्ये बालोकीये आदिकाम्ये युद्धकाण्डे पट्षष्टितम मग ॥ ६५ ॥

नल नील गवाक्ष च कुमुद च महाउलम् ॥ ४ ॥

उन सबको भागते देश राजकुमार अगदने पल, नील, गवाक्ष और महापरी कुमुदको समुचित करने कहा— ॥ ४ ॥

आत्मनस्तानि विस्मृत्य धीर्योपभिनयानि च ।

क गच्छन् भयप्रस्ता प्राकृता हरयो यथा ॥ ५ ॥

‘वानर वीरो ! अपने उत्तम कुलों और उन अलौकिक पराक्रमोंको भुलकर साधारण बदरोंकी भाँति भयभीन हो तुम क्यों भागे जा रहे हो ? ॥ ५ ॥

साधु सौम्या निवर्तष्व किं प्राणान् परिरक्ष्य ।

नाल युद्धाय वै रक्षो महतीय विभीषिका ॥ ६ ॥

‘सौम्य स्वभाववाला बहादुरों ! अच्छा होगा कि तुम लौट आओ । क्या जान बचानेके केरमें पड़े हो ? वह राक्षस हमारे साथ युद्ध करनेकी गति नहीं रखता । यह तो इसकी बड़ी भारी विभीषिका है—हमने मायासे विद्यालय रूप धारण करके तुम्हें डरानेके लिये व्यर्थ पराटोप फैला रक्ता है ॥ ६ ॥

महतीमुत्थितामेन राक्षसाना विभीषिकाम् ।

विभ्रमाद् विभ्रमिष्यामो नियतं च प्ररुक्म ॥ ७ ॥

‘आजने हमने उठी हुई राक्षसोंकी इस बड़ी भारी विभीषिकाको हम अपने पराक्रमसे नष्ट कर देंगे । अतः वानर वीरो ! लौट आओ’ ॥ ७ ॥

बृच्छ्रेण तु समाभवस्य सगम्य च ततस्ततः ।

वृक्षान् गृहीत्वा हरय समप्रतरद् रणाजिरे ॥ ८ ॥

तब वानरोंने बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण किया और जहाँ-तहाँमें एकत्र हो हाथोंमें वृक्ष लकर व रणभूमिकी ओर चले ॥ ८ ॥

ते निवर्त्य तु सरग्धा कुम्भकर्णं वनौकस ।

निजस्तु परमहृदा समदा ह्य बुधरा ॥ ९ ॥

प्राशुभिर्गिरिभृद्भैक्ष शिलाभिश्च महाबला ।

पादौ पुष्पिताम्रैश्च हृम्यमानो न कम्पते ॥ १० ॥

लौटनेपर वे महाबली वानर मगराल हाथियोंकी भाँति अत्यन्त क्रोध और रोषसे भर गये और कुम्भकर्णके ऊपर ऊँच-ऊँच परतीप शिलों, शिलाओं तथा खिल हुए वृक्षोंमें प्रहार करने लगे । उनकी मार ब्लाकर भी कुम्भकर्ण विचलित नहीं होता था ॥ १० ॥

तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्त बहव शिला ।

पादपा पुष्पिताम्राश्च भग्ना येतुमहीतले ॥ ११ ॥

उन्हे आँग्रेपर गिरी हुई बहुतेरी शिलएँ चूर-चूर हो खनी धी और वे खिल हुए वृक्ष भी उनके शरीरसे टकराते ही टूट-टूट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ११ ॥

नोऽपि सैम्यानि सङ्गदो वानराणां महीजसाम् ।

ममन्य परमायसो घनान्यग्निरिवोद्यत ॥ १२ ॥

उपर क्रोधसे भरा हुआ कुम्भकर्ण भी अत्यन्त सावधान हो महाबली वानरोंकी सेनाओंको उछी प्रकार रौंदने लग्य, जैसे बड़ा हुआ दावानल बड़े-बड़े जंगलोंको जलाकर भस्म कर देता है ॥ १२ ॥

लोहितद्रास्तु बहव शेरते वानरपभा ।

निरस्ताः पतिता भूमी तावन्नृप्या ह्य हुमा ॥ १३ ॥

बहुतसे शेर वानर खून लपप हा भरतीपर ला गये । जिन्हें उठाकर उसने ऊपर फेंक दिया, वे लाल प्लूतोसे ढर हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥

लङ्घयन्त प्रभावन्तो वानरा नायलोकयन् ।

केचित् समुद्रे पतिता केचित् गगनमाश्रिता ॥ १४ ॥

वानर जैची-नीची भूमिकी लोंबते हुए ज़र ज़रसे भागने लगे । वे आगे पीछे और अगल-बगलमें कहीं भी दृष्टि नहीं डालते थे । कोई समुद्रमें गिर पड़े और काह आकाशमें ही उड़ते रह गये ॥ १४ ॥

धृम्यमानस्तु ते वीरा राक्षसेन च लीलया ।

सागर येन ते तीर्णा पथा तेनैव उदुदु ॥ १५ ॥

उस राक्षसने खेल-खेलमें ही जिन्हें मारा, वे वीर वानर जिस मार्गसे समुद्र पार करने लङ्घामे आये थे, उसी मार्गसे भागने लगे ॥ १५ ॥

ते भ्रम्यानि तदा निम्न विरम्ययद्वा भयात् ।

श्रुत्वा वृक्षान् समारुढा केचित् पर्वतमाश्रिता ॥ १६ ॥

भयके मार वानरोंके मुक्की कान्ति छीकी पड़ गयी । न नीची जगह देख-देखकर भागने और छिपने लगे । कितने ही वृक्ष वृक्षोंपर जा चढ़े और कितनोंने पर्वतोंकी धारण ली ॥

ममज्जुरण्ये केचित् गुहा केचित् समाश्रिताः ।

निपेतुः केचिदपरे केचित् नैवावतस्थिरे ।

केचित् भूमी निपतिताः केचित् सुता सृता ह्य ॥ १७ ॥

कितने ही वानर और भाई समुद्रमें डूब गये । कितनोंने पर्वतोंकी गुफाओंका आश्रय लिया । काँटे गिरे कोई एक स्थानपर खड़े न रह सके, इशलिये भागे । कुछ घटशायी हो गये और कोई-कोई मुहोरे स्थान लोंक राककर पड़ गये ॥

तान् समीक्ष्याद्भ्यो भद्रान् वानरानिदमश्रवात् ।

अवतिष्ठत युष्यामो निवर्तष्व लूयगमा ॥ १८ ॥

उन वानरोंको भागने देख अगदने इस प्रकार कहा— ‘वानरवीरो ! ठहरो, लौट आओ । हम सब मिलकर युद्ध करेंगे ॥ १८ ॥

भग्नाना घो न पदयामि परिरम्य महीमिमाम् ।

स्यान् सर्वे निवर्तष्व किं प्राणान् परिरक्ष्य ॥ १९ ॥

‘यदि तुम भग गये तो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके भी
कहीं तुम्हें उदरनेके लिये स्थान मिल सक, ऐसा मुझे नहीं
दिखायी देता (शुभीवक्त्री आशक्त विना कहीं भी जानेपर
दुम जीवित नहीं बच सकता) । इसलिये सग लाग लोट
आओ । क्यों अपने ही प्राण बचानेकी धिन्में पड़े छु ? ॥ १९ ॥

निरायुधाना क्रमतामसङ्गतिपौरुष्या ।
द्वारा ह्युपहसिष्यन्ति स चै घात मुजोषताम् ॥ २० ॥

‘तुम्हारे वेग और पराक्रमको कोई रोकनेवाला नहीं है ।
यदि तुम हथियार डालकर भाग जाओगे तो तुम्हारी जियों
॥ तुमझाँका उपहास करेंगी और वह उपहास जीवित
रहनेपर भी तुम्हारे लिये मृत्युके समान दु खदायी होगा ॥
कुलेषु जाता सर्वेऽस्मिन् त्रिंशोऽप्यु महत्सु च ।
क गच्छत भयवस्ता प्रहता हरयो यथा ।

अनाया एतु यद्वीतास्त्यक्त्वा धीर्यं प्रयाजत ॥ २१ ॥

‘तुम सब लोग महान् और बहुत दूर तक फैल हुए
श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए हो । फिर साधारण वानरोंकी भाँति
भयभीत होकर कहीं भागे जा रहे हो ? यदि तुम पराक्रम
छोड़कर भयके कारण भागते हो तो निश्चय ही अनायाँ समझे
आओगे ॥ २१ ॥

विकल्पनानि यो यानि भवन्तिर्जनससदि ।

तानि य इ तु यातानि सोऽप्राणि हितानि च ॥ २२ ॥

‘तुम जन-समुदायमें बैठकर आ डोंग हँका करत थे कि
हम बड़े प्रचण्ड वीर हैं और सामीपे द्वैती हैं । तुम्हारा वे
सब बातें आज कहीं चली गयीं । ॥ २२ ॥

भीरो प्रगदा धूपन्ते यस्तु जीगति धिक्कृत ।

मार्गं सत्पुरुषैर्जुषु सेयता त्यज्यता भयम् ॥ २३ ॥

‘जो सत्पुरुषोंद्वारा विकृत होकर भी जीवन धारण
करता है उसके उस जायनका विकार है । इस तरह
निन्दामक वचन कापण्यका सदा मुनने पड़ते हैं । इसलिये
दुमलोग भय छोड़ो और सत्पुरुषोंद्वारा सेवित मार्गका
आश्रय ला ॥ २३ ॥

शयामहे वा निहता पृथिव्यामल्पजीविता ।

प्राप्नुयामो ब्रह्मलोख दुष्पाप च कुयोधिभि ॥ २४ ॥

‘यदि हमलगा अल्पजीवी हो और शत्रुके द्वारा मार
बकर रणभूमि ला चयें तो हमें उस ब्रह्मलोककी प्राप्ति होगी,
आ दुष्पणियोंके लिय परम दुर्लभ है ॥ २४ ॥

अप्राप्नुयाम कर्ति या निहत्वा शत्रुमाहवे ।

निहता धारलेख्य मोक्षयामो यस्तु वानरा ॥ २५ ॥

‘वानर ! यदि मुझमें हमारे शत्रुका मार मियाया तो हमें
उत्तम कीर्ति मिलगी और यदि स्वर्ग ही मारे गय तो

हम वीर्यकृते वैभवा उपभोग करेंगे ॥ २५ ॥

न कुम्भकण फाकुत्स्थ दृष्ट्वा जीवन् गमिष्यति ।

दीप्यमानमिगसाद्य पतङ्गो ज्वलन यथा ॥ २६ ॥

‘भीरुनाथजीके सामने जानेपर कुम्भकण जीवित नहीं
लोट सकेगा ठीक उसी तरह, वैते प्रज्वलित अग्निने पास
पहुँचकर पतङ्ग मस्त हुए बिना नहीं रह सकता ॥ २६ ॥

पलायनेन चोद्दिष्टा प्राणान् रक्षामहे वयम् ।

एकेन घह्यो भग्ना यतो नाश गमिष्यति ॥ २७ ॥

‘यदि हमलगा प्रज्वात वीर होकर भी भागकर अपने
प्राण बचावेंगे और अधिक सत्यामें होकर भी एक योद्धाका
सामना नहीं कर सकेंगे तो हमारा यश मिनीमें मिल जायगा ॥

पय तुमाण स शूरमङ्गल फनकाङ्क्षम् ।

द्रवमाणास्तता चाप्यमृच्छु शूरनिगहितम् ॥ २८ ॥

‘सोनेका वातुवद धारण करनेवाले शूरीर अङ्गद बन
एसा कह रहे थे, उस समय उन भागते हुए वानरोंने उन्हें
ऐसा उत्तर दिया, जिसकी शीर्ष-समन यद्धा सदा निश्च
करते हैं ॥ २८ ॥

हृत न क्वदन योग कुम्भकर्णेन रक्षता ।

न स्थानकाले गच्छामो क्षयित जीवित हि न ॥ २९ ॥

‘वे बाले—प्राप्त कुम्भकर्णेन हमारा धर संहार मचा
रहा है अत यह ठहरनेका समय नहीं है । हम जा रहे हैं
क्योंकि हमें अपनी जान प्यारी है ॥ २९ ॥

पताबदुन्त्या उचन सर्वे ते भेजिरे दिश ।

भीम भीमाक्षमायान्त दृष्ट्वा वानरचूषया ॥ ३० ॥

‘इतनी बात कहकर भवानक नेत्रवाल भीमा कुम्भकर्णको
आत देख उन सब वानर-चूषपतियों निमिन्न दिशाओंकी
धरण ला ॥ ३० ॥

द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन उल्लुख ।

सान्त्वयैश्चातुमानैश्च तत सर्वे निवर्तिता ॥ ३१ ॥

‘तब उन भागने हुए सभी वीर वानरोंको अङ्गदेने
सान्त्वना और आदर-सम्मानन द्वारा लौगाता ॥ ३१ ॥

प्रहयमुपनीताश्च वालिपुत्रेण धीमता ।

वाञ्छाप्रतीक्षास्तस्युच्च सर्वे वानरचूषया ॥ ३२ ॥

‘बुद्धिमान् वालिपुत्रने उन सभीको प्रसन्न कर लिया ।
व सब वानरचूषयति सुभाषकी आशानी प्रवेश करत हुए
सहे हो गये ॥ ३२ ॥

श्रुपभशरभर्मन्दधूधनीला

कुमुदसुपेणगायारम्भताता ।

द्विविदपनसनापुपुत्रमुप्या

स्वरिततराभिमुखरण्या प्रयाता ॥ ३३ ॥

तदनन्तर शृगमः, गरमः, मेन्दः, धूम्रः, नीलः, कुमुदः आदि अष्ट वानर-गीर द्वारतः ही उम्भकर्णका सामना करने के लिये रणनेत्रकी ओर बढ़े ॥ ३३ ॥
 हत्याप श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि-काये युद्धकाण्डे पट्पष्ठितम सर्ग ॥ ६६ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकायके युद्धकाण्डम छाठवौं सर्ग पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तपष्ठितम सर्गः

कुम्भकर्णका मयकर युद्ध और श्रीरामके हाथसे उसका वध

ते निवृत्ता महाकाया अन्वाहदवचस्तदा ।
 नैष्ठिकीं बुद्धिमास्थाय सव्य सग्रामकाङ्क्षिण ॥ १ ॥

अह्नदन्ते पृथोक्त वचन सुनकर ये सब विशालकाय वानर मरने मारनेका निश्चय करके युद्धकी इच्छासे लौटे थे ॥ १ ॥
 समुद्वीरितधीर्यास्ते समारोपितयित्रमा ।
 पर्यवस्थापिता वाक्यैरह्नदन्ते यत्नीयता ॥ २ ॥

महाबली अह्नदन्ते उनमें पूर्ण पराक्रमोंका वर्णन करने अपने वचनोंद्वारा उन्हें सुदृढ एवं बल निम्नसम्पन्न बनाकर लड़ा कर दिया था ॥ २ ॥

प्रयाताश्च गता हर्षे मरणे हृत्तनिश्चया ।
 चक्रुः सुसुल्लसुल्ल युद्धं यानरास्त्यसज्जीविता ॥ ३ ॥

अब वे वानर मरनेका निश्चय करने बढ़े हर्षके साथ आगे बढ़े और जीवनका मोह छोड़कर अत्यन्त भयकर युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

अथ वृषान् महाकाया सानूनि शुभहान्ति च ।
 यानरास्त्यमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रवन् ॥ ४ ॥

उन विशालकाय वानर-वीरोंने वृष तथा बड़-बड़े पनत शिखर लेकर द्वारत ही कुम्भकर्णपर घाटा किया ॥ ४ ॥

कुम्भकर्ण सुलङ्घ्यो गदामुद्यम्य धीर्यवान् ।
 धर्षयन् स महाकाया समन्ताद् यस्मिन् परिपून् ॥ ५ ॥

परन्तु अत्यन्त श्रेष्ठते भरे हुए निम्नशाली महाकाय और विप्लवे दिया ॥ ५ ॥

शतानि सप्त चाष्ट्री सहस्राणि च वानरा ।
 प्रकीर्णा शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन ताडिता ॥ ६ ॥

कुम्भकर्णकी मार लाकर आठ हजार सप्त सौ वानर तत्काल धराशायी हो गये ॥ ६ ॥

पेरिष्य च दश च विंशतिशतस्यैव च ।
 परिष्य च यादृग्या स्वादन् स परिधावति ॥ ७ ॥

भक्षयन् भुजसमुत्सो गच्छन् पत्रगानि ॥ ७ ॥
 पर शल्लः, आठ, दस, बीस और तीस-तीस वानरोंको

अपनी दोनों बुजाओंसे समेट लता और जैसे गबड़ सर्पोंको खाता है, उसी प्रकार अत्यन्त मोक्षपूर्ण उनका भक्षण करता हुआ सब और दौड़ता फिरता था ॥ ७ ॥

हृत्प्रेण च समाभ्युता सगम्य च ततस्तत् ।
 वृषादिहस्ता हरयस्तस्य सग्राममूर्धनि ॥ ८ ॥

उस समय वानर बड़ी कठिनाइसे वैन धारण करते इधर उधरसे एकत्र हुए और वृष तथा पर्वतशिखर हाथमें लेकर समग्रभूमिमें डटे रहे ॥ ८ ॥

ततः पर्वतमुत्पाठ्य द्विविद् गृगर्गभ ।
 उद्गाय गिरिभृत्ताम विलम्ब इव तोयद् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् मेघन समान विशाल क्षीरवाले वानरशिखरमणि द्विविदने एक पनत उखाड़कर पर्वतशिखरके समान ऊँचे कुम्भकर्णपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

त समुत्पाठ्य चिक्षेप कुम्भकर्णाय वानर ।
 तमप्राप्य महाकाय तस्य सैन्येऽपतत् तत् ॥ १० ॥

उस पर्वतसे उखाड़कर द्विविदने कुम्भकर्णके ऊपर वक्रा किन्तु वह उस विशालकाय राक्षसक न पहुँचकर उसकी सेनामें आ गिरा ॥ १० ॥

ममदाभ्यान् गजान्धापि रथाश्चापि गजोत्तमान् ।
 तानि चान्यानि रक्षासि पृज चान्यद्विरे शिर ॥ ११ ॥

उस पर्वत-शिखरसे राक्षससेनाके कितने ही घोड़ों, हाथियों, रथों, गजघातों तथा दूधरे-दूधरे राक्षसोंको भी कुचल बाला ॥ ११ ॥

तच्छैलैर्वेगाभिहत हतादन हतसारथिम् ।
 रक्षासा रुधिराङ्गिन् धमूयावोधन महत् ॥ १२ ॥

उस समय वह महान् युद्धलक्ष, जिसमें शैल-शिखरके वेगासे कितने ही घोड़े और सारथि कुचल गये थे, राक्षसोंके रुधिरसे गीला हो गया ॥ १२ ॥

रथिनो वानरेद्राणा शरैः कालान्तकोपमे ।
 शिरासि नन्दता जडु सहसा भीमनिस्सना ॥ १३ ॥

तब भयानक विह्वलाद करने लगे राक्षस सेनाक रथियोंने पल्लवशालीन यमराजके समान मयकर भागोंसे गतने हुए वानर-यूथपतियोंके ममनोंको छट्ठा घाटना आरम्भ किया ॥

धानगश्च महामानः समुपास्य महाद्रुमान् ।
रथान्धान् गजान्धान् राक्षसान्भ्यस्तन्यन् ॥ १४ ॥

मममनस्वी यन्त्र भी बड़े-बड़े पड़ उखाड़कर शत्रुनेला
ने रथ, घोड़े, हाथी, कैद और राक्षसों का संहार करने लगे ॥८॥

हनुमाञ्चैल्लभृङ्गाणि शिलाश्च विविधान् द्रुमान् ।
यत्र च कुम्भकणस्य शिख्यम्बरमास्थिन ॥ १५ ॥

इनुमान्जी आकाशमे पहुँचकर दुग्धकणक मत्तकपर
पवत शिखरों, शिखाओं और नाना प्रकारके वृक्षों वगै
करने लगे ॥ ३५ ॥

तानि परितगृह्णाणि शूलेन स रिमेद ह ।
यमह्य वृक्षस्य च कुम्भकर्णो महागल् ॥ १६ ॥

परंतु महाबली कुम्भकजने अगने शूने उन परंतुगिरों
का फइ डाले और बरसाये जानेवाले वृक्षोंने भी टुकड़े-टुकड़े
कर डाले ॥ १६ ॥

ततो हरीणा सदनीयमुग्र
कुड्राय शूरा निशित प्रगृह्य।

तस्यै स तस्यापठत परस्ता
महीधराग्र हनुमान् प्रगृह्य ॥ १७ ॥

तब आत्मा उसने अपने तीक्ष्ण धृष्टि हाथों लेकर वानरों की उस भयंकर सेनानर आक्रमण किया। यह देख हनुमानजी एक पवन-दिलर हाथों लेकर उस आक्रमणकारी राक्षस का धमना करनेके लिये लड़ने लगे ॥ १७ ॥

स कुम्भकर्णं पुपितो जघान
धेगेन शैलेक्ष्मभूमिकायम् ।

मधुसूमे तेन तन्मभिभूतो
मेदाद्रगाग्रो रुधिरावसिक् ॥ १८ ॥

उन्होंने कुतित हा थ्रेट पर्वत समान मयनक शरीरवाले
कुम्भरूपरवड वेनो प्रहार किया। उनकी उस मारने
कुम्भरूप ब्याकुल हा उग। उसका सारा शरीर चरति गीन
॥ गया और वह रक्त ने नहा गया ॥ १८ ॥

म शूलमाश्रिष्य तद्विषकाश
गिरिं यथा प्रज्यग्निनामिष्टुम् ।

यादन्तरे मारुतिमाजघान

गुह्योऽचल प्रौञ्चमियोप्रदायत्या ॥ १९ ॥

फिर तो उसने भी निन्दनीय समान समझने हुए धृष्ट
 युमाक्षर त्रिशके शिवरार आग बड़ रही हो; उस परन्तु
 समान हनुमान्सीने छात्रों ने वही तरह मारा; वेले स्वामी
 काटिदिने अपनी मपानक शक्तिने कौशिकानर आपात किया
 या ॥ १९ ॥

स शूगनिभिश्चमहामुनान्तर
प्रसिद्धा शोणितमृदमन् मुख्यात् ।

ननाम् भीम हनुमान् महाहय

युगान्तनेघस्ननितत्वनोपमम् ॥ २० ॥

उस महात्मने गुरु जी चरण हनुमान्जीका दोनों पुत्रों-
के बीचका माँ (दायल) विरीण हा गया। वे व्याकुल
॥ गये और हुंसे रस यमन करने लगे। उस क्षण पीनर
मारे उन्होंने वडा भयकर आर्तनाद किया, जो प्रत्यक्षलने
पगोंकी गईनाक नमान डन पडता था ॥ २० ॥

ततो विनेदु सहसा ग्रहण
रोगाणास्त व्यथित समीक्ष्य ।

पुत्रगमास्तु व्यथिता भयाना
प्रदुद्रुषु सयति कुम्भकणात् ॥ २१ ॥

इनुमान्सीका आगने पवित्र दत्त राक्षसोंन हर्षकी
 सीमा न रही । वे सग्या जेर-जरने कजाहल करने लगे ।
 इषर कुम्भकर्षने भरने पाइत एष ज्योति हुए धार सुद
 भूमि छोड़कर भागने लगे ॥ २१ ॥

ततस्तु नीलो यलग्नः पयःस्थापयन् यलम् ।
प्रविचित्रेषु शैलाग्र कुम्भकणाय धीमते ॥ २२ ॥

यह देस बलवान नीलने सानमेनाके सैय सैयाने एव
मुस्तिर रखनेके लिये बुद्धिमान कुम्भकार एक पत्रनक्ष
शिवर चलाया ॥ २२ ॥

तदापतन्त सम्येक्ष्य मुष्टिनाभिजयान ह ।
मुष्टिप्रहाराभिहत तच्छैलप्राग्व्यशीर्षत ।
सरिस्फुलिङ्ग सन्ध्याल निपपात महोतले ॥ २३ ॥

उस पतंगिलरघो अने ऊपर भाटा देख कुम्भकाने
उपर नुबस्ने आन किया । उसका मुका छत्ते ही वह
शिखर चूर चूर होकर विबर गना और अगम्य चिनगरियाँ
तथा ल्यट्टे निगल्ला हुआ धृष्टीर गिर पड़ा ॥ २३ ॥

शुपभं शरभो नीलो गवानो गधमादन ।
पञ्च धानशार्ङ्गला कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ॥ २४ ॥

इसने कद श्रुपम धरम, नीर, गन्ध और गन्धमदन—
इन पाँच प्रमुख वनस्पतियों ने दुग्धकण्ठर घावा क्रिा ॥ २५॥

शैलैर्गुप्तैस्तले पादमुष्टिभिश्च महारत्ना ।
कुम्भकर्णे महाकाय निनन्दु सरतो युधि ॥ २५ ॥

वे महा-नी और चारों ओरने घेरकर सुदृढत्वने मगध
 कुम्भकण्ठ पर्वतों, वृद्धों, शम्भुओं, लाशों और नुक्ते मारने
 लगे ॥ २ ॥

स्पर्शानि प्रहापास्तान् वेदयानो न निरूप्ये ।
 श्रुतम् तु महारेण बाहुभ्या परित्यजे ॥ २६ ॥
 यस्मिन् यत्नं बद्धं ज्वरज्वरे प्रसारं कर्तते ते, तस्मिन्
 उक्ते एषा ज्वरं पठन् या मना बद्धं परित्यजेद् दूया हो । अ-
 नन्वी मने उमे तन्निकं भी पीडा नहीं । हुई । उसने मन्त्र
 वेगमाली श्रुतम् अना दानो मुखाग्रो मर त्विन् ॥ २६ ॥

कुम्भकर्णमुजाम्या तु पीडितो वानरपथम् ।
निपपातर्यभो भीम प्रमुखामगतशोणित ॥ २७ ॥

कुम्भकर्णवी दोनों मुजामोंसे दबकर पीडित हुए मयकर
वानरशिरोमणि श्रृगमने मुँहसे खून निकलने लगा और वे
पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २७ ॥

मुष्टिना शरभ हत्वा जातुना नीलमातवे ।
आजयान गवाक्ष तु तलेने द्रिपुस्तदा ।
पादनाभ्यहनत् क्रुद्धस्तरसा गधमादनम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर उस समरभूमिमें इन्द्रजोही कुम्भकर्णने शरभको
मुक्नेसे मारकर नीलको मुक्नेसे राग दिया और गवाक्षजो
अप्यङ्गसे मारा । फिर क्रोधसे भरकर उसने गधमादनको बड़े
वेगसे छत मारी ॥ २८ ॥

दक्षमहारव्यथिता सुमुहुः शोणितोक्षिता ।
निरेतुस्ते तु मेदिन्या निरुक्ता इव किञ्चुका ॥ २९ ॥

उठने प्रहारसे व्यथित हुए वानर मुर्छित हो गये और
रक्तसे नहा उठे । फिर ऊँचे हुए पलाय-वृक्षों मौँल पृथ्वीपर
गिर पड़े ॥ २९ ॥

तेषु वानरसुख्येषु पातितेषु महात्मसु ।
वानराणा सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रमुहुः ॥ ३० ॥

उन महामनस्वी प्रमुख वानरोंने परधायी हो जानेपर
हजारों वानर एक साथ कुम्भकर्णपर दूट पड़े ॥ ३० ॥
त शैलमित्र शैलभा सर्वे तु लघुवर्गभा ।
समावृष्टा समुत्पत्य वदन्त्युच्च महापला ॥ ३१ ॥

पर्वतके समान प्रतीत होनेवाले वे समस्त महाबली वानर
वृषपति उस पर्वताकार राखरके ऊपर चढ़ गये और उछल-
उछलकर उठे दौँतोंसे घाटने लगे ॥ ३१ ॥

त नलैर्दंशनैश्चापि सुष्टिभिर्बाहुभिस्तथा ।
कुम्भकर्णं महाबाहु निजच्छु लघुवर्गभा ॥ ३२ ॥

वे वानरशिरोमणि नलों, दौँतों, मुँहों और हाथोंसे
महाबाहु कुम्भकर्णजो मारने लगे ॥ ३२ ॥

स वानरसहस्रैस्तु निश्चित पर्वतोपम ।
रराज राक्षसप्याश्रो गिरिरात्मवदरिच ॥ ३३ ॥

जैसे पर्वत अपने ऊपर उगे हुए वृक्षोंसे सुशोभित होता
है, उसी प्रकार वहाँ वानरोंसे व्याप्त हुआ वह पर्वताकार
राखर भीरु अद्भुत शोभा पाने लगा ॥ ३३ ॥

पाहुम्या वानरान् सर्वान् प्रगृह्य स महापला ।
भक्षयामास सशुद्धो गरुड पद्मगान्नि ॥ ३४ ॥

जैसे गरुड उतकों अपना आहार बनाते हैं, उसी तरह
अत्यन्त कुपित हुआ यह महाबली राखर समान वानरोंको
तेनो हाथोंसे पकड़-पकड़कर भक्षण करने लगा ॥ ३४ ॥

प्रक्षिता कुम्भकर्णेन वक्त्रे पातालसन्निभ ।
नामापुटाम्या सज्जमु वणाभ्या चैन वानरा ॥ ३५ ॥

कुम्भकर्ण अपने पाताले समान मुखमें वानरोंको झोंकता
जाता था और वे उसने कानों तथा नाज़ोंरी राखे बाहर
निकलते जाते थे ॥ ३५ ॥

भक्षयन् शूरासमुद्धो हरन् पर्वतसन्निभः ।
बभल वानरान् सर्वान् समुद्धो राक्षसोत्तम ॥ ३६ ॥

अत्यन्त क्रोधसे भरकर वानरोंका भक्षण करते हुए
पर्वतके समान विशालनाय उस राक्षसराजने समस्त वानरोंके
अन्न भक्षण कर डाले ॥ ३६ ॥

मासशोणितसङ्क्रेश कुर्वन् भूमिं स राक्षस ।
चचार हरिसैन्येषु कालामिरिव मूर्च्छित ॥ ३७ ॥

रणभूमिमें रक्त और मांसकी बीच मचाता हुआ वह
राक्षस बड़ी हुई प्रलयात्मिके समान वानरसेनामें निचरने
लगा ॥ ३७ ॥

वज्रहस्तो यथा शक पाशहस्त इवान्तकः ।
शूलहस्तो यभी युद्धे कुम्भकर्णो महाबल ॥ ३८ ॥

शूल हाथमें लेकर छत्रामभूमिमें विचरता हुआ महाबली
कुम्भकर्ण वज्रधारी इन्द्र और पाशधारी यमराजने समान बान
पकृता था ॥ ३८ ॥

यथा शुष्काप्यरण्यानि ग्रीष्मे दृष्टति पावक ।
तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो ददाह स ॥ ३९ ॥

जैसे ग्रीष्म ऋतुमें द्रावणल सूखे जगलोंको जला देता है,
उसी प्रकार कुम्भकर्ण वानरसेनाओंको दग्ध करने लगा ॥ ३९ ॥

ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथा लघुगमा ।
वानरा भयसविज्ञा विनेदुर्विहृतै स्वरै ॥ ४० ॥

जिनके वृक्ष-के-वृक्ष नष्ट हो गये थे, वे वानर कुम्भकर्णकी
तारतम्य करने लगे ॥ ४० ॥

अनेकशो वध्यमाना कुम्भकर्णेन वानरा ।
राघव शरणं जमुर्व्यथिता भिज्जचेतस ॥ ४१ ॥

कुम्भकर्णके हाथसे मारे जाते हुए बहुत-से वानर, जिनका
दिल दूट गया था, व्यथित हो भीरुपुनायजीकी शरणमें गये ॥ ४१ ॥

प्रभग्नान् वानरान् हृष्टा वज्रहस्तात्मजात्मजा ।
अभ्यधावत् वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे ॥ ४२ ॥

वानरोंको भागते देख बालिकुमार अन्नद उस महाधमरने
कुम्भकर्णकी ओर बढ़े वेगसे दौड़े ॥ ४२ ॥

श्रासयन् राक्षसान् सवान् कुम्भकर्णपदागुगान् ॥ ४३ ॥
विशेष शैलशिखर कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ।
उहोंने शारवार गवना करने एक विशाल शैल-शिखर

हाथमें ल लिया और कुम्भकर्णक पीछे चलेवाल समस्त
यक्षस्य मयमीन करने हुए उस पवनविश्वरूपी उसक मनक-
पर दे मार ॥ ४३ ॥

स तेनाभिहतो मृष्टि शैलेन्द्ररिपुस्तदा ॥ ४४ ॥
कुम्भकर्ण प्रचचाल द्रोघेन महता तदा ।
सोऽभ्यधावत वेगेन चालिपुत्रममरण ॥ ४५ ॥

मनकर पर उस पवन-विश्वरूपी चट साकर इन्द्राही
कुम्भकर्ण उस समय मगल आपने बल उठा और उस प्रकार
को वरन न कर सन्नेके कारण बड़े उगने वालिपुत्रकी ओर
चौड़ा ॥ ४४ ॥

कुम्भकर्णो महानास्त्रामयन् स्वर्गानरान् ।
गूल ससन धै गौरादन्दे तु महात्मा ॥ ४६ ॥
बड़े करने गजना करनेवाटे महान् । कुम्भकर्णने समस्त
वानरोंको नष्टन करते हुए अद्भुत बड़े रोने छल्ला
प्रहार किया ॥ ४६ ॥

तदापतन् वज्रान् युद्धमार्गविशारद ।
लायगामोपयामास वलान् धानरपभ ॥ ४७ ॥
किन्तु युद्धमार्गि शाय वज्रान् धानरपिपमणि अद्भुतने
छुटिते हारक अनी अर आते हुए उस धावे अने आपको
बचा लिया ॥ ४७ ॥

उत्पत्य चैन तरसा तलेनोरम्यताडयत् ।
स तेनाभिहत कोपान् प्रमुमोहाचलेपम ॥ ४८ ॥
छाप ही बड़े वेगने उछलकर उठोने उसकी छानीने एक
थपड़ मार । आघात चले हुए उस थपड़की मार
साकर बड़े पराक्रम रख मूर्च्छित हो गया ॥ ४८ ॥
स लब्धसमोऽतिरलो मृष्टि सगृह्य राक्षस ।
अपहृलेन रिक्षेप रिसह स पपात ह ॥ ४९ ॥

चौड़ी देवेने जब ठने हथ हुआ, तब उस अत्यन्त बल-
वाली थपड़ने भी बाँट हाथने मुक्का बाँधकर अद्भुतपर प्रहार
किया, जिसने वे अत्यन्त शक्ति धृष्टान्न निर पड़े ॥ ४९ ॥

तस्मिन् प्रमगशास्त्रे रिसमे पतिते मुनि ।
तच्छूल समुपाय सुग्रीमभिमुदुने ॥ ५० ॥
वानप्रस्थ अद्भुत अत्यन्त एव वरुणा हा अनेवर
कुम्भकर्ण वही छल हारक मुगानी अर चौड़ा ॥ ५० ॥

तमापतन् सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्ण महात्मा ।
उत्पपान तदा धीरा सुग्रीवो धानराधिप ॥ ५१ ॥
महावीर कुम्भकर्णने मन्गी अर आते देख धीर धानर
राज सुग्रीव तच्छाल ऊपरकी ओर उछल ॥ ५१ ॥

स पयताप्रमुत्तिष्य समाविष्य महाकपि ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्ण महात्मा ॥ ५२ ॥

महाकपि सुग्रीवने एक पयत विश्वरूपी उठा लिया और
उसे घुमाकर महाबली कुम्भकर्णने देगाधक धारा किया ॥
तमापतन् सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्ण प्रमगमम् ।

तस्यौ निवृत्तसर्गाहो वानरेऽभ्य सम्मुख ॥ ५३ ॥
धानरसुग्रीवका आक्रमण करते देख कुम्भकर्ण अने
छारे अद्भुतको पैटकर उन धानराजक सामने खड़ा हो गया ॥
कपिशोणितगिग्धाङ्ग भयपन्त महात्मा ।
कुम्भकर्ण स्थित दृष्ट्वा सुग्रीवो धान्यमप्रवीत् ॥ ५४ ॥

कुम्भकर्णका साथ शरीर धानरोंके रखते रहा उठा था ।
बड़े बड़े धानरोंको खाता हुआ उनके सामने खड़ा था ।
उने देखकर सुग्रीवने कहा— ॥ ५४ ॥

पातिताश्च त्वया वीरा कृत कर्म सुदुष्करम् ।
भक्षितानि च सैन्यानि प्रात ते परम यदा ॥ ५५ ॥
त्यज तद् धानराजीक प्राद्वै किं करिष्यसि ।
महत्स्यैव निपान मे पर्वतस्यास्य राजस ॥ ५६ ॥

पक्षज । तुमने बहुतने वीरोंको मार लिया; अत्यन्त
दुष्कर कर्म कर दिखाया और जिनने ही सैनिकोंका अना
आहार बना दिया । इसने तुम्हें ज्ञेयका महान् पद प्राप्त
हुआ है । अब इन धानरोंकी सेनाका छड़ द । इन कारण
वरुने लड़कर क्या करोगे ? यदि शक्ति हो तो मर चलाये
हूए इस पर्वतकी एक ही चोट खर ले ॥ ५५ ॥

तद् धान्य हरितानस्य सत्यधैर्यममम्वितम् ।
शुन्वा राक्षसशास्त्रं कुम्भकर्णोऽमरीद् वच ॥ ५७ ॥
धानरपक्षी यह सत्य और धैर्यने मुक्त बात सुनकर
राक्षसपर कुम्भकर्ण बोल— ॥ ५७ ॥

प्रनापतेस्तु पौयन्म्य तथैरर्क्षराजसुत ।
घृतिपौरुषसम्पन्नस्त्वाद् गजसि धानर ॥ ५८ ॥
वनर । तुम प्रवरतिक पौत्र, शूरशूर पुत्र तथा
धैर्य एव धैर्यने सम्पन्न हा । इसीछे इव तरह गरज
ले हा ॥ ५८ ॥

स कुम्भकर्णस्य यचो निराम्य
ध्याविष्य दील सहसा मुमोज ।
तेनानधानोरसि कुम्भकर्ण
शैलेन वज्राशनिसनिमेन ॥ ५९ ॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर मुमोजने उस शैल-विश्वरूपी
घुमाकर सहसा उसके ऊपर छड़ दिया । वह वज्र और
अशक्तिके समान था । उसका धाप उठोने कुम्भकर्णकी
छानीने गरी चर पहुँचायी ॥ ५९ ॥

तच्छैलं दृष्ट्वा महसा विभिन
मुजान्तरे तस्य तदा विशाले ।
सतो निरेदु सहसा प्रगमा
रक्षोगपाश्चापि मुदा निरेदु ॥ ६० ॥

रिनु उसके निशाल वस लखते टनकर वह नैल-
शिरार लहवा चूर-चूर हो गया । यह देख वानर तत्काल
निपादमें झूब गये और राक्षस बड़े हर्षके साथ गर्जना करने लगे ॥

स शैलशृङ्गाभिहतदन्तुकोप
ननाद रोषाच्च निवृत्य वक्त्रम् ।

व्यानिध्य शूल स तडित्प्रकाश
चिक्षेप हृष्टक्षपतेर्वधाय ॥ ६१ ॥

उस परत शिपरकी चोर खार कुम्भकर्णने बड़ा क्रोध
हुआ । वह रोपते मुँह फैलाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ।
फिर उसने बिजलीके समान चमकनेवाला उस शूलको धुमाकर
सुभीवन बंधके लिये चलाया ॥ ६१ ॥

तत् कुम्भकर्णस्य भुजप्रमुखा
शूल शित काञ्चनधामयष्टिम् ।
क्षिप्र समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां
वभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य ॥ ६२ ॥

कुम्भकर्णके हाथसे छूटे हुए उस तीरते शूलको, जिसके
ढंढेमें सोनेकी लक्ष्मियाँ लगी हुई थीं, बाधुपुत्र हनुमान्ने क्षीम
उछलकर दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसे वेगपूर्वक
तोड़ डाला ॥ ६२ ॥

इत भारतहस्तस्य शूल कालायस महत् ।
वभञ्ज जानुमारोप्य तदा हृष्ट भ्रवगमः ॥ ६३ ॥

वह महान् ह्वा-हजार भार काले खोहेका बना हुआ था,
तत्काल तोड़ दिया ॥ ६३ ॥

शूरा भग्न हनुमता हृष्ट वानरवाहिनी ।
हृष्टमान्त्रीक द्वाप शूलको तोड़ा गया ॥ ६४ ॥

वड़े हर्षसे भरकर बार-बार सिंहाद करने लगी और चारों
ओर दौड़ लगाने लगी ॥ ६४ ॥

यभूवाय परित्रस्तो राक्षसो निमुलोऽभवत् ।
सिंहनाद य ते चतुः प्रहृष्टा वनगोचरा ।
मायति पूजयाचमुर्ध्वं शूरा तयागतम् ॥ ६५ ॥

परत वह राक्षस मयसे घरा उठा । उसने मुखपर
उदानी छा गयी और वनचारी वानर अत्यन्त प्रसन्न हो
सिंहनाद करने लगे । उन घरने शूलको खण्टित हुआ देख
पवनपुमार हनुमान्जीकी भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ ६५ ॥

स तन् तथा भग्नमेवेक्य शूल
घुषोप रक्षोधिपतिमहात्मा ।
उत्पाट्य लङ्कामयात् स शृङ्ग
जघान सुग्रीवमुत्पत्य तेन ॥ ६६ ॥

इस प्रकार उस शूलको भग्न हुआ देत महाराज राक्षस

राज कुम्भकर्णका बड़ा प्राण हुआ और उसने लङ्का पर निकट
वर्ती मलय पर्वतका शिरार उठाकर सुभीवन निकट ज
उनपर दे मारा ॥ ६६ ॥

स शैलशृङ्गाभिहतो विसङ्ग
वपात भूमौ युधि वानरेन्द्र ।
त वीक्ष्य भूमौ पतित विसङ्ग
नेतु प्रहृष्टा युधि यातुधाना ॥ ६७ ॥

उस शैलशिरसे आहत हो वानरराज सुभीक अपनी
मुख-मुच सो बैठ और बुद्धभूमिमें गिर पड़े । उन्हें अचेत
होकर पृथ्वीपर पड़ा देख निशाचरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और
वे राक्षसेजनोंमें सिंहाद करने लगे ॥ ६७ ॥

समम्युपेत्याद्भुतघोरशृङ्ग
स कुम्भकर्णो युधि वानरेन्द्रम् ।
जहार सुभीमानभिप्रगृह्य
यथानिलो मेघमिव प्रचण्ड ॥ ६८ ॥

उदनन्तर कुम्भकर्णने युद्धसङ्गमें अद्भुत दूर मया
परगमन प्रकट करनेवाले वानरराज सुभीरने पाठ जाकर उ
उठा लिया और नैले प्रचण्ड बाधु बादलोंकी उड़ा ले जा
है, उसी तरह वह उन्हें हर ले गया ॥ ६८ ॥

स त महामेघनिकाशरूप
मुत्पाट्य गच्छन् युधि कुम्भकर्ण ।
रराज मेरुप्रतिमानरूपो
मेघयथा व्युच्छिद्यतघोरशृङ्ग ॥ ६९ ॥

कुम्भकर्णका स्वरूप मेरु पर्वतने समान ज्ञान पड़ता था ।
वह महान् मेघके समान रूपवाले सुभीरको उठाकर जब बुद्ध
सङ्गसे चला, उस समय मयानक ऊँचे शिरारोंवाले मेरु
गिरिये समान ही शोभा पाने लगा ॥ ६९ ॥

ततस्तमादाय जगाम वीर
सस्तुयमानो युधि राक्षसेन्द्र ।
शृण्वन् निनाद शिदिशालयाना
सुचन्द्रराजमहर्षिसित्तानाम् ॥ ७० ॥

उन्हें लेकर वह वीर राक्षसराज लङ्काकी ओर चला दिया ।
उस समय युद्धसङ्गमें सभी राक्षस उसकी स्तुति कर रहे थे ।
वानरराजने पकड़े जानेसे आश्चर्यचकित हुए देवताओंका दुःख
जनित शब्द उसे स्पष्ट सुनायी दे रहा था ॥ ७० ॥

ततस्तमादाय तया स मेने
हरी द्रुमि द्रोपममि द्रवीर्य
अस्मिन् हते सयमिदं हत म्यात्
सराघट सैन्यमितीन्द्रशत्रु ॥ ७१ ॥

इन्द्रक समान पराक्रमी इन्द्रप्रोही कुम्भकर्णने उस समय
देवे द्रवुल्य तेजस्वी वानरराज सुभीरको पकड़कर मन-ही-मन

यह मान लिया कि इनने मारे जानेने आरम्भवाहित यह सारी
यानर-नेना स्वतः नष्ट हो जायगी ॥ ७१ ॥

विद्रुता चाहिनीं दृष्ट्वा जानराणामितस्ततः ।
कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीतं चापि यानरम् ॥ ७२ ॥
हनुमाश्चित्तयामास मनिमान् माहतामनः ।
एव गृहीते सुग्रीवं किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥ ७३ ॥

जानरांनी नेना इधर उधर भग रही है और यानराज
सुग्रीवको कुम्भकर्णे पकड़ लिया है, यह देखकर बुद्धिमान्
पत्तनद्वार इतमानने संज्ञा—सुग्रीव इत प्रकार पकड़
लिये जानेकर मुझे क्या करना चाहिये ? ॥ ७२ ७३ ॥

यदि न्याय्यं मया कर्तुं तत् करिष्याम्यसहायम् ।
मृत्या पवतसकाशो नाशयिष्यामि राक्षसम् ॥ ७४ ॥

मरेलिये जो भी करना उचित होगा, उसे मैं निःसंदेह करूँगा ।
पतवारका रूप धारण करके उस राक्षसका नाश कर दूँगा ॥ ७४ ॥

मया हते सयति कुम्भकर्णे
महाबले सुशिखिदीर्घदेहे ।
निमोचिते यानरपाधिने च

भग्नो ह्यष्टा ज्वगा समथा ॥

पुष्टलालने अपने मुँहने मार-मारकर महाबली कुम्भकर्ण
के शरीरसे चूर-चूर कर दूँगा इस प्रकार जब वह मरे शयते
मरण जायगा तथा यानराज सुग्रीवको उसकी कैदसे मुड़ा लिया
जायगा, तब सारे यानर अपने पिछ ठगने अच्छा ऐसा ही हों ॥

अथवा स्वयमन्येन मोक्षं प्राप्स्यति यानरः ।
गृहीतोऽपि यदि भवेत् निद्रौ सासुरोत्तरी ॥ ७५ ॥

अथवा मैं सुग्रीव स्वतः ही उसको पकड़ते दूट जायँगे ।
यदि इन्हें देवता, अथवा अथवा नाग भी पकड़ लें तो वे
अपने ही प्रान्तसे उनकी कैदसे भी छुटकारा पा जायँगे ॥

मन्ये न तारयामास बुध्यते यानराधिपः ।
शैलप्रहाराभिहतं कुम्भकर्णेन सयुगे ॥ ७६ ॥

मैं वनतला हूँ कि युद्धने कुम्भकर्णे शिलाएँ प्रहारने
सुग्रीवको जो रण्य चट फँसवाया है, उसने अवेत हुए
यानराजको अभी तक हरा नहीं हुआ है ॥ ७६ ॥

अथ मुहतात् सुग्रीवो रथसङ्गो महाहवे ।
आमनो यानराणां च यत् पश्य तत् करिष्यति ॥ ७७ ॥

एक ही मुहूर्तने वह सुग्रीव संवेत होंगे, तब महासन्तने
अपने और यानराज नियत कि जितने करे होगा, उसे करेगा ॥

मया तु मोक्षितम्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अभीविश्रं भवेत् कथं कार्तिनाशश्च शाश्वतः ॥ ७८ ॥

जब मैं इन्हें मुड़ाऊँ तो मरणा सुग्रीवको प्रसन्नता
नहीं होगी, जल्द इन मनने नष्ट होगा और यानर लिये
इतना घबरा नष्ट हो जायगा ॥ ७८ ॥

तस्मान्मुहूर्ते काङ्क्षित्ये प्रिमम मोक्षितस्य तु ।
भिन्नं च यानराणीकं तावदावासायाम्यहम् ॥ ८० ॥

अतः मैं एक मुहूर्तक उनसे दूटने की प्रार्थना करूँगा ।
जिसे वे दूट जायँगे तो उनका पराक्रम देखूँगा । तब तक मर्ग
हुई यानर-नेनाका घेरें बँधाया हूँ ॥ ८० ॥

इत्येष चिन्तयिष्याय हनुमान् माहतामनः ।
मृत्युं सत्सम्भयामास जानराणां महाचमूम् ॥ ८१ ॥

ऐसा विचारकर मनकुमार इतमानने यानराज की उस
विशाल बहिनाको पुनः आश्वस्त दे निरस्तपूतक स्थापित किया ॥

स कुम्भकर्णोऽपि विद्रुता लङ्का
सुरन्तमादाय महाहरिं तम् ।

निमानत्रयागृहगोपुरस्यै
पुष्पाग्र्यैर्वैरभिपूज्यमानः ॥ ८२ ॥

उधर कुम्भकर्ण हाथ पैर हिलाते हुए महानगर सुग्रीवको
लिये-लिये लङ्काने घुस गया । उस समय विमानों (सैन्यहले
मन्त्रियों, सङ्घके दोनों ओर का हुई यहलियों तथा
गोपुरोंमें रहनेवाले क्षीपुण उत्तम फूलोंनी बना करके
कुम्भकर्णका स्वागत-सम्कार कर रहे थे ॥ ८२ ॥

व्यजगद्भोद्वर्चस्तु सेच्यमानः शनैः शनैः ।
राजरीण्यास्तु शीतं यावत् सखा प्राप महारणम् ॥ ८३ ॥

लगा और रथपुत्र बन्दी वगैरों अभिषिक्त हो
राजनीतियों की शीतलनाक कारण महाबली सुग्रीवको धार धीरे
हाथ आ गया ॥ ८३ ॥

ततः स सज्जामुलम्ब्य कृच्छ्राद्
बलीयसस्तस्य भुनाम्तरस्य ।

अनेकमणः पुराणमार्गं
विचिन्तयामास मुहुर्माहाता ॥ ८४ ॥

तब बड़ी कठिनायते सचन ॥ यन्त्रात् कुम्भकर्णकी
मुखाभेने दब हुए महाना सुग्रीव नगर और राजनीतियों
और देखकर बाधाकर इस प्रकार निचर करते लगे— ॥ ८४ ॥

एव गृहातेन कथं नु नाम
शक्त्यं मया सम्प्रतिक्नुमद्यः ।

तथा करिष्यामि यथा हरीता
अभिष्यतीष्टं च हितं च करयम् ॥ ८५ ॥

इस प्रकार इस राजनीति पकड़ने आकर मन मैं किस तरह
इसने मरुत बदल ले सज्जा हूँ मैं बनी करूँगा, जिन्मे
यानराजको अच्छा और निचर पार हों ॥ ८५ ॥

ततः कराग्रैः सहसा समेय
रथानां हरीणाममरेन्द्रशत्रोः ।

खरं कर्णौ दुरानेयं नाम्ना
दुष्टं पार्श्वेन्द्रशत्रोः पार्श्वौ ॥ ८६ ॥

ऐसा निश्चय करके यानराज रथ सुग्रीवने लम्प हाथोंक

तीक्ष्णे नलौद्राय इन्द्रायु कुम्भकर्णं दोनों कान नीच लिये,
दौतौसे उसकी नाक काज ली और अपने पैरोंके नपौसे उस
रखवकी दोनों पसलियों फड़ बाळी ॥ ८६ ॥

स कुम्भकर्णो हतकणनासो
विदारितस्तेन रदेर्नैलैश्च ।
रोयाभिभूत क्षतजादंगान्

सुग्रीवमाविष्य पिपेय भूमौ ॥ ८७ ॥
सुग्रीवके दौतौ और नपौसे दोनों कानोंका निम्न भाग
और नाक कट जाने तथा पार्श्वभागके विदीर्ण हो जानेसे
कुम्भकर्णका चारा शरीर सङ्कटस्थान हो गया । तब उसे बड़ा
रोय हुआ और उसने सुग्रीवको घुमाकर भूमिपर पटक दिया ।
पटककर वह ऊर्ध्व भूमिपर गड़बने लगा ॥ ८७ ॥

स भूतले भीमवलाभिपिष्ट
सुरारिभिस्तैरभिहन्यमान
जगाम ख क दुःखज्जवेन

मयानक बलशाली कुम्भकर्ण जब ऊर्ध्व भूमिपर गड़
रहा था और वे देवद्रोही राक्षस उनपर ख ओरसे झोट कर
रहे थे, उसी समय सुग्रीव सट्टा गँड़की मौँति वेगपूर्वक
आकाशमें उछले और पुन श्रीरमच द्रव्यसे आ मिले ॥ ८८ ॥
कर्णनासाविहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबल ।
रराज शोणितोत्तिष्ठो गिरि प्रकवणैरिव ॥ ८९ ॥

महाबली कुम्भकर्ण अपनी नाक और कान जो वेठा ।
उसक अङ्गोंसे हठ तरह खड़ा बहने लगा; जैसे पतसे पानीके
हलने गिते हैं । वह रक्त्से नहा उठा और हलनोंसे युक्त
शैलशिलरपी भौँति गोभा पाने लगा ॥ ८९ ॥

शोणिताद्रौ महाकायो राक्षसो भीमवर्शन ।
युद्धायाभिमुखो भूयो मनश्चको निशाचर ॥ ९० ॥

महाकाय राक्षस रक्त्से नहाकर और भी मयानक दिलायी
देने लगा । उस निशाचरने पुन शत्रुके सामने जाकर युद्ध
कलेका विचार किया ॥ ९० ॥
अमयाच्छोणितोत्तारी पुश्रमे रायगानुज ।
मयापूरुषे रत्न वसन करता हुआ रायगका छोटा भाई
कुम्भकर्ण; जिस शरीरका रंग बाले मेवके समान था;
संभ्राष्टरने कालकी मौँति सुशोभित हो रहा था ॥ ९१ ॥

गते च तस्मिन् सुरराजराशु
मोघात् प्रमुद्राय रणाय भूय ।
अनायुधोऽस्मिन्ति निचिन्त्य रौद्रे

गोर तदा मुह्यमाससाद ॥ ९२ ॥
सुग्रीव निद्रल भागनेर पर इन्द्रोही राक्षस फिर युद्ध
के लिय दौड़ा । उस समय वह धावकर नि श्वर पास कोइ

हथियार नहीं है' उसने एक बड़ा भयानक मुहर ल लिया
तत स पुर्यां सहसा महौजा
निष्प्रभ्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।
यमश्च रक्षो युधि कुम्भकर्णं
प्रजा युगात्तामिरिव प्रवृद्ध ॥ ९३ ॥

तदनन्तर महाबलशाली राक्षस कुम्भकर्ण सहसा लङ्कापुरी
से निकलकर प्रजाका भक्षण करनेवाली प्रलयकालकी प्रवृत्ति
अग्निके समान उस भयानक वानर-सेनाको युद्धस्थलमें अपना
आहार बनाने लगा ॥ ९३ ॥

युमुश्चित शोणितमासगुभ्भु
प्रविश्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।
चखाद् रक्षांसि हरीन् पिशाचा
नृक्षाश्च मोहाद् युधि कुम्भकर्णं ।
ययैव स्रुतुर्वरते युगान्ते

स भक्षयामास हरींश्च मुख्यान् ॥ ९४ ॥
उस समय कुम्भकर्णको भूख उता रही थी; अतएव वह रक्त
और मांसके लिये लालायित हो रहा था । उसने उस भयानक
वानर-सेनामें प्रवेश कर मोहवश वानरों और माछुओंके साथ
साथ राक्षसों तथा पिशाचोंकी भी खाना आरम्भ कर दिया । वह
प्रधान प्रधान वानरोंको उसी प्रकार अपना मांस बना रहा था; जैसे
प्रलयकालमें मृत्यु प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करती है ॥ ९४ ॥

एक ह्यौजीन् यद्वह कृन्तो वानरान् सह राक्षसैः ।
समादायैकहस्तेन प्रचिक्षेप त्यरन् मुपे ॥ ९५ ॥
वह बड़ी उतावलीके साथ एक हाथसे क्षेपपूर्वक एक
दो, तीन तथा बहुत-बहुत राक्षसों और वानरोंको समेटकर अपने
मुँहमें झोंक लेता था ॥ ९५ ॥

सम्प्रक्षयस्तदा मेद शोणित च महाबल ।
वध्यमानो नगेन्द्राप्रैर्भक्षयामास वानरान् ॥ ९६ ॥
उस समय वह महाबली निशाचर पर्वत शिखरोंमें मार
खाता हुआ भी मुँहसे वानरोंकी चर्बी और रक्त गिरता हुआ
उन सबका भक्षण कर रहा था ॥ ९६ ॥

ते भक्षयमाणा हरयो राम जम्मुस्तादा गतिम् ।
कुम्भकर्णो भूरा मुक्क कपीन्स्तादन् प्रधानति ॥ ९७ ॥
उसने द्वाय साथे जाते हुए वानर भक्षणीत हो उस समय
उपित हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ ख ख ओर उन
पर धावा करने लगा ॥ ९७ ॥

शतानि सप्त चाष्टी च विशतिंशत् तयैव च ।
सम्परिप्लव्य चाद्रुम्या खादन् विपरिधातति ॥ ९८ ॥
बह सप्त, आठ, बीस, तीस तथा सौ-सौ वानरोंको अपनी
दमों मुजाओंपर भर रखा और उन्हें खाता हुआ खणभूमिमें
दौड़ा फिटा था ॥ ९८ ॥

मेदेवसाशोणितदिग्भगाग्र

कणावसत्प्रथिता नमाल ।

चवर शूलानि सुतीक्ष्णदृष्ट

काले युगान्तस्य इव प्रमुद्ध ॥ ११ ॥

उत्तरे शरीरमें मेद, चर्चा और रक्त लिपटे हुए थे ।

उसके कानोंमें औंनोंकी मालाएँ उलझी हुई थीं तथा उसकी दाँदें बहुत तीक्ष्ण थीं । वह महाप्रलयके समय प्राणियोंका संहार करनेवाले विशाल रूपधारी कालके समान वानरोंपर शूलों की वर्षा कर रहा था ॥ ११ ॥

तस्मिन् काले सुमित्राया पुत्र परचलादन ।

चकार लक्ष्मण क्रुद्धो युद्धपरपुरुजय ॥ १०० ॥

उस समय शत्रुनगरीपर नियंत्रण पाने तथा शत्रुओंका संहार करनेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मण क्रुपित होकर उस राक्षसक साथ युद्ध करने लगे ॥ १०० ॥

स कुम्भकणस्य शराशरीरे सप्त वीर्यवान् ।

निचक्षानाद्दे चान्यान् विससर्ज च लक्ष्मण ॥ १०१ ॥

उन पराक्रमी लक्ष्मणने कुम्भकर्णके शरीरमें सात बाण फेंका दिये । फिर दूसरे बाण लिये और उहें भी उसपर छोड़ दिया ॥ १०१ ॥

पीड्यमानस्तद्वत् तु विशेष तत् स राक्षस ।

ततश्चुकोप चलात् सुमित्रानन्दवधन ॥ १०२ ॥

उसने पीड़ित हुए उस राक्षसने लक्ष्मणके उस अङ्गको निशाने कर दिया । तब सुमित्राके आनन्दको बगनेवाले बलवान् लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १०२ ॥

अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम् ।

प्रच्छादयामास शरीं सध्याश्रमिन मातु ॥ १०३ ॥

उन्होंने कुम्भकर्णने सुवर्णनिर्मित सुन्दर एवं दीप्तिमान् कवचको अपने कानोंसे ढककर उसी तरह अदृश्य कर दिया, जैसे हथाने छयागारने बादलोंको उखाड़कर अदृश्य कर दिया हो ॥ १०३ ॥

नीलाञ्जनचयप्रस्य शरीं काञ्चनभूषणैः ।

आपीड्यमानं तुभे मेधे सूर्यं इवानुमान् ॥ १०४ ॥

काले कीचनेके तरकीबी कान्तिवाला कुम्भकर्ण लक्ष्मण का सुवर्णभूषित कानोंसे आच्छादित हो मर्षासे ढक हुए अनुमाली सूर्य समान योग्य था ॥ १०४ ॥

ततः स राक्षसो भीम सुमित्रानन्दवधनम् ।

सावशमेन प्रोयाच वास्य मेधोघनिखन ॥ १०५ ॥

तब उस मरनर यक्षने भयनी गन्वाने समान शम्भीर स्वरसे सुमित्रानन्दन लक्ष्मणका निरस्कार करते हुए कहा—

अन्तःस्थाप्यभ्रमेन युधि जेतारमाह्वय ।

युध्यता मामर्भतेन स्थारिता धीरता त्वया ॥ १०६ ॥

लक्ष्मण ! मैं युद्धमें यथाशक्ती भी युद्ध कर उठावे ही जीत लेनेकी शक्ति रखता हूँ । तुमने मेरे साथ निर्भय होकर युद्ध करते हुए अपनी अद्भुत वीरताका परिचय दिया है ॥ १०६ ॥

प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृचे ।

तिष्ठन्पश्यतः पूज्य किमु युद्धप्रदायक ॥ १०७ ॥

जब मैं महाशमरमें मृत्युने समान धमियाए लेकर युद्धके लिये उद्यत होऊँ, उस समय जो मेरे सामने खड़ा रह जाय, वह भी प्रघासका पात्र है । फिर जो मुझे युद्ध प्रदान कर रहा हो, उसके लिये तो कहना ही क्या है ? ॥ १०७ ॥

प्रेरावत समारूढो वृत्तं सनामरै प्रभुः ।

नैव शक्नोऽपि समरे स्थितपूर्वं कदाचन ॥ १०८ ॥

प्रेरावतपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए शक्तिशाली इन्द्र भी पहले मेरे सामने युद्धमें नहीं उतर सके हैं ॥ १०८ ॥

अद्य त्वयाह सौमित्रे बालेनापि पराक्रमै ।

तोषितो गतुमिच्छामि त्वामनुशास्य राघवम् ॥ १०९ ॥

सुमित्रानन्दन ! तुमने बालक होकर भी आज अपने पराक्रमसे मुझे सतुष्ट कर दिया, अतः मैं तुम्हारी अनुमति लेकर युद्धके लिये श्रीरामके पास जाना चाहता हूँ ॥ १०९ ॥

यत् तु धीर्ययलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया ।

राममेवैकमिच्छामि हतुं यस्मिन् हते हतम् ॥ ११० ॥

तुमने अपने वीर्य, बल और उत्साहसे रणभूमिमें मुझे सतोष प्रदान किया है इसलिये अब मैं केवल रामको ही मानना चाहता हूँ, जिनके मारे जानेपर सारी शत्रुसेना स्वतः मर जायगी ॥ ११० ॥

रामे मयात्र निहते येऽप्ये स्थास्यन्ति सयुगे ।

तानह योधयिष्यामि स्वयलेन प्रमाथिता ॥ १११ ॥

जबे द्वारा रामके मारे जानेपर जो दूसरे लोग युद्धभूमिमें लड़ते रहेंगे, उन सबके साथ मैं अपने संहारकारी बलके द्वारा युद्ध करूँगा ॥ १११ ॥

इत्युक्तवाक्यं तत् रक्ष प्रोयाच स्तुतिसहितम् ।

मृचे घोरतर वास्य सौमित्रि प्रहसन्निव ॥ ११२ ॥

वह राक्षस जब पूर्वोक्त बात कह चुका, तब सुमित्राकुमार लक्ष्मण रणभूमिमें उठाकर हँस पड़े और उससे प्रहसामिश्रित कठोर वाणीमें बाले— ॥ ११२ ॥

यस्त्य शशादिभिर्देवैरसृष्टं प्राप्य पौरुषम् ।

तत् सत्यं नान्यथा धीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रम ॥ ११३ ॥

यद्यपि शशादीनि देवैरसृष्टं प्राप्य पौरुषम् ।

धीर नान्यथा धीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रम ॥ ११३ ॥
जब शशादीनि देवोंकी शक्तिसे प्राप्त होकर भी वीरता का प्रमाण सिद्ध नहीं है, तब सत्य नान्यथा धीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रम ॥ ११३ ॥

पराक्रम देत लिया । ये रहे दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम,
जो परतके समान अविचल भारते खड़े हैं ॥ ११३३ ॥

इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मण स निदाचर ॥ ११३४ ॥
अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाउल ।

राममेवाभिमुद्राङ्ग कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ११५३ ॥
रामगर्भी यद जात सुनन्द उतस आदर न करत हुए
महागर्भी निगाचर उम्भमरणे मुमिवातु मारकोल्लोषकर श्रीराम
पर ही घारा लिया । उस समय वह अपने पैरों की धमकते
पृथ्वी को कण्ठित-सी निय देता था ॥ ११४ ११५ ॥

यद्य दाशरथी रामो रौद्रमल्ल प्रयोजयन् ।
कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताम्भारान् ॥ ११६६ ॥

उसे आते देत दशरथनन्दन श्रीरामने रौद्राक्षरा प्रयोग
करके कुम्भकर्णके हृदयमें अनेक तीपे याण मारे ॥ ११६ ॥
तस्य रामेण विदस्य सहस्राभिप्रधारत ।
अङ्गारमिश्रा हुडस्य मुखान्निष्केशरविम् ॥ ११७७ ॥

श्रीरामके बाणोंसे पायल हो वह छहल उनपर टूट पड़ा ।
उस समय मोघसे भरे हुए कुम्भकर्णके मुखसे अङ्गारमिश्रित
आगारी लपटें निकल रही थी ॥ ११७ ॥
रामाल्लविद्धो घोर वै नर्वन् राक्षसपुङ्गव ।

अभ्यधात सङ्कुन्दो हरौन् निद्रामयन् रणे ॥ ११८८ ॥
भगवान् श्रीरामने अलसे पीड़ित हो राक्षसपर कुम्भकर्ण
घोर गर्जना करता और राणभूमिमें वानरोंको रवेद्वेता हुआ
क्षोभपूर्वक उनकी ओर दौड़ा ॥ ११८ ॥
तस्योरसि निमग्नास्ते शारा बहिर्गवासस ।

हस्ताश्चास्य परिभ्रष्ट गद्या घोर्ष्यां पपात ह ॥ ११९९ ॥
श्रीरामके बाणोंमें मारने पल लगे हुए थे । वे कुम्भकर्ण
की छातीमें घँस गये । अत व्याकुलताने कारण उसके हाथसे
गद्गद्तर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ११९ ॥
आयुधानि च सजाणि निमर्कान्त भूतले ।

स निरायुधमात्मा यदा मेने महायत्न ॥ १२०० ॥
सुधिभ्या च कराभ्या च चकार पदन महत् ।
इतना ही नहीं उठने अथ वर आयुध भी भूमिपर
गिरार गये । जब उठने समस्त लिया कि अग मरे पास कोई
हथियार नहीं है तब उस महायत्नी निशाचरने दोनों कुर्क
और हाथोंसे ही वानरोंका महान् शयार आरम्भ किया ॥ १२०० ॥
स याणैरनुविद्धाङ्ग क्षतजेन समुक्षित ।

रुधिर परिपुञ्जय गिरिः प्रस्रजय यथा ॥ १२११ ॥
बाणोंसे उठने मारे अत अत्यन्त पायल हो गये थे,
इसलिये वह गलने लगा उठा और बेमे पकड़ जाने लगा है,
उसी तरह वह अपनी देहने स्वकी पाय बहाने लगा ॥ १२११ ॥
स तीक्ष्ण च कापन रुधिराण च मूर्च्छित ।

यानवान् राक्षसान् गान् धादन् स परिधायित ॥ १२२२ ॥
यानवान् राक्षसान् गान् धादन् स परिधायित ॥ १२२२ ॥

वह खूनसे लथपथ और दुःख मोघसे व्याकुल होकर
वानरों, माण्डों तथा राक्षसों की जाता हुआ चारों ओर
दौड़ने लगा ॥ १२२२ ॥

अथ शृङ्ग समाधिष्य भीम भीमपराक्रम ।
विशेष राममुद्रिदय रत्नवानस्तकोपम ॥ १२२३ ॥

इसी बीचमें वनराज वृषभानु मनीत होनेवाले उस बलवान्
एवं भयानक पराक्रमी निशाचरने एव भयङ्कर परतका दिसार
उठाया और उसे घुमाकर श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्य करके चला
दिया ॥ १२३ ॥

अप्राप्तमन्तरा राम सप्तभिस्तमजिह्वगै ।
विच्छेद गिरिशृङ्ग त पुन सधाय कान्तुम् ॥ १२४४ ॥

परशु श्रीरामने पुन धनुषना सधान करके सीधे जानेवाले
सत राण मारकर उस परत-शिखरको बीचमें ही टुक टुक कर
ढाला, अपने पासतक नहीं आने दिया ॥ १२४ ॥

ततस्तु रामो धमत्मा तस्य शृङ्ग महत् तदा ।
शरैः काञ्चनचिह्नैश्चिच्छेद भरताग्रजः ॥ १२५५ ॥

त मेवशिखरकार द्योतमानमिव श्रिया ।
उ शते वानराणा च पतमानमपातयत् ॥ १२६६ ॥

मरते बड़े भाई धर्मात्मा श्रीरामने क्षणभूति विचित्र
बाणोंद्वारा जब उस महान् परतशिखरको काट दिया, उस
समय अपनी प्रभासे प्रकाशित-सा होत हुए उस मेघपतके
शृङ्गसदृश शिखरने भूमिपर गिरते गिरते दो सी वानरोंको
बराबासी कर दिया ॥ १२५ १२६ ॥

तस्मिन् काले स धमत्मा लक्ष्मणो राममग्रधीत ।
कुम्भकर्णघणे युक्तो योगान् परिक्षुरान् बहून् ॥ १२७७ ॥

उस समय धर्मात्मा लक्ष्मणने, जो कुम्भकर्णके बचने लिये
निपुक्त थे, उसने वधारी अनेक युक्तियोंका निचार करते हुए
श्रीरामसे कहा— ॥ १२७ ॥

नैराय धानरान् राजन् न रिजानाति राक्षसान् ।
मस द्योतिता-घोरा खान् पराङ्मन खादति ॥ १२८८ ॥

यजन् । यह राक्षस शोणितरी गणसे मतनाला हो गया
है अत न वानरोंसे पहचानकर है न राक्षसोंसे । अपने और
पराय दोनों ही पक्षों का दवाओं से खा रहा है ॥ १२८ ॥
साध्वेनमधिरोहत् सर्वतो वानरपथा ।

यूयपाथ यथा मुल्यास्तिसृष्वसिन् समन्त ॥ १२९९ ॥
अत श्रेष्ठ वानर-यूयपतियोंमें जो प्रधान लग्य हैं, वे
सब आरते इधने ऊपर चढ़ जायें और इधने गरीरपर ही
बैठे रहें ॥ १२९ ॥
अद्याय दुर्मति काले शुक्रमात्रपीडित ।

प्रचरन् राक्षसो भूमौ नान्यान् हन्यात् प्रचयमान् ॥ १३०० ॥
एक हानेसे यह दुष्ट निशाचर इस समय मारी भाते
पीड़ित हो राणभूमिमें त्रिचरण करत समय दूधरे वानरोंको नदी
मार सकता ॥ १३० ॥

ततस्तु वातोद्धतमेवकल्प
भुजगराजोत्तमभोगवाहु
तमापतन्त धरणीधराभ
मुञ्च रामो मुधि कुम्भकर्णम् ॥१४३॥

तत्पुनरत्र निजनी युवायै नागपान् वासुकिने समान
विद्याल और मोरी थीं, उन भगवान् श्रीरामने पवनक्री प्रेरणा

न मेघे सद्युगे सक्त सान् पतान् वा निशाचर ।
रक्षणीवांसि मे वस्त सत्यमेव नवीमि ते ॥
पवसुवो बचसतेन कुम्भकर्णेन भीम्या ।
गतिं न महाबाहु दुग्धममुञ्चात् ॥
न तु सत्वरक्षोभिस्तेनोद्ध रक्षणैर्नरिन्म ।
कृत तु नमस्तेनाग सुदृढ दुग्धं तु वा ।
पवसुक्त्वासुपूर्वो गणपार्श्वभीषण ।
पञ्चामादिना भूवा गियावास सत्सित ॥

सब श्रीराम-द्वन्द्वने लिये बुद्ध करनेके निमित्त गन्धर्व
लिये विभीषण उतने आगे आकर रोहे हो गये और उस युद्धस्थल
में साह हाकर भार्य्य सामना करनेके लिये कहे वेगते आगे
गये । विभीषणने सामने दारुकर कुम्भकर्णने इस प्रकार कहा—

वत्स ! तुम आर्य्य रौह्य छोड़कर भीरुपुत्राव तब भिष करो
और रणभूमिमें क्षीन मरे ऊपर गता बलागो । इस समय तुम
क्षीनपर्वमें वृणापूर्व स्थिर रहो । तुम का श्रीरामकी शरणमें आ
गये रहते तुमने इनपार्श्व काव बना लिया । राक्षसोंमें एक तुम्हो
पड़े हा जिनने हम जगद्वै सत्य और धर्मको रक्षा की है । जो
धर्म अतुरल हावे है उहें कभी कोई डक नहीं भोगना पड़ना
है । अब धकमान तुम्हो इस बुद्धी सगनपरस्परको सुरक्षित
रखनेके लिये जीवित रहोगे । भीरुपुत्रावभीरो कृपासे तुम्हें राक्षसों
का राज्य प्राप्त होगा । दुजय वीर ! मेरी प्रशंसिते तो तुम परिचित
ही हो अन शीघ्र मेरा रास्ता छोड़कर दूर दूर जाओ । इस समय
रामप्रभने कारण मेरी विचारप्रकृति नष्ट हो गयी है, अन तुम्हें
मेरे सामने नहीं राहा जाना चाहिये । निशाचर ! इस समय बुद्धमें
आसक्त हानेके कारण तुम्हें अपने अथवा पदमेवै पहचान नहीं हो
रही है नपथि बल । तुम मरे लिये रणगीम हो—मैं तुम्हारा
बच करना नहीं चाहता । यह तुमने सक्षी बन करपा है । बुद्धिमान्
कुम्भकर्णने ऐसा करनेपर महाबाहु विभीषणने उल्लेख कहा—

रुद्र उष्ट्र कदा या निष्ठ सनत्त राजसिन्धे मेरी कण नहीं उठो
मा मे निष्ठरा होकर भीरुपर्व शरणमें आ गया । महाभाग ! यह
मेरे लिये पुण्य हो या पाप । अन मैंने भीरुपान् आश्रय ता
र आये और वे दारुता आश्रय ले खो होकर विजा करने

से उमड़े हुए मेघन समान काले और पर्वतने समान ऊँचे
शरीरकाले कुम्भकर्णको आक्रमण करते देख रणभूमिमें उल्लस
कहा— ॥१४३॥

अगच्छ रक्षोऽधिप मा विगद
मवस्थितोऽह मष्टहीतचाप ।
अवेहि मा राक्षसपदानाशन
यस्त्र मुहताद् भविता निवेता ॥१४॥

राक्षसराज ! आओ, विगद न करो । मैं घटप ले
रहा हूँ । मुझे राजसमक्षना निनाश करनेवाला समझो । अ
जाने ॥ ॥१४॥

रामोऽयमिति विशाय जहास विहृतस्वनम् ।
अभ्यधात सकुचो हरिन् विद्वानयन् रणे ॥१४॥

यही राम है—यह जानकर यह राक्षस विहृत स्वरमें
अट्टहास करने लगा और अत्यन्त दुःखित हो रणक्षेत्रमें वानरों
को भगता हुआ वनकी ओर दौग ॥१४॥

दारपन्निर सवैषा दद्यानि धनैस्सिन्धुम् ।
प्रहस्य विहृत भीम स मेघस्तनिवोपमम् ॥१४॥

कुम्भकर्णों महातेजा राघव वास्त्वमश्रवीत् ।
नाह प्रिषो विवेयो न कन्ध खरो न च ।
न वाली न च मारीच कुम्भकर्णः समागत ॥१४॥

महातेजसी कुम्भकर्ण समागत वानरों द्रव्यस निदीर्घ
ता करता हुआ विहृत स्वरमें जोर-जोरसे हँसकर मेघ-गजनाक
समान गम्भीर एवं भयकर थागीमें भीरुपुत्रावजीसे बोला—
यम ! मुझे विराध, कम्बध और दार नहीं समझना चाहिये ।
मैं मारीच और वाली भी नहीं हूँ । यह कुम्भकर्ण तुमसे
लहने आया है ॥१४॥

पश्य मे सुवृगर भीम सर्वं बालायस महत् ।
अनेन निर्जिता देवा दानाश्च पुरा मया ॥१४॥

मेरे इस भयकर एवं विशाल सुदूरकी ओर देखो । यह
सर्व-बा-सर्व काले लक्ष्मि बना हुआ है । मैंने पूरुषार्त्तमें
इसीके द्वारा समस्त दैवताओं और दानवीरा पराज किया
है ॥१४॥

जिर्णनास इति मा नाज्जानु त्वमसि ।
खलपि हि न म पीडा कणनासाग्निनाशनात् ॥१४॥

भरे नाक-जान नीचेसे फट गये हैं, देग समक्षकर तुम्हें
मेरी अवहेलना नहीं करनी चाहिये । इन दोनों आर्तों ने
हनेसे मुझे यादो-भी भी पीडा नहीं होती है ॥१४॥

दशवेष्टाबुद्धादूल धीर्य गावेपु मेऽनघ ।
ततस्तस्या भगविय्यामि दृष्टपाकपनिभम् ॥१५॥

ततस्तस्या भगविय्यामि दृष्टपाकपनिभम् ॥१५॥

निष्पाप पुनन्दन ! तुम इन्द्राक्षपदके वीर पुत्र

१) अतः मर अर्धतर अन्ना पक्कम दिवाओ । तुम्हारे
पौत्र एव वन्विक्तका दण्ड एनेके बाद ही मैं तुम्हें
पार्श्व ॥ १५० ॥

स कुम्भकणस्य यवो निशम्य
रामः सपुत्रान् विसृज्य धाणान् ।
तैरदृष्टो वज्रसमप्रयोगै

न युग्मे न व्ययते सुरारि ॥ १५१ ॥

कुम्भकर्णका दण्ड वज्र सुनकर भीरुने उसके ऊपर
दुन्दुभ पणाल वृत्तने बा । नरे । वज्रके समान वेवाले
उन वज्रोत्ती गण कट गानेन भी वह देवोही राक्षस न
त क्षुद्र हुआ और न व्ययित ही ॥ १५१ ॥

यै सायकै सालजरा निहृता
वापी हतो धानपुङ्गवश्च ।

ते कुम्भकणस्य तदा क्षीर
यजोपमा न व्यययाम्यवधुः ॥ १५२ ॥

जिन वज्रोने श्रेष्ठ लज्जुल कट गने और धानराज
पाथरा वध हुआ व ही वज्रोपमा वज्र उस समय कुम्भकर्ण
गौरा ग्या न पहुँचा वज्र ॥ १५२ ॥

स धारिधारा इव सायकाम्नान्
पिङ्गागरेण भेदयद्वाधुः ।

जघान रामस्य क्षीरप्रयोग
व्याधियं त मुद्रमुप्रयोगम् ॥ १५३ ॥

देवराज इत्यादि पुत्र कुम्भकर्ण वज्रा धारण समान
भीरुमय वज्रराक्षसे अने छपरने पीने लगा और मरकर
पार्श्वी मुद्राओ कर ओरसे धुना-धुनाकर उनके वज्रोप
नन्ध वज्रो ने न करने लगा ॥ १५३ ॥

ततस्तु रक्ष क्षतनातुलित
विशाम्न नैरमरावन्तनाम् ।

व्याधियं त मुद्रमुप्रयोग
विश्रायामास चमू हरीणाम् ॥ १५४ ॥

तदनन्तर वह राक्षस दण्डोभी विद्या केनाका मरमोन
व नवव और गान नि हृष्ट वज्र वज्र वज्राही मुद्राका
उना मुद्रा वज्रोभी वहीनी वदेहने ग्या ॥ १५४ ॥

वायव्यमागव ततोऽपराक्ष
रामः प्रविशेप निशवपय ।

समुद्र तेन जहार बाहु
स शृङ्गादुन्मुल ननाद् ॥ १५५ ॥

व दण्ड मन्त्र भीरुने वयन नमक दूने अन्न
पा उपन कर उन कुम्भकर्ण वज्रा और उसके हाथ
न निशवरी मुद्राके वज्रो वदे कट वही । दण्ड
कट वज्रो व वज्र मन्त्र अन्नने नीत्तर करने
ग्या ॥ १५५ ॥

स तस्य बाहुर्निर्गिरङ्गकस्य
समुद्रो राघवपाणवृत्तः ।

पपात वस्त्रि हरिरानसैन्ये
अघान ता धानवाहिनी च ॥ १५६ ॥

भीरुनापयीने घाते कयी हु वह बाँह, ज परत
दिलरके समान वन पड़वी थी, मुद्रा वज्र ही वानपयी
केनाने गिरी । उसका नाचे दबकर जिनने ही वानर-सैनिक
अने प्रगोते हाथ घा वेठे ॥ १५६ ॥

ते धानप भग्नहतामरोग
पयन्तमाधिन्य तदा विरणा ।

प्रपीडिताहा इहानु सुघोर
नरेन्द्ररक्षाऽधिपसनिपातम् ॥ १५७ ॥

ज अन्न भग्न होने वा मरनेसे बचे, वे लिनचित हो
जिनारे लकर लड़े हा गये । उनके छपरने वही पीडा हा
रणी थी और व वृत्तवान महाराज भीरुन और राक्षस कुम्भ
कर्णके घेर खानरी देखने लगे ॥ १५७ ॥

स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिष्ठचवाहु
महासिंहचाप इवावलेद्रः ।

उत्पादयामास करेण धूम
ततोऽभिमुद्राव रणे नरेन्द्रम् ॥ १५८ ॥

वा वज्रोने एक बाँह कट वनेन कुम्भकर्ण दिलरनीन
परतक समान पनाव होने लगा । उसने एक ही हाथने एक
वाइका वृत्त उवाइ दिया और उसे लेकर रात्रुमिने महापत्र
भीरुमर घात किया ॥ १५८ ॥

तस्य बाहु सहतालधूम
समुपत पक्षगभोगफलम् ।

पेद्राक्षयुक्तेन जघान रामो
धाणेन जाम्बूनद्विविधितेन ॥ १५९ ॥

व वज्रोने एक धुनपनीन वज्र निशकर उसे
पेद्राक्षने अभिमन्त्रित निश और उसके हाथ सर्वे समान
उही हुद्र राक्षसी दूरी बाँह भी वृक्षरित कट
गिरा ॥ १५९ ॥

स कुम्भकणस्य मुञ्चो निहृत्
पपात भूमौ गिरिसनिभराः ।

विशेषमानो निपयान वृक्षा
श्रीलान्तिशालानरानसदाद्य ॥ १६० ॥

कुम्भकर्णकी वह कटी हुद्र बाँह परतदिलरने समान
धुनपर गिरी और छपरने लगी । उसने कितने ही वृक्ष,
शेठ-शिरों, शिखरों, वनों और राक्षसों भी कुच
कट ॥ १६० ॥

त छिन्नबाहु ममोक्ष्य राम
समापन्त सहस्रा नन्दम् ।

द्वयर्धचन्द्रौ निशितो युधि प्रगृह्य
विच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥१६१॥

उन दोनों भुजाओंक कट जानेपर यह राक्षस सहसा
आर्तनाद करता हुआ श्रीरामपर दृष्ट पड़ा । उसे आक्रमण
करते देख श्रीरामने दो तीक्ष्ण अर्धचन्द्राकार बाण लेकर उनने
द्राघ युद्धस्थलमें उस राक्षसने दोनों पैर भी उड़ा दिये ॥

तौ तस्य पादौ प्रदिशो दिशश्च
गिरेयुग्राश्वेन महार्णव च ।
लङ्का च सेना कपिराक्षसाना
विनाश्यतौ विनिपेतुश्च ॥१६२॥

उधके दोनों पैर दिशा विदिशा, पर्वतकी कन्दर,
महासागर, लङ्कापुरी तथा वानरों और राक्षसोंकी सेनाओंको
भी मलिन्यन्तित करते हुए पृथीपर गिर पड़े ॥ १६२ ॥

निहत्तवाहुरिनिहत्तपादौ
विदार्य ध्वज्य वडवासुताभम् ।
दुद्राध राम सहसाभिगजम्
राहुर्यथा च द्रमिषान्तरिक्षे ॥१६३॥

दोनों बाँहों और पैरोंक कट जानेपर उधके वडवानलके
समान अपने निराल सुपरी फैलाया और जैसे राहु आकाशमें
चन्द्रमाको ग्रस्त होता है, उसी प्रकार वह श्रीरामको ग्रस्तनेके
लिये भयानक गम्भीर करता हुआ सहसा उनने ऊपर दृष्ट पड़ा ॥

अपरपद् तस्य सुख शिताग्रे
राम शरैर्हमपिनिहपुष्टौ ।
सम्पूर्णजक्रो न शशाक वक्रतु
सुकृज हृच्छ्रेण सुमूर्च्छ चापि ॥१६४॥

तन श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णजटित पलवाले अपने तीक्ष्ण
बाणोंसे उसका मुँह मर दिया । मुँह मर जानेपर वह बोलनेमें
भी असमर्थ हो गया और बड़ी कठिनाइसे आर्तनाद करने
मूर्छित हो गया ॥ १६४ ॥

अयाददे सूर्यमरीचिकल्प
स प्रसङ्गान्तरकालकल्पम् ।
अरिष्टमैन्द्र निशित सुपुष्टं
राम शर मास्तनुत्युपेगम् ॥१६५॥

त वज्रजाम्बूनदचारुपुष्टं
मदीतस्यज्जन्मप्रभाशम् ।
महेन्द्रप्रज्वालितुल्यवेग
राम प्रविशेष निद्राशरण्य ॥१६६॥

इसक बाद मगान् श्रीरामने मल्ल तथा विनायकरी
कालन समान मयसर पर तीरा बाण, जो खसरी क्रिणोंने
समान उगीरे इन्द्राग्ने अग्निमन्त्रिक, रामनायक, तेजस्वी
रूप और प्रवर्जित अग्निर समान देदीप्यमान, हीरे और

सुवर्णसे निर्मणित सुन्दर पल्लवे पुष्प, वायु तथा इन्द्र
और अशानिके समान वेगशाली था, हाथमें लिया और
निशाचरको छप्प करके छोड़ दिया ॥ १६५ १६६ ॥

स सायको राघववाहुचोदितो
दिश स्वभासा दश सम्भकाशायम् ।
विधूमवैभवानरभीमदशानो
जगाम राजाशानिभीमविज्रम् ॥१६७॥

श्रीरघुनायकीनी भुजाआसे प्रेरित होकर यह बाण अपनी
प्रभासे दशों दिशाओंकी प्रकाशित करता हुआ इन्द्रने वज्रकी
भाँति मयसर वेगसे चला । वह धूमरहित अग्निने समान
भयानक दिखायी देता था ॥ १६७ ॥

स तमहापर्वतकूटसन्निभ
सुदृच्छदृष्ट चलचारुगुण्डलम् ।
चकत रक्षोऽधिपते शिरस्तदा
ययैव वृणस्य पुरा पुरदर ॥१६८॥

जैसे पूर्णकालमें देवराज इन्द्रने वृणासुरका मलक क
झाला था, उसी प्रकार उस बाणने राक्षसराज सुम्भकर्ण
मुक्त तथा हिलते हुए मनोहर गुण्डलसे अलङ्कृत मलकको
बहते अलगा कर दिया ॥ १६८ ॥

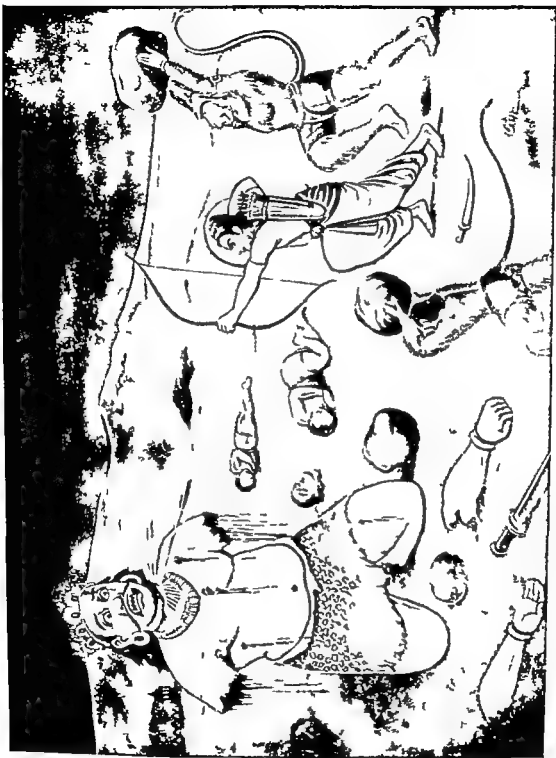
कुम्भकणशियो भाति कुण्डलालङ्कृत महत् ।
आवृत्त्येऽभ्युदिते राघौ मयस्य इव चन्द्रमा ॥१६९॥
कुम्भकणका यह कुण्डलसे अलङ्कृत विशाल मलक
प्रात काल सूर्योदय होनेपर आकाशके मध्यमें निरजमान
व चन्द्रमाकी भाँति निखले प्रतीत होता था ॥ १६९ ॥

तद् रामबाणाभिहत पपात
रक्ष शिर पर्वतसन्निकारात् ।
यमज्ज चयागृहगोपुराणि
प्रकारमुच्च तमपातयच्च ॥१७०॥

श्रीरामन बाणोंसे कटा हुआ राक्षसन वह पर्वतनार
मलक लङ्काम आ गया । उतने अपने बचनेसे सङ्कटमें आत
पावने कितने ही मकानों, दरवाजों और ऊँच परकटोंको भी
परधायी कर दिया ॥ १७० ॥

तथातिकाय हिममत् प्रकाश
रक्षस्तदा तोयनिधौ पपात ।
ग्राहान् परान् भीतरान् भुजगमात्र
ममद भूमि च तत्र निवसत ॥१७१॥

इसी प्रकार उस राक्षसना निवाल घट भी, जो दिमाग्यने
रामान जान पड़ता था, तत्काल खड्गने जगमें गिर पड़ा और
वड़े-बड़े प्रादों, मल्लों तथा बाँझोंने पीसा हुआ पृथ्वीने भीतर
छमा गया ॥ १७१ ॥





तस्मिन् हते ब्राह्मणदेवरात्रौ
महानले सयति कुम्भकर्णे ।
चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे
हपाच्च देवास्तुमुल प्रणेतु ॥१७२॥

ब्राह्मणों और देवरात्रों में गुरु महावीर कुम्भकर्ण ने
युद्ध में मारे जाने पर दृष्टी डालने लगे, परंतु दिलने लगे और
सम्पूर्ण देवता हर्षित भरकर तुमुल नाद करने लगे ॥ १७२ ॥

ततस्तु देवर्षिमहपिपद्यगा
सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यका ।
सयज्ञगर्भरगणा नभोगाणा
प्रहर्षिता रामपरावमेण ॥१७३॥

उस समय आकाश में लड़े हुए देवर्षि, महर्षि, सर्प,
देवता, भूतगण, गरुड़, गुह्यक, यक्ष और गर्भरगण श्रीराम
का पराक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७३ ॥

ततस्तु ते तस्य घघेन भूरिणा
मनस्थितो नैऋतराजग्राधया ।
विनेदुरुच्चैर्यथिता रघूत्तम
हरिं समीक्ष्यैव यथा मतगजा ॥१७४॥

कुम्भकर्ण ने महान् घघसे राक्षसराज रावण ने मनस्वी
पशुओं का बड़ा दुल हुआ । वे खड्गुलालिख श्रीराम की
और देखकर उसी तरह उच्च स्वरसे गने करने लगे, जैसे
सिंह पर दृष्टि पड़ते ही मतगजे हाथी कीलार कर उठते हैं ॥

हृत्पापैर् श्रीमद्रामायणे वाचमीक्ष्ये आदिकाण्ये युद्धकाण्डे सप्तषष्ठितम सग ॥ ६७ ॥

इस प्रकार धौतलमीकिलिमित आरामायण आदिकाण्य युद्धकाण्ड में सप्तसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टाष्टितम सर्ग

कुम्भकर्णके वधका समाचार सुनकर रावणका विलाप

कुम्भकर्ण हत हृष्टा राघवेण महात्मना ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय राणाय न्यवेद्यन् ॥ १ ॥

महामा श्रीरामचन्द्रजी ने द्वारा कुम्भकर्णता माय गया
देस राक्षसने अपने राज रावणसे जानर कहा— ॥ १ ॥

राजन् स कालसमाश सयुक्तः कालकमणा ।
विद्राव्य वानरौ सेना भक्षयित्वा च वानरान् ॥ २ ॥

महाराज । कालके समान मयंकर पराक्रमी कुम्भकर्ण
वानरसेना का भगार तथा बहुत-से वानरों को अपना आहार
बनाकर स्वयं भी कालके गालमें चला गया ॥ २ ॥

प्रतपित्वा मुहूर्ते तु प्रशान्तो रामतेजसा ।
कायेनाधमरिष्टेन समुद्र भीमवशानम् ॥ ३ ॥

स देवलोकस्य तमो निहत्य
सूर्यो यथा राहुमुखाद् गिमुञ्च ।
तथा व्यभासीदरिसैवमधये
निहत्य रामो मुधि कुम्भकर्णम् ॥१७५॥

देवसमूहको दुष्ट दुष्ट देनेवाले कुम्भकर्णका युद्ध में वध करके
वानरसेनाके बीचमें रखे हुए भगवान् श्रीराम अवधारणा
नाथ करके राहुके मुखसे छूटे हुए सूर्यदेवने समान प्रकाशित
हो रहे थे ॥ १७५ ॥

ग्रहपमीयुर्हयश्च वानरा
प्रमुदपक्षप्रतिमैरिवान्ते ।
अपूजयन् राघवमिष्टभागिन
हते रिवौ भीमयले नृपात्मजम् ॥१७६॥

मथानक बलशाली शत्रुने मारे जानेसे बहुतस्यक वानरों
को बड़ी प्रसन्नता हुई । उनके मुख विरहित कमलरी मॉनि
होहासते खिल उठे तथा उन्होंने सकलमनोरथ हुए
राजकुमार भगवान् श्रीरामकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥१७६॥

स कुम्भकर्णं सुरसैन्यमर्दन
महत्सु युद्धेषु कदावनातितम् ।
ननन्द हत्वा भरताम्रजो रणे
महासुर वृषमिनामराधिप ॥१७७॥

जो वड़े-वड़े युद्धों में कमी पराजित नहीं हुआ था तथा
देवताओंकी सेनाको भी कुचल डालनेवाला था, उस महान् राक्षस
कुम्भकर्णको रणभूमिमें मारकर खुनाथजीका वैसी ही प्रसन्नता
हुई जैसी वृषासुरका वध करके देवराज इंद्रको हुई थी ॥

हृत्पापैर् श्रीमद्रामायणे वाचमीक्ष्ये आदिकाण्ये युद्धकाण्डे सप्तषष्ठितम सग ॥ ६७ ॥

इस प्रकार धौतलमीकिलिमित आरामायण आदिकाण्य युद्धकाण्ड में सप्तसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

निहतत्तासाकर्णेन निहारद्रुधिरेण च ।
रद्व्या द्वार शरीरेण लङ्काया परतोपमः ॥ ४ ॥
कुम्भकर्णस्तत्र भ्राता काकुत्स्थशरपीडित ।
अगण्डमुक्तो विमुक्तो दावदग्ध इव द्रुमः ॥ ५ ॥

वे दो घड़ीतक अपने प्रतापने तपकर अन्तमें श्रीरामक
तेजने शान्त हो गये । उनका आधा शरीर (घड़) भगवान्
दिल्लीवादी देनेवाले समुद्रमें घुस गया और आधा शरीर (मनक)
नाक कान कट जानेसे खून बगता हुआ लङ्का के द्वारपर पड़ा
है । उस शरीरने द्वारा आपक भाद परनासार कुम्भकर्ण
लङ्का द्वार राक्षस पड़ हैं । वे श्रीराम राणोंमें पीड़ित हो
हाथ, पैर और मस्तकमें हीन नग घड़न घण्टे रूपमें परिणत
हो दागलले दग्ध हुए वृक्षरी मॉनि नष्ट हो गये ॥ ५ ॥

श्रुत्वा त्रिनिहत सख्ये कुम्भकर्णं महानलम् ।

रावण शोकस्ततो मुमोह च पपात च ॥ ६ ॥

‘महानली कुम्भकर्णं युद्धस्थलमें मारा गया’ यह सुनकर रावण शोकसे सतत एव मूर्छित हो गया और तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ६ ॥

पितृव्य निहत श्रुत्वा देवान्तर्धनरान्तकौ ।

त्रिशिराश्चातिकायश्च रुद्रदुःशोम्पीडिता ॥ ७ ॥

अपने चाचाके निधनका समाचार सुनकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिर और अतिकाय दुःखसे पीड़ित हो पूर-पूर कर रने लगे ॥ ७ ॥

भ्रातर निहत श्रुत्वा रामेणाङ्घ्रिपृक्मणा ।

महोदरमहापार्श्वी शोकाक्रान्ती यभूवतु ॥ ८ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भीष्मके द्वारा भाई कुम्भकर्ण मारे गये; यह सुनकर उसके श्वेतले भाई महोदर और महापार्श्वी शोकसे व्याकुल हो गये ॥ ८ ॥

तत कृच्छ्राद् समासाद्य सज्ञा राक्षसपुङ्गव ।

कुम्भकर्णनधाद् दीनो विललापातुर्लेद्रिय ॥ ९ ॥

तदनन्तर षडे षष्टे होशमें आनेपर राक्षसराज रावण कुम्भकर्णके वधसे दुखी हो विलाप करने लगा । उसकी सारी इन्द्रियों शोकसे व्याकुल हो उठी थीं ॥ ९ ॥

हा धीर त्रिपुदर्पण कुम्भकर्णं महानल ।

एव मा विहाय वै दैवाद् यातोऽसि यमसादनम् ॥ १० ॥

(यह रो-रोकर कहने लगा—) ‘हा वीर ! हा महाकली कुम्भकर्ण ! तুম शत्रुआके दर्पका दहन करनेवाले थे किंतु दुर्मान्यवन् तुझे असहाय छोड़कर यमलोकको चल दिये ॥

मम शल्यमनुदधृत्य बाधयाना महानल ।

शत्रुसैन्य प्रताप्यैव ह मा सत्यज्य गच्छसि ॥ ११ ॥

‘महाकली वीर ! तूम मेरा तथा इन भाई-बन्धुओंका कष्टक दूर किये बिना शत्रुसेनाको उन्नात करने मुझे छोड़ अनेके कहाँ चले आ रहे हो ! ॥ ११ ॥

इदानीं खल्वह नासि यस्य मे पतितो भुज ।

दक्षिणोऽय समाश्रित्य न विमोहि मुखासुपात् ॥ १२ ॥

‘इस समय मैं अन्ध ही नहीं बनकर हूँ क्योंकि मेरी दाहिनी बाँह कुम्भकर्ण घायली हो गया । त्रिशिरा मरोषा करके मैं देवता और अमर निरीक्षित नहीं करता था ॥

कथमेवविधो धीरो देवदानवद्वपहा ।

कालाग्निप्रतिमो ह्यद्य राघवेण रणे हत ॥ १३ ॥

‘देवताओं और दानवाका दर्प भूर करनेवाला ऐश्वर्य धीर जो कालाग्नि समान प्रतीत होता था, आज रणक्षेत्रमें रामने हाथसे कैम मारा गया ॥ १३ ॥

यस्य ते वज्रनिष्पेयो न क्षुब्ध द्यमन सदा ।

स कथं रामयानार्तं प्रसुतोऽसि महीतले ॥ १४ ॥

‘भाई ! तुम्हें तो वज्रका प्रहार भी नहीं पड़ नहीं पहुँचा सकता था । यदि तूम आज रामके वार्तासे पीड़ित हो भूल-पर कैसे सो रहे हो ! ॥ १४ ॥

एते देवगणा साधमृषिभिर्गमने स्थिता ।

निहत त्वा रणे दृष्ट्वा निन्दन्ति प्रहृषिता ॥ १५ ॥

‘आज समराङ्गणमें तुम्हें मारा गया देख आत्मशर्म लगे हुए ये ऋषियोंसहित देवता हृन्नाद कर रहे हैं ॥ १५ ॥

सुवमचैव सहस्र लक्षलक्षाः पृथगमा ।

आरोक्ष्यन्तीह दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सप्तश ॥ १६ ॥

‘निश्चय ही अब अन्धकार काहर इससे भरे हुए बानर आज ही लङ्काके समस्त दुर्गोंमें द्वारोंपर चढ़ जायेंगे ॥ १६ ॥

राज्येन नास्ति मे कार्यं किंकरिष्यामि सीतया ।

कुम्भकर्णविहीनरय जीरिते नास्ति मे मति ॥ १७ ॥

‘अब मुझे राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है । सीतासे लेकर भी मैं क्या करूँगा ? कुम्भकर्णके बिना सीतेका मेरा मन नहीं है ॥ १७ ॥

यद्यह भ्रातृहस्तात् न ह्मि सुधि राघवम् ।

ननु मे मरण ध्येयो न चेद् व्यर्थजीरितम् ॥ १८ ॥

‘यदि मैं युद्धस्थलमें अपने भाईका पक्ष करनेवाले रामको नहीं मार सकता तो मेरा मर जाना ही अच्छा है । इस निरर्थक जीवनको सुखित रखना कदापि अच्छा नहीं है ॥

अथैव त गमिष्यामि देश यत्रानुजो मम ।

नहि भ्रातृन् समुत्सृज्य क्षण जीनितुमुत्सहे ॥ १९ ॥

‘मैं आज ही उस देशमें जाऊँगा, जहाँ मेरा छोटा भाई कुम्भकर्ण गया है । मैं अपने भाईको छोड़कर क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ १९ ॥

देवा हि मा हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूषापकारिणम् ।

कथमिन्द्र जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि ॥ २० ॥

‘मैंने पहले देवताओंका अपकार किया था । अब वे मुझे देखकर हँसेंगे । हा कुम्भकर्ण ! तुम्हारे मारे जानेपर अब मैं इन्द्रको कैसे जीत सकूँगा ? ॥ २० ॥

तद्विद् मामनुयात निर्भीषणवच शुभम् ।

यदज्ञानामया तस्य न गृहीत महात्मन ॥ २१ ॥

‘मैंने महात्मा निर्भीषणकी कही हुई बातें उक्त बातोंसे अज्ञाननग स्वीकार नहीं किया था, वे मेरे ऊपर आज प्रत्यक्ष रूपसे पड़ित हो रही हैं ॥ २१ ॥

निर्भीषणवचस्तान् कुम्भकर्णप्रहस्तयो ।

विनाजोऽयं समानाद्यो मा नीत्यसि हावण ॥ २२ ॥

‘जग्मे कुम्भकण और प्रहम्का यह दारुण विपत्ति
उत्पन्न हुआ है, तभीसे विभीषणकी बात याद आकर मुझे
लजित कर रही है ॥ २० ॥

तस्याय कर्मण प्राप्ते विपाफो मम शोफः ।
यमया धामिक धीमान् स निरस्तो विभीषणः ॥ २३ ॥

‘मैंने धर्मपरायण धीमान् विभीषणना जो घरसे
निकाल दिया था, उसी कमवा यह पाकदायक
परिणाम अब मुझे भागना पड़ रहा है’ ॥ २३ ॥

इत्यादि धीमद्रामायणे वाल्मीक्ये आदिकथ्य युद्धकाण्डेऽष्टादशितम सर्ग ॥ ६८ ॥

इम प्रकार आत्मनिर्मित आश्रमात्पण जटिकार्यक युद्धकाण्डे अष्टसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितम सर्ग

राणके पुत्रों और भाइयोंका युद्धके लिये जाना और नरातकका अङ्गदक द्वारा वध

एव निलपमानस्य राणस्य दुरामन ।
श्रुत्वा शोफाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमप्रवीत् ॥ १ ॥

दुरामा राणा जन शास्त्रसे पीड़ित हो ‘स प्रकार निलाप
करने लगा, तब त्रिशिरने कहा— ॥ १ ॥

एवमेव महानीयौ हतो नस्तातमप्यम ।
न तु सत्पुरुषा राणन् निलपन्ति यथा भवान् ॥ २ ॥

‘भवान् ! ‘समे सदेह नही कि हमारे मरने चाचा, जो
इत समय युद्धमें मारे गए हैं, ऐसे ही महान् पराक्रमी थे
परन्तु आप जिस प्रकार राने-कल्पते हैं, उस तरह श्रेष्ठ पुरुष
किसी-न लिप निलाप नहीं करते हैं ॥ २ ॥

नून निभुवनम्यापि पयातस्त्यमनि प्रभो ।
स क्स्मात् प्रादृत इव शोचम्यामानमीहदाम् ॥ ३ ॥

‘प्रभो ! निक्षय आप भरना ही तानों लाइंसे थी लाहा
हेनमें समथ है फिर इन तरह साधारण पुष्पकी भौति क्यों
अपने आपमें गानमें डाल रहे हैं ? ॥ ३ ॥

प्रहृष्टास्ति ते शक्तिः फणः सायको धनुः ।
सहस्रजगस्युक्ता रथा मेघसमस्तन ॥ ४ ॥

‘आपका पास ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति, कवच, धनुष
तथा बाण हैं साथ ही मधुगन्तार समान घाद करनेवाला
रथ भी है, जिसमें एक हजार गन्धर्व जन जाते हैं ॥ ४ ॥

स्वयामरुद्रि शस्त्रेण विदास्ता द्युदानम् ।
स सत्रायुधमप्यग्रा राघव पास्तुमहसि ॥ ५ ॥

‘आपने एक ही गान देखाओं और गानोंमें अनेक
बार पड़ा है कि अब सत्र प्रसारक अथ गन्धर्वोंमें मुमंजन
होनेपर आप रामका भी दण्ड दे सकत हैं ॥ ५ ॥

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा
रूपमतीथ विलप्य कुम्भकणम् ।
न्यपतदपि दृष्टाननो भृशार्त
स्त्वामनुजमिन्द्ररिपु हन विदित्वा ॥ २४ ॥

इस प्रकार भौति भौतिने दीनतापूर्वक अत्यन्त निलाप
करक व्याकुलचित्त हुआ दण्डमुख राणा अपने छोटे भाई
‘अनुज कुम्भकण’ वधका स्मरण करक बहुत ही व्यथित
पुनः पृथीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥

काम विष्ट महाराज निर्गमिष्याम्यह रणे ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून् गरुड पन्नगानिव ॥ ६ ॥

‘जयवा महाराज ! आम्नी इच्छा हो तो यही रहें । मैं
स्वय युद्धके लिये जाऊंगा और जैसे गरुड सर्पोंका छहार करते
हैं, उसी तरह मैं आपका शत्रुओंसे बड़से उखाड़ फेंकूंगा ॥
शत्रुओंसे देवराजने नरको विष्णुना यथा ।

तथाच दायिता रामो मया युधि निपातित ॥ ७ ॥

‘जैसे इन्द्रने शत्रुपुरुषों और भगवान् विष्णुने नरका
सुरक्ष मार गिराया था, उसी प्रकार युद्धक्षलमें आज मेरे
द्वारा मारे जाकर राम सत्राक लिये सो जायेंगे’ ॥ ७ ॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्य राणो राक्षसाधिप ।
पुनरातमिनामान मन्यते कालचोदित ॥ ८ ॥

त्रिशिरानी यह बात सुनकर राक्षसराज राणका इतना
स्त्राप हुआ कि वह अपना नया जन्म हुआ-सा मानने लगा ।
कालमें प्रेरित होकर ही उसकी ऐसी बुद्धि हो गयी ॥ ८ ॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्य देवान्तराणामन्तरौ ।
अतिरायध तेजस्वी उभूयुद्धहरिता ॥ ९ ॥

त्रिशिरास उपसुक्त कथन सुनकर देवान्तर नरान्तर

‘यहा जिस नरकामुखा नाम आता है वह त्रिशिरसित
नाक गनवके गारा निपुणके गर्भमें उत्पन्न हुए शत्रुपि मा-
मान पुत्रमें एक था । उनका नाम अन्तरा इम प्रकार है—वाग्नि
ननुचि इत्यत्र समर अन्तरा नरक आर शत्रुनाम । मगवान्
आरुण्य नरके जिम भूमिपुत्र नरकामुखा वध किया था वह
यहा अन्तरा नरकामुख भिन था । त्रिशिरा और रावक मन्व
में ल जल्म जन हा गयी हुआ था ।

और तेजस्वी अनिराय—ये तीनों युद्ध के लिये उत्साहित हो गये ॥ ९ ॥

ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ध्वतर्षभा ।
रावणस्य सुता धीरा शशतुल्यपराक्रमा ॥ १० ॥

मैं युद्ध के लिये जाऊँगा, मैं जाऊँगा ऐसा कहते और गर्जते हुए ये तीनों श्रेष्ठ निशाचर युद्ध के लिये तैयार हो गये । रावण के वे वीर पुत्र इन्द्र के समान पराक्रमी थे ॥ १० ॥

अन्तरिक्षगता सर्वे सर्वे मायाविशारदा ।
सर्वे त्रिदशार्पणा सर्वे समरदुर्मदा ॥ ११ ॥

वे सब के सब आकाश में विचरण करने लगे, मायाविशारद, रणदुर्मद तथा देवताओं का भी दण्ड करने वाले थे ॥ ११ ॥

सर्वे सुयत्नसम्पन्ना सर्वे निस्तीर्णकीर्तय ।
सर्वे समत्मासाद्य न श्रूयन्त स्म निर्जिता ॥ १२ ॥

देवैरपि सगर्भैः सकिन्नरमहोरगैः ।
सर्वेऽल्लविदुषो वीरा सर्वे युद्धविशारदा ।

सर्वे प्रवरभिन्नाः सर्वे लब्धयरास्तथा ॥ १३ ॥

वे सभी उत्तम बल से सम्पन्न थे । उन सबकी कीर्ति तीनों लोकों में फैली हुई थी और समरभूमि में आने पर गन्धर्वों, किन्नरों तथा बड़े-बड़े नागाँवहित देवताओं से भी कभी उन सबकी पराजय नहीं हुनी गयी थी । वे सभी अल्लवेत्ता, सभी वीर और सभी युद्धकी कला में निपुण थे । उन सबको शत्रुओं और शास्त्रों का उत्तम ज्ञान प्राप्त था और सबने तपस्या के द्वारा वरदान प्राप्त किया था ॥ १२ १३ ॥

स तैस्तथा भास्करतुल्यवर्चसैः
सुतैर्वृत शत्रुबलश्रियाद्वै ।

रराज राजा मघवान् यथामरै
वृत्तो महादानयदपनाशनैः ॥ १४ ॥

सबका समान तेजस्वी तथा शत्रुओं की सेना और सम्पत्ति को रौंद डालने वाला उन पुत्रों से घिरा हुआ राक्षसों का राजा रावण बड़े-बड़े दानों का दण्ड चूष करने लगे देवताओं से मिले हुए इन्द्रकी मूर्ति गोमा पा रहा था ॥ १४ ॥

स पुत्रान् सम्परिप्लव्य मृगयित्वा ऽभ्युपगैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास धैर्येण ॥ १५ ॥

उन्होंने अपने पुत्रों को दृढ़बल से लगाकर नाना प्रकार के आभूषणों में निभूषित किया और उत्तम आशीर्वाद देकर रणभूमि में भेज दिया ॥ १५ ॥

युद्धो मत्त च मत्त च आनतौ चापि रावण ।
रक्षणायै कुमारानां प्रेषयामास सयुगे ॥ १६ ॥

रावण ने अपने दोनों भाई युद्धो मत्त (महापुत्र) और मत्त (महानर) का भी युद्ध में कुमारों की रक्षा के लिये भेजा ॥ १६ ॥

तेऽभिवाद्य महात्मान रावण शोकरात्रणम् ।
हृत्वा प्रदग्निष चैव महाकाया प्रतस्थिरे ॥ १७ ॥

वे सभी महाशय राक्षस समस्त लोकों को डलने वाले महामना राजाओं का प्रणाम और उसरी परिक्रमा करके युद्ध के लिये प्रस्थित हुए ॥ १७ ॥

सर्वोपधीभिर्गघैश्च समालम्ब्य महाशला ।
निर्जमुर्नैः श्रुतधेष्टा पडते युद्धकाक्षिण ॥ १८ ॥

त्रिशिराश्चातिनायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
महोदरमहापाश्वौ निर्जमु कालघोषिता ॥ १९ ॥

सब प्रकारकी ओरधियों तथा गन्धों का स्पर्श करके युद्धकी अभिलाषा रखने वाले त्रिशिरा, अतिपाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापाश्व—ये सब महाशली श्रेष्ठ निशाचर बाल से प्रेरित हो युद्ध के लिये पुरी से बाहर निकल ॥ १८ १९ ॥

तत सुदर्शन नाग नीलजीमूतसन्निभम् ।
ऐरावतकुले जातमारुरोह महाद्वर ॥ २० ॥

उस समय महोदर ऐरावत के कुल में उत्पन्न हुए काल मेघ के समान रंगाला 'सुदर्शन' नामक हाथी पर सवार हुआ ॥

सवायुधसमायुक्तस्नूणीभिश्चाप्यल्लुह्य ।
रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूधनि ॥ २१ ॥

समस्त आयुधों से सम्पन्न और तूणीरों से अलङ्कृत महोदर उस हाथी की पीठ पर बैठकर अन्नाचल के शिखर पर विराजमान सूर्यदेव के समान गोमा पा रहा था ॥ २१ ॥

हयोत्तमसमायुक्त सवायुधसमाकुलम् ।
आरुरोह रथधेष्ठ त्रिशिरा रावणामज ॥ २२ ॥

राजकुमार त्रिशिर एक उत्तम रथ पर आरुढ़ हुआ जिसमें सब प्रकार के अस्त्र शस्त्र रक्ते गये थे और उत्तम घोड़े श्रुते हुए थे ॥ २२ ॥

त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुधर ।
सत्रिदुल्ल सज्वाल सेन्द्रचाप इधाम्बुद् ॥ २३ ॥

उस रथ में बैठकर धनुष धारण किये निरारा त्रिदुल्ल, उल्ला, ज्वाला और इन्द्रधनुष से युक्त मेघ के समान शोभा पाते लगे ॥ २३ ॥

त्रिभिः किरादेक्षितिरा शुभे स रथोत्तमे ।
हिमगानिध शैलेन्द्रत्रिभिः फाञ्चनपरत ॥ २४ ॥

उस उत्तम रथ में सवार हा तीन निरीरों से युक्त त्रिशिरा तीन सुगन्धमय शिखरों से युक्त शिरिराज हिमालय के समान शोभा पा रहा था ॥ २४ ॥

अतिकायोऽतितेजसी रावणेन्द्रसुतस्तदा ।
आरुरोह रथधेष्ठ श्रेष्ठ मयधनुष्मताम् ॥ २५ ॥

धनुषारिणो भ्रेष्ठ या । यह भी उस समय एक उत्तम रथपर
आरु हुआ ॥ २५ ॥

सुचक्राश्च सुसयुक् स्वयुक् सुकूरम् ।
तूणीमणासन्नैति प्रासासिपरिधाकुलम् ॥ २६ ॥

उस रथने पहिये और धुरे बहुत सुन्दर थे । उसमें उत्तम
पोड़े जुते हुए थे तथा उसका अनुकरण और कूर भी सुदृढ़
थे । तूणीर, बाण और धनुषके कारण वह रथ उदीप्त हो
रहा था । प्रास, सङ्ग और परिधौसे वह भर हुआ था ॥ २६ ॥

स पाञ्चनविचित्रेण किरीटेन निराजता ।
भूपणैश्च दभौ मेघं प्रभाभिग्न्य भासयन् ॥ २७ ॥

वह सुवर्णनिर्मित विचित्र एव दीप्तिगानी किरीट तथा
अन्य आभूषणोंसे विभूषित हो अपनी प्रभासे प्रगङ्गा निहार
करते हुए मेघपरतन समान सुगोभित होता था ॥ २७ ॥

स रराज स्ये तस्मिन् राजसुनुमहायल ।
घृतो नैर्घृतशार्दूलैर्वज्रपाणिरियमै ॥ २८ ॥

उस रथपर भेष्ठ निशाचरोंसे भिरकर बैठा हुआ वह
महाबली राक्षसपुत्रकुमार देवताओंसे भिरे हुए वज्रपाणि
इन्द्रके समान शोभा पाता था ॥ २८ ॥

हयमुच्चैश्च प्रप्य श्वेत कनकभूपणम् ।
मनोजय महाकायमादरोह नरान्तक ॥ २९ ॥

नपन्तक उच्चैः भवाके समान 'वेत वणवाले एक सुगम
भूषित विशालकाय और मनके समान वेगवाली अथपर
आरु हुआ ॥ २९ ॥

शुहीन्या प्रासमुल्फाभ निरराज नरातक ।
शक्तिमादाय तेजस्वी शुह शक्तिगतो यथा ॥ ३० ॥

उल्फाके समान दीप्तिमान् प्रास हाथमें लेकर तेजस्वी
नपन्तक शक्ति लिये मोरपर बैठे हुए तेज पुञ्जसे सम्पन्न कुमार
काविकेयने समान सुगोभित हो रहा था ॥ ३० ॥

देवान्तक समादाय परिध हेमभूषणम् ।
परिशुष्टा गिरिं दोर्म्यां धपुर्निष्णोर्विहम्भयन् ॥ ३१ ॥

देवान्तक स्वर्णभूषित परिध लेकर समुद्रमग्नने समय
दोनों हाथोंसे मन्दराचल उठाये हुए मगरान् विष्णुक स्वरूप
का अनुकरण-रु कर रहा था ॥ ३१ ॥

महापार्थो महातेजा गदामादाय वीरवान् ।
निरराज गदापाणि शुभेर हव सयुगे ॥ ३२ ॥

महादेवजी और पराक्रमी महापार्थ हाथमें गदा लेकर

१ रथके धुरेपर इन्द्रके आचाररूपसे स्थापित चक्रविधायको
अनुकरण करते हैं । २ इन्द्र वन काष्ठको करते हैं जिसपर जुआ
रखा जाय है । गदाके इरलीक भी प्राचीनयुगमें इन्द्र कहा
जाता था ।

युद्धस्थलमें गदाधारी कुचेरने समान शोभा पाने लगा ॥ ३२ ॥
ते प्रतस्युमहात्मानोऽमरात्यु सुरु इव ।
तान गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चामुदनि सन्ने ॥ ३३ ॥
अनूयेतुर्महात्मानो राक्षसा प्ररथयुधा ।

अमरावतीपुरीसे निरुहनेवाले देवताओंके समान वे सभी
महाकाय निशाचर तुरङ्गपुरीसे चले । उनके पीछे श्रेष्ठ आयुध
धारण क्रिये विशालकाय राक्षस हाथी, घोड़ों तथा मेघनी
गजनाके समान धनुर्युद्ध पैदा करनेवाले रथोंपर सवार हो
युद्धके लिये निकले ॥ ३३ ॥

ते निरेजुमहात्मान कुमार सूर्यंर्यस ॥ ३४ ॥
किरीटिन भ्रिया जुष्टा प्रहा दीप्ता हवाम्यरे ।

वे सूर्यमुख्य तेजस्वी, महामनस्वी राक्षसपुत्रकुमार मल्लक
पर निरीच धारण करके उत्तम शोभा-कल्पिते सेजित हो
आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ग्रहोंके समान सुगोभित हो रह
थे ॥ ३४ ॥

प्रगृहीता वभौ तेया शस्त्राणामावलि निता ॥ ३५ ॥
शरदक्षप्रतीकाशा हसांलिरिवाम्यरे ।

उनके हाथ धारण की हुई अन्न राक्षोघ्नी 'वेत पदक्ति
आकाशमें शरदक्षयुक्तके बादलोंकी भाँति उज्ज्वल कल्पिते युक्त
हंसोंकी श्रेणीके समान शोभा पा रही थी ॥ ३५ ॥

मरण वापि निश्चित्य शस्त्राणा वा पराजयम् ॥ ३६ ॥
इति हत्वा मर्ति धीरा सज्जन्तु सयुगार्थिन ।

आज या तो हम शत्रुओंको पराजय कर देंगे, या स्वयं
ही मृत्युवी रोदमें सारके लिये जो जायेंगे—देखा निश्चय करके
वे धीर राक्षस युद्धके लिये आगे बढ़े ॥ ३६ ॥

जगजुश्च प्रणेदुश्च विश्विपुञ्चापि सायकान् ॥ ३७ ॥
जगुहुश्च महात्मानो नयान्तो युद्धदुमदा ।

वे युद्धदुर्मद महामनस्वी निशाचर गजते, सिंहादर करते,
बाण हाथमें लेते और उन्हें शत्रुओंपर छोड़ देते थे ॥ ३७ ॥
श्वेडितास्फोटिताना वै सचचालेय मेदिनी ॥ ३८ ॥
रक्षसा सिंहनादैश्च स्फोटितमिवाम्यरम् ।

उन राक्षसोंने गजते, ताल ठोंकने और सिंहादर करनेसे
धृष्टी कल्पित-सी होने लगी और आनाग करने-ला लगा ॥ ३८ ॥
तेऽभिनिष्पस्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महायला ॥ ३९ ॥
दहजानरानीक समुद्यतशिलातनयम् ।

उन महाबली राक्षसशिरोमणि वीरोंने प्रकटनययूद्ध नगर
की सीमासे बाहर निकलकर देखा, धानपैरी मना परतधिपर
और यह-यह शृङ्ग उठाये युद्ध लियेतेवार पड़ी है ॥ ३९ ॥

हृत्योऽपि महात्मानो दृष्ट्वा राक्षसं पलम् ॥ ४० ॥
हस्त्यभ्यरथसङ्गाध सिद्धिणीदाननादितम् ।
नीलजीमूतसफादा समुद्यतमहायुधम् ॥ ४१ ॥

महामना वानरोंने भी राक्षसेनापर दृष्टिपात किया । वह
शायी, घोड़े और रायोंसे भरी थी, सैकड़ों हज्जों घुंघुसबोंकी
वनधनसे निनादित थी, काले मेघोंकी घन-बैसी दिवाली देती
थी और हाथोंमें बड़े-बड़े आयुध लिये हुए था ॥ ४० ४१ ॥

दीप्तानलरविप्रद्वैतैर्नृत्तैः सवतो घृतम् ।
तद् दृष्ट्वा यत्नमायात लब्धलब्ध्वा प्रयुक्ता ॥ ४२ ॥
समुद्यतमहाशीला सम्प्रणतुमुहुर्मुहुः ।
अमृष्यमाणा रक्षासि प्रतिनन्दन्त वानरा ॥ ४३ ॥

प्र-रज्जित अग्नि और सूर्यसे समान तेजस्वी राक्षसोंने उठे
छब आरसे घर रखा था । निशाचरोंकी उस सेनाको आती
देख वानर प्रहार करनेका व्यवहार पाकर महान् परतशिखर
उठाये बार-बार गजना करने लगे । वे राक्षसोंका सिंहनाद सहन
न करनेसे कारण बदलेमें जोर-आरसे दहाड़ने लगे थे ॥ ४४ ४५ ॥

तत समुत्पृथग् निराश्रय
रक्षोगणा वानरयूयपानाम् ।
अनृष्यमाणा परहर्षमुग्र

महायत्ना भीमानर प्रणेतु ॥ ४६ ॥

वानरयूयपतियोंका वह उच्च स्वरसे किया हुआ गर्जन
तर्जन झुनकर मयकर एवं महान् बलसे सम्पन्न राक्षसगण
शत्रुओंका हार सहन न कर सके अतः स्वयं भी अत्यन्त
भीषण सिंहनाद करने लगे ॥ ४४ ॥

त राक्षसयत्नं घोरं प्रविश्य हरियूयया ।
विचेरुद्यतैः शैलेर्नगा शिखरिणो यथा ॥ ४५ ॥

तब वानर-यूयपति राक्षसोंकी उस भयंकर सेनामें घुस
गये और छैल-गुह्र उठाये पिक्करोवाले पर्वतोंकी भाँति
वहाँ विचरण करने लगे ॥ ४ ॥

केचिदुक्ताशमाविश्य केचिदुर्व्यां प्रयुक्ता ।
रक्ष सैन्येषु सक्तुदा केचिद् द्रुमशिलायुधा ॥ ४६ ॥
दुमाश्च यिपुलम्बन्धान् शृणु वानरयुक्ता ॥

कुछों और शिगओंको आयुधसे रूपमें घारण किये वानर
बेदा राक्षसैर्निर्कोपर अत्यन्त कुतित ही आकाशमें उड़ उड़
कर विचरने लगे । जितने ही वानरशिरोमणि वीर मोटी-भागी
शापाभोगत कुंजीकी क्षाममें लगर पृथ्वीपर विचरण करने
लगे ॥ ४६ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं रक्षोवानरसकुलम् ॥ ४७ ॥
ते पादपशिलाशैलैश्चतुर्दृष्टिमनूपमाम् ।
पाणीधैर्यपमाणाश्च हरयो भीमविभ्रमा ॥ ४८ ॥

उस समय राक्षसों और वानरोंने उस युद्धमें बड़ा भयंकर
रूप घारण किया । राक्षसोंने बाणधूम्रोंकी बारादाय अब वानरों
को आगे यन्त्रसे रंश, उस समय वे मयकर पराक्रमी वानर
उनपर शृणु, शिखाओं तथा शैलशिखरोंकी अनुरूप बृष्टि
करने लगे ॥ ४७-४८ ॥

सिंहनादान् विनेदुश्च रण राक्षसवानरा ।
शिलाभिश्चूर्णयामासुयानुधानां प्रयुक्ता ॥ ४९ ॥
निर्जन्तु सयुगे क्रुद्धा कञ्चामभगनादुतान् ।

राक्षस और वानर दोनों ही वहाँ रणनेत्रमें सिंहाँक समान
दहाड़ रहे थे । कुतित हुए वानरोंने कञ्चों और आभूषणोंसे
विभूषित बहुतेरे राक्षसोंको युद्धसल्लमें गिलाओंकी भाँति कुचल
दिया—मार डाला ॥ ४० ॥

केचिद् रयगतान् वीगन् गजयात्रिगतानपि ॥ ५० ॥
निर्जन्तु सहसाऽऽमुष्य यातुधानान् प्रयुक्ता ।

गिरते ही वानर रण, छपी और घोड़पर गैरे हुए वीर
राक्षसोंने भी सहज उठकर मार डालते थे ॥ ५० ॥

शैल्यष्टङ्गाभिताङ्गान्ते मुष्टिभिर्मात्तलोचना ॥ ५१ ॥
वेजु पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसयुक्ता ।

उहाँ प्रधान प्रधान राक्षसोंने शरीर पर्वत शिखरोंसे
आच्छादित हो गये थे । वानरोंके मुक्तीकी मार खाकर
चित्तोंकी ज्वाँल बाहर निकल आयी थी । वे निशाचर भागते,
गिरते-बहते और चीलकार करते थे ॥ ५१ ॥

राक्षसाश्च शरैस्तीक्ष्णैर्विभिधु कपिकुञ्जरा ॥ ५२ ॥
शूलमुग्ररस्त्रैश्च जघ्नु प्रासेश्च शक्तिभिः ।

राक्षसों ने भी पीने बाणोंसे जितने ही वानर शिरोमणियोंको
निदीन कर दिया था तथा शूलों, मुद्गरों, खड्गों, प्राणों और
शक्तियोंसे बहुतेरोंको मार गिराया था ॥ ५२ ॥

अन्योन्य पातयामासु परस्परजयैविण ॥ ५३ ॥
रिपुयोगितदिग्धाहास्तत्र वानरराक्षसाः ।

शत्रुओंके रक्त जिनक शरीरोंमें लिये हुए थे, वे वानर
और राक्षस वहाँ परस्पर विषय पानेकी इच्छासे एक दूसरेको
भयनायी कर रहे थे ॥ ५३ ॥

ततः शैलैश्च खड्गैश्च विवृष्टैर्हरिराभसे ॥ ५४ ॥
मुहूर्तेनापृष्टा भूमिरभवच्छ्रेणितोक्षिता ।

घोड़ी ही देगमें वह युद्धभूमि वानरों और राक्षसोंद्वारा
चलभये गये पर्वत शिखरों तथा तलवारोंसे आच्छादित हो
रक्त प्रगाढ़से छिंच उठी ॥ ५४ ॥

विभीर्षी पवनाकारे रक्षोभिरभिमदितैः ।
आसीद् वसुमती पूणा तथा युद्धमदान्वितैः ॥ ५५ ॥

युद्धके मद्दने उमचत हुए पतावार राक्षस आ गिलाओं
की भाँति कुचल दिव गये थे, सब आर विन्दे पड़े थे ।
उनसे वहाँकी गरी भूमि पट गयी थी ॥ ५५ ॥

आदिस्ता निष्यमाणाश्च भ्रमरैलाश्च वानरा ।
पुनरक्षैस्तदा चमुरामसा युद्धमद्रुतम् ॥ ५६ ॥

राक्षसोंने जिनक युद्धके सामनभूत शैल-शिखरोंकी ठाढ़
छोड़ डाला था, वे वानर उनका प्रहारमें विचलित किए

जनेपर उत राक्षसोने अन्त्यत निरुत जा वाने हाथयैर आदि
अन्नोद्धार ही अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ५६ ॥

वानरान् वानरैरेव जघ्नुस्ते नैऋतयभा ।
राक्षसान् राक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि ॥ ५७ ॥

राक्षसोंक प्रधान प्रधान वीर वानरोंक परस्पर उहै
दूसर वानरोंक पर कर देते थे । इही प्रकार वानर भी राक्षसोंके
ही राक्षसोंका मार रहे थे ॥ ५७ ॥

आनिष्य च शिला शैलाञ्जघ्नुस्ते राक्षसास्तदा ।
तेषां चानिष्ठय शस्त्राणि जघ्नु रक्षाभिः वानरा ॥ ५८ ॥

उस समय राक्षस अपने 'गुज्ज' शस्त्रोंके निगाआ और
शैल-शिखरोंको छीनकर उहोंने उनपर प्रहार करने लग तथा
वानर भी राक्षसोंक हथियार छीनकर उहोंक द्वारा उनका
वध करने लगे ॥ ५८ ॥

निजघ्नु शैलशृङ्गैश्च विभिदुश्च परस्परम् ।
सिंहनादान् विभिदुश्च रणे राक्षसजानरा ॥ ५९ ॥

इस तरह राक्षस और वानर दोनों ही दलोंक यादा एक
दूसरेको परान-निगलते मारते, अन्न गान्धर्वोंने विद्रोह करने
तथा रणभूमिमें सिंहोंके समान दहाड़ने लगे ॥ ५९ ॥

छिन्नमननुप्राणा राक्षसा जानर्हता ।
कथिर प्रसृतास्तत्र रससारमिश्रं द्रुमा ॥ ६० ॥

राक्षसोंकी गुरीर-रक्षाएँ कापनभूत रुचक आदि छिन्न
मिश्र हो गये । वानरोंकी मार खाकर वे अपने गुरीरने उसी
प्रकार रक्त बहाते लगे, जैसे वृक्ष अपने तनोंके गोंद बगथा
करते हैं ॥ ६० ॥

रथेन च रथ चापि वारणेनापि वारणम् ।
हथेन च हथ केचिन्ननघ्नुजानरा रणे ॥ ६१ ॥

कितने ही वानर रणभूमिमें रथोंके वधों हाथीने हाथीको
और घड़ेने घड़ेको मार गिराते थे ॥ ६१ ॥

धुरप्रैरथवटैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः ।
राक्षसा वानरेन्द्राणां विभिदुः पादपाङ्गिणः ॥ ६२ ॥

वानर-सूयगदियोंक चालये हुए वृक्षों और त्रिशूलोंका
निगाआ यादा तीनों धुरप्र, भल्लचक्र और भाल नामक
बाणोंने ताड़-कोड़ डालते थे ॥ ६२ ॥

विभीषा पयसास्त्रैश्च दुर्मच्छिन्नैश्च सयुगे ।
हतैश्च कपिर्लोभिदुग्मा यमुधाभयम् ॥ ६३ ॥

दूर दूरसे गिरे हुए पत्थरों, कण्डू हुए वृक्षों तथा राक्षसों
जो वानरोंकी सगोने पर जानेक कारण उन भूमिमें चला
किना कठिन हो गया ॥ ६३ ॥

ते वानरा गर्हितहृद्येण
सप्राप्तमायाय भय विमुच्य ।

युद्ध स सर्वे सह राक्षसेस्त
नानायुधाश्चकुरदीनमन्त्रा ॥ ६४ ॥

वानरोंकी सारी चेष्टाएँ वानरोंकी ही हुई तथा इस और
उल्लाहने युक्त थी । उनका हृदयमें दीनता नहीं थी तथा
उहोंने राक्षसोंक ही नाना प्रकारक आसुष छीनकर हस्तगत
कर लिए थे, जिन थे सत्र महामान पदुचकर राक्षसोंक साथ
भय छाड़कर युद्ध कर रहे थे ॥ ६४ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते तुमुने प्रिमं
प्रहृष्यमाणेषु वल्गुमुपेषु ।

निपात्यमानेषु च राक्षसपु
महर्षयो देवगणाश्च नेदु ॥ ६५ ॥

इस प्रकार जब मयकर मारका मची हुई थी, वानर
प्रसन्न थे और राक्षसोंकी लाँछें गिर रही थीं उस समय महर्षि
तथा देवगण हर्षनाद करने लगे ॥ ६५ ॥

ततो ह्य भारतनुव्यपग
मारुह्य शक्तिं निशिता प्रवृष्टा ।

नरान्तको वानरसैन्यमुग्र
महाणय मीन इयाधिपेदा ॥ ६६ ॥

तत्पनतर वायुच समान तीव्र वेगात् घड़कर सवार हो
हाथमें तापी शक्ति लिये नरान्तक वानरोंकी भयकर सेनामें
उसी तरह घुसा, जैसे काल मत्स्य महानगरमें प्रवेश कर
रहा हो ॥ ६६ ॥

स वानरान् स्वतः शनानि धीर
प्रासेन दीमेन त्रिनिर्मिमेद ।

एकं मणने द्रुपिपुमहा मा
जघान सैन्य हरिपुङ्गवानाम् ॥ ६७ ॥

उस महाशाय इन्द्रद्वीपी वीर निगाआने चमचमत हुए
मारने अस्त्रों ही सार सौ वानरोंका वीर डाग और क्षणभरमें
वानर घुसपनियोंकी एक बहुत बड़ी सेना का सगर कर डाला ॥

दृष्ट्वा महामान हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ।
चगन्त हरिसैन्येषु विद्याधरमहपथ ॥ ६८ ॥

घड़की पांशुपर बैठे हुए उस महामानवी वारक विद्याधर
और महर्षिने वानरोंकी सेनामें विचरते देखा ॥ ६८ ॥

स तस्य दृष्टो मार्गो मासशोगिनरुदम ।
पतिने पराकारं वानरैरभिमनृत ॥ ६९ ॥

वह जिस मार्गने निरुत जाना, वही पराजय हुए
पराकार वनरोंने दृष्ट दिशाकी देना था जैर वहाँ रक्त एवं
मांसकी बीच भय जती थी ॥ ६९ ॥

यादु विभित्तु बुद्धिं चतुः प्रगपुहृत्वा ।
तादेताननिग्रम्य निर्विभे नरान्ति ॥ ७० ॥

वानरोंक प्रथम प्रथम कर जराद पराजय करनेला

विचार करते, तबतक ही नरान्तक इन सबको लौंच कर भाले की मारसे पायल कर देगा ॥ ७० ॥

उषलन्त प्रासमुद्यम्य सग्रामाग्रे नरान्तक ।
ददाह हरिरिन्ध्यानि घनानीत्र विभावसु ॥ ७१ ॥

जैसे दावानल सूखे बंगलोंको जगता है, उसी प्रकार प्रज्वलित प्रास लिये नरान्तक युद्धके मुहानेपर बानर-सेनाओंको दग्ध करने लगा ॥ ७१ ॥

बावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाश्चैलान् यनीकस ।
तावत् प्रासहता पेतुयज्रहता इराचला ॥ ७२ ॥

बानरखेग जलतक वृक्ष और पर्वत शिखरोंको उखाड़ते, तबतक ही उतके भालेकी चोट खाकर बज्रके मारे हुए पवनवी मौँत दह जाते थे ॥ ७२ ॥

दिक्षु खवासु यत्था विचचार नरान्तक ।
प्रवृद्धन् सत्रतो युद्धे प्रावृट्काटे यथानिल ॥ ७३ ॥

जैसे बर्राकालमें प्रचण्ड वायु सब आर वृक्षोंको तोड़नी टलाइती हुई निचरती है, उसी प्रकार बलवान् नरान्तक रणभूमि बानरोंका रौंन्ता हुआ सम्पूर्ण दिग्गजोंमें विचरने लगा ॥ ७३ ॥

न शेडुधाधितुवीरा न स्यातु स्पन्दितु भयात् ।
उत्पतन्त स्थितयान्त सवान् विव्याध वीरवान् ॥ ७४ ॥

बानर वीर भयके मारे न ता आग पाते थे, न खड़ रह पाते थे और न उनस दूखी ही कोई चेग करते बनती थी । पराक्रमी नरान्तक उछलते हुए, पड़े हुए और जाते हुए सभी बानरोंपर भावेली चोट कर देता था ॥ ७४ ॥

एकेनान्तककरपेन प्रासेनादिष्यतेजसा ।
भक्षानि हरिरिन्ध्यानि निपतुर्धरणीतले ॥ ७५ ॥

उत्तरा प्रास (माल) अपनी प्रभासे सूर्यके समान उदीप्त हो रहा था और यमराजक समान भयकर जान पड़ता था । उस पक ही भावेली मारसे पायल होकर छड़-छड़ बानर धरतीपर ल गये ॥ ७५ ॥

वज्रनिपेपसदृश प्रासस्याभिनिपाननम् ।
न नेकुयानरा सोढु ते विनेदुमहास्रनम् ॥ ७६ ॥

बज्रके आपातमें भी मात करनेवाले उस प्रासक दाखन प्रहारको बानर नहीं सह सके । वे और जोसे चोकर करने लगे ॥ ७६ ॥

पतता हरिधीराणा रूपाणि प्रवचसिरे ।
यसमिनाप्रकूटाना शैरगता पततामिर ॥ ७७ ॥

पड़ों गिरत हुए बानर-वीरोंक रूप उन पक्षोंक समान दिखलें देत थे, जो वज्रक आपातमें शिखरोंके निदीर्घ ॥

येतु पूर्वं महात्मान कुम्भकर्णेन पातिता ।
ते स्वस्था बानरश्रेष्ठा सुग्रीवमुपतस्थिर ॥ ७८ ॥

पहले कुम्भकर्णने जिहें रणभूमिमें गिर दिया था, ये महाभयभी श्रेष्ठ बानर उस समय स्थिर हो सुग्रीवजी सेवाने उपस्थित हुए ॥ ७८ ॥

श्रेष्ठमाण स सुग्रीवो दृष्टो हरिवाहिनीम् ।
नरान्तकभयवन्ता विद्वयर्त्ता यतस्तत ॥ ७९ ॥

सुग्रीवने जब सब ओर इन्तिपात किया, तब देखा कि बानरोंकी सेना नरान्तकस भयभीत होकर इधर उधर भाग रही है ॥ ७९ ॥

विद्वता याहिर्नी दृष्टा स ददर्श नरान्तकम् ।
गृहीतप्रासमायान्त हयघृष्टप्रतिष्ठितम् ॥ ८० ॥

सेनाको भागती देख उन्होंने नरान्तकपर भी दृष्टि डाली, जो पोड़की पीठपर बैठकर हाथमें मारा लिये आ रहा था ॥

दृष्टोऽगच महातेजा सुग्रीवो बानराधिप ।
कुमारमहद् वीर शक्तुल्यपगममम् ॥ ८१ ॥

उसे देखकर महातेजवी बानरराज सुग्रीवने इन्द्रतुल्य पराक्रमी वीर कुमार अद्भुतसे कहा— ॥ ८१ ॥

गच्छैन राक्षस वीर योऽसौ तुरगमास्थित ।
क्षोभयन्त हस्विल क्षिप्र प्राणैर्वियोजय ॥ ८२ ॥

‘वेटा । वह जो पाइएग बैठा हुआ बानर सेनामें हलचल मचा रहा है, उस वीर राक्षसका सामना करनेके लिये जाओ और उसके प्राणोंका शीघ्र ही अन्त कर दो’ ॥ ८२ ॥

स भर्तुर्यचन ध्रुत्वा निष्पपाताद्भुतस्तदा ।
अनीका मेघसकाशावद्गुमानिध वीर्यवान् ॥ ८३ ॥

स्वामीकी यह आज्ञा सुनकर पराक्रमी अद्भुत उस समय मधोंकी धारने समान प्रतीत होनेवाली बानर-सेनाने उसी तरह निकटे, जैस सूर्यदेव बादलोंके ओटसे प्रकट हो रहे हैं ॥ ८३ ॥

शैलसघावसकाशो हरिणामुत्समोऽद्भुद ।
रराजाद्भुदमनस्य सधातुरिष पयत ॥ ८४ ॥

बानरोंमें श्रेष्ठ अद्भुत शैल-समूहक समान विशालकय थे । वे अपनी बाँहोंमें बाणधर धारण किये हुए थे, इन्धिये सुवर्ण आदि धातुओंसे युक्त पतंतक समान शोभा पाते थे ॥

निरायुधो महतेजा केवल नवदम्भवान् ।
नरान्तकमभिप्राय्य वालिपुत्रोऽप्रवीद धव ॥ ८५ ॥

वालिपुत्र अद्भुत महातेजवी थे । उनक पास कोई हथियार नहीं था । केवल नख और दाढ़ ही उनक अस्त्र-यन्त्र थे । ये नरान्तकक पास पहुँचकर इस प्रकार बोले— ॥ ८५ ॥

तिष्ठ किं प्राहतरभिहरिभिस्त्व करिष्यसि ।

आ निगावर ! ठहर न । इन सभाषण बदरौका
मारकर तू क्या करेगा ? तब मालकी चेत बज्रक समान असण
है किंतु जय इने नेरी इस छात्रार ता मार ॥ ८६ ॥

अद्भुतस्य घच भुज्या प्रचुक्रोध नरान्तक ।
सदस्य दशनैरोष्ट निखस्य च मुनयगत् ।
अभिगम्याद्भुत मुञ्चो वालिपुत्र नरान्तक ॥ ८७ ॥

अद्भुतकी यह बान मुनक नरान्तका दण ज्ञाष हुआ ।
बह कुपित हा, दौनों अठ दस सारी मौति लगे सोंस
ले, वालिपुत्र अद्भुत पास आकर लड़ा हा गया ॥ ८७ ॥

स प्राप्तमाविष्य तणाङ्गय
समुज्ज्वलन्त सहस्रोत्पलसज ।
स वालिपुत्रोरसि वज्रदह्य
यभून् भग्नो न्यपनद्य भूमौ ॥ ८८ ॥

उठने उस चमकते हुए मालका गुमाकर सखा उमे
अद्भुतपर है माप । वालिपुत्र अद्भुतका बज्राल वज्रक समान
कटार था । नरान्तकका भाग उभर टकपकर टूट गया और
जमीनपर जा पड़ा ॥ ८८ ॥

त प्राप्तमालोन्मय तदा विभम्भ
सुपण्डुसौरगभोगमन्वम् ।

तल समुचम्य स वालिपुत्र
स्फुटगमस्याभिजघान भूमि ॥ ८९ ॥

उस मालकी गबड़क हाप खाकिन किय गय सार्क
घपीसी मौति टूट-टूट हाकर पड़ा देव वालिपुत्र अद्भुतने
हथेली केची करक नरान्तकके धड़क मनकपर बड़ डरने
बय्यद माप ॥ ८९ ॥

निमग्नपाद स्फुटिनाशितारो
निष्प्रान्तनिद्रोऽवलसनिशदा ।

म तस्य वार्त्ता निपपान भूमौ
तलप्रहारेण विजिणमूधा ॥ ९० ॥

उस प्रहाते बड़ेस्य फिर फटा गया, पैर नाचने बँस
गये, और पूर गये और जग बाहर निरु आयी । यह
परतसर अथ प्रगतीन होकर ध्यानपर फिर पड़ा ॥ ९० ॥

नरान्तक प्रोधयदा जगाम
हत तुरग्य पतित समीक्ष्य ।

स मुष्टिमुचम्य महाप्रभातो
जघान दीर्घे युधि वालिपुत्रम् ॥ ९१ ॥

बड़का मकर टूटीर पण देख नरान्तक क्रोधने
खान न थी । उस महाप्रभाता निगावर उदालने
मुक्का तनकर मुक्किमारक मनकपर गया ॥ ९१ ॥

इथाप्यै आमतमयगे वाल्मकीय अस्मिन् युद्धकाण्डे एकौनसप्ततितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

म एतद् ध्वजनिर्मितं अश्वानां अर्चनं युद्धकाण्डे नदरगौमं बभूव ॥ ९१ ॥

अथाहूतो मुष्टिजिगीणमूधा
सुञ्जान तीव्र कथिर मृशोष्णम् ।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि
सखा समामाद्य तिसिसिये च ॥ ९२ ॥

मुनकी मारने अद्भुतका फिर फूट गया । उठने वेगपुवक
गर्म-गर्म रक्तकी घास बहने लगी । उनक माथेमें बड़ी अन्न
हुई । वे मुच्छित हो गये और थोड़ी दूरमें जा हरा हुआ, तब
उस यगपकी वक्ति देखकर अक्षयचक्रित हो उठे ॥ ९२ ॥

अथाहूतो मृत्युसमानयेग
सख्य मुष्टि गिरिच्छिन्नरूपम् ।
निपानयामास तणा महाभा
नरान्तक्योरसि वालिपुत्र ॥ ९३ ॥

फिर अद्भुतने परत-दिशरक समान अन्ना मुक्का तना
क्षिक्का वेग मृत्यु समान था । फिर उन मगना वालिकुमार
ने उसने नरान्तकरी जगामे प्रहार किया ॥ ९३ ॥

स मुष्टिनिर्भिन्ननिमग्नस्या
ज्वाला वमश्शोणितदिग्धगात्र ।
नरान्तको भूमिनले पपात
यथाचलो वज्रनिपातभग्न ॥ ९४ ॥

मुक्कके आगत नरान्तका हृदय विगीण हो गया ।
बह मुठे आगकी चालासी उठने लगी । उसक मरे अद्भुत
लहलहान हो गये और बह वज्रक मरे हुए पतकी मौति
धूवीर फिर पड़ा ॥ ९४ ॥

तद्वान्तरिमे विदशोचमाना
यनाकसा चैव महाप्रणाद ।
यभून् तस्मिन् निहतेऽप्यरीपे
व्रान्तके वालिमुनेन सप्ये ॥ ९५ ॥

वालिकुमारक हाप मुदसलने उठन पककी नरान्तक
मारे जानर उस समय आकाशमें देवताओंने और नूतलर
जानरोंने बड़ डरने हर्नाद किया ॥ ९५ ॥

अथाहूतो राममनप्रहयण
सुदुष्कर तद्वनयानदिग्निरमम् ।
विमिसिये सोऽप्यथ भीनरमा
पुनश्च युद्धे स वमूर्ह हरित ॥ ९६ ॥

अद्भुतने आपनचन्दरीन मनक अन्न हर प्रान
करनेवाला व पण हुक्कर पगजम किया था । उठने श्रीराम-
चन्द्रजीक भी बड़ा निमरा हुआ । तबकान भाग वम
करने अद्भुत पुन युद्ध लिये हा और उठने मर गया ॥ ९६ ॥

सप्ततितमः सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा देवान्तक और त्रिशिराका, नीलके द्वारा महोदरका तथा ऋषभके द्वारा महापार्श्वका वध

नगन्तक हत दृष्ट्वा चुकुजुर्नैर्भूतपभा ।
देवान्तकस्त्रिभूधा च पौनस्त्यश्च महोदर ॥ १ ॥

नगन्तक माए गया देव देवान्तक, पुरुषपुरुषनन्दन
त्रिशिरा और महोदर—य अथ राखत हाहाकार करने
को ॥ १ ॥

आरुढो मेघसकाश धारणेऽ महोदर ।
वाल्लिपुत्र महावीर्यमभिद्रुष्ट्वा घेगवान् ॥ २ ॥

महादेवने मघने समान गनपञ्चपर बैठकर महापराक्रमी
अङ्गदेके ऊपर उड़ वेगने भाया दिया ॥ २ ॥

आवृत्पसनसनमस्तदा देवान्तको उली ।
आदाय परिघ घोरमद्गद समभिद्रुवत् ॥ ३ ॥

माइके मारे जानेने संतत हुए पलगान् देवान्तकने
मयानर पतिव मयने लकर अङ्गदपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

रधमादित्यसकाश युक्त परमयाजिभि ।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो वाल्लिपुत्रमयाभ्यगात् ॥ ४ ॥

इस प्रकार वीर त्रिशिरा उत्तम पाहोसे जुते हुए अद्वैत
तेजसी रूपपर बैठकर वाल्लिपुत्रका सामना करनेके लिये
भाया ॥ ४ ॥

स त्रिभिर्देवैर्ध्वजैः राक्षसे देवभिद्रुतः ।
धृष्टमुपाटयामास महाविदपमद्गद ॥ ५ ॥

देवान्तकाय त नीरक्षिण्ये सहसाङ्ग ।
महादृष्ट महाशाय शत्रो दीप्तामिशगनिम् ॥ ६ ॥

देवताओंका दण्ड दलन करनेगए उन तीनों निशाचर
पतियों आक्रमण करनेपर वीर अङ्गदने विनाश शाखाओंसे
युक्त एक वृक्ष उठाइ लिया और उसे इत्र प्रज्वलितकणिका
प्रहार करते हैं, उसी प्रकार उन वाल्लिपुत्रने वही-वही
शाखाओंसे युक्त उस महान् वृक्षो सहसा देवान्तकपर द
मार ॥ ५ ॥

त्रिदिगस्त त्रिन्दिशेऽ दारपादीरियेपम ।
स धृष्ट हस्तमालेभ्य उत्पपात तदाङ्गद ॥ ७ ॥

स यत्र ततो घृणादिलक्ष्य पविपुञ्जर ।
ताम् प्रचिच्छेत् सकुद्वित्रिशिरा त्रिशिरे दौरे ॥ ८ ॥

परतु त्रिदिगने निपर शत्रो समान मघकर पाण माए
कर उन वृक्ष उठा कर लिया । वृक्ष पलित हुआ
देव पविपुत्र अङ्गद तलान् आनामने मृग और त्रिशिरा
पर वृक्षो तपा निशाओंकी घात करने लगे त्रिन्दिशमने मर
हुए त्रिशिरने पने भागोहाय उनध भी काट गिराया ७-८

परतु त्रिदिगने निपर शत्रो समान मघकर पाण माए
कर उन वृक्ष उठा कर लिया । वृक्ष पलित हुआ
देव पविपुत्र अङ्गद तलान् आनामने मृग और त्रिशिरा
पर वृक्षो तपा निशाओंकी घात करने लगे त्रिन्दिशमने मर
हुए त्रिशिरने पने भागोहाय उनध भी काट गिराया ७-८

परतु त्रिदिगने निपर शत्रो समान मघकर पाण माए
कर उन वृक्ष उठा कर लिया । वृक्ष पलित हुआ
देव पविपुत्र अङ्गद तलान् आनामने मृग और त्रिशिरा
पर वृक्षो तपा निशाओंकी घात करने लगे त्रिन्दिशमने मर
हुए त्रिशिरने पने भागोहाय उनध भी काट गिराया ७-८

परतु त्रिदिगने निपर शत्रो समान मघकर पाण माए
कर उन वृक्ष उठा कर लिया । वृक्ष पलित हुआ
देव पविपुत्र अङ्गद तलान् आनामने मृग और त्रिशिरा
पर वृक्षो तपा निशाओंकी घात करने लगे त्रिन्दिशमने मर
हुए त्रिशिरने पने भागोहाय उनध भी काट गिराया ७-८

परिग्रामेण तान घृणान् यमञ्च स महोदर ।
त्रिशिराश्चाङ्गद वीरमभिद्रुष्ट्वा सायकैः ॥ ९ ॥

महोदरने अपने परिघे अग्रभागसे उन वृक्षोंको तोड़
फोड़ डाला । तत्पश्चात् सायकोंकी घात करते हुए त्रिशिरने
वीर अङ्गदपर घात किया ॥ ९ ॥

गजेन समभिद्रुत्य वाल्लिपुत्र महोदर ।
जघानोरसि सकुद्वन्मोमरैर्वज्रसनिभैः ॥ १० ॥

साय ही बुझि हुए महोदरने हाथीने द्वारा आक्रमण
करके वाल्लिपुत्रकी छातीमें वक्रतुल्य तोमरोंका प्रहार
किया ॥ १० ॥

देवान्तकश्च सकुद्व परिघेण तदाङ्गदम् ।
उपगम्याभिद्रुत्याऽ ध्वजप्रकाश येगवान् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार देवान्तक भी अङ्गदक निद्रुत आ आगत
क्षोभपूर्ण परिघे द्वारा ठोके चोट पहुँचाकर तुरत वेगपूर्वक
वहोसे दूर हट गया ॥ ११ ॥

स त्रिभिर्नैर्ध्वजैः पुनर्गपत् समभिद्रुत ।
न विव्यये महातेजा वाल्लिपुत्र प्रतापवान् ॥ १२ ॥

उन तीनों प्रमुख निशाचरोंने एक साथ ही घावा किया
था, तो भी महादंजवी और प्रतापी वाल्लिपुत्र अङ्गदके
मनमें तनिक भी ध्वंसा नहीं हुई ॥ १२ ॥

स वेगवान् महाधेग हृत्वा परमदुर्जय ।
तेन समभिद्रुत्य जगन्नाथस्य महागजम् ॥ १३ ॥

व अत्यन्त दुर्जय और बड़ वेगवाली थे । उन्होंने महान्
वग प्रहार करके महोदर महान् गजराजपर आक्रमण किया
और उसका मलान्जर जेरते घाव माए ॥ १३ ॥

तद्य तेन प्रहारेण नागराजस्य सन्धुगे ।
पेततुनयने तस्य त्रिनाश स दुर्जग ॥ १४ ॥

युद्धस्थलमें उनका उस प्रहारेसे गजराजकी दोनों ओरों
निजल्लर घृष्ठीपर गिर गयी और यह तत्काल मर गया ॥ १४ ॥

त्रिपाण धाम्भ निष्कृष्य वाल्लिपुत्रो महाबल ।
देवान्तकमभिद्रुत्य ताडयामास सन्धुगे ॥ १५ ॥

त्रि मशाली वाल्लिपुत्रने उस हाथीका एक दाँत
उठाइ लिया और युद्धस्थलमें दीहकर उसीने द्वारा देवान्तक
पर घात की ॥ १५ ॥

स विद्रुस्तु तेजस्वी यानोद्धूत रथ द्रुम ।
व्याक्षरमसदर्थं च सुखाय दधिर मद्य ॥ १६ ॥

स विद्रुस्तु तेजस्वी यानोद्धूत रथ द्रुम ।
व्याक्षरमसदर्थं च सुखाय दधिर मद्य ॥ १६ ॥

स विद्रुस्तु तेजस्वी यानोद्धूत रथ द्रुम ।
व्याक्षरमसदर्थं च सुखाय दधिर मद्य ॥ १६ ॥

तेज्ज्वी देवान्तक उष प्रगलेन आकुल ह। गया और
वायु हिलय हुए वृषरी भौति मोंने लगा । उठके गरीमे
महावरके समान रगवाला रक्तज्ञ महान् प्रवाह वह चलय ॥

अथाश्वस्य महानेजा वृक्षद्वन्द्वे देवान्तको वली ।
आविध्य परिघ घेगागजघान तदाङ्गदम् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् महातेज्ज्वी बन्वान् देवान्तके वनी कठिनादने
अनेको सैमालनर परिय उठाया और उसे वेगपूर्ण घुमाकर
अङ्गदपर दे मार ॥ १७ ॥

परिधाभिहतश्चापि यानरेन्द्रा मजस्तदा ।
जानुम्या पतितो भूमौ पुनरेवापपात ह ॥ १८ ॥

उस परिघकी चोट खाकर यानरराजकुमार अङ्गदने भूमि
पर घुटने टेक दिय । फिर तुरत ही उठकर व ऊपरकी ओर
उठले ॥ १८ ॥

तमुत्पतन्त त्रिशिरस्त्रिभिराणैरनिलने ।
घोरैर्हरिपते पुन ललाटेऽभिजघान ह ॥ १९ ॥

उठले समय निधिराने तीन शपे जानेवाले मयकर
बाणोंद्वारा वानरराजकुमारके छात्रम गहरी चोट पहुँचायी ॥

ततोऽङ्गद परिक्षिप्त विभिर्निर्मृतपुङ्खैः ।
हनुमानय निशाय नीलश्चापि प्रतस्थतु ॥ २० ॥

तदनन्तर अङ्गदको तीन प्रमुख निशचणोंने घिर हुआ
घान हनुमान् और नील भी उनकी लणयताक लिये अग्रसर
हुए ॥ २० ॥

ततश्चिक्षेप शैलाग्र नीलस्त्रिशिरसे तदा ।
तद् रायणसुतो धीमान् निमेषे निश्चित शरैः ॥ २१ ॥

उस समय नीलने निधिरपर एक पवनशिवर चलाया
किन्तु उस बुद्धिमान् रायणपुत्रने तीव्र बाण मारकर उसे ताड़
फोड़ डाल्य ॥ २१ ॥

तद्वाणशाननिर्भिन्न निशारितशिलान्त्रम् ।
सन्निष्कूलिङ्ग मज्जाल निपपात गिरैः शिर ॥ २२ ॥

उसके शेरकों बाणोंने विशीण हानर उसकी एक-एक
धिल बिलर गयी और वह पवनशिवर आगरी चिनगारियों
तथा गज्याके साथ पृथ्वापर गिर पड़ा ॥ २२ ॥

स त्रिभुजमालोक्य हृषाद् देवान्तको वली ।
परिघेर्णाभिदुष्टाय मादतामजमाह्वये ॥ २३ ॥

अने भादस पराक्रम बत्ता देख बन्वान् देवान्तको
बड़ा हर्ष हुआ और उसने परिघ लेकर युद्धस्थलमें हनुमान्जी-
पर पाता किया ॥ २३ ॥

तमापतन्तमुत्पन्त्य हनुमान् कपिकुञ्जर ।
आजघान तदा मूर्ध्नि घञ्जकलेन मुष्टिना ॥ २४ ॥

उने अनान्य कपिकुञ्जर हनुमान्जन उठकर अपने
घञ्जकलेने मुखमें उसका शिर मार ॥ २४ ॥

शिरसि प्राहरद् वीरस्त्रना प्रायुसुतो वली ।
नादेनाकम्पयन्चैव राजसान् स महाकपि ॥ २५ ॥

बन्वान् वायुमार महाकपि हनुमान्जीने उस समय
देवान्तको मलाकर प्रहार किया और अपनी भीम गर्जनासे
राजसोंको क्षमि कर दिया ॥ २५ ॥

स मुष्टिनिष्पिण्णविभिन्नमूषा
निगन्तदन्ताक्षिरिलम्विजिह्व ।

देवान्तको राजसरापसुनु
गतासुरार्थो सहसा पपात ॥ २६ ॥

उनके मुष्ट प्रहारने देवान्तका मन्त्र फट गया और
गिर उठा । दाँतों, आँखों और लबी बीच बाहर निकल आयीं
तथा वह राक्षसराजकुमार प्राणशून्य होकर गिर पड़ा
गिर पड़ा ॥ २६ ॥

तस्मिन् हते रायसयोधमुत्प्रे
महान्ने सयति देवशत्रो ।

क्रुद्धस्त्रिशोष निशिताक्रम
वज्र नीलोत्तरसि वाणनपम् ॥ २७ ॥

राक्षसयोधामोंने प्रधान महान्नी देवशत्री देवान्तक
युद्धमें मारे जानेपर निधिरसे बड़ा क्रोध हुआ और उसने
नीलकी छातीपर पैंने बाणोंकी मार कर वरा आरम्भ कर
दी ॥ २७ ॥

महोदरस्तु सकुन्द कुञ्जर परतोपमम् ।
भूय समधिकृष्टान् मन्दर रत्नमानि ॥ २८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधसे भर हुआ महोदर पुन शीम
ही एक पत्राकार हाथपर सवार हुआ; मानो सुपदेव मन्दर
चलनर आसुत हुए हों ॥ २८ ॥

तता वाणमय वर्षे नीलस्योपपातयत् ।
गिरौ घरे तडिच्चन्चापवानि च तोयद् ॥ २९ ॥

हाथपर चक्रर उसने नील पर बाणोंकी विष्ट वरा
की; माना इन्द्रधनुष पर विष्णुमण्डले पुन मेघ निक्ष
पर्वनर बली वरा कर रहा हो ॥ २९ ॥

तत शरैर्घैरभिरुध्यमाणो
विभिन्नमात्र कपितैन्पपाल् ।

नीलो घमुषाय विष्टृष्टायो
विप्रभिनम्नेन महारलेन ॥ ३० ॥

बाण-सूक्ष्मोंने निरन्तर वरा करने बलरसेनारनि नीलक
से अङ्ग क्षत निक्षत हो गया । उनका शरीर विष्ट हो गया ।
इस प्रकार ममारनी नन्दरने उन्हें मूर्च्छित करके उनका वज्र-
निमको दुष्टित कर दिया ॥ ३० ॥

ततस्तु नील प्रतिलम्बम
शल समुषाम्ब सन्मुखदम् ।

तत समुत्पत्य महाप्रवेगो

महोदर तेन जघान मूर्ध्नि ॥ ३१ ॥

तत्पश्चाद् होशमें आनेपर नीलने वृक्ष-समूहोंसे युक्त एक
शैल-शिखरको उल्लाङ्ग लिया । उनका वेग बड़ा भयंकर था ।
उन्होंने उल्लसकर उस वृक्षको महोदरके मस्तकपर दे मारा ॥ ३१ ॥

तत स शैलभिनियतभग्नो

महोदरस्तेन महाक्षिपेन ।

ध्यामोहितो भूमितले गतानुः

पपात यज्ञाभिहतो यथाद्रि ॥ ३२ ॥

उस पर्वतशिखरसे आघातसे महोदर उस महान् गजराज-
के साथ ही चूर चूर हो गया और मूर्च्छित एवं प्राणशून्य ॥
यज्ञके मारे हुए पर्वतकी भाँति ध्वसीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

पितृव्य निहत दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमावदे ।

हनूमन्त च सङ्मुखो विध्याध निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥

पितापुत्र भाईको मारा गया देख त्रिशिराके श्रोतकी सीमा
न रही । उसने वनपुत्र हाथमें ले लिया और हनुमान्जीको पैने
बाणोंसे बीचघना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥

स वायुसन्तु क्षुपितश्चिक्षेप शिखर गिरेः ।

त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्विभेद बहुधा यत्नी ॥ ३४ ॥

तब पवनकुमारने कुपित होकर उस राक्षसके ऊपर
पर्वतका शिखर नष्टया; परंतु बलवान् त्रिशिरासे अपने तीखे
साथकीने उसको कई टुकड़े कर डाले ॥ ३४ ॥

तद् व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमशर्पं तदा कपिः ।

विससज्ज रणे तस्मिन् रावणस्य सुतं प्रति ॥ ३५ ॥

उस पर्वतशिखरके प्रहारको व्यर्थ हुआ देख कपिकर
हनुमान्ने उस रणभूमिमें रावणपुत्र त्रिशिराके ऊपर वृक्षोंकी
बरा आरम्भ की ॥ ३५ ॥

तमापतन्तमाकाशे द्रुमशर्पं प्रतापवान् ।

त्रिशिरा निशितैवाणैश्चिक्षेद च ननाद च ॥ ३६ ॥

किंतु प्रतापी त्रिशिरासे आकाशमें होनेवाली वृक्षोंकी लस
वृष्टिको अपने पैने बाणोंमें छिन्न-भिन्न कर दिया और बड़े
जोरसे गर्जना की ॥ ३६ ॥

हनूमास्तु समुत्पत्य हय त्रिशिरसस्तदा ।

विददार तले कुक्षो नागेन्द्र मृगराडिष ॥ ३७ ॥

तब हनुमान्जी वृद्धकर त्रिशिरासे पास जा पहुँचे और
बेते कुपित सिंह राक्षसको अपने पंजोंसे चीर डालना हे,
उसी प्रकार अपने मारे हुए उन पवनकुमारने त्रिशिरा पर
का अपने शरीरमें गिरीक कर डाला ॥ ३७ ॥

अथ शक्ति समासाय कालरात्रिमिश्रातक ।

चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रायणात्मज ॥ ३८ ॥

यह देख रावणकुमार त्रिशिरासे शक्ति हाथमें ली; माने
यमराजने कल्पत्रिको साथ ले लिया हो; यह शक्ति लेकर
उपने पवनकुमार हनुमान्पर चलायी ॥ ३८ ॥

विद्यः क्षिप्रामिधोलका ता शक्ति क्षिप्रामसङ्कताम् ।

गृहीत्वा हरिशार्दूलो यमञ्ज च ननाद च ॥ ३९ ॥

जैसे आकाशमें उल्लापात हुआ हो; उसी प्रकार यह
शक्ति; जिसकी गति कहीं कुण्ठित नहीं होती थी; चली, परंतु
यानरभेष्ट हनुमान्जीने उसे अपने शरीरमें लगानेसे पहले ही
हाथमें पकड़ लिया और तोड़ डाला; तड़कनेके बाद उन्होंने
मयकर गर्जना की ॥ ३९ ॥

ता दृष्ट्वा घोरसकाशा शक्ति भग्ना हनुमता ।

प्रहृष्टा घानरगणा धिनेदुर्जलदा यथा ॥ ४० ॥

हनुमान्जीने यह भयानक शक्ति तोड़ दी; यह देखवानर
हृन्द अत्यन्त हर्षसे उल्लासित हो मेघोंके समान गम्भीर गर्जना
करने लगे ॥ ४० ॥

तत खड्ग समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः ।

निचखान तदा खड्ग यानरेद्रस्य चपसि ॥ ४१ ॥

तब खड्ग समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः ।
निचखान तदा खड्ग यानरेद्रस्य चपसि ॥ ४१ ॥

खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान् मावतामज ।

आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि दीर्घवान् ॥ ४२ ॥

तलवारकी चोटसे बायल हाँ पराक्रमी पवनकुमार हनुमान्
ने त्रिशिराकी छातीमें एक तमाचा जड़ दिया ॥ ४२ ॥

स तलाभिहतस्तेन शस्तहस्तायुधो मुवि ।

निपपात महातेजास्त्रिशिराम्यस्यचेतनः ॥ ४३ ॥

उनका घण्टा लगते ही महातेजस्वी त्रिशिरा अपनी
चेतना खो बैठा । उसके हाथने हथियार निरुक्त गया और वह
स्वयं भी ध्वसीपर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

स तस्य पततः खड्ग तमाच्छिद्य महाकपि ।

ननाद गिरिसकाशास्त्रासयन् सर्वराजसात् ॥ ४४ ॥

गिरते समय उस राक्षसके खड्गको छीनकर पर्वतकार
महाकपि हनुमान्जी सब राक्षसोंको भयभीत करते हुए और
जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४४ ॥

अमृष्यमाणस्त घोयमुत्पपात निद्राचरः ।

उत्पत्य च हनूमन्त तादयामास मुग्धना ॥ ४५ ॥

उनकी वह गर्जना उस निद्राचरने सही नहीं गयी; अतः
यह सदा उठकर खड़ा हो गया । उठते ही उसने हनुमान्
जीको एक गुफा मारा ॥ ४५ ॥

तेन मुष्टिप्रहारेण सशुकोय महाकपि ।

कुपितश्च निजग्राह किरटि राक्षसप्रभम् ॥ ४६ ॥

उषः मुखेकी चोट ग्राह्य मन्त्रिणि हनुमान्कीका उद्गा
भाव हुआ । कुपित होनेपर उन्होंने उस राक्षसका मुकुटमण्डित
मन्त्र पढ़ लिया ॥ ४६ ॥

स तस्य दीपाण्यसिना दिनेन
किरीटशुभ्रानि सकुण्डलानि ।
मुञ्च प्रविच्छेत् सुतोऽनिलस्य
रवस्तु सुतस्यैव शिरामि शक्र ॥ ४७ ॥

किर ता वैने पूनारत्ने इन्द्रे तदाय पुत्र विशम्पके
तीनों मलकाँको वज्रने काट गिराया था, उसी प्रकार कुपित
हुए पवनपुत्र हनुमान्ने रावणपुत्र निधिपर किरि और
कुण्डलसहित तीनों मलकाँका तीली तलवारसे काट डाला ॥

तान्यापताक्षायगसनिभानि
प्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि ।
पेतु शिरासीन्द्रियो पृथिव्या
ज्योतींषि मुक्तानि यथार्कमागात् ॥ ४८ ॥

उन मलकाँकी सभी इन्द्रियों विद्याल थीं । उनकी आँखें
प्रज्वलित अग्निके समान उड़ती हा रही थीं । उस इन्द्रद्रोही
त्रिदिशक वे तीनों फिर उसी प्रकार पृथ्वीपर गिरे, जैसे आकाश
से तारे टूटकर गिरते हैं ॥ ४८ ॥

तस्मिन् हते देवरिपौ यिद्वीरे
हनुमत्वा शत्रुपराक्रमेण ।
नेहु हवगा प्रचचाल भूमी
रक्षास्यथो दुद्रुनिरे समन्तात् ॥ ४९ ॥

देवद्रोही त्रिदिश अब इन्द्रतुल्य पराक्रमी हनुमान्कीके
हाथसे मारा गया, तब समस्त बानर हर्षनाद करने लगे,
परलौ कोनने लगे तथा राक्षस चारों दिशाओंकी ओर भाग
बल ॥ ४९ ॥

हव निदिगस्त दृष्ट्वा तथैव च महोदरम् ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्मी देवान्तकनरातकौ ॥ ५० ॥
शुक्रोप परमाभर्यो मत्तो राक्षसपुङ्गव ।
अप्राहाविष्मन्तां चापि गण सत्रायसां तदा ॥ ५१ ॥

त्रिदिश तथा महोदरका मारा गया देल और दुःख और
देवान्तक एवं नरान्तक भी बालक गालने गया हुआ ज्वन
अपन्त अनर्पणाल राक्षसगिरीमणिमत्त (महापार्श्व) कुपित
हो उठा । उसने एक तेजस्विनी गदा हाथमें ली, जो सम्यक्
खदेही की हुई थी ॥ ५० ५१ ॥

हेमपट्टपरिहस्ता मासशोणितफेनिलाम् ।
विराचमाना विपुला शत्रुशोणिततपिताम् ॥ ५२ ॥

उत्तर करनेवा पत्र बड़ा हुआ था । युद्धस्थलमें पहुँचने
पर वह धनुर्भोंद रक्त और भासमें सन जाली थी । उसका
आकार शिखर था । वह कुन्दरभासमें समन्त तथा शत्रुजों-
क रक्तमें लुप्त होनेवाली थी ॥ ५२ ॥

तेजसा सम्प्रतिताप्रा रत्नमाल्यायिभूषिताम् ।
पेरवतमहापद्मसार्वभौमभयाङ्गहाम् ॥ ५३ ॥

उसका अग्रभाग तेजने प्रज्वलित होता था । वह लाल
रंगके फूलोंने सजयी गयी थी तथा पेरवत, पुण्डरीक और
सार्वभौम नामक दिवाजोंका भा भयभीत करनेवाली थी ॥ ५३ ॥

मदामाण्य समुद्रो मत्तो राक्षसपुङ्गव ।
हरीन् समभिवुद्रात्र युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ ५४ ॥

उस गदाको हाथमें लेकर क्रोधमें भर हुआ राक्ष-
सिणमणि मत्त (महापार्श्व) प्रलयशाली अग्निसे समान
प्रज्वलित हो उठा और बानरोंकी ओर दौड़ा ॥ ५४ ॥

अथर्वभ समुत्पत्य चानरो रावणातुचम् ।
मत्तानीकमुपागम्य तस्यौ तस्याग्रतो घटी ॥ ५५ ॥

तब श्रृपम नामक बन्वान् बानर उड़कर रावणके
छाटे भाई मत्तानीक (महापार्श्व) के पास आ पहुँचे और
उत्तरे सामने खड़े हो गये ॥ ५५ ॥

त पुरस्ताद् स्थित दृष्ट्वा चानर पर्वतोपमम् ।
आज्ञधानोरसि क्रुद्धो गद्ग्या वज्रकल्पया ॥ ५६ ॥

पर्वताकार बानरवीर श्रृपमको सामने खड़ा देल कुपित
हुए महापार्श्वने अपनी वज्रतुल्य गदासे उनकी छातीपर
प्रहार किया ॥ ५६ ॥

स तयाभिहतस्तेन गद्ग्या धानरर्पभ ।
भिन्नवक्त्रा समाधूत मुक्ताव रुधिर यद्गु ॥ ५७ ॥

उसकी उस गदासे आपातने बानरशिरोमणि श्रृपमका
वक्षस्त्र छन विघ्नत हो गया । वे कौन ठगे और अधिक
मात्रामें लूनी घाय बहाने लगे ॥ ५७ ॥

स सम्प्राप्य विराट् समामृपभो धानरेवम् ।
क्रुद्धो विस्फुरमाणीष्टो महापादमुदैसत् ॥ ५८ ॥

बहुत देरक बाद होवमें आनेपर बानरराज श्रृपम
कुपित हो उठे और महापार्श्वकी ओर देखने लगा । उस
समय उसने अठक्कर रहे थे ॥ ५८ ॥

स वेगवान् वेगवद्भ्युपेत्य
त राक्षस धानरवीमुत्पत्य ।
सधन्यं मुष्टि सहसा जघान
चाक्रवर्ते शौलनिकादारुप ॥ ५९ ॥

धानरवीरोंमें प्रधान श्रृपमका रूप परंतके समान ज्वन
पड़ता था । वे बड़े वेगवाली थे । उन्होंने वेगपूर्वक उस
राक्षसक पक्ष पहुँचकर मुक्ता ताना और सहसा उसकी छातीपर
प्रहार किया ॥ ५९ ॥

स हृत्समल सहसेय युद्ध
क्षिती एषान क्षतजोहिताङ्ग ।

तत समुत्पत्य महोदरवेगो

महोदर तेन जघान मूर्ध्नि ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् होयमें आनेपर नीलने वृष-समूहोंसे युक्त एक शैल-शिखरको उखाड़ लिया । उनका वेग उड़ा भयकर था । उन्होंने उछलकर उस वृषको महोदरके मस्तकपर दे मारा ॥ ३१ ॥

तत स शैलाभिनिपातभग्नो

महोदरस्तेन महाद्विपेन ।

व्यामोहितो भूमितले गतासु

पपात वज्राभिहतो यथाद्रि ॥ ३२ ॥

उस पर्वतशिखरके आघातसे महोदर उस महान् गजराज के साथ ही चूर चूर हो गया और मूर्च्छित पर प्राणशून्य हो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति धूम्रवीर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

पितृव्य निहत दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमान्द्रे ।

हनुमन्त च सक्तुद्धो विद्याध निशितै शरै ॥ ३३ ॥

जित्वाके भाईको मारा गया देख त्रिशिरके कोचकी सीमा न रही । उसने धनुष हाथमें ले लिया और हनुमान्जीको वैसे बाणोंसे बीचना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥

स यायुचक्षुः क्षुपितश्चिक्षेप शिखर गिरेः ।

त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्यमिमेद यदुधा यली ॥ ३४ ॥

तब परनकुमारने क्षुपित होकर उस राक्षसके ऊपर पर्वतका शिखर चलाया; परन्तु चलायान् त्रिशिराने अपने तीखे शयकोंसे उसके बड़े डुफड़े कर डाले ॥ ३४ ॥

तद् व्यर्थं शिखर दृष्ट्वा द्रुमवर्षं तदा जपि ।

विससर्ज रणे तस्मिन् रावणस्य सुत प्रति ॥ ३५ ॥

उस पर्वतशिखरके प्रहारको व्यर्थ हुआ देख कपिवर हनुमान्ने उस रणभूमिमें रावणपुत्र त्रिशिरके ऊपर वृक्षोंकी क्या आरम्भ की ॥ ३५ ॥

तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान् ।

त्रिशिरा निशितैर्यौगैश्चिच्छेद च ननाद् च ॥ ३६ ॥

किंतु प्रतापी त्रिशिराने आकाशमें होनेवाली वृक्षोंकी उस वृष्टिनी अपने वैसे बाणोंसे छिन्न भिन्न कर दिया और बड़े झोखे गजना की ॥ ३६ ॥

हनुमास्तु समुत्पत्य ह्य त्रिशिरस्तदा ।

विन्ददार नदौ मुञ्चो नागेन्द्र मृगराडिष ॥ ३७ ॥

तब हनुमान्जी नृदकर त्रिशिरान पास जा पहुँचे और वैसे क्षुपित सिंह गजराजको अपने पंजोंसे चीर डालता है, उसी प्रकार यंगसे भर हुए उन परनकुमारने त्रिशिरान भाँडे को अपने नंगोंसे विदीर्घ कर डाला ॥ ३७ ॥

अथ शर्विं समासाद्य कालरात्रिमिश्रातक ।

विश्लेषानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणाम्बज ॥ ३८ ॥

यह देख रावणकुमार त्रिशिराने गति हाथमें ली; मानो यमराजने कालरात्रिको साथ ले लिया हो; वह शक्ति लेकर उसने परनकुमार हनुमान्पर चलायी ॥ ३८ ॥

विषः क्षिप्तमिबोलका ता शर्विं क्षिप्तमसङ्कताम् ।

गृहीत्वा हरिशार्दूलो वभञ्ज च ननाद् च ॥ ३९ ॥

जैसे आकाशसे उल्लाघात हुआ हो; उसी प्रकार वह शक्ति, जिसकी गति कहीं कुण्ठित नहीं होती थी; चली, परन्तु वानरश्रेष्ठ हनुमान्जीने उसे अपने शरीरमें लगनेसे पहले ही हाथसे पकड़ लिया और तोड़ डाला; तोड़नेके बाद उन्होंने मयकर गजना की ॥ ३९ ॥

ता दृष्ट्वा घोरसकाशा शर्विं भग्ना हनुमता ।

प्रहृष्टा धानरगणा विनेदुर्जलदा यथा ॥ ४० ॥

हनुमान्जीने वह भयानक शक्ति तोड़ दी; वह देख वानर वृन्द अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो मैपोंके समान गम्भीर गजना करने लगे ॥ ४० ॥

तत खड्ग समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तम ।

निचखान तदा खड्ग धानरेद्रस्य वक्षसि ॥ ४१ ॥

तब राक्षसशिरोमणि त्रिशिराने तलवार उठायी और कपि-श्रेष्ठ हनुमान्जीकी छातीपर उसकी भरपूर चोट की ॥ ४१ ॥

खड्गप्रहारप्रभितो हनुमान् मारुतात्मजः ।

आजघान त्रिमूर्धान तलेनोरसि शीर्ययान् ॥ ४२ ॥

तलवारकी चोटसे घायल हो पराक्रमी परनकुमार हनुमान् ने त्रिशिराकी छातीमें एक तमाचा जड़ दिया ॥ ४२ ॥

स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्तायुधो भुवि ।

निपपात महातेजात्रिशिरास्त्यक्चेतनः ॥ ४३ ॥

उनका थप्पड़ लगते ही महातेजस्वी त्रिशिर अपनी चेतना खो बैठा । उसके हाथसे हथियार खिसक गया और वह स्वयं भी धूम्रवीर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

स तस्य पतत खड्ग तमाच्छिद्य महाकपिः ।

ननाद् गिरिसकाशस्यासयन् सर्वैरान्यसान् ॥ ४४ ॥

गिरते समय उस राक्षसने खड्गको छीनकर पर्वतगार महाकपि हनुमान्जी सेव राक्षसोंको भयभीत करते हुए जोर जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४४ ॥

अमृष्यमाणस्त घोषमुत्पपात निशाचर ।

उत्पत्य च हनुमन्त तादयामास मुष्टिना ॥ ४५ ॥

उनकी वह गर्जना उस निशाचरसे उगी नहीं गयी; अतः वह सहृष्ट उछलकर खड़ा हो गया । उठते ही उसने हनुमान् जीको एक मुका मारा ॥ ४५ ॥

तेन मुष्टिप्रहारेण सचुकोप महाकपि ।

क्षुपितश्च निजग्राह किरटि राक्षसपभम् ॥ ४६ ॥

उसने मुक्के की चोट खाकर महानपि हनुमानजीसे बड़ा क्रोध हुआ । कुपित होनेपर उन्होंने उस राक्षसका मुकुटमण्डित मस्तक पकड़ लिया ॥ ४६ ॥

स तस्य दीर्घाण्यसिना शितेन
किरीटजुषानि मकुण्डलानि ।

मुद्ध प्रविच्छेद सुतोऽनिलस्य
त्वष्टु सुतस्येशिरासि शक ॥ ४७ ॥

किर तो जैसे पूर्णचालमें इन्दने त्वणके पुत्र विश्वरूपके तीनों मस्तकोंका वज्रसे काट लिया था, उसी प्रकार कुपित हुए पवनपुत्र हनुमान्ने रावणपुत्र त्रिशिरुके कीरीट और कुण्डलोंछरित तीनों मस्तकोंको तीली तलवारसे काट डाला ॥

तान्पायताक्षाय्यगसनिभानि
प्रदीप्तवैभ्वानरलोचनानि ।
पेतु शिरासीन्द्ररिपो पृथिव्या
ज्योतीषि मुक्तानि यथाक्रममात् ॥ ४८ ॥

उन मस्तकोंकी सभी इन्द्रियों विशाल थीं । उनकी आँखें प्रज्वलित अग्निसे समान उड़ीत हो रही थीं । उस इन्द्रद्रोही त्रिशिरारूप के तीनों शिर उसी प्रकार पृथ्वीपर गिरे, जैसे आकाश से तारे टूटकर गिरते हैं ॥ ४८ ॥

तस्मिन् हते देवरिपो त्रिशीर्षे
हनूमता राजपराक्रमेण ।
नेतुं पृथगा प्रचाल भूमौ
रक्षास्यो दुदुषिरे समन्तात् ॥ ४९ ॥

देवद्रोही त्रिशिर जब इन्द्रतुल्य पराक्रमी हनुमानजीके हाथसे मारा गया, तब समस्त वानर हर्षनाद करने लगे, धरती धँपने लगी तथा राक्षस चारों दिशाओंकी ओर भाग चले ॥ ४९ ॥

हत त्रिशिरस दृष्ट्वा तथैव च महोदरम् ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षा देवान्तकनरातकौ ॥ ५० ॥
शुक्रोप परमार्थमी मघो राक्षसपुङ्गव ।
जग्राहार्चिष्मतां चापि गदा सयायसौ तदा ॥ ५१ ॥

त्रिशिर तथा महोदरको मार गया देख और दुःख बार देवान्तक पक्ष नयन्तारको भी बालके गालमें गया हुआ जान अमृत अमर्षशील राक्षसशिरोमणिमत (महापात्र) कुपित हो उठा । उसने एक तेजसिनी गदा हाथमें ली, जो सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई थी ॥ ५०-५१ ॥

हेमपट्टपरिक्षिता मासदोणितफेनिलाम् ।
विराजमाना निपुला दानुदोणिततपिताम् ॥ ५२ ॥
उत्तर मोनेरा पक्ष जण हुआ था । युद्धस्थलमें पहुँचने पर वह दानुओंके रक्त और मांसमें स्नान जाती थी । उसका आभार विशाल था । वह सुन्दर गंगासे सम्पन्न तथा दानुओं के रक्तसे वृत्त होनेवाली थी ॥ ५२ ॥

तेजसा सम्प्रणीताया रक्तमाल्यविभूषिताम् ।
पेरायतमहापद्मसावभौमभयावहाम् ॥ ५३ ॥

उसका अग्रभाग तेजसे प्रज्वलित होता था । वह लाल रंगने पूर्णसे सजायी गयी थी तथा ऐरावत, पुण्डरीक और सार्वभौम नामक दिग्गजोंसे भी भयभीत करनेवाली थी ॥ ५३ ॥

गदामादाय समुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गव ।
हरीन् समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ ५४ ॥

उस गदासे हाथमें लेकर कोपसे भर हुआ राक्षस-शिरोमणि मत्त (महापात्र) प्रलयनालकी अग्निसे समान प्रज्वलित हो उठा और वानरोंकी ओर दौड़ा ॥ ५४ ॥

अयर्पभ समुत्पत्य वानरां रावणानुजम् ।
मत्तानीकमुपागम्य तस्यै तस्याग्रतो यत्नी ॥ ५५ ॥

तब श्रमम नामक बलवान वानर उछलकर रावणके छोटे भाई मत्तानीक (महापात्र) के पास आ पहुँचे और उसके सामने पड़े हो गये ॥ ५५ ॥

त पुरस्तात् स्थित दृष्ट्वा वानर पर्वतोपमम् ।
आजघानोरसि मुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥ ५६ ॥

पर्वताकार वानरवीर श्रमभको सामने खड़ा देख कुपित हुए महापात्रोंने अपनी वज्रतुल्य गदासे उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ ५६ ॥

स तयाभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः ।
भिन्नवत्सा समाधूत सुस्त्राव रुधिर बहु ॥ ५७ ॥

उसकी उस गदाके आघातसे वानरशिरोमणि श्रमभका वक्षःस्थल क्षत विध्वत हो गया । वे कौंध उठे और अधिक मात्रामें खूनकी धारा बहाने लगे ॥ ५७ ॥

स सम्प्राप्य विगतः सञ्जामृपभो वानरेष्वत् ।
क्रुद्धो विस्फुरमापीष्यो महापादरमुदैक्षत ॥ ५८ ॥

बहुत देरके बाद होशमें आनेपर वानरराज श्रमभ कुपित हो उठे और महापात्रकी ओर देखने लगे । उस समय उनके ओठ फटकर रहे थे ॥ ५८ ॥

स वेगवान् वेगवद्भ्युपेत्य
त राक्षस वानरवीरमुप्य ।
सद्यत्थं मुष्टिं सहस्र जघान
यादन्तरे शैलनिकाशरूप ॥ ५९ ॥

वानरवीरोंमें प्रधान श्रमभका रूप पर्वतसे समान जान पड़ता था । वे बड़े वेगवादी थे । उन्होंने वेगवत्क उस राक्षसने पास पहुँचकर मुक्ता ताना और छद्म उसकी छातीपर प्रहार किया ॥ ५९ ॥

स हृत्तमूल सहसेन पुक्ष
क्षिती पपात क्षतजोक्षिताम् ।

ता चाम्य घोरा यमदण्डकरा

गदा प्रगृह्णातु तदा ननाद ॥ ६० ॥

फिर तो महापादर्व जड़से कटे हुए धृष्टकी भाँति सहा
पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसने सार अङ्ग रक्तसे नहा उठे । इधर
शृगभ उस निशाचरकी यमदण्डवे समान भयकर गदाको
धीम ही शपमें लेकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ६० ॥

मुहूर्तमास्तीत् स गतासुवत्प

प्रत्यागतात्मा सहसा सुरारिः ।

उत्पत्य स्वध्याध्रसमानवर्ण

स्त, वारिराज्ञात्मजमाजघान ॥ ६१ ॥

देवद्रोही महापार्वी दो पड़तीक मुदेंकी भाँति पड़ा रहा ।
फिर होद्यमें आनेपर वह सहसा उछलकर उड़ा हो गया ।
उसका रक्तस्त्रित शरीर सव्याकालके बादलोंने समान छाल
दिशामी देता था । उसने वरुणपुत्र शृगभको गहरी चोट
पहुँचायी ॥ ६१ ॥

स मूर्च्छितो भूमितले पपात

मुहूर्तमुत्पत्य पुन ससज्जः ।

तामेव तस्याद्रिवराट्टिकल्पा

गदा समाविष्य जघान सरये ॥ ६२ ॥

उस चोटवे शृगभ मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ।
दो पड़ती बाद होद्यमें आनेपर वे पुन उछलकर सामने आ
गये और उन्होंने मुद्रसलमें महापार्वीकी उली गदाको, जो
पिछी पर्वतराजकी चट्टानवे समान जान पड़ती थी, घुमाकर
उस निशाचरपर दे मारा ॥ ६२ ॥

सा तस्य रौद्रा समुपेत्य देह

रौद्रस्य देवाग्रनिप्रशयोः ।

विमेद घक्ष क्षतज च भूरि

सुघ्नान् धान्यम्भ इयाद्रिराज ॥ ६३ ॥

उसकी उस मयकर गदाने देवता, यक्ष और ब्राह्मणसे
घब्रुता रखनेगले उस रौद्र-राक्षसने शरीरपर जोड़ करके उसने

हत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मुद्रकाण्डे सप्ततितम सर्ग ॥ ७० ॥

एत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आपरामायणे आदिकाव्ये मुद्रकाण्डमें सप्ततिसर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

एकसप्ततितम सर्ग

अतिक्रयका भयकर युद्ध और लक्ष्मणके द्वारा उसका वध

स्वपल व्यथित दृष्ट्वा तुमुलं लोमहृण्यम् ।

भ्रातृथ निहतान् दृष्ट्वा दायमुद्वपराजमान् ॥ १ ॥

पितृष्वौ चापि स्रष्टव्य समरे सनिपातिती ।

युद्धो मत्त च मत्त च भ्रातरी राक्षसोत्तमी ॥ २ ॥

पुत्रोप च महातेजा प्रहृष्टचयरो युधि ।

वय खलतो त्रीणि कर दिया । फिर तो वेसे पतख

दिमाल्य गेद आदि धातुओंने मिला हुआ नल यशता है,

उसी प्रकार वह भी अचिर गजामें रक्त नहाने लगा ॥ ६३ ॥

अभिमुद्राव वेगेन गदा तस्य महात्मन ।

ता गृहीत्वा गदा भीमामागिष्य च पुन पुन ॥ ६४ ॥

मत्तानीक महात्मा स जघान रणमूर्धनि ।

उस समय उस राक्षसने महामना शृगभके हाथसे अपनी

गदा लेनेके लिये उनपर घावा किया, किंतु शृगभने उस

भयानक गदाको हाथमें लेकर चारतर घुमाया और बड़े वेगसे

महापार्वीपर आक्रमण किया । इस तरह उन महामनस्वी वानर

वीरने युद्धवे मुहानेपर उस निशाचरकी जीवन-लीला समाप्त

कर दी थी ॥ ६४ ॥

स स्वया गद्व्या भग्नो विशीर्णदशनक्षण ॥ ६५ ॥

निपपात तदा मत्तो वज्राहत इवाचल ।

अपनी ही गदाकी चोट खाकर महापार्वीके दाँत टूट

गये और आँखें फूट गयीं । वह वज्रके मारे हुए पर्वत शिखर

की भाँति तत्काल ध्वशायी हो गया ॥ ६५ ॥

विशीर्णतयने भूमौ गतसत्त्वे गतायुषि ।

पतिते राक्षसे तस्मिन् विद्रुत गक्षस यलम् ॥ ६६ ॥

जिधकी आँखें मग्न और चेतना विलस हो गयी थी,

वह राक्षस महापाश्व जय गतायु होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा,

तब राक्षसोंकी सेना छर ओर भाग चली ॥ ६६ ॥

तस्मिन् हते भ्रातरि राजणस्य

तनैश्चताना यलमर्णयाभम् ।

त्यकायुध केवलजीवितार्थ

दुद्राज भिक्षाणवसनिक्काशम् ॥ ६७ ॥

रावणके भाई महापार्वीका वध हो जानेपर राक्षसोंकी

यह समुद्रवे समान विशाल सेना हथियार फेंककर केवल जान

बचानेके लिये सब आर भागने लगी, मानो महासागर फूटकर

सब आर बहने लगा हो ॥ ६७ ॥

हत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मुद्रकाण्डे सप्ततितम सर्ग ॥ ७० ॥

एत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आपरामायणे आदिकाव्ये मुद्रकाण्डमें सप्ततिसर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

एकसप्ततितम सर्ग

अतिक्रयका भयकर युद्ध और लक्ष्मणके द्वारा उसका वध

स्वपल व्यथित दृष्ट्वा तुमुलं लोमहृण्यम् ।

भ्रातृथ निहतान् दृष्ट्वा दायमुद्वपराजमान् ॥ १ ॥

पितृष्वौ चापि स्रष्टव्य समरे सनिपातिती ।

युद्धो मत्त च मत्त च भ्रातरी राक्षसोत्तमी ॥ २ ॥

पुत्रोप च महातेजा प्रहृष्टचयरो युधि ।

अतिक्रयोऽद्रिसक्कातो देवदानवदर्पहा ॥ ३ ॥

अतिक्रयने देला, घब्रुओंने सोंपे लखे कर देनेवाली

मेरी मयकर सेना व्यथित हो उठी है, इन्द्रके श्रेष्ठ परक्रमी

मेरे भाइयोंका सहार हो गया है तथा मेरे चाचा—दनों भाई

युद्धोमत्त (महोदर) और मत्त (महापार्वी) भी समराग्रण

मं मार गिरये गये हैं, तब उस महातेजस्वी निशाचरको बड़ा प्रभ हुआ। उसे ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त हो चुका था। अनिराग परांतरे समान विनाशप्रय तथा देवता और जिनको दर्पका दहन करनेवाला था ॥ १-३ ॥

स भाम्बरसहस्रस्य सघातमिव भास्वरम् ।
अथमाहृष्ट शम्भारिभिर्दुद्राव वानरान् ॥ ४ ॥
यह इन्द्रका धनु था। उसने सखों सूर्यसे समूहकी भाँति देदीप्यमान तेजस्वी रथपर आरुढ़ होकर वानरोंपर आघात किया ॥ ४ ॥

स विस्मर्य तदा चाप क्रिरीटी मृष्टकुण्डलम् ।
नाम सन्धायामास ननाद् च महास्रनम् ॥ ५ ॥
उसने मन्त्ररपर क्रिरीट और कानोंमें गुद मुगधने बने हुए कुण्डल झलमला रहे थे। उसने धनुषकी गङ्गा करने भन्ना नाम सुनाया और रहे जोरने गन्ना की ॥ ५ ॥

तेन सिंहप्रणादेन नामनिधायणेन च ।
न्यासादेन च भीमेन प्रासयामास वानरान् ॥ ६ ॥
उस सिन्हादसे, अपने नामकी घोषणासे और प्रत्यक्षा की मयानक टङ्कारसे उसने वानरोंकी भयभीत कर दिया ॥ उसने दृष्टा देहमाहात्म्य कुम्भकर्णोऽयमुत्थित ।

भयात्ता वानरा सर्वे सन्धयन्ते परस्परम् ॥ ७ ॥
उसने शरीरकी विघाटता देखकर वे वानर ऐसा मानने लगे कि यह कुम्भकर्ण ही तिर उठकर लड़ा हो गया। यह शेषकर सब वानर भयने पीड़ित हो एक-दूसरेका सहाय देने लगे ॥ ७ ॥

ते तस्य रूपमालोक्य यथा निष्कोस्त्रिप्रियमे ।
भयाद् वानरयोधास्ते निग्रयन्ति ततस्तत् ॥ ८ ॥
त्रिविक्रम अवतारके समय बड़े हुए भगवान् विष्णुके विपुल रूपकी भाँति उलझ शरीर देखकर वे वानर-सैनिक भयने मारे इधर-उधर भागने लगे ॥ ८ ॥

तेऽतिशय भ्रमासाद्य वानरा मूढचेतसः ।
शरण्य शरणं जम्बूलक्ष्मणाप्रजमाह्वये ॥ ९ ॥
अविकारने निद्रा जाते ही वानरोंक चितपर मोह छा गया। वे मुदसलने लक्ष्मणके बड़े भाद शरणगतसल भगवान् भीरुमयी शरणमें गये ॥ ९ ॥

ततोऽतिशय कातुश्यो रथस्य परतोपमम् ।
ददर्श धन्येन दूराद् गन्त फालमेघरात् ॥ १० ॥
रथपर बैठे हुए पराताकार अनिरागको भीरुमन्त्रजीने भी देखा। वह हाथमें धनुष गिये कुछ दूरपर प्रत्यकाटके मेघकी भाँति गन्ना कर रहा था ॥ १० ॥

स त दृष्ट्वा महाकाय राघवस्तु सुप्रसित ।

वानरान् सान्त्वयित्वा च विभीषणमुवाच ह ॥ ११ ॥
उस महाकाय निशाचरको देवस्वर श्रीरामचन्द्रजीने भी बड़ा प्रिय हुआ। उन्होंने वानरोंको सन्त्वना देकर विभीषणसे पूछा— ॥ ११ ॥

कोऽसौ परंतस्काशो धनुष्मान् हरिलोचन ।
युगे ह्यसहस्रेण निशले म्यन्दने स्थित ॥ १२ ॥
‘विभीषण। हजार धनुओं जुते हुए निशाल रथपर बैठा हुआ वह परावानार निशाचर कौन है? उसका हाथमें धनुष है और आँखें सिन्हे समान तेजस्वी दिखायी देती हैं ॥ य एष निशितै शूलै सुतीक्ष्णै प्राप्तोमरै ।
अर्धेष्पद्विर्धुसो भाति भूतैरिव महेभ्यः ॥ १३ ॥

मह भूतोंसे घिरे हुए भूतनाथ महादेवजीने समान तीले शूल तथा अत्यन्त तेजधारवाला तेजस्वी प्राणों और तेमरोंसे घिरकर अद्भुत शोभा पा रहा है ॥ १३ ॥
कालजिह्वाप्रसाशाभिर्य एषोऽभिविराजते ।
आवृतो रघुशर्काभिर्विद्युद्विरिज तोषद् ॥ १४ ॥

इतना ही नहीं, काली बिजाने समान प्रकाशित होने वाली रघुशर्काओंसे घिरा हुआ यह वीर निशाचर विद्युत् मालाओंसे आवृत मेघक समान प्रकाशित हो रहा है ॥ १४ ॥
धनूषि चास्य सज्जानि हेमपृष्ठानि सर्वदा ।
शोभयन्ति रथधेष्ठ शङ्खापमिसाम्बरम् ॥ १५ ॥

जिनके पृष्ठभागमें सोने मड़े हुए हैं, ऐसे अनेकनेक सुश्रुत धनुष उसका भेद रथकी सब ओरसे उठी तरह शोभा बना रहे हैं, जैसे इन्द्रधनुष आकाशको सुशोभित करता है ॥ य एष रत्नशाले रणभूमिं विराजयन् ।
अभ्येति रथिना श्रेष्ठो रथेनादित्यवत्सा ॥ १६ ॥

मह राखलोंमें सिंहर समान पणक्री और रथियोंमें भेद वीर अपने सुखतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा रणभूमि की शोभा बढ़ाता हुआ मेरे सामने आ रहा है ॥ १६ ॥
ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेन राहुणाभिराजते ।
सूर्यरश्मिप्रमैवाणैर्दिशो दश विराजयन् ॥ १७ ॥

ध्वजके ध्वजके क्षिररथर पताकासे राहुका चिह्न अङ्कित है, जिनके रथकी बड़ी शोभा हो रही है। यह ध्वज की किरणोंक समान चमकील बाणोंसे दश दिशाओंका प्रकाशित कर रहा है ॥ १७ ॥
प्रितत मेघनिहाद् हेमपृष्ठमलटनम् ।
शतक्रतुधनुषस्य धनुषास्य विराजते ॥ १८ ॥

ध्वज धनुषका पृष्ठभाग छानेने मग हुआ तथा पुण्य आदिते अलङ्कृत है। वह अग्नि, मय और अन्त तीन स्थानोंमें धुका हुआ है। उसकी प्रत्यक्षाने मेघोंकी गन्नाक

इस बुद्धिमान् राक्षसे अपने बाणोंद्वारा इन्द्रके वज्रको भी क्रुशित कर दिया है तथा युद्धमें जल्के स्वामी उरुणके पाशको भी सफल नहीं होने दिया है ॥ ३४ ॥

एषोऽतिक्रायो बलवान् राक्षसानामथर्षभ ।
स राखणसुतो धीमान् देवदानवदर्पहा ॥ ३५ ॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ यह बुद्धिमान् राखणकुमार अतिक्राय बड़ा बलवान् तथा देवताओं और दानवोंके दण्डको भी दलन करने वाला है ॥ ३५ ॥

तदस्मिन् त्रियता यत्न क्षिप्र पुरुषपुङ्गव ।
पुरा घानरसैन्यानि क्षय नयति सायकैः ॥ ३६ ॥

‘पुरुषोत्तम । अपने सायकोंसे यह सारी बानर-सेनाका संहार कर डाले; इसके पहले ही आप इस राक्षसको परास्त करनेका शीघ्र प्रयत्न कीजिये’ ॥ ३६ ॥

ततोऽतिक्रायो बलवान् प्रविश्य हरिचाहिनीम् ।
विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुन पुन ॥ ३७ ॥

बिभीषण और भगवान् श्रीराममें इस प्रकार बातें हो रही थी कि बलवान् अतिक्राय बानरोंकी सेनामें घुस आया और बारबार गर्जना करता हुआ अपने धनुषपर टकार देने लगा ॥ ३७ ॥

त भीमजपुष इष्ठा रथस्थ रयिना धरम् ।
अभिप्रेतमहात्मान प्रधाता ये जनैकसः ॥ ३८ ॥
कुसुदो द्विर्विदो मैन्दो नील शरभ पथः ॥
पादपैर्गिरिद्वैभ्यः युगपत् समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ और मयकर घड़ीवाले उस राक्षसको रथपर बैठकर अते दल कुसुदः द्विविदः, मैन्दः, नील और शरभ आदि जो प्रधान प्रधान महामन्त्री बानर थे, वे बृद्ध तथा पर्वतशिखर धारण किये एक साथ ही उसपर दूट पड़े ॥ ३८ ३९ ॥
तेषां वृक्षाश्च दौलाश्च शरैः वनकभूषणैः ।
अतिक्रायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रपादा धरः ॥ ४० ॥

परतु अखवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिक्रायने अपने वृणभूषित बाणोंसे बानरोंके चलाये हुए वृक्षों और पर्वत शिखरोंको काट गिराया ॥ ४० ॥

ताश्चैव सर्वान् स हरीश्वरैः सजायसैवली ।
त्रिध्याधाभिमुत्तान् सत्ये भीमभायो निशाचरः ॥ ४१ ॥

साथ ही उस बलवान् और भीमभाव निगाचरने युद्ध सार्लमें सामने आये हुए उन समस्त बानरोंको लोहके बाणोंसे धीप डाला ॥ ४१ ॥

तेऽर्दिता याणवर्णेन भिन्नगान्धरा परानिता ।
न शेनुरतिक्रायस्य प्रतिकर्तुं महाहये ॥ ४२ ॥

उसकी बाणवर्णसे आहत हो करने घटते क्षत-विघ्न हो

गये । करने हार मान ली और कोई भी उस महासमरमें अतिक्रायका सामना करनेमें समर्थ न हो सके ॥ ४२ ॥

तत् सैन्य हरिवीराणां प्रासयामास राक्षसः ।
भृगयूथमित्र क्रुद्धो हरिर्यवनदर्पितः ॥ ४३ ॥

जैसे बानाजीके बोधसे मया हुआ कुपित सिंह मृगोंके झुंडको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार वह राक्षस बानर वीरोंकी उस सेनाको प्रास देने लगा ॥ ४३ ॥

स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये
नायुध्यमान निजघान कचिद् ।
उत्पत्य राम स धनुःकलापी
सर्गर्षित वान्यमिदं वभाषे ॥ ४४ ॥

बानरोंके झुंडमें विचरते हुए राक्षसराज अतिक्रायने किसी भी ऐसे योद्धाको नहीं मारा, जो उसके साथ युद्ध न कर रहा हो । धनुष और तरफ़स धारण किये वह निशाचर उछलकर श्रीरामके पास आ गया तथा बड़े गर्तेसे इस प्रकार बोला— ॥ ४४ ॥

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणि
नं प्राट्ट कचन योधयामि ।
यस्यास्ति शक्तिर्यवसापयुक्तो
ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ४५ ॥

मैं धनुष और बाण लेकर रथपर बैठा हूँ । किसी साधारण प्राणीसे युद्ध करनेका मेरा विचार नहीं है । जिसके अंदर शक्ति हो; साहस और उत्साह हो; वह शीघ्र यहाँ आकर मुझे युद्धका अवसर दे ॥ ४५ ॥

तत् तस्य धान्यं ह्युपतो निशम्य
चुकोप सोमित्रिरिमिहन्ता ।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात
जग्राह चाप च तत स्तयित्वा ॥ ४६ ॥

उसके ये अहंकारपूर्ण वचन सुनकर धनुर्हस्ता सुमित्रा कुमार लम्पणकी वड़ा क्रोध हुआ । उसकी बातोंको सहेन न कर सकनेके कारण वे आगे बढ़ आये और किंचित् मुस्कराकर उन्होंने अपना धनुष उठाया ॥ ४६ ॥

कुद्ध सौमित्रिरुत्पत्य तूणादक्षिप्य सायकम् ।
पुस्त्यादतिक्रायस्य विचर्क्य महश्चतुः ॥ ४७ ॥

क्रुपित हुए लम्पण उछल कर आगे आये और तरफ़से बाण खींचकर अतिक्रायने सामने आ अपने विद्यान् धनुषको खींचने लगे ॥ ४७ ॥

पूरयन् स महौ सजामाश्रय सागर दिशः ।
ज्याग्रदो लक्ष्मणस्योग्रआसयन् रजनीयान् ॥ ४८ ॥
लक्ष्मणके धनुषकी प्रत्यक्षाया वह शब्द बड़ा मरफ़फ़

समान उकार ध्वनि प्रकट होती है। इस निशाचरका धनुष
इन्द्र धनुषके समान शोभा पाता है ॥ १८ ॥

सध्वज सपताकश्च सानुकर्णो महारथः ।
चतुर्साधिसमायुक्तो मेघस्तनितनिम्बज ॥ १९ ॥

‘इसका विशाल रथ ध्वजा, पताका और अनुकर्ण (रथके
नीचे लगे हुए आधारभूत काष्ठ) से युक्त, चार साधियोंसे
नियन्त्रित और मेघकी गजनाके समान धर्पणहट पैदा
करनेवाला है ॥ १९ ॥

विंशतिर्दश चाष्टौ च द्वाणाम्य रथमास्थिता ।
कार्मुकाणि च भौमानि ज्याश्च काञ्चनपिङ्गला ॥ २० ॥

‘इसके रथपर बीस तरुण, दस भयंकर धनुष और
आठ मुनहर एवं पिङ्गलवर्णकी प्रत्यक्षाएँ रची हुई हैं ॥ २० ॥

द्वौ च खड्गौ च पार्श्वस्थौ प्रदीप्तौ पार्श्वशोभितौ ।
चतुर्हस्तैस्तत्त्वचितौ व्यक्त्वस्तवशायतौ ॥ २१ ॥

‘दोनों बगलों को चमकीली तलवारें बोभा पा रही हैं,
जिनकी मूँटें चार हाथकी और लबाई दस हाथकी है ॥ २१ ॥

रक्तकण्ठगुणो धीरो महापर्णतन्निभ ।
काल कालमहावक्त्रो मेघस्थ इव भास्करः ॥ २२ ॥

‘गलेमें लाल रंगकी माला धारण किये महान् पर्वतके
समान आकारवाला यह धीरवीर निशाचर काले रंगका दिखामी
देता है। इसका बिनाल मुख कालके मुखके समान भयंकर
है तथा यह मेघोंकी आगमें स्थित हुए सूर्यके समान प्रकाशित
होता है ॥ २२ ॥

काञ्चनाङ्गुलनखाभ्या भुजाभ्यामेव शोभते ।
शृङ्गाभ्यामिव शृङ्गाभ्या हिमशान् पर्वतोत्तम ॥ २३ ॥

‘इसकी बाँहोंमें सोनेके बाणूद बंधे हुए हैं। उन
मुण्डोंके द्वारा यह विशालकाय निशाचर दो ऊँचे शिखरोंसे
युक्त गिरिराज हिमालयके समान शोभा पाता है ॥ २३ ॥

कुण्डलाभ्यामुभाभ्या च भाति वक्त्रं सुभीषणम् ।
पुनर्नसन्तरगत परिपूर्णो निशाचरः ॥ २४ ॥

‘इसका अत्यन्त भीषण मुखमण्डल दोनों कुण्डलोंसे
मण्डित हो पुनर्वसु नामक दो नद्योंके बीच स्थित हुए परिपूर्ण
चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा है ॥ २४ ॥

आचक्ष्य मे महाबाहो त्वमेव राक्षसोत्तमम् ।
य दृष्ट्वा यानरा सद्य भयाता जिह्वा दिश ॥ २५ ॥

‘महाबाहो! त्वम मुझे इस श्रेष्ठ राक्षसका परिचय दो,
जिसे देखते ही सब यानर भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर
भाग चले हैं’ ॥ २५ ॥

स पृष्ठो राजपुत्रेण रामेणाभितवेजसा ।
आचक्षते महातेजा राघवाय विभीषण ॥ २६ ॥

अभित तजम्भी राजगुहार श्रीरामने इह प्रकार पृष्ठनेपर
महातेजवी विभीषणने रघुनाथजीसे इस प्रकार कहा—॥ २६ ॥

दशप्रभिवो महातेजा राजा वैश्रवणानुन ।
भीमरुमा महात्मा हि रावणो राक्षसेश्वर ॥ २७ ॥
तस्यासीद् वीर्यवान् पुत्रो रावणप्रतिमो वले ।
वृद्धसेवी श्रुतिधर सर्वास्त्रविदुषा वर ॥ २८ ॥

‘भगन्! जो कुनेका छाटा भाई, महातेजवी, महा
काय, भयानक कर्म करनेवाला तथा राक्षसोंका स्वामी दशमुख
राजा रावण है, उसने एक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ,
जो वरुण रावणन ही समान है। वह वृद्ध पुरुषोंका सेवन
करनेवाला, वेद शास्त्रोंका शाता तथा सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें
श्रेष्ठ है ॥ २७-२८ ॥

अश्वपृष्ठे नागपृष्ठे खड्गे धनुषि कर्णेन ।
मेघे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च सम्मत ॥ २९ ॥

‘हाथी घाँड़ोंकी सवारी करने, तलवार चलाते, घटुपर
बाणोंका संभाल करने, प्रत्यक्षा प्राप्त करने, लक्ष्य बेचने, काम
और दानदा प्रयोग करने तथा न्याययुक्त बर्तन एवं मन्त्रणा
देनेमें यह सबके द्वारा सम्मानित है ॥ २९ ॥

यस्य बाहु समाधित्य लब्धा भवति निर्मया ।
तनय धान्यमालिन्या अतिकायमिमं त्रिगु ॥ ३० ॥

‘उसीके बाहुबलका आश्रय लेकर लब्धपुत्री सदा निर्मय
रहती आयी है। वही यह धीर निशाचर है। यह रावणकी
दुसरी पत्नी धान्यमालिनीका पुत्र है। इसे लोग अतिकायके
नामसे जानते हैं ॥ ३० ॥

एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भाषितात्मना ।
अस्त्राणि चाप्ययास्तानि रिपयश्च पराजिता ॥ ३१ ॥

‘तपस्यासे विगुद अन्त करणवाले इस अतिश्रयने दीर्घ
कालतक ब्रह्माजीकी आराधना की थी। इतने ब्रह्माजीसे अनेक
दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं और उनके द्वारा बहुतसे शत्रुओंको
पराजित किया है ॥ ३१ ॥

सुरासुरैरव्ययत्वं दत्तमस्मै स्वयमुषा ।
पतश्च कथञ्च दिव्य रथश्च रविभास्वर ॥ ३२ ॥

‘ब्रह्माजीने इसे देवताओं और असुरोंसे न मारे बनेका
वरदान दिया है। ये दिव्य कच और सूर्यके समान तेजस्वी
रथ भी उन्हींसे दिये हुए हैं ॥ ३२ ॥

एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिता ।
रक्षितानि च रक्षासि यदाश्वापि निपूदिता ॥ ३३ ॥

‘इसने देवता और दानवोंका उन्हीं के द्वारा पराजित किया
है, राक्षसोंकी रक्षा की है और यज्ञोंको मार भगाया है ॥

यज्ञ विष्टम्भित येन वाणैरिन्द्रस्य धीमता ।
पाश सलिलपञ्जस्य युद्धे प्रतिहतस्तथा ॥ ३४ ॥

इस बुद्धिमान् राक्षसे अपने बाणोंद्वारा इन्द्रके वज्रको भी कुण्ठित कर दिया है तथा युद्धमें जल्के स्वामी वरुणके पादाको भी सफल नहीं होने दिया है ॥ ३४ ॥

एयोऽतिकायो बलवान् राक्षसानामधर्मम् ।
स रात्रणस्तुतो धीमान् देववानन्दर्पहा ॥ ३५ ॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ यह बुद्धिमान् रात्रणस्मर अतिवाय बड़ा बलवान् तथा देवताओं और दानवोंके दण्डको भी दहन करने वाला है ॥ ३५ ॥

सदस्मिन् म्रियता यक्ष क्षिप्र पुरुषपुङ्गव ।
पुरा वानरसैन्यानि क्षय नयति सायकै ॥ ३६ ॥

‘पुरुषोत्तम ! अपने सायकोंसे यह सारी वानर-सेनाका संहार कर डाले, इसके पहले ही आप इस राक्षसको पराजित करनेका शीघ्र प्रयत्न कीजिये’ ॥ ३६ ॥

ततोऽतिकायो बलवान् प्रविश्य हरिवाहिनीम् ।
विस्फारयामास धनुर्ननाद् च पुन पुन ॥ ३७ ॥

निमीयण और भगवान् श्रीराममें इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि बलवान् अतिरुम वानरोंकी सेनामें घुस आया और बार-बार गजना करता हुआ अपने धनुषपर टकार देने लगा ॥ ३७ ॥

त भीमवपुष इष्टा रथस्थ रथिना वरम् ।
अभिपेतुमहात्मान प्रधाता ये वनौकस ॥ ३८ ॥
कुमुदो द्विविधो मैन्दो नील शरभ एव च ।
पादपैर्गिरिद्वैष्टश्च युगपत् समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ और मजबूत शरीरवाले उस राक्षसके रथपर बैठकर आते देख कुमुद, द्विविध, मैन्द, नील और शरभ आदि जो प्रधान प्रधान महामनस्वी वानर थे, वे वृक्ष तथा पर्वतशिखर धारण किये एक साथ ही उधर दूट पड़े ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

तेषां वृक्षाश्च शैलाश्च शरैः कनकभूषणैः ।
अतिकायो महातेजाश्छिद्येदास्त्रनिद्रा वर ॥ ४० ॥

परन्तु अजनेवाओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिवायने अपने सुवर्णभूषित बाणोंसे वानरोंके कल्याण हुए वृक्षों और पर्वत-शिखरोंको काट गिराया ॥ ४० ॥

ताश्चैव सयान् स हरिश्चरैः सत्रायसैवली ।
विश्याधामिमुखान् सत्ये भीमकायो निशाचर ॥ ४१ ॥

साथ ही उस वलवान् और मीनकाय निशाचरने युद्ध स्थलमें सामने आये हुए उन समस्त वानरोंका लोहके बाणोंसे पीछे धाला ॥ ४१ ॥

तेऽर्दिता बाणजर्णेन भिन्नगात्रा पराजिता ।
न दोषुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महाहवे ॥ ४२ ॥

उसकी बाणजरोसे आहत हो सत्र शरीर छत्र-विघ्न हो

गये । सत्रने शर मान ली और कोढ़ भी उस महास्मरमें अतिवायका सामना करनेमें समर्थ न हो सके ॥ ४२ ॥

तत् सैन्य हरिवीराणां श्रासयामास राक्षस ।
मृगयूयमित्रं क्रुद्धो हरिर्यावनदर्पित ॥ ४३ ॥

जैसे जवानोंके जोशसे मरा हुआ कुपित सिंह मृगोंके झुंडको मयभीत कर देता है, उसी प्रकार वह राक्षस वानर वीरोंकी उस सेनाको श्रास देने लगा ॥ ४३ ॥

स राक्षसेन्द्रो हरियूयमध्ये
नायुच्यमान निजधानं कवित् ।

उत्पत्य रामं स धनु कलापी
सगवित् वाक्यमिदं यभापे ॥ ४४ ॥

वानरोंने झुंडमें विचरते हुए राक्षसरज अतिवायने किसी भी ऐसे योद्धाको नहीं मारा, जो उधरे साथ युद्ध न कर रहा हो । धनुष और तरकश धारण किये वह निशाचर उछलकर श्रीरामके पास आ गया तथा बड़े गर्जने इस प्रकार बोला— ॥ ४४ ॥

रथे स्थितोऽहं शरव्यापपाणि
न प्राकृतं कचन योधयामि ।

यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो
वदातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ४५ ॥

मैं धनुष और बाण लेकर रथपर बैठा हूँ । किसी काषाण प्राणीसे युद्ध करनेका मेरा विचार नहीं है । जिसके अंदर शक्ति हो, साहस और उत्साह हो, वह शीघ्र यहाँ आकर मुझे युद्धका अवसर दे’ ॥ ४५ ॥

तत् तस्य चाक्ष्यं ब्रुवतो निशम्य
शुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता ।

अमृष्यमाणश्च समुत्पपात
जग्राह वापं च ततः सयित्वा ॥ ४६ ॥

उसके ये अहंकारपूर्ण वचन सुनकर शत्रुहन्ता सुमित्रा कुमार लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ । उसकी शर्तोंकी छह न कर सकनेके कारण वे आगे बढ़ आये और निचिन् मुस्कराकर उन्होंने अपना धनुष उठाया ॥ ४६ ॥

क्रुद्ध सौमित्रिरुत्पत्य तूष्णाक्षसिन्धु सत्यकम् ।
पुरस्तादतिकायस्य विचर्क्य महद्भुत् ॥ ४७ ॥

कुपित हुए लक्ष्मण उछलकर आगे आये और तरकशसे बाण खींचकर अतिवायके सामने आ अरने विशाल धनुषके खींचने लगे ॥ ४७ ॥

पूरयन् स महौ सगामाकाशं सागरं दिशः ।
ज्याशान्द्रो लक्ष्मणम्योग्रक्रासयन् रजनीचरान् ॥ ४८ ॥

लक्ष्मणने धनुषकी प्रत्यक्षाका वह शब्द बड़ा मजबूत



या । यह सारी पृथ्वी, आकाश, समुद्र तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें
गूँज उठा और निशाचरोंको त्रास देने लगा ॥ ४८ ॥

सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभय तदा ।
विसिसिम्हये महातेजा राक्षसे द्राम्बजौ बली ॥ ४९ ॥

सुमिश्रातुमारक धनुषकी वह मयानक टकार सुनकर उस
समय महातेजस्वी बलजान् राक्षसराजकुमार अतिकायको बढ़ा
निसंग हुआ ॥ ४९ ॥

तदातिकायं कुपितो द्यूषा लक्ष्मणमुत्थितम् ।
आदाय निशितं घाणमिव घचनमप्रग्रीत् ॥ ५० ॥

लक्ष्मणको अपना सामना करनेके लिये उठादेख अतिकाय
रोषसे भर गया और तीखा बाण हाथमें लेकर इस प्रकार
बोला— ॥ ५० ॥

बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्पविकक्षण ।
गच्छ किं कालसकाशं मा योधयितुमिच्छसि ॥ ५१ ॥

‘सुमित्राकुमार ! तुम अभी बालक हो । पराक्रम करनेमें
कुशल नहीं हो, अतः लौट जाओ । मैं तुम्हारे लिये बालके
समान हूँ । मुझसे बहनेकी इच्छा क्यों करते हो ? ॥ ५१ ॥

नहि मद्राडुच्छाना घाणाना हिमयानपि ।
सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिक्षमयो मही ॥ ५२ ॥

भरे हाथसे छूट हुए बाणोंका वेग गिरिराज हिमालय भी
नहीं सह सकता । पृथ्वी और आकाश भी उसे नहीं सहन कर
सकते ॥ ५२ ॥

सुखप्रसुप्तं कालान्तिं त्रियोधयितुमिच्छसि ।
न्यस्य चापं निवर्तस्य प्राणाग्नं जहि ममृतः ॥ ५३ ॥

सुप्त सुखसे सोयी (शान्त) हुई प्रत्यात्मिको क्यों जगाना
(प्रजगलित करना) चाहते हो ? धनुषको यहीं छोड़कर लौट
जाओ । मुझसे भिड़कर अपने प्राणोंका परित्याग न करो ॥

अथवा त्वं प्रतिस्त्थो न निवर्तितुमिच्छसि ।
तिष्ठ प्राणान् परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥ ५४ ॥

‘अथवा तुम बड़े अहंकारी हो, इसीलिये लौटना नहीं
चाहते । अच्छा, लड़ें रहो । अभी अपने प्राणोंसे हाथ धोकर
यमलोककी यात्रा करोगे ॥ ५४ ॥

पदय मे निशितान् याणान् रिपुवर्पनिपूदनाम् ।
इक्ष्वायुधसकाशास्तसकाञ्चनभूषणान् ॥ ५५ ॥

‘शत्रुओंका दर्प चूष करनेवाले मेरे इन तीखे बाणोंको,
सो तपे हुए सुवर्णसे भूषित हैं, देखो ये भगवान् धँकरके
त्रिशूलकी समानता करते हैं ॥ ५५ ॥

एष ते सप्तसकाशो याणं पास्यति शोणितम् ।
मृगराज इव मुञ्चो नागराजस्य शोणितम् ।
इत्येवमुक्त्वा सहृदं शरं धनुषि सद्धे ॥ ५६ ॥

जैसे कुपित हुआ सिंह गजराजका खून पीता है, उसी
प्रकार यह सपौके समान मयकर बाण तुम्हारे रक्तका पान
करेगा । ऐसा कहकर अतिरागसे अत्यन्त कुपित हो अपने धनुष-
पर बाणका सजान किया ॥ ५६ ॥

श्रुत्वातिकायस्य घचं सरोषं
सगर्हितं सयति राजपुत्र ।
स सचुकोपातियलो मनस्वी
उवाच चाप्ययं च ततो महार्थम् ॥ ५७ ॥

सुदृढखलमें अतिकायके रोष और गर्भे भरे हुए इस
वचनको सुनकर अत्यन्त बलशाली एवं मनस्वी राजकु
ल्लक्ष्मणको बढ़ा क्रोध हुआ । ये यह महान् अर्थसे युक्त व
बोले— ॥ ५७ ॥

न चाक्रममात्रेण भवान् प्रधानो
न कृत्यनात् सत्पुरुषा भवन्ति ।
मयि स्थिते धन्विनि घाणपाणौ
निदर्शयस्वात्मनः पुरात्मनः ॥ ५८ ॥

‘पुरात्मन् ! केवल बाणों बनानेसे तुम्हारा नहीं हो सकत
सिर्फ ईश्वर होनेसे कोई अस्त्र पुरुष नहीं होता । मैं हाथमें धनु
और बाण लेकर तेरे सामने खड़ा हूँ । तुम्हें अपना सारा
मुझे दिखा ॥ ५८ ॥

कमणा स्वयात्मानं न विकल्पितुमर्हसि ।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ ५९ ॥

‘पराक्रमके द्वारा अपनी वीरताका परिचय दे । दूरीसे
बचाना तेरे लिये उचित नहीं है । शूर यही माना गया
जिसमें पुरुषार्थ हो ॥ ५९ ॥

सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः ।
शरैर्वा यदि चाप्यस्त्रैर्दशयस्य पराक्रमम् ॥ ६० ॥

खैरे पास सब तरहके हथियार मोज़द हैं । तु धनुष लेकर
रथपर बैठना हुआ है अतः बाणा अथवा अन्य अस्त्र-शस्त्रों
द्वारा पहले अपना पराक्रम दिखा ले ॥ ६० ॥

ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः ।
मादतः कालसम्पत्तयं वृत्तात् तालफलं यथा ॥ ६१ ॥

‘उसके बाद मैं अपने तीरों बाणोंसे तेरा मस्तक ठर
तपड़ काट गिराऊँगा, जैसे चायु फाल्गुनमें पड़े हुए ताड़के
फलको उसके वृत्त (बौंदी) से नीचे गिरा देती है ॥ ६१ ॥

अथ ते मामका याणस्तसकाञ्चनभूषणा ।
पास्यन्ति रक्षिरागाश्च याणशल्यान्तरोत्थितम् ॥ ६२ ॥

‘आज तपे हुए सुवर्णसे भूषित मेरे बाण अपनी नोक
द्वारा किंचे गये छिद्रसे निरुल हुए, तेरे शरीरके रक्तका पान
करेंगे ॥ ६२ ॥

बालोऽयमिति निशायं न चात्राशानुमर्हसि ।
बालो वा यदि वा धृष्टो मृत्युं जानीहि सयुगे ॥ ६३ ॥

तु मुने बालक जानकर नेरी अगरेल्ला न कर । मैं
बालक हाऊँ अथवा बुद्धः समानने ता तू मुने अन्ना कल ही
समस्त ल ॥ ६२ ॥

यानेन विष्णुना लोकास्त्रयं वान्तास्त्रिविधमै ।
लक्ष्मणस्य च यं धुन्वा हेतुमतं परमार्थतत् ।
अनिकायं प्रसूकोप याण चोत्तममाददे ॥ ६४ ॥

धामनरूपधारी भगवान् विष्णु देवनेनें बालक ही ये
किंतु अपने तीन ही पगोंने उन्होंने सच्ची विलेकी नारली
ही । लक्ष्मणकी वह परम सत्य और सुसि युक्त बात सुनकर
अनिकायक ब्राह्मणी सीमा न रही । उसने एक उत्तम बात अपने
हाथमें ल लिया ॥ ६४ ॥

ततो विद्याधरा भूता देवा दैत्या महर्षयः ।
गुह्यकाश्च महामानस्तद् युद्धं द्रष्टुमागमन् ॥ ६५ ॥

तदनन्तर निद्याधर, ब्रूतः, देवता, दैत्यः, महर्षि तथा
महामना गुह्यका तथा युद्धका देखनेके लिये अये ॥ ६५ ॥

ततोऽनिकायं कुपितश्चापमारोप्य सायकम् ।
लक्ष्मणाय प्रविक्षेय सन्निपत्तिर चाभ्यरम् ॥ ६६ ॥

उस समय अनिकायने कुपित ॥ धनुषपर वह उत्तमकाय
बाणों और आकाशका अन्ना प्राग्वतने हुए-से उने लक्ष्मण
पर चला दिया ॥ ६६ ॥

तमापतन्त निशित शरमाशीविशेषमम् ।
अथचक्रेण चिच्छेद् लक्ष्मणं परवीरहा ॥ ६७ ॥

किंतु धनुषाणोंका सवार करनेवाले लक्ष्मणने एक अत्र
चन्द्राकार बाणों द्वारा अपनी अर आते हुए उस निशपर
सर्पके तुल्य भाल पर टोके बाणको काट डाला ॥ ६७ ॥

त निहृत् शर दृष्ट्वा हृत्तभोगमिरोत्तरम् ।
अनिकायो भूदा मुञ्च पञ्च याणान् समादधे ॥ ६८ ॥

वैत सर्वना पत्र कट बाण, उली प्रकार उस बाणों
सन्निहत हुआ देव अत्यन्त कुपित हुए अनिकायने पाँच
बाणोंका धनुषपर रक्ता ॥ ६८ ॥

तान्द्रारान् सम्प्रविशेय लक्ष्मणाय निदाचर ।
तनप्राताश्चिन्तैयार्णश्चिच्छेद् भरतानुत्त ॥ ६९ ॥

किर उस निदाचरने लक्ष्मण ही वे पाँचों बाण चला
दिये । वे बाण उनका स्त्रीय अमी अने भी नहीं पाये थे कि
लक्ष्मणने तीनों सायकोंने उनके डुकड़-डुकड़े कर डाला ॥ ६९ ॥

स तान्छित्वा शितैयार्णलक्ष्मणं परवीरहा ।
आददे निशित याण ज्वलन्तमित्र तेजसा ॥ ७० ॥

धनुषीणोंका सवार करनेवाले लक्ष्मणने अपने पेंने
सायकोंने उन बाणोंका लक्ष्मण करनेके पञ्चान् एक तब बा
हाथमें लिया था अपने पैने प्रवर्धित-का हा रहा था ॥ ७० ॥

तमादाय धनुष्येष्टे योजयामास लक्ष्मणः ।
विचक्ष्य च वेगेन विसर्जनं च सायकम् ॥ ७१ ॥

उने लेकर लक्ष्मणने अपने श्रेष्ठ धनुषपर रक्ता; उसकी
प्रत्यक्षात्ती लींचा और बड़ बगने वह सायक अनिकायपर
छाड़ दिया ॥ ७१ ॥

पूनायतविसृष्टेन शरेण नतपश्या ।
ललाटे राक्षसश्रेष्ठमापशान स वीरयान् ॥ ७२ ॥

धनुषका पूनायने लींचकर छाड़ गये तथा छुकी हुई
गोंडवाले उस बाणों द्वारा पराक्रमी लक्ष्मणने राक्षसश्रेष्ठ
अनिकायक ललाटेमें गहरा आगम किया ॥ ७२ ॥

स ललाटे शरो भग्नस्तस्य भीमस्य रम्भस ।
दृष्ट्वा शोणितेनाक्षं पन्नगेन्द्र इवाचले ॥ ७३ ॥

वह बात उस भयानक राक्षस ललाटेमें घँस गया और रक्ते
मोंगकर पन्नगेने सरे हुए किसी नागराजक समान दिखायी
दने लगा ॥ ७३ ॥

रम्भसं प्रचक्ष्मेऽयं लक्ष्मणोऽनुपपीडितः ।
रुद्रयाणहतं पौत्रं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥ ७४ ॥

चिन्तयामास चाभ्यस्य त्रिमृदयं च महाबलः ।
लक्ष्मण बाले अत्यन्त पीडित हा वह राक्षस बाँप
उठा । ठीक उही तरह जैसे मयवान् रुद्रका बाणोंमें आहत
हो त्रिपुरका भाल पर गणपुर हिल उठा था । किर थोड़ी ही
देरमें संपलकर महाबली अनिकाय बड़ी चिन्तामें पड़ गया
और कुछ साच-विचारकर बोला— ॥ ७४ ॥

साधु यागनिपातेन श्लाघनीयोऽसि मे रिपु ॥ ७ ॥
विधायिव विदयास्य त्रिमयं च महामुनी ।
स रथोपम्यमास्याय रथेन प्रगचार ह ॥ ७६ ॥

श्लाघा । इस प्रकार अमोघ बाणोंका प्रयोग करनेके
कारण तुम मेरे स्तुतनीय धनु हा । मैं मुँह फैलाकर ऐसा कहनेके
पश्चात् अनिकाय अपनी दानों विशाल मुवाभोंको बाढ़ने
करके रथक पिंडा मानने बैठकर उस रथक द्वारा ही आगे
बढ़ा ॥ ७ ७६ ॥

एव श्रीन् पञ्च सतेति सायकान् राक्षसप्रभ ।
आददे सद्धे चापि विचक्ष्योऽसतन च ॥ ७७ ॥

उस राक्षसप्रभणी बीरने क्रमशः एक, तीन, पाँच और
छन सायकोंको लेकर उढ़े धनुषपर चला और बगलक
लींचकर चला दिया ॥ ७७ ॥

ते याणां कलसकक्षा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युता ।
हेमपुङ्खा रत्रिप्रस्थाधनुर्नूतमिवाभ्यरम् ॥ ७८ ॥

उस राक्षसप्रभ धनुषने छूट हुए उन धनुष-द्वारा,
सुलतुल्य तेजस्वी तथा कालक समान भाल पर बाणों आकाश
का प्रकाशने पुनः कर दिया ॥ ७८ ॥

ततस्तान् राक्षसोऽसुराश्चरौघान् रात्रिबानुज ।

असम्भ्रात प्रचिच्छेद् निशितैर्बहुभिः शरैः ॥ ७९ ॥

परन्तु रघुनाथजीने छोटे माइ लक्ष्मणने बिना किसी भयराहटने उस निशाचरद्वारा चलाय हुए उन बाणलम्पोंका तेज धारवाले यक्षस्यस्य सायनोंद्वारा काट गिराया ॥ ७९ ॥

ताम्बशरान् युधि सम्प्रेक्ष्य निवृत्तान् रात्रिमात्रज ।

चुम्बोप चिदशेऽद्वारिजग्राह निशित शरम् ॥ ८० ॥

उन बाणोंको रग हुआ दल इन्द्रोद्दी रात्रिजुमारकी बड़ा मोघ हुआ और उसने एक तीखा बाण हाथमें लिया ॥

स संधाय महातेजास्त बाण सहस्रोऽसृजत् ।

तेन सौमित्रिमाया तमाजघात स्तनान्तरे ॥ ८१ ॥

उसे धनुषपर रखकर उस महातेजस्वी चारने सहस्र छोड़ दिया और उतक द्वारा सामने आते हुए सुमित्राकुमारकी छातीमें अघात किया ॥ ८१ ॥

अतिशयेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि ।

सुस्त्रात्र रुधिर तीव्र मद मत्त इव हिप ॥ ८२ ॥

अतिशयने उस बाणकी चार लातर सुमित्राकुमार मुदस्थलमें अपने वक्षस्थलमें तीव्रगतिने रक्त पड़ाने लगे, मानो कोई मतवाला हाथी मत्तफने मदकी वषा कर रहा हो ॥ ८२ ॥

स चकार तद्गमानं विशल्य सहसा विभु ।

जग्राह च शर तीक्ष्णमखेणापि समाददे ॥ ८३ ॥

किर सामन्पाली लक्ष्मणने सखा अपनी छातीसे उस बाणको निशाल दिया और एक तीखा सायक हाथमें लेकर उसे दिव्यास्त्रसे संयोजित किया ॥ ८३ ॥

आग्नेयेन तद्वाग्नेयं योजयामास सायकम् ।

स जज्याल तदा पाणो धनुष्यस्य महत्तमन ॥ ८४ ॥

उस समय अपने उस सायकको उन्होंने आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित किया । अभिमन्त्रित होते ही महात्मा लक्ष्मणने धनुषपर रक्ता हुआ वह बाण तरंगल प्रज्वलित हो उठा ॥

अतिशयोक्तिवैजम्बी रौद्रमन्त्र समाददे ।

तेन बाण भुजङ्गमो हेमपुद्गमयोजयत् ॥ ८५ ॥

उपर अत्यन्त तेजस्वी अतिशयने भी एक वृणमय पलवाला त्रिधर सप्त रभा भयकर बाण हाथमें लिया और उसे धनुषपर रक्ता ॥ ८५ ॥

तद्वत् ज्वलित घोर लक्ष्मण शम्भाहितम् ।

अतिशयाय त्रिशेष फाल्गुण्डमिग्रान्तक ॥ ८६ ॥

इतनीही लक्ष्मणने दिव्यास्त्रकी शक्तिमें सम्पन्न उस प्रचण्ड एवं भयकर बाणका अतिशयपर ऊपर चलाया, माने यमराजने अपने फाल्गुण्डमा प्रणम किया ॥ ८६ ॥

आग्नेयास्त्रमिभ्युक्त द्यूत बाण निशाचर ।

उत्ससर्ज तदा बाण रौद्र स्यात्स्त्रयोजितम् ॥ ८७ ॥

आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित हुए उस बाणका अपनी ओर आते देख निशाचर अतिशयने तरंगल ही अपने भयकर बाणकी स्याम्बसे अभिमन्त्रित कर चलाया ॥ ८७ ॥

तादुभायम्बो बाणाभ्योन्यमभिजघ्नतु ।

तेजसा सम्प्रदीतसौ क्रुद्धाविभु भुजङ्गमी ॥ ८८ ॥

तावन्त्योन्य निनिर्दल पततु पृथिवीतल ॥ ८९ ॥

उन दोनों सायनोंके अभिभाग तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे आकाशमें पहुँचकर वे दोनों जुड़ित हुए दो खोंड़ी में आपसमें टकरा गये और एक दूसरेका दमक करके पृथ्वी गिर पड़े ॥ ८८ ८९ ॥

निरन्विषौ भस्मवृत्तौ भाजेने शरोत्तमौ ।

तादुभौ दीप्यमानौ स न भाजेते महीतले ॥ ९० ॥

वे दोनों ही बाण उत्तम कटिर्दध और अपनी दीर्घि प्रज्वलित हो रहे थे, तथापि एक दूसरेने तेजसे भस्म होकर अपना-अपना तेज रो बैसे । इसलिये भूतलपर निशम होने कारण उनकी शोभा नहीं रह रही था ॥ ९० ॥

ततोऽतिशय सकृद्वस्त्राद्गमैर्पीकम् सुजत् ।

ततश्चिच्छेद् सौमित्रिरक्ष्मन्नेन वीरवान् ॥ ९१ ॥

तदनन्तर अतिशयने अत्यन्त कुपित हो लक्षण वेषताने मात्रसे अभिमन्त्रित करके एक तीखा बाण छोड़ा परन्तु परक्रमी लक्ष्मणने उस अश्वको ऐन्द्रास्त्रसे काट दिया ॥ ९१ ॥

वेपीक निहत द्यूत कुमारो रात्रिमात्रज ।

याम्येनास्त्रेण सकृद्धो योजयामास सायकम् ॥ ९२ ॥

ततस्तद्वत् विशेष लक्ष्मणाय निशाचर ।

बाणयेन तद्वत्त्रेण निजघात स लक्ष्मण ॥ ९३ ॥

सीकके बाणको नष्ट हुआ देख रात्रिपुत्र कुमार अतिशय व मोघकी सीमा न रही । उस रात्रिमें एक सायकको याम्येनास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उसे लक्ष्मणको लक्ष्य करके चला दिया परन्तु लक्ष्मणने बाणव्यासद्वारा उसका भी नष्ट कर दिया ॥ ९२ ९३ ॥

अथैन शरधाराभिधराभिरिव तोयद् ।

अभ्यर्पयत सकृद्धो लक्ष्मणो रात्रिमात्रजम् ॥ ९४ ॥

तत्पश्चात् जैसे मेघ जलरी धारा वरसता है, उसी प्रकार अत्यन्त कुपित हुए लक्ष्मणने रात्रिजुमार अतिशयपर बाण धारणी वषा आरम्भ कर दी ॥ ४ ॥

तेऽतिक्रम्य समासाद्य कञ्चे वज्रभूषित ।

भग्नाग्रशल्या सहसा पेतुवाणा महीतले ॥ ९५ ॥

अतिशयने एक दिव्य वज्र चोंच रक्ता था, जिसमें होरे बड़ हुए थे । लक्ष्मणक बाण अतिशयपर पहुँचकर

उसके कवचसे टकराते और नोक टूट जानेके कारण सहस्र
पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ९५ ॥

तान्मोघानभिसम्प्रेक्ष्य लक्ष्मण परवीरहा ।
अभ्यवर्षत बाणाना सहस्रेण महायशः ॥ ९६ ॥

उन बाणोंको असफल हुआ देख शत्रुवीरोंका सहार
करनेवाले महायशस्वी लक्ष्मणने पुनः सहस्रों बाणोंकी वर्षा की ॥
स वृष्यमाणो बाणौघैरतिकायो महाबलः ।
अवध्यक्वच सख्ये राक्षसो नैनं जिन्यते ॥ ९७ ॥

महाबली अतिकायका कवच अभेद्य था; इसलिये युद्ध
स्थलमें बाण-समूहोंकी वर्षा होनेपर भी वह राक्षस व्यथित नहीं
होता था ॥ ९७ ॥

शर बाणौघैरिपाकारं लक्ष्मणाय ध्यापावृज्जत ।
स तेन विद्ध सौमित्रिमर्मदेशो शरेण ह ॥ ९८ ॥

उसने लक्ष्मणपर विपथर सर्पक समान भयकर बाण
चलाया । उस बाणने सुमित्राकुमारके मर्मस्थलमें जोड़
पड़ें ॥ ९८ ॥

सुहृत्तमात्रं नि सञ्जो ह्यभयच्छ्रुतापन ।
ततः सशामुपालभ्य चतुर्भिः सायकोचमै ॥ ९९ ॥
निजघान हयान् सख्ये सार्थि च महाबलः ।
ध्वजस्योभयन हृत्वा शरवर्षैररिदम् ॥ १०० ॥

अतः शत्रुओंको लगाप देनेवाले लक्ष्मण दो पक्षीतक
अचेत अवस्थामें पड़े रहे । फिर रोगामें आनेपर उन महाबली
गजुदमन वीरने बाणोंकी वर्षामें गजुने रथकी ध्वजाको नष्ट
कर दिया और चार उत्तम सायकोंमें रणभूमिमें उसके घोड़ों
तथा सार्थिकों भी यमलोक पहुँचा लिया ॥ ९९ १ ० ॥

असम्भ्रान्तः स सौमित्रिस्ताड्यारानभिलक्षितान् ।
सुमोच लक्ष्मणो बाणान् यथार्थं तस्य रक्षसः ॥ १०१ ॥
न शशाकं दृजं कर्तुं युधि तस्य तरोत्तमः ।

तत्पश्चात् सम्प्रमरहितं नरोद्धेऽमुमिश्राकुमार लक्ष्मणने उस
राक्षसक बंधके लिये बँचे-बूझे हुए बहुतसे अमोघ बाण छोड़े;
तथापि वे समराङ्गणमें उस निशाचरके शरीरको घेन न सके ॥
अथैनमभ्युपागम्य धायुर्वौष्यमुग्राद्य ह ॥ १०२ ॥
ग्रहादक्षपरो ह्येष अग्रध्यक्वचावृतः ।
ग्राह्येणास्त्रेण भिष्येनमेव यध्यो हि नान्यथा ।
अग्रध्य एष हान्येयामग्राणां कज्जी वली ॥ १०३ ॥

तदनन्तर वायुदेवताने उनके पास आकर कहा—
‘सुमित्रानन्दन ! इन राक्षसक ब्रह्माजीसे बरदान प्राप्त हुआ है । यह
अभेद्य कवचसे ढका हुआ है । अतः इसका ब्रह्मास्त्रसे विदीर्ण कर
दाइ । अन्यथा यह नहीं मारा जा सकता । यह कवचपापी
बलवान् निशाचर अन्य अस्त्रों लिये अवध्य है’ ॥ १०२ १०३ ॥

ततस्तु वायोर्यवन निशम्य
सौमित्रिरिदमप्रतिमाननीयः ।
समादधे बाणमथोपग्रेण
तद्ग्राह्यमस्त्रं सहसा नियुज्य ॥ १०४ ॥

लक्ष्मण इन्द्रक समान पराक्रमी थे । उन्होंने वायुदेवता
का उपयुक्त वचन सुनकर एक भयकर वेगवाले बाणसे
उसका ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करने धनुषपर रखता ॥ १०४ ॥

तस्मिन् वरालोके तु नियुज्यमाने
सौमित्रिणा बाणग्रे शिताग्रे ।
विशम्य च द्राकर्महाग्रहाद्य
नभश्च तथास ररास चोर्वी ॥ १०५ ॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणने द्वारा तज बारनाल उस भेद
बाणमें ब्रह्मास्त्रकी सञ्जोना की जानेपर उस समय समूह
दिशाएँ, चन्द्रमा और सूर्य आदि बड़े-बड़े ग्रह तथा अन्तरिक्ष-
लोकके प्राणी तथा उड़ने और भूमण्डलमें महान् कोलाहल मच
गया ॥ १०५ ॥

तं द्रष्टव्योऽस्त्रेण नियुज्य चापे
शरं संपुङ्क्तं यमदूतकरपम् ।
सौमित्रिरिदमिदमुत्तस्य तस्य
ससजं बाणं युधि यज्जकरपम् ॥ १०६ ॥

सुमित्राकुमारने धनुषपर रखते हुए उस सुन्दर पक्षवाले
बाणको जब ब्रह्मास्त्रमें अभिमन्त्रित किया; तब वह यमदूतक
समान भयकर और यज्ञके समान अमाघ हा गया । उन्होंने
युद्धस्थलमें उस बाणको इन्द्रदोही राणने देने अतिकायका
लक्ष्य करते चला दिया ॥ १०६ ॥

तं लक्ष्मणोत्सृष्ट्यग्निवृद्धवेग
समापतन्तं श्वसनोपग्रेणम् ।
सुपर्णज्जोत्तमविप्रपुङ्क्तं
तदातिकायं समरे ददर्श ॥ १०७ ॥

लक्ष्मणने चलाये हुए उस बाणका वेग बहुत बड़ा हुआ
था । उसके पक्ष गहवरे समान थे और उनमें हारे जड़
हुए थे इसलिये उसकी निचित्र गोभा हाती थी । अतिकायने
समराङ्गणमें उस बाणका उस समय वायुसे समान भयकर
वेगमें अपनी आर आते देता ॥ १०७ ॥

तं प्रेक्षमाणं सहस्रान्तिकायो
जघान यार्गनं शितैरनेकैः ।
स सायकस्तस्य सुपुण्यवेग
स्तत्रातिग्रेण जगाम पादरम् ॥ १०८ ॥

उसे देखकर अतिकायने सन्तान्तर उपर बहुतसे
पेने बाण चलाये तो भी वह गहवरे समान बरगदनी सायक
बड़े वेगसे उसका पास जा पहुँचा ॥ १०८ ॥

तमागत प्रेक्ष्य तदातिकायो

वाण प्रदीप्तान्तककालकरपम् ।

जघान शतयुग्मिगदाकुस्रै

शूलैः शरैश्चाप्यविपन्नचेष्ट ॥१०९॥

प्रलयकर कालके समान प्रबलित हुए उस बाणको
अत्यन्त निकट आया देखकर भी अतिकायकी सुद्विषयक
चेष्ट नष्ट नहीं हुई । उसने शक्ति, श्रुति, गदा, कुटार, शूल
तथा बाणोंद्वारा उसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया ॥ १०९ ॥

तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि

मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः ।

प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्ट

तदातिकायस्य शिरो जहार ॥११०॥

परंतु अग्निके समान प्रबलित हुए उस बाणने उन
अद्भुत अस्त्रोंको व्यर्थ करके अतिकायके मुकुटमण्डित
मस्तकको चढ़ते अलगा कर दिया ॥ ११० ॥

तच्छिरः सशिरस्त्राण लक्ष्मणेपुत्रप्रदीप्तम् ।

पपात सहसा भूमौ शृङ्ग हिमवतो यथा ॥१११॥

लक्ष्मणने बाणसे कटा हुआ राक्षसका यह शिरस्त्राणसहित
मस्तक हिमालयक शिखरकी भाँति सहसा पृथ्वीपर जा
पड़ा ॥ १११ ॥

त भूमौ पतित दृष्ट्वा विक्षिताम्यरभूषणम् ।

वभूवुर्ध्वयिताः सर्वे हतशेषा निशाचरा ॥११२॥

उसके पक्ष और आभूषण सब ओर फैल गये । उसे
घरतीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए समस्त निशाचर व्यथित
हो उठे ॥ ११२ ॥

ते पियण्णमुखा दीना प्रहारजनितधमाः ।

हृत्पार्श्वे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुदृकाण्डे एकमष्टतितम सर्ग ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीदासीकिर्तिर्निर्मित आश्वामेय आदिकाव्यके सुदृकाण्डे एकहत्तरवें सर्ग पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः

रावणकी चिन्ता तथा उसका राक्षसोंको पुरीकी रक्षाके लिये सावधान रहनेका आदेश

अतिकाय हत श्रुत्वा लक्ष्मणेन महात्मना ।

उद्वगमगमद् राजा यचन चेदमग्रवीत् ॥ १ ॥

महामा लक्ष्मणके द्वारा अतिकायकी मारा गया सुनकर

विनेदुरुच्चैवहृत् सहसा विस्मरे स्वरैः ॥११३॥

उनके मुखपर विषाद छा गया । उनपर जो मार पड़ी
थी, उससे यह जानेके कारण वे और भी दुखी हो गये
थे । अत वे बहुसंख्यक राक्षस सहसा विस्मृत स्वरमें जोर
जोरसे रोने लिखन लगे ॥ ११३ ॥

ततस्तत्परित याता निरोपेक्ष निशाचरा ।

पुरीमभिमुखा भीता द्रवन्तो नायके हते ॥११४॥

सेनानायकक मारे जानेपर निशाचरोंका सुद्विषयक
उत्साह नष्ट हो गया; अत वे भयभीत हो द्रुत ही लट्ठा
पुरीकी ओर भाग चले ॥ ११४ ॥

प्रहर्षयुक्ता बहवस्तु वानरा

प्रफुल्लपद्मप्रतिमाननास्तदा ।

अपूज्यैस्त्वलक्ष्मणमिष्टभागिनः

हते रिवौ भीमबले दुरासदे ॥११५॥

इधर उस भयकर बलशाली दुर्जय शत्रुके मारे जानेपर
बहुसंख्यक वानर हुए और उत्साहसे भर गये । उनके मुख
प्रफुल्ल कमलोंके समान खिल उठे और वे अमीष विजयके
भागी वीरवर लक्ष्मणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ११५ ॥

अतिवलम्बतिकापमध्रकट्य

युधि विनिपात्य स लक्ष्मण प्रहृष्टः ।

त्यरितमथ तदा स रामपादौ

कपिनिग्रहैश्च सुपूजितो जगाम ॥११६॥

युद्धस्थलमें अत्यन्त बलशाली और मेघके समान विशाल
अतिकायको बराशाभी करके लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए । वे उस
समय वानर-समूहोंसे सम्मानित हो द्रुत ही श्रीरामचन्द्रजी
के पास गये ॥ ११६ ॥

राजा रावण उद्विग्न हो उठा और इस प्रकार बोला—॥११॥

घृष्णाक्ष परमामर्षी सवशस्त्रभृता यत् ।

अकम्पन ग्रहस्तब्ध कुम्भकणस्तथैव च ॥ २ ॥

एते महानला धीरा राक्षसा युद्धकाङ्क्षिण ।

जेतारं परसैन्याना परैर्नित्यापराजिता ॥ ३ ॥

‘अत्यन्त अमरवीरल घृष्टाश्चः सम्पूर्ण राक्षधारिणो भेद्य
अक्रमन्, प्रहन् तथा कुम्भकण—ये महाबली वीर राक्षस
सदा युद्धनी अभिलाषा रखते थे । ये स्वक-स्वय दनुजोंकी
सेनाओंपर निजय पाते और स्वय निपट्टियोंसे कभी पराजित
नहीं होते थे ॥ २३ ॥

ससैन्यान्ते हता धीरा रामेणाङ्घ्रिकर्मणा ।

राक्षसा सुमहाकाया नानाराक्षप्रशारदा ॥ ४ ॥

‘परतु अनापस ही महान् कर्म करनेवाले रामने नाना
प्रकारके शस्त्रोंक ज्ञानमें निपुण उन विद्यालकाय वीर राक्षसोंका
सेनासहित संहार कर डाला ॥ ४ ॥

अन्ये च यद्वयं दूरा महात्मानो निपातिता ।

प्रत्यातधलीर्येण पुत्रेणद्रजिता मम ॥ ५ ॥

तौ आतरौ तदा बह्वी घोरैर्दक्षरैः शरैः ।

यत्र दान्य सुरैः सर्वैरसुरैश्च महायलैः ॥ ६ ॥

मोक्षु तद्वधन घोर यक्षगर्धरपथगैः ।

तत्र जाने प्रभायैवा मायया मोहनेन वा ॥ ७ ॥

शरयथाद् निमुक्तौ तौ आतरौ रामलक्ष्मणौ ।

‘और भी बहुतसे महामनुषी दूरवीर राक्षस उनके हाथ
मार गिराय गये । जिसक बल और पराक्रम सत्रय विख्यात
हैं, उस मर बैठ इन्द्रजितने उन दोनों माद्योंका वरदानप्राप्त
घोर नागस्वरूप पाणोंने बाँध लिया था । वह घोर बचन
समस्त देवता और महाबली अमुर भी नहीं खात सकते थे ।
यक्ष, गन्धर्व और नागोन लिय भी उस बचनसे छुटकारा
दिलाना असम्भव था, तां भी य दोनों भाइ राम और लक्ष्मण
उस बाण-बचनसे मुक्त हो गये । न बन्दे कौन-सा प्रमार था,
कैसी माया भी अथवा किस तरहकी मोहिनी आपत्ति आदिका
प्रयोग किया गया था, जिसने वे उस कथनसे छूट गये ॥
ये योधा निगता दूरा राक्षसा मम शासनात् ॥ ८ ॥
ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहायलैः ।

‘और भी बहुतसे महामनुषी दूरवीर राक्षस उनके हाथ
मार गिराय गये । जिसक बल और पराक्रम सत्रय विख्यात
हैं, उस मर बैठ इन्द्रजितने उन दोनों माद्योंका वरदानप्राप्त
घोर नागस्वरूप पाणोंने बाँध लिया था । वह घोर बचन
समस्त देवता और महाबली अमुर भी नहीं खात सकते थे ।
यक्ष, गन्धर्व और नागोन लिय भी उस बचनसे छुटकारा
दिलाना असम्भव था, तां भी य दोनों भाइ राम और लक्ष्मण
उस बाण-बचनसे मुक्त हो गये । न बन्दे कौन-सा प्रमार था,
कैसी माया भी अथवा किस तरहकी मोहिनी आपत्ति आदिका
प्रयोग किया गया था, जिसने वे उस कथनसे छूट गये ॥

ये योधा निगता दूरा राक्षसा मम शासनात् ॥ ८ ॥
ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहायलैः ।

‘और भी बहुतसे महामनुषी दूरवीर राक्षस उनके हाथ
मार गिराय गये । जिसक बल और पराक्रम सत्रय विख्यात
हैं, उस मर बैठ इन्द्रजितने उन दोनों माद्योंका वरदानप्राप्त
घोर नागस्वरूप पाणोंने बाँध लिया था । वह घोर बचन
समस्त देवता और महाबली अमुर भी नहीं खात सकते थे ।
यक्ष, गन्धर्व और नागोन लिय भी उस बचनसे छुटकारा
दिलाना असम्भव था, तां भी य दोनों भाइ राम और लक्ष्मण
उस बाण-बचनसे मुक्त हो गये । न बन्दे कौन-सा प्रमार था,
कैसी माया भी अथवा किस तरहकी मोहिनी आपत्ति आदिका
प्रयोग किया गया था, जिसने वे उस कथनसे छूट गये ॥

‘और भी बहुतसे महामनुषी दूरवीर राक्षस उनके हाथ
मार गिराय गये । जिसक बल और पराक्रम सत्रय विख्यात
हैं, उस मर बैठ इन्द्रजितने उन दोनों माद्योंका वरदानप्राप्त
घोर नागस्वरूप पाणोंने बाँध लिया था । वह घोर बचन
समस्त देवता और महाबली अमुर भी नहीं खात सकते थे ।
यक्ष, गन्धर्व और नागोन लिय भी उस बचनसे छुटकारा
दिलाना असम्भव था, तां भी य दोनों भाइ राम और लक्ष्मण
उस बाण-बचनसे मुक्त हो गये । न बन्दे कौन-सा प्रमार था,
कैसी माया भी अथवा किस तरहकी मोहिनी आपत्ति आदिका
प्रयोग किया गया था, जिसने वे उस कथनसे छूट गये ॥

त न पदपाम्यद् युद्धे योऽथ राम सलक्ष्मणम् ॥ ९ ॥

नाशयेत् सखलं धीरं समुप्रीनं विभीषणम् ।

‘मैं आज ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें
लक्ष्मणवद्वि रामकी और सेनातथा सुमीवसहित वीर विभीषणको
नष्ट कर दे ॥ ९३ ॥

अहो सुयलमान् रामो महदल्यलं च वै ॥ १० ॥

यस्य विषममासाद्य राक्षसा निधनं गता ।

‘अहो ! राम बड़े बलवान् हैं, निम्न ही उनका अल
यल महान् है जिनक बल-विक्रमका सामना करक असंख्य
राक्षस कालक गालमें चले गये ॥ १०३ ॥

त मन्ये राघव धीरं नापयणमनामयम् ॥ ११ ॥

तद्वापदि पुरी लङ्का पिहितद्वातोरणा ।

‘मैं उन वीर रघुनाथको योग-योगसे रहित साक्षात् नापयण
रूप मानता हूँ क्योंकि उन्होंने कयसे लङ्कापुरीक सभी दरवाजे
और सदर फाटक सदा बंद रहते हैं ॥ ११३ ॥

अप्रमत्तैश्च सद्यश्च गुल्मे रक्ष्या पुरी त्वियम् ॥ १२ ॥

अशोकयनिका चैव यत्र सीताभिरुच्यते ।

‘राक्षसों ! तुमलोग हर समय सावधान रहकर सैनिकसहित
इस पुरीक और वहाँ सीता रखी गयी हैं, उस अशोक
यित्रि रारिकाकी भी विशेषरूपसे रक्षा करो ॥ १२३ ॥

निष्कमो वा प्रवेशो वा छातव्यं सयदैव न ॥ १३ ॥

यत्र यत्र भवेद् गुल्मस्तत्र सत्र पुन पुन ।

सर्वतश्चापि तिमृष्य स्वैः स्वैः परिवृता यलैः ॥ १४ ॥

‘अशोक-वाटिकामें कब कौन प्रवेश करता है और कब
वहाँ बाहर निकलता है, इसकी हमें सदा ही जानकारी रखनी
चाहिये । जहाँ-जहाँ सैनिकोंके घिरि हों, वहाँ बारबार देख
भाल करना, सब ओर अपने-अपने सैनिकोंके साथ पररेपर
रहना ॥ १३ १४ ॥

द्रष्टव्यं च पदं तेषां धानपणा निशाचरा ।

प्रदोषे वाधराये वा प्रत्यूषे यापि सर्वदा ॥ १५ ॥

‘निशाचरों ! प्रदोषकाल, आधी रात तथा प्रातःकालमें
भी सर्वथा बानरोंक आने-जानेपर दृष्टि रखना ॥ १५ ॥

नाशय तत्र कतम्या धानेषु कदाचन ।

द्रिपता यलमुद्युक्तमापतत् किं स्थित यथा ॥ १६ ॥

‘बनरोंकी आने कभी उपेक्षाकर नहो रखना चहिये

और सदा इस जालपर दृष्टि रखनी चाहिये कि 'पुत्रोंकी सेना
युद्धके लिये उद्यमशील तो नहीं है ? आक्रमण तो नहीं कर
सकी है अपना पूज्यत् जहाँ की-तहाँ नहीं है न ?' ॥ १६ ॥

ततस्ते राक्षसा मर्दे भुत्वा लङ्काधिपस्य तत् ।

उचम सर्वमातिष्ठन् यथागत् तु महाबल ॥ १७ ॥

लङ्कापतिना यह आदेश सुनकर समस्त महाबली राक्षस

उन सारी यातोंना यथागत् रूपसे पालन करने लगे ॥ १७ ॥

तान् स्वर्षान् हि समादिश्य राज्ञो राक्षसाधिप ।

मयुशाल्य वहन् दीन प्रयित्तिं स्वमाल्यम् ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकण्डे द्विमतितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार दीनस्त्वमितिमित आषरामायण आदिकण्डके बहत्तरवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः

इन्द्रजित्के ब्रह्मास्त्रसे वानरसेनासहित श्रीराम और लक्ष्मणका मूर्च्छित होना

ततो हतान् राक्षसपुङ्गवास्तान्

देवान्तर्कादिभिदिशोऽतिफापान् ।

रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टा

स्ते रात्र्याय त्वरिता शशसु ॥ १ ॥

समामभूमिमें जो निशाचर मरनेसे बच गये थे, उन्होंने
हस्त रात्रणके पास जाकर उसे देवान्तर्क, त्रिदिश और
अन्तिनाय आदि राक्षसपुङ्गवोंके मारे जनेका समाचार
सुनाया ॥ १ ॥

ततो हतास्तान् सहसा निशम्य

राजा महापापपरिप्लुताश्च ।

पुत्रभय आवेध च घोर

विचित्रस्य राजा विपुल प्रद्यूयौ ॥ २ ॥

उनके बधकी बात सुनकर राजा रात्रणके नेत्रोंमें सहसा
आँसुओंकी बाढ़ आ गयी । पुत्रों और भाइयोंके भयानक
बधकी बात सोचकर उसने बड़ी चिन्ता हुई ॥ २ ॥

ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीन

शोकान्धि सम्परिप्लुतानम् ।

रणरंभो रामसराजस्तु

स्वमिन्द्रजिदं याचयामि यमाये ॥ ३ ॥

उन सबको पूर्वोक्त आदेश देकर राक्षसराज रात्रण अपने
हृदयम चुभे हुए दुःख और शोकरूपी कोंठेका पीड़ाका भार
बहन करता हुआ दीनभासे अपने महात्म गया ॥ २८ ॥

ततः स सर्वोपितक्रोशद्वि

निशाचराणामधिपो महाबल ।

तदेव पुण्ययसन विचिन्तयन्

मुहुर्मुहुश्चैनं तदा गिनि श्वसन् ॥ १९ ॥

महाबली निशाचरराज रात्रणकी आधाग्नि मड़क उठी
थी । वह अपने पुत्रकी उस मृत्युकी ही याद करके उस समय
बारबार लयी लौं खाँच रहा था ॥ १९ ॥

राज रात्रणको शोकके समुद्रमें निमग्न पय दीन हुआ
देख रक्षियोंमें भेद राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्ने यह बात
कही— ॥ ३ ॥

न तात मोह परिणतुमर्हसे

यत्रेन्द्रजिजीविषति नैष्ठितेश ।

नेन्द्ररिखाणाभिहतो हि कश्चित्

प्राणान् समर्थं स्वरोऽभिपातुम् ॥ ४ ॥

‘तात ! राक्षसराज ! जबतक इन्द्रजित् जीवित है तबतक
आप चिन्ता और मोहमें न पड़िये । इस इन्द्रजित्के पाणोंने
पायल होकर कोई भी समरात्रणमें अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं
कर सकता ॥ ४ ॥

पश्याथ राम सह लक्ष्मणेन

महागनिर्भिन्नविषीर्णदेहम् ।

गतायुष भूमितले शयान

वितीतं शरीराचित्तस्यग्रासम् ॥ ५ ॥

देखिये, आज मैं राम और लक्ष्मणके शरीरको पाणोंसे
छिन्न भिन्न करके उनसे सारे अङ्गोंका तीरे लयकोंसे भर
देता हूँ, और वे दोनों भाई गतायु होकर लम्बे लिये भरतीकर
ले जाते हैं ॥ ५ ॥

इमा प्रतिष्ठा भूयुः शम्भुना
सुनिश्चिता पौरुषदैवयुक्ताम् ।
अद्यैव राम सह लक्ष्मणेन
सतपयिष्यामि शरैर्मोघैः ॥ ६ ॥

‘आप मुझ इन्द्रयुक्ती इस सुनिश्चित प्रविशना, आ मेरे
पुरुषार्थसे और देवदत्त (ब्रह्माजीदी कृपा) से भी सिद्ध
होनेवाली है, मुन लीजिये—मैं आज ही लक्ष्मणसहित रामका
अपने अमोघ नाणोंसे पूर्णतः तृप्त करूँगा—उनकी युद्धविषयक
विषाणका वृत्ता दूँगा ॥ ६ ॥

अद्येन्द्रवैरस्त्रनिष्णुवृद्ध
साध्याश्च वैश्वानरचन्द्रसूर्या ।
द्रक्ष्यन्ति मे त्रिकसमप्रमेय
त्रिणोरिमेघ पलियुक्ताये ॥ ७ ॥

‘आज इन्द्र, यम, विष्णु, वृद्ध, साध्य, अग्नि, सूर्य और
चन्द्रमा शक्ति यक्षगण्डर्पमें भगवान् विष्णुन भयानक त्रिकस
की भाँति मेरे अपार पराक्रमका देखेंगे’ ॥ ७ ॥

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रु
राष्ट्रं राजानमर्दिनस्तथ ।
समासुरोहानिलतुल्यवेग
रथ रथेष्टसमाधियुक्तम् ॥ ८ ॥

ऐसा कर्णर उदारगता इन्द्रायु इन्द्रजित्ने राजा
राजगते आशा ली और अच्छे गर्होंसे तृप्त हुए, युद्धसामग्री
से सम्पन्न एवं वायुन समान वेगशाली रथपर उड़ सवार
हुआ ॥ ८ ॥

समास्याय महतेजा रथ हरिरश्रोपमम् ।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमर्दिम् ॥ ९ ॥

उसका रथ इन्द्रके रथन समान जान पड़ता था । उसपर
आरुढ़ हा गजुओंका दमन करनेवाला वह महातेजस्वी
निशाचर सदा उस स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ युद्ध हो रहा
था ॥ ९ ॥

त प्रस्थित महामानमनुजमुमहायला ।
सह्यमाणा वहरो धनुश्चरपाणय ॥ १० ॥

उस महामानका वारका प्रस्थान करत देव शूरतसे
महाकाय राक्षस हाथोंमें भेद्य धनुष लिये हथ और उत्साह
साथ उसन पीछीले चल ॥ १० ॥

गजस्कन्धगता केचित् केचित् परमवाजिभि ।
व्याघ्रवृद्धिकमाजारधरोष्ट्रैश्च भुजङ्गम् ॥ ११ ॥
वराहै श्वापदै सिंहैजम्बुके पर्यंतोपमै ।
कारुहसमयूरैश्च राक्षसा भीमविक्रमा ॥ १२ ॥

कोई हाथीपर बैठकर चल तो कोई उत्तम घोड़ोंपर । इनके
शिवा बाघ, बिन्दू, गिलाब, गदहे, ऊँट, सर्प, सूअर, अन्य
हिंसक जन्तु सिंह, पर्यन्तकार गौदड़, बौआ, हंस और मोर
आदिकी सवारियोंपर चढ़े हुए भयानक पराक्रमी राक्षस वहाँ
युद्धक लिये आये ॥ ११ १२ ॥

प्रासपट्टिशनिहिशरणरथधगदाधय ।
भुगुण्डिमुहुरायपिशतग्रीपरिघायुधा ॥ १३ ॥

उन सजने प्रास, पट्टिश, खड्ग, फरसे, गदा, भुगुण्डि, मुहुर
डंडे, गतली और परिघ आदि आयुध धारण कर रखत थे ॥ १३ ॥

स शङ्खनिन्दै पूर्णभैरीणा चापि निस्तनै ।
जगाम त्रिदशेन्द्रारिराजि वेगेन वीरयान् ॥ १४ ॥

शङ्खोंकी ध्वनिन साथ मिली हुई भरिचोंकी भयानक
आवाज सथ और पूँज उठी । उस तुमुनादके साथ इन्द्रोद्गोही
पराक्रमी इन्द्रजित्ने बड़ वेगेन रणभूमिरी अर प्रस्थान
किया ॥ १४ ॥

स शङ्खशशिर्गणेन छत्रेण रिपुसदन ।
रराज प्रतिपूर्णेन नभश्चन्द्रमसा यथा ॥ १५ ॥

जैसे पूष चन्द्रमासे उपलक्षित आकाशरी धामा हती है,
उसी प्रकार ऊपर तने हुए शङ्ख और गुण्डि समान वज्रवाल
‘वेन छत्रमें वह शत्रुसदन इन्द्रजित् सुगोभित हो रहा था ॥

वाज्यमानस्ततो वीरो ह्यैमेहमभिभूयण ।
चारुचाग्रमुखैश्च मुख्य सवधनुष्मताम् ॥ १६ ॥

सबने आभूषणोंसे विभूषित और सम्पन्न धनुर्वीरोंमें भेद्य
उस वीर निशाचरको दोनों ओरोंसे मुगलनिर्मित उत्तम एवं
मन्दार चँवर डुलाय जा रह थे ॥ १६ ॥

स तु दृष्ट्वा त्रिनियन्त घलेन महता घृतम् ।
राजसाधिपति धीमान् राखण पुत्रमप्रीत् ॥ १७ ॥

त्रिगल सेनामें घिर हुए अपने पुत्र इन्द्रजित्ना प्रह्वान
करते देव राक्षस राजा भीमान् राखने उनमें बड़ा—॥ १७ ॥
स्वमप्रतिरथ पुत्र त्वया य वासरो जित ।

किं पुनर्मानुष धृष्य निहनिष्यसि राघवम् ॥ १८ ॥

ध्येय ! कोदं भी ऐसा प्रतिद्वंद्वी रथी नहीं है, जो तुम्हारा
 खामना कर सके । तुमने देवराज इंद्रको भी पराजित किया
 है । फिर आखानीसे जीत लेने योग्य एक मनुष्यने पराजित
 करना तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है । तुम अवश्य ही रघुवंशी
 रामका वध करोगे' ॥ १८ ॥

तयोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रत्यगृह्णा महाशिरः ।
ततस्त्विह्रजिता लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा ॥ १० ॥
रराजाप्रतिवीर्येण धौरियाकैष भास्यता ।

राक्षसराजने ऐसा कहनेपर इन्द्रजित्ने उसने उस महाह
आशीर्वादको गिर झुकाकर ग्रहण किया । फिर तो जैसे अनुरूप
तेजस्वी सूरसे आकाशकी शोभा होती है, उसी प्रकार अग्रतिम
राक्षिचाली और सूर्यतुल्य तेजस्वी इन्द्रजित्ने लङ्कापुरी सुशोभित
होने लगी ॥ १९३ ॥

स सम्प्राप्य महातेजा युद्धभूमिंमरिदम् ॥ २० ॥
स्थापयामास रक्षासि इयं प्रति समन्तत ।

महातेजस्वी शत्रुदमन इन्द्रजित्ने रणभूमिमें पहुँचकर
अपने दशके चारों ओर राक्षसोंका खड़ा कर दिया ॥ २०½ ॥

ततस्तु हुतभांकार हुतभुक्सद्वयप्रभ ॥ २१ ॥
 जुहुवे राक्षसश्रेष्ठो विधियमत्रसप्तमै ।

स हगिर्लाजसत्कारैर्माल्यगन्धपुरस्तुतैः ॥ २२ ॥
 जुहुषे पावकं तत्र राक्षसेन्द्र प्रतापवान् ।

किं बीजमं रयसे उत्तरकर पृथ्वीपर अग्निनी स्थापना
करके अमृततुल्य तेजःस्वी उष राक्षसशिरोमणि वीरने चन्दनः
पूज तथा लाजा आदिके द्वारा अग्निदेवका पूजन किया ।
उसके बाद उस प्रतापी राक्षसराजने विधिवृत्त श्रेष्ठ मन्त्रों
उच्चारण करते हुए उस अग्निमें हविष्यकी आहुति दी १२ २२-
शास्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ शिर्भोतका ॥ २३ ॥
लोहितानि च घासांसि ह्रय काष्ण्यायस तथा ।

उस समय शत्रु ॥ अग्निवेशजीने चारों ओर विछानेके लिये कुछ या फासके पत्ते थे । बड़ेदेवी लम्हरीने हीसमिधा का बाम लिया गया था । शत्रु रगरे रगरे उपवासमें राय गये और उस आभिचारिक यन्त्रमें जो मुखा था, बड़े लोहेका बना हुआ था ॥ २१३ ॥

न तत्राग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमैः ॥ २४ ॥
छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जप्राह जीवत ।

उसने यहाँ तोमरसहित शस्त्ररूपी कासने पत्तोंको भस्मिने
ज्यों आर पैयूकर होमके लिये धाले रगने जीवित मकदेका
गला पकड़ा ॥ २४^१ ॥

सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्घिय ॥ २५ ॥
यमूयुस्तानि लिङ्गानि विजय यान्यदर्शयन् ।

एक ही बार ही हुई उस आह्विते व्यक्ति प्रवृत्ति हो
 उठी । उसमें धूम नहीं दिखायी देता था और आगनी बड़ी
 बड़ी लपटें उड़ रही थी । उस समय उस व्यक्ति से सभी विद्व
 प्रभु हुए, जो पूर्वाह्न में उसे अपनी विजय दिखा चुके थे—
 युद्धक्षेत्र में उससे विजय की प्राप्ति करा चुके थे ॥ २१६ ॥

प्रदधिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनमनिभ ॥ २६ ॥
हविस्तत् प्रतिजग्राह पावक स्वयमुत्थित ।

अग्निदेवकी शिरसा दक्षिणात दिखायी देने लगी ।
उनका वण तथाये हुए मुण्डकी समान मुन्दर था । इस रूपमें
वे स्वयं प्राट होकर उसके दिये हुए हृषिकेशको प्रहण कर
रहे थे ॥ २६१ ॥

सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममस्त्रविशारदः ॥ २७ ॥
धनुश्चात्मरथ चैव सर्वं तत्राभ्यमश्रयत् ।

तदनन्तर भल्लविषाग्निशारद ह द्रवितुं ब्रह्माज्ञवा
 आयाहन किया और अपने घनुष तथा रथ आदि स्य वस्तुओं
 को वहाँ सिद्ध ब्रह्माज्ञमन्त्रसे अभिमन्त्रित किया ॥ २७३ ॥

तस्मिन्नाह्वयमानेऽग्रे ह्वयमाने च पावके ।
नार्कप्रदे दुनक्षत्र यितत्रास नभस्थलम् ॥ २८ ॥

जय अग्निर्मे आहुति देकर उसने ब्रह्मास्त्रका आवाहन किया, तब मूर्ख, चन्द्रमा, ब्रह्म तथा नक्षत्रोंके साथ अन्तरिक्ष लोकके सभी प्राणी भयभीत हो गये ॥ २८ ॥

स पावश पावशदीप्ततेजा
हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभाय ।

संग्रहणासिग्धाभवमृत
 सेऽन्तद्वयंऽमातमचित्परीय ॥ २० ॥

त्रिंशत् त्रेज अग्निं सप्तमं ददीत् हो रहा था तथा ब्राह्मण देवराज इन्द्र के समान अनुपम प्रभावसे पुत्र था, उस भवितव्य

पराक्रमी इन्द्रजित्ने अग्निमें आहुति देनेक पश्चात् धनुषः बाणः रथः खड्गः घोड़े और सायिनहित अपने आपको आकाशमें अर्पण कर लिया ॥ २ ॥

ततो हयरथाक्षीर्णे पताकाध्वजशोभितम् ।
निययौ राक्षसस्यल नदमान युयुत्सया ॥ ३० ॥

इसक बाद वह घोड़े और रथोंमें व्याप्त तथा ध्वज पताकाओंसे सुशोभित राक्षससेनामें गया; जो युद्धकी इच्छामें गज्जा कर रही थी ॥ ३० ॥

त शरैरुभिश्रियंस्तीक्ष्णयेगेरुत्पृत्तैः ।
तोमरैरङ्कुलैश्चापि वानराजध्नुराहय ॥ ३१ ॥

वे राक्षस दुष्ट वगवाल, सुगन्धभूति, विचित्र धनु बटु सम्पन्न बाणों, तामरा और अङ्गुलीद्वारा रणभूमिमें गानरोंपर प्रहार कर रहे थे ॥ ३१ ॥

रागिणस्तु सुसकुलस्तान् निर्गन्धय निशाचगन् ।
हृण भग्नतो युध्यन्तु वानराणा जिघामया ॥ ३२ ॥

रावणपुत्र इन्द्रजित् 'गुग्गुलु' प्रति अत्यन्त क्रोधसे मरा हुआ था । उसने निर्गन्धोंकी ओर देवकर कहा— 'तुम लोग वानराका मार डालनेकी इच्छामें हर्ष और उत्साहपूर्वक युद्ध करो' ॥ ३२ ॥

ततस्ते राक्षसा सर्वे गजन्तो जयकाङ्क्षिण ।
अभ्यर्षयन्तस्तो घोरा वानराब्धरावृष्टिभिः ॥ ३३ ॥

उसक इस प्रकार प्रणाली देनेपर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले व समस्त राक्षस जड़-जोड़ेमें गज्जा करते हुए वहाँ वानरोंपर बाणोंकी भयङ्कर बरसा करने लगे ॥ ३३ ॥

स नु नालीकनापवैगदाभिमुसलैरपि ।
रक्षोभिः सवृत्त सस्ये धानरान् निचकष ॥ ३४ ॥

उस युद्धस्थलमें राक्षसोंसे भिरे रहकर इन्द्रजित्ने भी नालीक, नापच, गदा और मुसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा वानरोंका संहार आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

ते घण्टमानाः समरं धानरा पादपायुधा ।
अभ्यययन्त सहसा रवर्षणि दौलपादपैः ॥ ३५ ॥

समरद्वर्णमें उसके आध-शस्त्रोंसे घायल होनेवाले वानर भी जो वृक्षोंसे ही हथियारका काम लेते थे, सहसा रावणकुमार पर दौल-शिल्लों और वृक्षोंकी बर्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

इदन्ति तु तदा क्रुद्धो महातेजा महाबल ।
वानराणा शरीराणि व्यधमद् रागणात्मज ॥ ३६ ॥

उस समय वृष्टि हुए मरनेजन्नी महाबली रावणपुत्र इन्द्रजित्ने वानरोंके शरीरोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ३६ ॥

शरेणैकेन च हरीन् नय पञ्च च सप्त च ।
त्रिमेद समरे क्रुद्धो राप्ससान् सम्ग्रहयन् ॥ ३७ ॥

रणभूमिमें राक्षसोंका हर्ष बगला हुआ इन्द्रजित् रागन भरकर एक एक बाणसे पाँच पाँच सप्त-सप्त तथा नौ-नौ वानरोंका निर्गम कर डालता था । ॥ ३७ ॥

स शरं मूयसकशैः शततनुभभिभूषणैः ।
वानरान् समरं वीरं प्रममाथ सुदुजय ॥ ३८ ॥

उस अत्यन्त दुःख वीरने मुक्कणभूति मूर्धन्य तन्त्रवी सायकद्वारा समरभूमिमें वानरोंका मथ डाला ॥ ३८ ॥

ते भिन्नगात्रा समरे वानरा शम्पीहिता ।
पनुमयितसकल्या सुरैरिज महाहुरा ॥ ३९ ॥

रणप्रथम देवताओंद्वारा पीड़ित हुए बड़-बड़ असुरोंकी भोंति इन्द्रजित्क बाणोंसे व्यथित हुए वानरोंके शरीर छिन्न भिन्न हो गये । उनकी निजयकी आघातपर नृपारपान हो गया और वे अचेत-चे होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

ते सपन्तमिगदित्य घोरैर्यागभस्तिभिः ।
अभ्यधावन्त सङ्क्रुद्धा सयुगे धानरयभा ॥ ४० ॥

उस समय युद्धस्थलमें बाणरुपा मयन निर्गोंद्वारा मृत्युमान तपत हुए इन्द्रजित्पर प्रधान प्रधान वानरोंने बड़ रागसे साथ धावा किया ॥ ४० ॥

ततस्तु धानरा सर्वे भिन्नदेहा विचेतस ।
व्यथिता विद्रवन्ति स्म रथिरेण समुक्षिता ॥ ४१ ॥

परन्तु उसक बाणोंसे शरीरक क्षत विक्षत हो जानेमें वे सब वानर अचेत-चे हो गये और मृत्यु लक्षणा हो व्यथित होकर शरीर-उत्तर भागने लगे ॥ ४१ ॥

रामस्यार्थे पराक्रम्य वानरास्त्यक्तजीविनाः ।
नन्दन्तस्मिन्निवृत्तास्तु समरे सदिलायुधा ॥ ४२ ॥

वानरोंने भगवान् श्रीरामक लिय अपने जीवनका स्मर छोड़ दिया था । वे पराक्रमपूर्वक मरना करते हुए हाथमें

लाएँ लिये समरभूमिमें डूबे रहे—मुद्रभूमिने पीछे

ते हुँ मैं पर्यताग्रैश्च शिलाभिश्च प्रथमम् ।
अभ्यवयन्त समरे रावणि समवस्थिता ॥ ४३ ॥

समराङ्गणमें खड़े हुए थे वानर रावणकुमारपर वृद्धों,
परतदित्यर्थों और शिलाओंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३ ॥

तद्गुमाणा शिलाना च धर्षे प्राणहर महत् ।
व्यपोहत महातेजा रावणि समितिजय ॥ ४४ ॥

वृक्षा और शिलाओंकी वह भारी वृष्टि राक्षसोंके प्राण हर
लनेगाली थी परतु समरविजयी महातेजस्वी रावणपुत्रने अपने

बाणोंद्वारा उसे दूर हटा दिया ॥ ४४ ॥
तत पायकसफाशै शरैर्गद्गदीयितोपमै ।
वानराणामनीकानि निमेषे समरे प्रभु ॥ ४५ ॥

तत्सत्वात् विषयरूपेण समान भयकर और अग्निगुण्य
तेजस्वी बाणोंद्वारा उस गतिशाली बीरने समराङ्गणमें वानर
सैनिकोंके विदीर्ण करना आरम्भ किया ॥ ४५ ॥

अणदशशरैस्तीक्ष्णै सतिद्विधा गन्धमादनम् ।
विप्रयाध नमभिद्वैव नल दूरादवस्थितम् ॥ ४६ ॥

उत्तने अग्राह लीले बाणोंसे गन्धमादनको घायल करके
दूर खड़े हुए नलपर भी नौ बाणोंका प्रहार किया ॥ ४६ ॥

सतभिस्तु महावीर्यो मैन्द ममपिदारणै ।
पञ्चभिर्विशिष्टैश्चैव गज विप्रयाध सयुगे ॥ ४७ ॥

इसके बाद महापराक्रमी इन्द्रजित्ने सत ममपिदी सयुगों
द्वारा मैन्दको और पाँच बाणोंसे गजको भी सुदूरसलमें बीच
बाला ॥ ४७ ॥

जाम्यवन्त तु द्वाभिर्नील त्रिशङ्गिरेव च ।
सुमीवमृगभ चैव सोऽह्मद द्विविद तथा ॥ ४८ ॥

चौरैश्चतुरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत् तदा ।
किर दस बाणोंसे जाम्यवान्को और तीस सायकोंसे नीलको
घायल कर दिया । तदनन्तर वरदानमें प्राप्त हुए बहुसंख्यक
तीक्ष्ण और भयानक सायकोंका प्रहार करके उस समय उसने
सुमीव, मृगभ, अह्मद और द्विविदको भी निःप्राण-या कर
दिया ॥ ४८ ॥

अन्यानपि तथा मुष्यान् वानरान् बहुभि शरै ॥ ४९ ॥

अर्धयामास सकुम्भः कालानिखि मूर्च्छित ।
सर्व आर फैली हुई प्रस्थानिके समान अत्यन्त रोंपे भर
हुए इन्द्रजित्ने दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ वानरोंको भी बहुसंख्यक
बाणोंकी मारसे व्यथित कर दिया ॥ ४९ ॥

स शरैः सूर्यसफाशै सुमुखैः शीघ्रगामिभि ॥ ५० ॥
वानराणामनीकानि निर्ममथ महारणे ।

उस महासमरमें रावणद्वारा वानरोंकी सेनाओंको
सूक्ष्म तेजस्वी शीघ्रगामी सायकोंद्वारा वानरोंकी सेनाओंको
मथ डाल ॥ ५० ॥

आकुला वानरौ मेना शरजाटेन पीडिताम् ॥ ५१ ॥
इष्ट स परया प्रीत्या ददर्श क्षतजोक्षिताम् ।

उत्तम बाणजालने पीड़ित हो वानरीसेना व्याकुल हो उठी
और रत्नने नहा गयी । उसने बड़े हृष्ट और प्रसन्नतासे साथ
शत्रुसेनाकी इस दुरवस्थाको देखा ॥ ५१ ॥

पुनरेव महातेजा राक्षसेद्रात्मजो वली ॥ ५२ ॥
सद्युज्य बाणवर्षं च शस्त्रवर्षं च दारुणम् ।
ममद वानरानीक परितस्त्रिजिह्वं वली ॥ ५३ ॥

वह राक्षसराजकुमार इन्द्रजित् बाण तेजस्वी, प्रभावशाली
एव बलवान् था । उसने सब ओरसे बाणों तथा अन्यान्य
अस्त्र शस्त्रोंकी भयकर वर्षा करके पुन वानर-सेनाको रोंद
बाला ॥ ५२ ५३ ॥

स्वमेन्यमुत्सृज्य स्वमेव तूर्णं
महाहवे वानरवाहिनीषु ।
अहदयमानः शरजालमुग्र

वर्षय नीलाम्बुधरो यथाशु ॥ ५४ ॥
तत्सत्वात् वह अपनी सेनाके ऊपर भागको छोड़कर
उस महासमरमें तुरत वानर-सेनाके ऊपर जा पहुँचा और
स्वय आकाशमें अहदय रहकर भयानक बाणसमूहकी उनी
तरह वर्षा करने लगा, जैसे काल मेघ जलकी वृष्टि
करता है ॥ ५४ ॥

ते शक्रजिह्वागिरिपीठेहा
मायाहता विश्वरसुप्रदन्ता ।
गणे निपेतुहरोऽद्रिकल्पा
यथेन्द्रयस्त्रभिहता तनो द्राः ॥ ५५ ॥

जैसे इन्द्रके वज्रसे आहत हो बड़े-बड़े पर्वत भगवती हो

रूपे है, उसी प्रकार वे पतङ्गवाक्य वानर रणभूमिमें इन्द्रजित्के
बर्णाद्याय छलमें मार जाकर शरीरक क्षय निश्चय हो जानेमें
विजय स्वयंमें नीलवत चित्वात हुए प्रवीर गिर पड़े ॥ ५५ ॥

ते केवल सप्तदशु शिताग्रान्
याणान् रणे वानरघाहिनीषु ।

मायाविगून् च सुरेन्द्रशत्रु
न ज्ञात्र त राक्षसमव्यपश्यन् ॥ ५६ ॥

रणभूमिमें वानर-सेनाओंपर जो पैनी धारवाल् बाण
गिर रहे थे, कबल उहाँको वे वानर देख रहे थे । मायासे
उपे हुए उस इन्द्राद्वी राक्षसका कहीं नहीं देख पात थे ॥

तत स रक्षोधिपतिमहात्मा
सत्रा दिशो बाणगणैः शिताग्रैः ।

प्रच्छादयामास रश्मिकणौ
विंशदरयामास च वानरेष्ठान् ॥ ५७ ॥

उस समय उन महाकाय राक्षसराजने तीली धारवाल
सर्पद्वय तेजस्वी बाण-समूहोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको ढक दिया
और वानर-सेनापतियोंको घावल कर दिया ॥ ५७ ॥

स शूलनिर्व्विशपरभ्यधानि
व्याविद्धदीप्तान् सप्रभाणि ।

सविस्फुल्लिङ्गो न्यल्पायकानि
यथर्षं तीव्रं पृथगेन्द्रसैन्ये ॥ ५८ ॥

यह वानरराजकी सेनाम बर हुए प्रज्वलित पातकर
समान दीप्तिमान् तथा चिनगारियोंसहित उ ज्वल भाग प्रकर
करनेवाल् दूल्, लङ्ग और करमोंकी दु मर हृष्टि करने
लग्ग ॥ ५८ ॥

सतो न्यलनसकादीयाणैश्चानरयूथपा ।
ताडिता शपजिह्वाणां प्रकुल्ला इव किङ्करा ॥ ५९ ॥

इन्द्रजित्के चलाय हुए अनितुल्य तेजस्वी बाणोंने घायल्
॥ रसमें नहाकर लगे वानर-यूथपति गिरल हुए पण्डा वृक्षक
समान बान पड़त थ ॥ ५९ ॥

तऽप्यन्यमभिसपन्तो निनदन्तश्च त्रिभरम् ।
राक्षसे द्राक्षनिर्भिन्ना निपेतुयानरयभा ॥ ६० ॥

राक्षसब इन्द्रजित्के बाणोंमें विगीण हो ब थेष्ठ वानर
एक दूसरेक क्षमन जाकर निहत्न स्वयंमें चीकार करते हुए
धरायासी हो ऋते थे ॥ ६० ॥

उनीक्षमाणा गगन केचिन्नेत्रेषु ताडिता ।
शैर्विजिगुरन्योन्य पतुश्च जगतीनले ॥ ६१ ॥

किन्तु ही वानर आकाशका नीर देख रहे थे । उस
समय उनक नेत्रोंमें बाणोंकी चोट लगा, अत वे एक दूसरेत
शरीरमें सग गय और प्रवीर गिर पड़े ॥ ६१ ॥

हनूमन् च सुग्रीवमङ्गद गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्त सुपेण च घग्गदशिनमत्र च ॥ ६२ ॥

मैन्द च द्विविद् नील गवाक्ष गवय तथा ।
केसरि हरिलिमान विबुद्धश्च च वानरम् ॥ ६३ ॥

सूयानन ज्योतिमुख तथा दधिमुख हरिम् ।
पावकाक्ष नल चैव कुमुद चैव वानरम् ॥ ६४ ॥

प्रसै दालै शितैराणैरिन्द्रनिमग्नसहितैः ।
त्रिष्याध हरिदाभूलाङ्ग सर्गस्तान् राक्षसोत्तम ॥ ६५ ॥

राक्षसप्रार इन्द्रजित् दिव्य मर्गोंम अभिमन्त्रित प्राक्ष,
शूलों और पैने बाणोंद्वारा हनुमान् सुग्रीव, जगन्, गन्धमादन,
जाम्बवान्, सुरग, बगदगी मैन्द द्विविद् नील गवाक्ष
गवय कमर, हरिलिमा, विबुद्ध, सूयानन यानिर्मुख,
दधिमुख, पावकाक्ष, नल और कुमुद आदि सभी थेष्ठ वानरोंका
घावल कर लिया ॥ ६२-६५ ॥

स धं गदभिहग्नियुयमुत्थान
निर्भिद्य राणस्तपनीयशर्णं ।

उत्थ गम शरवृष्टिजालै
सत्कम्पण भास्कररश्मिकल्पै ॥ ६६ ॥

गदाओं और मुक्कण समान कान्तिमान् बाणाद्वारा वानर
यूथपतियोंक क्षय निश्चय कर बर लग्गसहित भागमर
सूयकी क्षिणोंक समान चमकात् बाणसमूहोंकी बरा करन
लगा ॥ ६६ ॥

स बाणवर्षैर्भिवृष्यमाणो
धाराविपातानि तानत्रिभ्यः ।

समागममाण परमाद्भुतश्री
रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ॥ ६७ ॥

उन बाणवर्षा लक्ष्य बने हुए परम अद्भुत नामने
नम्रल भागम पनीकी क्षयाक समन गिरनेवाल् उन
बाणोंकी काह परका न करक सम्भावी अर दक्षत हुए
देल्—॥ ६७ ॥

नसौ पुनर्लक्ष्मण गक्षसेन्द्रो

ब्रह्मास्त्रमाधित्य सुरेन्द्रशत्रु ।

निपातयित्वा हरिसैन्यमस्मा

ङ्गितै शरैरर्दयति प्रसक्तम् ॥ २८ ॥

लक्ष्मण । यह इन्द्राक्षी राक्षसराज इन्द्रजित् प्राप्त हुए
ब्रह्मास्त्रका सहाय लक्ष्मण वानर-सेनाका धरशायी करनेने
पश्चात् शत्रु तीरे बाणाद्वारा हम दोनोंको भी पीड़ित कर
रहा है ॥ २८ ॥

स्वयभुवा दत्तयोगो महात्मा

समाहितोऽन्तर्हितभीमकाय ।

कथं नु शन्यो युधि नष्टदेहो

निहतुमद्ये द्रजिदुद्यतास्त्र ॥ २९ ॥

‘ब्रह्माक्षीषे वरदान पाकर सग्रा धारधान रहनेवाले इस
महामनस्वी वीरने अपने भीषण शरीरका अटव्य कर लिया
है । मुझमें इन इन्द्रजित्का शरीर तो दीपायी ही नहीं देता,
पर यह अस्त्रोंका प्रयोग करना जान रहा है । ऐसी दशामें इने
हमलोग किस तरह मार सकत हैं ? ॥ २९ ॥

मन्ये स्वयमूभययानचिन्त्य-

स्तस्यैतद्रूपं प्रभवन्न योऽस्य ।

बाणावपात त्वमिहाद्य धीमन्

मया सहायप्रमत्ता सहस्र ॥ ३० ॥

‘स्वयम्भू महावान् ब्रह्माका स्वरूप अचिन्त्य है । व ही इस
जगत्में आदि कारण हैं । मैं समझता हूँ, उन्हाका यह जल
है, अतः बुद्धिमान् मुमिनाङ्गुमार । तुम मनमें किसी प्रकारकी
घनराष्ट्र न लाकर मर नाथ यहाँ चुपचाप गये हो इन बाणों
की मार सह ॥ ३० ॥

प्रच्छादयत्येव हि राक्षसन्द

सया दिशः सायकवृष्टिजालं ।

एतद्य सर्वं पतिताम्यश्वः

न भ्राजते वानरगजसैन्यम् ॥ ३१ ॥

हरपार्श्वे ग्रामग्रामायण वास्माकीये आद्रिकाग्रे युद्धकाण्डे त्रिमसतितमः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीवत्सामिनिर्मित आर्यसामायण आश्विनिक युद्धकाण्डम्

तिरुत्तरार्धे सप्त पुरा हुआ ॥ ३२ ॥

‘यह राक्षसराज इन्द्रजित् इस समय बाण-समूहोंकी वर्षा
करके मरण दिशाओंमें आच्छादित किया देता है । वानरराज
मुमिनाङ्गु की यह सारी सेना, जिसके प्रधान-प्रधान शूरवीर पराजयी
हो गये हैं, अब गोमा नहीं पा रही है ॥ ३१ ॥

आज तु दृष्ट्वा पतिनीं विसन्धौ

निवृत्तयुक्ते हतहर्षरायौ ।

ध्रुवः प्रवेक्ष्यत्यमगरावास

मत्सौ समासाद्य गणाभ्यलक्ष्मीम् ॥ ३२ ॥

‘अब हम दोनों हर्ष एवं रोषसे रहित तथा युद्धसे निवृत्त
हैं । ज्वन-से होकर गिर जायेंगे, तब हमें उस अरुणामें देख
युद्धके मुहानेपर विजय लक्ष्मीको पाकर अवश्य ही यह राक्षस
पुरी लक्ष्मीमें लीन जायगा’ ॥ ३२ ॥

ततस्तु ताविन्द्रजिताऽस्त्रजालै

र्बभूवतुस्तत्र तदा विशास्ती ।

स चापि तौ तत्र विपादयित्वा

ननाद हयाद् युधि राक्षसेन्द्र ॥ ३३ ॥

तदनन्तर वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ इन्द्र
जित्के बाण समूहोंमें बहुत घायल हो गये । उस समय उन
दोनोंको युद्धमें पीड़ित करके उस राक्षसराजने बड़े हर्षके साथ
गबना की ॥ ३३ ॥

ततस्तदा धानरसैन्यमेव

राम च सख्ये सह लक्ष्मणेन ।

विपादयित्वा सहसा विवेश

पुरीं दशमैवमुज्जाभिगुताम् ।

मत्सूयमानः स तु यातुधानी

पित्रे च सर्वे हृषितोऽभ्युवाच ॥ ३४ ॥

इस प्रकार सग्राममें वानरकी सेना तथा लक्ष्मणनदित
श्रीरामको मूर्छित कर इन्द्रजित् सहसा दशमुख राक्षसकी
मुजाओद्वारा पालि लक्ष्मीपुरीमें चला गया । उस समय समस्त
निशाचर उसकी स्तुति कर रहे थे । वहाँ व्याकर उठने विवासे
प्रसन्नतापूर्वक अपनी विजयका सारा समाचार बताया ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवत्सामिनिर्मित आर्यसामायण आश्विनिक युद्धकाण्डम्

तिरुत्तरार्धे सप्त पुरा हुआ ॥ ३२ ॥

चतु सप्ततितम सर्ग

जाम्बवानके आदेशसे हनुमान्नीका हिमालयसे दिव्य ओपधियोंक पर्वतको लाना और उन ओपधियोंकी गन्धसे श्रीराम, लक्ष्मण एव ममत्त वानरोंका पुन स्वस्व होना

नयोस्तन्नासादितयो रणाग्रे
सुमोह सैन्य हरियूयपानाम् ।
सुधीवनीलाङ्गजाम्बवन्तो

न चापि किञ्चित् प्रतिपेदिंते ॥ १ ॥

युद्धके मुहानेपर जब वे दोनों भाई धाराम और लक्ष्मण निष्पन्न होकर पड़ गये तब गानर-सेनापतियोंका वह सेना किर्तव्यविमूढ़ हो गयी । सुभीर नील, अगद और जाम्बवान् को भी उस समय कुछ नहीं सूझता था ॥ १ ॥

ततो विपण्ण समवेक्ष्य सर्वे
विभीषणो युद्धिमता चरिष्ठ ।

उगच्छ द्वाष्टामृगगन्धरी
नाथवास्यप्रप्रतिमन्त्रोभिः ॥ २ ॥

उस समय सबका निगदमें डूबा हुआ देख बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभाषण वानरसब उन उग लोकोका आश्रममें पहुँचने पर आशीर्वाद देना चाहते थे—॥ २ ॥

मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकाले
यदायुधौ हाव्यौ विपण्णौ ।
स्वयमुगो वाग्यमयोदहन्तौ
यन्मादितामिन्द्रजितास्त्रजालं ॥ ३ ॥

गानर वीर ! आपसमें भयभीत न हों । यहाँ विषादका अन्तर नहीं है क्योंकि इन दोनों आर्यपुत्रोंमें ब्रह्माजीने वचनोंका आनन्द एवं प्राप्त कर लिये हैं ही हथियार नहीं उगाय थे इसीलिये इन्द्रजित् इन दोनोंका अपने अस्त्र समूहसे आच्छादित कर दिया था । अतएव वे दोनों भाई बरल विजयप्रप्त (मूर्ति) हो गये हैं (इनके प्राणोंपर संकट नहीं आया है) ॥ ३ ॥

तस्मै तु दत्त परमास्त्रमेतत्
स्वयमुगो ब्राह्मणमोघरीयम् ।
तमानयन्तौ युधि राजपुत्रौ

निपातिनौ षोडश विषादकालम् ॥ ४ ॥

स्वयमुगो ब्राह्मणे यह उत्तम अस्त्र इन्द्रजित् ने दिया

था । ब्रह्मस्त्र नाममें इसकी प्रसिद्धि है और इसका बल अमर है । तमाममें उसका नामान्तर—रघुवी मयादाकी रक्षा करत हुए ही वे दोनों राजकुमार धरणीय हुए हैं अतः इसमें वेदका कौन भी जान है ? ॥ ४ ॥

ब्राह्मणस्ततो धीमान् मानयिन्वा तु मांति ।
विभीषणश्च श्रुत्वा हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

विभीरुगर्भी बात सुनकर बुद्धिमान् पानकुमार हनुमान्ने ब्रह्मास्त्रका सम्मान करते हुए उनमें इस प्रकार कहा—॥ ५ ॥
मस्मिन्नस्त्रहते सैन्ये वानराणां तरस्यिनाम् ।
यो यो धारयते प्राणास्त तमाश्वासयानह ॥ ६ ॥

‘राष्ट्रशत्रु ! इन अस्त्रमें बाण’ हुए वेगशाली वानर न निश्चिन्नें जा-जा प्राण धारण करते हों, उन जनको हम चरकर आश्रम देना चाहिये’ ॥ ६ ॥

तापुभी युगपद् वीरौ हनूमद्राभसोचमौ ।
उल्काहस्तौ तदा राघौ रणदीर्घौ निरेतु ॥ ७ ॥

उस समय यत हो गयी थी, इसलिये हनुमान् और रात्र्यप्रवर विभीरु दोनों वीर अपने अपने हाथमें मस्त्र लिये एक ही साथ रात्र्यप्रवरोंमें निचरने लगे ॥ ७ ॥

भिन्नलङ्कूलहस्तोरुपाहुलिशिरोधरौ ।
स्त्रवद्वि श्वतज गात्र प्रस्त्रवद्वि समन्तम् ॥ ८ ॥
पतिर्न पततकार्वाणैरभिसृजताम् ।
शार्ङ्गश्च पतिर्वर्द्धसिद्धशान वसुधराम् ॥ ९ ॥

जिनकी शूल, हाथ, पर, जात्र, अगुलि और प्रागा आदि अस्त्र कट गये थे, अतएव जा अपने शरीरसे रक्त बहा रहे थे ऐसे पर्याकार वानरोंमें निरनेसे बहोने लगी भूमि सब अपने पट गया थी तथा बहो गिर हुए चमरीय अस्त्र दृष्टासे भी आच्छादित हो गयी थी । हनुमान् और विभीषण इन अवस्थामें—स युद्धभूमिका निरीक्षण किया ॥ ८ ॥

सुधीरमज्जद नील दारभ वायमादनम् ।
जाम्बवन्त सुपण च वगद्विजानमय ॥ १० ॥

मैन्द नल ज्योतिर्मुख द्वित्रि चापि वानरम् ।

निभीषणो हनूमाश्च ददृशाते हतान् रणे ॥ ११ ॥

सुग्रीवः अगदः, नीलः, शरमः, गन्धमानः, आभ्यमानः, सुषेणः, वगदर्शाः, मैन्दः, नलः, ज्योतिर्मुखः तथा द्वित्रि—इन सभी वानरों को हनुमान् और निभीषणने युद्धमें घायल होकर पड़ा देखा ॥ १० ११ ॥

सप्तपट्टिता कौट्टपा वानराणा तरस्विनाम् ।

अह पञ्चमशेषेण बल्लमेन स्वयभुव ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीवे प्रिय अर्ध—ब्रह्मास्त्रन दिनक चार भाग व्यतीत होते-होते सरसठ करोड़ वानरोंको हताहत कर दिया था । जब केवल पाँचवाँ भाग—छायाहृकाल शेष रह गया, तब ब्रह्मास्त्रका प्रयोग बंद हुआ था ॥ १२ ॥

सागरौघनिभ भीम दृष्ट्वा याणार्दित बलम् ।

मार्गते जाप्यन्ते च हनूमान् सनिभीषण ॥ १३ ॥

समुद्रके समान विवाह एव मयकर वानर-सेनाका बाणोंसे पीड़ित देख विभीषणनदित हनुमान्की आश्रयवाञ्छा हुईने लगे ॥ १३ ॥

स्वभाजजरया युक्त वृद्ध शशशैलक्षितम् ।

प्रजापतिस्तुत वीर शम्भ्यन्तमिव पावकम् ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा समभिसक्तस्य पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ।

कश्चिदाय शरैस्तीक्ष्णैर्न प्राणा ध्यसितास्तव ॥ १५ ॥

ब्रह्माजीव पुत्र वीर आभ्यमान् एक तो स्वाभारिक वृद्धा बल्लसे युक्त थे, दूसरे उनके शरीरमें सेरङ्गा बाण धँस हुए थे, अतः व युद्धती हुइ आगध समान निरुत्त दिव्यापी देत थे । उन्हें देखकर निभीषण तुरत ही उनका पास गया और बोला—‘आर्य ! इन तीक्ष्ण बाणाक प्रहारसे आपका प्राण निकल तो नहीं गये ?’ ॥ १४ १५ ॥

विभीषणपथं श्रुत्वा आम्बवान् नृसपुङ्गवः ।

हृच्छ्रद्भ्युत्थितश्च आप्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥

निभीषणकी बात सुनकर श्रेष्ठपन्न आम्बवान् बड़ी कठिनार्से वाक्यका उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले— ॥ १६ ॥

नैश्वस्तेन्द्र महावीर्य स्वरेण त्यागितक्षये ।

यिदमात्र शितयार्णवं द्यायदयसि वज्रया ॥ १७ ॥

‘महापराक्रमी राघवराज ! मैं बचल स्वरसे तुम्हें पहचान रहा हूँ । मेरे सभी अस्त्र पैसे बाणोंसे बिधे हुए हैं, अतः मैं आँख खोलकर तुम्हें नहीं देख सकता ॥ १७ ॥

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिभ्य च सुप्रत ।

हनूमान् वानरश्रेष्ठ प्राणान् धारयते क्वचित् ॥ १८ ॥

‘उत्तम प्रतये पालक विभीषण ! यह तो बगऔ, जिनको कम देनेसे अञ्जनादेवी उत्तम पुत्रकी जननी और वायुदेव अष्ट पुत्रके जनक माने जाते हैं, व वानरश्रेष्ठ हनुमान कहीं जीवित है ?’ ॥ १८ ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेद विभीषण ।

आर्यपुत्रावतिक्त्वा कक्षात् पृच्छसि मावतिम् ॥ १९ ॥

जाम्बवान्का यह प्रश्न सुनकर विभीषणने पूछा— ‘श्रेष्ठपन्न ! आप दोनों महाराजकुमारोंको छाड़कर केवल पवनकुमार हनुमान्कीको ही क्या पूछ रहे हैं ?’ ॥ १९ ॥

नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे ।

आर्य सदर्शित स्नेहो यथा वायुसुते पर ॥ २० ॥

‘आर्य ! आपने न तो राजा सुग्रीवपर, न अगदपर और न भगवान् भीरामपर ही ऐसा स्नेह दिखाया है, जैसा पवन पुत्र हनुमान्कीके प्रति आपका प्रमाण प्रेम लक्षित हो रहा है’ ॥ २० ॥

विभीषणवचं श्रुत्वा जाम्बवान् वाक्यमब्रवीत् ।

शृणु नैश्वस्तेन्द्राहं यस्मात्पृच्छामि मावतिम् ॥ २१ ॥

विभीषणजी यह बात सुनकर जाम्बवान्ने कहा— राघवराज ! सुन । मैं पवनकुमार हनुमान्कीको क्यों पूछता हूँ—यह क्या रहा है ॥ २१ ॥

अस्मिन्नीधति वीरे तु हतमप्यहत फलम् ।

हनूमन्तुज्जितप्राणे जीवन्तोऽपि स्मृता वधम् ॥ २२ ॥

यदि वीरकर हनुमान् जीवित हों तो वह मुझे मेना भी जीवित ही है—ऐसा समझना चाहिय और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हमलोग जीत हुए भी मृतके ही तुल्य हैं ॥ २२ ॥

धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि ।

येभ्यारसमो वीर्ये जीवितास्ता ततो भवेत् ॥ २३ ॥

‘तात ! यदि वायुके समान वेगवाली और अग्नि

समान पराक्रमी पवनकुमार हनुमान जीवित हैं तो हम सबके
जीविन होनेकी आशा की जा सकती है ॥ २३ ॥

ततो वृद्धमुपागम्य विनयेनाभ्यवाक्यत् ॥

गृह्य जाम्बवत पादौ हनुमान् मारुतात्मज ॥ २४ ॥

बृद्धे जाम्बवान् इतना कहते ही पवनपुत्र हनुमानजी
उनके पास आ गये और दोनों पैर पकड़कर उन्होंने विनीत
भावसे उठ प्रणाम किया ॥ २४ ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्य तदा विष्पयिनेन्द्रिय ।

पुनर्जातमिवास्मान् मन्यते स्मर्षपुङ्गव ॥ २५ ॥

हनुमानजीकी बात सुनकर उस समय ऋष्यराज जाम्बवान्
ने, जिसकी छारी इन्द्रियों बाणोंक प्रहारसे पीड़ित था, अपना
पुनर्जन्म हुआ-सा माना ॥ २५ ॥

ततोऽग्रवी महातेजा हनुमन्त स जाम्बवान् ।

आगच्छ हरिदादृष्ट वानरास्तातुमर्हसि ॥ २६ ॥

फिर उन महातेजस्वी जाम्बवान्ने हनुमानजीसे कहा—
‘वानरसिंह ! आओ, सगुण वानरोंकी रक्षा करो ॥ २६ ॥

नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेव परम सखा ।

स्वत्पराक्रमकालोऽयं नान्य पश्यामि कचन ॥ २७ ॥

‘तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पूरा पराक्रमसे युक्त नहीं है ।
तुम्हीं हम सबके परम सहायक हो । यह समय तुम्हारे ही
पराक्रमका है । मैं दूसरे किसीको इसके साम्य नहीं देखता ॥

अस्तवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय ।

विशाल्यौ क्रुद्ध चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥

‘तुम ऐत्यों और वानरवीरोंकी सेनाओंको हर्ष प्रदान करो
और शार्ङ्गसे पीड़ित हुए इन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण
क शरीरसे बाण निशालकर उन्हें स्वस्थ करो ॥ २८ ॥

गत्वा परममध्यान्मुपसृपारि सागरम् ।

हिमवन्त नगभेष्ट हनुमन् गतुमर्हसि ॥ २९ ॥

‘हनुमन् ! समुद्रके ऊपर-ऊपर उड़कर बहुत दूरका रास्ता
ते नरके तुम्हें पर्वतभेष्ट हिमालयपर जाना चाहिये ॥ २९ ॥

तत काञ्चनमत्युद्यम्यभ पर्यतोत्तमम् ।

कौलासशिखरं चात्र प्रक्षयम्यरिनिवृत्त ॥ ३० ॥

‘गुप्तदत्त ! वहाँ पहुँचनेपर तुम्हें बहुत ही ऊँचे कुलपमय

तथो शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमनुत्प्रभम् ।

सर्वौघधिपुत वीर प्रक्षयस्योपधिपर्वतम् ॥ ३१ ॥

‘वीर ! उन दोनों शिखरोंके बीचमें एक ओगधियोंका
पर्वत दिखायी देगा, जो अत्यन्त दीप्तिमान् है । उसमें इतनी
चमक है, जिसकी वही तुल्यानर्हा है । यह पवन सप्त प्रकारकी
ओगधियोंसे सम्पन्न है ॥ ३१ ॥

तस्य वानरशार्ङ्गल चतस्रो मूर्ध्नि सम्भवा ।

द्रक्ष्यस्योगधयो वीरा दीपयन्तीर्दिशो दश ॥ ३२ ॥

‘वानरसिंह ! उसका शिखरपर उत्पन्न चार ओगधियों
तुम्हें दिखायी दगी, जो अपनी प्रभासे दशों दिशाओंको
प्रकाशित किये रहती हैं ॥ ३२ ॥

मृतत्वजीवनीं चैव विशाल्यकरणीमपि ।

सुवर्णकरणीं चैव सधानीं च महौघधीम् ॥ ३३ ॥

‘उनके नाम इस प्रकार हैं—मृतत्वजीवनी, विशाल्यकरणी,
सुवर्णकरणी और सधानी नामक मरौघधि ॥ ३३ ॥

ता सवा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागतुमर्हसि ।

आग्वासय हरिन् प्राणैर्योज्य गन्धयहात्मज ॥ ३४ ॥

‘हनुमन् ! पवनकुमार ! तुम उन सब ओगधियोंको
लकर शीघ्र लौट आओ और वानरोंको प्राणदान देकर आश्वासन
दो ॥ ३४ ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमान् मारुतात्मज ।

आपूयत श्लोढर्यैर्शयुगेरीरिवाणय ॥ ३५ ॥

जाम्बवान्की यह बात सुनकर बापुनन्दन हनुमान्जी उठी
तबही अलीम बलसे भर गये, जैन महाप्रागर शायुके बेगने
व्याप्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

स पवततटाग्रस्य पीठयन् पर्यतोत्तमम् ।

हनुमान् दृष्टयन् वीगे द्वितीय इय पर्यत ॥ ३६ ॥

वीर हनुमान् एक पर्वतक शिखरपर लढ़े हा गय और
उस उत्तम पर्वतको पैरोंसे दबात हुए द्वितीय पर्वतके समान
दिग्भागी देने लगे ॥ ३६ ॥

हनिपाद्विनिर्भ्रमो निगस्ताद् स पयत ।

न दाशाक तदास्मान बोद्धु भृशनिपीडित ॥ ३७ ॥

हनुमान्जीक चरणोंक भारसे पीड़ित हो यह पवन चरणोंमें
घँट गया । अधिक दबाव पड़नेक कारण वह अपने शरीरका

प्रहालय शकरफासुक च

वदशं नाभिं च चमुधराया ॥ ६० ॥

इसक सिवा अमिका, तुरेका और द्वादश सूर्योके
समावेशका भी सूर्यतुल्य तेजस्वी स्थान उई दृष्टिगोचर हुआ ।
चतुर्मुख ब्रह्मा, शक्रजीके धनुष और बहुभयस्त्री नामिके
स्थानोंका भी उन्होंने दर्शन किया ॥ ६० ॥

कैलासमग्न्य हिमरञ्जिता च

त वै चूप काञ्चनचौलमग्न्यम् ।

प्रदीप्तसूर्योपधिसम्प्रदीप

दन्तं सपौर्यधिपपतेन्द्रम् ॥ ६१ ॥

तत्सम्प्रात् श्रेष्ठ कैलासपर्वत, हिमालय शिख, शिवजीके
बाहन वृषभ तथा सुवर्णमय श्रेष्ठ पर्वत शृंगमको भी देखा ।
इसक बाद उनकी दृष्टि सम्पूर्ण ओपधियोंक उत्तम पर्वतपर
पड़ी, जो सब प्रकारकी दीप्तिमती ओपधियोंसे देदीप्यमान हो
रहा था ॥ ६१ ॥

स त समीक्ष्यानलराशिदीप्त

विस्मिन्निधे वासवदूतसुनु ।

आच्युत्य त चौर्यगिर्पर्वते प्र

तन्नीपधीना विचय चकार ॥ ६२ ॥

अग्निराशिक समान प्रकाशित होनेगले उस पर्वतको
देखकर पवनकुमार हनुमानजीको बड़ा विस्मय हुआ । वे
कुदकर ओपधियोंसे भरे हुए उस गिरिराजपर चढ़ गये और
वहाँ पूर्वोक्त चारों ओपधियोंकी खोज करने लगे ॥ ६२ ॥

स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपि ।

दिव्यौपधिधर शैल व्यचर-मावतात्मज ॥ ६३ ॥

महाकपि पवनपुत्र हनुमानजी सहयोगी गोबन्ध लौपकर वहाँ
आये थे और दिग्भ्य ओपधियोंको धारण करनेवाल उस शैल
शिखरपर विचरण कर रहे थे ॥ ६३ ॥

महौपधयस्ततः सयास्तस्मिन् पर्वतसत्तमे ।

विज्ञापयिन्ममायान्त ततो जम्बुद्वेशनम् ॥ ६४ ॥

उस उत्तम पर्वतपर रहनेवाली सगुण महौपधियों यह
बतानकर कि कोई हम लेनेके लिये आ रहा है, तत्काळ अहङ्ग
हो गयी । ६४ ॥

स ता महात्मा हनुमानपदय

दद्युकोप रोषाण्य मृदा जनाद ।

अमृष्यमाणोऽग्निसमानचभु

महीधरेन्द्र तमुवाच वाक्यम् ॥ ६५ ॥

उन ओपधियोंको न देखकर महात्मा हनुमानजी कुपित
हो उठे और रोनेके कारण धीरे-धीरेसे गर्जना करने लगे ।
ओपधियोंका छिपाना उनके लिय असह्य हो गया । उनकी
आँखें अग्निक समान लाल हो गयीं और वे उस पर्वतपर्वसे
इस प्रकार बोले— ॥ ६५ ॥

स्मितदेव सुविनिश्चित ते

यद् राघवे नास्ति कृतानुकम्प ।

पदयाद्य मद्वाहुयलभिर्मूलो

विकीर्णमात्मानमथो नगेन्द्र ॥ ६६ ॥

भगवन् ! तुम भीरुनाथजीपर भी कृपा नहीं कर सके,
ऐसा निश्चय तुमने किस वरपर किया है ! आज मेरे बाहुबल-
से पराजित होकर तुम अपने-आपको सब ओर विलप हुआ
देखो ॥ ६६ ॥

स तस्य शृङ्ग सनय सनय

सकाञ्चन धातुसहस्रजुग्मम् ।

विकीर्णकूट ज्वलितप्रसातु

प्रमृष्ट येगात् सहस्रो ममाथ ॥ ६७ ॥

ऐसा बहकर उन्होंने वेगसे पड़कर दृष्टि, हाथियाँ,
सुवर्ण तथा अन्य सहस्रों प्रकारकी धातुओंमें भरे हुए उस
पर्वतशिखरको ही सहसा उलाड़ लिया । वेगसे उलाड़ जानेक
कारण उसकी बहुतसी चोटियाँ शिखरपर गिर पड़ीं । उस
पर्वतका ऊपरी भाग अपनी प्रभासे प्रज्वलित-सा हो रहा
था ॥ ६७ ॥

स त समुत्पाठ्य स्वमुत्पपात

विश्रस्य लोकान् ससुरासुरेन्द्राद् ।

सस्तूपमान खचरैरनेकै

अगाम येगाद् गरुहोप्रवेग ॥ ६८ ॥

उत्ते उलाड़कर साथ ही हनुमानजी देवधर्मों और
असुरेश्वरोंसेहित सगुण लोकोंको भयभीन करते हुए गरुहके
समान धरेंद्र चंगेसे आकाशमें उड़ चले । उस समय बहुत
से आकाशचारी प्राणी उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ६८ ॥

स भास्कराञ्जानमनुप्रपद्य

स्त भास्कराभ शिखर प्रमृष्ट ।

प्रहालय शकरवार्तुक च

वदशं नाभिं च वसुधराया ॥ ६० ॥

इसके सिवा अग्निरा, सुरेखा और द्वादश सूर्योके समवेशका भी सूर्यसुख तज्ज्वली स्थान उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। चतुर्मुख भद्राः शकरजीके धनुष और वसुधराणी नाभिके आनोका भी उन्होंने दर्शन किया ॥ ६० ॥

कैलासमग्न हिमवच्छिला च

त वै वृष काञ्चनशैलमग्न्यम् ।

प्रदीप्तसर्वायधिसम्प्रदीप्त

वदशं सर्वायधिवर्षतेन्द्रम् ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ कैलासपर्वत, हिमालय शिला, शिवजीके वाहन वृषभ तथा सुवर्णमय श्रेष्ठ पर्वत श्रुपमको भी देखा। इसके बाद उनकी दृष्टि सन्धुज ओषधियोंके उत्तम पर्वतपर पड़ी, जो सब प्रकारकी दौलतमयी ओषधियोंसे देदीप्यमान हो रहा था ॥ ६१ ॥

स त समीक्ष्यानलराशिदीप्त

वितिसिन्धये यासजद्रूतस्तु ।

आस्तुत्य त औषधिययतेन्द्र

तत्रौषधीना निचय चकार ॥ ६२ ॥

अग्निराशिके समान प्रकाशित होनेवाले उस पर्वतको देखकर पवनकुमार हनुमानजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे क्रुद्धकर ओषधियोंसे भरे हुए उस गिरिपर्वतपर चले गये और वहाँ पूर्वोक्त चारों ओषधियोंकी खोज करने लगे ॥ ६२ ॥

स योजनसहस्राणि समतीत्य भद्राकपि ।

दिध्यौषधिर शैल व्यवस्थाप्यमात्मज ॥ ६३ ॥

भद्राकपि पवनपुत्र हनुमानजी सहस्रो योजन लौंघकर यहाँ आये थे और दिव्य ओषधियोंको धारण करनेवाले उस गैत्र शिखरपर विचरण कर रहे थे ॥ ६३ ॥

महीपथस्तत स्यान्तस्मिन् पथतसत्तमे ।

विशयायिनमायान्त ततो जम्बुद्वीपतमम् ॥ ६४ ॥

उस उत्तम पर्वतपर रहनेवाली सन्धुज महीपथियों यह जानकर कि कोई हमें लक्ष्य लिये आ रहा है, तत्पश्चात् आह्वय हो गये । ६४ ॥

स ता महात्मा हनुमानपथ्य

दशुकोप रोषाण शूरा ननाद ।

अमृष्यमाणोऽस्मिन्मानवधु

मतीधरेन्द्र तमुवाच वाक्यम् ॥ ६५ ॥

उन ओषधियोंको न देखकर महामा हनुमानजी कुपित हो उठे और रोपके कारण चौर-चोरसे गर्जना करने लगे। ओषधियोंका छिपाना उनके लिये असह्य हो गया। उनकी आँखें अभिके समान टाल हो गयीं और वे उस पर्वतपर्वते इस प्रकार बोले—॥ ६५ ॥

किमेतद्वय सुनिनिश्चित ते

यद् राघवे नास्ति कृत्वालुकम्प ।

पदयाद्य मद्राहुयलाभिभूतो

विकीर्णमात्मानमयो नरोद्र ॥ ६६ ॥

‘नरोद्र ! तुम भीरुनायकीपर भी डूपा नहीं कर सके, ऐसा निश्चय तुमने किस बल्पर किया है ! आज मेरे बाहुबल से पराकृत होकर तुम अपने-आपको सब आर शिखर हुआ देखो’ ॥ ६६ ॥

स तस्य शृङ्ग मलय सनाग

सकाञ्चन धातुसहजजुष्टम् ।

विकीर्णकूट ज्वलिताप्रसालु

प्रमृष्टा वेगाद् सहस्रोममाय ॥ ६७ ॥

ऐसा कहकर उन्होंने वेगसे परकृद्धकृष्टों, हाथियों, मुषण तथा अन्य सहस्रों प्रकारकी धातुओंसे भरे हुए उस पर्वतशिखरको ही सहसा उखाड़ लिया। वेगसे उखाड़े जानेक कारण उसकी बहुत-सी चोटियों गिरकर गिर पड़ीं। उस पर्वतका ऊपरी भाग अपनी प्रभासे प्रज्वलित-सा हो रहा था ॥ ६७ ॥

स न समुत्पाद्य खमुत्पयात

विश्रास्य लोकान् ससुरासुरेन्द्रान् ।

सस्तुयमान खचरैरनेके

जंगाम वेगाद् गच्छोप्रनेग ॥ ६८ ॥

उमे उखाड़कर साथ ही हनुमानजी देनेश्वरों और असुरेश्वरोंसहित सन्धुज शान्तिके मयभीत करते हुए गच्छके समान मर्यादर बगले आरागमें उड़ चले। उस समय बहुत से व्याघ्रचारी प्राणी उनकी खुति कर रहे थे ॥ ६८ ॥

स भास्कराभ्यानमनुपपन्न

स्त भास्कराभ शिखर प्रमृष्टा ।



पर्वतको हाथपर लिये हुए हनुमान्का प्रत्यागमन

यभी तदा भास्करसनिकाशो

रवे समीपे प्रतिभास्कराभ ॥ ८९ ॥

सूर्यके समान चमकते हुए उस परतपिखरको हाथमें लेकर हनुमान्जी सूर्यके ही पथपर जा पहुँचे थे । उस समय सूर्यदेवने समीप रहकर ठहीके समान तेजस्वी गरीबाले के पवनकुमार दूधरे सूर्यकी भाँति प्रनीत होते थे ॥ ८९ ॥

स तेन शैलेन भृदा रराज

शैलोपमो गन्धवहात्मजस्तु ।

सहस्रधारेण सपायकेन

चक्रेण खे विष्णुरिवापितेन ॥ ९० ॥

बायुदेवताके पुत्र हनुमान्जी परतने समान जान पड़ते थे । उस पवतशिखरके साथ उनकी वैसी ही विनोद सामा हो रही थी; जैसे सहस्रधारोंसे सुशोभित और अमिकी ज्वालसे सुच चक्र धारण करनेसे भगवान् विष्णु सुशोभित होते हैं ॥

त चात्मा प्रेक्ष्य तदा विनेह

स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद् ।

तेषां समुत्पट्टराद्य निशम्य

लङ्कालया भीमतर विनेतुः ॥ ९१ ॥

उस समय उन्हें लौटा देव सब वानर जोर-जोरसे गज्जा करने लगे । उन्होंने भी उन सबको देखकर बड़े हर्षसे सिंहावाद किया । उन सबके उस सुमुलनादको सुनकर लङ्कावासी निशान्वर और भी भयानक स्वरमें चीत्कार करने लगे ॥ ९१ ॥

ततो महामा निपपात तस्मिन्

शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ।

ह्युत्तमेभ्य शिरसाभिग्राह्य

विभीषणं तत्र च सखजे स ॥ ९२ ॥

तदनन्तर हनुमान्जी उस उत्तम परत प्रिकृत्पर नूद पड़े और वानरसेनाक मध्यमें आकर सभी श्रेष्ठ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणसे भी उन्हें गले लगाकर मिला ॥ ९२ ॥

तापस्युभी मानुराजपुत्री

त गन्धमाद्याय महोपधीनाम् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्योऽध्याये आठिवाध्याये युद्धकाण्डे चतुस्सप्ततितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार आरम्भित निश्चित अष्टाध्याय्य आठिवाध्याय युद्धकाण्डे चतुस्सप्ततितमः सर्ग पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

अभूवतुस्तत्र तदा विशल्या

युत्तस्युगये च हरिप्रतीरा ॥ ९३ ॥

सर्वे विशल्या त्रिकुजा भण्डेन

हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्युः ।

गन्धेन तासां प्रप्रौढधीना

सुता निशातेरिग्र्य सम्प्रमुखा ॥ ९४ ॥

इसके बाद वे दोनों शत्रुकुमार भीराम और लम्पण उन महोपधियोंकी सुगंध लेकर स्वस्थ हो गये । उनके शरीरसे बाण निकल गये और पाव भर गये । इसी प्रकार जो दूधरे दूधरे प्रमुख वानर वीर वहाँ हताहत हुए थे, वे सब ध-सब उन श्रेष्ठ ओपधियोंकी सुगन्धसे रातके अन्तमें साँकर उठ हुए प्राणियोंकी भाँति क्षणभरमें नीरोग हो उठकर खड़े हो गये । उनके शरीरसे बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा जाती रही ॥ ९३ ९४ ॥

यक्षप्रभृति लङ्काया युध्यन्त हरिराक्षसा ।

तदामभृति मानार्थमाश्रया रात्रणस्य च ॥ ९५ ॥

ये हन्यन्ते रणे तत्र राक्षसा कपिकुञ्जरे ।

हता हतास्तु क्षियन्ते सर्वे एव तु सागरे ॥ ९६ ॥

लङ्कामें जवसे वानरों और राक्षसोंकी लड़ाई शुरू हुई, तभीसे वानरवीरोंद्वारा रात्रणभूमिमें जो-जो राक्षस मारे जाते थे, वे सभी राक्षसोंकी आश्रय अनुसार प्रतिदिन मरते-मरते ही समुद्रमें डूब दिये जाते थे । ऐसा इच्छित होता था कि वानरोंको यह मान्य न हो कि बहुतसे राक्षस मार जाते गये ॥ ९५ ९६ ॥

ततो हरिर्गन्धमाद्याय महोपधीनाम्

तमोपधीशैलमुद्रमवेगः ।

निनाय येगाक्षिमज्जामेय

पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ९७ ॥

तत्पश्चात् प्रचण्ड वेगवाला पवनकुमार हनुमान्जीने पुन ओपधियोंके उस परतका वगुन दिमाल्यर ही पहुँचा दिया और फिर लौटकर वे भीरामचन्द्रकोसे आ मिला ॥ ९७ ॥



पर्वतको हाथपर लिधे हुए हनुमान्का प्रत्यागमन

यधौ तदा भास्करसन्निधासौ

रथे समीपे प्रतिभाङ्कराभ ॥ ६९ ॥

सूर्य समान चमकते हुए उस पवनगिरिका हाथमें लेकर हनुमान्जी सूर्यके ही पथपर जा पहुँच थे। उस समय सूर्यदेवके समीप रहकर उन्होंने समान तेजस्वी गरीबाल व पवनकुमार दूसरे सूर्यकी भाँति प्रतीत होते थे ॥ ६९ ॥

स तेन शैलेन भृशं रराच

शैलोपमो गन्धमात्मजस्तु ।

सहस्रधारेण सपावकेन

चम्रेण खे निष्पुनिरापितेन ॥ ७० ॥

बायुदेवताके पुत्र हनुमान्जी पर्वतके समान आज पड़ते थे। उस पवनगिरिकर साथ उनकी वैसी ही विशेष शोभा हो रही थी, जैसे सहस्रधारोंसे सुगन्धित और अम्लीक चालने मुक्त चक्र धारण करनेसे भगवान् विष्णु सुषोभित होते हैं ॥

त वानरा प्रेक्ष्य तदा विनेदुः

स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद ।

तेषां समुत्पट्टरथ निशम्य

लङ्कालया भीमतर विनेदुः ॥ ७१ ॥

उस समय उन्हें लोग देख सब वानर चोर चोरसे गर्जना करने लगे। उन्होंने भी उन सबका देखकर बड़े हर्षसे मिहनाद किया। उन सबके उस समुत्पट्टरथानुसार लङ्कागवी निगाहर और भी भयानक स्वरमें चीत्कार करने लगे ॥ ७१ ॥

ततो महामा निपपात तस्मिन्

शैलोत्तमे चानरसैन्यमध्ये ।

हमुत्तमेभ्य शिरसाभिवाद्य

निभीयण तत्र च सस्यजे सः ॥ ७२ ॥

तदनन्तर हनुमान्जी उस उत्तम पर्वत शिखरपर चढ़ पड़े और वानरसेनाके मध्यमें आकर सभी श्रेष्ठ वानरोंको प्रणाम कर निभीयण भा उन्होंने गल गगारक मिला ॥ ७२ ॥

ताप्युभौ मानुररानुभौ

त गन्धमाग्राय महौषधीनाम् ।

हृत्पापैर्धूमद्रामायाये वास्मीक्षये आदिशाम्ये युद्धकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

इस प्रायः श्रमपूर्ण निमित्त अथवा अन्य अतिशय बुद्धिमान् वीरोंका मन दग हुआ ॥ ७३ ॥

यभूवतुस्तत्र तदा विदालया

वुत्तस्युरन्ये च हरिप्रसीता ॥ ७३ ॥

सर्वे विदालया विदजा श्येने

हरिप्रसीताश्च हताश्च ये स्युः ।

गन्धेन तासां प्रसीर्यधीना

सुता निदान्तेऽपि सम्प्रमुखा ॥ ७४ ॥

इसके बाद वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण उन महौषधियोंकी सुगन्ध लेकर स्वस्थ हो गए। उनका गरीबसे बाण निकल गया और घाव भर गये। इसी प्रकार जो दूसरे दूसरे प्रमुख वानर वीर वहाँ इताहत हुए थे वे सब बच-बच उन श्रेष्ठ ओषधियोंकी सुगन्धसे रक्त भन्तमें मकर उठ हुए प्राणियोंकी भाँति क्षणभरमें नीरोग हो उठकर खड़े हो गये। उनमें धीरसे बाण निकल गया और उनकी सारी पीड़ा जाती रही ॥ ७३-७४ ॥

यक्षप्रभृति लङ्काया युध्यन्ते हरिराक्षसाः ।

तदाप्रभृति मानार्यमात्रया राजस्य च ॥ ७५ ॥

ये हन्यन्ते रणे तत्र राक्षसाः कपिकुञ्जैः ।

हता हतास्तु क्षिप्यन्ते सर्वे एव तु सागरे ॥ ७६ ॥

लङ्कामें जवसे वानरों और राक्षसोंकी लड़ाई शुरू हुई, तभीसे वानरवीरोंद्वारा राक्षसोंमें जो-जो राक्षस मारे जाते थे, वे सभी राक्षसोंकी आशाने अनुसार प्रतिदिन मरते-मरते ही समुद्रमें पक दिये जाते थे। ऐसा इच्छिते होना था कि वानरोंको यह मान्य न हो कि बहुत-से राक्षस मार डाले गए ॥ ७५-७६ ॥

ततो हरिगन्धमात्मजस्तु

तमोपधीशैलमुद्गम्रेण ।

निनाय वेगाद्धिमगन्तमेव

पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ७७ ॥

तत्पश्चात् प्रवृत्त वेगवान् पवनकुमार हनुमान्जीने पुनः आगधियोंक उस पर्वतको चमकते हिमालयपर ही पहुँचा था और फिर छोटकर वे आसमचट्टीमें आ गिरे ॥ ७७ ॥

पञ्चमस्तितमः सर्गः

लङ्कापुरीका दहन तथा राक्षसों और वानरोंका भयकर युद्ध

ततोऽग्रणीमहातेजा सुग्रीवो वानरेभ्यः ।

अर्थं निशापयथापि हनुमन्तमिदं उच ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीवने हनुमान्जीसे
आगेका कर्तव्य सूचित करनेके लिये कहा—॥ १ ॥

यतो हत कुम्भकर्ण कुमारश्च निपुदिता ।

नेदानीमुपनिर्हार रावणो दातुमर्हति ॥ २ ॥

‘कुम्भकर्ण मारा गया । राक्षसराजके पुत्रोंका भी संहार
हो गया अतः अब रावण लङ्कापुरीकी रक्षाका कोई प्रयत्न नहीं
कर सकता ॥ २ ॥

ये ये महायला सन्ति लघयश्च प्लवगमा ।

लङ्कामभिपतन्त्याऽपु शृङ्खोल्का प्लवगर्भभा ॥ ३ ॥

‘कुम्भलिये अपनी सेनामें जो-जो महाबली और शीघ्रगामी
वानर हैं, व सब के-सब महाबल ले-लेकर शीघ्र ही लङ्कापुरीपर
घावा करें’ ॥ ३ ॥

ततोऽस्त गत ज्यदित्ये रौद्रे तस्मिन् निशामुखे ।

लङ्कामभिमुखा सोदका जम्बुस्ते प्लवगर्भभा ॥ ४ ॥

सुग्रीवकी इस आज्ञाके अनुसार स्याल होनेपर मयकर
प्रदोषकालमें वे सभी श्रेष्ठ वानर महाबल हाथमें ले लेकर लङ्का
की ओर चले ॥ ४ ॥

उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतः समभिद्रुता ।

आरक्षस्या विरूपाक्षा सहसा विप्रबुद्बुधः ॥ ५ ॥

जब उल्काघारी वानरोंने सब ओरसे आक्रमण किया, तब
द्वाररक्षक काममें नियुक्त हुए शक्ति सहस्र भाग खड़े
हुए ॥ ५ ॥

गोपुराट्टप्रतोलीषु चयासु त्रिविधासु च ।

प्रासादेषु च सहस्रं सत्सजुस्ते द्रुताशनम् ॥ ६ ॥

वे गोपुरों (दरवाजों), अगलिकाओं, सड़कों, नाना
प्रकारकी गलियों और महलोंमें भी बड़े हथके साथ आग
लगाने लगे ॥ ६ ॥

तेषां गृहसहस्राणि दग्धाह द्रुतमुक् तदा ।

प्रासादाः पर्यताक्यगं पतन्ति धग्णीनले ॥ ७ ॥

वानरोंकी लगायी हुई वह आग उस समय सड़कों घरोंको

जलाने लगी । प्रासादोंका प्रासाद धराशायी होने लगे ॥ ७ ॥

अगुरुर्दहते तत्र पर चैव सुचन्दनम् ।

मौक्तिका मणयः क्षिप्त्वा यत्र चापि प्रजालन्म् ॥ ८ ॥

कहीं अगुरु जल रहा था तो वहीं परम उत्तम चन्दन ।

मोती, लिंगमणि, हीरे और मूंगे भी दग्ध हो रहे थे ॥ ८ ॥

क्षौम च दहते तत्र कौशेय चापि शोभनम् ।

आविक विविध यौर्ण काञ्चन भाण्डमायुधम् ॥ ९ ॥

यहाँ क्षौम (अलसी या मनके रेशोंसे बना हुआ वस्त्र)

भी जलता था और सुन्दर रेशमी वस्त्र भी । मेढ़के रोईका

कमल, नाना प्रकारका उली वस्त्र, सोनेके आभूषण और अन्न

पात्र भी जल रहे थे ॥ ९ ॥

नानाविकृतसंस्थान वाजिभाण्डपरिच्छदम् ।

गजप्रैवेयकक्ष्याश्च रथभाण्डाश्च सत्सुतान् ॥ १० ॥

बाहोंके गहने, जीन आदि उपकरण जो अनेक प्रकार

और विचित्र आकारके थे, दग्ध हो रहे थे । हाथीके गलेका

आभूषण, उसे कघनेके लिये रस्ते तथा रथोंके उपकरण, जो

सुन्दर बने हुए थे, सबके-सब आगमें जलकर भस्म हो रहे

थे ॥ १० ॥

तनुग्राणि च योधाना हस्त्यश्वाना च वर्मच ।

खट्वा धनुषि ज्यायाणास्तोमराङ्गशालकयः ॥ ११ ॥

रोमज घालज चर्म व्याघ्रज चाण्डज यष्ट ।

मुक्तामणिविचित्राश्च प्रासादाश्च समन्ततः ॥ १२ ॥

विविधानलसघातानसिद्धति तत्र धै ।

घोड़ाओंका कवच, हाथी और घोड़ोंके बलतल, खड्ग,

धनुष प्रत्यङ्गा, बाण, ताम्र, अक्रुश, शक्ति, रोमज (कमल

आदि), वारुज (चँर आदि), आकनोपयोगी व्याघ्रचर्म,

अण्डज (कस्तुरी आदि), मोती और मणियोंसे जटित विचित्र

महल तथा नाना प्रकारके अस्त्रसमूह—इन सबको सब ओर

फैली हुई आग जला रही थी ॥ ११ १२ ॥

नानाविधान् गृहाभियान् दग्धान् द्रुतमुक् तदा ॥ १३ ॥

आवासान् गश्तसन्ना च सर्वेया गृहगृधुनाम् ।
हेमजितनुप्राणा म्रग्भाण्डाम्बरधारिणाम् ॥ १४ ॥

उस समय अग्निदेवने नाना प्रकारक विचित्र गृहोंका दग्ध करना आरम्भ किया । जो घरोंमें आसक्त थे, सोनेक विचित्र कवच धारण न्हिये हुए थे तथा हार, आभूषण और बस्त्रोंमें निर्भूति थे, उन सभी गृहस्थोंके आवासस्थान आगकी लपटोंमें आ गये ॥ १३ १४ ॥

मीधुपानपलाशाना मद्रिह्ललाग्निनाम् ।
कान्तालम्बितरङ्गाणा शत्रुसजातमन्युनाम् ॥ १५ ॥
गदाशूलमिहस्ताना खादता पिपतामपि ।
शयनेषु महाहेषु प्रसुप्ताना प्रिये सह ॥ १६ ॥
प्रस्ताना गन्धस्ता तूर्णे पुत्रानादाय सर्वत ।
तेषा शतसहस्राणि तदा लङ्घानिवासिनाम् ॥ १७ ॥
अदहत् पात्रस्तत्र ज्वाला च पुन पुन ।

मदिरापानमें जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे, जो नयेसे विह्वल हो लड़कहाते हुए चलते थे, जिनके बस्त्रोंको उनकी प्रियसी स्त्रियोंने पकड़ रक्ता था, जो शत्रुओंपर उप्रित थे, जिनके हाथोंमें गदा, खड्ग और शूल बोमा पा रहे थे, जो खाने पीनेमें लगे थे, जो बहुमूल्य शय्याओंपर अपनी प्राण बलमात्रोंक सग शयन कर रहे थे तथा जो आगमें मयमौत हो अपने पुत्रोंको गोदमें लेकर सब ओर तीव्रगतिसे भाग रहे थे, ऐसे लाखों लङ्घानिवासियोंको उस समय अग्निने जलाकर मस कर दिया । वह आग वहाँ रह-रहकर पुन प्रवर्तित हो उठती थी ॥ १५-१७३ ॥

सात्पन्ति महाहाणि गम्भीरगुणवन्ति च ॥ १८ ॥
हेमच द्राघान्द्राणि चन्द्रशालेयप्रतानि च ।
तत्र चित्रगणनाणि साधिष्ठानानि सप्तश ॥ १९ ॥
मणिप्रिद्रुमप्रिनाणि स्पृशन्तीन् दिशक्वम् ।
प्रौञ्चपक्षिणीणाना भूयणाना च निम्बानि ॥ २० ॥
नादितान्यपलाभानि उद्गमान्यनिददाह स ।

अ बहुत मजबूत और बहुमूल्य बने हुए थे, गम्भीर गुणोंसे युक्त थे—अनेकानेक कजलियों, परकाटों, आन्तरिक गदों, दारों और उपद्रवोंक कारण दुर्ग प्रतीत होने थे, अ सुवर्णनिर्मित अर्धचन्द्र अपवा पूषणचन्द्र आकाशमें बने हुए थे, अग्निसाम्राज्यके कारण बहुत ऊँच निगामी देत थे,

विचित्र सरोपे निनी शोभा क्रांते थे, जिनमें सब ओर सेने बैठनेके लिये उप्या-अस्त्र आदि सुसजित थे, मणियों और भूँगाँसे जडित होनेके कारण त्रिनीची विचित्र शाभा हो रही थी, जो अन्नी ऊँचाइसे सूर्यदेवका स्था-स्थ कर रह थे, जिनमें शौच और मार्गेक नदर, वीगाड़ी मयुर ध्वनि तथा भूषणों की सनवारें गूँब रही थी और जो परीताकार दिशायी देते थे, उन सभी गृहोंको प्रज्वलित आगने जला दिया ॥ १८ २०३ ॥
ज्वलनेन परीतानि तोरणानि चकाशिरे ॥ २१ ॥
त्रिपुङ्क्तिरिव नखानि मेघजालानि घर्मेगे ।

आगने चिरे हुए लङ्काक बाहरी दरवाज ग्रीष्मशृद्धमें विद्युमालम्बित मेघसमूहोंक समान प्रकाशित हात थे ॥ २१३ ॥
ज्वलनेन परीतानि गृहाणि प्रचकाशिरे ॥ २२ ॥
दावाग्निदीप्तानि यथा शिखराणि महागिरे ।

अग्निदी लपटोंमें लिपे हुए लङ्कापुरीक मकान दावाभित्ति दग्ध होते हुए बड़े-बड़े परीतोंके शिखरोंके समान जान पड़ते थे ॥ २२३ ॥

निमानेषु प्रसुप्ताश्च दह्यमाना यथाह्ना ॥ २३ ॥
त्यक्ताभरणसयोगा हाहेत्युच्चैरैर्युक्तुः ।

सप्तमहले मयनोंमें सोयी हुई मुन्दरियों जय आगसे दग्ध होने लगीं, उस समय सारे आभूषणोंको पँककर हाथ-हाथ करती हुई उच्छ्वस्वसे चीत्कार करने लगीं ॥ २३३ ॥

तत्र चाग्निपरीतानि निपेतुर्भवनान्यपि ॥ २४ ॥
यस्मिन्नहवानीय शिखराणि महागिरे ।

वहाँ आगकी लपेटमें आये हुए कितने ही भवन इन्द्रके बल्लर सारे हुए महात् परीतोंके शिखरोंक समान घटाघायी हो रहे थे ॥ २४३ ॥

तानि निद्रहमानानि दूरत प्रपञ्चाशिरे ॥ २५ ॥
हिमप्रच्छिन्नवर्णाश्च दह्यमानानि सप्तश ।

व जन्त हुए गगनचुम्बी भवन दूरम ऐसे जान पड़त थे, माना हिमालयके शिखर सब अरने दग्ध ॥ २५ ॥ २५३ ॥
हम्यप्रदह्यमानैश्च ज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥ २६ ॥
रात्री सा दृश्यते लङ्का पुष्पिनैरपि किङ्करी ।

अग्निसाम्राज्य जन्त हुए शिखर उठती हुई ज्वलन्तेने अवेष्टित हो रह थे । रात्रिमें ज्योते उज्ज्वलित हुए लङ्कापुरी

खिले हुए पलाश पुष्पोंसे युक्त-सी दिवाणी देती थी ॥ २६ ॥

हस्त्यध्वशैर्गजैर्मुनेमुत्तरेषु तुरगैरपि ।

यभून् लङ्का लोकान्ते भ्रान्तग्राह इवार्णव ॥ २७ ॥

हाथियोंके अध्वशैर्गजोंसे हाथियोंको और अश्वध्वशैर्गजोंसे अश्वोंको भी खाल दिया था । वे वहाँ इधर उधर भाग रहे थे, इससे लङ्कापुरी प्रलयकालमें भ्रान्त होकर घूमते हुए ग्राहोंसे युक्त महासागरके समान प्रतीत होती थी ॥ २७ ॥

अथ मुक् गजो दृष्ट्वा क्वचिद् भीतोऽपस्पर्पित ।

भीतो भीत गज दृष्ट्वा क्वचिद्व्यो निरर्तते ॥ २८ ॥

कहाँ खुले हुए घोड़ोंको देखकर हाथी भयभीत होकर मागता था और वहाँ डर हुए हाथीका देखकर भी घोड़ा भागने लगता था ॥ २८ ॥

लङ्काया दृष्टमानाया शुश्रुमे च महोदधि ।

छायाससक्तसलिलो लोहितोद् इवार्णवः ॥ २९ ॥

लङ्कापुरीने जलते समय समुद्रमें आगकी क्वालका प्रति-विम्ब पड़ रहा था, जिससे यह महासागर लाल पानीसे युक्त लालसागरके समान घोभा पाता था ॥ २९ ॥

सा यभून् मुहूर्तेन हरिभिर्वीपिता पुरी ।

लोकन्यास्य क्षये घारे प्रदीप्तेन यस्तुधरा ॥ ३० ॥

वानरोंद्वारा जिसमें आग लगायी गयी थी, वह लङ्कापुरी या ही बड़ीमें सवारके घोर संहारके समय दग्ध हुई पृथ्वीके समान प्रतीत होने लगी ॥ ३० ॥

नारीजनस्य धूमेन व्याप्तस्योच्चैर्विनेतुप ।

खनो ज्वलनतस्य शुश्रुवे शतयोजनम् ॥ ३१ ॥

धूरेंसे आच्छादित और आगसे सतत होकर उच्चस्वरसे व्यावनाद करती हुई लङ्काकी नारियोंका कण-कन्दन चौ योजन दूर तक सुनायी देता था ॥ ३१ ॥

प्रदग्धकायानपराज् राक्षसान् निगतान् यहि ।

सहसा ह्युत्पतन्ति स्म हरयोऽथ युयुम्न ॥ ३२ ॥

जिनके शरीर जल गये थे, ऐसे आ-जा राक्षस नगरसे बाहर निकलते, उनके ऊपर युद्धकी इच्छागले वानर सहस्र २८ पड़ते थे ॥ ३२ ॥

उद्धुष्ट वानराणां च राक्षसानां च नि स्वनम् ।

दिनो दश समुद्र च पृथिवीं च व्यनादयत् ॥ ३३ ॥

वानरोंकी गर्जना और राक्षसोंके आतनादने दलों दिशाएँ,

समुद्र और पृथ्वी गूँब उठीं ॥ ३३ ॥

विशल्यौ च महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।

असम्भ्रान्तौ जगृहतुस्ते उभे धनुषी घरे ॥ ३४ ॥

इधर बाण निकल जानेसे स्वस्थ हुए दोनों भाई महात्मा श्रीराम और लक्ष्मणने बिना किसी वयराहतके अपने श्रेष्ठ धनुष उठाये ॥ ३४ ॥

ततो निस्फारयामास रामश्च धनुस्तमम् ।

यभूव तुमुल शब्दो राक्षसानां भयाजह ॥ ३५ ॥

उस समय श्रीरामने अपने उत्तम धनुषको लाँचा, उससे मयकर त्कार प्रकट हुई, जो राक्षसोंका भयभीत कर देनेवाली थी ॥ ३५ ॥

अशोभत तदा रामो धनुर्विस्फारयन् महत् ।

भगवानिव सकुन्दो भवो वेदमय धनुः ॥ ३६ ॥

श्रीरामक-द्रव्यी अपने विशाल धनुषको लाँचते हुए उठी तरह घोभा पा रहे थे, जैसे त्रिपुरासुरपर कुपित हो भगवान् गकर अपने वेदमय धनुषकी टकार करते हुए मुशोभित हुए थे ॥ ३६ ॥

उद्धुष्ट वानगणां च राक्षसानां च नि स्वनम् ।

ज्याशब्दस्तावुभौ शब्दशब्दति रामस्य शुश्रुवे ॥ ३७ ॥

वानरोंकी गरजना तथा राक्षसोंके कोलाहल—इन दोनों प्रकारके शब्दोंसे ही ऊपर उठकर श्रीरामक धनुषकी टकार सुनायी पड़ती थी ॥ ३७ ॥

वानरोद्धुष्टोपशब्द राक्षसानां च नि स्वन ।

ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रय व्याप दिशो दश ॥ ३८ ॥

वानरोंकी गर्जना, राक्षसोंका कोलाहल और श्रीरामके धनुषकी टकार—ये तीनों प्रकारके शब्द दलों दिशाओंमें व्याप्त हो रहे थे ॥ ३८ ॥

तस्य कामुकनिमुक्तं शरैस्तत्पुङ्गापुष्पम् ।

कौलसशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमभवद् मुवि ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीरामके धनुषसे छूटे हुए पाणोंद्वारा लङ्का पुरावा वह भगद्वार, जो कैलास शिखरके समान ऊँचा था, टूट-भूटकर भूतलपर गिर गयी ॥ ३९ ॥

ततो रामशरणं दृष्ट्वा विमानेषु शुद्धे च ।

सनाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुल् समपद्यत ॥ ४० ॥

सुतमहल मरानों तथा अन्य गृहोंपर गिरते हुए भीगमर बाणोंको देवदर राक्षसपत्तियोंने युद्धके लिये उड़ी मयमर तैयारी की ॥ ४० ॥

तेषां मनहामानासां सिंहनादं च कुशताम् ।

शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीयं समपद्यत ॥ ४१ ॥

कमर कचकर और कच आदि बाँधकर युद्धके लिये तैयार होते तथा सिंहनाद करते हुए उन राक्षसपत्तियोंके त्रिये वह रात कालरात्रिके समान प्राप्त हुई थी ॥ ४१ ॥

आदिष्टा वानरेद्रास्ते सुग्रीवेण महात्मना ।

आसन्नं द्वारमासाद्य युष्मद्य च प्रवगमा ॥ ४२ ॥

उस समय महात्मा सुग्रीवने प्रधान प्रधान वानरोंको वह आशा दी—‘वानरवीरो ! तुम सब लोग अपने-अपने निकट वर्तों द्वारपर जाकर युद्ध करो ॥ ४२ ॥

यश्च यो वितथ कुपात् तत्र तत्राप्युपस्थित ।

स हन्तव्योऽभिसम्प्लुत्य राजशासनदूषक ॥ ४३ ॥

‘तुमलगाओंमें जो वहाँ-वहाँ युद्धभूमिमें उपस्थित होकर भी मरे आदेशका पालन न करे—युद्धसे मुँह मोड़कर भाग जाय, उसे तुम सब लोग पकड़कर मार डालना क्योंकि वह राजशासक उल्लङ्घन करनेवाला होगा’ ॥ ४३ ॥

तेषु वानरमुख्येषु दीर्घोत्फेज्ज्वलपाणिषु ।

स्थितेषु द्वारमाश्रित्य राधेण क्रोधं आगिशात् ॥ ४४ ॥

सुग्रीवकी इस आशान अनुसार जब मुख्य-मुख्य वानर जलते मशाल हाथमें लिये नगरद्वारपर चार डग गये, तब रावणको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४४ ॥

तस्य जृम्भितविशेषाद् व्यामिश्रा चै दिशो दश ।

रूपायानि रुद्रस्य मनुगान्प्रेष्यददयत ॥ ४५ ॥

उसने अँगड़ाह लहर ज आँकोंका संचालन किया, उसने दश दिशाएँ व्यापक हो उठीं । वह कालरुद्रके आँकोंमें प्रष्ट हुए दुर्निमान् काचकी भाँति दिशाकी दशे लगा ॥ ४५ ॥

स कुम्भं च निरुम्भं च कुम्भकणात्मजायुधौ ।

मेघयामास सन्वृद्धौ राक्षसैरुद्भुमि सह ॥ ४६ ॥

क्रोधसे मर हुए रावणने कुम्भरुण दो पुत्र कुम्भ और निरुम्भरा बहुतसे राक्षसों साथ भेजा ॥ ४६ ॥

यूपान् गोणितास्रघ्नं प्रवृद्धं कम्पनस्तथा ।

निययु कम्भकणिभ्या सह रावणशामनात् ॥ ४७ ॥

रावणकी आज्ञाने यूपान्, गोणितास्र, प्रवृद्ध और कम्पन भी कुम्भकणिज दलों पुरोंक साथ-साथ युद्धके जिय निकल ॥ ४७ ॥

शशास सैव तान् सयान् रावणमात्रं स महायत्नः ।

राक्षसा गच्छताद्यैः सिंहनादं च नादयन् ॥ ४८ ॥

उस समय सिंहज समान दहाइते हुए रावणने उन समस्त महाबली राक्षसोंको आदेश दिया—‘वीर निशानरो ! इसी रातमें तुमलोग युद्धके लिये जाओ’ ॥ ४८ ॥

ततस्तु चोन्मितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधा ।

लङ्काया निययुर्यारा प्रवृन्त पुन पुन ॥ ४९ ॥

राक्षसराजरी आशा पाकर वे वीर राक्षस हाथोंमें चमकील अस्त्र गल्ल लिये बार-बार गजना करते हुए लङ्कापुरसे बाहर निकल ॥ ४९ ॥

राक्षसा भूषणस्याभिभाभि स्वाभिद्य सर्वदा ।

चक्रुस्ते सप्रभं ज्योम हरयश्चाग्निभि सह ॥ ५० ॥

राक्षसोंने अपने आभूषणोंकी तथा अपनी प्रभासे और वानरोंने मशालरी आगसे यहाँके आकाशको प्रकाशसे परिपूर्ण कर दिया था ॥ ५० ॥

तत्र ताराधिपस्याभा ताराणां भा तथैव च ।

सयोरभरणभाभा च ज्वलिता घामभासयत् ॥ ५१ ॥

चन्द्रमाकी, नक्षत्रोंकी और उन दोनों सेनाओंके आभूषणोंकी प्रज्वलित प्रभासे आकाशका प्रकाशित कर दिया था ॥ ५१ ॥

चन्द्राभा भूषणाभा च प्रहाणा ज्वलता च भा ।

हरिरायससैरन्यानि भ्राजयामत्स सवत् ॥ ५२ ॥

चन्द्रमाकी चाँदनी, आभूषणोंकी प्रभा तथा प्रकाशमान ग्रहोंकी दीप्तिने सब आरसे राक्षसों और वानरोंकी सेनाओंका उद्भासित कर रक्खा था ॥ ५२ ॥

तत्र चार्धप्रदीप्तानां गृहाणा सगर पुन ।

भाभि ससक्तसलिलश्चलोमि शुशुभेऽधिकम् ॥ ५३ ॥

लङ्काके अधबने गृहोंकी प्रभाका जगमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे चञ्चल लहरोंवाला समुद्र अधिक जोमा पा रहा था ॥ ५३ ॥

पताकाध्वजसयुक्तमुत्तमासिपद्भ्यधम् ।

भामाभ्यरथमानह नानापत्तिसमाकुटम् ॥ ५४ ॥

दीप्तशङ्खादासङ्क्रासतोमरकामुकम् ।

तद् गगनस्य भीमं घोरजिमपौरुषम् ॥ ५५ ॥

राक्षसोंकी वह भयमर सेना चञ्चलनगराभाय सुशोभित थी । तैलिकों हाथोंमें उत्तम गद्द और करने चमक रहे थे । मयानक घोड़े, रथ और हाथियोंने पूरा नाना प्रकारन पैदल सैनिकोंसे बढ़ लेंस थी । चमकन हुए ‘गूल’, गन्ना, बलार, भाग, तमर और चणुन आदिने युक्त हुए सब सेना मयानक विभ्रम एवं पुरकार्य प्रकट करनेवाली थी ॥ ५४-५५ ॥

दृष्टो ज्वलितप्राम किद्विणीततनादितम् ।

हेमजालाचितभुज व्याघ्रेष्ठितपरभ्यधम् ॥ ५६ ॥
 व्याघ्रगिरितमहाशस्त्र बाणससक्तकामुकम् ।
 गन्धमाल्यमभूत्सेकसम्भोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥
 घोर शूरजनाकीर्ण महाशुभरनिःस्वनम् ।

उस सेनामें भाले चमक रहे थे । तैकड़ों घुँघुराओंका
 शकार सुनायी पड़ता था । सेनिकोंकी मुञ्जाओंमें सोनेके
 आभूषण बँधे हुए थे । उनके हाथ फरसे चलाये जा रहे थे,
 बड़े-बड़े हाथ घुमाये जाते थे । भनुपपर बाणोंका सघना किया
 जाता था । चन्दन, पुष्पमाला और मधुकी अधिकतासे वहाँके
 महान् वातावरणमें अनुपम गन्ध छा रही थी । वह सेना
 शूरवीरोंसे व्याप्त तथा महान् सेवोंकी गजनाके समान सिन्हादंते
 निनादित होनेके कारण भयकर दिखायी देती थी ॥ ५६ ५७ ॥
 तद् दृष्ट्वा दलमापात राक्षसाना दुरासदम् ॥ ५८ ॥
 सचचाल ज्ञवगाना दलमुच्चैर्ननाद् च ।

राक्षसोंकी उस दुर्भय सेनाको आती दल बानर-सेना
 आगे बढ़ी और उस स्वरसे गजना करने लगी ॥ ५८ ॥
 जघेयान्मुष्य च पुनस्मद् दल राक्षसा महत् ॥ ५९ ॥
 अभययात् प्रत्यरिचल पतगा इव पावकम् ।

राक्षसोंकी विशाल सेना भी बड़ वेगसे उछलकर घबु
 सेनाकी ओर उठी तरह अग्रसर हुई, जैसे पतङ्ग आगपर
 दूटे पड़ते हैं ॥ ५९ ॥

तेषा भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघादानि ॥ ६० ॥
 राक्षसाना दल श्रेष्ठ भूय परमगोभत ।

सेनिकोंकी युद्धाओंका व्यापारमें जहाँ प्रतिप और अशनि
 क्षम रहे थे, राक्षसोंकी वह उत्तम सेना नदी घोभा पारही थी ॥
 तत्रोन्मत्ता इयोत्पेतुहरणोऽथ युयुत्सव ॥ ६१ ॥
 तदशौलैरभिगन्तो मुष्टिभिश्च निशाबजन् ।

वहाँ युद्धकी इच्छावाले बानर समूहमें होकर वृद्धों,
 परंपरों और मुक्कोंसे निशाचरोंका आरत हुए उनपर दूट
 पड़े ॥ ६१ ॥

तथैवापतता तेषा हरीणा निजितैः शरैः ॥ ६२ ॥
 शिरासि सहसा जह्नु राक्षसा भीमविक्रमा ।

इसी प्रकार मयानक पथगमी निशाचर भी अपने तीखे
 बाणोंसे खामने आये हुए बानरोंके मस्तक सहसा काट काटकर
 गिराने लगे ॥ ६२ ॥

दशनैर्हत्तकणाश्च मुष्टिभिर्भिन्नमस्तका ।
 शिरासि सहसा जह्नु राक्षसा भीमविक्रमा ।

इसी प्रकार मयानक पथगमी निशाचर भी अपने तीखे
 बाणोंसे खामने आये हुए बानरोंके मस्तक सहसा काट काटकर
 गिराने लगे ॥ ६२ ॥

बानरोंने भी दौलोंने निशाचरोंके पान काट लिये,
 मुक्कोंसे मार-मारकर उनके मस्तक विदीर्ण कर दिये और
 शिराओंके प्रहारसे उनके अङ्ग भङ्ग कर दिये । इस अवस्थामें
 वे राक्षस वहाँ विचर रहे थे ॥ ६२ ॥

तथैवाप्यपरे तेषा कपीनामसिभि दिशैः ।
 मयानभिर्तो जघ्नुर्घोररूपा निशाचरा ॥ ६३ ॥

इसी प्रकार घोर रूपधारी निशाचरोंने भी मुख्य-मुख्य
 बानरोंको अपनी तीखी तलवारोंसे सर्वथा पायल कर दिया था ॥

घनन्तमय जग्नानान्यः पातयन्तमपातयत् ।
 गर्हमाण जगहान्यो दशान्तमपरोऽदृशत् ॥ ६४ ॥

एक वीर जब दूसरे निपसी घोड़ाको मारने लगता था,
 तब दूसरा आकर उसे मारने लगता था । इसी प्रकार एकको
 गिराते हुए घोड़ाको दूसरा आकर घरायायी कर देता था ।
 एककी निन्दा करनेवालेकी दूसरा निन्दा करता और एकको
 दौलते घटनेवालेको दूसरा आकर काट लेता था ॥ ६४ ॥

देहीत्यन्यो ददात्यन्यो ददामीत्यपर पुन ।
 किं क्लेशयसि तिष्ठेति सत्रान्योन्य वभाषिरे ॥ ६५ ॥

एक आकर कहते कि 'शुद्धे युद्ध प्रदान करो' तो दूसरा
 उसे युद्धका अवसर देता था । फिर तीसरा कहता था कि 'तुम
 क्यों क्लेश उठाते हो ? मैं इसके साथ युद्ध करता हूँ ।'
 तरह वे एक दूसरेसे बातें करते थे ॥ ६५ ॥

विप्रलम्भितशस्त्र च विमुक्तकञ्चायुधम् ।
 समुपातमहाप्राप्त मुष्टिशलासिपुन्तलम् ॥ ६६ ॥

प्राप्ततत महारौद्र युद्ध बानररक्षसाम् ।
 बानरान् दश ससेति राक्षसा जघ्नुराह्वये ॥ ६७ ॥

राक्षसान् दश ससेति बानराद्याभ्ययातयन् ।

उस समय बानरों और राक्षसोंमें बड़ा भयकर युद्ध होने
 लगा । हथियार गिर जाते, कवच और अस्त्र-शस्त्र छूट जाने,
 बड़े-बड़े भाले जँचे उठे दिखायी देते तथा मुक्कों, शूलों,
 तलवारों और मालोंकी मार होती थी । उस युद्धसमय राक्षस
 दस-दस या सत्त-सत्त बानरोंको एक साथ मार गिराते थे और
 बानर भी दस-दस या सत्त-सत्त राक्षसोंको एक साथ घरायायी
 कर देते थे ॥ ६७ ६८ ॥

विप्रलम्भितशस्त्र च विमुक्तकञ्चायुधम् ।
 बल राक्षसमालम्ब्य बानरा दय्यारयन् ॥ ६९ ॥

राक्षसोंके वज्र पुर गये, कवच और पञ्च दूट गये तथा
 उस राक्षसी सेनाको रौद्रकर बानरोंने सब ओरसे घेर लिया ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७५ ॥
 इस प्रकार धीवर्माविनिमित्त धर्मप्रापण आदिकार्यके युद्धकाण्डमें पञ्चहत्तरवें सग पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

‘पट्सप्ततितमः’ सर्गः

अङ्गदके द्वारा कम्पन और प्रजङ्गका, द्विविदके द्वारा शोणिताक्षका, मैन्दके द्वारा

यूपासका और सुग्रीवके द्वारा कुम्भका वध

प्रवृत्ते सङ्कुले तस्मिन् घोरे वीरजनक्षये ।

अङ्गदं कम्पन वीरमाससाद् रपोन्मुखं ॥ १ ॥

जब वीरजनोंका विनाश करनेवाला यह घोर घमासान
युद्ध चल रहा था; उस समय अङ्गद समामके लिये उत्सुक
होकर वीर कम्पनका सामना करनेके लिये आये ॥ १ ॥

आहूय सोऽङ्गद कोपान् ताडयामास वेगित ।

गदया कम्पन पूर्वं स चंचाल भृशाहत ॥ २ ॥

कम्पनने अङ्गदको ऋषपूर्वक छलकारकर बड़े वेगने
उतरे ऊपर पहल गनका प्रहार किया। इन्होंने उनको बड़ी
चांग पहुँची और वे काँपकर बेहोश हो गये ॥ २ ॥

स सप्ता प्राप्य तेनस्मी विश्लेष दिश्वरगिरे ।

अदितश्च प्रहारेण कम्पन पतितो भुवि ॥ ३ ॥

निराश होकर तेजस्वी वीर अङ्गदने एक परतका
शस्त्र उतार कर राक्षसों के मारा। उस प्रहारेसे पीड़ित
हो कम्पन पृथ्वीपर गिर पड़ा—उसके प्राण-मणिक उड़ गये ॥

ततस्तु कम्पन दृष्ट्वा शोणिताक्षो हत रणे ।

रथेनाभ्यपतत् क्षिप्र तनाङ्गदमभीतजत् ॥ ४ ॥

कम्पनको युद्धमें मारा गया देख शोणिताक्षने रथपर
पैठकर दुरत ही निर्भय हो अङ्गदपर धावा किया ॥ ४ ॥

सोऽङ्गद निदितैराणीस्तदा नित्याध वेगित ।

शरीरदारणीस्तैर्दणैः कालाम्निस्समप्रहै ॥ ५ ॥

उसने शरीरके निदीन करनेमें समय और कालाम्नि
समान आकारवाले तीक्ष्ण तथा वेगे बाणोंद्वारा बड़े बगसे उस
समय अङ्गदको चोट पहुँचायी ॥ ५ ॥

धुरधुरप्रनागाधैर्नन्दनैः शिलीमुखैः ।

बाणिशालयस्त्रिपादैश्च बहुभिर्निदितैः शरैः ॥ ६ ॥

अङ्गद प्रतिविद्याङ्गो वालिपुत्र प्रतापवान् ।

धनुश्च रथ याणान् ममर्द तरसा बली ॥ ७ ॥

उसने चलाये हुए छुरे, छुरे, नाचने बन्दे, दन्त,
शिन्नीमुख, बाणों, शींसे और विज्ञान नामक बहुसंख्यक तीक्ष्ण

बाणोंसे जब प्रतापी वालिपुत्र अङ्गदके सारे अङ्ग बिघ गये; तब
उन बलवान् वीरने बड़े वेगने उस राक्षसके भयकर धनुष,
रथ और बाणोंको कुचल डाला ॥ ६ ७ ॥

शोणिताक्षस्तु क्षिप्रमसिखर्म समाददे ।

उत्पपात तदा क्रुद्धो वेगजानिचिरयन् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् वेगवान् निशाचर शोणिताक्षने दुहित हो तत्काल
ही डाल और तलवार हाथमें ले ली तथा वह बिना सोच
विचार रफसे दूध पड़ा ॥ ८ ॥

त क्षिप्रतरमास्तुत्य परामृदयाङ्गदो बली ।

करेण तस्य स खङ्ग समाच्छिद्य ननाद च ॥ ९ ॥

इतनेहीमें बलवान् अङ्गदने शीघ्रमापूजक उछलकर उसे
पकड़ लिया और अपने हाथमें उसकी उस तलवारको छीनकर
बड़े ज़रमे सिंहाद किया ॥ ९ ॥

तस्यासफलके खङ्ग निजघान ततोऽङ्गद ।

यसोपरीतजन्तुवै न चिच्छेद कपिकुञ्जर ॥ १० ॥

फिर कपिकुञ्जर अङ्गदने उसका कंधेपर तलवारका धार
किया और उसका शरीरको इस तरह चीर दिया माना उसने
यक्षोपवीत पहन रखा हो ॥ १० ॥

त प्रवृत्त महालङ्घ निज च पुन पुन ।

गालिपुत्रोऽभिदुद्रान रणदीर्घ परानरीन् ॥ ११ ॥

इसने बाण वालिपुत्रने उस विशाल सङ्ग्रही लेकर बारबार
गजना करत हुए युद्ध सुहावेपर दूरे शत्रुओंपर धावा
किया ॥ ११ ॥

प्रजङ्गसहितो धीरो यूपायस्तु ततो बली ।

रथेनाभिययो मुञ्चो वालिपुत्र महायन्त्रम् ॥ १२ ॥

इतनेहीमें प्रजङ्गको साथ लिये बलवान् वीर यूपायने
दुहित हो रथका धाव महाबली वालिपुत्रपर अनमग किया ॥
आयसीं तु गदा गृहा स धीरं वनकाङ्गद ।

शोणिताक्षं समाभ्यस्य तमेयानुपपात ह ॥ १३ ॥

इसी बीचमें अनेक बारबद पहने वीर नेगीनछने करने

१ त्रिभञ्जक नामक नईके छुरेके समान हो उसे धार
करने है। २ मर्दचन्द्राकार का। ३ पूत लोहेके बने हुए
बाणका नाम नारायण है। उनमें तीक्ष्णके ऊपरका सबका सब लोहा
हो जाता है। ४ शरीरके दन्तके समान त्रिभञ्जक नामका हो उसे
‘कम्पन’ कहा गया है। ५ त्रिभञ्जक नामक कटू (कटुविशेष)
को परोसेके समान हा सब बाणों शिन्नीमुख कहते हैं।

६ त्रिभञ्जक नामके शरीरका नाम नारायण का कहा
गया है। ७ त्रिभञ्जक नाम का अथवा नाम हो वह
शस्त्र है। किसी किसीके मतमें अपने नारायण शस्त्र कहते हैं।
८ वीरके वक्षोंके अथवा नामके समान बारबारके बाणों नाम
दिता है। (रामचन्द्रिका)

फो सँभालकर लोहे की गदा उठायी और अद्भुत ही पीछा किया ॥ १३ ॥

प्रजङ्गस्तु महावीरो यूपाक्षसहितो यली ।
गदयाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्र महायलम् ॥ १४ ॥

किर यूपाक्षसहित बलवान् महावीर प्रजङ्ग कुपित हो

महाबली वालिपुत्रपर गदा लेकर चढ़ आया ॥ १४ ॥

तयोर्मध्य कपिश्रेष्ठ शोणिताक्षप्रजङ्गयो ।
विशाखयोमध्यगतः पूर्णचन्द्र इवावभौ ॥ १५ ॥

शोणिताक्ष और प्रजङ्ग दोनों राक्षसोंके बीचम कपिश्रेष्ठ अद्भुत वैसी ही घोषा पा रहे थे, जैसे दोनों बिगासा नक्षत्रोंक बीचम पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥ १५ ॥

अद्भुद परिरक्षन्तौ मैत्र्यो द्विविद एव च ।
तस्य तस्यतुरभ्याशो परस्परदिदृक्षया ॥ १६ ॥

उस समय मैत्र और द्विविद अद्भुतकी रक्षा करनेके लिये उनके निरुद्ध आसुर खड़े हो गये । वे दोनों अपने-अपने योग्य विपक्षी योद्धाकी तलाश भी कर रहे थे ॥ १६ ॥

अभिपेतुर्महाकात्या प्रतियत्ता महाबल ।
राक्षसा यानरान् रोपादसिगणगदाधरा ॥ १७ ॥

इतनेहीमें तलवार, बाण और गदा धारण किये बहुतसे महाबली विशालकाय राक्षस रोपपूर्वक यानरोंपर दूट पड़े ॥

त्रयाणा यानरेद्राणा त्रिभी राक्षसपुंगवै ।
ससक्ताना महद् युद्धमभवत् रोमहर्षणम् ॥ १८ ॥

ये तीन यानर सेनापति उन तीन प्रमुख राक्षसोंके साथ उल्लेह हुए थे । उस समय उनमें रोंगटे रड़े कर देनेवाला महान् युद्ध छिड़ गया ॥ १८ ॥

ते तु वृक्षान् समादाय सग्नप्रविक्षिपुराहये ।
स्वज्ञेन प्रतिगिक्षेप तान् प्रजङ्गो महाबल ॥ १९ ॥

उन तीनों यानरोंने रणभूमिमें वृक्ष ले-लेकर युद्धमें निशाचरोंपर चलाये, परन्तु महाबली प्रजङ्गने अपनी तलवारसे उन सब वृक्षोंको काट गिराया ॥ १९ ॥

रथानदगन्तु हुमाच्छैलान् प्रतिविक्षिपुराहये ।
शरीरैः प्रतिचिच्छेद तान् यूपाक्षो महाबल ॥ २० ॥

तत्पश्चात् उन्होंने रणभूमिमें उन रथोंके रथों और घोड़ों पर वृक्ष तथा पर्वतपर चलाये परन्तु महाबली यूपाक्षने अपने बाणसमूहोंमें उनका टुकड़े-टुकड़े कर डाला ॥ २० ॥

रथान् द्विविदमैन्द्राभ्या हुमानुपाद्य वीरयान् ।
यभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्ष प्रतापयान् ॥ २१ ॥

मैत्र और द्विविद न जिन-जिन वृक्षाको उग्राङ्ग उग्राङ्कुर उन राक्षसोंपर चलाया था, उन सबका यत्न निरुपयोगी और प्रतापी शोणिताक्षने गदा मारकर बीचमें ही तोड़ डाला ॥ २१ ॥

उद्यम्य विपुल खड्ग परमर्मविदारणम् ।
प्रजङ्गो वालिपुत्राय अभिदुद्रान घेगित ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् प्रजङ्गने शत्रुओंके मर्मोंको विदीर्ण करने एक बहुत बड़ी तलवार उठाकर वालिपुत्र अद्भुतपर वे आक्रमण किया ॥ २२ ॥

तमभ्याशगत दृष्ट्वा यानरेद्रो महाबल ।
आजघानाश्वकर्णेन दुमेणातिरलस्तदा ॥ २३ ॥

बाहु चास्य सनिस्त्रिदामाजघान स मुष्टिना ।
वालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसि ॥ २४ ॥

उसे निकट आया देख अतिशय शक्तिशाली महाबली यानरान् अद्भुतने अश्वकर्ण नामक वृद्धने मारा । साथ ही उसकी बाँहपर, जिनमें तलवार थी, उन्होंने एक घूसा मारा । वालिपुत्रके उस आघातसे वह तलवार छूटकर पृथ्वीपर जा गिरी ॥ २३ २४ ॥

त दृष्ट्वा पतित भूमौ खड्ग मुसलसनिभम् ।
मुष्टिं सवतयामास यज्जकल्प महानल ॥ २५ ॥

मुखल-जैसी उस तलवारको पृथ्वीपर पड़ी देख महाबली प्रजङ्गने अपना वज्रके समान भयंकर मुक्का घुमाना आरम्भ किया ॥ २५ ॥

स ललाटे महावीर्यमद्भुद यानरर्पभम् ।
आजघान महातेजा स मुहूर्तं चचाल ह ॥ २६ ॥

उस महातेजवी निशाचरने महापराक्रमी यानरोंने अद्भुतक ललाटेमें बड़े आरसे मुक्का मारा, जिससे अद्भुतकी पड़ीतक चक्कर आता रहा ॥ २६ ॥

स सक्ता प्राप्य तेजसी वालिपुत्र प्रतापयान् ।
प्रजङ्गस्य शिर फापात् पातयामास मुष्टिना ॥

इसके बाद होनामें आनेपर तेजवी और प्रतापी कुमारने प्रजङ्गको ऐसा घूसा मारा कि उसका शिर अलग हो गया ॥ २७ ॥

स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्ष पितृव्ये निहते रणे
अरक्का रथात् क्षिप्र क्षीणेपु खड्गमाददे

रणभूमि अपने चान्ना प्रजङ्गने मारे जानेपर आँखोंमें आँसू भर आये । उसके बाण नष्ट हो इतलिय तुरत ही रथसे उतरकर उठने तलवा ले ही ॥ २८ ॥

तमापतन्त सग्रेक्ष्य यूपाक्ष द्विविदस्य
आजघानेरसि क्रुद्धो जग्राह च घलाद् यत्न

यूपाक्षने आक्रमण करने देख बलवान् कुपित हो बड़ी कुर्नीके साथ उसकी छातीमें चढ़ा उसे बलपूर्वक पकड़ लिया ॥ २९ ॥

गृहीत भ्रातर दृष्ट्वा शोणितक्षो महाबल ।
आजघान महातेजा यमसि द्विविं तन ॥ ३० ॥

भाद्रको पक्षे गया देव महानन्वी एष महाबली
गणितक्षे द्विविंशती छतीमे यथा मारो ॥ ३० ॥

स तनोऽभिहतस्तेन सचाल च महाबल ।
उद्यता च पुनस्तस्य जहार द्विविंशो गदाम् ॥ ३१ ॥

शोणितक्षी मार म्नाकर महाबलो द्विविंश विचलित हो
उठे । तस्यश्वात् ज्व उरने पुन गदा उठावी; तब द्विविंशे
हस्त कर उने छीन लिया ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे मैन्दो द्विनिंशम्यादामगमत् ।
यूपान ताडयामास तनोरसि वीरयान् ॥ ३२ ॥

हरी बीचमे पराक्रमी मैन्द भी द्विविंश पास आ गये
और उहोंने यूपसही छानमें एक पथड़ मारा ॥ ३२ ॥

तौ शोणितान् यूपान्चौ पुरगाम्या तरन्विनौ ।
चक्रतु समरे तीव्रमान् यो पाटन शृङ्गम् ॥ ३३ ॥

वे दोनों वेगवाली वीर गणितक्ष और यूपस उन दोनों
बानर मैन्द और द्विविंश साथ सनराज्यमें बड़ी तेजीसे छाना
झरणी और पन्कारटकी करने लगे ॥ ३३ ॥

द्विविंश शोणितान् तु विद्वदार नखैमुखे ।
निस्पिपेर स वीर्येण शितावापिष्य वीरयान् ॥ ३४ ॥

पराक्रमी द्विविंशे अपने नखोंमें गणितक्षका मुँह नोच
लिया और उने बलपूर्वक पृष्ठीपर पन्कार पीछ डाला ॥

यूपान् यमसि शृङ्गो मैन्दो बानरपुंगव ।
पीडयामास बाहुभ्या पपात स हत पितौ ॥ ३५ ॥

तस्यश्वात् अत्यन्त क्रोधमे मरे हुए बानरपुंगव मैन्दने
यूपसका अम्मी दोनों बाँहोंमें इस तरह दनाया कि वह निःप्राण
होकर पृष्ठीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥

हतप्रसीरा व्यथिता रथमेन्द्रचमूस्तथा ।
जगामाभिसुखी सा तु कुम्भकण्ठात्मनो यत ॥ ३६ ॥

इन प्रसुर वीरोंक मार उनेपर राक्षसपत्नी सेना व्यथित
हो उठी और भागकर रथ भर चली गयी; बगैँ कुम्भकण्ठा
पुन युद्ध कर रहा था ॥ ३६ ॥

आपतन्तौ च घेगेन कुम्भस्ता सान्त्वयधमम् ।
अपोन्टष्ट महावीर्येण्मध्यक्षे पुरातमी ॥ ३७ ॥

बागमे भागार अनी हुई उस सेनाका कुम्भने सन्त्वना
दी । दूसरी ओर महापराक्रमी बानर युद्धमें सहज हेनेक कारन
झरझरे गईना करने लगे ॥ ३७ ॥

निपातितमहावीरा दृष्ट्वा रक्षधमू तदा ।
कुम्भं प्रचक्षे तेजस्वी रणे क्षम सुदुष्करम् ॥ ३८ ॥

राक्षसनेताके बड़े-बड़े वीरोंको मारा गया देख तेजस्वी

कुम्भने राक्षसोंमें अन्यन्त दुष्कर कर्म करना आरम्भ किया ॥
स धनुर्वर्चस्विना श्रेष्ठ प्रगृह्य सुसमाहित ।

मुमोचाशीरिषप्रस्थाष्टरान् देहनिद्वारान् ॥ ३९ ॥

वह धनुर्वर्चमें श्रेष्ठ था और युद्धमें चित्तमा अत्यन्त
एकाग्र रहता था । उसने धनुष उठाया और गुरीको विदारण
करनेमें समर्थ एव सर्वत्र समान विप्रेल बाणोंका बरसाना
आरम्भ किया ॥ ३९ ॥

तस्य तच्छुभ्रुभूय सदार धनुस्तमम् ।
विमुद्वेषवनात्त्रिपद्द्वितीयो द्रधनुयया ॥ ४० ॥

उसका वह बाणसहित उत्तम धनुष विपुल और ऐश्वर्य
की प्रमाने युक्त द्वितीय इन्द्रधनुषर समान अधिक शोभा पा
रहा था ॥ ४० ॥

आकण्टकमुत्तेन अघान द्विविंश तदा ।
तेन हाटकपुष्टेन परिणा पत्राससा ॥ ४१ ॥

उसने छेदने पल्ल लगे हुए पत्रयुक्त बाणद्वारा; जो धनुष
की क्षान्तक लॉचकर छोड़ गया था; द्विविंशका पाया कर
दिया ॥ ४१ ॥

सहस्राभिहतस्तेन विप्रमुक्त्वपद स्फुरन् ।
निपपात त्रिकूटाभो विह्वल पुरगोचरम् ॥ ४२ ॥

उसके बाणने सहस्र अङ्ग होकर त्रिकूट पर्वतक समान
विशालकाय बानरश्रेष्ठ द्विविंश व्याकुल हो गये और छत्रपगत
हुए पाँच पैछाकर पृष्ठीपर गिर पड़े ॥ ४२ ॥

मैन्दस्तु भ्रान्त तत्र भग्न दृष्ट्वा महाहवे ।
अभिदुष्टात्र घेगेन प्रगृह्य विपुला शिलाम् ॥ ४३ ॥

उस महाहठमें अपने भाद्रका पाया होकर गिरा देख
मैन्द बहुत बड़ी शिला उठाकर वगुर्वाक दौड़ा ॥ ४३ ॥

ता शिला तु प्रविशेष राक्षसाय महारत्न ।
विभेद ता शिला कुम्भं प्रसन्ने पञ्चभि शरैः ॥ ४४ ॥

उन महाबली बानरे बर शिला उस राक्षसपर चला दी
परतु कुम्भने पाँच चमकीले बाणोंद्वारा उस शिलाका टुकड़क
कर दिया ॥ ४४ ॥

सधाय चान्य मुमुख शरमाशीरिषोपमम् ।
आजघान महानिजा यमसि द्विविंशप्रजम् ॥ ४५ ॥

किर विपश्चर सर्वत्र समान मरकर भरे कुन्दर अग्रभाग
वाला दूसरा बाण धनुषपर रहना और उसका दारा उस महा
तेजस्वी बानरे द्विविंश बड़े मरही छान्नीमें गहरी खेद
पहुँचायी ॥ ४५ ॥

स तु तेन प्रहारेण मैन्दो बानरपुंगव ।
ममप्यभिहतस्तेन पपात मुषि मूर्च्छितः ॥ ४६ ॥

उसका उस महाहठ बानरपुंगव मैन्दक मर्मान्दाने

भारी आवाज पहुँचा और वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४६ ॥

अङ्गदो मानुषी दृष्ट्वा भयितौ ॥ महाबलो ।
अभिदुष्टाव वेगन कुम्भमुद्यतकामुक्मम् ॥ ४७ ॥

मैन्द और द्विदिद अङ्गदके मामा ये । उन दोनों महाबली
वीरोंको घायल हुआ देख अङ्गद धनुष लेकर खड़े हुए कुम्भमे
ऊपर बढ़े वगैरे दूटे ॥ ४७ ॥

तमापतन्त विव्याध कुम्भ पञ्चभिरायसै ।
प्रिभिश्चान्यै शितवर्णैमातगमिष तोमरै ।
सोऽङ्गद बहुभिराणै कुम्भो विव्याध वीर्यानाम् ॥ ४८ ॥

उई आते देख कुम्भने लोहेके बने हुए पाँच बाणोंसे
घायल कर दिया । फिर तीन तीखे बाण और भारे । जैसे
महावत अङ्गुष्ठसे मतवाले हाथीको मारता है, उसी प्रकार
पराक्रमी कुम्भने बहुत-से बाणोंद्वारा अङ्गदको भीष डाला ॥

अबुज्जधारेर्निशितैस्तीक्ष्णै क्वकम्पयै ।
अङ्गद प्रतिविद्वाहो वालिपुत्रो न कम्पते ॥ ४९ ॥

जिनकी धारें द्रुणित नहीं हुई थीं तथा जो सुवर्णने
विमृष्टित थे, ऐसे तेज और तीखे बाणोंसे वालिपुत्र अङ्गदका
काय धरिरे उड़ गया था तो भी वे कम्पित नहीं हुए ॥ ४९ ॥

शिलापादपथपणि तस्य मूर्ध्नि घर्षणं ह ।
सप्रचिच्छेद ताद सर्वाङ्गयिमेदं च पुन शिला ॥ ५० ॥
कुम्भकर्णात्मज श्रीमान् वालिपुत्रसमीगितान् ।

उन्होंने उस राक्षसक अस्त्रपर शिलाओं और हथौड़ी
बर्षा आरम्भ कर दी, किन्तु कुम्भकणकुमार भीमान् कुम्भने
वालिपुत्रके चलाय हुए उन समस्त हथौड़ीको काट दिया और
शिलाओंको भी तोड़-फोड़ डाला ॥ ५० ॥

आपतन्त च मरुप्रक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ॥ ५१ ॥
भ्रुजैर्विव्याध पाणाम्यामुक्ताभ्यामिषु ज्वरम् ।

तत्पश्चात् वानरयूथपति अङ्गदका अपनी ओर आते
देव कुम्भने दश बाणोंसे उनकी भीहोंमें प्रहार किया; मानो
दो डक्कड़ोंद्वारा किसी हाथीका मारा गया हो ॥ ५१ ॥

तस्य सुखाद्य रुधिर पितिते वास्य लेचने ॥ ५२ ॥
अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोरक्षिते ।
सालमासक्रमेकेन परिजग्राह पाणिना ॥ ५३ ॥
सम्पील्योरसि सरक्ष्य करेणाभिरिन्देय च ।

किमिदम्वनम्यैनमुग्रमाय महारणे ॥ ५४ ॥

अङ्गदकी मौहोंने रक्त बहने लगा और उनकी आँखें
बंद हो गयीं । तब उन्होंने एक हाथसे मृतने भीषी हुई
अरणी दोनों आँखोंको ढक लिया और दूसरे हाथसे पास ही
खड़े हुए एक सार्वके वृक्षको पकड़ा । फिर छातीसे दबाकर

तनेरहित उस वृक्षको कुछ छका दिया और उस महाहमरमें
एक ही हाथसे उसे उखाड़ दिया ॥ ५२-५४ ॥

तमिद्वकेनुप्रतिम घृक्ष मन्दरसन्निभम् ।
समुत्सृजत वेगेन मिपता सर्वरक्षसाम् ॥ ५५ ॥

वह वृक्ष इन्द्रधनुष तथा मन्दराचलके समान ऊँचा था ।
उसे अङ्गदने सब राक्षसोंके देखते-देखते बढ़े वेगसे
कुम्भपर दे मारा ॥ ५५ ॥

स चिच्छेद शितवर्णै सप्तभि कायमेदने ।
अङ्गदो विव्यधेऽभीक्ष्ण स पपात मुमोह च ॥ ५६ ॥

किन्तु शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले सात तीक्ष्ण बाण
मारकर कुम्भने उस साल-वृक्षके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, इससे
अङ्गदका बड़ी व्यथा हुई । वे घायल तो थे ही, गिरे और
मूर्च्छित हो गये ॥ ५६ ॥

अङ्गद पतित दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरे ।
दुरासद हरिष्येष्टा राघवाय न्यवेदयन् ॥ ५७ ॥

दुर्लभ वीर अङ्गदको समुद्रमें डूबते हुएके समान पृथ्वी
पर पड़ा देख भेड़ वानरोंने भीरुधन्यपत्नीको इसकी सूचना दी ॥

रामस्तु व्यथित श्रुत्या वालिपुत्र महाहवे ।
व्यादिदेश हरिष्येष्टाज्ञास्य वयमनुखास्तत ॥ ५८ ॥

भीरमने जब सुना कि वालिपुत्र अङ्गद महाहमरमें
मूर्छित होकर गिरे हैं, तब उन्होंने आश्वत्थ आदि प्रमुख वानर
वीरोंका युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी ॥ ५८ ॥

ते तु वानरशाईला श्रुत्या रामस्य शासनम् ।
अभिपेतु सुमकुन्दा कुम्भमुद्यनकामुक्मम् ॥ ५९ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका आदेश सुनकर श्रेष्ठ वानर वीर अत्यन्त
क्रुषित हो धनुष उठाये खड़े हुए कुम्भपर सब ओरसे
दूट पड़े ॥ ५९ ॥

ततो द्रुमशिलाहस्ता कोपसरकलोचनाः ।
रिरक्षिपन्तोऽप्यपतन्नङ्गद वानरपभा ॥ ६० ॥

वे सभी प्रमुख वानर अङ्गदकी रक्षा करना चाहते थे
अतः कोधसे लाल आँखें किसे हाथोंमें वृक्ष और शिलाएँ
लेकर उस राक्षसकी ओर दौड़े ॥ ६० ॥

जाम्बवाद्य सुपेणश्च वेगदर्शं च पालर ।
कुम्भकणात्मज वीर मुन्दा समभिदुष्टुषु ॥ ६१ ॥

जाम्बवान्, सुरेण और वेगदर्शने क्रुषित हो वीर
कुम्भकणकुमारपर पाया किया ॥ ६१ ॥

समीक्ष्यपततस्तास्तु वानरेद्रान् महाबलान् ।
आयवार क्षरीषेण नगेनेव जलरायम् ॥ ६२ ॥

उन महाबली वानर-यूथपतिगोत्रों आक्रमण करते देख
कुम्भने अपने बाणमूर्खोंद्वारा उन सबको गली तरह रोक

दिया, जैसे आगे बढ़ते हुए जल-प्रवाहको मार्गमें खड़ा हुआ
पर्वत एक देता है ॥ ६२ ॥

तस्य घाणपथ प्राप्य न शोकुरपि वीक्षितुम् ।

घानरेद्रा महात्मनो वेलामिव महोदधि ॥ ६३ ॥

उसके बाणोंके मार्गमें आनेपर ये महामनस्वी बानर
यूपति आगे बढ़ता तो दूर रहा उसकी ओर आँख उठाकर
देख भी नहीं पाते थे । ठीक उठी तरह, जैसे महासागर अपनी
तटभूमिको लोंघकर आगे नहीं आ सकता था ॥ ६३ ॥

तास्तु द्रष्टा हरिगणान्शरवृष्टिभिर्दत्तान् ।

भद्रद पृष्ठत इत्या भ्रातृज प्लवगेश्वर ॥ ६४ ॥

अभिदुद्राव सुग्रीव कुम्भकर्णात्मज रणे ।

शैलसानुवर नाग वेगवानिव केसरी ॥ ६५ ॥

उन सब बानरसमूहोंको कुम्भकी बाणरपासे पीछित देख
बानरराज सुग्रीवने अपने भतीजे भद्रदको पीछे करके स्वयं
ही रणभूमिमें कुम्भकर्णकुमारपर उठी तरह घावा किया,
जैसे पर्वतके णिलरपर विचरनेवाले हाथीके ऊपर वेगवान्
सिंह आक्रमण करता है ॥ ६४ ६५ ॥

उत्पाम्य च महावृक्षानश्वकणादिकान् बहून् ।

अन्याश्च निविधान् धृष्टाक्षिक्षेप स महाकपि ॥ ६६ ॥

महारपि सुग्रीव आचरण आदि बड़े-बड़े वृक्ष तथा दूसरे
भी नाना प्रकारके वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसपर फेंकने लगे ॥

ता छादयन्तीमाकाश घृण्वृष्टिं पुरासदाम् ।

कुम्भकर्णात्मज भीमाक्षिच्छेद स्वशरै रिते ॥ ६७ ॥

वृक्षोंकी वह बर्षा आकाशको आच्छादित कर देती थी ।
उसने दालना भयान्तर कठिन हो रहा था किंतु भीमान्
कुम्भरूपने अपने तीले बाणोंसे उन सब वृक्षोंको काट डाला ॥

अभिलक्ष्येण तीमेण कुम्भेन निशितै शरै ।

आचितास्ते द्रुमा रेजुयथा घोर शतज्वय ।

लक्ष्य वैषम्येन सकल, तीन बगाली कुम्भके घने बाणोंसे
व्याप्त हुए ये वृक्ष भयानक शतज्वालाक समान बुखोभित
होते थे ॥ ६७ ६८ ॥

द्रुमरपे तु तद् भिन्न द्रष्टा कुम्भेन वीर्यान् ॥ ६८ ॥

बानराधिपति भीमान् महासत्त्वो न विन्यये ।

उस वृक्ष-वृष्टिको कुम्भके द्वारा खण्डित हुई देख महान्
शक्तिशाली पराक्रमी बानरराज सुग्रीव व्यथित नहीं हुए ॥ ६८ ६९ ॥

स विध्यमान सहसा सहमानस्तु ताप्छरान् ॥ ६९ ॥

कुम्भस्य धनुराभिष्य यमशेद्रधनुःप्रभम् ।

अप्युत्पत्य तत शीघ्र इत्या कम सुदुष्करम् ॥ ७० ॥

अप्रवीत् कुपित कुम्भ भयानकदृष्टिम् द्विषम् ।

ये उसके बाणोंकी चोट खाते और सहते हुए सहसा
उठकर उसने रथपर चढ़ गये और कुम्भके इन्द्रधनुषके

समान तेजस्वी धनुषको छीनकर उन्होंने उसका टुकड़े-टुकड़े
कर डाले । तत्पश्चात् व नीम ही वहाँसे नीचे बूढ़ पड़े ।

यह दुष्कर कर्म करनेसे पश्चात् उन्होंने दृष्टे दौतराले हाथीने
समान कुम्भने कुपित होकर कहा— ॥ ६९ ७० ॥

निकुम्भाग्रज वीर्य ते घाणवेग तदद्भुतम् ॥ ७१ ॥

सनतिश्च प्रभावश्च तत्र वा रात्रणस्य वा ।

प्रह्लादचलिबुधश्चकुचेरवरणोपम ॥ ७२ ॥

निकुम्भके बड़े भारी कुम्भ । तुम्हारा पराक्रम और
तुम्हारे बाणोंका वेग अद्भुत है । राक्षसी प्रति नियम अपना
प्रवणता तथा प्रभाव या तो तुममें है या रात्रणमें । तुम प्रह्लाद,
बलि, इन्द्र, कुचेर और वरुणसे समान हो ॥ ७१ ७२ ॥

एकस्त्वमनुजातोऽसि पितर बलनत्तरम् ।

त्वामेवैक महाबाहु शूलहस्तमर्दिदमम् ॥ ७३ ॥

त्रिदशा नातिवतन्ते जितेन्द्रियमियाधय ।

त्रिमल महाबुद्धे क्माणि मम पश्य च ॥ ७४ ॥

केवल तुमने ही अपने अत्यन्त बलशाली पिताका
अनुकरण किया है । जैसे त्रिनेन्द्रिय पुरुषको मानसिक व्यथाएँ
अभिभूत नहीं करती हैं, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करने
वाले एकमात्र शूलचारी तुम महाबाहु वीरको ही देवनायक
युद्धमें पराजित नहीं कर पाते हैं । महामते ! पराक्रम प्रसूत
करो और अब मरे बल्लभ भी देखा ॥ ७३ ७४ ॥

वरदानात् पितृव्यस्ते सहते देवदानवान् ।

कुम्भकणस्तु वीर्येण सहते च सुरासुरान् ॥ ७५ ॥

तुम्हारा पितृव्य रात्रण बल वरदानर प्रभारसे देवताओं
और दानवोंका वेग सहन करता है । तुम्हारा पिता कुम्भरूप
अपने बल-पराक्रमसे देवताओं और असुरोंका सामना करता
था (परन्तु तुम बरदान और पराक्रम दोनोंसे सम्पन्न हो) ॥

धनुर्वीरजितस्तुह्य प्रतापे रात्रणस्य च ।

त्वमद्य रक्षसा लोके ध्रेष्टोऽसि बलवीर्यत ॥ ७६ ॥

तुम धनुर्वीरतामें इन्द्रजितसे समान और प्रतापमें रात्रणसे
तुल्य हो । राक्षसोंके संहारमें अब तू और पराक्रमकी दृष्टिसे
केवल तुम्हीं श्रेष्ठ हो ॥ ७६ ॥

महाविमर्दे समरे मया सह तमद्भुतम् ।

अद्य भूतानि पश्यन्तु शस्त्रशम्यरयोरपि ॥ ७७ ॥

आज सब प्राणी रणभूमिमें इन्द्र और शम्यरदुर्ग की भाँति
मरे साथ तुम्हारे अद्भुत महायुद्धको देखें ॥ ७७ ॥

हृतमप्रतिम कम वृक्षित चास्त्रकीशालम् ।

पतिता हरिवीराश्च त्वयंत भीमप्रियमा ॥ ७८ ॥

तुमने वह पराक्रम किया है, जिससे कहीं तुलना नहीं
है । तुमने अपना अस्त्र-वीर्य-शक्ति दिया । तुम्हारे साथ
युद्ध करत व भयकर पराक्रमी बानरवीर घणघावी ॥ ७८ ॥

उपालम्भभयान्नैव नासि वीर मया हत ।

रुतकर्मपरिधान्तो विधान्त पदय मे यत्नम् ॥ ७९ ॥

वीर ! अत्यन्त जो मेने तुम्हारा बध नहीं किया है, उममें कारण है लगाने उपालम्भका भय—लेग यह फटकर मरी निन्दा करते कि कुम्भ बहुत-से वीरोंके साथ युद्ध करके धन गया था; उस दंगामें सुग्रीवने उसे मारा है अतः अब तुम कुछ विभ्रम कर लो, कि मेरा बल देखा ॥ ७९ ॥

तन सुग्रीवप्राकयेन स्तवमानेन मानित ।

यन्मराज्यद्रुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ८० ॥

सुग्रीवके इस अपमानयुक्त वचनद्वारा सम्मानित हो वीरी आहत नि पाये हुए अनिदेयके समान कुम्भका तेज बढ़ गया ॥ ८० ॥

तत कुम्भस्तु सुग्रीय यादुभ्या जघ्ने तदा ।

गजविजानीतमदी नि भ्वस्तनौ मुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥

अभ्योन्म्याग्राग्रयिनौ ध्यन्तावितरतरम् ।

सधूमा मुखतो ज्वालता विखज्जन्तो परिभ्रमात् ॥ ८२ ॥

किर वा कुम्भने सुग्रीवको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़ लिया । तत्पश्चात् वे दोनों वीर मदमत्त गजराजोंकी भाँति बार-बार लंबी चौंख लौंचते हुए एक-दूसरेके गुँथ गये । दोनों दोनोंको राइन लगे और दोनों ही अपने मुखस परिभ्रमके कारण धूमयुक्त आगरी ज्वाला-सी उगलने लगे ॥ ८१ ८२ ॥

तयो पादाभिघाताच्च निमग्ना चाभयमही ।

व्याघ्रुणितरङ्गश्च कुक्षुमे घरुणालय ॥ ८३ ॥

उन दोनोंके पैरोंके आघातसे घरली नीचेको धँसने लगी । धूमनी हुई तरङ्गोंने मुक्त वरुणालय समुद्रमें ज्वार-सा आ गया ॥ ८३ ॥

तत कुम्भ समुत्थित्य सुग्रीयो लवणाम्भसि ।

पातयामास वेगेन दर्शयन्नुद्वेगस्तत्तम् ॥ ८४ ॥

इतनेहीन सुग्रीवने कुम्भको उठाकर बड़े वेगने समुद्रके जलमें फेंक दिया । उद्यम गिरते ही कुम्भको समुद्रका निचला तल देखना पड़ा ॥ ८४ ॥

तत कुम्भनिपातेन जलराशि समुत्थित ।

विध्यमन्दरसकाशो त्रिसप्त समतत ॥ ८५ ॥

कुम्भने गिरनेसे बड़ी भारी जलराशि ऊपरको उठी, जो त्रिष्य और मन्दराचलके समान आन पड़ी और सब ओर फैल गयी ॥ ८५ ॥

तत कुम्भ समुत्पाय सुग्रीयमभिपान्य च ।

आज्जयानोरसि मुदो यज्जकल्पेन मुग्धिना ॥ ८६ ॥

इसके बाद कुम्भ पुन उठकर बाहर आया और काँध पृथक सुग्रीव पकड़कर उसकी छातीपर उठने पत्रके समान मुक्थने प्रहार किया ॥ ८६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पमीश्वर्ये आदिकाण्डे वट्टस्यतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वामेय आदिकाण्डे मुद्रकाण्डमें द्वादशवर्षों समाप्त हुआ ॥ ७९ ॥

तस्य धर्मं च पुराणोत्तमं सज्जं चापि शोणितम् ।

तस्य मुष्टिर्महावेगं प्रतिजघ्नेऽस्त्रिमण्डले ॥ ८७ ॥

इससे धानराजका वचन टूट गया और छातीसे खून बहने लगा । उसका महान वेगशाली मुक्ता सुग्रीवकी हथियों पर बड़े वेगने लगा था ॥ ८७ ॥

तस्य वेगेन तन्प्रासीत् तेज प्रज्वलित महत् ।

वज्रनिष्पेषसजाता ज्वाल मेरोर्यथा गिरि ॥ ८८ ॥

उसके वेगसे वहाँ बड़ी भारी ज्वाला जल उठी थी, मानो मेरु पर्वतके शिखरपर वज्रके आघातसे भाग प्रकट हो गयी हो ॥ ८८ ॥

स तन्नाभितस्तनं सुग्रीवो धानरर्पभ ।

मुष्टिं सतयामास यज्जकल्प महाबल ॥ ८९ ॥

अत्रि महाविकचरविमण्डलवर्धसम् ।

स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि धीयवान् ॥ ९० ॥

कुम्भके द्वारा इस प्रकार आहत होनेपर धानराज महाबली परम पराक्रमी सुग्रीवने भी अपना वज्रगुण्य मुक्ता सैभाला और कुम्भकी छातीमें कल्पपूर्वक आघात किया । उस मुक्ताका तेज सहस्रों निरणोसे प्रकाशित सूर्यमण्डलके समान उदीर हो रहा था ॥ ८९ ९० ॥

स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीडित ।

निपपात तदा कुम्भो गताचिरिष पाथक ॥ ९१ ॥

उस प्रहारने कुम्भको बड़ी पीड़ा हुई । वह व्याकुल हो कुसी हुई आगकी तरह गिर पड़ा ॥ ९१ ॥

मुष्टिनाभितस्तनं निपपातासु राक्षस ।

लोहितान् इवाकाशाद् दीप्तस्मिन्पट्टच्छया ॥ ९२ ॥

सुग्रीवने मुक्ताके चोट पारकर वह राक्षस आकाशसे अकस्मात् गिरनेवाले मगलनी भाँति तत्काल घराघायी हो गया ॥ ९२ ॥

कुम्भस्य पतनो रूप भग्नस्योरसि मुष्टिना ।

यमौ रुद्राभिपन्नस्य यथा रूप गवा पतः ॥ ९३ ॥

मुक्ताके की मारसे बिठका बध सख चूर चूर हो गया था; वह कुम्भ जब जीचे गिरने लगा, तब उसका रूप बद्धदेवसे अभिभूत हुए सूर्यदेवके समान आन पड़ा ॥ ९३ ॥

तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण

ह्रवगमानामृपमेण मुदे ।

मही सर्वशाल मयना चयाद

भयं च रक्षास्यधिक विवेश ॥ ९४ ॥

मयकर पराक्रमी धानराज सुग्रीवने द्वारा मुद्रमें उस निराधारके मारे जानेपर पवन और बनोंछित्त कपी प्रणी कोपने लगी और राक्षसोंके हृदयमें अव्यक्त भय छा गया ॥

तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण

ह्रवगमानामृपमेण मुदे ।

सप्तसप्ततितमः सर्गः

हनुमान्के द्वारा निकुम्भरा वध

निकुम्भो भ्रातर इष्टा सुग्रीवेण निपातितम् ।

प्रदहन्निव कोपेन यानरेद्रुमुदैक्षत ॥ १ ॥

सुमीचेन द्वाप अपने भारे कुम्भको मारा गया देख
निकुम्भने वानरराजकी ओर ग्रा प्रहार देखा, मानो उन्हें
अपने क्रोधसे दग्ध कर देगा ॥ १ ॥

तत स्मृदामसनन्द दत्तपञ्चाङ्गुल शुभम् ।

आददे परिघ धीरो महेद्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥

उस धीर-वीरने महेद्र पर्वतने शिखर-जैसा एक सुन्दर
एवं निशाल परिघ हाथमें लिया, जो फूलोंकी लहियोंसे अलङ्कृत
था और जिसमें पाँच-पाँच अंगुलके चौड़े एड्डर पत्र जड़े
गये थे ॥ २ ॥

हेमपट्टपरिग्रित यज्ञविद्रुमभूषितम् ।

यमदण्डोपम भीम रक्षसा भयनादानम् ॥ ३ ॥

उस परिघमें छेनेके पत्र भी जड़े थे और उसे हीरे तथा
मूँगोंसे भी विभूषित किया गया था। वह परिघ यमदण्डक समान
भयकर तथा राक्षसोंके भयका नाश करनेवाला था ॥ ३ ॥

तमविष्य महातेजा शक्रपञ्चसमौजसम् ।

निननाद् विवृत्तास्यो निकुम्भो भीमश्रिम ॥ ४ ॥

उस इन्द्रपञ्चक समान तेजस्वी परिघको घुमाता हुआ वह
महातेजस्वी भयानक पराक्रमी राक्षस निकुम्भ हुई पैलाकर
बोर-जोरसे गजना करने लगा ॥ ४ ॥

उदोगतेन निष्केण भुजस्यैरङ्गदैरपि ।

कुण्डलाभ्या च चित्राभ्यामालया च सचित्रया ॥ ५ ॥

निकुम्भो भूपणैभाति तेन स परिघेण च ।

यथेद्रधनुया मेघ सविद्युस्तनयिरनुमान् ॥ ६ ॥

उसने वज्र खलमें छेनेरा पदक था। भुजाओंमें बाजू
बद्ध शोभा देते थे। कानोंमें विचित्र कुण्डल झलमल रहे
थे और गलेमें विचित्र माला जगमगा रही थी। इन सब
आभूषणोंमें और उस परिघमें भी निकुम्भकी वैसी ही शोभा
हो रही थी, अने विद्युत् और गर्जनासे युक्त मधु इन्द्र धनुषसे
सुशोभित होता है ॥ ५ ॥

परिघाग्रेण पुष्फोट घातप्रनिर्यर्महात्मन ।

प्रनज्वाल सयोगश्च निधूम इय पाषाक ॥ ७ ॥

उस महाकाय राक्षसके परिघर आग्रभागमें टक्कर प्रवह
आरद आदि छोट महाराजओंकी सधि टूट-टूट गयी तथा वह
भायी गड़गड़ाहटके साथ धूमरहित अग्निकी भाँति प्रज्ज्वलित
हो उठा ॥ ७ ॥

नगया विटपाषाण्या गन्धरभवनास्रम् ।

सतारागणनक्षत्र सचद्रममहाग्रहम् ।

निकुम्भपरिघाघूर्ण भ्रमतीव नभस्थलम् ॥ ८ ॥

निकुम्भमें परिघ घुमानेसे गिण्णवती नगरी (अल्कापुरी),
गन्धर्वोंक उत्तम भवन, चारे नक्षत्र, चन्द्रमा तथा बड़े-बड़े
ग्रहोंके साथ समस्त आकाशगण-धूमता-सा प्रतीत होता था ॥

दुरासदश्च सनम्रे परिघाभरणप्रभम् ।

क्रोधे धनो निकुम्भान्निर्गुणान्तामिरिवोत्थित ॥ ९ ॥

परिघ और आभूषण ही जिनकी प्रभा थे, क्रोध ही जिनर
लिये ईर्ष्यका काम कर रहा था, वह निकुम्भ नामक अग्नि
प्रलयकालकी आगर समान उठी और अत्यन्त दुर्जन हो
गयी ॥ ९ ॥

राजसा यानरात्रापि न श्रेकु स्पन्दितु भयात् ।

हनुमास्तु विवृत्योरस्तस्यै प्रमुखतो वली ॥ १० ॥

उस समय राक्षस और वानर भयक मारे लिल डुल भी
न सके। केवल महावली हनुमान् अपनी छाती खोलकर उस
राक्षसके सामने खड़े हो गये ॥ १० ॥

परिघोपमयाहुस्तु परिघ भास्करप्रभम् ।

वली वल्यतस्तस्य पातयामास यक्षसि ॥ ११ ॥

निकुम्भकी भुजाएँ परिघर समान थीं। उस महावली
राक्षसने उस वर्णवत्य तेजस्वी परिघको बलवान् वीर हनुमान्
की छातीपर दे मार ॥ ११ ॥

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघ शतधा कृतः ।

विकीर्यमाण सहसा उल्काशतमिराम्बरे ॥ १२ ॥

हनुमान्जीकी छाती बड़ी मुट्ठ और निशाल थी। उसने
टटपटे ही उस परिघर सदा सेकड़ों टुकड़े होकर बिगिर गये,
माना आकाशमें सौ-सौ उल्काएँ एक साथ गिरि हों ॥ १२ ॥

स तु तन प्रहारेण न चजाल महाकपि ।

परिघेण समाधृतो यथा भूमिरेडजाल ॥ १३ ॥

महाकपि हनुमान्जी परिघमें आहतहानपर भी उस प्रहार
से चिन्तित नहीं हुए, वेने नृकम्प हानेर भी पतन न
गिरता है ॥ १३ ॥

स तयाभिहतस्तेन हनुमान् लज्जगोष्ठम् ।

मुष्टिं स्वयतयामास घलनातिमदायल ॥ १४ ॥

अत्यन्त महान् बलशाली वानरराजमेंसे हनुमान्जीने इस
प्रकार परिघकी मार खाकर बन्दूक अन्ती मुट्ठी पोपी ॥ १४ ॥

तमुच्यम महातेजा निकुम्भोरसि धीयान् ।

अभिनिक्षेप घगन वेगयान् धायुषिग्रम ॥ १५ ॥

वे महान् तेजस्वी, पराक्रमी; वेगवान् और वायुके समान बल-विक्रमसे सम्पन्न थे । उन्होंने मुझा तानकर बड़े वेगसे निकुम्भकी छातीपर मारा ॥ १५ ॥

तत्र पुष्कोट धर्मास्य प्रसुप्ताय च शोणितम् ।

मुष्टिना तेन सज्जशे मेघे त्रिबुविधोत्थिता ॥ १६ ॥

उस मुकेशकी चोटसे वहाँ उसका कवच फट गया और छातीसे रक्त बहने लगा मानो मेघमें बिजली चमक उठी हो ॥ १६ ॥

स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल च ।

स्वस्थश्चापि निजग्राह हनूमन्त महाजलम् ॥ १७ ॥

उस प्रहारेसे निकुम्भ विचलित हो उठा फिर थोड़ी ही देरमें हँसकर उसने महाबली हनुमान्जीको पकड़ लिया ॥

चुक्रुशुश्च तदा सख्ये भीम लङ्घानियासिन ।

निकुम्भेनोद्यत दृष्ट्वा हनूमन्त महाजलम् ॥ १८ ॥

उस समय युद्धस्थलमें निकुम्भके द्वारा महाबली हनुमान् जीका अपहरण होता देख लङ्घानियासी राक्षस भयानक स्वरमें विजयसूचक गवना करने लगे ॥ १८ ॥

स तथा ह्रियमाणोऽपि हनूमास्तेन रक्षसा ।

आजधानानिलसुतो वज्रकरपेन मुष्टिना ॥ १९ ॥

उस राक्षसके द्वारा इसप्रकार अपहृत होनेपर भी पवनपुत्र हनुमान्जीने अपने वज्रतुल्य मुकेशसे उसपर प्रहार किया ॥ १९ ॥

आत्मान मोक्षयित्वाथ क्षितान्गम्यपपद्यत ।

हनूमानुममाथाशु निकुम्भ मारुतात्मज ॥ २० ॥

फिर व अपनेको उसके चंगुलसे छुड़ाकर पृथ्वीपर खड़े हो गये । तदनन्तर वायुपुत्र हनुमान्ने तत्काल ही निकुम्भको पृथ्वीपर दे मारा ॥ २० ॥

इत्यादि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तसप्ततितम सर्ग ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीवत्सामाकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्य युद्धकाण्डमें सप्तहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः

रावणकी आज्ञासे मकराक्षका युद्धके लिये प्रमथान

निकुम्भ निहत तुत्था कुम्भ च धिनिपातितम् ।

रावण परमाभयं प्रजङ्गालानलो यथा ॥ १ ॥

निकुम्भ और कुम्भको मारा गया सुनकर रावणकी वृद्ध क्रोध हुआ । वह आगने समान जल उठा ॥ १ ॥

नैर्ऋतं क्रोधशोकाम्बा ऋम्यानु परिमूर्च्छत ।

खरपुत्र विशालान्न मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥

रावणने क्रोध और शोक दोनोंसे व्याकुल हो विशाल नेत्रोंवाले खरपुत्र मकराक्षने कहा— ॥ २ ॥

गच्छ पुन मयाऽऽशतो धनेनाग्निसमन्वित ।

रावण लक्ष्मण चैव जहि तौ सयनैकसौ ॥ ३ ॥

निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भ निष्पिपे च ।

उत्पत्य चास्य वेगेन पपानोरसि वेगवान् ॥ २१ ॥

परिवृष्ट च वाहुभ्या परिवृत्य शिरोधराम् ।

उत्पाटयामास शिरो भैरव नन्दतो महत् ॥ २२ ॥

इसके बाद उन वेगवाली बीरने बड़े प्रयाससे निकुम्भको पृथ्वीपर गिराया और खून गाढ़ा । फिर वेगसे उछलकर वे उसकी छातीपर चढ़ बैठे और दोनों हाथोंसे गला मरोड़कर उन्होंने उसने मस्तकको उखाड़ लिया । गल मरोड़ते समय वह राक्षस भयकर आर्तनाद कर रहा था ॥ २१ २२ ॥

अथ निनन्दति सादिते निकुम्भे

पवनसुतेन रणे घम्भ्य युद्धम् ।

दशरथसुतरासतेन्द्रसन्तो

र्धशतवर्माणतरोपयो सुभीमम् ॥ २३ ॥

रणभूमिमें वायुपुत्र हनुमान्जीक द्वारा गर्वना करनेवाले निकुम्भके मारे जानेपर एक दूसरेपर अत्यन्त कुपित हुए श्रीराम और मकराक्षमें वृद्धा भयकर युद्ध हुआ ॥ २३ ॥

यपेते तु जीवे निकुम्भस्य दृष्ट्वा

विनेतुं भ्रवणा दिशः सखनुभं ।

चचालेय चौर्यां पपातेव सा दौ

बल राक्षसाना भय चाविवेश ॥ २४ ॥

निकुम्भक प्राणत्याग करनेपर सभी वानर बड़े हर्षके साथ गर्जने लगे । सम्पूर्ण दिशाएँ कोलाहलसे भर गयीं । पृथ्वी चलती-सी जान पड़ी; आकाश मानो फट पड़ा हो; ऐसा प्रतीत होने लगा तथा राक्षसोंकी सेनामें भय समा गया ॥ २४ ॥

इत्यादि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तसप्ततितम सर्ग ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीवत्सामाकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्य युद्धकाण्डमें सप्तहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः

रावणकी आज्ञासे मकराक्षका युद्धके लिये प्रमथान

निकुम्भ निहत तुत्था कुम्भ च धिनिपातितम् ।

रावण परमाभयं प्रजङ्गालानलो यथा ॥ १ ॥

निकुम्भ और कुम्भको मारा गया सुनकर रावणकी वृद्ध क्रोध हुआ । वह आगने समान जल उठा ॥ १ ॥

नैर्ऋतं क्रोधशोकाम्बा ऋम्यानु परिमूर्च्छत ।

खरपुत्र विशालान्न मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥

रावणने क्रोध और शोक दोनोंसे व्याकुल हो विशाल नेत्रोंवाले खरपुत्र मकराक्षने कहा— ॥ २ ॥

गच्छ पुन मयाऽऽशतो धनेनाग्निसमन्वित ।

रावण लक्ष्मण चैव जहि तौ सयनैकसौ ॥ ३ ॥

वेग । मरी आज्ञासे विशाल सेनाके साथ जाओ और उदरसेहित उन दोनों भाइयों राम तथा लक्ष्मणको मार डालो ॥ १ ॥

रावणस्य वच श्रुत्वा शूरमानी खरात्मज ।

यादमित्यधवीर्यलो मकराक्षो निशाचरम् ॥ ४ ॥

सोऽभिवाद्य दशम्रीच दृष्ट्वा चापि प्रदक्षिणम् ।

निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद् रावणस्याज्ञया यत्नी ॥ ५ ॥

रावणकी यह बात सुनकर अपनेको शूरवीर माननेवाले खरपुत्र मकराक्षने हृत्पूर्वक कहा—‘चतुर्द अष्टा’ । फिर उस यत्नी बीरने निशाचरराज रावणकी आज्ञा परक उसकी

परिक्ष्मा की और उमड़ी आला लेकर वह उम्बल रावमनने
बाहर निकला ॥ ४१ ॥

समीपस्थ उल्लाप्य ह्यस्त्रपुत्रोऽधरीद् वच ।
रथमानीयतां हर्षं सैन्यं त्वानीयतां त्वरात् ॥ ६ ॥

पास ही सेनापक्ष खाड़ा था । खरके पुत्रने उसके कहा-
मेनापते । शीघ्र रथ ले आओ और तुरत ही सेनासे भी
बुलवाओ ॥ ६ ॥

तस्य तद् दायनं भुत्वा दलपक्षो निशाचर ।
स्यन्दनं च यत्नं चैव समीपं प्रययाद्वयत् ॥ ७ ॥

मरुपुत्री यह बात सुनकर निशाचर मनागतिने रथ और
सेना उसके पास लाकर खड़ी कर दी ॥ ७ ॥

प्रक्षिप्य रथं पृथा समाहूय निशाचर ।
सूतं सचोदयामास शीघ्रं चैव रथमायह ॥ ८ ॥

तब मकराक्षने रथरी प्रदक्षिण की और उसपर आ-
हूकर सारथिको आदेश दिया—पक्षको शीघ्रतार्थक ले
चले ॥ ८ ॥

अथ तान् राक्षसान् सर्वान् मकराक्षोऽब्रवीदिदम् ।
यूयं सर्वे प्रयुष्यथ पुरस्तात्तमं राक्षसां ॥ ९ ॥

इसके बाद मकराक्षने समस्त राक्षसों को कहा—पनिगचरो !
तुमलोग मेरे आगे रहकर युद्ध करो ॥ ९ ॥

अहं राक्षसराजेन रात्रेण महामना ।
आव्रत समरे हतुं ताक्षुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

मुझे महामना राक्षसराज रात्रेण समरभूमिमें राम और
लक्ष्मण दोनों माइयोंको मारनेकी आज्ञा दी है ॥ १० ॥

अथ रामं धिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचर ।
शाखाभुजं च सुग्रीवं यानराक्षसं शरोत्तमैः ॥ ११ ॥

पक्षसे ! आज मैं राम, लक्ष्मण, यानराक्षस सुग्रीव तथा
दूरे-दूरे पाण्डोंका अपने उत्तम बाणोंद्वारा वध करूँगा ॥

अथ हूलनिपातैश्च यानराणां महाबभूव ।
प्रदक्षिष्यामि सम्प्राप्तां गुर्वेन्धनमिवानलं ॥ १२ ॥

जैसे आग हली लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार आज
मैं शत्रुओंकी मारने सामने आपी हुई यानरोंकी निशाचर कान्तिनीसे
दग्ध कर दूँगा ॥ १२ ॥

मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा चयनं ने निशाचर ।
सर्वे नानायुधोपेता यत्नान् समाहिता ॥ १३ ॥

मकराक्षस यह वचन सुनकर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रोंसे
सज्जित वे समस्त बलवान् निशाचर युद्धक स्थिे लावधान
हो गये ॥ १३ ॥

ते कामरूपिण दूरा दक्षिणं पिङ्गलेक्षणा ।
मातंगा इव नदन्तो यस्तस्तेषां भयानका ॥ १४ ॥

परिवार्य महाकाया मलकाय परामजम् ।
अभिजग्मुस्ततो दृष्टाश्चाल्यन्तो रसुधराम् ॥ १५ ॥

वे सर-केसव इच्छानुसार रूप धारण करनेगले और दूर
स्वभावके थे । उनकी दाढ़ बनी-बड़ी और अँखें भूरी थीं ।
उनमें केव सव और खिले हुए थे इतलिये वे यड़े भयानक
जान पड़ते थे । हाथीके समान निगाड़ते हुए वे निशाचर
निशाचर खरफ पुत्र महाकाय मकराक्षको चारों ओरने परस्पर
पृथ्वीसे कँपाने हुए बड़े हर्षक साथ युद्धभूमिमें अर
चले ॥ १४ ॥

शङ्खभेरीसङ्घाणामाहताना समन्तान् ।
क्ष्वेलितान्फोडिताना च तत्र शब्दो महानभूत् ॥ १६ ॥

उस समय चारों ओर सन्नों गङ्गोंका ध्वन हो रही थी ।
हजार हज़ार पीर जाते थे । बादलोंमें गरजने और ताल
ठोकनेकी आवाज भी उनमें साथ मिली हुई थी । इस प्रकार
वहाँ बड़ा भारी कालाहल मच गया था ॥ १६ ॥

प्रभ्रष्टोऽथ कदात् तस्य प्रतोद् नारथेस्तदा ।
पपान सहसा दैवाद् घनस्तस्य तु रम्यस्य ॥ १७ ॥

उस समय मकराक्षर सारथिने शयसे बाहुन गूँवर
नाचे गिर पड़ा और दैवता उस रात्ररा पत्र भी सन्ना
घयघापी हो गया ॥ १७ ॥

तस्य ते रथसयुक्ता हया निममज्जिता ।
चरपौराकुलैरत्वा वीनां सारमुत्तापयु ॥ १८ ॥

उसके रथमें तुने हुए घोड़े विक्रमरहित हो गये—वे अपनी
नाना प्रकारकी विविध बाणें भूल गये । पहले तो कुछ दूर
तक आकुल—लड़गड़गते हुए पैरोंसे गये फिर वीरने चलने
लगे । परन्तु भीरुसे वे बहुत दुर्बल थे । उनसे सुन्दर
औरड़ी घाप रह रही थी ॥ १८ ॥

प्रयाति पवनस्तस्मिन् सपासु रत्नदाहण ।
निवाणे तस्य रौद्रस्य मकरानस्य दुर्मते ॥ १९ ॥

हुट बुद्धिवाले उस भयंकर राक्षस मकराक्षरी यात्रा
कम्य धूलमें भरी हुई दाढ़ पर प्रचंड बाण चरने लगी
थी ॥ १९ ॥

तानि दृष्ट्वा निमित्तानि राक्षसा धीययत्तमा ।
अचिन्त्य निर्गता सर्वे यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥

उन सब अचतुर्गोत्रों के देखकर भी वे मकराक्षरी राक्षस
उनकी कड़ पक्षा न करके सर-केसव उस स्थान पर गये, जहाँ
श्रीराम और लक्ष्मण निधमान थे ॥ २० ॥

घनगजमदिराजतुल्यरणा
समरमुपेय्वमर-द्रुदातिभिन्ना ।
अहमहमिति युद्धकौशस्त
रजनिचरा परिपथमुमुदृम्ने ॥ २१ ॥

उन राक्षसोंकी अङ्गबान्ति मेघ, हाथी और भैंसोंके समान
झाली थी। व युद्धके सुगनेपर अपने घर गंगाओं और
तलवारोंकी चोटसे पायल हो चुके थे। उनमें युद्धनिपण

कौशल विद्यमान था। व निशाचर पहल में युद्ध करेंगे,
पहले में युद्ध करेंगे। ऐसा बारबार कहते हुए वहाँ से और
चकर लगाने लगे ॥ २१ ॥

हृत्कार्य श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आणिकान्य युद्धकाण्डेऽष्टमस्तितम सर्ग ॥ ७८ ॥

स प्रसार त्वामाभिमिति आधरामायण आभिमिति युद्धकाण्डेऽष्टमस्तितम सर्ग पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मकराशका वध

निगत मकराक्ष तं दृष्ट्वा बानरपुंगव ।
आन्दुराय सहसा सर्वे योद्धकामा व्यवस्थिता ॥ १ ॥

प्रधान प्रधान बानरों ने देखा कि मकराक्ष नगरसे
निफला आ रहा है। तब वे सब वं सब सहज उछलकर युद्धके
लिये रड़े हो गये ॥ १ ॥

तव प्रयुक्त सुमहत् तद् युद्ध लोमहर्षणम् ।
निशाचरैः प्रगताया दयाया दानैरिव ॥ २ ॥

जिस तब बानरोंका निशाचराय साथ पड़ा भारी युद्ध उड़
गया, जो देव दानव-सभामक समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला
था ॥ २ ॥

वृक्षद्वारनिपातैश्च गदापरिघपातनैः ।
अन्योन्य मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचरा ॥ ३ ॥

बानर और निशाचर वृक्ष, गदा, गदा और परिघोंकी
मारसे उन समय एक दूसरेको कुचलने लगे ॥ ३ ॥

शक्तिपङ्क्तगदाङ्कुतैस्तोमरैश्च निशाचरा ।
पट्टिशैर्भिन्विपालैश्च बाणपातैः समन्ततः ॥ ४ ॥
पादामुडरदण्डैश्च निर्घातैश्चापरैस्तथा ।
फट्फट कपिनिशाचरा चमुक्ते रजनीचरा ॥ ५ ॥

निशाचराय शक्ति, पङ्क्त, गदा, माला, तोमर, पट्टिश,
मिन्दिपाल, बाणप्रहार, बाण मुद्गर, दण्ड तथा अन्य प्रकारके
गजोंके आघातसे सब ओर बानरवीरोंका संहार करने
लगे ॥ ४ ॥

यागौघैरर्दिताश्चपि नारपुत्रेण यानरा ।
सम्भ्रान्तमनसं स्येन्दुभयपीडिता ॥ ६ ॥

सबसे मकराक्षने अपने बाणसमूहोंसे बानरोंका जल्यता
पाय कर दिया। उनमें मनमें बड़ी घमण्ड बुद्ध और व
सब-क-सब भयमें पीड़ित हो इधर उधर भागने लगे ॥ ६ ॥

तान् दृष्ट्वा राक्षसा सर्वे द्रवमाणान् वनौत्सवः ।
नेदुक्ते सिंहवद् दमा राक्षसा जितकाशिनः ॥ ७ ॥

उन सब बानरोंका भागत देखा निजबाज्यसे मुगमि
हनेवाला। समान राक्षस रूपमें भरकर सिंहके समान गजना
वरने लगे ॥ ७ ॥

विद्रवतु तदा तपु धामरेषु समन्ततः ।
गमस्तान चारयामास शरपणेन राक्षसान् ॥ ८ ॥

वे बानर जब सब ओर भागने-वराने लगे, तब श्रीरामचन्द्र
जीने बाणोंकी वर्षा करके राक्षसोंको आगे धकेलने लगा ॥ ८ ॥

गारिमान् राक्षसान् दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचर ।
कोपानलसमाविधौ बचनं चेदमग्रहीत् ॥ ९ ॥

रामलका गया गया देव निशाचर मकराक्ष मरघरी-जाग
से जब उठा और इस प्रकार बोला— ॥ ९ ॥

तिष्ठ राम मया सार्धं दृढयुद्धं भरिष्यति ।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान् धनुर्मुचे शितैर्दरैः ॥ १० ॥

राम! तूहमे मेरे साथ तुम्हारा दृढयुद्ध होगा। आज
अपने धनुषमें छूटे हुए बने बाणोंद्वारा तुम्हारा प्राण हर
दूंगा ॥ १० ॥

यत् तदा दण्डकारण्ये पितर हतवान् मम ।
तदग्रतः स्वर्गमस्य दृष्ट्वा रोषोऽभिभवति ॥ ११ ॥

उन दिना दण्डकारण्यमें भीतर जो तुमने मेरे पिताका
वध किया था, तभीसे लेकर अबतक तुम राक्षस-वधके ही
काममें लगे हुए थे। इस रूपमें तुम्हारा सरण करने मेरा
योग बढ़ता जा रहा है ॥ ११ ॥

वृष्टान्ते भूदामहानि दुरात्मन् मम राघव ।
यमयासि न दृष्टव्यं तस्मिन् जाले महावने ॥ १२ ॥

भूदामया राघव! उस समय विशाल दण्डकारण्यमें जो
तुम मुझे दिलाओ नहीं दिये, इससे मेरे अङ्ग अव्यत रोपने
कलत रहते थे ॥ १२ ॥

विप्रधासि दर्शनं राम मम त्वं प्रातयानिह ।
काक्षितोऽसि भुधातव्यं सिंहम्येतेतरो मृग ॥ १३ ॥

जिससे तुम मेरे लोभाग्रही कात हो ना तुम आज यहाँ मेरी
आँखोंसे सामने पड़ गये। जैसे भूयसे पीड़ित हुए सिंहरा
दूसरे पर जन्तुओंकी अभिगम होती है, उसी तब मैं भी
तुम्हें बानरी इच्छा करता था ॥ १३ ॥

अथ महापयोधेन प्रतराद्विषय गतः ।

ये त्वया निहता गुरो सह तैश्च वसिष्यसि ॥ १५ ॥

अब मेरे बाँके काने यनगवन रामे पहुँचकर
तुम्हें उन्हीं कीर निगावेंगें साथ निवास करना पड़ेगा, ज
तुम्हारे हाथने मार गये हैं ॥ १४ ॥

रघुनाथ विमुक्तेन ऋणु राम वचो मम ।
पश्यतु मङ्गलालोकास्था मा चैव रणानिरे ॥ १५ ॥

राम ! यहाँ बहुत कष्टने क्या लभ ? मरी दन मुना ।
हम ला इस सनपङ्गाने गन हकर ब्यज तुमच और
मुपना दवै—तुम्हारे और मर युद्धका अगमन करें ॥ १५ ॥

भल्लैरा गद्या यापि आहभ्या ना रणानिरे ।
अभ्यस्त येन वा राम धतता तेन वा मृद्यम् ॥ १६ ॥

राम ! तुम्हें रामनिमें कबोने, रगने अथवा दोनों
मुक्तअने—विष्ने भा अभ्यस्त हो, ग्राहक द्वारा आज तुम्हारे
साथ मर युद्ध हो ॥ १६ ॥

मकराक्षरच ध्रुवा रामो नशरयामन ।
गम्रीन् प्रहसन् वास्यनुत्तरोत्तरवाग्निम् ॥ १७ ॥

मकरपक्षध य बाग मुनर दशरथनन्दन भगवान
भागम कर रने हैमन हो और उत्तरोत्तर बाँगे बनाने
उन राग्यने दन— ॥ १७ ॥

बभूवसे दि वृथा रक्षो नहम्यसहजानि ते ।
न रणे शस्यते जेतु विना युद्धेन वाग्यलात् ॥ १८ ॥

निगावर ! क्यों व्यर्थ हो होऊँगा है । तर तुम्हारे बहुत
नी एकी बाँगे निरन रहा है, ज बाग पुरोक्त बभूव है ।
सममने युद्ध द्विप विना कापी बकाकर बल्य विजय नहा
प्राप्त हो मज्जी ॥ १८ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसा यपिता च य ।
त्रिशिर दुरणश्चापि दण्डके निहतो मया ॥ १९ ॥
स्वाशितायापि मासेन गृध्रगोमातुषायमा ।
भरिष्यत्यय ध पाप तीक्ष्णतुण्डनगादुशा ॥ २० ॥

गणी एउत ! य गौक है नि दण्डकरभयने चौह
हकर सल्लेक समय तर नि गरका त्रिशिरका और
दुग्गदा मा मीने यप किया था । उस समय दण्डी चौच
और अद्भुतक समन पवरात बहुतने गवै, गवैहों तथा
चौहैहो भ उनक मकने अच्छी तरा नृम किया था और
अब आज व तर मकन नरप मकन पावैगे ॥ १९ ॥ २० ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु मकराग्नौ महारत्न ।
पाणीषानमुगन् तस्मै राघवाय रणानिरे ॥ २१ ॥

भीरुनपन्नर ऐन कदनेर महात्मा मकराग्नने र
भूमिने गन उर बागभूमी — अरमम कर दी ॥
ताम्ररात्ररात्रेण गमश्चिच्छेद नैरुधा ।
निपेतुमुरि शिच्छिन्ना वनमुपुष्ठा सारधरा ॥ २२ ॥

परतु भीरुमने स्वय नी बाँकी दोहान कर उर
रात्रर बाग दुग्गदुग्गद कर गल । वे कर हुए मुनग्य
पाँवगाल सवों बाग ग्रावर मर वड़े ॥ २० ॥

तद् युद्धमभवत् नत्र समेत्यान्योन्यमोनसा ।
मगराक्षसपुत्रस्य मृतोन्शम्यस्य च ॥ २३ ॥

दशरथनन्दन भगवान् भीरुम और एउत वरक पुत्र
मगराग्न—इन दोनोंम एक दूसक निरन आकर बगुनक
युद्ध होने ला ॥ २२ ॥

जौमृतयोन्वाकाशे शब्दो व्यातलयोरिय ।
अनुमुक्त म्वनेऽन्योन्य श्रूयत च रणानिरे ॥ २४ ॥

उन दोनोंने प्रत्यक्षा और ध्वनिका रागने धनुनक द्वारा
न टकारशब्द प्रकट होता था, व गन सनपङ्गाने परस्पर
मिलकर उठी तरह मुतापा दता था हैम भगवाने न
मयेंक गवैनेका भाव हो रही है ॥ २४ ॥

देवदानगधरा चित्रराक्ष महोरगा ।
अन्तरिक्षगता सर्वे द्रष्टुकामास्तद्भुतम् ॥ २५ ॥

दन्ता गनर गन चित्रर और बगुनक नाग—
य कर नरक उर अद्भुत युद्धक देखनेन नि नमिने
आकर लड़ है गय ॥ २५ ॥

रिद्धिमन्योन्यगात्रसु डिग्गा यधन यलम् ।
कृतप्रतिवृत्त्यान्योन्य कुहता तौ रणानिरे ॥ २६ ॥

दामोंक शरीर बागाने विप गय व चित्र मा गनका व
दुगुता वन्ता जना था । वे दोनों सममभूमिने एक-दूसरक
अत्रोंका काने हुए लड़ रहे य ॥ २६ ॥

गममुक्तास्तु राणीषान् राघवसहचरिण्डरणे ।
ग्न्योमुक्तान् रामो वै नरधा प्राचिछित्ठरे ॥ २७ ॥

भागमकन क लड़ हुए व सवोंका उर एउत
रामनिने बाग दान्ता था और रात्रक बगुन हुए सवकों
थ भागमकनकी वने बाँधिय दू-गन कर बाज्य वे ॥

याणोघशिता सर्वा दिशोऽप्रदिशस्तदा ।
सल्लान्तावनुधा चैव समन्तान् प्रशशत ॥ २८ ॥

कनूा दिग और विभिन्न बागभूमिने भाषादिन
ह गनी थी तथा एउते दृष्टा न गनी थी । नयें अर कुछ
भी दिक्का नगी नेग था ॥ २८ ॥

तत्र क्षुब्धो महाराहुपनुश्चिच्छेद सपुगे ।
अष्टाभिरय नारायै सन् त्रिषाथ गग्न ॥ २९ ॥

गननर भागदु भीरुमकनन प्रथम मगर गन
गमक धनुन युद्धभूमिने बाग गिया और न नगवेंदग
गवह लपिय भी दी दिग ॥ २९ ॥

मिस्ता रय दगै रामो इत्या अभ्यानगतपत् ।

रिप्यो वसुधास्य स मकराक्षो निशाचरः ॥ ३० ॥

रि अनेक बाणसे रघुओ छिन्न भिन्न करके श्रीरामने बाँझोंको भी मार गिरया । रघुहीन हो जानेपर निशाचर मकराक्ष भूमिपर खड़ा हो गया ॥ २० ॥

तत्तिष्ठद् वसुधा रक्ष शूल जग्राह पाणिना ।

नासन सज्भूताना युगात्तानिसमप्रभम् ॥ ३१ ॥

वृथीपर राड़े हुए उस राक्षसने शूल हाथमें लिया, जो प्रलयकालकी अग्निज्वाला समान दीप्तिमान् तथा समान प्राणियोंका भयभीत करनेवाला था ॥ ३१ ॥

दुरथाप महच्छूल रुद्रवत् भयकरम् ।

जात्यल्पमात्रमाकाशे सहारात्ममिमापरम् ॥ ३२ ॥

यह परम दुर्लभ और महान् शूल भगवान् शंकरका दिया हुआ था; जो बहुत ही भयकर था । वह वृक्षों सहाराक्षकी भाँति आकाशमें प्रचलित हो उठा ॥ ३२ ॥

यद्वा देवता सदा भयाता विद्रुता विना ।

विभ्राम्य च महच्छूल प्रज्वलन्त निशाचर ॥ ३३ ॥

स प्रोधात् प्राणिनात् तस्मै राधयाय महाहयं ।

उसे देखकर सगुण देवता भयने पीड़ित हो सब िवादा म भोग गये । उस निशाचरने प्रज्वलित होतें हुए उस महान् शूलको घुमाकर महारान् श्रीरघुनाथजीके ऊपर क्रोधपूर्वक चलाया ॥ २२ ॥

तमापतन्त ज्वलित खरपुष्कराच्छ्रुतम् ॥ ३४ ॥

याणश्चतुर्भिराकाशे शून्यं चिच्छेद् राघव ।

खरपुष्प मकराक्षके हाथसे छूट हुए उस प्रचलित शूलको अपनी ओर आने देख श्रीरामचन्द्रजीने चार पाण मारकर आकाशमें ही उसका नाट डाला ॥ २४ ॥

स भिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डित ।

व्यशीयत महोत्प्लेज रामयाणादितो मुनि ॥ ३५ ॥

दिव्य मुण्डलें विभूति बहून् श्रीरामने बाणोंसे खण्डित ॥ अनेक टुकड़ोंमें बँट गया और बड़ी भारी ठट्ठकावे समान भूतलपर गिर गया ॥ २५ ॥

दुरथापे धीमन्नामगयन वात्सीकीये आद्रिकास्ये मुद्रकाण्डे एकेनापीतितम सग ॥ ७० ॥

इस प्रकार धीमन्नामकिर्मित आर्ग्यभाषण आद्रिकास्ये मुद्रकाण्डे एकेनापीतितम सग ॥ ७० ॥

अशीतितमः सर्गः

रावणकी आज्ञासे इन्द्रजित्का घोर युद्ध तथा उसके बंधके विषयमें श्रीराम और लक्ष्मणकी वात्सीय

मकराक्ष हत शून्या रागः समर्तिजय ।

रोयेन महतापिष्टो दन्तान् बटफट्टास्य च ॥ १ ॥

मकराक्ष हत गया मुनन्द समरविजयो राग महान् राग भरकर दोनों पीछेने लगा ॥ १ ॥

तच्छूल निहत दृष्ट्वा रामेणाहि एकमणः ।

साधु साध्विनि भूतानि व्याहरन्ति नभोगताः ॥ ३६ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके द्वारा उस शूलको खण्डित हुआ देख आकाशमें स्थित हुए सभी प्राणी उन्हें साधुगुरु देने लगे ॥ ३६ ॥

तद्वा देवता सदा भयाता विद्रुता विना ।

मुष्टिमुद्यम्य फालुत्स्यतिप्र तिष्ठेति चापवीत् ॥ ३७ ॥

उस शूलके टुकड़े-टुकड़े हुए देख निशाचर मकराक्षने घृणा तानकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'अरे ! लड़ा रह, लड़ा रह' ॥ २७ ॥

स तद्वा पतन्त तु ग्रहस्य रघुनन्दन ।

पावकाक्ष ततो राम सद्ये तु शरासने ॥ ३८ ॥

उने आक्रमण करते देव श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर अपने घनुपर आनेवालाका सधान किया ॥ २८ ॥

तेनास्त्रेण हत रक्ष काकुत्स्थेन तदा रणे ।

सखिन्नहृदय तत्र पपात च ममार च ॥ ३९ ॥

और उस अस्त्रके द्वारा उन्होंने रणभूमिमें तात्काल उस राक्षसपर प्रहार किया । बाणके आघातसे राक्षसका हृदय विदीर्ण हो गया अतः वह गिर और मर गया ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा ते राक्षसा सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ।

लङ्कामेव प्रधातन्त रामयाणभयादित्ता ॥ ४० ॥

मकराक्षका घपघापी होना देख वे सब राक्षस श्रीराम चन्द्रजीके बाणोंके भयसे व्याकुल हो लङ्कामें ही भाग गये ॥

दशरथनृपसुनुवाणवेगै

रजनिचर निहत खरामज तम् ।

प्रदहन्रथ देवता ग्रहया

गिरिमिन्नवज्रहत यथाविकीणम् ॥ ४१ ॥

दयताओंने देखा; जैसे वज्रना मार हुआ पर्वत गिरता है; उसी प्रकार खरका पुत्र निशाचर मकराक्ष दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंके यगसे मार डाल गया । इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४१ ॥

दुरथापे धीमन्नामगयन वात्सीकीये आद्रिकास्ये मुद्रकाण्डे एकेनापीतितम सग ॥ ७० ॥

इस प्रकार धीमन्नामकिर्मित आर्ग्यभाषण आद्रिकास्ये मुद्रकाण्डे एकेनापीतितम सग ॥ ७० ॥

अशीतितमः सर्गः

रावणकी आज्ञासे इन्द्रजित्का घोर युद्ध तथा उसके बंधके विषयमें श्रीराम और लक्ष्मणकी वात्सीय

मकराक्ष हत शून्या रागः समर्तिजय ।

रोयेन महतापिष्टो दन्तान् बटफट्टास्य च ॥ १ ॥

मकराक्ष हत गया मुनन्द समरविजयो राग महान् राग भरकर दोनों पीछेने लगा ॥ १ ॥

बुधितश्च तदा तत्र किं वायमिति चिन्तयन् ।

आदिदेशाय सगुणो रणायेद्रजित सुतम् ॥ २ ॥

मुनि हुआ यह निशाचर उस समय वहाँ ॥ चिन्तामें पड़ गया कि अब क्या करना चाहिये । उसने अत्यन्त क्रुपसे

भरकर अपने पुत्र इन्द्रजित्को सुद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी॥
 जदि धीर महावीर्यो आतरो रामलक्ष्मणौ ।
 अदृश्यो हृदयमानो वा सर्वथा त्व यलधिक ॥ ३ ॥
 यह योग—वीर ! तुम महापराक्रमी राम और लक्ष्मण
 दोनों भाइयोंको छिपकर या प्रत्यक्षरूपसे मार बालो क्योंकि
 तुम बलमें सन्तुष्ट थे—वदे हो ॥ ३ ॥
 त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्र जयसि सयुगे ।
 किं पुनरानुवी द्यूता न यधिष्यसि सयुगे ॥ ४ ॥
 (जिसके पराक्रमकी कही तुलना नहीं है, उस इन्द्रको भी
 तुम युद्धमें पराजित कर देते हो किन्तु उन दो मनुष्योंको रण
 भूमिमें अपने सामने पाकर क्यों नहीं मार सकोगे ?) ॥ ४ ॥
 तयोक्तो राक्षसेद्रेण प्रतिगृष्ट पितुरथ ।
 यद्बभूवौ स विधिस्तु पाशक जुहुवेन्द्रजित् ॥ ५ ॥
 यक्षराज यवणके पक्ष कहनेपर इन्द्रजित्ने पिताकी
 आज्ञा शिरोधार्य की और यक्षभूमिमें जाकर अमिनी स्थापना
 करके उसमें विधिवत् पाशक जुहुवेंद्रजित् ॥ ५ ॥
 जुहुतश्चापि तस्मानि रक्तोष्णीपधरा स्त्रियः ।
 व्याजमुस्तत्र मन्त्राभ्यां राक्षसो यत्र राजणिः ॥ ६ ॥
 उसके अग्नि हवन करत समय छाल वस्त्र धारण किये
 बहुत ही स्त्रियाँ यक्षराणी हुए उस स्थानपर आयीं, जहाँ वह
 यवणपुत्र हवन कर रहा था ॥ ६ ॥
 शास्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतका ।
 लोहितानि च दासस्ति स्त्रुघ काष्ठायस तथा ॥ ७ ॥
 उठने तकवार आदि शस्त्र ही सरपत—कुशास्तरणका
 काम दे रहे थे, वड़ेबड़ेकी लकड़ी समिध थी, लाल वस्त्र और
 लोहेका कुशा—ये सब उत्तुष्ट उपयोगमें लगी गयी थी ॥ ७ ॥
 सर्वतोऽग्निं समास्तीय शरपत्रैः सतोरमैः ।
 छागस्य सर्वकृष्णस्य गलं जमाह जीवत ॥ ८ ॥
 उसने ताम्ररुहेतु दाम्बकपी सरपत अग्निके चारों ओर
 बिछा दिये । उसके बाद काल रंगके जीवित बकरेका गला
 पकड़कर उसे अग्निमें डाल दिया ॥ ८ ॥
 सटश्रोमसमिद्धस्य विधूमस्य महाविप ।
 यभूयस्तानि लिहानि विजय दर्शयन्ति च ॥ ९ ॥
 एक ही बार किये गये उस होमसे अग्नि प्रमत्त हो
 उठी, उसमें धुआँ नहीं था और पड़ी-बड़ी लक्ष्मण उठ रही थीं । उस
 अग्निमें वे सभी विद्ध प्राप्त हुए, जो विजयकी सूचना देते थे॥
 प्रदग्निपाथनशिरस्तस्तहाउत्सन्निभिः ।
 हविस्तत् प्रतिजमाह पावक स्यमुत्थित ॥ १० ॥
 उस समय तमय हुए मुरजक समान कान्तिमान अग्नि

देवने स्वयं प्रकट होकर हविष्य ग्रहण किया । उनकी ज्वाला
 दक्षिणावत होकर निकल रही थी ॥ १० ॥
 हस्ताग्निं तर्पयित्वाय वैश्वानरात्तस्मान् ।
 आकरोह रथश्रेष्ठमन्तधानगत शुभम् ॥ ११ ॥
 अग्निम आहुति दे आभिचारिण यक्षसम्पत्ती देवता,
 दानर तथा राक्षसोंको तृप्त करनेके पश्चात् इन्द्रजित् अन्तधान
 होनेकी गतिमें सफल सुन्दर रथपर आरुढ़ हुआ ॥ ११ ॥
 स चाग्निभिश्चतुर्भिस्तु यागैस्तु निश्चितयुत ।
 आरौपितमहाचाप शुशुभे स्यन्दनोत्तम ॥ १२ ॥
 चार पाशों, पैने बाणों तथा अपने भीतर रखे हुए
 विनाल घनपुत्रे युक्त वह उत्तम रथ यज्ञी आभा पा रहा था ॥
 जाज्वल्यमानो वपुषा तपनीयपरिच्छद ।
 मृगैश्च द्राध्वचद्रेश्च स रथ समलङ्कृतः ॥ १३ ॥
 उसके सर सामान खोदेके घने हुए थे, अतः वह रथ
 अपने स्वरूपसे प्रबलित-शून्य जान पड़ता था । उत्तम मृग,
 अर्धचन्द्र और पूनवन्दर अङ्कित किये गये थे, जिनसे उसकी
 सजावट आकर्षक दिखायी देती थी ॥ १३ ॥
 आम्बूनन्दमहाकम्बुर्दक्षिणाग्नसन्निभ ।
 यभूवे प्रजित केतुर्वैद्यसमलङ्कृत ॥ १४ ॥
 इन्द्रजित्का ध्वज प्रमत्त अग्निके समान दीप्तिमान्
 था । उसमें सानेक बड़े-बड़े कड़े पहनाये गये थे और उमें
 नीलरूपसे अलङ्कृत किया गया था ॥ १४ ॥
 तेन चादित्यकल्पेन द्रष्टात्मेण च पालित ।
 स यभूव दुराधर्मो रायणि सुमहायल ॥ १५ ॥
 उस घृण्यतुल्य तजस्वी रथ और द्रष्टात्मेण सुप्रसन्न हुआ
 वह महाबली रायणकुमार इन्द्रजित् दूखोंके लिये दुःख हो
 गया था ॥ १५ ॥
 सोऽभिनियाय नगरादिद्रजित् समित्तिजय ।
 हुत्वाग्निं राक्षसैर्मन्त्रैस्तधानगतोऽग्रवीत् ॥ १६ ॥
 समरविजयी इन्द्रजित् नगरसे निकलकर निश्चिन्त देवता
 सम्पत्ती मन्त्रोंमें अग्निमें आहुति दे अन्तधानकी शक्तिसे
 सफल हो इस प्रकार चला—॥ १६ ॥
 अथ हत्वा रणे यो सौ मिथ्या प्रव्रजितौ घने ।
 जय मित्रे प्रशस्त्यामि रायणाय रणेऽधिपम् ॥ १७ ॥
 'जो व्यर्थ ही वनमें आवे हैं (यथया हत ही तजस्वीका
 बाणा धारण किये हुए हैं), उन दोनों भाई राम और लक्ष्मण
 को आज राक्षसोंमें मारकर मैं अपने पिता राजास उद्दय
 जय प्रदान करूँगा ॥ १७ ॥
 अथ निधानरायणीं हत्वा राम च लक्ष्मणम् ।
 कतिप्ये परमा प्रीतिमिषुष्णाम्तरधीयम् ॥ १८ ॥

‘आज राम और लक्ष्मणको मारकर पृथ्वीको वानरोंने सृती
करके मैं पिताने परम सतीय दूँगा ।’ ऐसा बहकर बह अहङ्ग
ह गया ॥ १८ ॥

भापपाताथ सकुद्धो द्वाप्रीवेण चोदित ।
तीक्ष्णकामुकनागचैस्तीक्ष्णस्त्रिरिषू रणे ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् दम्भुव राजणे प्रेरित हो इन्द्रधनु इन्द्रजित्
उपित होकर रणभूमिमें आया । उसके हाथमें धनुष और
तीक्ष्ण नापच था ॥ १९ ॥

स ददर्श महावीर्यो नारो विशिरस्तायिव ।
वृजन्ताविपुजालानि क्षीरौ चानरमध्यगौ ॥ २० ॥

सुदृढराम आकर उस निगाचरन वानरोंके बीचमें खड़े
हो बाण-समूहोंकी वशा करते हुए महापराक्रमी वीर श्रीराम
और लक्ष्मणको वहाँ (ऊँचे और मोठे स्थानों पर) हनेक
कारण) नीचे खिगात्रे नारोंके समान देखा ॥ २० ॥

इमौ ताविति सचिन्त्य सत्य कृत्या च फामुकम् ।
सततानिपुणारामि पञ्चम इव वृष्टिमान् ॥ २१ ॥

‘ये ही वे दोनों हैं’ ऐसा सोचकर इन्द्रजितने अपने धनुष
पर प्रत्यक्षा चलायी और जल्दी वशा करनेगले मेंमरी
मौति अपनी बाण धारओंसं समूह दिशाओंकी भर दिया ॥

स तु वैहायसग्यो युधि तौ रामलक्ष्मणौ ।
अवधुविषये तिष्ठन् विज्याघ निशितै शरै ॥ २२ ॥

उसका रथ आगाम रक्षा था और श्रीराम तथा लक्ष्मण
सुदृढभूमिमें निराक्रमण थे । उन दोनोंकी दृष्टिमें जोशाल होकर
बढ़ रथस उड़ रहे वानोंसे बीचमें लगा ॥ २२ ॥

तौ तस्य शरवगेन परीतौ गमलक्ष्मणौ ।
धनुरी मशरे हृन्त्या विज्यमग्न प्रचमत्तु ॥ २३ ॥

उसके बाणोंन वेगने व्याप्त हुए श्रीराम और लक्ष्मणने
भी अपने-अपने धनुषपर बाणोंका स्थान करके दिया अग्न
प्रका क्रिये ॥ २३ ॥

प्रच्छादयन्तौ गगन शरजात्रैमहावली ।
तमस्रै स्यसकादौर्तव पश्यशतु शरै ॥ २४ ॥

उन गगनली वज्रोंने सूर्यतुल्य तन्त्रया बाणसमूहोंसे
आकाशको आच्छादित करके भी इन्द्रजित्का अपने बाणोंसे
शरों नहीं मिया ॥ २४ ॥

स हि धूमाधकार च चम्रे प्रच्छादयत्तमः ।
दिग्दशान्तद्वये रथिमान् नीहारत्तमसा वृत्त ॥ २५ ॥

उस तेजस्वी रथसे माफसे धूमजलित अन्धकारकी सृष्टि
थी और आकाशको दग्ध किया । साथ ही पुरस्कृत अधकार
पैलापर दिशाओंका भी दग्ध दिया ॥ २५ ॥
नैव ज्वातन्निर्घोषो न च नमिपुत्रस्वन ।

गुथुवे चरतस्तस्य न च रूप प्रकाशते ॥ २६ ॥

उसकी प्रत्यक्षाकी टकार नहीं सुनायी देती थी । पक्षियोंकी
धर्पणहट तथा घोड़ोंकी टाफकी आवाज भी कानोंमें नहीं पड़ती
थी और स्व और चिरत हुए उस राक्षस रूप भी दृष्टि
गोचर नहीं होता था ॥ २६ ॥

घनाधकारे निमिगे शिलाधर्ममिवाद्भुतम् ।
स वरप महाबाहुनागचशरवृष्टिभि ॥ २७ ॥

महाबाहु इन्द्रजित् उस घने अधकारमें जहाँ दृष्टि वाम
नहीं करती थी, परधरोंकी अद्भुत वृष्टिके समान नापच नामक
बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २७ ॥

स राम सूर्यसमाशौ शरैर्दसवरैश्चराम् ।
विज्याघ समरे क्रुद्ध सगग्रात्रेपु रावणि ॥ २८ ॥

समरद्वणमें कुपित हुए उस राजकुमारने वरदानस
प्राप्त हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके समूर्ण
अङ्गोंमें घाव कर दिया ॥ २८ ॥

तौ हन्यमानौ नाराचैवागभिरिव पर्वतौ ।
हेमपुष्पाङ्ग नरज्याघौ तिम्रान् मुमुचतु शरान् ॥ २९ ॥

वेसे दो पर्वतोंपर जल्दी धाएँ बरस रही हैं, उगा
प्रकार उन दोनों नरधेर वीरोंपर नाराचोंकी मार पड़ने लगी ।
उसी अमस्यामें वे दोनों वीर भी लेनके पर्वतोंसे कुम्भित तीक्ष्ण
बाण छोड़ने लगे ॥ २९ ॥

अन्तरिक्षे समासाद्य राशेण कङ्कपत्रिण ।
निहत्य पतगा भूमौ पेतुन्ते शोणितान्धुता ॥ ३० ॥

वे कङ्कपत्रयुक्त बाण आकाशमें पहुँचकर रागकुमार
इन्द्रजित्को क्षत स्थित करके रक्तमें डूबे हुए पृथ्वीपर गिर
पड़ते थे ॥ ३० ॥

अतिमात्र शरीरेण दीप्यमानौ नरोत्तमौ ।
तानिधुम् पतता भल्लैरनेकैर्विप्रकृततु ॥ ३१ ॥

बाणसमूहोंसे अत्यन्त दीप्यमान वे दोनों नरधेर वीर
अपने ऊपर गिरते हुए साथकोंक अनेक मन्त्र मारकर काट
गिरने थे ॥ ३१ ॥

यतो हि वृक्षशते तौ शरान् निपतितान्द्रिहान् ।
ततस्तु तौ दाशरथी मधुजातेऽस्त्रमुसमम् ॥ ३२ ॥

जिस ओरसे तीक्ष्ण बाण आते दिशावी दते, उसी ओर
वे दोनों भाई दशरथपुमार श्रीराम और लक्ष्मण अपने उत्तम
अस्त्रोंको चलाया करते थे ॥ ३२ ॥

गत्रिभ्यस्तु दिना सथा रथेनातिरयोऽपतत् ।
विज्याघ तौ दाशरथी लब्धस्रोनिशितै शरै ॥ ३३ ॥

अन्तरिपी वीर रावणपुत्र इन्द्रजित् अपने रथने इष्ट
समूह दिशाओंमें गेड़ लगाता और बड़ी तीव्रतासे चलाता

था । तन्मने अयने पन बाणोंद्वारा उन दाना दगरधनुमार्गों-
चायन कर दिया ॥ ३ ॥

तनातिविडौं लौ वीरौ रम्भमुहौ सुसहते ।
वमुरतुशशरणी पुपितारिप किंजुको ॥ ३४ ॥

उसक सनेज पगना मुष्ट सायकोंद्वारा अत्यन्त धायन
हुए व दोनों बार दगरधनुमार रतखित हो गिर हुए
पगनाहुओं समान प्रवीन हान थे ॥ २४ ॥

नाम्य वेगगति कश्चिन्न च रूप धनु शरान् ।
न वास्यनिद्रित किंचित् सूर्यस्येवाभ्रसमल्लये ॥ ३ ॥

इन्द्रकिरी वेगपूर्ण गति, रूप, धनुष और बाणोंको जड़
दण्ड नहा पला था । मेघोंकी घयम छिप हुए सूर्यकी भाँति
असरी कड़ भी बात किसीसे छान नहीं हो पानी थी ॥ ॥

तन विद्वान् हृद्यो निहताश्च गतास्तत्र ।
उमृदु शनशस्तत्र पतिता घरणीतले ॥ ३६ ॥

उसक द्वारा धायन और आहन द्वारा जिन ही वानर
जने प्रागाने हाथ धा वेर तथा सैकड़ों कोड़ा मरकर प्रणीपर
गिर पड़े ॥ ३६ ॥

रुद्रमणस्तु तन मुडो भ्रान्त थाक्यमप्रवीत् ।
प्राहमख प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सयरक्षसाम् ॥ ३७ ॥

तन लक्ष्मणका रड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने भाई
न कहा—‘आर्य ! अब मैं समस्त राक्षसोंके संहारक लिय
ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करूँगा’ ॥ ७ ॥

तमुपाय ततो रामो लक्ष्मण शुभलक्षणम् ।
नकस्य हेतो रक्षामि पृथिव्या हतुमर्हसि ॥ ३८ ॥

जनरी व वान सुनकर भीषमने शुभलक्षणमन्त्र
लक्ष्मणने कहा—‘भाई ! एकक कारण भूयण्डलक समस्त
राक्षसोंका वध करना तुम्हारे लिये उचित नदी है ॥ २८ ॥

अयुध्यमान प्रच्छन्न प्राज्जलिं शरणागतम् ।
पलायमान मत्त धा न हतु त्वमिहाहसि ॥ ३९ ॥

इत्थार्थ भीमशामायण बाण्मीक्रीये आदिश्रव्य सुदकाण्डे एकाशीतितम सर्ग ॥ ८० ॥

नर प्रसार धर्मरत्नैर्विन्दत जातमानस्य मन्त्रिणां सुदकाण्डे अष्टादशोऽर्क पूराहुः ॥ ८ ॥



एकाशीतितम सर्ग

अन्तिके द्वारा मायामयी सीताका यथ

विनाय तु मनस्तम्य गयस्य महात्मन ।
म निरुन्वाहवान् तस्मात् प्रविशेत् पुर तन ॥ १ ॥

महान् रघुनाथकाय मनोमनसा समसकर इन्द्रि-
सुदने निरुत ह्वा लङ्कापुरमें बण गया ॥ १ ॥
सोऽनुस्मृत्य वध तथा राक्षसाला सरविनाम् ।

तस्यैव तु वधे यत्न करिष्यामि महामुज ।
आदिश्यामि महावेगान्खानाशीविशेषमान ॥ ८० ॥

महाबल ! जा युद्ध न करना हा, टिग हो, हाथ जोड़
कर शरणम अया हा युद्धने भाग रहा हा अपना वागन् हा
गया हा, जमे व्यक्तिका तुमके नहीं मारना चापिय । अब मैं
उस इन्द्रिजिन हा वधका प्रयत्न करता हू । जाना, हमलगा
नियने सर्वोंकी भाँति मरकर तथा अत्यन्त बगाला अन्धारा
प्रयोग करें ॥ २० ८० ॥

तमेन मायिन शुद्रमन्तोहितरज गलात् ।
राक्षस निहनिष्यन्ति रुद्रा वानरयूथपा ॥ ८१ ॥

यह मायाका राक्षस बड़ा नाप है । इसने जन्तुप्रात शक्ति
मे ध्यान रखता टिग लिया है । यह वह दीन जाय ता
वानरयूथपति इस राक्षसका जगन्धर मार डाले ॥ ४१ ॥

यथेय भूमिं विशत दिव वा
रक्षान्त वापि नभस्तल वा ।

एव सिंगुनेऽपि ममारुन्ध
पतिष्यन्ते भूमितले गनास्तु ॥ ४२ ॥

यदि यह पृथ्वीमें समा जाय स्वर्गका वण जाय, रक्षान्त
म प्रवेश कर अपना आकाशमें ही स्थित रहे तथापि इस तरह
टिपे क्षान्तर भी मरे अन्धोंम दगर द्वारा प्राणयुक्त भूतलपर
जगन्धर मारेंगे ॥ ४२ ॥

त्येवमुक्त्वा उचन महार्थ
रघुमयीं लक्ष्मणमैवत ।

धधाय रौद्रस्य नृशस्त्रमण
स्तम् महाभा त्वरित निरीभते ॥ ४३ ॥

इस प्रकार मणान् अभिप्रायने युक्त वचन बहकर वानर
निरोमणिगोंने गिर हुए रघुनाथ प्रभुन कीर मणान् भीषम
बलवी इस मूरतमा मयानर राक्षसका वध करनेन लिय
तत्का ही इस उद्यम इष्टित करने लगे ॥ ८२ ॥

इत्थार्थ भीमशामायण बाण्मीक्रीये आदिश्रव्य सुदकाण्डे एकाशीतितम सर्ग ॥ ८० ॥

नर प्रसार धर्मरत्नैर्विन्दत जातमानस्य मन्त्रिणां सुदकाण्डे अष्टादशोऽर्क पूराहुः ॥ ८ ॥



एकाशीतितम सर्ग

अन्तिके द्वारा मायामयी सीताका यथ

विनाय तु मनस्तम्य गयस्य महात्मन ।
म निरुन्वाहवान् तस्मात् प्रविशेत् पुर तन ॥ १ ॥

महान् रघुनाथकाय मनोमनसा समसकर इन्द्रि-
सुदने निरुत ह्वा लङ्कापुरमें बण गया ॥ १ ॥
सोऽनुस्मृत्य वध तथा राक्षसाला सरविनाम् ।

मोघताम्रेषण नूरो निनगामाय शरणि ॥ २ ॥
यहों जनेर वानर गच्छने वधका मरता हा अनन
शरीर राक्षसमारता भोगे वधमल्ल हा हा । वर पुन
युद्धन लिय निरुता ॥ २ ॥

म पथिमन छरिण निययी राक्षसयुत ।

इन्द्रजित् सुमहावीर्यं पौलस्त्यो देवकण्ठक ॥ ३ ॥

पुलस्त्यकुलमें उत्पन्न महापराक्रमी इन्द्रजित् देवताओंके लिये कण्ठरूप था । वह राणवोंकी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर नगरके पश्चिम द्वारसे पुन बाहर आया ॥ ३ ॥

इन्द्रजित् ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रणायाभ्युद्यतौ धीरौ माया प्रादुर्धकरोत् तदा ॥ ४ ॥

दोनों भाई वीर श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धके लिये उद्यत देख इन्द्रजित्ने उस समय माया प्रकट की ॥ ४ ॥

इन्द्रजित् राये स्थाप्य सीता मायामयीं तदा ।
बलेन महताधृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥ ५ ॥

उसने मायामयी सीतासँ निर्माण करके उसे अपने रथपर बिठा लिया और विशाल सेनाके धेरें रखकर उसका वध करनेका निचार किया ॥ ५ ॥

मोहनार्थं तु सर्वेणा बुद्धिं कुर्या सुकुर्मति ।
इत्तु सीता द्यवसितो धानराभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥

उसकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी । उसने सबको मोहमें डालनाका विचार करके मायासे बनी हुई सीताको मारनेका निश्चय किया । इसी अभिप्रायसे वह धानरोंके सामने गया ॥ ६ ॥

त दृष्ट्वा त्वभिनियान्त सर्वे ते काननौकस ।
उत्पेतुरभिसम्पृद्धा शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥ ७ ॥

उसे युद्धके लिये निकलते देख सभी बानर क्रोधसे भर गये और हाथमें शिला उठाये युद्धकी इच्छासे उसके ऊपर दूट पड़े ॥ ७ ॥

हनुमान् पुरतस्तेषा अगाम कपिकुञ्जरः ।
प्रगृह्य सुमहच्छृङ्ग पर्वतस्य दुरासदम् ॥ ८ ॥

कपिकुञ्जर हनुमान्जी उन सबके आगे-आगे चले । उन्होंने पर्वतका एक बहुत बड़ा शिखर ले रक्खा था, जिसे उठाना दूसरेके लिये नितान्त कठिन था ॥ ८ ॥

स ददर्श हृत्तानन्दा सीतामिन्द्रजितो रथे ।
पश्येणैधरा दीनामुपशक्तशृङ्गाननाम् ॥ ९ ॥

उन्होंने इन्द्रजित्के रथपर सीताको देखा । उनकी खुशी मारी गयी थी । ये एव वेणी धारण किये बहुत दुःखी दिलायी देती थी और उपवास करनेके कारण उनका मुख दुःख पटला हो गया था ॥ ९ ॥

परिक्षिप्रैवचस्नाममृजा राघवप्रियाम् ।
रजोमलाम्मालितैः सर्वगात्रैर्वरक्षियम् ॥ १० ॥

उन्के शरीरपर एव ही मलिन यक्ष था । श्रीरामनाथजी की प्रिया सीताके अङ्गोंमें उक्कन्न आदि नहीं रूगे थे । उनके काने शरीरमें छल और मैल भरी थी तो भी वे श्रेष्ठ और मुन्दर दिव्या देती थी ॥ १० ॥

ता निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीमध्यवस्य च ।
यमूषाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा ॥ ११ ॥

हनुमान्जी कुछ देरतक उनकी ओर देखते रहे । अन्तमें यह निश्चय किया कि ये मिथिलेण्डुमारी ही हैं । उन्होंने जनक-किशोरीको योद्धे ही दिन पहले देखा था; इसलिये वे शीघ्र ही उन्हें पहचान सके थे ॥ ११ ॥

अग्रवीत् ता तु शोकात्तो निरानन्दा तपस्थिनीम् ।
दृष्ट्वा रथस्थिता दीना राघवसे द्रुसुतश्रिताम् ॥ १२ ॥

राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजित्क पास रथपर बैठी हुई तपस्विनी सीता कोषसे पीड़ित, दीन एवं आनन्दशून्य हो रही थीं ॥ १२ ॥

किं समर्थितमस्येति चिन्तयन् स महाकपि ।
सह तैर्जनरघैरुभयघातत रावणिम् ॥ १३ ॥

सीताको वहाँ देखकर महाकपि हनुमान्जी यह सोचने लगे कि आखिर इस राक्षसका अभिप्राय क्या है ? फिर वे मुख्य-मुख्य बानरोंको साथ लेकर रावणपुत्रकी ओर दौड़े ॥ १३ ॥

सद् धानरबल दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छित ।
कृत्वा विक्रोश निरिग्रह मूर्ध्नि सीतामकर्षयत् ॥ १४ ॥

बानरोंकी उस सेनाको अपनी ओर आती देख रावण कुमारके क्रोधशीर धीमा नरही । उसने तलवारको म्यानसे बाहर निकाला और सीताके सिरके केश पकड़कर उड़ पड़ीया ॥ १४ ॥

ता स्त्रिय पश्यता तेषा सादयामास राक्षसः ।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजिता रथे ॥ १५ ॥

मायाद्वारा रथपर बैठाया हुआ वह स्त्री 'हा राम; हा राम' कहकर चिल्ला रही थी और वह राक्षस उन सबके देखते देखते उस स्त्रीको पीट रहा था ॥ १५ ॥

गृहीतमूर्धजा दृष्ट्वा हनुमान् वैष्णवागत ।
दुःखज घारि नेत्राभ्यामुत्खजन् मायतात्मज ॥ १६ ॥

सीताका केन पकड़ा गया देख हनुमान्जीको बड़ा दुःख हुआ । वे पन्नकुमार हनुमान् अपने नेत्रोंसे दुःखजनित आँसु बहाने लगे ॥ १६ ॥

ता दृष्ट्वा धारस्वर्वाङ्गं रामस्य महिषीं प्रियाम् ।
अग्रवीत् परुष वाक्पय क्रोधाद् रक्षोधिपात्मजम् ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी सवाङ्गमुन्दरी प्यारी पटरानी सीताको उस अवस्थामें देख हनुमान्जी कुपित हो उठे और उस राक्षस-राजकुमार इन्द्रजित्के कठोर वाणीमें बोलें— ॥ १७ ॥

दुरात्मन्नात्मनादाय केशपक्षे परामृदा ।
महार्णवा कुले जातो राघवर्षी योनिमाश्रितः ॥ १८ ॥

'दुरात्मन् ! तू अपने बिन्यायके लिये ही दुःख हुआ है

तुम्हारे साथ कर रहा है। तब जन्म ब्रह्मर्षियों के रूप में हुआ है तथापि तुने राक्षस-जाति के स्वभाव का ही अनुभव लिया है ॥ १८ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ १९ ॥

अतः । तब बुद्धि ऐसी सिगड़ी हुई है कि पाप के दुष्ट जैसा समाचारिका । नृप ! अतः । दुष्टचारी तथा पापपूष परान्न करनेवाला नीच । तेरे यन् करत नीच पुरुषों की योग्यता । निर्दयी । तेरे हृदयमें तनिक भी दया नहीं है ॥ १९ ॥

युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २० ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २१ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २२ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २३ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २४ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २५ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २६ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २७ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २८ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ २९ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ ३० ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ ३१ ॥

यिन्ना पापसमाचार यस्य ते मतिरीदृशी ।
युद्धात्ताप दुष्टं भुङ्क्ते पापपराक्रमः ।
अन्येऽप्येदं कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण ॥ ३२ ॥

कर इन्द्रजित्ने कपिशेष्ट इतुमान्जीने कहा— ॥ २५ ॥
सुमीवस्व च रामश्च यद्यमित्रमिहागता ।
ता वधिष्यामि वैदेहीमप्यैव तव पश्यत ॥ २६ ॥
इमा इत्या ततो राम लक्ष्मण त्वा च वानर ।
सुग्रीव च वधिष्यामि ॥ वानार्य विभीषणम् ॥ २७ ॥

वानर ! सुग्रीव, राम और तुम सरलगेहजित्ने लिये यहाँ तक आये हो, उस विदेहकुमारी सीतारा मैं अभी तुम्हारे देखने देखते मार डारूँगा । इसे मारकर मैं क्रमशः राम लक्ष्मणका, तुम्हारा, सुग्रीवका तथा उस अनाप विभीषणका भी वध कर डारूँगा ॥ २६ २७ ॥

न हन्तया स्त्रियश्चेति यद् द्रवीणि पश्याम ।
पीडाकरममिषाणा यश्च कर्तव्यमेव तत् ॥ २८ ॥

वधर ! तुम जो यह कह रहे थे कि स्त्रियोंका मारना नहीं चाहिये, उससे उत्तरमें मुझे यह कहना है कि जिस कायके करनेमें शुभुअर्थ अधिक वह पहुँच, वह कष्ट ही माना गया है ॥ २८ ॥

तमेवमुक्त्वा ददतीं सीता मायामयीं च ताम् ।
शितशरेण, खड्गेन निजघाने द्रवितुं स्वयम् ॥ २९ ॥

इतुमान्जीने ऐसा कहकर इन्द्रजित्ने स्वय ही तेज घार वाली तलवारसे उस रानी हुई मायामयी सीतार पर धाक प्रार किया ॥ २९ ॥

यश्चोपघातमार्गेण छिद्रा तेन तपस्विनी ।
सा पृथिव्या पृथुधोषी पपात त्रियदग्ना ॥ ३० ॥

शरीरमें मोहोत्पीन घारा करनेका अर्थ स्थान है, उनी क्रममें उस मायामयी सारा दो टुक हो गये और वह स्थूल कटिप्रेक्ष्यश्री त्रियदग्ना तपस्विना पृथार निर पड़ी ॥ ३० ॥

तामिन्द्रवितुं स्त्रिय इत्या हनूमन्तमुवाच ।
मया गमस्य पश्येमा प्रिया राक्षसनिद्रिताम् ।
एषा निद्रास्ता वैदही निष्फलो य परिधमः ॥ ३१ ॥

उस स्त्रीका वध करके इन्द्रजित्ने इतुमान्जीने कहा—
देखो, मैंने रामकी इस प्यारी पत्नीका मरणमें काट डाला ।
यह रती कटी हुई विदेह-राक्षसकी भेता । अब तुम्हारे लिये युद्ध करने परित्यक्त है ॥ ३१ ॥

ततः खड्गेन महता हन्या तामिन्द्रवितुं स्वयम् ।
हृष्टः स रथमाम्नाय ननाद च महापयन् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार स्वय इन्द्रजित्ने विनाश करनेमें उस मायामयी स्त्रीका वध करके रथमें बैठा बैठा वह हर्षित रूप में लौटकर लौटने करने लगा ॥ ३२ ॥

यानरा शुशुभुः शम्भुमहोरे प्रत्यशम्यिता ।

व्यादितास्यस्य नदतस्तद्वर्गं सधितस्य तु ॥ ३३ ॥

पास ही खड़े हुए वानरोंने उसकी उस गर्बनाक़ मुना ।
बढ़ उस दुर्गम रथपर बैठकर मुँह घाये त्रिकट सिंहनाद
करता था ॥ ३३ ॥

तथा तु स्तीता त्रिनिहत्य तुमति

प्रहृष्टचेता स बभूव रावणि ।

इत्यायं भीमद्रामायणे वाक्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पृथ्वीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रावलीकानिमित्त जारामायण आदिकाव्ये युद्धकाण्डे इक्ष्वासुर्वाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः

हनुमान्जीके नेतृत्वमें वानरों और निशाचरोंका युद्ध, हनुमान्जीका भीरामके पास लौटना
और इन्द्रजित्का निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर हॉम करना

श्रुत्वा तु भीमनिह्वाद् शक्राशानिसमस्यनम् ।

वीक्ष्यमाणा दिवा सर्वा उदुगुधवानरा भृशम् ॥ १ ॥

इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान उस भयकर
सिंहनादकी मुनकर वानर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते
हुए जोर-जोरसे भागने लगे ॥ १ ॥

तानुवाच ततः सर्वान् हनूमान् मारुतात्मज ।

धिपणवदनान् दीनास्त्रस्तान् विद्वेषत पृथक् ॥ २ ॥

उन सबको विषादप्रस्त, दीन एवं भयभीत होकर भागते
देख पवनकुमार हनुमान्जीने कहा— ॥ २ ॥

कस्माद् धिपणवदना विद्वेषन् पुनरगमा ।

त्यक्तयुद्धसमुत्साहा शूरस्य क्व नु यो गतम् ॥ ३ ॥

‘वानरो ! तुम क्यों मुखपर विषाद लिये युद्ध विषयक
उत्साह छोड़कर भागे जा रहे हो ? तुम्हारा वह शौर्य
कहाँ चला गया ? ॥ ३ ॥

पृष्ठतोऽनुव्रजन्थ मामप्रतो यान्तमाहवे ।

शूरैर्भिज्जनोपेतैरयुक् हि निवर्तितुम् ॥ ४ ॥

‘मैं युद्धमें आगे आगे चलता हूँ । तुम सब लोग मेरे
पीछ आ जाओ । उत्तम कुलमें उत्पन्न धूर्तवीरोंने लिये युद्धमें पीछ
दिखाना सर्वथा अनुचित है’ ॥ ४ ॥

पथमुक्ता मुसकुक्ता वायुपुत्रेण धीमता ।

शैलशृङ्गान् द्रुमाश्चैव जगृहृष्टमानसा ॥ ५ ॥

युद्धिमान् वायुपुत्रक एसा कहनेपर वानरोंका चित्त प्रसन्न
हो गया और शृङ्गोंक प्रति अत्यन्त कुपित हो उठने हाथोंमें
परतणालर और दृष्ट उठा लिये ॥ ५ ॥

अभिपेतुश्च गजन्तो राक्षसान् वानररम्भा ।

परिवाय हनूमन्तमन्युश्च महाहय ॥ ६ ॥

वे भेड़ वानरवीर उस महासमरमें हनुमान्जीकी चारों

त हृष्टरूप समुदीक्ष्य वानरा

धिपणरूपा समभिप्रमुदुधु ॥ ३४ ॥

रावणके उस पुत्रकी बुद्धि बढ़ी खोटी थी । उसने इस
प्रकार मायामयी सीताका वध करके अपने मनमें बड़ी प्रसन्नता
का अनुभव किया । उसे हृष्टसे उत्कूल देख वानर विषाद
ग्रस्त हो भाग खड़े हुए ॥ ३४ ॥

इत्यायं भीमद्रामायणे वाक्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पृथ्वीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रावलीकानिमित्त जारामायण आदिकाव्ये युद्धकाण्डे इक्ष्वासुर्वाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

ओरसे घेरकर उनसे पीछे पीछे चल और जोर-जोरसे गजना
करत हुए वहाँ राक्षसोंपर दूट पड़े ॥ ६ ॥

स तैजानरमुख्यैस्तु हनूमान् सर्वतो धृत ।

हुताशन इवाधिमान्दहच्छत्रुबाहिनीम् ॥ ७ ॥

उन भेड़ वानरोंद्वारा सब ओरमें घिरे हुए हनुमान्जी
ज्वालामालाओंसे युक्त प्रचलित अगिनी भौंति शत्रुसेनाको
दग्ध करने लगे ॥ ७ ॥

स राक्षसाना कन्दन चकार सुमहारुपि ।

धृतो यानरसैन्येन कालान्तकयमोपम ॥ ८ ॥

वानर सैनिकोंसे घिरे हुए उन महाकपि हनुमान्जीने
प्रलयकालके संहरकारी यमराजके समान राक्षसोंका स्था
आरम्भ किया ॥ ८ ॥

स तु शोकेन चाग्निं कोपेन महता कपि ।

हनूमान् रावणिरथे महतीं पातयच्छ्रिताम् ॥ ९ ॥

श्रोतव्य वधसे उनका मनमें बड़ा शोक ॥ रहा था और
इन्द्रजित्का अत्याचार देखकर उनका क्रोध भी बहुत बढ़
गया था इसलिये हनुमान्जीने रावणकुमारके रथपर एक
बहुत बड़ी शिला फेंकी ॥ ९ ॥

तामापतन्तीं हृष्टैव रथ सारथिना तदा ।

त्रिधेयाभ्यसमायुक् त्रिदूरमपराहित ॥ १० ॥

उसे अपने ऊपर आती देख सारथिने तत्काल ही अपने
अधीन रहनेवाले घोड़ोंसँ जुत हुए उस रथका बहुत दूर
दूरा दिया ॥ १० ॥

तमिन्द्रजितमप्राप्य रथस्थ सहसारथिम् ।

त्रिधेया धरणीं भिस्त्वा सा शिला व्यथमुद्यता ॥ ११ ॥

अन सापथितहिन रथपर बैठे हुए इन्द्रजित्के पाकट
न पहुँचकर वह शिथ्य धरती फोड़कर उसका मीवर समा गयी ।
उसका चण्डनेत्रा तथा उद्योग व्यर्थ हो गया ॥ ११ ॥

पतिताया शिवाया तु ययिता रथसा चमू ।
निपतन्त्या च शिलया राक्षसा मयिता मृशाम् ॥ १० ॥
उष गिरान् गिरनेपर उष राक्षसमेताका बद्धी पीडा
हुइ । गिरतो हुइ उष गिराने बहुते राक्षसोंका कुचल डाला ॥
तमम्यधावशतशो नदन्त काननौकस ।
ते दुमाश्च मफाकाया गिरिच्छिन्नाणि चोपता ॥ १३ ॥
तयभ्रान् सेकद्धो विग्राहकाय वानर हाथोंमें वृष एव
पवनगिरपर उगव गन्ता कस्त हुए इन्द्रजिह्वी अर दोइ ॥
क्षिपन्तीन्द्रजित सत्ये वानरा भीमप्रिभ्रमा ।
वृक्षशङ्खमहाशरै रिसजन्त प्लवगमा ॥ १४ ॥
शत्रूणा कन्त शस्त्रैरेष्ट विविधै खनै ।
वे मयानक पराक्रमी वानर धीर युद्धम्वलने इन्द्रजिह्व
एन वृषों और पवनगिरपरोंका कँकने लगे ॥ वृषों और
शैलशिखरोंकी बद्धा भारी वृष्टि करते हुए वे वानर गुजुओंका
सहार करने और मौंति-मौंतिकी आवाजमें गवने लगे ॥ १५ ॥
वानरैस्त्वैमहाभीमिषोररूपा निशायग ॥ १७ ॥
धीयादभिहता धृष्टकेत्येष्टल रणक्षिती ।
उन महामयकर वानरोंने वृषोंद्वारा फलपत्रापर निशायरोंक
बलपुत्रक मार गिराया । वे वानरोंने गिरकर छपकने लगे ॥
स सैन्यमभिशिक्षाय वानरगन्तितमिन्द्रजित् ॥ १६ ॥
प्रगृहीतायुध क्रुद्ध परानभिमुखो ययौ ।
अनी सेनाका वानरोंद्वारा पाड़ित हुइ देव इन्द्रजिह्व
प्रपपूत्रक अन्न-गन्ध लिय गुजुओंक कानन गया ॥ १६ ॥
स शौर्यवानरउज्ज्व स्वसन्त्येनाभिसङ्घत ॥ १७ ॥
जघान कपिशालूनां सुयद्वज्ज ददशिक्रम ।
शरैरशनिभि नङ्गै पहिरां शूलमुग्रै ॥ १८ ॥
अनी सेनाने गिर हुए उष मुग पराक्रमी वानर निशायरने
क-मनुष्योंकी घना करने हुए शूल, वज्र, तलवार पणि
तथा मुगोंकी मांस बहुत-से वानरोंकोका हनाइत कर दिया ॥
त चाप्यनुचरास्तस्य घानग जप्सुराहवे ।
शुक्लध्वजिष्ठै शैलै शिलाभिश्च महाधर ॥ १९ ॥
हनुमान् कन्दन वने रक्षसा भीमकमणाम् ।
वानरोंने भी युद्धम्वलने इन्द्रजिह्व अनुचरोंका मारा ।
महावली हनुमान्ने सुन्दर शालाओं और डालियोंवाले गाल-
वृषों तथा गिरानोंद्वारा भीमकमा राक्षसोंका सहार करने लगे ॥
सनिधाय परानीकमप्रवात् तान् घनौकस ॥ २० ॥
हनुमान् सनिषतस्य न न साध्यमिदं यत्नम् ।
इस तरह शत्रुमेताका संग एककर हनुमान्जीने वानरोंमें
कहा—पण्डित ! अब लौ चलो ; अब हमें इस मेताके सहार
करनेकी आवश्यकता नहीं रह गया है ॥ २० ॥

हृषाणं धीमद्रामयय वाक्सीधीय आदिहाम्य युद्धकाण्डे द्व्यशीतिमः सर्गः ॥ ८२ ॥

हम प्रार भरहर्षहर्षिनेन आरानाया अरिहाम्य युद्धकाण्डे वयम्भी सं पूरा हुं ॥ ८२ ॥

त्यक्त्वा प्राणान् त्रिवेष्टन्तो रामप्रियविकीरय ॥ २१ ॥
यन्निमित्तं हि युष्यामो हना सा जनकामजा ।
हमल्लग्न जिनर लिये आरामच-द्वरीका प्रिय करनेकी
इच्छा रखकर प्राणोंका मह छाड़ पूरी चरक साथ युद्ध करते
थे ; वे जनककिशोरोंकी सीना मार गया ॥ २१ ॥
हममर्थं हि विभ्राप्य राम सुवीरमेव च ॥ २२ ॥
तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्परिग्र्यामहे वयम् ।
अब इस बातकी सूचना भगवान् भीरुम और सुवीरको
दे देनी चाहिये । फिर वे दोनों इधर लिय बैठा प्रतीकार
खोजेंगे ; बैसा ही हम भी करेंगे ॥ २२ ॥
इत्युपस्था वानरश्रेष्ठो वारप्यन् सर्वयानरात् ॥ २३ ॥
शनै शनैरसप्रल मयल सन्यतत ।
ऐसा कहकर वानरश्रेष्ठ हनुमान्जीने सब वानरोंको युद्धसे
मना कर दिया और धीर धीर सारी मेताक साथ निमग्न होकर
लोट आवे ॥ २३ ॥
तन् प्रेक्ष्य हनुमन्त वचन्त यन राघव ॥ २४ ॥
स होतुकामो दुष्टा मा गतक्षेत्र्य निहुम्भिलाम् ।
हनुमान्जीका आरामच-द्वरीक पास जान देल दुष्टाका
इन्द्रजिह्व हम करनेकी इच्छासे निहुम्भिलदेवीक मन्दिरमें गया ॥
निहुम्भिलामधिष्ठाय पावक जुहवेन्द्रजित् ॥ २५ ॥
यशभूम्या ननो गन्वा पावकस्मन्त रथसा ।
हयमान प्रपचाल होमशोणितमुक् तदा ॥ २६ ॥
सार्चि पितृशो दृढशो होमशोणितपतिन ।
मध्यागत इवादिप्य सुनीप्रोष्णि समुत्तिन ॥ २७ ॥
निहुम्भिलामन्दिरमें गसर उष निशायर इन्द्रजिह्वने
अग्निमें आहुति दी । तदनन्तर यशभूमिमें भी ब्रह्मर उष
राक्षसने अग्निदेवका हवन द्वाप वृत्त किया । वे हमधर्मेन
मेरी आभिचारिक अग्निदेवता आहुति पात ही हवन और
शक्तिमें तुम हा प्रत्यञ्ज हा उठे और स्वागार्थने आहूत
दिवापी देने लगे । वे तीव्र तबाला अग्निदेवता कृपाकारक
सूर्यकी मौंति प्रकट हुए थे ॥ २ - ७ ॥
अयेन्द्रजित् रायसमूतये ॥
जुहावहव्य विधिना रिधानविद् ॥
दृष्ट्वा ध्यतिष्ठन्त च राक्षसान्मे
महासमूहेषु नयानयमा ॥ २८ ॥
इन्द्रजिह्व यन्त विधानका ज्ञाता था । उठने समन्त
राक्षसोंक अमुदक लिय निषिद्धक हवन करना आराम
किया । उष शनका देवकर महापुष्टक भवम्पौर नृति-अर्वाति-
कर्त्तव्यकृतपत्र ज्ञाता राक्षस बड़े हो गये ॥ २८ ॥

यस्य यदि चेद् धर्मो गुणभूत पराक्रमे ।

धर्ममुत्सृज्य वर्तस्य यथा धर्मं तथा वले ॥ २७ ॥

यदि धर्म बल अथवा पुरुषार्थका अङ्ग या उपकरण मात्र है तो धर्मको छोड़कर पराक्रमपूर्ण बतान कीजिये । जैसे आप धर्मको प्रधान मानकर धर्ममें लगे हैं, उसी प्रकार बलका प्रधान मानकर बल या पुरुषार्थमें ही प्रवृत्त होइये ॥ २७ ॥

अथ चेत् सत्यवचन धर्म बिल परतप ।

अनृत वच्यकरणे किं न यद्वस्त्वया विना ॥ २८ ॥

शत्रुओंको सताप देनेवाले रघुनन्दन । यदि आप सत्य भाषणरूप धर्मका पालन करते हैं अर्थात् पिताकी आज्ञाको स्वीकार करके उनके स्वकीय रक्षणार्थ धर्मका अनुष्ठान करते हैं तो आप स्पष्ट पुत्रके प्रति युनराजपदपर अभिषिक्त करनेकी जा बात पिताने वही थी, उस सत्यका पालन न करनेपर पिताको जो अस्वयम्भूत अर्थ प्राप्त हुआ, उसीके कारण वे आपसे विमुक्त होकर मर गये । ऐसी दशामें क्या आप राजाके पहले कहे हुए अभिषेक-सम्पत्ती को स्वयं वचनसे नहीं बँधे हुए थे ? उस सत्यका पालन करनेके लिये ग्राह्य नहीं थे (यदि आपने पिताके पहले कहे हुए वचनका ही पालन करके युनराजपदपर अपना अभिषेक करा लिया होता तो न पिताकी मृत्यु हुई होती और न सीता हरण आदि अनर्थ ही संचित हुए होते) ॥ २८ ॥

यदि धर्मो भवेद् भूत अधर्मो वा परतप ।

न स हर्था मुनि वज्री कुयादिज्या शतवृत्त ॥ २९ ॥

शत्रुदमन महाराज । यदि बल धर्म अथवा अधर्म ही प्रधानरूपसे अनुष्ठानके योग्य होता तो वज्रघाती इन्द्र पौरुष द्वारा विश्वरूप मुनिनी हत्या (अधर्म) धरके फिर यश (धर्म) का अनुष्ठान नहीं करते ॥ २९ ॥

अधमसज्जिनो धर्मो विनाशयति राघव ।

नर्मैतद् यथाकाम काशुरस्य कुरुते नर ॥ ३० ॥

रघुनन्दन । धर्मने भिन्न जो पुरुषार्थ है, उससे मिला हुआ धर्म ही शत्रुओंका नाश करता है । अतः काकुत्स्थ । प्रत्येक मनुष्य आवश्यकता एव रुचि अनुसार इन सबका (नर्म एव पुरुषार्थका) अनुष्ठान करता है ॥ ३० ॥

मम चेद् मत तात धर्मोऽयमिति राघव ।

धममूल त्वया छिन्न राज्यमुत्पृजता तदा ॥ ३१ ॥

प्रातः राघव । इस प्रकार समयानुसार धर्म एव पुरुषार्थ मेरे किसी एकका आश्रय देना धर्म ही है । एष मेरा मत है । आपने उस दिन राघवका त्याग करके धर्मसे मूलभूत अर्थका उत्प्रेद कर डाला ॥ ३१ ॥

नयंभ्योऽथ प्रवृत्तेभ्यः सज्जितेभ्यस्ततस्ततः ।

मियाः सखा प्रयतन्ते पर्यतेभ्य इवापगा ॥ ३२ ॥

जैसे परतोंसे नदियाँ निकलती हैं, उसी तरह धर्मों-वर्तोंसे

समूह करके राग और बदे हुए अर्थसे सारी क्रियाएँ (चाहे वे योगप्रधान हों या भोगप्रधान) सम्पन्न होती हैं (निष्काम भाव होनेपर सभी क्रियाएँ योगप्रधान हो जाती हैं और सकाम भाव होनेपर भोगप्रधान) ॥ ३२ ॥

अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पचेतसः ।

विचिन्त्यन्ते क्रिया सर्वार्थं ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ ३३ ॥

जो मन्दबुद्धि मानव अर्थसे बन्धित है, उसकी सारी क्रियाएँ उसी तरह छिन्न भिन्न हो जाती हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें छोटी छोटी नदियाँ सूख जाती हैं ॥ ३३ ॥

सोऽयमर्थं परित्यज्य सुखकाम सुखैषित ।

पापमाचरते कर्तुं तदा दोष प्रवर्तते ॥ ३४ ॥

जो पुरुष सुखमें पला हुआ है, वह यदि प्राप्त हुए अर्थको त्यागकर सुख त्यागता है तो उस अभीष्ट सुखके लिये अन्यायपूर्ण अर्थोपार्जन करनेमें प्रवृत्त होता है इसलिये उसे ताड़न, बचन आदि दोष प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

यस्यार्थोऽस्तस्य मित्राणि यस्याथास्तस्य याधवा ।

यस्यार्थोः स पुमोऽहोके यस्याया स च पण्डित ॥ ३५ ॥

जिसने पास धन है, उसीसे अधिक मित्र होते हैं । जिसने पास धनका संग्रह है, उसीके स्व लोग भाई-बन्धु बनते हैं । जिसने यहाँ पर्याप्त धन है, वही सगरमें भेष्ट पुरुष कहलाता है और जिसके पास धन है, वही विद्वान् समझा जाता है ॥ ३५ ॥

यस्यार्थो स च विक्रान्तो यस्यार्थोः स च बुद्धिमान् ।

यस्यार्थो च महाभागो यस्यार्थो स गुणाधिकः ॥ ३६ ॥

जिसने यहाँ धनपति एकत्र है, वह पराक्रमी कहा जाता है । जिसने पास धनकी अधिकता है, वह बुद्धिमान् माना जाता है, जिसके यहाँ अर्थसंग्रह है, वह महान् साम्यशाली कहलाता है तथा जिसने यहाँ धन सम्पत्ति है, वह गुणोंमें भी बड़ा चढ़ा समझा जाता है ॥ ३६ ॥

अर्थस्यैते परित्यागे दोषा प्रव्याहता मया ।

राज्यमुत्पृजता धीर येन बुद्धिस्त्यया हता ॥ ३७ ॥

अर्थका त्याग करनेसे जो मित्रका अमान आदि दोष प्राप्त होते हैं, उनका मैंने स्पष्टरूपसे बतान किया है । आपने राज्य छोड़ते समय क्या लाभ सोचकर अपनी बुद्धिमें अर्थ त्यागकी भावनाको स्थान दिया, यह मैं नहीं जानता ॥ ३७ ॥

यस्याथा धमकामाथास्तस्य सर्वे प्रवृत्तिणम् ।

अधनेनार्थकामेन नार्थं शक्यो विचिन्विता ॥ ३८ ॥

जिसने पास धन है, उसके धर्म और कामरूप सारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं । उसके लिये सब कुछ अनुकूल बन जाता है । जो निर्धन है, वह अर्थही इच्छा रखकर उसका अनुसंधान करनेपर भी पुरुषार्थके बिना उसे नहीं पा सकता ॥ ३८ ॥

हर्ष कामश्च द्वेषश्च धर्मः क्रोधः शमो हम् ।
अथात्रेताणि सखाणि प्रयन्तते नराधिप ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! हर्ष, काम, द्वेष, धर्म, क्रोध, शम और दम-
ये सब घन हन्तने ही समझ हउये हैं ॥ ३९ ॥

येषां नश्यन्त्येषां लोकश्चरता धर्मचारिणाम् ।

तऽद्यास्त्वयि न दृश्यते दुर्दिनेषु यथा प्रहा ॥ ४० ॥

“य” धर्मका आचरण करनेवाला और तमसायने लगे हुए
हैं, उन पुरुषोंका यह रूप (एहिक पुरुषाय) अयाभावन
करता ही नष्ट हो जाता है यह रूप देखा जाता है । वही अर्थ
इस दुर्दिनमें अन्धकार उसी तरह नहीं दिखायी देता है,
बैने आकाशमें बंदल फिर आनन्द प्रहोकर दग्ध नहीं हूत
हैं ॥ ४० ॥

स्वयि प्रयन्ति वीर गुरोश्च वचने म्यिन ।

रत्नसापहृता भाया प्राणैः प्रियतरा तव ॥ ४१ ॥

वीर ! आप पूरे निराश्री भाग्य करनेक लिये
राज छुड़कर बनेमें वचन अर्थ और स्वरूप पाठ्यार हो गये
रहें परंतु राखने अन्धकी पत्नीको, व अन्धक प्रयत्नमें भी
अधिक प्यारी थी, हरछिया ॥ ४१ ॥

तदप्य विपुल वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् ।

कमणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥ ४२ ॥

इत्यादि अमद्रामागने बाह्यकाय आद्रिकाय मुद्रकाण्डे चतुरंगीतितम सर्ग ॥ ४३ ॥

इस प्रकार ब्रह्मचरिनिर्गत आश्राममात्रा अद्रिकाय मुद्रकाण्डे चतुरंगीतितम सर्ग पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुरंगीतितम सर्ग

विभीषणका श्रीरामको इन्द्रनिवृत्ती मायाका रहस्य बताकर भीताके जीवित होनेका विश्वास दिलाना
और लक्ष्मणको सेनासहित निवृत्तिमाला-मन्दिरमें मेघनेके लिये अनुरोध करना

राममाधवासमाने तु लक्ष्मणे आश्रयस्तले ।

निश्चित्य शुल्मान् स्वम्याने तत्रागच्छद् विभीषण ॥ १ ॥

अनुमत्त एवम् अब भीषणक इस प्रकार आश्रयन द
रहें य, वया समय विभीषण बानरछैनिकोंको अपनेअनेम्यान
पर स्थापित करके वहाँ आये ॥ १ ॥

नाताप्रहर्षणैर्गोत्रैश्चतुर्भिर्भिसवृता ।

नीलगन्धनययाकारमानगौरिय सूर्य ॥ २ ॥

नाना प्रकार अन्न-पान चरण किय चर निशानर
वीर, का काली चक्र-पट्टिका समान काल घड़ीखन युयुति
रत्नको समान बान नष्टये चरण अरने धरकर उनकी
रक्षा कर रहे य ॥ २ ॥

साऽभिगम्य महामान राघव शोकलालसम् ।

यानराध्यापि दृष्ट्वा पाप्ययाकुलक्षणान् ॥ ३ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा महान् एवम् अश्रुमें मग्न
हैं तथा बानरोंक नेत्रोंमें भी अश्रु भरे हुए हैं ॥ ३ ॥

वीर खनन्दन ! अब इन्द्रविजने हमलोगोंको व ममान
हू म दिव है, उन में अनेक पयकमने पूर करेगा अत
विजिताछुड़कर उठिये ॥ ४० ॥

उत्तिष्ठ नरशाला दीगयाहा घृतप्रत ।

किन्नामान महामानमा मान नावगुध्यसे ॥ ४१ ॥

नश्रेय ! उत्तन व्रतका पालन करनेवाला महा-
उठिय । आप परम दुर्दिमान् और परमान् हैं, इस काम
अने-आका क्यों नहीं समझ रहें हैं ॥ ४३ ॥

अयमनघ तवोदित प्रियायै

जनकसुतानिधननिरीक्ष्य कृत ।

सरयगवहया सपत्नस्तत्रा

मृशमिषुभिषिनिपातयामि लक्ष्माम् ॥ ४४ ॥

निपात खनिर ! य मैंने अपने व उठ कहा है,
वह सब अन्धक दिन करनेक लिये—आका ज्ञान लक्ष्मी
अने हत्यार पुरुषाधनी अर आश्रय करन लिये बना
है । अब अनन्यदिनाका मृषुषा वृत्तल अनकर मग
रहें वग गया है, अत आब अने वीरगा हाया, लक्ष्
म और लक्ष्मण वरामहित मारी लक्ष्मण धूनें निपा
हूँगा ॥ ४४ ॥

राघव च महामानमिद्वारुतुलकन्दनम् ।

दृष्ट्वा मोहमायान् लक्ष्मणस्याद्रुमाधिनम् ॥ ४ ॥

राघव ही इत्याकुतुलकन्दन ममान् आपुनायनर ना
उनकी हाथ पगी, व नृच्छित हा एवमासी गदमें लगे हुए
य ॥ ४ ॥

प्राडित शोरसतत दृष्ट्वा राम विभीषण ।

अस्तदुधेन शीतामा किमनदिनि सोऽग्रमात्र ॥ ५ ॥

अनन्यचन्द्राच्छलित तथा अन्न काम दान विभी-
का हृदय अन्तरिक दुःख दान हो गया । उन्होंने पूछा—
पूछा क्या बन है ॥ ५ ॥

विभीषणमुख दृष्ट्वा सुमित्रताश्च बानरात् ।

लक्ष्मणोवाय मन्दागमिद पाप्यपिन्दुन ॥ ६ ॥

तब एवमानने विभीषण मुखी अर देवकर तथा सुमित्र
और दूध दूध बानरोंक हृदय काम और बानर ह-
मन्दनरमें बना— ॥ ६ ॥

हता इन्द्रजिता सीता इति श्रुत्वैव राघव ।
हनुमद्वचनात् स्तौम्य ततो मोहमुपाश्रित ॥ ७ ॥

‘स्तौम्य । हनुमान्जीके मुँहसे यह सुनकर कि ‘इन्द्रजितने सीताजीको मार डाला’ और धुनायजी तत्काल मूर्च्छित हो गये हैं’ ॥ ७ ॥

कथयन्त तु सौमित्रि सनिवार्य विभीषण ।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसृज्य राममग्रवीत् ॥ ८ ॥

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको विभीषणने रोका और अचेत पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे यह निश्चित बात कही—॥ ८ ॥

मनुजैर्भार्यारूपेण यत्तु त्वस्य हनुमता ।
तदप्युक्तमह मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥ ९ ॥

‘महाराज ! हनुमान्जीने दुखी होकर जो आपको समाचार सुनाया है, उसे मैं हनुद्रको सोख लेनेके समान असमभव मानता हूँ ॥ ९ ॥

अभिप्रायं तु जानामि रात्रयस्य दुरात्मनः ।
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥ १० ॥

‘महाबाहो ! दुरात्मा रावणका सीताके प्रति क्या भाव है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ । यह उनका वध कदापि नहीं करने देगा ॥ १० ॥

याच्यमानः सुखदुःशो मया हितचिकीर्षुणा ।
वैदेहीमुत्सृज्यस्वेति न च तत् कृतवान् वच ॥ ११ ॥

‘मैंने उसका हित करनेकी इच्छासे अनेक बार यह अनुरोध किया कि निवेदकुमारीको छोड़ दो, किंतु उसने मेरी बात नहीं मानी ॥ ११ ॥

नैव साम्ना न दानेन न भेदेन कुतो युधा ।
सा द्रष्टुमपि शक्येत नैव ध्यायेन केनचित् ॥ १२ ॥

सीताका वृषप कोढ़ पुरुष खम, दाम और भेदनीतिके द्वारा भी नहीं देख सकता फिर उदके द्वारा कैसे देख सकता है ? ॥ १२ ॥

यानरात्र मोहयित्वा तु प्रतियात स राक्षसः ।
मायामयीं महाबाहो ता विद्धि जनकात्मजम् ॥ १३ ॥

‘महाबाहो ! राक्षस इन्द्रजित् यानरोंको मोहमें डालकर चला गया है । निश्चय उसने वध किया था, वह मायामयी जानकी थी, ऐसा निश्चित समझिये ॥ १३ ॥

चैत्यं निजुम्भितमद्य प्राप्य होमं करिष्यति ।
हृतायानुपयातो हि देवैरपि सयासवै ॥ १४ ॥
दुराधर्यो भयत्येव सग्रामे रावणालम्बजः ।

‘वह इस समय निजुम्भित-मन्दिरमें जाकर होम करेगा और जब होम करके लौगा, उस समय उस रावणकुमारका सग्राममें परास्त करना इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवनाओंने लिये भी कठिन होगा ॥ १४ ॥

तेन मोहयता नूनमेवा माया प्रयोजिता ॥ १५ ॥
विष्णमन्विच्छता तत्र यानराणां पराक्रमे ।

‘निश्चय ही उसने हमलोंको मोहमें डालनेके लिये ही यह मायाका प्रयोग किया है । उसने सोचा होगा—यदि यानरोंका पराक्रम चलता रहा तो मेरे इस कार्यमें विघ्न पड़ेगा (इसीलिये उसने ऐसा किया है) ॥ १५ ॥

ससैन्यास्तत्र गच्छन्मो यावत्तत्र समाप्यते ॥ १६ ॥
त्यजैन नरशार्दूल मिथ्या सतापमागतम् ।

‘अथवाक उसका होम-कर्म समाप्त नहीं होता, उसका पहले ही हमलों सेनासहित निकुम्भित-मन्दिरमें चले चले । नरभेष्ट ।
घटे ही प्राप्त हुए इस सतापको त्याग दीजिये ॥ १६ ॥

सीदते हि यत् सर्वं द्रष्टुं त्वा शोककर्मितम् ॥ १७ ॥
इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्यसमुच्छ्रितः ।
लक्ष्मण प्रेषयास्माभि सह सैन्यानुकपिभि ॥ १८ ॥

‘प्रभो ! आपको शोकसे खतस होते देख खरी सेना डू खमें पड़ी हुई है । आप तो धैर्यमें बचते बड़े-बड़े हैं, अतः स्वस्थचित होकर यहीं रहिये और सेनाको लेकर जाते हुए हम लोगोंके साथ लक्ष्मणजीको भेज दीजिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

एष त नरशार्दूलो रावर्षि निशितै शरैः ।
त्याजयिष्यति तत्काम ततो वध्यो भजिष्यति ॥ १९ ॥

‘ये नरभेष्ट लक्ष्मण अपने पैने बाणोंसे मारकर रावण कुमारको वह होमकर्म त्याग देनेके लिये विवश कर देंगे । हमसे वह माया का सकेगा ॥ १९ ॥

तस्यैते निशितास्तीक्ष्णा पत्रिपत्राङ्गवाजिनः ।
पनत्रिण इवास्त्रौम्या शराः पान्थन्ति शोणितम् ॥ २० ॥

‘लक्ष्मणके ये पैने बाण जो पक्षियोंका अन्नभूत परोंसे पुच होनेके कारण उड़े वेगवाली हैं, वक आदि शूर पक्षियोंके समान इन्द्रजित्के रवका पान करेंगे ॥ २० ॥

तत्सदिश महाबाहो लक्ष्मण गुभलक्षणम् ।
राक्षसस्य विनाशाय वज्रं वज्रधरो यथा ॥ २१ ॥

‘अतः महाराज ! जैसे वज्रधारी इन्द्र दैत्योंके वधके लिये वज्रका प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार आप उस राक्षसके विनाशके लिये गुभलक्षण-सम्पन्न लक्ष्मणको जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ २१ ॥

मनुजवर न कालविप्रकर्षो
रिपुमिघ्नं प्रति यन्मोऽद्य कतुम् ।

स्यमतिस्त्रज रिपोवधाय वज्रं
विधिजरिपोमयने यथा मोहन्द्रः ॥ २२ ॥

‘नरेश ! शत्रुका विनाश करनेमें अब यह कालोप करना उचित नहीं है । इसलिये आप शत्रुवधके लिये उठी तरह लक्ष्मणको भेजिये, जैसे देवद्वारी दैत्योंका विनाश

लिये देवराज इन्द्र यज्ञका प्रयोग करते हैं ॥ २२ ॥

समाप्तकामा हि स राक्षससर्पभो

भवत्यहदय समो सुरासुरैः ।

ययुत्सता तेन समाप्तकमणा

भवेत्सुराणामपि सशयो महान् ॥ २३ ॥

इत्यार्ये धीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाण्डे धनुर्शातितमः सर्ग ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पञ्चाशीतौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितम सर्ग

विभीषणके अनुरोधमे श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणको इन्द्रजितके बंधके लिये जानेकी आज्ञा देना और सेनासहित लक्ष्मणका निकुम्भिला मन्दिरके पास पहुँचना

तस्य तद् घचन श्रुत्वा राघव शोककशित ।
नोपधारयते व्यक्त यदुक्त तेन रक्षसा ॥ १ ॥

मगराज श्रीराम गोकने पीड़ित थे, अतः राक्षस विभीषण ने जो कुछ कहा, उसकी उस बातको सुनकर भी ये उस स्वरूपसे समझ न सके—उत्तर पूरा ध्यान न दे सके ॥ १ ॥

ततो धैर्यमयष्टभ्य राम परपुरजय ।
विभीषणमुपासीनमुग्राज कपिसनिधौ ॥ २ ॥

तदनन्तर शत्रुनागपीपर विजय पानेवाले श्रीराम घैय धारण करते हुमान्जलीक समीप बैठ हुए विभीषणसे बोले—॥ २ ॥
नैर्घ्रताधिपते चान्य यदुक्त त विभीषण ।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते निश्चितम् ॥ ३ ॥

राघवराज विभीषण ! तुमने अभी-अभी जो बात कही है, उसे मैं फिर सुनना चाहता हूँ। बोलो, तुम क्या कहना चाहते हो ? ॥ ३ ॥

राघवस्य घचः श्रुत्वा राक्षस्य घान्यविशारद ।
यन् तत् पुनरिदं वाक्यं बभूवऽथ विभीषणः ॥ ४ ॥

श्रीरामाधारी ने यह बात सुनकर बातचीतमें कुछाक्ष विभीषण ने, यह जो बात कही थी, उसे पुनः दुहराते हुए इस प्रकार कहा—॥ ४ ॥

यथाऽऽज्ञात महाबाहो त्वया शुल्बनिघशन्नम् ।
तत् सधानुष्ठितं धीर इन्द्राक्षयसमनन्तरम् ॥ ५ ॥

महाबाहो ! आपने जो मेनाओंको यथास्थान स्थापित करनेकी आज्ञा दी थी, धीर ! यह काम तो मैंने आपकी आज्ञा होने ही पूरा कर दिया ॥ ५ ॥

सान्त्वनीयानि स्वाणि विभक्तानि समन्तत ।
जित्यस्ता युधपाक्षेय यथान्याय विभागदा ॥ ६ ॥

उन सब मेनाओंको विभक्त करके सब ओरके दरवाजों पर स्थापित किया और यथाचित रीतिमें वहाँ अन्ध-अन्ध यूपवित्तोंमें भी निपुण कर दिया ॥ ६ ॥

‘वह राक्षसशिरोमणि इन्द्रजित् जरा अपना अनुष्ठान पूरा कर लेगा, तब समराङ्गणमें देवता और असुर भी उसे देख नहीं सकेंगे। अपना कर्म पूरा करके जब वह युद्धकी इच्छासे रणभूमिमें खड़ा होगा, उस समय देवताओंको भी अपने जीवनकी रक्षाके विषयमें महान् खदेह होने लगेगा’ ॥ २३ ॥

भूयस्तु मम विशाण्य तच्छृणुष्य महाम्रभो ।
त्वय्यकारणसतते सततहृदया ययम् ॥ ७ ॥

महाराज ! अब पुनः मुझे जो बात आपकी सेवामें निवेदन करनी है, उसे भी सुन लीजिये। बिना किसी कारणके आपके स्मृत होनेसे हमलोगोंक हृदयमें भी बड़ा तलाप हो रहा है ॥ ७ ॥

त्यज राजश्रिम शोक मिथ्या सतापमागतम् ।
यद्विष त्यज्यता चिन्ता शत्रुहृदयविधेनी ॥ ८ ॥

राजन् ! मिथ्या प्राप्त हुए इस शोक और स्तापको त्याग दीजिये साथ ही इस चिन्ताको भी अपने मनसे निरास दीजिये क्योंकि यह शत्रुओंका हार बढ़ानेवाली है ॥ ८ ॥

उद्यम क्रियता धीर ह्य समुपसेयताम् ।
प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशानरा ॥ ९ ॥

धीर ! यदि आप सीताको पाना और निशानरोंका बध करना चाहते हैं तो उद्योग लीजिये हार्य और उल्लाहका सहारा लीजिये ॥ ९ ॥

रघुनन्दन यक्ष्यामि भूयता मे हितं घच ।
साध्यं यातु सौमित्रिषलेन महता घृत ॥ १० ॥

निकुम्भिगया सम्प्राप्त हन्तु राक्षसिमाहये ।
रघुनन्त ! मैं एक आवश्यक बात बताना हूँ, मेरी इस हितकर बातकी मुनिये। राखणकुमार इन्द्रजित् निकुम्भिला मन्दिरकी ओर गया है, अतः य मुमिश्राकुमार लम्पट

विशाल सेना साथ लम्पट अभी श्वर आक्रमण करें—युद्ध में उस राखणपुत्रका बध करनेके लिये उम्मीद करना कर दें—यही अच्छा होगा ॥ १० ॥

धनुर्मण्डलनिमुक्तैर्गदोपि विविधैः ॥ ११ ॥
दौर्दन्तु मोहयामो राखणिं समिर्मिनय ।

युद्धविजयी महाधनुषर लम्पट अपने मण्डलाकार धनुष द्वारा छोट गये निशपर सवोंके मुक्त भयानक णोंमें शत्रु पुत्रका बध करनेमें समर्थ हैं ॥ ११ ॥

तेन वीरेण तपसा वरदानात् स्वयमुव ।

अथ ब्रह्मशिर प्रात कामगात्रं तुरङ्गमा ॥ १२ ॥

‘उस वीरने तपस्या करके ब्रह्माजीके वरदानसे ब्रह्मशिर नामक अश्व और मनचाही गतिसे चलनेवाला घोड़े प्राप्त किये हैं ॥ १२ ॥

स एष किल सैन्येन प्राप्त किल निकुम्भिलाम् ।

ययुत्तिष्ठेत् कृत कर्म हतान् सर्वोश्च विद्धि न ॥ १३ ॥

‘निश्चय ही इस समय सेनाक साथ वह निकुम्भिलामें गया है । वहेंसे अपना हवन क्रम समाप्त करके यदि वह उठेगा तो हम सब लोगोंको उसके हाथसे मग ही समझिये ॥ १३ ॥

निकुम्भिलामसम्प्राप्तममृतांतिं च यो रिपु ।

स्वामाततायिन हन्यादिन्द्रशत्रो स ते वध ॥ १४ ॥

घरो दूतो महाबाहो सर्वलोकेभ्यरेण वै ।

इत्येव विहितो राजन् वधस्तस्यैव धीमत ॥ १५ ॥

‘महाबाहो ! सम्पूर्ण लोकोंने स्वामी ब्रह्माजीने उसे वरदान देते हुए कहा था—‘इन्द्रशत्रो ! निकुम्भिल नामक वटवृक्ष के पास पहुँचने तथा हवन-सम्पत्ती कार्य पूर्ण करने’ पहले ही जो शत्रु तुझ आततायी (राक्षसधारी) को मारने के लिये आक्रमण करेगा, उसीके हाथसे तुम्हारा वध होगा ।’ राजन् ! इस प्रकार बुद्धिमान् इन्द्रजित्की मृत्युका विधान किया गया है ॥ १४ १५ ॥

यथायेन्द्रजितो राम सदिशस्व महाबलम् ।

हते तस्मिन् हत विद्धि रावण ससुहृद्गणम् ॥ १६ ॥

‘इसलिये श्रीराम ! आप इन्द्रजित्का वध करनेके लिये महाबली लक्ष्मणको आशा दीजिये । उसके मारे जानेपर रावण-का अपने सुहृदोंवहित मरा ही समझिये ॥ १६ ॥

विभीषणवच श्रुत्वा रामो वाक्यमथाप्रवीत् ।

जानामि तस्य रौद्रस्य माया सत्यपराक्रम ॥ १७ ॥

विभीषणके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी शोकका परित्याग करके बोले—‘सत्यपराक्रमी विभीषण ! उस भयंकर राक्षसकी मायाको मैं जानता हूँ ॥ १७ ॥

स हि ब्रह्माश्रयित्वा प्राज्ञो महामायो महाबल ।

करोत्यसगन् सप्राप्ते देवान् सव्यरुणानपि ॥ १८ ॥

‘वह ब्रह्माश्रयिता शता, बुद्धिमान्, बहुत बड़ा मायावी और महान् बलवान् है । वशासहित सम्पूर्ण देवताओंको भी वह युद्धमें अनेक कर सकता है ॥ १८ ॥

सस्यान्तरिक्षे चरतः सत्यस्य महायशः ।

न गतिहायते धीर सत्यस्येवाश्रयसम्पत्ते ॥ १९ ॥

राघवस्तु रिपोहात्या मायायैव दुरात्मनः ।

लक्ष्मण कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमप्रवीत् ॥ २० ॥

‘महायशस्वी वीर ! जब इन्द्रजित् रणवहित आकाशमें विचरने लगता है, उस समय बादलोंमें छिप हुए सूर्यकी भाँति

उसकी गतिका कुछ पता ही नहीं चलता ।’ विभीषणसे ऐसा कह कर भगवान् श्रीरामने अपने शत्रु दुरात्मा इन्द्रजित्की माया

शक्तिकी जानकारी यदास्वी वीर लक्ष्मणसे यह बात कही—१९ २०

यद् धानरेन्द्रस्य बल तेन सर्वेण सधृत ।

हनुमत्पुत्रैश्चैव यूययैः सह लक्ष्मण ॥ २१ ॥

आम्येयेनर्क्षपतिना सह सैन्येन सवृत ।

जहि त राक्षससुत मायाबलसमन्वितम् ॥ २२ ॥

‘लक्ष्मण ! वानरराज सुग्रीवकी जा भी सेना है, वह सब

साथ ल हनुमान् आदि यूयपतियों, कृष्णराज जाम्बवान् तथा

अन्य सैनिकोंसे घिरे रहकर तुम मायाबलमें सम्पन्न राक्षसराज

कुमार इन्द्रजित्का वध करो ॥ २१ २२ ॥

अयं त्वा सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचर ।

अभिभूस्तस्य मायाया पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥ २३ ॥

‘ये महामना राक्षसराज विभीषण उसकी मायाओंसे अच्छी

तरह परिचित हैं, अतः अपने मन्त्रियों के साथ ये भी तुम्हारे

पीछे पीछे जायेंगे ॥ २३ ॥

राघवस्य वच श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषण ।

जग्राह कामुकप्रेष्टमम्यद् भीमपराक्रम ॥ २४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर विभीषणसहित मयानक

पराक्रमी लक्ष्मणने अपना श्रेष्ठ धनुष हाथमें लिया ॥ २४ ॥

सनन्द कवची खड़ी सशरी वामचापधृत् ।

रामपादावुपस्पृश्य हृष्ट सौमित्रिरब्रवीत् ॥ २५ ॥

व युद्धकी सब सामग्री लेकर तैयार हो गये । उन्होंने

कवच धारण किया, तलवार बाँध ली और उत्तम बाण तथा

बाणें हाथमें धनुष ले लिये । तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीके चरण

छूकर हर्षसे भरे हुए सुमित्राकुमारने कहा— ॥ २५ ॥

अद्य मत्कामुको मुका शरा निर्भिद्य राघणिम् ।

लङ्कामभिपतिष्यन्ति हसा पुष्करिणीमिव ॥ २६ ॥

‘आर्य ! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण रावणकुमारको

विदीर्ण करके उसी तरह लङ्कामें गिरेंगे, जैसे हृष्ट कमलोंसे

भरे हुए सरायरमें उतरते हैं ॥ २६ ॥

अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीर मामकाः शरा ।

निधमिष्यन्ति भित्ता त महाचापगुणच्युता ॥ २७ ॥

‘इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज ही उस

भयंकर राक्षसके शरीरको विभीषण करके उसे बालू गालमें

जल देंगे ॥ २७ ॥

एवमुक्त्वा तु वचनं द्युतिमान् आरुतप्रत ।

स राघवनिधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरित ययौ ॥ २८ ॥

इन्द्रजित्क वधकी अभिलाष रखनेवाला तत्पत्नी लक्ष्मण

अपने माई के सामने ऐसी बात कहकर मुरत वहेंसे चल गये।

सोऽभिवाद्य गुरो पादौ हृत्वा चापिप्रदक्षिणम् ।

निकुम्भिलमभिगमयौ चैव राघणिपालितम् ॥ २९ ॥

पहले उन्होंने अपने बड़े भाई के चरणों में प्रणाम किया,
फिर उनकी परीक्षा करके रावणकुमारद्वारा पालित निकुम्भिला
मन्दिर की ओर प्रस्थान किया ॥ २९ ॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्र प्रतापमान् ।
वृत्तस्वस्थयतो भ्रात्रा लक्ष्मणस्थिरितो ययौ ॥ ३० ॥

भाई भीष्मद्वारा स्वस्तिवाचन किये जाने के पश्चात्
विभीषणसहित प्रतापी रावणकुमार लक्ष्मण वही उतावली के
साथ चले ॥ ३ ॥

यानराणा सहस्रेस्तु हनुमान् यदुभिवृत् ।
विभीषणश्च सामान्यो लक्ष्मण त्वरित ययौ ॥ ३१ ॥

कई हजार वानरवीरों के साथ हनुमान् और मन्त्रियोंसहित
विभीषण भी लक्ष्मण पीछे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुए ॥ ३१ ॥

महता हरिसैन्येन सवेगमभिसृत ।
शृङ्खलराजल चैव ददर्श पथि निष्ठितम् ॥ ३२ ॥

विशाल वानरसेनासहित विरे हुए लक्ष्मण ने वेगपूर्वक
आगे बढ़कर मार्ग में खड़ी हुई शृङ्खल राज जाम्बवान् की
सेना को देखा ॥ ३२ ॥

स गत्या दूरमध्यान सौमित्रिर्मथनन्दन ।
राक्षसेन्द्रयल दुरादपदयद् व्युहमाधितम् ॥ ३३ ॥

दूरतकक्षा राला तै कर लेने पर मित्रों का आनन्दित करने
हुए यहाँ थीमद्रामायणे वा मोक्षीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पञ्चासीतम सर्ग पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पञ्चासीतम सर्ग पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

पडशीतितम सर्ग

वानरों और राक्षसों का युद्ध, हनुमान्जी के द्वारा राक्षससेना का संहार और उनका इन्द्रजित्को

द्वन्द्वयुद्ध के लिये ललकारना तथा लक्ष्मण का उसे देखना

अथ तस्यामध्वयाया लक्ष्मण रावणानुज ।
परंपामहित वाक्पमयसाधकमग्रवी ॥ १ ॥

उस अवस्थामें रावण के छात्र भाई विभीषण ने लक्ष्मण ने
ऐसी बात कही जो उनके अभीष्ट अथवा मित्र करनेवाली
तथा शत्रुओं के लिये अहितकर थी ॥ १ ॥

यदेतद् राक्षसानीक मेघदयाम प्रिलेख्यते ।
पतदायोष्यता शीघ्र कपिभिश्च शिलायुधै ॥ २ ॥
तस्यानीकस्य महतो भेदेन यत्न लक्ष्मण ।
राक्षसेन्द्रसुनोऽप्यथ भिन्ने दृश्यो भविष्यति ॥ ३ ॥

वे बोले—लक्ष्मण ! यह सामने जो मेघों की काली
छाये समान राक्षसों की सेना दिखायी देती है उसने साथ
शिलारूपी आयुध धारण करनेवाले वानरवीर भी भी ही युद्ध
छा दें और आप भी इस विशाल बादली के धूरका भेदन
करने का प्रयत्न करें। इसका मोचा टूटने पर राक्षसराज का
पुत्र इन्द्रजित् भी हमें वही दिखायी देगा ॥ २-३ ॥

वाले भूमिशाकुमार ने कुछ दूर से ही देखा, राक्षसराज रावण की
सेना मोचा बाँधे खड़ी है ॥ ३३ ॥

स सम्प्राप्य धनुष्पाणिमायायोगमरिन्दम ।
तम्यौ ब्रह्मविधानेन धिजेतु रघुनन्दन ॥ ३४ ॥

शत्रुओं का दमन करनेवाले रघुनन्दन लक्ष्मण हाथ में
धनुष ले ब्रह्माजी के निश्चित किय हुए विधान के अनुसार उस
मायावी राक्षस का जीतने के लिये निकुम्भिला नामक स्थान में
पहुँचकर एक जगह खड़े हो गये ॥ २४ ॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्र प्रतापमान् ।
अङ्गदेन च वीरेण तयानिलसुतेन च ॥ ३५ ॥

उस समय प्रतापी राजकुमार लक्ष्मण साथ विभीषण,
वीर अङ्गद तथा पवनकुमार हनुमान् भी थे ॥ ३५ ॥

विविधममलशृङ्खलभासर तद्
ध्वजगहन गहन महारथैश्च ।

प्रतिभयतममप्रमेयधेग
निमिरमिन् द्विपता धल विवेश ॥ ३६ ॥

चमकीले अथवा शङ्खों से जो प्रकाशित हो रही थी, पर्वतों
और महापथियों के कारण गहन दिखायी देती थी, जिससे
वेगका कोई माप नहीं था तथा जो अनेक प्रकार की यज्ञभूयाम
हथियारों से लगी थी, अच्छाकरक समान काली उस शत्रुसेना में
विभीषण आदिके साथ लक्ष्मण ने प्रवेश किया ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे पञ्चासीतम सर्ग पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

स त्वमिन्द्राशनिप्रख्ये शरैरथकिरन् परान् ।
अभिद्रवाणु यावद् वै नैतत् कम्प समाप्यते ॥ ४ ॥

‘अतः आप इस हान-बर्मे की सेनातिन पहलू ही यज्ञ
तुल्य बाणों की बरत करके हुए शत्रुओं पर भीषण धारा कीजिये।
जहाँ वीर दुरात्मान मायापरमचामिकम् ।
रावणि शूरकमाण् मयलोक्तमयावहम् ॥

वीर ! वह दुष्टमा रावणकुमार बड़ा ही मायावी,
अधर्मी, शूरकम करनेवाला और शत्रुओं के लिये भयकर
है अतः इसका उप-कीजिये’ ॥ ४ ॥

विभीषणयश्च श्रुत्वा लक्ष्मण शुभलक्षण ।
यत्तत् शरवर्षेण शस्त्रमेन्द्रसुतं प्रति ॥ ६ ॥

विभीषण की यह बात सुनकर ‘उत्पलशृङ्खल लक्ष्मण ने
राक्षसराज पुत्र को लक्ष्य करके बाणों की बरत आरम्भ कर दी।
शृङ्खला शस्त्रामृगादयैश्च द्रुमप्रययोधिन ।
अभ्यधान्त सदितान्दानीकमप्यमिनम् ॥ ७ ॥

शृङ्खला शस्त्रामृगादयैश्च द्रुमप्रययोधिन ।
अभ्यधान्त सदितान्दानीकमप्यमिनम् ॥ ७ ॥

शृङ्खला शस्त्रामृगादयैश्च द्रुमप्रययोधिन ।
अभ्यधान्त सदितान्दानीकमप्यमिनम् ॥ ७ ॥

शृङ्खला शस्त्रामृगादयैश्च द्रुमप्रययोधिन ।
अभ्यधान्त सदितान्दानीकमप्यमिनम् ॥ ७ ॥

शृङ्खला शस्त्रामृगादयैश्च द्रुमप्रययोधिन ।
अभ्यधान्त सदितान्दानीकमप्यमिनम् ॥ ७ ॥

शृङ्खला शस्त्रामृगादयैश्च द्रुमप्रययोधिन ।
अभ्यधान्त सदितान्दानीकमप्यमिनम् ॥ ७ ॥

साय ही बड़े-बड़े वृक्ष छंकर युद्ध करनेवाले जानर और
भाद्र भी वहाँ खड़ी हुई राक्षस-सेनापर एक साथ ही दृढ़ पड़े॥
राक्षसाश्च शितैर्वाणैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
अभ्यवर्तन्त समरे कपिसैन्यजिघासवः ॥ ८ ॥

उधरसे राक्षस भी जानरसेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे
समराङ्गणमें टीले बाणों, तलवारों, शक्तियों और तोमरोंका
प्रहार करते हुए उनका खामना करने लगे ॥ ८ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुल्लसज्ज्ञे कपिरक्षसाम् ।

शब्देन महता लङ्का नादयन् वै समन्ततः ॥ ९ ॥

इस प्रकार वानरों और राक्षसोंमें घमासान युद्ध होने
लगा । उसके महान् कोलहलसे समूची लङ्कापुरी सब ओरसे
गूँल उठी ॥ ९ ॥

शस्त्रैश्च शिविधाकारैः शितैर्बाणैश्च पादपैः ।

उद्यतैर्गिरिगुह्यैश्च घोरैराकाशमावृतम् ॥ १० ॥

नाना प्रकारके शस्त्रों, पैने बाणों, उठे हुए वृक्षों और
भयानक पर्वत शिखरोंसे बहोंका आकाश आच्छादित हो गया॥

राक्षसा वानरेन्द्रेषु विहृताननवाहवः ।

निपेदायन्त शस्त्राणि चक्रुस्ते सुमहद्भयम् ॥ ११ ॥

बिकट मुँह और बाँहोंगले राक्षसोंने वानर-यूथपरियोंपर
(नाना प्रकारके) शस्त्रोंका प्रहार करते हुए उनके लिये
महान् भय उत्पन्नित कर दिया ॥ ११ ॥

तथैव सकलैर्दृष्टैर्गिरिगुह्यैश्च वानराः ।

अभिजन्तुर्निजभुक्ष समरे सर्वगक्षसान् ॥ १२ ॥

उसी प्रकार वानर भी समराङ्गणमें कण्ठपूर्ण वृक्षों और
पर्वत शिखरोंद्वारा समस्त राक्षसोंकी भारने पर इतकत
करने लगे ॥ १२ ॥

अक्षवानरमुष्यैश्च महाकायैर्महाबलैः ।

रक्षसा युध्यमानाना महद्भयमजायत ॥ १३ ॥

मुख्य-मुख्य महाकाय महाबली वीरों और वानरोंसे जूझते
हुए राक्षसोंकी महान् भय लगने लगा ॥ १३ ॥

स्वमनीक विपण्ण तु धृत्या शत्रुभिरर्दितम् ।

उत्तिष्ठत दुर्धरं न कमथ्यननुष्ठिते ॥ १४ ॥

रावणकुमार इन्द्रजित् बड़ा दुष्टप वीर था । उसने जब
सुना कि मेरी सेना शत्रुओंद्वारा पीड़ित होकर बड़े दुःखमें
पड़ गयी है, तब अनुष्ठान समाप्त होनेके पहले ही वह युद्धके
लिये उठ खड़ा हुआ ॥ १४ ॥

वृक्षधाकारान्निर्गत्य जातप्रोधाः स रावणि ।

आरुरोह रथ सज्ज पूषयुक् सुसज्यतम् ॥ १५ ॥

उस समय उसने मनमें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ था ।
पर वृक्षोंमें अन्धकारमें निश्चलकर एक मुखधित रथपर आरोढ़
हुआ, जो परन्तों ही जेतकर तैयार रक्ता गया था । वह
रथ बहुत ही मुदद था ॥ १५ ॥

स भीमकार्मुकशरं दृष्ट्वाञ्जनचयोपम ।

रसास्यनयनो भीमो धर्मो मृत्युरिवातन्कः ॥ १६ ॥

इन्द्रजित्के हाथमें भयकर धनुष और बाण थे । वह
काले कोंयलेके देर-सा जान पड़ता था । उसने मुँह और नेत्र
खल थे । वह भयकर राक्षस विनाशकारी मृत्युके समान प्रतीत
होता था ॥ १६ ॥

दृष्ट्वैव तु रथस्थः पर्यवर्तत तद् वलम् ।

रक्षसा भीमवेगाना लक्ष्मणेन युयुत्सताम् ॥ १७ ॥

इन्द्रजित् रथपर बैठ गया, यह देखते ही लक्ष्मणने साथ
युद्धकी इच्छा रखनेवाले भयकर वेगवाली राक्षसोंकी वह सेना
उसके आसपास सब ओर खड़ी हो गयी ॥ १७ ॥

तस्मिन्सु काले हनुमानरजत् स दुर्गासदम् ।

धरणीधरसकाशो महावृक्षमर्गिदमः ॥ १८ ॥

उस समय शत्रुओंका दमन करनेवाले पर्वतके समान
विद्यालकाय हनुमान्जीने एक बहुत बड़े वृक्षको, जिसे तोड़ना
या उखाड़ना कठिन था, उखाड़ लिया ॥ १८ ॥

स राक्षसाना तत् सैन्यं कालान्मिरिव निर्दहन ।

चकार बहुभिवृक्षैर्निःसश युधि वानरः ॥ १९ ॥

फिर तो वे वानरवीर प्रलयान्तिके समान प्रचलित हो उठे
और युद्धस्थलमें राक्षसोंकी उस सेनाको दग्ध करते हुए बहु
संख्यक वृक्षोंकी भारसे अचत करने लगे ॥ १९ ॥

विध्वंसयन्त तरसा दृष्ट्वैव पवननामजम् ।

राक्षसाना सहस्राणि हनूमन्मन्मथाकिरन् ॥ २० ॥

पवनकुमार हनुमान्जी बड़े वेगसे राक्षस-सेनाका विध्वंस
कर रहे हैं, यह देखते ही सहस्रों राक्षस उनपर अन्न शस्त्रोंकी
वर्षा करने लगे ॥ २० ॥

शितशूलधरा शस्त्रैरसिभिश्चासिपाणयः ।

शक्तिहस्ताश्च शक्तीभिः पट्टिशैः पट्टिशायुधाः ॥ २१ ॥

चमकीले शूल धारण करनेवाले राक्षस शूलोंसे, किन्चे
हाथोंमें तत्रवारों थीं वे तलवारोंसे, शक्तिधारी शक्तियोंसे और
पट्टिशधारी राक्षस पट्टिशोंसे उनपर प्रहार करने लगे ॥ २१ ॥

परिघैश्च गदाभिश्च कुन्तैश्च शुभमृदंनैः ।

शतबाधैश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः ॥ २२ ॥

घोरैः परशुभिश्चैव भिन्दिपालैश्च राक्षसाः ।

मुग्धिभिर्जक्रकलैश्च तलैरशानिसिन्धैः ॥ २३ ॥

अभिजन्तुः समासाद्य समन्तात् पर्वतापमम् ।

तेषामपि च समुद्रक्षकार फन्दन महत् ॥ २४ ॥

बहुतसे परिघों, गदाओं, सुन्दर मालों, शेरदों घातजियों,
लोहेके बने हुए मुद्गरों, भयानक फरकों, भिन्दिपालों, वज्रों
समान मुक्कों और अशानितुल्य भण्डोंके वे समस्त राक्षस
पाद आकर सब ओरसे पर्वताकार हनुमान्जीपर प्रहार करने
लगे । हनुमान्जीने वृत्ति होकर उनका भी महान् वध कर दिया ॥

स मन्त्रं कपिप्रेष्टमचलोपममिन्द्रितम् ।
समानमन्त्रस्तममिन्द्रान् पथनामपम् ॥ २७ ॥
इन्द्रजित्ने देहाः कपिवर पवनकुमार इनुमान् पूर्ववत्के
स्मान् अचन् हा नि गङ्गाभावे अने शत्रुओंका छहर कर
रहे हैं ॥ २ ॥

स सारगिमुगाचेद् याहि यन्त्रं यानर ।
क्षयमेव हि न कुयाद् राक्षसानामुपेक्षित ॥ २८ ॥
यह देवकर उम्हने अने सारथिमे कहा—ज्यों यह
यानर युद्ध करना है, वही चल् । यदि उसकी उपेक्षा की
गयी तो यह हम सब राक्षसोंका निनाश ही कर डालगा ॥ २८ ॥
इत्युक्त्वा सारथिन्तन ययौ यत्र स मादति ।

वहन् परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजित् रथे ॥ २७ ॥
उत्तम ऐसा कहनेपर सारथि रथपर बैठे हुए अत्यन्त
दुःख वीर इन्द्रजित्का पाना हुआ उस न्यानपर गया, वहाँ
परमपुत्र इनुमान्जी विराजमान थे ॥ २७ ॥

सोऽभ्युपेत्य क्षापात् खड्गान् पट्टिशान् परभ्यधान् ।
अभ्युपगतं दुर्धर्षं कपिमूर्धानि राक्षस ॥ २८ ॥
वहाँ पहुँचकर उस दुर्धर्ष राक्षसे इनुमान्जीक मस्तकपर
बाणों, तलवारों, पट्टियों और फरसोंकी बना आरम्भ कर दी ॥
तानि शस्त्राणि घोरानि प्रतिगृह्य स मादति ।

रथेण महताधिगे शान्ध्यं चेदमुनाय ॥ २९ ॥
उन भयानक शस्त्रोंको अने शरीरपर झटकर पवनपुत्र
इनुमान्जी महान् रथमे भर गये और इस प्रकार बोले—
युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणामन दुमन ।
यायुपुत्र समाम्नाय न जीवन् प्रतिपास्यसि ॥ ३० ॥
'दुर्धर्ष' रावणकुमार । यदि बड़े शूरवीर हो तो आओ
मर साथ मन्त्रयुद्ध कर । इस यायुपुत्रने मिहकर जीवित नहीं
होए सकोगे ॥ ३० ॥

इत्यार्षे भीमद्रामायण शास्त्रादीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाशितम सर्गः ॥ ८६ ॥

इम प्रकार भद्रहस्तदिग्गजेन आभरानाया अदिकाव्यम् युद्धकाण्डेने लिखासीसों सर्ग पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितम सर्ग

इन्द्रजित् और विभीषणकी रथपूर्ण बातचीत

एयमुक्त्या तु सौमित्रि जातहर्षो विभीषण ।
धनुष्पाणि तमादाय त्वरमाणो जगाम स ॥ १ ॥
पूरेव बात कहकर इनेने भरे हुए विभीषण घनुषर
नुमिषाकुमारका साथ लेकर बड़े वेगम आगे बढ़े ॥ १ ॥
अत्रिदूर ततो गत्वा प्रविश्य तु महद् धनम् ।
अदृशयन् तत्कम लक्ष्मणाय विभीषण ॥ २ ॥
पहों ही दूर जानेपर विभीषणने एक भण्डा वतने प्रकाश
करत लक्ष्मणको इन्द्रजित्के कमानुवाक स्थान दिखाया ॥ २ ॥

धातुभ्या भग्नयुध्यस्व यदि मे दृढमाहवे ।
येन सहस्य दुबुद्धे तनस्य रक्षमा वर ॥ ३१ ॥
धुमंते ! अपनी मुचाओंद्वारा मरे साथ दृढ-युद्ध कर ।
इस बाहुयुद्धमें यदि मेरा बग स-ए ता तुम राक्षसोंमें श्रेष्ठ
वीर समझ जाओगे ॥ ३१ ॥

इनुमन्त जिघासन्त समुद्यतशरसनम् ।
रावणामनमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषण ॥ ३२ ॥
रावणकुमार इन्द्रजित् घनुष उठाकर इनुमान्जीका बग
करना चाहता था । इसी अवस्थामें विभीषणने लक्ष्मणका
उसका परिचय दिया— ॥ ३२ ॥

यः स धाम्निर्निर्गता रावणस्यामसम्भर ।
स एव रथमास्थाय इनुमन्त निगसति ॥ ३३ ॥
तमप्रतिमसंस्थाने शरैः शत्रुनिवारणे ।
जोत्रितान्तर्करंघोरैः सौमित्र रावणि जहि ॥ ३४ ॥

भूमिमानन्दन ! रावणका नां पुत्र इन्द्रका भी कीन चुका
है, वही य-ए रथपर बैठकर इनुमान्जीका बग करना चाहता
है । न-त आगे शत्रुओंका विदारण करनेवाले, अनुपम
आकार प्रकाशने पुके एव प्राणान्तकारी मरकर बाणोंद्वारा उस
रावणकुमारका मार डालिये ॥ ३३-३४ ॥

इत्येवमुक्त्यु तदा महामा
विभीषणेनारिर्विभीषणेन ।
दृदर्शं त पततसैनिकाश
रथस्थित भीमरत्न दुर्गमदम् ॥ ३५ ॥
शत्रुओंका धममीन करनेवाले विभीषणने ऐसा कहनेपर
उस समय महात्मा लक्ष्मणने रथपर बैठे हुए उस भयकर
बलशाली पततकार दुर्जर राक्षसका दत्ता ॥ ३५ ॥

नीलनीमूतमकाश न्यमोघ भीमदशनम् ।
मेघम्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयन् ॥ ३६ ॥
वहाँ एक बरगदका वृक्ष था, जो 'न्यमनपके समान
समान और देखनेमें भयंकर था । रावण तन्म्वी भ्राता
विभीषणने लक्ष्मणको वहाँका सब वस्तुएँ दिखाकर दत्ता— ॥
इहोपहार भूताना धनवान् रावणामन ।
उपहृत्य नत पद्याम् सप्रणममभिरुचने ॥ ३७ ॥
भूमिमानन्दन ! य-ए वस्तु रावणकुमार प्रीतिन दरो

आकर पहले भूतोंको बलि देता, उससे बाद युद्धमें प्रवृत्त होता है ॥ ४ ॥

अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः ।
निहन्ति समरे शत्रून् वध्नाति च शरोस्समै ॥ ५ ॥

इसीसे सग्रामभूमिमें यह राक्षस सम्पूर्ण भूतोंके लिये अदृश्य हो जाता है और उत्तम बाणोंसे शत्रुओंको मारता तथा बाँध लेता है ॥ ५ ॥

तमप्रविष्टं न्यग्रोधं यलिनं रावणात्मजम् ।
विभ्रसय शरीर्दीप्तिं सरथं साध्वसारथिम् ॥ ६ ॥

अतः जबतक यह इस वरगदके नीचे आये, उससे पहले ही आप अपने तेजस्वी बाणोंद्वारा इस बलवान् रावणकुमारको रथ, घोड़े और सारथिवहित नष्ट कर दीजिये ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा महातेजा सौमित्रिमित्रनन्दनं ।
यभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन् धनुः ॥ ७ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर मित्रोंका आनन्द बटानेवाले महातेजस्वी सुमित्राकुमार अपने विचित्र घनुपकी टंकार करते हुए वहाँ लड़े हा गये ॥ ७ ॥

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान् राजणात्मजः ।
इन्द्रजित् कवचीं खड्गीं सञ्चजं प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥

इतनेमें ही बलवान् रावणकुमार इन्द्रजित् अग्निसे समान तेजस्वी रथपर बैठा हुआ कवच, खड्ग और ध्वजाके साथ दिवासी पड़ा ॥ ८ ॥

तमुवाच महातेजा वीलस्त्यमपरजितम् ।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग् युद्धं प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥

तब महातेजस्वी लक्ष्मणने परजित न होनेवाले पुलस्त्य पुलनन्दन इन्द्रजितसे कहा—'राक्षसकुमार ! मैं तुम्हें युद्धके लिये ललकारता हूँ । तुम अच्छी तरह समलकर मेरे साथ युद्ध करो' ॥ ९ ॥

पयमुक्त्वा महातेजा मनस्वी रावणात्मजः ।
अग्रवीत् परधं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥ १० ॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी और मनस्वी राजा कुमारने वहाँ विभीषणको उपस्थित देख कठोर 'दर्दिम' कहा—॥ १० ॥

इह त्वं जातसधुस् साक्षाद् भ्राता पितुमम ।
कथं नृणांसि पुत्रस्य पिद्व्यो मम राक्षसः ॥ ११ ॥

'राक्षस ! यहाँ तुम्हारा जन्म हुआ और यहीं बच्चा तुम इतने बड़े हुए । तुम मेरे पिताके सगे भाई और मेरे चान्हा हो । फिर तुम अपने पुत्रसे—मुझसे क्यों ब्राह्मणरते हो ?' ॥ ११ ॥

न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धमदूषणः ॥ १२ ॥

'दुर्मते ! तुमने न तो कुटुम्बीकोंके प्रति अपनापनका

भाव है, न आत्मीयनोंके प्रति स्नेह है और न अपनी जातिका अभिमान ही है । तुममें कतव्य-अर्कोयकी मयादा, भ्रातृ प्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है । तुम राक्षस धर्मको कल्कित करनेवाले हो ॥ १२ ॥

शोच्यस्त्वमसि दुर्धुद्रे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्रमागतः ॥ १३ ॥

'दुर्धुद्रे ! तुमने स्वजनोंका परित्याग करके दूसरोंकी गुलामी स्वीकार की है । अतः तुम सत्पुरुषोंद्वारा निन्दनीय और शोचके योग्य हो ॥ १३ ॥

नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं येत्सि महदन्तरम् ।
कच्च स्वजनसंवासा कच्च नीचं पराधरम् ॥ १४ ॥

धीच निशाचर ! तुम अपनी शिथिल बुद्धिसे द्वारा इस महान् अन्तरको नहीं समझ पा रहे हो कि कहाँ तो स्वजनोंके साथ रहकर स्वच्छन्दताका आनन्द लेता और कहाँ दूसरोंकी गुलामी करके जीना है ॥ १४ ॥

गुणवान् वा परजनं स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणं स्वजनं श्रेयान् य परं परं पश्य सः ॥ १५ ॥

'दूसरे लोग कितने ही गुणवान् क्यों न हों और स्वजन गुणहीन ही क्यों न हों ! वह गुणहीन स्वजन भी दूसरोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ ही है क्योंकि दूसरा दूसरा ही होता है (वह कभी अपना नहीं हो सकता) ॥ १५ ॥

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निवेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हृत्यते ॥ १६ ॥

'जो अपने पक्षका छोड़कर दूसरे पक्षके लोगोंका सेवन करता है, वह अपने पक्षके नष्ट हो जानेपर फिर उन्हींके द्वारा मार बला जाता है ॥ १६ ॥

निरनुक्रोशता ज्ञेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शप्यं वीर्यं रावणानुजः ॥ १७ ॥

'राजगण छोटे भाई निशाचर ! तुमने लक्ष्मणको इस खानतक ले आकर मेरा वध करानेके लिये प्रयत्न करके यह नैवी निदयता दिखायी है, ऐसा पुरुषांध तुम्हारे-जैसा स्वजन ही कर सकता है—तुम्हारे सिवा दूसरे किसी स्वजनके लिये ऐसा करना सम्भव नहीं है' ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा भ्रातृप्रेषेण प्रत्युवाच विभीषण ।
अजानयित्रं मच्छीलं किं राक्षसं विकृत्यसे ॥ १८ ॥

अपने भतीजके ऐसा कहनेपर विभीषणने उत्तर दिया—
'राक्षस ! तू आज ऐसी शोभी क्यों पधारता है ? जन्म पड़ता है तुझे मेरे स्वमाधव पता ही नहीं है ॥ १८ ॥

राक्षसेन्द्रसुतासाधो पाहस्य त्यज गौरवात् ।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसा मूलकमणाम् ।
गुणो यः प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराण्यसम् ॥ १९ ॥

अथम ! राक्षसजन्तुमार ! बड़ों बड़प्पनका खाल करक तू इस कठोरताका परित्याग कर दे । यद्यपि मर्य कम प्रकृति राक्षसों के कुलमें ही हुआ है, तथापि मर्य शील-स्वभाव राक्षसोंका नहीं है । सत्पुरुषोंका या प्रधान गुण सत्य है, मैंने उसीका आश्रय ले रक्खा है । १० ॥

न रमे वारुणेनाह न चाद्यमेष धै रमे ।
आशा रिममदीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रपूर्ण कर्ममें मेरा मन नहीं छूटा । अधर्ममें भी बलि नहीं होती । यदि अपने भाईका शाल-स्वभाव अपनेने न मिला हा तो भी बड़ा भाई छात्र भाईका कैसे परने निकाल सकता है ? (परतु मुझे परने निकाल दिया गया, फिर मैं दूसरे सपुत्रका आश्रय क्यों न लूँ ?) ॥ २० ॥

धमात् प्रच्युतशीलं हि पुरुष पापनिश्चयम् ।
त्यस्या सुखमराजोनि हस्तानादीनि यथा ॥ २१ ॥

धर्मिका शाल-स्वभाव धर्ममें भ्रष्ट हो गया हो, जिसने पाप करनेका इन् निश्चय कर लिया हा, ऐसे पुरुषका त्याग करने प्रत्येक प्राणी उस प्रकार सुखी होता है, जैसे हाथर बैठ हुए बटुल सोंको त्याग देनेमें मनुष्य निमग्न हो जाता है ॥ २१ ॥

परस्वहरणे युक् परदाराभिमशक्म् ।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मान वेदम प्रच्यवन्ति यथा ॥ २२ ॥

जो दूसरोंका धन चुराता हा और पत्नी और हाथ छाना हो, उस दुरात्माका बन्ने हुए परकी मौति त्याग देने योग्य बनाना गया है ॥ २२ ॥

परस्याना च हरण परदाराभिमशानम् ।
मुहदामतिशया च त्रयो दोग क्षयाग्रहा ॥ २३ ॥

“उत्ते घनका अहरण”, परस्त्रीक साथ सर्ग और अपने हितैषी मुहदोर अधिक चढ़ा—अपेक्षा—ये तीन दोष बिनाघकारी बनाये गये हैं ॥ २३ ॥

महर्षीणा त्रयो धोग सद्यर्थश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च रोषश्च वैरस्य प्रतिकूलता ॥ २४ ॥

एत दोग मम भ्रातृर्निरिष्येभ्यनाशाना ।
शुणान् प्रच्छादयामासु पयतानि तोयदा ॥ २५ ॥

महर्षियोंका भ्रम कर, सपूर्णदेवताओंका साथ विरोध, अभिमान, रोष, वैर और घर्ष प्रतिकूल चरना—ये दोष

हृषार्थे धीमद्रामायणे वात्स्याकीये अष्टिकाथ्य युद्धकाण्डे मत्तगानितम सर्ग ॥ ८० ॥

इत पार पारल किर्तिन आराधना अदिकाच मुहदामे स्तम्भर्त मय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

अष्टाशीतितम सर्ग

लक्ष्मण और हर्जितुकी परस्पर रोपभरी बातचीत और घोर युद्ध

विभीषणयच धृष्ट्या राजनि प्रोथमूर्च्छित ।

अग्र्यान् परम प्राप्य प्राधनाभ्युत्थान च ॥ १ ॥

मेरे भाईने मौतूर है, जो उसका प्राण और एश्व दोनोंका नाश करनेका है । जैसे बादल पराओंका आच्छादित कर देता है, उसी प्रकार इन दागोंने मेरे भाईके सारे गुणोंका ढक दिया है ॥ २४ २५ ॥

दोपैरैतै परित्यक्तो मया भ्राता पिता तत्र ।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न चत्यनच ते पिता ॥ २६ ॥

इसी दोषोंक कारण मैंने अपने भाई एव तरे तितका त्याग किया है । अब न ता यह लङ्कापुरी रहेगी, न तू रहेगा और न तेरे तित ही रह जायगा ॥ २६ ॥

अनिमानश्च बालश्च क्षुपिनीतश्च राजस ।
यद्धस्त्व कालपाशेन ब्रूहि मा यद् यदिच्छसि ॥ २७ ॥

प्राक्स ! तू अत्यन्त अभिमानी, उहड़ और बालक (मूर्ख) है, कालक पाशमें बंधा हुआ है, इसलिये तेरी जं जो इच्छा हा मुझे कह स ॥ २७ ॥

अघोह व्यसन प्राप्त यमा परममुत्तमान् ।
प्रवेष्टु न स्यात् शस्य स्यप्रोष राजसाधम ॥ २८ ॥

पाँच राक्षस ! तूने मुझसे जो कठोर बात कही है, उसीका यह फल है कि आज तुझपर यहाँ घेर सकट आया है । अब तू बरगद नीचनक नहीं जा सकता ॥ २८ ॥

धययित्वा च काकुत्स्थ न शक्य जीवितु त्वया ।
युध्यन् नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह ।
हतस्त्व देशतार्क्य करिष्यसि यममयम् ॥ २९ ॥

“ककुत्स्थकुलभूता लक्ष्मणा निरस्कार करक तू जिवित नहीं रह सकता अत इन नरदेव लक्ष्मणक साथ रामभूमिमें युद्ध कर । यहाँ माय बकर तू बलकर्म पड़वगा और देवताओंक साथ कैला (उन्हें खुप कराना) ॥ २९ ॥

निद्राशयस्यामयल समुपत
कुराव सपायुधमायकच्यपम् ।

न लक्ष्मणस्येत्य हि यागोचर
त्वमद्य जीरन् सयलो गमिष्यसि ॥ ३० ॥

अब तू अपना कण हुआ छप पन तित सन आयुषों और लक्ष्मणका धन कर त परत लक्ष्मणका निशाना बनकर आज तू मेनकने उचित नहीं हो सकता ॥ ३० ॥

कहने लगा और उछलकर सामने आ गया ॥ १ ॥

उद्यतायुधनिर्गन्धो रथे सुसमलङ्किते ।

कालाभ्युक्तो महति स्थितः कालान्तकोपम ॥ २ ॥

उसने खड्ग तथा बुरखे आयुध भी उठा रते थे । काले पोड़ोसे युक्त, सजे-सजाये विशाल रथपर बैठा हुआ इन्द्रजित् विनायकारी कालके समान जान पड़ता था ॥ २ ॥

महाप्रमाणमुद्यम्य निपुल वेगान् दृढम् ।

धनुर्भीमयत्नो भीम शराध्यामित्रनाशनान् ॥ ३ ॥

वह भयंकर बलशाली निशाचर बहुत बड़े आधारवाले, लंबे, मजबूत, वेगशाली और भयानक धनुषको तथा शत्रुओं का नाश करनेमें समर्थ बाणोंको भी लेकर युद्धके लिये उद्यत था ॥ ३ ॥

त वदन् महेष्वासो रथस्य समलङ्कित ।

अलङ्कृतमभिप्रच्यो राजनस्यात्मजो वली ॥ ४ ॥

इन्मत्पृष्ठमारुढमुद्ययस्थरत्रिभम् ।

वल्गामूर्धनोत्ते अलङ्कृत होकर रथपर बैठे हुए उस महा धनुर्बल, शत्रुनाशक बलवान् खवणकुमारने देखा, लम्पण अपने तेजसे ही विभूषित हो इन्माम्बुजीकी पीठपर आरुढ़ होकर उदयाचलपर विराजमान सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

उवाचैन सुसरम्भ सौमित्रि सविभीषणम् ॥ ५ ॥

तावच्च यानरशार्दूलान् पश्यथ मे पराक्रमम् ।

अद्य मत्कामुर्कोत्सुष्ट शरवर्षे तुरासदम् ॥ ६ ॥

मुक्तवर्षमिवाकाशे धारयिष्यथ सयुगे ।

देखते ही वह अत्यन्त रोषसे भर गया और विभीषण सहित मुनिप्राकुमार तथा अन्य यानरसिंहोंसे कहा—‘शत्रुओं! आज मेरा पराक्रम देखना । तुम सब लोग युद्धखलमें मेरे धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी सह वर्षाओंको अपने अङ्गोंपर उछाी तरह धारण करोगे, जैसे आकाशमें होनेवाली उमुक्त वर्षाको भूतलके प्राणी अपने ऊपर धारण करते हैं ॥ ५ ६ ॥

अद्य यो मामका याणा महाकामुर्कनि सृता ।

निधिमिष्यन्ति गात्राणि तूलादिमिमानल ॥ ७ ॥

जैसे आज लूटके ढेरको जग्रा देती है, उसी प्रकार इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज तुम्हारे शरीरोंकी धजियाँ उछा देंगे ॥ ७ ॥

तीक्ष्णसायकनिर्मिमाञ्शूलशतयुधितोमै ।

अद्य वो गमयिष्यामि सजानेव यमक्षयम् ॥ ८ ॥

‘आज अपने शूल, शक्ति, शूद्रि और तोमरोंद्वारा तथा तीक्ष्ण सायकोंसे टिप्प-भिन्न करक तुम सब लोगोंको यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ ८ ॥

रुजत शरपराणि क्षिप्रदस्तस्य सयुगे ।

जीमूतस्येव नदत य स्यात्पति ममाग्रत ॥ ९ ॥

‘युद्धखलमें हाथोंको बड़ी फुलसि चलाकर जब मैं मेघके समान गजता हुआ बाणोंकी वर्षा आरम्भ करूँगा, उस समय घन मेरे सामने ठहर सकेगा ॥ ९ ॥

पत्रियुद्धे तदा पूर्वं वज्राशनस्मै शरै ।

शाथितौ तौ मया भूयो निस्रौ सपुर सरो ॥ १० ॥

स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये यत्तयातो यमक्षयम् ।

आशीविषसम मुञ्च यमा योद्धुमुपस्थित ॥ ११ ॥

‘लम्पण! उस दिन यत्रियुद्धमें मैंने वज्र और अशनिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा जो पहले तुम दोनों माइयोंको रणभूमिमें सुला दिया था और तुमलोग अपने अग्रगामी सैनिकोंसहित भूच्छित होकर पड़े थे, मैं समझता हूँ उसका इस समय तुम्हें सरण नहीं हो रहा है । विषघर सर्पके समान रोपते भरे हुए मुक्त इन्द्रजित्के साथ जो तुम युद्ध करनेके लिये उपस्थित हो गये, उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि यमलोकमें जानेके लिये उद्यत हो’ ॥ १० ११ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य भजित राघनस्तदा ।

अभीतवदन कुण्डो गार्जनि वाक्पयमग्रजीत् ॥ १२ ॥

राजसराजके बैठेकी वह गर्जना सुनकर रघुकुलानन्दन लक्ष्मण कुपित हो उठे । उनके मुखपर भयका कोई चिह्न नहीं था । वे उस खवणकुमारसे बोले— ॥ १२ ॥

उच्च दुर्गम पार कायाणा राक्षस त्वया ।

कायाणा कर्मणा पार यो गच्छन्ति स बुद्धिमान् ॥ १३ ॥

‘निशाचर! तुमने केवल बाणोंद्वारा अपने शत्रुबन्ध आदि बाणोंकी पूर्तिके लिये बाणणा कर दी परन्तु उन बाणोंको पूरा करना तुम्हारे लिये बहुत ही कठिन है । जो क्रियाद्वारा कृतव्यक्रमाके पार पहुँचना है अर्थात् जो कड़ता नहीं, काम पूरा करने दिला देता है, वही पुष्प बुद्धिमान् है ॥ १३ ॥ स त्वमर्थस्य हीनायों दुरथापस्य केनचित् ।

याचा व्याहृत्य जानीये हृतायोऽस्मीति दुर्मते ॥ १४ ॥

‘दुर्मते! तुम अपने अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेमें अवमर्थ हो । जो कार्य क्रिमीके द्वारा भी सिद्ध होना कठिन है, उसे केवल बाणोंके द्वारा कहकर तुम अपनेको हृताय मान रहे हो ॥ १४ ॥

अन्तधानगतेनाजौ यस्यया चरितस्तदा ।

तत्कराचरितो मत्तो नैव धीरनिवेति ॥ १५ ॥

‘उस दिन सभामें अपनेको छिपाकर तुमने जिसका आश्रय लिया था, वह चौरोंका मार्ग है । धीर पुरुष उसका सेवन नहीं करते ॥ १५ ॥

यया याणपथ प्राप्य स्थितोऽस्मि तव राजस ।

दर्शयसाद्य तत्तेजो यात्वा त्व किं निश्चयसे ॥ १६ ॥

‘प्राप्य! इस समय मैं तुम्हारे बाणों का मार्ग आकर राहा हूँ । आज तुम अपना वह तेज दिलाओ । केवल यह कहकर बातें क्यों बना रहे हो ॥ १६ ॥

परमुक्तो धनुर्भीम परामुद्य महाबल ।
ससर्ज निशितान् थाणानि द्रजित् सर्पितिनय ॥ १७ ॥

उभयने ऐषा कहनेपर उभाभविजयी महाबली इन्द्रजित्ने
अपने भयकर धनुषको दृढतापूर्वक पकड़कर पैने बाणोंकी
वृष्टि आरम्भ कर दी ॥ १७ ॥

तेन सृष्टा महावेगा शरा सर्पविशेषमा ।
सम्प्राप्य लक्ष्मण पेतु भवसन्त इव पक्षगा ॥ १८ ॥

उसके छोड़े हुए महान् वेगावाली बाण साँपने विपकी
तर्ह जहरील थे । वे फुफकारते हुए सर्पके समान लक्ष्मणके
शरीरपर पड़ने लगे ॥ १८ ॥

शरैरतिमहावेगैर्वैगजान् राज्ञात्मज ।
सौमित्रिनि द्रजित् युद्धे चिष्यधनुभलक्षणम् ॥ १९ ॥

वेगवान् एवगजुमार इन्द्रजित्ने उन अत्यन्त वेगावाली
बाणोंद्वारा युद्धमें गुमलक्षण लक्ष्मणको घायल कर दिया ॥

स शरैरतिविज्झाहो रुधिराण समुक्षित ।
शुभे लक्ष्मण श्रीमान् विधुम इव पावक ॥ २० ॥

बाणोंसे उनका गरीरअत्यन्त क्षत विक्षत हो गया । ये रक्तसे
नहा उठे । उस अवस्थामें श्रीमान् लक्ष्मण धूमपहित प्रचलित
अग्निके समान घोमा पा रहे थे ॥ २ ॥

इन्द्रजित् त्वात्मन कर्म प्रसमीक्ष्याभिगम्य च ।
विनय सुमहानादमिद् वचनमग्रवीत् ॥ २१ ॥

इन्द्रजित् अपना यह पराक्रम देख लक्ष्मणके पास जा
यह जोरसे गजना करके यों बोला— ॥ २१ ॥

पप्रिण शितधापास्ते शरा मत्समुक्च्युता ।
आशास्पतेऽद्य सौमित्रे जीवित जीवितान्तका ॥ २२ ॥

‘सुमित्राकुमार ! मेरे धनुषसे छूटे हुए तेज धारवाले
पलधायी बाण राधुके जीवनका अन्त कर देनेवाले हैं । ये
आज तुम्हारे प्राण लेकर ही रहेंगे ॥ २२ ॥

अद्य गोमायुसह्राश्च इयेनसह्राश्च लक्ष्मण ।
गृध्राश्च निपतन्तु त्वा गतासु निहत मया ॥ २३ ॥

‘लक्ष्मण ! आज मेरे द्वारा मेरे जाकर जब तुम्हारे प्राण
निष्कल जायेंगे, तब तुम्हारी छायापर छड़ के छड़ गीदड़, बाज
और गीघ दूर पड़ेंगे ॥ २३ ॥

क्षत्रयधु सदानार्य राम परमनुमति ।
भक्त भ्रातरमप्यैव त्वा द्रक्ष्यति हत मया ॥ २४ ॥

‘परम दुषुद्धि राम तुमजैसे अनार्य, क्षत्रियापम एव
अपने भक्त भादकी आज ही मेरे द्वारा मारा गया देखेंगे ॥
निष्पत्त्ययम भूमी च्छपविज्झापासनम् ।
ह्यनोत्तमाह सौमित्रे न्यामय निहत मया ॥ २५ ॥

‘सुमित्राकुमार ! तुम्हारा कान्त विषाकर पृथ्वीर गिर
जयगा, धनुष भी दूर जा पड़ेगा और तुम्हारा मन्मक भी

पड़ते अव्यय कर दिया जायगा । इस अवस्थामें राम अत्र
मरे हाथसे मारे गये तुमको देखेंगे ॥ २५ ॥

इति सुवाण सकृद्ध पश्य रावणात्मनम् ।
हेतुमद् वाच्यमर्थज्ञो लक्ष्मण प्रत्युवाच ह ॥ २६ ॥

इस तरह कठोर बातें कहते हुए रावणकुमार इन्द्रजित्ने
अपने प्रयात्नको जानेनेवाले लक्ष्मणने कुपित होकर यह मुक्ति
युक्त उत्तर दिया— ॥ २६ ॥

वाग्वल त्यज दुर्बुद्धे भूरकर्मन् हि रामस ।
अय कस्माद् वदस्येतत् सम्पाद्य सुकर्मणा ॥ २७ ॥

‘भूरकर्म करनेवाले दुर्बुद्धि राक्षस ! बकवासका बल छोड़
दे । तू ये सब बातें कहता क्यों है ? करने दिला ॥ २७ ॥

अवृत्त्या कथयसे कम किमग्रमिह राक्षस ।
कुरु तत् कम येनाह श्रद्धेय तव कथनम् ॥ २८ ॥

‘निशाचर ! जो काम अभी किया नहीं, उसके लिये
यहाँ व्यर्थ डोंग क्यों हँकता है ! तू किते कहता है, उस
कार्यको पूरा कर, जिससे मुझे तेरी इस बात चत्ताकर नही हुई
जातपर विश्वास हो ॥ २८ ॥

अनुक्त्वा पश्य वाक्य किंचिदप्यनशक्षिणम् ।
अविकथन् वधिष्यामि त्वा पश्य पुरपादन ॥ २९ ॥

‘नरभक्षी राक्षस ! तू देख लेना, मैं कोई कठोर बात न
कहकर तरे ऊपर किसी तरहका आघेय न करके आत्मप्रयास
किये बिना ही तेरा बध करूँगा ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकान् पूरिताश्वरान् ।
विजघान महावेगाह्लक्ष्मणो राक्षसोरसि ॥ ३० ॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणने उस राक्षसी छातीमें बड़ बगले
पाँच नापक मारे, जो धनुषको कान्तक खींचकर छोड़े
गये थे ॥ ३० ॥

सुपप्रवाजिता याणा ज्वलिता इव पक्षगा ।
नैर्धृतोरस्यभासन्त सखि रक्ष्मणो यथा ॥ ३१ ॥

सुन्दर पराँसे कारण अत्यन्त बगमे जानेवाली और
प्रज्वलित सर्पके समान दिखायी देनेवाले व बाण उस राक्षसी
छातीपर खर्पकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३१ ॥

स शरैराहतस्तेन सरोपो रावणात्मज ।
सुप्रयुक्छिभिर्वाणै प्रतिविष्याथ लक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥

लक्ष्मणने बाणोंसे आहत होकर रावणकुमार अपने भाग
बचला हो उठा । उसने अच्छी तरह चलाये हुए तीन बाणोंसे
लक्ष्मणको भी घायल करके बच्य जुराता ॥ ३२ ॥

स बभूव महाभीमो नगरात्मसिंहयो ।
विमदस्तुमुले युद्धे परस्परजयैरिणो ॥ ३३ ॥

एक ओर पुरासिंह लक्ष्मण व तो दूसरी ओर राक्षस
सिंह इन्द्रजित् । दोनों युद्धस्थलमें एक-दूसरेपर विजय पना
चाहते थे । उन दोनोंका वह युद्ध समान महाभयकर था ॥

विप्रान्तौ वलसम्पन्नायुधौ विक्रमशालिनौ ।

उभौ परमदुर्जयावतुल्यरुलतेजसौ ॥ ३४ ॥

वे दोनों वीर पराक्रमी, वलसम्पन्न, विक्रमशाली, परम दुर्जय तथा अनुपम बल और तेजसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त दुजब थे ॥ ३४ ॥

युयुधाते तदा वीरौ प्रहाप्ति नभोगतौ ।

वलवृथापि हि तौ युधि वै दुष्प्रचपणी ॥ ३५ ॥

जैसे आकाशमें दो ग्रह टकरा गये हों, उसी तरह वे दोनों वीर परस्पर जूझ रहे थे । उस युद्धस्थलमें वे इन्द्र और वृषासुरके समान दुर्घट जान पड़ते थे ॥ ३५ ॥

युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविच ।

बह्वनरुज्जन्तौ हि मागणोघनवस्थितौ ।

नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥ ३६ ॥

वे महामनसी नरश्रेष्ठ तथा राक्षसप्रवर वीर जैसे दो सिंह आपसमें लड़ रहे हों उसी प्रकार युद्ध करते थे और बहुतसे बाणोंकी बरसात करते हुए युद्धभूमिमें डटे हुए थे । दोनों ही बड़े हर्ष और उत्साहसे साथ एक-दूसरेका सामना करने थे ॥ ३६ ॥

तत शरान् दाशरथि सधायामित्रकर्षण ।

ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्ध सर्प इव श्वसन् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर दशरथन दान "अमुद्वन लक्ष्मणने कुपित हुए सर्पकी भाँति लथी सँत लीचते हुए अपने धनुषपर अनेक बाण रकाने और उन सबको राक्षसराज इन्द्रजित्पर चलाया ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोष स श्रुत्वा राक्षसाधिप ।

विघर्षवदन्तो भूत्वा लक्ष्मण समुद्वैलत ॥ ३८ ॥

उनके धनुषकी डोरसे प्रकट होनेवाली टकार ध्वनि सुनकर राक्षसराज इन्द्रजित्का मुँह उदास हो गया और वह चुपचाप लक्ष्मणकी ओर देखने लगा ॥ ३८ ॥

यिगणवदन दृष्ट्वा राक्षस रावणात्मजम् ।

सौमित्रि युद्धमनुक्तं प्रत्युवाच विभीषण ॥ ३९ ॥

रावणकुमार इन्द्रजित्का मुँह उदास देखकर विभीषणने युद्धमें लगे हुए सुमित्राकुमारने कहा— ॥ ३९ ॥

निमित्तान्पुप पदयामि यान्यस्मिन् रावणात्मजे ।

त्वं तेन महायाहो भग्न एव न सशय ॥ ४० ॥

‘महायाहो ! इस समय रावणपुत्र इन्द्रजित्म मुझे ओ लक्षण दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है कि नि सदेह इसका उत्साह मग हो गया है अतः आप इसने बचने लिये शीघ्रता करें ॥ ४० ॥

तत सधाय सौमित्रि शरानाशीविषोपमान् ।

मुमोय विशिखास्तास्मिन् सपानिन् गिगेल्वणान् ॥ ४१ ॥

तब सुमित्राकुमारने शिपर सगोत्रे समान भयकर बाणों

को धनुषपर चलाया और उन्हें इन्द्रजित्को लक्ष्य करके चला दिया । वे बाण क्या थे महाविप्लवे सर्प थे ॥ ४१ ॥

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहत शरै ।

मुहूर्तमभवमूढः सर्वसभुभितेद्रिय ॥ ४२ ॥

उन बाणोंका स्पर्श इन्द्रसे बल्लकी भाँति हुआ था । लक्ष्मणने चलाये हुए उन बाणोंकी चोट खाकर इन्द्रजित् दो पक्षीके लिये मूर्छित हो गया । उसकी सारी इन्द्रियों विक्षुब्ध हो उठी ॥ ४२ ॥

उपलभ्य मुहूर्तं सन्ना प्रत्यागतेन्द्रियः ।

वृद्धशोचस्वित वीरमाजी वृशरथात्मजम् ।

सोऽभिचक्राम सौमित्रि रोषात्स्मरत्कलोचन ॥ ४३ ॥

वोहो देरमें जब होय हुआ और इन्द्रियों सुस्थिर हुई, तब उसने रणभूमिमें दशरथकुमार वीर लक्ष्मणको लक्षा देखा । देखते ही उसके नेत्र रोपसे लाल हो गये और वह सुमित्राकुमारका नामने गया ॥ ४३ ॥

अप्रवीच्यैनमासाद्य पुन स परुष वच ।

किं न सरसि तद् युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम् ।

नियद्धस्त्व नह भ्रात्रा यदा युधि विचेष्टसे ॥ ४४ ॥

वहाँ पहुँचकर वह उनसे कठोर वाणीमें बोला— सुमित्राकुमार ! पहले युद्धमें मैंने जो पराक्रम दिखाया था, उसे क्या तुम भूल गये ? उस दिन तुमको और तुम्हारे भाई को भी मैंने बाँध लिया था । उस समय तुम युद्धभूमिमें पड़े पड़े छपन्ना रहे थे ॥ ४४ ॥

युवा खलु महायुद्धे वज्राशनिसमै शरै ।

दायितौ प्रथम भूमौ विस्रौ सपुर सतौ ॥ ४५ ॥

‘उस महायुद्धमें वज्र एवं अग्निसे समान तेजस्वी बाणों द्वारा मैंने तुम दोनों भाइयोंको पहले धरतीपर गिरा दिया था । तुम दोनों अपने अप्रयागी सैनिकोंके साथ मूर्छित होकर पड़े थे ॥ ४५ ॥

स्मृतिबान्नास्ति ते मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ।

गन्तुमिच्छसि य मा त्वमाधपयितुमिच्छसि ॥ ४६ ॥

‘अथवा मादम होता है कि तुम्हें उन सब बातोंकी बाद नहीं आ रही है । यह स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम यमलोकमें जाना चाहते हो । इसीलिये तुम मुझे पराजित करनेकी इच्छा रखते हो ॥ ४६ ॥

यदिते प्रथमे युद्धे न हणो मपराक्रम ।

अथ त्वा वृशविष्यामि निषेदानां व्यवस्थित ॥ ४७ ॥

‘यदि पहले युद्धमें तुमने मेरा पराक्रम नहीं देखा है तो आज तुम्हें दिखा दूँगा । इस समय सुस्थिरभावसे खड़े रहो ॥

इत्युक्त्वा सप्तभिषाणैरभिषिष्याथ लक्ष्मणम् ।

दशभिस्तु हनूमत्त लीक्षणधारेः पारोत्तमे ॥ ४८ ॥

ऐसा कहकर तीखी धारवाले सात बाणोंमें उसने लम्पण को घायल कर दिया और दस उत्तम सायकोंद्वारा हनुमान्जी पर प्रहार किया ॥ ४८ ॥

तत शरशतेनैव सुप्रयुक्तो न धीयवान् ।
क्रोधाद् द्विगुणसरब्धो निर्निमेषं विभीषणम् ॥ ४९ ॥

तत्पश्चात् दूने रास्ते भरे हुए उस पराक्रमी निपाचरने अच्छी तरहसे छोड़े गये सौ बाणोंद्वारा विभीषणको क्रोधपूर्वक छन बिखन कर दिया ॥ ४९ ॥

तद् दृष्ट्वैन्द्रजिता कम कृत रामानुजस्तदा ।
अचिन्तयित्वा प्रहसन्नेतत् किंचिदिति ब्रुवन् ॥ ५० ॥

इन्द्रजित्द्वारा किये गये इस पराक्रमको देखकर भीरुमके छोटे भाई लक्ष्मणने उसकी कोढ़ परना नहीं की और हँसते-हँसते कहा—‘यह तो कुछ नहीं है’ ॥ ५० ॥

मुनेन च शरान् घोरान् सघृष्टान् नरपुंगव ।
अभीतयन् कृद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि ॥ ५१ ॥

साय ही उन नरभेष्ठ लक्ष्मणने सुखपर भयकी छायायनक नहीं आने दी । उन्होंने युद्धस्थलमें कुपित हो भयकर बाण हाथमें लिये और उन्हें रावणकुमारको लक्ष्य करके चला दिया ॥

नैव रणगता शूराः प्रहरन्ति निशाचर ।
लघ्वस्त्रालयपीयाक्ष शरा हीमे सुखास्तव ॥ ५२ ॥

किर वे बोले—‘निशाचर ! रणभूमिमें आये हुए यह भीरु इस तरह प्रहार नहीं करते । तुम्हारे ये बाण बहुत हल्के और कमजोर हैं । इनसे कुछ नहीं होगा—सुख ही मिलता है ॥

नैव शूरास्तु युष्यते समरे युद्धकाक्षिण ।
इत्येव व ब्रुवन् धन्वी शरैरभियुक्ताः ॥ ५३ ॥

युद्धकी इच्छा रखनेवाले धूर्तवीर समराङ्गणमें इस तरह युद्ध नहीं करते हैं ।’ एका कहेते हुए धनुषर वीर लक्ष्मणने उस घण्टीपर बाणोंकी बरा आरम्भ कर दी ॥ ५३ ॥

तस्य बाणैः सुविप्रस्तं कवचं काञ्चन महत् ।
व्यशीर्यत रघोपस्थे साक्षाजालमिषाभ्यरात् ॥ ५४ ॥

लक्ष्मणके बाणोंसे इन्द्रजित्का महान् कवच, जो सोनेका बना हुआ था, टूटकर रपकी बैठकमें गिर गया, मानो आकाशसे लघुभोंका समूह टूटकर गिर पड़ा हो ॥ ५४ ॥

विघृतवमा नापचैवभूय स कृतप्रण ।
इन्द्रजित् समरे वीरं प्रायूपे भानुमानिध ॥ ५५ ॥

कवच पट अनेपर नापचोंके प्रहारने वीर इन्द्रजित्के सारे अङ्गोंमें धार हो गये । वह समराङ्गणमें रतने रुकित हो प्रात कालन गहरी भोंपि गिरायी देने लगा ॥ ५५ ॥

तत शरसद्वयेण समुद्धतो राजानमज ।
निमेषं समरे वीरो लक्ष्मण भीमविश्रम ॥ ५६ ॥

तब भयानक पराक्रमी वीर रावणकुमारने अत्यन्त कुपित हो समरभूमिमें लक्ष्मणको सहस्रों बाणोंसे घायल कर दिया ॥

व्यशीर्यत महद्दिव्य कवचं लक्ष्मणस्य तु ।
हृत्प्रतिवृत्तान्योन्यं यभूयतुर्दिदमौ ॥ ५७ ॥

इससे लक्ष्मणका भी दिव्य एवं विशाल कवच टिन्न भिन्न हो गया । ये दोनों समुदमन वीर एक दूसरे पर प्रहारका जगव देने लगे ॥ ५७ ॥

अभीक्ष्ण निःप्रसन्नौ तौ युष्येता तुमुल् युधि ।
शरसकृत्ससनाङ्गौ सप्तो रुधिरोक्षितौ ॥ ५८ ॥

ये बारबार हाँकत हुए भयानक युद्ध करने लगे । युद्ध स्थलमें बाणोंके आघातसे दोनोंके सारे अङ्ग छन गिरन हो गये थे । अतः ये दोनों सब ओरसे लहलहान हो गये ॥ ५८ ॥

सुदीर्घकालं तौ वीरायन्योन्यं निशितौ शरैः ।
ततस्तुमहात्मानौ रणयमनिशारदौ ।
यभूयतुश्चामजये यत्तौ भीमपराक्रमौ ॥ ५९ ॥

दोनों वीर दीर्घकालतक एक-दूसरेपर पत्ते बाणोंका प्रहार करते रहे । दोनों ही महामानवी तथा युद्धकी कलामें निपुण थे । दोनों भयकर पराक्रम प्रकट करते थे और अपनी अपनी विजयके लिये प्रयत्नशील थे ॥ ५९ ॥

तौ शरौघैस्तथाकीर्णौ निहत्तक्यचक्ष्यजौ ।
सुजनतौ रुधिर चोष्ण जल प्रक्षयणाग्नि ॥ ६० ॥

दोनोंके शरीर बाण-समूहोंने व्यात थे । दोनों ही कवच और ध्वज कट गये थे । बने दो शरने जल बहा रहे हों, उसी तरह वे दोनों अपने शरीरसे गरम-गरम रक्त बहा रहे थे ॥

शरैर्ष्वे तनो घोर मुञ्जतोर्मामनिस्वनम् ।
सासारयोरीषाकादो नीलयो कालमेघयो ॥ ६१ ॥

दोनों ही भयकर गजानने साय बाणोंकी धार बरा कर रहे थे, मानो प्रलयकालके दो नील मेघ आकाशमें जलनी पाव बरसा रहे हों ॥ ६१ ॥

तयोरथ महान् कालो व्यतीयाद् युष्यमानयो ।
न च तौ युद्धैर्मुप्य ह्रम चाप्युपजगमनु ॥ ६२ ॥

यहाँ बहान हुए उन दोनों शीरेगा बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया परन्तु वे दोनों न तो युद्धने विराम हुए और न उन्हें थकावट ही हुई ॥ ६२ ॥

अभ्याप्यत्त्रिंशो घेष्टी दशयन्तौ पुनः पुनः ।
शरानुधावतः सारानन्तरिक्षे ययधनु ॥ ६३ ॥

दोनों ही अभ्यारवाओंमें श्रेष्ठ थे और बारबार अपने अर्धोश प्रश्रयन करने । उन्होंने आकाशमें छत्र-बद्ध बाणोंका झल-झल बाँध दिया ॥ ६३ ॥

व्यपेतशोरमयन्तौ लघु चित्रं च सुष्ठु च ।
उभौ तु तुमुल् घोर यभूतुनररागसौ ॥ ६४ ॥

वे मनुष्य और राक्षस—दोनों वीर बड़ी कुर्तकी साथ
अद्भुत और सुन्दर ढंगसे बाणोंका प्रहार करते थे । उनके
बाण चलनेकी कलमें कोई दोष नहीं दिव्यायी देता था ।
वे दोनों बोर धमासान युद्ध कर रहे थे ॥ ६४ ॥

तयो पृथक् पृथग् भीम शुश्रुषे तलनिखन ।

स कम्प जनयामास निर्घात इव दारुण ॥ ६५ ॥

बाण चलते समय उन दोनोंकी हथेली और प्रत्यङ्घ्राभा
भयकर एवं तुलुल नाद पृथक् पृथक् सुनायी देता था; जो
भयकर वज्रपातकी आवाजके समान भोताओंके हृदयमें कम्प
उत्पन्न कर देता था ॥ ६५ ॥

तयो स भ्राजते शङ्खस्तथा समरमत्तयो ।

सुघोरयोनिघ्नतोगगने मेघयोरिव ॥ ६६ ॥

उन दोनों रणोत्तम वीरोंका वह शब्द आकाशमें परस्पर
टकरते हुए दो महाभयकर मेघोंकी गड़गड़ाहटके समान
सुद्योमित होता था ॥ ६६ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्नारचैर्वल्वन्तौ कृतघ्नौ ।

प्रसृज्जुवाते रुधिर कीर्तिमन्तौ जये धृतौ ॥ ६७ ॥

वे दोनों बलवान् योद्धा सैनिके पक्षबाले नाराचासे पाखल
हो शरीरसे खून बहा रहे थे । दोनों ही यशस्वी थे और अपनी
अपनी विजयके लिये प्रमत्त कर रहे थे ॥ ६७ ॥

ते गात्रयोर्निपतिता रुक्मपुङ्खा शरा युधि ।

अवृग्दिग्धा निमित्पेतुर्धिविशुर्धरणीतलम् ॥ ६८ ॥

युद्धमें उन दोनोंके चलये हुए सुग्नमय पखबाले बाण
एक दूसरेके शरीरपर पड़ते; रक्तसे भीगकर निकलते और
धरतीमें समा जाते थे ॥ ६८ ॥

अन्ये सुनिशिते शस्त्रैरपकाशे सजगद्दृष्टे ।

यमञ्जुक्षिच्छिदुश्चैव तयोवाणा सहस्रशः ॥ ६९ ॥

उनके हजारों बाण आकाशमें तीखे शस्त्रोंसे टकराते और
उड़ हो तोड़कर टुकड़े टुकड़े कर डालते थे ॥ ६९ ॥

स धभूर रणो घोरस्तयोवाणमयश्चय ।

अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्या सज्जे कुशमयश्च य ॥ ७० ॥

वह यद्वा भयकर युद्ध हो रहा था । उल्लेख उन दोनोंके
बाणोंका समूह यशमें गाढ़पत्त और आहवनीय नामक दो
प्रज्वलित अग्निधोंके साथ बिछे हुए कुन्नोंके ठेरकी भाँति आन
पड़ता था ॥ ७० ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टासीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इमं प्रहार धारात्मिकनिमित्त आरामायण आदिकाव्यं युद्धकाण्डमें अष्टासीतीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

तयो कृतघ्नौ देहौ शुश्रुभाते महात्मनो ।

सुपुष्पाधिव निष्पन्नौ वने किङ्कशात्मनौ ॥ ७१ ॥

उन दोनों महामनस्वी वीरोंके क्षत-विक्षत शरीर वनमें पत्र
हीन एवं खाल पुष्पोंसे भरे हुए पलाश और सेमलके वृक्षोंके
समान सुशोभित होते थे ॥ ७१ ॥

चक्रतुस्तुल घोर सनिपात मुहुर्मुहुः ।

इन्द्रजिह्वक्षमणश्चैव परस्परजयैपिणौ ॥ ७२ ॥

एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले इन्द्रजिह्व और लक्ष्मण
रह-रहकर बारबार भयकर मार-काट मचाते थे ॥ ७२ ॥

लक्ष्मणो रावर्णि युजे रात्रिणश्चापि लक्ष्मणम् ।

अन्योन्य तावभिज्जन्तौ न भ्रम प्रतिपद्यताम् ॥ ७३ ॥

लक्ष्मण रणभूमिमें रावणकुमारपर चोट करते थे और
रावणकुमार लक्ष्मणपर । इस तरह एक दूसरेपर प्रहार करते
हुए वे वीर थकते नहीं थे ॥ ७३ ॥

याणजाले शरीरस्यैरवगाढैस्तरसिनौ ।

शुश्रुभाते महावीरौ प्ररूढाधिर परतौ ॥ ७४ ॥

उन दोनों वेगावाली वीरोंके शरीरमें बाणोंके समूह धँस
गये थे; इन्हलिये वे दोनों महापराक्रमी योद्धा जिनपर बहुतसे
बृहत् उग आये हों; उन दो परतोंके समान शोभा
पाते थे ॥ ७४ ॥

तयो रुधिरसिकानि सवृत्तानि शरैर्वृशम् ।

वध्राशुः सर्वगात्राणि ज्वलन्त इव पावकाः ॥ ७५ ॥

बाणोंसे ढके और खूनसे भीगे हुए उन दोनोंके शरीर
अश्रु जलती हुई आगके समान उद्दीप्त हो रहे थे ॥ ७५ ॥

तयोरथ महान् कालो व्यतीयाद् युध्यमानयो ।

न च तौ शुखैमुत्स्य भ्रम धाव्यभिजन्मतुः ॥ ७६ ॥

इस तरह युद्ध करते-करते उन दोनोंका बहुत समय व्यतीत
हो गया परन्तु वे दोनों न तो युद्धसे निमुल हुए और न उन्हें
थकावट ही हुई ॥ ७६ ॥

अथ समरपरिग्रम निहतु

समरमुखेऽप्यजितस्य लक्ष्मणस्य ।

प्रियहितमुपपादन्य महात्मा

समरमुपेत्य विभीषणोऽवतस्थ ॥ ७७ ॥

युद्धके मुहानेपर पराजित न होनेवाले लक्ष्मणके युद्धजनित
भयका निवारण तथा उनका प्रिय एवं हितका सम्पान करनेके
लिये महात्मा विभीषण युद्धभूमिमें आकर पड़े हो गया ॥ ७७ ॥

एकोनवतितम सर्ग

विभीषणका राक्षसोंपर प्रहार, उनका वानरयूथपतिवोंको प्रोत्साहन देना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रनिवृत्ते सारथिका और वानरोंद्वारा उसके घोड़ोंका वध

युध्यमानौ ततो हृद्वा प्रमत्तौ नरराक्षसौ ।
प्रभिप्रायि मातङ्गौ परम्परजयैरिणौ ॥ १ ॥
तयोर्युद्धं द्रष्टुकामो परचापधरो यती ।
शूरा स रायणभ्राता तस्यौ सग्राममूर्धनि ॥ २ ॥

लक्ष्मण और इन्द्रजित्का दो मदमत्त हाथियोंकी मौलियाँ परस्पर बिबर पानेकी इच्छासे युद्धासक्त होकर लड़ते देख उन दोनोंक युद्धको देखनेकी इच्छासे रायणक बलवान् भाईशूचीर विभीषण सुन्दर धनुष धारण किया उस युद्धर मुहानेपर आकर खड़े हो गये ॥ १ ॥ २ ॥

ततो रिम्काट्यामास महद् धनुरवस्थित ।
उत्ससन च तीक्ष्णाग्रान् राक्षसेषु महादारान् ॥ ३ ॥

वहाँ लड़े होकर उन्होंने अपने विद्याल धनुषको खोचा और राक्षसोंपर तेज धारवाले बड़े-बड़े बाणोंका बरखाना आरम्भ किया ॥ ३ ॥

ते दारा शिपिसस्पदा निपन्त समहिता ।
राक्षसान् द्राययामासुवज्राणीन् महागिरिन् ॥ ४ ॥

वैने वज्र नामक अस्त्र बड़े-बड़े पर्वतोंको गिराकर देन है, उसी प्रकार विभीषण चलाये हुए वे बाण, निम्न सार्य आगके समान जलनेवाले थे, राक्षसोंपर गिरकर उनके अङ्गोंको चीरने लगे ॥ ४ ॥

विभीषणस्यानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टिदौ ।
विचित्रदु समरेषीगन् राक्षसान् राक्षसोचमा ॥ ५ ॥

विभीषणक अनुचर भी राक्षसोंमें श्रेष्ठ वीर थे अतः वे भी समराङ्गमें शूल, तल्वार और पट्टियोंद्वारा वीर राक्षसोंका संहार करने लगे ॥ ५ ॥

राक्षसैस्तैः परिवृत स तदा तु विभीषण ।
यमौ मय्ये प्रपृष्टाना वज्रभानाभिर द्विष ॥ ६ ॥

उन चारों राक्षसोंमें फिर हुए विभीषण पूछ गवरायकों कीचमें लड़े हुए गवरायकी मौलियाँ पाता था ॥ ६ ॥

तत सचोदमानो वै हरीन् रभोऽपधियात् ।
उजाच यान काले कालो रभसा वर ॥ ७ ॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ विभीषण समन्वित कर्तव्यका करने से, इच्छिये उन्होंने वानरोंक, जिन्हें राक्षसोंका वध करना पड़ा था युद्धर लिये प्रति करत हुए थे समस्त अनुग्रह बन रही—॥ ७ ॥

एकोऽय राभमेन्द्रस्य परायणमग्रमिव ।
एतच्छेप यत् तस्य किं निष्ठुन लीय्यता ॥ ८ ॥

वानरधरा । अरु लड़-लड़ कर देखत हा । राक्षस्य

रायणका यह एकमात्र साथी है, जो तुम्हारे सामने खड़ा है । राणाकी सेनाका इतना ही साथ अब नेरा रह गया है ॥ ८ ॥

असिश्च निहत पापे राक्षसे रणमूधनि ।
रावण वनयित्वा तु शेषमस्य यत् हतम् ॥ ९ ॥

एक युद्धर मुहानेपर इस वीर राक्षस इन्द्रजित्क मारे जानेपर रायणको छोड़कर उसकी सारी सेनाका मरी हुई थी समस्त ॥ ९ ॥

प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महायत् ।
कुम्भकण्ठश्च कुम्भश्च धूम्रापश्च निदाचर ॥ १० ॥

वीर प्रहस्त मारा गया, महावली निकुम्भ कुम्भरज, कुम्भ तथा निगाचर धूम्राश्च भी बलवान् गायमें चले गये ॥ १० ॥

जम्बुमाली महामाली तीक्ष्णगोऽशनिप्रभ ।
सुप्तजो यमरोपश्च वज्रदंष्ट्रश्च रावणस ॥ ११ ॥

महानी विकटोऽरिष्णस्तपनो मन्द एव च ।
प्रयास प्रयसश्चैव प्रजहो जह एव च ॥ १२ ॥

अग्निवैतुश्च दुधर्पो रश्मिवैतुश्च वीरयान् ।
त्रिपुत्रिहो द्विजिह्वश्च स्यशत्रुश्च रावणस ॥ १३ ॥

अकम्पन सुपाश्वश्च चक्रमाली च राक्षस ।
कम्पन सत्यन्तौ सौ द्रामन्तरनरान्तकौ ॥ १४ ॥

जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवक्त्र, अग्निप्रभ, सुप्तज, यमरोप, राक्षस उग्रदंष्ट्र, लड़ाई, विकट, अरिज, तप्त, मन्द, प्रयस, प्रयत्न, प्रजहो, जहो, दुर्जन अश्विकट, पराक्रमी रश्मिवैतु, त्रिपुत्रिहो द्विजिह्व, राक्षस शत्रुघ्न, अकम्पन, सुपाश, निगाचर चक्रमाली कम्पन तथा वे दोनों शक्तिशाली वीर देववन्दक और नरान्तक—ये सभी मार कर चुके हैं ॥ ११—१४ ॥

एतान् निहत्यागिरिगन्धर्वान् राक्षससमस्तमान् ।
वाटुग्या मारग तीव्रा लङ्घयता गोप्य लघु ॥ १ ॥

इन अत्यन्त बलावाली वटुग्याक राक्षसोंमें सेना का वध करके गुनगाओंने हाथोंमें तेजकर समुद्र पार कर लिया है । अब राक्षसोंका संहार था राक्षसोंका वध करवा हुआ है । अतः हम भी जान ही लें राक्षस ॥ १५ ॥

एताश्चैव शय यो जेतयमिति धारता ।
हता सर्वे समागम्य रावणस्य पत्न्यर्पिता ॥ १६ ॥

वानर । इतनी ही राक्षसोंने और मार कर गयी है, जिसे तुम्हें जीतना है । अपने समस्त राक्षसोंको मारकर समागम्य तुम्हारे सिद्धि कर मारे थे चुके हैं ॥ १६ ॥

अयुध निधन कर्तुं पुत्रस्य अननुमन ।

घृणामपास्य रामायं निहन्त्या भ्रातुरात्मजम् ॥ १७ ॥

यै इसके बापरा भाद हैं । इस नामे यह मेरा पुत्र है । अत मेरे लिये इसका मर्ष करना अनुचित है, तथापि भीरुम चन्द्रजीके लिये दयाका तिलाञ्जलि दे मैं अपने इस मतीविको मारनेके लिये उद्यत हूँ ॥ १७ ॥

हनुकामस्य मे याप्प चक्षुश्चैव निक्षयति ।
तमेवैव महाबाहुलक्ष्मण शमयिष्यति ॥ १८ ॥

जब मैं स्वय मारनेके लिये इसपर हथियार चलाना चाहता हूँ, उस समय आँसू मेरी दृष्टि बंद कर देते हैं, अत ये महाबाहु लक्ष्मण ही इसका निनाश करेंगे ॥ १८ ॥

घानरा ध्वत मम्भूय धृत्यानस्य समीपगान् ।
इति तेनातिपशसा राक्षसेनाभिचोदिता ॥ १९ ॥
घानरेद्वा जह्विरे लाहलानि च विव्यधु ।

‘घानरे’ । दुमलोग छुड़ बनाकर इतने समीपगताँ सेवकों पर दूट पड़ो और उन्हें मार डालो ।’ इस प्रकार अत्यन्त यशस्वी राक्षस विभीषणके प्रेरित करनेपर घानरूपपति हर्षऔर उत्साह से मर गये तथा अपनी दूँध पटकने लगे ॥ १९ ॥ ततस्तु कपिचार्दुला ह्येडन्तश्च पुन पुन । मुमुक्षुर्विनिधान् नाशान् मेघान् हृष्टेयं वह्निं ॥ २० ॥

किर वे सिंहके समान पराक्रमी घानर बारबार गर्जते हुए उसी तरह नाना प्रकारके शब्द करने लगे, जैसे बादलोंको देखकर मोर अपनी बोली बोलने लगते हैं ॥ २० ॥
जाम्बवानपि तै सनै खयुधैरभिसवृत ।
तेऽश्मभिस्ताडयामासुर्नैर्दन्तैश्च राक्षसान् ॥ २१ ॥

अपने मूषणाले समस्त मालुओंसे विरे हुए जाम्बवान् तथा वे घानर यक्षरों, नलों और दौताँसे वहाँ राक्षसोंको पीटने लगे ॥ २१ ॥

निज्जन्तमुद्राधिपतिं राक्षसास्ते महाबल ।
परियमुभय त्यक्त्वा तमनेकनिधायुधा ॥ २२ ॥

अपने ऊपर प्रहार करते हुए श्रृङ्खणज जाम्बवान्को उन महाबली राक्षसोंने मय छोड़कर चारों ओरसे घेर लिया । उनके हाथमें अनेक प्रकारके अस्त्र-नास्त्र थे ॥ २२ ॥
शरै परागुमिस्तीक्ष्णै पट्टिद्वैर्यष्टितोमरै ।
जाम्बवन्त मृधे जघ्नुर्निज्जन्त राक्षसाँ घमूम् ॥ २३ ॥

वे राक्षस सेनाका छहार करनेवाले जाम्बवान्पर युद्धस्थल में बाणों, तीरों पत्थरों, पट्टियों, बडों और तामरोंद्वारा प्रहार करने लगे ॥ २३ ॥

स सगम्हास्तुमुल सज्जे कपरिक्षसाम् ।
वेधामुगणा हुद्धाना यथा भीमो महात्सन ॥ २४ ॥

वानरों और राक्षसोंका यह महायुद्ध क्रोधसे भरे हुए देवताओं और अमुर्खों संग्रामकी भाँति बढ़ा मयकर हो चला । उद्यमों यद्दे अर-अरने भयानक बोलाहल होने लगा ॥ २४ ॥

हनुमानपि सक्नुद सालमुत्पाद्य पर्वतात् ।
स लक्ष्मण स्वय पृष्ठादवरोप्य महामना ॥ २५ ॥
रक्षसा कदन चक्रे दुरासाद सहस्रश ।

उस समय महामनावी हनुमानजीने लक्ष्मणको अपनी पीठसे उतार दिया और स्वय भी अत्यन्त कुपित हो पर्वतगिरासे एक सालकृष्ण उपाङ्गक सहस्रो राक्षसोंका संहार करने लगे । ‘गुञ्जीके लिये उन्हें पराल करना बहुत ही कठिन था ॥ २५ ॥

स द्रव्या तुमुल युद्ध पितृव्यस्येद्रजिद् गली ॥ २६ ॥
लक्ष्मण परवीरघ्न पुनरोद्यम्यधावत ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले बलवान् इन्द्रजित्ने अपने चाचाको भी घोर युद्धका अवसर देकर पुन लक्ष्मणपर धावा किया ॥ २६ ॥

तौ प्रयुद्धौ तदा धीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ ॥ २७ ॥
शरौघानभिवर्णन्तौ जघ्ननुत्तौ परस्परम् ।

लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों धीर उस समय रणभूमिमें बड़े वेगसे जूझने लगे । वे दोनों बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २७ ॥

अभीक्ष्णमन्तर्धत्तु शरजालैर्महारलै ॥ २८ ॥
खट्वादित्याधिवोष्णात् यथा मेघैस्तारयिनी ।

वे महाबली धीर बाणोंका बाल-सा बिजड़कर बारबार एक दूसरेको टक देते थे । ठीक उसी तरह, जैसे बघाकालमें वेग-शाली चन्द्रमा और सूर्य बादलोंसे आच्छादित हो बाधा करते हैं ॥ २८ ॥

नद्यावान न सधान धनुषो वा परिग्रह ॥ २९ ॥
न विप्रमोक्षे वाणाग न विफर्यो न विग्रह ।
न मुष्टिप्रतिस्थान न लक्ष्यप्रतिपादनम् ॥ ३० ॥
अदृश्यत तयोस्तत्र पुण्यतो पाणिनाघनात् ।

युद्धम लगे हुए उन दोनों धीरोंके हाथोंमें इतनी कुती थी कि तरकलमें बाणोंका निशालना, उनको धनुषपर रखना, धनुषको इस हाथसे उस हाथमें लेना, उसे मुझीमें दृढ़तापूर्वक पकड़ना, कामतक खींचना, बाणोंका निभाग करना, उन्हें छोड़ना और लक्ष्य वेधना आदि कुछ भी दिवावी नहीं पड़ता था ॥ २९ ३० ॥

चापवेगमयुक्तैश्च वाणाजालै समन्तत ॥ ३१ ॥
अन्तरिक्षेऽभिसम्पन्ने न रूपति चकाशिरे ।

धनुषके वेगसे छोड़े गये बाणसमूहोंद्वारा आकाश सब ओरसे ढक गया । अत उसमें शस्त्र यत्तुओंका दीखना बंद हो गया ॥ ३१ ॥

लक्ष्मणो गरजति प्राप्य रावणिद्रापि लक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥
अप्ययस्या अवस्थुषा ताभ्यामन्योन्यत्रिप्रदे ।

लक्ष्मण रावणद्वाराके पास पहुँचकर और रावणद्वारा

लक्षणं निश्चयं ब्रूयते दोषो परस्परं नृणाम् ॥ इतः प्रथमं
युद्धं वरतं हुप जव वे एक दूरेपरं प्रहारं करने लगते, तब
भरत अथवा पैदा ॥ ३१ ॥
हामी ॥ ३२ ॥

ताम्यामुभाभ्या तरसा प्रच्छेदितैः शितैः ॥ ३३ ॥
निरन्तरमिधामादा यमूय तमसा वृत्तम् ॥

उन दोनों के द्वारा वगैरह अड़े गये तीले काणों से
आकाश ठगठग मरे गये और वहाँ जैपेय छा गया ॥ ३३ ॥
तैः पतद्भिस्त्वयं वृत्तमिधामादा शरशतैः शितैः ॥ ३४ ॥
दिशश्च प्रदिशश्च यमूय शरसक्तम् ॥

वहाँ गिरते हुए बहुसंख्य अक्षों और सैकड़ों तीले
आकाशों से वृत्त दिशाएँ और विदिशाएँ भी व्याप्त हो गयीं ॥ ३४ ॥
तमसा पिहितं सवमासीत् प्रतिभयं महत् ॥ ३५ ॥
अस्तं गते सहस्रांशौ सवृत्ते तमसा च वै ॥
दधिरीवा महानद्यं प्रायतन्त सहस्रदा ॥ ३६ ॥

अब सब कुछ अथाराने आच्छन्न हो गया और वहाँ
मपानक रूप दिवासी देने लगा ॥ सूर्य अस्त हो गये, सब
आर भँसे पड़ गया और उसके प्रदाने पूरा सखों बड़ी
बड़ी नदियाँ बह चली ॥ ३५-३६ ॥

प्रभ्यादा दारुणा धारिभिक्षिपुर्भूमिनिम्बान् ॥
न तदानीं यमौ चायुजं च जन्वात् पावकं ॥ ३७ ॥

आसन्नं भयं वृत्तं अनी वाणीद्वारा भयानक गूँद
प्रकट करने लगे ॥ उस समय न तो वायु चलनी थी और न
आग ही प्रचलित होती थी ॥ ३७ ॥

म्यस्यस्तु लोकेभ्य इति जनह्युक्ते महयय ॥
सम्प्रेतुश्चाप सतता गन्धश्च सह चागौ ॥ ३८ ॥

महर्षिणा वत् ॥—समाका वत् ॥
समय गन्धर्वों वहाँ कतन हुआ ॥ ये कारणों से वहाँ
भाग चले ॥ ३८ ॥

अथ रागमसिंहस्य वृष्णात् कनकभूषणम् ॥
शरैश्चतुर्भिः श्रीमित्रिविष्याद्यं चतुर्गे हयान् ॥ ३९ ॥

तन्मनः लम्बाने चार बाज भरकर उस राक्षस के
अनेक अमूर्तों से उसे हुए का गन्धर्वों के दोहों
बैठ दिया ॥ ३९ ॥

नतोऽपरेण भल्लेन पीनेन निशितं च ॥
सम्भूषणमुनेन सुप्रेण सुवस्मा ॥ ४० ॥
महेन्द्राश्विनस्येन सृष्ट्यं चिचरिष्यत ॥
स तेन पाणादानिन्यं सन्दादानुनाम्नि ॥ ४१ ॥
नपराद् राघवं धीमाशितं वयादापारम् ॥

तन्मात् राक्षसन्दनं भिन्नं स्रज्जने दूरे दले,

पानीदार सुन्दर वस्त्र और चमकीले मन्त्रों से अर्द्ध वस्त्र
अमात्रा करता था तथा जिसे कानतक भीचकर छोड़ा गया
था, रात्रि में निचरते हुए हस्तिकारणिका मन्त्र
गीमात्रावृत्त पहले अलग कर दिया ॥ वह वस्त्र वत्त दूने के
साथ ही हस्तिकारणिका अनुनादित हो कनकाना हुआ
आगे वत्त था ॥ ४०-४१ ॥

स यन्तरी महातेजा हते मन्दोदरीसुत ॥ ४२ ॥
सय सारथ्यमकरोत् पुनश्च धनुस्सृजत् ॥
सद्वृत्तमभूत् तत्र सारथ्यं पश्यता युधि ॥ ४३ ॥

सारथि के मारे जाने पर महातेजी मन्दोदरीसुत इन्द्र
जित् स्वयं ही सारथिका भी काम सम्भाला—वर्णों भी
अबू में खड़ा और फिर धनुष भी चलाता था ॥ सुदसल में
उठके द्वारा वहाँ सारथिक कार्य भी सम्पादन होना दर्शकों की
दृष्टि में बड़ी अद्भुत बात थी ॥ ४२-४३ ॥

ह्येषु व्यग्रहस्तं च विष्याद्यं निशितं शरैः ॥
धनुष्यथ पुनर्व्यग्रह्येषु मुमुचे शरान् ॥ ४४ ॥

इन्द्रजित् अब वहाँ से निकले के लिये हाथ बढ़ाया, तब
लक्ष्मी उसे तीले वगैरह सेपने लगने और अब वह सुदसल
लिये धनुष उठाया, तब उसने बाँझों काणों का प्रहार
करते थे ॥ ४४ ॥

छिद्रेषु तेषु वाणैर्धर्मिचरन्तमभीतवत् ॥
अदयामास समरे सौमित्रि शीघ्रहृत्तम ॥ ४५ ॥

उन छिद्रों (बाजों के अक्षों) में शीघ्रावृत्त
हाथ चलने लगे सुमित्रासुर लक्ष्मी ने समग्राने निर्मय
से निचरते हुए इन्द्रजित् के अनेक बाणों द्वारा अत्यन्त
पीड़ित कर दिया ॥ ४५ ॥

निहत सारथिं दृष्ट्वा समरे रागनामच ॥
प्रजहौ समरोदरं निगणं स यमूय ह ॥ ४६ ॥

समरभूमि में सारथि का मरण गाने पर रागनामने
सुदसल के अक्षों से लगे दिया ॥ वह निगमने दूब गया ॥
निगणमदनं दृष्ट्वा राक्षसं हृत्तमूयया ॥

तब परमसहृष्ट लक्ष्मी का मूयपूजयत् ॥ ४७ ॥
उस राक्षस सुन्दर निगम छाया हुआ देख न बनकर
यूयसि बड़े शत्रु हुए और लक्ष्मी की नृ-नृ प्रणम
करने लगे ॥ ४७ ॥

तत्र प्रमापी रभसं शम्भो गन्धमानम् ॥
अभ्युपमाणाद्यं राक्षसं हृत्तमूयया ॥ ४८ ॥
तत्राभ्युपमापी, रभस रभस और गन्धमान—इन
चार कारणों से अभय भरकर अपना महान् वज्र
प्रकट किया ॥ ४८ ॥

ते चाप्य ह्यमुष्येषु गूणमुपपन्नं धनम् ॥
चतुष्टु सुमदायाया निपतुर्भीमप्रियमा ॥ ४९ ॥

वे चारों बानर महान् बलशाली और भयंकर पराक्रमी
थे । वे सहसा उछलकर इन्द्रजित् के चारों ओरोंपर कूद पड़े ॥
तेषामधिष्ठिताना तैरानै परतोपमै ।

मुखेभ्यो रुधिर व्यक्त ह्याना समवर्तत ॥ ५० ॥

उन पन्ताकार बानरोंके भारसे दश जानेक बारण उन
घोड़ोंके मुँहसे खून निकलने लगा ॥ ५० ॥

ते ह्या मथिता भग्ना द्यसवो धरणीं गताः ।

ते निहत्य ह्यास्तस्य प्रमथ्य च महारथम् ।

पुनरुत्पत्य धेगेन तस्युर्लक्ष्मणपादवर्तत ॥ ५१ ॥

उनसे रौंदे जानेके कारण घोड़ोंके अङ्ग भङ्ग हो गये और
वे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । इस प्रकार घोड़ोंकी जान
ले इन्द्रजित् के विशाल रथसे भी तोड़ फोड़कर वे चारों
बानर पुन वेगसे उछले और लक्ष्मणके पास आकर लड़े
हो गये ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकान्वतिनाम सर्गः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें नवतिवर्त्त सर्ग पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नवतितम' सर्ग'

इन्द्रजित् और लक्ष्मणका मयंकर युद्ध तथा इन्द्रजित्का वध

स हताभ्यो महातेजा भूमौ तिष्ठन् निशाचर' ।

इन्द्रजित् परमक्रुद्धः सग्नप्रज्ज्वाल तेजसा ॥ १ ॥

घोड़ोंके मारे जानेपर पृथ्वीपर पड़े हुए महातेजस्वी
निशाचर इन्द्रजित् का क्रोध बहुत बढ़ गया । वह तजने
प्रमत्त-निद्रा हो उठा ॥ १ ॥

सौ धन्वनी जघासन्तापन्योन्यमिपुभिर्भृशम् ।

बिजयेनाभिनिष्पान्तौ घने गजशृपाविव ॥ २ ॥

इन्द्रजित् और लक्ष्मण दोनोंने हाथम घुनस थे । दोनों
ही अपनी अपनी विजयके लिये एक दूसरेके सम्मुख युद्धमें
प्रवृत्त हुए थे । वे अपने बाणोंद्वारा परस्पर घबड़ी इच्छा
रखकर वनमें लड़नेके लिये निकले हुए दो गजपंजोंके समान
एक दूसरेपर गहरी चोट करने लगे ॥ २ ॥

निराहयन्तापन्योन्य ते राक्षसशनैकस ।

भर्तार न जह्युर्दुस्ते सग्नपन्तस्तनस्तस ॥ ३ ॥

बानर और उष्ट्र भी परस्पर सहार करते हुए इसपर
उपर दौड़ते रहे परन्तु अपने अपने स्वामीका साथ न छोड़
रहे ॥ ३ ॥

तनस्तान् राक्षसान् सजगद्दृश्यन् राणात्मज ।

स्तुन्वाना ह्यमाणश्च इद यत्नमप्रवीक्ष ॥ ४ ॥

तन्मन्तर राजकुमारने प्रसन्न हो प्रशंसा करने शरणागता
हर्ष पदति हुए कहा— ॥ ४ ॥

तमसा यदुल्लेखेना ससजगत् सजतो दिश ।

स हताभ्यादबप्लुत्य रथामथितसारथि ।

शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणि ॥ ५२ ॥

सारथि तो पहले ही मारा गया था । अब घोड़े भी मार
झले गये, तब राजकुमार रथसे कूद पड़ा और बाणोंकी वर्षा
करता हुआ सुमित्राकुमारकी ओर गया ॥ ५२ ॥

ततो महेन्द्रप्रतिम स लक्ष्मणः

पदातिन त निहतेर्ह्योत्तमै ।

सृजन्तमाजौ निशितान्दुरोत्तमान्

भुश तदा बाणगणैश्चदारयत् ॥ ५३ ॥

उस समय इन्द्रके समान पराक्रमी लक्ष्मणने श्रेष्ठ घोड़ोंके
मार जानेसे पैदल चलकर युद्धमें तीव्र उत्तम बाणोंकी वर्षा
करते हुए इन्द्रजित् का अपने बाणसमूहोंकी मारसे अत्यन्त
घायल कर दिया ॥ ५३ ॥

नेह निशापते खो धा परो धा राक्षसोत्तमा ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ निशाचरो ! चारों दिशाओंमें अधिकार छा रहा
है, अतः यहाँ अपने या पड़येकी पहचान नहीं हो रही है ॥

भृष्ट भ्रान्तो युष्मत्तु हरीणा मोहनाय वै ।

अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि सयुगे ॥ ६ ॥

तथा भवन्त कुर्वन्तु यद्येमे हि धनौकस ।

न युष्येयुमहात्मान प्रविष्टे नगर मयि ॥ ७ ॥

इसलिये मैं जाता हूँ । दूसरे रथपर बैठकर शीघ्र ही

युद्धके लिये आऊँगा । तबतक तुमलोग बानरोंको मोहने

बालनेके लिय निर्मय होकर ऐसा युद्ध करो, जिससे ये महा

मनस्वी बानर नगरमें प्रवेश करने समय मेरा सामना करनेके

लिये न आँगे ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा धनौकस ।

प्रविवेश पुरीं ह्वा रथहेतोर्निग्रहा ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर राजकुमार रावणकुमार बानरोंको चकमा दे

रथके लिये लङ्कापुरीमें चला गया ॥ ८ ॥

स रथ भूषयित्वाय रुचिर ऐमभूषितम् ।

प्रसासितारसयुक्त युन परमघातिभि ॥ ९ ॥

अधिष्ठित हयसेन सूतेनासोपदेशिना ।

आरुरोह महातेजा रावणि समितिजय ॥ १० ॥

उसने एक सुशोभित सुन्दर रथसे सज्जकर उसके

ऊपर प्राण, गज तथा बाण आदि आशयक सामग्री रखी,

स्त्रि तस्मै उत्तम पदे धृतवाने और अथ हौकनेकी विषाफे
ज्ञानकार तथा स्त्रिहर उपदेश देनेवाले शायिको उसपर
विदाकर वह मगतेज्ज्वी समप्रियकी रावणकुमार स्वयं भी
उस रथपर आरु हुआ ॥ ११० ॥

स राक्षसगणैर्मुख्यैषुतो मन्दोदरीमुत् ।
निर्गयी नगराद् वीरः घ्नान्तथलचोदित ॥ १११ ॥

स्त्रि प्रभुन राक्षसों के साथ ८ वीर मन्दोदरीकुमार फाल
शक्तिसे प्रति हो नगरसे बाहर निकला ॥ १११ ॥

सोऽभिनिष्पत्य नगरादिन्द्रजित् परमौनसा ।
अभ्ययाज्जनैरश्वैरक्षमण सविभीषणम् ॥ ११२ ॥

नगरसे निकलकर इन्द्रजित्ने अपने बैगावली घेड़ों द्वारा
विभीषणसे ही लक्ष्मण बन्धुवक भावा किया ॥ ११२ ॥

ततो रथस्यामालोक्य सौमित्री रावणात्मजम् ।
यानराज्य महावीरा राक्षसश्च विभीषणम् ॥ ११३ ॥

विसर परम जमुलायवान् तस्य धीमता ।

रवाकुमारको रथ पर बैठा देख सुमित्रनन्दन लक्ष्मण,
महाराजकी बानरगा तथा राक्षसपर विभीषण—उसका बड़ा
विसर हुआ । सभी उस बुद्धिमान् निगावरकी कुर्तों देखकर
दंग रह गये ॥ ११३ ॥

राणिश्चापि सकुब्धो रणे यानरयूयपान् ॥ ११४ ॥
पातयामास याणौघैः शतशोऽप्य सहस्रदा ।

तस्यैवात् श्रेष्ठे मरे हुए रावणपुत्रने अपने बाणकुर्तों
द्वारा राभूमिमें सैकड़ों और हजारों बानर-यूयगतिवोंको गिराना
आरम्भ किया ॥ ११४ ॥

स मण्डलीकृतधनु राणिः समितिजयः ॥ ११५ ॥
हरीनम्पहतत् क्षुब्ध पर लाघवमास्थितः ।

मुद्रितवती रवाकुमारने अपने धनुषका इतना शौचा
कि वह मण्डलाकार बन गया । उसने कुतित हो बड़ी सीमाके
मग बनवोंका शर आरम्भ किया ॥ ११५ ॥

ते वक्ष्यमाना हरयो नापचैर्भामिविक्रमाः ॥ ११६ ॥
सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रयाणतिमिव प्रजाः ।

उसने नापचैरी मर गये हुए मयनक पराक्रमी
बानर सुमित्रकुमार लक्ष्मणकी शरणने गये, मना
प्रभने प्रयतिती शरा हो हो ॥ ११६ ॥

ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः ।
चिच्छेद कामुक तस्य दशायन् पाणिताघरम् ॥ ११७ ॥

तब धनुरे मुदने रघुनन्दन लक्ष्मण क्रोध मड़क
उठा । ये देखते सब उठे और उन्होंने अपने हाथकी कुर्तों
पिभाते हुए उस राक्षस धनुषका काट दिया ॥ ११७ ॥

सोऽप्यन्धमुक्तमाश्रय सप्त चक्षे त्यदस्थितः ।
सप्यस्य त्रिभिषाणैरक्षमणो निरहन्तः ॥ ११८ ॥

यह देख उस निशाचरने तुरत ही दूध धनुष उखर
उसपर प्रत्यक्षा चलायी परतु लक्ष्मणने तीन बाण मारकर
उसका उस धनुषको भी काट दिया ॥ ११८ ॥

अयैन छिन्नधन्वानमाशीशिरशिपोमै ।
विष्यापोरसि सौमित्री राणिं पञ्चभिः शरैः ॥ ११९ ॥

धनुष कट जानेर निशाचर सर्वे स्मान पाँच मड़क
बाणोंद्वारा सुमित्राकुमारने रावापुत्रकी छात्रने मरत बग
पहुँचायी ॥ ११९ ॥

ते तस्य क्षाय निर्भिद्य महाकामुकिं खना ।
निपेतुर्धरणीं याणा रवा इव महोरगा ॥ १२० ॥

उनके विघात धनुने हुए हुए वे बाण इन्द्रजित्का
शरीर छेदकर रात रात बड़े-बड़े लक्ष्मण लक्ष्मण
गिर पड़े ॥ १२० ॥

न छिन्नधन्वा रुधिर धमन् वक्षत्रेण राणिः ।
अप्राह कामुकप्रेष्ठ इदं ज्य यलवत्तरम् ॥ १२१ ॥

धनुष कट जानेर उन बाणोंकी बग खाकर मुँहसे रक्त
धमन करते हुए रावापुत्रने पुन एक मड़क धनुष हाथमें
लिया । उसकी प्रत्यक्षा भी बहुत ही दृष्ट थी ॥ १२१ ॥

स लक्ष्मण समुद्दिश्य पर लाघवमास्थितः ।
वर्यं शरव्याणि वयाणीय पुरदत् ॥ १२२ ॥

स्त्रि ता उसने लक्ष्मणको लक्ष्मण करन बड़ी कुर्तों साथ
बाणोंकी बग आरम्भ कर दी । मना देरपन इन्द्र बल बरान
रहे हैं ॥ १२२ ॥

मुचमिन्द्रजिता सत्तु शरव्यमर्तदमः ।
आधारयदसम्भ्रान्तो लक्ष्मण मुदुपासदम् ॥ १२३ ॥

यवने इन्द्रजित्द्वारा की गयी उस बाणराक्षस रक्षना
बहुत ही कठिन था, ता भी राघुदमन लक्ष्मणने बिना किसी
परायदक उसको रोक दिया ॥ १२३ ॥

सदशयामास तदा राणिं रघुनन्दनः ।
असम्भ्रान्तो महातेजसाद्दुतमिगामयत् ॥ १२४ ॥

रघुनन्दन मगतेज्ज्वी लक्ष्मण लक्ष्मणने तनिक भी
परायद नहीं थी । उन्होंने उस रावाकुमारको अपना
पौरय लिया । वह अद्भुत-तत्वा ही था ॥ १२४ ॥

ततस्तान् राघसान् स्यात्त्रिभिरेकैकमाहव ।
अशिष्यत् परमकुन्दः क्षीमाग्र सग्नदर्शयत् ॥ १२५ ॥

राघसे द्रष्टुन चापि याणौघैः समताडयत् ॥ १२५ ॥
उन्होंने अन्त कुतित हा मना लक्ष्मण-सन्तानकी
कक्षा प्रदर्शन करते हुए उन लक्ष्मण लक्ष्मणने प्रत्यक्षा
शरीरने तीन-छन बाण मारकर लक्ष्मण कर दिया तथा लक्ष्मण
राघव पुत्र इन्द्रजित् की मने बाण-मन्दोद्वारा गयी बग
पहुँचायी ॥ १२५ ॥

सोऽतिविद्धो पल्लवता शशुणा शशुघातिना ।

असक्त प्रेययामास लक्ष्मणाय वहुञ्चारान् ॥ २६ ॥

शशुहन्ता प्रयत्न शशुके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर

इन्द्रजित्ने लक्ष्मणपर व्याघात बहुत बाण बरसाये ॥ २६ ॥

तानप्राप्ताश्रितैर्यापैश्चिच्छेद् परधीरहा ।

सारयेरस्य च रणे रयिनो रथसत्तमम् ॥ २७ ॥

शिरो जहार धमात्मा भल्लेनानतपर्वणा ।

परत् शशुवीर्यका सहार करनेवाले रथियोंमें अष्ट धमात्मा

लक्ष्मणने अपने पाठक पहुँचनेसे पहले ही उन बाणोंको

अपने हाथे हाथोंद्वारा काट डाला और रणभूमिमें रथी

इन्द्रजित्के सारथिना मल्ल भी हथी हुई गाँठवाले भल्लसे

उड़ा दिया ॥ २७ ॥

अस्त्रास्ते हयास्तत्र रथमुहुरविक्रमा ॥ २८ ॥

मण्डलान्यभिधावन्ति तद्भुतमिषाभवत् ।

सारथिने म रहनेपर भी वहाँ उसके घोड़े 'याकुल नहीं

हुए । पूर्वपक्ष शान्तभावसे रथको दोते रहे और विभिन्न

प्रकारके पैतरे बदलते हुए मण्डलवार गतिमें दौड़ लगाते रहे ।

वह एक अद्भुत-सी बात थी ॥ २८ ॥

अमर्षवशमापन्न सौमित्रिर्दृढविक्रम ॥ २९ ॥

प्रत्यविध्यद्वयास्तस्य शरैर्विभ्रासयन् रणे ।

मुदट पराक्रमी सुमित्राकुमार लक्ष्मण अमर्षके बशीरुत

हो रणक्षेत्रमें उसके घोड़ोंको मयभीत करनेके लिये उन्हें

बाणोंसे बेधने लगे ॥ २९ ॥

अमर्षमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो रणे ॥ ३० ॥

विष्याथ दशभिषाणै सौमित्रि तममर्षणम् ।

रावणकुमार इन्द्रजित् मुदत्तल्लमें लक्ष्मणने इस पराक्रम

को नहीं सह सहा । उहाँ उन अमर्षशील सुमित्राकुमारको दस

बाण मारे ॥ ३० ॥

ते तस्य धनुप्रतिमा शरा सर्पविषोपमा ।

विलय जम्बुरागत्य कवच काञ्चनप्रभम् ॥ ३१ ॥

उसने वे धनुतुल्य बाण छीने विपरी भौति प्राणघाती

थे, तथापि लक्ष्मणक सुनहरी कान्तिवाले कवचसे टकराकर बही

नष्ट हो गये ॥ ३१ ॥

अमेघकवच मत्वा लक्ष्मण रावणात्मज ।

ललाटे लक्ष्मण बाणै सुपुद्गैस्त्रिभिर्द्रिजित् ॥ ३२ ॥

अतिथ्यत् परमकुण्डः शीघ्रमल्ल प्रदर्शयन् ।

तै पुनर्ललाटस्यै शुशुभे रघुनन्दन ॥ ३३ ॥

रणामे समरदलाधी त्रिष्टुब्ध इय पतत ।

लक्ष्मणका कवच अमेघ है, ऐसा जानकर रावणकुमार

॥ पहले लक्ष्मणके कवचके दृष्टनेत्र कर्षित था सुख है ।

उसने था लक्ष्मणने फिर कभीन कवच उरण मिला था । यह इस

प्रसंगसे जाना जाता है ।

इन्द्रजित्ने उनके ललाटमें सुन्दर पल्लवाले तीन बाण मारे ।

उसने अपनी अल्ल चलेनेकी पुर्ती दिखाते हुए अत्यन्त

श्रीधर्षक उड़ घायल कर दिया । ललाटमें पड़े हुए उन

बाणोंसे मुदक्षी नलाघा रखनेवाले रघुनन्दन लक्ष्मण

समामेके मुखनेपर तीन शिखरोंवाले पतके समान शोभा पा

रहे थे ॥ ३२ ३३ ॥

स तथाप्यर्पितो बाणै राक्षसेन तदा मृधे ॥ ३४ ॥

समानु प्रतिविष्याथ लक्ष्मण पञ्चभि शरै ।

विरुप्येद्रिजितो युधे यदने शुभकुण्डले ॥ ३५ ॥

उस राक्षसके द्वारा मुदक्षे बाणोंसे इस प्रकार पीड़ित किये

जनेपर भी लक्ष्मणने उस समय तुरत दोँच बाणोंका स्थान

किया और धनुषको खींचकर चलाये हुए उन बाणोंके द्वारा

सुन्दर कुण्डलसे सुशोभित इन्द्रजित् मुखमण्डलको धन

विघ्न कर दिया ॥ ३४ ३५ ॥

लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलान् य । उनके

धनुष भी बहुत बड़े थे । भयकर पराक्रम करनेवाले वे दोनों

योद्धा एक दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे ॥ ३६ ॥

ततः शोणितविग्धाधौ लक्ष्मणेन्द्रजितायुधौ ।

रणे सौ रेजतुर्गौ पुष्पितायिष किंशुकौ ॥ ३७ ॥

इससे लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनोंके शरीर लहलहाते

गये । रणभूमिमें वे दोनों वीर फूले हुए पल्लवके पुष्पोंकी

भौति शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

सौ परस्परमयेत्य सर्वगामेषु ध्विनौ ।

धौरैर्विष्यधनुर्बाणै कृतभावायुधौ जये ॥ ३८ ॥

उन दोनों धनुषर वीरोंके मनमें विजय पानेके लिये इद

सक्य था, अतः वे आपसमें भिड़कर एक दूसरेके सभी

अङ्गोंको मथकर बाणोंका निशाना बनाने लगे ॥ ३८ ॥

ततः समरकोपेन सयुतो रावणात्मज ।

विभीषण त्रिभिर्बाणैर्विष्याथ यदने शुभे ॥ ३९ ॥

इसी बीचमें समरोचित कापसे युक्त हुए रावणकुमारने

विभीषणके सुन्दर मुखपर तीन बाणोंका प्रहार किया ॥ ३९ ॥

अयोमुखैस्त्रिभिर्विष्या राक्षसेन्द्र विभीषणम् ।

पकैर्नैनाभिर्विष्याथ तान् सवान् हरिचूषणम् ॥ ४० ॥

जिनका अग्रभागमें लड़ेके फल लगे हुए थे, ऐसे तीन

बाणोंसे राक्षसका विभीषणको घायल करके इन्द्रजित्ने उन

सभी बाल-सूयपतियोंपर एक-एक बाणका प्रहार किया ॥ ४० ॥

तस्मै दृढतर कुन्दो जघान गद्या हयान् ।

विभीषणो महातेजा राजणेः स दुरात्मनः ॥ ४१ ॥

इससे महातेजसी विभीषणको उल्टा बड़ा करप आया

॥

और उन्होंने अपनी मर्दासे उस दुष्टत्मा रावणकुमारके चारों
घोड़ोंको मार डाला ॥ ४१ ॥

स हताभ्याश्चन्द्रवत् रथाग्निहृतसारथे ।
अथ शर्चि महातेजा पितृव्याय मुमोच ह ॥ ४२ ॥

जिनका चारोंपि पहले ही मार जा चुका था और अब
घोड़े भी मार डाल गये; उस रथसे नीचे नूदकर महातेज्मी
इन्द्रजितने अपने चाचापर शक्ति का प्रहार किया ॥ ४२ ॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य मुमिग्रानन्दवर्धन ।
विच्छेत् निशितैयाणैर्दशधापातयद् भुवि ॥ ४३ ॥

उस शक्ति को आती देल मुमिशका आनन्द बल्लभान्
लक्ष्मणने तीजे बाणोंसे काट डाला और दस टुकड़े करके उसे
पृथ्वीपर गिर दिया ॥ ४३ ॥

तस्मै दृढधनुं कुन्दो हताभ्याय विभीषण ।
यत्प्रसशसामान् पञ्च सप्तज्वोरसि मार्गणान् ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् सुदृढ धनुष धारण करनेवाले विभीषणने जिसके
बाण मारे गये थे; उस इन्द्रजितपर कुपित हो उसकी छातीमें
पाँच बाण मारे, जिनका स्पर्श यज्ञके समान कुशल था ॥ ४४ ॥

ते तस्य काय भित्वा तु दम्भमुपह्ना निमित्तगा ।
बभूवुर्लोहितादिग्धा रक्षा इव महोरगा ॥ ४५ ॥

इनहरे पक्षोंसे छुरेभित और लक्ष्यतक पहुँचनेवाले वे
बाण इन्द्रजितने गरीबोंके विदीर्ण करके उसके रक्तमें सन गये
और लाल रंगके बड़े-बड़े सर्पोंके समान दिखायी देने
लगे ॥ ४५ ॥

न पितृव्यस्य सगुण्ड इन्द्रजिच्छरमाददे ।
उत्तम रक्षसा मध्ये यमदत्त महाबल ॥ ४६ ॥

तत्र महाबली इन्द्रजितने मनोंमें अपने चाचाके प्रति बढ़ा
क्रोध हुआ। उसने उद्यमोंने बीचमें यमराजका दिया हुआ
उत्तम बाण हाथमें लिया ॥ ४६ ॥

त समीक्ष्य महातेजा महेषु तेन सहितम् ।
लक्ष्मणोऽप्याददे धाणमन्यद् भीमपराक्रम ॥ ४७ ॥

उस महान् बाणको इन्द्रजितने द्वाप धनुषपर रखवा
गया देल मशानक पराक्रम करनेवाले महातेज्मी लक्ष्मणने
भी दूसरा बाण उठाया ॥ ४७ ॥

कुथेरेण स्वयं स्वप्ने यद् दत्तममितात्मना ।
तुजयं दुर्विगहा च सेन्द्रैरपि सुरासुरै ॥ ४८ ॥

उस बाणकी विशा महाम्मा कुथेरेने स्वप्नमें प्रकट होकर
स्वयं उठे ही थी। यह बाण इन्द्र आदि देवताओं तथा
असुरोंने लिय भी अगल एक दुर्बल था ॥ ४८ ॥

तपोस्तु धनुर्यां श्रेष्ठे यादुभिः परिघोषमै ।
विशृण्वमाणे पत्ययस् मौञ्जाग्रिव शुक्लजतु ॥ ४९ ॥

उन दोनोंको परिपके म्यान में ही और शक्तिशुद्ध शुद्धकों

द्वाप जोर-जोरसे खींचे जाते हुए उन दोनोंके भद्र धनुष दो
श्रीश्च पक्षियोंके समान शब्द करने लगे ॥ ४९ ॥

ताभ्यां तु धनुषि श्रेष्ठे सहितौ सायकोत्तमौ ।
विरुप्यमाणौ वीराभ्यां भृशजज्वलतु श्रिया ॥ ५० ॥

उन दोनोंने अपने-अपने श्रेष्ठ धनुषपर जो उत्तम सायक
रखे थे, वे खींचे जाते ही अत्यन्त तेजसे प्रज्वलित हो
उठे ॥ ५० ॥

तौ भासयन्तावाकाशधनुर्भ्यां निशिलौ च्युतौ ।
मुखेन मुखमाहत्य सनिपेततुरोजसा ॥ ५१ ॥

दोनोंके बाण एक साथ ही धनुषसे छूटे और अपनी
प्रभासे आकाशको प्रकाशित करने लगे। दोनोंने मुखभाग बढ़े
केगने आपसमें टकरा गये ॥ ५१ ॥

सनिपातस्तयोश्चासीच्छरयोर्घोररूपयोः ।
सधूमविस्रुलिङ्गश्च तज्जोऽग्निर्दण्डोऽभवत् ॥ ५२ ॥

उन दोनों मयानक बाणोंकी 'यों ही टकरा हुई; उससे
दारुण अग्नि प्रकट हो गयी जिससे धूम उठने लगा और
चिंगारियों दिखायी दीं ॥ ५२ ॥

तौ महाप्रहसकाशाभ्यामन्योभ्यं सनिपत्य च ।
सप्रामे शतधा यातौ मेदिन्या चैव पेततु ॥ ५३ ॥

वे दोनों बाण दो महान् प्रहोंकी भाँति आपसमें टकराकर
सैकड़ों टुकड़े हो समामभूमिमें गिर पड़े ॥ ५३ ॥
शरीर प्रतिहतौ दृष्ट्वा तादृशौ रणमूर्धन ।
प्रीदितौ जातरोग्यौ च लक्ष्मणेन्द्रजितौ तदा ॥ ५४ ॥

शुद्धके मुखनेपर उन दोनों बाणोंका आपसका आघात
प्रतिपातसे व्यर्थ हुआ देख लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनोंको ही
उस समय लज्जा हुई। फिर दोनों एक दूसरेपर प्रति अत्यन्त
रोषसे मर गये ॥ ५४ ॥

सुसरधस्तु सौमिरिरस्य वारुणमाददे ।
रौद्र महेन्द्रजिदुद्वेऽप्युच्यन्द् युधि निष्ठित ॥ ५५ ॥

मुमिशानन्दन लक्ष्मणने कुपित होकर वारुणात्र उठाया ।
साथ ही उस रणभूमिमें खड़े हुए इन्द्रजितने रौद्रात्र उठाया
और उसे वारुणात्रने प्रतीसारक लिय छोड़ दिया ॥ ५५ ॥

तेन तद्विहित शस्त्रं वारुण परमाद्भुतम् ।
ततः कुन्दो महातेजा इन्द्रजितु समिनिनय ।
आभ्येष सद्ध्ये रीत स लोक सक्षिपत्रिय ॥ ५६ ॥

उस रौद्रात्रसे आहत होकर लक्ष्मणका अत्यन्त अद्भुत
वारुणात्र शान्त हो गया। तदनन्तर समरिन्द्रजी महातेज्मी
इन्द्रजितने कुपित होकर रीतमान् आभ्येषत्रा संघात किया;
माने वह उसने द्वाप समस्त सारोंका प्रत्यार कर देना चारता
हो ॥ ५६ ॥

सौरिणास्त्रेण तद् वीरो लक्ष्मण पयवारयम् ।
अस्य निगारितं बद्धा रावणि प्राभमूर्च्छित ॥ ५७ ॥

परतु वीर लक्ष्मणेन सुषाक्षक प्रयोगमे उसे शान्त कर
दिया। अपने अज्जमे प्रतिहत हुआ देश राजकुमार इन्द्रजित्
अजेत-सा हो गया ॥ ५७ ॥

आह्वदे निशित राणमासुर शत्रुदारणम् ।
तस्मात्पापाद् रिनिप्पेतुभास्वरा कूटमुद्ररा ॥ ५८ ॥
शूलानि च भुशुब्धश्च गदा खट्वापरश्वधा ।

उसने आसुर नामक शत्रुनाशक तीव्र बाणका प्रयोग
किया; फिर तो उसने उस धनुषमे चमकते हुए कूट, मुद्रर,
शूल, सुगुण्डि, गदा, खट्वा और फरसे निकले सगे ॥ ५८ ॥

तद् दृष्ट्वा लक्ष्मण सत्योऽप्योत्तमस्यमासुरम् ॥ ५९ ॥
अपार्थ सर्वमूताना सर्वबाष्पविदागणम् ।
माहेभ्वरेण श्रुतिमास्तद्वक्त्र प्रत्यवारयत् ॥ ६० ॥

रणभूमिमें उस भयकर आसुराक्षको प्रकट हुआ देख
तेजस्वी लक्ष्मणेने सम्पूर्ण अक्ष शस्त्रोंको विदीर्ण करनेवाले
माहेभ्वराक्षका प्रयोग किया; जिसका समस्त प्राणी मिलकर भी
निवारण नहीं कर सकते थे। उस माहेभ्वराक्षके द्वारा उन्होंने
उस आसुराक्षको नष्ट कर दिया ॥ ५९ ॥

तयो समभवद् युद्धमद्भुत रोमहर्षणम् ।
रागनस्यानि भूतानि लक्ष्मण पर्यवारयत् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें अत्यन्त अद्भुत और रोमाञ्चकारी
युद्ध होने लगा। आकाशमें रहनेवाले प्राणी लक्ष्मणको घेरकर
खड़े हो गये ॥ ६१ ॥

मैरवाभिरुक्ते भीमे युद्धे यानररक्षसाम् ।
भूतैर्बहुभिराकाश विस्मितैरावृत्त बभौ ॥ ६२ ॥

मैरव-गजनासे गूँजते हुए वानरों और राक्षसोंके उस
मयानक युद्धके छिड़ जानेपर आश्चर्यचकित हुए बहुसंख्यक
प्राणी आकाशमें आकर खड़े हो गये। उनसे घिरे हुए उस
आकाशकी अद्भुत घोषा हो रही थी ॥ ६२ ॥

श्रुपयः पितरो देवा गार्ध्वगच्छोरगाः ।
शतक्रतु पुरस्त्वत्य ररभुर्लक्ष्मण रणे ॥ ६३ ॥

ऋषि, पितर, देवता, गार्ध्व, गरुड और नाग भी इन्द्रका
आगे करके रणभूमिमें मुनिशत्रुमारकी रक्षा करने लगे ॥ ६३ ॥

भपाप्य मागणध्रेष्ठ सद्ये राघवानुज ।
हुताशनसमस्पर्श राघणात्मजदारणम् ॥ ६४ ॥

तपश्चात् लक्ष्मणेने दूरा उत्तम बाण अपने धनुषपर
रक्ता, जिसका स्पष्ट आगके समान चलनेवाला था। उसमें
राघवकुमारको विदीर्ण कर देनेकी शक्ति थी ॥ ६४ ॥

सुप्रभमनुत्ताह सुप्रवीण सुसस्यितम् ।
सुयणविरुत्त वीर शरीरान्तकर शरम् ॥ ६५ ॥

सुराधार दुर्बिगह राक्षसाना भयायहम् ।
आशीविश्विप्रप्रत्य देवसद्यै समर्चितम् ॥ ६६ ॥

येन शको महातेजा दानवानजयन् प्रभु ।
पुरा वेवासुरे युद्धे वीर्यवान् हरिवाहन ॥ ६७ ॥

अयं प्रमत्त सौमिनि सयुगेष्वपराजितम् ।
शरध्रेष्ठ धनुध्रेष्ठे त्रिकर्पन्निदमब्रवीत् ॥ ६८ ॥

लक्ष्मीर्वाल्लक्ष्मणो वाक्पयमर्यसाधकमात्मन ।
धर्मात्मा सत्यसधश्च रामो दाशरथिर्यदि ।

वीर्ये चाप्रतिहृष्टस्तैन जहि रावणिम् ॥ ६९ ॥

उसमें मुन्दर पर लगे थे। उस बाणका सारा अङ्ग मुद्रौल
एव गोल था। उसकी गोंठ भी मुन्दर थी। वह बहुत ही
मजबूत और सुवर्णसे भूषित था। उसमें शरीरको चीर डालने
की क्षमता थी। उसे रोकना अत्यन्त कठिन था। उसके आघात
को सह लेना भी बहुत मुश्किल था। वह राक्षसोंको भयभीत
करनेवाला तथा विपुल शक्ति के विपकी भाँति धनुषके प्राण लेने
वाण था। देवताओंद्वारा उस बाणकी सदा ही पूजा की गयी
थी। पूर्वकालके देवासुर-संग्राममें हरेरगके घोड़ोंसे युद्ध रमबाळ,
परकमी, गकिमान् एवं महातेजस्वी इन्द्रने उसी बाणसे
दानवोंपर विजय पायी थी। उसका नाम था ऐन्द्राक्ष। वह
युद्धक अवसरोंपर कभी पराजित या अवफल नहीं हुआ था।
शोभासम्पन्न वीर मुनिशत्रुमार लक्ष्मणेने अपने उत्तम धनुष
पर उस श्रेष्ठ बाणको रत्नकर उतरे खींचते हुए अपने अभिप्राय-
को सिद्ध करनेवाली यह बात कही—‘यदि दशरथनन्दन
मगवान् भीष्म घमात्मा और सत्यप्रतिष्ठ हैं तथा पुरुषार्थमें
उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई वीर नहीं है तो है
अक्ष।’ इस इस रावणपुत्रका वध कर डाले ॥ ६५-६९ ॥

इत्युक्त्वा वाणमाकर्ण विरुप्य तमजिह्वागम् ।

लक्ष्मण समरे वीर ससर्जैन्द्रजित प्रति ।

येन्द्राक्षेण ममायुज्य लक्ष्मण परवीरहा ॥ ७० ॥

समराङ्गणमें ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले
वीर लक्ष्मणेने वीधे जानेवाले उस बाणको दानतक खींचकर
ऐन्द्राक्षसे छुटकर करके इन्द्रजित्की ओर छोड़ दिया ॥ ७० ॥

सच्चिर सशिरस्त्राण धीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।

प्रमथ्येन्द्रजित कापात् पातयामास भूतले ॥ ७१ ॥

धनुषसे छूटते ही ऐन्द्राक्षने जगमगाते हुए कुण्डलेने
मुक्त इन्द्रजितके शिरस्त्राणवदित दीप्तिमान् मस्तकको पड़ते
काटकर धरतीपर गिरा दिया ॥ ७१ ॥

तद् राक्षसतनुजस्य भिन्नस्कन्ध शिरो महत् ।

तपनीयनिभ भूमौ दृष्टो दधितोक्षितम् ॥ ७२ ॥

राघवपुत्र इन्द्रजित्का कंधेपरसे कटा हुआ वह शिराक्ष
शिरो जो दृष्टसे लयपव हो रहा था; भूमिपर दूरगर्भे समान
दिखायी देने लगा ॥ ७२ ॥

इतः स निष्पतान्य धरण्या रावणात्मज ।

कथवी सशिरस्त्राणो विप्रविशदशरसन ॥ ७३ ॥



इस प्रकार माप जाकर कवच, खिर और धिराणा सहित
पवनकुमार घण्टायी हो गया। उसका चतुर्षु दूर जा
गिरा ॥ ७३ ॥

बुध्नुस्ते तत सर्वे यानरा सजिभीषणा ।
हृष्यन्ते निहते तस्मिन् देवा बृहवधे यया ॥ ७४ ॥

वेने वृषातुरका वष हानेर देवता प्रसन्न हुए थे, उठी
प्रकार इन्द्रविज्जे मारे जनेर निर्भीरगणहित समस्त यानरा
हर्षे भर गये और ढर जेरेमे सिंहनाद करने लगे ॥ ७४ ॥

अयान्तरिक्षे देवानामृषीणा च महामनाम् ।
जोहेऽथ जयसनादे गायत्रोत्तरस्वामिणि ॥ ७५ ॥

आकाशमें देवताओं, महान्ना ऋषियों, गन्धर्वों तथा
अश्वपत्नीका भी विजयबलित हर्षनाद गूँज उठा ॥ ७५ ॥

पतित समभिहाय राक्षसी सा महाचमू ।
वध्यामाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः ॥ ७६ ॥

इन्द्रविज्जे घण्टायी हुआ यान राक्षसोंकी वह विघात
सेना विजयसे उल्लसित हुए यानपंथी मार लाकर सम्पूर्ण
दिशाओंमें मानने लगी ॥ ७६ ॥

यानैर्दण्ड्यमानास्ते शाखायुत्तुज्य राक्षसाः ।
लहामभिमुखा सक्षुर्भ्रष्टमग्रा प्रधाविता ॥ ७७ ॥

यानपंथाय मारे बने हुए राक्षस अपनी मुद-मुप को
बैठे और अन्न-खाजोंको छोड़कर तैरते भागते हुए लहारी
कोर चला गये ॥ ७७ ॥

बुध्नुयुधुधा भीता राक्षसा शतशो दिशः ।
त्यक्त्वा प्रहरणान् सर्वे पट्टिशासिपरम्भधान् ॥ ७८ ॥

राक्षस बहुत डर गये थे इसलिये वे सब क-सक पट्टि,
सन्न और फरने आदि राजाओं त्यागकर छेड़कोंकी सख्यामें
एक साथ ही सब दिशाओंमें भागने लगे ॥ ७८ ॥

केचिद्बद्धा परिप्रस्ता प्रविष्टा यानराक्षिता ।
समुद्रे पतिता केचिद् केचित् पयतमाधिता ॥ ७९ ॥

यानपंथे पड़ित हकर बन्ध डरकर मारे लहामें डुब गये,
कोई समुद्रे बूढ़ पड़ और कोई-कोई पर्वतकी चटीपर चला
गये ॥ ७९ ॥

हसमिद्रजित दृष्ट्वा शयान च रणक्षितौ ।
राक्षसाना सहस्रेषु न कश्चित् प्रत्यदृश्यत ॥ ८० ॥

इन्द्रविज्जे माप गया और राक्षसोंमें सा रहा है यह
देख इन्द्रपंथ राक्षसोंने एक भी बड़ी सहा नहीं दिलायी
दिया ॥ ८० ॥

ययास्त गत आदिन्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन् निपतिते राक्षसाले गता दिशः ॥ ८१ ॥

वेने सूर्यके अन्न हो जनेर उन्की किरणें यहाँ नहीं
ठहरती हैं, उन्की प्रकार इन्द्रविज्जे घण्टायी हनेर वे राक्षस
यहाँ रुक न सके, सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ८१ ॥

शान्तरश्मिरियान्त्यो निगण इव पावकः ।
यमूय स महायादुयथासलगतनीवित ॥ ८२ ॥

महाादु इन्द्रविज्जे निष्पन्ना हो जनेर शान्त किरणें बने
सूय अथवा घुमी हुई आगके समान लितेव हो गया ॥ ८२ ॥

प्रशान्तपीडाग्रहुलो विनश्रिः प्रहयवान् ।
चमूय लोकः पतिते राक्षसेऽसुते तदा ॥ ८३ ॥

उस समय राक्षसघण्टाकुमार इन्द्रविज्जे समस्तभूमिमें गिर
जनेर कोर सहरकी अविच्छाद्य पीडा नष्ट हो गयी। सबका
घनु माप गया और सभी हर्षसे भर गये ॥ ८३ ॥

हर्षे च शक्नो भगवान् सह सर्वमहर्षिभिः ।
जगाम निहते तस्मिन् राक्षसे पापकर्मणि ॥ ८४ ॥

उस पापकना राक्षसके मारे जनेर समूण महर्षियोंके
साथ भगवान् इन्द्रकी बनी प्रसन्नता हुई ॥ ८४ ॥

आकाशे चापि देवाना शुशुभे दुःखमिहिनः ।
नृत्पट्टिरस्त्रोभिध गार्धर्षेभ्यः महामभिः ॥ ८५ ॥

आकाशमें नाचती हुई अश्वपत्नी और गते हुए महामना
गन्धर्वोंने नृत्य और गानकी ध्वनिन गये देवताओंकी हनुदुभि-
का शब्द भी सुनायी देने लगा ॥ ८५ ॥

यद्यपु पुष्पयगाणि तद्गुह्यतमिनाभयत् ।
प्रशशाम हते तस्मिन् राक्षसे मूर्कमणि ॥ ८६ ॥

देवता आदि यहाँ छुल्लंकी बचा करते लगे। यह दृश्य
अद्भुत-अप्रतीत हुआ। उस मूर्कना राक्षसक मारे जनेर
बर्तोंकी उद्वृत्ति हुई पूरा शान्त हो गयी ॥ ८६ ॥

मुदा आपो नमध्वज जहपुर्द्वयानवाः ।
आनमुः पतिते तस्मिन् सारलोकभयावहे ॥ ८७ ॥

ऊँचुध सहितास्तुथा देवगन्धयदानाः ।
विश्रवाः शान्तकलुषा ग्राह्या विचरन्मिति ॥ ८८ ॥

समूण लक्ष्मण मर देनेवाः इन्द्रविज्जे घण्टायी
हनेर बल खच्छ ॥ ८८ ॥ आकाश में निमग्न दिग्गयी होने
लगा और दक्षता तथा दानव हर्षने विवृट्टे। देवता, गन्धर्व
और दानव वहाँ अथ और सर एक साथ घुटा हकर बल-
अथ बल-अथ निमित्त एवं कथयल्ल हकर सर्वत्र विचरें ॥

ततोऽप्यनन्दन् सहस्र समरे हरियूयया ।
तमप्रतिपल दृष्ट्वा हत नैःश्रुतपुङ्गवम् ॥ ८९ ॥

समयजने अन्निम दृष्ट्वाही निगणयिष्यन्ति इन्द्र
विज्जे माप गया देव हर्षसे भर हुए यान-समूहने समस्त
अभिनन्दन करने लगे ॥ ८९ ॥

जिभीषणो हनूमाश्च जाम्बवाद्याधनयूयः ।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुध्यापि लक्ष्मणम् ॥ ९० ॥

विष्णोः, हनुमन् और वीज्जुपति जम्बवान्—य इव
विजयक लिय समस्तदेवता अभिनन्दन करने हुए उदरी
भूते नृते प्रशस्त करने लगे ॥ ९० ॥

क्षयेहन्तश्च पुनस्तश्च गर्जन्तश्च पुनवगमा ।

लम्पलक्षा ग्युसुत परिवार्योपतस्मिरे ॥ ११ ॥

हर्ष एव रक्षका अक्षर पाकर वानर किलकिलाने, क्रूदते और गर्जते हुए वहाँ खकुलनन्दन लम्पणको घेरकर खड़े हो गये ॥ ११ ॥

लाहलानि प्रसिध्यन्त स्फोटयन्तश्च वानरा ।

लक्ष्मणो जयतीत्येव वाक्य निधावयस्तदा ॥ १२ ॥

उस समय अपनी दूँहोंको हिलाते और फटकारते हुए वानर वीर 'लक्ष्मणजी जय हो' यह नारा लगाने लगे ॥ १२ ॥

अन्योन्य च समादिल्लप्य हरयो हृष्टमानसा ।

अक्रुधायवचगुणा राघवाध्वयस्तत्कथाः ॥ १३ ॥

अक्रुधायवचगुणा राघवाध्वयस्तत्कथाः ॥ १३ ॥

हृष्यायै श्रीमद्रामायणे वासुकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे नवतितम सर्ग ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवासुकीनिमित्त आपरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे नवतितम सर्ग ॥ १० ॥

एकनवतितम सर्ग

लक्ष्मण और विभीषण आदिका श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर इन्द्रजितके वधका समाचार

सुनाना, प्रसन्न हुए श्रीरामके द्वारा लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर उनकी

प्रशंसा तथा सुपेणद्वारा लक्ष्मण आदिकी चिकित्सा

बधिरक्लिग्नाप्रस्तु लक्ष्मण शुभलक्षण ।

बभूव हृष्टस्त हत्वा शत्रुजेतामहाद्ये ॥ १ ॥

समामभूमिं शत्रुविजयी इन्द्रजित्वा वध करके रक्तसे भीगे हुए शरीरवाले गुमलपण लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए ॥

तत स जाम्बवन्त च हनूमन्त च वीरयान् ।

सनिपत्य महातेजास्ताश्च सयान् धनौकम् ॥ २ ॥

आजगाम तत दीप्ति यत्र सुग्रीवराघवौ ।

विभीषणमयष्टभ्य हनूमन्त च लक्ष्मणः ॥ ३ ॥

बल-विनमसे सम्पन्न वे महातेजस्वी सुमित्राकुमार जाम्बवान् और हनुमान्जीसे दीढ़कर मिले और उन समस्त वानरोंको साथ ले नीप्रतापूरक उन स्थानपर आये, जहाँ वानरराज सुग्रीव और भगवान् श्रीराम विद्यमान थे । उस समय लक्ष्मण विभीषण और हनुमान्जीका महारा लेकर चले रहे थे ॥ २ ॥

ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च ।

तस्यौ भ्रातृसमीपस्थ शफस्येद्रानुजो यथा ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सामने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके सुमित्राकुमार अपने उन च्येद भ्रातृने पास उठी तरह गड़े हो गये, जैसे ह्मके पास उगेद्र (वामनरुपाधारी भीहरि) म्दे होते हैं ॥ ४ ॥

निष्टनष्टिव चागत्य राघवाय महात्मने ।

माचचसे तदा दीरो घोरमिन्द्रजितो वधम् ॥ ५ ॥

वानरोंका चित्त हर्षित भरा हुआ था । वे विविध गुणों

वाले वानर एक दूसरेकी हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ कहने लगे ॥ १३ ॥

तदसुकरमयाभिधीक्ष्य हृष्टा

प्रियसुहृदो शुधि लक्ष्मणस्य कर्म ।

परममुपलभमान प्रहर्ष

विनिहसमिन्द्ररिपु निदाम्य दंवाः ॥ १४ ॥

युद्धसंलभ्य लक्ष्मणके प्रिय सुहृद् वानर उनका वध हुकर एव महान् पराक्रम देख यह प्रसन्न हुए । देवता भी

उस इन्द्रजोही राक्षसा वध हुआ देख मनमें यह भारी हर्षका अनुभव करने लगे ॥ १४ ॥

उस समय वीर विभीषण प्रसन्नतापूर्वक लौटनेके द्वारा

ही शत्रुके मारे जानेकी बात सूचित-ही करते हुए आये और महात्मा श्रीरघुनाथजीसे बोले—'प्रभो ! इन्द्रजितके वधका मयकर कार्य सम्पन्न हो गया' ॥ ५ ॥

रावणेस्तु शिरश्छिन्ना लक्ष्मणेन महामना ।

न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषण ॥ ६ ॥

विभीषणने यह हृषके साथ भीरमते यह निवेदन किया

कि महात्मा लक्ष्मणने ही रावणकुमार इन्द्रजित्वा मल्ल

काया है ॥ ६ ॥

श्रुत्वैव तु महा-गीर्ण लक्ष्मणेनेन्द्रजित्वधम् ।

प्रहर्षमतुल लेभे वाक्य चेद्रसुखाद्य ह ॥ ७ ॥

'लक्ष्मणके द्वारा इन्द्रजित्वा वध हुआ है' यह समाचार

सुनते ही महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीको अनुभव हर्ष प्राप्त हुआ

और वे इस प्रकार बोले— ॥ ७ ॥

साधु लक्ष्मण तुणोऽस्मि कम चासुपर दृष्टम् ।

रावणोहं विनाशो न जितमियुपधारय ॥ ८ ॥

'साधव ! लक्ष्मण ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । अब

तुमने बड़ा दुष्कर्म पराक्रम किया । रावणपुत्र इन्द्रजित्ने

मारे जानेसे तुम यह निश्चित समझ लो कि अब हमलोग

युद्धमें जीत गये' ॥ ८ ॥

सप्त शिरस्सुपाधाय लक्ष्मण कीर्तिवधनम् ।

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

सप्त शिरस्सुपाधाय लक्ष्मण कीर्तिवधनम् ।

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

लज्जमान बलात् स्नेहायुक्तमारोप्य दीर्यवान् ॥ ९ ॥

उपवेद्य तमुत्सङ्गे परिश्वज्यावपीडितम् ।
भ्रातर लक्ष्मण स्निग्ध पुन पुनरुदैस्त ॥ १० ॥

यद्यपी वृद्धि करनेवाला लक्ष्मण (उस समय अपनी प्रणवा मुनकर) राजा रहे थे किंतु पराक्रमी भीष्मने उन्हें बन्धुवक लोचनकर गंदमे ल लिया और बड़े स्नेहने उनका ममक रूपा । शत्रोप व्यापाने पीडित हुए स्नेही बन्धु लक्ष्मणका गोदमें विटाकर और हृदयने छागकर वे बड़े प्यारसे उनकी ओर बारबार देखने लगे ॥ १० ॥

शत्रुसम्पीडितशत्रु नि श्वसन्तु लक्ष्मणम् ।
रामस्तु दुःखसतत त तु नि श्वासपीडितम् ॥ ११ ॥
मूर्ध्नि चैनमुपाश्रय भूय ससृष्टय च त्वरन् ।
उवाच लक्ष्मण वाक्यमाभास्य पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥

लक्ष्मण अपने शरीरमें घँसे हुए बाणोंके द्वारा अभ्यन्त पादित थे । उनके अङ्गोंमें जगह-जगह घाव हो गया था । व बारबार लपी लोच लोचने थे, आधातजनित कष्टने सतत हा रहे थे तथा उन्हें लोच लोचने भी पीड़ा होती थी । उस अशक्तमें पुरुषोत्तम भीष्मने स्नेहसे उनका मस्तक घँषकर पीड़ा दूर करनेक लिय पुन जन्दी जन्दी उनके शरीरपर हाथ फेर और आभास देकर लक्ष्मणने इस प्रकार कहा—॥

एत परमकल्याण कर्म दुष्करकर्मणा ।
मद्य मध्ये हते पुच्छे रावण निहत युधि ॥ १३ ॥
मदाह रिजयी शत्रो हते तस्मिन्नुपमनि ।
रावणस्य वृशसस्य द्विष्टया वीर त्वया रणे ॥ १४ ॥
छिन्नो हि दम्निगो बाहु स हि तस्य ध्यापाश्रय ।

श्रीर ! तुमने अपने दुष्कर पराक्रमसे परम कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किया है । आज केक मारे जानेपर दुदसख्यमें रावणको भी मैं माप गया ही मानता हूँ । उस दुष्टका शत्रुका वध हो जानेने आज मैं गानवमें यिबदी ॥ गया । लोभापकी बात है कि तुमने रावणभित्तें इन्द्रकिन्ना वध करके निर्दयी निघावर रावणकी दाहिनी बाँह ही बाट डाली क्योंकि वही उसका खलने बड़ा सहाय था ॥ १३ ॥ १४ ॥

विभीषणहनूमद्वया एत कर्म महद् रूपे ॥ १५ ॥
अदोपयस्त्रिभिर्गौर कपचिद् विनिपातित ।
निरमित्र एतोऽस्यद्य निर्यास्यति हि रावण ॥ १६ ॥

विभीषण और हनुमानने भी समरभूमिमें महान पराक्रम कर दिखाया है । तुम सब लोगोंने मिलकर तीन दिन और तीन रातमें किसी तरह उस घोर राक्षसका मार गिराया तथा मुझ शत्रुहान यना दिया । अब रावण ही मुझके लिये निकट्ये ॥

सलभ्युहेन महता नियास्यति हि रावण ।
सलभ्युहेन महता भुत्वा पुत्र निपातितम् ॥ १७ ॥

भद्रान् शैल्य-समुपापकृत पुत्रका मार गया मुनकर रावण निराश्र मेना साथ लकर मुझके लिय आया ॥ १७ ॥

त पुत्रवधसतत निर्यान्त राक्षसाधिपम् ।
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुष्टयम् ॥ १८ ॥

'पुत्रवध वधसे सतत हाकर निकल हुए उस दुर्वैय राक्षस रावणको मैं अपना बली भारी सेनाध द्वारा घेरकर मार काटूँगा ॥ १८ ॥

त्वया लक्ष्मण नायेन सीता च पृथिवी च मे ।
न दुष्प्रापा हत तस्मिन्शान्जेतरि चाहये ॥ १९ ॥

लक्ष्मण ! इन्द्रकिन् इन्द्रका भी जीत चुका था । तब उसे भी तुमने सुदभूमिमें मार गिराया, तब तुम जैने राक्ष और लयाकके हाते हुए मुझे सीता और भूम-डाल रावणको शात करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी ॥ १९ ॥

स त स्मृताभास्य परित्वय्य च राघव ।
राम मुनेण मुदित समाभाष्येदमग्रहीत् ॥ २० ॥

इस प्रकार माइका आभास देकर रघुकुलनन्दन भीष्मने उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रव्रततापूवक मुनेगने हुलाकर कहा—॥ २० ॥

विदात्योऽय महाप्राप्त सौमिधर्मिश्रुत्सल ।
यया भवति सुखस्यस्तथा त्व समुपावर ॥ २१ ॥

परम बुद्धिमान् मुने ! तुम शान ही ऐसा उपचार करो जिससे ये मित्रवत्त्व सुमित्रानुसार पूर्णत स्थित हो जायें और इनके शरीरसे बाण निकलकर भाव मनेक साथ ही जारी पीड़ा दूर हो जाय ॥ २१ ॥

विदात्य नियता मित्र सौमित्रि सविभीषण ।
ऋक्षपातनसैन्याना शूराणा द्रुमयोधिनाम् ॥ २२ ॥
ये चात्यन्त्येऽत्र युष्मन्ति सदास्या प्रणिनस्तथा ।
तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन प्रियन्ते सुखिनस्तथा ॥ २३ ॥

भूमित्रानुसार लक्ष्मण और विभीषण दोनों शरीरने तुम गीम ही बाण निराश हो और पाव अच्छा कर दा । वृक्षोंद्वारा युद्ध करनेवाले शरीर पीछ तथा बनर स्नेह हैं, उनमें भी न दुष्ट-दुष्ट लग बाणोंने बिधे हुए और पायड द्वारा युद्ध कर रहे हैं उन सभीका तुम प्रयत्न करके सुखी एवं स्वस्थ कर दा ॥ २२ २३ ॥

एवमुक्त्वा न रामेण महात्मा हरियूथप ।
लक्ष्मणाव ददौ नस्त मुनेन परमौषधम् ॥ २४ ॥

महात्मा भीष्मचन्द्रचक ऐसा करनेपर वनर-मूषरनि मुनेने लक्ष्मणकी नाकने एक बहुत ॥ उत्तम औषधि लगा दी ॥ २४ ॥

स तस्य गन्धमाघ्राय विदात्य समरघत ।
तदा निर्वृत्तन्द्वयै सरुदमण एव च ॥ २५ ॥

उनकी गन्ध घँषने ही लक्ष्मण शरीरने बन निष्क गय और उनकी लपी पीड़ा दूर हो गी । उन शरीरने किने भी चब था सब म म्ये ॥ २ ॥

विभीषणमुखाना च सुहृदा राघवाण्या ।
सर्वधानरमुख्याना चिकित्सामकरोत् तदा ॥ २६ ॥
धीरामचन्द्रजीवी आशसे सुपेणेने विभीषण आदि
सुहृदो तथा समस्त वानरविरोमणियोंवी तत्काल चिकित्सा
की ॥ २६ ॥

तत प्रकृतिमापन्नो हतशल्यो भक्तकृमः ।
सौमित्रिर्मुमुदे तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥ २७ ॥
किर तो क्षणमरमें बाण निकल आने और पीड़ा दूर हो
जातेने सुमित्राकुमार स्वस एयं नीरोग हो हर्षका अनुभव
करने लगे ॥ २७ ॥

तदैव राम भुयगाधिपस्तथा
विभीषणश्चर्क्षपतिश्च धीर्यवान् ।

इत्याप्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुहृदावधे एकवतितम सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनेमैंने आरंभामाण आदिकाव्ये सुहृदावधे इत्यानेको सौ पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्विनवतितमः सर्गः

रावणका शोक तथा सुपार्श्वके ममज्ञानसे उसका सीता-वधसे निवृत्त होना

तत पौलस्त्यसचिवाः ध्रुत्वाचे द्रजितोयधम् ।
आचचमुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सत्वरः ॥ १ ॥

रावणके मंत्रियोंने अब इन्द्रजित्के वधका समाचार सुना,
तब उन्होंने स्वयं भी प्रत्यक्ष देखकर इसका निश्चय कर लेनेके
बाद तुरत जाकर दशमुख रावणसे साथ हार कह सुनाया ॥

युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मज ।
विभीषणसहायेन मियता नो महायुनि ॥ २ ॥

य बोले—‘महाराज ! युद्धमें विभीषणकी सहायता पाकर
लक्ष्मणने आपके महादेवस्त्री पुत्रको हमारे ठेनिकोंके देखते
देखते मार डाला ॥ २ ॥

दूर दूरेण समाम्य सयुगेष्वपगजितः ।
लक्ष्मणेन हत दूर पुत्रस्ते विशुधेद्रजितः ॥ ३ ॥
मृतः स परमार्होपाब्धदरैः सतर्प्य लक्ष्मणम् ।

‘जितने देवताओंके राजा इन्द्रको भी पराजित किया था
और पहलेके युद्धोंमें जितकी कमी पराजय नहीं हुई थी, वही
आपका छोटीर पुत्र इन्द्रजित् शीघ्रसम्पन्न लक्ष्मणके साथ
भिड़कर उनके हाथ मारा गया । वह अपने बाणोंद्वारा
लक्ष्मणको पूर्णत त्तत करके उजम धोनोंमें गया’ ॥ ३ ॥

स त प्रतिभय भुत्वा धर्ष पुनस्त्य शरुणम् ॥ ४ ॥
घोरमिद्रजितः सखये कदमल प्राविशामहत् ।

युद्धमें अपने पुत्र इन्द्रजित्क भयानक वधका फोर एव
दारुण समाचार सुननेपर रावणरो बड़ी मारी भूछाने भर
दबका ॥ ४ ॥

अथेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थित
मुदा ससैन्याः सुचिर जहपरि ॥ २८ ॥

उस समय भगवान् श्रीराम, वानरराज सुग्रीव, विभीषण
तथा पराक्रमी शूराय राजा जाम्बवान् लक्ष्मणको निरोग होकर
बहा हुआ देख सेनासहित बड़े प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥

अपूजयत् कर्म स लक्ष्मणस्य
सुपुष्कर दाशरघिर्महात्मा ।

बभूव हृष्टो युधि वानेन्द्रो
निशम्य तशक्तजित निपातितम् ॥ २९ ॥

दशरथनन्दन महात्मा भीरामने लक्ष्मणके उस अत्यन्त सुष्कर
पराक्रमी पुन भूरि भूरि प्रशंसा की । इन्द्रजित् युद्धमें मार
गिया गया, यह सुनकर वानरराज सुग्रीवको भी बड़ी
प्रसन्नता हुई ॥ २९ ॥

इत्याप्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुहृदावधे एकवतितम सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनेमैंने आरंभामाण आदिकाव्ये सुहृदावधे इत्यानेको सौ पूरा हुआ ॥ ११ ॥

अपलभ्य चिरात् सहा राजा राक्षसपुत्रवः ॥ ५ ॥
पुत्रशोककुलो दीनो विलापाकुलेद्रियः ।

किर दीर्घकालके बाद होगमें आकर राक्षसपुत्र राजा
रावण पुत्रशोकके व्याकुल हो गया । उसकी सारी इन्द्रियों
अकुला उठी और वह दीनतापूर्वक विलाप करने लगा—

हा राक्षसचक्रमूल्य मम धत्स महाबल ॥ ६ ॥
जित्येन्द्र कपमय त्व लक्ष्मणस्य वध भत ।

‘हा पुत्र ! हा राक्षस-सेनाके महाबली कर्णधार ! हम
तो पहले इन्द्रपर भी विजय पा चुके थे, किर आज लक्ष्मणके
वधमें कैसे पड़ गये ! ॥ ६ ॥

ननु त्वमिषुभि कुन्दो भिन्धाः कालान्तकावपि ॥ ७ ॥
मन्दरस्यापि शृङ्गाणि कि पुनलक्ष्मण युधि ।

‘वेदा ! हम तो कुपित होनेपर अपने बाणोंसे काल और
अन्तकको भी निदीर्ण कर सकते थे, मन्दरचलके गिलगेंधे
भी तोड़-खोड़ सकते थे’ किर युद्धमें लक्ष्मणका मार गिरना
तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात थी ! ॥ ७ ॥
अद्य धैर्यव्रतो राजा भूयो बहुमतो मय ॥ ८ ॥
येनाद्य त्व महायादो सयुक्तः कालधमणा ।

‘महाबाही ! आज सर्वके पुत्र मेत्राज वधका महात्त्व युगे
अधिक जान पड़ने लगा है, किन्तोंने तुम्हें भी बरसवसि
संयुक्त कर दिया ॥ ८ ॥
एव पत्न्या सुयोधाना सखापरगणेष्वपि ।
य हते हन्यते भर्तु न पुमान् स्वर्गमृच्छति ॥ ९ ॥

‘समस्त देवताओं भी अच्छे मोझाओं का यही मार्ग है । जो अपने स्वामी के लिये सुदमे मारा जाता है, वह पुरुष स्वर्गलोक में जाता है ॥ ९ ॥

अथ देवगणा सर्वे लोकपाला महर्षय ।
हतमिन्द्रजित श्रुत्वा सुयु खप्स्यन्ति निधया ॥ १० ॥

‘आज समस्त देवता, लोकपाल तथा ऋषि इन्द्रजिता मारा जाना सुनकर निद्रा में सुषरी नीचे साँस रेंगे ॥ १० ॥

अथ लोकपाल एतस्मा वृथिवी च सफा नना ।
एकेनेन्द्रजिता हीना शल्येव प्रतिभाति मे ॥ ११ ॥

आज तीनों लोक और वानरों के प्रति यह खरी प्रथी भी अफस इन्द्रजित ने म होने में मुझे सूनी ही दिलायी देती है ॥

अथ नैर्ऋतकन्याना शोष्याम्यन्त पुरे रथम् ।
फेणुसङ्घस्य यथा निनाद गिरिगङ्गे ॥ १२ ॥

‘जैसे राजा के मारे जाने पर पर्वत की कन्दरा में हथिनियों का आतनाद सुनायी पड़ता है, उनी प्रसार आज अन्त पुर में मुझे राखन-कन्याओं का कण्ठ मन्दन सुना पड़ेगा ॥ १२ ॥

यौराज्य च लङ्का च रक्षामि च परतप ।
मातर मा च भायाश्च ह गतोऽसि विहाय न ॥ १३ ॥

‘ममूँओं को सनाप देने के लिये पुत्र । आज अपने पुत्र राज पद को, लङ्कापुरी को, समस्त राक्षसों को, अपनी माँ को, मुझ को और अपनी पत्नियाँ को—हम सब लोगों को छोड़कर तुम कहाँ चले गये ! ॥ १३ ॥

मम नाम त्वया धीर गतस्य यमसादनम् ।
मेतकायाणि कायाणि विपरीते हि वतसे ॥ १४ ॥

‘धीर ! हाना तो यह चाहिये था कि मैं पहले यमलोक में जाता और तुम यहाँ रहकर मेरे प्रेतकाय करते परन्तु तुम विपरीत अवस्थामें स्थित हो गये (तुम परलोकवासी हुए और मुझे तुम्हारे प्रेतकार्य करना पड़ेगा) ॥ १४ ॥

स त्व जीवति सुमीने लक्ष्मणे च सरङ्गये ।
मम शल्यमनुदृष्ट्य क गतोऽसि विहाय न ॥ १५ ॥

‘हाय ! राम, लक्ष्मण और सुग्रीव अभी जीवित हैं ऐसी अशक्तों में मेरे हृदय का चोट निगाह बिना ही तुम हमें छोड़ कर कहाँ चले गये ! ॥ १५ ॥

परमादिविलापान् राज्ञ राक्षसाधिपम् ।
आनिवेदा महान् फोप पुत्रयमनमभ्य ॥ १६ ॥

‘‘ प्रसार आतमा मे विहाय करते हुए राजराज राक्षसों के हृदय में अपने पुत्र के वध का स्मरण करके महान् शोक और आतना हुआ ॥ १६ ॥

प्रहृष्टा फोपन ह्येन पुत्रस्य पुनराधय ।
दीप्त सदीपयामासुधर्मोऽयमिन्द्र ममय ॥ १७ ॥

‘‘ एक तो यह स्वभाव ही प्रतीत था । दूसरे पुत्र की

चिन्ताओं ने उसे उत्तेजित कर दिया—जलते हुए को और भी जला दिया । जैसे खपरी विरज ग्रीष्म ऋतु में उसे अधिक प्रचण्ड बना देती हैं ॥ १७ ॥

ललट भुशुटीभिश्च सगताभिः परोक्षत ।
युगान्ते सह नवैस्तु महोर्मिभिरिवोदधि ॥ १८ ॥

‘‘ ललट में गेदी माँहों के कारण वह उठी तरह गोमा पाता था, जैसे प्रलयकाल में मारों और बड़ी-बड़ी लहरों में महा सागर सुगम होना है ॥ १८ ॥

फोपाद विजृम्भमाणस्य वधनाद्व्यक्तमिन्द्रजितम् ।
उन्मपात सधूमामिन्द्रजितम् यदनादि ॥ १९ ॥

जैसे वृषभुर के मुख से धूम निकल अग्नि प्रकट हुई थी, उसी तरह रोष से जैसा ई लट हुए राजा के मुख से प्रकट रूप धूम निकल अग्नि निरलने लगी ॥ १९ ॥

स पुत्रवधसतत शर क्रोधराश गत ।
समीक्ष्य गण्डो युद्धया वैदेहा रौर्यद्वयधम् ॥ २० ॥

अपने पुत्र के वध में राग हुआ शरीर राजा सहसा क्रोध से चलीभूत हो गया । उसने मुझ से सोच विचार कर विदेहकुमारी सीता को मार डालना ही अच्छा समझा ॥ २० ॥

तस्य प्रहृष्ट्या रक्तं च रक्तं क्रोधाम्निनापि च ।
राजस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे यभूजतुः ॥ २१ ॥

राजकी आँखों एक तो खभावने ही लाल थीं । दूसरे क्रोधाम्नि ने उन्हें और भी खराब करी बना दिया था । अतः उसके वे दीप्तिमान नेत्र महान् घोर प्रतीत होते थे ॥ २१ ॥

घोरप्रहृष्ट्या रूप तत् तस्य क्रोधाम्निमूर्च्छितम् ।
यभूय रूप कृद्ध्य रुद्रस्येव दुरासदम् ॥ २२ ॥

राजकाय रूप खभावने ही भयानक था । उसका क्रोधाम्नि का प्रभाव पड़ने से वह और भी भयानक हो चला और कुप्ति हुए रुद्र के समान दुःख प्रतीत होने लगा ॥ २२ ॥

तस्य कृद्ध्य नेत्राभ्या प्राप्तप्रभृन्मिन्द्र ।
दीपाभ्यामिन्द्र दीप्ताभ्या सार्विष स्नेहनिन्दय ॥ २३ ॥

क्रोध से मेरे हुए उस निगाह के नेत्रों में आँसुओं की बूँदें मिलने लगीं । आना जलते हुए दीपों में लीने साथ ही तल्ल विदु बड़ रहे हैं ॥ २३ ॥

दन्तान् विद्वानस्तस्य धूपन दानमयन ।
यत्रमादृष्यमाणस्य मन्त्रतो दानमैरिव ॥ २४ ॥

यह दौन पीछे लेगा । उस समय उसने मन्त्रों के ब्रह्मदेव का जो मन्त्र सुनाया देता था, वह मनुष्य मन्त्र समय दानों द्वारा ही लेते हुए मन्त्र पत्र मन्त्र मन्त्र चाली ध्वनि के समान बोल पड़ता था ॥ २४ ॥

काग्निरिव सन्धुको या या विद्वानमैरिव ।
तस्या तस्या भयप्रस्ता राक्षसा मन्त्रिलिखिरे ॥ २५ ॥

‘‘ एक तो यह स्वभाव ही प्रतीत था । दूसरे पुत्र की

लान्धे समान अत्यन्त कुपित हो वह जिस जिस
ही ओर दृष्टि डालना था; उस उस दिगमें खड़े हुए
भयभीत हो राममें आदिनी ओगमें छिप जाते थे ॥
तकमिष मुद्ध चराचरचिलादिपुम् ॥ २६ ॥

समाण दिश सग राक्षसा तोपचमसु ॥ २६ ॥
चराचर प्राणियोंको प्रस लेनेकी इच्छावाले कुपित कालने
मान सगुण दिगाओंकी ओर देखते हुए रावणने पाम राक्षस
ही जाते थे—उसने निकट जानेका साहस नहीं करते थे ॥
तन परमसहृद्धो रागणो राक्षसाधिप ॥ २७ ॥
अग्रवीद् राक्षसा मध्ये सस्तभ्ययिपुराहवे ॥ २७ ॥

तब अत्यन्त कुपित हुआ राक्षसराज रागण मुद्धमें रागणों
को स्थापित करनेकी इच्छाने उनका बीचमें खड़ा होकर बोला—
मया वर्षसहस्राणि चरित्वा परम तप ॥
तेषु तेष्वयकाशेषु स्वयम् परितोषित ॥ २८ ॥
'निशाचरो । मैंने यहाँमें व्योतक बठोर तपस्या कर
विभिन्न तपस्याओंकी समाप्तिपर स्वयम् ब्रह्मजीको अनुप
क्रिया है ॥ २८ ॥

तस्यैव तपसो ह्युपस्था प्रमादाद्य स्वयमुप ॥
नाहुरेभ्यो न देवेभ्यो भय मम कदाचन ॥ २९ ॥
'उमो तपस्याके फलसे और ब्रह्मजीकी कृपासे मुझे
देवताओं और अमुरोंकी ओरसे कभी भय नहीं है ॥ २९ ॥
कवच ब्रह्मदत्त मे यदादित्यसमप्रभम् ॥
देवासुरजिमर्देषु न चिह्नन् वज्रमुद्यिभि ॥ ३० ॥

'मेरे पास ब्रह्मजीका दिया हुआ कवच है, जो सूर्यके
समान दमकता रहता है । देवताओं और अमुरोंसे साथ
पठित हुए मेरे समामने अखरोपर यह वज्रके प्रहारसे भी
टूट नहीं सता है ॥ ३० ॥
तेन मामद्य सयुक्त रथस्यमिह सयुगे ॥ ३१ ॥
प्रतीपात् कोऽद्य मामाजौ साक्षादपि पुरदर ॥ ३१ ॥

'इसलिये यदि आज मैं युद्धके लिये तैयार हो रथपर
बैठकर रणभूमिमें लड़ा होऊँ तो कौन मेरा सामना कर
सकता है ! साक्षात् इन्हीं की ओं न हो; वह भी मुझसे युद्ध
करनेका साहस नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥
यत् तदाभिप्रसन्नेन सशर कामुक महत् ॥
देवासुरजिमर्देषु मम दत्त स्वयमुवा ॥ ३२ ॥
अद्य त्वयशतेर्माम धनुस्तथाप्यता मम ॥
रामरक्षमणयोरेव चधाय परमाहवे ॥ ३३ ॥

'उन दिने देवासुर-सामोंमें प्रसन्न हुए ब्रह्मजीने मुझे
को बाणसहित विनाश घनुष प्रदान किया था; आज मेरे
उसी भयानक घनुषको सेफ़ेंगे मद्रल-यापोंकी ध्वनिसे साथ
महासमरमें राम और लक्ष्मणका वध करनेके लिये ही
उठाया जाय ॥ ३२-३३ ॥

स पुत्रवधसतत मूरः क्रोधवश गत ।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हतुं व्यवस्यत् ॥ ३४ ॥

पुत्रके वधसे सतत हो क्रोधने वशीभूत हुए मूर रावणने
अपनी बुद्धिसे मोच विचारकर सीताने मार डालनेका ही
निश्चय किया ॥ ३४ ॥

प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्ष सुघोरो घोरदशन ।
वीनो वीनम्बरान् सर्वोस्तापुवाच निशाचरान् ॥ ३५ ॥

उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और आदृति अत्यन्त
भयानक दिखायी देने लगी । वह राम और दृष्टि डालकर
पुत्रके लिये हुत्ती हो दीनतापूर्ण स्वरवाले सगुण निशाचरों
से बोला— ॥ ३५ ॥

मायया मम वत्सेन वञ्चनायै जनौकसाम् ।
किञ्चिदेव हत तत्र सीतेयमिति दशितम् ॥ ३६ ॥

'मेरे बेटेने मायासे केवल वानरोंको चरना देनेके लिये
एक आकृतिको 'वह नीता है' ऐसा कहकर दिखाया और
छठे ही उसका वध किया था ॥ ३६ ॥

तत्रिदं तत्प्रेमेवाह कस्मिन् प्रियमात्मन ।
नैदेही नारायिण्यामि क्षत्रयधुमनुमताम् ॥ ३७ ॥

'हो आज उन छठकी मैं सत्य ही कर दिखाऊँगा और
ऐसा करके अपना प्रिय करूँगा । उस क्षत्रियाकर्म राममें
अनुशास रत्नेगाली सीताने नाम कर डालेगा ॥ ३७ ॥

इत्येयमुक्त्वा सचिवान् खड्गमाशु परामृशत् ।
उद्धृत्य गुणसम्पन्न विमलाम्बरवर्चसम् ॥ ३८ ॥

उद्धृत्य गुणसम्पन्न विमलाम्बरवर्चसम् ॥ ३८ ॥
निष्पपात स वेगेन सभायैः सचिवैर्वृत ।
रावण पुत्रयोकेन मृशमाकुलचेतनः ॥ ३९ ॥

मन्त्रियोंने ऐसा कहकर उठने दीप ही तलवार हाथमें
ले ली, जो लज्जोचित गुणोंसे युक्त और आकाशके समान
निर्मल कान्तिवाली थी । उन्ने म्यानसे निकालकर पत्नी और
मन्त्रियोंसे घिरा हुआ रागण बड़े वेगसे आगे बढ़ा । पुत्रके
शोकसे उसकी चेतना अत्यन्त आकुल हो रही थी ॥ ३८-३९ ॥

समुद्ध खड्गमाशु सहसा यत्र मैथिली ।
ब्रजत राक्षस प्रेक्ष्य सिंहनाम् विचुमुत्तु ॥ ४० ॥

वह अत्यन्त कुपित हो तलवार लेकर सहसा उस स्थानपर
आ पहुँचा; जहाँ मिथिलेन्द्रकुमारी सीता मौजूद थी । उपर
जाते हुए उस रावणको देखकर उठने मन्त्री सिंहनाम्

करने लगे ॥ ४० ॥
ऊचुक्षान्त्योन्म्यालिङ्ग्य समुद्धप्रेक्ष्य राक्षसम् ॥ ४१ ॥

असैन साधुभी ह्युद्वा भ्रातरी प्रयथिपयत् ॥ ४१ ॥
बे रावणको रोने भय देख एक-दूरेका आलिङ्गन कर
बोले—'आज इसे देखकर वे दोनों माँ राम और लक्ष्मण
व्यथित हो उठेंगे ॥ ४१ ॥

लोकापालादि चत्वार मुद्देनानेन निर्मिताः ।

यहव शत्रवश्चान्ये सयुगेष्वभिपानिता ॥ ५० ॥

‘क्योकि कुति होनेपर हम राक्षसपक्षने इन्द्र आदि चारों लोकपालोंका जीत दिया जो दूसरे बहुत मे शत्रुओंको भी युद्धन मार गिराया था ॥ ५२ ॥

मिथु लोकपु रत्नानि मुहुत्ते जाहृत्य राखण ।

विभ्रम च गे वैय नाम्न्यस्य सहस्रो मुवि ॥ ५३ ॥

तीनों लोकोमें जो रत्नभूत पण्य हैं, उन सबका गहर राखण मोग रहा है । भूमण्डलमें इसका समान पराक्रमी और बलवान् दूसरा कोई नहीं है ॥ ५३ ॥

तेषा स्रज्जल्पमानानामशाकयनिका गताम् ।

अभिदुष्टाव त्रैदेहीं राखण मोधमूर्च्छितम् ॥ ५४ ॥

वे इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि क्रोधने अचानक हुआ राखण अण्णाक पाटिकामें कैदी हुई त्रिदेवकुमारी सीताका वध करनेके लिये दौड़ा ॥ ५४ ॥

वापमाण सुसमुद्र सुहृदिहितमुद्धिभि ।

अभ्यधायत सङ्गुह्य के प्रहो रोहिणीमिष ॥ ५५ ॥

उसके द्विक्र विचार करनेवाला सुहृद् उस समयमें राखणका रुकनेकी चेष्टा कर रहे थे ता भी वह अभ्यन्त कुपित हा बैने आकाशमें पांडू भूत राखिणी नामक सपुत्रपर आक्रमण करता हा, उसा प्रकार सीताका आर दौड़ा । ५ ॥

मैथिली रक्ष्यमाणा तु राखसीभिरनिन्विता ।

द्वर्ग राक्षस कुन्द निजिदशवर्धधारिणम् ॥ ५६ ॥

त निशम्य सन्निहिता व्यथिता जनका मजा ।

निधायमाण बहुदा सुहृदिनिर्गर्हितम् ॥ ५७ ॥

उस समय मत्स्यगोत्री सीता राखसोंका सख्तप्रेम था । उन्होंने देला, क्रोधने मरा हुआ राखस एक हत बड़ी तयार लिये मुग मारनेके लिय आ रहा है । यद्यपि स्वयं सुहृद् उनके चारोंपार रुक रहे हैं ता भी वह लौ नही रहा है । इस तरह लपटार ल राखस आन देन जनकमन्त्रिनीक मनम बड़ी नया हुई ॥ ५६ ५७ ॥

सीता दुर्मममागिष्ठ विलपन्तीदमश्रवीत् ।

यथाप मामभिमुन्द समभिद्रुति मयम् ॥ ५८ ॥

यथिष्यति सतापसा मामनायामिष दुर्मति ।

सीता दुःखमें डूब गयी और गिराव करती हुई इस प्रकार बन्द—‘‘हू दुखिते राखस जिस तरह कुति हा मय मी अर दौड़ा आ रहा है, इसका जन पड़ता है, वह सीताया होनेपर भी मुझ अनायासी मौति मार दाखता ॥ ५८- ॥

यदुदाघोदयामास भतार मामनुमताम् ॥ ५९ ॥

भाषा मम भयस्थेति प्रयासयानो पुत्र मया ।

मैं अपने पनेमें अनुपण राखता हूँ ता भी अपने अनक बार पनेन दिया कि भूम मरी मया बन जाऊँ । उस समय निधर ही मैंने इसे दुःखत किया था ॥ ५९ ॥

सोऽय मामनुपस्थाने व्यक्त नैगदयमागत ॥ ० ॥
मोघमोहसमागिष्ठो व्यक्त मा हतुमुद्यत ।

‘मरे इस तरह दुःखनेपर निश्चय ही वह गिराव हा मय और मोहन बनामून हा गया है और अरूप ही मुग मार डालनेके लिय उद्यत है ॥ ० ॥

अथवा तो नरयात्री आतरी रामलक्ष्मणी ॥ १ ॥

मक्षिमित्तमनायेण समऽद्य निपातितौ ।

‘अथवा इस नाचन आन समुद्रगमने मरे हा कारण दोनों भाई पुरुषम भीरुम और लक्ष्मणा मार गिराया है ॥ औरों हि महान् नाशे राखसाना धुतो मया ॥ २ ॥ गहनामिद इष्टाना तथा विमोक्षाना प्रियम् ।

क्याकि इस समय मैंने शत्रुओंका बड़ा भयकर विनाश मुना है । हमने मर हुए बहुतने निगाहर अपने प्रियजनोंको पुनार रहे थे ॥ २ ॥

अहो धिन्मित्रनिमोऽय विनाशो राखपुत्रयो ॥ ५३ ॥

अथवा पुत्रदोशेन अहत्वा रामलक्ष्मणी ।

विधमिष्यति मा रात्रो राक्षस पापनिश्चय ॥ ५४ ॥

‘अह ! यदि मर कारण उन राखकुमारोंका विनाश हुआ ता मर जीवनका धिकार है अथवा यह भी सम्भव है कि पण पूष विचार रखनेवाला वह भयकर राखन पुत्रदोषन सनत हा भीरुम और लक्ष्मणका म मार करनेके कारण मरा हा वध कर डाल ॥ ५३ ५४ ॥

हनुमन्पु तद् दाय्य न जन सुदया मया ।

यद्यह तस्य पृष्ठेन तदायाममनिर्गता ॥ ॥

नारीयमनुशोचय अनुद्वङ्गता सती ।

‘मुझ सुद (मूव) नारीने हनुमादरी कही हुई वह बात नहीं माना । यदि भावमदारा अनी न जानेपर भा नम समय हनुमादनी पीरपर बैठकर चली गयी हनी ता पनेन अहूने ज्ञान पाकर आन इस तरह बारबार नाक नगी करता । मय्ये तु हृदय तस्या कौसल्याया फलिष्यति ॥ ६ ॥ एकपुथा यदा पुत्र विनष्ट भोष्यते सुधि ।

‘मरी समय कौसल्या एव ही बरका मौ है । यदि वह युद्धने अपने पुत्रक विनाशका समाचार सुनेंग ता मैं समझता हूँ कि उनका हृदय अत्यन्त पत्र जगन ॥ ६ ॥

सा हि जम च यात्य च यौन च महामन ॥ ७ ॥

धमरापाणि रूप च रुदनी सत्सरिष्यति ।

‘व तथा हुई अपने मनना पुत्रक उम बन्नाया, युवावस्था, धमकने तम रूपका स्मरण करेगी ॥ ७ ॥

निगता मिहते पुष्टे इत्या धादमयना ॥ ८ ॥

अग्निमापश्यते नूनमपे यापि प्ररक्ष्यति ।

‘अने पुत्रक मर होनेपर पुत्रमयन गिरा पत्र अथवा मरी हा व उनका आद करके निधर ही हृदय अपने

ममा जायंती नयना मरुती जलधारा मे आत्मनिर्जन
कर देगी ॥ ५८३ ॥

धिगस्तु दुःखजामसतीं मयरा पापनिश्चयाम् ॥ ५९ ॥
यश्चिन्तितमिम शोक कौसल्या प्रतिपत्स्यते ।

‘पापपूर्ण विचारवाणी उस दुष्ट कुबड़ी मयराको पिकार
है, जिसके कारण मरी सारा कौसल्याको यह पुत्रका नाक
देखना पड़ेगा’ ॥ ५९३ ॥

इत्येव मैथिलीं दृष्ट्वा तिलपन्तीं तपस्विनीम् ॥ ६० ॥

नेहिणोमिन् च त्रेण त्रिणा ग्रहयश गताम् ।

एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमान्य शीलशङ्कुषु च ॥ ६१ ॥

सुपाश्र्यां नाम मेघाश्री रावण रक्षसा चरम् ।

निवार्यमाण सच्चिवैरिदं वचनमप्रधीत् ॥ ६२ ॥

चन्द्रमासे निखुङ्कर त्रिणी पूर ग्रहके वशमें पड़ी हुई
राक्षिणीकी भौंति तपस्विनी सीताको इस प्रकार विलाप करती
देख रावणके सुशील पत्नी शुद्ध आचार निचारवाले सुपाश्र्व
नामक बुद्धिमान् भ्रात्रा ने दूसरे सच्चिवों के मना करनेपर भी
जब समय राक्षसरज रावणसे यह बात कही—॥ ६०-६२ ॥

कथ नाम दशग्रीव साक्षाद्वैधर्यानुज ।

ह तुमिच्छसि धैवेही क्रोधाद् धर्ममपास्य च ॥ ६३ ॥

‘महाराज दशग्रीव । तुम तो साक्षात् ऊँचेके भाई हो
फिर क्रोधक कारण धर्मको तिलाज्जलि दे विदेहकुमारीके वधकी
इच्छा कैसे कर रहे हो ?’ ॥ ६३ ॥

वेदनिद्यामृतस्नात स्वयमनिरतस्तथा ।

स्त्रिय कस्माद् यथ गीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥ ६४ ॥

‘गीर राक्षसरज । तुम त्रिषुषूक ब्रह्मचर्यरा पाप्मन करते
हुए वेदविद्याका अभ्यस पूरा करके गुरुकुलसे स्नातक

होवार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बुधकाण्डे द्विंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वामेधायन आदिकाव्यक बुधकाण्डमें बानर्वाँ सग पूरा हुआ ॥ २ ॥

त्रिनवतितम सर्ग

श्रीरामद्वारा राक्षससेनाका संहार

स प्रविश्य सभा राजा दीन परमनु खितः ।

निरसादासने मुखे सितः कृद्ध इव भवसन् ॥ १ ॥

समाम पहुँचकर राक्षसरज रावण अत्यन्त दुःखी एवं
दीन हो भेद सिंहासनपर बैठ और कुर्नि सिंहकी भौंति प्यसी
गँठ लने लगा ॥ १ ॥

अग्रवीर्य स तान् सवान् यत्सुख्यान् महाबल ।

रावण प्राञ्जित्नाम्न पुत्रव्यसनकर्मित ॥ २ ॥

यह महाबली रावण पुत्रप्राप्तने पीड़ित हो रहा था, अब
अपनी सेनाक प्रथम प्रथम यादार्थोंसे हाथ आड़कर

५ श्लोक—॥ २ ॥

होकर निकले थे और तबसे सदा अपने कर्तव्यने पालनमें
लगे रहे तो भी आज अपने हाथसे एक स्त्रीका वध करना तुम
कैसे ठीक समझते हो ? ॥ ६४ ॥

मैथिली रूपसम्पन्ना प्रत्यवेशस्य पार्थिव ।

तस्मिन्नेव सहासामभिराहने मोघमुत्सृज ॥ ६५ ॥

‘पृथ्वीनाथ । इस मिथिलेशकुमारीक दिव्य रूपकी ओर
देखो (देखकर इसका ऊपर दया करो) और युद्धमें हम
लोगोंके साथ चक्कर रामपर ही अपना मोघ उतारो ॥ ६५ ॥

अभ्युत्थान त्यमसौ च कृष्णपद्मचतुर्दशी ।

हृत्वा निग्राहमाशस्या विजयाय बलवृत्त ॥ ६६ ॥

‘आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है । अत आज ही युद्धकी
तैयारी करके बल अमान्यताके दिन सेनाके साथ निज्यके
लिये प्रस्थान करो ॥ ६६ ॥

शूरो भीमान् रथी रक्षी रथप्रवरमास्थित ।

हत्वा दशरथं गम भवान् प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥ ६७ ॥

‘तुम शूरवीर बुद्धियान् और रथी वीर हो । एक भेद
रथपर आरुह हो सहा हाथमें लेकर युद्ध करो । दशरथनन्दन
रामका वध करके तुम मिथिलेशकुमारी सीताको प्राप्त कर
लोगे’ ॥ ६७ ॥

स नन्वुरात्मा सुहृदा निवेदित

वच सुधर्यं प्रतिवृद्ध रावणः ।

गृह जगामाथ ततश्च धीर्यवान्

पुन सभा च प्रयवौ सुहृदृत ॥ ६८ ॥

मित्रके कहे हुए उस उत्तम धर्मानुभूत वचनको स्वीकार
करके बलवान् दुरात्मा रावण महलमें लौट गया और यहाँसे
फिर अपने सुहृदोंके साथ उसने राजसभामें प्रवेश किया ॥ ६८ ॥

इत्यार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बुधकाण्डे द्विंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वामेधायन आदिकाव्यक बुधकाण्डमें बानर्वाँ सग पूरा हुआ ॥ २ ॥

त्रिनवतितम सर्ग

श्रीरामद्वारा राक्षससेनाका संहार

स प्रविश्य सभा राजा दीन परमनु खितः ।

निरसादासने मुखे सितः कृद्ध इव भवसन् ॥ १ ॥

समाम पहुँचकर राक्षसरज रावण अत्यन्त दुःखी एवं
दीन हो भेद सिंहासनपर बैठ और कुर्नि सिंहकी भौंति प्यसी
गँठ लने लगा ॥ १ ॥

अग्रवीर्य स तान् सवान् यत्सुख्यान् महाबल ।

रावण प्राञ्जित्नाम्न पुत्रव्यसनकर्मित ॥ २ ॥

यह महाबली रावण पुत्रप्राप्तने पीड़ित हो रहा था, अब
अपनी सेनाक प्रथम प्रथम यादार्थोंसे हाथ आड़कर

५ श्लोक—॥ २ ॥

सर्वे भयन्त सर्वेण हस्यदनेन समावृताः ।

नियान्तु रथसङ्केध पादातिशोपशामिता ॥ ३ ॥

एक राम परिशिष्य समरे हतुमह्य ।

सर्वन्त शरवपाणि प्राट्टकाल इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥

‘वीरो । तुम सब लोग समझ हाथी, घाड़े, रथसङ्केध

तथा पैदल सैनिकोंमें विरह उठा सबसे मुग्राग्नि होते हुए

नगरसे बाहर निकले और समर्थुमिमें एवमान रामको चारों

आरसे घेरकर मार डाले । जैसे बरारालमें बालक जलरी

बारा करते हैं, उसी प्रकार तुमलगा भी बाणोंकी दृष्टि करने हुए

रामको मार सन्नेका प्रयत्न करो ॥ ३ ॥ ॥

अथवाह शरैस्तीक्ष्णभिर्भिन्नाग्र महाहवे ।

भवद्भिर्भ्यो निहन्तासि राम लोकस्य पश्यतः ॥ ७ ॥

अथवा ही की बल मगसमरमें तुम्हारे साथ रहकर अपने वीर्ये बाणोंसे रामके शरीरको छिन्न भिन्न करके सब लोगोंके देखते-देखते उन्हें मार डालेगा ॥ ७ ॥

हृतेतद् वाक्पयमादाय राक्षसेन्द्रस्य राक्षसा ।

निर्ययुस्ते रथे शीघ्रैर्नानानीकैश्च सयुता ॥ ८ ॥

राक्षसराजनी इस आशको गिरोधार्थ करके ये निशाचर गौमगामी रथा तथा नाना प्रकारकी सेनाओंसे युक्त हो लड़काले निकले ॥ ८ ॥

परिधान् पट्टिशास्त्रैश्च शरत्खड्गपरम्पधान् ।

शरीरान्तकान् सर्वे विशिष्टपुर्चानान् प्रति ॥ ७ ॥

यानराक्ष हुमाकटैलान् राक्षसान् प्रति विशिष्टपु ।

वे सब राक्षस यानोंपर परिध, पट्टि, बाण, तलवार तथा फलके आदि शरीरनाशक अस्त्र शस्त्रोंका प्रहार करने लगे । इसी प्रकार यान भी राक्षसोंपर पेशों और पथरोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥

ए सप्रामो महाभीम सूर्यस्योदयन प्रति ॥ ८ ॥

राक्षसा यानराणा च तुमुल समपघत ।

सूर्योदयके समय राक्षसों और यानोंके उस तुमुल युद्धने महामयकर रूप धारण किया ॥ ८ ॥

ते गदाभिश्च चित्राभिः प्राप्ते रक्षै परवधै ॥ ९ ॥

अन्योन्य समरे जम्बुस्तदा यानरराक्षसा ।

यानर और राक्षस उस युद्धभूमिमें विचित्र गदाओं, भालों, तलवारों और फलके एक दूसरेको मारने लगे ॥ ९ ॥

एन प्रवृत्ते सप्रामे ह्यहत सुमद्वज्र ॥ १० ॥

राक्षसा यानराणा च शान्त शोणितविष्टवै ।

इस प्रकार युद्ध छिड़ जानेपर जो बहुत बड़ी धूलपाछि उड़ रही थी, वह राक्षसों और यानोंके रक्तका प्रवाह जारी होनेसे शान्त हो गयी । यह एक अद्भुत बात थी ॥ १० ॥

मातगरथपूलाश्च शरमम्या ध्वजदुमाः ॥ ११ ॥

शरीरसघातवहा प्रसस्रु शोणितारणा ।

रथभूमिमें लड़ती गिती ही नदियाँ वह चलीं, जो काष्ठ मृदही भोंति शरीरसघातको ही बरमे लिये जानी थीं । गिरे हुए हाथी और रथ उन नदियोंक छिन्ने जान पड़ते थे । बाण मल्लख समान प्रतीत होते थे और ऊँचे ऊँचे ध्वज ही उनसे लटकतीं रह गये ॥ ११ ॥

ततस्ते यानरा सर्वे शोणितौघपरिप्लुता ॥ १२ ॥

ध्वजवमरथानयान् नानाप्रहरणानि च ।

आन्तुत्यान्तुन्य समरे यानरेद्रा यमजिरे ॥ १३ ॥

समस्त यानर रामसे छापप हा रहे थे । य नूद-नूदपर

समराङ्गणमें राक्षसोंके ध्वज, ध्वज, ध्वज और नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंका निगाह करने लगे ॥ १२ ॥

पेशान् कणललाट च नासिकाश्च मुखगमा ।

राक्षसा दृशनेस्तीक्ष्णेतस्त्वैत्र्यापि ध्यवर्तयन् ॥ १३ ॥

यानर अपने तीक्ष्ण दंतों और नखोंसे निगाहचरोने पदा,

पान, ललाट और नाक कुतर डालते थे ॥ १३ ॥

एकैक राक्षस सख्ये शत यानरपुंगवा ।

अभ्यधान्त फलिन वृष शकुनयो यथा ॥ १४ ॥

जैसे फलाने वृक्षों और शक, पक्षी दौड़े जाते हैं,

उसी प्रकार एक एक राक्षसपर सै-सै यानर दूट पड़े ॥ १४ ॥

तदा गदाभिर्गुर्वभिः प्राप्ते रक्षै परवधै ।

निर्जम्बुयानरान् घोरान् राक्षसा परतोपमा ॥ १५ ॥

उस समय पतवारार राक्षस भी भारी गदाओं, भालों,

तलवारों और फलके भयंकर यानरोंको मारने लगे ॥ १५ ॥

राक्षसैर्यथमानाना यानराणा महाघम् ।

शरपथ शरण याता राम दशरथात्मजम् ॥ १६ ॥

राक्षसोंका मारी जानी हुई यानरोंकी वह निशाच सेना

दशरथात्मज दशरथनन्दन भगवान् भीष्मकी तरफमें

गयी ॥ १६ ॥

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।

प्रविश्य राक्षस सैन्य शरवर्षं यय च ॥ १७ ॥

तब बल विजयवाली महातेजस्वी भीष्मने धनुष के

राक्षसोंकी सेनामें प्रविष्ट करके बाणोंकी वर्षा आरम्भ

कर दी ॥ १७ ॥

प्रविष्ट तु तदा राम मेघा सूर्यमिवाम्बरे ।

नाधिजमुमहाघोरं निदहन्त शराम्बिता ॥ १८ ॥

जैसे आकाशमें बादल तपने हुए सूर्यपर आक्रमण नहीं

कर सकते, उसी प्रकार सेनामें प्रविष्ट करके अपने बाणोंकी

अग्निसे राक्षसेनाको दह्य करते हुए भीष्मपर व महान्द

निशाचर बाण न कर सके ॥ १८ ॥

हृताण्येव मुघोरणि रामेण रजनीचरा ।

रथे रामस्य दहन्तु कमायसुकराणि ते ॥ २० ॥

निशाचर रथभूमिमें भीष्मकचक्रद्वारा हिय गय

अत्यन्त घोर एवं दुःखर नमोना ही देर पात य, उनक

स्वरूपको नहीं ॥ २० ॥

घाल्यन्त महासैन्यं विधमन्त महापान् ।

दहन्तु ते न वै राम याम यनगत यथा ॥ २१ ॥

जैसे यनमें चली हुई हवा बह-बह हवासे दिल्ली और

ताड़ बाणोंसे ही भी बह देरनेमें नहीं आती, उसी प्रकार

भगवान् भीष्म निशाचरोंकी निशाच सेनाको विरहिन करत

और जिन्हे ही महाविषोंकी पाखंडों उड़ा देने थे, ता भी व

राक्षस उन्हें देर न दी पन थे ॥ २१ ॥

छिन्न भिन शरीरैर्दग्ध प्रभग्न शास्त्रपीडितम् ।

वल रामेण दृष्टशुनं राम शीघ्रधारिणम् ॥ २२ ॥

ये अपनी सेनाको श्रीरामके द्वारा बाणोंसे छिन्न भिन्न, दग्ध, भग्न और पीड़ित होती हुई देखते थे, किन्तु क्षीभतापूर्वक युद्ध करनेवाले श्रीराम उनकी दृष्टिमें नहीं आते थे ॥ २२ ॥

प्रहरन्त शरीरेषु न ते पश्यन्ति राघवम् ।

इन्द्रियायुषे तु तिष्ठन्त भूतात्मानमिव प्रजा ॥ २३ ॥

अपने शरीरोंपर प्रहार करते हुए भीरुयुनायकीको वे ठीकी तरह नहीं देख पाते थे, जैसे आदि विषयोंके भोक्ता रूपमें स्थित जीवात्माको प्रजाएँ नहीं देख पाती हैं ॥ २३ ॥

पप हन्ति गजानीकमेव हन्ति महारथान् ।

पप हन्ति शरैस्त्रीक्ष्ण पदातीन् वाजिभिः सह ॥ २४ ॥

इति ते राक्षसा सर्वे रामस्य सहशान् रणे ।

अन्योन्यं कुपिता जघ्नु साहस्रयाद् राघवस्य तु ॥ २५ ॥

ये राम हैं, जो हाथियोंकी सेनाको मार रहे हैं, ये रहे राम, जो बड़े बड़े रथियोंका संहार कर रहे हैं, नहीं-नहीं ये हैं राम, जो अपने पैने बाणोंसे घोड़ोंसहित पैदल सैनिकोंका वध कर रहे हैं, इस प्रकार ये सब राक्षस भीरुयुनायकीकी किञ्चित् समानताके कारण सभीको राम समझ लेते और रामके ही भ्रमसे मोक्षमें भरकर आपसमें एक दूसरेको मारने लगते थे ॥ २५ ॥

न ते वृद्धशिरे राम दहन्तमपि वाहिनीम् ।

मोहिता परमात्मेण गाधयेण महात्मना ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्रकी राक्षससेनाको दग्ध कर रहे थे तो भी वे राक्षस उन्हें देख नहीं सके । महात्मा श्रीरामने राक्षसोंको गाधयैनात्मक दिव्य आक्रमे मोहित कर दिया था ॥ २६ ॥

ते तु राममहन्नाणि रणे पश्यन्ति राक्षसा ।

पुन पश्यन्ति कालुष्यमकमेव महाहये ॥ २७ ॥

अत एव राक्षस रणभूमिमें कभी ता हजारों राम देखते थे और कभी उन्हें उस महासमरमें एक ही रामका दर्शन होता था ॥ २७ ॥

भ्रमन्तीं काञ्चनीं फाटि कामुकस्य महात्मन ।

अलानचक्रप्रतिमा दृष्टशुन्ते न राघवम् ॥ २८ ॥

ये महात्मा श्रीरामन धनुषकी सुन्दरी वाटि (तान या कोणभाग) का अंगतचक्रकी मूर्ति घूमती देखते थे किन्तु राणात् भीरुयुनायकीकी नहीं देख पाते थे ॥ २८ ॥

शरीरानामि सत्त्वाच्च शरार नेमिकामुक्कम् ।

ज्याघोयतलनिर्घोय तेजोतुङ्गिगुणप्रभम् ॥ २९ ॥

दिव्यास्त्रगुणपर्यन्त निष्पन्न युधि राक्षसान् ।

दृष्ट्वा रामचक्रं सत् कालचक्रमिव प्रजा ॥ ३० ॥

युद्धस्थलमें राक्षसोंका संहार करने हुए श्रीरामचन्द्रकी वाटि चक्र समान जान पड़ते थे । शरीरका मध्यभाग

अर्थात् नामि ही उस चक्रकी नामि थी, बल ही उसमें प्रत्य हनेवाली ज्वाला था, बाण ही उसका अरंभ, धनुष ही नेमिका स्थान ग्रहण किये हुए था, धनुषरी टकार और तल-धनि—ये ही दोनों उस चक्रकी धर्मराहत था, तेज-मुक्ति और वान्ति आदि गुण ही उस चक्रकी प्रमा थे तथा दिव्यास्त्रोंने गुणप्रभाव ही उसने प्रान्तभाग अर्थात् धार थे । जेने प्रत्य प्रत्यकालमें कालचक्रका दर्शन करती है, उसी प्रकार राक्षस उस समय श्रीरामरूपी चक्रका देख रहे थे ॥ २९-३० ॥

अनीक वशमाहस्य रथाना वातरहसाम् ।

अणवश सहस्राणि कुञ्जराणा तरखिनाम् ॥ ३१ ॥

चतुर्दश सहस्राणि सारोहाणा च वाजिनाम् ।

पूर्णे शतसहस्रे ठे राक्षसाना पदातिनाम् ॥ ३२ ॥

दिवसस्याष्टभागेन शरैरग्निशिखोपमै ।

हस्तायेकेन रामेण राक्षसा कामरूपिणाम् ॥ ३३ ॥

श्रीरामने अकेले दिनका आठवें भाग (षड घंटे) में ही आगकी ज्वालाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा इच्छातुल्य रूप धारण करनेवाले राक्षसोंके बाणुके समान वेगशाली दम हज्जार रथोंकी, अठारह हजार वेगवान् हाथियोंकी, चौदह हजार सरारों सहित घोड़ोंकी तथा पूरे दो लाख पैदल निशाचरोंकी सेनाका संहार कर डाला ॥ ३१-३३ ॥

ते हताग्ना हतरथा शान्ता विमथितध्वजा ।

अभिपेतु पुर्ण लङ्का हतशेषा निशाचरा ॥ ३४ ॥

जब बाढ़े और रथ नष्ट हो गये तथा ध्वज तोड़-फेड़ डाल गये, तब मरनेसे बचे हुए निशाचर शान्त हो लङ्कापुरीमें भाग गये ॥ ३४ ॥

हतैराजपदात्यहस्तैश्च यभूव रणाजिरम् ।

आकाङ्क्षभूमि कुन्दस्य रुद्रस्येव महात्मन ॥ ३५ ॥

मारे गये हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंकी लाशोंसे भरी हुए वह रणभूमि कुपित हुए महात्मा रुद्रदेवकी क्रोडाभूमि ही प्रतीत होती थी ॥ ३५ ॥

ततो देवा सगधरा सिद्धाश्च परमरय ।

स्वाधु सापिण्ति रामस्य तत् फल समपूजयन् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर देवता, गंधर्वा, सिद्ध और महर्षियोंने साधुगण देकर भगवान् श्रीरामक इस कार्यकी प्रशंसा की ॥ ३६ ॥

अग्रवीथ तदा रामः सुग्रीव प्रत्यनन्तरम् ।

विभीषण च धमात्मा हनुमन्त च वानरम् ॥ ३७ ॥

जायन्त हरिष्रेष्ठ मन्द विविदमेव च ।

एतद्वत्तल दिव्य मम वा ज्यम्यकस्य वा ॥ ३८ ॥

उस समय धर्मात्मा श्रीरामने अपने पास लगे हुए सुग्रीव विभीषण, कपिलर हनुमान्, जायमान् कपिश्रेष्ठ मन्द तथा विविदमे कहा—एव दिव्य अथवा-एव गुप्तमें है वा अथवा शत्रुकी ॥ ३७-३८ ॥

निहत्य ता राक्षसराजवाहिनीं

रामस्तदा दाम्पस्यमो महात्मा ।

अस्त्रेषु शस्त्रेषु जितकामश्च

अस्तूयते स्वर्गणे प्रहृष्टै ॥ ३० ॥

हृत्पाथ श्रीमन्नारामणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिनवतितम सर्ग ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीरामजीनिर्निर्मित अपरारामायण आदिकाव्यक युद्धकाण्डमें त्रिनवतितम सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

चतुर्नवतितम सर्ग

राक्षसियोंका बिलाप

तानि नागमह्वराणि सारोहाणि च याजितानाम् ।

रथानां त्वनिर्गुणानां सञ्चजाना सहस्रशः ॥ १ ॥

रामस्याना सहस्राणि गदापरिषयोधिनाम् ।

बाञ्छन्ध्वजत्रिणां शूराणां कामरूपिणाम् ॥ २ ॥

निहतानि शरैर्द्वीतैस्तसकाञ्चनभूषणैः ।

राजणेन प्रयुक्तानि रामेणाङ्गिकमणा ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा ध्रुवा च सम्भ्रान्ता हतशोभा निशाचराः ।

राक्षस्यश्च समागम्य दीनाश्चितापरिप्लुता ॥ ४ ॥

अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाला मगवान् भीरुमके द्वारा उनक तथाय हुए सुवर्णसे निर्भूषित चमकीले बाणोंमें राक्षसके भेजे हुए हजारों हाथी, सवारोंसहित सहस्रों घोड़े, अनेक समान देदीप्यमान ऐसे ध्वजोंसे सुशोभित आँखों रम तथा ह्मन्नुसार रूप धारण करनेवाले, सुवर्णमय ध्वजमें विचित्र शोभा पानेवाले और गदा परिपोंसे युद्ध करने वाले हजारों शूरवीर राक्षस मारे गये—यह देख सुनकर मरनेमें बच हुए निशाचर घबरा उठे और लड़कामें जा राक्षसियोंसे मिलकर बहुत ही दुखी एवं चिन्ताग्रस्त ॥ गये ॥ १—४ ॥

विधजा हतपुत्राश्च क्रोधान्त्यो हतवाधजा ।

राक्षस्य सह सगम्य दुःखाता पर्यवेद्यन् ॥ ५ ॥

जिनके पति, पुत्र और भाई-बन्धु मारे गये थे, व अनाथ राक्षसियों छद्म-ही छद्म एकत्र होकर दुःखमें पीड़ित हो बिलाप करने लगीं—॥ ५ ॥

कथं शूण्यया वृद्धा कराला निर्णतोदरी ।

भाससाद् धनं राम कदपसमरूपिणम् ॥ ६ ॥

‘शाय ! जिसका पत्र खाली हुआ और आकार विकृत हो, वह बुनिया शूण्यता यन्में कामदेवक समान रूपगले भीरुमने पाप कामगात्र लेकर कैसे गयी—किम तरह जानेका गहन कर सखी ? ॥ ६ ॥

सुसुमार महासत्त्व सर्वभूतहिते रतम् ।

त दृष्ट्वा लोक्यन्पासा हीनरूपा प्रकामिता ॥ ७ ॥

‘ओ भावन् राम सुसुमार और महान् बन्धुवाली हैं तथा भगवत्प्रणियों दिलमें सौम्य रहते हैं, उन्हें देखकर व-

उस अपसरपर बन्धुत्व्य तेजस्वी महात्मा भीरुम जो

अच्छ गुणोंका सचालन करत समय कभी धकते नहीं थे, उस

रामसराजकी मेनास स्फुर करके हमारे देवताओंसे समुद्राय

द्वारा पूजित एवं प्रशंसित होने लगे ॥ ३ ॥

हृत्पाथ श्रीमन्नारामणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिनवतितम सर्ग ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीरामजीनिर्निर्मित अपरारामायण आदिकाव्यक युद्धकाण्डमें त्रिनवतितम सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

बुरापा राक्षसी उनर प्रति कामभावसे सुन ही गयी—यह कैसा दुःखान है ? यह दुःख तो सबन द्वारा मार डालनेक योग्य है ॥ ७ ॥

कथं सर्वगुणैर्हीना गुणान्त महीनसम् ।

सुसुम्ब दुसुखी राम कामयामास रात्रिः ॥ ८ ॥

‘कहाँ सरगुणमयन, महान् बन्धुवाली तथा सुन्दर सुन वात्र भीरुम और कहाँ यह सभी गुणाने हीन दुर्बन्धी राक्षसी ! उसने कैसे उनकी कामना की ? ॥ ८ ॥

जनस्याभ्यालपभास्यत्वाद् बलिनी द्येतमूधजा ।

अकार्यमपहाम्य च सर्वलोकत्रिगाहितम् ॥ ९ ॥

राक्षसानां त्रिनाशाय दूषणस्य परस्य च ।

चकाराप्रतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम् ॥ १० ॥

‘जिसके बारे अहोंने छत्रियों पड़ गयी हैं, जिसके बाल छेद हो गये हैं तथा जो किसी भी दृष्टिसे भीरुमने योग्य नहीं है, उस दुष्टने हम लङ्कावासियोंके दुर्मोचने ही खर, दूषण तथा अन्य राक्षसों त्रिनाशक लिये भीरुमका ध्वज (उन्हें अपने स्वार्थके दूषित करनेका प्रयास) किया था ॥ १० ॥

तस्मिन्निमित्तिदं धैरं राघवेन हन महत् ।

कथाय सीता साऽऽनीना दशग्रीवण रक्षता ॥ ११ ॥

‘उसने कारण ही दानुव राक्षस राघवने यह महान् धैर बॉध लिया और अपने तथा राक्षसगुल्क बधने लिय यह सीता जीकी हर सखा ॥ ११ ॥

न च सीता दशग्रीव प्राप्नोति जनशमज्जाम् ।

यद्ध बलवता धैरमश्रय राघवेण च ॥ १२ ॥

‘दाम्पत्य राघव जनजननिंदनी सीताकी कभी नहीं वा सनेगा परन्तु उसने बन्धुव खुनापनीने अमि धैर बॉध लिया है ॥ १२ ॥

यैर्द्वीप प्राययान त विराध प्रेक्ष्य राक्षसम् ।

हनमेकन रामेण पयास तस्मिन्नात्मन् ॥ १३ ॥

राक्षस विराध विनेहदुर्मर्षी हीनकी प्रान कजा चरन है, यह देख भीरुमने एक ही बगने उसका काम तमन कर दिया । यह एक ही दृष्टान्त उनकी अनेक गतिवत् सम्पनेक लिय जारी था ॥ १३ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसा भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १४ ॥
खरश्च निहत सख्ये दूषणस्त्रिशिरस्तथा ।
शरैरादित्यसफासौ पर्याप्त तन्निदर्शनम् ॥ १५ ॥

जनस्थानमें भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसों को भीरुमने अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा कालके गालमें डाल दिया था और सख्ये सट्ठा प्रतापमान सायकों से समराङ्गणमें पर, दूषण तथा त्रिशिरका भी छार कर डाला था; यह उनकी अजेयताको समझ लेनेके लिये पर्याप्त दृग्गन्त था ॥ १४ १५ ॥

हतो योजनघातुश्च कचधो कथिरासानः ।
क्रोधाग्नाद नन्द सोऽथ पर्याप्त तन्निदर्शनम् ॥ १६ ॥

रक्तभाजी राक्षस कचघड़ी बोहैं एक एक योजन लंबी थीं और यह मोघशय बड़े जोर-जोरसे सिंहाद करता था तो भी वह भीरुमके हाथसे मारा गया । वह दृष्टान्त ही भीरुमचन्द्रजीके दुर्बल पराक्रम का ज्ञान करानेके लिये पर्याप्त था ॥ १६ ॥

जघान यत्नि रामः सहस्रनयनात्मजम् ।
घालिन मेरुसफाश पर्याप्त तन्निदर्शनम् ॥ १७ ॥

मेरुपर्वतके समान महाकाय बलवान् इन्द्रकुमार बालीको भीरुमचन्द्रजीने एक ही बाणसे मार गिराया । उनकी शक्ति का अनुमान लगानेके लिये यह एक ही उदाहरण काफी है ॥ १७ ॥

श्रुप्यमूके वसश्चैव हीनो भग्नमनोरथः ।
सुग्रीव प्रापितो राज्य पर्याप्त तन्निदर्शनम् ॥ १८ ॥

शुभीय बहुत ही दुखी और निराश होकर श्रुप्यमूक पर्वतपर निवास करते थे परन्तु भीरुमने उन्हें निष्किचाये राजमहिम्नपर बिठा दिया । उनके प्रभावकी समझनेके लिये यह एक ही दृग्गन्त पर्याप्त है ॥ १८ ॥

धर्मार्थसहित यान्य सर्वेषां रक्षसा हितम् ।
युक्त विभीषणेनोक्त मोहात् तस्य ऽ रोचते ॥ १९ ॥

विभीषणवच श्रुत्वा यदि स्म धनदानुजः ।
स्मशानभूता दुःखात्ता नेय लब्धा भविष्यति ॥ २० ॥

विभीषणने के धर्म और अर्थसे युक्त बात कही थी, वह सभी राक्षसों ने त्रि दितकर तथा युक्तियुक्त भी परन्तु मन्दस रावणको वह अच्छी न लगी । यदि कुबेरका छोटा भाई रावण विभीषणजी बात मान लेता तो यह लब्धाशुकी इस तरह दुःखसे पीड़ित हो स्मशानभूमि नहीं बन जाती ॥ १९ २० ॥

सुम्भकर्षो हत श्रुत्वा राघवेण महावल्गम् ।
अतिशय च दुर्मनं लक्ष्मणेन हत तदा ।
प्रिय चेद्रजित पुत्र रावणो नागमुष्यत ॥ २१ ॥

महावीर सुम्भराज भीरुमके हाथसे मारा गया । दुःख वीर अतिशयममं लक्ष्मणेने मार गिराया तथा रावणका व्याप

पुत्र इन्द्रजित भी उहीसे हाथसे मारा गया तथापि रावण भगवान् भीरुमके प्रभावको नहीं समझ रहा है ॥ २१ ॥
मम पुत्रो मम भ्राता मम भ्राता रणे हतः ।
इत्येव ध्रुयते शब्दो राक्षसीना कुले कुले ॥ २२ ॥

‘हय’, मेरा बेटा मारा गया !’ ‘मेरे भाईको प्राणोंसे हाथ घेरना पड़ा !’ ‘रणभूमिमें मेरे पतिदेव मार डाले गये !’ लड़किये घर घर राक्षसियों के शब्द सुनायी देते हैं ॥ २२ ॥

रथाश्ननागाश्च हतास्तत्र तत्र सहस्रशः ।
रणे रामेण शूरेण हताश्चापि पदातयः ॥ २३ ॥

समराङ्गणमें शूरवीर भीरुमने ‘हाँ-तहाँ’ सहस्रों रथों, घोड़ों और हाथियोंका संहार कर डाला है । पैदल सैनिकोंको भी मौतके घाट उतार दिया है ॥ २३ ॥

रुद्रो वा यदि वा शिष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः ।
हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः ॥ २४ ॥

‘जान पड़ता है’, भीरुमना रूप धारण करके हमें सशस्त्र भगवान् रुद्रदेव, भगवान् शिष्णु, शतक्रतु इन्द्र अपना स्वयं यमराज ही मार रहे हैं ॥ २४ ॥

हतप्रवीरा रामेण निपशत जीविते ययम् ।
अपयन्त्यो भयस्यान्तमनाया त्रिलपामहे ॥ २५ ॥

‘हमारे प्रमुख वीर भीरुमके हाथसे मारे गये । अब हमलोग अपने जीवनसे निराश हो चली हैं । हमें इस भयमय अन्त नहीं दिखायी देता, अनएव हम अनाथकी भाँति विनाश कर रही हैं ॥ २५ ॥

रामहस्ताद् दशग्रीव शूरो वसमहावरः ।
इदं भय महाघोरं ससुष्यन्त न सुदृश्यते ॥ २६ ॥

‘दशमुख रावण शूरवीर है । इसे ब्रह्माजीने महान् कर दिया है । इसी धर्मबन्धे कारण यह भीरुमके हाथसे प्राप्त हुए इस महाघोर भयको नहीं समझ पाता है ॥ २६ ॥
त न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
उपसृष्ट परिघातु शक्ता रामेण ससुष्ये ॥ २७ ॥

‘सुदृशालमें भीरुम जिसे मारनेको तुल जायें, उसे न तो देवता, न गन्धर्व, न पिशाच और न राक्षस ही बना सकते हैं ॥ २७ ॥

उत्पाताश्चापि हृदयन्ते रावणस्य रणे रणे ।
काययन्ति हि रामेण रावणस्य निवहणम् ॥ २८ ॥

‘रावणने प्रत्येक सुदृष्टमें जो उत्पात दिखायी देते हैं, वे रामने द्वारा रावणने निनाशकी ही सूचना देते हैं ॥ २८ ॥
पितामहेन प्रीतेन देवदानराजस्य ।
रावणस्याभयं दत्तं मनुष्येभ्यो न याचितम् ॥ २९ ॥

‘ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर रावणसे देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंकी ओरसे अभयदान दे दिया था । मनुष्योंकी ओरसे अभय प्राप्त होनेके लिये इन्हने याचना ही नहीं की थी ॥ २९ ॥

दिदं मानुषं मन्ये प्राप्तं निःसंशयं भयम् ।
 जीवितान्तकरं घोरं रक्षसा राज्ञस्य च ॥ ३० ॥
 'अतः मुने ऐसा ज्ञानं पड़ता है कि यह निःसंदेह
 अनुभवी ओरसे ही घोर भय प्राप्त हुआ है, जो राक्षसों
 तथा रावणने जीवनका अन्त कर देनेवाला है ॥ ३० ॥
 गीड्यमानास्तु बलिना धरद्वानेन रक्षसा ।
 दीप्तैस्तपोभिर्विबुधाः पितामहमपूजयन् ॥ ३१ ॥
 'बलवान् राक्षस राज्ञने अपनी उद्दीप्त तपस्या तथा
 धरद्वानेने प्रमानसे कर देवताओंसे पीड़ा दी, तब उन्होंने
 पितामह ब्रह्माजीकी आराधना की ॥ ३१ ॥
 देवतानां हितायाय महात्मा चैव पितामहः ।
 उपायं देवतास्तुष्ट इदं सवां महद्दयम् ॥ ३२ ॥
 'इससे महात्मा ब्रह्माजी स्तुष्ट हुए और उन्होंने
 देवताओंके हितके लिये उन ससे यह महत्त्वपूर्ण बात
 कही ॥ ३२ ॥
 नयप्रभृति लोकास्त्रीन् सर्वे दानराजस्य ।
 भयेन प्रभृता नित्यं निचरिष्यन्ति शाश्वतम् ॥ ३३ ॥
 'आज्ञेन समस्त दानव तथा राक्षस भयने युक्त होकर ही
 नित्य निरन्तर तीनों लोकोंमें विचरण करेंगे' ॥ ३३ ॥
 दैवतैस्तु समागम्य सर्वैश्चेद्रूपयोगैः ।
 धूपध्वजस्त्रिपुरहा महादेवं प्रतोषितम् ॥ ३४ ॥
 'तत्त्वज्ञान इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर
 त्रिपुरनाशक धूपभजन महादेवजीको स्तुष्ट किया ॥ ३४ ॥
 प्रसन्नस्तु महादेवो देवानेतद् वचोऽग्रसीत् ।
 उत्पत्त्यति हितायै यो नारी रक्ष क्षयानहा ॥ ३५ ॥
 'स्तुष्ट होनेपर महादेवजीने देवताओंसे कहा—'तुम
 लोगोंके हितके लिये एक दिव्य नारीका आविर्भाव होगा, जो
 समस्त राक्षसोंके विनाशके कारण होगी ॥ ३५ ॥
 एषा देवैः प्रयुक्ता तु क्षुब्धं यथा दानराजं पुरा ।
 भक्षयिष्यति न स्यात् राक्षसस्यै सरायणान् ॥ ३६ ॥
 'इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुद्धकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ १४ ॥
 इस प्रकार श्रीबालमणिनिर्णित अष्टरामायण आदिकाव्यक सुद्धकाण्डे चारानवेकौ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चनवतितमः सर्गः

रावणका अपने मन्त्रियोंको गुलाबर शत्रुवधनिषयक अपना उत्साह प्रकट करना

और सबके साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम दिखाना

आताना राक्षसीना तु लङ्काया वै कुले कुले ।
 राज्ञं वरुणं दण्डं मुद्राय परिदेष्टितम् ॥ १ ॥
 'राजाने लङ्काके घर-घरमें गोत्रमन्त्र राक्षसोंको करुणा
 जनक मिलाने गुना ॥ १ ॥
 स तु दीर्घं विनिश्चयस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।

अज्ञेन पूषकल्पमें देवताओंद्वारा प्रयुक्त हुई क्षुभने दानवों
 का मक्षण किया था, उसी प्रकार यह निशाचरनाशिनी सीता
 राज्ञसहित हम सब लोगोंको खा जायगी ॥ ३६ ॥
 राज्ञस्यापनीतेन दुर्हिनीतस्य दुमते ।
 अयं निष्ठानको घोरं शोकेन समभिप्लुतः ॥ ३७ ॥
 'उहड़ और दुर्विद्ध रावणक अन्त्यायने यह शोकसमुत्
 घोर विनाश हम सबको प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥
 त न पद्मयामहे लोके यो न शरणदो भवेत् ।
 राघवेणोपसृण्णना कालेनेन युगमये ॥ ३८ ॥
 'जगतमें हम किसी ऐसे पुरुषको नहीं देखती हैं, जो
 महाप्रलयके समय कालकी मौति इस समय श्रीरघुनाथजीसे
 शक्तमें पड़ी हुई हम राक्षसियोंको 'रण द सरे ॥ ३८ ॥
 नास्ति न शरणं किंचिद् भये महति तिष्ठताम् ।
 दागन्निधेपिताया हि क्लेणूना यथा वने ॥ ३९ ॥
 'हम वड़े भारी भयनी अस्त्रास्त्रास्त्रा हैं । जैसे वनमें
 दावानलने घिरी हुई हथिनियोंको कहा 'गाय बचावने लिय
 जगह नहीं मिलती, उसी तरह हमारे लिय भी काश शरण
 नहीं है ॥ ३९ ॥
 प्राप्तकालं हृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना ।
 यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः ॥ ४० ॥
 'महात्मा पुरुल्लयन दत्त त्रिभीषणने समयोचित कार्य
 किया है । उन्हें जिनसे भय दिवायी दिया, उन्हींको शरणमें
 वे चले गये' ॥ ४० ॥
 इतीत्यर्वा रजनीचरस्त्रिय
 परस्परं सम्परिरिष्य यागुभिः ।
 विप्रेदुपराततिभयाभिपीडिता
 निन्दुरुच्यैश्च तदा मुदायणम् ॥ ४१ ॥
 इस प्रकार निशाचरोंकी कड़ी निर्या एव दूसरी।
 मुद्राओं भरकर आतमान पर निगाहमन्त्र हो गयी और
 अत्यन्त भयने पीड़ित हो अति मरकर कन्दन करते रगीं ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुद्धकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीबालमणिनिर्णित अष्टरामायण आदिकाव्यक सुद्धकाण्डे चारानवेकौ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥



पञ्चनवतितमः सर्गः

रावणका अपने मन्त्रियोंको गुलाबर शत्रुवधनिषयक अपना उत्साह प्रकट करना

और सबके साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम दिखाना

आताना राक्षसीना तु लङ्काया वै कुले कुले ।
 राज्ञं वरुणं दण्डं मुद्राय परिदेष्टितम् ॥ १ ॥
 'राजाने लङ्काके घर-घरमें गोत्रमन्त्र राक्षसोंको करुणा
 जनक मिलाने गुना ॥ १ ॥
 स तु दीर्घं विनिश्चयस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।

यभूय परमकुञ्जो रावणो भीमद्वानः ॥ २ ॥
 व ल्पी सौतं गौचरर दो पनीन प्यानमन दो कुट
 गोचता रहा तपश्चात् रावण अत्यन्त दुःख हो गया भयानक
 निरासी देने छान ॥ २ ॥
 सदस्य दानवेष्टेष्ट प्राथसरत्नलोचनः ।

राक्षसैरपि उदर्श कालाग्निरिव मूर्तिमान् ॥ ३ ॥
उरने दौर्गते आठ दवा लिया । उसकी आँखें रोपते
लाल हा गयीं । वह मूर्तिमान् प्रत्याग्निरने समान दितायी
देने लगा । राक्षसोंके लिय भी उसकी ओर देतना कठिन
होगया ॥ ३ ॥

उयाच च समीपस्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वर ।
मोधाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चधुपा ॥ ४ ॥
उस राक्षसराजने अपने पास खड़े हुए राक्षसोंसे अत्यन्त
गन्धम वातासप आरम्भ किया । उस समय वहाँ यह इस
तरह देख रहा था, मानो अपने नेत्रोंसे दग्ध कर डालेगा ॥
महोदर महापार्ष्व विरूपाक्ष च राक्षसम् ।
शीघ्र घटत सैन्यानि नित्येति विमोहयाम् ॥ ५ ॥
उठने क्या—निशाचरो ! महोदर महापार्ष्व तथा
राक्षस विरूपाक्षसे गीम जाकर कहो—‘तुमलोग मरी आशासे
शीघ्र ही सेनाओंको कूच करनेका आदेश दो’ ॥ ५ ॥
तस्य तद् वचन श्रुत्वा राक्षसास्ते भयादिता ।
बोदयामासुर्गन्धमान् राक्षसास्तान् नृपाशया ॥ ६ ॥
रावणजी यह जान सुनकर भयसे पीड़ित हुए उन
राक्षसोंसे राजाजी आशाके अनुसार उन निर्भीक निशाचरोंको
पूर्वोक्त कथ करनेके लिये प्रेरित किया ॥ ६ ॥
ते तु सर्वे तथेत्युक्त्वा राक्षसा भीमवर्धना ।
छतस्वस्वययना सर्वे ते रणाभिमुखा ययुः ॥ ७ ॥
तब ‘तथास्तु’ कहकर भयानक दीननेगले उन सभी
राक्षसोंने अपने लिये स्वस्तिवाचन करना और युद्धके लिये
प्रस्थान किया ॥ ७ ॥
प्रतिपूज्य ययान्याय राजण ते महारथा ।
तस्य प्राञ्जलय सर्वे भृत्यविजयकाक्षिण ॥ ८ ॥
सामीनी निजय चाहनेगले वे सभी महारथी वीर यथोचित
रीतिसे राजराज आदर-सम्मान करच उलख सामने हाथ जोड़
खड़े हा गये ॥ ८ ॥
ततोवाच प्रहस्यैतान् राजण मोधमुच्छ्रित ।
महोदरमहापार्ष्वी विरूपाक्ष च रामसम् ॥ ९ ॥
तबवात् राजण आपसे मुर्च्छित हो होकर बड़े जोरसे
हँस पड़ा और महोदर, महापार्ष्व तथा राक्षस विरूपाक्षसे
कहा— ॥ ९ ॥
अथ याणैधनुर्मुर्च्छुर्गुणा तदित्यसन्निभै ।
राघव लक्ष्मण चय नैप्यामि यमसादनम् ॥ १० ॥
‘आज अपने धनुससे छूटे हुए तीरोंसे बाणोंद्वारा, जो
प्रत्येक राजा गुण सदा तेजस्वी है, मैं राम और लक्ष्मणको
भी यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ १० ॥
परस्य कुम्भफणस्य प्रहस्ते द्रजितास्तथा ।
करिष्यामि प्रतीकारमय दानुयथादहम् ॥ ११ ॥
‘आज तुमके कुम्भफणसे प्रहस्ते द्रजितास्तथा
करिष्यामि प्रतीकारमय दानुयथादहम् ॥ ११ ॥

‘आज धनुका वध करके तब कुम्भफण, प्रहस्त तथा
हस्तजित्के बारे जानेका भरपूर बदला चुकाऊँगा ॥ ११ ॥
नैवान्तरिक्ष न दिशो न च दौर्गोपि सागराः ।
प्रकाशत्वा गमिष्यन्ति मद्वागजलदावृता ॥ १२ ॥
‘मर बाण मेघोंकी घटाच समान सब ओर छा जायेंगे
अत अन्तरिक्ष, दिखाएँ, आकाश तथा समुद्र—‘तुम भी
दित्वायी न देगा ॥ १२ ॥
अथ वानरमुखाणां तानि यूथानि भागशः ।
धनुषा शरजालेन बधिष्यामि पतत्रिणा ॥ १३ ॥
‘आज अपने धनुससे पल्लवाले बाणोंसे जाल-सा बिछा
दूँगा और वानरोंक मुख्य मुख्य यूथोंका पृथक्-पृथक् वध
करूँगा ॥ १३ ॥
अथ वानरसैन्यानि रथेन पयनीजसा ।
धनु समुद्रादुद्धृतैर्मथिष्यामि शरीरिभिः ॥ १४ ॥
‘आज वायुके समान वेगवाली रथपर आरुह्य हो मैं
अपने धनुषरूपी समुद्रसे उठी हुई बाणमयी तरङ्गोंसे वानर
सेनाओंको मथ डारूँगा ॥ १४ ॥
अथ यूथतटाकानि राजवत् प्रमथाम्यहम् ॥ १५ ॥
‘कमल-चरकरोंकी-सी वात्सिकाके वानरोंन यूथ सरोवरोंक
समान हैं । उनक युध ही उन सरोवरोंसे भीतर प्रकृत कमलक
समान मुसोषित होते हैं । आज मैं हाथीके समान उनमें प्रवेष्ट
करके उन वानर यूथरूपी सरोवरोंको मथ डारूँगा ॥ १५ ॥
सशरैरथ घट्ने मरथ वानरयूथपा ।
मण्डयिष्यामि यसुधा सनालैरिव पङ्कजैः ॥ १६ ॥
‘आज युद्धसालमें गिरे हुए वानर यूथपति अपने बाण
निद मुलोंद्वारा नालयुक्त कमलोंसे भ्रम उत्पन्न करते हुए
रणभूमि की गोभा बनायेंगे ॥ १६ ॥
अथ यूथपचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनान् ।
मुकनैकेपुणा युद्धे भेत्स्यामि च शत शतम् ॥ १७ ॥
‘आज युद्धभूमि धनुससे छूटे हुए एक-एक बाणने मैं
हस्त ऐस्वर गड़नेगले की-सी प्रचण्ड वानरोंको निर्दोष करूँगा ॥
हतो आता च येया द्वि येया न तनयो हतः ।
घघनाय रिपोस्तेषां करोम्यथुममार्जनम् ॥ १८ ॥
‘आज ‘गुका वध करने में उन हा निशाचरोंके आँख
पोहूँगा, जिनका भाद और पुत्र इस युद्धमें मारे गये हैं ॥
अथ मद्वायानिभिन्ने प्रस्तीर्णगंतवतनैः ।
करोमि वानरैर्मुद्धे यत्तायेक्यतला महीम् ॥ १९ ॥
‘आज युद्धमें मेरे बाणोंसे निर्णीत तथा निर्जित हुए वानर
इव तपे शिख जायेंगे कि यहाँकी भूमि घने वनसे दीप्त
सजगी ॥ १९ ॥

अथ काकाश्च गृध्राश्च ये च माताशिनोऽपरे ।
सर्वोस्तास्तर्पयिष्यामि शत्रुमासौ शराहने ॥ २० ॥

‘आब्र अग्ने बाणोंद्वारा मार गय शत्रुओंक मांसों में
कोशों, गीधों तथा अब दूसरे मासमशी बन्द हैं, उन सबको
भी तू म करेगा ॥ २० ॥

कल्प्यता मे रथ दीप्त क्षिप्रमानीयता धनु ।
अनुप्रयान्तु मा युद्धे येऽत्र क्षिप्र निशाचरा ॥ २१ ॥

‘कल्प्यता मे रथ तीव्रतर किया जाय, क्षीम धनुष लाया
जाय तथा मरनेसे बच हुए निशाचर युद्धमें मरे पीछे
पाउं चहें ॥ २१ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा महापाश्वेऽग्रसीद्वयच ।
यलाध्यक्षात् स्मितास्त्रं यत् सन्वयतामिति ॥ २२ ॥

‘राणका वह वचन सुनकर महापाश्वेने वहाँ खड़े हुए
नेनागियोंके कहा—‘मेनाकी शाय ही बूच करेका आरा
दा’ ॥ २२ ॥

यलाध्यक्षास्तु सयुक्ता राक्षसास्तान् गृहे गृहे ।
चोदयन्त परियुल्लङ्घा लघुपपन्ना ॥ २३ ॥

‘य आशा पाकर ये क्षीमराकमा सेनाध्यक्ष घर घर
आकर उन राक्षसोंका तैयार होनेका आदेश देत हुए सारी
लक्ष्मणों को लड़े लिये ॥ २३ ॥

ततो मुहूर्तान्निपेन् रात्रमा भीमप्रदाना ।
मृदन्तो भीमवदना नानाप्रहरणमुचै ॥ २४ ॥

‘थड़ी ही देरमें मरकर मुग एग आकारवान् राक्षस
गन्ना करने हुए वहाँ आ पहुँच । उनर हाथोंमें नाना
प्रकारक अन्न गन्ने थे ॥ २४ ॥

असिभिः पट्टिनां शूलगदाभिमुखैर्हैलैः ।
शक्तिभिस्तृणधारभिर्महद्भिः कूटमुष्टैः ॥ २५ ॥
यष्टिभिर्निर्घैश्चैर्निशितैश्च पथ्यधै ।
भिन्दिफलैः दान्तीभिर्न्यध्यापि घरायुधैः ॥ २६ ॥

‘तलवार पण्डित, शूल, गदा, मूक, हल, तीली धार
फाली शक्ति बन्दूक, कुल्हाड़े, डह, भोंपि भोंपित चक्र,
धोम करते, भिन्दिफल, ‘तन्पी तथा अन्य प्रकारक उसमांस
अन्न गन्नेमें ये मरने थे ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथानयन् यथाभ्यगाध्यावरो रात्र्यावया ।
रथानां नियुतं सामं नागानां नियुतप्रयम् ॥ २७ ॥
अभ्यानां पटिकोट्यस्तु रुरोराणां तथैव च ।
पदानयन्त्यसम्याता जमुन्मत्त राजदासनात् ॥ २८ ॥

‘रात्राही अरुने चर मनाति एक रात्रने कुछ अधिक
रथ, तीन सय हाथी, सय बरग चहें, उनने ही गदहे तथा
ऊँ और अगण पैर दहा लकर आ पहुँच । वे सब
देनिक राक्षस अदेगन वहाँ गये ॥ २७ २८ ॥

यलाध्यक्षाश्च सत्यायराण मना पुरश्चिताम् ।
पतस्मिन्नन्तरे स्तुत म्यापयामास त रथम् ॥ २९ ॥

‘इस प्रकार विजाल सेना लकर सेनाध्यक्षने राक्षसों
रावणने सामने खड़ी कर दी । इसी बीचमें रात्रिने एक रथ
लकर उपस्थित कर दिया ॥ २९ ॥

दिव्यास्त्ररसम्पन्नं नानालकारभूषितम् ।
नानायुधसमाकीर्णं विद्विणीपालसयुतम् ॥ ३० ॥

‘उसमें उत्तम दिव्यास्त्र रथ थे, अनेक प्रकारक अस्त्रों
से उस रथका सजाया गया था । उसमें भोंपि भोंपिते हथियार
ये और वह रथ सुन्दर स्यायने युद्धमित्र था ॥ ३० ॥

नानारत्नपरिचितं रत्नस्तम्भैर्विपूजितम् ।
जाम्बूनदमयक्षेत्रं सहस्रफलदौतुतम् ॥ ३१ ॥

‘उसमें नाना प्रकारक रत्न जड़े हुए थे । रत्नमय स्तम्भ
उसकी शोभा बढ़ाते । और सनर बन हुए सहस्रों फलशेने
वह अलङ्कृत था ॥ ३१ ॥

त हृद्वा राक्षसां सर्वे रिस्रिय परम गता ।
त हृद्वा सहस्रोऽधाय रात्रो रात्रसम्भर ॥ ३२ ॥

‘कोटिसयप्रतीकाश ज्वलन्मित्र पावकम् ।
द्रुतं स्तनसमायुक्तं युक्तापनुगं रथम् ।
आहरोह तदा भीम दीप्यमानं स्थानेनया ॥ ३३ ॥

‘उस रथका देवदत्त उस राक्षस अत्यन्त आश्चर्यमें बहिन
हो उठे । उसर छपि पड़न ही राक्षसोंका रात्र हटता उठ
कर खड़ा हो गया । वह रथ बराहों स्यों समान तबन्नी
तथा प्रबलित अग्निर स्या दतिनात् था । उसमें आग
पाड़े बुने हुए थे । उसर लागि देगा था । वह रथ अग्न तब-
से प्रबलित होता था । रात्र तुरत उस भयकर रथर आग
हो गया ॥ ३२ ३३ ॥

ततः प्रयात सहसा रात्रसंगृहीतम् ।
रात्रं सत्त्वगाभीयाद् दारपत्रिणं मदिनीम् ॥ ३४ ॥

‘तदनन्तर बहुतने राक्षसोंन चिप हुआ रात्रन सहसा
मुदक लिये प्रस्थित हुआ । वह अग्ने लकी अधिकतर
पृथ्वीको विनीषका करना हुआ आ रहा था ॥ ३४ ॥

ततश्चासीं महानादस्त्रयाणां च तनन्त ।
मृदन्तैः पट्टैः दाहैः कल्ह सह रथसाम् ॥ ३५ ॥

‘सि ता वहाँ उस अर बाणोंक मनादा गूँज उठा ।
मृदन्त, पट्ट, गद्ग तथा राक्षसोंन कल्हों पड़ने भी उसमें
लिन्ये हुए थी ॥ ३५ ॥

आगतो रक्षमा गता द्रष्टव्यामरसयुतः ।
सीतापदार्था दृष्ट्वातो प्रहृष्टो देवराष्ट्रकः ।
योऽपि रघुवरोऽपि युधुषे कल्हदधति ॥ ३६ ॥

‘व्योदय युगनेराध, दुर्गचरी, नरपराय तथा
दवराष्ट्रक द्वि कल्हदध राक्षसोंन रात्र छप एग देव

नय सक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समतत ।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु नदत्सु च पतत्सु च ॥ १३ ॥

विरूपाक्ष स्वक नाम धन्वी निध्राव्य राक्षस ।
गधादाप्नुत्य दुर्धनो राजस्क धमुपावहत् ॥ १४ ॥

इस प्रकार सुग्रीवजी मारते जन धन और राक्षसोंका
विनाश होने लगा तथा वे भागने और आर्तनाद करते हुए
पृथ्वीपर गिरने लगे, तब विरूपाक्ष नामक दुर्धन राक्षस हाथमें
हाथीकी पीठपर जा चला ॥ १३ १४ ॥

स त द्विपमथारुह्य विरूपाक्षो महाबल ।
ननर्द भीमनिहाद वानरानभ्यधात ॥ १५ ॥

उस हाथीपर चढ़कर महाबली विरूपाक्षने बड़ी भयानक
आवाजमें गर्जना की और वानरोंपर वेगपूर्वक धावा किया ॥
सुग्रीवे स शरान् धोरान् विससज्ज चमूमुखे ।
स्थापयामास चोद्विनान् राक्षसान् सम्प्रहृषयन् ॥ १६ ॥

उसने सेनाने घुड़ानेपर सुग्रीवको लज्ज करके बड़े भयंकर
बाण छोड़े और डटे हुए राक्षसोंका हर्ष बनाकर उन्हें खिलवा
प्रसन्न स्थापित किया ॥ १६ ॥

सोऽतिविद्ध शितैर्वीणे कपीद्रस्तेन रक्षसा ।
बुभुक्षे च महानोधो वधे चास्य मनोदधे ॥ १७ ॥

उस राक्षसने देने बाणोंसे अत्यंत पायल हुए वानरराज
सुग्रीवने महान् क्रोधसे भरकर भीषण गर्जना की और निष्पाप
को मार डालनेका विचार किया ॥ १७ ॥

ततः पादपमुद्धृत्य शूरे सम्प्रधनो हति ।
अभिपत्य जयनात्य प्रमुञ्चे त महागजम् ॥ १८ ॥

शूरवीर तो वे थे ही, सुदूर दगसे युद्ध करना भी जानते
थे अत एक वृक्ष उखाड़कर आगे बढ़े और अपने सामने
माफ ॥ १८ ॥

स तु महाराभिहत सुग्रीवेण महागज ।
अपासर्पद् धनुमात्र निपसाद ननाद च ॥ १९ ॥

सुग्रीवने मारते पायल हो वह महान् गरजन एक घनुष
पीठे हटकर बैठ गया और वीणासे आर्तनाद करने लगा ॥ १९ ॥

गजात् तु मथितात्तूणमपकम्य स भीयवान् ।
राक्षसोऽभिमुखं शङ्ख प्रत्युद्रम्य ततः कपिम् ॥ २० ॥

आर्यभ चम खन्न च प्रगृह्य लघुप्रिक्त्रम् ।
भक्त्यप्रिय सुग्रीवमाससाद व्यनस्यितम् ॥ २१ ॥

परकमी यक्ष निष्पाप उस पायल हाथीकी पीठसे उतर
पड़ पड़ा और डाल-तल-गार ले भीमनृपजी अपने शत्रु
सुग्रीवजी और बना । सुग्रीव एक खानपर शिरकापूर्वक सड़े
। वह उन्हें फरारता हुआ-सा उनका पाश बा
रंजा ॥ २० २१ ॥

स हि तस्याभिसक्तुं प्रगृह्य विपुला शिलाम् ।
विरूपाक्षस्य चिक्षेप सुग्रीवो जलक्षोपमाम् ॥ २२ ॥

यह देव सुग्रीवने एक बहुत बड़ी शिला हाथमें ली,
जो मेघसे समान काली थी । उसे उन्होंने विरूपाक्षने शरीरपर
फेंक दिया ॥ २२ ॥

स ता शिलामापतन्तीं हृष्ट्वा राक्षसपुंगव ।
अपमम्य सुनिभान् खड्गेन प्राहृन्व तदा ॥ २३ ॥

उस शिलाको अपने ऊपर आती देख उस परम पराक्रमी
राक्षसगिरामणि विरूपाक्षने पीठे हटकर आत्मरक्षा की और
सुग्रीवपर तलवार चलायी ॥ २३ ॥

तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हत ।
मुहूर्तमभगन्द् भूमौ विस्रज इव वानर ॥ २४ ॥

उन खड्गवाले निशाचरकी तलवारसे पायल होकर वानर
राज सुग्रीव मूर्च्छित होकर थोड़ी देर धरतीपर पड़े रहे ॥ २४ ॥

सहसा स तद्देवपत्य राक्षसस्य महाहवे ।
मुष्टिं सत्यर्वं वेगेन पातयामास वक्षसि ॥ २५ ॥

किर सदा उछलकर उठोंने उन महासमरमें सुग्रीव बाँध
कर विरूपाक्षकी छातीपर वेगपूर्वक एक मुक्का मारा ॥ २५ ॥

मुष्टिप्रहारमिहतो विरूपाक्षो निशारुह ।
तेन खड्गेन सक्तुं सुग्रीवस्य चमूमुखे ॥ २६ ॥

कनक पातयामास पद्भ्यामभिहतोऽपतत् ।
उसने सुग्रीवकी चोट टाकर निशाचर विरूपाक्षर
और बंद गया और उसने सेनाके युगनेपर उठी त
सुग्रीवन कनकको काट गिराया साथ ही उसके पैरोंका
पाकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

स समुत्थाय पतितः कपित्सस्य व्यसजयत् ॥ २७ ॥
तलप्रहारमशाने समान भीमनिःसृतम् ।

गिरे हुए सुग्रीव पुन डठकर सड़े हो गया और उन्हें
उस राक्षसको वक्रसे समान भीषण गन्द करनेगाल थपका
माफ ॥ २७ ॥

तलप्रहार तद् रक्ष सुग्रीवेण समुच्यतम् ॥ २८ ॥
नैपुण्यामोचयित्वैनं सुग्रीनोरसि ताडयत् ।

सुग्रीवके चलाये हुए उन थपकाया वार वह राक्षस अपने
युद्धवीर्यसे थका गया और उसने सुग्रीवकी छातीपर एक
घुसा मारा ॥ २८ ॥

ततस्तु सक्तुं ततः सुग्रीज वानरोधराः ॥ २९ ॥
मोक्षित चात्मनो हृष्ट्वा प्रहार तेन रक्षसा ।

म ददन्तान्तर तस्य विरूपाक्षस्य वानर ॥ ३० ॥
अब तो वानरराज सुग्रीवने कापकी सीमा न रही ।
उठोंने देखा कि राक्षसने गिरे प्रहारकी ब्यथ कर दिया और

अपने ऊपर उसका स्वर्ण नहीं होने दिया । तब वे विष्णाक्षर
प्रहार करनेका असर देखने लगे ॥ २९ ५० ॥
ततोऽन्य पातयत् क्रोधाऽऽहृद्देशे महातलम् ।
महेन्द्राशनिफलेन तलेनाभिहत क्षितौ ॥ ३१ ॥
पपात रुधिरहिम्न शोणित हि समुद्रिन् ।
ओतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जल प्रस्त्रयणादिव ॥ ३२ ॥
तदनन्तर सुग्रीवने विष्णाक्षर छलाहपर क्रोधपूर्वक दूखा
महान् थपड़ मारा, जिसका स्पर्श इन्द्रिये वस्त्रों समान दुःसह
था । उससे आहत होकर विरूपाक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसका
साथ गरीर खूनसे भीग गया और वह समस्त इन्द्रिय-गोलकासे
उसी प्रकार रक्त वसन करने लगा, जैसे हारनेमें जड़ गिर
रहा हो ॥ ३१ ३२ ॥
निवृत्तनयन क्रोधात् सफेन रुधिराप्सुतम् ।
दृष्टुंस्ते विरूपाक्ष विरूपाक्षतर वृत्तम् ॥ ३३ ॥
स्फुरन्त परितः त पादरेन रुधिरक्षितम् ।
कदण च निन्दन्त दृष्टुं कपयो रिपुम् ॥ ३४ ॥
उस राक्षसकी आँखें क्रोधसे घूम रही थीं । वह पैनयुक्त
रुधिरमें डूबा हुआ था । वानरोंने देखा, विरूपाक्ष अत्यन्त
विरूपाक्ष (कुलूप नेत्रवाला और भयकर) ॥ गया है । खून
हृत्पापें धीमद्गानावणे वात्सीयध्वे आदिक्रम्ये युद्धराष्ट्रे पणवतितम सर्ग ॥ १६ ॥
इस प्रकार श्रीबालमीनिर्मित आषरामावण आदिक्रम्ये युद्धराष्ट्रे पणवतितम सर्ग ॥ १६ ॥

से लक्षपय हो छत्रपाता करवटें बदलना तथा कदणाक्षर
आतनाद करता है ॥ ३५ ३४ ॥
तथा तु तौ सयति सम्प्रयुक्ती
सखिनौ वानरराक्षसानाम् ।
वलाण्यौ सखनतुष्ट भीमी
महाण्यौ ह्यनिव भिन्नसेतू ॥ ३५ ॥
इस प्रकार वे दोनों वेगवाली वानरों और राक्षसोंने स्नेह
समुद्र मयादा तोड़कर बहनेवाले दो भयानक महासागरोंने
समान परस्पर संयुक्त हो युद्धभूमि महान् कालाहल करने
लगे ॥ ५ ॥
निनाशित प्रेक्ष्य विरूपनेत्र
महाबल त हरिपायिवेन ।
यत् समेत कपिराजसाना
मुद्वृत्तगङ्गाप्रतिम यभून् ॥ ३६ ॥
वानरराज सुग्रीवने द्वारा महानली विरूपाक्षका वध हुआ
देख वानरों और राक्षसोंकी सेनाएँ एकत्र हो बड़ी हुई गङ्गा
नमान उद्वेलित हो गयीं (एक ओर आनन्दजनित कोलाहल
था तां दसरी ओर शोकके कारण आतनाद हो रहा था) ॥ ३६ ॥
इस प्रकार श्रीबालमीनिर्मित आषरामावण आदिक्रम्ये युद्धराष्ट्रे पणवतितम सर्ग ॥ १६ ॥

सप्तमवतितम सर्ग

सुग्रीवके साथ महोदरका घोर युद्ध तथा वध

हन्त्यमाने पले तूर्णमन्योन्य ते महामृध ।
सरसीन् महाघर्मे स्वर्क्षणि यभून्तु ॥ १ ॥
उम महासमरमें वे दोनों जोरकी सेनाएँ परस्परकी मार
काटने प्रवृत्त श्रीमहामृतुमें स्त्रग्ने हुए दो तालाबोंकी तरह
धीम ही क्षीण हो चली ॥ १ ॥
स्वल्पस्य तु धातेन विरूपाक्षत्रघेन च ।
यभून् दिगुण भुञ्जे रात्रौ राक्षसाधिप ॥ २ ॥
अग्नी मनाये निनाश और विरूपाक्षक वधमें राक्षसराज
राक्षसका वध दूना बढ़ गया ॥ २ ॥
प्रसीण स्वयत् दृष्ट्वा पथ्यमान धलीमुखै ।
यभूरास्य व्यथा मुदे दृष्ट्वा दैवप्रिययम् ॥ ३ ॥
वानरोंकी मारने अग्नी सेनाओं कीम हूँ देख दैव
उलटपेपर दृष्टिगत कर मुद्विगलमें उगे बड़ी व्यथा
हूँ ॥ ३ ॥
उत्तम च समीपस्थ महोदरमनन्तम् ।
अस्मिन् पात्र महायाहोजयादा स्थवि मे स्थिता ॥ ४ ॥
उत्तम पात्र ही पद हुए महोदरने कहा—पणवतितम

इस समय मेरी निजगरी आगा तुम्हारे ऊपर ही अवस्थित
है ॥ ४ ॥
जहि शत्रुचमू धीम द्वायाय परानमम् ।
भतुपिण्डस्यकालोऽयनियेष्टु साधुशुष्यताम् ॥ ५ ॥
वीर ! आज अग्नी परानम दिग्गभी और शत्रुसेनाका
वध कर । यही स्वामीने अन्नरा बदला चुननेका समय है ।
अग्नी अग्नी तरह युद्ध कर ॥ ५ ॥
परमुवस्तथेत्युक्त्वा राक्षसद्रो महोदर ।
प्रविशेद्वारिसेना स पन्न इव पात्रकम् ॥ ६ ॥
राक्षसराज ऐसा कहनेपर राक्षसराज महोदरने अग्नी
कहकर उसकी आज्ञा गिराधार्य की और जैन पन्न अग्नी
चूना है, उसी प्रकार उमने गुणमनामें प्रवेश किया ॥ ६ ॥
तत स वदन् चमे वानराणा महायत् ।
भतुयास्येन तन्मयी स्वेन धीर्येण चोदित ॥ ७ ॥
मेनामें प्रवेश करत तन्मयी और महावीर महोदरने
स्वामीकी आज्ञा प्रसन्न हो अग्नी परानमपात्र वानरोंका वध
आरम्भ किया ॥ ७ ॥

वानराश्च महासत्त्वा प्रगृह्य विपुला शिला ।
प्रविश्यारिषल भीम जघ्नुस्ते सर्वराक्षसान् ॥ ८ ॥

वानर भी बड़े गतिवाली ये । वे बड़ी-बड़ी शिलाएँ
लेकर धनुकी मयकर तेनामें सुख गये और समस्त राक्षसोंका
शहर करने लगे ॥ ८ ॥

महोदर सुसकुन्द शरैः काञ्चनभूषणैः ।
विच्छेद पाणिपादोरु वानराणा महाहवे ॥ ९ ॥

महोदरने अत्यन्त कुपित होकर अपने सुगुणभूषित बाणों
द्वारा उस महायुद्धमें वानरोंके हाथ-पैर और जोड़ें का
टाली ॥ ९ ॥

ततस्ते वानरा सर्वे राक्षसैरर्दिता भ्रशम् ।
दिशो दशद्रुता केचित् केचित्सुग्रीवमाधिता ॥ १० ॥

राक्षसोंद्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए वे सब वानर दलों
दिशाओंमें भागने लगे । कितने ही सुग्रीवकी शरणमें गये ॥
प्रभन्त समरे दृष्ट्वा वानराणा महावलम् ।
अभिदुद्राव सुग्रीनो महोदरमनन्तरम् ॥ ११ ॥

वानरोंकी विचाल सेनाको समरभूमिसे भागती देख
सुग्रीनने पाठ ही रखे हुए महोदरपर आक्रमण किया ॥ ११ ॥

प्रगृह्य विपुला घोरा महीधरसमा शिलाम् ।
चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वर ॥ १२ ॥

वानरात्म बड़े तेजस्वी ये । उन्होंने परतेते उमान निगाल
चलायी ॥ १२ ॥

तामापतन्ती सहसा शिला दृष्ट्वा महोदर ।
असम्भ्रान्तस्ततो वाणीनिविमेद उरासदाम् ॥ १३ ॥

उस दुर्यय शिलाको सहसा अपने ऊपर आती देखकर
भी महोदरने मनमें बरगदट नहीं हुई । उसने बाणोंद्वारा उसके
डूङ्गे डूङ्गे कर डाले ॥ १३ ॥

राक्षसा तेन वाणीधैरिहृत्वा सा सहस्रधा ।
निपपात तदा भूमौ युधचक्रमिवाकुलम् ॥ १४ ॥

उस राक्षसने बाणमुहोंसे कटकर सहस्रों डूङ्गोंमें विभक्त
हुं यह शिला उस समय आटुल हुए गच्छमुद्रायकी मूर्ति
रूपीपर गिर पड़ी ॥ १४ ॥

ता तु भिन्नाशिला दृष्ट्वा सुग्रीव क्रोधमूर्च्छित ।
सालमुत्पाद्य चिक्षेप त स विच्छेद नैकधा ॥ १५ ॥

उस शिलाको निदीर्घ दृष्ट्वा सुग्रीवका क्रोध बहुत बढ़
गया । उन्होंने एक शालका वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसके ऊपर
कैंका, चिंउ राक्षसने उसने भी बड़े डूङ्गे कर डाले ॥ १५ ॥

शरैश्च निददारीन दूर परवलादन ।
स दश तत कुन्द परिघ पतित भुवि ॥ १६ ॥

स दश तत कुन्द परिघ पतित भुवि ॥ १६ ॥

अपने बाणोंसे घायल कर दिया । इसी समय क्रोधसे भरे हुए
सुग्रीवको वहाँ पृथ्वीपर पड़ा हुआ एक परिघ दिखायी
दिया ॥ १६ ॥

आजिष्य तु स त दीप्त परिघ तस्य दर्शयन् ।
परिक्षेणोपवेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥ १७ ॥

उस तेजस्वी परिघको घुमानर सुग्रीवने महोदरको अप
कुर्त्तों दिखाते हुए उस भयानक वेगशाली परिघके द्वारा उ
राक्षसने उसका घोड़ोंको मार डाला ॥ १७ ॥

तस्माद्वतहयाद् धीर सोऽवप्लुत्य महात्पात् ।
गदा जग्राह सकुन्दो राक्षसोऽय महोदर ॥ १८ ॥

घोड़ोंने मारे जानेपर धीर राक्षस महोदर अपने विशाल
रथसे दूढ़ पड़ा और अत्यन्त रोषसे भरकर उठने गदा उठा
ली ॥ १८ ॥

गदापरिग्रहस्तौ नौ युधि धीरौ समीयतु ।
नर्दन्तौ गोवृषप्रपद्यौ घनाग्नि सन्निधौ ॥ १९ ॥

एकके हाथमें गदा थी और दूसरेके हाथमें परिघ ।
दोनों धीर युद्धस्थलमें दो साँझों और बिगलीकहित दो मेवों
समान गजना करते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ १९ ॥

तत कुन्दो गदा तस्मै विधेय रजनीचर ।
ज्वलन्ती भास्कराभासा सुग्रीयाय महोदर ॥ २० ॥

तदनन्तर कुपित हुए राक्षस महोदरने सुग्रीवपर सूर्यतुल्य
तेजसे हमकती हुई एक गदा चलायी ॥ २० ॥

गदा ता सुमहाघोरामापतन्ती महाबल ।
सुग्रीयो रोपताम्राक्षः समुचम्य महाहवे ॥ २१ ॥

आज्ञधान गदा तस्य परिघेण हरीश्वर ।
पपात तरसा भिन्न परिघस्तस्य भूतले ॥ २२ ॥

उस महामयकर गदाको अपनी ओर आती दे
खकर महामली वानरराज सुग्रीवने नेत्र रोपने लगे ।
और उन्होंने परिघ उठाकर उसका परिघ राक्षसकी
आघात किया । यह गदा गिर पड़ी किन्तु उरक वेगसे
कर सुग्रीवका परिघ भी टूटकर पृथ्वीपर जा गिरा ॥ २१ ॥

ततो जग्राह तेजस्वी सुग्रीयो वसुधातलात् ।
आयस सुसल घोर सघतो हेमभूषितम् ॥ २३ ॥

तब तेजस्वी सुग्रीवने भूमिपरसे एक लोहेका भयान
मूलक उठाया, जिसमें सब ओरसे लेना बड़ा हुआ
था ॥ २३ ॥

स समुचम्य त्रिक्षप सोऽप्यस्य प्राक्षिपद् गदाम् ।
भिन्नावन्योन्यमासाद्य पेततुस्तौ महीतल ॥ २४ ॥

उसे उठाकर उन्होंने राक्षसरा दे मारा । साथ ही उस
राक्षसने भी इनके ऊपर गदा चेंदी । गदा और मूलक
आपसमें टकराकर टूट गये और जमीनपर जा गिरे ॥ २४ ॥

ततो भिन्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतु ।
तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताग्निं हुताशनी ॥ २५ ॥

ये दोनों वीर तेज और बलसे सम्पन्न थे और बज्रही
हुए अग्निगोत्रों समान उड़ीश हो रहे थे । अपने-अपने
आयुधोंसे दूर जानेपर ये घूर्णित एक दूसरेको मारने
लगे ॥ २५ ॥

जम्भतुस्तौ तदान्योन्यं नन्दनौ च पुन पुन ।
तलैश्चान्योन्यमासाद्य पेततुश्च महीतले ॥ २६ ॥

उस समय बार-बार गर्जने हुए ये दोनों थोड़ा परस्पर
मुक्कोंसे प्रहार करने लगे । फिर थपड़ोंसे एक दूसरेको मारकर
दोनों ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

उत्पेततुस्तदा क्षणं जम्भतुश्च परस्परम् ।
भुजैश्चिक्षिपतुर्वीरान्योन्यमपराजितौ ॥ २७ ॥

फिर तत्काल ही दोनों उठे और क्षीप ही एक दूसरे
पर चोट करने लगे । वे दोनों वीर हार नहीं मानते थे । दोनों
ही दोनोंपर भुजाओंद्वारा प्रहार करते रहे ॥ २७ ॥

जम्भतुस्तौ ध्रुमं वीरौ बाहुयुद्धे परतपौ ।
आजहार तदा खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ॥ २८ ॥

राक्षसक्षमणा सार्धं महावेगो महोदर ।
तथैव च महाखड्गं चमणा पतित सह ।
जग्राह वानरघेष्ठं सुग्रीवो वेगयन्तर ॥ २९ ॥

शत्रुओंको तानेवाले ये दोनों वीर बाहुयुद्ध करते-करते
थक गये । तब महान् वेगशाली राक्षस महोदरने थोड़ी ही दूर
पर पड़ी हुई ढालसहित तलवार उठा ली । उसी तरह अन्यन्त
वेगशाली कपिशेष्ठ सुग्रीवने भी वहाँ गिरे हुए निघाल खड्गको
ढालसहित उठा लिया ॥ २८-२९ ॥

ततो रोषपरीताहौ नदन्ताग्रमध्यान्तम् ।
उद्यतासी रणे हृष्टौ बुधिं दास्यन्तिशारदौ ॥ ३० ॥

महोदर और सुग्रीव दोनों युद्धके मैदानमें घबरावनेकी
करामें खट्टर थे तथा दोनोंके शरीर राक्षसे प्रमादित थे अतः
रणभूमिमें हर्ष और उत्साहसे युक्त हो वे तलवार उठाये गर्जने
हुए एक दूसरेपर दूट पड़े ॥ ३० ॥

दक्षिण मण्डलं गोभीं सुवर्णं सम्परीयतु ।
अन्योन्यमभिसमुद्धौ जये प्रणिहितातुभी ॥ ३१ ॥

ये दोनों बड़ी तेजीसे दाहिने-बायें पैर बदल रहे थे, दोनों
का दोनोंपर क्रोध बढ़ा हुआ था तथा दोनों ही अपनी-अपनी
विजयकी आशा लगाये हुए थे ॥ ३१ ॥

स तु शरौ महावेगो धीयश्चाधी महोदर ।
महानमणिं तं खड्गं पातयामास हुमति ॥ ३२ ॥

हृषार्पे धीमद्रामायणं वास्मीकीये आदिष्टाथ शुद्धकाण्डे सप्तमवतितमः सर्गः ॥ १७ ॥
इतः प्रकार श्रीरत्नकिर्तिर्निर्णय अष्टावक्र मुद्रकाण्डे सप्तमवतितमः सर्ग पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अपने बलपर घमड़ करनेवाले महान् वेगशाली तथा शौर्य
सम्पन्न दुर्बुद्धि महोदरने अपनी वह तलवार सुग्रीवने लगाकर
कवचपर दे मारी ॥ २२ ॥

लम्बमुत्कर्षत खड्गं खड्गेन कपितुञ्जर ।
जहार सशिरस्त्राणं कुण्डलोपगतं शिर ॥ ३३ ॥

सुग्रीवने कवचमें लगी हुई तलवारको जब यह राक्षस
खींचने लगा, उसी समय कपितुञ्जर सुग्रीवने महोदरक
शिरस्त्राणसहित कुण्डलमण्डित मस्तकको अपने पक्षसे काट
लिया ॥ ३३ ॥

निवृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले ।
तद् बलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न दृश्यते ॥ ३४ ॥

मस्तक फट जानेपर राक्षसराक्षस महोदर पृथ्वीपर गिर पड़ा ।
यह देखकर उठरी सेना फिर वहाँ नहीं गिजायी दी ॥ ३४ ॥
हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुद्रितो हरिः ।
शुक्रोद्यं च दशार्जुनो यमौ हृष्टश्च राघव ॥ ३५ ॥

महोदरको मारकर प्रसन्न हुए वानरराक्षस सुग्रीव अन्य
वानरोंके साथ गजना करने लगे । उस समय दशमुख राणाका
बड़ा क्रोध हुआ और श्रीघुनायकी हस्ति जिल उठे ॥ ३५ ॥
विपण्णमृदना सर्वं राक्षसा दीनचेतसः ।
विद्रवन्ति तत सर्वे भयमिन्द्रस्तेतसः ॥ ३६ ॥

उस समय समस्त राक्षसोंका मन दुर्गि हो गया । उन
सबने मुखपर विगद छा गया और वे सभी भयभीतचित्त
होकर बहसि भाग चले ॥ ३६ ॥

महोदरं तं विनिपात्य भूमौ
महातिरेः क्षीणमित्रैर्नृपैश्च ।
सुयात्मजस्तत्र रराज लक्ष्म्या
सूयं न्यतेजोभिरिवाप्रचूष्य ॥ ३७ ॥

महोदरका शरीर छिड़ी महान् पर्वतपर एक दूटे हुए
शिलर-का जल पड़ता था । उने वृक्षपर निधकर मूलपुत्र
सुग्रीव वहाँ विनय-रूपाने मुग्धचित्त होने लगे, माता अश्वत्थी
सूयदेव अपने लक्ष्मणे प्रसादित हो रहे हैं ॥ ३७ ॥

अथ विनयमश्वत्थं वानरैश्च
समरमुखे सुरसिन्धुयक्षसहैः ।
अवनितलगतश्च भूतसमूहः
हरयसमाकुलितैर्निरित्यमाणः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वानरराक्षस सुग्रीव युद्धर मुखनेत्र निज
पावर बनी शोभा पाते लगे । उस समय देवता, गिद्ध और
यक्षोंके समूहान तथा नृत्तलिंगी प्राणियोंके दूह भी बढ़
रहित उनकी ओर देखने लगे ॥ ३८ ॥

अष्टनवतितम सर्ग

अगदके द्वारा महापार्श्वना वध

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबल ।
सुग्रीवेण समीक्ष्याथ शोधात् सरत्तलेचन ॥ १ ॥

सुग्रीवे द्वारा महोदर मारे जानेपर उसरी ओर देख
कर महाबली महापार्श्व के नेत्र क्रोधसे लाल हो गये ॥ १ ॥
अङ्गदस्य चमू भीमा शोभयामास मार्गणै ।
स वानराणां सुपुत्रानामुत्तमाङ्गानि राक्षस ॥ २ ॥
पातयामास कायेभ्य फल घृन्तादिवानिल ।

उसने अपने बाणोंद्वारा अगदकी भयंकर सेनामें हलचल
मचा दी । यह राक्षस मुख्य-मुख्य वानरोंने मलक धड़से काट
काटकर गिराने लगा; मानो वायु वृन्त या डठलसे फल गिरा
रही हो ॥ २ ॥

केपाचिद्विपुभिर्बाहुक्षिच्छेद्राथ स राक्षस ॥ ३ ॥
वानराणां सुसरब्ध पादर्थ्यं केपाचिवाक्षिपत् ।

क्रोधसे भरे हुए महापार्श्वने अपने बाणोंसे कितनोंरी
बाँहें काट दीं और रितनेही वानरोंकी पगलियों उड़ा दीं ॥ ३ ॥

तेऽर्दिता थाणवर्षेण महापादर्थ्येन वानरा ॥ ४ ॥
विषाद्विमुक्ताः सर्वे यभूयुर्गंतचेतसः ।

महापार्श्वकी बाणवर्षासे पीड़ित हो बहुतसे वानर
युद्धसे विमुक्त हो गये । सबकी चेतना जाती रही ॥ ४ ॥

निशम्य बलमुद्गममङ्गदो राक्षसाद्वैतम् ॥ ५ ॥
वेग चक्षे महावेग समुद्र इव पशुः ।

उन राक्षससे पीड़ित वानर-सेनाको उद्दिश्य हुई देख
महान् वेगशाली अङ्गदने पूर्णिमाके दिन समुद्रकी भाँति अपना
भारी वेग प्रकट किया ॥ ५ ॥

आयस परिघं गृह्य स्यारदिसमप्रभम् ॥ ६ ॥
समरे वानरधेष्टो महापादर्थ्यं न्यपातयत् ।

उन वानरशिरोमणिने सूर्यकी किरणोंके समान दमकने
वाला एक लोहका परिघ उठाकर महापार्श्वपर दे मारा ॥ ६ ॥

स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो म्रियेतन ॥ ७ ॥
सस्मृत स्यन्दगात् वस्साद् निरस्रथापतद् भुवि ।

उस प्रहारेसे महापार्श्वकी सुष-सुष जाती रही और वह
मूर्छित हो सारथिबद्धित रूपसे नीचे जा पड़ा ॥ ७ ॥

तस्यभराजस्तेजस्वी नीलाञ्जनचोपम ॥ ८ ॥
निष्पत्य सुमहागौर्यं स्वयूषा मेघसनिभात् ।

प्रगृह्य गिरिश्रृङ्गाभा कुन्दं सविपुला शिलाम् ॥ ९ ॥
अभ्याश्रयान तरसा यमञ्ज स्यन्दनं च तम् ।

इसी समय काल कीलेर देरके समान कृष्ण घणगले,
महान् पथप्रभी और तेजस्वी श्रृङ्गराज आभ्यगनने मेंनोंकी

घटाये सदृश अपने यूयसे बाहर निम्लकर उभित हो एक
पत्रतश्चित्रके समान विशाल शिला हाथमें ले ली और उसके
द्वारा उन राक्षसके घोड़ोंको मार डाला तथा उसने रूपसे भी
चूष कर दिया ॥ ८ ॥

मुहूर्ताल्लब्धसक्षस्तु महापार्श्वो महाबल ॥ १० ॥
अङ्गदं यधुभिर्वाणैर्भूयस्त प्रयन्धित ।

जाम्बवन्तं त्रिभिर्वाणैराजधानं स्तनात्तरे ॥ ११ ॥

दो घड़ीयें बाद होगमें आनेपर महाबली महापार्श्वने
बहुतसे बाणोंद्वारा पुन अङ्गदको घायल कर दिया और
जाम्बवान्की छातीमें भी तीन बाण मारे ॥ १० ॥ ११ ॥

श्रृङ्गराज गजाक्ष च जधानं यधुभिर्वाणैः ।
गवांश्च जाम्बवन्तं च स हृष्टा शरपीडितौ ॥ १२ ॥

जग्राह परिघं घोरमङ्गदं शोधमूर्च्छितः ।

इतना ही नहीं; उसने रीछोंके राना गजाक्षसे भी बहुतसे
बाणोंद्वारा क्षत विक्षत कर दिया । गवाक्ष और जाम्बवान्को
बाणोंसे पीड़ित देख अङ्गदके क्रोधकी सीमा न रही । उन्होंने
भयंकर परिघ हाथमें ले लिया ॥ १२ ॥

तस्याङ्गदं सरोपाभो राक्षसस्य तमायसम् ॥ १३ ॥
दूरस्थितस्य परिघं रविरदिसमप्रभम् ।

द्राव्या भुजाभ्यां सगृह्य भ्रामयित्वा च वेगयत् ॥ १४ ॥
महापादवस्य विक्षेपं यथार्थं बालिनः सुत ।

उनका वह परिघ सूर्यकी किरणोंके समान अपनी प्रभ
विलेख रहा था । बालिपुत्र अङ्गदके नेत्र क्रोधसे लाल हो उठे थे ।
उन्होंने उस खेदमय परिघको दोनों हाथोंसे पकड़कर घुमाया
और दूर खड़े हुए महापार्श्वके वधक लिये वेगपूर्वक
चला दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥

स तु क्षितो यलयता परिघस्तस्य रक्षस ॥ १५ ॥
धनुश्च सदार हस्ताच्छिरस्त्राणं च पातयत् ।

बलवान् वीर अङ्गदके चलाय हुए उस परिघने राक्ष
महापार्श्वके हाथसे बाणबद्धित धनुष और मलकसे टप गिरा
दिये ॥ १५ ॥

त समासाद्य वेगेन बालिपुत्रं प्रठापयान् ॥ १६ ॥
तलेनाभ्यहनत् कुन्दः कणामूले सकुण्डले ।

विर प्रतापी बालिपुत्र अङ्गद वड़े वेगेने उसके कुण्डलपुत्र वानके
पाग गालमें एक घण्टा मारा ॥ १६ ॥

स तु कुन्दो महावेगो महापार्श्वो महायुति ॥ १७ ॥
करेणयेन जग्राह सुमहान्तं पराभ्यघम् ।

तब महान् वेगशाली महातेजस्वी महापार्श्वने उभित होकर
एक हाथमें वज्र पकड़ा करका ल किया ॥ १७ ॥

त तैलघ्नैत विमल शैलसागम्य बद्धम् ॥ १८ ॥
राक्षस परमकुक्षो घालिपुत्रे न्यपातयत् ।

उस परमेष्ठो तेज्यो हुबोकर साक विरा गया था और वह
अच्छे लोहेका बना हुआ एक मुट्ठा था । राक्षस महापातर्नने
अत्यन्त मुग़ि हो वह फरसा बालिपुत्र अङ्गदपर दे मारा ॥ १८ ॥
तेन घामासफलफे भृश प्रत्यरपातितम् ॥ १९ ॥
अङ्गदो मोक्षयामास सरोय स परभ्यधम् ।

उसने अङ्गददे बाँधे कंधेपर बड़े वेगसे उस फरसेका
प्रहार किया था; परन्तु रोयसे भरे हुए अङ्गदने कतराकर
अपनेरो बचा लिया और उस फरसेको व्यर्थ कर दिया ॥ १९ ॥
स धीरो वज्रसकाशमङ्गदो मुष्टिमात्मन ॥ २० ॥
सर्तयत् सुसकुब्धः पितुस्तुल्यपराम्पम् ।

तत्पश्चात् अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए धीर अङ्गदने; जो
अपने पिताके समान ही पराक्रमी थे; वज्रके समान मुठ्ठी
बाँधी ॥ २० ॥

राजसख्य स्तनाभ्यासो ममज्ञो हृदय प्रति ॥ २१ ॥
इन्द्राशितिसमस्पर्शं स मुष्टिं त्रिन्वपातयत् ।

वै हृदयने मर्मस्थानसे परिचित थे अतः उन्होंने उस
राक्षसके स्तनोंके निम्न छतियोंके बड़े वेगसे मुक्का मारा;
निम्नका रस इन्द्रके वज्रके समान अलगा था ॥ २१ ॥
तेन तस्य निपातेन राजसख्य महामृधे ॥ २२ ॥
पफाल हृदय चाभ्य स पपात हतो भुवि ।

इत्यादि धीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टनवतितमः सर्गः ॥ १८ ॥

एत प्रसार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिनायक युद्धकाण्डे अष्टनवतीं सप्त पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनशततमः सर्गः

श्रीराम और रावणका युद्ध

महोदरमहापाश्र्वा हतौ दृष्ट्वा स राजण ।
तस्मिन् निहते धीरे विरूपाक्षे महायले ॥ १ ॥
आनिवेश महान् प्रोक्षो राजण तु महामृधे ।
स्तु सरोदयामास पावथ चेदमुवाच ह ॥ २ ॥

महापरी धीर विरूपाक्ष का मारा ही गया था महोदर और
महापारी भी काल गालमें डाल दिये गए—यह देख उस
महासमरने भीतर रावणके हृदयमें महान् क्षोभना आवेग हुआ ।
उसने रावणको रथ आगे बगाने की आरा दी और इस प्रकार
बहा— ॥ १ ॥

निहतामिमात्याना रुद्रस्य नगरस्य च ।
तु रामिणपनेप्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३ ॥

एत । मे मन्त्री मारे गये और लङ्कापुरीर चारों ओरसे
वेध डाला गया । इसने लिये मुझे बड़ा दुःख है । आज राम

उनका वह घृणा गाने ही उस महासमरमें रावण महा
पाश्र्वा हृदय फट गया और वह मगर पृथ्वीपर गिर
पड़ा ॥ २२ ॥

तस्मिन् विनिहते भूमी तत् सैन्यसम्प्रचुम्बुमे ॥ २३ ॥
अभयश्च महान् प्रोक्षः समरो राजणस्य तु ।

उसमें मरकर पृथ्वीपर गिर जानेपर पश्चात् उसकी सेना
विभुष हो उठी तथा समरभूमिमें राजणको भी महान् क्रोध
हुआ ॥ २३ ॥

वानराणा मृदणाना सिंहनादं सुपुष्कल ॥ २४ ॥
स्फोटयन्निज शस्त्रेण लङ्का साहाय्यगोपुराम् ।

सहोद्रेण देवाना मादः समभव महान् ॥ २५ ॥

उस समय इससे भरे हुए वानरोंका महान् सिंहनाद
होने लगा । वह अश्लिशाओं तथा गोपुरोंके लङ्कापुरीका
घेरता हुआ-सा प्रतीत हुआ । अङ्गदके वानरोंका वह
महानाद इन्द्रके देवताओंके गम्भीर घोष का ज्ञान पड़ता
था ॥ २४ ॥

अयेन्द्राशुखिदशालयाना
वनौक्सा सैव महाप्रणादम् ।

युत्वा सरोय युधि राक्षसेन्द्र
पुनश्च युद्धाभिसुप्तोऽनन्तर्ये ॥ २६ ॥

युद्धस्थलमें देवताओं और वानरोंकी गद् पड़ी भारी
गर्जना सुनकर इन्द्रोदी राक्षसराज रावण पुन रावणके युद्ध
लिये उत्सुक हो वहाँ लड़ाई हो गया ॥ २६ ॥

इत्यादि धीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टनवतितमः सर्गः ॥ १८ ॥

एत प्रसार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिनायक युद्धकाण्डे अष्टनवतीं सप्त पूरा हुआ ॥ १८ ॥

और जयगता बच कर ही मैं अगरे इन दुःखों का दूर
करूँगा ॥ ३ ॥

रामवृक्ष रणे हर्षि सीतापुष्पप्रदम् ।
प्रणासा यस्य सुधीरो जाम्बवान् कुमुदो नृपः ॥ ४ ॥

त्रिदिशश्च मैन्दश्च अङ्गदो गन्धमादन ।
हनुमाथ सुपेणधः सर्वे च हर्षयूया ॥ ५ ॥

राभूमिमें उस रामवृक्ष के पत्र उतार कर दूँगा; जो
सीतावृक्षी फूलों द्वारा फल देनेवाला है तथा दुर्भीर, जाम्बवान्
कुमुद, नल, त्रिदिश, मैन्द, अङ्गद, गन्धमादन, हनुमान् और
सुपेणध आदि सबसे बाराहपुरीके चिरी रावण
प्रहाराएँ हैं ॥ ४ ॥

स दिशो द्वा घोरयेण रथमनिरथो मरान् ।
नादयन् प्रययी तूर्णं राज्यं चाभ्यधातन ॥ ६ ॥

ऐसा कहकर महान् अतिरथी वीर रावण अपने रथकी धर्याहस्ते दशों दिशाओंको गुंजाता हुआ बड़ी तेजीके साथ भीरधुनायजीकी ओर बग ॥ ६ ॥

पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकान्ता ।
सचवाल् मही सर्वो अस्तसिंहमृगद्विजा ॥ ७ ॥

रथकी आनाजसे नदी, पर्वत और जगैरहित वहाँकी सारी भूमि गुंज उठी; धरती ढोलने लगी और वहाँके सारे पशु पक्षी भयसे धरा उठे ॥ ७ ॥

तामस सुमहाघोर चकारात्त्र सुदारुणम् ।
निर्दंदाह कपीन सर्वास्ते प्रपेतु समन्तत ॥ ८ ॥

उस समय रावणने तामस नामवाले अत्यन्त भयंकर महाघोर अलकौ प्रकट करके समस्त वानरोंको भस्म करना आरम्भ किया । सब ओर उननी लखें गिरने लगीं ॥ ८ ॥

उत्पपात रजो भूमो तैर्भस्मै सम्प्रधाविते ।
नहि तत् संहितु शेरुर्ब्रह्मणा निर्मित स्वयम् ॥ ९ ॥

उनने पाँच उलड़ गये और वे इधर-उधर भागने लगे, इससे रणभूमिमें बहुत धूल उड़ने लगी । वह तामस अलक साक्षात् ब्रह्माजीका बनाया हुआ था, इसलिये वानर बोझा उससे बेगमो सह न सके ॥ ९ ॥

तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमै ।
दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघव पराजित ॥ १० ॥

रावणके उत्तम बाणोंसे आहत हो वानरोंकी सैकड़ों सेनाएँ तितर बितर हो गयी हैं—यह देख भगवान् श्रीराम युद्धके लिये उद्यत हो सुखिरभावसे खड़े हो गये ॥ १० ॥

ततो राजसशाङ्गो विद्राघ हरिचाहिनीम् ।
स द्दर्श ततो राम तिष्ठतमपराजितम् ॥ ११ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा निष्णुता वालन यथा ।

उधर वानर-सेनाएँ लड़कड़कर राक्षससिंह रावणने देखा कि किसीसे पराजित न होनेवाले श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ उसी तरह खड़े हैं, जैसे इंद्र अपने छोटे भाई भगवान् निष्णु (जवेन्द्र) के साथ खड़े होते हैं ॥ ११ ॥

आलिखन्तमिवाकाशमरुप्रभं महद् धनु ॥ १२ ॥
पक्षपक्षिशालाश्च नीर्यायाहुर्मरिचम् ।

व अपने निशाल धनुषकी उग्राकर आकाशमें रखा खींचते-से प्रतीत होते थे । उनके नेत्र निशित कमलदलके समान विगल थे, मुझाएँ बड़ी-बड़ी थीं और वे शत्रुओंका दमन करनेमें पूरत समर्थ थे ॥ १२ ॥

ततो रामो महासेजा सौमित्रसहितो बली ॥ १३ ॥
धानराज्य रणे भग्नानापतत च रावणम् ।

समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कामुखम् ॥ १४ ॥

१ इस मध्य देश तमोदर राज है, इसलिये इसको तामस करते हैं ।

तदनन्तर लक्ष्मणसहित खड़े हुए महातेजस्वी महाबली श्रीरामने रणभूमिमें वानरोंको भागते और रावणको आते देख मनमें बड़े हृषका अनुभव किया और धनुषके मध्यभागमें दृढताके साथ पकड़ा ॥ १३ ॥

विस्फारयितुमारेभे तत स धनुरुत्तमम् ।
महावेग महानाद निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

उन्होंने अपने महान् वेगवाली और महानाद प्रकट करनेवाले उत्तम धनुषको इस तरह खींचना और उसकी टङ्कार करना आरम्भ किया; मानो वे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे ॥ १५ ॥

रावणस्य च बाणौघे रामविस्फारितेन च ।
शब्देन राजसास्तेन पेतुश्च शतशस्तदा ॥ १६ ॥

रावणके बाण-समूहोंसे तथा श्रीरामचन्द्रजीके धनुषकी टङ्कारसे जो भयंकर शब्द प्रकट हुआ; उससे आतङ्कित होकर सैकड़ों राक्षस तत्काल धराशायी हो गये ॥ १६ ॥

तयो शरपथ प्राप्य रावणो राजपुत्रयो ।
स यमौ च यथा राहुः समीपे शशिसूययो ॥ १७ ॥

उन दोनों राजकुमारोंके बाणोंक मागमें आकर रावण चन्द्रमा और सूर्यके समीप स्थित हुए राहुकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ १७ ॥

तमिच्छन् प्रथम योद्धु लक्ष्मणो निशितै शरै ।
मुमोच धनुरायस्य शराननिशिखोपमान् ॥ १८ ॥

लक्ष्मण अपने पैने बाणोंके द्वारा रावणके साथ पहले स्वयं ही युद्ध करना चाहते थे इसलिये धनुष तानकर वे अनिश्चिन्ताके समान तेजस्वी बाण छोड़ने लगे ॥ १८ ॥

तान् मुकमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता ।
याणान् बाणैर्महानेजा राघवः प्रत्यचारयत् ॥ १९ ॥

धनुषैर लक्ष्मणके धनुषमें छूटते ही उन बाणोंमें महा तेजस्वी रावणने अपने बाणोंद्वारा आकाशमें ही फाट गिराया।

एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रिन् दशभिर्दश ।
लक्ष्मणस्य प्रविच्छेत् दर्शयन् पाणिलाघरम् ॥ २० ॥

वह अपने शायोंकी कुर्तों दिखाता हुआ लक्ष्मणक एक बाणको एक बाणसे, तीन बाणोंसे तीन बाणसे और दस बाणोंसे उतने ही बाणोंसे पाट देता था ॥ २० ॥

अभ्यतिष्ठस्य सौमित्रि रावण समितिजय ।
आससात् रणे राम स्थित शैलमिनापरम् ॥ २१ ॥

समरनिबन्धी रावण सुमिश्रादुमारने लौंकर रणभूमिमें दूर परतरी भाँति अविचल भाँति खड़े हुए श्रीरामके पक्ष जा पहुँचा ॥ २१ ॥

स राघव समामाद्य क्षोभसरत्नलोचन ।
ध्यसृजच्छरदवाणि राघवो राजसेश्वर ॥ २२ ॥

भीरुनाथजीने निकट शकर प्रोचते छाल ओंखें बिये राख्य-
राज राग उनके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने ल्या ॥ २२ ॥

शरधापस्ततो रामो रात्रणस्य धनुश्च्युता ।
रुद्रैवापतिता दीप्त भद्राज्जग्राह सत्परम् ॥ २३ ॥

रात्रणक धनुसते गिरती हुई उन बाण धाराओंपर दृष्टिपात
करक भीरुमने बड़ी उतावलीने साथ दीप्त ही कई मण्ड
हाथमें लिये ॥ २३ ॥

तान्द्रौघास्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद् राघव ।
दीप्यमानान् महाघोराण्डरानादीविषोपमान् ॥ २४ ॥

रघुकुलभूषण भीरुमने रात्रणने विरवर सर्पोंके समान
महामयूर एव दीप्तिमान् बाणसमूहोंको उन तीक्ष्ण महोंसे
काट डाला ॥ २४ ॥

राघवो रात्रण तूर्ण रात्रणो राघव तथा ।
अन्योन्य निविधैस्तीक्ष्णै शरैर्यैर्यवर्जतु ॥ २५ ॥

किर भीरुमने रात्रणको और रात्रणने भीरुमको अपना
लक्ष्य बनाया और दोनों ही क्षीप्रतापूयक एक दूसरेपर मौंति
मौंतिने पैने बाणोंकी बर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

चेरतुश्च चिर चित्र मण्डल सत्यदक्षिणम् ।
बाणवेगात् समुत्क्षिप्तान्योन्यमपराजितौ ॥ २६ ॥

वे दोनों विरफालक वहाँ निचित्र दायें-बायें पैतरेसे
बिचरने रहे । बाणके वेगसे एक-दूसरेको पायत्र करते हुए वे
दोनों बीच परस्मिन् नहीं हाते थे ॥ २६ ॥

तयोर्भूतानि त्रिनेसुगुणपत् सम्प्रयुध्यतो ।
रौद्रयो सायन्मुचोयमान्कनिकाशयो ॥ २७ ॥

एक साथ जूझते और तापत्रोंकी बर्षा करते हुए भीरुम
और रात्रण समरात्र और अन्तकक समान मयकर जान पड़ते
थे । उनके युद्धसे कम्पू प्राणी घबं उठे ॥ २७ ॥

सतत निविधैर्माणैश्च भूय गगा तदा ।
धनैरियातपापायि विमु मालासमाकुलै ॥ २८ ॥

बैने बरा श्रुतमें विगुन्-सुहृदोंमें व्याप्त मर्षोंकी धनने
आनाथ आच्छादित हो जाता है, उसी प्रकार उस समय नाना
प्रकारके बाणोंके बर डक गया था ॥ २८ ॥

गयाश्रितमिराशदा धमून शरचूडिभि ।
महावेगे सुतीक्ष्णैर्मैष्टप्रपयै सुपानितै ॥ २९ ॥

गीघरी पोंगर गुदर परोंत गुणभिन और तेज घरला
महान् वयाश्री बाणोंकी अन्तरत बगौते आनाथ ऐसा जान
पड़ता था, माना उधने बहुत-से शत्रुने लग गये हों ॥ २९ ॥

शराधधारमाशारा घमनु परम तदा ।
गतेऽस्त्य तपने चापि महामेघाविशोत्थितौ ॥ ३० ॥

दा बने-बड़े मेघोंकी मौंति उठे हुए भीरुम और रात्रा

सूर्यने अन्त और उदित हानेन भी बाणोंने गहन अभनारते
आकाशको ढक रखा था ॥ ३० ॥

तयोरभू महायुद्धमन्योन्यधकाक्षिणो ।
यनासाद्यमचिन्त्य च धृत्रयास्तयोरिव ॥ ३१ ॥

दोनों एक-दूसरेका वध करना चाहते थे अत धृत्रासुर
और इन्द्रकी मौंति उन दोनोंमें ऐसा महान् युद्ध होने लगा,
जो दुलभ तथा अचिन्त्य है ॥ ३१ ॥

उभौ हि परमेष्ठासावभौ युद्धविशारदौ ।
उभावस्त्रविदा मुप्यायुभौ युद्धे विचेरतु ॥ ३२ ॥

दोनों ही महान् धनुषर और दोनों ही युद्धरी कलामें
निपुण थे । दोनों ही अस्त्रवेत्ताओंमें भद्र थे अत दोनों बड़े
ही उत्साहसे रणभूमिमें बिचरने लगे ॥ ३२ ॥

उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोमय ।
ऊमयो वायुना बिद्धा जग्मु सागरयोरिव ॥ ३३ ॥

वे जिस जिस मार्गसे जाते, उसी उसीसे बाणोंकी हल्लाही
उठने लगती थी । ठीक उसी तरह, जैसे वायुन पपड़े खाकर दो
सुन्दरोंके पलमें उचाल तराँ उठ रही हों ॥ ३३ ॥

तत ससत्तद्वस्तस्तु रात्रणो लोकरात्रण ।
नाराचमाला रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्जत ॥ ३४ ॥

तदनन्तर त्रिचने हाथ बाण छोड़नेमें ही लगे हुए थे,
समस्त क्षेत्रोंकी कलनेवाल उस रात्रणने भीरुमचन्द्रजीने
ललाटमें नाराचोंकी माला-सी पहना दी ॥ ३४ ॥

रौद्रचापप्रयुक्ता सा नीलैस्त्वलदलप्रभाम् ।
शिरसाधारयद् रामो न व्ययामभ्यपद्यत ॥ ३५ ॥

मयकर धनुससे छूटी और नील कमलदल समान
व्याम फान्तिसे प्रकाशित हानी हुई उस नाराच-मालाको
भीरुमचन्द्रजीने अपने किरपर धारा किया किन्तु वे व्ययित
नहीं हुए ॥ ३५ ॥

अथ मन्त्रानपि जपन् रौद्रमन्त्रमुदीरयन् ।
शरान् भूय समादाथ राम प्रोषसमन्वित ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् श्रेयसे भरे हुए भीरुमने पुन बहुत-से बरा
लेकर मन्त्र-पूर्वक रौद्राका प्रयोग किया ॥ ३६ ॥

मुमोऽ च महातेनाद्यापमायस्य वीरयान् ।
साञ्चापन् रात्रसे द्राप चिक्षेपाच्छिन्नसायक ॥ ३७ ॥

किर उन महातेजस्वी, महा-रात्रमी और अचिच्छिन्नने
बा-बरा करने-प भीरुजीने धनुषध बाणध पोंगर
व सभी बरा शरशयत्र रात्रार छड़ दिये ॥ ३७ ॥

ते महामेघसफादो कयचे पतिता दारा ।
अयच्ये राक्षसेन्द्रस्य न व्यया जनयस्तदा ॥ ३८ ॥

वे बरा रात्रणवध रात्रणक महानेपके समान बने रहने

अमेघ कवचपर गिरे ये, इसलिये उस समय उसे स्थित न कर सके ॥ ३८ ॥

पुनरेवाय त रामो रथस्य राक्षसाधिपम् ।
ललाटे परमाख्येण सञ्जिह्मकुशलोऽभिनत् ॥ ३९ ॥

सगुण अर्जुनने सचालनमें कुशल मगान् श्रीरामने पुन रथपर बैठे हुए राक्षसराज रावणके ललाटमें उत्तम अर्जुनका प्रहार करके उसे धावक कर दिया ॥ ३९ ॥
ते भित्वा घाणरूपाणि पञ्चशीर्षा ह्योरगा ।
श्वसतो विनिशुभ्र्मि रात्रप्रतिकूलिता ॥ ४० ॥

श्रीरामने वे उत्तम बाण रावणको धावक करके उसके निवारण करनेपर पुकारते हुए पाँच शिरवाले सर्पोंके समान श्वसतीने समा गये ॥ ४० ॥

निहत्य राघवस्यास्त्र रात्रण मोधमूर्च्छित ।
आसुर सुमहाघोरमल प्रादुक्षकार स ॥ ४१ ॥

श्रीरघुनाथजीने अर्जुना निवारण करके श्वेत मूर्च्छित हुए रावणने आसुरनामक दूधरा महामयंर अस्त्र प्रकट किया ॥
सिंहव्याघ्रमुखाश्चापि कङ्ककोकमुखानपि ।
गृध्रस्येनमुखाश्चापि शृगालवदनास्तथा ॥ ४२ ॥

ईहायुगमुखाश्चापि व्यादितास्त्यान् भयाग्रहान् ।
पञ्चास्यौल्लिहानाश्च ससर्ज निशितान्शरान् ॥ ४३ ॥
शरान् खरमुखाश्चाप्यन् घराहमुखसन्धितान् ।
श्यानकुङ्कुटनस्याश्च मकराशीविपाननान् ॥ ४४ ॥

एताश्चान्याश्च मायाभिः ससर्ज निशितान्छरान् ।
रामं प्रति महातेजा मुग्धः सर्प इव श्वसन् ॥ ४५ ॥

उसने सिंह, बाघ, बहू, चक्रवाक, गीघ, बाज, तियाद, मेहिणे, गदहे, दभर, कुचे, मुर्गे, मगर और नहरील सर्पोंके समान मुखवाले बाणोंकी वृष्टि होने लगी । वे बाण मुँह फैलाये, तपड़े चाटते हुए पाँच मुखवाले भयंकर सर्पोंके समान जान पड़ते थे । ऊक फाटते हुए सर्पोंकी मौँत कुपित हुए महातेजस्वी रावणने इनका तथा अन्य प्रकारके तीले बाणोंका भी श्रीरामक ऊपर प्रयोग किया ॥ ४२-४५ ॥

हृत्वायं श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिका य मुद्रश्चण्ड ण्कोनावतम सगः ॥ ९९ ॥
इस प्रकार श्रीतात्परीनिर्मित अथरामायण आदिका य मुद्रश्चण्ड ण्कोनावतम सगः ॥ ९९ ॥

शततमं सर्ग

राम और रावणका युद्ध, रावणकी शक्तिके लक्ष्मणका मूर्च्छित होना तथा रावणका युद्धसे भागना

तस्मिन् प्रतिहतेऽप्ये तु रात्रणो राक्षसाधिपः ।
मोघ च हिगुण चने श्रोयाथाश्रमनतरम् ॥ १ ॥
मयेन निहित रौद्रमन्दर महायुति ।
उत्थष्ट रात्रणो भीम राघवाय प्रचक्रमे ॥ २ ॥

अपने उस अर्जुन ने नष्ट हो जानेपर महातन्त्री राघवपर रावणने दूना श्रेष्ठ प्रकट किया । उसने क्षापरग भीरवर ऊपर एक दूसरे भयंकर अर्जुनने छाड़नेका आशंक किया, जिसे मयायुने बनाया था ॥ १ ॥

आसुरेण समाग्रे सोऽख्येण रघुपुङ्गव ।
ससर्जसिंह महोत्साह पात्रक पात्रकोपम् ॥ ४६ ॥

उस आसुराखने आहत हुए अग्नि-तुल्य तेजस्वी महान् उत्साही रघुपुङ्गविलक श्रीरामने जाग्नेवास्त्रका प्रयोग किया ॥
अग्निदीप्तिमुत्पान् वाणास्तत्र सूर्यमुखानपि ।
च प्राध्वं च द्रव्यमाश्रय धूमकेतुमुखानपि ।
प्रहनक्षत्राणांश्च महोत्सामुत्सस्थितान् ॥ ४७ ॥

विशुज्जिह्वोपमाश्चापि ससर्ज विविधान्छरान् ।
उसने द्वारा उन्होंने अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अर्धचन्द्र धूम, वेद, ग्रह, नक्षत्र, उल्का तथा विजलीकी प्रमाके समान प्रबलि मुखवाले नाना प्रकारके बाण प्रकट किये ॥ ४७ ॥

ते रात्रणशरा घोरा राघवास्त्रसमाहवा ॥ ४८ ॥
विलय जामुराकाशे जम्बुद्वैप सहस्रश ।
श्रीरघुनाथजीने आग्नेवास्त्रसे आहत हो रात्रणके वे भयंकर बाण आकाशमें ही मिलीन हो गये, तथापि उनके द्वारा खलौं वानर मारे गये थे ॥ ४८ ॥

तद्वत् निहत हृष्टा रामेणाङ्गिप्रक्रमणा ॥ ४९ ॥
हृष्टा नेदुस्तत सर्वे कपय कामरूपिण ।
सुग्रीवादिमुखा वीरा सम्परिस्मिप्य राघवम् ॥ ५० ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने ठव आसुराखको नष्ट कर दिया, यह देख इच्छातुकार रूप धारण करनेवाले सुग्रीव आदि सभी वीर वानर श्रीरामका चारों ओर से घेरकर हयनाद करने लगे ॥ ४९-५० ॥

ततस्तद्वत् त्रिनिहत्य राघव
प्रसूत तद् रात्रणबाहुनि स्तुतम् ।
सुदाग्नितो दाशरथिमहात्मा
मिन्दुदृक्चमुदिता कपीभ्यरा ॥ ५१ ॥

दशरथन दन महात्मा श्रीराम रात्रणके हाथोंसे छूटे हुए तब आसुराखका मलयूरुक्त विनाश करने वाले प्रसूत हुए और वानर-यूयपति आनन्दमग्न हो उध स्वरसे सिंहाद करने लगे ॥

ततः शूलानि निश्चेर्युर्गदाश्च मुसलानि च ।
 फामुक्ताद् दीप्यमानानि वज्रसाराणि सचरा ॥ ३ ॥
 मुद्गरा कूटपादाश्च क्षीप्ताश्चाशनयस्तथा ।
 निष्पेतुर्निविधास्तीक्ष्णा घाता इव युगक्षये ॥ ४ ॥

उस समय रावणकं धनुष्मे वज्रके समान दृढ और
 दमनत हुए ग्लः, गदा, मूसल, मुद्गर, कूटपाश तथा चम
 चमती अगनि आनि भौति भौतिके तीये अस्त्र छूटने लगे,
 मानो प्रलयकालमें बाधुने विविध रूप प्रकट हो रहे हों ॥ ३ ॥ ४ ॥

तदस्त्र राघव धीमानुत्तमास्त्रविदा वर ।
 जघान परमास्त्रेण गाधयेण महायुति ॥ ५ ॥

तत्र उत्तम अस्त्रेण शताभ्येन श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीमान्
 रघुनाथजीने गाधयनाम श्रेष्ठ अस्त्रेण द्वारा रावणने उस
 अस्त्रके घात कर लिया ॥ ५ ॥

तस्मिन् प्रतिहतोऽस्त्रे तु राघवेण महात्मना ।
 रावण मोधताम्राण्य सौरमखमुदीरयत् ॥ ६ ॥

महात्मा रघुनाथजीने द्वारा उस अस्त्रके प्रतिहत हो जानेपर
 रावणने नेत्र क्षेपते डाल हो गये और उसने सूयाञ्जना
 प्रयोग किया ॥ ६ ॥

ततश्चाग्निं निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च ।
 फामुक्ताद् भीमनेत्रस्य दशग्रीवस्य धीमत ॥ ७ ॥

फिर तो भयानक वेगधाली बुद्धिमान् रावण दशग्रीवके
 धनुषसे बड़े-बड़े तेजस्वी चक्र प्रकट होने लगे ॥ ७ ॥

वैरासीद् गगन दीप्त सम्पतङ्गि समन्तत ।
 पतद्भिध्वं दिशो दीप्ताश्चन्द्रस्यप्रद्वैरिव ॥ ८ ॥

चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंने समान आकारवाले थे
 दीप्तिमान् अस्त्र शस्त्र सन और प्रकट होते और गिरते थे ।
 उनसे आकाशमें प्रकाश छा गया और कर्णपूर्ण दिशाएँ
 उज्ज्वल हो उठीं ॥ ८ ॥

तानि विच्छेद याज्ञौघेधमाणि तु स राघव ।
 आयुधाणि च त्रिधाणि रावणस्य वधुमुखे ॥ ९ ॥

परंतु श्रीरामकद्वयने अपने वणलनूतोंद्वारा सेनाके
 मुखनेपर रावणने उन चक्रों और विचित्र अयुधोंके टुकड़े
 टुकड़े कर डाले ॥ ९ ॥

सदस्त्रं तु हत दद्रु रावणो राक्षसाधिप ।
 विव्याध दशभिर्बाणैः राम सर्वेषु ममसु ॥ १० ॥

उस अस्त्रका नष्ट हुआ देत रावणराज रावणने दस
 बाणोंद्वारा भीषमने तारे मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥
 स प्रियो दशभिर्बाणैर्महाराजमुक्थिमुत्ते ।
 रावणेन महातेजा न प्राश्रयत राघवः ॥ ११ ॥

रावणने विगां धनुषने छूटे हुए उन दस बाणोंते
 पाण्डु होनेपर भी गंगा (जमी) श्रीरघुनाथजी विजय नही हुए ॥

ततो त्रिव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिन्वय ।
 राघवस्तु सुसक्रुद्धो रावण बहुभि शरैः ॥ १२ ॥

तत्रात्रात् समरविजयी श्रीरघुवीरने अत्यन्त कुपित हो
 बहुतसे बाण मारकर रावणने शरीर अङ्गोंमें घात कर दिया ॥
 पतस्मिन्नन्तरे क्लृप्तो राघवस्यानुजो गतः ।
 लक्ष्मण सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा ॥ १३ ॥

इसी बीचमें राघुवीरोंका सगर करने वाले महावीर रामानुज
 लक्ष्मणने कुपित हुए सप्त सयक हाथमें लिये ॥ १३ ॥

तैः सायकैर्महावीरैः रावणस्य महायुति ।
 वज्रं मनुष्यदीर्घं तु तस्य विच्छेद नैकधा ॥ १४ ॥

उन महान् वेगधाली सायकोंद्वारा उन महातेजस्वी
 बुद्धिमान् मारने रावणरी वज्रके, जिसमें मनुष्यरी तोषवीका
 चिह्न था, कई टुकड़े कर डाले ॥ १४ ॥

सायकेष्वपि घातेन शिरो जलितकुण्डलम् ।
 जहार लक्ष्मण धीमान् नैश्वृतस्य महानल ॥ १५ ॥

इसका बाद महारणी श्रीमान् लक्ष्मणने एक घातेसे उस
 रावणसे सारथिका जगमगाते हुए कुण्डलोंने मण्डित मस्तक
 की काट लिया ॥ १५ ॥

तस्य बाणैश्च विच्छेद धनुगजकरोपमम् ।
 लक्ष्मणो रावणसे द्रस्य पञ्चभिर्निशितैस्तदा ॥ १६ ॥

इतना ही नहीं लक्ष्मणने पाँच वेने बाण मारकर उस
 रावणराज की हाथीकी सूँढ़के समान माटे धनुषरी की काट डाला ॥

नीलमेघनिभाश्चास्य सद्भ्यान् पनतोपमान् ।
 जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य त्रिभीरण ॥ १७ ॥

तदनन्तर त्रिभीरणने डल्लकर अपनी गतसे रावणके
 नील मेघ समान कान्तिवाले मुन्दर परांगार पक्षोंकी भी
 मार गिराया ॥ १७ ॥

हताग्नात् तु तदा वेगाद्गन्धर्वान् महापथात् ।
 कोपमाहावयत् तीव्र धातार प्रति रावण ॥ १८ ॥

बाहोंके बारे जानेपर रावण अपने विहाल रथमें वेग
 पूर्वक दृढ़ पड़ा और अपने भाइयपर उसे बड़ा क्रोध आया ॥

ततः शक्तिं महाशक्तिं प्रदीतामन्तीमिव ।
 त्रिभीरणाय विशेषं राक्षसेन्द्रं प्रतापमान् ॥ १९ ॥

सब उस महान् शक्तिधाली प्रतापी रावणराजने त्रिभीरण
 को मारनेके लिये एक वज्रके समान प्राज्ञ शक्ति चक्रपी ॥

अप्रातामेव ता बाणैस्त्रिभिर्विच्छेद लक्ष्मण ।
 अयोद्विष्टत् सनादो यानराणा महापथे ॥ २० ॥

वह शक्ति अभी त्रिभीरण तक पहुँचने की नहीं पड़ी
 थी कि लक्ष्मणने तीन बाण मारकर उसे भीरुमें ही कट
 दिया । यह देत उस महाशक्तमें धनपेक्षा मान्द इन्द्र
 गूँघ उठा ॥ २० ॥

सम्पत्तयः शिवा शिल्पा शक्तिः काञ्चनमालिनी ।

सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महालक्ष्मिर्न दिव्यद्वयुता ॥ २१ ॥

खेनेरी माणसे अङ्कृत यह शक्ति तीन भागोंमें विभक्त होकर पृथ्वीपर गिर गयी। मन्त्रो आकाशमें निनगारिणोंवहित वही भारी उक्ता दूटकर गिरी हा ॥ २१ ॥

तत सम्भाविततरा कलेनापि दुरासदाम् ।

जयाद् विपुला शक्ति दीप्यमाना स्वतेजसा ॥ २२ ॥

तदनन्तर रावणने विभीषणको मारनेने लिये एक ऐसी विशाल शक्ति हाथमें ली। ना अपनी अगोपताक लिये विशेष बिगड़त थी। बाल भी उसके वेगको नहीं सह सकता था। वह शक्ति अपने तेजमें उदीप्त हो रही थी ॥ २२ ॥

सा धेगिता यलजता राणेन दुरात्मना ।

जञ्जाला सुमहातेजा क्षीताशक्तिसमप्रभा ॥ २३ ॥

दुरात्मा यलजत रावणके द्वारा हाथमें ली हुई वह वेग शालिनी, महातेजस्विनी और वज्रके समान दीप्तिमती शक्ति अपने दिव्य तेजसे प्रगल्भित हो उठी ॥ २३ ॥

यतस्मिन्नन्तरे धीरो लक्ष्मणस्त रिभाषणम् ।

प्राणसदायमापन्न तूर्णमभ्यवपद्यत ॥ २४ ॥

इसी बीचमें विभीषणको प्राण सदायकी अवस्थामें पड़ा देख वीर लक्ष्मणने उरध्र उनकी रक्षा की। उन्हें पीछे करके वे स्वयं शक्तिके सामने लड़े हो गए ॥ २४ ॥

त विमोक्षयितु धीरश्चापमायम्य लक्ष्मण ।

राज्य शक्तिहस्तं वै शरवैर्याचकितस् ॥ २५ ॥

विभीषणको यवानेके लिये धीर लक्ष्मण अपने वस्तुपको रीतकर हाथमें शक्ति लिये लड़े हुए रावणपर गणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

कौयमाण शरीरेण त्रिखण्डेन महात्मना ।

न प्रहर्तुं मनश्चापे विमुखीकृतप्रहम् ॥ २६ ॥

महात्मा लक्ष्मणके छोड़े हुए बाण-समूहोंका निशाना बनकर रावण अपने भाईकी मददके पराक्रमसे विमुख हो गया। धन उरक मनमें प्रहार करनेकी इच्छा नहीं रह गयी ॥ २६ ॥

मोक्षित आतर हृद्वा लक्ष्मणेन स राज्य ।

लक्ष्मणाभिमुखास्तिस्रिध्वनिद् वचनमप्यवीत् ॥ २७ ॥

लक्ष्मणने यह भाईको बचा लिया। यह देख राज्य उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो गया और इस प्रकार बोला—॥ २७ ॥

मोक्षितस्ते यत्प्रह्लाधिन यस्मादेव रिभीषण ।

विमुख्य राज्यस्त शक्तिस्त्वयीय विनिपात्यते ॥ २८ ॥

अपने बन्पर घमड़ रावनेनाल लक्ष्मण। तुमने ऐसा प्रणास करके विभीषणको बचा लिया है। इसलिये अब उस राज्यको आह्वन मैं तुम्हारे तपर ही ह शक्तिपा प्रहार करवा हूँ ॥ २८ ॥

पया तं हृदय भित्वा शक्तिर्होहितलक्ष्मणा ।

मद्व्याहुरपरिघोतवृथा प्राणानादाय यास्यति ॥ २९ ॥

यह शक्ति स्वभावसे ही शत्रुओंने लूटने नश्वरवाली है। यह मेरे हाथमें छूटने ही तुम्हारे हृदयको विदीर्ण करके प्राणोंको अपने वाय ले जायगी ॥ २९ ॥

इत्येवमुक्त्वा ता शक्तिमधुघण्टा महासनाम् ।

मयेन मायाविहितममोघा शत्रुघातिनीम् ॥ ३० ॥

लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा ।

राज्यः परमकुद्विज्ञेय च ननाद् य ॥ ३१ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त कुपित हुए रावणने मयामुकी माणसे निर्मित, आठ घण्टीसे विभूषित तथा महाभयकर शब्द करनेवाली, उस अमोघ एव शत्रुघातिनी शक्तिको, जो अपने तेजसे प्रगल्भित हो रही थी, लक्ष्मणको लक्ष्य करके चला दिया और बड़े ज़ोरसे गवना की ॥ ३० ३१ ॥

सा क्षिता भीमवेगेन यज्ञामानिसमसना ।

शक्तिरभ्यपतत् पेशाल्लक्ष्मण रणमूर्धनि ॥ ३२ ॥

ब्रह्म और असानिके समान राक्षसहाइट वेदा करनेवाली यह शक्ति मुझसे सुझनेपर भयानक वेगसे चलायी गयी और लक्ष्मणको वेगपूर्वक लगी ॥ ३२ ॥

तामनुष्णाश्चकृच्छिमापन्ती स राघव ।

स्वस्थस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥ ३३ ॥

लक्ष्मणकी ओर आती हुई उस शक्तिको लक्ष्य करके अस्मान् धीरामन कहा—लक्ष्मणवा कल्याण हो। तेरा प्राण नाशितपक उद्योग नष्ट हो अत्यन्त स्वस्थ हो जा ॥ ३३ ॥

राज्येन रणे शक्तिं हृन्वेनाशीविषोपमा ।

मुक्ताऽऽशूरस्थभीतस्य लक्ष्मणस्य ममज्ञ सा ॥ ३४ ॥

यह शक्ति विपपर सपके समान भयकर थी। रणभूमिमें कुपित हुए रावणने जब उसे छोड़ा। तब यह दुरत ही निम्न धीर लक्ष्मणकी छातीमें दूब गयी ॥ ३४ ॥

न्यपतत् सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि ।

जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युति ॥ ३५ ॥

ततो रावणवेगेन सुस्त्रमगादधा ।

शक्त्या रिभिषहृदय पयात भुवि लक्ष्मण ॥ ३६ ॥

नागयय यातुकिरी जिह्वके समान देदीप्यमान वह महातेजस्विनी और महावगयती शक्ति जब लक्ष्मणके विशाल वरत सत्पथ गिरी, तब राजन्य वेगसे धुरत गहण्ड तक पहुँच गयी। उस शक्तिके दृढय विनीने दो आनेके कारण लक्ष्मण पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३५ ३६ ॥

तदवस्थ समीपस्यो लक्ष्मण प्रेक्ष्य राघवः ।

आवृत्तेहान्महातेना रिपणहृदयोऽभवत् ॥ ३७ ॥

मानेवशी खुनायवी पात हो राड़े ये । ३ लक्ष्मणको

इस अवस्थामें देखकर भ्रातृस्नेहक कारण मन ही-मन विवादमें
हूब गये ॥ ३७ ॥

समुद्रतर्मित्र ध्यात्वा याष्पपयाकुलेक्षण ।
यभूव सरग्धतरो युगान्त इव पावक ॥ ३८ ॥

व दो घड़ी तक चिन्तामें हूबे रहे । फिर नेत्रोंमें आँसू
भरकर प्रलयकालमें प्रचलित हुई अग्नि के समान अत्यन्त
रूपसे उद्दीप्त हो उठे ॥ ३८ ॥

न विषादस्य कालोऽयमिति सचिन्त्य राघव ।
चक्रे सुतमुल युद्ध राघवस्य वधे घृत ।
सर्वयत्नेन महता लक्ष्मण परिवीक्ष्य च ॥ ३९ ॥

‘यह विषादका समय नहीं है’ ऐसा सोचकर भीरुनाथजी
रावणके वधका निश्चय करके महान् प्रयत्नक द्वारा सारी शक्ति
लगाकर और लक्ष्मणजी और देवकर अत्यन्त भयकर युद्ध
करने लगे ॥ ३९ ॥

स ददर्श ततो राम शचवा भिन्न महाहवे ।
लक्ष्मण रुधिरादिग्ध सपन्नगमिवाचलम् ॥ ४० ॥

तत्काल्प भीरुमने उस महासमरमें शक्तिये विदीर्ण हुए
लक्ष्मणजी और देवा । वे लूते लूते लूतपव हाकर पड़े थे और
संयुक्त पर्वतके समान जल पड़ते थे ॥ ४० ॥

तामपि प्रदिता शक्ति रावणेन यत्नीयसा ।
यत्नतस्ते हरिभ्रेष्टा न शोकरवमर्षितम् ॥ ४१ ॥

अत्यन्त बगान् रावणजी बलाभी हुई उस शक्तिके
लक्ष्मणजी छातीसे निकालनेके लिये बहुत प्रयत्न करनेपर भी
वे भ्रेष्ट यानरगण सफल न हो सके ॥ ४१ ॥

मर्षिताश्चैव याणौघैस्ते प्रवेकेण रससाम् ।
सौमित्रे सा निनिर्भिच प्रविण धरणीतलम् ॥ ४२ ॥

क्योंकि वे बानर भी राक्षसशिरोमणि रावणक बाण-समूहों
से बहुत पीड़ित थे । वह शक्ति सुमित्राकुमारने गरीबों
प्रिीण करके बरतीतक पहुँच गयी थी ॥ ४२ ॥

ता कराभ्या परामृश्य राम शक्ति भयावहाम् ।
यभञ्ज समरे क्रुद्धो यत्नान् निचकप च ॥ ४३ ॥

तब महाबली सुनायजीने उस भयकर शक्तिके अपने
होनों हाथोंसे पकड़कर लक्ष्मणके छरीरसे निकाला और
समराङ्गणमें बुझि हो उसे तोड़ डाला ॥ ४३ ॥

तस्य निष्कृत शक्ति रावणेन यत्नीयसा ।
दारा सर्वेषु गात्रेषु पातिता मममेदिन ॥ ४४ ॥

भीरुमचन्द्रजी बर लक्ष्मणन शरीरसे शक्ति निकाल रहे
थे, उस समय महापत्नी राधा उनका सपूर्ण अङ्गोंर मममेदी
बाणोंरी वषा करता रहा ॥ ४४ ॥

अग्निन्तपित्वा तान् याणान् समादिग्य च लक्ष्मणम् ।

अग्रवीक्ष्य हनुमन्त सुग्रीव च महाकपिम् ॥ ४५ ॥

परतु उन बाणोंकी परा न करके लक्ष्मणका हृदयमें
लगाकर मगान् भीरुम हनुमान् और महाकपि सुग्रीवसे
बोल— ॥ ४५ ॥

लक्ष्मण परिवार्यैव तिष्ठथ यानरोत्तमा ।
पराक्रमस्य कालोऽय सम्प्राप्तो मे चिरोप्सित ॥ ४६ ॥

अधिवारे । तुमलोग लक्ष्मणजी इसी तरह सब ओरसे
बेरकर खड़े रहो । अब मेरे लिये उस पराक्रमका अवसर आया
है, जो मुझे चिरकालसे अभीष्ट था ॥ ४६ ॥

पापात्माय वृषाग्रीवो यध्यता पापनिक्षय ।
काङ्क्षित व्रातकस्येय धर्मान्ते मेघदशनम् ॥ ४७ ॥

इस पापात्मा एवं पापपूर्ण विचार रखनेवाले दशमुख
रावणका अब मार डाला जाय, यही उचित है । जैसे पपीहेको
ग्रीष्म ऋतुक अन्तमें मेघक दधानकी इच्छा रहती है, उसी
प्रकार मैं भी इसका वध करनेक लिये चिरकालसे इसे देखना
चाहता हूँ ॥ ४७ ॥

अस्मिन् मुहूर्ते नचिरात् सत्य प्रतिभृणामि व ।
अरावणममाम या जगद् प्रक्षयथ यानरा ॥ ४८ ॥

यानरा । मैं इसमुहूर्तमें तुम्हारे सामने यह सबी प्रतिज्ञा करके
बहता हूँ कि कुछ ही देरमें यह सखर रावणसे रहित दिवाली
देगा या सपने ॥ ४८ ॥

राज्यनाश वने वास दण्डके परिधावनम् ।
वैवेहाश्च परामर्शो रक्षोभिश्च समागमम् ॥ ४९ ॥

प्राप्त दुःख महाघोर क्लेशश्च निरयोपम ।
अद्य सर्वमह त्यक्त्ये निहत्वा रावण रणे ॥ ५० ॥

अरे राज्यका नाश, वनका नाश, दण्डकारण्यकी दीह
घुप, विदेहकुमारी सीताका राक्षसद्वारा अपहरण तथा राक्षसों
साथ संग्राम—इन सबके कारण मुझे महान् दुःख सहना
पड़ा है और नरक समान कष्ट उठाना पड़ा है किन्तु रण
भूमिमें रावणका वध करके आज मैं सारा दुःखोंमें छुटकारा
पा जाऊँगा ॥ ४९ ५० ॥

यदर्थं यानर सैन्य समानीतमिदं मया ।
सुग्रीवश्च हतो राज्ये निहत्वा वालिन रणे ।

यदर्थं सागर प्रान्त सेतुषुद्धय सागरे ॥ ५१ ॥
सोऽयमद्य रणे पापश्चभुविषयमागत ।

चभुविषयमागन्त्य नाय जीविनुमहति ॥ ५२ ॥

जिसेके लिय मैं बानरोंकी यह गिण्ट मेना साथ लाया
हूँ, जिसने काला मेने युद्धमें बालीका वध करके सुग्रीवका
राज्य विनाश है तथा जिसने उदयपने सन्तुष्ट दुल बाँधा
और उस धार किंग यह पानी राता अब युद्धमें नहीं
आँखों सामने उपस्थित है । मेरे हृदयमें अकर भर यह
संकेत रखने गय नहीं है ॥ ५१ ५२ ॥

हृष्टि हृष्टिप्रियस्येव सर्पस्य मम रावण ।
यथा या पैनतेयस्य हृष्टि प्राप्ते भुजगम ॥ ५३ ॥

‘हृष्टिमात्रसे संहरकारी निपत्रा प्रसार करनेवाले सर्पकी
आँखोंने सामने आकर जैसे कोई मनुष्य जीवित नहीं बच
सकता अथवा जैसे विनतानन्दन गण्डकी हृष्टिर्म पङ्कट कोई
महान् सर्प जीवित नहीं बच सकता, उसी प्रकार आज रावण
मेरे सामने आकर जीवित या सकुशल नहीं लौट सकता ॥ ५३ ॥

सुप्त पश्यत दुर्धर्मा युद्ध यानरपुङ्गवा ।
आसीना पर्वताग्रेषु ममेद रावणस्य च ॥ ५४ ॥

‘दुर्धर्मा यानरशिरोमणियो ! अब तुमलोग पर्वतके
शिखरोंपर बैठकर मेरे और रावणके इस युद्धको सुप्तपूर्वक
देखो ॥ ५४ ॥

अथ पश्यतु रामस्य रामत्व मम सयुगे ।
प्रयो लोका सगर्वा सदेवाः सर्विचारणा ॥ ५५ ॥

‘आज सप्राममें देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि और चारणों
सहित तीनों लोकोंके प्राणी रामका रामत्व देखें ॥ ५५ ॥

अथ कर्म करिष्यामि यल्लोका सचराचरा ।
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति ।
समागम्य सदा लोके यथा युद्ध प्रयति ॥ ५६ ॥

‘आज मैं वह पराक्रम प्रकट करूँगा, जिसकी जयतक
यह पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक चराचर जगत्के जीव और
देवता भी सदा लोकमें एकत्र होकर चर्चा करेंगे और जिस
प्रकार युद्ध हुआ है, उसे एक दूसरेसे कहेंगे ॥ ५६ ॥

एवमुक्त्वा शितैर्यौगैस्ततकाञ्चनभूपजै ।
आजधान रणे रामो दशग्रीव समाहित ॥ ५७ ॥

‘देख वहकर मगान् श्रीराम सावधान हो अपने सुवर्ण
भूषित तीन गणोंसे रणभूमिमें दगानन रावणको घायल
करने लगे ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे धीमद्रामायण बाह्मीकवे आदिकाव्ये मुद्रकाण्डे क्षतनमः सर्ग ॥ १०० ॥
इस प्रकार धीमद्रामायण आदिब्राह्म्यक मुद्रकाण्डमें तीनों सग पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकाधिकशततमः सर्गः

श्रीरामका विलाप तथा हनुमान्जीकी लापी हुई ओपधिके सुपेणद्वारा
किये गये प्रयोगसे लक्ष्मणका सचेत हो उठना

राज्या निपातित दृष्ट्वा रावणेन यलीयसा ।
रमण समरे शर शोणितौघपरिप्लुतम् ॥ १ ॥
दत्त्वा तुमुल युद्ध रावणस्य दुरात्मन ।
पूजनेय बाणीघान सुपेणमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
महाबली रागने शरीर लक्ष्मणरो अग्नी शक्तिसे
परशामी कर दिया था । व रक्तने प्रयाहसे नष्ट उठे

थ । यह देख भगवान् धीरमने दुरात्मा रावणके साथ शेर
युद्ध करने बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए ही सुपेणने इस
प्रकार कहा— ॥ १ ॥
एव रावणजीयें लक्ष्मण पतितो मुनि ।
सर्ववज्जेष्टे धीरो मम शोकमुदीरयन् ॥ ३ ॥
‘य धीर लक्ष्मण रागने पराक्रमसे घायल होकर पृथ्वीपर

तथा प्रदीप्तैर्नारावैर्मुसलैश्चापि रावण ।
अभ्यवर्षत् तदा राम धाराभिरिव तोयद् ॥ ५८ ॥

इसी प्रकार जैसे मेष जलकी धारा गिरता है,
तब रावण भी श्रीरामपर चमकते नाराचों और मुसलोंकी
करने लगा ॥ ५८ ॥

रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिप्रताम् ।
घराणा च शपणा च यभूव तुमुल स्वन ॥ ५९ ॥

एक दूसरेपर चोट करते हुए राम और रावणके
छोड़े हुए भद्र वाणोंके परस्पर टकरानेसे बड़ा भयानक शब्द
प्रकट होता था ॥ ५९ ॥

विच्छिन्नाश्च विकीणाश्च रामरावणयो शरा ।
अन्तरिक्षात् प्रदीप्तामा निपेतुर्धरणीतले ॥ ६० ॥

श्रीराम और रावणने बाण परस्पर छिन्न भिन्न होकर
आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ते थे । उस समय उनके भ्रममाण
वहे उड़ती दिखायी देते थे ॥ ६० ॥

तयोर्यत्तलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान् ।
आसन सर्वभूताना यभूवास्तुतोपम ॥ ६१ ॥

राम और रावणके घनुषकी प्रत्यक्षासे प्रकट हुई महान्
टकारध्वनि समस्त प्राणियोंके मनमें घास उत्पन्न कर देती
थी और बड़ी अद्भुत प्रतीत होती थी ॥ ६१ ॥

स कीर्यमाण शरजालवृष्टिभि
महात्मना दीप्तधनुष्मतादित ।
भयात् प्रदुन्नाय समेत्य रावणो
यथानिलेनाभिहतो यलाहक ॥ ६२ ॥

जैसे बायुके बपेड़े खाकर मेष छिन्न भिन्न हो जाता है,
उसी प्रकार दीप्तिमान् घनुष धारण करनेवाले महात्मा श्रीरामके
बाण समूहोंकी वज्रसे आहत एव पीड़ित हुआ रावण भवने
मारे बहोते भाग गया ॥ ६२ ॥

पदे हैं और चोट खाये हुए सर्परी भोंति छप्पा रहे हैं ।
इह भग्न्यामि इह देवकर मेघ गोक बन्ता जा रहा है ॥३॥
शोणितार्द्रमिम वीर प्राणै प्रियतर मम ।
पश्यतो मम पा दक्षिणोऽहं पर्याकुलाम्न ॥ ४ ॥

ये वीर सुमित्राकुमार मुझे प्राणोंसे भी बल्कर प्रिय हैं,
इहें लहृदहान देवकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है, ऐसी
दृश्यामे मुझमें युद्ध करनेकी गति क्या होगी ? ॥ ४ ॥

मय स समरकृपायी भ्राता मे शुभलक्षण ।
यदि पञ्चत्यमापन्न प्राणैमे किं सुखेन वा ॥ ५ ॥

ये मेरे शुभलक्षण भाई, जो सदा युद्धका हौसला
रखते थे, यदि मर गये तो मुझे इन प्राणोंक रखने और
सुख भोगनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ५ ॥

लज्जतीर हि मे वीर्ये अद्वयतीर कराद् धनु ।
सायका ध्ववसीदन्ति दृष्टिवाष्पश गता ॥ ६ ॥

‘इह समय मेघ पराक्रम लज्जिता हो रहा है, शायदे
धनुष खसकता-सा जा रहा है, मेरे सायक गिरिपल हो रहे
हैं और नेत्रोंमें आँसू भर आय हैं ॥ ६ ॥

अवसीदन्ति गात्राणि सन्नयाने नृणामिह ।
चिन्ता मे वधते तीव्रा मुमूर्षापि च जायते ॥ ७ ॥
भ्रातर निहत दृष्ट्वा रागेन दुरात्मना ।
निघ्नन्त तु दुःखात्तैर्मर्मव्यभिहत भृशम् ॥ ८ ॥

‘मेरे स्वप्नमें मनुष्योंके गरीर गिरिपल हो जाते हैं’ वही
दशा मेरे इन भ्रातृकी है । मेरी तीव्र चिन्ता बन्ती च रही है
और दुरात्मा रागके द्वारा शायल होकर मार्मिक अपाठसे
अत्यन्त पीड़ित एवं दुःखीर हुए भाई लम्पणको कराहते
देख मुझे मर जानकी इच्छा हो रही है ॥ ७ ॥ ८ ॥

राघवो भ्रातर दृष्ट्वा मिय माण वहिश्चरम् ।
दुःखेन महताग्निष्टो ध्यानशोकपरायण ॥ ९ ॥

भीरुनायगी बारर निचरने लगे प्राणोंक छान प्रिय भाई
लम्पणको इह भग्न्यामि देख मान् दुःखसे व्याकुल हो गये,
चिन्ता और शोकमें हूत गय ॥ ९ ॥

पर विवादमापन्नो रिक्तापाकुलेन्द्रिय ।
भ्रातर निहत दृष्ट्वा लक्ष्मण रणवासुपु ॥ १० ॥

उनके मनमें बड़ा विवाद हुआ । इन्द्रियोंमें व्याकुलता
छा गयी और व रणभूमिमें धूलमें पावण होकर पड़े हुए
भाई लम्पणकी ओर दंगबर रण्य करने लगे— ॥ १० ॥

त्रिगयोऽपि हि मे शूर न प्रियायोपकल्पते ।
मन्त्रुविपयशब्द का प्रीति जनयिष्यति ॥ ११ ॥

धृष्टकीर ! अथ संग्राममें त्रिग भी मित्र जय तो मुझे
प्रणता नहीं देगी । अन्धके खपने चन्द्रमा भवनी चौदनी

विचर दें तो भी व उसके भग्न कीन-सा आह्लाद पैदा कर
सकेंगे ? ॥ ११ ॥

किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न प्रियते ।
यथाय निरत शेते रणमूधनि लक्ष्मण ॥ १२ ॥

‘अथ ॥ युद्धमें अथवा प्राणोंसे रक्षते मुझे क्या प्रयोजन
है ? अथ लड़ने-भिड़नेकी कोई आय यस्ता नहीं है । जब
संग्रामक मुरादेपर मारे जाकर न मग ही सगके लिये छा गये,
तब युद्ध जीतनेसे क्या लाभ है ? ॥ १२ ॥

यथैव मा वन यान्तमनुयायि महाद्युति ।
अहमप्यनुयाय्यामि तथैवैव यमश्रयम् ॥ १३ ॥

‘वनमें आते समय सने महानेज्जी लम्पण मेरे पीछे
पीछे चने आवे थे, उसी तरह यमलोकमें जाते समय मैं भी
इनके पीछे-पीछे जाऊँगा ॥ १३ ॥

इष्टधुज्जो नित्य मा न नित्यमनुव्रत ।
इमामप्या गमितो राक्षसैः कूटयोधिभि ॥ १४ ॥

‘हाय ! जा सगा मुझमें अनुपग रतनेवाले मेरे प्रिय
बन्धुजन थे, लम्पे युद्ध करनेवाले निगाचरोंने आब उनकी
यह दशा कर दी ॥ १४ ॥

देशे देशे कल्पाणि देशे देशे च वाधया ।
तनु देशे न पश्यामि यथा भ्राता सहोदर ॥ १५ ॥

‘प्रत्येक देशमें जियाँ मिल सकती हैं, देश देशमें जानि
भाई उपलब्ध हो सकते हैं परंतु ऐसा कोई देश मुझ नहीं
दिलायी देता, जहाँ सहोदर भाई मिल सके ॥ १५ ॥

किं नु राज्येन दुर्धर्षलक्ष्मणेन विना मम ।
कथं वक्ष्याम्यहं त्वभ्या सुमित्रा पुत्रपत्तलाम् ॥ १६ ॥

‘दुर्धर्ष वीर लक्ष्मणके बिना मैं राज्य लेकर क्या करूँगा ?
पुत्रपत्तलामाता सुमित्राने किंव तरह बात कर सकूँगा ॥ १६ ॥

उपालम्भ ॥ शक्ष्यामि नोदु दत्त सुमित्रया ।
किं नु वक्ष्यामि कौसल्या मातर किं नु कैर्याम् ॥ १७ ॥

‘भाना सुमित्राने दिये हुए उल्लासेसे कैसे वह सकूँगा ?
माता कौसल्या और कैर्यासी क्या बराय दूँगा ? ॥ १७ ॥

भरत किं नु वक्ष्यामि शत्रुपुत्रं च महावल्गम् ।
सह तेन वन यान्ता विना तनागत कथम् ॥ १८ ॥

‘भरत और महावल्गु शत्रुपुत्र बर पूछेंगे कि आर लम्पण
के साथ वनमें गये थे, फिर उनका बिना ही कैसे लौट आय
ता उन्हें मैं क्या उत्तर दूँगा ? ॥ १८ ॥

इहय मरण धेयो न ॥ ययुर्गिरादाम् ।
किं मया दुष्कृतं कम लनमन्यत्र जमनि ॥ १९ ॥
येन मे धामिको भाना निरतध्यात विन ॥

‘अन मेरे लिये नहीं मर जाता अल्पा है । भाई
बन्धुओंमें बाहर उनकी बरी हुई सारी सारी बातें सुनना

अच्छा नहीं। मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण मेरे सामने खड़ा हुआ मेरा भगवान् भाई मारा गया ॥ १९३ ॥

हा आतमनुजयेष्ट शूराणां प्रवर प्रभो ॥ २० ॥
पश्चात् किं नु मा त्वमृत्वा परलोकाय गच्छसि।

‘हा भाई नरयेष्ट स्वमण ! हा प्रभावशाली शूरप्रवर ! तुम मुझे छोड़कर अकेले क्यों परलोकमें जा रहे हो ? ॥ २० ॥’

निलम्बत च मा भ्रात किमर्थं नावभाषसे ॥ २१ ॥
उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीन मा पश्य चक्षुषा।

‘मैया ! मैं तुम्हारे बिना च रहा हूँ। तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं हो ? प्रिय बंधु ! उठो। आँख खोलकर देखो। क्यों सा रहे हो ? मैं बहुत दुखी हूँ। मुझपर दृष्टिपात करो ॥ शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु धनेषु च ॥ २२ ॥
विपणस्य महाबाहो समाध्यासयिता मम।

‘महाबाहो ! परतों और वनोंमें जहाँ शोकसे पीड़ित हो प्रमत एवं विषादग्रस्त हो जाता था, तब तुम्हीं मुझे यहाँ बैधाते थे (फिर इस समय मुझे क्यों नहीं खल्वना देते हो ?) ॥ २२ ॥’

राममेव ध्यायण तु शोकव्याकुलिते त्रियम् ॥ २३ ॥
आध्यासयन्नुजचेद सुपेण परम यव।

इस तरह निम्न करते हुए भगवान् श्रीरामकी सारी इन्द्रियों शोकसे व्याकुल हो उठी थीं। उस समय ध्रुवने उन्हें आश्वस्त्य दत्त हुए यह उत्तम बात कही— ॥ २३ ॥

स्यजेमा नरदार्ढ्यं युधि वैद्वज्यकारिणीम् ॥ २४ ॥
शोकसज्जननीं प्रिन्ता तुल्या बाणेभ्यमुमुखे।

‘पुत्रवर्द्धि ! व्याकुलता उत्पन्न करनेवाली इस चिन्तायुक्त बुद्धिका परित्याग कीजिये क्योंकि युद्धमें मुझनेपर की हुई चिन्ता बाणोंक समान होती है और वेजल शस्त्रों के समान होती है ॥ २४ ॥’

नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवधन ॥ २५ ॥
नहास्य विद्वत वधश्च न च दयामयमागतम्।

सुप्रभ च प्रसन्न च सुप्रमथ न निरीक्ष्यताम् ॥ २६ ॥

‘आपन भाई श्रीमान्द्रक लग्नम मरे नहीं है। देखिये, इनके सुपरी आहूति अभी बिगड़ी नहीं है और न इनके चेहरेपर कालमन ही आया है। इनका सुप्र प्रसन्न एवं कान्तिना दिग्गामी दे रहा है ॥ २५ ॥ २६ ॥’

पश्यप्रयत्नी हस्ती सुप्रसन्ने च लोचने।
नेरुण दृढयने रूप मत्तासुतां प्रिता पते ॥ २७ ॥

‘इनमें दाढ़ीही इष्टियों कम्पन है। बीमल है, आँखें भी बहुत ताक है। प्रसन्नाय ! मरे हुए प्राणियोंका ऐसा रूप तभी दया द्या है ॥ २७ ॥’

विषाद मा हृत्वा वीर सप्राणोऽयमर्दिम।
आख्यातिं प्रसृतस्य स्रस्तगात्रस्य भूतले ॥ २८ ॥
सोच्छ्वास हृदय वीर कम्पमानं मुमुक्षुः।

‘वानुओंका दमन करनेवाले वीर ! आप विषाद न करें। इनने शरीरमें प्राण हैं। वीर ! ये सो गये हैं। इनका शरीर निथिल होकर भूतलपर पड़ा है। सँस चल रही है और हृदय बारबार कम्पित हो रहा है—उसकी गति बंद नहीं हुई है। यह लक्षण इनके जीवित होनेकी सूचना दे रहा है ॥ २८ ॥’

पश्यमुक्त्वा महाप्राज्ञ सुपेणो राघव यवः ॥ २९ ॥
समीपस्थमुवाचेद् हनुमन्त महाकपिम्।

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् ध्रुवने पाठ ही खड़े हुए महाकपि हनुमान्जीसे कहा— ॥ २९ ॥

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ॥ ३० ॥
पूर्वं नु कथितो योऽस्ती वीर जाग्रद्वता तव।

दक्षिणे शिखरे जाता महौपधिमिहानय ॥ ३१ ॥
विशाल्यकरणो नाम्ना साजग्यकरणो तथा।

सजीवकरणो वीर सधानो च महौपधीम् ॥ ३२ ॥
सजीवनार्थं धीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय।

‘सौम्य ! तुम शीघ्र ही यहाँसे महोदय पर्वतपर जिसका पता जानना नुम्हें पहले बता चुके हैं, आओ और उसके दक्षिण गिरपर उगी हुई विशाल्यकरणो, सौम्यकरणो, सजीवकरणो तथा संधानो नामसे प्रसिद्ध महौपधियोंको यहाँ से आओ। वीर ! उन्हींसे वीरवर लक्ष्मणके जीवनकी रक्षा होगी ॥’

इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौपधिपर्वतम्।
चित्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानस्ता महौपधीः ॥ ३३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर हनुमान्जी औपधिपर्वत (महान्य गिर) पर गये परन्तु उन महौपधियोंका न पहचाननेके कारण वे चिन्तामें पड़ गये ॥ ३३ ॥

तस्य बुद्धिं समुत्पन्ना मारुतेरमितौजस।
इदमेव गमिष्यामि शृद्धीत्वा शिखर गिरे ॥ ३४ ॥

इसी समय अमिषतेजस्वी हनुमान्जीके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं परन्तु इस शिखरको ही देखूँ ॥ ३४ ॥

आसिस्तु शिखरे जातामोपधीं ता सुखायदाहम्।
प्रतर्कणायामच्छामि सुपेणो होरमप्रतीत् ॥ ३५ ॥

‘इसी गिरपर वह सुखदायिनी आपधि उत्पन्न होती होगी, ऐसा मुझे अनुमानत शन होता है क्योंकि सुपगने ऐसा ही कहा था ॥ ३५ ॥’

१ शरीरमें बसे हुए प्राण जीवोंको विषादग्रस्त पात्र करने और पीसा दूर करनेवाली। २ शरीरमें परस्पर-सौ रंगन करनेवाली। ३ मूर्त दूर कर बेचना प्रयत्न करनेवाली। ४ दूरी हुई दृष्टियोंको जोड़नेवाली।

अगृह्य यदि गच्छमि विशाल्यकरणीमहम् ।
कालात्ययेन दोष स्याद् वैरुध्यच महद्भवेत् ॥ ३६ ॥

‘यदि विशाल्यकरणीको लिये बिना ही लौट जाऊँ तो अधिक समय बीतनेसे दोषकी सम्भावना है और उससे बड़ी भारी पबराइट हो सकती है’ ॥ ३६ ॥

इति सचिन्त्य हनुमान् गत्वा क्षिप्र महाबल ।
आसाद्य पर्यतश्रेष्ठं चि प्रकम्प्य गिरे शिर ॥ ३७ ॥
फुल्लनानातदगण समुत्पाद्य महाबल ।
गृहीत्या हरिशार्दूलो हस्ताभ्या समतोलयत् ॥ ३८ ॥

ऐसा सोचकर महाबली हनुमान् तुरत उस श्रेष्ठ पर्यतके पास जा पहुँचे और उसके शिखरको छीन बार हिलाकर उसे उखाड़ लिया । उसके ऊपर नाना प्रकारके वृक्ष खिले हुए थे । यानश्रेष्ठ महानली हनुमान्ने उसे दोनों हाथोंपर उठाकर लौटा ॥ ३७-३८ ॥

स नीलमिन् जीमूत तोयपूर्णं नभस्तलात् ।
उत्पपात गृहीत्या तु हनूमाश्शिखर गिरे ॥ ३९ ॥

जलते भरे हुए नीले मेघके समान उस परतशिखरको लेकर हनुमान्नी ऊपरको उछले ॥ ३९ ॥

समागम्य महावेगः सन्त्यस्य शिखर गिरे ।
निधम्य किंचिद्धनुमान् सुपेणमिदमब्रवीत् ॥ ४० ॥

उनका वेग महान् था । उस शिखरको सुपेणके पास पहुँचाकर उन्होंने दृष्टीपर रख दिया और योड़ी देर विभाम करके हनुमान्नीने सुपेणसे इस प्रकार कहा— ॥ ४० ॥

औगधीर्नाबगच्छामि ता आह हरिपुङ्गव ।
तदिदं शिखर हरस्त गिरेस्तस्यादृत मया ॥ ४१ ॥

‘कपिश्रेष्ठ ! मैं उन ओपथियोंको पहचानता नहीं हूँ । इसलिये उस परतका धारा शिखर ही लेता आया हूँ’ ॥ ४१ ॥

पर कथयमान तु प्रशस्य परनात्मजम् ।
सुपेणो यानरधेष्ठो जग्राहोत्पाद्य चौगधी ॥ ४२ ॥

ऐसा कहत हुए हनुमान्नीकी भुरि-भुरि प्रशंसा करके यानरधेष्ठ सुपेणने उन ओपथियोंको उखाड़ लिया ॥ ४२ ॥

विस्मितास्तु यभूयुस्ते सर्वे यानरपुङ्गवा ।
चट्वा तु हनुमत्कम सुदैरपि सुदुष्करम् ॥ ४३ ॥

हनुमान्नीका यह कर्म देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुःकर था । उसे देखकर समस्त यानरयूपति बड़े निस्मित हुए ॥ ४३ ॥

तत सम्भेदयित्वा तामोरधीं यानरोत्तम ।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्त सुपेण सुमहायुति ॥ ४४ ॥

महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ सुपेणने उस ओपथिको कूट पीरकर लक्ष्मणश्रीकी नाकमें दे दिया ॥ ४४ ॥

सशल्य स समाप्राप्य लक्ष्मण परवीरहा ।
विशाल्यो निरुज शीघ्रमुदतिष्ठमहीतलात् ॥ ४५ ॥

शत्रुका सहार करनेवाले लक्ष्मणके सारे शरीरमें बाण भँसे हुए थे । उस अवस्थामें उस ओपथिको सँघते ही उनके शरीर से बाण निकल गये और वे नीरोग हो गीम ही भूतलसे उठकर खड़े हो गये ॥ ४५ ॥

तमुत्थित तु हरयो भूतलात् प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् ।
साधुसाध्विति सुमीता लक्ष्मण प्रत्यपूजयन् ॥ ४६ ॥

लक्ष्मणने भूतलसे उठकर खड़ा हुआ देख वे यानर अत्यन्त प्रसन्न हो ‘साधु-साधु’ कहकर उनकी भुरि-भुरि प्रशंसा करने लगे ॥ ४६ ॥

पद्येदीत्यग्रीद रामो लक्ष्मण परवीरहा ।
सस्त्रजे गाढमालिङ्ग्य वाष्पपर्याङ्कुलेक्षण ॥ ४७ ॥

तत्र शत्रुवीरैका सहार करनेवाले भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—‘आओ-आओ’ ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें दोनों भुजाओंमें भर लिया और गाढ आलिंगन करके हृदयसे लगा लिया । उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू छलक रहे थे ॥ ४७ ॥

अब्रवीच्च परिप्यज्य सौमित्रि राघवस्तदा ।
दिष्टया त्वा धीर पद्यामि मरणात् पुनरागतम् ॥ ४८ ॥

सुमित्राकुमारको हृदयसे लगाकर श्रीरामनाथजीने कहा—‘वीर ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं तुम्हें मृत्युके मुखसे पुन लौग हुआ देखता हूँ’ ॥ ४८ ॥

नहि मे जीवितेनार्थ सीतया च जयन या ।
को हि मे जीवितेनायस्त्वयि पञ्चत्यमागत ॥ ४९ ॥

‘शत्रुहारे बिना मुझे जीवनकी रक्षासे, सीताने अथवा विजयसे भी कोई मतलब नहीं है । जय तुम्हीं नहीं रहोगे, तब मैं इस जीवनको रखन क्या कहूँगा ?’ ॥ ४९ ॥

इत्येव ब्रुवतस्तस्य राघवस्य महात्मन ।
लिखन् दिशिल्या याचा लक्ष्मणो धाक्यमब्रवीत् ॥ ५० ॥

महात्मा रघुनाथजीने ऐसा बहनेपर लक्ष्मण खिन हो गिथिल वाणीमें धीरे धीरे बोले— ॥ ५० ॥

ता प्रतिशा प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपरात्म ।
लघु कश्चिदिवामस्त्यो नैव त्व यन्मुहर्हसि ॥ ५१ ॥

‘आर्य ! आप सत्यपराधी हैं । आपने पहले राघवका वचन करके निमीषणको लहाना राघव नेत्रोंकी प्रतिज्ञा की थी । वैसी प्रतिज्ञा करनेसे अब किन्ना आओ और निर्दल मनुष्यकी भाँति आपको एसी बात नहीं कर्नी चाहिये’ ॥ ५१ ॥

नहि प्रतिज्ञा कुर्वन्ति वितथा सत्यरादिन ।
लक्षण हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालम् ॥ ५२ ॥

नैराश्यमुपगतु च नाल ते मन्टनजनय ।
यद्येन राघवम्याद्य प्रतिज्ञामनुपाग्य ॥ ५३ ॥

‘अन्यासी युद्धय श्रेष्ठ प्रतिज्ञा नहीं करते हैं । प्रतिज्ञाका

पालन ही वक्ष्यनका लक्षण है । निष्पाप रघुवीर ! मेरे लिये
आपको इतना निराग नहीं होना चाहिये । आज रावणका
वध करके आप अपनी प्रतिष्ठा पूरी कीजिये ॥ ५२ ५३ ॥

न जीयन् यास्यते शत्रुस्तव पाणपथ गताः ।

नर्दतस्तीक्ष्णदृष्टस्य सिंहस्येव महागज ॥ ५४ ॥

‘आपके बाणोंका लक्ष्य बनकर शत्रु जीवित नहीं लौट
सकता । ठीक उसी तरह, जैसे गरजते हुए तीखी दाढ़वाल
सिंहके सामने आकर महान् गजराज जीवित नहीं रह
सकता ॥ ५४ ॥

अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मन ।

बाणदस्त न यात्येव हस्तकर्म दिवाकरः ॥ ५५ ॥

‘ये सूर्यदेव अपने दिनभरका भ्रमणकाय पूरा करके

हजारों श्रीमद्भारमायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्ड एकचक्रशततम सर्ग ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वामेयण अदिकार्यके युद्धकाण्डमें एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः

इन्द्रके मेजे हुए रथपर बैठकर श्रीरामका रावणके साथ युद्ध करना

लक्ष्मणेन तु तद् वाक्यमुक्त श्रुत्वा स रावणः ।

सदृजे परवीरघ्नो धनुषाश्रय धीर्यवान् ॥ १ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई उस बातको सुनकर शत्रुवीरोंका
बहार करनेवाले पराक्रमी भीरुमने धनुष लेकर उसपर
बाणोंका वर्षान किया ॥ १ ॥

रावणाय शरान् घोराण् विषसर्जं चम्रमुखे ।

अघान्य रथमास्थाय रावणो राक्षसाधिप ॥ २ ॥

अभ्यधातक काकुरस्य स्वर्भातुरिव भास्करम् ।

उन्होंने सेनाके मुहानेपर रावणको लक्ष्य करके उन

मयकर बाणोंसे छोड़ना आरम्भ किया । इतनेमें राक्षसरज

रावण भी दूधरे रथपर चढ़ा हा भीरुमपर उठी तरह चढ

आया, जैसे शत्रु सूर्यपर आक्रमण करना है ॥ २ ॥

दशग्रीवो रथम्यस्तु राम यज्ञोपमै शरीः ।

गात्रघान महादील धाराभिरिध सोपद् ॥ ३ ॥

दागुल रावण रथपर बैठा हुआ था । वह अपने

पञ्चापम बाणोंद्वारा भीरुमको उठी तरह बांधने लगा, जैसे मेष

निक्षे महान् पर्वतपर झन्झी घाटागहिक बूटि करता है ॥

दीपपायकसफादी शरीः काञ्चनभूषणैः ।

अभ्यवपद् रणे रामो दशग्रीव समहितः ॥ ४ ॥

भीरुमराजकी भी एकाग्रचित्त हो रणभूमिमें दशगुल

रावणपर प्रकटित अभिये समान तेजस्वी मुण्डभूषित बाणोंकी

बारा करने लगे ॥ ४ ॥

भूमौ स्थित्य रामस्य रथस्यस्य स रक्षस ।

न सम युद्धमिन्याहुर्वैष्णवयज्ञिनरा ॥ ५ ॥

अस्ताचलको नहीं चङ जाते, तबतक ही जितना शीघ्र सम्भव
हो सके, मैं उस दुरात्मा रावणका वध देखना चाहता हूँ । ५।

यदि वधमिच्छसि रावणस्य सख्ये

यदि च हृता हि तवेच्छसि प्रतिशाम् ।

यदि तत्र राजसुताभिलाष आर्य

कुरु च उचो मम शीघ्रमद्य वीर ॥ ५६ ॥

‘आर्य ! वीरवर ! यदि आप युद्धमें रावणका वध करना
चाहते हैं, यदि आपके मनमें अपनी प्रतिशतो पूरी करनेकी
इच्छा है तथा आप राजकुमारी सीताको पानेकी अभिलाषा
रखते हैं तो आज शीघ्र ही रावणका मारकर मेरी प्रार्थना
सफल करें ॥ ५६ ॥

‘भीरुनाथजी भूमिपर खड़े हैं और वह राक्षस रथपर बैठा
हुआ है, ऐसी दशामें इन दोनोंका युद्ध बराबर नहीं है’ वहाँ
आकाशमें खड़े हुए देवता, गंधर्व और किन्नर इस तरहकी
बातें करने लगे ॥ ५ ॥

ततो देवयत्र धीमाञ्छ्रुत्वा तेषा वचोऽमृतम् ।

आहूय मातलिं शफो घञ्चन चैदमप्रवीत् ॥ ६ ॥

उनकी ये अमृतवै समान मधुर बातें सुनकर तेजस्वी

देवराज इन्द्रने मातलिजी बुलाकर कहा—॥ ६ ॥

रथेन मम भूमिष्ठ शीघ्र याहि रघुचम्रम् ।

आहूय भूतल यातः कुरु वैयहित महत् ॥ ७ ॥

‘सारेथे ! रघुचक्रवर्तिन भीरुमचक्रजी भूमिपर लड़े हैं ।

मेरा रथ लेकर तुम शीघ्र उनके पास जाओ । भूतलपर पहुँच

कर भीरुमको पुकारकर कहो—‘वह रथ देवराजने आपकी

वेगमें भेजा है ।’ इस तरह उन्हें रथपर बिठाकर तुम

देवताओंन महान् हितका कार्य सिद्ध करो’ ॥ ७ ॥

इत्युक्तो देवराजो मातलिर्देवसारथिः ।

प्रणम्य शिरसा दध सतो यत्रममप्रवीत् ॥ ८ ॥

देवराजने इस प्रकार कहनेपर देव-सारथि मातलिने उन्हें

मस्तक छत्राकर प्रणाम किया और यद् बान बड़ी—॥ ८ ॥

शीघ्र यात्यामि देवेन्द्र सारथ्यं च करोम्यहम् ।

सतो हयैश्च सयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥ ९ ॥

‘देवेन्द्र ! मैं शीघ्र ही आपन उत्तम रथमें हरे रंगके

पाँडे जानकर उसे साथ जिय जाऊँगा और भीरुनाथजीके

सारथिना कार्य भी करूँगा’ ॥ ९ ॥

तत काञ्चनचित्राङ्ग किङ्किणीरातभूषित ।
तरुणादित्यसकाशो वैदूर्यमयकूरर ।
सदृश्ये काञ्चनापीडैर्युक् द्योतप्रकीर्णकै ॥ १० ॥
हरिभिः सूर्यसकाशैर्मज्जालविभूषितै ।
रुक्मवेषध्वजं धीमान् देवराजराजो वर ॥ ११ ॥
देवराजेन सदित्यो रथमारुह्य मातलि ।
अभ्यरतत काकुत्स्थमचरतिर्यं त्रिविष्टपात् ॥ १२ ॥

तदनन्तर देवराज इन्द्रका जो शोभाशाली भेष्ट रथ है, जिसके सभी अवयव सुगन्धमय होनेके कारण विविध शोभा धारण करते हैं, जिसे सैकड़ों सुंदरओंसे विभूषित किया गया है, जिसकी कानि प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण है, जिसके कूररमें वैदूर्यमणि (नीलम) बड़ी गयी है, जिसमें सूर्यतुल्य तेजस्वी, हरे रंगवाले, सुवर्णजालसे विभूषित तथा सनिके सान-सानसे सजे हुए अच्छे घोड़े जुते हैं और उन घोड़ोंके चेत चैवर आदिते अलंकृत किया गया है तथा जिसके ध्वजका दण्ड तोनेका बना हुआ है, उस रथपर आरुढ़ हो मातलि देवराजका सदैव ले स्वर्गसे भूतलपर उतरकर भीरुमचन्द्रजीके सामने खड़ा हुआ ॥ १०-१२ ॥

अब्रवीच्च तदा राम समतोदो रथे स्थित ।
म्राज्जलिमातलिनाम्य सहस्राक्षस्य सारथि ॥ १३ ॥

सहस्राक्षच इन्द्रका सारथि मातलि चावुक्त लिये रथपर बैठा हुआ हाथ बाँधकर भीरुमचन्द्रजीमें बोला— ॥ १३ ॥

सहस्राक्षेण बाहुतस्य रथोऽयं विजयाय ते ।
दत्तस्तत्र महासत्त्व धीमन्शत्रुनिग्रहण ॥ १४ ॥

‘महाबली शत्रुसूदन भीमान् सुवीर । सहस्र नेत्रपापी देवराज इन्द्रने विजयके लिये आपको यह रथ समर्पित किया है ॥ १४ ॥

इदमैद्र महश्चाप कयं चाम्निस्तनिभम् ।
शाराभ्यादित्यसकाशां दक्षिण विमला शिवा ॥ १५ ॥

‘एह इन्द्रका निचाल धनुष है । यह अग्निस्त समान तेजस्वी कवच है । यं सूत्रस्थ प्रकाशमान बाण हैं तथा यह कल्याणमयी निमल शक्ति है ॥ १५ ॥

भाणहोम रथ धीर राक्षस जहि राजगम् ।
मया सारथिना देयं महेन्द्र इव दानवान् ॥ १६ ॥

‘वीरवर महाराज । आप इस रथपर आरुढ़ हो मुझ सारथिकी सहायतासे राक्षसराज रावणका उठा तरह वध कीजिये, मैंने महेन्द्र दानजोंका संहार करते हैं’ ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा सम्परिक्षम्य रथं तमभिवाद्य च ।
मारुतोह तदा रामो लोकैर्हृदय्या विराजयन् ॥ १७ ॥

मानन्ति देवा कन्देनर भीरुमचन्द्रजीने उस रथकी परिभ्रमा की और उसे प्रणाम करने के उसर सवार हुए ।

उक्त समय अपनी शोभासे वे समस्त हाथोंका प्रकाशित करने लगे ॥ १७ ॥

तद् वयमौ चाद्भुत युद्ध द्वैरथ रोमहर्षणम् ।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षस ॥ १८ ॥

तत्सम्बद्ध महाबाहु भीरुम और राक्षस रावणमें द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो बड़ा ही अद्भुत और रोंगे खड़े कर देनेवाला था ॥ १८ ॥

स गाधर्षेण गाधर्वं दैव दैवेन राघव ।
अस्त्र राक्षसराजस्य जवान परमास्त्रयित् ॥ १९ ॥

भीरुमचन्द्रजी उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता थे । उन्होंने राक्षस राजके चलाये हुए गाधर्व अस्त्रको गाधर्व अस्त्रसे और दैव अस्त्रको दैव अस्त्रसे नष्ट कर दिया ॥ १९ ॥

मन्त्र तु परम धोर राक्षस राक्षसाधिप ।
ससर्ज परमक्रुद्ध पुनरेव निशाचर ॥ २० ॥

उप राक्षसोंके राजा निशाचर रावणने अत्यन्त क्रुपित हो पुनः परम भयानक राक्षसास्त्रका प्रयोग किया ॥ २० ॥

ते रावणधनुर्मुक्ता शरा काञ्चनभूषणा ।
अभ्यवर्तन्त काकुत्स्थ सपां भूत्वा महाविषा ॥ २१ ॥

किर तो रावणके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण महा विषैले सर्प हो होकर भीरुमचन्द्रजीके निकट पहुँचने लगे ॥

ते दीप्तवदना दीप्त वमन्तो ज्वलन मुखै ।
रामनेशम्यवर्तन्त व्यादितास्या भयानका ॥ २२ ॥

उन सर्पोंके मुख आगके समान प्रज्वलित होते थे । वे अपने मुखोंसे ज्वलती आग उगल रहे थे और मुँह फैलाये होनेके कारण बड़े भयकर दिखायी देत थे । य सर्पके-स्य भीरुमक ही सामने आने लगे ॥ २२ ॥

तैर्वास्तुकिस्तमस्पर्शदीप्तभोगैर्महाविषै ।
विश्राब्ध सतता सरा विविश्राब्ध समानृता ॥ २३ ॥

उनका स्पर्श वास्तुकि नागने समान असह्य था । उनके फन प्रज्वलित हो रहे थे और य महान् विराने मरे थे । उन सपाकर बाणोंसे व्याप्त होकर सम्पूर्ण दिशाएँ और निदिशाएँ आच्छादित हो गयीं ॥ २३ ॥

तान् दृष्ट्वा पन्नगान् राम समापतत आह्वये ।
अस्त्र गादत्तम धोर प्रादुर्भवे भयानकम् ॥ २४ ॥

युद्धस्थलमें उन सर्पोंका अत देख मगरान् भीरुमने अत्यन्त भयकर गादहाजका प्रयत्न किया ॥ २४ ॥

ते राघवधनुर्मुक्ता रुक्मपुङ्गवा दक्षिणप्रभा ।
सुषणा काञ्चना भूत्वा त्रिविध सपदाश्रय ॥ २५ ॥

किर तो भीरुनाथजीके धनुषमें छूट हुए सुनहरे पल वाल अग्निमुख्य तेजस्वी बाण मर्गोंके धनुर्भा सुगन्धमय गन्ध बनकर सब ओर बिखरने लगे ॥ २५ ॥

राम द्रुपद सुसक्रन्दमुपाताञ्छन् दारुणान् ।
विशेषु सर्मभूतानि रावणस्याभयद् भयम् ॥ ४२ ॥

भीरामचन्द्रासः अत्यन्त क्रुपि और दारुण उत्पत्तौका
प्राकट्य देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये तथा रावणने
भीतर भी भय बना गया ॥ ४२ ॥

निमानम्यास्तदा नेत्रा गन्धराब्ध महोरगा ।
श्रुतिगतवर्द्धत्याश्च गरुमन्तश्च रोचरा ॥ ४३ ॥
दृष्टुंस्ते तदा युद्ध लोकस्मरनेस्सखितम् ।
नानाप्रहरणैर्भीमैः दारुणैः सन्प्रयुध्यतो ॥ ४४ ॥

उस समय निमानर गैरे हुए देखा, गन्धर्व, बड़े-बड़े
नाग श्वनि दानव, दैत्य तथा गरुड—ये सब आकाशमें
स्थित हस्तर युद्धपाया शूरीर भाषण और राणक समस्त
लोकमें प्रत्यक्षी मूर्ति उपस्थित हुए नाना प्रकारक मयानक
प्रहारोंने युद्ध उस युद्धक दृश्य देखने लगे ॥ ४३ ४४ ॥

कञ्चु सुगन्धरा सर्वे तदा विप्रहमाता ।
प्रेक्षमाणा महायुद्धं धान्य भक्त्या प्रहृष्टयत् ॥ ४५ ॥

उस अवसरपर युद्ध देखनेक लिये अये हुए समस्त
देवता और अनुर उस महासमरक देखकर मक्तिमानसे हर्षयुक्त
बाते करने लगे ॥ ४५ ॥

दशप्रिय जयेत्याहुरसुरा समरस्थिता ।
देवा रामयोजुन्ते त्व जयेति पुन पुन ॥ ४६ ॥

वहाँ खड़े हुए अनुर दशप्रियक ऊपरधिन करते हुए
शोक—पूजण ! तुम्हारी वध हो ! उधर देवता भीष्मसे
पुनारकर बारबार कहने लगे—पयुनन्दन ! आपकी वध हो,
वध हो ! ॥ ४६ ॥

पतस्त्रिभुवोः प्रोधाद् राघवस्य च रावण ।
प्रहर्तुकामो दुष्पामा सृष्टान् प्रहरण महत् ॥ ४७ ॥

इसी समय दुष्टत्मा रावणने क्राधमें आकर भीष्मचन्द्रबी
पर प्रहार करनेकी इच्छासे एक बहुत बड़ा हथियार
उठाया ॥ ४७ ॥

वज्रसार महानाद सर्वदायुनिग्रहणम् ।
शैलपर्वतनिभैः शूरेष्विषट्पिण्डाग्रहम् ॥ ४८ ॥
सधूममिव तीक्ष्णाग्र युगान्ताम्बिलवयोपमम् ।
अतिरीक्षमनासाध कालेनापि दुरासदम् ॥ ४९ ॥

वह वज्रक समान शक्तिशाली, महान् शब्द करने-वाला तथा
सूण धनुषमें शरकर था । उसकी शिपार्दे शैल-शिलपर्वत
समान थी । वह मन और नेत्रोंसे भी भयभीत करनेवाला था ।
उसक अप्रमाण बहुत तीक्ष्ण थे । वह प्रत्यक्षदृष्टी धूमयुक्त
अभिरुचिसे समन अत्यन्त मरकर बन पड़ता था । उसे
पाना या नष्ट करना फालक लिये भी कठिन एवं असम्भव
था ॥ ४८ ४९ ॥

प्रासन सवभूताना दारुण भेदन स्या ।

प्रदीत इव रोषेण शूल जग्राह रावण ॥ ५० ॥

उत्तम नाम था शूल । वह समस्त भूतोंसे उन्निमित्त
करके उन्हें भयभीत करनेवाला था । रोषने उठात हुए रावणने
उस शूलको हाथमें ल लिया ॥ ५० ॥

तच्छूल परमक्रुद्धो जग्राह युधि वीरवान् ।
अनीके समरे गृहं राक्षसं परिवारितम् ॥ ५१ ॥

ऊपरनृमिमें अनेक सेनाओंमें निमित्त शूरीर रावणने
गिरे हुए उस पराक्रमी निशाचरने बड़े क्रोध साथ उस शूल-
को ग्रहण किया था ॥ ५१ ॥

समुद्यम्य महाकायो ननाद् युधि भैरवम् ।
सत्सन्धयो रोषात् सखेभ्यमभिहर्षयन् ॥ ५२ ॥

उने ऊपर उठाकर उस निशाचर रावणने युद्धस्थलमें
बड़ी मयानक गर्जना की । उस समय उसक नेत्र रागसे छाल
हो रहे थे और वह अपनी सेनाक हर्ष बना रहा था ॥ ५२ ॥

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
प्राकम्पयत् तदा शून्यो राक्षसेन्द्रस्य दारुण ॥ ५३ ॥

रावणराव रावाक उस मरकर सिनादने उस समय
पृथ्वी, आकाश, दिशाओं और निदिशाओंको भी कम्पित कर
दिया ॥ ५३ ॥

अतिकायस्य नादेन तेन तस्य दुरामनः ।
सर्वभूतानि निशेषु सागराब्धं प्रचुम्बते ॥ ५४ ॥

उस महाकाय दुष्टत्मा निशाचरने भैरवनादसे सम्युक्त
प्राणी पक्ष उडे और सागर भी विमुक्त हो उठा ॥ ५४ ॥

स गृहीत्या महारीयं शूलं तद् रावणो महत् ।
विनयं सुमहानाद् राम परममग्रवीत् ॥ ५५ ॥

उस निशाल शूलको हाथमें लेकर महानपरमी रावणने
बड़े आरने गर्जना करक भीष्मसे कठार बाणोंमें कहा—

शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषामयोद्यत ।
तत्र भ्रातृसहायस्य सद्य प्राणान् हरिष्यति ॥ ५६ ॥

पाम ! यह शूल वज्रक समान शक्तिशाली है । इने मीने
रोरतुरक अरने हाथमें लिया है । यह भाइरहित तुम्हारे प्राणी-
का तत्क्षण हर लगा ॥ ५६ ॥

रक्षसामय शूराणां निहतानां चममुखे ।
स्था निहत्यरण्यदग्धिनं करोमि तरसा समम् ॥ ५७ ॥

युद्धक्षी इच्छा रखनेवाला रावण ! आज तुम्हारा वध
करके सेनासे मुक्तनेत्र का शूरीर रावण मारे गये है, उसीक
समान अवस्थामें तुम्हें भी पहुँचा दूँगा ॥ ५७ ॥

तिष्ठेदानीं निहमि त्वामिदं शूलेन राघव ।
परमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिप ॥ ५८ ॥

युद्धक्षी रावण ! तब, अभी इस शूलके द्वारा
तुम्हें भी मार दूँगा । ऐसा कहकर रावणरावणने
भीष्मकेपक्षीक ऊपर उस शूलक चला दिया ॥ ५८ ॥

तद् रावणकरामुच विद्युमालासमावृतम् ।
अष्टघण्टे महानाद्वियद्गतमशोभत ॥ ५० ॥
रावणने हाथसे छूटते ही वह शूल आकाशमें आकर चमक
उठा । वह विद्युमालाओंसे 'यास-सा' जान पड़ता था । आठ
घण्टोंसे युक्त होनेक कारण उससे गम्भीर घोष प्रकट हो रहा
था ॥ ५० ॥

तच्छूल राघवो दृष्ट्वा ज्वलतघोरदर्शनम् ।
ससर्ज विशिखान् रामश्चायमायम्य धीर्यवान् ॥ ६० ॥
परम पराक्रमी रघुनन्दन श्रीरामने उस भयंकर एवं
प्रज्वलित शूलको अपनी ओर आते देखा धनुष तानकर बाणोंकी
बर्षा आरम्भ कर दी ॥ ६० ॥

आपतन्त शरैर्वेण धारयामास राघव ।
उत्पतन्त युगान्ताग्नि जलैर्यैरिच चासव ॥ ६१ ॥
श्रीरघुनायजीने बाणसमूहोंद्वारा अपनी ओर आते हुए
शूलको उठी तरह रौननेका प्रयास किया, जैसे देवराज इन्द्र
ऊपरकी ओर उठती हुई प्रलयान्गिको स्वर्गके मेघोंसे बरखाये
हुए बलप्रवाहक द्वारा शान्त करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ ६१ ॥
निर्दोह स ताव यागान् रामकामुक्निस्तान् ।

रावणस्य महाशूलः पतद्गानिव पाथक ॥ ६२ ॥
परन्तु जैसे आग पतणोंको जला देती है, उन्ही तरह रावण
के उस महान् शूलने श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छूटे हुए समस्त
बाणोंको जलाकर भस्म कर दिया ॥ ६२ ॥
तान् दृष्ट्वा भस्मसाद्रताशूलसस्पर्शचूर्णितान् ।
सापफान्तरिक्षस्थान् राघव मोघमाह्वय ॥ ६३ ॥
श्रीरघुनायजीने जब देखा मेरे वायक अन्तरिक्षमें उस शूलका
स्पर्श होत ही चूर चूर हो राखे है तब मन गये हैं, तब उन्हें
बड़ा क्रोध हुआ ॥ ६३ ॥

स ता मातलिना नीता शक्तिं शासनसम्मतम् ।
जमाह परमकुन्दो राघवो रघुनन्दन ॥ ६४ ॥
अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए रघुनन्दन रघुवीरने मातलिजी
स्वकी हुई देवेन्द्रद्वारा सम्मानित शक्तियों हाथमें ले लिया ॥
सा तोलिता धलरता शक्तिर्घण्टादृतस्यमा ।
नभः प्रज्वालयामास युगान्तोत्केय सप्रभा ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिव्याख्ये मुद्रकण्ठे द्विषष्ठिततम सर्ग ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित ऋषयामयक आदिराम्यक मुद्रकण्ठमें एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १. २ ॥

अधिकशततम सर्ग

श्रीरामका रावणको फटकारना और उनके द्वारा पायल किये गये
रावणको सारथिका रणभूमिसे बाहर ले जाना

स तु तनतदा मोघात् फण्डस्तेनादितो भूदम् ।

रावण समरदग्धी महाभोधमुपागमत् ॥ १ ॥

बलवान् श्रीरामके द्वारा उठायी हुई वह शक्ति प्रलयशाल्यमें
प्रज्वलित होनेवाली उत्क्रांति समान प्रकाशमान थी । उसने
समस्त आत्माओंकी अपनी प्रभासे उन्नासित कर दिया तथा
उससे घटनाद प्रकट होने लगा ॥ ६५ ॥

सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिन्मूले पपात ह ।
भिन्न शस्त्रा महाशूलो निपपात गतद्युति ॥ ६६ ॥

श्रीरामने जब उसे चलाया, तब वह शक्ति राक्षसोंके उस
शूलपर ही पड़ी । उसके प्रहारमें द्रुक-द्रुक और निस्तेज हो वह
महान् शूल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६६ ॥

निर्विभेद् ततो बाणैर्हयानम्य महाजवान् ।
रामस्तीक्ष्णैर्महावेगैर्वज्रकटपैरजिह्वै ॥ ६७ ॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीधे जनेवाल महावेगवान्
वज्रतुल्य पने बाणोंके द्वारा रावणके अत्यन्त वेगवाली घोड़ोंको
घायल कर दिया ॥ ६७ ॥

निर्विभेदोरसि तदा रावण निशितै शरै ।
राघव परमायसो ल्लाटे पश्चिभिस्त्रिभि ॥ ६८ ॥

किन् अत्यन्त साधवान् होकर उन्होंने तीन तीले ताँतोंसे
रावणकी छाती छेद डाली और तीन पक्षदार बाणोंसे उसके
ललाटमें भी चोट पहुँचायी ॥ ६८ ॥

स शरैर्भिनसवाङ्गो गात्रप्रकृतशोणित ।
राक्षसेन्द्र समूहस्य पुल्लशोक इनायभौ ॥ ६९ ॥

उस बाणोंकी मारसे रावणका शरीर अङ्ग छत निश्चित हो
गये । उसके शरीर परीरसे खूनझी धारा बहने लगी । उस समय
अपने सैन्यसमूहमें लड़ा हुआ राक्षसराज रावण फूटते भरे
हुए अशोरकृच्छक समान घोमा पाने लगा ॥ ६९ ॥

स रामायणैरतिविदग्गाभो
निशाचरेन्द्र क्षतजाद्रगाग्र ।
जगाम येद् य समाजमध्ये

क्रोध च चक्र सुभृश तदानीम् ॥ ७० ॥
श्रीरामचन्द्रजीक बाणोंसे जब आप शरीर अत्यन्त घायल
हो लहलहात हो गया, तब निशाचरराज रावणको ठस रणभूमिमें
बड़ा रोद हुआ । काम ही उस समय उसने बड़ा भारी क्रोध
प्रकट किया ॥ ७० ॥

श्रीरामचन्द्रजीने द्वारा क्रोधपूर्वक अत्यन्त पीड़ित किये

जानेपर मुद्रकी इन्द्रा रजनेवाल रावणको महान् क्रोध हुआ ॥

स शीतनयनेऽमर्षाच्चापमुद्यम्य धीर्यवान् ।
अभ्यर्क्ष्यत् सुमकुम्भो राघव परमाह्वये ॥ २ ॥

उधरे नेत्र अग्निक समान प्रचलित हो उठे । उस
परकामी गीरने अमर्षपूर्वक धनुष उठाया और अत्यन्त कुपित
हो उस महासमरमें औरधुनायजीने पीड़ित करना आरम्भ
किया ॥ २ ॥

बाणधारासहस्रैस्तै स तोयद् इवाम्बरात् ।
राघव रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन् ॥ ३ ॥

जैसे बादल आकाशसे नलकी पाप बरछाकर तालावको
भर देता है, उसी प्रकार रावणने सहरों बाणधाराओंकी वृष्टि
करके भीरामचन्द्रजीने आच्छादित कर दिया ॥ ३ ॥
पूरित शरजालेन धनुर्मुचेन सयुगे ।
महामिरिखिबाफन्व्य फाकु स्यो न प्रकम्पते ॥ ४ ॥

युद्धक्षलमें रावणके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहसे व्याप्त
हो जानेपर भी श्रीरघुनाथजी विचलित नहीं हुए; क्योंकि वे
महान् पवतरी मोंति अचल थे ॥ ४ ॥

स शरैः शरजालानि वारयन् समरे स्थित ।
गभस्तीनिय स्वस्य प्रतिजग्राह धीर्यवान् ॥ ५ ॥

वे समराङ्गणमें अपने शणैसे रावणके बाणोंका निवारण
करते हुए स्थिरभावसे खड़े रहे । उन परकामी रघुजीने स्वयं
की किरणोंकी मोंति धनुषके गणोंको ग्रहण किया ॥ ५ ॥

ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचर ।
निजग्नानोरमि द्रुह्यो राघवस्य महात्मन ॥ ६ ॥

तदनन्तर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलनेवाले निशाचर रावणने
कुपित हो महामना राघवेन्द्रकी छातीमें सहरों बाण
मारे ॥ ६ ॥

स शोणितसमाद्रिग्ध समरे लक्ष्मणाग्रज ।
दृष्टं पुरल इदारण्ये सुमहान् किमुक्नुम ॥ ७ ॥

समरभूमिमें उन बाणोंसे घायल हुए लक्ष्मणके बड़े भाई
भीरम रक्तने नद्दा उठे और जगलमें स्थित हुए पलायने
महान् वृष्टकी मोंति दिलायी देने लगे ॥ ७ ॥

शराभिघातसरम्भ सोऽभिजग्राह सायकान् ।
फाकुस्य सुमहतेजा युगान्तादित्यर्चस ॥ ८ ॥

उन बाणोंके आपातसे कुपित हो महातनखी भीरामने
प्रलयजालके सूर्यकी मोंति तेजस्वी खयकोंको हाथमें
लिया ॥ ८ ॥

ततोऽन्योन्य सुसरण्यौ सातुभौ रामरवणौ ।
शराधफरे समरे नोपलक्षयता तदा ॥ ९ ॥

किर तो वे दोनों परस्पर रोषवैशसे युक्त दो बाण चलाने
लगे । समराङ्गणमें बाणोंसे अघरात-सा छा गया । उस समय
भीरम और रावण दोनों एक दूसरेका देख नहीं पाते थे ॥ ९ ॥

ततः क्रोधसमाधिगे रामो दशरथात्मज ।
उग्राच रावण वीरः प्रहस्य पश्य घव ॥ १० ॥

इसी समय क्रोधसे मरे हुए वीर दशरथकुमार भीरामने
रावणसे हँसते हुए वगेर बाणीमें कहा—॥ १० ॥

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद् राक्षसाधम ।
हता ते विपशा यस्मात् तस्मात् त्व नासि धीर्यवान् ॥ ११ ॥

भीरव राक्षस । तू मरे अनजानमें जनस्थानसे मेरी असहाय
स्त्रीको हर लाया है, इसलिये तू बलवान् या पराक्रमी तो
कदापि नहीं है ॥ ११ ॥

मया विरहिता दीना यतमाना महायने ।
यैर्वै प्रसभ हत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १२ ॥

विशाल वनमें मुझसे विला दुई दीन अरक्षामें विधमान
विदेहराजकुमारीका बलपूर्वक अपहरण करके तू अपोकेशूरीर
समझता है ? ॥ १२ ॥

स्त्रीषु शूर विनायासु परद्वाराभिमर्दानम् ।
हत्वा कापुरुष कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १३ ॥

असहाय अवलाओंपर वीरता दिखानेवाले निगाचर ।
परस्त्रीके अपहरण-जैसे कापुरुषोचित कर्म करके तू अपनेको
शूरीर मानता है ? ॥ १३ ॥

भिन्नमर्यादा निर्लज्ज चारित्र्येभ्यनस्थित ।
दर्पामृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १४ ॥

धर्मकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले पापी, निरलज्ज और
सदाचारशून्य निगाचर । तूने बलके घमड़से वैदेशीन रूपमें
अपनी मौत बुलायी है । क्या अब भी तू अपनेको शूरीर
समझता है ? ॥ १४ ॥

शूरेण धनद्वारा बलै समुदितेन च ।
दलाघनीय महत्कर्म यशस्य च हत त्वया ॥ १५ ॥

तू बड़ा शूरीर, बलवन्त और शक्ति कुबेरका भाई
जो है । इसलिये तूने यह परम प्राणनीय और महान्
योगोपक कर्म किया है ॥ १५ ॥

उत्सेकेनाभिपन्नस्य गदितस्याहितस्य च ।
कमण प्राप्नुहीदानीं तस्याय सुमहत् फलम् ॥ १६ ॥

अभिमानपूर्वक श्रिये गये उन निर्दित और अदितर
पापधर्मका जो महान् फल है, उतने तू आज अभी प्राप्त
कर ले ॥ १६ ॥

शूरोऽहमिति चामानमगच्छसि दुमते ।
नैव लज्जास्ति ते सीता धीरपदं पश्यत ॥ १७ ॥

पताथी युद्धिवाल निशाचर । तू अपनेसे शूरतासे सम्म
समझता है किन्तु सीताको चेखी तरर चुगते समय तुझे
तनिक भी लजा नहीं आयी ? ॥ १७ ॥

पदि मत्सनिधौ सीता धर्यिता स्यात् त्वया बलात् ।

आतर तु रर पदयेत्ताव मत्सायकैर्हस ॥ १८ ॥

‘‘यदि मर समीप त् सीताका बलपूर्वक अपहरण करता तो अवतक मेरे हाथोंसे मारा जाकर अपने भाई खरका दर्शन करता होता ॥ १८ ॥

विष्टयासि मम मन्दासमश्नुविषयमागत ।

अथ त्या सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

‘‘मन्दबुद्धे ! सीतायकी बात है कि आज तू मेरी आँखों क सामने आ गया है । मैं अभी तुझे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे यमलोक पहुँचाता हूँ ।’ ॥ १९ ॥

अथ ते मच्छरैर्दिष्टान् शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।

मन्यादा व्यपकर्षतु विकीर्णं रणपासुषु ॥ २० ॥

‘‘आज मेरे बाणोंसे कटकर तूणभूमिकी धूलमें पड़े हुए जगमगाते कुण्डलोंसे युक्त तेरे मन्त्रकको मासमक्षी जीवनतु घसीटें ॥ २० ॥

निपत्योरसि गृध्रास्ते क्षितौ क्षितस्य रावण ।

पितु शधिं तपाद् चाणशस्यान्तरोत्थितम् ॥ २१ ॥

‘‘रावण ! तेरी लग गृधीपर बँकी पड़ी हो, उसकी छाती पर बहुतसे गध दूत पड़े और बाणोंकी नोकसे किये गये छेदके द्वारा प्रवाहित होनेवाले तेरे मन्त्रको बड़ी प्यासक साथ निर्व ॥ २१ ॥

अथ मद्वाणभिन्नस्य गतासो पतितस्य ते ।

कनू स्वभाणि पतगा गतमन्त इवोरगान् ॥ २२ ॥

‘‘आज मेरे बाण से निरीन और प्राणहृत होकर पड़े हुए तेरे शरीरकी आँखोंसे पड़ी उसी तरह रीबों, जैसे गधक सोंकी छाँचे हैं ॥ २२ ॥

इत्येव स वदन् धीरो राम दानुनियर्हण ।

राशलेद्र समीपस्थ शरधर्वरयाकिरत् ॥ २३ ॥

ऐसा कहते हुए दानुभोंरा नाग करनेवाले वीर धीयमने पाग ही राड़े हुए रावणयन रावणपर बाणोंकी बरा आरम्भ कर दी ॥ २३ ॥

यमूय द्विगुण धीर्यं यत्न हृष्य स्वयुगे ।

रामस्याख्यवत् चोद्य दानोर्गर्भधनकाक्षिण ॥ २४ ॥

उस समय मुद्रस्थान दानुवधकी हठ्य रावणगले भीरमका बल, परक्रम, उत्साह और अख बल बन्दर दूना हो गया ॥ २४ ॥

इतार्षे श्रीमद्रामायणे वात्मीकीये आन्ध्रस्य मुद्रकाण्डे अधिष्टातमः सर्गः ॥ १०३ ॥

सर्ग प्रारंभः श्रीरामचन्द्रोऽर्चयन् लखनयनः अन्ध्रस्य मुद्रकाण्डे दश तीर्थारोहणं पूजितं ॥ १ ॥

प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदित्वात्मन ।

महर्षोच्च महातेजा शीघ्रहस्ततरोऽभजत् ॥ २५ ॥

आत्मज्ञानी खूनायकीये धामने सभी अस्त्र अपने आर प्रकट होने लगे । इर्ष और उत्साहक कारण महातेजस्वी मगगान् भीरमका हाथ बड़ी तेजसे चलने लगा ॥ २५ ॥

शुभाभ्येतानि चिह्नानि निष्ठायात्मगतानि स ।

भूय एवाश्चर्यद् रामो रावण राक्षसान्तहृत् ॥ २६ ॥

अपनेमें ये शुभ लक्षण प्रकट हुए जान राक्षसोंका अन्त करनेवाले भगवान् श्रीराम पुन रावणका पीड़ित करने लगे ॥

हरीणा चाश्मनिकरं शरवर्षेभ्य राघनात् ।

हन्यमानो दशमीरो विधूर्णहृदयोऽभवत् ॥ २७ ॥

वानरोंके चलाये हुए प्रहारकमूहों और भीरमचन्द्रकी छोड़े हुए बाणोंकी बर्षासे आहत होकर रावणका हृदय व्याकुल पर विभ्रान्त हो उठा ॥ २७ ॥

यदा च शस्त्रं मारेभे न व्यर्ष्य शपासनम् ।

नास्य प्रत्यकरोद् धीर्यं निष्पेवेनान्तरात्मना ॥ २८ ॥

क्षिप्ताध्यानु शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च ।

मरणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालोऽभ्यवर्तत ॥ २९ ॥

सूतस्तु रथनेतास्य सद्यस्थ निरीक्ष्य तम् ।

शनैर्युद्धादसम्भ्रान्तो रथ तस्यापवाहयत् ॥ ३० ॥

जब हृदयकी व्याकुलतासे कारण उत्तम शस्त्र उठाने, दानुको खींचने और भीरमच परक्रमका सामना करनेकी समता नहीं रह गयी तथा जब भीरमच नीमतापूर्वक चलाये हुए बाण एवं भोंगी भोंतिके शस्त्र उसकी मृत्युके माधक बनने लगे और उसका मृत्युकाल समीप आ पहुँचा, तब उसकी ऐसी अरसा देन उठना रथचाला राधि पिना किसी परराष्ट्रके उससे रथको रणभूमिसे दूर दूना ले गया २८-३०

रथ च तस्याय जवेन सारथि

निर्धार्य भीम जलदस्यन तदा ।

जगाम भीत्या समरामहीपति

निरस्तार्य पतित समीक्ष्य ॥ ३१ ॥

अपने रथाना शक्तिहीन होकर रथपर पड़ा दल रावणका सारथि मयध सामन सम्भीर धाग करनेवाले उसका मयानक रथका लोगकर उठान साथ ही भयके मारे समरभूमिसे बाहर निरस्त गया ॥ ३१ ॥

चतुरधिकशततम सर्ग

रावणका सारथिको फटकारना और सारथिका अपने उत्तरसे रावणको सतुष्ट

करक उसके रथको रणभूमिमें पहुँचाना

स तु मोहात् सुसकुब्धं वृत्तान्तमलचोदित ।

मोघसरस्वनयनो रावण स्तनमग्रधीत् ॥ १ ॥

रावण कागरी गलिते प्रसित हो रहा था, अतः महबय
अत्यन्त कुपित हो क्रोधसे डाल अँलें करके अपने सारथिके
बोला—॥ १ ॥

हीनरीयमिन्द्राशक्त पौरुषेण विजजितम् ।

भीरु लघुमिन्द्रासत्त्व विहीनमिव तेजसा ॥ २ ॥

बिमुक्तमिन्द्र मयाभिरस्त्रैरिव यद्विप्लवम् ।

मामग्राय दुनुद्धे स्वया युद्धया विवेष्टसे ॥ ३ ॥

‘दुनुद्धे ! क्या तूने मुझे पचनमयूय, अक्षमय, पुनर्यार्य
यूय, डरक, अछा, घेयहीन, निस्तेज, मायारहित और
अर्धोन्नत मानते बद्धित समान रक्ता है, बं मरी अवरोधना
करन तू अना युद्धिने मनमाना काम कर रहा है (तूने
मुझसे पूछा क्यों नहीं ?) ॥ २ ॥

विमये मामवज्ञाय मच्छन्दमननेक्ष्य च ।

तस्या दातुसमस्त मे रणोऽयमपवाहित ॥ ४ ॥

मेघ अभिप्राय क्या है, यह जाने निना ही मेरी अवरोधना
करक तू किस लिये शत्रुक सामनेसे मेरा यह रथ हटा
लगा ? ॥ ४ ॥

त्वयाद्य हि ममानाय विरफालमुपाजितम् ।

यतो वीर्यं च तेजश्च प्रयपक्ष विनाशित ॥ ५ ॥

‘अनार्य ! आज तूने मेरे चिरकालने उपार्जित यशः
पराजित, तेज और विशावर पानी पर दिया ॥ ५ ॥

शशो प्रप्लवातीयस्य रज्जनीयस्य मिमै ।

पदपतो युद्धदुग्धोऽह हत कापुरुषस्त्वया ॥ ६ ॥

‘मेरे शत्रुका बल-पराजित निराश है। उसे अपने बल-
निम्नद्वारा शत्रु करना मेरे लिये उचित है और मैं युद्धका
लभी हूँ, ता भी तूने रथ हटाकर शत्रु की दृष्टिमें मुझे क्षान्न
विद्ध कर दिया ॥ ६ ॥

यत् त्वं प्रयमिद् मोहात् चेद्वहसि दुर्मते ।

सन्तोऽयं प्रतिवर्त्तते मे परेण स्वमुपसृष्ट ॥ ७ ॥

‘दुर्मते ! यदि तू इस रथका महबय किसी तरह भी
शत्रुन लम्बने नहीं ले सता है ता मरा य’ अनुमान स्वयं है
कि शत्रुने तुझ घृण देकर फट लिया है ॥ ७ ॥

नहि तद् विद्यते फम सुष्टरो हितमहिम्नि ।

रिपूणा सहस्र त्वेत्तद् यत् स्वयैतन्मुष्टितम् ॥ ८ ॥

‘हित’ शत्रुने-ले लिया यह काम नहीं है। तूने ले
कार दिया है, दर शत्रुओंके करने काम है ॥ ८ ॥

निवर्तय रथं शीघ्रं यागप्रापैति मे रिपु ।

यदि वाष्पुषितोऽसि त्वं स्वयते यदि मे गुण ॥ ९ ॥

‘यदि तू मेरे साथ बहुत दिनोंसे रहा है और यदि मेरे
गुणोंका तुझे स्मरण है ता मेरे इस रथका शीघ्र लोग ले चल ।
फही ऐसा न हो कि मेरा शत्रु भाग द्य’ ॥ ९ ॥

पर पश्यमुक्स्तु हितमुद्धिरयुद्धिना ।

अग्ररीद् रावणं स्तो हितं सानुनय य ॥ १० ॥

यपनि सपथेकी बुद्धिमें रावणक लिये हितरी ही भावना
थी तथापि उस मूलने अब उससे ऐसी कटोर बात कही, तब
सारथिने बड़ी विनयके साथ यह पितकर वचन कहा—॥ १० ॥

न भीतोऽसि न मुदोऽसि नोपनतोऽसि शत्रुभि ।

न प्रमत्तो न निस्तेहो विस्मृता न च सतिमया ॥ ११ ॥

‘महाशत्रु ! मैं डरा नहीं हूँ। मेरा विवेक भी नष्ट नहीं
हुआ है और न मुझे शत्रुओंने ही बहकाया है। मैं असावधान
भी नहीं हूँ। आपसे प्रति मेरा स्नेह भी कम नहीं हुआ है
तथा आपने जो मरा सन्कार किया है, उसे भी मैं नहीं
भूल हूँ ॥ ११ ॥

मया तु हितकामेन यदाश्च परिप्लवता ।

स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं वृत्तम् ॥ १२ ॥

‘मैं सदा आरका हित चाहता हूँ और आपन दयकी
रक्षाके लिये ही यानशील रहता हूँ। मया हृदय आपन प्रति
स्नेहसे आग्र है। इस कारणसे आरका हित शत्रु—यह सचकर
ही मैंने इसे किया है। मझे ही यह आपने अप्रिय लग ले ॥

नास्तिप्रयं महाराज रथ मा प्रियहिते रतम् ।

कश्चिल्लुगुरिधानायां क्षेपतो गन्तुमहसि ॥ १३ ॥

‘महाशत्रु ! मैं आरक पिर और हितमें तबल रहनेनाला
हूँ अतः इस क्षणके लिये आपन किसी अंठे और अनार्य
पुरुषकी मूर्ति सुगर दागपना न करें ॥ १३ ॥

धूयता प्रति दास्यामि यन्निमित्तं मया रथ ।

नदीनेग ह्याम्भोभि सद्युने विनिर्गति ॥ १४ ॥

‘जबने फटोदयन कारण बना हुआ शत्रुका अब नगीके
वेगको पीठे छोड़ देता है, उही प्रकार मैंने शत्रु शत्रुने
आपके रथको मुझभूमिसे पीठे हटाय है, उसे बना रहा हूँ,
दुर्निदे ॥ १४ ॥

अथ तयागच्छामि महता रणकमना ।

नहि ते वीर्यसौमुख्यं प्रकर्षं मोपधारये ॥ १५ ॥

‘उत्त समय मैने यह स्यवाथा था कि आप महान् युद्धके कारण घर गये हैं। शत्रुकी अपेक्षा मैने आपकी प्रवृत्ता नहीं देखी, आपमें अधिक पराक्रम नहीं पाया ॥ १५ ॥

रघोद्वन्द्वनक्षिप्रान्ध भङ्गा मे रथवाजिन ।
दीना धर्मपरिधान्ता गावो चर्पहता इव ॥ १६ ॥

‘मेरे घोड़े भी रथकी खींचते-खींचते थक गये थे। इनके पाँव छद्महारा रहे थे। ये धूपसे पीड़ित हो गवाकी गयी हुई गौओंक समान दुखी हो गये थे ॥ १६ ॥

निमित्तानि च भूयिष्ठ यानि प्रादुर्भवन्ति न ।

तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्ष्याभ्यप्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥

‘साथ ही इस समय मेरे सामने जो-जो लक्षण प्रकट हो रहे हैं, यदि वे सफल हुए तो हमें उनमें अपना अमङ्गल ही दिखायी देता है ॥ १७ ॥

देहाकाली च जिह्वैषी लक्ष्यानीहिनानि च ।

दैव्य हर्षश्च खेदश्च रथिनश्च बलायलम् ॥ १८ ॥

‘सारथिना देहाकाली, गुभाशुभ लक्षणैः, रथीकी चोराओंका, उत्साह, अनुत्साह और गदगा तथा बलबलघा भी शान रक्षना चाहिये ॥ १८ ॥

स्थलनिम्नानि भूमेध समानि विपमानि च ।

मुष्कालश्च विक्षेप परस्यान्तरद्शनम् ॥ १९ ॥

‘भरतीके जो ऊँच-नीच, सम विषम स्थान हैं, उनकी भी जानरायी रखनी चाहिये। युद्धका उपयुक्त अस्त्र कब होगा, इसे जानना और शत्रुकी दुर्बलतापर भी इष्टि रखनी चाहिये ॥ १९ ॥

उपपानापपाने च स्थान प्रत्यपसर्पणम् ।

सर्वमथद् रथस्थेन क्षेप रथशुभ्रिना ॥ २० ॥

‘शत्रुके पाठ जाने, दूर दूटने, युद्धमें सिर रहने तथा युद्धभूमिमें अलग हो जानका उपयुक्त अस्त्र कब आता है, इन सब बातोंको समझना रथपर बैठे हुए सारथिका कर्तव्य है। तब विश्रामहेतोस्तु तथैवा रथयाजिनान्म् ।

रौद्र धजयता चेद् क्षम हृत्तमिद् मया ॥ २१ ॥

‘आपकी तथा इन रथके घोड़ोंकी थोड़ी देतक विश्राम देने और लोह दूर करनेके लिये मैने जो यह क्षम किया है, वगैरा उचित है ॥ २१ ॥

हृत्पापै धीमद्रामायण वाल्मीकीय आत्रिकाये

इत प्रतर धीमन्तर्निर्मित अथरामायण अटिकायक मुद्रकाण्डे एक सौ चारवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ५ ॥

पञ्चाधिकशततम सर्गः

अगस्त्य मुनिना श्रीरामको विजयके लिये ‘आदित्यहृदय’ के पाठकी सम्मति देना ततो मुद्रपरिधान्त समरे गित्या स्थितम् ।

रामेण चाप्रतो दृष्टा मुद्राय समुपस्थितम् ॥ १ ॥

स्वेच्छया न मया वीर रथोऽयमपराहित ।

भर्तु स्नेहपरीतेन मयेद यत्कृत प्रभो ॥ २२ ॥

‘वीर ! प्रभो ! मैने मनमानी करनेके लिये नहीं, स्वामीक स्नेहवश उनकी रक्षाके लिये इस रथका दूर हटाया है ॥ २२ ॥

आश्रापय यथातत्र यक्ष्यस्मरिनिवृद्धन ।

तत् करिष्याम्यह वीर गतावृण्येन चेतसा ॥ २३ ॥

‘शत्रुमुद्धन वीर ! अब आशा दीजिय। आप ठीक समझकर जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं मनम आरने श्रुणसे उन्मृण होनेकी भावना रखकर करूँगा ॥ २३ ॥

स्तुपुस्तेन धाम्नेन रात्रणस्तस्य सारथे ।

प्रशस्येन बहुविध सुखलुब्धोऽप्रवीद्विद्म् ॥ २४ ॥

सारथिक इस कथनसे रात्रण बहुत उत्तुष्ट हुआ और नाना प्रकारसे उसकी सराहना करत युद्धके लिये लोलुप होकर बोला— ॥ २४ ॥

रथ वीरप्रिमि सत् राघवाभिमुख नय ।

नाहत्वा समरे शत्रुन् निगतिप्यति रात्रण ॥ २५ ॥

‘सत् ! अब तुम इस रथकी श्रीम रामन सामने ले चलो। रात्रण समरमें अपने शत्रुओंकी मारे बिना घर नहीं छोटेगा ॥ २५ ॥

परमुफ्त्वा रथस्यस्य रात्रणो राक्षसेश्वर ।

ददौ तस्य शुभ ह्येक हस्ताभरणमुत्तमम् ।

धृत्या रात्रणवाक्यानि सारथिः सत्ययर्जन ॥ २६ ॥

ऐसा कहकर राक्षसरात्रण रात्रणके सारथिसे पुरस्कारके रूपमें अपने हाथका एक सुन्दर आभूषण उतारकर दे दिया। रात्रणका आदेश सुनकर सारथिने पुन रथको लीगा ॥

ततो द्रुत रात्रणवाक्यचोदित

प्रचोदयामास हयान् स सारथिः ।

स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः

क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥ २७ ॥

रात्रणकी आज्ञासे प्रेरित हो सारथिने तुरत ही अपने घोड़े हँसि । फिर तो राक्षसरात्रणका वह निशान रथ समरमें युद्धके मुखनिपर श्रीरामचन्द्रजीके समीप जा पहुँचा ॥ २७ ॥

मुद्रकाण्डे शत्रुविजयतमः सर्ग ॥ ३०४ ॥

मुद्रकाण्डे एक सौ चारवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ५ ॥

उपर श्रीरामचन्द्रजी युद्धसे थककर चिन्ता करते हुए रणभूमिमें सड़ थे। इतनेमें रावण भी युद्धके लिये उनका सामने उपस्थित हो गया। यह देख मगवान् अगस्त्य मुनि, वा देवताओंका साथ युद्ध देखनेके लिये आये थे, श्रीरामके पास जाकर बोल—॥ १२ ॥

राम राम महाराहो गृणु गुह्य सनातनम् ।
येन सर्शनीरन् यत्स समरे विनयिष्यसे ॥ ३ ॥

धरने इन्द्रमें रमण करनेवाले महाराहो राम। यह सनातन गणनीय स्तोत्र सुना। वरुण। इसके बगले तुम युद्धमें अपने समस्त शत्रुओंपर विजय पा जाओगे ॥ ३ ॥

आदित्यहृदय पुण्य सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जयाग्रह जप नित्यमक्षय परम शिखम् ॥ ४ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्धनसुखमम् ॥ ५ ॥

इस गणनीय स्तोत्रका नाम है 'आदित्यहृदय'। यह परम पवित्र और समूण शत्रुओंका नाश करनेवाला है। इसके बगले सदा विजयप्रीति होती है। यह नित्य अक्षय और परम कल्याणमय स्तोत्र है। समूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गल है। इसके हर पाँचोंका नाश हो जाता है। यह चिन्ता और शोकके मिटाने तथा आयुके बढ़ानेवाला उत्तम छापन है ॥

रश्मिमन्त समुद्यन्त देवासुरनमस्कृतम् ।
पूजयस्व विस्मन्त भास्कर भुवनेश्वरम् ॥ ६ ॥

'मगवान् स्व अग्नी अनन्त विरणोंसे सुकोपित (रश्मिमन्) हैं। ये नित्य उदय होनेवाले (समुद्यन्),

देवता और असुरोंसे नमस्कृत, बिनलान् नामसे प्रसिद्ध, प्रभाका विस्तार करनेवाले (भास्कर) और सखारक स्वामी (भुवनेश्वर) हैं। तुम इनका [रश्मिमन्ते नम, समुद्यन्ते नम, देवासुरनमस्कृताय नम, विवस्वते नम, भास्कराय नम, भुवनेश्वराय नम—इन नाम-मन्त्रोंके द्वारा] पूजन करो ॥

सर्वदेवात्मको ह्येष तेजसी रश्मिभाजन ।
एष देवासुरगणाल्लोकान् पाति गभस्तिभि ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये तेजस्वी राशि तथा अपनी क्षिरणोंसे जगत्में सचा एवं सूर्य प्रदान करनेवाले हैं। ये ही अग्नी रश्मियोंका प्रसार करके देवता और असुरों सहित सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं ॥ ७ ॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिव स्कन्द प्रजापति ।
महेन्द्रो धनद कालो यम सोमो ह्यपि पति ॥ ८ ॥
पितरो धसव साध्या अभिनी मरुतो मनु ।
वायुर्वक्त्रि प्रजा प्राण श्रुतकर्ता प्रभाकर ॥ ९ ॥

ये ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, इन्द्र, कुबेर, काल, यम, चन्द्रमा, वरुण, विरट, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, अग्नि, प्रज्ज, प्राण, श्रुतोंको प्रकट करनेवाले तथा प्रभाके पुङ्ख हैं ॥ ८ ॥

आदित्य सवितास्य ह्यग पूरा गभस्तिमान् ।
सुगर्णसहस्रो भानुहिरण्यरेता दिवाकर ॥ १० ॥
हरिदम्ब सहस्राक्षि सप्तसप्तिमरीचिमान् ।
तिमिरोमधन शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकौऽद्युमान् ॥ ११ ॥
हिरण्यगर्भ शिशिरस्तपोऽहस्करो रवि ।

विनियोग

अथ आदित्यहृदयस्तोत्रसंग्रहविस्तारः, आदित्यहृदयस्तोत्र अगवान् ब्रह्मा देवता विरलान् विनियोग ब्रह्मा विरलान् विनियोग ।

अध्यादित्यास

अगस्त्यहृदये नन शिरशि । अनुष्ठानेन नन सुखे । आदित्यहृदयस्तोत्रदेवतायै नन । हृदि । अगस्त्यहृदये नन, सुखे । रश्मिनेन धनये नन, पायौ । अगस्त्यहृदयेन विनियोग नन, नानी ।

करन्यास

इह स्तोत्रके अन्त्येष्ट और करन्यास तीन प्रकारसे किये जाते हैं। केवल प्रवृत्ते, गायत्रीमन्त्रके अन्त्येष्ट रश्मिनेन नन । रश्मिनेन नन । यदा नान-नन्त्रोंसे किये जानेवाले न्यासका प्रकार बताया जाया है—

रश्मिनेन अनुष्ठानं नन । अनुष्ठानेन तन्त्रीयां नन । देवासुरनमस्कृताय मध्याम्यां नन । विवस्वते अनन्त्रिमां नन । भास्कराय कविद्विमां नन । भुवनेश्वराय अहस्करोऽहस्करो नन ।

हृदयादि अन्त्येष्ट

रश्मिनेन हृदय नन । अनुष्ठानेन शिरसे स्था । देवासुरनमस्कृताय शिरसे स्था । विवस्वते स्थाय हृत् । भास्कराय नेत्रत्रय वीरट् । भुवनेश्वराय अगव पत् । इह प्रथम स्थाय करके निम्नादि मन्त्रके अगवान् धर्षण प्यान हन नमस्कृत करना चाहिये—

ममभ्युक्त स तन्त्रविशेष्य अग्रे देवस्य धीमहि जिणे यो न प्रचेष्ट्यम् ।
ननभ्युक्त आदित्यहृदय स्तोत्रका पाठ करना चाहिये ।

अग्निगर्भोऽदिते पुत्र शङ्ख शिशिरनाशन ॥ १२ ॥
 व्योमनाथस्तमामेदी ऋग्यजु सामपारग ।
 घनवृष्टिरपा मित्रा पिप्पवीधीघृषणम ॥ १३ ॥
 आतपी मण्डली सृत्यु पिङ्गल सर्वतापन ।
 कर्मिभ्यो महातेजा रक्त सवभचोद्भव ॥ १४ ॥
 नक्षत्रप्रहृताणामधिपो विश्वभावन ।
 तेजसामपि तेजस्य द्वादश्यात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥

इहोक्ते नाम—आदित्य (अदितिपुत्र), शक्ति (ज्ञानो उत्पन्न करनेवाले), सूर्य (सर्वव्यापक), लग्न (आराधने विचरनेवाले), धृवा (पोषण करनेवाले), गन्धसामान (प्रसाधमान), सुवर्णसदृश, मानु (प्रसाधक), हिरण्यरेता (ब्रह्माण्ड ही उत्पत्तिके बीज), दिवाकर (रात्रि का अंधकार दूर करके दिनका प्रकाश फैलानेवाले), हरिदक्ष (दिशाओंमें व्यापक अथवा हरे रंगके घोड़ेवाले), सहस्राक्षि (हजारों विरणोंसे सुशोभित), सप्तक्षि (सात पाईनोंवाले), मरीचिमान् (विरणोंसे सुशोभित), क्षिप्रगमयन (अंधकारका नाश करनेवाले), शम्भु (कल्याणके उद्भवस्थान), त्वष्टा (भक्तोंका दुःख दूर करने अथवा जगत्का संहार करनेवाले), मार्तण्डक (ब्रह्माण्डको जीवन प्रदान करनेवाले), अग्रमान् (विरण धारण करनेवाले), हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), शिशिर (स्वभावसे ही सुख देनेवाले), तपन (गर्मी पैदा करनेवाले), अहरकर (दिनकर), रति (रात्री स्तुतिन प्राप्त), अग्निगर्भ (अग्निगर्भमें धारण करनेवाले), अदितिपुत्र, शङ्ख (आनन्दस्वरूप एव शपक), शिशिरनाशन (शीतका नाश करनेवाले), व्योमनाथ (आराधके स्वामी), तमो मेनी (अंधकारसे नष्ट करनेवाले), ऋग्, यजु और सामवेदके पारगाभी, घनवृष्टि (घनी वृष्टिके कारण), अपा मित्र (कल्को उत्पन्न करनेवाले), पिप्पवीधीघृषणम (आकाशमें तीव्रगते चलनेवाले), आतपी (घाम उत्पन्न करनेवाले), मण्डली (विरणसमूहको धारण करनेवाले), मृशु (मोतके कारण), पिङ्गल (भूरे रंगवाले), सर्वतापन (वरम ताप देनेवाले), कर्मि (विशालदहर्षी), विश्व (सर्वस्वरूप), महातेजस्वी, रक्त (रक्त रंगवाले), सर्वभवाद्भव (सभी उत्पत्तिके कारण), नक्षत्र, ग्रह और तारोंका स्वामी, विश्वभावन (जगत्की रक्षा करनेवाले), तेजस्विभ्यो भी अति तेजस्वी तथा द्वादश्यात्मा (बारह स्वरूपोंमें अभिन्नत्व) हैं । [इन सभी नामोंसे प्रसिद्ध सूर्यदेव ।] आपकी नमस्कार है ॥ १०—१५ ॥

नम पूराय गिरये पश्चिमायादये नम ।
 ज्योतिरागाना पतये दिनाधिपतये नम ॥ १६ ॥

पूरुमिरि—उदयास्त तथा पश्चिमगिरि—अन्तावन्तर रूपमें आरभ्य नमस्कार है । "तारों" (ग्रहों और तारों)

के स्वामी तथा दिनके अधिपति आपकी प्रणाम है ॥ १६ ॥
 जयाय जयभद्राय ह्यश्वाय नमो नम ।
 नमो नम सहस्राक्षो आदित्याय नमो नम ॥ १७ ॥

आप जयसम्पन्न तथा विजय और कल्याणके दाता हैं । आपके रथमें हरे रंगका घोड़े जुते रहते हैं । आपको बारबार नमस्कार है । सहस्राक्षी विरणीसे सुशोभित भगवान् स्य ! आपको बारबार प्रणाम है । आप अदिति पुत्र होनेके कारण आदित्यनामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है । ॥ १७ ॥
 नम उग्राय धीराय सारङ्गाय नमो नम ।
 नम पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥

उग्र (अमर्त्योंके लिये भयकर), धीर (शक्ति सम्पन्न) और सारंग (शीमामयी) स्वदेवको नमस्कार है । कमलोंवा विकसित करनेवाले प्रचण्ड तेजवारी मार्तण्डका प्रणाम है ॥ १८ ॥

ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूर्यादित्यरचसे ।
 भास्वते सर्वभक्षाय रीद्राय वपुषे नमः ॥ १९ ॥
 (परात्पर-रूपमें) आप ब्रह्मा धिय और विष्णुके भी स्वामी हैं । सूर आपकी वक्ता है, यह सूरमण्डल आपका ही तेज है, आप प्रकाशसे परिपूर्ण हैं, सूरको स्वाहा कर देनेवाला अग्नि आपका ही स्वरूप है, आप रौद्ररूप धारण करनेवाले हैं आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥

तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुनाथामितात्मने ।
 वृत्तघ्नाय देवाय ज्योतिषाय पतये नमः ॥ २० ॥
 आप अज्ञान और अंधकारके नाशक, बहुतायत शीत के निवारक तथा शत्रुका नाश करनेवाले हैं, आपका स्वरूप अग्रमेय है । आप वृत्तघ्ना नाश करनेवाले, समूह ज्योतिषों के स्वामी और देवस्वरूप हैं आपको नमस्कार है ॥ २० ॥
 तत्तवामीकपभाय हरये निश्चकमणे ।
 नमस्तमोऽभिनिष्पद्य रुचये लोकसाक्षिणे ॥ २१ ॥

आपकी प्रभा तथाय हुए सुवर्ण समान है, आप हरि (अज्ञानका हरण करनेवाले) और निश्चकमा (कठारकी छवि करनेवाले) हैं तमके नाशक, प्रकाशस्वरूप और जगत्के साक्षी हैं, आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥

नादाय येय वै भून् तमेव खजति प्रभु ।
 पायत्येव तपयेय धरत्येव गभस्तिभिः ॥ २२ ॥
 ग्धुनन्दन । वे भगवान् सूर्य ही समूह भूतोंका संहार, सृष्टि और पालन करते हैं । य ही अपनी विरणोंके गर्मी पहुँचाते और बचा करते हैं ॥ २२ ॥

एव सुमेयु जायन्ति भूनेषु परिनिष्ठित ।
 एव वैयानिहोत्र च फल र्वयानिहोत्रिणाम् ॥ २३ ॥

ये सब भूतोंमें अन्तवामीरूपसे स्थित होकर उनके ही जलनेपर भी जलते रहते हैं । य ही अभिहोत्र तथा अन्विहोत्री पुरुषोंको मित्रदेवके फल है ॥ २ ॥

देवाश्च प्रतरश्चैव प्रवृत्ता फल्मेव च ।
यानि हन्यानि लेखेषु सर्वेषु परमप्रभु ॥ २४ ॥

(यज्जने भाग ग्रहण करनेवा) देवाः यज्ञ और यज्ञे
फल भी यही हैं । सण्ण ह्मकोमें विनी क्रियाएँ होती हैं,
उन सबका फल देनेमें यही पूण समर्थ हैं ॥ २४ ॥

एतमापन्तु हृत्तेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कवियन् पुरय कश्चिन्नासीति राघव ॥ २५ ॥

(रागव ! विगतिमें, कर्ममें दुर्गम मार्गमें तथा और किसी
मरके अवसरमें जो कर्म पुण्य इन मूर्खोंका जानन करता
है, उसे दुःख नहीं मोगना पड़ता ॥ २५ ॥

पूतयम्यनैकप्रभो दशदश जगन्पतिम् ।
एतत् त्रिगुणित जगत्ता युजेषु विचरिष्यति ॥ २६ ॥

(इन्द्रिय तुम एकप्रचित शब्द इन देवविदेन
अगनीकरकी पूजा कर । इस आदित्यहृदयका तीन बार
बार करनेमें तुम मुझमें विजय पावोगे ॥ २६ ॥

अस्मिन् क्षणे महागहो राघव त्व जहिष्यामि ।
एतमुन्म्या ततोऽगम्यो जगाम स यज्ञागतम् ॥ २७ ॥

महाहा ! तम इसीक्षण रागका वष कर सकोगे ! यह
कहकर अगस्त्य वैने आगे य, ग्नी प्रकार च गये ॥ २७ ॥
एतच्छ्रुत्वा महानजा नण्डोमोऽभनत् तदा ।
धारयामास सुप्रीतो राघव प्रयनामना ॥ २८ ॥

ह्यापे धानदामागने वास्माकाय आत्माक्य युद्धकाण्डे पडधिकशततम सर्ग ॥ १०५ ॥

इम प्रकार श्री—विनिर्दिन अरामना अन्तिकदक मुद्रकाण्डे एव मा पर्वतो म पूरा हुआ ॥ १ ॥

पडधिकशततम सर्ग

रागणके रथको देव श्रीरामका मातलिका मावधान करना, रावणकी परानयके सूचक
उपातों तथा गमकी विजय सूचित करनेवाले गुप्त गङ्गुनोंका वर्णन

सारथि स रथ हृष्ट परसंन्यप्रधारणम् ।
गंधनगगगास समुच्छ्रितनाकिनम् ॥ १ ॥

युक्त परमसम्पन्नजातिभिर्हममालिभि ।
युद्धोपकरणै पूणे पताकाधमालिनम् ॥ २ ॥

प्रसन्तामिर चाकाश नादयन्त वसुधधाम् ।
प्रपाता परसंन्याना स्वसन्धस्य ग्रहणधम् ॥ ३ ॥

रागणस्य रथ विप्र चोदयामास सारथि ।

रागणके सारथिने हथ और उत्कृष्ट युद्ध हथकर उपक
रयके समुच्छ्रित होय । यह रागणनेनाकुचव शब्दनेवा
या और गंधनगगगास सन्ध आभारवक दिवापी देता
या । उधर पशुन ऊँची पताका धर रही थी । उस रथमें
उत्तम गुणोंके सम्पन्न और अपने अपने अंगोंके धड़े जुते
हुए थे । रथ पर युद्धकी आस्पद सामान्य स्त्री पड़ी

आदित्य प्रेक्ष्य जप्त्वेद पर हर्षमगातमान् ।
विराचम्य गुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीरयान् ॥ २९ ॥

रागण प्रेक्ष्य हृष्टमा जयार् समुपागमत् ।
सर्वयनेन महता वृत्तस्तस्य उधेऽभनत् ॥ ३० ॥

उनका उदयेन मुनकर महानेव्नी आरामवन्धकी का
दूर हो गया । उन्होंने प्रसन्न होकर युद्धवित्तने आदित्य
हृदयका धारा किया और तान बार आचमन करके
युद्ध हा भावान् मूयकी भर दमन हुए इसका तान
कर कर किया । इम्में उन्हें वग हर्ष हुआ ।

शिर परम पराक्रमी रघुनाथनेने धनुष उठाकर रागण
अर देखा और उल्लाहपूर्वक विजय पतेक लिए वे अगे
बढ़े । उन्होंने पूरा प्रयत्न करके रागण दशका निहत्त
किया ॥ २८-३० ॥

अथ रघिराजद्वितीयाय राम
मुनिष्ठमना परम प्रहृष्यमाण ।
निशिवरपतिसहस्र शिल्पि
सुरगणमध्यगतो यत्नमन्यरेति ॥ ३१ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

उस समय देवताओं के मध्यमें सब हुए भावना मूने
प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रकी अर देखा और निशाचरपत
रागण निगारा समय निकट जनकर हथकर कया—
रघुनन्दन ! अब जय कर ॥ १ ॥

पक्षी भयंकर भी । वह आकाशम प्रकाशित होनेवाले सुसुहृत्त्व
तन्मयी निमानक समान दृष्टिगोचर होता था ॥ ७२ ॥

तडि पताकापहन दर्शिते द्रायुधप्रभम् ॥ ६ ॥
शरधारा निमुञ्चन्त धाराधरमिन्द्राभ्युदम् ।

उत्तर करारी हुई पताकाईं त्रिभुजं समान जान पड़ती
थी । वहाँ जो राखणका धनुष था, उसने द्वारा यह रथ इन्द्र
धनुषकी छत्र छत्रकता था और बाणोंकी धारावाहिक वृष्टि
करता था । इससे वह जलधारापर्यं मेघने समान प्रतीत
होता था ॥ ६३ ॥

स हृष्टा मेघमक्ताशमापतन्त रथ रिपो ॥ ७ ॥
गिरेर्यज्जामिन्सुगम्य दीर्यम सन्शस्त्रमम् ।
निस्फारयन् वै वेगेन बालचद्रानत धनु ॥ ८ ॥
उयाच मातलिं राम सहस्राक्षस्य सारथिम् ।

उत्तरी आवाज ऐसी मात्रम होती थी, मानो वज्रके
आघातसे किसी पर्वतने फटनेका गन्ध हो रहा हो । मेघक
समान प्रतीत होनेवाले 'गुप्त' उस रथको आता देख श्रीराम
चन्द्रजीन बड़े वेगसे अपने धनुषपर नकार दी । उस समय
उनका वह धनुष द्वितीयाने चन्द्रमा जसा दिलायी दत्त था ।
श्रीरामने इन्द्रसारथि मातलिमे कहा— ॥ ७२ ॥

मातले पश्य सरब्धमापतन्त रथ रिपो ॥ ९ ॥
यथापमव्य पतता यगेन महता पुन ।
समरे हनुमामान तथानेन कृता मति ॥ १० ॥

'मानन्' । देखो ! मेरे शत्रु राखणका रथ बड़े वेगसे आ
रहा है । राखण जिस प्रकार प्रदक्षिणमायसे महान् वेगक साथ
पुन आ रहा है, उससे जान पड़ता है, इसने समरभूमिम
अपने पक्षका निक्षेप कर लिया है ॥ * १० ॥

तदप्रमादमातिष्ठ प्रत्युद्गच्छ रथ रिपो ।
विष्वसयितुमिच्छामि जयुर्मैघमिथोरियतम् ॥ ११ ॥

'मत्त' अब तुम सावधान हो जाओ और शत्रु रथकी
ओर आगे बढ़ो । जैसे दूरा उमड़ हुए बादलोंको छिन्न भिन्न
कर डालती है उसी प्रकार आज मैं शत्रुक रथका निक्षेप
करना चाहता हूँ ॥ ११ ॥

अत्रिह्वमसंभ्रान्तमयामहन्व्येक्षणम् ।
रदिमसचारनिपत प्रयोदय रथ द्रुतम् ॥ १२ ॥

'अप' तथा पदगृह्ण छान्दकर मन और नेत्रोंका स्थिर
रहता हुए बाणोंकी बाणदार काट्टमें रक्ता और रथका तज
चलाओ ॥ १२ ॥

काम न त्व समाधेय पुरदूरयोत्रित ।
युयुसुरहमेकाग्र स्मारये त्वा न निक्षेपे ॥ १३ ॥

'मूढ' हे राम इन्द्रका रथ होंनेका अन्वेष दे और
तुमका बुद्धि निगलनी आरंभरुता नहीं है । मैं ऐसा प्रवृत्त

होकर युद्ध करना चाहता हूँ । इसलिये तुम्हारे कर्तव्यक
संलग्नमात्र कर रहा हूँ । तुम्हें शिक्षा नहीं दता हूँ ॥ १३ ॥

परितुष्ट स रामस्य तन वाक्येन मातलि ।
प्रचोदयामास रथ सुरसारथिरुत्तम ॥ १४ ॥

अपस्य तन कुर्वन् राखणस्य महारथम् ।
चक्रसम्भूतगजसा राखण व्यवधूनयत् ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीक इत वचनसे देवताओंक श्रेष्ठ सारथि
मातलिको बड़ा स्तोत्र हुआ और उन्होंने राखणने विशाल
रथको दाहिने रखते हुए अपने रथका भाग बनाया । उसके
पश्चिमे इतना धूल उड़ा कि राखण उसे देखकर काँप
उठा ॥ १४ १५ ॥

तत क्रुद्धो दशग्राहस्ताप्रविष्टकारितेक्षण ।
रथप्रतिमुख गम सायनैरवधूनयत् ॥ १६ ॥

इससे दशभुज राखणको बड़ा क्रोध हुआ । वह अपनी
लाल-लाल आँखें काड़कर देखता हुआ रथक सामने हुए
श्रीरामपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १६ ॥

धर्मणामपितो रामा धैर्यं रोषेण लम्भयन् ।
जग्राह सुमहावेगमैत्र युधि शारासनम् ॥ १७ ॥

उत्तरे इत आखणसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा क्रोध हुआ ।
किर राखणके साथ हा धैर्य धारण करक युद्धस्थलमें उन्होंने
इन्द्रका धनुष हाथमें लिया जो बड़ा ॥ वेगशाली था ॥ १७ ॥

शराश्च सुमहावेगान् स्यारदिसमप्रभान् ।
तदुद्योद महद् युद्धमन्यायव्यवकाङ्क्षिणो ।
परस्परमभिमुखयोर्दमयोरिव सिंहयो ॥ १८ ॥

साथ ही सूक्ष्म किरणान् गमान प्रकाशित होनेवाले महान्
वेगशाली बाण भी प्रहरण लिये । तत्पश्चात् एक दूसरेके वक्की
इच्छा रखकर श्रीराम और राखण दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध
आरम्भ हुआ । दोनों दपसे भर हुए दो सिंहने गमान आमने
सामने घट हुए थे ॥ १८ ॥

तनो देवा संगमधवा मिन्द्राश्च परमगय ।
समीयुर्दरथ द्रष्टु राखणक्षयकाङ्क्षिण ॥ १९ ॥

'तस' मम राखणक विनाशनी इच्छा रखनेवाले देवता,
निन्द्रा, कम्पन और मर्ही उन दोनोंक द्रष्टु युद्धका देखनके
लिय यहाँ एकत्र हो गये ॥ १९ ॥

समुत्पलुरथोत्पाता दारुणा रोमहृषणा ।
राखणस्य विनाशाय राधवस्योद्वाय च ॥ २० ॥

उन युद्धक समय ऐन मयकर उस्तात होने लगे, जो
शेरक पक्षे कर देनेवाले थे । उनसे राखणक विनाश और
श्रीरामचन्द्रजीक अभुषणकी हानि मिलती थी ॥ २० ॥

वयस्य दधिर द्यो राखणस्य रथोपरि ।
याता मण्डन्निस्तीमा व्यपस्य प्रचमम् ॥ २१ ॥

मेघ रावणने रथपर रक्तक्री नपा करने लगे । बड़े वेगसे उठे हुए बरदर उसकी गामावरण परिक्रमा करने लगे ॥ २१ ॥

महद्गुप्तकुल चास्य भ्रममाण नभस्थले ।

येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति ॥ २२ ॥

मिश्रजिम मार्गसे रावणका रथ जाता था, उसी-उसी ओर आकाशमें मँडराता हुआ गोचोंका महान् समुदाय दौड़ा जाता था ॥ २२ ॥

सन्धया चावृता लङ्का जपापुष्पनिकाशया ।

दृश्यते सम्प्रदीप्तं दिश्यतेऽपि वसुधरा ॥ २३ ॥

असमयमें ही जपा (अङ्गुल) के फूलकी-सी लाल रंग वाली सन्ध्यासे आहत हुई लङ्कापुरीकी भूमि दिनमें भी जलती हुई ही दिखायी देती थी ॥ २३ ॥

सन्धिर्यता महौल्काश्च सम्प्रपेतुमहास्वना ।

विशदयस्ते रक्षांसि रावणस्य तदाहिता ॥ २४ ॥

रावणने धामने उड़पातकी सी गड़गड़ाहट और बड़ी भारी आवाजने साथ बड़ी-बड़ी उल्लाहें गिरने लगाँ, जा उसका अद्वितीय सूचना दे रही थी । उन उत्पातोंने राक्षसोंको निपादमें डाल दिया ॥ २४ ॥

रावणश्च यतस्तत्र प्रज्वाल वसुधरा ।

रक्षसा च प्रहरता गृहीता ह्य वाहव ॥ २५ ॥

रावण जहाँ-जहाँ जाता, वहाँ-वहाँकी भूमि डालने लगती थी । प्रहार करते हुए राक्षसोंकी धुआँ ऐसी निकम्मी हो गयी थी, मानो उन्हें किन्हीं पकड़ लिया हो ॥ २५ ॥

तात्रा पीना सितः देवता पतिता सूररश्मय ।

दृश्यन्ते रावणस्याग्र पर्वतस्येव धातव ॥ २६ ॥

रावणका आगे पड़ी हुई सूर्यदेवकी किरणें पक्कीय धातुओंका समान लाल, पीले, सफ़ेद और काल रंगकी दिखायी देती था ॥ २६ ॥

शुभ्रैरनुगताश्चास्य धमन्त्यो ज्वलन् मुखै ।

प्रणेदुमुखमीशन्त्य स्वरधमशिर शिवा ॥ २७ ॥

रावणका रावणरामने पूर्ण मुखकी आर देखती और अपने अपने मुखोंसे आग उगान्ती हुई गीदहियों अमङ्गलसूचक बोली बोलती थी और उनका पीछे छूटने छूट गीध महरात चलते ॥ २७ ॥

प्रतिशूल वरौ यायु रणे पासुर समुत्किञ्च ।

तस्य रावणसराजस्य शुचन् दृष्टिदिलोपनम् ॥ २८ ॥

रणभूमिमें धूल उड़ाती वायु रावणराज रावणकी आँखें बंद करती हुई प्रतिकूल दिशाकी ओर बढ़ रही थी ॥ २८ ॥

ह्यार्षे श्रीमद्रामायणवाक्योक्त्य आम्बिकाण्डे सुद्धकाण्डे पञ्चदशतम सर्ग ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिर्निर्मित आष्वत्थामायण अष्टादश मुद्रकाण्डमें एक सौ छहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

निपेतुरिन्द्राशनय सैन्ये चाम्य समन्तत ।

दुर्विण्णखरा घोरा विना जलधरोदयम् ॥ २९ ॥

उसकी सेनापर सब ओरमें बिना बादलने ही दुःसह एवं कठोर आवाजने साथ भयानक चित्राङ्गों गिरा ॥ २९ ॥

दिशश्च प्रदिश सजा वभुवुस्तिमिरावृता ।

पासुर्येण महता दुर्वर्षे च नभोऽभ्यवत् ॥ ३० ॥

समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ अंधकारसे आच्छन्न हो गयीं । धूलकी बड़ी भारी गगार कारण आनाशका दिवायी देना कठिन हो गया ॥ ३० ॥

कुर्वत्य कल्ह घोर सारिकास्तद्रथ प्रति ।

निपेतु शतशस्तत्र दारुणा शरदणारुता ॥ ३१ ॥

भयानक आवाज करनेवाली सैकड़ों दारुण सारिकाएँ आपसमें थार कलह करती हुई रावणने रथपर गिर पड़ती थीं ॥

जयनेभ्य स्फुलिङ्गाश्च नेत्रेभ्योऽश्रूणि सततम् ।

मुमुक्षुस्तस्य तुरगान्तुल्यमस्ति च धारि च ॥ ३२ ॥

उसने छोड़े अपने जपनस्थलमें आगकी चिनगारियों और नेत्रोंसे आँसू बरसा रहे थे । इस प्रकार वे एक ही साथ आग और पानी दोनों प्रकट करते थे ॥ ३२ ॥

पवप्रकारा बहव समुत्पाता भयानका ।

रावणस्य विनाशाय दारुणा सम्प्रजझिरे ॥ ३३ ॥

इस तरह बहुत से दारुण एवं भयंकर उत्पन्न प्रकट हुए, जो रावणका विनाशकी सूचना दे रहे ॥ ३३ ॥

गमस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शिरानि च ।

बभूवुजयशस्तीनि प्रादुर्भूतानि सयश ॥ ३४ ॥

श्रीरामका सामने भी अनेक शत्रुका प्रकट हुए, जो सब प्रकारसे गुप्त, मङ्गलमय तथा मित्रवत् सूचक ॥ ३४ ॥

निमित्तानीह सौम्यानि राघव स्वजयाय वै ।

दृष्ट्वा परमसहृणे हत मेने च रावणम् ॥ ३५ ॥

श्रीरामनाथजी अपनी मित्रवरी सूचना देनेवाला इन गुप्त शत्रुओंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने रावणका मरण हुआ ही समझा ॥ ३५ ॥

ततो निरीक्ष्यात्मगतानि राघवो

रणे निमित्तानि निमित्तकोविद् ।

जगाम हर्षे च परा च निवृत्ति

चकार युद्धे हाथिच च विदमम् ॥ ३६ ॥

शत्रुओंका जाला भगवान् श्रीराम रणभूमिमें अपनेको प्राप्त होनेवाले गुप्त शत्रुओंका अवलोकन करने बड़े हर्ष और परम संतोषका अनुभव करने लगे तथा उन्होंने युद्धमें अधिक पराक्रम प्रकट किया ॥ ३६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः

श्रीराम और रावणका घोर युद्ध

ततः प्रवृत्तः सुहृद् रामराज्ययोस्तदा ।

सुमहद् द्वैरयः युद्धं सर्वलोकेभयाग्रहम् ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीराम और रावणमें अत्यन्त भूतपूर्वक महान् द्वैरय युद्ध आरम्भ हुआ, जो समस्त लोकोंके लिये भयकर था ॥ १ ॥

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् ।

प्रगृहीतप्रहरणं निक्षेष्टं सम्पतत ॥ २ ॥

उस समय राक्षसों और जानपैकी विशाल सेनाएँ हाथमें हथियार लिये रहनेपर भी निष्प्रभ लड़ी नहीं—कोई किसीपर प्रहार नहीं करता था ॥ २ ॥

सम्प्रयुद्धौ तु तौ दृष्ट्वा बलव्यधरराक्षसौ ।

व्याक्षिप्तहृदया सर्वे परं तिस्रस्यमागता ॥ ३ ॥

मनुष्य और निगाहर दोनों वीरोंको बलपूर्वक युद्ध करते देख सबने हृदय उन्हींकी ओर खिंच गये, अतः सभी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥ ३ ॥

नानाप्रहरणैर्गर्भैर्भुजैर्निस्सितयुद्धयः ।

तस्यु प्रेक्ष्य च सप्राप्तनाभिजग्मुः परस्परम् ॥ ४ ॥

दोनों ओरके सैनिकोंने हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्रशस्त्र बिछामान थे और उनमें हाथ युद्धके लिये व्यर्थ थे, तथापि उस अद्भुत सप्राप्तको देखकर उनकी बुद्धि आश्चर्यचकित हो उठी थी इसलिये वे जुपचाप खड़े थे । एक-दूसरेपर प्रहार नहीं करते थे ॥ ४ ॥

रक्षसा राज्ञा चापि घातराणां च गघनम् ।

पद्मता निस्सिताश्वाणां सैन्यं चित्रमिगयभी ॥ ५ ॥

राक्षस राजा भी और देख रहे थे और कानन भीरुनाथ जोड़ी और । उन सबने नेत्र विस्मित थे, अतः निरुत्थ लड़ी रहनेके कारण उभय पक्षकी सेनाएँ चित्रलिखित-सी जान पड़ती थी ॥ ५ ॥

तौ तु तत्र निमिस्तानि दृष्ट्वा राघवराजौ ।

हृतयुद्धौ विरामार्थं सुयुधात् क्षभीतयत् ॥ ६ ॥

श्रीराम और राजा दोनोंने वहाँ प्रकट क्षीणताके निमित्तों को देखकर उनमें भावी परका विचार करके युद्धविषयक विचारको गिर कर लिया था । उन दोनोंमेंसे एक-दूसरे प्रति अमरका मार हट्ट हो गया था इसलिये वे निर्भयसे होकर युद्ध करते लगे ॥ ६ ॥

जेतव्यमिति कायुरग्न्यो मनःयमिति राज्ञः ।

पूतौ मयीपसयस्य युद्धेऽदृशयता तदा ॥ ७ ॥

भीरमचन्द्रसिंहा वद निभास या कि मयी ही खीन होगी

और राजाको भी यह निश्चय हो गया था कि मुझे अवश्य ही मरना होगा, अतः वे दोनों युद्धमें अपना सारा पराक्रम प्रकट करके दिखाने लगे ॥ ७ ॥

ततः प्रोधाद् दशप्रवीणः शरान् सधाधाय धीर्यवान् ।

सुमोचं ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम् ॥ ८ ॥

उस समय पराक्रमी दशाननने प्रोद्युक्त बाणोंका सधान करके श्रीसुनायजीक रथपर फहराती हुई ध्वजको निशाना बनाया और उन बाणोंको छोड़ दिया ॥ ८ ॥

ते शरास्तमनास्ताद्यः पुरंदररथध्वजम् ।

रथशक्तिं परासृज्य निपेतुधरणीतले ॥ ९ ॥

परन्तु उसके चलाये हुए वे बाण इन्द्रके रथकी ध्वजतक न पहुँच सके, कबल रथशक्तिको छूते हुए घरतीपर गिर पड़े ॥

ततो रामोऽपि सहृद्धश्चापमाकृत्य धीर्यवान् ।

हृतप्रतिहतं कर्तुं मनसा सम्प्रचवन्ते ॥ १० ॥

तब महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी कुपित होकर अपने धनुषको सौँचा और मन ही मन रावणने कृत्यका बदला चुकाने—उसके ध्वजको काट गिरानेका विचार किया ॥ १० ॥

राघवध्वजमुद्दिश्य सुमोचं निशितं शरम् ।

महासर्पमियासहस्रं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥ ११ ॥

रावणने ध्वजको लक्ष्य करके उन्हींने विशाल सर्पके समान असह्य और अपने तेजसे प्रगलित तीखा बाण छोड़ दिया ॥ ११ ॥

रामश्चिक्षेप तेजसवीं केतुमुद्दिश्य सायकम् ।

जगाम स महीं छित्वा दशप्रवीणध्वजं शरं ॥ १२ ॥

तेजस्वी भीरमने उस ध्वजकी ओर निशाना साधकर अपना सायक चलाया और वह दशाननर उस ध्वजको काट कर धृष्टीमें समा गया ॥ १२ ॥

स निरुक्तोऽपतद् भूमौ राज्ञम्यन्दनध्वजः ।

ध्वजग्न्योमयनं दृष्ट्वा राज्ञः स महाबलः ॥ १३ ॥

सम्प्रसीतोऽभयत् प्रोधाद्भयमात् प्रदहन्निव ।

स रोषवशमापन्नः शरघर्षं घनम् ॥ १४ ॥

रावणने रथका वह ध्वज कटकर घरतीपर गिर पड़ा । अपने ध्वजका विचार हुआ देख महाबली राजा कोपसे जल

१ रथकी कण्ठीपरछा वह बाण त्रिमूर्ति लक्ष्मीके रथोंकी ध्वजोंके लक्ष्मी जाती थी । कुछ निगलनेके रथचित्रित अर्ध—रथ की अद्भुत क्षमताके किता है । ऐसा अथ क्षमतापर वह भाव निकलता है कि रथके अङ्ग प्रभावका अनुभव करने के बाण ध्वज तक न पहुँचकर ध्वजीपर ही गिर पड़े ।

उठा और अमर्षके कारण थिपझीको जलाता हुआ-सा जान पड़ा । वह रोपने घसीभूत होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ रामस्य तुरगान् दत्तैः शरैर्विधाध रावणः । ते दिव्या हरयस्तत्र नास्वल्लापि यश्चमुः ॥ १५ ॥ यभूवु स्वस्यहृदया पद्मानलैरिवाहता ।

रावणने अपने तेजस्वी बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीके घोड़ोंको घायल करना आरम्भ किया, परतु वे छोड़े दिये थे, इसलिये न तो लड़खड़ाये और न अपने स्थानसे विचलित ही हुए । वे पूर्ववत् स्वस्थचित्त बने रहे, मानो उनपर कमलकी नालों से प्रहार किया गया हो ॥ १५ ॥

तेषामसम्भ्रम दृष्ट्वा याजिना रावणस्तदा ॥ १६ ॥ भूय एव सुसकुन्दः शरवर्षे मुमोच ह । गदाश्च परिघाक्षैश्च चक्राणि मुसलानि च ॥ १७ ॥ गिरिभृश्राणि वृक्षाश्च तथा शूलपरभधान् । मायाविहितमेतत् तु शस्त्रवपमपातयत् । सहस्रशस्तदा याणान्श्रान्तहृदयोद्यम ॥ १८ ॥

उन घोड़ोंका घरघटमें न पड़ना देख रावणका क्रोध और भी बढ़ गया । वह पुन बाणोंकी वर्षा करने लगा । गदा, चक्र, परिघ, मूसल, पर्वत-खिलर, वृक्ष, शूल, परसे तथा मायानिर्मित अन्यान्य शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगा । उसने हृदयमें थकावटका अनुभूत न करके वहाँका बाण छोड़े ॥ १६-१८ ॥ तुमुल प्रासजनन भीम भीमप्रतिखनम् । तद् वपमभवद् युद्धे नैकशस्त्रमय महत् ॥ १९ ॥

युद्धक्षलमें अनेक शस्त्रोंकी वह गिनाल वर्षा बनी भयानक, तुमुल, प्रासजनक और भयकर कोलाहलसे पूण थी ॥ विमुच्य राघवरथ समन्ताद् वानरे बले । सायकैरन्तरिक्ष च चकार सुनिरन्तरम् ॥ २० ॥ मुमोच च दशग्रीवो नि सङ्गेनान्तरात्मना ।

रह शस्त्रया श्रीरामचन्द्रजी १५को छोड़कर सब और से वानर-सेनाके ऊपर पड़ने लगी । दशमुख रावणने प्राणोंका मोह छोड़कर बाणोंका प्रयोग किया और अपने सायकोंने बढ़के आकाशमें ठकाठस भर दिया ॥ २० ॥ ध्यायच्छ्रमन्त त दृष्ट्वा तत्पर रावण रणे ॥ २१ ॥ प्रहसन्निय काकुत्स्थ सद्ग्रे निशितान्छरान् । स मुमोच ततो याणान्छततोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥

तदनन्तर रागभूमिमें रावणको बाण चलनेमें अधिक परिभ्रम करने देव भीरमचन्द्रजीने हँसने हुए-से तीनों बाणों का सवाल किया और उन्हें सैकड़ों तथा हजारोंकी सख्या में छोड़ा ॥ २१-२२ ॥

तान् दृष्ट्वा रावणश्च त्रैश्वरीं च निरन्तरम् । ताभ्या निमुचेन तदा शरवर्षेण भासता ॥ २३ ॥ शरयदमिशामाति द्वितीय भास्वदभ्यरम् ।

उन बाणोंको देखकर रावणने पुन अपने बाण बरसाये और आकाशको ज्वाला भर दिया कि उसमें जिल रातनेकी भी जगह नहीं रह गयी । उन दोनोंके द्वारा भी गयी चमकीले बाणोंकी वर्षासे वहाँका प्रकाशमान आकाश बाणोंसे बढ होकर किसी और ही आकाश-सा प्रतीत होता था ॥ २२ ॥

नानिमित्तोऽभवद् वाणो नानिर्भेत्तानि नृपफल ॥ २३ ॥ अन्योन्यमभिषहत्य निपेतुर्धरणीतले । तथा त्रिज्जतोयाणान् रामरात्रणयोर्मुधे ॥ २५ ॥

उनका चलाया हुआ क्रोध भी राग लक्ष्यनक पहुँचे बिना नहीं रहता था, लक्ष्यको बंधे या निर्दीर्ण किये बिना नहीं रुकता था तथा निष्फल भी नहीं होता था । इस तरह युद्धमें शस्त्रवर्षा करते हुए श्रीराम और रावण रावण जन आपसमें टकराते थे, तब नष्ट होकर पृथ्वीपर गिर जाते थे ॥ २४-२५ ॥

प्रायुध्येतामविच्छिन्नमस्यस्तौ सद्यदक्षिणम् । चक्रतुश्च शरैर्धरैर्निरुच्छ्रासमिवाभ्यरम् ॥ २६ ॥

वे दोनों थोड़ा दावें-बायें प्रहार करते हुए निरन्तर युद्धमें लगे रहे । उन्होंने अपने भयकर बाणोंसे आकाशको इस तरह भर दिया कि मानो उसमें सौँस लेनेकी भी जगह नहीं रह गयी ॥ २६ ॥

रावणस्य हयान् रामो हयान् रामस्य रात्रण । अग्रतुस्तौ तदाप्योन्य हतातुहताकिरिणौ ॥ २७ ॥

श्रीरामने रावण रावणोंको और रात्रणने श्रीरामने घोड़ों का घायल कर दिया । वे दोनों एक दूसरेके प्रहारका बटला चुकाते हुए परस्पर आपात करते रहे ॥ २७ ॥

एव तु तौ सुसकुन्दौ चक्रतुयुद्धमुत्तमम् । सुहर्तमभवद् युद्धं तुमुल रोमहृषणम् ॥ २८ ॥

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए उत्तम वीरि-से युद्ध करने लगे । दो पक्षीतक तो उन दोनोंमें ऐसा भयकर संग्राम हुआ, जो रंगत लड़े कर देनेवाला था ॥ २८ ॥

तौ तथा युध्यमानौ तु समरे रामरात्रणौ । दृष्ट्वा सर्गभूतानि त्रिस्तितान्तरात्मना ॥ २९ ॥

इस प्रकार युद्धमें लगे हुए भीरम तथा रावणका समूत प्राणी चकितचित्तने निहारने लगे ॥ २९ ॥

अद्यन्तौ तु समर तयोस्तौ म्यन्दनोत्तमौ । परस्परमभिकुन्दौ परस्परमभिद्रुतौ ॥ ३० ॥

उन दोनोंच व श्रेष्ठ रथ (तथा उसमें बैठे हुए रथी) समरभूमिमें अत्यन्त क्रोधपूर्वक एक दूसरेको पीड़ा देने और परस्पर पाधा करने लगे ॥ ३० ॥

परम्यगधे युनौ घोररूपौ भयमयतु । मण्डलानि च वीथीष्य गतप्रयागतानि च ॥ ३१ ॥ दशयन्तौ यद्विधा स्रुनौ सारघ्यजा गतिम् ।

एष दूतरेवे वधन प्रकलमें लो हृष्ट वे दोनों वीर बड़े
भयानक जान पड़ते थे । उन दोनोंके सारथि कभी रथको
चकर काटे हुए ले जाते, कभी सीधे भार्गवे दौड़ाते और
कभी आगेकी ओर बढ़ाकर पीछेकी ओर लौटते थे । इस तरह
वे दोनों अपने रथ हॉकनेमें विविध प्रकारके जानना परिचय
देने लगे ॥ ३१३ ॥

अर्धयन् रावण रामो राघव चापि राजान ॥ ३२ ॥
गतिथेय समापन्नौ प्रजतननिर्जने ।

श्रीराम रावणका पीड़ित करने लगे और रावण श्रीरामको
पीड़ा देने लगा । इस प्रकार युद्धविषयक प्रवृत्ति और निवृत्ति
में वे दोनों तदनु रूप गतिवेगका आश्रय लेते थे ॥ २२ ॥

क्षिपनो शरजालानि तपोस्तौ न्यद्वनोत्तमौ ॥ ३३ ॥
चेरतुः सयुगमर्हो सासारौ जलदायिव ।

बणसमूहोंकी बराबर करत हुए उन दोनों वीरोंने वे श्रेष्ठ
रथ जलरी धारा मिराते हुए दो जलधरोने समान युद्धभूमिमें
विचर रहे थे ॥ ३३ ॥

दशयिष्या तदा मौ तु गतिं यदुग्रिधा रणे ॥ ३४ ॥
परस्परभ्याभिमुखौ पुनरेव च तस्थतु ।

वे दोनों रथ युद्धस्थलमें भौंति भौंतिगी गतिका प्रदर्शन
करनेके बाद फिर आमने-सामने आकर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥

धुर धुरेण रथयोयकश्च पक्षेण धाजिनाम् ॥ ३५ ॥
पताकाश्च पताकाभि समीयु स्थितयोस्तदा ।

उस समय बहों लड़े हुए उन दोनों रथोंने युगधर
(हरलोक की सधि) युगधरते, घोड़ोंके मुख विपक्षी घोड़ोंके
मुखसे तथा पताकाएँ पताकाओंसे मिल गयी ॥ ३५ ॥

रावणस्य तनो रामो धनुमुत्तै शितै शरै ॥ ३६ ॥
चतुर्भिर्भृतो दीप्तान् हयान् प्रत्यपसपयत् ।

तत्पश्चात् श्रीरामने अपने धनुषमें छूटे हुए चार वेने
बाणोंद्वारा रावणने जारी तन्तुन्वी घोड़ोंको पीछे हटनेके लिये
बिबश कर दिया ॥ ३६ ॥

स प्रोध्यशमपन्नौ हयानामपसपणे ॥ ३७ ॥
सुमोक्ष निशितान् बाणान् राघवाय दशानन ।

घोड़ोंके पीछे हटनेपर दशमुख रावण शोकपूर्ण वशीभूत
हो गया और श्रीरामपर तीव्र बाणोंकी बराबर देने
लगा ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो वल्लता दशप्रीधण राघव ॥ ३८ ॥
जगाम न विकार च न चापि ध्ययितोऽभवत् ।

बलवान् दशाननः द्वारा अत्यन्त धायक क्रिय जानेपर
भी श्रीरामनागझीने चहरेपर चिन्मत्त न आयी और न उनका
मनमें व्यथा हो हुई ॥ ३८ ॥

विशेष च पुनर्बाणान् यज्ञसारसमस्थान् ॥ ३९ ॥

भारथिं वज्रहस्तस्य समुद्दिश्य दशानन ।

तत्पश्चात् रावणने वज्रके शरथि भातलिकी लक्ष्य करके
वज्रके समान शब्द करनेवाले बाण छोड़े ॥ ३९ ॥

मातलेस्तु महावेगा शरीरे पतिता शरा ॥ ४० ॥
न सूक्ष्ममपि सम्मोहं व्यथा वा प्रदुर्गुधि ।

वे महान् वगाली बाण युद्धस्थलमें मातलिके शरीरपर
पड़कर उर्ध्वे घोड़ा-सा भी मेह वा व्यथा न दे सके ॥ ४० ॥

तथा धर्षणया कुट्टो मातलेर्न तथाऽऽत्मन ॥ ४१ ॥
चकार शङ्खजालेन राघवो विमुख रिपुम् ।

रावणद्वारा मातलिके प्रति आक्रमणमें श्रीरामचन्द्रजीकी
जैला शोक हुआ, तैसा अपनेपर छिड़े गए आक्रमणसे नहीं हुआ
था । अतः उन्होंने बाणोंका जाल-सा बिछाकर अपने शत्रुको
युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ४१ ॥

विंशति त्रिंशति पृथि शतशोऽथ सहस्रा ॥ ४२ ॥
सुमोक्ष राघवो वीर सायकान् स्पन्दने रिपो ।

वीर रघुनाथजीने शत्रुके रथपर बीस, तीस, सठ, सौ और
हजार हजार बाणोंकी वृष्टि की ॥ ४२ ॥

राजणोऽपि तत कुट्टो रजस्यो राक्षसेभ्यः ॥ ४३ ॥
गदामुसलवर्षेण राम प्रत्यदयत् रणे ।

तब रथपर बैठा हुआ राक्षसराज रावण भी कुपित हो
उठा और गदा तथा मूखलोंकी बराबरी रणभूमिमें श्रीरामको
पीड़ा देने लगा ॥ ४३ ॥

तत् प्रवृत्त पुनयुद्धं तुमुल रोमहर्षणम् ॥ ४४ ॥
गदाना मुसलाना च परिपाणा च नि स्रवै ।

शराणा पुद्गयानैश्च क्षुभिना सप्त सागरा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमेंपुनः बड़ा भयंकर और रामाश्रकारी
युद्ध होने लगा । गदाओं, मुसलों और परिपोंकी आवाजसे
तथा बाणोंके पतोंकी सनसनाती हुई हवासे मानों समुद्र विधु-ध
हो उठे ॥ ४४-४५ ॥

भुग्धाना सागराणा च पातालतल्पामिन ।
व्यथिता क्षान्ता सर्वे पक्षगाश्च सहस्रा ॥ ४६ ॥

उन विपु-च नमुदोर पातालतलमें निराश करनेवाले
समस्त दानव और सहस्रों नाम व्यथित हो गये ॥ ४६ ॥

चक्रपे मेदिनी वृत्त्या मदीलननानना ।
भास्करो निष्प्रभश्चासीध वसौ चापि मारुत ॥ ४७ ॥

पर्वतों, वनों और बालनोंसहित सारी पृथ्वी और
उन्नी, सूर्यकी प्रभा लुप्त हो गयी और वायुकी गति भी
रुक गयी ॥ ४७ ॥

तनो देवा सगंधरा निद्राश्च परमथय ।
चिन्तामोषदि सर्वे सन्निभमहोरगाः ॥ ४८ ॥

देयता, गन्धन, सिद्ध, महर्षि, किन्नर और बड़े बड़े नाम सभी चिन्तामें पड़ गये ॥ ४८ ॥

म्यस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकस्तिष्ठतु शाश्वता ।
जयता राघव सख्ये रावण राघवसेध्वरम् ॥ ४९ ॥

सब कुछ मँहसे महीशत निकलने लगे—पौ और ब्राह्मणों का कल्याण हो, प्रवाह रूपसे सदा रहनेवाले इन लोगोंकी रक्षा हो और जीरुनाथजी युद्धमें राक्षसराज रावणपर विजय पावें ॥ ४९ ॥

एव जपन्तोऽपश्यस्ते देव सार्धगणास्तदा ।
रामराजयोयुद्धं सुषोः रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

इस प्रकार कहते हुए ऋषियोंसहित वे देवगण भीरव और रावणने अत्यन्त भयंकर तथा रागाच्चकारी युद्धको देखने लगे ॥

गन्धर्वास्तरसा सद्वा हृष्टा युद्धमनुपमम् ।
गगन गगनाकार सागर सागरोपम ॥ ५१ ॥
रामराजयोयुद्धं रामराजयोर्विव ।

एव नृततो दृष्टुस्तद् युद्धं रामराजणम् ॥ ५२ ॥
गन्धर्वों और अप्सराओंने समुद्रास उस अनुपम युद्धको देखकर कहने लगे—‘आकाश आकाशके ही तुल्य है, समुद्र समुद्रके ही समान है तथा राम और रावणका युद्ध राम और रावणके युद्धके ही सदृश है’ ॥ ऐसा कहते हुए वे सब लोग राम-रावणका युद्ध देखने लगे ॥ ५१ ५२ ॥

तत क्रोधामहाबाहू रघूणा कीर्तिरधन ।
सहाय धनुषा राम शरमाशीविषोपमम् ॥ ५३ ॥
रावणस्य शिरोऽच्छिन्नुच्छिन्नामज्जलितकुण्डलम् ।
तच्छिर पतित भूमौ दृष्ट लोकेस्त्रिभिस्तदा ॥ ५४ ॥

तदनन्तर रघुलोक कीर्ति बढ़ानेवाले महाबाहु भीरव चन्द्रजीने कुपित होकर अपने धनुषपर एक विषघर सफेक समान बाणका सधान किया और उसने द्वारा बगमगाते हुए कुण्डलोंसे युद्ध रावणका एक सुन्दर मस्तक काट डाला । उसका वह कण हुआ सिर उस समय धृष्टीपर गिर पड़ा; जिते तीनों हाथोंने प्राणियोंने देखा ॥ ५३ ५४ ॥

तस्यैव सदृश चान्यद् रावणस्थोरित्यत शिर ।
सत् क्षिप्त क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा ॥ ५५ ॥
द्वितीय रावणशिरदिह्न सयसि सायकै ।

उसकी जगह रावणके वैसा ही दूसरा नया सिर उत्पन्न हो गया । शीमतापूरक हाथ चलानेवाले शीरकारी भीरवने युद्धस्थलमें अपने सायकद्वारा रावणका वह दूसरा सिर भी शीम ही काट डाला ॥ ५५-॥

● गगन गगनाकार में रावणकायाविषकक हृत्कमें अनन्वया दृष्टार ह । सर्वा एक ही वस्तु उपमा आर उभयस्वसे कहा जाय दूसरा कह उपमा न मिल सके वहाँ अनन्वयादृष्टार क्षापा ह ।

छिन्नमात्र च तच्छीर्षं पुनरेव प्रदृश्यते ॥ ५६ ॥
तदप्यशनिसकाशैर्दिह्नन्न रामस्य सायकै ।

उसका कटे ही पुन नया सिर उत्पन्न दिखायी देने लगा, किन्तु उसे भी श्रीरामका वक्रतुल्य सायकोंने काट डाला ॥ ५६ ॥

परमेव शन छिन्न शिरसा तुल्यार्चसाम् ॥ ५७ ॥
न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये ।

इस प्रकार एक-मे तबवाला उसके सा सिर काट डाले गये, तथापि उसका जीवनका नाश होनेन लिये उसके मस्तकोंका अन्त होता नहीं दिखायी देता था ॥ ५७ ॥

तत सखात्रिद्वी वीर कौसल्यानन्दार्धन ॥ ५८ ॥
मार्गर्णैर्वह्निभियुक्तस्त्रिन्तपामास राघव ।

तदनन्तर कौसल्याका जानन्द बगानेवाल; सगुण अर्धोंके शता वार भीरवचन्द्रजी अनेक प्रकारक बाणोंसे युक्त होनेपर भी इस प्रकार चिन्ता करने लगे— ॥ ५८ ॥

मारीचो निहतो वैस्तु खरो वैस्तु सगुण ॥ ५९ ॥
कौञ्चावदे गिराधस्तु कण्ठो दण्डकावने ।
यै साला गिरयो भग्ना वाली च भुभितोऽन्नुधि ॥ ६० ॥
त इमे सायका सर्वे युद्धे प्राययिका मम ।
किं नु तत् कारण येन रावणे मन्दतेजस ॥ ६१ ॥

‘अहो ! मैंने जिन बाणोंसे मारीच, खर और दूषणका मारा, कौञ्चवनके गह्वरमें विराधका वध किया, दण्डकास्थलमें कब-धका मौतके घाट उतारा, सालत्रय और पवनकों विनीत किया, वालीके प्राण लिये और समुद्रको भी क्षुब्ध कर दिया, अनेक बारके सप्ताममें परीक्षा करक जिनकी अमोघताका विश्वास कर लिया गया है, वे ही ये मेरे सब सायक आन रावणके ऊपर निस्तेज—कुष्ठित हो गये हैं इसका क्या कारण हो सकता है ?’ ॥ ५९-६१ ॥

इति चिन्तापरक्षासीद्रमसश्च सयुगे ।
वश्य शरवपाणि राघवो रावणोऽसि ॥ ६२ ॥

इस तरह चिन्तामें पड़े होनेपर भी श्रीरुनाथजी युद्ध स्थलमें खन साबधान रहे । उन्होंने रावणकी छानीपर बाणोंकी हाई लगा दी ॥ ६२ ॥

रावणोऽपि तत क्रुद्धो रथस्थो राघवेद्वर ।
गदामुसलरपेण राम प्रत्यदयद् रणे ॥ ६३ ॥

तब रथपर बैठ हुए राघवराज रावणने भी युक्ति कर रणभूमिमें आरामका गन्ध और मूलोंकी घग्नि पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ ६३ ॥

तव प्रयुक्त महद् युद्ध तुमुल रोमहर्षणम् ।
अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमुपनि ॥ ६४ ॥

उम महायुद्धने बढ़ा भयंकर रूप धारण किया । उम

देखते ही गैंगटे खड़े हो जाते थे । वह युद्ध कभी आकाशमें, कभी भूतलपर और कभी-कभी पत्रते शिरपर होता था ॥ ६४ ॥

देवदानयक्षणा पिशाचोरगरक्षसाम् ।
पश्यता तमहद् युद्ध सर्वरात्रमर्जत ॥ ६५ ॥

देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, नाग और राक्षसोंके देखते-देखते वह महान् संग्रामरात्रि रात चलता रहा ॥ ६५ ॥

नैव रात्रि न दिवस न मुहूर्त न च क्षणम् ।
रामरात्रणयोर्युद्ध विराममुपगच्छति ॥ ६६ ॥

भीराम और रावणका यह युद्ध न रातमें बंद होना था

हृत्पापं श्रीमद्रामायणे वासमीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिवाक्य युद्धकाण्डमें एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमः सर्गः

श्रीरामके द्वारा रावणका वध

अथ सस्मरयामास मातली राघव तदा ।
अजानन्नि किं धीर त्वमेनमनुपसे ॥ १ ॥

मातलिने श्रीरघुनाथजीको कुछ याद दिलते हुए कहा—

धीरवर ! आप अनजानकी तरह क्यों इस राक्षसका अनुसरण कर रहे हैं ? (यह जो अस्त्र चलता है, उसके निवारण करने

वाले अस्त्र प्रयोगमान करके रह जाते हैं) ॥ १ ॥

विचृञ्जस्मै यथाप त्वमस्त्र पैतामह प्रभो ।

मिनाशकाल कथितो यः सुरैः सोऽद्य वतते ॥ २ ॥

प्रभो ! आप इनने वचने लिये ब्रह्माजीव अस्त्रका प्रयोग कीजिये । देवताओंने इसके मिनाशका जो समय बताया है, वह अब आ पहुँचा है ॥ २ ॥

तत सस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातले ।

जग्राह स शर दीप्त निद्रसन्तमिरोरगम् ॥ ३ ॥

मातलि इस वाक्यमें श्रीरामचन्द्रजीको उस अस्त्रका स्मरण हो आया । फिर तो उन्होंने पुकारते हुए सर्वत्र समान एक तेजस्वी बाण हाथमें लिया ॥ ३ ॥

य तस्मै प्रथम प्रादाद्रगस्त्वो भगवानृषि ।

प्रहृष्टं महद् व्याणममोघ युधि वीरवान् ॥ ४ ॥

यह वही बाण था, जिसे पहले दाक्षिणाली भगवान् आसत्य ऋषिने रघुनाथजीको दिया था । वह मिनाश बाण ब्रह्माजीका दिया हुआ था और युद्धमें अमोघ था ॥ ४ ॥

प्रहण्णा निर्मित पूषमिन्द्रायममितीजसा ।

दत्त सुरपते पूर्य त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥

अमिन तेजस्वी ब्रह्माजीने पहले इन्द्रके लिये उस बाणका निमाण किया था और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले देवन्द्रका ही पूर्वाश्रयमें अर्पित किया था ॥

और न दिनमें । दो घड़ी अथवा एक क्षणके लिये भी उ विराम नहीं हुआ ॥ ६६ ॥

दशरथसुतपक्षसे द्रयोस्तयो

जैयमनयेक्ष्य रणे स राघवस्य ।

सुरवररथसारथिर्महात्मा

रणरतराममुवाच वाक्यमाशु ॥ ६७ ॥

एक ओर दशरथजुमार श्रीराम थे और दूसरी ओर राक्षसराज रावण । उन दोनोंमेंसे श्रीरघुनाथजीकी युद्धमें वि होती न देख देवराजने सारथि महात्मा मातलिने युद्धपराय श्रीरामसे शीघ्रतापूर्वक कहा— ॥ ६७ ॥

यस्य वाजेषु पत्रन फले पात्रकभास्करो ।
शरीरमाकाशमय गौरवे मेरुमन्दरौ ॥ ६ ॥

उस बाणके वेगमें वायुवी, धामें अग्नि और सूर्यकी शरीरमें आकाशकी तथा भारीपनमें मेरु और मन्दरचलकी प्रतिष्ठा की गयी थी ॥ ६ ॥

जाज्यत्यमान वपुषा सुपुङ्ख हेमभूषितम् ।

तेजसा सवभूताना वृत्त भास्करवर्चमम् ॥ ७ ॥

सधूममिथ कालाग्नि दीप्तमाशीनियोपमम् ।

नरनागाद्वृन्दान्ना भेदन विप्रकारिणम् ॥ ८ ॥

वह सम्पूर्ण भूतोंके तेजसे बनाया गया था । उसके सूर्यके समान ज्योति निरुल्लूखि रहती थी । वह सुपणसे भूषित, सुन्दर वर्णमें युक्त, स्वल्पसे जावत्यमान, प्रलयकालकी धूमयुक्त अग्निके समान भयकर, दीप्तिमान्, विषपर सर्वत्र समान निपेछा, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंको निर्गुण कर डालनेवाला तथा गीमतापुत्रके रूपका भेदन करनेवाला था ॥ ७ ८ ॥

द्वाराणा परिघाणा च गिरीणा चापि भेदनम् ।

नानाकधिरदिग्धाङ्ग मेदोदिग्ध सुदायणम् ॥ ९ ॥

यज्ञसार महान्नाद नानासमितिदायणम् ।

सवविश्रसन भीम इयसन्तमिन्द्र पद्मगम् ॥ १० ॥

कङ्कटध्वजाना च गोमायुगणरक्षसाम् ।

नित्यभक्षप्रद युद्धे यमरूप भयावहम् ॥ ११ ॥

यह बड़े दरवाजों, परियों तथा पयतोंकी भी तोड़-टोड़ देनेकी उसमें दाक्षि थी । उसका साथ शरीर नाना प्रकारके रक्तमें नहाया और चर्चस्ति परिपुष्ट हुआ था । देवनेमें भी यह बड़ा भयंकर था । यज्ञर समान बटार, महान् दण्डने युक्त, अनेकानेक युद्धोंमें शत्रुसेनाका निर्गुण करनेवाला, सबको



रावण-वधपर वानरों का जय-घोष

चास देनेगला तथा पुककारते हुए सर्पके समान भयकर था ।
युद्धमें यह यमराजका भयावह रूप धारण कर लेता था ।
समरभूमिमें कौट, गीध, बगले, गीदड़ तथा पिशाचोंको वह
सदा भय प्रदान करता था ॥ ९-१३ ॥

नन्दन यानरेद्राणा रक्षसामरसादनम् ।
याजित विनिधैर्नाजिश्चारुविधैर्गन्तमत ॥ १२ ॥

यह सायक यानर यूयपतियोंको आनन्द देनेगला तथा
राक्षसोंको दुःखमें डालनेगला था । गरुड़के सुन्दर विविध
और नाना प्रकारक पक्ष लगाकर वह पक्षयुक्त बना हुआ था ।
तमुत्तमेपु नेफनामिक्षातुभयनाशनम् ।
द्विपता कीर्तिहरण प्रहर्षकरमात्मन ॥ १३ ॥
अभिमन्य ततो रामस्त महेषु महायल ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सद्ध कामुके यली ॥ १४ ॥

यह उत्तम बाण समान लोगों तथा इक्ष्वाकुयुगियोंके भय
का नाशक था, शत्रुओंकी कीर्तिका अपहरण तथा अपने
हर्षकी वृद्धि करनेगला था । उस महान् सायकको वेदोंक
विधिसे अभिमन्त्रित करके महाजनी श्रीरामने अपने धनुषपर
रक्ता ॥ १३ १४ ॥

तस्मिन् सधीयमाने तु राघवेण शरोत्तम ।
सर्गभूतानि सनेसुध्वचाल च वसुधरा ॥ १५ ॥
श्रीरुनायनी च उच उत्तम बाणका सधान करने लगे,
तब सम्पूर्ण प्राणी घरा उठे और घसी डोलने लगे ॥ १५ ॥
स रावणाय सक्तुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
त्रिक्षेप परमायत्त शर मर्मविदारणम् ॥ १६ ॥

श्रीरामने अत्यन्त द्रुति हो पड़े यन्त्रे साध धनुषको
पूर्णरूपसे तीक्ष्णकर उस मर्मवेदी बाणको रावणपर चला
दिया ॥ १६ ॥

स ध्वज इव दुर्धरो रश्मिबाहुविस्तर्जित ।
कुलान्त इन चात्रायो यपतद् रावणोरसि ॥ १७ ॥
बल्लभायी इन्द्रक हाथसे छूटे हुए बल्लके समान दुर्धर्ष
और कालके समान अनिर्गम्य वह बाण रावणकी छातीपर
का लगा ॥ १७ ॥

स त्रिषुणे महागेन शरीरान्तकर पर ।
त्रिमेद हृदय तस्य रावणस्य दुरात्मन ॥ १८ ॥
शरीरका अन्त कर देनेगला उस महान् बगशाली भेड़
बाणने छूटते ही दुरामा रावणक हृदयका निदीर्घ कर
दाल ॥ १८ ॥

रथिरास स धेगेन शरीरान्तकर शर ।
रावणस्य हरन् प्राणान् त्रिंश धरणीतल्मम् ॥ १९ ॥
शरीरका अन्त करके रावणक प्राण हर देनेगला वह
बाण उधरे प्लुत रैगधर धेगधूयक धर्तमें समा गया ॥ १९ ॥
स शरो रावण हत्वा रथिरामृततच्छरि ।
रतकमा निभूतवत् स तूर्णो पुनरागिरास ॥ २० ॥

इस प्रकार रावणका वध करने खूने रैग हुआ वह
शोभागाली बाण अपना काम पूरा करनेके पश्चात् पुन विनीत
सेवककी भाँति श्रीरामचन्द्रजीक तरकसमें लौट आया ॥ २० ॥
तस्य हस्ताद्धतस्यानु कार्मुक तत् ससायकम् ।

निपपात सह प्राणैर्ध्रं दयमानस्य जीवितात् ॥ २१ ॥
श्रीरामने बाणोंकी चोट खाकर रावण जीनसे हाथ धो
बैठा । उसके प्राण निरन्त्रेके साथ ही हाथसे सायकगदित धनुष
भी छूटकर गिर पड़ा ॥ २१ ॥

गनासुर्भीमवेगस्तु नैऋतेऽहो महाद्युति ।
पपात स्यन्दनाद् भूमौ धृषो यज्ञहतो यथा ॥ २२ ॥
वह भयानक वेगशाली महातेजस्वी राक्षसराज प्राणहीन हो
बल्लके मारे हुए वृषासुरकी भाँति रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥
त दृष्ट्वा पतित भूमौ हतशेषा निशाचरा ।
हतनाथा भयप्रस्ता सयत सम्प्रदुर्दु ॥ २३ ॥

रावणको पृथ्वीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए सम्पूर्ण
निशाचर स्वामीन मारे जानेसे भयभीत हो सब ओर भाग
गये ॥ २३ ॥

नर्दन्तश्चाभिपेतुस्तान् वारा द्रुमयोधिन ।
दशमीरयध दृष्ट्वा वानर जितकाशिन ॥ २४ ॥
दशमुख रावणका वध हुआ देख विजयमें मुग्धाभित
होनेवाले वानर जो वृक्षोंद्वारा युद्ध करनेगले थे, गम्ना करते
हुए उन राक्षसोंपर दूर पड़े ॥ २४ ॥

अर्जिता यानरेदृष्टैलङ्गामभ्यपतन् भयात् ।
हताश्रयत्वात् करुणेषांप्रपन्नयणैर्मुलै ॥ २५ ॥
उन हर्षोत्फलित वानरोंद्वारा पीड़ित स्थिते जानेपर व
राक्षस भयके मारे लङ्कापुरीकी ओर भाग गये क्योंकि उनका
आश्रय नष्ट हो गया था । उनक मुगपर करुणायुक्त आँसुओं
की धारा बर रही थी ॥ २५ ॥

ततो त्रिन्दु सहस्र वानरा नितकाशिन ।
यदन्तो राघवजय रावणस्य च तद्धृदम् ॥ २६ ॥
उस समय वानर विजय-रथमें मुग्धाभित ॥ अत्यन्त
हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा श्रीरुनायनीकी त्रिव्य और
रावणक वधकी घोषणा करते हुए जेर-जेरसे गम्ना करने
लगे ॥ २६ ॥

अथान्तरिक्षे व्यनद्वा सौम्यस्त्रिंशदुभयि ।
द्विष्यगधरहस्तत्र मास्त सुसुरो ययौ ॥ २७ ॥
इसी समय आकाशमें मयुर स्वरने देवताओंकी दुःखुभियाँ
बजन लगीं । वायु दिव्य मुग्धक त्रिवेरी हुद मन्द मन्द गतिने
प्रगदित होने लगी ॥ २७ ॥

निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तत्रा भुवि ।
किरन्ती राघवस्य दुरायाया मनोहरा ॥ २८ ॥
अन्तरिक्षमें भूतलपर श्रीरुनायनीके रथक ऊपर पृथ्वी
परा हाने लगी, जो दुःख तथा मनःहर थी ॥ २८ ॥

राघवस्तत्रसयुक्ता गगने च त्रिमुश्रुये ।
साधुसांगति वागम्या देवताना महत्तमनाम् ॥ २९ ॥
आनागमे महामना देवताओंके सुपत्ते निकली हुई
श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिसे युक्त साधुवादकी श्रेष्ठ वाणी सुनायी
देने लगी ॥ २९ ॥

आग्निवेश महान् हर्षो देवाना चारणै सह ।
राघवे निहते रौद्रे सवलोकभयकरे ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण लोकोंको भय देनेवाले रौद्र राक्षस रावणके मारे
जानेपर देवताओं और चारणोंको भयान् हर्ष हुआ ॥ ३० ॥
तत सकाम सुग्रीवमङ्गल च विभीषणम् ।

चकार राघव प्रीतो हत्वा राक्षसपुगवम् ॥ ३१ ॥

श्रीसुनायकीने राक्षसरामको यादपर सुग्रीव, अङ्गद तथा
विभीषणको सफलमनोरथ किया और स्वयं भी उन्हें बड़ी
प्रशंसा की ॥ ३१ ॥

तत प्रजग्मु प्रशम मरुद्गणा
दिश प्रसेदुर्विमल लभोऽभवत् ।

मही चकम्पे न च मारुतो घवी

स्थिरप्रभञ्जाप्यभवद् दिवाकरः ॥ ३२ ॥

तापश्चात् देवताओंको बड़ी शान्ति मिली, समूर्ण दिशाएँ

हराएँ श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बुद्धकाण्डेऽष्टाधिराजततम सप्त ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त अपरामायण आदिकाव्यके बुद्धकाण्डमें एक सौ आठवाँ सप्त पड़ा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमः सर्गः

विभीषणका विलाप और श्रीरामका उन्हें समझाकर रावणके अनन्येष्टि-मरकारक लिय आदेश देना

भ्रातर निहत हृद्वा दायान निजित रणे ।

शोकचयेगयरीतात्मा विल्लाप विभीषण ॥ १ ॥

पराजित हुए भार्गवों मरकर रणभूमिमें पड़ा देह
विभीषणका हृदय शाकने बेगमे व्याकुल हो गया और वे
विलाप करने लगे—॥ १ ॥

वीरविमान्त विप्लवान् प्रवीण नयकोविद् ।

महाहृदयनोपेत किं शोवे निहतो मुखि ॥ २ ॥

‘हा विख्यात पराक्रमी वीर भाई दशानन ! हा कथयुगल
नीतिज्ञ ! तुम तो सदा बहुमुख्य विरोधोंपर लोया करते थे,
आज इस तरह मारे जाकर भूमिपर क्यों पड़े हो ? ॥ २ ॥

निक्षिप्य क्षीयै निक्षोषी भुजायद्भवभूषितौ ।

मुकुटेनापभुतेन भास्वराशारवर्वसा ॥ ३ ॥

‘दे वीर ! तुम्हारी ये यावज्जन्ते विभूषित दांतों विशाल
भुजाएँ निक्षेप हो गयी हैं । तुम इन्हीं परस्पर क्यों पड़े हुए हो ?’
तुम्हारे माथेका मुकुट अब सर्वत्र समान तन्मयी है, यहाँ वंका
पड़ा है ॥ ३ ॥

तदिदं वीर सम्प्राप्त यमया धूपमीरितम् ।

याममोहपरीतस्य यत् तत्र दधित तव ॥ ४ ॥

प्रसन्न हो गयो—उनमें प्रकाश छा गया, आकाश निमल हो
गया, पृथ्वीका कँपना बंद हुआ, इना स्वामाविक गतिसे
चलने लगी तथा सूर्यकी प्रभा भी स्थिर हो गयी ॥ ३२ ॥

ततम्बु सुग्रीवनिभीषणाङ्गदाः

सुहृद्दिशिप सहलक्ष्मणस्तदा ।

समेत्य दृष्टा प्रियेन राघव

रणेऽभिराम विधिनाभ्यपूजयन् ॥ ३३ ॥

सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा लक्ष्मण अपने सुहृदोंके
साथ सुदृढ़ श्रीरामचन्द्रजीकी विजयसे बहुत प्रसन्न हुए ।
इसके बाद उन सबने मिलकर नयनाभिराम श्रीरामकी विधिवत्
पूजा की ॥ ३३ ॥

स तु निहतस्त्रिपु स्थिरप्रतिष्ठा

स्वजनवलाभिवृत्तो रणे यभूव ।

रघुलुप्तपुनमन्दनो महौजा

स्त्रिपुशमणीरभिसवृत्तो महेन्द्र ॥ ३४ ॥

शत्रुको मारकर अपनी प्रतिष्ठा पूरा करनेके पश्चात् स्वजनों
सहित सेनासे घिरे हुए महातेजस्वी रघुलुप्तपुनमन्दन श्रीराम
रणभूमिमें देवताओंमें घिरे हुए इन्द्रकी भाँति शोभा पाने
लगे ॥ ३४ ॥

‘वीरवर ! आज तुम्हारे ऊपर यही सफल आकर पड़ा
है, जिसके लिये मैंने तुम्हें पहलेसे ही आगाह कर दिया था
कि तु उस समय काम और मोहने घड़ीभूत होनेके कारण तुम्हें
मेरी बातें नहीं रची यों ॥ ४ ॥

यद्य वर्षात् प्रहस्तो वा नेन्द्रजिज्ञासरे जना ।

न कुम्भकर्णोऽतिरप्यो नातिवायो नरान्तक ।

न स्वयं बहु मन्येयास्तस्योदकोऽयमागत ॥ ५ ॥

‘अहङ्कारके कारण न तो प्रहस्ताने न इन्द्रजितने, न वृक्षों
लेगोंने, न अतिरपी कुम्भकर्णने, न अतिवायने, न नरान्तकने
और न स्वयं तुम्हने ही मेरी बातोंको अधिक महत्त्व दिया था,
उसीका फल यह सामने आया है ॥ ५ ॥

गतः मेतुः सुनीताना गतो धमस्य निग्रह ।

गत सत्यस्य सक्षेप सुहस्ताना गतिगता ॥ ६ ॥

आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमा ।

विप्रभानु प्रशान्ताचिप्ययसायो निहृदाम ।

अस्मिन् निपतिते धीरे भूमौ शस्त्रघृता परे ॥ ७ ॥

‘आज शत्रुकारियोंमें श्रेष्ठ हुए वीर रावणके पराजयी
हमने सुन्दर नीतिपर चढ़नेवाले लेगोंकी मरणा दृष्ट गयी।

धमका मूर्तिमान् विग्रह चला गया, सत्र (बट) के सग्रहका स्थान नष्ट हो गया, सुन्दर हाथ चलानेवाले वीरोंका सहाय चला गया, मृत्यु स्थीवर गिर पड़ा, चन्द्रमा अँधेरेमें डूब गया, प्रज्वलित आग बुझ गयी और साग उल्लाह निरर्थक हो गया ॥ ६७ ॥

किं दोषमिहलोफम्य गतसत्यस्य सम्प्रति ।
रणे राक्षसराज्ञे प्रसुप्त इय पाप्सुषु ॥ ८ ॥
एषभूमिद्वी धूलमें राक्षसशिरोमणि राणके सो जनेसे छेकका आधार और बल समाप्त हो गया । अब यहाँ क्या गज रह गया ? ॥ ८ ॥

धृतिप्रनाल प्रसभाप्रयपुष्प
स्तपोनल शौर्यनियदमूल ।
रणे महान् राक्षसराजवृक्ष
सम्मर्दितो राघवमाहतेन ॥ ९ ॥
हाथ ! धैर्य ही शिवक पते थे, हृत् ही सुन्दर फूल था, तपस्या ही बल और शौर्य ही मूल था, उस राक्षसराज रावण रूपी महान् वृक्षका जाज रणभूमिम भीरुपक्षेन्द्ररूपा प्रचण्ड बाणसे रौंद बाझा ॥ ९ ॥

तेजोनिपाण पुलकशब्दश
कोपप्रसादापरगात्रहस्त ।
इक्ष्वाकुसिंहानगृहीतदेह ।
सुप्त क्षितौ रायणगन्धहस्ती ॥ १० ॥
तेज ही शिवक दाँत थे, वंशपरम्परा ही पृष्ठमाग थी, क्रोध ही नाचके (पैर आदि) अङ्ग थे और प्रसाद ही गुण्ड हण्ड था, वह रावणरूपी गन्धहस्ती आज इक्ष्वाकुयुद्धी भीरुम रूपी सिंहके द्वारा घरीरके निरीध कर दिय जनेसे वृक्षाक लिये स्थीवर छा गया है ॥ १० ॥

पपममोन्साहनिन्मिताचि
निःप्रासधर्म स्वयलप्रताप ।
प्रतापवान् सयति राक्षसाग्नि
निरापितो रामपयोधरेण ॥ ११ ॥
पपक्रम और उल्हाद बिस्फी गन्ती हुई ब्यालओंके समान थे, नि हात ही धूम था और अपना बल ही प्रताप था, उस राक्षस रावणरूपी प्रतापी अग्निको इस समय युद्धस्थल में भीरुमरूपी मेघने बुझा दिया ॥ ११ ॥

सिंहमलाङ्गलूयकुक्षिण
परभिनिद्रधनगन्धश्राह ।
रक्षोवृषद्यापलक्षणचतु
मिनीभ्यगव्याप्रहोऽवसन्न ॥ १२ ॥
पपक्ष एनिक बिस्फी गूँछ, कटुद् और लँग थे, जो शत्रुओंपर विजय पानेवाला था तथा पपक्रम और उल्हाद अद्रि प्रका करनेमें जो पाणुने समान था, चन्द्रमाकूपी ओल तथा जनेसे युक्त वह राक्षसराज रावणरूपी साँड़ महाराज

भीरुमरूपी व्याघ्रद्वारा मारा जाकर नष्ट हो गया ॥ १२ ॥
यदन्त हेतुमद्वाग्य परिदृष्टार्थनिश्चयम् ।

राम शोकसमागिष्टमित्युवाच निर्भीषणम् ॥ १३ ॥
जिम्ने अर्थनिश्चय प्रका हो रहा था, ऐसा सुनिश्चित बात करते हुए आक्रमण निर्भीषणने उस समय भगवान् भीरुमने कहा— ॥ १३ ॥

नाय निनष्टो निष्टोऽपि समरे चण्डिकाक्रम ।
अन्युपगतमहोन्माह पतिनेऽयमदाहित ॥ १४ ॥
विभीषण ! यह रावण समरङ्गणमें अनमय होकर नहीं मारा गया है । इतने प्रचण्ड पराक्रम प्रका किया है, इसका उल्हाद बहुत बड़ा हुआ था । इसे मृत्युने काह मर नहीं पा । यह देवात् रणभूमिमें पराजयी हुआ है ॥ १४ ॥
नैव निनष्टा शोचन्ते मन्त्रधमययन्विता ।

धृष्टिमाशममाना ये निपतन्ति रणाग्निरे ॥ १५ ॥
आ लोग अपने अमृतदयकी इच्छासे क्षत्रियधर्ममें स्थित हो समरङ्गणमें मारे जाते हैं, इस तरह नष्ट होनेवाले लोगोंके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

येन सेन्द्राक्षयो लोकास्त्रासिता युधि धीमता ।
तस्मिन्कालसमायुक्ते न कात्र परिदोषितुम् ॥ १६ ॥
असि बुद्धिमान् वीरने इन्द्रसहित तानों लोकोँको युद्धमें भयभीत कर रक्ता था, वही यदि इस समय कालके अपीन हो गया तो उसके लिये शाक करनेका अवसर नहीं है ॥ १६ ॥
नैकान्तनिजयो युद्धे मृतपूर कदाचन ।
पैरैवा हन्यते वीरः परान् वा हन्ति सयुगे ॥ १७ ॥

युद्धमें किसीको सदा विजय ही निबन मिले, एका पहल भी कभी नहीं हुआ है । वीर पुरुष समामने या ता शत्रुओं द्वारा मारा गया है या स्वय ही शत्रुओंको मार गिराया है ॥ इय हि पूर्वे सद्विद्य गति क्षत्रियसम्भवा ।
क्षत्रियो निहत सत्ये न शोच्य इति निश्चय ॥ १८ ॥

आज रावणको अब गति प्राप्त हुई है, यह पूर्वजालर महापुरुषोंद्वारा बताया गयी उच्चम रति है । क्षान्तृदिका आश्रय लनेवाले वीरोंके लिये तो यह बड़ आदरनी वस्तु है । क्षत्रिय कृतिने रहनेवाला वीर पुरुष यदि युद्धमें मारा गया हो तो वह शोकने योग्य नहीं है यही शास्त्रना सिद्धान्त है ॥ सदैव निश्चय दृष्ट्वा सत्यमाग्याय निजरा ।
यदिहानतर कार्य कल्प्य तदनुमन्ति ॥ १९ ॥

आश्रयके इस निम्नपर विचार कर कल्पित बुद्धिका आशय तब निश्चिन हो जाओ और वर अग्रे बनुच (प्रेन-सम्भार आदि) कार्य करना हो, उसका अनुमतिमें विचार करो ॥ १ ॥

तमुत्तमाग्य विनान्त राजपुत्र निर्भीषण ।
उवाच शोकसन्तो भ्रातुर्द्विमतमन्तरम् ॥ २० ॥
परम पराक्रमी रावणुमार भीरुमक दाल करनेर शक

स्तस्य हृष्ट निमीषणेन उनसे अपने भाइयें लिये हितकर बात कही—॥ २० ॥

योऽयं विमर्दध्वजिभक्षपूज

सुरे समस्तैरपि वासवेन ।

भयन्मात्साद्य रणे विभग्ने

वेलासिवात्माद्य यथा समुद्र ॥ २१ ॥

‘मगान् ! पूर्वाकालमें युद्धके अगस्त्यपर समस्त देवताओं तथा इन्द्रने भी जिते कभी पीछे नहीं हटया था, वही रावण आज रणभूमिमें आपसे टक्कर लेकर उसी तरह शान्त हो गया, जैसे समुद्र अपनी तट भूमितक जाकर शान्त हो जाता है ॥ २१ ॥

अनेन दत्तानि घनीपयेषु

भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्या ।

धनानि मित्रेषु समर्पितानि

वैराग्यमित्रेषु च याचितानि ॥ २२ ॥

‘इसने याचकोंको दान दिये, भोग भोगे और भृत्योंका भरण पोषण किया है । मित्रोंको धन अर्पित किये और शत्रुओंसे वैरका बदला लिया ॥ २२ ॥

एवोऽहिताग्निश्च महातपाश्च

वेदान्त्य कस्मत्तु चाप्यशूरा ।

इत्थार्पे श्रीमद्भारमयणे वाल्मीकीये आदिकाये युद्धकाण्डे नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषारामायण आदिकायके युद्धकाण्डमें पर श्री नवौ मंग पूरा हुआ ॥ १०० ॥

दशाधिकशततमः सर्गः

रावणकी स्त्रियोंका विलाप

रावण निहत श्रुत्वा राघवेण महात्मना ।

अन्तःपुरादग्निनिष्पेत् राक्षस्य शोककशिताः ॥ १ ॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीके द्वारा रावणक मारे जानेका समाचार सुनकर शोकसे व्याकुल हुए राक्षसियों अन्तःपुरसे निरुल पयीं ॥ १ ॥

पायमाणा सुग्रहस्रो वेष्टन्य क्षितिपासुषु ।

विमुक्तपेदय शोकात्ता गात्रे यत्सहता इव ॥ २ ॥

लगावे बारबार मना करनेपर भी वे घसीटी धूलमें लाटने लगयीं थीं । उनमें केश खुले हुए थे और भिन्न पड़के भर गये हो, उन गौओंज समान वे नोकमें आपुर हो रही थीं ॥ २ ॥

उत्तरेण त्रिनिष्पश्य शारेण सह गन्तव्ये ।

प्रविद्यापोधन घोर वित्रिः श्लेषो दत्त पतिम् ॥ ३ ॥

रावणोंने साथ लगाए उठकर दरबारमें निरुलकर गयकर युद्धभूमिमें प्रवेश करके व अपने मरे हुए पतिको लाबने लगीं ॥ ३ ॥

एतस्य यत् प्रेतगतस्य हृत्य

तत् कर्तुमिच्छामि तत्र प्रस्तादात् ॥ २३ ॥

‘यह रावण अग्निहोत्री, महातपस्वी, वेदान्तवेत्ता तथा यज्ञ-यागादि कर्मोंमें श्रेष्ठ शूद्र—यस्य कर्मठ रहा है । अब यह प्रेतभावको प्राप्त हुआ है, अतः अब मैं ही आपसी कृपासे इसका प्रेत-हृत्य करना चाहता हूँ’ ॥ २३ ॥

स तस्य वाक्यै करुणैर्महात्मा

सम्योदित साधु निमीषणेन ।

आश्रययामास नरेऽसूनु

स्वर्गोत्थमाधानमदीनसस्य ॥ २४ ॥

विमीषणके करुणाजनक वचनोंद्वारा अच्छी तरह समझाये जानेपर उदारचेता राजकुमार महत्तमा श्रीरामने उन्हें रावणके लिये स्वर्गादि उत्तम लोकोंमें प्राप्ति करनेवाला अन्त्येष्टि कर्म करनेकी आज्ञा दी ॥ २४ ॥

मरणान्तानि वैराणि निर्बृत्त न प्रयोजनम् ।

क्रियतामस्य सस्कारो ममाप्येष यथा तत्र ॥ २५ ॥

वे बाल—‘विमीषण ! वैर जीवनकालतक ही रहता है । मरणके बाद उस वैरका अन्त हो जाता है । अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है, अतः अब हम इसका सस्कार करेंगे । इस समय यह जैसे तुम्हारे स्नेहका पान है, उसी तरह मेरा भी स्नेहभाजन है’ ॥ २५ ॥

आर्यपुत्रेति यादिन्यो हा नायेति च स्ववशः ।

परिपेतु करधाहा सर्वौ शोणितसर्दमात् ॥ ४ ॥

‘हा आर्यपुत्र ! हा नाथ !’ की पुनार मगयी हुई वे सबकी-सब उन राक्षसियोंमें जहाँ बिना मत्सकके हाथों विछी हुई थी तथा रक्तकी कीटा भर गयी थी, उस ओर गिरी पड़ती मरने लगीं ॥ ४ ॥

ता याप्यपरिपूर्णाक्ष्ये भद्रशोकपराजिता ।

करिष्य इध नर्दनस्य करेण्यो हतपृथया ॥ ५ ॥

उनने नेत्रोंसे आँसुओंकी पाप यह रही थी । वे पतिने शत्रुने वेधुष हा यूथपतिन मारे जानेपर हरिनिर्वोकी तरह करुण क्रन्दन कर रही थीं ॥ ५ ॥

दृष्टुस्ता महाकाय महावीर्य महागुणिम् ।

रावण निहत भूमौ नीलाश्वनरयोपमम् ॥ ६ ॥

उन्होंने महाराज, महाययक्री और महावीर्य रावणको देगा, जो बाणें बोलनेके पेर सा धृवीपर मय पड़ा था ॥ ६ ॥

ता पतिं सहसा दृष्ट्वा क्षयान् रणपाशुषु ।

निपेतुस्तस्य गात्रेषु चिडभा घनलता इव ॥ ७ ॥
 रागमैत्री धृष्टिर्मे पदे हृष्ट अत्र मूलक पतिर सख
 दृष्टि पदेने हा व स्त्री हृष्ट घनकी लताओंक समान उसने
 अङ्गोर पिर पड़ी ॥ ७ ॥

पद्मानात् पण्डित्य काचिदेन करोद् ह ।

चरणी काचिन्नालभ्य काचित् कण्ठेऽप्यलम्ब्य च ॥ ८ ॥

उभयेन कश्चिदपि वदे आदरक साय उभय आश्रित्य
 करे; कश्चिदपि पदङ्कुर और कश्चिदपि लङ्कुर राने लगे ॥

उक्षिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ सुपरिवर्तते ।

हस्तस्य घन दृष्ट्वा काचिमोहमुपगमत् ॥ ९ ॥

कश्चिदपि अन्ती दनों मुझों ऊपर उठा पड़ा था
 कर गिरी और चरणी लगे लगे तथा कश्चिदपि मर हुए

स्वामाहा मुख देवकर मूर्ति हा गयी ॥ ९ ॥

काचिद्देहि शिरा हृन्वा करोद् मुखमोहता ।

आपयन्ती मुख वाप्यस्तु गौरैरिव पडन्त्यम् ॥ १० ॥

कश्चिदपि मनोरम रूपमें लकर उसका मुँह निगलता
 और अवसरोंमें कनकरी मौलि अङ्गुलिओंमें पकड़

मुखादिदृष्ट्वा नालाती हृष्ट दृष्ट कर ले लगी ॥ १० ॥

एवमाता पति दृष्ट्वा रात्रि निहत सुषि ।

शुकुशुबहुधा गोमाद् भूयस्ता पर्येयन् ॥ ११ ॥

इस प्रकार अनन पतिदेवता रात्रिका घलतार नरकर
 निरा देख वे सब कीलक अवतारमें उसे पुकारने लगी और

शकके कारण नाता प्रकाले बिटान करने लगी ॥ ११ ॥

येन शिवासित शनो येन शिवासितो यम ।

येन वैद्यराजो राजा पुष्पक्षेण शिवोक्तिः ॥ १२ ॥

राधावाणाश्रयीणा च सुपाणा च महामनाम् ।

भय येन रणे दृष्ट सौऽप्य हेते रणे हव ॥ १३ ॥

व बर्तौ—हाथ । किन्हीं वनराज और इन्द्रका भी
 भयभीत कर लता था राश्विषाह सुरेका पुष्पक विमान

छीन लिता था तथा गन्धर्व, श्रुतिगो और मन्मथनी
 देवराजोंकी भी सम्मिलित मन प्रदान किया था, वही इनार

मानाथ व्याज इन समग्राङ्गणों में मार बाहर सगर्भ लिय था
 गये हैं ॥ १२ ॥

असुरेभ्य सुरेभ्यो वा पशुभ्योऽपि वा तत्रा ।

भय यो न विनाशति तस्ये मातुषाद् भयम् ॥ १४ ॥

हम । अमुक, बर्ताओं तथा नामोंमें भी भयभीत
 होता नहीं बनने में टर्क आठ मनुष्यने यह मन प्रम

यो न दाप्य सुरैस्तु न यनैनासुरैस्तदा ।

सौऽप्य कश्चिन्नासत्सो मृत्यु मर्त्येन लम्बित ॥ १६ ॥

हम देवराजों मनुष्यों तथा बर्तों लिय भी भयभीत थे,
 वे ही किसी निर्दय प्राणी समान एक मनुष्य हाथने

मृत्युधन प्राप्त हुए ॥ १६ ॥

एव धन्यो रुरुदुस्तस्य ता दु पिता पिय ।

भूय एव च दुःखात्ता विप्रेष्य पुन पुन ॥ १७ ॥

इस तरका याने कसी हृष्ट रात्रिका व दु पिता किसी
 वहाँ कृन्तुनर राने लगे तथा दु राने अत्र रात्र पुन

बारबार विपन्न करने लगे ॥ १७ ॥

अष्टम्यता तु मुह्यता सतत हितरादिनाम् ।

मग्नायाहता सीता राक्षसाश्च निपातिता ।

पता सममित्रीनां ते वयमात्मा च पातिता ॥ १८ ॥

वे बर्तौ—आनाथ । अपने मग पिता याने बर्ताने
 कचे मुह्यता काठे अनसुनी कर दा और अपनी मृत्यु

लिय सीताका अन्तर किया । इनका क व हुना कि व
 रात्र मार लिये गए तथा आपने इस समय अपनेका रा

भूमिमें और हमराजोंका महान दु खर मनुष्यने मग लिया ॥

तुगणोऽपि हित धान्यमिणे भाना निर्भीता ।

हृष्ट परकिनो मोहान् त्वयाऽऽत्मरक्षसिणि ॥ १९ ॥

आप लिय भाई विभीता आका हितकी वन बड़ा
 रई थे ता भी अपने याने वधर लिय गये मनुष्य कृ

वचन सुनाए । उसीका यह क प्रम पितानी दिया है ॥

यदि नियानिता ते स्यात् सीता रामाय मयिना ।

न न स्याद् व्यसन घोरमिन् मूलम् महत् ॥ २० ॥

कचे आन मिथिलपुनारी कलका धामर पात
 लीय दिया होता ता व मूलमिन् इनका पिता करलेना

न महार कृष्ण इन न अना ॥ २० ॥

वृत्तकामो भवेद् भाना रामो मित्रतु भयम् ।

यय चात्रिधरा मया सराना न य रात्र ॥ २१ ॥

धाराको लीय देवर नाम निनाका भी
 मनेय कृष्ण हा अना भीम हमा निनाके ना जव

हम मनुष्य लिय नही हना पद और हमने मनुष्यकी
 कामनाएँ पूरी नहीं हने ॥ २१ ॥

त्वया पुनरशमेन सीता सत्याता रात्र ।

राक्षसा वयमात्मा च प्रय तुन्य निपातिता ॥ २२ ॥

अनु अ एन मित्र निना कि मनुष्य कृष्ण
 कृष्ण लिय तथा मनुष्य हम निनाके न अपने

आना—सीता ना एक मनुष्य लिय निनाके
 दा दिया ॥ २२ ॥

न कामरा का न न रात्रमनुष्य ।

दैव चेष्टयत मयि हन मनुष्य हन्य ॥ २३ ॥

वाल्मीकिने । आना के लिय हा मनुष्य निनाके

कारण हुआ हो। ऐसी बात नहीं है। देव ही सब कुछ करता है। देवका मारा हुआ ही मारा जाता या मरता है ॥ २३ ॥

चलराणा विनाशोऽय राक्षसाना च ते रणे ।

तत्र चैव महागहो दैवयोगादुपागतः ॥ २४ ॥

‘महागहो ! इस युद्धमें वानरोंका, राक्षसोंका और

आपका भी विनाश दैवयोगसे ही हुआ है ॥ २४ ॥

नैरायणं च कामेन विक्रमेण न ब्रह्मया ।

शक्या देवगतिलोके निरर्तयितुमुद्यतः ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे दशविंशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यक युद्धकाण्डमें ण्ड मी दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः

मन्दोदरीका विलाप तथा रावणके शवका दाहसंस्कार

तासां विलपमानानां तदा रामसंयोजितानाम् ।

ज्येष्ठपत्नी प्रिया दीना भर्तार समुद्देहतः ॥ १ ॥

धर्माग्र्यं हतं हृष्टा रामेणाचिन्त्यकर्मणः ।

पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पश्यदेवयत् ॥ २ ॥

उस समय विलाप करती हुई उन राक्षसियोंमें जो रावण की ज्येष्ठ पत्नी पत्नी मन्दोदरी थी, उसने अचिन्त्यकर्म भाग्यान् श्रीरामसे द्वारा मारे गये अपने पति दशमुख रावणको देखा। पतिका उस अवस्थामें देखकर वह वहाँ अत्यन्त दीन प्य दुःखी हो गयी और इस प्रकार विलाप करने लगी—॥ १ ॥

ननु नाम महानाहो तव वैधव्यवानुज ।

कुन्त्य प्रमुखे म्यातुं नश्यत्यपि पुरंदरः ॥ ३ ॥

‘महापुत्र कुबेरके छोट भाई ! महानाहु रावणराज !

अब आप क्रीड करते थे, उस समय इन्द्र भी आपके सामने खड़ा होनेमें भय खाते थे ॥ ३ ॥

श्रपयश्च महान्तोऽपि गन्धमाश्च यदाग्नयः ।

ननु नाम तयोद्देगाद्याराणाञ्च दिशो गताः ॥ ४ ॥

‘धरे-चड़े ‘हृषि, यक्षकी गंधर्वा और चारण भी आपके डरते चारों दिशाओंमें भाग गये थे ॥ ४ ॥

स त्व मातुप्रमाणेण गमेण युधि निर्जितः ।

न व्यपपश्यते राजन् किमिदं राक्षसेभ्यः ॥ ५ ॥

‘वही आप आज युद्धमें एक मानवमात्र रामने पराजित हो गये। राजन् ! क्या आपको इधने लज्जा नहीं आती है।

राक्षसेभ्यः ! कोयि तो उही, यह क्या बान है ? ॥ ५ ॥

कृत्त वैलोक्यमाक्रम्य श्रिया यीर्येण चान्वितम् ।

अग्निपरा जघान त्वा मातुगो यनगोचरः ॥ ६ ॥

‘आपने तीनों लोकोंमें जीतकर अग्निदेव कण्डिकासी और पराजयी बायाया था। आपने ‘गमे से उड़ केना क्रीडने लिये लम्बा रंग था फिर आप-जैसे वीरको एक वनवासी मनुष्यो ने मे मार डाला ? ॥ ६ ॥

‘सत्कारमें बल देनेके लिये उन्मुख हुए देवके विधानको कोई धनसे, वामनासे, पराक्रमसे, आशामें अपना शक्तिसे भी नहीं परत सकता’ ॥ २५ ॥

मिलेपुरेय दीनास्ता राक्षसाधिपयोपितः ।

कुर्य इव दुःखात्वां याप्यपर्याकुलेक्षणा ॥ २६ ॥

इस प्रकार राक्षसराजकी सभी स्त्रियों दुःखसे पीड़ित हो आँखोंमें आँसु भरकर दीनभासे कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं ॥ २६ ॥

मानुषाणामपि चरत कामरूपिणः ।

विनाशस्तथ रामेण सयुगे नोपपद्यते ॥ ७ ॥

‘आप ऐसे देवमें विचरत थे, जहाँ मनुष्योंकी पहुँच नहीं हो सकती थी। आप इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ थे तो भी युद्धमें रामके हाथसे आपका विनाश हुआ यह सम्भव अथवा विश्वासके योग्य नहीं जान पड़ता ॥ ७ ॥ न चैतत् कम रामस्य श्रद्धाधामि यमुमुखे ।

सर्वत समुपेतस्य तत्र तेनाभिमाणम् ॥ ८ ॥

‘युद्धके मुझनेपर सब ओरसे विजय पानेवाते आपकी श्रीरामके द्वारा जो पराजय हुई, यह श्रीरामका काम है— ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता (जब कि आप उन्हें मिर मनुष्य समझते रहे) ॥ ८ ॥

अथवा रामरूपेण हृतान्तं न्यवमागतः ।

माया तत्र विनाशाय विधायामतिनिर्णिताम् ॥ ९ ॥

‘अथवा साक्षात् काल ही अनिर्दिष्ट माया रचकर आपने विनाशके लिये श्रीरामने रूपमें वहाँ आ पहुँचा था ॥ ९ ॥ अयं वासथेन त्व धर्मितोऽसि महायत् ।

वासस्य तु का दक्षिन्त्या द्रष्टुमपि नयुरो ॥ १० ॥

महायत् महावीर्यं देवराष्ट्रं महौजसम् ।

‘महाबली वीर ! अथवा यह भी सम्भव है कि साक्षात् इन्द्रने आपपर आक्रमण किया हा परंतु इन्द्रकी क्या शक्ति है जो युद्धमें ये आपकी आर ओंख उठाकर देख ली सकें क्योंकि आप म बली, भगवत्पुत्री और मरुतेबन्धी देवराष्ट्र थे ॥ १० ॥

ध्यक्त्रेय महत्योगी परमात्मा सत्तान् ॥ ११ ॥

अनादिमध्यनिधनो महत् परमो महान् ।

समम् परमो धाता शश्वत्कनकाधरः ॥ १२ ॥

श्रीरसजगत् नित्यधीरजगत् शाश्वतो धुरः ।

मातुष रूपमाव्याय गिणु स्ययरारम् ॥ १३ ॥

सर्वं परिपुतो देवैरानररमुपागतैः ।

सर्वलोकेदार धीमौल्लोकानां हितकाम्यया ॥ १४ ॥
स राक्षसपराजार देवदानु भयाग्रहम् ।

‘निश्चय ही य भीरुमचन्द्रजी महान् योगी एव सनातन परमात्मा है । इनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है । ये महान्ते भी महान्, अशानाचकारने परे तथा सबको धारण करनेवाले परमेश्वर हैं, जो अपने हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करते हैं, निम्न वक्षःस्थले श्रीवत्सक चिह्न है मगनी लम्बी जिनका कभी साथ नहीं छोड़ती, जिन्हें पण्डा करना स्वया असम्भव है तथा जो नित्य स्थिर एव सम्पूर्ण लोकोके अधीश्वर हैं, उन सत्यपुरुष की मगवान् विष्णुने ही समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे मनुष्यका रूप धारण करके वानररूपमें प्रकट हुए सम्पूर्ण देवताओंके साथ आकर राक्षसोंसहित आपका वध किया है क्योंकि आप देवताओंके शत्रु और समस्त सत्कारक लिये मयकर थे ॥ इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जित त्रिभुवनं त्वया ॥ १५ ॥ स्तब्धिरिय तद् धैरमिन्द्रियैरेव निजित ।

नाथ ॥ पहले आपने अपनी इन्द्रियोंका जीतकर ही तीनों लोकोंपर विजय पायी थी, उस धैर्य का याद रखती हुई ही इन्द्रियोंने ही वध आपसे पण्डा किया है ॥ १५ ॥ यदैव हि जनस्थाने राक्षसैरुभिवृत्त ॥ १६ ॥ खरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुष ।

‘जब मैंने सुना कि जनस्थानमें बहुतेरे राक्षसोंने त्रिहोनेर भी आपके भाई खरको श्रीरामने मार डाला है, तभी मुझे विश्वास हो गया कि भीरुमचन्द्रजी का ही साधारण मनुष्य नहीं है ॥ १६ ॥ यदैव नगरां लङ्का दुष्प्रवेशा सुरैरपि ॥ १७ ॥ प्रविष्टो हनुमान् धीयात् तदैव व्यथिता वयम् ।

‘जिब लङ्का नगरमें देवताओंका भी प्रवेश होना कठिन था, वही जब हनुमान्जी बलपूर्वक घुस आए, उसी समय हमलोग मावी अनेककी आशङ्काने व्यथित हो उठी थीं ॥ त्रियतामरिरोधश्च राघवेणेति यमया ॥ १८ ॥ उच्यमानो न शृणोति तस्यैव पुष्टिरागता ।

‘मैंने बारबार कहा—‘श्रीनाथ ॥ आप खुनायवासे धैर विरोध में कीजिय परंतु आपने मरी बात नहीं मानी । उसीका व्याज बंद फल मिला है ॥ १८ ॥ अस्ताथाभिरामोऽसि सीता राक्षसपुङ्गव ॥ १९ ॥ पेदरपम्य रिनादाय देहस्य सजजनस्य च ।

‘पक्षमया ॥ आपन आपन ऐश्वर्यता, शरीरता तथा स्वस्तीता रिनाय करनर लिय ही अस्मान् सीताकी कामना की थी ॥ १९ ॥ अरुधन्या रिदिशता रोदिष्याद्यापि तुमने ॥ २० ॥ सीता धन्यता मान्या त्वया राक्षसपुङ्गव ।

यसुधाया हि यमुधा धिया श्री भवत्सलाम् ॥ २१ ॥

‘सुखे ! भगन्ता स ग जगन्धी जीर गन्तासे भी बन्कर पतितना है । वे यमुधाकी भी यमुधा और श्रीनी भी श्री हैं । अपने स्वामीक प्रति अनन्य अनुग्रह करनेवाली और सबकी पूजनीया उन सीतादेवीका निरस्तार करन आपने बड़ा अनुत्तिन काय किया था ॥ २० २१ ॥

सीता सजानवचादीमरण्ये विजने शुभाम् ।
आनयित्वा तु तां सीतां छत्रनाऽऽत्मसन्तुषणम् ॥ २२ ॥
अप्राप्य तं चैव काम मैथिलीसगमे वृत्तम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥ २३ ॥

‘प्रेरे प्राणनाथ ॥ सदाशुन्दरी गुमन्तवा सीता निज ननमें निवास करती थीं । आप छलने उन्हें तु लमें डालकर यहाँ हर लये । यह आपके लिय बड़े कलङ्करी बात हुई । मिथिलेशुद्धमारीक साथ समागमने लिये जो आपन मनमें कामना थी, उसे तो आप पा नहीं सक, उल्टा उन पतिव्रता देवीकी तपस्यासे जठकर मस हो गये । अरुध एसी ही बात हुई है ॥ २२ २३ ॥

तदैव यच्च दग्धस्तत्र धन्यस्तनुमध्यमाम् ।
देवा विस्मयति ते सर्वे सेन्द्रा साक्षिपुरोगमा ॥ २४ ॥

‘तन्त्रज्ञी सीताका अपहरण करने समय ही आप बन्कर रख नहीं हो गये—यही आश्चर्यकी बात है । आपकी जित महिमासे इन्द्र और अग्नि आदि सम्पूर्ण देवता आपने उतरे थे, उसीने उस समय आपको दग्ध नहीं होने दिया ॥ २४ ॥ अरुधमेर लभते फल पापस्य कमण ।

‘अर्त पयागते काले कता नास्त्यत्र सशय ॥ २५ ॥
‘प्राणवल्लभ ॥ इसमें कोई संदेह नहीं कि समय आनेपर कताका उठन पापकमरा फल अवश्य मिलता है ॥ २५ ॥ शुभश्चक्षुभमाप्नोति पापघ्नं पापमन्दुते ।

‘विभीषण सुप्त प्रातस्त्व प्रात पापमीदृशम् ॥ २६ ॥
‘गुमर्क करनेवालेरा उत्तम फन्नी प्राति होती है और पापीको पापका फल—दुःख भगन्ता पड़ना है । गमीरगना अपने गुम कमीक कारण ही सुप्त प्रात हुआ है और आपरा एका हुआ मोगना पड़ा है ॥ २६ ॥

सत्यन्या प्रमदास्तुभ्य रूपेणान्यधिरास्तत ।
अनङ्गवदामापन्नस्य तु मोहाग्र पुत्रयस ॥ २७ ॥
‘आपके धर्ममें सीतादेविने भी अधिक सुन्दर स्वरानी दूखी युरितियों मोपड़ हैं परंतु आप कामर योभूत हो मोहवद इस बातका समझ नहीं पत्त था ॥ २७ ॥ न कुलेन न रूपेण न दारिप्येन मैथिनी ।

मयाधिका वा तुन्या या तत् तु मोहाग्र शुद्धयम् ॥ २८ ॥
‘मिथिलेशुद्धमारी सीता न ता ललने ग रूपन और न दारिप्य आदि गुणोंमें ही सुखमें बन्तर है । व भर सार भी नहीं है परंतु अरुध मन्त्राग्र इन बातों धर गी प्यन दते थे ॥ २८ ॥

सवदा सप्रभूताना नास्ति मृत्युरलम्बणः ।

तत्र सत्तदय मृत्युर्मेधिलीकृतलक्षणः ॥ २९ ॥

अपारम कभी किसी भी प्राणीकी मृत्यु अकारण नहीं होती है । इस नियमके अनुसार मिथिलेशकुमारी सीता आपकी मृत्युका कारण रा गया ॥ २९ ॥

सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृत ।

मेधिली सह रामेण त्रिशोका विहरिष्यति ॥ ३० ॥

अत्यपुण्या वह घरे पतिता शोकसागरे ।

आपने सीताने कारण होनेवाली मृत्युको स्वयं ही दूरसे बुला लिया । मिथिलेगनदिनी सीता अब शोकरहित हो श्रीरामके साथ निहार करेंगी परंतु मेरा पुण्य बहुत थोड़ा था, इसलिए वह जल्दी समाप्त हो गया और मैं शोकके घोर समुद्रमें गिर पड़ी ॥ ३० ॥

कैलासे मन्दरे मेरी तथा चैत्ररथे वने ॥ ३१ ॥

देवोद्यानेषु सर्वेषु निहत्य सहिता त्वया ।

विमतेनानुरूपेण या याम्यनुलया श्रिया ॥ ३२ ॥

पद्मती त्रिभिधान् देशास्तास्ताश्चित्ररथगम्वरा ।

अशिता कामभोगेभ्यः सासि वीर उधात्तत्र ॥ ३३ ॥

वीर । जो मैं विचित्र वस्त्राभूषण धारण करके अनुपम शोभासे सम्पन्न हो मनने अनुपम विमानद्वारा आपने साथ कैलास, मन्दराचल, मेरुपर्वत, चैत्ररथ वन तथा सम्युज देवोद्यानोंमें निहार करती हुई नाना प्रकारके देशोंको देखती फिरती थी, वही मैं आज आपरा वध हो जानेसे समस्त कामभोगोंसे वञ्चित हो गयी ॥ ३१—३३ ॥

सैनायेनासि सवृत्ता धिग्राशा चञ्चला श्रियम् ।

हा राजन् सुषुमा ते सुधु सुत्यक्समुन्नमम् ॥ ३४ ॥

कान्तिमीदृशितुमिच्छामि दुयस्त्रिदशकरैः ।

किंकिट्टटोन्वलित ताम्रास्य दीप्तकुण्डलम् ॥ ३५ ॥

मद्व्याकुललेलास भूना यत्पानभूमिषु ।

विनिश्चरन्धर चाद्य नल्लुसितकथं शुभम् ॥ ३६ ॥

तदेवाद्य त्वेन हि यत्नं न भाजते प्रभो ।

राममायननिर्भिन्नं रक्तं रुधिरनिख्यै ॥ ३७ ॥

विशीर्णमेदोमस्तिथं मक्ष सन्दनरेणुभिः ।

मैं वही रानी मन्दोदरी हूँ, किंतु आज दूसरी छीने समान हो गयी हूँ । राजाओंकी चञ्चल राजलक्ष्मीकी धिक्कार है । हा राजन् । आपरा जो सुषुमार सुषुमण्डल सुन्दर भोंछें, मनहर लवचा और ऊँची नाशिरासे युक्त था, कान्ति, शोभा और तन्मय रूप जो ममका चन्द्रमा, सूर्य और कमलराजित करता था, निरीश्वर गमूह जिसे जगमगा बनाय रहत थे, त्रिधर अथर तौरसे समान लाल था, जिसमें दोमिमा सुष्णल दमकन रक्त, पान भूमिम जिसका नेत्र रंगने व्याकुल और चञ्चल था, जो नाना प्रकार का रक्त धारण करता था मनाहर और सुन्दर था तथा

मुस्कराकर मीठी मीठी बातें किया करता था, वही आपका मुखारविन्द आज शोभा नहीं पा रहा है । प्रभो । वह भीरवके साथकोंसे निदीण हो खूनकी धारासे रंगा गया है । इसका मेदा और मस्तिष्क छिन्न भिन्न हो गया है तथा रक्तकी धूलेंसे इसमें रूक्षता आ गयी है ॥ ३४—३७ ॥

हा पश्चिमा मे सम्प्राप्ता दश वैधन्यदायिनी ॥ ३८ ॥

या मयाऽऽसीन्न सख्युद्धा कदाचिदपि मन्दया ।

धाय । मुझ मन्दभागिनीने कभी जिसके विषयमें सोचा

तत्र नहीं था, वही मुझे वैधन्यरा तुल्य प्रदान करनेवाली अन्तिम अवस्था (मृत्यु) आपसे प्राप्त हो गयी ॥ ३८ ॥

पिता दानवराजो मे भता मे राक्षसेश्वर ॥ ३९ ॥

पुत्रो मे क्षत्रनिर्जिता इत्यहं गर्जिता वृद्धाम् ।

दानवराज मय मेरे पिता, राक्षसराज रावण मेरे पति

और इन्द्रपरी भी विजय प्राप्त करनेवाला इन्द्रजित् मेरा पुत्र

है—यह सोचकर मैं अत्यन्त गर्जित मरी रहती थी ॥ ३९ ॥

हस्तारिमयना मूरा प्रख्यातवलपौरुषा ॥ ४० ॥

अकृतशिक्षया नाथा ममेत्यासीमतिर्धुवा ।

भारी यह हठ धारणा बनी हुई थी कि मेरे रक्षक ऐसे

लोग हैं जो दर्पसे मेरे हुए शत्रुओंको मथ डालनेमें समर्थ,

मूर्ख, विख्यात बल और वीर्यसे सम्पन्न तथा किसीसे भी

भयभीत नहीं होनेवाले हैं ॥ ४० ॥

तेषामेवप्रभाषाणा युष्माकं राक्षसप्रभा ॥ ४१ ॥

कथं भयमसमुद्ध मातुषादिदमागतम् ।

राक्षसशिरोमणियो । ऐसे प्रभाषाशाली तुमलोगोंको यह

मनुष्यसे अज्ञात भय किंच प्रकर प्राप्त हुआ ? ॥ ४१ ॥

खिद्येद्वनीलनील तु प्राशौलेपम महत् ॥ ४२ ॥

केयूरकन्दैर्द्वयमुवाहारस्सगुञ्जलम् ।

कान्तं विहारेष्वधिकं दीप्तं सप्राममूमिषु ॥ ४३ ॥

भात्याभरणभाभिषद् विपुट्टिरिव तोयद् ।

तदेवाद्य शरीरं ते तीक्ष्णैर्नकदारैश्चितम् ॥ ४४ ॥

पुनर्दुर्लभसस्पर्शं परिष्वक्तुं न शक्यते ।

जो चित्रने इद्वनील-मणिक समान 'याम, ऊँचे शैल शिखरके समान विद्याल तथा केयूर, अन्नद, नीलम और मोनियोंके हार एवं फूलोंकी मालाओंसे सुसज्जित होनेके कारण अत्यन्त प्रसंगमान दितायी देता था विहार सलोंमें अधिक कान्तिमान तथा सप्राम भूमियोंमें अतिशय दीप्तिमान प्रतीत होता था और आभूषणोंकी प्रभाम जिनकी विपुलाध्यमण्डित मणरीकी शोभा होती थी वही आपरा शरीर आज अनेक तीक्ष्ण बणोंसे भरा हुआ है अब यद्यपि आरने फिर इसका स्पर्श मेरे लिये दुर्लभ हो जायगा, तथापि इन बणोंके कारण मैं हर्षता आनन्दित नहीं कर पायी हूँ ॥ ४२—४४ ॥

भ्याविध शल्लैर्यद्वद् दानैर्लनैर्निरन्तरम् ॥ ४५ ॥
स्वर्पितैर्ममस्तु भृशं सखिप्रक्षापुनर्धनम् ।
द्विती निपतित राजश्रुदयाम वै रुधिरच्छवि ॥ ४६ ॥
वज्रप्रहाराभिहतो विकीर्ण इव पर्वत ।

राजन् ॥ जैसे छादीकी देह काँटोंसे भरी होती है, उसी प्रकार आपके शरीरमें इतने काण लगे हैं कि वहाँ एक अंगुल भी बगह नहीं रह गयी है । ये सभी काण मर्म स्थानोंमें घँस गये हैं और उनसे शरीरका स्नायु-बन्धन उल्लिखित हो गया है । इस आरक्षामें घृष्णीपर पड़ा हुआ आपका यह स्वाम शरीर, जिसपर रक्तकी जड़ण छटा छा रही है, वज्रकी मारसे चूर चूर होकर निखरे हुए पत्रके समान जान पड़ता है ॥ हा स्वप्न सत्यमेवेदं त्व रामेण कथं हतः ॥ ४७ ॥ त्व मृत्योरपि मृत्यु स्याः कथं मृत्युपक्ष गत ।

नाथ ॥ यह स्वप्न है या सत्य । हाय । आप श्रीरामके हाथसे कैसे मारे गये । आप तो मृत्युकी भी मृत्यु थे, फिर स्वप्न ही मृत्युके अधीन कैसे हो गये ॥ ४७ ॥
त्रैलोक्यपशुभोक्तारं त्रैलोक्योद्वेगदं महत् ॥ ४८ ॥
जेतारं लोकपालानां क्षेप्तारं शक्रस्य च ।
क्षतानां निग्रहीतारमात्रिण्डुतपराक्रमम् ॥ ४९ ॥

आपने तीनों लोकोंकी सम्पत्तिका उपयोग किया और त्रिलोकीने प्राणियोंको महत् उद्वेगमें डाल दिया था । आप लोकपालोंपर भी विजय पा चुके थे । आपने कैलाश पर्वतके साथ ही भगवान् शङ्करको भी उठा लिया था तथा बड़े बड़े अभिमानी वीरोंको युद्धमें बंदी बनाकर अपने पणकमरो प्रमद किया था ॥ ४८ ४९ ॥

लोकशोभयितारं च साधुभूतविदारणम् ।
ओजस्ता दृष्टमाश्रयानां वृत्तारं रिपुनिधी ॥ ५० ॥

आपने समस्त सत्तारको क्षोभमें डाला, साधु पुरुषोंकी हिला की और शत्रुओंके समीन बन्धूवक अहंकारपूर्ण बातें कही ॥ ५० ॥

स्वयूषभृत्यगोसारं हन्तारं भीमकर्मणाम् ।
हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च सहस्रशः ॥ ५१ ॥

भयानक पराक्रम करनेवाले निरिन्द्रियोंके मारकर अपने पक्षके लोगों और सेवकोंकी रक्षा की । दानवोंके सरदारों और हजारों यक्षोंकी भी मौतने पाट उगायी ॥ ५१ ॥

निगताश्रयानां निग्रहीतारमाहये ।
नैकपशुरिलोसारं शतारं सज्जनस्य च ॥ ५२ ॥

आपने समपन्नणमें निगताश्रय नामक दानवोंका भी दमन किया, शत्रुतसे यश नष्ट कर डाले तथा आत्मीयवर्गोंकी रक्षा की ॥ ५२ ॥

धर्मव्यवस्थामेत्तारं मायाछायाःमाहये ।
देवासुरनुकन्यानामाहताः सतस्ततः ॥ ५३ ॥

आप धर्मकी व्यवस्थाको ठोड़नेवाले तथा समाप्तमें माया

की सृष्टि करनेवाले थे । देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी कन्याओंको इधर उधरसे हर लाते थे ॥ ५३ ॥

शत्रुहारीशोकदातारं नेतारं सज्जनस्य च ।
लङ्काद्वीपस्य गोसारं कतारं भीमकर्मणाम् ॥ ५४ ॥

अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिना धरम् ।
एवमभाव भतारं दृष्ट्वा रामेण पातितम् ॥ ५५ ॥
स्थिरासिं या देहमिमं धारयामि हतप्रिया ।

आप शत्रुकी जियोंको शोक प्रदान करनेवाले, स्वर्गोंके नेता, लङ्कापुरीके शहर, भयानक कर्म करनेवाले तथा हम सब लोगोंको कामभोगाना सुख देनेवाले थे । ऐसे प्रभावशाली तथा रथियोंमें श्रेष्ठ अपने प्रियतम पतिको भीरुमचन्द्रजीके द्वारा घराशायी किया गया देखकर भी जो मैं अत्यन्त इस शरीरको धारण कर रही हूँ, प्रियतमके मारे जानेपर भी जी रही हूँ—यह मेरी पाण्डित्यदयलका परिचायक है ॥ ५४ ५५ ॥
शयनेषु महाहेषु शयित्वा राक्षसेभ्यः ॥ ५६ ॥
इह कस्मात् प्रसृप्तोऽसि धरण्या रेणुमुत्थितः ।

प्राञ्चराव । आप तो बहुमूल्य पल्लवोंपर शयन करते थे, फिर यहाँ घरतीपर धूलिमें लिपटे हुए क्यों सो रहे हैं ॥ ५६ ॥
यदा मे तनय शस्त्रो लङ्कमण्णेन द्रजिह्व युधि ॥ ५७ ॥
तदा त्वभिहता सीममद्य त्वस्मिन् निपातिता ।

जब लङ्कमण्णेन युद्धमें मेरे बेटे इन्द्रजिह्वके मार्ग था, उस समय मुझे गहव आघात पहुँचा था और आज आपका वध होनेसे तो मैं मार ही डाली गयी ॥ ५७ ॥

साह ययुजनेहोना हीना नाथेन च त्वया ॥ ५८ ॥
निहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वती समा ।

अब मैं वयुजनोंसे हीन, आप जैसे स्वामीसे रहित तथा कामभोगोंसे वञ्चित होकर अनन्त वयोंतक शोकमें ही डूबी रहूँगी ॥ ५८ ॥

प्रपन्नो दीर्घमेषान् राजन्नयं सुदुर्गमम् ॥ ५९ ॥
नय मामपि दुःखार्तो न पणिष्ये त्वया जिना ।

प्राञ्चर । आज आप जिस अत्यन्त दुर्गम पक्ष में निगल मार्गपर गये हैं, वहीँ मुझे दुःखियोंको भी ले चलिम् । मैं आपसे बिना वीर्यित नहीं रह सकूँगी ॥ ५९ ॥

कस्मात् त्वं मा विहायेह रूपणा गनुमिच्छसि ॥ ६० ॥
दीना विलपनीं मन्दा किं च मा नाभिभारसे ।

हाय ॥ मुझ अवस्थाको यही छोड़कर आप क्यों अन्यत्र चला जाना चाहते हैं ! मैं दीन अभागिनी होकर अपने लिये रो रही हूँ । आप मुझसे चले क्यों नहीं ॥ ६० ॥
दृष्ट्वा न खल्वभिपुद्गो मामिदं शनमुत्थितम् ॥ ६१ ॥
निगता नगरद्वारात् पद्भ्यामेगता प्रभो ।

प्रभो ॥ आज मेरे मुखपर पृथक् नहीं है । मैं नगर-द्वारमें पैदल ही चक्कर मारूँ आपी हूँ । इस दशामें मुझे देखकर आप क्रोध क्यों नहीं करते हैं ॥ ६१ ॥

पदयेष्टदार दागस्ते भ्रष्टलज्जायुगुणान् ॥ ६२ ॥
वहिरिन्पितितान् स्वान् यथ दृष्ट्वा न कुप्यसि ।

‘आप अपनी स्त्रियो मे वहा प्रेम करते थे । आज आपकी सभी स्त्रियो लाज छोड़कर, परदा हटाकर बाहर निकल आयी हैं । इन्हें देखकर आपको श्राप क्यों नहीं होता ? ॥ ६२ ॥
अथ श्रीडासहायस्तेऽनाथो लालप्यते जन ॥ ६३ ॥
न चैनमाभ्यासपतिं किं धा न बहुमन्यसे ।

‘नाथ ! आपकी श्रीडासहचरी यह मन्दोदरी आज अनाथ होकर विलाप कर रही है । आप इसे आवाहन क्यों नहीं करते अथवा अधिक आदर क्यों नहीं करते ? ॥ ६३ ॥
याम्बव्या विधवा राजन् कृता नैका कुलपित्रिय ॥ ६४ ॥
पतिव्रता धर्मरता गुदगुधूपणे रता ।
ताभि शोभाभितताभि शप्त परवशा गत ॥ ६५ ॥
त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तस्तथागतम् ।

‘युवन् । आपने बहुत सी कुलस्त्रियाओ को, जो गुरुजनों की सेवा में गयी रद्दनेवाड़ी, धर्मपरायणा तथा पतिव्रता थीं, विधवा बनाया और उनका अपमान किया था, अतः उस समय उन्होंने शोकसे सतत होकर आपको श्राप दे दिया था, उहीका यह कह है कि आपकी शत्रु एवं मृत्युके अधीन होना पड़ा है ॥ ६४ ६५ ॥

प्रसाद सत्यमेवाय त्वा प्रति प्रायसो नृप ॥ ६६ ॥
पतिव्रताना नाक्षसात् पतन्त्यभृण्णि भूतले ।

‘महाराज ! पतिव्रताओं ने औसू इस घृणीपर व्यय नहीं गिरत, यह कहास्त आपके ऊपर प्राय ठीक ठीक पड़ी है ॥ ६६ ॥

कथं च नाम ते राज्ञोऽहोफानाप्रत्यय तेजसा ॥ ६७ ॥
नारीवीर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौण्डीयमानिन्य ।

‘राजन् ! आप तो अपने तेजसे तीनों लोहोंको आक्रमण करते अपनेको पड़ा धुरवीर मानते थे कि भी वरुणी स्त्रीका सुरागेका यह नीच काम आपने कैसे किया ? ॥ ६७ ॥

अपनीयाधमाद् राम यन्मृगच्छद्वाना त्वया ॥ ६८ ॥
मानीता रामपत्नी सा अपनीय अ लक्ष्मणम् ।

‘भामायण मृगच वदने श्रीरामको आभ्रमसे दूर हटाया और लक्ष्मणको भी अलग किया । उराक बाद आप श्रीराम पत्नी सीताको चुपकर यहाँ ल आये यह भिन्नी बड़ी कायता है ॥ ६८ ॥

कास्ये च न ते युद्धे कदाचित् ससराम्यहम् ॥ ६९ ॥
तत् त्व भाग्यविपयासानून ते पक्षलक्षणम् ।

‘युद्धमे कभी आपने कायता दितानी हा, यह युद्धे काद नहीं पड़ता परंतु आपने चेस्ते उस दिन सीताका हण करने समय निश्चय ही भाग्यमें कायता आ गयी थी, वो आपने निरु विनाग्री सूचना दे रही थी ॥ ६९ ॥

अनीनामागतयो वर्तमानविग्रहण ॥ ७० ॥

मैथिलीमाहता दृष्ट्वा ध्यात्वा नि स्वस्य चायतम् ।
सत्ययाक् स महाबाहो देवरो मे यद्व्रणीत् ॥ ७१ ॥
अथ राक्षसमुख्याना विनाशं प्रत्युपस्थित ।

‘महाबाहो ! मेरे देवर विभीषण सत्यवादी, भूत और भविष्य व शाता तथा वर्तमानरो भी समस्तनेम कुशल हैं । उन्होंने हरकर लयी हुई मिथिलेसुदुमारी मीनाको देवकर मन ही मन कुछ निचार किया और अतमें लड़ी सों छोड़कर कहा- अब प्रधान प्रधान राक्षसोंके विनाशका समय उपस्थित हो गया है । उनकी यह बात ठीक निरसी ॥ ७० ७१ ॥

काममोघसमुत्थेन यत्नेन प्रसङ्गिना ॥ ७२ ॥
निवृत्तस्त्वहृतेनाथ सोऽय मूलहरो महान् ।
त्वया कृतमिदं सर्वमनाथ राक्षस कुलम् ॥ ७३ ॥

‘राम और शत्रुसे उत्पन्न आपने आसक्तिवियक दोषके कारण यह सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया और बड़मूलाका नाश करनेवाला यह महान् अनर्थ प्राप्त हुआ । आज आपने समस्त राक्षसकुलसे अनाथ कर दिया ॥ ७२ ७३ ॥

नहि त्व शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपीठप ।
स्त्रीसम्भावात् तु मे बुद्धिः कावश्ये परिवर्तते ॥ ७४ ॥

‘आप अपने बल और पुकारार्थके लिये विख्यात थे, अतः आपके लिये शाक करना सर लिये उचित नहीं है, तथापि स्त्रीसम्भावके कारण मेरे हृदयमें दीनता आ गयी है ॥
सुकृत दुष्कृत च त्व गृहीत्या स्वा गतिं गत ।
आत्मानमनुशोचामि त्वद्विनाशेन दुःखिताम् ॥ ७५ ॥

‘आप अपना पुष्प और पाप साथ लेकर अपनी कीरेचित गतिके प्राप्त हुए हैं । आपके विनाशसे मैं महान् दुःखमें पड़ गयी हूँ । इसलिये शरणाद अपने ही लिये शोक करती हूँ ॥ ७४ ॥
सुहृदा हितममाना न भुत यत्न त्वया ।
आवृणा सैव कास्त्वेन हितमुक्त दशानन ॥ ७६ ॥

‘महाराज दशानन ! हित चाहनेवाले मुद्रों तथा कपुओं ने जो आपसे सम्पूर्ण हितरी बातें कही थीं, उन्हें आपने अनसुनी कर दिया ॥ ७५ ॥

हेत्वर्गयुक्तं त्रिभिर्नवच्छेयस्वमदादणम् ।
त्रिभीरणेनाभिहितं न ह्यन हेतुमत् त्वया ॥ ७७ ॥

‘त्रिभीरणका कथन भी युक्ति और प्रयोजनसे पूर्ण था । त्रिभिर्गुरुक आपने सामने प्रस्तुत किया गया था । वह कल्याणकारी था या ही, बहुत ही सौम्य भावोंके बहा गया था किन्तु उर युक्तिपुन शान्त भी आपने नहीं माना ॥ ७७ ॥

मारीचकुम्भगणाभ्या याम्य मम पितृसत्या ।
न ह्यत धीयमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम् ॥ ७८ ॥

‘आप अपने शत्रुसे धमधम मतराते हो रहे थे अन् मारीच, कुम्भरज तथा मेरे वितारी बड़ी दुःख बात भी आपने नहीं मानी । उसीय यह ऐसा फल आपको प्राप्त हुआ है ॥

नीलज्जीमूनसकाना पीताम्बर नृपाह्वय ।

न्यामाप्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे यथिरावृत ॥ ७९ ॥

प्राणनाथ । आपरा नील मनः समान न्याम वण है । आप शरीरपर पीत वस्त्र और बोंहोंमें सुन्दर बाण्डूद घाण्ड नयेवाल है । आज खूने लयपथ हा अपने शरीरका स्र और ठितकर यहाँ क्यों सो रहे है ? ॥ ७९ ॥

प्रभुम् इव शोनातां किं मा न प्रतिभापसे ।

मैं गोकेने पीछित हा रही हूँ और आप गन्धी नईदमें छापे हुए पुरुषकी मॉनि मरी बालका बजाव नहीं दे रहे हैं । नाथ ! एसा क्यों ॥ रहा है ! ॥ ७९ ॥

महार्थस्य दक्षस्य सद्युष्यपलायिन ॥ ८० ॥

यातुधानस्य द्वौहिर्गो किं मा न प्रतिभापसे ।

मैं महान् पराजयी : सुदबुजाल और समरभूमिसे पीठ न हटनेवाले मुमाली नामक राजपट्टी दोहिर्गो (त्विनी) हूँ । आप मुझने बल्लते क्यों नहीं हैं ? ॥ ८० ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे नवे परिभवे एते ॥ ८१ ॥

अथ वै निर्भया लङ्का प्रविष्टा स्युरधमय ।

राक्षसराज ! उठिये, उठिये । श्रीरामके द्वारा आपरा मृतन परामन किता गया है ता भी आप सो कैसे रहे हैं ? जान ही ये सूर्यकी किरणें लङ्कामें निर्भय हाकर प्रविष्ट हुई हैं ॥ ८१ ॥

येन सूर्यसे शत्रुन समरे स्युरधमय ॥ ८२ ॥

रज वज्रधरस्येन मोक्ष्य ते सतताचित ।

रणे बहुप्रहरणो हेमनालपरिप्लव ॥ ८३ ॥

परिघो व्यनर्गणसे वाणैरिच्छा सहस्राधा ।

भरार ! आप समरभूमिमें किं सूर्यतुल्य तेजस्वी परियर द्वारा शत्रु-जैका छहार किया करते थे, वज्रपायी इन्द्र वज्रकी मॉति नो वदा थापक द्वारा पूजित हुआ था, रणभूमिमें बहुदृष्ट्यर शत्रुओंन प्राण लेनगाला था और जिने सेनेकी जयधने निर्मुलिन किता गया था, आपरा वह परिघ श्रीरामन वाणोंसे छहलौं डुकनोमें निमल हाकर इधर-उधर बिखरा पड़ा है ॥ ८२ ८३ ॥

प्रियामिरोपसगृह्य किं एते रणमेदिर्नाम् ॥ ८४ ॥

अप्रियामिउ वससाध मा ने अयमभिभातिगुम् ।

प्राणनाथ । आप अपनी प्यारी पत्नीकी मॉनि रणभूमिका अखिलन करन क्यों सा रहे हैं और किं कारणनेमुसे अग्रिय री मनकर मुगत बल्ला तक नहीं चाहत हैं ? ॥ ८४ ॥

धिगस्तु हृदय यस्या ममेद न सहस्रधा ॥ ८५ ॥

त्यपि पञ्चत्वमापन्ने पल्लते योक्षपीडितम् ।

अपनी मल्ल हा रनेसर भी नरे नाकादिन हृदयन हृदयी टुकड नहीं हो जात अत मुन वससाध मा नारासा धिगर है ॥ ८५ ॥

इत्येय विलपन्ती सा वाणपपावुलेक्षणा ॥ ८६ ॥

स्नेहोपसगृह्य तदा मोहमुपगमन् ।

कदमलाभिहता सद्या यमौ सा रावणोरसि ॥ ८७ ॥

सध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता त्रिमुदिगोन्मला ।

इस प्रकार नित्यप करती हुई मन्दादधन नेत्रोंमें आँसु भर हुए थे । उसका हृदय लेहने द्रवीभूत हा रहा था । वह खली-खली सहस्र मूर्च्छित हा गयी और उसी अवस्थामें रावणकी छातीपर गिर पयी । रावणन वध सत्पर मन्देदीपीरी गैली हा सोभा हा रगी थी, जने सध्याकी लक्ष्मीने गैने हुए बादलमें दीप्तिमती विवृत् चमक रही हो ॥ ८६ ८७ ॥

तथागता समुत्थाप्य सपन्त्यस्ता भृशानुता ॥ ८८ ॥

पयस्यापयामास हन्त्यो रुदतां भृशम् ।

उसकी सौतें भी शक्तीने अत्यन्त आतुर हो रहा थी, उन्होंने उसे उस अवस्थामें देखकर उठायो और स्वयं भी रने-रने कर-करने गिलन करती हुई मन्दादीपीरी धीरब बैसाया ॥ ८८ ॥

किं ते न विदिता देवि लंकाया स्थितिरधुना ॥ ८९ ॥

दशाभिभागपयाये राग वै चञ्चला धिय ।

वे सोली—प्रहायनी ! क्या आप नहीं जानती कि सवार का म्बल अक्षिर है । दशा बदल बनेवर राणाओंकी लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती ॥ ८९ ॥

इत्येगमुच्यमाना सा सशब्द प्रहणेद ह ॥ ९० ॥

क्षपयन्ती तन्मन्त्रेण सतनौ धनम् मुनिमलम् ।

उनक एसा कहनेपर मन्दादीरी पूर-पूरर रने लगी । उस समय उसके दोनों सन और उन्म मुन आँसुओंने नहा टा थे ॥ ९० ॥

एतस्मिन्तरे गमो विभीषणमुग्राय ह ॥ ९१ ॥

सस्फार नियता भ्रातु स्त्रीणां परिगलान्यताम् ।

इसी समय श्रीरामचन्द्रजीन विभीषणने व्हा—इन स्त्रियों को वैश्य बैसाओ और अपने माइरा हा सस्फार कर ॥ ९१ ॥

तमुग्राय ततो धीमान् विभीषण इदं वच ॥ ९२ ॥

विमृश्य शुद्धया प्रवित्र धमायसहित हितम् ।

वह मुनकर बुद्धिमान् विभीषणन (श्रीरामनका अभिभाव जाननेर उद्देश्यस) बुद्धिने सच विचारकर उनने स धर्म और अर्थने मुक्त गिनवण तथा गिनकर बन पनी—॥ ९२ ॥

त्यनधमयत प्रर नृत्तममनृत तथा ॥ ९३ ॥

नाहमहामि मस्कर्तु परगताभिमानम् ।

भगवन् ! डिहने धन और वगवराता गता कर दिया था, सा पूर निरर्थी, अक्षयवनी तथा गता, स्त्रीका स्वर्ग करनेवला था, उन्म हाहस्यर गता मैं उगित नहीं समझन हूँ ॥ ९३ ॥

आवृत्तौ हि मे दातुरस्य स्यादहित मत् ॥ ९४ ॥

गणनो नाहते पूजा पूज्योऽपि शुभगतेनान् ।

वदत अहितने सत्पररने गता स गता भाईरने

मेघ दायु था । यद्यपि व्येष्ट होनेते गुरुकनोचित गौरवके कारण
बह मेघ पूज्य था; तथापि बह मुहते छकार पाने योग्य नहीं
है ॥ १४३ ॥

चुदास इति मा राम वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ॥ १५ ॥
श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यन्ति सुहृत् पुन ।
‘श्रीराम । मेरी यह बात सुनकर संस्कारके मनुष्य मुझे

मूर अवश्य कहेंगे, परंतु जब रावणने दुर्गुणोंकी भी सुनैगे,
तब सब लोग मेरे इस विचारको उचित ही बतावेंगे ॥ १५ ॥
तत्पुन्या परमभीतो रामो धर्मभृता पर ॥ १६ ॥
निभीपणमुनाचेद् धारम्यक्ष चाप्यकोविद् ।
यह सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न

हुए । वे बातचीत करनेमें बड़े प्रीण ये अत बातका
अभिप्राय समझनेवाले निभीपणने इस प्रकार बोले— ॥ १६ ॥
तथापि मे प्रिय कार्यं त्वत्प्रभावा मया जितम् ॥ १७ ॥
अवश्य तु क्षम वाच्यो मया त्व राक्षसेश्वर ।
‘राक्षसराज । मुझे तुम्हारा भी प्रिय करना है, क्योंकि

तुम्हारे ही प्रभावसे मेरी जीत हुई है । अवश्य ही मुझे तुमसे
उचित बात कहनी चाहिये अत मुने ॥ १७ ॥
अधमानृतसयुक् काम त्वेय निशाचर ॥ १८ ॥
तेजस्वी बलशालिन्द्र समामेषु च नित्यश ।
‘यह निशाचर भले ही अधर्मी और अव्ययादी रहा हो

परंतु समाममें सदा ही तेजस्वी, बलवान तथा शूरवीर रहा
है ॥ १८ ॥
शतशतमुल्लेखैश्च श्रूयत न पराजित ॥ १९ ॥
महात्मा बलसम्पन्नो राज्ञो लोकरावण ।
‘सुना जाता है—ब्रह्म आदि देवता भी इसे पराजित नहीं

कर सके थे । सम्म लोकोंको बलनेवाला राजा बल पराक्रमसे
सम्पन्न तथा महामनस्वी था ॥ १९ ॥
मरणान्तानि वैराणि निवृत्त न प्रयोजनम् ॥ २० ॥
म्रियतामस्य सस्कारो ममाप्येष यथा तव ।
‘वैर मरनेतक ही रहता है । मरनेक बाद उसका अन्त

ही जाता है । अब हमारा प्रयत्न भी विद्वद् ही चुका है, अत
इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेघ भी है
इत्येवै इत्यादि दाहवकार कये ॥ २० ॥
रथत्सकाशा महायाहो मस्कार विधिपूर्वकम् ॥ २० ॥
क्षिप्रमर्हति धर्मैः स यतोभाग भविष्यति ।
‘मनवादा । धर्मक अनुसार राजा तुम्हारी अस्ति नीध

ने विधिपूर्वक दाह-संस्कार प्राप्त करनेके योग्य है । ऐसा करनेसे
न पाप भागी होअंगे ॥ २० ॥
यस्य च ध्याया त्वरमाणो निभीपण ॥ २० ॥
कारयितुमारोहे आतत राज्ञ हयम् ।
‘भीरमचन्द्रजीने इस वचन पर सुनकर निभीपण मुझे

मारे गये अपने भाई रावणके दाह-संस्कारकी श्रीमतापूर्वक
तैयारी करने लगे ॥ २० ॥
स प्रविश्य पुरीं लङ्का राक्षसेन्द्रो निभीपण ॥ २० ॥
रावणस्याग्निहोत्रं तु निवापयति सत्वरम् ।
राक्षसराज निभीपणने लङ्कापुरीमें प्रवेश करने रावणके

अग्निहोत्रको भीम ही विधिपूर्वक समाप्त किया ॥ २० ॥
शङ्कटान् वायरूपाणि अग्नीन् धैर्यकास्तथा ॥ २० ॥
तथा चन्दनकाष्ठानि पाष्ठानि विविधानि च ।
अगरूणि सुगन्धीनि गन्धाश्च सुदुर्भास्तथा ॥ २० ॥
मणिमुक्ताप्रयालानि निर्यापयति रावणस्य ।
इसक बाद शङ्कट, लङ्का, अग्निहोत्रकी अनियाँ, यक्ष

कणनेवाले पुरोहित, चन्दनकाष्ठ, अन्य विविध प्रकारकी
लकड़ियाँ, सुगन्धित अगरू, अन्यान् सुन्दर गन्धयुक्त पदार्थ,
मणि, मोती और मृग—इन सब वस्तुओंसे उन्होंने एकत्र
किया ॥ २० ॥
आजगाम मुहूर्तेन राक्षसैः परिचारित ॥ २० ॥
ततो माल्यगता सार्धं ब्रियामेव चकार स ।
‘कि दो ही पक्षीमें राक्षसोंने विदे हुए वे भीम यहाँसे

चले आये । तदनन्तर माल्यवान् साथ मिलकर उन्होंने दाह
संस्कारकी तैयारीका कार्य पूरा किया ॥ २० ॥
सीवर्णो शिविकादिभ्यामारोप्य सौमनाससम् ॥ २० ॥
राज्यं राक्षसाधीशमश्रुयणमुत्ता द्विजा ।
‘वर्णयौनेश्च विविधे स्तुतद्विधाभिवाञ्जितम् ॥ २० ॥
निष्ठरा अभिमान्द न किया था; राक्षसराज रावण उक्त श्वरो

पश्चात् राक्षसजातीय ब्राह्मण वहाँ नेचोंसे आँखें बहाते हुए
सखे हो गये ॥ २० ॥
पताकाभिश्च त्रिचाभि सुमनोभिश्च विचिताम् ।
उत्क्षिप्य शिविका ता तु निभीपणपुरोगमा ॥ २० ॥
दम्निषाभिमुत्ता सर्वे शृष्ट काष्ठानि मेजिते ।
उक्त निविशको विविध पतारोंमें तथा धूम्रोंसे सज्जा

गया था । जिससे वह विविध घोषा धारण करती थी ।
विभीपण आत् राक्षस उसे बंधेपर उठाने तथा अन्य सब
लोग हाथमें सूरे काट लिख दक्षिण दिशामें दग्धानश्रुति
अंगयो दीप्यमानास्ते तदाभ्युत्समीरिता ॥ २१ ॥
शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात् तस्य त ययु ।
ययुर्नीय वाक्त्रोदाय दायी जाली हुई विविध अनियाँ

प्रजलि हो उठीं । वे सब गुच्छमें रस्ती हुई थी और
पुरोहितगण उन्हें देख गये आगे आगे रहे वे ॥ २१ ॥
अन्त पुराणि सयाणि रुदमानानि सरारम् ॥ २१ ॥
शृष्टोऽभ्युत्सुस्तानि प्रवमानानि सयत ।
‘अन्त पुराणि सयाणि रुदमानानि सरारम् ॥ २१ ॥
शृष्टोऽभ्युत्सुस्तानि प्रवमानानि सयत ।

अन्त पुरकी सारी क्षिप्तौ गेती हुई छूट ही 'गुके पीछे
पोछे चल पड़ी। वे सब ओर लड़खड़ाती चलती थी १११३
रावण प्रयत्ने देदो स्थाप्य ते भृशदु खिता ॥ ११२॥
चिता चान्नकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः ।

ग्राह्यथा सज्जयामासु राक्षसास्तरणावृताम् ॥ ११३॥
आगे आकर रावण ने विमानको एक पवित्र स्थानमें रख
कर अत्यन्त दुखी हुए विभीषण आदि राक्षसोंन मलयचन्दन
काष्ठ, पद्मक, उशीर (लस) तथा अन्य प्रकारके चन्दनों
द्वारा वेदोक्त विधिसे चिता बनायी और उसने ऊपर खु
नामक मृगना चर्म बिछाया ॥ ११२ ११३ ॥

प्रचक्षु राक्षसेन्द्रस्य पितृमेघमनुचमम् ।
येदि च दक्षिणामार्चौ यथास्थानं च पात्रकम् ॥ ११४॥
पुष्पाद्यग्नेन सम्पूर्णं क्षुध स्फुट्ये प्रचिक्षिपु ।
पादयो शकट प्रापुर्लक्ष्योद्धूलुःखं तदा ॥ ११५॥

उसने ऊपर राक्षसराजके शवको मुलाकर उठाते उत्तम
विधिसे उमरा पितृमेघ (दाहस्वार) किया । उन्होंने चिता
के दक्षिण-पूर्वमें वेदी बनाकर उसपर यथास्थान अग्निको
स्थापित किया था । फिर दक्षिणदिशि घीसे भरी हुई सूबा
रावणने जेवर रखती । इसके बाद पैरोंपर शकट और जोंधों
पर उद्धूलु रक्ता ॥ ११४ ११५ ॥

दारुपात्राणि सयाणि वरणि चोत्तरारणिम् ।
दत्त्वा तु सुसल चान्य यथास्थानं त्रिचक्रम् ॥ ११६॥
तथा काष्ठान् सभी पात्र, अरणि, उत्तररणि और मूल
आदिको भी यथास्थान रख दिया ॥ ११६ ॥

शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिर्बिहितेन च ।
तत्र मेघ्य पशु हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसा ॥ ११७॥
परिस्तरणिका राक्षो घृताका समवेशयन् ।

गार्धमात्यैरलटृत्य रावणं दीनमानसा ॥ ११८॥
वेदांत विधि और महर्षियोंद्वारा रचित कल्पसूत्रोंमें
बनायी गयी प्रणालीसे यहाँ सारा काय हुआ । राक्षसोंने
(राक्षसों की रीतिक अनुसार) मेघ्य पशुका दहन करके राजा
रावणकी चितापर फैलाये हुए मृगचर्मको घीसे तर कर दिया,
फिर रावणने शवका चन्दन और फूलोंसे अलंकृत करके ये
राक्षस मन ही मन दुःखना अनुभव करने लगे ॥ ११७ ११८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे पृष्ठदशाधिकशततम सर्ग ॥ १११ ॥

इम प्रफार श्रीवाल्मीकिनिर्मितं अष्टाशततमं अष्टिकायक युद्धकाण्डमे परं सौ स्वर्गहर्तुं सप्त पूरा हुआ ॥ १११ ॥

— 1899 —

द्वादशाधिकशततम सर्ग

विभीषणरा राज्याभिषेक और श्रीरघुनाथजीका हनुमान्जीके द्वारा सीताके पास संदेश भेचना

त रावणपथं दृष्ट्वा देवगन्धर्वादान्ध ।

जग्मु स्वै स्थंयमानैस्तेऽप्ययत्त गुभाक्या ॥ १ ॥

येना, गन्धर्व और दानवराज रावण-गन्धर्वा इत्ये देवकर

विभीषणसहायास्ते वल्लोभ विविधैरपि ।

लाजैरवकिरन्ति स्म चाप्यपूर्णमुद्रास्तथा ॥ ११२॥

फिर विभीषणने साथ अन्यन्त्र राक्षसोंने भी चितापर नाना
प्रकारके वस्त्र और लवा बिछाये । उस समय उनके मुखपर
आँसुओंकी धारा बह चली ॥ १११ ॥

स ददौ पात्रक तस्य विधियुक्तं विभीषण ।

काल्पा चैवाद्रव्यलेणे तिलान् धर्मविमिश्रितान् ॥ १२०॥

उद्वेगेन च सम्मिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम् ।

ता क्षिप्योऽनुनयामास सा त्वयित्वा पुन पुन ॥ १२१॥

तदनन्तर विभीषणने चितामें विभिन्न अतुल्य आग

लगायी । उसने बाद स्नान करके भीगे वस्त्र पहने हुए ही

उन्होंने तिल, कुच और जलके द्वारा विधिवत् रावणको

जलाजलि दी । तत्पश्चात् रावणकी क्षिप्तौको बार-बार घालना

देकर उसने घर चलनेके लिये अनुनय विनय की १२० १२१

गम्यतामिति ता सवा विधियुनंगर तत ।

प्रणिशु पुनं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषण ।

रामपादं मुपागम्य समतिष्ठद् धिनीतम् ॥ १२२॥

'महलमें चलो' यह विभीषणका आदेश सुनकर वे सारी

क्षिप्तौ नगरमें चली गयीं । क्षिप्तोंके पुर्णमें प्रवेश कर जानेपर

राक्षसराज विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर विनीतभावसे

खड़े हो गये ॥ १२२ ॥

रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीन सलङ्मण ।

हर्षे लेभे रिपु हत्वा धृष्ट वज्रधरो यथा ॥ १२३॥

श्रीराम भी लङ्का, सुग्रीव तथा समस्त सेनाके साथ

शत्रुनाथ बंध करके बहुत प्रसन्न थे । ठीक उसी तरह, जैसे

वज्रपापी इन्द्र इन्द्रासुरको मारकर प्रसन्नताका अनुभव करने

लगे थे ॥ १२३ ॥

ततो त्रिमुक्त्वा सदाश शपसन

महेन्द्रं कुरुच स तमहत् ।

त्रिमुन्य रोष रिपुनिप्रहात् ततो

राम स सौम्यवसुपागतोऽरिहा ॥ १२४॥

तदनन्तर इन्द्र ने दिये हुए शत्रु, बाण और शिखर

व्यचक्रां त्यागकर तथा शत्रुनाथ दमन कर देनेके कारण रोषको

भी छोड़कर त्रिमुन्यद्वारा श्रीरामने शास्त्रमात्र प्रारण कर लिया ॥

सुयुद्ध वानराणां च सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥ २ ॥
अनुरागं च वीर्यं च भारतेर्लक्ष्मणस्य च ।
पतिव्रतात् सीतायां हनूमति पराक्रमम् ॥ ३ ॥
कथयन्तो महाभागा जन्मुर्हंशं यथागतम् ।

रवणकं भयंकरं वधः श्रीरघुनाथजीने पराक्रमः वानरैरे
उत्तम युद्धः सुग्रीवो मन्त्रणाः लक्ष्मण और हनुमानजीकी
श्रीरामके प्रति भक्तिः उन दोनोंके पराक्रमः सीताके
पतिव्रत तथा हनुमानजीके पुरुषार्थकी बातें कहते हुए वे
महाभाग देवता आदि जैसे आये थे उसी तरह प्रसन्नतापूर्वक
चले गये ॥ २ ३ ॥

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं चित्तिप्रभम् ॥ ४ ॥
अनुशास्य महाबाहुमातलिं प्रत्यपूजयत् ।

इसके बाद महाबाहु भगवान् श्रीरामने इन्द्रके दिये हुए
दिव्य रथको, जो अग्निसे समान दरीयमान था, ल जानेकी
आज्ञा देकर मातलिना यज्ञ सम्मान किया ॥ ४ ॥

राघवेणाम्यनुप्रातो मातलिं शकसात्थि ॥ ५ ॥
दिव्यं त रथमास्थाप्य दिग्मेरोत्पपात ह ।

तत्र इन्द्रवारिणी मातलिं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे उठ
दिव्य रथपर बैठकर पुन दिव्य लोकको ही चले गये ॥ ५ ॥

तस्मिंस्तु दिव्यमाकूटे सरथे रथिना चर ॥ ६ ॥
राघवः परमप्रीतः सुग्रीवं परिवसजे ।

मातलिं रथवदितं देवलोकां चले जानेपर रथियोंमें अंश
श्रीरामने वही प्रसन्नताके साथ सुग्रीवको हृदयसे स्था किया ६ ॥

परिपूज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेनभिषेदित ॥ ७ ॥
पूज्यमानो हरिगणैराजगाम यत्नालयम् ।

सुग्रीवरा आलिङ्गन करनेके पश्चात् जब उन्होंने लक्ष्मणकी
ओर इति डाली, तब लक्ष्मणने उन्हीके चरणोंमें प्रणाम किया ।
निर वानरवैलिकोंसे सम्मानित हो वे सेनानी छात्रनीपर लौट
आये ॥ ७ ॥

अथोराच स काष्ठस्य समीपपरिवर्तितम् ॥ ८ ॥
सौमित्रिं सत्पुत्रसम्पन्नं लक्ष्मणं दीक्षतेजसम् ।

निभीरणमिमं सौम्यं लक्ष्मणमभिषेचय ॥ ९ ॥
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् ।

यहाँ आकर रघुनाथजीने अपने समीप गये हुए सब एवं
उदीक्षित तेजसे सम्पन्न सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे कहा—सौम्य ।
अब तुम लक्ष्मणके चरण इन निभीरणका राधाभिषेक करो
क्योंकि य मेरे प्रेमी, भक्त तथा पहले उपकार करनेवाले
हैं ॥ ८ ९ ॥

एव म परम कामो यदिम राघवानुसम् ॥ १० ॥
लक्ष्मणा सौम्यं पदप्रेममभिषिक्तं निभीरणम् ।

सौम्य । यह मेरी वही इच्छा है कि राघवक छाट माई
इन निभीरणसे मैं लक्ष्मण राज्यपर अभिषिक्त देखूँ ॥ १० ॥

तथेत्युक्त्वा सुसहृष्टं सौम्यं घटमावदे ।
त घटं जानरेद्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजगान् ॥ १० ॥
व्यादिदेश महासत्त्वान् समुद्रसलिलं तदा ।

महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनपर सुमित्राकुमार
लक्ष्मणसे वही प्रणतता हुई । उन्होंने 'घट' अर्थात् कदकर
छोनेका बड़ा हाथमें लिया और उसे वानररूपपतियोंके हाथमें
देकर उन महान् क्षत्तिशास्त्री तथा मनके समान वेगवाले
वानरोंको समुद्रका कल से आनेकी आज्ञा दी ॥ ११ १२ ॥

अतिशीघ्रं ततो गत्वा जानपस्ते मनोजया ॥ १३ ॥
आगतस्तु जलं गृह्यन्मुद्राद् वानरोत्तमा ।

वे मनके समान वेगवाली श्रेष्ठ वानर तुरत ही गये और
समुद्रसे कल लेकर लौट आये ॥ १३ ॥

ततस्त्वेव घटं गृह्य सत्स्वप्य परमासने ॥ १४ ॥
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यपिबद्धं निभीरणम् ।

लक्ष्मणा रक्षसा मध्ये राजानं रामशासनात् ॥ १५ ॥
विधिना मन्त्रहृष्टं सुहृद्गणसमावृतम् ।

अभ्यपिबुद्धत्वा सर्वे राक्षसा वानरास्तथा ॥ १६ ॥
तदनन्तर लक्ष्मणने एक घट लेकर उस उत्तम आसनपर
स्थापित कर दिया और उस कदके बलसे विभीषणका बनेक
विधिसे अनुसार लक्ष्मणने राजदरपर अभिषेक किया ।

यह अभिषेक आरम्भचन्द्रजीकी आज्ञासे हुआ था । उस समय
राघवोंके बीचमें सुहृदोंसे घिरे हुए निभीरण राजर्षि तनपर
बिठावमान थे । लक्ष्मणके बाद सभी राघवों और वानरोंने
भी उनका अभिषेक किया ॥ १४-१६ ॥

प्रहर्षमनुल गत्वा लुब्धं राममेव हि ।
तस्यामात्या जहृरिं भक्तं ये चास्य रामसा ॥ १७ ॥

इष्टाभिषिक्तं लक्ष्मणा राक्षसेन्द्र निभीरणम् ।
राघव परमा प्रीतिं जगाम सत्तल्लक्ष्मण ॥ १८ ॥

वे अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीरामकी ही खुति करो लगे ।
राघवपुत्र निभीरणको लक्ष्मण राज्यपर अभिषेक देता उन
मनी और प्रेमी राघव बहुत प्रसन्न हुए । साथ ही लक्ष्मण
सहित श्रीरघुनाथजीसे भी वही प्रणतता हुई ॥ १७ १८ ॥

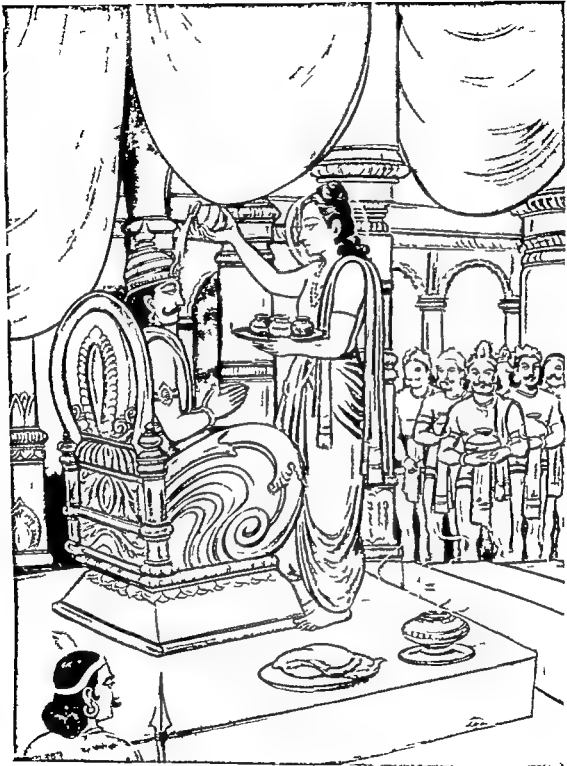
स तद् राज्यं ममत् प्राप्य रामदत्तं निभीरणं ।
सात्त्वयित्वा प्रहृष्टयस्ततो राममुपागमत् ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने दिये हुए उस विशाल राज्यसे पात्र
निभीरण अपनी प्रजासे गालना दे श्रीरामचन्द्रजीके पास
आये ॥ १९ ॥

दध्यस्तान् मोदकाद्यं लप्ता सुमनसस्तथा ।
आजहुरथ सहायः पौरास्तस्मै निदायकर ॥ २० ॥

उस समय हर्षित भर हुए नगरनिवासी निशावर
निभीरणका अर्पित करनेसे जिये दक्षी, अयध, मिन्दा, तथा
और पूछ लये ॥ २० ॥

स तान् गृहीत्या दुष्यं राघवाय न्यवेदयत् ।



विभीषणम् राज्याभिषेक

मङ्गल्य मङ्गल सर्वे लक्ष्मणाय च दीयन् ॥ २१ ॥

कुर्वन् पञ्चमी विभीषणे वे ख मङ्गलञ्चन्द्र माङ्गलिक
वस्तुर्लक्ष्मण और लक्ष्मणो भेंट की ॥ २१ ॥

वृत्तार्थ समुद्धार्य दृष्ट्वा रामो विभीषणम् ।

प्रतिनम्राह तत् सर्वे तन्मैव प्रतिकाश्रय्या ॥ २२ ॥

श्रुतानुप्राप्तं विभीषणो वृत्तार्थ एव सकलमनेरय
देख उनको प्रकृतार्थ निवे ही उन ख मात्रलिक वस्तुओंको
ल डिया ॥ २२ ॥

तत शैलोपम दीर प्राचलं प्रणत स्थितम् ।

उवाचेद यद्यो रामो हनुमन्त प्लवङ्गमम् ॥ २३ ॥

तपश्चात् उहोंने हाथ ढँककर विनामवासे खड़े हुए
पत्थानार बार वानर हनुमन्तजीसे कहा— ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीनद्रामायणे बाह्वीय्ये आदिशष्ये युद्धकाण्डे द्वादशाधिकशततम सर्ग ॥ ११२ ॥

इम प्रकर श्रीतर्कनिर्निर्णय अथानायाप अदिशष्य युद्धकाण्डे एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततम सर्ग.

हनुमान्नीका मीताजीसे बातचीत करके लौटना और उनका सदेश श्रीरामको सुनाना

इति प्रतिसमाधिष्टे हनुमान् मादवात्मज ।

प्रतिवेश पुरीं लङ्का पृथ्वा मानो निशचरै ॥ १ ॥

मगवान् श्रीरामका यह आदेश पाकर पवनपुत्र
हनुमान्जने निशचरमें सम्मानित हत हुए लङ्कापुरीमें प्रवेश
किया ॥ १ ॥

प्रविश्य च पुरीं लङ्कामनुमाप्य विभीषणम् ।

ततस्तेनाभ्यनुहातो हनुमान् वृक्षगटिकाय ॥ २ ॥

पुरीमें प्रवेश करके उन्होंने विभीषणमें अज्ञा मँगी ।
उनकी आज्ञा मिल जानेपर हनुमान्जी अशोकवाटिकामें
गये ॥ २ ॥

सम्प्रविश्य यथान्याय सीताया निद्रितो हरि ।

दृष्ट्वा मृगया हीना सातङ्गा रोहिणीमिव ॥ ३ ॥

अशोकवाटिकामें प्रवेश करके न्यायानुसार उन्होंने
सीताजीको अपने अगमनकी सूचना दी । तपश्चात् निद्रित
झरक उन्हा दयाल किया । य स्नान अदिष्टे हीन होनेके
कारण कुछ मर्चन दिखायी देती थी और सतङ्ग हुए शशिमान
छानन बदन पड़ती थी ॥ ३ ॥

वृक्षमूले निरानन्दा राक्षसीभिः परीवृताम् ।

निमृत् प्रणत प्रदं सोऽभिगम्याभियाद्य च ॥ ४ ॥

सीताजी अनन्तदुःख हो वृक्ष नचे राक्षसीके गिरी
पैनी थीं । हनुमान्जीने घान्त और विनीतमाने सामने झकड़
उन्हें प्रणाम किया । प्रणम करके वे वृक्षपर लगे हो
गये ॥ ४ ॥

एता ममागत भैया हनुमन्त महाबलम् ।

अनुज्ञाप्य महाराजमिम सौम्य विभीषणम् ।

प्रविश्य नगरं लङ्का कौशलं नृदि मैथिलीम् ॥ २४ ॥

सौम्य ! तुम इन महाराज विभीषणकी आज्ञा ल लङ्का
नगरमें प्रवेश करके मिथिलेश्वरपुरी सीताने मनका कुशल
समाचार पूछो ॥ २४ ॥

वैदेहौ मा च कुशलं सुग्रीव च सलक्ष्मणम् ।

आचक्ष्व यद्वा श्रेष्ठ रावण च हत रणे ॥ २५ ॥

प्रियमेतद्विहास्यादि वैदेह्यास्त्य हरीश्वर ।

प्रतिगृह्य तु संदेशमुपावर्तितुमर्हसि ॥ २६ ॥

श्राव्य ही उन विदेहराजकुमारोंसे सुग्रीव और लक्ष्मणके हत
मरा कुशल-समाचार निवेदन करो । वृत्ताओंमें भेंट हरीश्वर !
तुम वैदेहीके यह प्रिय समाचार सुना दो कि रावण युद्धमें
मारा गया । तपश्चात् उनका सदेश लेकर लौट आओ ॥ २५ २६ ॥

युद्धकाण्डे द्वादशाधिकशततम सर्ग ॥ ११२ ॥

इम प्रकर श्रीतर्कनिर्निर्णय अथानायाप अदिशष्य युद्धकाण्डे एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्या हृष्टाभवत्तदा ॥ ५ ॥

महादेवी हनुमान्को आ देव देवी सीता उन्हें पदचान
कर मन-ही-मन प्रसन्न हुई, किंतु कुछ बोल न सकी । चुपचाप
बैठी रहीं ॥ ५ ॥

सौम्य तस्या मुख दृष्ट्वा हनुमान् हृष्यगोचरम् ।

यमस्य वचनं सर्वात्म्यानुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

सीताके मुखपर सौम्यभाव लक्षित हो रहा था । उसे देख
कर करिभेद हनुमान्ने श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई सर बातोंको
उन्ने कहना आरम्भ किया— ॥ ६ ॥

वैदेहि कुशली राम सहसुग्रीवलक्ष्मण ।

कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुमिषजित् ॥ ७ ॥

विदेहनिद्रिनि ! श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सुग्रीव
सब सकुशल हैं । आने शत्रुका वध करके लक्ष्मणनेरय हुए
उन शत्रुनिद्रि श्रीरामने आर्क्षी कुशल पूरी है ॥ ७ ॥

विभीषणसहायेन रामेण हरिभि सह ।

निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च दीपयान् ॥ ८ ॥

देवि ! विभीषणकी सहायता पाकर बनर्षी और लक्ष्मण
हति श्रीरामने बल-विश्रमभजन रावण युद्धमें मार
डाला है ॥ ८ ॥

प्रियमाप्यामि ते देवि भूयश्च त्वा सभातये ।

तत्र प्रभागाद् धमजे महान् रामप सयुगे ॥ ९ ॥

लम्घोऽय विनय सीते स्वम्या भय गतश्रय ।

रावणश्च हत शत्रुलङ्का चैव परातरता ॥ १० ॥

धमका श्रवणसे मेरी सीता में आकाश का दिन

संवाद सुनाता हूँ और अधिकसे अधिक प्रश्न देखना चाहता हूँ । आपके पातिप्रत्य धमके प्रभावसे ही मुझमें श्रीरामने यह महान् विजय प्राप्त की है । अब आप चिन्ता छोड़कर स्वस्थ हो जायें । हमलोगोंना शत्रु रावण मारा गया और लङ्का भगवान् श्रीरामन् अभीन हो गयी ॥ ९१० ॥

मया ह्यलङ्घनद्वेष्टेण धृतेन तत्र निजंये ।
प्रतिज्ञैवा धिनिस्तीर्णो बद्ध्वा सेतु महोदधी ॥ ११ ॥

‘श्रीरामने आपको यह सदेव दिया है—देवि ! मैंने तुम्हारे उद्धारक लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसके लिये निद्रा त्यागकर अथक प्रयत्न किया और समुद्रमें पुल बाँधकर रावण वचने द्वारा उस प्रतिज्ञाको पूरा किया ॥ ११ ॥

सम्भ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये ।
विभीषणविशेष्ये हि लङ्कैर्भयमिदं दृष्टम् ॥ १२ ॥
तदाश्चसिद्धिं विद्वन्ध स्वगृहे परिषत्से ।
अथ चाभ्येति सहृदस्त्वद्भर्तृसमुत्सुकः ॥ १३ ॥

‘अब तुम अपनेको रावणके घरमें वर्तमान समझकर मयभीत न होना क्योंकि लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणके अधीन कर दिया गया है । अब तुम अपने ही घरमें हो । ऐसा जानकर निश्चिन्त होकर घैर्य धारण करो ।’ देवि ! ये विभीषण भी हमसे भरकर आपके दशमके लिये उत्कण्ठित हो अभी यहाँ आ रहे हैं ॥ १२ १३ ॥

परमुक्त्वा तु सा देवी सीता दशनिभानना ।
ग्रहपेणान्मुखा सा व्यावर्तु न दशमक ह ॥ १४ ॥

हनुमान्जीने इस प्रकार कहनेपर चन्द्रमुखी सीतादेवीको बड़ा हर्ष हुआ । हर्षसे उनका गला भर आया और वे कुछ बोल ा वहीं ॥ १४ ॥

ततोऽधरीक्षरिचर नीतामप्रतिजल्पतीम् ।
किं न्य चिन्तयसे देवि किं व मां नाभिभाषसे ॥ १५ ॥

सीताजीका मौन देख करिपर हनुमान्जी शाले—देवि ! आप क्या छात्र रही हैं ? मुझमें थोलेही क्यों नहीं? ॥ १५ ॥

परमुक्त्वा हनुमता सीता धमपये स्थिता ।
अत्ररीत् परमप्रीता चाप्यगद्वदया गिरा ॥ १६ ॥

हनुमान्जीक इस प्रकार वृत्तेपर परमखुश सीतादेवी अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्दके आँसू बहाती हुई गदगदबाणीमें बोलें—॥ १६ ॥

प्रियमेतदुपधुय भर्तुर्विजयसधितम् ।
ग्रहपेणामपन्ना निगम्यासि क्षणान्तरम् ॥ १७ ॥

‘अनने स्वामीजी निजपसे सम्बन्ध रखनेवाला यह प्रिय संगद मुनकर मैं आनन्दविभार हो गयी थी इसलिये कुछ देरतक मरे मुँहसे बात नहीं निकल सकी है ॥ १७ ॥

महि पदयामि सदा न्यिन्तयन्ती प्रथमम् ।
भात्यापराध भयनेन न्यतु प्रत्यभिन्दन्म् ॥ १८ ॥

‘वानर वीर ! ऐसा प्रिय समाचार सुननेक कारण मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार देना चाहती हूँ निद्रा बहुत सोचनेपर भी मुझे इसने योग्य कोई वस्तु दिलायी नहीं देती ॥ १८ ॥
न हि पदयामि तत्तु सौम्य पृथियामपि धानर ।

सदृश यत्प्रियाष्याने तत्र दत्तमभवेत्सुखम् ॥ १९ ॥

‘सौम्य वानर वीर ! इस भूमण्डलमें मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं देखती, जो इस प्रिय संगदके अनुरूप हो और जिससे तुम्हें देकर मैं खुश हो सकूँ ॥ १९ ॥

हिरण्य वा सुवर्ण वा रत्नानि विविधानि च ।
राज्य वा त्रिषु लोकेषु पतन्नाहंति भाषितम् ॥ २० ॥

‘गोना, चाँदी, नाना प्रकारक रत्न अथवा तीनों लोकोंका राज्य भी इस प्रिय समाचारकी वजहसे नहीं कर सकता’ ॥ २० ॥

परमुक्त्वा चैदेहा प्रत्युवाच सुवगम ।
प्रवृत्तीनाञ्जलिर्हपात् सीताया प्रमुजे स्थित ॥ २१ ॥

विदेहनन्दिनीके ऐसा कहनेपर वानरवीर हनुमान्जीको बड़ा हर्ष हुआ । वे सीताजीके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और इस प्रकार बोले—॥ २१ ॥

भर्तुं प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि ।
जिग्महेऽविधिं चाप्य त्वमेवार्हस्यनिन्दिते ॥ २२ ॥

‘पतिजी विजय चाहनेवाली और पतिके ही प्रिय दर्प हितमें सदा सन्न रहनेवाली सती-साध्वी देवि ! आपके ही मुँहसे ऐसा स्नेहपूर्ण वचन निकल सकता है (आपने इस वचनसे मैं सब कुछ प गया) ॥ २२ ॥

तत्रैतद् वचनं सौम्ये सारवत् जिग्महेव च ।
रत्नोपाद् विप्रिधायापि देवपण्याद् विशिष्यते ॥ २३ ॥

‘सौम्ये ! आपका यह वचन सारार्थित और स्नेहयुक्त है, अन मौलिकी भौतिकी स्तुति और देवताओंके राज्यसे भी श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

अर्घतश्च मया प्राता देवराज्यादयो गुणा ।
हवन्नायु निजयिन राम पण्यमि सुस्थितम् ॥ २४ ॥

‘मैं जब यह देखता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी अपने शत्रुका यश करके विजयी हो गये और स्वयं सज्जाल हैं, तब मैं यह अनुमन करता हूँ कि मेरे सारे प्रयाजन सिद्ध हो गये—देवताओंक राज्य आदि सभी उल्लूह गुणोंसे युक्त कर्णाय सुखे मिल गये’ ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकान्तमा ।
तत शुभतरं चाप्यमुवाच पयनात्मजम् ॥ २५ ॥

उनकी बात सुनकर मिथिलेश्वरजी जनकीने उन परनकुमारसे यह परम सुन्दर वचन कहा—॥ २५ ॥

अनिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणमूरगम् ।
सुदृष्या दाशद्वया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितम् ॥ २६ ॥

‘नीयर ! तुम्हारी वाणी उसमें सन्तानोंमें सम्पन्न माधुर्य

गुणैः भूयिष्यन्तः तेषां बुद्धिः अत्र भ्रमो (गुणो) नैव भवति ॥ २६ ॥

इत्युक्तं तेषां बुद्धिः त्वं सुत परमार्थिकः ॥

यत्नं शीघ्रं श्रुत्वा सत्त्वं प्रियं मोक्षं दक्षयुक्तमम् ॥ २७ ॥

तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न सदायः ॥

एते चान्ये च त्वेषां गुणान्मथ्येयं शोभना ॥ २८ ॥

तुम वायुदेवतं प्रणम्य पुनः तथा परमं ध्यायाम् ॥

॥ गौरीयं च, श्रुताः, शास्त्रज्ञानं, मानसिकं च, परमं च, उत्तमं दक्षता, तत्त्व, मना, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य

बहुतमे सुन्दरं गुणं केन तुम्हारे एक साथ विद्यमान हैं,

इन्में सदाय नही है ॥ २७ २८ ॥

अधोरात्रं पुनः सीतामस्मृत्वा विनीतम् ॥

प्रवृत्तिर्वाचिर्हृत्वा सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥ २९ ॥

तदनन्तरं सीताक समने निना किन्ती धनवन्तः हाथ

चङ्कर निनामभावने सहे हुए हनुमान्जी पुनः हथपूर

उत्तरे बल — ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा त्वं गन्तव्यं यदि त्वमनुमन्यसे ॥

हनुमिन्नामिता सखायाभिस्तु तन्नितापुरा ॥ ३० ॥

देवे ॥ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उन समस्त

गणधियोंको, जो पहले आपका बहुत डरती धनवाती रही हैं

मार डालना चाहता हूँ ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा पतिदेवा त्वामशोकजनिता गताम् ॥

धोरूपसमाश्रया दूरा दूतरेक्षणा ॥ ३१ ॥

इह ध्रुवा मया देवि राक्षसो विवृतानना ॥

असह्यन्धपैवाक्षयैर्वदत्यो रावणाहाया ॥ ३२ ॥

‘आर गौरी पतिव्रता देवी अशोकवाटिका में बैठकर कथा

भोग रही थीं और ये भयंकर रूप एवं आचारे मुझ अत्यन्त

दूर दृष्टिवाली विकलात्म्या की दूर गणधियों आपको बाहर

फटार बचनोंद्वारा डोंगी फटकारती रहती थीं । राक्षसी

आहाने ये बैठी-बैठी क्यों आपका सुनती थीं, उन सबको

मैंने यहाँ रखकर सुना है ॥ ३१ २ ॥

विष्टा विष्टाकारा दूरा दूतरेक्षणा ॥

इच्छामि निरिपयानैहनुमेता सुदक्षणा ॥ ३३ ॥

ये सब-सी-सब विष्टा, विष्टा आकाशवाणी, दूर और

अत्यन्त दूर हैं । इनके नेत्रों और कर्णों में भी अन्तःकरण

है । मैं तब-तब-तब आपका दूना इन सबका वष कर दूना

चाहता हूँ ॥ ३३ ॥

‘सुनने की इच्छा सुनने प्रार्थना करना तथा कथा

(कथन) और (विद्वान्) निष्ठान्त कथन करने के लिये

‘सुनने की इच्छा सुनने प्रार्थना करना तथा कथा

‘सुनने की इच्छा सुनने प्रार्थना करना तथा कथा

‘सुनने की इच्छा सुनने प्रार्थना करना तथा कथा

राक्षस्यो दारुणकथा श्रमेतन् प्रयच्छ मे ॥

मुष्टिभिः पाणिधनैश्च विनाशैश्च वातुभिः ॥ ३४ ॥

जहानानुग्रहारेण दन्तानां चैव पाटनैः ॥

कतन कणनासानां वेदाणां लुब्धनैस्तथा ॥ ३५ ॥

निपात्य हन्तुमिच्छामि तत्र निमिषकारिणी ॥

एष प्रह्लादबुद्धिः सप्रहाय यदास्मिन् ॥ ३६ ॥

घानये तीक्ष्णरूपभियाभिस्त्व तर्जिता पुरा ॥

‘मरी इच्छा है कि मुझको, लतां, गिराव, भुजभों-भयान्,

पिंडलियों और घुनोंका मानन इन्हें पाव’ करन इनके दाँत

तक हूँ, ‘नकी नाक और मन कट हूँ तथा इनके सिर्फ

बाल नचूँ । यद्यपि ’ इन तरह बहुत-से प्रहारद्वारा इन

सबका पाटन दूनापूर्ण करने-वाला इन अभियन्ता

गणधियोंका फट-फटकर मार डारूँ । किन्ति इन भयानक

रूपवाला गणधियों परहे अन्तर्गत बचती है, उन सबका

मैं अन्तर्गत फट डूना दूँगा । इतक लिय आप मुझ

कवल सर (आज) दे हूँ ॥ ३४-३६ ॥

इत्युक्त्वा सा हनुमता वृषणा क्षीनस्तला ॥ ३७ ॥

हनुमन्मुखावेव चिन्तयित्वा निवृत्तय च ॥

हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर कणमय स्वभाववाला

क्षीनस्तला सीताने मन-ही-मन बहुत कुछ धन-विचार करके

उत्तरे इस प्रकार कहा— ॥ ३७ ॥

राजसदयवदयानां क्षुत्तीनां पराहया ॥ ३८ ॥

विधेयानां च क्षुत्तीनां क क्षुत्पेद धानरोचनम् ॥

भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्तादुत्पन्नेन च ॥ ३९ ॥

मयैतत् प्राप्यत सर्वं सख्यं ह्यभ्युत्थने ॥

मैव यद् महाबाहो दैवी ह्येता परा गतिः ॥ ४० ॥

‘कथिष्ठः । यद्यपि राक्षसोंके आभयमें रहनेके कारण पराधीन

थीं । दूषणोंकी आहूतों ही सब कुछ करती थीं, अन्तःस्वामीकी

आज्ञा पाठन करनेवाली इन दासियोंपर कौन कथन करेगा ?

मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं था तथा मर पूर्वजन्म के दुष्कर्म

अन्तर्गत इनके लगे थे, इन्हींमें मुझे यह सब कुछ प्राप्त हुआ

है क्योंकि नमी प्राणी अपने लिये हुए गुणधर्म कर्मोंका ही

फल भोगे हैं, अन्तःमहाबाहो ! तुम इन्हें मारनेकी बात न

कहो । मर लिये देवकी ही ऐसा विधान था ॥ ३८-४० ॥

प्राप्तव्य तु द्वायोपयोगमयैतदिति निश्चितम् ॥

दाम्नीनां राजपस्यां भययानीह दुष्टला ॥ ४१ ॥

मुझ अपने दूरकर्मजन्त द्वायोपयोगमें मरने के लिये तुम

निश्चितमें भयानी हो या इच्छित करनी दक्षिणोंका दक्षि

कुछ अपराध ही भी तो उन्में मैं खाना करती हूँ क्योंकि इनके

प्रति दक्ष उद्देश्यमें मैं दुर्जन हो रही हूँ ॥ ४१ ॥

आज्ञानां राजसेनेह राजस्थानचरिणि माम् ॥

हम तस्मिन् न कुचन्ति तन्न मादतामन ॥ ४२ ॥

‘तन्नुनन । उक्त राक्षसी अन्तर्गत ही ५ मुझ समक्ष

परती था। जयसे वह मारा गया है, तबसे य उचारी मुक्त
उछ नहीं करती हैं। इहाने डरना धमकाना छोड़ दिया है ॥
यय व्याघ्रसमीप तु पुराणा धमसहित ।

भृशेण गीत श्लोकऽस्ति त निगोष मृगम ॥ ४३ ॥
यानवीर । इस विषयमें एक पुराणा धर्मगमन श्लोक
है, जिस निती व्याघ्रसे निरुद्ध एव रीछने कहा था ॥ वह
लेख में बना रही हैं, सुनो ॥ ४३ ॥

न पर पापमादत्त परया पापकमणाम् ।
समयो रक्षितं वस्तु सतश्चास्तिभूषणा ॥ ४४ ॥
अथ पुरुष दूसरी बुराई करनेवाले पापिचार पापनर्मजो
नहीं अपनाते हैं—बदलेम उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण बनान
नहीं करना चाहते हैं अत अपनी प्रतिष्ठा एव मदचाराकी
रक्षा ही करनी चाहिये, क्योंकि छापुपुरुष अपने उत्तम चरित्रसे
ही निरूपित होते हैं। सचाचार ही उनका आभूषण है ॥

पापाना या शुभाना वा वधाहानां भाग्यं न ।
कार्यं कारुण्यमायन न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ४५ ॥
अथ पुरुषको चाहिये कि कोई पापी हो या पुण्यात्मा
अथवा वे वधन योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन
तत्पर दया करें क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिसने
कभी अपराध होता ही न हो ॥ ४५ ॥

लोकहिंसाविहाराणां दूराणा पापकमणाम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैव कायमशोभनम् ॥ ४६ ॥
जो लोगोंकी हिंसा ही रमते और सजा पापका ही
आचरण करते हैं, उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंका भी कभी
अमङ्गल नहीं करना चाहिये ॥ ४६ ॥

एवमुक्त्वा हनुमान् सीतया वाक्यकोविद ।
प्रत्युशच तत सीता रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥ ४७ ॥
सीताजीक ऐसा कहनेपर बातचीत करनेमें बुझल हनुमान्
अने उन सती-नाथी श्रीरामपत्नीसे इस प्रकार उत्तर दिया—॥
सुखा रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता ।
प्रतिसदिदा मा देवि गमिष्ये यत्र राघव ॥ ४८ ॥

हृत्पायें श्रीमद्भगवत पापमोचने आदिकाम्य मुदकण्ठे
इस प्रकार श्रीवाक्यनिर्मित आर्वागमायन अधिपाम्यक मुदकण्ठमें पर सी तारहतीं सी पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५० ॥

॥ ५१ ॥

॥ ५२ ॥

देवि ! आप श्रीरामकी धर्मपत्नी हैं अत आपना देते
सद्गुणसे सम्पन्न होना उचित ही है। अब आप अपनी ओरसे
मुक्त कोई संदेश दें। मैं श्रीरघुनाथजीक पास जाऊँगा ॥ ४८ ॥
पञ्मुक्ता हनुमता वैदेही जनकालमजा ।
साध्वीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तस्तत्सम् ॥ ४९ ॥

हनुमानजीके ऐसा कहनेपर विदेहनदिनी जनरघव
किशोरी बाला—मैं अपने भक्तवत्सल स्वामीका दर्शन करना
चाहती हूँ ॥ ४९ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनुमान् मातृतामज ।
हर्षयन् मज्जितं वाक्यमुवाचद् महाभक्ति ॥ ५० ॥
सीतानीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान पद्मपुरा
रघुमानजी उन मिथिलगुप्तमायीरा शप बगल हुए इस
बाल—॥ ५० ॥

पूर्णचन्द्रपुरा राम ऋष्यस्यच सत्त्वमणम् ।
न्यूनमित्र हतामित्र शचीवन्त्र सूर्यवरम् ॥ ५१ ॥
देवि ! जैसे शची देवराज इंद्रका दर्शन करती हैं, उ
प्रकार आप पूणचन्द्रमार समान मनाहें सुप्रबाल यन श्रीरा
और लक्ष्मणको आज देखती हैं, जिनके मित्र निघमान हैं औ
राबु मार जा चुक हैं ॥ ५१ ॥

तमेवमुक्त्या भाजन्तो सीता नाश्यादिन त्रियम् ।
आजगमा महातेजा हनुमान् यत्र राघव ॥ ५२ ॥
वर्णात् लक्ष्मीकी मौलित मुशोभित होनेवाली सीतादेवीसे
ऐसा कहकर महातेजस्वी हनुमान्जी उस स्थानपर लौट आये
जहाँ श्रीरघुनाथकी विराजमान थे ॥ ५२ ॥

सपदि हरिवरस्ततो हनुमान्
प्रतिगहन जनकधरा मजाया ।
कथितमकथयद् यथाक्रमेण
विदशवरप्रतिमाद्य राघवाय ॥ ५३ ॥

वहाँसे लौटत ही कथित हनुमान्जीने देवराज ।
हृत्त्व तेजस्वी श्रीरघुनाथजीसे जनकराजपिहारी सीता
दिया हुआ उत्तर समझा कह सुनाया ॥ ५३ ॥

॥ ५४ ॥

॥ ५५ ॥

॥ ५६ ॥

॥ ५७ ॥

॥ ५८ ॥

॥ ५९ ॥

॥ ६० ॥

॥ ६१ ॥

चतुर्दशाधिकशततम सर्ग

श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणका सीताका उनके मभीष लाना और सीताका

प्रियतमके मुखचन्द्रका दर्शन करना

तमुवाच महामातृ सोऽभिषेच प्रह्वम् ।

राम कमलपत्राक्ष चर सूर्यधनुष्मताम् ॥ १ ॥

तत्पनन्तर परम बुद्धिमान् यानरवीर हनुमान्जीने सगुण

धनुषरौमे भेष्ट कमलनयन श्रीरामरा प्रणामकरके कहा—॥१॥

यन्निमित्तोऽयमागन्धर्व कर्मणा य फलोद्भूत ।

ता देवी शोकस्तता द्रष्टुमहसि मेधिलीम् ॥ २ ॥

‘भगवन् ! जिनक लिये इन युद्ध आनि कर्मोंका सारा

उपाग आरम्भ किया गया था, उन शोकस्तत मिथिलेश

जुमारी सीतादेवीका आप दर्शन दें ॥ २ ॥

सा हि शोकसमाविष्टा साप्यपरीकुलेक्षणा ।

मेघिली दिव्य धृत्वा द्रष्टुं त्वामभिकाङ्क्षति ॥ ३ ॥

‘य शोकमें डूबी रहती हैं । उनके नेत्र आँसुओंसे भरे

हुए हैं । आपकी विजयका समाचार सुनकर वे मिथिलेश

जुमारी आपका दर्शन करना चाहती हैं ॥ ३ ॥

पूर्वका प्रत्ययाद्याहमुका विध्वस्तया तथा ।

द्रष्टुमिच्छामि भतोरमिति पयाकुलेक्षणा ॥ ४ ॥

‘पहली बार जो मैं आपका सपेन सेना आया था, तभी

से उनका मरे ऊपर विचार हो गया है कि यह मर स्वामीका

आलीबबन है । उसी विश्वाससे युक्त हो उन्होंने नेत्रोंमें आँसु

भरकर मुझसे कहा है कि मैं प्राणनाशका दर्शन करना

चाहती हूँ ॥ ४ ॥

एवमुक्त्वा हनुमता रामो धमभूता च ।

गाणछत्तु सहसा ध्यानमपह्नापपरिप्लुत ॥ ५ ॥

स द्वाधमभिति ध्वम्य जगतीमग्लोक्षयन् ।

उवाच मेघसफादा विभीषणमुपस्थितम् ॥ ६ ॥

हनुमान्जीर ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें भेष्ट श्रीराम

चन्द्रकी सहसा ध्यानरा हो गया । उनकी आँखें डबन्वा आयीं

और वे लची गोंम लीचकर भूमिरी आर देखते हुए पास ही

गये मयवे समान ‘याम कान्तिनाम् विभीषणेचाल्—॥ ६॥

दिव्याङ्गरागा वैदेही दिव्याभरणभूषिताम् ।

इह सीता शिर ज्ञानामुपस्थापय मा चिन्म ॥ ७ ॥

‘तुम विदेहनिन्दिनी सीताका मनकपरेसे स्नान कराकर

दिश्य अङ्गराग तथा दिश्य आभूषणोंसे विभूषित करके सीमा

मर पास आओ ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वस्तु रामेण परमाणो विभीषण ।

प्रविश्यान्त पुर सीता स्त्रीभि स्ताभिरचोदयत् ॥ ८ ॥

श्रीरामक एसा कहनेपर विभीषण बड़ी उतावलीक साथ

अन पुरमें गया और पदार्थ अपनी बियाँका भञ्जर उठोने

सीताका भजन आनेकी लखर दी ॥ ८ ॥

तत सीता महाभागा द्रोणान्त्र विभीषण ।

मूर्ध्नि उद्धाञ्जलि श्रीमान्निनीता राक्षसध्वर ॥ ९ ॥

इसके बाद भीमान् राक्षसराज विभीषणने स्वयं ही जाकर

महाभाग सीताका दर्शन किया और मन्त्रपर अप्पलि बाँध

निनीतभावसे कहा—॥ ९ ॥

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।

यानमारोह भद्र ते भता तत्र द्रष्टुमिच्छति ॥ १० ॥

‘विदेहपुत्रजुमारी ! आप स्नान करके दिव्य अङ्गराग

तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे भूषित होकर तबारीपर बैडिये ।

आपका कल्याण हो । आपके स्वामी आपका देखना चाहते

हैं ॥ १० ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही प्रयुगाच विभीषणम् ।

अज्ञात्वा द्रष्टुमिच्छामि भतार राक्षसेध्वर ॥ ११ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वैदेहीन विभीषणरा उत्तर दिया—

‘राक्षसराज ! मैं बिना स्नान किया ही अभी पवित्ररा दर्शन

करना चाहती हूँ ॥ ११ ॥

तस्यास्तद् वचन धृत्वा प्रयुगाच विभीषणम् ।

यथाऽऽह रामो भता ते तत् तथा कतुमर्हसि ॥ १२ ॥

सीतारी यह बात सुनकर विभीषण बन्वा—‘वैदेहि ! आपके

पतिदेव श्रीरामचन्द्रकीने जैसे आज्ञा दी है, आपका ऐसा ही

करना चाहिये ॥ १२ ॥

तस्य तद् वचन धृत्वा मैधिली पतिपन्ता ।

भवभक्त्यानुता साधरी तथनि प्रयभापन ॥ १३ ॥

उसका यह वचन सुनकर पतिभक्त्याने सुरजित तथा

पतिसे ही नेवता माननेवाली मनी लक्ष्मी मिथिलजुमारी

नीताने ‘गुह्य अष्टा’ कहकर स्वामीकी आज्ञा निष्ठान कर

ली ॥ १३ ॥

तत सीता शिर ज्ञाना नयुगा प्रतिमगा ।

महाहाभरणोपता महाहाभरणधारिणाम् ॥ १४ ॥

तत्पन्त्रात् विदेहजुमारी विरमे स्नान करर मुन्तर

शुद्धर किया तथा नयुगस्थ वस्त्र और आभूषण पहनकर य

चलनेको तैयार हो गयी ॥ १४ ॥

आरोप्य शिषिका दीप्ता पराध्वरपरसधृताम् ।

रक्षोभिगदुभिगुतामाजहार विभीषण ॥ १५ ॥

तब विभीषण नयुगस्थ वस्त्रोंमें आभूत दीप्तिमती सीता

देवीका निविशामें बिठाकर भगवान् श्रीरामक पास आया ।

उस समय बहुतने निगाकर नयों आरस करर उठारी ग्या

कर रहे थे ॥ १५ ॥

सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वापि ध्यानमास्थितम् ।

प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्ता सीता न्यरेयत् ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीराम ध्यानस्थ हैं, यह जानकर भी विभीषण उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक बोले—
‘प्रभो ! सीतादेवी आ गयी हैं’ ॥ १६ ॥

तामागतमुपप्लुत्य रक्षोगृहचिरोपिताम् ।

रोष हर्षं च वैश्यं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥ १७ ॥

राघवन परमेश बहुत दिनोंतक निराश करनेके बाद आज सीताजी आयी हैं, यह सोच उनके आगमनका समाचार सुनकर शत्रुघ्न भीरुपुत्राधीनो एक ही समय राग, हर्ष और दुःख प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

ततो यानगता सीता सविमर्शं विचारयन् ।

विभीषणमिदं वाक्यमब्रुहो राघवोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर सीता शरीरपर आयी हैं’ इस बातपर तर्क वितर्कपूर्ण विचार करके श्रीरघुनाथजीको प्रसन्नता नहीं हुई ।

वे विभीषणसे इस प्रकार बोले— ॥ १८ ॥

राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्भिज्ये रत ।

वैदेही सनिकर्षं मे क्षिप्रं समभिगच्छतु ॥ १९ ॥

‘सदा मेरी विजयके लिये तोपर रहनेपाले सौम्य रहकर राज ! तुम विदेहकुमारीसे पहले, वे शीघ्र मेरे पास आओ ॥’

तस्य तद् वचन श्रुत्वा राघवस्य विभीषण ।

तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास धर्मवित् ॥ २० ॥

श्रीरघुनाथजीने यह बात सुनकर धर्मज्ञ विभीषणन द्रुत बहोते दूरे लोगोंको हटाना प्रारम्भ किया ॥ २० ॥

कञ्चुकीष्णीपिणस्तथ क्षेत्रज्ञसंरक्षणाय ।

उत्सारयन्स्तान् योधान् समस्तात् परितः ॥ २१ ॥

पगड़ी बाँधे और अग्नौ पड़ने हुए बहुतसे सिपाही हाथोंमें शीशमरी तरह बन्नी हुई छड़ी लिये उन यानर योद्धाओंका हटात हुआ चारों ओर घूमने लगे ॥ २१ ॥

श्रद्धाणां पानराणां च राक्षसानां च सर्वदा ।

धृन्वायुत्सायमाणानि दूरमुत्तस्फुरन्त ॥ २२ ॥

उनक द्वारा हगये जात हुए शीशं, बानरों और राक्षसोंके शत्रुणा अतोगमन दूर जानर रहै श गय ॥ २२ ॥

तेगमुत्सायमाणानां निम्यन् सुमहातमून् ।

यायुनोद्भूयमानस्य सारम्येन नि सन ॥ २३ ॥

जैसे वायुक थपेदे स्थानर उडेलित हुए समुद्रकी गमना बढ जाती है, उसी प्रकार बहाते हटते जाते हुए उन यानर आदिके हटतेसे यहाँ बड़ा भारी कालहल मच गया ॥ २३ ॥

उत्सायमाणानस्तान् दृष्ट्वा समन्ताज्जातसम्भ्रमान् ।

क्षान्तिपातदम्पाश्च वारयामास राघवः ॥ २४ ॥

जिन्हें हटाया जाता था, उनक गनमें बड़ा उद्वेग हुआ था, वध और यह उद्वेग देखकर श्रीरघुनाथजीने अपनी छद्म उदारताके कारण उन हगनेवालोंका परमूक गमना— ॥ २४ ॥

सस्माद्याववीद् रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव ।

विभीषणं महाप्राज्ञं सोपात्मममिदं वच ॥ २५ ॥

उस समय श्रीराम हटानेवाले सिपाहियोंकी ओर इस तरह रागपूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर डालेंगे । उन्होंने परम बुद्धिमान् विभीषणको उल्लहना देते हुए क्रोधपूर्ण कहा— ॥ २५ ॥

किमर्थं मामनादृत्य क्रिदयतेऽयं त्वया जन ।

निर्वर्तयेन्मुद्देगं जनेऽयं स्वजनो मम ॥ २६ ॥

‘तुम किसलिये मेरा अनादर करके इन सब लोगोंको बग दे रहे हो । रोक दो इस उद्वेगजनक कार्यको । यहाँ जितने लोग हैं सब मेरे आत्मीय जन हैं ॥ २६ ॥

न गृहाणि न यस्माणि न प्राकारस्तिरस्त्रिक्या ।

नेहशा राजसत्त्वारं वृत्तमारणं क्षिया ॥ २७ ॥

‘घर, वस्त्र (कनात आदि) और चहारदीवारी आदि वस्तुएँ जीक लिय परदा नहीं हुआ करती हैं । इस तरह लोगोंको दूर हटानेके जो निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार हैं, ये भी क्षीके लिये आवश्यक या परका काम नहीं देते हैं । पसिते प्राप्त होनेवाले उत्कार तथा नापिके अपने सदाचार—ये ही उसने लिय आवश्यक हैं ॥ २७ ॥

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयम् ।

न प्रती नो विवाहे या दर्शनं वृण्यते क्षिया ॥ २८ ॥

‘रिपुचिन्तन, शारीरिक या मानसिक पीड़ाके अन्तर्गत युद्धमें, स्वयंसे वस्त्रमें अपना दिवाहमें स्त्रीका दीखना (या दृश्यके दृष्टिमें आना) दोषकी बात नहीं है ॥ २८ ॥

सौया रिपुहता चैव कृच्छ्रेण च समरिता ।

दर्शने नास्ति दोषोऽस्य मत्समापे विशेष ॥ २९ ॥

‘यह सीता इस समय रिपुचितमें हैं । मानसिक कष्टसे भी युक्त है और विशेषतः मेरे पास है । इसलिये इसका परदेक रित्ना सपने सामने आना दोषकी बात नहीं है ॥ २९ ॥

विशुन्य शिरिका तस्मात् पद्मयामेगापसपतु ।

सर्मापे मम वैदेहीं पदयन्त्येते वनीक्वस ॥ ३० ॥

अतः जानकी रिपिका (पालकी) छोड़कर पैदल ही मेरे पास आओ और वे सभी यानर उनका हटान कर’ ॥ ३० ॥

पयमुत्तु रागेण स्त्रिमर्शं विभीषणा ।

रामस्योपानयत् सीता सनिकर्षं विनीतयत् ॥ ३१ ॥

श्रीरामके देख करकेपर विभीषण यह विचारमें पड़ गये और विनीततासे सीताका उनसे नमीप ले आये ॥ ३१ ॥

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनूमाश्च गृह्यदम ।

निशाम्य वाक्यं रामस्य यन्मुमुक्ष्यपिता भूदाम् ॥ ३२ ॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीका पूर्वोक्त वचन सुनकर लक्ष्मण, सुग्रीव तथा कपिलर हनुमान् तीनों ही अत्यन्त ध्वनित हो उठे ॥ ३२ ॥

कञ्चनिर्येनेध इहिनैरस्य वारणं ।

अप्रीतमित्र सीताया तक्ष्यन्ति स्म राघवम् ॥ ३३ ॥

श्रीरामजी की मयकर चेष्टाएँ यह सुचिन्त कर रही थीं कि वे पत्नी की जेबों में निरपेक्ष हो गये हैं। इसीलिये उन तीनों ने यह अनुमान लिया कि श्रीधुनायजी सीतापर अप्रसन्न से जान पड़ते हैं ॥ ३३ ॥

लज्जया रघुरल्यन्ती स्त्रेषु गानेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगता भतार साम्ययतंत ॥ ३४ ॥

आगे आगे सीता था और पीछे विभीषण । वे लज्जासे अपने अङ्गों में ही सिङ्गुबी जा रही थीं । इस तरह वे अपने पतिदेव पर सामने उपस्थित हुईं ॥ ४ ॥

विसयाच्च प्रहपाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुव भर्तु सौम्य सौम्यतरानना ॥ ३५ ॥

हृष्यापे धीमद्रामायणे वाम्प्रीकीये आदिकाव्ये शुद्धकाण्डे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥
इस प्रकार श्रीरामात्मनिर्मित आचरामायण आदिकाव्य शुद्धकाण्ड में एक सौ चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः

सीताके चरित्रपर सदेह करके श्रीरामका उन्हें ग्रहण करनेसे इन्कार

करना और अन्यत्र जानेके लिये कहना

तानुपादरेस्थिता प्रह्ला राम सम्रेक्ष्य मैथिलीम् ।

हृदयान्तगत भाव व्याहृतमुपचक्रमे ॥ १ ॥

मिथिलेन्द्रुमापी सीताको निनयपूवक अपने समीप खड़ी देख श्रीरामचन्द्रजीने अपना हार्दिक अभिप्राय बताना आरम्भ किया— ॥ १ ॥

एवासि निर्जिता भद्रे शत्रु जित्वा रणाजिरे ।

पौरुषाद् यदनुष्ठेय मयेतदुपपादितम् ॥ २ ॥

‘भद्रे ! समपङ्कगमें शत्रुओं पराजित करके मैंने तुम्हें उसमें चंगुलमें छुड़ा लिया । पुरुषार्थन द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह सब मैंने किया ॥ २ ॥

गतोऽस्म्यन्तममपस्य धरणा सम्प्रमार्जिता ।

अभमानञ्च शत्रुञ्च युगपन्निरहती मया ॥ ३ ॥

‘अब मैं आपका अन्त हो गया । मुझपर जो कलङ्क लगा था, उसका मैंने माझन कर दिया । शत्रुबन्धित अभमान और शत्रु दोनों का एक साथ ही नष्ट कर डाला ॥ ३ ॥

अथ मे पौरुष दृष्टमथ मे सफल भव ।

अथ तीणप्रतिशोऽहं प्रभवाम्यथ चात्मनः ॥ ४ ॥

‘आज अपने मेरा पराक्रम देख लिया । अब मेरा परिश्रम सफल हो गया और इस समय प्रतिष्ठा पूर्ण करके मैं उसपर भारसे मुक्त एवं स्वतन्त्र हो गया ॥ ४ ॥

या एव विरहिता नीता उलचिषेन रक्षसा ।

दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया नितः ॥ ५ ॥

‘अब तुम आभयमें अचली थी, उस समय यह चक्षल चित्तकाल गणव तुम्हें हर गया । यह दोष मेरे ऊपर

सीताजीका मुख अत्यन्त सौम्यभास्ते युक्त था । वे पतिके ही देवता माननेवाली थीं । उन्होंने बड़े निरस्य, हृष और स्नेहने साथ अपने स्वामीने गोम्य (मनहर) सुगरा दर्शन किया ॥ ३५ ॥

अथ समपनुदमन ह्रम सा
सुचिरमहप्रमुदीक्ष्य वै प्रियत्य ।

वदनमुदितपूर्णचन्द्रकांत
निमलशशाङ्कनिभानना तदाऽऽसीत् ॥ ३६ ॥

उदयरागिन पूरा चन्द्रमा की भी लज्जित करनेवाला प्रियतमका सुन्दर मुखको, जिसका दर्शनसे वे बहुत दिनोंसे वञ्चित थीं, सीताने जी भरकर निहारण और अपने मनकी पीड़ा दूर की । उस समय उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और निर्मल चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगा ॥ ३६ ॥

देववग प्राप्त हुआ था, जिसका मैंने मानवराज्य पुरुषार्थके द्वारा माझन कर दिया ॥ ५ ॥

सम्प्राप्तममान यस्तेनसा न प्रमाजति ।
कस्तस्य पौरुषेणायौ महताप्यत्पचेतसः ॥ ६ ॥

‘जो पुरुष प्राप्त हुए अपमानका अपने तेज था कलसे मार्जन नहीं कर देता है, उस मन्दबुद्धि मानव पर महान् पुरुषार्थमें भी क्या लाभ हुआ ? ॥ ६ ॥

लङ्घन च समुद्रस्य लङ्घायाश्चापि मदनम् ।

सफल तस्य च श्लाघ्यमथ कम हनुमतः ॥ ७ ॥

‘हनुमान्ने जो समुद्रका लाषा और लङ्काका विषय किया, उतका यह प्रशस्नीय कर्म आप सफल ॥ गया ॥ ७ ॥

युद्धे जिम्मतश्चेन हित मन्त्रयतस्तथा ।

सुपीनस्य ससैन्यस्य सफलोऽय परिश्रमः ॥ ८ ॥

‘कोनासहेत सुभीने सुदर्श पराजय शिवाया तथा मनस्य समर्थर ये मुझ निरन्तर छलाह हत बड़े ॥ जाता परीतम मा अत्र कार्यक हो गया ॥ ८ ॥

विभागमन्य च तथा सफलोऽय परिश्रमः ।

निगुण भ्रातर त्यक्त्वा यो मा स्वयमुपपत्तिनः ॥ ९ ॥

‘ये विभीषण दुःशुणोसे मेरे हुए अपने गाइका परित्याग करके स्वयं ही मेरे पास उपस्थित हुए थे । अत्यन्तका दिया हुआ इनका परिश्रम भी निष्फल नहीं हुआ ॥ ९ ॥

इत्येय धदत श्रुत्वा सीता रामस्य तद्दृष्ट ।

मृगीयोत्पुल्लनयना यभूराधुपरिप्लुता ॥ १० ॥

इस तरह कहते हुए भीरुमन्त्री की पार्श्व मुनकर मृगाने

समान विकसित नशावाली सीताकी आँखोंमें आँसू भर आया ॥ १० ॥

पश्यतस्ता तु रामस्य समीपे हृदयप्रियायाम् ।

जनवाद्भयाद् रामो यभूव हृदय छिन्ना ॥ ११ ॥

य अपने स्वामीकी हृदयवत्सलभा थी । उनके प्राणवत्सलभ उन्हें अपने समीप देख रहे थे परन्तु लक्षणवात्स्य भयसे राजा श्रीरामरा हृदय उस समय निर्दोष हो रहा था ॥ ११ ॥

सीतामुत्पलपद्माक्षीं नीलकुञ्चितमूषजाम् ।

अनन्दं ये नगरोद्वा मयेय यानरग्भस्ताम् ॥ १२ ॥

वे काल काले छुँसराते गालोनाली कमलछेज्जना सुन्दरी सीतासे बापर और रामधारी भरी मगधमें पुन इस प्रकार कहन लगे— ॥ १२ ॥

यत् कर्तव्य मनुष्येण धर्षणा प्रतिमाजता ।

तत्तु हत राग्य हवा मयेद् मानकाक्षिणा ॥ १३ ॥

‘अपने तिरस्कारका बदला चुकानेके लिये मनुष्यका जो कर्तव्य है वह सब मैंने अपनी मानरक्षाकी अभिलाषासे रावणका वध करके पूर्ण किया ॥ १३ ॥

निजिता जीरलोकस्य तपसा भावितात्मना ।

अगस्त्येन दुराधया मुनिना दक्षिणेय दिक् ॥ १४ ॥

जैसे तपस्यासे भावित अन्त कर्षणवाले अधया तपस्या पूरा परमात्मत्वकेपका चिन्तन करनेवाला महर्षि अगस्त्यने गातापि और इत्यलक भयसे जीवजगत्के लिये दुःखम हुई दक्षिण दिशाको जीता था, उसी प्रकार मैंने रावणने कानों पड़ी हुई तुमका जीता है ॥ १४ ॥

मिदितश्चास्तु भद्र त वाऽय रणपरिधम ।

सुनीण सुहृदा धीयन्तःखड्ग मया हत ॥ १५ ॥

‘तुम्हारा रक्षाय हो । तुम्हें मादम होना चाहिय कि मैंने जो यह युद्धका परिश्रम उठाया है तथा इन मित्रोंके पराक्रमसे जो इसमें विजय पायी है, यह सब तुम्हें पानेके लिये नहीं किया गया है ॥ १५ ॥

गता तु मया घृतमेषाद् य सर्व्यत ।

प्रयातस्या मयशस्य न्यङ्ग य परिमाजता ॥ १६ ॥

गन्तारारी गता, सब और जल हुए अपराधका निवारण तथा अपने सुविन्यात शरीर लगे हुए फलका परिमाणन करनेके लिये ही यह सब मैंने किया है ॥ १६ ॥

प्राप्तचारित्र्यसंदेहा मम प्रतिभुये स्थिता ।

श्रीपो नश्रातुस्म्यय प्रतिवृत्तसि म ददा ॥ १७ ॥

‘तुम्हारा चरित्रमें संदेहका आशय उपस्थित है फिर भी मुम मरे गामन परी है । अग आँखोंसे राणीका दीपककी चपि नहीं मुहारी, उसी प्रकार आज तुम मुझ अत्यन्त अभिय जान पन्ती है ॥ १७ ॥

नद् गच्छ त्यानुजानऽथ यथेष्ट जनकामज ।

पता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥ १८ ॥

‘अन जनककुमारी । तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ । मैं अपनी ओरसे तुम्हें अनुमति देता हूँ । भद्रे । य दशों दिशाएँ तुम्हारे लिये खुली हैं । अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है ॥ १८ ॥

य पुमास्तु कुटे जात क्षिय परगहोषिताम् ।

तजम्बी पुनर्गदयात् सुहृत्लेभेन चेतसा ॥ १९ ॥

‘कौन ऐसा कुलीन पुरुष गंगा आ तंजली होकर भी दूसरेके घरमें रात्री हुई स्त्रीका, जबल इस लामसे कि यह भरे साथ बहुत पितान रहकर रोड़ाई स्थावित कर चुकी है, मनसे भी ग्रहण कर सकेगा ॥ १९ ॥

रावणाद्रुपरिहिता हण दुष्टेन चक्षुषा ।

कथ त्वा पुनराद्या कुल व्यपदिशामहत् ॥ २० ॥

‘रावण तुम्हें अपनी गोदम उठाकर ले गया और तुमपर अपनी दूषित दृष्टि डाल चुका है, ऐसी दशाम अपने कुलों महान् बताना तुमों में फिर तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ॥

यर्क्य निर्जिता मे त्व सोऽपमासादितो मया ।

नास्ति मे त्वय्यभिप्यङ्गो यथेष्ट गम्यतामिति ॥ २१ ॥

‘अत जिस उद्देश्यसे मैंने तुम्हें जीता था, वह सिद्ध हो गया—मेरे कुलके फलका माज्रा हा गया । अब मेरी तुम्हारे प्रति ममता या आसक्ति नहीं है अतः तुम जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो ॥ २१ ॥

तद्य व्याहृत भद्रे मयैतत् हृतशुदिना ।

लक्ष्मणे धाय भरते कुय शुद्धि यथासुखम् ॥ २२ ॥

‘भद्रे । मत यह निश्चित विचार है । इसका अनुसार ही आगे मैंने तुम्हारे सामने यथार्थ कही हैं । तुम चाहता मत या लम्पणन सरक्षणम मुत्तपूरक रक्षिका विचार कर सकती हो ॥ २२ ॥

शत्रुघ्न नाय सुप्राय राक्षस या विभीषणे ।

निश्चय मन स्वीन यशः या सुवन्माभना ॥ २३ ॥

‘स्वीत । तुम्हारी इच्छा हो तो तुम शत्रुघ्न, नायपण सुधीर अधया राक्षसराज विभीषणका पास भी रह सकती हो । जहाँ तुम्हें सुख मिले, उहाँ अपना मा जाओ ॥ २३ ॥

नहि त्वा रावणो दृष्टा दिव्यरूपा मनारामा ।

मथयत रिग स्वीन मय्येष्ट वयश्चरिताम् ॥ २४ ॥

‘स्वीत । तुम ऐसा दिव्यरूप सौन्दर्यम सुगोपित रक्षणम नारीका अपने घरमें स्थित देखकर रावण चिरानन्दक प्रमते दूर रहनेका कष्ट नहीं सह सगा होगा ॥ २४ ॥

तत प्रियार्हधरणा तद्विषय

प्रियावुपश्रुय तिरस्य मानिनी ।

मुमोय वाण्य रक्षती तदा भूय

गजं ब्रह्मस्ताभिहतय यत्नरी ॥ २५ ॥

न मदा प्रिय वचन मुननेर ही याव्य था। य मर्निनी
गता चिरकाण्ड नाद मित हुए प्रियतमन मुखमे एसी अधिय

वात मुनकर उस समय हाथीका मूँने आहत हुई लना
समान आँख बान और गन लगी ॥ ॥

इससे धोमद्रामायण आहमीकाय आदिकाय सुदकाण्डे षोडशाधिकशततम सर्ग ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवत्सविरचित आश्वमेधायण अठ्ठाश्वक सुदकाण्डे एक भा पट्टना मा पूरा हुआ ॥ ११ ॥

षोडशाधिकशततम सर्ग

गीताका श्रीरामको उपालम्भपूर्ण उत्तर देकर अपने मतीत्वकी

परीभा देनेके लिये अग्निमें प्रवेश करना

एमुका तु वैदही परव गेमलर्पणम् ।

राघवण स्वरोपण श्रुचा प्रप्यधिताभवत् ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीन धापपुनर अर इस तरह रोगर लहे कर
दनबानी कनार बात कही, तर उस मुनकर विदेहजकुमारी
मोनार मनन वही व्यथा हुई ॥ १ ॥

सा तदाश्रुतपूर्व हि जन महनि मैथिली ।

श्रुत्या भर्तुर्वचो धोर लज्जयाजताभवत् ॥ २ ॥

इतने वड़े जनममुनायमें अपने स्वामीन मुँहसे एसी भयकर
बात, जो पहले कभी कानोंमें नही पही थी, मुनकर मिथिला
कुमारी लज्जमे गढ़ गया ॥ २ ॥

प्रतिज्ञान्तीर गात्राणि त्वानि सा जनकात्मजा ।

वाक्सारैस्ते सदात्येव श्रुतामश्रूयन्ततयत् ॥ ३ ॥

उन वाग्मार्गमें पीछित होकर वे जनककिशोरी अपने ही
अश्रुमें विखीन-सी हाने लगीं । उनर नेत्रोंमें आँसुओंका
अविरल प्रवाह जारी हो गया ॥ ३ ॥

ततो वाष्पपरिहृन्त प्रमार्चन्ती स्वमाननम् ।

शालैर्गन्ध्या घाचा भतारमिदमप्रवीत् ॥ ४ ॥

नेत्रोंक कलने भीरे हुए अपने मुलका अचलने पोंछती
हुई वे पीरे-पीरे गह्वर वाणीम पतिदेवने इस प्रकार
बोली—॥ ४ ॥

किं मामसदृश वाक्पयमीदृश शोषद्रागणम् ।

रूप आययमे वीर प्राहृत प्राहृतमिह ॥ ५ ॥

वीर ! आप एसी कनार अनुविन, कणक और
रानी बात मुझ क्यों मुना रह हैं । जैसे का निष्ठ भेणीका
पुरुष निम्नकाणिकी ही स्त्रीम न कहन योग्य बातें भी कह
वाला है, उमी तरह आप भी मुझमे कह रह हैं ॥ ५ ॥

न तथासि महायाहो यथा मामयगाच्छ्रुति ।

प्रत्यय गाल मे म्येन चारित्र्येण ते दोषे ॥ ६ ॥

भरावहा ! आप मुझ अब वैसी समझते हैं, वही मैं
नहीं हूँ । मुझपर निरन्तर कीजिय । मैं अपने सन्चारकी
शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं सदैव योग्य नहीं हूँ ॥ ६ ॥

पृथक्प्रीणा प्रवार्ण जाति न्य परिदाश्रुते ।

परित्यजेता शङ्का तु यदि तेऽह परीक्षिता ॥ ७ ॥

भीच भेणीकी भिषोका आचरण देखकर यदि आप

ममूची स्त्री जानिएर ही मदेह करत है तो य उचित नहीं है ।
यदि आपने मुझ अच्छी तरह परख लिया हो तो जिन इस
सदेहका मनने निकाल दीजिय ॥ ७ ॥

यन्म गात्रसम्पर्श गतासि जिज्ञासा प्रभा ।

कामकारो न मे तत्र दैव सत्रापगच्छति ॥ ८ ॥

प्रभा ! राक्षस गरीरम जो मेरे इस गारका स्पर्श हो
गया है उसने मेरी विवर्णता ही कारण है । मैं न स्वच्छामे
एसा नहीं किया था । हमने मेरे दुभाग्यरी ही शपथ है ॥ ८ ॥

मदधीन तु यन् तम हृदय त्यपि उरति ।

परार्धनेषु गात्रेषु किं कम्पिष्याम्यनीश्वरी ॥ ९ ॥

जो मेरे जीवित है वह मर हृदय तथा आपमें ही लग
रहता है (उसपर दूसरा का अधिकार नहीं कर सकता)
परन्तु मेरे अन्न तो पशुधीन था । यन्का यदि दूसरमे स्पर्श हो
गया तो मैं विवर्ण अपना क्या कर सकती थी ॥ ९ ॥

सह सद्युद्धभावेन ससर्गेण च मानद ।

यदि तेऽह मिमासा हता तेनासि दाभ्यतम् ॥ १० ॥

दूसरोंको मान देनेवाला प्राणनाथ ! हम शत्रोंका परस्पर
अनुराग तथा साथ साथ बना है । हम सग एक साथ रहते
आये हैं । इतनेपर भी यदि आपने मुझ अच्छी तरह नहीं
समझा तो मैं क्याके लिय मारी गयी ॥ १० ॥

प्रेषितम्ने महायाहो हनुमानबलेकक ।

लङ्काभ्याह त्वया रावन्किं तदा न विमर्जिता ॥ ११ ॥

भरावहा ! लङ्कामें मुझ दम्बनक लिय रूप अवन
महावीर हनुमानको भेज गा, उमी समय मुझ क्यों नहीं त्याग
दिया ॥ ११ ॥

प्रत्यक्ष वानरग्यास्य तद्वाक्पयममननरम् ।

त्वया सत्यकथा वीर त्यन म्याज्जीगित मया ॥ १२ ॥

मम समय वानरग्य हनुमानक मुझम आकर द्वारा
अपन त्यागी बात मुनकर तत्काल इनर सामने ही मैंने
अपन प्राणोंका परित्याग कर लिया होता ॥ १२ ॥

न बुधा तं धर्मोऽय म्यात् सदाये न्यस्य जीजितम् ।

सुहृज्जनपरिज्ञेयो न तया विरहस्तन ॥ १३ ॥

फिर इस प्रकार अवन जीजनका मरने शत्रुकर अवन

यः युद्धादिका व्यथ परिश्रम नहीं करना पड़ता तथा आपके ये मित्र लोग भी अकारण कष्ट नहीं उठाते ॥ १३ ॥

तव्या तु उपशान्तं रोपमेवानुवर्तता ।

लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्सृतम् ॥ १४ ॥

‘वृषश्रेष्ठ ! आपने ओंठे मनुष्यकी गोंति केवल रोपका ही अनुसरण करने में शील-स्वभावका विचार छोड़कर केवल मित्रकोणिकी स्त्रियोंके स्वभावको ही अपने सामने रक्खा है ॥

अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिरसुधातलात् ।

मम वृत्तं च वृत्तं यत्तु ते न पुरस्सृतम् ॥ १५ ॥

‘सदाचारके मर्मको जाननेवाले देवता ! यथा जनककी यशभूमिसे आविर्भूत होनेके कारण ही मुझे जानकी कहकर पुत्रता जाता है । वास्तव मेरी उत्पत्ति जनकसे नहीं हुई है । मैं भूतलसे प्रकट हुआ हूँ । (साधारण मानव-जातिसे विलक्षण हूँ—दिव्य हूँ । उसी तरह मेरा आचार विचार भी अलौकिक एवं दिव्य है । मुझमें आतिथिक बल विद्यमान है, परन्तु) आपने मेरी इन विद्यापताओंका अधिक महत्त्व नहीं दिया—इन सबको अपने सामने नहीं रखा ॥ १५ ॥

न प्रमाणीकृत पाणिर्गाल्ये मम निर्पाडितः ।

मम भविष्य शीलं च सर्वं ते पृष्टत वृत्तम् ॥ १६ ॥

‘वाल्म्यायस्य मैं आपने मेरा पाणिग्रहण किया है, इसकी ओर भी ध्यान नहीं दिया । आपके प्रति मेरे हृदयमें जो भक्ति है और मुझमें जो शील है, वह सब आपने पीछे ढकेल दिया—एक साथ ही मुला दिया’ ॥ १६ ॥

इति ह्युच्यन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी ।

बवाच लक्ष्मण सीता दीन ध्यानपरायणम् ॥ १७ ॥

इतना कहते कहते सीताका गला भर आया । ये रोती और आँसू बहाती हुई दुःखी एवं चिन्तामग्न होकर बैठे हुए लक्ष्मणसे गद्गद भाषीमें बोली— ॥ १७ ॥

चिन्ता मे क्वच सौमित्रे व्यसनस्यास्य मेपजम् ।

मिथ्यापथादोपहता नाह जीवितुमुत्सहे ॥ १८ ॥

‘सुमित्रानन्दन ! मेरे लिये चिन्ता तैयार कर दो । मेरे इस दुःखकी यही दवा है । मिथ्या बलबुद्धिसे कलङ्कित होकर मैं जीवित नहीं रह पाती ॥ १८ ॥

अप्रीतेन गुणैश्चा त्वत्पत्न्या जनसंसदि ।

या क्षमा मे गतिर्गन्तु प्रवेक्ष्ये हययाहनेम् ॥ १९ ॥

‘मेरे स्वामी मेरे गुणोंसे प्रसन्न नहीं हैं । इन्होंने मेरी क्षमामें मेरा परित्याग कर दिया है । ऐसी दशामें मेरे लिये जो उचित मार्ग है, उसपर जानेके लिये मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी’ ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वन्तु वैदशा लक्ष्मण परवीरहा ।

क्षमयश्चामापन्नो राघव समुद्देशत ॥ २० ॥

विदेहान्दिनीने ऐशा कहनेपर शत्रुनीति का गहार करने वाले लक्ष्मणने अमर्यव यकीभूत होकर भीष्मचन्द्रनीची ओर

देखा (उनसे सीताजीका वह अपमान सहा नहीं जाता था) ॥ २० ॥

स विश्वाय मनश्छन्द रामस्याकारसूचितम् ।

चिन्ता चकार सौमित्रिर्मते रामस्य धीर्यवान् ॥ २१ ॥

परन्तु भीष्मने इशारेसे सूचित होनेवाले उनमें हार्दिक अभिप्रायको जानकर पराक्रमी लक्ष्मणने उनकी सम्मतिसे ही चिन्ता तैयार की ॥ २१ ॥

नहि राम तदा कश्चित् कालान्तकयमोपमम् ।

अनुनेतुमथो वक्तुं द्रष्टुं वाप्यशक्तं सुहृत् ॥ २२ ॥

उस समय श्रीरघुनाथजी प्रलयशालीन सहायकारी यमराज के समान लोगोंके मनमें भय उत्पन्न कर रहे थे । उनका कोई भी मित्र उन्हें समझाने, उनसे कुछ कहने अथवा उनकी ओर देखनेका साहस न कर सका ॥ २२ ॥

अप्योमुख स्थित राम तत हृत्वा प्रवक्षिणम् ।

उपाततत वैदेही दीप्यमान हुताशनम् ॥ २३ ॥

सगगान् भीराम सिर वृक्षाप सहे ये । उसी अवस्थामें सीताजीने उनकी परिक्रमा की । इसके बाद वे प्रवर्तित अग्निसे पास गयीं ॥ २३ ॥

प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।

यत्नाञ्जलिपुत्र्य चेदमुवाचाग्निस्मीपत ॥ २४ ॥

वहाँ देवताओं तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करते मिथिलेश कुमारीने दोनों हाथ जोड़कर अग्निदेवके समीप इस प्रकार कहा— ॥ २४ ॥

यथा मे हृदय नित्य नापसर्पति राघवात् ।

तथा लोकस्य साक्षी मा सर्वतः पातु पायक ॥ २५ ॥

‘यदि मेरा हृदय कभी एक क्षणके लिये भी श्रीरघुनाथ जीसे दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके वासी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें ॥ २५ ॥

यथा मा शुद्धचारित्र्या दुष्टा जानाति राघव ।

तथा लोकस्य साक्षी मा सर्वतः पातु पायक ॥ २६ ॥

‘मेरा चरित्र शुद्ध है फिर भी श्रीरघुनाथजी मुझे पूर्ण समझ रहे हैं । यदि मैं सारी निष्कलङ्क हाँके तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके वासी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें ॥ २६ ॥

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ।

राघव सवधमस्य तथा मा पातु पायकः ॥ २७ ॥

‘यदि मैंने मन, वाणी और निष्पाशा कभी सम्पूर्ण धर्मोंके शाखा श्रीरघुनाथजीका अतिव्रमण न किया हो तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें ॥ २७ ॥

आदित्यो भगवान् चायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ।

अहध्यापि तथा सप्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ।

यथा येऽपि विजानन्ति तथा चारित्र्यसयुताम् ॥ २८ ॥

‘यदि भगवान् सूर्य, चायु, अग्नि, चन्द्रमा, दिन, रात, दोनों सप्ताह, शृष्टी देवी तथा अन्य देवता भी मुझे

गुद चरित्रे युक्त जानते हो तो अन्विष्ट मरी सब अरसे
रख करे ॥ २८ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिप्रम्य द्रुताशनम् ।
विवेदा ज्वलन दीप्त नि शङ्केनात्तरामना ॥ २९ ॥

एषा कश्चरि विदेहजङ्गमरीने अन्विदेवकी परिप्रमा की
और निशङ्क चित्तने वे उस प्रज्जलन अग्निने समा गयीं ॥
जनश्च सुमहास्तस्य गाल्वृद्धसमाकुल ।

दृष्ट्वा मैथिलीं दीप्ता प्रदिशन्तीं द्रुताशनम् ॥ ३० ॥

बाल्ये और बूढ़ोंने भर हुए वृद्धों महान् जन
सङ्गाने उन दीप्तिमती मिथिल्यशुमारिना जल्ती आगमें
प्रवेश करते देखा ॥ ३० ॥

सा ततनरहेमभा ततकाञ्चनभूषणा ।
पपात ज्वलन दीप्त सर्लोकस्य सनिधौ ॥ ३१ ॥

तदाप्य हुए नूतन मुकुटकीसा कान्तिमान् सीता अगमें
तदाकर गुद किये गये मुकुटक आभूषणोंने विभूषित थीं ।
वे सब लोगोंक निष्ठा उनक देखते देखते उस बख्ती आगमें
दूढ़ पड़ी ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा शिवालाक्षीं पत्नीं हव्यगाहनम् ।
सीता सखाणि रूपाणि रुक्मजोदिनिभा तदा ॥ ३२ ॥

सन्नेरी बनी हुई वेदाक्ष समान कान्तिमती शिवाल-
क्षचना सीतादेवीकी उस समय सम्पूर्ण भूगोले आगमें गिरते देखा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पौष्पाधिकशततम सर्ग ॥ ११६ ॥

इन प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित अष्टमनायक आदिछान्दस युद्धकाण्डमें एक ती सप्तहत्तीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततम सर्ग

भगवान् श्रीगमने पाम दपताओंका आगमन तथा ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्ताका प्रतिपादन एवं स्तवन
तनो हि दुमना राम श्रुत्वा यदता गिर ।

दृष्ट्वा मुहूर्तं धामा माप्ययाकुललोचन ॥ १ ॥

ततन्तर घमाना भीरुम हाहाकार करनेवाला वानर
और राक्षसी कीर्तें सुनकर मनहीमन बहुत दुःखी हुए
और आँखोंमें आँसू भरकर दो पक्षीक कुछ रोचन रहे ॥
ततो वैद्यज्जो राजा यमश्च पितृभि सह ।

सहस्रायश्च देवशो वरुणश्च जलेश्वर ॥ २ ॥

पञ्चधनयन धीमान् महादेवो धूम्रवज्र ।

कृता सखस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदा धर ॥ ३ ॥

एते सर्वे समागम्य विमानं सुयसनिधौ ।

आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राधयम् ॥ ४ ॥

इहा समय विभरन पुत्र वरुण वज्र, निर्रोक्ष्मि
यमराज देवराजेंद्र शन्नी सहस्र नक्षत्री इन्द्र, जनक

अभिनि वरुण विदेवपरी भीमान् धूम्रवज्र महादेव तथा
सर्वों वायु सद्य ब्रह्माचार्यों भेद ब्रह्माद्य—य वर

दृष्ट्वा महाभागा प्रदिशन्तीं द्रुताशनम् ।

अपया देवगधया यमे पूणाहृतीमिर ॥ ३३ ॥

श्रुतियों देवताओं और गन्धर्वोंने देगा अने यममें
पूणाहुतिका हाम होना है, उसी प्रकार महाभाग सीता जल्ती
आगमें प्रवेश कर रही हैं ॥ ३३ ॥

प्रचुक्रुः स्त्रिय सखास्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वाग्ने ।

पतन्तीं सस्त्रता मर्त्रैर्मोधारामिवाधरे ॥ ३४ ॥

जैसे यममें मर्त्रद्वारा सस्त्रार की हुई वंशुषागकी
आहुति दी जाती है, उसी प्रकार स्त्रिय आभूषणोंने विभूषित
सीताको आगमें गिरते देख बड़ा आश्चर्य हुआ सभी स्त्रियों
चील उठा ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वास्तु त्रयो लोका देवगधर्षणतया ।

शता पतन्तीं निरये त्रिदिशद् देवतामिर ॥ ३५ ॥

तीनों लोकोंक दिव्य प्राणी, शक्ति, देवता गन्धर्व तथा
दानवोंने भी भगवता सीताका आगमें गिरन देखा, मानों
स्वर्गमें कोई देवी शापमन्त्र हकर नरकमें गिरी हो ॥ ३५ ॥

तस्यामग्निं विशन्त्या तु हाहेति विपुल स्वन ।

रक्षसा वानराणा च सम्यभूराहृतोपम ॥ ३६ ॥

उनक अग्निमें प्रवेश करने समय रक्षस और वानर
झर झरने हाहाकार करने लगे । उनका वह अद्भुत अर्त-
नाद चारों ओर गूँज उठा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पौष्पाधिकशततम सर्ग ॥ ११६ ॥

इन प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित अष्टमनायक आदिछान्दस युद्धकाण्डमें एक ती सप्तहत्तीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततम सर्ग

भगवान् श्रीगमने पाम दपताओंका आगमन तथा ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्ताका प्रतिपादन एवं स्तवन
तनो हि दुमना राम श्रुत्वा यदता गिर ।

दृष्ट्वा मुहूर्तं धामा माप्ययाकुललोचन ॥ १ ॥

ततन्तर घमाना भीरुम हाहाकार करनेवाला वानर
और राक्षसी कीर्तें सुनकर मनहीमन बहुत दुःखी हुए
और आँखोंमें आँसू भरकर दो पक्षीक कुछ रोचन रहे ॥
ततो वैद्यज्जो राजा यमश्च पितृभि सह ।

सहस्रायश्च देवशो वरुणश्च जलेश्वर ॥ २ ॥

पञ्चधनयन धीमान् महादेवो धूम्रवज्र ।

कृता सखस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदा धर ॥ ३ ॥

एते सर्वे समागम्य विमानं सुयसनिधौ ।

आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राधयम् ॥ ४ ॥

इहा समय विभरन पुत्र वरुण वज्र, निर्रोक्ष्मि
यमराज देवराजेंद्र शन्नी सहस्र नक्षत्री इन्द्र, जनक

अभिनि वरुण विदेवपरी भीमान् धूम्रवज्र महादेव तथा
सर्वों वायु सद्य ब्रह्माचार्यों भेद ब्रह्माद्य—य वर

त्रयणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयममु ॥ ७ ॥

‘पूरुषालमें वसुओंके प्रजापति जा श्रुतधामा नामक वसु थे, य आप ही हैं। आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता स्वयममु हैं ॥ ७ ॥

रुद्राणामप्यमो रुद्र साध्यानामपि पञ्चम ।

अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ ॥ ८ ॥

‘रुद्रमें आठवें रुद्र और साध्योंमें पाँचवें साध्य भी आप ही हैं। दो अश्विनीकुमार आपके कान हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्र हैं ॥ ८ ॥

कृते चादौ च मये च हृदये च परतप ।

उपेक्षते च यैर्देही मानुष प्राहृतो यथा ॥ ९ ॥

‘शत्रुओंको सताप देनेगले देव। सृष्टिके आदि, अन्त और मध्यमें भी आप ही दिलायी देते हैं। फिर एक साधारण मनुष्यकी मौत आप सीतानी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?’ ॥ ९ ॥

हृद्युक्तो लोकपालस्तै स्वामी लोकस्य राघवः ।

अवशीत् निदशधेष्ठान् रामो धमभूता वर ॥ १० ॥

उन लोकपालोंके ऐसा कहनेपर धामात्माओंमें अष्ट लोकपाल खुनाय भीरामने उन अष्ट देवताओंसे कहा— ॥ १० ॥

आत्मान मानुष मन्ये राम दशरथात्मजम् ।

सोऽह यश्च यतश्चाह भगवास्तद् धृती मे ॥ ११ ॥

‘देवगण! मैं तो अपनेको मनुष्य दशरथपुत्र राम ही समझता हूँ। भगवन्! मैं जो हूँ और जहाँसे आया हूँ, वह सब आप ही मुझे बताइये’ ॥ ११ ॥

इति वृषाण काकुरस्य ब्रह्मा ब्रह्मविवा घर ।

अग्रनीचकृणु मे वान्य सत्य सत्यपराक्रम ॥ १२ ॥

भीरुनायनीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मदेवाओंमें अष्ट ब्रह्मा

नीने उनसे इस प्रकार कहा—‘सत्यपराक्रमी भीरुनीर! आप मेरी सच्ची बात सुनिये ॥ १२ ॥

भगवन् नायगो देव भीमाश्रमायुध प्रभु ।

एकशृङ्गो वराहस्य भूतभयसप्तलजित् ॥ १३ ॥

‘आप चक्र धारण करनेगले सर्वसम्य भीमान् भगवान्

नायग देव हैं; एक दाढ़वाले शृङ्गीधारी वराह हैं तथा

देवताओंके भूत एव भावी शत्रुओंको जीतनेगले हैं ॥ १३ ॥

अमर ब्रह्म सत्य च मये चातं च राघव ।

लोकाना रर परो धर्मो विष्यमसेनश्चतुर्भुज ॥ १४ ॥

‘रघुनन्दन! आप अमिताभी परम हैं। सृष्टिके आदि,

मध्य और अन्तमें सर्वस्वसे विद्यमान हैं। आप ही लोकोंके

परम धर्म हैं। आप ही विश्वरूपसे तथा चार भुजाधारी

भीहरि हैं ॥ १४ ॥

दाक्षध्या हरिपेशः पुरुष पुरुषोत्तमः ।

यजित खड्गपुनः प्रिणुः कृष्णश्चैव वृहद्वल् ॥ १५ ॥

‘आप ही दाक्षधन्या, हरीपेश, अन्तर्धामी पुरुष और

पुरुषोत्तम हैं। आप विद्येसे पराजित नहीं हात। आप नन्दक

नामक एव धारण करनेवाले विष्णु एव महाबली कृष्ण हैं ॥

सेनानीर्ग्रामभीष्ट एव बुद्धिः सत्त्व क्षमा दमः ।

प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेद्रो मधुसूदनः ॥ १६ ॥

‘आप ही देवसेनापति तथा गाँवोंके मुखिया अथवा

नेता हैं। आप ही बुद्धि, सत्त्व, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह तथा

सृष्टि एव प्रलयके कारण हैं। आप ही उपेन्द्र (धामन) और

मधुसूदन हैं ॥ १६ ॥

इन्द्रकमा महेन्द्रस्य पञ्चनाभो रणान्तकृत् ।

शरण्य शरण च स्वामाहुर्दिया महर्षय ॥ १७ ॥

‘इन्द्रकी भी उदरघ्न करनेगले महेन्द्र और युद्धका अन्त

करनेगले शान्तस्वरूप पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य

महर्षिगण आपन। शरणदाता तथा शरणागतबन्धु बताये हैं ॥

सहस्रशृङ्गो चेदामा शतशीर्षो महर्षभः ।

त्व त्रयाणा हि लोकानामादिकर्ता स्वयममु ॥ १८ ॥

‘आप ही सहस्रों शालारूप शींग तथा सैकड़ों त्रिषिवाक्य

रूप मन्त्रोंसे युक्त वेदरूप महाशृंग हैं। आप ही तीनों

लोकोंके आदिकर्ता और स्वयममु (परम स्वतन्त्र) हैं ॥ १८ ॥

सिद्धानामपि साध्यानामभयश्चासि पूर्वजः ।

त्व यस्त्वस्व वरकृद्दरस्त्वमोकार परात्पर ॥ १९ ॥

‘आप विद्व और साध्योंके आभय तथा पूजन हैं।

यश, वरप्रकार और ओंकार भी आप ही हैं। आप अष्टसे

भी अष्ट परमात्मा हैं ॥ १९ ॥

प्रभय निधन चापि नो विदुः को भवानिति ।

हृदयसे सर्वमृतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ २० ॥

‘आपने आविर्भाव और तिरोभावको कोई नहीं जानता।

आप कीर हैं—इसका भी किसीको पता नहीं है। समस्त

प्राणियोंमें, गौओंमें तथा ब्राह्मणोंमें भी आप ही दिलायी

देते हैं ॥ २० ॥

विदुः सगामु गगने परंतेषु नदीषु च ।

सहस्रचरणः धीमाश्रितरीर्य सहस्रदृक् ॥ २१ ॥

‘समस्त दिशाओंमें, आकाशमें, परंतोमें और नदियोंमें

भी आपकी ही सत्ता है। आपके सहस्रों चरण, सैकड़ों

महाज और सहस्रों नेत्र हैं ॥ २१ ॥

त्व धारयसि भूतानि पृथिवीं स्वयमर्षताम् ।

अन्ते पृथिव्या सलिले हृदयसे त्व महोरग ॥ २२ ॥

‘आप ही समूर्ण प्राणियोंको, पृथ्वीरा और समस्त परंतो

का धारण करते हैं। पृथ्वीरा अन्त हो जानेपर आप ही

जन्मे ऊपर महान् सर्प—नेत्रनागके रूपमें दिलायी देते हैं ॥

सलिलेष्वन धारयन् राम देशगधरदानाम् ।

यह ते हृदय राम जिह्वा द्वी सम्मती ॥ २३ ॥

‘श्रीराम! आप ही तीनों लोक तथा देवता, गन्धर्व

और दासोंको धारण करनेगले त्रिदत् पुरुष नायक हैं।

सर्व हृत्पथे रम्य करनेगले परमाभन । मैं ब्रह्मा आपरा
हृदय हैं और देवा मरुती आपकी जिह्वा हैं ॥ २२ ॥

देवा रोमाणि पात्रेषु ग्रहणा निर्मिता प्रभो ।

निमेषस्ते स्मृता गरिरुमेगे निरसस्तथा ॥ २४ ॥

प्रभो ! मुझ ब्रह्मने जिनकी सृष्टि की है, वे सब देवता
आकर दित्त शरीरमें रम हैं । आकर नेत्रोंका बद इना
यदि और खुलना ही दिन है ॥ २४ ॥

सस्काराम्यभयन् वेदा नैतदस्ति न्यया विना ।

जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्ये ते यमुधानलम् ॥ २० ॥

वेद आरक संस्कार हैं । आपने विना इस जगत्का
अस्तित्व नहीं है । समूह विश्व आरका शरीर है । प्रणी
आरकी स्थिरता है ॥ २५ ॥

अग्नि कोप प्रसादमे सोम श्रीरस्तलव्यण ।

त्वया लोकास्त्रयं भ्रान्ता पुरा स्थैर्विभ्रमैस्त्रिभिः ॥ २६ ॥

अग्नि आरका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है, बड़
स्थलमें श्रीरस्तल विह्वल धारण करनेवाले भगवान् विष्णु
आर ही हैं । पूर्वकालमें (धामनावगाए समय) आपने ही
आग्ने तीन पणोंमें तीनों लोक नाश लिये थे ॥ २६ ॥

महेन्द्र हतो राजा यल्लि यद्वा सुदाहणम् ।

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देव कृष्ण प्रजापति ॥ २७ ॥

आग्ने अत्यन्त दारुण दैत्यराज बलिष्ठ बाँधकर इन्द्र
को तीनों लोकोंका राज बनाया था । सीता साक्षत् लक्ष्मी हैं
और आप भगवान् विष्णु हैं । आप ही सचिदानन्दस्वरूप
भगवान् श्रीकृष्ण एव प्रजापति हैं ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये गुदकाण्डे सप्तदशाधिकशततम सर्ग ॥ ११० ॥

इम प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित अवरानायक अष्टादश्याक गुदकाण्डमें एक सौ सत्रत्तौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११० ॥

अष्टादशाधिकशततम सर्ग

मूर्तिमान् अग्निदेवका सीताको लेकर चितासे प्रकट होना और श्रीरामको समर्पित करके
उनकी परिव्रताको प्रमाणित करना तथा श्रीरामका सीताको महर्ष मीनार करना

एतच्छ्रुत्वा शुभ वाक्य पिनामहसमीरितम् ।

भट्टेन्द्राक्षरं वैदेहीमुत्पथाम विभावसु ॥ १ ॥

ब्रह्मर्षीन कहे हुए इन उम वक्त्रोंका सुनकर मूर्तिमान्
अग्निने विरैनन्दिनी सीताको (पिनामी मौलि) नेदमें
लिये विप्रासे ऊपर उठ ॥ १ ॥

निष्पथाय पिता ता तु वैदेहीं हृष्यगहन ।

उत्तम्यौ मूर्तिमानां गृहीत्वा जनकामनाम् ॥ २ ॥

उप विप्राध पिता इष्य उषर विप्राधे हुए पित्र
रूपवादी हर्षानन्द अग्निने वैदेही सीताको छप लिये तुरत
ही उत्तर लड़ ही गये ॥ २ ॥

यथार्य गन्धम्यत्र प्रशिषे मानुर्या ननुम् ।

तदित् नम्यया कार्यं कृत धममृता उग ॥ २८ ॥

धमाम्नाओंमें श्रेष्ठ गन्धिर ! आपने रावणका यथ
करनेक लिये ही इस लक्ष्मीमें मनुष्यक शरीरमें प्रवेश किया
था । हमयोगोंका चक्र आगे समग्र कर दिया ॥ २८ ॥

निहतो राखणे राम प्रहणे दिवमाश्रम ।

अमोघ देव वीर्ये ते न तऽमोघा पराश्रमा ॥ २९ ॥

श्रीराम ! अश्रुत द्वारा राख मारा गया ! अब आप
प्रसन्नतापूर्वक अग्ने दिव्य धामम पवारिय । देव ! आपका
बल अमोघ है । अश्रुत पराक्रम भी आप होनेवाला नहीं हैं ॥

अमोघ दशन राम अमोघस्तत्र सत्तर ।

अमोघास्ते भविष्यन्ति भविमन्तो नग भुवि ॥ ३० ॥

श्रीराम ! आरका दर्शन अमोघ है । आपका मनन
भी अमोघ है तथा आपमें मक्ति रखनेवाला मनुष्य भी इस
भूमण्डलमें अमोघ ही होंगे ॥ ३० ॥

ये त्वा देव ध्रुव भक्ता पुराण पुरुषोत्तमम् ।

प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३१ ॥

आर पुराणपुरुषोत्तम हैं । दिव्यरूपवादी परमात्मा हैं ।
जो लोग आपमें मक्ति रखेंगे, वे इस लोक और परलोकमें
आग्ने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे ॥ ३१ ॥

इममार्य स्तर द्विपमितिहास पुरातनम् ।

ये नरा कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेया पराभर ॥ ३२ ॥

यह परम श्रुति ब्रह्माका क्या हुआ दिव्य स्तोत्र तथा
पुरातन इतिहास है । जो लोग इसका कीर्तन करेंगे, उनका
कभी पराभव नहीं होगा ॥ ३२ ॥

तदुणादित्यसमसा सप्तकाञ्चनमूरणाम् ।

रक्ताम्बरधरा वाला नीलकुञ्जितमूधनाम् ॥ ३ ॥

अग्निप्रमाल्याभरणा तथा रूपामनिन्दिताम् ।

द्वौ रामाय वैदेहीमद्रे हृत्वा विभावसु ॥ ४ ॥

सीताजी प्रमाल्याभरणा मूधना मौलि अरण्यपीन बालिने
प्रकाशित हो रही थीं । तब ही अग्ने अमोघ उनही
शामा बढ़ा रहे थे । उनका भीमभ्रोरल्ल रंगी रंगी कादी
लहर रही थी । निरर शान्त-शान्त सुषण्य क्या सु-मिति
होते थे । उनही अवस्था नहीं थी और उनका द्वारा धारा
किय गये ध्रुवोंका हार कुण्डलये तक नहीं थे । अनित्य मुन्नी

सनीसाथी सीताका अग्निमें प्रवेग करने समय जैसा रूप और
वेग था, उसे ही रूप-सौन्दर्यते प्रकाशित होती हुई उन वैदेही
को गोदमें लेकर अग्निदेवने श्रीरामको समर्पित कर दिया ॥

अवनीत तु तदा राम साक्षी लोकरूप पायक ।

एषा ते राम वैदेही पापमस्या न विद्यते ॥ ५ ॥

उस समय लोकसाथी अग्निने श्रीरामसे कहा—‘श्रीराम !
यह आपकी धर्मपत्नी विदेहराजकुमारी सीता है । इसमें कोई
पाप या दोष नहीं है ॥’ ॥

नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चनुषा ।

सुवृत्ता वृत्तशोटीर्य न त्वामत्यचरच्छुभा ॥ ६ ॥

‘उत्तम आचारवाली इस गुणलक्षणा सनीने मन, वाणी,
बुद्धि अपना नेनोंद्वारा भी आपके सिवा किसी दूसरे पुरुषका
आश्रय नहीं लिया । इसने कदा कदाचारप्रयाण आपका ही
आराधन किया है ॥’ ॥

राजनेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा ।

स्वया विरहिता दीना त्रिवशा निर्जने सती ॥ ७ ॥

‘अपने बल-पराक्रमना घमट रखनेवाले राक्षस राजने
जब इसका अपहरण किया था, उस समय यह बेचारी
सती सूने आश्रममें अकेली थी—आप इसने पास नहीं थे
अन यह बेवश थी (इसका कोई बच नहीं चला) ॥’ ॥

मुखा चान्त पुरे गुप्ता त्वच्चिता स्वत्परायणा ।

रक्षिता राक्षसीभिश्च घोरभिर्घोरबुद्धिभि ॥ ८ ॥

‘रावणने इसे लाकर अन्त पुरमें कैद कर लिया । इसपर
बहरा बिठा दिया । मयानक निचारोंवाली भीषण राक्षसियों
इसकी रखवाली करने लगीं । तब भी इसका चित आपमें
ही लगा रहा । यह आपहीको अपना परम आश्रय
मानती रही ॥’ ॥

प्रलोभ्यमाना विविध तर्ज्यमाना च मैथिली ।

नाचिन्तयत तद्रक्षस्यघतेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥

‘तत्पक्षात् तरह तरहके लोभ दिये गये । इस मिथिला
कुमारीपर डोंट फकार भी पड़ी परतु इसकी अन्तरात्मा
निरन्तर आपके ही चिन्तनमें लगी रही । इसने उस राक्षसके
विरयमें कभी एक बार भी नहीं सोचा ॥’ ॥

विमुक्तभावा निष्पापा प्रतिगृहीष्य मैथिलीम् ।

न किन्द्विभिधातया अहमात्मापयामि ते ॥ १० ॥

‘अन इसका भाव सँगा उठ है । यह मिथिलानन्दिनी
सँगा निष्पाप है । आर इसे खदर स्वीकार करें । मैं आपसे
आशा देता हूँ, आप इसमें कभी कोई कनेर बात न करें ॥’ ॥
तत प्रीतमना राम भुजैव यदता घर ।

दक्षी मुहूर्त धमात्मा हृदयपुल्लोत्तन ॥ ११ ॥

अग्निदेवकी यह बात सुनकर वताओंमें भद्र घमात्मा
भीरामना मन प्रसन्न हो गया । उनक नेत्रोंमें आनन्दक आँसू
छाक आये । वे बाड़ी देखत विचारमें डूबे रहे ॥ ११ ॥

एवमुक्ते महानेजा धृतिमानुरुविक्कम् ।

उत्राच त्रिदशश्रेष्ठ रामो धमभृता घर ॥ १२ ॥

तन्तन्तर महानेजकी, धैर्यवान्, महान् पराक्रमी तथा
धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने देवशिरामणि अग्निदेवसे उनकी
पूर्वक बातने उत्तरमें कहा— ॥ १२ ॥

अनद्य चापि लेकेषु सीता पावनमर्हति ।

दीर्घकालोपिना हीय रात्रान्त पुरे शुभा ॥ १३ ॥

‘भगवान् ! लोगोंमें सीताजीकी पवित्रताका विश्वास
दिलनेके लिये इनकी यह बुद्धिविषय परीक्षा आनन्दक की
क्योंकि गुणलक्षणा सीताको विशद होकर दीर्घकालतक रावणके
अन्त पुरमें रहना पड़ा है ॥’ ॥

चालिशो यत कामात्मा रामो दशरथात्मज ।

इति वक्ष्यति मा लोको जानक्रीमविशोध्य हि ॥ १४ ॥

‘यदि मैं जनकनन्दिनीकी बुद्धिके विषयमें परीक्षा न
करता तो लोग बड़ी कहते कि दशरथपुत्र राम वड़ा ही मूल
और कामी है ॥’ ॥

अनयद्वयता सीता मच्चित्तपरिरक्षिणीम् ।

अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ १५ ॥

‘यह बात मैं भी जानता हूँ कि मिथिलेशनन्दिनी जनक-
कुमारी सीताका हृदय सदा मुझमें ही लगा रहता है । मुझसे
कभी अलग नहीं होता । ये सदा मेरा ही मन रखती—मेरी
इच्छाके अनुसार चलती हैं ॥’ ॥

इमामपि विशालार्क्षी रक्षिता स्येन तेजसा ।

रात्रौ नातिवतत चेलामिव महोदधि ॥ १६ ॥

‘मुझ यह भी विश्वास है कि जैसे महासागर अपनी तरफ
भूमिसे नहीं लॉच सकता, उसी प्रकार रावण अपने ही
तेजसे सुरक्षित इन विशाललोचना सीतापर अत्याचार नहीं
कर सकता था ॥’ ॥

प्रत्ययार्थे तु लोकाना प्रयाणा सत्यसन्धयः ।

उपेक्षे चापि वैदेही प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ १७ ॥

‘तथापि तीनों लोकोंके प्राणियोंके मनमें विश्वास दिलानेके
लिसे एकमात्र सत्यका स्वरूप रामने अग्निमें प्रवेश करती
हुई विदेहकुमारी सीताको रात्रनेही चेप नहीं की ॥’ ॥
न शक्नुवन्नुपमा मनसापि हि मैथिलीम् ।

प्रधवयितुमप्राप्या सीतामग्निशिखामिव ॥ १८ ॥

‘मिथिलेशकुमारी सीता प्रज्वलित अग्निशिखान् समान
गुर्धर तथा दूसरे लिये अलम्ब्य है । हुतात्मा रात्रनने
द्वारा भी इनपर अत्याचार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता था ॥
नेयमर्हति वैश्वस्य रात्रान्त पुरे सती ।

अनन्या हि मया सीता भास्वरूप्य प्रभा यया ॥ १९ ॥

‘य सीताजी देवी रात्रनन अन्त पुरमें रहकर भी
व्याकुलता या चरचरने नहीं वह मरती थी क्योंकि ये
मुझसे उसी तरह अभिन्न हैं, जेने सूर्यदेवने उनकी प्रभा ॥

विजुडा त्रिषु लक्षेषु मैथिला जनकामजा ।
न विहातु मया शन्या कीनताममता यथा ॥ २० ॥

‘मिथिलसमुद्रमाल’ जनकी तानों त्योमें परम पवित्र
है। बेनेमन्वी पुरुष कीर्तिका ताम नग कर सज्जा। उसी
तरह मैं भी इन्हें नहीं छोड़ सकता ॥ २० ॥

अथय च मया कार्य सर्वेषां यो वचो हितम् ।
अग्निधाना लोकनाथानामेव च प्रदत्ता हितम् ॥ २१ ॥

‘आप सभी लाक्षणल मेरे गिती ही बात कह रहे हैं
और आगलगाँवा मुझपर बड़ा स्नेह है अतः आप सभी

इत्यार्षे धीमतामायगे वात्समाक्ये आदिकाण्ये युद्धकाण्डेऽष्टादशधिकाशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिर्निर्णित आचरणवाचक अर्चिक यक्ष मुद्रकण्डने एक संवत्सराहर्षो मा पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमः सर्गः

महादेवजीकी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणका विमानद्वारा आये हुए राजा दशरथको प्रणाम
करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा मीताको आवश्यक मदद द इन्द्रलोकको जाना

एतच्छ्रुत्वा शुभ वाक्य राघवेणानुभाषितम् ।

ततः शुभतर वाक्य व्यानहार महेश्वर ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीके कहे हुए इत गुम वचनोंको सुनकर
श्रीमहादेवजी और भी गुमतर वचन बोल— ॥ १ ॥

पुष्कराक्ष महागोहो महागोश परतप ।

दिष्टया वृत्तमिदं कम न्याय भ्रममृता घर ॥ २ ॥

‘यमुओंसो छात्र देनेवाले, निशाल वक्षम्यलने
सुखमिले, महाबाहु कमलनयन। आप घमात्ताओंमें भेड़
हैं। अपने रावण-वधरूप कार्य संगत कर दिया—यह बड़े
सौभाग्यकी बात है ॥ २ ॥

दिष्टया सत्यस्य लोकस्य प्रवृत्त दारुण तम ।

अपवृत्त त्वया सत्ये राम राजणस्य भयम् ॥ ३ ॥

‘श्रीराम। यकावनिन मय और दुख सर लक्ष्मीके
लिये बड़े हुए पर अचछाकर समान था, त्रिने आपने
सुखने मिला दिया ॥ ३ ॥

आध्यात्म्य भरत दीन कोसल्या च यदाश्विनीम् ।

कैकेयी च सुमित्रा च हृष्टा लक्ष्मणमातरम् ॥ ४ ॥

प्राप्य राज्यमयोयाया नन्दयित्वा मुहज्जनम् ।

इक्ष्वाकुणा कुले यदा म्यापयित्वा महायत् ॥ ५ ॥

हृष्टा तुणामेधेन प्राप्य चानुत्तम यदा ।

प्राक्षणेभ्यो धन दत्त्वा त्रिदिश गतुमहसि ॥ ६ ॥

महापत्नी वीर। अतः दुखी भरतका धीरव वेषकर
यदाश्विनी कोसल्या, कैकेयी तथा लक्ष्मणावनी सुमित्रा
मिलकर, अन्धप्रादा पाप पाकर, मुहूर्तोंसे अनन्द देखकर,
इक्ष्वाकु-कुलमें अम्मा यदा म्यापित करके, अथनेव यदा
अनुष्ठान कर, सर्वोत्तम यदा उपायन करण तथा प्राक्षणे

न्याओंके निरंतर वचनका मुझ अन्ध पालन करना
चाहिये ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्त्या विनयी महाशरत्

प्रशस्यमान स्वहृतेन कम्पना ।

समेत्य राम त्रियया महापदा

मुख मुखाहोऽनुगभूव राघव ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर अपने किय हुए पदक्रमने प्रशंसित
होनेवाले महापत्नी, महापत्नी, विनयी वीर रघुलक्ष्मण
श्रीराम अपनी प्रिया सीताने मिल और मिलकर बड़े सुखका
अनुभव करने लगे क्योंकि वे सुख भोगने ही शक्य हैं ॥

घन देकर अन्धों अपने परम धाममें बना चाहिये ॥ ४-६ ॥

एव राजा दशरथो विमानस्य पिता ततः ।

काङ्क्षस्य मानुषे लोके गुरुस्तत्र महायदा ॥ ७ ॥

‘कङ्क्षस्तुल्यलक्ष्मणनन्दन। देखिये, ये आपका पिता राजा
दशरथ विमानपर बैठे हुए हैं। मनुष्य-रूपमें यही आपने
महापत्नी गुरु थे ॥ ७ ॥

इन्द्रलोक गत धीमास्त्वया पुत्रेण तारितः ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभियादय ॥ ८ ॥

ये श्रीमान् नरस इन्द्रलोकको प्राप्त हुए हैं। आप-बैठे
पुत्रने इन्हें तार दिया। आप भाई लक्ष्मण साथ इन्हें
नमस्कार करें ॥ ८ ॥

महादेववक्ष्य श्रुत्वा राघव सहलक्ष्मण ।

विमानशिखरम्यस्य प्रणाममकरोन् पितु ॥ ९ ॥

महादेवजीकी बात सुनकर लक्ष्मणावनी श्रीरघुनाथजीने
विमानमें उबखाना कर बैठे हुए अपने पिताजीसे प्रणाम
किया ॥ ९ ॥

दीप्यमान स्वया लक्ष्म्या रिचोऽप्यरधारितम् ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं प्रभु ॥ १० ॥

भाई लक्ष्मणावनी मन्वान् श्रीरामने निम्न अन्दी
तह देखा। वे निम्न वक्ष्य घारा करर अपनी दिव्य प्रभने
देखानन्दन थे ॥ १० ॥

हर्षेण महताऽऽश्रितो विमानस्यो मदीपति ।

प्रापे त्रियनरं हृष्टा पुत्र दारप्यस्तदा ॥ ११ ॥

विमानपर बैठे हुए मन्वान् दशरथ अपने प्राप्ते की
प्यारे पुत्र औरमदा देनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥

आरोप्याह्ने महाबाहुयगासनगतं प्रभु ।

बाहुभ्यां समरिष्यन्त ततो वाक्य समादत् ॥ १२ ॥

सतीसाध्वी सीताका अग्निमें प्रवेश करने समय जैल रूप और
वेर था, उसे ही रूप सौन्दर्यसे प्रनाशित हाती हुई उन वैदेही
को गोदमें लेकर अग्निदेवने श्रीरामका समर्पित कर दिया ॥
अग्रनीत् तु तदा राम साक्षी लोकस्य पाथक ।

एषा ते राम वैदेही पापमस्या न विद्यते ॥ ५ ॥

उस समय लोकसाक्षी अग्निने श्रीरामसे कहा—‘श्रीराम !
यह आपकी धर्मपत्नी विदेहराजकुमारी सीता है । इसमें कोई
पाप या दोष नहीं है ॥ ’ ॥

नैर वाचा न मनसा नैर बुद्ध्या न चक्षुषा ।

सुवृत्ता घृत्तशोटीर्यं न त्यामत्यचरच्छुभा ॥ ६ ॥

‘उत्तम आचारावाली इस गुणलक्षणा स्त्रीने मन, वाणी,
बुद्धि अपना नैर्घोद्वारा भी आपने सिखा निरखी दूखे पुरुषका
आश्रय नहीं लिया । इसने सदा सदाचारपरायण आपका ही
आराधन किया है ॥ ६ ॥

राशनेनापनीतैषा वीर्योत्सिञ्चेन रक्षमा ।

त्वया विरहिता दीना प्रियशा निर्जने सती ॥ ७ ॥

‘अपने बल-यशस्वमय घमट राशनेगले राखत राशने
जब इसका अपहरण किया था, उस समय यह वैचारी
सती सने आश्रममें अकेली थी—आप इसने पास नहीं थे
अन यह वैभव थी (इसका कोई बन्ध नहीं चला) ॥ ७ ॥

हुञ्चा चान्त पुरे गुप्ता त्वच्छिता स्वत्परायणा ।

रक्षिता राक्षसीभिश्च घोरामिघोरैरुद्धिभि ॥ ८ ॥

‘परायणे इसे लाकर अन्त पुरमें कैद कर लिया । इतपर
पहर बिठा दिया । मयानक विचारोंगली भीषण राक्षसियों
इसकी ररवाली करने लगीं । तब भी इसका चित्त आपमें
ही लगा रहा । यह आपकी अपना परम आश्रय
मानती थी ॥ ८ ॥

प्रलोभ्यमाना त्रिविध तर्ज्यमाना च मैथिली ।

नाचिन्तयत् तद्रक्षस्यप्रतेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥

‘तत्प्रश्नात् उरह-तरहके लोभ दिये गये । इस मिथिलेश
कुमारीपर डौन फकार भी पड़ी परतु इसकी अन्तरात्मा
निरन्तर आपने ही चिन्तनमें लगी रही । इसी उस राक्षसने
विरयमें कभी एक बार भी नहीं सोचा ॥ ९ ॥

मिथिलेशमात्रा निपाया प्रतिगृहीष्य मैथिलीम् ।

न किञ्चिदभिधान्त्या अहमापायामि ते ॥ १० ॥

‘अन इसका भाव सर्वथा झूठ है । यह मिथिलानन्दिनी
सर्वथा निपाय है । अगर इसे खदर स्वीकार करें । मैं आश्रमे
आशा देता हूँ आप इसने कभी कोई कष्ट न करत न देंगे ।
तब प्रीतमना राम धुनैय घटता घर ।

दृष्ट्वौ मुहूर्तं धममा हयव्याघ्रुल्लेखन ॥ ११ ॥

अग्निदेवकी यह बात सुनकर वत्ताओंमें भट घमात्मा
भीगमका मन प्रसन्न हो गया । उनका नञ्चमें आनन्द आँसू
छलक आय । वे बाही देवत विचारमें हूँ रहे ॥ ११ ॥

एवमुक्ते महातेजा धृतिमानुविधमः ।

उवाच विदशश्रेष्ठ रामो धमश्रुता वरः ॥ १२ ॥

तत्पनन्तर महानेजस्वी, धैर्यवान्, महान् पराक्रमी तथा
धमात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने देवद्वाराअग्नि अग्निदेवसे उनकी
पूर्वोक्त बातने उत्तरमें कहा— ॥ १२ ॥

अदृश्य चापि लेखेषु सीता पात्रनमहति ।

दीर्घकालेयिना हीय राशनात् पुरे शुभा ॥ १३ ॥

‘भगवान् । लोगोंमें सीताजीकी पवित्रताका विश्वास
दिलानेने लिये इनकी यह गुद्धिविषय परीक्षा आवश्यक भी
क्योंकि गुणलक्षणा सीतासे विरह होकर दीर्घकालतन रावणके
अन्त पुरमें रहना पड़ा है ॥ १३ ॥

वालिहो वत कामात्मा रामो दशरथात्मज ।

इति वक्ष्यति मा लोको जानकीमविशोष्य हि ॥ १४ ॥

‘यदि मैं जननन्दिनीकी गुद्धिसे विषयमें परीक्षा न
करता तो लोग यही कहते कि दशरथपुत्र राम बड़ा ही मूल
और कामी है ॥ १४ ॥

अनन्यदृष्ट्या सीता मच्चित्परिरक्षिणीम् ।

महमप्यगच्छामि मैथिलीं जनकान्तरात्मजम् ॥ १५ ॥

‘यह बात मैं भी जानता हूँ कि मिथिलेशनन्दिनी जनक-
कुमारी सीताका हृदय सदा मुझमें ही लगा रहता है । मुझसे
कभी अलगा नहीं होता । वे सदा मेरा ही मन रखती—मेरी
इच्छा अनुसार चलती हैं ॥ १५ ॥

इमामपि विशालार्शो रक्षिता स्वेन तेजसा ।

राशने नातिरततं येलामिव महोदधि ॥ १६ ॥

‘मुझे यह भी विश्वास है कि जैने महासागर अपनी तट
भूमिसे नहीं लौंघ सकता, उसी प्रकार राशन अपने ही
तेजसे सुरक्षित इन विशाललक्षणा सीतापर अत्याचार नहीं
कर सकता था ॥ १६ ॥

प्रत्ययार्थं तु लोकाना भयाणा सत्यसन्धय ।

उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ १७ ॥

‘तथापि तीनों लोकोंके प्राणियोंके मनमें विश्वास दिलानेके
लिये एकमात्र सत्यका उदाहरण लहर मैंने अग्निमें प्रवेश करती
हुई विदेहकुमारी सीताको राशनेकी कण नहीं की ॥ १७ ॥
न शक्नुदुष्टमा मनसापि हि मैथिलीम् ।

प्रधवयितुमप्याया दीतामग्निशिष्टामिव ॥ १८ ॥

‘मिथिलकुमारी सीता प्रज्ज्वलित अग्निशिष्टाए समान
दुष्प तथा दूखेके लिये अलस्य है । दुष्पमा राशन मरने
द्वारा भी इनपर अत्याचार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता था ॥
नेयमहति वैज्ञेय राशनात् पुरे सती ।

अनन्या हि मया सीता भास्वरस्य प्रभा यथा ॥ १९ ॥

‘य सती साध्वी देवी रावणके अन्त पुरमें रहकर भी
व्याकुलता या परवाहमें नहीं पड़ सकती थी क्योंकि य
मुझसे उसी तरह अभिप है, जैसे सूर्यदेवने उनकी प्रभा ॥

विपुला विपु लेकेषु मैथिली जनकामना ।
न विहातु मया त्वया कीर्तिरामना यथा ॥ २० ॥

मैथिल्यश्रुमात्र जनकी तानों लगोंमें परम पवित्र
है। बेसे मननी पुण्य कीर्तिका त्याग नहीं कर सकना, उसी
तरह मैं भी इन्हें नहीं छोड़ सकता ॥ २० ॥

अवश्य च मया कार्य सगैषा जो वचो हितम् ।
अग्न्याना लोफनायानामेव च उदता हितम् ॥ २१ ॥

आप सभी लाकपाव मेर खिटी ही जान कह रहे हैं
और अग्नियोंका मुझपर बढ़ा स्नेह है अतः आप सभी

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीक्य आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाधिकशततम सर्ग ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीवार्त्तिकनिर्णिता अष्टावर्ण अदिकव्यक युद्धकाण्डे एक सौ अष्टादश सौ पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततम सर्ग

महादेवजीकी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणका निमानद्वारा आवे हुए राजा दशरथको प्रणाम
करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा सीताको आवश्यक मदद दे इन्द्रलोकको जाना

एतच्छ्रुत्वा शुभ वाक्य राग्रेणानुभाषितम् ।

ततः शुभतर वाक्य व्यानहार महेश्वर ॥ १ ॥

श्रीरामायणीक कह हुए इन शुभ उचनोंको सुनकर
श्रीमहादेवजी और भी गुमनर वचन देलें— ॥ १ ॥

पुष्कराक्ष महागहो महागह परतप ।

दिष्टया वृत्तमिदं कम त्वया धर्ममृता वर ॥ २ ॥

‘शुश्रूषकों स्नान देनेवाले’, विग्रह वक्ष्यमल्लसे
सुधोमि, महाबाहु कमलनयन। आप धर्माभ्यासमें भेष्ट
हैं। अपने राग-वैषम्य कार्य समझ कर दिया—यह बड़े
सौभाग्यकी बात है ॥ २ ॥

दिष्टया चरस्य लोकस्य प्रवृत्त दारुण तम ।

अपवृत्त त्वया सत्ये राम रागणज भयम् ॥ ३ ॥

‘श्रीराम। रागवर्जित मन और दुःख सार छेड़ोंक
लिये बड़े हुए घर अन्धकारके समान था, जिसे आपने
बुझने में दिया ॥ ३ ॥

आम्वास्य भरत शीन कौसल्या च यशस्विनीम् ।

कैकेयी च सुमित्रा च दृष्ट्वा लक्ष्मणमातरम् ॥ ४ ॥

प्राप्य राज्यमयोष्याया नन्दयित्वा मुहञ्जनम् ।

इक्ष्वाकूणा कुले उदा म्यापयित्वा महाबल ॥ ५ ॥

इष्टा तुलामेघेन प्राप्य चानुत्तम यशः ।

प्राप्तोभयो धन दत्त्वा त्रिदिश गन्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

‘महापरी वीर। अब दुनिया भरतका धीरज बँधाकर,
यशस्विनी कैकेयी, कैकेयी तथा लक्ष्मणजननी सुमित्रासे
मिलकर, अन्धकारा राज्य पानर, मुहूर्तोंके अनन्द देकर,
इक्ष्वाकु-कुलमें अन्ना-पान करके, अक्षय्य यशका
अनुदान कर, सर्वोत्तम यशका उपासन करन तथा प्राप्तोंको

नवाञ्जक हितकर वचनका मुन अवश्य पालन करना
चाहिये’ ॥ २१ ॥

इयेरमुक्त्वा त्रितीय महाबल

प्रशम्यमान स्वहृतेन कर्मणा ।

समेत्य राम प्रियया महायशः

सुख सुखाहोऽनुभूय राघव ॥ २२ ॥

प्रेमा कहकर अपने हृदय हुए परकर्मने प्रसूत
हानेना महावर्षी महायशस्वी, विद्वशी बार रघु-कुलनन्दन
श्रीराम अपनी प्रिया सीताम मिल और मिलकर बड़े सुखका
अनुभव करने लगे। क्योंकि वे सुख भोगनेक ही योग्य हैं ॥

घन देकर आपको अपने परम धाममें बना चाहिये ॥ ४-६ ॥

एव राजा दशरथो विमानस्य पिता ततः ।

काङ्क्षस्य मानुषे लोके गुरुस्तव महायशः ॥ ७ ॥

‘कङ्क्षस्तुलनन्दन। इति य दे अपने पिता राघव
दशरथ विमानर बैन हुए हैं। मनुष्य-कर्मने य ही आपके
महायशस्वी गुरु थे ॥ ७ ॥

इन्द्रलोक गत श्रीमास्त्वया पुत्रेण तारितः ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेतमभिरादय ॥ ८ ॥

ये श्रीमात् नरक इन्द्रलोकको प्राप्त हुए हैं। आप-बैठे
सुपुत्रने बड़े तार दिया। आप माद लक्ष्मणक साथ इन्हें
नमस्कार करें’ ॥ ८ ॥

महादेववच श्रुत्वा राघव सहलक्ष्मण ।

विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितु ॥ ९ ॥

महादेवजी की या बात सुनकर लक्ष्मण-हित आखुनायकीने
विमानमें उच्छलान-र बैठ हुए अपने पिताकी प्रणाम
किया ॥ ९ ॥

दीप्यमान सखा लक्ष्म्या त्रिजोऽभ्यन्धारिणम् ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददता पितर प्रभु ॥ १० ॥

माद लक्ष्मणाद्वित भगवान् श्रीरामने पिताका अच्छी
तरह देवा। वे निर्मल वस्त्र धारण करने अन्नी दिव्य श्रमने
देदीप्यमान थे ॥ १० ॥

हर्षेण महताऽऽरिष्टो विमानस्थो महीपतिः ।

प्राणैः प्रियतर दृष्ट्वा पुत्र दशरथस्तदा ॥ ११ ॥

विमानर बैठे हुए भगवान् दशरथ अपने प्राणोंने भी

प्यारे पुत्र आरामक देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥

आरोप्याह्ने महाबाहुवरामनगल प्रभु ।

याहुभ्या ममपरिष्वज्य ततो धामस्य समारुद ॥ १२ ॥

श्रेष्ठ आसनपर बैठे हुए उन महाबाहु नरेगन उन्हें
गोदमें विठारर दोनों बाँहोंमें भर लिया और इस प्रकार
कहा—॥ १२ ॥

न मे स्वर्गो यदु मत सम्मानश्च सुरर्षभै ।
स्वया राम विहीनस्य स्वस्य प्रतिशृणोमि ते ॥ १३ ॥

‘राम ! मैं तुमसे सब कहता हूँ, तुमसे विलग होकर
मुझे स्वर्गका सुख तथा देवताओंद्वारा प्राप्त हुआ सम्मान भी
अच्छा नहीं लगता ॥ १३ ॥

अथ त्वा निहतमित्र दृष्ट्वा सम्पूर्णमानसम् ।
निस्तीर्णवनवास च प्रीतिरासीत् परा मम ॥ १४ ॥

‘आज तुम शत्रुओंका वध करने पूषमनोरथ हो गये
और तुमने वनवासकी अवधि भी पूरी कर ली, यह सब
देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है ॥ १४ ॥

कैकेय्या यानि चोक्तानि वाक्यानि यद्वत्ता वर ।
तत्र भद्राजनाधानि स्थितानि हृदये मम ॥ १५ ॥

‘वाक्ताओंमें श्रेष्ठ रहनुन्दन ! तुम्हें वनमें भेजनेके लिये
कैकेयीने जो-जो बातें कही थीं, वे सब आज भी मेरे हृदयमें
बैठी हुई हैं ॥ १५ ॥

त्वा तु दृष्ट्वा कुशलित परिपूज्य सलक्ष्मणम् ।
अथ दुःखाद् विमुक्तोऽस्मि नीहारादिव भास्करम् ॥ १६ ॥

‘आज लक्ष्मणसहित तुमको सङ्कुशल देखकर और हृदयसे
लगाकर मैं समझ दुःखोंसे छुटकारा पा गया हूँ । ठीक उली
तरह जैसे चन्द्रमा कुहरेसे निकल आये हो ॥ १६ ॥

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना ।
अष्टाव्रजेण धर्मात्मा फलोत्ते प्राप्नोते यथा ॥ १७ ॥

‘देव ! जैसे अष्टाव्रजे अपने धर्मात्मा पिता फल
नामक प्राप्तिको तार दिया था, वैसे ही तुम-जैसे महात्म्या
पुत्रने मेरा उद्धार कर दिया ॥ १७ ॥

इदानीं च विजानामि त्वया सौम्य सुरेभ्वरे ।
यधार्थं रावणस्येह विहितं पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥

‘सौम्य ! आज इन देवताओंके द्वारा मुझ मादृश हुआ
कि रावणका वध करनेके लिये स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् ही
तुम्हारे रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ १८ ॥

सिद्धायाऽपलु कीसल्याया त्वा राम गृह गतम् ।
यनाभिपुत्र सहस्र द्रक्ष्यते शत्रुसूदनम् ॥ १९ ॥

‘भीरव ! कीसल्याका जीम सायक दे, जो वनसे लौटने
पर तुम-जैसे शत्रुसूदन वीर पुत्रको अपने परम हर्ष और
उत्सवका साथ देलेंगी ॥ १९ ॥

सिद्धायाऽपलु ते राम नरा ये त्वा पुरी गतम् ।
राज्ये येषामभित च द्रक्ष्यन्ते यदुधाधिपम् ॥ २० ॥

‘रघुनन्दन ! वे प्रजाजन भी वृत्तार्थ हैं, जो अपोष्ठा
पट्टचनेनर तुम्हें रायसिंहानगर भूमिपालके रूपमें अभिषिक्त
होते देखेंगे ॥ २० ॥

अगुरुत्वेन यत्किना युजिता धमचारिणा ।
इच्छेय त्वामहं द्रष्टुं भरतेन समागतम् ॥ २१ ॥

‘भरत बड़ा ही धर्मात्मा, पवित्र और बलवान् है । वह
तुममें सच्चा अतुराग रखता है । मैं उसने साथ तुम्हारा शीघ्र
ही मिलन देखना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

चतुर्दश समा सौम्य धने नियातितास्त्वया ।
यसता सीतया सार्धं मत्प्रीत्या लक्ष्मणेन च ॥ २२ ॥

‘सौम्य ! तुमने मेरी प्रशन्नताके लिये लक्ष्मण और सीताने
साथ रहते हुए वनमें चौदह वर्ष व्यतीत किये ॥ २२ ॥
निवृत्तजनसाखोऽस्ति प्रतिष्ठा पूरिता त्वया ।

राजण च रणे हत्वा देयता परितोषिता ॥ २३ ॥

‘अब तुम्हारे वनवासी अरथि पूरी हो गयी । मेरी प्रतिष्ठा
भी तुमने पूर्ण कर दी तथा छद्मानमें रावणका मारकर
देवताओंको भी सन्तुष्ट कर दिया ॥ २३ ॥

हृत कर्म यशः स्थाप्य प्राप्त ते शत्रुसूदन ।
आत्सि सह राज्यस्यो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ २४ ॥

‘शत्रुसूदन ! ये सभी काम तुम कर चुके । इससे तुम्हें
स्थिरायु प्राप्त हुआ है । अब तुम भाइयोंके साथ राज्यपर
प्रतिष्ठित हो शीघ्र आयु प्राप्त करो ॥ २४ ॥

इति वृथाप राजानं रामं प्राञ्जलिरप्रयीत् ।
कुश प्रसादं धमशः कैकेय्या भरतस्य च ॥ २५ ॥

जब राजा इस प्रकार कह चुके, तब भीरवचन्द्रकी हाथ
जोड़कर उनसे बोले—‘धर्मश महापुत्र ! आप कैकेयी और
भरतपर प्रसन्न हो—उन दोनोंपर कृपा करें ॥ २५ ॥

सपुत्रा त्वा त्यजामीति यदुक्ता कैकेयी त्वया ।
स शप्य कैकेयीं घोरं सपुत्रा न स्पृशेत् प्रभो ॥ २६ ॥

‘प्रभो ! आपने जो कैकेयीने कहा था कि मैं पुत्रवहित
तेरा त्याग करता हूँ, आपका वह घोर शपथ पुत्रवहित कैकेयी
का शपथ न करे ॥ २६ ॥

तथेति स महाराजो राममुक्त्वा एताञ्जलिम् ।
लक्ष्मण च परिपूज्य पुनराभ्यमुवाच ॥ २७ ॥

तब भीरवसे बहुत अच्छा कहकर महापुत्र दशरथने
उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हाथ जोड़े लगे हुए
लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर फिर यह बात कही—॥ २७ ॥

राम शृङ्खलता भक्त्या धंदेया सह सीतया ।
हृता मम महाप्रीति प्राप्त धमस्त च ते ॥ २८ ॥

‘वत्स ! तुमने सिद्धेन्द्रन्दिनी गीताने साथ भीरवकी
मनियुक्त सेवा करने मुझे बहुत प्रसन्न किया है । तुम्हें
धर्मका फल प्राप्त हुआ है ॥ २८ ॥
धर्मं प्राप्स्यसि धमशः यदाश्च त्रिपुलं मुवि ।
रामे प्रसन्ने स्वर्गं च मदिमानं तयोत्तमम् ॥ २९ ॥

‘धर्मश ! भविष्यमें भी तुम्हें धर्मका फल प्राप्त होगा और
भूमण्डलमें गहान् यारी टापी व हाथी । भीरवकी प्रसन्नता

से तुम्हें उत्तम स्वर्ग और महत्त्व प्राप्त होगा ॥ २९ ॥

राम गुह्य भद्र ते सुमित्रानन्दवर्धन ।

राम सर्वस्य लोकस्य हितेष्वभिरतः सदा ॥ ३० ॥

‘सुमित्राका अनन्द बानेवाले लक्ष्मण । तुम्हारा कल्याण

॥ तुम भीष्मकी निरन्तर सेवा करते रहो । ये श्रीराम सदा

समूह लोक हितम तत्पर रहते हैं ॥ २० ॥

एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धास्त्र परमपथः ।

अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ ३१ ॥

‘देखो, इन्द्रवैद्य य वानों लोक, सिद्ध और महर्षि भी

परमात्मवन्द्य पुरुषोत्तम रामको प्रणाम करके इनका पूजन

कर रहे हैं ॥ २१ ॥

एतत् तदुक्तमथकमक्षरं ब्रह्मसम्मितम् ।

देवानां हृदयं सौम्यं गुह्यं राम परतपः ॥ ३२ ॥

‘सौम्य । शत्रुओंका स्वतः देनेवाले ये भीरुम देवताओंके

हृदय और परम गुह्य तप हैं । ये ही वनोंवाले प्रतिपादित

अत्यन्त एव अविनाशी ब्रह्म हैं ॥ ३२ ॥

अज्ञातधर्माचरणं यदाश्च शिषुलं त्वया ।

एव गुह्यतायाम् वैदेहा सह सीतया ॥ ३३ ॥

‘विदेहनन्दिनी सीताके साथ शान्तभावसे इनकी सेवा

करते हुए तुमने समूह धर्माचरणका फल और महान् यश

प्राप्त किया है ॥ ३३ ॥

इत्युक्तञ्च लक्ष्मण राना स्तुषा वद्धाञ्जलिं स्थिताम् ।

पुत्रीयाभाष्यं मधुरं शनैरेवानुवाच ह ॥ ३४ ॥

‘लक्ष्मणसे एसा कहकर राजा दशरथने हाथ बँधकर

सही हुई पुत्रवधू सीताका ‘बेटी’ कहकर पुकारा और धीरे

धीरे मधुर वाणियो कहा— ॥ ३४ ॥

कृतस्यो न तु वैदेहि मम्युत्पागमिम प्रति ।

रामेनेदं विगुह्यते कृतं च त्वद्विरगिणा ॥ ३५ ॥

‘हृत्पाप धामद्रामागमे वास्नीक्यै आदिकाम्ये युद्धकाण्डे दृष्टान्तविशाल्यधिकशततम सर्ग ॥ ११९ ॥

इस प्रकार धर्मकर्मनिर्माण करके, राम अतिक्रम्य युद्धकाण्डे २६ स अन्तर्भाव सा पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

विशाल्यधिकशततम सर्ग

श्रीरामके अनुरोधसे इन्द्रका मर हुए वानरोंको जीवित करना,

दत्तात्रेयस प्रस्थान और वानरसेनाका विश्राम

प्रतिप्रयाते काउस्थे महेन्द्र पाकशासन ।

अत्रधीनु परमप्रतीतो राघव प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ १ ॥

‘महाग दशरथका लौ बनेर पाकशासन इन्द्रने अत्यन्त

प्रसन्न हो हाथ बँध करके तुम भीष्मनाथजीके कम— ॥ १ ॥

अमोघ दान राम तथास्त्रा नररथम् ।

प्रीतिपुष्पा स्त तन न्य शृङ्खि यन्ननमप्सितम् ॥ २ ॥

‘परमेश भीरु । तुम्हें यह इन्द्रा दर्शन हुआ, वह

स्पर्ध नहीं बना कर था और हम तुम्हारे बहुत प्रसन्न हैं ।’

‘विदेहनन्दिनि । तुम्हें इस त्यागका लक्ष्मण भ्रातृमर
कृतित नहीं होना चाहिये क्योंकि ये तुम्हारे हितैषी हैं और
समस्तसे तुम्हारी पवित्रता प्रकट करनेके लिये ही इन्होंने ऐसा
व्यवहार किया है ॥ ३५ ॥

सुदुष्करमिदं पुषि तव चारित्र्यलक्षणम् ।

कृतं यत् तेऽन्यनारीणां यशो ह्यभिभविष्यति ॥ ३६ ॥

‘वेगी । तुमने अपने विगुह्य चरित्रका परिच्छेद करानेके

लिये जो अतिप्रयत्नपूर्ण काम किया है, यह दूसरी क्रियाके

लिये अत्यन्त दुष्कर है । तुम्हारा यह काम अन्य नारियोंके

यशका दक लंगा ॥ ३६ ॥

न त्वं काम समाधेया भद्रगुह्यपण प्रति ।

अवश्यं तु मया वाच्यमेव ते दैवत परम् ॥ ३७ ॥

‘प्रतिज्ञेयका सम्बन्धमें मया ही तुम्हें काइ उपदेश देनेकी

आवश्यकता न हो किंतु इतना तो मुझे अवश्य बता देना

चाहिये कि ये भीरु ही तुम्हारे समने बड़े देवता हैं ॥ ३७ ॥

इति प्रतिसमादिश्य पुत्रीं सीतां च राघव ।

इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो नृपः ॥ ३८ ॥

‘इस प्रकार दोनों पुत्रों और सीताको आदेश एव उपदेश

देकर खुश हो राजा दशरथ विमानक द्वारा इन्द्रलोककी

चले गये ॥ ३८ ॥

विमानमास्थाय महानुभान्

धिया च सहप्रतनुर्जपोत्तमः ।

धामन्य पुत्री सह सीतया च

जगाम देवप्रसरस्य लोकम् ॥ ३९ ॥

‘उपश्रेष्ठ महानुभान दशरथ अद्भुत योगसे प्रसन्न थे ।

उनका शरीर इतने पुलकित हो रहा था । वे विमानपर बैठकर

सीतासहित दोनों पुत्रोंसे विशा द देवराज इन्द्रके लोकमें

चले गये ॥ ३९ ॥

इत्थिने तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो वह मुझमें करो ॥ २ ॥

एवमुक्त्वा महेन्द्रेण प्रसन्नेन महात्मना ।

मुप्रसन्नमना हृष्टो यजन प्राह राघव ॥ ३ ॥

‘महामा इन्द्रने तब प्रसन्न होकर ऐसी बात कही, तब

भीष्मनाथजीक मनमें दर्श प्रसन्न हुआ । उन्होंने अपने

भ्रातृ कही— ॥ ३ ॥

यदि प्राणि समुपपन्ना मपि तं विधुधेभ्यः ।

यक्ष्यामि श्रु मे सत्यं यन्नं यदता वरः ॥ ४ ॥

वत्ताओंमें श्रेष्ठ देवेश्वर । यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो
म आपसे एक प्रार्थना करूँगा । आप मेरी उस प्रार्थनाको
फल कर ॥ ४ ॥

मम हेतो पराक्रान्ता ये गता यमसादनम् ।
ते सर्वे जीवित प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानरा ॥ ५ ॥

मेरे लिये युद्धमें पराक्रम करके जो यमलोकको चले गये
हैं, वे सब वानर नया जीवन पाकर उठ खड़े हों ॥ ५ ॥

मृत्युते विप्रयुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च धानराः ।
तान् प्रीतमनस सर्धान् द्रष्टुमिच्छामि मानव ॥ ६ ॥

मानव ! जो वानर मर लिये अपने स्त्री पुत्रोंसे गिबुद्ध
गये हैं, उन सबका मैं प्रसन्नचित्त देखना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

विक्रान्ताश्चापि शूराश्च न मृत्यु गणयन्ति च ।
वृत्तयान्ता निपलाश्च जीरयैतान् पुरंदर ॥ ७ ॥

पुरंदर ! वे पराक्रमी और शूरवीर ये तथा मृत्युको
कुछ भी नहीं गिनते थे । उन्होंने मर लिये बड़ा प्रयत्न किया
है और अन्तमें कालप गालम चल गये हैं । आप उन सबको
जीवित कर दें ॥ ७ ॥

मत्प्रियेष्वभिरक्षाश्च न मृत्यु गणयन्ति ये ।
त्यत्रसादात् समेयुस्ते धरमेतमह वृणे ॥ ८ ॥

जो वानर सदा मेरा प्रिय करनेमें लगे रहते थे और
मेतको कुछ नहीं समझते थे, वे सब आपकी कृपासे फिट मुक्तसे
मिलें—यह वर मैं चाहता हूँ ॥ ८ ॥

नीरुजो निर्वणाश्चैव सम्प्रवल्गपौरुषान् ।
गोलाङ्गलास्तयक्षाश्च द्रष्टुमिच्छामि मानव ॥ ९ ॥

दूसरोंको मान देनेवाले देशराज ! मैं उन वानर, लंगूर
और माछुओंको नीरोग, गणहीन और बल-वीर्यसे सम्पन्न
देखना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

अकाले चापि पुष्पाणि मूलानि च फलानि च ।
नद्यश्च विमलास्तथ तिष्ठेयुषम वानरा ॥ १० ॥

य वानर जिस स्थानपर रहे, वहाँ असमयमें भी फल-मूल
और पुष्पोंकी भरमार रहे तथा निर्मल जलवाही नदियाँ बहती
रहें ॥ १० ॥

शुभास्तु घचन तस्य गघनस्य महामन ।
महेन्द्र प्रयुधापेद घचन प्रीतिसमुत्तम ॥ ११ ॥

महात्मा भीरुधनुषजीरी यह बात सुनकर महेन्द्रने
प्रसन्नतापूर्वक यों उत्तर दिया— ॥ ११ ॥

महानय यस्मात्त यस्तयोको गच्छम ।
दिमया नोनपूर्ये च तस्मादेतद् भविष्यति ॥ १२ ॥

तात ! खुशामिभूषण ! आपने जो वर माँगा है, यह
बहुत बड़ा है, तथापि मैं नभी सो तरफ़ी बात नहीं की है
इसलिये वह वर अमरस्य सत्त्व होगा ॥ १२ ॥

समुत्तिष्ठन्तु ते सर्वे दत्ता ये युधि यशसै ।
श्रुताश्च सदा गोपुच्छैर्निःशाननवाहयः ॥ १३ ॥

जो युद्धमें मारे गये हैं और राक्षसोंने जिनके मस्तक तथा
भुजाएँ काट डाली हैं, वे सब वानर, माछू और लंगूर भी
उठें ॥ १३ ॥

नीरुजो निर्वणाश्चैव सम्प्रवल्गपौरुषा ।
समुत्थास्यन्ति हरय सुता निद्राशये यथा ॥ १४ ॥

नींद टूटनेपर खोकर उठे हुए मनुष्योंकी भाँति वे सभी
वानर नीरोग, गणहीन तथा बल-वीर्यसे सम्पन्न होकर उठ
बैठेंगे ॥ १४ ॥

सुहृद्भिषाधरैश्चैव ज्ञातिभि स्वजनेन च ।
सर्वे एव समेप्यन्ति सयुक्ता परया मुदा ॥ १५ ॥

सभी परमानन्दसेयुक्त हो अपने सुहृदों, याचरों, ज्ञाति
भाइयों तथा स्वजनोंसे मिलेंगे ॥ १५ ॥

अकाले पुष्पशायला फलपतश्च पादपा ।
भविष्यन्ति मोह्यन्तास नद्यश्च सलिलायुता ॥ १६ ॥

महाशयुर्धर वीर ! वे वानर जहाँ रहेंगे, वहाँ असमयमें
भी वृष फल-पूलोंसे लद जायेंगे और नदियाँ बलसे मरी
रहेंगी ॥ १६ ॥

सद्यणैः प्रथम गात्रैरिदानीं नियणैः समैः ।
ततः समुत्थिता सर्वे सुखेय हरिसत्तमा ॥ १७ ॥

इसके इस प्रकार कहनेपर वे सब श्रेष्ठ वानर जिनके सब
अङ्ग पहले धाँसे भरे थे, उस समय धारहित हो गये और
सभी लेकर जगे हुएकी भाँति सहसा उठकर खड़े हो गये ॥

वभ्रुवधानरा सर्वे किं श्वेतदिति विस्मिता ।
कावुरस्य परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे दुरोत्तमाः ॥ १८ ॥

अवतुन परमप्रीता स्तुत्वा राम सलङ्कमणम् ।
गच्छाद्योच्यामितो राजन् विस्वजय च वानरान् ॥ १९ ॥

उन्हें ॥ प्रकर जीवित होते देग सब वानर आश्चर्य
चकित होकर कहने लगे कि यह क्या बात हा गयी ! भीरुम
चन्द्रजीको सङ्कल्पमनोय हुआ देख समस्त श्रेष्ठ देवता अत्यन्त
प्रसन्न हो लङ्कणसहित भीरुमगी स्तुति करके बोले—राजन् !

अब आप वहाँसे अयोध्याघ्न पचार और समस्त वानरोंको
बिग कर दें ॥ १८ १९ ॥

मैथिलीं सान्त्वयस्वैनामनुरक्ता यशस्विनीम् ।
आतर भरत पश्य स्वच्छोकाद् मतचारिणाम् ॥ २० ॥

ये मिथिले गुरुमारी यशस्विनी मीना तथा आर्यमें अनुपम
रखती हैं । इन्हें सान्त्वना दीजिय और भाई भरत आपने
नाक्रमे पीड़ित हो मत कर रहे हैं, अतः उनमें आकर
मिलिये ॥ २० ॥

शशुज्ज च महात्मान मातृ सथा परत्तप ।
अभिप्रेत्य चात्मान पौरान् यस्या प्रहयय ॥ २१ ॥

भगवन् ! आप महात्मा गयुधमने और समस्त माताओंमें
भी आतर मिलें, अपना अभिरक्ष करायें और पुराणियोंको
हर्ष प्रदान करें ॥ २१ ॥

पद्ममुक्त्वा सहस्राक्षो गम सौमित्रिणा सह ।
विमाने सूर्यसफाशैर्यो दृष्ट सुरै सह ॥ २० ॥

श्रीराम और लक्ष्मणसे ऐसा कहकर देवराज इंद्र सब
देवताओंने साथ सूर्यतुल्य तजन्वी निगानोंद्वारा बड़ी प्रशस्ततासे
साथ अपने लोकको चले गये ॥ २२ ॥

अभियाय चक्राकुत्स्थ सप्तमस्तस्त्रिदशोत्तमान् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाहापयत् तदा ॥ २३ ॥

उन समस्त श्रेष्ठ देवताओंको नमस्कार करके भाई लक्ष्मण

इत्यादि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये गुह्यकाण्डे विंशत्यधिकशततम सर्ग ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित रामायण आदिकाव्य गुह्यकाण्डमें एक सौ बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

एकविंशत्यधिकशततम सर्ग

श्रीरामका अयोध्या जानेके लिये उद्यत होना और उसी आज्ञासे विभीषणका पुष्पकविमानको मैंगाना
ता रात्रिमुपित राम सुप्तोदितमर्दमम् ।

अग्रशीत् प्राञ्जलिर्वाक्य जय पृष्ट्वा विभीषण ॥ १ ॥

उस रात्रिको विश्राम करके जब अनुसूदन श्रीराम दूसरे
दिन प्रातःकाल सुप्तपूरुष उठे, तब पुञ्जल-प्रानके पश्चात्
विभीषणने हाथ जोड़कर कहा— ॥ १ ॥

ज्ञानानि धातुरागाणि चरन्त्याभरणानि च ।

चन्द्रानानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानि च ॥ २ ॥

पद्मनन्दन ! स्नानने लिये जल, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण,
चन्दन और भौति भौतिवी दिव्य मालाएँ आपकी सेवामें
रक्खित हैं ॥ २ ॥

अलंकारविद्ध्यैता नार्य पद्मनिमेषणा ।

उपस्थितास्त्वा विधिषत् स्नापयिष्यति राघव ॥ ३ ॥

‘सुवीर ! शृंगारकलाको जाननेवाली ये कमलनयनी
नारियों भी सेवाके लिय प्रस्तुत हैं; जो आपको विधिपूर्वक
स्नान करायेंगी’ ॥ ३ ॥

पद्ममुक्त्वा कानुत्थ प्रत्युयाज विभीषणम् ।

हरीन् सुग्रीयमुख्यास्त्य ज्ञानेनोपनिमत्रय ॥ ४ ॥

विभीषणके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—
‘मित्र ! तुम सुग्रीव आदि वानरजीरोसे स्नानने लिये अनुरोध
कर ॥ ४ ॥

स तु ताम्यति धमात्मा मम हेतो सुप्तोचित ।

सुष्टुमारो महागद्गुभरत सत्यसधय ॥ ५ ॥

‘मरे लिये तो इस समय स्वयं आश्रय लेनेवाले धमात्मा
महागद्गु भरत बहुत बड़ सह रह हैं । य तुम्हारा हैं और
सुल पानेके योग्य हैं ॥ ५ ॥

त त्रिना फेर्यपुत्र भरत धमगरिणम् ।

न मे ज्ञानं यद्गु मन्त मन्त्राग्याभरणानि च ॥ ६ ॥

‘उन धर्मपरपण कोनीकुमार भरतने मिले बिना न तो

सहित श्रीरामने घरको विश्राम करनेकी आज्ञा दी ॥ २३ ॥

ततस्तु सा लक्ष्मणरामपालिता

महाचमूर्हृष्टजना यशस्विनी ।

श्रिया उचलन्ती विरराज सज्जतो

निशा प्रणीतेव हि शीतरदिमान् ॥ २४ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणने द्वारा सुरजित तथा दृष्ट पुत्र
सैनिकोंसे मरी हुई यह यशस्विनी विशाल सेना चन्द्रमाकी
चौदनीसे प्रकाशित होनेवाली रात्रिने समान अद्भुत शोभासे
उद्भासित होती हुई विराज रही थी ॥ २४ ॥

मुने स्नान अच्यत लगात है; न वस्त्र और आभूषणोंको धारण
करना ही ॥ ६ ॥

पतत् पदय यथा क्षिप्र प्रतिगच्छाम ता पुरीम् ।

अयोध्या गच्छतो ह्येव पया परमदुर्गम् ॥ ७ ॥

‘अब तो तूम इस बातरी और ध्यान दो कि हम किस
तरह जल्दी-से-जल्दी अयोध्यापुरीको लौट सकेंगे क्योंकि वहाँ
तक पैदल यात्रा करनेवालेके लिय यह मार्ग बहुत ही
दुर्गम है’ ॥ ७ ॥

पद्ममुक्त्वा कानुत्थ प्रत्युयाज विभीषण ।

अह्ना त्वा प्रापयिष्यामि ता पुरीं पार्थिवामज ॥ ८ ॥

उनके ऐसा कहनेपर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीसे इस
प्रकार उत्तर दिया—‘पुत्रकुमार ! आप इन्हें लिये चिन्तित
न हों । मैं एक ही निमने आपसे उस पुरीमें पहुँचा दूँगा ॥

पुष्पक नाम भद्र ते विमान स्युस्तनिभम् ।

मम भ्रातु कुबेरस्य राघवेन परीषसा ॥ ९ ॥

हृत् निजित्य सग्रामे कामग दिव्यमुत्तमम् ।

त्वद्दृश्यं पालित चेद्द सिद्धत्यनुत्तमम् ॥ १० ॥

‘आपका कन्थाग हा । मरे दर्श मरे बड़े भार
कुबेरका मृगयुल्य तजन्वी पुष्पकविमान मौजू है; मिले
महादली राघवने स्थापमें कुबेरको इष्टकर छीन लिया था ।
अतः पराक्रमी श्रीराम ! यह इच्छातुल्य करनेवाला, दिव्य
एवं उत्तम विमान मीने वहाँ आपकी लिय रण छाड़ा
है ॥ ९ १० ॥

तदिद् मेघसकाश विमानमिह निष्ठित ।

येन याम्यसि यानेन धर्मयोध्या गतञ्चरः ॥ ११ ॥

‘मेघ जैसा दिरासी देनेवाला यह दिव्य विमान यहाँ
विद्यमान है; किन्तु इस निमित्त होकर आप अयोध्यापुरीको
चल सकेंगे ॥ ११ ॥

अह ते यद्यनुयाया यदि सरसि मे गुणान् ।
 वस तावदिह प्राप्त यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ १२ ॥
 लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या भायया सह ।
 अर्चित सवकर्मैस्त्व ततो राम गमिष्यसि ॥ १३ ॥
 श्रीराम ! यदि मुझ आप अपना कृपापात्र समझते हैं,
 मुझमें कुछ गुण देखते या मानते हैं और मेरे प्रति आपका
 सौहार्द है तो अभी भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीताजीन साथ
 कुछ दिन यहीं निराजिये । मैं सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओं
 द्वारा आपका उत्कार करूँगा । मेरे उस उत्कारको ग्रहण कर
 लेनेक पश्चात् अपनायाका पधारियेगा ॥ १२ १३ ॥
 प्रीतियुक्तस्व विहिता ससैन्य ससुहृद्ग्रणः ।
 सत्त्रिया राम मे तावद् गृह्णान् त्व मयाधत्ताम् ॥ १४ ॥
 प्रयुन्दन ! मैं प्रखन्तपूर्वक आपका उत्कार करना
 चाहता हूँ । मेरे द्वारा प्रस्तुत निये गय उस उत्कारको आप
 गृह्णों तथा सेनाओंन साथ ग्रहण करें ॥ १४ ॥
 प्रणयाद् बहुमात्राद्य सौहार्देन च राघव ।
 प्रसादयामि प्रेष्योऽह न खल्लाक्षापयामि ते ॥ १५ ॥
 प्रयुवीर ! मैं कवल प्रेम, सम्मान और सौहार्दक कारण
 ही आपके यह प्रार्थना कर रहा हूँ । आपको प्रसन्न करना
 चाहता हूँ । मैं आपका सेवक हूँ । इसलिये आपसे निनय
 करता हूँ; आपका आश्रय नही देता हूँ ॥ १५ ॥
 एवमुक्त्वस्ततो राम प्रत्युपाच विभीषणम् ।
 रक्षसा यानराणा च सर्वेषामेन शृण्वताम् ॥ १६ ॥
 जब विभीषणने ऐसी बात कही, तब भीष्म समस्त
 पक्षों और यानरोंन सुनत हुए ही उनसे बोले— ॥ १६ ॥
 पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिष्येन परेण च ।
 स्वामना च चेष्टाभि सौहार्देन परेण च ॥ १७ ॥
 वीर ! मेरे परम गृहद् और उत्तम सचिव बनकर तुमने
 सब प्रकारकी चेष्टाओंद्वारा मेरा सम्मान और पूजन किया
 है ॥ १७ ॥
 न खत्वेतन्न कुर्या त यचन राक्षसेश्वर ।
 त तु मे भ्रातर द्रष्टु भरत त्वरते मन ॥ १८ ॥
 मा निवर्तयितुं योऽस्ती चित्रकूटमुपागत ।
 शिरसा याचतो यस्म यजन न कृत मया ॥ १९ ॥
 एश्वर ! तुम्हारी इस माता मैं निश्चय ही अस्वीकार
 नहीं कर सकता हूँ परन्तु इस समय मेरा मन अपने उन
 भाई भरतका देखनके लिय उतावला हो उठा है, जो मुझ
 छोटा ल अजनक लिय चित्रकूटक आय थे और मेरे चरणोंमें
 सिर घसाकर याचना करनेपर भी जिनकी बात मैंने नहीं
 मानी थी ॥ १८ १९ ॥
 कोसल्या च मुमित्रा च कथेयौ च यदास्मिनीम् ।
 गुद च सुहृद् यैव पाराक्षानपदे सह ॥ २० ॥
 'दन्तक (धरा माता कोसल्या, मुमित्रा, यशस्विनी केनेमी,

मित्रवर गुह और नगर एवं जनपदके लोगोंको देखनेके लिये
 भी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ २० ॥
 अनुजानीहि मा सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ।
 मन्युर्न खलु कृतय सखे त्वा चानुमानये ॥ २१ ॥
 'सौम्य विभीषण ! अत तो तुम मुझे जानेकी ही अनुमति
 दो । मैं तुम्हारेद्वारा बहुत सम्मानित हो चुका हूँ । खल !
 मेरे इस इष्टक कारण मुझपर क्रोध न करना । इसके लिये मैं
 तुमसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ ॥ २१ ॥
 उपस्थापय मे शीघ्र विमान राक्षसेश्वर ।
 कृतकार्यस्य मे वासः कथ स्यादिह सम्मत ॥ २२ ॥
 'पक्षराज ! अब शीघ्र मेरे लिये पुष्पविमानको यहाँ
 मगाओ । जब मेरा यहाँ कार्य समाप्त हो गया, तब यहाँ ठहरना
 मेरे लिये कैसे ठीक हो सकता है ?' ॥ २२ ॥
 एवमुक्त्वस्तु रामेन राक्षसेन्द्रो विभीषण ।
 विमान सुयसकाशमाजुष्टान् त्वरावित ॥ २३ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीक ऐसा कहनेपर राक्षसराज विभीषणने बड़ी
 उतावलीके साथ उस सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानका आवाहन
 किया ॥ २३ ॥
 तत काञ्चनचित्राङ्ग वैदूर्यमणिवेदिकम् ।
 कूटागारै परिक्षित सर्वतो रजतप्रभम् ॥ २४ ॥
 उस विमानका एक एक अङ्ग सोनेसे बड़ा हुआ था;
 जिससे उसकी विचित्र शोभा होती थी । उसके भीतर वैदूर्य
 मणि (नीलम) की वेदियाँ थीं, जहाँ तहाँ गुप्त रह बने हुए
 थे और वह सब ओर चाँदीने समान चमकीला था ॥ २४ ॥
 पाण्डुराभि पतानाभिर्घञ्जैश्च समलङ्कृतम् ।
 शोभित काञ्चनैर्हर्ष्यैर्हमपत्राभिभूषितै ॥ २५ ॥
 वह चेतनीत वर्णवाली पताकाओं तथा घञ्जोंसे अलङ्कृत
 था । उसमें सोनेके कमलोंसे सुसज्जित स्वर्णमयी अट्टालिकाएँ
 थीं, जो उस विमानकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ २५ ॥
 प्रकीर्ण किङ्किणीजालैमुक्तामणिगद्वाक्षकम् ।
 घण्टाजालै परिक्षित सयतो मधुरस्वनम् ॥ २६ ॥
 साथ विमान छाटी-छागी पत्तियोंसे युक्त झालरोंसे व्याप्त
 था । उसमें मोती और मणियोंकी रिङ्कियाँ लगी थीं । सब
 ओर घंट बेंधे थे, जिससे मधुर ध्वनि होती रहती थी ॥ २६ ॥
 त मेरुपितृराकार निर्मित विम्बकर्मणा ।
 बृहद्विभूषित हर्म्यमुक्तामणिरजतशोभितै ॥ २७ ॥
 वह विम्बकर्मणा बनाया हुआ विमान मुनेक शिरक
 समान ऊँचा तथा मोती और चाँदीसे सुसज्जित बड़े-बड़े
 कमलोंसे विभूषित था ॥ २७ ॥
 तलै स्फटिकमिश्राद्रैर्दूर्यैश्च परासने ।
 महाहास्तराजोपरैरपपन्न महापत्ने ॥ २८ ॥
 उसकी फर्श विचित्र स्फटिकमणियोंसे बड़ी हुई थी । उसमें

अह ते यद्यनुग्रहो यदि स्वरसि मे गुणान् ।
 वस तावद्दिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ १२ ॥
 लक्षणेन सह भ्रात्रा संदेहा भायया सह ।
 अर्णित सर्वत्रामैस्त्य ततो राम गमिष्यसि ॥ १३ ॥
 'भीराम ! यदि मुझ आप अपना कृपापात्र समझते हैं,
 मुझमें कुछ गुण देखते या मानते हैं और मरे प्रति आपका
 सौहार्द है तो अभी भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीताजीवें साथ
 कुछ दिन यहीं निराश्रितों । मैं सम्पूर्ण मनावान्छित वस्तुओं
 द्वारा आपका सत्कार करूँगा । मेरे उस सत्कारको ग्रहण कर
 लेनेके पश्चात् अपनाका पधारियेगा ॥ १२ १३ ॥
 प्रीतियुक्तस्य विहिता ससैन्य ससुहृद्रण ।
 सत्क्रिया राम मे तावद् गृहाण त्व भयोद्यताम् ॥ १४ ॥
 'रघुनन्दन ! मैं प्रसन्नतापूर्वक आपका उत्कार करना
 चाहता हूँ । मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये उस सत्कारको आप
 गृह्यें तथा सेनाओं साथ ग्रहण करें ॥ १४ ॥
 प्रणयाद् बहुभागाद्य सौहार्देन च राघव ।
 प्रसादयामि मेप्योऽह न खल्व्याहापयामि ते ॥ १५ ॥
 'रघुवीर ! मैं कवल प्रेम, सम्मान और सौहार्दके कारण
 ही आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ । आपको प्रसन्न करना
 चाहता हूँ । मैं अपना सेवक हूँ । इसलिये आपसे विनय
 करता हूँ, आपका आश नहीं देता हूँ ॥ १५ ॥
 एतमुक्तस्ततो राम प्रत्युद्यच्च विभीषणम् ।
 रक्षसा यानराणा च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥ १६ ॥
 जब विभीषणने ऐसी बात बरी, तब भीराम समस्त
 राक्षसों और यानरों के सुनते हुए ही उनसे बोल— ॥ १६ ॥
 पूजितोऽस्मि त्वया धीर साविष्टेन परेण च ।
 स्वामना च चेष्टाभि सौहार्देन परेण च ॥ १७ ॥
 'धीर ! मेरे परम सुहृद् और उत्तम सचिव बनकर तुमने
 सब प्रकारकी चेष्टाओंद्वारा मर सम्मान और पूजन किया
 है ॥ १७ ॥
 न खल्वेतन्न कुर्यां त वचन राक्षसेश्वर ।
 त त्व मे आतर द्रष्टु भरत स्वस्ते मन ॥ १८ ॥
 मा निवर्तयितुं योऽस्ती जिमकूटमुपागत ।
 शिरसा याचतो यस्य वचन न हृत् मया ॥ १९ ॥
 'पराशर ! तुम्हारी इस बातका मैं निश्चय ही अस्वीकार
 नहीं कर सकता हूँ । परंतु इस समय मेरा मन अपने उन
 भाई भरत ! देखना लिय उतावला हो उठा है, जो मुझ
 छोटा भाईके लिय चित्रकूट तक आये थे और मेरे चरणोंमें
 लिय छत्राश्रय याचना करनेपर भी जिनकी बात मैंने नहीं
 मानी थी ॥ १८ १९ ॥
 कीसत्या च सुमित्रा च ईर्ष्या च यदास्मिनीम् ।
 गृह च सुहृद च यं पौराक्षानपदे सह ॥ २० ॥
 'उत्तम ! मेरा भाता भीमका, सुमित्रा, पद्मसिनी केनेही,

मित्रवर गृह और नगर एवं अनपदे लोगोंको देखनेके लिये
 भी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ २० ॥

अनुजानीहि मा सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ।
 मन्युर्न खलु कतव्य सखे त्वा स्तानुमानये ॥ २१ ॥

'सौम्य विभीषण ! अब तो तुम मुझे जानेकी ही अनुमति
 दो । मैं तुम्हारेद्वारा बहुत सम्मानित हो चुका हूँ । खैर !
 मेरे इस हठके कारण मुझपर क्रोध न करना । इसके लिये मैं
 तुमसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ ॥ २१ ॥

उपस्थापय मे शीघ्र विमान राक्षसेश्वर ।
 कृतकार्यस्य मे वास कथं स्याद्दिह सम्मत ॥ २२ ॥

'राक्षसराज ! अब भीम मेरे लिये पुष्पकविमानको यहाँ
 भेगाओ । अब मेरा यहाँ काय समाप्त हो गया, तब यहाँ ठहरना
 मेरे लिये कैसे ठीक हो सकता है ? ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
 विमानं सुयसकाशमजुहाव स्वरारितम् ॥ २३ ॥

भीरामचन्द्रजीक ऐसा कहनेपर राक्षसराज विभीषणने बड़ी
 उतावलीके साथ उस सूर्यवृत्त तैजसी विमानका आवाहन
 किया ॥ २३ ॥

तत काञ्चनचित्राङ्ग वैदूर्यमणिधेदिकम् ।
 कूटागारै परिक्षिप्त सर्वतो रजतप्रभम् ॥ २४ ॥

उस विमानका एक एक अङ्ग सोनेसे जड़ा हुआ था,
 जिससे उसकी विचित्र शोभा होती थी । उसके भीतर वैदूर्य
 मणि (नीलम) की वेदियाँ थीं, जहाँ तहाँ गुप्त यह बने हुए
 थे और वह सब ओर चौंकीसे समान चमकीला था ॥ २४ ॥

पाण्डुराग्नि पताकाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृतम् ।
 शोभित काञ्चनैर्हस्तैर्ममपाविभूप्रितैः ॥ २५ ॥

वह श्वेत-पीत वर्णवाली पताकाओं तथा ध्वजोंसे अलङ्कृत
 था । उसमें सोनेके कमलोंसे सुसजित स्वर्णमयी अट्टालिकाएँ
 थीं, जो उस विमानकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ २५ ॥

प्रकीर्ण त्रिद्विषीजालैर्मुक्तमणिगणालक्षकम् ।
 घण्टाजालै परिभ्रित सयतो मधुरस्वनम् ॥ २६ ॥

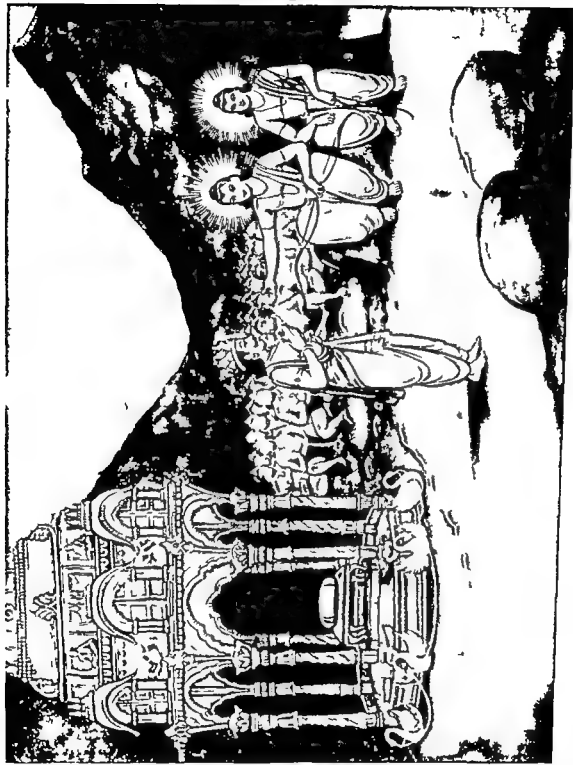
सारा विमान छाटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त हालाँकिसे व्याप्त
 था । उसमें मोती और मणिबोंकी लियदियों लगी थीं । सब
 ओर घंटे बंधे थे, जिससे मधुर श्रवित होती रहती थी ॥ २६ ॥

त मेरुनालराकार निर्मितं शिभ्रकमणः ।
 गृहक्षिभ्रूपित हस्त्युच्चारजतशोभितैः ॥ २७ ॥

वह विश्वरूपाका बनाया हुआ विमान मुखे शिरकर
 समान ऊँचा तथा मोती और चाँदीसे सुसजित बड़े-बड़े
 कमलोंसे निर्भूत था ॥ २७ ॥

तले स्फटिकजिग्राहैर्दूर्यध्वं धरासनेः ।
 महाहास्तरणोपनैदपपन्न महाधने ॥ २८ ॥

उसकी फर्श शिचित्र स्फटिकमणियोंसे बड़ी हुई थी । उसमें



मिमान लेमर उपस्थित हुए मिभीपणसे श्रीराम वानरोंका सत्कार करनेमें सह रहे थे

नीलमके बहुमूल्य सिंहासन ये, जिनपर महामूल्यवान् विस्तर
विष्टे हुए थे ॥ २८ ॥

उपस्थितमनाधृष्य तद् विमान मनोजघम् ।
निवेदयित्वा रामाय तस्यै तत्र विभीषण ॥ २९ ॥

उसका मनके समान वेग था और उसकी गति कहीं
रकती नहीं थी । वह विमान सेवामें उपस्थित हुआ । विभीषण
भीरुमकी उसने आनेकी सूचना देकर उहाँ लड़े हो गये ॥

हत्वार्यै भीमद्रामायण वारभीष्टीये आदिकाव्ये
इस प्रकार भीमद्रामायण आदिकाव्य युद्धकाण्डमें एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

तत् पुष्पक कामगम विमान
मुपस्थित भूधरसन्निवेशम् ।

दृष्ट्वा तदा विस्मयमाजगाम
राम ससौमित्रिरुदारसस्त्र ॥ ३० ॥

परांते समान ऊँचे और इच्छानुसार चलनेवाले उस
पुष्पकविमानको तत्काल उपस्थित देख लम्पगसहित उत्तरचेता
भगवान् भीरुमको यद्वा विस्मय हुआ ॥ ३ ॥

युद्धकाण्डे एकविंशत्यधिकशततम सर्ग ॥ १२१ ॥
युद्धकाण्डमें एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततम सर्ग

भीरामकी आज्ञासे विभीषणद्वारा वानरोंका विशेष सत्कार तथा सुग्रीव और विभीषणमण्डित
वानरोंको साथ लेकर भीरामका पुष्पकविमानद्वारा अयोध्याको प्रस्थान करना

उपस्थित तु त हत्वा पुष्पक पुष्पभूषितम् ।
अविदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषण ॥ १ ॥

भूलैंते सजे हुए पुष्पकविमानकी यहाँ उपस्थित करने
पास ही खड़े हुए विभीषणने भीरामसे कुछ कहनेका विचार
किया ॥ १ ॥

स तु यद्वाञ्जलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वर ।
अप्रवीत् त्वरयोपेत किं करोमीति राघवम् ॥ २ ॥

राक्षसराज विभीषणने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी विनय
और उतावलीके साथ श्रीगुणावलीसे पूछा—‘प्रभो ! अर मैं
क्या सेवा करूँ ?’ ॥ २ ॥

तमग्रवी महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वत ।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥ ३ ॥

तब महातेजवी भीरगुणावलीने कुछ श्रोकर लक्ष्मणसे
सुनते हुए यह स्नेहयुक्त वाक्य कहा— ॥ ३ ॥

कृतप्रयत्नकर्माणं सर्वं एव वनौकस ।
रत्नैरर्प्य विविधैः सम्पूज्यन्ता विभीषण ॥ ४ ॥

‘विभीषण ! इन सारे वानरोंने युद्धमें बड़ा यत्न एवं
परिश्रम किया है अतः तुम नाना प्रकारके रत्न और धन
आदिके द्वारा इन सबका सत्कार करो ॥ ४ ॥

सहामिभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर ।
हृष्टैः प्राणभय त्यक्त्वा सप्रामेधनिवृत्तिभिः ॥ ५ ॥

‘राक्षसेश्वर ! ये लोग यानर सङ्ग्रामसे कभी पीछे नहीं
हटते हैं और सग्राह्य एवं उल्लाससे भरे रहते हैं । प्राणोंका
भय छोड़कर लड़नेवाले इन वानरोंने सहयोगमें तुमने लङ्कापर
विजय पायी है ॥ ५ ॥

स इमे कृतकर्माणं सप्त एव वनौकस ।
धनरत्नप्रदानेन कर्मणा सफलं कुरु ॥ ६ ॥

ये सभी वानर इस समय अपना काम पूरा कर चुके हैं,
अतः इन्हें रत्न और धन आदि देकर तुम इनका इस कर्मका
फल करो ॥ ६ ॥

एव सम्मानिताश्चैते नन्द्यमाना यथा त्वया ।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियुधपा ॥ ७ ॥

तुम कृतज्ञ होकर अब इनका इस प्रकार सम्मान और
अभिनन्दन करोगे, तब ये वानरयूथपति बहुत सन्तुष्ट होंगे ॥ ७ ॥

त्यागिनः सप्रहीतारः सानुभोरा जितेन्द्रियम् ।
सर्वे त्वामभिगच्छन्ति ततः सम्प्रोध्यामि ते ॥ ८ ॥

‘ऐसेज करनेसे सब लोग यह जानेंगे कि विभीषण उचित
अवसरपर धनका त्याग एवं दान करते हैं, यथासमय
न्यायोचित रीतिमें धन और रत्न आदिका समर्थ करते रहते हैं,
दयालु हैं और जितेन्द्रिय हैं इसलिये तुम्हें ऐसा करनेके लिये
समझा रहा हूँ ॥ ८ ॥

हान रतिगुणैः सर्वैरभिहतारमाहये ।
सेना त्यजति सगिग्रा नृपतिं त नरेश्वर ॥ ९ ॥

‘नरेश्वर ! जो राजा सेवकोंमें प्रेम उत्पन्न करनेवाला दान
मान आदि सब गुणोंसे रहित होता है, उसे युद्धन अवसरपर
उद्धिन्न हुए सेना छोड़कर चल दती है वह सम्राट्ही है कि
यह व्यर्थ ही हमारा वध करा रहा है—हमारे भरण-वर्णनका
या योग धर्मकी चिन्ता इसे विन्मुक्त नहीं है’ ॥ ९ ॥

एवमुक्तुः रामेण दानरास्तान् विभीषण ।
रक्षार्थसविभागेन सान्निध्यपूजयत् ॥ १० ॥

भीरामका ऐसा कहनेपर विभीषणने उन सब वानरोंको
रत्न और धन देकर सभीरा पूजन (सत्कार) किया ॥ १० ॥

ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रक्षाद्विचरयाम्पतम् ।
आरुरोह तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

अद्वेगदाय वैदेहीं लङ्कामान मनविनीम् ।
लक्ष्मणन सह आश्रया विजानन्त धनुष्मता ॥ १२ ॥

उन वानरयूथपतिगणोंका रत्न और धन देकर हुआ देख
उस समय भगवान् भीराम लङ्का की दृढ़ मन्तिनी गिरिदुर्गमादी
का अग्रमें लङ्का पराक्रमी धनुर्धर का लक्षणक साथ उस
उत्तम विमानपर आसन्न हुए ॥ ११ ॥ १२ ॥

अवधीत् स गिमानस्य पूजयन् सर्वगानगन् ।
सुप्रीन च महावीर्यं कावुत्स्य सविभीषणम् ॥ १३ ॥
गिमानपर वैठकर समस्त वानरोंका समादर करते हुए
उन कवुत्स्यपूजभूषण भीरामने विभीषणसहित महापराक्रमी
सुग्रीवसे कहा—॥ १३ ॥

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्विर्वानरपर्यभा ।
अनुज्ञाता मया सर्वं यथेष्ट प्रतिगच्छत ॥ १४ ॥

‘वानरश्रेष्ठ वीरो ! आपलोगोंने अपने इस मित्रका कार्य
मित्रोचित रीतिसे ही पूरीमूर्ति सम्पन्न किया । अब आप
स्व अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको चले जायें ॥ १४ ॥

यत् तु कार्यं ध्यस्येन क्षिप्येन च हितेन च ।
एतं सुग्रीव तत् सर्वं भयताममभीरुणा ॥ १५ ॥

सते सुग्रीव ! एक हितेयी एव प्रेमी मित्रको जो काम
करना चाहिये, वह स्व तुमने पूरा-पूरा कर दिखाया, क्योंकि
तुम अभयसे डरते-गले हो ॥ १५ ॥

किंविधा प्रति याह्यान् स्वसैन्येनाभिसवृतः ।
स्वराज्ये वस लङ्काया मया दत्ते विभीषण ।
न त्वा धर्पयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिव्यौकस ॥ १६ ॥

‘वानरराज ! अब तुम अपनी सेनासे साथ नीम ही
किन्धिचापुरीको चले जाओ । विभीषण ! तुम भी लङ्कामें
मेरे दिये हुए अपने राज्यपर खिर रहा, अब इन्द्र आदि
देवता भी तुम्हारा कुछ विगाह नहीं सकते हैं ॥ १६ ॥

अगोच्या प्रति यास्यामि राजधामी पितुर्मम ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सवानामनयामि य ॥ १७ ॥

‘अब इस समय मैं अपने पिताजी राजधानी अयोध्याको
जाऊँगा । इसमें लिये आप उन लोगोंसे पूजता हूँ और सबकी
अनुमति चाहता हूँ ॥ १७ ॥

परमुक्तान्तु रामेण हरीद्रा हरयस्तथा ।
ऊलुः प्राञ्जल्य सर्वं राज्यस्य विभीषण ॥ १८ ॥

भीरामचन्द्रशेखर ऐसा कहोपर सभी वानर-सेनापति तथा
राक्षसाश्च विभीषण हाथ जोड़कर कहने लगे—॥ १८ ॥
अयोध्या गतुमिच्छामि सर्वान्न नयतु नो भवान् ।
मुपका गिरिस्थामो यनायुषश्चनानि च ॥ १९ ॥

‘भगवन् ! हम भी अयोध्यापुरीका चलना चाहते हैं,
आप हमें भी अपने साथ ल ललिये । यहाँ हम प्रसन्ननारूप
पनों और उपानोंमें निररगे ॥ १९ ॥

एद्रा त्वामभिप्रेक्षार्द्रं कौसल्यामभिग्राह्य च ।
अजिरादागमिष्यामि समुद्रान् नृपसत्तम ॥ २० ॥

हरार्पे भीमद्रामायणे वान्महावीर्ये आदिशाम्ये युद्धमण्ड
हम प्रकार धीररतागिनिर्मित अतारत्रयण आदिशाम्ये युद्धमण्डमें एक रात कासर्वा सम पूरा हुअ ॥ २० ॥

‘नृपश्रेष्ठ ! राज्याभिषेकसे समय मत्रपुत्र जलसे भीगे
हुए आपक भीविग्रहकी श्रांकी करके माताकौसल्याक चरणोंमें
मस्तक धुकाकर हम क्षीम अपने घर छोट आर्यगे ॥ २० ॥
एवमुक्त्वन्तु धर्मात्मा वानरैः सगिभीषणैः ।

अवधीत् वानरान् राम ससुग्रीवविभीषणान् ॥ २१ ॥

विभीषणसहित वानरोंने इस प्रकार अनुयेध करनेपर
श्रीरामने सुग्रीव तथा विभीषणसहित उन वानरोंसे कहा—॥ २१ ॥

प्रियात् प्रियतरं लब्धं यद्दह ससुहृज्जन ।
सर्वैर्भयं हि सहितं प्रीतिं लप्स्ये पुनर्गतः ॥ २२ ॥

‘मित्रो ! यह तो मेरे लिये प्रियसे भी प्रिय बात होगी—
परम प्रिय वस्तुका लाभ होगा, यदि मैं आप सभी सुहृदोंके
साथ अयोध्यापुरीको चल सकूँ । इसने मुझे बड़ी प्रसन्नता
प्राप्त होगी ॥ २२ ॥

क्षिप्रमारोह सुग्रीव गिमान सह वानरैः ।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण ॥ २३ ॥

‘सुग्रीव ! तुम स्व वानरोंके साथ क्षीम ही इस विमान
पर चढ़ जाओ । राक्षसराज विभीषण ! तुम भी मन्त्रियक
साथ विमानपर आरुह हो जाओ ॥ २३ ॥

ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीव सह वानरैः ।
आरुहो मुद्रा युक्त सामात्यश्च विभीषण ॥ २४ ॥

तब वानरोंसहित सुग्रीव और मन्त्रियोंसहित विभीषण
बड़ी प्रसन्नताक साथ उस दिव्य पुष्पकविमानपर चढ़ गये ॥

तेष्वारुहेषु सर्वेषु कौरेर परमासनम् ।
राधेयणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ॥ २५ ॥

उन सबके चढ़ जानेपर कुरुरक यह उत्तम आसन
पुष्पकविमान भीरुनुनायकीवी आगत पाकर आकाशको उड़
चल ॥ २५ ॥

रागतेन विमानेन हसयुक्तेन भासता ।
प्रदृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुपेरयत् ॥ २६ ॥

आरागमें पहुँच हुए उस हसयुक्त तेजस्वी विमानसे
वात्रा करत हुए पुलकित एव प्रसन्नचित्त भीराम छात्र
कुरुरक समान शोभा पा रहे थे ॥ २६ ॥

ते सर्वे वानरक्षाश्च राक्षसाश्च महाबला ।
यथासुखमसम्भाष्य दिव्ये ससिन्नुपाविशन् ॥ २७ ॥

ये सब वानर, भाव और महाबली राक्षस उस दिव्य
विमानमें बड़े सुखत फेरकर बैठ हुए थे । निश्चिन्तों निश्चिन्त
बसा नहीं स्थान पड़ता था ॥ २७ ॥

हरार्पे भीमद्रामायणे वान्महावीर्ये आदिशाम्ये युद्धमण्ड

हम प्रकार धीररतागिनिर्मित अतारत्रयण आदिशाम्ये युद्धमण्डमें एक रात कासर्वा सम पूरा हुअ ॥ २७ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततम सर्ग

अयोध्यामी यात्रा करते समय श्रीरामका सीतानीको मार्गके म्यान निखाना

अनुधातु ॥ गमेण तद् विमानमनुत्तमम् ।
 हस्तयुक्तं महानादमुत्पात विहायसम् ॥ १ ॥
 श्रीरामकी आशा पाकर वह हस्तयुक्त उत्तम विमान महान्
 शब्द करता हुआ आकाशमें उड़ने लगा ॥ १ ॥
 पातयित्वा ततश्चतुः सर्वतो रघुनन्दन ।
 अग्ररीमथिलीं सीता रामं दक्षिणनिभाननाम् ॥ २ ॥
 उस समय रघुनन्दन आगमने सब ओर दृष्टि डाल
 कर चतुर्भाज समान मनाहर मुखवाय निखिलरघुमारी
 सीताने कहा—॥ २ ॥
 कैलासशिखरागारे विजृम्भितलरे स्थिताम् ।
 लङ्कामाश्रय्य वैदेहिं निमिता विभक्तमया ॥ ३ ॥
 विदेहपत्न्यस्मिन्नि । कैलाशशिखर समान सुन्दर विजृम्भित
 पर्वत निजा शिखर वरी हुई विशङ्कभावी बनाया लङ्कापुरी-
 का देखा, कैसी सुन्दर दिखानी देती है ॥ ३ ॥
 एतद्वायोधन पश्य मासशोणितकदम्बम् ।
 हरीणां राक्षसानां च सीते विशासन महत् ॥ ४ ॥
 इसर इन सुदृग्मिने देखो । यहाँ रक्ष और भावकी
 बीच जमी हुई है । सीते । इस सुदृग्मिने बानरों और राक्षसों-
 का महान् छत्र हुआ है ॥ ४ ॥
 पश्य दत्तारक्षेत्रे प्रमाणी राक्षसेश्वर ।
 तत्र हेतोर्निशागतिं निहतो राक्षसो मया ॥ ५ ॥
 निखालाचने । यह राक्षसराज राज राक्षसों के बनेकर
 था रहा है । यह बड़ा मारी हिंसक था और इने ब्रह्माजीने
 बरदान दे रक्खा था किन्तु तुम्हारे लिये मैंने इसका वध कर
 डाला है ॥ ५ ॥
 शुम्भकर्णोऽथ निहत प्रहस्तश्च निशागरः ।
 धूम्राश्वत्थानि निहतो यानरेण हनूमता ॥ ६ ॥
 यहाँ मैंने शुम्भकर्णका मारा था, यही निशाचर प्रहस्त
 मारा गया है और इस मृगशृङ्गाने बानरवीर हनुमान्ने
 धूम्राश्वत्थ का वध किया है ॥ ६ ॥
 निधुमाली हतश्चाथ सुपेणेन महामना ।
 लक्ष्मणेन ट्रीनिलम्प रात्रिनिहतो रण ॥ ७ ॥
 यही महामना सुगने निधुमालीने मारा था और इसी
 रणभूमिने लक्ष्मणेने यक्षपुत्र इन्द्रविक्षा का वध किया
 था ॥ ७ ॥
 अन्धेनान निहतो विफटो नाम राक्षसः ।
 विष्णुसहस्रनाम महागदमहोदरी ॥ ८ ॥
 यही अन्धने विह्वलनामक राक्षस का वध किया था ।
 विष्णु और देवता भी डरने लगे, वह विष्णु तथा
 महागद और महोदरी भी यहीं मारे गए हैं ॥ ८ ॥

अकम्पनश्च निहतो बलिोऽप्येव च राक्षसा ।
 विशिराधानिकायश्च देगन्तकनपान्तरी ॥ ९ ॥
 अकम्पन तथा दूसर बलवान् राक्षस यहीं भौतिक घाट
 उतार गये थे । विशिरा, यतिनाय, देगन्तक और नपन्तक
 भी यहीं मारे डाले गए थे ॥ ९ ॥
 युद्धो मत्तश्च मत्तश्च राक्षसप्रयागुभी ।
 निजुम्भश्चैव कुम्भश्च कुम्भश्च मज्जो बली ॥ १० ॥
 युद्धो मत्त और मत्त—य दोनों भेड़ राक्षस तथा बलवान्
 कुम्भ और निजुम्भ—य कुम्भकण्ठ दानों पुत्र भी यहीं
 मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १० ॥
 वज्रदंष्ट्रश्च दंष्ट्रश्च बहो राक्षसा हता ।
 मकराक्षश्च दुधर्यो मया युधि निपातिता ॥ ११ ॥
 वज्रदंष्ट्र और दंष्ट्र आदि बहुत से राक्षस यहीं कान्के
 प्राप्त बन गये । दुधर्य वार मकराक्षक इसी युद्धस्थलमें मैंने
 मार निपाता था ॥ ११ ॥
 अकम्पनश्च निहत शोणितसहस्र वीरयान् ।
 यूपसहस्र प्रवृत्तश्च निहतो तु महाहये ॥ १२ ॥
 अकम्पन और पराक्रमी शोणितसहस्र भी यहीं काम
 तमाम हुआ था । यूपस और प्रवृत्त भी इसी महासमरमें मारे
 गये थे ॥ १२ ॥
 विजृम्भोऽथ निहतो राक्षसो भीमदशान ।
 यक्षशुश्रुश्च निहत सुतम्रदन् महायल ॥ १३ ॥
 विजृम्भी और देवनेने भी मय हुआ था वह राक्षस
 विजृम्भी यहीं भौतका प्राप्त बन गया । यक्षशु और महायली
 सुतम्रकी भी यहीं मारा गया था ॥ १३ ॥
 सूर्यशुश्रुश्च निहतो ब्रह्माशुस्तमपरा ।
 अथ मन्दोदरी नाम भाया ॥ पश्यदेवयन् ॥ १४ ॥
 सपत्नीना सहस्रेण साधेन परिगता ।
 मृषयन्तु और ब्रह्मयन्तु नामक निघानरों की यहीं वध
 किया गया था । यही गङ्गाघी मन्दा मन्दोदरीने उसका निव
 विधाय किया था । उस समय वह अपनी दम्पत्य भी अधिक
 सोनेमें गिरी हुई थी ॥ १४ ॥
 एतन् ॥ दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने ॥ १५ ॥
 यत्र सागरमुत्तरीय ता रात्रिमुनिता वयम् ।
 भुवि ॥ यदं समुद्रस्य तीर्थं निगता इता ॥ १६ ॥
 समुद्र के पार करके हमलोगोंने वरान्न निकाली थी ॥ १५ ॥
 पश्य सेतुमया यत्नं सागरे जगताम् ॥ १६ ॥
 तत्र हेतोर्विनालाग्निं नालमेतु समुद्रम् ।
 विनालाचने । सार पानी का समुद्रमें पाया गया था
 हुआ पुष्ट है, जो नलनपुत्र नामक निघानरों के । दग्नि तुम्हारे

लिये ही यह अत्यन्त वृष्कर सेतु बाँधा गया था ॥ १६३ ॥
पद्म सागरप्रशोभ्य धैदेहि पुरुषालयम् ॥ १७ ॥
अपारमिन् गर्जन्त शङ्खशुक्सिमाकुलम् ।

‘विरहनन्दिनि ! इस अशोभ्य वरुणाख्य समुद्रको तो देखो, जो अपारम्भा दितायी देता है । शङ्ख और सीपियोंसे भरा हुआ यह सागर कैसी गर्जना कर रहा है ॥ १७ ॥
हिरण्यनाभ शैलेन्द्र काञ्चन पद्म मैथिलि ॥ १८ ॥
विभ्रामयै हनुमतो भित्त्या सागरमुद्विष्टतम् ।

‘मिथिलशकुमारी ! इस सुगर्मय परंतप्य हिरण्यनाभको तो देखो, जो हनुमान्जीका विभ्राम देनेके लिये समुद्रकी जल-राक्षिकों औरकर ऊपरकी उठ गया था ॥ १८ ॥

एतत् कुक्षौ समुद्रस्य स्वधाधारनिवेशनम् ॥ १९ ॥
अत्र पूर्वे महादेव प्रसादमकरोद् विभुः ।

‘यह समुद्रके उदरमें ही विशाल टापू है, जहाँ मैंने सेना का पड़ाव डाला था । यहाँ पूर्वकालमें भगवान् महादेवने मुझ पर कृपा की थी—सेतु बाँधते पहले मेरे द्वारा स्थापित होकर ये यहाँ विराजमान हुए थे ॥ १९ ॥

एतत् तु दृश्यते तीर्थे सागरस्य महात्मन ॥ २० ॥
सेतुर्नभ इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ।

‘इस पुण्यस्थलमें विशालकाय समुद्रका तीर्थ दिखायी देता है, जो सेतुनिर्माणका मूलप्रदेश होनेके कारण सेतुबन्ध नामसे विख्यात तथा तीनों लोकोंद्वारा पूजित होगा ॥ २० ॥

एतत् पत्रिन् परम महापातकनाशनम् ॥ २१ ॥
अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम त्रिभीषण ।

‘यह तीर्थ परम पवित्र और महान् पातकोंका नाश करने वाला होगा । यहीं ये राक्षसराज त्रिभीषण आकर मुझसे मिले थे ॥ २१ ॥

एष सा दृश्यते सीते किष्किंधा चित्रकानना ॥ २२ ॥
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र घाली मया हत ।

‘सीते ! यह किष्किन्ध वनप्रान्तसे सुग्रीविन् किष्किंधा दिखायी देती है, जो वानरराज सुग्रीवकी सुरम्भ नगरी है । यहीं मैंने घालीका वध किया था ॥ २२ ॥

अप हृष्टा पुरीं सीता किष्किंधा वाग्निपालिताम् ॥ २३ ॥
अत्र शीतं प्रभितं यात्रय राम प्रणयसाध्यसा ।

तदनन्तर शाल्याल्लि किष्किंधापुर्वीमा दहन करके सीताने प्रभसे विद्रुल ह । औरमसे निनयूथक कहा—॥ २३ ॥
सुग्रीवप्रियभावाभिस्तागप्रमुक्तो नृप ॥ २४ ॥

अयेयं वानरद्राणा स्त्रीभिः परिधृता राहम् ।
गन्तुमिच्छे सहायिण्या राजधानीं त्वया सह ॥ २५ ॥

‘महाराज ! मैं सुग्रीवकी तारा आदि प्रिय भागाओं तथा

अन्य वानरखरोंकी स्त्रियोंकी साथ लेकर आऊँ साथ अपनी राजधानी अयोध्यामें चलना चाहती हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥

पथमुक्तोऽथ धैदेहा राघव प्रत्युवाच ताम् ।
परमस्त्विति किष्किंधा प्राप्य मत्स्थाय राघव ॥ २६ ॥
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीव धात्र्यमेतदुवाच ह ।

विदेहनन्दिनी सीताने ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—
‘ऐसा ही हो ।’ फिर किष्किंधामें पहुँचनेपर उन्होंने विमान उड़ायी और सुग्रीवकी ओर दखकर कहा—॥ २६ ॥

ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान् वानरपुरुषान् ॥ २७ ॥
स्त्रीभिः परिधृता सर्वे शयोध्या यातु सीतया ।
तथा त्वमपि संगमि स्त्रीभिः सह महाबल ॥ २८ ॥
अभित्वरय सुग्रीव गच्छाम मृगगधिप ।

‘वानरश्रेष्ठ ! तुम समस्त वानरपुरुषपतियोंको कहो कि वे सब लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ लेकर सीताके साथ अयोध्या चलें तथा महाबली वानरराज सुग्रीव ! तुम भी अपनी सब स्त्रियोंके साथ शीघ्र चलनेकी तैयारी करो, जिससे हम सब लोग जल्दी वहाँ पहुँचें ॥ २७ २८ ॥

परमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा ॥ २९ ॥
वानगधिपति श्रीमास्तैश्च सर्वैः समावृतः ।
प्रविश्यान्त पुरं शीघ्रं तारामुद्गीक्ष्य सोऽग्रनीव ॥ ३० ॥

अमित तेजस्वी श्रीरघुनाथजीक ऐसा कहनेपर उन सब वानरोंसे विरे हुए श्रीमान् वानरराज सुग्रीवने शीघ्र ही अन्त पुरमें प्रवेश करके तारासे भेंट की और इस प्रकार कहा—॥ २९ ३० ॥

प्रिये त्व सह नारीभिर्वानराणां महात्मनाम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाश्यया ॥ ३१ ॥
त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोधित ।
अयोध्यां ददायिष्याम सचा दक्षराधस्त्रिय ॥ ३२ ॥

‘प्रिये ! तुम मिथिलेशकुमारी सीताका प्रिय करनेकी इच्छासे श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाने अनुसार सभी प्रधान प्रधान महात्मा वानरोंकी स्त्रियोंके साथ शीघ्र चलनेकी तैयारी करो । हमलोग इन वानर-मन्त्रियोंके साथ लेकर चलेगे और उन्हें

● सोमनीन आ यहा वानरोंकी प्रियता साथ के बननेकी इच्छा प्रकट की है हमने प्रिये स्त्रीधनमें विमानसे राखकर सबको एक दिन उड़ना पड़ा । ऐसा रामायण निम्नप्रकारका मग है ।
उक्तके बयानानुसार आश्विन शुक्ल चतुर्थिका तिथिधनमें राखकर पत्रनीधन कहनेके प्रधान किया गया था । मगशब्द रामने वहाँ राखकर उसी दिन अश्विनी तिथिधनमें मुक्तावरपर अभिषेक करवाया था जिस कि महाभारत वनपर्व अध्याय २ । ६८ ५८ ५९ से पृथक् बताया है ।

अयोध्यापुरी तथा महाराज दशरथकी सत्र रानियोंका दान
करायेगे ॥ ३१ ३२ ॥

सुग्रीवस्य यच्च श्रुत्वा तारा सत्राङ्गशोभना ।

आहूय चाग्ररीत् सत्रा वानराणां तु योषित ॥ ३३ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर सत्राङ्गसुन्दरी ताराने समस्त
वानर-रानियोंको बुलाकर कहा— ॥ ३३ ॥

सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तु सर्वे च वानरैः ।

मम चापि प्रिय कायमयोध्यादर्शनेन च ॥ ३४ ॥

प्रवेशे चैव रामस्य पौरजानपदैः सह ।

विभूतिं चैव सत्रासा स्त्रीणां दशरथस्य च ॥ ३५ ॥

‘सखियों ! सुग्रीवकी आज्ञाने अनुसार तुम सब लोग अपने
पतियों-समस्त वानरोंके साथ अयोध्या चलनेके लिये शीघ्र
तैयार हो जाओ । अयोध्याका दशन करके तुमलोग मेरा भी
प्रिय काय कराओ । वहाँ पुरवासियों तथा जनपदके लोगोंके
साथ भीषमका अपने नगरमें प्रवेश होगा ; वह उत्सव हमें
देखनेको मिलेगा । हम वहाँ महाराज दशरथकी समस्त रानियों
के बैभवका भी दर्शन करेंगीं ॥ ३४ ३५ ॥

तारया चाभ्यनुज्ञाता सत्रा वानरयोषित ।

नेपथ्यविधिपूर्वं तु दृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥

अध्यारोहन् विमानं तत् सीतादशानकाङ्क्षया ।

तापकी यह आज्ञा पाकर सारी वानर-रानियोंने शृङ्गार
करके उस निमानरी परिक्रमा की और सीताजीके दर्शनकी
इच्छासे वे उसपर चढ़ गयीं ॥ ३६ ॥

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं शिमानं प्रेक्ष्य राघव ॥ ३७ ॥

ऋष्यमूकसमीपं तु धैदेहीं पुनरब्रवीत् ।

उन सबके साथ निमानकी शीघ्र ही ऊपर उठा देख
भीरुतापनीने ऋष्यमूकके निष्ठ आनेपर पुन विदेह
नन्दिनीसे कहा— ॥ ३७ ॥

दृश्यतेऽसौ महान् सीतं सन्निधुद्विष तोयद् ॥ ३८ ॥

ऋष्यमूको गिरिवरं काञ्चनधातुभिर्वृत ।

‘क्षीते ! वह जो चिञ्जलीवदित मेघके समान सुवर्णमय
धातुओंसे युक्त श्रेष्ठ एवं महान् पर्वत दिसाया जाता है, उसका
नाम ऋष्यमूक है ॥ ३८ ॥

अग्राहं वानरेन्द्रेण सुप्रविणं समागत ॥ ३९ ॥

समयश्च एतं सीते वधार्थं वालिनो मया ।

‘क्षीते ! वही मैं वानरराज सुग्रीवने मिला था और मित्रता
करनेके पश्चात् वालिका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की
थी ॥ ३९ ॥

एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना ॥ ४० ॥

तस्या रिदानीं यत्रादं मिललाप सुदुःखित ।

‘यही वह पम्पा नामक पुष्करिणी है, जो तटवर्ती विचित्र
काननोंसे सुशोभित हो रही है । यहाँ तुम्हारे विवाहसे अत्यन्त
दुखी होकर मैंने विलाप किया था ॥ ४० ॥

अस्यास्तीरे मया दृष्टा शर्वरी धर्मचारिणी ॥ ४१ ॥

अत्र योजनशतदुःखं कथं नो निहतो मया ।

‘इसी पम्पाके तटपर मुझे धर्मपरायणा शर्वरीका दशन
हुआ था । इधर वह स्थान है, जहाँ एक यजन करी भुजा
वाले कश्यप नामक असुरका मैंने वध किया था ॥ ४१ ॥

दृश्यतेऽसौ जनम्याने श्रीमान् सीते धनत्पति ॥ ४२ ॥

जटाबुद्ध महातज्ज्ञास्त्रं हेतार्विलसिनि ।

राजणेन हतो यत्र पम्पिणा प्रजरो वली ॥ ४३ ॥

‘मिलसालिनी सीते ! जनस्तानमें वह शोभाशाली
चित्राल वृक्ष दिखायी दे रहा है, जहाँ बलवान् एव महाबलस्वी
पम्पिप्रवर जटायु तुम्हारी रक्षा करनेके कारण रावणन हाथसे
मारे गये थे ॥ ४२ ४३ ॥

यत्रश्च निहता यत्र दूषणश्च निपातित ।

त्रिदिराश्च महावीर्यो मया वाणैरजिह्वरौ ॥ ४४ ॥

‘यह वह स्थान है, जहाँ मेरे सीधे जानेवाले वाणोंद्वारा
खर मारा गया, दूषण वधवासी किया गया और महावरज्जमी
त्रिदिशिको भी मोतक बाट उतार दिया गया ॥ ४४ ॥

एतत् तदाद्यमपदमस्माकं घटरणिनि ।

पणशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदशने ॥ ४५ ॥

यत्र त्व राक्षसेन्द्रेण राजणेन हृता बलात् ।

‘घटरणिनि ! तुम्हारे ! यह हमलोगोंका आश्रम है
तथा वह विचित्र पणशाला दिशापी देती है, जहाँ आकर
राक्षसराज राजने बलपूर्वक तुम्हारा अपहरण किया था ॥ ४५ ॥

एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला गुभा ॥ ४६ ॥

अगस्त्यस्याधमश्चैव दृश्यत कदलीवृत ।

‘यह स्वच्छ बरसादिते सुशोभित मङ्गलमयी रमणीय
गोदावरी नदी है तथा वह कलक कुञ्जमें विष्ट गुहा महर्षि
अगस्त्यका आश्रम दिशावी देता है ॥ ४६ ॥

दीप्तद्वैवाधमो ह्येव सुनीक्षणस्य महामन ॥ ४७ ॥

दृश्यत चैव धैद्विषादभद्राधमो महान् ।

उपयात सहस्राक्षो यत्र दाम् पुरन्दर ॥ ४८ ॥

‘यह महामा सुनीक्षणका शीमामान् आश्रम है और
विदेहनन्दिनि ! यह शरभद्र मुनिका महान् आश्रम दिशावी
देता है, जहाँ सद्यसेनवासी पुरन्दर इन्द्र पर्वत पर ॥ ४७-४८ ॥

अस्मिन् देवे महाकायो विराधो निहतो मया ।

एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यम ॥ ४९ ॥

‘यह वह स्थान है, जहाँ मैंने विराट्नाम विराट्नाम वध

किया था। दधि ! तनुमध्यमे । ये वे तापस दिखायी देते हैं,
जिनका दर्शन हमलोगोंने पहले किया था ॥ ४९ ॥

अत्रि कुलपतिर्यत्र सूर्यैश्वानरोपम ।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥ ५० ॥

सीते ! इस तापमाश्रमपर ही सूर्य और अग्नि के समान
तेजस्वी कुलपति अत्रि मुनि निवास करते हैं । यहीं तुमने
धर्मपरायणा तपस्विनी अनसूयादेवीका दर्शन किया था ॥ ५० ॥

असौ सुनतु शैलेन्द्रश्चित्रकूट प्रकाशते ।
अत्र मा कैकयीपुत्र प्रसादयितुमागत ॥ ५१ ॥

सुनतु ! वह गिरिराज चित्रकूट प्रकाशित हो रहा है ।
वहीं कैकयीकुमार भरत मुझे प्रसन्न करके छोटा लेने के लिये
आये थे ॥ ५१ ॥

एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना ।
भरद्वाजाश्रम श्रीमान् दृश्यते चैष मैथिलि ॥ ५२ ॥

मिथिलेशकुमारी ! यह विचित्र काननोंसे सुशोभित
रमणीय यमुना नदी दिखायी देती है और यह शोभाशास्त्री
भरद्वाजाश्रम दृष्टिगोचर हो रहा है ॥ ५२ ॥

इय च दृश्यते गङ्गा पुण्या त्रिपथगा नदी ।
नाताद्विजगणाकीर्णा सप्रमुपप्लितकानना ॥ ५३ ॥

ये पुण्यलला त्रिपथगा गङ्गा नदी दीख रही हैं, जिनके
तटपर नाता प्रसारके पक्षी कलरव करते हैं और ब्रिजवृन्द
पुण्यरुमीं रत हैं । इनके तटजलीं उनके वृक्ष सुन्दर फूलोंसे
भरे हुए हैं ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मुद्रकाण्डे श्रयोर्विशत्यधिकशततम सर्ग ॥ १३३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वामेय आदिकाव्यक मुद्रकाण्डमें एक सौ त्रिंशत्तम सर्ग पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततम सर्ग

श्रीरामका भरद्वाज आश्रमपर उतरकर महर्षिसे मिलना और उनसे वर पाना

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्या लक्ष्मणाग्रज ।
भरद्वाजाश्रम प्राप्य वसन्ते निपतो मुनिम् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने चौदहवें वर्ष पूण होनेपर पञ्चमी तिथि
को भरद्वाज आश्रममें पहुँचकर मनगो यशमें रहते हुए मुनि
को प्रणाम किया ॥ १ ॥

सोऽपृच्छद्विभिराद्यं भरद्वाज तपोधनम् ।
भृशोऽपि बधिद् भगवन् सुभिक्षानामय पुरे ।

बधिद् सु सुचो भरता जीयन्त्यपि च मातर ॥ २ ॥

तत्पश्चात् धनी भरद्वाज मुनिः प्रणाम करके श्रीरामने
उनसे पूछा—भगवन् ! आपने अश्वत्थापुरीके त्रिपथमें भी

शृङ्गवेरपुर चैतद् गुहो यत्र सदा मम ।
एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी ॥ ५४ ॥
एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुमम ।
अयोध्या कुर्व वैदेहि प्रणाम पुनरागता ॥ ५५ ॥

यह शृङ्गवेरपुर है, जहाँ मेरा मित्र गुह रहता है ।
सीते ! यह यूपमालाओंमें अलंकृत सरयू दिखायी देती है,
जिनके तटपर मेरा पिताजीकी राजधानी है । विदेहनन्दिनी !
तुम वनवासके बाद फिर लौटकर अयोध्याको आयी हो ।
इसलिये इस पुरीको प्रणाम करो ॥ ५४ ५५ ॥

ततस्ते चानराः सर्वे राक्षसाः सविभीषणाः ।
उत्पत्योत्पत्य सद्यष्टास्ता पुरीं ददृशुस्तदा ॥ ५६ ॥

तब विभीषणसहित वे सब राक्षस और वानर अत्यन्त
हर्षसे उल्लसित हो उल्ल-उल्लपर उस पुरीका दर्शन करने
लगे ॥ ५६ ॥

ततस्तु ता पाण्डुरहस्यमालिनीं
विशालकक्ष्या गजवाजिभिर्धृताम् ।
पुरीमपदयन् प्रयागा सराक्षसाः
पुरीं महेन्द्रस्य यथामरानतीम् ॥ ५७ ॥

तत्पश्चात् वे वानर और राक्षस नेत अमालिकाओंसे
अलंकृत और विशाल मननोंसे विभूषित अयोध्यापुरीको, जो
हाथी घोड़ोंसे भरी थी और देवराज इन्द्रकी अमरवतीपुरीके
समान शोभित होती थी, देखन लगे ॥ ५७ ॥

कुछ मुना है ? यहाँ मुका और उछल-मगल ता है न ?
भरत प्रजापालनमें तत्पर रहत है न ? मेरी माताएँ भीवित
हैं न ? ॥ २ ॥

परमुनस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनि ।
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठ सितपूर्वं प्रहृष्टयत् ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार पृष्ठनेपर महामुनि भरद्वाजने
मुस्कराकर उतरपृष्ठेष्ट श्रीरामसे प्रसन्नतापूर्वक कहा— ॥ ३ ॥

आज्ञाश्रयत्वे भरतो जटिलस्त्रया प्रतीयत ।

पादुके ते पुरम्हृत्य सर्वे ज कुशालं रुदे ॥ ४ ॥

मधुनन्दन ! भरत आपकी आज्ञाके अधीन हैं । वे बड़ा

वदामे आपन्न आगमनी प्रतीक्षा करते हैं। आपकी चरण पादुकाओंका सामने रखकर साथ साथ करते हैं। आपके घरपर और नगरमें भी सब दुःख है ॥ ४ ॥

तथा पुरा चीरवसन प्रविशन्त महाबलम् ।
स्त्रीतृतीय न्युत राज्याद् धर्मकाम चक्रेवलम् ॥ ५ ॥
पदाति त्यक्तसख्य पितृनिर्देशकारिणम् ।
सम्भोगं परित्यक्त स्वर्गच्युतमिशामरम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा तु कृष्णापूर्वं ममासीत् समितिजय ।
कैकेयीरचने युक्त वन्यमूलफलाशिनम् ॥ ७ ॥

‘पहल जब आप महान् वनकी यात्रा कर रहे थे, उस समय आपने चारवक्त्र धारण कर रक्खा था और आप दोनों माझोंक साथ तीसरी कबल आपकी ली थी। आप राज्यसे वञ्चित किये गये थे और केवल धर्मपालनकी इच्छा मनमें ल सख्त त्यागकर पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये पैदल ही जा रहे थे। लगे भोगोंसे दूर हो स्वर्गसे भूतलपर गिरे हुए देवताके समान जान पड़ते थे। शत्रुविजयी वीर! आप कैकेयीके आदेशक पालनमें तत्पर हो जगती फल-मूलका आहार करते थे, उस समय आपकी देखकर मेरे मनमें बड़ी कृष्णा हुई थी ॥ ५—७ ॥

साम्प्रत तु समृद्धार्ये समिग्रगणयाधरम् ।
समीक्ष्य चिन्तितारि च ममाम्भूत् प्रीतिरुत्तमा ॥ ८ ॥

‘परन्तु इस समय तो सारी स्थिति ही बदल गयी है। आप गुप्तर विजय पाकर सकलमनोरथ हो मिश्रों तथा बाधकोंक साथ छोड़ रहे हैं। इस रूपम आपने देखकर मुझ यद्वा सुग मित्र—मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ८ ॥

सर्वे च सुपुत्रदुःख ते विदित मम राघव ।
यत् त्वया विपुल प्राप्त जनस्थाननिरासिना ॥ ९ ॥

‘पुत्री। आपने जनस्थानमें रहकर आ विपुल सुख-दुःख उठाये हैं, वे सब मुझे माहूम हैं ॥ ९ ॥

ब्राह्मणार्थे निपुलस्य रक्षत सज्जतापसान् ।
राजणेन हृता भाया वभूरेयमनिन्दिता ॥ १० ॥

‘यहाँ रहकर आ ब्राह्मणोंक धर्ममें संलग्न हो समस्त तपस्वी मुनियोंकी रक्षा करते थे। उस समय रावण आपकी इस स्त्री-सखी भायाका हर ल गया ॥ १० ॥

मारीचद्वान चैव सीतोमयनमेव च ।
कचध्वजान चैव पम्पाभिगमन तथा ॥ ११ ॥
सुमीदण च ते सख्य यथ घाटी हतस्त्वया ।
मागण चैव वैदह्या कम घातात्मनस्य च ॥ १२ ॥
विदिताया च वैदेह्या नलसेतुयज्ञ एत ।
यथा चादीपिता लङ्का प्रहर्षरिपूषणैः ॥ १३ ॥

सपुत्रराधवामात्य सखल सहस्राहन् ।
यथा च निहत सख्ये राज्ञो यत्तद्वर्षित ॥ १४ ॥
यथा च निहते तस्मिन् राज्ञे देवशृङ्गके ।
समागमश्च शिविदशयथा दत्तश्च ते वर ॥ १५ ॥
सर्वे ममैतद् विदित तपसा धर्मरत्नसल ।

‘धर्मरत्नसल। मापीचरा कण्ठमृगन रूपमें दिखायी देता, सीताका बलपूर्वक अपहरण होना, इनकी खाज उरत समय आपन मार्गमें कष्ट-धका मिलना, आपका पम्पासद्वरक ल पर जाना, सुमीदक साथ आपकी मैत्रीका होना, आपके हाथसे बालोंका माप जाना, सीताकी खाज, परनपुत्र हनुमान्का अद्भुत कर्म, सीताका पता लग जानेपर नलक द्वारा समुद्र सेतुका निर्माण, इस और उल्लाससे भर हुए वानर-युधतियों द्वारा लङ्कापुरीका दहन, पुत्र, वधु, मन्त्री, सेना और सारियों सहित कलाभिमानी रावणका आपके द्वारा युद्धमें वध होना, उस देवशृङ्गक रावणके मार जानेपर देवताओंक साथ आपका समागम होना तथा उनका आपको वर देना—य सबी बातें मुझे तपके प्रभावसे ज्ञात हैं ॥ ११—१५ ॥

सम्पतन्ति च मे शिष्या प्रवृत्त्याख्या पुरीमिति ॥ १६ ॥
अहमप्यथ ते दक्षि वर शस्त्रभृता वर ।
अर्थे प्रतिगृह्णाणोद्गमयोध्या भवो गमिष्यसि ॥ १७ ॥

‘मेरे प्रवृत्ति नामक शिष्य यहाँसे अयोध्यापुरीका जाते रहते हैं (अत मुझ वहाँका वृत्तान्त माहूम होना रहता है), शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीरुम। यहाँ मैं भी आपको एक वर देता हूँ (आपकी जो इच्छा हो, उसे माँग ल)। आज मेरा अभ्य और आतिथ्य-सत्कार ग्रहण करें। फल वरने अयोध्याका आइयेगा ॥ १६ १७ ॥

तस्य तच्छिरसा बाह्व्य प्रतिगृह्य नृपा मज ।
यादमिष्येय सहृद धीमान् वरमयाचत ॥ १८ ॥

मुनिज उस वचनको शिराधार्थ करन करने भर हुए भीमान् रावणकुमार भीरुमने कहा—‘वदन्त अउ’। फिर उन्होंने उनसे यह वर माँग— ॥ १८ ॥

अक्षान्फलिनो घृष्ठा सर्वे चापि मधुसूत्रा ।
फलान्यमृतगन्धीनि यद्वन्ति विविधानि च ॥ १९ ॥
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्या प्रति गच्छन्त ।

‘ममवन्। यहाँमें अयोध्या जते समय मार्गक सब वृक्षोंमें समय भर होनेपर भी फल उत्पन्न हो जायें और वे सब-सब मधुकी घाघ टपकानारण हों। उनम माना प्रारत वदन्तसे अमृतम सुगन्धित फल लग जायें ॥ १९ ॥

तथेति च प्रविशान घञान् समनन्तरम् ॥ २० ॥
अभयन् पादपास्तय स्वगपादपसन्निभा ।

भरद्वाजजीने कहा—‘ऐसा ही होगा’ । उनके इस प्रकाश प्रतिभा परते ही—उनकी उस वाणीके निकलत ही तत्काल वहाँसे खरे वृक्ष स्वर्गीय वृक्षोंके समान हो गये ॥ २०३ ॥

निष्कला फलितधासन् विपुष्पा पुष्पशालिन ॥ २१ ॥
शुष्का समप्रपञ्चास्ते नगाश्चैव मधुसूता ।
सर्वतो योजनास्तिष्ठो गन्धतामभवस्तदा ॥ २२ ॥

जिनमें फल नहीं थे, उनमें फल आ गये । जिनमें फल नहीं थे, वे फूलोंसे मुनीभित होने लगे । सूखे हुए वृक्षोंमें भी हरे हरे पत्ते निकल आय और सभी वृक्ष मधुसूती धारा बहाने

हृत्पापैर् धीमन्नामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बुद्धकाण्डे चतुर्विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आयरामायण आदिकाव्यक बुद्धकाण्डमें एक ती चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमः सर्गः

हनुमान्जीका निपादराज गुह तथा भरतजीकी श्रीरामके आगमनकी सूचना देना और प्रसन्न हुए भरतका उन्हें उपहार देनेकी घोषणा करना

अयोध्या तु समालोक्य चिन्तयामास राघव ।
प्रियकाम प्रिय रामस्ततस्त्वरितप्रियम् ॥ १ ॥

(भरद्वाज आश्रमपर उतरनेसे पहले) विमानमें ही अयोध्यापुरीका दशन करके अयोध्यावासियों तथा सुमीन आदि का प्रिय करनेकी इच्छासे शीघ्रपराक्रमी रघुकुलनन्दन श्रीरामने यह विचार किया कि कैसे इन सबका प्रिय हो ॥ १ ॥

चिन्तयित्वा ततो दृष्टिं घानरेषु न्यपातयत् ।
उदात्त धीमास्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवगमम् ॥ २ ॥

विचार करके तबन्ही एवं बुद्धिमान् श्रीरामने यानरोंपर दृष्टि डाली और यानर-बीरे हनुमान्जीमें कहा— ॥ २ ॥

अयोध्या द्वापरितो गत्वा शीघ्रं प्रजगत्सत्तम ।
जानीहि कश्चित् कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥ ३ ॥

‘नृपिभेद’ तुम शीघ्र ही अयोध्यामें जाकर पताला नि राजभवनमें यह लोग सजुआ ताईन ॥ ३ ॥

शृङ्खलपूर प्राप्य शुह गहनगोत्रम् ।
निपादाधिपतिं प्रेक्षि कुशलं यन्नामम ॥ ४ ॥

‘शृङ्खलपूर’में पहुँचकर बनवाली निपादराज गुहसे भी मिलना और मेरी ओरसे पृथक् बचना ॥ ४ ॥

धुत्ता तु मा कुशलिनमरो गितज्वरम् ।
भगिष्यति मुहः प्रीतः समामममम मख ॥ ५ ॥

‘मुहा’ शृङ्खल, ‘गण’ और ‘गितायें’ गुनर निपाद राज गुह । यही प्रसन्न हो करके यह देव मित्र है ।
मर जिय अरता समान है ॥ ५ ॥

लगे । अयोध्या जानेका जो मार्ग था, उसके आग पास तीन योजनतकके वृक्ष ऐसे ही हो गये ॥ २१ २२ ॥

ततः प्रहृष्टा प्लवगर्गभास्ते
वहति दिव्यानि फलानि चैव ।
कामादुषाभन्ति सहस्रशस्ते
मुदागिता स्वर्गजितो ययेय ॥ २३ ॥

फिर तो वे सहस्रों थोड़ा घातर हर्षमें भरकर स्वर्गवासी देवताओंके समान अपनी रुचिक्र अनुहार प्रसन्नतापूर्ण उन बहुसरपक दिव्य फलोंका आस्वादन करने लगे ॥ २३ ॥

अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च ।
नियेद्विष्यति प्रीतो निपादाधिपतिर्गुह ॥ ६ ॥

‘निपादराज गुह प्रसन्न होकर उन्हें अयोध्या यात्रा मार्ग और भरतका समाचार बतायेगा ॥ ६ ॥

भरतस्तु त्वया चाप्य कुशलं घचनामम ।
सिद्धार्थं शस मा तस्मै सभार्ये बहलक्ष्मणम् ॥ ७ ॥

‘भरतसे पान जानर तुम मेरी ओरसे उनका पुण्य पूछना और उन्हें सीता पर लक्ष्मणवदित करे एकदमनारप होकर लौटनेका समाचार बताना ॥ ७ ॥

हरणं चापि वैदेशा राजणेन परायसा ।
सुमीषेण च सदा वालिश्च वध रण ॥ ८ ॥

मैथिल्यन्वेषण चैव यथा चाभिगता त्वया ।
लक्ष्मणित्वा महातोषमापगापतिमन्यम् ॥ ९ ॥

उपयान समुद्रम्य स्वागच्छ च दशनम् ।
यथा च कारितं तेन राजणश्च यथा दत्त ॥ १० ॥

यस्मान् महेष्टेण प्रलुण्ठाय यरणेन च ।
महादेवप्रभवाद्य पित्रा मम स्वमागमम् ॥ ११ ॥

‘बनवा’ राजा के द्वारा सीताजी के हर जानेका, सुमीसे बातचीत होनेका, राजमिम वाली के घबरा, सीताजी के आगम, तुमसे जो मार्ग जग्याविते ३२ हुए अगार महात्मापरसे लौपछर शिम सरा आताका पता लगाना या उठाना, फिर शृङ्खलपर पर जानका, आगच्छ दान भोग, उपर पुत्र बनाना, राजा के घबरा, इन्द्र, ब्रह्मा और वरुणसे मिलने

एव वरान पानेरा और महादेशक प्रसन्ने पिताजने
दग्न हनेका इच्छात उहें सुनाता ॥ ८-११ ॥

उपयात च मा सौम्य भरताय निवेद्य ।
मह राप्तरात्रानेन हरीणामीश्वरेण च ॥ १० ॥
नित्या शशुगणान् राम प्राप्य चानुत्तम यश ।
उपायाति समुद्राय सह मिश्रमहागले ॥ १३ ॥

सौम्य ! तिर मतने यह भी निवेदन करना कि श्रीगण
शशुओंके जीवनकर परम उत्तम यश पाकर, सफलमनश्च
राश्रयदायि मिश्रीयग, वानराजमुश्रीय तथा अपने अन्य महा-ली
मिश्रान् साथ आ रहे हैं और प्रयागन आ पहुँचे हैं ॥ १२ ॥
एतच्छ्रुत्वा यमाकार भजते भरतस्तत ।

स च ते धेदित य स्यात्सर्व यच्चापि मा प्रति ॥ १४ ॥

‘यह बात सुनकर भरतरी जैसी सुग मुद्रा हा; उठकर
प्यान रखता और समझता तथा भरतरी मेरे प्रति जो कर्तव्य
या बताव हा; उसकी भी अननक प्रदान करना ॥ १४ ॥

मेया सर्वे च वृत्तान्ता भरतम्येदितानि च ।
तत्रेन मुखपणेन दृष्ट्या व्याभाषितेन च ॥ १५ ॥

‘वहोंने छरे वृत्तान्त तथा भरतकी चेष्टाएँ गूढ़ें यथार्थरूप-
से जाननी चाहिये । मुखकी क्रांति, दृष्टि और वानकीकसे
उनक मनोमानको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये ॥ १५ ॥

सप्तकामसमृद्ध हि हस्त्यवरपसकुलम् ।
पितृपैतामह राज्य कस्य जातयेमन ॥ १६ ॥

‘सप्त मनोवाञ्छित मेरींसे सम्पन्न तथा हाथी, घोड़े
और रथोंने भरत बाप दाँतका राज्य सुन्न है तो वह किसके
मनको नहीं पल्ल देता ? ॥ १६ ॥

सगन्या भरत धीमान् राज्येनार्थी स्वय भवेत् ।
प्रशान्तु वसुधा सयामखिला रघुनन्दन ॥ १७ ॥

‘यह वैदेहीरी सगति अथवा चिरकालक राज्येनमका
सगण हानने धीमान् भरत स्वय ही राज्य पानेकी इच्छा रखते
हैं तो वे रघुनन्दन भरत केराक सम्पन्न भूमाङ्कका
राज्य कर (मुने उग गजरा नहीं लगा है । उस दशामें हम
कही अत्यन्त राकर तपस्वी जीवन व्यतीत करेंगे) ॥ १७ ॥

तस्य मुडि च दिशाय व्यपसाय च वानर ।
यात्र दूर याता स त्विप्रमाणानुमहसि ॥ १८ ॥

‘वनराजी ! तुम मतने विचार और निश्चय्य वानर
अवनक हमारा इष्ट आभामने दूर न च जायें तभीनक नीम
लैय आओ ॥ १८ ॥

इति प्रतिसमादिष्टे हनुमान् मारुतामन ।
मानुष धारयन् रूपमयोध्या त्यरितो ययौ ॥ १९ ॥

धीशुनायकीन इस प्रकार आदेश देनेपर वनपुत्र

हनुमानकी मनुष्यरा रूप धारण करने तीरगतिने ओरकारी
अर चल दिये ॥ १९ ॥

अयोत्पपात वेगेन हनुमान् मारुतामन ।
गन्मानिय वेगेन त्रिभुवनगुणोत्तमम् ॥ २० ॥

जैसे गरुड़ किसी श्रेष्ठ सखा पकड़ने लिय बड़े बने
सग मारत है, उसी तरह वनपुत्र हनुमान तीर वगने उड़
चल ॥ २० ॥

लङ्घयित्वा पितृपथ विहगेद्रालय शुभम् ।
गङ्गायमुनयोर्धाम समतीय समागमम् ॥ २१ ॥

शृङ्गेरपुर प्राप्य शुद्धमासाय वीर्यवान् ।
स वाचा शुभया दृष्टो हनुमानिदमवीत् ॥ २२ ॥

व्यने पिता बापुन माग—अन्तरिक्षरा, च पश्चिमा
गरुड़रा सुन्दर यह है; लोंकर गङ्गा और यमुनार वगवाली
सगको पार करके शृङ्गेरपुरमें पहुँचकर पश्चिमी हनुमान्की
निगदवाज गुहमें मिल और बड़े हृष्य साथ सुत्र वार्तामें
बैठे— ॥ २१ २२ ॥

सत्वा तु तत्र बाहुस्यो राम सत्यपराक्रम ।
ससीत सह सौमित्रि स त्या मुद्रामप्रधीत् ॥ २३ ॥

पञ्चमीमद्य रजनीमुपित्या घचनासुने ।
भरद्वाजाभ्यनुशत द्रव्यस्यत्रैव राघवम् ॥ २४ ॥

‘तुम्हारे मित्र कटुसकुलभूषण सत्यपराक्रमी श्रीगण
सीता और लक्ष्मणने साथ आ रहे हैं और उन्होंने तुम्ह अगना
कुशल-समाचार फलवा है । वे प्रयागमें हैं और भरद्वाज
मुनिके कहनेसे उन्होंने आधममें आज पञ्चमीरी रात बिनाकर
का उनकी आशा ल वहोंने कल्ले । तुम्हें वनी धीशुनायकी
का दग्न होगा ॥ २३ २४ ॥

पञ्चमुपित्या महातेजा सम्प्रहृष्टतनून्ह ।
उत्पपात महावेगाद् वेगवानविचारयन् ॥ २५ ॥

मुने यों कन्तर महातेजवी और वेगवाणी हनुमान्की
पिता छोड़े सच-विचार किये बड़े वेगमें आगेका उड़ चल ।
उस सन्न उनक छरे अर्धमें हाबनेन समाप्त हा अथा
था ॥ २५ ॥

सोऽपदयद्दामतीर्थं च नदीं वातुर्निनीतया ।
उरुर्गो गोमतीं चैव भीम शाल्यन तथा ॥ २६ ॥

मर्ममें उन्हें परगुणमतीर्थ, वातुर्निनी नदी, शाल्य,
गोमती और भीमनक सगगर दर्शन हुए ॥ २६ ॥

प्रनाथ यद्गुमाहस्त्री स्मृताद्रनपदानि ।
स गन्या दूरमप्यान त्यरित कपितुवर ॥ २७ ॥

आसमाद्दुमान् कुलगात्र नमिप्रामसमीपगात्र ।
सुराधिपम्योपने यया यैरग्रे द्रुमान् ॥ २८ ॥

कद् सद्यः प्रजाओं तथा सपृदिवाली जनपदोमे देखते
हुए कपिधेय हनुमान्जी तीजगतिसे दूरतकका रास्ता लॉप गये
और नन्दिग्रामक समीपवाँ रितले हुए वृक्षोंने पास जा
पहुँच । वे वृक्ष देवरान इन्द्रने नन्दनयन और कुमेरेके चैत्ररस
यनन वृक्षोंके समान सुगन्धित होते थे ॥ २७-२८ ॥

श्रीभि मपुत्रे पौत्रैश्च रममाणेः सलल्यतै ।
प्रोदामात्रे त्वयोध्यायाश्चरि कृष्णाजिनाम्बरम् ॥ २९ ॥
ददर्श भरत दीन वृद्धमाधमवासिनम् ।
जटिल मलङ्घिधातु आवृष्यसनरुशितम् ॥ ३० ॥
फलमूलानि दान्त तापस धर्मचारिणम् ।
समुन्नतजटाभार धलकलाजिनसंससम् ॥ ३१ ॥
नियत भावितारमान ब्रह्मपिसमनेजसम् ।
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्त वसुधराम् ॥ ३२ ॥

उनने आस पास बहुत सी स्त्रियों अपने उन पुत्रों और
पौत्रोंके साथ, जो बल्लभूपणोंमे महीमौति भङ्गृत थे, निचरती
और उनके पुष्पांका चयन करती थीं । अथाप्यासे एक कोसकी
दूरीपर उन्होंने आनमवाली भरतका दला, जो चीर-वज्र
और काल मृगचर्म कारण किये दुर्लभ एव दुर्लभ दियावी
देते थे । उनका छिरपर बना बड़ी हुई थी, शरीरपर मेक कम
गयी थी, भाइयें वनवासक दु रागे उन्हें बहुत ही हूँ कर
दिया था, फल-मूल ही उनका भोजन था, वे इन्द्रियोंका दमन
करके तरलामें लगे हुए थे और धर्मका आचरण करते थे ।
छिरपर जगना भार बहुत ही ऊँचा दिखायी देता था, यस्त्रल
और मृगचर्मने उनका शरीर ढका था । वे बड़े नियमसे रहते
थे । उनका भक्त करण पुत्र था और वे ब्रह्मर्षिके समान
संनखी जान पड़ते थे । खुनाथजीकी दोनों चरणपादुकाओंको
आगे रलकर वे पृथ्वीरा घाटन करते थे ॥ २९-३२ ॥

चातुरङ्गस्य लोकस्य आतार सद्यतो भयात् ।
उपस्थितममाद्यैश्च सुविभिश्च पुरोहितैः ॥ ३३ ॥
धलमुष्यैश्च मुक्तैश्च वाणायगरधारिभिः ।

भरतजी चारों वर्णोंकी प्रजाओंको सब प्रकारके भयले
सुरक्षित रखात था । उनने पास मन्त्री, पुण्डित और सेनापति
भी योगयुक्त हारर रहत और गैरध यज्ञ पहनते थे ॥ ३३ ॥
तहि ते राजपुत्र त चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ ३४ ॥
पत्निभोक्तुं स्वयम्पन्ति वीरा वै धमयत्सला ।

अयोध्यार वै धमापुराणी पुरवासी भी उन चीर और
वाण मृगचर्म धारण करनेवाले शत्रुमार मरतों उस दशमे
छोकर स्वयं भाग भागेही हट्टा नहीं करते थे ॥ ३४ ॥

॥ धममिर धमग देहवधमियापरम् ॥ ३५ ॥
उपाय प्राप्तिर्याप्य हनुमान् मारतामज ।

मनुष्य देह धारण करके आये हुए दूसर धर्मकी मौति
उन धर्मस भरतके पास पहुँचकर पननकुमार हनुमान्जी शप
षाङ्कर बोले—॥ ३५ ॥

वमत् दण्डकारण्ये त्व चीरजटाधरम् ॥ ३६ ॥
अनुशोचसि पाकुत्स्य स त्वा कौशलमववीत् ।
मित्रमाख्यामि ते देव शोक त्यज सुदारुणम् ॥ ३७ ॥
अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्व रामेण सह संगत ।

देव ! आप दण्डकारण्यमें चीर-वज्र और जटा धारण
करके रहनेवाले जिन श्रीरघुनाथजीके लिय निरन्तर चिन्तित
रहते हैं, उन्होंने आपको अपना पुत्रल-समाचार बहलाया है
और आपका भी पूजा है । अब आप इन अन्यन्त दारुण
ग्राहको त्याग दीजिये । मैं आपको बड़ा प्रिय समाचार सुना
रहा हूँ । आप शीघ्र ही अपने भाइ श्रीरामने मिलेंगे ॥
निहाय रात्रण राम प्रतिलभ्य च मैत्रिलीम् ॥ ३८ ॥
उपपाति समृद्धार्थ सह मित्रैर्महापते ।
लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ।
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीराम रात्रणको भारकर मिथिलेशकुमारीको
बापस ले सकलमनोरथ हो अपने महापत्नी मित्रोंके साथ
आ रहे हैं । उनके साथ महातेजवी लक्ष्मण और यशस्विनी
विदेहवज्रकुमारी सीता भी हैं । जैसे देवराज इंद्रक साथ
राखी सोमा पानी हैं, उसी प्रकार श्रीरामस साथ पूर्णकामा
सीताजी सुशोभित हो रही हैं ॥ ३८-३९ ॥

पयमुक्तो हनुमता भरत वैकथीसुत ।
पपात सहस्रका हृणे हर्षामोहमुपागमन् ॥ ४० ॥

हनुमान्जीके ऐसा कहते ही वंकेयी कुमार भरत सदा
आनन्दरिमोर हो पृथ्वीपर गिर पड़े और हर्षसे सूर्युत्त
हो गये ॥ ४० ॥

ततो मुहतादुधाय प्रत्यागम्य च राघव ।
हनुमन्तमुवाचेद् भरत मित्रगद्गिनम् ॥ ४१ ॥
अदोक्तैः प्रीतिमयैः कविमालिङ्ग्य सस्त्रभावात् ।
स्तिरेव भरत श्रीमान् शिपुर्गैरभुविजुभिः ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् दा वहीने बाद उन्हें हाथ हुआ और वे उठकर
राह हो गये । उस समय रघुलभुषण श्रीमान् धरतने प्रिय
बादी हनुमान्जीका यह वेगमे परस्पर दानों भुगओंमें भर
लिया और शास्त्र सहाये स्तय परमानन्दजित रिपुल अभु
विन्दुओंसे वे उन्हें नहलाने लगे । फिर इस प्रकार ब—

देवो वा मानुषो वा त्वमनुयाशादिहागत ।
मियास्यानम्य ते सीम्य ददामि मृत्युम मित्रम् ॥ ४३ ॥

देव ! तुम कौन देवता हो या मनुष्य, जो गुप्तार

हुआ करक यहाँ पधार हो । सोम्य ! तुमने जा यह पिय
सवाद सुनाया है । इसक बन्ने में तुम्हें कौन-सी पिय वस्तु प्रदान
करें ? (मुझे तो काइ ऐसा बहुतव्य उपहार नहीं दियायी
देता, जो इस पिय सवादक तुम्हें हो) ॥ ४३ ॥

राग शतसहस्र च ग्रामाणां च शत परम् ।
सकुण्टला शुभानारा भार्या कन्यास्तु पोडश ॥ ४४ ॥
हेमवणा मुनासोरु शशिसौम्यानां स्त्रिय ।
सत्राभरणसम्पन्ना सम्पन्ना कुलजातिभि ॥ ४५ ॥

(तथापि) मैं तुम्हें इसर लिये एक लाख गोएँ,
सौ उत्तम गौर तथा उत्तम आचार विचारवाली सेहड़ कुमारी
कन्याएँ पत्नीरूपमें समर्पित करता हूँ । उन कन्याओंके बानोंमें
मुल्लर कुण्डल बगमगाते होंगे । उनकी अङ्ग-कान्ति सुवर्णके

हथारों औमन्त्रामाया वाल्माकीय आदिछन्द युद्धकाण्डे षड्विंशत्यधिकशततम सर्ग ॥ १२५ ॥

इम प्रकार धैर्यवर्त्मनिर्नि अङ्गनायक अदिछन्दक युद्धकाण्डेमें एक सौ पचीसवाँ सा पूरा हुआ ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्यधिकशततम सर्गः

हनुमान्नीका भरतको श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके वनवाससम्बन्धी
सारे वृत्तान्तोंको सुनाया

यहूनि नाम यथाणि गतस्य सुमहद्वनम् ।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥ १ ॥

‘अरे स्वामी भीरुमको विद्याल यनमें गये बहुत वष बीत
गय । इतने वषोंके बाद आज सुन । उनकी आनन्दशायिनी
बच्चा सुननेको मिले है ॥ १ ॥

कल्याणी यत गात्रेय लौकिकी प्रतिभाति माम् ।
एति जीवन्तमानन्दो नरः यपदातादपि ॥ २ ॥

‘आज यह कल्याणमयी लौकिक गायत्री मुझे यथाय आज
पढ़ती है—मनुष्य यदि जीना रहे तो उसे कभी-न-कभी हय
और आनन्दकी प्राप्ति होता ही है मन्त्र ही वह जो वषों
बाद हो ॥ २ ॥

राघवस्य हरीणां च कथमासीत् समालम ।
कस्मिन् देशे किमाश्रित्य तत्प्रमाख्यादि वृच्छत ॥ ३ ॥

‘सोम्य ! भीरुनाथकी और वनवास यह मेले-झंझ
कैसे हुआ ? इस दशमें ओर किस प्रकारका लेहर हुआ ?
यह मैं जानना चाहता हूँ । तुम मुझे टीक-टीक बताओ ॥
स पृष्ठे राघवपुत्रेण कन्या सप्तपुत्रपेक्षित ।

व्याचक्षते ततः सर्वे रामस्य उरितं यत्न ॥ ४ ॥

राघवमार भरतके इस प्रकार पूछनेपर कुशभर

समान होगी । उनकी नासिका सुगन्ध, ऊँच मनार और मुख
चन्द्रमाक समान सुन्दर होंगे । वे तुलान होनेक साथ ही
सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होंगी ॥ ४४ ५५ ॥

निशम्य रामागमनं वृषामन
कपिशरीरस्य तदाद्भुतोपमम् ।
प्रहर्षितो रामदिदृक्षयाभरत्

पुनश्च हृषादिदमज्जीद् यय ॥ ४६ ॥

उन प्रसन्न बानर-बीर हनुमान्जान सुनने भीरुमचन्द्र
कीके आगमनका अद्भुत समाचार सुनकर राघवमार भरतको
भीरुमन् दशनकी इच्छामें अत्यन्त हर्ष हुआ और उस
हृषातेरेकमें ही वे फिर इस प्रकार बोल— ॥ ४६ ॥

बैरावे हुए हनुमान्जीने भीरुमका वनवासविरयक कार
चरित्र उन्नेके कर सुनाया— ॥ ४ ॥

यथा प्रयातितो रामो मातुर्दत्तौ वगी तर ।
यथा च पुत्रशोकैर्न रात्रा दृशरथो मृत ॥ ५ ॥

यथा दूतैस्त्वयमानीतस्पूर्णं राघवगृहात् प्रभो ।
त्वयायोष्या प्रबिष्टेन यथा राज्यं न चोत्थितम् ॥ ६ ॥

त्रिभूटगिरिं गत्वा गन्धेनामिप्रकशन ।
निमज्जितस्त्वया भ्रात्रा धममारुता सताम् ॥ ७ ॥

म्येनेन राक्षो वचने यथा राज्यं त्रिमन्थितम् ।
आयस्य पातुके गृह्य ययासि पुनरागत ॥ ८ ॥

सप्रभतमहाबाहो ययायद् विदितं तर ।
त्वयि प्रतिप्रयाते तु यद् वृत्तं तद्विषयो म ॥ ९ ॥

‘प्रभो ! महाबाहो ! जिस प्रकार भीरुमचन्द्रका वनवास
दिया गया, जिस तरह आर्यी मलाका दश वर प्रदान किए
गये, जैन पुत्रशोकने रात्रा दृशरथकी मृत्यु हुए, जिस प्रकार
आज राघवहने दूतोंद्वारा जीम ही कुलपे रूप, जिस तरह
अश्वत्थामे प्रवच करके अपने राज्य अपने ही इच्छा नहीं की
और सपुत्रकी भनका अवकाश करत हुए निरपेक्ष-परा
अच्छर अन शत्रुमन्त्र मन्त्र आने राघव मन्त्रेक्षित

निमज्जित निया, फिर उन्होंने जिस प्रकार राजा दशरथके वचनका पालन करनेमें दृढतापूर्वक स्थित होकर राखको त्याग दिया तथा जिस प्रकार अपने बड़े भाईकी चरण पादुकाएँ लेकर आप फिर लौट आये—ये सब बातें तो आपको यथावत् रूपसे विदित ही हैं। आपने लौट आनेके बाद जो वृत्तान्त घटित हुआ, वह बता रहा हूँ, सुनते सुनिये—॥ ५-९ ॥

अपयाते त्वयि तदा समुद्भ्रान्तमृगद्विजम् ।
परिधनमिवात्ययं तद् घन समपद्यत ॥ १० ॥
तद्वस्तिमुदित घोर सिंहव्याधमृगाकुलम् ।
प्रविवेदाथ विजित स महद् दण्डकावनम् ॥ ११ ॥

‘आपने लौट आनेपर वह वन सब ओरमें अत्यन्त क्षीण सा हो चला। वहाँके पशु पक्षी मयसे घरा उठे थे, तब उस वनके छोड़कर श्रीरामने विशाल दण्डकारण्यमें प्रवेश किया, जो निजन था। उस घोर वनको हाथियोंने रूंद डाला था। उसमें सिंह, व्याम और मृग भरे हुए थे ॥ १० ११ ॥

तेषां पुरस्ताद् बलवान् गच्छता गहने घने ।
विनन्दन् सुमहानाद् विराधं प्रत्यदृश्यत ॥ १२ ॥

‘उस गहन वनमें जाते हुए इन तीनोंने आगे महान् गर्जना करता हुआ बलवान् राक्षस विराध दिखायी दिया। तमुत्क्षिप्य महानादमूर्ध्वबाहुमधोमुखम् ।

निखाते प्रभिपत्ति स नन्दन्मिथ कुञ्जरम् ॥ १३ ॥

‘ऊपर बाँह और नीचे मुँह क्रिये चिण्याङ्गते हुए हाथीके समान जोर-जोरसे गर्जना करनेगले उस राक्षसने उन तीनोंने मारकर गड़गड़में बँक दिया ॥ १३ ॥

तत् कृत्वा दुष्कर कम भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सायकैश्च शरभङ्गस्य रथमाश्रममीयतु ॥ १४ ॥

‘वह दुष्कर कर्म करके दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण सायकालम् शरभङ्ग मुनिये शमणीय आश्रमपर जा पहुँचे ॥ १४ ॥

शरभङ्गे दिव प्राप्ते राम सत्यपराक्रम ।
अभियाद्य मुनीन् सर्पाङ्गास्थानमुपागतम् ॥ १५ ॥

‘शरभग मुनि श्रीरामके समस्त स्वर्गलोकमें चले गये। तब अत्यपराक्रमी श्रीराम सब मुनियोंको प्रणाम करके जनस्थानमें अभ्य ॥ १५ ॥

पश्चाच्छृण्वन्तं नाम रामपादमुपागता ।
ततो रामेण सन्निष्टो लक्ष्मण सहस्रोत्थित ॥ १६ ॥
प्रगृह्य राह चिच्छेद् मणनास महायत् ।

‘अनृशामें आनेक बाद शूर्यणमा नामवाणी एक राक्षसी (गनमें वायुमार लहर) श्रीरामचन्द्रजीव पास आयी। तब श्रीरामने लक्ष्मणके उभे दण्ड देनेका आदेश दिया। महायत्नी

लक्ष्मणने सहसा उठकर तलवार उठायी और उस राक्षसीने नाक-कान काट लिये ॥ १६ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसा भीमकर्मणाम् ॥ १७ ॥
हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ।

‘वहाँ रहते हुए महात्मा श्रीरघुनाथजीने अकल ही शूर्यणवाकी प्रेरणासे आये हुए भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंका वध किया ॥ १७ ॥

एषेन सह सगम्य रामेण रणमूर्धनि ॥ १८ ॥
अद्वधतुर्यभागेन नि शेषा रक्षसा कृता ।

‘युद्धके सुखनेपर एकमात्र श्रीरामके साथ भिड़कर वे समस्त राक्षस परभरमें ही समाप्त हो गये ॥ १८ ॥

महारत्ना महावीर्यास्तपसो रिन्धकारिणः ॥ १९ ॥
निहता राघवेणाज्ञौ दण्डकारण्यवासिन ।

‘तपसामें विघ्न डालनेगले उन दण्डकारण्यनिवासी महाबली और महापराक्रमी राक्षसोंको श्रीरघुनाथजीने युद्धमें मार डाला ॥ १९ ॥

राक्षसाश्च विनिष्पिष्टा खरश्च निहतो रणे ॥ २० ॥
दूषणं चापतो हत्वा त्रिशिरस्तदनन्तरम् ।

‘उस रणभूमिमें वे चौदह हजार राक्षस पीछे डाले गये, खर मारा गया, फिर दूषणका काम समाप्त हुआ। तदनन्तर त्रिशिरको भी मौतके पाठ उतार दिया गया ॥ २० ॥

ततस्तेनार्जिता बाला रावणं समुपागता ॥ २१ ॥
रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षस ।

लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रक्षमयो मृगः ॥ २२ ॥

‘इस घटनासे पीड़ित होकर यह मूर्ख राक्षसी लक्ष्मणें रावणके पास गयी। रावणने कहनेसे उठते अनुचर मारीच नामक भयंकर राक्षसने रत्नमय मृगका रूप धारण करके विदेहराजकुमारी सीताको लुभाया ॥ २१ २२ ॥

सा राममयीद् दृष्ट्वा वैदेही गृह्यतामिति ।
अय मनोहरं वान्त आश्रमो नो भविष्यति ॥ २३ ॥

‘उस मृगको देखकर सीताने श्रीरामको कहा —‘भ्रातृपुत्र! इस मृगको पकड़ लीजिये। इसने रहनेसे मेरा यह आश्रम वान्तिमान् एवं मनोहर हो जायगा’ ॥ २३ ॥

ततो रामो धनुष्पाणिमुग्र तमनुधापयति ।
स त जघान धारन्त शरेणान्तपयणा ॥ २४ ॥

‘तब श्रीरामने हाथमें धनुष लेकर उस मृगका पीछा किया और छत्री हुई गोंटियाले एक बागने उस भागते हुए मृगको मार डाला ॥ २४ ॥

अय सौम्य वृक्षमीमे मृगं याति तु राघवे ।
लक्ष्मणे चापि निष्पन्नते प्रविवेदाश्रम तदा ॥ २५ ॥

भीष्म ! त्वं भूरुपायवी मृगेने पीठे च खे ये और
लम् । भी उहीका समाचार एनेक लिय पगवालासे बाहर
निकल गय, तब राजगन उठ आश्रममें प्रवेश किया ॥ २५ ॥

जग्राह उरस्ता सीता ग्रहं खे रोहिणीमिव ।
आनुकाम तनो युद्धे हत्वा गृध्र जटायुयुग्मम् ॥ २६ ॥
प्रगृह्य सहसा सीता जगामागु स राजसः ।

उठत बन्धूक सीताना पकड़ लिया, नानो आश्रममें
मगलने शशिगिर आनन्दन किया हो । उठ समय उनकी
रक्षाके लिये आये हुए रघुपति जगजुका मुदमें माकर बर
रखत कथा सीतास साथ दे बरिषि जन्मी ही करन हो गया ॥
तबस्यद्रुतसफाशा स्थिता पत्रतमूधनि ॥ २७ ॥
सीता गृहीतया गच्छन्त जनरा पत्रतोषमा ।
दृष्टुर्विस्मिताकारा राजण राज्ञसाधिपम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर एक पत्रतमूधनि रखनेवाला पत्रतमूधन सन
ही जटायु एव विजाल शरीरवाला बानरोंने आश्चर्यचकित हो
सीताको लहर जाते हुए राखरवाज राखरवाज देखा ॥ २७-२८ ॥
तब शीतलत गत्वा तद् शिमान मनोजयम् ।
आरुहा सह धैदेशा पुष्पक स महाजल ॥ २९ ॥
प्रतिवेश तदा लब्धा राजणो राज्ञसेधर ।

यह मगरनी राखरवाज राजन बड़ी सीताला साथ
मनन समान वेगवाली पुष्पक विमानक पत्र त पटुचा और
सीतान साथ उठकर आया हो उठने लब्धामें प्रवेश किया ॥
ता सुजगपरिष्कारे शुभे महति धेदमनि ॥ ३० ॥
प्रदेय मथिलो धार्म्यं सात्वयामास राजण ।

‘हो सुजगभूति विद्या मनमें मिथिगकुमारीका
उरपरपराग चितनी-सुगनी बर्तते उन्हें छत्वनना देने लगा ।
लज्जयद् भाषित तस्य त चनञ्जलपुत्रयम् ॥ ३१ ॥
अश्रित्यन्तरी धैदेशी ह्यशोकजनिका गता ।

‘आश्रमनिकामें रहती हुई विदेहनिदिनाने रावकी
सर्गोका तग स्वय उठ राखरवाजरा भी निकल समान
मनकर दुराग किया और कभी उठरा चितन नही किया ॥
न्ययत तदा रामो मृग हत्वा तदा धने ॥ ३२ ॥
निजतमान फणुस्त्रो हृद्वा गृध्र स नियथे ।

गृध्र हत तदा हृद्वा रामः मियतर पितु ॥ ३३ ॥
‘उपर धनमें भीरुमचन्द्रवी मृगा मरकर लौ ।
लौकत मनर बर उठने गिने भी अधिक मिय रघुपति
का गया गग दंगल, तब मनर मनमें बड़ी धन्या हुए ॥
मागमागन्तु दिदी राघव सहलक्ष्मण ।
गोदाराममुचरन् यनोद्देशाद्य पुष्पितान् ॥ ३४ ॥
लनगन्तु भयानुययी विदेहगकुलये लोकही

खज करने हुए मगरनीरुद्ध पुष्पिण दनान्तमें निचले
ल्यो ॥ ३४ ॥

आसेदुनुमहारण्ये वरध नाम राजसम् ।
तत वरधयजनाद् राम सत्यपराश्रमम् ॥ ३५ ॥
शृण्वमूकगिरि गन्वा सुग्रीवेण समागतः ।

‘सावने-सावने व दानों भाद उठ गिराध धनमें कथा
नामक राखरवाज पत्र त पटुचा । तदनन्तर सत्यपराश्रमो रामने
कथाका उदार किया और उठी वरधसे वे शृण्वमूक पत्र
पर चकर सुग्रीवने मिला ॥ ३५ ॥

तयो समागमः पूर्य प्रीत्या हादौ व्यनतः ॥ ३६ ॥
भाषा निरस्त मुञ्चेन सुग्रीवो वालिना पुनः ।
हस्तेतरसादाह प्रगाढः प्रणयस्यो ॥ ३७ ॥

उन दानोंमें एक दूसरा काहातरसे पहल ही हाथिक
मित्रता हो गयी थी । पूराहमें मुद हुए बड़ भाद बाथने
सुग्रीवका परसे निराल दिया था । भीरुम और सुग्रीवने बर
परस्पर बाँटें हुए, तब उनमें और भी प्रणय प्रेम हो
गया ॥ ३६-३७ ॥

रामः स्वयादुरीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ।
वालिन समरे हत्वा महाकाय महाजलम् ॥ ३८ ॥

‘भीरुमने अपने बाहुबलमें समराज्यमें महाराज, महापत्नी
वालीका बंध करन मुद्रावका उनका राज निभा दिया ॥ ३८ ॥
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सत्रजानर ।
रामाय प्रतिनान्तिते राजपुण्यास्तु मागजम् ॥ ३९ ॥

‘भीरुमने सनन बानरोंका सुग्रीवका अपने राज्यर
न्यायित कर दिया और सुग्रीवने आरामन सनन व प्रतिन
की थी नि मैं राजकुमार सहाती राज नरैग ॥ ३९ ॥

आदिपः बानरेद्रेण सुग्रीवेण महामना ।
दशकोट्यः ह्यजाना सत्रा प्रस्थापेता दिशः ॥ ४० ॥

‘तदनन्तर महाना बानरवाज सुग्रीवने दश कोट बानरों
का सीतासा पत्रा व्यनत अशा दकर सगुल दिशाओंमें
भेजा ॥ ४० ॥

तेषां नो निप्रहृष्टानां रिष्ये पत्रतसत्तमे ।
शूरा शोकाभितताना महान् कालोऽत्ययत ॥ ४१ ॥

‘उही बानरोंमें हर्षण भी थे । निरगत निदरी
शूरने प्रसन्न कर जनेक करी हमर लौनेरा निज सम
दोन गया । हमने बहुत निर कर दिया । हमर अना
शेने पहल्य दारण लगीत हो गया ॥ ४१ ॥

आता तु गृध्रराजस्य सख्यनिनाम धनयशः ।
समाश्रयति स वमर्ता सीता राजनमिन्द्र ॥ ४२ ॥
‘तदनन्तर गृध्र राजस्य एक पत्रतमूधन भाद मिला

गये, जिनका नाम था सम्पाति । उन्होंने हमें बताया कि सीता
लङ्कामें रावणके भजनमें निवास करती हैं ॥ ४२ ॥

सोऽहं दुःखपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् ।
आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुत ।
तत्राहमकामत्राश्रमशोकवन्निष्ठा गताम् ॥ ४३ ॥

‘तब दुःखमें डूबे हुए अपने भाई-बन्धुओंके कष्टका
निवारण करनेके लिये मैं अपने बल-पराक्रमका शस्त्र ले सी
योजन समुद्रको लोंघ गया और लङ्कामें अशोकवाटिकाके भीतर
बसेली बैठी हुई सीतासे मिल ॥ ४३ ॥

कौशेयवस्त्रा मलिना निरामन्दा हृदयप्रतापम् ।
तथा समेत्य विधिवत् पूष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ॥ ४४ ॥
अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामाङ्गुलीयकम् ।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ॥ ४५ ॥

‘मैं एक रेशमी साड़ी पहने हुए थीं । शरीरसे मलिन
और आनन्दशून्य जान पड़ती थीं तथा पातिमल्यके पालनमें
हृदयपूर्वक लगी थीं । उनसे मिलकर मैंने उन सती-साध्वी देवी
से निधिपूर्वक सारा समाचार पूछा और पहचानके लिये
श्रीरामनामसे अङ्कित अँगूठी उन्हें दे दी । साथ ही उनकी
ओरसे पहचानके तौरपर चूड़ामणि लेकर मैं वृत्तकृत्य होकर
लौट आया ॥ ४४-४५ ॥

मया च पुनरागम्य रामस्यान्निष्टकमणः ।
अभिज्ञानं मया दत्तमचिप्मानं स महामणि ॥ ४६ ॥

‘अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामसे पास पुन
लौटकर मैंने वह तेजस्वी महामणि पहचानके रूपमें उन्हें
दे दा ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा तां मैथिलीं रामस्वाशशसे च जीवितम् ।
जीवितान्तमनुभूता पीत्यामृतमिवातुर ॥ ४७ ॥

‘जैसे मृत्युक निरुद्ध पहुँचा हुआ रोगी अमृत पीकर पुन
जी उठता है, उसी प्रकार सीताक विवाहमें मरणारुण हुए
श्रीरामने उनका शुभ समाचार पाकर जीवित रहनेकी
आशा की ॥ ४७ ॥

उद्योजयिष्यन्तुद्योगं दध्ने लङ्कापथे मनः ।
जिघासुरिव लोचान्ते सर्वोद्भावात् विभारसु ॥ ४८ ॥

‘विर सैन प्रत्यक्षालमें सत्रयन्नामक अनिदेव सम्पूर्ण
लोकोंकी मस पर डालनेके लिय उघट हो जाते हैं, उसी
प्रकार सनारो मोलारन देते हुए श्रीरामने लङ्कापुरीका नष्ट
कर डालनेका विचार किया ॥ ४८ ॥

इत्यापे धीमद्गमायने वादमीकीये आदिकाम्य मुद्रकापदे यद्विनात्यधिकृततम सगः ॥ १२६ ॥

इत प्रार श्रीवाल्मीकिनिमित्त अपरामयण अदिकाम्य मुद्रकापदे पर सां लब्धीमर्तो सग पूरा हुआ ॥ १२६ ॥

तत समुद्रमासाद्य नल सेतुमकारयत् ।
अतरत् कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥ ४९ ॥

‘इसके बाद समुद्रतटपर आकर श्रीरामने नल नामक
वानरसे समुद्रपर पुल बँधवाया और उस पुलसे वानरसीरोंकी
सारी सेना रागवसे पार जा पहुँची ॥ ४९ ॥

प्रहस्तमण्डलीश्रील कुम्भकर्णं तु राघव ।
लक्ष्मणो रावणसुत स्वयं रामस्तु रावणम् ॥ ५० ॥

‘यहाँ युद्धमें नीलने प्रहस्ताको, लक्ष्मणने रावणपुत्र
हृद्रजित्तो तथा साक्षात् रघुकुलनन्दन श्रीरामने कुम्भकर्ण
एव रावणको मार डाला ॥ ५० ॥

स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च ।
महेश्वरस्वयभूभ्या तथा दशरथेन च ॥ ५१ ॥

‘तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी क्रमशः इंद्र, यम, वरुण,
महादेवजी, ब्रह्माजी तथा महाराज दशरथसे मिले ॥ ५१ ॥

सैश्वर्यं दत्तवरः श्रीमानुविभिश्च समागतैः ।
सुरार्पिभिश्च काकुत्स्थो वराल्लेभे परतप ॥ ५२ ॥

‘यहाँ पचारे हुए ऋषियों तथा देवर्षियोंने शत्रुस्तापी
श्रीमान् रघुवीरको वरदान दिया । उनसे श्रीरामने वर प्राप्त
किया ॥ ५२ ॥

स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतैः ।
पुष्पकेण विमानेन किष्किं धामभ्युपागतम् ॥ ५३ ॥

‘वर पाकर प्रसन्नतासे भरे हुए श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके
साथ पुष्पविमानद्वारा किष्किंधाम आये ॥ ५३ ॥

ता गङ्गा पुनरासाद्य वसन्त मुनिसन्निधौ ।
अविज्ज पुण्ययोगेन श्वो राम द्रष्टुमहसि ॥ ५४ ॥

‘यहाँसे फिर गङ्गातटपर आकर प्रयागमें भरद्वाजमुनिके
समीप वे ठहरे हुए हैं । कल पुण्य नक्षत्रने योगमें आप बिना
किसी विज्ज-बाधाक श्रीरामका दर्शन करेंगे ॥ ५४ ॥

तत स वात्स्यैमपुरैह नृमतो
निशम्य हृद्यो भरत हृताञ्जलिः ।

उत्राव याणीं मनसः प्रहर्षिणी
त्रिरस्य पूणं त्वनु मे मनोरथ ॥ ५५ ॥

‘इस प्रकार हनुमानजीन मयूर वाक्योंद्वारा सारी बातें
सुनकर भरतजी यह प्रसन्न हुए और हाथ बाँधकर मनकी
हर्ष प्रदान करनेवाली वाणीम बोल—‘आज चिरकालके बाद
मेरा मनोरथ पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततम सर्ग

अयोध्यामें श्रीरामके स्वागतकी तैयारी, भरतके साथ सबका श्रीरामकी अगवानीके लिये नन्दिग्राममें पहुँचना, श्रीरामका आगमन, भरत आदिके साथ उनका मिलाप तथा पुष्पकविमानको कुबेरके पास भेजना

भुत्वा तु परमानन्द भरत सत्यविक्रम ।

हृष्टमाश्रययामास शत्रुघ्न परवीरहा ॥ १ ॥

यह परमानन्दमय समाचार सुनकर शत्रुघ्नकी सगर करनेवाले सत्यविक्रमी भरतने शत्रुघ्नसे हृष्टपूरक आश्रय—॥

दैवतानि च सराणि सैत्यानि नगरस्य च ।

सुगन्धमाल्यैवादिष्वैरर्चन्तु शुचयो मया ॥ २ ॥

गुदाचार्य पुरुष कुलदेवताओंस तथा नगरक सभी देवस्थानोंस गन्धमाल्यक साथ सुगन्धित पुष्पोंद्वारा पूजन करें ॥ २ ॥

सूता स्तुतिपुराणशां सरै वैतालिकास्तया ।

सर्वे वादिप्रकुशला गणिकाश्चैव सखा ॥ ३ ॥

राजशरास्तयामाया सैत्या सेनाह्नागणा ।

ब्राह्मणाश्च सराज्या धेनीमुत्पास्तयागणा ॥ ४ ॥

अभिनियातु रामस्य द्रष्टु शशिनिभ मुलम् ।

स्तुति और पुराणोंक जनकार सूत, समस्त वैतालिक (मोड़), बाज बकानेमें कुशल सब लोग, सभी गणिकाएँ, राजपरियों, मन्त्रीगण, सेनाएँ, सैनिकोंकी बहिनयाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणी वंशक मुलेया छग औरगन्धद्रव्यक कुलचन्द्रका दयन करनेके लिये नगरमें बाहर चले ॥ ११४-॥

भरतस्य यव भुत्वा शत्रुघ्न परवीरहा ॥ ५ ॥

मिष्टीरनेकसाहस्राश्चोदयामास भागशः ।

समीकुरुत निम्नानि शिखराणि समानि च ॥ ६ ॥

मस्तकीसे यह सब सुनकर शत्रुघ्नकी सगर करनेवाले शत्रुघ्नने कई हजार मस्तकीसे अलग अलग टाशियाँ बनाकर उन्हें मरा दी—सुन्दरग लैंचीनीकी भूमिोंको समतल बना दो ॥ ५६ ॥

स्यानानि च निरस्यन्ता नन्दिग्रामादित परम् ।

सिञ्चन्तु पृथिवीं हृत्स्ना हिमशीतेन पारिणा ॥ ७ ॥

अन्योंने नन्दिग्रामतक मार्ग एक कर दो आश्रय की सरी भूमिपर सर्पोंकी तरह टंढ बडका छिड़काव कर दो ॥ ७ ॥

ततोऽभ्यधिकिरन्त्यन्थ सार्वे पुष्पैश्च मयत ।

समुत्प्लूतपतामस्तु रथ्या पुरयतेत्तमे ॥ ८ ॥

पुष्पभर दूधरे लोग सतने सब और बडका और पूल

विनैर दें । इस श्रेष्ठ नगरकी सड़कोंक अगल-बगलमें लैंची पतामोंक फहर दी जायें ॥ ८ ॥

शोभयन्तु च वेदमानि स्वयम्भेदयन प्रति ।

अङ्गदाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णै पञ्चयणै ॥ ९ ॥

कल स्वोदयनक लोग नगरमें सब मकानोंका सुन्दरी पुष्पमाल्यओं धनीभूत फूलोंके माटे गइयें, सुनक बचनने रहित कमल आदिन पुष्पों तथा बचरो अन्हाएँमें सजा दें ॥ ९ ॥

राजमागमसम्बन्ध किरन्तु शतशो नरा ।

ततस्तच्छासन भुत्वा शत्रुघ्नस्य मुदान्विता ॥ १० ॥

राजमागमर अधिर भीड़ न हो, इसकी व्यवस्थाने लिये सैन्यों मनुष्य सब और लग जायें । शत्रुघ्नका यह आदेश सुनकर सब लग बड़ी प्रसन्नतासे साथ उसके पाठनमें लग गये ॥ १० ॥

हृष्टिर्नयन्तो निनय सिद्धायश्वायसाधक ।

अतोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रायापि निययु ॥ ११ ॥

मत्तैनागसहस्रैश्च सध्वनै सुभिर्भूयते ।

हृष्टि, बन्त, निनय, सिद्धाय, अयसधक, अयोध, मन्त्रपाल और सुमन्त्र—ये आगे मन्त्री पद और आभूषणों से निर्भूत मतवाल हाथियोंपर चढ़कर चले ॥ १११ ॥

अपरे हेमकपाभिः सगज्जाभिः करेणुभिः ॥ १२ ॥

निययुन्तुगाम्रन्ता रथैश्च सुमहारथा ।

दूधरे बहुते महरथी और सुन्दरी रथोंसे कही हुए हाथियों, हाथियों, घोड़ों और रथोंपर सगरहकर निरते १२-

शक्यश्लिषादाहस्तानासन्धज्जाना यताकिनाम् ॥ १३ ॥

तुरगाणा सहस्रैश्च मुख्यैमुत्पतरान्वितै ।

पदातीना सहस्रैश्च धीरा परिपृता ययुः ॥ १४ ॥

पदस्थानाओंमें विभूति रखें अच्छे-बच्छे घोड़ों और युद्धकाले तथा हाथोंमें शक्ति शृष्टि और पाप धारण करनेवाले रथोंमें पैदल योद्धाओंसे िर हुए और पुरुष भयान की आतमीन लिये गये ॥ १३१४ ॥

ततो यानान्युपाकुरा सखा द्वापथग्नयः ।

कीमत्या प्रमुने हृन्वा सुमिश्रा चापि निययुः ॥ १५ ॥

बैचेय्या सहिता सखा मन्दिग्राममुपागमन् ॥ १६ ॥

तदनन्तर राजा दशरथकी सभी रानियाँ सवारियोंपर चढ़ कर कौसल्या और सुमित्राको आगे करके निकलें तथा कैकेयी महित सबकी सब नन्दिग्राममें आ पहुँची ॥ १५-१६ ॥

जिजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः ।
माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृत्त ॥ १७ ॥
शङ्खमेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दित ।
आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धमकोरिद् ॥ १८ ॥

धर्मात्मा एव धर्मज्ञ भग्न मुख्य मुख्य ब्राह्मणों, यशसायी वर्गने प्रधानों, रक्षकों तथा हाथोंमें माला और मिठाई लिये मन्त्रियोंसे घिरकर अपने बड़े भाईकी चरणपादुकाओंको सिर पर धारण त्रिये शङ्खों और मेरियोंकी गम्भीर धनिक साथ चले । उस समय बदीजन उनका अभिनन्दन कर रहे थे ॥ १७-१८ ॥

पाण्डुर छत्रमादाय शुक्रमाल्योपशोभितम् ।
शुक्ले च बालयजने राजाहं हेमभूषिते ॥ १९ ॥

“वेत मालाओंने सुरोभित सपेद रंगका छत्र तथा राजाओं व योग्य सोनेसे मन्त्रे हुए दो “वेत बैँवर भी उन्होंने अपने साथ ले रखे थे ॥ १९ ॥

उपशस्तकृशो दीनश्चीरवृष्णाजिनाम्बर ।
भ्रातुरागमन श्रुत्वा तत्पूर्वं हयमागत ॥ २० ॥

भरतजी उपवासके कारण दीन और दुर्बल हो रहे थे । व चीर वस्त्र और वृष्णमृगचर्म धारण त्रिये थे । भाईका आगमन सुनकर पड़ल-पड़ल उहँ महान् हर्ष हुआ था ॥ २० ॥

प्रत्युद्ययौ यदा गम महामा नचिवै सह ।
अभ्याना खुरशार्दैश्च रथनेमिस्त्रेनेन च ॥ २१ ॥
शङ्खदुडुभिनादेन सचचालेय मेदिनी ।
गजाना गृहीतैश्चापि शङ्खदुडुभिनि सनै ॥ २२ ॥

महात्मा भरत उस समय श्रीरामजी अगवानीय लिये आगे बढ़े । पाँहोंकी टापी, रथन पदियोंकी नेमियों और “शङ्खों एव दुडुभिनोंय गम्भीर नादोंसे खरी धृष्टी दिल्लीकी जान पड़ती थी । शङ्खों और दुन्दुभिनोंकी धनियोंसे मिले हुए हाथियोंने गमन-गमन भी भूतलका कर्मित-सा क्रिय देते थे ॥ २१-२२ ॥

हृत्स्न तु नगर तत्तु नन्दिग्राममुपागमत् ।
समीप्य भरतो वाक्पयमुशच पयनात्मजम् ॥ २३ ॥

भरतजीने जब देखा कि मयाध्यापुरीकी सभी नागरिक नन्दिग्राममें आ गये हैं, तब उन्होंने पवनपुत्र हनुमान्जीसे कहा— ॥ २३ ॥

कश्चिन्न रात्रु कपोरी मयन चलचिस्तता ।
नदि पदपाभि कापुस्थ राममार्य परतपम् ॥ २४ ॥
कश्चिन्न धानुदपन्ते कपयः कामरूपिण ।

“वानर वीर ! गानरोंका चित्त स्वभावतः चञ्चल होता है । कहीं आपने भी उसी गुणका सेवन तो नहीं किया है—श्रीरामके आनेकी श्रुती ही खबर तो नहीं उड़ा दी है क्योंकि मुझ अमीतक शत्रुओंको सनाप देनेवाले ककुत्स्थकुलभूषण आर्य श्रीरामके दर्शन नहीं हो रहे हैं तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं?” ॥ २४ ॥

अथैवमुक्ते वचने हनुमानिदम्प्रसीत् ॥ २५ ॥
अर्थे विद्यापयन्त्येव भरत सत्यजिक्कम् ।

भरतजीनँ ऐसा कहनपर हनुमानजीने सार्धक एव सत्य बात बतानेके लिये उन सत्यपराक्ामी भरतजीमें कहा— ॥ २५ ॥

सदाफलान् कुसुमितान् वृक्षान् प्राप्य मधुस्रवान् ॥ २६ ॥
भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान् ।

“सुनिबर भरद्वाजजीकी कृपासे रास्तेके सभी वृक्ष सदा फूलने-फलनेवाले हो गये हैं और उनसे मधुकी धाराएँ गिरती हैं । उन वृक्षोंपर मतवाल भ्रमर निरन्तर गूँगते रहते हैं । उहँ पानर वानरलोग अपनी भूख प्यास मिटाने लगे हैं ॥

तस्य चैव वरो दत्तो वासयेन परतप ॥ २७ ॥
ससैन्यस्य तदातिथ्य वृत्त सर्वगुणान्वितम् ।

“परतप ! देवराज इन्द्रने भी श्रीरामचन्द्रजीको एसा ही वरदान दिया था । अतएव भरद्वाजजीने सेनासहित श्रीराम चन्द्रजीका सर्वगुणसम्पन्न—साक्षोपाह्न आतिथ्य-सत्कार किया है ॥ २७ ॥

निस्त्रन भूयते भीम प्रहृष्टाना वनौकसाम् ॥ २८ ॥
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम् ।

“किंतु देखिये, अब हर्षसे भरे हुए वानरोंका भयनर कोलाहल सुनायी देता है । माझम हाता है इस समय वानर सेना गामनीरा पार कर रही है ॥ २८ ॥

रजोपर्य समुद्भूत पदय सालवन प्रति ॥ २९ ॥
मन्ये सालवन रम्य लोलयन्ति पयरागा ।

“उत्तर सालवनकी आर देखिये, कैसी धूलकरी बाराँ हो रही है ! मैं समझता हूँ वानरलोग रमणीय सालवनकी आनन्दोलित कर रहे हैं ॥ २९ ॥

तदेतद् दृश्यते दूराद् विमान चन्द्रसनिभम् ॥ ३० ॥
विमान पुष्पक दिव्य मनसा प्रसनिर्मितम् ।

रात्रण वायवैः सार्धं हत्वा लम्घ महात्मना ॥ ३१ ॥

“लौजिये, यह रहा पुष्पक विमान, जो दूरने चन्द्रमाके समान दिखायी देता है । इस दिव्य पुष्पक विमानको विश्व-कर्मने अपने अनक संरक्षते ही रचा था । महामा श्रीरामने यवणको बधु-बाधपूर्वकहिा मारकर इस प्राप्त किया है ॥

तदणान्दित्यस्काश विमान रामयाहनम् ।
धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेत मनोजयम् ॥ ३० ॥

श्रीरामक वाहन बना हुआ यह विमान प्रातःकालक
मूल्यही भौति प्रकाशित हो रहा है । इसका वेग मनस खमान
है । यह दिन विमान त्रयोविही कणमे कुचरको प्रातः
हुआ था ॥ ३० ॥

एतस्मिन् आतरो गीरै रून्हा सह राघवौ ।
सुग्रीवश्च महातेजा राममञ्च विभीषण ॥ ३३ ॥

इसीमे विदहयकुमार मोताम माय वे दोनों पुनरा
वीर वसु वेत है और इसीमे महातेजवी सुग्रीव तथा राम
विभीषण भी विराजमान हैं ॥ ३३ ॥

ततो ह्यसमुद्भूतो नि सन्नो दिवमरुपशत् ।
श्रीधालयुगवृद्धाना रामोऽयमिति कीर्तिते ॥ ३४ ॥

हनुमान्ही इतना कहत ही जियो, बाणों, नौचगों
और कुँों—सभी पुरवाखिओं मुखमे यह वाणा पूर पड़ी—
'अहा ! य आरामचन्द्रजी आ रहे हैं !' उन नागरिजोंका यह
हर्षनाद ज्वलज्वलक गूँ उठा ॥ ३४ ॥

रघुकुजराजिभ्यस्तेऽनतीय महीं गता ।
दह्युस्त विमानस्य नग सोममिगम्यरे ॥ ३५ ॥

उन लग हाथी, बाहों और रथोंमे उतर पड़े तथा
पृथ्वीर खड़े हा विमानर विराजमान आरामचन्द्रजीका उसी
तरह दहन करते लगे, वेमे लग आकाशमे प्रकाशित होनेवाले
चन्द्रदेवका दर्शन करते हैं ॥ ३५ ॥

प्राञ्जलिभरतो भूया प्रहृष्टो राघवो मुख ।
ययार्थनाथ्यपाशार्थस्तनो राममपूजयत् ॥ ३६ ॥

भरतजी आरामचन्द्रजीके ओर दृष्टि लगाये हाथ ऊँहकर
खड़े हो गये । उनका शरीर हर्षमे पुलकित था । उन्होंने
दूरमे ही अर्घ्य-पाथ आदिक द्वारा भागमका विधिवत् पूजन
किया ॥ ३६ ॥

मनसा प्रक्षणा सुष्टे विमानं भगनाग्रज ।
रराज पृथुर्नघाक्षो पञ्चपाणिर्धामर ॥ ३७ ॥

विभ्रममादारा मनस रच गये उस विमानर बैठ हुए
विशाल नेत्रोंवाले भगवान् आराम उग्रपाणी देवराज इन्द्र
समान शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

ततो विमानाग्रगत भरतो आतर तदा ।
चरन्दे प्रणतो राम मन्मथमिव भास्करम् ॥ ३८ ॥

विमानक ऊँची भागमे बैठ हुए भाद श्रीरामर दृष्टि
पड़त ही भरतने विनम्रभास पाई उसी तरह प्रणाम किया,
जैसे महार सितारर उठिन सूर्यदेवका दिवज्जग नमस्कार
करत हैं ॥ ३८ ॥

ततो रामाभ्यनुमान तद् विमानमनुत्तमम् ।
हसपुत्र महावग निपपात महातजम् ॥ ३९ ॥

इतनेही आरामचन्द्रजीने आग पाकर व महाव
वेगशाली हयवुत्त उतम विमान प्रथार उतर आया ॥ ३९ ॥

अरोपितो विमान तद् भरत सन्त्यग्रिम ।
राममासाद्य मुनि पुनराभ्युदायत् ॥ ४० ॥

मगान् श्रीरामने सत्यव्रतजी भरतजीने विमानपर
चढ़ लिया और उन्होंने श्रीरामाभ्युदय पर पईचकर
जानन्दविभेरे हो पुन नन आचरणोंमे साग्न प्रणाम किया ॥

त समुत्थाय काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपत् गतम् ।
अहो भरतमातेय मुदित परिपश्यन् ॥ ४१ ॥

दीर्घकाल पश्चात् दृष्टियम जाय हुए भरतका उठा
कर आशुनायजीने अपनी गदमे पिटा लिया और बड़े हर्षक
साथ उन्हें हृदयमे लगाया ॥ ४१ ॥

ततो लक्ष्मणमान्माद्य यदेर्हो च परतप ।
अयाभ्युदायत् प्रातो भरतो नाम चात्रितीत् ॥ ४२ ॥

तपश्चात् शत्रुघ्नोन्न स्नाप दनेराल भरतने लक्ष्मण
मिलकर—उनका प्रणाम ग्रहण करके विदेह-रघुकुमारी
सीताका बड़ा प्रसन्नता साथ प्रणाम किया और अपना नाम
भी बताया ॥ ४२ ॥

सुग्रीव केकीपुत्रो जाम्बवन्तमगद्गदम् ।
मेन्द च द्विदि नीलसुपथ सैर सम्पजे ॥ ४३ ॥

सुपेण च नल सैर गगक्ष गधमादनम् ।
शरभ पनस सैर पणित परिपश्यन् ॥ ४४ ॥

इके बाद ऊँचकुमार भरतने सुमान, जाम्बवान्,
अद्गद, मेन्द, द्विदि, नील, सुपथ, शरभ, नल, गगक्ष,
गधमादन, शरभ और पनसका पूजनमे आलिङ्गन किया ॥

ते कृत्वा मानुष रूप वानरा कामरूपिण ।
कुशलं पश्यन्तुन्मन् प्रहृष्टा भरत तदा ॥ ४५ ॥

वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वनर मानव
धारण करके भरतजीने मिल और उन वरन महान् हर्षमे
उत्पन्न होकर उस समय भरतजीका कुशल-समाचार
पूजा ॥ ४५ ॥

अयात्रितीद् गजवुध सुग्रीव वानरवधम् ।
परिष्वज्य महानुजा भरतो धर्मिणा वर ॥ ४६ ॥

धर्मानाओंमे श्रेष्ठ महातेजवा राजकुमार भरतने वानर
राज सुमानका हृदयमे लगाकर जनेन कहा— ॥ ४६ ॥

त्यमसाक चतुर्णां य आता सुग्रीव पञ्चम ।
नौहृन्नाजायत मित्रजपकराऽदित्यपणम् ॥ ४७ ॥

सुमान ! तुम हम चारोंके पाँचों कर हा, स्वर्ग
स्नेहपूर्ण उगार करनेन हा यह भी मित्र हा है (और
मित्र अपना माइ ही होता है) । अरवार करना ही शत्रु
कहा है ॥ ४७ ॥

निभीषण च भरत सान्त्तनाक्यमथावधीत् ।
विष्टया त्वया सहायेन हृत कर्म सुदुष्करम् ॥ ४८ ॥

इसके बाद भरतने विभीषणको सान्त्वना देते हुए उठते
करा—प्राज्ञराज । बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी
सहायता पाकर श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त दुष्कर कार्य पूरा
किया है ॥ ४८ ॥

राजपुत्र तदा राममभिग्राह्य सलक्ष्मणम् ।
सीतायाश्चरौ धीरो विनयादभ्यगच्छत् ॥ ४९ ॥

इसी समय योर 'गुप्त'ने भी श्रीराम और लक्ष्मणको
प्रणाम करके सीतानीके चरणोंमें विनम्रपूर्वक मस्तक छुकाया ॥
रामो मातरमासाद्य विधौ शोककर्मशिताम् ।
जगद्भ्रष्टं प्रणत पादौ मनो मालु प्रहर्षयन् ॥ ५० ॥

माता वीरन्या शोकक कारण अत्यन्त दुःख और कान्ति
हीन हो गयी थी । उनका पाद पहुँचकर अभिमन्युने प्रणत हो
उनके दोनों पैर पर डूब लिये और माताके मनको अत्यन्त
हर्ष प्रदान किया ॥ ५० ॥

अभिग्राह्य सुमित्रा च वैश्वर्यां च यासिनीम् ।
स मावृध्य तत सखा पुणेहितमुपागमत् ॥ ५१ ॥

जिसे सुमित्रा और यासिनी वैश्वर्याके प्रणाम करने
उठौने समूह माताओंका अभिवादन किया, इससे बाद
वे राजपुत्रोहित वशिष्ठजीके पास आये ॥ ५१ ॥

स्वागत ते महाबाहो कौस्तुभानन्दवर्धन ।
इति प्राञ्जल्य सर्वे नागरा राममनुवन् ॥ ५२ ॥

उस समय अयोध्याके समस्त नागरिक हाथ जोड़कर
श्रीरामचन्द्रजीसे एक साथ शाल उठे—'माता वीरन्या
स्वागत है' ॥ ५२ ॥

तान्यञ्जलिहस्ताणि प्रगृहीतानि नागरैः ।
ध्याकोशानीय पद्मानि दश भरताग्रज ॥ ५३ ॥

भरतने बड़े भाव अभिमन्यु देला, जिससे हुए कमलोंके
हस्त हैं ॥ ५३ ॥

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्या भरत स्वयम् ।
चरणगम्या नरेन्द्रस्य योजयामास धमयित् ॥ ५४ ॥

अग्रवीर्य तदा राम भरत स एतावत् ।
वदनन्तरं पश्चात् भरतने स्वयं भीममहीके चरण
पादुकाएँ रख कर उन महापुरुष चरणोंमें पहना दी और हाथ
जोड़कर उस समय उनसे करा— ॥ ५४ ॥

पतन्त सकल राज्य न्यास नियतित मया ॥ ५५ ॥
मय जन्म एतावत् मे सञ्चित्य मनोरथ ।
यत् स्या पर्याप्त राजानमपाप्या पुनरागतम् ॥ ५६ ॥

प्रभो ! मेरे पास धरोहर रूपमें रक्ता हुआ आपका
यह सारा राज्य आज मैंने आपके भीचरणोंमें लौटा दिया ।
आज मेरा जन्म सफल हो गया । मेरा मनोरथ पूरा हुआ ।
जो अयोध्यानरेश आप श्रीरामको पुन अयोध्यामें लौटा हुआ
देत रहा हूँ ॥ ५५ ५६ ॥

अवेक्षता भवान् कोरा कोष्टागार गृह पलम् ।
भरतस्तेजसा सर्वे हृत दशगुण मया ॥ ५७ ॥

'आप रायका जनना, कोठार घर और सेना सब
देत हैं । आपके प्रतापसे यह सारी वस्तुएँ पहलेसे दशगुनी
हो गयी हैं' ॥ ५७ ॥

तथा ह्यगण भरत हृष्टा त आहवत्सलम् ।
सुमुचूर्वागरा वाप्य राक्षसस्य विभीषण

आहवत्सल भरतको इस प्रकार कहते देत समस्त
तथा राजराज विभीषण नेत्रोंमें आँसू बहाने लगे ॥
तत प्रहर्षाद् भरतमद्रुमारोप्य राघव ।
ययौ तेन विमानेन ससैन्या भरताधमम् ॥ ५८ ॥

इसने पश्चात् श्रीरघुनाथजी भरतको बड़े हर्ष और रुं
साथ गोदमें बैठाकर विमानने द्वारा ही सेनावहित उ
आश्रमपर गये ॥ ५८ ॥

भरताधममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा ।
भरतके आश्रममें पहुँचकर सेनावहित श्रीरघुनाथजी
विमानसे उतरकर भूतलपर खड़े हो गये ॥ ५९ ॥

अग्रवीर्य तु तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ।
यह वैश्वर्या देवमनुजानामि गम्यताम् ॥ ६१ ॥

उस समय अभिमन्युने उस उत्तम विमानसे कहा—
'विमानराज ! मैं तुम्हें आशा देता हूँ, अब तुम यहाँसे
देवमवर कुनेरेके ही पास चले जाओ और उहाँसे सवाये
में रहो' ॥ ६१ ॥

ततो रामाभ्यनुशात तद् विमानमनुत्तमम् ।
उत्तरा दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम् ॥ ६२ ॥

श्रीरामजी आशा पाकर वह परम उत्तम विमान उतर
दिशाओं देख कर कुनेरेके स्थानपर चला गया ॥ ६२ ॥

विमान पुष्पक दिव्य सगृहीत तु रमसा ।
विमान पुष्पक दिव्य सगृहीत तु रमसा ॥ ६३ ॥

अगमद् धनद् धनम् रामाक्यप्रचोदितम् ॥ ६३ ॥
राजराजराजने जिस विमानपर बलपूर्वक
अधिकार कर लिया था वही अब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे
प्रेरित हो वेगपूर्वक कुनेरेकी सेनामें चला गया ॥ ६३ ॥

गुणेहितस्यामलसजस्य राघवो
गृहस्थपत राघव इयामराधिप ।
निभीष च पादौ शृणगासने शुभे
सहैव तनापविशे धीर्यवान् ॥ ६४ ॥

तत्तद्भातु पराक्रमी श्रीरघुनाथब्रह्मे अपने सखा पुराणि
वसिष्ठपुत्र सुयशः (भयवा अपने परम सहायक पुराणि
वसिष्ठजीव) उछी प्रसार करण छुए, जैम देवराज इन्द्र

वृक्षनिजीन चरगोत्रा करत है । कि उछे एन सुदर
प्रयक् आसनपर विराजमान रघु उच मग ही दूम
आसनपर व स्वय भी देख ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य सुदृक्काण्डे सप्तविंशत्यधिकतम मग ॥ १२७ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टरामायण आदिकाव्यक सुदृक्काण्डे एक स सप्तदशवा मा पूग हुअ ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकतम सर्ग

भरतका श्रीरामराज राज्य लौटाना, श्रीरामकी नगत्याया राज्याभिषय, जनरोंका
विदाई तथा ग्रन्थका महात्म्य

शिरस्यशुलिमाधाय कैकेयीनन्दिरधन ।
वभाषे भरतो ज्येष्ठ राम सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥
तत्पश्चात् कैकेयीनन्दन भरतने मत्सरपर अचलै बौचर
अरने बड़ भाद सत्यपराक्रमी भीममते कहा—॥ १ ॥

पूजिता मामिका माता दत्त शन्यमिद मम ।
तद् ददामि पुनस्तुभ्य यथा त्वमददा मम ॥ २ ॥
‘आपने मरी माताका सम्मान किया और वह राज्य मुझ
दे दिया । जैने आपने मुझे दिया, उछी तरह मैं अब फिर
आपको वारस दे रहा हूँ ॥ २ ॥

धुरमेकाकिता न्यस्ता वृषमेण बलीयसा ।
किशोरवद् गुरु भार न योद्धुमदमुत्सहे ॥ ३ ॥
‘अत्यन्त बलवान् बल निष्ठ बाहेरी अरुण उठाना है,
उसे बछड़ा नहीं उगा सकता उछी तरह मैं भी इस भारी
मारो उठानेमें असमर्थ हूँ ॥ ३ ॥

वारिधेगेन महता भिन्न सेनुरिय क्षरन् ।
दुर्बधनमिद मये राज्यच्छिद्रमसतृप्तम् ॥ ४ ॥
‘जैने क्षत्र महान् वेगमे दूट या फटे हुए बाँधका, ज
फि उठने जल्द प्रसर प्रगाढ़ बह रहा है बाँधना अत्यन्त
कठिन होता है उछा प्रसार वायर खुले हुए छिद्रका एक
पाना मैं अपने लिय अक्षमपर मानता हूँ ॥ ४ ॥

गति एत इवाश्चर्यस्य हसस्त्वेष न थापस ।
नान्वेतुमुत्सहे धीर तत्र मागमरिदम् ॥ ५ ॥
‘आमुदन्न वीर ! जने मदरा गीदरी और कौश हंसकी
गतिका अनुकरण नहीं कर सकता, उछी तरह मैं आपका माग
का—रक्षणीय-रक्षणरूपी कौशलका अनुकरण नहीं कर
सकता ॥ ५ ॥

यथा चातोपिगो पृक्षो जातस्थाननिवेशने ।
महानपि दुरागेहो महास्वथ प्रगायमान् ॥ ६ ॥
‘जैसे तब उपपिगो पृक्षो जातस्थाननिवेशने ।
महानपि दुरागेहो महास्वथ प्रगायमान् ॥ ६ ॥

तस्य नानुभवदर्थं यम्य हेता स नेपित ॥ ७ ॥
एषोपमा महागहा धर्मय दत्तमर्षसि ।
यद्यस्मान् मनुजे त्र ट्र भता भृत्यान् न शाधिहि ॥ ८ ॥

‘महागहा ! नर ! जेन परव भीतरन योगीजन ए
वृक्ष त्यागा गया । रह बना और जनर वट्टा रहा है
गया । इनका बग फि उगार नरुन नान ह रहा था ।
नरुन तना बहुत बड़ा और मटा था नरा नमन बहुत
जागरण था । उन वृक्षमें दल गग रिनु वर अरने वल
नहीं दिला सका था । इसीदरामे दूरर धरागाना ही गया ।
लगानेगल्लेने किन फलनि उदरने उस वृक्षमें लगाया था,
उनका अनुभव न नहीं कर सक । वरी उपमा उन राजन
लिय भी हो गयी है, जिमे प्रबाने नरनी रक्षार लिय पाल
नेकर बड़ा हिा और बड़ हानेर व उनरी रक्षम मुह
माने लग । नम उपनर तारयैद अर समर्प । ये भता
हाकर भी आप हम भुल्ले भरण नरुन नरि कोगे तो आप
भी उस निष्क वृषन नमान ही समझ जायग ॥ ६-८ ॥

जगदद्याभिषिक्त रामनुरन्यतु राघव ।
प्रतपन्तमिदं दिव्य मर्यादे दानतजसम् ॥ ९ ॥
‘समुत्पन्न ! अब त हमारी व । इच्छा है कि उन्
स्व लग आपका राज्याभिषे देन । मर्यादा दानतजसम्
भौति अपनरा तब और प्राप्ता वरुत रह ॥ ९ ॥

नृपसञ्चाननिर्घये काञ्च नृपुनरि न्यसै ।
मधुरैर्गातशब्दथ प्रतिपुष्पय गाय च ॥ १० ॥
‘अथ विरधि गाँगीरी मधुर चनेन, काञ्ची तथा नृपुनरी
जननार और गीतन मनहर गाय सुनन गी और न्यसै ।
याउदायनत गाय यायती च दनुषधग ।
तान् नृपमिदं लोकस्य व्यामित्रमनुदय ॥ ११ ॥

‘इति नक्षत्रमण्डल भूमिगा है और इति दूर गी
मिन है नक्षत्र और इन मन्तरक म्यानी दन रह ॥ ११ ॥
भरतस्य धन क्षुद्रा राम परपुरनय ।

तपेति प्रतिजग्राह निपसादासने शुभे ॥ १० ॥

भरतकी यह बात सुनकर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाल भगवान् श्रीरामने 'तापास्तु' कहकर उसे मान लिया और वे एक सुंदर आसनपर विराजमान हुए ॥ १२ ॥

तत शत्रुघ्नरचनाक्षिपुणा इमश्रुतधना ।

सुखहस्ता सुदीप्राश्च राघव पयवारयन् ॥ १३ ॥

फिर शत्रुघ्नजीकी आकांसे निपुण नाइ बुलाये गये, बिनक हाथ हथके और तेज चरनेवाल थे । उन सबने श्रीरामायजी को घेर लिया ॥ १३ ॥

पूर्वं तु भरतं स्नाते लक्ष्मणे च महाबले ।

सुग्रीवे वानरेष्ठे च राक्षसेष्ठे विभीषणे ॥ १४ ॥

विशोधितजट स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपन ।

महाहंसनोपेतस्तस्यै तत्र धिया ज्वलन् ॥ १५ ॥

फल भरतने स्नान किया फिर महाबली लक्ष्मणने । तत्पश्चात् वानरपञ्च सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणने भी स्नान किया । तदनन्तर जटाका गोधन करके श्रीरामने स्नान किया, फिर निचिन पुष्पमाला, सुन्दर अनुलेपन और बहुत मूल्य पीताम्बर धारण करके आभूषणोंकी शोभासे प्रकाशित होते हुए वे सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ १४ १५ ॥

प्रतिक्रम च रामस्य कारयामास वीरयान् ।

लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्षाडुकुलपथन ॥ १६ ॥

इक्ष्वाकुकुली कीर्ति वाननेवाल शोभावाली, पराक्रमी वीर शत्रुघ्नने श्रीराम और लक्ष्मणरा शृङ्गार धारण कराया ॥

प्रतिकर्म च सीताया सया दशरथक्षिय ।

आत्मनैव तदा चक्रुर्मनसिन्यो मनोहरम् ॥ १७ ॥

उस समय राजा दशरथकी सभी मनस्विनी रानियोंने स्वयं अपने हाथोंसे सीताजीका मना-र शृङ्गार किया ॥ १७ ॥

ततो वानरपक्षीना सयासामन शोभनम् ।

चकार यक्षात् कौसल्या प्रहण पुत्ररमला ॥ १८ ॥

पुत्ररमला गौतम्याने अत्यन्त हृष और उत्साहक साथ यह करने समर्थ वानररानियोंका सुन्दर शृङ्गार किया ॥ १८ ॥

तत शत्रुघ्नरचनात् सुमन्त्रो नाम सारथि ।

योजयित्वाभिजगाम रथ सयाङ्गशोभाम् ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुघ्नजीकी आज्ञाने सारथि सुमन्त्रजी रथ सयाङ्गसुन्दर रथ आनकर ल आये ॥ १९ ॥

अन्यकामलसफादा दिव्य दृष्ट्वा रथ स्थितम् ।

भारोह महाग्राह राम परपुरजय ॥ २० ॥

अग्नि और वृक्ष समान दंदाभ्यामन उस दिव्य रथकी गद्गा का शत्रुघ्नजीने विजय पानेवा महाबाहु श्रीराम उस रथ भाग्य दृष्ट ॥ २० ॥

सुग्रीवो हनुमाश्चैव महेद्रसदशयुती ।

स्नातौ दिव्यनिर्भरस्त्रैर्जम्भतु शुभकुण्डलौ ॥ २१ ॥

सुग्रीव और हनुमानजी दोनों देवराज इन्द्रके समान कान्तिमान् थे । दोनोंके कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा पा रहे थे । वे दोनों ही स्नान करके दिव्य वस्त्रोंमें विभूषित हो नगर की ओर चले ॥ २१ ॥

सगभरणजुष्टाश्च ययुस्ता शुभकुण्डला ।

सुग्रीवपत्न्य सीता च द्रष्टु नगरमुत्सुका ॥ २२ ॥

सुग्रीवकी पत्नियाँ और सीताजी समस्त आभूषणसे विभूषित और सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत हो नगर देखनेकी उत्सुकता मनम स्थिते सगरियोंपर चली ॥ २२ ॥

अयोध्याया च सचित्रा राज्ञो दशरथस्य च ।

पुरोहित पुरस्तृत्य मन्त्रयामासुरथवत् ॥ २३ ॥

अयोध्यामें राजा दशरथके मन्त्री पुरोहित रक्षिबाने आगे करके श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकक विषयम अनन्यक विचार करने लगे ॥ २३ ॥

अशोको विजयश्चैव सिद्धाथश्च समाहिता ।

मन्त्रयन् रामवृद्धयथमुद्धयर्थं नगरस्य च ॥ २४ ॥

अशोक, विजय और सिद्धार्थ—ये तीनों मन्त्री एकाम्रचित हा श्रीरामचन्द्रजीके अन्मुदय तथा नगरकी समृद्धिके लिये परस्पर मन्त्रणा करने लगे ॥ २४ ॥

सवमेवाभिषेकार्थं जयाहस्य महात्मन ।

कतुमहथ रामस्य यद् यमङ्गलपूर्वकम् ॥ २५ ॥

उन्होंने सेवकोंसे कहा—'विजय' शोभ्य आ महात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं उनक अभिषेकके लिये जा जा आभयम कार्य करना है, वह सब मन्त्रपूर्वकतम सब लागू कर' ॥ २५ ॥

इति ते मन्त्रिण सर्वे सदिदय च पुरोहित ।

नगराग्निचयुस्तूर्ण रामदशनपुञ्जय ॥ २६ ॥

इस प्रकार आदेश देकर ये मन्त्री और पुरोहितजी श्रीरामचन्द्रजीके दशनक लिय तत्काल नगरसे बाहर निकल ॥ २६ ॥

हरियुक्त सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघ ।

प्रययौ रथमाग्याय रामो नगरमुत्तमम् ॥ २७ ॥

जैसे सहस्र नेत्रधारी इन्द्र हर रथन घोड़ोंसे जुत हुए रथ पर बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार नियाम श्रीराम एक श्रेष्ठ रथपर आरुह हो अपने उत्तम गारजी और चला ॥ २७ ॥

जग्राह भरतो रदमीन्द्राशुप्लवदलप्रमाद ।

ज्दमणो व्यजन तस्य मूर्ध्नि सर्वीजयस्तदा ॥ २८ ॥

उस समय भरतने सारथि यवनक पादोंकी बागदर अपने हाथम ल रक्षी थी । शत्रुघ्नने छत्र लया रक्ता धा आर

रामः उत समय आरामचन्द्रोके मनकपर चैत्र हुला
रहे य ॥ २८ ॥

इव न च गाल्यन जगृहे परित स्थित ।
अपर चन्द्रसकाश राससेन्द्रो विभीषण ॥ २९ ॥

एक ओर लम्बा ये और दूसरी ओर राससय विभाग
मड़े थे । उन्होंने चन्द्रमाक समान कान्तिमान् दूसरा 'वेन
चैत्र हायमे ल रक्ता या ॥ २९ ॥

अपिसहैस्तदाऽऽकाशे नैवेक्ष्य समरङ्गणे ।
सूर्यमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनि ॥ ३० ॥

उस समय आकाशमें लड़े हुए ऋषियों तथा मन्त्रियों
मड़े देवताओं समुदाय भीरुमन्त्रजान् मन्त्रनकी मधुर
ध्वनि सुन रहे थे ॥ ३० ॥

ततः शत्रुपथ नाम कुक्क पचनोपमम् ।
आरुणेह महानना सुग्रीव प्रगर्पभ ॥ ३१ ॥

तदनन्तर महातन्त्रवी बानरराज सुग्रीव शत्रुपथनामक
परताकार मण्यकर आरुढ़ हुए ॥ ३१ ॥

न न नागमहस्त्राणि ययुरास्थाय धानरा ।
मानुष विग्रह रम्या सत्राभरणभूषिता ॥ ३२ ॥

बनरखग नौ इन्द्र हाथियार चक्र यात्रा कर रहे थे ।
व उस समय मानव रूप धारण किये हुए व और सब प्रकारक
आभूषणोंमें विभूषित थे ॥ ३२ ॥

शङ्खशङ्खप्रणादैश्च दुःशुभीना च निखलैः ।
प्रपद्या पुरयव्याघ्रस्ता पुरी हस्यमालिनीम् ॥ ३३ ॥

पुरुषार्थ भीरुमन्त्रजान् तथा दुःशुभीनोंके सम्भीर
नादक साथ प्रामदमालाओंमें अन्कृत अम्ब्यापुगीकी ओर
प्रस्थित हुए ॥ ३३ ॥

दृष्टुं स्ते समापान्त रागज मधुर सङ्गम् ।
निरानमन वपुषा ग्येनानिरय तदा ॥ ३४ ॥

अम्ब्यावातिनोंके अन्तरपी भीरुनायकीको रक्षार बैचर
आठ देवा । उनका भीविग्रह दिव्यकान्तिमें प्रकाशित हो
रहा था और उनक आगे आगे अग्रगामी सैनिकोंका जाया
चल रहा था ॥ ३४ ॥

त सधयित्या काहुस्य रामेण प्रतिनन्दिता ।
यनुचमुमहामान आशुभि परिघारितम् ॥ ३५ ॥

उन सबने आगे चक्र भीरुनायकीको रक्षा दी और
भारान्ते भी बदलने उनका अभिनन्दन किया । तिर वे सब
पुरवासी भाइयोंके चिरे हुए महान् भीरुमन्त्र पीछे पीछे चलने
लागे ॥ ३५ ॥

समाप्येष्टासप्तैधय तथा प्रतितिभिवृता ।
धिया निरुदये रामो नक्षत्रैरिय च द्रमा ॥ ३६ ॥

सैने नक्षत्रों तिर हुए चन्द्रमा सुशान्त होते हैं, उसका

प्रकार मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा मन्त्रियों तिर हुए भारम
चन्द्रवी अनी तिर कान्तिमें उद्भासित हो रहे थे ॥ ३६ ॥

स पुरोगामिभिन्मूर्त्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ।
प्रयाहर्गन्निमुदितमङ्गलानि धृतो ययौ ॥ ३७ ॥

मन्त्रों आगे धारण थे । व आनन्दमय हो तुम्ही
करताल और स्वस्तिक बगल तथा मङ्गलक ध्यान गत थे ।
उन सबक साथ आरामचन्द्रो नगरकी ओर चलने लग ॥ ३७ ॥

अप्यन जानक्य च गात्र कन्या सहस्रिजा ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥ ३८ ॥

भीरुमन्त्रवीक आगे अग्रत और सुवर्णने युक्त पात्र
नौ, ब्राह्मण, कन्याएँ तथा हायमें मिठा लिय अनेकानक
मनुष्य चल रहे थे ॥ ३८ ॥

सत्य च राम सुग्रीव प्रभाज चानिलामज ।
यानरणा च तत्कम हाचचरेऽर मन्त्रिणाम् ॥ ३९ ॥

भीरुमन्त्रवी अरने मन्त्रियोंके सुग्रीवका मित्रता
हनुमान्की प्रभाव तथा अन्य यानरोंके अद्भुत 'राजमन्त्र'
चक्रा करत चल रहे थे ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा च विसृज्य जम्बुरयोध्यापुत्राग्निन ।
यानरणा च तत्कम रात्रसाना च तद् गल्म ।
विभीषणस्य सयोरामात्रमयेऽथ मन्त्रिणाम् ॥ ४० ॥

बानरोंके पुरुषाय और राज्ञोंके बन्की दाने सुनकर
अम्ब्यावातिनोंका बन् विस्मय हुआ । भीरुमन्त्रे विभीषणने
मिलनका प्रसंग भी अरने मन्त्रियोंको बताया ॥ ४० ॥

शुनिमानेतदास्याय रामो यानरमयुन ।
हृष्टपुष्टनकाकीपामयोध्या प्रविशेत् स ॥ ४१ ॥

य सब दगाकर बानरोंमें तैरुनी भीरुमन्त्र हृष्टपुष्ट
मनुष्योंमें भरी हुई अनेकपुत्रीमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥

ततो हाम्युच्छ्रयन् पौर पताकाश्च गृहे गृह ।
पेक्ष्याकाप्युनि गम्यमानमा पितुर्गृहम् ॥ ४२ ॥

उस समय पुरुषार्थोंने अरने अरने घरत लगी हुई
पताकाएँ ऊँची कर दीं । तिर भीरुमन्त्रवी हवाहवाकी
शराओंके उषयमें आय हुए निगर रमाय मन्त्रने
गय ॥ ४२ ॥

अथाग्रद रात्रपुत्रो भग्न धर्मिणा यम् ।
अयोपहितया वाचा मधुर रघुनन्दन ॥ ४३ ॥
पितुभजनमासाद्य प्रसिद्ध च महामन ।
कौस्तव्य च सुमित्रा च कक्षीमभिजाय च ॥ ४४ ॥

उस समय रघुनन्दन राजकुमार अरान्ते महान्
मित्रा और भजनने प्रवेष्ट करक मन्त्रा बोझा, सुमित्रा और

कैशेयी चरणौ मस्तप सुमनस घमात्ताञ्जलौ श्रेष्ठ भरतौ
अर्पयुक्त मधुर वाणीमै कथा—॥ ४३ ४४ ॥

तथा मन्द्रयन श्रेष्ठ साशोकनिक महत् ।
मुक्ताङ्कयसर्णीणं सुग्रीवाय निवेद्य ॥ ४५ ॥

‘भरत ! मेरा जो अशोकवाकिसे पिरा हुआ मुक्ता एव
यद्वयं मणिमैते जटित विणाल भवन है, वह सुग्रीवरा
ने दो’ ॥ ४५ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा भरतः सत्यविग्रह ।
तप्ते गृहीत्वा सुग्रीव प्रविशेत् तमाल्यम् ॥ ४६ ॥

उसी आशा सुमनस सत्यपराक्रमी भरतन सुग्रीवका हाथ
पकड़कर उस भवनमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

ततस्तैलप्रदीपाश्च पर्यङ्कास्तरणानि च ।
गृहीत्वा त्रिभिर्गुप्तिभ्यः शशुज्जेन प्रचोदितः ॥ ४७ ॥

फिर शशुज्जैकी आशासे अनेमानस सेवन उसमें तिलके
तेजसे जलनेवाले बहुत से दीपन, फल्य और बिजौने लकर
गोत्र ही गये ॥ ४७ ॥

उपाच च महतेजा सुग्रीव गद्यशनुज ।
अभिप्रेतय रामस्य दूतानांहापय प्रभो ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् महतेजस्वी भरतने सुग्रीवत गद्य—प्रभो !
भगवान् श्रीरामने अभिप्रेतके निमित्त जरा लानेके लिय आप
अपन दूतोंका आशा दीबिये ॥ ४८ ॥

स्मरणान् वानरे द्राणां चतुर्णां चतुरो घटान् ।
ददौ क्षिप्रं स सुग्रीव सवरत्नविभूषितान् ॥ ४९ ॥

तब सुग्रीवने उन्ही समय चार अष्ट वानरका सब प्रभारक
रत्नसे विभूषित चार छेनेक घड़े देकर कहा—॥ ४९ ॥

तथा प्रत्यूपसमये चतुर्णां सागराम्भसाम् ।
पूर्वघटैः प्रतीक्षन्त्य तथा क्षुरित वानरा ॥ ५० ॥

‘वानरा ! तुमलगा कर प्रातः काल ही चापें समुद्रोंक
जलसे भरे हुए पड़ोंक साथ उपस्थित रहकर आनन्दक आदेश
की प्रतीक्षा करो’ ॥ ५० ॥

एवमुक्ता महामानो पानरा चारणेपमा ।
उपेतुमगन दीर्घं गरुडा इव दीघगा ॥ ५१ ॥

सुग्रीवक हाथ प्रचार आदेश देनेपर क्षीरका समान
विणालसाय महामनस्वी वानर, जो गरुड़के समान गीझामयी
है, तबका आनन्दक उड़ चला ॥ ५१ ॥

आम्ययाश्च हनुमाश्च वेगदत्ता च वानर ।
भ्रापभक्ष्येन कलशाञ्जलपूर्णायानयन् ॥ ५२ ॥

‘हनुमान् ! हनुमान्, वेगदर्शी (गन्धर्व) और श्रवण—य
गभी वानर चारों समुद्रमें और पाँच गौ त्रिवेणी में छेनेक
सकृत्ने फल्य भर लाये ॥ ५२ ॥

पूशाय समुद्रात् कलदा जल्पूणमथायत् ॥ ५३ ॥
गुणेन मरुत्सगपथ सर्वगाविभूषितम् ।

बिनये पाथ रीछोनी बहुत-सी सुन्दर सेना है वे गति
शाली आम्बवान् सगुणै रत्नसे विभूषित सुगुणमय कलदा
लेन गये और उसमें पुनसमुद्रका जल भरकर ले आये ५३
श्रवणो दक्षिणाक्षर्णं ममुद्राज्जमानयत् ॥ ५४ ॥
रक्षचन्दनकपूरैः सवृत काञ्चन घटम् ।

श्रवण दक्षिण समुद्रसे शीघ्र ही एक सेनेका घड़ा भर
लाये । वह लाल चन्दन और कपूरसे ढका हुआ था ॥ ५४ ॥
गद्यय पश्चिमात् तोयमाजहार महापशत् ॥ ५५ ॥
रत्नकुम्भेन महता शीत मारुतविग्रह ।

वायुच समान वेगवाली गन्धर्व एक रत्ननिर्मित विणाल
कलशक द्वारा पश्चिम दिशाक महासागरसे शीतल जल भर
लाये ॥ ५५ ॥

उत्तराद्य जल शीघ्र गरुडानिलविग्रहः ॥ ५६ ॥
आजहार स धमत्मानिल सर्वगुणान्वित ।

गरुड़ तथा वायुके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले,
धर्मात्मा सर्वगुणसम्पन्न पवनपुत्र हनुमान्की भी उत्तरवर्ती
महासागरसे शीघ्र जल ले आये ॥ ५६ ॥

ततस्तैवानरश्रेष्ठैरानीत प्रेक्ष्य तच्छलम् ॥ ५७ ॥
अभिप्रेतय रामस्य शशुज्जं सविधै सह ॥

पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत् ॥ ५८ ॥
उन श्रेष्ठ वानरोंके द्वारा लाये हुए उस कलको देखकर
मन्त्रियोंसहित शशुज्जने वह सारा जल श्रीरामजीके अभिप्रेतक
लिये पुरोहित पण्डितजी तथा अन्य सुहृदोंको समर्पित कर
दिया ॥ ५७ ५८ ॥

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणै सह ।
राम रत्नमये पीठे ससीत सन्यवेशयत् ॥ ५९ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंसहित गुदचेवा वृद्ध पण्डितजीने छीता
सहित श्रीरामचन्द्रजीको रत्नमयी चौकीपर बैठाया ॥ ५९ ॥
वसिष्ठो धामदेवश्च जागतिरथ कादम्प ।

कल्यायन सुयश्मश्च गौतमो विजयस्तथा ॥ ६० ॥
अभ्यपिञ्जलरथ्याय प्रसन्नेन सुगन्धिना ।

सलिलेन सहधाश्च वसतो घासय यया ॥ ६१ ॥
तत्पश्चात् जैसे आठ वसुओंने देवराज इन्द्रका अभिप्रेत
कराया था, उसी प्रकार पण्डित, धामदेव, जागति, कादम्प,
वायान, सुयश्म, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रियों

संघट्ट एव सुगन्धित जलके द्वारा छीतासहित पुरुषपर
श्रीरामचन्द्रजीका अभिप्रेत कराया ॥ ६० ६१ ॥
श्रुतिभिर्ग्राह्यणैः पूर्व पन्थाभिर्मन्त्रिभिस्तथा ।

योधैर्धैर्याप्यपिञ्जले सम्प्रहृष्टैः स्नेहगमैः ॥ ६२ ॥
सर्पागधिरत्तैश्चापि देवतेनैर्मलितं स्थितम् ।

चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वदेवैश्च समतैः ॥ ६३ ॥
(अत्रिज द्वारा कराया । यह बातें हैं—) पहले पहले

८ हौन समूहक अभिप्रेतक रत्नों तथा पूर्वोक्त रत्नोंके श्रुतिगु

ब्राह्मणोद्धारः, फिर सेलह कन्याओंद्वारा तत्पश्चात् मन्त्रियोंद्वारा अभिषेक कराया । इसने बाद अन्यान्य योद्धाओं और हर्षसे भरे हुए श्रेष्ठ व्यवसायियोंको भी अभिषेकका अन्तर दिया । उस समय आग्राधर्म खड़े हुए, समस्त देवताओं और एकत्र हुए चारों लक्ष्मणोंने भी भगवान् श्रीरामका अभिषेक किया ॥ ६२-६३ ॥

प्रक्षणा निर्मित पूर्ण किरिट रत्नशोभितम् ।
अभिषिक्त पुरा येन मनुस्त दीप्ततेजसम् ॥ ६४ ॥
तस्यान्यथाये राजान क्रमाद् येनाभिषेचिता ।
सभाया हेमकलसाया शोभिताया महाधनै ॥ ६५ ॥
रत्नैर्नानाविधैश्चैव चित्रिताया सुशोभनै ।
नानारत्नमये पीठे कल्पयित्वा यथाविधि ॥ ६६ ॥
किरिटेन तत पद्माद् वसिष्ठेन महारामना ।
श्रुतिविभूषणैश्चैव समयोक्तव्यं राघवा ॥ ६७ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीका बनाया हुआ रत्नशोभित एव दिव्य तेजसे देदीप्यमान किरिट, जिसके द्वारा पहले-पहल मनुजीका और फिर क्रमशः उनके सभी वंशपर राजाओंका अभिषेक हुआ था, मौंति भौतिकसे रत्नोंसे चित्रित, सुवर्णनिर्मित एव महान् वैभवसे शोभायमान समाभवनमें अनेक रत्नोंसे बनी हुई चौकीपर विधिपूर्वक रखी गया । फिर महाराम वसिष्ठजीने अन्य श्रुतिवत् ब्राह्मणोंके साथ उस किरिटसे और अन्यान्य आभूषणोंसे भी श्रीरघुनाथजीको विभूषित किया ॥ ६४-६७ ॥
छत्र तस्य च जग्राह शम्भुः पाण्डुर नुभम् ।
इदं च वाल्म्यजन सुग्रीवो धानरेश्वर ॥ ६८ ॥
अपर चन्द्रसकाश राक्षसेन्द्रो विभीषण ।

उस समय शम्भुजीने उनपर सुन्दर 'वैत' रंगका छत्र लगाया । एक ओर धानरराज सुग्रीवने 'वैत' चैवर हाथमें लिया तो दूसरी ओर राक्षसराज विभीषणने चन्द्रमाके समान चमकील चैवर लेकर हुलाना आरम्भ किया ॥ ६८-७० ॥
माला ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ॥ ६९ ॥
राघवाय ददौ वायुधातयेन प्रचोदित ।
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम् ॥ ७० ॥
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदित ।

उस अवसरपर देवराज इंद्रजी प्रणाले वायुदेवने ली सुवर्णमय कमलोंसे बनी हुई एक दीप्तिमती माला और सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त मणियोंसे विभूषित मुक्ताहार राजा रामचन्द्रजीको भेंट किया ॥ ६९-७० ॥

प्रजयुद्धवर्गया ननुतुदचापसरोजगणा ॥ ७१ ॥
अभिषेके तद्दृश्यं सदा रामस्य धीमत ।

बुद्धिमान् श्रीरामके अभिषेककालमें देवगणपथ गान लगे और अश्वपथ नृत्य करने लगे । भगवान् श्रीराम इस सम्मानक सभा काय्य थे ॥ ७१-७२ ॥
भूमिं सस्ययती धेनू फल्गुस्तद्वच पादपा ॥ ७२ ॥

गधगन्ति च पुष्पाणि चमूना राघवोत्सवे ।
श्रीरघुनाथजीके रथ्याभिषेकेत्सवके समय 'दृक्षी' श्वेतीसे हरी मरी हो गयी, वृक्षोंमें फल आ गये और फूलोंमें सुगंध छा गयी ॥ ७२-७३ ॥

सहस्रशतमश्वाना धेनूना च गगा तथा ॥ ७३ ॥
ददौ शतवृषान् पूर्णं द्विजेभ्यो मनुजगम् ।
निशत्कोटीहिरण्यस्य ग्राहणेभ्यो ददौ पुन ॥ ७४ ॥
नानाभरणरत्नाणि महाहाणि च राघव ।

महापुत्र श्रीरामने उस समय पहले ब्राह्मणोंको एक लाख घोड़े उतनी ही वृष देनेवाली गौएँ तथा सौ सौ हजार दान दिये । यही नहीं, श्रीरघुनाथजीने तीस करोड़ अर्घ्यसौ तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र भी ब्राह्मणोंको दिये ॥ ७३-७४ ॥

अर्करश्मिप्रतीकाशा काञ्चनीं मणिचन्द्राम् ॥ ७५ ॥
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिप ।

तत्पश्चात् राजा श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीवको सोनेरी एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रही थी । उसमें बहुत-सी मणियोंका सयोग था ॥ ७५-७६ ॥
वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते ॥ ७६ ॥
वाल्लिपुत्राय धृतिमान्द्रुदायाह्ने ददौ ।

इसने बाद धैर्यशाली श्रीरघुवीरने प्रसन्न हो वाल्लिपुत्र अन्नदक्षो दो अन्नद (बाणसुन्द) भेंट किये, जो नीलमते अन्ति हानेके कारण विचित्र दिखायी देते थे । वे चन्द्रमाकी किरणोंसे विभूषित से जान पड़ते थे ॥ ७६-७७ ॥

मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम् ॥ ७७ ॥
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ।

अरजे याससी दिव्ये नुभात्याभरणानि च ॥ ७८ ॥

उत्तम मणियोंसे युक्त उस परम उत्तम मुक्ताहारको (जिसे वायुदेवताने भेंट किया था तथा) जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशित होता था श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीक गलेमें डाल दिया । साथ ही उन्हें कमी मेल न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र तथा और भी बहुतसे सुन्दर आभूषण अर्पित किये ॥ ७७-७८ ॥

अनेकमाणा वैदेही प्रददौ वायुसुजने ।
अमुच्यात्मन कण्ठाद्वारं जनकनन्दिनी ॥ ७९ ॥
अवैश्वत हरीन् सचान् भवतारं च मुद्रमुद्र ।

विदेहनन्दिनी सीताने पतिकी ओर देखकर वायुपुत्र हनुमान्को कुछ भेंट देनेका विचार किया । ये जनकनन्दिनी अपने गलेसे उस मुक्ताहारको निहालकर बारबार समस्त कानों तथा पतिकी ओर देखने लगी ॥ ७९-८० ॥

तामिहित्तं सम्प्रेक्ष्य यभापे जनकमजाम् ॥ ८० ॥
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुणासि भामिनि ।

उनकी उस चेष्टा पर समस्तार श्रीरामचन्द्रजीने बनदीरी

की आर देतकर कहा—‘श्रीभाग्यशालिनि ! भामिनि ! तुम
 शिरपर चतुष्ट हो; उसे यह हार दे दो’ ॥ ८०३ ॥
 अथ सा वायुपुत्राय त हारमसितेक्षणाय ॥ ८१ ॥
 तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्य सामर्थ्यं त्रिनयो नयः ।
 पीरुष विप्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥ ८२ ॥
 तब कजरारे नेत्रोंवाली माता सीताने वायुपुत्र हनुमान्को;
 जिनमें तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, त्रिनय, नीति,
 पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि—ये सद्गुण सदा
 विद्यमान रहते हैं; यह हार दे दिया ॥ ८१-८२ ॥
 हनुमास्तेन हारेण शुशुभे वानररर्षभ ।
 चन्द्रानुचयगौरैरेण द्येताभ्येण यथाचलः ॥ ८३ ॥
 उस हारसे कर्मभेद हनुमान् उषी तरह शोभा पाने लगे,
 जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके समूह-समूह चेत बादलोंकी मालसे
 कोई परंत सुशोभित हो रहा हो ॥ ८३ ॥
 सर्वे वानरबुद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमा ।
 वातोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिता ॥ ८४ ॥
 इसी प्रकार जो प्रधान प्रधान एवं भेद वानर थे, उन
 सबका बच्चों और आभूषणोंद्वारा यथायोग्य उत्कार किया
 गया ॥ ८४ ॥
 विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनुमाञ्जाम्बवास्तथा ।
 सर्वे वानरमुत्थाश्च रामेणाह्निष्टकर्मणा ॥ ८५ ॥
 यथार्हं पूजिता सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलेः ।
 प्रहृष्टमनस सर्वे जम्बुद्वेय यथागतम् ॥ ८६ ॥
 अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भीरामने विभीषण,
 सुग्रीव, हनुमान् तथा जाम्बवान् आदि सभी भेद वानरवीरों
 का मनोवाञ्छित वस्तुओं एवं प्रचुर रत्नोंद्वारा यथायोग्य
 उत्कार किया । वे सब-के सब प्रसन्नचित्त होकर बैठे आये थे,
 उषी तरह अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥ ८५-८६ ॥
 ततो द्विविदमेन्द्राभ्या नीलाय च परत्प ।
 सवान् कामगुणान् वीक्ष्य प्रद्वी वसुधाधिपः ॥ ८७ ॥
 तत्पश्चात् शत्रुओंको सताप देनेवाले राजा श्रीरघुनाथजीने
 द्विविद, मैद और नीलजी और देवकत उन सबको
 मनोराञ्छापूर्वक गुणोंसे सुख सब प्रकारके उत्तम रत्न आदि
 भेंट करि ॥ ८७ ॥
 दृष्ट्वा सर्वे महात्मानस्ततस्ते धानरर्षभा ।
 विद्युष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धा समुपागमन् ॥ ८८ ॥
 इस प्रकार मगरान् श्रीरामका राधाभिषेक देखकर सभी
 महात्मानसी भेद वानर महाराज भीरामसे विदा ल किष्किन्धाको
 चले गये ॥ ८८ ॥
 सुग्रीवो धानरक्षेत्रो दृष्ट्वा रामाभिषेकनम् ।
 पूजितक्षेत्र रामेण किष्किन्धा प्राविशत् पुरीम् ॥ ८९ ॥
 धानरभेद सुग्रीवने भी भीरामके राधाभिषेकका उत्सव
 देखकर उनसे पुजित हो किष्किन्धापुरीमें प्रवेश किया ॥ ८९ ॥

विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैर्ऋतयैः ।
 लब्ध्वा कुलधनं राजा लब्ध्वा प्रायामहायशः ॥ ९० ॥
 महायशस्वी धर्मात्मा विभीषण भी अपने कुलका वैभव-
 अपना राय पाकर अपने साथी भेद निशाचरोंके साथ लब्ध
 पुरीको चले गये ॥ ९० ॥
 स राज्यमखिल शासन्निहतारिमहायशः ।
 राघव परमोदार शशास परया मुदा ।
 उवाच लक्ष्मण रामो धर्मज्ञं धमवत्सल ॥ ९१ ॥
 अपने शत्रुओंका वध करके परम उदार महायशस्वी
 श्रीरघुनाथजी बड़े आनन्दसे समस्त रायका शासन करने लगे ।
 उन धर्मवत्सल श्रीरामने धर्मज्ञ लक्ष्मणसे कहा— ॥ ९१ ॥
 आसिष्ठ धर्मज्ञ मया सहमा
 गा पूर्वराजाध्युषिता वलेन ।
 तुल्य मया त्व पितृभिर्भूता था
 ता यौवराज्ये धुरमुहहस्य ॥ ९२ ॥
 ‘धर्मज्ञ लक्ष्मण ! पूर्ववर्ती राजाओंने चतुरङ्गिणी सेनाके
 साथ जिसका पालन किया था; उषी इस भूमण्डलके राज्यपर
 तुम मेरे साथ प्रतिष्ठित होओ । अपने पिता, पितामह और
 प्रपितामहोंने जिस राज्यभारको पहले धारण किया था; उषीसे
 मेरे ही समान तुम भी सुवरान-पदपर स्थित होकर धारण
 करो’ ॥ ९२ ॥
 सर्वोत्तमा पर्यनुनीयमानो
 यदा न सौमित्रिकपैति योगम् ।
 नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये
 ततोऽभ्यविष्टद् भरत महात्मा ॥ ९३ ॥
 परद्व भीरामचन्द्रजीके सब तरहसे समझाने और नियुक्त
 किय जानेपर भी जब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस पदको नहीं
 स्वीकार किया; तब महारामा भीरामने भरतको सुवरान-पदपर
 अभिविष्ट किया ॥ ९३ ॥
 पौण्डरीकाभ्यमेधाभ्या वाजपेयेन चासहृद् ।
 अन्यैश्च त्रिविधैषहैरयजत् पार्थिवात्मज ॥ ९४ ॥
 राजकुमार महाराज भीरामने अनेक बार पौण्डरीक
 अश्वमेध, वाजपेय तथा अन्य नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान
 किया ॥ ९४ ॥
 राज्यं दक्षसहस्राणि प्राप्य वषाणि राघव ।
 शताभ्यमेधानाजहे सद्भ्यान् भूरिदक्षिणान् ॥ ९५ ॥
 श्रीरघुनाथजीने राय पाकर सार्वभौम सत्त्वयुक्त उत्तरा
 पालन और सो अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया । उन यज्ञोंमें
 उत्तम अश्व छोड़े गये थे तथा दक्षिणोंको बहुत अधिक
 दक्षिणायें बँटी गयी थी ॥ ९५ ॥

१ मन्त्र दक्षसहस्राणि दक्षसहस्राणि च’ इति
 महा १, उत्तर १६ वाक्यद्वारे निवेदितं दक्षरे शारदा वाक्य
 समझना चाहिये ।

आनानुलम्बित्वाह स महानक्षा प्रतापवान् ।

लक्ष्मणानुचरो राम शशास पृथिवीमिमाम् ॥९६॥

उनकी मुजार्हें घुनों तक लगी थीं । उनका वध खल विद्रोह एव विस्तृत था । वे चढ़े प्रतापी नरेश थे । लक्ष्मणको साथ लेकर श्रीरामने इस पृथ्वीका शासन किया ॥ ९६ ॥

राघवदत्तापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।

इजे यशुविधैर्यै ससुहृद्भातिगन्धर्व ॥९७॥

अयोध्याके परम उत्तम राज्यको पाकर घमात्मा श्रीरामने सुहृदों, कुटुम्बीजनों तथा भार्य-बन्धुओंके साथ अनेक प्रकारके यश किये ॥ ९७ ॥

न पर्यवेचन् निधना न च ग्यालकृत भयम् ।

न ध्यायिन् भय वासीद् रामे राज्य प्रशासति ॥९८॥

श्रीरामके राज्य शासनकालमें कभी विषबाओंका विषाघ नहीं सुनायी पड़ता था । सर्व आदि दुष्ट बन्धुओंका भय नहीं था और रोगोंकी भी आशाह्ता नहीं थी ॥ ९८ ॥

निर्द्वन्द्वरुभवलोको नानर्थं कश्चिद्वत्पृथक् ।

न च स्म दृष्ट्वा दालानां प्रेतकायानि कुर्वते ॥९९॥

समूह जगत्में कहीं चोपों या छुरोंका नाम भी नहीं सुना जाता था । कोई भी मनुष्य अनपकारी कार्योंमें हाथ नहीं डालता था और बूढ़ोंको बालकोंके अन्वेषि-सत्कार नहीं करने पड़ते थे ॥ ९९ ॥

सर्वे मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।

राममेवानुपश्यन्तो नान्यर्हिंसन् परस्परम् ॥१००॥

सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे । सभी धर्मपरायण थे और श्रीरामपर ही बारबार दृष्टि रखते हुए वे कभी एक दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाते थे ॥ १०० ॥

आसन् धर्मसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिण ।

निरामया त्रिशोऽनङ्ग रामे राज्य प्रशासति ॥१०१॥

श्रीरामके राज्य शासन करते समय लग सन्नों बर्षोंतक जीवित रहते थे; सहस्रों पुत्रोंन जनक होते थे और उन्हें किसी प्रकारका रोग या शोक नहीं होता था ॥ १०१ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभजन् कथा ।

रामभूत जगद्भूद् रामे राज्य प्रशासति ॥१०२॥

श्रीरामके राज्यशासनकालमें प्रशङ्गमक भीतर पञ्चल राम, राम, रामरी ही चर्चा होती थी । साथ जगत् श्रीराममय हो रहा था ॥ १०२ ॥

नित्यमृता नित्यफलास्तरयस्तथ पुष्पिता ।

धामरगी च पञ्चन्य सुखस्पर्शश्च मारुत ॥१०३॥

श्रीरामने राज्यमें हर्षोत्थि वनों तथा मञ्जूर रहती थी । वे वृक्ष तथा फूलों और फलोंमें लड़े रहते थे । मधु प्रवाही इच्छा और आनन्ददायक अनुहार ही बरषा करते थे । वायु मन्द गतिमें चलती थी जिससे उसका स्पर्श सुखजनक पड़ता था ॥ १०३ ॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैद्या क्षात्रा लोभविचर्जिता ।

स्वकामसु प्रवर्तन्ते तुषा स्वैरेव कर्मभिः ॥१०४॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षूद्र चारों वर्णोंके लोग लोभरहित होते थे । सबको अपने ही वर्णाश्रमोचित कर्मोंमें सताया था और सभी उन्हींके पालनमें लगे रहते थे ॥ १०४ ॥

आसन् प्रजा धमपरा रामे शासति नानृता ।

सर्वे लक्षणसम्पन्ना सर्वे धमपरायणा ॥१०५॥

श्रीरामके शासनकालमें सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहती थी । झूठ नहीं बोलती थी । सब लोग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे और सबने धर्मका आश्रय ले रक्खा था ॥ १०५ ॥

दशधर्मसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।

आवृत्तिं संहित श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥१०६॥

माइसौसहित श्रीमान् रामने ग्यारह हजार बर्षोंतक राज्य किया था ॥ १०६ ॥

धर्म्यं यशस्यमायुष्य राजा च विजयावहम् ।

आदिकाव्यमिदं सर्पे पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥१०७॥

यह ऋषिप्रोक्त आदिकाव्य रामायण है, जिने पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने बनाया था । यह धर्म, यश तथा आयुकी वृद्धि करनेवाला एव राजाओंको रिजब देनेवाला है ॥ १०७ ॥

य ऋणोति सदा लोके नर पापात् प्रमुच्यते ।

पुत्रकामश्च पुत्रान् वै धनकामो धनानि च ॥१०८॥

लभते मनुजो लोके धृत्या रामाभिप्रेतनम् ।

महीं विजयते राजा रिपूश्चाप्यधितिष्ठति ॥१०९॥
सबसे जो मानव सदा इसका अंगण करता है; वह पापसे मुक्त हो जाता है । श्रीरामचन्द्रायामिपेक्षक प्रसन्नो सुनकर मनुष्य इस बातमें यदि पुत्ररा इच्छुन हो तो पुत्र और धनका अभिलाषी हो ता धन पाना है । राजा इस वाक्य का भवण करनेसे पृथ्वीपर विजय पाता और शत्रुओंको अपने अधीन कर लाता है ॥ १०८ १०९ ॥

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ।

भरतेन च कैकेयी जीमपुत्रास्तथा स्त्रिय ॥११०॥

भरिष्यन्ति सदानन्दा पुत्रपौत्रमम्यिता ।

जैसे माता कैकेयी श्रीरामरा; सुमित्रा लक्ष्मणरा और कैकेयी भवलो पाकर जीवित पुत्रोंकी माता बन्ती; उन्ही प्रकार सहायकी दूमी स्त्रियों को इस आदिकाव्यन पात्र और अवगमने जीवित पुत्रोंकी जननी; तथा आनन्दमय तथा पुत्र पौत्रोंन सम्पन्न होगी ॥ ११० ॥

धृत्या रामायणमिदं दीनमायुदय विदति ॥१११॥

रामस्य विनय योग्य मन्त्रिप्रथम ।

बन्धुरहित कर्म करनेवाला श्रीरामकी विद्वत् कर्मण्य इस सम्पूर्ण रामायण-वाक्यका सुनकर मन्त्र पदार्थ-वत्तन गिर रहनेवाले आयु पाना है ॥ १११ ॥

— — — ऋणोति य इदं वाक्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥११२॥

की ओर देखकर कहा—‘सौभाग्यशालिनि ! भूमिनि ! तुम जिसपर संतुष्ट हो, उसे यह द्वार दे दो’ ॥ ८० ॥

अथ सा वायुपुत्राय त द्वारमस्ति ते क्षणा ॥ ८१ ॥
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्य सामर्थ्यं विनयो नय ।

पौर्य विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥ ८२ ॥

तब कजरारे नेत्रोंवाली माता सीताने वायुपुत्र हनुमान्‌को, जिनमें तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि—ये सदगुण सदा विद्यमान रहते हैं, वह द्वार दे दिया ॥ ८१ ८२ ॥

हनुमास्तेन हारेण शुभे वानरर्षभः ।
चन्द्रानुचयगौरौण ह्वेताभ्रेण यथाचल ॥ ८३ ॥

उस हारसे बपिभेष्ट हनुमान् उसी तरह शोभा पाने लगे, जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके समूह-सदृश ह्वेत बादलोंकी मालसे कोई पतल घुबोमित हो रहा हो ॥ ८३ ॥

सर्वे वानरवृक्षादश्च ये चान्ये वानरोत्तमा ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथाहं प्रतिपूजिता ॥ ८४ ॥

इसी प्रकार जो प्रधान प्रधान एवं भेष्ट वानर थे, उन सबका बर्ण और आभूषणोंद्वारा यथायोग्य ऊत्कार किया गया ॥ ८४ ॥

विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनुमाञ्जाम्बवास्तथा ।
सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाह्निष्कर्मणा ॥ ८५ ॥

यथाहं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कले ।
ग्रहप्रमनस सर्वे जम्बूरेव यथागतम् ॥ ८६ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भीरामने विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् तथा जाम्बवान् आदि सभी भेष्ट वानरवीरों का मनावाम्भित वस्तुओं एवं प्रचुर रत्नोंद्वारा यथायोग्य सज्जकार किया । ये सब वे सब प्रसन्नचित्त होकर जैसे आये थे, उसी तरह अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥ ८५-८६ ॥

ततो द्विविदमैन्द्राभ्या नीलाय च परतप ।
सवान् कामगुणान् दीक्ष्य प्रदौ वस्तुधाधिप ॥ ८७ ॥

तत्सम्पन्नं द्युवर्जं सताप देनेवाले राजा भीरुनाथजीने द्विविद, मैद और नीलमी ओर देखकर उन सबको मनोमोहनापूरक गुणोंसे सुख सब प्रकारक उत्तम रत्न आदि भेंट किये ॥ ८७ ॥

दृष्ट्वा सर्वे महामानस्ततस्ते वानरपभा ।
विष्ट्वा पार्थिवेन्द्रेण किष्किंधा समुपागमन् ॥ ८८ ॥

इय प्रकार भगवान् भीरामका राज्याभिषेक देखकर सभी महामनवी भेष्ट वानर महाराज भीरामसे विदा ल किष्किन्धाको चले गये ॥ ८८ ॥

सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेकतम् ।
पूजितश्चैव रामेण किष्किंधा प्राविशत् पुरीम् ॥ ८९ ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने भी भीरामके राज्याभिषेकका उत्सव देखकर उनगे पुत्रि ह किष्किन्धापुरीमें प्रवेश किया ॥ ८९ ॥

विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तेनैर्भृत्यैः ।

रथ्या कुलधनं राजा लब्ध्वा प्रायामहायश ॥ ९० ॥

महायशस्वी धर्मात्मा विभीषण भी अपने कुलका वैभव-अपना राय पाकर अपने साथी श्रेष्ठ निशाचरोंके साथ लब्ध पुरीको चले गये ॥ ९० ॥

स राज्यमखिल शासन्नित्वाहिमहायश ।

राघव परमोदारः शशास परया मुदा ।

उवाच लक्ष्मण रामो धर्मज्ञ धर्मवत्सल ॥ ९१ ॥

अपने शत्रुओंका सब करके परम उदार महामशहवी भीरुनाथजी बड़े आनन्दसे समस्त राज्यका शासन करने लगे । उन धर्मवत्सल भीरामने धर्मज्ञ लक्ष्मणसे कहा— ॥ ९१ ॥

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहमा

गा पूर्वराजाध्युषिता दलेन ।

सुख्य मया त्व पितृभिर्भुता या

ता यौवराज्ये धुरमुद्रहस्त ॥ ९२ ॥

‘धर्मज्ञ लक्ष्मण ! पूर्ववर्ती राजाओंने चतुर्द्विणी सेनाके साथ जिसका पालन किया था, उसी इस भूमण्डलके राज्यपर तुम मेरे साथ प्रतिष्ठित होओ । अपने पिता, पितामह और प्रपितामहोंने जिस राज्यभारको पहले धारण किया था, उन्हींके मेरे ही समान तुम भी युवराज-पदपर स्थित होकर धारण करो’ ॥ ९२ ॥

सर्वोत्तमा पर्यनुनीयमानो
यदा न सौमित्रिहपैति योगम् ।

नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये

ततोऽभ्यपिञ्चद् भरत महात्मा ॥ ९३ ॥

परन्तु भीरामचन्द्रजीके सब तरहसे समझाने और नियुक्त किय जानेपर भी जब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस पदको नहीं स्वीकार किया, तब महात्मा भीरामने भरतको युवराज-पदपर अभिषिक्त किया ॥ ९३ ॥

पौण्डरीकाक्षमेधाभ्या वाजपेयेन चासहृत् ।

अन्येऽपि विविधैर्यज्ञैरयजत् पाधिचामज ॥ ९४ ॥

राजकुमार महाराज भीरामने अनेक बार पौण्डरीकाक्षमेध, वाजपेय तथा अन्य नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ ९४ ॥

राज्यं वृक्षसहस्राणि प्राप्य पयाणि राघव ।

शताश्वमेधानाजह्ने सद्भ्यान् भूरिदम्पिणान् ॥ ९५ ॥

भीरुनाथजीने राज्य पाकर स्यारह सहस्र वगैरक उष्ट्रा पालन और सौ अन्येय वगैरक अनुष्ठान किया । उन यज्ञोंमें उत्तम अश्व छोड़े गये थे तथा श्रुतिजोके बहुत अधिक दक्षिणार्धें बाँटी गयी थीं ॥ ९५ ॥

१ अन्यत्र दत्तवर्तनरात्रि दत्तवर्तनरात्रि न रात्रा
गया है उनसे एक रात्रिवाके जिये वहाँ दत्तवे स्यारह सहस्र
समझना चाहिये ।

भाजानुलम्बियाहु स महावशा प्रतापवान् ।
 लक्ष्मणानुचरो राम शशास पृथिवीमिमाम् ॥ ९६ ॥
 उनकी मुजाई धुनों तक लंबी थी । उनका वश सब
 विशाल एवं विस्तृत था । वे सब प्रतापी नरेश थे । लक्ष्मणको
 साथ लेकर श्रीरामने इस पृथ्वीका शासन किया ॥ ९६ ॥
 राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
 इजे बहुविधैर्यही ससुहृज्जातिधाधर ॥ ९७ ॥
 अयोध्याके परम उत्तम राज्यको पाकर धर्मात्मा श्रीरामने
 सुहृदों, कुटुम्बीयों तथा भाई-बहूओंके साथ अनेक प्रकारके
 सब किये ॥ ९७ ॥
 न पर्यवेचन् विधवा न च व्यालकृत भयम् ।
 न व्याधिज भय चासीद् रामे राज्य प्रशासति ॥ ९८ ॥
 श्रीरामने राज्य शासनकालमें कभी विधवाओंका विषय
 नहीं सुनायी पड़ता था । सर्प आदि दुष्ट जन्तुओंका भय नहीं
 था और रोगोंकी भी आशङ्का नहीं थी ॥ ९८ ॥
 निर्द्व्युरभयहोके नानर्ये ब्रह्मिदस्पृशत् ।
 न च स वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ९९ ॥
 सगुण जगत्में कहीं कोई या छत्रपोंका नाम भी नहीं
 सुना जाता था । कोई भी मनुष्य अनयकारी कार्योंमें हाथ नहीं
 डालता था और बूढ़ोंको बालकोंके अत्येष्टि-संस्कार नहीं
 करने पड़ते थे ॥ ९९ ॥
 सर्वे मुदितमेवासीत् सर्वे धर्मपरोऽभवत् ।
 राममेवानुपदयन्तो नान्यर्हिसन् परस्परम् ॥ १०० ॥
 सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे । सभी धर्मपरायण थे
 और श्रीरामपर ही बारबार इष्टि रखते हुए वे कभी एक
 दूसरेको कुछ नहीं पहुँचाते थे ॥ १०० ॥
 आसन् वपसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिण ।
 निरामया विशोकाश्च रामे राज्य प्रशासति ॥ १०१ ॥
 श्रीरामने राज्य शासन करते समय लोग सन्तों वगैरों
 कीवित रहते थे; सहस्रों पुत्रों जनक होते थे और उन्हें
 किसी प्रकारका रोग या शोक नहीं होता था ॥ १०१ ॥
 रामो रामो राम इति प्रजानामभजन् कथा ।
 रामभूत जगद्भूद् रामे राज्य प्रशासति ॥ १०२ ॥
 श्रीरामने राज्यशासनकालमें प्रजापणके भीतर वैषल राम,
 राम, रामरी ही चर्चा होती थी । साथ जगत् श्रीराममय
 हो रहा था ॥ १०२ ॥
 नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तथ पुष्टिता ।
 कामर्यां च पत्न्य सुखस्पर्शश्च मादत् ॥ १०३ ॥
 श्रीरामने राममें दृष्टीकी अङ्गुली सग्न ब्रह्मण रहती थी ।
 वे बृष्ट सग्न पुत्रों और पत्नीके लक्ष रहते थे । मध प्रजाकी
 इच्छा और आनन्दनाश अनुसार ही क्या करते थे । बायु
 मन्द गतिसे चलती थी, जिससे उसका स्पर्श सुन्दर जान
 पड़ता था ॥ १०३ ॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैद्या दृष्टा लोभयिजिता ।
 स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टा स्वैरेव कर्मभिः ॥ १०४ ॥
 ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दृष्ट चारों वर्गोंके लोग
 लोभरहित होते थे । सबको अपने ही वर्णाभिनोचित कर्मोंसे
 सतोष था और सभी उर्द्वीके पालनमें लगे रहते थे ॥ १०४ ॥
 आसन् प्रजा धमपरा रामे शासति नानृता ।
 सर्वे लक्षणसम्पन्ना सर्वे धमपरायणा ॥ १०५ ॥
 श्रीरामके शासनकालमें सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहती
 थी । छल नहीं बोलती थी । सब लोग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न
 थे और सबने धर्मका आश्रय ले रक्खा था ॥ १०५ ॥
 दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
 आलुभि सहित भीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥ १०६ ॥
 माहर्षीसहित भीमान् रामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य
 किया था ॥ १०६ ॥
 धर्म्ये यशस्यमायुष्य राज्ञा च विजयावहम् ।
 आदिका यमिद् चार्य पुरा बाल्मीकिना कृतम् ॥ १०७ ॥
 यह ऋषिप्रोक्त आदिकाव्य रामायण है, जिसे पूर्वकालमें
 माहर्षि बाल्मीकिने बनाया था । यह धर्म, यश तथा आयुकी
 वृद्धि करनेवाला एक राजाओंको विजय देनेवाला है ॥ १०७ ॥
 य ऋणोति सदा लोके नर पापात् प्रमुच्यते ।
 पुत्रकामश्च पुत्रान् वै धनकामो धनानि च ॥ १०८ ॥
 लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिप्रेचनम् ।
 महर्षि विजयते राजा रिपुद्वेष्यधितिष्ठति ॥ १०९ ॥
 सधामें जो मानव सग्न इसका भ्रमण करता है, वह
 पापसे मुक्त हो जाता है । श्रीरामके समाधिपरिक्रम प्रसंगमें
 सुनकर मनुष्य इस जगत्में यदि पुत्रकाम इच्छुक हो तो पुत्र
 और धनका अभिलाषी हो तां धन पाता है । राजा इस काव्य
 का भ्रमण करनेसे पृथ्वीपर विजय पाता और 'गुणों'को अपने
 अधीन कर लेता है ॥ १०८ १०९ ॥
 राघवेण यथा माता मुमित्रा लक्ष्मणेन च ।
 भरतेन च कैशेयी जीमपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥ ११० ॥
 भरिष्यन्ति सदानन्दा पुत्रपौत्रसमन्विता ।
 वैने माता वीरस्य भीरामको, मुमित्रा लक्ष्मणकी और
 कैशेयी भरतको पात्र जीवित पुत्रोंकी माता बालाओं, उड़ी
 प्रभार सधारी दूसरी स्त्रियों भी इस आदि-काव्यने पात्र और
 भवगते जीवित पुत्रोंकी जननी, सग्न आनन्दमय तथा पुत्र
 पौत्रोंसे सम्पन्न होंगी ॥ ११० ॥
 श्रुत्वा रामायणमिदं दीरमायुदय त्रिदत्त ॥ १११ ॥
 रामस्य विनय चेत्त स्रमत्रिष्टकमण ।
 बन्धरहित कर्म करनेवाला श्रीरामकी विजय काव्य
 इस सग्न रामायण-काव्यका सुनकर मनुष्य दारुकाव्यतक
 स्थिर रहनेवाला आयु पाता है ॥ १११ ॥
 ऋणोति य इदं काव्यं पुरा बाल्मीकिना कृतम् ॥ ११२ ॥

अध्वानो जितकोधो दुर्गाण्यतितन्त्यसौ ।

पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने जिसकी रचना की थी, पड़ी यह आदिकाव्य है । जो क्रोधको जीतकर अद्वापूर्व होने सुनता है, वह बड़े-बड़े शक्तियों पर हो जाता है ॥ ११२३ ॥ समागम्य प्रयासान्ते रमते सह याधवै ॥ ११२३ ॥

शृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।

ते प्रार्थितान् परान् सवान् प्राप्नुवन्तीह राघवात् ॥ ११२४ ॥

जो लोग पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस काव्यको सुनते हैं, वे परदेशसे लौटकर अपने भाई-प्राप्तियोंके साथ मिलने और आनन्दका अनुभव करते हैं । वे इस कालमें भीरुनायकीसे समस्त मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ११२३ ११४ ॥

अवगणे क्षुगा सर्वे प्रीयते सम्प्रशृण्वताम् ।

रिनायकाश्च शतम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यस्य वै ॥ ११२५ ॥

इसके अवगणसे समस्त देवता श्रोताओंपर प्रसन्न होते हैं तथा जिन्हें घरमें विष्णुकारी ग्रह होते हैं, उसके वे सारे ग्रह शान्त हो जाते हैं ॥ ११२५ ॥

रिजयेत महीं राजा प्रयासी स्वस्तिमान् भवेत् ।

क्षियो रजस्वला ध्रुवा पुत्रान् सुखरुचुत्तमान् ॥ ११२६ ॥

राजा इसके अवगणसे भूमण्डलपर विजय पाता है । परदेशमें निवास करनेवाला पुरुष सुकुशल रहता और रजस्वला क्षियों (स्नानके अनन्तर छोड़ दिनोंके भीतर) इसे सुनकर भेष्ट पुत्रोंका कर्म देती है ॥ ११२६ ॥

पूजयन्त्य पठन्त्येनमितिहासं पुरातनम् ।

नवपापै प्रमुच्येत दीधमायुरवाप्नुयात् ॥ ११२७ ॥

जो इस प्राचीन इतिहासका पूजन और पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और बड़ी आयु पाता है ॥ ११२७ ॥ प्रणम्य शिरसा नित्य श्रोतव्यं क्षत्रियैर्दिजात् ।

पेरवयं पुत्रलाभश्च भविष्यति न सदाय ॥ ११२८ ॥

क्षत्रियोंको चादिदे कि वे प्रतिदिन मन्त्रक शुककर प्रणाम करन श्रावणक सुनते इस प्रणमका भवण करें । इसमें उन्हें पश्चय और पुत्रकी प्राप्ति होगी, इसमें सदाय नहीं है ॥ ११२८ ॥ रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वत पठत सदा ।

प्रीयन् सन्तन राम स हि विष्णु सनातनः ॥ ११२९ ॥

जो जिस इत सम्पूर्ण रामायणका भवण एवं पाठ करता है, उगरे सनातन विष्णुस्वरूप भगवान् भीराम सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ११२९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुदशरथः शत्रुघ्नः विजयः सनातनः राम ॥ १२८ ॥

एव प्रकार धारुतनकेनेकेन आगमभण अकिन्धक सुदशरथे पर मा अर्द्धाध्याय मग पूरा हुआ ॥ १२८ ॥

आदिदेको महाबाहुर्हरिर्नारायण प्रभुः ।

साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठ शेषो लक्ष्मण उच्यते ॥ १२० ॥

साक्षात् आदिदेव महाबाहु पापघारी प्रभु नारायण ही रघुकुलत्पिण्ण भीराम हैं तथा भगवान् शेष ही लक्ष्मण कहलते हैं ॥ १२० ॥

ण्वमेतत् पुणवृत्तमाभ्यासं भद्रमस्तु यः ।

प्रव्याहृतं निरुद्धं बलं विष्णोः प्रपद्यताम् ॥ १२१ ॥

(खबकुस कहते हैं-) श्रोताओं ! आपलोगोंका कल्याण हो । यह पूर्वपरित आस्थान ही इस प्रकार रामायण-काव्यके रूपमें वर्णित हुआ है । आपलोग पूर्ण विश्वासके साथ इसका पाठ करें । इससे आपके वैष्णव बलकी वृद्धि होगी ॥ १२१ ॥

देवाश्च सर्वे तृप्यन्ति प्रहणाकृन्तनात् तथा ।

रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरः सदा ॥ १२२ ॥

रामायणको हृदयमें धारण करने और सुननेसे सब देवता सन्तुष्ट होते हैं । इसके अवगणसे पितरोंको भी सदा वृत्ति मिलती है ॥ १२२ ॥

भवत्या रामस्य ये चेमा सहितामृषिणा कृताम् ।

ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिषुपे ॥ १२३ ॥

जो लोग भीरामचन्द्रजीमें मन्त्रिमाव रत्नकर महर्षि वाल्मीकिनिर्मित इस रामायण संहिताको लिखते हैं, उनका स्वर्गमें निवास होता है ॥ १२३ ॥

कुटुम्बवृद्धिं धनधाव्यवृद्धिं

क्षियश्च मुल्या सुखमुत्तम च ।

ध्रुवा शुभ काव्यमिदं महार्यं

प्रान्नाति सर्वा मुनि चार्थनिष्ठिम् ॥ १२४ ॥

इस गुप्त और गम्भीर अर्थसे युक्त काव्यसे सुनकर मनुष्यके कुटुम्ब और धन धान्यरी वृद्धि होती है । उसे भेष्ट शुणवाली सुन्दरी स्त्रियों मुलभ होती हैं तथा इस भूतलपर वह अपने सारे मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है ॥ १२४ ॥

आयुष्यमारोग्यकर यदास्य

सौधातृष सुदिकर गुप्त च ।

श्रोतव्यमेतन्निष्यमेन सङ्घि

वाच्यमानोजस्वरमुद्विधम् ॥ १२५ ॥

यह काव्य आयु, आरोग्य यष्ट तथा आरोग्यको बढ़ाने वाला है । यह उत्तम वृद्धि प्रदान करनेवाला और मङ्गलकारी है जो सङ्घट्टिणी इच्छा रगनेवाला लघुगुणोंका इस ठसताई बर्दक इतिहासका नियमयुक्त भवण करना चाहिये ॥ १२५ ॥



भगवान् विष्णुके द्वारा मालीका वध

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

उत्तरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः.

श्रीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन, उनके साथ उनकी बातचीत तथा श्रीरामके प्रश्न

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे हृते ।

आजमुमुनय सर्वे राघव प्रतिनन्दितुम् ॥ १ ॥

राक्षसोंका संहार करनेके अनन्तर जब भगवान् श्रीरामने अपना राय प्राप्त कर लिया, तब सम्पूर्ण ऋषि-महर्षि श्रीरुनायजीका अभिनन्दन करनेके लिये अयोध्यापुरीमें आये ॥ कौशिकोऽप्य यक्षप्रीतो गार्ग्यो गाल्य एव च ।

कण्वो मेधातिथे पुत्र पुनस्त्या दिशि ये धिता ॥ २ ॥

जो मुख्यतः पूर्व दिशामें निवास करते हैं, वे कौशिक, यक्षप्रीत, गार्ग्य, गाल्य और मेधातिथिके पुत्र कण्व वहाँ पधारे ॥ २ ॥

स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान् नमुचि प्रमुचिस्तथा ।

भगस्त्योऽपिश्च भगवान् सुमुखो विमुचस्तथा ॥ ३ ॥

आजमुस्ते सहागस्त्या ये धिता दक्षिणा दिशम् ।

स्वस्त्यात्रेय, भगवान् नमुचि, प्रमुचि, भगस्त्य, भगवान् अत्रि, सुमुख और विमुच—ये दक्षिण दिशामें रहनेवाले महर्षि भगस्त्यजीके साथ वहाँ आये ॥ ३ ॥

नृप कथपो धौम्य कौशेयश्च महानृपि ॥ ४ ॥

तेऽप्याजमु सशिष्या वै ये धिता पश्चिमा दिशम् ।

जो प्रायः पश्चिम दिशामें आश्रय लेकर रहते हैं, वे नृप, कथपो, धौम्य और महर्षि कौशेय भी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये ॥ ४ ॥

धत्तिष्ठः कदपपोऽथात्रिर्विभ्यामित्र सखीतम ॥ ५ ॥

जमदग्निर्मरुताजस्तेऽपि सत्तरयस्तथा ।

उदीच्या दिशि ससैते नित्यमेव निवासिन ॥ ६ ॥

इसी तरह उत्तर दिशामें नित्य निवासी धत्तिष्ठः, कदपपो, अत्रि, विभ्यामित्र, सखीतम, जमदग्नि और मरुताज—ये सात ऋषि बाँटकर रहते हैं; अयोध्यापुरीमें पधारे ॥ ५ ॥

सम्प्राप्यैते महामानो राघवस्य निवेशनम् ।

विष्टिनाः प्रतिहारार्थं हृताशनसमप्रभा ॥ ७ ॥

वेदवेदाङ्गविदुरो नानादासप्रतिहारदा ।

वेदवेदाङ्गविदुरो नानादासप्रतिहारदा ।

* कविप्रभुति एव गरीमे कथाधामे १६३ दृष्टं न इत्ये उपाये मतमिदं १६३ वे । उभां दूरं गरीमे उवने अनेये वा दहो दहो नदी है—इस समानार्थ है ।

ये सभी ऋषि के समान तेजस्वी, वेद वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा नाना प्रकारके गार्होपाय विचार करनेमें प्रवीण थे । वे महात्मा मुनि श्रीरुनायजीके राजमवनके पास पहुँचकर अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये ड्योड़ीपर खड़े हो गये ॥ ७ ॥

ह्यस्य प्रोवाच धमात्मा भगस्त्यो मुनिसत्तम ॥ ८ ॥

निवेद्यता दाशरथेर्भृत्यो वयमागता ।

उस समय धर्मपुत्र मुनिश्रेष्ठ भगस्त्यने द्वारपालसे कहा—

‘‘तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामको जाकर सूचना दो कि हम अनेक ऋषि-मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं’’ ८ ॥

प्रतीहारस्ततस्तूर्णमगस्त्यवचनाद् द्रुतम् ॥ ९ ॥

समीप राघवस्यागु प्रविशेद महात्मन ।

नयेद्विद्वद् सद्बुधो दक्षो धैर्यसमन्वित ॥ १० ॥

महर्षि भगस्त्यकी आज्ञा पाकर द्वारपाल तुरत महामा श्रीरुनायजीके समीप गया । वह नीतिज्ञ, इशारेमें बातको समझनेवाला, सदाचारी, चतुर और धैर्यवान् था ॥ १० ॥

स राम हृदय सहसा पूणचन्द्रसमपुतिम् ।

भगस्त्य कथयामास सम्प्राप्तमृषिसत्तमम् ॥ ११ ॥

पूरा चन्द्रमा समान कान्तिमान् श्रीरामका दगन करके उसने सहसा बताया—

‘‘प्रभा ! मुनिश्रेष्ठ भगस्त्य अनेक ऋषियोंके साथ पधारे हुए हैं’’ ११ ॥

श्रुत्वा प्राप्तान् मुनींस्तान् तु शालन्मयममप्रभान् ।

प्रत्युवाच ततो ह्यस्य प्रवेशपथमासुरम् ॥ १२ ॥

प्रातः कालके मूर्खी भौमि निम्न तबने प्रकाशित होनेवाले उन मुनीश्वरोंके पदचरणका समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपालसे कहा—

‘‘तुम जाकर उन सब लोगोंके यहाँ मुन्मूर्खके ले आओ’’ १२ ॥

दृष्ट्वा प्रातान् मुनींस्तान् तु प्रत्युवाच वृत्तावलि ।

पाचाध्यादिभिरानु गा निवेद्य च मादम् ॥ १३ ॥

(आज्ञा पाकर द्वारपाल गया और सबके साथ ल आया ।) उन मुनीश्वरोंको उपस्थित रख कर श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये । फिर पाच-आध आदि का उनका आचरणकी पूजन किया । पूजनेमें पढ़ें उन सबके निम्न एक-एक साथ भेंट की ॥ १३ ॥

रामोऽभिवाय प्रयत आसनान्वादिवेश ह ।
तेषु काञ्चनचित्रेषु महत्सु च चरेषु च ॥ १४ ॥
कुशान्तधातवस्तेषु मृगचर्मयुतेषु च ।
यथार्हमुपनिष्ठास्ते आसनेष्वृषियुक्त्वा ॥ १५ ॥

श्रीरामने शुद्धमावसे उन सबको प्रणाम करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिये । वे जानकर सोने के बने हुए और विविध आभारप्रकारवाले थे । सुन्दर होनेके साथ ही वे निशाल और निरुत भी थे । उनपर कुशके आसन रखकर ऊपरसे मृगचर्म बिछाये गये थे । उन आसनोपर वे श्रेष्ठ मुनि यथायोग्य बैठ गये ॥ १४ १५ ॥

रामेण कुशल पृष्टाः सशिष्या सपुत्रोद्यमाः ।
महर्षयो वेदविदो राम वचनमब्रुवन् ।

तब श्रीरामने शिष्यों और गुरुजनोंसहित उन सबका कुशल उमाचार पृष्टा । उनके पृष्ठनेपर वे वेदवेत्ता महर्षि इस प्रकार बोले—॥ १६ ॥

कुशल नो महाशहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥ १६ ॥
त्या तु दिष्ट्या कुशलिन पश्यामो हतशस्त्रवम् ।
दिष्ट्या त्वया हतो राजन् रावणो लोकराज ॥ १७ ॥

महाशत्रु रघुनन्दन ! हमारे लिये तो वस्त्र कुशल ही कुशल है । लौभायकी बात है कि हम आपको सज्जाल देख रहे हैं और आपके सारे शत्रु मारे जा चुके हैं । राजन् ! आपने सम्पूर्ण लोकोंकी कल्पनेवाले रावणका वध किया, वह सबके लिये बड़े लौभायकी बात है ॥ १६ १७ ॥

नहि भारः स ते राम रावण पुत्रपौत्रवान् ।
सधनुस्त्वहिलोकास्त्रीन् विजयेथा न सशय ॥ १८ ॥

श्रीराम ! पुत्र-पौत्रोंसहित रावण आपके लिये कोई भार नहीं था । आप धनुष लेकर खड़े हो जायें तो तीनों लोकोंपर विजय पा सकते हैं इसमें शय्य नहीं है ॥ १८ ॥

दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणो रामसेध्वर ।
दिष्ट्या रिजयिन त्वाद्य पश्याम सहसीतया ॥ १९ ॥

रघुनन्दन राम ! आपने रावणराज रावणका वध कर दिया और सीताने साथ आप विजयी कीं तो आनन्द हम सज्जाल देख रहे हैं । वह विजने आनन्दकी बात है ॥ १९ ॥

रूपमणे च धमात्मन धाम्ना यद्वितकारिणा ।
माहृभिधाहृमहित पश्यामोऽद्य यय नृप ॥ २० ॥

धर्मात्मा नरप ! आपका गढ़ रूपमण सजा आपके हितमें लगे रहनेवाला है । आप इनके भक्त गुरुजन तथा माताओंके साथ अब यहाँ आनन्द विजय रहे हैं और इस रूपमें हमें आपका दर्शन हो रहा है । यह हमारा अहामात्र है ॥ २० ॥
दिष्ट्या प्रहसतो विक्रान्ति विष्णोश्चो मतोदर ।
अपराधमद्य प्रथमं निहतान्ते निद्रागरा ॥ २१ ॥

प्रहसन्, विष्णु, विष्णु, महोदर तथा दुष्य आत्मन

कैसे निशाचर आपलोगोंके हाथसे मारे गये, यह बड़े आनन्द की बात है ॥ २१ ॥

यस्य प्रमणाद् विपुल प्रमाण नेह विद्यते ।
दिष्ट्या ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातित ॥ २२ ॥

श्रीराम ! शरीरकी ऊँचाई और स्थूलतामें जिससे बढ़कर दूसरा कोई है ही नहीं, उस कुम्भकर्णको भी आपने समराङ्गण में मार गिराया, यह हमारे लिये परम लौभायकी बात है ॥ २२ ॥

त्रिशिपक्षातिक्रियश्च वेवान्तकनरान्तकौ ।
दिष्ट्या ते निहता राम महाधीर्यो निशाचराः ॥ २३ ॥

श्रीराम ! त्रिशिरा, अतिक्रिय, देवान्तक तथा नरान्तक—ये महापराक्रमी निशाचर भी हमारे लौभायसे ही आपके हाथों मारे गये ॥ २३ ॥

कुम्भश्चैव निकुम्भश्च राक्षसौ भीमदर्शनौ ।
दिष्ट्या तौ निहतौ राम कुम्भकर्णसुतौ मृधे ॥ २४ ॥

रघुवीर ! जो देखनेमें भी बड़े भयकर थे, वे कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ नामक राक्षस भी भाग्यवश युद्धमें मारे गये ॥ २४ ॥

युद्धो मत्तश्च मत्तश्च कालान्तकयोमोपमौ ।
यश्चोपेक्ष बलवान् धूम्राक्षो नाम राक्षसः ॥ २५ ॥

प्रलयकालके शहराकारी यमराजकी भाँति भयानक युद्धो मत्त और मत्त भी कालके गालमें चले गये । बलवान्, यश्चोपेक्ष और धूम्राक्ष नामक राक्षस भी यमलोकके अतिथि हो गये ॥ २५ ॥

कुर्वन्त वन्दन घोरमेते शस्त्रास्त्रपारगाः ।
अन्तकप्रतिमैर्वाणैर्दिष्ट्या विनिहतास्तथा ॥ २६ ॥

ये समस्त निशाचर अस्त्र शस्त्रोंके पारंगत विद्वान् थे । उन्होंने जातमें भयकर शहर मचा रक्ता था परन्तु आपने अन्तकनुस्य वाणोंद्वारा इन शत्रुओंको मौतने पाट उतार दिया यह विजने हर्षकी बात है ॥ २६ ॥

दिष्ट्या च राक्षसेन्द्रेण द्रष्टुमुपागत ।
देवतानामवश्येन रिजय प्राप्तवानसि ॥ २७ ॥

गुरुपुत्रराज रावणदेवताओंके लिये भी अवश्य था, उनके साथ आप द्रव्ययुद्धमें उतर आये और विजय भी आपको ही मिली यह बड़े लौभायकी बात है ॥ २७ ॥

सत्ये तस्य न विचित्रं तु रावणस्य परामव ।
द्रष्टुमुदमुपागतो दिष्ट्या ते रावणिहत ॥ २८ ॥

युद्धमें आपके द्वारा जो रावणका परामव (शहर) हुआ, यह कोई बड़ी बात नहीं है परन्तु द्रव्ययुद्धमें रूपमणके साथ जो रावणपुत्र द्रव्ययुद्धका वध हुआ है, यही हमसे बड़कर आश्चर्यकी बात है ॥ २८ ॥

दिष्ट्या तस्य महाशहो बालस्वेष्याभिवायत ।
मुनः सुररिपोर्वीर प्रातस्य विजयस्तथा ॥ २९ ॥

‘महाबाहु वीर ! कालके समान आक्रमण करनेवाले उस देवद्वेदी राक्षसक नागपाशसे मुक्त होकर आपने विजय प्राप्त की, यह महान् लौमायकी बात है ॥ २९ ॥

अभिनन्दाम ते सर्वं सत्पुत्रेन्द्रजितो वधम् ।

मध्व्यं सवभूतानां महामायाधरो युधि ॥ ३० ॥

विसयस्त्वेष चास्माकं तं श्रुत्वेन्द्रजित हतम् ।

इन्द्रजित्के वधका समाचार सुनकर हम सब लोग बहुत प्रदम हुए हैं और इसके लिये आपका अभिनन्दन करते हैं । वह महामायावी राक्षस युद्धमें सभी प्राणियोंक लिय अन्ध था । वह इन्द्रजित् भी मारा गया, यह सुनकर हमें अधिक आश्चर्य हुआ है ॥ ३० ॥

एते बान्ध्वे च बहवो राक्षसा कामरूपिणः ॥ ३१ ॥

दिष्ट्या त्वया हता वीरा रघूणा कुलवर्धन ।

पुत्रकुलकी इष्टि करनेवाले भीरुगण ! ये तथा और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस आपके हाथ मारे गये, यह बड़े आनन्दकी बात है ॥ ३१ ॥

इत्था पुण्यामिमा वीरा सौम्यामभयश्रिणिणाम् ॥ ३२ ॥

दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्मणः ।

वीर ! ककुत्स्थकुलभूषण ! धनुमुदन भीरुगण ! आप सवारको यह परम पुण्यमय लौम्ह अमरदान देकर अपनी विजयके कारण बधाईके पात्र हो गये हैं—निरन्तर यह रहे हैं, यह कितने हर्षकी बात है ! ॥ ३२ ॥

भुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भाषितात्मनाम् ॥ ३३ ॥

विसय परमं गत्वा रामं प्राज्ञलिरग्रवीत् ।

उन पवित्रात्मा मुनियोंकी यह बात सुनकर भीरुमच द्रवी को बड़ा आश्चर्य हुआ । ये हाथ जोड़कर पूछने लगे—३३ ॥ भगवन्तं कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् ॥ ३४ ॥ अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशस्त्य रावणिम् ।

‘पूजनाद महर्षियो ! निशाचर रावण तथा कुम्भकर्ण दोनों ॥ महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे । उन दोनोंकी लोप कर मान रावणपुत्र इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं ? ३४ ॥

महोदर प्रहस्त च विरूपाक्ष च रावणसम् ॥ ३५ ॥

मत्तोमत्तौ च दुष्येयं देवान्तकनरान्तकौ ।

अतिक्रम्य महावीर्यान् किं प्रशस्त्य रावणिम् ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बास्कीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे प्रथम सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमत्साम्बिकनिमित्त आशानयण आदिकाव्य उत्तरकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

महर्षि अगस्त्यके द्वारा पुलस्त्यके गुण और तपसाका वर्णन तथा

उनसे विप्रवा मुनिकी उत्पत्तिरा कथन

तस्य तद् वचनं भुत्वा राघवस्य महात्मनः ।

कुम्भयोनिमहातेजा पापयमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

‘महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त तथा दुष्येय वीर देवान्तक और नरान्तक—इन महान् वीरोंका उल्लङ्घन करके आपलोग रावणकुमार इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? ॥ ३५ ॥

अतिक्रम्य निशिरस धूम्राक्ष च निशाचरम् ।

अतिक्रम्य महावीर्यान् किं प्रशस्त्य रावणिम् ॥ ३७ ॥

‘अतिक्रम्य, निशिरस तथा निशाचर धूम्राक्ष—इन महा पराक्रमी वीरोंका अतिक्रमण करके आप रावणपुत्र इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं ? ॥ ३७ ॥

कीदृशो नै प्रभावोऽस्य किं बलं कं परात्मनः ।

केन वा कारणेनैव रावणादतिरिच्यते ॥ ३८ ॥

‘उसका प्रभाव कैसा था ? उसमें कौन-सा बल और पराक्रम था ? अथवा किस कारणसे यह रावणसे भी बढ़कर सिद्ध होता है ॥ ३८ ॥

शक्यं यदि मया श्रोतुं न खल्व्याहापयामि व ।

यदि शुभं न चेद् वक्षतु श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥

‘यदि यह मेरे सुनने योग्य हो, गोपनीय न हो तो मैं इसे सुनना चाहता हूँ । आपलोग बतानेकी कृपा करें । यह मेरा निमन्त्र अनुरोध है । मैं आपलोगोंको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ ॥ ३९ ॥

शक्नोऽपि यिजितस्तेन कथं लब्धवरश्च स ।

कथं च बलवान् पुत्रो न पिता तस्य रावणः ॥ ४० ॥

‘इस रावणपुत्रने इन्द्रकी भी निरा तरह जीत लिया ? कैसे बरदान प्राप्त किया ? पुत्र किस प्रकार महापुमान् हो गया और उसका पिता रावण क्यों वैसा बलवान् नहीं हुआ ? ४० ॥

कथं पितृव्याभ्यधिको महाहरे

शक्यस्य जेता हि कथं स राक्षसः ।

वरराक्ष लब्धा कथयस्व मेऽथ

प्राप्रच्छतश्चास्य मुनीन्द्र सनम् ॥ ४१ ॥

‘मुनीवर ! वह राक्षस इन्द्रजित् महासमरमें किस तरह पितासे भी अधिक शक्तिशाली एवं इन्द्रपर भी विजय पानेवाला हो गया ? तथा किस तरह उसने बहुतसे वर प्राप्त कर लिये ? इन सब बातोंका मैं अनुरोध करता हूँ—इसलिये बार-बार पूछता हूँ । आज आज ये सारी बातें मुझे बताने ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बास्कीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे प्रथम सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमत्साम्बिकनिमित्त आशानयण आदिकाव्य उत्तरकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

महर्षि अगस्त्यके द्वारा पुलस्त्यके गुण और तपसाका वर्णन तथा

उनसे विप्रवा मुनिकी उत्पत्तिरा कथन

तस्य तद् वचनं भुत्वा राघवस्य महात्मनः ।

कुम्भयोनिमहातेजा पापयमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

महाना रघुनायदीयं यह सन मुनिर महातेजसा

कुम्भयोनि अगस्त्यने उनसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

शृणु राम तथा वृत्त तस्य तेजोऽगल महत् ।

जघान शत्रून् येनासौ न च वध्य स शत्रुभिः ॥ २ ॥

‘धीराम ! इन्द्रजित्क महाबल और तबके उद्देष्टयते जो वृत्तान्त बर्णित हुआ है, उसे बताता हूँ, सुनो । जिस बलके कारण वह ता शत्रुओंको मार गिराता था, परन्तु स्वयं किसी शत्रुके हाथसे मारा नहीं जाता था उसका परिचय दे रहा हूँ ॥ २ ॥

तावत् ते राघणस्येदं कुल जम च राघव ।

वरप्रदानं च तथा तस्मै वृत्तं प्रणीमि ते ॥ ३ ॥

‘रघुनन्दन ! इस प्रस्तुत विषयका वर्णन करनेके लिये मैं पहले आपको राघणके कुल, जन्म तथा वरदान प्राप्ति आदिका प्रसङ्ग सुनाता हूँ ॥ ३ ॥

पुरा वृत्तयुगे राम प्रजापतिसुत प्रभु ।

पुलस्त्यो नाम ब्रह्मणि स्वाक्षादिव पितामह ॥ ४ ॥

‘धीराम ! प्राचीनकाल -कल्पयुगकी यात है, प्रजापति ब्रह्माजीके एक प्रमायशाली पुत्र हुए, जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हैं । वे साक्षात् ब्रह्माजीके समान ही तेजस्वी हैं । नातृकीत्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा ।

प्रजापते पुत्र इति यस्तु शक्यं हि नामतः ॥ ५ ॥

‘उनके गुण, धर्म और शीलका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता । उनका इतना ही परिचय देना पचास होगा कि वे प्रजापति पुत्र हैं ॥ ५ ॥

प्रजापतिवृत्तत्येन देवानां बल्लभो हि स ।

इष्टः सर्वस्य लोकस्य गुणैः शुभ्रेमहामति ॥ ६ ॥

‘प्रजापति ब्रह्माके पुत्र होनेके कारण ही देवतालोक उनसे बहुत प्रेम करते हैं । वे बड़े सुदिमान् हैं और अपने उज्ज्वल गुणोंके कारण ही सब लोगोंके प्रिय हैं ॥ ६ ॥

स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरो पादौ महागिरि ।

वृण्विन्नाथम गत्वाप्ययसं मुनिपुङ्गव ॥ ७ ॥

‘एक बार मुनिवर पुलस्त्य घमाचरणसे प्रसङ्गसे महागिरि मेरुके निकटवर्ती राजर्षि वृण्विन्दुके आश्रममें गये और वहीं रहने लगे ॥ ७ ॥

तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रिय ।

गत्वाऽऽथमपदं तस्य रिचं कुर्वन्नि कन्यरा ॥ ८ ॥

श्रुतिप्रपन्नाकन्याश्च राजर्षितनयाश्च या ।

मीडन्त्योऽस्तरसद्वेषं त देशमुपगच्छिरे ॥ ९ ॥

‘उनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता था । वे इन्द्रियों को सयममें रखने हुए प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करा और तपस्यामें लगे रहते थे । परन्तु कुछ कन्याएँ उनके आश्रममें बाहर उनकी तरफमें रिच डालने लगीं । श्रुतियों, नाणों तथा राजर्षिसेवी कन्याएँ और वे अन्धकार हैं, वे भी प्रायः मोहा करती हुई उनका आश्रमकी ओर आ जाती थीं ॥ ८ ॥

स यतुर्प्राप्ययाद् रम्यन्यात् ज्ञानस्य च ।

नित्यदास्तास्तु त देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यका ॥ १० ॥

‘यहाँका वन सभी श्रुतुओंमें उपभोगमें लानेके योग्य और रमणीय था, इसलिये वे कन्याएँ प्रतिदिन उस प्रदेशमें जाकर भौंति भौंतिरी क्रीडाएँ करती थीं ॥ १० ॥

देशस्य रमणीयत्वात् पुलस्त्यो यत्र स द्विज ।

गायन्त्यो वाद्यन्यस्य लासयन्त्यस्तथैव च ॥ ११ ॥

मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्षुरनिन्दिता ।

‘जहाँ ब्रह्मर्षि पुलस्त्य रहते थे, वह स्थान तो और भी रमणीय था इसलिये वे स्त्री-साध्वी कन्याएँ प्रतिदिन वहाँ आकर गाती, बजाती तथा नाचती थीं । इस प्रकार उन तपस्वी मुनिके तपमें रिच डाल करती थीं ॥ ११ ॥

अथ वष्टो महातेजा व्याजहार महामुनि ॥ १२ ॥

या मे दर्शनमागच्छेत् सा गर्भं धारयिष्यति ।

‘इससे वे महातेजस्वी महामुनि पुलस्त्य कुछ बड़ हो गये और बोले—‘कलसे जो लड़की यहाँ मेरे दृष्टिपथमें आवेगी, वह निश्चय ही गम धारण कर लेगी’ ॥ १२ ॥

तास्तु सवा प्रतिश्रुत्य तस्य चाप्य महात्मन ॥ १३ ॥

ब्रह्मज्ञापभयाद् भीतास्त देशं नोपचक्षमुः ।

‘उन महात्माकी यह बात सुनकर वे सब कन्याएँ ब्रह्म शापने मयसे डर गयीं और उन्होंने उस स्थानपर आना छोड़ दिया ॥ १३ ॥

वृण्विन्दोस्तु राजर्षस्तनया न शृणोति तत् ॥ १४ ॥

गत्वाऽऽथमपदं तत्र विचचार मुनिर्मेया ।

‘परन्तु राजर्षि वृण्विन्दुकी कन्याने इस शापको नहीं सुना था इसलिये वह दूरे दिन भी खेलटके आकर उस आश्रममें विचरने लगी ॥ १४ ॥

न चापदयश्च सा तत्र काचिदभ्यागता सखीम् ॥ १५ ॥

तस्मिन् काले महातेजा प्राजापत्यो महानृपि ।

स्वाध्यायमकरोत् तत्र तपसा भाविश स्वयम् ॥ १६ ॥

‘यहाँ उसने अपनी किसी सखीको साथी हुई नहीं देखा ।

उस समय प्रजापतिने पुत्र महातेजस्वी महर्षि पुलस्त्य अपनी तरफसे प्रकानित हो यहाँ वेदोंका स्वाध्याय कर रहे थे ॥ १५ ॥

सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा धै तपसो निधिम् ।

अभवत् पाण्डुरेहा सा सुव्यञ्जितदारीरजा ॥ १७ ॥

‘उस यदध्वनिसे मुनिरर यह कन्या उठी और गयी और उसने तपनिधि पुलस्त्यजीका दर्शन दिया । महर्षिके दृष्टि पड़ते ही उसने शरीरपर पीलापन छा गया और गर्भके लक्षण प्रकट हो गये ॥ १७ ॥

यभूय च समुच्छिन्ना दृष्ट्वा सदोऽगमात्मनः ।

इदं मेवित्विति ज्ञाया पितृगत्याऽऽधमेम्यता ॥ १८ ॥

‘अबो दरीमें यह दाग देखाकर वह पचप उठी और ‘मुझ यह क्या हो गया !’ इस प्रकार चिन्ता करती हुई तिनके आश्रमपर आकर गयी हुई ॥ १८ ॥

ता तु दृष्ट्वा तशब्दना तपसिदुग्धान्नीत् ।
 किं त्यमेतत्तस्मिन् दृष्ट्वा ध्यायन्ध्यामन्तो ऽपु ॥ १० ॥

‘अना क्लृप्तं यम अन्त्याने मरार वृत्तिदुः
 वृत्त-मुद्धार मरार ए-अन्त्या मर दुः’ दुम अना
 मरार विम मरार धारा मर मर ह। मर मर मर
 मरार अन्त्या एव अनुचित ह ॥ १ ॥

सा तु दृष्ट्वा बुद्धिं मेना द्रव्यायाम् तदायम् ।
न ज्ञाने कारणं तान् यन् न व्यमीदयाम् ॥ ४ ॥

‘यह-वरी’ का हथ पत्तर न सचन नम
इति—विनाय । मं सु तादा नृ संनय न विना
ना नर एता ही रीतः ॥ ५० ॥

नि तु पूर्वं गतात्म्यदा मर्त्यभातिमानत ।
पुलस्त्यन्यात्रम नित्यमन्यष्टु स्वस्वग्रीवन्म ॥ ५१ ॥

“अभी यहाँ तो वह मैं फिर जान —————
 पुष्पाणि विन अत्र नर अनी कविन्द्रा इन्द्रा वि
 अरुणी गरी था ॥ २१ ॥

न च पन्थाम्यह तत्र काचिन्भ्याता सखीम् ।
रूपस्य तु रिपयास हृष्टा शस्माद्विहागता ॥ २० ॥

‘हौं देवता हूँ ता कह भूँ स्वी उज्जिन नग है ।
 स्य हा नर नर पण्य रिग्न भस्मान पशुच गग है
 यः सर्व देवस्य भूँ भस्मान हा गगो भूँ गग है ॥ २२ ॥

तृणमिदुस्तु गन्धर्विलपत्ता द्योतिवप्रभ ।
ध्यान विमेषा तस्मापि अपश्यद्विभक्तम् ॥ २३ ॥

भावर्षि तृविदु अना लम्पन प्राणलन ॥
 उन्नेन एन लम्पन एना ला एन दुआ । ए ॥ ७३ ॥
 एन एन एन ॥ ७४ ॥

स तु रिणाय त शप महर्षिभाषितामन ।
गृह्णान्ति तन्वा तथा पुनस्त्यजिन्मन्त्रान् ॥ २७ ॥

॥ ५ ॥

भगवत्पत्न्या मे त्वं शुभं न्यस्य भूमिनाम् ।
निष्ठा प्रतिगृह्यते मां भर्तुं स्वयमुपताम् ॥ ४ ॥

॥ २ ॥

तन्निर्माणयुक्तस्य ग्राह्यनाशोद्वयस्य तः ।
 पुद्गलपग नित्यं भविष्यति त मयाप ॥ ४ ॥
 "आप तन्मने ह्ये गन्नेर गगग गद-१ ह्ये त

[illegible]

न भुङ्क्ते तु तद् तस्य गजं धामिद तथा ।
निष्टुभुङ्क्ते कन्या शत्रुमित्रेभ्यः स हि व ॥ २७ ॥

एसा दन हन दुए उन घनामा गम्मि देवार
 यम। रन्ना दग्ग रन्ती इउन यम दग्गि वदा—
 व न अल्ल । ३ ।

तु तया गता स्वमाश्रयत त ।
स्मरि तत्राश्रमम् कया ताभ्यन्ता वान शुभ ॥ ४१ ॥

नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 भगवन्मया कृतं यत्प्रणम्य त्वत्पदौ ॥
 त्वत्पदौ प्रणम्य त्वत्पदौ ॥ २ ॥

तल्लान्नु शान्नुत्ताभ्या तुताय मुनिपुत्राय ।
 प्राण म त् महान्ना वास्यमेतद्वराय ॥ २० ॥

मदः सौ गौर मन्त्रारम व मन्त्राली मन्त्र
 दुःख्य बहून मन्त्र दुष्ट और मन्त्रमन्त्राद यो वन्तः॥
 पदितप्रोपसि सन्त्रोणि गणाना सम्पदा भुदाम ।

नस्माद् नेत्रि दत्ताम्यद्य पुत्रमानसम् तत्र ॥ ३० ॥
उभयोर्देशकतार पालम्य इति जिह्वतम् ।

मुन्ने । मैं तुम्हारे लुके वैसा मैं अपने प्रा
हैं । देख । स्वल्प आह मैं तुम्हें अपने सान पुत्र प्रा
हैं । मैं तुम्हारे लुके वैसा मैं अपने प्रा

यस्मात् तु विधुता घेन्न्त्रयेहाप्यतो मम ॥ ३१ ॥

तस्मात् स विश्वस्य नाम भविष्यति न स्यात् ।
 ॐ । नै सौ वेदा ण्य क रण या नम
 न्न तुम न ह्य उक्त विनाशान भवा हि । इममि

॥ १० ॥

त्रिषु गेःषु ण्यात् यणोचमममन्वितम् ॥ ३३ ॥

॥ ५ ॥

येन तासा मुने धनदृश्रिया मुनि ॥ ३० ॥

वि - मुनि वं विदुः स्मरन्, यः अत्र
मन्त्रं जपन्त्यस्य विदुः स्मरन् ॥
यः उवाच हितं यः सग ६० ॥

इत्यर्थे धम्मपत्राय वल्लभाय आदिभ्य उपास्यते इति य मग ६० ॥

[illegible]

तृतीय. सर्ग

विश्रवासे वैधवण (कुबेर) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या, वरप्राप्ति तथा लङ्का में निवास

मध पुत्र पुत्रस्त्यम् विश्रवा मुनिपुङ्गव ।

अचिरं गीव कालेन पितेव तपसि स्थित ॥ १ ॥

पुलस्त्यक पुत्र मुनिवर विश्रवा योद्धे ही समयमें पिताजी
मौलि तपस्याम सलङ्ग हो गये ॥ १ ॥

सत्यवान्शीलवान् दान्त स्वाध्यायनिरत शुचि ।

सर्वभोगेष्वसक्तो नित्य धर्मपरायण ॥ २ ॥

ये सत्यवादी, शीलवान्, जितेन्द्रिय, स्वाध्यायपरायण,
बाहर भीतरसे पवित्र, मनुष्य भोगोंमें अनासक्त तथा सदा ही
धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे ॥ २ ॥

हात्वा तस्य तु तद् धृत भरद्वाजो महामुनि ।

वदौ विश्रवासे भार्यां स्वसुता देवार्पणीन्मू ॥ ३ ॥

विश्रवाके इस उत्तम आचरणको जानकर महामुनि
भरद्वाजने अपनी कन्याका, जो देवाङ्गनाथ समान सुन्दरी थी,
उनके साथ विवाह कर दिया ॥ ३ ॥

प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुता तदा ।

प्रजान्भीक्ष्णिया युद्धया श्रेयो हास्य विचिन्तयन् ॥ ४ ॥

मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गव ।

स तस्या वीर्यसम्पन्नमप्य परमाद्भुतम् ॥ ५ ॥

जनयामास धमरा सर्वैर्ग्रहगुणैर्भूतम् ।

तस्मिञ्जाते तु सहस्र स भूष्य पितामह ॥ ६ ॥

धर्मके ज्ञाता मुनिवर विश्रवाने वड़ी प्रसन्नताके साथ
घमानुसार भरद्वाजजी कन्याका पाणिग्रहण किया और प्रजापति
हिन चिन्तन करनेवाली बुद्धिके द्वारा लोककल्याणका विचार
करते हुए उन्होंने उसका गर्भसे एक अद्भुत और पराङ्मयी
पुत्र उत्पन्न किया । उतम सभी ब्राह्मणांचित गुण विद्यमान
थे । उसने जन्ममें पितामह पुलस्त्य मुनिसे वड़ी प्रसन्नता हुई ॥
हृष्टा श्रेयस्करां बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति ।

नाम चास्याकरोत् प्रीत सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥ ७ ॥

उन्होंने दिव्य दृष्टिसे देखा—इस बालकमें संतारका
कल्याण करनेकी बुद्धि है तथा यह आगे चतुर बनान्धव
होगा । तब उन्होंने यह दर्शन भरवर देवर्षियोंने साथ उसका
नामकरण-संस्कार किया ॥ ७ ॥

यस्माद् विश्रवस्तोऽप्य सादृश्याद् विश्रवा इव ।

तस्माद् वैधवणो नाम भविष्यत्येव निश्चुत ॥ ८ ॥

य शील—विभक्तता यह पुत्र विश्रवाने ही समान
उत्पन्न हुआ है इसलिये यह वैधवण नामने विख्यात होगा ॥
स तु वैधवणस्तत्र तपोनगगतस्तदा ।

अथ धनाहतिरुतो महातजा यथानल ॥ ९ ॥

कुमार वैधवण वहाँ तपोनगमें रहकर उस समय आहुति
दानेके प्रसंग हुआ अन्धिका समान करने लगे और महान्
नेत्रम सम्पन्न हो गये ॥ ९ ॥

तस्याधमपदस्थस्य दुर्दिजज्ञे महात्मन ।

चरित्ये परम धर्मे धर्मो हि परमा गति ॥ १० ॥

आधममें रहनेके कारण उन महात्मा वैधवण मनमें
भी यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं उत्तम धर्मका आचरण
करूँ क्योंकि धर्म ही परमगति है ॥ १० ॥

स तु धर्मसहस्राणि नपस्तप्या महावने ।

यज्ञितो नियमैर्यज्ञैश्चकार सुमहत्तप ॥ ११ ॥

यह सचकर उन्होंने तपस्याका निश्चय करनेके पश्चात्
महान् वनके भीतर सहस्रों वर्षोंतक ब्रह्मर नियमाने वैधवण
वड़ी भारी तपस्या की ॥ ११ ॥

पूर्ण वर्षसहस्रान्ते त त विधिमकल्पयत् ।

जलाशी मारुताहारो निराहारस्तथैव च ॥ १२ ॥

एव वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येव वर्षयत् ।

ये एक एक सहस्र वर्ष पूण होनेपर तपस्याकी नवीनवी
विधि ग्रहण करते थे । पहले तो उन्होंने केवल जला आहार
किया । तत्पश्चात् वे हवा पीकर रहने लगे, फिर आगे चलकर
उन्होंने उसका भी त्याग कर दिया और वे एकदम निराहार
रहने लगे । इस तरह उन्होंने कइ सहस्र वर्षोंको एक वर्षके
समान बिता दिया ॥ १२ ॥

अथ प्रीतो महातेजा सर्वैः सुरगणैः सह ॥ १३ ॥

गत्वा तस्याधमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ।

तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर महातेजवी ब्रह्मानी
इन्द्र आदि देवताओंके साथ उनके आभमपर पधार और
इस प्रकार थे—॥ १३ ॥

परितुष्टोऽस्मि त यत्स कमणानेन सुप्रत ॥ १४ ॥

वर वृणीष्व भद्र ते यदाहंन्य महामते ।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वत्स ! मैं तुम्हारे इस काम

से—तपस्यामें बहुत उद्युत हूँ । महामते ! तुम्हारा मन्त्र ॥ १४ ॥

कोई वर माँगे क्योंकि वर पानेके योग्य हा' ॥ १४ ॥

अथाग्रिदू वैधवणः पितामहमुपस्थितम् ॥ १५ ॥

भगवत्लोकपालान्वमिच्छेय लोकक्षणम् ।

यह सुनकर वैधवणने अपने निकट खड़े हुए पितामहने

कहा—भगवन् ! मया विचार लोकाकी रक्षा करनेका है, अतः

मैं लोकपाल होना चाहता हूँ ॥ १५ ॥

अथाग्रिदू वैधवणः परितुष्टेन व्रतसा ॥ १६ ॥

ब्रह्मा सुरगणैः सार्धं यादमित्येव हृदयत् ।

वैधवणजी इस बालके ब्रह्माचर चित्तकी ओर भी लगे

हुआ । उन्होंने समूह देवताओंके साथ व्रतसापूर्वक कहा—

‘बहुत अच्छा’ ॥ १६ ॥

अतः ये लोकपालाना वस्तुर्धनं अमुमुद्यत ॥ १७ ॥

यम-व्यवधानां च पदं यत् तव वन्ति तम् ।

इतर बाद वे फिर चाहे—प्रेम। मैं चौथे लोकालकी
गृही करने के लिए उत्तम था। यम, इन्द्र और वरुणका यह
पद प्राप्त है। वग ही लोकाल-पद तुम्हें भी प्राप्त होगा, यह
तुमको अभीष्ट है ॥ १७३ ॥

तद् गच्छ यत् धर्मश निधीरायमगान्नुहि ॥ १८ ॥
दानान्धुपयमाना च चतुर्न्य भविष्यसि ।

धर्मशः। तुम प्रयत्नपूर्वक उस पापको प्रहा कर और
अधन निधिवान्ता बना। इन्द्र, वरुण और यमर साथ
तुम चौथे लोकाल कहल्योगे ॥ १८ ॥

एतच्च पुण्यक नाम विमान स्यसनिभम् ॥ १९ ॥
प्रतिवृष्टीप्य यानां चिदौ समता जय ।

यद् मुख्यतः तद्विषय पुण्यकविमान है। इसे अपनी
महापुण्य प्रहा कर और देवताओं समान हो
जाओ ॥ १९ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु नमिष्याम सर्वा एव यथागतम् ॥ २० ॥
कृतव्या वयं तान दत्त्वा तव वरद्वयम् ।

जात। तुम्हारा कल्याण हो। अब हम सब स्तन देने
आय हैं, वेने लोच पावेंगे। तुम्हें ये दो वर देकर हम अपने
का कृतव्य समत हैं ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा स ततो ब्रह्मास्वस्थान विदूरी मह ॥ २१ ॥
गतेषु प्रह्वर्षेषु देवेष्वथ नभस्तलम् ।
धनेन पितर प्राह प्राकलि प्रयत्नामयान् ॥ २२ ॥
भगवन्तध्यानासि यमिष्ट विनामहान् ।

एना कर्कर ब्रह्मा दानाओं साथ अपने स्नानका
चल गए। ब्रह्मा आदि देवताओं आरागने चल करने
अने मनरा समने रखने के घनाकन विनामे हाथ बढ़
कर प्राण—भगवन्। मैं विनाम ब्रह्माजीन मनातिष्ठन
कर प्राण दिया है ॥ २१ २२ ॥

निगासन न मे देवो विदधे स प्रनापति ॥ २३ ॥
त पय भगवन् कतिप्रियास माधु मे प्रभो ।
न च पीडा भवेद्य यथापि नो यम कस्याचित् ॥ २४ ॥

भगवन् प्रनापति के मेरे लिए कोई निरसमान
नहीं पाना। अतः भगवन्। यह अब ही मेरे रहने के यम
किसी एक मनाती गात्र शीतल, जो सभी दृष्टि में अच्छा
है। प्रभो! यह स्नान एका हवा चाहिये, जो रहने के प्रिया भी
प्राप्ता कर ॥ २३ २४ ॥

परमुक्त्वान् पुत्रेण विभ्रता मुनिपुत्रम् ।
यत्न प्राद धर्मन भूयनामिनि सप्तम ॥ २५ ॥
वृमिणस्योदधस्तरे विदूरी नाम परत ।
तस्यापे तु विनाम मा महद्रय पुत्रयथा ॥ २६ ॥
अने पुत्रक एक करने के मुनिर विभ्रता दत्त—
प्राण। माहद्रयपे। पुन—विनाम मुने लय एक
विनाम दत्त ॥ २५ २६ ॥

अ देवराज इन्द्रा अमराणी पुरीक समान प्रभा गती है ॥
लङ्का नाम पुरी रम्या निमिता विन्दकमणा ।

राक्षसाना निरासार्य यदेद्रस्यामराती ॥ २७ ॥
उक्ता नाम लङ्का है। इन्द्रकी अमरातीर समान उस
रमणीय पुरीका निमा विन्दकमनि दम्भे—रहने के लिए
दिया है ॥ २७ ॥

तत्र त्व वस भद्र त लङ्काया नात्र मदाय ।
हेमप्राकारपरिखा यदशस्त्रमावृता ॥ २८ ॥

लङ्का। तुम्हारा कल्याण हो। तुम नि वदे उस लङ्का
पुरीमें ही जान रह। उनका चहारणीवारी स्नेकी बनी हुई
है। उक्त चारों ओर चौड़ी लाइयों मुनी हुई हैं और बंद
अनेकानेक यंत्रों तथा शस्त्रों से सुरक्षित है ॥ २८ ॥

रमणीया पुरा सा हि रम्यप्रयतोरणा ।
गम्यते सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयादितै ॥ २९ ॥

यह पुरी बड़ी ही रमणीय है। उक्त पाटक कम और
गम्यन के हुए हैं। पूरा लगे भगवन् विष्णु प्रयम
पीकृत हुए शस्त्रों से उस पुरीको स्था दिया था ॥ २९ ॥

शून्या रक्षोगर्भा सर्वे रसातलतल गतै ।
शून्या सम्पति लङ्का सा प्रमुस्तम्या ॥ निघन ॥ ३० ॥

य समस्त शस्त्र रमलकी चल गए। इन्द्रकी
लङ्का पुरी मूली ॥ गत। इस समय भी लङ्का पुरी मूली ही है,
जबका कोई व्यक्ति नहीं है ॥ ३० ॥

स न्य तत्र निरासाय गच्छ पुत्र यथासुराम् ।
निशोयस्तत्र त यामो न याद्यस्तत्र कस्यचित् ॥ ३१ ॥

अतः येय। तुम वहाँ निरास करने के लिए मुनियुक्त
जाओ। वहाँ रहने में किसी प्रकार का भी भय नहीं है।
क्यों किशोरा अनेक कश्चित् वषा नहीं आ लङ्का ॥ ३१ ॥

पतच्छ्रुत्वा स धमात्मा धर्मिष्ठ चचन पितु ।
निगमयामास तदा लङ्का परतमूधति ॥ ३२ ॥

अने निरास इस दमनक वचन। उनका धमात्मा
वैभ्रताने विदूरी पुरीर निरास की हुई लङ्का पुरीमें निरास
किया। ॥ ३२ ॥

नैश्वताना सहस्रैस्तु हर्षे प्रमुदितै मदा ।
अरिषैर कालेन सा पूषा नय्य शासनात् ॥ ३३ ॥

उनका निरास करने के यद्दे ही निजें वह पुरी दृष्टों
हृष्ट शस्त्रों से भर गया। उनका आगमन न रात्रि वहाँ
आकर भगवन् दत्त रहने लगे ॥ ३३ ॥

स तु तथानमन् प्रीतो धमामा निष्ठतरम् ।
समुद्रपरिखाया स लङ्काया विभ्रयानन ॥ ३४ ॥

समुद्र किनारे विदूरी नाम की लङ्का नाम लङ्का
मारीमें विभ्रय धमामा पुत्र वैभ्रता—रहने के लिए
बड़ी प्रयत्नक साथ निरास करने लगे ॥ ३४ ॥

काल काले तु धमामा पुण्यक धनदत्त ।

अभ्यागन् उद् विनीतत्मा पितर मातर च हि ॥ ३५ ॥

धर्मात्मा धनेश्वर समय-समयपर पुण्यविमानध द्वाप
आफर अपने माना पितसे मिल जाया करत थे । उनका हृदय
यद्वा ही विनीत था ॥ ३५ ॥

न देवगर्धनगणैरभिष्टुत

स्तथाप्सरोनृत्यत्रिभूतिस्तलय ।

हृत्पार्थ श्रीमद्वाल्मीके चारुमीकीय आश्रित्य उच्चरत्वाण्डे नृत्ये सग ॥ ३६ ॥

न प्रकार आनात्मीतिनिमित्त आपगमायण आश्रित्य च सराण्डम तीसरा सग पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

चतुर्थः सर्गः.

राक्षसवशका वर्णन—इति, विद्युत्कश और सुकेयकी उत्पत्ति

श्रुत्यागस्येरित पान्य रामो निसयमागत ।

कथमासीत् तु लङ्काया सम्भवा रक्षसा पुन ॥ १ ॥

अगस्त्यजीनी की हुई इस बातको सुनकर श्रीराम चन्द्रजी
का यद्वा निम्न हुआ । उन्होंने मन ही मन सोचा, राक्षस
की उत्पत्ति तो भुनिवर विभवाने ही मानी जाती है । यदि
उनसे भी पहले लङ्कापुरीम राक्षस रहते थे तो उनकी उत्पत्ति
किस प्रकार हुई थी ॥ १ ॥

तत शिर कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम् ।

तमगस्त्य मुहुर्मुहू स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥

इन प्रकार आश्चर्य होनेसे अनन्तर त्रिगिराकर आराम
चन्द्रजीने त्रिविध अग्निगोंक समान तन्त्रवी गरीरवा
अगस्त्यजीनी और बार बार देखा और मुस्कराकर पूछा—

भगवन् पूरमप्येषा लङ्काऽऽसीत् पिशिताशिनाम् ।

श्रुत्वेद् भगवद्वाक्य जातो मे निसय पर ॥ ३ ॥

भगवन् ! कुंभे और राक्षसे पहले भी यह लङ्कापुरी
मासमन्त्री राक्षसोंक अधिपतिराने थी, यह आपर मुँहग सुनार
मुझे यद्वा निम्न हुआ है ॥ ३ ॥

पुलस्त्ययशोदुद्धृता राक्षसा इति न श्रुतम् ।

इदानीमप्यतथापि सम्भन कीर्तितस्त्वया ॥ ४ ॥

हमने तो यही सुन रखा है कि राक्षसीनी उत्पत्ति पुलस्त्य
जीक हुल्ले हुई है मितु इस समय आपने त्रिषी दूगर
हुल्ले भी राक्षसोंने प्रादुभासी बात कही है ॥ ४ ॥

राजणात् शुम्भकणाथ प्रहस्ताद् विजटादपि ।

राजणस्य च पुत्रेभ्य किं पुते यल्लक्ष्मण ॥ ५ ॥

कथा व पहलेक राक्षस राज, दुष्मरण, प्रहल, विज
तथा राणापुत्रोंने भी यद्वा कर बलवान् थे ॥ ५ ॥

क प्पा पूयको प्रहल किनामा च यल्लेकट ।

अपराध च क पायत्रिणुना शक्तिना कथम् ॥ ६ ॥

प्रहल ! उपाय पूर्वम कीन था और उस उत्पत्ति यल-

लानी पुत्रता नाम क्या था ? भगवन् त्रिणुना उनराक्षसोंन

कीनथा अपराध पाकर किस तरह उन्हें लङ्कामे भगवान् ॥

गभस्तिभि सूर्य इवावभासयन्

पितु समीप प्रययो स यिस्तप ॥ ३६ ॥

देता और गभर उनकी स्तुति करते थे । उन
भय भजन अप्सराओंक नृत्यने मुग्धोभित होता था । व ध
पति कुंभे अपनी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यनी भों
मव और प्रकाश बिखेरते हुए अपने पिताक समीप गय ॥ ३६ ॥

यतद् विस्तरत सर्वं कथयस्व ममाग्र ।

कुन्तुहलिम् मया उद् भातुर्यथा तम ॥ ७ ॥

निष्पाप मूर्ख ! व सर बातें आप मुझे बिलालने
बाइये । इनके जिये मेरे मनमें रद्दा कौतुहल है । जैसे सूर्यके
अधरारका दूर करते हैं, ठसी तरह आप मेरे इस कौतुहलका
निवारण कीजिये ॥ ७ ॥

गद्यस्य यत्र धृग सस्कारालङ्कत शुभम् ।

अत्र विस्वयमानस्तमगस्त्य प्राह राघवम् ॥ ८ ॥

भीरुनाथजीनी यह सुन्दर वाणी पदस्वार, वाच्य
स्कार और अर्थस्फारसे अलङ्कित थी । उस सुनकर
अगस्त्यजीनी यह राक्षसक निसय हुआ कि व सरङ्ग होकर
भी मुग्धने अनजाननी भोंति पूछ रह हैं । तत्पश्चात् उन्होंने
श्रीरामसे कहा— ॥ ८ ॥

प्रजापति पुरा खट्वा अप सलिलसम्भव ।

तामा गोपायन सर्वानखजत् पद्मसम्भव ॥ ९ ॥

अनुन्दन ! जन्ते प्रकट हुए कमलसे उत्पन्न प्रजपति
ब्रह्माजीने पुरातलम समुद्रमन जलवी सृष्टि करक उसवी रक्षा
जिय अनर प्रसार जन्तुओंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

त त्वया मन्वकतार विनीतमुपस्थिता ।

त्रिष्टुम् इति भाषन् क्षुतिपासाभयार्दिता ॥ १० ॥

व जन्तु भूत व्यापक भयसे पीड़ित था । अथ हम क्या
करें एसी काने करते हुए अपने जमदाता ब्रह्माजीन पास
विनीतभाव गय ॥ १० ॥

प्रजापतिस्तु तान् सयान् प्रत्याह प्रहसन्निय ।

आभाष्य वाग यत्नेन स्मरन्ममिति मानद् ॥ ११ ॥

भूतघोरा मान देनेवाले खुसी । उन सरगो आया देव
प्रजापतिने उन्हें वायाद्वारा सम्पाधित करने हेतु हुए से कहा—
व जन्तुओं ! तुम वायुपूतक इस जन्तु रक्षा करो ॥ ११ ॥

रामा इति त्रयायैयक्षाम इति चापरे ।

भुक्तितामुक्तिस्तनन्माना भूतहृत् ॥ १२ ॥

व सर जन्तु पूर व्यान थे । तामने मुग्धने कहा—

‘हम’ इति ज्ञानी रणा वरगे’ और दूसरे वहा—‘हम’ इसका
गण (पूजन) वरगे’, तब उन नृत्तोंकी सृष्टि करनेवा
प्रजापति उनमें वहा—॥ १२ ॥

यन्नाम इति यैरुक्तं राक्षसात्मन भवतु ॥ १३ ॥

यन्नाम इति यैरुक्तं यथा एव भवतु ॥ १३ ॥

‘तुममें मेरे पिता लोगोंने रक्षा करनेकी बात उठा है, उ
रक्षण नामने प्रसिद्ध है और जिहोंने यथा (पूजन) करना
मौनार किया है, वे लोग यत्र नामसे ही विज्वात हों’ (इस प्रकार
उ ज्ञान राक्षस और यत्र—इन दो जातियोंमें विभक्त हो
गय) ॥ १३ ॥

तत्र हेति प्रहतिश्च भ्रातरौ गह्रसाधिवौ ।

मधुर्दंभस्तथादौ यधुर्दुर्दमौ ॥ १४ ॥

उन यधुर्दंभ इति और प्रहति नामाल दो भाई थे,
नौ समान यधुर्दंभ अधिपति थे । ‘मधुर्दंभ’ दमन करनेमें
समर्थ व दाँतों वीर मधु और कैरभर समान ‘मतिशाल’ थे ॥
प्रहतिधामिहस्तत्र तपोनगस्तदा ॥

हेतिनामियायै तु पर यत्नमयाकरोत् ॥ १५ ॥

उनमें प्रहति धमात्मा था अतः वह तत्काल तपवनमें
जाकर तपस्या करने लगा । परंतु इतिनामिहाह लिय बड़ा
प्रयत्न किया ॥ १५ ॥

न कालभगिनी कथा भया नाम महाभयाम् ।

उत्पन्नहृदयेमात्मा स्वयमेव महामति ॥ १६ ॥

‘हृद’ अनेक भात्मवस्त्रमें स्मरण और उड़ा बुद्धिमान् था ।
‘स्वमेव’ स्वयं ही वाचना ‘एक’ वाणी बुझाई भगिनी भयान
का व विनाह किया । भया बड़ी भयानक थी ॥ १६ ॥

न तस्या जनयामास हेती राक्षसपुत्रम् ।

पुत्र पुत्रता श्रेष्ठे विदुर्दंभमिति धृतम् ॥ १७ ॥

‘एकपुत्र’ हेतिने भयानक गर्भमें एक पुत्रका उत्पन्न
हिया, वह विदुर्दंभ नामसे प्रसिद्ध था । उन कम दंभ
इति पुत्रतामें श्रेष्ठ ममसा जन लगा ॥ १७ ॥

विदुर्दंभो हतिपुत्र स गमास्तमप्रभ ।

यश्चन महानास्तोषमप्य इयाम्भुजम् ॥ १८ ॥

‘हति’ पुत्र विदुर्दंभ दीक्षिमान् मृतक समान प्रताप
लगा था । वह ‘गतेवन्ती’ वरुण जन्म करनेकी मौल निनी
निन करने लगा ॥ १८ ॥

स यदा योजन भद्रमनुभाता निशाग्रम् ।

तदा दारमिया तस्य कर्तुं ध्वंसितं पिता ॥ १९ ॥

‘दारान्तर’ विदुर्दंभ जब चार उन्म युवात्माका
प्राप्त हुआ, तब उन्म पिता राक्षस्यजन इतिने अपने पुत्रका
‘दार’ कर दोहा निश्चय किया ॥ १९ ॥

सध्यादुदितं साध्य सध्यानुत्था प्रभातम् ।

यस्यामास पुत्राय हेतो राक्षसपुत्रम् ॥ २० ॥

गजस्योपमं हतिन भूय ॥ २० ॥

मन्वारी पुत्रीका, आ प्रभातमें अपना माता मयान ही
समा ॥, वरण किया ॥ २० ॥

अद्यमव गतया परमै सति सध्याया ।

विन्तयित्वा सुता दत्ता विदुर्दंभाय राघवम् ॥ २१ ॥

‘पुनश्च’ मन्वारी मन्वारी निक्षि दूमर साथ
व्याह ता जय वहा करना पड़गा अतः इसका साथ क्यों न
करें ? यह विचार करने पर पुत्री विदुर्दंभका
व्याह दी ॥ २१ ॥

सध्यायास्तनया रा विदुर्दंभाय निशाग्रम् ।

रमन् स तथा सार्यं पौत्राय मघनागि ॥ २२ ॥

‘स’ मन्वारी उस पुत्रीका पावर निगान् विदुर्दंभ ठमक
साथ उसी तरह रमण करने लगा ‘मे’ देवरात्रि ‘पुत्र’
पुत्री धारीत साथ निहार करत है ॥ २२ ॥

केनचित्पुत्र कालेन राम सालकट्टका ।

विदुर्दंभदाद गहममाय धागजिरिवाणयात् ॥ २३ ॥

‘प्राप्त’ मन्वारी उस पुत्रीका नाम सालकट्टका था ।
‘कट’ रात्रि पश्चात् उस विदुर्दंभका नाम रात्रि गन धारण
किया, ‘रा’ मन्वारी पावर समुद्रमें उद्गम करने दी है ॥ २३ ॥

तत सा राक्षसी गर्भे घनगहसमप्रभम् ।

प्रसूता मन्दं यत्नं गह्रं गहमिदंशजिम् ।

ममुच्चय तु सा गर्भे विदुर्दंभदादिति ॥ २४ ॥

‘तत्पुनश्च’ उस राक्षसी मन्वारीका पावर विदुर्दंभ
समान सन्निमान राक्षसी नाम दिया, माता गह्रने भक्ति
छाड़ हुए ‘मायान’ गिरान तब मन्वारी गह (कुमार कर्तव्य)
ही मन्वारी किया है । ‘म’ मन्वारी विदुर्दंभ व । छाड़कर
‘ह’ विदुर्दंभका नाम गह्रने निशाग्र लिय ‘गरी’ लयी ॥ २४ ॥

रेम तु सार्धं पतिना विस्मयं मुतमामनम् ।

उत्पन्नस्तु तदा गह्रं घनदादसममनम् ॥ २५ ॥

‘उत्पन्न’ उत्पन्न मन्वारी सालकट्टका पतिन साथ रमण
करन लगा । ‘उत्पन्न’ मन्वारी छान हुआ व गह्र मन्वारी
‘मन्वारी’ मन्वारी समान गह्र करने लगा ॥ २५ ॥

तयाद्युप न तु शिनु रात्रिस्तममयुति ।

निशायाम्य स्य मुष्टि रगेद दानरस्तदा ॥ २६ ॥

‘मन्वारी’ मन्वारी ‘मन्वारी’ मन्वारी मन्वारी भात
उत्पन्न होती था । ‘मायान’ छाग हुआ वह विदुर्दंभ मन्वारी
भयानक मुष्टि रगेद दानरस्तदा ॥ २६ ॥

तदा घृणभमायाय पात्रया सति शिर ।

रायुमार्गेण गच्छन् वै पुत्राय रुदितव्यम् ॥ २७ ॥

‘मन्वारी’ मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी
‘मन्वारी’ मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी
‘मन्वारी’ मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी
‘मन्वारी’ मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी मन्वारी

अन्यथाया सार्धं रुदन् राक्षसमनम् ।

परायणायान् पात्रया भवन्तिपुत्रम् ॥ २८ ॥

॥ राक्षसात्मन् चको मातुरेव वय समम् ।

‘मुत्तर पार्वतीवदित शिवने उस रोते हुए राक्षसकुमार
फी ओर देखा । उसकी दम्पती अन्त्यापर दृष्टिगत करके
माता पार्वतीने हृदयमें कृष्णाना श्रोत उमड़ उठा और
उनकी प्रणालि त्रिपुरवदन भगवान् शिवन उस राक्षस-बालक
को उसकी माताफी अस्त्रास्त्र समान ही नौगजान बना दिया॥
अमर चैव त वृत्वा महादेवोऽक्षरोऽव्यय ॥ २० ॥
पुरमाकाशग प्रादात् पार्वत्या प्रियक्षमयथा ।

‘इतना ही नहीं, पार्वतीजीका प्रिय करनेकी इच्छासे
अग्निाशी एव निर्दिष्टार भगवान् महादेवने उन बालकको
अमर बनाकर उसने रहनेके लिये एक आकाशचारी नगचमार
विमान दे दिया ॥ २१३ ॥

उभयापि वरो ह्येतो राक्षसीना नृपात्मज ॥ ३० ॥
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूति सद्य एव च ।

इत्यार्षे धीमन्त्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्थं सर्गः ॥ ४ ॥

इत प्रकार जीवात्मीनिर्मित इपरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

सुकेशके पुत्र माल्यवान्, सुमाली और मालीकी सतानोंका वर्णन

सुकेश धामिक हृष्टा वल्लभ च राक्षसम् ।

ग्रामणीनाम गन्धर्वो निधायसुसमप्रभः ॥ १ ॥

तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरियात्मजा ।

त्रिषु लोकेषु विद्यमाता रूपयौनसादालिनी ॥ २ ॥

ता सुकेशाय धमात्मा द्यौ रक्ष प्रिय यथा ।

(आगत्यगी रहते हैं—युवदन) । तदनन्तर एक

दिन निधायनुके समान तन्त्रीय ग्रामणी नाम गन्धर्वो राक्षस
सुकेशको धमात्मा तथा वर्याता वैभवंसे सम्प्रभ देव अपनी
देववती नामक कन्यारा उसके साथ ब्याह कर दिया । वह
बन्या दूसरी लक्ष्मी समान दिव्य रूप और यौनसे सुगोमित
एव तीनों लोकमें विख्यात थी । धमात्मा ग्रामणीने राक्षसीकी
मूर्तिमती राक्षसीने समान देववतीरा साथ सुन्दर शयन
दे दिया ॥ १२३ ॥

धन्वान्तृत्तैर्धर्म्यै सा त प्राप्य पतिं प्रियम् ॥ ३ ॥

आसीद् देववती सुप्रधन प्राप्येव निर्धनः ।

वरदानमें मिल हुए देववती सम्प्रभ प्रियतम पतिने
पाकर देववती बहुत सुख दुःख, माना विभी निषनने वनकी
राशि मिल गयी ॥ ३३ ॥

स तथा साद मयुगे रराज रजनीचर ॥ ४ ॥

अक्षनाभिनियन्त वरेण्येय महागज ।

वैव अश्व नाम दियावने उदयन कोट महान् गज
विभी इषिनीने साथ शोभा पा रहा दो, उभी तरह वह राक्षस
लक्ष्य बन्या देववती साथ रहकर अधिक शोभा पान लगा ॥

सद्य एव वय प्राप्ति मातुरेव वय समम् ॥ ३१ ॥

‘राजकुमार । तत्त्वत्वात् पार्वतीजीने भी यह वरदान दिया
कि आजमे राक्षसीमें जल्दी ही गर्भ धारण करेंगी फिर शीघ्र ही
उसका प्रसव करेंगी और उनका पैदा किया हुआ बालक तत्काल
बनकर माताक ही समान अवस्थाना हो जायगा ॥ ३० ३१ ॥

तत सुकेशो वरदानमर्पित

प्रिय प्रभो प्राप्य हारस्य पार्वत ।

चचार सर्वत्र महान् महामति

सद्य पुर प्राप्य पुरदरो यथा ॥ ३२ ॥

‘विगुल’का वह पुत्र सुकेशने नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

वह बड़ा बुद्धिमान् था । भगवान् ‘नन्दरा’ वरदान पानेसे
उसे बड़ा गर्व हुआ और वह उन परमेश्वरक पावसे अद्भुत
सम्पत्ति एव आकाशचारी विमान पाकर देवराज इन्द्रकी
भौति सर्वत्र अबाध-गतिसे निचरने लगा ॥ ३२ ॥

सत फाले सुकेशस्तु जनयामास राघव ॥ १ ॥

चीन् पुत्राज्जनयामास प्रेताग्निसमप्रिग्रहान् ।

रघुनन्दन । तन्त्रन्तर समय आनकर सुकेशने देववतीके
गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जो तीन अनिमोक्त समान
तेजस्वी थे ॥ १३ ॥

माल्यवन्त सुमार्ति च मालि च यलिना वरम् ॥ ६ ॥

ग्रीष्मिनेत्रसमान् पुत्रान् राक्षसान् राक्षसाधिप ।

उनके नाम थे—माल्यवान्, सुमाली और माली । माली
बलानोंमें श्रेष्ठ था । वे तीनों विनेत्रचारी महादेवजीके समान
ग्रीष्माली थे । उन तीनों राक्षसपुत्रोंको देवराज राक्षसराज
सुकेश बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ६३ ॥

प्रयो लोका इवायम्रा स्थितास्त्रय इवास्त्रय ॥ ७ ॥

प्रयो भन्ना इवात्युमास्त्रयो घोरा इवास्त्रय ।

ये तीनों लोकोंमें समान सुखिर, तीन अनिमोक्त समान
तेजस्वी, तीन मन्त्रों (‘निर्घो’ अथवा ‘मन्त्र’) के समान उग्र
तथा तीन रोगों के समान अलन्त भयकर थे ॥ ७३ ॥

१ माहेश्वर अक्षनीय और दक्षिणानि ।

२ प्रभु शक्ति उग्राह नाक तथा ‘नन्दरा’—‘नन्द’ तीन
अर्थात् ३ ।

३ ‘नन्द’, ‘नन्द’ और ‘नन्द’—ये तीन वे ३ ।

४ ‘नन्द’ शक्ति और ‘नन्द’—इन्ने प्रयोगे उग्र अर्थात्
‘नन्दरा’ १ १ १ ।

प्रथमं सुकेशस्य सुताश्वेताश्विनमतेनस ॥ ८ ॥
विपुलिमगमस्तत्र याधयोपेभिता इव ।

सुकेशः य तानां पुत्र विविधं अश्विनं समानं तवन्वी
य । य यहाँ जमी तरह बचन लगे हैं उन्हीं उन्हीं दसा न
करनेने रग बन्त हैं ॥ ८ ॥

यथाप्रतिपितुस्तत्र ह्यर्धभयं तपोरलात् ॥ ९ ॥
तस्मिन् गता मत्त आनर इतिविधया ।

उहाँ जब य मत्त हुआ कि इनकर पिताका तप
इस कारण एत एकाकी प्राप्ति हुई है, तब वे नीचों भा
तन्ना करनेका निधय करके नैरपत्त कर ॥ ९ ॥

प्रयुष्ट नियमान् धामान् गवस्ता नृपसत्तम ॥ १० ॥
विद्येयस्ते तयो घोरा सर्वभूतभयाहम् ।

वृष्टेष्ट । वे सख बगै भनकर निमोरा मत्त कर
कर मत्त करने लगे । उन्हीं यह तप्या समस्त प्राणियोंका
भन देनाली था ॥ १० ॥

सत्याचारशमोपपन्नलोभभुवि हर्षम् ॥ ११ ॥
सतापयस्तर्जोहोरात् सत्यासुरमानुषात् ।

सत्य सत्या ए मत्तजन अदिने सुव तरह द्राप,
म नृपत्त दृष्टम् ॥ ११ ॥ अश्विन और मनुष्यों
कहत तीनों धर्मोंका सक्त करने लगे ॥ ११ ॥

ततो विमुद्यतुरन्वो रिमानरगमाश्रित ॥ १२ ॥
सुपेदापुत्रानामन्य चरन्तेऽस्मीयभायत ।

तब चार मुक्तका भगवान् तन्ना एक भेद रिमानर
कर कर कों गय और मुक्तका पुत्रोंका सभारित कर
कर—मैं तुम्हें कर देनेक लिय आ । हूँ ॥ १२ ॥

प्रह्लाण उरद्वान्या स्रष्टुर्देवगणपुत्रम् ॥ १३ ॥
ऊचु प्राञ्जल्य सर्वं वेपमाना इव दुमा ।

इत् आदि देवोंके निर हुए करदायक ब्रह्मादीका
अथा जान य सत्य सब वृष्टेन समान बौवत हुए द्राप
करकर बन्त—॥ १३ ॥

तपसाऽऽराधितो देव यदि नो दिशाने वरम् ॥ १४ ॥
अजेया शत्रुस्त्रासस्तत्र त्रिरजीविन ।

प्रभविष्णो भगवन्ति परम्परमनुजता ॥ १ ॥
देव । कर् आर हवादी तन्नाने अरुपित एव सपुत्र
हानर हने का देना चाहत हैं ना एसी कृपा कीदि, जिसे
हने कर पदत न कर सक । इन शत्रुओंका वष करनेमें
मनयः रिस्त । तथा प्रभविष्णो हो । मय हा हम्पत्तेने
पत्तार प्रन वता १६ ॥ १४ १५ ॥

एव भरिष्येधेयुक्त्या मुपदन्तनयात् विमु ।
स ययौ प्रभगेकाय द्रष्टा प्राह्लाणसत्त ॥ १६ ॥

य सुनकर प्रह्लाणे कहा—धुन एते ही हभगे ।
मुक्तका पुत्रोंका एका करकर प्राप्ति का ब्रह्मादी द्रष्टा
का चर कर ॥ १६ ॥

यत्तत्तानु त त सर्वे राम रात्रिगलता ।
सुरासुगान् प्रसाधत वरान्तनुनिभया ॥ १७ ॥

अथान । कर पात्र वे सब निशान उत दत्तानने
अन्त निमर हा दत्ताओं का अनुभवा न दत्त कर
दने लगे ॥ १७ ॥

तैरप्यमानास्त्रिदशा सन्निवृत्ता सारणा ।
प्रातां नाशिन्युच्छन्ति निग्यस्या यथा नरा ॥ १८ ॥

उनकर दृष्ट साने तान हुए सारा, सन्निवृत्त
और प्रातः नरकेमें पड़े हुए मनुष्यों समान रिस्त
रुक्त दा सत्तक नों पने थ ॥ १८ ॥

अथ ते पि उन्मणा क्षिपिन्ता वरमयम् ।
ऊचु समेय सृष्टा रागसा रघुसराज ॥ १९ ॥

सुगुण्यमने । एक लिय सि मत्त मत्तार्थमें । पु
अन्तिना विध्वंसार पात्र पात्र द रान्न हए और
मत्तमे मरकर बन्त—॥ १९ ॥

ओनस्तनोदरगता महामामानतन्ना ।
गृहपता भगानेन त्रेता हन्यमितम् ॥ २० ॥

अस्माकमपि तावत् एव गृह कुर महामत ।
हिमगलमुपाश्रित्य मेरु मरमेरु या ॥ २१ ॥

महामत । उ अत्र, य और तन्ना हने
का नाना हैं, उन दत्ताओंके पि और ही अनी गवन
मत्तान्तिन मत्तका निमाव करत हैं और इन पि
भी अत रिमाल्य, न आया मद्गल्लर करकर भगवान्
गृहकर दिन भनकर माने एक सि निमावारा
निमाव कीदि ॥ २० २१ ॥

विषयमा तवमनया रात्रस्ता महाभुव ॥ २२ ॥
निगाम कथयामास शत्रुन्येयामगवताम् ।

य सुनकर महापुत्र शत्रुनने उन शत्रुका एक
एने निमावारा वन दत्त, हा करकर अगवताका
भी लिय रनेवा था ॥ २२ ॥

इतिप्रमोदधेर्लीरि विष्टा नाम परत ॥ २३ ॥
सुतेर इति व्याप्यो द्वितीयो रात्रमभर ।

(ये बन्त—) व्याप्यो । द्वितीयो रात्रमभर
विष्टा नामक पत्र है और दूसरा सुत नाना विष्टा
का ॥ २३ ॥

निगरे तस्य गैलस्य मयमेऽनुदयनिने ॥ २४ ॥
शत्रुर्नरपि दुष्याप टटिप्रतुर्दिता ।

निगदोत्तारिस्ताता शत्रुजननाता ॥ २५ ॥
सप्राप्तारसशाना हेमतापमशुत ।

मया लुहेति नगरी शत्रुना निमिता ॥ २६ ॥
मया रिस्तारक हा रिस्तार—॥ २६ ॥

करा नरक मत्त न ना रिस्ता मय दे तन्ना रिस्तार
करा नरक मत्त न ना रिस्ता मय दे तन्ना रिस्तार

ओर आश्रय टॉसीन का दिव्य गय है, अतएव जहाँ
पक्षियों के लिए भी पहुँचना कठिन है, मने इन्द्रकी आश्रम
लङ्का नामक नगरीका निमाण किया है। यन् नील योजन चौड़ी
ओर सौ योजन गूँधी है। उमर चारों ओर मनेनी चहार
दीवारी है और उसमें मनेके ही फाटक लगें हैं ॥ २४-२६ ॥
तस्या वसत दुधया यूय गक्षसपुंगवा ।
गमराजती समासाद्य सद्मा इव दिगंक्स ॥ २७ ॥

(दुधपय राक्षसशिरोमणियाँ । जैसे इन्द्र आदि देवता
अमरावतीपुरीका आश्रय लेकर रहते हैं, उनी प्रकार तुम
संग भी उस सङ्कापुरीम जाकर निवास करो ॥ २७ ॥

सङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैवमुभिर्यता ।
भगिष्यथ दुराधया शङ्खणा शमुसुवना ॥ २८ ॥

(शमुसुवने वीरे । लङ्काके दुर्गका आश्रय लेकर बहुतने
राक्षसोंके साथ जय व्रम निवास करोगे, उस समय शमुओंके
लिये तुमपर विजय पाना अत्यन्त कठिन होगा ॥ २८ ॥

विश्वकर्मेवच श्रुत्वा ततस्ते गक्षसोत्तमा ।
सहस्रात्रुधरा भूत्वा गन्ता तामघमन्त पुरीम् ॥ २९ ॥

(विश्वकर्माकी यह बात सुनकर व ओर राक्षस सहस्रों
अनुचरोंके साथ उस पुरीम जाकर बस गये ॥ २ ॥

दृढमाकारपरिखा हैमर्षहशतैर्युताम् ।
लङ्कामवाप्य ते हृष्टा न्ययसन् रजनीचग ॥ ३० ॥

उसकी खाई और चहारदीवारी बड़ी मजबूत कनी थी ।
मानेके सैकड़ों महत् यन् नगरीकी गोभा बना रहे थे । उम
लङ्कापुरीमें पहुँचकर व निगावर बड़े हयक साथ बहों
रहने लगे ॥ ॥

एतस्मिन्नेव कां तु यथाकाम च राघव ।
गमदा नाम गन्धर्वी उभूय श्चुनन्त ॥ ३१ ॥

तस्या कन्याश्रय ह्याम्नाद्धीय्रीतीनिसमधुति ।
ज्येष्ठक्रमेण स्या तथा गन्धमानामगन्धमी ॥ ३२ ॥

कन्यास्ता प्रददौ ताम पूषचन्द्रनिभानना ।

शुचिलनन श्रीगम । इहा निनी तामा तामरी एक
गन्धर्वी थी । उमर नील रंग्याँ दूहे, ज हाँ भी और
कीर्तिके व समान गाभासम्पन्न था । इनकी माता यगति
राक्षसी महा भी गा भी उमने अपनी कवित्र अनुष्ण मरुगर
उा तीनों राक्षसजनीय पुत्रोंके साथ अपनी कन्याभारा
यष्ट आदि अगम्यार व्युत्तार विवाह कर दिया । उ कन्याएँ
बहुत प्रसन्न थी । उनका सुवर्णन चामाके समान मनाहर । ॥
प्रयाणा गमसे द्राणा निन्वा गन्धयस्यसा ॥ ३३ ॥

दद्या माया महाभाग्या नमश्च भग्नैश्चन ।
माता तमदाने उत्तरात्ता । तत्रात्रे न तना मग

भाग्यवती गन्धर्वी कन्याओंका उन तीनों राक्षसराजका हाथम
दे दिया ॥ ३३ ॥

शतद्वारास्तु ते राम सुपेक्षतनयास्तथा ॥ ३४ ॥
चिक्रीडु सह भावाभिरप्सरोभिरिवामरा ।

श्रीराम । मैंने देवता अप्सराजान् साथ प्रीड़ा वगत् है
उसी प्रकार सुन्दर पुत्र विवाहके पश्चात् अपनी उन पतिवरा
का उ रहकर लैकि सुवक्र उपभाग करने लगे ॥ ३४ ॥

ततो माल्यवतो भावा सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥ ३५ ॥
स तस्या जनयामास यदपत्य निरोध तन् ।

उमर माल्यवान्की स्त्रीका नाम सुन्दरी था । वह अपने
नामक अनुरूप ही परम सुन्दरी थी । माल्यवान्ने उमर गर्भम
जिन सनानोंके जन्म दिया, उन्हें बता रहा हूँ, मुनिय ॥

वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुसलैव राघवस ॥ ३६ ॥
सुसन्धो यक्षकोप्य मसोमसौ तथैव च ।

भनला चाभवत् कन्या सुन्दर्या नाम सुन्दरी ॥ ३७ ॥
वज्रमुष्टिः विरूपाक्षः रक्षत दुर्मुखः सुसन्धः यक्षकोपः मसः
और उमसत्—ये छत पुत्र थे । श्रीराम । वज्र अतिरिक्त
सुन्दरीके गमसे भनला नामवाली एक सुन्दरी कन्या भा
उत्पन्न हुई थी ॥ ३६ ३७ ॥

सुमालिनोऽपि भार्याऽऽसीत् पूर्णचन्द्रनिभानना ।
नाम्ना केतुमती राम प्राणेश्योऽपि गरीयसी ॥ ३८ ॥

सुमालीकी पत्नी भी बड़ी सुन्दरी थी । उसका मुख पूर्ण
चन्द्रमाके समान मनाहर और नाम केतुमती था । सुमालीका
यह प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी ॥ ३८ ॥

सुमाली जनयामास यदपत्य निशाचर ।
केतुमत्या महाराज तन्निरोधानुपूर्वश ॥ ३९ ॥

महायन् । निगावर सुमालीने केतुमान्का गर्भमे जा
सगाने उत्पन्न की था, उनका भी क्रमश परिवर्तन किया जा
जा रहा है, मुनिय ॥ ॥

प्रदस्तोऽकम्पतथैव विफट कालिकासुर ।
धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपादश्च महाबल ॥ ४० ॥

सहाति प्रवसद्वैव भासकण्ठश्च रामस ।
राका पुष्पात्कटा चैव कैंकरी च मुचिसिता ॥ ४१ ॥

कुम्भीनमी च ह्येतं सुमात्रे प्रसथा स्मृता ॥ ४२ ॥
प्रह्लः अरुन्धः रिशः कालिकासुरः, धूम्राक्षः दण्डः
महाबली सुपादः, सहातिः, प्रस तथा रामस भासकण्ठ—य
सुमालीने पुत्र थे और राका, पुष्पात्कटा, कैंकरी और
कुम्भीनमी—य चार पतिव सुमानवाली उमरी कन्याएँ
थीं । ये सब सुमाणीकी सगनें बतायी गयी हैं ॥ ४०-४२ ॥

मालेस्तु सुमुदा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी ।
भावात्म्या पद्मपद्मास्ती स्वामी यक्षीरगोपमा ॥ ४३ ॥

मालीकी पत्नी गन्धर्वीकन्या सुमुदा थी, जो अरुन्ध
मालेद्वयसे सुगमिनी होती थी । उमर नमः प्रह्लः क्रममे

० के गन दिये हैं । जो कनक रंग का गन्धामय है और
कैरि रंग की कन्या का नाम है ।

समान विनाल एव सुन्दर ये । यह श्रेष्ठ यज्ञ-पलियोंने समान
सुन्दरी थी ॥ ४३ ॥

सुमालिनेजस्तस्या जनयामास यत् प्रभो ।
अपत्य कथ्यमान तु मया त्व शृणु राखन् ॥ ४४ ॥

प्रभो ! खुनन्दन ! सुमालीने छाने माई मालीने वसुदाके
गर्भसे जो सवति उत्पन्न की थी, उसका मैं वर्णन कर रहा
हूँ आप सुनिये ॥ ४४ ॥

अनलघ्नानिलघ्नैश्च हर सम्पातिरेव च ।
एते त्रिभिर्णामात्या मातेयास्ते निशाचरा ॥ ४५ ॥

अनल, अनिल, हर और सम्पाति—ये चार निशाचर
मालीके ही पुत्र थे, जो इस समय त्रिभिर्णाम मन्त्री
हैं ॥ ४५ ॥

ततस्तु ते राक्षसपुङ्गवाख्यो
निशाचरैः पुत्रशतैश्च सद्युताः ।

इत्यापि धीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकथ्ये उत्तरकाण्डे षष्ठम सग ॥ ५ ॥

इस प्रकार धीवाल्मीकिनिमित्त आचरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें षष्ठसर्ग पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

देवताओंका भगवान् शङ्करकी सलाहसे राक्षसोंके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना
और उनसे आश्रामन पाकर लौटना, राक्षसोंका देवताओंपर आक्रमण और
भगवान् विष्णुका उनकी सहायताके लिये आना

तैर्वर्ण्यमाना देवाश्च भूयश्च तपोचना ।

भयाता शरणं जग्मुर्देवदेव महेश्वरम् ॥ १ ॥

(मर्षि अगस्त्य करते हैं—खुनन्दन ।) इन राक्षसोंने
पीड़ित होते हुए देवता तथा तपोचन श्रुति भयसे व्याकुल
हो देवाधिदेव महादेवकी शरणमें गये ॥ १ ॥

जगत्पृथग्यन्त्रकतारमन्त्रम पनरूपिणम् ।

आधारं सर्वलोकानामाराध्य परमं गुरुम् ॥ २ ॥

ते समेत्य तु कामारि त्रिपुरारि त्रिलोचनम् ।

कञ्चु प्राञ्जल्यो देवः भयगद्गदभाविणः ॥ ३ ॥

जो अगतपीछी और उदार करनेवाले, अव्यय, अव्यक्त
रूपवादी, सम्पूर्ण अगतके आधार, आराध्य देव और परम
गुरु हैं, उन कामताशक, त्रिपुराविनाशक, त्रिनेत्रवादी भगवान्
घिनेने पास आकर व सब देवताहाथ जोड़ भयसे गद्गदवाणीमें
बोले—॥ २ ॥

सुखेदापुत्रैर्भगवन् पितामहरोद्धतैः ।

प्रजापत्यश्च प्रजा सखा याप्यन्ते त्रिषुवाधनैः ॥ ४ ॥

भगवन् ! प्रजानाथ ! ब्रह्माश्रीके वरदानसे उत्पन्न हुए
सुखेदाय पुत्र 'गुप्त'ोंका पीढ़ा देनेवाले सखनादाय सम्पूर्ण
प्रजाको बढ़ा बढ़ पहुँचा रहे हैं ॥ ४ ॥

शारण्याव्यशारण्यानि शास्त्रमाणि हृतानि न ।

समाद्य देवान् प्रच्याव्य सर्वं ब्रह्मन्ति देवयत् ॥ ५ ॥

सुरान् सहेद्रानृगिनामयश्चान्

यथाधिरे सान् यदुकीयदपिना ॥ ४६ ॥

माल्यवान् आदि तीनों श्रेष्ठ राक्षस अपने सैन्हों पुत्रों
तथा अन्यत्र निशाचरोंके साथ रहकर अपने बाहुबलसे
अभिमानसे युक्त हो इन्द्र आदि देवताओं, ऋषियों, नागों तथा
यक्षोंको पीड़ा देने लगे ॥ ४६ ॥

जगद्भ्रमन्तोऽनिलयद् दुरासदा

रणेषु मृत्युप्रतिमानतजसः ।

वरप्रदानादपि गर्विता भूश

ब्रतुमियाणा प्रशमकरा सदा ॥ ४७ ॥

वे वायुकी मौति करे सत्कारमें विचरनेवाले थे । मुझमें
उन्हें जितना बहुत ही कठिन था । व मृत्युने तुल्य तेजस्वी
थे । वरदान मिल जानेसे भी उनका घमण बहुत बढ़ गया
था अत वे यथादि क्रियाओंका सदा अव्यक्त विनाश किया
करते थे ॥ ४७ ॥

स्वको शरण देने योग्य जो हमारा आश्रम थे, उन्हें उन

राक्षसोंने विनाश कर दिया नहीं रहने दिया है— उबड़ बाल है ।

देवताओंको स्वर्गसे हटाकर वे स्वयं ही यहाँ अधिपति बसाये
गैठ हैं और देवताओंकी मौति स्वर्गमें निहार करते हैं ॥ ५ ॥

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराजहम् ।

अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम् ॥ ६ ॥

इति माली सुमाली च माल्ययाश्चैव राक्षसाः ।

याधन्व समरोद्धया ये च तथा पुर सग ॥ ७ ॥

माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते
हैं—मैं ही विष्णु हूँ मैं ही रुद्र हूँ मैं ही ब्रह्मा हूँ तथा मैं
ही देवराज इन्द्र, यमराज, वरुण चन्द्रमा और सूर्य हूँ । इस
प्रकार अहंकार प्रकट करते हुए वे सगदुर्ज्ञेय निशाचर तथा
उनके अग्रगामी सैनिक हमें बढ़ा बढ़ दे रहे हैं ॥ ६ ॥

तन्नो देव भयानानामभयं दानुमहसि ।

अशिर यपुरास्याय जडि ये देवकण्टकजम् ॥ ८ ॥

देव ! उनमें भयसे हम बहुत पराये हुए हैं, इगर्ज्य
आय हमें अभयदान दीजिये तथा रौद्र रूप धारण करने
देवताओंके लिये कण्टक बने हुए उन राक्षसोंका उदार
श्रीजिये ॥ ८ ॥

इत्युनस्तु सुरैः नयै कपर्दी नीलनेदित ।

सुखेदा प्रति क्षापेयं प्राह दयमानः प्रभु ॥ ९ ॥

समस्त देवताओं ऐसा कहनेपर नील एव लोहित वण
वाल जगज्जटाघाटी भगवान् शंकर मुनेश्वरने प्रति अनिष्टता
रखनेके कारण उनसे इत प्रभार पाले— १९ ॥

अहं तान् न हनिष्यामि ममाख्याहि तेऽसुरा ।
किं तु मत्र प्रदास्यामि यो वै तान् निहनिष्यति ॥ १० ॥

देवगण । मैंने सुकान् जीवनकी रक्षा की है । वे असुर
मुनेश्वर ही पुत्र हैं इसलिये मेरे द्वारा मारे जाने योग्य नहीं
हैं । अतः मैं तो उनका वध नहीं करूँगा परतु तुम्हें एक
ऐसे पुरुषके पास जानेकी सलाह दूँगा जो निश्चय ही उन
निशाचरोंका वध करेगा ॥ १० ॥

यत्तमेव समुपोग पुरस्कृत्य महर्षय ।
गच्छन् धारण विष्णु हनिष्यति स तान् प्रभु ॥ ११ ॥

देवताओं और महर्षियों । तुम इसी उपागमों सामने
रखकर तत्काल भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ । वे प्रभु
अनश्य उनका नाश करेंगे ॥ ११ ॥

ततस्तु जयशब्देन प्रतिपद्य महेश्वरम् ।
निष्णो समीपमाजमुनिं शास्त्रभयादिता ॥ १२ ॥

यह सुनकर सब देवता जय-जयकारने द्वारा महेश्वरका
अभिनन्दन करके उन निशाचरों भयसे पीड़ित हो भगवान्
विष्णुके समीप आये ॥ १२ ॥

शङ्खचक्रधर देव प्रणम्य बहुमान्य च ।
उच्च समभ्रान्तर्द्ध धान्य सुकेशतनयान् प्रति ॥ १३ ॥

शङ्ख चक्र धारण करनेवाले उन नारायणदेवको नमस्कार
करके देवताओंने उनसे प्रति बहुत अधिक सम्मानका भाव
प्रकट किया और सुकेशके पुत्रों विजयम् वही पश्यहटके
साथ इत प्रभार पड़ा— १३ ॥

सुकेशतनयैर्देव निमित्तेतामिसनिभै ।
धामन्य परदानेन स्थानान्यपहतानि न ॥ १४ ॥

देव । मुनेश्वर तीन पुत्रविशिष्ट अनिष्टान् हृत्त्य तेनन्वी
हैं । उन्होंने परदानके बलमें आक्रमण करके हमारे स्थान छीन
लिये हैं ॥ १४ ॥

लङ्का नाम पुरी दुर्गा त्रिवृट्टादिगरे स्थिता ।
तत्र स्थिता प्रयाधन्ने स्वान् न क्षणदायरा ॥ १५ ॥

त्रिवृट्पत्तनं शिवरपरं जलं लङ्का नामगाली दुर्गम्
नगरी है, वही रहकर वे निगाहर हम सभी देवताओंको केश
पट्टेनाते रहते हैं ॥ १५ ॥

स त्वमस्मद्विनाशाय जदि तान् प्रभुसुदृढ ।
धारण स्या यद्य प्राप्ता गतिर्भव मुनेश्वर ॥ १६ ॥

अमुकोका यद्य करें । देवेष्वर । हम आरही शरणमें आये हैं ।
आप हमारे अभयपता हों ॥ १६ ॥

यद्वृत्तात्यक्मलान् निवेद्य पनाय त्रै ।
रजभयशङ्का नान्योऽस्ति भजता शिवा ॥ १७ ॥

अपने चरते उनका कमलोपम मस्तक का
यमराजको भेंट कर दीजिये । आपने शिवा दूषण
नहीं है, जो इत भयके अवसरपर हमें अभय
पते ॥ १७ ॥

राक्षसान् समरे हृथन् सानुयधान् मदोद्धतान्
नुद त्व नो भय देव नीहारमिव भास्कर ॥

देव । वे राक्षस मदसे मतगत हो रहे हैं । इ
देकर हमसे दूरे नहीं समाते ह अतः आप रामरात्रणमें
सम्पत्तिप्राप्तित उनका वध करके हमारे भयको उठी तरह
कर दीजिये, जैसे सूर्यदेव कुदरेको नष्ट कर देते हैं ॥ १८ ॥

इत्येष देवतैश्च देवदेवो जनार्दन ।
अभय भयदोऽरीणा दृष्ट्वा देवानुवाच ह ॥ १९ ॥

देवताओंके देख रहनेपर शत्रुओंको भय देनेवाले
देवाधिदेव भगवान् जनार्दन उन्हें अभय दान देकर
बोले— ॥ १९ ॥

सुकेश राक्षस जाने ईशानरदर्पितम् ।
ताद्यास्य सनयाचाने येया ज्येष्ठ स मात्यगान् ॥ २० ॥

तानह समतिश्रुतात्मयादान् राक्षसाधमान् ।
निहनिष्यामि सद्यश्च सुरा भजत विज्वरा ॥ २१ ॥

देवताओं । मैं सुकान् नामक राक्षसको जानता हूँ ।
वह भगवान् शङ्करका घर पाकर अभिमानसे उभरत हो उठा
है । इसर उन पुत्रोंको भी जानता हूँ, जिनमें मात्यगान् सबसे
बड़ा है । वे नीच राक्षस घमेली मयागका उल्लङ्घन कर रहे
हैं अतः मैं काष्ठापूर्वक उनका निनाश करूँगा । तुमलोग
निश्चिन्त हो जाओ ॥ २० ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वान् सुरा सत्र विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यथासास ययुहस्य प्रशस्तो जनार्दनम् ॥ २२ ॥

सब कुछ करनेमें समर्थ भगवान् विष्णुके इत प्रभार
आश्वासन देनेपर देवताओंको बड़ा हय हुआ । वे उन
जनार्दनकी भूरि भूरि प्रशंसा करत हुए अपने अपने स्थानों
चल गये ॥ २२ ॥

निबुधाना समुपोग मात्यगान् नृ निशाचराः ।
श्रुत्वा तौ आतरी धीरादि धनममयीन् ॥ २३ ॥

देवताओंके इत उपागमों गमाचार सुनकर निशाचर
मात्यगान्ने अपने दोनों धीर भाइयोंसे इत प्रभार कहा— २३ ॥
अमरा श्रमययन्त्रैव मगम्य किल शङ्करम् ।
मुनेनें अपा है कि देवता और शृष्टि मिलकर
हमरा श्रमययन्त्रैव मगम्य किल शङ्करम् ॥ २४ ॥

हमरा श्रमययन्त्रैव मगम्य किल शङ्करम् ॥ २४ ॥
हमरा श्रमययन्त्रैव मगम्य किल शङ्करम् ॥ २४ ॥
हमरा श्रमययन्त्रैव मगम्य किल शङ्करम् ॥ २४ ॥

सुकेशतनया देव परदानयनेक्षता ।
याधन्तऽस्मान् समुद्रह्मा धारक्या पदे पदे ॥ २५ ॥

देव । सुकेश पुत्र आपका परदानक बलमें उद्वेग

और अभिमानने उभर हा उभर है । वे भयकर रागन पग
पगपर हमलोगों का सता रह है ॥ २५ ॥

राजसैरभिभूता स्मोन शक्ता स्र प्रजापते ।

स्वेषु सन्नसु सम्प्राप्तु भयात् तेषां दुरात्मनाम् ॥ २६ ॥

‘प्रजनाथ । राजसौते पराजित होकर हम उन दुष्टों ने
भयने अपने घरों में नहीं रहने पाते हैं ॥ २६ ॥

तदस्माकं हिताग्राय जहि ताव्य त्रिलोचन ।

राज्यसाम् दृष्टेनेनैव दद प्रदहतां वर ॥ २७ ॥

‘त्रिलोचन । आप हमारे हितक लिये उन असुरोंका वध
किये । तदर्थोंमें थोड़ा दहदेव । आप अपने दुसराने हा
राजसौते नष्टकर भय कर दीजिये’ ॥ २७ ॥

इत्येव विद्वशैस्तैस्ते निशम्या चक्रस्तदा ।

शिर कर च घुंघान इह वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

‘देवताओं एका कहनेपर अधकृशु भगवान् शिवने
अन्वीष्टि सूचित करने लिये अपने शिर और हाथका हिलते
हुए इन प्रकार कहा— ॥ २८ ॥

अवध्या मम ते देवा सुकेशतनया रणे ।

मम तु त्वं प्रदाम्यामि यस्तान्त्रै निहनिष्यति ॥ २९ ॥

‘देवताओं । मुझसे पुत्र रणभूमिमें मेरे हाथमें मेरे
जाने वाल्य नहीं है, परतु मैं तुम्हें ऐसे पुरुषन पाव जानेकी
सलाह दूँगा, जो निश्चय ही उन सत्का नष्ट कर दालेंगे ॥ २९ ॥

योऽसौ चम्रगदापणि पीतवासा जनार्दन ।

हरिनारायण धीमाश्धारण त प्रपद्यथ ॥ ३० ॥

‘जिनक हाथमें चक्र और गदा सुशोभित है, जो पीताम्बर
धारण करते हैं, जिन्हें जनार्दन और हरि कहते हैं तथा जो
धीमान् नारायण नामसे विख्यात हैं, उन्हीं भगवान्की शरण
में तुम सब लोग जाओ’ ॥ ३० ॥

हरादवाप्य ते मम कामारिमभिग्राह च ।

नारायणालय प्राप्य तस्मै सर्वं न्ययेदयम् ॥ ३१ ॥

‘भगवान् झटकर सब सलाह पाकर उन कामदाहक
महादेवकी प्रणाम करके देवता नारायणके घाममें जा पहुँचे
और वहाँ उड़ाने उनसे सब बातें बतायी ॥ ३१ ॥

ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रपुरुगमा ।

सुरारिस्तान् हनिष्यामि सुगं भवत निभया ॥ ३२ ॥

‘तब उन नारायणदेवने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—
‘देवराज । मैं उन दकःद्रिदियोंका नाश कर दालूँगा, अब तुम
लोग निभय हो जाओ’ ॥ ३२ ॥

देवाना भयभीताना हरिणा गन्धस्यभी ।

प्रतिज्ञानो यथोऽस्माकं चिन्त्यता यदिह क्षमम् ॥ ३३ ॥

राजगिरामणि । इस प्रकार भयभीत देवताओंके
समक्ष भीहने हमें मारनेकी प्रतिज्ञा की है अब अब इस
विषयमें हमलोगों लिये जो उचित कर्तव्य है, उसका विचार
करना चाहिये ॥ ३३ ॥

हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषा च सुरद्विषाम् ।

नमुचि कार्त्तनेमिष्य सहादो वीरमत्तम् ॥ ३४ ॥

गच्छेयो यदुमायी च लोस्पागेऽय धार्मिन् ।

यमलार्जुनौ च हार्दिक्य गुम्भश्च निगुम्भश्च ॥ ३५ ॥

असुरा दानादवैव सत्त्वन्तो महाबला ।

सर्वे समरमासाय न श्रूयन्तेऽपरान्तिता ॥ ३६ ॥

‘हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवगर्ही देवोंकी मृत्यु इन्हीं
विष्णुक हाथमें हुई है । नमुचि कार्त्तनेमि दीर्घायामणि
सहादो नाना प्रकारकी माया जाननेवाला राधन, धमनिद्र
लोस्पागे, यमक-अनुज हार्दिक्य गुम्भ और निगुम्भ आदि
महाबली गतिगामी समस्त असुर और मानव समस्तभूमिमें
भगवान् विष्णुका सामना करन ‘साकन न हुए हा एना
नहीं मुना जाना ॥ ३४-३६ ॥

सर्वं प्रतुशतरिष्ट सर्वं मायाविदस्तथा ।

सर्वं सत्त्वान्कुशला सर्वं शत्रुभयम् ॥ ३७ ॥

‘उन सभी असुरोंने संझा यह कि य । व सब क-सब
माया जानत थे । सभी सम्पूर्ण अन्धकार कुशल तथा गुनुओं
लिये भयकर थे ॥ ३७ ॥

नारायणेन निहता शतशोऽय सहस्रदा ।

पन्तारा तु सर्वेषां मम कर्तुमिहाह्वय ।

दुःख नारायण जेतु यो नो हतुमिहेऽत्रति ॥ ३८ ॥

ऐसे संझों और हजार असुरा नारायणदेवने मीरन
पाव उतार दिया है । ॥ बातों जानकर हम मदन लिये जा
उक्ति कन य ह’ बड़ा करना चाहिये । जो नारायणने हमारा
वध करना चाहते हैं उन्हें जानना अन्धकार हुआ कर
है ॥ ३८ ॥

तत सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यन्तो यः ।

कचतुभ्रातर ज्येष्ठमदिनानि चानयम् ॥ ३९ ॥

मान्यवान्की यह बात सुनकर सुमारी और माल्य भरने
उन वध मारने उन्हीं प्रकार बन्द, बने जाना अग्निदुमार
देवराज हमने जानाकर कर रहे हैं ॥ ३९ ॥

स्वधीत दक्षमिष्ट च ऐश्वर्यं परिपालितम् ।

आयुर्निरामय प्राप्य सुधम म्यापिन पथि ॥ ४० ॥

वे बाल-राजमराज । हमलोगों ल्यापार नान और
या लिये हैं । ऐश्वर्य की रक्षा तथा उत्तर उत्तरमा भी किया
है । हमें राग-व्याधिमें रहित आयु प्राप्त हुई है और हमने
कन-भागमें उत्तम धमरी ल्यापार की है ॥ ४० ॥

देवमागममोभ्य दार्य ममरागाह च ।

निता द्विगो द्यप्रतिमास्तथो मृत्युगन्त भयम् ॥ ४१ ॥

पहा नहीं हमने अपने राजराज का देवमागम ।
अगल मनुमें प्रवेश करन एने एन गुनुभार विरार गान
है जो वीरतामें अन्ना मनी नहीं रखत । अब हमें मृत्यु
कर भय नहीं है ॥ ४१ ॥

नारायणश्च रद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा ।
 अस्माकं प्रमुखे स्थातु सर्वे विभ्यति सर्वदा ॥ ४२ ॥
 'नारायण, रुद्र, इन्द्र तथा यमराज ही क्यों न हों, सभी
 सदा हमारे सामने खड़े होनेमें इच्छते हैं ॥ ४२ ॥
 त्रिणोद्वैपस्य मास्त्येय कारण राक्षसेश्वर ।
 देवानामेव क्षेपेण त्रिणो प्रचलित मन ॥ ४३ ॥
 'राक्षसेश्वर ! त्रिणुके मनमें भी हमारे प्रति द्वेषना कीज
 कारण ता नहीं है । (क्योंकि हमने उनका वाद अपराध नहीं
 किया है) फल देवताओं-चुगली जानेसे उनका मन
 हमारी आरसे तिर गया है ॥ ४३ ॥
 तस्मादद्यैव सहिता सर्वेऽन्योन्यसमावृता ।
 देवानेव जिघात्सामो येभ्यो दाय समुत्थित ॥ ४४ ॥
 'इसलिये हम सब लाभ एतन्न ही एक दूसरेकी रक्षा करते
 हुए साथ-साथ चलें और आज ही देवताओंका वध कर
 डालनेकी चेष्टा करें, किन्तु कारण यह उपद्रव रक्षा हुआ है ॥
 एव सम्मन्य बलिन सर्वेऽन्योन्यसमावृता ।
 उद्योग घोषयित्वा तु सर्वे नैर्भृतपुंगवा ॥ ४५ ॥
 युद्धाय निययु मुद्धा जम्भवृत्रादयो यथा ।
 ऐका निश्चय करक उन सभी महाबली राक्षसपतियोंने
 युद्धके लिये अपने उद्योगकी घोषणा कर दी और समूची
 सेना साथ ले जम्म एव वृत्र आदिनी मूर्ति कुपित हो वे युद्धके
 लिये निकले ॥ ४५ ॥
 इति ते राम सम्म 'य सर्वोद्योगेन राक्षसा ॥ ४६ ॥
 युद्धाय निययु सर्वे महाकाया महाबला ।
 श्रीराम ! पूर्वोक्त मन्त्रणा करने उन सभी महाबली
 निशालराय राक्षसने पूरी तैयारी की और युद्धक लिये बूच
 कर दिया ॥ ४६ ॥
 स्यन्दनैवारणैर्द्वैव हयैश्च करिसनिभैः ॥ ४७ ॥
 खरैर्गोभिर्योदैश्च शिगुमारभुग्नगमैः ।
 मकरैः फच्छलैर्मनिर्विहर्गैर्गरुडोपमैः ॥ ४८ ॥
 सिंहल्याघ्रैश्चराहैश्च रुमरैश्चमरैरपि ।
 त्यक्त्या लङ्का गता सर्वे राक्षसा बलगर्विता ॥ ४९ ॥
 प्रयाता देवलोकाय योद्धु दैवतशत्रव ।
 अपने बनगा घमंड रखनेवाले वे समस्त देव
 श्रेही राक्षस रथ, हाथी, हाथी जैसे पाई गन्धे बैल, ऊँट,
 शिगुमार, सर्प, मगर, बज्रुआ, मत्स्य, गरुड-तुल्य पक्षी,
 सिंह, बाघ, सुअर, भृग और नीलगाय आदि वाहनोपर सवार
 ॥ लङ्का छोड़कर युद्धक लिये देवलोककी ओर चल दिये ॥
 लङ्कात्रिपथय दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ॥ ५० ॥
 भूतानि भयदर्शीनि निमनस्कानि सज्जता ।
 लङ्गामे रतोरा' को प्राणी अपना सामदेवता आदि
 थे, वगर अनाजुन आदिने द्राघ लङ्काके भानी निपसके
 देवतर भयान अनुभय करते हुए मन ही-मन शिष्य हो उठे ॥

रयोचमैरुह्यमाना शतशोऽथ सहस्रश ॥ ५१ ॥
 प्रयाता राक्षसास्तूर्ण देवलोक प्रयन्त ।
 रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्षमु ॥ ५२ ॥
 उत्तम रथोपर बैठे हुए सेकड़ों और हजारों राक्षस युक्त
 ही प्रयत्नपूर्वक देवलोककी ओर बढ़ने लगे । उस नगरके
 देवता राक्षसोंके मार्गमें ही पुरी छोड़कर निकल गये ॥ ५१ ५२ ॥
 भौमाधैरान्तरिक्षाश्च कालाहता भयावहा ।
 उत्पाता राक्षसे द्राणामभावाय समुत्थिता ॥ ५३ ॥
 उस समय बालकी प्रेरणासे पृथ्वी और आकाशमें अनेक
 भयकर उत्पात प्रकट होने लगे, जो राक्षसोंके विनाशकी
 सूचना दे रहे थे ॥ ५३ ॥
 अस्त्रीनि मेघा घट्टमुदण्ण शोणितमेव च ।
 वेला समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाव्यय भूधरा ॥ ५४ ॥
 बादल गरम-गरम रक्त और हड्डियोंकी बपा करने लगे,
 समुद्र अपनी सीमाका उल्लङ्घन करर आगे बढ़ गये और
 पवन हिलने लगे ॥ ५४ ॥
 अट्टहासान् त्रिमुञ्चन्तो घनतादसमखना ।
 पादयन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुण घोरदर्शना ॥ ५५ ॥
 मषके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले प्राणी निरुद्ध
 अन्हास करने लगे और भयकर शिखरी देवराक्षी ग्रीवद्विपों
 कठोर आवाजमें चीत्कार करने लगे ॥ ५५ ॥
 सम्पतन्त्यथ भूतानि हृदयन्ते च यथाक्रमम् ।
 वृधच्चक महष्वाण प्रज्वालेशारिभिरुचैः ॥ ५६ ॥
 रक्षायणस्योपरिष्ठात् परिभ्रमति फालरत् ।
 पृथ्वी आदि भूत क्रमशः गिरत—विलीन होते-होते दिवाली
 देने लगे, गीघारा निगल समूह सुरसे आगरी ज्वाला
 उगमता हुआ राक्षसों के ऊपर फालक समान मड़रने लगा ॥
 कपोता रक्तपादाश्च सारिका विद्रुता ययु ॥ ५७ ॥
 काका वादयन्ति तत्रैव शिबाला वं क्षिपादय ।
 कबूतर, तले और मैने लड्डा छाड़कर भाग चल । फौए
 वहां बौन-कॉव करने लगे । शिल्लियों भी वहां घुराने लगीं
 तथा हाथी आदि पशु आर्तनाद करने लगे ॥ ५७ ॥
 उत्पातास्ताननादृत्य राक्षसा बलद्विपिता ॥ ५८ ॥
 यान्त्येव न निरतन्त मृत्युपाशावपाशिता ।
 राक्षस बलके घमंडमें मतगल हो रहे थे । वे झलके
 पाशमें बंध पुर थे । इसलिये उन उरतानोंकी अन्धरेलना करने
 युद्धक लिये चले ही गये, छोटे नहीं ॥ ५८ ॥
 मात्ययाश्च सुमाली च मार्गी च सुमहायल ॥ ५९ ॥
 पुरासरा राक्षसाना ज्वलिता इव पावना ।
 मात्ययाश्च मुमाली और महापक्षी माली—ये तीनों प्रवृत्ति
 अग्निने गमान तेजस्वी पक्षीसे समस्त राक्षसों के आगे-आगे
 चल रहे थे ॥ ५९ ॥
 मात्ययन्त तु त्व सर्वे मात्ययन्तमिया उलम् ॥ ६० ॥

निशाचरा आधयन्ति धानारमिष देवता ।

बैसे देवता ब्रह्माजीका आश्रय लते हैं, उसी प्रकार उन सब निशाचरोंने माल्यवान् परतर्क समान व्यर्थचल माल्यवान् का ही आश्रय ले रक्ता था ॥ ६० ॥

तद् यत्नं राक्षसेन्द्राणां महाधधननादितम् ॥ ६१ ॥

जयेत्सया देवलोकं ययौ माल्यिकेन स्थितम् ।

राक्षसोंकी वह मेना मगान् मेधोंकी गर्जनार समान कलाहल करती हुई विजय पानेकी इच्छासे देवन्दककी ओर बन्ती जा रही थी । उस समय यह मेनापनिमालीने निषाचरों में थी ॥ ६१ ॥

राक्षसानां समुयोगं तत्तु नारायण प्रभु ॥ ६२ ॥

देवदूतादुपपुन्यं चक्रे युद्धे तदा मनः ।

देवताओंक दूतने राक्षसोंक उस युद्धनिरपराध उपायकी बात सुनकर भगवान् नारायणने भी युद्ध करनेका विचार किया ॥ ६२ ॥

स सज्जायुष्यन्पूरो धैर्यनैयोपरि स्थित ॥ ६३ ॥

भासाद्य कञ्च दिव्य सहस्रार्कसमयुति ।

व सहस्रो सूर्येन समान दासिमान् दिव्य कञ्च घाटण करन बागोंसे मरा तरतब लिय गरुडपर सवार हुए ॥ ६३ ॥

आरुध्य दारुणमूषण इषुधी विमले तदा ॥ ६४ ॥

धाणिस्थं च यत्नं च विमलं कमलेक्षण ।

इसक अतिरिक्त भी उन्होंने मायसेन पूरा ही चमचनाते हुए तूफानों गोंध रहन थे । उन कमलानयन भीरुने अपनी कमरमें पगी बाँधकर उठमें चमकती हुई तलवार भी लटका ली थी ॥ ६४ ॥

शङ्खचक्रगदाशाङ्खपाङ्कजैश्च धरायुधान् ॥ ६५ ॥

सुपर्ण गिरिसकण्ठ धैर्यनैयमयाम्बिन ।

रान्सानामभावाय ययौ तूषणं प्रभु ॥ ६६ ॥

इस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा, शाङ्खचक्र और मङ्ग आदि उत्तम अशुबाँधे घाटण क्रिय सुन्दर पलवाल परतारकर गरुडपर आरुध्य हा व प्रभु उन राक्षसोंका संहार करनेन लिय तुरत चले गये ॥ ६५ ६६ ॥

इयार्ये श्रीमद्रामायण वात्सीक्याये आदिकान्वये उत्तरकाण्डे षष्ठे सर्गे ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमद्विनिर्मित आश्रयवर्ण आदिकान्वय उत्तरकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग.

भगवान् विष्णुद्वारा राक्षसोंका संहार और पलायन

नारायणगिरि ने जू गजन्तो राक्षसाम्बुदा ।

अद्वयन्तोऽस्त्रवरेण धर्मैराद्रिमम्बुदा ॥ १ ॥

(आमयस्य कृतं है—एतन्मनः)) यमं चान्द्रा ज्ञेयं

वसति निमी परीतं अन्तरा करते हैं, उसका प्रथम यमना

करत हुए थे राक्षसोंकी मर अन्तरा ज्ञेय वसति नारायण

रूपी परतर्क पीढ़ करतें लगे ॥ १ ॥

सुपर्णपृष्ठे मघभौ श्याम पीताम्बरौ हरिः ।

काञ्चनस्य गिरेः शृङ्गे सनडित्तायदो यथा ॥ २ ॥

गरुडकी पीठपर बैठे हुए व पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर

भीरुगिरिपर मेरुपरतर्क गिरपर स्थित हुए विष्णुनदीन

मेघक समान शोभा पा रहे थे ॥ २ ॥

स सिद्धिर्बहिर्महोरगैश्च

गार्धर्यस्यैरुपनीयमान ।

समाससादासुरसैन्यशत्रु

शत्रुसिद्धिर्बहिर्महोरगैश्च ॥ ३ ॥

उस समय सिद्धि, देवार्थ, वरुड नाग, गार्धन और

यज्ञ उनका गुण गा रहे थे । अनुपेकी मेनार गुरु वे भीरु

हाथोंमें दण्ड, चक्र, तलवार और शाङ्खचक्र लिय लटका

आ पहुँचे ॥ ३ ॥

सुपर्णपक्षानिलनुश्रपण

भ्रमत्पताक प्रतिक्रीडाश्रमम् ।

चमाल तद्राजसराजसैन्य

चलोपल नीलमिराचलान्त्रम् ॥ ४ ॥

गरुड पल्लोंकी तीज बाधने हाँके खाकर वह सेना शुभ

हो उठी । धैर्यपूर्ण रथोंकी पताकाएँ चक्र खाने लगीं और

सबका हाथोंमें अन्न शत्रु गिर गये । इस प्रकार राक्षसराज

माल्यवान्की सन्तुष्टि सेना काँपने लगी । उने देवदूत एक

जान पड़ता था, माना परतर्क नीच शिखर अपनी गिराईसे

विस्तारता हुआ हिल रहा हा ॥ ४ ॥

तत शिनै शोषितमासुरपरितं

युगान्तैश्चानतस्तुल्यमिन्द्र ।

निशाचरा सम्परिवाय माधन

धरपुष्पनिर्मिभिर्दुःसहजम् ॥ ५ ॥

राक्षसोंक उत्तम अन्न शत्रु तीर्थ, रक्त और माधने सन

हुए तथा प्रत्यङ्कालीन अन्तर समान दीप्तिमान् थे । उनका

द्वारा थे सहस्रो निशाचर भगवान् लक्ष्मणगिरिसे चारों ओर

घेरकर उनपर चढ़ करतें लगे ॥ ५ ॥

भगवान् विष्णुका भीरुमहोदधः समन्ततो मुनिभिः

या और अन्न दण्डोंकी या करतें हुए थे श्रेष्ठ निशाचर

रक्षक दितानी देते थे इन्द्रिय दण्ड दण्ड पलायन था, मना

अञ्जनगिरिको चारों ओरसे घेरकर मेव उसपर जलभी धारा
बरसा रहे हों ॥ २ ॥

शालभा इव फेदार भद्रका इव पाउकम् ।

ययामृतघट ददा मकरा इव चार्णवम् ॥ ३ ॥

तथा रक्षोधनुमुक्ता वज्रानिलमनोजया ।

हरि विदन्ति स शरा लोका इव विपर्यये ॥ ४ ॥

जैसे टिड्डीदल घान आदिके खेतोंमें, पत्तियों आगमें,

इव मारनेवाली मकिलियों मधुसे भरे हुए, पक्षों और मगर

समुद्रमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार राक्षसोंक धनुषमें छूट हुए

पन्न, बायु तथा मनक समान बेगवाते बाण भगवान् विष्णुके

शरीरमें प्रवेश करते इस प्रकार लीन हो जाते थे, जैसे प्रलय

कालमें समस्त लोक उर्ध्वमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ४ ॥

स्यन्दनै स्यन्दनगता गजैश्च गजमूर्धगा ।

अभ्यारोहस्तथाश्चैश्च पादास्ताभ्याम्यरे स्थिताः ॥ ५ ॥

गधपर बैठे हुए यादों, रथोंसहित, हाथीसवार हाथियोंक

साथ, घुड़सवार घोड़ोंसहित तथा पैदल पाँव पगड़े ही आकाशमें

रहे थे ॥ ५ ॥

राक्षसे द्वा गिरिनिभा शरै शनृत्यष्टिनोमरै ।

निचच्छ्रास हरिं चहु प्राणायामा इव द्विजम् ॥ ६ ॥

उन राक्षसजनोंके शरीर परतक समान बिगाल थे ।

उन्होंने सब ओरसे शक्ति, श्रुति, तोमर और बाणोंकी वर्षा

करके भगवान् विष्णुका सँस लमा बद कर दिया । ठीक उसी

तरह, जैसे प्राणायाम द्विज आसनों सेक दते हैं ॥ ६ ॥

निशाचरैस्ताड्यमानो मीनैरिव महोदधि ।

शार्ङ्गमायम्य दुधयो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान् ॥ ७ ॥

जैसे मछली महासागरपर प्रहार करे, उसी तरह वे

निगाचर अपने अस्त्र बाणोंद्वारा भीहरिपर चोट करत थे ।

उस समय हुजब देवता भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग धनुषको

सींचकर राक्षसोंपर बाण बरसना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

शरं पूणायतोत्पृष्टैर्वज्रकरपैमनोजवै ।

चिच्छेद् विष्णुर्निशितै शतशोऽथ सहस्रदा ॥ ८ ॥

वे बाण धनुषका पूर्णरूपसे छाँचकर भेड़ गये थे अत

वज्रने समान अस्त्र और मनके समान बेगवान् थे । उन

पने बाणोंद्वारा भगवान् विष्णुने सैरुड़ों और हजारों निशाचरों-

के टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ८ ॥

विद्राव्य शरपर्येण पर्य बायुव्योत्थितम् ।

पाञ्चजन्य महाशङ्ख प्रदम्भौ पुरुषोत्तम ॥ ९ ॥

जैसे हवा उमड़ी हुई बदली एवं कपाक उड़ा दती है,

उसी प्रकार अपनी बाणरगमें राक्षसोंका मगर पुरुषोत्तम

भीहति अपने पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्खका मजया ॥ ९ ॥

सोऽम्पुजो हरिणा भ्मात् स्रग्माणेन शङ्खराट् ।

ररास भीमनिहन्तैलाक्य ध्यधयनिव ॥ १० ॥

मधुप प्रणयतिने भीहरिण द्वारा मजया गया वह जल

बनित शङ्खराज मयकर आगजने तीनों लोकोंको व्यथित

करता हुआ-वा गुँजने लगा ॥ १० ॥

शङ्खराजवर सोऽथ त्रासयामास राक्षसान् ।

मृगराज इगारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ॥ ११ ॥

जैसे वनमें दहाइता हुआ सिंह मतगले हाथियोंको

भयभीत कर देता है, उसी प्रकार उस शङ्खराजकी ध्वनिने

समस्त राक्षसोंको भय और घबराहटमें डाल दिया ॥ ११ ॥

न गोकुण्ध्या सस्थातु विमदा कुञ्जराऽभयन् ।

स्यन्दनेभ्यदनुया वीरा शङ्खराधितदुर्गला ॥ १२ ॥

वह शङ्ख ध्वनि सुनकर शक्ति और साहसे हीन हुए

घाड़े युद्धभूमिमें खड़े न रह सके, हाथियोंके मद उतर गये

और वीर सैनिक रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥ १२ ॥

शङ्खचापविनिमुक्ता वज्रतुल्याना शराः ।

विदार्य तानि रक्षासि सुपुङ्गा निविशु क्षिप्तिम् ॥ १३ ॥

सुन्दर पन्थवाले उन बाणोंक मुखभाग वज्रने समान

कठोर थे । वे शार्ङ्ग धनुषसे छूटकर राक्षसोंको विदीर्ण करते

हुए पृथ्वीमें घुस जाते थे ॥ १३ ॥

भिद्यमाना शरै सख्ये नारायणकरच्युतै ।

निपेत राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव ॥ १४ ॥

सप्राणभूमिमें भगवान् विष्णुन हाथसे छूट हुए उन

बाणोंद्वारा छिन्न भिन्न हुए निगाचर वज्रक मारे हुए परतोंकी

भौति घरागायी होने लगे ॥ १४ ॥

प्रणानि परगात्रेभ्यो विष्णुचमकृतानि हि ।

अचक्षुःक्षरन्ति धाराभि खणधारा इवाचला ॥ १५ ॥

भीहरिण चरने आपातसे शत्रुओंके शरीरोंमें जो धाव

हो गये थे, उनमें उसी तरह रक्तकी धारा बह रही थी, माना

परतोंसे गैरसंभित जलरा झरना गिर रहा हो ॥ १५ ॥

शङ्खराजऽपि शाङ्खापरधस्तथा ।

राक्षसाना रवाभ्यापि प्रसृते वैष्णवो रव ॥ १६ ॥

शङ्खराजकी ध्वनि, शार्ङ्ग धनुषकी टकार तथा भगवान्

विष्णुकी मजया—इन सबके तुल्य नादने राक्षसक कोलाहल-

का दबा दिया ॥ १६ ॥

तेषा शिरोधरान् धृताञ्छरभ्यजधनूनि च ।

रथान् पताकामूर्णराधिच्छेद स हरि शरै ॥ १७ ॥

भगवान्ने राक्षसोंने पोंपत हुए मन्कों, बाणों, ध्वजओं,

धनुषों, रथों, पताकाओं और तरछोंसे अपने बाणोंसे काट

डाला ॥ १७ ॥

सुपादिष करा घोरा धायोथ इव सागरात् ।

पयतादिव नागेद्रा धारीया इव चाम्बुदान् ॥ १८ ॥

तथा शार्ङ्गविनिमुक्ता शरा मारायणेरिता ।

निधायन्तीपयस्पूर्ण शनशोऽथ सहस्रदा ॥ १९ ॥

जैसे सूर्यमें मयकर स्थिर, समुद्र जलन प्रवाह, परतोंने

बढ़ बढ़ कर और मयसे जलकी धाराएँ प्रकट होती हैं, उसी

प्रसार मगान् नारायणके चण्डे और गार्हपत्युरसे छूट हुए
सैकड़ा और हजार बाण नष्ट इधर उधर दौड़ने
लगे ॥ १८-१९ ॥

शरमेण यया सिंहा निहेन द्विगदा यथा ।
द्विगदेन यया व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यया ॥ २० ॥
द्वीपिनेन यया ध्यान गुता मानाग्रे यया ।
मानागेण यया सपा सर्पेण ययाग्वय ॥ २१ ॥
तथा ते रायमा सर्वे शिष्णुना प्रभशिष्णुना ।
श्रयन्ति द्राविताश्चान्ये गायिताश्च महानिले ॥ २२ ॥

जैसे गरमने सिंह निहे हाथी, हाथी वन जाने
वीने वीतने कुत्ते कुत्तेने रिग, रिगने बौर और बौर
चूड़ डरने भागने हैं, उसी प्रकार य या राय प्रभागा
भगान् शिष्णु की भार खार भगन लगे । उनर भगाय हुए
शुत ने राय चरागनी ह गये ॥ २०-२२ ॥

रायसाना सहस्राणि निहत्य मधुसूदन ।
घातिज पूरयामास तोयद सुरराटिज ॥ २३ ॥
सहस्र रायसांका वष ररध भगान् मधुसूदने अपने
गङ्गा पादमय्यन नसी तरह गम्भीर घनमे पूष किया, मैंने
देनराज इन्द्र मेवको बरमे भर देत हैं ॥ २ ॥

नारायणशरजस्त शङ्खनादमुनिहलम् ।
ययौ लङ्कामभिमुख प्रभन्न रायस लम् ॥ २४ ॥

भगान् नारायणक बाणों भयभीत और गङ्गानाते
व्याकुल हुए रायसना लङ्का की ओर भाग चली ॥ २४ ॥

प्रभन्ने रायसजले नारायणशराहत ।
सुमाली शरवर्षेण निजगार गणे हरिम् ॥ २५ ॥

नारायणक रायसने आन हूइ रायसनेना जब भागन
लगी तर सुमालीने रायसने गार्हपती वया करके उन
भीहरिन्न आगे वरनेने रोना ॥ २५ ॥

स तु त छादयामास नीहार इव आस्करम् ।
राक्षसा सत्त्वसम्पन्ना पुनर्धैर्यं समादधु ॥ २६ ॥

जैसे कुहल सुरदेवका नद ग दे उसी तरह सुमालीने
बाणोंसे भगान् शिष्णुक आच्छादित कर दिया । यह दल
गनिगाली रायसने पुन धैर्य धारण किया ॥ २६ ॥

अथ सोऽभ्यपतद् रागाद् रायसो रज्जुर्धित ।
महानाद प्रशुगोणो रायसाखीयशक्तिव ॥ २७ ॥

उध यशमिमाने निगाचने वर अरमे गर्वना कर
रायसने नृप जीवनका सवार करतेहुएने रायस आक्रमण
किया ॥ २७ ॥

उत्सिष्य लम्बाभरण धुन्वन् करमिर द्विप ।
ररास रायसो दयात् सन्निधौयदो यया ॥ २८ ॥

जैसे हाथी मुँहसे उदाहरणित हो, उसी तरह लम्बते
हुए आभरणने युक्त हाथको ऊपर उठाकर निगा हुआ

य रायस विगुलहितमवत् कण्ठके समान बड़े हस्ते गन्ना
करने लगा ॥ २८ ॥

सुमालेनैस्तस्य शिरो चलिचकुण्डलम् ।
चिच्छेद् यन्तुस्त्रवाध आनास्तस्य तु रक्षस ॥ २९ ॥

तर भगान्ने अपने गार्हपदाय गइत हुए सुमालीक
शरपिका जगमगाते हुए कुण्डलोंने मण्डित मस्तक का
हाल । इसमे उस राक्षस काई च्छेदन होकर बाणों पर
चकर करने लगे ॥ २ ॥

तैरट्टैश्चास्यते भालैः सुमारी रायसम्भवा ।
इन्द्रियादयै परिभ्रानैर्धृतिहीनो यथा नर ॥ ३० ॥

उन घाड़ान चकर जानेने गनर मय हा रायसना
सुमारी भी चकर काटने लगा । नर मी तरह जैसे
अशित्तिय मनुष्य शिरांने भगनेगाली इन्द्रिय मय-साय
स्वर भी भगना रिता है ॥ २ ॥

तनो शिष्णु महाराहु प्रपतन्त रणानिर ।
हने सुमालेरदौध ग्ये शिष्णुग्य प्रति ॥ ३ ॥
माली चाभ्यपद युक्त प्रशुश सगा धनु ।

जब बड़े रणभूमिमे सुमालन रणरा इधर उधर नर
भागने लगे, तर माग नामर राक्षसने मुद्रक शिप ग्यन हा
धनु पर लख गइकी ओर घारा किया । रायसना दूटन हुए
महाराहु शिष्णुपर आक्रमण किया ॥ ३०-३१ ॥

मालेधनुदभ्युता याणा कालम्बरिभूयिणा ॥ ३२ ॥
शिष्णुहर्मितासाय शौच्य पनरया इव ।

मागीर धनुसने दूट हुए सुवर्णमणि वग भगान्
शिष्णुक शरणने उसी तरह धुनेने लगा उन को शौचान्नर
छिद्रमे प्रवेश करत हैं ॥ ३२-३३ ॥

अद्यमान शरैः सोऽथ मालिमुक्ते सहस्रशः ॥ ३३ ॥
शुश्रुमे न रणे शिष्णुचिन्तेन्द्रिय इराधिभिः ।

जैसे शिनेन्द्रिय पुरुष मानसिक व्यपभौन विचलित
नहीं होता, उसी प्रकार रायभूमिमे भगान् शिष्णु मालक छोड़े
हुए सहस्रों बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी धुच नहीं
हुए ॥ ३३-३४ ॥

अथ मोक्ष्यन् श्रुत्वा भगान् भूतभारत ॥ ३४ ॥
मालिन प्रति राणीषान् सम्मन्त्रिमिगदाधरम् ।

तन्मन्त्र सङ्ग और गण घारा करनेगाल भूतमान
भगान् शिष्णुने अपने धनुसकी नद्वार कर गाला ऊपर
का-सुनूँकी वरा आरम्भ कर दी ॥ ३४-३५ ॥

ते मालिदेहमायाय यशयिषुप्रभा शरा ॥ ३५ ॥
यिषन्ति स्थिर तस्य नागा इव सुभारसम् ।

यज्ञ और स्थिर स्तन प्रक्षालित होनेगाल व वग
मायिक शरीरमे सुकर रक्षा रक्ष देने लगे, मन्त्र का अमृत
रक्षा पन कर रहें हैं ॥ ३५ ॥

मालिन शिष्णुका शरा शङ्खचक्रगदाधर ॥ ३६ ॥

मालिनीलिं ध्वजं चाप धाजिनश्चाप्यपातयत् ।

अन्तर्मे मालीको पीठं दिशानेन लिखे विवशं करके शङ्खं
चक्रं और गदा धारण करने लगे भगवान् श्रीहरिने उस राक्षसके
मुकुट, ध्वज और धनुषको काट कर धोड़ोंको भी मार
गिया ॥ ३६ ॥

त्रिरथस्तु गदां गृह्य माली नक्तचरोत्तम ॥ ३७ ॥
आपुप्लुचे गदापाणिर्निर्यग्रादिव केसरी ।

रथहीन हो जानेपर राक्षसप्रवर माली गदा हाथमें लेकर
बृद्ध पड़ा; मानो कोई सिंह परांते से विपरासे छल्लांग मारकर
नीचे आ गया हो ॥ ३७ ॥

गदया गरुडेशानम्रीशानमित्र चान्तव ॥ ३८ ॥
ललाटेदेशेऽभ्यहनद् वज्रेणेद्रो यथाचलम् ।

जैसे यमराजने भगवान् शिखर गदाका और हृद्गने पर्वत
पर वज्रका प्रहार किया हो; उसी तरह मालीने पक्षियज गरुड़के
छलाटमें अपनी गदाद्वारा गद्दी चोट पहुँचायी ॥ ३८ ॥

गदयामिहतस्तेन मालिना गरुडो भृशम् ॥ ३९ ॥
रणात् पराङ्मुख देव हृतान् वेदनातुर ।

मालीकी गदासे अत्यन्त आहत हुए गरुड़ वेदनासे
ब्याकुल हो उठे । उन्होंने स्वयं युद्धसे विमुख होकर भगवान्
विष्णुको भी विमुक्त-सा कर दिया ॥ ३९ ॥

पराङ्मुखो हृते देवे मालिना गरुडेन वै ॥ ४० ॥
उदतिष्ठ महाब्रह्मण्यो रक्षसामभिनर्दताम् ।

मालीने गरुड़क साथ ही जन भगवान् विष्णुको भी युद्धसे
विमुक्त-सा कर दिया; तब यहाँ जोर जोरसे गर्जने हुए राक्षसोंका
महान् शब्द गूँज उठा ॥ ४० ॥

रक्षसा व्रजता यत्र श्रुत्वा हरिद्वयावुज ॥ ४१ ॥
तिर्यगाभ्यां सक्तुञ्च पक्षीदो भगवान् हरि ।

पराङ्मुखोऽप्युत्सर्ज मालेभ्यश्च जिघांसया ॥ ४२ ॥
गद्दीं ह्य राक्षसोंका वह सिंहनाद सुनकर इन्द्रके छोटे

भाई भगवान् विष्णु अत्यन्त कुपित हो पतिप्राज्ञ की पीठपर
तिरछे होकर बैठ गये । (इसने यह राक्षस उड़ें दीखने लगे)
उस समय बराहमुख धनुर भी श्रीहरिने मालीन वषट्की
इच्छासे पीठनी और मुद्गर, अपना मुद्रा निचक
चलाया ॥ ४१ ॥

तत्सूयमाङ्गलभासं स्वभासा भासयन् नभ ॥
बालचमनिभं चम मालेः शीघ्रमपातयत् ॥ ४३ ॥

सूयमाङ्गलं समान उदीत होशान् कालचक्र-संज्ञं उस
चक्रने अपनी प्रभासे आरागान् उद्गमित करते हुए यहाँ
मालीन नक्षत्रको काट गिराया ॥ ४३ ॥

तच्छित्तो राक्षसेन्द्रस्य चमोत्पन्नं त्रिभीरणम् ।
पथात् रथितोद्गारि पुरा राहुशिरो यया ॥ ४४ ॥

चक्रने क्या ॥ राक्षसराज मालीका वह भयङ्कर मस्तक

पूर्वकालमें कटे हुए राहुके सिरकी भाँति रक्तकी धारा बहाता
हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४४ ॥

तत सुदै सम्प्रहृष्टै सर्वप्राणसमीरित ।
सिंहनादरवो मुक्तं साधु देवेतिवादिभि ॥ ४५ ॥

इससे देवताओंको उड़ी प्रसन्नता हुई । वे 'साधु भगवान् !
साधु !' ऐसा कहते हुए सारी शक्ति लगाकर जोर-जोरसे
सिंहनाद करने लगे ॥ ४५ ॥

मालिन निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि ।
सयलौ शोकसततौ लङ्कामेव प्रधावितौ ॥ ४६ ॥

मालीने मारा गया देख सुमाली और माल्यवान् दोनों
राक्षस शोकसे व्याकुल हो सेनासहित लङ्का की ओर ही
मारे ॥ ४६ ॥

गरुडस्तु समाश्वस्तं सनिवृत्त्य यथा पुरा ।
राक्षसान् श्रानयामास पक्षवातेन कोपित ॥ ४७ ॥

इतनेहीमें गरुड़की पीड़ा कम हो गयी; वे पुनः सँभल
कर लौटे और कुपित हो पूर्ववत् अपने पंजोंकी हवासे राक्षसों
को खदेड़ने लगे ॥ ४७ ॥

चक्रकुत्तास्यकमला गदासचूणित्रोरस ।
लाङ्गलपितम्रीषा मुसलैर्भिन्नमस्ताका ॥ ४८ ॥

कितने ही राक्षसोंके मुखकमल चक्रने प्रहारसे कट गये ।
गदाओंके आघातसे बहुतोंके बृद्ध सल चूर-चूर हो गये । हलके
फालसे मिनतीती गर्दनें उतर गयीं । मुसलोंकी मारसे बहुतोंके
मस्तकोंकी घजियाँ उड़ गयीं ॥ ४८ ॥

केचिन्चैवासिना छिन्नास्ताभ्यान् शरताडिता ।
निपेतुरभ्यरात् तूष्णं राक्षसा सागराम्भसि ॥ ४९ ॥

तलवारका हाथ पड़नेसे कितने ही राक्षस डूब-डूब-डूब-डूब
गये । बहुतरे बाणोंसे पीड़ित हो नुरत ही आनाघात समुद्रके
बजने गिर पड़े ॥ ४९ ॥

नारायणोऽपीषुवराशनीभि
विदारयामास धनुर्मिमुक्तैः ।

नक्तचरान् धुनमिमुक्तपेशान्
यथाशनीभि सतङ्गि महाभ्रः ॥ ५० ॥

भगवान् विष्णु भी अपने धनुषने छूट हुए भेद बाणों
और अशनिबोद्धा राक्षसोंको विनीष करने लगे । उस समय
उन निपाचरोंके लुल हुए पेशा हवासे उड़ रहे थे और
पीनाभरपायी व्याममुन्दर श्रीहरि विष्णुमालाघण्टित मदान्
मेघने समान मुशोभि हो रहे थे ॥ ५० ॥

भिन्नातपत्र पतमानराद्य
शरैरपथ्वस्तत्रितययम् ।

विनिश्चुनात्र भयनेलेनत्र
यत्र तदुमत्तर यभूत् ॥ ५१ ॥

राक्षसोंकी वह सारी सेना अत्यन्त उमत्त-सी प्रतीत होने
ली । बाणोंसे उड़के क्षण पड़ गये थे; अश्रु शस्त्र गिर गये थे

सौम्य वग दूर हो गया था; अतः बाहर निकल आयी थी और
सबके नेत्र मयने चञ्चल हो रहे थे ॥ ५१ ॥

सिंहार्जितानामिव कुञ्जराणां
निशाचराणां मह कुञ्जराणाम् ।

रयाश्च वेगाश्च मम यधुः
पुगणसिंहेन रिमर्दितानाम् ॥ ५२ ॥

जैसे सिंहद्वारा पीटित हुए हाथियों की त्वार और वग
एक साथ ही प्रकट होने हैं, उसी प्रकार उन पुगणप्रसिद्ध
रसिंहचारी भीरुरिक द्वाय रादे गये उन निशाचरणी
गडगडने हाहाकार और वग साथ-साथ प्रकट हो रहे थे ॥

त वायमाणा हरियाणजालैः
सयाणजालानि समुत्सृजन्त ।

धारन्ति नक्षत्रकाग्नेया
वायुप्रमुन्ना ग्वा कालमेघा ॥ ५३ ॥

मगान् विमुक्त वायुमूहोंने आवृत हो अपने सपके
का परित्याग कर वे निशाचरणी का मर उसी प्रकार
मोड़ रहे थे, जैसे हगड उड़ाय हुए वगडलीन मर
आकाशमें मगन देख जाते हैं ॥ ५३ ॥

इत्यर्धे अगमद्रमाया वास्माक्ये आद्रिकाय्ये उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इन प्रकर श्रीवत्सकिर्निर्मित ऊचनमय आद्रिकाय्य उत्तरकाण्डे सप्तमो सर्गः पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

मान्यवान्का युद्ध और परानप तथा सुमाली आदि मव राक्षसोंका रसातलमें प्रवेश

हन्त्यमाने गले तस्मिन् पद्मनाभन पृष्टत ।

माल्यवान् मनिवृत्ताऽथ यलामन्य इवाणवः ॥ १ ॥

(अगम्यधी कर्न है-सुनन्दन ।) पद्मनाभ मगान्
विष्णुने व भागा हुआ दृष्ट राक्षसी मेनाका पीछी अरसे
मारता आरम्भ किया; तब मान्य-व लोट पडा, भाता महा
कण्ठ अरनी तदनूतिनक डकर निवृत्त हो गया ॥ १ ॥

सरकनयन प्रोशाशयल्यौलिनिशाचर ।

पद्मनाभमिदं प्राह वयन पुण्योत्तमम् ॥ २ ॥

उसका नेत्र मयने लाल हो रहे थे और मुट्ट पित रहा
था । उस निशाचरन पुण्योत्तम मगान् पद्मनाभने इस प्रकार
कहा—॥ २ ॥

नारायण न जानिषि साधधर्मं पुरातनम् ।

ययुधमनसो भीतातस्मान् हसि यथेनम् ॥ ३ ॥

कण्ठ मरव । जन पड़ना है पुरातन धर्मधनका चिन्त
नहीं करना हो तभी तो मगान् मनुष्यकी मोति तुमझिका
मन सुद्धने विरत हो गया है तथा जो डरकर मगन हो रहे हैं,
एम हम राक्षसों का भी मर रहे हैं ॥ ३ ॥

परादुमुत्तमय पाप य करोति मुरध्वज ।

स हन्ता न गत धर्मो लभन पुण्यकमणाम् ॥ ४ ॥

मुरध्वज । व सुद्धने विरत हुए धर्मधनक वपका पाप

चक्रप्रहारैर्निवृत्तशोभ

सचूणिताद्वाश्च गदाप्रहारैः ।

असिप्रहारैर्दिविवाविभिन्ना

पतन्ति दौला इव रागसेन्द्रा ॥ ५४ ॥

चक्रने प्रहारोंने सचूणिक ममक का गये थे, गगनमें
मारने उनर शर चूर-चूर हो रहे थे तथा ठलगयें आगत
ते उनक दोन्ना दुकड़ हो गये थे । इस तरह व राक्षसराज
परतोन समान घपघापी हो रहे थे ॥ ५४ ॥

त्रिलम्बमानैर्मणिहारकुण्डलैः

निंशाचरैर्नीलपलाहकोपैर्मै ।

निपात्यमानैर्दहश निरन्तर

निपात्यमानैरिव नीलपत्रैः ॥ ५५ ॥

छन्दते हुए मणिमय शरों और कुण्डलों साथ गिराये
जाते हुए मान मर-मरान उन निशाचरोंकी लगीन बह रा
नूनि प गयी थी । वहाँ घपघानी हुए वे राक्षस नील-
परतोन समान जल पड़ते थे । उनने वहाँका भूभाग इस
तरह आच्छादित हो गया था कि कर्ण तिल-रमनेका भी अग
नहीं दिखायी देती थी ॥ ५५ ॥

कहा है। वह वनक इस राक्षसका त्वग करन परलकमें जाने
पर पुण्यकमा पुण्योत्तम मित्रने गगन में पाता है ॥ ५५ ॥

मुद्धप्रहारया तदस्ति शतचक्रप्रगदाधर ।

अह स्यिनेऽस्मि पद्यामि बल द्वाय यन्तर ॥ ५६ ॥

(गूढ) चक्र और गग घाग करनका नेत्रा । यदि
तुम्हरे हृदयमें सुद्ध होकर है तभी तो लड़ा है । त्वन्ता है;
तुममें जितना बल है दिव्या अना परानम ॥ ५६ ॥

माल्यवत स्थिन दृष्टा माल्यवन्तमिशागम् ।

उवाच रागसेन्द्र त देवगजानुचो यन्त ॥ ५७ ॥

मान्य-व परतक छनन अनेक-मगान् हुए राक्षस-
राज माल्यवान्का मरकर मरव इन्द्र का मर महावली
मगान् मित्रने उलन कहा—॥ ५७ ॥

मुष्पत्तो भयभीताना देवान् यं मयाभयम् ।

रागसेन्द्रादन दृष्ट तदेतदनुयात्यन ॥ ५८ ॥

देवोंका दुस्तरान बग मर डरान हुआ है,
जैसे राक्षसोंका मरती प्रतीत कर उहाँ अभय शान
है, अतः इस रमने मर द्वाय उस मरका ही मगन किया
करा है ॥ ५८ ॥

प्राणैरपि प्रिय कार्यं देवाना हि मदा मया ।

सोऽह वो निहनिष्यामि रसातलगगानपि ॥ ५९ ॥

भुमे अपने प्राण देकर भी मदा हा देखाओंका प्रिय
काय करना है इसलिये तुमलोग भागकर रखतलमें चले
जाओ तो भी मैं तुम्हारा वध विधे बिना नहीं रहूँगा ॥ ८ ॥
देवदेव वृषाण त रक्ताभुरुहलोचनम् ।

शक्त्या विभेद सकृद्वो राक्षसेद्रो भुजान्तरे ॥ ९ ॥
लाल कमलने समान नेत्रवाल देवाधिदेव भगवान् विष्णु
कर इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अत्यन्त क्रुपित हुए
राक्षसराज मात्स्यवान् अपनी शक्ति के द्वारा प्रहार करके
भगवान् विष्णुका वध स्वप्न विदोर्ण कर दिया ॥ ९ ॥

मात्स्यवद्वज्रनिर्मुक्ता शक्तिघण्टावस्तस्मिन् ।
हरेकरसि वभ्राज मेघस्थेष शतह्वरा ॥ १० ॥

मात्स्यवान्के हाथमें छूटकर घटानाद करती हुई वह
शक्ति श्रीहरिकी छातीसे जा लगी और मेघके अङ्गमें प्रकाशित
होनेवाली दिवंगीत समान शोभा पाने लगी ॥ १० ॥

तनस्तामेव शोचस्प्य शक्ति शक्तिघरप्रिय ।
मात्स्यवत स्मृदिदृश्य विक्षेपाभ्युदयेक्षण ॥ ११ ॥

शक्तिघारा कार्तिकय जिह्वे प्रिय हैं अथवा जो शक्तिघर
मन्दरे प्रियतम हैं, उा भगवान् कमलनयन विष्णुन उठी
शक्तिसे अपनी छातीमें राखकर मात्स्यवान्पर दे मारा ॥ ११ ॥

स्वन्दोस्वष्ट्रेण सा शक्तिर्गोविन्दकरनि सृता ।
काङ्क्षन्ती राक्षस प्राया महोत्सेवाज्जनावलम् ॥ १२ ॥

स्वन्दोस्त्री छोड़ी हुई शक्ति के समान गोविन्दक हाथमें
निकली हुई वह शक्ति उस राक्षसों लय करके चली, मानो
अञ्जनगिरिपर काई बड़ी भारी टाँग गिर रही हो ॥ १२ ॥

सा तम्योरसि प्रिस्तीर्णि हारभासाभासिते ।
आपतद् राक्षसेद्रम्य गिरिदृष्ट दृग्गदानि ॥ १३ ॥

हाथों सन्मुखमें प्रकाशित होनेवाले उन राक्षसराजक
निवाल वध सल्लार यह शक्ति गिरी मानो निमी परतके
गिणपर पड़नात हुआ हो ॥ १३ ॥

तथा भिगतनुप्राण प्राप्तिदाद् त्रिपुल तम ।
मात्स्यशान् पुनरावस्तस्तन्यो गिरिनिवाचल ॥ १४ ॥

उसके मात्स्यवान्का कयन घट गया तथा वह गली मूछा
में डूब गया किन्तु थोड़ी ही दूरीमें पुन सैमन्कर मात्स्यवान्
पराकी मौलि अचिन्तभागे लम्बा हो गया ॥ १४ ॥

तत फागयस दूत कण्टकगुम्भिश्चितम् ।
प्रगृह्याभ्यहनद् देव स्नाप्योत्तरं हटम् ॥ १५ ॥

ततश्चात्स्यने काट लिये वने हुए और बहुसंख्यक
बोंगेलें बड़ हुए (दूत) हाथमें एकर भगवान्की छातीमें
गहरा आपात किया ॥ १५ ॥

तथैव रणरक्तम्भु मुष्णिना दासवानुनम् ।
तादृषिभ्या धनुमात्रमप्रपन्ता निदाहर ॥ १६ ॥

इसी प्रकार वह युद्धमें ही राक्षस भगवान् विष्णुकी मुक्तेस
साफ़ एक चतुर पीछे हट गया ॥ १६ ॥

ततोऽग्नये महाश्रद्ध साधुसाध्विनि चोत्पित ।
आहत्य राक्षसो विष्णु गरुड चाप्यताडयत् ॥ १७ ॥

उस समय आकाशमें राक्षसोंका महान् हर्षनाद गूँज
उठा—वे एक साथ बोल उठे—बहुत अच्छा, बहुत
अच्छा । भगवान् विष्णुको घृणा मारकर उस राक्षसने गरुडपर
भी प्रहार किया ॥ १७ ॥

चैतयेयस्तत हृद्ध पक्षरातेन राक्षसम् ।
व्यपोहद् बलवान् घातु शुक्रपणचय यया ॥ १८ ॥

यह देख विनयमन्दन गरुड उड़ित हो उठे और
उल्लेने अपने पंखोंकी हवासे उस राक्षसको उसी तरह उड़ा
दिया, जैसे प्रवल आँधी सूरे पत्तोंक दरको उड़ा देती है ॥

द्विजेद्रपक्षरातेन द्रावित हृदय पूर्वव्रम् ।
सुमारी स्वयले सार्धं लङ्कामभिमुक्तो ययौ ॥ १९ ॥

अपने बड़े भाइको पक्षराजके पंखोंकी हवासे उड़ा हुआ
देख सुमारी अपने सैनिकोंके साथ लङ्काकी ओर चल गया ॥

पक्षवातयलोद्धतो मात्स्यवानपि राक्षस ।
स्वगलेन समामोम्य ययौ लङ्का द्विधा धृत ॥ २० ॥

गरुडके पंखोंकी हवासे उड़ा हुआ राक्षस मात्स्यवान्
भी लजित होकर अपनी सेनासे जा मिला और लङ्काकी ओर
चला गया ॥ २० ॥

यद्य ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण ।
यद्वश सयुगे भग्ना हतप्ररमायका ॥ २१ ॥

कमलनयन श्रीराम ! इस प्रकार उन राक्षसोंका भगवान्
विष्णुका साथ अनेक बार युद्ध हुआ और प्रत्येक सप्ताममें
प्रधान प्रधान नायकों मार जातेपर उन सारी भगना पना ॥

मदास्तुपन्तस्ते विष्णु प्रतियोदधु धलादित ।
त्यस्त्वा लङ्का गता यस्तु पातालं सहपरमय ॥ २२ ॥

वे किसी प्रकार भगवान् विष्णुका सामना नहीं कर सके ।
सदा ही उनसे बलसे पाड़ित होते रहे । अत समस्त निगानर
लङ्का छोड़कर अपनी गिर्योंक साथ पातालमें रहनेने नि
चले गये ॥ २२ ॥

सुमालिन समासाय राक्षस ग्युसत्तम ।
म्विता प्रयातवीषयान् यदा स्तान्कटदृष्टे ॥ २३ ॥

सुभद्र ! वे शिख्यात पराक्रमी निगावर मारुद
यंममें विद्यमान राक्षस सुमालीका आश्रय रख रहे हंग ॥

यं त्वया निहनास्त त्रिपौलस्त्या नाम राक्षसा ।
सुमाली मात्स्यवान् मार्गं ये च तेषां पुनस्तदा ॥ २४ ॥

सब पने महाभाग राक्षसाद् पलायन्तरा ॥ २४ ॥
श्रीराम ! आपने पुन्यपरायन जिनजिन राक्षसोंका
निना किया है, उनही अरुण प्राचीन राक्षसोंक पराक्रम

अधिक था । सुमाली, मात्स्यवान् और माली तथा उनक
आगे चलनेवाले यन्त्रा—यं गयी महामग निगावर राक्षसों
बदकर बच गये ॥ २४ ॥

न चान्यो गवसानं हन्ता सुग्रीनं देवकष्टकान् ।
 श्रुतं नारायणं देव शङ्खचक्रगन्धर्वम् ॥ २५ ॥
 देवाञ्छ्रौं ज्येष्ठकटम्प उत देवश्रीं राक्षसैका वध
 शङ्खं च न गन्धर्व भगवान् नारायणदेवकै शिवा दूष्य
 कश्चि नरीं कर सकृत् ॥ २ ॥
 नवान् नारायणो नैषधमुनाहु सनातन ।
 राक्षसान् हतुमुपनो धृज्य प्रमुखाय ॥ २६ ॥
 अथ चर मुञ्जपाटी सनातन देव भगवान् नारायण
 ही है । आपना काइ पयन नहो कर सकृत् । आप अविनाशी
 प्रभु हैं और राक्षसों वध करनेके लिये इस लङ्कामें अवतीर्ण
 हुए हैं ॥ २६ ॥
 नप्रथमः परस्माना काले काले प्रजाकर ।
 उत्पद्यते ह्यनुयये शरणागत्यस्तम् ॥ २७ ॥
 आप ही इन प्रजाओंके स्वामी हैं और शरणागताँपर दया
 रखते हैं । जब-जब धर्मकी व्यवस्थाके नष्ट करनेवाले दस्तु
 पैदा हो जाते हैं, तब-तब उन दस्तुओंका वध करनेके लिये
 आप समय-समयपर अवतार लेंते रहते हैं ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीक्ये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥
 इस प्रकार श्रीवल्मीकेनिरुक्तं रामायणम् आदिकान्तके उत्तरकाण्डमें अष्टमः सर्ग पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

गवण आदिका लम् और उनका तपके लिये गोकर्ण आश्रममें जाना

कस्यचित् त्वद्य कालस्य सुमाली नाम रायसः ।
 रमानलामन्यलोकं सद्यै विचचार ह ॥ १ ॥
 नीलरंभूतसफाशस्तसकाञ्चनकुण्डलम् ।
 कन्या दुहितरं गृह्य विना पद्मामिन् श्रियम् ॥ २ ॥
 कुछ कालके पश्चात् नील मेघक समान रंगम बगवादा
 पक्ष मुमाली तयाय हुए मनेर कुण्डलोंन अउड़न हो अनी
 सुन्दरी कन्याका, जो विना कमलकी रमणी समान बन पड़ती
 थी, साथ ल रहानलमें निकला और सोरे मन्यकमें
 विचरने लगा ॥ १ ॥
 राक्षसेन्द्र स तु तदा विचरन् यै महीतले ।
 तपापदयत् स गच्छत पुष्पेण धनेश्वरम् ॥ ३ ॥
 गच्छन् पितरं द्रष्टुं पुलस्त्यनतय विभुम् ।
 त दद्रामरसकादा गच्छन् पादकोपमम् ॥ ४ ॥
 रसातलं प्रतिपद्य स मन्यलोकात् सविस्मय ।
 उत सन्य नूतनर विचरतं ह्युत स राक्षसपक्षे
 अभिते समान उरखी तथा दयदुत्य शोभा परा करेवा
 धनेश्वर पुनरेका देवा, जो पुष्प विमलदाय अपने
 निरा पुलस्त्यनन्दन विभवाका दृष्टन करनेके लिये बह रए थे ।
 उहें देखकर वह अचन्त विस्मित हो मन्यलकसे रक्षतपक्षमें
 प्रतिप हुआ ॥ १ ॥ ४ ॥
 इत्येयं चिन्तयामास राक्षसाना महामति ॥ ५ ॥

एषा मया तत्र नराणि रायमाणा
 मुत्युत्तिरय कथिता सकला यथायत् ।
 भूयो नियोध रघुसत्तम गवणस्य
 जमप्रभातमृतुलं ससुतम्य सर्वम् ॥ २८ ॥
 नरवर ! इस प्रकार मैंने आपनी राक्षसोंकी उत्पत्ति
 यह पूरा प्रथा ठीक ठीक सुना दिया । रघुनरहितमेमने ! अब
 आप राय तथा उसका पुत्रोंके वध और अनुपम प्रभावका
 साथ कानं मुनिय ॥ २८ ॥
 शिरात् सुमाली व्यारद् रमानल
 स राक्षसो जिष्णुभयार्दितस्तदा ।
 पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो यत्नी
 ततस्तु लङ्काममद् धनञ्जय ॥ २९ ॥
 मन्वान् विष्णुन् भयने पीडितं शरत् राक्षस मुमाली
 मुनी कालतक अपने पुत्र पौत्रोंके साथ लङ्कामें विचरना
 रहा । इसी वाचमें धनाप्यक्ष कुमारे लङ्काकरना निवास
 स्थान बनाया ॥ २९ ॥

किं कन्या धेय इत्येयं यधेमहि कथं वयम् ।
 सुमाली बड़ा दुःखिनाम् था । २८ वाचने लक्ष्य, कता
 करनेमें हम राक्षसोंका भग हागा ! कम हन्यो उरति
 कर कहेंगे ! ॥ २८ ॥
 अयात्ररीत् सुता रक्ष कैकसी नाम नामत ॥ ६ ॥
 पुत्रिं प्रदानकालोऽयं योरन व्यतिरिक्तम् ।
 प्रत्याप्यानाद्य भीतम्य न रुरै प्रतिगृह्यते ॥ ७ ॥
 एष विचर कर उष पक्षमें आनी पुत्राने, जिसका
 नाम कैकसी था, कहा—पेरी ! आ तुम्हारे विराम कस्य
 सन्य आ गया है क्योंकि इस समय तुम्हारी पुत्रारणा शीत
 रही है । तुम कभी इन्कार न कर दो, इसी भयन भेद कर
 तुम्हारा बर्ण नहीं कर रहे हैं ॥ ६-७ ॥
 त्वन्तं च यय सर्वे यथिता धमस्तुभ्य ।
 त्वं हि सगुणोपेया धी सायादियं पुत्रिवे ॥ ८ ॥
 'पुत्री ! तुम्हें विष्णु पक्षमें प्रसिद्ध है, स्वयं लिये हम
 लङ्कामें बहुत प्रसन्न किया है क्योंकि कन्यागान विरामने
 हम धमबुद्धि रखनेवाले हैं । तुम तो लक्ष्मण लक्ष्मीक समान
 सगुणान्तर है (अतः तुम पर नही बरस तुम्हारे
 वयस ही इना कहिये) ॥ ८ ॥
 कन्यापितृव्यं दुःखं हि सर्वेषां मानकमस्तिमान् ।
 न ज्ञायते च क्व कन्या परयेदिति कस्यचि ॥ ९ ॥

येने । समानरी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंने लिये
कन्याका पिता होना दुःख ही कारण होता है, क्योंकि यह
पता नहीं चलता कि कौन और कैसा पुरुष कन्याका वरण
करेगा । ॥ ९ ॥

मातु कुल पितृकुल यत्र चैव च दीयते ।
कुलत्रय सदा कन्या सहाये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १० ॥

मातापते, पितापते और जहाँ कन्या दी जाती है, उस पतिने
कुलको भी क्या सदा सहायमें वाले रहती है ॥ १० ॥
सा त्व मुनिवर श्रेष्ठ प्रजापतिदुल्लोदयम् ।
भज त्रिधनस्य पुत्रि पौलस्त्य वरय स्वयम् ॥ ११ ॥

अतः तेने । तुम प्रजापतिन कुलमें उत्पन्न, श्रेष्ठ गुण
स्वयम् वरण करो और उनकी सेवाम रखो ॥ ११ ॥
इष्टास्ते भविष्यन्ति पुत्रा पुत्रि न सहाय ।
तेजसा भास्करसमो तादृशोऽय धनेश्वर ॥ १२ ॥

पुत्री । ऐसा करनेसे नि चदेह दुष्टारे पुत्र भी ऐसे ही
होंगे, जैसे वे वनेश्वर तुम्हारे हैं । तुमने तो देखा ही था वे
कैसे अपने वनेमें सूर्यने समान उदीत हो रहे थे ? ॥ १२ ॥
सा तु तद् वचन श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ।
तत्र गत्वा च सा तस्यै त्रिधना यत्र तप्यते ॥ १३ ॥

पिताकी यह बात सुनकर उनको गौरवका स्थान करके
कैकसी उस स्थान पर गयी, जहाँ मुनिवर त्रिधना तप करते थे ।
वहाँ जाकर वह एक जगह पर ही गयी ॥ १३ ॥
एतस्मिन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विज ।
अग्निहोत्रमुपातिष्ठचतुर्थे इव पावक ॥ १४ ॥

श्रीराम । इस बीचमें पुलस्त्यतनय ब्राह्मण त्रिधना
सायकाला अग्निहोत्र करने लगे । वे तृतीय मुनि उस समय
तीन अग्नियोंने साय स्वयं भी चतुर्थ अग्निक समान देवीप्य
मान हो रहे थे । ॥ १४ ॥

अग्निनित्य तु ता वेला दारणा पितृगौरवात् ।
उपपत्त्याप्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ॥ १५ ॥

पिताके प्रति गौरववृद्धि होनेके कारण कैकसीने उस
मयकर वेलाका विचार नहीं किया और निकट आ उनको
चरणोंपर दृष्टि लगाये नीचा मुँह निचे वह लामने खड़ी
हो गयी ॥ १५ ॥

निलिखन्ती मुष्टमिमिदृष्टाग्रेण भागिनी ।
स तु ता घीह्य सुधोर्णां पूषचन्द्रनिभानाम् ॥ १६ ॥

अग्रवीर्य परमोदारो दीप्यमाना स्वतजसा ।
यद् भागिनी अपने पैरक अंगूठसे बारबार भरतीर
रता साँचेने लगी । पूष चन्द्रमान समान मुख तथा मुन्दर
कटि प्रदेशवाली उस मुन्दरीका जो अपने देखसे उदीत हो
प्यो थी, देखकर उन परम उदार महर्षिने पूजा— ॥ १६ ॥

भद्रे कस्यासि दुहितु कुतो वा त्वमिहागत ॥ १७ ॥
किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥ १८ ॥

भद्रे । तुम रिचरी कन्या हो, कहाँसे यहाँ आयी हो,
तुम्हारा आना हुआ है ? शोभने । ये सन बातें मुझे ठीक
ठीक बताओ ॥ १७ १८ ॥

पवमुक्ता तु सा कन्या वृताञ्जलिर्यामयीत् ।
आत्मप्रभावेण मुने क्षातुमर्हसि मे मतम् ॥ १९ ॥

कैकसी नाम नाम्नाह श्रेष्ठ त्व क्षातुमर्हसि ॥ २० ॥
विभवाक इव प्रसार पूछनेपर उस कन्याने हाथ जोड़कर
कहा—मुने । आप अपने ही प्रभासे मेरे मनोभावकी समझ
रकते हैं किंतु ब्रह्मणं । मेरे मुखसे इतना अल्प ज्ञान है
कि मैं अपने पिताकी आज्ञासे आपकी सेवामें आयी हूँ और
मेरा नाम कैकसी है । बाकी सब बातें आपको स्वतः ज्ञान
लेनी चाहिये (मुझसे न कहलें) ॥ १९ २० ॥
स तु गत्वा मुनिर्ध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह ।
विशात ते मया भद्रे कारणं यमनोगतम् ॥ २१ ॥

सुताभिलाषो मत्तस्तं मत्तमातद्दुर्गामिति ।
दारुणाय तु वेलाया यस्मात्स्व मामुपस्थिता ।
शृणु तस्माद् सुताम्भद्रे यादृशान्ननविष्यसि ॥ २२ ॥
दारुणान् दारुणकारान् दारुणाभिजनमियान् ॥ २३ ॥
प्रसन्नियसि ह्युद्योषि राक्षसान् क्रूरकमण ।
यद् मुनकर मुनिने थोड़ी देरतक ध्यान लगाया और
उठके बाद कहा—भद्रे । तुम्हारे मनका भाव मादस हुआ ।
मतवाले गबराजकी भाँति मदगतिते चलनेवाली सुदरी । तुम
मुझसे पुत्र प्राप्त करना चाहती हो, परंतु इस दारुण वेलामें
मेरे पास आयी हो, इसलिये यह भी मुन को कि तुम कैसे प्रार्थना
को बच होगी । मुभाणि । तुम्हारा पुत्र क्रूर स्वभावा
और चरित्रसे भी मयकर होंगे तथा उनका क्रूरमा राक्षस
काय ही प्रस होगा । तुम क्रूरतापूष वरम देनेवाले रखते
ही वेदा करोगी ॥ २१-२३ ॥

सा तु तद्वचन श्रुत्वा प्रणिपत्यामयीदुवच ॥ २४ ॥
भगवन्तीदृशान् पुत्रास्त्वचोऽहं ब्रह्मवादिन ।
नेच्छामि सुदुराचारान् प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

मुनिका यह वचन सुनकर केकसी उनको चरणोंपर गिर
पड़ी और इस प्रकार बोली—ममाम् । आप ब्रह्मवादी
महात्मा हैं । मैं आपसे ऐतं दुर्गचारी पुत्रोंको पावनी
भीजिये ॥ २४ २५ ॥
कन्यया त्वयमुक्तं विधया मुनिपुत्राय ।
उयाच कैकसी भूय पूर्णं दुर्गचारी रोदिणीम् ॥ २६ ॥

उच राक्षसकन्याके इस प्रकार कहनेपर पूर्णचन्द्रमाके

सनान मुनेन निरग गङ्गा वैश्वी सुन्दरी कैकसीने हि
बाल-॥ २६ ॥

पश्चिमी यस्तत्र सुतो भविष्यति शुभानने ।

मम यशस्वरूप स धर्मात्मा च न मयाय ॥ २७ ॥

‘शुभानने । तुम्हारा उ सक्ने छान एउ जनिन पुत्र
होगा, या मरे पछि अनुरूप धर्मात्मा होगा, इसमें सशय
नहीं है’ ॥ २७ ॥

पयमुल । तु सा कन्या राम कालेन वेनजित् ।

जनयामास धीमत्स रक्षोरूप सुनरुणम् ॥ २८ ॥

दशमीर महादृष्ट नीलाञ्जनचयोपमम् ।

ताम्रोष्ठ विंशतिभुज महाम्य दीनमूधनम् ॥ २९ ॥

श्रीपम । मुनिन एसा करने र कैकसीने कुछ काल
अन्तर बान्त मन्त्रक और मूर स्वामा बा एक राक्षस को जन
दिया, जिसने दस मन्त्रक, धनी-यही दाँत, तँपि-जैने ओठ,
बीस मुकुट, विंशत मुख और चमकीले वेश थे । उसने
शरीरका रंग कृष्ण पहाड़ जैसा काला था ॥ २८ २९ ॥

तस्मिन्नाद्येतत्तत्तस्मिन्सन्नालकाला शिवा ।

कन्यादाश्चापसंन्याति मण्डलानि प्रजबभु ॥ ३० ॥

उसक पैदा होते ही मुँहमें अङ्गारोंक और त्रि गीदहियों
और मासमयी पत्र अदि पत्ती दाँतों और मन्त्राङ्गार धूमने लगे ॥

यत्र रुधिर देयो मेधाश्च खरनि सना ।

प्रयथी न च सूर्यो वै महोरमाश्चापनन् भुवि ॥ ३१ ॥

चक्रये जगती वंश वधुगता सुदारुणा ।

अक्षोभ्य लुभितश्चैव समुद्र सरिता पति ॥ ३२ ॥

इन्द्रदेव रुधिरकी वक्र करने लगा, जेव भयङ्कर स्वयं
गर्जने लगे, मूसकी प्रमा पीसी पड़ गयी, पृथ्वीपर उन्मङ्गल
होने लगा, घरेली कौप उठी, भयानक आँधी चलने लगी तथा
व्य किलीक द्वारा धुप नहीं किया व्य सकृत्, वह सरिताओं-
का स्वामी समुद्र विपुल हो उठा ॥ ३१ ३२ ॥

मथ नामाकरोत् तस्य पितामहसम पिता ।

दशमीय प्रसूतोऽय दशमीगो भविष्यति ॥ ३३ ॥

उस समय प्रसादीक समान तेजस्वी पिता विभवा मुनिने
पुत्रका नामकरण किया—‘यह दस आचारों लकर उन्म
हुआ है, इसलिये ‘दशमीय’ नामसे प्रसिद्ध होगा’ ॥ ३३ ॥

तस्य स्यन्तर जात कुम्भकर्णो महाबल ।

प्रमाणद् यस्य विपुल प्रमाण नेह विद्यते ॥ ३४ ॥

उसक बाद मगरनी कुम्भकर्णका जन्म हुआ, जिसका
शरीरने यद्वा शरीर इस रूपमें दृढ़ किस्मका नहीं है ॥ ३४ ॥

ततः शूण्यगया नाम भजने विवृतानना ।

विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्या पश्चिम मुन ॥ ३५ ॥

इसके बाद विष्णु मुख लाला धूमना उल्लास हुआ,
तदनन्तर धर्मात्मा विभीषणका जन्म हुआ, जो कैकसाक
अन्तिम पुत्र थे ॥ ३५ ॥

तस्मिन् जाते महामत्से पुष्पय पयात ह ।

नभ म्याने दुःखभयो देवाना प्राणदस्तय ।

धाम्य वैबालिश्चैव साधु साध्वितितम् तदा ॥ ३६ ॥

उस महान् सपत्नी पुत्रका जन्म होने पर अन्तराधने
पूर्वोंकी वधा हुए और आकाशमें दलोंकी दुःखमिनों बर
उठी । उस समय अन्तरिक्षमें ‘धुप-धुप’ की ध्वनि सुनयी
देने लगी ॥ ३६ ॥

तौ तु तत्र महारण्ये वधुधाने महौनसी ।

कुम्भकर्णदशमीरौ लोकोद्देगस्तौ तदा ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्ण और दशमीर वे दोनों मन्त्रकी रक्षक लक्ष्मी
उद्देग पैदा करनेवाले थे । वे दोनों ही उस विंशत धनमें
पाँच होने और करने लगे ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्ण प्रमत्तस्तु महर्षन् धर्मरत्नलान् ।

वैलोभ्ये नित्यासतुणे भक्षयन् विचचार ह ॥ ३८ ॥

कुम्भकर्ण बग ही उमत्त निरन्तर । वह भोजन कम
कम ही नहीं होता था, अन्तर् दोनों लक्ष्मी धूम-धूमकर
धनात्मा महर्षियोंके खाता खाता था ॥ ३८ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्य धर्मयस्थिन ।

स्वाध्यायनियताहार उदास विनितन्द्रिय ॥ ३९ ॥

विभीषण बचने ही धर्मात्मा थे । वे सदा धर्ममें स्थित
रहते, स्वाध्याय करते और निवृत्त भहार करते हुए
इन्द्रियोंका अपने कायमें रखते थे ॥ ३९ ॥

अथ वैभरणो देवस्तत्र कालेन वेनचित् ।

आगतः पितरः दृष्टुं पुष्पकैण धनेभ्यः ॥ ४० ॥

कुछ काल बीतने पर धनेके स्वामी वैभव पुष्पकविमान
पर आरुढ़ हो अपने पिताका दर्शन करने के लिये वहाँ
आये ॥ ४० ॥

त दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिष तेजसा ।

आगम्य रामसी तत्र दशमीयमुजाय ह ॥ ४१ ॥

वे अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे । उन्हें देखकर
राक्षसकन्ता कैकसी अपने पुत्र दशमीयके पास आयी और
इस प्रकार बोल्ये— ॥ ४१ ॥

पुत्र वैभरण पदय धातर तत्तत्ता धृतम् ।

आवृभावे समे चापि पदयामान त्वमीदृशम् ॥ ४२ ॥

पुत्र ! अपने भद्र वैभरणोंके और तत्तत्त दान । वे कैसे
तेजस्वी जन्म पड़ेते हैं ! मैंने हमेंके नत तुम भी इन्हींके
समान हो । परन्तु अपनी अमला देना, कैसी है ! ॥ ४२ ॥

दशमीय तथा यन्नु दृष्ट्यानितामिषम् ।

यथा त्वमपि मे पुत्र भवर्षधरणोपम ॥ ४३ ॥

‘अनित पतनमें दशमीर ! मर पड़ । तुम भी ऐसा
कोई दान करो, जिसमें वैभवकी ही मर्ति तब और वैभरने
सम्भव हो सके’ ॥ ४३ ॥

‘वेदी । सम्मानकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंने लिये कन्याका पिता होना दु खका ही कारण होता है, क्योंकि यह पता नहीं चलता कि कौन और कैसे पुरुष कन्याका चरण करेगा । ॥ ९ ॥

मातु कुल पितृकुल यत्र सैव च दीयते ।
कुलत्रय सदा कन्या सशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १० ॥

‘माताके, पिताके और जहाँ कन्या दी जाती है, उस पतिके कुलको भी कन्या सदा सशयमें डाले रहती है ॥ १० ॥

सा त्व मुनिवर धेष्ट प्रजापतिकुलोद्भवम् ।
भज विभ्रवस पुत्रि पौलस्त्य वरय स्वयम् ॥ ११ ॥

‘अतः जेगी ! तुम प्रजापतिन कुलम उत्पन्न, श्रेष्ठ गुण सम्पन्न, पुलस्त्यनन्दन मुनिवर विभवाका स्वयं चलकर पतिव्रतमें वरण करा और उनकी सेवामें रहो ॥ ११ ॥

इदंशस्ते भविष्यन्ति पुत्रा पुत्रि न सदाय ।
तजसा भास्करसमो तादृशोऽय धनेश्वर ॥ १२ ॥

‘पुत्री । ऐसा करनेसे नि संदेह तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे, जैसे वे धनेश्वर कुजेर हैं । तुमने तो देखा ही था, वे कैसे अपने तेजसे सूर्यके समान उदीत हो रहे थे । ॥ १२ ॥

सा तु तद् वचन श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ।
तत्र गत्वा च सा तस्यै त्रिश्रया यत्र तप्यते ॥ १३ ॥

पिताकी यह बात सुनकर उनके गौरवका ख्याल करके कैकयी उस स्थानपर गयी, जहाँ मुनिवर त्रिश्रया तप करते थे । वहाँ जाकर वह एक जगह पड़ी हो गयी ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विज ।
अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थे इय पाथक ॥ १४ ॥

श्रीराम । इस बीचमें पुलस्त्यनन्दन ब्राह्मण विभवा सापसालका अग्निहोत्र करने लग्य । व तबकी मुनि उस समय तीन अग्निहोत्रोंके साथ स्वयं भी चतुर्थ अग्निवै समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ १४ ॥

अविचिन्त्य तु ता घेला दादृणा पितृगौरवात् ।
उपसृत्याप्रतस्तम्य चरणाभ्यमुखी स्थिता ॥ १५ ॥

पिताक प्रति गौरवमुद्रि दानेन कारण कैकयीने उस भयंकर बलाक विचार नहीं किया और निकट आ उनके चरणोंपर दृष्टि लगाये नीचा मुँह किया वह समने खड़ी हो गयी ॥ १५ ॥

विलिखन्ती मुहुर्भूमिमङ्गुलिमेण भामिनी ।
स तु ता दीप्य सुधोणी पूजयन्निभाननाम् ॥ १६ ॥

अग्रथीव परमोदारो दीप्यमाना स्यतेजसा ।
यह भामिनी अपने पैरक अंगुठसे बारबार धरतीपर रेखा लीकने लगी । पूष षड्रमाके समान गुल तथा मुन्दर कटि प्रदेशवाली उस मुन्दरीकी आ अपने तेजसे उदीत हो रही थी, देखकर उन परम उदार महर्षिने पूजा— ॥ १६ ॥

भद्रे कस्यासि मुहिता कुतो वा त्वमिहागता ॥ १७ ॥
किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥ १८ ॥

‘भद्रे । तुम किसकी कन्या हो, कहाँसे यहाँ आयी हो, मुझसे तुम्हारा क्या काम है अथवा किस उद्देश्यस यहाँ तुम्हारा आना हुआ है । शोभने । ये सब बातें मुझे ठीक ठीक बताओ ॥ १७ १८ ॥

पयमुका तु सा कन्या वृताञ्जलिरथावयीत् ।
आत्मप्रभावेण मुने द्वातुमर्हसि मे मतम् ॥ १९ ॥
किं तु मा गिद्धि ब्रह्मर्षे शासनात् पितृरागताम् ।
कैकली नाम नाम्नाह शेष त्व द्वातुमर्हसि ॥ २० ॥

निश्चयाव इस प्रकार पूछनेपर उस कन्याने गय जोड़कर कहा—‘मुने । आप अपने ही प्रभावसे मेरे मनोभावका समझ सकते हैं किंतु ब्रह्मर्षे । मेरे मुझसे इतना अरुण्य जान लें कि मैं अपने पिताकी आज्ञासे आपकी सेवामें आयी हूँ और मेरा नाम कैकली है । यानी सब बातें आपको स्वतः जान लेनी चाहिये (मुझसे न कहलायें)’ ॥ १९ २० ॥

स तु गत्वा मुनिभ्यान् वाक्पयमेतदुवाच ह ।
विहात ते मया भद्रे कारण यमनोगतम् ॥ २१ ॥
सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि ।
दादृणाया तु वलया यसात् त्व मामुपस्थिता ॥ २२ ॥
शृणु तस्मात् सुतान् भद्रे यादृशा ज्ञनयिष्यसि ।
दादृणान् दादृणाकारान् दादृणाभिजनयिष्यान् ॥ २३ ॥
प्रसयिष्यसि सुयोषि राक्षसान् मूर्खमण ।

यह सुनकर मुनिने थोड़ी देरतक ध्यान लगाया और उसके बाद कहा—‘भद्रे । तुम्हारे मनका भाव मारुत हुआ । मनवाने गबरवाली भोति मरदगतिने चलनेवाली मुन्दरी । तुम मुझसे पुत्र प्राप्त करना चाहती हो, परन्तु इस दादृण घेलामें मर पाव आयी हो, इसलिये यह भी मुन लो कि तुम कैसे पुत्रों को जन्म दोगी । सुधोणि । तुम्हारा पुत्र मूढ़ स्वभाववाला और गरीबसे भी भयंकर होंगे तथा उनका मूर्खका राखलीने साथ ही प्रम होगा । तुम मूर्तापूज कर्म करनेवाले राखलीके ही वेदा करोगी ॥ २१-२३ ॥

सा तु तद्वचन श्रुत्वा प्रणिपत्त्याग्रथीद्वयम् ॥ २४ ॥
भगवन्नीदृशान् पुत्रास्त्यक्तोऽह ब्रह्मचादिन ।
नेच्छामि सुदुराचारान् प्रसाद वतुमर्हसि ॥ २५ ॥

मुनिका यह वचन सुनकर कैकली उनसे चरणोंपर गिर पड़ी और इस प्रकार बली—‘भगवन् । आप ब्रह्मवाणी श्रुतात्मा हैं । मैं आपसे ऐसे दुष्टाचारी पुत्रोंको पानेकी अभिलाषा नहीं रखती; अतः आर मुझपर कृपा कीजिये ॥ २४ २५ ॥

कन्यया स्वेधमुक्त्वा विप्रया मुनिपुत्रम् ।
उवाच कैकसी भूय पूर्णोदुग्धि रोहिणीम् ॥ २६ ॥
उस राखलीकन्याने इस प्रकार बहनेपर पूर्वपद्मनाके

समान मुनिवर विभवा गृणिणी जैसी सुन्दरी कैसीसे फिर बोले—॥ २६ ॥

पश्चिमो यस्तत्र सुतो भविष्यति शुभानने ।

मम वशानुरूप स धमात्मा च न सशय ॥ २७ ॥

शुभानने । तुम्हारा जो समसे छोटा एन अन्तिम पुत्र होगा, वह मेरे यहाँ अनुरूप धमात्मा होगा, शयमें सशय नहीं है ॥ २७ ॥

पवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ।

जनयामास धीमत्स रक्षोरूप सुदारुणम् ॥ २८ ॥

दशग्रीव महादृष्ट नीलाञ्जनचयोपमम् ।

ताम्रोष्ठ त्रिशतिभुज महास्य दीप्तमूधजम् ॥ २९ ॥

भीरव । मुनिके एसा पदनेपर कैसीने उछ कालने अनन्तर अत्यन्त मयानक और दूर स्वभाववाले एक राक्षसको जन्म दिया, जिसके दस मलक, बड़ी-बड़ी दाँतें, तीनों-जैसे ओठ, शीत मुजाएँ, विगाल मुख और चमकीले केश थे । उठने शरीरका रंग कायलेके पहाड़ जैसा काला था ॥ २८ २९ ॥

तस्मिं जाते ततस्तस्मिन् सज्ज्यालकयला शिवा ।

प्रत्यादाध्यापसयानि मण्डलानि प्रचक्रमु ॥ ३० ॥

उसके पैदा होते ही मुँहमें अङ्गारोंके सौर लिये गीदड़ियाँ और माघमशी घन आदि पड़ी दाँतों-जोर मण्डलान्तर घूमने लगे ॥ यवप रुधिर देवो मेधाश्च ररनि स्यना ।

प्रयभौ न च सूर्यो वै महोल्काश्चापतन् भुवि ॥ ३१ ॥

चक्रमे जगती चैव यधुवाता सुदारुणा ।

अक्षोभ्य क्षुभितश्चेव समुद्र सरिता पति ॥ ३२ ॥

इन्द्रदेव रुधिरकी कपा करने लगे, मेघ भयकर स्वर्गमें गवने लगे, सूर्यकी प्रभा कीरी पड़ गयी, पृथ्वीपर उत्कापात होने लगा, धरती काँप उठी, मयानक आँधी चलने लगी तथा वह किलीके द्वारा धुँच नहीं किया जा सकता, वह सरिताओं का स्वामी समुद्र विपुल्य हो उठा ॥ ३१ ३२ ॥

अथ नामाकरोत् तस्य पितामहसम पिता ।

दशग्रीव प्रसूतोऽय दशग्रीवो भविष्यति ॥ ३३ ॥

उस समय ब्रह्माजीने समान तेजस्वी पिता विभवा मुनिके पुत्रका नामकरण किया—‘वह दस ग्रीवाएँ लेकर उत्पन्न हुआ है, इसलिए ‘दशग्रीव’ नामसे प्रसिद्ध होगा’ ॥ ३३ ॥

तस्य त्वनन्तर जात कुम्भकर्णो महायत्न ।

प्रमाणाद् यस्य विपुल प्रमाण नेह विद्यते ॥ ३४ ॥

उसका बाद महायत्नी कुम्भकर्णका जन्म हुआ, जिसका शरीरसे बड़ा शरीर इस जातमें दूसरे किसीका नहीं है ॥ ३४ ॥ तत दर्पणत्वा नाम सन्ने निरुत्तानना ।

विभीषणश्च धमात्मा कैकसा पश्चिमः सुत ॥ ३५ ॥

इसके बाद निराल मुखवाली दर्पणत्वा उत्पन्न हुई । तदनन्तर धमात्मा विभीषणका जन्म हुआ, जो कैकसीके अन्तिम पुत्र थे ॥ ३५ ॥

तस्मिन् जाते महासत्त्वे पुण्यवर्षे पपात ह ।

नभ स्थाने दुःकुभयो देवाना प्राणदस्तया ।

चाम्य चैवान्तिरिक्षेच साधु साधिततित्तु तदा ॥ ३६ ॥

उस महान् सवगाली पुत्रका जन्म होनेपर आकाशमें फूँटोंकी कपा हुई और आकाशमें देवोंकी दुःकुभियाँ बज उठी । उस समय अन्तर्स्थित ‘साधु-साधु’ की ध्वनि सुनायी देने लगी ॥ ३६ ॥

तौ तु तत्र महारण्ये वयुधाते महोजसी ।

कुम्भकर्णदशग्रीवौ लोकोत्थेगदरौ तदा ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्ण और दशग्रीव वे दोनों महायत्नी राक्षस लक्षमें उद्देग पैदा करनेवाले थे । वे दोनों ही उस विगाल वनमें पालित होने और बन्ने लगे ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्ण प्रमत्तस्तु महर्षान् धमत्सलान् ।

त्रैलोक्ये नित्यासतुणे भक्षयन् विचचार ह ॥ ३८ ॥

कुम्भकर्ण बड़ा ही उमत्त निराला । वह भोजनसे कभी रूत नहीं होता था, अत तीनों लोकमें घूम-घूमकर धमात्मा महर्षियोंको खाता फिरता था ॥ ३८ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्य धमव्यवस्थित ।

स्वाध्यायनियताहार उरास विनितेन्द्रिय ॥ ३९ ॥

विभीषण वचनसे ही धर्मात्मा थे । वे सदा धर्ममें स्थित रहते, स्वाध्याय करते और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखते थे ॥ ३९ ॥

अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।

आगत पितर द्रष्टु पुण्यकेण धनेभ्यः ॥ ४० ॥

कुछ काल बीतनेपर धनके स्वामी वैश्रवण पुण्यविमान पर आरुढ़ हो अपने पिताका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये ॥ ४० ॥

त द्रष्टु कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ।

आगम्य राक्षसी तत्र दशग्रीवमुवाच ह ॥ ४१ ॥

वे अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे । उन्हें देखकर राक्षस-कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीवसे पास आयी और इस प्रकार बोली— ॥ ४१ ॥

पुत्र वैश्रवण पदय धातर तेजसा घृतम् ।

आवृभावे समे चापि पदया मान त्वमीदृशम् ॥ ४२ ॥

‘वेग’ । अपने भाई वैश्रवणकी अर ता देखो । ये कैसे तेजस्वी जान पड़ते हैं ! भाद होनेके नाते हम भी इन्हींने समान हो । परन्तु अपनी अगम्य देव, कैसी है ! ॥ ४२ ॥

दशग्रीव तया यत्न शुरुषामितविग्रह ।

यया त्वमपि मे पुत्र भवेयं धयणोपम ॥ ४३ ॥

‘अमित पराजनी दशग्रीव ! मेरे बेटे ! तुन भी ऐस कोई यत्न करो, जिससे वैश्रवणकी ही योंति तब और येमसे सम्भव हो जाओ’ ॥ ४३ ॥

मातुस्तद् वचनं श्रुत्वा दशग्रीव प्रतापवान् ।
 अमर्यमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत् तदा ॥ ४४ ॥
 माताकी यह बात सुनकर प्रतापी दशग्रीवको अनुपम
 अमर्य हुआ । उसने तत्काल प्रतिज्ञा की— ॥ ४४ ॥
 सत्यं ते प्रतिजानामि भ्रातृनुल्लोऽपि च ।
 भविष्याम्योजसा चैव सतापं त्यज दृढतमम् ॥ ४५ ॥
 'माँ ! तुम अपने हृदयकी चिन्ता छोड़ो । मैं तुमसे
 सखी प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि अपने पराक्रमसे भाई वैश्रवणके
 समान या उनसे भी बढ़कर हो जाऊँगा' ॥ ४५ ॥
 तत क्रोधेन तेनैव दशग्रीव सहानुज ।
 चिकीर्षुर्दुष्करं कामं तपसे धृतमानस ॥ ४६ ॥
 तब क्रोधेन तेनैव दशग्रीव सहानुज ।
 चिकीर्षुर्दुष्करं कामं तपसे धृतमानस ॥ ४६ ॥
 प्राप्स्यामि तपसा काममिति वृत्त्याप्यवस्य च ।
 आगच्छद्वात्मसिद्धयर्थं गोक्षयास्याश्रमं शुभम् ॥ ४७ ॥
 प्राप्स्यामि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवमं सर्गं ॥ ९ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आपरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें नवौं सर्ग पुरा हुआ ॥ ९ ॥

दशम. सर्ग

रावण आदिकी तपसा और वर प्राप्ति

अथाग्रनीमुनिं राम कथं ते भ्रातरो वने ।
 कीदृशं न तदा ब्रह्मस्तपस्तेषुमहाबल ॥ १ ॥
 इतनी कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्य मुनिसे
 पूछा—'ब्रह्मन् ! उन तीनों महाबली भाइयोंने वनमें किस
 प्रकार और कैसी तपस्या की ?' ॥ १ ॥
 अगस्त्यस्त्वग्रशीलं तत्र राम सुप्रीतमानसम् ।
 तास्तान् धर्मविर्धोस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ॥ २ ॥
 तब अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले श्रीरामसे
 कहा—'छुनन्दन ! उन तीनों भाइयोंने वहाँ वृषक-वृषक
 धर्मविधियोंका अनुष्ठान किया ॥ २ ॥
 कुम्भकण्ठतो यस्तो नित्यं धमपये स्थित ।
 सतापं प्रीप्सन्नालेषु पञ्चाम्नीन् परितः स्थित ॥ ३ ॥
 'कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियोंको स्वयं रसकर प्रतिदिन
 धमर मार्गमें स्थित हो गर्मीय दिनोंमें अपने चारों ओर आग
 जल धूपमें बैठकर पञ्चाग्निना सेवन करने लगा ॥ ३ ॥
 मेघाम्बुसिक्तो यथासु धीरासनमसेवत ।
 नित्यं च शिशिरे फाले जलमध्यप्रतिधाय ॥ ४ ॥
 'किर वर्षाश्रुतुमें पु' मैदानम पीरासनसे बैठकर मेघोंक
 बरखाये हुए जलसे भीगता रहा और जाड़के दिनोंमें प्रतिदिन
 जलसे भीतर रहने लगा ॥ ४ ॥
 एव यपसहस्राणि दश तस्यापञ्चमसु ।
 धर्मं प्रयतमानस्य सत्यये निष्ठितस्य च ॥ ५ ॥
 'एव प्रकार म-मार्गमें नित्य ॥ धर्मक स्थि प्रबलनीड
 हुए उठ कुम्भकर्ण दस हजार वर्षों कीत गये ॥ ५ ॥
 विभीषणस्तु धमात्मा नित्य धमपत् शुचिः ।

तदनन्तर उसी क्रोधसे आवेशमें भाइयोंसहित दशग्रीव
 दुष्कर कामकी इच्छा मनमें लेकर सोचा—'मैं तपस्यासे ही
 अपना मनोरथ पूर्ण कर सकूँगा, ऐसा विचारकर उसने मनमें
 तपस्याका ही निश्चय किया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिकी ज्ये
 यह गोकर्णके पवित्र आश्रमपर गया ॥ ४६ ४७ ॥

स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा
 तपश्चारातुलमुपनिष्क्रम ॥

अतोपयथापि पितामहं विभु

वदौ स तुष्टश्च वराञ्जयानहान् ॥ ४८ ॥

भाइयोंसहित उस भयंकर पराक्रमी राक्षसने अनुपम तपसा
 आरम्भ की । उस तपस्याद्वारा उसने भगवान् ब्रह्माजीको
 संतुष्ट किया और उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विषय दिलनेवाले
 वरदान दिये ॥ ४८ ॥

पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ६ ॥

'विभीषण तो सदासे ही धमात्मा थे । वे नित्यधर्मवरायण
 रहकर शुद्ध आचार विचारका पालन करते हुए पाँच हजार
 वर्षोंतक एक पैरसे खड़े रहे ॥ ६ ॥

समाप्ते नियमे तस्य नन्दुद्व्याप्सरोगणाः ।

पपात पुष्पवर्षं च तुष्टुद्व्यापि देवताः ॥ ७ ॥

'उनका नियम समाप्त होनेपर अप्सरोएँ नृत्य करने
 लगीं । उनके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओं
 ने उनकी स्तुति की ॥ ७ ॥

पञ्चवर्षसहस्राणि सूर्यं धौवान्वनर्तत ।

तस्यैवोर्ध्वशिरोयात् स्वाप्याये धृतमानस ॥ ८ ॥

'तदनन्तर विभीषणने अपनी दोनों धौहें और महाक
 ऊपर उठाकर स्वाप्यायपरायण हो पाँच हजार वर्षोंतक सूर्यदेव
 की आराधना की ॥ ८ ॥

एव विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ।

दशवर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ॥ ९ ॥

'इस प्रकार मनसे वशमें रखनेवाले विभीषणने भी दस
 हजार वर्षों बड़े सुखसे भीते, मानो वे स्वर्गमें नन्दनवनमें
 निवास करते हों ॥ ९ ॥

दशवर्षसहस्रं न निरादारो दशाननः ।

पूर्णे वपसहस्रे न शिरध्याग्री जुहाय स ॥ १० ॥

'दशवर्ष राखने दस हजार वर्षोंतक लगातार उपवास
 किया । प्रत्येक सहस्र वर्षोंके पूर्ण होनेपर वह अपना एक
 मस्तक काटकर आगमें होम देता था ॥ १० ॥

एव यपसहस्राणि नय तस्यातिचमत्सुः ।

शिवासि नय चाप्यस्य प्रणिनि हुताशनम् ॥ ११ ॥
 इत्थं तरह एक-एक करने उठने नौ हजार यष वीत
 गये और नौ मन्त्र भी अग्निदेवता में हो गये ॥ ११ ॥
 अथ वषसहस्रे तु दशमे दशम शिरः ।
 छेत्तुकामे दशग्रीवे प्रागस्तत्र पितामह ॥ १२ ॥
 जब दसवें सहस्र पूरा हुआ और दशमी अगला दसवाँ
 मन्त्र कहनेवाला उठाने हुआ; इसी समय पितामह ब्रह्माजी
 वहाँ आ पहुँचे ॥ १२ ॥
 पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः ।
 तत्र ताम्बु दशग्रीवः प्रीतोऽस्तीत्यभ्यभाषत ॥ १३ ॥
 पितामह ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओं साथ
 वहाँ पहुँच थे । उन्होंने आत ही कहा—‘दशग्रीव ! मैं तुम
 पर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ १३ ॥
 शीघ्र वरय धर्मज्ञ यतो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः ।
 क ते काम करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥ १४ ॥
 ‘धर्मज्ञ ! तुम्हारे मनमें विषय वरतो पानेकी
 इच्छा हो; उने शीघ्र माँगा । बला, आब मैं तुम्हारी इच्छा
 अभिलाषाओं पूरा करूँ ! तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नहीं देना
 चाहिये’ ॥ १४ ॥
 अथाप्रधीद् दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
 प्रणम्य शिरस्ता देवः हर्षगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥
 यह सुनकर दशग्रीवकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गयी ।
 उठने मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माजी प्रणाम किया और
 हर्षगद्गदवाणीमें कहा— ॥ १५ ॥
 भगवन् प्राणिना नित्यं नान्यत्र मरणान्द भयम् ।
 नास्ति मृत्युसमः क्षात्रमरत्यमहं क्षुणे ॥ १६ ॥
 ‘भगवन् ! प्राणियों लिये मृत्यु ही भय और डरकी
 वगैरे भय नहीं रहता है अन्यत्र मैं अमर होना चाहता हूँ;
 क्योंकि मृत्यु ही समान दुःख की वगैरे दुःख नहीं है’ ॥ १६ ॥
 एवमुक्त्वन्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह ।
 नास्ति सयामरत्यं ते धर्मस्य वृणीत मे ॥ १७ ॥
 ‘तबसे ऐसा हृत्पर ब्रह्माजी दशग्रीवसे कहा—‘तुम्हें
 कदा अमरता नहीं मिलेगी । इच्छिये दुःख की वगैरे वर
 माँगा’ ॥ १७ ॥
 एवमुक्ते तदा रामः प्रहृष्टा लोभकृष्णा ।
 दशग्रीव उवाचेद् दृष्टावृत्त्यप्यतः ॥ १८ ॥
 श्रीराम ! लोभलगा ब्रह्माजी ऐसा कहनेपर दशग्रीवसे
 उनका लभने काय बँधकर कहा— ॥ १८ ॥
 सुपणनागपञ्चाणां दैत्यदानवरसहस्रसाम् ।
 अरण्याऽहं प्रजापत्यां दृष्टतानां च शापयत ॥ १९ ॥
 ‘भगवान् प्रसन्न ! मैं गरुड, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव,
 राक्षस तथा देवताओं लिये आरक्ष हो जाऊँ ॥ १९ ॥
 तदि जिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजितः ।

वृणभूता हि ते मये प्राणिनो मानुषादयः ॥ २० ॥
 ‘देवराज पितामह ! अन्य प्राणियोंसे मुझ लभने की
 विन्ता नहीं है । मनुष्य अग्नि अन्य जीवों से तो मैं जिन्ने
 ममान समझता हूँ’ ॥ २० ॥
 एवमुक्त्वन्तु धर्मात्मा दशग्रीवम उवाच ह ।
 उवाच धर्म देव सह देवैः पितामह ॥ २१ ॥
 ‘धर्म देव दशग्रीव ! ऐसा कहनेपर देवताओंसे भगवान्
 ब्रह्माजीने कहा— ॥ २१ ॥
 भिरिष्यत्येवमेतन् ते वज्रो रक्षसपुङ्गव ।
 एवमुक्त्वा तु त राम दशग्रीवः पितामह ॥ २२ ॥
 ‘वाञ्छाकर ! तुम्हारा यह वचन सत्य होगा ।’ श्रीराम !
 दशग्रीवसे ऐसा कहकर पितामह फिर गया— ॥ २२ ॥
 शृणु चापि यतो भूय प्रीतस्येह गुभो मम ।
 हुतानि यानि शीघ्राणि पूजयन्तौ त्वयानघ ॥ २३ ॥
 पुनस्तानि भिरिष्यन्ति तत्रैव तव राक्षस ।
 तितरामीह ते सीस्य वर गान्धर्वुरामदम् ॥ २४ ॥
 छन्दस्तत्त्वं रूपं च मनसा यद् योऽस्मिन्तम् ।
 ‘निश्चाप राक्षस ! सुनो—मैं प्रसन्न होकर तुम
 यह गुप्त वर प्रदान करता हूँ—तुमने पहले अग्निमें अपने
 जिन जिन मन्त्रोंका हुता किया है; वे सब तुम्हारे लिये फिर
 पूर्वप्रसन्न प्रसन्न हो जायेंगे । सीस्य ! इसका गिरा एक और भी
 दुःख वर मैं तुम्हें यों दे रहा हूँ—तुम अगले मनमें जो
 जैसा रूप धारण करना चाहोगे, तुम्हारी इच्छानुसार
 उस समय तुम्हारा देना ही रूप हो जायगा’ ॥ २३ ॥
 एव पितामहोत्तर्य दशग्रीवस्य रक्षसम् ॥ २४ ॥
 असौ हुतानि शीघ्राणि पुनस्तान्युपि यतानि ।
 ‘पितामह ब्रह्माजी हुता करते हैं । राक्षस दशग्रीव
 मन्त्रों का पहले आगमें हुता दिया गया था फिर तब रूपमें
 प्रसन्न हो गया’ ॥ २४ ॥
 एवमुक्त्वा तु त राम दशग्रीवः पितामह ॥ २५ ॥
 त्रिभीरणमयोवाच राक्षसः लोभपितामह ।
 ‘श्रीराम ! दशग्रीवसे पूर्वोक्त वर का रूप लोभपितामह
 ब्रह्माजी त्रिभीरणसे कहा— ॥ २५ ॥
 त्रिभीरण त्वया धर्म धारयितुं युजिता ॥ २६ ॥
 परितुणेऽस्मि धर्मस्य दश धारय सुपुत्र ।
 ‘जो विष्णु ! तुम्हारी बुद्धि का धर्म ही लोभ
 का है, अतः मैं तुम्हारा धर्म सत्त्व । जन्म प्राप्त करने
 करने का धर्ममान । तुम भी अगली दशधर अनुकर कर
 कर माँगा’ ॥ २६ ॥
 त्रिभीरणस्तु धर्मात्मा त्वया प्राप्तः साधुः ॥ २७ ॥
 मृतः सगुणैर्नित्यं धर्मस्य धर्मभिषया ।
 भगवन् दृष्टव्योऽहं यम लोभगुरुः स्वयम् ॥ २८ ॥
 प्रीतेन धर्मि, दानवो वरो मे शृणु सुपुत्र ।

‘तत्र किरणमालामण्डित चन्द्रमासी भौति तदा समस्त
गुणोत्तैः सम्पन्न धर्मात्मा विभीषणने हाय जोड़कर कहा—
‘भगवन् ! यदि स्यान् लाङ्गुल आप मुझपर प्रसन्न हैं तो
मैं कृतार्थ हूँ । मुझे कुछ भी पाना शेष नहीं रहा । उत्तम
व्रतको धारण करनेवाले पितामह ! यदि आप प्रसन्न होकर
मुझे वर देना ही चाहते हैं तो मुनिये ॥ २८ २९ ॥
परमापद्रुतस्यापि धर्मे भगवन् प्रतिभवेत् ॥ ३० ॥
अशिक्षित च ब्रह्मास्त्र भगवन् प्रतिभातु मे ।

‘‘भगवन् ! वही-उसे वही आपत्तिमें पड़नेपर भी मेरी
बुद्धि धर्ममें ही लगी रहे—उससे निचलित न हो और बिना
सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्रका ज्ञान हो जाय ॥ ३० ॥
या या मे जायते बुद्धिर्येषु येऽप्यस्यमुच ॥ ३१ ॥
सा सा भवतु धर्मिष्ठा त त धर्मं च पालये ।

एव मे परमोदारो वर परमको मत ॥ ३२ ॥
‘‘जिस-जिस आभिमन्त्र विषयमें मेरा जो-जो विचार हो,
वह धर्मक अनुकूल ही हो और उस उस धर्मका मैं पालन
करूँ, यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अमीष्ट वरदान
है ॥ ३१-३२ ॥

नहि धमभिरकाना लोके किंचन दुर्लभम् ।
पुन प्रजापति प्रीतो विभीषणमुवाच ॥ ३३ ॥
‘‘क्योंकि जो धर्ममें अनुरक्त हैं, उनके लिय कुछ भी
दुर्लभ नहीं है’ यह सुनकर प्रजापति ब्रह्मा पुन प्रसन्न हो
विभीषणसे बोले—॥ ३३ ॥

धर्मिष्ठस्य यथा यत्न तथा चैतद् भ्रिय्यति ।
यस्माद् राक्षसयोनौ ते जातस्याभिप्रनादान ॥ ३४ ॥
नाधर्मं जायते बुद्धिरमरस्य वदामि ते ।

‘‘वत्स ! तुम धर्ममें स्थित रहनेवाले हो, अतः जो कुछ
चाहते हो, वह सब पूरा होगा । ‘गुनायन ! राक्षस-यानिमें
उत्पन्न होकर ही दुष्टदारी बुद्धि अधर्ममें नहीं लगती है इसलिये
मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा कुम्भकणाय वर शतमवस्थितम् ॥ ३५ ॥
प्रजापति सुरा सर्वे वाक्य प्राञ्जल्योऽनुवन् ।

‘‘विभीषणने एका कदर १२ ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे वर
दनेपर लिये उद्यत हुए, तब सब देवता उनसे हाथ जोड़कर
माले—॥ ३५ ॥

न तावत् कुम्भकणाय प्रशतयो वरस्तथा ॥ ३६ ॥
जानीन हि यथा लोकास्त्रासयत्येव दुर्मति ।

‘‘प्रभ्रा ! आप कुम्भकर्णको वरदान न दीजिय क्योंकि
आप जानते हैं कि यह दुष्टदि निगाबर त्रिष तरह समस्त
रूपोंका प्राण देता है ॥ ३६ ॥

नन्देऽप्सरस सप्त महेन्द्रानुचरा ददा ॥ ३७ ॥
अनन भणिता ब्रह्मन्त्येषा मानुगस्तप ।

‘‘अप्सर ! इन्हें नन्दननवी सप्त अप्सराओं, देवराज

इन्द्रके दस अनुचरों तथा बहुत-से श्रुतियों और मनुष्योंके
भी खा लिया है ॥ ३७ ॥

अलध्वरपूर्वेण यत् एत राक्षसेन तु ॥ ३८ ॥
यद्येव वरलब्ध स्याद् भक्षमेद् भुवनत्रयम् ।

‘‘पहले वर न पानेपर भी इस राक्षसेने जब इस प्रकार
प्राणियोंके भक्षणका कृतार्थपूर्ण कर्म कर डाला है, तब यदि इसे
वर प्राप्त हो जाय, उस दण्डमें तो यह तीनों लोकोंकी खा
जायगा ॥ ३८ ॥

घरव्याजेन मोहोऽस्मै दीयताममितप्रभ ॥ ३९ ॥
लोकाना स्वस्ति चैव स्याद् भयेदस्य च सम्मति ।

‘‘अमितलेजरही देव ! आप वरके रहने इसको मोह
प्रदान कीजिये । इसके समस्त लोकोंका वन्द्याग होगा और
इसका भी सम्मान हो जायगा’ ॥ ३९ ॥

एवमुच सुरैर्ब्रह्माचिन्त्यत पद्मसम्भव ॥ ४० ॥
चिन्तिता चोपतस्थेऽस्य पादौ देवी सरस्वती ।

‘‘देवताओंने एका कदनेपर कमरबानि ब्रह्मापाने सरस्वती
का स्मरण किया । उनमें चिन्तन करने ही देवी सरस्वती पाद
आ गयी ॥ ४० ॥

प्राञ्जलि सा तु पादस्थं प्राह वाक्य सरस्वती ॥ ४१ ॥
इयमस्म्यागत्य देव त्रि कार्यं करवाग्यहम् ।

उनके पादोंभागमें खड़ी हो सरस्वतीने हाथ जोड़कर
कहा—‘देव ! यह मैं आ गयी । मेरे लिये क्या आज्ञा है ?
मैं कौन-सा कार्य करूँ ?’ ॥ ४१ ॥

प्रजापतिस्तु ता प्राप्ता प्राह वाक्य सरस्वतीम् ॥ ४२ ॥
वाणि त्व राक्षसेद्रस्य भव चाग्नेर्वातेऽस्तिता ।

‘‘तब प्रजापतिने वहाँ आयी हुई सरस्वतीदेवीसे कहा—
‘वाणि ! तुम राक्षसपक्ष कुम्भकर्णकी जिह्वापर निराश्रय हो
देवताओंके अनुकूल वाणीय रूपमें प्रकट होओ’ ॥ ४२ ॥
तथेत्युक्त्वा प्रणिण सा प्रजापतिरयाग्रधीन् ॥ ४३ ॥
कुम्भकर्ण महाबाहो वर वरय यो मत ।

‘‘तब ‘बहुन उच्छा’ कहकर सम्मन्वित कुम्भकर्णने मुझमें
समा गयी । इस बाद प्रजापतिने उस राक्षससे कहा—
‘महाबाहु कुम्भकर्ण ! तुम भी अपने मनन अनुकूल कोई
वर माँगा’ ॥ ४३ ॥

कुम्भकर्णस्तु तदाक्य भुञ्ज्य घनमप्रवीह् ॥ ४४ ॥
स्वस्त यथाव्यनेकानि दधेदेव ममेऽस्तिताम् ।

परमस्त्विति त चोसथा प्रायान् प्रह्ला सुरैः समम् ॥ ४५ ॥
‘उनकी बात सुनकर कुम्भकर्ण बोला—‘देवदेव ! मैं

अनेकानेक कर्णोंका लाला रहूँ । परी मरी इच्छा है ।’ तब
‘एवमग्न्यु (एव ही हो)’ यहकर ब्रह्माजी दयताओं काय
कर गये ॥ ४४ ॥

देवी सरस्वती नैव राक्षस त जटो पुन ।
प्रह्लाणा सह दयेषु गतसु च नभस्यम् ॥ ४६ ॥

निमुक्तेऽसौ सरम्यत्या स्वा मन्त्रा च ततो गत ।
कुम्भकणस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दु खित ॥ ४७ ॥
गिर सरम्यदीर्घोने भी उष राक्षसको छोड़ दिया ।
ब्रह्माजीव साय देवताओं आनाशम चल जानेपर जब
सरम्यदीर्घ उषर ऊपरसे उतर गया; तब दुष्टात्मा कुम्भकण
ध्रुवेन हुआ और वह दुष्टी हाथर इस प्रकार चिन्ता
करते व्या—॥ ४६ ४७ ॥
इहश किमिदं वान्य ममाद्य वदनाञ्च्युतम् ।

हृत्पार्य श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वाविंश सर्ग ॥ १० ॥
इम प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकादश सर्ग

राजगका सदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका लङ्काको छोड़कर कैलासमपर
जाना, लङ्कामें रावणका राज्याभिषेक तथा राक्षसोंका निवास

सुमाली वरलम्बास्तु क्षात्या चैतान् निशाचरान् ।
उद्विष्टदभय त्यक्त्वा सानुग सरसातलात् ॥ १ ॥
रावण आदि निशाचरोंको घर प्राप्त हुआ है; यह जानकर
सुमाली नामक राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर
रसातलमें निकला ॥ १ ॥
मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदर ।
उद्विष्टन् सुसरग्धा सचियास्तस्य रहस ॥ २ ॥
साय ही मारीच; प्रहस्त; विरूपाक्ष और महोदर—ये
उष राक्षसने चार मंत्री भी रसातलसे ऊपरको उठे । वे सब
कंसव रेषावेगसे भर हुए थे ॥ २ ॥
सुमाली सचिवै सार्धं वृत्तो राक्षसपुङ्गवै ।
अभिगम्य दशग्रीय परिपश्येद्दमव्रीत् ॥ ३ ॥
भेद राक्षसने विष्ट हुआ सुमाली अपने सचिवोंक साथ
दशग्रीवक पाव गया और उने छातीसे लगाकर इस प्रकार
बाँझा—॥ ३ ॥
दिष्टया ते वत्स सम्प्राप्तश्चिन्तितोऽय मनेरथ ।
यस्तस्य शिभुवनभेदालम्भगान् परमुचमम् ॥ ४ ॥
वत्स ! यहें सीमापर्वी बात है कि तुमने शिभुवनभेद
ब्रह्माजीमे उत्तम घर प्राप्त किया; जिससे तुम्हें यह विरकाये
चिन्तित मनेरथ उपलब्ध हो गया ॥ ४ ॥
यत्कृते च यय लङ्का त्यक्त्वा यावा रसातलम् ।
तत्रत नो महागहो महच्छिण्णत भयम् ॥ ५ ॥
महागह ! जिसके कारण हम सब राक्षस लङ्का छोड़कर
रसातलमें चले गये थे, भगवान् विष्णुस प्राप्त होनेवाला
हमाय यह महान् भय दूर हो गया ॥ ५ ॥
अमरान् तद्वयाद् भ्राता परित्यज्य स्वमालयम् ।
विदुहाः सदित्ताः सर्वे प्रियं स रमातलम् ॥ ६ ॥
हम सब रजा काकापर भगवान् विष्णुक भयम पीड़ित

अह व्यामोहितो दैनैरिति मन्ये तद्गतं ॥ ४८ ॥
“जरी ! आज गरी मुझसे ऐसी बात क्यों निकल गयी ।
मैं समझता हूँ, ब्रह्माजीक साथ आय हुए देवताओंने ही उस
समय मुझे महमें डाल दिया था” ॥ ४८ ॥
पथ लम्घयता सर्वे भ्रातरो दीर्घतैजस ।
द्वेष्मातकृन्तयता तथ ते न्यवसन् सुरसम् ॥ ४९ ॥
पथ प्रसार वे तीनों तन्त्रवी भ्राता वर पातर लम्घातक
बन (रखोड़के जंगल) में गये और यहाँ मुखपूजकर देने लगे ॥ ४९ ॥

हनेक कारण अपना घर छोड़ भाग निकले और सब व-स्य
एक साथ ही रसातलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ६ ॥
असदीया च लङ्घ्ये नगरी राक्षसोपिता ।
निवेशिता तत्र भ्रात्रा धनाप्यक्षेण धीमता ॥ ७ ॥
यह लङ्कानगरी जिसमें तुम्हारे बुद्धिमान् भाई धनाप्यक्ष
कुबेर निवास करते हैं, हमलोगोंकी है । परल इसमें राक्षस
ही रहा करते थे ॥ ७ ॥
यदि नामाशयस्य ह्यत् सान्ना दानेन यानय ।
तरसा वा महायाहो प्रत्यनेतु कृत भयेत् ॥ ८ ॥
निर्वास महाबाहो ! यदि साम, दान अपना वस्त्रवेग
क द्वारा भी पुन लङ्काका वापस लिया जा सन तो हमलोगों
का काम बन जाय ॥ ८ ॥
त्व च लङ्घेद्वरस्तात भविष्यसि न सदाय ।
त्वया राक्षसयशोऽय निमनोऽपि समुद्धृत ॥ ९ ॥
यावत् ! तुम्हीं लङ्काक स्वामी होभगे, इसमें सदाय नहीं
है; क्योंकि तुमने इस राक्षसराजा का रसातलमें डूब गया
था, उद्धार किया है ॥ ९ ॥
सर्वेषां न प्रमुधैव भविष्यसि महाबल ।
वयाव्रवीद् दशग्रीयो मातामहमुपप्लवितम् ॥ १० ॥
वित्तेदो मुदरस्सार नाहने यक्षुमीदृशम् ।
महाबली वीर ! तुम्हें हम सब राक्षस दभगे । यह
सुनकर दशग्रीवने पाप यह हुए अपने मातामहने कहा—
जानाजी ! धनाप्यक्ष कुबेर हमारा बहुत पक्षी बात नहीं करती “रहित” ॥
साम्ना दिराक्षसेन्द्रेण प्रत्यागम्यो गरीयसा ॥ ११ ॥
किञ्चिन्नाह तदा रक्षो यावा तस्य चिन्तयितम् ।

उस भेद राक्षसपक्ष द्वारा जानकार । ही एका वय
उत्तर पातर मुमन्दी समझ गया कि यहाँ क्या करना चाहता

है, इसलिये वह राक्षस चुप हो गया । फिर कुछ रहनेका साधन न कर सका ॥ ११३ ॥

कस्यचित् न्यथ कालस्य वसन्त गवणं तत ॥ १२ ॥
उक्तवन्त तथा धाक्य दशग्रीव निशाचर ।

प्रहस्त प्रथित चाक्यमिदमाह सकारणम् ॥ १३ ॥
तदनन्तर कुछ काल 'यतीत होनेपर अपने स्थानपर निवास करते हुए दशग्रीव रावणसे जो सुमालीको पहले पूजो' उत्तर दे चुका था, निशाचर प्रहस्तने विनयपूर्वक यह युक्तियुक्त बात कही—॥ १२ १३ ॥

दशग्रीव महाबाहो नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।

सौभाग्य नास्ति शराणां भूषु चेद वचो मम ॥ १४ ॥
'महाबाहु दशग्रीव ! आपने अपने मानासे जो कुछ कहा है, सेवा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि बीरोमें इस तरहके भ्रातृभावका निर्बाह होता नहीं देखा जाता । आप मेरी यह बात सुनिये ॥ १४ ॥

अदितिश्च द्वितीयैव भगिन्यौ सहिते हि ते ।

भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापते ॥ १५ ॥

'अदिति और दिति दोनों सगी बहनें हैं । वे दोनों ही प्रजापति कश्यपकी परम सुन्दरी पत्नियों हैं ॥ १५ ॥

अदितिर्जनयामास देशस्त्रिमुक्तेश्वरान् ।

दितिस्तृजनयद्दैत्यान् कश्यपस्यात्मसम्भवान् ॥ १६ ॥

अदितिने देवताओंको जन्म दिया है, जो इस समय त्रिमुवनक स्वामी हैं और दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया है ।

देवता और दैत्य दोनों ही महर्षि कश्यपके औरत पुत्र हैं ॥

दैत्यानां किल धमस्त पुरेय सवनागर्वा ।

सपर्वता मही वीर लेऽभयन् प्रभजिष्णव ॥ १७ ॥

'धर्मश वीर ! पहले पर्वत, वन और समुद्रोंमें रहित यह सारी पृथ्वी दैत्योंके ही अधिकारमें थी, क्योंकि वे बड़े प्रभावशाली थे ॥ १७ ॥

निहत्य तास्तु समरे जिष्णुना प्रभजिष्णुना ।

देवानां वशामनीत शैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १८ ॥

'जिंहू उग्रवृत्तिमान् मगगान् जिष्णुने युद्धमें दैत्योंको मारकर शैलोकिका यह अखण्ड राज्य देवताओंके अधिकारमें दे दिया ॥ १८ ॥

नैतदेको भवानेव करिष्यति त्रिपययम् ।

सुरासुरैराचरित तत् कुरुष्व वचो मम ॥ १९ ॥

'इस तरहका त्रिपैत आचरण केवल आप ही नहीं करेंगे । देवताओं और असुरोंमें भी पहले इस नीतिसे काम लिया है अतः आप मेरी बात मानें ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा दशग्रीव प्रहृष्टेनान्तगमन्त ।

चिन्तयित्वा मुहूर्ते वै यादमित्येव सोऽग्रहीत् ॥ २० ॥

प्रहस्त एका कानेपर दशग्रीवसे मिल प्रथन हो गया । उसने इस वहीतक खच विचारकर कहा—'शुद्ध

अच्छा (तुम जैसा कहते हो, वंसा हो करूँगा)' ॥ २० ॥

स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि धीर्यवान् ।

घन गतो दशग्रीव सह तै क्षणदाचरैः ॥ २१ ॥

तदनन्तर उसी दिन उसी हृषिके साथ पराक्रमी दशग्रीव उन निशाचरोंके साथ ले लङ्काके निकटवर्ती वनमें गया ॥

विक्रूटस्थ स तु तदा दशग्रीवो निशाचर ।

प्रेषयामास दैत्येन प्रहस्त धाक्यकोविदम् ॥ २२ ॥

उस समय विक्रूट पर्वतपर जाकर निशाचर दशग्रीव उठर गया और बातचीत करनेमें कुछल प्रहस्तको उसने दूत बनाकर भेजा ॥ २२ ॥

प्रहस्त शीघ्र गच्छ त्व ग्रहि नैर्ऋतपुङ्गवम् ।

वचसा मम वित्तेश सोमपूर्वमिदं वच ॥ २३ ॥

यह शेष—'प्रहस्त ! तुम शीघ्र जाओ और मेरे कथनानुसार घनके स्वामी राक्षसराज कुचेरसे शान्तिपूर्वक यह बात कहो ॥ २३ ॥

इयं लङ्का पुरी राजन् राक्षसानां महात्मनाम् ।

त्वया निवेशिता सौम्य नैतद् युक्तं तयानघ ॥ २४ ॥

'राजन् ! यह लङ्कापुरी महामना राक्षसोंकी है, जिसमें आप निवास कर रहे हैं । सौम्य ! निष्पाप यशवान् ! यह आपने लिये उचित नहीं है ॥ २४ ॥

तद् भवान् यदि नो ह्यद्य दद्यादतुल्यविभम् ।

हृता भवेमम प्रीतिधर्मधैर्यानुपालित ॥ २५ ॥

'अतुल पराक्रमी घनेश्वर ! यदि आप हमें यह लङ्कापुरी छोड़ दें तो इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होगी और आपने द्वारा धर्मका पालन हुआ समाप्ता जायगा' ॥ २५ ॥

स तु गत्वा पुरीं लङ्का धनदेन सुरक्षिताम् ।

अग्रवीर परमोदार वित्तपालमिदं वच ॥ २६ ॥

तब प्रहस्त कुचेरके द्वारा सुरक्षित लङ्कापुरीमें गया और उन वित्तपालसे बड़ी उदारतापूर्ण वाणीमें बोला—॥ २६ ॥

प्रेषितोऽहं तव ध्याया दशग्रीवेण सुमत ।

त्वरत्नमीष महाबाहो सप्तशस्त्रभृता वर ॥ २७ ॥

तच्छ्रूयतां महामास सप्तशस्त्रनिशारद ।

घचनं मम वित्तेश यद् ग्रथीति दशानन ॥ २८ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, वर्यपूर्ण शस्त्रधारियोंमें भद्र, सर्वशस्त्रविशारद, महाबाहु, महाशक्ति घनेश्वर ! आपको मैं दशग्रीवने मुझ आपसे पास भेजा है । दशमुख रावण आपसे जो कुछ कहना चाहते हैं, वह क्या रहा है । आप मेरी बात सुनिये ॥ २७-२८ ॥

इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखा पुरा ।

भुक्पूर्वा विद्यालाश राक्षसीर्भोगप्रियम् ॥ २९ ॥

तेन विगाध्यन् सौऽयं साम्प्रत त्रिधायामज ।

तदेव शीघ्रता तान याचतस्त्वयं सामन ॥ ३० ॥

'विद्यालोकचन वैभवन ! यह रमणीय लङ्कापुरी परत

मयानक पराक्रमी मुमाली आदि राक्षसोंके अधिकारमें रही है।
उन्होंने बहुत समयतक इसका उपभोग किया है। अत वे
दशग्रीव इस समय यह सूचित कर रहे हैं कि 'यह लङ्का
जिनकी वस्तु है, उन्हें लोग दी जाय।' तात ! शान्तिपूर्वक
याचना करनेवाले दशग्रीवों आप यह पुरी लौटा दें।
प्रहस्तादपि सन्धुय देवा वैधन्यो यव ।

प्रत्युगच प्रहस्त त वाप्य वाक्पयिदा वर ॥ ३१ ॥

प्रहस्ते मुखसे यह बात सुनकर नागीका मम समक्षने
बालोंमें भेद मगान् वैधन्यने प्रहस्तको इस प्रकार उत्तर
दिया—॥ ३१ ॥

दत्ता ममेय पित्रा तु लङ्का शून्या निशागुरै ।
निरेक्षिता च मे रक्षो दानमानादिभिर्गुणै ॥ ३२ ॥

शरथ ! यह लङ्का पहले निगावर्षसे सूती थी। उस
समय पिताजीने कुछ इसमें रहनेकी आशा दी और मैंने इसमें
दान, मान आदि गुणोंद्वारा प्रजाजनोको बसाया ॥ २२ ॥

ब्रूहि गच्छ दशग्रीव पुरी राज्य च यमम ।
तथाप्येत महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥ ३३ ॥

दूत ! तुम अकर दशग्रीवसे कहो— महाबाहो ! यह
पुरी तथा यह निष्कण्टक राज्य आ कुछ भी मेरे पास है, यह
घन तुम्हारा भी है। तुम इसका उपभोग करो ॥ ३३ ॥

अग्निभक्त्यया सार्धं राज्यं यच्चापि मे यत्तु ।
पयमुक्त्वा धनाप्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ३४ ॥

मेरा राज्य तथा साथ घन तुमसे बँटा हुआ नहीं है।
एक कहकर धनाप्यक्ष कुनैर अग्ने विना विभवा सुनिके पास
चले गये ॥ ३४ ॥

अभिचाद्य गुरुं प्राह राजनस्य यन्निष्पितम् ।
पयं नात दशग्रीवो दूत प्रेषितवान् मम ॥ ३५ ॥

दीयता नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोपिता ।
मयात्र पयमुच्य तममाचक्ष्य सुमत् ॥ ३६ ॥

वहाँ निगाकी प्रणाम करके उन्होंने रावणकी आ इच्छा
थी, उसे इस प्रकार बताया— तात ! आज दशग्रीवने मेरे
पास दूत भजा और कहा कि इस लङ्का नगरीमें पहले
राक्षस रहा करते थे, अब इसे राक्षसोंको लौटा दीजिये।
सुन ! अब तुमसे इस विमान का करना चाहिय, बानेरी
क्या करे ॥ ३५ ३६ ॥

प्रसर्पिस्त्र्येयमुचोऽसी विप्रया मुनिपुङ्गव ।
प्राञ्जलिं धनदं प्राणं शृणु पुत्र वयो मम ॥ ३७ ॥

तुम ! त्रय कर्नेपर प्रसर्पि मुनिवर विप्रया हाथ ऊँट
कर ताँदे हुए धनद कुनैर से—श्रेण ! मेरी बात सुनो ॥
दशग्रीवो मदागण्डकजान् मम भविष्यौ ।

मया निभात्मतथास्माद् यदुक्तं सुदुमति ॥ ३८ ॥
स प्राप्येत मया नेत्रा पश्यमे च पुनः पुन ।

महाबाहू दशग्रीवने मेरे निष्ठा भी पद बन करी थी।

इसने लिये मैंने उस दुषुद्धिको बहुत फटाका, और बताया
और बारबार क्रोधपूर्वक कहा—अरे ! ऐसा करनेसे तेरा
पतन हो जायगा किन्तु इसका कुछ बन नहीं हुआ ॥ ३८ ॥
थेयोऽभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वयो मम ॥ ३९ ॥
यशप्रदानसम्भूदो भान्यामान्य सुदुमति ।

न वेति मम शापाच्च प्रवर्ति क्षाण्णा गत ॥ ४० ॥

पुत्र ! अब तुम्हीं मेरे धमानुवृत्त एव कल्याणकारी
वचनको ध्यान देकर सुनो। रागारी बुद्धि बहुत ही लोटी
है। वह बार बार मदमत्त हो उठा है—प्रेमिक ला बैठा
है। मेरे शापके कारण भी उसकी प्रवृत्ति दूर हो गयी है ॥

तस्माद् गच्छ महाबाहो कैलास धरणाधरम् ।

नियेशय निवासार्थं त्यक्त्या लङ्का सहानुग ॥ ४१ ॥

हृदयलिये महाबाहो ! अब तुम अनुचरोंके सहित लङ्का
छोड़कर कैलास परांतर चल जाओ और अपने रहने लिये
वहाँ दूसरा नगर बनाओ ॥ ४१ ॥

तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी ।

फाञ्जने सूर्यसफाई पङ्कजे सज्जनोदका ॥ ४२ ॥

कुमुदैक्यलेश्वर अन्यैश्चैव सुगन्धिभि ।

वहाँ नदियोंमें भेद्य रमणीय मन्दाकिनी नदी पवती है,

जिसका जल सूर्य समान प्रकाशित होनेवाला सुगन्धमय

कमलों, कुसुमों, उतलों और दूसर दूसर सुगन्धित पुष्पमौले

आच्छादित है ॥ ४२ ॥

तत्र देवा सगंधया सास्त्रोदरगर्जिता ॥ ४३ ॥

गिहारसीला सतत रमन्ते मयदाधिता ।

नहि क्षम तज्जनेन वैर धनद रक्षसा ॥ ४४ ॥

जानीये हि यथानेन लब्ध परमरो धर ॥ ४५ ॥

उस परांतर देवता, गन्धन, अक्षय, नाग और किन्नर

आदि दिव्य प्राणी जिन्हें स्वयंसे ही पूजना सिखा अधिक

प्रिय है, वहाँ रहते हुए निरन्तर आनन्दरा अनुभवा करते

हैं। धनद ! इस राक्षस का तुम्हारा वैर करना उचित नहीं

है। तुम तो जानत ही हो कि इसने ब्रह्माज्ञानसे कैला उल्टा कर

प्राप्त किया है ॥ ४३-४५ ॥

यमुक्तो गृहीत्वा तु तद्वपुः पितृगोत्राणां ।

सदाशुपुत्र सामान्य सजाहृतधनो गतः ॥ ४६ ॥

मुनिः एषा कर्नेपर कुनैरने निगाका मम रम्यत हुए

उनकी वपु मान ली और स्त्री, पुत्र, मन्त्री, पत्न

तथा धन साथ लेकर वे लङ्कासे कैलासा गया ॥ ४६ ॥

प्रहस्तोऽय दशग्रीव गत्वा यानमग्र्यन् ।

प्रहृष्टात्मा महामान सत्सामान्य महाबलान् ॥ ४७ ॥

तदनन्तर प्रहस्त प्रहृष्ट होकर मन्त्री और पार्षदों के साथ

बैठ हुए महात्मा दशग्रीव पद लेकर गया—॥ ४७ ॥

गत्वा सा नगरी लङ्का यस्मिन्ना धनदा गत ।

प्रतिपद्य ता सहाम्नाभि स्वधर्मं तत्र पाठ्य ॥ ४८ ॥

‘लङ्का नगरी जाली हो गयी । कुबेर उठे छोड़कर चले गये । उस आप हमलोगोंके साथ उसम प्रवेश करके अपने धर्मस्य पालन कीजिये’ ॥ ४८ ॥

एवमुक्तो दशमीन प्रहस्तेन महाबलः ।
विनेश नगरं लङ्कां भ्रातृभिः सयलानुरैः ॥ ४९ ॥
धनैरेन परित्यक्ता सुविभक्तमहापथाम् ।
आरुरोह स देवारि स्वर्गं देवाधिपो यथा ॥ ५० ॥

प्रहसने ऐसा कहनेपर महाबली दशमीवने अपनी सेना, अनुचर तथा भाइयोंसहित कुबेरद्वारा त्यागी हुए लङ्कापुरीमें प्रवेश किया । उस नगरीमें सुन्दर विभागपूर्वक बड़ी-बड़ी चढ़कें बनी थीं । जैसे देवराज इंद्र स्वर्गके सिंहासनपर आरुढ़ हुए थे, उसी प्रकार देवद्रोही रावणने लङ्कामें पदार्पण किया ॥
स चाभिप्रेक्ष्य क्षणदाचरैस्तदा
निवेशयामास पुरीं दशाननम् ।
इत्यादि श्रीमद्वाल्मीकीय आख्यायिकादिनामके आख्यायिकादिनामके

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय आख्यायिकादिनामके आख्यायिकादिनामके

निकामपूणा च धूम्र सा पुरी
निशाचरैर्नोलयलाहकोपमैः ॥ ५१ ॥
उस समय निशाचरोंने दशमुख रावणका रज्याभिरुपेक किया । फिर रावणने उस पुरीको बसाया । देखते-देखते धूम्र लङ्कापुरी नील मेघने समान वर्णवाले राक्षसोंसे पूर्ण भर गयी ॥ ५१ ॥

धनेश्वरस्तथ पितृवाक्यगीरया
न्यवेरायच्छशिचमले गिरौ पुरीम् ।
सलहृतेर्भवनवरैर्विभूयिता
पुरंदर स्मरिन् यथामरावतीम् ॥ ५२ ॥

धनके स्वामी कुबेरने पिताकी आज्ञाको आदर दे चंद्रमाके समान निर्मल क्षन्तिगले कैलास पर्वतपर शोभा शाली श्रेष्ठ भवनोंसे विभूयित अलकापुरी बसायी, ठीक वैसे । जैसे देवराज इंद्रने स्वर्गलोकमें अमरावती पुरी बसायी थी ॥
चनके स्वामी कुबेरने पिताकी आज्ञाको आदर दे चंद्रमाके समान निर्मल क्षन्तिगले कैलास पर्वतपर शोभा शाली श्रेष्ठ भवनोंसे विभूयित अलकापुरी बसायी, ठीक वैसे । जैसे देवराज इंद्रने स्वर्गलोकमें अमरावती पुरी बसायी थी ॥
चनके स्वामी कुबेरने पिताकी आज्ञाको आदर दे चंद्रमाके समान निर्मल क्षन्तिगले कैलास पर्वतपर शोभा शाली श्रेष्ठ भवनोंसे विभूयित अलकापुरी बसायी, ठीक वैसे । जैसे देवराज इंद्रने स्वर्गलोकमें अमरावती पुरी बसायी थी ॥

द्वादश सर्गः

शूर्पणखा तथा रावण आदि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म
तत प्रदान राक्षस्य भगिन्या समचिन्तयत् ॥ १ ॥
(अगस्त्यजी कहते हैं—श्रीराम !) अपना अभिरुचिक
हो जानेपर जब राक्षसराज रावण भाइयोंसहित लङ्कापुरीमें रहने लगा, तब उठे अपनी बहिन राक्षसी शूर्पणखाके व्याहृती चिन्ता हुई ॥ १ ॥

स्वसार कालकेयाय दानवेद्राय राक्षसीम् ।
वदौ शूर्पणखा नाम नियुजिह्वय राक्षसम् ॥ २ ॥
उस राक्षसने दानराज नियुजिह्वय, जो कालकाका पुत्र था, अपनी बहन शूर्पणखा व्याहृती की ॥ २ ॥

अथ क्त्वा स्वयं राक्षो मृगयामउते स तत् ।
तत्रापदयत् ततो राम मय नाम दिते सुतम् ॥ ३ ॥
कन्यासहाय त दृष्ट्वा दशमीशो निशाचरम् ।
मृष्टच्छत् को भयानको निमनुष्यमृगे धने ॥ ४ ॥

अनया मृगशायाख्या क्रियते सह तिष्ठति ।
श्रीराम ! बहिनका व्याहृति करने पर राक्षस रावण एक दिन स्वयं शिकार करनेके लिये वनमें घूम रहा था । वहाँ उसने भ्रमिष्ठ पुत्र मयागे देखा । उसका साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी । उसे देखकर निशाचर दशमीवने पूछा—आप कौन हैं ? मैं मनुष्यों और पशुआने रहित इस वने वनमें भ्रमण घूम रहे हैं । इस मृगयाजनी कन्याके साथ आप वहाँ भ्रमण करने के निराग रहते हैं ? ॥ ३ ॥ ४ ॥

शूर्पणा सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं तव ।
श्रीराम ! इस प्रकार पूछनेवाले उन निशाचरत मय बोला—मनुष्य, मैं अपना सारा वृत्तान्त तुम्हें यथार्थरूपसे बता रहा हूँ ॥ ५ ॥
हेमा नामाप्सरस्तात श्रुतपूर्वा यदि त्यथा ॥ ६ ॥
दैवतेर्मम सा दत्ता पौलोमीय शतव्रतो ।
तस्या सत्वमना द्यास दशायपशतान्यहम् ॥ ७ ॥
सा च दैवतकार्येण गता यथाश्चतुदरा ।
तस्या दृष्टे च हेमाया सर्वे हेममय पुत्रम् ॥ ८ ॥
यज्ञवैद्वयिचित्र च मायया निमित्त मया ।
तत्राहमवस दीनस्तथा दीन सुदुहित ॥ ९ ॥

भाव । हमने पहले कभी गुना शोभा, स्वर्गमें हेमा नामके प्रसिद्ध एक अप्सरा रहती है । उसे देवताओंने उनी । श्रुत अर्थात् यह बताया था, जैसे तुलसीदासजी कन्या ६ देवराज इंद्रको दी गयी थी । मैं उसीमें आगम शहर ५ कार्यसे स्वर्गलोकमें गयी गयी, वसते-वसते नौदश वर्ष बीत गये । मैं उस हेमा का लिये मायासे एक गमका निगम किया था, जो समूहान खेनेसा बना है । क्षीरे और नीचमक स्यंगने यह भिन्न नामा धारण करता है । उसीमें मैं अस्वच्छ उग्र निगमन अथवा दुर्गा एवं दीन शहर रहता था ॥ ६-९ ॥
तस्मात् पुण्ड्र दुहितर गृहीत्या यतमागत ।
इयं ममामजा राजस्तस्याः कुक्षी शिथिला ॥ १० ॥

‘उसी नगरसे इस कन्याको साथ लेकर मैं धनमें आया हूँ । राजन् ! यह मेरी पुत्री है, जो हेमाके गर्भमें ही पनी है और उससे उत्पन्न होकर मेरे द्वारा पालित हो बड़ी हुई है ॥

भतात्मनया साधमस्या’ प्रातोऽस्मि मार्गितुम् ।
कन्यापितृव्यं तु य हि सर्वेषा मानकाङ्क्षिणाम् ॥ ११ ॥
कन्या हि मे कुले नित्य सशये स्थाप्य तिष्ठति ।

इसने साथ में इसके योग्य पत्नीकी खोज करनेके लिये आया हूँ । मानकी अभिलाषा रखनेवाला प्राय सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना कष्टकारक होता है । (क्योंकि इसने लिये कन्याके पिताको दूखपैने सामने खकना पड़ता है ।)
कन्या सदा तो कुलोंको सदायमें डाले रहती है ॥ ११ ॥

पुत्रद्वय ममाप्यस्या भार्याया सम्यभूय ह ॥ १२ ॥
मायावी प्रथमस्तात दुःखिस्तदनन्तर ।

‘तात ! मेरी इस भाया हेमामें गर्भसे दो पुत्र भी हुए हैं, जिनमें प्रथम पुत्रका नाम मायावी और दूसरेका दुन्दुभि है ॥ १२ ॥

पर ते सन्माख्यात याथातथ्येन पृच्छत ॥ १३ ॥
त्यमिदानीं कथं तात जानीया को भवानिति ।

‘तात ! तुमने पूछा था, इसलिये मैंने इस तरह अपनी सारी बातें तुम्हें यथार्थरूपसे बता दीं । अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो ? यह मुझे निश्चय तरह ज्ञात हो लेंगे ! ’ ॥ १३ ॥

पयमुक्त्वा तु तद् रक्षो विनीतमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
अहं पौलस्त्यतनयो दशमीवध्व नामत ।
मुनेर्विध्वसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत् ॥ १५ ॥

मयातुरङ्ग इव प्रकार कहनेपर राक्षस राजन विनीतभावसे बोला—मैं पौलस्त्यके पुत्र विधवाका बेटा हूँ । मेरा नाम दशमीव है । मैं जिन विधवा मुनिते उत्पन्न हुआ हूँ, वे ब्रह्माक्षीसे तीवरी पीठीमें पैदा हुए हैं ॥ १४ १५ ॥

पयमुक्त्वास्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानव ।
महर्षेस्तनयं हत्वा मयो ह्यमुपागतः ॥ १६ ॥
दातुं बुधितर तस्मै रोचयामास तत्र वै ।

श्रीराम ! राक्षसराजने ऐसा कहनेपर दानव मय महर्षि निराशके उस पुत्रका परिचय पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने साथ वहाँ उसने अपनी पुत्रीका विवाह कर देनेकी इच्छा की ॥ १६ ॥

करणे तु कर तस्या प्राहयित्वा मयस्तदा ॥ १७ ॥
प्रहसन् प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं पच ।

इसने पाद दोषदात्र मय अपनी बेटीका हाथ राजगने हाथमें देकर हेमा हुआ उस राजनपात्रक इव प्रकार बोला— ॥ १७ ॥

इयं ममात्मजा राजन् हेमपाप्मरसा धृता ॥ १८ ॥
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिश्रुताम् ।

पात्रन् ! यह मेरी बेटी है, जिसे हेमा अप्पराने अपने गर्भमें धारण किया था । इच्छा नाम मन्दोदरी है । इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार करो ॥ १८ ॥

यादमित्येव तं राम दशमीरोऽभ्यभागत ॥ १९ ॥
प्रचाल्य तत्र चैरास्मिन्करोत् पाणिस्तमहम् ।

श्रीराम ! तब दशमीरोंने ‘बहुत अच्छा’ कहकर मयातुरङ्गी बात मान ली । फिर वहाँ उसने अग्निके प्रचालित करके मन्दोदरीका पाणिग्रहण किया ॥ १९ ॥

स हि तस्य मयो राम शापाभिन्नस्तपोधनात् ॥ २० ॥
विदित्वा तेन सा वृत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ।

रघुनन्दन ! यद्यपि तपोधन निश्चयसे राजगके जो क्रूर प्रकृति होनेका शाप मित्र था, उसे मयातुर जनता था तथापि राजगने ब्रह्माक्षी के कुलका बालक समक्षपर उसने उसको अपनी कन्या दे दी ॥ २० ॥

अमोघा तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाहुताम् ॥ २१ ॥
परेण तपसा रक्षा जप्तिर्गौल्लभ्यया यया ।

साथ ही उत्कृष्ट तपस्यासे प्राप्त हुई एक परम अमोघ शक्ति भी प्रदान की, जिसने द्वारा राजगने रक्षगके धायल किया था ॥ २१ ॥

पच स हत्वा गरान् वै लङ्काया इभ्वर प्रभु ॥ २२ ॥
गत्वा तु नगरं भार्ये आतृभ्या समुपाहरत् ।

इस प्रकार दारपरिमह (विनाह) करन प्रभाववाली लङ्केश्वर रावण लङ्कापुरीमें गयाऔर अपने दोनों माइनोंके लिये भी दो भार्याएँ उनका विवाह कराकर ले आया ॥ २२ ॥
वैरोजनस्य दीर्घिर्ज्ञो यज्जगलेति नामत ॥ २३ ॥
ता भार्या कुम्भकर्णस्य राज्ञे समकल्पयत् ।

विरोचनदुमार बलिबी दीर्घशीरो, जिम्ना नाम यज्ञ ज्वाला था, राजगने कुम्भकर्णकी पत्नी बनाया ॥ २३ ॥
गार्धराजस्य मुता दीर्घस्य महात्मन ॥ २४ ॥
सत्मा नाम धममा लभे भार्या विभीषण ।

गन्धर्वराज महामा नैदुपरी कन्धा उरगको, जो धर्मके तत्त्वको ज्ञानेवाणी थी, विभीषणने अपनी पत्नीन रूपमें प्राप्त किया ॥ २४ ॥

तर्हि तु सरण्यो वै तु सज्जि मानसस्य हि ॥ २५ ॥
सरस्तदा मानसं तु यदुधे जन्दागमे ।
माशानुसत्या कन्याया स्नेहेतान्द्रितयः ॥ २६ ॥
सरो मा यद्ययस्त्रेति ततः सा मरमाभवत् ।

बड़े मानस्येवरक तत्पर उत्पन्न हुई थी । उस उग्रका क्रम हुआ, उस समय की श्रुतिया अरुमन होनेसे मान सटकर बचने लगा । ‘व उग्र कन्धा’ मन्मान पुत्री के स्नेहक कन्धाद्वन्द्व करते हुए उस मन्मान के मन्मान का कन्धा (दे सटार । उन अपने जन्मा बचने का दा) ।’ उसने

धरारहटमें 'सर मा' ऐसा कहा था, इसलिये उस बन्ध्याक
नाम सरमा हो गया ॥ २५ २६३ ॥

एव ते कृतदारा च रेमिरे तत्र राक्षसा ॥ २७ ॥
सा सा भायामुपादाय गधर्वा इव नन्दने ।

इस प्रकार ये तीनों राक्षस विवाहित होकर अपनी अपनी
छीको साथ ले नन्दननमें विहार करनेवाले गधर्वोंने समान
लङ्कामें सुखपूर्वक रमण करने लगे ॥ २७३ ॥

ततो मदोदरी पुत्र मेघनादमजीजनत् ॥ २८ ॥
स एव इन्द्रजित्मम युष्माभिरभिधीयते ।

तदनन्तर कुछ कालके बाद मदोदरीने अपने पुत्र
मेघनादको जन्म दिया, जिसे आपलोग इन्द्रजित्के नामसे
पुकारते थे ॥ २८३ ॥

जातमात्रेण हि पुरा तेन राज्ञसञ्जना ॥ २९ ॥
यद्वत्ता सुमहान् मुक्तो नादो जलधरोपम ।

इत्यार्ये श्रीमद्वाल्मीके वात्सीकीवे आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वांशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिर्निर्मित अपरामायण आठिकाव्य उत्तरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

राजपद्मा वनवासे गये शयनागारमें कुम्भकर्णका सोना, रावणका अत्याचार, हुनैरका दूत

मेनकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावणका उस दूतका मार डालना

अथ त्रेकेभ्वरोच्छ्रय तत्र कालेन केनचित् ।

निद्रा समभवत् क्षीमा कुम्भकर्णस्य कपिणी ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन ।) तदनन्तर कुछ काल
वीननेपर लोकेश्वर ब्रह्माजीकी भेजी हुई निद्रा कैमाई आदिके
रूपमें भूर्तिवनी हो कुम्भकर्ण की भीतर तीव्र वेगमें प्रकट हुई ॥ १ ॥

ततो भ्रातृमासीन कुम्भकर्णोऽग्रशीद् वचः ।

निद्रा मा वाधते राजन् कारयस्य ममायम् ॥ २ ॥

तब कुम्भकर्णने पास ही बैठे हुए अपने भाई रावणसे
कहा—पावन । मुझे नींद उठा रही है, अतः मर लिये 'मयन'
करनेके योग्य घर बनता है' ॥ २ ॥

यिनिमुत्सालो राक्षसो दित्थिपुत्रो शिष्यकमरत् ।

यिस्तीर्णो योजनं क्षिप्रं ततो द्विगुणमायतम् ॥ ३ ॥

द्वानांय निरायाध कुम्भकर्णस्य चक्षिरे ।

स्फटिके वाञ्छनैश्चिन्तै स्तम्भे सर्वय क्षोभितम् ॥

यह सुनिश्चय रावणका निष्कर्षण समाप्त सुयेय
शिल्पिनीने घर बानेन लिय आग दे दी । उन शिल्पियोंने
दो योजना तथा और एक योजना की निराप पर बनाया,
जो देखने ही योग्य था । उनमें तिस्र प्रकारकी याथावा
शास्त्र नहीं होता था । उनमें तीन स्फटिकमणि एवं सुवर्ण
के बने हुए स्तम्भ लगे थे, जो उस मङ्गरी 'गंगा' बड़ा
रहे थे ॥ ३ ॥

वैद्यपुत्रसोपान विद्विज्जालम् तथा ।

पूर्वकालमें उस रावणपुत्रने वैद्य होते ही चले-पले मेपके

समान गम्भीर नाद किया था ॥ २९३ ॥

जडीहता च सा लङ्का तस्य नादेन राघव ॥ ३० ॥

पिता तस्याकरोक्षाम मेघनाद् इति स्वयम् ।

रघुनन्दन । उस मेघदुस्य नादसे सारी लङ्का तटवत्
स्तब्ध रह गयी थी इसलिये पिता रावणने स्वयं ही उमका
नाम मेघनाद रक्खा ॥ ३०३ ॥

सोऽचर्धत तदा राम रावणान्त पुरे शुभे ॥ ३१ ॥

रक्ष्यमाणो वरद्रीभिर्दह्य कपटैरिमानल ।

मातापिशोर्महाहर्षे जनयन् रावणामज ॥ ३२ ॥

श्रीराम । उस समय वह रावणपुत्र रावणके सुन्दर
अन्त पुरमें माता पिताको महान् हर्ष प्रदान करता हुआ भेड
नारिणोंसे सुरक्षित हो काष्ठसे आच्छादित हुए अग्निने सजान
करने लगा ॥ ३१ ३२ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्वाल्मीके वात्सीकीवे आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वांशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिर्निर्मित अपरामायण आठिकाव्य उत्तरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

दान्तरोषणिन्यस्त वज्रस्फटिकवेदिषम् ॥ ५ ॥

उसमें नीलमकी सीदियों बनी थीं । सब ओर सुवर्ण
झालरें लगायी गयी थीं । उसका खदर फाटक हाथी-द्वैत
बना हुआ था और द्वारे तथा स्फटिकमणिनी वेदी एवं चक्रद्वारे
शोभा दे रहे थे ॥ ५ ॥

मनोहर सर्वसुख कारयामास राक्षस ।

सर्वत्र सुखद नित्य मेरो पुण्या गुहामिष ॥ ६ ॥

यह भवन सब प्रकारसे सुखद एवं मनोहर था । मङ्गरी
पुण्यमयी सुखसे समान सदा सर्वत्र सुख प्रदान करनेवाला
था । राक्षसराज रावणने कुम्भकर्णने लिये देना सुन्दर एवं
सुविधानरूप शयनागार बनवाया ॥ ६ ॥

तत्र निद्रा समाग्रेष्ट कुम्भकर्णो महाधन ।

यहृन्मृदसहस्राणि शयानो न च पुण्यते ॥ ७ ॥

महाबली कुम्भकर्ण उस परमें जाकर निद्राके ग्रीष्मल हो

कर हजार गवोंत लेता रहा । आग नहीं पाता था ॥ ७ ॥

निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णो ददातन ।

देवार्पणक्षत्राध्यायन सज्जने दि निरुद्धा ॥ ८ ॥

जब कुम्भकर्ण निद्रासे अभिभूत होकर सो गया, तब
दामुग राज उन्मत्त हो देवताओं, श्रद्धियों, यज्ञों और
गन्धर्वाके समूहोंसे मारने लगा पीड़ा देने लगा ॥ ८ ॥

उत्थानानि विप्रिभ्राणि मन्दनादीनि यानि च ।

तानि गत्वा मुमुक्षुरो भिमसि स दशानन ॥ ९ ॥

देवताओं नन्दनयन आदि जो विचित्र उद्यान थे, उनमें
जाकर दशानन अत्यन्त कुपित हो उन सबको उजड़ देता
था ॥ ९ ॥

नदीं गज इव श्रीडन् घृक्षान् वायुरिव शिपन् ।
नगान् चक्र इवात्सृष्टो निघ्नसयति राक्षसः ॥ १० ॥

यह राक्षस नदीमें हाथीकी मूर्ति छोड़ा करता हुआ उसकी
घाघाओंको छिन्न भिन्न कर देता था । घूर्त्तका वायुकी मूर्ति
क्षक्षक्षरता हुआ उल्लाड़ फेंकता था और पत्तोंको इन्द्रके
हाथसे घूर्त्त हुए वज्रकी मूर्ति तोड़-फोड़ डालता था ॥ १० ॥
तथावृत्त तु निघ्नस्य दशग्रीव धनेश्वर ।

कुलानुरूप धर्मशो वृत्त सस्मृत्य चामनः ॥ ११ ॥
सौभाग्यदशानायै तु नूत वैश्रवणस्तदा ।
लङ्का सम्प्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ॥ १२ ॥

दशग्रीव इस निरुद्यत यताका समाचार पाकर अपने
स्वामी धर्मत कुचेने अपने कुलक अनुरूप आचार-व्यवहारका
विचार करके उत्तम भ्रातृप्रमका पत्रिचय देनेक लिये लङ्कामें
एक दूत भेज । उनका उद्देश्य यह था कि मैं राक्षसको उसके
हितकी बात बताकर राक्षस लौक ॥ ११ १२ ॥

स गत्या नगरां लङ्कामाससाद विभीषणम् ।
मानितस्तेन धर्मेण पृथग्भागमन प्रति ॥ १३ ॥

यह दूत लङ्कापुरीमें जाकर पहले विभीषणसे मिला ।
विभीषणने धर्मके अनुसार उसका सत्कार किया और लङ्कामें
आनेका कारण पूछा ॥ १३ ॥

पृष्ट्वा च कुशलं राक्षो क्षातीना च विभीषणम् ।
सभाया दशयामास तमासीन दशाननम् ॥ १४ ॥

किर वधु-वाचकोंका कुशल-समाचार पूछकर विभीषणने
उस दूतकोल जाकर राक्षसमामें बैठ हुए खणने मिलाया ॥ १४ ॥
स दृष्ट्वा तत्र रानान दीप्यमान भ्यतेजसा ।

जपेति याया संपूज्य तूर्णो समभिवर्तत ॥ १५ ॥

राक्षस राणा समामें अपने तेजस उड़ीस हा रहा था, उसे
देनकर दूतने 'महापुत्री वन हा', ऐसा कहकर काणीकाय
उसका सत्कार किया और किर वह कुछ देरतक चुपचाप गड़ा
रहा ॥ १५ ॥

स ततोत्तमपथङ्गे धरास्तरणशोभिते ।
अपविष्ट दशग्रीव शूतो वाक्पमयाग्रसीत् ॥ १६ ॥

ततश्चात् उत्तम विजोनेन मुवाभिन एक भेद पथपर
बैठे हुए दशग्रीवसे उस दूतने इस प्रकार कहा— ॥ १६ ॥
राजन् पदामि ते सर्वं भ्राता तय यदग्रसीत् ।

उभयो सदृश धीर घृत्सस्य च कुलस्य च ॥ १७ ॥

धीर महाशत्रु । अथ भद्र घनाप्यस कुचेने अथक
पथ पर पद भेदा है यह भाता जिता हमोंक कुल तथा
समानर अनुस्य है मैं उसे पूजकसे आराधन का रहा हूँ
मुनिप— ॥ १७ ॥

साधु पयातमेतावत् हृन्मद्याग्निप्रसग्रहः ।
साधु धर्मे ध्ययस्थान नियता यदि शक्नोते ॥ १८ ॥

दशग्रीव । तुमने अबतक जो कुछ उरुह्य किया है,
इतना ही बहुत है । अब तो मुझें मध्यमौति सदाचारका सम्रह
करना चाहिये । यदि हा सक्त धर्मके मागपर स्थित रहो
यही तुमारे लिये अच्छा होगा ॥ १८ ॥

दृष्ट मे नन्दन भगभृगयो निहृता धृताः ।
देवताना समुद्योगम्यसो रानन् मया धुनः ॥ १९ ॥

तुमने नन्दनयनको उड़ दिया—य मैंने अपनी
आँखों देखा है । तुमारे द्वारा बहुत-से शत्रुओंका वध हुआ
है, यह भी मेरे मुनेमें आया है । राजन् ! (इसने सग आकर
देवता तुमसे बदल्य लेना चाहत हैं) मैंने सुना है कि तुमारे
विरुद्ध देवताओंका उपाग अरुण हो गया है ॥ १९ ॥

निपटृतस्य बहुदास्त्वयाह राक्षसाधिप ।
सापराधोऽपि चालो हि रजितय सखाधैः ॥ २० ॥

प्राक्सणन । तुमने कई बार मेरा भी विरुद्धार किया
है, तथापि यदि बालक अपराध कर दे तो भी अपने बच्चे
बापसँको तो उसकी रक्षा ही करनी चाहिये (इसीलिये
तुम्हें हितकारक सलाह दे रहा हूँ) ॥ २० ॥

यह तु हिमवत्पृष्ठ गतो धममुपासितम् ।
रौद्र प्रत समास्थाय नियतो नियतद्विष्य ॥ २१ ॥

मैं चौच-खेपादि नियन्त्रण पालन और इन्धियसम
पूजक पौद्र व्रतका आशय उस धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये
हिमालयक एक शिखरपर गया था ॥ २१ ॥

तत्र देवो मया दृष्ट उभया महित प्रमुः ।
सय चक्षुमया देवान् तत्र देव्या निपानितम् ॥ २२ ॥

का न्येपेति महाराज न गत्यन्येन हेतुना ।
रूप चानुपम हृत्वा रद्राणी तत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥

मैंने मुन उमावर्तिन भगवान् महादेवकी स्थान हुआ ।
महादेव । उस स्थान मैंने फाल द्य उननर लिय कि दक्ष
य कौन है । देवराज देवी गौरीपर अपनी कावी दृष्टि डाली
थी । निश्चय ही मैंने दूसर किमी दृष्टन (विचारपुष्ट
भावनासे) उनकी ओर नहीं देखा था । उस बलासे देवी
क्षेत्री अनुपम रूप धरता कर— वहाँ गरी थी ॥ २२ २३ ॥

देव्या दिययभाजन दय मय मनेषणम् ।
रेणुष्यस्तामिर ज्योति पिङ्गन्यमुपासतम् ॥ २४ ॥

श्रीर दिव्य प्रभात उस स्थान नहीं कौन भोग उर
रहा और दूसरी (क्षाती अंग) का पूजन भी दूसरी
द्विल वशी हा रही ॥ २४ ॥

ततोऽहमन्यद् धिन्निर्गम गत्या तस्य गिरस्तटम् ।
तूर्णो यदशानन्यथा समधार महाप्रतम् ॥ २५ ॥

अननर मैंने फाल द्य स्थान उर कर कर
जो वरतक मैंनेमम उस महात् ब्रह्म धरा किया ॥

समाप्ते नियमे तस्मिस्तत्र देवो महेश्वर ।
तत प्रीतेन मनसा ब्राह्म चाक्षयमिदं प्रभु ॥ २६ ॥

‘उत्त नियमके समाप्त होनेपर भगवान् महेश्वरदेवने मुझ
दर्शन दिया और प्रसन्न मनसे कहा—॥ २६ ॥

प्रीतोऽसि तत्र धर्मश्च तपसानेन सुमत ।
मया चैतद् व्रत चीर्णं त्वया चैव धनाधिप ॥ २७ ॥

‘‘उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मक्ष घनेश्वर । मैं
तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत उत्तुष्ट हूँ । एक तो मैंने इस व्रतका
आचरण किया है और दूसरे तुमने ॥ २७ ॥

वृत्तीय पुरुषो नास्ति यश्चेद् व्रतमोदयाम् ।
व्रतं सुदुष्करं होनमयेयोत्पादितं पुरा ॥ २८ ॥

‘‘तीसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो ऐसे कठोर व्रतका
पालन कर सके । इस अत्यन्त दुष्कर व्रतको पूर्वकालमें मैंने
ही प्रकट किया था ॥ २८ ॥

तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर ।
तपसा निर्जितश्चैव सखा भव ममानघ ॥ २९ ॥

‘‘अतः सौम्य घनेश्वर । अब तुम मेरे साथ मित्रताका
सम्बन्ध स्थापित करो, यह सम्बन्ध तुम्हें पसन्द आना चाहिये ।
अनघ । तुमने अपने तपसे मुझ जीत लिया है अतः मेरा
मित्र बनकर रहो ॥ २९ ॥

देव्या दग्ध प्रभागेण यश्च सत्यं तवेक्षणम् ।
पैकल्यं यद्व्यास हि देव्या रूपनिरिक्षणात् ॥ ३० ॥

एकाक्षपिङ्गलीत्येष नाम स्यात्यति शाश्वतम् ।
एव तेन सखित्वं च प्राप्न्यानुहा च शङ्करात् ॥ ३१ ॥

आगतेन मया चैव श्रुतस्ते पापनिक्षय ।
‘‘देवी पावतीके रूपपर दृष्टिपात करनेसे देवीच प्रभावने

आ शङ्करा बायीं नेत्र बल गया और दूसरा नेत्र भी पिङ्गल-
वर्णका हो गया, इसने सदा स्थिर रहनेवाला तुम्हारा ‘एकाक्ष
पिङ्गली’ यह नाम चिरस्थायी होगा ।’ ‘‘तुम प्रकार भगवान्
शङ्करच साथ मैत्री स्थापित करके उनकी आज्ञा लेकर जब
मैं पर लौटा हूँ, तब मैंने तुम्हारे पापभूष निक्षयनी बात
सुनी है ॥ ३० ३१ ॥

तद्वधमिष्टसयोगाग्निरतं कुलदूषणात् ॥ ३२ ॥
चिन्त्यते हि धधोपाय शरिरेन्द्रे सुरैस्तव ।

‘‘अतः अब तुम अपने कुलमें कर्नक क्षानेवाले पापधर्मच
शङ्कस दूर हट ग्याओ, क्योंकि श्रुति-समुदायसहित देवता
तुम्हारे धधका उपाय साथ रहे हैं ॥ ३२ ॥

एवमुक्ते दशग्रीय वीर्यसरत्नलोचन ॥ ३३ ॥
दत्तान् दन्ताश्च सन्निपथ्य चाक्षयमेतदुवाच ह ।

हृत्पापे धीमद्गामयणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रथोदार्ग सर्ग ॥ ३३ ॥

इम प्रकार धीमदस्मिर्निमित्त आपराधमयण अभिवाच्य उत्तरकाण्डमें तरवार सग पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

दूतक मुँहसे ऐसी बात सुनकर दशग्रीय रावणने ने
श्रोषते लाल हो गये । वह हाथ मलता हुआ दाँत पीसकर
बोला—॥ ३३ ॥

विज्ञात ते मया दूत चाक्षय यत् तत्र प्रभापसे ॥ ३४ ॥
नैव त्वमसि नैवासौ आशा येनासि चोदितः ।

‘‘दूत । तू जो कुछ कह रहा है, उसका अभिप्राय मैंने
समझ लिया । अब तो न तू जीवित रह सकता है और न वा
भाई ही, जिसने तुझे यहाँ भेजा है ॥ ३४ ॥

हित नैव ममैतद्धि द्रवीति धनरसका ॥ ३५ ॥
महेश्वरसखित्वं तु मूढ धानयते किल ।

‘‘धनरसक कुचेरने को संदेश दिया है, वह भरे लिये
हितकर नहीं है । वह मूढ मुझे (डरानेके लिये) महोदयकीके
साथ अपनी मित्रताकी क्या सुना रहा है ? ॥ ३५ ॥

नैवेद् क्षमणीय मे यदेतद् भाषितं त्वया ॥ ३६ ॥
यदेनाचमया कालं दूत तस्य तु मर्षितम् ।

न हन्तव्यो शुक्रज्येष्ठो मयायमिति मन्यते ॥ ३७ ॥
‘‘दूत ! तूने जो बात यहाँ कही है, यह भरे लिये सहन
करनेयोग्य नहीं है । कुचेर मेरे बड़े भाई हैं, अतः उनका
घब करना उचित नहीं है—ऐसा समझकर ही मैंने आज्ञाक
उन्हें क्षमा किया है ॥ ३६ ३७ ॥

तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे चाक्षयमेवा हता मतिः ।
शील्लोकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रित ॥ ३८ ॥

‘‘किंतु इस समय उनकी बात सुनकर मैंने वह निश्चय
किया है कि मैं अपने बाहुवरुणा भरोसा करके तीनों लोकोंको
जीतूँगा ॥ ३८ ॥

एतन्मुहूर्तमेवाह तस्यैकस्य तु यै वृते ।
चतुरो लोकपालास्तान् नयिष्यामि यमक्षयम् ॥ ३९ ॥

‘‘इसी मुहूर्तमें मैं एकके ही अपराधसे उन चारों लोकपालों-
को यमलोक पहुँचाऊँगा ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खल्लेन जज्जिबान् ।
ददौ भक्षयितुं ह्येन राक्षसानां वुरात्मनाम् ॥ ४० ॥

ऐसा कहकर लङ्केश रावणने तलवारसे उस दूतक दो
टुकड़े कर डाले और उसकी लाश उठने वुरात्मा राक्षसोंको
रानेके लिये दे दी ॥ ४० ॥

तत वृत्तसंस्थयनो रथमावृष्ट रावण ।
त्रैलोक्यत्रिजयाकाङ्क्षी ययौ यय धनेश्वर ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् रावण सखिसाचन करके रथपर चढ़ा और
तीनों लोकोंपर त्रिजय पानकी इच्छासे उस स्थानपर गया, वहाँ
धनपति कुचेर रहते थे ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् रावण सखिसाचन करके रथपर चढ़ा और
तीनों लोकोंपर त्रिजय पानकी इच्छासे उस स्थानपर गया, वहाँ
धनपति कुचेर रहते थे ॥ ४१ ॥

चतुर्दश सर्ग

मन्त्रियामन्त्रि रात्रणका यज्ञोपर आक्रमण और उनकी पराजय

तत स मन्त्रिन् मायं पडभिनित्यरगेडत ।
 मन्त्रेद्रप्रदस्ताभ्या मागीचमुस्मागण ॥ १ ॥
 धृष्टायेण च धीरेण नित्य समगगदिता ।
 वृत्त समग्रययाध्रीमान्प्रोशाल्येकान्दृष्टि ॥ २ ॥
 (अगस्त्यजी कन है—रघुनन्दन ।) तदनन्तर कन
 अभिमानस रण ठामच रहनेवाला रात्रण महादर प्रन्त,
 मरीच, गुन, सारण तथा सग ही युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले
 गीर धृष्टश-इन छ मन्त्रियों के साथ लड़ान प्रसिद्ध हुआ ।
 उस समय एसा जन पड़ना ग, माग अपने व्यवस
 समूह लोंको भस्म कर जलेगा ॥ १ २ ॥
 पुराणि स नदी शैवग्न यनायुपजनानि च ।
 अतिनग्य मुहनेन कैलास गिगिमागम् ॥ ३ ॥
 बहुतने नारी, नर्तिय, पार्तों, यनों और जगोरा
 लोंकर व दा ही प्रदामे देलान परतर ग पटना ॥ ४ ॥
 मन्त्रिप्रिष्ट गिदौ तमिन् रात्रमेद्र निदाग्य तु ।
 युद्धेन्तु त रतोसाह दुरा मान समगिगम् ॥ ५ ॥
 यना न दोउ सम्प्रातु प्रमुख तस्य रत्नस ।
 रागा भ्रातति गिगाय गता यन धोश्वर ॥ ६ ॥
 यधेने बध मुना कि दुरात्म गधस्यन रात्रमेद्र युद्धक
 लिय उत्सर्जित हात्र अरन मन्त्रियों साथ कैलास परानर
 टग हाग है तत्र य जन रात्रमन नामने रात्र न हो सक ।
 या रात्रा। माग है, एसा जानकर दहना उस स्यानपर
 ग, गरी धनन स्यामा दुसर विषमाल थ ॥ ४ ॥
 त गन्धा सगमाग्युध्रातुस्तस्य त्रिकावितम् ।
 अनुज्ञाता ययुष्टा युद्धाय धनद्वन त ॥ ६ ॥
 यहाँ जार उधेने उनक भाका सग भिगा क
 मुनाया । तत्र दुने युद्ध लिय यहाँ अका दे नी निर
 ता यध बई हयने भरतर कदिय ॥ ६ ॥
 ततो जलता मन्त्रोभो व्यनधन इवोद्ध ।
 तस्य नश्रुतगानस्य शैल सगालयगिर ॥ ७ ॥
 उस समय यधबकी मेनाए सुन्दर समन शुच हा
 ग्नी । उनर बेगो ब वन दिताका जन पदा ॥ ७ ॥
 ततो युद्ध समभयद् यनरायससजुगम् ।
 व्यथिताद्याभयस्तत्र मन्त्रिवा राक्षसस्य त ॥ ८ ॥
 तनन्तर यनों और राक्षसोंने समान युद्ध दिह ग ।
 यहाँ रात्र वे सचिब स्थित हा छ ॥ ८ ॥
 स दद्रा ताहा सैन्य दशगिगि गिगागर ।
 एपनादान पान एया स मोधाग्यधायस ॥ ९ ॥
 अनी सगरी रीभी दुगा देस निदाक दगाग वार
 पार हात्रपक गिगाग रात्र रात्रक यधेरी और
 गीदा ॥ ९ ॥

ये तु त रात्रमेद्रस्य सगिग घातविगमा ।
 तेरा सहस्रमेरको यथाणा मायोधयत् ॥ १० ॥
 रात्रावर य सचिब थ, य दई भारर पराक्रमी थ ।
 उनमेने एक-एक सचिब हार-हार यनों युद्ध
 करने लगा ॥ १० ॥
 ततो गधभिर्मुसलैरसिभि शक्तितोमैर ।
 हन्यमानो दशगिगस्तन्सैन्य समगाहन ॥ ११ ॥
 स निरच्छासजत् तत्र यध्यमानो दशगता ।
 उपदिगि जीमूतधारभिगुरुष्यत ॥ १२ ॥
 उस समय यध जरी घात गिगनेरा मन्त्रो समान
 गगओ, मूसग, तगाग, गिगों और तमरीकी बरा
 करने लगे । उनकी चट मता हुआ गगरी यमुनेमें
 धुग । यहाँ जगर इतना मार पन्ने गी कि उस दम
 नारनेका भी पुरान नो मिली । यधेने गगरा बग
 एन दिया ॥ ११ १२ ॥
 न चकार न्यथा सैर यनदात्रै समाहत ।
 महीधर हागमोदधाराशतसमुपित ॥ १३ ॥
 यहाँक शत्रोंने अहत हनेपर भी उमने अरने गनने
 दुख नहीं घाना ठीक उसी तरह, जैम मगोहाग दगणी
 हुद वेकई बचावाओंने अभिरिक्त हनेपर भी परान रिगित
 नहीं होता है ॥ १३ ॥
 स महा मा समुद्यम्य कालदण्डोपमा गदाम् ।
 प्रविशेश तन सैन्य नयन् यनान् यमगयम् ॥ १४ ॥
 उस महाबाय गिगागरने कालदण्ड समान भरकर
 गग उठाकर यगोरी मेनामे प्रवेग रिया और उधे यमलक
 पहुँचना आरम्भ कर दिया ॥ १४ ॥
 स बधमिरिस्तिर्णो गुण्येधनमिगाकुम् ।
 यातनागिगिवादीतो यनसैन्य दशद तत् ॥ १५ ॥
 वादुम प्र बलिह हुद आम्बर समान रात्रान गिगोंक
 समन पैली जोग मरा ईधारी नोनि आदुल हुद यधेरी
 सेनाका बलना आरम्भ दिया ॥ १५ ॥
 तैन्तु तत्र महामान्यमगेद्रगुकादिभि ।
 अलयायधोराग्न यना हता घातगिगामुदा ॥ १६ ॥
 जैन हाग यगोंका टका गी है गी तरह जन
 मन्दर और गुग आग महामन्त्रियोंने यहाँ यगोरा मार
 कर डाला । अब य यधेरी ही गाने बच रहे ॥ १६ ॥
 यजिन् समाहता भन्ना पतिना यमगे गिता ।
 ओष्ट्राद्य दशगिगिदीरदशान् कुगिता रणे ॥ १७ ॥
 गिगोंकी यग यगोंक अघातोंक आग हा ग्ने-
 कारा सन्यदगनेने पगणी हा ग्य । गिग हा रगुमिने
 कुगिता हा अगने गीगे दोंगेने अग दग्य कुग थ ॥ १७ ॥

भान्ताभ्यान्योन्यमालिङ्ग्य धष्टशस्त्रा रणाजिरे ।

सौदन्ति च तदा यथा कूला द्वय जलेन ॥ १८ ॥

भाइ यन्कर एक दूसरेसे लिप्ट गये । उनके अन्न शस्त्र गिर गये और वे समराङ्गमें उसी तरह शिथिल होकर गिरे जैसे जलके वेगमें नदीके किनारे दूट पड़ते हैं ॥ १८ ॥

हताना गच्छता स्वरा युध्यतमथ धायताम् ।

प्रेमतामृपिसद्धाना न यभूयान्तर दिनि ॥ १९ ॥

मर-मरकर स्वर्गमें जाते, पृथ्वी और दौड़ते हुए यहाँ की तथा आकाशमें खड़ होकर युद्ध देखनेवाले ऋषिसमूहोंकी सख्या इतनी बढ गयी थी कि आकाशमें उन सबके लिये जगह नहीं आँती थी ॥ १९ ॥

भनान्स्तु तान् समालक्ष्य यक्षो ब्राह्मण महाबलान् ।

धनाभ्यक्षो महाबाहु प्रेषयामास यक्षकान् ॥ २० ॥

महाबाहु धनाभ्यक्षने उन यक्षोंकी भागते देख दूसरे महाबली यक्षराजोंको युद्धके लिये भेजा ॥ २० ॥

पतस्मिन्मन्तरे राम निस्तीर्णबलवाहन ।

प्रेषितो न्यपतद् यक्षो नाम्ना सयोधकण्ठक ॥ २१ ॥

श्रीराम । इसी बीचमें कुबेरका भेजा हुआ सयोधकण्ठक नामक यक्ष यहाँ आ पहुँचा । उसका साथ बहुतसी सेना और सवारियों थी ॥ २१ ॥

तेन चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हत ।

पतितो मृतले शैलात् क्षीणपुण्य इव ब्रह्म ॥ २२ ॥

उसने आते ही भगवान् विष्णुकी मूर्ति चक्रसे रणभूमिमें मारीचपर प्रहार किया । उसने घायल होकर वह राक्षस कैलाससे नीचे धूम्रपीपर ठही तरह गिर पड़ा ; जैसे पुण्य क्षीण होने पर स्वर्गवासी ब्रह्म वहाँसे भूतपर गिर पड़ा हो ॥ २२ ॥

ससहस्तु मुहूर्तेन स विभ्रम्य निशाचर ।

त यक्ष योधयामास स च भग्न प्रदुद्रुवे ॥ २३ ॥

दो घड़ीन बाद होयमें आनेपर निगाचर मारीच विभ्राम करने लगे और उस यक्षका साथ युद्ध करने लगा । तब वह यक्ष भाग लड़ा हुआ ॥ २३ ॥

तत काञ्चनचित्राङ्ग वैद्युरजतोक्षितम् ।

मयादा प्रतिहारणा तोरणान्तरभाविनाम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर रावणने कुनेपुरीके फाटकमें, जिसके प्रत्येक अङ्गमें सुवर्ण जड़ा हुआ था तथा जा नीलम और चँदीमें भी

हार्पायें भीमवृत्तायण वाटमीडीय आदिद्राव्ये उत्तराङ्गदे चतुर्दश मगः ॥ १४ ॥

इस प्रकार भीमवृत्तमिनिर्मित अष्टरागायण अष्टिचक्रव्यूह उत्तराङ्गदे चतुर्दश मग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदश सर्ग

माणिभद्र तथा कुबेरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पक विमानका अपहरण

ततस्तांलक्ष्य त्रिभुवनान् यमेन्द्राव्य सहस्रशः ।

धनाभ्यक्षो महायक्ष माणिभद्रमथाग्रवीम् ॥ १ ॥

अगस्त्यन बहन हैं—युन-रन । धनाभ्यक्षने दत्ता ।

विभूषित था; प्रवेश किया । वहाँ द्वारपालोंका पहरा लगता था । वह फाटक ही सीमा था । उससे आगे दूसरे लोग नहीं जा सकते थे ॥ २४ ॥

त तु राजन् दशग्रीव प्रविशत निशाचरम् ।

स्यभानुरिति स्यातो द्वारपाले न्यवारयत् ॥ २५ ॥

महाराज श्रीराम । जब निशाचर दशग्रीव फाटकके भीतर प्रवेश करने लगा, तब स्यभानु नामक द्वारपालने उसे रोका ॥ २५ ॥

स ज्ञायमाणो यक्षेण प्रविवेश निशाचर ।

यदा तु धारितो राम न्यवतिष्ठत् स राक्षस ॥ २६ ॥

ततस्तोरणमुत्पाद्य तेन यक्षेण ताडित ।

रुधिर प्रस्रवन् भाति शैले धातुक्नैरिव ॥ २७ ॥

जब यक्षन रोधनेपर भी वह निगाचर न रुका और भीतर प्रविष्ट हो गया; तब द्वारपालने फाटकमें लगे हुए एक लमेको उल्लाङ्घक उसे दशग्रीवके ऊपर दे मारा । उसका शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी; मानो किसी पर्वतसे गेरुमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो ॥ २६ २७ ॥

स शैलशिखरगणेन तोरणेन समाहृत ।

जगाम न क्षति धीरो वरदानात् स्वयम्भुज ॥ २८ ॥

पर्वतशिखरके गमान् प्रतीत होनेवाले उस लमेकी खाट खाकर भी धीर दशग्रीवकी कोढ़ क्षति नहीं हुई । वह प्रसन्न की वरदानके प्रभावमें उस यक्षके द्वारा मारा न जा सका ॥ २८ ॥

तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्मेनाभिवाडित ।

नाहदयत तदा यक्षो भस्मीकृततनुस्तादा ॥ २९ ॥

तब उसने भी वही खम उठाकर उसका द्वारा यक्षपर प्रहार किया; इससे यक्षका शरीर चूर चूर हो गया । फिर उसकी गळल नहीं दिलायी दी ॥ २९ ॥

तत प्रदुद्रुवु सयै ब्रह्म राक्ष पराक्रमम् ।

ततो नदीगुहादयै विनिशुर्भयपीडिता ।

त्यक्तप्रहङ्गा भान्ता विषर्णयदनास्तादा ॥ ३० ॥

उस राक्षसका यह पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये ।

कोई नदियोंमें कूद पड़े और काह भयसे पीड़ित हो गुफाओंमें

भुस गये । सबों अपने हथियार त्याग दिये थे । सभी पक्ष

गये थे और सबने मुखोंकी कान्ति कीकी पड़ गयी थी ॥ ३० ॥

उस राक्षसका यह पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये ।

कोई नदियोंमें कूद पड़े और काह भयसे पीड़ित हो गुफाओंमें

भुस गये । सबों अपने हथियार त्याग दिये थे । सभी पक्ष

गये थे और सबने मुखोंकी कान्ति कीकी पड़ गयी थी ॥ ३० ॥

पञ्चदश सर्ग

माणिभद्र तथा कुबेरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पक विमानका अपहरण

ततस्तांलक्ष्य त्रिभुवनान् यमेन्द्राव्य सहस्रशः ।

धनाभ्यक्षो महायक्ष माणिभद्रमथाग्रवीम् ॥ १ ॥

अगस्त्यन बहन हैं—युन-रन । धनाभ्यक्षने दत्ता ।

इजरायें यन्त्रपर भवमीन होकर भाग रहे हैं तब उसने

माणिभद्र नामक एक महायक्षने कहा— ॥ १ ॥

रावण अदि यक्षेन्द्र दुयुध पापचेतसम् ।

शरण भय वीरणा यक्षाणा युद्धमालिनाम् ॥ २ ॥

‘यद्यपर । रावण पापात्मा एव दुराचारी है, तुम उसे मार डालो और युद्धमें शामिल होनेवाले वीर यक्षोंका शरण दो—उनकी रक्षा करो’ ॥ २ ॥

एतुको महाबाहुर्माणभद्र मुमुक्षुः ।

वृत्तो यथसद्वृत्तस्तु चतुर्भि समबोधयत् ॥ ३ ॥

महाबाहुर्माणभद्र अत्यन्त दुःखी वीर थे । कुसुकी उक्त आशा पाकर वे चार हजार यक्षोंकी सेना साथ ल पड़ापर गये और रावणोंसे साथ युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

ते गदामुसलप्राप्तै शक्तिर्तोमरमुद्वहरे ।

अभिघ्नन्तस्तदा यदा राक्षसान् समुपाद्रयत् ॥ ४ ॥

उक्त समय यक्षयोद्धा गदा, मुसल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुहुरैषा प्रहार करते हुए राक्षसोंपर दूध पड़ ॥ ४ ॥

युधन्तस्तुमुल युद्ध धरन्त द्येनवस्तु ।

पाद प्रयच्छन्ते चामि क्षीयतामिति भाषिण ॥ ५ ॥

वे बार युद्ध करते हुए बाण फेंकी तरह तीव्र गतिसे सब ओर विचरने लगे । कोई कहता ‘मुक्त युद्धका अवसर दो ।’ दूसरा बालता—‘मैं यहाँसे पीछ हटना नहीं चाहता ।’ फिर तीसरा बोल उठता—‘मुझे अपना हथियार दो’ ॥ ५ ॥

ततो देवा सगन्धवा क्रपयो जलदादिन ।

दृष्ट्वा तत् तुमुल युद्ध पर विस्मयमागमन् ॥ ६ ॥

उन तुमुल युद्धका दृश्यकर देवता, गन्धवा तथा जलदायी ऋषि भी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये थे ॥ ६ ॥

यक्षाणा तु प्रहस्तेन सहस्र निहत रणे ।

महोदरेण चानिन्द्य सहस्रमपर हतम् ॥ ७ ॥

उक्त रणभूमिमें प्रहस्तेन हजार यक्षोंका संहार कर डाला । फिर महोदरने दूसरे एक सहस्र प्रशक्तीय यक्षोंका विनाश किया ॥ ७ ॥

हृदयेन च तदा राजन् मारीचन युयुत्सुना ।

निमेयान्तरमाग्नेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥ ८ ॥

रावन् । उक्त समय युधिष्ठिर राजा युयुत्सुन मारीचन पटक मारते मारते दोन दा हजार यक्षोंका पराजयी कर दिया ॥ ८ ॥

ह च यामाज्य युद्ध ह च मायायगन्धयम् ।

स्वस्ता पुरुरय्यान् तेन तदभ्यधिका युधि ॥ ९ ॥

पुरुरासि । कर्ण यक्षोंका सरलपार्श्व युद्ध । और कहों राक्षसोंका मायाय संग्राम । वे अपने मायाफल मरने ही यक्षोंकी अरुणा अधिक उज्ज्वली सिद्ध हुए ॥ ९ ॥

धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ।

मुसलान्तरसि मोधम् ताडितो न कश्चिन् ॥ १० ॥

उक्त संग्राममें धूम्राक्षने अक्षर बाणयुक्त माणिभद्रका छातोंमें मारना प्रहार किया किन्तु इन्हने व विचित्र नहीं हुए ॥ १० ॥

ततो गदा समाविध्य माणिभद्रेण राक्षस ।

धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विहृतः स पपात ह ॥ ११ ॥

फिर माणिभद्रने भी गदा धुमाक्षर के राक्षस धूम्राक्षर मस्तकपर द मारा । उसकी चमके निकल हा धुमाक्ष घरातन मिर पड़ा ॥ ११ ॥

धूम्राक्ष ताडित दृष्ट्वा पतित शानिनेशितम् ।

अभ्यधावत् सप्रामे माणिभद्र दशानन ॥ १२ ॥

धूम्राक्षने गदावी चटन पाल एव रूतने लम्पट होकर पृथ्वीपर पड़ा देख दशमुख रावणन रणभूमिमें माणिभद्रपर घाता किया ॥ १२ ॥

सक्रुद्धमभिधावन्त माणिभद्रा दशाननम् ।

शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुङ्गव ॥ १३ ॥

दशाननका क्रोधमें भरकर घाता करने देते यक्षभर माणिभद्रने उक्त कर तीन शक्तियोंद्वारा प्रार किया ॥ १३ ॥

ताडितो माणिभद्रश्च मुकुटे प्राहरद् रणे ।

तस्य तेन प्रहारेण मुकुट पाद्वमागतम् ॥ १४ ॥

चोट खाकर रावणन रणभूमिमें माणिभद्रका मुकुटपर बार किया । उक्त उक्त प्रहारेण उनका मुकुट विचलकर बगलमें आ गया ॥ १४ ॥

ततः प्रभृति यक्षोऽसौ पादमौलिभूतः क्लिप्त ।

तस्मिन् विमुक्षीभूत माणिभद्रे महामनि ।

सनाद् सुमहान् रावन्तस्मिन् शैल व्यथयत् ॥ १५ ॥

तत्से माणिभद्र यक्ष पा मौलि नामत प्रसिद्ध हुए । महामना माणिभद्र यक्ष युद्धम भग चले । राजा । उनका युद्धवे विमुक्त होन ही उस वनपर राक्षसोंका महान बिह्वलाद सब ओर फैल गया ॥ १५ ॥

ततो दृग्गतः प्रदृष्टो धनाथ्यसो गदाधरः ।

क्षुण्णप्रौढदाभ्या च पद्मशङ्खसमायुत ॥ १६ ॥

इसी समय घनर रक्षसी गणधारी उतर दूरत अव दिखायी पिय । उनका साथ युद्ध और प्रौढदा नामक मन्त्री तथा गद्ग और पद्मनाभक घात अवधता देवता भी थे ॥ १६ ॥

स दृष्ट्वा धातर सत्ये शापाद् विभ्रष्टगौत्रम् ।

उत्तम यजन धीमान् युक्त पनामदे कुन् ॥ १७ ॥

विभ्रा मुनिने लम्पट मूर प्रहृति हो जनन कारण हो मुक्तनीर प्रति प्राम आनि मरणा भी नहीं कर पाया । मुक्तनीर विभ्राचारने भी वदित पा उक्त अपने मार रावण युद्धमें उज्ज्वल गेन कुन्दन प उक्त नमोदित कुन्ने उत्पन्न हुए पुरुरास यक्ष का करी— ॥ १७ ॥

यमया वायमापम्यन्त नारायणसि हुमन ।

पद्यादस्य कल प्राप्य क्षाम्यसे नित्य गत ॥ १८ ॥

युद्धदि दशानन । नरे गत करने भी इन समय इन समय नहीं रहे ही विमुक्त अपने चार कर

फल पाओगे और नरकमें पड़ोगे, उस समय मेरी बात तुम्हारी समझमें आवेगी ॥ १८ ॥

याहि मोहाद् विपयीना नागगन्धति दुर्मति ।

स तस्य परिणामात्ते जातिते कषण फलम् ॥ १९ ॥

‘जो लोगी बुद्धिवाला पुरुष मोहना विषयो पीकर भी उसे विष नहीं समझता है, उसे उसना परिणाम प्राप्त हो जाने पर अपने किये हुए उस कष्ट फलका ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

दैवतानि न मन्दन्ति धमयुक्ता न केचित् ।

येन रम्यीदृश भाव नीतात्मना न युद्धयसे ॥ २० ॥

‘तुम्हारे किसी व्यापारमें, यह तुम्हारी मान्यताके अनुसार धर्मयुक्त ही क्यों न हो, देवता प्रसन्न नहीं होते हैं, इसीलिये तुम देखे भूभागको प्राप्त हो गये हो, परन्तु यह बात तुम्हारी समझमें नहीं आती है ॥ २० ॥

मातर पितर धिप्रमाचार्य चावमन्यते ।

स पश्यति फल तस्य प्रेतराज्यश गत ॥ २१ ॥

‘जो माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्य अथवा अपमान करता है, वह यमपत्रके वशमें पड़कर उस पापका फल भोगता है ॥ २१ ॥

अध्वरे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम् ।

स पश्चात्तापयते मूढो मृतो गत्याऽऽत्मनो गतिम् ॥ २२ ॥

‘यह शरीर क्षणभङ्गुर है। इसे पानर आ तपका उपाजन नहीं करता, यह मूर्ख मरनेके बाद जब उसे अपने दुष्कर्मोंका फल मिलता है, पश्चात्ताप करता है ॥ २२ ॥

धमाद् राज्य धन सौख्यमधमाद् दुःखमेव च ।

तस्माद् धर्मे सुखायाय कुयात् पाप विसर्जयेत् ॥ २३ ॥

‘धर्मसे राज, धन और सुखनी प्राप्ति होती है। अधर्मसे फल दुःख ही भागना पड़ता है, अतः सुखके लिये धर्मना आचरण कर, पापको संस्था त्याग दे ॥ २३ ॥

पापस्य हि फलं पुनस्तद् भोक्तव्यमिहात्मना ।

तस्मादारमापचातार्य मूढ पाप करिष्यति ॥ २४ ॥

‘पापका फल फल दुःख है और उसे स्वयं ही यहाँ भागना पड़ता है इसलिये जो मूर्ख पाप करेगा, वह मानो स्वयं ही अपना वध कर लगा ॥ २४ ॥

कल्पचिह्नं हि दुर्बुद्धेऽदृष्टतो जायते मति ।

यादृशं कुरुते यम तादृशं फलमश्नुते ॥ २५ ॥

‘किसी भी दुर्बुद्धि पुरुषको (जुम कर्मका अनुष्ठान और गुणकर्मों की सेवा किये बिना) देखेनामात्रमें उत्तम बुद्धिकी प्राप्ति नहीं होती। यह जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है ॥ २५ ॥

अग्निं रूपं यन् पुत्रान्विशं शूत्रत्वमथ च ।

प्राप्नुयन्ति नरा रक्षे निजिजं पुण्यकर्मभि ॥ २६ ॥

‘अग्निरूप पुरुषों की समृद्धि, सुन्दर रूप, बल, वैभवा,

वीरता तथा पुत्र आदिकी प्राप्ति पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे ही होती है ॥ २६ ॥

एव निरयगामी च यस्य ते मतिरीदृशी ।

तत्त्वा नमभिभाषिष्येऽसत्त्वत्तेष्वेव निर्णय ॥ २७ ॥

‘इसी प्रकार अपने दुष्कर्मोंके कारण तुम्हें भी नरकमें जाना पड़ेगा क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ऐसा पापासक्त हो रही है। दुराचारियोंसे बात नहीं करना चाहिये, यही शास्त्रोंना निर्णय है अतः मैं भी अब तुममें कोई बात नहीं कहूँगा ॥ २७ ॥

एवमुक्तास्ततस्तेन तस्यामात्या समाहता ।

मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुरा विप्रदुर्बुधः ॥ २८ ॥

इसी तरंगी बात उन्होंने रावणके मन्त्रियोंसे भी कही। फिर उनपर शस्त्राद्वारा प्रहार किया। इसमें आहत होकर वे मारीच आदि सब राक्षस युद्धमें मुँह मोड़कर भाग गये ॥ २८ ॥

तस्तेन दशग्रावो यक्षे द्रेण महात्मना ।

गद्याभिहतो मूर्ध्नि न च स्थानात् प्रकम्पित ॥ २९ ॥

तदनन्तर महात्मना यक्षराज कुंभरेने अपनी गतमें रावणके मस्तकपर प्रहार किया। उससे आहत होकर भी वह अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ ॥ २९ ॥

ततस्तौ राम निष्पन्नौ तत्रान्योन्य महागृध्र ।

न विह्वलौ न च धातौ ताडुभौ यक्षराक्षसौ ॥ ३० ॥

श्रीराम! तत्पश्चात् वे दोनों यक्ष और राक्षस—कुंभरे तथा रावण—ना उस महासमरमें एक दूसरेपर प्रहार करने लगे परन्तु दोनोंमेंसे कोई भी न तो थपराता था न यकता ही था ॥

आनेयमख तस्मै स मुमोय धनदस्तदा ।

राजनेद्रो गदणेन तद्वक्ष प्रत्यनारयत् ॥ ३१ ॥

उस समय कुंभरेने रावणपर आनयाक्षना प्रयोग किया, परन्तु राक्षसराज रावणने बाणशास्त्रके द्वारा उनपर उस अशक्तों को गाल कर दिया ॥ ३१ ॥

ततो माया प्रशिणेऽसौ राक्षसी राज्यसे वरः ।

रुपाणा दत्तसाहस्रं शिनाशाय चकार च ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् उस राक्षसराजने राक्षसी मायारा आश्रय लिया और कुंभरेका निनाग करारे लिये लाने रूप धारण कर लिया ॥ ३२ ॥

व्याप्तो यराहा जीमूत पतत स्वागरा द्रुम ।

यश्चो दीव्यम्बुरूपी च नोऽदृष्टयत दशानन ॥ ३३ ॥

उस समय व्याघ्रना गरम बाघ, मूँदर, मय, पाता, समुद्र, वृद्ध, यक्ष और देव सभी रूपोंसे दिव्यारी देते लगे ॥ ३३ ॥

यह्नि च दशानि स्म दृश्यन्त न स्वर्गो तन ।

प्रतिगृह्य तनो राम मन्दुक्ष दशानन ॥ ३४ ॥

जघा मूर्ध्नि धनद व्याधिद्वय मर्त्यो गदाम् ।

इस प्रकार यह बहन्म रूप प्रकट करता था। वे रूप ही दिशाओं देते थे यह अथ दृष्टिगोचर नहीं होता था।

धीमान् । तन्नन्तर दाम्बुधने एक बहुत बड़ी गदा हाथमें ली
और उस घुमावर तुरैर मन्थकर मरा ॥ ३४ ॥
पर स तेनाभिहतो विद्वद् द्वाणितातित ॥ ३ ॥
दृष्टम् इति शशाङ्क निरपान धनाधिप ।

इम प्रका रागाद्वारा जाहत हा धन व्याधि कुनर
रतस नहा उर और व्याकुल हा जन्मे क हुए जगावकी
भौति कपर गिर पड़ ॥ ३ ॥

तन पश्चादिभिस्तत्र तिथिभि स तदा वृत ॥ ३५ ॥
धनशोऽप्यसितन्नेस्तु यतमानाय नन्दनम् ।

ततश्चात् पश्चादि तिथिषोऽप्यधियता देनाओंने
उहै धनकर उठा लिया और नन्दनममें स करके चेत
करया ॥ ३५ ॥

निनिव्य राक्षसेन्द्रस्त धनद दृष्टमानस ॥ ३७ ॥
पुण्यक तस्य जग्राह विमान जयलम्बणम् ।

इस तरह तुरका बतकर राक्षसराज राग अपने मनमें
बहुत प्रसन्न हुआ और जना विनय विद्वद् रूपमें उठने
उनका पुत्र विमान अपने अधिकारमें कर लिया ॥ ३७ ॥

काञ्चालम्भमरीत नैद्वयमणितोष्णम् ॥ ३८ ॥
मुक्ताजालप्रति-उल्ल सखकालकन्दुमम् ।

उस विमानम रूपे गरम और वयुमणित फटक
गये । वह मर भरने मणिको रूपे मरा हुआ था ।
उसके भीतर एने एने हथ मग थ बा मभी श्रुतआमें फल
दनेर ॥ ३८ ॥

मनोनय कामगम कामरूप विह्वगमम् ॥ ३९ ॥
मणिकान्धनलोपाता तमराञ्जनवेत्तिकम् ।

उठा बाग मनर मनन नीच था । वह अपने ऊपर बड़े
हुए लोनों की इच्छा अनुहार मर जग आ सकना था तथा
नाक नीच चाद, पैर उठा था बड़ा रूप धारण कर लेना
था । उस मराबरा विमानमें मणि और मुक्तकी सन्धियाँ
तथा ताल हुए मनेकी बधिकों बनी थी ॥ ३९ ॥

इषाये धामद्रोमपण वस्त्रेन्द्रीय आदिद्रव्य उत्तरकाण्ड पञ्चम सर्ग ॥ १५ ॥

इति चर्ग अर्गलनिर्मित अक्षरनवा अक्षिपक उत्तरकाण्डे पञ्चम सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

षोडश सर्ग

नन्दीश्वरस्य शवणस्य शप, भगवान् शङ्करादाग रावणस्य मान भद्र

तथा उनसे चन्द्रहाम नामक स्वप्नको प्राप्ति

स निव्या धनद राम भ्रातर रामसाधित ।

मलामिनप्रमूर्ति तद् ययौ शरण्य महत् ॥ १ ॥

(अनाम्यो रत है—) गुरुमानस राम । अपने
मर, हरेर पर रहकर मरा मरा मरा ।
प्रति मरको विशाल मनम मरा । मनेने कालकर
मरी उठान मर ॥ १ ॥

ध्यापदयद् दराप्रिया राकम शरण्य महत् ।

दशोपयाहमत्तय्य सदा दृष्टिमतसुखम् ॥ ४० ॥
यद्वाध्वं भक्तिप्रिय प्रमणा परिनिर्मितम् ।

वह मरा मरा हा वारन था और दूने दूनेवाला
नगे था । सदा मनेमें मुन्दर और चित्तदा प्रसन्न करनेवाला
था । उसका भावर अनेक प्रकार आक्षयक विषय थे ।
उसकी दीर्घायु तह-तहकर मर-मर बने थे, दिनम उनकी
विचित्र शाभा हा रहा थी । प्रणा (विश्वरमा) ने उसका निमाण
लिया था ॥ ४० ॥

निर्मित मरनामैस्तु मनाहरमतुलमम् ॥ ४१ ॥

न तु शीत न चोष्ण य मयतुसुखद शुभम् ।

स त राजा समारुह कामग वीर्यनिर्मितम् ॥ ४२ ॥

नित् त्रिमुपन मेने द्योन्मकान् सुदुमति ।

नित्या वैश्रव्य देव कैलासात् समजातरत् ॥ ४३ ॥

वह सब प्रकार की मनाशास्त्रिण दस्तुओं समान
मनोहर और परम उत्तम था । न अधिक ठंडा था और न
अधिक गरम । सभी श्रुतओंमें आराम पहुँचानेवाला तथा
महानकारी था । अपने आक्रमे जल हुए उस इच्छातुल्य
चनेराल विमानपर आरुह हा अत्यन्त लोकी मुद्रिता राजा
राग अगारकी अधिपतल ऐषा मानने लगा कि मैंने लोनों
लोटों को ब्रह्म लिया । इस प्रकार वैश्रव्यदेवों का गति कर
न कैलाशमें नीच गता ॥ ४१ ४२ ॥

स तनसा त्रिपुलमशय त जय

प्रतापवान् धिमलकिरीटहारपाद् ।

राग वै परमविमानमास्थितो

निगावर सदसि गतो यथानल ॥ ४४ ॥

विमान किरीट और हारम त्रिपुलित वा प्रतापी निगावर
अपने तन्में म महान् विराडा पाकर उस उत्तम विमानपर
आरुह हा मरमनपने प्रवृत्ति होनेवाला अनिन्देरी मौन
गाभा पाने लगा ॥ ४४ ॥

गभस्तिज्ञानमरीत द्वितीयमिर भास्वरम् ॥ ५ ॥

महो पञ्चम दामान मुरमयी कनेने मुक्त म
विमान मरा (मरको जग) हा मरा, म विमान
मनेने मने दनेर मरा मरा मनेने मना मरा मनेने
मरा मरा ॥ ५ ॥

म पयन ममादाय वजिद् मयमनान्तम् ।

प्रमत्त पुण्यक तत्र गम विप्रमिन्न मदा ॥ ३ ॥

उत्तर पाद ही कोई पतंत था, जहाँकी वनखली बड़ी रमणीय थी । भीराम ! जब वह उत्तर चरने लगा, तब देखता है कि पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ ३ ॥

विष्टम किमिदं कस्मान्नागमत् फामग हृतम् ।
अचित्तयद् राक्षसेन्द्र सचिवैस्त समावृतम् ॥ ४ ॥
किनिमित्तमिच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम् ।
पर्वतस्योपरिष्ठस्य कमेदं कस्यचिद् भवेत् ॥ ५ ॥

तब वह राक्षसपुत्र अपने उन भनियोंके साथ मिलकर विचार करने लगा—'क्या कारण है कि यह पुष्पक विमान रुक गया ? यह तो स्वामीकी इच्छाक अनुसार चलनेवाला बनाया गया है । फिर आगे क्यों नहीं बढ़ता ? कौन-सा ऐसा कारण बन गया, जिससे यह पुष्पक विमान मेरी इच्छाक अनुसार नहीं चल रहा है ? सम्भव है, इस पर्वतक ऊपर कोई रहता हो, उसीका यह कर्म हो सकता है ॥ ४ ५ ॥

ततोऽग्रवीत् तदा राम मारीचो बुद्धिकोविद् ।
नेदं निष्कारण राजन् पुष्पकं यन् गच्छति ॥ ६ ॥
भीराम ! तब बुद्धिकुशल मारीचने कहा—'धानन् ! यह पुष्पक विमान जो आगे नहीं बढ़ रहा है, इसमें कुछ-न-कुछ कारण अवश्य है । अकारण ही ऐसी घटना घटित हो गयी हो, यह बात नहीं है ॥ ६ ॥

अथवा पुष्पकमिदं जनद्वान्नायवाहनम् ।
अतो निस्यन्दमभवद् धनाप्यश्वविनाएतम् ॥ ७ ॥
'अथवा यदि पुष्पक विमान कुतरेक विना दूसरेका वाहन नहीं हो सकता, इसीलिये उनसे विना यह निश्चेष्ट हो गया है ॥ ७ ॥

इति धाम्यान्तरे तस्य करालं वृष्णपिङ्गलम् ।
धामनो विफटो मुण्डो नन्दी हसन्मुजो यली ॥ ८ ॥
ततः पार्श्वमुपगम्य भवस्यानुजरोऽग्रवीत् ।
नन्दीभरो यच्चक्षेद् राक्षसेद्रमशङ्कितः ॥ ९ ॥

उसकी इस बातक बीचमें ही भगवान् 'गङ्गाक पार्श्व नन्दीश्वर रायणसे पास आ पहुँचे, जो देखनेमें बड़े विचित्र थे । उनकी अद्भुतबलित्त बलि एवं पिङ्गल वणकी थी । वे नाटे बदनसे विचित्र रूपवाले थे । उनका मनन मुण्डित और मुजाई छोटी-छोटी थी । वे बड़े बलवान् थे । नन्दीने नि 'गङ्गा' द्वार राक्षसपुत्र दशमीयसे इस प्रकार कहा—॥ ८ ९ ॥

निग्रतस्य दशमीय शैले श्रीद्विति शरफ ।
सुपुणनागयक्षाणां देयगर्ध्वरक्षसाम् ॥ १० ॥
सर्वयामेन भूतानामगम्य पर्वत एत ।

'श्रीमीर ! शेट जाओ । इस पर्वतपर भगवान् 'गङ्गा' श्रीदा करते हैं । यहाँ सुपुत्र, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस सभी प्राणिपौका आना जाना कर कर लिया गया है ।' इति नन्दिश्च भुव्या मोधात् कम्पितकुण्डल ॥ ११ ॥
रोमान् तु ताघ्नपतन पुष्पकादवस्था स ।

कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपगतः ॥ १२ ॥

नन्दीकी यह बात सुनकर दशमीय कुपित हो उठा । उसने कानोंके कुण्डल हिलाने लगा । ओंखें रोपसे लाल हो गयीं और वह पुष्पकसे उतरकर थोड़ा-बौन है यह 'गङ्गा' ऐसा बहकर यह पर्वतक मूलभागमें आ गया ॥ ११ १२ ॥
सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यातूरत स्थितम् ।
दीप्तं शूलमग्रेभ्य द्वितीयमिव शङ्करम् ॥ १३ ॥

वहाँ पहुँचकर उसने देखा, भगवान् 'गङ्गा'से थोड़ी ही दूरपर चमचमाता हुआ 'गूल' हाथमें लिये नन्दी दूसरे शिवकी भाँति खड़े हैं ॥ १३ ॥

त हृष्टा वानरमुखमवधाय स राक्षस ।
प्रहास मुमुचे तत्र सतोय इव तोयद् ॥ १४ ॥

उनका मुँह वानरक समान था । उन्हें देखकर वह निगाहर उनका तिरस्कार करता हुआ तलल जलधरके समान गम्भीर स्वरमें ठहाका मारकर हँसने लगा ॥ १४ ॥

त क्रुद्धो भगवान् नन्दी शङ्करस्यापरा तनु ।
अग्रवीत् तत्र तद् रक्षो दशानामुपस्थितम् ॥ १५ ॥

यह देख शिवने दूसरे स्वरूप भगवान् नन्दी कुपित हो बहाँ पास ही खड़े हुए निगाहर दशमुखसे इस प्रकार बोले—॥

यस्माद् वानररूपं मामग्राहाय दशानन ।
अशानीपातसकाशमपहास प्रमुनवान् ॥ १६ ॥
तस्मा मदीयसयुक्ता मद्रूपसमनेजसः ।

उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य ता वानरा ॥ १७ ॥

'दशानन ! तुमने वानररूपमें मुझे देखकर मेरी अवहलना की है और वज्रपाते समान भयानक आघात किया है, अतः तुम्हारे कुलका विनाश करनेक लिये मेरी ही समान पराक्रम, रूप और तनसे सज्जक वानर उत्पन्न होंगे ॥

नखदंष्ट्रायुधा ह्य मम सम्पातरदस ।
युस्रो मत्ता वलोद्विक्ता शैला इय विसर्पिण ॥ १८ ॥

'शूर निशाचर ! नख और दाँत ही उन वानरोंक आदर होंगे तथा मनके समान उनका तीन वेग होगा । ये तुझसे लिये उमरत रहनेवाले और अतिगह्वर पन्थानी होंगे तथा चलते किले पर्वतोंके समान जान पहुँगे ॥ १८ ॥

त तत्र प्रयत्नं हर्षमुत्तेज्य च वृथश्चिधम् ।
व्यपनेप्यन्ति सम्भूय सप्तमाग्यसुतस्य च ॥ १९ ॥

'वे एकत्र शहर मन्त्री और पुत्रोंवदि तुम्हारे प्रबल अभिमानका और निगाहका हानिकारी गर्वको चूर चूर कर देंगे ॥ १९ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं हन्तुं स्यादे निदातर ।
न हन्तव्यो हतस्य हि वृथमेव स्यममभि ॥ २० ॥

'ओ निशाचर ! मैं तुम्हें अभी मार दानेकी गरिज रखता हूँ, तथापि तुम्हें माम्मा नहीं है क्योंकि अग्न कुलिन

कनोद्वाहं तुम पश्येने ही मरे वा चुके ॥ (अ) मरे द्रुप
५० ॥ २० ॥

इयुदीरितशस्त्रे तु देवे तस्मिन् महात्मनि ।

परदुःखभयो नेदु पुण्यवृष्टिश्च खाव्युत्तुमा ॥ २१ ॥

महान्ता भगवान् उन्दीक इत्या वदेते ही देवार्थोक्ती
हुन्दिभ्यो वज उठो और आराधने फूलों की वरा देने लगी ॥

अचिन्तयित्वा म तस्य नन्दिशस्त्र महायत्न ।

पश्यत तु समास्ताय वाक्यमाह दशानन ॥ २२ ॥

परदुःखभय दशाननेन स समनन्दीके उन वचनों
की वद परा नहीं थी और उस पर्यंतके निष्कर्ष बखर
कहा—॥ २२ ॥

पुण्यकस्य गतिदिश्या यत्तु मे मम गच्छत ।

तस्मिन् शैलमुमूल कगमि तत्र गोपते ॥ २३ ॥

पुत्रने ! निवृत्त काय वाक्य करने समय मेरे पुण्यक
निमात्री गति दक गयी, तुम्हारे उस पर्यंतके, जे यह मेरे
समन लड़ा है, मैं बड़ते उगाइ बँकना हूँ ॥ २३ ॥

केन प्रभावेण भयो नित्य व्रीडति राचयन् ।

विज्ञातय न जानाते भयमन्यनमुपस्थितम् ॥ २४ ॥

किंच प्रभावे शङ्कर प्रतिदिन यौ राक्षसी भोंति शौहा
कते हैं ! इहै हय जानने योग्य वाच्य भी पता नहीं है कि
इनक सन्त भयना नान उपस्थित है ॥ २४ ॥

परमुन्या ततो राम मुपान् रिक्षिष्य पश्ये ।

तोलयामान त शीघ्र म शैल समकम्पत ॥ २५ ॥

भीराम ! ऐसा बहुर दशप्रोक्ते पर्यंत निवृत्त भागमें
अनी मुझसे लगाया और उमे वाप उठा लेनेका प्रयत्न
किया । वह पर्यंत हिलने लगा ॥ २५ ॥

शालनात् परतर्प्य गणा देवस्य कम्पिता ।

चवाल पारती यापि तद्वारिष्ठा महेभ्यरम् ॥ २६ ॥

पवनर हिलनेने भगवान् शङ्करने शारे स काँप उठे ।
पारती देवी भी निवृत्ति है उठो और भगवान् शङ्करने
जिप गयी ॥ २६ ॥

ततो राम महादेवो देवाना प्रपते हत् ।

पादाङ्गुष्ठेन त शैल पीडयामान लीलया ॥ २७ ॥

भीराम ! तस देवार्थोक्ते श्रेष्ठ वाणी महादेवने उस
पवनर अपने पैरर अँगुठने निजामने ही दबा दिया ॥
पीडितास्तु तनस्य शैलस्तम्भोपमा भुजा ।

रिक्षितावाभयसंश्र सचिवास्तस्य रक्षस ॥ २८ ॥

किं तो दशप्रार्थी वे मुझसे, जो पर्यंत काँपोंक समन
का पड़ती थी उस पगड़न नाचे दब गयी । य देव
पारो लड़ हुए उस शङ्कर लक्ष्मी बड़े आश्चर्यसे पड़ गये ॥

रक्षसा मेन रोराय भुजना पाडन्वात् तथा ।

मुक्तो विराय सदासा वैरेक्ययेन कम्पितम् ॥ २९ ॥

उस सज्जने केर तथा अनी बँडोही पीडाक करन

सका बड़ बोले विराय—येदन अपका आर्तनाद किया,
विश्वने तीनों लेखोंक प्राणी काँप उठे ॥ २९ ॥

मेनिरे चक्षनिषेय तस्यामान्या युगक्षये ।

तदा वमस्तु चलित्वा देवा इन्द्रपुरोगमा ॥ ३० ॥

उगने मन्त्रिणोंने समझा, अब प्राणकाल आ गया और
निनचकारी वज्रनात होने लगा है । उस समय इन्द्र अर्द्ध
देवता मार्गमें निवृत्ति है उठ ॥ ३० ॥

समुद्राध्यापि सन्धाधलितान्धापि पश्यत ।

यक्षा विद्याधरा सिद्धा क्रिमेतदिनि चानुयन् ॥ ३१ ॥

समुद्रोंमें ज्वार आ गया । पान पिलने लगे और पक्ष,
विद्याधर तथा सिद्ध एक दूसरेने पूजने लगे—यह क्या हो
गया ? ॥ ३१ ॥

तोयस्य महात्मे नीलकण्ठमुमापनिम् ।

तस्मृते शरण नान्य पदयामोऽप्य दशानन ॥ ३२ ॥

तदनन्तर दशप्रोक्ते मन्त्रिणोंने उल्लेख का—महाप्र
दशानन ! अब आप नीलकण्ठ उमास्त्वम महादेवकी स्तुति
कीजिये । उनक किता दूसरे निमात्री हम ऐसा नहीं देखते,
जो यों आपका शरण दे सके ॥ ३२ ॥

स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरण मन ।

वृषालु शङ्करस्तु प्रमाद ते विद्यास्यति ॥ ३३ ॥

आर स्तुतिपौंड्रय उहै प्राम करक उद्दीरी शरणमें
ब्यस्ये । भगवान् शङ्कर बड़े दबाव हैं । वे वृष शङ्कर आर
पर क्या करेंगे ॥ ३३ ॥

यवमुनस्तन्यामन्यन्तुणय वृषभध्वनम् ।

सामभिरिषिषे स्तोत्र प्रणम्य स दशानन ।

सकन्तरसहस्र तु यदतो रक्षसो गतम् ॥ ३४ ॥

मन्त्रिणोंक ऐसा करनेपर दशप्रार्थने भगवान्
वृषभध्वन प्रणाम करन नाता प्रकार काँपों तथा सम
देशक मन्त्रोंका उनका स्तन किया । इस प्रकार हाथोंकी
पौंड्रने रने और स्तुति करत हुए उस शङ्कर एक हजर
बर्ष दीन गये ॥ ३४ ॥

तत प्रीतो महादेवः शोभाप्र विष्टित प्रभु ।

मुक्त्वा चान्य मुनान् राम प्राण वाक्य दशाननम् ॥ ३५ ॥

भीराम ! तस्य उध परतर्प्य निज द्रुप
भगवान् महादेव प्रणत है गये । उहोंने दशप्रार्थी मुझसे
जो उस सज्जने मुझ करक उगना कहा—॥ ३५ ॥

प्रीतोऽस्ति तत्र धीरस्य शीटीयाय दशानन ।

शौलाग्रननयो मुक्त्वा चान्य रात्र मुदागण ॥ ३६ ॥

यस्मात्लोकाग्रय यैतद् रात्रिभयमागणम् ।

तस्मात्स्वराशयो नाम नाम्ना राजन् भविष्यति ॥ ३७ ॥

प्रदशन ! तुम वीर है । तुम्हारे पराक्रमने ने प्रणम
है । तुम्हने परतर्प्य दब सज्जने काया का भगवान् मन्त्रक
रा (अर्जुन) किया है, उम्हने भगवान् शङ्कर उहै

लोकोंके प्राणी से उठे थे, इसलिये रावणराज । अब तुम रावणक नामसे प्रतिद्ध होओगे ॥ ३६ ३७ ॥

देवता मानुषा यक्षा ये चाये जगतीतल ।

एव त्वमभिधास्यन्ति रावण लोकरावणम् ॥ ३८ ॥

‘देवता: मनुष्य: यक्ष तथा दूखरे जो लोग भूतलपर निवास करते हैं; ये सब इस प्रकार समस्त लोकोंकी कलनेगल तुझ दशमीउको रावण कहेंगे ॥ ३८ ॥

गच्छ पौलस्त्य विरुद्ध पथा येन त्वमिच्छसि ।

मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥

‘पुलस्त्यमन्दन । अब तुम जिस मार्गसे जाना चाहो, देखटके जा सकते हो । राक्षसपत । मैं भी तुम्हें अपनी ओरसे जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा लङ्केश शम्भुना स्वयमग्रधीत् ।

प्रतो यदि महादेव घर मे देहि याचत ॥ ४० ॥

भगवान् शङ्करक ऐसा कहनेपर लङ्केश्वर बोला— ‘महादेव । यदि आप प्रसन्न हैं तो वर दीजिय । मैं आपसे वरकी याचना करता हूँ ॥ ४० ॥

अनभ्यत्व मया प्राप्त देवगर्भजवान्यै ।

राक्षसैर्गृह्यकैर्नागैर्ये चान्ये यत्प्रसक्त ॥ ४१ ॥

‘मैंने देवता, गन्धक, दानव, राक्षस, गृह्यक, नाग तथा अन्य मन्त्रालाली प्राणियोंसे अजब हीनका वर प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥

मानुषान् न गणे देव स्वल्पास्तं मम सम्मता ।

दीर्घमायुश्च मे प्राप्त ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ॥ ४२ ॥

याच्छित्त चायुषः शेष शस्त्र त्व च प्रयच्छ मे ।

‘देव । मनुष्योंसे तो मैं कुछ गिनता ही नहीं । मेरी मायतान् अनुवार उनकी शक्ति बहुत थोड़ी है । त्रिपुरान्तक । मुझे ब्रह्माजीने द्वारा दीर्घ आयु भी प्राप्त हुई है । ब्रह्माजीकी दी हुई आयुस जितना अब बच गया है, वह भी पूरा का पूरा प्राप्त हो जाय (उसमें त्रिशी कारणसे कमी न हो) । ऐसी मेरी इच्छा है । इसे आप पूर्ण कीजिय । साथ ही अपनी ओरसे मुझे एक शस्त्र भी दीजिये ॥ ४२ ॥

हृत्पापैर् धीमद्रामायणे पाठनीय आत्मिकाश्च उत्तरकाण्डे घोषणा समा ॥ १९ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आभरामायण आत्मिकाश्च उत्तरकाण्डे साहस्रोक्तं समा पूरा हुआ ॥ १९ ॥

मत्तदश मर्ग

गवणसे तिरस्कृत ब्रह्मर्षि कन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवृत्त करना

और दूसर जन्ममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ राजन् महायादुर्निचरन् पृथिवीतल ।

हिमयठनमास्ताथ परिचश्राम रावण ॥ १ ॥

(अमल्यत्री कहते हैं—) राजन् । ताराभार महायादु रावण भूतलपर निचरना हुआ हिमालयपर बाम आकर वहाँ लक्ष और चक्रर समझे लगा ॥ १ ॥

एवमुक्तस्ततस्तो रावणेन स शङ्कर ॥ ४३ ॥

द्वौ खड्ग महावीर्य चन्द्रहाममिति श्रुतम् ।

जायुषश्चावशेष च द्वौ भूतपतिस्तदा ॥ ४४ ॥

रावणक ऐसा कहनेपर भूतनाथ भगवान् शङ्करने उस एक अत्यन्त दीर्घमान् चन्द्रहास नामक खड्ग लिया और उसकी आयुवा जा अग यीत गया था; उसकी भी पूष कर दिया ॥ ४३ ४४ ॥

द्वयोवाप तत शम्भुनात्रौयमिदं त्वया ।

अवज्ञात यदि हि ते मामेवैष्यत्यस्तशाय ॥ ४५ ॥

उस खड्गको देकर भगवान् लिवने कहा—‘तुम्हें कभी इसका निरस्कार नहीं करना चाहिये । यदि तुम्हारे द्वारा कभी इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पास लौट आया इसमें शक्य नहीं है ॥ ४५ ॥

एव महेश्वरेणैव कृतनामा स राजण ।

अभिघात महादेवमादरोहथ पुण्यकम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भगवान् शङ्करने गूढनाम पाकर रावणने उन्हें प्रणाम किया । तत्पश्चात् वह पुण्यक विमानपर आरुढ़ हुआ ॥ ततो महीतलं राम पर्यश्रामत रावण ।

क्षत्रियान् सुमहावीर्यान् बाधमानस्ततस्तत् ॥ ४७ ॥

धीराम । इसने बाद रावण समुची पृथ्वीपर विगिन्त्रयके

लिये भयन करने लगा । उसने इधर उधर जाकर बहुतसे

महापराक्रमी क्षत्रियोंका पीड़ा पहुँचाया ॥ ४७ ॥

केचित् तजस्विन शूरा क्षत्रिया युद्धदुर्मदा ।

तच्छासनमकुर्वन्तो जिन्युः सपरिच्छदाः ॥ ४८ ॥

जितने ही तेजस्वी क्षत्रिय जा बड़े ही शूरीय और रणोत्तम थे, रावणकी आज्ञा न माननेवाँ रावण नेना और परिहार सहित नष्ट हो गय ॥ ४८ ॥

अपरे दुर्जय रक्षो जानन्त प्रागसम्मता ।

जिता स्म इत्यभ्यासत रामस्य वल्गुर्दपितम् ॥ ४९ ॥

दूसरे क्षत्रियोंने, जो वृद्धिमान् मान जाँ थे और उस राक्षसों अनेक समजते थे उस बलभिमानी निगाचरक सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ४९ ॥

हृत्पापैर् धीमद्रामायणे पाठनीय आत्मिकाश्च उत्तरकाण्डे घोषणा समा ॥ १९ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आभरामायण आत्मिकाश्च उत्तरकाण्डे साहस्रोक्तं समा पूरा हुआ ॥ १९ ॥

एव श्रुतिना विधिने तन्मते सत्यं हा दत्तानाम समान
उहीत शरीरं वा ॥ २ ॥

स हृद्वा रूपसम्पत्ता कस्या ता सुमहाप्रताम् ।

काममोहपरीता मा पश्यन्त्य प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

उत्तम एव महान् व्रतका पालन करनेवाली तथा रूप
मैन्दयने गुणामित उस कन्याको देखकर रागादित चित्त काम
वर्जित मन्देके वशान्त हा गया । उसने अग्राह्य करत हुए
न पूजा— ॥ २ ॥

किमिदं वर्तमानं भट्टे रिण्ड यौवनस्य ते ।

नहि युक्ता तर्धतस्य रूपस्यैव प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥

‘भट्टे ! तुम अपनी इस युवावस्थाक रिणीत यह कैसा
पगार कर रही हा ? तुम्हारे इस दिन स्वर्ग लिय ऐल
आचरण कन्या उचित नहीं है ॥ ४ ॥

रूप तदनुपम भीयं कामोन्मादकर नृणाम् ।

न युक्त तपसि स्यात् नु निगतो ह्येव निजय ॥ ५ ॥

‘भीय ! तुम्हारे इस रूपकी कही तुम्हाना नहीं है । यह
पुरुषके हृदयमें कामजनित उन्माद पैदा करनेवाला है । अतः
तुम्हारा तपने सत्य हा ना उचित नहीं है । तुम्हारे लिये हमारे
हृदयवे यही निर्णय प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

कस्यामि किमिदं भट्टे कथं भग्नं वरानने ।

येन सम्पुन्यते भीयं न नर पुण्यभा मुनि ॥ ६ ॥

पूज्यत दास मे सर्वं कस्य हेतो परिधम ।

‘भट्टे ! तुम जिसरी पुत्री हा ? यह कौन-सा उत कर रही
हा ? तुम्हारे ! तुम्हारा पनि कौन है ? भीय ! जिसका साथ
तुम्हारा सम्पन्न है, न मनुष्य इस भूलाकमें महान् पुन्यवान्
है । मैं जो कुछ पूज्य हूँ, वह सब मुझ वगैरे । किस कस्य
लिय या परिधम बिना या रहा है ? ॥ ६ ॥

एषमुक्त्वा तु सा कस्या रायणेन यदाश्विनी ॥ ७ ॥

अग्रशीर्षं विधिरन् हृत्वा तस्यातिथ्य तपोधना ।

राजक इस प्रकार पूजनेपर यह यशस्विना तपधना
कन्या उसका विधिरन् आतिथ्य-सत्कार करके बली— ॥ ७ ॥

कुशाग्रतो नाम पिता प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ८ ॥

यहस्मिन्मुत धामान् बुद्ध्या तुभ्यो गृहस्पते ।

‘अनितनद्वयी ब्रह्मणि धामान् पुण्यत्रय नरणि य,
अ इहानि पुत्र य और बुद्धिमें भी उहें एक समन मने
करत य ॥ ८ ॥

तस्याहं कुयतो नित्य चेद्राभ्यास महामन ॥ ९ ॥

सम्पूता वाङ्मयी कस्या नाम्ना येद्वयी स्मृता ।

‘अतिशय ध्यानकर करने पर उन महान् जिन
वाहना का कसमें मया प्रादुर्भाव हुआ था । मया नम
करती है ॥ ९ ॥

ततो देव सगंधश ययरायसपन्नगा ॥ १० ॥

त चापि गंधा निरत वरप रोचयति मे ।

‘उब मैं ब । हुँ, तब ययराय, सगंध, ययराय और
नाभाशिरा पापना कर उनका मुझ कोने लगा ॥ १० ॥

न च मा म पिता तस्यो दत्तानां गारमेव ॥ ११ ॥

भारण तद् धनिय्यामि निगामय महामुन ।

‘महाबाहु यजुनकर ! निगामन उनका हापने मुझ नहीं
सगा । स्वका का करण था, मैं वगैरे हूँ, मुनि ॥ ११ ॥

पितुस्तु मम जामाता रिण्डु रिण्डु सुखधर ॥ १२ ॥

अभिप्रेतखिलेनेदास्तस्मान्नात्यस्य मे पिता ।

दातुमिदं नम्रै तु तद्गृत्वा यत्नार्थि ॥ १३ ॥

शम्भुनाम ततो रात्रा द्रव्यानां वृषिर्नाभयन् ।

तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिमिन ॥ १४ ॥

‘निगामी की इच्छा थी कि तीनों लड़कों स्वामी देवकर
मगवान् रिण्डु नरे दामद हों । ईर्ष्याय ब दूसरे इच्छा
हापने मुझ नहीं देना चाहत थे । उनका इस अभिप्राय
मुझपर दण्डिमानी दैत्यराव त्मु उनका कुनि हा उता
और उस पापान गतने का समय नरे निगामी हला
कर बली ॥ १२-१४ ॥

ततो मे जननी भीना तच्छरीरं पितुमम ।

परिष्वस्य महाभागा प्रणिण हयराहनम् ॥ १५ ॥

‘इसने मेरी महाभागा मगरा बहा हुआ हुआ और
वे निगामी प्रकट हृदयने लगाकर निगामी अगने प्रविष्ट
हो गयीं ॥ १५ ॥

ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नागपणं प्रति ।

करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुत्तरे ॥ १६ ॥

‘इसने मैंने प्रणिण कर ली है कि मैंना नागपण
प्रति निगामी का मनोरथ था, उम मैं नर करनी ।
इहलिय मैं उहें और हृदयमन्त्रिने धारा करनी हू ॥

इति प्रतिज्ञामाक्य चरामि विपुलं तप ।

एतन्तं स्वयमाग्यात मया गारमपुत्रम् ॥ १७ ॥

‘मया प्रतिज्ञा कर मैं या महान् तप कर रहा हूँ ।

यस्यतपः । अतः प्रमन अदुर्गर वा सन मने अप
का बली ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिन त्वस्य पुत्रोत्तमम् ।

आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीक्षया ॥ १८ ॥

‘नारायण हा मेरे पति हैं । उन पुत्रमन्त्रम रिण्डु मुझ

का मया पति नहीं हा सखा । उन नागपण पर प्रम

करन रिण्डु मैंने इस कर माका अमन रिण्डु ॥ १८ ॥

विप्रातस्य हि म रात्रं यच्छ पालन्यतन्दन ।

जातामि तस्मा मयं प्रवेक्ष्ये यदि यतन ॥ १९ ॥

‘यात्रा पालनना । मैंने अतः पालन रिण्डु ।

अतः यदि । रिण्डु मैंने यह का भी पालन रिण्डु हा कर

मैंने पालन रिण्डु ॥ १९ ॥

सोऽग्रशीर्षं रात्रो भूयसा कस्या सुमहाप्रताम् ।

मेकौके प्राणी य उडे थे, इसलिय गक्षराज ! अब तुम रावणके नामसे प्रसिद्ध होओगे ॥ ३६ ३७ ॥

देवता मानुषा यक्षा ये चाये जगतीतले ।

एष त्वामभिधास्यन्ति रावण लोऽरावणम् ॥ ३८ ॥

‘देवता, मनुष्य, यक्ष तथा दूखरे जा लोग भूतश्चर निवास करते हैं, वे सब इस प्रकार समस्त लोकोंमें बलनेवाल तुझ दशग्रीवकी रावण कहेंगे ॥ ३८ ॥

गच्छ पौलस्त्य विघ्नश्च पथा येन त्वमिच्छसि ।

मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥

‘पुलस्त्यनन्दन ! अब तुम जिस मार्गसे जाना चाहो, पैलटने जा सक्ते हो । राक्षसपते ! मैं भी तुन्हें अपनी ओरसे जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ’ ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा लङ्केश शम्भुना स्वयमब्रवीत् ।

प्रीतो यदि महादेव घर मे देहि याचत ॥ ४० ॥

भगवान् गङ्गाकर एषा कहनेपर लङ्केशर बोला— ‘महादेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो घर दीजिये । मैं आपसे बरकी याचना करता हूँ ॥ ४० ॥

अवध्यत्वा मया प्राप्त देवगर्धदानरै ।

राक्षसैर्गुह्यकैर्नगैर्ये चान्ये चलउत्तरा ॥ ४१ ॥

‘मैंने देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गृह्यन्, नाग तथा अन्य महाबलशाली प्राणियोंसे अवज्र होनेका घर प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥

मानुषान् न गणे देव स्वर्पास्तं भ्रम सम्मता ।

दीघमायुश्च मे प्राप्त ब्रह्मणरिपुरातक ॥ ४२ ॥

धाञ्छित चायुष दोष गच्छ त्व च प्रयच्छ मे ।

‘देव ! मनुष्योंकी ता मैं कुछ मिलता ही नहीं । मरी मापतार्क अनुसार उनकी उक्ति बहुत थोड़ी है । त्रिपुरान्तक ! मुझे ब्रह्माग्नीके द्वारा दीघ आयु भी प्राप्त हुई है । ब्रह्माग्नीकी दी हुई आयुका गितना जय बच गया है, यह भी पूरा-या पूरा प्राप्त हो जाय (उसमें किसी कारणसे कमी न हो) । एही मेरी इच्छा है । इसे आप पूर्ण कीजिये । साथ ही अपनी ओरसे मुझे एक शस्त्र भी दीजिये’ ॥ ४२ ॥

इत्यर्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आनिष्कम्भे उन्मत्तकण्ठे षोडश सर्ग ॥ १६ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिसिद्धिर्जित जयरामायण अष्टाध्यायक उत्तरकाण्डमें सोढहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदश सर्ग

रावणसे तिरस्कृत त्र्यर्षि कन्या वेदयतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेष्ट करना

और दूमेरे जन्ममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ रावन् महायादुर्विचरन् नृधियासले ।

हिमवद्भनमास्ताद्य परित्रयाम रावण ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) रावन् ! तलभान् महाबाहु रावण भूतलपर विराता हुआ हिमालयके पार्श्वमें आकर यहाँ सब ओर परकर घूमने लगा ॥ १ ॥

एवमुक्तस्तस्ते रावणेन स शङ्कर ॥ ४३ ॥

ददौ खड्ग महादीप्त चन्द्रासमिति श्रुतम् ।

आयुषश्चाग्रेष च ददौ भूतपतिस्तदा ॥ ४४ ॥

रावणन ऐसा कहनेपर भूतनाथ भगवान् गङ्गारे उस एक अत्यन्त दीप्तिमान् चन्द्रहास नामक खड्ग दिया और उसकी आयुका जो अंग धीन गया था, उसको भी पूरा कर दिया ॥ ४३ ४४ ॥

दत्त्वोग्राय तत शम्भुनाग्रेयमिदं त्वया ।

अवज्ञात यदि हि ते मामग्रेष्यत्पसशय ॥ ४५ ॥

उस खड्गकी देकर भगवान् विनये कहा— ‘तुम्हें कभी इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये । यदि तुम्हारे द्वारा कभी इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरी पाठ लौट आयेगा इसमें सशय नहीं है’ ॥ ४५ ॥

एव महेश्वरगैष्ठ कृतनामा स रावण ।

गभिषाद्य महादेवमाकरोहाथ पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भगवान् गङ्गारेसे नूतन नाम पाकर रावणन उहाँ प्रणाम किया । तत्पश्चात् वह पुष्पक विमानपर आरुढ़ हुआ ॥ तनो महीतल राम पथव्रामत रावण ।

क्षत्रियान् सुमहाधीर्यान् याधमानस्ततस्तत ॥ ४७ ॥

धीराम ! इसका बाद रावण समूची पृथ्वीपर शिबिजयने लिये भ्रमण करने लगा । उसने इधर उधर जाकर बहुतसे महापराक्रमी क्षत्रियोंरा पीड़ा पटुचायी ॥ ४७ ॥

केचित् तेजस्विन शूरा क्षत्रिया युद्धकुर्मदा ।

तच्छसनमकुचन्तो निनेऽपु सपरिच्छदा ॥ ४८ ॥

निने ही तेजस्वी क्षत्रियों वड़े ही शूरवीर और रणोन्मत्त थे, रावणजी आकाश में मालने-वारण सेना और परिवार सहित नष्ट हो गये ॥ ४८ ॥

अपरे दुजय रक्षो जानन् प्रागसम्मता ।

जिता स्म इत्यभापत राक्षस यद्वर्षितम् ॥ ४९ ॥

दूरर क्षत्रियोंने जा बुद्धिमान् मान जात थे और उस राक्षसको अत्रेय नमस्तत था, उस भगभिमानि निगाकर सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ४९ ॥

इत्यर्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आनिष्कम्भे उन्मत्तकण्ठे षोडश सर्ग ॥ १६ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिसिद्धिर्जित जयरामायण अष्टाध्यायक उत्तरकाण्डमें सोढहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदश सर्ग

रावणसे तिरस्कृत त्र्यर्षि कन्या वेदयतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेष्ट करना

और दूमेरे जन्ममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ रावन् महायादुर्विचरन् नृधियासले ।

हिमवद्भनमास्ताद्य परित्रयाम रावण ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) रावन् ! तलभान् महाबाहु रावण भूतलपर विराता हुआ हिमालयके पार्श्वमें आकर यहाँ सब ओर परकर घूमने लगा ॥ १ ॥

तत्रापदयन् स ये कन्या दृष्ट्वाजिनजटाधराम् ।

आरेण विधिना चैवा दीप्यतां देवतामिव ॥ २ ॥

यहाँ उसने एक तपस्विनी कन्याको देखा, जो अपने अर्धों में बाँट रंगरत्न मृगजर्म तथा शिरपर व्रज फालग ज्येष्ठद्वयी ।

यद् श्रुतिप्रोक्तं निधिते तपस्यम सत्यम् हो देवाद्भान्नं समान
उदीम हा रही थी ॥ २ ॥

स द्रष्टा रूपसम्पदा कन्या ता सुमहाव्रिताम् ।

काममोहपरीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

उत्तम एव महान् व्रतका पालन करनेवाली तथा रूप
सौन्दर्यसे सुभाषित उद्य कन्याको देखकर राजपुत्रा चित्त वाम
बलित माहर्ष वनीभूत हो गया । उसने अद्भुत कहते हुए
से पूछा— ॥ ३ ॥

किमिदं व्रतंसे भद्रे विरक्त यौवनस्य ते ।

नहि युना तवैतस्य रूपस्यैव प्रतिश्रिया ॥ ४ ॥

‘भद्रे ! तुम अपनी इस युवावस्थाके विपरीत यह कैसा
व्रत कर रही हो ? तुम्हारे इस दिव्य रूपक लिये ऐसा
आचरण कदापि उचित नहीं है ॥ ४ ॥

रूप तेऽनुपम भीरु कामोन्मादकर चणाम् ।

न युक्त तपसि न्यातु निगतो ह्येव निर्णय ॥ ५ ॥

‘भीरु ! तुम्हारे इस रूपकी कहीं तुलना नहीं है । यह
पुरुषोंके हृदयमें कामबलित उन्माद पैदा करनेवाला है । अतः
तुम्हारा तपमें सम्मेलन होना उचित नहीं है । तुम्हारे लिये हमारे
हृदयसे यही निर्णय प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

कस्यासि किमिदं भद्रे कथं भता धरानने ।

येन सम्मुज्यसे भीरु स नर पुण्यभाग् भुवि ॥ ६ ॥

पृच्छन् शस मे सर्वं कस्य हेतो परिश्रम ।

‘भद्रे ! तुम किसकी पुत्री हो ? यह कौन-सा प्रव कर रही
हो ? सुप्रसिद्ध ! तुम्हारा पति कौन है ? भीरु ! जिसने साय
तुम्हारा सम्बन्ध है, वह मनुष्य इस भूलोकमें महान् पुण्यात्मा
है । मैं जो कुछ पूछता हूँ, वह सब सुझ जाताओ । किस कसने
लिये यह परिश्रम किया जा रहा है ? ॥ ६ ॥

पयमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यदास्विनी ॥ ७ ॥

अग्रधीद्विधिदत्त कृत्या तस्यातिथ्य तपोधना ।

रावणने इस प्रकार पूछनेपर वह यशस्विनी तपोधना
कन्या उसका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार करके बाली— ॥ ७ ॥

पुराणो नाम पिता प्रसन्नपरिमितप्रभ ॥ ८ ॥

वृहस्पतिस्तु श्रीमान् बुद्ध्या तुन्यो वृहस्पते ।

‘अमिततेजस्वी प्रसन्नि भीमान् पुराणवत मरे पिता ये,
जो बृहस्पति पुत्र थे और बुद्धिमें भी उन्होंने समान माने
जाते थे ॥ ८ ॥

तस्याह कुपतो नित्य घेदाभ्यास महात्मन ॥ ९ ॥

सम्भूता यादमयी कन्या नाम्ना यदवनी स्मृता ।

‘प्रतिदिन यस्यास करेगान् उन महात्मा निजने
यादमयी कन्याके रूपमें मर प्रादुर्भास हुआ था । मर नाम
रक्षती है ॥ ९ ॥

ततो देवा मगधरा यन्तराजसपुत्रा ॥ १० ॥

त चापि गत्या पितर वरण रोचयन्ति मे ।

‘जब मैं बड़ी हुई, तब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और
नाग भी पिताजीन पास जा-जाकर उनसे मुझे माँगने लगे ॥ १० ॥

न च मा स पिता तेभ्यो दत्तवान् राक्षसेभ्यः ॥ ११ ॥

कारण तद् घटिष्यामि निशाम्य महाभुज ।

‘महाबाहु राक्षसेभ्यः ! पिताजीन उनर हाथमें मुझ नहीं

साया । इसका क्या कारण था, मैं बता रही हूँ, सुनिय ॥ ११ ॥

पितुस्तु मम जामाता पिण्यु निरु सुख्य ॥ १२ ॥

अभिप्रेतखिलोपेक्षस्तस्मान्मान्यस्य मे पिता ।

दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा वलदग्नि ॥ १३ ॥

शम्भुनाम ततो राजा दैत्याना कुपितोऽभवत् ।

तेन राक्षी दायानो मे पिता पापेन हिंसित ॥ १४ ॥

‘पिताजीकी इच्छा थी कि तीनों लोकों के स्वामी देवभर

मगवान् पिण्यु मरे दामाद हों । इसीलिये वह दूसरे निरीक

हाथमें मुझे नहीं देना चाहते थे । उनका इस अभिप्रायको

सुनकर बलाभिमानि दैत्यराज शम्भु उनपर कुपित हो उठा

और उस पापिने सतमें साते समय मरे पिताजीकी हत्या

कर डाली ॥ १२-१४ ॥

ततो मे जननी क्षीना तच्छ्रुतीर पितुमम ।

परिष्यज्य महाभागा प्रविण हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

‘इसने मेरी महाभागा माताको बड़ा दुःख हुआ और

वे पिताजीन पारो हृदयमें लगाकर चिताकी आगमें प्रविष्ट

हो गयीं ॥ १५ ॥

ततो मनोरथ सत्य पितुनारायण प्रति ।

करोमीति तमेवाह हृदयेन समुद्ये ॥ १६ ॥

‘तबसे मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि भगवान् नारायणने

प्रति पिताजीका व्रत मनोरथ था, उसे मैं सत्य करूँगी ।

इसलिये मैं उन्होंने अपने हृदय-मन्दिरमें धारण करती हूँ ॥

इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुल तप ।

एतन् ते सद्यमाव्यात मया राक्षसपुद्गल ॥ १७ ॥

‘यही प्रतिज्ञा करके मैं यह महान् तप कर रही हूँ ।

राक्षसराज ! आपका प्रानने अनुत्तर यह सब बात मैंने आप

को बता दी ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिन एव्य पुरुषोत्तमात् ।

आद्ये नियम घोर नारायणपरीप्सया ॥ १८ ॥

‘नारायण ही मेरे पति हैं । उन पुरुषोत्तमका किया दूख

काद मर पति नहीं हो सज्जा । उन नारायणदेवको प्रसन्न

करनेपरियही मैंने इस कष्टा प्रवका आश्रय लिया है ॥ १८ ॥

विज्ञातस्य हि म राजन् गच्छ पालेभ्यनन्दन ।

जानामि तपसा सर्वं त्रेलाक्ये यन्नि यतन ॥ १९ ॥

‘राजन् ! वेलाक्यनन्दन ! मैंने आराधना करने के लिए

अप जाइया । पिताजीने जो व दायित्व निम्न है, यह सब

न तन्मात्राग यत्न है ॥ १९ ॥

सोऽग्रधीद्वि रावणो भूयस्ता कन्या सुमदायनाम् ।

लोकोंके प्राणी रा उठे थे, इसलिये ग सप्तज ! अब तुम रावणके नामसे प्रसिद्ध होओगे ॥ ३६ ३७ ॥

देवता मानुषा यक्षा ये चाये जगतीतले ।

एव त्वामभिधास्यन्ति रावण लोम्परावणम् ॥ ३८ ॥

‘देवता, मनुष्य, यक्ष तथा दूसरे जो लोग भूतलपर निवास करते हैं, वे सब इस प्रकार समस्त लोकों का कल्याणकर तुम दशमीवको रावण कहेंगे ॥ ३८ ॥

गच्छ पौलस्त्य विस्त्राया येन त्वमिच्छसि ।

मया त्वेवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥

‘पुलस्त्यनन्दन ! अब तुम जिस मार्गसे जाना चाहो, वेल्हट्य जा सन्ने हो । यक्षरूपत ! मैं भी तुम्हें अपनी ओरसे जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ’ ॥ ३९ ॥

एवमुक्तस्तु लङ्केया शम्भुना स्वयमग्रधीत ।

मीतो यदि महादेव घर मे देहि याचन ॥ ४० ॥

भगवान् गङ्गारके ऐसा कहनेपर लङ्केसर बोला— ‘महादेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो घर दीजिये । मैं आपसे बरकी याचना करता हूँ ॥ ४० ॥

अथप्यत्व मया प्राप्त द्योगधर्मान्नै ।

राक्षसैर्गुह्यनैर्नारीये चान्ये यत्प्रसन्न ॥ ४१ ॥

‘मैंने देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गुह्यक, नाग तथा अन्य महाबलशाली प्राणियोंसे अलग्ग हानका घर प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥

मानुषान् न गणे देव स्यरपास्तं मम सम्मता ।

दीर्घमायुश्च मे प्राप्त ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ॥ ४२ ॥

गच्छित आयुष दीप शस्त्र त्वं च प्रयच्छ मे ।

‘देव ! मनुष्योंको तो मैं कुछ गिनता ही नहीं । मरी मायताके अनुसार उनकी शक्ति बहुत थोड़ी है । त्रिपुरांतक ! मुझ ब्रह्माजीके द्वारा दीर्घ आयु भी प्राप्त हुई है । ब्रह्माजीकी दी हुई आयुका गिनता अद्य बच गया है, यह भी पूरा-का पूरा प्राप्त हो जाय (उसमें त्रिषी कारणसे कमी न हो) । एसी मरी इच्छा है । इसे आप पूर्ण कीजिय । साथ ही अपनी ओरसे मुझे एक शस्त्र भी दीजिय’ ॥ ४२ ॥

हृषीकेश श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षोडशे सर्गे ॥ १६ ॥

इमं प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अध्वगतामय आदिकाव्यक उत्तरकाण्डे साहस्रौ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदश सर्ग

गवणसे तिरस्कृत तद्गर्पि कन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेष्ट करना

और दूसर जन्ममें मीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ राजन् महायादुर्विचरन् गृध्रिजातले ।

दिसयद्रनमासाद्य परित्राप्तम रात्रण ॥ १ ॥

(अगस्त्यकी वस्तु देखे—) गङ्गा ! तत्पश्चात् महायादु रात्रण भूतलपर विनगता हुआ हिमालयके यामे आकर रहो नव और पक्षकर लगने लगा ॥ १ ॥

एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शङ्कर ॥ २ ॥

ददौ खड्ग महादीप्त च ब्रह्मासमिति श्रुतम् ।

आयुषश्चात्रोपे च ददौ भूतपतिस्तदा ॥ ३ ॥

रावणर ऐसा कहनेपर भूतनाथ भगवान् शङ्करने उसे एक अत्यन्त दीप्तिमान् चब्रह्मास नामक खड्ग दिया और उसकी आयुका जो भाग दीन गया था, उसको भी पूर्ण कर दिया ॥ ४३ ४४ ॥

दत्त्वोजात्र तत शम्भुनाऽश्वेयमिदं त्वया ।

अवज्ञात यदि हि ते मामेनैव्यत्यसशय ॥ ४५ ॥

उस खड्गको देकर भगवान् शिवने कहा— ‘तुम्हें कभी इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये । यदि दुश्मने द्वारा कभी इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पास लौट आवेगा, इसमें शङ्का नहीं है’ ॥ ४५ ॥

एव महेश्वरेणैव कृतनामा स रात्रण ।

अभिवाद्य महादेवमाचरोहाय पुण्यकम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भगवान् शङ्करसे वृत्तनाम पानर रात्रणने उन्हें प्रणाम किया । तत्पश्चात् वह पुण्यक विमानपर आरुढ़ हुआ ॥ ततो महीतल राम पयक्रामत रावण ।

क्षत्रियान् सुमहावीर्यान् याधमानस्तदास्तत ॥ ४७ ॥

श्रीराम ! इसके बाद रावण समूची पृथ्वीपर दिग्विजय

लिये नमण करने लगा । उसने इधर उधर जाकर बहुतसे महापराक्रमी क्षत्रियोंका पीड़ा पहुँचायी ॥ ४७ ॥

केचित् तेजस्विन शूराः क्षत्रिया युक्कुमुदा ।

तच्छासनमकुप्यन्तो निनेऽपु सपरिच्छदा ॥ ४८ ॥

कितने ही तेजस्वी क्षत्रिय बड़े ही शूरवीर और रणोन्मत्त थे, रावणकी आज्ञा न माननेक कारण सेना और परिवार सहित नष्ट हो गये ॥ ४८ ॥

अपने दुजय रहसो जानन् प्राक्षसम्प्रता ।

जिता स इत्यभापत राक्षस यद्वपितम् ॥ ४९ ॥

दुस्तर क्षत्रियोंने, जो बुद्धिमान् माने जाते थे और उन राक्षसको अश्व नमस्तते थे, उस वराभिमानी निगानरक सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ४९ ॥

यद्वा श्रुतिमात्रं विधिमेतस्याम सन्त्य हा देवान्नान्न समान
उदीम हा रही थी ॥ २ ॥

स दृष्ट्वा रूपसम्पत्ता कन्या ता सुप्रहायताम् ।
काममोहपरीनात्मा पश्यन् प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

उत्तम एव महान् व्रतका पावन करनेवाली तथा रूप
मौल्यमे सुगामित उस कन्याको देखकर राक्षसराज चित्तवाम
बलिन मोहक बशीभूत हा गया । उसने अट्टहास करते हुए
से पूछा— ॥ ३ ॥

किमिदं वर्तमाने भट्टे विरुद्ध यौवनस्य ते ।
नहि युक्ता तथैतस्य रूपस्यैव प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥

‘भट्टे ! तुम अपनी इस युवावस्था पर विपरीत यह कैसा
बना कर रही हा ? तुम्हारे इस दिन रूपक लिये ऐसा
आचरण कदापि उचित नहीं है ॥ ४ ॥

रूप तऽनुपम भीरु कामोन्मादकर चण्डालम् ।
न युक्त तवसि म्यातु निगतो ह्येव निर्णय ॥ ५ ॥

‘भीरु ! तुम्हारे इस रूपकी कहीं तुलना नहीं है । यह
पुरुषोक्त हृदयमे कामजनित उन्माद पैदा करनेवाला है । अन-
नुपम तपने सन्त्य हाता उचित नहीं है । तुम्हारे लिये हमारे
हृदयमे यही निर्णय प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

कस्यापि किमिदं भट्टे कञ्च भता वरानने ।
येन सम्मुख्यसे भीरु स नर पुण्यभाग मुनिः ६ ॥

पृच्छन् शम मे सर्वे कस्य हेतोः परिधमम् ।
‘भट्टे ! तुम किसी पुत्री हा ? यह कौन-सा व्रत कर रही
हो ? सुप्रति । तुम्हारा पति कौन है ? भीरु ! जिसका साथ
तुम्हारा सम्बन्ध है । पर मनुष्य इस भूलोकमे महान् पुण्याना
है । मैं को कुछ पूछता हूँ, वह सब मुझ वरानने । किस कस्य
लिये पर परिधम किया जा रहा है ? ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा तु सा कन्या रावणेन यदाश्विनी ॥ ७ ॥
अग्रदीक्ष विधियन् कृत्वा तन्यातिथ्य तपोधना ।

राक्षस इव प्रहार पृष्ठनेर वह यगिनी तद्वचना
कन्या उसका विधिपूर्व आतिथ्य-सत्कार करके बली— ॥ ७ ॥
शुश्रूष्यतो नाम पिता प्रहर्षिरेमिनप्रभ ॥ ८ ॥

शुद्धस्वतिसुतं श्रीमान् शुद्धया तुल्यो वृहस्पते ।
‘अभितलेबन्धी ब्रह्मर्षि धामान् कुशप्रव नरे विना ये,
बा वृहस्पति पुत्र ये और सुद्धिमे भी ठाँह समान करने
आते थे ॥ ८ ॥

तस्याहं पुत्रो नित्यं वेदाभ्यास महाजन ॥ ९ ॥
सम्भूता यादमयी कन्या नाम्ना धर्दनी स्मृता ।

‘प्रतिनिध कन्यास्य करते-उन महामा गिने
यामरा कन्या रूपमे मया प्रादुर्भावा हुआ था । नरा नम
वन्दनी है । ॥ ९ ॥

ततो द्वा सगंधरा ययराससपत्न्या ॥ १० ॥
त चापि गया विनर ययरा रोचयन्ति मे ।

‘तब मैं बन्हा हुआ, तब येना कन्या, ययरा, राक्षस और
नाग भी विनाजी-पावना नकर उनमे मुझ मोगने लगा ॥ १० ॥
न च मा स पिता नेभ्यो दत्तवान् गन्तव्यं वरः ॥ ११ ॥

कारण नद् यदिप्यामि निशामय महाभुज ।
‘महाबाहु राक्षसिधर ! निजजीन उनर हायमे मुझ नहीं
छापा । इसका क्या कारण था, मैं बना रही हूँ, मुनिप ॥ ११ ॥
पितुस्तु मम जामाता विष्णु किं सुरेश्वरः ॥ १२ ॥

अभिप्रेतखिलेवेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ।
दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा उल्हसिन् ॥ १३ ॥

शम्भुनाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ।
तेन रात्री शयानो मे पिता पापेन हिसित ॥ १४ ॥

‘विनाजीकी इच्छा थी कि तीनों राजाओं हमारी देवधर
मगवान् विष्णु मेरे बामाद हों । इसीलिये व दूखे निधीन
हायमे मुझ नहीं देना चाहत थे । उनर इस अभिप्रायको
मुनर बलाभिमानी दैत्यराज शम्भु उनपर कुपित हो उठा
और उस पापने रातमे सोते समय मेरे विनाजीकी हत्या
कर डाली ॥ १०-१४ ॥

ततो मे जननी दीना तच्छरीर पितुमम ।
परिप्लव्य महाभाग प्रणिहन्त्यबाहवम् ॥ १५ ॥

‘इसने मेरी महाभाग माताको बन्हा हुआ हुआ और
वे विनाजीन शयन हृदयमे लगाकर विनाजी अंगमे प्रविष्ट
हो गयीं ॥ १५ ॥

ततो मनोरथ सत्य पितुनारायण प्रति ।
करोमीति तमेवाह हृदयेन समुद्यते ॥ १६ ॥

‘तबने मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि भगवान् नारायणक
प्रति विनाजीना जो मनोरथ था, उमे मैं सत्य करूँगी ।
इसलिये मैं उठौं तो अपने हृदय-मन्त्रिमे धारण करनी हूँ ॥
इति प्रतिमामारुहा चरामि विपुल तप ।
एतन् ते सयमाप्त्या न मया राक्षसपुत्रन ॥ १७ ॥

‘यही प्रतिज्ञा करर मैं पर महान् तप कर रही हूँ ।
राक्षसराज ! आपन प्रव्रन अनुकरर सय बान मैंने आप
को बना दी ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिन तस्य पुरोत्तमाद् ।
आश्रये नियमं घोर नारायणपरीप्सया ॥ १८ ॥

‘नारायण ही मेरे पति हैं । उन पुरोत्तमर निरा हृदय
बाद मया पति नहीं हा सत्ता । उन नगवादेवम मत्त
करनेर निरिहीमैने इस कष्टर माया आपन लिये है ॥ १८ ॥
विगतस्य हि सा राजन् गच्छ पीत्यनन्दन ।
जानामि तस्मा मये प्रत्यक्ष्ये यत्किं यतन ॥ १९ ॥

‘राजन् ! पीत्यनन्दन ! मैंने आश्रय पानन लिये है ।
अन कष्टर । विनाजीने कष्ट है, भी यत्किं यतन है, सय
मैं तस्माद्वय उनर हूँ ॥ १९ ॥

सोऽग्रदीक्ष रावणो भूपता कन्या सुमदायनाम् ।

शोकोंके प्राणी रा उठे थे, इसलिय राक्षसराज ! अब तुम रावणक नामसे प्रसिद्ध होओगे ॥ ३६ ३७ ॥

देवता मानुष यक्षा ये जाये जगतीतले ।

एव त्वामभिधास्यन्ति रावण लोकरावणम् ॥ ३८ ॥

देवता, मनुष्य, यक्ष तथा दूसरे जो लोग भूतलपर निवास करते हैं, वे सब इस प्रकार समस्त लोकोंकी रूपांतराल तुझ दराभीरा । रावण कहेंगे ॥ ३८ ॥

गच्छ पौलस्त्य विमृच्छ पथा येन त्वमिच्छसि ।

मया चैवाभ्यनुशातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥

‘पुलस्त्यनन्दन ! अब तुम जिस मार्गसे जाना चाहो, बैलटके जा सजने हो । राक्षसराज ! मैं भी तुम्हें अपनी ओरसे जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ’ ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वस्तु तद्देशं शम्भुना स्वयमग्रवीह ।

प्रीतो यदि महादेव घर मे देहि याचत ॥ ४० ॥

भगवान् गङ्गाकरं ऐसा कहनपर तद्देशर बोला— ‘महादेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो घर दीजिये । मैं आपसे बरकी याचना करता हूँ ॥ ४० ॥

अवध्यत्व मया प्राप्त देवगर्भधर्मान्वै ।

राक्षसैर्गुह्यवैरिणीर्यै चान्ये यत्नस्ततः ॥ ४१ ॥

‘मैंने देवता, गणध, दानव, राक्षस, गुह्यव, नाग तथा अन्य महाबलवाली प्राणियोंसे अलग होनका जर प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥

मानुषान् न गणे देव स्वल्पान्तं मम सम्मता ।

दीधमायुध मे प्राप्त ग्रहणस्त्रिपुरान्तक ॥ ४२ ॥

वाञ्छित चायुष शेष दास्ये त्व च प्रपञ्च मे ।

‘देव ! मनुष्योंको तो मैं कुछ गिनता ही नहीं । मेरी मायताके अनुसार उनकी शक्ति बहुत थोड़ी है । त्रिपुरान्तक ! तुझे ब्रह्माजीके द्वारा दीध आयु भी प्राप्त हुई है । ब्रह्माजीकी दी हुई आयुका कितना अंश बच गया है, यह भी पूरा का पूरा प्राप्त हो जाय (उसमें किसी कारणसे कमी न हो) । एही मेरी इच्छा है । इसे आप पूर्ण कीजिये । साथ ही अपनी ओरसे मुझ पर शस्त्र भी दीजिये’ ॥ ४२ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिष्वयं उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायण आदिष्वयं उत्तरकाण्डमे सोढवों संग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

रावणसे तिरस्कृत ब्रह्मापि कन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवर्ण करना

और दूसरे जन्ममें मीतकके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ राजन् महापार्ष्णिचरन् पृथिवीतल ।

हिमयद्गन्धमासाद्य परिक्राम्य रावण ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी गहत हैं—) राजन् ! तदभ्यान् महापाद रावण भूगलपर गिरता हुआ हिमालयक पदम आकर पक्षों वक्ष और चरकर स्नाने लगा ॥ १ ॥

एवमुक्तस्ततस्तथा रावणेन स शङ्कर ॥ ४३ ॥

ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति सुतम् ।

जायुषश्चाशेषं च ददौ भूतपतिस्तदा ॥ ४४ ॥

रावणने ऐसा कहनेपर भूतनाथ भगवान् शङ्करने उस एक जलन्त दीप्तिमान् चन्द्रहास नामक खड्ग दिया और उसकी आयुका जो अंग वीत गया था, उसमें भी पूर्ण कर दिया ॥ ४३ ४४ ॥

दत्त्वोवाच ततः शम्भुनाऽश्वेयमिदं त्वया ।

अब्रह्मात यदि हि ते मामनेप्यत्यसशय ॥ ४५ ॥

उस खड्गको देकर भगवान् गिरा कह— ‘तुम्हें कभी इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये । यदि तुम्हारे द्वारा कभी इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पाठ लोट आयेगा इसमें शय्य नहीं है’ ॥ ४५ ॥

एव महेश्वरेणैव कृतनामा स रावण ।

अभिधाद्य महादेवमाद्यरोहाद्य पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भगवान् गङ्गासे नूतननाम पाकर रावणन उर्है प्रणाम किया । तत्कालात् यह पुष्पक विमानपर आरुह्य हुआ ॥ ततो महीतलं राम पर्यङ्गामत रावण ।

क्षत्रियान् सुमहाधीरान् पाधमानस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥

श्रीराम ! इससे गद रावण समुची पृथ्वीपर दिग्विजयक लिये भ्रमण करने लगा । उसने इधर उधर जाकर बहुतसे महापराक्रमी क्षत्रियोंका पीड़ा पहुँचायी ॥ ४७ ॥

केचित् तेजस्विनः शूराः क्षत्रिया युद्धदुर्मदा ।

तच्छसनमनुचन्तो जिनेषु सपरिच्छदा ॥ ४८ ॥

कितने ही तेजस्वी क्षत्रिय आ बड़े ही शूरवीर और रणोन्मत्त थे, रावणकी आज्ञा न माननेक कारण सेना और परिवार सहित नष्ट हो गये ॥ ४८ ॥

अपरे दुजय रहसो जानन्त प्राणसम्मता ।

जिता स्स इत्यभाषित रावस घन्दर्पितम् ॥ ४९ ॥

दूसरे क्षत्रियोंने जा बुझिमान् मान जात थे और उस शम्भुको अवश्य समझते थे, उस बलाभिमानी निगाचरर सामने अपनी पराक्रम स्वीकार कर ली ॥ ४९ ॥

तत्रापदयन् स वै कथा दृष्टाजिनजटाधरात् ।

आरण्ये विधिना चैव दीप्यतां देवतामिव ॥ २ ॥

सारे उगने एकतपस्विनी कन्याको दग्धा, न अपने अर्द्धों में काट रगका मृगमर्म तथा शिरपर जटा घाल दिदेहुए थी ।

यह श्रुतिप्रोक्त विधिते तपस्यामे सत्य हो देवाङ्गनाथ समान
उदीत हो रही थी ॥ २ ॥

स दृष्ट्वा रूपसम्पन्ना कन्या ता मुमहात्मनाम् ।
पाममोहपरीतामा पप्रच्छ ग्रहसन्निव ॥ ३ ॥

उत्तम एवं महान् व्रतका पालन करनेवाली तथा रूप
मौन्दर्यमे युगाभिन उक्त कन्याका देखकर राखणना चित्तवाम
बनिन माहक वणीभूत हो गया । उसने अट्टहास करते हुए
मे पूछा—॥ ४ ॥

किमिदं व्रतं भद्रे विरुद्धं यौगन्मय ते ।
नहि युक्ता तथैतस्य रूपस्यैव प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥

‘भद्रे ! तुम अपनी इस युवावस्थाके विपरीत यह कैसा
व्रत कर रही हो ?’ तुम्हारे इस दिग्ग रूपक लिये एका
आचरण कदापि उचित नहीं है ॥ ४ ॥

रूप तेऽनुपमं भीरु कामोन्मादकरं नृणाम् ।
न युक्तं तपसि श्चातु निगतो ह्येव निणय ॥ ५ ॥

‘भीरु ! तुम्हारे इस रूपकी कहीं तुलना नहीं है । यह
पुरुषोंके हृदयमें कामजनित उन्माद पैदा करनेवाला है । अन-
तुम्हारा तपमें सत्य होना उचित नहीं है । तुम्हारे लिये हमारे
हृदयमें यही निर्णय प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

कस्यासि किमिदं भद्रे कथं भता वरानने ।
येन सम्मुज्यसे भीरु न नर पुण्यभागं भुवि ॥ ६ ॥

‘पूछो उस शस्त्र से सर्वे कम्प हेतो परिधम’ ।
‘भद्रे ! तुम किसरी पुत्री हो ? यह कौन-सा व्रत कर रही
हो ?’ सुमुखि ! तुम्हारा पनि कौन है ? भीरु ! जिसका साथ
तुम्हारा सम्पन्न है, वह मनुष्य इस भूलोकमें महान् पुण्यात्मा
है । मैं जो कुछ पूछता हूँ, वह सब सुन जाताओ । जिस व्रत
लिये यह परिधम किया जा रहा है ?’ ॥ ६ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या राखणेन यदास्मिन् ॥ ७ ॥
अग्रवीरं विधिगन् हृत्वा तस्यातिष्ठ्य सरोधना ।

राखण इव प्रकार पृष्ठपेश यह यशस्विनी व्रतपना
कन्या उसका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार करके बली—॥ ७ ॥
हुदायनो नाम पिता प्रहसन्निमित्तप्रभ ॥ ८ ॥
युद्धस्पर्तसुतं श्रीमान् युद्धया तुल्यो युद्धस्पर्ते ।

‘अमिहत्तवन्वी ब्रह्मर्षि श्रीमान् युद्धयज्ञ में पिता था,
जो बृहस्पति पुत्र थे और युद्धमें भी उद्दीप्त समान करने
वात थे ॥ ८ ॥

तस्याहं कुपतो नित्यं चेदाभ्यास महात्मन ॥ ९ ॥
सम्भूता धार्म्यी कन्या नाम्ना येदवनी स्मृता ।

‘प्रतिदिन व्रतारम्भ करनेवा’ उन महामा ज्ञाने
पादमया कन्या रूपमें मेरा प्रादुर्भाव हुआ था । मेरा नाम
तवनी है ॥ ९ ॥

ततो देवा मगधया यन्मरामसम्पन्ना ॥ १० ॥
त चापि गायं पितरं यरणं रोचयन्ति मे ।

‘अप मैं बनी हुई, तब देवता, मन्त्र, यज्ञ, शस्त्र और
नाग भी पिताजी—पापना जकर उनमें मुझे मोंगने लगे ॥ १० ॥
न च मां स पिता तस्यो दत्तवान् गन्तव्यं वर ॥ ११ ॥
कारणं नद् यदिप्यामि निशामय महाभुज ।

‘महाबाहु राखणेश्वर ! पिताजीन उनका हाथमें मुझ नहीं
साया । इसका क्या कारण था, मैं बता रही हूँ, मुनिय ॥ ११ ॥
पितुस्तु मम जामाना विष्णुं तिलं मुनेष्वर ॥ १२ ॥
अभिप्रेतखिलोवैशस्तस्मान्मान्यस्य मे पिता ।

दातुमि—उति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा वलदपि ॥ १३ ॥
शम्भुनाम तनो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवात् ।
तेन रात्री शयानो मे पिता पापेन हिसित ॥ १४ ॥

‘पिताजीकी इच्छा थी कि तीनों लकों—शायी देवश्वर
मगान् विष्णु मेरे दामाद हों । इसीलिये व दूखे तिलीके
हाथमें मुझे नहीं देना चाहते थे । उनका इस अभिप्रायना
सुनकर बलाभिमानि दैत्यराज शम्भु उनपर कुपित ॥ उठा
और उस पापीने रातमें खात समय मेरे पिताजीकी हत्या
कर डाली ॥ १२-१४ ॥

ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुमम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हृदयगहनम् ॥ १५ ॥

‘इधने मेरी महाभागा माताश बड़ा दुःख हुआ और
वे पिताजीका शरीर हृदयमें लगाकर चित्तकी आगमें प्रविष्ट
हो गयी ॥ १५ ॥

ततो मनोरथं सत्यं पितुनारायणं प्रति ।
करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुच्छेदे ॥ १६ ॥

‘तबने मैंने प्रतिष्ठा कर ली है कि भगवान् नारायण
प्रति पिताजीका जो मनोरथ था, उन मैं सत्य करूंगी ।
इसलिये मैं उद्दीप्त अपने हृदय-मन्दिरमें धारण करती हूँ ॥
इति प्रतिनामादद्या चरति विपुलं तप ।

एतन् तं सप्तमास्यात् मया राखसपुत्र ॥ १७ ॥
‘यही प्रतिज्ञा करके मैं यह महान् तप कर रही हूँ ।

राखसराज ! आपरा व्रत’ अनुधार पर तप व्रत मैंने आप
का बना दी ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिनं त्वन्यं पुरुषोत्तमान् ।
आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ॥ १८ ॥

‘नारायण ही मेरे पति हैं । उन पुरुषोत्तम पिता दूख
बद मेरा पति नहीं हो सकता । उन नारायणपरीक्ष में प्रस-
वनेक लिपिही मैंने इस व्रत प्रवृत्ति आश्रय लिया है ॥ १८ ॥
विज्ञानस्य हि मे रानन् गच्छ पीतस्यनन्दन ।

जानामि तस्यामं सर्वं व्रतस्ये यदि यतन ॥ १९ ॥
‘यादृक् (बोझ) मैंने मैंने आपका व्रत—मैंने
अप ब्रह्म । विद्वान्में ज्ञान—वैदिक विद्वान्में, पर सब
में तस्यामं यतन है ॥ १९ ॥

सोऽग्रवीरं राखो भूयसा कन्या मुमहात्मनाम् ।

अनरुह्य विमानाग्रात् कन्दर्पशरपीडित ॥ २० ॥

यह सुनकर राजन कामबाणसे पीड़ित हो विमानसे उतर
गया और उस उत्तम एव महान् व्रतका पालन करनेवाली
कन्यासे फिर बोला—॥ २० ॥

अप्रलिप्तानि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी ।

घृदाना मृगशायसि भ्राजते पुण्यसचय ॥ २१ ॥

‘सुश्रोणि ! तुम गर्वीली जान पड़ती हो; तभी तो तुम्हारी
बुद्धि ऐसी हो गयी है । मृगशायनलोचने । इस तरह पुण्यका
समग्र बूढ़ी स्त्रियोंको ही शांभा देता है । तुम-जैसी युवतीको
नहीं ॥ २१ ॥

त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे ऋतुमीदृशम् ।

वैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवन तेऽनियते ॥ २२ ॥

‘तुम तो सगुणसम्पन्न एव विलोकीकी अद्वितीय सुन्दरी
हो । तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये । भीरु ! तुम्हारी
जवानी बीती जा रही है ॥ २२ ॥

अहं लङ्कापतिभद्रे दशग्रीव इति श्रुत ।

तस्य मे भवभाषात्प्रभुद्वयभोगान् यथासुखम् ॥ २३ ॥

‘भद्रे ! मैं लङ्काका राजा हूँ । मेरा नाम दशमीव है ।
तुम मेरी भाग्या हो जाओ और मुझपूर्वक उत्तम भोग
भोगो ॥ २३ ॥

कञ्च तावदस्ती य त्व विष्णुरित्यभिभाषसे ।

धीर्येण तपसा चैव भोगेन च यत्नेन च ॥ २४ ॥

स मया नो समो भद्रे य त्व कामयसेऽङ्गने ।

‘पहलू यह तो बताओ; तुम जिसे विष्णु कहती हो; वह
कौन है ? अङ्गने ! भद्रे ! तुम जिसे चाहती हो; यह बल,
परशु, तप और भोग-भयक द्वारा मेरी समानता नहीं कर
सकता’ ॥ २४ ॥

इत्युक्तवति तस्मिंस्तु वेदवत्यथ न्याग्रहीत् ॥ २५ ॥

मा भवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ।

उसने ऐसा कहनेपर कुमारी वेदवती उस निशाचरसे
बोली—‘नहीं; नहीं; एसा न करो ॥ २५ ॥

वैलोक्याधिपतिं निष्णु सवलोकनमस्तु तम् ॥ २६ ॥

त्यद्वते रात्रये द्रान्य कोऽपमन्येत बुद्धिमान् ।

‘रात्रयरात्र ! भगवान् निष्णु सीतों स्त्रीयों अधिपति हैं ।

रात्र रात्र उनर चरणों ममन दृष्टता है । तुम्हारे सिगा
दृष्टा कौन पुरुष है; वो बुद्धिमान् ही है भी उनरी अनेहलना
करगा’ ॥ २६ ॥

एवमुक्तस्तथा तत्र वेदवत्या निशाचर ॥ २७ ॥

मूषजेषु तदा कन्या करामेण परामृशत् ।

वेदवती—‘एसा परमेपर उग रात्रये अपने हाथमे उम
कन्याय पदा पद न्ये ॥ २७ ॥

ततो यदयनीमुन्ना वेदान् हस्तन स्वाच्छिन्नन् ॥ २८ ॥

मस्तिभूत्या वरस्तस्या वेदादिछिन्नास्तदाकरोत् ।

इससे वेदवतीको उड़ा मोघ हुआ । उसने अपने हाथसे
उन केशोंको फाट दिया । उसने हाथने तन्वार बनकर तत्काल
उसके केशोंको मलकसे अलग कर दिया ॥ २८ ॥

सा ज्वलन्तीव रोपेण दहतीव निशाचरम् ॥ २९ ॥

उवाचाग्निं समाधाय मरणाय वृत्तवरा ।

वेदवती रोपसे प्रज्वलित-सी हो उठी । वह जल मरनेके
लिये उतावली हो अग्निकी स्थापना करने उस निशाचरको
दग्ध करती हुई-सी बोली—॥ २९ ॥

धर्पितायास्त्वय्यार्थं न मे जीवितमिष्यते ॥ ३० ॥

रक्षस्तस्मात् प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ।

‘गोच रखर ! तूने मेरा किरकार किया है; अतः अतः
इस जीवनको सुरक्षित रखना मुझे अभीष्ट नहीं है । इसलिये
तेरे देखते देखते मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी ॥ ३० ॥

यस्मात् तु धर्पिता चाह त्वया पापात्मना वने ॥ ३१ ॥

तस्मात् तत्र वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुन ।

‘तुझ पापारामने इस वनमें मेरा अपमान किया है ।

इसलिये मैं तेरे वधके लिये फिर उत्पन्न होऊँगी ॥ ३१ ॥

नहि शक्यः क्रिया हतुं पुरुष पापनिश्चयः ॥ ३२ ॥

शापे त्वयि मयोत्पद्ये तपसश्च व्ययो भवेत् ।

‘जो अपनी शारीरिक क्षत्तिसे किसी पापाचारी पुरुषको
वध नहीं कर सकती । यदि मैं तुझ शाप दूँ तो मेरी तपसा
क्षीण हो जायगी ॥ ३२ ॥

यदि त्वस्ति मया किञ्चित् कृतं दत्तं हुतं तथा ॥ ३३ ॥

तस्मात् त्वयोनिसा साध्वी भवेय धमिण सुता ।

‘यदि मैंने कुछ भी सकर्म, दान और होम लिये हों तो
अगन्त जन्ममें मैं सती-यात्री अयोनिसा कन्या रूपमें प्रकट
होऊँ तथा किसी ब्रह्मात्मा पिताकी पुत्री बनूँ’ ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलित जातवेदसम् ॥ ३४ ॥

पपात च दियो दिव्या पुण्यवृष्टिं क्षमं ततः ।

ऐसा कहकर वह प्रज्वलित अग्निमें समा गयी । उस
समय उसका चारों ओर आकाशने निम्न पुण्योंकी बरसा होने
लगी ॥ ३४ ॥

पुनरेव समुद्भूता पद्मे पद्मसमप्रभा ॥ ३५ ॥

तस्मादपि पुन प्राप्ता पूजयत् तेन रक्षसा ।

तदनन्तर दूसरे जन्ममें वह कन्या पुन एक कमलसे
प्रकट हुई । उस समय उसकी कान्ति कमलने मन्मा ही सुन्दर
थी । उस राजसने पहलूकी ही भौति फिर यहाँसे भी उम
कन्याको प्राप्त कर लिया ॥ ३५ ॥

कन्या कमलगभाभा प्रगृहा स्वगृहं ययौ ॥ ३६ ॥

प्रगृहा रायणम्वता दृशयामास मप्रिणे ।

कन्या भीनरी भागने समान सुन्दर वास्त्रायामने उम
कन्याको फिर रायण अपने घर गया । यहाँ उसने मन्मथी
वह कन्या दिगारी ॥ ३६ ॥



नपवि-नन्या व-नलीक डारा गणपती भर्मेना मव अग्रिप्रगती तयारी

757

1

लक्षणो निरीक्ष्यैव रावण चैवमजरीत् ॥ ३७ ॥
गृहस्थैरा हि सुश्रोणी त्वद्वधायेव हृदयते ।

मन्त्रीयालङ्काराभिरं लक्ष्मीका जलनेवाला था । उसने
उसे अच्छी तरह देखकर रावणसे कहा—पावन् ! यह सुन्दरी
क्या यदि परमे रही तो आपका वधका ही कारण होगी, ऐसा
रक्षा देना करना है ॥ ३७ ॥

पतञ्जनाण्ये राम ता प्रविक्षेप रावण ॥ ३८ ॥
सा चैव क्षितिमासाद्य यन्नायतनमध्यगा ।

गान्धे हलमुखोत्प्रेष्टा पुनरप्युत्थिता सती ॥ ३९ ॥
अपान । यः सुन्दर रावण ने उसे अनुक्रमे पैर दिया ।

तलकात् यह भूमिका प्राप्त होकर राजा जनक यथमदवक
मन्त्रवर्ती भूमामें जा पहुँची । उन्हीं रात्रि हलर सुलभागने
उस भूमिकाग के चनेपर एक सती लक्ष्मी कन्या फिर प्रसूत
होगी ॥ ८ ॥

सैष जनरानस्य प्रसूता तनया प्रभो ।
तव भाया महाबाहो निष्पुनस्य हि सनातन ॥ ४० ॥

प्रभा । वही यः वैदना मन्त्राज जननी पुत्रीर रूपमें
प्रसूत हो आपकी पत्नी हुई है । महाबाहो ! आप ही
सनातन निष्पु हैं ॥ ४० ॥

पूर्व मोक्षहत शत्रुपयासौ निहतस्तया ।

इयार्पै श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आदिकाय उत्तरकाण्डे सप्तदश सर्ग ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवत्सनिनिर्दिष्ट कथानुसार अदिकव्यक्त उत्तरकाण्डे सप्तदश सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

अष्टादश सर्ग

रावणद्वारा मरुत्तरी परानय तथा इन्द्र आदि दन्ताओंका मयूर आदि पत्रियोंका वर्णन देना

प्रविष्टया हताश तु चेदग्न्या स रावण ।

पुण्यं तु समारब्ध परिचित्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥

अल्लवश कृत है—सुन्दर । वरगण अभिने
मयूर के कनेर रावण पुनरुत्थितानर अश्व हा वृषीर
एक अर भ्रमा करने लग ॥ १ ॥

ततो मरुत्त नृपति यन्त मह दयै ।

उदारग्रीवमासाद्य त्वश स तु रावण ॥ २ ॥

जन्मी यामने उशीरवीर नामक दशने पहुँचकर रावणने
दन्त, राजा मरुत्त दन्ताओंका मयूर कनेर मयूर
र है ॥ २ ॥

सर्वतो नाम मयूरि साभाद् भ्राता वृहस्पते ।

याज्यानाम धमत्र सर्वदेवगणैरृत ॥ ३ ॥

उस समय कश्चित् वृहस्पतिर आइ तथा धर्मर मनको
रनेनेर दन्त सन् मयूरि उदारग्रीव पिर रहकर व
र है ॥ ३ ॥

हृद्गदगन्तु तद् रम्यो घग्दानेन दुनयम् ।

तियर्थानि समाविष्टास्तस्य धर्माभिव ॥ ४ ॥

महाशय मन्त्राज जितरा जना कतिन है मय या

उपाधयित्वा शैलाभस्तत्र त्रियममानुषम् ॥ ४१ ॥

उस वदवनेने पत्नी ही जन्म रावणने शत्रुने द्राप
आनेने उस पत्नीकर शत्रुको मार दाग था, जिस अव अवने
आक्रमण करके मौतघ घाट लगाए ॥ प्रभा । अपका
पत्नीकम अनेकिक है ॥ ४१ ॥

एवमेव महाभाग मयैवृषत्त पुन ।

क्षेत्रे हलमुखोत्प्रेष्टे वचामनिशिखोपमा ॥ ४२ ॥

इस प्रकार यह महाभाग तथा भिन्न वानेने पुन
रावणरधन उन्नेने मलकने जन्माग हताश ॥ ४२ ॥
पर अनिशिताक समान हलने जन्म पत्नीने इवता
आगिमाय हुआ है ॥ ४२ ॥

एषा चेद्वती नाम पूरमासीत् तत्र युग ।

त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रथस ॥ ४३ ॥

उत्पन्ना मैलिबुले जनस्य महामत ।

सीतोपमा तु सीतेति मानुषे पुनरुच्यत ॥ ४४ ॥

यह वैदनी पत्नी पुनमें प्रसूत हुई थी । फिर त्रेतायुग
आनेपर उस राक्षस रावण वधर लिय निषिन्तासी राक्ष
कक कुरुमें सीतागने आनीप हुई । राजा (हल कनेने
ने भूमिक कनी हुई राजा) से उत्पन्न होनेर कारण मनुष्य
इस वदीतो सीता कहने हैं ॥ ४४ ॥

उस राक्षस रावण कर्ण मयूर यम अकमान मरुत्त

हा देवतला त्रियगुनिने प्रसव कर ॥ ४ ॥

इन्द्रो मयूर मयूचो धमत्रगन्तु रायस ।

हृन्लामो धनाध्ययो हसद्य यणोऽभवत् ॥ ५ ॥

इन्द्र मयूर, धनराज कोश मयूर निषिन्ता और मयूर

है हा गये ॥ ५ ॥

यन्वध्यपि गतेऽयं देवपरिनिवृत्त ।

रावण प्राविशद् यम मागमय हानुति ॥ ६ ॥

शत्रुयुवन भीरव । यः त्वं ह्य ह्य मयूर ॥ ६ ॥

निमित्त कनेने जित है मयूर मयूर मयूर मयूर मयूर

प्रवेश है मयूर वय अगिन्ता कनेने जित है मयूर ॥ ६ ॥

तत्र गगानमासाद्य रावणो गगन्याधिर ।

शत युद्ध प्रयच्छेति निर्विन्दोऽनीति या यः ॥ ७ ॥

राज मरुत्त मयूर मयूर मयूर मयूर मयूर मयूर

मुनेने मुद्र कर वय अनेने मयूर मयूर मयूर मयूर मयूर

हो मयूर ॥ ७ ॥

ततो मरुत्ता नपति का भयानि युयय तत् ।

अवहासततो मुक्त्वा राणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

तत्र राजा मरुत्तने पृष्टा—‘आप कौन हैं ?’ उनका प्रश्न सुनकर राण दौंस पड़ा और बोला— ॥ ८ ॥

अकुतुहलभावेन प्रीतोऽसि तत्र पार्थिव ।

धनदम्यानुज यो मा नावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥

‘भूषा ! मैं तुम्हें क्या छात्र भाई रावण हूँ । फिर भी तुम मुझ नहीं जानते और मुझे देखकर भी तुम्हारे मनमें न तो कौतुहल हुआ न भय ही इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ९ ॥

त्रिपु लोकेषु कोऽप्योऽस्ति यो न जानानि मे चलम् ।

भ्रातर येन निर्जित्य त्रिमानमिदमाहृतम् ॥ १० ॥

‘तीनों लोकोंमें तुम्हारा मित्र दूसरा कौन ऐसा राजा होगा, जो मेरे पल्लवों न जानता हो । मैं यह राण हूँ, जिसने अपने भाई कुम्भकर्ण की सहायता से यह विमान जीत लिया है ॥ १० ॥

ततो मरुत्त स हृपस्त रावणमयाब्रवीत् ।

धन्यः खलु भवान् येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जित ॥ ११ ॥

तब राजा मरुत्तने रावणसे कहा—‘तुम धन्य हो, जिसने अपने बड़े भाई की सहायता से पराजित कर दिया ॥ ११ ॥

न त्वया सदृश इलाध्यस्त्रिपु लोकेषु विद्यते ।

क त्व प्राक्केवलधर्मं चरित्वा लब्धवान्वरम् ॥ १२ ॥

‘तुम्हारे जैसा सहयोगी पुरुष तीनों लोकोंमें दूसरा कहीं नहीं है । तुमने पूर्वकालमें किस छद्म धर्मका आचरण करके वर प्राप्त किया है ॥ १२ ॥

श्रुतपूर्वं हि न मया भाषसे यादृश स्वयम् ।

तिष्ठेदानीं न मे जीवनं प्रतिपास्यामि तुमते ॥ १३ ॥

अथ त्वा निशितैर्याणी प्रेषयामि यमक्षयम् ।

‘तुम स्वयं जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी है । दुर्बुद्धे ! इस समय खड़े तो रहो । मेरे हाथमें जीवित शस्त्र नहीं आ सकता । आज अपने पैने शीशोंसे मारकर तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ ॥ १३ ॥

सत शरासनं गृष्टा सायकाश्च नराधिप ॥ १४ ॥

रणाप निर्ययी मुन्द स्वतों मार्गमावृणोत् ।

तदन्तरं राजा मरुत्त घनुष-बाण लेकर बड़े राफर साथ युद्धर लिय निकल, परन्तु महर्षि स्वयंसे उनका रास्ता रोक लिया ॥ १४ ॥

सोऽब्रवीन् स्नेहसयुचं मरुत्त त महावृषि ॥ १५ ॥

श्रोतव्यं यदि मद्गाम्य सम्प्रहारो न ते क्षमः ।

‘तुम महर्षि महाराज मरुत्तसे स्नेहपूर्ण कहा—‘एवम् । यदि मेरी बात सुनाओ और उसपर ध्याना उचित समझो तो मुझे । तुम्हारा लिय युद्ध करना उचित नहीं है ॥ १५ ॥

मोहेभ्यमिदं सप्रमत्तमाप्तं कुतः ददेन् ॥ १६ ॥

दीप्तिमत्पुत्रो युद्धं मोक्षित्व दीप्तिते कुतः ।

यदि मोक्षित्वं यथा आरम्भं किया गया है । यदि पूरा न

हुआ तो तुम्हारे समस्त कुलको दग्ध कर डालेगा । जो यशही दीक्षा ले चुका है, उससे लिये युद्धका असर ही कहाँ है ? यशहीन पुरुषमें मोक्षके लिये स्थान ही कहाँ है ? ॥ १६ ॥

सदायश्च जये नित्य राक्षसश्च सुदुर्जय ॥ १७ ॥

स निवृत्तो गुरोराक्यामरुत्त पृथिवीपति ।

निःशून्यसशस्त्राच स्वस्थो मखमुतोऽभवत् ॥ १८ ॥

‘युद्धमें किसी विजय होगी, इस प्रश्नको लेकर सदा सशस्त्र ही बना रहता है । उधर वह राक्षस अत्यन्त दुर्जय है ।’ अपने आचार्यके इस कथनसे पृथिवीपति मरुत्त युद्धसे निवृत्त हो गये । उन्होंने घनुष बाण त्याग दिया और स्वस्थभावसे वे यज्ञके लिये उन्मुख हो गये ॥ १७ ॥ १८ ॥ ततस्त निर्जितं मत्वा योग्यामानं वै शुकः ।

राणो जयतीत्युच्चैर्हृषान्नादं विमुक्तवान् ॥ १९ ॥

तब उन्हें पराजित हुआ मानकर शुकने यह घोषणा कर दी कि महाराज राणकी विजय हुई और वह बड़े हर्षके साथ उच्चस्वसे सिंहनाद करने लगा ॥ १९ ॥

तन् भक्षयित्वा तन्म्रान् महर्षिं यज्ञमागतान् ।

विस्तो रुधिरैस्तेषां पुनः सम्प्रययौ महीम् ॥ २० ॥

उस यज्ञमें आकर बैठे हुए महर्षियोंको खाकर उनके रक्तसे पूजन हुआ तो रावण फिर पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ २० ॥ रावणे तु गते देवाः सेन्द्राक्षैश्च दिवौकसः ।

तव स्वा योनिमासाद्य तानि सरयानि चाब्रुवन् ॥ २१ ॥

रावणके चले जानेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता पुनः अपने स्वरूपमें प्रकट हो उन-उन प्राणियोंको (जिनके रूपमें वे स्वयं प्रकट हुए थे) वरदान देते हुए बोले ॥ २१ ॥

हपात् तदाब्रवीद्दिन्द्रो मधुर नीलबहिनम् ।

प्रीतोऽसि तव धर्मज्ञं भुजङ्गादि न ते भयम् ॥ २२ ॥

जाने पहले इन्द्रने हृषपूर्वक नील पंखवाला मारसे कहा—‘धर्मज्ञ ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हें सर्वसे भय नहीं होगा । इन्द्र नेत्रसदृश तु यत् तद् यद् भविष्यति ।

धर्ममाणे मयि मुदं प्राप्यसे प्रीतिलक्षणात् ॥ २३ ॥

परमिन्द्रो वरं प्रादामधुरस्य सुरेभ्यः ॥ २४ ॥

‘मेरे जो वे सह्य क्षेत्र हैं, इनसे समान चिह्न तुम्हारी पौरुषमें प्रकट होंगे । वर मैं मरुत्त हाकर क्या कहूँगा, उस समय तुम्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी । वह प्रसन्नता मेरी प्राप्तिसे लक्षित कथनेवाली होगी ।’ इस प्रकार देवराज इन्द्रने मारसे परवान किया ॥ २३ ॥ २४ ॥

नीला किल पुरा यदा मयुराणां नराधिप ।

सुराधिपादं वरं प्राप्य गता सर्वेऽपि वर्धिण ॥ २५ ॥

नेत्रर भीरुता ! इस परवानक पर मारसे पराजित हो गये । पराजित होने पर पावर भी मरुत्त बहने चले गये ॥ २५ ॥

गन्नेत्रो देवर्षि नारदने पुष्पत्रिमानपर बैठ हुए
राजगण रदा—॥ ३ ॥

राक्षसाधिपत साम्य तिम्र विप्रस सुत ।

प्रोतोऽस्म्यभिजापेन विप्रमेरुजितेभ्यः ॥ ४ ॥

उत्तम कुलम उत्तम विप्रवणकुमार राक्षसराज राजगण ।
शोभ्योऽदरः मे नृपारे बने हुए बलनिकमसे बहुत प्रवृत्त हैं ॥
विष्णुना दैत्यघातश्च गन्धर्वोऽगन्धर्वणे ।

त्रया सम रिमर्दश्च भृश हि परितोषित ॥ ५ ॥

एतेषां विनाश करनेवाले अनेक समाप्त करके भगवान्
विष्णुन तथा गन्धर्वों और नागोंको पददलित करनेवाले युद्धों
द्वारा तुमने गुप्त समानरूपसे सजु किया है ॥ ५ ॥

किंचिद् उच्यमि तावत् तु श्रोतव्यं शोष्यसे यदि ।

तमे निगदतस्तात समर्थि श्रवणे कुरु ॥ ६ ॥

इस समय यदि तुम सुनाओ तो मैं तुमसे कुछ तुमने
क्या बात कहूँगा । तात ! मेरे मुँहसे निकलें हुए उस बातको
सुनने लिये तुम अपने बिलसों एकाम करा ॥ ६ ॥

किमप्य चक्षते तात त्वयारच्येन वैयते ।

हत एव हाय लोको यदा मृत्युयदा गत ॥ ७ ॥

तात ! तुम देवताओंने लिये भी अवश्य होकर इस
भूलोक निवासियोंका घबराव क्यों कर रहे हो ! यहाँने प्राणी
तो मृत्यु अर्थात् होनेका कारण स्वयं ही मर हुए हैं फिर
तुम भी इन मर हुआका क्यों मार रहे हो ! ॥ ७ ॥

देवदानवदैत्यानां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ।

अरच्येन त्रया लोकैः क्लृप्तो यो यो न मानुषः ॥ ८ ॥

देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस भी
जिसे नहीं मार सके, एत विष्णुना वीर शक्ति भी तुम इस
मनुष्यलोकमें क्या कहेंगेगाओ, यह कदापि तुम्हारे शोभ्य
नहीं है ॥ ८ ॥

नियं श्रेयसि सम्भूतं महद्भि यमनृततम् ।

ह्यात् कस्तादृशं लाजं जतायाधितालेयुतम् ॥ ९ ॥

आतात अपने बन्ध्याग-साधनमें मृत हैं, वही-वही
शितविलोने धिरे हुए हैं और कुला तथा सेइको सेइको युक्त
हैं, एत लोगोंका वाई भी वीर पुत्र कते मार जाता है ! ॥
तस्मिन्निष्ठोपमैरजस्रं यत्र कुत्र च ।

मतिमान् मानुष लोषं युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥ १० ॥

आतात प्रचारक अनेकरी प्रामिस जगें वही भी
पढ़ित है, उत मनुष्यजगमें आकर वीर बुद्धिमान् वीर पुत्र
युद्ध द्वारा मनुष्यों पर यथम अतुरक होगा ॥ १० ॥

क्षीयमाणं देवदत्तं क्षुपिषाम्नाजरादिभिः ।

विशदशोषसम्भूतं लोचनं यथापयस्य मा ॥ ११ ॥

एत लोग तो हैं । नृप, प्यम और ज्ञात अन्तम
यत हाता है तब विनाश और तमम दुबकर अन्तो
पिनाशित हो जायेंगे । देखो माता हुए हैं मनुष्यलोक
दुःख विनाश न कर ॥ ११ ॥

पश्य तावमहायाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ।

मूलमेव विचित्रार्थं यम्य न प्रायत गति ॥ १२ ॥

महाबाहु राक्षसराज ! देखो तो सही, यह मनुष्यलोक
ज्ञानशून्य होनेका कारण मूल ज्ञानपर भी किस तरह नाना
प्रकारका दुःख पुरुषार्थोंमें आवत है ! इसे इस बातका भी
पता नहीं है कि कब दुःख और सुख आदि भोगनेका
अन्तर आयागा ! ॥ १२ ॥

कचिद् धादिप्रनुत्पादि सेष्यते मुदितैर्जनैः ।

रुचते चापरेरातैर्धाराधुमनाननं ॥ १३ ॥

महाँ वही कुछ मनुष्य तो आनन्दमग्न होकर गात्रे-बाज
और नाच आदिवा सेज करने हैं—उनका द्वारा मन बढ़लाने
हैं तथा वही कितने ही लग्न नृपमें पीड़ित हैं नेत्रोंसे आँसू
बहाते हुए रोते रहते हैं ॥ १३ ॥

भातापितृसुतस्नेहभायावधुमनोरमं ।

मोहितोऽप्य जनो भ्रस्तः केश स नयनमुच्यते ॥ १४ ॥

भाता, पिता तथा पुत्रके स्नेहसे और पत्नी तथा भाई
के सम्बन्धमें नाना प्रकारका मनसूरे बाँधनेके कारण यह
मनुष्यलोक मादृशता हो परमार्थमें भ्रष्ट हो रहा है । इसे अपने
बन्धनजनित कलहाका अनुभव ही नहीं होता है ॥ १४ ॥

तत्किमेव परिक्रिश्य लोच मोहनिपाततम् ।

जित एव त्रया सौम्य मत्यलोको न सदाय ॥ १५ ॥

इस प्रकार जा मोह (अहम्) के कारण परमपुरुषार्थ
से वञ्चित हो गया है, एसे मनुष्यलोकको कलहा पहुँचाकर
तुम्हें क्या मिलगा ! सौम्य ! तुमने मनुष्यलोकको तो जीत ही
लिया है इसमें कोई भी शोभ्य नहीं है ॥ १५ ॥

अवश्यमेभि सयैश्च गतव्यं यमसादनम् ।

तच्चिमुदीर्य पौलस्त्यं यम परपुरजय ॥ १६ ॥

तस्मिन्निजिते जित सर्वे भययेन सशय ।

मानुषगीपर विजय पानेवा पुलस्त्यनन्द ! इन छप
मनुष्योंको यमलोकमें आरय जाता पड़ता है । अत यदि
शक्ति हो तो तुम यमराजना अपने कायमें करो । उन्हें जीत लेने
पर तुम सबको जीत साने दा इसम संशय नहीं है ॥ १६ ॥
एतमुक्तु लक्ष्मणो क्षीप्यमानं स्वनेजसा ॥ १७ ॥
अग्रवीर्याद् तत्र सप्तमहस्याभिवाद्य च ।

नारदजीव एता वदनपर लड़ापति राजग अपने तजम
उठीत होनेवा उन दक्षिणा प्रणाम करके हैंकना हुआ
बाला—॥ १७ ॥

महर्षे द्वयगन्धर्विणा समग्रमिय ॥ १८ ॥

अद समुच्यते गनु विजयार्थं रसातलम् ।

महर्षे ! आप देवताओं और गन्धर्वों लक्षमें विरार
करनेवा हैं । मुदक दण्ड दण्डना आपका बहुत हा निय
है । मैं इन शोभ्य विजयार्थ विजय रसातलमें जानेको
उपन है ॥ १८ ॥

अपदयत् स यम तत्र देवमग्निपुरस्त्वतम् ।
 विधानमनुतिष्ठत प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥ २ ॥
 यहाँ जाकर उन्होंने देखा, यमदेवता अग्निको छाड़ीने
 रूपमें सामने रखकर बैठे हैं और जिस प्राणीका जैसा कर्म है,
 उसीके अनुसार फल देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं ॥ २ ॥
 स तु दृष्ट्वा यम प्राप्त महर्षिं तत्र नारदम् ।
 अग्रणीत् सुखमासीनमप्यमायेद्य धर्मत ॥ ३ ॥
 महर्षि नारदको यहाँ आया देख यमराजने आतिथ्य-धर्म
 के अनुसार उनसे लिये अप्य आदि निवेदन करके कहा—॥३॥
 कश्चित् क्षेम नु देवर्षे कश्चिद् धर्मो न नश्यति ।
 किमागमनदृष्ट्य ते देवगर्ध्वसेसित ॥ ४ ॥
 देवताओं और गन्धर्वोंसे सित देवर्षों ! कुशल तो है
 ॥ ४ ॥ धर्मका नाम तो नहीं हो रहा है ! आज यहाँ आपके
 गुमरागमनका क्या उद्देश्य है ? ॥ ४ ॥
 अग्रणीत् तु तदा वास्य नारदो भगवानृषि ।
 श्रूयतामभिधाम्यामि विधानं च विधीयताम् ॥ ५ ॥
 एष नाम्ना द्वाप्रीय पिष्टराज निशाचर ।
 उपयाति वश नेतु विप्रमैस्तथा सुदुर्जयम् ॥ ६ ॥
 तब भगवान् नारद मुनि बोले—‘पिष्टराज ! मुनिये—
 मैं एक अवश्यक बात बता रहा हूँ, आप मुनकर उसके
 प्रतीकारका भी कोई उपाय कर लें । यद्यपि आपके जीतना
 अत्यन्त कठिन है, तथापि यह द्वाप्रीबनामक निशाचर अपने
 पयस्मोद्धार आपको वशमें करनेके लिये यहाँ आ रहा है ॥
 एतेन कारणेनाह त्वरितो द्यागत प्रभो ।
 दण्डमद्रणस्याद्य तत्र किं नु भविष्यति ॥ ७ ॥
 प्रभो ! इसी कारणसे मैं तुरंत यहाँ आया हूँ कि आपको
 इस घट्ठकी सूचना दे दूँ, परन्तु आप तो बाल्दण्डरूपी
 आयुधका धारण करनेवाले हैं, आपकी उस राक्षस आक्रमण
 से क्या हानि होगी ? ॥ ७ ॥
 पतस्त्रिप्रन्तरे दूराद्गुमन्तमियोदितम् ।
 दृष्टुर्वाप्तमायान्त रिमान तस्य रक्षस ॥ ८ ॥
 इस प्रकारकी बातें हो ही रही थीं कि उस राक्षस
 उड़ित हुए धूम्रने समान तज्ज्वली विमान दूरसे आता
 दिगामी दिश ॥ ८ ॥
 स दृष्ट प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबल ।
 हृत्वा यितिमिर सयं समीपमभ्यवर्तत ॥ ९ ॥
 महाबली राज पुष्पकवी प्रमाणे उस समान प्रपञ्च
 अभ्यचारत्वं करके अत्यन्त निकट आ गया ॥ ९ ॥
 सोऽपदयत् स महाबाहुदशामीवस्तनस्तनः ।
 प्राणिनः सुरत यैव भुञ्जामाद्यैव दुष्टतम् ॥ १० ॥
 महाबाहु दशमीने समस्तके आकर देगा कि यहाँ
 बहुतने पानी भरने भरने पुण्य तथा पञ्चा फल भोग
 रहे हैं ॥ १० ॥

अपदयत् सैनिकाध्यास्य यमस्यानुचरे सह ।
 यमस्य पुरुरैरुग्रैर्घोरैरुपैर्भयानकैः ॥ ११ ॥
 द्वादश घण्टमानाश्च हिन्दुमानाश्च देहिनाः ।
 क्रोशतश्च महानाद तीव्रनिष्टनतत्परान् ॥ १२ ॥
 उठने यमराजने सेवकों साथ उनसे सैनिकों भी
 देखा । उसकी दृष्टिमें यमयातनाका दृश्य भी आया । घोर रूप
 धारी उग्र प्रकृतिवाले भयानक यमदूत कितने ही प्राणियोंको
 मारते और बलेष्ट पहुँचाते थे, जिससे वे बड़े जोर-जोरसे
 चीखते और चिल्लाते थे ॥ ११ १२ ॥
 छमिभिर्भक्ष्यमाणाश्च सारमेयैश्च दारुणैः ।
 शोषायासकरा चाचो वदतश्च भयानका ॥ १३ ॥
 किन्हींको कीड़े खा रहे थे और कितनोंको मयङ्कर कुत्ते
 नोच रहे थे । वे सब के-सब दुखी हो होकर कानोंको पीटा
 देनेवाला भयानक चीत्कार करते थे ॥ १३ ॥
 सतार्यमाणान् धैतरणीं वहुदं शोणितोदकाम् ।
 पालुकास्तु च तप्तास्तु तप्यमानान् मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥
 किन्हींको बारबार रक्ते मरी हुई धैतरणी नदी पार
 करनेके लिये विवश किया जाता था और कितनोंको तपसी
 हुई बाण्डकाओंपर बार-बार चलाकर खतस निया जाता था ॥
 असिपत्रवने चैव भिद्यमानानधामिकान् ।
 रौचे क्षारवद्या च क्षुरधारास्तु चैव हि ॥ १५ ॥
 पानीय पाचमानाश्च वृषितान् क्षुधितानपि ।
 शयभूतान् दृष्ट्वा नदीनान् विषणान् मुचमूर्धजान् ॥ १६ ॥
 मलपट्टधरान् वीनान् रुक्षाश्च परिधारत ।
 वृक्षं रायणो मार्गे शतशोऽप्य सहस्रशः ॥ १७ ॥
 कुछ पापी असिपत्र-वनमें, जिसके पत्ते तलवारकी धारके
 समान तीव्र थे, विदीर्ण किए जा रहे थे । किन्हींको रौरव
 नरन्में डाला जाता था । कितनोंको रारे बल्से मरी हुई
 नदियोंमें डुबाया जाता था और बहुतोंको छुपेकी पाँपोंपर
 दीहाया जाता था । कई प्राणी भूल और व्यासते तड़प रहे थे
 और पाँडेमें जलकी याचना कर रहे थे । कई शयन समान
 पट्टाल, दीन, दुर्बल, उदास और तुले पाल्लोंमें सुक दिलायी
 देते थे । कितने ही प्राणी अपने अग्रोंमें मैत्र और कीचड़
 लगाये दमनीय तथा म्ले गरीबों ‘गर्भे ओर भाग रहे थे ।
 ॥ तदने सेरुहों और हजारों जीवोंको धारणने मार्गमें यातना
 भोगते देगा ॥ १४-१७ ॥
 काश्चिद् गृहमुष्येषु गीतयादिप्रतिन्ययने ।
 प्रमोदमानानद्राणीद् रायणः सुरतैः स्वयैः ॥ १८ ॥
 दुखी और धारणने देगा कुछ पुण्यात्मा जीव अपने
 पुण्यकर्मोंसे प्रमाणे अन्ते अन्ते पठेंगे रहकर समी ओर
 पाणोंकी मनाहर चरनिग भनन्ति हो रहे हैं ॥ १८ ॥
 गोरस गोव्रदानारो हान् वैयाघ्रदायिनः ।
 गृहाश्च गृहदानारः स्वकमरत्नमदन ॥ १९ ॥

गोदान करनेवाले गोरसको अन्न देनेवाले अन्नको और
यह प्रदान करनेवाले लोग यहको पाकर अपने सत्कर्मों का फल
मोग रहे हैं ॥ १० ॥

सुवर्णमणिमुक्ताभि प्रमदाभिरलङ्कितान् ।
धर्मिकानपरास्तत्र दीप्यमानान् स्फुटैर्जला ॥ २० ॥

दूबरे प्रभात्या पुरुष वहाँ सुवर्ण, मणि और मुक्ताओंसे
अलङ्कृत हो यौवनके मदसे मत्त रहनेवाली सुन्दरी छिपोंके
लाय अपनी व्यङ्गकान्तिते प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २० ॥

ददर्श स महाबाहू रात्रयो राक्षसाधिप ।
ततस्तान् भिद्यमानाश्च कमभिर्दुष्पूतै स्म्यके ॥ २१ ॥

रात्रयो मोचयामास विजयेण थलाद् यत्नी ।
प्राणितो मोक्षितास्तेन दशार्धविषे रक्षसा ॥ २२ ॥

महाबाहु राक्षसराज रात्रये ने इन सबको देखा । देखकर
बलवान् रात्रय दशमीने अपने बाण-कर्मों कारण यातना
भोगनेवाले प्राणियोंको पराक्रमद्वारा बलपूर्वक मुक्त कर
दिया ॥ २१-२२ ॥

सुखमापुर्मुहूर्तं ते शतकिंनरमचिन्तितम् ।
प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीपसा ॥ २३ ॥

प्रेतगोपा सुसकुब्जा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन् ।
इच्छते धोही देवराज उन पाणियोंको बड़ा सुख मिला,
उसके भिन्नेकी न तो ठहरे सम्भावना थी और न उसने
निगमने के कुछ सोच ही सके थे । उस महान् राक्षसने द्वारा
का सभी प्रेता यातनासे मुक्त कर दिये गये, तब उन प्रेताकी
रक्षा करनेवाले पमदूत आपत्त कुण्ठित हो राक्षसराजपर
दृष्ट पड़े ॥ २३ ॥

ततो हलहलाशब्दं सद्यदिभ्यः समुत्थितम् ॥ २४ ॥
धमराजस्य योयाना दूराणां सम्प्रपायताम् ।

किर हां समूह निजोंकी ओरसे आया करनेवाले धर्म
रात्रने दूरतरी पैदाओंका महान् वीर्यदाल प्रकाश हुआ ॥

ते प्राप्ते परिधिं शूलैर्मुसलैश्च कितौमरैः ॥ २५ ॥
पुण्यं समधयन्त शूरा शशहृदयाः ।

तस्यासनानि प्रासादान् पयिशास्तोराणानि च ॥ २६ ॥
पुण्यस्य धमन्नुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव ।

जैसे पृथ्वी छद्म के छद्म भीरे गुं बाते हैं, उन्हीं प्रकार
पुण्यक मिमानर सेहों, हकते 'शूरी पमदूत च' आये
और प्राणों, परिणों, मूर्तों, मूर्तों, उचितों तथा तमपुंदाय
उने तब नरक करने लगे । उन्होंने पुण्यक मिमानने आसन,
प्राण, यदी और पात्र 'मिम ही तेह काले ॥ २५-२६ ॥

देवनिष्ठान्मूतं तद् विमानं पुण्यं मृचे ॥ २७ ॥
भज्यमानं तपेयामोदक्षयं प्रायतेजसा ।

देवतओंका निष्ठातामूत वह पुण्यविमान उस मुदने
तद्वा जनेवर भी महाबाहू प्रमाणों 'यो पास्यों हो आया
न, बनेके व' मृच देने-नहीं पा ॥ २७ ॥

असत्या सुमहत्यासीत् तस्य मेना महात्मन ॥ २८ ॥
दूराणामप्रयातूणां सहस्राणि दातानि च ।

महामना यमकी विशाल सेना असत्य थी । उठने सेहों
हजारों शूरीर आगे बढ़कर मुद करनेवाले थे ॥ २८ ॥

ततो वृक्षैश्च वृक्षैश्च प्रासादानां शतैस्तथा ॥ २९ ॥
ततस्ते सचियास्तस्य यथाकामं यथावत् ।

अयुच्यन्त महावीरा स च राजा दशानन ॥ ३० ॥
यमदूतोंके आक्रमण करनेपर रात्रये ने महावीर मंत्री

तथा स्वयं राजा दशमीव मी वृक्षों, पवन शिखरों तथा यम
जोने के वृक्षों प्रासादोंको उखाड़कर उनसे दाय पूरी 'जति
लगाकर इच्छानुसार मुद करने लगे ॥ २९-३० ॥

ते तु शोणितदिग्धाङ्गा सद्यदात्रसमाहता ।
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य सधुरागोपन महत् ॥ ३१ ॥

राक्षसराजके मन्त्रियोंके करे अन्न रखते नहा उठे थे । समूह
रात्रोंने आपाते से पावल हो चुके थे । फिर भी उन्होंने
बड़ा भाषी मुद किया ॥ ३१ ॥

अन्योन्यं ते महाभागा जस्तु प्रहरयैर्भृशम् ।
यमस्य च महाबाहो रात्रयस्य च मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥

महाबाहु श्रीराम । यमराज तथा रात्रये ने वे महाभाग
मंत्री एक दूसरेपर नाना प्रकारसे अन्न रात्रोंद्वारा बड़े जलसे
आपान प्रत्यापान करने लगे ॥ ३२ ॥

अमात्यास्तास्तु सत्यज्य यमयोधा महाबलाः ।
तमेव चाभ्यधावन्त शूलैर्वैदशानतम् ॥ ३३ ॥

तत्प्रभातं यमराजके महाबली योद्धाओंने रात्रये मन्त्रियों-
का छोड़कर उस दशमीने ही ऊपर गूँघों का करते हुए
पाया किया ॥ ३३ ॥

तत शोणितदिग्धाङ्गा प्रहारैर्जङ्गरीकृतः ।
फुल्लादीय इवाभाति पुण्यके राक्षसाधिप ॥ ३४ ॥

रात्रयका लाय 'वीर रात्रोंरी आने करके हो गया ।
बढ़ चुनसे 'धय हो गया और पुण्यकमिमानने ऊपर फूल
हुए अशोक वृक्ष समान प्रतीत होने लगा ॥ ३४ ॥

स तु शूलगदाप्राप्ताभ्यन्ति तोमरसायकान् ।
मुसलानि शिलापृष्ठान्मुमोचाग्रयलाद् यत्नी ॥ ३५ ॥

तब बलवान् रात्रये आने आग्रयमे पमदूतने
शैनिजोंपर घुल, का, प्राण, 'जति, तम, का, मृग
पावर और शूरीकी या आरम्भ थी ॥ ३५ ॥

तक्रणाच्च शिलालाभं शङ्कराणां चानिदाराणाम् ।
यमसैन्येषु तद् परं पपात धरणीतम् ॥ ३६ ॥

वृक्षों, शिलापृष्ठों और 'मृगोंकी यह बलान् मरकर
वृष्टि मृत्पत्र बड़े हुए यमराज के वीरोंके 'मृगने लगे ॥

तास्तु स्वान् विनिर्भिद्य तदग्रमपहत्य न ।
अजुम्भे राक्षसं जेरेमेकं शतमहम्भदा ॥ ३७ ॥

वे वैदिक भी सेहों दृष्टोंकी 'मृगने 'मृग हो 'मृग
॥ ३७ ॥

खरे आयुषोको छिन्न भिन्न करकं उनके द्वारा छोड़े हुए
दिव्यास्त्रका भी निवारण कर एकमात्र उस भयंकर राक्षसको
ही मारने लगे ॥ ३७ ॥

परिवार्य च त सव शैल मेघोत्करा इव ।

भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुद्धासप्तमाधयन् ॥ ३८ ॥

जैसे बादलों समूह पर्वतपर सब ओरों से जल्दी घाटाएँ
गिरते हैं, उणी प्रकार यमराजके समस्त सैनिकोंने रावणको
चारों ओरों परकर उसे भिन्दिपालों और शूलों से छेदना
आरम्भ कर दिया । उसको दम लेनेकी भी पुरखन नहीं दी ॥

विमुक्कयन् धुन्द सिक्क शोणितविस्त्रैः ।

तत स पुण्यक त्यक्त्या पृथिव्यामपतिष्ठत ॥ ३९ ॥

रावणका करक फटकर गिर पड़ा । उसका शरीरसे रक्तकी
घाटा बहने लगी । वह उस रक्तसे नदा उठा और डुपित हो
पुण्यक्षिमांन छोड़कर पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ ४० ॥

तत स कामुकी बाणी समरे चाभिवर्धत ।

लब्धसतो मुहूर्तेन धुन्दस्तस्यौ ययान्तक ॥ ४० ॥

यहाँ दा यहीने बाद उसने अपने आपको रौमाला ।
किर तो वह धनुष और बाण हाथमें ले बढ़ हुए उत्साहसे
छग्न हो यमराजणमें कुपित हुए यमराजने समान सड़ा
हुआ ॥ ४० ॥

तत पाणुपत दिव्यमस्त्र सहाय कामुके ।

तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्या तत्पाप व्यपराजत ॥ ४१ ॥

उधने अपने धनुषपर पाणुप नामक दिव्य अस्त्रका
संचालन किया और उन सैनिकोंने 'उदरो उदरो' बहते हुए
उस धनुषको खींचा ॥ ४१ ॥

इयार्थे धीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पृर्विं सप्त ॥ २१ ॥

इम प्रकार धीमार्त्तनीकनिर्मित अष्टरामायण अधिकाव्ये उत्तरकाण्डमें द्वाविंशोऽंश सप्त ॥ २१ ॥

द्वाविंश सर्ग

यमराज और रावणका युद्ध, यमका रावणके बंधके लिये उठाये हुए कालदण्डको ब्रह्मानीके

बहनेसे लौटा लेना, विजयी रावणका यमलोभसे प्रस्थान

स तस्य तु महापाद धुन्ना वैयम्यत प्रभु ।

शत्रु विजयिन मनो व्ययत्स्य च सन्धयम् ॥ १ ॥

(अभ्युदये कथने हैं—रघुनाथ ।) रावणक उस
महापाद का गुस्सा रघुनाथ भगवान् यमने वह समान किया कि
'शत्रु विजयी हुआ और मरी माता मारी गयी' ॥ १ ॥

स त्रिधाधान हतान् मन्त्रा मोक्षसत्ता गेयः ।

अप्रवीण्यरित स्या श्च्योम उपपित्यताम् ॥ २ ॥

एक ब्रह्मा मार दण्ड—यह रावणक यमनाथ ने
मोक्षने लाना हो दण्ड और वे लताएँ होकर सारथिमें थे —
'यह रण का अन्त' ॥ २ ॥

तस्य मृतान्तरा दिव्यमुपस्थाय मन्त्राद्यम् ।

आरुणात् स विट्प्याय चापमिद्रारिराहये ।

मुमोच त शर धुन्दरिपुरे शकरो यथा ॥ ४२ ॥

जैसे भगवान् शङ्करने त्रिपुरासुरपर पाणुपतास्त्रका प्रयोग
किया था, उसी प्रकार उस इन्द्रोद्दी रावणने अपने धनुषको
बाननक खींचकर वह बाण छोड़ दिया ॥ ४२ ॥

तस्य रूप शरस्यासीत् सधूमज्वालमण्डलम् ।

धन दृष्टिप्यतो धर्मे दामग्नेरिष मूर्च्छत ॥ ४३ ॥

उस समय उसके बाणका रूप धूम और ज्वालाओंके
मण्डलसे युक्त हो ग्रीष्म ऋतुमें जगत्को जलानेके लिये
चारों ओर फैलते हुए दामाग्नके समान प्रतीत होने लगा ॥

ज्वालामाली न तु शर प्रयादानुगतो रणे ।

मुचोऽगुल्मान्द्रुमाश्चापि भस्म कृत्वा प्रधानति ॥ ४४ ॥

रणभूमिमें ज्वालामालाओंसे घिरा हुआ वह बाण धनुष
से छूटते ही दृष्टों और श्राद्धियोंका जलाता हुआ तीम गतिसे
आगे बढ़ा और उसके पीछे-पीछे माहाशरी चीप-जन्तु चलने
लगे ॥ ४४ ॥

ते तस्य तेजसा दग्धा सैन्या वैयस्यतस्य तु ।

रणे तस्मिन् निपतिता माहेद्रा इव केतव ॥ ४५ ॥

उस युद्धक्षेत्रमें यमराजने वे शर सैनिक पाशुपतास्त्रके
तेजसे दग्ध हो इन्द्रध्वजके समान नीचे गिर पड़े ॥ ४५ ॥

ततस्तु सचिवै सार्धं राक्षसो भीमविजयः ।

ननाद सुमहानाद कम्पयन्निभ मेदिनीम् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर अपने सचिवों के साथ वह भयानक पतनकी
राक्षस पृथ्वीको कम्पित करता हुआ-या बड़े जोर-शोरसे सिंहाद
करने लगा ॥ ४६ ॥

इयार्थे धीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पृर्विं सप्त ॥ २१ ॥

इम प्रकार धीमार्त्तनीकनिर्मित अष्टरामायण अधिकाव्ये उत्तरकाण्डमें द्वाविंशोऽंश सप्त ॥ २१ ॥

स्थित स च महातेजा अथारोहत त रथम् ॥ ३ ॥

तब उसने सारथिने तत्काल एक दिव्य एवं विनाश रथ
वहाँ उपस्थित कर दिया और वह नामने विनीतभारने लड़ा
हो गया । तब उस मगनेजन्मी यम देवता उस रथपर आरोह
हुए ॥ ३ ॥

प्राप्तमुग्ररुहस्थ मृत्युस्तम्याग्रत स्थितः ।

येन सन्निपत्ये न्ये प्रगेक्यमिद्रमययम् ॥ ४ ॥

जन्म आगे प्राप्त और मुहुर हाथमें लिये मन्त्रों मृत्यु
लता गये थे, जो प्रमाणरूपमें शत्रु बने रक्षितान् इस प्रकार
त्रिपुराका भंग कर रहे हैं ॥ ४ ॥

वाय्ददन्तु पादयम्यो मूर्तिमात्राय चाभयम् ।

यमप्रहरण दिव्य तेजसा ज्वलद्भस्मिन् ॥ ५ ॥

उनने पार्थमागने नालदण्ड मूर्तिमान् होकर लड़ा हुआ,
जो उनका मुख्य एवं दिव्य आयुध है। वह अपने तलवे
धनिन समान प्रखलि हा रहा था ॥ ५ ॥

तस्य पार्श्वेणु निच्छिद्रा कालपाशा प्रतिष्ठिता ।
पाशस्पर्शदासकाशा स्थितो मूर्तेश्च मुद्गर ॥ ६ ॥

उनके दायीं बगलमें छिद्ररहित कालपाशा खड़े थे और
जिसका स्पर्श अग्नि समान दुःख है, वह मुद्गर भी मूर्तिमान्
होकर उपस्थित था ॥ ६ ॥

ततो लोकत्रय धूमधमरूपन्त दिवौक्षसः ।
फाल दृष्ट्वा तथा क्रुद्ध सूर्यलोकभयावहम् ॥ ७ ॥

समस्त लोकों का भय देनेवाला साक्षात् कालक्रमेण कुपित हुआ
देख तीनों लोकोंमें हलचल मच गया। समस्त देवता काँप
उठे ॥ ७ ॥

ततस्त्यचाद्यवत् सतस्तान्धवान् दक्षिप्रभान् ।
प्रययौ भीमसनादौ यत्र रक्षपति स्थित ॥ ८ ॥

तदनंतर साँपने मुन्दर का तिलगले घोंकने हाँका
और वह रथ भयान आनाम करता हुआ उस स्थानपर
जा पहुँचा, जहाँ राक्षसराज राक्षस लड़ा था ॥ ८ ॥

मुहूर्तेन यम ते तु हया हरिहयोयम् ।
प्रापयन् मनसस्तुल्या यत्र तत् प्रस्तुत रणम् ॥ ९ ॥

इद्वे घाँड़ों ने समान तेजस्वी और मनके समान शीघ्र
गामी व। घोंड़ों ने समराजका सङ्गममें उस स्थानपर पहुँचा
दिया, जहाँ वह युद्ध चल रहा था ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा तथैव विवृत रथ मृत्सुसमन्वितम् ।
सत्रिया राक्षसेद्रस्य सहसा विप्रदुद्रुषु ॥ १० ॥

मृत्सुदेवताके साथ उस विकसल रथकी आशा देख
राक्षसराज सचिव वृष्ण वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ १० ॥

छसुसत्त्वतया ते हि नष्टसन्ना भयार्द्रिताः ।
नेह योद्धु समथा स ह्यसुक्त्वा प्रययुर्दिश ॥ ११ ॥

उनकी दक्षि घोंड़ी थी। इच्छिते थे भयसे पीड़ित व।
अन्ता होश हराया तो बैठ और हम यहाँ युद्ध करोमें समर्थ
नहीं है। ऐसा कहकर निभित दिग्गमोंमें भाग गया ॥ ११ ॥

स तु त तादृश दृष्ट्वा रथ लोफभयावहम् ।
नामुच्यत दृष्टासीतो न गपि भयमाविदात् ॥ १२ ॥

पाश समान संशरभं भयभीत परदेवाल वैसे निकल
रफका देगाकर भी दृष्टासीत मनमें न तो क्षम हुआ और न
मय ही ॥ १२ ॥

स तु राघवमासाद्य प्यस्तुच्छसितोमरात् ।
यमो ममाणि सपुन्दो गणगम्य न्यरन्तन ॥ १३ ॥

अपना मथने भरे हुए समराजने राक्षस वच पहुँच
कर गति और होमोंका प्रहार दिया तथा राक्षस समस्तानों
को उड़ मारा ॥ १३ ॥

राघवस्तु तत स्वस्य शरवर्ष मुमोच ॥ १४ ॥

तस्मिन् वैरस्वतरथे तोषरागमिमांशुद ॥ १५ ॥
तेव रावणने भी सँभलकर यमराजने रथपर बाणोंकी
बाड़ी लगा दी, मना मेव जल्दी क्या कर रहा हो ॥ १४ ॥

ततो महादाक्षिशतै पाल्यमानैर्महोरसि ।
नाशफनोत् प्रतिवर्तुं स राक्षस दाल्यपीडित ॥ १५ ॥

तदनन्तर उसकी विशाल छापीपर सेकड़ों गजदक्षियोंकी
मार पड़ने लगी। वह राक्षस शल्योत्र प्रहासे वृत्ता पीड़ित
हो चुका था कि यमराजने बदला लनेम समथ न हो
सका ॥ १५ ॥

एव नानाप्रहरणैर्यथेनामिप्रकायणा ।
समरात्र हृतः सत्ये विमनो निमुक्तो रिपु ॥ १६ ॥

इस प्रकार "पुसुदन यमने नाना प्रकार" अत्र गच्छोंका
प्रहार करते हुए रणभूमिमें लगातार छत यतातक युद्ध किया।
इसने उनका शत्रु राघव अपनी मुच-मुच दोरर युद्धसे निमुक्त
हो गया ॥ १६ ॥

तदाऽऽसीत् तुमुल् युद्ध यमराक्षसयोर्द्वयोः ।
जयमाकाङ्क्षतोर्वीर समरेष्यतिरतिनो ॥ १७ ॥

वीर खून-दन। वे दोनों योद्धा समरभूमिसे पीडे
हटनेवाले नहीं थे और दोनों ही अपनी दिव्य चाहने थे,
इच्छित उन समराज और राक्षस दोनोंने उन समय धर युद्ध
होने लगा ॥ १७ ॥

ततो देवा सगंधया सिद्धाश्च परमपयः ।
प्रजापति पुरस्त्वय समेतास्तद्गणाजिरे ॥ १८ ॥

तब देवता, गन्धर्वा, सिद्ध और मर्त्यगण प्रत्यक्ष
आगे करके उस समराजने एकत्र हुए ॥ १८ ॥

सतत इव लोकाना मुष्यतोऽभवत् तदा ।
राक्षसाना च मुरत्यस्य प्रेतानामीधरस्य ॥ १९ ॥

उस समय राक्षसों का राग रागा तथा प्रापण वार युद्ध
पयका हानवर घमन लाजों प्रवरा तथा उपनि हुआ
सा जन पड़ता था ॥ १९ ॥

राक्षसेन्द्रोऽपि त्रिस्तय चापमि द्वाशानिमभम् ।
निरन्तरमियाकाय कुपन् राजानन्तोऽप्युत्तम् ॥ २० ॥

राक्षसराज राघव भी मूर्खी मर्त्यगण अपने
पशुरों को राक्षस बाणोंकी क्या करने लगा, इतने आराग
ठगाव भद गया—उमने निम्न ॥ २० ॥

यद गयी ॥ २० ॥

मृत्सु चतुर्भिर्विशिर्ग मृत मतभिरावपत् ।
यम शतसहस्रेण दीपि प्रमथ्यतश्चपत् ॥ २१ ॥

उल्ले चर बाग मारकर मृत्सु भी मारा सत्रोंसे
यमके सारथियों की मर्त्यगण करण। तब ॥ २१ ॥

राग मारकर यमराज मर्त्यगणोंमें मर्त्यगण मर्त्यगण ॥
तब मुद्गर्य यदादु यमस्य नामपायन ।

ज्वालामात्री सनि श्वास सधूम कोपपावक ॥ २२ ॥

तय यमराजने क्रोधकी सीमा न रही । उनसे मुपसे वह
रोग धनि याकर प्रकट हुआ । वह आग ज्वाल-मालाओंमें
मण्डित, श्वाभगयुगे सयुक्त तथा धूमसे आच्छन्न दिसामी
देती थी ॥ २२ ॥

तदाश्चर्यमयो दृष्ट्वा देवदानवसनिधौ ।

प्रहर्षितौ सुसरम्भौ मृत्युकाली यभूवतु ॥ २३ ॥

देवताओं तथा दानवोंने समीप यह आश्चर्यजनक घटना
देखकर एतादृशमे भरे हुए, मृत्यु प्राय कालकी वज्रा दृष्टि हुआ २३
ततो मृत्यु मुहुर्दतरो वैयस्यतभापत ।

मुञ्च मा समरे यावद्धमीम पापरान्सम ॥ २४ ॥

तस्यभ्रातृ मृत्युदेवने आवन्त कुपित होकर वैयस्यत यमसे
कहा—'जाय मुझे छोड़िये—आशा दीजिये, मैं समपन्नमें
इस पापी राक्षसों अमी मारे डालता हूँ ॥ २४ ॥

नैया रक्षो भयेद्यद्य मयादा हि निसर्गत ।

हिरण्यकशिपु श्रीमान् नमुचि दाम्प्यरस्तथा ॥ २५ ॥

निसन्दिर्भूमवेतुश्च दलितैर्वोचनोऽपि च ।

शम्भुर्दृत्यो महाराजो धूम्रो याणस्तथैव च ॥ २६ ॥

रामरूप शास्त्रविदो गन्धवा समहोरगा ।

आपय पत्न्या दैत्या यन्नाथ्य शप्सरोगेयणा ॥ २७ ॥

युगान्तपरिवर्तौ च पृथिवी समहारणा ।

क्षय नीता महाराज सपर्यन्तसिद्धिदुमा ॥ २८ ॥

एते धान्ये च बहूनां धान्यन्तो दुरासदा ।

निनिपन्ना मया दृष्टा किमुनाय निद्राचर ॥ २९ ॥

महाराज । यह मेरी व्यापारसिद्ध मयादा है कि मुझसे

भिद्भर या राक्षस क्षीयित नहीं रह जाता । श्रीमान् हिरण्य

कशिपु, नमुचि, दाम्प्य, निवन्दि, धूमपेठ, विषेचनरुमार

बलि, शम्भुनामक दैत्य, महाराज वृष तथा बाणामुर, मिने

ही शास्त्रवेत्ता राजर्षि, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, वर, दैत्य,

यक्ष, अय्यसभोंने मनुदाय, युगान्तकालमें समुद्रों, पर्वतों,

गरिताओं और वृक्षोंवर्तित पृथ्वी—ये सब मरे द्वारा क्षय

प्राप्त हुए हैं । वे तथा दूररे वस्तुतः बलयापूरुज्वल वीर भी मरे

द्वारा विनाशित प्राप्त हो चुके हैं, फिर यह निद्राचर क्रिय गिनाने

है ॥ २५-२९ ॥

मुञ्च मा सायु धमया यावदेन निहम्यहम् ।

तदि कथिमया दृष्टो पल्लवानपि जीवति ॥ ३० ॥

धमरा । जाय मुझे छोड़ दीजिये । मैं इसे अत्यन्त मार

हाऊँगा । किने मैं देख हूँ, यह छोड़ बलवान् होनेपर भी

जीवित नहीं रह जाता ॥ ३० ॥

यत्त मम म मल्येन मयादैया निसर्गत ।

त दृष्टो न मया वात् सुहृत्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

वात् । मेरी हथि वन्नेपर यह वक्ता दो पक्षी भी जीवित

करता नहीं कर सकेगा । मरे इस कथनका कारण वन्ने

अपने बलसे प्रकाशित करना मात्र नहीं है, अपितु यह
स्वभावसिद्ध मयादा है ॥ ३१ ॥

तस्यैव यचन श्रुत्वा धर्मराज प्रतापवान् ।

अब्रवीत् तत्र त मृत्यु त्व तिष्ठौ निहम्यहम् ॥ ३२ ॥

मृत्युकी यह बात सुनकर प्रतापी धर्मराजने उससे कहा—

धूम उठहा, मैं ही इसे मारे डालता हूँ ॥ ३२ ॥

तत सरत्तनयन कुक्षौ वैयस्यत प्रभु ।

कालदण्डममोघ तु तोल्यामास पाणिना ॥ ३३ ॥

तदनन्तर क्रोधसे लाठ ओलें करके सामर्थ्यशाली वैयस्यत

यमने अपने अमोघ कालदण्डका हाथसे उठाया ॥ ३३ ॥

यस्य पादेषु निहिता कालपाशा प्रतिष्ठिता ।

पायवादानिसकाशो मुद्रो मूर्तिमान् स्थित ॥ ३४ ॥

उस कालदण्डके पादरमाओंमें कालपाश प्रतिष्ठित थे और यज्ञ

एव अग्नितुल्य तेजस्वी मुद्रा भी मूर्तिमान् होनेर स्थित था ॥ ३४ ॥

दर्शनादेव य प्राणान् प्राणिनामपि कर्तुम् ।

किं पुन सृष्टमानस्य पात्यमानस्य वा पुन ॥ ३५ ॥

य कालदण्ड दृष्टिमें आनेमात्रसे प्राणियोंके प्राणीका

अपहरण कर लेता था । फिर जितसे उच्छ्रा रण्यो हा जाय

अथवा जिनसे ऊपर उसकी मार पड़े, उस पुरुषके प्राणीका

वंहार करता उसने जिये कौन बड़ी बात है ॥ ३५ ॥

स ज्वालापरिवारस्तु निर्दहस्थिर राक्षसम् ।

तेन सृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ॥ ३६ ॥

ज्वालाओंमें पिपा हुआ यह कालदण्ड उस राक्षससे

दग्ध-का कर देनेके लिये उद्यत था । बलवान् यमराज

हाथमें लिया हुआ यह महान् आयुध अपने तंजने प्रकाशित

हो उठा ॥ ३६ ॥

ततो निडुद्रुषु सर्वे तस्मात् भस्मा रणानिरे ।

सुराश्च क्षुभिता सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यत यमम् ॥ ३७ ॥

उसने उन्ने ही समपन्नमें पाड़े हुए समस्त सैनिक

भयभीत होकर भाग चले । कालदण्ड उठाये यमराजने देखकर

हमस्त देवता भी हृत्प हो उठे ॥ ३७ ॥

तस्मिन् प्रहल्लभाम गृ यमे दण्डेन रागणम् ।

यम पितामह साक्षाद् दक्षपितृष्वेदमप्रधीत् ॥ ३८ ॥

यमराज उग दण्डसे रागणपर प्रहार करना ही चाहते थे

किं वा उक्त पितामह प्रसाद वरों आ पहुँचे । उन्होंने दयान

देव इव प्रहार कहा— ॥ ३८ ॥

वैयस्यत मयापाहो न रत्नमिततिरिक्तम् ।

न हस्तस्यस्वयमेतेन दण्डेन निशारम् ॥ ३९ ॥

व्यभिक्त पतनमी महाबाहु वैयस्यत । तुल्य इव कालदण्ड

द्वारा निशार रागणका क्षय न कर ॥ ३९ ॥

वर- वस्तु मयैतस्मै दक्षमिन्दानुपुन ।

स त्वया नाशुत कार्या यमया ध्याहन् वय ॥ ४० ॥

वैयस्यत । किने इसे देवताओंद्वारा न मरे या वनेका

पर दिया है । मर मुँह जो बात निकल चुकी है, उसे तुम्हें
अलग नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥

यो हि मामनृत बुधाद् देवो वा मानुयोऽपि वा ।
पैलोन्मयमनृत तेन कृत स्यात्प्राप्र सदाय ॥ ४१ ॥

‘जो देवता अथवा मनुष्य मुझे अखण्डादी बना देगा,
उसे समान त्रिलोकीको निष्पामापी बनानेका दोषलगाया; इसमें
सदाय नहीं है ॥ ४१ ॥

मुन्देन विप्रमुक्तोऽय निरिदोष प्रियाप्रिये ।
प्रना विप्ररते रौद्रो लोकप्रयभयाग्रह ॥ ४२ ॥

‘यह कालदण्ड तीनों लोकोंके लिये भयंकर तथा रौद्र
है । तुम्हारे द्वारा ऋषयोंके छोड़ा जानेपर यह प्रिय और
अप्रिय दोनोंमें मेन्माय न रहता हुआ सामने पड़े हुए समस्त
प्रधाना सहार कर डालगा ॥ ४२ ॥

अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममित्रप्रभ ।
कालदण्डो मया सृष्ट पूर्वं सृष्ट्युपसृष्ट ॥ ४३ ॥

‘इस अमित्र वैज्यी कालदण्डको भी पूजालमें मैंने ही
बनाया था । यह किसी भी प्राणीपर व्यर्थ नहीं होता है । इसने
प्रहारके चक्की मृत्तु हो जाती है ॥ ४३ ॥

तत्र जल्लेप ते सौम्य पात्यो राघवमूधनि ।
नहासिन् पतिते कश्चिमुद्धतमपि जीरति ॥ ४४ ॥

‘अतः सौम्य । तुम इसे राघवग्न मन्त्रपर न गिराओ ।
इसकी मार पड़नेपर कोई एक झुट्टा भी जीवित नहीं रह
सकता ॥ ४४ ॥

यदि हासिन् निपतिते न त्रियेनैव राक्षस ।
त्रियते वा दशप्रीरस्तदाप्युभयतोऽनृतम् ॥ ४५ ॥

‘कालदण्ड पड़नेपर यदि यह राघव राघव न मरा तो
अथवा मर गया तो—दोनों ही दशाओंमें मरी बात अथवा
होगी ॥ ४५ ॥

तत्रिजतय लोहेशाद् दण्डमेत समुचतम् ।
इत्यार्यं धीमद्रामायणे वास्मीक्षीय आदिशब्धे उत्तरकाण्डे द्विविंशः सर्ग ॥ २२ ॥

इन प्रकर अरुन्तर्निर्मित अस्त्रामयन अस्त्रिकर्मक उत्तरकाण्डे बर्माओंका पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंश सर्ग.

राघवके द्वारा निवातकचोसे मैत्री, मालकेयोका वध तथा वरुणपुत्रोंकी परानय

तनो जित्वा दशर्षाणो यम विदशपुङ्गवम् ।
राघवस्तु रणशार्पी मसदायान् ददश ह ॥ १ ॥

(अगन्तवी बन्दे है—खुन्दन ।) देवेभ्यः यमघो
परवित्र करण मुद्रता रीगला राघवनाय दशमीर राग
अपने हरापनीने निग ॥ १ ॥

तनो रचिरमिनाम्न प्रहारजजगीहृतम् ।
राघव राक्षसा दृष्टा रिम्य समुपगमम् ॥ २ ॥

उपर करे अरु खन्दे नहा उडे थे और प्रहारेस चक्र

सत्य च मा बुद्ध्याच लोकास्त्य यद्यवेगने ॥ ४६ ॥

‘इसलिये हाथमें उठाये हुए इस कालदण्डको तुम दण्डा
पति राघवकी ओरसे हटा दो । यदि समस्त लोकोंपर तुम्हारी
दृष्टि है तो आन रागाकी रक्षा करके मुझे सत्यकी
बनाओ ॥ ४६ ॥

पञ्चमुत्तस्तु धमात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा ।
एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ॥ ४७ ॥

ब्रह्माग्ने ऐषा कहनेपर धमामा यमराजने उत्तर दिया—
‘यदि ऐसी बात है तो लीजिये मैंने दण्डको हटा लिया ।
आप हम सब लोकोके प्रभु हैं (अतः आपकी आज्ञाका पालन
करना हमारा कर्तव्य है) ॥ ४७ ॥

किं विद्वानां मया शक्य कर्तुं रणगतेन हि ।
न मया यद्यपि शक्यो हन्तु यरपुरस्मृत ॥ ४८ ॥

‘परतु वरदानसे युक्त होनेके कारण यदि मेरे द्वारा इस
निशाचरका वध नहीं हो सकता तो इस समय इसका क्या मुद्र
करके ही मैं क्या करूँगा ! ॥ ४८ ॥

एष तस्मात् प्रणयामि दर्शनादन्य रक्षस ।
हस्त्युक्त्या सरथा साध्वस्तमैवान्तरधीयत ॥ ४९ ॥

‘इसलिये अब मैं इसकी दृष्टिसे ओझल हाता हूँ । मैं वह
कर यमराज रथ और पैदलद्विनकी अन्तर्धान हो गय ॥ ४९ ॥

दशप्रीधन्तु स जित्वा नाम विधाप्य चामन ।
आरुह्य पुष्पक भूयो निष्पान्तो यमसादनात् ॥ ५० ॥

इस प्रकार यमराजको जानकर अपने मामकी चमगा
परत दशमीर राघव पुष्पकविमानपर आरुह्य हो यमनेके
थाना गया ॥ ५० ॥

स तु वैयस्यतो देवै सद ब्रह्मपुगेगमै ।
जगाम त्रिदिव इमे नारदश्च महामुनि ॥ ५१ ॥

तानन्तर सूर्यपुत्र यमराज तथा महामुनि नारदकी ब्रह्मा
आदि देवताओंके साथ प्रमन्तापूरक स्थितिमें गय ॥ ५१ ॥

ततो यमराजो वरुणपुत्राञ्च परानय
हा गय । इस अगम्यमें रागाका देवराज जन राग्योका
यदा रिम्य हुआ ॥ ॥

जयेन यधयित्वा उ मारीप्रमुगामन्त ।
पुष्पक मेचिरे सर्वे मारिजना राघवेन तु ॥ ३ ॥

‘महाराजकी जन हा’ एक कहकर रागाकी अमृदय
कामना करत थे मारीच अर्थात् सब राग्य पुष्पकविमानपर
देन । उन समय रागने उन सब मन्त्रना दी ॥ ३ ॥

तनो रमानत् रक्षः प्रविष्टः पथमा निधिम् ।
दैत्योरगमनाप्युध यरणेन सुररितम् ॥ ४ ॥

तनो रमानत् रक्षः प्रविष्टः पथमा निधिम् ।
दैत्योरगमनाप्युध यरणेन सुररितम् ॥ ४ ॥

तनो रमानत् रक्षः प्रविष्टः पथमा निधिम् ।
दैत्योरगमनाप्युध यरणेन सुररितम् ॥ ४ ॥

ज्जालामाली सनि श्वास सधूम कोपपावक ॥ २२ ॥

तत्र यमराजने मोषकी सीमा न रही । उनके मुरसे वह रोप अनि उनकर प्रपट हुआ । वह आग ज्वाला-मालाओंसे मण्डित, श्वाखायुते संयुक्त तथा धूमसे आच्छन्न दिखायी देती थी ॥ २२ ॥

तदाश्चर्यमयो दृष्ट्वा देवयानवसनिधौ ।

प्रहर्षितौ सुसरब्धौ मृत्युकालौ यभूयतु ॥ २३ ॥

देवताओं तथा दानयोंके समीप यह आश्चर्यजनक घटना देखकर रोषायेशसे भरे हुए मृत्यु एवं कालको बड़ा हर्ष हुआ २३ ततो मृत्यु कुक्षतरो धैवस्ततमभापत ।

मुञ्च मा समरे यावदमीम पापराक्षसम् ॥ २४ ॥

तत्तत्काले मृत्युदेवने अत्यंत कुपित होकर वैवस्वत यमसे कहा—‘आप मुझे छोड़िये—आशा दीजिये, मैं समरङ्गणमें इस पापी राक्षसको अभी मारे डालता हूँ ॥ २४ ॥

नैया रक्षो भवेदद्य मयादा हि निसर्गत ।

हिरण्यकशिपु श्रीमान् नमुचि शम्बरस्तथा ॥ २५ ॥

निसन्दिधूमकेतुश्च त्रिदिवोचनोऽपि च ।

शम्भुर्देव्यो महाराजो वृषो गणस्तथैव च ॥ २६ ॥

राजर्षयः शास्त्रविदो गन्धर्वा समहोरगा ।

ऋषयः पद्मगात्रेया यक्षाश्च ह्यप्सरोगणा ॥ २७ ॥

युगान्तपरिचर्यते च पृथिवी समहारण्या ।

क्षय नीता महाराज सपर्वतसरिद्धुमा ॥ २८ ॥

एते चान्ये च यद्वहो यत्प्रन्तो दुरासवा ।

विनिपन्ना मया दृष्टा निमुक्ताय निशाचर ॥ २९ ॥

‘महाराज । यह मेरी स्वभावसिद्ध मयादा है कि मुझसे भिन्नकर यह राक्षस जीवित नहीं रह सकता । श्रीमान् हिरण्यकशिपु, नमुचि, शम्बर, निसन्दि, धूमवेतु, विरोचनकुमार वल्कि, शम्भुनामक दैत्य, महाराज ह्यन तथा बाणामुख, जिनने ही शास्त्रवेत्ता राजर्षि, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, सर्व, दैत्य मय, अक्षुषओंके समुदाय, युगान्तकालमें समुद्रों, पर्वतों, शरिताओं और वृक्षोंसहित पृथ्वी—ये सब मेरे द्वाप क्षयको प्राप्त हुए हैं । ये तथा दूसरे बहुतोंके बलायान् एतद्वज्रय भी मेरे द्वापविनाशने प्राप्त हो चुके हैं, फिर यह निशाचर किस गिनतीमें है । ॥ २५-२९ ॥

मुञ्च मा साधु धमत याजदेन निहम्यहम् ।

नहि पश्चिमया दृष्टो यलयानपि जीवति ॥ ३० ॥

‘वर्षण । आप मुझे छोड़ दीजिये । मैं इसे अवश्य मार डालूँगा । जिनने मैं देखे हैं, यह कोई बलवान् होनेपर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ३० ॥

यत्तु मम न गत्वैतमयादैया निसर्गतः ।

स दृष्टो न मया काल मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

‘वाज । मेरी दृष्टि पड़नेपर यह राक्षस दो बड़ी भी जीवन घारण नहीं कर सकेगा । मेरे इस कथनका तात्पर्य केवल

अपने बलको प्रकाशित करना मात्र नहीं है, अपितु यह स्वभावसिद्ध मयादा है ॥ ३१ ॥

तस्यैव यजन श्रुत्वा धर्मराज प्रतापयान् ।

अध्वरीत् तत्र त मृत्यु त्व तिष्ठेन निहन्म्यहम् ॥ ३२ ॥

मृत्युधी यह बात सुनकर प्रतापी धर्मराजने उससे कहा—‘तुम ठहरो, मैं ही इसे मारे डालता हूँ ॥ ३२ ॥

तत सरत्तनयन क्रुद्धो धैवम्वत प्रभुः ।

कालदण्डममोघ तु तोलयामास पाणिना ॥ ३३ ॥

तदनन्तर मोषसे छल आँखें करके सामर्थ्यशाली वैवस्वत यमने अपने अमोघ कालदण्डको हाथसे उठाया ॥ ३३ ॥

यस्य पादरैषु निहिता कालपादा प्रतिष्ठिता ।

पात्रकाशनिसकाशो मुद्रो मूर्तिमान् स्थित ॥ ३४ ॥

उस कालदण्डके पात्रभागोंमें कालपाद प्रतिष्ठित थे और वज्र एवं अमृततुल्य तेजस्वी मुद्र भी मूर्तिमान् होकर स्थित था ॥ ३४ ॥

दर्शनादेन च प्राणान् प्राणिनामपि कर्षति ।

किं पुन स्फुशमानस्य पात्यमानस्य वा पुन ॥ ३५ ॥

यह कालदण्ड दृष्टिमें आनेमानसे प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण कर लेता था । फिर जिससे उसका स्पर्श हो जाय अथवा जिसने ऊपर उसकी मार पड़े, उस पुरुषके प्राणोंका सहर करना उसने लिये कौन बड़ी बात है । ॥ ३५ ॥

स ज्वालापरिधारस्तु निर्दहन्निव राक्षसम् ।

तेन स्फुष्टो यल्लता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ॥ ३६ ॥

ज्वालाओंसे घिर हुआ यह कालदण्ड उस राक्षसके दण्ड-का कर देनेके लिये उद्यत था । बलवान् यमराजने हाथमें लिया हुआ यह महान् आयुध अपने तेजसे प्रकाशित हो उठा ॥ ३६ ॥

ततो निद्रुद्रुध सर्वे तस्मात् प्रस्ता रणाजिरे ।

सुराश्च क्षुभिता सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यत यमम् ॥ ३७ ॥

उसने उठते ही समरङ्गणमें खड़े हुए समस्त सैनिक भयभीत होकर भाग चले । कालदण्ड उठाने यमराजको देखकर समस्त देवता भी क्षुब्ध हो उठे ॥ ३७ ॥

तस्मिन् प्रहृतुकामे तु यमे दण्डेन रायणम् ।

यम पितामह साक्षाद् दशयिष्येदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

यमराज उस दण्डसे रायणपर प्रहार करना ही चाहते थे कि अथात् पितामह ब्रह्मा यहाँ आ पहुँचे । उन्होंने दर्शन देकर इस प्रकार कहा— ॥ ३८ ॥

वैवस्वत महाराजो न खल्वमितप्रियम् ।

न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैव निशाचर ॥ ३९ ॥

‘अभिन् पराक्रमी महाराज! वेदम्वत । तुम इस कालदण्डके द्वारा निशाचर रायणका वध न करो ॥ ३९ ॥

यत्तु एतत्तु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव ।

स त्वया नानृत कार्यो यमया ध्याहृत यत् ॥ ४० ॥

‘देवप्रार । मैंने इसे देवताओंद्वारा न मारे ना सकेगा

कर दिया है । मर मुँहस जो बात निकल चुकी है, उसे तुम्हें
असत्य नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥

यो हि मामनृत बुयाद् देवो वा मानुषोऽपि वा ।

त्रैलोक्यमनृतं तन हृत स्यान्नाथ मन्त्राय ॥ ४१ ॥

‘‘ओ देवता अपना मनुष्य मुझे असत्यवादी बना देगा,
उसे समस्त त्रिलोकीका मिथ्यावादी बनानेका दोष सन्तोंका, इसमें
संशय नहीं है ॥ ४१ ॥

मुन्देन विप्रमुक्तोऽयं निर्विशेष प्रियाप्रिये ।

प्रजा सहर्षते रौद्रो लोकत्रयभयाङ्क ॥ ४२ ॥

‘‘यह कालदण्ड लीनों लोगोंके लिये भरस्तर तथा रौद्र
है । तुम्हारे द्वारा क्रोधपूर्णक छोड़ा जानेपर यह प्रिय और
अप्रिय दोनोंमें मेरेमान न रहता हुआ सामने पड़ी हुई समस्त
प्रजाका सहार कर बाँटगा ॥ ४२ ॥

अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममित्रप्रभ ।

कालदण्डो मया सृष्टं पूर्वं मृत्युपुरस्कृत ॥ ४३ ॥

‘‘इस अमित्र तन्त्रवी कालदण्डको भी पूर्वकालमें मैंने ही
बनाया था । यह किसी भी प्राणीपर व्यर्थ नहीं होता है । इसके
प्रहारने सबकी मृत्यु हो जाती है ॥ ४३ ॥

तद्य एतदेव ते सौम्य पात्यो राजणमूषधि ।

नहस्मिन् पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥ ४४ ॥

‘‘अब सौम्य ! तुम इसे राजगके मन्त्रकपर न गिराओ ।
इसकी मार पड़नेपर कोई एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह
सकता ॥ ४४ ॥

यदि ह्यस्मिन् निपतिते न त्रियेतैव राक्षस ।

त्रियते वा द्वाप्रीरस्तदाभ्युपयतोऽनृतम् ॥ ४५ ॥

‘‘कालदण्ड पड़नेपर यदि यह राक्षस राजण न मरा तो
अथवा मर गया त—दोनों ही दण्डाओंमें मेरी बात असत्य
होगी ॥ ४५ ॥

तन्निरतय ऋक्षेणाद् दण्डमेनं समुद्यतम् ।

हृषार्थं श्रीमद्रामायणं बाल्मीकीयं आदित्रयं उत्तरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इमं प्रकरं धर्मलक्षणं निर्दिष्टं अत्रात्मनः अर्थकर्मक उत्तरकाण्डे वर्तमानं समाप्तं भूतं ॥ २ ॥

त्रयोविंश सर्ग.

राजणके दण्डा निवातस्वचोसे मैत्री, कालकेयोंका वध तथा वरुणपुत्रोंकी पराजय

ततो निन्या द्वाप्रीगो यमं विदधापुत्रम् ।

राजणस्तु रणक्षणीं स्वसहायान् ददता ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—राजानन ।) देवेष्वर यमको
पराजित करके मुद्रका होकर राजनस्य दशधीव राजा
अनेक साधनोंमें निगा ॥ १ ॥

ततो गधिमित्रात् प्रहारजपरीरुतम् ।

राजणं राजमा दृष्ट्वा विमयं मनुष्यागमन् ॥ २ ॥

उपगत करे भक्त रक्षने नारा उठे थे और प्रहारोंमें जबर

सय च मा कुरुष्याय लोकास्थं यद्येवमने ॥ ४६ ॥

‘‘इसलिये हाथमें उठाया हुए इस कालदण्डको तुम लड़ा
पति राजगकी आरसे हरा दो । यदि समस्त लोकोंपर तुम्हारी
हक्ति है तो आज राजगकी रक्षा करके मुझे सत्यवादी
बनाओ ॥ ४६ ॥

परमुक्तस्तु धमात्मा प्रत्युगाय यमस्तदा ।

एष व्याजति तो दण्डं प्रभविष्णुर्हि नो भयान् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मजीने ऐसा कहनेपर धमात्मा यमराजने उत्तर दिया—
‘‘यदि ऐसी बात है तो जीविय मैंने इस दण्डको हरा लिया ।
आप हम सब लोगोंके प्रभु हैं (अन आरसी आराका पालन
करना हमारा कर्तव्य है) ॥ ४७ ॥

किं त्विदानीं मया दास्य कर्तुं रणगतेन हि ।

न मया यद्यपि दास्यो हन्तुं धरपुरस्कृत ॥ ४८ ॥

‘‘परन्तु धरदानने मुक्त हानक कारण यदि मरे द्वारा इस
निवाचकका वध नहीं हो सकता तो इस समय इसके साथ युद्ध
करके ही मैं क्या करूँगा ! ॥ ४८ ॥

एष तस्मात् प्रणयामि द्वाप्रीनामस्य राक्षस ।

हस्तुषत्वा सरथं साध्वस्तप्रीयान्तरधीयत ॥ ४९ ॥

‘‘इसलिये अब मैं इसकी हथिमें ओहाल होता हूँ वो कह
कर समराज रथ और धेड़ोंबिहवाँ अन्तर्धान हो गया ॥ ४९ ॥
द्वाप्रीरान्तु तं जिन्या नाम त्रिधाप्य चात्मन ।

आरुह्य पुष्पकं भूयो निजान्तो यमसादनात् ॥ ५० ॥

इस प्रकार यमराजकी बीतसर आगे नामकी धागा
करके दण्डवीर राजण पुष्पकविमानपर आरुह्य हो यमलोकमें
चला गया ॥ ५० ॥

स तु धैर्यव्यतो देवै सह ब्रह्मपुत्रेणमै ।

जगाम त्रिदिशं हृणो नारदश्च महामुनि ॥ १ ॥

तदनन्तरं सूर्यपुत्र यमराज तथा महामुनि नारदजी ब्रह्मा
आदि देवताओंका साथ प्रसन्नतापूर्वक व्योममें गये ॥ ५१ ॥

हृषार्थं श्रीमद्रामायणं बाल्मीकीयं आदित्रयं उत्तरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इमं प्रकरं धर्मलक्षणं निर्दिष्टं अत्रात्मनः अर्थकर्मक उत्तरकाण्डे वर्तमानं समाप्तं भूतं ॥ २ ॥

त्रयोविंश सर्ग.

राजणके दण्डा निवातस्वचोसे मैत्री, कालकेयोंका वध तथा वरुणपुत्रोंकी पराजय

ततो निन्या द्वाप्रीगो यमं विदधापुत्रम् ।

राजणस्तु रणक्षणीं स्वसहायान् ददता ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—राजानन ।) देवेष्वर यमको
पराजित करके मुद्रका होकर राजनस्य दशधीव राजा
अनेक साधनोंमें निगा ॥ १ ॥

ततो गधिमित्रात् प्रहारजपरीरुतम् ।

राजणं राजमा दृष्ट्वा विमयं मनुष्यागमन् ॥ २ ॥

उपगत करे भक्त रक्षने नारा उठे थे और प्रहारोंमें जबर

हो गया थे । इस अगस्त्यने राजगका देवदत्त तन राजगके
वध किया हुआ ॥ ॥

जयेन वर्षधिन्या च मार्गप्रमुखाम्भन ।

पुण्यं मेजिरे मयै सात्विता राषणेन तु ॥ ३ ॥

‘‘महाराजजी वर हूँ एका कहकर गांधी अमृत्य
कामना करने थे मरीच आँ । अब राजा पुण्यमित्रनर
देव । उग्र समर राजने उन मर । अन्तः । दी ॥ ३ ॥

ततो रत्नात्तरं रक्षं त्रिदिशं पयसा निधिम ।

दैत्योरगगनाभ्युद्यं यदनेन सुरसितम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर वह राक्षस रमानलमें जानेकी इच्छासे दैत्यों और नागोंसे सेवित तथा वरुणके द्वारा सुरक्षित जलनिधि समुद्रमें प्रविष्ट हुआ ॥ ४ ॥

स तु भोगवर्ती गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् ।
इत्वा नागान् वधो हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥ ५ ॥

नागराज वासुकिद्वारा पालित भोगवती पुरीमें प्रवेश करके उसने नागोंको अपने वशमें कर लिया और वहाँसे हर्ष पूर्ण मणिमयीपुरीको प्रस्थान किया ॥ ५ ॥

निनातकन्यास्तत्र दैत्या लघ्वरा चसन् ।
राक्षसस्तान् समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

उस पुरीमें निनातकवच नामक दैत्य रहते थे, जिन्हें ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त थे । उस राक्षसने वहाँ जाकर उन सभ्यसे युद्धके लिये ललकारा ॥ ६ ॥

ते तु सर्वे सुविमाना दैतेया बलशालिन ।
नानाप्रहरणास्तत्र प्रहृष्टा युद्धवुर्मदा ॥ ७ ॥

वे सब दैत्य बड़े पराक्रमी और बलशाली थे । नाना प्रकारके अस्त्र गन्धधारण करते थे तथा युद्धके लिये सदा उत्साहित एवं उत्तम रहते थे ॥ ७ ॥

शूलैस्त्रिशूलैः कुलिशैः पट्टिशासिपरश्वधै ।
अन्योन्य विभिन्नु कृद्धा राक्षसा दानरास्तथा ॥ ८ ॥

उनका राक्षसोंक साथ युद्ध आरम्भ हो गया । वे राक्षस और दानव दुपिन् हो एक दूसरेको शूल, त्रिशूल, वज्र, पट्टिशा, सङ्ग और फरसेसे घायल करने लगे ॥ ८ ॥

तेषां तु घुध्यमानानां सामं सगरसरो गत ।
न चान्यतरतस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ॥ ९ ॥

उनके युद्ध करते हुए एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया किन्तु उनमेंसे किसी भी पक्षकी विजय या पराजय नहीं हुई ॥ ९ ॥

ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिरप्यय ।
आजगाम द्रुतं देशे विमानगरमास्थित ॥ १० ॥

तब त्रिशुवनक आश्रयभूत कविनाथी पितामह भगवान् ब्रह्मा एक उत्तम विमानपर बैठकर वहाँ शीघ्र आये ॥ १० ॥

निनातकवचनां तु निराय रणकर्म तत् ।
वृद्धः पितामहो धाम्ममुवाच त्रिदितार्थवत् ॥ ११ ॥

बूढ़े पितामहने निनातकवचोंके उस युद्ध-कर्मको राक्षसों दिया और उनसे स्पष्ट बातें कह कर कही— ॥ ११ ॥

महाय रात्रौ मुदे शक्यो जेतु सुरासुरैः ।
न भवत क्षय नेतुमपि सामरदानैः ॥ १२ ॥

‘दासों ! समस्त देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें इस रात्रिका पराज नहीं कर सकते । इसी तरह समस्त देवता और दानव एक साथ आक्रमण करें तो भी वे तुम लोगोंका शत्रु नहीं कर सकते ॥ १२ ॥

राक्षसस्य सगिन्य च भवति सह रोचते ।
अभिमानाद्य साराया मुहदा प्राय सदायः ॥ १३ ॥

‘(तुम दोनोंमें वरदानजनित शक्ति एक-सी है) इसलिये मुझे तो यह अच्छा लगता है कि तुम दोनोंमें साथ इस राक्षसकी मैत्री हो जाय क्योंकि सुहृदोंके सभी अर्थ (भोग्य पदार्थ) एक दूसरेके लिये समान होते हैं—प्रयत्नपूर्वकसे नहीं रहते हैं । नि सदेह ऐसी ही बात है’ ॥ १३ ॥

ततोऽसिसाक्षिक सख्य वृत्तान्तप्र रात्रौ ।
निनातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत् तदा ॥ १४ ॥

तब वहाँ रात्रिने अग्निको साक्षी बनाकर निनातकवचोंके साथ मित्रता कर ली । इससे उसको यही प्रसन्नता हुई ॥ १४ ॥

अर्चितस्तेययान्याय सखरसरमधोपित ।
स्वपुराधिर्विशेष च प्रिय प्राप्नो दशानन ॥ १५ ॥

किन्ति निनातकवचोंसे उचित आदर पाकर वह एक वर्ष तक वहीं टिका रहा । उस स्थानपर दशाननको अपने नगरके समान ही प्रिय भोग प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

तत्रोपधाय मायाना शतमेक समाप्तवान् ।
सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स रसातलम् ॥ १६ ॥

उसने निनातकवचोंसे ही प्रकारकी मायामोंका शान प्राप्त किया । उसके बाद वह बरुणने नगरका पता लगाता हुआ रसातलमें सब ओर घूमने लगा ॥ १६ ॥

ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम् ।
गत्वा तु कालकेयाश्च हत्वा तत्र बलेत्फट्णम् ॥ १७ ॥

शूर्पणख्याश्च भूतारमसिना प्राणिछिन्तत् तदा ।
इयात् च बलान्तं च विधुज्जिह्व बलेत्फट्णम् ॥ १८ ॥

जिह्वया सलिलं च राक्षस समरे तदा ।
धूमते धूमते बह अश्मनामक नगरमें जा पहुँचा, जहाँ कालनेय नामक दानव निवास करते थे । कालनेय बड़े बलवान् थे । रात्रिने वहाँ उन सत्रा सवार करने शूर्पणखा के पति उरक बलशाली अपने बहनोई महाबली विदुज्जिह्वको, जो उस राक्षसको समराङ्गणमें बाट जाना चाहता था, तलवार से काट डाला ॥ १७ १८ ॥

त विजित्य मुहूर्तेन जप्ते दैत्याश्चतु शतम् ॥ १९ ॥
ततः पाण्डुरमेघाभ कैलासमिव भास्वरम् ।

वरुणस्थालय दिग्भयपश्यद् राक्षसाधिपः ॥ २० ॥
उस पराक्ष करके रात्रिने दो ही पक्षोंमें बार की दैत्यों का मोतके बाट उतार दिया । तत्पश्चात् उस राक्षसरात्रिने वरुणका दिव्य भजन देखा, जो स्वते बादलोंके समान उज्ज्वल और कैलास पर्वतक समान प्रकाशमान था ॥ १९ २० ॥

क्षरन्तीं च पश्यस्तत्र सुरभिं गगमस्थिताम् ।
यस्या पयोऽभिनिपन्दात् क्षीरोदो नाम सागरः ॥ २१ ॥

यहाँ सुरभि नामकी गौ भी खड़ी थी, जिमने यनोंसे दूध शर रहा था । कहते हैं, सुरभिने ही दूधकी धारासे क्षीरसागर मरा हुआ है ॥ २१ ॥

वदन् रावणस्तत्र गोघृषेद्रथरारणिम् ।
यस्माच्चन्द्र प्रभजति शीततरुनिर्मादाकर ॥ २२ ॥
रावणने महादेवजीके वाहनभूत महारूपमयी अनौ
सुरभिदेवीका दर्शन किया, जिसने शीतल छिरणोंगल निशाचर
चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ है (सुरभिसे क्षीरसमुद्र और
क्षीरसमुद्रसे चन्द्रमाका आगमोभाव हुआ है) ॥ २२ ॥
य समाधित्य जीवन्ति फेनपा परमपर्य ।
अमृत यश्चोत्पन्न स्वधा च स्वधभोजिनाम् ॥ २३ ॥
उहाँ चन्द्रदेवक उत्पत्तिस्यान क्षीरसमुद्रका आश्रय
लेकर फेन पीनेगले महर्षि जीवन धारण करते हैं । उस क्षीर
धारने ही सुधा तथा स्वधामोक्षी पितरोंकी स्वधा प्रफट्ट हुई
है ॥ २३ ॥
या ह्यवन्ति नरा लोके सुरभि नाम नामत ।
प्रदक्षिण तु तां हृत्वा रावण परमाहूताम् ।
प्रतिवेश महाघोर गुह्य यद्विधैरलै ॥ २४ ॥
लोकमें जिनकी सुरभि नामसे पुकारा जाता है, उन परम
अद्भुत योगाताकी परिग्रहा करके रावणने नाना प्रकारकी
सेनाओंसे मुखनि महाभयकर वरुणालयमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥
ततो धाराशताशीर्षे शारदाभ्रनिभ तदा ।
नित्यप्रहृष्ट दृष्टे घरुणस्य गृहोत्तमम् ॥ २५ ॥
वहाँ प्रवेश करके उसने वरुणने उत्तम भवनको देखा,
जो सदा ही आनन्दमय उत्तमसे परिपूर्ण, अनेक जलधाराओं
(फोहारों) से व्याप्त तथा शतद्वारक बादलोंसे समान
उज्ज्वल था ॥ २५ ॥
ततो हृत्वा पलायमान् समरे तैश्च ताडित ।
अग्रवीर्य ततो योधान् राजा शीघ्र निवेद्यताम् ॥ २६ ॥
तदनन्तर वरुणने सत्तापविघ्ने समरभूमिमें रावणपर
प्रहार किया । फिर रावणने भी उन सत्ताप धातक करके वहाँसे
सादाओंसे कहा—‘‘तुमलोग राजा वरुणने शीघ्र लज्ज
मयी यह बात बजो—’’ ॥ २६ ॥
मुद्रार्थी रावण प्रातस्तम्य युद्ध प्रदीयताम् ।
यद्वा न भय तेऽस्ति निर्जिनेऽस्मानि स्वाङ्गलि ॥ २७ ॥
‘‘यज्जन् । रावणराज रावण युद्धक लिये आया है, आज
चलकर उसने युद्ध कीजिये अपना हाथ ऊँड़कर अपनी
परमय स्वीकार कीजिये । फिर आपका कोई भय नहीं
रेगा’’ ॥ २७ ॥
एतस्मिन्प्रतरे मुद्रा घरुणस्य महात्मन ।
पुत्रा पौत्राश्च निपामन् ग्रीष्म पुष्कर पथ च ॥ २८ ॥
इसी बीचमें सृजना पाकर महामा वरुणक पुत्र और
पौत्र कोषते भरे हुए निकले । उनके साथ ‘‘गौ’’ और ‘‘पुष्कर’’
नामक सेनापत्य भी थे ॥ २८ ॥
ते तु तत्र गुणोपेता बलैः परिकृताः स्वकैः ।
युक्त्या रथान् कामगमानुपयङ्गास्वरवधस ॥ २९ ॥

ये सब ने उस समयगुप्तमन तथा उगत हुए सूक्ष्म
सूत्र तज्जयी थे । इच्छानुसार चन्नेगले रथोंपर आरुढ़ हो
अपनी सेनाओंसे बिरकर वे वहाँ युद्धरत्न आये ॥ २९ ॥
ततो युद्ध समभवद् दारुण रोमहृषणम् ।
सलिलेऽद्रम्य पुत्राणां रावणस्य च भीमत ॥ ३० ॥
फिर तो वरुणक पुत्रों और बुद्धिमान् रावणमें बढ़ा
मदकर युद्ध छिड़ गया, जे रोग्य सङ्गे कर देनेवाला था ॥
अमात्यैश्च महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षस ।
वारुण तद् वल सर्वे क्षणेन विनिपातितम् ॥ ३१ ॥
गणस दशग्रीवने महापराक्रमी मन्त्रिणोंने एक ही क्षणमें
वरुणकी साथी सेनाको मार गिराया ॥ ३१ ॥
समीक्ष्य स्वयत् सत्ये वरुणस्य सुतास्तदा ।
अर्दिता दारुणाले निवृत्ता रणकर्मण ॥ ३२ ॥
युद्धमें अपनी सेनाकी व आस्था देख वरुणने पुत्र
उस समय बाणमूहोंसे पीड़ित होने पर वरुण कुछ देरके
लिये युद्ध रमसे हट गये ॥ ३२ ॥
महीतलगतास्ते तु रावण हृदय पुष्पके ।
आकाशमानु विविगु स्यन्दनैः दीपगामिभि ॥ ३३ ॥
भूतलपर स्थित होकर उठोंने अब रावणका पुष्पक
विमानपर बैठा देखा, तब वे भी शीघ्रमानी रथोंद्वारा दुरंत ही
आकाशमें जा पहुँचे ॥ ३३ ॥
महदासीन् तनन्तेषां तुल्य स्यात्तमनाय तत् ।
आकाशयुद्धं तुमुल देवदानुरयोर्विध ॥ ३४ ॥
अब वरुणका स्थान मिल जनेमें रावणक साथ उनका
मारी युद्ध छिड़ गया । उनका यह आकाश युद्ध देव-दानव
धामात्र समान भयकर जान पड़ता था ॥ ३४ ॥
तनस्त रावण युद्धे शरं पायकसनिभं ।
विमुलीकृत्य सहृण विनेतुर्निधिान् रथान् ॥ ३५ ॥
उन वरुण पुत्रोंने अपने अस्त्रितुल्य तज्जयी शरोंद्वारा
युद्धस्थलमें रावणको विमुक्त परर व हटने काय नाना
प्रकारक लठेंम महान् छिन्नाद किया ॥ ३५ ॥
ततो महोदरं मुद्रां रावण वीक्ष्य ध्वजितम् ।
त्यन्त्या मृत्युभयं धीरो मुद्राकाह्नीं पृथग्वयत् ॥ ३६ ॥
राज रावणको निरङ्कुल हुआ देता महान्तरका बड़ा क्रोध
हुआ । उसने मृत्युका भय छाड़कर युद्धकी इच्छा करण
पुत्रोंकी ओर देता ॥ ३६ ॥
तत त वादना मुद्रे कामगा परगोभमा ।
महोदरेण गदया ह्यास्ते प्रययु रितिम् ॥ ३७ ॥
वरुणने घेड़े युद्धमें हावसे बाणें करनेवाले थे और
स्वामीकी इच्छाक अनुसार चलते थे । महोदरने उनका रथमें
आघात किया । गगाकी चोट लाकर वे बड़े बरघाटी
हो गये ॥ ३७ ॥
तेषां वरुणसृजना हत्या योधान् इयंश्च तान् ।

मुमोगातु महानाद विरयान् प्रेक्ष्य तान् स्थितान् ॥ ३८ ॥
वरुण पुत्रोपे योद्धाओं और पाहोस मारकर उन्हें रथ
हीन हुआ देख महोदर तुरत ही ज्वर-ज्वरे से राजना करने लगा ॥
ते तु तेरा रथा साध्या सह सारथिभिर्वरै ।

महोदरेण निहता पतिता पृथिवीतले ॥ ३९ ॥
महोदरही गदाके आघातसे वरुण पुत्रों व रथ धोड़ों
और अथ सारथियोंसहित चूर चूर हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४० ॥
ते तु त्यक्त्वा स्थानं पुत्रा वरुणस्य महात्मन ।

आनासे विछिता शूरा स्वप्रभागाच्च थियथु ॥ ४० ॥
महात्मा वरुणके व शूरवीर पुत्र उन रथोंको छोड़कर
अपने ही प्रमासे आकाशमें उड़े हो गये । उन्हें तनिक भी
व्याय नहीं हुई ॥ ४० ॥

धनूयि हत्वा सज्जानि विनिर्भिद्य महोदरम् ।
राजण समरे हुन्वा सहिता समवारयन् ॥ ४१ ॥

उन्होंने धनुषोंपर प्रत्यक्षा चढ़ायी और महोदरको खन
विशत करके एक साथ कुपित हो रावणको घेर लिया ॥ ४१ ॥
सायकैर्ध्यापिधधैर्बलैश्च सुदारुणै ।

दारयन्ति स सक्नुवा मेघा इव महागिरिम् ॥ ४२ ॥
फिर वे अत्यन्त कुपित हो किसी महान् पर्वतपर जलकी
घाघ गिरनेवाले मेघोंके समान धनुससे छूटे हुए वज्र-मुल्य
भयकर सायकोंद्वारा रावणको निर्दोष करने लगे ॥ ४२ ॥

तत हुन्वा दशग्रीन कालमिद्विच मूर्च्छित ।
शरययै महाघोर तेरा ममस्वपातयत् ॥ ४३ ॥

यह देख दशग्रीव प्रलयकाली जनित्र समान शोषसे
प्रज्वलित हो उठा और उन वरुण पुत्रोंके मर्मस्थानोंपर महा
घोर बाणोंकी बपा करने लगा ॥ ४३ ॥

मुसलानि विविघ्राणि ततो भल्लशतानि च ।
पट्टिशादचैव शचीश्च शतघ्नीमहतीरपि ॥ ४४ ॥
पातयामास दुर्धरस्तेषामुपरि विष्टित ।

पुष्पक निमानपर बटे हुए उस दुर्धर वीरन उन सत्रे
ऊपर विविध नुसलों, वैकुण्ठा भल्लों, पट्टियों, शलियों और
बड़ी-बड़ी शतघ्नीयोंका प्रहार किया ॥ ४४ ॥

अपथिद्वान्तु ते वीरा विनिपेतु पदातय ॥ ४५ ॥
ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स पदातिन ।

महापद्मिनासाद्य कुञ्जरा पट्टिहायना ॥ ४६ ॥
उन अश्व-शस्त्रोंसे धाय-हाय पैदल वीर पुन युद्धके
लिये आगे बढ़ परन्तु पैदल होनेके कारण राजगङ्गी उस

अश्व-वर्गमें ही सहसा सत्र-म पड़कर बनी भारी बीज-वर्ग
कैसे हुए, साठ बर-हाथीके समान बट पाने लगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

ह्याययै श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोविंश म्या ॥ २३ ॥

इत प्रकार श्रीवाल्मीकीनिर्मित आषारामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तेइसवाँ सप्त पूत हुआ ॥ २३ ॥

सीदमानान् सुतान् दृष्ट्वा विहगान् स महायत् ।

ननाद राजाणो हर्षो महाअम्बुधरो यथा ॥ ४७ ॥

वरुणक पुत्रोंको दुखी एव व्याकुल देख महाकली
राजण महान् मयघ समान बढ़ हर्षसे गर्जना करने लगा ।

ततो रक्षो महानादान् मुक्त्वा हस्ति स वारुणान् ।

नानाप्रहरणोपेनैर्घारापातैरिवाम्बुद् ॥ ४८ ॥

ज्वर ज्वरेसे सिंहनाद करके घट निशाचर पुन नाना
प्रकारके अन्न शस्त्रोंद्वारा वरुण पुत्रोंको मारने लगा; मानो
बादल अपनी घारासहित बृह्मि बृह्मोंको पीड़ित कर रहा हो ॥
ततस्ते निमुखा सप्त पतिता धरणीतले ।

रणात् स्वपुरुषै शीघ्र गृह्णायेव प्रवेदिता ॥ ४९ ॥

फिर तां वे सभी वरुण पुत्र युद्धसे विमुख हो पृथ्वीपर
गिर पड़े । तत्पश्चात् उनके सेवकोंने उन्हें रणभूमिसे हटाकर
शीघ्र ही घरोंमें पहुँचा दिया ॥ ४९ ॥

तात्रयीत् ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् ।

रावण त्वग्रथीमन्त्री प्रहासो नाम वारुण ॥ ५० ॥

तदनन्तर उस राक्षसेने वरुणके सेवकोंसे कहा—अब
वरुणसे जाकर कहो कि वे स्वयं युद्धके लिये आये । तब
वरुण मन्त्री प्रहासने रावणसे कहा— ॥ ५० ॥

गतं पलु महाराजो ब्रह्मलोक जलेभ्यः ।

गार्धरं वरुण ध्रोतु य त्वमाह्वयसे युधि ॥ ५१ ॥

परावराज ! जिन्हें तुम युद्धके लिये बुला रहे हो, वे
जलक स्वाभी महाराज वरुण संगीत मुननेके लिये ब्रह्मलोकमें
गये हुए हैं ॥ ५१ ॥

तत् किं तत्र यथा वीर परिधम्य गते नृपे ।

ये तु सनिहिता वीरा कुमारस्ते पराजिता ॥ ५२ ॥

वीर ! राज वरुण चल आनेपर यहाँ युद्धके लिये
व्यर्थ परिधम करनेसे तुम्हें क्या लाभ ! उनका जो वीर पुत्र
यहाँ मौजूद थे, वे तो तुमसे पराजित हो ही गये ॥ ५२ ॥

राक्षसे द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम त्रिधाप्य चात्मन ।

हपाद्वाद् विमुञ्चन् वै निष्क्रान्तो वरुणतयात् ॥ ५३ ॥

मन्त्रीजी यह बात सुनकर राक्षसराज राजण यहाँ अपने
नामकी घोषणा करके बढ़े हर्षसे सिंहनाद करता हुआ
वर्णालयक बाहर निरल गया ॥ ५३ ॥

आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्त्य स ।

लङ्गामभिमुखो रम्भो नभस्तलगतो ययौ ॥ ५४ ॥

यह जिस मार्गमें आया था, उसीसे लौटकर आकाश
मार्गमें लङ्काकी ओर चल दिया ॥ ५४ ॥ ॥ ५४ ॥ ॥

• कुछ प्रयोगोंमें तेइसवें सर्गके नाम पाँच प्रथित सर्ग उपरुण्य हाते हैं जिनमें रावणकी विविध-व्यापार विस्तारपूर्वक वर्णन है ।

ननावरुणक विस्तारके लिये यहाँ इनको नहीं किया गया है ।

सुमोचानु महानाद् विरथान् प्रेक्ष्य तान् स्थितान् ॥ ३८ ॥
वरुण पुत्रोऽपि यादवोऽपि और घाँफो मारन उहें रथ
हीन हुआ देख महोदर तुरत ही जोर-जोरसे गजना करने लगा ॥

ते तु तेषा रथा साध्या सह सारथिभिर्वरैः ॥ ३९ ॥
महोदरेण निहता पतिता पृथिवीतले ॥ ३९ ॥
महोदरकी गदासे आघातसे वरुण पुत्रों व रथ धोड़ों
और भट्ट सारथियों सहित चूर चूर हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १९ ॥
ते तु त्यक्त्वा रथान् पुत्रा वरुणस्य महामन ॥

आकाशे विधिता दूरा स्वप्रभागाश्च यियुः ॥ ४० ॥
महात्मा वरुणके धे शूरवीर पुत्र उन रथोंको छोड़कर
अपने ही प्रभासे आकाशमें रखे हो गये ॥ उहें तनिक भी
व्यथा नहीं हुई ॥ ४० ॥

धनुषि हत्वा सज्जानि विनिर्भिद्य महोदरम् ॥
रावण समरे क्रुद्धा सहिता समवारयन् ॥ ४१ ॥

उहोंने धनुषोंपर प्रत्यक्षा चण्डी और महोदरको धन
विद्यत करक एक साथ कुपित हो रावणको घेर लिया ॥ ४१ ॥
सायकैश्चापविभ्रष्टैर्वज्रकरैः सुदारुणैः ॥

वात्यन्ति स सक्रुद्धा मेघा इव महागिरिम् ॥ ४२ ॥
फिर वे अत्यन्त कुपित हो किसी महान् पर्वतपर जल्की
धारा गिरनेवाले मेघोंक समान धनुशसे छूटे हुए वज्र-कुल्ल
भयकर सायकोंद्वारा रावणको विदीण करने लगे ॥ ४२ ॥

तत क्रुद्धो दशग्रीव कालाग्निरिव मूर्च्छितः ॥
शरघर्षं महाघोरं तेषा ममस्वपातयत् ॥ ४३ ॥

यह देख दशग्रीव प्रलयकालकी अग्निके समान रोपसे
मज्जलित हो उठा और उन वरुण पुत्रान् मर्मस्थानोंपर महा
घोर घावोंकी बरसा करने लगा ॥ ४३ ॥

सुखलानि विविघ्राणि ततो भल्लशतानि च ॥
पट्टिशश्चैव शक्वीश्च शतघ्नीमहतरीपि ॥ ४४ ॥
पातयामास दुधयस्तेषामुपरि विधित ॥

पुष्पक निमानपर बैठे हुए उस दुर्धर्ष वीरन उन सबके
ऊपर विविध मूसलों, सैरङ्गा भल्लों, पट्टियों, गतियों और
बड़ी-बड़ी शतघ्नीयोंन प्रसार दिया ॥ ४४ ॥

अपविद्यास्तु ते वीरा निनिष्पेतु पदातय ॥ ४ ॥
ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स पदातिन ॥
महापद्मविभासाय कुञ्जरा पण्डितान् ॥ ४६ ॥

उन अश्व-गर्जने धाव-हा व पैदल वीर पुन युद्धके
लिये आगे बढ़ परतु वैर-होनेसे कारण रावणकी उस
अज्ञ-न्यायसे ही यहसा सन्तप्त पड़कर बड़ी भारी वीचढ़में
पड़ते हुए छोट बर्बर शहीन समान बह जाने लगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमन्नारामायण वाल्मीकीये आदिष्टाये उत्तरकाण्डे प्रयोविंश सर्ग ॥ २३ ॥

इस प्रकार आवाल्मीकिनिर्मित आश्वरामायण आदिष्टा यक उत्तरकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

सीदमानान् सुतान् दृष्ट्वा विद्वान् स महारथः ॥

ननाद् राणो हवाम्महाम्बुधरो यथा ॥ ४७ ॥

वरुणक पुत्रोंको हुला एव व्याकुल देख महावली

रावण महान् सेने समान बड़ हर्षसे गर्जना करने लगा ॥

ततो रक्षो महाद्भान् मुक्त्वा हन्ति स वादणान् ॥

नानाप्रहरणोपेतैर्घाराणातैरिवाम्बुधः ॥ ४८ ॥

जोर जोरसे सिंहाद करन वह निगाचर पुन नाना

प्रकारके जल-गर्जनोंद्वारा वरुण पुत्रोंको मारने लगा, मानो

बादल अपनी धाराबाद्विज हृष्टिसे हृष्टोंका पीड़ित कर रहा हो ॥

ततस्ते त्रिमुखा सर्वे पतिता धरणीतले ॥

रणात् स्वपुदरैः शीघ्र गृहाण्येव प्रवेशिता ॥ ४९ ॥

फिर तां वे सभी वरुण पुन युद्धसे त्रिमुख हो पृथ्वीपर

गिर पड़े ॥ तत्पश्चात् उनके सेनकोंने उहें रणभूमिसे हटाकर

शीघ्र ही घरोंमें पहुँचा दिया ॥ ४९ ॥

ताम्रचीत् ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् ॥

रावण त्वग्रशीमश्री प्रहासो नाम धारुण ॥ ५० ॥

तदनन्तर उस रावणने वरुणके सेवकोंसे कहा—'अब

वरुणसे आकर कहो कि वे स्वय युद्धके लिये आहैं ॥' तब

वरुण मन्त्री प्रभासने रावणसे कहा—॥ ५० ॥

गत खलु महाप्राज्ञो ब्रह्मलोक जलेश्वर ॥

शार्धरं वरुण श्रोतु य त्वमाह्वयसे युधि ॥ ५१ ॥

'प्राज्ञप्राज्ञ ! जिहँ तुम युद्धके लिये हुला रह हो, वे

जलने स्वाधी महाप्राज्ञ वरुण समीत सुननेके लिये ब्रह्मलोकमें

गये हुए हैं ॥ ५१ ॥

तत् किं तव यथा वीर परिश्रम्य गते वृषे ॥

ये तु सनिहिता धीरा कुमारास्ते पराजिता ॥ ५२ ॥

'वीर ! राजा वरुणन चल जानपर यहाँ युद्धक लिये

वर्षा परिश्रम करनेसे तुम्हें क्या लाभ ? उनक जो वीर पुन

यहाँ मौजूद थे, व तो तुमने पराज हो ही गये ॥ ५२ ॥

राक्षसेद्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम निश्वस्य चात्मन ॥

हृषाद्वा त्रिमुञ्चन् धै निष्कृतातो वरुणालयात् ॥ ५३ ॥

मन्त्रीसी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण यहाँ अपने

नामकी घोषणा करके बड़े हर्षसे सिंहाद करता हुआ

वरुणालयसे बाहर निकल गया ॥ ५३ ॥

आगतस्तु पथा येन तेनैव त्रिनिवृत्य स ॥

लङ्गमभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ ॥ ५४ ॥

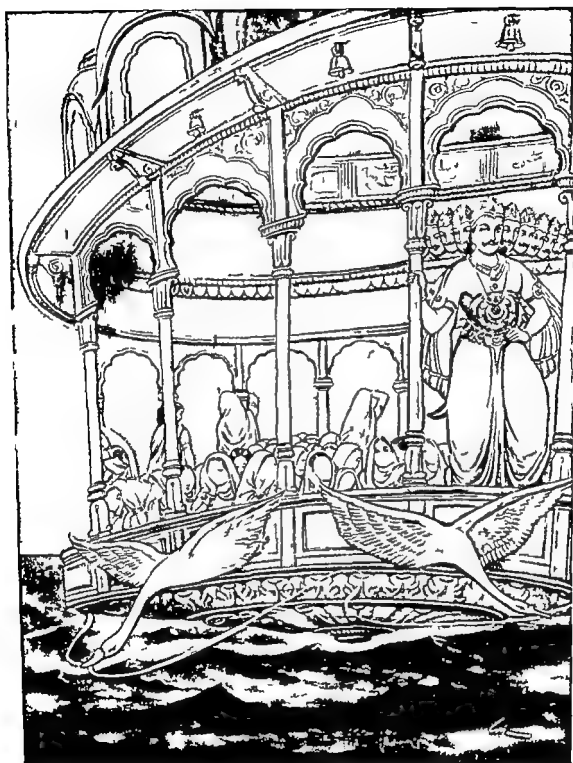
यह जिस मार्गसे आया था, उधरसे लौटकर आकर

मार्गमें लङ्काकी ओर चल दिया ॥ ५४ ॥ ५४ ॥

• कुछ प्रतिबोमें तेईसवें सर्गके बाद बीच प्रथित सर्ग उपलब्ध होते हैं जिनमें रावणकी विविध-न्यायका विस्तारपूर्वक वर्णन है ।

जगत्पदक विस्तारके अन्तसे यहाँ इनको नहीं किया गया है ।





राजगद्गारा सुन्दरी कन्याओंका अपहरण

चतुर्विंश सर्ग

रावणद्वारा अपहृत हुई देवता आदिनी कन्याओं और स्त्रियाका विलाप एवं श्राप, रावणका रोती हुई शूर्पणखाको आश्वासन देना और उसे खरके साथ दण्डकारण्यमें भेजना

निवर्तमान सहस्रे रावण स दुरात्ममान् ।

जहं पथि नरेद्रविदेवदानयकन्यका ॥ १ ॥

छोटे समय दुरात्मा रावण बड़े हर्षमें मग्न था । उसने मागमें अनेकानेक नरेशों, श्रृणियों, देवताओं और दानवोंकी कन्याओंका अपहरण किया ॥ १ ॥

दानीया हि या रक्ष कन्या स्त्रीयाय पश्यति ।

हत्या यधुजन तस्या विमाने ता रुगेधम् ॥ २ ॥

यह राक्षस जिस कन्या अपना स्त्रीको दानीय रूप से दर्पने युक्त देखता, उसके शक्य यधुजनोंरा वध करके उसे विमानपर बिठाकर राक लता था ॥ २ ॥

एष पन्नगमन्याश्च राक्षसासुरमानुषी ।

पक्षवानयकन्याश्च विमाने सोऽप्यरोपयत् ॥ ३ ॥

इस प्रकार उछने नागों, राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, पक्षों और दानवोंकी भी बहुतसी कन्याओंको हरकर विमानपर चढ़ा लिया ॥ ३ ॥

तादिसया सम दुःखासुमुच्युगप्यजजम् ।

तुल्यमन्यस्त्रिया तत्र शोकाग्निभयसम्भयम् ॥ ४ ॥

उन छपने एक साथ ही दुःखने रावण नेत्रोंमें आँसू बहाना आरम्भ किया । गाराग्नि और भयसे प्रकट होनेवाले उनके आँसुओंकी एक एक बूँद वहाँ आगरी चिनगारीकी जान पड़ती थी ॥ ४ ॥

ताभि सयानयामिनदीभिरिव स्वागरः ।

आपूरित विमान तद् भयशोकाक्षिणाधुभि ॥ ५ ॥

जैसे नदियों सागरकी भरती है, तथा प्रकार उन समस्त मुन्दरियोंने भय और शोकने उत्पन्न हुए अमङ्गलजनक अभुओंने उस विमानको भर लिया ॥ ५ ॥

नागगर्धकन्याश्च महर्षितनयाश्च या ।

दैत्यदानयकन्याश्च विमाने शतशोऽरुदन् ॥ ६ ॥

नाग, गन्धर्वों, महर्षियों, दैत्यों और दानवोंकी ऐकड़ों कन्याएँ उस विमानपर रा रही थीं ॥ ६ ॥

दीपयेदय सुचायङ्गय पूणचन्द्राभिमाना ।

पीनस्तनतया मध्ये वज्रवेदिसमप्रभा ॥ ७ ॥

रथरूपस्वकीर्णो धोजिदेशीमनोहरा ।

त्रिय सुराङ्गनामरथा निम्नमदनकप्रभा ॥ ८ ॥

उज्ज्वल केश बहुचन्द्रे थे । सभी अङ्गुलीएँ एवं मनहर थे । उनसे मुगरी कान्ति पूरा चन्द्रागरी छत्रिका लम्बित पड़ती थी । उज्ज्वल तन्मय उनसे पुष्प । लीला रंग भाग हरेत नयनरेखे समान प्रकाशित होत था । निम्न देव रूपन रूपन देवे रूप पड़ती थी और उनके केश

उनकी मनाहरता दृष्ट रही थी । व गर्भी स्त्रियों देवाङ्गनाओंके समान कान्तिमयी और तपाये हुए सुगन्ध समान मुनहरी आभासे उद्भासित होनी थीं ॥ ७ ८ ॥

शोकदुःखभयप्रस्ता विह्वलाश्च सुमयमा ।

तासा निःश्वसयतेन स्रजत सम्प्रदीपितम् ॥ ९ ॥

अग्निशोषमिवाभाति सनिरुद्धाग्नि पुष्पकम् ।

मुन्दर मध्यभागाली थे सभी मुन्दरियों शोक, दुःख और भयसे जल एवं विह्वल थीं । उन प्री भयम रम नि धात वायुमें यह पुष्पक विमान सब आरसे प्रज्ज्वलित हो रहा था और जिसके भीतर अग्निही स्थानों की गयी हो, उस अग्निहीनगृहके समान जल पड़ता था ॥ ९ ॥

दशम्रीवयदा प्रास्तास्तास्तु शोभानुल त्रिय ॥ १० ॥

दीनचक्रवर्त्तमा श्यामा मृग्य सिंहवशा इव ।

दशम्रीवरा वगमें पड़ी हुई व शोभानुल अग्राएँ

सिंशके पजेमें पड़ी हुई इधियोंके समान दुरती हो रही थी ।

उनके मुख और पैरोंमें दीनता छा रही थी और उन सपरी

अग्राएँ लेश्व वपरा लगभग थीं ॥ १० ॥

काचिधितयती तत्र किं तु मा भययिष्यति ॥ ११ ॥

काचिद् दृष्ट्वीमुदु त्वाना अपिमा मारयेदयम् ।

कोई शोकनी थी, क्या यह राजस मुक्त था जायगा ?

कोई अव्यक्त दुःखने आर्त हा इव चित्तामें पड़ी थी कि

क्या यह निगाह से मार डालेगा ? ॥ ११ ॥

इति मातृ पितृन्मृत्वा भतृन् भ्रातृस्तयेव च ॥ १२ ॥

दुःखशोकसमाविष्ट दिलेपु सहिता त्रिय ।

वे स्त्रियोंमात्रा पिता, भाई तथा पतिरियाँ करके दुःख गारमें डूब जाती और एक साथ करणात्मक विलाप करने लगती थीं ॥ १२ ॥

कथ तु यतु मे पुनो भविष्यति मया दिना ॥ १३ ॥

कथ माता कथ भ्राता निमग्ना शोकसागरे ।

हाथ । मेरे पिता मेरा नरक सा बेग कैसे रहेगा । मेरी

माँकी क्या दशा होगी और मेरे भाई पिता पिता होने

एक गहरा वे गार सागरमें डूब गयी थीं ॥ १३ ॥

हा कथ तु कथिष्यामि भतृन्मृत्वा दिना ॥ १४ ॥

मृत्यो प्रसादयामि त्वा त्व मा तु गमभिनीम् ।

किं तु तद् दुःखन कथ पुन देहान्नर एतम् ॥ १५ ॥

एव स्मृतिता मया कथिता शोकसागर ।

गराविदाओं पदयोमों गन्याम्यात्मनामन ॥ १६ ॥

हाथ । जन्मे गन पति । विदुहर में क्या करोगे ?

(५० ५०) । ६ मुकुट । नदी मथना दे कि शुभ प्रसन्न

हो जाओ और मुझ दुःखियाँ इस लोकसे उठा ले चले ।
हाय ! पूर्व-जन्ममें दूसरे शरीरद्वारा हमने कौन-सा ऐसा पाप
किया था, जिससे हम सब-की सब दुःखमें पीड़ित हो शोकने
समुद्रमें गिर पड़ी हैं । निश्चय ही इस समय हमें अपने इस
दुःखका अन्त होना नहीं दिराया देता ॥ १४-१६ ॥

अहो धिक्शानुय लोष नास्ति खल्वधम पर ।
यद् दुर्बला बलवता भतारो रावणेन न ॥ १७ ॥
सर्वेणोदयता काले नक्षत्राणीन नाशिता ।

‘अहो ! इस मनुष्यलोकके धिकार है ! इससे बढकर
अधम दूसरा कोई लोक नहीं होगा । क्योंकि यहाँ इस बलवान्
रावणने हमारे दुर्बल पतिव्रतोंको उधरी तरह तण कर दिया,
जैसे सर्वदेव उदय होनेके साथ ही नक्षत्रोंको अदृश्य कर
देते हैं ॥ १७-१८ ॥

अहो सुगलन्द रक्षो बधोपायेषु रज्यते ॥ १८ ॥
अहो दुर्वृत्तमास्याय नात्मान वै सुगुप्सते ।

‘अहो ! यह अत्यन्त बलवान् राक्षस बधने उपायोंमें ही
आवृत्त रहता है । अहो ! यह पापी दुष्टाचारके पथपर चल
कर भी अपने आपको धिकारता नहीं है ॥ १८-१९ ॥

सद्यथा सहस्रशतावद् तिमोऽरय दुरात्मन ॥ १९ ॥
इदं त्यसहस्रं कम परद्वाराभिमानम् ।

‘इस दुरात्माना पराक्रम इसकी तपस्याके कर्त्तव्या अनुरूप
है, परन्तु यह परायी स्त्रियों साथ जो मलात्कार कर रहा
है, यह दुःख इसका कौन्य कदापि नहीं है ॥ १९-२० ॥

यस्मादेव परम्यास्तु रमते राक्षसाधम ॥ २० ॥
तस्माद् वै स्त्रीरतेनैव यथ प्राप्स्यति तुमति ।

‘यह नीच निगाचर परायी स्त्रियों साथ रमण करता
है, इसलिये स्त्रीके कारण ही इस दुर्वृत्ति राक्षसका बध होगा ॥

सतीभिरनारीभिरेव यापयेऽभ्युदिरिते ॥ २१ ॥
नेदुर्बु दुभय खस्था पुष्पगृष्टि पपात च ।

उन श्रेष्ठ सती-माघी नारियोंने जब ऐसी बातें कह दीं,
उस समय आनाम देवताओंकी दुःखियों बच उठी और
बहों फूलोंकी बग होने लगी ॥ २१-२२ ॥

शत स्त्रीभिः स तु सम हतौजाइव निष्प्रभ ॥ २२ ॥
पतिव्रताभिः साध्वीभिषभूत विमना इव ।

पतिव्रता सती स्त्रियोंके इस तरह शाप देनेपर रावणकी
शक्ति घट गयी, वह निस्तेज-श हो गया और उसके मनमें
उद्वेग सा होने लगा ॥ २२-२३ ॥

एव विप्रपित तासा शृण्वन् राक्षसपुङ्गव ॥ २३ ॥
प्रविचेद पुरां गद्गा पून्यमागो निद्राचरै ।

इस प्रकार उठकर निद्राप मुने द्रुप रावणमान रावणने
निद्राचरोंद्वारा गद्गा हो लङ्कापुरीमें प्रवेश किया ॥ २३-२४ ॥

पनस्मिन्नन्तर घोरा राक्षसी कामरूपिणी ॥ २४ ॥
सहसा पतिना भूमौ भगिनी गणस्य सा ।

इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली भयंकर
राक्षसी शूरैण्मा, जो रावणकी बहिन थी, सहसा सामने आकर
पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २४-२५ ॥

ता स्वसार समुत्थाप्य रावण परिसान्त्वयन् ॥ २५ ॥
अग्रगीत्कमिदं भद्रे वषतुकामासि माद्रुतम् ।

रावणने अपनी उस बहिनको उठाकर सात्वता दी और
पूछा—‘भद्रे ! तुम अभी मुझसे शीघ्रतापूर्वक कौन-सी बात
कहना चाहती थी ? ॥ २५-२६ ॥

सा याप्यपरिक्रान्तास्त्री रक्तान्पी वाक्यमग्रवीत् ॥ २६ ॥
हृतासि विधवा राजस्त्वया बलवता बलात् ।

‘गूँगलाने नेत्रोंमें आँसू मरे थे, उसकी आँखें रोते रोते
लाल हो गयी थीं । वह बोली—‘राजन् ! तुम बलवान् हो,
इसीलिये न तुमने मुझे बलपूर्वक विधवा बना दिया है ? ॥

पते राजस्त्वया वीयाद् दैत्या विनिहता रणे ॥ २७ ॥
कालकेया इति ख्याता सहस्राणि चतुर्दश ।

‘राक्षसराज ! तुमने राणभूमिमें अपने बल-पराक्रमसे चौदह
हजार कालकेय नामक दैत्योंका बध कर दिया है ॥ २७-२८ ॥
प्राणेभ्योऽपि गरीयान् मे तत्र भता महाबल ॥ २८ ॥

सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगन्धिना ।
‘तात ! उन्होंने मेरे लिये प्राणोंसे भी बढकर आदरणीय

मेरे महाबली पति भी थे । तुमने उन्हें भी मार डाला । तुम
नाममानक भाई हो । वास्तवमें मेरे शत्रु निकले ॥ २८-२९ ॥

त्वयासि निहता राजन् स्वयमेव हि वञ्चुना ॥ २९ ॥
राजन् वैधर्म्यशब्दं च भोक्ष्यामि त्वद्वृत्तद्वहम् ।

‘राजन् ! सगे भाई होकर भी तुमने स्वयं ही अपने हाथों
भय (मेरे पतिदेवता) बध कर डाला । अब तुम्हारे कारण
मैं ‘वैधर्म्य’ शब्दका उपभोग करूँगी—विधवा कहलाऊँगी ॥

ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेऽपि ॥ ३० ॥
स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जते ।

‘भैया ! तुम मेरे पिताके तुल्य हो । मेरे पति तुम्हारे
दामाद थे, क्या तुम्हें युद्धमें अपने दामाद या बहनोईकी भी
रक्षा नहीं करनी चाहिये थी ? तुमने स्वयं ही युद्धमें अपने

दामादका बध किया है ? क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं
आती ? ॥ ३०-३१ ॥

एवमुक्त्वा दशमीवो भगिन्या प्रोशमानया ॥ ३१ ॥
अग्रवीत् सान्त्वयित्वा ता सामपूवमिव धृचः ।

रात्री और कोधनी हुई बहिन ने ऐसा कहनेपर दशमीवने
उसे सान्त्वना देकर समानाने हुए मधुर वाणीमें कहा—
‘अहो धृत्ते इदित्या त ग मोध्य च सयश ॥ ३२ ॥

दानमानप्रसादैस्त्या शोपयिष्यामि यन्तत ।
‘भेनी ! अब थोड़ा व्यथ हो, तुम्हें किसी तरह मरती नहीं
होना चाहिये । मैं दान, मान और अनुग्रहद्वारा बलपूर्वक
तुम्हें मृत्यु करूँगा ॥ ३२-३३ ॥

महमाख्यामि ते राजश्च्युता सत्यमेव तत् ।

यज्ञान्ते सप्त पुत्रेण प्राप्तास्ते बहुविक्तरा ॥ ७ ॥

पञ्च । मैं सप्त बातें बता रहा हूँ, प्यान देकर मुनिये—आपके पुत्रने वड़े यिस्तारके साथ सात यशोंका अनुदान किया है ॥ ७ ॥

अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णक ।

राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥ ८ ॥

माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुंभि सुदुर्लभे ।

धरास्ते लब्धवान् पुनः साक्षात् पशुपतेरिह ॥ ९ ॥

अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव—ये छ यज्ञ पूज करके जब इन्हने सातवों माहेश्वर यज्ञ, जिसका अनुदान दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, आरम्भ किया, तब आपके इस पुत्रको साक्षात् भगवान् पशुपतिसे बहुत से वर प्राप्त हुए ॥ ८ ॥

कामग स्यान्वन् दिव्यमन्तरिक्षचर ध्रुवम् ।

माया च नामर्त्ता नाम यथा सम्पद्यते तम ॥ १० ॥

साथ ही इच्छानुसार चरनेवाला एक दिव्य आवाय चारी रथ भी प्राप्त हुआ है, इसके भिन्न तामसी नामकी माया उत्पन्न हुई है, जिससे अधरार उत्पन्निया जाता है ॥ १० ॥

एतया किल सत्रामे मायया राक्षसेश्वर ।

प्रयुक्तया गति शक्त्या नदि क्षातु सुरासुरै ॥ ११ ॥

राक्षसेश्वर । सत्रामें इस मायाका प्रयोग करनेपर देवता और असुरोंको भी प्रयोग करनेवाले पुरुषकी गतिविधिका पता नहीं लग सकता ॥ ११ ॥

अन्याविपुर्ध्वं गणैश्चाप चापि सुदुजयम् ।

अत्र च धलवद् राजन्नुद्विग्नस्रज रणे ॥ १२ ॥

राजन् । गणोंसे भरे हुए दो अश्व तरबज, अद्वैत धनुष तथा रणमूमिम गनुका निष्क करनेवाला प्रबल अस्त्र—इन सबकी प्राप्ति हुई है ॥ १२ ॥

पतान् सजान् वरौहज पुत्रस्तेऽय वृक्षानन ।

अथ यज्ञसमाप्तौ च त्वा दिदक्षन् स्थितो ह्यहम् ॥ १३ ॥

वृक्षान । वृक्षात यह पुत्र इन सभी मनोमन्त्रित वृक्षोंको फाड़ आब वधरी समाप्तिने दिन स्थिर दानकी इच्छाने यहाँ खड़ा है ॥ १३ ॥

ततोऽग्रसीद् दशग्रीवो न क्षोभनमिदं हृतम् ।

पूजिता शत्रयो यस्माद् द्रव्यैरिन्द्रपुत्रेणमा ॥ १४ ॥

यह सुगुप्त दशग्रीवने बना— बैरा । तुमने यह अच्छा नहीं किया है क्योंकि इस यज्ञमन्त्रकी द्रव्योंद्वारा भरे धनु मूल इन्द्र अग्नि देवताओंका पुजन हुआ है ॥ १४ ॥

परीक्षार्त्ता ह्यन यदि मुञ्चत तप सशयः ।

आगच्छ सौम्य गच्छाम अमेय भवत प्रति ॥ १५ ॥

अनु । जो वर दिया, सो अच्छा ही दिया इसमें शय्य नहीं है । सौम्य । अग आओ चलो । हमलोग अपने घरका चले ॥ १५ ॥

ततो गत्वा दशग्रीव सपुत्र सविभीषण ।

स्त्रियोऽन्तारयामास सथास्ता याप्पगद्रदा ॥ १६ ॥

तदनन्तर दशग्रीवने अपने पुत्र और विभीषणने साथ जाकर पुष्पक विमानसे उन सब स्त्रियोंका उतारा, जिन्हें हरकर छे आया था । वे अब भी आँसू बहाती हुई गद्गदकण्ठसे विलाप कर रही थीं ॥ १६ ॥

लक्ष्मिन्यो रत्नमूलाश्च देवदातारक्षसाम् ।

तस्य वासुमतिश्चात्वा धर्मात्मा पाक्यमग्रवीत् ॥ १७ ॥

ये उत्तम लक्ष्मणोंसे सुशोभित होती थीं और देवताओं, दान्यों तथा राक्षसोंके वरकी रत्न थीं । उनमें रावणकी आशक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषणने रहा— ॥ १७ ॥

इददीस्व समाचारैर्यशोऽयकुलाशानै ।

धर्पण प्राणिना ज्ञात्वा स्वमनेन जिघेष्टे ॥ १८ ॥

राजन् । ये आचरण यग, धन और कुलका नाश करनेवाले हैं । इनके द्वारा जो प्राणियोंको पीड़ा दी जाती है, उससे बड़ा पाप होता है । इस बातसे जानते हुए भी आप सदाचारका उल्लंघन करके स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो रहे हैं ॥ १८ ॥

शार्वास्तान् धर्पयित्वेमारजयाऽऽनीता धराङ्गना ।

त्वामतिगम्य मधुना राजन् कुम्भीनसी हृता ॥ १९ ॥

महाराज । इन बेचारी अयलओंके बहुधा चर्चोंसे मार कर आर इन्हें हर लाय हैं और इधर आपका उल्लंघन करके— आपका विरपर लज रत्नकर मधुने मौसेरी सहित कुम्भीनकी वर अपहरण कर लिया है ॥ १९ ॥

रावणस्त्वग्रजोऽयस्य गगनच्छामि पि चिरम् ।

कोऽय यस्तु त्वयाऽऽकृपातो मधुरित्येन नामत ॥ २० ॥

रावण बाला— मैं तर्क समझता कि तुम क्या कह रहे हो । जिसका नाम तुमने मधु बताया है, वह कौन है ? ॥ २० ॥

विभीषणस्तु सगृहो भ्राता वाक्यमग्रयात् ।

श्रूयतामस्य पापस्य क्षमण कलमागतम् ॥ २१ ॥

तब विभीषणने अत्यन्त कुपित होकर भाई रावणसे कहा— मुनिये, आपने इस पापमेंका कल हमें शक्तिने अपहरणके रूपमें प्राप्त हुआ है ॥ २१ ॥

मातामहस्य योऽस्माक ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः ।

माल्यवानिति विख्यातो घृष्ट भ्रात्रो निशाचर ॥ २२ ॥

पिता ज्येष्ठो जनन्या नो हास्यः चायनोऽभवत् ।

तस्य कुम्भीनसी नाम दृष्टितुदृष्टिताभयम् ॥ २३ ॥

माहृत्सुरयासाक सा च ध्यानलोठ्या ।

अत्यस्यस्यमयैवा भानुणा यमन मरता ॥ २४ ॥

हमारे नाना गुणालीक जो बड़े भाई माच्यवान् नामसे विख्यात, बुद्धिमान् और सच्चे भिन्नार हैं वे हमारी माना वैकृतीक लाऊ हैं । इसी बात व हमणोंके भी यह नाना हैं । उनकी पुत्री यमन हमारी गोभी हैं । उनकी पुत्री

कुम्भीनहा दे । हमार मोहा अनगही रेगे हनेते ही यह कुम्भी
नमी हम सग भाइयो की धमन बनि होती है ॥ २२-२४ ॥
सा हना मधुना राचन् राक्षसेन बलायसा ।
यगप्रवृत्ते पुष्टे तु मयि पान्तनलोचि ॥ २० ॥
कुम्भकर्णो महाराज निद्रामनुभवत्यथ ।
निहत्य राक्षसप्रेष्ठानिमान्यानिह सम्मताम् ॥ २६ ॥

पावन् । आरस पुष्ट मेरनाद बर यज्ञे तत्पर हा
गया, मैं तत्पर लिय पानीन भीतर रहने लगा और
महाराज । मेरा कुम्भकर्ण भी जब नंदका अनन्द लेने
लगे, उस समय महाराज राक्षस मधुने यहाँ आकर हमारे
आदराधीन भविष्यका, जो राज्योंमें भेद थे, मार डाला और
कुम्भीनदीसा अग्रहरण कर लिया ॥ २५-२६ ॥

धरयित्वा हना सा तु गुनाप्यन्त पुरे तप ।
धुन्यापि तमहाराज क्षान्तमेव हतो न स ॥ २७ ॥
यसाद्यदय दान्तया कन्या भर्षे हि भ्रातृभि ।

महाराज । यद्यपि कुम्भीनदी अन्त पुरमें भलीभाँति
सुखित थी तो भी उसने आक्रमण करके बर्तुनके उरुछ
अपहरण किया । पीछे इस घटनाके सुनकर भी हमलोगोंने
समा ही की । ननुका यथ नहीं किया क्योंकि जब कन्या
बिनाहक यन्त्र हा कर तो उसे किसी यन्त्र पतिन हायमें
लौन दना हा उचिता है । हम भाइयोंका जन्म यह कार्य
पहले कर देना चाहिय था ॥ २७ ॥

तदेतत् क्षमणो हार्य पर पापस्य दुमत ॥ २८ ॥
अस्मिन्नेवाभिसम्प्राप्त लोके त्रितिमस्तु ते ।

हमार यहति जो बर्तुनके कन्याका अग्रहरण हुआ है,
यह आपकी हम क्षुति बुद्धि पर पापक्षमा फल है, जो
आपका इसी लोके प्राप्त हो गया । यह बात आपका भली
भाँति विदित हा जानी चाहिय ॥ २८ ॥

विभीषणवप धुन्या राजमेन्द्र स राजन ॥ २९ ॥
दौरान्येनामनादुत्तुलताम्भा इय सागर ।

ततोऽग्ररीद् दशप्रति मुन्द्र सरस्वलोचन ॥ ३० ॥
विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसचक्र राजन अपनी
भी हुर दुष्टाने पीठित हा तब हुए जगत्त ममुद्रक समान
चक्र हा उठा । वह राजने जन्म लगा और उसन नेत्र लाल
हा गर । व चक्र— ॥ २९-३० ॥

कन्यता मे रथ शास्त्रा ग्रा मज्जाभरतु न ।
भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुरया निद्रागरा ॥ ३१ ॥
पादनायविगाहन्तु नानाप्रहरणायुधा ।
अथ त्व समरे हत्वा मधु राजनिभयम् ॥ ३२ ॥
सुरलोच गमिष्यामि युदाय ह्ये सुहृद्वृत ।

अथ रथ ईष्य हा जलकर अरुण मन्मथीने मुखजित
कर पिया जय । मेरे शरीर ऐनिक राक्षसाक लिये तैयार
हो चर्य । मैं कुम्भकर्ण तथा अन्य सुल्ल-सुल्ल निघाचर

नाना प्रहरने अथ यज्ञाने मुखजित हा सरसिपर बैठे ।
आज राक्षस मधु न माननेका मधुका समग्रानमें यथ
करन मित्रोंका साथ लिय युद्धकी इच्छाने देगल्लकी याथा
कर्मका ॥ ३१-३२ ॥

अशौहिणीसहस्राणि त्रयायन्याणि रणसाम् ॥ ३३ ॥
नानाप्रहरणान्यानु निययुद्धकाह्णिणाम् ।

राजकी आनन युद्धमें उल्लाह रचनेका भेद राक्षसोंकी
चार हजार अशौहिणी सेना नाना प्रकारके अथ सन्न लिये
श्रीम लङ्घने बाहर निकली ॥ ३३ ॥

इन्द्रजित् त्वप्रत सैन्यात् सैनिकान् परिगृह्य च ॥ ३४ ॥
जगाम राजणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठत ।

मेरनाद समन सैनिकोंको साथ लेकर मेरनाक आगे आगे
चला । राजन बीचमें था और कुम्भकर्ण पीछे-पाछ चलने
लगा ॥ ३४ ॥

विभीषणश्च धमात्मा लङ्काया धममाचरन् ॥ ३५ ॥
दोषा सर्वे महाभागा ययुमधुपुर प्रति ।

विभीषण धमात्मा थे । इसलिये व लङ्कामें ही रहकर
धर्मका आचरण करने लगे । शेर सभी महाभागा निघाचर
मधुपुरकी ओर चले दिये ॥ ३५ ॥

खरेष्टेष्टैर्हयैर्दात सिगुमारैर्महोग्नी ॥ ३६ ॥
राजसा प्रययु सर्वे ह्यन्वाऽऽकाश निरन्तरम् ।

गदहे ऊँ, पाई, सिगुमार (हँस) और बड़-बड़े
नाग आदि दीतिनाग वाहनोंपर अरुण हा सब राक्षस
आकाशका अग्रसर रहित करत हुए चले ॥ ३६ ॥

दैत्याश्च शानशास्त्र एतरोराध दैवतै ॥ ३७ ॥
राजण प्रथय गच्छन्तमन्यथा छन्द हि पृष्ठत ।

राक्षस देवराज आक्रमण करत दम्य तैयों दैत्य
भी उबर पीछे पाछ चले, बिना देवताओंका साथ चले चले
गया था ॥ ३७ ॥

स तु गत्वा मधुपुर प्रविश्य च दशानन ॥ ३८ ॥
न ददता मधु तत्र भिनीं तत्र दृष्टान् ।

मधुपुरमें पहुँचकर दशकुप राजने यहाँ कुम्भीनदीका
तो देता किंतु मधुका दान ठगे नहीं हुआ ॥ ८ ॥
सा च प्रह्लादलिमूया निरमा जरणौ गता ॥ ३९ ॥
तस्य राक्षसराजस्य त्रन्ना कुम्भीनमी तदा ।

उस समय कुम्भीनदीमें मरपीन हा हाथ बँडकर
राक्षसचक्र चरनेपर मन्मथ रच पिया ॥ ३९ ॥

ता समुधापयामास न मेतयमिति मुयन् ॥ ४० ॥
राजणो राजमधेष्ट किं जापि कन्याणि ते ।

तब राक्षसराज राजने कहा—एक मन फिर उठने
कुम्भीनदीका उरुका और कहा— मैं तुम्हारा बहन-का पिय
कर्य करूँ ॥ ४० ॥

साग्ररीद् यदि मे राजन् प्रसन्नस्य महाभुज ॥ ४१ ॥

भतार न ममेहाद्य हतुमर्हसि मानद ।
नहीदहा भय किंचित् कुलस्त्रीणामिहोच्यते ॥ ४७ ॥
भयानामपि सर्वेषा वैधव्य व्यसन महत् ।

वह बोली—दूधरौको मान देनेवाले राक्षसराज ।
महाबाह । यदि आप दुसपर प्रसन्न हैं तो आज यहाँ मेरे
पतिका यप न कीजिये क्योंकि कुतवधुओंके लिये वैधव्य
समान दूसरा कोई मय नहीं बताया जाता है । वैधव्य ही
नारीके लिये सबसे बड़ा मय और सबसे महान् दुःख है ॥ ४७ ॥
सत्ययाम् भव राजेद्रामयेक्ष्मन् वाचतीम् ॥ ४८ ॥
त्वयान्युच महाराज न मेतयमिति स्वयम् ।

राजेन्द्र ! आप सत्यवाणी हैं—अपनी बात सची करें ।
मैं आपने पतिन कोचनकी मील मँगली हूँ; आप मुझ दुःखिया
महिनकी अर देजिये; मुझपर कृपा काजिये । महाराज ।
आपने स्वयं भी मुझे आश्वसन देते हुए कहा था कि 'हरो
मत ।' अतः अपनी उठी बातकी लाग ररिये ॥ ४८ ॥

रावणस्त्रग्रनीदृष्टु स्वसार तत्र सस्थिताम् ॥ ४९ ॥
ह चानी ता भता ये मम क्षीम निजेषताम् ।
सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयाय हि ॥ ५० ॥

वह सुनकर रावण प्रसन्न हो गया । वह वहीं खड़ी हुई
अपनी महिनसे बोला—'तुम्हारे पति यहाँ हैं । उन्हें क्षीम
मुझे दीज दो । मैं उन्हें साथ लेकर देवलोकपर विजयके
लक्ष्मी ॥ ४९ ॥

तत्र कारुण्यसीहादाम्निवृत्तोऽस्मि मधोपधात् ।
इत्युक्ता सा समुत्पान्य प्रसुप्त त निशाग्रम् ॥ ५१ ॥
अग्रवीत् सम्प्रहृष्टेय राक्षसी सा पति वच ।

'तुम्हारे प्रति कृपा और सीहादव्य कारण मैंने मनु
ब्रह्मा विचार छोड़ दिया है ।' रावणक ऐसा करनेपर गहस
कम्पा दुग्मीनकी अत्यन्त प्रसन्नगी होकर अपने धन्ये हुए
पतिन पास गयी और उस निशाचरका उठाकर बोली—५१३
एव प्राप्ता दशमीने मम भ्राता महाबल ॥ ५२ ॥

इत्यर्थे धीमत्पमायने यास्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्ड पर्वणि सप्तः ॥ २५ ॥

इत प्रकाश श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टादशस्कन्ध आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पर्वणितो सप्तः पूरा हुआ ॥ २५ ॥

पड़विंश सर्ग

रावणका रम्भापर बलात्कार करना और नलहृवरका रावणको भयकर शाप देना

स तु तत्र दशमीय सह संन्येन वीरयान् ।
अस्त प्राप्ते दिनकरे निशास समरोचयत् ॥ १ ॥

वह सूर्य अस्तावलीको चले गया; तब पराक्रमी दशमीने
अपनी सनाक साथ कैलशपर ही रातमें दहर बना ठीक
कमता ॥ १ ॥

वदिते धिमले धन्ने तुल्यपर्वतवर्चसि ।
प्रसुप्तं सुमहत् सैन्यं नानाप्रहरणयुधम् ॥ २ ॥

सुरलोकजयाकाङ्क्षी साहाय्ये त्वा घृणोति च ।
तदस्य त्व सहायार्थं साधुर्गच्छ रात्रस ॥ ४८ ॥

प्रसन्नप्रसर । य मेरे भाई महाबली दशमीय पक्षी है
और देवलोकपर विजय पानेकी इच्छा लेकर यहाँ जा रहे
हैं । इस कार्यन लिये ये आपको भी सहायक बनाना चाहते
हैं अतः आप अपने यथु थापनाके साथ इनकी सहायताके
लिय जाइये ॥ ४८ ॥

स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्णय करिषुतम् ।
तस्यास्तद यवन ध्रुत्वा तदव्याह मधुर्वच ॥ ४९ ॥

'मेरे नाते आपपर इनका स्नेह है; आपकी आज्ञाता मान
कर ये आपपर प्रति अनुराग रखते हैं, अतः आपका इनके
कार्यकी सिद्धि लिये अब य सहायता करनी चाहिये ।'
पत्नीनी यह बात सुनकर मधुने 'तथास्तु' कहकर सहायता
देना स्वीकार कर लिया ॥ ४९ ॥

दश राक्षसश्रेष्ठ यथावायमुपेत्य स ।
पूजयामास धमेण रावण राक्षसाधिपम् ॥ ५० ॥

फिर वह 'यथाचित्' रीतसे निकट जाकर निशाचर
नियोगण राक्षसराज रावणसे मिला । मिलकर उद्यन बर्मेके
अनुसार उसका स्वागत स्कार किया ॥ ५० ॥

प्राप्य पूजा दशमीने मधुवेशमनि वीरवान् ।
तत्र चैका निशामुप्य गमनायोपचमने ॥ ५१ ॥

मधुके भवनम योचित आदर स्कार पाकर पराक्रमी
दशमीय यहाँ एक रात रहा; फिर सबेरे उठकर यहाँसे जानेकी
उद्यन हुआ ॥ ५१ ॥

तत कैलासमासाद्य शैलं वैभ्रजगालपम् ।
राक्षसेन्द्रा महेन्द्राभ सेनामुपनिवेशयत् ॥ ५२ ॥

मधुपुरसे यात्रा करके महेन्द्रक उच्च पराक्रमी राक्षसराज
रावण साथ-साथक कुनरक निवात स्थान कैलास पर्वतपर जा
पहुँचा । वहाँ उद्यने अपनी सेनाका पड़ाव कालनेका विचार
किया ॥ ५२ ॥

इत्यर्थे धीमत्पमायने यास्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्ड पर्वणि सप्तः ॥ २५ ॥

इत प्रकाश श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टादशस्कन्ध आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पर्वणितो सप्तः पूरा हुआ ॥ २५ ॥

पड़विंश सर्ग

रावणका रम्भापर बलात्कार करना और नलहृवरका रावणको भयकर शाप देना

स तु तत्र दशमीय सह संन्येन वीरयान् ।
अस्त प्राप्ते दिनकरे निशास समरोचयत् ॥ १ ॥

वह सूर्य अस्तावलीको चले गया; तब पराक्रमी दशमीने
अपनी सनाक साथ कैलशपर ही रातमें दहर बना ठीक
कमता ॥ १ ॥

वदिते धिमले धन्ने तुल्यपर्वतवर्चसि ।
प्रसुप्तं सुमहत् सैन्यं नानाप्रहरणयुधम् ॥ २ ॥

(उद्यन यहाँ छायानी बाल दो) फिर, कैलाशक ही
समान पर्वत कान्तिबाल निर्माण चन्द्रदेवका उदय हुआ और
नाना प्रकारके अस्त्र धनोसे सुसजित निशाचरोंकी वह विशाल
सेना गाढ निद्रामें निमग्न हो गयी ॥ २ ॥

रावणस्तु महावीर्यो निपण्णः शैलमधुनि ।
स दश गुणांस्तत्र चन्द्रपादपद्मभित्तम् ॥ ३ ॥
परम महोपक्रमी रावण उस पर्वतके चितारपर सुपचाप

वैडकर चन्द्रमाकी चोनीसे सुशोभित हानेवाले उस पर्वतके
निम्न स्थानोंकी (जो सम्पूर्ण कामयोग्य उपयुक्त थे)
नैऋतिक छटा निगारने लगा ॥ ३ ॥

कर्णिकारपनैर्दांति कदम्बवकुलैस्तथा ।
पद्मिनीभिश्च कुन्दाभिमन्दकिन्त्या जलैरपि ॥ ४ ॥
चम्पकारोऽपुनागमन्दारतरुभिस्तथा ।
चूतपाटलशोधैश्च प्रियङ्गुयुनयेतके ॥ ५ ॥
सगरैर्नारिकेलैश्च प्रियालपनसैस्तथा ।
एनैरन्यैश्च तरुभिश्च सितवनान्तरे ॥ ६ ॥

कहीं कनेरे दो सिमान् कानन गोपा पाते थे, कहीं कदम्ब
और बकुल (मोलसिरी) वृक्षोंके समूह अपनी रमणीयता
विशेष रहे थे, कहीं मन्दारकिनीके जलसे भने हुई और प्रकुल
कमलोंमें अलङ्कृत पुष्करिणियोंमें घोमा दे रही थीं, कहीं चम्पा,
अशोक, पुनाग (नागचक्र), मदार आम, पाइर, लेव,
प्रियङ्गु, अनुन, वतक, सगर, नारियल, प्रियाल और पनस
आदि वृक्ष अपने पुष्प आदिकी गोमाले उस पर्यंत गिरकर
कम्पमान्तका उल्लासित कर रहे थे ॥ ४—६ ॥

किंनरा मन्वेनाता रक्षा मधुरकण्ठिन ।
सम सम्प्रजगुषप्र मनस्तुष्टिधिषधनम् ॥ ७ ॥
मधुर कण्ठका कामान् किरर अपनी कामिनीयोंके साथ
घरों वागयुक्त गीत गा रहे थे, ओ कानोंमें पड़कर मनका
आनन्द-वशन करते थे ॥ ७ ॥

विद्याधरा मन्दशीषा मन्दरचान्तलोचना ।
योनिनि सह सदाताधिप्रीदुज्जुषुष वै ॥ ८ ॥
जिनके नेत्र शान्त मन्मेरे कुछ लाल हो गये थे, वे मन्द
मन विद्याधर युगतिगौर साथ शौच करते और हृषमन्म
हाने ॥ ८ ॥

घण्टानामिष सनाद शुभ्रये मधुरम्वन ।
अम्बरगेणसद्धाना गायता धनदालये ॥ ९ ॥
कहानि सुश्रेष्ठ मन्ममें गान्नी हुई अम्बरगोंके गीतकी
मधुर ध्वनि कानान्तर समान सुनानी पड़ती थी ॥ ९ ॥
पुष्पशराणि मुञ्चन्तो नगा पवननाडिता ।
दाह त आस्यन्तीय मधुमाधयमाग्नि ॥ १० ॥
कान्त श्रुतने गभी पुष्पोंकी मन्ममें सुष्ठ शृङ्खल
पड़े घावर फूलोंकी शरा करते हुए उस समूह पातक
मुक्तिन का रहे ॥ १० ॥

मधुपुष्पशराणा गन्धमागय पुष्कलम् ।
प्रप्री यधान काम रागणस्य सुशोभित ॥ ११ ॥
विशिष्ट सुसुन्दर मधुर मन्दर तथा पशवने मिश्रित
मधुर सुन्दर सरर मन्दर गान्नी हुई सुन्दर वायु रागण
की काम कामनाका वन रही थी ॥ ११ ॥
गोपाद् पुष्पसमृद्ध्या च दीन्याद् वायोमिरिगुणात् ।
मधुपाया रज्ज्या च घञ्ज्योदयनेन च ॥ १२ ॥

रागण स महारिष्य कामस्य यशमागत ।
मिनि भवस्य मिनि भवस्य दादिन समरैक्षत ॥ १३ ॥
चन्द्रोत्तरी मीठी तान, भौति भौतिक पुष्पोंकी समृद्धि,
गीतल वायुका स्पर्श, पर्यन्ते (रमणीयता आदि) आनन्द
गुण, रज्जुकी मनुवेण और चन्द्रमाका उदय—उद्दीपनने
इन सभी उपकरणों कारण वह महापराक्रमी रागण कामर
अपीन हो गया और बारंबार लकी बाँध खींचकर चन्द्रमारी
और देखने लगा ॥ १०-१३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्याभरणभूयिता ।
सधापनरोपरा रम्भा पूर्णान्द्रनिभानना ॥ १४ ॥
इसी बीचमें ममस्त अन्धकारोंमें भेड़ सुन्दरी, पूज चन्द्र
मुखी रम्भा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो उस भागम
आ निकली ॥ १४ ॥

दिव्यान्द्रनिभानना मदारवृक्षमूषजा ।
दिव्योत्सवटनारम्भा दिव्यपुष्पभूयिता ॥ १५ ॥
उत्तर अर्द्धमें दिव्य चन्दनका अनुलप लगा था और
केशाधाममें परिजानर पुष्प हुँये हुए थे । दिव्य पुष्पोंमें
अयना शृङ्गार करन वह प्रिय समागमरूप निय उत्तमरूप निय
आ रही थी ॥ १५ ॥

चभुमनोहर पीन मेखलादामभूयिता ।
ममुद्रहन्ती जगत् रत्तिप्राभूतमुषमम् ॥ १६ ॥
मन्दर नेत्र तथा काञ्चीकी लङ्घिनीसे निर्भूयित पीन
जगत्-राजनी का रत्तिर रत्तम उपहारने रूपमें धारण किया
हुए थी ॥ १६ ॥

एनैर्विनेयैर्गर्गैः पद्मतुलुमुनैः ।
सभायन्त्यमेव र्थी कान्तिदीपुतिकीर्तिभि ॥ १७ ॥
उत्तर रात्र आन्तर हरिकण्ठनेत्र निशर-रत्न की गयी
थी । वह लहो श्रुतओंमें हानेवाला नूतन पुष्पोंर आङ्ग हारोंमें
निभूयित थी और अपनी अमौक्तिक कान्ति, गोमा, सुनि एव
कीर्तिमें सुख हो उस समय दूसरी लक्ष्मीक समान जान
पड़ती थी ॥ १७ ॥

नाल सनोपमेघाभ वरुण समग्रमुण्डिता ।
यस्या वरुण शशितिभ भुवी चापनिभे तुमे ॥ १८ ॥
उत्तरा सुन चन्द्रमाका समान मन्दर या और दानों
मुन्दर ओह कला भी निभाती गती थी । वह सङ्ग लम्पर
फ गमान नीच रक्षी साहोमे अपने अर्द्धोंके दक
हुए थी ॥ १८ ॥

ऊरु कणिराकाशरी करी पद्मवकामरी ।
मैत्र्यमर्षेण गान्दुली रावणेनोपलङ्गिता ॥ १९ ॥
ऊरवी चोपेण रात्र रात्र दानवी मुँहक मन्ना ग ।
दानों हाथ में कान्ति था, माना (देवकी रत्नकी दाना)
गोपद पत्तन हो । घा सेनाक बीच दकर न रहे की
आ रात्र । उगे देख लिया ॥ १९ ॥

ता समुत्थाय गच्छन्ती कामयागज्ज्ञा गत ।
 करे गृहीत्वा लज्जन्ती सपमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥
 देखते ही वह कामदेवके बाणोंका शिकार हो गया और
 लड़ा होकर उसने अन्यत्र जाती हुई रम्भाका हाथ पकड़
 लिया । तेजारी अबला लाजसे गड़ गयी परन्तु वह निशाचर
 मुहकुरता हुआ उसके बोला— ॥ २० ॥
 ए गच्छसि धरारोहे का सिद्धि भजसे स्वयम् ।
 कस्याभ्युद्यकालोऽयं यस्तत्रा समुपभोक्ष्यते ॥ २१ ॥
 'बरादा ! कहाँ जा रही हो ? तिमकी इच्छा पूरा करनेके
 लिये स्वयं चल पड़ी हो ? किन्तु भाग्योत्पत्त्या समय आया
 है, जो तुम्हाय उपभोग करेगा ? ॥ २१ ॥
 त्वद्दाननरसस्याद्य पशोत्पलसुगन्धिन ।
 सुधानृतसस्वेयं कोऽयं दृष्टिं गमिष्यति ॥ २२ ॥
 'कमल और उत्पलकी सुगन्ध धारण करनेवाले तुम्हारे
 इस मनोहर सुगन्धविन्दका रस अमृतका भी अमृत है । आ
 इस अमृत रसका आस्वादन कर के कौन तृप्त होगा ? ॥ २२ ॥
 स्वर्णकुम्भनिभी पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरी ।
 कस्योर स्थलसस्पशं दास्यतस्ते कुचापिमी ॥ २३ ॥
 'भीरु ! परस्पर छे हुए तुम्हारे य सुवर्णमय कलशोंक
 सदृश सुन्दर पीन उरोज किन्तु वक्षस्वलोका अपना स्वर्ण
 प्रदान करेंगे ॥ २३ ॥
 सुवर्णचक्रप्रतिम स्वर्णदामचित पृष्ठ ।
 अघ्यारोक्ष्यति कस्तेऽयं जघन स्वगुरुणिगम् ॥ २४ ॥
 'छेनेकी लङ्घिवासे निभूषित तथा सुवर्णमय चक्रर समान
 विपुल विस्तारसे युक्त दुग्धार पीन जघनस्थलपर जो मूर्ति
 मान्स्वर्ग जा जान पड़ता है, आज कौन आरोहण करेगा ? ॥ २४ ॥
 नहिदिष्ट पुमान् कोऽयं शत्रो विष्णुर गन्धिनौ ।
 मामतीत्य हि यच्च त्व यासि भीरु न शोभनम् ॥ २५ ॥
 'इन्द्र, उदेन्द्र अथवा अश्विनीकुमार ही क्यों न हों,
 ॥ समय कौन पुरुष मुझसे बढकर है ? भीरु ! तुम मुझे
 छोड़कर अन्यत्र जा रही हो, यह अच्छा नहीं है ॥ २५ ॥
 विश्रम त्वं प्रयुधोणि शिलातलमिदं शुभम् ।
 शैलेकपे यं प्रमुञ्चैव मदन्वो नैव निघते ॥ २६ ॥
 'रत्नल नितम्बवाली मुन्दरी ! यह सुन्दर शिला है, इस-
 पर बैठकर विश्राम करो । इस शिबुवनराज आ स्वामी है, यह
 मुझसे भिन्न नहीं है—मेरी मण्डूक लोकोन अधिपति है ॥ २६ ॥
 तदेव प्राञ्जलिं प्रदो याचते त्वा ददायान ।
 भुजुभता जिघाता च शैलेकपेयस्य भजस्व माम् ॥ २७ ॥
 'भीनौ हारोण स्वामीका भी स्वामी तथा विघाता यह
 दशमुख राजन आज इस प्रकार विनीतभावसे हाथ जोड़कर
 तुमसे प्रार्थना करता है । मुन्दरी ! मुझे स्वीकार करो ॥ २७ ॥
 एवमुक्ताश्र्वीद् रम्भा धेपमाना घृताञ्जलिं ।
 प्रसीद नदस्ते घकुमीदृश त्व हि मे गुरु ॥ २८ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर रम्भा काँप उठी और हाथ जोड़
 कर बोली—प्रभो ! प्रसन्न होइये—मुझपर कृपा कीजिय ।
 आपको एसी बात सुनने नहीं निकालनी चाहिये, क्योंकि आप
 मेरे गुरुजन हैं—पिताने तुल्य हैं ॥ २८ ॥
 अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुया धयण यदि ।
 तद्वगत स्नुया तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥
 'यदि दूसरे कोई पुरुष मेरा निरस्कार करनेपर उतारू हों
 तो उनसे भी आपको मरी रक्षा करनी चाहिये । मैं धर्मत
 आपकी पुत्रवधू हूँ—यह आपसे सचो बात बता रही हूँ ॥
 अयाश्र्वीद् दशम्रीश्वरणाधोमुखीं स्थिताम् ।
 रोमहर्षमनुप्राप्ता दृष्टमात्रेण ता तदा ॥ ३० ॥
 रम्भा अपने चरणोंकी ओर देखती हुई नीचे मुँह किए
 खड़ी थी । रावणकी दृष्टि पड़नमात्रसे भयङ्क कारण उसके
 रोंग खड़ा हो गय थे । उस समय उसने रावणने कहा— ॥ ३० ॥
 सुतस्य यदि मे भार्या तत्त्वस्य हि स्नुया भवे ।
 वादमित्येयं सा रम्भा प्राह राजनमुत्तरम् ॥ ३१ ॥
 'रम्भा ! यदि यह सिद्ध हो जाय कि तुम मेरे बेटीकी बहू
 हो, तभी मेरी पुत्र वधू हो सकती हो, अन्यथा नहीं ।' तब
 रम्भाने 'बहुत अच्छा' कहकर रावणको इस प्रकार उत्तर
 दिया— ॥ ३१ ॥
 धर्मतस्ते सुतस्याह भार्या रामस्तपुङ्गव ।
 पुत्र प्रियतर प्राणैर्धौतुर्धैर्यप्रयणस्य ते ॥ ३२ ॥
 'राक्षसनिरोधने ! धर्मसे अनुसार मैं आपसे पुत्रकी
 ही भार्या हूँ । आपसे बड़े भाई कुन्तेर पुत्र मुझे प्राणोंसे
 भी बढकर प्रिय हैं ॥ ३२ ॥
 निष्क्यातस्मिन् लोकेषु नलङ्कुर इत्ययम् ।
 धमतो यो भवेद् निम क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ॥ ३३ ॥
 'वे तीनों लोकोंमें 'नलङ्कुर' नामसे विख्यात है तथा
 भवानुद्धानकी दृष्टिसे ब्राह्मण और पराक्रमकी दृष्टिसे क्षत्रिय हैं ॥
 क्रोधाद् यश्च भवेद्गमि क्षात्त्या च यस्तुधानमः ।
 तस्यासि हृतसकेता लोकपालसुनस्य वै ॥ ३४ ॥
 'वे क्रोधसे अग्नि और क्षमासे धूम्योके समान हैं । उहाँ
 लोकपालकुमार प्रियतम नलङ्कुरको आज मैंने मिलनेक
 लिये खोज दिया है ॥ ३४ ॥
 तमुद्दिश्य ॥ मे सवे विभूषणमिदं हृतम् ।
 यथा तस्य हि नान्यस्य भारो मा प्रति तिष्ठति ॥ ३५ ॥
 'यह गारा शृङ्गार मैंने उन्हींके लिये धारण किया है,
 जैसे उनका मेरे प्रति अनुग्रह है उसी प्रकार मेरा भी उन्हींके
 प्रति प्रगाढ प्रेम है, दूसरे किसीके प्रति नहीं ॥ ३५ ॥
 तेन सत्येन मा राजन् मोक्षतुमहम्यरिदम् ।
 सदितिष्ठति धमात्मा मा प्रनीक्ष्य समुत्तुक ॥ ३६ ॥
 'शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षसराज ! इस सत्यको

दृष्टिम् खल्वधर आप इम समथ मुने ऋद्धि दीविने रे मेरे
धमात्मा प्रियतम उल्लुक् होकर मेरी प्रतीक्षा करते हैंगे ॥३६॥
तत्र विष्णु ॥ तस्यैह कर्तुं नार्हमि मुञ्च माम् ।

सद्गिराचरित मार्गं गच्छ राक्षसपुङ्गव ॥ ३७ ॥

‘उनकी सेवाके इस कार्यमें आपसे यहाँ विष्णु नहीं
हालना चाहिये । मुझे छोड़ दीजिये । राक्षसाज । आप
समुद्रगोद्वारा आचरित धर्मन मार्गपर चलिये ॥ ३७ ॥

माननीयो मम त्व हि पालनीया तथासि मे ।

एवमुक्त्वा द्वादशीं प्रयुगम् विनीतगत् ॥ ३८ ॥

‘आप मेरे माननीय गुरुजन हैं, अन आपकी मेरी रक्षा
करनी चाहिये ।’ यह सुनकर दशप्रोचने उसने नम्रतापूर्वक
उत्तर दिया— ॥ ३८ ॥

स्तुगसि यद्योवस्त्वमेकपत्नीप्यव मम ।

वैधलोक्तस्यतिरिय सृष्टाणां द्वायती मया ॥ ३९ ॥

पतिरप्सरसा नास्ति न वैकस्त्रीपरिग्रहः ।

‘रामे । तुम अपनेको जो मेरी पुत्रपथू बता रही हो, वह
ठीक नहीं जान पड़ता । यह नाता रिग्ता उन स्त्रियोंन जिये
लागू होता है, जो किसी एक पुरुषकी पत्नी हैं । तुम्हारे
वैधलोक्तकी ता म्यति ही दूरी है । यहाँ सदास यही नियम
चला आ रहा है कि अप्सराओंका कोई पनि नहीं होता ।
यहाँ कोई एक स्त्रीन साथ विवाह करके नहीं रहता है’ ॥

एवमुक्त्वा स ता रक्षो निरेक्ष्य च शिलातले ॥ ४० ॥

कामभोगाभिसरको मैथुनायोपचममे ।

ऐसा कहकर उस राक्षसेने रामाको बन्धुपूर्वक शिलापर
बैठा लिया और कामभोगमें भागल हो उसके साथ समागम
किया ॥ ४० ॥

सा विमुक्ता ततो रम्भा अष्टमाल्यजिभूषणा ॥ ४१ ॥

गजे द्वाप्रीडमपिता नदीगकुलता गता ।

उसके पुण्यहार टूटकर गिर गये, सारे आभूषण अल
झल हो गये । उपभोगके बाद राक्षसेने रामाको छोड़ दिया ।
उसही दशा उन नदीके लगल हो गयी जिये किसी गबरबने
झीड़ा करके मथ डाला हो, यह अलखन ब्याकुल हो उठी ।
लुलितकुलकेशान्ता करयेपितपल्लवा ॥ ४२ ॥

परनेनायधूतय लता कुसुमनालिनी ।

बेणी-बच टूट जानेसे उसके पुन हुए केस हलमें ढहने
लगे—‘उन्हा गद्गार विगड़ गया । कर पल्लव झोजने लगे ।
पर देखी लगनी थी—मानो फूलसे मुखाभित होनेबली किसी
छाओ हमने सधारे लिया हो ॥ ४२ ॥

सा घेपमाना लज्जन्ती भीता करवृताञ्जलि ॥ ४३ ॥

नलक्ष्मणमासाद्य पादयोनिपथात् ह ।

लज्जा और मयने बँधती हुई वह नलक्ष्मणन पथगयी
और हाथ बँधकर उनके पैरोंपर गिर पड़ी ॥ ४३ ॥

तदवस्था च ता दृष्ट्वा महामा नलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

अपनी नलक्ष्मणन पथगयी

तदवस्था च ता दृष्ट्वा महामा नलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

तदवस्था च ता दृष्ट्वा महामा नलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

तदवस्था च ता दृष्ट्वा महामा नलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

तदवस्था च ता दृष्ट्वा महामा नलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

तदवस्था च ता दृष्ट्वा महामा नलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

तदवस्था च ता दृष्ट्वा महामा नलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

अपनी नलक्ष्मणन पथगयी

रम्भाको इस अवस्थामें देखकर महामना नलक्ष्मणने
पूछा— भद्रे ! क्या बात है ? तुम इस तरह मेरे परोपर क्यों
पड़ गयी ? ॥ ४४ ॥

सा वै नि श्वनमाना नु वेपमाना वृताञ्जलि ॥ ४५ ॥

तस्य सर्वं यज्ञतत्त्वमाख्यातुमुपग्रमे ।

वह धर धर बँध रही थी । उसने लरी सोंग लोंच
कर हाथ जोड़ लिये और बोला हुआ था, वं सग टीक
ठीक बताना आरम्भ किया ॥—४५ ॥

एष देव द्वाप्रीन प्राप्तो गतु त्रिजिष्टम् ॥ ४६ ॥

तन सैन्यसहायेन निद्रोष परिणामिता ।

‘देव । यह द्वाप्रीन राक्षस स्वगलोत्तर आक्रमण करनेपर
लिय आया है । इसके साथ बहुत बड़ी सेना है । उसने आज
ही रातमें यहाँ डेरा डाला है ॥ ४६ ॥

आयान्ती तेन दृष्टासि त्वत्सवाशमरिन्म ॥ ४७ ॥

शुद्धीता तेन पृष्टासि कस्य त्वमिति दक्षसा ।

‘गन्धमन गौर । मैं आपन पान आ रही थी, किंतु उन
राक्षसन मुझ सेव लिया और मारा हाथ पकड़ लिया । फिर
पूछा— तुम किसी स्त्री हो ?’ ॥ ४७ ॥

मया तु सर्वं यत् सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ॥ ४८ ॥

काममोहाभिभूतामा नाधौरीन् तद् यगेमम ।

‘मैंने उसे सब कुछ सच सच बत दिया, किंतु उसका
हृदय कामवशित मोहसे आक्रान्त था, इसलिये मेरी वह बात
नहीं सुनी ॥ ४८ ॥

याच्यमानो मया देव स्तुगा तेषामिति प्रभो ॥ ४९ ॥

तत् सर्वं पृष्टत इन्वा पलात् सेनासि धर्गिता ।

‘देव । मैं बारबार आपना करती ही रह गयी कि
प्रभो । मैं आपकी पुत्रपथू हूँ, मुझे छोड़ दीजिये किंतु उसने
मेरी सारी बातें अनसुनी कर दी और बन्धुपूर्वक मेरे साथ
अत्याचार किया ॥ ४९ ॥

एष त्वमपराध मे इतुमहसि सुव्रत ॥ ५० ॥

नहि तुल्य उर सौम्य त्रियाध पुत्रस्यपि ।

‘उत्तम व्रतका धात्र करनवाल प्रियतम । इस क्षणीकी
दशामें मुझने जो अपराध बन गये हैं, उनमें आप छाना करें ।
सौम्य । नारी अलग होती है, उनमें पुरस्कार बदपर शारीरिक
बल नहीं होता है (इसीलिये उस दुष्टने अपनी रक्षा में नहीं
कर सकी)’ ॥ ५० ॥

यतद्वृत्त्या नु सकुड्मनदा वैधरणा मम ॥ ५१ ॥

धरणा सा परा भुया ध्यान सम्प्रविशेत् द ।

यह सुनकर वैधरणाद्वारा नलक्ष्मणन बड़ा रोष हुआ ।
रम्भादि गन उन महान् अपराधोंके सुनकर उठाने
पन लगाना ॥ ५१ ॥

तस्य तत् कर्म विहाय तदा वैधरणा मम ॥ ५२ ॥

तस्य तत् कर्म विहाय तदा वैधरणा मम ॥ ५२ ॥

तस्य तत् कर्म विहाय तदा वैधरणा मम ॥ ५२ ॥

तस्य तत् कर्म विहाय तदा वैधरणा मम ॥ ५२ ॥

तस्य तत् कर्म विहाय तदा वैधरणा मम ॥ ५२ ॥

मुहूर्तात् मोधताम्राक्षस्तोय जग्राह पाणिना ।

उस समय दो ही घड़ीमें रावणजी उस वस्तुको जानकर
वैभवंगपुत्र नलकूबरके नेत्र मोघते लाल हो गये और उन्होंने
अपने हाथमें जल लिया ॥ ५२३ ॥

गृहीत्वा सलिल सर्वमुपस्पृश्य ययात्रिधि ॥ ५३ ॥

उत्ससर्ज तदा शाप राक्षसेद्राघ क्षारुणम् ।

जल लेकर पहले विधिपूर्वक आत्मन स्पर्शके नेत्र आदि
सारी इन्द्रियोंका स्पर्श करनेके अनन्तर उन्होंने राक्षसराजको
बड़ा भयकर शाप दिया ॥ ५३३ ॥

अकामा तेन यस्मात् त्व यत्नाद् भद्रे प्रधर्षिता ॥ ५४ ॥

तस्मात् स युजसीमन्या नाकामामुपयास्यति ।

वे बोले—‘भद्रे ! तुम्हारी इच्छा न रहनेपर भी रावणने
तुमपर बलपूर्वक अत्याचार किया है । जत यह आक्से
दूसरी किसी ऐसी युवतीसे समागम नहीं कर सकेगा जो उसे
चाहती न हो ॥ ५४३ ॥

यदा ह्यकां फामातो धर्षयिष्यति योषितम् ॥ ५५ ॥

मूर्धो नु सप्तधा तस्य शकलीभजिता तदा ।

‘यदि वह कामपीडित होकर उसे न चाहनेवाली युवती-
पर बलात्कार करेगा तो तत्काल उसके मस्तकके सात टुकड़े
हो जायेंगे’ ॥ ५५३ ॥

ह्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंश सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छत्तीसवाँ सप्त पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्ग

सेनासहित रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना,

भविष्यमें रावण वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रको लौटाना, देवताओं और

राक्षसोंका युद्ध तथा ब्रह्मके द्वारा सुमालीका वध

केलास लहयित्वा तु ससैन्ययलयाहनः ।

आसत्साद् महावेजा इन्द्रलोकं दधानः ॥ १ ॥

केलास परतको पार करके महातेजस्वी दशमुख रावण

सेना और सनारियोंके साथ इन्द्रलोकमें आ पहुँचा ॥ १ ॥

तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यत ।

देवलोकं यमौ शम्भो भियमानाण्योषमः ॥ २ ॥

सब ओरसे आती हुई राक्षससेनाका केलाहल देवलोकमें
ऐसा नान पड़ता था; मानी महाकागरके मये जानेका शब्द
प्रकट हो रहा हो ॥ २ ॥

शुन्या तु रावण प्राप्तमिन्द्रशक्तित आसनात् ।

इयानथाग्रनीत् तत्र सजानेय समागतान् ॥ ३ ॥

रावणका आगमन सुनकर इन्द्र अपने आसनसे उठ
गये और अपने पास आये हुए समस्त देवताओंसे बोटे—

भादित्याश्च यस्तु यद्वान् साध्याश्च समग्रद्वान् ।

सञ्जा भयत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मन ॥ ४ ॥

तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलितान्निसमग्रमे ॥ ५६ ॥

देवदुःखभयो नेदु पुष्पवृष्टिश्च खाद्यच्युता ।

नलकूबरके मुखसे प्रज्वलित अग्निके समान दग्ध कर
देनेवाले इस शापके निफलते ही देवताओंकी दुःखियों वज्र
उर्दी और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५६३ ॥

पितामहमुखादवैव सर्वे देवा प्रहर्षिता ॥ ५७ ॥

ह्यात्वा लोकगतिं सर्वो तस्य मृत्यु च रक्षस ।

ऋषयः पितरश्चैव प्रीतिमापुरनुत्तमाम् ॥ ५८ ॥

ब्रह्मा आदि सभी देवताओंकी बड़ा हर्ष हुआ । रावणके
द्वारा की गयी लोककी सारी दुर्दशाओं और उस राक्षसकी
मृत्युको भी जानकर ऋषियों तथा पितरोंकी बड़ी प्रसन्नता
प्राप्त हुई ॥ ५७ ५८ ॥

धृत्वा तु स दशग्रीयस्त शाप रोमहर्षणम् ।

नारीषु मैथुनीभाव नाकामास्वभ्यरोचयत् ॥ ५९ ॥

उस रोमाञ्चकारी शापको सुनकर दशग्रीवने अपनेको न

चाहनेवाली स्त्रियोंके साथ बलात्कार करना छाड़ दिया ॥ ५९ ॥

तेन नीता स्त्रिय प्रीतिमाम्पु सखा पतिव्रता ।

नलकूबरनिर्मुक्तं शाप धृत्वा मन प्रियम् ॥ ६० ॥

वह जिन-जिन पतिव्रता स्त्रियोंका हरकर ल गया था, उन
सबके मनको नलकूबरका दिया यह शाप बड़ा प्रिय लगा ।
उसे सुनकर वे सब की-सब बहुत प्रसन्न हुईं ॥ ६० ॥

ह्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंश सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छत्तीसवाँ सप्त पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्ग

सेनासहित रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना,

भविष्यमें रावण वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रको लौटाना, देवताओं और

राक्षसोंका युद्ध तथा ब्रह्मके द्वारा सुमालीका वध

केलास लहयित्वा तु ससैन्ययलयाहनः ।

आसत्साद् महावेजा इन्द्रलोकं दधानः ॥ १ ॥

केलास परतको पार करके महातेजस्वी दशमुख रावण

सेना और सनारियोंके साथ इन्द्रलोकमें आ पहुँचा ॥ १ ॥

तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यत ।

देवलोकं यमौ शम्भो भियमानाण्योषमः ॥ २ ॥

सब ओरसे आती हुई राक्षससेनाका केलाहल देवलोकमें
ऐसा नान पड़ता था; मानी महाकागरके मये जानेका शब्द
प्रकट हो रहा हो ॥ २ ॥

शुन्या तु रावण प्राप्तमिन्द्रशक्तित आसनात् ।

इयानथाग्रनीत् तत्र सजानेय समागतान् ॥ ३ ॥

रावणका आगमन सुनकर इन्द्र अपने आसनसे उठ
गये और अपने पास आये हुए समस्त देवताओंसे बोटे—

भादित्याश्च यस्तु यद्वान् साध्याश्च समग्रद्वान् ।

सञ्जा भयत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मन ॥ ४ ॥

उन्होंने आदित्यों, ब्रह्मों, ब्रह्मों, साध्यों तथा मरुद्गणोंसे

भी कहा—‘तुम सब लोग दुष्टतमा रावणके साथ युद्ध करनेके
लिये तैयार हो जाओ’ ॥ ४ ॥

एवमुवास्तु शम्भेण देवा शक्रसना युधि ।

सनह्य क्षुमदासत्वा युद्धयद्वासमन्यिताः ॥ ५ ॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर युद्धमें उन्हींके समान पराक्रम
प्रकट करनेवाले महाबली देवता कवच आदि धारण करके
युद्धके लिये उत्सुक हो गये ॥ ५ ॥

स तु दीनं परिश्रुतो मोहेन्द्रो रावण प्रति ।

विष्णोः समीपमागत्य धान्यमेतदुवाच ह ॥ ६ ॥

देवराज इन्द्रकी रावणसे भय हो गया था । अत वे
दुखी हो गमगान् विष्णुके पास आय और इस प्रकार बोटे—

विष्णो कथं करिष्यामि रावण राक्षसं प्रति ।

अहोऽपि यत्पश्ये रक्षो युद्धार्थमभियर्तत ॥ ७ ॥

‘विष्णुदेव ! मैं राक्षस रावणके लिये क्या करूँ ! अहो !

यद् अत्यन्त बडाली निगावर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आ रहा है ॥ ७ ॥

वरप्रदानाद् बलवान् न स्वल्पान्येन हेतुना ।

सत् तु सत्यं च कार्यं यदुक्तं पद्मयोगिना ॥ ८ ॥

‘यह जबल ब्रह्मज्ञाने बरदानन करण प्रबल हो गया है दूसरे किसी हेतुसे नहीं । कमलयोगि ब्रह्माने जो कर दे दिया है, उसे सत्य करना हम सब लोगोंका काम है ॥ ८ ॥

तद् यथा नमुचिर्वृजो बलिनरकशङ्करौ ।

त्वद्वत् समग्रपुष्प मया दग्धास्तथा कुरु ॥ ९ ॥

‘अत जैसे पहले आपने बडका आशय लेकर मैंने नमुचि, वृषाक्षर बलि, नरक और शङ्कर आदि अमुरोंका दग्ध कर डाला है, उसी प्रकार इस समय भी इस अमुरका अन्त हो जाय, ऐसा क्रोध उपाय आप ही कीजिये ॥ ९ ॥

महाम्यो देवदेवेन्द्र त्वद्वत्ते मयुसुदन ।

गति परापण चापि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १० ॥

‘मयुसुदन ! आप देवताओंन भी देवता एवं इतर हैं । इस चराचर त्रिभुवनमें आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो हम देवताओंको सहाय दे सके । आप ही हमारे परम आश्रय हैं ॥ १० ॥

स्य हि नारायण श्रीमान् पद्मनाभ सनातनः ।

त्वय्येमे स्थापिता लोकः शशङ्गाह सुरेश्वरः ॥ ११ ॥

‘आप पद्मनाभ हैं—आपहीने नाभिकमलसे जगत्की उत्पत्ति हुई है । आप ही सनातनदेव श्रीमान् नारायण हैं । आपने ही इन तीनों लोकोंको स्थापित किया है और आपने ही मुझे देवराज इन्द्र बनाया है ॥ ११ ॥

त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

त्वामेव भगवन् सर्वं प्रणिदन्ति मुगधये ॥ १२ ॥

‘भगवन् ! आपने ही स्थावर जड़म प्राणियोंसहित इस समस्त त्रिलोकीकी सृष्टि की है और प्रत्येककालमें सम्पूर्ण भूत आपमें ही प्रवेश करत हैं ॥ १२ ॥

सदाचक्षुष यथातत्त्वं देयदनं मम स्वयम् ।

असिचक्रसहायस्य योत्स्यसे राज्यं प्रति ॥ १३ ॥

‘इसलिये देवदेव ! आप ही मुझे कोई ऐसा अस्त्र उपान बनाइये, जिससे मेरी विजय हो । क्या आप स्वयं चक्र और तलवार लेकर स्वयंसे युद्ध करेंगे ? ॥ १३ ॥

एवमुक्त्वा स शत्रेण देवो नारायण प्रभुः ।

अश्वरीय परिप्राप्त वतव्यं ध्रुवता च मे ॥ १४ ॥

‘इदने ऐसा करनेपर भगवान् नारायणदेव बोले—‘देवराज ! मुझे भय नहीं करना चाहिये । मेरी बात सुनो—न तार्यदेव दुष्टमा दाम्यो जेतुं सुरासुरैः ।

हतुं चापि समासाद्य यरदानं दुजयः ॥ १५ ॥

‘हठी बात हा यह दे इस दुष्टमा राजाको धूम्य देना और अमुर मिलकर भी न तो मार सकते हैं और न

पान्ना ही मार सकते हैं क्योंकि वरदान पानेने कारण यह इस समय दुर्जय हो गया है ॥ १५ ॥

सपथा तु महत् कम करिष्यति यत्नेन ।

रात्रम् पुत्रसहितो दृष्टमेतनिसगतः ॥ १६ ॥

‘अने पुत्रन साथ आपा हुआ यह उत्कट बलागाली रात्रस सब प्रकारसे महान् पराक्रम प्रकट करेगा । यह बात मुझे अपनी स्वाभाविक गानहृदिने दिलायी दे रही है ॥ १६ ॥ यत् तु मा वमभाषिष्ठा मुष्यस्वेति सुरेश्वर ।

नाह त प्रतियोत्स्यामि रावण रात्रस युधि ॥ १७ ॥

‘मुरख ! दूसरी बात जो मुझे कहती है इस प्रकार है—तुम जो मुझसे कह रहे थे कि ‘आप ही उनके साथ युद्ध कीजिये’ उससे उत्तरमें निवेदन है कि मैं इस समय युद्ध स्थलमें रावण राजका सामना करनेके लिये नहीं आऊँगा ॥

नाहत्या समरे शत्रुं विष्णुं प्रतिनिवर्तते ।

दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुमादि राजणात् ॥ १८ ॥

‘मुझ विष्णुका यह स्वभाव है कि मैं संग्राममें शत्रुका वध करने सिवा पीछे नहीं लौटता परन्तु इस समय रावण बलात्माने मुरधिन है, इसलिये उसकी ओरसे मेरी ॥ जिसप्र सम्बन्धिनी इच्छाकी पूर्ति होनी कठिन है ॥ १८ ॥

प्रतिजाने च देवेन्द्र स्वत्समीपे शानप्रतोः ।

भरितासि यथाग्याह रम्भसो मृत्युकारणम् ॥ १९ ॥

‘परतु देवेन्द्र ! शत्रुको । मैं तुम्हारे समीप इस बातकी प्रतिज्ञा करता हूँ कि समय आनेपर मैं ही इस राजकी मृत्युका कारण बनूँगा ॥ १९ ॥

अहमेव निहन्तास्मि राज्यं सपुरःसरम् ।

देवता नन्दयिष्यामि भ्रात्या कामुपागतम् ॥ २० ॥

‘मैं ही राजको उसने अग्रगामी सेनिकोंसहित मानेगा और देवताओंको अनन्तित करूँगा परन्तु यह तभी होगा जब मैं जान लूँगा कि इसकी मृत्युका समय आ पहुँचा है ॥ यतन् ते कथितं सत्यं देवराज गीर्णते ।

युद्धाय विगतप्रास सुरैः सार्धं मदायत् ॥ २१ ॥

‘देवराज ! ये सब बातें मैंने तुम्हें टीक टीक बना दी । महाबलागाली शचीराज ! इस समय तो तुम्हें देवताओं सहित ब्रह्म उग्र राजसके साथ निमय हो युद्ध करो ॥ २१ ॥ सतो यद्वा सहादित्या पस्यो महतोऽभियन्तौ ।

सनत् निययुष्मर्थं राष्ट्रस्तानभितः पुरात् ॥ २२ ॥

‘तान्तर कद्र, आन्तिय धनु मरुप और अभिनी कुमार आदि देवता युद्धके लिये तैयार होकर मुरत अमुरोंके पुत्री बन्धन निकले और राजाके हाट्ना करनेके लिये आने बड़े ॥ २२ ॥

एतस्मिन्मन्त्रे नाद् गुधुरे रजनीमये ।

सम्यं राक्षसैर्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः ॥ २३ ॥

‘ही बीचमें रात बीचमें हीतवे सब तरफसे युद्ध लिये

उद्यत हुई रावणकी सेनाका महान् कोटहल मुनायी देने लगा ॥ २३ ॥

ते प्रबुद्धा महावीरा ययोन्यमभिदीक्ष्य वै ।

सप्रामर्शेवाभिमुखा अभ्यर्चन्त हृष्टवत् ॥ २४ ॥

वे महापराक्रमी राक्षसैनिक छारे जागनेपर एक दूसरेकी ओर देखते हुए बड़े हर्ष और उत्साहके साथ युद्धके नित्य ही आगे बढ़ने लगे ॥ २४ ॥

ततो दैवतसैन्याना सशोभ समजायत ।

तदक्षय महासैन्य दृष्ट्वा समरभूर्धनि ॥ २५ ॥

तदनन्तर युद्धके मुहानेपर राक्षसोंकी उभ्र अमन्त एव विशाल सेनाको देखकर देवताओंकी सेनामें बड़ा क्षोभ हुआ ॥ २५ ॥

ततो युद्ध समभवद् देवदानुरक्षसाम् ।

घोर तुमुलनिर्द्वाद नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ २६ ॥

फिर तो देवताओंका दानवों और राक्षसोंके साथ मयकर युद्ध छिड़ गया । मयकर कोलाहल होने लगा और दोनों ओरसे नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंकी बौछार आरम्भ हो गयी ॥ २६ ॥

पतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शना ।

युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते ॥ २७ ॥

इसी समय रावणके मन्त्री शूरवीर राक्षस, जो बड़े मयकर दिलायी देते थे, युद्धके लिये आगे बढ़ आये ॥ २७ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च महापादर्वमहोदरौ ।

अकम्पनो निकुम्भश्च गुक सारण एव च ॥ २८ ॥

सह्यादो धूमकेतुश्च महादृष्टो घटोदर ।

जम्बुमाली महाह्लादो विरुपाक्षश्च राक्षस ॥ २९ ॥

सुतप्तो यक्षकोपश्च दुमुप्तो दूषण खर ।

मिशिरा करघीरान् सर्वशत्रुश्च राक्षस ॥ ३० ॥

महाकायोऽतिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।

पतै सर्वे परिधृतो महावीर्यमहाबल ॥ ३१ ॥

रावणस्यार्थकः सैन्यं सुमाली प्रविवेदा ह ।

मारीचः प्रह्लादः महापान्नः महोदरः अकम्पनः निकुम्भः

शुकः सारणः सह्यादः धूमनेत्रः महादहूः घटोदरः जम्बुमालीः

महाह्लादः विरुपाक्षः सुतप्तः यक्षकोपः दुमुप्तः दूषण खरः

मिशिराः करघीरान्, मयघनु, महाकायः अतिकायः देवान्तक

तथा नरान्तक—इन सभी महापराक्रमी राक्षसोंके भिरे हुए

महाबली मुमालीने, जो रावणका नाना या देवताओंकी सेनामें

प्रवेश किया ॥ २८-३१ ॥

स दैवतगणान् मगान् नानाप्रहरणैः दितैः ॥ ३२ ॥

व्यप्यसयत् समं हृदो वायुजल्परानिय ।

उसने कुपित हो नाना प्रकारके वेने अस्त्र शस्त्रोंद्वारा

समस्त देवताओंको उधरी तरह मार मगया, जैसे वायु बादलों

को छिन्न भिन्न कर देती है ॥ ३२ ॥

सद् दैवतबलं राम हन्यमानं निशाचरैः ॥ ३३ ॥

प्रणुन्नं सर्वतो दिग्भ्यः सिंहनुद्या मृगा इव ।

श्रीराम ! निशाचरोंकी मार खाकर देवताओंकी वह सेना

सिंहद्वारा खदेड़े गये मृगोंकी भाँति सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग

चली ॥ ३३ ॥

पतस्मिन्नन्तरे शूरो वसुनामप्रभो वसु ॥ ३४ ॥

म्रावित्र इति विख्यातः प्रविनेदा रणाजिरम् ।

इसी समय वसुओंमेंसे आठवें वसुने, किनका नाम

सवित्र है, समराङ्गनमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥

सैन्यैः परिधृतो हृष्टैरानाप्रहरणोद्यतैः ॥ ३५ ॥

प्रासव्यञ्जनुसैन्यानि प्रविवेश रणाजिरम् ।

वे नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित एवं उत्साहित

सैनिकोंने भिरे हुए थे । उन्होंने शत्रुसेनाओंकी सफा कर

हुए रणभूमिमें पदार्पण किया ॥ ३५ ॥

तयादित्यौ महावीरौ त्वष्टा पूषा च तौ समम् ॥ ३६ ॥

निर्भर्यौ सह सैन्येन तदा प्राविशता रणे ।

इनके सिवा अदितिके दो महापराक्रमी पुत्र त्वष्टा और

पूषाने अपनी सेनाके साथ एक ही समय युद्धस्थलमें प्रवेश

किया, वे दोनों वीर निमग्न थे ॥ ३६ ॥

ततो युद्ध समभवत् सुराणां सह राक्षसैः ॥ ३७ ॥

कुन्दाणां राक्षसां कीर्तिं समरेष्यनिधतिनाम् ।

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घोर युद्ध होने लगा ।

युद्धसे पीछे न हटनेवाले राक्षसोंकी बढ़ती हुई कीर्ति देख

सुनकर देवता उनके प्रति बहुत क्रुपित थे ॥ ३७ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे विधुधान् समरे स्थितान् ॥ ३८ ॥

नानाप्रहरणैर्घोरैर्जन्तु शतसहस्रशः ।

तत्पश्चात् समस्त राक्षस समरभूमिमें खड़े हुए खल्लों

देवताओंको नाना प्रकारके घोर अस्त्र शस्त्रोंद्वारा मारने

लगे ॥ ३८ ॥

देवाश्च राक्षसान् घोपन् महाबलपराक्रमान् ॥ ३९ ॥

समरे निमलैः शस्त्रैरपनिन्युर्यमक्षयम् ।

इसी तरह देवता भी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न घोर

राक्षसोंकी समराङ्गनमें बमकीले अस्त्र शस्त्रोंसे मार-मारकर

बमकीले भेजने लगे ॥ ३९ ॥

पतस्मिन्नन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ॥ ४० ॥

नानाप्रहरणैः कुन्दस्तत्सैन्यं सोऽभ्यवर्तत ।

स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः दितैः ॥ ४१ ॥

व्यप्यसयत् सकुन्दो वायुजल्पर यथा ।

श्रीराम ! इसी बीचमें सुमाली नामक राक्षसने कुपित होकर

नाना प्रकारके आयुधोंद्वारा देवसेनापर आक्रमण किया । उसने

अत्यन्त क्रोधसे अरकर बाल्लोंको छिन्न-भिन्न कर देनेवाली

वायुन समान अपने भाँति भाँतिके सीले अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा

समस्त देवसेनाको नितर नितर कर दिया ॥ ४०-४१ ॥

ते महाबाणपर्यङ्ग नृपप्राप्ते सुदृग्धै ॥ ४० ॥
हृन्मयानां सुरा संयं न व्यनिष्ठत सहता ।

उत्तरे महान् बाणो और मयकर शूलं प्रथं प्राणोरी
वशासे मारे जाने हुए सभी देवता युद्धभूमिं समन्वित होकर
खड़े न रह सके ॥ ४२ ॥

मतो विद्राव्यमाणेषु क्षैत्रेषु सुमालिना ॥ ४३ ॥
यस्मात्प्रथमं बृहद् सावित्री वै व्यगस्थित ।

सद्युत स्थैर्यानीकैः प्रहरन्त निशाचरम् ॥ ४४ ॥
सुमालीदाय देवताओंक मणाये जानेपर आठवें वसु

सावित्रीका यज्ञा काय हुआ । वे अपनी रखैनाओंकर साथ
आकर उस प्रकार कन्देगाल निशाचरक सामने खड़े हो
गये ॥ ४३ ४४ ॥

विप्रमेण महातेजा वारयामास सयुगे ।
ततस्तयामहद् युद्धमभ्यर्त्तन्महर्षणम् ॥ ४५ ॥

सुमालिनो यत्सोदर्यै समरेष्यनिर्जतिनो ।
महातेजवी सावित्रे युद्धसङ्गमे अपने पराक्रमद्वारा

सुमालीने आगे यन्त्रेन राक्ष दिया । सुमाली और वसु दोनों
मेरे काद भी युद्धसे पीछे हटायाना नहीं था अतः उन दोनों
में महान् एव यमाज्जकारी युद्ध छिड़ गया ॥ ४५ ॥

ततस्तस्य महाबाणैर्यमुना सुमहात्मना ॥ ४६ ॥
निहत पञ्चगरम् क्षणेन शिनिपातित ।

तदनन्तर महात्मा वसुने अपने विजालबाणोंद्वारा सुमालीर
मर् जुत हुए राक्षको क्षणभरमें ताड़ घेड़कर गिरा दिया ॥ ४६ ॥

हत्वा तु सयुगे तस्य ग्य बाणशतैश्चित्तम् ॥ ४७ ॥
गदा तस्य यथाथाय यमुजं प्राह पाणिना ।

हृत्पापैः श्रीमद्रामाण्ये बालीकये आन्त्रिक्कय उत्तरकाण्डे महाविंश मग ॥ १० ॥
एन प्रकार कील्लोचिनिर्नि अन्तराण्ये अन्त्रिक्कय उत्तरकाण्डे महाविंश मग ॥ १० ॥

अष्टाविंश सर्गः

मेघनाद और जयन्तका युद्ध, पुलोमाका जयन्तको अन्यत्र ले जाना, देवराज इन्द्रका युद्धभूमिमें
पदार्पण, रत्नों तथा मरुदण्डोंद्वारा गनवसेनाका महार और इन्द्र तथा रावणका युद्ध

सुमालिन हत दृष्ट्वा वसुना भस्मसारवृत्तम् ।
समैव्य विदुत वापि लम्पयिरर्पितं सुरैः ॥ १ ॥

ततः स वज्रान् बृहदा रावणाय मुनस्तदा ।
निर्गय राक्षसान् सजान् मघनादो व्यगस्थित ॥ २ ॥

सुमाली मारा गया, वसुने मगर गरीमरा मया कर दिया
और देवताओंमें वीक्षित हारर मरी मेना भागी जा रही है,
यह देख रावणका वज्रान् पुत्र मघनाद कुपित हो समस्त

राक्षसोंका सेनाकर मेनाओंकर लड़ा लदेक लिय मरा गया
हुआ ॥ १ २ ॥

स रथना प्ररर्णेत क्षमणेन महाग्यः ।
अभिदुद्राघ सेना सा रथावनिदिग्ग उचलन् ॥ ३ ॥

ततः प्रगृह्य दीप्ताग्रा बालदण्डोपमा गदाम् ॥ ४८ ॥
ता मृष्टिं पालयामास सावित्री वै सुमालिना ।

युद्धभूमिमें सकड़ी बाणोंमें छिन्ने हुए सुमालीने राक्षसों
नष्ट करके वसुने उस निशाचरके वधकर लिये बालदण्डने

समान एक मयकर गदा हाथमें ली, जिसका अग्रभाग अग्निर
समान प्रज्ज्वलित हो रहा था । उसे लेकर सावित्रिने सुमालीने
मन्त्रपर द मारा ॥ ४७ ४८ ॥

सा तस्योपरि चोल्फाभा पतन्ती विप्रभी गदा ॥ ४९ ॥
इन्द्रप्रभुना गजन्ती गिरायिषि महारणि ।

उत्तर ऊपर गिरती हुई वह गदा उत्कार समान चमक
उठी, नानो इन्द्रक द्वारा छोड़ी गयी विजाल अग्नि भावी

गन्गहालके साथ किसीपक्षर शिलरपर गिर रही है ॥ ४९ ॥
तस्य नैराश्वि न शिरो न मास इददो तदा ॥ ५० ॥

गदया भस्मना नीत निहतस्य रणाजिरे ।
उत्तरी नष्ट स्थाने ही समपद्वणमें सुमालीना काम तमाम

हो गया । न उसकी शक्ति का पता लगा, न मन्त्रका और न
कहीं उत्तरा माल ही दिखायी दिया । यह सब कुछ उस
गदारी आगम मय हो गया ॥ ५० ॥

त दृष्ट्वा निहत सरये राक्षसान्ते समन्ततः ॥ ५१ ॥
व्यग्रवन् सहिता सर्वे शीघ्रमाणा परस्परम् ।

विद्राव्यमाणा वसुना राक्षसा नागनद्विरे ॥ ५२ ॥
युद्धमें सुमालीका मारा गया देवर वे सब राक्षस एक

दूसरका पुराते हुए एक साथ चारों ओर भाग लड़े हुए ।
वसुन क्षात्र लदेक जनेगा वे राक्षस मगरभूमिमें लड़े न

रह सके ॥ ५१ ५२ ॥

वद मगरवी वीर इच्छातुणर चन्दराण् अचिनुन्व
तत्रवी रावण आण् हा वनेमें वनेमें राव प्ररर्णि दावजण
व सना उम देवेनेनारी और दीहा ॥ १ ॥

ततः प्रणिगतमस्य विजिशयुधधारिणः ।
विदुषुर्दिना सदा दशानदेव देवता ॥ ४ ॥

नना प्ररणा आमुष बाण करक अपनी सेनामें प्ररणा
करने उम न जालो रगतेही हर देवतागण् विजिशो

की और रग चल् ॥ ४ ॥

न यधुर् मदा वदिद् युयुस्मानस्य सम्मुखे ।
सजानाण्डव विप्रमनास्तन दावोऽप्ररीन् सुगन् ॥ ५ ॥

उम सन्व युद्धकी इच्छागम मघनाक मग्ने वई भी

खड़ा न हो सका । तब भयभीत हुए उन समस्त देवताओंको
पटकारकर इन्द्रने उनसे कहा—॥ ५ ॥

न भेतव्य न गन्तव्य निवर्तध्वं रणे सुरा ।

एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजित ॥ ६ ॥

‘देवताओ ! मय न करो; युद्ध छोड़कर न जाओ और
रणभेदमें लगे आओ । यह मेरा पुत्र जयन्त, जो कभी किसीसे
पराजित नहीं हुआ है; युद्धके लिये आ रहा है’ ॥ ६ ॥

तत शक्रसुतो देवो जयन्त इति मिथुन ।

रथेनाद्भुतकल्पेन सग्रामे सोऽभ्यवर्तत ॥ ७ ॥

तदनन्तर इन्द्रपुत्र जयन्तदेव अद्भुत सञ्जावटसे युक्त
रथपर आरुढ़ हो युद्धके लिये आया ॥ ७ ॥

ततस्त त्रिदशा सर्वे परिधाय शचीसुतम् ।

रावणस्य सुत युद्धे समासाद्य प्रज्जिह्वरे ॥ ८ ॥

फिर तो सब देवता शचीपुत्र जयन्तको चारों ओरसे
घेरकर युद्धक्षेत्रमें आये और रावणके पुत्रपर प्रहार करने
लगे ॥ ८ ॥

मेवा युद्ध समभवत् सहस्र वैवशसाम् ।

महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥ ९ ॥

उस समय देवताओंका राक्षसोंका साथ और महेन्द्रकुमार
का रावणपुत्रके साथ उनके बल पराक्रमने अनुपम युद्ध होने
लगा ॥ ९ ॥

ततो मातलिपुत्रस्य गोमुखस्य स रावणि ।

सारथे पातयामास शरान् कनकभूषणान् ॥ १० ॥

रावणकुमार मेघनाद जयन्तके सारथि मातलिपुत्र गोमुख
पर सुवभूषित बाणोंकी बरषा करने लगा ॥ १० ॥

शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।

त व्यापि रावणि वृद्ध समन्तात् प्रत्यविध्यत ॥ ११ ॥

शचीपुत्र जयन्तने भी मेघनादके सारथिको घायल कर
दिया । तब क्रुपित हुए मेघनादने जयन्तकी भी सब ओरसे
हत विघ्न कर दिया ॥ ११ ॥

स हि क्रोधसमाग्निष्ठो यत्नी विस्फारितेक्षण ।

रावणिः शक्रतनय शर्यर्षिरनाकिरत् ॥ १२ ॥

उस समय क्रोधसे भरा हुआ यन्त्रा मेघनाद इन्द्रपुत्र
जयन्तको आँखें पकड़-पाड़कर देखने और बाणोंकी बरषासे
पीड़ित करने लगा ॥ १२ ॥

ततो नामाग्रहरणाश्रितधरान् सहस्रश ।

पातयामास समुद्र सुरसैन्येषु रावणि ॥ १३ ॥

अत्यन्त क्रुपित हुए रावणकुमारने देवताओंकी सेनापर
भी तीसी घातकाले नाग प्रकारके सहस्रों अश्व-पशु बरसाये ।
शतधनीमुख-प्रासगदाह्वरपरम्भयान् ।

महान्ति गिरिष्टङ्गाणि पातयामास रावणि ॥ १४ ॥

उहने शतघोष, मृग, प्राक, गन्ध, राज और कर्म
निष्ठ सज्ज बड़े-बड़े परब-हिरार भी चलाये ॥ १४ ॥

तत प्रव्यथिता लोका सज्जे च तमस्ततः ।

तस्य रावणपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निघ्नत ॥ १५ ॥

शत्रुसेनाओंके संहारमें लगे हुए रावणकुमारकी मायासे
उस समय चारों ओर अव्यवहार छा गया, अतः समस्त लोक
व्यथित हो उठे ॥ १५ ॥

ततस्तद् दैवतबल समन्तात् त शचीसुतम् ।

यद्भुप्रकारमवलम्ब्यमवच्छरपीडितम् ॥ १६ ॥

तब शचीकुमारके चारों ओर सड़ी हुई देवताओंकी वह
सेना बाणोंद्वारा पीड़ित हो अनेक प्रकारसे अवलम्ब हो गयी ॥
नाभ्यजानन्त चान्योन्य रक्षो वा देवताथवा ।

तत्र तत्र विपर्यस्त समन्तात् परिधायत ॥ १७ ॥

राक्षस और देवता आपसमें किसीको पहचान न सके ।

ये जहाँ तहाँ बिखरे हुए चारों ओर चकर काटने लगे ॥ १७ ॥

देवा देवान् निजज्जुस्ते राक्षसान् राक्षसास्तथा ।

सम्भूदास्तमसाच्छन्ना व्यद्रवसपरं तथा ॥ १८ ॥

अव्यक्तसे आच्छादित होकर वे विवेकशक्ति खो बैठे
थे । अब देवना देवताओंको और राक्षस राक्षसोंको ही मारने
लगे तथा बहुतोंसे गोदा युद्धसे भाग खड़े हुए ॥ १८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान् ।

दैत्येन्द्रस्तेन सगृह्य शचीपुत्रोऽपराहित ॥ १९ ॥

इसी बीचमें पराक्रमी वीर दैत्यराज पुलोमा युद्धमें आया
और शचीपुत्र जयन्तको पकड़कर वहाँसे दूर हटा ले गया ॥

सगृह्य त तु दौहित्र प्रविष्ट सागर तदा ।

आपश्च स हि तस्यासीत् पुलोमा येन सा शची ॥ २० ॥

वह शचीका पिता और जयन्तका नाना था, अतः अपने
दौहित्रको लेकर समुद्रमें डुब गया ॥ २० ॥

शान्ता प्रणामाश्च तु तदा जयन्तस्याथ देवता ।

अग्रहृष्टस्तत सया व्यथिता सग्वद्रुद्रु ॥ २१ ॥

देवताओंको जब जयन्तने गायब होनेकी बात मालूम हुई,
तब उनकी सारी खुशी छिन गयी और वे दुखी होकर चारों
ओर भागने लगे ॥ २१ ॥

रावणिस्तथ सफुद्धो धलैः परिवृत न्यैक ।

अभ्यधापन देवास्तात्तु मुमोच च महास्वनम् ॥ २२ ॥

उधर अपनी मेनाओंसे घिरे हुए रावणकुमार मेघनादने
अत्यन्त क्रुपित हो देवताओंपर घात किया और बड़े आरसे
गर्जना की ॥ २२ ॥

एध्ना प्रणामाश्च पुत्रस्य दैवतेषु न विद्वतम् ।

मातलि चाह देवेशो रथ समुपनीयताम् ॥ २३ ॥

पुत्र स्तम्भ हो गया और देवताओंकी सेनामें भगदड़
मच गयी है—यह देखकर देवराज इन्द्रने मातलिसे कहा—
‘मेरा रथ ले आओ’ ॥ २३ ॥

स तु दिव्यो महाभीम सज्ज एव महारथ ।

उपदिष्टो मातलिना पाशामानो महाजयः ॥ २४ ॥

मातलिने एक सजा-सजाया महाभयङ्करः दिव्य एवं विशाल
रथ हावर उपस्थित कर दिया । उसर द्वारा हौंकर जानवाय
वह रथ पड़ा ही वेगशाली था ॥ २४ ॥

ततो मेघा रथे तस्मिस्तडित्यन्तो महात्रला ।

अप्रतो घायुचपला नेदु परमनिःस्त्रना ॥ २५ ॥

तदनन्तर उस रथपर चिजलीसे युक्त महाबली मेघ उसने
अप्रभागमें वायुसे चञ्चल हो बड़े ऊपर-ओरसे गजना करने
लगे ॥ २५ ॥

नानावाद्यानि वाद्यन्त गन्धराश्च समाहिता ।

ननुतुध्यास्तर सद्वा नियाते चिदशेष्वरे ॥ २६ ॥

देवेश्वर इन्द्रके निकलते ही नाना प्रकारक बाजे बज
उठे, गन्धर्व एकत्र हो गये और अन्धराओंके समूह नृत्य
करने लगे ॥ २६ ॥

रुद्रेर्धनुभिरादित्यैरभ्यभ्या समरुद्रणै ।

धृतो नानाप्रहरणैर्निययौ चिदशधिप ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् क्रदों, यमुओं, आदित्यों, अभिनीकुमारों
और मरुद्गणोंसे धिरे हुए देवराज इन्द्र नाना प्रकारक अन्न
शस्त्र साथ लिये पुरीसे बाहर निकल ॥ २७ ॥

निगच्छन्तेस्तु शमस्य परुष पवनो ययौ ।

भास्वरो निःप्रमथ्यैव महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥ २८ ॥

इन्द्रके निकलते ही प्रचण्ड वायु चलने लगी । सूर्यकी
प्रभा कीनी पड़ गयी और आकाशसे पड़ी-पड़ी उल्काएँ
गिरने लगी ॥ २८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे दारो दशमीव प्रतापवान् ।

आसुरोह रथ दिव्य निर्मित त्रिव्यकमणा ॥ २९ ॥

इसी बीचमें प्रतापी वीर दशमीव भी त्रिविक्रमके बनाये
हुए दिव्य रथपर सवार हुआ ॥ २९ ॥

पन्नगैः सुमहाकायैर्वैष्टत लोमहवणैः ।

येषा निःश्यासतातेन प्रदीप्तमित्र सयुगे ॥ ३० ॥

उस रथमें रौंगटे खड़े कर देनेवाले विनालकाय सर्प लिपट
हुए थे । उनही निःश्यासतायुसे वह रथ उस युद्धस्थलमें
ज्वलित-सा जान पड़ता था ॥ ३० ॥

दैत्यैर्निशाचरैर्दैत्यैः स रथ परिवारित ।

समराभिमुखो द्वियो मोहद्र सोऽभ्यरतत ॥ ३१ ॥

दलों और निशाचरोंने उस रथको सब ओरसे घेर रक्खा
था । समराङ्गणकी ओर बढ़ता हुआ रावणका वह दिव्य रथ
मोह-द्रव सामने जा पहुँचा ॥ ३१ ॥

पुत्र त धारयित्वा तु स्वयमेव ध्ययस्थित ।

सोऽपि युद्धाद्रिनिष्पन्म्य रावणि समुपाविशत् ॥ ३२ ॥

रावण अपने पुत्रका शककर स्व ही युद्धर लिये राहा
हुआ । तब रावणपुत्र मथनाद युद्धस्थलमें निकटकर पुन
बाप अपने रथपर जा बैठा ॥ ३२ ॥

ततो युद्ध प्रवृत्त तु सुराणां राक्षस सह ।

शस्त्राणि धपता तेषा मेघानामिव सयुगे ॥ ३३ ॥

जि ता देवताओंका राक्षसोंने साथ घोर युद्ध होने लगा ।
बलूनी बना करनेवाले मेघोंके समान देवता युद्धस्थलमें अन्न
शस्त्रोंकी धपा करने लगे ॥ ३३ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टमा नानाप्रहरणोद्यत ।

नाहायत तदा राजन् युद्ध केनाभ्यपद्यत ॥ ३४ ॥

राजन् ! दुष्टात्मा कुम्भकर्ण नाना प्रकारक अन्न शस्त्र
लिये छिठके साथ युद्ध करता था, इसका पता नहीं लगता
था (अर्थात् मतवाला होनेक कारण अपने और परये सभी
सैनिकों साथ चढ़ने लगता था) ॥ ३४ ॥

वन्ते पादैर्भुजैर्हस्तैः शक्तितोमरमुद्रैः ।

येन तेनैव सङ्कुन्दस्ताडयामास देवता ॥ ३५ ॥

वह अत्यन्त कुपित हो दौत, लत, मुञ्च, हाथ, शक्ति,
तामर और मुद्र आदि जो ही पाता उठीसे देवताओंको
पीरता था ॥ ३५ ॥

स तु रुद्रेर्महाघोरैः सगम्याथ निशारर ।

प्रयुद्धस्तैश्च सप्राप्ते क्षत शल्लैर्निरन्तरम् ॥ ३६ ॥

वह निशाचर महाभयङ्कर रुद्रों साथ भिड़कर घर
युद्ध करने लगा । सप्राप्तमें रुद्रोंने अपने अन्न शस्त्रोंद्वारा उसे
ऐसा क्षत विक्षत कर दिया था कि उसका शरीरमें धाड़ी-सी भी
बगह बिना घावके नहीं रह गयी थी ॥ ३६ ॥

यमौ शस्त्राचिततनु कुम्भकण क्षरणाद्युक् ।

विधुस्तनितनिर्घोषो धारायानिव तोयवृक् ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्णका शरीर शस्त्रोंम व्याप्त हो लूनकी प्राप रहा
रहा था । उस समय वह बिजली तथा गजनासे युक्त बलवती
धारा गिरनेवाला मेघर समान जान पड़ता था ॥ ३७ ॥

ततस्तद् रात्रस सैन्य प्रयुद्ध समरुद्रणै ।

रणे विद्राशित सयै नानाप्रहरणैस्तदा ॥ ३८ ॥

तदनन्तर घोर युद्धमें लगी हुई उस रात्री राक्षसोंनाक।
रणभूमिमें नाना प्रकारके अन्न शस्त्र धारण करनेवाले रुद्रों और
मरुद्गणोंसे मार भगया ॥ ३८ ॥

केचिद् धिनिहता वृत्तादग्रेणित स महीतल ।

वाहनेष्वयसस्ताश्च म्रियता एवापर रणे ॥ ३९ ॥

किन्तु ही निशाचर मार गय । किन्तु ही वृत्तकर धरती
पर लगेने और छटपटाने लगे और बहुत म राक्षस प्राणिन
हो खानेपर भी उस रणभूमिमें अपने बाहनोंपर ही
चिरट रहे ॥ ३९ ॥

रथान् नागान् खगान् पुत्रान् पद्मगास्तुरगास्तथा ।

दिग्गुमापान् वराहाश्च पिनाचपद्वानपि ॥ ४० ॥

तान् समालिङ्ग्य यादव्या गिष्ठधा केरिदुलित्या ।

देवैस्तु शस्त्रसमिध्ना मग्निरे च निशाररा ॥ ४१ ॥

कुछ राक्षस रथों, हाथियों, गायों, ऊँटों, टर्कों, पक्षियों,
दिग्गजों, वराहों तथा पिनाचपुत्र बटनोंके दलों मुक्ताओंसे

एकद्वार उनसे लिप्टे हुए निश्चेष्ट हो गये थे । किन्तु ही
वा पदलेसे मूर्छित होकर पड़े थे, मूछा दूर होनेपर उठे, किंतु
देवताओंके शब्दोंसे छिन्न-भिन्न हो मोतके मुखमें चले
गये ॥ ४० ४१ ॥

विवर्कर्म इवाभाति सर्वेषां रणसम्प्लव ।

निहताना प्रसुप्ताना राक्षसाना महीतले ॥ ४२ ॥

प्राणोंसे हाथ बाँधकर घरीतपर पड़े हुए उन समस्त राक्षसों
का इस तरह युद्धमें मारा जाना आदू-सा आश्चर्यजनक जान
पड़ता था ॥ ४२ ॥

शोणितोदकनिष्पन्दा काकगृध्रसमाकुला ।

प्रवृत्ता सयुगमुखे शस्त्रप्रावृत्तयती नदी ॥ ४३ ॥

युद्धके मुहानेपर खूनकी नदी बह चली, निश्चये भीतर
अनेक प्रकारके शस्त्र प्राहोंका भ्रम उत्पन्न करने थे । उस
नदीके तटपर काएँ और गीघ और कौए छा गये थे ॥ ४३ ॥

एतस्मिन्मन्तरे कुन्दो दशग्रीव प्रतापवान् ।

निरीक्ष्य तु दल सर्वे दैवतैर्विनिपातितम् ॥ ४४ ॥

इसी पीछेसे प्रतापी दशग्रीवने जब देखा कि देवताओंने
हमारे समस्त सैनिकोंको मार गिराया है, तब उसने श्रेष्ठकी
सीमान रही ॥ ४४ ॥

स त प्रतिविगाहानु प्रवृद्ध सैन्यसागरम् ।

त्रिदशान् समरे निज्ज्वाशमेवाभ्यवन्त ॥ ४५ ॥

हजारों भीमद्रामायणे बास्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरराष्ट्रदेशाविश सप्त ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आधरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनविंश सर्ग

रावणका देवसेनाके बीचसे होकर निकलना, देवताओंका उसे कैद करनेके लिये प्रयत्न, मेघनाद

मायाद्वारा इन्द्रको पदी बनाना तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काको लौटना

तत्तत्तमसि सजाते सर्वे ते देवराक्षसाः ।

अयुद्धवन्त बलौमत्ता स्रुयन्त परस्परम् ॥ १ ॥

जब सर और अशकार छा गया, तब बलसे उमत्त
हुए व समस्त देवता और राक्षस एक दूसरेकी मारते हुए
परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसाना बृहद् घटम् ।

दशशय श्यापित युद्धे शेष भीत यमसूयम् ॥ २ ॥

उस समय देवताओंकी सेनाने राक्षसोंके विशाल सैन्य
समूहका कण्ट दसों हिस्सा युद्धभूमिमें लड़ा करने दिया ।
शेष सब राक्षसोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ २ ॥

अस्मिस्तु तामसे युद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः ।

अन्यान्य नाभ्यजानन्त युध्यमाना परस्परम् ॥ ३ ॥

उस तामस युद्धमें समस्त देवता और राक्षस परस्पर
युद्धमें हुए एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे ॥ ३ ॥
इन्द्राय रावणदत्तैव रावणिष्ठ महायत्न ।

वह समुद्रके समान दूरतक फैली हुई देवसेनामें
गया और समराङ्गणमें देवताओंको मारना पूरा धराशायी
हुआ व्रत ही इन्द्रके सामने आ पहुँचा ॥ ४५ ॥

तत शम्भो महाश्राप विस्फार्य सुमहास्यनम् ।

यस्य विस्फारनिर्घोषे स्तनन्ति स्म दिशो ददा ॥ ४६ ॥

तब इन्द्रने जोर-जोरसे टङ्कार करनेवाले अपने विष्णु
धनुषकी खींचा । उसकी टङ्कार ध्वनिसे दसों दिशाएँ म
ध्वनित हो उठीं ॥ ४६ ॥

तद् विरुध्य महाश्रापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ।

पातयामास स शरान् पावशादित्यवर्चस ॥ ४७ ॥

उस विशाल धनुषकी खींचकर इन्द्रने रावणके मस्तक

अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाण मारे ॥ ४७ ॥

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो निशाचर ।

शक्य कार्मुकविभ्रष्टे शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार महाबाहु निशाचर दशग्रीवने भी अ
धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी बपत्ति इन्द्रको दक दिया ॥ ४८ ॥
प्रयुध्यतेरथ तयोरोणयै समन्तत ।

नान्नायत तदा किञ्चित् सर्वे हि तमसा घृतम् ॥ ४९ ॥

वे दोनों पोर युद्धमें तत्पर हो जब बाणोंकी वृष्टि क
लगे, उस समय सब ओर सब कुछ अन्धकारसे आच्छा
ही गया । किसीको किसी भी वस्तुकी पहचान नहीं
पाती थी ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बास्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरराष्ट्रदेशाविश सप्त ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आधरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनविंश सर्ग

रावणका देवसेनाके बीचसे होकर निकलना, देवताओंका उसे कैद करनेके लिये प्रयत्न, मेघनाद

मायाद्वारा इन्द्रको पदी बनाना तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काको लौटना

तत्तत्तमसि सजाते सर्वे ते देवराक्षसाः ।

अयुद्धवन्त बलौमत्ता स्रुयन्त परस्परम् ॥ १ ॥

जब सर और अशकार छा गया, तब बलसे उमत्त
हुए व समस्त देवता और राक्षस एक दूसरेकी मारते हुए
परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसाना बृहद् घटम् ।

दशशय श्यापित युद्धे शेष भीत यमसूयम् ॥ २ ॥

उस समय देवताओंकी सेनाने राक्षसोंके विशाल सैन्य
समूहका कण्ट दसों हिस्सा युद्धभूमिमें लड़ा करने दिया ।
शेष सब राक्षसोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ २ ॥

अस्मिस्तु तामसे युद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः ।

अन्यान्य नाभ्यजानन्त युध्यमाना परस्परम् ॥ ३ ॥

उस तामस युद्धमें समस्त देवता और राक्षस परस्पर
युद्धमें हुए एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे ॥ ३ ॥
इन्द्राय रावणदत्तैव रावणिष्ठ महायत्न ।

तस्मिन्स्तमोजालवृत्ते मोहमोयुर्न ते शयः ॥ ४६ ॥

इन्द्र, रावण और रावणपुत्र महाबली मेघनाद—
तीन ही उस अन्धकाराच्छन्न समराङ्गणमें माहित नहीं हुए थे
स तु हृष्टा बल सर्वे रावणो निहत क्षणात् ।

कोधमम्यगमत्तीय महानाद च मुक्त्वान् ॥ ५ ॥

रावणने देखा, मेरी सारी सेना क्षणभरमें मारी गयी,
उसके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और उसने बड़ी भा
गर्जना की ॥ ५ ॥

प्रोधात् सत च दुर्धर्यः स्यन्दनस्यमुक्त्व ह ।

परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्य माम् ॥ ६ ॥

उस दुर्जय निशाचरने रथपर बैठे हुए अपने सारथि
क्षयपूर्वक कहा—भूत । धनुषोंकी इस सेनाका जहाँ
अन्त है, वहाँक तुम इस सेनाके मध्य भागमें होकर मु
से चले ॥ ६ ॥

अग्रैतान् त्रिदशान् सर्वान् विजयो समरे स्वयम् ।

मानाशयमहासारीनयामि यमसादनम् ॥ ७ ॥
 'आज मैं स्वयं अपने पराक्रमगुण नाना प्रकारके शत्रुओंकी
 मशान् घातवाहिक दृष्टि करके इन सब देवताओंको यम
 राज पहुँचा दूँगा ॥ ७ ॥
 अहमिदं घधिष्यामि धनं यदुण यमम् ।
 त्रिदशान् घिनित्वायान् मयस्थास्याम्ययोपरि ॥ ८ ॥
 'मैं इन्द्र, कुबेर, गरुड और यमका भी वध करूँगा ।
 सब देवताओंका शीघ्र ही संहार करके स्वयं सबका उपर
 स्थित होऊँगा ॥ ८ ॥
 विषादो नैव कर्तव्य शीघ्र चाह्य मे रथम् ।
 द्वि खलु रथा घवीम्यद्य यावदन्त नयस्य माम् ॥ ९ ॥
 'मुझे विषाद नहीं करना चाहिये । शीघ्र मर रथ
 से चलो । मैं तुमसे दो बार पड़ता हूँ, देवताओंकी सेनाका
 बहोतक अन्त है, बहोतक मुझ अभी से चला ॥ ९ ॥
 अथ स नन्दनोद्देशो यत्र यतायहे ययम् ।
 नय मामद्य तत्र त्वमुद्यो यत्र पतत ॥ १० ॥
 'यह नन्दनवनरा प्रदेश है, जहाँ इस समय हम दोनों
 मौजूद हैं । यहींसे देवताओंकी सेनाका आक्रमण होता है ।
 अब हम मुझे उस स्थानतक ले चले, जहाँ उदयाचल है
 (नन्दनवनमें उदयाचलतक देवताओंकी सेना फैली हुई है) ॥
 तस्य तद् यचन ध्रुवातुरगान् स मनोजगान् ।
 आदिदेशाथ शत्रूणा मभ्येनैव च सारथि ॥ ११ ॥
 रावणकी यह बात सुनकर सारथिने मनके समान
 वेगशाली पैदोंका घनुसेनाके पीछे हँक दिया ॥ ११ ॥
 तस्य त निश्चय क्षात्या शत्रो देयेभ्यस्तदा ।
 रथस्य समरस्थस्तान् देवान् यान्ममथावधीत् ॥ १२ ॥
 रावणक इस निश्चयज्ञ जनकर समरभूमिमें रथपर बैठे
 हुए देवराज इन्द्रने उन देवताओंसे कहा— ॥ १२ ॥
 सुता शृणुन महाकथं यत् तागमम रोचते ।
 नीनन्नेन वृशप्रीय साधु रक्षो निगृह्यताम् ॥ १३ ॥
 'देवराज ! मेरी बात सुनो । मुझे तो यही अच्छा लगता
 है कि इस निराचर दशप्रीयकी भीति अवलम्बें ही भली
 भाँति कैद कर लिया जाय ॥ १३ ॥
 एष हातियत् सैन्ये स्थेः पयनीजस्ता ।
 गमिष्यति प्रद्वौर्मि ममुत् इय परापि ॥ १४ ॥
 'यह अत्यन्त बलशाली राक्षस यातुक समान वंगाली
 रथ पर इस सेनाके बीचमें दौड़र उसी तरह तीव्रगतिसे
 आगे बढ़ेगा, जैसे पूर्वमाके दिन उत्तम तरात्रोमें युक्त समुद्र
 चला है ॥ १४ ॥
 नद्यं हतु शनघोऽद्य वरदानान् मुनिभयम् ।
 तद् प्रदीप्यामि रक्षो यन्मा भवत सयुगे ॥ १५ ॥
 'यह आज माया यहाँ आ सकता है क्योंकि ब्रह्माजीक
 वरदानके प्रभावसे पूज्य निर्भय हा ब्रह्म है । इसलिये हम

होगे हम राक्षसों पर कड़कर कैद कर लेंगे । तुमलोग सुदमें
 इस बातसे लिये पूरा प्रयत्न करो ॥ १५ ॥
 यया यलौ निरुद्धे च शैलेष्वभ्युज्यते मया ।
 एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ॥ १६ ॥
 'जैसे राजा बंकिम बाँध लिये अपनेपर ही मैं हीनों लोकोके
 राज्यका उपभोग कर रहा हूँ, उसी प्रकार इस पापी निराचर
 को बन्दी बना लिया जाय, यही मुझे अच्छा लगता है ॥ १६ ॥
 ततोऽस्य देशमास्थाय शत्रु सत्यस्य राजन्म ।
 अयुध्यत महाराज राक्षसास्त्रासयन रणे ॥ १७ ॥
 महाराज श्रीराम ! ऐसा कहकर इन्द्रने रावणके साथ
 युद्ध करना छाड़ दिया और दूसरी ओर जनर समग्रपुत्रमें
 राक्षसोंको मयभीत करते हुए वे उनके साथ युद्ध करने लगे ॥
 उत्तरेण दशप्रीयः प्रविशेशानियतव ।
 दक्षिणेन तु पादनेन प्रविशेश शतमनु ॥ १८ ॥
 सुदसे पीछे न हटनेवाले रावणने उत्तरकी ओरसे देव
 सेनामें प्रवेश किया और देवराज इन्द्रने दक्षिणकी ओरसे
 राक्षसेनामें ॥ १८ ॥
 ततः स योजनशत प्रविष्टो राक्षसाधिप ।
 देयताना यत् सर्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥
 देवताओंकी सेना चार सौ कोसतक फैली हुई थी ।
 राक्षसपुत्र रावणने उसके भीतर घुसकर समूची देवसेनाको
 बाणोंकी बरसे टक दिया ॥ १९ ॥
 ततः शत्रो निरीक्ष्याथ प्रणष्टं तु स्वक परम् ।
 न्ययतयदसम्भ्रान्त समावृत्त दशाननम् ॥ २० ॥
 अपनी विजाल सेनाको नष्ट होनी देख इन्द्रने बिना किसी
 बरबादतक दशमुख रावणका सामना किया और उसे चारों
 ओरसे घेरकर सुदसे विभुष कर दिया ॥ २० ॥
 पतस्त्रिभन्तरे नादो मुचो दानरराक्षसैः ।
 हा हता स्व रति प्रसूत दृष्ट्वा शत्रेण रायणम् ॥ २१ ॥
 इसी समय रावणको इन्द्रके चण्डालमें पैदा हुआ देव
 दानों तथा राक्षसों 'दाय ! हम मारे गए' ऐसा कहकर
 बड़े ज़ोरसे आतनाद किया ॥ २१ ॥
 ततो रथ सामान्याय रायणि प्रोधमुत्थनम् ।
 तत् सैन्यमतिमनुद्धं प्रविशेश सुदारणम् ॥ २२ ॥
 तब रावणका पुत्र मेघनाथ काचने अजनक हा गया
 और रावण बैठकर अत्यन्त क्रुपित ॥ उत्तम गुणकी मरकर
 सेनामें प्रवेश किया ॥ २२ ॥
 ता प्रविश्य महामाया प्राप्ता पशुपतं पुष्य ।
 प्रविशेश मुन्यम्बुधरान् सैन्यं समभिद्रयत् ॥ २३ ॥
 पुराहलमें पशुपति महादेवकी उपासी ॥ तब तबसे
 महामाया प्राप्त हुई थी, उसमें प्रवेश करके उसने अपने
 छिपा लिया और अत्यन्त शत्रुवत् घनुमेनामें घुसकर उसे
 मारदेना आरम्भ किया ॥ २३ ॥

स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेगाम्यधात ।

महेन्द्रश्च महातेजा नापदयश्च सुत रिपोः ॥ २४ ॥

यह सब देवताओंको छोड़कर इन्द्र ही दूट पड़ा, परन्तु महातेजस्वी इन्द्र अपने शत्रुके उस पुत्रको देख न सके।

विमुक्तकञ्चस्तत्र ध्वजमानोऽपि राणि ।

प्रिदौ सुमहावीर्येन चकार च किञ्चन ॥ २५ ॥

महापराक्रमी देवताओंकी मार खानेसे यद्यपि वहाँ रावण कुमारका कवच नष्ट हो गया था, तथापि उसने अपने मनमें तनिक भी भय नहीं किया ॥ २५ ॥

स मार्तलं समायान्त तद्वदित्वा शरोत्तमे ।

महेन्द्र बाणवर्षेण भूय एगाम्यवाकिरत् ॥ २६ ॥

उसने अपने सामने आते हुए मार्तलिको उच्चम बाणोंसे घायल करके सायकोंकी हाड़ी लगाकर पुन देवराज इन्द्रको भी ढक दिया ॥ २६ ॥

ततस्त्यक्त्वा रथ शक्रो विससर्ज च सारथिम् ।

पेरावत समादह्य मृगयामास राणिम् ॥ २७ ॥

तब इन्द्रने रथको छोड़कर सारथिको बिदा कर दिया और पेरावत हाथीपर आरुढ़ हो वे रावणकुमारकी खोज करने लगे ॥ २७ ॥

स तत्र मायावलयानदृश्योऽयान्तरिक्षम् ।

इन्द्र मायापरिक्षिप्तं हृत्वा स प्राद्रवच्छरी ॥ २८ ॥

मेघनाद अपनी मायाके कारण बहुत प्रबल हो रहा था । वह अदृश्य होकर आकाशमें विचरने लगा और इन्द्रको मायासे व्याकुल करके बाणोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥

स त यदा परिश्रान्तमिन्द्र जशेऽय राणि ।

तदैव मायया यद्ध्वा ससैन्यमभितोऽनयत् ॥ २९ ॥

रावणकुमारने जब अच्छी तरह मारुम हो गया कि इन्द्र बहुत थक गये हैं, तब उन्हें मायासे बाँधकर अपनी सेनामें ले आया ॥ २९ ॥

त तु दृष्ट्वा यत्नात् तेन नीयमान महारणात् ।

महेन्द्रममरा सर्वे रिं तु स्वादित्यधिनयन् ॥ ३० ॥

महेन्द्रको उस महासमरसे मेघनादद्वारा बलपूर्वक ले जाये जाते देख सब देवता यह सोचने लगे कि 'अब क्या होगा ?' ॥ ३० ॥

हृदयने न स मायावी शक्रजित् समितिजय ।

विद्यावानपि येनेन्द्रो माययापहतो यत्नात् ॥ ३१ ॥

'यह युद्धविजयी मायावी राक्षस स्वयं तो दिखायी देता नहीं, इसीलिये इन्द्रपर विजय पानेमें सफल हुआ है । यद्यपि देवराज इन्द्र राक्षसी मायाका सहार करनेकी विद्या जानते हैं, तथापि इस राक्षसे मायाद्वारा बलपूर्वक इनका अपहरण किया है' ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्तरे मुन्दाः सर्वे सुरगणास्तदा ।

रायण विमुक्षीकृत्य शरत्पर्ययाकिरन् ॥ ३२ ॥

ऐसा सोचते हुए वे सब देवता उस समय रोपते भर गय और रावणको युद्धसे विमुक्त करने उसपर बाणोंकी हाड़ी लगाने लगे ॥ ३२ ॥

राणस्तु समासाद्य आदित्याश्च वसुस्तदा ।

न शशाक स सप्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दित ॥ ३३ ॥

रावण आदित्यों और वसुओंका सामना पड़ जानेपर युद्धमें उनके सम्मुख उठर न सका क्योंकि शत्रुओंने उसे बहुत पीड़ित कर दिया था ॥ ३३ ॥

स त दृष्ट्वा परिभ्रान्त प्रहारेर्जर्जरीकृतम् ।

रायणि पितर युद्धेऽदर्शनस्थोऽग्रजीविदम् ॥ ३४ ॥

मेघनादने देखा पितका शरीर बाणोंसे प्रहारसे जर्जर हो गया है और वे युद्धमें उदास दिखायी देते हैं । तब वह अदृश्य रहकर ही रावणसे इस प्रकार बोला— ॥ ३४ ॥

आगच्छ तत गच्छामो रणकर्म निर्वर्तताम् ।

जित नो विदित तेऽस्तु सख्यो भय गतज्वर ॥ ३५ ॥

'पिताजी ! चले आइये । अब हमलोग घर चलें । युद्ध बंद कर दिया जाय । हमारी जीत हो गयी, अब आप सख्य, निश्चिन्त एवं प्रसन्न हो चाहिये ॥ ३५ ॥

अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च य प्रभुः ।

स गृहीतो वैधयलाद् भगवत्पा सुरा हता ॥ ३६ ॥

व्ये जो देवताओंकी सेना तथा तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्र हैं, इन्हें मैं देवसेनाके बीचसे कैद कर लाया हूँ । ऐसा करके मैंने देवताओंका धमक चूर कर दिया है ॥ ३६ ॥

यथेष्ट भुङ्क्व लोकास्त्रीन् निगृह्यारातिमोजसा ।

पृथा रिं ते धमेणेह युद्धमथ नु निष्फलम् ॥ ३७ ॥

'आप अपने शत्रुको बलपूर्वक कैद करके इच्छानुसार तीनों लोकोंका राज्य भोगिये । यहाँ व्यर्थ भ्रम करनेसे आपके क्या लाभ है ! अब युद्धसे कोई प्रयोजन नहीं है' ॥ ३७ ॥

ततस्ते वैचतगणा निवृत्ता रणकर्मण ।

तच्छ्रुत्वा रावणेवाक्य शक्रहीना सुरा गता ॥ ३८ ॥

मेघनादकी यह बात सुनकर सब देवता युद्धसे निवृत्त हो गये और इन्द्रको वाप लिये बिना ही लौट गये ॥ ३८ ॥

अथ राणविगत स उत्तमीजा

खिदशरिपु प्रथितो निराचरेद्र ॥

व्यसुतपञ्चनमादत प्रिय तत्

समनुनिदाम्य जगाद् चैव सनुम् ॥ ३९ ॥

अपने पुत्रके उस प्रिय वचनका आदरपूर्वक सुनकर महान् बलशाली देवद्रोही तथा सुविख्यात राक्षसराज रावण युद्धसे निवृत्त हो गया और अपने घेरेमें बोला— ॥ ३९ ॥

यतिरत्नसहस्रै पराक्रमैस्त्व

मम पुत्रराजियधन प्रभो ।

यद्यमनुत्पत्यलस्त्वयाद्य धै

यिदनापतिसिद्धशाश्च निर्जिता ॥ ४० ॥

‘साम्पगाली पुत्र ! अपने अरुणत बच्चे अनुरूप पराक्रम प्रकट करके आज तुमने जो इन अनुपम बलशाली देवराज इन्द्रका बीजा और देवनाभोंको भी परास्त किया है, इससे यह निश्चय हो गया कि तुम मेरे कुल और चरण यश और सम्मानकी वृद्धि करनेवाले हो ॥ ४० ॥

नय रथमधिरोष्य चासथ नगर

मितो यज्ञ सेनया घृतस्त्यम् ।

अहमपि तत्र पृष्ठतो द्रुत

सह सचिवैरनुयामि हृष्टात् ॥ ४१ ॥

वेदा ! इन्द्रको रथपर बैठाकर तुम सेनाएं साथ बहो

हृष्टार्थों श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिग्रन्थे उत्तरकाण्डे पञ्चविंश सर्ग ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित व्याससंस्कृत महाभारतका उत्तरकाण्ड समाप्त हुआ ॥ २ ॥

त्रिंशः सर्गः

ब्रह्मानीका इन्द्रजित्को वरदान देकर इन्द्रको उमकी कैदसे छुड़ाना और उनके पूर्वकृत पापकर्मको याद दिलाकर उनसे वैष्णव यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये

कहना, उम यज्ञका पूर्ण करके इन्द्रका मर्यालोकमें जाना

जिते महेन्द्रेऽतिवले राक्षणस्य सुतेन वै ।

प्रजापतिं पुरस्सृत्य ययुर्लङ्घा सुरास्ताम् ॥ १ ॥

रावणपुत्र मेघनाद अब अत्यन्त बलशाली इन्द्रको जीत कर अपने नगरमें ले गया, तब सम्पूर्ण देवता प्रजापति ब्रह्मानी को आगे करके लङ्कामें पहुँचे ॥ १ ॥

तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातृभिरानृतम् ।

अग्रयिद् गगने तिष्ठन् क्षामपूर्वं प्रजापतिं ॥ २ ॥

ब्रह्मानी आकाशमें लगे-लगे ही पुत्रों और भ्रातृमैके साथ बैठे हुए रावणके निरट जा उसे फलत वाणामें समझात हुए बाले—॥ २ ॥

यत्स रावण तुष्टोऽस्मि पुत्रस्य तत्र सयुगे ।

अहोऽन्य रिममौर्वायतत्र तुल्योऽधिकोऽपि वा ॥ ३ ॥

यत्स रावण ! तुम्हें हमारे पुत्रों की शीरला देखकर मैं बहुत संतुष्ट हुआ हूँ । अह ! इसका उदार पराक्रम तुम्हारे समान या तुम्हें भी बढ़कर दे ॥ ३ ॥

जित हि भरता सर्वे प्रैलोक्य स्वैन तेजसा ।

एता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि समनुज्य त ॥ ४ ॥

तुमने अपने तेजसे समस्त विश्वधीपर विजय पायी है और अपनी प्रीति सफल कर ली है । इसलिये पुत्रसहित तुम्हारे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥

अथ च पुत्रोऽतिबलस्तत्र रावण धीययान् ।

जगतीन्द्रजित्पत्ये परिस्थातो भविष्यति ॥ ५ ॥

‘यथा ! तुम्हारा यह पुत्र अविजय बलशाली और पराक्रमी है । अबले यह सफल हो इन्द्रजित नामक विजय होगा ॥ ५ ॥

लङ्कापुत्रीको चले । मैं भी अपने मित्रपति साथ शीघ्र ही प्रसन्नतापुत्रर तुम्हारे पीछे पीछे आ रहा हूँ ॥ ४१ ॥

अथ स यत्नतः समाहूय

स्त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणि ।

सम्भजनमधिगम्य धीययान्

एतन्मरान् विस्सर्ज्य राक्षसान् ॥ ४२ ॥

पिताजी यह आशा पाकर पराक्रमी रावणतुमार मेघनाद देवराजसे साथ ले सेना और सारासिंहदिव अपने निराश स्थानसे लौगा । वहाँ पहुँचकर उसने तुझमें भाग लेनेवाले निराश्रितोंसे निदा कर दिया ॥ ४२ ॥

इति प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित व्याससंस्कृत महाभारतका उत्तरकाण्ड समाप्त हुआ ॥ २ ॥

यत्नान् दुजयदचैव भविष्यत्येव राक्षसां ।

य ममाधिप ते राजन् म्यापितास्त्रिदशा यशे ॥ ६ ॥

‘पावन ! यह राक्षस बड़ा बलशाली और दुजय होगा जिसका आभय लेकर तुमने समस्त देवनाभोंको अपने अधीन कर लिया ॥ ६ ॥

तमुच्यता महाबाहो महेन्द्र पाक्षशासन ।

किं चास्य मोक्षणापाय प्रपञ्चतु दिव्यैश्च ॥ ७ ॥

‘महाबाहो ! अब तुम पाक्षशासन इन्द्रको छोड़ दो और बलाभा इन्हें छोड़ने पर लक्ष्मण देवता तुम्हें बता दें ॥ ७ ॥

अथाग्र्यी महातेजा इन्द्रजित् समितिष्य ।

अमरत्वमह देव धृष्य यत्नेर मुच्यते ॥ ८ ॥

तब युद्धरिक्वी महाबलवी इन्द्रजित्ने स्वयं ॥ यथा—‘देव ! यदि इन्द्रको छोड़ना दे तो मैं इतर पर लक्ष्मण अमरत्व पाना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

ततोऽग्र्यी महातेजा मेघनाद प्रजापति ।

नास्मिन्मरामरत्य दिक्पतिस्तु प्राणिनो मुयि ॥ ९ ॥

पश्चिमाग्र्यतुल्ये वा भूमाणा या मही नमाम् ।

यं मुनिर मनेनो प्रपन्नो दानेन मन्त्रेण वता—‘यय ! इस पराक्रमी लक्ष्मण देवता महाबलवी मनुष्य आदि प्राणियोंके लक्ष्मण की प्रीति गणना नहीं हो सक्ती ॥ ९ ॥

धृष्या पितामहेनानमिन्द्रजित्प्रमुखाययम् ॥ १० ॥

यथाज्जीव्य स तदस्य मघनादो मदारम् ।

भारतम् ब्रह्मदीर्घी क्री तुम्हें यह बता रहा है कि इन्द्रजित् महाबलवी मनुष्य के बराबर नहीं हो सक्ती ॥ १० ॥

श्रूयता या भवेत् सिद्धिं शतप्रतुविमोक्षणे ॥ ११ ॥
ममेष्ट नित्यशो हव्यैर्मात्रं सम्पूज्य पावकम् ।
सप्राममरतुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिण ॥ १२ ॥
अभ्युक्तो रथो महामुत्तिष्ठेत् तु विभागसो ।

तत्स्थस्यामरता स्यामे एष मे निश्चितो धन ॥ १३ ॥

‘ममरन् । (यदि सर्वथा अमरत्व प्राप्त होना असम्भव है) तब इन्द्रको छाड़नेक सम्भवमें का मेरी दूसरी गुंते है—
जो दूसरी सिद्धि प्राप्त करना मुझे अभीष्ट है, उसे सुनिये । मेरे विषयमें यह सदाके लिये नियम हो जाय कि जब मैं शत्रुपर विजय पावेगी इच्छासे समाममें उतरना चाहूँ और मात्रयुक्त हव्यवी आहुतिसे अग्निदेवकी पूजा करूँ, उस समय अग्निसे मेरे लिये एक ऐसा रथ प्रकट हो जाय करे, जो घोड़ोंसे जुता-जुताया तैयार हो और उसपर जबतक मैं बैठा रहूँ, तबतक मुझ कोई भी मार न सके, यही मेरा निश्चित वर है ॥ ११-१३ ॥

तस्मिन् यद्यसमाते च जप्यहोम विभावसी ।

युध्येय देव समामे तदा मे स्याद् विनाशनम् ॥ १४ ॥

‘यदि युद्धके निमित्त किये जानेवाले जप और होमको पूर्ण किये बिना ही मैं समराङ्गणमें युद्ध करने लूँ, तभी मेरा विनाश हो ॥ १४ ॥

सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरता पुमान् ।

निक्रमेण मया त्येतदमरतय प्रवर्तितम् ॥ १५ ॥

‘देव । सब लोग तपस्या करके अमरत्व प्राप्त करते हैं परन्तु मैंने पराक्रमद्वारा इस अमरत्वका वरण किया है ॥ १५ ॥

एषमस्त्विति न चाह याक्य देव पितामह ।

मुक्त्स्वेन्द्रजिता शशो गताश्च त्रिविध सुरा ॥ १६ ॥

यह मुनकर भगवान् ब्रह्माजीने कहा—‘एषमस्तु (ऐसा ही हो)’ । इसके बाद इन्द्रजित्ने इन्द्रको मुक्त कर दिया और अब देवता उन्हें साथ लहर स्वर्गलोकको चले गये ॥

एतस्मिन्नन्दरे राम दीनो भ्रष्टामरद्युति ।

इन्द्रध्विन्तापरीनामा ध्यान्तत्परता गत ॥ १७ ॥

श्रीराम । उस समय इन्द्रका देवोचित तेज नष्ट हो गया था । वे दुःखी हो चिन्तामें डूबकर अपनी पराजयका कारण सोचने लगा ॥ १७ ॥

न तु ह्युप ताभूत प्राह देव पितामह ।

शतमृतो विमु पुरा यगेति स्म सुदुःष्ठतम् ॥ १८ ॥

भगवान् तमाजीने उनकी इस अवस्थाका लक्ष्य किया और कहा—‘तत्प्रज्ञा । यदि आज तुम्हें इस अपमानसे शाक और दुःख हो रहा है तो बताओ पूर्वकालमें तुमने क्या गारी दुष्कर्म क्यों किया था ? ॥ १८ ॥

ममेन्द्र मया युद्धया प्रजाः सृणस्तथा प्रभो ।

एकजणा समाभाया एकरूपाश्च सजरा ॥ १९ ॥

‘प्रभो । देवराज । पहले मैंने अपनी कुटुम्बि जिन

प्रजाओंको उत्पन्न किया था उन सबकी अद्भुतान्ति, भाषा, रूप और अवस्था सभी बातें एक-जैसी थीं ॥ १९ ॥

तासा नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा ।

ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजा समचिन्तयम् ॥ २० ॥

‘उनके रूप और रंग आदिमें परस्पर कोई विलक्षणता नहीं थी । तब मैं एकाग्रचित्त होकर उन प्रजाओंके विषयमें विचारता छाने-छाने लिय कुछ विचार करने लगा ॥ २० ॥

सोऽह तासा विशेषार्थं क्रियमेका यिनिर्ममे ।

यद्भवत्प्रजाः प्रत्यङ्ग विशिष्ट तत्तदुद्घृतम् ॥ २१ ॥

‘विचारके पश्चात् उन सब प्रजाओंकी अनेक विविध प्रजाको प्रस्तुत करनेके लिये मैंने एक नारीकी छवि की । प्रजाओंके प्रत्येक अङ्गमें जो-जो अद्भुत विविधता—चारभूत सौन्दर्य था, उसे मैंने उसके अङ्गोंमें प्रकट किया ॥ २१ ॥

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री यिनिर्मिता ।

हल नामेह वैरूप्य हल्य तप्रभव भवेत् ॥ २२ ॥

यस्या न विद्यते हल्य तेनाहल्येति विश्रुता ।

अहल्येत्येष च मया तस्या नाम प्रकीर्तितम् ॥ २३ ॥

‘उन अद्भुत रूप-गुणोंसे उपलक्षित जिस नारीका मेरे द्वारा निर्माण हुआ था, उसका नाम हुआ अहल्या । इस जगत्में हल कहते हैं कुरूपताको, उससे जो निन्दनीयता प्रकट होती है उसका नाम हल्य है । जिस नारीमें हल्य (निन्दनीय रूप) न हो, वह अहल्या कहलाती है, इसीलिये वह नवनिर्मित नारी अहल्या नामसे विख्यात हुई । मैंने ही उसका नाम अहल्या रख दिया था ॥ २२-२३ ॥

निर्मिताया च देवेन्द्र तस्या नार्यो सुरर्षभ ।

भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥ २४ ॥

‘देवेन्द्र । सुरप्रेष्ठ । जब उस नारीका निमाण हो गया, तब मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि वह किसी पत्नी होगी ? ॥ तब तु दास्य तदा नारीं जानीये मनसा प्रभो ।’

स्थानाधिकतया पत्नी ममैवेति पुरन्दर ॥ २५ ॥

‘प्रभो । पुरन्दर । देवेन्द्र । उन दिनों तुम अपने स्थान और पदकी श्रेष्ठताके कारण मेरे अनुमतिने बिना ही मन-ही मन यह समझने लगे थे कि वह मेरी ही पत्नी होगी ॥ २५ ॥

सा मया पासभूता तु गौतमस्य महात्मन ।

न्यस्ता वहनि गणाणि तन निर्यातिता च ह ॥ २६ ॥

‘मैंने अश्वत्थरूपमें मर्त्य गौतमक हाथमें उस कन्याको गार्प दिया । वह बहुत क्रोतक उनक यहाँ रही । फिर गौतम ने उसे मुझे लौटा दिया ॥ २६ ॥

तास्तस्य परिहाय महास्यैष महामुने ।

ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ॥ २७ ॥

‘महामुनि गौतमक उस मर्त्य रथेय (इन्द्रिय लय) तथा तपस्याविरमक सिद्धि-का जानकर मैंने वह कन्या पुन उन्ही पत्नीरूपमें दे दी ॥ २७ ॥

स तथा सह धर्मात्मा मते स महासुनि ।
आसन्निराशा वेदास्तु गौतमे दृष्टया तथा ॥ २८ ॥
'धर्मात्मा यहासुनि गौतम उरने साय मुन्यर्गक रहने
छो । जय अहत्या गौतमका दे दी गया, तब देयता
निपात हो गये ॥ २८ ॥

त्व मुन्दन्मिह कामात्मा गज तस्याथम मुने ।
हृष्टया तदा ता स्त्री गीतामसिदिशामि ॥ २९ ॥
तुम्हारे तो ऋषिजी सीमा न रही । तुम्हारा मन कामक
अपीन हो चुका था इसलिये तुमने मुनिके आश्रमपर जाकर
अभिधिप्राप्त समान प्रवर्तित होनेवाली उस दिव्य मुन्दरीकी
देखा ॥ २९ ॥

सा त्वया धर्षिता शम्प कामार्नेन समन्वुता ।
हृष्टस्य स तदा तेन आथमे परमर्षिणा ॥ ३० ॥
'शम्प' । तुमने क्रुपित और कामसे पीड़ित होकर उसकी
साय बलात्कार किया । उस समय उन महर्षिने अपने आश्रममें
तुम्हें देख लिया ॥ ३० ॥

तत क्रुद्धेन तेनासि दात परमनेजसा ।
गताऽसि येन श्वेदेन्द्र दत्ताभागरिपर्ययम् ॥ ३१ ॥
'श्वेदेन्द्र' । इससे उन परम तेजस्वी महर्षिने बड़ा क्रोध
हुआ और उन्होंने तुम्हें साय दे दिया । उसी क्षण कारण
तुमपर इस विपरीत दशामें आना पड़ा है—शत्रुवा बड़ी
बनना पड़ा है ॥ ३१ ॥

यस्मात्ते धर्षिता पक्षी त्वया धास्य निभयात् ।
तस्मात् त्वय समरे शम्प शत्रुदस्त गमिष्यसि ॥ ३२ ॥
'उन्होंने साय देते हुए कहा—'सायव । शम्प' । तुमने
निर्भय होकर मेरी पत्नीकी साय बलात्कार किया है इसलिये
तुम युद्धमें जाकर शत्रुके हाथमें पड़ जाओगे ॥ ३२ ॥
अथ तु भागे दुषुद्धे यस्म्वयेह प्रशतित ।
मानुषेऽपि लोकेषु भविष्यति न सदाय ॥ ३३ ॥

'दुषुद्धे' । तुम वैभय प्रशङ्क हाथमें मनुष्यत्वमें भी
यह आत्मा प्रचलित हो जाओगा, जिसका तुमने 'य' यों
सूत्रात् किया है इसमें संशय नहीं है ॥ ३२ ॥
तत्प्रार्थ तस्य य क्ता त्वत्पथं निपतिष्यति ।
न च ते व्याघर स्यान् भविष्यति न सदाय ॥ ३४ ॥

'व्याघर' नाम पातकार करेगा, उस पुरुषपर उस पार
का आधा भाग पड़गा और आधा तुमपर पड़ेगा क्योंकि
इसके प्रसक्त तुम्हें हो । निश्चय दुष्टता यह स्यान् स्थिर
नहीं होगा ॥ ३४ ॥

यद्य यद्य मुत्तद् स्याद् धृष्ट मनः भविष्यति ।
एव शापो मया मुने इयस्वीं सा तदाग्रणी ॥ ३५ ॥
'यद्य' । यदि देवताओं पर प्रतीति होगी, यह यों
स्थिर नहीं रहेगा । यह शाप मैंने इस भाषण स्थिर कर दिया
है । यह पत मुनिने तुम्हें बड़ी यों ॥ ३५ ॥

सा तु भार्या सुनिभस्य सोऽग्रणी तु महातपा ।
भुविनीत विनिष्कम्प ममाश्रमसमीपत ॥ ३६ ॥
रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात् त्वमनर्घिता ।
तस्माद् रूपयती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥ ३७ ॥

'भ्रि' उन महातपस्वी मुनिन अपनी 'य' पत्नीका भी
मनीषीति डॉक्टरकारकर कहा—'दुष्ट' । तु मेरे आश्रममें
पास ही रहकर रह और अपने रूप-यौवनमें स्थिर हो
जा । रूप और यौवनमें सम्पन्न होकर मयाश्रममें स्थिर नहीं
रह सकी है, इसलिये अब लोकमें तू अकेली ही रूपरती नहीं
रहेगी (बहुत-सी रूपरती जियाँ उत्पन्न हो जायेंगी) ॥ ३६ ॥ ३७ ॥
रूप च ते प्रजा सदा गमिष्यन्ति न सदाय ।
यत् तदेक समाधिष्य दिक्ष्मोऽयमुपस्थित ॥ ३८ ॥

'विश' एक रूप-यौवना लकर इन्द्र मनमें यह काम
विकार उत्पन्न हुआ था। वरें उस रूप-यौवनाको समान प्रवर्तित
प्रात कर लेंगी इसमें संशय नहीं है' ॥ ३८ ॥
तदाप्रकृति भूयिष्ठ प्रजा रूपममर्षिता ।
सा त प्रसाद्यामास महर्षि गौतम तदा ॥ ३९ ॥
अज्ञानाद् धर्षिता मित्र त्वद्वरूपेण दिव्यैकसा ।
न कामकाराद् विषये प्रसाद् यतुमुमि ॥ ४० ॥

पत्नीसे अधिकांग प्रजा रूपरती होने लगी । अज्ञानमें
उस समय विनाय वचनोद्वाग महर्षि गौतमका प्रसन्न किया
और कहा—'मित्र' । प्रजा । स्वपक्ष आया ही रूप
धारण करके मुझे वन्दित किया है । मैं उसे पदगान न सकी
थी । अन अनजानमें मुझे यह आश्रम हुआ है। स्नेह
चारवत् नहीं । इसलिये आपसे मुझपर हृष्ट करनी
चाहिये' ॥ ३९ ४० ॥

महत्स्यया त्वेमुन प्रत्युत्तव स गौतम ।
उत्पत्स्यति महर्षिणा हृष्टाङ्गना महाशय ॥ ४१ ॥
गमो नाम धुनो लोके यत चानुपयाम्यति ।
प्राहणाये महाशयिष्णुमानुषविग्रह ॥ ४२ ॥
त प्रकृष्यति यत् भन्दे तत पूता भविष्यति ।
स हि पाययितुं न तस्मया यद् दुष्टम जनम् ॥ ४३ ॥

'हृष्टाङ्ग' नाम बहनेर सैन्यमें उत्तर 'भन्द' ।
हृष्टाङ्गनामें एक महानेत्री महात्मी पीरका अन्तर
होगा जो सधर्ममें श्रीरामक नाममें विख्यात होगे । महाशय
आश्रमक रूपमें सन्तान् भगवान् विष्णु ही मनुष्य स्वरूप धारण
करके प्रकट होगे । व आश्रम (विष्णुविश्व अदि) के करने
तत्त्वमें पदरोंगे । जब तुम उनका दण्ड करो, तब धर्म
ही सञ्चाले । तुमने जो पाप किया है, उनमें तुम्हें व ही
धर्म कर सज्ज है ॥ ४१-४३ ॥

तस्यानिष्ठ यत् कृत्वा नै मन्मथीय गमिष्यति ।
याम्यसि त्व मया सार्थं तदा दि यम्यसि ॥ ४४ ॥

“वरवर्णिनि । उनका आतिथ्य-स्वकार करके तुम मेरे पास आ आओगी और फिर मेरे ही साथ रहने लओगी” ॥ ४४ ॥
एनमुक्त्वा स निप्रपिराजगाम स्वमाभ्रमम् ।

तपश्चचार सुमहत् सा पत्नी ब्रह्मवादिन ॥ ४५ ॥

‘ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आश्रमके भीतर आ गये और उन ब्रह्मवादी मुनिकी पत्नी यह अहल्या बड़ी भारी तपस्या करने लगी ॥ ४५ ॥

शापोत्सगादि तस्येद मुने सर्वमुपस्थितम् ।

तत् स्मर त्व महायाहो दुष्ष्टत यत् त्वया कृतम् ॥ ४६ ॥

‘महायाहो । उन महर्षि गौतमके साथ देनेसे ही तुमपर यह साथ सङ्घट उपस्थित हुआ है । अतः तुमने जो पाप किया था, उसको याद करो ॥ ४६ ॥

तेन त्व ग्रहण शत्रोर्यातो नान्येन यास्य ॥

शीघ्र वै यज यह त्व वैष्णव सुसमाहित ॥ ४७ ॥

‘यास्य । उस शायके ही कारण तुम शत्रुकी कैदमें पड़े हो, दूसरे किसी कारणसे नहीं । अतः अब धर्माप्रचिच्छ हो शीघ्र ही वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करो ॥ ४७ ॥

पावितस्तेन यशेन यास्यसे त्रिदिव ततः ।

पुत्रश्च तत्र देवेन्द्र न त्रिद्यो महारणे ॥ ४८ ॥

नीत सनिहितश्चैव आर्यकेण महोद्भौ ।

‘देवेन्द्र । उस यज्ञसे पवित्र होकर तुम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे । तुम्हारा पुत्र अथवा उस महासमरमें मारा नहीं गया है । उसका नाना पुलोमा उसे महासगरमें ले गया है । इस समय वह उठीने पास है’ ॥ ४८ ॥

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यक्षमिष्टा च वैष्णवम् ॥ ४९ ॥

पुनस्त्रिदिवमाप्तामदन्वयासद्य वैवराट् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमत्वाल्मीकिनिर्मित अष्टादशस्कन्ध उत्तरकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

एकत्रिंशः सर्गः

रावणका माहिष्मतीपुरीमें जाना और वहाँके राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका

विन्ध्यगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना

सतो रामो महातेजा त्रिसयात् पुनरेव हि ।

उवाच प्रणतो धान्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी प्रणाम करते पुनः त्रिसंगपूर्वक पूछा— ॥ १ ॥

भगवन् राक्षस क्रूरो यदाप्रमृति मेदिनीम् ।

पपटत् किं तदा लोका शल्या आसन् द्विजोत्तम ॥ २ ॥

‘भगवन् । द्विजश्रेष्ठ । जब क्रूर निशाचर रावण पृथ्वीपर विजय करता पूरा रहा था, उस समय क्या यहाँ सभी लोग चौप-सम्पन्नी गुणोत्तरे शल्या थे ? ॥ २ ॥

राजा या राजमात्रो या किं तदा नात्र बध्यत ।

धर्षय यत्र न प्राप्ते रावणो राक्षसेभ्यः ॥ ३ ॥

ब्रह्मानीकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान किया । यह यज्ञ पूरा करके देवराज स्वर्गलोकमें गये और वहाँ देवराजका शासन करने लगे ॥ ४९ ॥

एतद्दि-द्रजितो नाम बल यत् कीर्तित मया ॥ ५० ॥

निजितस्तेन देवेन्द्र प्राणिनोऽप्ये तु किं पुनः ।

रघुनन्दन । यह है इन्द्रविजयी मेघनादका बल, जिसका मैंने आपसे वषण किया है । उसने देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था, फिर दूसरे प्राणियोंकी तो विघात ही क्या थी ५० ॥

आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चावधीत् तदा ॥ ५१ ॥

अगस्त्यउचन श्रुत्वा दानरा राक्षसास्तदा ।

अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण तत्काल जोर उठ—‘आश्चर्य है !’ साथ ही दानरों और राक्षसोंकी भी ॥ ५१ ॥ बातसे बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५१ ॥

विभीषणस्तु रामस्य पादार्जस्यो वाक्पथमग्रवीत् ॥ ५२ ॥

आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत् तद् ह्यपुनरातनम् ।

उस समय भीरामके बगलमें बैठे हुए विभीषणने कहा— ‘मैंने पूर्वकालमें जो आश्चर्यकी बातें देखी थीं, उनका आज महर्षिने स्मरण दिला दिया है’ ॥ ५२ ॥

अगस्त्य त्वग्रवीद् राम सत्यमेतच्छ्रुत्वा च मे ॥ ५३ ॥

एव राम समुद्भूतो रावणो लोककण्टकः ।

सपुत्रो येन समामे जित शक्रः सुरेश्वर ॥ ५४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यजीसे कहा—‘आपकी बात सत्य है । मैंने भी विभीषणके मुखसे यह बात सुनी थी ।’ फिर अगस्त्यजी बोले—‘श्रीराम । इस प्रकार पुत्रवहित रावण सम्पूर्ण बगलके लिये कण्टकरूप था, जिसने देवराज इन्द्रको भी संग्राममें जीत लिया था’ ॥ ५३ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमत्वाल्मीकिनिर्मित अष्टादशस्कन्ध उत्तरकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

एकत्रिंशः सर्गः

रावणका माहिष्मतीपुरीमें जाना और वहाँके राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका

विन्ध्यगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना

सतो रामो महातेजा त्रिसयात् पुनरेव हि ।

उवाच प्रणतो धान्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी प्रणाम करते पुनः त्रिसंगपूर्वक पूछा— ॥ १ ॥

भगवन् राक्षस क्रूरो यदाप्रमृति मेदिनीम् ।

पपटत् किं तदा लोका शल्या आसन् द्विजोत्तम ॥ २ ॥

‘भगवन् । द्विजश्रेष्ठ । जब क्रूर निशाचर रावण पृथ्वीपर विजय करता पूरा रहा था, उस समय क्या यहाँ सभी लोग चौप-सम्पन्नी गुणोत्तरे शल्या थे ? ॥ २ ॥

राजा या राजमात्रो या किं तदा नात्र बध्यत ।

धर्षय यत्र न प्राप्ते रावणो राक्षसेभ्यः ॥ ३ ॥

‘क्या उन दिनों यहाँ क्रूर भी क्षत्रिय नरेश अथवा क्षत्रियेतर राजा अधिक बलवान् नहीं था, जिससे इस भूलपर पहुँचकर राक्षसराज रावणको परजित या अपमानित होना नहीं पड़ा ॥ ३ ॥

उताहो हत-गीयास्ते यभूयुः पृथिवीक्षितः ।

यदिष्कृता वराश्चैव यद्गते निजिता नृपा ॥ ४ ॥

‘अथवा उस समयके सभी राजा पराक्रमशून्य तथा शत्रु शनसे हीन थे, जिसका कारण उन बहुसंख्यक श्रेष्ठ नरपालोंके रावणसे पराजित होना पड़ा’ ॥ ४ ॥

राघवस्य यत्रः श्रुत्वा अगस्त्यो भगवानुदि ।

उवाच राम प्रहसन् पितामह इत्येभ्यः ॥ ५ ॥

भीरमचन्द्रजीकी यह बात सुनकर भगवान् अगस्त्यमुनि
ठठाकर हँस पड़े और बेने ब्रह्माजी मगदेवजीसे काँद बात
कहते हैं। इसी तरह ये श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—॥ ५ ॥
इत्येव चाधमानस्तु पार्थिवान् पार्थिवर्षभ ।
चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥
'पृथिवीनाय । भूपाशिरामजे । श्रीराम । इसी प्रकार
सब राजाओंकी स्तुता और पराजित करता हुआ रावण इस
पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ ६ ॥
ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं न्यगपुरीप्रभायम् ।
सम्प्राप्तो यत्र सानिध्यं सदासीद् वसुरेतस ॥ ७ ॥
'धूमते धूमते वह स्वगपुरी अमरावतीके समान सुशोभित
होनगली माहिष्मती नामक नगरमें आ पहुँचा; जहाँ अग्निदेव
सदा निधमान रहते थे ॥ ७ ॥
तुल्य आसान्वृष्टस्तस्य प्रभागाद् वसुरेतस ।
अञ्जनो नाम यन्नास्ति शरकुण्डशय सदा ॥ ८ ॥
'उन अग्निदेवके प्रभावसे वहाँ अग्निके ॥ समान तेबस्ती
अञ्जन नामक राजा राय करता था; जिसके रायकालमें
कुणाक्षरणसे युक्त अग्निकुण्डमें सदा अग्निदेवता निवास
करते थे ॥ ८ ॥
समेज दिवस सोऽथ हँहयाधिपतिर्दली ।
अञ्जनो नमदा रतु गत स्त्रीभि सहैश्वर ॥ ९ ॥
'जिस दिन रावण वहाँ पहुँचा; उसी दिन बगवान्
हैहयराज राजा अञ्जन अपनी जियोंक साथ नमदा नदामें जल-
क्रीड़ा करनेके लिये चला गया था ॥ ९ ॥
समेज दिवस सोऽथ रावणस्तत्र आगत ।
रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानवृच्छत ॥ १० ॥
'उसी दिन रावण माहिष्मतीपुरीमें आया । वहाँ अक्षर
राक्षसराज रावणने राजाके मन्त्रियोंसे पूछा—॥ १० ॥
काञ्चनो नृपति दीप्य सम्यगात्प्राप्तुमहथ ।
रावणोऽहमनुयातो युद्धेप्सुर्नृपरेण ह ॥ ११ ॥
'मन्त्रियों । जल्दी और ठीक-ठीक बताओ; राजा अञ्जन
कहाँ हैं ? मैं रावण हूँ और तुम्हारे महाशक्तसे युद्ध करनेके
लिए आया हूँ ॥ ११ ॥
समागमनमप्यग्रे शुष्माभि सनियेयताम् ।
इत्येव रावणनोक्तास्तेऽमात्या सुनिषधित ॥ १२ ॥
अनुयन् रावणसपतिमसानिध्यं महीपते ।
'अनुमत्या पहले ही अक्षर उन्हें मरे आगमनकी सूचना
दे दी ।' रावणक ऐसा कहनेपर राजा ने विद्वान् मन्त्रियोंने
राक्षसराजकी याथा कि हमारे महाशक्त हम समय राक्षसानीने
नदी हैं ॥ १२ ॥
शुष्मा विधयस पुत्र पीराणामनुज गतम् ॥ १३ ॥
अपच्युत्यागतो विष्य दिग्मयस्तनिभि गिरिम् ।
'पुराणियोंके मुण्डसे राजा अञ्जनेके बाहर अग्नेवी बन
या ॥ १३ ॥

सुनकर विभ्रमाका पुत्र रावण वहाँसे हटकर हिमालयके समान
विशाल विष्णुगिरिपर आया ॥ १३ ॥
स तमधमिदाविष्टमुद्भ्रान्तमिथ मदिनीम् ॥ १४ ॥
अपश्यद् रावणो विष्णुमालिखन्तमिवातरम् ।
सहस्रदिपावरोपेत सिंहाच्युतिरन्दरम् ॥ १५ ॥
'वह इतना ऊँचा था कि उसका शिखर बादलोंमें समाया
हुआ-सा जान पड़ता था तथा वह परत प्रचो फोंडकर ऊपर
की उठा हुआ-सा प्रतीत होता था । विष्णुके गगनचुम्बी
शिखर आकाशमें सेता खींचते-से जान पड़त थे । रावणने
उस महान् वीरको देखा । वह अपने सहस्रों शृङ्गोंसे सुशोभित
हो रहा था और उसकी कन्दराओंमें गिद निवास करते
थे ॥ १५ ॥
प्रपातपतिते क्षीते साट्टहासमिथानुभि ।
देवदानयगर्ध्वं साप्सरोग्भि सार्चनैः ॥ १६ ॥
स्त्रीभिः प्रीडमानैश्च स्वगभूत महोच्छ्रयम् ।
'उपरि सर्वोंक शिखरके तरुसे आ शीतल जलकी धाराएँ
गिर रही थीं; उनके द्वारा वह परत अन्दास करता-सा प्रतीत
होता था । देवता, दानव, गन्धर्व और विन्ध्य अपनी अपनी
जियों और अस्त्रधर्मोंक साथ वहाँ क्रीड़ा कर रहे थे । वह
अत्यन्त ऊँचा परत अपनी सुरम्भ सुगमसे स्वर्गके समान
सुशोभित हो रहा था ॥ १६ ॥
नदीभि स्यन्दमानाभि स्फटिकप्रतिम जलम् ॥ १७ ॥
फणाभिध्वलजिह्वाभिरनन्तमिर विष्टितम् ।
उत्थामन्त क्षीयन्त हिमस्तसिभि गिरिम् ॥ १८ ॥
स्फटिक समान निर्मल जलका धारा बहनेवागी नदियों
के कारण वह विष्णुगिरि चञ्चल जिह्वाजल फनोंमें उपलब्ध
शेयनाग्न समान स्थित था । अधिक ऊँचाईके कारण वह
ऊपरलाकड़ों जैसा सा जान पड़ता था । हिमालयक लगन
विशाल एवं स्थूल विष्णुगिरि बहुत ही गुफाओंमें युक्त
दिशामें देता था ॥ १७ १८ ॥
पश्यमानस्ततो विष्य रावणो नमदा पयी ।
चलोपलजला पुण्या पश्चिमोद्दिगामिनीम् ॥ १९ ॥
महिषै सुमर सिद्ध दानूलक्ष्मणोत्तमम् ।
उणाभिततोस्तुपितं सशोभितजलादायाम् ॥ २० ॥
विष्णुगिरि की शोभाके देगता हुआ रावण पुनश्चलित
नर्मन नदीके तटपर गया; जिसमें गिरार-होग युक्त चञ्चल
जल प्रवाहित हो रहा था । वह नदी पश्चिम सुन्दरी और
चली जा रही थी । धूपके तर हुए प्याने धर्म, दिग्ग, सिद्ध,
व्याघ्र, गीत और गजराज ठहर अन्तर्गत विष्णु के
रहे थे ॥ १९ २० ॥
यत्रयार्धे सकारणैः सहस्रजलकुपुटैः ।
सारसश्च सदा यत्र पूजति सुसमायुताम् ॥ २१ ॥
सर्प मायाल हाकर कन्दर करनेवाले चक्रवर्त, कन्दर,

“वरविनि । उनका आतिथ्य-स्वकार करके तुम मेरे पास आ आओगी और फिर मेरे ही साथ रहने लगेगी” ॥ ४४ ॥
पद्ममुक्त्वा स निप्रपिराजगाम स्वमाश्रमम् ।

तपश्चचार सुमहत् सा पत्नी ब्रह्मवादिन ॥ ४५ ॥

ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आश्रममें भीतर आ गये और उन ब्रह्मवादी मुनिकी पत्नी यह कहकर बड़ी मारी तपस्या करने लगी ॥ ४५ ॥

शापोत्सर्गादि तस्येद् मुने सर्वमुपस्थितम् ।

तत् स्वर त्व महायाहो दुष्प्रत यत् त्वया कृतम् ॥ ४६ ॥

‘महाबाहो ! उन महर्षि गौतमके शाप देनेसे ही तुमपर यह सारा सकट उपस्थित हुआ है । अतः तुमने जो पाप किया था, उसको याद करो ॥ ४६ ॥

तेन त्व प्रहण शात्रोपातो नान्येन वासव ।

शीघ्र वै यज यन्न त्व वैष्णव सुसमाहित ॥ ४७ ॥

‘वासव ! उस शापके ही कारण तुम शत्रुकी कैदमें पड़े हो, दूसरे किसी कारणसे नहीं । अतः अब एकाग्रचित्त हो शीघ्र ही वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करो ॥ ४७ ॥

पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसे त्रिदिव तत ।

पुत्रश्च तत्र देवेन्द्र न त्रिष्टो महारणे ॥ ४८ ॥

नीत सनिहितश्चैव आर्यकेण महौदधी ।

देवेन्द्र ! उस यज्ञसे पवित्र होकर तुम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त कर लगे । तुम्हारा पुत्र ज्यन्तः उस महासमरमें मारा नहीं गया है । उसका नामा पुलोमा उसे महाशरणमें ले गया है । इस समय वह उड़ीके पास है ॥ ४८ ॥

एतच्छ्रुत्वा भदे द्रुस्तु यक्षमिष्टु च वैष्णवम् ॥ ४९ ॥

पुनस्त्रिदिनमात्रांमदन्वशासच्च देवराट् ।

हृत्कार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वरामायण आदिकाव्य उत्तरकाण्डमें तीसवों सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकत्रिंशः सर्गः

रावणका माहिष्मतीपुरीमें जाना और वहाँकि राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका

त्रिच्यगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना

ततो रामो महातेजा त्रिस्त्रयात् पुनरेव हि ।

उवाच प्रणतो धाम्न्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातकम्भी भीषमने मुनिभेद अगस्त्यको प्रणाम करके पुनः त्रिस्त्रयपूर्वक पूछा— ॥ १ ॥

भगवन् राक्षस क्रूरो यदाममृति मेदिनीम् ।

पपट्ट किं तदा लोका दन्त्या आसन् द्विजोत्तम ॥ २ ॥

‘भगवन् ! द्विजभेद । जब क्रूर निजाचर रावण धृवीपर विजय करता घूम रहा था, उस समय क्या यहाँ सभी लोग शीर्ष-सन्ध्या गुणोंसे धन्य हो थे ? ॥ २ ॥

राजा या राजमात्रो वा किं तदा नाय बन्धन ।

धर्मश्च यत्र न प्राप्नो रावणो राक्षसेश्वर ॥ ३ ॥

ब्रह्मानीकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान किया । वह यज्ञ पूरा करके देवराज स्वर्गलोकमें गये और वहाँ देवराजका शासन करने लगे ॥ ४९ ॥

एतद् द्विजितो नाम बल यत् कीर्तित मया ॥ ५० ॥

निजितस्तेन देवेन्द्र प्राणिनोऽन्ये तु किं पुनः ।

युधनन्दन ! यह है द्विजवर्षी मेघनादका बल, जिसका मैंने आपसे वर्णन किया है । उसने देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था, फिर दूसरे प्राणियोंकी तो विनाश ही क्या था ५० ॥

आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत् तदा ॥ ५१ ॥

अगस्त्ययजनं श्रुत्वा वानरा राक्षसास्तदा ।

अगस्त्यनीकी यह बात सुनकर भीराम और लक्ष्मण तत्वाळ बोल उठे—‘आश्चर्य है !’ साथ ही वानरों और राक्षसोंकी भी इस बातसे बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५१ ॥

विभीषणस्तु रामस्य पादार्जस्यो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥

आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत् तद् दृष्ट पुरातनम् ।

उस समय भीरामके बगलमें बैठे हुए विभीषणने कहा—‘मैंने पूर्वकालमें जो आश्चर्यकी बातें देखी थीं, उनका आज महर्षिने स्मरण दिला दिया है’ ॥ ५२ ॥

अगस्त्य त्वब्रवीद् रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ॥ ५३ ॥

एष राम समुद्भूतो रावणो लोककण्टकः ।

सपुत्रो येन सग्रामे जितं शाक सुरेश्वर ॥ ५४ ॥

तत्र भीरामच द्रुजौने अगस्त्यजीसे कहा—‘आपकी बात सत्य है । मैंने भी विभीषणके मुखसे यह बात सुनी थी ।’ फिर अगस्त्यजी बोले—‘भीराम ! इस प्रकार पुत्रवहित रावण सम्पूर्ण वातके लिये कण्टकरूप था; जिसने देवराज इन्द्रको भी सग्राममें जीत लिया था’ ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

अगस्त्यस्य लोके कण्टकरूपः योऽसौ देवराज इन्द्रको

भी सग्राममें जीत लिया था ॥ ५३ ५४ ॥

भीरुमचन्द्रनीके यह बात सुनकर भगवान् अगस्त्यमुनि
ठठाकर हँस पड़े और जेने ब्रह्माजी मगदेवजीसे कहा वान
कहते हैं, इसी तरह व भीरुमचन्द्रनीके बाल—॥ ५ ॥

इत्येव बाधमानस्तु पाथिगन् पाथिगम् ।

चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥

पृथिवीपते ! भूगर्ग्यरावणसे ! भीरुम ! इसी प्रकार
वह राजाओंकी स्मृता और प्रशस्ति करता हुआ रावण उस
पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ ६ ॥

ततो माहिष्मतीं नाम पुण्यं स्वर्गपुरीप्रभाम् ।

सम्प्राप्तो यत्र स्नानिष्य सदास्मीद् वसुरेतस ॥ ७ ॥

धूमते धूमते वह स्वर्गपुरी अमरावतीक समान सुश्रुति
हनेराली माहिष्मती नामक नगरीमें आ पहुँचा; जहाँ अग्निदेव
सदा विद्यमान रहते थे ॥ ७ ॥

तुल्य दासीन्पल्लस्य प्रभागाद् वसुरेतस ।

अनुनो नाम यत्राग्नि शरङ्गण्डेशय सदा ॥ ८ ॥

उन अग्निदेवक प्रभावसे वहाँ अग्नि ही समान तेजवी
अञ्जु नामक राजा राख करता था; जिसने राखकालमें
कुशालरण्यते पुत्र अग्निदुर्जनसे सदा अग्निदेवता निवास
करते थे ॥ ८ ॥

तमेव दिवस सोऽथ द्वैद्याधिपतिरग्री ।

अनुनो नमदा स्तु गत श्रीभि सहैश्वर ॥ ९ ॥

जिस दिन राख वहाँ पहुँचा, उसी दिन बलवान्
हैरवराज राजा अञ्जु अपनी क्षत्रियों साथ नमदा नदीमें बन्
श्रीड़ा करनेर लिये चला गया था ॥ ९ ॥

तमेव दिवस सोऽथ रावणस्तत्र आगत ।

रावणो राक्षसेद्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत् ॥ १० ॥

उसी दिन रावण माहिष्मतीपुरीमें आया । वहाँ आकर
राखराज रावण राक्षस मन्त्रिपक्षसे पूछा—॥ १० ॥

आनुनो नृपति दीप्य सम्यगाप्तानुमहय ।

रावणोऽहमनुम्रातो गुह्येषुर्नृपारेण ह ॥ ११ ॥

‘महान’ । बन्दी और ठीक-ठीक बगअ; राजा अनु
नो हैं ! मैं रावण हूँ और तुमसे महाराजसे मुझ करनेर
लिये आया हूँ ॥ ११ ॥

ममागमनमप्यग्रे गुप्ताभि सनिरेयताम् ।

इत्येव रावणनोनास्तेऽमात्या सुविपश्चिन्त ॥ १२ ॥

अयुयन् गणसपनिममानिष्य महीपति ।

‘‘जुमलंग पद ह। बचर उह मेरे अगमनकी सूचना
दे दो ।’’ रावण ऐसा करनेर रावण विद्वान् मन्त्रियों
राखराजसे बताया कि हमारे महापुत्र इन अन्य रावणजीने
नहीं हैं ॥ १२-॥

धुन्वा विधरस पुत्र पापजामनुन गतम् ॥ १३ ॥

अपस्तुत्यागतो विष्य दिग्मयसन्निभ गिरिम् ।

‘‘गुप्त’‘किये दुमने राजा अनुन बचर करनेकी बात

सुनकर विभवाका पुत्र रावण वहाँसे हटकर हिमालयसे समान
विशाल विष्णुगिरिपर आया ॥ १२-॥

स तमध्रमिनाविष्टमुद्भ्रान्तमिन्द्र मेदिनीम् ॥ १४ ॥

अपदयद् रावणो विष्यमालिखन्तमिन्द्रायम् ।

सहस्रादिपरपेत सिंहाधुपितरन्द्गम् ॥ १५ ॥

वह इतना कैचा था कि नन्दराशिपर बादलोंसे समान
हुआ-सा बन पड़ता था तथा वह परत पृथ्वी कोड़कर ऊपर
को उठा हुआ-सा प्रतीत होता था । विष्णु गगनकुम्भी
शिखर आकाशमें देता खींचनेसे जान पड़त था । रावणने
उस महान् घैलको देखा । वह अपने लक्ष्यो गङ्गामें मुगमि
हो रहा था और नन्दरी कन्दराओंमें गिह निवास करते
थे ॥ १४-१५ ॥

प्रपातपतिते दृष्टौ स्मट्टहासमिन्द्रायुभि ।

देवदानवगर्धय साप्सरोग्भि सकिने ॥ १६ ॥

स्वकीभिः श्रीडमानैश्च स्वर्गभूत महोच्छ्रयम् ।

उत्तर गतोः शिखरक तसे सब शीतल बन्दी घायर
गिर रही थीं; उनके द्वारा वह पर्वत अन्दास करता-सा प्रकट
होता था । देवता, दानव, गन्धव और किन्नर अपनी अपनी
क्षियों और अन्तराओं साथ वहाँ श्रीड़ा कर रहे थे । वह
अत्यन्त कैचा परत अपनी मुख्य मुगमास नगरी समान
मुगमि हा रहा था ॥ १६-॥

नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फटिकप्रतिम जलम् ॥ १७ ॥

पणाभिश्चलजिह्वाभिर्गन्तमिव विहितम् ।

उत्थामन्त इतीरन्त हिमरसनिभ गिरिम् ॥ १८ ॥

स्फटिक समान निर्मल बन्धन बहनेवाली नदियों
क कारण वह निष्पत्ति चञ्चल जिह्वागत फनोंके उपरलित
नैयगाक समान लिन था । अधिक कैचाइन कारण वह
कपलकता बना सा बन पड़ता था । हिमालय समान
गिराल एव निस्तु निष्पत्ति बहुत-सी गुफाओंसे मुक्त
दिखावा देता था ॥ १७-१८ ॥

पश्यमानस्तनो विष्य रावणो नमदा ययौ ।

बलेपल्लवा पुण्या पक्षिमेदधिगामिनीम् ॥ १९ ॥

महिरे स्मरं सिंह शादूटसगपोर्म ।

उपाभिततस्त्वृषित सन्तोभिततपरायाम् ॥ २० ॥

विष्णुबन्दी शाभाक देवता हुआ रावण पुनर्नलिन
नग नगीके तटपर गया; जिसमें गिरालोंमें मुक्त चञ्चल
सब प्ररहित हो रहा था । वह नगी पक्षिने शकुन्ती और
चय्ये असी थी । धूमने हर हुए पक्ष मीने, दिग्ग, सिंहा,
ब्याघ्र, गीत और गन्धव उलक व्यापक विष्णु कर
रहे थे ॥ १९-२० ॥

यत्रयार्कं सकारण्डे सहस्रवन्पुत्रपुटे ।

सारमन्त्रं सदा मयं वृद्धिः सुममावृताम् ॥ २१ ॥

‘‘सग मातर हाकर कत्रव करने’‘ बचनक; बगअव,

इह, जलकूटकुट और सारस आदि जलपक्षी नर्मदाकी जल
राशिपर छा रहे थे ॥ २१ ॥

कुलद्रुमरुतोत्तसा चक्रवाक्युगस्तनीम् ।
चिस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हसाम्लिसुमेखलाम् ॥ २२ ॥
पुष्पोत्पलानुलिताङ्गौ जलफेनामलाङ्गकाम् ।
जलावगाहसुस्पशौ कुलोत्पलपुमेक्षणाम् ॥ २३ ॥
पुष्पकादुरुक्षाङ्गु नमदा सरिता वराम् ।

इधामिव धरा नारीमग्राह्य दशानन ॥ २४ ॥
स तस्या पुलिने रम्ये नानामुनिनिषेधिते ।
उपोपरिष्ट सन्धिर्नै सार्धे राक्षसपुङ्गव ॥ २५ ॥

‘सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा परम सुन्दरी प्रियतमा नारीके
समान प्रतीत होती थी । लिले हुए तन्वर्ती वृक्ष मानो उसके
आभूषण थे । चक्रवाकके जाड़े उसके दोनों स्नोंका स्थान ले
रहे थे । ऊँचे और विस्तृत पुलिन नितम्बव समान जान
पड़ते थे । हठौरी पक्षि मोतियांकी बनी हुई मेखला (करबनी)
के समान शोभा दे रही थी । पुष्पोंके पराग ही अङ्गुराग बन
कर उसके अङ्ग अङ्गमें अनुल्लिप्त हो रहे थे । जलका उज्ज्वल
फेन ही उसकी स्क्व, घंघेत साड़ीका काम दे रहा था । जलमें
गांठा लगाया ॥ उसका मुखद संस्पश मा और लिले हुए
कमल ही उसने सुन्दर नेत्र जान पड़ते थे । राक्षसशिरोमणि
दशमुख रावणने शीघ्र ही पुष्पविमानसे उतरकर नर्मदाके
जलमें डुबकी लगायी और बाहर निकलकर वह नाना मुनियोंसे
सेवित उसके रमणीय तटपर अपने मंत्रियोंके साथ
बैठा ॥ २२-२५ ॥

प्रख्याय नमदा सोऽथ गङ्गेयमिति रावण ।
नमदादृशन् हर्षमाप्तवान् स दशानन ॥ २६ ॥

‘ये साक्षात् गङ्गा हैं’ ऐसा कहकर दशानन रावणने
नर्मदाकी प्रशंसा की और उसने दर्शनसे हर्षका अनुभव
किया ॥ २६ ॥

उषाद्य सचिवास्तत्र सलील शुक्रसारणौ ।
पर रश्मिसहस्रेण जगत् इत्येव काञ्चनम् ॥ २७ ॥
तीक्ष्णतापङ्कजः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः ।

‘हिर यहाँ उसने शुक्र, सारण तथा अन्य मंत्रियोंसे
खिलापूर्वक कहा—‘य सूर्यदेव अस्ती मद्दृष्टो हिरण्योत्तमः सम्पूर्ण
जगत्को मानो काञ्चनमय बनाकर प्रचण्ड ताप देता हुए इस
समय आकाशज मध्यमार्गमें विराज रहे हैं ॥ २७ ॥

मामासीन् विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकर ॥ २८ ॥
नमदाजलदातश्च सुगन्धि भ्रमनादान ।

मङ्ग्यादलिलो होय घान्यसौ सुसमाहित ॥ २९ ॥

‘किन्तु मुझे यहाँ बैठा जानकर ही चन्द्रमाके समान शीतल
हो गये हैं । मेरे ही भयने वायु भी नर्मदाके जलने शीतल,
सुगन्धित और भ्रमनाशक हवाकरी सायानीक साथ मन्द
गतिसे बह रही है ॥ २८-२९ ॥

इय चापि सरित्प्रेषा नमदा नर्मवर्धिनी ।
नममीनविहगोर्मिं सभयेवाङ्गना स्थिता ॥ ३० ॥

‘सरिताओंमें श्रेष्ठ यह नमदा भी श्रीधारस एव भी
बना रही है । इसकी लहरोंमें मगर, मत्स्य और जलपक्षी
रहे हैं और यह भयभीत नारीके समान स्थित है ॥ ३० ॥
तद्वन्त क्षता शक्यैर्नृपैरिद्रसमर्थुधि ।
चन्दनस्य रसेनेव रुधिरैः समुक्षिता ॥ ३१ ॥

‘तुमलोग सुन्दरलमें इन्द्रज्य पराकामी नरेशों
अस्त्र शस्त्रोंसे घायल कर दिये गये हो और रक्तसे इस प्र
नहा उठे हो कि तुम्हारे अङ्गोंमें खलचन्दन रसका ले
लगा हुआ जान पड़ता है ॥ ३१ ॥

ते यूयमवगाह्य नर्मदा शमदा शुभाम् ।
सार्धभौममुखा मत्ता गङ्गामित्र महागजाः ॥ ३२ ॥

‘अत तुम सब-कै-सब मुख देनेवाली इस मङ्गलका
नर्मदा नदीमें स्नान करो । ठीक उठी तरह, जैसे शाय
आदि महान् दिग्गज मतवाले होकर गङ्गामें अवगाहन क
हैं ॥ ३२ ॥

अस्या कृत्वा महानद्या पाप्मनो निप्रोक्ष्यथ ।
अहमप्यथ पुलिने शरदितुसमप्रभे ॥ ३३ ॥
पुष्पोपहार शनकैः करिष्यामि कपदिन ।

‘इस महानदीमें स्नान करके तुम पापनाशके मुख
जाओगे । मैं भी आज शरदःशुक्ल चन्द्रमाकी मूर्ति उज्ज
नर्मदा-तटपर धीरे धीरे जगज्जपारी महादेवजीकी पूर्ण
उपहार समर्पित करूँगा ॥ ३३ ॥

रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तशुक्रसारणा ॥ ३४ ॥
समहोदरधूमाक्ष नर्मदा रिजगाहिरे ।

‘रावणक ऐसा कहनेपर प्रह्लाद, शुक्र, सारण, महोदर और
धूमाक्षने नर्मदासे स्नान किया ॥ ३४ ॥

राप्सते द्रुगजैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ॥ ३५ ॥
वामनाज्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ।

‘राक्षसराजकी सेनाक हाथियाने नर्मदा नदीमें उतरकर
उसका जलको मथ डाला, मानो वामन, अञ्जन, पद्म आदि
बड़े-बड़े दिग्गजाने गङ्गाजीक जलका विपुल कर डाल
हो ॥ ३५ ॥

ततस्ते राक्षसाः ज्ञात्वा नर्मदाया महाथला ॥ ३६ ॥
उत्तीय पुष्पाण्याजह्वयत्यथ रावणस्य तु ।

‘तदनन्तर ये महायुद्धी राक्षस गङ्गामें स्नान करके बाह
आये और रावणके शिरपूजनक लिये पूज्युक्तने लगे ॥ ३६ ॥

नमदापुलिने हृद्ये शुभ्राध्रसदृशप्रभे ॥ ३७ ॥
राक्षसैस्तु मुहूर्तेन हत पुष्पमयो गिरि ।

‘नेत बादलों समान पुत्र एवं मनोरम नर्मदा-पुलिनपर
उन राक्षसोंने दो ही पक्षीमें पूर्णतः पहाड़ जैसा ढेर लगा
दिया ॥ ३७ ॥

पुष्पेषूपहतेष्वेव रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३८ ॥
अतीर्णो नदीं स्नातु गङ्गामिव महागजः ।

‘इत प्रकार पुष्पोंका संचय हो जानेपर राक्षसराज रावण
स्वयं स्नान करने लिये नर्मदा नदीमें उतरा, मानो कोई
महान् गजराज गङ्गामें अग्राहा करने लिये घुसा हो ॥ ३८ ॥
तत्र स्नात्वा च विधिरज्जप्या जप्यमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥
नर्मदासलिलात् तस्मादुत्तार स राज्ञः ।

‘यहाँ विधिपूर्वक स्नान करने रावणने परम उत्तम जपनीय
मन्त्रका जप किया । इसने बाद वह नर्मदाके जलसे बाहर
निकला ॥ ३९ ॥

ततः क्षिप्रान्धर त्यक्त्वा द्रुक्ष्वचक्षुसमावृतः ॥ ४० ॥
राज्यं प्राक्षलि यातमन्वयु सचराक्षसाः ।
तद्वतीवक्षमापन्ना मूर्तिमत इषाचला ॥ ४१ ॥

‘फिर भीगे रूपकेही उतारपर उसने जेते यज्ञ धारण
किया । इसने बाद वह हाथ जोड़े महादेवजी की पूजाके लिये
चला । उस समय और सब राक्षस भी उसने पीछे हो लिये,
माना मूर्तिमान् परत उसकी गतिने अपीन हो खिंचे चले
जा रहे हैं ॥ ४०-४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंश सर्गः ॥ ३१ ॥
इस प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकाव्य उत्तरकाण्डमें इत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंश सर्गः

अर्जुनकी भुजाओंसे नर्मदाके प्रवाहका अवरोध होना, रावणके पुष्पोपहारका वह जाना, फिर रावण
आदि निशाचरोंका अर्जुनके साथ युद्ध तथा अर्जुनका रावणकी कैद करके अपने नगरमें ले जाना

नर्मदापुल्लिने यत्र राक्षसेन्द्र स दारुणः ।
पुष्पोपहारं कुर्वते तस्माद् देशाद्दूरतः ॥ १ ॥
भञ्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्या पति प्रभुः ।
प्रीडते सह गारीभिनमदातोषमाश्रितः ॥ २ ॥

‘नर्मदाजीके तटपर जहाँ दूर राक्षसराज रावण महादेवजी
को फूलोंका उपहार अर्पित कर रहा था, उन स्थानसे थोड़ी
दूरपर निजकी बीटीमें श्रेष्ठ माहिष्मतीपुरीका घातिगाली राजा
अर्जुन अपनी शिखोंन साथ नर्मदाके जलमें उतरकर प्रीडा
कर रहा था ॥ १-२ ॥

माया मध्यगतो राजा रराज च नृदाजुनः ।
वरणूता महद्भयं मध्यम्य इयं कुञ्जः ॥ ३ ॥
‘उन मुदरियोंने बीचमें विपक्वमान राजा अर्जुन सहस्रों
हथिनियोंके मध्यभागमें गिरत हुए गजराजक समान गाभा
गता था ॥ ३ ॥

निगामु स तु याहना मदस्त्रय्यात्तमं यत्नम् ।
रग्रेथ नमदायेग यादृभियदुभियुतः ॥ ४ ॥

‘अर्जुन इकर मुझमें था । उनका उत्तम यत्नकें बँचने
के लिये उसने उन बहुगालक भुजाओंद्वारा ‘भयानक वेगका
रोक दिया ॥ ४ ॥

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४२ ॥

‘राक्षसराज रावण जहाँ-जहाँ भी जाता था, वहाँ-वहाँ एक
मुक्कमय शिवलिङ्ग अपने साथ लिये जाता था ॥ ४२ ॥

चालुकायेदिमप्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अयामास गच्छेद्यं पुष्पैश्चासृतागन्धिभिः ॥ ४३ ॥

‘रावणने बाहूकी बेदीपर उस शिवलिङ्गको स्थापित कर
दिया और चन्दन तथा अमृतके समान सुगन्धाल पुष्पोंसे
उसका पूजन किया ॥ ४३ ॥

ततः सत्तामार्तिहरं परं वरं
वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ।
समर्पयित्वा स निशाचरो जगौ

प्रसादं हस्तान् प्रणतं चाग्रतः ॥ ४४ ॥
‘जो अपने ललाटमें चन्द्रशिरोंकी आभूषणरूपमें धारण
करते हैं, सत्पुरुषोंकी वीडा हर देते हैं तथा भक्तोंकी
मनावाञ्छित वर प्रदान करते हैं, उन श्रेष्ठ एक उत्कृष्ट देवता
भगवान् गङ्गाका घलीभाँति पूजन करके वह निशाचर उनका
सामने माने और हाथ पैरानर नाचने लगा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंश सर्गः ॥ ३१ ॥

कातवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निमग्नम् ।
कुलोपहारं कुराण प्रतिघ्नोत प्रधानि ॥ ५ ॥

‘कृतवीर्य पुत्र अर्जुनकी भुजाओंद्वारा वेग हुआ नमग्नका
वह निमल जब तटपर पूजा करते हुए रावणने पाननक पहुँच
गया और उसी ओर उल्टी गतिने बढ़ने लगा ॥ ५ ॥

समीननरज्जकरं सपुष्पदामस्ततः ।
स नमदाभ्रमो वेगं प्रावृट्कालं इषाश्रमौ ॥ ६ ॥

‘नर्मदाके जलका वह वेग मत्स्य, नर, मगर, पूत और
कुलान्तरण साथ बढ़ने लगा । उनमें यत्नाकारने समान बाल
आ गयी ॥ ६ ॥

स वेगं कानवीर्येण सस्येयित इषाम्भसः ।
पुष्पोपहारं स्वयं रावणस्य जहार ॥ ७ ॥

‘इसका वह वेग, जिनने माना कानवीर्य आश्रमे ही भेडा
हो, रावणने समान पुष्पोपहारका दान किया ॥ ७ ॥
रावणोऽधममास तमुपगृह्य नियमं तदा ।
नमन् पश्यते कांतां प्रतिभूया यथा नियाम् ॥ ८ ॥

‘गजराज का पूजा साथ ही नियम अभी अपना ही
गमाना हुआ था, उसी स्थानमें उस लक्ष्मण का प्रतिभूत हुई

कमनीय कान्तिवाली प्रेयसीकी भौति नर्मदाकी ओर देखने
लगा ॥ ८ ॥

पश्चिमेन तु त दृष्ट्वा सागरोद्गारस्निग्धम् ।

वर्धन्तमम्भसो घेग पूर्वाभासा प्रविश्य तु ॥ ९ ॥

‘पश्चिमसे आते और पूर्व दिशामें प्रवेश करके बढ़ते हुए
जलधर उस घेगको उमने दला । वह ऐसा जान पड़ता था,
मानो समुद्रमें ज्वार आ गया हो ॥ ९ ॥

ततोऽनुद्भवा तदादुना स्वभागे परमे स्थिताम् ।

निर्विकाराङ्गनाभासामपश्यद् रावणो नदीम् ॥ १० ॥

‘उसके तटपर्यंत वृक्षोंपर रहनेवाले पक्षियोंमें कोई घबराहट
नहीं थी । वह नदी अपनी परम उत्तम स्वाभाविक स्थितिमें
स्थित थी—उसका जल पहले ही जैसा स्वच्छ एवं निर्मल
दिखायी देता था । उसमें वषाकालिक बादके समय ओ
मलिनता आदि विचार होते थे, उनका उस समय सचपा
अभाव था । रावणने उस नदीको विकारस्थित्य दृश्यवाली
नारीके समान देखा ॥ १० ॥

सन्ध्येतरकराङ्गुरया ह्यशब्दास्यो दधानन ।

वेगप्रभयमन्येष्टु सोऽदिशच्छुक्रसारणौ ॥ ११ ॥

‘उसके मुखसे एक शब्द भी नहीं निरग्न । उसने मौन
व्रतकी रक्षाने लिये बिना बोले ही दाहिने हाथकी अङ्गुरीसे
सन्देशमात्र करके बादके कारणका पता लगानेके निमित्त शुक्र
और सारणको आदेश दिया ॥ ११ ॥

तौ तु रावणसदिष्टौ भ्रातरौ शुक्रसारणौ ।

व्योमान्तरगतौ धीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ ॥ १२ ॥

‘रावणका आदेश पाकर दोनों वीर भ्राता शुक्र और सारण
आकाशमार्गसे पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १२ ॥

अध्योजनमान तु गत्या तौ रजनीचरौ ।

पश्येता पुरुष तोये व्रीडन्त सहयोगितम् ॥ १३ ॥

‘केवल आधा योजन जानेपर ही उन दोनों निशाचरोंने
एक पुरुषको जिनोंके साथ जलमें व्रीडा करते देखा ॥ १३ ॥

बृहत्सालप्रतीकाश सोययाकुलमूधजम् ।

मद्भस्मास्तनयन मद्भ्याकुलचेतसम् ॥ १४ ॥

‘उसका शरीर विशाल सालवृक्षके समान ऊँचा था ।
उसके केश जलसे ओतप्रोत हो रहे थे । नेत्रप्रान्तमें मदकी
लाली दिखायी दे रही थी और चित भी मदमें व्याकुल जान
पड़ता था ॥ १४ ॥

नदीं याहुसहस्रेण रुधन्तमरिमदनम् ।

गिरि पादसहस्रेण रुधन्तमिव मेघिनीम् ॥ १५ ॥

‘वह शत्रुमदन वीर अपनी सहस्र मुजामोंसे नदीके वेगसे
रुध्धर सहस्रों चरणोंसे पृथ्वीको घामे रखनेवाले पर्वतके समान
शामा पाता था ॥ १५ ॥

थालाना धरनारीणा सहस्रेण समावृतम् ।

समदाना कटेणूना महस्रेणेष कुञ्जरम् ॥ १६ ॥

‘नयी अवस्थाकी सहस्रों सुन्दरियों उमने घेर हुए ऐसी
जान पड़ती थीं, मानो सहस्रों मदमत्त हृदिनिघोने किसी गज
राजका घेर रक्खा हो ॥ १६ ॥

तमद्भुततर दृष्ट्वा राक्षसौ शुक्रसारणौ ।

सनिवृत्तावुषामग्न्य रावण तमयोचतु ॥ १७ ॥

‘उस परम अद्भुत दृश्यको देखकर राक्षस शुक्र और
सारण लौट आये और रावणके पास जाकर बोले—॥ १७ ॥

बृहत्सालप्रतीकाश कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर ।

नमदा रोधवद् रुद्ध्वा व्रीडापयति योषित ॥ १८ ॥

‘पाशसज्ज । यहाँसे थोड़ी ही दूरपर कोई सालवृक्षके
समान विशालकाय पुरुष है, जो बाँधकी तरह नमदाके जलको
रोककर जिनोंके साथ व्रीडा कर रहा है ॥ १८ ॥

तेन यादृसहस्रेण सनिवृद्धजला नदी ।

सागरोद्गारसकपागनुद्गारान सृजते मुहु ॥ १९ ॥

‘‘उसकी सहस्र मुजामोंसे नदीका जल रुक गया है ।

इसीलिये यह बार-बार समुद्रके ज्वारकी भौति जलने उद्गारकी
सृष्टि कर रही है’ ॥ १९ ॥

इत्येष भागमाणौ तौ निशम्य शुक्रसारणौ ।

रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा स ययौ युद्धलालस ॥ २० ॥

‘इस प्रकार कहते हुए शुक्र और सारणकी बातें सुनकर
रावण बोल उठा—‘वही अर्जुन है’ ऐसा कहकर वह युद्धकी
जलसासे उठी और चल दिया ॥ २० ॥

अर्जुनाभिमुखे तस्मिन् रावणे राक्षसाधिपे ।

चण्ड प्रयाति पवन सनाद् सरजस्तथा ॥ २१ ॥

‘राक्षसराज रावण जब अर्जुनकी ओर चला, तब घूल
और भारी कोलाहलके साथ वायु प्रचण्ड वेगने चलने लगी ॥ २१ ॥

सहृदेय कृतो राज सरत्कपूयतो धनै ।

महोदरमहापादवधुप्राक्षशुक्रसारणौ ॥ २२ ॥

सवृत्तो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागाद् यत्र चार्जुन ।

‘बादलोंने रक्षि-दुओंको वर्षा करके एक बार ही बड़े
जोरसे गर्जना की । इधर राक्षसराज रावण महादर, महापार्श्व,
धूम्राक्ष, शुक्र और सारणको साथ ल उन स्थानकी ओर चला,
जहाँ अर्जुन व्रीडा कर रहा था ॥ २०३ ॥

अग्नीधेयैव कालेन स तदा राक्षसो बली ॥ २३ ॥

त नमदाहद भूमिमाजगामाज्जनप्रभः ।

‘काजल या कपिलरु समान काला वह बलवान् राक्षस
थोड़ी ही देरमें नर्मदा नदी पर प्रवेश कर जलाशय पास आ
पहुँचा ॥ २३ ॥

स तत्र स्त्रीपरिवृत्त यासिताभिग्न द्विपम् ॥ २४ ॥

अरेन्द्र पश्यते राजा रावणस्ताना तदाजुनम् ।

‘यहाँ पहुँचकर राक्षसोंने राजा रावणने मैथुनकी इच्छा
वाली हृदिनिघोस फिर हुए गजराजक समान सुन्दरी जिनोंसे
परिवृत्त महाप्राज अर्जुनका देखा ॥ २४ ॥

स रोषाद् रक्तयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्भूत ॥ २५ ॥
इत्येवमनुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा ।

उभे देखते ही रावणने नेत्र रोपसे लाल हो गये । अपने बलसे घमइसे उद्दण्ड रूप राजसराजने भुजुनये मन्त्रियोंसे गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा—॥ २५^१ ॥

अमात्या क्षिप्रमाख्यात दैहयस्य नृपस्य वै ॥ २६ ॥
युद्धायै समनुप्राप्तो रावणो नाम नामत ।

“मन्त्रियो ! तुम हैमराजसे बली शक्ति कहो कि रावण तुमसे युद्ध करनेके लिये आया है” ॥ २६३ ॥

रायणस्य यच्च ध्रुत्वा मग्निर्णोऽथापुनस्य ते ॥ २७ ॥
उत्तस्यु सायुधास्त च रायण वान्यमनुजन् ।

रायणकी बात सुनकर अर्जुनसे वे मन्त्री हथियार लेकर
 खड़े हो गये और रायणसे इस प्रकार बोले—॥ २७ $\frac{1}{2}$ ॥

युद्धस्य काले विहात स्वाधु भो साधु राजन ॥ २८ ॥
य क्षीय त्रीगत चैत्र योद्धुमुत्सहसे नृपम् ।

“वाह रे रावण ! वाह ! तुम्हें युद्धक अवसरका अच्छा
 काम है। हमारे महाराज अब मदमत्त होकर स्त्रियों की चोर्छमें
 मीठा कर रहे हैं, ऐसे समयमें तुम उनका साथ युद्ध करनेके
 लिये उत्साहित हो रहे हो ॥ २८½ ॥

श्रीसमक्षगत यत् त्व योद्धुमुत्सहसे नृप ॥ २० ॥
 धामितामध्यग मत्त शार्दूल इय कुक्षरम् ।

“जैसे कई व्यापक कामनासो कसित हथिनियोने बीचमें
खड़े हुए गम्बराने नसना चाहता हो, नसी प्रगाढ़ गुम रिज्यो
के समझ कीड़ा गिलासमें तत्पर हुए राजा अजुनये साथ मुद
कनेका होसला दिला रहे हो ॥ २९३ ॥

समस्या दशमीव उच्यता गजनी त्वया ।
युद्धे भद्रा तु पद्यस्ति भ्यस्तात समोऽजुनम् ॥ ३० ॥

तात ! दशमीय ! यदि तुम्हारे हृदयमें मुद्रके लिये
बन्हा है, तो तबतम क्षमा करो और आनकी राममें यही
छरो । फिर कल छरो तुम रात्रा अर्जुनको समराङ्गणमें
उपस्थित देखोग ॥ ३० ॥

यदि चापि रणं तुभ्य युद्धलुष्णाममाधृत ।
निपात्यास्मान् रणे युद्धमर्जुनेनोपयाम्यसि ॥ ३१ ॥

“मुद्रकी वृष्णाते पिरे हुप शशसयात्र ॥ यदि हुम्दे तसन
के लिय बड़ी ज़ादो लगी हो तो पढ़ने शनभूमिमे हस सगरी
मार तिपाभा ॥ उसर बाद महापत्र व्युनर साथ मुद्र करने
पाओगे ॥ २१ ॥

ततस्ते राज्ञामायैरमान्यास्ते नृपयः तु ।
सुदिताद्यापि ते युद्धे भग्निताश्च पुमुक्षिते ॥ ३० ॥

अथ मुनिरावगच्छ भूमे मन्त्री युद्धमालम्भे अपुनरे
अमात्योऽपि मारमारुह्य स्थाने स्थो ॥ ३२ ॥

तथा हल्हलाशब्दो ममवर्तीरगा यर्था ।
 भञ्जनम्यायुयाशेणा रायणस्य च मन्त्रिणाम् ॥ ३३ ॥

इसने अतुल्य अनुयायियों तथा राजाओं के मन्त्रियों का
नर्मदास नगर बनावा । ॥ ३५ ॥

इषुभिस्तोमरैः शसैस्त्रिदशैः सख्यपणैः ।
मरायणानर्दयन्त समन्तात् समभिद्रुता ॥ ३४ ॥

‘जनुनन यादा बाणों, तोमरों, भालों, त्रिशूलों और यम
करण नामक शस्त्रोंद्वारा चारों ओरसे घेरा करके राग

सहित सम्मन राजसौरो धायल् करने लग् ॥ ३४ ॥
 ईहयाधिपयोधाना घेग आसीस् मुदारुण ।

सनप्रमानमकरसमुद्रस्थेय नि स्वन ॥ ३५ ॥
 'देहयजन यज्ञाओरा येग नाको, मल्लो और मगरो

सहित ममुद्रशी मीषण गजनार समान अयन्त भयस्तर जान
पडता या ॥ ३१ ॥

रायणस्य तु तेऽमात्या प्रहस्तगुक्साग्णा ।
कार्तर्यथयत् मुञ्चा निहन्ति स्म स्यतेजसा ॥ ३६ ॥

राज्यन वै मन्त्री प्रसूतः शक और सारण आदि कुशित
हे अपने बल पराक्रमसे वातवायु अंगुली सेनाका ध्वज
करने लगे ॥ ६ ॥

अर्जुनाय तु तत्त्वम राक्षस्य समन्विण ।
 श्रीडमानाय कथित पुरुषैर्भयविद्वलै ॥ ३७ ॥

स्व अर्जुन सेवकोंने भयमे विह्वल होकर श्रीहामें लगे हुए अर्जुनसे मन्त्रीस्थिति रागजन उस क्रूर कर्मका समाचार

मुनाया ॥ ३७ ॥
 ध्रुव्या न भेत-यमिति स्त्रीजन न तदारुन ।

उत्तार जलात् तस्माद् गङ्गातोयादियाजन ॥ ३८ ॥
 'गुणर अजुनने अपनी जियोने कहा—'तुम सब लोग

करना मत । फिर उन सपर साथ यह नम्रगर छलने ठमी
तरह बाहर निकला, बैने कोई दिग्गज (हथिनियौर साथ)

गङ्गाजीर श्चमे बाहर निरग्न हा ॥ २८ ॥
 प्रोध्यन्तिनेत्रन्तु स तदानुनपायक ।

प्रज्ज्वाल महाधरो युगान्त इव पातक ॥ ३६ ॥
 'उमा नेत्र रोमं स्खयणश्च ह गये । यद् अनुस्मर्यी

॥ ३ ॥

अभिदुष्टार ग्यामि तमासीय दिशम् ॥ ४० ॥

मना स देव अघवार-गुनार दृष्ट पद हो ॥ ४० ॥

यादृशिररणा समुद्यम्य मदागदाम् ।
गारुडं यममास्थाय आपयानंय स्नात्तुन ॥ ४१ ॥

॥ भुक्तभोजनं गुणान् अस्तीति च तस्य विना न भोजनं
कृतं तदापरं गच्छति तस्मिन् एव भोजनं न भोजनं

अमुन तस्माद् ही गग निजार्थेन दूट ददा ॥ ४१ ॥

तस्य मार्गे समारब्धं विच्योऽर्कस्येव पर्यत ।

म्यिनो विच्य इवारूप्य प्रहस्तो मुखलायुध ॥ ४२ ॥

‘उस समय मुखलचारी प्रहस्त, जो विच्य गिरिने समान
अविचल था; उसका मार्ग रोककर रक्षा हो गया । ठीक उसी
तरह, जैसे परिकालमें विष्णुचलने मृगदेवरा मार्ग रोक
लिया था ॥ ४२ ॥

ततोऽस्य मुखल घोर लोहयुद्ध मयोद्धत ।

प्रहस्त प्रेययन् क्रुद्धो ररास च यथान्तक ॥ ४३ ॥

‘प्रहस्ते उद्दण्ड हुए प्रहस्तेने कुपित हो अजुनपर छाहसे
मना हुआ एक मयनर मुखल चलाया और कालक समान
भीरण गर्जना की ॥ ४३ ॥

तस्याग्रे मुखलस्याग्निरशोकापीडसन्निभ ।

प्रहस्तकरमुखस्य यभूय प्रहृष्टप्रिय ॥ ४४ ॥

‘प्रहस्ते हापसे, छूटे हुए उस मुखल अग्रभागमें
अशोक पुष्प समान लाल रंगी भाग प्रकट हो गयी, जो
जलती हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ४४ ॥

आधारमान मुखल कातवीर्यस्तदार्जुन ।

निपुण वज्रयामास गदया गतविग्रह ॥ ४५ ॥

‘किंतु कातवीर्य अजुनका इसमें तनिक भी भय नहीं
हुआ । उसने अपनी ओर वेगपूर्वक आते हुए उस मुखलका
गदा मारकर पूजित विफल कर दिया ॥ ४५ ॥

ततस्तमभिबुद्धाय सगदो दैहयाधिप ।

श्रामयाणो गदा युर्वी पञ्चबाहुसतोच्छ्रयाम् ॥ ४६ ॥

‘तत्सम्प्राप्त गदायारी दैवराज, जिसे पाँच सौ भुजाओं
से उठाकर चलाया जाता था, उस भारी गदाको घुमाता हुआ
प्रह्लादी और दौड़ा ॥ ४६ ॥

ततो हतोऽतिथेगेन प्रहस्तो गदया तदा ।

निपपात स्थित शैले वज्रियग्रहतो यथा ॥ ४७ ॥

‘उस गदासे अत्यन्त बगपूर्वक आहत होकर प्रहस्त
तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा; मानो कोई पर्यंत वज्रधारी इन्द्रके
वज्रका आघात पाकर ढह गया हो ॥ ४७ ॥

प्रहस्त पतित दृष्ट्वा मारीचशुक्रसारणा ।

समहोदरधूम्राक्षो अपसृष्टा रणाजिरात् ॥ ४८ ॥

‘प्रहस्तको घयशायी हुआ देख मारीच, शुक्र, सरण,
महोदर और धूम्राक्ष समग्रद्वारे भाग खड़े हुए ॥ ४८ ॥
अपमानतेष्वमार्येषु प्रहस्त च निपातिते ।

राजणोऽभ्यद्रत् तूष्णमजुन त्रपलत्तमम् ॥ ४९ ॥

‘प्रहस्त गिरि और अमाल्योक्त भाग जानेपर रावणने
रूपभेद अजुनपर तत्काल घाग किया ॥ ४९ ॥

सहस्रयाहोस्तद् युद्धं त्रिंशद्दशहोश्च दक्षयाम् ।

नृपराजस्यैवास्त्य भारब्ध रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

‘गिर तो दशर भुजाओंगल नरनाथ आर भीष भुजाओं
काले निगावरनाथमें वर्षों भरकर युद्ध आरम्भ हो गया, जो
रोमों लड़े कर देनेवाला था ॥ ५० ॥

सागराणि सभ्रुधौ चलमूलनिवातलौ ।

तेजोयुक्तायिनादित्यौ प्रवहन्तामिवानलौ ॥ ५१ ॥

यलोद्धतौ यथा नागौ वासितार्ये यथा वृषौ ।

मेघाणि विनर्दन्तौ सिंहाणि यलोत्कटौ ॥ ५२ ॥

रुद्रकालाणि क्रुद्धौ तौ तदा रामसर्जुनौ ।

परस्पर गदा गृह्य ताडयामासतुर्भुशम् ॥ ५३ ॥

‘विष्णुच हुए दो समुद्रों; भिनकी जड़ हिल रही हो
ऐसे दो पर्यंत; दो तेजसी आदित्यों; दो दाहक अग्नियों;
बलमें समान हुए दो गजराजों; काम-वासनावाली गायके
लिये लड़नेवाले दो साँढ़ों; जेर झोरसे गर्जनेवाले दो मेघों;
उत्कट बलशाली दो सिंहों तथा क्रोधसे भरे हुए रुद्र और
कालदेवके समान वे राजा और अजुन गदा लेकर एक
दूसरेपर गद्दी चोटें करने लगे ॥ ५१-५३ ॥

यज्रप्रहारानचला यथा घोरान् निपेहिरे ।

गदाप्रहारास्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ॥ ५४ ॥

‘जैसे पूर्वकालमें पर्यंतोंने वज्रके मयकर आघात सहें थे;
उसी प्रकार वे अजुन और रावण वहाँ गदाओंके प्रहार सहन
करते थे ॥ ५४ ॥

यथाशानिरघेभ्यस्तु जायतेऽथ प्रतिश्रुति ।

तथा तयोगदापोधेर्दिश सर्वा प्रतिश्रुता ॥ ५५ ॥

‘जैसे विजलीकी कड़कते सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिश्रुतित हो
उठती हैं; उसी प्रकार उन दोनों वीरोंकी गदाओंके आघातोंसे
सभी दिशाएँ गूँजने लगीं ॥ ५५ ॥

अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि ।

काञ्चनाभ नभश्चके विभुस्सौदामनी यथा ॥ ५६ ॥

‘जैसे विजली चमककर आकाशको मुनहरे रागसे युक्त कर
देती है; उसी प्रकार रावणकी छातीपर गिरायी जाती हुई
अर्जुनकी गदा उसके वज्र स्वरको सुवर्णकी सी प्रभासे पूर्ण
कर देती थी ॥ ५६ ॥

तथैव राजणेनापि पात्यमाना मुहुमुहुः ।

अजुनोरसि निर्भाति गदोरकेष महागिरी ॥ ५७ ॥

‘उसी प्रकार रावणके हाग भी अर्जुनकी छातीपर बारबार
गिरायी जाती हुई गयी किसी मशान पर्यंतपर गिरनेवाली
उत्कट समान प्रकाशित हो उठती थी ॥ ५७ ॥

नानुन खेदमायाति न राक्षसगणेदर ।

सममासीत् तयोयुद्धं यथा पूर्वं वलीन्द्रयो ॥ ५८ ॥

‘उस समय न तो अर्जुन यचना था और न राक्षसगणोंका
राजा राजा ही । पूर्वकालमें परस्पर जसनेवाल रुद्र और
वलि की भाँति उन दोनोंका युद्ध एक समान व्यन पड़ता था ।
अज्ञैरिष वृषायुधैश्च दत्ताग्रैरिष कुञ्जरो ।

परम्परं श्रिनिजन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥ ५९ ॥

‘जैसे बाँह अपने सींगोंसे और हाथी अपने दाँतोंसे
अप्रमाणने परस्पर प्रहार करते हैं; उसी प्रकार वे नरेश और

निशाचरराज एक दूसरेपर गदाओंसे चोट करते थे ॥ ५९ ॥
ततोऽजुनेन कुन्हेन सज्ज्राणेन सा गदा ।
स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥ ६० ॥
'इसी बीचमें अर्जुनने कुपित होकर रावणके विशाल बड़
सलपर दोनों मनोक बीचमें अपनी पूरी शक्तिसे गदास
प्रहार किया ॥ ६० ॥

वरदानवृत्तत्राणे सा गदा रावणोरसि ।
हुल्लिख यथावेगं द्विधामूतापतत् पितौ ॥ ६१ ॥
'परन्तु रावण तो वरस प्रभावसे सुखित था, अत
रावणकी छानीपर वेगपूर्वक चोट करके भी वह गदा किसी
दुर्बल गदाकी भाँति उसके बगरी टकराते दो टुक होकर
पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६१ ॥

स त्वजुनप्रयुक्तेन गदाघातेन रावण ।
अपासपद् धनुमात्र निपसाद् च निघ्नन् ॥ ६२ ॥
'तथापि अजुनकी चलायी हुई गदाके आघातसे पीड़ित
हो रावण एक घनुष पीछे हट गया और आतनाद करता
हुआ बैठ गया ॥ ६२ ॥

स विह्वल तद्दालक्ष्य दशग्रीव ततोऽर्जुन ।
सहस्रोत्पत्य जम्बाह गदस्त्वामिज पणगम् ॥ ६३ ॥
'दशग्रीवको व्याकुल देख अजुनने सहसा उछलकर उसे
पकड़ लिया, मानो गदहूने जपन मारकर किसी वषको घर
दबाया हो ॥ ६३ ॥

स तु बाहुसहस्रण यत्नाद् गृह्य ददाननम् ।
यद्यथ यत्नान् राजा यत्ति नारायणो यथा ॥ ६४ ॥
'जैसे पूजकालमें भगवान् नाथपगने पत्थिने बाँधा था,
उसी तरह बलवान् राजा अर्जुनने ददाननको बलपूर्वक पकड़
कर अपने हथार हाथोंके द्वारा उसे मजबूत रस्सोंसे बाँध
दिया ॥ ६४ ॥

यध्यमाने दशग्रीवे सिद्धारणदेवताः ।
साध्वीति यादिन पुरैः किरन्त्यजुनमूधनि ॥ ६५ ॥
'दशग्रीवने बाँध जानेपर सिद्ध, कारण और देवता
'याथाय । याथा ।' कहत हुए अजुन निरंतर फूलोंकी
बग करने लगे ॥ ६५ ॥

व्याघ्रो मृगमिमादाय मृगराडिब जुज्जग्म ।
ररास हैहयो राजा हपायमुदग्मुहु ॥ ६६ ॥
'जैसे व्याम किसी हिरण्य दबाव होता है अथवा सिंह
हाथीको घेर दबाता है, उसी प्रकार रावणगो अपने वगने
करन हैहयराज अजुन हगतिरगने मेघर समान बारबार
गर्जन करने लगा ॥ ६६ ॥

प्रहस्तन्तु समाग्यस्तो दृष्ट्वा वद ददाननम् ।
सहसा रावणं कुन्हे शभिदुद्राव हैहयम् ॥ ६७ ॥
'इसके बाद प्रहस्तेने होना सम्भाला । दशमुख रावणक
बँधा हुआ देव वद रावण महाशुक्ति हो हैहयराजकी
ओर दीड़ा ॥ ६७ ॥

नक्तचराणा वेगस्तु तपामापतता यभी ।
उद्धृत व्यातपापायि पयोऽनामिनाम्बुधौ ॥ ६८ ॥
'जैसे बगमाल आनेपर समुद्रमें घाटनेका बग बन जाता
है, उसी प्रकार वहाँ आक्रमण करते हुए उन निशाचरोंका
बग बना हुआ प्रतीत होता था ॥ ६८ ॥

मुञ्जमुञ्चेति भापन्तस्तिष्ठतिष्ठेति चासहत् ।
मुसलानि च धूगानि सौत्ससन् तदा रणे ॥ ६९ ॥
'छोड़ो छोड़ो, ठहरा, ठहरा' ऐसा बारबार करते हुए
रावण अर्जुनकी ओर दीड़ा । उस समय प्रहलन् रणभूमिमें
अर्जुनपर नृकल और गूलक प्रहार किए ॥ ६९ ॥

अप्रासाज्येन तान्यागु असम्भ्रान्तस्तदागु ।
आयुधायमरारीणा जम्बाहातिनिपूदन ॥ ७० ॥
परन्तु अजुनगो उस समय घबराहट नहीं हुई । उस
शत्रुपूदन बीरने प्रहलन् आदि देवद्वारी गिगा रजों छोड़े हुए
उन अस्त्रोंसे अपने शरीरतक आनेसे पहले ही परह लिया ॥
ततस्तरेव रक्षसि दुधरं प्रणयुधै ।

भिक्षा विद्रागयामास यागुरम्युधरातिन ॥ ७१ ॥
किर २ हा दुधर पर भद्र आयुधाम उस रणभूमिके
वापल करके उसी तरह भगा लिया, जैसे हवा बादलोंका
छिन्न भिन्न परह उड़ा ले जाती है ॥ ७१ ॥

रावणसास्त्रासयामास दानरीयापुनस्तदा ।
रावण गृह्य नगरं प्रविशदा मुहुद्वृत ॥ ७२ ॥
'उस समय दानरीय अर्जुनग समान रावणोंका मनभीत
कर लिया और रावणग लहर २ आने गुह्योंन लख
नगरमें आया ॥ ७२ ॥

स श्रीयमाप हुसुमाक्षतात्करं
दिनं मपार पुरुहत्सनिभ ।
ततोऽजुन न्या प्रविशन् तापुरी

पत्ति निगृह्येन सहस्रगेयन ॥ ७३ ॥
नगरक निजग अनगर बलशो और पुराणविज्ञान अजुन
इन्द्रिय तजन्वी नररावण फूलों और अगमोंका बग की ओर
राम नेपथारी इन्द्र के बलिब २णी बनकर २ गये थे,
उसी प्रकार उस राजा अर्जुनने बेधे हुए रावणग वष लहर
अपना पुरीमें प्रविश किया ॥ ७३ ॥

हृषीर्षे धामद्रामावण वाक्रीद्यवे धादिद्यवे उत्तरकाण्ड द्वाविंश सर्ग ॥ ३२ ॥

॥३॥ प्रहलन् दानरीयविनिन अथारामावण अहोचक सार्वभौम बलशो गी द्वा हू ॥ ३॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

पुलस्त्यजीका रावणको अर्जुनकी कैदसे छुटकारा दिलाना

रावणग्रहण तत् तु वायुग्रहणसनिभम् ।

तत पुलस्त्य शुभाप कथित विप्रि दैवतै ॥ १ ॥

रावणको पकड़ लेना वायुको पकड़नेसे समान था ।

घीरे घीरे यह बात स्वयं देवताओंके मुखसे पुलस्त्यजीने सुनी ॥ १ ॥

ततः पुत्रदृष्टस्नेहात् कम्पमानो महाधृति ।

माहिष्मतीपतिं प्रष्टुमाजगाम महानृपि ॥ २ ॥

यद्यपि वे महर्षि महान् धैर्यशाली थे तो भी स्तानके

प्रति होनेवाले स्नेहके कारण कृपापरवश हो गये और माहिष्मती

नरेशसे मिलनेके लिये भूतलपर चले आये ॥ २ ॥

स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विज ।

पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मन सत्प्रातर्विक्रम ॥ ३ ॥

उनका वेग वायुके समान था और गति मनके समान;

वे ब्रह्मर्षि वायुपथका आश्रय ले माहिष्मतीपुरीमें आ पहुँचे ॥

सोऽमरावतिसकाशां हृष्टपुण्ड्रजनावृताम् ।

प्रविशेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्यैवामरावतीम् ॥ ४ ॥

जैसे ब्रह्माजी इन्द्रकी अमरावतीपुरीमें प्रवेश करते हैं;

उसी प्रकार पुलस्त्यजीने हृष्ट पुण्ड्र मनुष्योंसे भरी हुई और

अमरावतीके समान शोभासे सज्जन माहिष्मती नगरीमें प्रवेश

किया ॥ ४ ॥

पादचारमिमादित्य निष्पतत सुदुर्दशम् ।

ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय भञ्जनाय न्यवेदयन् ॥ ५ ॥

आकाशसे उतरते समय वे पैरोंसे चलकर आते हुए

सूखे समान जन पड़ते थे । अत्यन्त तेजके कारण उनकी

और देखना बहुत ही कठिन जान पड़ता था । अशुनके

सैनिकोंने उन्हें पहचानकर राजा अशुनको उनका शुभागमनकी

सूचना दी ॥ ५ ॥

पुनस्त्य इति त्रिंशाय वचनाद्देहयाधिपः ।

दिरस्यल्ललिमाधाय प्रत्युद्रच्छत् तपस्विनम् ॥ ६ ॥

सैनिकोंने कहनेसे जब देहपराजको यह पता चला कि

पुलस्त्यभी पधारे हैं; तब वे तिरपर अञ्जलि बाँध उन तपस्वी

मुनिकी आगवानीके लिये आगे बढ़ आये ॥ ६ ॥

पुरोहितोऽस्य गृणार्थं मधुपर्कं तथैव च ।

पुरस्तात् प्रययौ राक्षः क्षामस्येव बृहस्पति ॥ ७ ॥

राजा अर्जुनके पुरोहित अर्थात् और मधुपर्क आदि

छेकर उनके आगे आगे चला; माना इन्द्रके आगे बृहस्पति

चल रहे हों ॥ ७ ॥

पतस्तमृगिमायात्समुद्यन्तमिव भास्करम् ।

मनुजो ददप सम्भ्रान्तो घण्डेन्द्र ह्येभ्यरम् ॥ ८ ॥

यहाँ आते हुए वे महर्षि उदित हाते हुए क्षण समान

तेजस्वी दिखायी देते थे । उन्हें देखकर राजा अर्जुन चकित

रह गया । उसने उन ब्रह्मर्षिके चरणोंमें उसी तरह आदरपूर्वक

प्रणाम किया; जैसे इन्द्र ब्रह्माजीने आगे मस्तक झुकाते हैं ॥

स तस्य मधुपर्कं गा पादमर्च्य निवेद्य च ।

पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगदगदया गिरा ॥ ९ ॥

ब्रह्मर्षिका पाद; अर्घ्य; मधुपर्क और गौ समर्पित करके

राजाधिराज अर्जुनने हर्षगदगद वाणीमें पुलस्त्यजीसे कहा—॥ ९ ॥

अद्यैवममराजस्या तुल्या माहिष्मती कृता ।

अद्याह तु द्विजे ब्रह्म्या यस्मात् पश्यामि दुर्दशम् ॥ १० ॥

द्विजेन्द्र ! आपका दर्शन परम दुर्लभ है; तथापि आज मैं

आपके दशनका मुख उठा रहा हूँ । इस प्रकार यहाँ पधारकर

आपने इस माहिष्मतीपुरीको अमरावतीपुरीके समान गौरव

शालिनी बना दिया ॥ १० ॥

अद्य मे कुशल देव अद्य मे कुशल व्रतम् ।

अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप ॥ ११ ॥

यत् ते देवगणैर्वर्धौ घन्देऽह चरणौ तव ।

इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ।

ब्रह्मन् किं दुर्मर् किं कायमाहापयतु नो भगान् ॥ १२ ॥

‘देव ! आज मैं आपके देवत्व चरणोंकी धन्दा कर

रहा हूँ अतः आज ही मैं शास्त्रमें सज्जल हूँ । आज मेरा

व्रत निर्विघ्न पूरा हो गया । आज ही मेरा जन्म सकल हुआ

और तपस्या भी कार्यक हो गयी । ब्रह्मन् ! यह राज्य; ये

स्त्री पुत्र और हम सब लोग आपसे ही हैं । आप आश

दीजिये । हम आपकी क्या सेवा करें ?’ ॥ ११ १२ ॥

त धर्मोऽग्निषु पुत्रेषु शिव पूषा च पार्ष्विवम् ।

पुलस्त्योवाच राजानं देहयानां तथार्जुनम् ॥ १३ ॥

तब पुलस्त्यजी देहपराज अशुनके धर्म; अग्नि और पुत्रों

का कुशल-समाचार पृच्छकर उल्लेख इस प्रकार बोलें—॥ १३ ॥

नरे द्राम्बुजपद्माक्ष पूर्णच द्रुमिभानन ।

अतुल ते बल येन दशमीयस्त्वया जितः ॥ १४ ॥

पूष्ण चद्रमाके समान मनोहर मुखवाले कमलजननरेण ।

तुम्हारे बलकी कहीं तुलना नहीं है क्योंकि तुमने दशमीयको

जीत लिया ॥ १४ ॥

भयाद् यथोपतिष्ठेता निष्पन्दौ सागरानिलौ ।

सोऽयं मृधे त्वया चन्द्रः पौषो मे रणदुजयः ॥ १५ ॥

‘जिसन भयसे समुद्र और वायु भी चञ्चलता छोड़कर

सेवामें उपस्थित होते हैं; उस मेरे रणदुर्बय पौत्रको तुमने

समाप्तमें बाँध लिया ॥ १५ ॥

पुत्रकस्य यश पीत नाम विधायित स्वया ।

मद्याप्स्याद् याच्यमानोऽप्य मुञ्च त्वत्त दशाननम् ॥ १६ ॥

एषा करक तुम मेरे इस दन्वका यत् पा गय और
सब्र अपने नामका टिप्पण पीट टिप्पण । बल ! अर मेरे
कदनेने तुम दशाननका छाट ॥ यह तुमने मेरी याचना
हे ॥ १६ ॥

पुलस्त्याना प्रगृह्योचि न किंचन वचोऽपुन ।
मुमोच वै पार्थिवद्रो रागसेन्द्र प्रहृष्टयत् ॥ १७ ॥

पुलस्त्यवीरि इस आरनाशिरोधार्य करन अर्जुनन इसके
विपरीत काइ बातनही करी । उस राजाधिपजनने वही प्रसन्ता-
क साथ राक्षसराज रागको बचनने मुक्त कर दिया ॥ १७ ॥

स त प्रमुच्य त्रिदशारिमुन
प्रपूज्य दिव्याभरणस्त्रगम्यरै ।

अहिंसक सत्त्वमुपत्य न्यामिक
प्रणम्य त ग्रहस्तुत गृह ययौ ॥ १८ ॥

उस देवगोत्री राक्षसके बचननुक्त करन अर्जुनने दिव्य
आभरण, माला और वस्त्रोंने उनका पूजन किया और अनेक
सूखी बनाकर उसन साथ देवी मित्रताका सम्पन्न स्थापित
किया, जिसक द्वारा किसीकी हिंसा न हो (अर्थात् उन दोनोंने
यह प्रतिज्ञा की कि हमलाग अपनीमैत्रीका उपपागदूखप्राप्तियों
की हिंसांने नहीं करेंगे) । इसके बाद ब्रह्मपुत्र पुलस्त्यवीरको
प्रणाम करके राजा अर्जुन अपने परकी लौट गया ॥ १८ ॥
पुलस्त्येनापि सत्यको राक्षसेन्द्र प्रतापयत् ।
परिप्यक्त वृत्तातिथ्यो लज्जमानो निनिजित ॥ १९ ॥

इस प्रकार अर्जुनद्वारा आनिध-वत्कार करण छाड़ गये
हृत्पार्थ धीमद्रामायणे वाक्मन्त्रेय आद्रिक्वप्य उत्तरकाण्डे प्रपक्षिण मग ॥ ३३ ॥

इस प्रकार धीमन्त्रादिमिर्मित अक्षरानामन अदिक-यक उत्तरकाण्डने तर्तमर्त स्त पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुविंश सर्ग

बालीक द्वारा रावणका पराभव तथा रावणका उन्हे अपना मित्र बनाना

अर्जुनने विमुक्तनु रागणो राक्षसाधिप ।

संचार पृथिवीं सरामनिर्विण्णस्तथा हृत ॥ १ ॥

अर्जुनने छुटकाय पाकर राक्षसराज रावण निर्विदरहित
हो पुन सारी पृथीपर विचरण करने लग्य ॥ १ ॥

राक्षस वा मनुष्य वा शत्रुते य वलाधिकम् ।

रावणस्त समासाद्य युद्धे हयति हर्षित ॥ २ ॥

राक्षस हो वा मनुष्य, जिसका भी वह दानने वदना-वग
मुनता था, उसीन पक्ष पट्टेवद्ध अभिमानी रावण उसे युद्धक
खिने सम्मरता था ॥ २ ॥

तत्र बद्धवित्किरिका नगरां यात्रिपालिताम् ।

गन्वाऽऽह्वयति युद्धाय थालिन हेममालिनम् ॥ ३ ॥

रामन्दर एक दिन यह वा द्वाय पात्रि किरीकापुत्री
में बद्धर मुखमन्त्रापुत्री बाल की युद्धक स्निह छलकरने
लग्य ॥ ३ ॥

प्रतापी राक्षसराज रागणो पुण्यवीरिने हृदयमे लग्य लिया,
परतु वह पणवर्ण कारण स्तब्ध ही रहा ॥ १० ॥

पितामहस्तुधापि पुलस्त्यो मुनिपुङ्गव ।

मोचयित्वा दशप्रोव ग्रहलोके जगाम ॥ २० ॥

दशप्रोवरी छुड़ाकर ब्रह्मासन पुत्र मुनिवर पुलस्त्यवी
पुन ब्रह्मलोकमें चले गये ॥ २० ॥

एव स रावण प्राप्त कीर्तनीयात् प्रथमम् ।

पुलस्त्यपचनायापि पुनमुक्तो महाबल ॥ २१ ॥

इस प्रकार रावणका कानरीय अर्जुनक हाथने पराजित
होना पड़ा था और फिर पुलस्त्यवीर कदनेने उस महाबली
राक्षसको छुटकाय मिला था ॥ २१ ॥

एव बलिभ्यो बलिन सन्ति राजवनन्दन ।

नायका हि परे कार्यो य इच्छेच्छ्रैय आमन ॥ २० ॥

रघुवल्लभन्दन ! इस प्रकार सकरने बलान्दने बलान्
वीर पड़े हुए हैं अतः वे अपना कल्पण नष्ट उस दूतरी
अवहलना नहीं करनी चाहिये ॥ २० ॥

तत्र स राजा पिशिताशनाना

सहस्रगहोरुपलभ्य मैत्रीम् ।

पुननृपाणा वदन चकार

चकार सर्वो पृथिवीं च क्षपात् ॥ २३ ॥

सहस्रगहोरी मैत्री पाकर राक्षसका राजा रावण पुन
घनइसे भरकर सारी पृथ्वीपर विचरने और नरेशोंका स्तार
करने लग्य ॥ २३ ॥

हृत्पार्थ धीमद्रामायणे वाक्मन्त्रेय आद्रिक्वप्य उत्तरकाण्डे प्रपक्षिण मग ॥ ३३ ॥

इस प्रकार धीमन्त्रादिमिर्मित अक्षरानामन अदिक-यक उत्तरकाण्डने तर्तमर्त स्त पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

ततस्तु धानरामान्यास्तारन्नागपिता प्रभु ।

उयाव धानरो धाम्य युद्धप्रप्सुमुपागतम् ॥ ४ ॥

उस समय युद्धही इच्छाम भाव हुए रावणन वन्द्य
मन्त्री तारु तावक गिया मुन तथा पुनराव अद्द एव
मुनवने बसा—॥ ४ ॥

राक्षसेन्द्र गतो थाली यस्म प्रविशत् भवेत् ।

कोऽन्या प्रमुच्यन् म्यानु तत्र शक्तं वृद्धम् ॥ ५ ॥

प्रायसराज ! इस समय वन्द्य त परर गये हुए हैं ।

वे ही कान्ही बद्धर हो गये हैं । दुसरा वीर बनर अद्द
समने दहर म्मता है ॥ ५ ॥

अनुभ्योऽपि समुद्रेय सध्यामन्वाभ्य राग ।

इदं मुहुरभायनि पाली निष्ट मुहुरकम् ॥ ६ ॥

पाण ! करो मुनने सध्यामन्त्र करक बन्ध अर
अने ही होये । अर दा वही दहर बन्दे ॥ ६ ॥

एतान्स्त्रियान् पश्य य एते शङ्खपाण्डुरा ।
युद्धार्थिनामिमे राजन् वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥
‘राजन् । देखिय, ये जो शङ्ख के समान उज्ज्वल हृदियों
के ढेर लग रहे हैं, ये वालीके साथ युद्धकी इच्छासे आये
हुए आप जेमे धीरोंके ही हैं । वानरराज वालीने तेजसे ही
इन सबका अन्त हुआ है ॥ ७ ॥

यद्दामृततस् पीतम्वया रावण राक्षस ।
तदा घालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ॥ ८ ॥
‘राक्षस रावण । यदि आपने अमृतका रस पी लिया हो
तो भी जब आप वालीसे टकरा लेंगे, तब वही आपके जीवन
का अन्तिम क्षण होगा ॥ ८ ॥

पश्येदानीं जगदिभिमि विधवस सुत ।
इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥
‘विभवाकुमार । वाली सपूर्ण आश्चर्य मण्डार हैं ।
आप इस समय इनका दान करेंगे । केवल इधी मुहूर्ततक
उनकी प्रतिष्ठाके लिये ठहरिये, फिर तो आपके लिये जीवन
दुर्लभ हो जायगा ॥ ९ ॥

अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।
घालिनं ब्रह्मसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ॥ १० ॥
‘अथवा यदि आपको मरनेके लिये बहुत जल्दी लगी हो
तो दक्षिण समुद्रके तटपर चल जाइये । वहाँ आपको पृथ्वीपर
स्थित हुए अग्निदेवके समान वालीका दहन होगा ॥ १० ॥
स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरायणः ।
पुष्पकं तत् समारुह्य प्रययौ दक्षिणाणयम् ॥ ११ ॥
तब जाँकोंका दलानेवाले रावणने तारको मल्य-पुत्र कहकर
पुष्पकविमानपर आरुढ़ हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान
किया ॥ ११ ॥

तत्र हेमगिरिप्रस्थं तरुणाकं निभाननम् ।
रावणो घालिनं दृष्ट्वा सप्योपासनतत्परम् ॥ १२ ॥
यहाँ रावणने सुवर्णगिरिके समान ऊँचे वालीको सच्चो
पावन करते हुए देखा । उनका मुख प्रभातकालक सूर्यकी
मौलि अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा था ॥ १२ ॥

पुष्पकादधरहाय रावणोऽङ्गनसन्निभ ।
प्रहीतुं घालिनं तूर्णं नि शब्दपद्मप्रजम् ॥ १३ ॥
उहाँ देखकर काजलेके समान काला रावण पुष्पकसे
उतर पड़ा और वालीको पकड़नेके लिये जल्दी जल्दी उनकी
आर करने लगा । उस समय यह अपने परोक्षी आहट नहीं
हाने देता था ॥ १३ ॥

यदृच्छया तदा दृष्टो घालिनापि स रावण ।
पापमिप्रायकं दृष्ट्वा घृणारं न तु सख्यमम् ॥ १४ ॥
देशवागते वालीने भी रावणका देख लिया, चिन्तु वे
उक्त पापपूर्व अभिप्रायके जनरर भी प्रवरण नहीं ॥ १४ ॥
राजमालाक्ष्य सिंहा या पश्रग गहडो यथा ।

न चिन्तयति न वाली रावण पापनिश्चयम् ॥ १५ ॥
जैसे सिंह खरगोशका और गहड़ सर्पको देखकर भी
उसकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वालीने पापपूर्ण विचार
रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की ॥ १५ ॥
जिघृक्षमाणमायान्तं रावण पापचेतसम् ।
कक्षावलम्बिनं कृत्या गमिष्ये श्रीन महार्णवान् ॥ १६ ॥

उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब पापात्मा रावण
मुझे पकड़नेकी इच्छासे निकट आयेगा, तब मैं इसे कॉलमें
दबाकर टटका लूँगा और इसे लिये दिये शेष तीन महाराजों
पर भी हो आऊँगा ॥ १६ ॥

द्रक्ष्यन्त्यारिं ममाङ्गुल्यं क्ससद्दुकराम्बरम् ।
लम्बमानं वृषाग्रीवं गहडस्येव पन्नगम् ॥ १७ ॥
इसकी बाँध, हाथ पैर और कन्ध खिचकते होंगे । यह
मेरी कॉलमें दबा होगा और उस दशामें लोग मेरे दानुको
गहड़के पजेमें दरे हुए सपके समान लटकते देखेंगे ॥ १७ ॥
इत्येतं मतिमास्थाय वाली मौनमुपास्थित ।
जपन् वै नैगमान् मन्त्रास्तस्यौ पर्यतरादिषु ॥ १८ ॥

ऐसा निश्चय करके वाली मौन ही रहे और वैदिक मन्त्रोंका
जप करते हुए गिरिराज सुमेरुकी मौलि पकड़े रहे ॥ १८ ॥
सावन्मोक्षं जिघृक्षतो हरिराक्षसपार्थिवौ ।
प्रयत्नवन्तौ तत् कर्म ईहतुर्वल्लवर्पितौ ॥ १९ ॥
इस प्रकार बलके अभिमानसे भरे हुए वे वानरराज और
राक्षसराज दोनों एक दूसरेका पकड़ना चाहते थे । दोनों ही
इसके लिये प्रयत्नशील थे और दोनों ही यह काम बनानेकी
चाहमें लगे थे ॥ १९ ॥

हस्तग्राहं तु न मत्वा पादशब्देन रावणम् ।
पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सपमिषाण्डज ॥ २० ॥
रावणने पैरोंकी इसकी-सी आहटसे वाली यह समझ गये
कि अब रावण हाथ बढ़ाकर मुझे पकड़ना चाहता है । फिर
तो दूरी और मुँह किये होनेपर भी वालीने उसे दली तरह
संज्ञा पकड़ लिया, जैसे गहड़ सर्पको दबोच लेता है ॥ २० ॥
प्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीभ्यर हरि ।
खमुत्पपात येगेन हृत्या कक्षावलम्बिनम् ॥ २१ ॥

पकड़नेकी इच्छावाले उस राक्षसराजने वालीने स्वयं ही
पकड़कर अपनी कॉलमें लटका लिया और बढ़ वेगसे वे
आकाशमें उछल ॥ २१ ॥

तं च पीडयमानं तु विनुदन्त नलैर्मनुः ।
जहार रावण वाली पवनस्तोषद् यथा ॥ २२ ॥
रावण अपने नलैस बारबार वालीकी कसेजता और
पीड़ा देता रहा, ता भी जैसे वायु बारलैका उड़ा ले जाती
है, उसी प्रकार वाली रावणका कण्ठमें दबाये लिये फिरते
थ ॥ २२ ॥

अथ ते राक्षसामात्या द्वियमापे दशानने ।

मुमोक्षयिष्यो नालि रयमाणा अभिद्रुता ॥ २३ ॥

इस प्रकार रावणक हर लिये जानेपर उसका मन्त्री उसे वालीसे छुड़ानेक लिये बालाञ्छ करते हुए उनके पीछे-पीछे दौड़ते रहे ॥ २३ ॥

अजीयमानस्त्रीवाली आजतेऽग्न्यरमध्यग ।

अन्वीयमानो मेघौघैरग्नेरस्य इवाशुमान् ॥ २४ ॥

पीछे पीछे राक्षस चलते थे और आगे आगे वाली । इस अरसामें थे आकाशमें मध्यभागमें पहुँचकर मेघसमूहोंसे अनुगत हुए आकाशवर्ती अशुमान् सूर्यसे समान शोभा पाने थे ॥ २४ ॥

तदश्वानुन्त सम्राप्नुवालिन् राक्षसोत्तमा ।

तस्य बाह्वध्वेगेन परिधाता श्ववस्थिता ॥ २५ ॥

वे भेड़ राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी वालीसे पास्तक न पहुँच सक । उनकी भुजाओं और बाँधोंके ध्वेगसे उत्पन्न हुई बाधक ध्वेहोंसे बककर वे लड़ हो गये ॥ २५ ॥

वालिमागद्विप्राप्तान् पर्वतैर्द्रवि गच्छत ।

किं पुनर्जीनमेप्सुर्विभद्रं वै मासशोणितम् ॥ २६ ॥

वालीने मार्गसे उड़ते हुए बड़े बड़े पर्वत भी दृष्ट आते थे फिर रक्त मांसय शरीर चरण करनेवाला और जीवनकी रक्षा चाहनेवाला प्राणी उनके मार्गसे दृष्ट न्यथ, इसके लिये तो करना ही क्या है ॥ २६ ॥

अस्तिगणसम्पातान् धानरेद्रो महाजय ।

क्रमदा सागपन् वनान् सध्यामालमयन्दत ॥ २७ ॥

जितनी देरमें वाली समुद्रोत्तक पहुँचते थे, उतनी देरमें तीनगमी पक्षियोंक समूह भी नहीं पहुँच पाते थे । उन महा बैगवाली वानरबन्धने क्रमशः सभी समुद्रोंके तटपर पहुँचकर सध्या बन्दन किया ॥ २७ ॥

सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तम ।

पश्चिम सागर वाळी आजगाम सरावण ॥ २८ ॥

समुद्रोंकी यात्रा करते हुए आकाशचारिणोंमें भेड़ वाली भी सभी खचर प्राणी पूजा एवं प्रशंसा करते थे । वे रावणकी वगलमें दबाये हुए पश्चिम समुद्रके तटपर आये ॥ २८ ॥

वसिन् सध्यामुपासित्वा ज्ञात्वा जप्त्वा च धानरः ।

उत्तर सागर प्रायाद् घहमानो ददामनम् ॥ २९ ॥

यहाँ स्नान, संध्यापूजन और जप करके वे वानरवीर दधाननका लिये दिये उत्तर समुद्रक तटपर जा पहुँचे ॥ २९ ॥

पट्टयाजनसाहस्य घहमानो महाहरि ।

यायुषध मनोवध जगाम सह शत्रुणा ॥ ३० ॥

बाधु और मनक समान वगमाल वे महाबानर वालीक दहस बानरतक रावणको दाते रहे । फिर अपने उध शत्रुक साथ ही वे उत्तर समुद्रक किनार गये ॥ ३० ॥

उत्तरे सागरे सध्यामुपासित्वा दधाननम् ।

घहमानोऽगमद् वाली पूर्वं वै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसागरके तटपर सध्यापूजना करके दधाननका मार बहन करते हुए वाली पूर्वी दिशाकी महासागरक किनारे गये ॥ ३१ ॥

तथापि सध्यामगस्य वासवि स हरीश्वरः ।

किञ्चिन्धामभिता गृहा रावण पुनरागमत् ॥ ३२ ॥

वहाँ भी सन्ध्यापूजना सम्यक् करके व इन्द्रपुत्र वानरराज वाली दशमुख रावणक वगलमें दबाय फिर सिन्धुवाधुरीन निम्न आये ॥ ३२ ॥

चतुर्थ्यपि समुद्रेषु सध्यामगस्य वानरः ।

रावणोद्वहन्ध्यान्त सिन्धिन्धोपवनऽपतत् ॥ ३३ ॥

इस तरह चारों समुद्रोंमें सध्यापूजनाका काय पूरा कर रावणको दानेक कारण यक हुए वानरराज वाली सिन्धिन्धोपाने उपवनमें आ पहुँच ॥ ३३ ॥

रावण तु मुमोचाथ साक्ष्मात् फणिसप्तम ।

कुतस्त्वमिति बोधाय प्रहसन् रावण मुहुः ॥ ३४ ॥

वहाँ आकर उन करिधेठने रावणको धनकी कौलमें छोड़ दिया और बारबार हँसते हुए पूछा—‘कहा बी, तुम कहानि माय हो’ ॥ ३४ ॥

रिक्सय नु महद् गत्या धमलेलितिरिषण ।

राक्षसेद्रो हरीद्र तमिद् रचनमप्रधीत् ॥ ३५ ॥

रावणकी ओलें धमके कारण चञ्चल हो रही थी । वालीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर उमे महान् आश्चर्य हुआ और उस राक्षसराजने उन वानरराजने इसप्रकार कहा—

वानरेद्र महोद्राभ राक्षसेद्रोऽसि रावण ।

गुद्रेप्सुरिह सम्प्राप्त स चायामादितमन्यया ॥ ३६ ॥

‘महोद्रके समान पराक्रमी वानरद्र । मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ और गुद करनेकी इच्छा यहाँ आया था, सो वह गुद तो आपसे मिल ही गया ॥ ३६ ॥

अहो बलमहो धीयमहो गाम्भीर्यमेव च ।

येनाह पशुनद् गृहा धामितधतुरोऽणवान् ॥ ३७ ॥

‘अहो ! आपमें अद्भुत बल है, अद्भुत पराक्रम है और आश्चर्यजनक गम्भीरता है । आपने मुझे पशुकी तरह पराद कर चारों समुद्रोंक गुमाया है ॥ ३७ ॥

एवमधातनद् धीर शीघ्रमेव च वानर ।

मा चैवोद्वहमानस्तु योऽन्यो धारो भविष्यति ॥ ३८ ॥

वानरवीर ! तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा शूरवीर होगा, जो मुझ इस प्रकार बिना बल-भौरे धीनारुद्ध दा सज ॥ ३८ ॥

त्रयाणामेव भूताना गतिरया त्रयहम् ।

मनोऽनिन्मुपपणना तत्र यात्र न सदायः ॥ ३९ ॥

‘वानरराज ! एकी गति तो मन बाधु और गदह—इन तीन भूतों की ही मुनी गयी है । नि सद् ॥ ३९ ॥ बन्धुमें कीध आप भी एन कीध वेगान् है ॥ ३९ ॥

पतानस्थितयान् पश्य य एन शङ्खपाण्डुरा ।

युद्धार्थिनामिमे राजन् वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥

राजन् । दक्षिण, ये जो शङ्खसे समान उज्ज्वल हथियों के ढेर लगा रहे हैं, ये वालीके साथ युद्धकी इच्छासे आये हुए आप जैसे वीरोंसे ही हैं । वानराज वालीके तेजसे ही इन सभका अन्त हुआ है ॥ ७ ॥

यद्वाभूतस्तस्य भीतस्त्वया राजण राक्षस ।

तदा वालिनमासाद्य तदन्त तत्र जीवितम् ॥ ८ ॥

राक्षस राजण । यदि आपने अभूतका रस पी लिया हो तो भी जब आप वालीसे उठकर लेंगे, तब वही आपके जीवन का अन्तिम क्षण होगा ॥ ८ ॥

पश्येदानीं जगन्निभमिमं त्रिध्रुवस सुत ।

इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥

‘विश्रवाकुमार । वाली सपूर्ण आश्चर्यसे भण्डार हैं । आप इस समय इनका दान करेंगे । केवल इसी मुहूर्तक उनकी प्रतिष्ठाके लिये ठहरिये फिर तो आपके लिये जीवन दुर्लभ हो जायगा ॥ ९ ॥

अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।

वालिनं द्रष्टुं तत्र भूमिष्ठमिमं पावकम् ॥ १० ॥

‘अथवा यदि आपको मरनेके लिये बहुत जल्दी लगी हो तो दक्षिण समुद्रके तटपर चल जाइय । वहाँ आपको पृथ्वीपर खिद हुए अग्निद्वक समान वालीका दशन होगा ॥ १० ॥

स तु त्वारं यिनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावण ।

पुष्पकं तत् समाकृष्ट प्रययौ दक्षिणाणवम् ॥ ११ ॥

तब जाकोंका कल्पनेवाले राजपने तारको भ्रष्ट-भुय कहकर पुष्पकविमानपर आरुढ़ हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

तत्र हेमगिरिप्रपद्य तरुणार्कनिभाननम् ।

राजणो वालिनं दृष्ट्वा सन्ध्योपासनतत्परम् ॥ १२ ॥

वहाँ राजपने सुवर्णगिरिके समान ऊँचे वालीको सम्भोषण करते हुए देखा । उनका मुख प्रभातकालक सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा था ॥ १२ ॥

पुष्पकाद्वयराज्य रावणोऽञ्जनसन्निभः ।

प्रहीतुं वालिनं तूर्णं नि शब्दपदमग्रजत् ॥ १३ ॥

उन्हें देखकर राजलक्ष्मी समान काल्य रावण पुष्पकसे उतर पड़ा और वालीका पकड़नेके लिये जल्दी जल्दी उनकी ओर बढ़ने लगा । उस समय वह अपने परोक्षी आदृत नहीं होने देता था ॥ १३ ॥

पटच्छया तदा दृष्टो वालिनापि स रावण ।

पापाभिप्रायकं दृष्ट्वा चकार न तु सम्भ्रमम् ॥ १४ ॥

देवदागने वालीने भी रावणको देख लिया किन्तु ये उसका पापपूर्ण अभिप्रायका जानर भी परलय नहीं ॥ १४ ॥ दशमालक्ष्य सिंहे या पशुग गरुडो यया ।

न चिन्तयति त वाली राजन् पापनिक्षयम् ॥ १५ ॥

जैसे सिंह खरगोशका और गरुड सर्पको देखकर उसकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वालीने पापपूर्ण रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की ॥ १५ ॥

जिघृक्षमाणमायान्तं राजण पापयेतसम् ।

कम्पायलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये धीन् महाणान् ॥ १६ ॥

उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब पापात्मा मुझे पकड़नेकी इच्छासे निकट आयेगा, तब मैं इसे क दबाकर लटका लूँगा और इसे लिये दिये गेप तीन महास पर भी हो आऊँगा ॥ १६ ॥

द्रक्ष्यन्त्यारिं ममादृश्य क्षत्तद्रुकराग्ररम् ।

लम्बमानं दृष्ट्वा प्रीव गरुडस्येव पन्नगम् ॥ १७ ॥

इसकी जाँच, हाथ पैर और बन्ध खिसकते होंगे । मरी कौलमें दबा होगा और उस दशामें लगे मेरे गरुडके पंजमें दरे हुए सपक समान लडकते देखेंगे ॥ १७ ॥

इत्येव मतिमास्थाय वाली मौनमुपास्थित ।

जपन् धै नैगमान् मन्त्रास्तस्यौ पर्वतराडिव ॥ १८ ॥

ऐसा निश्चय करके वाली मौन ही रहे और वैदिक मन्त्र जप करते हुए गिरिराज समुद्रकी भाँति लड़ रहे ॥ १८ ॥

तावन्त्येव जिघृक्षतौ हरिराक्षसपारिधी ।

प्रयत्नवन्तौ तत् कर्म ईदृशुपलक्ष्यिती ॥ १९ ॥

इस प्रकार बलके अभिमानसे भरे हुए वे वानराज राक्षसराज दोनों एक दूसरेको पकड़ना चाहते थे । दोनों इसक लिये प्रयत्नशील थे और दोनों ही वह काम बना जायते छगे थे ॥ १९ ॥

हस्तग्राहं तु न मत्वा पादशब्देन राजणम् ।

पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सपमिनाण्डज ॥ २० ॥

रावणके पैरोंकी हल्की-सी आदृतसे वाली यह समझा कि अब रावण हाथ बढाकर मुझ पकड़ना चाहता है । तो दूखी ओर मुँह करिये होनेपर भी वालीने उसे उछी लहटा पकड़ लिया, जैसे गरुड सपका दबाव लेता है ॥ २० ॥

प्रहीतुकामं तं गृष्ट्वा रक्षसामीश्वर हरि ।

खमुपपातं धेगेन कृत्वा कक्षात्रलम्बिनम् ॥ २१ ॥

पकड़नेकी इच्छाकाल उस राक्षसराजने वालीने स्वयं पकड़कर अपनी कौलमे लटका लिया और बड़े वेगसे आकाशमें उछल ॥ २१ ॥

त च पीडयमानं तु विमुदत नयैमुह ।

जहार राजण वाली पवनस्तोषद् यया ॥ २२ ॥

रावण अपने नयनों बाधवार वालीको बहोता पीड़ा देता रहा, ता भी जैसे वायु बादलका उड़ा ले है, उसी प्रकार वाली रावणको बालमें दबाव लिये फेंक ॥ २२ ॥

अथ ते राक्षसामात्मा द्रियमाणे दशानने ।

मुमोक्षयिषो वारि रमणा अभिद्रुता ॥ २३ ॥
 इस प्रकार रावण हर लिये जानेर उसक मन्त्री उसे
 बाढने छुड़ाने लिये कष्टाह्वर करते हुए उनके पीछे-पीछे
 दोड़ते रहे ॥ २३ ॥
 य-रीयमानलैराली आजतेऽम्बरमध्यग ।
 अन्धायमानो मेघोघैरम्बरस्थ इवानुमान् ॥ २४ ॥
 पीछे पीछे राख चलते थे और आगे आगे चाली । इस
 अरसाने वे आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर मेघसन्तुल्लेखों
 अनुगत हुए आकाशरती अनुमाली सूर्यसे समान शोभा
 पाते थे ॥ २४ ॥
 तऽशानुनन्त सम्प्राप्तु वालिन राक्षसोत्तमा ।
 तस्य बाहुरधेगेन परिध्याता व्यवस्थिता ॥ २५ ॥
 व श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी बाहीके पासक
 न पहुँच सके । उनकी सुझाओं और बाँधोंके बेगने उत्पन्न
 हुई बाधुन यथार्थ यत्नकर वे लड़े हा गये ॥ २५ ॥
 पालिमागादपाभामन् परितेद्रापि गच्छत ।
 किं पुनर्नाननेप्सुनिर्भद् ये मासशोणितम् ॥ २६ ॥
 बाहीके मार्गमें उड़ते हुए बड़े बड़े पर्वत भी टूट जाते
 थे कि रक्त मांसय शरीर कारण करनेवाला और जीवनकी
 रक्षा चाहनेवाला प्राणी उनक मार्गसे टूट जाय, इसके लिये तो
 रुना ही क्या है ॥ २६ ॥
 अपक्षिगणसम्पातान् यानरेद्रो महाजय ।
 ममसा सागरान् मवान् सध्याकालमज्जत ॥ २७ ॥
 बिकनी देरमें वाली समुद्रोत्क पहुँचते थे, उठनी देरमें
 तीरगमनी पक्षियोंके समूह भी नहीं पहुँच पाते थे । उन महा
 बैगवाली वानरराजने क्रमशः सभी समुद्रोत्क तत्पर पहुँचकर
 सप्ता-बन्दन किया ॥ २७ ॥
 सम्पूज्यमानो यातस्तु रजचरै खचरोत्तम ।
 पश्चिम सागर पाछी आनगाम सरायण ॥ २८ ॥
 समुद्रोत्की बाबा करते हुए आकाशचारिणोंमें श्रेष्ठ वाली
 थी सभी तेजवर प्राणी पूजा एवं प्रशंसा करते थे । वे राकाको
 सगुने देखाय हुए पश्चिम समुद्रक तत्पर आये ॥ २८ ॥
 तस्मिन् सध्यामुपासित्या क्षान्त्या जल्प्या च यानर ।
 उत्तर सागर प्रापाद् यद्दमानो दृशाननम् ॥ २९ ॥
 वहाँ स्नान, संस्थापन और जप करके व वानरवीर
 दशाननका लिये-दिये उत्तर समुद्रक तत्पर जा पहुँचे ॥ २९ ॥
 यदुपोनसाहस्र यद्दमानो महाहरि ।
 यायुरथ मनोयथा जगाम सह शत्रुणा ॥ ३० ॥
 बापु और मनः समान वगसले थे महाबानर बापु की हृद
 यरस योद्धतक रावणको लोते रहे । फिर अपने उस शत्रु-
 क्षय ही य उत्तर समुद्रक किनार गये ॥ ३० ॥
 उत्तरे सागरे सध्यामुपासित्या दृशाननम् ।
 पद्मनागाऽगमद् पाली पूर्वे ये स महोद्धिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसागरके तत्पर मन्थपानना करन दशाननका
 भार सहन करते हुए चाली पूर्व दिशाकी महासागरके
 किनारे गये ॥ ३१ ॥
 तत्रापि सध्यामन्त्रास्य चासि स हर्गिध्वर ।
 किञ्चिन्धामभिता गृहा रायण पुनरागमन् ॥ ३२ ॥
 वहाँ भी कन्धेगमना सम्पन्न करके व इन्द्रपुत्र वानरराज
 वाली दशमुख रावणको दगलमें देखाय फिर किञ्चिन्धायुवीर
 निकट आय ॥ ३२ ॥
 चतुष्पथि समुद्रेषु सध्यामन्त्रास्य यानर ।
 रात्र्योद्गहनथात् किञ्चिन्धोपवनऽपतत् ॥ ३३ ॥
 इस तरह चारों समुद्रोंमें राध्यागमनाका बाप पूरा करके
 रावणको लोते करण करके हुए वानरराज वाली किञ्चिन्धायु
 उपवनमें आ पहुँच ॥ ३३ ॥
 रायण तु मुमोचाय सायक्षात् कपिलसत्तम ।
 कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन् रायण मुहुः ॥ ३४ ॥
 वहाँ आकर उन कपि लोते रावणको अपनी बाँधने छाड़
 दिया और बार-बार हँसते हुए पूछा—‘इहा भी, तुम क्यों
 आय हा?’ ॥ ३४ ॥
 त्रिस्तप तु महद् गत्या धमलोलनिरीमण ।
 राक्षसेद्रो हरीत् तमिद् जचनप्रवीत् ॥ ३५ ॥
 रावणकी ओरों भयक कारण चक्रन हो रही थी ।
 बाहीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर उने महान् आश्चर्य
 हुआ और उस राक्षसराजने उन वानरराजने इस प्रकार कहा—
 यानरेद्र महोद्गम राक्षसेद्रोऽसि रायण ।
 युद्धेप्सुरिह सम्प्राप्त स चाद्यास्मादितस्त्वया ॥ ३६ ॥
 ‘महेन्द्रके समान पराक्रमी वानरद्र । मैं राक्षसन्द्र रावण
 हूँ और युद्ध करनेकी इच्छा है वहाँ आया था, सो यह युद्ध
 तो आगने मिल ही गया ॥ ३६ ॥
 अहो यत्तमो धीयमहो गाम्भीर्यमेव च ।
 येनाह पशुनद् गृहा धामिनश्चतुरोऽगयान् ॥ ३७ ॥
 ‘अहा ! आगे अद्भुत बन है, अद्भुत पराक्रम है और
 आश्चर्यजनक गम्भीर है । अगने मुझे पशुकी तरह पकड़
 कर क्यों समुद्रमें घुसाया है ॥ ३७ ॥
 यथमथातयद् धीर शीघ्रमेव च यानर ।
 मा चैवोद्गहमानम्तु शोऽन्या धारो भविष्यति ॥ ३८ ॥
 ‘वानरवीर ! तुम्हारे गिरा दूधय बीन दण्ड धरवीर
 हग्य, हा मुझे इस प्रकार बिना घन-भोंके दृष्टि-दूरक
 दा कर ॥ ३८ ॥
 त्रयापामेव भूताना गनितेय गयद्गम ।
 मनोऽनित्यमुपणाना तत्र यात्र न सदाय ॥ ३९ ॥
 ‘वानरराज ! ऐसी गति का मन कपु और गरुड—इन
 तीन भूतों की ही मुनी ग्या है । नि गये इस जगत्में कोय
 आन भी देन तीन वेगवा है ॥ ३९ ॥

एतानस्थिचयान् पश्य य एन शङ्खपाण्डुरा ।

युष्मार्थिनामिमे राजन् वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥

राजन् ! देखिये, ये जो शङ्खों समान उज्ज्वल हड्डियों के ढेर लगा रहे हैं, ये वालीके साथ युद्धकी इच्छासे आये हुए आप जैसे वीरोंके ही हैं । वानरराज वालीने तेजसे ही इन सबका अन्त हुआ है ॥ ७ ॥

यद्वाभूतस्स पीतम्वयया राण्य राक्षस ।

तदा वालिनमासाद्य तदन्त तव जीवितम् ॥ ८ ॥

राक्षस रावण ! यदि आपने अमृतका रस पी लिया हो तो भी जब आप वालीसे टकरा लेंगे, तब यही आपके जीवन का अन्तिम क्षण होगा ॥ ८ ॥

पश्येदानीं जगत्त्रिषमिम जिध्वंस सुत ।

इदं मुहूर्तं विप्रस्य दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥

विभवाकुमार ! वाली सम्पूर्ण आश्वक्के मण्डार हैं । आप इस समय इनका दशन करेंगे । केवल इसी मुहूर्तक उनकी प्रतिष्ठाके लिये ठहरिये फिर तो आपके लिये जीवन दुर्लभ हो जायगा ॥ ९ ॥

अथवा तस्से मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।

वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ॥ १० ॥

‘अथवा यदि आपको मरनेके लिये बहुत जल्दी लगी हो तो दक्षिण समुद्रके तटपर चले जाइये । वहाँ आपको पृथ्वीपर स्थित हुए अग्निदेवके समान वालीका दशन होगा’ ॥ १० ॥

स तु तार त्रिभिर्तस्यै रावणो लोकरावण ।

पुष्पकं तत् समारुह्य प्रपयी दक्षिणाणवम् ॥ ११ ॥

तब डाँकोंका हलानेवाले रावणने तारको भल्ल-नुरा कहकर पुष्पकविमानपर आरुढ़ हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

तत्र हेमगिरिप्रस्थ तरुणार्कनिभाननम् ।

राणो वालिनं दृष्ट्वा सञ्जोपासनतत्परम् ॥ १२ ॥

वहाँ रावणने सुवर्णगिरिके समान ऊँचे वालीको सञ्जा पावन करते हुए देखा । उनका मुख प्रभातकालक सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्गलित हो रहा था ॥ १२ ॥

पुष्पकादयच्छाया राणोऽञ्जनसनिभ ।

प्रहीतुं वालिनं तूर्णं नि शब्दपद्मप्रजम् ॥ १३ ॥

उन्हें देखकर पांडुरंगे समान कला रावण पुष्पकसे उतर पड़ा और वालीको पकड़नेके लिये नदी जल्दी उनकी ओर बढ़ने लगा । उस समय वह अपने परोक्षी आदृष्ट नहीं होने देता था ॥ १३ ॥

यच्छ्रुत्वा तदा दृष्टो वालिनापि स रावण ।

पापमित्रायकं दृष्ट्वा चकार न तु सम्भ्रमम् ॥ १४ ॥

देवरागने वालीने भी रावणको देख लिया किंतु ये उसका पापपूर्ण अभिप्रायका जनक भी प्रवण्य नहीं ॥ १४ ॥

शरामालक्ष्य सिंहो या पश्या गच्छो यया ।

न चित्तयति त गाली रावण पापनिश्चयम् ॥ १५ ॥

जैसे सिंह खरगोशका और गरुड़ सर्पको देखकर भी उसकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वालीने पापपूर्ण विचार रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की ॥ १५ ॥

जिघृक्षमाणमायान्त राण्य पापचेतसम् ।

कक्षापलम्बिनं दृष्ट्वा गमिष्ये त्रीन् महार्णवान् ॥ १६ ॥

उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि अब पापात्मा रावण मुझे पकड़नेकी इच्छासे निकट आयेगा, तब मैं इसे कौलमें दबाकर लटका लूँगा और इसे लिये दिये शेष तीन महासगरों पर भी हो आऊँगा ॥ १६ ॥

द्रक्ष्यन्त्यर्चि ममाद्रस्य स्रस्तदूकराम्बरम् ।

लम्बमानं दशमीव गच्छदस्येव पद्मगम् ॥ १७ ॥

इसकी जॉय, हाथ पैर और घञ्च खिचकते होंगे । यह मेरी कौलमें दबा होगा और उस दशमें लोग मेरे गजुको गच्छके पजेमें दने हुए सपके समान लटकते देखेंगे ॥ १७ ॥

इत्येव मतिमास्थाप वाली मौनमुपास्थित ।

जपन् वै नैगमान् मन्त्रास्तस्थौ पवतराडिध ॥ १८ ॥

ऐसा निश्चय करके वाली मौन ही रहने और वैदिक मन्त्रोंका जप करते हुए गिरिपत्र मुनेश्वरी भाँति खड़े रहे ॥ १८ ॥

तायन्त्योन्य जिघृक्षतौ हरिराक्षसपार्थिवौ ।

प्रयत्नवन्तौ तत् कर्म ईदृजुर्बलद्विपितौ ॥ १९ ॥

इस प्रकार बलके अभिमानसे भरे हुए वे वानरराज और राक्षसराज दोनों एक दूसरेको पकड़ना चाहते थे । दोनों ही इसके लिये प्रयत्नशील थे और दोनों ही यह काम बनानेकी बातमें लगे थे ॥ १९ ॥

हस्तग्राहं तु त मत्वा पादद्वन्द्वेन राण्यम् ।

परङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सपमिराण्डज ॥ २० ॥

एकदण्डके पैरोंकी इसकी-सी आदृष्टसे वाली यह समझ गये कि अब राण्य हाथ बढाकर मुझे पकड़ना चाहता है । फिर तो दूसरी ओर मुँह किये शानेपर भी वालीने उसे उसी तरह खड़ा पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है ॥ २० ॥

प्रहीतुकामं स गृह्य राक्षसामीध्वर हरिः ।

रामुत्पपात वेगेन दृष्ट्वा क्षन्तावलम्बितम् ॥ २१ ॥

पकड़नेकी इच्छावाला वह राक्षसराजको वालीने स्वयं ही पकड़कर अपनी कौलमें लटकवा लिया और बड़े वेगसे वे आकाशमें उड़ले ॥ २१ ॥

त च पीडयमानं तु विनुवन्त नलैमुदुः ।

जहार रावण वाली पयनस्तोयद् यया ॥ २२ ॥

रावण अपने नलैमें बांधावा वालीको बल्लेगता और पीड़ा देता रहा, ता भी जैसे बाघ पादलोंका उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार वाली रावणको बल्लेमें दबाय लिये फिरते थे ॥ २२ ॥

अथ ते राक्षसामात्या द्वियमाणे दशानने ।

मुमोक्षयिष्यो यालि रजमाणा अभिद्रुता ॥ २३ ॥
 इष प्रकार रागण हर लिये आनेपर उसक मन्त्री उसे
 वालीने छुड़ानेक लिये बलादह करते हुए उनके पीछे-पीछे
 रोड़ते रहे ॥ २३ ॥
 मन्त्रीयमानस्तैराली भ्राजतेऽभ्यरमध्यग ॥
 मन्त्रीयमानो मेघौघैरभ्यरस्य इवाश्रुमान् ॥ २४ ॥
 पीछे पीछे राक्षस चलते थे और आगे आगे वाली ॥ इस
 अरसामें थे आरागके मध्यभागमें पहुँचकर मंसमूहोंसे
 अलग हुए आकाशवर्ती अश्रुमाली सूयने समान शोभा
 पाते थे ॥ २४ ॥
 तऽशस्त्रयुक्तां सम्राष्टु यालि राक्षसोत्तमा ॥
 तस्य याहुरवेगेन पन्थिता ध्यवस्थिता ॥ २५ ॥
 वे श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी वालीके पासतक
 न पहुँच सके ॥ उनकी मुजाओं और जोंकोंके वेगसे उत्पन्न
 हुई बाधने म्पेड़ोंसे धक्कर वे रुड़े हो गये ॥ २५ ॥
 यालिमागादप्राप्तमान् पर्वतेऽपि गच्छत ॥
 किं पुनर्जीरनेप्रेप्सुर्विभृद् वै मासशोणितम् ॥ २६ ॥
 वालीने मार्गसे उड़ते हुए बड़े-बड़े पर्वत भी हट जाते
 थे कि रक्त मांसमय शरीर धारण करनेवाला और जीवनही
 रखा चाहनेवाला प्राणी उनक मार्गसे हट जाय, इसक लिये तो
 करना ही क्या है ॥ २६ ॥
 अपक्षिगणसम्पात्तान् यानेन्द्रो महाजन ॥
 प्रमदा सागपन् मरान् सप्याकालमवन्दत् ॥ २७ ॥
 जितनी देरमें वाली समुद्रोंतक पहुँचते थे, उतनी देरमें
 तीक्ष्णामी पक्षियोंके समूह भी नहीं पहुँच पाते थे ॥ उन महा
 वेगवाली वानरराजने क्रमशः सभी समुद्रोंक तटपर पहुँचकर
 संध्या बन्दन किया ॥ २७ ॥
 सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तम ॥
 पश्चिम सागर दाढी आजगाम सरागण ॥ २८ ॥
 समुद्रोंकी यात्रा करते हुए आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ वाली
 भी सभी खचर प्राणी पूजा पूर्व प्रघटा करते थे ॥ वे रावणको
 बगलमें दबाये हुए पश्चिम समुद्रके तटपर आये ॥ २८ ॥
 तस्मिन् सप्यामुपासित्वा ध्यात्वा जप्त्वा च यानर ॥
 उत्तर सागर प्रायाद् घटमानो दशाननम् ॥ २९ ॥
 यहाँ स्नान, सप्पपावन और जन करक व वानरवीर
 दशाननका लिये-दिये उत्तर समुद्रके तटपर न पहुँचे ॥ २९ ॥
 यदुपोजनसाहस्र घटमानो महाहरि ॥
 यापुष्य मनेषथ जगाम सह द्राघुणा ॥ ३० ॥
 बापु और मनने समान धमगल वे महावानर वाली कई
 शरस योजनतक रावणका दात रहे ॥ फिर अने उष द्राघुन
 साथ ही वे उत्तर समुद्रक किनार गये ॥ ३० ॥
 उत्तरे सागरे सप्यामुपासित्वा दशाननम् ॥
 यदमानोऽगमद् वाली पूष वै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसागरक तटपर सप्पपावना करते दशाननका
 भार वहन करते हुए वाली पूष िगावती महासागरक
 किनारे गये ॥ ३१ ॥
 तत्रापि सप्यामन्यास्य वामनि स हरीश्वर ॥
 किप्पिधामधिता गृष्ट रागण पुनरागमन् ॥ ३२ ॥
 वहाँ भी सप्पपावना सम्पन्न करक व इन्द्रपुत्र वानरराज
 वाली दशमुख रावणको बगलमें दबाय फिर त्रिकिन्धापुरीने
 निरुद्ध आये ॥ ३२ ॥
 चतुर्गुणैः समुद्रेषु सध्यामशम्य यानर ॥
 रावणोद्वहानथात् किप्पिधोपवनऽपतत् ॥ ३३ ॥
 इस तरह चारों समुद्रोंमें रव्यागमनाका बाप पूरा कर
 रावणको तनेर वारण थन हुए वानरराज वाली किप्पिधोप
 उपवनमें आ पहुँच ॥ ३३ ॥
 रागण तु मुमोबाध सफुल्लत् फणिसत्तम ॥
 कुतस्त्यमिति चोबाध प्रहसन् रागण मुहु ॥ ३४ ॥
 वहाँ जाकर उन कपिभेदने रागणका अपनी पौलसे छोड़
 दिया और बारबार हँसते हुए पूछा—'उहो जी, तुम कहाँ
 आये हो' ॥ ४ ॥
 तस्मिन् तु महद् गत्वा धमलोत्तिरीक्यण ॥
 राक्षसेन्द्रो हरीन्द्र तमिद् यचनमध्यात् ॥ ३५ ॥
 रावणकी ओँलें धमके वारण चखल हो रही थी ॥
 बायीक इस अद्भुत परक्रमको देखकर उमे महान् आश्चर्य
 हुआ और उस राक्षसराजने उन वानरराजने इस प्रकार कहा—
 यानेन्द्र महेन्द्राध राक्षसेन्द्रोऽस्मि रागण ॥
 युद्धेऽसुरिह सम्राट् स व्याघासादितन्मया ॥ ३६ ॥
 'महेन्द्रके समान पवनमी वानर' ॥ मैं राक्षसेन्द्र रावण
 हूँ और युद्ध करनेकी इच्छा यहाँ आया था, छे वह युद्ध
 तो आपने मिल ही गया ॥ ३६ ॥
 महो बलमहो धीयमहो गाम्भीर्यमेव च ॥
 येनाह पशुर्दृष्ट्वा भ्रामितश्चतुरोऽपगान् ॥ ३७ ॥
 'अहा ॥ आपने अद्भुत बल है, अद्भुत परक्रम है और
 आश्चर्यजनक गम्भीरता है ॥ आपने मुझ पशुकी तरह पकड़
 कर चारों समुद्रोंपर घुमाया है ॥ ३७ ॥
 एषमथातयद् धीर दीधमेव च यानर ॥
 मा सौवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो योगो भविष्यति ॥ ३८ ॥
 वानरवीर ॥ तुम्हारे विना दृष्टक केन एषा दृष्टीर
 ह्या, जो मुझ इस प्रकार बिना धक्कोंके चिन्तितपूर्वक
 दाँ सफ ॥ ३८ ॥
 प्रयाणामेव भूताना गमितेऽय दूरहम ॥
 मनोऽनिलमुपणाना तथ चात्र न सदाय ॥ ३९ ॥
 'वानरराज ॥ एभी गति ला मन बाप और गरुड—इन
 तीन भूतोंकी ही मुनी ग्या है ॥ निरुद्ध हूँ ॥ बगलमें बीच
 आज भी हम लीज योग्य हैं ॥ ३९ ॥

एतानस्त्रिययान् पश्य य एने शङ्खपाण्डुरा ।

युद्धार्थिनामिमे राजन् यानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥

राजन् । देखिये, ये जो शङ्खके समान उज्ज्वल हस्त्रियों के ढेर लगा रहे हैं, ये वालीके साथ युद्धार्थी इच्छासे आये हुए आप जैसे धीरेधीरे ही हैं । यानराज्य वालीके तेजसे ही इन सबका अन्त हुआ है ॥ ७ ॥

यद्वायुनरस पीतस्त्वया रावण राक्षस ।

तदा वालिनमासाद्य तदन्त स्रज जीवितम् ॥ ८ ॥

राक्षस रावण । यदि आपने अमृतका रस पी लिया हो तो भी जब आप वालीसे टकरा लेंगे, तब वही आपके जीवन का अन्तिम क्षण होगा ॥ ८ ॥

पश्येदानीं जगदिधमिम विश्रवस सुत ।

इद मुहूर्तं तिष्ठस्य दुर्लभ ते भविष्यति ॥ ९ ॥

विश्रवाकुमार । वाली सम्पूर्ण आश्वमेधक भण्डार हैं । आप इस समय इनका दशन करेंगे । केवल इसी मुहूर्तक उनकी प्रतिष्ठाके लिये दृष्टिरिये फिर तो आपके लिये जीवन दुर्लभ हो जायगा ॥ ९ ॥

अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।

वालिन द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ॥ १० ॥

अथवा यदि आपको मरनेक लिय बहुत जल्दी लगी हो तो दक्षिण समुद्रके तटपर चल जाइये । वहाँ आपको पृथ्वीपर स्थित हुए अग्निदेवक समान वालीका दशन होगा ॥ १० ॥

स तु तार विनिभत्स्य राज्ञो लोकरावण ।

पुण्यं तत् समावह्य प्रययौ दक्षिणायम् ॥ ११ ॥

तब लोकोका इलानेवाले रावणने तारकी भला-बुरा कहकर पुण्यविमानपर आरोह हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

तत्र हेमगिरिप्रख्य तद्वर्णनिभाननम् ।

राज्ञो वालिन दृष्ट्वा सन्धोपासनतत्परम् ॥ १२ ॥

यहाँ रावणने सुवर्णगिरिक समान जैसे वालीको सन्धोपासन करत हुए देखा । उनका मुख प्रभातकालक सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उदराकृत हो रहा था ॥ १२ ॥

पुष्पकाद्वयहाय राज्ञोऽञ्जनसन्निभम् ।

प्रहीतुं वालिन तूर्णं नि शब्दपद्ममयम् ॥ १३ ॥

उन्हें देखकर बाष्पने समान वायु रावण पुष्पकसे उतार पड़ा और यानीका पकड़नेक लिय जल्दी जल्दी उनकी ओर बढ़ने लगा । उस समय वह अपने पैरोंकी आहट नहीं होने देता था ॥ १३ ॥

यदृच्छया तदा दृष्टो वालिनापि स रावण ।

पापाभिप्रायक दृष्ट्वा धकार न तु सम्भ्रमम् ॥ १४ ॥

देखणसे वालीने भी रावणकी देख लिया किंतु वे उषक पापपूर्ण अभिप्रायका जलनर भी पश्यय नहीं ॥ १४ ॥ रावणालक्ष्य सिंहाे या पशग गहड़ो यया ।

न चिन्तयति त गाली रावण पापनिश्चयम् ॥ १५ ॥

जैसे सिंह खरगोशका और गहड़ सर्पका देखकर भी उसकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वालीने पापपूर्ण विचार रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की ॥ १५ ॥

जिघृक्षमाणमायान्त राज्ञ पापचेतसम् ।

कक्षाजलम्विन कृत्वा गमिष्ये श्रीन् महार्णवान् ॥ १६ ॥

उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब पापात्मा रावण मुझे पकड़नेकी इच्छामे निकट आयेगा, तब मैं इसे कौलमें दबाकर लटका दूँगा और इसे लिय दिये गेय तीन महासागरो पर भी हो आऊँगा ॥ १६ ॥

द्रक्ष्यन्त्यग्निं ममाङ्गस्थ स्रसद्बकगम्यम् ।

लम्बमान दशग्रीव गण्डस्तेय पद्मगम् ॥ १७ ॥

इसकी नाँव, हाथ पैर और वस्त्र लिखते होंगे । यह मेरी कौलमें दबा होगा और उस दशार्मे लोग मेरे शत्रुको गहड़के पतेमें दरे हुए सपके समान छटकते देखेंगे ॥ १७ ॥ इत्येष प्रतिमाम्नाय वाली मौनमुपास्थितः ।

अपन् वै नैगमान् मात्रास्तस्यौ पयतराडिच ॥ १८ ॥

ऐसा निश्चय करके वाली मौन हो रहे और वैदिक मन्त्रोंका अप करते हुए गिरियान सुमेरुकी भाँति खड़े रहे ॥ १८ ॥

तावयोन्प जिघृक्षतौ हरिराक्षसपाथिवौ ।

प्रयज्ञान्तौ तत् कम ईहर्तुयर्लक्ष्मिर्पति ॥ १९ ॥

इस प्रकार बल्के अभिमानसे भरे हुए वे यानराज और राक्षसराज दोनों एक दूसरेको पकड़ना चाहते थे । दोनों ही इसक लिये प्रयत्नशील थे और दोनों ही वह काम बनानेकी धातमें लगे थे ॥ १९ ॥

हस्तप्राह तु त मत्वा पादशब्देन रावणम् ।

परारुमुतोऽपि जग्राह वाली सपमिगण्डज ॥ २० ॥

रावणके पैरोंकी हल्की-सी आहटसे वाली यह समझ गये कि अब रावण हाथ बढ़ाकर मुझ पकड़ना चाहता है । फिर तो दूरी और मूँह किये हानेपर भी वालीने उसे उठी तरह साक्षा पकड़ लिया, जैसे गहड़ सर्पको दबाच लेता है ॥ २० ॥

प्रहीतुकाम त गृह्य रक्षसामीश्वर हरिः ।

खमुपपात धेगेन कृत्वा क्षत्रावन्विनम् ॥ २१ ॥

पकड़नेकी इच्छावाला उस राक्षसराजको वालीने खप ही पकड़कर अपनी कौलमें छटका लिया और यद्दे बेगसे वे आकाशमें उछले ॥ २१ ॥

त च पीडयमान तु वितुङ्गत नखैर्मुहुः ।

जहार रावण यानी पवनस्तोयद् यया ॥ २२ ॥

रावण अपने नखोंसे बार-बार वालीको बरोदता और पीड़ा देता रहा तो भी जैसे बाघ बादलोंका उड़ा ले आती है, उसी प्रकार वाली रावणको बगलमें दबाये लिये फिरते थे ॥ २२ ॥

अथ ते राक्षसामान्या द्वियमाणे दृष्टानने ।

मुमोक्षयिष्यो यालि रजमाणा अभिद्रुता ॥ २३ ॥
 इष प्रकार रावणक हर लिये जानेपर उसक मन्त्री उसे
 बालने छुद्धानेक लिये बन्धक रखते हुए उनके पीछे-पीछे
 दोड़ते रहे ॥ २३ ॥
 अ-रीयमानस्त्वैवाली आजतेऽम्बरमध्यग ।
 मन्त्रीयमानो मेघौघैरम्बरस्थ इषानुमान् ॥ २४ ॥
 पीछे पीछे राक्षस चलते थे औस आगे आगे वाली । इस
 अवस्थामें वे आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर मेघमूहोंसे
 भगुन हुए आकाशवर्ती अनुमाली सूर्यसे समान शोभा
 पाने थे ॥ २४ ॥
 तऽशक्नुवन्तः सम्प्राप्तु यालिन राक्षसोत्तमा ।
 तस्य बाह्वश्वेगेन परिभ्रान्ता श्ववस्थिता ॥ २५ ॥
 वे श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी बालीके पास्तक
 न पहुँच सके । उनकी मुखाओं और नोंधोंके वेगसे उत्पन्न
 हुई वायुके थपेड़ोंसे थककर वे लड़े ॥ गये ॥ २५ ॥
 यालिमागाधपामामन् पर्वते प्रापि गच्छत ।
 किं पुनर्जीवनप्रेप्सुर्विभ्रद् धै मासशोणितम् ॥ २६ ॥
 बालीन मार्गसे उड़ते हुए बड़े बड़े पर्वत भी हट जाते
 थे कि रक्त मांसमय शरीर चरण करनेवाला और जीवनकी
 रक्षा चाहनेवाला प्राणी उनक मार्गसे हट जाय, इसके लिये तो
 कहना ही क्या है ॥ २६ ॥
 अक्षिगणसम्प्राप्तान् यानरेद्रो महाजयः ।
 क्रमदा सागरान् मवान् सप्याकालमवन्दत ॥ २७ ॥
 ब्रिती देरमें बाली समुद्रोंतक पहुँचते थे, उतनी देरमें
 तीव्रगामी पक्षियोंक समूह भी नहीं पहुँच पाते थे । उन महा
 वेगवाली बानरराजने क्रमशः सभी समुद्रोंके तटपर पहुँचकर
 संध्या बन्दन किया ॥ २७ ॥
 सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तम ।
 पश्चिम सागर बाही आजगाम सरावण ॥ २८ ॥
 समुद्रोंकी यात्रा करते हुए आकाशचारिणोंमें श्रेष्ठ बाली
 की सभी खेचर प्राणी पूजा एव प्रशंसा करते थे । वे रावणको
 बगन्में दबाय हुए पश्चिम समुद्रके तटपर आये ॥ २८ ॥
 तस्मिन् सप्यामुपासित्वा ध्यात्वा जप्त्वा च यानरः ।
 उत्तर सागर प्रायाद् पद्मानो दक्षाननम् ॥ २९ ॥
 वहाँ स्नान, सप्यासन और जप करके वे बानरखीर
 दधाननका लिये-दिये उत्तर समुद्रक तटपर न पहुँचे ॥ २९ ॥
 यद्रूपोजनसाहस्य पद्मानो महाहरि ।
 बायुवध मनोवध जगाम सह दायुषा ॥ ३० ॥
 बायु और मनने समान धगधल वे महाबानर बाली कई
 शरस बाणवतक रावणको दात रहे । फिर अपने उस बायु
 धाय ही वे उत्तर समुद्रक किनार गये ॥ ३० ॥
 उत्तरे सागरे सप्यामुपासित्वा दक्षाननम् ।
 पद्मानाऽगमद् बाली पूर्ण धै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसागरक तटपर सप्यापानना करन दक्षाननका
 भार बहन करते हुए बाली पूर्ण शिवावर्ती महासागरके
 किनारे गये ॥ ३१ ॥
 तत्रापि सप्याम-शस्य वाराणि स हरीभ्यर ।
 किष्किधामभिता गृह्य रावण पुनरागमत् ॥ ३२ ॥
 वहाँ भी सप्यापानना समझ करन वे इन्द्रपुत्र बानरराज
 वाली दशमुख रावणको सगलमें दबाये फिर किष्किपापुरीर
 निरुद्ध आये ॥ ३२ ॥
 चतुर्ष्वपि समुद्रेषु सप्याम-शस्य यानर ।
 रावणोद्धनयान्त किष्कि-ओपवनऽपतत् ॥ ३३ ॥
 इस तरह चारों समुद्रोंमें सप्यापाननाका बाप पूरा करके
 रावणको जेनेन कारण पर हुए बानरराज वाली किष्किपा
 उपवनमें आ पहुँच ॥ ३३ ॥
 रावण तु मुमोबाध सप्यामात् कपिसत्तम ।
 कुतस्त्वमिति बोधाच्च प्रहसन् रावण मुहुः ॥ ३४ ॥
 वहाँ जाकर उस कपिगेहने रावणसे अपनी कौलसे छोड़
 दिया और बारबार हँसते हुए पूछा—‘रहो जी, तुम कहाने
 आये हो’ ॥ ३४ ॥
 विस्रय तु महद् गत्या धमलेनिरागम ।
 राक्षसेद्रो हरीद्र तमिद् यवनमप्रवीत् ॥ ३५ ॥
 रावणकी ओलें भयके कारण चञ्चल हो रही थीं ।
 बालीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर उसे महान् आश्चर्य
 हुआ और उस राक्षसराजने उन बानरराजने इस प्रकार कहा—
 यानरेद्र महोद्गम गन्धसेन्द्रोऽसि रावण ।
 युद्धेप्सुरिह सम्प्राप्त स चायासादितस्त्यया ॥ ३६ ॥
 ‘महेन्द्रने समान पराक्रमी बानर’ । मैं रावणनेन्द्र रावण
 हूँ और युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आया था, सो पर युद्ध
 तो आपसे मिल ही गया ॥ ३६ ॥
 अहो बलमहो धीयमहो गाम्भीर्यमेव च ।
 येनाह पशुनद् गृह्य धर्मितश्चतुरोऽणवान् ॥ ३७ ॥
 ‘अग ! आपमें अद्भुत बल है, अद्भुत पराक्रम है और
 आश्चर्यजनक गम्भीर है । आपने मुझे पशुकी तरह पकड़
 कर चारों समुद्रोंपर घुमाया है ॥ ३७ ॥
 एवमध्यान्तयद् धीर शीघ्रमेव च यानर ।
 मा चैवोद्धमानस्तु कोऽप्यो पातो भविष्यति ॥ ३८ ॥
 बानरखीर ! तुम्हारे सिरा दृष्टय कोन ऐसा दूरवीर
 होगा, जो मुझे इस प्रकार बिना पने-मोड़े पकड़कर
 दास न ॥ ३८ ॥
 त्रयाणामेव भूतानां यन्तिरेषा त्रयङ्गम ।
 मनोऽनित्यसुपणाना तय यात्र न सदाय ॥ ३९ ॥
 ‘बानरराज ! एकी गति तो मन बायु और गवह—इन
 तीन भूशक्ति ही मुनी गयी है । नि ।’ ‘र इष बगन्में चेष
 आज भी इन तीनों वेगवान् हैं ॥ ३९ ॥

सोऽह दृष्टवन्तुभ्यमिन्द्रमि हरिपुङ्गव ।

त्वया सह चिर सम्य सुखिन्ध पापनाशत ॥ ४० ॥

‘नृपिन्ध । मैंने आपका बल देख लिया । अब मैं
अग्निको साथी बनाकर आपके साथ सदाके लिये स्नेहपूर्ण
मित्रता कर लेना चाहता हूँ ॥ ४० ॥

सारा पुत्रा पुरराष्ट्र भोगाच्छादनभोजनम् ।

सर्वमेवाविभक्त नौ भविष्यति हरीश्वर ॥ ४१ ॥

‘वानरराज ! तू, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और
भोजन—इन सभी वस्तुओंपर हम दोनोंका साझेदारी अधिकार
होगा’ ॥ ४१ ॥

तत प्रज्वालपित्वाग्निं तापुधौ हरिराक्षसौ ।

भ्रातृत्वमुपसप्तपत्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥ ४२ ॥

तब वानरराज और राक्षसराज दोनोंने अग्नि प्रज्वलित
करके एक दूसरेको हृदयसे लगाकर आपसमें माइचारेका
सम्बन्ध जोड़ा ॥ ४२ ॥

अयोन्य लम्बितकरी घृतस्तौ हरिराक्षसौ ।

किष्किधा विशतुह्यौ सिद्धौ गिरिगुहामिव ॥ ४३ ॥

हृत्पायें श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे चतुर्विंश सग ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे चौतीसवाँ सग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

हनुमान्जीकी उत्पत्ति, शैशवावस्थामें इनका स्वर्ग, राहु और ऐरावतपर आक्रमण, इन्द्रके वज्रसे

इनकी मूर्छा, वायुके कोपसे ससारके प्राणियोंको कष्ट और उन्हें प्रसन्न करनेके

लिये देवताओंसहित ब्रह्माजीका उनके पास जाना

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाभाध्वय मुनिम् ।

प्राज्ञलिर्यिनयोपेत इदमाह वचोऽप्ययत् ॥ १ ॥

तब मगरान् श्रीरामने हाथ जोड़कर दक्षिण दिशामें
निवाह करनेवाले अगस्त्य मुनिसे विनयपूर्वक यह अपयुक्त
बात कही— ॥ १ ॥

अतुल बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च ।

न स्वेदाभ्या हनुमता स्तम त्यति मतिमम् ॥ २ ॥

‘महर्षे ! इसमें संदेह नहीं कि वाली और रावणके इस
बलकी कहां तुझ्या नहीं थी परंतु मेरा ऐसा विचार है कि
इन दोनोंका बल भी हनुमान्जीके बलकी बराबरी नहीं कर
सकता था ॥ २ ॥

शौर्य दाक्ष्य बल धैर्यं प्राश्रया मयसाधनम् ।

नियमश्च प्रभायश्च हनुमति कृतालया ॥ ३ ॥

‘शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम
और प्रभाव—इन सभी क्षुद्रगुणोंने हनुमान्जीके भीतर घर
कर रक्खा है ॥ ३ ॥

दृष्ट्वैवागार दाक्ष्य सादृतां कपिवाहिनीम् ।

समाधाय्य महाबाहुर्जनाना शत प्लुत ॥ ४ ॥

फिर व दोनों वानर और राक्षस एक दूसरेका हाथ पकड़े
बड़ी प्रसन्नतासे साथ किष्किन्धापुरीके भीतर गये, मानो दो
सिंह किसी गुफामें प्रवेश कर रहे हों ॥ ४३ ॥

स तत्र मांसमुपित सुभीव इव गणन ।

अमात्यैरागतैर्नतस्त्रीलोफयोत्सादनायिभि ॥ ४४ ॥

रावण वहाँ सुभीनकी तरह सम्मानित हो महीनेभर रहा ।
फिर तीनों लोकोंकी उखाड़ पकड़नेकी इच्छा रखनेवाले उसके
मन्त्री आकर उसे लिवा ले गये ॥ ४४ ॥

परमेतत् पुरा घृत वालिना रावण प्रभो ।

धपितश्च घृतधापि धाता पावकस्सनिधौ ॥ ४५ ॥

प्रभो ! इस प्रकार यह घटना पहले घटित हो चुकी है ।
वालीने रावणको हराया और फिर अग्निच समीप उसे अपना
भाई बना लिया ॥ ४५ ॥

बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभयतुचमम् ।

सोऽपि त्वया विनिर्दग्धं शलभो यक्षिना यथा ॥ ४६ ॥

भीरम ! वालीमें बहुत अधिक और अनुपम बल था,
परंतु आपने उसको भी अपनी वाणाग्निसे उली तरह दग्ध
कर डाला, जैसे आग पतंगको जला देती है ॥ ४६ ॥

हृत्पायें श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे चतुर्विंश सग ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे चौतीसवाँ सग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

‘छमद्रको देखते ही वानर सेना घबरा उठी है—यह

देख ये महाबाहु वीर उसे बर्ष बंधाकर एक ही छल्लोंमें
सी बोजन छमद्रको लॉच गये ॥ ४ ॥

धर्पयित्वा पुरीं लङ्का रावणान्त पुर तदा ।

दृष्ट्वा सम्भाषिता चापि सीता ह्याभ्यासिता यथा ॥ ५ ॥

‘फिर लङ्कापुरीर आधिदैविक रूपको पराल कर रावणके
अन्त पुरमें गये, सीताजीसे मिले, उनसे बातचीत की और
उन्हें बर्ष बंधाया ॥ ५ ॥

सेनाप्रगा मन्त्रिस्तुता किंकरा राज्ञात्मज ।

पते हनुमता तत्र एकैव विनिपातिताः ॥ ६ ॥

‘यहाँ अशोकवनमें इन्होंने अकेले ही रावणने सेना
पतियों, मन्त्रिजुमारों, किंकरों तथा रावणपुत्र अशुका मार
गिराया ॥ ६ ॥

भूयो यथाद् विमुचेन भाषयित्वा दशाननम् ।

लङ्का भस्मीकृता येन पात्रकेनेव मेदिनी ॥ ७ ॥

‘फिर य जेपनादव नागपाउसे बंधे और स्वयं ही मुक्त
हो गये । तत्पश्चात् इन्होंने रावणसे यातालाप किया । जेमे प्रत्य

काल्पनी आगने यह सारी प्रथी जन्मयी थी, उन्नी प्रकार
लक्ष्मपुरीको बलात्कर भग्न कर दिया ॥ ७ ॥

न कालस्य न राजस्य न विष्णोर्विचपस्य च ।

कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनुमत् ॥ ८ ॥

‘युद्धमे हनुमान्जीके जो पराक्रम देकर गये हैं, वैसे
वीरतापूर्ण क्रम न तो कालके, न इन्द्रके, न भगवान् विष्णुके
और न वरुणके ही सुने जाते हैं ॥ ८ ॥

पतम्य बाहुवीर्येण ऽङ्गा सीता च लक्ष्मण ।

प्राप्ता मया जयशैव राज्य मिश्राणि बाधया ॥ ९ ॥

‘मुनीश्वर ! मैंने तो इन्होंने बाहु-बलसे विभीषणके लिये
लङ्का, बाहुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा सीता, लक्ष्मण,
मित्र और बाहुजनोंको प्राप्त किया है ॥ ९ ॥

हनुमान् यदि मे न स्याद् धानराधिपते सखा ।

प्रवृत्तिमपि कोचेत्तु जानस्या शक्तिमान् भवेत् ॥ १० ॥

‘यदि मुझे धानरराज सुग्रीव न सखा हनुमान् न मिलत
तो जननीका पता लगानेमें भी कौन समर्थ हो सकता था ? ॥
निर्भय वाली वैसेन सुग्रीवप्रियका सखा ।

तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो धीरुधो यथा ॥ ११ ॥

‘जिस समय बाकी और सुग्रीवमें विरोध हुआ, उस समय
सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये इन्होंने वैसे दागल वृक्षको बला
देवा है, उसी प्रकार वालीका क्यों नहीं भस्म कर डाला ?
यह क्षम करने नहीं आता ॥ ११ ॥

नहि वेदितवान् मन्ये हनुमानात्मनो धलम् ।

यद् दृष्टवाञ्छीनिष्ठे क्रिद्वन्त धानराधिपम् ॥ १२ ॥

‘मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उस समय हनुमान्जीको
भगने बलका पता ही नहीं था । इसीसे ये अपने प्राणोंसे भी
प्रिय धानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते देखते रहे ॥ १२ ॥

पतन्मे भगवन् सर्वे हनुमति महामुने ।

विस्तरेण यथातत्र कथयामरपूजित ॥ १३ ॥

‘देवनन्द महामुने ! भगवान् ! आप हनुमान्जीके विषय
में व सब बातें पर्याप्त रूपसे विस्तारपूर्वक बनाइये ॥ १३ ॥

राघवस्य धवा धृत्या हेतुयुक्तमृषिस्ततः ।

हनुमत् समश्च तमिदं यचनमग्रवीत् ॥ १४ ॥

‘भीरमचन्द्रबीर व मुक्तिपुत्र धान मुनवर महर्षि
अगस्त्यजी हनुमान्जीके सामने ही उन्ने ॥ प्रभार बाल—
सत्यमेतद् रघुप्रेष्ठ यद् व्रजीषि हनुमति ।

न यत्ने विद्यतं तुल्यो न गतौ न मत्तौ पर ॥ १५ ॥

‘बाहुकृतिभर भीरम ! हनुमान्जीके विषयमें आप जो
बुद्ध करते हैं, यह सब अन्य ही है । बल, बुद्धि और मनमें
इनकी पराधी परनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ १५ ॥

अमोघशापः शापन्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा ।

न यत्ता हि धरा सर्वे यत्नी सन्तस्मिन् ॥ १६ ॥

‘बाहुमदन सुनन्दन ! जिनका शाप कभी व्यर्थ नहीं

जाता, ऐसे मुनियोंने पूर्वजन्ममें इन्हें यही शाप दे दिया था—
कि उस स्थानपर भी इनका अपने पूरे बलका पता लगाने में

वाल्मेयऽप्येतेन यत् कम दत्त राम महाबल ।

तत्र वणयितुं शक्यमिति वाल्यतयास्यते ॥ १७ ॥

महाशरी भीरम ! इन्होंने वनवनमें भी जो महान्
कर्म किया था, उसका वणन नहीं किया जा सकता । उन
दिनों ये बालभासे—अनन्यरी तरह रहते थे ॥ १७ ॥

यदि वास्ति त्वभिप्राय सज्जोतु तत्र राघव ।

समाधाय मतिं राम निशामय उदाग्यहम् ॥ १८ ॥

‘सुनन्दन ! यदि हनुमान्जीका वरिष्ठ सुननेके लिये
आपकी हार्दिक इच्छा हो तो चित्तको एकाग्र करन मुनिय ।
मैं सारी बातें बता रहा हूँ ॥ १८ ॥

सूर्योदत्तवरस्वण सुमेरुनाम पतत ।

यत्र राज्य प्रशास्यस्य केसरी नाम वै पिता ॥ १९ ॥

‘भगवान्, सूर्य वरदानमें मिश्रा स्वरूप सुरजमय
हो गया है, ऐसा एक मुनेक नामसे प्रसिद्ध परा है, जहाँ
हनुमान्जीके पिता केसरी राज्य करते हैं ॥ १९ ॥

तस्य भाया यभूवेष्टा अजनेति परिभुता ।

जनयामास तस्या वै पापुसामजमुत्तमम् ॥ २० ॥

‘उनकी अज्ञाना नामसे विख्यात प्रियमा पत्नी थी ।
उन्ने गर्भसे बाणदेवने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया ॥ २० ॥
शालिग्रहनिभाभास प्राप्तुम तदाज्ञता ।

फलान्याहतुकामा वै निष्कामता गहने वरा ॥ २१ ॥

‘अज्ञानने जरा इनको जन्म दिया, उस समय इनकी अज्ञ
काम्ति ताड़ने पैदा होनेवाले धानर अभ्रमागकी भाँति विगल
वषकी थी । एक दिन माता अज्ञाना फल लवनेन लिये
आभ्रमसे निकली और गहन वनमें गयी गयी ॥ २१ ॥

एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया ऽभूरादित ।

रतोदं शिगुत्स्यर्थं शिगु शरणे यथा ॥ २२ ॥

‘उस समय मातामें शिगु जाने और भूरागे अत्यन्त
पीड़ित होनेन कारण शिगु हनुमान् उन्नी तरह घेर करन रुने
लगे, जैसे पूरगलमें गवर्गन वनन भीतर दुगार करीस्य
रुने य ॥ २२ ॥

ततोद्यतं त्रिभुजं जगपुष्पोदरोपमम् ।

दृष्ट्वा फललोभाच्च हान्यपान रतिं प्रति ॥ २३ ॥

‘इतनेही इन्हें बाहुजन्म समान रूप गगन
उदित होते पित्ताधी दिय । हनुमान्जने उन्ने कई फल
खाना और व उस फलके रूपमें फलही भर उठ ॥ २३ ॥

वाल्मीकिभिरुक्तो वातो वायव इव मृत्तमान् ।

प्रदीतुश्रमो वालाहं श्रवणऽस्यगम्यया ॥ २४ ॥

‘वाल्मीकी और दुर्ग विद मूर्तिन् रूपस्य गगन
वाल्मीक हनुमान् रूपस्य पदद्वयी इच्छामे आगमने उदित
बल बा रहे य ॥ २४ ॥

पतस्मिन् प्रमाने तु मिश्रभावे हनुमति ।

देवदानवयक्षाणां प्रियस्य सुमहानभूत् ॥ २५ ॥

‘सौम्यवाक्यामि हनुमान्त्री जव इस तरद उद्ग ये, उध समय उद्दे देख कर देवताओं, दाननों तथा यक्षोंको बड़ा प्रियस्य हुआ ॥ २५ ॥

नायेव वेगशान् घायुगुह्यो न मनस्तथा ।

यथाय घायुपुत्रस्तु प्रमतेऽम्बरमुचमम् ॥ २६ ॥

‘वे लेवने लगे—‘यह वायुस पुत्र जिस प्रकार ऊँचे आकाशमें वेगपूर्ण उड़ रहा है, ऐसा वेग न तो वायुमें है, न गरुडमें है और न मनमें ही है ॥ २६ ॥

यदि क्षयच्छिरोरस्य इहशो गतिविश्रम ।

यौन वलमात्ताय कथं वेगो भविष्यति ॥ २७ ॥

‘यदि बाल्यावस्थामें ही इस शिशुका ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनका बल पाकर इसका वेग कैसा होगा ॥

तमनुस्रवणे घायु ह्रवन्त पुत्रमात्मन ।

सूर्यदाहभयाद् रक्षस्तुपारचयशीतल ॥ २८ ॥

‘अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख उसे दाहके भयसे बचानेके लिये उस समय वायुदेव भी बर्फ के ठेरकी भाँति शीतल होकर उसने पीछे-पीछे चलने लगे ॥ २८ ॥

बहुयोजनसाहस्र प्रामन्नेव गतोऽम्बरम् ।

पितुर्लाघं बाल्याय भास्कराभ्याश्रमागत ॥ २९ ॥

‘इस प्रकार बालक हनुमान् अपने और पिताके बलसे कई बहस्र योजन आकाशमें लौंघते चले गये और सूर्यदेवके समीप पहुँच गये ॥ २९ ॥

शिखरेषु त्वदोषह इति मत्या दिवाकर ।

कार्यं चास्मिन् समाप्यतमित्येष न वृद्धाह सः ॥ ३० ॥

‘सूर्यदेवने यह जोचकर कि अभी यह बालक है, इसे गुण होयका ज्ञान नहीं है और इसके अधीन देवताओंका भी बहुतका भावी कार्य है—इहें जलाया नहीं ॥ ३० ॥

यमेव दिनस क्षेपं प्रहीतु भास्करं प्लुत ।

तमेव दिवस राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥ ३१ ॥

‘जिस दिन हनुमान्त्री सूर्यदेवको पकड़नेके लिये उठले थे, ठीकी दिन राहु सूर्यदेवपर प्रदण लगाना चाहता था ॥ ३१ ॥

अनेन च पराभूद्यो राहु सूर्यरयोपरि ।

अपदान्तस्तत्त्वस्तो राहुश्च द्राघमर्दम् ॥ ३२ ॥

‘हनुमान्त्री सूर्यके रथके ऊपरी भागमें जर राहुका राश किया, तब चन्द्रमा और बुधका मर्दन करनेवाला राहु मरपीन ॥ यहाँसे भाग खड़ा हुआ ॥ ३२ ॥

इन्द्रस्य भयन गत्या सरोप सिंहिसासुतः ।

अमरीद् भ्रुकुटिं हत्वा देव देवगणैर्गुतम् ॥ ३३ ॥

‘सिंहिकोरा यह पुत्र रथमें भरकर इन्द्र के भयनमें गया और दयाओंसे भरा हुए इन्द्र के सामने भाद टपी करके रोये—॥ ३३ ॥

युमुक्षापनय दत्त्वा चन्द्रार्कं मम वासव ।

किमिदं तन् त्वया दत्तमन्यस्य वल्लभप्रहन् ॥ ३४ ॥

‘बल और बुधसुरका वध करनेवाले वासव ! आपने चन्द्रमा और सूर्यको मुझे अपनी भूर दूर करनेके रूपमें दिया था किन्तु अब आपने उन्हें दूसरेके हवाले कर दिया है । ऐसा क्यों हुआ ? ॥ ३४ ॥

अद्याह पर्यंकाले तु जिघृक्षु सूर्यमागत ।

अथान्यो राहुः प्रमाद्य जग्राह सहसा रविम् ॥ ३५ ॥

‘आज पर्यं (अमावास्या) के समय मैं सूर्यदेवको प्रसन्न करनेकी इच्छाते गया था । इतनेहीमें दूसरे राहुने आकर सहसा सूर्यको पकड़ लिया ॥ ३५ ॥

स राहोर्चन श्रुत्वा वासव सभ्रमात्नितः ।

उत्पपातासनं दित्वा उद्वहन्काञ्चनीं कजम् ॥ ३६ ॥

‘राहुकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र बहुरा गये और सोनेकी माला पहने अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए ॥ तब कैलासकुटीरमें चतुर्दन्त मन्दलवम् ।

शृङ्गारधारिणं प्रापु स्वर्णघण्टाट्टहासिनम् ॥ ३७ ॥

इन्द्र करीद्रमावृष्टा राहु दत्त्वा पुर सरम् ।

प्रायाद् यन्मामयत् सूर्यं सहानेन हनुमता ॥ ३८ ॥

‘फिर कैलास शिखरके समान उज्ज्वल, चार दोंतोंसे विभूषित, मंदकां धारा बहनेवाले, माति भाँतिके शृङ्गारसे युक्त, बहुत ही कँचे और सुवर्णमयी घण्टाके नादरूप अट्टहास करनेवाले गजराज ऐश्वर्यपर आरूढ़ हो देवराज इन्द्र राहुको आगे करके उस स्थानपर गये, वहाँ हनुमान्त्रीने वायु सूर्यदेव विरजमान थे ॥ ३७-३८ ॥

अथातिरभसेनागाद् राहुकृत्यज्य वासवम् ।

अनेन च स वै दृष्ट प्रधावन्शीलकूटयत् ॥ ३९ ॥

‘इधर राहु इन्द्रको छोड़कर बढ़ वेगसे आगे बढ़ गया । इसी समय परांत शिखरके समान आकारवाले शौकते हुए राहुको हनुमान्त्रीने देखा ॥ ३९ ॥

तव सूर्यं समुत्तज्य राहु फलमवेक्ष्य च ।

उत्पपात पुनर्व्योमं प्रहीतु सिंहिसासुतम् ॥ ४० ॥

‘तब राहुको ही फलके रूपमें देखकर बालक हनुमान् सूर्यदेवको छोड़ उस सिंहिकापुत्रके ही पकड़नेके लिये पुन आकाशमें उठले ॥ ४० ॥

उत्सृज्यार्कमिमं राम प्रधावन्तं लङ्काम् ।

अवेक्ष्यैव परावृत्तो मुखरोप पराट्टुय ॥ ४१ ॥

‘धीराम ! सूर्यको छोड़कर अपनी ओर भागा करनेवाले इन वानर हनुमान्को देखते ही राहु शिखा मुखमात्र ही नेत्र था, पीछेकी ओर मुड़कर भागा ॥ ४१ ॥

इन्द्रमाश्रमात्मनस्तु प्रातार सिंहिसासुत ।

इन्द्र इन्द्रेति सयासांमुपमुद्रभापत ॥ ४२ ॥

‘उध समय सिंहिकापुत्र राहु अपने रथके इन्द्रसे ही

अग्नी रक्षाये लिये रुग्णा हुआ भयन मरे बारबार इन्द्र !
इन्द्र ! की पुकार मचाने लगा ॥ ६२ ॥

राहोर्विद्रोशमानस्य प्रागेरालक्षित स्वरम् ।
भुवनेन्द्रोराय मा भयोरहमेन निपूजये ॥ ६३ ॥

स्वीकृते हुए राहुने स्वरको जा पहलका पदचाना हुआ
या, सुनकर इन्द्र शब्दे—इरा मन । मैं इस आक्रमणकारीको
मर दारूँगा ॥ ६३ ॥

परावत ततो हृद्भा महन्दिदमित्यपि ।
फल त हस्तिराजानमभिदुद्राय मारुति ॥ ६४ ॥

सत्य-बात परावतको देखकर इन्होंने उसे भी एक
विषाल कण समझा और उस गजराजको पकड़नेके लिये ये
उबकी और दौड़े ॥ ६४ ॥

तथाय धानतो रूपमैराजतजिघृक्षया ।
मुह्यतभयद् घोरमिद्राग्योरिव भास्वरम् ॥ ६५ ॥

‘एराजत’ पकड़नेकी इच्छासे दौड़ते हुए हनुमान्भीरा
रूप दो पड़ीन लिये इन्द्र और अग्निसे समान प्रकाशमान एव
मन्त्र हो गया ॥ ६५ ॥

परमाधायमान तु नातिकृद्ध शचीपति ।
हस्तान्तादतिमुत्तेन कुलिशोभ्यताडयत् ॥ ६६ ॥

‘शालक’ हनुमान्को देखकर शचीपति इन्द्रको अधिक
क्रोध नहीं हुआ । फिर भी इस प्रकार धावा करते हुए इन
बालक बानरपर उन्होंने अपने हाथसे धूँटे हुए वज्रसे दाय
प्रहार किया ॥ ६६ ॥

ततो गिरी पपातैव इन्द्रयज्ञाभिताडित ।
पतमानस्य चैतस्य धामा हनुरभज्यत ॥ ६७ ॥

इन्द्र वज्रकी चोट साकर ये एक पहाड़पर गिरे । वहाँ
गिरते समय इनकी धाँसी डुबो दूट गयी ॥ ६७ ॥

तस्मिंस्तु पतिते चापि वज्रताडनयिष्ठले ।
शुकोधेन्द्राय पयन प्रजानामहिताय स ॥ ६८ ॥

‘वज्रन’ आपानने व्याकुल होकर इनक गिरते ही वायुदेव
इन्द्रपर क्रुपित हो उठे । उनका यह क्रोध प्रजाओंके लिये
बहितकारक हुआ ॥ ६८ ॥

प्रार स तु सगृह्य प्रजास्यन्तर्गतं प्रभु ।
गुहा प्रविष्टं स्युत दिग्गमादाय मारुत ॥ ६९ ॥

‘सामर्थ्याली’ मारुतने समस्त प्रजाके भीतर रहकर भी
वहाँ अपनी गति खोज ली—आज आदिश रूपसे सारा रोक
दिया और अपने सिंगुपुत्र हनुमान्का हथकिये परतरीगुप्तने
दुस गये ॥ ६९ ॥

गिम्भूयादायमायुय प्रजाना परमातिदम् ।
रतोष सर्वभूतानि यथा यथाणि यास्य ॥ ७० ॥

‘शेमे’ इन्द्र क्या शक है कि उसी प्रकार ये वसुदेव
मन्त्रको मन्त्रय और मन्त्रयको शक्यर उहें वही पीडा

देने लगे । उन्होंने समूह भूतोंके प्राण-चारका अवरोध कर
दिया ॥ ७० ॥

वायुप्रकोपाद् भूतानि निरुच्छासानि सजत ।
सधिभिभिद्यमानैश्च फाटभूतानि जगिरे ॥ ७१ ॥

‘वायुन’ प्रकोपने समस्त प्राणियोंकी शक्ति बंद होने लगी ।
उनक सभी अङ्गोंन जोड़ टूटने लगे और ये सब कसब बाँठके
समान चेश्छाट्टय हो गये ॥ ७१ ॥

नि स्वाध्यायययट्कार निरिन्ध्र धमर्चितम् ।
वायुप्रकोपात् त्रैलोक्य निरयस्यमिग्रभजत् ॥ ७२ ॥

‘वीतों’ लोकोंमें न कही बेतम स्वाध्याय होता था और
न यत् । शरीर धर्मरुम बंद हो गया । त्रिभुवनन प्राणी देखे
कष्ट पाने लगे, मानो नरकमें गिर गये हों ॥ ७२ ॥

तत प्रजा सगंधरा संदेगातुरमानुषा ।
प्रजापति समाधारन् दु रितताश्च मुञ्चेच्छया ॥ ७३ ॥

‘तब’ गन्धर्व, देवता, अनुर और मनुष्य आदि सभी
प्रजा व्यथित हो मुक्त पानेकी इच्छासे प्रजापति प्रजाबीन पर
दौड़ी गयी ॥ ७३ ॥

ऊचु प्राञ्जलयो दग महोदरनिमोदरा ।
त्वया तु भगवन् सृष्टा प्रजा नाप चतुर्दिधा ॥ ७४ ॥

‘त्वया’ द्रुसोऽयमस्माकमायुष पतन पति ।
सोऽस्मान्प्राणेभ्यो भूत्वा कस्मादेवोऽय सत्तम ॥ ७५ ॥

‘दरोध’ दुःख जनयन्नत पुन इव खिय ।
‘उस’ समय देवताओंक पर इस तरह दूँट रूप थे, मानो
उहें महोदरका रोग हो गया हो । उन्होंने हाथ जड़कर

कहा—‘भगवन् ! स्वामिन् ! अपने चार प्रसारकी प्रत्यभौकी
सृष्टि की है । आरने हम सबका हमारी आयुष अतिरिक्त
रूपमें वायुदेवका अर्पित किया है । सम्पुतिगमने । य पतन
दब हमारे प्राणोंके ईश्वर हैं तो भा क्या कारण है कि आज
इन्होंने अन्त पुरने निर्णीती भौति हमारे शरीरक भीतर अरने
संचारको राह दिया है और इस प्रकार य हमारे लिय दुःख
जनक हो गये हैं ॥ ७४ ७५ ॥

तस्मात् त्वा शरणं प्राप्ता वायुनोपहता ययम् ॥ ७६ ॥
वायुसरोधनं दुःखमिदं नो नुद दुःखदम् ।

‘वायुसे’ पीड़ित शक्यर आज हमलगा आरती शरणमें
आय हैं । दुःखकी प्रत्यन । आज हमारे इस वसुदेवभक्ति
दुःखका दूर कीजिये ॥ ७६ ॥

पतत् प्रजाना धृत्वा तु प्रजाभाय प्रजापति ॥ ७७ ॥
कारणादिनि चोक्त्यासो प्रजा पुनरभायत ।

‘प्रजाओंका’ यह बात सुनकर उनक पाँच और ग्यह
प्रजायोंने कहा—‘इसमें कुछ कारण है’ देग करकर ये
प्रजाओंने फिर कहा—॥ ७७ ॥

यस्मिंश्च कारणे वायुधृमाथ य गन्ध य ॥ ७८ ॥
प्रजा दृणुष्यत्तत्सर्वं भाग्यं चाभय क्षमम् ।

‘यस्मिंश्च’ कारणे वायुधृमाथ य गन्ध य ॥ ७८ ॥
प्रजा दृणुष्यत्तत्सर्वं भाग्यं चाभय क्षमम् ।

‘यस्मिंश्च’ कारणे वायुधृमाथ य गन्ध य ॥ ७८ ॥
प्रजा दृणुष्यत्तत्सर्वं भाग्यं चाभय क्षमम् ।

‘यस्मिंश्च’ कारणे वायुधृमाथ य गन्ध य ॥ ७८ ॥
प्रजा दृणुष्यत्तत्सर्वं भाग्यं चाभय क्षमम् ।

“प्रजाओ ! जिस कारणको लेकर वायुदेवताने प्रोष और अपनी रातिना अश्लेष किया है, उसे बताता हूँ, सुनो । वह कारण तुम्हारे मुनने शोभ्य और उचित है ॥ ५८३ ॥
पुत्रस्तस्यामरेदोऽन इन्द्रेणाद्य निपातितः ॥ ५९ ॥
राहोर्न्यनमास्याय तन स कुपितोऽनिल ।

“आज देवराज इन्द्रने राहुकी बात सुनकर वायुके पुत्रको मार गिराया है; इसीलिये वे कुपित हो उठे हैं ॥ ५९३ ॥
अशरीर शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ॥ ६० ॥
शरीर हि विना वायु समता याति दादभि ।

“वायुदेव स्वयं शरीर कारण न करके समस्त शरीरोंमें उनकी रक्षा करते हुए विचरते हैं । वायुके बिना यह शरीर होने काष्ठ समान हो जाता है ॥ ६०३ ॥

वायु प्राण सुप्त वायुवायु सर्वमिन्द्र जगत् ॥ ६१ ॥
वायुना सम्परित्यक्तं न सुप्त निन्दते जगत् ।

“वायु ही भयका प्राण है । वायु ही सुख है और वायु ही यह सम्पूर्ण जगत् है । वायुसे परित्यक्त होकर जगत् कभी सुख नहीं पा सकता ॥ ६१३ ॥

अत्रैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषः ॥ ६२ ॥
अत्रैव ते निरुच्छरासा काष्ठकुड्योपमाः स्थिता ।

“वायु ही जगत्की आयु है । इस समय वायुने सकारके प्राणियोंको त्याग दिया है, इसलिये वे सब के-सब निष्प्राण होकर काष्ठ और दीवारके समान हो गये हैं ॥ ६२३ ॥
तद् यामस्तत्र यन्नास्ते मारुतो रुषप्रदो हि न ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चत्रिंश सर्गः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकीनिर्मित आश्वामेयण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

पट्त्रिंश सर्गः

ब्रह्मा आदि देवताओं का हनुमान्जीको जीवित करके नाना प्रकारके वरदान देना और वायुका उन्हें लेकर अञ्जनाके घर जाना, ऋषियोंके शापसे हनुमान्जीको अपने बलकी निस्तृति, श्रीरामका

अगस्त्य आदि ऋषियोंसे अपने यज्ञमें पधारनेके लिये प्रस्ताव करके उन्हें बिदा देना

तत पितामह दृष्ट्वा वायु पुत्रमधादित ।

शिगुरं न समाश्रय उत्तरौ धातुरग्रतः ॥ १ ॥

“पुत्रके माँ जानेसे वायुदेवता बहुत दुखी थे । ब्रह्मा कीको देखकर य उठ शिगुरो लिय हुए ही उनके आगे खड़ा हो गये ॥ १ ॥

चलकुण्डलोन्मिश्रं तपनीयविमूषण ।

पादपान्यपतद् वायुस्त्रिरुपस्थाय धेधसे ॥ २ ॥

“उनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे थे, माथेपर धूल और चण्डमें हार शम्भा द रं ध और वे सनेने आभूषणोंसे निर्भूषित थे । वायुदेवता तीन बार उपस्थान कर ब्रह्माजीके चरणोंमें गिर पड़े ॥ २ ॥

त सु धेद्विदितेन लम्बाभरणशोभिना ।

मा विनाश गमिष्याम अप्रसादादिते सुता ॥ ६३ ॥

“आदिति पुत्रो ! अत अब हमें उस स्यानपर चलना चाहिये, जहाँ हम सपने पीड़ा देनेवाले वायुदेव छिपे बैठे हैं । वही ऐसा न हो कि उन्हें प्रसन्न किये बिना हम स्वका विनाश हो जाय’ ॥ ६३ ॥

तत प्रनाभि सहित प्रजापति

सदेवगन्धर्भुजङ्गमुखकै ।

जगाम तत्रासति यत्र मारुत

सुत सुरेन्द्राभिहत प्रगृह्य स ॥ ६४ ॥

“तदनन्तर देवता, गन्धर्व, नाग और गुह्यक आदि प्रजाओंसे साथ ले प्रजापति ब्रह्माजी उस स्थानपर गये, जहाँ वायुदेव इन्द्रका मारे गये अपन पुत्रको लेकर बैठे हुए थे ॥ ६४ ॥

ततोऽकपैः श्वानरकाञ्चनप्रभ

सुत तदोत्सङ्गत सदागते ।

चतुर्मुखो धीक्ष्य रूपामथाकरोत्

सदेवगन्धर्भश्चन्द्रियक्षराक्षसे ॥ ६५ ॥

“तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्माजीने देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों तथा यक्षोंके साथ वहाँ पहुँचकर वायुदेवताकी गोदमें खेय हुए उनके पुत्रका देखा; जिसकी अङ्गकान्ति सूर्य, अग्नि और सुवर्णके समान प्रकाशित हो रही थी । उसकी वैसी दशा देखकर ब्रह्माजीको उत्पन्न बढ़ी दया आयी ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चत्रिंश सर्गः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकीनिर्मित आश्वामेयण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिगु त परिसृष्टवान् ॥ ३ ॥

“वददेवता ब्रह्माजीने अपने लम्बे, फैले हुए और आमरण भूषित हाथसे वायुदेवताको उठाकर खड़ा किया तथा उनके उस शिगुर पर भी हाथ पड़ा ॥ ३ ॥

रूपमगस्त्यस्तत सोऽथ सतील पञ्चजमना ।

जलसिन्ध यथा सम्य पुनर्जीवितमाप्तगः ॥ ४ ॥

“जैसे पानीसे सींच देनेपर सूखती हुई पत्ती हरी हो जाती है, उसी प्रकार कमलपोती ब्रह्माजीके हाथका सीला वृक्ष स्वर्ग पाते ही शिगु हनुमान् पुन जीवित हो गये ॥

प्राणवतमिम दृष्ट्वा प्राणो गन्धर्वो मुदा ।

चचार सद्यभूतेषु मनिरुद्ध यथा पुरा ॥ ५ ॥

“हनुमान्को जीवित हुआ देख जगत्के प्राणस्वरूप गन्ध

वाहन वायुदेव समान प्रागियोंने भीर अयम्भ हृष्ट प्रा
आदिका पूर्ववत् प्रसन्नतापूर्वक संचार करने लगे ॥ ५ ॥

मरुद्गोधाद् विनिमुक्तास्ता प्रजा मुदितऽभयम् ॥

शीनयातविनिमुक्ता पश्विन्य इव सामुज्जा ॥ ६ ॥

वायुश्च अग्रेष्वमे छूटकर सारी प्रजा प्रमत्त हो गयी।
ठीक उसी तरह, जैसे हिमयुक्त वायुन आपातमे मुक्त होकर
विह्वल हुए कमलोंमे युक्त पुष्करिणियों सुगमिन् होने
लगी हैं ॥ ६ ॥

ततस्त्रियुग्मस्त्रिकुतुब्धिप्रधामा त्रिन्दाचित ॥

उयाच देवता प्रज्ञा मारुतप्रियकाय्या ॥ ७ ॥

तत्पत्नर तान युग्मोत्ते सध्वज, प्रधानत तीन मूर्ति पारण
करनेवाले, त्रिलोकस्थी यहमें रहनेवाले तथा तीन दसौओंत
युक्त देवताओंद्वारा पूजित ब्रह्माजी वायुदेवताका प्रिय करने
की इच्छाने देवगणोंसे बाल—॥ ७ ॥

भो महेंद्राग्निवरुणा महेश्वरधनेश्वरा ॥

जाननामपि ॥ सर्वे रक्ष्यामि श्रूयता हितम् ॥ ८ ॥

‘हृद्र’ अग्नि, वरुण, महादेव और तुजरे आदि
देवताओ । यद्यपि आप सब लोग जानते हैं तथापि मैं आप
लोगोंसे हितकारी सारी बात बनावूँगा, सुनिये ॥ ८ ॥

अनेन शिनुना कार्यं कर्तव्यं यो भविष्यति ॥

तद् दध्म्य वरान् सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये ॥ ९ ॥

‘इत बालके द्वारा भविष्यमें आपलोगोंसे बहुतसे
कार्य सिद्ध होंगे, अत वायुदेवताजी प्रसन्नताके लिये आप
सब लोग इसे वर दें’ ॥ ९ ॥

तत सद्व्रतयन प्रीतिपुक् श्रुभानन ॥

कुशोदायमयीं मालामुत्प्लेयेद् यचोऽप्रमीत् ॥ १० ॥

तत सुदर सुपतां सहस्र नेत्रवाती इन्द्रेणि गुण
हनुमान् गन्धर्वों यक्षी प्रसन्नताके साथ वमलोंकी माला बना
दी और यह बात कही—॥ १० ॥

मन्त्रोत्पृष्टज्ज्ञेन हनुरस्य यथा हत ॥

नाम्ना वै कपिदादुले भविता हनुमान्नि ॥ ११ ॥

‘मरे हाथसे छूट हुए यज्ञर द्वारा इस बालककी हनु
(उड्डा) छूट गयी थी इसलिये इस कपिभेदश नाम
‘हनुमान्’ होगा ॥ ११ ॥

महामरुत प्रदान्यामि परम धरमद्रुतम् ॥

इतःप्रभृति धञ्जस्य ममाग्रध्वो भविष्यति ॥ १२ ॥

‘इसके सिवा मैं इसे दूख अद्भुत वर यह दता हूँ

१ तीन गुण कर आपसे दही छ प्रकरके देवासे ह ।
२ यक्ष, वनं पृथु भी जान अर वैराग्य—दे ही छ प्रकरके
देवासे ह ।

३ हनु शिनु और शिनु—य ही शब्द मूल था ।

४ वायु वीर्य—वायु शब्द—य हा वरगणध्वज
वायु—२ ह ।

कि आजमे यह मर तजने द्वारा भी नहा मात का सगम’ ॥

मानण्डस्यग्रधीन् तत्र भगवास्तिमिराण ॥

तेनसौऽस्य मदीयस्यद्वामि गतिना कलाम् ॥ १३ ॥

इसके तद वरों अथकारनासक भगवान् मू न कहा—

मैं इस अरने तबत्रा सौकों नाग न्त हूँ ॥ १३ ॥

यदा च शास्त्राण्यध्येतु शनिरस्य भविष्यति ॥

तत्स्य शास्त्र दान्यामि येन धार्म्य भविष्यति ॥

न चाम्य भविता कश्चित् मरुतः शास्त्रदाने ॥ १४ ॥

‘इसके सिवा तद इसके शास्त्राध्ययन करनेकी गति आ
जायगी, तब मैं ही इसे आपमें का कन प्रदान करूँगा जिससे
यह अच्छा वक्ता होगा’ । शास्त्रज्ञानमें कोई भी इसकी उमानता
करनेवाला न होगा’ ॥ १४ ॥

वरुणश्च वर प्रादाध्यास मृयुभविष्यति ॥

यपयुतशतेनापि मत्प्राशानुदकादपि ॥ १५ ॥

उसकात् वरुणने वर देत हुए कहा— इस लोग
यहोरी आयु श जनेवर भी मर पाग और कभी इस बालक
की मृत्यु नहीं होगी’ ॥ १५ ॥

यमो दध्म्यस्य यमरोगस्य च दत्तवान् ॥

वर द्दामि सनुष्ट अविषाद् च सयुगे ॥ १६ ॥

गद्वेय मामिसा नैन सयुगेपु पथिष्यति ॥

इत्येव धनद् प्राह तदा होसाक्षिपिहल ॥ १७ ॥

पिर यमन कर लिया—‘य’ मर दान्ने मरस्य और
नारोग होगा’ । तदनन्तर विष्णुगणने एक औरसाग तु मने
कहा—‘मैं सगु हारर यह वर देता हूँ कि युद्धमें कभी इस
शिखर न होगा तथा मर्य यह गग सधाममें इसका पथ न
कर सकेगी’ ॥ १६ १७ ॥

मत्तो मद्वायुधाना च अग्रध्वोऽस्य भविष्यति ॥

इत्येव शस्त्रेणापि दत्तोऽस्य परमो वर ॥ १८ ॥

इतने शस्त्र भगवा शस्त्रने य उत्तम वर दिया कि

‘यह मर और मर अपुषों द्वारा भी अग्र्य होगा’ ॥ १८ ॥

विश्वकमा च हृष्टेन बालमृग्येवम शिनुम् ॥

शिलिपना प्रश्र प्राशद् परमस्य महामतिः ॥ १९ ॥

विश्वकसेमें भेष्ट परम बुद्धिमन् विश्वमति वाग्व्यु-
समान अद्वय कविताक उय शिनुको शस्त्रर उा इस प्रकार
वर दिया—॥ १९ ॥

मन्त्रानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि तानि च ॥

तेरवप्यन्यमापन्नश्चिरंजी भविष्यति ॥ २० ॥

‘मरे बनाय हुए जिन विष्णु अग्र्य है, उतने
अन्य होकर या शास्त्र विष्णुकी होगी’ ॥ २० ॥

दीयायुध महात्मा उग्रदातः प्राग्रयाद् यत् ॥

सर्वेया धनद्विजानामग्र्योऽस्य भविष्यति ॥ २१ ॥

अन्ते—‘कान्ते उग्र दानद्विजानामग्र्य वरन दान-
न होययु महात्मा तथा उग्र प्रश्रय दानदेव आर्य
होगा’ ॥ २१ ॥

तन सुराणा तु वरैश्च ह्येवमल्लभम् ।

चतुर्मुखस्तुष्टमना वायुमाह जगद्गुरु ॥ २२ ॥

तत्प्रश्नात् हनुमान्जीको इस प्रकार देवताओंसे वरोंसे अल्लभ्य देव वार सुरोंवाले जगद्गुरु ब्रह्माजीका मन प्रसन्न हो गया और ये वायुदेवने जल—॥ २२ ॥

अभिप्राणा भयङ्करी मिप्राणामभयकर ।

अजेयो भविता पुत्रस्तत्र मारुत मारुति ॥ २३ ॥

मारुत । तुम्हारा यह पुत्र मारुति 'गुण'ओंके लिये भयङ्कर और मित्रोंके लिये अभयदाता होगा । युद्धमें कोई भी इसे जीत न सकेगा ॥ २३ ॥

कामरूप कामगरी कामग इवता चर ।

भक्त्ययाहृतगति कीर्तिमात्र भविष्यति ॥ २४ ॥

'यद् इच्छातुमार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा जा सकेगा । इसकी गति इसकी इच्छाके अनुसार तीव्र या मन्द होगी तथा वह कहीं भी रुक नहीं सकेगी । यह कपिशेष्ट पड़ा यशस्वी होगा ॥ २४ ॥

राजगोस्तान्नाथानि रामप्रीतिरराणि च ।

रोमहर्षकराण्येय कता कमाणि सयुगे ॥ २५ ॥

'यह युद्धस्थलमें रावणका सहार और भगवान् भीरम चन्द्रजीकी प्रसन्नताका सम्पादन करनेवाले अनेक अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कर्म करण' ॥ २५ ॥

परमुन्त्या तमामय मारुत त्वमरै सह ।

यथागत ययु सयै पितामहपुरोगमा ॥ २६ ॥

इस प्रकार हनुमान्जीको वह देकर वायुदेवताकी अनुमति ले ब्रह्मा आदि सत्र देवता जैसे आय थे, उसी तरह अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥

सोऽपि गन्धर्व पुन प्रवृष्ट शृङ्गमानपत् ।

अज्ञानयास्तमार्याय घरदत्त निनिगत ॥ २७ ॥

गन्धर्वान वायु भी पुत्रको लेकर अचानक पर आये और उसे देवताओंके दिय हुए परधानकी बात बयाकर चले गये ॥ २७ ॥

प्राप्य राम वरानेप घरदानयलान्वित ।

जनेनात्मनि सत्येन सोऽसौ पूर्ण इवार्णय ॥ २८ ॥

भीरम । इस प्रकार य हनुमान्जी बहुतसे वर पाकर बरदानब्रह्मन 'गति'ने सम्यक् हो गये और अपने मीनर विमान अतुल्य वेगने पूज्य हो भरे हुए महासागरने समान धाम पान लगे ॥ २८ ॥

तत्ता पूयमाणोऽपि तदा धानरपुङ्गव ।

आधर्मेषु महर्षिणामपराप्यति निभय ॥ २९ ॥

उन दिनों वेगते भर हुए य धानरविमानपि हनुमान् निभय हो महर्षियों आश्रमोंमें जा आकर उपद्रव किया करते थे ॥ २९ ॥

धुम्भाङ्गान्यग्निहोत्राणि यद्वल्लाना च सत्रयान् ।

भग्नविच्छिन्नप्रिथ्वस्तान् सशान्ताना करोत्ययम् ॥ ३० ॥

ये शान्तचित्त महात्माओंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते, अग्निहोत्रके साधनभूत धूप, सुगन्ध आदि का तोड़ डालते और त्रि-के-देर-रूपे गये उत्पलाना चौर फाड़ देते थे ॥ ३० ॥

एत्रिधाणि त्रिमाणि प्रातस्त महासल ।

सर्वेषां प्रहृष्टदण्डानामप्य शम्भुना हृत ॥ ३१ ॥

जानन्त ऋषय सर्वे सहते तस्य शक्ति ।

महानरी पवनकुमार इस तरह उपद्रवपूर्ण कार्य करने लगे । कल्याणकारी मगया ब्रह्मने इन्हें इस प्रकारके दण्डोंसे अप्रिय कर दिया है—यह बात सभी ऋषि जानते थे, अत इनकी शक्तिने विवश हो ये इनके सारे अपराध चुपचाप सह लेते थे ॥ ३१ ॥

तथा केसरिणा त्वेप वायुना सोऽअनीक्षत ॥ ३२ ॥

प्रतिपिद्धोऽपि मयाद्वा लङ्घयत्येव वानर ।

यद्यपि केसरी तथा वायुदेवताने भी इन अज्ञानीकुमारको बारबार मना किया तो भी ये धानरवीर मर्यादाका उल्लङ्घन कर ही देते थे ॥ ३२ ॥

ततो मरुत्य कुन्दा भृग्वहिरसवराजा ॥ ३३ ॥

दोपुरेण रघुश्रेष्ठ नातिहृष्टातिमन्ययः ।

इसने भृगु और अश्विनीके वरधमें उत्पन्न हुए महर्षि कुविन हो उठे । रघुश्रेष्ठ । उन्होंने अपने हृदयमें अधिक रोद पा दु खका स्थान न देकर इन्हें शाप देते हुए कहा—

बाधसे यत् समाधित्य बलमस्मान् इवङ्गम ॥ ३४ ॥

तद् क्षीणकाल वंचासि नास्माकं शापमोहित ।

यद्वा ते स्मायत कीर्तिस्तत्त्वा ते धधते बलम् ॥ ३५ ॥

'धानरवीर । तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें स्ता रहे हो, उसे हमारे शापने मोहित होकर तुम क्षीणकालक भूले रहोगे—तुम्हें अपने बलका पता ही नहीं चलेगा । जब काह तुम्हें दुम्हारी कीर्तिका स्मरण दिला देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा' ॥ ३४-३५ ॥

ततस्तु हतनेनाजा महपित्रघनीजसा ।

एयोऽश्ममाणि तान्येष मृदुभाय गतोऽधरत् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार महर्षियों इस वचनक प्रमाणसे इनका तेज और अज घट गया । फिर ये उहाँ आश्रमों मृदुल प्रकृतिके होकर विचरने लग ॥ ३६ ॥

अयधनरजसा नाम्नास्मिन्नाययो पिता ।

सर्वयानरपराजासीत् तेजसा इव भास्कर ॥ ३७ ॥

बाली और दुग्धिवर पिता नाम श्वशुरजा था । ये सर्वके समान तेजस्वी तथा समस्त यानयोंके राजा थे ॥ ३७ ॥

स तु राज्य तिर हत्वा यानराणा महेश्वर ।

ततस्त्वश्वरजा नाम कालभर्मण योजित ॥ ३८ ॥

ये यानरराज श्वशुरजा चिरकालतन यानयोंके राज्यका शासन करके अन्तमें कालभर्म (मृत्यु) का प्राप्त हुए ॥

तस्मिन्नास्तिमिने चाय मन्त्रिभिर्मन्त्रयते ।

पित्र्ये पदे दृतो गाली सुग्रीवो चालिन पदे ॥ ३९ ॥

उनका देशवसान हा जानेपर मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंने पिताके स्थानपर चालीका राजा और गालीके भ्यानपर सुग्रीवको युवराज बनाया ॥ ० ॥

सुप्रणिण सप्त त्वस्य अद्वैध छिद्रवर्णितम् ।

आरात्य सत्यमभयदलितस्याग्निना यथा ॥ ४० ॥

ऐसे अग्निन साथ वायुकी स्वाभाविक मिश्रता है, उसी प्रकार सुग्रीवन साथ चालीका वचनमें ही सत्यभाव था । उन दोनोंमें परस्पर किसी प्रकारका भेदभाव नहीं था । उनमें अद्वैत प्रम था ॥ ४० ॥

एष शापउद्गादेव न चेद् चलमात्मनः ।

चालिसुप्रवयोर्वैर यवा राम समुत्थितम् ॥ ४१ ॥

न ह्येव राम सुग्रीवो भ्रातृममाणोऽपि गालिना ।

द्वेष जानाति न ह्येव चलमामनि मादति ॥ ४२ ॥

भीराम । फिर जब चाली और सुग्रीवमें वैर उठ खड़ा हुआ । उस समय ये हनुमान्जी शापपत्र ही अपने बलको न जान सके । देन । चालीके भयसे भग्न होते रहनेपर भी न तो इन सुग्रीवको इनका बलना स्मरण हुआ और न स्वयं ये पवनकुमार ही अपने बलका पता पा सके ॥ ४१ ४२ ॥

अपिशापाद्वतवल्स्तदैव कपिसत्तम ।

सिंह कुञ्जरयोश्च वा आस्थित सहितो रणे ॥ ४३ ॥

सुग्रीवने ऊपर जब वह निपटि आयी थी, उन दिनों श्रृंगियोंक शापक कारण इनको अपने बलना ज्ञान भूल गया था, इसीलिये वेने कोई सिंह हाथीके द्वारा अशुद्ध होकर उपवास लड़ा रहे, उसी प्रकार ये चाली और सुग्रीवके युद्धमें उपवास लड़ लड़ तमांगा देखते रहे, कुछ कर न सके ॥

पराप्रमोदसाहसतिप्रताप

सौदीप्यमाधुयनयानयैश्च ।

गाम्भीर्यवानुपसुनीयधैर्यं

हनुमत कोऽप्यधिकोऽस्ति लेखे ॥ ४४ ॥

यशस्में ऐसा वीर है जो पराक्रम, ठाकर, बुद्धि, प्रताप, सुधीनता, मधुरता, नीति अनीतिन विवेक, गाम्भीर्यता, चतुरता, उच्च मन और धैर्यमें हनुमान्जीने वरकर हा ॥ ४४ ॥

असौ पुनः पावकरण प्रदीप्यन्

सूर्यो मुन प्रष्टुमना कपीन्द्र ।

उद्यत्तरस्मर्गिरि जगाम

प्रत्य महद्वारयनप्रमेय ॥ ४५ ॥

य अश्वीन गतिशाली कपि मेघ हनुमान् भ्यासगता अभयन करनेर लिये शङ्कर पूजनेकी इच्छासे सूर्यकी ओर मुँह रख कर महान् प्रयत्न करण किये उन अश्वीन अश्वीन उदयाचने अन्तर्गतक मत थे ॥ ४ ॥

समुपपृथ्वयपद् महाधैर्यं

सप्तप्रद सिद्धयति वै कपीन्द्र ।

नहाम्य कथित् महतोऽस्ति शारये

वैशारदे छन्दानौ तत्र ॥ ४६ ॥

हैं हमें मृग, वृष, गरुड, महाभय और गह—इन सबका अच्छी तरह अध्ययन किया है । अश्वाम गणोंन ज्ञान तथा छन्द शास्त्रन अध्ययनमें भी इनकी सम्मति करने वाला दूसरा कोई विद्वान् नहीं है ॥ ४६ ॥

सर्वास्तु पिशासु तपोविधाने

प्रसूचनऽय हि गुरु सुगणाम् ।

सोऽय तपस्याकरणायेत्ता

ब्रह्मा भविष्यत्यपि त प्रसन्नान् ॥ ४७ ॥

सम्पूर्ण विद्याओंन ज्ञान तथा तपस्यान अनुष्ठानमें ये देवगुरु बृहस्पतिजी बखबरी करते हैं । तपस्याकरणोंन सिद्धान्तोंन जाननेवाले ये हनुमान्जी जानकी कृपान सत्त्व प्रसाद समान आदरणीय होंगे ॥ ४७ ॥

प्रसीयिद्विज्ञोरिव सागरस्य

लोकान् दिधनोरिव पात्रकस्य ।

लोकभयेनैव यथास्तकस्य

हनुमत स्वास्यति क पुरस्तात् ॥ ४८ ॥

प्रलयकालमें भूतलन आप्लावित करनेर लिये भूमिन भीतर प्रवेश करनेकी इच्छाजाल महासागर, समूर्ण ललोंन दग्ध कर डालनेर लिये उद्यत हुए समर्तन अग्नि तथा लोचन संहारके लिये उन् हुए कालन समान प्रभावाली इन हनुमान्जीन सामने वीर उभर खड़ा ॥ ४८ ॥

एषेव चान्ये न महाकपीन्द्रा

सुग्रीवमैन्दुछिन्दिना सनीना ।

सत्तापकारयनला सारम्भा

स्वयन्दारणाद् राम सुरैर्हि वृण ॥ ४९ ॥

भीराम ! वास्तवमें ये तथा हैं न समान दूसर दूसर न सुग्रीव, मद, द्विपद, नील, तार, तारय (अन्द्र) ; नन तथा राम आनेर महाकपीधर हैं इन सबकी छवि देवनाओंने आपकी सहायतान लिये ही की है ॥ ४९ ॥

गमो गगनो गगय मुदृष्टो

मैन्दु प्रभो ल्योनिमुगो नलभ्य ।

एते च प्रमत्ता सह शानेरन्द्र

स्वयन्कारणाद् राम सुरैर्हि वृण ॥ ० ॥

भीराम ! गग, गगय गगय मुदृष्ट प्रभो, यतिवृत्त और नल—इन सब कारणोंन तथा एतेकी छवि देवनाओंने आकर सहायता लिये ही की है ॥ ५० ॥

उदेतन् कथित सर्वे यमा त्य पविष्टानि ।

हनुमतो यात्राभाय कर्मनन् कथित मया ॥ ५१ ॥

रुक्मिणी । मान्दुता न मुष्ट पञ्च का, ये, त्य मने कर मुष्ठा । हनुमान् की वास्तविकता इन कथितोंन भी बतल कर दिख ॥ ५१ ॥

श्रुत्वागस्त्यस्य कथितं गमं सौमित्रिरेव च ।

विस्मयं परमं जम्बुवर्णनरा राक्षसैः सह ॥ ५२ ॥

अगस्त्यजीका यह कथन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण बड़े विस्मित हुए । बानरों और राक्षसोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५२ ॥

अगस्त्यस्त्वग्रवीद् रामं सर्वमेतं श्रुतं त्वया ।

इष्टं सम्भाषितश्चासि रामं गच्छामहे वयम् ॥ ५३ ॥

तत्पश्चात् अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘यागियों के हृदयमें रमण करनेवाले श्रीराम ! आप यह साथ प्रवृत्त हुए । हमलोगोंने आपका दर्शन और आपसे साथ वार्तालाप कर लिया । इसलिये अब हम जा रहे हैं’ ॥ ५३ ॥

श्रुत्वा तद् राघवो वाक्यमगस्त्यस्योपप्रतेजसः ।

प्राञ्जलिं प्रणतश्चापि महर्षिर्निद्रमघ्नरीत् ॥ ५४ ॥

उप तत्तत् श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़ विनयपूर्वक उन महर्षिसे इस प्रकार कहा—॥ ५४ ॥ अद्य मे देवतास्तुभ्यं पितरं प्रपितामहम् ।

युष्मान् दशाननेन नित्यं तुभ्यं सन्नाधया ॥ ५५ ॥

‘सुनीधर ! आज मुझपर देवता, पितर और पितामह आदि विशेषरूपसे संतुष्ट हैं । बंधु-भाषणोंसहित हमलोगोंको तो आप जैसे महात्माओंके दर्शनसे ही सदा संतोष है ॥ ५५ ॥ निशचयं तु ममैतस्मिन् यद् यदाभ्यागतस्मृहः ।

तद् भयङ्गिममं हृते कर्तव्यमनुकम्पया ॥ ५६ ॥

‘मेरे मनमें एक इच्छाका उदय हुआ है, अतः मैं यह सूचित करने योग्य जान आपकी सेवामें निवेदन कर रहा हूँ । मुझपर अनुग्रह करके आपलोगोंको मेरे उस अमीष्ट कार्यको पूरा करना होगा ॥ ५६ ॥

पौरजानपदान् स्थाप्य व्यफार्यैः प्रहमागतः ।

प्रनूतहं करिष्यामि प्रभावाद् भवता सताम् ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्रामायणे धीमत्मीकीये आदिकाव्य उत्तरकाण्डे षट्त्रिंश सर्ग ॥ ३६ ॥

इस प्रकार धीमत्मीकीयेनिर्मित आश्वमेधायण आदिकाव्य उत्तरकाण्डे छठ्ठिसर्ग सग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः.

श्रीरामका सभासदोंके साथ राक्षसभामें बैठना

अभिनिषेके तु वाहृत्ये धमणं विदित्वात्मनि ।

व्यतीता या निद्रा पूर्वा पौराणां हृदयधिनी ॥ १ ॥

बहुत्सुभूषण आभरणानी श्रीरामचन्द्रजीका धमपुत्र राज्याभिषेक हो जानेपर पुरवासियोंका हृदय बगनेवाली उन्नी पट्टी रात्रि व्यतीत हुई ॥ १ ॥

तस्या रजन्या ध्युपाया प्रातनुपतिवोधका ।

पन्दिनं समुपातिष्ठन् सौम्या नृपतिवैदमणि ॥ २ ॥

यद् रा राक्षसनेपर लक्ष राक्षस हुआ, तब प्रातः काल महाएव श्रीरामका जगनेवाले सौम्य बन्नीयन राक्षसहलमें उपस्थित हुए ॥ २ ॥

मेरी इच्छा है कि पुराणी और देववासियोंको अपने अपने कार्योंमें लगाकर मैं आप सत्पुरुषोंके प्रभावसे यशोंका अनुष्ठान करूँ ॥ ५७ ॥

सदस्या मम यत्नेषु भवन्तो नित्यमेव तु ।

भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकक्षिण ॥ ५८ ॥

‘मेरे उन यशोंमें आप महान् शक्तिशाली महात्मा मुझपर अनुग्रह करनेके लिये नित्य सदस्य बन रहें ॥ ५८ ॥

अहं युष्मान् समाश्रित्य तपोनिधूतकल्मषान् ।

अनुगृहीतं पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्दुत ॥ ५९ ॥

‘आप तपस्यासे निष्पाप हो चुके हैं । मैं आपलोगोंका आश्रय लेकर उदा सन्तुष्ट एवं पितरोंसे अनुगृहीत होऊँगा ॥ तदागन्तव्यमनिशं भवतिरिह संगतैः ।

अगस्त्याद्यास्तु तच्छ्रुत्वा श्रुपयः सशितव्रता ॥ ६० ॥

एवमस्त्विति तं प्रोच्य प्रयातुमुपचक्रन् ।

‘यह आरम्भके समय उस लिंग एतन्न होकर निराश्रय हो आते रहें ।’ भारामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर बड़े भक्तता पावन करनेवाले अगस्त्य आदि महर्षि उनसे ‘एवमस्तु’ (ऐसा ही होगा) कहकर वहाँसे जानेको उद्यत हुए ॥ ६० ॥

एवमुक्त्वा गता सर्वे नृपयस्ते यथागतम् ॥ ६१ ॥

राघवश्च तमेवार्थं वि-तयामास तस्मिन् ।

इस प्रकार बातचीत करके सब ऋषि जैसे आये थे, वै चले गये । इसपर श्रीरामचन्द्रजी विस्मित होकर उन्हीं निवार करते रहे ॥ ६१ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विद्युज्य नृपजानान् ॥ ६२ ॥

सध्यामुपास्य विधियत् तदा नरवरोत्तम ।

प्रवृत्ताया रजन्या तु सोऽस्तं पुरवरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तदनंतर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और बानरोंको नि करन ‘गेनोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक सध्या की और रात होनेपर वे अतः पुरमें पकारे ॥ ६२ ६३ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विद्युज्य नृपजानान् ॥ ६२ ॥

सध्यामुपास्य विधियत् तदा नरवरोत्तम ।

प्रवृत्ताया रजन्या तु सोऽस्तं पुरवरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तदनंतर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और बानरोंको नि करन ‘गेनोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक सध्या की और रात होनेपर वे अतः पुरमें पकारे ॥ ६२ ६३ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विद्युज्य नृपजानान् ॥ ६२ ॥

सध्यामुपास्य विधियत् तदा नरवरोत्तम ।

प्रवृत्ताया रजन्या तु सोऽस्तं पुरवरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तदनंतर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और बानरोंको नि करन ‘गेनोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक सध्या की और रात होनेपर वे अतः पुरमें पकारे ॥ ६२ ६३ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विद्युज्य नृपजानान् ॥ ६२ ॥

सध्यामुपास्य विधियत् तदा नरवरोत्तम ।

प्रवृत्ताया रजन्या तु सोऽस्तं पुरवरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तदनंतर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और बानरोंको नि करन ‘गेनोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक सध्या की और रात होनेपर वे अतः पुरमें पकारे ॥ ६२ ६३ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विद्युज्य नृपजानान् ॥ ६२ ॥

सध्यामुपास्य विधियत् तदा नरवरोत्तम ।

प्रवृत्ताया रजन्या तु सोऽस्तं पुरवरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तदनंतर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और बानरोंको नि करन ‘गेनोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक सध्या की और रात होनेपर वे अतः पुरमें पकारे ॥ ६२ ६३ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विद्युज्य नृपजानान् ॥ ६२ ॥

सध्यामुपास्य विधियत् तदा नरवरोत्तम ।

प्रवृत्ताया रजन्या तु सोऽस्तं पुरवरोऽभवत् ॥ ६३ ॥



मिथिल लिप्यायै त्रयं ह्यं कपि मनिपादाग भगवान श्रीमालन्द्रमा अभिनन्दन

तो धारा जगत् ही सोया रहेगा (ब्राह्ममुत्तमं उठकर घमानुष्ठान में नहीं लग सकेगा) ॥ ४ ॥

विग्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाग्निनोरिव ।

बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यं प्रजापतिसमो ह्यसि ॥ ५ ॥

आपका पराक्रम भगवान् विष्णु समान तथा रूप

अग्नितीक्ष्णमपि समान है । बुद्धिमें आप बृहस्पति तुल्य हैं

और प्रजापालनमें सहाय प्रजापतिसे सहस्य हैं ॥ ५ ॥

हमा ते पृथिवीतुल्या तेनसा भास्करोपम ।

वेगस्ते घायुना तुल्यो गार्भीर्यमुद्धरेरिव ॥ ६ ॥

आपकी हमा पृथिवी तैयान और तज भगवान् भास्कर

समान है । वेग वायुके तुल्य और गर्भीरता समुद्रके सहस्य

है ॥ ६ ॥

अप्रकल्प्यो यथा स्याणुश्च त्रे सौम्यम्यमीदृशम् ।

नेदशा पाथिषा पून भवितारो नराधिप ॥ ७ ॥

नरेन्दर । आप भगवान् धारके समान युद्धमें अविचल

हैं । आपसी सौम्यता चन्द्रमामें ही पायी जाती है । आपने

समान राजा न पहल थे और न मविष्यमें होंगे ॥ ७ ॥

यथा त्वमसि दुर्धर्षो धमनित्यं प्रजाहित ।

न त्वा जहानि कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषपथ ॥ ८ ॥

पुरुषोत्तम । आपको परास्त करना कठिन ही नहीं,

अगम्य है । आर सग धर्ममें सलम रहते हुए प्रजा दिन

तापनमें तत्पर रहते हैं, अतः कीर्ति और लक्ष्मी आपको कभी

नही छान्दती हैं ॥ ८ ॥

भीक्ष्ण धमश्च काकुत्स्थस्त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।

पनाब्जात्याश्च मधुरा यदिभिः परिकीर्तिता ॥ ९ ॥

काकुत्स्थकुन्दन । एक्ष्ण और धम आपमें नित्य

प्रतिष्ठित हैं । उदीजनोंने य तथा और भी बहुत-सी सुमधुर

स्तुतियाँ सुनायी ॥ ९ ॥

सुताश्च सस्तर्द्धिर्द्वैर्गोधयन्ति क्व राघवम् ।

स्तुतिभिः स्तुयमानाभिः प्रत्युपपन्न राघव ॥ १० ॥

मूल भी द्विय द्युनिषोंद्वय भीरुनायकीरा जगाते रह ।

इत प्रसार सुनायी जाती हुई स्तुतिवर्षों द्वारा भगवान् आराम

जागे ॥ १० ॥

स तन्निहाय क्षयन पाण्डुराच्छादनास्तुतम् ।

उत्तम्यो नागदायतादग्निनारायणो यथा ॥ ११ ॥

जैसे पानगरी भगवान् नागदाय सपत्न्यासे उठते हैं,

उसी प्रकार वे भी श्वेत विशेनीम दरी हुई श्यामा छोड़कर

उठ रहे ॥ ११ ॥

समुपितं महामानं प्रहस्य प्राज्ञल्यो नराः ।

मलीलं भाजने पुष्पैरपनस्तु सहस्रदा ॥ १२ ॥

महापक्षमें गम्मान उठत ही सहस्रों सरक विनम्र

राय बद्ध उतरने पाशोंमें बाध लिय उनकी मेरामें उलट

हुए ॥ १२ ॥

हृतोदकं शुचिभूत्वा काले हृतहुतारान् ।

देवागारं जगामानु पुण्यमिष्टाहुसेधितम् ॥ १३ ॥

स्नान आदि करके शुद्ध हो उन्होंने समयपर अग्निमें

आहुति दी और गीम हो इष्टाहुतियोंद्वारा सेतित पवित्र

देवमन्दिरमें वे पचारे ॥ १३ ॥

तत्र देवान् पितृन् मित्रानग्रयिन्वा यथाग्निधि ।

वाह्यकृत्वात्तर रामो निजगाम जनेनूत ॥ १४ ॥

वहाँ देवताओं, पितरों और मित्रोंका विधिपूर्वक पूजन

करके अनेक कर्मचारियोंके साथ वाहरती धरतीमें आप ॥

उपतस्थुमहात्मानो मन्त्रिणं सपुरोहिता ।

वसिष्ठप्रमुखा सत्रं क्षीयमाना इवाग्रय ॥ १५ ॥

इसी समय प्रचलित अग्नि समान तेजस्वी पलित आदि

सभी महामा मन्त्री और पुरोहित वहाँ उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

क्षत्रियाश्च महात्मानो नानावत्सदेभ्यः ।

रामस्यापायिदन् पादौ शङ्खद्वयेन यथामरा ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् अनेकानेक जनपदोंके स्वाधी महामन्त्री क्षत्रिय

भीरामचन्द्रकीने पास उठी तरह आरर बैठे, जैसे इन्द्र

समीप देवतालग आकर बैठ करते हैं ॥ १६ ॥

भरतो लक्ष्मणश्चात्र शत्रुघ्नश्च महायशः ।

उपासाद्यग्निं ह्यत्र वेदाग्रय इवाग्रयम् ॥ १७ ॥

महायशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—य तीनों भाइ

बड़े रूपके साथ उठी तरह भगवान् भीरामकी सेगमें उपस्थित

रहते थे; जैसे तीनों वेद यज्ञी ॥ १७ ॥

याता प्राज्ञल्यो भूत्वा किंकरा मुदितानना ।

मुदिता नाम पादरम्या बहवः समुपायिदन् ॥ १८ ॥

इसी समय मुष्टित नामसे प्रसिद्ध बहुत से सरर भी,

बिनर मुगपर प्रसन्नतागली रहती थी हाय शङ्खमामनमें

आये और भीरुनायकीर पान बैठ गए ॥ १८ ॥

यानरात्रं प्रजापतिरा निराति फामन्पिण ।

सुमीरप्रमुखा राममुपासन्ते महोजन ॥ १९ ॥

निर महायशस्वी महावन्धी तथा इच्छागुगार रूप पारण

करनेवाल सुमीर आदि बीच पानर भगवान् भीराम समान

आकर बैठे ॥ १९ ॥

त्रिभीरवश्च शत्रोभिश्चतुर्भिः परिहारित ।

उपासन्तं महामानं धनेनाग्निं गुरात्र ॥ २० ॥

अने चर राक्षस मीरद्वेन निर हुए त्रिभीरव भी

उसी प्रकार महामान भीरामकी सेगमें उलटि हुए शत्रु

गुरागण चतुर्भिः कुम्भीरों सेगमें उलटि हुए हैं ॥ २० ॥

तथा निगमपृदाश्च वृत्तीना ये च मानरा ।

१ इति च ॥ इति च ॥ इति च ॥ इति च ॥

नय मे ॥ इति च ॥ इति च ॥ इति च ॥

इति च ॥ इति च ॥ इति च ॥ इति च ॥

इति च ॥ इति च ॥ इति च ॥ इति च ॥

शिरसा घट्य राजानमुपासन्ते विचक्षणा ॥ २१ ॥

जो लोग शास्त्रज्ञानमें बड़े चंदे और कुलीन थे, वे चतुर मनुष्य भी महाराजको मस्तक छुकाकर प्रणाम करते यहाँ बैठ गये ॥ २१ ॥

तथा परिवृतो राजा श्रीमद्विष्णुपिबिर्बरे ।

राजभिक्षा महारीर्यवानरेक्ष्य संपादयति ॥ २२ ॥

इस प्रकार बहुत-से भेक्ष एवं तेजस्वी महर्षि, महा पराक्रमी राजा, वानर और राक्षसोंसे बिरे राजसभामें बैठे हुए श्रीछुनापजी बड़ी शांता पा रहे थे ॥ २२ ॥

इत्यार्योऽश्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे सप्तमिः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वरामायण आदिकाण्ड उत्तरकाण्डमें सैंतीसवाँ सम पूरा हुआ ॥ ३० ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः

श्रीरामके द्वारा राजा जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अय नरेशोंकी विदाई

एवमास्ते महाबाहुरहम्यहनि राघव ।

प्रशास्त्य सर्वकायाणि पौरजानपदेषु च ॥ १ ॥

महाबाहु श्रीछुनापजी इसी प्रकार प्रतिदिन राजसभामें बैठकर पुरवासियों और जनपदवासियोंके सारे कार्योंकी देखभाल करते हुए शासनका कार्य चलाते थे ॥ १ ॥

तत कतिपयाह सु वैदेह मिथिलाधिपम् ।

राघव प्राञ्जलिभूत्या वाक्यमेतदुवाच ॥ २ ॥

तदनन्तर कुछ दिन बीतनेपर श्रीरामचन्द्रजीने मिथिला नरेश विदेहराज जनकजीसे हाथ जोड़कर यह बात कही—

भगवन् हि गतिरयमा भवता पालिता वयम् ।

भजतस्तेजसोमेण राज्ञो निहतो मया ॥ ३ ॥

‘महाराज ! आप ही हमारे सुखिर आश्रय हैं। आपने सदा हमलोगोंका लालन पालन किया है। आपके ही बने हुए तेजमें मैंने राजनका वध किया है ॥ ३ ॥

इत्थाह्ना च सर्वेण मैथिलाना च सर्वश ।

अनुग्राहीतयो राजन् समन्धकपुरोगमा ॥ ४ ॥

‘राजन् ! हमल इत्थाह्नाही और मैथिल नरेशोंमें आपसपर सम्बन्धके कारण सब प्रकारसे जो प्रेम बना है, उसकी वृद्धि तुलना नदी है ॥ ४ ॥

तद् भगवन् रूपुर यातु रत्नायादाय पार्थिव ।

भरतश्च सहायार्थं पृष्टतस्यानुयाम्यति ॥ ५ ॥

‘पृथ्वीनाथ ! अब आप हमारे द्वारा मैंने किये गये ये राज लक्ष्म अपनी राजधानीका पधारें। भरत (तथा उनके साथ गण गन्धुन भी) आपकी सहायताके लिय आपने पीछे-पीछे जायेंगे ॥ ५ ॥

यथा देवेश्वरो नित्यमृषिभि समुपास्यते ।

अधिकस्तेन रूपेण सहस्राष्टाद् निरोचते ॥ २३ ॥

जैसे देवराज इंद्र सदा ऋषियोंसे सेवित होते हैं, उसी तरह महर्षि-मण्डलीसे बिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी उस समय सहस्रलाचन इंद्रसे भी अधिक शोभा पा रहे थे ॥ २३ ॥

तेषा समुपनिष्ठाना तास्ता सुमधुरा कथा ।

कथ्यते धर्मसयुक्ता पुराणहीमहात्मभि ॥ २४ ॥

जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब पुराणवेत्ता महात्मा लोग भिन्न भिन्न धर्म कथाएँ कहने लगे ॥ २४ ॥

इत्यार्योऽश्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे सप्तमिः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वरामायण आदिकाण्ड उत्तरकाण्डमें सैंतीसवाँ सम पूरा हुआ ॥ ३० ॥

स लयेति तत कृत्वा राघव वाक्यमब्रवीत् ।

भीतोऽसि भवता राजन् दर्शनेन नयेन च ॥ ६ ॥

तब जनकजी ‘बहुत अच्छा’ कहकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—‘राजन् ! मैं आपके दर्शन तथा न्यायानुसार व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ६ ॥

यान्येतानि तु रत्नानि मर्त्यं सचित्तानि वै ।

दुहित्रे तान्यह राजन् सर्वान्येय ददामि वै ॥ ७ ॥

‘आपने मेरे लिये जो रत्न एकत्र किये हैं, वह सब मैं अपनी धीता आदि पुत्रियोंको देता हूँ’ ॥ ७ ॥

पञ्चमुक्त्वा तु काङ्क्षित्य जनको हृष्टमानस ।

प्रययौ मिथिला श्रीमास्तमनुशाय राघवम् ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर श्रीमान् राजा जनक प्रसन्न चित्त हो श्रीरामकी अनुमति ले मिथिलापुरीको चल दिये ॥ तत प्रयाते जनके केकय मातुल प्रभुम् ।

राघव प्राञ्जलिभूत्या दिनयाद् वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

जनकजीने चल जानेफ पश्चात् श्रीछुनापजीने हाथ जोड़कर अपने मामा केकय-नरेश युधाजित्से, जा यह साम्प्रदायी थे, विनयपूर्वक कहा—

इद राज्यमह सैव भरतश्च सलदमनः ।

आयत्तस्य हि नो राजन् गतिश्च पुरुषपथ ॥ १० ॥

‘राजन् ! पुरुषपथर ! यह राज्य, मैं, भरत लक्ष्मण और गन्धुन—सब आपका अधीन हैं। आप ही हमारे आश्रय हैं ॥ १० ॥

राजा हि शूद्रः सताप त्यदयमुपयाम्यति ।

तस्माद् गमनमेषैव रोचते तत्र पार्थिव ॥ ११ ॥

● इन सर्गों का कुछ प्रभावसे प्रभावपूर्ण है कि सर्ग और उपसर्ग होते हैं किन्तों बाणी और सुप्रसिद्ध उपसर्ग तथा राजन-के दोषोंमें गमनका इतिहास वर्णित है। इन इतिहासके कथ भी बाल्यस्थानी हो ह। परन्तु इसपर पहले सर्गमें ही अगस्त्यजीके विना होनेका गमन का गथा है। अब यहां इन सर्गोंका उत्पत्ति अगस्त्य प्रतीत हावा है। इन्हींसे ये सर्ग यहाँ नहीं लिखे गये हैं।

‘महापञ्च केकयराज वृद्ध हँ । ये आपने लिये बहुत चिन्तित होंगे । इसलिये पृथ्वीनाथ ! आपका आज ही जाना मुझे अच्छा जान पड़ता है ॥ ११ ॥

लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्टोऽनुगमिष्यते ।
धनमादाय बहुलं रत्नानि विधिधानि च ॥ १२ ॥

‘आप बहुत-सा धन तथा नाना प्रकारके रत्न लेकर पधारें । मार्गमें सहानुताप लिये लक्ष्मण आपका साथ आयेगा ॥
युधानित् तु तथेयाह गमनं प्रति राघव ।
रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवमस्त्वयमस्तिवति ॥ १३ ॥

तब युवाजिन्ने (तथास्तु) कहकर भीरुमचन्द्रजीकी बात मान ली और कहा—‘रघुनन्दन ! ये रत्न और धन सब तुम्हारा ही पास अक्षररूपमें रहें ॥ १३ ॥
प्रदक्षिणं च राजानं कृत्वा केकयराधन ।
रामेण च हन पूरमभिवाद्य प्रदक्षिणम् ॥ १४ ॥

फिर पहले भीरुपुत्रापञ्जीने प्रणामपूरक अपने मामाकी परितोषा की, इसन बाद केकयकुलकी वृद्ध करनेवाले राजकुमार युवाजिन्ने भी राजा भीरामकी प्रदक्षिणा की ॥ १४ ॥
लक्ष्मणेन सहायेन प्रयात केकयेश्वर ।
हतेऽस्तुरे यथा वृत्रे विष्णुना सह वासथ ॥ १५ ॥

इसक बाद केकयराजने लक्ष्मणजीके साथ उठी तरह अपने देशको प्रस्थान किया, जैसे वृत्रामुरखे मारे जानेपर इन्द्रने मगरान् विष्णुके साथ अमरावतीकी यात्रा की थी ॥
त विष्ट्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम् ।
प्रतद्वनं काशिपतिं परिपश्येदमग्रीत् ॥ १६ ॥

मामाको निदा करके रघुनाथजीने किसीसे भी भय न माननेवाला अपने मित्र काशिपञ्च प्रवर्द्धनक। हृदयसे लगाकर कहा— ॥ १६ ॥
दर्शिता भवता प्रीतिर्दशित सौहृद परम् ।
उद्योगश्च त्वया राजन् भरतेन हत सह ॥ १७ ॥

‘राजन् ! आपने शत्रुप्राप्तिके कारणमें भरतक साथ पूरा उद्योग किया है और ऐसा करने अपने महान् प्रेम तथा परम सौहार्द परितोष दिया है ॥ १७ ॥
तद् भवानद्य काशेयं पुर्णं वाराणसीं गत ।
रमणीया त्वया गुप्ता सुप्रसारा मुतेरणाम् ॥ १८ ॥

‘काशिप ! अब आप सुन्दर परकाणों तथा स्नेहक कारणोंन मुकामिन और अपने हाँ द्वारा सुरक्षित रमणीय पुरी काणखोत्र पधारिये ॥ १८ ॥
एतावदुक्त्वा घोषाय काकुत्स्थ परमात्मनात् ।
पश्यन्त धमात्मा निरन्तरमुदेगतम् ॥ १९ ॥

एसा करके धमात्मा श्रीरामने पुन अपने उत्तम अङ्गने उठकर प्रवर्द्धनक छातीमें लगा उनका गद्गद भन्तिन किया ॥ १९ ॥
विसन्धामास तदा कासल्याप्रीतिरधन ।

राघवेण कृतानुशंकारोयो हासुतोभय ॥ २० ॥
वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विस्मृत ।

इस प्रकार कौसल्याका आनन्द बानेरा श्रीरामने उस समय काशिपञ्चको विदा दिया । श्रीरघुनाथजीने अनुमति पाकर उनमें विदा ल निमग्न काशिपञ्चनरत्न वाराणसीपुरीकी ओर चले दिव ॥ २० ॥
विष्ट्य त काशिपतिं निशानं पृथिवीपतीन् ॥ २१ ॥
प्रहसन् राघवो गन्धमुगाय मधुराभरम् ।

काशिपञ्चका विना करके श्रीरघुनाथजीने हसत हुए अन्य तीन सौ भूषणोंके मधुर वाणमें बाल— ॥ २१ ॥
भवता प्रीतिरव्यग्रा तनसा परिरक्षिता ॥ २२ ॥
धमश्च नियतो नित्य सन्ध च भवता सदा ।

‘मरे ऊपर अल्लोमका जखिल प्रेम है, जिसकी रक्षा आपने अपने ही तेजने की है । आपल्लोममें सन्ध और धर्म नियतरूपने नित्य निरन्तर निराप करत हैं ॥ २२ ॥
युष्माकं चानुभवेन तेजसा न महात्मनाम् ॥ २३ ॥
इतो दुःखात्मा दुबुद्धी राघवो राक्षसाधम ।

‘आप महापुरुषोंके प्रभाव और तेजने ही महिमाय दुबुद्धि दुःखात्मा राक्षसाधम राघव मारा गया है ॥ २३ ॥
हेतुमायमहं तज भवता तेजसा हत ॥ २४ ॥
राघव सगणो युद्धे सपुत्रामान्यथाधर ।

‘मैं तो उनके वधमें निमित्तमात्र बना हूँ । बन्धनमें तो आपल्लोम तजने ही पुत्र, मन्त्री, पत्नी राघव तथा सैनिक गणोंक वहित राघव युद्धमें भाग गया है ॥ २४ ॥
अन्यन्तश्च समानीता भरतन महामना ॥ २५ ॥
श्रुत्वा जनरूपानस्य काननात् तनया हनाम् ।

‘जने जनरूपानन्दिनी सीतान् भरतारा समचार मुनकर महात्मा भरतने आपल्लोमोंको सगँ गुप्तता था ॥
उद्युक्ता न सर्वेय पाथिपाना महात्मनाम् ॥ २६ ॥
कालोऽप्यतीतं सुमहान् गमनं रोषामयन ।

‘आप सभी महामना भूल राक्षसोंक अनमना करनेके लिय उद्युक्ता थे । तबम आश्रय दशों आपल्लोमका बहुत समय स्वीकृत हा गया है । जा अब हु । आरम्भ की अने मरता लौट जना हा उचित सा पणा है ॥
प्रत्युत्सुस्त न गणाना हर्षेण मरता कृता ॥ २७ ॥
विष्टया त्वं विनयी रामं स्वराज्येऽपि प्रतिष्ठित ।

इसपर राक्षसोंने अत्यन्त हर्षे मरकर कहा—‘भोगन ! आप विनयी हुए और अने राक्षस भी प्रसन्न हा गये, यह कह लीभम्परी बन है ॥ २७ ॥
दिष्टया प्रयाहना मीमादिष्टा ननु पगतिन ॥ २८ ॥
एत न परमं काम एता म प्रीतिरस्तमा ।
यत् त्वा विजयिन रामं पदयामो हताप्राम् ॥ २९ ॥

‘आप सभी महामना भूल राक्षसोंक अनमना करनेके लिय उद्युक्ता थे । तबम आश्रय दशों आपल्लोमका बहुत समय स्वीकृत हा गया है । जा अब हु । आरम्भ की अने मरता लौट जना हा उचित सा पणा है ॥
प्रत्युत्सुस्त न गणाना हर्षेण मरता कृता ॥ २७ ॥
विष्टया त्वं विनयी रामं स्वराज्येऽपि प्रतिष्ठित ।

इसपर राक्षसोंने अत्यन्त हर्षे मरकर कहा—‘भोगन ! आप विनयी हुए और अने राक्षस भी प्रसन्न हा गये, यह कह लीभम्परी बन है ॥ २७ ॥
दिष्टया प्रयाहना मीमादिष्टा ननु पगतिन ॥ २८ ॥
एत न परमं काम एता म प्रीतिरस्तमा ।
यत् त्वा विजयिन रामं पदयामो हताप्राम् ॥ २९ ॥

‘आप सभी महामना भूल राक्षसोंक अनमना करनेके लिय उद्युक्ता थे । तबम आश्रय दशों आपल्लोमका बहुत समय स्वीकृत हा गया है । जा अब हु । आरम्भ की अने मरता लौट जना हा उचित सा पणा है ॥
प्रत्युत्सुस्त न गणाना हर्षेण मरता कृता ॥ २७ ॥
विष्टया त्वं विनयी रामं स्वराज्येऽपि प्रतिष्ठित ।

इसपर राक्षसोंने अत्यन्त हर्षे मरकर कहा—‘भोगन ! आप विनयी हुए और अने राक्षस भी प्रसन्न हा गये, यह कह लीभम्परी बन है ॥ २७ ॥
दिष्टया प्रयाहना मीमादिष्टा ननु पगतिन ॥ २८ ॥
एत न परमं काम एता म प्रीतिरस्तमा ।
यत् त्वा विजयिन रामं पदयामो हताप्राम् ॥ २९ ॥

‘आप सभी महामना भूल राक्षसोंक अनमना करनेके लिय उद्युक्ता थे । तबम आश्रय दशों आपल्लोमका बहुत समय स्वीकृत हा गया है । जा अब हु । आरम्भ की अने मरता लौट जना हा उचित सा पणा है ॥
प्रत्युत्सुस्त न गणाना हर्षेण मरता कृता ॥ २७ ॥
विष्टया त्वं विनयी रामं स्वराज्येऽपि प्रतिष्ठित ।

‘हमारे सोभाग्यसे ही आप सीताको लौटा लिये और उस प्रबल दायुको परास्त कर दिया । श्रीराम । यही हमारा सबसे बड़ा मनोरथ है और यही हमारे लिये सबसे बढकर प्रसन्नताकी बात है कि आज हमलोग आपको विजयी देख रहे हैं तथा आपसी दायु-मण्डला मारी जा चुका है ॥ २८ २९ ॥

एतत् त्वय्युपपन्नं च यदस्मास्त्व्यं प्रदाससे ।
प्रदासाहं न जानीमि प्रदासा वचुमीदृशीम् ॥ ३० ॥

‘प्रसन्ननीय श्रीराम । आप जो हमलोगोंकी प्रशंसा कर रहे हैं, यह आपहीके योग्य है । हम ऐसी प्रशंसा करनेकी कला नहीं जानते हैं ॥ ३० ॥

आपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो न तदा भवान् ।
वतामहे महानाहो भीत्याय महता वृता ॥ ३१ ॥
भवेद्य ते महाराज प्रीतिरस्मास्तु नित्यदा ।

हृत्पाथे धीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टाध्यायः सर्गः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अष्टाध्याय सप्त पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

राजाओंका श्रीरामके लिये भेंट देना और श्रीरामका वह सब लेकर अपने मित्रों, वानरों,

रीछों और राक्षसोंको बाँट देना तथा वानर आदिका वहाँ सुखपूर्वक रहना

ते प्रयाता महात्मान पाथिवास्ते प्रहृष्टयत् ।

गजशजिसहस्रौघैः कम्पयतो वसुधराम् ॥ १ ॥

अयोध्यासे प्रस्थित ॥ वे महामना भूपाल सहस्रों हाथी, घोड़े तथा पैदल-सन्तोंसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से हर्षपूर्वक आगे बढ़ने लगे ॥ १ ॥

अश्वौहिण्यो हि तत्रासन् राक्षसायैः समुद्यता ।

भरतस्याग्नयानिकाः प्रहृष्टरत्नवाहनाः ॥ २ ॥

भरतजी आगलसे श्रीरामचन्द्रजीकी सहायताके लिये वहाँ कई अश्वोहिणी सेनाएँ युद्धके लिये उद्यत होकर आयी थीं । उन सबन हेलिक और वाहन हथ एन उतगहसे भरे हुए थे ॥ २ ॥

ऊचुस्ते च महीपाला यत्तद्वर्षसमन्विता ।

न रामराघव युद्धे पदयाम पुरतः स्थिताम् ॥ ३ ॥

य सभी भूपाल बलन घमड़में भरकर आपसमें इस तरह की बातें करने लगे—‘हमलोगोंने युद्धमें श्रीराम और राघव को आमने सामने रखा नहीं देता ॥ ३ ॥

भरतेन च यः पश्चात् समानीता निरयकम् ।

हता हि रामसा स्त्रियं पाथिवाः स्युन सदाय ॥ ४ ॥

‘भरतेन (पदल तो खचना नहीं दी) पीछे युद्ध समाप्त हो जानेपर हमें व्यर्थ ही मुग्न लिया । यदि सब राजा गये होते तो उनके द्वारा हमन राक्षसोंका सगर बहुत बन्दी हो गया होता, खलमें सगुप्त नदी है ॥ ४ ॥

रामस्य चात्तुर्विंशः श्रिता लक्ष्मणस्य च ।

सुगं पारे समुद्रस्य युष्मैः विगतज्वरा ॥ ५ ॥

बादमित्येव राजानो हर्षेण परमाचिता ॥ ३२ ॥

‘अब हम आशा चाहते हैं । अपनी पुरीको जायेंगे । जिस प्रकार आप सदा हमारे हृदयमें विराजमान रहते हैं; उसी प्रकार है मनुष्याह ! जिसमें हमलोग आपन प्रति प्रेमसे युक्त रहकर आपने हृदयमें बसे रहें; ऐसी प्रीति आपकी हमपर सदा बनी रहनी चाहिये ।’ तब धीरुनाथजीने हृष्टसे भरे हुए उन राजाओंसे कहा—‘अवश्य ऐसा ही होगा’ ॥ ३१ ३२ ॥

ऊचुः प्राञ्जल्य सर्वे राघवं गमनोत्सुका ।

पूजितास्ते च रामेण जम्बुद्वीपान् स्वयान् स्वयान् ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् जानेने लिये उत्सुक हो सबने हाथ जोड़कर श्रीरुनाथजीसे कहा—‘मगवन् । अब हम जा रहे हैं ।’ इस तरह श्रीरामसे सम्मानित हो वे छप राजा अपने अपने देश को चले गये ॥ ३३ ॥

‘श्रीराम और लक्ष्मणके बाहुबलसे सुरक्षित एवं निश्चित हो हमलोग समुद्रके उस पार सुखपूर्वक युद्ध कर सन्त थे’ ॥ ५ ॥

एताश्चान्याश्च राजानः कथास्तत्र सहस्रशः ।

कथयन्त स्वराज्यानि जम्बुद्वीपसमन्विता ॥ ६ ॥

य तथा और भी बहुत-सी बातें कहत हुए वे सहस्रों नरेश बड़े हर्षके साथ अपने-अपने राज्यको गये ॥ ६ ॥

स्त्रानि राज्यानि मुख्यानि श्रुत्वानि मुदितानि च ।

समृद्धधनधान्यानि पूणानि वसुमन्ति च ॥ ७ ॥

यथापुराणि ते गत्वा रत्नानि त्रिविधान्यथ ।

रामस्य प्रियकामार्थमुपहारं नृपा वदुः ॥ ८ ॥

अभ्यान् यानानि रत्नानि हस्तिनश्च मद्रौ फटान् ।

चन्दनानि च मुख्यानि दिवाण्याभरणानि च ॥ ९ ॥

मणिमुक्ताप्रवालास्तु दास्यो रूपसमन्विताः ।

अज्ञाविक च विविधरथास्तु विविधान् यहन् ॥ १० ॥

उनके अपने अपने प्रसिद्ध राज्य समृद्धिशाली, सुख और आनन्दसे परिपूर्ण, धन धातुसे सम्पन्न तथा रत्न आदिसे भरे पुरे थे । उन राजाओंतथा नगरोंमें जाकर उन नरेशोंने श्रीराम चन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके रत्न और उपहार भेजे । घोड़े, सवारियों, रत्न, मतगड हाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभूषण, मणि, मती, मूँगे, रूपनी दासियाँ, नाना प्रकारकी बकरियों और भड़ तथा तार-तरहके बहुत-से रथ भेंट दिये ॥ ७-१० ॥

उनके अपने अपने प्रसिद्ध राज्य समृद्धिशाली, सुख और आनन्दसे परिपूर्ण, धन धातुसे सम्पन्न तथा रत्न आदिसे भरे पुरे थे । उन राजाओंतथा नगरोंमें जाकर उन नरेशोंने श्रीराम चन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके रत्न और उपहार भेजे । घोड़े, सवारियों, रत्न, मतगड हाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभूषण, मणि, मती, मूँगे, रूपनी दासियाँ, नाना प्रकारकी बकरियों और भड़ तथा तार-तरहके बहुत-से रथ भेंट दिये ॥ ७-१० ॥

भरतो लक्ष्मणद्वयैः शत्रुघ्नश्च महाबलः ।
आदाय तानि रत्नानि स्या पुनर् पुनरागता ॥ ११ ॥
आगम्य च पुनर् रम्यामयोध्यां पुरुर्यभा ।
तानि रत्नानि चित्राणि रामाय समुपानयन् ॥ १२ ॥
महाबले भरतः लक्ष्मण और शत्रुघ्न उन रत्नोंको लेकर
पुनः अपनी पुरीमें लौट आये । रमणीय पुरी अवस्थानमें आकर
उन रत्नों पुरषप्रवर पशुओंने ये विचित्र रत्न श्रीरामको
समर्पित कर दिये ॥ ११ १२ ॥
प्रतिगृह्य च तत् सर्वं राम प्रीतिसमन्वितः ।
सुप्रियाय द्वा द्वौ राक्षे महात्मा हृत्कमणे ॥ १३ ॥
विभीषणाय च द्वा द्वौ तयाभ्येभ्योऽपि रावय ।
राक्षसेभ्यः कपिभ्यश्च यैश्चोक्तो जयमातमान् ॥ १४ ॥
उन सबको ग्रहण करके महाराम श्रीरामने बड़ी प्रसन्नता
के साथ उपरारी वानरराजसुग्रीव और विभीषणका तथा अन्य
राक्षसों और वानरोंका भी बौद्ध किया । क्योंकि उन्होंने विरि
हकर भगवान् श्रीरामने सुदमे विजयप्राप्त की थी ॥ ११ १४ ॥
त सर्वं रामदत्तानि रत्नानि कपिराक्षसाः ।
शिरोभिधारयामासुर्भुजेषु च महाबला ॥ १५ ॥
उन सभी महाबली वानरों और राक्षसोंने श्रीरामचन्द्रजीके
दिये हुए वे रत्न अपने मस्तक और भुजाओंमें धारण कर
लिये ॥ १५ ॥
हनुमन्त च नृपतिरिच्छाद्वाणा महारथः ।
अह्म च महाबाहुमहामारोप्य धीययान् ॥ १६ ॥
राम कमलपद्माक्ष सुग्रीयमिदमग्रहीत् ।
महदस्त्रे सुपुत्रोऽय मनी ध्यायनिलालम्बन ॥ १७ ॥
सुग्रीयमग्निन युक्ता मम चापि हिते रक्षी ।
महतो विविधा पूजा रक्ष्यते वै हृष्टीश्वर ॥ १८ ॥
तत्पश्चात् इच्छादुनरेण महारथक्री महारथी कमलनयन श्री
रामने महाबाहु हनुमान् और अहम्बर गदगै विधाकर सुग्रीवने
इस प्रकार कहा—'सुग्रीव । अहम्बर तुम्हारे सुपुत्र है और
पवनकुमार हनुमान् मन्त्री । वानराज । ये दोनों मेरे लिये
मन्त्रीका भी कान देते थे और सदा मेरे हित-रक्षणमें
लगे रहते थे । इसलिये और विराट् तुम्हारे नाम से मरी
अग्नि विविध अदभुत-आचार एवं भोग वानरों लिये है ॥ १६-१८ ॥
इत्युक्त्वा ध्येयमुज्याद्वाद् भूयानि महायशः ।
स यथाथ महादाणि तदाह्वयान्मतो ॥ १९ ॥
ऐसा कहकर महायशनी श्रीरामने अपने घरमें रहने लगे
आभूषण उत्तारकर उन्हें अहम्बर तथा हनुमान् अहम्बरोंमें बांध
दिया ॥ १९ ॥
आभूषण च जगत्प्रधानं राक्षसो युधरथान् ।
नील मल केसरिण पुमुद गङ्गापानम् ॥ २० ॥
सुरेण पनस धीर मैत्र द्विविदमय च ।

जाम्बवन्त गवाक्ष च विनत धूम्रमेघ च ॥ २१ ॥
शरीमुख प्रवह च सनाद च महाबलम् ।
दरीमुख दधिमुखमिद्रजानु च यूथपम् ॥ २२ ॥
मधुर इक्ष्वाया धात्रा नेत्राभ्यामापियक्षिर ।
सुहृदो मे भवन्तश्च शरीर भ्रातरस्तथा ॥ २३ ॥
सुष्माभिदधृतश्चाह ध्यसनात् काननौकस ।
धन्यो राजा च सुप्रियो भगवन् सुहृदा वरै ॥ २४ ॥
इसके बाद श्रीरामने अपने महारथक्री वानरदूत-निर्णो-
नील, मल, केसरी, कुन्द, मन्मथान, सुग्गा, लम्ब, धीर
मैत्र, द्विविद, जाम्बवान, गवाक्ष, विनत, धूम्र, दधिमुख,
प्रवह, महाबली सनाद, दरीमुख, दधिमुख और सुष्म
इन्द्रजानुको बुलाकर उनकी ओर दोनों नेत्रोंने इस प्रकार
देखा, मानो वे उन्हें नेत्रपुष्पोंद्वारा ही रहे हों । उन्होंने स्नेह
सुख मधुर बाणीमें उनसे कहा—'शान्तवीर ! आम्हें ग मेरे
सुहृद्, शरीर और भाई हैं । आरने ही मुझे सज्जने प्यारा
है । आम्हेंने भेट सुहृदोंका पाकर राजा सुग्रीव धन्य
है ॥ २०-२४ ॥
यमुक्त्वा द्वा द्वौ तेभ्यो भूयानि यथाहृत ।
यज्ञाणि च महादाणि सस्त्रजे च नरपते ॥ २५ ॥
ऐसा कहकर नरभेट सुनायकीने उन्हें यथायोग्य आभूषण
और वस्तुन्य हीरे दिये तथा उनका आलङ्कार किया ॥ २५ ॥
ते पितृ सुगधीनि मधूनि मधुपिह्मला ।
मासानि च सुनृपानि मूलानि च फलानि च ॥ २६ ॥
मधुर समान विद्वल वनराज वे वानर वरों सुगन्धिन
मधु पीते, राजभग वस्तुओंका उत्तमोत्तम करत और स्वादिष्ट
फल-मूल खात थे ॥ २६ ॥
एव तेया निवसता मास सामो ययी तदा ।
सुहृत्तमिर ते सर्वे रामभक्त्या च मनिर ॥ २७ ॥
इस प्रकार निवास करत हुए उन वनराज वरों एक
महीनमें अधिक समय रह गया परन्तु श्रीसुनायकीने अग्नि
भक्ति करवा ठहरे वर समय एक दुहृतर समान ही बन
पड़ा ॥ २७ ॥
रामोऽपि देमे तै सार्धं दानरै कामरूपिभिः ।
रायसेभ्यः महादाणि सुप्रियोय महायशः ॥ २८ ॥
श्रीराम भी इच्छादुनरे रूप धारण करत हुए उन वनरों,
महारथक्री रक्षसों तथा महाबली वीरोंके साथ बड़े आनन्दमें
समय बिताते थे ॥ २८ ॥
एव तेया ययी मासा दिनैर्य निर्गिर सुग्गम् ।
दानरागा प्रहणता राक्षमाना च नश्यन् ॥ २९ ॥
इक्ष्वाकुनगरे लगे पनः प्रीतिमुपामनाम् ।
रामस्य प्रीतिरक्षसैः शान्तमेवा सुरा यया ॥ ३० ॥
इस तरह उनका निर्गिर सुग्गम् दूध मनी भी सुख

पूर्वकं वीत गया । इन्द्राजुयशी नरेणोकी उस सुरस्य राजधानी के प्रेमपूर्वक सत्कारसे उनका वह समय मुखपूर्वक वीत में वे वानर और राक्षस बड़े हर्ष और प्रेमाने रहते थे । श्रीराम रहा था । २० २० ॥

इत्यर्थे श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकारणे उत्तरकाण्डे षष्कोनचत्वारिंश सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषारामायण आदिकायक उत्तरकाण्डे अन्तर्हीनसर्वो सप्त पूरा हुआ ॥ २९ ॥

चत्वारिंश सर्गः

वानरों, रीछों और राक्षसोंकी विदाई

तथा स्म तेषां चसतामृशवानररक्षसाम् ।
राधरस्तु महातेजः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इस तरह वहाँ मुखपूर्वक निवास करते हुए रीछों, वानरों और राक्षसोंसे सुग्रीवना संशोधित करते महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

गम्यता सौम्य किष्किं धा दुराधर्योसुरासुरैः ।
पालयन् सहामात्यै राज्यं निहतकण्डकम् ॥ २ ॥

‘सौम्य । अब तुम दयताओं तथा अमुरोंक लिये भी दुर्जय किष्किण्यापुरीको जाओ और वहाँ मन्त्रियोंके साथ रह कर अपने निष्कण्टक राज्यका पाटन करो ॥ २ ॥

अद्भ्य च महाबाहो प्रीत्या परमया युत ।
पश्य त्वं हनुमन्तं च नलं च सुमहाबलम् ॥ ३ ॥

सुप्रेण भृगुर धीर तार च चलिना वरम् ।
कुमुदं चैव दुधर्यं नीलं चैव महाबलम् ॥ ४ ॥

वीर दातव्यलिं चैव मैन्दं द्विविदमेव च ।
गजं गवाक्षं गवयं शरभं च महाबलम् ॥ ५ ॥

शृङ्गराजं च दुधर्यं जाम्बवन्तं महाबलम् ।
पश्य प्रीतिसमायुक्तो गन्धमाद्वन्मेव च ॥ ६ ॥

‘महाबाहो ! अद्भ्य और हनुमान्को भी तुम अत्यन्त प्रेमपूर्वक दृष्टिसे देखना । महाबली नल, अपने भृगुरवीर सुप्रेण, कलानोंमें श्रेष्ठ तार, दुधर्यं वीर कुमुद, महाबली नील, वीर शनवलि, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, महाबली शरभ, महान् बल पराक्रमसे युक्त दुग्ध वीर शृङ्गराज जाम्बवान् तथा गन्धमादनवर भी तुम प्रेमपूर्वक दृष्टि रखना ॥ ३-६ ॥

शृगभं च सुविमान्तं ह्युग्रं च सुपाटलम् ।
केसरीं शरभं गुग्मं शङ्खचूडं महाबलम् ॥ ७ ॥

‘परम पराक्रमी शृगभ, वानर सुपाटल, केसरी, शरभ, गुग्म तथा महाबली शङ्खचूडको भी प्रमूर्ण दृष्टिसे देखना ॥

ये ये मे सुमहामानो मदर्थे त्यज्जीविता ।
पश्य त्वं प्रीतिसयुक्तो मां चैवा त्रिप्रियं हृष्या ॥ ८ ॥

‘इनके विना भिन किन महामानवी वानरोंने मेरे लिये अपने प्राणोंकी बाजी ख्या दी थी, उन सबपर त्वय प्रेमदृष्टि रखना । कभी उनका अग्रिय न करना ॥ ८ ॥

पश्यन्त्या च सुग्रीवमत्रिष्ठम् पुनः पुनः ।
विभीरणमुवाचाय रामो मधुरया गिरा ॥ ९ ॥

‘पश्यन्त्या । आपक प्रति मेरा महान् स्नेह सदा बना रहे । वीर ! आपमें ही मेरी निश्चय यक्ति रहे । आपने खिवा और कहा मेरा आन्तरिक अनुराग न ॥ ९ ॥

यापयू रामक्या वीरं चरिष्यति महीतले ।

ऐसा कहकर श्रीरामने सुग्रीवको बारबार हृदयसे लगाया और फिर मधुर वाणीमें विभीरणसे कहा— ॥ ९ ॥

लङ्का प्रशाधि धर्मेण धर्मशस्त्व मतो मम ।
पुरस्य राक्षसानां च भ्रातुर्धनञ्जयस्य च ॥ १० ॥

‘पक्षराज ! तुम वामपूर्वक लङ्काका शासन करो । मैं तुम्हें धर्मश माता हूँ । तुम्हारे नगरके लोग, सब राक्षस तथा तुम्हारे भाई जूरे भी तुम्हें धर्मश ही समझते हैं ॥ १० ॥

मा च बुद्धिमधर्मं त्यक्तुं राजन् कथयन् ।
बुद्धिमतो हि राजानो धृष्यमदनन्ति मेदिनीम् ॥ ११ ॥

‘राजन् ! तुम किसी तरह भी अधमम मन न लगाना । जिनकी बुद्धि ठीक है, वे राजा निश्चय ही दीर्घकालतक पृथ्वी का राज्य भोगते हैं ॥ ११ ॥

अहं च नित्यशो राजन् सुग्रीवसहितस्त्वया ।
स्मर्तव्यं परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतजरं ॥ १२ ॥

‘राजन् ! तुम सुग्रीवसहित मुझे सदा याद रखना । अब निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे जाओ ॥ १२ ॥

रामस्य भावितं श्रुत्वा शृङ्गवानररामस्ता ।
साधुसाधितिं वाकुलस्य प्रदाशस्तु पुन पुन ॥ १३ ॥

‘श्रीरामचन्द्रजीका यह भाषण सुनकर रीछों, वानरों और राक्षसोंने ‘पश्य चन्व’ कह कर उनकी बारबार प्रशंसा की ॥

तव बुद्धिर्मेहावाहो धीयमद्भुतमेव च ।
माधुर्यं परमं राम स्वयम्भोरिव नित्यदा ॥ १४ ॥

वे बोले—‘महाबाहु श्रीराम ! स्वयम्भू प्रदानीके समान आपके स्वभावमें सदा परम मधुरता रहती है । आपकी बुद्धि और पराक्रम अद्भुत है’ ॥ १४ ॥

तेषामेव मुखापानां धानराणां च रक्षसाम् ।
हनुमान् प्रणतो भूत्वा राधेन वाक्पयमब्रवीत् ॥ १५ ॥

‘वानर और राक्षस सब ऐसा कह रहे थे, उन्ही समय हनुमान्जी विनम्र होकर श्रीरघुनाथजीसे बोले— ॥ १५ ॥

स्नेहो मे परमा राजस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।
अविद्य नित्यता वीरं भाधो नान्यत्र गच्छतु ॥ १६ ॥

‘महाराज ! आपक प्रति मेरा महान् स्नेह सदा बना रहे । वीर ! आपमें ही मेरी निश्चय यक्ति रहे । आपने खिवा और कहा मेरा आन्तरिक अनुराग न ॥ १६ ॥

यापयू रामक्या वीरं चरिष्यति महीतले ।

तावच्छरीरे यस्म्यनु प्राणा मम न सशय ॥ १७ ॥
 श्रीर भीरुम ! इस पृथ्वीपर जगतक रामरूपा प्रचलित
 रहे, तबतक नि सदेह मरे प्राण इस शरीरमें ही बसे रहें ॥
 यत्त्वैतद्यरितं विप्र कथा ते रघुनन्दन ।
 तममाप्सरसो राम श्रावयेयुनरर्पभ ॥ १८ ॥
 पशुलुन दन नरभेष्ट भीरुम ! आपका जो यह दिव्य चरित्र
 और कथा है, इसे अश्वराष्ट्र मुझे गाकर सुनाया करें ॥ १८ ॥
 तच्छ्रुत्वाह ततो वीर तय चयामृत प्रभो ।
 उत्पन्ना ता हरिप्रियामि मेघलेखामिवानिल ॥ १९ ॥
 श्रीर प्रभो ! आपके उस चरितामृतको सुनकर मैं अपनी
 उत्पन्नाग्र उसी तरह दूर करता रहूँगा, जैसे वायु बादलोंकी
 पक्षिको उड़ाकर दूर ले जाती है ॥ १९ ॥
 एव तुराण रामस्तु हनूमत वरासनात् ।
 उर्याय सम्बजे स्नेहाद् धान्यमेतदुवाच ह ॥ २० ॥
 हनुमान्जीन एसा कहनेपर भीरुनाथजीने भेष्ट शिक्षण
 से उठकर उन्हें हृदयने लगा लिया और स्नेहपूर्वक इस प्रकार
 कहा— ॥ २० ॥
 एवमतत् कपिश्रेष्ठ भविता नाथ सशय ।
 चरिष्यति कथा यापयेया लेके च मामिका ॥ २१ ॥
 तावत् ते भविता कीर्ति शरीरेऽप्यसपस्तथा ।
 लोकादि यावत्स्यास्यन्ति तावत् स्यास्यन्ति मे कथा ॥
 कपिश्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है। संसारमें
 मेरी कथा बहुतक प्रचलित रहेगी, तबतक दुग्धारी कीर्ति
 अमिट रहेगी और दुग्धारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे ही ।
 तबतक ये लोक बने रहेंगे, तबतक मेरी कथाएँ भी स्थिर
 रहेंगी ॥ २१ २२ ॥
 एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे ।
 शेषस्येदोपकाराणां भयाम क्रण्णिनो वयम् ॥ २३ ॥
 'कपे ! तुमने आ उपकार किये हैं, उनमेंसे एक एकक
 लिये मैं अपने प्राण निष्कावर कर सकता हूँ । दुग्धारे शेष
 उपकारोंक लिय ता मैं शृण्वी ही रह जाऊँगा ॥ २३ ॥
 मदङ्गे जीर्णता यातु यत् त्ययोपहृत कपे ।
 नरा प्रत्युपकाराणामापत्स्यायाति पात्रताम् ॥ २४ ॥
 'कपिश्रेष्ठ ! मैं ता यही चाहता हूँ कि तुमने आ-आ
 उपकार किये हैं, वे सब मरे शरीरमें ही पच जायें । उनका
 कण्ठा बुझानेका मुझे कभी अवसर न मिले क्योंकि पुरुषमें
 उपकारका बदला पानेकी योग्यता आपत्तिकालमें ही आती है
 (मैं नहीं चाहता कि गुप्त भी शक्यमें पड़ा और मैं दुग्धारे
 उपकारका कण्ठा बुझाऊँ) ॥ २४ ॥
 ह्येषां धीमद्रामायणं वानिर्दिष्टं उत्तरकाण्डे चत्वारिंश सर्ग ॥ २० ॥

ततोऽस्य हाग चन्द्राभ मुच्य कण्ठात् स राघव ।
 वैदूर्यतरल कण्ठ यवध च हनूमत ॥ २५ ॥
 इतना कहकर गीरुनाथजीने अपने कण्ठसे एक चन्द्रमा
 क समान उज्ज्वल हार निकाला, जिसन मध्यभागमें वैदूर्य
 मणि थी । उसे उ हाँने हनुमान्जीन गलमें बाँध दिया ॥ २५ ॥
 तेनोरसि विषद्वेन हारेण महता कपि ।
 रराज हेमशैलेन्द्रध्वज्रेणाप्राप्तमस्तक ॥ २६ ॥
 वरुण स्वल्पसे स हृष्ट उस विद्याल हारने हनुमान्जी उठी
 तरह सुशोभित हुए, जैसे तुलसीमय गिरिाराम मुनेरक शिपर
 पर चन्द्रमारा उज्ज्वल हुआ हो ॥ २६ ॥
 श्रुत्वा तु राघवस्यैतदुच्चायोत्थाय घानरा ।
 प्रणम्य क्षिरसा पादौ निजभुस्ते महानला ॥ २७ ॥
 भीरुनाथजीन 'वि'क्षण गन्ध सुनकर वे महापट्टी
 वानर एन एक करक उठ और उनक चरणोंमें सिर छुकाकर
 प्रणाम करक वहोंने चल दिय ॥ २७ ॥
 सुग्रीव स च रामेण निरन्तरमुरोगत ।
 विभीषणश्च धामामा सर्वे ते वाप्यपिङ्गवा ॥ २८ ॥
 सुग्रीव और वामात्मा विभीषण भीरुमन हृदयसे लगा
 गये और उनका गान् आलिंगित करक बिग हुए । उस समय
 वे सब सब नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए भीरुमन भारी निरदसे
 व्यथित हो उठे थे ॥ २८ ॥
 सर्वे च ते वाप्यकलाः साधुनेत्रा निवेतस ।
 सम्मूढा इव दुपेन त्यन्तो राघव तदा ॥ २९ ॥
 भीरुमनका छ'ङ्कर आत समय वे सभी दु गते किंकृतस्य
 विनू तथा अवत गे हो रहे थे । किसीने गलेसे आश्रय नहीं
 निकलती थी और सभीन नेत्रोंम अशु हार रहे थे ॥ २९ ॥
 कृतप्रस्तादास्तेनैव राघवेण महात्मना ।
 जम्मु स्व स्व गृहसर्वे दही देहमिव त्यन्त ॥ ३० ॥
 महात्मा भीरुनाथजीके इस प्रकार कृपा एवं प्रफुल्लता
 पूरक बिग देनेन ये सब वानर विरग हा उठी प्रकार अपने
 अपने घरको गद, जैसे बीरुगला निरगतापूरक शरीर छ'ङ्कर
 परलोकको बना है ॥ ३० ॥
 ततस्तु त राघवसन्मस्तनरा
 प्रणम्य राम रघुयदाश्रयन्तम् ।
 नियोगनाथप्रतिपूजलारना
 प्रतिप्रयातास्तु यथानिवातित ॥ ३१ ॥
 वे राघव, गीठ और वानर रघुदाश्रयन भीरुमना प्रणम
 करक नेत्रोंमें विषमग आँसू लिय अपने आ' निरगमनध
 हो गद ॥ ३१ ॥

एकवत्वारिंश सर्ग

कुबेरके मेजे हुए पुष्पकविमानका आना और श्रीरामसे पूजित एवं अनुगृहीत होकर अदृश्य हो जाना, भरतके द्वारा श्रीरामराज्यके विलक्षण प्रभावका वर्णन

विचित्र्य च महाबाहूश्रृंक्षानरराक्षसान् ।

आतुभि सहितो राम प्रमुमोद सुख सुगी ॥ १ ॥

रीडों, वानरों और राक्षसोंको विदा करके भाइयोंसहित सुलभस्वर महाबाहु श्रीराम सुख और आनन्दपूर्वक वहाँ रहने लगे ॥ १ ॥

अथापराहस्तमये आतुभि सह राघव ।

शुभ्या मधुरा वाणीमन्त्रिस्तामहाप्रभु ॥ २ ॥

एक दिन अपराह्णकालमें (दोपहरके बाद) अपना भाइयोंक साथ बैठे हुए महाप्रभु श्रीशुनाथजीने आकाशसे यह मधुर वाणी सुनी— ॥ २ ॥

सौम्य राम निरीक्षत्य सौम्येन उदनेन माम् ।

कुबेरभयनात् प्राप्त रिद्धि मा पुष्पक प्रभो ॥ ३ ॥

‘सौम्य श्रीराम ! आप मेरी ओर प्रवृत्तापूर्ण मुखसे दृष्टिपात करनेकी कृपा करें । प्रभो ! आपकी रिद्धित होना चाहिये कि मैं कुबेरके भवनमें लौटा हुआ पुष्पकविमान हूँ ॥ तत्र शासनमाहाय गतोऽस्मि भवन प्रति ।

वपस्यातु नरश्रेष्ठ स च मा प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा मानकर मैं कुबेरकी सेवाके लिये उनके भवनमें गया था परन्तु उन्होंने मुझसे कहा— ॥ निर्जितस्त्व नरेद्रेण राघवेण महात्मना ।

निहत्य युधि दुधर्वं राघवं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥

‘विमान ! महात्मा महाराज श्रीरामने युद्धमें दुधर्व राक्षसराजकको मारकर तुम्हें जीता है ॥ ५ ॥

ममापि परमा प्रीतिर्हिते तस्मिन् दुरात्मनि ।

राघणे सगणे चैव सपुत्रे सहयाधवे ॥ ६ ॥

‘पुत्रों, बन्धु-बा-बयों तथा सेवकगणोंसहित उस दुरात्मा राघवके मारे जानेसे मुझे भी बड़ी प्रवृत्ता हुई है ॥ ६ ॥

स त्व रामेण लङ्काया निर्जित परमात्मना ।

यद् सौम्य तमेव त्वमहमाह्वययामि ते ॥ ७ ॥

‘सौम्य ! इस तरह परमात्मा श्रीरामने लङ्कामें राघवके साथ-साथ तुमको भी जीत लिया है अतः मैं आज्ञा देता हूँ, द्रुम उन्हींकी वजारीमें रहे ॥ ७ ॥

परमो ह्येव मे कामो यत् त्व राघवनन्दनम् ।

षष्ठेलोकस्य स्यात् न गच्छत्य जिगत्यत्र ॥ ८ ॥

‘खट्वाङ्गा आनन्दित करनेउल्लेख श्रीराम सगुणसगुणके आभय हैं । तुम उनकी सखीन काम आओ—यह मेरी इच्छा है बड़ी कामना है । इसलिये द्रुम निश्चिन्त रहकर आओ ॥ ८ ॥

सोऽहं शासनमाहाय धनदम्य महात्मन ।

त्वसकाशमनुप्राप्तो निर्दिशद् प्रतीच्छ माम् ॥ ९ ॥

‘इस प्रकार मैं महात्मा कुबेरकी आज्ञा पाकर ही आपके पास आया हूँ, अतः आप मुझे निश्चिन्त होकर ग्रहण करें ॥ ९ ॥

अधृष्य सर्वभूतानां स्वयं धनदास्य ।

चराम्यह प्रभविण तत्राग परिपालयन् ॥ १० ॥

‘मैं सभी प्राणियोंके लिये अन्न दूँ और कुबेरकी आज्ञासे अनुसार मैं आपके आदेशानुसार पालन करता हुआ अपने प्रभारसे समझ लोहोंमें प्रवृत्त करूँगा ॥ १० ॥

एवमुक्तस्तदा राम पुष्पकेण महायत्न ।

उवाच पुष्पक दृष्ट्वा विमानं पुरारागतम् ॥ ११ ॥

पुष्पकने ऐसा कहनेपर महाबली श्रीरामने उस विमानको पुनः आया देख उससे कहा— ॥ ११ ॥

यथेव स्यात् तदेऽस्तु विमानवर पुष्पक ।

आनुकूल्याद् धनेशस्य वृत्तदोषो न नो भवेत् ॥ १२ ॥

‘विमानराज पुष्पक ! यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ । कुबेरकी अनुकूलता होनेसे हमें मयादा भङ्गा का दर्शन नहीं लगेगा ॥ १२ ॥

लज्जैश्चैव तथा पुष्पैर्धुमैश्चैव सुगन्धिभि ।

पूनयित्वा महाबाहू राघवः पुष्पकं तदा ॥ १३ ॥

ऐसा वहकर महाबाहु श्रीरामने लज्जा, धूल, धूप और चन्दन आदिके द्वारा पुष्पकका पूजन किया ॥ १३ ॥

गम्यतामिति बोधाच्च आगच्छ त्वं स्मरे यदा ।

सिद्धान्ता च गतो सौम्य मा विपद्देन योजय ॥ १४ ॥

प्रतिघातश्च ते मा भूद् यथेष्ट गच्छतो दिश ।

और कहा—‘अब तुम जाओ । जब मैं स्मरण करूँ, तब आ जाना । आकाशमें रहना और अपनेका भरे वियागसे दुखी न होने देना (मैं बयासमय तुम्हारा उपयोग करता रहूँगा) । स्नेहसे सगुण दिशाओंमें जाते समय तुम्हारी निजीसे टकराना हा आपका तुम्हारी गति वहाँ प्रतिहत न हो ॥ १४ ॥

पद्मस्त्विति रामेण पूजयित्वा विस्मर्जितम् ॥ १५ ॥

अभिप्रेता दिश तस्मात् प्रायात् तत् पुष्पकं तदा ।

पुष्पकने ‘पद्मस्तु’ कहकर उनकी आज्ञा सिद्धार्थ कर ली । इस प्रकार श्रीरामने उसका पूजन करके जब उसे जानेकी आज्ञा दे दी, तब वह पुष्पक बहोते अपनी अमीद दिशाको चला गया ॥ १५ ॥

एवमन्तर्हिते तस्मिन् पुष्पके सुवृत्तात्मनि ॥ १६ ॥

भरत प्राञ्जिन्याफयमुवाच रघुनन्दनम् ।

इस प्रकार पुष्पमय पुष्पकविमानके अदृश्य हो जानेपर भरतजीने हाथ जोड़कर श्रीशुनाथजीसे कहा— ॥ १६ ॥

विधुषामनि दृश्यन्ते चयि वीर प्रशामनि ॥ १७ ॥
ममानुषाणि सन्तानि व्याहतानि मुहुमुहु ।

वीरवर ! आप देखन्त हैं । इसीलथ आपन शानन
कानने मनुष्यतर प्राणी भी बारबार मनुष्योंक सनन सम्भाषण
करते दस जाते हैं । १७ ॥

अनामयश्च मन्थाना साम्रो मासो गतो हायम् ॥ १८ ॥
जाणानामपि सत्याना मृपुनाथानि रात्रय ।

अरोगप्रमथना नाथों पुष्पमन्तो हि मानवा ॥ १९ ॥
आनक रात्रय अतिथिक हुए एक मासमें अधिक

हो गया। तबसे सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं । बड़े
प्रणियोंक पास भी मृग्य नहीं पकती है । स्त्रियों बिना बड़ा
सह प्रभव करती हैं । सभी मनुष्योंक शरीर हट पुष्ट दिखायी
देते हैं ॥ १८ १९ ॥

हयक्षमाधिको राजजनस्य पुरचासिन ।
हृषीकेशमद्रामाय वाष्पमीक्ष्य आदिकाव्य उत्तरकाण्ड षष्ठचत्वारिंश सर्ग ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीवत्सकिर्तिनि अष्टावक्राचार्यक उत्तरकाण्डे इत्युक्तं तर्था सा पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंश सर्ग

अशोकवनिकां श्रीराम और सीताका विहार, गर्भिणी सीताका तपोवन टग्वनेनी डच्छा
प्रकट करना और श्रीरामका इसके लिये स्त्रीकृत दाना

स निख्य ततो राम पुष्पक हेमभूषितम् ।
अग्निदेश महाबाहुरशोकवनिका तदा ॥ १ ॥

सुरभूषित पुष्पक विमानका दिशा करके महाबाहु
श्रीरामने अशोक-वनिका (जन्त पुष्प विहार योग्य उपवन)
में प्रवेश किया ॥ १ ॥

चन्दनागुलचूर्नैश्च तुङ्गकालेयकैरपि ।
देयदाहवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम् ॥ २ ॥

चन्दन, अजूर, आम, तुङ्ग, (नागियन) : कालेयक
(रक्तचन्दन) तथा देयदाह-वन सब अरसे उसकी आभा
बना रहे थे ॥ २ ॥

व्यम्पकादोक्षपुनागमधूकपनसासने ।
शोभिता पारिजातैश्च विधूमरलनप्रभै ॥ ३ ॥

बम्बा, अशोक, पुनाग, मधुआ, कदल अरुन तथा
धूमपति अम्बिक सनन प्रशानित हानबाल पारिजातमें बड़े
काष्ठका मुशोभित था ॥ ३ ॥

लेघनीपाशुनेनाग मत्तपणानिमुकैः ।
मदारकदलागुल्मलताजालसमावृताम् ॥ ४ ॥

लघु, कदम, अजूर, नगरक, जित्तन, अतिमुक्त
मन्दार, काली तथा गुन्नी और लघुअशोक वन टग्वनेनी
अर सन्त था ॥ ४ ॥

प्रियङ्गुभिः कद्वयश्च तथा च यक्षुल्परि ।
अम्बुविदादिमध्वर कोरिदारश्च शोभिताम् ॥ ५ ॥

काले चपति पर्वत्य पातयन्नमृत पय ॥ २० ॥
पान्त् ! पुत्राभिर्योमे वरा हा हा रा रा है । मेघ

अमृतन समान पतित हुए समान वरा करते हैं ॥ २० ॥
धानाद्यापि प्रजात्येते न्यदायुका मुक्ता दिवा ।

इदानीं नक्षिर गाना भजेदिति उत्तर ॥ २१ ॥
कथयन्ति पुरे रानन् पौरनानपदास्त्रिधा ।

एक एनी चली है कि इसका स्वयं गीत एव सुन्दर
जान पड़ता है । रान्त् ! नगर और चली एक एक पुरमें
कहते हैं कि हमारे लिये निरकालक ऐसे हैं प्रजापति ।

एता वायु सुमधुरा भग्नतन समीरिता ।
श्रुत्वा राशे मुदा मुक्ता यभून् नृपसत्तम ॥ २२ ॥

भरनकी कही हुई ये सुमधुर वातें सुनकर उपभोग
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥
श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

बो स्वयं मुशोभिन हाकर उस उपवनकी शोभा बगते ये ॥९॥
 सुरभीणि च पुष्पाणि मालयनि विविधानि च ।
 दीर्घिका विविधाकारा पूर्णा परमवारिणा ॥ १० ॥
 वहाँ अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प और गुच्छ दृष्टि
 गोचर होते थे । उत्तम जलसे भरी हुई भौति भौतिकी
 बागियाँ देखी जाती थीं ॥ १० ॥
 माणिम्यद्वतसोपाना स्फाटिकान्तरकुट्टिमा ।
 फुल्लपद्मोत्पलानाश्च नानाकोपशोभिता ॥ ११ ॥
 जिनमें माणिक्यकी छिदियाँ बनी थीं । छिदियोंके बाद
 कुछ दूरतक जलसे भीतरकी भूमि स्फटिक मणिले घेरी हुई
 थी । उन बागियोंके भीतर खिले हुए कमल और कुसुमोंके
 समूह शोभा पाते थे, चक्रवाक भी उनकी शोभा बना रहे थे ॥
 दाल्यूहपुष्पसघुष्टा हससारसनाविता ।
 तरुभिः पुष्पशयलैस्तीरजैरपशोभिता ॥ १२ ॥
 पगीह और ताते वहाँ मीठी बोली बोल रहे थे । हंसों
 और सारसोंके फलर गूँज रहे थे । फूलोंसे चितरकरे दिखायी
 देनेवाले तरुनों वृक्ष उहाँ शोभासम्पन्न बना रहे थे ॥ १२ ॥
 प्राकारैर्विविधाकारै शोभिताश्च दाल्पल्लवैः ।
 तत्रैव च यनोद्देशे वैदूर्यमणिसनिभै ॥ १३ ॥
 शाद्वलैः परमोपेता पुष्पितद्रुमकाननाम् ।
 वे भौति भौतिके परकोटों और शिलालोंसे भी सुशोभित
 थीं । वहाँ वनप्रान्तमें नीलमत्तसे समान रंगवाली हरी हरी घाँसे
 उस वाटिकाका शृङ्गार कर रही थीं । वहाँके वृक्षोंका समुदाय
 फूलोंसे भारते सदा हुआ था ॥ १३ ॥
 तत्र सघपजनाना वृक्षाणा पुष्पशालिनाम् ॥ १४ ॥
 प्रमत्ता पुष्पशयला नभस्तारागणैरिय ।
 वहाँ मानो परस्पर होइ लगाकर खिले हुए पुष्पशाली
 वृक्षोंके हाड़े हुए फूलोंसे काले-काले प्रमत्त उड़ी तरह चित
 कर दिखायी देते थे, जैसे तारोंके समुदायसे अठकृत
 आकाश ॥ १४ ॥
 नन्दन हि यथेन्द्रस्य ग्राह्य चैत्ररथ यया ॥ १५ ॥
 तयाभूत हि रामस्य कानन सनिवेशनम् ।
 जैसे इन्द्रका नन्दन और ब्रह्माजीका बन्नाया हुआ कुबेर
 का चक्ररथ उन सुभाषित होता है, उसी प्रकार सुन्दर भवनों
 से विभूषित भीराम हा यह ब्रह्मा कानन शोभा पा रहा था ॥
 पद्मसनगृहोपेता स्तनागृहसमावृताम् ॥ १६ ॥
 अशोकानिका स्फुटिता प्रविष्टा रघुनन्दन ।
 आसने च गुभाकारे पुष्पप्रकरभूषिते ॥ १७ ॥
 श्यास्तारणसस्तीर्ण राम सनिपसाद् ह ।
 यों अनेक एक भजन बने थे, जिनमें भीरर बैठने
 लिय रघुन ने आसन सजाये गये थे । वह वाटिका अनेक
 स्तम्भोंके समुदाय दिखायी देती थी । उस समुद्रिशास्त्रिनी
 अशोक वनिधमें प्रवेश कर रघुनन्दन न भ्राम पुष्पागि

विभूषित एक सुन्दर आसनपर बैठे, जिसपर कालीन
 बिछा था ॥ १६ ॥
 सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयक मुनि ॥ १८ ॥
 पाययामास काकुत्स्थ शचीमित्र पुन्दर ।
 जैसे देवराज इन्द्र शचीकी मुधापान करते हैं, उसी
 प्रकार ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने अपने हाथसे पवित्र पय
 मधु लेकर सीताजीको पिलाया ॥ १८ ॥
 मासानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च ॥ १९ ॥
 रामस्याभ्यन्तराग्रे किन्नरास्तूर्णमाह्वय ।
 सेवकागण श्रीरामके भोजनके लिये वहाँ तुरत ही राजे
 चित भाग्य पदार्थ (भौति भौतिकी रसाद) तथा नाना
 प्रकारके फल ले आये ॥ १९ ॥
 उपानृत्यश्च राजान नृत्यगीतविशारदा ॥ २० ॥
 अन्तरोरगसंघाश्च किन्नरीपरिहारिता ।
 उस समय राजा रामके समीप नृत्य और गीतकी कलामें
 निपुण भक्त्यार्थी और नायकन्याएँ निचरिवाँसे साथ मिल-
 कर नृत्य करने लगीं ॥ २० ॥
 दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रिय पानयश गता ॥ २१ ॥
 उपानृत्यन्त काकुत्स्थ नृत्यगीतविशारदा ।
 नाचने-गानेमें कुशल और चतुर बहुत ही रूपवती स्त्रियाँ
 मधुपानजनित मदके बशीभूत हो श्रीरामचन्द्रजीके निकट
 अपनी नृत्य-कलाका प्रदर्शन करने लगीं ॥ २१ ॥
 मनोऽभिरामा रामास्ता रामो रमयता वरः ॥ २२ ॥
 रमयामास धमात्मा नित्य परमभूषिताः ।
 दूसरोंके मनमें रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ धमात्मा श्रीराम
 सग उत्तम बलभागीसे भूषितहुँ उन मनऽभिराम रमणियों
 को उपहार आदि देकर समुपगत थे ॥ २२ ॥
 स तथा सीतया साधमासीनो विरराज ह ॥ २३ ॥
 अरुधत्या द्यासीनो परितष्ठ ह्य तेजस्ता ।
 उस समय भगवान् श्रीराम सीतादेवीके साथ सिंहासनपर
 विराजमान हो अपने तेजसे अरुचतीके साथ बैठे हुए
 वशिष्ठजीने समान शोभा पाते थे ॥ २३ ॥
 पत्र रामो मुदा युक्त सीता सुरसुतोपमाम् ॥ २४ ॥
 रमयामास धेहिमहत्पदनि देवतव ।
 यों श्रीराम प्रतिनि देवताके समान आनन्दित रहकर
 देवकन्याएँ समान सुन्दरी विदेहनन्दिनी सीताएँ साथ रमण
 करते थे ॥ २४ ॥
 तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयाश्चिरम् ॥ २५ ॥
 अन्यत्रामचन्द्रुभ का शैशिवो भोगद सदा ।
 प्राप्तयोर्विविधान् भोगानन्तीनां शिशिरारामम् ॥ २६ ॥
 इस प्रकार सीता और रघुनाथजी चिरकालतक विहार
 करते रहे । इतनेहीमें सदा भाग्य प्रदान करनेवाला शिशिर
 श्रुतुका सुन्दर समय व्यतीत हो गया । भौति भौतिक भागोंका

उपमेग करते हुए उन राजदम्पतिका वह शिशिरकाल
बीत गया ॥ २५ २६ ॥

पूर्वाह्ने धर्मकायाणि कृत्वा धर्मेण धमयित् ।
शेष दिवसभार्गमस्त पुरगतोऽभवत् ॥ २७ ॥

धर्मश्च भीराम दिनके पूर्वभागमें धमके अनुसार धार्मिक
कृत्य करते थे और शेष आधे दिन अन्त पुरमें रहते थे ॥
सीतापि देवकायाणि कृत्वा पौवादिकानि वै ।

भवभूषणमकरोत् पूजा सर्वास्वामिदेशतः ॥ २८ ॥
सीताजी भी पूवाह्निकालमें देवपूजन आदि करके सब
शामुओंकी समानरूपसे सेवा-पूजा करती थीं ॥ २८ ॥

अभ्यगच्छत् ततो राम विचित्राभरणाभ्यरा ।
त्रिविष्टपे सहस्राक्षमुपविष्ट यथा शची ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् विचित्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो भीरामचन्द्र
जीके पास चली जाती थीं । ठीक उठी तरह, जैसे स्वर्गमें शची
छात्राक्ष इन्द्रजी सेवामें उपस्थित होती हैं ॥ २९ ॥

हृष्टा तु राघव पत्नीं कल्याणेन समन्विताम् ।
प्रहर्षमनुल लेभे साधुसाधितं चाग्रशीत् ॥ ३० ॥

हृदीं दितां भीरामचन्द्रजीने अपनी पत्नीको गमके
मङ्गलमय चिह्ने सुक रत्नकर अनुपम हर्ष प्राप्त किया और
कहा—'यदुत अच्छा, यदुत अच्छा' ॥ ३० ॥

अग्रनीच धरारोहा सीता सुरमुतोपमाम् ।
अपत्यलाभो वैदेहि त्वय्यय समुपस्थित ॥ ३१ ॥

किमिच्छसि धरारोहे काम किं प्रियता तप ।
किर ये देवस्यान्यं समान मुन्दरी नीतसि शान्ते—
'विदेहनिन्दि' । तुम्हारे गमसे पुत्र प्राप्त होनेका वह समय
हृत्पार्थ भीमद्वाराभय धार्मिकीय आदिछात्रोंसे उत्तरकाण्डे द्विचत्वारिंश सर्ग ॥ ४२ ॥

इत प्रह्वर भीमद्वाराभिमर्शित आगमः यथा अदिह्यम्क उत्तरकाण्डे ब्याप्तसिं सा पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंश सर्ग

भद्रहा पुरवासिणोंके मुखसे सीताक विषयमें सुनी हुई अश्रुम चचास भारामका अग्रगत कराना
तथोपविष्ट राजासुपासते त्रिचक्षणा ।

कथाना पुरुषाणा दाम्ययाग समन्ततः ॥ १ ॥
वहाँ बैठे हुए महाराज भीरामके पास अनेक प्रकारकी
कथाएँ कहनेमें कुछाल हास्यविद करनेजाल करता था औरले
आकर बैठते थे ॥ १ ॥

विजयो मधुमन्त्रश्च वादयो मन्त्रा कुल ।
सुताजि फालियो भद्रो न्तरकम सुमगध ॥ २ ॥

उन कथाओंक नाम हय प्रसार हैं—विजय, मधुमन्त्र,
कावय, मन्त्र कुल, सुपति कलिय, भद्र, दानवत और
सुमगध ॥ २ ॥

पते कथा यदुपिधा परिहाससमन्विता ।
कथयन्ति स महता राघवस्य महाना ॥ ३ ॥
ये सब कथा बड़े हसिने मजेकर कहना ॥ ३ ॥

उपस्थित है । वारोहे । कथाओं, तुम्हारी क्या इच्छा है ।
मैं तुम्हारा वीन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ ॥ १ ॥ ३१ ॥

सित कृत्वा तु वैदेही राम धान्यमयाग्रशीत् ॥ ३२ ॥
सपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ।
गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुपप्रतेजसाम् ॥ ३३ ॥

फलमूलाक्षिना देव पादमूलेषु वर्तितुम् ।
एष मे परम कामो यमूलफलभोजिनाम् ॥ ३४ ॥
अप्येकरात्रिं फाकुत्स्य निरसेय तपोयने ।

इसपर सीताजीने मुखचमकर भीरामचन्द्रजीने कहा—
'पुनन्दन ! मेरी इच्छा एक बार उन पवित्र तपोवनोंको
देखनेकी हो रही है । देर ! गङ्गातटपर रहकर फल-मूल
खानेवाले का उग्र तेजस्वी महर्षि हैं, उनसे सधीप (कुछ
दिन) रहना चाहती हूँ । फाकुत्स्य । फल-मूलोंका आहार
करनेवाले महात्माओंके तपोवनमें एक रात निवास करूँ, यही
मेरी इस समय सजने बड़ी अभिलाषा है' ॥ ३२-३४ ॥

तयेति च प्रतिगात रामेणाह्निष्टकमणा ।
निष्कन्धा भय वैदेहि श्वे गमिष्यस्वसशयम् ॥ ३५ ॥
अनायास ही महान् कर्म करनेवाल भीरामने सीताजी

इस इच्छाका पूल करनेकी प्रतिज्ञा की और कहा—'विदेह
नन्दिनि ! निश्चिन्त रहो । कल ही यहाँ जाओगी, इसमें शय
नही है' ॥ ३५ ॥

एषमुक्त्वा तु फाकुत्स्यो मैरिली जलफात्मजाम् ।
मध्यक्ष्णा तर रामो निजगाम मुददृष्ट ॥ ३६ ॥
मिथ्याश्रुमारी जानकीसे ऐसा कहकर बहुत-बहुत
नन्दन भीराम अपने मित्रों साथ भीर राहने का मन ॥

इत प्रह्वर भीमद्वाराभिमर्शित आगमः यथा अदिह्यम्क उत्तरकाण्डे ब्याप्तसिं सा पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

कामने अनेक प्रकारकी हास्य विनम्रपूर्ण कथाएँ कहा करते थे ॥
ततः कथाया कस्याचिद् राघव समभाषत ।
का कथा नगरे भद्र यतत निरयेषु ॥ ४ ॥

इसी समय किसी कथासे प्रसङ्गमें भीरुपायजीने पूछा—
'भद्र ! आनन्द नगर और राघवमें किस काही क्या विनम्र
रूपसे होती है ?' ॥ ४ ॥

मामाधितानि कायाद् पौरजानपदा जना ।
किं च सीतासमाश्रित्यभरत किं च लक्ष्मणम् ॥ ५ ॥
किं तु शत्रुघ्नमुद्दिश्य कथं किं तु मातरम् ।
यत्प्रव्यता च राघवानो धने राज्ये प्रवर्तन्ति च ॥ ६ ॥

नगर और जनपदोंके राजा, भद्र, भीर, मन्त्र, कावय
फ तथा शत्रुघ्न और माता देवकी फ नामोंसे क्या क्या करने
करते हैं ? कौनका राजा क्या करने विनम्र राजा हो ता क्या
अनेक कथाएँ तब बनने (कथि दुर्दिन) अभिमान) भी

निन्दाने विषय बन जाते हैं—सर्वात्र उद्दीकी घुराश्योंकी चर्चा होती है' ॥ ५९ ॥

पयमुक्ते तु रामेण भद्रं प्राञ्जलिस्त्वधीत् ।

स्थिता शुभा कथाराजन्वर्तते पुरवासिनाम् ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहनेपर भद्र हाथ जड़कर बोले—
'महाराज ! आजकल पुरवासियोंमें आपका लेकर सदा अच्छी ही चर्चाएँ चलती हैं' ॥ ७ ॥

अमु तु त्रिजय सौम्य दशग्रीवधधाजितम् ।

भूविष्टं स्वपुरे पौरैः कथ्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

(सौम्य ! पुरुषोत्तम ! दशग्रीव वधसमय की जो आपकी विजय है, उससे लेकर नगरम सब लोग अधिक बातें किया करते हैं' ॥ ८ ॥

पयमुक्त्वा भद्रेण राघवो चाफयमवधीत् ।

कथयस्व यथातस्य सर्वं निरवशेषतः ॥ ९ ॥

शुभाशुभानि चाकथानि कान्याहुः पुरवासिनः ।

श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्यां न कुप्यामशुभानि च ॥ १० ॥

मदने ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—(पुरवासी मरे विषयमें कौन कौन सी गुम या अशुभ बातें कहते हैं, उन सबको यथार्थरूपसे पूर्णतः बताओ) इस समय उनकी शुभ बातें सुनकर किन्हें वे शुभ मानते हैं उनका मैं आचरण करूँगा और अशुभ बातें सुनकर किन्हें वे अशुभ समझते हैं, उन कृत्योंको त्याग दूँगा ॥ ९-१० ॥

कथयस्व च विद्वन्धो निर्भय विगतज्वर ।

कथयन्ति यथा पौराः पापा जनपदेषु च ॥ ११ ॥

(तुम विद्वान् और निश्चिन्त होकर बेलाहके बहो) पुरवासी और जनपद लोग मेरे विषयमें किस प्रकार अशुभ चर्चाएँ करते हैं' ॥ ११ ॥

राघवेणैमुकत्वा भद्रः सुकथिर घञ्च ।

प्रत्युवाच महाबाहु प्राञ्जलिं सुसमाहितः ॥ १२ ॥

श्रीरघुनाथजीने ऐसा कहनेपर भद्रने हाथ जोड़कर एकामन्त्रित हो उन महाबाहु श्रीधर्मसे यह परम सुन्दर बात कही—॥ १२ ॥

शृणु राजन् यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम् ।

चावराणारूप्यस्तु यनेपूषणेषु च ॥ १३ ॥

(राजन् ! सुनिये, पुरवासी मनुष्य चौराहोंपर, बाजारोंमें, सड़कोंपर तथा घन और उपजनमें भी आपका विषयमें किस प्रकार गुम और अगुम बातें कहते हैं ! यह बता रहा हूँ ॥ १३ ॥

दुष्कर हतवान् राम समुद्रे सेतुबन्धनम् ।

अश्रुतं पूर्वैः कैश्चिद् देवैरपि सन्निवृत्तं ॥ १४ ॥

(ये कहते हैं श्रीरामने समुद्रपर गुप्त बाँधकर दुष्कर कर्म किया है) ऐसा कर्म तो पहले से किन्हीं देवताओं और दानवोंने भी नहीं सुना होगा ॥ १४ ॥

हयार्पणं श्रीमद्भारमय्यं वाष्पनीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिचक्रार्पणः सर्वं ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित आर्षारामायण आदिकारम्यक उत्तरकाण्डमें तैत्तिरीयसौत सप्त पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

राज्यंश्च दुराधया हतं सत्पराह्वनम् ।

धानराध वशं नीता धृष्टाश्च सह राक्षसं ॥ १५ ॥

“श्रीरामद्वारा दूर्धर्ष रावण सेना और सवारियोंसहित मारा गया तथा राक्षसीसहित गीठ और वानर भी वशमें कर लिये गये ॥ १५ ॥

हत्वा च राज्यं सख्ये सीतामाहृत्य राघव ।

अमर्षं पृष्ठतः हत्वा स्वदेशं पुनरानयत् ॥ १६ ॥

“परन्तु एक बात खटकती है, सुद्धमें रावणको मारकर श्रीरघुनाथजी सीताका अपने घर ल आये । उनका मनमें सीताके चरित्रको लेकर रोष या अमर्ष नहीं हुआ ॥ १६ ॥

कीदृश हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ।

अद्भुमारोप्य तु पुरा रावणेन धलादनाम् ॥ १७ ॥

लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिता गीताम् ।

रक्षसा वशमापन्ना कथं रामो न दुःस्थितिः ॥ १८ ॥

अस्माकमपि द्वारेषु सहनीयं भविष्यति ।

यथा हि कुर्वते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ॥ १९ ॥

“उनके हृदयमें सीता-सम्भोगजनित सुख कैसा समझा होगा ! पहले रावणने वन्धुपुत्र सीताका गोदमें उठाकर उनका अपहरण किया था, फिर वह उन्हें लङ्कामें भी ले गया और वहाँ उसने अतः पुरवें लीला कालन अशोकवनितामें रक्खा ।

इस प्रकार राक्षसोंके वशमें होकर वे बहुत दिनोंतक वहीं तो भी श्रीराम उनसे गुणा क्यों नहीं करते हैं । अब हमलोगोंको भी जिनको ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी, क्योंकि राजा बैठा करता है, प्रजा भी उसीका अनुकरण करने लगती है' ॥ १७-१९ ॥

एव यद्विधा याचो वदन्ति पुरवासिनः ।

नगरेषु च सर्वेषु राजन् जनपदेषु च ॥ २० ॥

(राजन् ! इस प्रकार सारे नगर और जनपदमें पुरवासी मनुष्य बहुतसी बातें कहते हैं' ॥ २० ॥

तस्यैव भाषितं श्रुत्वा राघव परमातुरः ।

उवाच सुहृद् सनान् कथमेतद् घटतु माम् ॥ २१ ॥

भगनी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त पीड़ित होकर समझा सुहृदोंसे पूछा—‘आपसंग भी मुझे बतावें, यह कहाँतक ठीक है' ॥ २१ ॥

सर्वे तु शिरसा भूमाभिविवाद्य प्रणम्य च ।

प्रत्य्यूचुः राघवः क्षीनमेतमेतन्न सशयः ॥ २२ ॥

तब सबने धरतीपर मल्लक टेककर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके दीनतापूर्ण वाणीमें कहा—‘प्रभो ! मदका यह कथन ठीक है, इसमें तनिक भी शक्य नहीं है' ॥ २२ ॥

श्रुत्वा तु बाक्यकाङ्क्षस्य सर्वेषां समुदीरितम् ।

विस्मययामास तदा धयस्याच्छुसुप्तः ॥ २३ ॥

सन्ने मुखमें यह बात सुनकर शय्युत्पन्न श्रीरामने तत्काल उन सब मुहूर्तोंको बिना कर दिया ॥ २३ ॥

उत्तरकाण्डे त्रिचक्रार्पणः सर्वं ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिणः सर्ग

श्रीरामके चुलानेसे सप्त भाइयोंका उनके पास आना

विरूपाक्ष ॥ सुदृढर्गे बुद्ध्या निश्चित्य राघव ।

समीपे हास्यमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

मित्रमण्डलीको विदा करन श्रीरघुनाथजीने बुद्धिसे विचार कर अपना रतन्य निश्चित किया और निकटवर्ती द्वारपालसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

दास्यमानस्य सौमित्रि लक्ष्मण शुभलक्षणम् ।

भरत च महाभाग शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ २ ॥

‘तुम जानर गोम ही महाभाग भरत, सुमित्राकुमार शुभ लक्षण लक्ष्मण तथा अजयिनी और शत्रुघ्नको भी यहाँ बुला लो’ ॥ २ ॥

रामस्य पुत्रन श्रुत्वा हास्यो मूर्ध्नि कृताञ्जलि ।

लक्ष्मणस्य गृह गत्वा प्रविशेदानीवारित ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह आदेश सुनकर द्वारपालने मन्त्रकपर अञ्जलि बाँधकर उहाँ प्रणाम किया और लक्ष्मण घर जाकर बैराग्य देन उसका भीतर प्रवेश किया ॥ ३ ॥

उत्तम सुमहात्मानं यधयित्वा कृताञ्जलि ।

द्रष्टुमिच्छति राजा त्वाम्यतातप्रमादिरम् ॥ ४ ॥

वहाँ हाथ जोड़ जय प्रथार करने हुए उठने मदारमा लक्ष्मणसे कहा—‘कुमार ! महाराज आपसे मिलना चाहते हैं । अतः शीघ्र चलिये, विलम्ब न कीजिये’ ॥ ४ ॥

यादमियेय सौमित्रि कृत्वा राघवशासनम् ।

प्राद्वन्द्व रथमारुह्य राघवस्य नियेदानम् ॥ ५ ॥

तब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने बहुत अच्छा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने आश्विनी शिरोधार्य किया और तत्काल रथ पर बैठकर ये श्रीरघुनाथजीने महलकी ओर तीव्रगतिसे चले ॥

प्रयान्त लक्ष्मण दृष्ट्वा ताम्यो भरतमतिरात ।

उदाच भरत तस्य यधयित्वा कृताञ्जलि ॥ ६ ॥

विनयाजनतो भूत्वा राजा त्वा द्रष्टुमिच्छति ।

लक्ष्मणका जात देख हास्य भरतन पास गया और उहाँ हाथ जोड़ वहाँ जय जनार करके विनीतभावसे बोल—‘प्रभो ! महापुत्र आपने मिलना चाहते हैं’ ॥ ६ ॥

भरतस्तु पश्य श्रुत्वा हास्यद् राममर्मावितम् ॥ ७ ॥

उत्पपातासनात् पूर्णं पदभ्यामत्र महापुत्र । श्रीरामने भेद हुए द्वारपालन सुनने यह बात सुनकर महापुत्री भरत तुरत अपने आसनसे उठ कर हुए और श्रीराम की चला ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा प्रयान्त भरत स्वरमाण कृताञ्जलि ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नभजन गत्वा ततो यास्यमुवाच ह । भरतसे जो देन द्वारपालकी उन्मत्तता लक्ष्मणपुत्र के भर्ताने गया और हाथ जोड़कर बोला—॥ ८ ॥

पद्मागच्छ रघुधेय राजा त्वा द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ॥

गतो हि लक्ष्मण पूर्वं भरतश्च महापुत्रा ।

‘रघुधेय ! आइय, तलिये राजा श्रीराम आकाश दम्भना चाहते हैं । श्रीलक्ष्मणजी और महापुत्रानी भरतनी पहले ही जा चुके हैं’ ॥ ९ ॥

श्रुत्वा तु वचन तस्य शत्रुघ्न परमासनात् ॥ १० ॥

शिरसा वक्ष्य धरणीं प्रययौ यत्र राघव ।

द्वारपालकी बात सुनकर शत्रुघ्न अपने उत्तम आसनसे उठ और पश्चतोप माया टरकर मन ही मन श्रीरामजी की दशा करन तुरत उनका निवासस्थानकी ओर चले ॥ १० ॥

हास्यम्यवागम्य रामाय सजानेन कृताञ्जलि ॥ ११ ॥

निवेदयामास तथा धातुनृत्वा नमनुपम्यितान् ।

द्वारपालने आकर श्रीरामने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि ‘प्रभो ! आपका सभी भाई द्वारपर उपस्थित है’ ॥ ११ ॥

कुमारानागतान्मुखा गितायाकुलितद्वय ॥ १२ ॥

अगच्छुरो दीनमना हास्य वचनमब्रवीत् ।

प्रवेशय कुमारस्य मन्त्रमपि चरान्वित ॥ १३ ॥

एतेषु जीरित महामेघा प्रणा प्रिया मम ।

कुमारोंका आगमन सुनकर गिताय व्याकुल इन्द्रियवान श्रीरामने नीचे मुखा किया दुर्गती तनमे द्वारपालको आश्रय दिया—‘तुम तीनों राजकुमारोंकी जल्दी मेरे पास आओ । मेरा जीवन इन्हींपर अवलम्बित है । य मेरे प्यारे प्राणस्वरूप हैं’ ॥ १२-१३ ॥

आनतास्तु नेत्रेण कुमारानुवाच ॥ १४ ॥

प्रदा प्रावृष्यो भूत्वा विरिगुस्त समालिता ।

महाराजकी आशा पाकर ये तीन वरचारी कुमार निरुत्तराये हाथ जोड़ एकामनित हो भरतन भीतर गये ॥ १४ ॥

त उ दृष्ट्वा मुख तस्य सप्रत आशिन यथा ॥ १५ ॥

सप्पातामिमादित्य प्रभया परिवर्जितम् ।

उन्होंने श्रीरामका मुख इस तरह उत्तम देखा, मानो चन्द्रमा पर मह लग गया हो । यह संप्राप्तता सुनकर भीति प्रभवय हो रहा था ॥ १५ ॥

याप्यपूर्णं न नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमत ।

ततोऽभिधात व्यरिता पादौ रामस्य मूढभि ।

तस्य समालिता सर्वे रामस्यभ्युपगमम् ॥ १६ ॥

उन्होंने वरचारी देखा कुटुम्बिक श्रीराम की नेत्रोंमें ओंम भर आपन और उनके मुखाश्रितोंकी आत्मा जिन गयी थी ॥ १६ ॥

ततोऽभिधात व्यरिता पादौ रामस्य मूढभि ।

तस्य समालिता सर्वे रामस्यभ्युपगमम् ॥ १७ ॥

तन्मना तन तीनों भाइयों की दृष्टि पर रामजी की नेत्रोंमें मन्त्रावस्था प्रगम किया । फिर ये वरचारी प्रभो

समाधिससे होकर पड़ गये । उस समय श्रीराम आँसू बहा रहे थे ॥ १७ ॥

तान् परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाप्य च महाबल ।

आसनेऽवासतेत्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद् ॥ १८ ॥

महाबली खुनाथजीने दोनों भुजाओंसे उठाकर उन सबका आलिङ्गन किया और कहा—इन आसनोंपर बैठो । जब वे बैठ गये, तब उन्होंने फिर कहा—॥ १८ ॥

भग्नो मम सर्वस्य भग्नो जीवितं मम ।

भयदुःखिश्च हतं राज्यं पालयामि नरेश्वर ॥ १९ ॥

‘राजकुमारो ! तुमलोग मरे सर्व हो । तुम्हीं मरे जीवन ह । और तुम्हारे द्वारा सम्पादित इस राज्यका मैं पालन करता हूँ ॥ १९ ॥

इसपर श्रीमद्रामपाणे वाल्मीकीय आदिछात्र उत्तरकाण्डे चतुश्चरित्रं सग ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वत्थमायण आदिछात्रक उत्तरकाण्डे चौबारीसवाँ सग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

पञ्चवत्वारिग सर्ग

श्रीरामका भाइयोंके समस्त सर्वत्र फैले हुए लोकापवादकी चर्चा करके सीताको

वनमें छोड़ आनेके लिये लक्ष्मणको आदेश देना

तथा समुपनिषाना सर्वेषां दीनचेतसाम् ।

उवाच दान्य काकुत्स्थो मुखेन परिश्रुप्यता ॥ १ ॥

इस प्रकार उस भाई दुखी मनसे यहाँ बैठे हुए थे ।

उससमय श्रीरामने सारे मुखसे उनके सामने यह बात कही—

सर्वे शानुत भद्रं यो मां शुकं मनोऽयथा ।

पौराणं मम सीताया यादृशी वर्तते कथा ॥ २ ॥

‘बाबुआ ! तुम्हारा कल्याण है । तुम सब लोग मेरी बात

सुनो । मनको इसपर उधर न ले जाओ । पुराणियोंके यहाँ

मेरे और सीताके विषयमें जैसी कथा चल रही है, उसीमें बता रहा हूँ ॥ २ ॥

पौराणपादं सुमहास्तथा जनपदस्य च ।

वर्तते मयि धीमत्सा सा मे ममाणि हन्तति ॥ ३ ॥

‘इस समय पुराणियों और जनपदके लोगोंमें सीताके

सम्बन्धमें महान् अयराट फैला हुआ है । मेरे प्रति भी उनका

बड़ा घृणापूर्ण भाव है । उन सबकी यह घृणा मेरे मर्मस्पर्शकी विण्णिजि करे देती है ॥ ३ ॥

अहं किल कुले जात इक्ष्वाकुणा महात्मनाम् ।

सीतापि स कुले जाता जनकानां महात्मनाम् ॥ ४ ॥

‘मैं इक्ष्वाकुवंशी महामा नरेशोंके कुलमें उत्पन्न हुआ

हूँ । सीताने भी महात्मा जनकोंके उत्तम कुलमें जन्म लिया है ॥ ४ ॥

ज्ञानानि त्वं यथा स्मिन् वृद्धके विजने धने ।

रायणेन हता सीता मम विष्वसितो मया ॥ ५ ॥

‘मौम्य लभण ! तुम तो यह जानते ही हैं कि किस प्रकार

भग्न हतशास्त्राया बुद्ध्या च परिनिष्ठिता ।

सम्भूय च मर्त्योऽयमवेष्टयो नरेश्वरा ॥ २० ॥

‘नरेश्वरो ! तुम सभी शास्त्रीके ज्ञाता और उनमें बताये

कर्तव्यका पालन करनेवाले हो । तुम्हारी बुद्धि भी परिपक्व

है । इस समय मैं जो काय तुम्हारे सामने उपस्थित करनेवाला

हूँ, उसका तुम सबको मिलकर सम्पादन करना

चाहिये ॥ २० ॥

तथा ध्वत्ति काकुत्स्थे अपधानपरायणा ।

उद्धिग्नमनस सर्वे किं नु राजाभिधास्यति ॥ २१ ॥

‘श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सभी माइ चौकने लगे

गये । सबका चित्त उद्धिग्न हो गया और सभी सोचने लगे—

‘न जाने महाराज हमसे क्या कहेंगे ? ॥ २१ ॥

यद्यपि निज दण्डकारण्यसे उन्हें हरकर ल गया था और मैंने

उसका विध्वंस भी कर डाला ॥ ५ ॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुता प्रति ।

अश्रोयितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम ॥ ६ ॥

‘उसने बाद लष्कामें ही जानकीके विषयमें मेरे अन्तःकरण

में यह विचार उत्पन्न हुआ था कि इनके हतने दिनोंतक यहाँ

रह लेनेपर भी मैं इन्हें राजधानीमें कैसे ले जा सकूँगा ॥ ६ ॥

प्रत्ययार्थं तत सीतां निवेशं ज्वलनं तदा ।

प्रत्यक्षं तथ सीमित्रे देवानां हव्यराहन ॥ ७ ॥

अपापा मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः ।

चन्द्रादित्यौ च शसेते सुराणां सनिधौ पुरा ॥ ८ ॥

अपीणा चैव सर्वेषामपापा जनकालमजाम् ।

‘सुमित्राकुमार ! उस समय अपनी परिश्रताका विश्वास

दिलानेके लिये सीताने तुम्हारे सामने ही अग्निमें प्रवेश किया

था और देवताओंके समस्त स्वयं अग्निदेवने उन्हें निर्दोष

बनाया था । आकाशचारी वायु, चन्द्रमा और सूर्यने भी पहले

देवताओं तथा समस्त ऋषियोंके समीप जनकन्दिनीको निष्पाप

घोषित किया था ॥ ७ ८ ॥

एव नुद्धसमागता देवगन्धर्वसनिधौ ॥ ९ ॥

लष्कादीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निषेधिता ।

‘इस प्रकार विपुल आचारशाली सीताको देवताओं और

गन्धर्वोंके समीप शाश्वत देवराज इन्द्रने लष्कादीपके अंदर

मेरे हाथमें बाँधा था ॥ ९ ॥

अन्तरागमा च मे घत्ति सीता नुद्धा यशस्विनीम् ॥ १० ॥

ततो गृहीत्वा धेदेहीमयोध्यामहमागतं ।

मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीताको गुद समझती है ।
इसीलिये मैं इन विदेहमन्दिनीको साथ लेकर अयोध्या आया
या ॥ १०३ ॥

यय तु मे महान् वाद शोकश्च हृदि वर्तते ॥ ११ ॥
पौराणयाद् सुमहास्तया जनपदस्य च ।

परतु अब यह महान् अपवाद पैलने लगा है ।
पुराणियों और जनपदके लोगोंमें मेरी यही निन्दा हो रही है ।
इसके लिये मेरे हृदयमें यन्त्र शोक है ॥ ११३ ॥

अकीर्तिर्यस्य शीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ॥ १२ ॥
पतयेथाधर्मोद्धोषान् पात्रच्छद् प्रकीर्त्यते ।

जिस किसी भी प्राणीनी अश्लील लोकमें सराही चचा
का विषय बन जाती है, वह अधम लोकों (नरकों) में गिर
जाता है और अशक्त उस अपराधी चचा होनी है तबतक
यही पड़ा रहता है ॥ १२३ ॥

अकीर्तिर्निन्यते देवै कीर्तिलेखेषु पूज्यते ॥ १३ ॥
कात्यर्थे तु समारम्भ सर्वेषां सुमहामनाम् ।

देवगण लोगोंमें अश्लीलकी निन्दा और कीर्तिकी प्रशंसा
करते हैं। समस्त भेद महात्माओंका सारा गुण आयोजन उच्चम
कीर्तिकी स्थापनाके लिये ही होता है ॥ १२४ ॥

अप्यहं जीरितं जह्या युष्मान् या पुरुषपत्न्या ॥ १४ ॥
नपरादभयाद् भीतं किं पुनर्जनकामनाम् ।

नरभेद बाधुआ । मैं लज्जामन्दा भयसे अपने
प्राणोंको और तुम सराया भी त्याग करता हूँ । फिर भीतना
स्थागना कीज नहीं पाता है ॥ १२५ ॥

तस्माद् भयत पदयतु पतित शोकसागरे ॥ १ ॥
नहि पदयाम्यहं भूतं किंचिद् दुःखमतोऽधिकम् ।

अब तुमलोग मरी और देला । मैं शोकके समुद्रमें गिर
गया हूँ । इसमें बढ़कर कभी कुछ दुःख मुझ उठाना पड़ा हो,
इसकी मुझे याद नहीं है ॥ १२६ ॥

अस्म्य प्रभाते सीमिषे सुमन्नाधिष्ठितं स्थम् ॥ १६ ॥
आरुह्य सीतामार्गेण विगयात् समुत्सृज ।

अब सुमित्राशुमार । वरु ७५२ तुम सारथि सुमन्त्र
द्वारा सञ्चालित रथपर आरुह्य ही सीताका भी उसीपर चढ़ाकर
इस रात्रिकी भीतना सारह छोड़ दो ॥ १६४ ॥

गङ्गायास्तु परे पारं यत्किञ्चिन्मु महात्मन ॥ १७ ॥
आधमो दिव्यसकाशास्तमसातीरमाश्रित ।

गङ्गाएँ उस पार तमसा तटपर महात्मा का मीकिमुनि
बा निम्न आश्रम है ॥ १७३ ॥

तत्रैता विन्ने देहो विरुन्ध रघुनन्दन ॥ १८ ॥

शीघ्रमागच्छ सीमित्र पुरुष यत्न मम ।
न चास्मि प्रतिवृत्तस्य सीता प्रति कथयन् ॥ १९ ॥

रघुनन्दन । उस आश्रममें निकट निम्न बनमें तुम
सीताको छोड़कर भीत लौट आओ । सुमित्रानन्दन । मरी इस
आज्ञाका पालन करो । सीताके विषयमें मुझसे किसी तरह का
दुसरी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिये ॥ १८२० ॥

तस्मात् त्वगच्छ सीमित्रेनाग्रयाया विचारणा ।
अप्रतीतिं परा महा त्वयैतत् प्रतिवारित ॥ २० ॥

इसलिये लक्ष्मण । अब तुम जाओ । इस विषयमें कोई
सोच विचार न करो । यदि मेरे इस निश्चयमें तुमने किसी
प्रकारकी अड़चन डाली तो मुझे महान् कष्ट होगा ॥ २० ॥

शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जातिनेन च ।
ये मा चाक्यातरे ब्रधुरनुनेतु कथयन् ॥ २१ ॥

अहिता नाम ते नित्यं मद्भीष्टविधातनान् ।
मैं तुम्हें अपने चरणों और जीवनी की गण्ड लिता हूँ
मैं निषेधके विषय कुछ कुछ न कहा । जा मेरे इस कथान कीज
में बूढ़कर किसी प्रकार मुझमें अनुनय विनय करनेके लिये
कुछ कहेंगे, वे मेरे अभीष्ट कायमें काया शल्लभन सारण
सदाके लिये मेरे शत्रु होंगे ॥ २१३ ॥

मानयन्तु भवन्तो मा यदि मच्छासने चिता ॥ २२ ॥
इतोऽप नीयता सीता पुरुष यत्न मम ।

यदि तुमलोग मरा सम्मान कर दो और मरी आश्रममें
रहना चाहते हो तो अब साक्षात् यहाँमें बनमें लौट आओ । मरी
इस आज्ञाका पालन करो ॥ २२४ ॥

पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरऽहमाश्रमम् ॥ २३ ॥
पदयेयमिति तस्याश्च कथं सवत्यतामयम् ।

सीताने पदल मुझमें कहा था कि मैं गङ्गातटपर आश्रम
के आश्रम देखना चाहती हूँ अब उनकी वरु इच्छा भी पूर्ण
की जाय ॥ २३३ ॥

एवमुक्त्वा तु कातुस्यो वाप्येन विहितं शन ॥ २४ ॥
सखिपदा स धमतामा भ्रातृभिः परितारित ।

शोकसन्निहतयो निद्रायास्त यथा क्षिप ॥ २५ ॥
इस प्रकार कहनेकर ही भ्रातृपुत्राधीन दोनों नेत्र
आँसुओंमें भर गये । फिर वे धमतामा भोगम आन भद्रकर
साथ महलमें चले गये । उस समय उनका हृदय दहम
स्पन्दन था और वे हाथोंके समान लम्बा हो गये ॥ २५२६ ॥

एवमुक्त्वा तु कातुस्यो वाप्येन विहितं शन ॥ २४ ॥
सखिपदा स धमतामा भ्रातृभिः परितारित ।

शोकसन्निहतयो निद्रायास्त यथा क्षिप ॥ २५ ॥
इस प्रकार कहनेकर ही भ्रातृपुत्राधीन दोनों नेत्र
आँसुओंमें भर गये । फिर वे धमतामा भोगम आन भद्रकर
साथ महलमें चले गये । उस समय उनका हृदय दहम
स्पन्दन था और वे हाथोंके समान लम्बा हो गये ॥ २५२६ ॥

एवमुक्त्वा तु कातुस्यो वाप्येन विहितं शन ॥ २४ ॥
सखिपदा स धमतामा भ्रातृभिः परितारित ।

शोकसन्निहतयो निद्रायास्त यथा क्षिप ॥ २५ ॥
इस प्रकार कहनेकर ही भ्रातृपुत्राधीन दोनों नेत्र
आँसुओंमें भर गये । फिर वे धमतामा भोगम आन भद्रकर
साथ महलमें चले गये । उस समय उनका हृदय दहम
स्पन्दन था और वे हाथोंके समान लम्बा हो गये ॥ २५२६ ॥

एवमुक्त्वा तु कातुस्यो वाप्येन विहितं शन ॥ २४ ॥
सखिपदा स धमतामा भ्रातृभिः परितारित ।

शोकसन्निहतयो निद्रायास्त यथा क्षिप ॥ २५ ॥
इस प्रकार कहनेकर ही भ्रातृपुत्राधीन दोनों नेत्र
आँसुओंमें भर गये । फिर वे धमतामा भोगम आन भद्रकर
साथ महलमें चले गये । उस समय उनका हृदय दहम
स्पन्दन था और वे हाथोंके समान लम्बा हो गये ॥ २५२६ ॥

इत्यार्षे आमन्त्रामागन्तव्यं आदिश्वस्य उत्तरकाण्डे पञ्चचत्वारिंश सर्गः ॥ ४० ॥

इस प्रकार धर्मार्थसंनिहित आश्रममें आदिश्वस्य उत्तरकाण्डे पञ्चचत्वारिंश सर्गः ॥ ४० ॥

पट्त्वारिंशः सर्गः.

लक्ष्मणका सीताको रथपर विठाकर उन्हें वनमें छोड़नेके लिये ले

जाना और गङ्गाजीके तटपर पहुँचना

ततो रजन्या व्युष्टाया लक्ष्मणो दीनचेतन ।

सुमन्मथप्रवीद वाक्य सुप्रेत परिशुष्यता ॥ १ ॥

तदनन्तर जब रात बीती और चोरे हुए, तब लक्ष्मणने

मन ही मन दुखी हो सुले मुखसे सुमन्से कहा— ॥ १ ॥

सारथे नुरगान्दीघान् योजयस्व रथोत्तमे ।

स्वास्तार्णे राजवचनात् सातायाश्चासन शुभम् ॥ २ ॥

सीता हि राजवचनादाधम पुण्यकर्मणाम् ।

मया नेया महर्षिणा शीघ्रमानीयता रथ ॥ ३ ॥

‘सारथे ! एक उत्तम रथमें शीघ्रगामी घोड़ोंको चोतो और

उस रथमें सीतानीके लिये सुन्दर आसन बिछा दो । मैं

महाराजकी आज्ञासे सीतादेवीको पुण्यकर्मा महर्षियोंके आभमपर

पहुँचा दूँगा । तुम शीघ्र रथ ले आओ ॥ २ ॥

सुमन्सु तथेत्युक्त्या युक्त परमवाजिभिः ।

रथ सुवचिरप्रव्य म्वास्तीर्ण सुखदाययया ॥ ४ ॥

तब सुमन् ‘बहुत अच्छा’ कहकर तुरत ही उत्तम घोड़ों

में उठा हुआ एक सुन्दर रथ ल आये, जिसपर सुखदायक

युक्त सुन्दर बिछावन बिछा हुआ था ॥ ४ ॥

शानीयोगाच्च सौमिर्नि मिश्राणा मानवधनम् ।

रथोऽय समनुप्राप्तो यत्कार्ये मियता प्रभो ॥ ५ ॥

उस प्रकार वे मित्रोंका मान बर्णनगल मुमिषाकुमारसे

बोल—‘प्रभो ! यह रथ आ गया । अब जा कुछ करना हो

कीजिये ॥ ५ ॥

परमुक्त सुमन्नेण राजरुदमनि लक्ष्मण ।

प्रविश्य सीतामासाद्य याजहार नरपथ ॥ ६ ॥

सुमन्त्रक एका कहनेपर नरपथ लक्ष्मण राजमहलमें गये

और सीतानीके पास जानकर बोले— ॥ ६ ॥

त्वया किन्त्यै नृपतिर्यत्र वै यात्रित प्रभु ।

नृपेण च प्रतिपातमाप्तमध्याधम प्रति ॥ ७ ॥

‘देखि ! आपने महाराजने मुनिवार आभमोंपर जाने

लिये वर माँगा था और महाराजने आपके आभमपर पहुँचा

य जिस प्रतिज्ञा की थी ॥ ७ ॥

गङ्गातीरे मया देवि श्रयीणासाधमाऽनुभान् ।

शीघ्र गत्वा तु र्वेदिह शासनात् पाथिवम्यन ॥ ८ ॥

अल्पे मुनिभिर्जुपे अनेया भविष्यसि ।

‘देवि ! विदेहनन्दिनि ! उध बातचीतने अनुसार मैं राजाजी

आगते शीघ्र ही गङ्गातटपर श्रमियोंन सुन्दर आभमोंपर

परगा और आरगे मुनिजनसेजित वनमें पहुँचाऊँगा ॥ ८ ॥

परमुक्ता तु र्वेदही लक्ष्मणेन महामना ॥ ९ ॥

प्रदपमनुल लभे गमन चाप्यतोऽयम् ।

महात्मा लक्ष्मणने ऐसा कहनेपर विदेहनन्दिनी सीताको

अनुपम रूप प्राप्त हुआ । वे चलनेको तैयार हो गयी ॥ ९ ॥

घासासि च महादाणि रत्नानि विविधानि च ॥ १० ॥

गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे ।

इमानि मुनिपत्नीना दास्याम्याभरणा यद्दम् ॥ ११ ॥

वस्त्राणि च महादाणि धनानि विविधानि च ।

बहुमूल्य उन्न और नाना प्रकारके रत्न लेकर वैदेही सीता

वनकी यात्राक लिये उद्यत हो गयी और लक्ष्मणसे बोली—‘मैं

सब बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और नाना प्रकारके रत्न वन

में मुनि पत्नियोंका दूँगी’ ॥ १० ॥ ११ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्या रथमारोप्य मैथिलीम् ॥ १२ ॥

प्रययौ शीघ्रतुरगं रामम्याह्वानमुत्सरन् ।

लक्ष्मणने ‘बहुत अच्छा’ कहकर निपिलेशकुमारी सीताका

रथपर चढ़ाया और भीरुनाथजीकी आज्ञाको ध्यानमें रखते

हुए उस तब घोड़ोंवाल रथपर चढ़कर वे वनकी ओर चल

दिये ॥ १२ ॥

अग्रवीच तदा सीता लक्ष्मण लक्ष्मिवधनम् ॥ १३ ॥

अनुभानि यद्भूयेन पद्मयामि रघुनन्दन ।

नयन मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते ॥ १४ ॥

उस समय सीताने लक्ष्मीवधन लक्ष्मणसे कहा ‘रघुनन्दन !

मुझे बहुतसे अपमान दिखायी देते हैं । आज मेरी दायाँ

आँख फड़कती है और मेरे शरीरमें कंप हो रहा है ॥ १३ ॥ १४ ॥

हृदय चैव सौमित्रे अस्वस्थमिदं लक्ष्मणे ।

जीतुस्त्वय परम चापि अधृतिश्च परम मम ॥ १५ ॥

‘मुमिषाकुमार ! मैं अपने हृदयका अस्वस्थ वा देव रही

हूँ । मनमें बड़ी उत्कण्ठा है रही है और मेरी अधीरता

परफाफाओ पहुँची हुई है ॥ १५ ॥

शून्यामन च पद्मयामि पृथिवीं पृथुलेचन ।

अपि स्वस्ति भवेत् तस्य भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सल ॥ १६ ॥

शिलाचलन लक्ष्मण ! मुझ पृथ्वी सूनीसी ही दिखायी

देती है । भ्रातृवत्सल ! तुम्हारे भाई कुशलसे रहें ॥ १६ ॥

श्वश्रूणा चैव मे वीर स्यात्सामग्रितोऽयत् ।

पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ॥ १७ ॥

‘वीर ! मेरी सब शत्रुओं समान रूपसे छानन्द रहें । नगर

और जनपदमें भी समस्त प्राणी कुशल रहें ॥ १७ ॥

इत्यञ्जलिता सीता देयता अभ्ययाचत ।

लक्ष्मणोऽयं तन भुत्वा शिरसा घन्य मैथिलीम् ॥ १८ ॥

शिरमित्यग्रादधृष्टे हृदयन विनुष्यता ।

एसा कहती हुई सीताने हाथ जोड़कर देयताओंसे प्रायना

धी । सीताजी बात सुनकर लक्ष्मणने सिर मुझकर उन्हें प्रणाम
किया और कहने प्रवृत्त हो मुझपि हुए हृदयसे कहा—
'सबका कल्याण हो' ॥ १८३ ॥

ततो यासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ॥ १९ ॥
प्रभाते पुनस्तथाप्य सौमित्रि सन्तमव्रतीत् ।

तत्पश्चात् गोमती तटपर पहुँचकर एक आश्रममें उन
ध्वने यत् विनायी । फिर प्रातः काल उत्तरर मुनिप्राप्तुमारने
छात्रिये कहा— ॥ १९३ ॥

योनयस्य रथ शीघ्रमद्य भागीरथीतलम् ॥ २० ॥
शिरसा धारयिष्यामि त्रियम्बक इयोज्जसा ।

'सारथे ! जल्दी रथ चला । आज मैं भागीरथीके तलमें
उसी प्रकार सिरपर धारण करूँगा जैसे भगवान् गङ्गाने अपने
तेजसे उसे मन्तरपर धारण किया था' ॥ २०३ ॥

सोऽभ्यान् विचारयित्वा तुरग्ये युक्तान् मनोजगान् ॥ २१ ॥
आरोहन्मेति वेदेहो सूनू प्राञ्जलिप्रवीणम् ।

सारथिने मनन समान वगाली चारों घण्टोंके टटलकर
रथमें बैठा और विदेहन्दिनी सीताने हाथ जोड़कर कहा—
'देवि ! रथपर आरुह होय' ॥ २१३ ॥

सा तु सूनूय चतनादाग्रेह रथोत्तमम् ॥ २२ ॥
सीता सौमित्रिणा सार्धं सुमन्त्रेण च धीमता ।
वाससाद् विद्यालक्ष्मी गता पापविनाशिनीम् ॥ २३ ॥

सूनू कहने देवी सीता उस उत्तम रथपर उठार हुई ।
इन प्रकार मुनिप्राप्तुमार लक्ष्मण और बुद्धिमान् सुमन्त्र
साथ विद्यालक्ष्मी सीतादेवी पापनाशिनी गङ्गा तटपर जा
पहुँची ॥ २२-२३ ॥

अथाद्यदिदमे गन्धा भागीरथ्या जगदायम् ।
निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीन प्रवरोद् महात्मन ॥ २४ ॥

दोहरकर समय भागीरथीकी कृपायत्नर पहुँचकर
लक्ष्मण स्त्री और दलत हुए दुःख । उद्यमरने पूर पूर
कर गते लगे ॥ २४ ॥

सीता तु परमायत्ता दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम् ।
उत्ताप वाक्य धमसा त्रिभिद् रघव तस्या ॥ २५ ॥
जातीतीरमासाद्य त्रिभिन्निति भवम् ।
हरकाल त्रिभिर्ध मा त्रिधादपसि लक्ष्मण ॥ २६ ॥

लक्ष्मणकी गौरव अतुर देव धमसा सीता अत्यन्त
चिन्तित हो उसने बली—'लक्ष्मण ! यह क्या ! तुम ऐसे क्यों
हो' गङ्गा तटपर आकर सीता निरीक्षणी अभिप्राय

पूज हुई है । इस क्षण समय तुम स्त्री सुनी दुःखी क्यों
करत हो ? ॥ २५-२६ ॥

नित्य त्व रामपादौषु वतस पुष्पगम्भ ।
कश्चिद् विनाटनस्तेन द्विगुण शोभमानम् ॥ २७ ॥

'पुष्पप्रवर । आश्रम पर तो तुम सदा ही रहत हो ।
कादा दिन तब अपने चित्तु गानर गारण तुम इनने
छात्राङ्ग हो गये हो ? ॥ २७ ॥

ममापि द्युतिरो रामो नीरितापि लक्ष्मण ।
न चाहमेव शोभामि मैत्र त्व गालिहो भव ॥ २८ ॥

'लक्ष्मण ! भीतर तो मुझ भी भवन प्रणाली बत्तकर
मिथ हैं परतु मैं तो इस प्रकार गङ्गा नहीं रह रही हूँ । तुम
ऐसे नामन न बनो ॥ २८ ॥

तारयस्य च मा गङ्गा दशायस्य च तापसान् ।
ततो मुनिष्यो याम्नासि दाम्पत्याभरणानि च ॥ २९ ॥

मुझे गङ्गान उस पार लक्ष्मण और तराणी मुनिसे
दर्शन कराओ । मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी ॥ २९ ॥
तत्र वृत्ता महर्षिणा यशार्हमभिप्रादतम् ।
तत्र पैका निशामुष्य याम्यामस्ता पुन पुन ॥ ३० ॥

सालभार उन मर्षियोंका कारण और लक्ष्मण बरत
वहाँ एक यत्न ठहरकर हम पुन अन्त्यापुगान नी
चर्य ॥ ३० ॥

ममापि पद्मपत्राण सिंहोरम्भ वृक्षोन्म ।
हरते हि मनो द्रष्टु राम रमयता धम् ॥ ३१ ॥

नरा मन भी मित्र सन्तान यत्न लक्ष्मण और
कमल गमान नक्षत्रा भीगाल, न मनरा लक्ष्मणोंमें
सबसे श्रेष्ठ हैं, दलनेर लिय उतारण हो रहा है ॥ ३१ ॥

तस्यास्तद् यत्नं श्रुत्वा प्रसन्नो तपने गुणे ।
नारिकानाद्वयामास त्र्यम्भो पारहा ।

इय तस्यजा नीधेति दाता प्राथम्योऽहम् ॥ ३२ ॥
सीताजीका यह वचन सुनकर गङ्गा तटपर बरताने
लक्ष्मण अपनी दानों मुद्राओं में पठन और तीस
हुन्द ॥ उन मन्त्रोंने हाथ डालकर कहा—'नमो ! नमो
तेन है' ॥ ३२ ॥

निनीपुत्रदमणो गङ्गा गुभा नारमुपास्तम् ।
गङ्गा मनारयामास लक्ष्मणास्तानमिति ॥ ३३ ॥

लक्ष्मण गङ्गाके पार कनेर चित्तु गानर गारण
उस मुद्रा गौमार पै और बही लक्ष्मणोंने लक्ष्मण उहोंने
सीताके गङ्गाके पार लक्ष्मणोंने ॥ ३३ ॥

इ वार्धे धीमद्रामादने वास्तीकाव आनिक्य उत्तरकाण्डे पटञ्जल्यारिषा सर्ग ॥ ४ ॥

इस प्रकार धीमन्निर्दिष्ट अष्टमस्कन्ध उत्तरकाण्डे निर्दिष्टा सर्ग का हुआ ॥ ४ ॥

रघुनन्दन । बालवर्मे तो आप जानते ही हैं कि सीता
शूद्रचरित्रा है । सर्वदा ही आपने हितमें तत्पर रहती है और
आपने प्रति परम प्रेमभक्ति रखनेवाली है ॥ १२ ॥

अहं त्यक्ता च ते वीर गयशोभीरुणा जने ।
यच्च ते घचनीय म्यादपवाद समुत्थित ॥ १३ ॥
मया च परिहर्तव्यं त्व हि मे परमा गति ।

‘वीर ! आपने अपयशसे ढरकर ही मुझे त्यागा है । उन
लोगोंमें आपकी जो निंदा हो रही है अथवा मेरे कारण जो
अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है
क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं ॥ १३ ॥

वचन्यश्चैव नृपतिर्धर्मण सुसमाहित ॥ १४ ॥
यथा भ्रातृषु वर्तमान्मथा पौत्रेषु नित्यदा ।
परमो रोग धर्मन्ते तस्मात् कीर्तिरनुचमा ॥ १५ ॥

‘लक्ष्मण ! तुम मशरान्ते कहना कि आप धर्मपूर्ण
वक्ता सान्धानीसे रहकर पुरवासियोंके साथ ऐसा ही बताव
करें, जैसा अपने भाग्योके साथ करते हैं । यही आपका
परम धर्म है और इसीसे आपको परम उत्तम यशही प्राप्ति
हो सकती है ॥ १४ १५ ॥

यच्च वीरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात् ।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीर नरर्यभ ॥ १६ ॥
‘राजन् ! पुरवासियों प्रति धर्मानुवूल आचरण करनेसे
जो पुण्य प्राप्त होगा, वही आपने लिये उत्तम धर्म और कीर्ति
है । पुण्यात्तम ! मुझे अपने शरीरने लिये कुछ भी चिन्ता
नहीं है ॥ १६ ॥

यज्ञापनाद् वीराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नाया पतिवधु पतिगुरु ॥ १७ ॥
प्राणैरपि प्रिय तस्माद् भर्तुं काय विशेषत ।

‘रघुनन्दन ! जिस तरह पुरवासियों अपवादसे बचकर
रहा आ सन, उसी तरह आप रहें । पत्नी लिये तो पति ही
देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है । इसलिये उसे
प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना
चाहिये ॥ १७ ॥

इति मद्यज्ञानाद् रामो वचन्यो मम सग्रह ॥ १८ ॥
निरीक्ष्य मात्र गच्छ त्वमृतकालातिगतिनिम् ।

‘भर ! अपने सारी बातें तुम श्रीरघुनाथजीसे कहना और
आत्र तुम भी मुझ देव जाओ । मैं इस समय श्रुतकालका
उन्मत्तन करके गर्मनी हो चुकी हूँ ॥ १८ ॥

एव श्रुत्वा सीताया लक्ष्मणो यूनप्रेतन ॥ १९ ॥
शिरसा यन् धर्णां व्याहृतं न दाशाक ह ।

‘सीता इस प्रकार कर्नेपर लक्ष्मणरा मन बहुत दुःखी
हूँ आपमें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिग्रन्थ उत्तरकाण्डेऽष्टमोऽध्यायः समा ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीरामचरितमणि अष्टमोऽध्याय उत्तरकाण्डे अष्टमोऽध्याय समा पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

हो गया । उन्होंने घस्तीपर माथा टक्कर प्रणाम किया । उस
समय उनके मुखसे कोई भी बात नहीं निकल सकी ॥ १९ ॥
प्रदक्षिण च ता वृत्वा रुद्धनेव महास्वन ॥ २० ॥
ध्यात्वा मुहूर्त्तं तामाह किं मावक्ष्यसि शोभने ।

‘उन्होंने जोर-जोरसे रोने हुए ही सीता माताकी परिक्रमा
की और दो घड़ीतक शोक विचारकर उनसे कहा—‘शोभने !
आप यह मुझसे क्या कह रही हैं ? ॥ २ ॥

दृष्टपूर्वेन ते रूप पादौ दृष्टौ तजानघे ॥ २१ ॥
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहिता वने ।

‘निष्पाप पतिव्रत ! मैंने पहले भी आपका समूण रूप
कभी नहीं देखा है । कबल आपके चरणोंके ही दान किया
हूँ । फिर आज यहाँ वन में सीतारामचन्द्रजीकी अनुपस्थिति
में मैं आपकी आर कैसे देख सकता हूँ ? ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा ता नमस्कृत्य पुनानावमुपावहत् ॥ २२ ॥
आरुरोह पुननाव नाविक चाभ्यचोदयत् ।

यह धरकर उन्होंने सीतानेकी पुन प्रणाम किया और
फिर वे नावपर चढ़ गये । नावपर चक्कर उन्होंने मल्लाहको
उसे चलनेकी आज्ञा दी ॥ २२ ॥

स गत्वा चोत्तर तीर शोकभारसमन्वित ॥ २३ ॥
सम्मूढ इव दुःखेन रथमप्यावहत् द्रुतम् ।

आफके भारसे दबे हुए लक्ष्मण गङ्गाजीके उत्तरी तटपर
पहुँचकर दुःखके कारण अचेत से हो गये और उसी अवस्था
में बल्दीसे रथपर चढ़ गये ॥ २३ ॥

मुहुर्मुहु परावृत्त्य दृष्ट्वा सीतामनायवत् ॥ २४ ॥
चेष्टतां परतीरस्था लक्ष्मण प्रययानथ ।

सीता गङ्गाजीने दूखे तटपर अनाथकी तरह रोती हुई
घस्तीपर लगे यही थीं । लक्ष्मण बार-बार मुँह घुमाकर उनकी
ओर देखते हुए चल दिये ॥ २४ ॥

दूरस्थ रथमालोक्य लक्ष्मण च मुहुर्मुहु ।
निरीक्ष्यमाणा वृद्धिना सीता शोक समाविशत् ॥ २५ ॥

रथ और लक्ष्मण क्रमशः दूर होते गये । सीता उनकी
ओर बार-बार देखकर उद्विग्न हो उठी । उनके अदृश्य होते
ही उनपर गहरा शोक आ गया ॥ २५ ॥

सा तु खभारायनतां यशस्विनी
यशोधरा नाथमपश्यती सती ।
रुदोद् सा वह्निनादिते घने

महास्वनं तु रथपरायणा सती ॥ २६ ॥

जब उन्हें कोई भी अपना रथ नहीं दिखायी दिया ।
अन यशोमे धारण करनेवाली ये यशस्विनी सती सीता दुःखने
भारी भारसे दबकर चिन्तामग्न हो मयूरोंके कलनात्से गूँजते
हुए उस घनमें जोर-जोरसे रोने लगीं ॥ २६ ॥



चाननीचीसो घोण मनमो छोड़कर लक्षण लोट रह है

एकोनपञ्चाशः सर्गः

मुनिद्वयमारोसे समाचार पाकर वाल्मीकि की मीताके पास आ उन्हें सान्त्वना देना और आश्रममें लिवा ले जाना

सीता तु रुदतीं दृष्ट्वा ते सत्र मुनिद्वयका ।

प्राद्रवन् यत्र भगवतान्ते वाल्मीकिप्रध्वी ॥ १ ॥

यहाँ सीता रो रही थी, वहाँमे पाँही ही दूरपर श्रृण्वियों के कुछ बालक थे । वे उन्हें रोते देख अपने आश्रमकी ओर दौड़े, वहाँ तम तपस्यामें मन लगानेवाले भगवान् वाल्मीकि मुनि विराजमान थे ॥ १ ॥

अभियाद्य मुने पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।

सर्वे नियेद्यामासुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥

उन सब मुनिद्वयमें मरिचि चरणोंमें अभिवादन करके उनसे सीताजीने रोनेका समाचार सुनाया ॥ २ ॥

अदृष्टपुत्रा भगवन् कस्याप्येषा महामन ।

पत्नी धीरिय सम्मोहाद् विरौति विह्वलानना ॥ ३ ॥

य कहते—भगवन् । गङ्गातटपर किसी महात्मा नरेन्द्रकी पत्नी है, जो एकदम लम्बी समान जान पड़ती है । इन्हें हमलोगोंने पहल कभी नहीं देखा था । य मर्दन कारण विह्वलकुन होकर रो रही हैं ॥ ३ ॥

भगवन् साधु पश्येत्स्वदेवतामित्राच्छ्रुताम् ।

नयास्तु तीरे भगवन् परस्त्री कापि तु गिता ॥ ४ ॥

भगवन् । आप स्वयं चलकर अच्छी तरह देख लें । ये आकाशसे उतरी हुई किसी देवी-सी दिखती देती हैं । प्रभो ! गङ्गाजीन तटपर अब व कइ भेद सुन्दरी की देनी है, बहुत दुली हैं ॥ ४ ॥

दृष्ट्वास्माभिः प्रकृतिता दृढ शोकपरपणा ।

अनहा दुःखशोकान्म्यामेका दीना धनाद्ययत् ॥ ५ ॥

हमने अपनी आँगों देखा है, ये बड़े बर-बर रो रही हैं और गहर शोकमें डूबी हुई हैं । वे दुःख और शोक भगवन् योग्य नहीं हैं । अकली हैं, दीन हैं और अनापकी तरह दिखत रही हैं ॥ ५ ॥

न होना मानुषीं विप्र सप्रियाया प्रयुज्यताम् ।

आधमस्याविदूरे च त्वामिय शरण गता ॥ ६ ॥

हमारी समझमें ये मानकी ही नहीं हैं । अनका इनका गल्लर करना चाहिये । इस आश्रममें पाँही ही दूरपर होनेके कारण ये बसपने आनकी शरणमें आयी हैं ॥ ६ ॥

प्रातारमिच्छते साध्वी भगवत्प्राप्तुमदसि ।

तया तु पचन धुन्वापुद्गम्या मिथिय धमरित् ॥ ७ ॥

तपसा लब्धचतुष्पाद् प्राद्रवन् यत्र मैथिली ।

भगवन् । ये साध्या देवी अपने लिये कइ रखत

रही हैं । अन आप इनकी रक्षा करें । उन मुनिद्वयमें से यह बात सुनकर घनश महर्षिने मुदिने निश्चिन करन भगवती बातका ज्ञान लिया क्योंकि उन्हें तपसाद्वारा शिष्य हलि प्राप्त थी । जिनकर वे उस स्थानपर दौड़े हुए आये, वहाँ मिथिलत कुमारों सीता विराजमान थी ॥ ७ ॥

त प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या रौत महामतिम् ॥ ८ ॥

त तु देशमभिप्रेत्य किञ्चित् पदम्या मदामति ।

अभ्यमादाय रुचिर आद्वयीतीरमागमत् ।

ददर्श राघवस्येष्टा सीता पत्नीमनाधरत् ॥ ९ ॥

उन परम बुद्धिमान् मरिचि जल देग उनर लिय भी उनर साथ हा लिय । कुछ पैदल चलकर व महामति मरिचि मुन्दर अप्य लिय गङ्गातटवर्ती उस स्थानपर आये । वहाँ आकर उन्होंने भीष्मनापकी प्रिय पत्नी सीताको अनापकी ही दृष्टमें देखा ॥ ८ ॥

सा सीता शोकभारानां वाल्मीकिमुनिपुत्रम् ।

उत्ताच मधुरा वाणीं हृदयगिरि तेजसा ॥ १० ॥

होकर भारने पीड़ित हुई सीता ने अपने तेजसे आह्वानित की करत हुए मुनिकर वाल्मीकि मधुर वाणीमें बत—॥ १० ॥

स्त्रिय दशरथस्य स्य रामस्य महिषी प्रिया ।

जनस्य सुता राम स्वागत ते पतिव्रत ॥ ११ ॥

पतिव्रते । तुम सदा दारपरी पुत्रपू मायाज भीरमकी प्यारी पत्नी और मिथिलाने सब धनकी पुत्री हो । तुम्हारा स्वागत है ॥ ११ ॥

आयाती धामि विजाना मया धमममाधिना ।

कारण धैर्य सर्व म हृदयनोपलभितम् ॥ १२ ॥

अब तुम यहाँ आ रही थीं, तभी अपनी धमममपिना द्वारा मुझ हृदय पर आ गया था । तुम्हारा वरिष्ठाणा अब ज्ञाप्य करता है, उमे देने अपने मनग ही ज्ञान दिया है ॥

तय चैव महाभाग विदित मम तत्पत ।

सर्वं च विदित माय जलोक्य यदि धर्मे ॥ १३ ॥

महामन्त्रे । तुम्हारा हृदय हृदय में मेने डीक डीक ज्ञान दिया है । शिष्योंने अब कुछ हा रता है पर अब मुझ विदित है ॥ १३ ॥

मयापा येति सीत न ततोऽप्यन चापुता ।

विद्यम्या भय वैर्दि साम्प्रत मयि पतन ॥ १४ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः.

मुनिकुमारोंसे समाचार पाकर बाल्मीकिना सीताके पास आ उन्हें सान्त्वना देना और आश्रममें लिया ले जाना

सीता तु रुदतीं दृष्ट्वा ते तत्र मुनिद्वारका ।

प्राद्वयन् यत्र भगवतास्ते बाल्मीकिरुग्रही ॥ १ ॥

वहाँ सीता रो रही थी, वहाँसे थोड़ी ही दूरपर ऋषियों के कुछ बालक थे । वे उन्हें रोते देख अपने आश्रमकी ओर दौड़े; वहाँ उग्र तपस्यामें मन लगायेवाले भगवान् बाल्मीकि मुनि विराजमान थे ॥ १ ॥

अभियाद्य मुने पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।

सर्वे निवेदयामास्तुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥

उन सब मुनिकुमारोंने महर्षिके चरणोंमें अभिगदन करके उनमें सीताजीके रोनेका समाचार सुनाया ॥ २ ॥

अष्टपृष्ठा भगवन् कस्याप्येषा महारामन ।

पत्नी श्रीरिव सम्मोहाद् विरौति विवृतानना ॥ ३ ॥

वे बोले—‘भगवन् ! गङ्गातटपर किहीं महात्मा नरेशकी पत्नी हैं; जो साक्षात् श्वसीके समान जान पड़ती हैं । इन्हें हमलोगोंने पहले कभी नहीं देखा था । वे मोहके कारण विकृतमुख होकर रो रही हैं ॥ ३ ॥

भगवन् साधु पश्येत्स्व देवतामित्राश्चाच्युताम् ।

नद्यान्तु सीरे भगवन् वरुणी कापि तु निता ॥ ४ ॥

‘भगवन् ! आप स्वयं चलकर अच्छी तरह देख लें । वे आनामने उत्तरी हुई किसी देवी-सी दिखायी देती हैं । प्रभो ! गङ्गाजीके तटपर जो वे कोई भेद सुन्दरी ली बैठी हैं; बहुत दुखी हैं ॥ ४ ॥

दृष्ट्वास्माभि प्रवक्षिता दद शोकपरयणाम् ।

अनर्हो तु खशोकाभ्यामेका दीना अनाथम् ॥ ५ ॥

‘हमने अपनी आँखों देखा है, वे बड़े बोर-बोरेसे रोती हैं और गहरे शोकमें डूबी हुई हैं । वे दुःख और शोक भोगनेके योग्य नहीं हैं । अकेली हैं, दीन हैं और अनाथकी तरह विरक्त रही हैं ॥ ५ ॥

न होना मानुर्या विप्र सत्त्वियास्या प्रयुज्यताम् ।

आश्रमस्यापिदूरे च त्वामिय दारण गता ॥ ६ ॥

‘हमारी समझमें ये मानवी ली नहीं हैं । आपको इनका एलकार करना चाहिये । इस व्याममने थोड़ी ही दूरपर होनेके कारण ये याज्ञवल्के आपकी दारणमें आयी हैं ॥ ६ ॥

प्रातारमिच्छते साध्वी भगवत्सामुमर्हसि ।

तेषां तु घञ्चन ध्रुत्वा पुद्ग्या निश्चित्य धर्मविष्णुः ॥ ७ ॥

तपसा लम्पचक्षुष्मान् प्राद्वयद् यत्र मैथिली ।

‘भवान् ! ये साध्वी देवी अपने लिये कोई शक हूँद रही हैं । अब आप इनकी रक्षा करें ।’ उन मुनिकुमारोंकी यह बात सुनकर भगवत् महर्षिने बुद्धिमें निश्चित करके अच्छी बातकी ज्ञान लिया क्योंकि उन्हें तपस्याद्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त थी । जानकर वे उस स्थानपर दौड़े हुए आय, वहाँ मिथिलेश कुमारों सीता विराजमान थी ॥ ७ ॥

न प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या होन महामतिम् ॥ ८ ॥

त तु देशमभिप्रेत्य किञ्चित् पद्भ्या महामति ।

अर्घ्यमादाय रुचिर जाह्नवीतीरमागम् ।

ददर्श राघवस्येषा सीता पत्नीमनाथयत् ॥ ९ ॥

उन परम बुद्धिमान् महर्षिके जाते देख उनसे शिष्य भी उनके साथ हो लिये । कुछ पैदल चलकर वे महामति महर्षि सुन्दर अव्य लिये गङ्गातीरवर्ती उस स्थानपर आये । वहाँ आकर उन्होंने भीरखुनापट्टीकी प्रिय पत्नी सीताको अनाथकी ली दर्शायें देखा ॥ ९ ॥

ता सीता शोकभारतां बाल्मीकिर्मुनिपुङ्गव ।

उवाच मधुरा वाणीं ह्लादयन्निन तेजसा ॥ १० ॥

शोकके भारमें पीड़ित हुई सीताको अपने तेजमें आह्लादित की करते हुए मुनिकर बाल्मीकि मधुर वाणीमें बोलें—॥ १० ॥

स्तुतु । दशरथस्य त्व रामस्य महिषी प्रिया ।

अनस्य सुता राज स्वागत ते पतिव्रते ॥ ११ ॥

‘पतिव्रते ! तुम राज दशरथकी पुत्रवधू, महाराज श्रीरामकी प्यारी पत्नी और मिथिलाके राजा जनककी पुत्री हो । तुम्हारा स्वागत है ॥ ११ ॥

आयाती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना ।

कारण चैव सर्व मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥ १२ ॥

‘जब तुम वहाँ आ रही थी, तभी अपनी धर्मसमाधिने द्वारा मुझे इसका पता लगा गया था । तुम्हारे परित्यागका जो सब कारण है, उन्में मैंने अपने मनमें ही ज्ञान लिया है । तब चैव महाभागें विदित मम सरयत । सर्वं च विदित महा प्रेलेप्ये यदि वसने ॥ १३ ॥

‘महामाने ! तुम्हारा सब कृत्वात मैंने ठीक ठीक ज्ञान लिया है । प्रिलेनीमें जो कुछ हो रहा है, वह सब मुझे विदित है ॥ १३ ॥

अपाया वेदि सीते त तपोलम्बेन चक्षुषा ।

विद्वम्भा भय वैदेदि साम्प्रत मयि यतसे ॥ १४ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्ग

मुनिकुमारोंसे समाचार पाकर वाल्मीकिका सीताके पास आ उन्हें सान्त्वना देना और आश्रममें लिवा ले जाना

सीता तु रुदतीं दृष्ट्वा ते तत्र मुनिद्वारका ।

प्राद्रघ्नन् यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुप्रधी ॥ १ ॥

जहाँ सीता रो रही थीं, यहँसे थोड़ी ही दूरपर ऋषियों के कुछ बालक थे । वे उन्हें रोते देख अपने आश्रमकी ओर दौड़े, जहाँ उम्र तपस्यामें मन लगानेवाले भगवान् वाल्मीकि मुनि विराजमान थे ॥ १ ॥

अभिग्राह्य मुने पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।

सर्वे निवेदयामास्तुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥

उन सब मुनिकुमारोंने महर्षि केरणोंमें अभिवादन करके उनसे सीताकी रोकका समाचार सुनाया ॥ २ ॥

अष्टप्रपूर्वा भगवन् कस्याप्येषा महामन ।

पत्नी श्रीरिय सम्मोहाद् विरैति विह्वलानना ॥ ३ ॥

वे बोले—‘भगवन् ! गङ्गातटपर कि-ही महात्मा नरेशकी पत्नी है, जो साधारण लम्बीके समान जान पड़ती है । इ-ई हमलेगोंने पहले कभी नहीं देखा था । वे मोहके कारण विकृतमुख होकर रो रही हैं ॥ ३ ॥

भगवन् साधु पश्येत्स्य देवतामिय स्वाच्छ्रुताम् ।

नद्यास्तु तीरे भगवन् वरुणी फाणि दु विता ॥ ४ ॥

‘भगवन् ! आप स्वयं चलकर अच्छी तरह देख लें । वे आकाशसे उठरी हुई किसी देवी-सी दिव्यामयी देती हैं । प्रभो ! गङ्गाकीके तटपर जो वे कोई श्रेष्ठ सुन्दरी ली बैठी हैं, बहुत सुली हैं ॥ ४ ॥

दृष्ट्वास्माभि प्रवदिता दृढ शोकपरपण्या ।

अनहा दुःखशोकाभ्यामेका दीना अनाथवत् ॥ ५ ॥

‘हमने अपनी आँखों देखा है, वे बड़े गोर-जोरसे रोती हैं और गहरे शोकमें डूबी हुए हैं । वे दुःख और शोक भोगनेके योग्य नहीं हैं । अकेली हैं, दीन हैं और अनाथकी तरह शिखर रही हैं ॥ ५ ॥

न होना मानुषीं चित्र सन्निवास्या प्रयुज्यताम् ।

आश्रमस्यापिन्ने च त्वामिय शरण गता ॥ ६ ॥

‘हमारी धमसमें ये मानवी ली नहीं हैं । आपको इनका एलकार करना चाहिये । इस आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर होनेके कारण ये वास्तवमें आपकी शरणमें आयी हैं ॥ ६ ॥

प्रातारमिच्छते साध्वी भगवत्प्रातुमर्हसि ।

तेषां तु यच्चन श्रुत्वा मुदृष्या निश्चित्य धमजित् ॥ ७ ॥

तपसा लब्धचक्षुष्मान् प्राद्रघन् यत्र मैथिली ।

‘भगवन् ! ये साध्वी देवी अपने लिये कोई रक्षक ढूँढ़ रही हैं । अब आप इनकी रक्षा करें ।’ उन मुनिकुमारोंकी यह बात सुनकर धर्मेश महर्षिने बुद्धिसे निश्चित करके असली बातकी जान लिया क्योंकि उन्हें तपस्याद्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त थी । जानकर वे उस स्थानपर दौड़े हुए आये, जहाँ मिथिलेण कुमारी सीता विराजमान थीं ॥ ७ ॥

त प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या होन महामतिम् ॥ ८ ॥

त तु देशमभिप्रेत्य किञ्चित् पदभ्या महामति ।

अर्घ्यमादाय रुचिर जाल्मयीतीरमागम् ।

ददर्श राघवस्येष्टा सीता पत्नीमनाथवत् ॥ ९ ॥

उन परम बुद्धिमान् महर्षिको जाते देव उनका शिष्य भी उनसे साथ हो लिये । कुछ पैदल चलकर वे महामति महर्षि सुन्दर अन्य लिये गङ्गातटवर्ती उस स्थानपर आये । यहाँ आकर उन्होंने भीखुनायकीकी प्रिय पत्नी सीताको अनाथनी की दशामें देखा ॥ ८ ॥

ता सीता शोकभारानां वाल्मीकिमुनिपुत्रम् ।

उवाच मधुरा वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥ १० ॥

शोकक मारसे पीड़ित हुई सीताको अपने तेजसे आह्लादित की करते हुए सुनिर वाल्मीकि मधुर वाणीमें बोले—॥ १० ॥

स्नुप ददारयस्य त्व रामस्य महिषी प्रिया ।

जनकस्य सुता राम स्वगत ते पतिव्रते ॥ ११ ॥

‘पतिव्रते ! तुम राजा ददारयकी पुत्रवधू, महापुत्र भीष्मकी प्यारी पटरानी और मिथिलाके राजा जनककी पुत्री हो । तुम्हारा स्वगत है ॥ ११ ॥

आयाती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना ।

कारण चैव सर्वे मे हृदयेनोपलम्बितम् ॥ १२ ॥

‘जब तुम यहाँ आ रही थीं, तभी अपनी धर्मसमाधिसे द्वारा मुझे इसका पता लग गया था । तुम्हारे परित्यागना जो कारण है, उसे मैंने अपने मनमें ही जान लिया है ॥

तथ चैव महाभागे निश्चित मम तत्पत ।

सर्वे च निश्चित महा प्रैलोक्ये यदि धतते ॥ १३ ॥

‘महाभागे ! तुम्हारा वाप ज्ञात मैंने ठीक-ठीक जान लिया है । त्रिलोक्यमें जो कुछ हो रहा है, वह सब मुझे निश्चित है ॥ १३ ॥

अयाया चेन्नि सीति ते तपोलघन चक्षुषा ।

विश्रधा भग वैदेहि साम्प्रत मयि वतसे ॥ १४ ॥

‘सीते ! मैं तपस्याद्वारा प्राप्त हुई दिव्य दृष्टिसे जानता हूँ
कि तुम निष्पाप हो । अब विदेहनिदिनि । अब निश्चिन्त हो
जाओ । इस समय तुम मेरे पास हो ॥ १४ ॥

आश्रमस्याग्निकूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः ।
तास्त्वा वत्से यथा वत्स पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥ १५ ॥

‘बेटी ! मेरे आश्रमके पास ही कुछ तापसी स्त्रियाँ रहती
हैं, जो तपस्यामें सलग्न हैं । वे अपनी बच्चीन समान सदा
द्वन्द्वारा पालन करेंगी ॥ १५ ॥

इदमर्थं प्रतीच्छत्य विद्वधा विगतज्वरा ।
यथा स्वपुत्रमभ्येत्य त्रिषद्वै चैव मा कुर्या ॥ १६ ॥

‘यह मेरा दिया हुआ अर्थ ग्रहण करो और निश्चिन्त
एव निर्मय हो जाओ । अपने ही घरमें आ गयी हो, ऐसा
समझकर विवाद न करो’ ॥ १६ ॥

शुत्वा तु भाषित सीता मुनेः परममद्भुतम् ।
शिरसा वक्ष्य चरणौ तथेत्याह वृताञ्जलिः ॥ १७ ॥

महर्षिणा यह अत्यन्त अद्भुत भाषण सुनकर सीताने
उन्के चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़
कर कहा—‘जो आशा’ ॥ १७ ॥

त प्रयान्त मुनि सीता प्राञ्जलि पृष्ठतोऽयगात् ।
त दृष्ट्वा मुनिमायान्त दैवेष्टा मुनिपत्नयः ।
उपाजग्मुमुदा युक्ता घञ्जन चेदममुत्र ॥ १८ ॥

तब मुनि आगे आगे चल और सीता हाथ जोड़े उन्के
पीछे हो लीं । विदेहनिदिनीके साथ महर्षिने आते देख
मुनि पत्नियों उन्के पास आयीं और बड़ी प्रसन्नतासे साथ
इस प्रकार बोलीं— ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकविंशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें २१वाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः

लक्ष्मण और सुमन्त्रकी बातचीत

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे सम्प्रयेदिताम् ।
सतापमगाद् घोर लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १ ॥

मिथिलानुमापी सीतामा मुनिश्च आश्रममें प्रवेष्टा हो
गया, यह देखकर लक्ष्मण मनही मन बहुत दुखी हुए । उन्हें
घर सताप हुआ ॥ १ ॥

अग्रसीध महातेजा सुमन्त्र मन्त्रसारथिम् ।
सीतासतापजं तु त्व पश्य रामस्य सारथे ॥ २ ॥

उस समय महातेज्जी लक्ष्मण मन्त्रार्थमें सहायता देनेवाले
सारथि सुमन्त्रसे बोले—‘सुन ! देखो तो नहीं, श्रीरामसे

स्वागत ते मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमन च ते ।
अभिज्ञादयामस्त्वा सर्वा उच्यता किं च कुर्महे ॥ १९ ॥

‘मुनिश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है । बहुत दिनोंसे बाद यहाँ
आपका आगमन हुआ है । हम सभी आपसे अभिवादन
करती हैं । बताइये, हम आपकी क्या सेवा करें’ ॥ १९ ॥

तासा तद् वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिरिदमब्रवीत् ।
सीतेय समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥ २० ॥

उनका यह वचन सुनकर वाल्मीकिजी बोले—‘ये परम
बुद्धिमान् राजा श्रीरामकी धर्मपत्नी सीता यहाँ आयी हैं ॥

स्तुपा दशरथस्यैवा जनकस्य सुता सती ।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्य मया सदा ॥ २१ ॥

‘सती सीता राजा दशरथकी पुत्रवधू और जनककी पुत्री
हैं । निष्पाप होनेपर भी पतिने इनका परित्याग कर दिया है ।
अतः मुझे ही इनका सदा लालन पालन करना है ॥ २१ ॥

इमा भवत्य पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि ।
गौरयामम वाक्याद्य पूज्या षोऽस्तु विशोपतः ॥ २२ ॥

‘अब आप सब लोग इनपर अत्यन्त स्नेह दृष्टि रखें ।
मेरे कहनेसे तथा अपने ही गौरवमें भी ये आपकी विशेष
आदरणीया हैं’ ॥ २२ ॥

सुहृर्मुमुक्षु वैदेहीं परिदाय महापशा ।
समाश्रम्य शिष्यवृत्तः पुनरायामहातपा ॥ २३ ॥

इस प्रकार बारबार सीताजीको मुनिपत्नियों हाथमें
सौंपकर महापशुवाही एव महातपस्वी वाल्मीकिजी शिष्यों साथ
फिर अपने आश्रमपर लौट आये ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकविंशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें २१वाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४९ ॥



पञ्चाशः सर्गः

लक्ष्मण और सुमन्त्रकी बातचीत

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे सम्प्रयेदिताम् ।
सतापमगाद् घोर लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १ ॥

मिथिलानुमापी सीतामा मुनिश्च आश्रममें प्रवेष्टा हो
गया, यह देखकर लक्ष्मण मनही मन बहुत दुखी हुए । उन्हें
घर सताप हुआ ॥ १ ॥

अग्रसीध महातेजा सुमन्त्र मन्त्रसारथिम् ।
सीतासतापजं तु त्व पश्य रामस्य सारथे ॥ २ ॥

उस समय महातेज्जी लक्ष्मण मन्त्रार्थमें सहायता देनेवाले
सारथि सुमन्त्रसे बोले—‘सुन ! देखो तो नहीं, श्रीरामसे

अभीसे सीताजीने विरहजनित सतापका कष्ट भोगना पड़
रहा है ॥ २ ॥

ततो दुःखतर किं नु गच्छस्य भविष्यति ।
पत्नीं शुद्धसमाचारा विरुज्य जनकात्मजाम् ॥ ३ ॥

‘पत्नी, श्रीरघुनाथजीने इसमें यत्नकर दुःख क्या होगा
कि उन्हें अपनी पतिव्रताचारणवाली धर्मपत्नी जनककीपुत्री
सीतामा परित्याग करना पड़ा ॥ ३ ॥

व्यक्त ईवाद्दह मन्ये राघवस्य त्रिनाभवम् ।
वैदेह्यं सारथे नित्यं वैधं हि दुरतिप्रभम् ॥ ४ ॥

‘सारथे ! रघुनाथजीको सीताका जो यह नित्य विषेय

प्राप्त हुआ है, इसमें मैं देवको ही कारण मानता हूँ क्योंकि देवका विधान दुर्लभ होता है ॥ ४ ॥

यो हि देवान् सगन्धर्वानसुरान् सह राक्षसैः ।

निहन्त्याद् राघव मुद्ग स दैव पर्युपासते ॥ ५ ॥

‘ओ श्रीरघुनाथन ! कुपित होनेपर देवताओं, गन्धर्वों तथा राक्षसोंसहित अनुरोद्धा भी सहार कर सकते हैं, वे ही देवकी उपासना कर रहे हैं (उमका नियारण नहीं कर पा रहे हैं) ॥

पुरा राम पितुर्गन्धाद् दण्डके रिजने धने ।

उपित्या नव वर्षाणि पञ्च चैव महाबने ॥ ६ ॥

‘पहले श्रीरामचन्द्रकीके पिताके कहनेसे चौदह वर्षोंक विशाल एवं निर्जन दण्डकवनमें रहना पड़ा है ॥ ६ ॥

ततो दुःपतर भूय सीताया जिप्रयासनम् ।

पौराणा वचन श्रुत्वा नृदास प्रतिभाति मे ॥ ७ ॥

‘अब उठने भी बन्द कर दु खकी बान यह हुई कि ऊन्हें सीताजीको निरासित करना पड़ा । परन्तु पुरवाणियोंकी यात सुनकर ऐसा कर बैठना मुझे अत्यन्त निन्दयतापूर्ण कर्म जान पड़ता है ॥ ७ ॥

को नु धर्माध्य सत कर्मण्यस्मिन् यशोहरे ।

मैथिली समनुप्राप्त पौरैर्हीनार्थवादिभिः ॥ ८ ॥

‘सूत ! सीताजीके नियममें अन्यायपूर्ण यात कहनेवाले इन पुरवाणियोंके कारण ऐसे कीर्तिनाशक कर्ममें प्रवृत्त होकर श्रीरामचन्द्रजीने किस घमराशिका उपाजन कर लिया है ? ॥

एता वाचो बहुविधा श्रुत्वा लक्ष्मणभाषिता ।

सुमत्र भ्रष्टया प्राप्नो वाक्पयमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई इन अनेक प्रकारकी बातोंका सुनकर बुद्धिमान् सुमत्रने भद्रापूर्वक ये वचन कहे— ॥ ९ ॥

न सतापस्तया काय सौमित्रे मैथिलीं प्रति ।

हृष्टमेतत् पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणाग्रतः ॥ १० ॥

‘सुमित्रानन्दन ! मिथिलाशुमारो सीताके नियममें आपका खत नही होना चाहिये । हृष्टमय ! यह बात ब्राह्मणोंने आपके पिताजीक सामने ही जान ली थी ॥ १० ॥

भविष्यति हृष्ट रामो नु खपायो निसौख्यभाक् ।

प्राप्स्यते च महाबाहुर्विप्रयोग प्रियैर्दुतम् ॥ ११ ॥

‘उन दिनों दुवावाजीने कहा था कि ‘श्रीराम निश्चय ही अधिक दुःख उठावेंगे । प्रायः उनका सौख्य दिन जायगा । महाबाहु श्रीरामको शीघ्र ही अपने मित्रजनोंमें विभाग प्राप्त होगा ॥ त्वा चैव मैथिलीं चैव शत्रुप्रभरतौ तथा ।

स त्यजिष्यति धमात्मा कालेन महता महान् ॥ १२ ॥

‘सुमित्राशुमार ! धमात्मा महापुरुष श्रीराम दीर्घकाल

धीतरे धीतरे तुमको, मिथिलेशुमारोको तथा भरत और शत्रुघ्नको भी त्याग देंगे ॥ १२ ॥

इदं त्वयि न वक्तव्यं सौमित्रे भरतऽपि वा ।

रात्रौ मे व्याहृतं वाक्यं दुर्भासा यदुवाच ह ॥ १३ ॥

‘दुवासाने जो बात कही थी, उसे महाराज दारयने तुमसे, शत्रुघ्नसे और भरतसे भी कहनेकी मनाही कर दी थी ॥ महाजनसमीपे च मम चैव नरर्पभ ।

ऋषिणा व्याहृतं वाक्यं वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ १४ ॥

‘नरमेष्ट ! दुवासासुनिने बहुत बड़ जनसमुदायके समीप मेरे समक्ष तथा महर्षि वसिष्ठके निकट वह बात कही थी ॥

ऋषेस्तु वचन श्रुत्वा मामाह पुरुषर्पभ ।

सूत न कचिदेव ते वक्तव्यं जनसन्निधौ ॥ १५ ॥

‘दुवासा सुनिनी वह बात सुनकर पुरुषप्रवर दारयने मुझसे कहा था कि ‘सूत ! तुम्हें दूसरे लोगोंके सामने इस तरहकी बात नहीं कहनी चाहिये’ ॥ १५ ॥

तस्याह लोकपालस्य वाक्यं तत्सुसमाहित ।

नैव जान्यवृत्तं कुयामिति मे सौम्य दर्शनम् ॥ १६ ॥

सौम्य ! उन लोकपालस्य दशरथक उस वाक्यको मैं छूट न कहूँ यह मेरा सकल्प है । इसने लिये मैं सदा सावधान रहता हूँ ॥ १६ ॥

सर्वथैव न वक्तव्यं मया सौम्य तवाग्रत ।

यदि ते धरणे भद्रा श्रूयता रघुनन्दन ॥ १७ ॥

सौम्य रघुनन्दन ! यद्यपि यह बात मुझ आपने सामने सन्या ही नहीं कहनी चाहिये, तथापि यदि आपन मनमें यह सुनने के लिये भद्रा (उत्सुकता) हो तो सुनिये ॥ १७ ॥

यत्तप्यह नरेन्द्रेण रहस्यं श्रानितं पुरा ।

तथाप्युदाहरिष्यामि देव हि दुरतिप्रमम् ॥ १८ ॥

येनेदमीहश प्राप्त दुःख शोकसमवितम् ।

न त्वया भरतस्याग्रे शत्रुघ्नस्यापि सन्निधौ ॥ १९ ॥

‘यद्यपि पूर्वकालमें महाराजने इस रहस्यको दूरपेपर प्रकट न करनेके लिये आदेश दिया था, तथापि आज मैं वह बात कहूँगा । देवके विधानको लोपना बहुत कठिन है जिससे यह दुःख और शोक प्राप्त हुआ है । मेया ! तुम्हें भी भरत और शत्रुघ्नक सामने यह बात नहीं कहनी चाहिये’ ॥ १८ १९ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गम्भीरायपदं महत् ।

तथ्य ब्रूहीनि सौमित्रि सूत तं वाक्यमग्रवीत् ॥ २० ॥

सुमत्रका यह गम्भीर भाषण सुनकर सुमित्राशुमार लक्ष्मणने कहा— ‘सुमत्रजी ! जो सची बात हो, उसे आप अवश्य कहिये’ ॥ २० ॥

इत्यार्षे धीमद्वामागण वासमीकीय आदिकार्य उत्तरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण अद्वितीयक उत्तरकाण्डमें पञ्चसर्गों समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

मार्गमें सुमन्त्रका दुर्वासाके मुखसे सुनी हुई भृगुअपिके शापकी कथा कहकर तथा भविष्यमें होनेवाली कुछ बातें बताकर दुखी लक्ष्मणको शान्त करना

तथा सञ्चोदित स्रोत लक्ष्मणेन महात्मना ।
तद् वाक्यमृषिणा प्रोक्तं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

तब महात्मा लक्ष्मणकी प्रेरणासे सुमन्त्रजी दुर्वासाजीकी कही हुई बात उन्हें सुनाने लगे— ॥ १ ॥

पुरा नागना हि दुर्वासा अथे पुत्रो महामुनिः ।
यस्मिष्ठस्याश्रमे पुण्ये यापिक्य समुवासे ह ॥ २ ॥

‘लक्ष्मण ! पहलेकी बात है, अन्तिके पुत्रमहामुनि दुर्वासा यस्मिष्ठजीके पवित्र आश्रमपर रहकर यहाँके चार महीने बिता रहे थे ॥ २ ॥

तमाश्रम महातेजा पिता ते सुमहापशा ।
पुरोहित महात्मान दिग्धुरगमत् स्वयम् ॥ ३ ॥

‘एक दिन आपका महातेजस्वी और महान् यशस्वी पिता उस आश्रमपर अपने पुरोहित महात्मा यस्मिष्ठजीका दर्शन करने के लिये स्वयं ही गये ॥ ४ ॥

स दृष्ट्वा स्वयसकाश उल्लसन्निव तेजसा ।
उपविष्ट वसिष्ठस्य सायपादौ महामुनिम् ॥ ४ ॥

‘यहाँ उन्होंने यस्मिष्ठजीके पादमार्गमें बैठे हुए एक महा मुनिकी देखा, जो अपने तेजसे मानो सूर्यब समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ ५ ॥

तौ मुनी तापसश्रेष्ठौ विनीतो ह्यभ्युदायत ।
स ताभ्या पूजितो राजा स्वागतमासनेन च ॥ ५ ॥
पादौ फल्गुमूलश्च उवासे मुनिभि सह ।

‘तब राजाने उन दोनों तापसश्रेष्ठोंकी महर्षियोंका विनम्रपूर्वक अभिवादन किया । उन दोनोंने भी स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद एवम् फल्गुमूल समर्पित करके राजाका उत्तर किया । फिर वे वहाँ मुनियोंके साथ बैठे ॥ ५ ॥

तेषा तमोपधिपाना तास्ता सुमधुरा कथा ॥ ६ ॥
यभूय परमर्षाणा मर्यादित्यगतऽहनि ।

‘वहाँ बैठे हुए महर्षियोंकी दोपहरक समय तरह-तरहकी अत्यन्त मधुर कथाएँ हुई ॥ ६ ॥

तत कथाया कस्यापि प्राञ्जलिं प्रग्रहो नृप ॥ ७ ॥
उवाच त महात्मानमथ पुत्र तपोधनम् ।

‘तदनन्तर किसी कथापर प्रसङ्गमें महापुत्रने हाथ जोड़कर भयिक तपोधन पुत्र महात्मा दुर्वासाजीसे निनम्रपूर्वक पूछा— ॥ ७ ॥

भगवन् किममाणेन मम धनो भविष्यति ॥ ८ ॥

किमायुश्च हि मे राम पुत्राश्चान्ये किमायुष ।

‘भगवन् ! मेरा यश कितने समयतक चलेगा ! मेरे रामकी कितनी आयु होगी तथा अन्य सब पुत्रोंकी भी आयु कितनी होगी ॥ ८ ॥

रामस्य च सुतायेत्युस्तेषामायु कियद् भवेत् ॥ ९ ॥
काम्यया भगवन् प्रहि वशस्यास्य गतिं मम ।

‘भीरामथे जो पुत्र होंगे, उनकी आयु कितनी होगी ! भगवन् ! आप इच्छानुसार मेरे यशकी स्थिति बताइये ॥ ९ ॥

तन्नुत्वा व्याहृत वाक्य राज्ञो दशरथस्य तु ॥ १० ॥
दुवासा सुमहातेजा व्याहर्तुमुपचक्रमे ।

‘राजा दशरथका यह वचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासा मुनि कहने लगे— ॥ १० ॥

भृगु राजन् पुरा वृत्त तदा देवाहुरे युधि ॥ ११ ॥
दैत्या सुरैर्भस्वमाना भृगुपत्नीं समाधिता ।

‘तथा दत्ताभयास्तत्र न्यथसन्भयास्तदा ॥ १२ ॥
‘राजन् ! मुनिये, प्राचीन कालकी बात है, एक बार देवापुर-संग्राममें देवताओंसे पीड़ित हुए दैत्योंने महर्षि भृगुकी पत्नीसे शरण ली । भृगुपत्नीने उस समय दैत्योंको अमर दिया और वे उनका आश्रमपर निर्भय होकर रहने लगे ॥ ११ ॥

तथा परिगृहीतास्तान् दृष्ट्वा रुद्ध सुरेश्वर ।
अक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ॥ १३ ॥

‘भृगुपत्नीने दैत्योंका आश्रम दिया है, यह देखकर क्रुपित हुए देवेश्वर भगवान् विष्णुने तीली धारवाले चक्रसे उनका शिर काट लिया ॥ १३ ॥

‘भृगुपत्नीने दैत्योंका आश्रम दिया है, यह देखकर क्रुपित हुए देवेश्वर भगवान् विष्णुने तीली धारवाले चक्रसे उनका शिर काट लिया ॥ १३ ॥

ततस्ता निहता दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्भव ।
शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णु रिपुकुलार्दनम् ॥ १४ ॥

‘अपनी पत्नीका यश हुआ देख भाग्यवंशके प्रवक्तव्य भृगुजीने सहसा क्रुपित हो शत्रुकुलनाशन भगवान् विष्णुको शाप दिया ॥ १४ ॥

यसादवध्या मे पत्नीमवधी क्रोधमूर्च्छित ।
तस्मात् त्व मानुषे लोके जनिष्यसि जनादन ॥ १५ ॥

‘तत्र पत्नीवियोगेन प्राप्स्यसे यद्वर्षिकम् ।
‘जनादन ! मेरी पत्नीवधके योग्य नहीं थी । परन्तु आपने क्रोधसे मूर्च्छित होकर उसका शपथ किया है, इसलिए आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षोंतक आप को पत्नी वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा ॥ १५ ॥

‘तत्र पत्नीवियोगेन प्राप्स्यसे यद्वर्षिकम् ।
‘जनादन ! मेरी पत्नीवधके योग्य नहीं थी । परन्तु आपने क्रोधसे मूर्च्छित होकर उसका शपथ किया है, इसलिए आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षोंतक आप को पत्नी वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा ॥ १५ ॥

‘तत्र पत्नीवियोगेन प्राप्स्यसे यद्वर्षिकम् ।
‘जनादन ! मेरी पत्नीवधके योग्य नहीं थी । परन्तु आपने क्रोधसे मूर्च्छित होकर उसका शपथ किया है, इसलिए आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षोंतक आप को पत्नी वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा ॥ १५ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः

अयोध्याके राजभवनमें पहुँचकर लक्ष्मणका दुखी श्रीरामसे मिलना और उन्हें सात्वना देना

तत्र ता रजनीमुष्य केशिन्या रघुनन्दन ।

प्रभाते पुनस्तथाय लक्ष्मण प्रययौ तदा ॥ १ ॥

पेगिनीने तटपर वह रात बिताकर रघुनन्दन लक्ष्मण
प्रातः काल उठे और फिर वहाँसे आगे बढ़े ॥ १ ॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथ ।

अयोध्या रत्नस्तम्भपूर्णो हृष्टपुष्टजनाधृताम् ॥ २ ॥

दोपहर होते होते उनके उस गिगाह रथने रत्न घनसे
सम्पन्न तथा हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्यापुरीमें
प्रवेश किया ॥ २ ॥

सौमित्रिस्तु पर दैन्य जगाम सुमहामति ।

रामपादौ स्वमास्ताद्य उक्ष्यामि किमह गत ॥ ३ ॥

यहाँ पहुँचकर परम बुद्धिमान् सुमित्राजुमारका बड़ा दुःख
हुआ । वे सोचने लगे—'मैं भीरामचन्द्रकी चरणोंक समीप
चाहूँ क्या कहूँगा ?' ॥ ३ ॥

तस्यैव चिन्तयानस्य भयन शशिसन्निभम् ।

रामस्य परमोदार पुरस्तात् समदृश्यत ॥ ४ ॥

य इह प्रकार सोच विचार कर ही रहे थे कि चन्द्रमाक
समान उज्ज्वल भीरामका विशाल राजभवन सामने
दिलखी दिया ॥ ४ ॥

राष्ट्रस्तु भवनद्वारि सोऽधतीर्य नरोत्तम ।

धराङ्मुखो दीनमना प्रविशेदनिगारित ॥ ५ ॥

राजमहलके द्वारपर रथसे उतरकर वे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण
नीचे मुक्त किये दुली मनसे त्रेह टाक भीतर चले गये ॥

स हृष्टा राघव दीनमासीन परमासने ।

नेत्राश्रयामधुपूर्णाभ्या ददशाप्रजम्प्रगत ॥ ६ ॥

जम्प्राद चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीनचेतन ।

उवाच दीनया यावा प्राञ्जलि सुसमाहित ॥ ७ ॥

उन्होंने देखा भीरुपुत्राभी दुखी हाफरी एक सिंहासनपर
बैठे हैं और उनके दोनों नेत्र आँसुओंसे भरे हैं । इस अवस्था
में बड़े भाईका सामने देख दुखी मनसे लक्ष्मणने उनके दोनों
पैर पकड़ लिये और हाथ जोड़ चित्तको एकत्र करके वे
दीन वाणीमें बोलें— ॥ ६, ७ ॥

आयस्याना पुरस्त्व गिह्य जनकात्मजाम् ।

गङ्गातीरे यद्योदिते धारमोकेराधमे शुभे ॥ ८ ॥

तत्र ता य शुभाचारामाधमान्ते यशस्विनीम् ।

पुनरप्यागतो वीर पादमूलमुपासितुम् ॥ ९ ॥

‘वीर महारथजी आशा धिरोधाय करके मैं उन श्रम

आचारगाली, यशस्विनी जनककिशोरी सीताको गङ्गातटपर
वाल्मीकिके श्रम आश्रमके समीप निर्दिष्ट स्थानमें छोड़कर
पुन आपने भीचरणोंकी सेवाके लिये यहाँ लौट आया हूँ ॥

मा शुच पुरुषध्याय कालस्य गतिरीदृशी ।

त्वद्विधा नहि शोचन्ति बुद्धिम तो मनस्थिन ॥ १० ॥

‘पुरुषसिंह ! आप गोक न करें । कालकी ऐसी ही गति
है । आप-जैसे बुद्धिमान् और मनस्वी मनुष्य शोक नहीं
करते हैं ॥ १० ॥

सर्वे क्षयान्ता निचया पतना ता समुच्छ्रयाः ।

सयोगा विप्रयोगान्ता मरणात् च जीवितम् ॥ ११ ॥

‘संसारमें जितने सचय हैं, उन सचका अन्त निनाश है
उत्थानका अन्त पतन है, सयोगका अन्त वियोग है और
जीवनका अन्त मरण है ॥ ११ ॥

तस्मात् पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च ।

नातिप्रसङ्ग कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्धनम् ॥ १२ ॥

‘अतः स्त्री, पुत्र, मित्र और धनमें विशेष आसक्ति नहीं
करनी चाहिये क्योंकि उनसे वियोग होना निश्चित है ॥ १२ ॥

शकस्त्वचामरमनाऽऽत्मानं विनेतुं मनसा मन ।

लोकान् सर्वोश्च काकुत्स्थ किं पुनः नोक्तमात्मनः ॥ १३ ॥

‘ककुत्स्थकुलशूण ! आप आत्मासे आत्माको, मनसे
मनको तथा सम्पूर्ण लोकोंको भी धनत रखनेमें समर्थ हैं फिर
अपने गोकको काबूमें रखना आपके लिये कौन पड़ी बात है ॥

नेहदोषु विमुह्यन्ति त्वद्विधा पुरुषयभा ।

अपराध स किल ते पुनरेप्स्यति राघव ॥ १४ ॥

‘आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष इस तरहके प्रसङ्ग आनेपर मोहित
नहीं होते । रघुनन्दन ! यदि आप दुखी रहेंगे तो वह अपवाद
आपक ऊपर फिर आ जायगा ॥ १४ ॥

यदर्थं मैथिली त्यक्त्वा अपवाद्भयान्नुप ।

सोऽपराधं पुरे राजन् भविष्यति न सशय ॥ १५ ॥

‘नरेश्वर ! जिस अपवादके भयसे आपन मिथिलेशकुमारी
का त्याग किया है, निःसंदेह वह अपवाद इस नगरमें फिर
होने लगेगा (लोग कहेंगे कि दूसरेक घरमें रही हुई स्त्रीका
त्याग करके ये राज-दिन उधकी चिन्तासे दुःखी रहत हैं) ॥

स त्व पुरुषदाहूल धैर्येण सुसमाहित ।

त्यजेमा दुःखला बुद्धिं सताप मा क्षुरप्य ह ॥ १६ ॥

‘अतः पुरुषसिंह ! आप धैर्यसे चित्तको एकत्र करके
इस दुर्बल शोक-बुद्धिका त्याग करें—स्वतः न हों ॥ १६ ॥



जानकीजीको वनमें छोड़कर लौटे हुए लक्ष्मणजी श्रीरामसे मेंट

एवमुक्तः स काकुत्स्थो लक्ष्मणेन महात्मना ।
उवाच परया प्रीत्या सौमित्रि मित्रवत्सल ॥ १७ ॥
महात्मा लक्ष्मणके इष प्रकार कहनेपर मित्रवत्सल
भीर्युनाथजीने बड़ी प्रसन्नताक साथ उन मुमित्राकुमार
से कहा— ॥ १७ ॥
एयमेतन्नरश्रेष्ठ यथा उवसि लक्ष्मण ।
परितोषश्च मे वीर मम कायानुशासने ॥ १८ ॥
‘नरश्रेष्ठ वीर लक्ष्मण ! तुम जैसा कहते हो, ठीक ऐसी

ही बात है । तुमने मेरे आदेशका पालन किया, इससे मुझे बड़ा
सन्तोष है ॥ १८ ॥
निवृत्तिश्चागता सौम्य सतापश्च निराहृत ।
भवद्वाच्यं सुरचिरेनुनीतोऽस्मि लक्ष्मण ॥ १९ ॥
‘सौम्य लक्ष्मण ! अब मैं दुःखसे निवृत्त हो गया ।
सतापका मैंने हृदयसे निगल दिया और तुम्हारे सुन्दर वचनों
से मुझे बड़ी शान्ति मिली है’ ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीक्ये आदिकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टादशस्कंध अद्वितीयक उत्तरकाण्डमें नावनों सा पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

श्रीरामका कार्यार्थी पुरुषोंकी उपेक्षासे राजा नृगको मिलनेवाली आपकी कथा
सुनाकर लक्ष्मणको देखभालके लिये आदेश देना

लक्ष्मणस्य तु तद् वाक्यं निद्राम्य परमाद्भुतम् ।
सुप्रीतश्चाभनद् रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
लक्ष्मणके उस अत्यन्त अद्भुत वचनना सुनकर श्रीराम
चन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥
दुर्बलस्त्रीदृशो यः पुरस्मिन् काले निशेषत ।
यादृशस्य महाबुद्धिर्मम सौम्य मनोऽनुग ॥ २ ॥
‘सौम्य ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो । जैते तुम मेरे मनका
अनुसरण करनेवाल् हो, एसा भाई विशेषतः इस समय मिलना
कठिन है ॥ २ ॥
यद्य गे हृदये किञ्चिद् वर्तते शुभलक्षण ।
तन्निशामय च श्रुत्वा कुरुष्व वचन मम ॥ ३ ॥
‘शुभलक्षण लक्ष्मण ! अब मेरे मनमें जो बात है, उसे
सुनो और सुनकर वैसा ही करो ॥ ३ ॥
चत्वारो दिक्पताः सौम्य कार्यं पौरजनस्य च ।
अङ्गनाणस्य सौमित्रे तमे ममाणि वृन्तति ॥ ४ ॥
‘सौम्य ! मुमित्राकुमार ! मुझे पुरवासियोंका काम किय
बिना चार दिन बीत चुकें हैं, यह बात मेरे भग्नमनको विदीन
कर रही है ॥ ४ ॥

निष्ठदेह सद्यः अरसे निष्ठिद्र अतएव वायुउत्तारसे रहित
घोर नरकमें पड़ता है ॥ ६ ॥
भूयते हि पुत्र राजा नृगो नाम महायशः ।
बभूव पृथिवीपालो ब्रह्मण्य सत्यपाक् शुचि ॥ ७ ॥
‘सुना जाता है पहले इस पृथ्वीपर नृगनामसे प्रसिद्ध एक
महायशस्वी राजा राज्य करते थे । वे भूपाल बड़े ब्राह्मण
भक्त, सत्यवादी तथा आचार विचारसे पवित्र थे ॥ ७ ॥
स कदाचिद् गग कोटी सद्यत्सा स्वर्णभूयिता ।
नृदेगो भूमिदेवेभ्यः पुष्करेषु ददौ नृप ॥ ८ ॥
‘उन नरदेवने किसी समय पुष्कर तीर्थमें जाकर ब्राह्मणों
को सुवर्णसे भूयित तथा दण्डोंसे पुष्कर एक करोड़ गोर्द
दान कीं ॥ ८ ॥

ततः सङ्गाद् गता घेनु सवत्सा स्पर्शितानय ।
ग्राहणस्याहिताग्नेस्तु दग्धस्योऽन्धधर्तित ॥ ९ ॥
‘निष्पाप लक्ष्मण ! उस समय दूस्ती गौआँके साथ-साथ
एक दग्ध उच्छृङ्खलिते बीचन निगाह करनेवाले एव अग्नि
होत्री ब्राह्मणकी बड़देवदित गाय बहों चली गयी और राजाने
उत्स्व करके उमे किसी ब्राह्मणको दे दिया ॥ ९ ॥

स नष्टा गा लुधार्ता वै अन्विषस्तत्र तत्र ह ।
नापदयत् सर्वराष्ट्रेषु सवत्सरगणान् घहन् ॥ १० ॥
‘यह बचप्रा ब्राह्मण भूयसे पीड़ित हो उध साथी दृढ़
गायको बहुत धर्तक सारे राज्योंमें ब्धों-तर्हों दृढ़ता निरा
परतु यह उसे नहीं दिलायी थी ॥ १० ॥

ततः वनगल् गत्या जीणवत्सा निरामयाम् ।
दष्टो ता स्थिका घेनु ग्राहणस्य निषेदान् ॥ ११ ॥

‘अन्तमें एक दिन वनगत पहुँचकर उधने अपनी गाय

आह्वयन्ता प्रहृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ।
कायाधिपतिश्च पुरुषा स्त्रियो वा पुरुषर्यभ ॥ ५ ॥
‘पुरुषप्रवर ! तुम प्रजा, पुण्डित और मन्त्रियोंका
मुलाओ । जिन पुरुषों अपना क्रियोंको कोई काम हो, उनका
उपस्थित करो ॥ ५ ॥
पौरपायाणि यो राजा न करोति दिने दिने ।
स घृते नरपे घोरे पतितो नाथ सदायः ॥ ६ ॥
‘अ राजा प्रतिदिन पुरवासियोंके कार्य नहीं करता, वह

एक ब्राह्मणके घरमें देखी । वह नीरोग और दृढ़ पुण्य थी; किंतु उसका बटुड़ा बहुत बड़ा हो गया था ॥ ११ ॥

अथ ता नामधेयेन स्वकेनोवाच ब्राह्मणः ।
भागच्छ शयलेत्येव सा तु शुश्राव गौ खरम् ॥ १२ ॥

‘ब्राह्मणे अपने रखले हुए ‘शबला’ नामसे उसको पुकारा—‘शबले ! आओ ! आओ !’ गौने उस खरको सुना ॥ १२ ॥

तस्य त खरमाश्राय क्षुधार्तस्य द्विजस्य वै ।
अन्वगात् पृष्ठतः सा गौर्गच्छन्त पात्रकोपमम् ॥ १३ ॥

‘भूलसे पीड़ित हुए उस ब्राह्मणके उस परिचित खरको परचानकर वह गौ आगे-आगे जाते हुए उस अमिदुल्ल तेजस्वी ब्राह्मणके पीछे हो ली ॥ १३ ॥

सोऽपि पालयतेऽपि सोऽपि गामन्वगाद्भुतम् ।
तत्त्वा च तन्मृषि चपे मम गौरिति सत्वरम् ॥ १४ ॥
स्पर्शिता राजसिंहेन मम दत्ता नृगेण ह ।

‘जो ब्राह्मण उन दिनों उसका पालन करता था; वह भी मुरत उस गोपका पीछा करता हुआ गया और आकर उन ब्रह्मर्षिसे बोला—‘ब्रह्मन् ! वह गौ मेरी है । मुझे राजाओंमें श्रेष्ठ नृगेण इसे दानमें दिया है’ ॥ १४ ॥

तयोब्राह्मणयोगादो महात्मासीद् विपश्चितो ॥ १५ ॥
विचिन्दतो ततोऽप्यन्य दातारमभिजग्मतु ।

‘किर तो उन दोनों विद्वान् ब्राह्मणोंमें उस गौको लेकर महान् विवाद खड़ा हो गया । वे दोनों परस्पर लड़ते लड़ते हुए उन दानी नरक नृगेके पास गये ॥ १५ ॥

तौ राजभवनहारि न प्रप्तौ नृगदासनम् ॥ १६ ॥
अदोऽपान्पनेकानि वसन्तौ मोधमीयतुः ।

‘वहाँ राजभवनके दरवाजेपर आकर वे कई दिनोंतक निचे रहे; परंतु उन्हें राजका न्याय नहीं प्राप्त हुआ (वे उनसे मिले ही नहीं) । इससे उन दोनोंका बड़ा मोघ हुआ ॥ १६ ॥

बभूवुः स्मरामासौ तत्रभौ द्विजसप्तमौ ॥ १७ ॥
कुत्रौ परमसततौ व्यक्त्य घोराभिलषितम् ।

‘वे दोनों श्रेष्ठ महात्मा ब्राह्मण अत्यन्त संतत और कुपित हो राजाका शाप देते हुए यह घोर वाक्य बाल— ॥ १७ ॥

अपिना फापसिद्धयर्थं यस्मात् नैव दशनम् ॥ १८ ॥
गददय सन्भूताना एकलातो भविष्यसि ।

यदुपयसदृशाणि यदुपयदातानि च ॥ १९ ॥
अत्रे त्व एकलीभूतो दीर्घनाल निरस्यसि ।

इत्यादि श्रीमद्रामायणे वाक्यादीये आदिवाक्ये उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशत् सर्ग ॥ ७३ ॥

इम प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय आदिवाक्य उत्तरकाण्डमें त्रिपञ्चाशत् सर्ग पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

‘प्राञ्ज ! अपने विवादका निर्णय करानेकी इच्छासे आये हुए प्राणी पुरुषोंके कार्यकी सिद्धिके लिये छम उन्हें दशन नहीं देते हो; इसलिये तुम सप प्राणियोंसे उपकर रहनेवाले निरगिष्ठ हो जाओगे और सहस्रों वर्षोंके दीर्घकालतक गड़बड़ेमें गिरगिट होकर ही पड़े रहोगे ॥ १८ १९ ॥

उत्पत्स्यते हि लोकेऽसिन् यदूना कीतिरर्धनः ॥ २० ॥
वासुदेव इति ख्यातो गिष्णु पुरुषविग्रहः ।
सते मोक्षयिता शापाद् राजस्तस्माद् भविष्यसि ॥ २१ ॥
वृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ।
भारवतरणार्थं हि नरनारायणाद्युभौ ॥ २२ ॥
उत्पत्स्येते महावीर्यौ कलौ युग उपस्थिते ।

‘‘बस यदुत्तुलकी कीर्ति बानेवाले वासुदेवनामसे विख्यात भगवान् विष्णु पुरुषरूपसे इस जगत्में अवतार लेंगे; उस समय वे ही दुम्हें इस शापसे छुड़ायेंगे; इसलिये इस समय तो तुम गिरगिट हो ही जाओगे; किर श्रीकृष्णावतारके समयमें ही तुम्हारा उद्धार होगा । कल्पियुग उपस्थित होनेसे कुछ ही पहले महापराक्रमी नर और नारायण दोनों इस पृथ्वीका भार उतारने के लिये अवतीर्ण होंगे ॥ २०—२२ ॥

एव तौ शापमुत्पूज्य ब्राह्मणौ विगतउग्रतौ ॥ २३ ॥
ता गा हि दुर्बला वृद्धा ददतुर्ग्राहणाय वै ।

‘इस प्रकार शाप देकर वे दोनों ब्राह्मण शान्त हो गये । उन्होंने यह वृत्ती और दुबली गाय किसी ब्राह्मणको देदी २३ ॥
एव स राजा त शापमुपभुङ्क्ते सुदारणम् ॥ २४ ॥
कायार्थिना विमर्दो हि राज्ञा दोषाय कल्पते ।

‘इस प्रकार राजा युग उस अत्यन्त दारुण शापका उपभोग कर रहे हैं । अतः कार्यार्थी पुरुषोंका विवाद यदि निर्णीत न हो तो यह राजाओंके लिये महान् दोषकी प्राप्ति करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

तच्छ्रीम द्दानं महामभिषर्तु कार्त्तिक ॥ २५ ॥
सुष्टतस्य हि कार्यस्य फल नापैति पाथिय ।
तस्माद् गच्छ प्रतीक्षस्व सौमित्रे कार्ययाञ्जन ॥ २६ ॥

‘अतः कार्यार्थी मनुष्य श्रीम मरे सामने उपस्थित हों । प्रजापालनरूप पुण्यकर्मका फल क्या राजाको नहीं मिलता है ? अवश्य प्राप्त होता है । अतः सुमित्रानन्दन ! तुम जाओ; राजद्वारपर प्रतीक्षा करो कि कौन कार्यार्थी पुरुष आ रहा है’ ॥ २५ २६ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः

राजा नृगका एक सुन्दर गड्ढा बनवाकर अपने पुत्रको राज्य दे ख्य
उसमें प्रवेश करके शाप भोगना

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मण परमार्थवित् ।

उवाच प्राञ्जलिराक्ष्य राघव दक्षिणजसम् ॥ १ ॥

श्रीरामका यह भाषण सुनकर परमार्थवेत्ता लक्ष्मण दोनों
हाथ जोड़कर उदीप्त तेजवाले श्रीरघुनाथजीसे बोले— ॥ १ ॥

अत्पापराघवे काकुत्स्थ द्विजाभ्या दत्ताप इदृश ।

महान् नृगस्य राजर्षेयमदृष्ट इवापर ॥ २ ॥

‘ककुत्स्थकुलभूषण । उन दोनों ब्राह्मणोंसे जोड़ेसे ही
अत्पापपर रागर्षी नृगका द्वितीय यमदण्डके समान ऐसा
महान् शाप दे दिया ॥ २ ॥

शुभ्रा तु पापसमुक्तमार्गमात्रं पुरुषर्षभ ।

किमुवाच नृगो राजा द्विजौ शोधसमन्वितौ ॥ ३ ॥

‘पुरुषप्रवर । अपनेको शापरूपा पापमें खपुक्त हुआ
सुनकर राजा नृगने उन श्रेष्ठी ब्राह्मणोंसे क्या कहा ? ॥ ३ ॥

लक्ष्मणैरनुसक्तु राघव पुनरग्रशीत् ।

शृणु सौम्य यथा पूर्वं स राजा दत्तापविशत ॥ ४ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार पृष्ठनेपर श्रीरघुनाथजी फिर बोले—
‘सौम्य । पूर्वकालमें दत्तापमत्ता होकर राजा नृगने जो कुछ कहा,
उमें बताता हूँ, सुनो ॥ ४ ॥

अथाध्वनि गतौ निमै निमैश्च न नृपस्तदा ।

आह्वय मन्त्रिण सर्वान् नैगमान् सपुत्रोधस ॥ ५ ॥

तात्तुवाच नृगो राजा सर्वाश्च प्रहृतीस्तथा ।

तु खेन सुसमाविष्ट ध्रुयता मे समाहिता ॥ ६ ॥

‘बरा राजा नृगको यह पता लगा कि ये दोनों ब्राह्मण
चले गये और वहाँ रास्तेमें होंगे, तब उन्होंने मन्त्रियोंको,
समस्त पुरासिंहोंको, पुरोहितोंको तथा समस्त प्रहरीयोंको भी
बुलाकर तुलसे पीड़ित होकर कहा—‘आपलोग खवधान
होकर मेरी बात सुनें— ॥ ५ ॥

नारदः परतश्चैनं मम दत्त्वा महदभयम् ।

गतौ त्रिभुवनं भद्रौ वायुभूताः सन्निवृत्तौ ॥ ७ ॥

‘नारद और परत—ये दोनों कल्याणकारी और अनिष्ट
देवर्षी पर पाठ आये थे । वे दोनों ब्राह्मणोंसे दिये हुए शाप
की बात बताकर मुझे महान् भय द वायुने समान तीव्र गतिसे
नक्षत्रोंको चले गये ॥ ७ ॥

कुमारोऽयं वसुनाम स चेद्वायाभिपिच्यताम् ।

श्वध्रं च पशुं सुखरूपं त्रिपता शिरिषभिम्भम् ॥ ८ ॥

‘ये जो वसु नामक राजकुमार हैं, इन्हें इस रात्रपर
अभिपिक्त कर दिया जाय और फाँटकर भरे लिये एक ऐसा
गड्ढा तैयार करें, जिसका स्तर सुन्दर हो ॥ ८ ॥

यथाह सक्षयिष्यामि शापं द्वाहणनिःसृतम् ।

यपञ्चमेव श्वध्रं तु हिमघ्नमपरं तथा ॥ ९ ॥

श्रीमघ्न तु सुखस्पर्शमेकं कुर्वन्तु शिरालिन ।

‘ब्राह्मणक मुक्तमें निकले हुए उस शायरी वहाँ रहकर

मैं वितार्ज्जना । एक गड्ढा ऐसा होना चाहिये, जो वारंके कष्ट
का निवारण करनेवाला हो । दूसरा सदमि बचानेवाला हो
और शिथी लोग तीसरा एक ऐसा गड्ढा तैयार करें जो गर्मी
का निवारण करे और जिसका स्तर सुखदायक हो ॥ ९ ॥

फलवन्तश्च ये वृक्षा पुष्पघटपञ्च या लता ॥ १० ॥

त्रिरोप्यन्ता यहविधादद्याथावतश्च शुक्तिम ।

क्रियता रमणीय च श्वध्रणा सर्पतोदिशम् ॥ ११ ॥

सुगन्धमयसिप्यामि यात्रकालम्य पर्यय ।

पुष्पाणि च सुगन्धीनि क्रियन्ता तेषु नित्यदा ॥ १२ ॥

परिवार्यं तथा मे स्युरर्घ्यं योजनं तथा ।

‘जो फल देनेवाले वृक्ष हैं और फूल देनेवाली लताएँ हैं,

उन्हें उन गड्ढोंमें लगाया जाय । बनी छायावाले अनेक प्रकारके
वृक्षोंका वहाँ आरोपण किया जाय । उन गड्ढोंके चारों ओर
बेद बेद योजन (छ छ कीस) की भूमि घेरकर खूब रमणीय
बना दी जाय । बगनक शायका समय रातेगा, तबतक मैं वहाँ
सुखपूर्वक रहूँगा । उन गड्ढोंमें प्रतिदिन सुगन्धित पुष्प सज्जित
किये जायें ॥ १०-१० ॥

एव इत्यादि विधानं स सन्निवेदय तसु तदा ॥ १३ ॥

धूम्रनित्यं प्रना पुत्र ह्यधर्मेण पालय ।

‘ऐसी ध्याना करके राजकुमार वसुको राजसिंहासनपर

बिठाकर राजाने उस समय उनका कहा—‘वैदा । तुम प्रति
दिन धर्मपरायण रहकर अधिप धर्मके अनुसार प्रजाका
पालन करो ॥ १३ ॥

प्रत्यक्ष ते तथा शायो द्विजाभ्या मयि पातित ॥ १४ ॥

नरश्रेष्ठ सरोमभ्यामपराधऽपि तादृशे ।

‘दोनों ब्राह्मणोंने मुझपर बिच प्रकार शापद्वारा प्रहार

किया है, यह तुम्हारी आँखोंके सामने है । नरश्रेष्ठ । वेसे
जोड़ेसे अपराधपर भी यह होकर उन्होंने मुझे शाप दे दिया है ॥
मा कृयास्त्वनुसताप मन्त्रेते हि नरर्षभ ॥ १५ ॥
कृतास्तं कुशलं पुत्र येनास्मि व्यसनीहृत ।

‘पुरुषप्रवर । तुम भरे लिये खतार न करो । यदा ।

जिलने मुझे व्यथनी बनाया—सकटमें डाला है, अरना किया
हुआ यह प्राचीन कर्म ही अनुकूल प्रतिकूल रूप देनेमें समर्थ
होता है ॥ १५ ॥

प्रातःकालेयं प्राप्नोति गन्तं यान्येयं गच्छति ॥ १६ ॥

लब्धयान्यं लभते कुत्सति च सुत्सति च ।

पूर्वे जात्यन्तरे यस्य मा नियतं कुम्भ्य ह ॥ १७ ॥

“वत्स । पूर्वजन्ममें किये गये कर्मके अनुसार मनुष्य
उन्हीं वस्तुओंको पाता है, जिन्हें पानका वह अधिकारी है ।
उन्हीं स्थानोंपर जाता है, जहाँ जाना उसके लिये अनिवार्य
है तथा उन्हीं दुःखों और सुखोंको उपलब्ध करता है, जो
उसके लिये नियत हैं अतः तुम विषाद न करो” ॥१६॥ १७॥
एवमुक्त्वा नृपस्तत्र सुत राजा महायशः ।

श्वश्रु जगाम सुवृत्त चास्ताय पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

‘नरभेष्ट । अपने पुत्रसे ऐसा कहकर महायशस्वी नरपाल

हृत्पार्षे श्रीमद्भारमयणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःपञ्चासः सर्गः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरंभारामयण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौवनवौं सर्ग पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

राजा निमि और वसिष्ठका एक दूसरेके शापसे देहत्याग

एव ते नृगशापस्य निस्तरोऽभिहितो मया ।

यद्यस्ति श्रवणे श्रद्धा शृणुष्वेहापरा कथाम् ॥ १ ॥

(श्रीरामने कहा—) ‘लक्ष्मण । इस तरह मैंने तुम्हें राजा
रुग्ने शापका प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक बताया है । यदि सुननेकी
इच्छा हो तो दूसरी कथा भी सुनो’ ॥ १ ॥

एवमुक्त्वु रामेण सौमित्रि पुनरप्रवीत् ।

वृत्तिराश्वयभूताना कथाना नास्ति मे नृप ॥ २ ॥

श्रीरामचंद्र ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार फिर बोले—
‘नरेश्वर । इन आश्चर्यजनक कथाओंके सुननेसे मुझे कभी
वृत्ति नहीं होती है’ ॥ २ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्त्वु राम इक्ष्वाकुनन्दन ।

कथा परमधर्मिष्ठा श्याहृतमुपगममे ॥ ३ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर इक्ष्वाकुसुखानन्दन श्रीरामने
पुनः उत्तम धर्मसे युक्त कथा कहनी आरम्भ की— ॥ ३ ॥

आसीद् राजा निमिर्नाम इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ।

पुत्रो ह्यदृष्टानो धीर्यै धर्मै च परिनिष्ठितः ॥ ४ ॥

‘सुमित्रानन्दन । महात्मा इक्ष्वाकु पुत्रोंमें निमि नामक

एक राजा हो गये हैं, जो इक्ष्वाकुचंद्र वादवैश्व पुत्र थे । व
पराक्रम और धर्ममें पूज्य स्थिर रहनेवाले थे ॥ ४ ॥

स राजा धीयसम्पन्न पुर देवपुत्रोपमम् ।

निवेशयामास तदा अभ्यासे गौतमस्य तु ॥ ५ ॥

• श्रीमद्भागवत (नवम स्कन्ध ९ । ४) में विष्णुपुराण

(४ । २ । ११) में तथा महाभारत (अनुशासनपर्व ७ । ५)

में इत्यादिमें ही उल्लेख किया गये हैं । इनमें प्रधान य—तुष्टि,

निमि और दण्ड । इस दृष्टिसे निमि दीर्घ पुत्र मिष्ट होते हैं,

पण्य वरों में इनमें वरदान प्राप्त होता गया है । सम्भव है गुण

विशेषके कारण से ही न प्रधान बड़े गवर्ण ही और अवस्था क्रमसे
कारण ही हो ।

राजा रुग्ने अपने रहनेके लिये सुन्दर ढंगसे तैयार किये गये
गृहमें प्रवेश किया ॥ १८ ॥

एव प्रविश्येव नृपस्तदानीं

श्वश्रु महद्भ्रतन्विभूषित तत् ।

सम्पाद्यामास तदा महात्मा

शापद्विजाभ्या हि रूपा विमुक्तम् ॥ १९ ॥

‘इस तरह उस रत्नविभूषित महान् गर्वमें प्रवेश करके

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा रुग्ने ब्राह्मणोंद्वारा रोपपूजक दिये गये

उस शापकी भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

अनन्तर महाविप्रो गौतमः प्रत्यपूरयत् ।
 वसिष्ठोऽपि महातेजा इन्द्रियक्षमयाकपोत् ॥ ११ ॥
 वसिष्ठजीके चले जानेके बाद महान् ब्राह्मण महर्षि गौतमने
 आकर उनके कामको पूरा कर दिया । उधर महातेजस्वी
 वसिष्ठ भी इन्द्रका यश पूरा करने लगे ॥ ११ ॥
 निमिस्तु राजा विप्रास्तान् समानीय नराधिप ।
 शयजङ्घिमरपादौ स्तम्भपुरस्य समीपतः ।
 पञ्चार्पसहस्राणि राजा दीक्षामयाकपोत् ॥ १२ ॥
 भरोहर राजा निमिन उन ब्राह्मणोंको बुलाकर हिमालयके
 पास अपने नगरके निकट ही यज्ञ आरम्भ कर दिया, राजा
 निमिने पाँच हजार वर्योतकके लिये यज्ञकी दीक्षा ली ॥ १२ ॥
 इन्द्रियक्षान्तान्ते तु वसिष्ठो भगवान्निवृत्तिः ।
 सकाशमागतो राज्ञो हौत्र कृतमनिन्दित ॥ १३ ॥
 तदन्तरमयापदयद् गौतमेनाभिपूरितम् ।
 उधर इन्द्र-यज्ञकी समाप्ति होनेपर अनिन्य भगवान्
 वसिष्ठ श्रुति राजा निमिके पास हातुर्कर्म करनेके लिये आये ।
 वहाँ आकर उन्होंने देखा कि जो समय प्रतीक्षाके लिये दिया
 था, उसे गौतमने आकर पूरा कर दिया ॥ १३ ॥
 कोपेन महतायिणे वसिष्ठो ब्रह्मण सुत ॥ १४ ॥
 स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी मुहूर्ते समुपविशत् ।
 तस्मिन्नहनि राजर्षिर्निन्दयापहतो भृशम् ॥ १५ ॥
 यह देख ब्रह्मकुमार वसिष्ठ महान् क्रोधसे भर गये और
 राजाने मिलनेके लिये दो घड़ी वहाँ बैठ रहे । परन्तु उस
 दिन राक्षस निमि अत्यन्त निद्राके वशीभूत हो गये थे ॥
 ततो मनुष्वसिष्ठस्य प्रादुरासीन्महात्मनः ।
 अदृशनेन राजर्षेऽव्याहृतमुपचममे ॥ १६ ॥
 राजा मिले नहीं, इस कारण महामा वसिष्ठ भ्रुनिके
 बड़ा क्रोध हुआ । वे राजर्षिकी लक्ष्य करके बेलने लगे—॥
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पट्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टाध्यायी अदिष्टावक उत्तरकाण्डे पञ्चपत्रकां सा पूरा हुआ ॥ ५ ॥

यस्मात् रामस्य वृत्तान् मामवशाय पार्थिव ।
 चेत्तेन विनाभूतो देहस्ते पार्थिव्यप्यति ॥ १७ ॥
 “भूपाल निमि ! तुमने मेरी अवहेलना करके दूरे पुरेदित
 का वश कर लिया है, इसलिये तुम्हारा यह शरीर अचेतन
 होकर गिर जायगा ॥ १७ ॥
 ततः प्रतुडो राजा तु श्रुत्वा शापमुदाहृतम् ।
 ब्रह्मयोनिमयोगाच्च स राजा बोधमूर्च्छित ॥ १८ ॥
 अनन्तर राजाकी नोंद खुबी । व उनके दिले हुए
 शापकी बात सुनकर क्रोधसे मूर्छित हो गये और ब्रह्मयोनि
 वसिष्ठसे बोले—॥ १८ ॥
 अचानत शयानस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ।
 उच्चैः शान् मम शापार्णि यमदण्डमिवापरम् ॥ १९ ॥
 “मुझे आपके आगमनकी बात मालूम नहीं थी, इसलिये
 सो रहा था । परन्तु आपने क्रोधसे कल्पित होकर मेरे ऊपर
 दूरे यमदण्डकी भाँति शापान्त्रि प्रहार किया है ॥ १९ ॥
 तस्मात् तथापि ब्रह्मणे चेत्तेन विनाहतः ।
 देहः स सुखितप्रण्यो भविष्यति न सदाय ॥ २० ॥
 “अतः ब्रह्मणं । चिरन्तन शोभासे युक्त का आनन्द
 शरीर है, वह भी अचेतन होकर गिर जायगा—इसमें शय
 नहीं है ॥ २० ॥
 इति रोपयशादुभौ तदानीं
 मन्योन्यं शापितौ नृपद्विजेद्री ।
 सहसैव यमननुविद्भौ
 तनुत्याधिगतप्रभायवन्तौ ॥ २१ ॥
 इस प्रकार उस समय रोपके वशीभूत हुए वे दोनों
 नृपेन्द्र और द्विजेन्द्र परस्पर शाप दे उड़ा विदेह हो गये ।
 उन दोनोंके प्रभाव ब्रह्माधीके समान थे ॥ २१ ॥
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पट्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टाध्यायी अदिष्टावक उत्तरकाण्डे पञ्चपत्रकां सा पूरा हुआ ॥ ५ ॥

पट्टपञ्चाशः सर्गः

नवाजीके कहनेसे वसिष्ठका वरुणके वीर्यमें आवेश, वरुणका उर्वशीके समीप एक डुम्भमें
 अपने वीर्यका आधान तथा मित्रके शापसे उर्वशीका भूतलमें राचा
 पुरुरवाके याम रहकर पुत्र उत्पन्न करना

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परधीरहा ।
 ज्याय प्राञ्जलिभूत्या रायव दीक्षतेजसम् ॥ १ ॥
 भीरुमचन्द्रशेखरे मुखसे कड़ी गयी यह कथा सुनकर
 शत्रुघोषा शरार करनेवाला लक्ष्मण उठीतेजवाले भीखुनाय
 बीमे हाथ जोड़कर बोले—॥ १ ॥
 निशिष्य देही काङ्क्षस्य कथं तौ द्विजपार्थिवौ ।
 पुनर्देन सयोग जग्मनुर्वसम्भृतौ ॥ २ ॥

कृत्युत्पलभूषण । वे ब्रह्मर्षि और व भूपाल दोनों
 देवताओं भी सम्मानयण थे । उन्होंने अपने शरीरोंका
 त्याग करके फिर नूतन शरीर देने प्रदान किया । ॥ २ ॥
 लक्ष्मणेनैवमुक्तं तु राम इक्ष्वाकुनन्दन ।
 प्रत्युवाच महातेजा लक्ष्मणः पुरुरवभ ॥ ३ ॥
 लक्ष्मणके इस प्रकार पृष्ठनेपर इक्ष्वाकुनन्दन महा
 तेजस्वी पुरुरवपर भीरुमने उनसे इस प्रकार कहा—॥ ३ ॥

“वत्स ! पूर्वजन्ममें किये गये कर्मने अनुसार मनुष्य
उन्हीं वस्तुओंको पाता है, जिन्हें पानेका वह अधिकारी है।
उन्हीं स्थानोंपर जाता है, जहाँ जाना उसके लिये अनिवार्य
है तथा उन्हीं दुःखों और सुखोंको उपलब्ध करता है, जो
उसने किये नियत हैं अतः तुम विषाद न करो” ॥१६ १७॥

पश्यमुक्त्या नृपस्तत्र सुत राजा महायशः ।

श्वश्रु जगाम क्षुब्धस्तस्य पुरुषपर्यभ ॥ १८ ॥

नरभेष्ट ! अपने पुत्रसे ऐसा कहकर महायशस्वी नरपाल

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

राजा निमि और वसिष्ठका एक दूसरेके शापसे देहत्याग

पप ते नृगदापस्य निस्तोऽभिहितो मया ।

यद्यस्ति श्रवणे भद्रा शृणुष्वेहापरा कथाम् ॥ १ ॥

(श्रीरामने कहा—) ‘लक्ष्मण ! इस तरह मैंने तुम्हें राजा
नृगसे शापका प्रसन्न विस्तारपूर्वक बताया है। यदि सुननेकी
इच्छा हो तो दूसरी कथा भी सुनो’ ॥ १ ॥

पश्यमुक्तस्तु रामेण सौमित्रि पुनरधरीत ।

वृत्तिराश्रयभूतानां कथानां नास्ति मे नृप ॥ २ ॥

श्रीरामसे ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार फिर बोले—
‘नरेश्वर ! इन आश्चर्यजनक कथाओंसे सुननेसे मुझे कभी
वृत्ति नहीं होती है’ ॥ २ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राम इक्ष्वाकुनन्दन ।

कथा परमधर्मिष्ठा व्याहृतमुपपन्नमे ॥ ३ ॥

लक्ष्मणसे इस प्रकार कहनेपर इक्ष्वाकुनन्दन श्रीरामने
पुनः उत्तम धर्ममें सुक्त कथा कहनी आरम्भ की— ॥ ३ ॥

आसीद् राजा निमिनाम इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ।

पुनो द्वादशमो वीर्ये धर्मे च परिनिष्ठितः ॥ ४ ॥

‘सुमित्रानन्दन ! महात्मा इक्ष्वाकु पुत्रोंमें निमि नामक
एक राजा हो गये हैं, जो इक्ष्वाकु वंशके १२ पुत्रों में से
पराक्रम और धर्ममें पूर्णतः शिर रहनेवाले थे’ ॥ ४ ॥

स राजा वीर्यसम्पन्नः पुरः देवपुत्रोपमम् ।

निन्दायामास तदा भग्याशो मौनमस्य तु ॥ ५ ॥

● श्रीमद्रामायण (नवम स्कन्ध ६।४) में विष्णुपुराण
(४।१।११) में तथा महाभारत (अनुशासनपर्व २।५)

में इक्ष्वाकुके तीसरे पुत्र काहें गये हैं। इनमें प्रधान थे—विशुद्धि
निमि और दण्ड । इन वृत्तिसे निमि शीघ्र पुत्र सिद्ध करने में
सफल रहा मूलमें इनका कारणों का बताया गया है। सम्भव है प्रा
विशेषके कारण से हीन प्रमाण कहें गये हों और अन्वया प्रमाण
कारणों ही हों ।

राजा नृगने अपने रहनेके लिये सुन्दर ढंगसे तैयार किये गये
गड्ढोंमें प्रवेश किया ॥ १८ ॥

एष प्रविश्येव नृपस्तदानीं

श्वश्रु महद्बलविभूषितं तत् ।

सम्पाद्यामास तदा महात्मा

शापद्विजाभ्यां हि रुपा विमुक्तम् ॥ १९ ॥

‘इस तरह उस बलविभूषित महान् गतमें प्रवेश करके

उस समय महात्मा राजा नृगने ब्राह्मणोंद्वारा रोगपूर्वक दिये गये
उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस समय महात्मा राजा नृगने ब्राह्मणोंद्वारा रोगपूर्वक दिये गये

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

उस शापको भोगना आरम्भ किया’ ॥ १९ ॥

अनन्तर महाधिप्रो गौतम प्रत्यपूरयत् ।
वसिष्ठोऽपि महातेजा इन्द्रयज्ञमथाकरोत् ॥ ११ ॥

वसिष्ठजीके चल जानेके बाद महान् ब्राह्मण महर्षि गौतमने
आकर उनके कामको पूरा कर दिया । उधर महतेजस्वी
वसिष्ठ भी इन्द्रका यज्ञ पूरा करने लगे ॥ ११ ॥

निमित्तु राजा विप्रास्तान् समानीय नराधिप ।
अयजद्विमरुत्यादौ स्वपुरस्य समीपतः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि राजा दीक्षामथाकरोत् ॥ १२ ॥

अनेश्वर राजा निमित्ते उन ब्राह्मणोंको बुलाकर हिमालयके
पास अपने नगरके निकट ही यज्ञ आरम्भ कर दिया, राजा
निमित्ते पाँच हजार वर्गोत्तके लिये यज्ञकी दीक्षा ली ॥ १२ ॥

इन्द्रयज्ञायसाने तु वसिष्ठो भगवानृषिः ।
सकाशमागतो राक्षो हौत्र कर्तुमनिदिष्टः ॥ १३ ॥
तदन्तरमथापदयद् गौतमेनाभिपूरितम् ।

उधर इन्द्र-यज्ञकी समाप्ति होनेपर अनन्य भगवान्
वसिष्ठ ऋषि राज्य निमित्ते पाठ होतृकर्म करनेके लिये आये ।
वहाँ आकर उन्होंने देखा कि जो समय प्रतीक्षाके लिये दिया
था, उसे गौतमने आकर पूरा कर दिया ॥ १३ ॥

कोपेन महातापिप्रो वसिष्ठो ब्रह्मण सुतः ॥ १४ ॥
स राक्षो वरुणाकाङ्क्षी सुहृत् समुपाविशत् ।
तस्मिन्नहनि राजर्षिर्निद्रयापहतो भृशम् ॥ १५ ॥

यह देख ब्रह्मकुमार वसिष्ठ महान् क्रोधसे भर गये और
राक्षसे मिलनेके लिये दो यज्ञी वस्त्रों बैठ रहे । परन्तु उस
दिन राक्षसी निद्रि अत्यन्त निद्राके यन्त्रीभूत हो सो गये थे ॥

ततो मनुर्वसिष्ठस्य प्रादुपसी महामनः ।
अदर्शनेन राजर्षेव्याहर्तुमुपचक्रम्ये ॥ १६ ॥

प्राजा मिले नहीं, इस कारण महाराम वसिष्ठ मुनिकी
बड़ा क्रोध हुआ । ये राजर्षिकी लक्ष्य करके बोलने लगे—

इत्यार्षे धीमद्रामायणे वाक्सीक्रीये आद्रिकाण्डे उत्तरकाण्डे पञ्चब्रह्मा मयाः ॥ ५५ ॥
इस प्रकार धीवान्कीकिनिर्मित आचरामायण आद्रिकाण्डे उत्तरकाण्डमें पंचपर्वतों सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

यस्मात् स्थमन्य वृत्तज्ञानं मामवशाय पार्थिव ।
चेतनेन विनाभूतो देहस्ते पार्थिवैष्यति ॥ १७ ॥

“मृणाल निमि । तुमने मेरी अवहेलना करके दूसरे पुरोहित
का वरण कर लिया है । इसलिये तुम्हारा यह शरीर अचेतन
होकर गिर जायगा” ॥ १७ ॥

ततः प्रवृद्धो राजा तु ध्रुत्वा शापमुदाहृतम् ।
ब्रह्मयोनिमथोराच स राजा मोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥

चतनन्तर राजाकी नींद खुली । वे उनके दिये हुए
शापकी बात सुनकर क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और ब्रह्मयोनि
वसिष्ठसे बोले— ॥ १८ ॥

अज्ञानत शयानस्य मोघनं कलुषीकृत ।
उक्तज्ञानं मम शापार्ति यमदण्डमित्रापरम् ॥ १९ ॥

“मुझे आपका आगमनकी बात मालूम नहीं थी, इसलिये
सो रहा था । परन्तु आपने क्रोधसे कटपित होकर मेरे ऊपर
दूसरे यमदण्डकी भाँति शापान्तिका प्रहार किया है ॥ १९ ॥

तस्मात् तवापि ब्रह्मर्षे चेतनेन विनाहत ।
देह स सुचिरप्रत्यो भगिष्यति न सशयः ॥ २० ॥

“अतः ब्रह्मर्षे । विरन्तन शोभासे युक्त जो आपका
शरीर है, वह भी अचेतन होकर गिर जायगा—इसमें शयन
नहीं है” ॥ २० ॥

इति रोपनशादुभौ तदानीं
मन्योन्य शपितौ नृपछिजेन्द्रौ ।
सहसैव यमयुर्विदेहौ

तनुत्यथाधिगतप्रभायवन्तौ ॥ २१ ॥
इस प्रकार उस समय रोपके यन्त्रीभूत हुए वे दोनों
नृपेन्द्र और छिजेन्द्र परस्पर शाप दे सहसा विदेह हो गये ।
उन दोनोंके प्रभाव ब्रह्माजीके समान थे ॥ २१ ॥

तनुत्यथाधिगतप्रभायवन्तौ ॥ २१ ॥
इस प्रकार उस समय रोपके यन्त्रीभूत हुए वे दोनों
नृपेन्द्र और छिजेन्द्र परस्पर शाप दे सहसा विदेह हो गये ।
उन दोनोंके प्रभाव ब्रह्माजीके समान थे ॥ २१ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः

नन्नाजीके कहनेसे वसिष्ठका ऋणके वीर्यमें आवेश, वरुणका उर्वशीका समीप एक कुम्भमें
अपने वीर्यका आधान तथा मित्रके शापसे उर्वशीका मृतलमें राजा

पुरुवरुणके पास रहकर पुत्र उत्पन्न करना

रामस्य भाषितं ध्रुत्वा लक्ष्मण परवीरहा ।
उयाच प्राञ्जलिभूत्वा राघवः क्षीमतेजसम् ॥ १ ॥

भीरामचन्द्रावके मुखसे कही गयी यह कथा सुनकर
शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मण उशीस तेजवाळ धीरुनाथ
जीस हाथ छोड़कर बोले— ॥ १ ॥

निश्चिन्त्य देहौ काङ्क्षस्य कथं तौ द्विजापार्थिवौ ।
पुनर्देहेन सयोग जगमर्तुर्देवसम्मर्तौ ॥ २ ॥

“कुतल्लक्ष्मण ! वे ब्रह्मर्षि और व मृणाल दोनों
देवताओंके या सम्मनचक्र थे । उन्होंने अपने शरीरोंका
लग करके तिर नून करके देते भरा किया” ॥ २ ॥

तदनेनैवमुच्यन्तु राम इक्ष्वाकुनन्दनः ।
प्रत्युवाच नहविज्ञा लक्ष्मण पुरुरयम् ॥ ३ ॥

लक्ष्मण इत प्रकार पूछनेपर इक्ष्वाकुनन्दन मया
देवता पुनर्भव करने लगे— ॥ ३ ॥

तो परस्परशापेन देहमुत्सृज्य धार्मिकौ ।
 अभूता नृपप्रियां वायुभूतो तपोधनौ ॥ ४ ॥
 'मुमिषान दन । एक दूसरेके शापसे देह त्याग करके
 तपस्याक घनी व धर्मात्मा राजर्षि और ब्रह्मर्षि वायुरूप
 हो गये ॥ ४ ॥
 अशरीर शरीरस्य कृतेऽन्यस्य महामुनि ।
 वसिष्ठस्तु महातेजा जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ५ ॥
 'महातेजस्वी महामुनि वसिष्ठ शरीररहित हो जानेपर दूसरे
 शरीरकी प्राप्तिके लिये अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये ॥ ५ ॥
 सोऽभिवाद्य तत् पादौ देवदेवस्य धमजित् ।
 पितामहमयोराच वायुभूत इदं वचः ॥ ६ ॥
 'धर्मके शांता वायुरूप वसिष्ठजीने देवाधिदेव ब्रह्माजीके
 चरणोंमें प्रणाम करके उन पितामहसे इस प्रकार कहा—॥ ६ ॥
 भगवन् निमिषाणेन त्रिदेहत्वमुपागमम् ।
 देवदेव महादेव वायुभूतोऽहमण्डज ॥ ७ ॥
 'ब्रह्माण्डकटाहसे प्रकट हुए देवाधिदेव महादेव ।
 भगवन् । मैं राजा निमिके शापसे देहहीन हो गया हूँ, अतः
 वायुरूपमें रह रहा हूँ ॥ ७ ॥
 सर्वेया देहहीनाना महद् दुःख भविष्यति ।
 लुप्यन्ते सर्वकार्याणि हीनदेहस्य वै प्रभो ॥ ८ ॥
 देहह्यान्यस्य सद्भावे प्रसादं कर्तुमहसि ।
 'प्रभो । समस्त देहहीनोंको महान् दुःख होता है और
 होता रहेगा क्योंकि देहहीन प्राणीक सभी कार्य छूट हो जाते
 हैं । अतः दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये आप मुझपर कृपा
 करें ॥ ८ ॥
 तमुवाच ततो ब्रह्मा स्वयमूरमितप्रभ ॥ ९ ॥
 मित्रावरुणज तेज आविश त्व महायश ।
 अयोनिजस्तव्य भविता तत्रापि द्विजसत्तम ।
 धर्मेण महता युक्तं पुनरेप्स्यसि मे वदाम् ॥ १० ॥
 'तब अमिन तेजस्वी स्वयम्भू ब्रह्माने उनसे कहा—
 'महायशस्वी द्विजग्रेष्ठ । तुम मित्र और वरुणके छोड़े हुए
 तेज (बीज) में प्रविष्ट हो जाओ । यहाँ जानेपर भी तुम
 अयोनिज रूपसे ही उत्पन्न होओगे और महान् धर्मेण युक्त हो
 पुनरूपसे मेरे वदामे आ जाओगे (मेरे पुत्र होनेके कारण
 तुम्हें पुनर्बत प्रजापतिका पद प्राप्त होगा ।)' ॥ ९ १० ॥
 एवमुक्तस्तु देवेन अभिवाद्य प्रदक्षिणम् ।
 पृथ्वा पितामहं तूर्णं प्रययौ वरुणालयम् ॥ ११ ॥
 'ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर उनके चरणोंमें प्रणाम तथा
 उनकी परिक्रमा करके वायुरूप वसिष्ठजी वरुणलोकको चले
 गये ॥ ११ ॥
 तमेव कालं मित्रोऽपि वरुणत्वमकारयत् ।
 शरीरोदेन सहोपेत पूज्यमानं सुरेश्वरं ॥ १२ ॥
 'उसी दिनों मित्रदेवता भी वरुणके अधिकारका पालन

कर रहे थे । वे वरुणके साथ रहकर समस्त देवेष्वर्द्धराय पूजित
 होते थे ॥ १२ ॥
 एतस्मिन्नेव काले तु उर्वशी परमाप्सरा ।
 यदृच्छया तमुद्देशाममता सखिभिर्युता ॥ १३ ॥
 'इसी समय अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशी सखियोंसे घिरी हुई
 अकस्मात् उस स्थानपर आ गयी ॥ १३ ॥
 ता दृष्ट्वा रूपसम्पन्ना क्रीडन्ती वरुणालये ।
 तदाविशत् परे हर्षो वरुण चोर्वशीकृते ॥ १४ ॥
 'उस परम सुन्दरी अप्सराको क्षीरसागरमें नहाती और
 खेलक्रीडा करती देख वरुणके मनमें उर्वशीके लिये अत्यन्त
 उल्लास प्रकट हुआ ॥ १४ ॥
 स ता पद्मपलाशार्क्षी पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
 वरुणो धरयामास मैथुनायाप्सरोवराम् ॥ १५ ॥
 'उन्होंने प्रफुल्ल कमलके समान नेत्र और पूर्ण चन्द्रमाके
 समान मनोहर मुखवाली उस सुन्दरी अप्सराको समारामके लिये
 आर्मात्रित किया ॥ १५ ॥
 प्रत्युवाच तत् सा तु वरुण प्राञ्जलिं स्थिता ।
 मित्रेणाह वृता साक्षात् पूर्वमेव सुरेश्वर ॥ १६ ॥
 'तब उर्वशीने हाथ जोड़कर वरुणसे कहा—'सुरेश्वर !
 छात्रात् मित्रदेवताने पहलेसे ही मेरा वरण कर लिया है' ॥ १६ ॥
 वरुणस्त्यग्रवीद् वाक्यं कम्पपशरपीडितः ।
 इदं तेजं समुत्पक्ष्ये कुम्भेऽस्मिन् देवनिमिते ॥ १७ ॥
 एवमुत्सृज्य सुभ्रूणि त्यज्यह वरचर्णिनि ।
 कृतकामो भविष्यामि यदि नेच्छसि सङ्गमम् ॥ १८ ॥
 'यह सुनकर वरुणने कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होकर
 कहा—'सुन्दर रूप रगवाली सुभ्रूणि । यदि तुम मुझसे
 समागम करना नहीं चाहता तो मैं तुम्हारे समीप इस देव
 निर्मित कुम्भमें अपना यह बीज छोड़ दूँगा और इस प्रकार
 छोड़कर ही सफलमनोरथ हो जाऊँगा' ॥ १७ १८ ॥
 तस्य तल्लोकनाथस्य वरुणस्य सुभाषितम् ।
 उर्वशी परमप्रीता भूत्वा वाक्यमुवाच ह ॥ १९ ॥
 'लोकनाथ वरुणका यह मनोहर वचन सुनकर उर्वशीको
 बड़ी प्रसन्नता हुई और वह बोली ॥ १९ ॥
 काममेतद् भवत्येव हृदय मे त्वयि स्थितम् ।
 भावध्याप्यधिकं तुभ्य देहो मित्रस्य ह्यु प्रभो ॥ २० ॥
 'प्रभो । आपकी इच्छाके अनुसार ऐसा ही हो । मेरा
 हृदय विशेषतः आपमें अनुरक्त है और आपका अनुराग भी
 मुझमें अधिक है । इसलिये आप मेरे उद्देश्यसे उस कुम्भमें
 बीजाधान कीजिये । इस शरीरपर तो इस समय मित्रका
 अधिकार हो चुका है' ॥ २० ॥
 उवाच परमुक्तस्तु रेतस्तमहद्भुतम् ।
 जगद्भिसमप्रप्य तस्मिन् कुम्भे न्यवाच्यजत् ॥ २१ ॥
 'उर्वशीके ऐसा कहनेपर वरुणने प्रवर्धित अमिके समान

प्रकाशमान अग्ने अत्यन्त अद्भुत तेजः (वीर्यं) को उस कुम्भमें डाल दिया ॥ २१ ॥

उपशी त्यगमत् तत्र मित्रो वै यत्र देवता ।
ता तु मित्रं सुसकुञ्च उन्नीयमिदमग्रीत् ॥ २२ ॥

‘तदनन्तर उपशी उस स्थानपर गयी, वहाँ मित्रदेवता विराजमान थे । उस समय मित्र अत्यन्त कुपित हो उस उपशीसे इस प्रकार बोले—॥ २२ ॥

मयाभिमतमिना पूर्वं कस्मात् स्वमवसर्जिता ।
पतिमस्य वृत्तयती हिमयै दुष्टचारिणि ॥ २३ ॥

‘‘दुराचारिणि ! पहले मैंने तुझे समागमके लिये आमन्त्रित किया था किन्तु त्वलिये तुने मेरा त्याग किया और क्यों दूसरे पतिव्रत बरण कर लिया ? ॥ २३ ॥

अनेन दुष्कृतेन त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।
मनुष्यलोकास्त्राया कचित् कालं नियस्त्यसि ॥ २४ ॥

‘‘अपने इस पापके कारण मेरे क्रोधसे कष्टपित हो नू कुछ कालतक मनुष्यलोकमें जाकर निवास करोगी ॥ २४ ॥

बुधस्य पुत्रो राजर्षिं काशिराजं पुरुरवा ।
तमभ्यागच्छ दुर्गुद्वेष्टं ते भर्ता भविष्यति ॥ २५ ॥

‘‘दुर्गुद्वेष्ट ! बुधके पुत्र राजर्षि पुंरुवा, जो काशिदेशके राजा हैं, उनके पास चली जा, वे ही तेरे पति होंगे ॥ २५ ॥
ततः सा शापदोषेण पुरुरवसमभ्यगात् ।

हृत्पापैर् धीमद्रामायणे वास्मीक्यवे आदिकाण्ये उत्तरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित अथर्वनामका आदिकाण्यक उत्तरकाण्डे छठ्पञ्चाशे सर्ग पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः

बलिष्ठका नूतन शरीर धारण और निमिका प्राणियोंके नयनोंमें निवास

तां धृत्या दिव्यसकाशा कथामद्भुतदर्शनाम् ।
लक्ष्मण परमप्रीतो राघव चाफ्रममग्रीत् ॥ १ ॥

उस दिव्य एवं अद्भुत कथाको सुनकर लक्ष्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥ १ ॥

निश्चितदेहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ ।
पुनर्देहेन सयोगं जन्मतुर्देवसम्मतौ ॥ २ ॥

‘‘बाबुराज ! वे ब्रह्मर्षि वशिष्ठ तथा राजर्षि निमि जो देवताओंद्वारा भी सम्मानित थे, अपने-अपने शरीरको छोड़कर फिर नूतन शरीरने किस प्रकार संयुक्त हुए ? ॥ २ ॥

तस्य तद् भाषितं धृत्या राम सत्यपराक्रमः ।
ता कथा कथयामास वसिष्ठस्य महामनः ॥ ३ ॥

उनका यह प्रान सुनकर शत्रुघ्नराक्षसी भीरुमने महामा वसिष्ठके शरीर-ग्रहणने सम्बन्ध रखनेवाली उस कथाको पुनः कहना आरम्भ किया—॥ ३ ॥

यः स कुम्भो रघुश्रेष्ठ तेजःपूर्णो महात्मनो ।
तस्मिंस्तेजोमयौ विप्रौ सम्भूताः प्रसिद्धौ ॥ ४ ॥

प्रतिष्ठाने पुरुरव बुधस्यात्मनमौरसम् ॥ २६ ॥

‘‘तब वह शत्रुघ्न दोहते दूधित हो प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग झील) में बुधके औरस पुत्र पुंरुवाके पास गयी ॥ २६ ॥

तस्य जज्ञे ततः धीमानाया पुत्रो महाबलः ।
नहुपो यस्य पुत्रस्तु यमुवेन्द्रसमद्युतिः ॥ २७ ॥

‘‘पुंरुवाके उपशीके गर्भसे धीमान् आयु नामक महाबली पुत्र हुआ, जिसके पुत्र इन्द्रतुल्य तेजस्वी महाबल नहुप थे ॥ वज्रमुत्सृज्य वृत्राय आन्तेऽथ त्रिदिवेश्वरे ।

शतं यर्षसहस्राणि येनेन्द्रं प्रशासितम् ॥ २८ ॥

‘‘वृत्रामुरार वज्रका प्रहार करके सय देवराज इन्द्र ब्रह्म हत्याके भयसे दुम्बी हो ड़िप गये थे, तब नहुपने ही एक लाख वर्योतक ‘इन्द्र’ पदपर प्रतिष्ठित हो त्रिलोकीके राज्यराज्यन किया था ॥ २८ ॥

सा तेन शापेन जगाम भूमिं
तदोर्वशीं चाकृती सुनेत्रा ।

बहूनि वर्णव्यससद्यः सुभ्रू
शापक्षयादिन्द्रसदो ययौ च ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

‘‘मनेहर दौत और सुन्दर नयनवाली उपशी मित्रके दिय हुए उस शापने भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्योतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामें चली गयी ॥ २९ ॥

तेनस्वी वसिष्ठमुनिका प्रादुर्भाव हुआ । जो इक्ष्वाकुकुलके देवना (गुप्त या पुरोहित) हुए ॥ ७ ॥

तमिह्माकुर्महातेजा जातमाश्रमनिर्दिष्टम् ।

यमे पुरोघस सौम्य घशस्यास्य हिताय नः ॥ ८ ॥

‘सौम्य लक्ष्मण ! महातनवी राजा इक्ष्वाकुने उनके वहाँ जन्म ग्रहण करते ही उन अनिष्ट मुनि वसिष्ठका हमारे इस कुलके हितके लिये पुरोहितके पदपर वर्ण कर लिया ॥ ८ ॥

एव त्वपूर्वदेहस्य वसिष्ठस्य महात्मन ।

कथितो निर्गम सौम्य निमेषः शृणु यथाभवत् ॥ ९ ॥

‘सौम्य ! इस प्रकार नूतन शरीरसे कुछ वसिष्ठमुनिकी उत्पत्तिका प्रकार बताया गया । अब निमिका जैसा श्रुतान्त है, वह सुनो ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा विदेह राजानमृषय सर्व एव ते ।

त च ते याजयामासुर्यज्ञदीक्षा मनीषिण ॥ १० ॥

‘राजा निमिको देहसे प्रथक हुआ देख उन सभी मनीषी ऋषियोंने स्वयं ही यशकी दीक्षा ग्रहण करके उस यशको पूरा किया ॥ १० ॥

त च वेद नरेन्द्रस्य रक्षति स द्विजोत्तमा ।

गधैमाल्यैश्च यज्ञैश्च पौरभृत्यसमन्विता ॥ ११ ॥

‘उन श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियोंने पुरवासियों और सेवकोंके साथ रह कर गन्ध, पुष्प और यज्ञोपवित राजा निमिके उस शरीरको तेलके पढ़ाह आदिमें सुरक्षित रक्खा ॥ ११ ॥

ततो यज्ञे समाप्ते तु भृगुस्तत्रेदमवग्रीत् ।

आनयिष्यामि ते चेतस्तुष्टोऽसि तव पार्थिव ॥ १२ ॥

‘तदनन्तर जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब वहाँ भृगुने कहा— ‘यजन् । (राजाके शरीरके अभिमानी जीवात्मन् ।) मैं तुम पर बहुत उत्पन्न हूँ, अतः यदि तुम चाहो तो तुम्हारे जीव चैतन्यको मैं पुनः इस शरीरमें लूँ दूँगा ॥ १२ ॥

सुप्रीताश्च सुरा सर्वे निमेषचेतस्तदाश्रयन् ।

यत्तव राजर्षे क ते चेतो निरूप्यताम् ॥ १३ ॥

‘भृगुके साथ ही अन्य सब देवताओंने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर निमिके जीवात्मासे कहा— ‘राजर्षे ! वर माँगो । तुम्हारे जीव चैतन्यको वहाँ स्थापित किया जाय’ ॥ १३ ॥

एवमुक्त्वा सुरैः सर्वनिमेषचेतस्तदाश्रयन् ।

नेत्रेषु सप्तभूतानां यसेय सुरसत्तमा ॥ १४ ॥

‘समस्त देवताओंने ऐसा कहनेपर निमिके जीवात्माने उस समय उनमें कहा— ‘सुरश्रेष्ठ ! मैं समस्त प्राणियोंने नेत्रों में निगल करना चाहता हूँ ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तपञ्चादये सप्त ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्रामायणनिमित्त आश्वलायन आदिब्राह्मण ऋषिप्रणीत उत्तरकाण्डमें सप्तपञ्चादये सप्त पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

यादमित्येष त्रिषुधा निमेषचेतस्तदाश्रयन् ।

नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चरिष्यसि ॥ १५ ॥

‘तब देवताओंने निमिके जीवात्मासे कहा— ‘बहुत अच्छा, तुम वायुरूप होकर समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें विचरते रहोगे ॥ १५ ॥

त्वत्कृते च निमिष्यन्ति चक्षुषि पृथिवीपते ।

वायुभूतेन चरता विध्वामार्थं सुदुर्मुहुः ॥ १६ ॥

‘‘पृथ्वीनाथ ! वायुरूपसे विचरते हुए आपके सम्मुखसे जो यकाबट होगी, उसका निवारण करके विध्वाम पानेके लिये प्राणियोंके नेत्र बारबार बद ही जाया करेंगे’ ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु त्रिषुधा सर्वे जन्मुर्ययागतम् ।

श्रुतयोऽपि महात्मानो निमेषेह समाहरन् ॥ १७ ॥

अरणिं तत्र निक्षिप्य मथनं चक्रुर्जोत्सा ।

‘ऐसा कहकर सब देवता वैसे आये थे, वैसे चले गये, फिर महात्मा ऋषियोंने निमिके शरीरको पकड़ा और उसपर अरणि रखकर उसे बलपूर्वक मथना आरम्भ किया ॥ १७ ॥

मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेषस्तदा ॥ १८ ॥

अरण्या मथ्यमानाया प्रादुर्भूतो महातपाः ।

मथनामिथिरित्याहुर्जननाजानकोऽभवत् ॥ १९ ॥

यस्माद् विदेहात् सम्भूतो वैदेहस्तु तत स्मृत ।

एव विदेहराजश्च जनकः पूर्वकोऽभवत् ।

मिथिनाम महातेजास्तेनाथ मैथिलोऽभवत् ॥ २० ॥

‘पूर्वत् मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम करते हुए उन महात्माओं ने जब निमिके पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अरणि मथन आरम्भ किया, तब उस मथनसे महातपस्वी मिथि उत्पन्न हुए । इस अद्भुत अन्धका हेतु होनेके कारण वे जनक कहलाये तथा विदेह (जीव रहित शरीर) से प्रवृत्त होनेके कारण उन्हें वैदेह भी कहा गया । इस प्रकार पहले विदेहराज जनकका नाम महातेजस्वी मिथि हुआ, जिससे यह जनकवर्ग मैथिल कहलाया ॥ १८-२० ॥

इति सर्वमशेषतो मया

कथितं सम्भवकारणं तु सौम्य ।

नृपपुत्र्यशापजं द्विजस्य

द्विजशापाद्यं यदद्भुतं नृपस्य ॥ २१ ॥

‘सौम्य लक्ष्मण ! राजाओंमें श्रेष्ठ निमिके शापसे ब्राह्मण वसिष्ठका और ब्राह्मण वसिष्ठके शापसे राजा निमिका जो अद्भुत कर्म घटित हुआ, उसका सारा कारण मैंने तुम्हें कह सुनाया’ ॥ २१ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

ययातिको शुक्राचार्यका शापः

एव मुच्यते रामे तु लक्ष्मण परवीरहा ।
प्रत्युवाच महात्मानः स्वल्पन्तमिह तेजसा ॥ १ ॥
भीरुमते ऐसा कहनेपर शत्रुवीरका सवार करनेवाले
लक्ष्मणने तेमके प्रशंसित होते हुए से महात्मा भीरुमको
सम्बोधित करके इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥
महद्भूतमाश्रये विदेहस्य पुरातनम् ।
निर्वृत्त राजदाईल वसिष्ठस्य मुनेश्च ह ॥ २ ॥
'वृषप्रेष्ठ । राज विदेह (निमि) तथा वसिष्ठ मुनिज
पुरातन वृत्तान्त अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यजनक है ॥ २ ॥
निमिस्तु क्षत्रिय दुरो निरोपेण च दीक्षित ।
न क्षम हतवान् राना वसिष्ठस्य महात्मन ॥ ३ ॥
'परतु राज निमि क्षत्रिय, 'शूरी और विरोधत यशरी
दीक्षा लिये हुए थे अन उन्होंने महामा वसिष्ठके प्रति
उचित बताव नहीं किया' ॥ ३ ॥
परमुचस्तु तेनाप राम क्षत्रियपुरुष ।
उवाच लक्ष्मण वाक्य सर्वशास्त्रविदारदम् ॥ ४ ॥
रामो रमयता श्रेयो आतर दीक्षतेनसम् ।
लक्ष्मणक इस तरह कहनेपर दूसरों मनका समाने (प्रसन्न
रहने) वालोंमें श्रेष्ठ क्षत्रियदिग्गमणि भीरामन सगुण शास्त्रोंके
ज्ञाता और उद्दीप्त तेजवी भ्राता लक्ष्मणने कहा— ॥ ४ ॥
न सर्वत्र क्षमा वीर पुरुषेषु प्रददयत ॥ ५ ॥
सौमित्रे दुःखहो योगे यया क्षान्तो ययातिना ।
सत्यानुग पुरस्सह्य तनिगोष समाहितः ॥ ६ ॥
'वीर मुमिनोदुमार । सभी पुरुषोंमें वैसी क्षमा नहीं
दिखायी देती, वैसी राजा ययातिमें थी । राजा ययातिने
सत्वगुणके अनुकूल भागका आश्रय के दुःख रोषका क्षमा
कर लिया था । वह प्रसन्न बताता हूँ, एकामचित्त होकर
मुने ॥ ५ ॥
नहुषस्य सुतो राना ययाति पौरवर्धन ।
तस्य भायाद्वय सौम्य रूपणाप्रतिम भुवि ॥ ७ ॥
भीम । नहुषने पुत्र राजा ययाति पुरवर्धन, प्रशस्त
की वृद्धि करनेवाले थे । उनसे दो पत्नियाँ थीं, जिनके हजरी
इस भूतलपर बनी दुल्ला नहीं थी ॥ ७ ॥
एका तु तस्य राजपञ्चानुपस्य पुरस्सृता ।
शर्मिष्ठा नाम दैतयी दुहिता वृषपर्वणः ॥ ८ ॥
नहु नन्दन राजर्षी ययातिकी एक पत्नीका नाम शर्मिष्ठा
था, ये राजाका दाय बटुकी सप्ताजिन थी । शर्मिष्ठा दैत्य
कुलकी कन्या और वृषभानीकी पुत्री थी ॥ ८ ॥
अया तूदानम पत्नी ययाते पुरुषार्थम् ।
न सा दयिता राक्षो देयानी सुमध्यमा ॥ ९ ॥
अया तूदानम पत्नी ययाते पुरुषार्थम् ।
न सा दयिता राक्षो देयानी सुमध्यमा ॥ ९ ॥

तयो पुत्री तु सम्भूतो रूपयन्तो समाहितौ ।
शर्मिष्ठाजनयत् पूर देवयानी यदु तदा ॥ १० ॥
'पुरुषपति । उनकी दूसरी पत्नी 'शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी
थी । देवयानी मुन्दरी होनेपर भी राजाके अधिक प्रिय नहीं
थी । उन दोनोंके ही पुत्र बड़े रूपवान् हुए । शर्मिष्ठाने पूरको
जन्म दिया और देवयानीने यदुकी । वे दोनों बालक अपने
चित्तकी एकाग्र रखनेवाले थे ॥ १० ॥
पूरस्तु दयितो राक्षो गुणेमादृष्टेन च ।
सतो दुःखसमाविष्टो यदुर्मातृमघ्नीत् ॥ ११ ॥
'अरणी माताके प्रेमयुक्त व्यवहारमें और अपने गुणोंसे
पूर राजाको अधिक प्रिय था । इन्हें यदुज्ज मनमें बड़ा दुःख
हुआ । वे मातामें बोले— ॥ ११ ॥
भार्यवस्य कुले जाना देवस्याङ्गिष्टमण ।
सहसे दृष्टत दुःखमयमान च दुःसहम् ॥ १२ ॥
'मा । तुम अनायास ही महान् कष्ट करनेवाले देवस्वरूप
शुक्राचार्यके कुलमें उत्पन्न हुई हो तो भी यहाँ हार्दिक दुःख
और दुःख अपना सहाती हो ॥ १२ ॥
आवा च सहितौ देवि प्रविशत हुताशनम् ।
राजा तु रमता सार्धं दैत्यपुत्रा यदुस्तथा ॥ १३ ॥
'अतः देवि । हम दोनों एक साथ ही अग्निमें प्रवेश कर
जायें । राजा दैत्यपुत्री शर्मिष्ठाके साथ अनन्त रात्रियोंतक
रहते रहें ॥ १३ ॥
यदि वा सहनीय ते मामनुमानमस्ति ।
क्षम त्व न क्षमिष्येऽह मरिष्यामि न सदाय ॥ १४ ॥
'यदि तुम्हें यह सब कुछ सहन करना है तो मुझे ही
प्राणत्यागकी आज्ञा दे दो । तुम्हीं सहे । मैं नहीं सहूँगा । मैं
निश्चिन्त मर जाऊँगा' ॥ १४ ॥
पुत्रस्य भाषित श्रुत्वा परमार्तस्य रोदत ।
देययानी तु सङ्कुडा सस्सार पितर तदा ॥ १५ ॥
'अत्यन्त आत हँस रहे हुए अपने पुत्र यदुकी यह
बात सुनकर देवयानीका बड़ा शोक हुआ और उन्होंने तरफाल
अग्निमें निजा 'शुक्राचार्यकी स्मरण किया ॥ १५ ॥
इक्षित तदभिषाष्य दुहितुभार्यसुता ।
आगतस्त्वरित तत्र देवयानी स यय सः ॥ १६ ॥
'शुक्राचार्य अपनी पुत्रीकी उस चपटके ज्वरकर लक्ष्मण
उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ देवयानी निधनान थी ॥ १६ ॥
छद्वा यामरुतिष्या सामप्रहणमत्रेतानम् ।
पिता दुहितर वाक्य किमेतद्विदित चात्रगीत् ॥ १७ ॥
प्रेमीका अत्यन्त, अप्रसन्न और अचानक देहतर
निकले पड़ा—यन्ते । यह क्या बात है !' ॥ १७ ॥

पुच्छन्तमसकृत् स वै भार्गव दीप्ततेजसम् ।
देवयानी तु समुद्रा पितर चाकथमग्ररीत् ॥ १८ ॥
यहमर्नि विप तीक्ष्णमपो वा मुनिसत्तम ।
भक्षयिष्ये प्रयेक्ष्ये वा न तु शक्यामि जीवितुम् ॥ १९ ॥

‘उहीत तेजवाले पिता मृगुनन्दन गुप्तचार्य जब बारबार इस प्रकार पूछने लगे, तब देवयानीने अत्यन्त क्रुपित होकर उनसे कहा—‘मुनिभेष्ट ! मैं प्रज्वलित अग्नि या अग्राह्य जल में प्रवेश कर बाँझनी अथवा विप खा लूँगी, किन्तु इस प्रकार अपमानित होकर जीवित नहीं रह सकूँगी ॥ १८ १९ ॥
न मा त्वमयजानीये दुःखितामवमानिताम् ।

घृक्षस्याग्रया ब्रह्मदिच्छते वृक्षजीविन ॥ २० ॥
‘आपने पता नहीं है कि मैं यहाँ कितनी दुखी और अपमानित हूँ । ब्रह्मन् ! वृक्षके प्रति अवहेलना होनेसे उसके आश्रित फूलों और पत्तोंको ही तोड़ा और नष्ट किया जाता है (इसी तरह आपके प्रति राजाकी अवहेलना होनेसे ही मैं यहाँ अपमान हो रहा है) ॥ २० ॥

अग्रया च राजर्षि परिभूय च भार्गव ।
मथ्यरात्रा प्रयुङ्क्ते हि न च मा यदु मन्यते ॥ २१ ॥

‘मृगुनन्दन ! राजर्षि यमाति आपके प्रति अनादरका भाव रखनेके कारण मेरी भी अवहेलना करते हैं और मुझ अधिक आदर नहीं देते हैं ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥
इस प्रकर श्रीवाल्मीकीनिर्मित आरामायण आदिकाव्य उत्तरकाण्डमें अष्टावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनपष्टितम सर्गः

ययातिका अपने पुत्र पूरुको अपना ब्रह्मपा देकर बदलेमें उसका यौवन लेना और भोगोंसे वृत्त होकर पुनः दीर्घकालके बाद उसे उसका यौवन लौटा देना, पूरुका अपने पिताकी गद्दीपर अभिषेक तथा यदुकी शपथ

श्रुत्वा दानस हृन्त तदातो नहुपात्मज ।
जरा परमिका प्राप्य यदु घञ्चनमग्ररीत् ॥ १ ॥
शुनाचार्यके क्रुपित हृदिका समाचार सुनकर नहुपकुमार ययातिको बड़ा दुःख हुआ । ‘उहै ऐसी ब्रह्मदासता प्राप्त हुई, जो दूसरेकी बगानीसे यदुली जा सकती थी । उस विलक्षण जलवस्त्राको पाकर राजाने यदुसे कहा— ॥ १ ॥

यदो त्वमसि धमशो मयर्ष प्रतिगृह्यताम् ।
जरा परमिका पुत्र भोगे रस्ये महायशः ॥ २ ॥
‘यदो ! तुम धर्मसे शरीरमें उच्चार्जित करनेके योग्य इस अरा बन्ध्यासे लो । मैं भोगोद्वाय रमण करूँगा—अपनी भोगविषयक इच्छाको पूर्ण करूँगा ॥ २ ॥

न तावत् एतदुत्पत्तोऽस्मि विप्रयेषु नरपथ ।
अनुमूय तदा कामतन प्राप्स्याम्यह जरात् ॥ ३ ॥

तस्यास्तद् घञ्चन श्रुत्वा कोपेनाभिपरीवृतः ।
व्याहृतमुपचक्राम भार्गवो नहुपात्मजम् ॥ २२ ॥
‘देवयानीकी यह बात सुनकर मृगुनन्दन शुक्राचार्यको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने नहुपपुत्र ययातिको लक्ष्य करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ २२ ॥

यस्मा मामयजानीये नाहुप त्व दुरात्मवान् ।
घयसा जरया जीर्ण दीयित्वमुपयास्यसि ॥ २३ ॥
‘नहुपकुमार ! तुम दुरात्मा होनेके कारण मेरी अवहेलना करते हो, इसलिये तुम्हारी अगत्या अरा-जीव वृद्धके समान हो जायगी—तुम सर्वथा क्षिणित हो जाओगे ॥ २३ ॥

पथमुपस्था दुहितर समाव्यास्य स भागव ।
पुनर्जगाम ब्रह्मर्षिर्भयन स्व महायशः ॥ २४ ॥
‘एलासे ऐसा कहकर पुत्रीको आश्रासन दे महायशस्वी ब्रह्मर्षि गुप्ताचार्य पुनः अपने घरको चले गये ॥ २४ ॥

स पथमुपस्था द्विजपुङ्गवाग्रयः
सुता समाव्यास्य वदेवयानीम् ।
पुनर्ययौ सूर्यसमानतेजा

दत्त्वा च शाप नहुपात्मजाय ॥ २५ ॥
‘सूर्यके समान तेजस्वी तथा ब्राह्मणशिरोमणियोंमें अग्र गण्य गुप्ताचार्य देवयानीको आश्रासन दे नहुपपुत्र ययातिको ऐसा कहकर उहै पूर्वोक्त आप दे फिर चले गये ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥
इस प्रकर श्रीवाल्मीकीनिर्मित आरामायण आदिकाव्य उत्तरकाण्डमें अष्टावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

‘नरभेष्ट ! अभीतक मैं विषयभोगोंसे वृत्त नहीं हुआ हूँ । इच्छानुसार विषयसुखका अनुभव करके फिर अपनी ब्रह्मदासता मैं व्रतसे ले लूँगा ॥ ३ ॥

यदुस्तद्वचन श्रुत्वा प्रत्युयाच नरर्षभम् ।
पुत्रस्ते दयितः पूरु प्रतिगृह्णातु वै जराम् ॥ ४ ॥

‘उनकी यह बात सुनकर यदुने नरभेष्ट ययातिको उत्तर दिया—‘आपका छाड़ले बैठ पूरु ही इस ब्रह्मदासताको ग्रहण करें ॥ ४ ॥

यदिष्टताऽहमयंपु स्वनिकर्षाद्य पार्थिव ।
प्रतिगृह्णातु वै राजन् ये सहादनास्ति भोजनम् ॥ ५ ॥

‘पृथ्वीनाथ ! मुझ को आपने धनमे तथा पातरदकर छाड़ प्यार बैठकर अधिकारसे भी वधित कर दिया है अतः जिनके साथ बैठकर आप आज्ञन करते हैं, उन्हीं लोगोंसे युवावस्था ग्रहण कीजिये ॥ ५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राजा पूरुमयाग्रीवम् ।

इयं जरा महाबाहो मर्त्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६ ॥

यदुक्ती यद् वातमुनकर राजानं पृच्छते कदा—महाबाहो ।
मेरी मुख मुनिपार न्ये तुम इस वृद्धावस्था को ग्रहण
करोगे ॥ ६ ॥

नाहुरेणैमुचन्तु पूरु प्राञ्जलिः प्रसीत् ।

धयोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि शासनोऽस्मि तव स्थित ॥

नहुष पुत्र यथानिष्ट ऐला कहनेपर पूरु हाथ चढ़कर
बोल—जिन्ही ! अपनी मेराका अवसर पास मैं धन्य हो
गया । यह आपका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह है । आपकी
आज्ञा का आज्ञा करने के लिये मैं हर तरफ से तैयार हूँ ॥ ७ ॥

पूरोर्ध्वनम्रायाय नाहुष परया मुदा ।

प्रहर्षमनुल लेभे जरा सभामयय ताम् ॥ ८ ॥

पूरुका यह स्वीकारपूर्वक वचन सुनकर नहुषकुमार
यथानिष्ट बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्हें अनुग्रह हर प्राप्त हुआ
और उन्होंने अपनी वृद्धावस्था पूरुन शरीरमें स्थापित
कर दी ॥ ८ ॥

ततः स राजा तरुण प्राप्य यज्ञान् सहस्रशः ।

यहुनर्पसहस्राणि पालयामास मेदिनीम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर तबका हुए था यज्ञाने सहस्रों यज्ञोंका
अनुष्ठान करते हुए कई हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पटन
किया ॥ ९ ॥

अथ दीधस्य कालस्य राजा पूरुमयाग्रीवम् ।

आनयन् जरा पुत्र न्यास नियातयस्य मे ॥ १० ॥

इसके बाद दीधकाय उनीत होनेपर राजाने पूरुमें कहा—
वेना ! तुम्हारे पास योग्यरूपमें रखनी हुई मेरी वृद्धावस्था
को मुझे लौटा दो ॥ १० ॥

न्यासभूता मया पुत्र न्यसि सभामिता जरा ।

तस्मात् प्रतिगृहीत्यामि ता जरा मा व्यग्राहया ॥ ११ ॥

'पुत्र ! मैंने वृद्धावस्थाको धारणके रूपमें ही तुम्हारे
शरीरमें स्थापित किया था इसलिये उसे वापस लौटूँगा ।
तुम अपने मनमें दुःख न मानना ॥ ११ ॥

प्रीतश्चास्मि महाबाहो शासनस्य प्रतिग्रहात् ।

तया चाहमभिप्रेक्ष्यामि प्रीतियुक्तो नगाधिपम् ॥ १२ ॥

'महाबाहो ! तुमने मेरी आज्ञा मान ली, इसलिये प्रसन्न बड़ी
प्रसन्नता हुई । अब मैं वही प्रमत्त राजाक पदपर तुम्हारा
अभिरक्ष करूँगा ॥ १२ ॥

पन्मुह्यता सुत पूरु ययानिर्गृह्यामज्ज ।

देवयानीसुत कुक्षो राजा वाक्यमुवाच ॥ १३ ॥

अने पुत्र पूरुमें ऐला कहकर नहुषकुमार राजा ब्रह्मा
देवयानीके वेदने दुःखित होकर बोल— ॥ १३ ॥

राक्षसस्य मया जात क्षत्ररूपो दुर्गासद् ।

प्रतिहसि ममाग्रा त्वं प्रयायं निष्करो भव ॥ १४ ॥

पदो ! मैंने दुष्ट क्षत्रियके रूपमें तुम मैंने राक्षसको
जन्म दिया । तुमने मेरी आज्ञा उत्तरानुत्तर किया है, अब
तुम अपनी स्थानोंको राज्याधिकारी बनानेपर विराममें बिचर-
मनोरथ हो जाओ ॥ १४ ॥

पितरं गुरुभूतं मा यस्मात् न्यममन्यस ।

राक्षसां यतुधानां जन्मपिप्यसि दारपान् ॥ १५ ॥

प्य पिता हूँ, गुरु हूँ पितर भी तुम मर्यादा मानन करत
हो, इसलिये मर्यादा राक्षसों और यतुधानोंका तुम जन्म
दोगे ॥ १५ ॥

न तु सोमकुलोपने उदो स्यात्यनि दुमन ।

यशोऽपि भयतस्तुभ्यो दुर्जितानां भविष्यति ॥ १६ ॥

'पुत्री ! यदि बहुत लज्जा है । अब तुम्हारा सभन
समकुलमें उन्नत वंशपरम्परेमें राजाक रूपमें प्रसिद्ध नही
होगा । तुम्हारी सभन भी तुम्हारे हा समन उद्बुद्ध होगी ॥

समेतमुन्मत्ता रात्रिं पूरु रात्रियधनम् ।

अभिपेक्षेण सगृह्य आश्रमं प्रविशेद ह ॥ १७ ॥

यदुने ऐला कहकर राक्षसों यज्ञाने रात्रि की वृद्धि करने
बाल पूरुको अभिरक्षके द्वारा सम्मानित करके वापस आश्रम
में प्रवेश किया ॥ १७ ॥

ततः कालेन महता दिगन्तमुपजग्मिनाम् ।

त्रिविधं स गता राजा ययातिर्नृपामज्ज ॥ १८ ॥

तदनन्तर दीर्घकालक पश्चात् प्रारंभ में राजा हर एतद्वर
नहुषपुत्र राजा ययातिने शरीरको त्याग दिया और स्वर्गलोको
प्रस्थान किया ॥ १८ ॥

पूरुश्चकार तद् राज्यं धर्मेण महता वृत्त ।

प्रतिष्ठाने पुरातरे काशिरात्र्ये महायशः ॥ १९ ॥

उसके बाद महायशसी पूरुने महान् धनसे समुक्त हा
काशिराक्षी क्षेत्र राजधानी प्रतिष्ठानपुरमें रहकर उस राज्यका
पालन किया ॥ १९ ॥

यदुन्तु जनयामास यतुधानान् सहस्रशः ।

पुरे कौञ्चनेन दुर्गे राजराशयहिरण्यतः ॥ २० ॥

'रात्रि रूपमें बहिष्कृत यदुने नगरमें तथा दुर्गम कौञ्चनमें
सहस्रों यतुधानोंका जन्म दिया ॥ २० ॥

एष वृक्षनाम मुञ्जः शापोन्त्यस्यो ययातिना ।

धारितं भयधर्मेण य निमिज्जस्ये न च ॥ २१ ॥

'पुत्राचार्यने दिया हुए इस शापोने राजा ययातिने एतद्वर
धर्मके अनुसर धारण कर लिया । यतु राजा निमित्त बन्ध
बन्ध शापोने नही छदन किया ॥ २१ ॥

पतत् ते सख्यमारयात दशन सख्यारिणाम् ।

अनुवृत्तमेह सौम्य क्षेपो न स्याद् यथा वृगे ॥ २२ ॥

क्षेप्य ! यह सखा प्रसन्न मैंने तुम्हें दुःख दिया ।
मनन वृद्धोंका पटन करनेवाला समुद्रों की लहरें
(विचर) का ही हम अनुसरण करते हैं, ठीकने सखा

वृगो भौति ह्ये भी दाप न प्राप्त हो ॥ २२ ॥

इति कथयति रामे च त्रुत्पुनानन

प्रतिरत्तरत्तर श्योमैर्यै तदानीम् ।

वरुणकिरणरत्ता दिग् यो वै पुता

कुसुमरसत्रिमुक् चक्षमागुण्डिते ॥ २३ ॥

ह्यार्यै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिग्रन्थ उत्तरकाण्डे एकानवष्टितम् सर्गं ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित श्रीरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें उनसत्तों सर्ग पुता हुआ ॥ ५९ ॥

प्रक्षिप्त. सर्ग. १*

श्रीरामके द्वारपर कार्यार्थी कुत्तेका आगमन और श्रीरामका उसे दरबारमें लानेका आदेश

तत् प्रभाते त्रिमले हृत्वा पौर्वाहिकीं नियाम् ।

धर्मासनगतो राजा रामो राजीवलोचन ॥ १ ॥

राजधमानेश्वर्यं वे प्राह्मणैर्नैगमै सह ।

पुरोभसा वसिष्ठेऽभ्रविणा कश्यपेन च ॥ २ ॥

तदनन्तरं निर्मल प्रभातकालमें पूजाह्वकाळावित्त सध्या

बन्धन आदि नित्य कर्म करने कर्मरूपन राजा श्रीराम राज

धर्मोका पालन (प्रभावशक्तोंके विवादका निपटारा) करनेक

लिय वेदवेत्ता ब्राह्मणों, पुरोहित वसिष्ठ तथा कश्यप मुनिव

साथ राजसभामें उपस्थित हो धर्म (वाय) क आसनपर

बिठावमान हुए ॥ १ २ ॥

मन्त्रिभिर्व्यवहारहोस्तथात्यैर्धर्मपाठकै ।

नीतिनिरूप्य सभ्यैश्च राजभि सः सभा घृता ॥ ३ ॥

यह सभा व्यवहारका ज्ञान रखनेवाले मन्त्रियों, धर्म

शास्त्रोंका पाठ करनेवाले विद्वानों, नीतिज्ञों, राजाओं तथा

अन्य समाजदोसोंसे भरी हुई थी ॥ ३ ॥

सभा यथा महद्गन्ध यमस्य वरुणस्य च ।

शुभे राजसिंहस्य रामस्याग्निरुक्मण ॥ ४ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले राजसिंह श्रीरामकी

बद सभा इन्द्र यम और वरुणकी सभाके समान शोभा

पाती थी ॥ ४ ॥

अथ रामोऽद्वीत तत्र लक्ष्मण शुभलक्षणम् ।

निगच्छ त्व महाबाहो मुमिशानदुर्धन ॥ ५ ॥

कार्याधिनश्च मौमित्रे व्याहर्तुं स्वमुपायम् ।

यहाँ बैठ हुए भगवान् श्रीरामने शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मण

से कहा—भाता मुमिशान आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु

वीर ! तुम बाहर निकल और देखो कि कौन-कौन-से कार्याधी

उपस्थित हैं । मुमिशानुसार ! तुम उन कार्याधीनोंकी बारी

बारास चुनना आरम्भ करो ॥ ५ ॥

रामस्य भाषितं ध्रुवा लक्ष्मण शुभलक्षण ॥ ६ ॥

प्रादेशामुपागम्य कार्येणव्याहृत स्वयम् ।

अथिद्वितीयं तत्र मम कार्यमिहाय वै ॥ ७ ॥

चन्द्रमाके समान मनाहर मुखवाले श्रीराम जब इस

प्रकार कथा कह रहे थे, उस समय आकाशमें दो ही एक ठारे

रह गये । पूर्व दिशा अरुण किरणोंसे रक्षित हो लाल दिवायी

दने लगी, मानो सुसुमरगमें रंगे हुए अरुण वज्रसे उठने

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

* कुछ प्रसंगमें यहाँ तीन सर्ग और लिखे हैं विनय सरहृन्दादिकारणोंकी व्याख्या न मिलनेसे उन्हें प्रक्षिप्त बताया गया

है । इनमेंसे हा सग जगती होनेके कारण यहाँ अनुपस्थित होने आ रहा है ।

याणा इव मया मुक्ता इह रक्षन्ति मे भ्रजा ।
तथापि त्व महाबाहो भ्रजा रक्षस्व तत्पर ॥ १३ ॥
‘‘यद्यपि राजकर्मचारी मरे छोड़े हुए जगोंके समान यहाँ प्रणकी रक्षा करते हैं; तथापि महाबाहो ! तुम स्वयं भी तत्पर रहकर प्रजाका पालन किया करो ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिनिजगाम नृपालयात् ।
अपदयद् द्वारदेशे वै भवान्तापदधम्यितम् ॥ १४ ॥
तमेव बोधमान वै त्रिवेदान्त मुहुर्मुहुः ।
हृद्राघ लक्ष्मणस्तु नै स पप्रच्छाद्य बोधयान् ॥ १५ ॥

श्रीरामने ऐसा कहनेपर मुनिवाकुमार लक्ष्मण राजभवनमें बाहर निकले । बाहर आकर उन्होंने देखा, द्वारपर एक कुत्ता खड़ा है, वह उन्होंने आर देखा हुआ बारबार भूँक रहा है । उसे इस प्रकार देखकर पण्डमी लक्ष्मणने उसने पूछा—॥ १४-१५ ॥

किं ते कार्यं महाभाग नृदि विप्रधमानस ।
लक्ष्मणस्य वचं धृत्वा सारमेयोऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥
‘‘महाभाग ! तुम निमग्न होकर बनाओ, ब्रम्हाय क्या काम है ?’ लक्ष्मणका यह वचन सुनकर उचने कहा—॥ १६ ॥

सर्गमृतशरण्याय रामायार्कप्रकमणे ।
भवेत्प्रभयश्रेष्ठे च तस्मै वक्तु समुत्तरे ॥ १७ ॥

जो समस्त भूतोंकी धारण देनेवाला और केशरहित कम करनेवाले हैं, जो भयक अगमोंपर भी अमग्न होते हैं, उन भगवान् श्रीरामक समक्ष ही मैं अपना काम बजा सकता हूँ ॥

एतच्छ्रुत्वा च वचन सारमेयस्य लक्ष्मण ।
रात्रवाप तदाप्याहु प्रविशेदालय शुभम् ॥ १८ ॥

जुलैका यह वचन सुनकर लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीकी इच्छा पूरना देनेपर लिये मुन्दर राजभवनमें प्रवेश किया ॥

निवेद्य रामस्य पुनर्निर्जगाम नृपालयात् ।
वक्ष्ये यदि ते किंचित्तरं गृहि नृपाय वै ॥ १९ ॥

श्रीरामक उषकी बात बजाकर लक्ष्मण पुन राजभवनमें बाहर निकल आये और उसमें बा—‘‘यदि तुम्हें कुछ कहना है तो च—‘‘कर राजसे ही कहो ॥ १९ ॥

लक्ष्मणस्य वचं धृत्वा सारमेयोऽभ्यभाषत ।
देवागारे नृपागारे द्विजान्ममसु वै तथा ॥ २० ॥
‘‘यदि शतशतद्वयैव सृष्टौ जायुश्च त्रिपुत्रि ।
नात्र योग्यास्तु सौमित्रे योनीनामधमा वयम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मणजी यह बात सुनकर कुत्ता बोला—‘‘मुनिवा नन्दन ! देवालयमें, राजभवनमें तथा ब्राह्मणके घरमें अग्नि,

हवा, सूर्य और वायुदेवता सदा स्थित रहते हैं अतः हम अपमनोनिज वीर रक्षकाने वहाँ जानेन सम्म नहीं हैं ॥

प्रवेष्टुं नात्र शक्यामि धर्मो विप्रहजान् नृप ।
सत्यश्रीं रणपटु सर्वसत्त्वहिते रत ॥ २० ॥

‘‘मैं इस राजभवनमें प्रवेश नहीं कर सकूँगा क्योंकि राजा श्रीराम धर्मके पूर्णमान् स्वर्ण हैं । वे सत्यवादी, सधाम कुल और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं ॥ २० ॥

पाशुस्यस्य पञ्च वेत्ति नीतिरता स राघव ।
सर्वज्ञं सर्वदर्शी च रामो रमयतां वर ॥ २१ ॥

‘‘वे सचि-विप्रह आदि छहों गुणोंके प्रयोग अवश्योंकी जानते हैं । श्रीरघुनाथजी व्याप करनेवाले हैं । वे सत्य और सर्वदर्शी हैं । श्रीराम दूरतोंके मनमें रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥

स स म स च मृत्युश्च स यमो धनदस्तथा ।
वह्नि शतमनुद्वैव सृष्टौ नै वरुणस्तथा ॥ २२ ॥

‘‘वे ही चन्द्रमा हैं, वे ही मृत्यु हैं, वे ही यम, कुबेर, अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वरुण हैं ॥ २२ ॥

तस्य रर गृहि सौमित्रे प्रयापाल स राघव ।
अनागतस्तु सौमित्रे प्रवेष्टुं नेच्छयाम्यहम् ॥ २३ ॥

‘‘मुनिजान् रत । श्रीरघुनाथजी प्रयागलक्ष्मण हैं । आप उतने कहिये । मैं उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना इस भवनमें प्रवेश करना नहीं चाहता ॥ २३ ॥

आनृशस्यामहाभाग प्रविशेश महायुति ।
नृपालय प्रविश्याय लक्ष्मणो यन्मयमग्रिह ॥ २४ ॥

यह सुनकर महातेजस्वी महाभाग लक्ष्मणने दयावश राजभवनमें प्रवेश करन कहा—॥ २४ ॥

श्रूयतां मम विद्याय कौमल्यानद्वर्धन ।
यन्मयोक्तं महाबाहो तथ शासनं त्रिभो ॥ २५ ॥

‘‘कौमल्याका आनन्द बचनेवाला महाबाहु श्रीरघुनाथजी ! मेरा यह निवेदन सुनिये । आरने ज—आदेश दिया था, उसके अनुसार मैंने बाहर बाहर कायाधीकी पुकारा ॥ २५ ॥

अथ वै ते त्रिपुत्रे द्वारि कथायां समुपागत ।
लक्ष्मणस्य वचं धृत्वा रामो वचनमग्रिह ॥ २६ ॥

समप्रवेशाय वै निप्र कथायां योऽय त्रिपुत्रि ॥ २७ ॥

‘‘इस समय आपन द्वारपर एक कुत्ता खड़ा है, जो कायाधी होकर आया है ।’ लक्ष्मणजी यह बात सुनकर श्रीरामने कहा—‘‘यहाँ की भी कायाधी होकर खड़ा है, उसे भी मैं इस समयके भीतर ल—आओ ॥ २८ ॥

इत्यार्षे धीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रथित सर्ग १ ३

१म प्रकर श्रीवल्किनिर्निज अचरानया अदिसम्पक दत्तरामने प्रथित सर्ग १ पूरा हुआ ॥

प्रक्षितः सर्गः २

कुत्तके प्रति श्रीरामका न्याय, उसकी डच्छाके अनुमार उसे मारनेवाले ब्राह्मणको मठाधीश बना देना और कुत्तेका मठाधीश होनेका दोष बताना

ध्रुवा रामस्य वचन लक्ष्मणस्त्वरितस्तदा ।

भ्यानमाह्वय मतिमान् राघवाय यथेदयत् ॥ १ ॥

श्रीरामना यह वचन सुनकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने तत्काल उस कुत्तका मुखाया और श्रीरामको उसने आनेकी सूचना दी ॥

दृष्ट्वा समागत भ्यान रामो वचनमग्रधीत् ।

त्रिरक्षितार्थे मे बृहि सारमेय न ते भयम् ॥ २ ॥

वहाँ आये हुए कुत्तकी और देखकर श्रीरामने कहा—

‘सारमेय ! तुम्हें का कुछ कहना है, उसे मेरे सामने कहो ।

वहाँ तुम्हें कोई भय नहीं है’ ॥ २ ॥

अयापयत तत्रस्थ राम भ्या भिगमस्तका ।

ततो दृष्ट्वा स राजान सारमेयोऽग्रधीद् वच ॥ ३ ॥

कुत्तका मलक फट गया था । उसने राजसमामें

बैठे हुए महापुत्र श्रीरामकी ओर देखा और देखकर इस

प्रकार कहा— ॥ ३ ॥

राजीव कता भूताना राजा यैव विनायक ।

राजा सुस्तेषु जागर्ति राजा पालयति प्रजा ॥ ४ ॥

‘राजा ही समस्त प्राणियोंका उत्प्रेदक और नायक है ।

राजा सन्नेके सारे रहनपर भी जागता है और प्रजाओंका पालन

करता है’ ॥ ४ ॥

नीया मुनीतया राजा धर्म रक्षति रक्षिता ।

यदा न पालयेद् राजा क्षिप्र नश्यति वै प्रजा ॥ ५ ॥

‘राजा सबका रक्षक है । वह उत्तम नीतिका प्रयोग करके

सबकी रक्षा करता है । यदि राजा पालन न करे तो समस्त

प्रजाएँ हीन पड़ जाती हैं’ ॥ ५ ॥

राजा कना च गोप्ता च वनस्य जगत पिता ।

राजा फालो युग चैव राजा सर्वमिदं जगत् ॥ ६ ॥

‘राजा कना राजा रक्षक और राजा समूह जगत्का

पिता है । राजा काल और युग है तथा राजा यह समूर्ण

जगत् है’ ॥ ६ ॥

धारणाद् धर्ममियाहुर्धर्मण विभृता प्रजाः ।

यस्माद् धारयते सर्वे श्लोक्ष्य साराधरम् ॥ ७ ॥

‘धर्म समूह जगत्को धारण करता है, इसीलिये उसका

नाम धर्म है । धर्मने ही समस्त प्रजाको धारण कर रक्खा है

इसलिए सभी ‘साराधर प्राणिमोर्दित सारी बिलारीका आधार है’ ॥

धारणाद् विद्विषा र्वेन धर्मेणारक्षयन् प्रजा ।

तस्माद् धारणमित्युच स धम इति निश्चय ॥ ८ ॥

‘राजा अपने प्राणिमोर्को भी धारण करता है (अपना

पर दुष्टोंका भी मयादामें स्थापित करता है) तथा वह धर्मके

द्वारा प्रजाको प्ररक्ष करता है इसलिये उसने धारणरूप धर्म

को धारण कहा गया है और धारण ही धर्म है, यह शास्त्रका

विद्वान्त है ॥ ८ ॥

एष राजन् परो धम फलवान् प्रेत्य राघव ।

नहि धमाद् भवत् किंचिद् दुष्प्रापमिति मे मति ॥ ९ ॥

‘युन-दन ! यह प्रजापान्तरूप परम धम राजाका पर

लेखम उत्तम फल देनेवाला होता है । मेरा तो यह हृद

विश्वास है कि धर्मसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है’ ॥ ९ ॥

दान दया सता पूजा व्यवहारेषु चार्जयम् ।

एष राम परो धर्मो रक्षणास् प्रेत्य चेह च ॥ १० ॥

‘श्रीराम ! दान, दया, सत्पुरुषोंका सम्मान और व्यवहार

में सरलता यह परम धम है । प्रजाजनोर्की रक्षसे होनेवाला

उत्कृष्ट धर्म इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाला होता है ॥

इय प्रमाण प्रमाणातामसि राघव सुमत् ।

विदितश्चैव ते धम सन्निराचरितस्तु वै ॥ ११ ॥

‘उत्तम प्रतका पालन करनेवाले युन-दन ! आप समस्त

प्रमाणोंके भी प्रमाण हैं । सत्पुरुषोंने जिस धर्मका आचरण

किया है, वह आपकी भलीभाँति विदित ही है’ ॥ ११ ॥

धमणा त्व पर धाम गुणाना साधरोपम ।

अज्ञानाच्च मया राजन्नुत्तर राजसत्तम ॥ १२ ॥

‘राजन् ! आप धर्मोंके परम धाम और गुणोंके सागर हैं ।

मुपभेद्य ! मैंने अज्ञातयच ही आपके सामने धर्मकी व्याख्या

की है’ ॥ १२ ॥

प्रसादयामि शिरसा न त्व प्रोक्षुमिदार्हसि ।

शुन स वचन तुत्वा राघवो धाम्प्यमग्रधीत् ॥ १३ ॥

‘इसके लिये मैं आपने चरणोंमें मलक रखकर क्षमा

चाहता और आपसे प्ररक्ष होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ ।

आप यहाँ मुझपर कुपित न हों !’ कुत्तेकी यह बात सुनकर

श्रीरघुनाथजी बोले— ॥ १३ ॥

किं ते कार्यं करोम्यद्य ग्रहि निष्कम्भ मा चिरम् ।

रामस्य वचन ध्रुवा सारमेयोऽग्रधीदिदम् ॥ १४ ॥

‘तुम नियम होकर बतानाओ । आज मैं दुष्टद्वारा कौन का

कार्य सिद्ध करूँ । अपना काम बतानेमें निष्कम्भ न कर ।’

श्रीरामजी यह बात सुनकर कुत्ता बोल— ॥ १४ ॥

धर्मेण राष्ट्र त्रिन्दित धर्मेणैवानुपापयेत् ।

धमच्छलत्प्यता याति राजा स्वयभयापह ॥ १५ ॥

इदं विद्याय पत्तं कृत्य धृतता मम राघव ।

‘युन-दन ! राजा धर्मसे ही यक्ष प्राप्त करे और धर्मसे

ही निरन्तर उच्छका पालन करे । धर्मसे ही राजा सन्नेको शरण

देनेवाला और सबका मम दूर करनेवाला होता है ।

येषा जनकर अप मग वृ कार्य है, उसे सुनिय ॥ १५३ ॥
भिन्नु सवा-सिन्धु ग्रहणागमने वसन् ॥ १६ ॥
तेन दक्ष प्रहाणे म निष्कारणमनास ॥

प्रभा । सवापदि नामने प्रविष्ट एक भिन्नु है, ज
नामनिक यमने रहा करता है । उसने जाव अक्षरण मुसपर
प्रहार किया है । मैंने उसका वह अक्षरप नही किया था ॥
एतच्छ्रुत्वा तु रामण द्वाभ्य सम्प्रेषितमन्य ॥ १७ ॥
आनीतिश्च द्विजस्तेन सजसिद्धायकोनिद ॥

कुचकी यह बात सुनकर भीरामने उत्तरा एक क्षरण
मेश और उस सवापदि नामक विद्वान् भिन्नु नामक
बुद्ध्या ॥ १८ ॥

अथ द्विजवरसाय गम दृष्ट्वा महायुनि ॥ १८ ॥
कि ते कार्य मया राम तव गृहि त्व ममालय ॥

आपमका देखकर उस महातेजवी श्रेष्ठ ब्राह्मणने पूछा—
निष्पाप खुनन्दन ! मुझने आपका क्या काम है ? ॥ १८ ॥
परमुक्तस्तु विप्रण रामो वचनमग्रशीव ॥ १९ ॥
त्वया दक्ष प्रहारोऽय सारमेयस्य च द्विज ॥

कि सवापहत विप्र दण्डेनाभिहतो यत् ॥ २० ॥

ब्राह्मण इस प्रकार पूछनेपर भीराम बोल—प्रह्वन् ।
आपने इस कुचके क्षरण या यह प्रहार किया है, उसका क्या
कारण है । विप्रवर । इसने आपका क्या अपराध किया था,
जिसे कारण आपने इने दण्ड मारा है ? ॥ १९ २० ॥

शोध प्राणहृ शत्रु शोधो मित्रमुखोरिपु ।
शोधो ह्यमिमहाभीष्ट सप्त शोधोऽप्यकवति ॥ २१ ॥

शोध प्राणहारी शत्रु है । शोधका मित्रमुख गुरु यत्ता ।
गदा है । शोध अपनत वीर्य तत्कार है तथा शोध छरी
सद्गुणोंके खींच देता है ॥ २१ ॥

तपने यत्ने चैव यथा दान प्रयच्छति ।
शोधन सप्त हस्ति तस्मात् शोध विज्ञानयेत् ॥ २२ ॥

मनुष्य या तन करता, यत् करता और दान देता है,
उन सबके पुत्तना यह शोधक क्षण नष्ट कर देता है । इसलिये
शोधने त्याग देना चाहिए ॥ २२ ॥

द्विज्याणा प्रदुष्टाना ह्यनामिष धायताम् ।
कुर्वीत घृत्वा सारथ्य सहत्येन्द्रियगोचरम् ॥ २३ ॥

दुष्ट पदोंकी तप विषयोंकी अर दोन्हेकी इन्द्रियों
को उन विषयोंकी अरसे हटाकर पैदलूक उन्हें नियंत्रणमें
रखने ॥ २३ ॥

मनसा कमणा जाना वस्तुया च समाग्रेत् ।
श्रेयो लोकस्य चरतो न द्वेष्टि न च लिप्यते ॥ २४ ॥

१ या करने मित्र नान धे मित्रु वरिन्नेन शुभ छिद हा
वा निरुद्ध शुभ है । २ या करने प्रदुष्टा सारनेन महा-
का वन्दर बना है इसीलिये इसे मित्रुद्ध बना था है ।

मनुष्यका चादिष कि वह अपने पाप निरनेकालों
की मन, वाणी, क्रिया और इन्द्रिया मलाद ही करे । जिसे
से द्वेष न रखने । एका करनेसे वह पापने नित नष्ट होता ॥
न तत् कुयादमितीदृण सर्पो वा व्याहन पण ।

अरिया नियसकृद्धो ययाऽऽत्मा दुरनुष्ठित ॥ २५ ॥

अथना दुष्ट मन का अल्प या अनप कर सकता है,
यैसा तीली तटार, पैरोंका कुचक दूधा हर अपरा सदा
शेषने मग रहनेवाला शत्रु भी नष्ट कर सकता ॥ २५ ॥

जिनीतिजिनयस्यापि प्रवृत्तिन निधयते ।

प्रवृत्ति गृहमानस्य निश्चयेन हृतिधुवा ॥ २६ ॥

जिने विनपकी सिद्ध जिनी हा उसकी भी प्रवृत्ति नपी
नहीं बनती है । कहे अपनी दुष्ट प्रवृत्तियोंके तितना ही क्यों न
छिपाय, उसका कामसे उसका दुष्टता निश्चय ही प्रकट हो
जाती है ॥ २६ ॥

परमुक्त स जिप्रो वै रामेणाह्वितमर्नणा ।

द्विज सगर्वसिद्धस्तु अग्रशीव गमसन्निधौ ॥ २७ ॥

कृत्वादित कम करनेवाले भीरामने ऐस कहनेपर

सवापदि नामक ब्राह्मणने उनसे निष्कारण प्रकार कहा—

मया दक्षप्रहारोऽय बोधनाजिघ्रसेत्ता ।

भिस्त्वयर्मममनेन काले विगतमैक्षने ॥ २८ ॥

रथ्यास्थिरस्थय श्वा वै गच्छ गच्छेति भाषित ।

अथ स्त्रीरेण गच्छस्तु रथ्याने विषम स्थित ॥ २९ ॥

प्रभा । मरा मन कावच भर गया था, इसलिये मैंने
इसे हड्डेने मारा है । भिक्षुका समय दीन चुता था; तयाने
नूचे रहनेके कारण भिक्षा माँगने-जिन मैं क्षण क्षण घूम
रहा था । यह कुत्ता वीच रातमें खरा था । मैंने बार-बार
कहा—तुम रास्तेसे हट जा, हट जा, स्त्रिया अपनीमौ-मै
बल और सङ्कके बीचमें जगे खड़ा हा गया ॥ २८ २९ ॥

शोधेन पुथयारिप्रस्तता दक्षोऽस्य राघव ।

प्रहारो रानराजेन्द्र शाधि मामपराधिनम् ॥ ३० ॥

त्वया शस्त्रस्य रात्रेन्द्र नास्ति मे परकाद्रपम् ।

मैंने नृपता था ही, शोध बना अना । रामधियव
खुनन्दन । उस शोधने ही प्रक्षित हकर मैंने इसका क्षरण
दण्ड मार दिया । मैं अपराधी हूँ । अर मुने दण्ड दान्ये ।
राजेन्द्र । आपने दण्ड मिल जानेपर मुक्त नरकने पड़नेका डर
नहीं रहगा ॥ ३० ॥

अथ रामेण सम्पृण मर्य पर मभासद् ॥ ३१ ॥

निष्कायमस्य वै व्रत कृण्डी वै कोऽस्य पान्यताम् ।

सम्यक्संप्रतिदिने देष्टुं प्रना भयति रमिता ॥ ३२ ॥

तव भीरानने सभी सभासदोंने पूछा—आपका दण्डों,
इसका शिव क्या करना चाहिए ? इने कोनका दण्ड दिया
जय ? कर्त्तक मन्त्रीभाति दण्ड प्रना होनेपर प्रना
मुद्रित रहती है ॥ ३१ ३२ ॥

भृग्याङ्गिरसमुत्साद्या वमिष्ठश्च सखादयप ।
धर्मपादश्चमुषयाश्च सचिवा नैगमास्तथा ॥ ३३ ॥
एते चाये च यद्गुणं पण्डितास्तत्र संगता ।
अवध्यो ब्राह्मणो दण्डैरिति शास्त्रविदो विदुः ॥ ३४ ॥
सुनते राघव सर्वं राजधर्मेषु निष्ठिता ।

उस सभामें भृगु, आङ्गिरस, कुश, वसिष्ठ और काश्यप आदि मुनि थे । धर्मशास्त्रीका पाठ करनेवाले मुख्य-मुख्य विद्वान् उपस्थित थे । मन्त्री और महाजन मौन रहते थे—ये तथा और बहुत-से पण्डित यहाँ एकत्र हुए थे । राजधर्मोंके ज्ञान में परिनिष्ठित व सभी विद्वान् श्रीगुणाज्जीशेखोरे—‘भागवत्’ ब्राह्मण दण्डद्वारा अवध्य है, उसे गौरीक दण्ड नहीं मिलना चाहिये, यही समस्त शास्त्रज्ञोंका मत है’ ॥ ३३ ३४ ॥

अथ ते मुनय सर्वे राममेवाह्वयस्तदा ॥ ३५ ॥
राजा ज्ञात्वा हि सर्वस्य त्व विशेषेण राघव ।
त्रैलोक्यभ्यभ्याज्यशास्ता देवो विष्णु सनातन ॥ ३६ ॥

तदनन्तर वे तब मुनि उस समय भीरामसे ही बोल—
‘रघुनन्दन । राजा स्वका शासक होता है । विशेषतः आप तो तीनों लोकोंपर शासन करनेवाले सत्तात् सनातन देवता भगवान् विष्णु हैं’ ॥ ३५ ३६ ॥

परमुक्ते तु तै सर्वे श्वा वै चचनमग्रवीत् ।
यदि त्रुणोऽसि मे राम यदि देवो घरो मम ॥ ३७ ॥

उन सबके ऐसा कहनेपर हुआ बोला—‘भीराम । यदि आप मुझपर सङ्ग हैं, यदि आपको मुझ इच्छानुसार वर देना है तो मेरी यात झुनिय ॥ ३७ ॥

प्रतिज्ञात त्वया वीर किं करोमीति विश्रुतम् ।
प्रयच्छ ब्राह्मणस्यास्य कौलपत्यं नराधिप ॥ ३८ ॥
कालञ्जरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम् ।

‘वीर नरेश्वर । आपने प्रतिशपुर्वक वृद्धा है कि मैं आपका कान या काय निन्द नहीं । इस प्रकार आप मेरी इच्छा पूर्ण करनेका प्रतिशपद हो चुके हैं । अतः मैं कहता हूँ कि इस ब्राह्मणसे कौलपति (महन्त) बना दीजिये । महाराज । इसे कालञ्जरे एक मठका आधिपत्य (बाँकोंका महारानी) प्रदान कर दीजिये’ ॥ ३८ ३९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु रामेन कौलपत्येऽभिप्रेक्षितः ॥ ३९ ॥
प्रययौ ब्राह्मणो हृष्टो गजस्त्र्यधेन सोऽर्चितः ।

यह सुनकर भीरामने उसका कौलपतिके पदपर अभिप्रेक्ष कर दिया । इस प्रकार पुजित हुआ यह ब्राह्मण हाथीकी पीठ पर बैठकर यह हयक साथ वहति चला गया ॥ ३९ ॥

अथ त रामसचिवा सपमाना वज्रोऽग्रयन् ॥ ४० ॥
यनोऽय दत्त एतस्य नाय शापो महाघुले ।

तब भीरामचन्द्रजीक मन्त्री मुकुण्ठते हुए बोल—
‘महातेजसी महाराज । यह तो हमें बर दिया गया है, शाप या दण्ड नहीं’ ॥ ४० ॥

परमुक्तस्तु सचिवै रामो वचनमग्रवीत् ॥ ४१ ॥
न यूयं गनितस्वशा श्वा वै जानाति कारणम् ।

मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर भीरामने कहा—‘जिस कमका क्या परिणाम होता है अथवा उससे जीवकी कैसी गति होती है, इसका तत्त्व तुमलोग नहीं जानते । ब्राह्मणको मठाधीशका पद क्यों दिया गया ? इसका कारण यह कृत्ता जानता है’ ॥ ४१ ॥

अथ पृष्टस्तु रामेन सारमेयोऽग्रदीदम् ॥ ४२ ॥
अहं कुलपतिस्तत्र आसं शिष्टाश्रमभोजनः ।

देवद्विजातिपूजाया दासीशस्तेषु राघव ॥ ४३ ॥
सविभागी शुभरतिर्देवद्रव्यस्य रक्षिता ।

विनीत शीलस्मरश्च सवस्त्ररहिते रतः ॥ ४४ ॥
तत्पश्चात् भीरामके पुछनेपर कुत्तेने इस प्रकार कहा—

‘रघुनन्दन । मैं पहले जन्ममें कालञ्जरेके मठमें कुलपति (मठाधीश) था । वहाँ यशशिष्य अन्नका भोजन करता, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें तत्पर रहता, दास-दासियोंको उनका न्यायोचित भाग बाँट देता, गुप्त कमरोंमें अनुरक्त रहता, देवसम्पत्तिकी रक्षा करना तथा विनय और शीलसे सम्पन्न होकर समस्त प्राणियोंके हित-साधनमें लग्न रहता था’ ॥ ४२-४४ ॥

सोऽहं प्राप्त इमां घोराभयस्यामधमा गतिम् ।
एवं क्रोधान्वितो विप्रस्त्रयस्यधमाहिते रतः ॥ ४५ ॥
कुत्तो नृशसं पश्य अग्निद्विधाश्चाप्यधामिक ।

कुलपति पातयत्येव सप्त सप्त च राघव ॥ ४६ ॥
‘तो श्री मुने यह घोर अवस्था एवं अधम गति प्राप्त हुई । फिर जो ऐसा क्रोधी है, घमको मोड़ चुका है, दूखोंके अहितमें लगा हुआ है तथा क्रोध करनेवाला, क्रूर, क्रोधी, मूर्ख और अर्षर्षी है, वह ब्राह्मण तो मठाधीश होकर अपने साथ ही ऊपर और नीचेकी खात-खात पीणियोंका भी भ्रममें गिराकर ही रहेगा’ ॥ ४५-४६ ॥

तस्मात् सर्वास्त्रयस्यासु कौलपत्यं न कारयेत् ।
यमिच्छेन्नरकं नेतुं सपुत्रपुत्राधयम् ॥ ४७ ॥
देवेभ्यधिष्ठितं क्रुयाद् गोषु च ब्राह्मणेषु च ।

‘इसलिये किसी भी दणामें मठाधीशका पद नहीं ग्रहण करना चाहिये । जिसे पुत्र, पुत्र और पुत्र बाचचोंसहित नरकमें गिरा देनेकी इच्छा हो, उसे देयनाओं, गोओं और ब्राह्मणोंका अधिष्ठान बना दे’ ॥ ४७ ॥

ब्रह्मस्य देवताद्रव्यं स्त्रीणां पालधनं च यत् ॥ ४८ ॥
दत्तं हरति यो भूय इष्टे सह विनदयति ।

‘जो ब्राह्मणका, देवताका, स्त्रियोंका और पालकोंका धन हर लेता है तथा जो अपनी दान की हुई सम्पत्तियों की बापस लेता है, यह इष्टकर्मोपहित नष्ट हो जाता है’ ॥ ४८ ॥

ब्रह्मस्य द्रव्यमादत्ते देवानां चैव राघव ॥ ४९ ॥

‘जो ब्राह्मणका, देवताका, स्त्रियोंका और पालकोंका धन हर लेता है तथा जो अपनी दान की हुई सम्पत्तियों की बापस लेता है, यह इष्टकर्मोपहित नष्ट हो जाता है’ ॥ ४८ ॥
ब्राह्मणद्रव्यमादत्ते देवानां चैव राघव ॥ ४९ ॥

सद्य पतति धीरे वै नरकेऽवीचिसप्तके ।

धुनन्दन । अ ग्राह्यो और देवताओंका द्रव्य हृष्ट
लता है, वह ग्रीम ही अवीचि नामक घर नरकमें गिर
जाता है ॥ ४९३ ॥

मनस्यापि हि देवस्य ब्रह्मस्य च हरेत्तु य ॥ ५० ॥
निरयाश्रित्य चैत्र पतयेथ नराधम ।

अ देवता और ब्राह्मणकी संपत्तिको हर लेनेका निवार
मा मनमें छाता है, वह नराधम निक्षय ही एक नरकने दूसर
नरकमें गिरता रहता है ॥ ५० ॥

तद्भवा उच्यते रामो विसयोत्कुलद्वेष्टन ॥ ५१ ॥

हृष्यायै ग्रामद्रामागने वास्मीक्य आदिकाण्ये उत्तरकाण्डे प्रमितं सग ॥ ५१ ॥

इन प्रकार श्रीवत्सनेर्निर्मित उत्तरकाण्ड अदिकल्पक उत्तरकाण्डे प्रमितं सग ॥ ५१ ॥ पूरा हुआ ॥

पष्ठिमः सर्ग

श्रीरामके दरबारमें च्यवन आदि ऋषियोंका शुभागमन, श्रीरामके द्वारा उनका सत्कार करके

उनके अभीष्ट कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा तथा ऋषियोंद्वारा उनकी प्रामा

तयो सद्यस्तौरेण रामलक्ष्मणयोस्तदा ।

वासन्तिकी निद्रा प्राप्ता न शीता न च घर्मदा ॥ १ ॥

भीषम और लक्ष्मण परस्पर इस प्रकार कथा-वाता करते
हुए प्रतिदिन प्रजापजनन कार्यमें लगे रहते थे । एक समय
बल्लभशुद्धी एन आयी, जो न अधिक सर्दी छानेवाली थी
और न गर्मी ॥ १ ॥

तत प्रभाते विमते हनपूर्वादिक्रिय ।

अभिचग्राम काकुत्स्थो दर्शन पौरकार्यवित् ॥ २ ॥

वह रात बीतनेपर जब निमल प्रभातका आभा, तब
पुरवासियोंका कार्यका करनेका भीषणायकी पूवाहकालक
नित्यार्थ—रक्षा-बन्दन आदिमें निवृत्त हो बाहर निकलकर
प्रकारोंक दृष्टिमें आये ॥ २ ॥

तत सुमब्रह्म्यागम्य राघव वान्मयमग्रीत् ।

पते प्रतिहता रात्रिं द्वारि निष्ठान्ति तापमा ॥ ३ ॥

भाग्य व्ययन चैत्र पुरस्त्वत्य महर्षय ।

इदानीं ते महापुत्र चोदयन्ति हृतन्वरा ॥ ४ ॥

उसी समय सुमन्त्रने आपर श्रीरामचन्द्रकी कथा—
‘रात्रि’ में तपस्वी महर्षि भृगुपुत्र व्ययन मुनिको आगे करके
द्वारपर खड़े हैं । द्वारपालोंने इनका भीतर आना रोक दिया
है । महापुत्र ! इन्हें आन्ते दण्डकी चन्दी लगी हुई है और
य अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये हमें बार-बार प्रेरित
करते हैं ॥ ३ ॥

प्रीयमाणो नरस्याग्र यमुनातीरवासिन ।

तस्य तद्गमनं ध्रुवा राम प्रोत्साह धमनिषु ॥ ५ ॥

प्रवेदयन्ता महाभागो भार्गवमुखा द्विजा ।

‘पुराण’ । य सब महर्षि यमुनातीर निवास करते हैं

श्याप्यगन्धमहानेजा यत पुरागतस्तत ।

कुत्तेशा य वचन मुनिकरधरामचन्द्रकीने नेत्र आक्षपेने
खिल उठे और वह महातपस्वी दृष्टा भी शिष्यमें अपना या,
उधर ही चला गया ॥ ५२ ॥

मनस्वी पूर्वज्ञात्या स जातिमानोऽप्युत्तरित ।

वागणस्या महाभाग प्राय चोपनिवेश ॥ ५३ ॥

वह पूर्वज्ञमाने वाला मनस्वी था, परन्तु इस समयमें यह

कुत्तेशी योनिमें उन्नत होनेके कारण उत्तरित हो गया था ।

उत्तर महाभाग कुत्तेश काशीमें जाकर प्रारम्भ करने लिये

(अन्त-काल छोड़कर अपने प्राण त्याग दिये) ॥ ५३ ॥

हृष्यायै ग्रामद्रामागने वास्मीक्य आदिकाण्ये उत्तरकाण्डे प्रमितं सग ॥ ५३ ॥

इन प्रकार श्रीवत्सनेर्निर्मित उत्तरकाण्ड अदिकल्पक उत्तरकाण्डे प्रमितं सग ॥ ५३ ॥ पूरा हुआ ॥

—

पष्ठिमः सर्ग

श्रीरामके दरबारमें च्यवन आदि ऋषियोंका शुभागमन, श्रीरामके द्वारा उनका सत्कार करके

उनके अभीष्ट कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा तथा ऋषियोंद्वारा उनकी प्रामा

और अपने शिष्य प्रम खत है । सुमन्त्रकी यह बात सुनकर

धर्मक भीषमन कहा—‘सुत ! अपने ध्यान आदि सभी

महाभाग ब्रह्मर्षियोंको भीतर बुलाया जाय ॥ ५४ ॥

रात्रस्त्यामा पुरस्त्वत्य द्वा व्यो मूढा दृताञ्जलि ॥ ५५ ॥

प्रयज्ञायामास तदा तापसान् मुदुरासदान् ।

यहकी यह आज शिरोधार्य करके द्वारमें मन्त्रकर

होनों हाथ जोड़ लिये और उन अरुण दुःख तपस्वी तारकों

को यह राक्षसबल भीतर आ आया ॥ ५४ ॥

रात्र समधिक तत्र दीप्यमान स्वनेजसा ॥ ५५ ॥

प्रधिष्ट राजभवन तापसाना महामनाम् ।

ते द्विजा पूर्णकल्पा सर्वातीर्थान्मुसन्त ॥ ५६ ॥

गृहीत्वा फलमूलं च रामस्याभ्याहारम् बहु ।

उन तपस्वी महात्मानोंकी संख्या हीने अधिक थी । वे

सबके-सब अपने तपमें प्रकाशित हो रहे थे । उन सबने

रात्रभवनमें प्रवेश किया और समस्त तीर्थान्त्र करने भरे हुए

बहोंके साथ बहुतने फल-मूल लेकर श्रीरामचन्द्रकी भेंट

किये ॥ ५६ ॥

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं राम प्रीतिपुरस्त्वत ॥ ५७ ॥

तीर्थोदकानि सयाणि फलानि विनिधानि च ।

उवाच च महाबाहु सयाणेन महामुनीन् ॥ ५८ ॥

महाबाहु श्रीरामने बड़ी प्रशन्नतासे गप यह करा

उत्तरा—वे सारे तीर्थान्त्र और नाना प्रकारक फल लेकर उन

सभी महामुनिके कदा—॥ ५७ ॥

हमान्यासनमुत्थानि यथाहमुपविदयताम् ।

रामस्य भावितं शुभा सप्त पदं मन्दप ॥ ५९ ॥

वृत्तीषु दक्षिराण्यासु निषेदु षड्विंशतीषु ते ।

‘मन्त्राभाओ ! ये उत्तमात्तम आत्मन प्रस्तुत हैं । आपलोग
यपायोग्य इन आत्मनों पर बैठ जायें ।’ श्रीरामचन्द्रजीक यह
वचन सुनकर वे सभी महर्षि रुचिर शोभासे सम्पन्न उन
मुवर्णमय आत्मनों पर बैठे ॥ ११३ ॥

उपरिष्ठानृषीस्तत्र दृष्ट्वा परपुरजय ।
प्रयत्न प्राञ्जलिभृत्या राघवो धाम्प्यमग्रवीक्ष ॥ १२ ॥
उन महर्षियोंको वहाँ आत्मनों पर विराजमान देख शत्रु
नगरीपर विजय पानेवाले श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़ सयतभाव
से कहा—॥ १२ ॥

किमागमाकार्यं य किं करोमि समाहितः ।
आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वकामकरं सुप्रभम् ॥ १३ ॥
‘महर्षियों ! जिस कामसे यहाँ आपलोगोंका शुभागमन
हुआ है ? मैं एकाग्रचित्त होकर आपकी क्या सेवा करूँ ? यह
सेना आपकी आज्ञा पानेके योग्य है । आदेश मिलनेपर मैं
यके मुग्धसे आपकी सभी इच्छाओंको पूरा कर सकता हूँ ॥ १३ ॥
इह राज्यं च सकल जीवितं च हृदि स्थितम् ।
स्वर्मेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि ॥ १४ ॥

‘यह शरा राज्य, इस हृदयकमलमें विराजमान यह
बीजात्मा तथा यह मेरा शरा वैभवं प्राज्ञर्णोंकी सेवाके लिये
ही है, मैं आपसे समस्त यह सबी पान करता हूँ ॥ १४ ॥
तस्य तद् धनं च धृत्या साधुकारो महानभूत् ।
श्रुवीणां सुप्रभारसा यमुनातीरवासिनाम् ॥ १५ ॥

हृत्पापैः क्षामद्वाभ्यामे वाकमीदीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पश्चिम सर्ग ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें साठवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकपष्ठितम सर्ग

श्रुपियोंका मधुको प्राप्त हुए पर तथा लगनासुरके धल और अत्याचारका वर्णन करके उससे
प्राप्त होनेवाले भयको दूर करनेके लिये श्रीरघुनाथजीसे प्रार्थना करना

सुनहिरेश्वरभूमिभिः काक्षस्वो धाम्प्यमग्रवीक्ष ।
किं कार्यं ह्यतः सुनयो भयं तावदप्युत यः ॥ १ ॥

इन प्रकार कर्तव्य हुए श्रुपियोंसे प्रेरित हो श्रीरामचन्द्रजी
‘कहा—‘महर्षियों ! क्याइये, आपका धीन का कार्य मुझे
सिद्ध करता है । अन्तर्गोत्रा भय तो अभी दूर हो जाना
चाहिये’ ॥ १ ॥

तथा मुनयः काकुत्स्थे भार्गवे धाम्प्यमग्रवीक्ष ।
भयानां गृह्णन् यन्मूढं देशस्य च तरेभ्यः ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीने एका वदनेपर मधुपुत्र प्यवन कोले—
‘नरेश्वर ! कपूर देशपर और हमलोंपर जो भय प्राप्त हुआ
है, उसका मूल कारण क्या है, मुनिय ॥ २ ॥

पूर्वं एतयुगे राजन् दैतेयं सुमदासति ।
लोनापुत्रोऽभयज्येष्ठो मधुनाम महासुर ॥ ३ ॥

‘पूजा ! पहले समयमें एक बड़ा बुद्धिमान् दैत्य था ।

श्रीरघुनाथजीने ये वचन सुनकर उन यमुनातीर निवासी
उग्र तपस्वी मर्षियोंने उद्यत्स्वरसे उह साधुवाद दिया ॥ १५ ॥
ऊचुश्चेत् महात्मानो हर्षेण महता घृता ।
उपपन्नं नरथेष्ठं तत्रैव भुवि नान्यत ॥ १६ ॥

जिस वे महात्मा बड़े दृढ़से राय बोले—‘नरेश्वर ! इए
भूमण्डलमें ऐसी बातें आपके ही योग्य हैं । दूर निरीक्षे मुख
से इस तरहकी बात नहीं निकलती ॥ १६ ॥

यद्यपि पार्थिव राजन्तस्मिन्महावला ।
कार्थव्य गौरव मत्ता प्रतिज्ञा नाभ्यरोचयन् ॥ १७ ॥

‘राजन् ! हम बहुत से महावली राजाओंके पास गये,
परन्तु उन्होंने कार्यके गौरवकी समझकर उसे सुननेके बाद भी
‘वन्देना’ ऐसी प्रतिज्ञा करनेकी रुचि नहीं दिखायी ॥ १७ ॥

त्वया पुनर्ग्राहणगौरवादिष्य
घृता प्रतिज्ञा हानवेक्ष्य कारणम् ।
ततश्च कर्ता ह्यसि नात्र सशयो
महाभयात् पातुमृषीस्त्वमर्हसि ॥ १८ ॥

‘परन्तु आपने हमारे आनेका कारण जाने बिना ही केवल
प्राज्ञोंके प्रति आदरका भाव होनेसे हमारा काम करनेकी
प्रतिज्ञा कर डाली है, इसलिये आप अन्वय यह काम कर
सकेंगे, इसमें शक्य नहीं है । आप ही महान् भयसे श्रुपियों
को बचा सकेंगे’ ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें साठवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें साठवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें साठवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

यद लोलरा ज्येष्ठ पुत्र था । उग्र महान् असुरका नाम
था मधु ॥ ३ ॥

प्राज्ञस्यश्च शरण्यश्च युद्धाया च परिनिष्ठित ।
सुरैश्च परमोद्गारैः प्रीतिस्तस्यातुलाभयत् ॥ ४ ॥

‘यह बड़ा ही प्राज्ञाय भक्त और शरणायन्यस्तक था ।
उसकी बुद्धि सुस्विर थी । अत्यन्त उदार स्वभाववाला देशताओं
क साथ भी उसकी ऐसी गहरी मित्रता थी, जिसकी कहीं
गुलना नहीं थी ॥ ४ ॥

स मधुर्व्याससम्प नो धर्मं च सुसमाहितः ।
यद्गुमापाय रुष्टेण दत्तस्तस्याद्भुतो घ्न ॥ ५ ॥

‘मधु धन-विश्रमसे सम्पन्न था और एकाग्रचित्त होकर
धर्मक अनुष्ठानमें लगा रहता था । उसने भगवान् शिवकी
बनी आराधना की थी, जिससे उन्होंने उसे अद्भुत वर
प्राप्त किया था ॥ ५ ॥

शूल शूलाद् विनिष्कृत्य महावीर्यं महाप्रभम् ।

ददौ महात्मा सुप्रीतो धाम्य चैतदुवाच ह ॥ ६ ॥

महामना भगवान् शिवने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने शूलसे एक चमकमाता हुआ परम शक्तिशाली शूल प्रकट करने उसे मधुको दिया और यह बात कही—॥ ६ ॥

त्ययायमनुलो धर्मो मत्प्रसादकर हृत ।

प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यायुधमुत्तमम् ॥ ७ ॥

‘तुमने मुझे प्रसन्न करनेवाला यह बड़ा अनुपम धर्म किया है, अतः मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें यह उत्तम आयुध प्रदान करता हूँ ॥ ७ ॥

यावत् सुरैश्च विप्रैश्च न निरुष्येमहासुर ।

तावच्छूलं तत्रेदं न्यादयथा नाशमेव्यति ॥ ८ ॥

‘‘महान् असुर । जबतक तुम ब्राह्मणों और देवताओंसे विरोध नहीं करोगे, तभीतक यह शूल तुम्हारे पास रहेगा, अन्यथा अदृश्य हो जायगा ॥ ८ ॥

यच्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः ।

त शूलो भस्मसात्कृत्वा पुनरेव्यति ते करम् ॥ ९ ॥

‘‘जो पुत्र नि शङ्क होकर तुम्हारे सामने युद्धके लिये आयेगा, उसे भस्म करके यह शूल पुनः तुम्हारे हाथमें लौट आयेगा ॥ ९ ॥

एष वद्राद् वरं लब्ध्वा भूय एष महासुर ।

प्रणिपत्य महादेव धाम्यमेतदुवाच ह ॥ १० ॥

‘‘भगवान् ब्रह्मे ऐसा वर पाकर वह महान् असुर महादेव कीर्ति प्रणाम करके फिर इस प्रकार बोला—॥ १० ॥

भगवन् मम वशस्य शूलमेतदनुत्तमम् ।

भवेत् त्वं सततं देव सुराणामीश्वरो ह्यसि ॥ ११ ॥

‘‘भगवन् । देवाधिदेव । आप समस्त देवताओंके स्वामी हैं, अतः आपसे प्रार्थना है कि परम उत्तम शूल मेरे वशोंके पास भी सदा रहे ॥ ११ ॥

त ह्युवाच मधु देव सर्वभूतपति शिवः ।

प्रत्युवाच महादेवो नैतदेव भविष्यति ॥ १२ ॥

‘‘देवी बात कहनेवाले उस मधुसे समस्त प्राणियोंके अधिपति महान् देवता भगवान् शिवने इस प्रकार कहा— ‘‘ऐसा तो नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

मा भूत्ते विफलं याणी मत्प्रसादहता शुभा ।

भजत पुत्रमेकं तु शूलमेतद् भविष्यति ॥ १३ ॥

‘‘परन्तु मुझे प्रसन्न जानकर तुम्हारे मुखसे जो ‘‘तुम धानी निकली है, वह भी निष्फल न हो इसलिये मैं वर देता हूँ कि तुम्हारे एक पुत्रने पास यह शूल रहेगा ॥ १३ ॥

यावत् परस्य शूलोऽयं भविष्यति सतस्य ते ।

मरण्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति ॥ १४ ॥

‘‘यह शूल जनक तुम्हारे पुत्रने हाथमें मौजूद रहेगा, तबतक वह समस्त प्राणियोंके लिये अरण्य बना रहेगा ॥ १४ ॥

एव मधुर्वरं लब्ध्वा देवात् सुमहदद्भुतम् ।

भवनं सोऽसुरश्रेष्ठः कारयामास सुप्रभम् ॥ १५ ॥

‘‘महादेवजीसे इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत वर पाकर असुरश्रेष्ठ मधुने एक सुन्दर भवन तैयार करवा, जो अत्यन्त दीप्तिमान् था ॥ १५ ॥

तस्य पत्नी महाभागा प्रिया कुम्भीनसीति या ।

निश्वायसोरपत्य साप्यनलया महाप्रभा ॥ १६ ॥

‘‘उसकी प्रिय पत्नी महाभागा कुम्भीनसी थी, जो निश्वायसु की सतान थी । उसका जन्म अनलासे गर्भसे हुआ था । कुम्भीनसी बड़ी कान्तिमयी थी ॥ १६ ॥

तस्या पुत्रो महावीर्यो लरणो नाम क्षरुण ।

यावत्प्रवृत्तिं दुष्णत्मा पापान्येव समाचरत् ॥ १७ ॥

‘‘उसका पुत्र महापराक्रमी लरण है, जिसका स्वभाव बड़ा भयकर है । यह दुष्टत्मा बचपनसे ही केवल पापाचारमें प्रवृत्त रहा है ॥ १७ ॥

त पुत्रं दुर्विनीतं तु दृष्ट्वा क्रोधसमन्वित ।

मधु स शोकमापेद नैनं किञ्चिदब्रवीत् ॥ १८ ॥

‘‘अपने पुत्रका उदण्ड हुआ देख मधु क्रोधसे जलता रहता था । उसे ‘‘टेटेकी दुष्टता देखकर बड़ा शोक हुआ, तथापि यह इससे कुछ नहीं बोला ॥ १८ ॥

स निहाय इमं लोकं प्रविष्टो वरुणालयम् ।

शूलं निवेदय लरणे वरं तस्मै न्यवेदयत् ॥ १९ ॥

‘‘अतमें वह इस लोकको छोड़कर समुद्रमें रहनेके लिये चला गया । चलते समय उसने वह शूल लरणको दे दिया और उसे वरदानकी बात भी बता दी ॥ १९ ॥

स प्रभाषेण शूलस्य दौरात्त्येनात्मनस्तथा ।

सतापयति लोकाटीनं विशेषेण च तापसान् ॥ २० ॥

‘‘अब वह शूल उस शूलके प्रभावमें तथा अपनी दुष्टताके कारण तीनों लोकोंको विशेषतः तपस्वी मुनियोंकी बड़ा संताप दे रहा है ॥ २० ॥

एतप्रभाषो लरण शूलं चैव तथाविधम् ।

श्रुत्वा प्रमाणं काकुत्स्थं त्वं हि न परमा गति ॥ २१ ॥

‘‘उस लरणसुरका ऐसा प्रभाव है और उसने पास वैसा शक्तिशाली ‘‘शूल भी है । ग्युनन्दन । यह सब सुनकर यथोचित कार्य करनेमें आप ही प्रमाण हैं और आप ही हमारी परम गति हैं ॥ २१ ॥

वह्यं पात्रिना राम भयार्तिश्रुतिभिः पुनः ।

अभयं यात्रिना धीरं शतारं न च निषादे ॥ २२ ॥

‘‘भीराम । अजने पहले अपने पीढ़ित हुए श्रुति अनेक राजाओंने पास आ-आकर अभयकी भिन्न भिन्न चुफ हैं परन्तु धीर स्युरी । अबतक हमें बन्द रह्य नही मिला ॥

ते धय राज्ञश्चुत्वा हत सत्पत्न्याहनम् ।
प्रातार विभ्रहे तात नान्य भुवि नराविषम् ।
तत् परिप्रातुमिच्छामो लवणान्दभयपीडितान् ॥ २३ ॥

‘तात । हमने सुना है कि आपने सेना और सगरियों सहित रावणका संहार कर डाला है, इसलिये हम आपहीकी अपनी रक्षा करमेमें समर्थ समझते हैं, भूतलपर दूसरे किसी राजाको नहीं । अत हमारी इच्छा है कि आप भयसे पीडित हुए महर्षियोंकी लक्षणादुरसे रक्षा करें ॥ २३ ॥

हृत्पापै धीमद्रामायणे वासमीकीये आद्रिकाण्ये उत्तरकाण्डे एकपष्ठितम सर्ग ॥ ६१ ॥
इम प्रकार धीमात्मैरिनिर्मित आपरागायण अद्विराचक उत्तरकाण्डमें इससर्गमें सप्त पद्य हुआ ॥ ६१ ॥

द्विपष्ठितम. सर्गः

श्रीरामका श्रुतियोंसे लवणामुरके आहार विहारके विषयमें पृच्छना और शत्रुनाकी रुचि जानकर उन्हें लवण-वधके कार्यमें नियुक्त करना

तयोक्ते तान्पुत्रान् राम प्रयुगाच्च तृताञ्जलिः ।
किमाहार किमाचारो लवणः क्व च वतते ॥ १ ॥

श्रुतियोंके इस प्रकार करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे हाथ जोड़कर पूछा—‘लवणामुर क्या खाता है ? उसका आचार व्यवहार कैसा है—रहते रहनेका स्थान क्या है ? और यह कहाँ रहता है ?’ ॥ १ ॥

राघवस्य वच श्रुत्वा श्रुतयः सप्त पद्य ते ।
ततो निवेदयामासुलवणो यद्युधे यथा ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीनी यह बात सुनकर उन सभी श्रुतियोंने जिस तरहके आहार-व्यवहारसे लवणामुर पला था, वह सब यह सुनाया ॥ २ ॥

आहार सत्सत्त्वानि निशेषेण च तापसाः ।
आहारो नैश्वर्यता नित्य वासो मधुवनं तथा ॥ ३ ॥

वे बोल—‘प्रभो ! उसका आहार ता शमी प्राणी है परन्तु विशेषतः वह तपस्वी मुनियोंको खाता है । उसने आचार व्यवहारमें बड़ी श्रुता और मयानवत्ता है और वह सदा मधुवनमें निवास करता है ॥ ३ ॥

हृत्वा बहुसहस्राणि सिंहव्याघ्रमृगाण्डजान् ।
मानुषाश्चैव घुरते नित्यमाहारमादिकम् ॥ ४ ॥

‘वह प्रतिदिन कई सहस्र सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी और मनुष्योंको मारकर खा जाता है ॥ ४ ॥

ततोऽन्तराणि सत्त्वानि खादते स महायत्नः ।
सहारे समनुप्राप्ते व्याधितास्य इवान्तक ॥ ५ ॥

‘सहारकाल आनेपर मुँह बाहर खड़े हुए यमराजने समान यह महारली अमुर दूखे दूखे जीवोंकी भी खाता रहता है’ ॥ ५ ॥

तान्पुत्रा राघवो वाक्यमुवाच स महामुनीन् ।
घानयिष्यामि तद् रूपो व्यपगच्छतु यो भयम् ॥ ६ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

‘यह त्रिप्रभेदे सज्जत श्रीराम । इस प्रकार हमारे सामने जो भयज कारण उपस्थित हो गया है, वह हमने आपसे आगे निवेदन कर दिया । आप हमें दूर करनेमें समर्थ हैं, अत हमारी यह अभिलाषा पूर्ण करें’ ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

इति राम निवेदित तु ते
भयज धारणमुत्थित च यत् ।

त्रिनिधारयितु भवता क्षम
घुरत त कामप्रहीनप्रियम् ॥ २४ ॥

लिय इन्होंने अयाय्यापुरीका पालन किया था ॥ १२ ॥
 दुःखानि च यद्दानीह अनुभूतानि पार्थिव ।
 शयानो दुःखशय्यासु नदिप्रामे महायशा ॥ १३ ॥
 फलमूलाशानो भूत्वा जटी चौरधरस्तथा ।

‘पृथ्वीनाथ । महायशस्वी भरतने नदिप्राममें दुःखद
 शय्यापर नेते हुए पहल बहुतमें दुःख भोगे हैं । य फल
 मूल लाकर रहते थे और सिरपर जग बढाये चौर वस्त्र धारण
 करते थे ॥ १३ ॥

अनुभूयेदश दुःखमेव गद्यवनन्दन ॥ १४ ॥
 प्रप्रेये मयि स्थिते राजन् नभूय क्लेशमानुयात् ।

‘महाराज । ऐसे ऐसे दुःख भोगकर ये खुदकुलनन्दन
 भरत मुझ से अधिक रहते हुए अब फिर अधिक क्लेश न
 उठावें ॥ १४ ॥

तथा वृषति शत्रुघ्ने राघव पुनरग्रणीत् ॥ १५ ॥
 पय भवतु काकुत्स्थ त्रियठा मम शासनम् ।

राज्ये त्यामभिप्रेक्ष्यामि मधोऽस्तु नगरे शुभे ॥ १६ ॥
 शत्रुघ्न च ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजी फिर शाले—

‘काकुत्स्थ । तुम जैसा कहत हो, वैसा ही हो । तुम्हीं मेरे इष्ट
 आदेशका पालन करो । मैं तुम्हें मधुके सुन्दर नगरमें राजाई
 पदपर अभिषिक्त करूँगा ॥ १५ १६ ॥

नियेशय महायाहो भरत यद्यवेशसे ।

शूरस्त्य वृत्तविश्वश्च समर्थश्च निवेशने ॥ १७ ॥

‘महाबाह । यदि तुम भरतको क्लेश देना ठीक नहीं
 समझते तो इनका यही रहने दो । तुम शूरवीर हो, अश्व-विद्या

इत्यादि श्रीमद्भगवान्ने बाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्ड द्विपष्ठितम सर्ग ॥ ६० ॥

इम प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित अष्टाध्यायी अदिकाव्य उत्तरकाण्डे बासर्गों का पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिपष्टितम सर्ग

श्रीरामद्वारा शत्रुघ्नका राज्याभिषेक तथा तन्हें लवणासुरके शूलसे बचनेके उपायका प्रतिपादन

एवमुक्त्वस्तु रामेण परा ब्राह्मामुपागमत् ।

शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो मन्द मन्दमुयाच ह ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर बल-विनमसे सम्पन्न

शत्रुघ्न बड़े लज्जित हुए और धीरे धीरे शाले— ॥ १ ॥

अधर्मं विम्व काकुत्स्थ अस्मिन्नर्थे नरेश्वर ।

कथं त्विष्टु ज्येष्ठेषु कनीयानभिपिच्यते ॥ २ ॥

‘काकुत्स्थकुलभरण नरेश्वर । इस अभिषेकमें स्त्रीधार
 करनेमें तो मुझ अपम जन पड़ता है । भग, बड़े भाइयोंने
 रहते हुए छोटेका अभिषेक कैसे किया जा सकता है ? ॥ २ ॥

अपय्य करणीय च शासन पुरुषपथ ।

तय येन महाभाग शासन दुर्गतिक्रमम् ॥ ३ ॥

‘तथापि पुरुषपथ । महाभाग । आपकी आज्ञाका पालन
 तो मुझे अवश्य करना ही चाहिये । आपका शासन किसीके
 लिय भी दुर्लभ है ॥ ३ ॥

य शता द्वा तग तुममें नूतन नगर निमाण करनेकी
 शक्ति है ॥ १७ ॥

नगर यमुनाजुष्ट तथा जनपदान्शुभान् ।

यो हि वरा समुत्पाद्य पार्थिवस्य निवेशने ॥ १८ ॥

॥ निश्चिते नृप तत्र नरक स हि गच्छति ।

‘तुम यमुनाजीके तटपर सुन्दर नगर बसा सकते हो और
 उत्तमोत्तम जनपदोंकी स्थापना कर सकते हो । जो किसी राजा
 के वशका उच्छेद करने उसकी राजधानीमें दूसरे राजाको
 स्थापित नहीं करता, वह नरकमें पड़ता है ॥ १८ ॥

स त्व हत्वा मधुसुत लवण पापनिक्षयम् ॥ १९ ॥

राज्य प्रशाधि धर्मेण वाक्य मे यद्येवमेत ।

उत्तर च न उक्त्य शूर वाक्यान्तरे मम ॥ २० ॥

यात्नेन पूर्वजस्याहं कर्तव्या नात्र सशय ।

अभिषेक च काकुत्स्थ प्रतीच्छस्य ममोद्यतम् ।

यसिष्ठमसुखैर्विर्विधिं धिम प्रपुरवृत्तम् ॥ २१ ॥

‘अतः तुममधुके पुत्र पापाभा लवणासुरकां मारकर धम
 पूर्वक बहोके रायका ‘गहन कर । शूरवीर । यदि तुम मरी
 बात मानने वाक्य समझो तो मैं को कुछ कहता हूँ, उसे तुम
 आप स्वीकार करो । बीचमें बात काटकर कोई उत्तर तुम्हें
 नहीं देना चाहिये । बाल्मीकी अवश्य ही अपने बहोके
 आज्ञाका पालन करना चाहिये । ‘शत्रुघ्न । वरिष्ठ आदि मुख्य
 मुख्य ब्राह्मण विधि और मन्त्राचारणने आप तुम्हारा अभिषेक
 करेंगे । मरी आज्ञासे प्राप्त हुए इस अभिषेकमें तुम
 स्वीकार करो ॥ १९-२१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्भगवान्ने बाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्ड द्विपष्ठितम सर्ग ॥ ६० ॥

इम प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित अष्टाध्यायी अदिकाव्य उत्तरकाण्डे बासर्गों का पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

एवमुक्त्वस्तु रामेण परा ब्राह्मामुपागमत् ।

शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो मन्द मन्दमुयाच ह ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर बल-विनमसे सम्पन्न

शत्रुघ्न बड़े लज्जित हुए और धीरे धीरे शाले— ॥ १ ॥

अधर्मं विम्व काकुत्स्थ अस्मिन्नर्थे नरेश्वर ।

कथं त्विष्टु ज्येष्ठेषु कनीयानभिपिच्यते ॥ २ ॥

‘काकुत्स्थकुलभरण नरेश्वर । इस अभिषेकमें स्त्रीधार
 करनेमें तो मुझ अपम जन पड़ता है । भग, बड़े भाइयोंने
 रहते हुए छोटेका अभिषेक कैसे किया जा सकता है ? ॥ २ ॥

अपय्य करणीय च शासन पुरुषपथ ।

तय येन महाभाग शासन दुर्गतिक्रमम् ॥ ३ ॥

‘तथापि पुरुषपथ । महाभाग । आपकी आज्ञाका पालन
 तो मुझे अवश्य करना ही चाहिये । आपका शासन किसीके
 लिय भी दुर्लभ है ॥ ३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्भगवान्ने बाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्ड द्विपष्ठितम सर्ग ॥ ६० ॥

चाहिये था (अथात् मैत्रा भरतेने जब लवणको मारनेका निर्णय कर लिया, तब मुझे उसमें देखल नहीं देना चाहिये था) परतु मैंने इस नियमका उलङ्घन किया, इसीलिये आपने ऐसा (रायाभिषेकविषयक) आदेश दे दिया । जो स्वीकार कर लनेपर मेरे लिये अघर्मयुक्त होनेके कारण परलेकने लामसे भी यज्ञित करनेवाला है । तथापि आपकी आज्ञा मेरे लिये दुःखद्वय है, अतः मुझे इसको स्वीकार करना ही पड़ेगा ॥ ६ ॥

सोऽहं द्वितीयं काकुत्स्थं न यक्ष्यामीति चोत्तरम् ।
मा छिन्तयेन दण्डो यै निपतेमयि मानद ॥ ७ ॥
‘काकुत्स्थ ! अथ आपकी जो आज्ञा हो चुकी, उससे विवद मैं दूसरा कोई उत्तर नहीं दूँगा । मानद ! कहीं ऐसा न हो कि दूसरा कोई उत्तर देनेपर मुझ इससे भा कठोर दण्ड भोगना पड़े ॥ ७ ॥

कामकारो ह्यहं राजस्तथास्मि पुरुषर्षभ ।
अधर्मं जहि काकुत्स्थ मत्कृतं रघुनन्दन ॥ ८ ॥
‘रघुनन्द ! पुरुषप्रवर रघुनन्दन ! मैं आपकी इच्छाके अनुसार ही कार्य करूँगा । किंतु इसमें मेरे लिये जो अधर्म प्राप्त होता हो, उसका नाश आप करें’ ॥ ८ ॥

एवमुक्ते तु शूरेण शत्रुघ्नेन महात्मना ।
उवाच राम सहृष्टो भरत लक्ष्मण तथा ॥ ९ ॥
शूरवीर महात्मा शत्रुघ्नः एषा कष्टेनर भीयमच्छत्रुजी
बड़े प्रसन्न हुए और भरत तथा लक्ष्मण आदिसे बोले—॥९॥

सम्भारानभिपेक्ष्य आनयन् समाहिता ।
अथैव पुरुषध्याघ्नमभिपेक्ष्यामि राघवम् ॥ १० ॥
‘हम सब लोग बड़ी सावधानीके साथ रायाभिषेककी सामग्री जुटाकर ल आया । मैं अभी रघुबलनन्दन पुरुषविह
शत्रुघ्नका अभिषेक करूँगा ॥ १ ॥

पुरोधस च काकुत्स्थ नैगमानुविजयस्तथा ।
मन्त्रिणश्चैव तान् सर्वानानयन् प्रमादया ॥ ११ ॥
‘काकुत्स्थ ! मेरी आज्ञासे पुरहित, वैदिक विद्वानों,
श्रुतिज्ञों तथा समस्त मन्त्रियोंको बुल लाओ’ ॥ ११ ॥

राज्ञः शासनमशाय तथाबुधमहारथा ।
अभिषेकसमारम्भं पुरस्तृत्य पुरोधसम् ॥ १२ ॥
प्रविष्टा राजभयन राजानो आह्वयणास्तथा ।
महाराजकी आज्ञा पाकर महारथी भरत और लक्ष्मण
आदिने वैशा ही किया । वे पुरोहितजीको आगे करके अभिषेक
की सामग्री साथ लिये राजभवनमें आये । उनमें साथ ही
बहुतसे राजा और ब्राह्मण भी वहाँ आ पहुँचे ॥ १२ ॥

ततोऽभिषेको घघृये शत्रुघ्नस्य महात्मन ॥ १३ ॥
सम्प्रहपकर धीमान् राघवस्य पुरस्य च ।

तदनन्तर महात्मा शत्रुघ्नका वैभवशाली अभिषेक आरम्भ

हुआ, जो भीरुपुत्राधजी तथा समस्त पुरवासियोंके हर्षको
बढ़ानेवाला था ॥ १३ ॥

अभिषिक्तस्तु काकुत्स्थो वभौ चादित्यसन्निभः ॥ १४ ॥
अभिषिक्तं पुरा स्कन्द सेन्द्रैरिव दिव्यौकसेः ।

जैसे पूर्वकालमें इंद्र आदि देवताओंने स्कन्दका देवतेना
पतिसे पदपर अभिषेक किया था, उसी तरह भीराम आदिने
वहाँ शत्रुघ्नका राजपदे पदपर अभिषेक किया । इस प्रकार
अभिषिक्त होकर शत्रुघ्नजी सूर्यक समान सुशोभित हुए ॥ १४ ॥
अभिषिक्ते तु शत्रुघ्ने रामेणाह्निष्कमणा ॥ १५ ॥
पौरा प्रमुदिताश्चासन् ब्राह्मणाश्च वष्टुभुता ।

कलशरहित कर्म करनेवाले भीरामके द्वारा जब शत्रुघ्नका
राज्याभिषेक हुआ, तब उस नगरमें नियावियों और वटुभुत
ब्राह्मणोंको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १५ ॥

कौसल्या च सुमित्रा च मङ्गलं केन्द्री तथा ॥ १६ ॥
चमुस्ता राजभयने याश्चान्या राजयोपिता ।

इस समय कौसल्या, सुमित्रा और कैन्द्री तथा राय
भजनकी अथ राजमहिलाओंने मिलकर मङ्गलनाय छम्पन्न
किया ॥ १६ ॥

शृण्वथ महात्मानो यमुनातीरपासिन ॥ १७ ॥
हत लज्जामाशु शत्रुघ्नस्याभिषेचनात् ।

शत्रुघ्नजीका रायाभिषेक होनेसे यमुनातीरनिवासी
महात्मा श्रुतियोंने यह निश्चय हो गया कि अथ लज्जामुक्त
मारा गया ॥ १७ ॥

ततोऽभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्गमारोप्य राघव ।
उवाच मधुरा वाणीं तेजस्तस्याभिपूरयन् ॥ १८ ॥

अभिषेकके पश्चात् शत्रुघ्नका गोदमें बिठाकर भीरुपुत्राध
जीने उनका तेज बढ़ात हुए मधुर वाणीमें कहा—॥ १८ ॥
अथ शरस्त्वमोघस्ते दिव्य परपुरजय ।

अनेन लवण सौम्य हन्तासि रघुनन्दन ॥ १९ ॥
‘रघुनन्दन ! सौम्य शत्रुघ्न ! मैं तुम्हें यह दिव्य अमोघ
बाण दे रहा हूँ । तुम इसके द्वारा लवणामुक्तको अवश्य मार
दालोगे ॥ १९ ॥

सृष्टः शरोऽयं काकुत्स्थ यदा शेते महार्णवे ।
स्वयभूरजितो दिव्यो य नापदयन् सुरासुराः ॥ २० ॥

अद्वय सयम्भूताना तेनाय हि शरोत्तम ।
सृष्टं क्रोधाभिभूतेन विनाशार्थं दुरामनो ॥ २१ ॥

मधुकैटभयोर्वीर विधाते सबरक्षसाम् ।
शम्भुकामेन लोकार्हास्ती चानेन हतौ युधि ॥ २२ ॥

ती हत्वा जनभोगार्थं कैटभं तु मधु तथा ।
अनेन शरसुरयेन ततो लोकान्धकार स ॥ २३ ॥

‘काकुत्स्थ ! पिउल प्रलयकालमें जब किरीसे मी पराजित
न होनेवाले अजन्मा एवं दिव्य रूपधारी भगवान् विष्णु महान्
एकाग्रवक्त्रे जलमें धवन करते थे, उस समय उन्हें देवता और

असुर कोई नहीं देल पाते थे । ये सम्पूर्ण भूतोंके लिये अदृश्य थे । वीर ! उसी समय उन भगवान् नारायणने ही कुपित हो दुरात्मा मधु और कैटभके विनाश तथा समस्त राक्षसोंके संहार के लिये इस दिव्य, उत्तम एवं अमोघ बाणकी सृष्टि की थी । उस समय ये तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे और मधु, कैटभ तथा अन्य सब राक्षस उसमें विघ्न उपस्थित कर रहे थे । अतः भगवान्ने इसी क्षणसे मधु और कैटभ दोनोंको युद्धमें मार पा । इस मुख्य बाणसे मधु और कैटभ दोनोंको मारकर भगवान्ने जीवोंके कर्मफल भोगकी सिद्धिके लिये विभिन्न लोकोंकी रचना की ॥ २०-२३ ॥

नाय मया शर पूर्वं रावणस्य वधार्थिना ।
मुक्तं शत्रुघ्नं भूतानां महान् ह्लासो भवेदिति ॥ २४ ॥
'शत्रुघ्न ! पहले मैंने रावणका वध करनेके लिये भी इस बाणका प्रयोग नहीं किया था क्योंकि इसके द्वारा बहुत-से प्राणियोंके नष्ट हो जानेकी आशङ्का थी ॥ २४ ॥

यच्च तस्य महच्छूल व्यव्रकेण महात्मना ।
दत्तं शत्रुविनाशाय मधोरायुधमुत्तमम् ॥ २५ ॥
तत् सन्निमित्त्य भयने पूज्यमान पुन पुन ।
दिशं सर्वा समासाद्य प्राप्नोत्याहारमुत्तमम् ॥ २६ ॥
'लक्षणके पास जो महात्मा महादेवजीका शत्रुविनाशके लिये दिया हुआ मधुका दिव्य, उत्तम एवं महान् शूल है, उसका वह प्रतिदिन बार-बार पूजन करता है और उसे महलमें ही गुप्तरूपसे रखकर समस्त दिशाओंमें जा-जाकर अपने लिये उत्तम आहारका समूह करता है ॥ २५-२६ ॥

हृत्पार्थे श्रीमद्रामायण वाक्यमीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे त्रिपटितमः सर्गः ॥ ६३ ॥
इमं प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिकाण्ड उत्तरकाण्डमें तिरस्कर्त्तव्य सग पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःपटितमः सर्गः

श्रीरामकी आज्ञाके अनुसार शत्रुघ्नका सेनाको आगे भेजकर एक मासके पश्चात् स्वयं भी प्रस्थान करना

पयमुक्त्वा च काकुत्स्थ प्रशस्य च पुन पुन ।
पुनरेवापरं धाम्यमुवाच रघुनन्दन ॥ १ ॥
शत्रुघ्नजीका इस प्रकार समझाकर और उनकी बार-बार प्रशंसा करके रघुनन्दन श्रीरामने पुन यह बात कही—
'इमान्यश्वसहस्राणि चार्याणि पुरुषपर्षभ ।
रथानां च सहस्रे च गजानां शतमुत्तमम् ॥ २ ॥
अन्तरापणवीथ्यश्च मानापण्योपशोभिता ।
अनुगच्छन्तु काकुत्स्थ तथैव नटनन्दन ॥ ३ ॥
'पुरुषप्रवर ! ये चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, छे हाथी और सत्तेमें तरह-तरहे सामानकी दूकानें लगायेवाले यन्त्रिय हाण विरूपकी आवश्यक वस्तुओंका साथ द्रुमारे साथ

यदा तु युद्धमाकाङ्क्षन् कश्चिदेन समाह्वयेत् ।
तदा शूलं गृहीत्वा तु भस्म रक्ष करोति हि ॥ २७ ॥
'अब कोई युद्धकी इच्छा रखकर उसे बलकारता है, तब वह राक्षस उस शूलको लहराकर अपने विपक्षीको भस्म कर देता है ॥ २७ ॥
स त्वं पुरुषशार्दूल तमायुधजिनाहृतम् ।
अप्रविष्टं पुरं पूर्वं द्वारि तिष्ठ धृतायुध ॥ २८ ॥
'पुरुषसिंह ! जिस समय वह शूल उसके पास न हो और वह नगरमें भी न पहुँच सका हो, उसी समय पहलेसे ही नगरके द्वारपर जाकर अन्न शन्न चारण किये उसरी प्रतीक्षामें बटे रहो ॥ २८ ॥

अप्रविष्टं च भवनं युद्धाय पुरुषपर्षभ ।
आह्वयेथा महायाहो ततो हन्तासि राक्षसम् ॥ २९ ॥
'महाबाहु पुरुषात्तम ! यदि उस राक्षसको महलमें घुसने से पहले ही त्रुम युद्धके लिये ललकारोगे, तब अवश्य उसका वध कर सकोगे ॥ २९ ॥

अन्यथा क्रियमाणे तु ह्यवध्य स भविष्यति ।
यदि त्वेन हृतं वीरं विनाशमुपयास्यति ॥ ३० ॥
'ऐसे न करनेपर वह अवश्य हो जायगा । वीर ! यदि तुमने ऐसा किया तो उस राक्षसका विनाश होकर ही रहेगा ॥ एतत् ते सर्वमाप्यात शूलस्य च निर्वप्य ।
श्रीमताः शितिकण्ठस्य हृत्य हि दुरतिक्रमम् ॥ ३१ ॥
'इस प्रकार मैंने तुम्हें उस शूलसे बचनेका उपाय तथा अन्य सब आवश्यक बातें बता दीं क्योंकि श्रीमान् भगवान् नील कण्ठके विधानसे पलटना बड़ा कठिन काम है ॥ ३१ ॥

जायेंगे । साथ ही मनोरञ्जनके लिये नट और नतक भी रहेंगे ॥ २३ ॥
हिरण्यस्य सुव्रणस्य नियुतं पुरुषपर्षभ ।
आदाय गच्छ शत्रुघ्नं पयासधननाशन ॥ ४ ॥
'पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्न ! त्रुम दस लाख स्वर्णमुद्रा लेकर जाओ । इस तरह पयास घन और सगारियों अपने साथ रहनेको ॥ ४ ॥

यत् च सुष्ठुन धीरं हृत्पुष्टमनुद्धतम् ।
सम्भाषासम्प्रदानेन रक्षयस्व नरोत्तम ॥ ५ ॥
'इस सेनाका भणीमौलि मरण-पंथन किया गया है । यह ही तथा उसकासे पूष, अशुष्ट और उहृष्टतामें रहित हारकर आरः

के अधीन रहनेवाली है । नरभेष्ट ! इसे मधुर भाषणसे और धन देकर प्रसन्न रखना ॥ ५ ॥

नद्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च याधयाः ।

सुप्रीतो भृत्यवर्गस्तु यत्र तिष्ठति राघव ॥ ६ ॥

पुत्रनन्दन ! अत्यन्त प्रसन्न रहकर गये सेवक-समूह (सैनिक) जहाँ (जिस लकड़कालमें) खड़े होत या खाय देत हैं, वहाँ न तो धन टिक पाता है, न स्त्री ठहर सकती है और न माई-बच्चे ही खड़े हो सकते हैं (अतः उन सबको सदा सतृप्त रखना चाहिये) ॥ ६ ॥

अतो हृष्टजनार्कीर्णो प्रस्थाप्य महतीं चमूम् ।

एक एव धनुषाणिर्गच्छ त्व मधुनो घनम् ॥ ७ ॥

यथा राजा न प्रजानाति गच्छन्त युद्धकाङ्क्षिणम् ।

रणस्तु मयो पुत्रस्तथा गच्छेरदाङ्कितम् ॥ ८ ॥

इसलिये हृष्ट पुत्र मनुष्योंसे भरी हुई हृष्ट विशाल सेना को आगे भेजकर तुम पीछेसे अनेक ही केवल धनुष हाथमें लेकर मधुवनको जाना और इस तरह यात्रा करना, जिससे मधुपुत्र लवणको यह सदेह न हो कि तुम युद्धकी इच्छासे यहाँ जा रहे हो । तुम्हारी गति विविधा उसे पता नहीं चलना चाहिये ॥ ७ ॥

न तस्य मृत्युरन्योऽस्ति कश्चिदिदं पुरुषार्थम् ।

दशन योऽभिगच्छेत् स घृण्यो लरणेन हि ॥ ९ ॥

‘पुरुषोत्तम ! मैंने जो बताया है, उसके सिवा उसकी मृत्युका दूसरा कोई उपाय नहीं है क्योंकि जो भी शूद्रसहित लवणासुरके इष्टिपथमें आ जाता है, वह अवश्य उसके द्वारा मारा जाता है ॥ ९ ॥

स ग्रीष्म अपयाते तु पर्वापात्र उपायते ।

हन्त्यास्त्य लरण सौम्य स हि कालोऽस्य दुमते ॥ १० ॥

‘सौम्य ! जब ग्रीष्म ऋतु निकल जाय और वर्षाकाल आ जाय, उस समय तुम लवणासुरका वध करना क्योंकि उस दुष्टदि राक्षसने नाशका बड़ी धमक है ॥ १ ॥

महर्षीस्तु पुरस्सृत्य प्रयातु तव सैनिका ।

यथा ग्रीष्मावदोषेण तरेयुजाङ्गवीजलम् ॥ ११ ॥

‘तुम्हारे सैनिक महर्षियोंको आगे करने चाहेंसे यात्रा करें, जिसमें ग्रीष्म ऋतु भीतते भीतते वे गङ्गाजीको पार कर जायें ॥ ११ ॥

तत्र स्थाप्य यत्न सर्वे नदीतीरे समाहित ।

अप्रतो धनुषा सार्धं गच्छ त्व लघुविजयम् ॥ १२ ॥

‘श्रीमद्भारमी वीर ! फिर सारी सेनाको यहाँ गङ्गाजीके

द्विगार्धे श्रीमद्भारमायणे वासमीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठे पट्टिम् सप्त ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषारामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौसठवाँ सप्त भूत हुआ ॥ ६४ ॥

तटपर ठहराकर तुम धनुषमात्र लेकर पूरी लावपातीके साथ अकेले ही आगे जाना ॥ १२ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण शत्रुघ्नेस्तान् महारथान् ।

सेनामुख्यान् समानीय ततो वाक्पयमुवाच ह ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने एका कहनेपर शत्रुघ्नजीने अपने प्रधान सेनापतियोंको बुलाया और इस प्रकार कहा— ॥ १३ ॥

एते वो गणिता यासा यत्र तत्र नियतस्यथ ।

स्थितव्य चविगेघेन यथा याथा न कस्यचित् ॥ १४ ॥

‘देखो, मामें जहाँ-जहाँ डेरा डालना है, उन महागोश नियम कर लिया गया है । तुम्हें वहाँ निवास करना होगा । जहाँ भी उधरो, त्रिरोषमावको मनसे निकाल दो, जिससे किसी को कष्ट न पहुँचे ॥ १४ ॥

तथा तास्तु समागम्य प्रस्थाप्य च महद्बलम् ।

कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयीं चान्यत्रादयश्च ॥ १५ ॥

इस प्रकार उन सेनापतियोंको आशा दे अपनी विगाल सेनाको आगे भेजकर शत्रुघ्नने कौसल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी को प्रणाम किया ॥ १५ ॥

राम प्रदक्षिणीकृत्य शिरसान्निप्रणम्य च ।

लक्ष्मण भरत चैव प्रणिपत्य हृताङ्गलि ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् श्रीरामकी परिक्रमा करके उनके चरणोंमें महाप्रणाम किया । फिर हाथ जोड़कर भगत और लक्ष्मणकी भी वन्दना की ॥ १६ ॥

पुरोहित वसिष्ठ च शत्रुघ्न प्रयतात्मवान् ।

रामेण चाभ्यनुवातः शत्रुघ्न शत्रुतापतः ।

प्रदक्षिणमयो हृत्वा निजगाम महायत्न ॥ १७ ॥

तदनन्तर मनको धर्ममें रखकर शत्रुघ्नने पुरोहित वसिष्ठको नमस्कार किया । फिर श्रीरामकी आशा ले उनकी परिक्रमा करके शत्रुघ्नको सताप देनेवाले महायत्नी शत्रुघ्न अभ्युप्यास निकले ॥ १७ ॥

प्रस्थाप्य सेनामथ सोऽग्रतस्तदा

गजेन्द्रघातिप्रवरौघसङ्कुलम् ।

उवाच मास त्व नरेन्द्रपार्श्वत

स्थथ प्रयातो रघुवशार्धत ॥ १८ ॥

गजराजों और श्रेष्ठ अभयोंके समूहदायसे भरी हुई विगाल सेनाको आगे भेजकर रघुवशकी इष्टि करनेवाले शत्रुघ्न एक मासका महाराज श्रीरामके पास ही रहे । उसके बाद उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया ॥ १८ ॥

पञ्चपटितमः सर्ग

महर्षि वाल्मीकिंका शत्रुघ्नको सुदासपुत्र रत्नापपादकी कथा सुनाना

प्रस्थाप्य च यत्न सर्वे मासमाश्रयित पथि ।

एक पश्यान् शत्रुघ्नो जगाम स्तरित तदा ॥ १ ॥

अपनी सेनाका आगे भेजकर अश्वारोहि एक माह रहनेके पश्चात् शत्रुघ्न अन्त ही वहँसे मधुवनन मागपर प्रस्थित हुए । वे वही तंजीन साथ आगे बढ़ने लगे ॥ १ ॥

द्वितीयमन्तरे शूर उष्य राघवमन्दन ।

वाल्मीकिराधम पुण्यमगच्छद् वासमुत्तमम् ॥ २ ॥

रघुकुलका आनन्दित करनेवाले शूरवीर शत्रुघ्न राक्षसे दो रात बिनाकर तीसरे दिन महर्षि वाल्मीकि पवित्र आश्रम पर जा पहुँचे । वह वसने उत्तम वाद्यस्थान था ॥ २ ॥

सोऽभिग्राह्य महात्मान वात्मीकिं मुनिस्तत्तमम् ।

कृताञ्जलिरथो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

वहाँ उन्होंने हाथ जोड़ मुनिश्रेष्ठ महात्मा वाल्मीकिसे प्रणाम करके यह बात कही— ॥ ४ ॥

भगवन् उन्मुमिच्छामि शूरो हृत्पादिहागत ।

य प्रभाते गमिष्यामि प्रतीर्षो वारुणीं विश्वम् ॥ ४ ॥

‘भगवन् । मैं अपने बड़े भाई श्रीरघुनाथजीके कार्यामें इधर आया हूँ । आज रातना यहाँ ठहरना चाहता हूँ और कल सुबह वरुणदेवद्वारा पालित पश्चिम दिशाको चला जाऊँगा’ ॥ शत्रुघ्नमन्य वच श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गव ।

प्रत्युवाच महामान स्वागत त महायश ॥ ५ ॥

शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर मुनिवर वाल्मीकिने उन महात्माको हँसते हुए उत्तर दिया—‘महायशस्वी वीर । तुम्हारा स्वागत है ॥ ५ ॥

स्वमाश्रममिदं सौम्य राघवाणा कुलस्य वै ।

आसन पाद्यमर्घ्यं च निर्विदाह प्रतीच्छ मे ॥ ६ ॥

‘सौम्य । यह आश्रम रघुपतिजीके लिये अपना ही घर है । तुम निरुदाह हँस मेरी भरने आसन, पाद्य और अर्घ्य स्वीकार करो’ ॥ ६ ॥

प्रतिशृता तदा पूना फल्गू च भोजनम् ।

भक्षयामास कातृत्पस्वर्त्ति च परमा गत ॥ ७ ॥

तब वह सत्कार ग्रहण करके शत्रुघ्नने फल्गूका भोजन किया । इसमें उन्हें बड़ी वृत्ति हुई ॥ ७ ॥

स मुक्त्या फल्गू च महर्षि तमुवाच ह ।

पूना यमनिभूतीय कन्यायमसमीपत ॥ ८ ॥

फल्गूका व्याकर व महर्षिसे बोले—‘मुने ! इस आश्रमके निम्न जो यह प्राचीनकाला यक्ष-यैभर (यूप आदि उप करण) निम्नो देता है ; छिन्का है—किस यजमान नरेशने यहाँ यज्ञ किया था’ ॥ ८ ॥

तत् तस्य भाषितं श्रुत्वा वाल्मीकिराक्यमग्रणीत् ।

शत्रुघ्न शृणु परयेद् यमुवाचतन पुन ॥ ९ ॥

उनका यह प्रश्न सुनकर वाल्मीकिजीने कहा—‘शत्रुघ्न ।

पूर्वकारमें जिस यजमान नरेशका यह यज्ञमण्डप रहा है, उसे बताता हूँ । पुन ॥ ९ ॥

युष्माकं पूर्वको राघा सुदासस्तस्य भूपते ।

पुत्रो वीरसहो नाम वीर्यवानतिधार्मिक ॥ १० ॥

तुम्हारे पूर्वज राजा सुदास इस भूमण्डलके स्वामी हो गये हैं । उन भूपालके वीरसह (भित्तसह) नामक एक पुत्र हुआ, जो बड़ा पराक्रमी और अत्यन्त धर्मात्मा था ॥ १० ॥ स वाल पथ सौदासो मृगयामुपचक्रमे ।

चञ्चूर्यमाण दृष्टो स शूरो राक्षसद्वयम् ॥ ११ ॥

‘सुदासका यह शूरवीर पुत्र बाल्यावस्थामें ही एक दिन छिन्नार लेलनेके लिये यन्में गया । वहाँ उसने दो राक्षस देखे, जो सब ओर बारबार विचर रहे थे ॥ ११ ॥

शार्ङ्गलक्ष्मिणीं घोरं मृगान् बहुसहस्रश ।

भक्षमाणानस्तुषीं पयाति नैव जन्तु ॥ १२ ॥

‘व दोनों गार राक्षस बाणका रूप धारण करके कई हजार मृगोंको मारकर खा गये । फिर भी खटुड नहीं हुए । उनके पट नहीं भरे ॥ १२ ॥

स तु तौ राक्षसौ दृष्ट्वा निर्मृगं च वन वृत्तम् ।

बोधेन महताविष्टो जघानैव महिषुणा ॥ १३ ॥

‘वीरसहने उन दोनों राक्षसोंका देखा । गाय ही उनसे द्वारा मृगशय्य लिये गये उस वनकी अवस्थापर दृष्टिपात किया । इससे व महान् व्यक्तसे मर गये और उनमेंसे एकको विद्यात बाणसे मार डाला ॥ १३ ॥

निनिपात्य तमेव तु सौदास पुरुषधम ।

विन्वरो निगतामपौ हत रक्तो हुर्दक्षत ॥ १४ ॥

‘एकको घराघापी करके वे पुरुषप्रभर गौण निक्षिप्त हो गये । उनका अमप जाता रहा और व उस मर हुए राक्षसको देवने लगे ॥ १४ ॥

निरीक्षमाण त दृष्ट्वा सहाय तस्य रक्षस ।

सतापमकरोद् घोर सौदास चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

‘उस राक्षसक मर हुए साथीको जब वीरसह देख रहे थे, उस समय उनकी अंग दृष्टिपात करने उस दूर राक्षसने मन ही मन घोर सताप किया और गौणसहने ‘व प्रकार कहा— ॥

यस्माद्गनपराधं त सहाय मम जन्मिनाम् ।

तस्मात् तरापि पापिष्ठ प्रदास्यामि प्रतिक्षिन्वाम् ॥ १६ ॥

‘महाशयो नरेश ! तुने मर निरन्तर साथीको मार डाला है, इसलिये मैं तुझसे भी इसका बदला दूँगा’ ॥ १६ ॥

परमुक्त्या तु तद् रक्षस्तयैरान्तर्गधीयत ।

कालपयाययोगेन राजा मित्रसहोऽभवत् ॥ १७ ॥

‘इसका बदलकर वह राक्षस वही अन्तर्धान हो गया और

दीर्घकाले पश्चात् मुदास्तुमार मित्रमह अयोध्याके राजा
हो गये ॥ १७ ॥

राजापि यजते यज्ञमस्याश्रमसमीपत ।
अश्वमेध महायज्ञं त वसिष्ठोऽप्यपालयत् ॥ १८ ॥

‘उन्हीं राजा मित्रवदने इस आश्रमके समीप अश्वमेध
नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया । महर्षि वसिष्ठ अपने तपो
बलसे उस यज्ञकी रक्षा करते थे ॥ १८ ॥

तत्र यज्ञो महानासीद् बहुवर्षगणायुत ।
समृद्ध परया लक्ष्म्या देवयज्ञसमोऽभवत् ॥ १९ ॥

‘उनका वह महान् यज्ञ बहुत वर्षोंतक यहाँ चलता रहा ।
वह यज्ञी वन सम्पत्तिसे सम्पन्न यज्ञ देवताओंके यज्ञकी समानता
करता था ॥ १९ ॥

अथावसाने यज्ञस्य पूर्ववैरभनुस्मरन् ।
वसिष्ठरूपी राजानमिति होयाच राक्षस ॥ २० ॥

‘उस यज्ञकी समाप्ति होनेपर पहलेबे वैराग्य स्मरण करने
वाला वह राक्षस वसिष्ठजीका रूप धारण करके राजान का
आया और इस प्रकार बोले— ॥ २० ॥

अथ यज्ञावसानान्ते सामिप भोजन मय ।
क्षीयतामतिशीघ्र वै नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥

‘यज्ञन् । आज यज्ञकी समाप्ति का दिन है, अतः आज
झुंसे तुम शीघ्र ही मांसयुक्त भोजन दो । इस विषयमें कोई
अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

तच्छ्रुत्वा ह्याहूत वाप्य रक्षसा गृह्यरूपिणा ।
स्वाप्तुं स्वस्कारक्षुचालानुयाच वृथिवीपति ॥ २२ ॥

‘मांसगणरूपधारी राक्षसकी कही हुई बात सुनकर राजाने
खोई बनानेमें कुछाह रखोईयोंसे कहा— ॥ २२ ॥

हविष्य सामिप स्वाप्तु यथा भवति भोजनम् ।
तथा कुतश्च शीघ्र वै परितुष्येद् यथा शुचः ॥ २३ ॥

‘तुमझोग आज शीघ्र ही मांसयुक्त हविष्य तैयार करो
और उसे खा बनाओ, जिससे त्वादिए भोजन हो सके तथा मेरे
शुद्धदेव उल्लेख शुद्ध हो सकें ॥ २३ ॥

शासनात् पार्थिवेन्द्रस्य सगभ्रातमानस ।
नञ्च रक्षः पुनस्तत्र सूत्रेपमथाकरोत् ॥ २४ ॥

‘महाराजकी इस आज्ञाकी सुनते ही रखोईयोंके मनमें यज्ञी
परावट पैदा हो गयी (वह सोचने लगा, आज गुप्तजी
अमर्य भक्षणमें कैसे प्रवृत्त होंगे) । यह देख कि उस राक्षस-
ने ही रखोईदेवरों से बना लिया ॥ २४ ॥

स मानुषमयो मांस पार्थिवस्य न्यवेदयत् ।
इदं स्वाप्तु हविष्य च सामिप चाद्यमाहृतम् ॥ २५ ॥

‘उद्ये मनुष्यका मांस लेकर राजाको दे दिया और
कहा—यह मांसयुक्त अन्न एवं हविष्य लाया हूँ । यह बढ़ा
ही स्वादिष्ट है ॥ २५ ॥

स भोजन वसिष्ठाय पत्न्या सार्धमुपाहरत् ।

मदयन्त्या नरश्रेष्ठ सामिप रक्षसा हृतम् ॥ २६ ॥

‘नरश्रेष्ठ । अपनी पत्नी रानी मदयन्तीके साथ राजा
मित्रवदने राक्षसके लिये हुए उस मांसयुक्त भोजनकी वसिष्ठजीके
सामने रक्का ॥ २६ ॥

क्षान्ना तदामिप विप्रो मानुष भाजन गतम् ।
क्रोधेन महतागिष्टो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ २७ ॥

‘पार्लेमें मानव-मांस परोसा गया है, यह जानकर ब्रह्मर्षि
वसिष्ठ महान् क्रोधसे भर गये और इस प्रकार बोले— ॥ २७ ॥
यस्मात्स्व भोजन राजन् ममैतद् दातुमिच्छसि ।

तस्माद् भोजनमेतत् ते भगिष्यति न सशय ॥ २८ ॥

‘भगन् । तुम मुझ ऐसा भोजन देना चाहते हो, इसलिये
यही तुम्हारा भोजन होगा इसमें शय्य नहीं है (अर्थात् तुम
मनुष्यभक्षी राक्षस हो न्नाओगे) ॥ २८ ॥

तत क्रुद्धस्तु सौदासस्तोय जग्राह पाणिना ।
वसिष्ठ शत्रुमारजे भाषा चैनमपाययत् ॥ २९ ॥

‘यह सुनकर सौदासने भी क्रुषित हो हाथमें बाल ले लिया
और वसिष्ठ मुनिको धाप देना आरम्भ किया । तबतक उनकी
पत्नीने उन्हें रोक दिया ॥ २९ ॥

राजन् प्रभुर्येतोऽस्माक वसिष्ठो भगवानृषि ।
प्रतिशप्तु न शकस्त्य देवतुल्य पुरोधसम् ॥ ३० ॥

‘वे बोली—‘राजन् । भगवान् वसिष्ठ मुनि हम सबके
स्वामी हैं, अतः आप अपने देवतुल्य पुरोहितको बदलेमें क्षाप
नहीं दे सकते ॥ ३० ॥

तत क्रोधमय तोय तेजोबलसमन्वितम् ।
व्यसजयत धमात्मा तत पादौ सिपेच च ॥ ३१ ॥

‘तब धर्मात्मा राजाने तेज और बलसे सम्पन्न उस क्रोध
मय बलको नीचे बाल दिया । उससे अपने दोनों पैरोंको ही
धींच लिया ॥ ३१ ॥

तेनास्य राक्षसौ पादौ तदा कल्माषता गतौ ।
तदाप्रभृति राजासौ सौदास सुमहायशः ॥ ३२ ॥

कल्माषपादं सवृत्तं स्वातश्चैव तथा नृप ।

ऐसा करनेसे राजाके दोनों पैर तत्काल चितकधरे हो
गये । तभीसे महायशस्वी राजा सौदास कल्माषपाद (चितकधरे
पैरवाले) हो गये और उसी नामसे उनकी ख्याति हुई ॥ ३२ ॥

स राजा सह पत्न्या वै प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
पुनर्वसिष्ठं प्रोयाच यदुक्तं गृह्यरूपिणा ॥ ३३ ॥

‘तदनन्तर पत्नीसहित राजाने बारबार प्रणाम करके फिर
वसिष्ठके कहा—‘महर्षे । आपहीका रूप धारण करनेके क्रिये
झुंसे ऐसा भोजन देनेके लिय प्रवृत्त किया था ॥ ३३ ॥

तच्छ्रुत्वा पार्थिवेन्द्रस्य रक्षसा विवृत्तं च तत् ।
पुन प्रोयाच राजान वसिष्ठ पुरुषर्षभम् ॥ ३४ ॥

‘पार्थिवराज मित्रवदकी यह बात सुनकर और उसे

राक्षसो करतु जानकर बलिष्ठने पुन उन नभेष्ट नरगने
कहा—॥ ३४ ॥

मया रोपपर्विनेन यद्विद व्याहृत वच ।
नैनच्छब्दस्य वृत्ता कर्तुं प्रशम्यामि च ते यम् ॥ ३५ ॥

‘राक्षन् ! मने रोपने भरकर जा दान कह दो है, इसे
स्वय मही रिग जा सनना परतु इसने छूटनक लिये मैं
हुई एक पर दूँ ॥ ३ ॥

फाले द्वादशवराणि शापस्यान्तो भविष्यति ।
मत् प्रसादाद्वा राजेन्द्र अतीत न स्मरिष्यसि ॥ ३६ ॥

‘राजेन्द्र ! तू तू इस प्रकार है—तू शाप कारण वों
तक रहेगा । उठने तू इसका अन्त हो जायगा । मेरी इच्छा
हुई बीता हुई बातका स्मरण न करेगा ॥ ३६ ॥

एव स राजा त शापमुपभुव्यारिखद्न ।

इत्यार्षे धामनामपणे वाल्मीक्या आम्निकाय उत्तरकाण्डे पट्टपठितम् सर्ग ॥ ६ ॥

इन प्रकार श्रीवाल्मीकिर्निर्मित अष्टरामचण अम्निकायक उक्तछन्दसे पदार्थों में पूरा हुआ ॥ ६ ॥

पट्टपठितम् सर्ग

मीताके दो पुत्रों का जन्म, वाल्मीकिद्वारा उनकी रक्षानी व्यनम्या और इस ममाचारसे

प्रसन्न हुए गजुन्नका वहाँसे प्रस्थान करके यमुनातटपर पहुँचना

यामेव रात्रि शशुष्म पर्णशाला समाविशत् ।
तामेव रात्रि सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥ १ ॥

जिस रातका शशुष्मन पर्णशालामें प्रवेश किया था,
उसी रातमें सीताजीने दो पुत्रोंको जन्म दिया ॥ १ ॥

ततोऽधरात्रसमये वाल्मका मुनिदारका ।
वाल्मके प्रियमाचक्षु सीताया प्रसन्न शुभम् ॥ २ ॥

तदनंतर आधीरात्र समय कुछ मुनिद्वाराोंने वाल्मीकि
दाक पास आकर उई सीताजीके प्रसन्न होनेका शुभ एव
प्रिय समाचार सुनाया—॥ २ ॥

भगवन् रामपत्नी सा प्रसूता दारकद्वयम् ।
ततो रक्षा महानेन कुरु भूतविनाशिनीम् ॥ ३ ॥

‘भगवन् ! श्रीरामचन्द्रजीनी घमरलाने दो पुत्रोंका
जन्म दिया है अब महादेवजी महर्षे आप उनकी रक्षा
महज्जित बाधा निवृत्त करनेवासी रक्षा करें ॥ ३ ॥

तेषा तद् वचन श्रुत्वा महपि समुपागमत् ।
पाल्मजप्रतीकासी देवपुत्रो महौचसी ॥ ४ ॥

उन कुमारोंसे यह बात सुनकर महर्षि उस स्थानपर गये ।
सीताके दो पुत्र वाल्मज्जितमान सज्जन मुदर तथा देव
कुमारोंके स्थान महादेवजी य ॥ ४ ॥

जगाम तत्र हणत्मा ददर्श च कुमारकौ ।
भूतर्षी चाकरोत्ताभ्या रक्षा रम्भोविनाशिनीम् ॥ ५ ॥

जगाम हिन्देने प्रसन्नचित होकर मुनिजागारमें प्रवेश किया
और उन दोनों कुमारोंके देखा तथा उनके लिये भूतों और

प्रतिलेभे पुना गन्ध प्रनाशैवाऽपालयत् ॥ ३७ ॥
‘इस प्रकार उस शशुम्भन राजने दरद दशेनद्र उस

शापका भङ्गकर पुन अपना राज पथा और प्रशान्तोंका
निलनर पालन किया ॥ ३७ ॥

तस्य फल्मापादस्य यन्त्यायतन शुभम् ।
आथमस्य समीपेऽस्य यमा वृत्ति राघव ॥ ३८ ॥

‘सुखन्दन ! उहाँ राज कान्यापद यन्त्रा यह मुदर
स्थान मर इस अभ्रमेर समीप दिलाया है । तब निधामें
तुम पृष्ठ रहे थे ॥ ३८ ॥

तस्य ता पार्थिवद्रस्य कथा श्रुत्वा सुदारुणाम् ।
त्रिवेश पर्णशालाया महर्षिमभिशाद्य च ॥ ३९ ॥

मदरात्र निरासी उस अत्यन्त दारुण कथाका सुनकर
शशुम्भने महर्षिसे प्रणाम करके पाल्मजमें प्रवेश किया ॥ ३९ ॥

राक्षस दिनार करनेवाली रक्षका व्यनम्या की ॥ ५ ॥
कुशमुष्टिमुपादाय लज वैद्य तु स द्विज ।

वाल्मीकि प्रद्वीताभ्या रक्षा भूतविनाशिनीम् ॥ ६ ॥
महर्षि वाल्मीकिने एक कुमारोंका मुद्रा और उनके

एक छत्र उनके द्वारा उन दोनों कुमारोंकी भूतबाधा
निगाल करनेके लिये रक्षा विधि का उपदेश दिया—॥ ६ ॥

यस्तयो पूजो जान स कुशानप्रसन्धत ।
निमार्पनीयस्तु तदा कुश इयस्य नाम तत् ॥ ७ ॥

यक्षारो भवेत्ताभ्या लयेन सुसमाहित ।
निमार्पनीयो वृद्धाभिलषेति च स नामत ॥ ८ ॥

‘वृद्धा भिर्नेक’ काहे कि इन दोनों कुमारोंमें ज पड़ने
उत्तर हुआ है, उसका मन्त्रोद्घात सरकार किम हुए इन

कुशोंमें मानन करें । एसा करनेपर उस कुमारोंका नाम
‘कुश’ होगा और उनमें का छत्रा है, उसका लगे मानन
करें । इसमें उसका नाम ‘लज’ होगा ॥ ७ ॥

एव कुशलथौ नाम्ना ताभौ यमनादन ।
मत्तनाभ्या च नामभ्या ख्यातिपुत्री भविष्यत ॥ ९ ॥

‘इस प्रकार तुझमें उत्पन्न हुए दो दोनों कुमारोंक्रमशः
कुश और लज नाम धारण करेंगे और मर दाय निश्चित किम
गय इसी नामोंमें भूमिद्वारे विरचन होंगे ॥ ९ ॥

ता रक्षाजगृह्णत्ता च मुनिहस्तात् समाहिता ।
अकुर्येद्य ततो रक्षा तयोर्विगतकल्मसा ॥ १० ॥

यह सुनकर निम्न वृद्धा निम्नोपर एकामचित ॥ मुनि

हाथमे रखाके साधनभूत उन कुण्डोरो ले लिया और उनके द्वारा उन दोनों बालकोंका माजन एव संरक्षण किया ॥ १ ॥

तथा ता वियमाणा च वृद्धाभिर्गोधनाम च ।

स्वकीर्तनं च रामस्य सीताया प्रसवी शुभौ ॥ ११ ॥

अधरात्रे तु शत्रुघ्नं पुश्चरं सुमहत् प्रियम् ।

पर्णशाला ततो गत्वा मातृविष्टेति चाप्रवीत् ॥ १२ ॥

जब वृद्धा क्रिया इस प्रकार रखा करने लगीं, उस समय आधी रातको भीराम और सीताके नाम, गोत्रके उच्चारणकी ध्वनि शत्रुघ्नजीने कानोंमें पड़ी । साथ ही उन्हें सीताके दो सुन्दर पुत्र होनेका संवाद प्राप्त हुआ । तब वे सीताजीकी पण-गालमें गये और बोले—‘माताजी ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है’ ॥ ११ १२ ॥

तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मन ।

प्यसीता धार्पिकी रात्रि ध्रावणी लघुविभवा ॥ १३ ॥

महाराम शत्रुघ्न उस समय इतने प्रसन्न थे कि उनकी वह वषाकालिङ्ग सायनकी रात सातमी-बातमें बीत गयी ॥

प्रभाते सुमहावीर्यं कृत्वा पौर्वाहिकीं वियाम् ।

मुनिं प्राज्ञलिरामत्रययौ पञ्चान्सुख पुन ॥ १४ ॥

दुपार्ये श्रीमद्गमयणे वाक्मीड्ये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पटपठितम् सर्गः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमद्मीरिनिर्मित आचरामायण आदिद्रव्यके उत्तरकाण्डमें छठम् सर्ग पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तपठितमः सर्गः

वपन मुनिका शत्रुघ्नको लवणासुरके शूलकी शक्तिका परिचय दते हुए

राजा मान्धाताके वधका प्रसंग सुनाता

अथ राज्या प्रमुखाया शत्रुघ्नो भृगुनन्दनम् ।

पप्रच्छ वयन विप्रं लवणस्य यथावलम् ॥ १ ॥

शूलस्य च बलं प्रहसन् के च पूर्वं विनाशिता ।

अनेन शूलमुख्येन द्रव्ययुद्धमुपागता ॥ २ ॥

एक दिन रातके समय शत्रुघ्ने भृगुनन्दन वसार्थि व्यवनेले

पूछा—‘प्रहसन् ! लवणासुरमें कितना बल है ? उसके शूलमें

किननी शक्ति है ? उस उत्तम शूलके द्वारा उसने द्रव्य युद्धमें

आये हुए किन-किन गीदाओंका वध किया है ?’ ॥ १ २ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य महात्मन ।

प्रत्युयाय महातेजादरूपानो रघुनन्दनम् ॥ ३ ॥

महात्मा शत्रुघ्नजीका यह वचन सुनकर महातेजस्वी

आनेने उन रघुकुलनन्दन राजकुमारके कहा—॥ ३ ॥

अमरयेयानि फमाणि यान्यम्य रघुनन्दन ।

इक्ष्वाकुशत्रुभये यद् वृष्टं तत्क्षुण्णय मे ॥ ४ ॥

‘रघुनन्दन ! इस लवणासुरका कम असह्य है । उनमेंसे

एक ऐसे कर्मका वर्णन किया जाता है, जो इक्ष्वाकुवंशी राजा

मान्धाताके ऊपर पड़ित हुआ था । हम उसे मेरे मुँहसे

सुनो ॥ ४ ॥

सबेर होनेपर पूर्वाह्नकालका कार्य संध्या वन्दन आदि करने महापराक्रमी शत्रुघ्न हाथ जोड़ मुनिसे विदा ले पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये ॥ १४ ॥

स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोपितं पथि ।

शृष्टीणां पुण्यकीर्तिनामाथमे वात्मभ्ययात् ॥ १५ ॥

मार्गमें जात रात बिताकर वे यमुना-तटपर जा पहुँच

और वहाँ पुण्यकीर्ति महर्षियोंके आश्रममें रहने लगे ॥ १५ ॥

स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुनेर्नृप ।

कथाभिरभिरूपाभिर्वास चक्रे महायशा ॥ १६ ॥

महायशस्वी राजा शत्रुघ्ने वहाँ बचन आदि मुनियोंके

साथ सुन्दर कथा-वातावाह्य कालभेद करते हुए निवास किया ॥

स काञ्चनायैमुनिभिः समेतं

रघुप्रसीने रजनीं तदानीम् ।

कथाप्रकारैर्यद्बुधिमहामा

धिरामयामास नरेन्द्रस्तु ॥ १७ ॥

इस प्रकार रघुकुलके प्रमुख वीर महात्मा रघुकुमार

शत्रुघ्न वहाँ एकात्र हुए बचन आदि मुनियोंके साथ नाना

प्रकारकी कथाएँ सुनते हुए उन दिनों यमुनातटपर रात

बिताने लगे ॥ १७ ॥

अयोध्याया पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली ।

माधाता इति निरुपातस्त्रिषु लोकेषु धीर्यवान् ॥ ५ ॥

‘पूर्वकालकी बात है अयोध्यापुरीमें युवनाश्वके पुत्र राजा

मान्धाता राज्य करते थे । वे बड़े बलवान् पराक्रमी तथा

तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥ ५ ॥

स कृत्वा पृथिवीं कृत्स्ना शासने पृथिवीपति ।

सुरलोकमितो जेतुमुद्योगमकरोन्मृप ॥ ६ ॥

‘उन पृथिवीपति नरशत्रुके सारी पृथ्वीको अपने अधिकारमें

करके यहाँसे देवलोकपर विजय पानेका उद्योग आरम्भ

किया ॥ ६ ॥

इदस्य च अथ तीव्र सुराणां च महात्मनाम् ।

माधातारि हृष्टोद्योगे देवलोकजिगीषया ॥ ७ ॥

‘राजा मान्धाताने जब देवलोकपर विजय पानेकी इच्छासे

उद्योग आरम्भ किया, तब इन्द्र तथा महामन्त्री देवताओंको

बड़ा भय हुआ ॥ ७ ॥

अधासनेन शमस्य राज्याघेन च पार्थिव ।

वन्धमान सुराणोः प्रतिहामधरोहत् ॥ ८ ॥

‘मैं इन्द्रका आधा सिंहासन और उनका आधा राज्य

लेकर भूमण्डल। राजा हो देवताओंसे वदित होकर रहूँगा'
ऐसी प्रतिज्ञा करके वे स्वर्गलोकपर जा चढ़े ॥ ८ ॥

तस्य पापमभिप्राय विदित्वा पाकशासन ।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच युनान्भवजम् ॥ ९ ॥

‘उनके खोटे अभिप्रायको जानकर पाकशासन इन्द्र उन
युनान्भ पुत्र माघाताके पास गये और उन्हें शान्तिपूर्वक
समझाते हुए इस प्रकार बोले— ॥ ९ ॥

राजा त्व मानुषे लोके न तावत् पुरुषर्षभ ।
अकृत्वा पृथिवीं उदया देवगण्यमिहेच्छसि ॥ १० ॥

‘पुरुषप्रवर [अभी तूम सारे मत्पलोकके भी राजा नहीं
ह। समूची पृथ्वीको उसमें किये बिना ही देवताओंका राज्य
कैसे लाना चाहते हो ॥ १० ॥

यदि वीर समग्रा ते मेदिनी निखिल घरो ।
देवराज्यं हुरुब्रह्म सभृत्यबलवाहन ॥ ११ ॥

‘वीर ! यदि सारी पृथ्वी तुम्हारे वशमें हो जाय तो तूम
सेवकों, सेनाओं और सवारियोंसहित यहाँ देवलोकका राज्य
करना’ ॥ ११ ॥

इन्द्रमेव वृषाण त माघाता वाक्यमब्रवीत् ।
क्व मे शक प्रतिहन शासन पृथिवीतले ॥ १२ ॥

‘ऐसी बातें कहते हुए इन्द्रसे माघाताने पूछा— ‘वृषाण
बताइये तो सही, इस पृथ्वीपर वहाँ मेरे आदेशोंकी अङ्गीलना
होती है’ ॥ १२ ॥

तमुवाच सहस्राक्षे लग्णो नाम राक्षस ।
मधुपुत्रो मधुवने न तेऽऽशा कुरुतेऽनघ ॥ १३ ॥

‘तब इन्द्रने कहा— निष्पाप नरेश ! मधुवनमें मधुका
पुत्र लग्णासुर रहता है। वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता’ ॥

तच्छुत्वा विप्रिय घोर सहस्राक्षेण भाषितम् ।
घ्रीडितोऽवाद्मुखो राजा व्याहर्तुं न दादाक ह ॥ १४ ॥

‘इन्द्रकी वही हुई यह घोर अभिय बात सुनकर राजा
माघाताका मुख लज्जामें झुक गया। वे कुछ बोल न
सके ॥ १४ ॥

भामउप तु सहस्राक्ष प्रायात् किंचिदवाद्मुख ।
पुनरेवागमच्छ्रीमानिम लोक नरेश्वरः ॥ १५ ॥

‘वे नरेश इन्द्रसे विदा ले मुँह लटकाने यहाँसे चल दिये
और पुन इस मर्त्यलोकमें ही आ पहुँचे ॥ १५ ॥

स हत्वा हृदयेऽमर्षं सभृत्यबलवाहन ।
आजगाम मधो पुत्र यशे कतुमरिदम् ॥ १६ ॥

‘उन्होंने अपने हृदयमें अमर्ष भर लिया। फिर वे शत्रु
दमन माघाता मधुके पुत्रका वशमें करनेके लिये सेवक, सेना
और सवारियोंसहित उसकी राजधानीर समीप आये ॥ १६ ॥

स काङ्क्षमाणो लग्ण युद्धाय पुरुषर्षभ ।
दूत सन्नेरयामास सक्ताश लयणस्य स ॥ १७ ॥

‘उन पुरुषप्रवर नरेशने युद्धकी इच्छासे लवणसे पास
अपना दूत भेजा ॥ १७ ॥

स गत्वा विप्रियाण्याह यद्विनि मधुन सुप्तम् ।
चक्षुः समेय त दूत भक्षयामास राक्षस ॥ १८ ॥

‘दूतने वहाँ जाकर मधुके पुत्रको बहुतसे कटुचक्रन
सुनाये। इस तरह कठोर बातें कहते हुए उस दूतको वह
राक्षस तुरन्त खा गया ॥ १८ ॥

चिरायमाणे दूते तु राजा मोधसमन्वित ।
अर्दयामास तद् रक्ष शरवृष्ट्या समन्तत ॥ १९ ॥

‘जब दूतने लोगनेमें गिलग्य हुआ, तब राजा बड़े क्रोध
हुए और बाणोंकी वर्षा करके उस राक्षसको सप आरसे पीड़ित
करने लगे ॥ १९ ॥

तत प्रहस्य तद् रक्ष शूलं जग्राह पाणिना ।
उधाय सानुपधस्य मुमोचायुधमुत्तमम् ॥ २० ॥

‘तब लवणगुलने हँसकर हागसे यह शूल उठाया और
सेवकोंसहित राजा माघाताका वध करनेके लिये उस उत्तम
अस्त्रको उनके ऊपर छोड़ दिया ॥ २० ॥

तच्छूलं क्षीप्यमानं तु सभृत्यबलवाहनम् ।
भस्मीकृत्या चूप भूयो लवणस्यागमत् करम् ॥ २१ ॥

‘यह चक्रवर्णता हुआ धूल सेरक, सेना और सवारियों
सहित राजा माघाताको भस्म करने के लिये लग्णासुरक हाथमें
आ गया ॥ २१ ॥

एव स राजा सुमहान् हत सयलगहन ।
गूलस्य तु बल सौम्य अप्रमेयमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

‘इस प्रकार सारी सेना और सवारियोंने साथ महाराज
माघाता मारे गये। सौम्य ! उस शूलकी शक्ति अभीम और
सक्ते बनी चली है ॥ २२ ॥

श्व प्रभाते तु लग्ण घधिप्यसि न सशय ।
अमृहीतायुधं क्षिप्रं ध्रुवो हि विनयस्तव ॥ २३ ॥

‘राजन् ! कल सारे जयतर यह राक्षस उस अस्त्रको न ले,
तबतक ही शीघ्रता करनेपर तूम नि छेदह उसका वध कर
स। मे और इस प्रकार निष्पाप ही तुम्हारी विनाश होगी ॥ २३ ॥

लोकानां स्वस्ति धैर्यं स्यात् कृते कर्मणि च त्वया ।
यत्तत् तं सर्वमाख्यात लग्णस्य दुरात्मन ॥ २४ ॥

‘शूलस्य च बल घोरमप्रमेय नररभ ।
विनाशक्षैष्य माघातुयत्नेनाभूष पाथिप ॥ २५ ॥

‘तुम्हारे द्वारा यह बात सम्पन्न होनेपर समस्त लोकोंका
कल्याण होगा। नरभेद ! इस तरह मैंने तुम्हें दुरात्मा लवणका
साया बल बता दिया और उसकी शूलकी भी घोर एवं असीम
शक्तिपरिवर्ष दे दिया। ‘प्रतीपाप ! इन्द्रक प्रानसे नयी
शूल द्वारा राजा माघाताका विनाश हुआ था ॥ २५ ॥

स्य श्व प्रभात लवण महात्मन्
घधिप्यसे नाथ तु सशयो मे ।

शूल विना निर्गतमग्निपाथे

ध्रुवो जयस्ते भविता नरेन्द्र ॥ २६ ॥

महात्मन् ! कल सरे जब यह शूल लिये विना ही

इयायें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तपष्ठितमः सर्गः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिनाव्यक उत्तरकाण्डमें सप्तसर्गों संग पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टपष्ठितमः सर्गः

लवणासुरका आहारके लिये निरुलना, शत्रुघ्नना मधुपुरीके द्वारपर डट जाना

और लौटे हुए लवणासुरके साथ उनकी रोपभरी वातचीत

कथा कथयता तोया जय चाकाहुता शुभम् ।

व्यनीता रजनी शीघ्र शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ १ ॥

इस प्रकार कथा कहते और शुभ प्रियकी आराधना

रखते हुए उन मुनियोंकी गतें मुनते मुनते महात्मा शत्रुघ्नकी

बह रात बात की-बातमें बीत गयी ॥ १ ॥

ततः प्रभाते तिमिले तस्मिन् काले स राक्षसः ।

निर्गतस्तु पुराद् वीरो भक्ष्याहारप्रचोदितः ॥ २ ॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होनेपर भय पदार्थ एवं

भावनक सप्रहरी इच्छासे प्रसित हो यह वीर राक्षस अपने

गारसे बाहर निकला ॥ २ ॥

पनस्मिन्नतरे वीर शत्रुघ्नो यमुना नदीम् ।

तीत्या मधुपुराद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठतः ॥ ३ ॥

इसी बीचमें वीर शत्रुघ्न यमुना नदीकी पार करके हाथमें

धनुष लिये मधुपुरीके द्वारपर खड़े हो गये ॥ ३ ॥

ततोऽभद्रिवसे प्राप्ते मूरकमा स राक्षसः ।

आगच्छद् द्युसाहस्र प्राणिना भारमुद्वहन् ॥ ४ ॥

तदनन्तर बाद मध्याह्न होनेपर वह मूरकमा राक्षस हजारों

प्राणियोंका बोना लिये वहाँ आया ॥ ४ ॥

ततो द्वादश शत्रुघ्न स्थित द्वारि धृतायुधम् ।

तमुवाच ततो रक्ष किमेतेन करिष्यसि ॥ ५ ॥

इच्छाना सहस्राणि सायुधाना नराधमः ।

भक्षितानि मया रोपात् कालेनानुगतो ह्यसि ॥ ६ ॥

उस समय उठने शत्रुघ्नकी अन्न शस्त्र लिये द्वारपर खड़ा

देखा । देखकर वह राक्षस उनसे बोला—'नराधम ! इस

हथियारसे तू मेरा क्या कर रेगा । तेरे जैसे हजारों अन्न शस्त्र

धारी मनुष्योंमें मैं रणपूर्वक खा चुका हूँ । जान पड़ता है

काल तेरे सिरपर नाच रहा है ॥ ५ ॥

आहारआयसम्पूणो ममाय पुरुषाधमः ।

सयः प्रजिघोऽद्य मुखं कथमासाद्य दुमते ॥ ७ ॥

'पुरुषाधम ! आजका यह मेरा आहार भी पूरा नहीं है ।

दुमते ! तू स्वयं ही मेरे मुँहमें कैसे आ पड़ा ?' ॥ ७ ॥

तस्यैव भागमाणस्य हस्ततश्च मुहुर्मुहुः ।

शत्रुघ्नो धीयसम्पन्नो रोपाद्भूयसाश्च जित् ॥ ८ ॥

मावका संग्रह करनेके लिये निकलेगा, तभी तुम उमका यप

कर डालोगे, इसमें सन्देह नहीं है । नरेन्द्र ! अग्य तुम्हारी

त्रिजय होगी' ॥ २६ ॥

तस्य रोपाभिभूतस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।

तेजोमया मरीचस्तु सर्वाग्नैर्विनिप्यतन् ॥ ९ ॥

रोपके वणीभूत हुए महात्मनसी शत्रुघ्नके सभी अज्ञोति

तेजोमयी किरणें छिटकने लगीं ॥ ९ ॥

उवाच च सुसहृदः शत्रुघ्नः स निशाचरम् ।

योद्धुमिच्छामि दुषुद्धे द्वाद्दयुद्धं त्वया सह ॥ १० ॥

उस समय अत्यन्त क्रुपित हुए शत्रुघ्न उस निशाचरसे

बोले—'दुषुद्धे ! मैं तेरे साथ द्वाद्वयुद्ध करना चाहता हूँ ॥

पुत्रो दशरथस्याह भ्राता रामस्य धीमतः ।

शत्रुघ्नो नाम शत्रुघ्नो वधानाङ्गी तत्रागतः ॥ ११ ॥

'मैं महापुत्र दशरथका पुत्र और परम बुद्धिमान् राजा

श्रीरामका भाई हूँ । मेरा नाम शत्रुघ्न है और मैं वामसे भी

शत्रुघ्न (शत्रुघ्नोऽस्य उवाच करनेवाला) ही हूँ । इस समय

तेरा वध करनेक लिये यहाँ आया हूँ ॥ ११ ॥

तस्य मे युद्धकामस्य द्वाद्वयुद्धं प्रदीयताम् ।

शत्रुघ्नस्य सप्तभूतानां न मे जायन् गमिष्यसि ॥ १२ ॥

'मैं युद्ध करना चाहता हूँ । इसलिये तू मुझे द्वाद्वयुद्धका

अवसर दे । तू सभूण प्राणियोंका शत्रु है, इसलिये अब मेरे

हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकेगा' ॥ १२ ॥

तस्मिन्स्थिता युवाणे तु राक्षसः प्रहसन्निव ।

प्रत्युवाच नरभेष्ट दिष्ट्या प्राप्तोऽसि दुमते ॥ १३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वह राक्षस उन नरभेष्ट शत्रुघ्नसे

हँसता हुआ सा बोला—'दुमते ! शोभायकी बात है कि आज

तू स्वयं ही मुझे मिल गया ॥ १३ ॥

मम मातृपुत्रसुभ्राता रावणो नाम राक्षसः ।

हतो रामेण दुषुद्धे रुषितो पुरुषाधमः ॥ १४ ॥

'श्रीश्री बुद्धिवाला नरधम ! रावण नामक राक्षस मेरी

मोठी शरणसाका भाई था, जिसे तेरे भाई रामने एक स्त्रीके

लिये मार डाला ॥ १४ ॥

तच्च सर्वं मया स्थात रावणस्य कुलक्षयम् ।

अपज्ञा पुरत इत्या मया यूय विशेषत ॥ १५ ॥
 'इतना ही राह, उहीं रावाके तुलना सहर कर
 दिया। तथापि मैंने वह मर कुछ सद् किया । तुमलागोंने
 द्वारा की गयी अरदेल्नाका समने रखकर—प्रत्यक्ष देखकर
 भी तुम सबके प्रति मैंने विशेषरूपसे क्षमाभावना पत्तिव्य
 दिया ॥ १५ ॥

निहताश्च हि ते सर्वे परिभूतास्तृण यथा ।
 भूताश्चैव भविष्याश्च यूय च पुरुषार्थमा ॥ १६ ॥
 'जा नराधम भूतकालमें मेरा क्षमाणा करनेके लिये जाये
 थे, उन सबको मैंने तिनकोंरा समान तुच्छ समझकर निरस्तृत
 किया और मार डाला । जा भविष्यमें आयेंगे, उनरी भी यही
 दण्डा हागी और वर्तमानकालमें आनेवाले तुम जैसे नराधम भी
 मेरे हाथसे मरे हुए ही ह ॥ १६ ॥

तस्य ते युद्धकामरूप युद्ध दास्यामि दुमते ।
 तिष्ठ ह्य च मुहूर्ते तु यावदायुधमानये ॥ १७ ॥
 'दुमते ! तुझे युद्धकी इच्छा है न । मैं जहातुसे युद्धका
 अवसर दूँगा । तू वो बड़ी ठहर जा । तबतक मैं भी अपना
 अस्त्र ले आता हूँ ॥ १७ ॥

इप्सित यादृश तुभ्य सज्जये यावदायुधम् ।
 तमुवाचाऽनु शत्रुञ्च ह मे जीवन् गमिष्यसि ॥ १८ ॥
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टपष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें अष्टमसर्ग सप्त पुरा हुआ ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितम सर्ग

शत्रुञ्च और लवणासुरका युद्ध तथा लवणका वध

तच्छ्रुत्वा भावित तस्य शत्रुञ्चतस्य महात्मन ।
 क्रोधमाहारयन् तीव्र तिष्ठेति चाग्रसीत् ॥ १ ॥
 महामना शत्रुञ्चका वह माग्न मुनकर लवणासुरको बड़ा
 क्रोध हुआ और बोला— अरे ! खड़ा रह खण रह' ॥ १ ॥
 पाणी पाणि स निष्पिष्य दन्तान् कटकटाण्य च ।
 लवणो रघुशार्दूलमाद्यपामास चासहृत् ॥ २ ॥
 वह हाथ-वर हाथ राइता और दौन कटकटाता हुआ
 रघुबलके सिंह शत्रुञ्चको शरार लङ्कारने लगा ॥ २ ॥
 त मुवाच तथा वाक्य लण्ण घोरदर्शनम् ।
 शत्रुञ्चो देयशत्रुञ्च इदं वचनमग्रवीत् ॥ ३ ॥
 भयकर दिशापी देनेवाले लण्णको इस प्रकार बोले देख
 देवराघुओंका नाश करनेवाले शत्रुञ्चने यह बात कही— ॥ ३ ॥
 शत्रुञ्चो न तद्वा जानो यद्वाप्य निर्जितास्त्वया ।
 तदप चाणाभिहतो मज्ज त्वं यमसादनम् ॥ ४ ॥
 'पशुष्ट । जब तूने दूधरे कीचको पराजित किया था, उस
 समय शत्रुञ्चका दम नही हुआ था । अब आज मेरे इन
 वाणोंकी चट खाकर तू क्षण यमलोककी राह ल ॥ ४ ॥

'तरे वधके लिये जैसे अस्त्रका होना मुझे अभीष्ट है,
 वैसे अस्त्रको पहले सुसज्जित कर दूँ फिर युद्धका अवसर दूँगा।'
 यह सुनकर शत्रुञ्च तुरत बल उठे—'अतः मेरे हाथसे जीवित
 बचकर कहीं जायगा ? ॥ १८ ॥

स्वयमेवागत शत्रुञ्च मोक्ष्य्य हृतात्मना ।
 यो हि शिञ्जया युद्धया प्रसर शत्रय दिशेत् ॥ १९ ॥
 स हतो मन्दबुद्धि स्याद्यथा कापुरुषस्तज्ज ॥ १९ ॥

'जिन्ही भी बुद्धिमान पुरुषको अपने सामने आप हुए
 शत्रुको छाड़ना नहीं चाहिये । जा अपनी तरफरी हुई बुद्धिके
 कारण शत्रुको निगल जानेका अवसर दे देता है वह मन्दबुद्धि
 पुरुष अथवा समान मारा जागा है ॥ १९ ॥

तस्मात् सुदृष्टं वृक्ष जीवलोक
 शरैः शितैस्त्वा शिञ्जयैतथानि ।
 यमस्य गेहाभिमुख हि पाप
 रिपु त्रिलोकस्य च रात्रस्य ॥ २० ॥

'अत राक्षस ! अतः तू इस जीव जगत्को अच्छी तरह
 देख ल । मैं नाना प्रकारके तीव्र वाणोंद्वारा तुझ पापीका अभी
 यमराजके घररी और भजता हूँ, क्योंकि तू तीनों लोकोंका
 तथा भीरुनापकीका भी शत्रु है' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टपष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें अष्टमसर्ग सप्त पुरा हुआ ॥ ६८ ॥

शत्रुञ्चोऽप्ययं पापामन् मया रजो निहत रणे ।
 पश्यतु त्रिषा विद्यास्त्रिदशा इव रात्रणम् ॥ ५ ॥

'पापामन् । जैसे देवताओंन रावणका घराणसी हुआ
 देखा था, उनी तरह विद्वान् ब्राह्मण और श्रुति आज रण
 भूमिमें मेरेद्वारा मार गये तुझ दुष्टवासी राक्षसको भी देखें ॥
 त्वयि भद्राणनिदग्ध पतितेऽद्य निशार ॥ ६ ॥

पुरे जनपद चापि क्षेममेव भविष्यति ॥ ६ ॥
 'निगातर । आज भर वाणोंसे दग्ध शत्रु जब तू घात
 पर गिर जायगा, उस समय इस नगर और जनपदमें भी
 सबका कल्याण ही होगा ॥ ६ ॥

अथ मद्यानुनिप्यान्त शरीरे यजनिमानन ।
 प्रवेष्टयन् ते हृदय पद्ममग्निरिवावह ॥ ७ ॥

'आज मेरी मुखाओंसे लूटा हुआ पद्मक समान मुख
 कला बाण उठी तरह तेरी छातीमें पेश जायगा, जैसे घर्षकी
 किरण कमलकागमें प्रविष्ट हो जाती है' ॥ ७ ॥
 पशुमुक्तो महाशूरा लण्ण क्रोधमुच्छ्रित ।
 शत्रुञ्चोरसि शिञ्जये स च त दातथाच्छिन्दन् ॥ ८ ॥

गमुषते ऐषा वहोपर लण मोषते मूर्ति सा हो गया
और एष मग्न ब्रह्म लेकर उठने शत्रुघ्नकी छातीपर दे मारा
परतु गमुषने उसके पैरों दुन्दुभे कर दिये ॥ ८ ॥

तद् दृष्ट्वा निफल फर्म राक्षस पुनरेष तु ।
पादपार सुयहून् गृह्य शत्रुघ्नायास्त्वज्जद उन्नी ॥ ९ ॥

वह बार खाली गया देख उम उलवान् राक्षसों पुन
बहुतसे शत्रु हलकर शत्रुघ्नपर चलाय ॥ ९ ॥

शत्रुघ्नश्चापि तेजस्यी वृक्षानापततो यहून् ।
त्रिभिश्चतुर्भिरकैश्च चिच्छेद गतपत्रंभि ॥ १० ॥

परतु शत्रुघ्न भी यह तजखी थ । उठोने अपने ऊपर
आते हुए उन बहुतपरक वृक्षोंमेंसे प्रत्येकका छुकी हुई गोंठ
वाले तीन तीन या चार चार बाण मारकर काट डाला ॥ १० ॥

ततो घाणमय वर्षं व्यसृजद् राक्षसोपरि ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो दिव्ययेन स राक्षस ॥ ११ ॥

किर पपन्नमी शत्रुघ्नने उस राक्षसपर बाणोंकी झड़ी लगा
दी, किन्तु वह निशाचर इससे ब्यथित या विचलित नहीं हुआ।
तब प्रहस्य लवणो वृक्षमुद्यम्य वीरवान् ।

शिरस्यभ्यहतच्छूट झस्ताङ्ग स मुमोह वै ॥ १२ ॥

तब बल निजमाली लवणने छूटकर एक वृक्ष उठाया
और उसे छूटवीर गमुषने शिरपर दे मारा । उसकी जोड़
छाकर शत्रुघ्न के सारे अङ्ग शिथिल हो गये और उहें मूछा
आ गयी ॥ १२ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे हाहाकारो महानभूत् ।
ऋषीणा द्रव्यसघाता गधर्षोप्तरस्ता तथा ॥ १३ ॥

वीर शत्रुघ्न के गिरते ही ऋषियों, देवगुरुओं, गधर्षों और
अप्सरओंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ १३ ॥

तमनशाय तु हत शत्रुघ्न भुवि पातितम् ।
रक्षो लघातारमपि न विधेश स्वमालयम् ॥ १४ ॥

नापि शूट प्रजग्राह त दृष्ट्वा भुवि पातितम् ।
ततो हत इति शाल्वा तान् भगवान् समुद्रावहत ॥ १५ ॥

शत्रुघ्नकी भीमपर गिरा देख लवणने समझाये मर गये,
इहलिय अथवा मिलनेपर भी वह राक्षस अपने घरमें नहीं
गया और न शूट ही ले आया । उहें घराशायी हुआ देख
सर्पया मरा हुआ समझकर ही वह अपनी उस भोजनशाम्री
की एकज करने लगा ॥ १४ १५ ॥

मुहताल्लघसक्षस्तु पुनस्तस्यी धृतायुध ।
शत्रुघ्नो वै पुरद्वारि ऋषिभिः सम्प्रपूजित ॥ १६ ॥

दा ही वहीमें शत्रुघ्नकी हाजि आ गया । व अन्न राख
लेकर उठे और किन नगरद्वारपर खड़ा हो गये । उस समय
ऋषियोंने उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ १६ ॥

ततो दिव्यममोघ त जग्राह शस्त्रमुत्तमम् ।
ज्वलन्त तेजसा घोर पूरयन्त दिगो दश ॥ १७ ॥

तानन्तर गमुषने उस दिव्य, अमोघ और उत्तम बाण
की हाथमें लिया, न अपनी धर तेजस प्रचलित हो दशों
दिशाओंमें ग्लास हो रहा था ॥ १७ ॥

वज्रानन वज्रमेग मेघमदरमनिभम् ।
सन् पर्यस्तु सर्वेषु सयुगेऽप्यराजितम् ॥ १८ ॥

उमका मुख और वेग वज्रके समान था । यह मेघ और
मदरचलके समान भारी था । उसकी गोंठें छुकी हुई थीं
तथा वह किसी भी युद्धमें पराजित होनेवाला नहीं था ॥ १८ ॥

असृक्चन्दनदिग्भाङ्ग चाद्यप्य पतत्रिणम् ।
दानेन्द्राचलेन्द्राणामसुराणा च दायणम् ॥ १९ ॥

उमका सारा अङ्ग रत्नरूपी चन्दनसे चर्चित था । पल
बढ़े सुन्दर थे । वह बाण दानवराज्यों परंतपों और असुरों के
लिये यथा मयकर था ॥ १९ ॥

त दीप्तमित्र कालार्नि युगान्ते समुपस्थिते ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि परित्रासमुपागमन् ॥ २० ॥

वह प्रलम्बकाल उपस्थित होकर प्रचलित हुई कालार्नि के
समान उड़ीत हो रहा था । उसे देखकर समस्त प्राणी प्रसन्न हो
गये ॥ २० ॥

सदेवासुरगधर्षे मुनिभिः सात्सरोगणम् ।
जगद्धि सर्वमस्वस्थ पितामहमुपस्थितम् ॥ २१ ॥

देवता, असुर, गधर्ष, मुनि और अप्सराओंके साथ
सारा जगत् अस्वस्थ हो ब्रह्माजी के पास पहुँचा ॥ २१ ॥

उवाच देवदेवेश वरद प्रपितामहम् ।
देवाना भयसम्मोहो लोकाना स्मभ्य प्रति ॥ २२ ॥

जगत्के उर सभी प्राणियोंने वर देनेवाले देवदेवेश
प्रपितामह ब्रह्माजीसे कहा—भगवन् ! समस्त लोकों के संहार
की सम्भावनासे मैं ताओंपर भी भय और मोह छा गया है ।

कथिलोकक्षयो दूर सम्प्राप्तो वा युगक्षय ।
नेहश दृष्टपूर्णे च न क्षुत प्रपितामह ॥ २३ ॥

देव ! कहीं लोकोंका संहार तो नहीं होगा अथवा प्रलय
काल तो नहीं आ पहुँचा है ? प्रपितामह ! संहारकी ऐसी
अदृष्टा न तो पहले कभी देखी गयी थी और न सुननेमें ही
आयी थी ॥ २३ ॥

तेषा तद् वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामह ।
भयकारणमयाचष्ट देवानामभयकर ॥ २४ ॥

उनकी यह बात सुनकर देवताओंका भय दूर करनेवाले
लोकपितामह ब्रह्माने प्रस्तुत भयका कारण बताया हुआ कहा ।
उवाच मधुरा चार्णो शृणुष्व सर्वदेवता ।

वधाय लवणस्याजौ शर शत्रुघ्नधारित ॥ २५ ॥

तेजसा तस्य सम्मूढा सप्त स सुरसत्तमा ।
य मधुराणीमी बोध—समूह देवताओं । मेरी बात
सुनो । आज गमुषने युद्धस्थलमें लवणासुरका वध करनेके
लिय जो बाण हाथमें लिया है, उसीके तेजसे हम सब लोग
माहित हो रहे हैं । य भय देवता भी उसीसे घबराये हुए
हैं ॥ २५ ॥

एष पूर्णस्य देवस्य लोककर्तुं सनातन ॥ २६ ॥
शरस्तेजोमयो घत्सा येन वै भयमागतम् ।

‘पुत्रो ! यह तेजोमय सनातन बाण आदियुद्ध लोक
कृता भगवान् विष्णुका है । जिसमें तुम्हें भय प्राप्त हुआ
है ॥ २६ ॥

एष वै षैटभस्यार्थे मधुनश्च महाशर ॥ २७ ॥
सुप्तो महात्मना तेन वधार्थे दैत्ययोस्तयो ।

‘परमात्मा भीहरिने मधु और कैम्प—इन दोनों दैत्योंका
वध करनेके लिये इस महात्माणागी सृष्टि की थी ॥ २७ ॥

एक एव प्रजानाति विष्णुस्तेजोमय शरम् ॥ २८ ॥
एषा एव तनु पूर्वा विष्णोस्तस्य महात्मन ।

‘एकमात्र भगवान् विष्णु ही इस तेजोमय बाणको जानते
हैं क्योंकि यह बाण साक्षात् परमात्मा विष्णुकी ही प्राचीन
मूर्ति है ॥ २८ ॥

इतो गच्छत पश्यध्व घध्यमान महात्मना ॥ २९ ॥
रामानुजेन धीरेण लवण राक्षसोचसम् ।

‘अब तुमलोग यहाँसे जाओ और भीरुमत्तद्वजीके छटे
माई महामनस्वी धीर शत्रुघ्नके हाथसे राक्षसप्रवर लवणासुरका
वध होता देखो ॥ २९ ॥

तस्य ते देवदेवस्य निशम्य घचन सुरा ॥ ३० ॥
आजन्मुयत्र युच्येते शत्रुघ्नलवणाशुभौ ।

देवाधिदेव ब्रह्माजीना यह वचन सुनकर देवतालोग
उन स्थानपर आये, जहाँ शत्रुघ्नजी और लवणासुर दोनोंका
युद्ध हो रहा था ॥ ३० ॥

त शर दिव्यसकाश शत्रुघ्नकरधारितम् ॥ ३१ ॥
ददशु सर्वभूतानि युगातानिमिवोरिधितम् ।

शत्रुघ्नजीके द्वारा हाथमें लिये गये उस दिव्य बाणने
सभी प्राणियोंमें देवा । यह प्रत्येकालके अनिवार्य समान
प्रचलित हो रहा था ॥ ३१ ॥

आकाशमाधृत दृष्ट्वा देवैर्हि रघुनन्दन ॥ ३२ ॥
सिंहनाद श्रुत्वा श्रुत्या ददर्श लवण पुन ।

आकाशको देवाओंमें भरा हुआ देख रघुकुलनन्दन
शत्रुघ्नन बड़े आगे भिन्नाद करने लवणासुरकी ओर
देखा ॥ ३२ ॥

आहूतश्च पुनस्तेन शत्रुघ्नेन महात्मना ॥ ३३ ॥
लवण मोघसयुक्तो युद्धाय समुपस्थित ।

महात्मा शत्रुघ्ने पुन लवणासुरेण लवणासुर क्रोध
हारायें भीमद्रुमायण बारमौकीय आदिदिव्य उत्तरकाण्ड एकान्तसत्तितम सर्ग ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधिका उत्तरकाण्डके अष्टमस्कंधमें अष्टमस्कंध सप्त पुरा हुआ ॥ ६ ॥

भर गया और फिर युद्धके लिये उनके सामने आया ॥ ३३ ॥

आकर्णात् स विदृप्याथ तद् धनुर्धन्याना वर ॥ ३४ ॥
स मुमोच महागण लवणस्य महोरसि ।

तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नजीने अपने धनुषको काननक
खींचकर उस महाबाणकी लवणासुरके विशाल वक्षस्थलपर
चलाया ॥ ३४ ॥

उरस्तस्य विद्वार्याशु प्रविश शसातलम् ॥ ३५ ॥
गत्वा रसातलं दिव्य शरो विबुधपूजित ।

पुनरेवागमत् पूर्णमिदं शत्रुघ्नलवणम् ॥ ३६ ॥

वह देवपूजित दिव्य बाण गुरत ही उस शमभक्त हृदयको
बिदीप्त करके रसातलमें घुस गया तथा रसातलमें जाकर वह
फिर तत्काल ही इक्ष्वाकुलवणन्दन शत्रुघ्नजीने पास आ
गया ॥ ३५ ॥

शत्रुघ्नशरनिर्भिन्नो लवण स निशाचर ।
पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाचल ॥ ३७ ॥

शत्रुघ्नजीके बाणसे विदीप्त होकर निशाचर लवण वज्रके
मारे हुए पर्यन्त समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३७ ॥

तथा शूल महद् दिव्य हते लवणराक्षसे ।
पश्यता सर्वदेवाना रुद्रस्य वशमवगतात् ॥ ३८ ॥

लवणासुरके मारे जाते ही वह दिव्य एव महान् शूल सब
देवताओंके देखते देखते भगवान् रुद्रके पाठ आ गया ॥ ३८ ॥

एकेषुपातेन भय निपात्य
लोकत्रयस्यास्य रघुप्रवीर ।

विनिर्बभावुत्तमचापयाण

स्वतः प्रशुध्य सहस्ररश्मि ॥ ३९ ॥

इस प्रकार उत्तम धनुष-बाण चारण करनेवाले रघुकुलन
प्रमुख धीर शत्रुघ्न एक ही बाणसे प्रहारसे तीना लोकोंने भय
को नष्ट करके उन्हीं प्रकार मुक्तमित्र हुए जैसे त्रिभुवनका
अन्धकार दूर करके वह सब किरणधारी सूर्यदेव प्रकाशित हो
उठते हैं ॥ ३९ ॥

ततो हि देवा क्रपिपन्नगाश्च
प्रपूजिते ह्यप्सरसश्च सखा ।

विष्ट्या जयो दाशरथेरवात

स्त्यक्त्याभय सप इव प्रदान्त ॥ ४० ॥

‘श्रीभाग्यकी बात है कि दशरथादा शत्रुघ्ने भय
छाड़कर विजय प्राप्त की और सपरि सम्मान लवणासुर मर
गया’ ऐसा कहकर देवता, ऋषि, नाग और समस्त अमरपद
उस समय शत्रुघ्नजीकी भूमि भूमि प्राण्य करने लगे ॥ ४० ॥

सप्ततितमः सर्गः

देवताओंसे वरदान या शत्रु-नका मधुरापुरीको वसावर बारहवें वर्षमें वहाँसे

श्रीरामके पाम जानेका विचार करना

हते तु लण्णे देवा सेन्द्रा सानिपुत्रोगमाः ।

ऊचुः सुमधुरा गार्गी शत्रुञ्ज शत्रुतापाम् ॥ १ ॥

लण्णासुरफ भारे जानेपर इन्द्र और सानिपुत्र और देवता
आकर शत्रुओंको सगण देनेवाले शत्रुजनेसे अत्यन्त मधुर
बाणीमें बोले—॥ १ ॥

दिष्ट्वा ते निजयो वरस दिष्ट्वा लण्णराक्षस ।

हव पुत्रयशान्मूल वर वरय सुमत ॥ २ ॥

‘वरस । सोमापरी बात है कि तुम्हें विजय प्राप्त हुई
और लण्णासुर मारा गया । उसमें प्रतका पाठन करनेवाले
पुत्रपतिह । तुम वर माँगे ॥ २ ॥

वरदास्तु महाबाहो सत्र एव समागता ।

निजयाकाङ्क्षिणस्तुभ्यममोघ दर्शन हि न ॥ ३ ॥

‘महाबाहो । हम सब लोग तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ
आये हैं । हम तुम्हारी विजय चाहते थे । हमारा दर्शन
अमोघ है (अतएव तुम कोई वर माँगे) ॥ ३ ॥

देवाना भावित श्रुत्वा शूरो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।

मत्पुत्राच महाबाहु शत्रुञ्ज प्रयतात्मवान् ॥ ४ ॥

देवताओंका यह वचन सुनकर मनको वशमें रखनेवाले
शूरीर महाबाहु शत्रुजन् मलयपर अञ्जलि बाँध इस
प्रकार बोले—॥ ४ ॥

इय मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता ।

निवेश प्राप्नुयाच्छीघ्रमेव मेऽस्तु वर पर ॥ ५ ॥

‘देवताओ । यह देवनिर्मित रमणीय मधुपुरी गीम ही
मनोहर राजधानीके रूपमें वस जाय । यही मेरे लिये श्रेष्ठ
वर है ॥ ५ ॥

त देवा प्रीतमनसो वाढमित्येव राघवम् ।

भत्रिप्यति पुरी रम्या शूरसेना न सशय ॥ ६ ॥

तत्र देवताओंने उन शत्रुजन्मन्दन शत्रुजनेसे प्रसन्न होकर
कहा—‘बहुत अच्छा ऐसा ही हा । यह रमणीय पुरी नि सदैव
शूर वीरोंकी सेनास सम्पन्न हो आयगी’ ॥ ६ ॥

ते तपोस्त्वा महत्तमानो द्वियमाचरुदुस्तदा ।

शत्रुञ्जोऽपि मदातिभस्ता सेना समुपानयत् ॥ ७ ॥

एता कहकर महत्तमानी देवता उस समय स्वर्गको चले
गये । मदातिवर्ती शत्रुजन् भी गङ्गातटसे अपनी उस सेनाको
मुद्राया ॥ ७ ॥

सा सेना शीघ्रमागच्छच्छ्रुत्वा शत्रुञ्जशासनम् ।

निवेशन च शत्रुञ्ज श्रापणेन समारभत् ॥ ८ ॥

शत्रुजन्मीका आदेश पाकर वह सेना शीघ्र चली आयी ।
शत्रुजन्ने भावणमात्रसे उस पुरीको बसाना आरम्भ किया ॥

स पुरा द्वियसकाशो घर्षे षादशमे शुभे ।

निशि शूरसेनाना त्रियथाश्रुतोभय ॥ ९ ॥

तत्से बारहवें वर्षतक वह पुरी तथा वह शूरसेन जनपद
पूणरूपमें वस गया । यहाँ कहा किछसे भय नहीं था । वह
देश दिव्य सुख सुविधाओंसे सम्पन्न था ॥ ९ ॥

क्षेत्राणि सम्ययुक्तानि फाले वर्पति घासत्र ।

अरोगशीरपुरुषा शत्रुञ्जमुज्ज्वालिता ॥ १० ॥

वहाँने पत खेतीमें हरे भरे हो गये । इन्द्र वहाँ समपपर
पया करने लगे । शत्रुजन्मीके बाहुवर्ते सुरक्षित मधुपुरी
नीरम तथा वीर पुरुषोंसे भरी थी ॥ १० ॥

अर्घ्यद्रमतीकाशा यमुनातीरशोभिता ।

शोभिता गृहमुख्यैश्च चत्वारपण्यधीधियै ।

चातुर्वर्ण्यसमायुक्ता नानावाणिज्यशोभिता ॥ ११ ॥

वह पुरी यमुनाके तटपर अर्घ्यद्राकार यमी थी और
अनेकानेक सुन्दर घरों, चौपहों, बाजारों तथा गलियोंसे
सुशोभित होती थी । उसमें चारों वर्णोंके लोग निवास करते थे
तथा नाना प्रकारके वाणिज्यव्यवस्था उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥

यद्य तेन पुरा शुभ लण्णेन हृत महत् ।

तच्छोभयति शत्रुञ्जो नानावर्णोपशोभिताम् ॥ १२ ॥

पूर्वकालमें लण्णासुरने जिन विशालघरोंका निर्माण करवा
था, उनमें सदा ही करकर ठहरे नाना प्रकारके वस्तुओंसे
सुसज्जित करके शत्रुजन्मी उनकी शोभा बढ़ाने लगे ॥ १२ ॥

आरामैश्च विहारैश्च शोभमाना समन्ततः ।

शोभिता शोभनीयैश्च तत्रायैर्द्वयमाजुयै ॥ १३ ॥

अनेकानेक उद्यान और विहारस्थल सब ओरसे उस
पुरीका सुशोभित करते थे । देवताओं और मनुष्योंसे सम्पन्न
रखनेवाले अथ शोभनीय पदार्थ भी उस नगरीकी शोभा
वृद्धि करते थे ॥ १३ ॥

ता पुरीं द्वियसकाशा नानापण्योपशोभिताम् ।

नानादेशगतैश्चापि वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥ १४ ॥

नाना प्रकारकी वस्तुविषय योग्य वस्तुओंसे सुशोभित वह
दिव्य पुरी अनेकानेक देशोंसे आये हुए वणिग्जनोंसे शोभा
पा रही थी ॥ १४ ॥

ता समृद्धा सत्सुदार्थ शत्रुञ्जो भरतातुजः ।

निरीक्ष्य परमप्रीत पर हर्षमुपागमत् ॥ १५ ॥

उसे पूजन समृद्धिवालिनी देख सफलमनोरथ हुए
भरतातुज शत्रुजन् अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े हर्षका अनुभव
करने लगे ॥ १५ ॥

तस्य धुदि समुपधा निन्दय मधुरा पुरीम् ।

रामपादौ निरीक्षेऽह घर्षे षादश आगते ॥ १६ ॥

मधुरापुरीको बसाकर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि अयोध्यामें आये बारहवाँ वर्ष हो गया, अब प्रसे वहाँ चक्कर भीरामचन्द्रजीके चरणारविन्द्रोंका दर्शन करना चाहिये ॥ १६ ॥

ततः स ताममरपुरोपमां पुरीं
निवेद्य नै विधिधजनाभिसंवृताम् ।

हृत्पापं श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ततितम सर्गः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायन आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें सत्तरवाँ सा पूरा हुआ ॥ ७ ॥

एकसप्ततितम सर्ग.

शत्रुघ्नका थोड़ेसे मँनिकोंके साथ अयोध्याको प्रस्थान, मार्गमें वाल्मीकिके आश्रममें रामचरितका गान सुनकर उन सबका आश्चर्यचकित होना

ततो द्वादशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपालिताम् ।

अयोध्यां चक्रे गन्तुमल्पभृत्यबलानुगम् ॥ १ ॥

तदनन्तर बारहवें वर्षमें थोड़ेसे सेवकों और सेनिकोंके साथ ले शत्रुघ्नने भीरामपालित अयोध्याको जानेका विचार किया ॥ १ ॥

ततो मन्त्रिपुरोगाञ्च बलमुप्यान् निरत्यं च ।

जगाम ह्यमुष्येन स्थानां च शतेन स ॥ २ ॥

अतः अगने मुख्य-मुख्य मंत्रियों तथा सेनापतियोंको लेकर—पुरीकी रक्षाके लिये वहाँ छोड़कर व अन्धे अन्धे थोड़ेवाले सौ रथ साथ ले अयोध्याकी ओर चल पड़े ॥ २ ॥

स गत्वा गणितान् वालान् सप्ताग्रे शत्रुघ्नन्दन ।

वाल्मीकिप्रथममागत्य पासं चने महावशा ॥ ३ ॥

महावशमी शत्रुघ्नन्दन शत्रुघ्न यात्रा करनेके पश्चात् मार्गमें सात-आठ परिगणित स्थानोंपर पड़ाव डालते हुए वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर आ पहुँचे और यन्में वहाँ बसे ॥ सोऽभिवाद्य ततः पादौ वाल्मीके पुरुषपर्यम् ।

पादमर्च्यं तथातिथ्यं जग्राह मुनिस्ततः ॥ ४ ॥

उन पुरुषमर शत्रुघ्नेने वाल्मीकिजीके चरणोंमें प्रणाम करके उनके हाथसे पाद और अर्घ्य आदि आतिथ्य-सत्कारकी वामनी ग्रहण की ॥ ४ ॥

यदुरुपां सुमधुरा कथास्तत्र सहस्रदा ।

कथयामास स मुनिः शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ५ ॥

वहाँ महर्षि वाल्मीकिने महात्मा शत्रुघ्नको मुनानेके लिये भौतिक मीनिकी सहस्रों सुमधुर कथाएँ कहीं ॥ ५ ॥

उवाच च मुनिरागम्य लज्जाम्य वधाधितम् ।

सुदुष्करं कृतं कम लज्जाम् निज्जनां त्वया ॥ ६ ॥

हिरये लज्जवर्षने नियमने बल—लज्जामुक्तो मारकर तुमने अत्यन्त दुष्कर कम किया है ॥ ६ ॥

यद्यपि पार्यया सौम्य दत्ता सत्पराहना ।

लज्जणेन महागहो युध्यमाना महावला ॥ ७ ॥

नराधिपो रघुपतिपाददर्शने

दृष्टे मतिं रघुलज्जशमर्थनम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार नाना प्रकारके मनुष्योंसे मरी हुई उस देव पुरीके समान मनोहर मधुरापुरीको बसाकर शत्रुघ्नकी वृद्धि करनेवाले राजा शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथजीके चरणोंके दर्शनका विचार किया ॥ १७ ॥

शौम्य । महाबाहो ! लज्जामुक्त साथ युद्ध करके बहुत

स महाबली भूगल सेना और सवारियोंसहित मारे गये हैं ॥

स त्वया निहत पापो लीलया पुरुषपर्यम् ।

जगतश्च भयं तत्र प्रशान्तं तत्र तेजसा ॥ ८ ॥

पुरुषभेद । वही पापी लज्जामुक्त तुम्हारे द्वारा अनायास ही मार डाला गया । उसके कारण जगन्में जो भय छा गया था, वह तुम्हारे तेजमें शान्त हो गया ॥ ८ ॥

राजपक्ष्यं वधो घोरो यत्नेन महता कृतम् ।

इदं च सुमहत्कमं त्वया कृतमयत्नतः ॥ ९ ॥

प्रायश्चित्त घोर वध महान् प्रयत्नसे किया गया था परन्तु यह महान् कम तुमने बिना दलके ही सिद्ध कर दिया ॥ ९ ॥

प्रीतिश्चास्मिन् परा जाता देवानां लब्धे हते ।

भूतानां चैव सर्वेषां जगतश्च म्रिय कृतम् ॥ १० ॥

लज्जामुक्तके मारे जानेसे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई है । तुमने समस्त प्राणियों और सारे जगन्का म्रिय काज किया है ॥ १० ॥

तच्च युद्धं मया दृष्टं यथावत् पुरुषपर्यम् ।

सभायां यासंबन्धाय उपनिष्टेन राघव ॥ ११ ॥

नरभेद । मैं इन्द्रकी समामे बैठा था । जब यह विमानाघर समा युद्ध देखनेके लिये आया, तब वहाँ देव बैठे मीने भी तुम्हारे और राजाके युद्धको मन्त्रीमंडल देखा था ॥ ममापि परमा प्रीतिर्दृष्टिं शत्रुघ्नाय वतनम् ।

उपाग्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैवा परा गतिम् ॥ १२ ॥

शत्रुघ्न । मेरे हृदयमें भी तुम्हारे लिये बड़ा प्रेम है । अतः मैं तुम्हारा मन्त्रक सुँगा । वही स्नेहकी पटगठा है ॥

इयुक्त्वा मूर्ध्नि शत्रुघ्नमुपाग्राय महामनिम् ।

आतिथ्यमकरोत् तस्य ये च सस्य पदानुगा ॥ १३ ॥

एसा करकर परम बुद्धिमान् वाल्मीकिने शत्रुघ्नका मन्त्रक सुँगा और उनका तथा उनका कथितका आतिथ्य सत्कार किया ॥ १३ ॥

स भुक्तान् नरश्रेष्ठो गीतमाधुर्यमुत्तमम् ।
 शुभाय रामचरितं तस्मिन् फाले यथाक्रमम् ॥ १४ ॥
 नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नेन भोजनं क्रिया और उस समय श्रीराम
 चन्द्रजीके चरित्रका क्रमशः वर्णन सुना, जो गीतही मधुरताके
 कारण बड़ा ही मीय एव उत्तम जान पड़ता था ॥ १४ ॥
 तन्मूल्यसमायुक्तं त्रिस्थानकरणावितम् ।
 सस्वृतं लक्षणोपेतं समतालसमावितम् ॥ १५ ॥
 श्रुत्वा रामचरितं तस्मिन् फाले पुरा हृतम् ।

उस वलामें उन्हें जो रामचरितं सुननेको मिला, वह
 पहले ही काव्यबद्ध कर दिया गया था । वह काव्यगान
 धीमाही लयके साथ हो रहा था । हृदय, गूठ और मूषा—
 इन तीन स्थानोंमें मन्द्र, मध्यम और तार स्वरके मेदसे
 उच्चारित हो रहा था । तत्कृत भाषामें निर्मित श्लोक व्याकरण,
 छन्द, काव्य और संगीत शास्त्रके लक्षणोंसे सम्पन्न था और
 गानोचित तालके साथ गाया गया था ॥ १५ ॥
 तान्यक्षराणि स्वयानि यथावृत्तानि पूर्वशः ॥ १६ ॥
 श्रुत्वा पुरुषशब्दलो निसञ्जो वाष्पलोऽन ।

उस काव्यके सभी अक्षर एव वाक्य उची घटनाका प्रति
 पादन करते थे और पहले जो वृत्तात् पठित हो चुके थे,
 उनका यथार्थ परिचय दे रहे थे । वह अद्भुत काव्यगान
 सुनकर पुनःपुनः शत्रुघ्न मूर्छित हो गये । उनमें नेत्रोंसे
 आँसुओंकी धारा बहने लगी ॥ १६ ॥
 स मुहृतमियासहो धिनि श्वस्य मुहसुह ॥ १७ ॥
 तस्मिन् गीते यथावृत्तं वसमानमिमांशुणोत् ।

ये दो घड़ीतक अचतस्र हाकर बारबार लबी सौंछ लींचते
 रहे । उस गानमें उन्होंने बीती हुई बातोंको यत्नमादमी भौंति
 सुना ॥ १७ ॥
 पदानुगाध्य ये गद्यस्ता श्रुत्वा गीतिसम्पदम् ॥ १८ ॥
 अवाहमुत्प्राद्य दीनाश्च हाश्चयमिति चाबुज्ज ।

हृत्वायें श्रीमद्भगवत वाक्यकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्ड एकसप्ततितम सर्ग ॥ ७१ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकीनिर्मित आश्वरामायण आदिनामक उत्तरकाण्डमें श्रुतस्वरवा सग पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितम सर्ग

वाल्मीकीजीसे विदा ले शत्रुघ्नजीका अयोध्यामें जाकर श्रीराम आदिसे मिलना और
 सात दिनोत्तक वहाँ रहकर पुनः मधुपुरीको प्रस्थान करना

त शायनं नराधाय निद्रां नाम्यागमत् तदा ।
 चित्तपानमनेकार्थं रामगीतमनुत्तमम् ॥ १ ॥
 सोत समय पुरासिंह शत्रुघ्न उस उत्तम श्रीरामचरित्र
 सम्बन्धी गानके नियममें अनेक प्रकारकी बातें लेचने रहे ।
 श्लेष रातमें उन्हें बहुत देरतक नींद नहीं आयी ॥ १ ॥
 तस्य शब्दं सुमधुरं तन्मूल्यसमन्वितम् ।
 श्रुत्वा रात्रिजगामागु शत्रुघ्नस्य महत्तमम् ॥ २ ॥

रात्रि गतुघ्ने जो साथी थे, वे भी उस गीत-सम्पत्तिके
 सुनकर दीन और नतमस्तक हो गये—‘यह तो बड़ा आश्चर्य
 की बात है’ ॥ १८ ॥

परस्पर उच्ये तत्र सैनिका समभाषिरे ॥ १९ ॥
 किमिदं च वताम किमेतत् स्वप्नदर्शनम् ।
 यथौ यो न पुरा दृष्टस्तमधमपदे पुनः ॥ २० ॥
 शत्रुघ्ने जो सैनिक वहाँ मौजूद थे, वे परस्पर कहने
 लगे—‘यह क्या बात है । हमलोग कहाँ हैं । यह कोई स्वप्न
 तो नहीं देख रहे हैं । जिन बातोंको हम पहले देते चुके हैं,
 उन्हींसे इस आनन्दपर ज्यों-ज्यों सुन रहे हैं’ ॥ १९ २० ॥
 शृणुम किमिदं स्वप्ने गीतयधनमुत्तमम् ।
 निस्स्य ते पर गता शत्रुघ्नमिदमब्रुवन् ॥ २१ ॥

‘क्या इस उत्तम गीतबचन हमलोग स्वप्नमें सुन रहे हैं ।’
 फिर अत्यन्त विस्मयमें पड़कर वे शत्रुघ्ने बोले—॥ २१ ॥

साधु पृच्छ नरश्रेष्ठ वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ।
 शत्रुघ्नस्त्वग्रन्तः सवान् कौतुहलसमन्वितान् ॥ २२ ॥
 सैनिकानश्मोऽस्माकं परिप्रपुन्रमिहहृदा ।
 आश्चर्याणि यद्गृहीत भवत्यम्याधमे मुने ॥ २३ ॥
 नरश्रेष्ठ । आप इस विषयमें मुनिवर वाल्मीकीजीसे
 भलीभाँति पूछें । शत्रुघ्ने कौतुहलमें भरे हुए उन सब
 सैनिकोंसे कहा—‘मुनिने इस आश्रममें एही अनेक आश्चर्य
 जनक घटनाएँ हाती रहती हैं । डाक विषयमें उनसे कुछ
 पूछताऊ करना हमारे लिये उचित नहीं है’ ॥ २२ २३ ॥

न तु कौतुहलाद् युक्तमवेष्टु तमहासुनिम् ।
 पय तद् वाक्यमुत्स्या तु सैनिकान् रघुनन्दन ।
 अभिवाद्य महति तं न निवेशयौ तदा ॥ २४ ॥
 ‘कौतुहलका महाप्रति वाक्कीकिसे इन बातोंके विषयमें
 जानना या पूछना उचित न होगा ।’ अपने सैनिकोंसे ऐसा
 कहकर रघुनन्दन शत्रुघ्न महर्षिको प्रणाम करके अपने
 रोगमें चले गये ॥ २४ ॥

बीणाके लयके साथ उस रामचरित-गानका सुमधुर शब्द
 सुनकर महात्मा शत्रुघ्नकी सोप रात बहुत जल्दी बीत गयी ॥
 तस्या रज्ज्या द्युगुणया शरणा पौवाहिकप्रमम् ।
 वधाय प्राञ्जलिबोधय शत्रुघ्नो मुनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥
 जब वह रात बीती और प्रातःकाल आया, तब पूनाह
 कालांचित निलयमें करके शत्रुघ्ने हाथ बोझकर मुनिवर
 वाल्मीकीजीसे कहा—॥ ३ ॥

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि राघव रघुनन्दनम् ।
तयानुशातुमिच्छामि सदैवैव सिशितवर्तते ॥ ४ ॥

‘भगवन् ! अब मैं रघुकुलनन्दन श्रीरघुनाथजीका दशन करना चाहता हूँ । अब यदि आपकी आज्ञा हो तो कनोर मतका पालन करनेवाले इन साथियोंक साथ मेरी व्यथाका जानेकी इच्छा है’ ॥ ४ ॥

इत्येवमिदं तं तु शत्रुघ्न शत्रुसूदनम् ।
वाल्मीकि सम्परिष्वज्य विससज्ज स राघवम् ॥ ५ ॥

इस तरहकी बात कहते हुए रघुकुलभूषण शत्रुसूदन शत्रुघ्नका वाल्मीकिजीने हृदयसे लगा लिया और जनेकी आज्ञा दे दी ॥ ५ ॥

सोऽभिवाद्य मुनिश्रेष्ठ त्वमास्व सुप्रभम् ।
अयोध्यामगमत् तूर्णं राघवोन्मुखदर्शनम् ॥ ६ ॥

शत्रुघ्न श्रीरघुनाथजीक दशनक लिय उत्कण्ठित थे, इसलिय मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने प्रणाम करन व एक सुन्दर दीप्तिमान् रथपर आरुढ़ हो नुरत व्यथाका ओर चल दिये ॥ ६ ॥

स प्रविष्ट पुरीं रज्या श्रीमानिन्द्राकुलन्दन ।
प्रविशेश महाबाहुयन् रामो महाद्युतिः ॥ ७ ॥

इन्हाकुलका आनन्दित करनेवाले महाबाहु भीमान् शत्रुघ्न रमणीय अपराधपुरीमें प्रवेश करन छोड़े उसराजमहलमें गये, जहाँ महातेजस्वी भीरुम विराजमान थे ॥ ७ ॥

स राम मन्त्रिमध्यस्थ पूषणचन्द्रनिभाननम् ।
पश्यन्नमरमध्यस्थ सद्भनयन यथा ॥ ८ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
उवाच प्राज्ञलिम्बूत्वा राम सत्यपराक्रमम् ॥ ९ ॥

वैने वस्त्रनेत्रपारी इन्द्र देवताओंन बीचमें बैठते हैं, उसी प्रकार पूर्णवस्त्रमान समान मनोहर मुखवाले भगवन् भीरुम मन्त्रियोंन मध्यमार्गमें विराजमान थे । शत्रुघ्नेने अपने तबने प्रवृत्ति होनेवाले सत्यराजकी महारत्ना भीरुमका देखा, प्रणाम किया और हाथ जड़कर कहा— ॥ ८ ॥

यदाहृत महापथ सर्वं तत् कृतगानहम् ।
हत सत्त्वपण पाप पुरा चाम्य निवेदिता ॥ १० ॥

‘महाराज ! आपने मुझ त्रिश कामक लिय आज्ञा दी थी, वह सब मैं कर आया हूँ । पापी लक्षण गारा गया और उधकी पुरी भी सफ गयी ॥ १० ॥

ह्यद्वैतानि घण्टि तया विना रघुनन्दन ।
नात्सह्यमहं यस्तु त्वया विरहितो नृप ॥ ११ ॥

‘रघुनन्दन ! आपका दशन क्रिय बिना मैं कहने क्या तो किसी प्रकार कीन गया किन्तु नरेश्वर ! अब और अधिक क्या तक आने दूर रहनेका मुझमें साहस नहीं है ॥ ११ ॥

स मे प्रसादं काङ्क्षे कुरुष्यामितयिक्मम् ।
मातृहीनो यथा यस्तो न चिरं प्रयसास्यहम् ॥ १२ ॥

‘अभिने पण्डितका काङ्क्षित ! मैंने छाँटा देखा अपनी माँसे अलग नहीं रह सकता, उसी प्रकार मैं चिरकालक आपसे दूर नहीं रह सकूँगा । इसलिय आप मुझपर कृपा करें’ ॥ १२ ॥

एव श्रुत्वा शत्रुघ्न पश्चिच्येदमव्रजान् ।
मा विप्राद कृथा शूर नैतत् श्रमियचेष्टितम् ॥ १३ ॥

एसी बातें कहते हुए शत्रुघ्नने हृदयसे लगाकर भीराम चन्द्रजीने कहा— ‘शूरीय ! विपद न करो । इस तरह कातर शाना कथियचित् चला नहीं है ॥ १३ ॥

नायसादन्ति राजानो विप्रासपु गघव ।
प्रजा च परिपाल्या हि क्षात्रधर्मेण राघव ॥ १४ ॥

रघुकुलभूषण ! राजालोग पराक्रमसे रानेपर भी दुखी नहीं होते हैं । शूरीय ! राजाका क्षत्रिय धर्मक अनुसार प्रजाका भलीभाँति पालन करना चाहिये ॥ १४ ॥

काले काले तु मा धीर भयाघ्यामरलोन्निभम् ।
आगच्छ त्व नरश्रेष्ठ गन्ता स च पुर तप ॥ १५ ॥

‘नरश्रेष्ठ वीर ! समय समयपर मुझसे मिलनेक लिय अपोछा आया करो और फिर अपनी पुरीको लौट आया करो ॥ १५ ॥

ममापि त्व सुदयित प्राणैरपि न सशय ।
अरक्ष्य करणीयं च राज्यस्य परिपालनम् ॥ १६ ॥

‘मैं यदेह तुम मुझे भी प्राणोंसे बँकर म्रिय हूँ । परंतु राज्यका पालन करना भी तो आनन्दक कतय है ॥ १६ ॥

तस्मात् त्व उच काङ्क्षे सत्तराथ मया सह ।
ऊर्ध्वं गन्तासि मधुरा सभृत्यगल्लाहन ॥ १७ ॥

अब काङ्क्षित ! अभी मृत दिन हा तुम मर साग रहो । उधक बाद तेवर, मेना और लगरावियोंक साथ मधुरपुरी का चल जाना’ ॥ १७ ॥

रामस्यैतद् वच श्रुत्वा धमयुक् मनोऽनुगम ।
शत्रुघ्नो दानया धाया वादमित्येव चात्रयीत् ॥ १८ ॥

भीरुमराजककी यह बात धमयुक्त मनोऽनुगम । शत्रुघ्नो दानया धाया वादमित्येव चात्रयीत् ॥ १८ ॥

भीरुमराजकी आशने सत्र दिन व्यथाका उदरकर महाघनुर्धर वक्रकुलभूषण शत्रुघ्न वहाँसे जानेका तैयार हो गये ॥ १९ ॥

यामन्य तु महात्मानं राम सत्यपराक्रमम् ।
भरत ऋक्षमण्यैव महारथमुपाहृत ॥ २० ॥

लक्ष्मणरानी महामा भीराम, भवन और लक्ष्मणने वि । ल शत्रुघ्न एक विगाल रथपर आरुढ़ हुए ॥ २० ॥

दूर पदम्यामनुगतो लक्ष्मणेन महामना ।

भरतेन च शत्रुघ्नो जगामाशु पुरीं तवा ॥ २१ ॥
महत्मा लक्ष्मण और भरत पैदल ही उन्हें पहुँचाने के

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः

एक ब्राह्मणका अपने मरे हुए बालकको राजद्वारपर लाना तथा राजाको
ही दोषी बताकर विलाप करना

प्रस्थाप्य तु स शत्रुघ्न आत्भ्या सह राघवः ।

प्रमुमोद सुखी राज्य धर्मेण परिपालयन् ॥ १ ॥

शत्रुघ्नको मधुरा भोजनर भगवान् भीरुम भरत और
लक्ष्मण दोनों भाइयोंके साथ धर्मपूर्वक राज्यका पालन करते
हुए बड़े सुख और आनन्दसे रहने लगे ॥ १ ॥

ततः कतिपयाह सु घृञ्जो जानपदे द्विज ।

मृत बालमुपादाय राजद्वारमुपागमत् ॥ २ ॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद उस जनपदके भीतर रहने
वाला एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने मरे हुए बालकका शव लेकर
राजद्वारपर आया ॥ २ ॥

रद्गन् बहुविधा वाच स्नेहदुःखसमवित ।

असकृत् पुत्रपुत्रेति वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

वह स्नेह और दुःखसे आकुल हो नाना प्रकारकी बातें
कहला हुआ ये रहा था और बार बार 'पेटा ! पेटा !' की
पुकार मचाना हुआ इस प्रकार विलाप करता था— ॥ ३ ॥

किं तु मे दुष्टतः कर्म पुरा देहान्तरे वृत्तम् ।

यदहं पुत्रमेकं पश्यामि निधन गतम् ॥ ४ ॥

'हाय ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन सा ऐसा पाप किया था,
जिसका कारण आज इन आँखोंसे मैं अपने इकलौते बेटेकी
मृत्यु देख रहा हूँ ॥ ४ ॥

अप्राप्तयौषधं बाल पञ्चघर्षसहस्रकम् ।

अकाले कालमापन्नं मम तु खाय पुत्रक ॥ ५ ॥

'पेटा ! अभी तो तु बालक था । जज्ञान भी नहीं होने
पाया था । केवल पाँच हजार दिन (तेरह वर्ष दस महीने
शेष दिन) की तेरी अवस्था थी । तब भी तू मुझे दुःख देने
के लिये असमयमें ही कालके गालमें चला गया ॥ ५ ॥

अल्पैरहोभिर्निधनं गमिष्यामि न सहाय ।

अहं च जननी चैव तथ शोकेन पुत्रक ॥ ६ ॥

'वत्स ! तेरे शोकसे मैं और तेरी माता—दोनों थोड़े ही
दिनोंमें मर जायेंगे, इसमें सहाय नहीं है ॥ ६ ॥

न साराम्यनृत ह्यसं न च हिंसा साराम्यहम् ।

सर्वेषां प्राणिनां पापं न सारामि कदाचन ॥ ७ ॥

'मुझ या' नहीं पड़ता कि कभी मैंने कुछ बात मुँहसे
निकाली हो । किसीकी हिंसा की हा अपवा समस्त प्राणियोंमें
से किसीको भी कभी कष्ट पहुँचाया हो ॥ ७ ॥

केनाद्य दुष्टतेनाय बाल एव ममात्मज ।

अष्टव्या पितृकायाणि गतो वैश्वस्तक्षयम् ॥ ८ ॥

'फिर आज किस पापसे मेरा यह बेटा पितृकर्म किये
बिना इस बाल्यावस्थामें ही यमराजक घर चला गया ॥ ८ ॥
नेहदा दृष्टपूर्वमें मे भुक्त था घोरदर्शनम् ।

मृत्युरप्राप्तकालानां रामस्य त्रिपये ह्ययम् ॥ ९ ॥

'श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें ता अकाल-मृत्युकी देसी भयकर
घटना न पहले कभी देखी गयी थी और न सुननेमें ही
आयी थी ॥ ९ ॥

रामस्य दुष्टतः किञ्चिन्महदस्ति न सहाय ।

यज्ञा हि त्रिपयस्थानां बालानां मृत्युरागत ॥ १० ॥

'निस्सन्देह श्रीरामका ही कोई महान् दुष्कर्म है, जिससे
इनके राज्यमें रहनेवाले बालकोंकी मृत्यु होने लगी ॥ १० ॥
नहान्यविषयस्थानां बालानां मृत्युतो भयम् ।

स राजजीवयस्वैनं बाल मृत्युपशं गतम् ॥ ११ ॥

राजद्वारि मरिष्यामि पत्या सार्धमनाथवत् ।

ब्रह्महत्यां ततो राम समुपेत्य सुखी भव ॥ १२ ॥

'दूसरे राज्यमें रहनेवाले बालकोंको मृत्युसे भय नहीं है।
अतः राजन् ! मृत्युके वशमें पड़े हुए इस बालकको जीवित
कर दो, नहीं तो मैं अपनी स्त्रीके साथ इस राजद्वारपर अपना-
की मौत प्राण दे दूँगा । भीरुम ! फिर ब्रह्महत्याका पाप लेकर
तुम सुखी होना ॥ ११ १२ ॥

घातुभिः सहितो राजन् दीधमायुरवाप्यसि ।

उपिताः स सुखं राज्ये तवास्मिन् सुमहापल ॥ १३ ॥

'महानवी नरेश ! हमतुम्हारे राज्यमें यह सुखसे रहे हैं,
इसलिये तू अपने भाइयोंके साथ दीर्घजीवी होओगे ॥ १३ ॥

इदं तु पतितं तस्मात् तव राम धरो स्थितान् ।

कालस्य यशामापन्नाः स्वल्पं हि नहि न सुखम् ॥ १४ ॥

'श्रीराम ! तुम्हारे अधीन रहनेवाले हमलोगोंपर यह

• मृत्युमें जा पञ्चघर्षसहस्रकम् पर आया है इसमें वर्ष शब्द
पर वर्ष िन समझना चाहिये । जैसे सहस्रवत्सरे सत्रयुषादीनां
एषां विधि-आश्रयोंमें सत्सत् शब्द िवत्सकाल तक माना गया है ।

बालक-मरणरूपी दुःख सदृश आ पड़ा है, जिससे हम स्वयं भी कालके अधीन हो गये हैं अतः तुम्हारे इस रायमें हमें थोड़ा-सा भी सुख नहीं मिला ॥ १४ ॥

सम्प्रत्यन्ताथो विषय इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ।

राम नाथमिहासाद्य बालान्तकरणं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

‘महात्मा इक्ष्वाकुदशी नरेशोंका यह राज्य अब अनाथ हो गया है । श्रीरामको स्वामीके रूपमें पाकर यहाँ बालकौकी मृत्यु अटल है ॥ १५ ॥

राजदौषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिता ।

असद्वृत्ते हि नृपतावकाले म्रियते जनः ॥ १६ ॥

‘राजाके दोषसे सब प्रजाका विधिवत् पालन नहीं होता,

तभी प्रजाओंको ऐसी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है ।

राजाके दुराचारी होनेपर ही प्रजाकी अकाल-मृत्यु होती है ॥

यद् वा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेषु च ।

कुच्यते न च रक्षस्ति तदा कालट्टत भयम् ॥ १७ ॥

हृत्पापैः श्रीमद्रामायणे बाष्पकीकीये आदिक्काम्य उत्तरकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित अष्टरामायण आदिक्काम्य उत्तरकाण्डमें स्रष्टुत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः

नारदजीका श्रीरामसे एक तपस्वी शूद्रके अधर्माचरणको ब्राह्मण-बालककी मृत्युमें कारण बताना

तथा तु करुण तस्य द्विजस्य परिदेवनम् ।

शुभ्राय राघवः सर्वं दुःखदोक्तसमन्वितम् ॥ १ ॥

महाराज श्रीरामने उस ब्राह्मणका इस तरह दुःख और

शोकसे भरा हुआ वह सारा करुण कन्दन सुना ॥ १ ॥

स दुःखेन च सततो मन्त्रिणस्तानुपाद्रवत् ।

वसिष्ठ धामदेव च भ्रातृश्च सह नैगमान् ॥ २ ॥

इससे वे दुःखसे रुत हो उठे । उन्होंने अपने मन्त्रियों

को बुलाया तथा वसिष्ठ और धामदेवको एवं महाजनोंसहित

अपने माइयोंको भी आमन्त्रित किया ॥ २ ॥

ततो द्विजाः त्रिसिंघेन साधमष्टौ प्रवेशिताः ।

राजानं देवसकाशं वधस्येति ततोऽब्रुवन् ॥ ३ ॥

तदनन्तर वसिष्ठजीने साथ आठ ब्राह्मणोंने राजन्धाममें

प्रवेश किया और उन देवतुल्य नरेशसे कहा—‘महाराज !

आपकी ब्य हो’ ॥ ३ ॥

माकण्डेयोऽयं मौढ्रल्यो धामदेवश्च काश्यप ।

कात्यायनोऽयं जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा ॥ ४ ॥

उन आठोंके नाम इस प्रकार हैं—माकण्डेय, मौढ्रल्य,

धामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम तथा नारद ॥

एते ऋजयभा सर्वे आसनेषूपपदेशिताः ।

महर्षिन् समनुप्राप्तानभिप्रायं शृत्वाञ्जलिं ॥ ५ ॥

इन सब ऋषि ब्राह्मणोंके उसमें आलोकपर बैठायी गयी ।

वहाँ पचारे हुए उन महर्षियोंको श्रीरामनाथजीने हाथ जोड़कर

‘अथवा नगरों तथा जनपदोंमें रहनेवाले लोग जर अनुचित कर्म—पापाचार करते हैं और वहाँ रक्षाकी कांइ व्यवस्था नहीं होती, उन्हें अनुचित कर्मसे रोकनेके लिये कांइ उपाय नहीं किया जाता, तभी देशकी प्रजामें अकाल-मृत्युका मय प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

सुत्यक राजदौषो हि भविष्यति न सशयः ।

पुरे जनपदे चापि तथा बालवधो ह्ययम् ॥ १८ ॥

‘अतः यह स्पष्ट है कि नगर या राज्यमें कदा राजासे ही

कोई अपराध हुआ होगा, तभी इस तरह बालककी मृत्यु हुई

है, इसमें कोई संशय नहीं है’ ॥ १८ ॥

एव यद्विधैराभ्यैरुपकृत्य सुहृत्सुहृद् ।

राजानं दुःखस्ततः सुतः समुपगृह्णति ॥ १९ ॥

इस तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे उसने बारबार राजा

सामने अपना दुःख निवेदन किया और बारबार शोकमें रूत

होकर वह अपने भरे हुए पुत्रको उठा उठाकर हृदयमें

लगाता रहा ॥ १९ ॥

हृत्पापैः श्रीमद्रामायणे बाष्पकीकीये आदिक्काम्य उत्तरकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित अष्टरामायण आदिक्काम्य उत्तरकाण्डमें स्रष्टुत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

प्रणाम किया और वे स्वयं भी अपने स्थानपर बैठ गये ॥ ५ ॥

मन्त्रिणो नैगमाद्वयैव ययाहमनुकूलतः ।

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीप्ततेजसां ॥ ६ ॥

राघवः सर्वमावाप्ये द्विजोऽयमुपरोधतः ।

फिर मन्त्री और महाजनोंके साथ यथायाग्य शिष्टाचारका

उद्देश्य निवाह किया । उद्दीप्त तेजवाले वे सब लोग जर यथा

स्थान बैठ गये, तब श्रीरामनाथजीने उनसे सब बातें यथाया

ग्य और कहा—‘यह ब्राह्मण राजद्वारपर घटना दिये पड़ा है’ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रागो दीनस्य नारदः ॥ ७ ॥

प्रत्युत्वा च शुभं वाक्यमृषीणां सनिधौ स्वयम् ।

ब्राह्मणके दुःखसे दुखी हुए उन महाराजका यह वचन

सुनकर अन्य सब ऋषियोंने समीप स्वयं नारदजीने यह शुभ

बात कही—॥ ७३ ॥

शृणु राजन् यथाकाले प्राप्ते बालस्य सम्भय ॥ ८ ॥

श्रुत्वा कर्त्तव्यतां राजन् कुशलं रघुनन्दन ।

‘राजन् ! जिस कारणसे इस बालककी अर्थात् मृत्यु हुई

है, वह बताता हूँ, सुनिये । रघुनन्दन नरन् ! मेरी बात

सुनकर जो उचित कर्त्तव्य हो उसका पालन कीजिये ॥ ८ ॥

पुरा श्रुत्युगे राजन् ब्राह्मणा र्धं तपस्विनः ॥ ९ ॥

अब्राह्मणस्तदा राजन् न तपस्वी बध्वाः ॥

‘राजन् ! पहले सन्ध्यापूर्वमें केवल ब्राह्मणा ही तपस्वी हुआ

करते थे । महाराज । उस समय ब्राह्मणैतर मनुष्य किसी तरह तपस्यामें प्रवृत्त नहीं होता था ॥ १३ ॥

तस्मिन् युगे प्रज्वलिते ब्रह्मभूते त्वनावृते ॥ १० ॥
अमृत्यवस्तदा सर्वे जज्ञिरे वीर्यदर्शिनः ।

‘वह युग तपस्याक तेजसे प्रकाशित होता था । उसमें ब्राह्मणोंकी ही प्रधानता थी । उस समय अश्विनका वातावरण नहीं था । इसलिये उस युगमें सभी मनुष्य अकाल-मृत्युसे रहित तथा विकालदर्शी होते थे ॥ १० ॥

ततस्त्रेतायुगं नाम मानवानां ऋष्यमताम् ॥ ११ ॥
क्षत्रिया यत्र जायन्ते पूर्वेण तपसाऽग्निता ।

‘सत्ययुगमें बाद त्रेतायुग आया । इसमें ब्रह्म शरीरवाले क्षत्रियोंकी प्रधानता हुई और वे क्षत्रिय भी उसी प्रकारकी तपस्या करने लगे ॥ ११ ॥

वीर्येण तपसा चैव तेऽधिका पूर्वजमनि ॥ १२ ॥
मानवा ये महात्मानस्तत्र त्रेतायुगे युगे ।

‘परन्तु त्रेतायुगमें जो महात्मा पुरुष हैं, उनकी अपेक्षा ऋषयुगमें लग तप और पराक्रमकी दृष्टिसे बड़े चढ़े थे ॥ प्रह्लादक्षत्र च तत् सर्वं यत् पूर्वमश्वर च यत् ॥ १३ ॥
युगयोरुभयोरपसीत् समवीर्यसमन्वितम् ।

‘इस प्रकार दोनों युगोंमेंसे पूर्व युगमें जहाँ ब्राह्मण उद्वृष्ट और क्षत्रिय अपवृष्ट थे, वहाँ त्रेतायुगमें वे समान शक्तिशाली हो गये ॥ १३ ॥

अपश्यन्तस्तु ते सर्वे विद्वेषमधिकं ततः ॥ १४ ॥
स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्यैर्ण्यस्य सम्मतम् ।

‘तब मनु आदि सभी धर्मप्रवर्तकोंने ब्राह्मण और क्षत्रियमें एककी अपेक्षा दूसरेमें कोई विरोधता या ‘यूनानिकता’ न देखकर सर्वलोकसम्मत चातुर्यय व्यसंस्कारकी स्थापना की ॥ तस्मिन् युगे प्रज्वलिते धर्मभूते ह्यनावृते ॥ १५ ॥
अधर्मं पादमेकं ॥ पातयत् पृथिवीतले ।

अधर्मेण हि सयुजस्तेजो मन्दं भविष्यति ॥ १६ ॥

‘त्रेतायुग वर्णाश्रम धर्म प्रधान है । वह धर्ममें प्रकाशसे प्रकाशित होता है । वह धर्ममें बाधा बालनेवाला पापसे रहित है । इस युगमें अधर्मने भूतलपर अपना एक पैर रक्खा है । अधर्मसे युक्त होनेके कारण वहाँ लोगोंका तब घोर घोर घटना जायगा ॥ १५ ॥ १६ ॥

आमिषं यत्र पूर्वेषां राजसं च मलं भृशम् ।

अनृत नाम तद् भूतं पापेन पृथिवीतले ॥ १७ ॥

‘ऋषयुगमें जोविकाका साधनभूत इष्टि आदि रत्नयुग मूलक कम ‘अनृत’ कहलाता था और मत्तके समान अत्यन्त व्याप्य था । वह अनृत ही अधर्मका एक पाद होकर त्रेतामें इस भूतलपर स्थित हुआ ॥ १७ ॥

अनृतं पातयित्वा ॥ पादमेकमधर्मतः ।

ततः प्रादुष्टं पूर्वमायुषं परिनष्टितम् ॥ १८ ॥

‘इस प्रकार अनृत (अत्य) रूपी एक पैरको भूतलपर रखकर अधर्मने त्रेतामें सत्ययुगकी अपेक्षा आयुको क्षीमित कर दिया ॥ १८ ॥

पातिते त्वन्नतं तस्मिन्नाधर्मेण महीतले ।

शुभान्वेयाचरं ह्येकं सत्यधमपरायण ॥ १९ ॥

‘अतः पृथ्वीपर अधर्मके इस अनृतरूपी चरणके पड़नेपर सत्यधर्मपरायण पुरुष उस अनृतरूपी कुपरिणामसे बचनेके लिये पुत्रकर्मका ही आचरण करते हैं ॥ १९ ॥

त्रेतायुगे च यतते ब्राह्मणा क्षत्रियाश्च ये ।

तपोऽनप्यन्तं ते सर्वे शुभपामपरे जना ॥ २० ॥

‘तथापि त्रेतायुगमें जो ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, वे ही सब तपस्या करते हैं । अन्य वर्णक लोग सेवा कार्य किया करते हैं ॥ स्वधर्मं परमस्तेषां वैदयशूद्र तद्भागम् ।

पूजा च सर्ववर्णानां शूद्राश्च ह्यर्चिरोपतः ॥ २१ ॥

‘उन चारों वर्णोंमेंसे वैश्य और शूद्रको सेवान्वी उत्कृष्ट धर्म स्वधर्म रूपमें प्राप्त हुआ (वैश्य इष्टि आदिक द्वारा ब्राह्मण आदिनी सेवा करने लगे और) शूद्र सब वर्णोंकी (तीनों वर्णोंके लोगोंकी) विशेषकर पूजा—आदर सरकार करने लगा ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नस्तरे तेषामधर्मं चानृते च ह ।

ततः पूर्वं पुनर्हासमगमन्तुपसत्तम ॥ २२ ॥

‘नृपभ्रेष्ठ । इसी बीचमें जब त्रेतायुगका अन्तान होता है और वैश्यों तथा शूद्रोंका अधर्मन एक-पादरूप अनृतरूपी प्राप्ति होने लगती है, तब पूर्व वर्णजने ब्राह्मण और क्षत्रिय फिर हासको प्राप्त होने लगते हैं (क्योंकि उन दोनोंको अन्तिम दो वर्णोंका सर्वजनित दोष प्राप्त हो जाता है) ॥ २२ ॥

ततः पादमधर्मस्य द्वितीयमवतारयम् ।

ततो ह्यपरसख्यां सा युगस्य समजायत ॥ २३ ॥

‘तदनन्तर अधर्म अपने दूसरे चरणको पृथ्वीपर उतारता है । द्वितीय पैर उतारनेके कारण ही उस युगकी ‘द्विपर’ वंश हो गयी है ॥ २३ ॥

तस्मिन् द्विपरसख्ये ॥ वर्तमाने युगक्षये ।

अधमस्त्वाततः सैव बहुधेः पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥

‘पुरुषोत्तम । उस द्विपरनामक युगमें जो अधर्मके दो चरणोंका आश्रय है—अधम और अनृत दोनोंकी वृद्धि होने लगती है ॥ २४ ॥

अस्मिन् द्विपरसख्ये तपो वैदयान् समाविशत् ।

विभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् पणान् क्रमाद् वै तप आनिशत् ॥ २५ ॥

‘इस द्विपर युगमें तपस्यारूप कम वैश्योंको भी प्राप्त होता है । इस तरह तीन युगोंमें क्रमशः तीन वर्णोंको तपस्याका अधिकार प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

विभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् पणान् धमश्च परनिष्ठितः ।

न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ ॥ २६ ॥

हीन युगोंमें तीन वणोंका ही आशय लेकर तपस्यारूपी
धर्म प्रतिष्ठित होता है किन्तु नरभेष्ट । शूद्रको इन तीनों ही
युगोंमें तत्पत्नी धमरा अधिनार नहीं प्राप्त होता है ॥ २६ ॥
हीनयुगों नृपभेष्ट तप्यते सुमहत्तप ।

भविष्यच्छूद्रयोऽन्या हि तपश्चया कलौ युगे ॥ २७ ॥

नृपशिरोमण । एक समय ऐसा आया, जब हीन वंश
का मनुष्य भी बड़ी भारी तपस्या करेगा । कलियुग आनेपर
भविष्यमें होनेवाली शूद्रयानिमें उत्पन्न मनुष्यों में समुदायमें
तपश्चयाकी प्रवृत्ति होगी ॥ २७ ॥

अधर्मे परमो राजन् द्वापरे शूद्रजन्मन ।

स वै विषयपर्यन्ते तत्र राजन् महातपा ॥ २८ ॥

अथ तप्यति दुर्धृद्धिस्तन वालङ्गधो ह्ययम् ।

राजन् । द्वापरमें भी शूद्रका तपमें प्रवृत्त होना महान्
अधर्म माना गया है । (फिर प्रेताके लिये तो कहना ही क्या
है !) महाराज ! निश्चय ही आपने राज्यरी किसी सीमापर
कोई खोती बुद्धिवाला शूद्र महान् तपका आश्रय ले तपस्या
कर रहा है, उसीके कारण इस बालङ्गधी मृत्यु हुई है ॥
यो ह्यधममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य तु ॥ २९ ॥

करोति चाध्रीमूल तत्पुटे या दुर्मतिर्नर ।

क्षिप्र च गरक याति स च राजा न सदाय ॥ ३० ॥

‘जो कोई भी दुबुद्धि मानव जिस किसी भी राजा का साथ
हूँवापें धीमन्नामायण बालङ्गधीये आदिकार्ये

इस प्रकार श्रीबालमीकिनिर्मित आषारामायण आदिशायक

उत्तरकाण्डे चतुसप्ततितम सर्ग ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितम सर्ग

नौरामका पुष्पक विमानद्वारा अपने राज्यकी सभी दिशाओंमें घूमकर दुष्कर्मका पता लगाना,

किन्तु सर्वत्र सत्कर्म ही देखकर दक्षिण दिशामें एक शूद्र तपस्वीक पाम पहुँचना

नारदस्य तु तद् वाक्य श्रुत्वामृतमय यथा ।

प्रहसन्तुल लेभे लक्ष्मण चेन्ममबोवत् ॥ १ ॥

नारदजीके य अमृतमय वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने
अपार आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार
कहा— ॥ १ ॥

गच्छ सौम्य क्षिप्रमेष्ट समाध्यासय सुमत ।

यात्म्य च शरीर तत् तैलद्रोण्या निधापय ॥ २ ॥

गच्छेच्च परमोदारस्तैत्रैश्च सुसुगन्धिभि ।

यथा न क्षीयेत यात्मस्तया सौम्य विधीयताम् ॥ ३ ॥

‘सौम्य । जाओ । उत्तम वस्त्रों का पालन करनेवाले । इन

क्षिप्रमेष्ट । शान्तना दा और इनके बालङ्गधा शरीर उत्तम
गन्ध एवं सुगन्धसे युक्त तैलेसे भर हुए बाउक बड़े कटोने
या बोंगीमें डुबाकर रचना दा और देखी व्यक्त्तिका कर दा
जिससे बालङ्गधा शरीर विहृत या नष्ट न होने पाय ॥ २ ॥

यथा शरीरा यात्म्य गुप्त सन् क्रिष्टकर्मण ।

विपत्ति परिमेदो या न भवेत्त तथा क्षु ॥ ४ ॥

जयरा नगरमें अधर्म या न करने योग्य काम करता है, उसका
वह काय उस रायके नैर्धर्म (दरिद्रता) का कारण बन
जाता है और वह राजा क्षीप्र ही नरकमें पहुँचा दे, इसमें
संशय नहीं ॥ २९ ३० ॥

अधीतस्य च तप्तस्य वमण सुष्टतस्य च ।

पष्ट भजति भाग तु प्रजा धर्मेण पात्यन् ॥ ३१ ॥

‘क्षीरी प्रकार जो राजा धमरुक्त प्रजा का पालन करता
है, वह प्रजा के वेदाध्ययन, तप और गुण कर्मोंमें पुष्पका छठा
भाग प्राप्त कर लेता है ॥ ३१ ॥

पद्भगास्य च भोक्तासौ रम्यते न प्रजा कम् ॥

स त्व पुरुषशार्दूल मागस्य विषय स्वकम् ॥ ३२ ॥

दुष्टत यत्र पदयेथास्तत्र यत्र सम्राचर ।

‘पुरुषसिंह । जो प्रजा का गुण कर्मोंमें छठ भाग का
उपभोक्ता है, वह प्रजा की रक्षा कैसे नहीं करेगा ? अतः आप
अपने राज्यमें राजा बीजिये और जहाँ बोट दुष्कर्म दितायी
दे, वहाँ उसका शक्तेना प्रयत्न कीजिये ॥ ३२ ॥

एव चेद् धमशूद्रिश्च नृणा वायुर्निग्ननम् ।

भविष्यति तत्र श्रेष्ठ गालस्यास्य च जीवितम् ॥ ३३ ॥

‘नरभेष्ट । ऐसा करनेसे धर्म की वृद्धि होगी और मनुष्यों
की आयु बढ़ेगी । साथ ही इस बालङ्गधा भी नया जीवन
प्राप्त होगा’ ॥ ३३ ॥

उत्तरकाण्डे चतुसप्ततितम सर्ग ॥ ७४ ॥

उत्तरकाण्डे चतुसप्ततितम सर्ग पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

‘गुण कर्म करनेवाला’ इस बालङ्गधा शरीर जिस प्रकार
सुखित रहे, नष्ट या लज्जित न हो, ऐसा प्रयत्न करो’ ॥ ३४ ॥
एव सदिदय काष्ठस्थो लक्ष्मण गुभल्लग्नम् ।

मनसा पुष्पक दृष्ट्यागामोऽस्ति महायशा ॥ ५ ॥

‘गुभल्लग्न लक्ष्मण की एसा वदना दे महायशस्वी श्रीगुणनाथ
जीने मन ही मन पुष्पका विन्तन किया और कहा— ‘आ
जओ’ ॥ ५ ॥

इक्षित स तु विगाय पुष्पको हेमभूषित ।

आनगाम मुहूर्तेन समीप राघवस्य वै ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी का अभिप्राय समझकर सुगन्धित पुष्पक

विमान एक ही मुहूर्तमें उनके पास आ गया ॥ ६ ॥

मोऽऽसीत् प्रणतो भूत्वा अयमस्मि नराधिप ।

वश्यस्तत्र महायादो विष्णुः समुपस्थित ॥ ७ ॥

‘आह नमस्तस्मात् हो या देवता—नरेश्वर । यह रहा मैं ।
महाबाह ! मैं महा आनन्द अधीन रहनेवाला सिद्ध हूँ और
सेवा के लिये उपस्थित हुआ हूँ’ ॥ ७ ॥

भाषित रुचिर श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिप ।
 अभिवाच महर्षिन् सु विमान सोऽप्यरोहत ॥ ८ ॥
 पुष्पविमानका यः मनोहर वचन सुनकर वे महाराज
 भीरु महर्षियोंको प्रणाम करके उस विमानपर आरुढ़ हुए ॥
 धनुर्गृहीत्वा तूणी च खड्ग च रुचिरप्रभम् ।
 निक्षिप्य नगरे चैतौ सौमित्रिभरतासुभौ ॥ ९ ॥
 उन्होंने धनुष, बाणोंसे भरे हुए दो तरफ़ों और एक
 रामचमारी हुई तलवार हाथमें सखी और सङ्गण तथा भरत—
 इन दोनों भाइयोंको नगरकी रक्षामें निशुक्त करके वहाँसे
 प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

प्रायात् प्रतीचीं हरित विचित्र्यद्य ततस्तत ।
 उत्तरामयमच्छीमान् दिश दिग्गतावृताम् ॥ १० ॥
 श्रीमान् राम पहलें तो इधर उधर खोजते हुए पश्चिम
 दिशाकी ओर गये । फिर हिमालयसे घिरी हुई उत्तर दिशामें
 जा पहुँचे ॥ १० ॥
 गपद्यमानस्तप्रापि स्वल्पमप्यथ दुष्टतम् ।
 पूजामपि दिश सर्वामथापद्यन्नराधिप ॥ ११ ॥
 जब उन दोनों दिशाओंमें नहीं थोड़ा-सा भी दुष्कर्म नहीं
 दिखतामी दिया, तब तब और भीरामने समूची पूर्ब दिशाका भी
 निरीक्षण किया ॥ ११ ॥

प्रविशुद्धसमाचारामादर्शतलनिर्मलाम् ।
 पुष्पकस्यो महाबाहुस्तदापद्यन्नराधिप ॥ १२ ॥
 पुष्पकर बैठे हुए महाबाहु राजा भीरामने वहाँ भी शूद्र
 वंशचारका पालन होता देखा । वह दिशा भी दर्पणके समान
 निमल दिखायी दी ॥ १२ ॥
 दक्षिणा दिशमाक्रमत् ततो राजर्षिनन्दन ।
 दौयलस्योत्तरे पादौ ददर्श सुमहत्तर ॥ १३ ॥
 तब राजर्षिनन्दन रघुनाथजी दक्षिण दिशाकी ओर गये ।
 वहाँ शैबल पर्वतक उत्तर भागमें उन्हें एक महान् शरीवर
 दिखायी दिया ॥ १३ ॥

तस्मिन् सरसि तप्यन्त तापस सुमहत्तपः ।
 ददता राघव श्रीमौल्यमयमानमधोमुखम् ॥ १४ ॥
 उस शरीवरके तटपर एक तपस्वी बड़ी भारी तपस्या कर
 इयोंमें श्रीमन्नारायणे बाबकीकीये आदिकायों
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकायक
 उत्तरकाण्डमें पञ्चदशवर्षों तक पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

रहा था । यह नीचेको मुख किये हटका हुआ था । रघुकुल
 नन्दन भीरामने उसे देखा ॥ १४ ॥

राघवस्तमुपागम्य तप्यन्त तप उत्तमम् ।
 उवाच च तपो धाक्य धन्यस्त्वमसि सुमत ॥ १५ ॥
 कस्या योग्या तपोवृत्त यतसे हृदयिकम् ।
 कौतुहलात् त्वा पृच्छामि रामो दाशरथिर्हम् ॥ १६ ॥
 देखकर राजा भीरुनाथजी उस तपस्या करते हुए उस
 तपस्वीके पास आये और बोले—“उत्तम प्रवृत्ता पालन करने
 वाल तापस । तुम धन्य हो । तपस्यामें बड़े चढ़े हुए पराक्रमी
 पुरुष । तुम किस जातिमें उत्पन्न हुए । मैं दशरथकुमार
 राम तुम्हारा परिचय जाननेके कौतुहलसे ये बातें पूछ रहा हूँ ॥
 कोऽर्थो मनीषितस्तुभ्य स्वर्गलोऽपरोऽथवा ।

वराध्यो यदर्थं त्व तपस्यै सुदुस्तरम् ॥ १७ ॥
 “तुम्हें किस यस्तुको पानेकी इच्छा है । तपस्याद्वारा
 शूद्र हुए इष्टदेवतासे वरके रूपमें तुम क्या पाना चाहते हो—
 स्वर्ग या दूसरी कोई वस्तु । नीन वा ऐसा पदार्थ है, जिसके
 लिये तुम ऐसी कठोर तपस्या करते हो, जो दूसरोंके लिये
 दुष्कर है ॥ १७ ॥

यमाश्रित्य तपस्तप्त धोतुमिच्छामि तापस ।
 ब्राह्मणो वासि भद्र त क्षत्रियो वासि दुर्जय ।
 वैश्यस्तृतीयो वर्णो वा शूद्रो वा सत्ययाम् भव ॥ १८ ॥
 धातप । जिस वस्तुके लिये तुम तपस्यामें लगे हुए हो,
 उसे मैं सुनना चाहता हूँ । इसके सिवा यह भी बताओ कि
 तुम ब्राह्मण हो या क्षत्रिय क्षत्रिय । तीसरे वर्णके वैश्य हो
 अपवा शूद्र । तुम्हारा भेष हो । ठीक ठीक बताना ॥ १८ ॥

इत्येवमुक्त्वा न नराधिपेन
 अयाकिशरा दाशरथाय तस्मै ।
 उवाच जाति नृपपुङ्गवाय
 यत्कारणं वैच तप प्रयात् ॥ १९ ॥
 महाराज श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर नीचे फिर किये
 लठके हुए उस तपस्वीने उन नृपभेद दशरथनन्दन भीरामको
 अपनी जातिके परिचय दिया और जिस उद्देश्यसे उसने
 तपस्याके लिये प्रयास किया था, वह भी बताया ॥ १९ ॥

उत्तरकाण्डे पञ्चमहाविततमः सर्ग ॥ ७५ ॥
 उत्तरकाण्डमें पञ्चदशवर्षों तक पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

पट्सप्ततितमः सर्ग

श्रीरामके द्वारा शम्भूकका वध, देवताओंद्वारा उनकी प्रशंसा, अगस्त्याश्रमपर महर्षि
 अगस्त्यके द्वारा उनका सत्कार और उनके लिये आभूषण-दान

तस्य तद् यजन श्रुत्वा रामस्याक्रियकार्मण ।
 अयाकिशरास्तथाभूतो चाफ्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
 केशरहित कर्म करनेवाले अगस्त्य रामका यह वचन

सुनकर नीचे भक्त किये लठका हुआ यह तथाकथित तपस्वी
 इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥
 शूद्रयोन्वा प्रजातोऽस्मि तप उग्र समास्थित ।



शुद्ध तपस्वी शम्भुसे श्रीरामजी यत्नीत

देवत्व प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ॥ २ ॥

महायशस्वी भीराम । मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और सदेह स्वर्गलोकमें जानकर देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ ।

इसीलिये ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ ॥ २ ॥

न मिथ्याह घड़े राम देवलोकजिगीपया ।

शूद्र मा यिसि काकुत्स्थ शम्भूक नाम नामत ॥ ३ ॥

‘काकुत्स्थकुलभूषण भीराम । मैं शूद्र नहीं बोलता । देव लोकपर विजय पानेकी इच्छासे ही तपस्यामें लगा हूँ । आप मुझे शूद्र समझिये । मेरा नाम शम्भूक है’ ॥ ३ ॥

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्ग सुखिरप्रभम् ।

निष्कण्ट्यकोशाद् विमल शिरश्चिच्छेद राघव ॥ ४ ॥

वह इस प्रकार कह ही रहा था कि आरामचन्द्रजीनेम्हान से चमचमाती हुई तलवार खींच ली और उसीसे उसका सिर काट लिया ॥ ४ ॥

तस्मिन्शूद्रे हते देवा सेन्द्रा साभिपुरोगमा ।

साधुसाधितसि काकुत्स्थ ते शशासुप्तुहुसुहु ॥ ५ ॥

उठ शूद्रका उध होते ही शूद्र और अग्निवहित सपूर्ण देवता ‘बहुत ठीक, बहुत ठीक’ बहकर मगबान् भीरामकी बारबार प्रणाम करने लग ॥ ५ ॥

पुष्पद्विर्मदव्यासोद् दिव्याना सुसुगन्धिनाम् ।

पुष्पाणा वायुमुक्ताना सवत प्रपपात ह ॥ ६ ॥

उठ समग्रउनके ऊपर सब ओरसे वायुदेवताद्वारा बिखरे गये दिव्य एव परम सुगन्धित पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ ६ ॥

सुमीताश्चाब्रुवन् राम देवा सारयपराक्रमम् ।

सुरकार्यमिद् देव सुदृढ ते महामते ॥ ७ ॥

वे सब देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर सत्यपराक्रमी भीराम से बोले—‘देव । महामते । आपने यह देवताओंका ही कार्य सम्पन्न किया है ॥ ७ ॥

गृहाण च पर सौम्य य त्वमिच्छस्यसिदम् ।

स्वगभाद् नहि शूद्रोऽय त्वत्पते रघुनन्दन ॥ ८ ॥

‘शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुकुलनन्दन सौम्य भीराम । आपके इस वत्सर्गसे ही यह शूद्र सशरीर स्वर्गलोकमें नहीं जा सका है । अतः आप जो पर चाहें माँग लें’ ॥ ८ ॥

देवाना भाषित ध्रुत्वा राम सत्यपराक्रम ।

उत्राच प्राज्जलिषाय सहस्राक्ष पुरदरम् ॥ ९ ॥

देवताओंका यह वचन सुनकर सत्यपराक्रमी भीरामने दोनों हाथ जोड़ सहस्रनेत्रपारी देवताय हन्त्रसे कहा—॥ ९ ॥

यदि देवा प्रमग्ना मे द्विजपुत्र स जीवसु ।

दिशतु परमेत मे इप्सित परम भम ॥ १० ॥

‘यदि देवता मुझपर प्रसन्न हैं तो वह ब्राह्मणपुत्र जीवित हो आय । यही मेरे लिये सत्य उन्नत और अभीष्ट वर है । देवतालोक मुझे यही वर दे ॥ १० ॥

ममापचाराद् यालोऽसौ ब्राह्मणस्यैरुपप्रक ।

अप्रातकाल कालेन नीतो वैद्यस्वतश्चयम् ॥ ११ ॥

‘मेरे ही फिजी अपराधसे ब्राह्मणका वह इकलौता बालक असमयमें ही कालके गालमें चला गया है ॥ ११ ॥

त जीवयत भद्र यो नानृत वतुमईय ।

द्विजस्य सञ्चतोऽयौ मे जीवयिष्यामि ते सुतम् ॥ १२ ॥

‘मैंने ब्राह्मणके सामने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं आपने पुत्रको जीवित कर दूँगा ।’ अतः आपलोगोंका कल्याण हो । आप उस ब्राह्मण-बालकको जीवित कर दें । मेरी बातको झूठी न करें’ ॥ १२ ॥

राघवस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा विबुधसत्तमा ।

प्रत्य्यूच राघव प्रीता देवा प्रीतिसमन्वितम् ॥ १३ ॥

भीरुपुत्रापीकी यह बात सुनकर वे विदुषणोंमेंलगे देवता उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—॥ १३ ॥

निर्वृतोभय काकुत्स्थ सोऽस्मिन्हनि बालक ।

जीवित प्राप्तान् भूय समेतश्चापि वधुभि ॥ १४ ॥

‘काकुत्स्थकुलभूषण । आप समुद्र हो । वह बालक आज फिर जीवित हो गया और अपने भाई-बहनोंसे जा मिला ॥

यस्मिन् मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोऽय विनिपातित ।

तस्मिन् मुहूर्ते यालोऽसौ जीवेन समयुज्यत ॥ १५ ॥

‘काकुत्स्थ । आपने जिस मुहूर्तमें इस शूद्रको घराशापी किया है, उसी मुहूर्तमें वह बालक भी उठा है ॥ १५ ॥

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्र ते साधु याम नरपम ।

अगस्त्यस्याश्रमपद् द्रष्टुमिच्छाम राघव ॥ १६ ॥

तस्य दीक्षा समाप्ता हि ब्रह्मर्षे सुमहाद्युते ।

द्वादश हि गत वर्षे जन्मशय्या समासत ॥ १७ ॥

‘नरश्रेष्ठ । आपका कल्याण हो । भला हा । अय हम अगस्त्याश्रमको जा रहे हैं । खनुन्दन । हम महर्षि अगस्त्यका दशन करना चाहते हैं । उन्हें जन्मशय्या लिये पूर बारह वर्ष

भीत चुके हैं । अब उन महातेजस्वी ब्रह्मर्षिकी वह बलशायन सम्पत्ती प्रतीकी दीक्षा समाप्त हुई है ॥ १६ १७ ॥

काकुत्स्थ तद् गमिष्यामो मुनि समभिनन्दितम् ।

त्य चापि गच्छ भद्र ते द्रष्टुं तमृषिसत्तमम् ॥ १८ ॥

‘रघुनन्दन । इसीलिये हमलोग उन महर्षिका अभिनन्दन करनेक लिये आयेगे । आपका कल्याण हो । आप भी उन मुनिश्रेष्ठका दर्शन करनेक लिये चलिये’ ॥ १८ ॥

स तयेति प्रतिषाय देवाना रघुनन्दन ।

आरुहो विमान त पुण्यं हेमभूषितम् ॥ १९ ॥

तब ‘रघुनन्दन’ कहकर रघुकुलनन्दन भीराम

देवताओंक सामने वहाँ जानेकी प्रतिज्ञा करते उस मुन्यभूषिता

पुष्पसंविमानपर चढ़े ॥ १९ ॥

ततो देवा प्रयतास्ते विमानैरमुषिस्तार ।

गमोऽप्यनुजगामाः शुम्भयोनेस्तपोधनम् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् देवता बहुसरपक विमानोंपर आसुद्ध हो वहाँसे प्रस्थित हुए । फिर भीराम भी उड़ीके साथ शीघ्रतापूर्वक कुम्भज श्रुतिके तपोवनको चले दिये ॥ २० ॥

छट्ठा तु देवान् सम्प्रातानगत्यस्तपसा निधि ।
अर्चयामास धर्मात्मा सर्गोत्तानविदोपत ॥ २१ ॥

देवताओंको आया देख तपस्याकी निधि धर्मात्मा अगस्त्यने उन सबकी समानरूपसे पूजा की ॥ २१ ॥

प्रतिगृह्य तत पूजा सम्पूज्य च महामुनिम् ।
जम्मुस्ते विदशा हृष्टा नाकप्रष्ट सहाजुगा ॥ २२ ॥

उनकी पूजा ग्रहण करके उन महामुनिका अभिनन्दन कर के सब देवता अनुचरोंद्विष्ट उड़े हर्षके साथ स्वर्गको चले गये ॥ २२ ॥

गतेषु तेषु काकुत्स्थ पुष्पकादयकृष्ण च ।
ततोऽभिवाद्यामास अगस्त्यश्रुतिसत्तमम् ॥ २३ ॥

उनके चले जानेपर श्रीरघुनाथजीने पुष्पकविमानसे उतर कर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम किया ॥ २३ ॥

स्तोऽभिवाद्य महात्मानं ज्यलन्तमिव तेजसा ।
आतिथ्य परम प्राप्य निपसाद् नराधिप ॥ २४ ॥

अपने तेजसे प्रज्वलित से होनेवाले महात्मा अगस्त्यका अभिवादन करके उनसे उत्तम आतिथ्य पाकर नरेश्वर भीराम आसनपर बैठे ॥ २४ ॥

तमुवाच महातेजा कुम्भयोनिर्महातपा ।
स्वागत ते नरश्रेष्ठ दिव्या प्रातोऽसि राघव ॥ २५ ॥

उस समय महातेजस्वी महातपस्वी कुम्भज मुनिने कहा—
नरश्रेष्ठ रघुनन्दन ! आपका स्वागत है । आप यहाँ पधारे, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ २५ ॥

तव मे यदुमतो राम गुणैर्यदुभिरुचमै ।
अतिथि पूजनीयश्च मम राजन् हृदि स्थित ॥ २६ ॥

‘महाराज भीराम ! बहुत से उत्तम गुणोंके कारण आपके लिये मेरे हृदयमें बड़ा सम्मान है । आप मेरे आदरणीय अतिथि हैं और सदा मेरे मनमें बसे रहते हैं ॥ २६ ॥

सुरा हि कथयन्ति त्वामागतं शूद्रघातिनम् ।
ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीयापितः स्तुत ॥ २७ ॥

‘देवतालोग कहते थे कि ‘आप अधमनरायणशूद्रका वध करके आ रहे हैं तथा धर्मके बलसे आपने ब्राह्मणके उस मेरे हुए पुत्रकी भीति कर दिया है’ ॥ २७ ॥

उप्यता चेद् रजनीं सक्ताशे मम राघव ।
प्रभाते पुष्पकेण त्वं गन्तासि पुरमेव हि ॥ २८ ॥

रघु हि नारायण श्रीमास्तवयि सर्वे प्रतिष्ठितम् ।
स्य प्रभुः सर्वदेवानां पुरुषस्तु सनातन ॥ २९ ॥

‘रघुनन्दन ! आज रातको आप मेरे ही पास इस आश्रम में निवास कोजिय । कल सुबेरे पुष्पकविमानद्वारा अपने नगर को आइयेगा । आप साक्षात् श्रीमान् नारायण हैं । शरा जगत्

आपमें ही प्रतिष्ठित है और आप ही समस्त देवताओंके स्वामी तथा सनातन पुरुष हैं ॥ २८ २९ ॥

इदं चाभरणं सौम्य निर्मितं शिथिलमर्चना ।
दिश्य दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ३० ॥

‘सौम्य ! यह विष्णुकामका बनाया हुआ दिव्य आभरण है, जो अपने दिव्य रूप और तेजसे प्रकाशित हो रहा है ॥

प्रतिगृहीष्व काकुत्स्थ मत्प्रियं शुचं राघव ।
वत्स्य हि पुनर्दाने सुमहत् फलमुच्यते ॥ ३१ ॥

‘ककुत्स्थकुलभूषण रघुनन्दन ! आप इसे लीजिये और मेरा प्रिय कीजिये, क्योंकि मिथोकी दी हुई वस्तुका पुनर्दान कर देनेसे महान् फलकी प्राप्ति बतायी जाती है ॥ ३१ ॥

भरणे हि भवाञ्चाकं फलानां महतामपि ।
तव हि शक्तस्तारयितुं नैव नानपि दियोक्तुः ॥ ३२ ॥

तस्मात् प्रदास्ये विधिं तत् प्रतीच्छन्नराधिप ।
‘इस आभूषणको धारण करनेमें केवल आप ही समर्थ हैं तथा बड़े-से बड़े फलोंकी प्राप्ति करानेकी शक्ति भी आपमें ही है । आप इन्द्र आदि देवताओंको भी तारनेमें समर्थ हैं, इसलिये नरेश्वर ! यह भूषण मैं मैं आपको ही दूँगा । आप इसे विधिपूर्वक ग्रहण करें’ ॥ ३२ ॥

अथोवाच महात्मानमिच्छाकूणा महारथ ॥ ३३ ॥
रामो मतिमता श्रेष्ठः क्षत्रधर्ममनुसरन् ।

प्रतिग्रहोऽयं भगवन् ब्राह्मणस्याविगर्हित ॥ ३४ ॥
तव बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और इत्याहुद्वारा मे महारथी वीर भीरामने क्षत्रियधर्मका विचार करते हुए वहाँ महात्मा अगस्त्यजीसे कहा—‘भगवन् ! दान लेनेका काम तो केवल ब्राह्मणके लिये ही निश्चित नहीं है ॥ ३३ ३४ ॥

क्षत्रियेण कथं त्रिप्र प्रतिग्राह्य भवेत् तत ।
प्रतिग्रहो हि विभेन्द्र क्षत्रियाणां सुगर्हित ॥ ३५ ॥

ब्राह्मणेन विदोषेण दत्तं तद् यक्षुर्महसि ।
‘विप्रवर ! क्षत्रियोंके लिये तो प्रतिग्रह स्वीकार करना अत्यन्त निन्दित बताया गया है । फिर क्षत्रिय प्रतिग्रह-विरोधक ब्राह्मणका दिया हुआ दान कैसे ले सकता है ! यह बतानेकी कृपा करें’ ॥ ३५ ॥

ययमुक्तस्तु रामेण प्रत्युवाच महानृपि ॥ ३६ ॥
आसन् वृत्तयुगे राम ब्रह्मभूते पुरायुगे ।

अपार्थिनाः प्रजा सत्वा सुराणां तु शतक्रतु ॥ ३७ ॥
भीरामके इस प्रकार पूछनेपर महर्षि अगस्त्यने उत्तर दिया—‘रघुनन्दन ! पहले ब्रह्मस्वरूप सत्ययुगमें सारी प्रजा बिना राजाके ही थी, आगे चलकर इन्द्र देवताओंके राजा बनाया गये ॥ ३६ ३७ ॥

ता प्रजा श्वेदश्वेषां राजार्थं समुपाद्रयन् ।
सुराणां स्थापितो राजा त्वया देव शतप्रतु ॥ ३८ ॥

प्रयच्छासासु लोकेश पार्थिव नरपुङ्गवम् ।

यस्मै पूजा प्रयुञ्जाना धृतपापाश्चरेमहि ॥ ३९ ॥

स्वर्ग सारी प्रजापते देवदेवेश्वर ब्रह्माश्रमे पाठ राजाके लिये गयी और बोली—‘देव ! आपने इन्द्रको दत्तवाओंके राजा पदपर स्थापित किया है । इसी तरह हमारे लिये भी किसी श्रेष्ठ पुत्रको राजा बना दाजिये, जिसकी पूजा करके हम पापरहित हो इस भूतलपर विचरें ॥ ३८ ३९ ॥

न वसामो विना राजा एष नो निश्चय पर ।

ततो ब्रह्मा सुरधष्ठो लोकपालान् सत्रासत्रान् ॥ ४० ॥

समाहूयाध्वरीन् सर्वास्तेजोभागान् प्रयच्छन् ।

ततो बहुलोकपाला सर्वे भागान् स्वनेजस ॥ ४१ ॥

‘हम विना राजाके नहीं रहेगी । यह हमारा उत्तम निश्चय है ।’ तब सुरश्रेष्ठ ब्रह्मान इन्द्ररहित समस्त लोकपालोंको बुला कर कहा—‘तुम सब लोग अपने तेजका एक एक भाग दो ।’ तब समस्त लोकपालोंने अपने-अपने तेजका भाग अर्पित किया ॥ ४० ४१ ॥

अभुपक्ष ततो ब्रह्मा यतो जात पुपो नृप ।

त ब्रह्मा लोकपालानां समासौ समयोजयत् ॥ ४२ ॥

‘उसी समय ब्रह्माजीका लौक आयी, जिससे छुप नामक राजा उत्पन्न हुआ । ब्रह्माजीने उस राजाको लोकपालोंके दिये हुए तेजके उन सभी भागोंसे संयुक्त कर दिया ॥ ४२ ॥

ततो ददौ नृप तासां प्रजानामीश्वर पुषम् ।

तत्रैत्रेण च भागेन महीमाण्ययन्तृप ॥ ४३ ॥

‘तत्सम्प्राप्त उन्होंने छुपका ही उन प्रजाजनोंके लिये उनके प्रासक नरेशक रूपमें समर्पित किया । छुपने वहाँ राजा होकर इन्द्रक दिये हुए तेजोभागसे पृथ्वीका शासन किया ॥ ४३ ॥ धारणेन तु भागेन चपु पुष्यति पार्थिव । कौवरेण तु भागेन त्रिषपाभा ददौ तदा ॥ ४४ ॥ यस्तु याम्योऽभवद् भागस्तेन शास्तिस्स स प्रजा ।

धरुणक तेजोभागसे वे भूपाल प्रजाके शरीरका पोषण

हृत्पापे धीमद्रामायणे वासुकीकृत्ये आदिकाव्य उत्तरकाण्डे पदसप्ततितम सर्ग ॥ ७६ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वत्थामयण आदिशम्भु उत्तरकाण्डमें गिरिवरों सा पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितम. सर्ग.

महर्षि अगस्त्यका एक स्वर्गीय पुरुषके श्वभक्षुणका प्रसंग सुनाना

पुप प्रेतयुगे राम चभू बहुविस्तरम् ।

समन्ताद् योजनशत विमृग पक्षिप्रजितम् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) भौराम । प्राचीनकालक प्रेतयुगकी बात है, एक बहुत ही विस्तृत वन था, जो चारों ओर से योजनतक फैला हुआ था परन्तु उस वनमें न तो कोई पक्षी था और न पक्षी ही ॥ १ ॥

तस्मिन् निमानुपेऽरण्यां पुष्याणस्तप उत्तमम् ।

अहमानमितु सौम्य तदरण्यमुपागमम् ॥ २ ॥

करने लगे । कुर्वक तेजोभागसे उद्दिन उन्हें घनपतिका आभा प्रदान की तथा उनमें वा यमराजका तेजोभाग था, उसमें वे प्रजाजनोंको अपराध करनेपर दण्ड देते थे ॥ ४४ ॥

तत्रैत्रेण नरश्रेष्ठ भागेन रघुनन्दन ॥ ४५ ॥

प्रतिगृह्णीष्व भद्र ते तारणार्थं मम प्रभो ।

भरश्रेष्ठ रघुनन्दन ! आप भी राजा होनेके कारण सभी लोकपालोंके तेजमें सम्मिल हैं । अतः प्रभो ! इन्द्र-सम्प्राप्ति तेजोभागके द्वारा आप मेरे उद्धारक लिये यह आभूषण ग्रहण कीजिये । आपका भला हो ॥ ४५ ॥

तद् राम प्रतिवद्वाह मुनेस्तस्य महात्मन ॥ ४६ ॥

द्वियमाभरणं चित्रं प्रदीक्षमिन् भास्करम् ।

प्रतिगृह्य ततो रामस्तदाभरणमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

आगम तस्य दीप्तस्य प्रष्टुमेकोपचममे ।

तब मगगन्धीराम उन महात्मा मुनिज दिये हुए उस श्वभक्षुण समान दीक्षिमान्, दिव्य, विचित्र एवं उत्तम आभूषणको ग्रहण करके उसकी उपलब्धि के लिये पृथने लगे—४६ ४७ ॥

अत्यद्भुतमिदं दिव्यं वपुषा युक्त्वा महत्तमम् ॥ ४८ ॥

कथं वा भवता प्राप्तं कुतो वा केन वाऽऽहृतम् ।

कौतूहलतया ब्रह्मन् पृच्छामि त्वा महायश ॥ ४९ ॥

आश्चर्याणां बहुना हि निधिं परमको भवान् ।

‘महायशस्वी मुने ! यह अत्यन्त अद्भुत तथा दिव्य आकारसे युक्त आभूषण आपका कैसे प्राप्त हुआ, अपना इस कौन कहेंगे ल आपा ! ब्रह्मन् ! मैं कौतूहलतया य बातें आपसे पूछ रहा हूँ क्योंकि आप बहुतसे आश्चर्योंका उत्तम निधि हैं ॥ ४८ ४९ ॥

एव नृपति काकुत्स्थे मुनिप्राप्त्यमथान्तरात् ॥ ५० ॥

शृणु राम यथावृत्तं पुरा प्रेतयुगे युगे ॥ ५१ ॥

‘ककुत्स्थकुलभूषण भीरामर इस प्रकार पूछनेपर मुनिर अगस्त्यने कहा—‘भौराम ! पूर्व चतुर्युगीन प्रेतयुगमें जैसा ज्ञेयान्त घटित हुआ था, उसे बताऊँ मुनिय ॥ ५० ५१ ॥

सौम्य । उस निज्जन ननमें उत्तम तन्मया करनेके लिये

धूम धूमकर उपयुक्त स्थानका पता लगानेके निमित्त मैं

यहाँ गया ॥ २ ॥

तस्य रूपमरण्यस्य निर्दोष्टं न दारुणं ह ।

फलमूलैः सुखास्वादयैरुपरीक्ष्य पार्श्व ॥ ३ ॥

उस वनका स्वरूप किन्ना सुगन्धारी था, यह वनानेमें मैं

असमर्थ हूँ । सुगन्ध स्वादिष्ट फल मूल तथा अनेक रूप रंगने

बृहत् उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ३ ॥

तस्याण्यस्य मध्ये तु सरो योजनमायतम् ।
हस्तकारण्डवाकीर्णं चक्राकोपशोभितम् ॥ ४ ॥

उस वनये मध्यभागमें एक सरोवर था। जिसकी लंबाई चौड़ाई एक एक योजनकी थी। उसमें हंस और कारण्डव आदि बलपक्षी पैल हुए थे और चक्रवाकीं ने जोड़े उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ४ ॥

पद्मोत्पलसमाकीर्णं समतिश्रान्तशैवलम् ।
तदाध्वर्यमिवात्यर्थं सुखास्वाद्मनुचमम् ॥ ५ ॥

उसमें कमल और उत्पल छा रहे थे। सेवारका कहीं नाम भी नहीं था। वह परम उत्तम सरोवर अत्यन्त आश्चर्य मय-सा जान पड़ता था। उसका जल पीनेमें अत्यन्त सुखद एवं स्वादिष्ट था ॥ ५ ॥

अरजस्क तदक्षोभ्य श्रीमत्पक्षिगणायुतम् ।
तस्मिन् सर समीपे तु महद्द्वुतमोभ्रमम् ॥ ६ ॥
पुराण पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनैर्वाजितम् ।

उसमें कीचड़ नहीं था, वह सर्वथा निर्मल था। उसे कोई पार नहीं कर सकता था। उसके भीतर सुन्दर पक्षी फल-व कर रहे थे। उस सरोवरके पास ही एक निशाल, अद्भुत एव अत्यन्त पवित्र पुत्रना आश्रम था, जिसम एक भी तपस्वी नहीं था ॥ ६ ॥

तत्राहमवस रात्रि नैवासीं पुरुषर्षभ ॥ ७ ॥
प्रभाते कल्पद्रुथाय सरस्तदुपचमम् ।

पुरुषप्रवर ! जैठकी रातमें मैं उस आश्रममें भीतर एक रात रहा और प्रातःकाल सवेरे उठकर ज्ञान आदिके लिये उस सरोवरक तटपर जाने लगा ॥ ७ ॥

अथापश्य शय तत्र सुपुष्टपरज कश्चित् ॥ ८ ॥
विष्टन्त परया लक्ष्म्या तस्मिन्तोयाशये नृप ।

उसी समय मु। वहाँ एक शव दिखायी दिया जो हुए पुष्ट शनिके नाथ ही अत्यन्त निर्मल था। उसमें कहीं कोई मलिनता नहीं थी। नरेश्वर ! वह शव उस जलशयने तटपर बड़ी शोभासे स्थग्न होकर पड़ा था ॥ ८ ॥

तमर्थं चित्तयानोऽह सुहृत् तत्र राघव ॥ ९ ॥
विष्टितोऽस्मि सरस्तीरि किं चिद् स्यादिति प्रभो ।

प्रभो ! खुन-दन ! मैं उस शवके विषयमें यह सोचता हुआ कि 'यह क्या है ?' वहाँ दो पक्षी तक उस शालावके किनारे बैठे रहा ॥ ९ ॥

अथापश्य सुहृतात् तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥
विमान परमेश्वर हसयुक्त मनोजगम् ।

अत्यर्थं स्वर्गिण तत्र विमाने रघुनन्दन ॥ ११ ॥
उपास्तेऽप्सरसा वीर सहस्र दिव्यभूषणम् ।

दो पक्षी वीरते ही मैंने वहाँ एक दिव्य, अद्भुत, अत्यन्त उत्तम, हंसयुक्त और मनके समान वेगशाली विमान उतरता देखा। रघुनन्दन ! उस विमानपर एक स्वर्गवासी देवता बैठे

थे, जो अत्यन्त रूपवान् थे। वीर ! वहाँ उनकी सेवामें सहस्रों अप्सराएँ बैठी थीं, जो दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थीं ॥ गायन्ति काञ्चिद् रम्याणि धादयन्ति तथापरा ॥ १२ ॥
मृदङ्गवीणापणवान् नृत्यन्ति च तथापराः ।
अपराश्च द्रुपदम्याभैर्हमन्धुर्देर्महाधने ॥ १३ ॥
दौघ्युर्चन्दन तस्य पुण्डरीकनिभेक्षणा ।

उनमेंसे कुछ मनोहर गीत गा रही थीं, दूसरी मृदङ्ग, वीणा और पणव आदि बाजे बजा रही थीं। अन्य बहुत सी अप्सराएँ नृत्य करती थीं तथा प्रफुल्ल कमल जैसे नेत्रोंवाली अन्य कितनी ही अप्सराएँ सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एवं चन्द्रमाकी किरणोंर समान उज्ज्वल बहुमूल्य चरों लकर उन स्वर्गवासो देवताक मुखपर हवा कर रही थीं ॥ १२ १३ ॥

तत सिंहासनं हित्वा मेरुकूटमिवाद्युमान् ॥ १४ ॥
पश्यतो मे तदा राम विमानाद्वरह्य च ।

त शय भक्षयामास स स्वर्गा रघुनन्दन ॥ १५ ॥

रघुकुलानन्दन श्रीराम ! तदनन्तर जैसे अश्वमाली सृष्ट मेरु पर्वतके शिखरको छाड़कर नीचे उतरते हैं, उसी प्रकार उन स्वर्गवासी पुरुषने विमानसे उतरकर मेरे देवतते देखते उस शयका भक्षण किया ॥ १४ १५ ॥

ततो भुक्त्वा यथाकाममास वट सुपीवरम् ।
अतीर्य सर स्वर्गा सम्प्रप्लुमुपचमम् ॥ १६ ॥

इच्छानुसार उस सुपुष्ट एव प्रचुर मांसको खाकर वे स्वर्गाय देवता सरोवरमें उतरे और हाथ मुँह धाने लगे ॥ १६ ॥
उपस्पृश्य यथायाय स स्वर्गा रघुनन्दन ।

आरोदुमुपचमाम विमानतरमुचमम् ॥ १७ ॥

रघुनन्दन ! बर्णोचित रीतिले कुरल आचमन करके वे स्वर्गवासी पुरुष उस उत्तम एव अष्ट विमानपर चढ़नेसे उद्यत हुए ॥ १७ ॥

तमह देवसकाशमारोहन्तमुदीक्ष्य वै ।
अथाहमब्रुव चाक्य तमेव पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

पुरुषोत्तम ! उन देवदुत्सव पुरुषको विमानपर चढ़ते देत मैंने उनसे यह बात पूछी— ॥ १८ ॥

को भवान् देवसकाश आहारश्च विगदित ।
त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं घञ्मुहसि ॥ १९ ॥

सौम्य ! देवोपम पुरुष ! आप कौन हैं और किसलिये ऐश्वर्यपूर्ण आहार ग्रहण करते हैं ? यह बतानेका कष्ट करें ॥

कस्य स्वादीक्षशो भाव आहारो देवसम्मत ।
आश्चर्यं वर्तते सौम्य थोतुमिच्छामि तत्त्वत ।

नाहमौपयिक मन्ये तव भक्षयमिमं शयम् ॥ २० ॥

'देवदुत्सव सेवनी पुरुष ! ऐसा दिव्य स्वरूप और ऐसा धूणित आहार किसका हो सकता है ! सौम्य ! आपमें ये दोनों

आश्चर्यजनक बातें हैं; अतः मैं इसका यथायथ रहस्य सुनना चाहता हूँ क्योंकि मैं इस शायको आपके योग्य आहार नहीं मानता हूँ ॥ २० ॥

इत्येवमुक्त स नरेन्द्र नाकी

कौतूहलात् सन्तुष्य गिरा च ।

इत्यार्षे धीमद्रामायणे वासुकीक्रीये आदिकाण्ये उत्तरकाण्डे सप्तमस्तितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार धीवाल्मीकिनिर्मित आचरामायण आदिकाण्यक उत्तरकाण्डमें सप्तहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः

राजा श्वेतका अग्रस्त्यजीको अपने लिये घृणित आहारकी प्राप्तिका कारण बताते हुए ब्रह्माजीके साथ हुए अपनी वार्ताको उपस्थित करना और उन्हें दिव्य आभूषणका

दान दे भूख प्यासके कष्टसे मुक्त होना

श्रुत्वा तु भार्गव वाक्य मम राम शुभाक्षरम् ।

प्राञ्जलिं प्रत्युपाचेद् स स्वर्गीं रघुनन्दन ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहत हैं—) रघुनन्दन राम !

मेरी कही हुई गुप्त अश्वरसे युक्त बात सुनकर उन स्वर्गीय पुरुषने हाथ जोड़कर इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १ ॥

शृणु ब्रह्मन् पुरा वृत्तं ममैतत् सुखदुःखयो ।

अनतिप्रमणीयं च यथा पृच्छसि मा श्लिज ॥ २ ॥

‘ब्रह्मन् । आप जो कुछ पूछ रहे हैं, वह मेरे मुख दुःखका अलङ्घनीय कारण, जो पूराकालमें घटित हो चुका है, यहाँ बताया जाता है, सुनिये ॥ २ ॥

पुरा वैदर्भको राजा पिता मम महायशः ।

सुदेव इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु दीर्घवान् ॥ ३ ॥

‘पूर्वकालमें मेरे महायशस्वी पिता विदर्भ देवसे राजा थे । उनका नाम सुदेव था । वे तीनों लोकोंमें विख्यात पराक्रमी थे ॥ ३ ॥

तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन् द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत ।

अहं श्वेत इति ख्यातो यस्मिन् सुरयोऽभजत् ॥ ४ ॥

‘ब्रह्मन् । उनसे दो पत्नियाँ थीं, जिनके गर्भसे उन्हें दो पुत्र प्राप्त हुए । उनमें ‘श्वेत’ मैं था । मेरी श्वेतके नामसे प्रशिद्धि हुई और मेरे छोटे भाइका नाम सुरय था ॥ ४ ॥

ततः पितरि म्रियते वीरा मामभ्यर्थेचयन् ।

तत्राह हतवान् राज्यं धर्म्यं च सुसमाहित ॥ ५ ॥

‘पितासे स्वर्गलोकमें चले जानेपर पुराजामिर्षेने राजाके पदपर मेरा अभियेक कर दिया । वहाँ परम सावधान रहकर मैंने धर्मके अनुकूल राज्यका पालन किया ॥ ५ ॥

पयः परसहस्राणि समतीक्ष्णानि सुयत ।

राज्यं काटयतो ब्रह्मन् प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ६ ॥

‘उत्तम प्रवृत्ति पालन करनेवाला ब्रह्मर्षि । इस तरह धर्म पूर्वक प्रवृत्ति रखा तथा राज्यका शासन करते हुए मेरे एक सङ्घ बर वीर गये ॥ ६ ॥

श्रुत्वा च वाक्यं मम सर्वमेतत्

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

नरेश्वर । जब कौतूहलवश मैंने मधुर वाणीमें उन स्वर्गीय

पुरुषसे इस प्रकार पूछा; तब मेरी बातें सुनकर उन्होंने यह सब कुछ मेरे सामने बताया ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

सर्वं तथा चाकथयाममेति ॥ २१ ॥

छोड़ता है । यह मेरे मित्र कर्मका परिणाम है । देव ! पितामह ! मेरा आहार क्या है ? यह मुझे बताइये ॥ १२ १३ ॥

पितामहस्तु मामाह तत्राहार सुदेवज ।
स्यादूनि स्वानि मास्त्रानि तानि भक्ष्य नित्यम् ॥ १४ ॥

“यह सुनकर ब्रह्माजी मुझसे बोले—“सुदेवनन्दन ! तुम मर्त्यलोका में स्थित अपने ही शरीरका सुखादुःख प्रतिदिन खाया करो यही तुम्हारा आहार है ॥ १४ ॥

स्वशरीर स्वया पुष्ट कुशला तप उत्तमम् ।
अनुत्त रोहते द्येते न कदाचिन्महामने ॥ १५ ॥

“स्वेत ! तुमने उत्तम तप करते हुए केवल अपने शरीर का ही पोषण किया है । महामते ! दानरूपी बीज बोये बिना कहीं कुछ भी नहीं जमता—कोई भी भोग्य पदार्थ उपलब्ध नहीं होता है ॥ १५ ॥

वृत्त न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप पत्र निषेवसे ।
तेन म्यगगतो यस्त्य वाप्यसे भुत्विपासाया ॥ १६ ॥

“तुमने देवताओं, विक्ती एव अतिथिबोधके लिये कभी कुछ भोजन भी दान किया हो, ऐसा नहीं दिखायी देता । तुम केवल तपस्या करते थे । धर्म ! इसीलिये ब्रह्मलोक में आकर भी भूख प्याससे पीड़ित हो रहे हो ॥ १६ ॥

स त्व सुपुष्टमाहारै स्वशरीरमनुत्तमम् ।
भक्षयित्वामृतरस तेन वृत्तिभविष्यति ॥ १७ ॥

“नाना प्रकारके आहारोंसे भरतीभोजित पीपित हुआ तुम्हारा परम उत्तम शरीर अमृतरससे युक्त होगा और उष्णका भक्षण करनेसे तुम्हारी क्षुधा पिपासाका निवारण हो जायगा ॥ १७ ॥

पदा तु तद्वन द्येत अगस्त्य स महानृपि ।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा वृच्छाद् भविष्यसे ॥ १८ ॥

“स्वेत ! जब उस वन में दुर्धर्ष महर्षि अगस्त्य पधारंगे, तब तुम इस कष्टसे मुक्तका पा आओगे ॥ १८ ॥

स हि तारयितु लौग्य शक् सुरगणानपि ।
किं पुनस्त्वा महाबाहो भुत्विपासावरा गतम् ॥ १९ ॥

“लौग्य ! महाबाहो ! वे देवताओंका भी उद्धार करने में समर्थ हैं, फिर भूख-प्याससे वरामें पड़े हुए तुम जैसे पुरुषको कष्टसे छुड़ाना उनके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ १९ ॥

सोऽह भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य निश्चयम् ।
आहार गहितं कुर्मि स्वशरीरं द्विजोत्तम ॥ २० ॥

“द्विजभेद ! देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माह यह निश्चय श्रुतकर मैं अपने शरीरका ही पुणित आहार ग्रहण करने लगा ॥

घहन् धरमणान् ब्रह्मन् भुज्यमानमिदं मया ।
क्षय नाभ्येति ग्रहार्पं तृप्तिश्चापि भवोत्तमा ॥ २१ ॥

“ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षे ! बहुत योगोंसे मेरे द्वारा उपभोग में लाये हुएार्पे श्रीमद्भगवतसे वात्सीकीय आदिब्रह्म उत्तरकाण्डेऽष्टततितमा सग ॥ ७८ ॥

एव प्रकार श्रीवात्मीयनिर्मित आपत्तामण आदिब्रह्म उत्तरकाण्ड में अष्टचर्या सग पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

जानेपर भी यह शरीर नष्ट नहीं होता है और मुझे पृथक् वृत्ति प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

तस्य मे वृच्छाद्भूतस्य वृच्छाद्भूतस्माद् त्रिमोक्षम् ।
अन्येषा न गतिरप्य कुम्भयोनिमृते द्विजम् ॥ २२ ॥

“मुने ! इस प्रकार मैं सफट में पड़ा हूँ । आप मेरे दृष्टि परमों आ गये हैं, इसलिये इस कष्टसे मेरा उद्धार कीजिये । आप ब्रह्मर्षि कुम्भजने सिद्धा दूसरोंकी इस निज जनन में पहुँच नहीं हो सक्ती (इसलिये आप अवश्य कुम्भयोनि अगस्त्य ही हैं) ॥ २२ ॥

इदमाभरण सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ।
प्रतिगृहीष्य भद्र ते प्रसादं कर्तुमहसि ॥ २३ ॥

“सौम्य ! विप्रवर ! आपका कल्याण हो । आप मेरा उद्धार करनेके लिये मेरे इस आभूषणका दान ग्रहण करें और आपका कृपाप्रवाद मुझे प्राप्त हो ॥ २३ ॥

इदं तानत्सुवर्णं च धनं यस्माच्चि च द्विज ।
भक्ष्य भोज्य च ग्रहार्पं वृद्धाभरणानि च ॥ २४ ॥

“ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षे ! यह दिव्य आभूषण मुण्ड, घन, यज्ञ, मत्स्य, भोग्य तथा अन्य नाना प्रकारके आभरण भी देता है । ॥ २४ ॥

सजान् कामान् प्रयच्छामि भोगाश्च मुनिपुङ्गव ।
तारणे भगवन् महा प्रसादं कर्तुमहसि ॥ २५ ॥

“मुनिभेद ! इस आभूषणके द्वारा मैं समस्त कामनाओं (मनोवाञ्छित पदार्थों) और भोगोंको भी दे रहा हूँ ।

भगवन् ! आप मेरे उद्धारके लिये मुझपर कृपा करें ॥ २५ ॥

तस्याह स्वागिणो वाप्य श्रुत्वा तु खलसमन्वितम् ।
तारणापोपजग्राह तदाभरणमुत्तमम् ॥ २६ ॥

स्वर्गपि राजा पशवन्तकी यह दुःखमरी बात सुनकर मैंने उनका उद्धार करनेके लिये यह उत्तम आभूषण छ लिया ॥

मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे ।
मानुष पूजको देहो राजर्षिर्धननाश ॥ २७ ॥

ज्यों ही मैंने उस शुभ आभूषणका दान ग्रहण किया, त्यों ही राजर्षि वेदका यह पूर्व शरीर (शय) अदृश्य हो गया ।

ग्रणष्टे तु शरिरेऽसौ राजपि परया मुदा ।
ततः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिशं सुखम् ॥ २८ ॥

उस शरीरके अन्त्य हो जानेपर राजर्षि स्वेत परमानन्दसे वृत्त हो प्रसन्नतापूर्वक सुखमय ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २८ ॥

तेनेदं शक्त्युत्प्रेण दिव्यमाभरणं मम ।
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ वृत्तमद्वैतदानम् ॥ २९ ॥

काकुत्स्थ ! उन इन्द्रतुल्य तेजस्वी राजा स्वेतने उस भूख प्यासने निवारणरूप पूर्वोक्त निमित्तसे यह अद्भुत दिखायी देनेवाला दिव्य आभूषण मुझे दिया था ॥ २९ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः

इक्ष्वाकुपुत्र राज्ञः दण्डका राज्यः

तद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वागस्त्यस्य राघव ।
गौराद् प्रसियाच्चैव भूय प्रष्टुं प्रक्रमे ॥ १ ॥
अगस्त्यस्यैषा यद् अत्यन्तं अद्भुतं वचनं मुनिर्न श्रुत्वा
रघुनाथश्चैव मनसोऽनने प्रति निरोधं गौराका उदयं हुआ
और उन्होंने विस्मित होकर पुनः उनसे पूछना आरम्भ
किया—॥ १ ॥
भगवन्स्तद् वचनं धारं तपस्तप्यति यत्र स ।
द्वेष्टो वैदर्भसो राजा कथं तद्भृगुमिदं जम् ॥ २ ॥
‘भगवन् ! वह भयकर वचन, जिसमें विदर्भदेश का राजा
‘वत घोर तपस्या करते थे, पशु पक्षियों से रहित क्यों हो गया
था ! ॥ २ ॥
तद् वचनं स कथं राजा शृण्वन् मनुजराजितम् ।
तपश्चतुर्ध्वं प्रणिष्ट स श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥
‘वै विदर्भराज उठ सुने निजै न वनमें तपस्या करने के लिये
क्यों गये ! यह मैं यथावन्वसे सुनना चाहता हूँ’ ॥ ३ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ।
वाक्यं परमतेजसो यक्षमेघोपचक्रमे ॥ ४ ॥
भीरुमान कौतूहलपुत्र वचनं मुनिवर वै परमं तन्मन्वी
महर्षिं पुनः इत्थं प्रसारं कहने लगे—॥ ४ ॥
पुत्रा वृत्तयुगो राम मनुर्दण्डधरं प्रभु ।
तस्य पुत्रो महानासीद्विद्याकुः कुलनन्दन ॥ ५ ॥
‘भीरु ! पूरकालक सत्यपुत्रकी बात है, दण्डधारी राजा
मनु इस भूतलपर शासन करते थे । उनके एक श्रेष्ठ पुत्र
हुआ, जिसका नाम इक्ष्वाकु था । राजकुमार इक्ष्वाकु अपने
कुलकी आनन्दित करनेवाला था ॥ ५ ॥
तं पुत्रं पूर्वं राज्ये निक्षिप्य भुवि दुजयम् ।
पृथिव्या रात्रयशानां भयं कर्तुं युवाच तम् ॥ ६ ॥
‘अपने उन ज्येष्ठ पुत्र दुजय पुत्रको भूमिदलके रात्रय
पर स्थापित करने मनुने उनसे कहा—‘हे ! तू भूतलपर
राजराजोंकी सृष्टि कर’ ॥ ६ ॥
तथैव च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव ।
ततः परमसत्पुणे मनु पुत्रमुवाच ह ॥ ७ ॥
‘रघुनन्दन ! पुत्र इक्ष्वाकुने पिताक सामने वैसा ही
करनेकी प्रतिज्ञा की । इसमें मनु बहुत सन्तुष्ट हुए और अपने
पुत्रमें बोल—॥ ७ ॥
प्रोतोऽसि परमोदार कृता चासि न सशय ।
दण्डेन च प्रजा रक्ष मां च दण्डमकारणे ॥ ८ ॥
‘परम उत्तम पुत्र ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम
राजराजोंकी सृष्टि करोगे, इसमें सशय नहीं है । तू दण्डने
द्वारा दुर्गोका दमन करते हुए प्रजा रक्षा कर, परन्तु

बिना अपराधक ही जिसको दण्ड न देना ॥ ८ ॥
अपराधिषु यो दण्डं पात्यत मानं पु वै ।
स दण्डा विधिवन्मुक्तं स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥ ९ ॥
‘अपराधी मनुष्योंपर जो दण्डका प्रयोग किया जाता है,
वह विधिपूर्वक दिया हुआ दण्ड राजाका स्वर्गलोकमें पहुँचा
देता है ॥ ९ ॥
तस्माद् दण्डे महागहो यन्मरान् भयं पुत्रक ।
धमा हि परमो लोके कुर्वतस्ते भविष्यति ॥ १० ॥
‘इसलिये महाराहु पुत्र ! तू दण्डका समुचित प्रयोग
करनेके लिये प्रयत्नशील रहना । ऐसा करनेमें तू ही उत्तम
परम धर्मही प्राप्ति होगी’ ॥ १० ॥
इति तं यद् सन्निधौ मनु पुत्रं समाधिना ।
जगाम त्रिदिशं दृष्टो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ११ ॥
‘इस प्रकार पुत्रको उठत था सदैव दे मनु समाधि लगा
कर बड़े हर्षसे साथ स्वर्गको—सनातन ब्रह्मलोकको चले गये ॥
प्रयागे त्रिदिशं तस्मिन्निक्ष्वाकु रमितप्रभ ।
जनयिष्ये कथं पुत्रानिति जिन्तापरोऽभयम् ॥ १२ ॥
‘उनके ब्रह्मलोकगामी हो जानेपर अमिन तेजस्वी राजा
इक्ष्वाकु इस चिन्तामें पड़े कि मैं किस प्रकार पुत्रोंको
उत्पन्न करूँ ! ॥ १२ ॥
कमभिवहुरूपैश्च तैस्तैर्मनुसुतस्तदा ।
जनयामास धमात्मा शतं देवसुनोपमान् ॥ १३ ॥
‘तब यक्ष, दान और तपस्वरूप विविध कमोंद्वारा धमात्मा
मनुपुत्रने ही पुत्र उत्पन्न किये, जो देवकुमारों से समान तेजस्वी
थे ॥ १३ ॥
तेषामग्रजस्तात सर्वेषां रघुनन्दन ।
मूढाद्वाहति यिद्यश्च न शुभ्रपति पूरजान् ॥ १४ ॥
‘तब रघुनन्दन ! उनमें जा सगे छाँटा पुत्र था, वह
मूर्ख और विषादिहीन था, इसलिये अपने बड़े भाइयोंकी सेवा
नहीं करता था ॥ १४ ॥
नाम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेऽरपमेघस ।
अरश्य दण्डपतनं शरीरस्य भविष्यति ॥ १५ ॥
‘इसके शरीरपर अरश्य दण्डपतन होगा, एका सेचकर
बिना उस मनुबुद्धि पुत्रका नाम दण्ड रख दिया ॥ १५ ॥
अपश्यमानस्तं देशं घोरं पुत्रस्य राघव ।
विष्यदौल्लोमोमये राज्यं प्रादाद्भिरिदम् ॥ १६ ॥
‘आराम ! रघुदमन नरेश ! उस पुत्र के लिये दूसरा
क्षेत्र भयकर देश न देखकर राजने उसे विषय और गैर
परम नीति का रात्रय दे दिया ॥ १६ ॥
स दण्डस्तत्र राजाभूदस्य परतरोधसि ।

पुं चाप्रतिमं राम न्यवेशयदनुत्तमम् ॥ १७ ॥

(श्रीराम ! पर्यन्तके उस रमणीय तटप्रांतमें दण्ड राजा हुआ । उसने अपने रहनेके लिये एक बहुत ही अनुपम और उत्तम नगर बसाया ॥ १७ ॥

पुरस्य चाकरोष्णाम मधुमन्तमिति प्रभो ।

पुरोहितं वृशनसं वरयामासं सुमतम् ॥ १८ ॥

(प्रभो ! उसने उस नगरका नाम रत्ना मधुमन्त और उत्तम मतका पालन करनेवाले शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाया ॥ १८ ॥

एव स राजा तद् राज्यमकरोत् सपुरोहित ।

प्रहृष्टमनुजायैर्षीं देवराजो यथा त्रिवि ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनाशीतितमं सर्गं ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्य उत्तरकाण्ड उन्नीसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः

राजा दण्डका भार्गव कन्याके साथ बलात्कार

पतवाण्याय रामाय महर्षिं कुम्भसम्भव ।

अस्यामिवापर चाक्य कथायामुपचयमे ॥ १ ॥

महर्षि कुम्भत्र भीरामसे इतनी कथा कहकर फिर इधोका अभिष्ट अंश इस तरह कहने लगे— ॥ १ ॥

तत स दण्ड काकुत्स्थ बहुवर्षगणायुतम् ।

अकरोत् तत्र दान्तात्मा राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥

(काकुत्स्थ ! तदनन्तर राजा दण्डने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर बहुत वर्षोंतक यहाँ अकण्टक राज्य किया ॥ २ ॥

अथ काले तु कस्मिंश्चिद् राजा भार्गवमाश्रमम् ।

रमणीयमुपाश्रमचलैर्ममसि मनोरमे ॥ ३ ॥

(तत्परचात् किसी समय राजा मनोरम चैत्रमासमें शुक्राचार्यके रमणीय आश्रममें आया ॥ ३ ॥

तत्र भार्गवकन्या स रूपेणाप्रतिमा सुवि ।

निचरन्ती यमोद्देशे दण्डोऽपद्रव्यदनुत्तमाम् ॥ ४ ॥

(यहाँ शुक्राचार्यकी सर्वोत्तम सुदरी कन्या, जिसके रूपकी इस भूतलपर कहीं दुलना नहीं थी, यन्मन्त्रमें विचर रही थी । दण्डने उसे देखा ॥ ४ ॥

स हृष्टा तां सुदुर्मथा अनहशरपीडित ।

अभिगम्य सुसविग्ना कन्यां घचनमग्रवीत् ॥ ५ ॥

(उसे देखते ही वह अव्यक्त साठी बुद्धिवाला राजा काम देवक शायेंमें पीड़ित हो पास आकर उस दरी हुई कन्यामें बोला— ॥ ५ ॥

श्रुतस्त्वमसि सुशोणि कन्य यासि सुता शुभे ।

पीडिताऽहमनन्तेन पृच्छामि त्या शुभानने ॥ ६ ॥

(‘शुभणि ! इस कहोसि आभी हो अथवा शुभे ! तुम किसकी पुत्री हो । शुभानने ! मैं कामदेवसे पीड़ित हूँ, इसलिये तुम्हारा परिचय पूछता हूँ’ ॥ ६ ॥

‘इस प्रकार स्वर्गमें देवराजकी भौति भूतलपर राजा दण्डने पुरोहितन साथ रहकर हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए उस राज्यका पालन आरम्भ किया ॥ १९ ॥

तत स राजा मनुजेन्द्रपुत्र

साधं च तेनोशनसा तदानीम् ।

चकार राज्यं सुमहामहात्मा

शमो दिवीरोशनसा ममेत ॥ २० ॥

(उस समय वह महामन्त्री महाराजकुमार तथा महान् राजा दण्ड शुक्राचार्यके साथ रहकर अपने राज्यका उसी तरह पालन करने लगा जैसे स्वर्गमें देवराज इंद्र देवगृह बृहस्पतिन साथ रहकर अपने राज्यका पालन करते हैं’ ॥ २० ॥

‘उस समय वह महामन्त्री महाराजकुमार तथा महान्

राजा दण्ड शुक्राचार्यके साथ रहकर अपने राज्यका उसी तरह

पालन करने लगा जैसे स्वर्गमें देवराज इंद्र देवगृह बृहस्पतिन

साथ रहकर अपने राज्यका पालन करते हैं’ ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे

एकोनाशीतितमं सर्गं पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

तस्य त्वेन द्रुवाणम्य मोहो मत्तम्य कामिन ।

भार्गवी प्रतुवाचेदं यच्च सानुनयं चिदम् ॥ ७ ॥

(‘मोहसे उन्मत्त होकर वह कामी राजा जब इस प्रकार पूछने लगा, तब मधुकन्याने विनयपूर्वक उसे इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ७ ॥

भार्गवस्य सुतां निदिधेयस्याष्टिप्रकमणः ।

अरजा नाम राजेन्द्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनीम् ॥ ८ ॥

(‘राजन् ! तुम्हें श्रांत होना चाहिये कि मैं पुण्यकर्मा शुक्रदेवताकी ज्येष्ठ पुत्री हूँ । मेरा नाम अरजा है । मैं इसी आश्रममें निवास करती हूँ ॥ ८ ॥

मा मा स्मृश यत्ताद् राजन् कन्यां पितृवशा ह्यहम् ।

शुक्रं पिता मे राजेन्द्र त्वच्च शिष्यो महात्मन ॥ ९ ॥

(‘राजन् ! यत्पूर्वक मेरा स्वर्ग न कचे । मैं पिताके अधीन रहनेवाली कुमारी कन्या हूँ । राजेन्द्र ! मेरे पिता तुम्हारे शुक्र हैं और तुम उन महात्माके शिष्य हो ॥ ९ ॥

व्यसनं सुमहत् क्रुद्धं स ते दद्यामहातया ।

यदि वाग्यमप्या कार्यं धर्मदृष्टेन सत्पथा ॥ १० ॥

घरयस्व मरुश्रेष्ठ पितरं मे महायुतिम् ।

अन्यथा तु फलं तुभ्य भवेद् योगभिसहितम् ॥ ११ ॥

(‘मरुश्रेष्ठ ! वे महातपस्वी हैं । यदि कुपित हो जायें तो तुम्हें बड़ी भारी विपत्तिमें डाल लवते हैं । यदि शुभसे तुम्हें कुछ ही काम लेना हो (अर्थात् यदि तुम मुझे अपनी माया बनाता चाहते हो) तो धर्मशास्त्रोंक सम्मानसे चलकर मेरे महातेजस्वी पितासे सुलभको माँग लो । अन्यथा तुम्हें अपने स्वच्छाचारका बड़ा भयानक फल भोगना पड़ेगा ॥ १० ॥ ११ ॥

कोपेन हि पिता मेऽस्ती वैलोभ्यमपि निर्दहेत् ।

दास्यते चानवचाहं तव मा याचित पिता ॥ १२ ॥

(‘कोपेन हि पिता मेऽस्ती वैलोभ्यमपि निर्दहेत् ।

दास्यते चानवचाहं तव मा याचित पिता ॥ १२ ॥

“मेरे बिना अपनी क्रोधाग्निसे सारी त्रिलोकीको भी दग्ध कर सकते हैं अन मुन्दर अहोवाले नरेश । तुम बन्धुकार न करो । तुम्हारे याचना करनेपर पिताजी मुझे अवश्य तुम्हारे हाथमें सौंप देंगे ॥ १२ ॥

एव हुवाणामरजा दण्ड कामदश गत ।
प्रत्युनाच मद्रोमत्त शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥ १३ ॥

‘एव अरजा ऐसी बातें कह रही थीं । उस समय कामक अभीत हुए दण्डने मद्रोमत्त हाकर दोनों हाथ सिरपर बोज लिये और इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १३ ॥

प्रसादं कुरु सुश्रीणि न कालं सेमुमहंसि ।
त्वह्मते हि मम प्राणा विदीर्षन्ते घरानने ॥ १४ ॥

“सुन्दरी ! कृपा करो । समय न बिताओ । बचाने ! तुम्हारे लिये मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ १४ ॥

त्या प्राप्य तु वधोऽपि पापवापि सुद्वारणम् ।
भक्त भजस्य मा भीरु भजमानं सुविह्वलम् ॥ १५ ॥

“हुई प्रात कर लेनेपर मेरा वध हो जाय अथवा मुझे हृत्पापें श्रीमद्रामायणे बाष्पिकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डेऽशीतितम सर्ग ८ ८० ॥

इस प्रकार श्रीबाष्पिकीर्णित अथरामायण आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८ ॥

एकाशीतितम सर्ग.

शुक्रके शापसे सपरिवार राजा दण्ड और उनके राज्यका नाश

स मुहतादुपश्रुत्य देवर्षिरमिउग्रभ ।
समाधम शिष्यवृत्तं धुधार्तं सन्त्यजत ॥ १ ॥

वो बड़ी वाद किनी शिष्यक मुँहसे भरबाके ऊपर किय गये बन्धुकारकी बात सुनकर अमिनतेनली देवर्षि गुन भूख से पीड़ित हो शिष्योंसे तिरि हुए अपने आश्रमको लौट आये ॥

सोऽपश्यदरजा क्षीना रजसा समभिप्लुताम् ।
ज्योत्स्नामिम प्रहप्रस्ता प्रत्युपे न विराजतीम् ॥ २ ॥

उन्होंने देखा, अरजा दुली होकर ये रही है । उसकी शरीरमें धूल लिपटी हुई है तथा वह प्रात काल सहृमस्त चन्द्रमाकी शोभाहीन चौंदनीके समान मुत्तोभिन नहीं हो रही है ॥

तस्य रोप समभरत् धुधार्तस्य विरोपत ।
निदहन्निव लोफालीन्द्रिष्याधैतदुवाच ॥ ३ ॥

यह रंग निरोपन भूखसे पीड़ित हानक कारण देवर्षि गुनका रोप बढ़ गया और वे तीनों लेखीको दग्ध से करते हुए अपने शिष्योंसे इस प्रकार बोले— ॥ ३ ॥

पश्यथ निपरीतस्य दण्डस्याभिदितात्मन ।
निर्पत्तिं घोरसकाशा मुन्नादक्षिशिरसामिम ॥ ४ ॥

‘देखो, शास्त्रनिपरीत अचरण करनेवाले अज्ञानी राजा दण्डको कुपित हुए मेरी आत्मे अग्नि शिवाने समान कैसी पर विपत्ति प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

अत्यन्त दाखण दुःख प्राप्त हो ता भी कोई चिन्ता नहीं है । भीरु ! मैं तुम्हारा मत्त हूँ । अत्यन्त व्याकुल हुए मुझ अपने सेवकोंको स्वीकार कर’ ॥ १५ ॥

पथमुक्त्वा तु ता कथाश्रेण्यां प्राप्य पलादवली ।
विस्फुरतीं ययाकाम मैथुनायोपचक्रमे ॥ १६ ॥

‘ऐसा कहकर उस बन्वान् नरेगने उस भाग बन्धुवाकी बन्धुवक दोनों मुवाओंमें मर लिया । वह उसकी पकड़से छूटनेके लिये छटपटाने लगी तो भी उसने अपनी इच्छाक अनुसार उसके साथ समगम किया । ॥ १६ ॥

तमनर्थं महाघोरं दण्डं कृत्वा सुदाणम ।
नगरं प्रययागानु मधुमतमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

‘वह अत्यन्त दाखण एउ महामयकर अनर्थ करके दण्ड नुरत ही अपने उत्तम नगर मधुमन्त्रो बना गया ॥ १७ ॥

अरजापि रुदन्ती सा आश्रमस्यानिद्वुरत ।
प्रतीक्षते सुसन्नस्ता पितरं देवसन्निभम् ॥ १८ ॥

‘अरजा भी मयभीत हो रही हुई आश्रमक पान ही अपने देवतुल्य पिताके आनेकी राह देखने लगी’ ॥ १८ ॥

सर्वसत्त्वानि यानीद् स्यात्तराणि चराणि ॥ १॥

महता पाप्मुर्वपेण त्रिलय सर्वतोऽगमन् ॥ २ ॥

‘यहाँ जो सर प्रसारण स्थावर जड़म जी। तियास करते हैं, इस धूलरी भारी यगते सर और जिलेन हो जायग ॥ १ ॥

दण्डस्य त्रिपयो यावत् तत्तत् सर्वं समुच्छ्रयम् ।

पाप्मुर्वपेण गालक्ष्य सत्तरात्र भजिष्यति ॥ २० ॥

‘जहाँत दण्डरा राय है, यहाँतक समस्त चरचर प्राणी सत राततक बल धूलिकी बंधा पाकर अदृश्य हो जायग ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा क्रोधतान्नास्तुस्माभ्रमनिवासिनम् ।

जन जनपदां तेषु स्थीयतामिति आग्रहीत् ॥ २१ ॥

ऐसा कहकर क्रोधने लाल आँख त्रियेमुक्तने उठ आभ्रम में निवास करनेगले लोगोंसे कहा— दण्डने रायकी सीमाने अन्तमें ओ देष्ट हैं, उनमें जाकर निवास कर ॥ २१ ॥

श्रुत्वा तु तानसो वाक्य सोऽश्ममात्रस्थो जन ।

निष्क्रान्तो त्रिपयात् तस्मात् स्थानं च्छेद्य यावत्ततः ॥ २२ ॥

श्रुतवाच्यार्थी यह यात सुनकर आभ्रमगोली मनुष्य उस राज्यसे निरुल गये और सीमाने बाहर जाकर निवास करने लगे ॥ २२ ॥

स तथोक्त्या मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् ।

इहैव यस्य दुमघे आश्रमे सुसमाहिता ॥ २३ ॥

आश्रमगोली मुनिगोसे एही यात कहकर मुक्तने अरजसे कहा—‘जोगी बुद्धिवाली लक्ष्मी । तू यहाँ इस आश्रममें मन को परमात्मान ध्यानमें एकत्र कर ॥ २३ ॥

इदं योजनपर्यन्तं सरं सुखचिरप्रभम् ।

अरजे विदधत भुङ्क्ष्व कालव्यात्रं प्रतीक्ष्यताम् ॥ २४ ॥

‘अरजे । यह जो एक योजन पैदा हुआ सुन्दर तालाब है, इसका तू निश्चिन्त होकर उपभोग कर और अपने अपराध की गिरुक्तिसे लिये यहाँ समयकी प्रतीक्षा करती रह ॥ २४ ॥

त्वत्समीपे च ये सन्ध्यावासमेप्यतिता त्रिणाम् ।

अत्राप्या पाप्मुर्वपेण ते भजिष्यन्ति निरयदा ॥ २५ ॥

‘जो जीव उन रात्रियामें दुग्धारे समीप रहेंगे, व कभी भी धूलकी वर्षासे मारे नह जायेंग—सदा बने रहेंगे ॥ २५ ॥

श्रुत्वा नियोगं ब्रह्मर्षे सारजा भार्गवी तदा ।

ह्यापां श्रीमद्रामायणे वाक्यमीकीये आदिकाव्य उत्तरकाण्डे पृथगीकृतम् सर्ग ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीबालमीनिर्मित आश्रममावण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें इत्यासीनों संग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्वयशीतितमः सर्ग

श्रीरामका अगस्त्य आश्रमसे अयोध्यापुरीको लौटना

श्रुत्वेयचतमाशाय राम सध्यामुपासितुम् ।

अपानामत् सरं पुण्यमन्सरोगणसेवितम् ॥ १ ॥

‘श्रुतिश्रा यह आदेश पाकर श्रीरामचन्द्रजी संध्योपासना

तथेति पितर प्राह भागव भ्रातृदुःखिता ॥ १६ ॥

ब्रह्मर्षिना यह आदेश सुनकर यह मृगुव्या अरजा अत्यन्त दुःखित होनेपर भी अपने पिता भार्गवसे बली— ‘बहुत अछा ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा भागवो वासमन्थप्र समकारयत् ।

तच्च राज्यं नरेन्द्रस्य सभृत्यवलवाहनम् ॥ १७ ॥

सत्तादाद् भस्मसाद् भूत यथोक्तं ब्रह्मर्षिणा ।

एसा कहकर मुक्तने दूसरा गये जाकर निवास किया तथा उन ब्रह्मर्षिसे कथाश्रुतार राजा दण्डरा वृत्तयसेक, सना और सगारियोंके उक्त दिनमें भस्म हो गया ॥ १७ ॥

तस्यासौ दण्डत्रिपयो त्रिपयैर्गालयोर्नय ॥ १८ ॥

शतो ब्रह्मर्षिणा तन वैधर्म्ये सदिति श्रुते ।

तन प्रभृति काकुत्स्था दण्डवारण्यमुच्यते ॥ १९ ॥

नरेश्वर । विषय और गैरगमरिके मध्यभागमें दण्डका राय था । काकुत्स्थ । धर्मयुग इतयुगमें धर्मविद्वद् आचरण करनेपर उन ब्रह्मर्षिने राजा और उनका देगकी गाप दे दिया । तभीसे यह भूभाग दण्डवारण्य कहलाता है ॥ १८ १९ ॥

तपस्विनः स्थिता शत्रु जनस्थानमयोऽभवन् ।

एतत् ते सज्जमाप्यान यन्तां पृच्छन्ति राघव ॥ २० ॥

इस स्थानपर तपस्वीलोग आकर बस गये इसलिये इसका नाम जनस्थान हो गया । रघुनन्दन । आपने जिसका विषयमें मुझसे पूछा था, यह सर मैंने कह चुनाया ॥ २० ॥

सध्यामुपासितुं धीरं समयो द्वातियतते ।

एते महपय सर्वं पूर्णकुम्भा समन्ततः ॥ २१ ॥

इतोदका नरव्यात्र आदित्य पर्युपासते ।

वीर । अब संध्योपासनाका समय बीता जा रहा है ।

पुरुषसिंह । सब ओर ये सब महर्षि स्नान कर चुकनेसे बाद भरे हुए पड़े सेकर सूर्यदेवकी उपासना कर रहे हैं ॥ २१ ॥

स तैर्ब्रह्मणमभ्यस्त सहितैर्ब्रह्मर्षिभिः ।

रविरस्तगतो राम गच्छोदकमुपस्पृश ॥ २२ ॥

भीराम । ये सूर्य वहाँ एकत्र हुए उन उत्तम ब्रह्मवेत्ताओं द्वारा पड़े गये ब्राह्मणमन्त्रोंसे सुनकर और उठी रूपमें पूजा पाकर अस्वाच्छताको चले गये । अब आप भी जायँ और आचमन एवं स्नान आदि करें ॥ २२ ॥

आचमन एव स्नान आदि करें ॥ २२ ॥

ह्यापां श्रीमद्रामायणे वाक्यमीकीये आदिकाव्य उत्तरकाण्डे पृथगीकृतम् सर्ग ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीबालमीनिर्मित आश्रममावण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें इत्यासीनों संग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्वयशीतितमः सर्ग

श्रीरामका अगस्त्य आश्रमसे अयोध्यापुरीको लौटना

श्रुत्वेयचतमाशाय राम सध्यामुपासितुम् ।

अपानामत् सरं पुण्यमन्सरोगणसेवितम् ॥ १ ॥

‘श्रुतिश्रा यह आदेश पाकर श्रीरामचन्द्रजी संध्योपासना

करनेक लिये अश्वराओंसे सेवित तब बचिज बरोपरके तट पर गये ॥ १ ॥

तत्रोदकमुपस्पृश्य सध्यामन्यास्य पश्चिमाम् ।

आधम प्राविशद् राम कुम्भयोनेमहात्मन ॥ २ ॥

वहाँ आचमन और साफकालकी स यापासना करके

भीरामने पुन महाराम कुम्भजक आधममें प्रवेश किया ॥

तस्यागस्त्यो यद्गुण कन्दमूल तथौषधम् ।

शाक्यादीनि पवित्राणि भोजनायमकल्पयत् ॥ ३ ॥

अगस्त्यजीन उनके भोजनक लिये अनेक गुणोंसे युक्त

कन्द, मूल, शरावस्याको निवारण करनेवाली दिव्य औषधि,

पवित्र मात आदि वस्तुएँ आर्पण कीं ॥ २ ॥

स भुक्त्वा नरधेष्टस्तदन्नममृतोपमम् ।

प्रीतश्च परितुष्टश्च ता गन्धि समुपाविशत् ॥ ४ ॥

नरधेष्ट आराम वह अमृतवस्तु स्वस्ति आर्पण करके

परम वृत्त और प्रसन्न हुए और वह गन्धि उहाँन बड़े स्नान

विवासी ॥ ४ ॥

प्रभाते कात्पमुत्तराय ह्यशऽऽक्षिकमरिदम् ।

श्रुत्वा समुपचमाम गमनाय रघूत्तम ॥ ५ ॥

सवेरे उठकर शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुलभूषण

भीराम नित्यक्रम करके बहासे जानेरी इच्छामें महर्षिक

पास गये ॥ ५ ॥

अभिप्रायानवीद् रामो महर्षिं कुम्भसम्भजम् ।

आपृच्छेत्वा पुरीं गतुं मामुल्लासतुमर्हसि ॥ ६ ॥

जहाँ महर्षि कुम्भजका प्रणाम करके भीरामने कहा—

‘महर्षे ! अब मैं अपनी पुरीतों जानेके लिये आपकी आश

काइता हूँ । इतना मुझे आशा प्रदान करें ॥ ६ ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽसि दशनेन महामन ।

द्रष्टुं चैवामिव्यामि पात्राद्यमहात्मन ॥ ७ ॥

आप महारामक दर्शनसे मैं पाय और अनुगृहीत हुआ ।

अब अपने आपको पवित्र करनेके लिये फिर कभी आपने

दर्शनकी इच्छामें यहाँ आऊँगा ॥ ७ ॥

तथा यदति फाकुत्स्थे चान्यमद्रुतदशनम् ।

उवाच परमप्रीतो धमनेव्रतपोधन ॥ ८ ॥

भीरामचरणीन इस प्रकार अद्रुत वान कहनेपर

धमचतुस्तोवन अगस्त्यजी वड़े प्रसन्न हुए और उनसे बोले—

आयद्रुतमिदं धाम्य तत्र राम पुत्राक्षरम् ।

पात्रन सारभूताना त्वमेव रघुान्दन ॥ ९ ॥

‘भीराम ! आपका ॥ सुन्दर वचन बड़े अद्रुत हैं ।

स्नानन्दन । समस्त प्राणिशंसा पवित्र करनेवाले तो आप

ही हैं ॥ ९ ॥

मुहूतमपि राम त्वा येऽनुपदयति फेदन ।

पात्रिता स्वगभूताश्च पूज्यास्ते प्रिदिवेभ्यः ॥ १० ॥

‘भीराम ! जो कदा एक मुहूतक लिय भी आपका दशन

पा जाते हैं, वे पवित्र, स्वर्गके अधिकारी तथा देवताओं

लिये भी पूजनाय हा जाते हैं ॥ १० ॥

ये च त्वा घोरत्वमुर्धं पदयन्ति प्राणिनो भुवि ।

इतास्ते यमदण्डेन सद्यो निरयगामिन ॥ ११ ॥

इस भूतलपर जो प्राणी आपका क्रूर दृष्टि देखते हैं,

वे यमराजक दण्डसे पीटे जाकर तत्काल नरकमें गिरते हैं ॥

इदंदास्य रघुधेष्ट पात्रन सपदेहिनाम् ।

भुवि त्वा कथयतो हि सिद्धिमेव्यति रात्रि ॥ १२ ॥

‘रघुधेष्ट ! ऐसे माहात्म्याली आप समस्त दशधारियोंको

पवित्र करनेवाले हैं । सुखान्दन । शत्रुओं पर जो लोग आपकी

कृपाएँ करते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेंगे हैं ॥ १२ ॥

त्व गच्छारिष्टमव्यय पथानमनुतोभयम् ।

प्रशाधि सत्य धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥ १३ ॥

‘आप निश्चित होकर पुण्यपथ पर चलिए । आपके

भागमें कौनसे भी भय न रहे । आप धर्मपूर्वक रायका

शासन करें, क्योंकि आप ॥ सदावे परम जायद हैं ॥

एवमुक्त्वा मुनिना प्रावलि प्रसहो वृष ।

अभ्यज्वावत प्राशस्त्युपि सत्यदीर्घनिम् ॥ १४ ॥

मुनिके ऐसा कहनेपर बुद्धमान राजा भीरामने मुनिके

ऊपर उठा हाथ बढ़ाकर उन वर्य गुरु महर्षिका प्रणाम किया ।

अभिवाच्य श्रुतिधेष्ट ताश्च सद्योस्तपोवान् ।

अध्यारोहत् तदयम् पुष्पक हेमभूषितम् ॥ १५ ॥

इन प्रकार मुनिकर अगस्त्य तथा अगस्त्य तपोधन

श्रुतिधेष्ट भी वयोधिन अनिनादन कर वे दिना किसी

व्यवसायके उस सुवर्णभूषण पुष्पक विमानपर चले गये ॥ १५ ॥

स प्रयान्त मुनिगणा आशीर्वादं समस्तत ।

अपूजयन् महेश्ठाभ सहस्राभ्यमिमाम् ॥ १६ ॥

जैसे देवता सन्तानप्रचारी श्रीगुरु पुरुष उरत हैं, उठी

प्रकार जात समय उन महेश्वर पुत्र तथा भीरामने श्रुति

सन्तानसे सब आत्मे आशीर्वाद लिया ॥ १६ ॥

खस्य स दहरो राम पुष्पक हेमभूषित ।

शशी मेघसमीपस्यो यथा जलधरागम् ॥ १७ ॥

उस सुवर्णभूषण पुष्पकविमानपर भीरामने स्थित हुए

भीराम वशाशक्तमें मैत्रेय समीपवर्ती चन्द्राकर समान दिक्वा

देते थे ॥ १७ ॥

ततोऽधदिनसे प्रात पूज्यमानस्तनस्तन ।

अयोध्या प्राप्य फाकुत्स्थो मध्यक्षानमनान् ॥ १८ ॥

तदनन्तर जगत्पद गमन पतत हुए वे श्रीरुद्रात्मजी

महाह्वर समय अयोध्यामें पहुँचकर गमन तथा (सीरवी

रुद्रजी) में उतरे ॥ १८ ॥

तता सिक्ख्य हरि पुष्पक कामगामिनम् ।

त्रिसप्ततिना गच्छति स्वस्ति तेऽस्मिन्ति च प्रभु ॥ १९ ॥

तत्तत्तत् इच्छुनाय गच्छेत्ता उम सुन्दर पुष्पक

विमानको वहाँ छोड़कर भगवान् उतार कहा—‘अब तुम

जाओ । तुम्हारा कल्याण है ॥ १९ ॥

कृशान्तरम्यिन शिष्य ह्यस्त्य रामोऽमरीन्धव ।

लक्ष्मण भरत चैव गत्वा तौ लघुगिष्मौ ।

समागमनमाख्याय शब्दापयत मा विरम् ॥ २० ॥

किं भीरामन क्योदीने भीतर खड़ हुण दारपालते

हृत्पायें श्रीमद्गामयणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्व्यशीतितमं सर्ग ॥ ८२ ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वत्थमायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

अ्यशीतितमः सर्गः

भरतक रहनेसे श्रीरामका राजस्य यज्ञ करनेके विचारसे निवृत्त होना

तच्छ्रुत्वा भवित तस्य रामस्यापिल्लृप्तमण ।

ह्यस्थ कुमारावाहय राघवाय यवेद्यत् ॥ १ ॥

कैदारहित फर्म करनेवाले श्रीरामका यह कथन सुनकर
क्षारकने कुमार भरत और लक्ष्मणको बुलाकर भीरघुनायकी
की सेवामें उपस्थित कर दिया ॥ १ ॥

इष्टा तु राघव प्राप्तायुधौ भरतलक्ष्मणौ ।

परिपश्य तनो रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

भरत और लक्ष्मणको आया देखा खुजुललितक भीयमने
उन्हें हृदयसे लगा लिया और यह बात कही— ॥ २ ॥

एत मया यथा तस्य द्विजकायमनुत्तमम ।

धमसेतुमथो भूय कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥ ३ ॥

‘खुजुनी राजकुमारों ! मैंने प्राक्कणका यह परम उत्तम
कार्य यथावत् रूपसे सिद्ध कर दिया । अब मैं पुन राजधर्मकी
चरम सीमास्य राजस्य यज्ञका अनुष्ठान करना चाहता हूँ ॥
अक्षयध्वान्पयदैव धर्मसेतुमतो मम ।

धमप्रयत्नं जेव सत्रपापमणाशनम् ॥ ४ ॥

‘मेरी रायमें धमसेतु (राजस्य) अक्षय यय अविनाशी
‘कल देनेवाला है तथा यह धर्मका पोषक एवं समस्त पापोंका
नाश करनेवाला है ॥ ४ ॥

युनाभ्यामात्मभूताभ्या राजस्यमनुत्तमम् ।

सहितौ यण्डुमिच्छामि तत्र धमस्तु शाश्वत ॥ ५ ॥

‘दुम दोनों मेरे आत्मा ही हैं, उन मेरी इच्छा तुम्हारे
हाथ इस उत्तम राजस्य यज्ञका अनुष्ठान करनेही है क्योंकि
उत्तम राजाका शाश्वत धर्म प्रतिष्ठित है ॥ ५ ॥

इष्टा तु राजस्येन मित्र शत्रुनिवर्हणः ।

सुहृतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत् ॥ ६ ॥

‘शत्रुओंका संहार करनेवाला मित्रदेवताने उत्तम आहुति
से युक्त राजस्य नामक भेष्ट यज्ञका परमात्माका यजन करके
वरुणका पद प्राप्त किया था ॥ ६ ॥

सोमश्च राजस्येन इष्टा धर्मेण धमयित् ।

प्राप्तश्च सत्रलोकेषु कौति स्थानं च शाश्वतम् ॥ ७ ॥

‘धर्मका सोमदेवताने धमपूर्वक राजस्य यज्ञका अनुष्ठान करके
कण्ठमें लोकमें कीर्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त कर लिया ॥ ७ ॥
असिग्रहनि यच्छ्रेयश्चिन्त्यता तमया सह ।

शीप्रतापूर्णक वद्वा—‘दुम अभी जाकर शीप्रपरागमी भरत

और लक्ष्मणको मेरे आनेकी सूचना दे और उन्हें बली

बुला लाओ’ ॥ २० ॥

हित चायतियुक्त च प्रयत्नौ वक्तुमर्हथ ॥ ८ ॥

‘इच्छिते आजने दिन मेरे हाथ बंधकर तुमलोग यह
विचार करो कि हमारे लिये कौन-सा धर्म लोक और परलोकमें
कल्याणकारी होगा तथा संघत चित होकर तुम दोनों इस
विषयमें मुझे सलाह दो’ ॥ ८ ॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतद् वाक्यं वाक्यविशारदः ।

भरतः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥

भीरघुनायकी ये कथन सुनकर वाक्यविशारद भरतजीने
हाथ जोड़कर यह बात कही— ॥ ९ ॥

त्वयि धम पर साधो त्वयि सत्रा यस्तुधरा ।

प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चास्मितयिक्रम ॥ १० ॥

‘साधो ! अमित परकामी महाबाहो ! आपमें उत्तम धर्म
प्रतिष्ठित है । यह सारी पृथ्वी भी आपपर ही आधारित है तथा
आपमें ही वाणी प्रतिष्ठा है ॥ १० ॥

महीपालाश्च स्वयं त्वा प्रजापतिमिमांसा ।

निरीक्षत महात्मान लोकनाथ यथा वयम् ॥ ११ ॥

‘देवतालोग जैसे प्रजापति मन्नाको ही महात्मा एवं
लोकनाथ समझते हैं; उसी प्रकार हमलोग और समस्त भूपाल
आपको ही महापुरुष तथा समस्त लोकोंका स्वामी मानते हैं—
उसी दृष्टिसे आपको देखते हैं ॥ ११ ॥

पुत्राश्च पितृवद् राजन पश्यन्ति त्वा महाबल ।

पृथिव्या गतिभूतोऽसि प्राणिनामपि राघव ॥ १२ ॥

‘राजन ! महाबली खन-दन ! पुत्र जैसे पिताको देखते
हैं; उसी प्रकार आपके प्रति सब राजाओंका भाव है । आप
ही समस्त पृथ्वी और सम्पूर्ण प्राणियोंका भी आश्रय हैं ॥ १२ ॥

स त्वमेवमिथ यद्यमाहतासि कथं नृप ।

पृथिव्या राजवशाना विनाशो यत्र दृश्यते ॥ १३ ॥

‘नरेश्वर ! फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं; जिसमें
भूमण्डलक समस्त राजपशुओंका विनाश दिलायी देता है ॥ १३ ॥

पृथिव्या ये च पुरुषा राजन् पीरुपमागताः ।

सर्वेया भविता तत्र सक्षय सयकोपजः ॥ १४ ॥

‘राजन ! पृथ्वीपर जो पुरुषार्थी पुरुष हैं, उन सबका
सभीन कोपसे उस यज्ञमें संहार हो जायगा ॥ १४ ॥

सर्वं पुरुषादुल्ल गुणैरनुलविश्रम ।

पृथिवीं नार्हसे हन्तु उगे हि तत्र वर्नेत ॥ १५ ॥
 पुनरसिह ! अतुल पराक्रमी वीर ! आपके सद्गुणोंके
 कारण सारा जगत् आपके वशमें है । आपने लिये इस भूतल-
 के निवासियोंका विनाश करना उचित न होगा ॥ १५ ॥
 भरतस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा मृतमयं यया ।
 प्रहर्षमतुलं लेभे राम सत्यपराक्रम ॥ १६ ॥
 भरतका यह अमृतमय वचन सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीराम
 को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥
 उवाच च शुभ वाक्यं कैकेयानन्दधनम् ।
 प्रीतोऽसि परितुष्टोऽसि तवाद्य वचनेऽनघ ॥ १७ ॥
 उन्होंने कैकेयीमन्दन भरतसे यह शुभ बात कही—
 'निशाप मत ! आज तुम्हारी बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न
 एवं सन्तुष्ट हुआ हूँ ॥ १७ ॥
 इदं वचनमर्ह्ययं त्वया धर्मसमागतम् ।
 प्याहृत पुरुषन्यात्र पृथिव्यां परिपालनम् ॥ १८ ॥
 हृत्पार्षे श्रीमन्नारामेण वाक्मातृयै आदिकाण्ये उत्तरकाण्डे न्यक्षोविनमः सर्गः ॥ ८१ ॥
 इस प्रकार श्रीब्रह्मनिर्मित अष्टात्मयण आदिकाण्यक उत्तरकाण्डमें विंशतीनों सर्ग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः

लक्ष्मणका अश्वमेध यज्ञका प्रस्ताव करते हुए इन्द्र और वज्रासुरकी कथा सुनाना, घृनासुरकी
 तपस्या और इन्द्रका भगवान् विष्णुसे उसके वधके लिये अनुरोध

तथोक्तवति रामे तु भरते च महात्मनि ।
 लक्ष्मणोऽथ शुभ वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥ १ ॥
 श्रीराम और महात्मा भरतसे इस प्रकार वानवाचित करने
 पर लक्ष्मणने खुदकुलन दन भीयमसे यह शुभ बात कही — ॥
 अश्वमेधो महायज्ञः पावनं सर्वपाप्मानम् ।
 पावनस्तत्र दुधौ रोचता रघुनन्दन ॥ २ ॥
 'रघुनन्दन ! अश्वमेध नामक महान् यज्ञ समस्त पापोंका
 दूर करनेवाला, परमपावन और दुष्कर है । अतः इसका
 अनुष्ठान आप पसन्द करें ॥ २ ॥
 श्रूयते हि पुरावृत्तं यास्ये सुमहात्मनि ।
 ब्रह्महत्यावृत्तं शक्रो हयमेधनं पारित ॥ ३ ॥
 'महात्मा इन्द्रने शिष्यमें यह प्राचीन वृत्तान्त सुननेमें
 आता है कि इन्द्रका जब ब्रह्महत्या लगी थी, तब वं अश्वमेध
 यज्ञका अनुष्ठान करके ही पवित्र हुए थे ॥ ३ ॥
 पुरा किल महायाहो देवास्तुरसमागमे ।
 घृशो नाम महानासीद् दैतेयो लोकसम्मत ॥ ४ ॥
 'महायाहो ! पहलेकी बात है, जब देवता और असुर
 परस्पर मिलकर रहते थे, उन दिनों वृषनामने प्रसिद्ध एक
 बहुत बड़ा असुर रहता था । एकमें उसका बड़ा आदर
 था ॥ ४ ॥
 विस्तीर्णो योजनशतमुखश्छिन्नलिङ्गुणः सप्त ।

पुरुषसिंह ! तुम्हारे मुखसे निकलना हुआ यह उदार एवं
 वमसग्न वचन सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला है । ॥ १८ ॥
 एष्यदसद्विभिप्रायाद् राजसूयात् मत्तमात् ।
 निरर्तयामि धर्मज्ञं तत्र सुयाहतेन च ॥ १९ ॥
 'धर्मज्ञ ! मेरे हृदयमें राजसूययज्ञका सत्त्व उठ रहा
 था किन्तु आज तुम्हारे इस सुन्दर भाग्यकी सुनकर मैं उस
 उच्च यज्ञकी ओरसे अपने मनको हटायें लेता हूँ ॥ १९ ॥
 लोकपीडाकर कर्म न कर्तव्यं विचक्षणैः ।
 बालानां तु शुभ वाक्यं प्राप्य लक्ष्मणपूजितं ।
 तस्माच्छ्रणामि ते वाक्यं साधु युक्तं महायत्नं ॥ २० ॥
 लक्ष्मणक बड़ भार ! बुद्धिमान् पुरुषोंने ऐसा वचन
 नहीं करना चाहिये, जो समूह जगत्की पीड़ा देनेवाला हो ।
 बालकोंकी कही हुई बात भी यदि अच्छी हो तो उसे ग्रहण
 करना ही उचित है अतः महाबली वीर ! मैंने तुम्हारी उच्चम
 एवं युक्तिसंगत बातको बड़ ध्यानसे सुना है ॥ २० ॥
 इत्येवमुक्त्वा तस्मै न्यक्षोविनमः सर्गः ॥ ८१ ॥

चतुरांगेण लोकास्त्रीन् स्नेहात्पश्यति सर्जत ॥ ५ ॥
 'वह सौ यज्ञन चौड़ा और तीन सौ यज्ञन ऊँचा था ।
 वह तीनों लोकोंको आत्मीय समझकर प्यार करता था और
 सबको स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखता था ॥ ५ ॥
 धर्मज्ञश्च हृतमश्वं शुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
 शशास पृथिवीं स्फूर्ति धर्मेण सुसमाहितः ॥ ६ ॥
 'उसे धर्मका वषार्थ ज्ञान था । वह इच्छा और निरमल
 था तथा पूजन लावचान रहकर धन वाक्यने मरी-मूरी पृथ्वीका
 धर्मवृक्ष शासन करता था ॥ ६ ॥
 तस्मिन् प्रगासति तदा सर्वकामदुघा मही ।
 रसवन्ति प्रसूतानि भूलानि च पलानि च ॥ ७ ॥
 'उसके शासनकालमें पृथ्वी समूह कामनाओं से देनेवाली
 थी । यहाँ फल, फूल और मूल सभी उत्पन्न होते थे ॥ ७ ॥
 अष्टपञ्चा पृथिवीं सुसम्पन्ना महामनाः ।
 स रात्र्य तादृशं भुङ्क्ते स्फीतमद्भुतदशनम् ॥ ८ ॥
 'महायज्ञा वृषासुरक राजसे यह भूमि विना उद्विग्न ही
 अन्न उत्पन्न करती तथा धन वाक्यने मनीमौलि सम्पन्न रहती
 थी । इस प्रकार वह असुर समृद्धिवाणी एवं अद्भुत राज
 का उपभोग करता था ॥ ८ ॥
 तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपः क्षयाननुत्तमम् ।
 तपो हि परमं ध्येयं सम्मोहमनिराद्य सुगम् ॥ ९ ॥

एक समय वृषासुरके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं परम उत्तम तप करूँ क्योंकि तप ही परम कल्याणका लक्षण है। दूसरा सारा सुख तो मोहमात्र ही है ॥ १ ॥
स निक्षिप्य सुत ज्येष्ठ पौत्रेषु मधुरेश्वरम् ।
तप उग्र समातिष्ठत् तापयन् सप्तदेवता ॥ १० ॥

‘उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मधुरेश्वरको राजा बना पुरासिधों को सौंप दिया और सम्पूर्ण देवताओंको तप देता हुआ वह कठोर तपस्या करने लगा ॥ १० ॥

तपस्तप्यति वृत्रे तु चासव परमार्तवम् ।
विष्णु समुपसङ्गम्य वापयमेतदुवाच ह ॥ ११ ॥

‘वृषासुर’ तपस्यामें लग जानपर इंद्र बड़ दुखी से देवर भगवान् विष्णुके पास गये और इस प्रकार बोले— ॥ ११ ॥
तपस्यता महासाहो लोका सर्वे विनिर्जिता ।
यलवान् स हि धामाम्ना नैराश्रयामि शासितुम् ॥ १२ ॥

‘‘महासाहो ! तपस्या करते हुए वृषासुरने समस्त लोक जीत लिये । वह धर्मात्मा असुर बनवान् हा गया है, अतः अब उसपर मैं शासन नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

यद्यसौ तप जातिष्ठेद् भूय एव सुरेश्वर ।
यावत्तोका धरिष्यति तप्तदस्य वसानुगा ॥ १३ ॥

‘‘सुरेश्वर ! यदि यह फिर इसी प्रकार तपस्या करता रहा तो जबकि मैं तीनों लोक रहूँगा, तबतक हम सब देवताओंको उसके अधीन रहना पड़ेगा ॥ १३ ॥

त नैन परमोदारमुपेयसि महायल ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्पञ्चाशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८४ ॥

‘‘इस प्रकार श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें षट्पञ्चाशोऽध्यायः समाप्त हुआ ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितम सर्ग

ज

भगवान् विष्णुके तेजका इन्द्र और वज्र आदिमें प्रवेश, इन्द्रक वज्रसे वृषासुरका वध

तथा ब्रह्महत्याप्रवृत्त इन्द्रका अन्धकारमय प्रदग्धमें जाना

लक्ष्मणस्य तु तद् गम्य धृत्वा शत्रुनिग्रहण ।

वृधयातमदोषेण कथयेत्याह सुप्रथ ॥ १ ॥

‘‘लक्ष्मण ! यह कथन सुनकर शत्रुओंका संहार करनेवाले धीरामचन्द्रजीने कहा— ‘‘उत्तम मतका पालन करनेवाले सुमित्राकुमार ! वृषासुरक वधकी पूरी कथा कह सुनाओ ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु सुमित्रानन्दवर्धन ।

भूय एव कथा दिव्या कथयामास सुप्रथ ॥ २ ॥

‘‘धीरामचन्द्रजीक इस प्रकार आदेश देनेपर उत्तम मतक पालक सुमित्रानन्द लक्ष्मणने पुनः उस दिव्य कथाको सुनाना आरम्भ किया— ॥ २ ॥

क्षण रि न भवेद् वृष मुद्धे त्वयि सुरेश्वर ॥ १४ ॥

‘‘महाश्वरी देवेश्वर ! उस परम उत्तम असुरकी आप उपेक्षा कर रहे हैं (इसीप्रिये यह शक्तिशाली हाता जा रहा है) । यदि आप क्षुण्ण हो जायें तो यह क्षणभर भी जीवित नहीं रहे सकता ॥ १४ ॥

यदा हि प्रीतिसयोग त्वया विष्णो समागत ।

तदाप्रभृति लोकाना नाथत्वमुपलब्धवान् ॥ १५ ॥

‘‘विष्णो ! जबसे आपका साथ उसका प्रेम हो गया है, तभीसे उसने सम्पूर्ण लोकोंमें आपका प्राप्त कर लिया है ॥

स न प्रसाद लोकाना कुरुष्व सुसमाहित ।

त्वष्टतन हि नयं स्यात् प्रशान्तमद्य जगत् ॥ १६ ॥

‘‘अतः आप अच्छी तरह ध्यान देकर सम्पूर्ण लोकोपर कृपा कीजिये । आपका रक्षा करनेसे ही सारा जगत् शान्त एवं नीरोग हो सकता है ॥ १६ ॥

हमे हि सर्वे विष्णो त्वा निरीक्षन्ते दिवौकस ।

वृषघातेन महता तेपा साहा कुरुष्व ह ॥ १७ ॥

‘‘विष्णो ! ये सब देवता आपकी ओर देख रहे हैं । वृषासुरका वध एक महान् कार्य है । उसे करके आप उन देवताओंका उपहार कीजिये ॥ १७ ॥

त्वया हि नित्यं साहा कृत्वमेष महात्मनाम् ।

असामिद्रमयेपामगतीना गतिर्भवान् ॥ १८ ॥

‘‘प्रभा ! आपने वदा ही इन महात्मा देवताओंकी सहायता की है । यह असुर दूसरोंक लिये अन्ध है अतः आप हम निराश्रित देवताओंक आश्रयदाता हों ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्पञ्चाशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८४ ॥

‘‘इस प्रकार श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें षट्पञ्चाशोऽध्यायः समाप्त हुआ ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितम सर्ग

ज

भगवान् विष्णुके तेजका इन्द्र और वज्र आदिमें प्रवेश, इन्द्रक वज्रसे वृषासुरका वध

तथा ब्रह्महत्याप्रवृत्त इन्द्रका अन्धकारमय प्रदग्धमें जाना

लक्ष्मणस्य तु तद् गम्य धृत्वा शत्रुनिग्रहण ।

वृधयातमदोषेण कथयेत्याह सुप्रथ ॥ १ ॥

‘‘लक्ष्मण ! यह कथन सुनकर शत्रुओंका संहार करनेवाले धीरामचन्द्रजीने कहा— ‘‘उत्तम मतका पालन करनेवाले सुमित्राकुमार ! वृषासुरक वधकी पूरी कथा कह सुनाओ ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु सुमित्रानन्दवर्धन ।

भूय एव कथा दिव्या कथयामास सुप्रथ ॥ २ ॥

‘‘धीरामचन्द्रजीक इस प्रकार आदेश देनेपर उत्तम मतक पालक सुमित्रानन्द लक्ष्मणने पुनः उस दिव्य कथाको सुनाना आरम्भ किया— ॥ २ ॥

सहस्राक्षवच भुरा सवैषा व दिवौकसाम् ।

विष्णुर्देवानुवाचेद् सर्वाणि प्रपुरोगमान् ॥ ३ ॥

‘‘प्रभा ! सहस्रनेपथारी इंद्र तथा सम्पूर्ण देवताओंकी वह प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने इंद्र आदि सब देवताओं से इस प्रकार कहा— ॥ ३ ॥

पूर्वं सौहृदयसोऽस्मि वृषस्येदं महात्मन ।

तेन युष्मद्विषयार्थं हि नाहं हृमि महासुरम् ॥ ४ ॥

‘‘देवताओ ! तुम्हारी इस प्रार्थनाक पहलेसे ही मैं महामना

वृषासुरके र्नेह-वचनमें वैषा हुआ हूँ । इसलिये तुम्हारा प्रिय करनेके उद्देश्यसे मैं उस महान् असुरका वध नहीं करूँगा ॥

१ मधुरेश्वरक अर्थ पित्रमजने मधुर नामक राजा किया है । राधाकाशिरामादिनामके मधुर वक्ताओंका ईश्वर किया है तथा रामायण-

भूषणश्वरने मधुर-मौख्य स्वभावका राजा ब्रह्मा मधुरा नगरीका स्वामी किया है ।

अयस्य करणीयं च भवता सुखमुत्तमम् ।
तस्मादुपायमार्यास्ये सहस्राक्षो वधिष्यति ॥ ५ ॥

“परतु तुम सयक उत्तम सुखी यस्या करना मेरा आवश्यक कतय है, इसलिये मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे दवराज इन्द्र उसका वध कर सकेंगे ॥ ५ ॥

प्रेमाभूत करिष्यामि आत्मानं सुरसत्तमा ।
तेन वृष सहस्राक्षो वधिष्यति न सदायः ॥ ६ ॥

“मुरध्रेष्ठगण ! मैं अपने स्वरूपभूत तेजो तीन भागोंमें विभक्त करूँगा; जिससे इन्द्र निःसन्देह वृषासुरका वध कर सकेगा ॥ ६ ॥

एकाग्रो वासय यातु द्वितीयो यज्ञमेव तु ।
तृतीयो भूतल यातु तदा वृषं हनिष्यति ॥ ७ ॥

“मेरे तेजका एक अंश इन्द्रमें प्रवेश करे दूसरा अंशमें व्याप्त हो जाय और तीसरा भूतलको चला जाय, तब इन्द्र वृषासुरका वध कर सकेंगे” ॥ ७ ॥

तथा व्रुति देवेशो देवा पान्यमयावृषन् ।
परमेतन्न सन्नेहो यथा घृदसि दैत्यहन् ॥ ८ ॥

भद्र तेऽस्तु गमिष्यामो वृषासुरयधैषिण ।
भजस्व परमोदार वासप स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥

“दैत्यधर भगवान् विष्णु कृपेसा कदनेपर देवता बले—
‘दैत्यविनाशन ! आप का कहते हैं, ठीक ऐसी ही बात है, इसमें सन्देह नहीं । आपका कल्याण हो । हमलोग वृषासुरके वधकी इच्छा मनमें लिये यहाँसे लौट जायेंगे । परम उदार प्रभो ! आप अपने तेजके द्वारा देवराज इन्द्रको अनुग्रहीत करें’ ॥
तब सबें महामान सहस्राक्षपुरोगमा ।

तदरण्यमुपाक्रामन् यज्ञं वृषो महासुर ॥ १० ॥

“तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी महामनस्वी देवता उस वनमें गये, जहाँ महान् अक्षर वृष तपस्या करता था ॥ १० ॥

तेऽपश्यस्तेजसा भूत तप्यन्तमसुरोत्तमम् ।
पियन्तमिन् लोकास्त्रीन् निर्दहन्तमिन्नाम्बरम् ॥ ११ ॥

“उन्होंने देखा, असुरध्रेष्ठ वृषासुर अपने तबसे सब ओर व्याप्त हो रहा है और ऐसी तपस्या कर रहा है, मानो उसके द्वारा तीनों लोकोंको भी जलगा और आकाशमें भी दग्ध कर डालेगा ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा चासुरध्रेष्ठं देवास्त्रासमुपागमन् ।
कथमेनं वधिष्याम कथं न स्यात् पराजयः ॥ १२ ॥

“उस अनुरध्रेष्ठ वृषको देखते ही देवतालोग घबरा गये और सोचने लगे— हम कैसे इसका वध करेंगे ? और जिस उपायसे हमारी पराजय नहीं होने पायेगी ?” ॥ १२ ॥

तेषां चितयता तत्र सहस्राक्षं पुरंदर ।
वज्रं प्रगृह्य पाणिभ्यां प्राहिणोद् वृषमूर्धनि ॥ १३ ॥

“वे लोग वहाँ इस प्रकार सोच ही रहे थे कि सहस्रनेत्र घाटी इन्द्रने दोनों हाथोंसे वज्र उठाकर उसे वृषासुरके मस्तकपर दे मारा ॥ १३ ॥

कालाग्निनेव घोरेण नीतेनेव महाचिपा ।
पतता वृषशिरसा जगत् प्रासमुपागमत् ॥ १४ ॥

“इन्द्रका वह वज्र प्रलयकालकी अग्निज्वाला समान भयंकर और दीप्तिमान् था । उससे बड़ी भारी लपटे उठ रही थीं । उसकी चाँसे कम्पर जब वृषासुरका मस्तक गिरा, तब हारा सारा मयभीत हो उठा ॥ १४ ॥

असम्भान्य वध तस्य वृषस्य विबुधाधिप ।
चिन्तयानो जगामानु लोकस्यात महायया ॥ १५ ॥

“निरपराध वृषासुरका वध करना उचित नहीं था, अतः उसका कारण महायशस्वी देवराज इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और घुरत ही सब लोकोंने अन्तमें लोकालोक परमसे परमार्थ अचकारमय प्रवेशमें चले गये ॥ १५ ॥

तमिन्द्रं ब्रह्महत्याऽऽसु गच्छन्तमनुगच्छति ।
अपतङ्गाभ्यं गात्रेषु तमिन्द्रं दुःखमाविशत् ॥ १६ ॥

“गानेक समय ब्रह्महत्या तत्काल उनका पीछे लग गयी और उनको अज्ञात रूप पड़ी । इससे इन्द्रका मनमें बड़ा दुःख हुआ ॥ १६ ॥

हतारय प्रणष्टेन्द्रा देवांस्त्रिपुरोगमा ।
विष्णुं त्रिभुवनेशान् मुहुर्मुहुरपूजयन् ॥ १७ ॥

“देवताओंका शत्रु मारा गया । इसलिये अग्नि आदि सब देवता त्रिभुवनरत्न स्वामी भगवान् विष्णुकी बारबार स्तुति पूजा करने लगे । परंतु उनका इन्द्र अदृश्य हो गये थे (इसके कारण उन्हें बड़ा दुःख हुआ था) ॥ १७ ॥

त्य गति परमेशान् पूर्वजो जगत पिता ।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुं नमुपजग्मिवान् ॥ १८ ॥

“देवता बोल— ‘परमेश्वर ! आप ही जगत्के आश्रय और आदि पिता हैं । आपने सगुण प्राणियोंकी रक्षाके लिये विष्णुरूप धारण किया है ॥ १८ ॥

हतश्रायं त्वया वृषो ग्राहत्या च वासवम् ।
याधते सुरशान्दं मोक्षं तस्य त्रिनिनिश ॥ १९ ॥

“आपने ही इस वृषासुरका वध किया है । परंतु मत्त हला इन्द्रका पट दे रही है अतः मुरध्रेष्ठ ! आप उनका उद्धारका कष्ट उपाय बताइयें” ॥ १९ ॥

तेषां सद् ध्यानं ध्रुवा देवानां विष्णुरग्रधीत् ।
मामेनं यजता शनः पाथयिष्यामि यज्ञिणम् ॥ २० ॥

“देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले—
‘इन्द्र मेरा ही यजन करें । मैं उन वज्रपापी दवराज इन्द्रका पवित्र कर दूँगा’ ॥ २० ॥

* वृष-वधके पश्चात् इन्द्रका लगी हुई ब्रह्महत्याकी निषिद्धिसे मनबलक इस भूतलकी रक्षा करनेके लिये तथा वृषके पराजयी होनेपर उसने भारी घरीला धारण करनेकी शक्ति देनेके लिये भगवान्के ठेकेने लीने आकाश भूतलपर व्याप्त आकाशक का शक्तिसे ऐसा हुआ ।

पुण्येन ह्यमेधेन मामिष्टा पक्वशासन ।

पुरेप्यति देवानामिद्रत्वमकुतोभय ॥ २१ ॥

“पवित्र अश्वमेध यज्ञने द्वारा मुक्त यह पुरुषकी आराधना करके पाकशासन इन्द्र पुत्र देवेन्द्र पदको प्राप्त कर लेंगे और फिर उई किसीसे भय नहीं रहेगा” ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिमित्त आचारागमण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें पञ्चाशीतौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

पञ्चाशीतितमः सर्गः

इन्द्रके पिना जगतमें अशान्ति तथा अश्वमेधके अनुष्ठानसे इन्द्रका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना

तदा चूचग्रथ सर्वमखिलेन स लक्ष्मण ।

कथयित्वा नरश्रेष्ठ कथाशेष प्रचक्षमे ॥ १ ॥

उध समय घृणासुरके बचकी पूरी कथा सुनाकर नरश्रेष्ठ

इक्ष्मणेन दीप कथाको इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ १ ॥

ततो हते महारीर्ये वृत्रे देवभयकरे ।

ब्रह्महत्याघृत क्षामः सखा लेभे न पृच्छहा ॥ २ ॥

‘देवताओंको भय देनेवाले महापराक्रमी वृत्रासुरके मारे जानेपर ब्रह्महत्यासे घिरे हुए घृत्रनाशक इन्द्रको बहुत देरतक रोश नहीं हुआ ॥ २ ॥

सोऽन्तमाश्रित्य लोकाणा नष्टसङ्गो विचेतन ।

काल तन्नायसत् क्वचिद् वेष्टमा इयोरग ॥ ३ ॥

‘लोकोंकी अन्तिम सीमाका आश्रय ले के वे सर्वके समान छोटते हुए कुछ कालतक वहाँ अचेत और सहाय्य होकर पड़े रहे ॥ ३ ॥

अय नष्टे सहस्राक्षे षड्विंशमभवजगत् ।

भूमिश्च ध्वस्तसकाशा नि स्नेहा शुष्ककान्ता ॥ ४ ॥

नि स्रोतसस्ते सर्वे नृ हृदाश्च सरितस्तथा ।

सक्षोभश्चैव सत्त्वानामनाद्विद्वतोऽभवत् ॥ ५ ॥

‘इन्द्रक अदृश्य हो जानेसे सारा सगर व्याकुल हो उठा । भरती उजाड़-सी हो गयी । इसी आर्द्रता नष्ट हो गयी और वन सूख गये । समस्त सरो और सरिताओंमें जल-छातका अभाव हो गया और वन न होनेसे सब जीवोंमें बड़ी परवाहट फैल गयी ॥ ४ ५ ॥

श्रीयमाणेन लोकेऽस्मिन् समग्रान्तमनस सुरा ।

यदुक्तं विष्णुना पूर्वं त यज्ञ समुपानयन् ॥ ६ ॥

‘समस्त लोक क्षीण होने लगे । इससे देवताओंके हृदयमें व्याकुलता छा गयी और उन्होंने उठी यज्ञका संरक्षण किया, जिसे पहले भगवान् विष्णुने बताया था ॥ ६ ॥

तत सर्वे सुरगणा सोपाप्याया सहस्रिभि ।

न देश समुपाजग्मुर्वनेन्द्रो भयमोहित ॥ ७ ॥

‘तदनन्तर बृहस्पतिजीके साथ ल श्रुतियोंबहित सब देवता उध स्थानपर गये, वहाँ इन्द्र भयसे आहित होकर छिपे हुए थे ॥ ७ ॥

एव सविद्य ता घार्णी देवाना चामृतोपमाम् ।

जगाम विष्णुर्देवेश स्तूयमानस्त्रिपृष्ठपम् ॥ २२ ॥

‘देवताओंसम समस्त अमृतमयी वाणीद्वारा उक्त संदेश देकर देवेश्वर भगवान् विष्णु अपनी स्तुति सुनते हुए परम धामको चले गये ॥ २२ ॥

ते तु दृष्ट्वा सहस्रात्मनाघृत ब्रह्महत्या ।

त पुरस्तरस्य देवेशमश्वमेध प्रचक्षिरे ॥ ८ ॥

‘वे इन्द्रको ब्रह्महत्यासे आवेष्टित देख उहाँ देवेश्वरको बयले करके अश्वमेध यज्ञ करने लगे ॥ ८ ॥

सतोऽश्वमेध सुमहान् महेंद्रस्य महात्मन ।

यघृते ब्रह्महत्याया पात्रनार्यं नरेभ्यर ॥ ९ ॥

‘नरेभ्यः । फिर तो महामनस्वी महेंद्रका यह महान् अश्व मेध यज्ञ आरम्भ हो गया । उसका उद्देश्य था ब्रह्महत्याकी निवृत्ति करके इन्द्रको पवित्र बनाना ॥ ९ ॥

सतो यशे समासे नृ ब्रह्महत्या महात्मन ।

अभिगम्याववीद्व याक्य क मे स्थान विधास्यथ ॥ १० ॥

‘तत्सम्भातं जब वह यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्महत्याने महामनस्वी देवताओंके निकट आकर पूछा—‘मेरे लिये कहाँ स्थान बनाओगे’ ॥ १० ॥

ते ताम्बुस्ततो देवास्तुथा प्रीतिसमन्विता ।

चतुर्धा विभज्जामानमात्मनैव दुरासदे ॥ ११ ॥

‘यह सुनकर सतृप्त एवं प्रसन्न हुए देवताओंने उत्तरे कहा—‘दुःख शक्तिवाली ब्रह्महत्या । तू अपने आपको स्वयं ही चार भागोंमें विभक्त कर दे’ ॥ ११ ॥

देवाना भाषितं ध्रुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनाम् ।

सदृधौ स्थानमन्यत्र धरयामास दुर्बसा ॥ १२ ॥

‘महामनस्वी देवताओंका यह कथन सुनकर महेंद्रके शरीरमें दुःखपूर्ण निवास करनेवाली ब्रह्महत्याने अपना चार भाग कर दिया और इन्द्रके शरीरसे अलग रहनेके लिये स्थान ढूँढा ॥ १२ ॥

एकेनादोन धत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै ।

चतुरो धार्षिकान् मासान् वर्षेष्वा कामचारिणी ॥ १३ ॥

‘(वह बोली—) ‘मैं अपने एक अश्वसे बचाके चार महीनोंतक जलसे मरी हुई नदियोंमें निवास करूँगी । उध समय मैं इच्छासुख विचरनवाली और दूसरोंके दण्डा दहन करनवाली होऊँगी ॥ १३ ॥

भूम्यामहं सवकारमेकेनादोन सर्वदा ।

यस्यस्यामि न सवेहः सत्येनैतद् प्रचीमि ॥ १४ ॥

“दूसरे भागसे मैं सदा सत्र समय भूमिपर निवास करूँगी,
इसमें सदृह नहीं है, यह मैं आपलगाते सभी बात कहती हूँ।
योऽयमशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौनशालिषु।
त्रिरात्र दर्पपूणास्तु घसिष्ये दर्पघातिनी ॥ १५ ॥

“और मेरा जो यह तीसरा अंश है, इसन साथ मैं युवा
वस्त्रासे मुखोभित होनेवाली गर्मली स्त्रियोंमें प्रतिमास तीन
राततक निवास करूँगी और उनक दर्पको नष्ट करती रहूँगी ॥
हन्तारो ब्राह्मणान् ये तु सृयापूर्णमदृषकान्।
ताश्चतुर्थेन भागेन सधियाप्ये सुरर्षभा ॥ १६ ॥

“सुरश्रेष्ठगण ! जो शूद्र बोलकर किसीको कलङ्कित नहीं
करते, ऐसे ब्राह्मणोंका जो लोग वध करते हैं, उनपर मैं अपन
चौथे भागसे आक्रमण करूँगी” ॥ १६ ॥

प्रत्यूखस्ता ततो देवा यथा वदसि दुर्जसे।
तथा भवतु तत् सर्वे साधयस्व यन्मृत्तितम् ॥ १७ ॥

“तब देवताओंने उससे कहा—‘दुर्जसे ! तू जैसा कहती
है, वह सब वैसा ही हो। जाओ अपना अभीष्ट साधन कर’ ॥
तत प्रीत्यान्विता देवा सहस्राक्ष ववदिरे।
विन्ध्वर पूतपाप्मा च वासव समपद्यत ॥ १८ ॥

“तब देवताआने बड़ी प्रसन्नताके साथ सहस्रलाचन इन्द्र
हृत्पार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे पदशतितम सर्ग ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अध्यात्मिकायक उत्तरकाण्डमें शिवार्चोत्सव पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितम सर्ग.

श्रीरामका लक्ष्मणको राजा इलकी कथा सुनाना—इलको एक-एक मास-

तक स्त्रीत्व और पुरुषत्वकी प्राप्ति

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणेनोक्त वाक्यं वाक्यविदारद ।

प्रत्युपाय महातेजा ग्रहसन् राघवो पच ॥ १ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई यह बात सुनकर बातचीतकी कलामें
निपुण महातेजस्वी श्रीरामायणी हँसते हुए बोले— ॥ १ ॥

परमेय नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण।

धूमधातमरोपेण जाजिमेधफलं च यत् ॥ २ ॥

‘नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ! वृत्रासुरका शरा प्रसंग और अश्वमेध
यज्ञका जो फल तुमने बँटा बताया है, वह सब उसी रूपमें
ठीक है ॥ २ ॥

श्रूयते हि पुरा सौम्य पद्मस्य प्रजापते ।

पुत्रो वाहीधर धीमानिने नाम सुचारमिक ॥ ३ ॥

‘सौम्य ! मुना जाता है कि पूर्वकालमें प्रजापति कर्दमन
पुत्र भीमन् इल वाहिददेशक राजा थे । ये बड़े धर्मात्मा
नरेश थे ॥ ३ ॥

स राजा पृथिवीं सर्वो यदो हृत्या महायदा ।

राज्यं चैव मरुत्याश्च पुत्रवत् पयपालयत् ॥ ४ ॥

‘पुरुषादि । य मरुत्याश्वा भूषाश्च साधु पृथ्वीको धामें

की वदना की । इन्द्र निश्चिन्त, निष्पाप एवं विशुद्ध हो गये ॥
प्रशान्त च जगत् सर्वे सहस्राक्षे प्रतिष्ठिते ।

यश्च चाद्भुतसकाश तदा शत्रोऽभ्यपूजयत् ॥ १९ ॥

‘इन्द्रन अपने पदपर प्रतिष्ठित होते ही सम्पूर्ण जगत्में
शान्ति छा गया । उस समय इन्द्रने उस अद्भुत शक्तिशाली
यज्ञकी भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ १९ ॥

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभाजो रघुनन्दन।

यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव ॥ २० ॥

‘रघुनन्दन ! अश्वमेध यज्ञका ऐसा ही प्रभाव है । अतः
महाभाग ! पृथ्वीनाथ ! आप अश्वमेध यज्ञने द्वारा यज्ञन
कीजिये” ॥ २० ॥

इति लक्ष्मणवाक्यमुत्तम

नृपतिरतीय मनोहर महात्मा ।

परितोषमनाप हृष्टचेता

स निशम्येद्रसमानचिन्तमौजा ॥ २१ ॥

लक्ष्मणन उस उत्तम और अत्यन्त मनोहर वचनको
सुनकर महात्मा राजा श्रीरामचन्द्रजी, जो इन्द्रक समान
परामर्शी और बलशाली थे मन ही मन बड़े प्रसन्न एवं
संतुष्ट हुए ॥ २१ ॥

हृत्पार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे पदशतितम सर्ग ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अध्यात्मिकायक उत्तरकाण्डमें शिवार्चोत्सव पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

करक अपने राज्यकी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे ॥

सुरैश्च परमोदारैर्द्वैतेवैश्च महाधनै ।

नागराजसगर्धायश्च सुमहामभि ॥ ५ ॥

पूज्यत नित्यदा सौम्य भयार्तं रघुनन्दन।

अविश्रम्यश्च त्रयो लोका सरोपस्य महामन ॥ ६ ॥

‘सौम्य ! रघुनन्दन ! परम उदार देवता, महापत्नी दैत्य

तथा नाग, राक्षस, गन्धर्व और महामनस्वी यक्ष—ये सब
भयभीत होकर सत्र राजा इलकी स्तुति-पूजा करन थे तथा
उन महामना नरेशक रूप हो खानेपर सोनीं होकरों प्राणी भय
से बरा उठते थे ॥ ५ ॥

सराना तादृशोऽप्यासीद् धर्मं धीर्यं च निष्ठितः ।

वुद्ध्य च परमांशरो वाहीकिशो महायदा ॥ ७ ॥

‘धर्म प्रभावशाली होनेपर भी वाहाक दण्ड स्वामी महा
यदास्वी परम उदार राजा इल धर्म और पराक्रममें दृढ़तापूर्वक
स्थित रहते थे और उनकी बुद्धि भी स्थिर थी ॥ ७ ॥

स प्राज्ये महायाह्मृगया स्त्रिर वने ।

चैत्रे मनोरम मासे सभूययत्नादम ॥ ८ ॥

तपत च तपस्तीव्रमम्भोमध्ये दुरासदम् ।

यशस्कर कामरु तारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥ १० ॥

‘वे जलके भीतर तीव्र तपस्यामें ललन थे । उन्हें परामृत करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था । वे यशस्वी, पूर्णराम और वरुण अवस्थामें स्थित थे ॥ १० ॥

स त जलाशय सर्गं शोभयामास त्रिसिता ।

सह तैः पूर्यपुरुषैः स्त्रीभूतैः रघुनन्दनम् ॥ ११ ॥

‘रघुनन्दन ! उन्हें देखकर इला चकित हो उठी और जो पहले पुरुष थीं, उन स्त्रियोंने साथ जलमें उतरकर उसने सारे जलाशयको सुख कर दिया ॥ ११ ॥

बुधस्तु तां समीक्ष्यैव कामराजपरा गत ।

नोपलेभे तदात्मानं स चंचालः तदाम्भितः ॥ १२ ॥

‘इलापर दृष्टि पड़ते ही बुध कामदेवने रागौरा निशाना बन गये । उन्हें अपने तन-भनकी बुध न रही और वे उस समय जलमें बिचलित हो उठे ॥ १२ ॥

इला निरीक्षमाणस्तु त्रैलोक्यादधिका शुभाम् ।

चित्तं समभ्यतिश्रामत् का न्विव देयताधिका ॥ १३ ॥

‘इला त्रिलोकीमें सबसे अधिक सुन्दरी थी । उसे देखते हुए बुधका मन उसीमें आसक्त हो गया और वे सोचने लगे, ‘यह कौन-सी स्त्री है, जो देवाङ्गनाओंसे भी बरकर रूपवती है ॥ १३ ॥

न देवीषु न नागीषु नासुरीष्वप्यस्मि च ।

दृष्ट्वा मया काचिद् रूपेणानेन शोभिता ॥ १४ ॥

‘मैं देवनिताओंमें, न नागरघुओंमें, न असुरोंकी स्त्रियोंमें और न अप्सराओंमें ही मैंने पहले कभी कोई ऐसे मनोहर रूपसे सुशोभित होनेवाली स्त्री देखी है ॥ १४ ॥

सदृशीय मम भवेद् यदि नान्यपरिग्रह ।

इति बुद्धिं समास्थाय जलात् कूलमुपागमत् ॥ १५ ॥

‘‘यदि यह दूसरेको ब्याही न गयी हो तो सन्या मेरी पत्नी बनने योग्य है ।’’ ऐसा विचार घेजलसे निकलकर किनारे आये ॥ १५ ॥

आश्रमं समुपागम्य ततस्तां प्रमदोत्तमा ।

शब्दापवत धमात्मा तादृचैव च वसन्दिरे ॥ १६ ॥

‘‘निर आश्रममें पहुँचकर उन धमात्माने पूर्वोक्त सभी मुद्रयोंको आवाज देकर बुलाया और उन सवने आकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥

स तां पप्रच्छ धमात्मा कस्यैव लोकसुन्दरी ।

स्मिधमगता चैव सर्गमाख्यात मा चिरम् ॥ १७ ॥

‘‘हयार्थे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाशीतितम सर्ग ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्रममायण आदिवाक्यक उत्तरकाण्डमें अष्टाशीर्वा सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

‘‘तब धमात्मा बुधने उन सब स्त्रियोंसे पूछा—‘‘यह लोक सुन्दरी नारी जिसकी पत्नी है और जिसलिये यहाँ आयी है ! ये सब बातें तुम शीघ्र मुझे बताओ’’ ॥ १७ ॥

शुभं तु तस्य तद् वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ।

श्रुत्वा स्त्रियश्च तां सर्वा ऊचुर्मधुरया गिरा ॥ १८ ॥

‘‘बुधर्मुखसे निकला हुआ वह मधुमयजन मधुर पताली से युक्त तथा मीठा था । उसे सुनकर उन सब स्त्रियोंने मधुर वाणीमें कहा— ॥ १८ ॥

अस्मास्मेया सुधोणी प्रभुत्वे वर्तते सदा ।

अपति काननातेषु सहाम्माभिश्चरत्यसौ ॥ १९ ॥

‘‘ब्रह्मन् । यह सुन्दरी हमारी सदाकी स्वामिनी है । इसका कोई पति नहीं है । यह हमसँगोंके साथ अपनी इच्छासे अनुसार वनप्रातमें निचरती रहती है’ ॥ १९ ॥

तद् वाक्यमाव्यक्तपद तासां स्त्रीणां निशम्य च ।

विचामावर्तनीं पुण्यामावतयस स हिज्ज ॥ २० ॥

‘‘उन स्त्रियोंका वचन सब प्रकारसे सुस्पष्ट था । उसे सुन कर ब्राह्मण बुधने पुण्यमयी आवतनी विद्याका आवर्तन (स्मरण) किया ॥ २० ॥

सोऽयं विदित्वा सरलं तस्य राज्ञो यथा तथा ।

सया एव स्त्रियस्ताश्च यभये मुनिपुङ्गव ॥ २१ ॥

‘‘उस राजाक निययस्त्री सारी बात यथाथरूपसे जानकर मुनिकर बुधने उन सभी स्त्रियोंसे कहा— ॥ २१ ॥

अत्र किंपुरुषीभूत्या शैलरोचसि वस्यथ ।

अवाप्तस्तु गिरावसिञ्जशीघ्रमेव विधीयताम् ॥ २२ ॥

‘‘तुम सब लोग किंपुरुषी (निम्नरी) होकर पवतके किनारे रहोगी । इस पवतपर शीघ्र ही अपने लिये निवासस्थान बना ले ॥ २२ ॥

मूलपत्रफलैः सया घतयिष्यथ नित्यदा ।

त्रिषुः किंपुरुषाग्राम भवन् समुपलप्स्यथ ॥ २३ ॥

‘‘पत्र और फल-मूलसे ही तुम सबको सदा जीवन निर्वाह करना होगा । आगे चलकर तुम सभी स्त्रियों किंपुरुष नामक पतिव्रतोंको प्राप्त कर लोगी’ ॥ २३ ॥

तां श्रुत्वा सोमपुत्रस्य स्थिर्य किंपुरुषीकृताः ।

उपासाचक्रिरे शैलं घण्ट्यस्तां चद्रुलास्तदा ॥ २४ ॥

‘‘किंपुरुषी नामसे प्रसिद्ध हुई वे स्त्रियों सोमपुत्र बुधकी उपबुध नाम सुनकर उस परातपर रहने लगीं । उन स्त्रियोंकी सख्या बहुत अधिक थी’ ॥ २४ ॥



तपन्त च तपस्तीयमभ्योमये दुर्गासदम् ।

यशस्वर कामकर तारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥ १० ॥

‘वे जलके भीतर तीव्र तपस्यामें सल्य थे । उन्हें परामृत करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था । वे यगन्वी, पूर्णराम और तरुण अवस्थामें स्थित थे ॥ १० ॥

स त जलाशय सर्वे क्षोभयामास विस्मिता ।

सह तै पूर्वपुरुषै स्त्रीभूतै रघुनन्दन ॥ ११ ॥

‘रघुनन्दन । उन्हें देखकर इला चकिता हो उठी और जो पहले पुरुष थीं, उन स्त्रियोंके साथ जलमें उतरकर उसने सार जलाशयको क्षुब्ध कर दिया ॥ ११ ॥

बुधस्तु ता समीक्ष्यैव कामयागमगत् ।

नोपलेभे तदात्मान स चचाल तदाम्भस्ति ॥ १२ ॥

‘इलापर दृष्टि पड़ते ही बुध कामदेवके गणोंका निशाना बन गये । उन्हें अपने तन-मनकी सुध न रही और वे उस समय जलमें विचलित हो उठे ॥ १२ ॥

इला निरीक्षमाणस्तु त्रैलोक्यादधिका शुभाम् ।

चित्त समभ्यतिव्रामत् फा प्रिय देयताधिका ॥ १३ ॥

‘इला त्रिलोकीमें सबसे अधिक सुन्दरी थी । उसे देखते हुए बुधका मन उठीमें आसक्त हो गया और वे सोचने लगे, ‘यह कौन-सी स्त्री है, जो देवाइजानाओंसे भी बढ़कर रूपवती है ॥ १३ ॥

न देवीषु न नागीषु नासुरीष्वप्यलम्बु च ।

दृष्टपूर्वा मया काचिद् रूपेणानेन शोभिता ॥ १४ ॥

‘न देवयनिताओंमें, न नागवधुओंमें, न असुरोंकी स्त्रियोंमें और न अप्सराओंमें ही मैंने पहले कभी कोई ऐसे मनोहर रूपमें सुशोभित होनेवाली स्त्री देखी है ॥ १४ ॥

सदृशीय मम भवेद् यदि नायपरिग्रह ।

इति बुद्धि समास्थाय जलात् कूलमुपागमत् ॥ १५ ॥

‘‘यदि यह दूसरेकी व्याही न गयी हो तो सचया मेरी पत्नी बनने योग्य है ।’ ऐसा विचार वे जलसे निकलकर किनारे आये ॥ १५ ॥

आधम समुपागम्य ततस्ता प्रमदोत्तमा ।

शब्दापयत धमात्मा तद्वचैव च वसन्तिदरे ॥ १६ ॥

‘‘परि आधममें पहुँचकर उन धमात्माने पूर्वोक्त सभी सुन्दरियोंको आनाम देकर मुलाया और उन सबने आकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥

स ता पप्रच्छ धमात्मा यस्यैवा लोकसुन्दरी ।

विमयमागता चैव सवमाख्यात मा चिरम् ॥ १७ ॥

‘‘इत्याथे श्रीमद्वाल्मीक्या आदिवाक्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाक्षरितम् सर्ग ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीनारदनिर्मित आश्वलायन आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें अष्टाक्षरितं सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

‘तत्र धमात्मा बुधने उन सब स्त्रियोंसे पूछा—‘यह लोक

सुन्दरी नारी जिसकी पत्नी है और किसलिये यहाँ आयी है ?

य सब बातें तुम श्रीम मुनि मुनि स्ताओ’ ॥ १७ ॥

शुभ तु तस्य तद् चाक्य मधुर मधुराक्षरम् ।

श्रुत्वा स्त्रियश्च ता सखा ऊचुमधुरया गिरा ॥ १८ ॥

‘बुधके मुखसे निम्नला हुआ वह गुमवचन मधुर पगवली से युक्त तथा मीठा था । उसे सुनकर उन सब स्त्रियोंने मधुर वाणीमें कहा—‘ ॥ १८ ॥

अस्माकमेया सुशोणी प्रभुचे यतते सदा ।

अपति काननातेषु सहाम्माभिश्चरत्यसौ ॥ १९ ॥

‘‘अस्मन् । यह सुन्दरी हमारी सदाकी स्वामिनी है । इतना कोई पति नहीं है । यह हमलोगोंके साथ अपनी इच्छासे अनुसार यामान्तमें विचरती रहती है’ ॥ १९ ॥

तद् जास्यमाप्यत्र पद तासा स्त्रीणा निशम्य च ।

विद्यामायवर्तनी पुण्यामायतयत स द्विज ॥ २० ॥

‘उन स्त्रियोंका वचन सब प्रकारसे सुलभ था । उसे सुन कर ब्राह्मण बुधने पुण्यमयी आवतनी विद्याका आवर्तन (स्मरण) किया ॥ २० ॥

सोऽयं विदित्वा सफल तस्य राशो यथा तथा ।

सखा एव स्त्रियस्ताश्च यभापे मुनिपुङ्गव ॥ २१ ॥

‘‘उस राजाके नियन्त्री सारी बातें यथाथरूपसे जानकर मुनिकर बुधने उन सभी स्त्रियोंसे कहा—‘ ॥ २१ ॥

अथ किंपुरुषीर्भूत्वा शैलोद्योसि वस्यथ ।

आयासस्तु गिरावस्त्रिभुवामेव त्रिधीयताम् ॥ २२ ॥

‘‘तुम सब लोग किंपुरुषी (निन्दी) होकर पर्वतके किनारे रहोगी । इस पर्वतपर शीम ही अपने लिये निवासस्थान बना लो ॥ २२ ॥

मूलपत्रफले नवा घतयिष्यथ नित्यदा ।

स्त्रिय किंपुरुषाणाम भवतु समुपलभ्यथ ॥ २३ ॥

‘‘पत्र और फल-मूलसे नवा घतयिष्यथ नित्यदा । स्त्रिय किंपुरुषाणाम भवतु समुपलभ्यथ ॥ २३ ॥

‘‘पत्र और फल-मूलसे नवा घतयिष्यथ नित्यदा ।

‘‘पत्र और फल-मूलसे नवा घतयिष्यथ नित्यदा ।

‘‘किंपुरुषी नामसे प्रसिद्ध हुई वे स्त्रियों शीमपुत्र बुधकी उपयुक्त बात सुनकर उस पर्वतपर रहने लगीं । उन स्त्रियोंकी सख्या बहुत अधिक थी’ ॥ २४ ॥



राजा इरुमा चन्द्रपुर बुधके साथ सनाद

एकोनवतितम सर्ग

बुध और इलाका ममागम तथा पुस्त्वानी उत्पत्ति

श्रुत्वा किंपुरुषोत्पत्तिं लक्ष्मणो भरतस्तथा ।

आश्चर्यमिति च ब्रूतामुभौ राम जनेद्वयम् ॥ १ ॥

किंपुरुषवृत्तिरिति चेत्तदा यह प्रश्न मुनिकर लक्ष्मण और भरत दोनों महापुत्र श्रीरामने कहा—“यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है” ॥ १ ॥

अथ राम कथामेता भूय एव महापुता ।

कथयामास धर्मात्मा प्रजापतिमुत्तम्य वै ॥ २ ॥

तदनन्तर महापुत्री यमात्मा श्रीरामने प्रश्नपत्रे कर्दमक पुत्र इलकी इस कथाका निर इव प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ २ ॥

सनास्ता विहता दृष्टा किन्नरीश्रुपिसत्तम ।

उवाच रूपसम्पन्ना ता स्त्रिय प्रहसन्नि ॥ ३ ॥

वे सब किन्नरियों पवतके किनारे चली गयीं । यह देख मुनिश्रेष्ठ बुधने उस रूपवती कासे हैंसते हुएसे कहा— ॥ ३ ॥

सोमन्याह सुवपित सुत सुरुचिगन्ने ।

भजन्व मा वराहोह भवया स्निग्धेन चतुषा ॥ ४ ॥

“मुनि । मैं समदेवताका परम प्रिय पुत्र हूँ । कण्ठदे । मुझे अनुराग और स्नेहमयी दृष्टिसे देखकर अपनाओ” ॥ ४ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा शून्ये स्वजनजिते ।

इला सुरुचिप्यस्य प्रत्युवाच महाप्रभम् ॥ ५ ॥

स्वजनजिते रहित उस मूले स्थानमें बुधकी यह बात सुनकर इला उन परम सुन्दर महातेजस्वी बुधने इस प्रकार बली— ॥ ५ ॥

अह कामगरी सौम्य तयासि वशवतीनी ।

प्रसाधि मा सोमसुत ययेच्छसि तथा कुरु ॥ ६ ॥

“सौम्य समदुःख । मैं अपनी इच्छाक अनुसरविचरने वाली (स्वनर) हूँ, किंतु इस समय आवश्यकताका अर्थन ही रही हूँ अतः मुझ उचित सेवक लिये आदेश दीजिये और बेसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये” ॥ ६ ॥

तस्यास्तद्वृत्तप्रत्य श्रुत्वा ह्यमुपागत ।

स वै यामी मह तया रेमे चन्द्रमस सुत ॥ ७ ॥

इलाका यह अद्भुत वचन सुनकर कानासक लोमपुत्रको बड़ा हँस हुआ । वे उससे साथ रमण करने लगे ॥ ७ ॥

बुधस्य माधयो मामस्तामिन्ना करिराननाम् ।

गतो रमयतोऽत्यये क्षणदत् तस्य कामिन ॥ ८ ॥

“मन्दर मुत्त्वानी इत्यत्र साध अतिशय रमण करने लगे कानासक बुधका वैशाख मन्थ एक क्षणक मन्थन शीत गया ॥ अथ मासे तु सम्पूर्ण पूर्णदुग्धदधानम् ।

प्रजापतिमुत्त यामान्दपने प्रत्युपयुज्य ॥ ९ ॥

एक मास पूष इनेर पूष चन्द्रमसे समान मन्दर

मुखवाल प्रवृत्तिपुत्र भीमान् इल अरनी शय्यापर जग उठे ॥ ९ ॥

सोऽपश्यत् सोमन नत्र तपन्त सलिलाशये ।

ऊष्याहु निरालम्ब त रात्रा प्रत्यभारत ॥ १० ॥

“उन्होंने देखा, समुद्र बुध वहाँ जगणमें तन कर रहे हैं । उनकी मुखादे उपरको उठी हुई हैं और वे निराधार लड़े हैं । उठ समन राजने बुधने पूजा — ॥ १० ॥

भायन् परंत दुर्गा प्रविष्टोऽसि सहातुग ।

न चपश्यामिस्तत् सैन्य कनु ते मामका गता ॥ ११ ॥

“भगवन् । मैं आने सेवकोंसब दुर्गम रानर आ गया था, परन्तु यहाँ मुझे अपनी यह सेना नहीं दिखायी देती है । पता नहीं, वे मेरे सेनिक कहाँ चले गये” ॥ ११ ॥

तच्छ्रुत्वा तस्य रात्रौ नष्टसैन्य भागिनम् ।

प्रत्युवाच शुभ वान्य सान्त्वयन् परया गिरा ॥ १२ ॥

“बुध इलकी श्रुति प्राप्तिसमयक स्मृति नष्ट हो गयी थी । उनकी बात सुनकर बुध उत्तम वर्णद्वारा उन्हें सन्त्वना देते हुए यह गुप्त वचन बोले— ॥ १२ ॥

अदमवर्णेन महता शून्यास्ते निनिपातिता ।

त्व चाधमपदे सुतो वातरगभयादत् ॥ १३ ॥

“राजन् । आपके सार सेवक आलौकी भारी बानि मार गये । आप भी आँधी पानीके भस्ते पीड़ित हो इस आधममें आकर लगे थे ॥ १३ ॥

समाश्रयसिंहि भद्र ते निर्भये विगतज्वर ।

फलमूलदानो धीर निरसेह यथासुखम् ॥ १४ ॥

“धीर । अब आप वैयं कारण करें । आका कल्याण हो । आप निमय और निश्चित होकर फलमूलका आधार करते हुए यहाँ सुखपूर्वक निवास कीजिये” ॥ १४ ॥

स राजा तेन वान्येन प्रत्यागस्तो महामति ।

प्रत्युवाच ततो वान्य दानो भृत्यजनक्षयात् ॥ १५ ॥

“बुधक इस वचनसे परम बुद्धिमान् राजा इत्यत्र बड़ा आश्वासन मिला, परन्तु आने सेवकों नष्ट होनेसे वे बहुत दुःखी थे इसलिये उनसे इस प्रकार बोल— ॥ १५ ॥

त्यक्ष्याम्यह मय्य रात्र्य नाह भृत्यैर्निपातत ।

वतयेय क्षण क्षणम् समनुत्तमदक्षि ॥ १६ ॥

“क्षण । मैं सेवकोंने रहित हो जानेपर भी रात्रक्ष परित्याग नहीं करूँगा । अब क्षणभर भी मुझसे यहाँ नहीं रहा जायगा” आत्तु जानेकी आशा दीजिये ॥ १६ ॥

सुतो धमपरो द्रक्षन् ज्येष्ठो मम महापुता ।

दादायि दुरिति रत्यान स म राज्यप्रपश्यते ॥ १७ ॥

“क्षण । मेरे धर्मपुत्र ज्येष्ठ पुत्र दद पत्नी है ।

उनका नाम शशबिंदु है । जय में यहाँ जाकर उनका अभिषेक
करूँगा, तभी वे मेरा राज्य ग्रहण करेंगे ॥ १७ ॥

नहि शक्याम्यह दित्वा भृत्यदारान् सुखान्वितान् ।

प्रतिवक्तुं महातेजः किंचिदप्यगुभ घच ॥ १८ ॥

“महातेजसी मुने ! देश में जो मेरे सेना और छोटी पुत्र
आदि परिजनों लोग सुखसे रह रहे हैं, उन सबको छोड़कर
मैं यहाँ नहीं ठहर सकूँगा । अतः मुझसे ऐसी कोई अगुम
बात आप न कहें, जिससे स्वर्जनोंसे त्रिभुवन मुझे यहाँ
हु खपूरा करने के लिये विषय होना पड़े” ॥ १८ ॥

तथा भुवति राजे द्रे बुध परममद्भुतम् ।

सान्त्वयूयमयोयाच चासस्त इह रोचताम् ॥ १९ ॥

न सतापस्त्वया कार्यं चादमेय महाबल ।

सधत्सरोपितस्येह कारयिष्यामि ते हितम् ॥ २० ॥

ध्यानेन्द्र इलेक ऐसा करनेपर बुधने उन्हें सात्वना देते

हुए अत्यंत अद्भुत बात कही—ध्यान् । तुम प्रकृतापूरक

यहाँ रहना स्वीकार करो । करमके महाबली पुत्र ! तुम्हें

छताप नहीं करना चाहिये । जब तुम एक वषतक यहाँ नियास

कर लोगे, तब मैं तुम्हारा हित साधन करूँगा” ॥ १९ २० ॥

तस्य तद् घचन ध्रुवा बुधस्याङ्घ्रिकमण ।

वात्साय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मादिना ॥ २१ ॥

‘पुण्यकमा बुधका यह वचन सुनकर उन ब्रह्मवादी

महामाने कथनानुसार राजाने यहाँ रहनेका निश्चय दिया ॥

इरायाँ श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकौनवतितम सर्ग ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वरामायण आर्जुनायक उत्तरकाण्डमें नवासीर्वाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नवतितम सर्ग

अश्वमेधके अनुष्ठानसे इलाको पुरुषत्वकी प्राप्ति

तथोक्तवति रामे तु तस्य जम तदद्भुतम् ।

उवाच लक्ष्मणो भूयो भरतश्च महायशः ॥ १ ॥

भीरामचन्द्रकी चक्ष पुरुषाये जमकी अद्भुत कथा कह

गये, तब लक्ष्मण तथा महायशस्वी भरतने पुन पूछा—॥ १ ॥

इला सा सोमपुत्रस्य सप्तसरमथोपिता ।

अक्षयौ किं नरश्रेष्ठ तस्य शसितुमहसि ॥ २ ॥

‘नरश्रेष्ठ ! सोमपुत्र बुधके यहाँ एक वषतक नियास

करनेसे पश्चात् इलाने क्या किया, यह ठीक-ठीक बतानेकी

हृषा करें” ॥ २ ॥

तयोस्तद् वाक्यमाधुर्यं निशम्य परिपृच्छतो ।

राम पुनरुवाचेमा प्रजापतिमुते कथाम् ॥ ३ ॥

प्रश्न करते समय उन दोनों भाइयोंकी वाणीमें बड़ा

माधुर्य था । उसे सुनकर श्रीरामने प्रजापतिपुत्र इलने विषयमें

फिर इस प्रकार कथा आरम्भ की—॥ ३ ॥

पुत्राय गते शूरे बुध परमबुद्धिमान् ।

सयने परमोदारमालुहाय महायशः ॥ ४ ॥

मास स स्त्री तदा भूत्वा रमयत्यनिश सदा ।

मास पुरुषभावेन धममुद्धि चकार स ॥ २२ ॥

‘वे एक मासतक स्त्री होकर निरन्तर बुध के साथ रमण

करते और फिर एक मासतक पुरुष होकर धमानुष्ठानमें मन

लगाते थे” ॥ २२ ॥

ततः सानजमे मासि इला न्योमसुतात् सुतम् ।

जनयामास सुश्रोणी पुरुवरसमूजितम् ॥ २३ ॥

‘सदन्तर नौ मासमें सुन्दरी इलाने सोमपुत्र बुधसे एक

पुत्रको जन्म दिया, जो उड़ा ही तेजस्वी और बलवान् था ।

उठना नाम था पुत्रका ॥ २३ ॥

जातमात्रे तु सुश्रोणी पितुर्हस्ते न्यवेशयत् ।

बुधस्य समर्पणं च इला पुत्रं महायलम् ॥ २४ ॥

‘उधके उठ महाबली पुत्रकी अङ्गान्ति बुध के ही समान

थी । यह जन्म लेते ही उपनयनने योग्य अग्न्याका बालक हो

गया । इसलिय सुन्दरी इलने उसे पिताके हाथमें धौप

दिया ॥ २४ ॥

बुधस्तु पुरुषीभूत स वै सप्तसरतरम् ।

कथाभी रमयामास धमयुक्ताभिरामयान् ॥ २५ ॥

‘वय पूरा होनेमें जितने मास होए थे, उतने समयतक

अब जब राजा बुध होते थे, तब तब मनको बगमें रखनेवाले

बुध धर्मयुक्त कथाओंद्वारा उनका मनोरञ्जन करते थे” ॥ २५ ॥

‘ध्यानेन्द्र इलेक ऐसा करनेपर बुधने उन्हें सात्वना देते

हुए अत्यंत अद्भुत बात कही—ध्यान् । तुम प्रकृतापूरक

यहाँ रहना स्वीकार करो । करमके महाबली पुत्र ! तुम्हें

छताप नहीं करना चाहिये । जब तुम एक वषतक यहाँ नियास

कर लोगे, तब मैं तुम्हारा हित साधन करूँगा” ॥ १९ २० ॥

तस्य तद् घचन ध्रुवा बुधस्याङ्घ्रिकमण ।

वात्साय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मादिना ॥ २१ ॥

‘पुण्यकमा बुधका यह वचन सुनकर उन ब्रह्मवादी

महामाने कथनानुसार राजाने यहाँ रहनेका निश्चय दिया ॥

इरायाँ श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकौनवतितम सर्ग ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वरामायण आर्जुनायक उत्तरकाण्डमें नवासीर्वाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

‘ध्यानेन्द्र इलेक ऐसा करनेपर बुधने उन्हें सात्वना देते

हुए अत्यंत अद्भुत बात कही—ध्यान् । तुम प्रकृतापूरक

यहाँ रहना स्वीकार करो । करमके महाबली पुत्र ! तुम्हें

छताप नहीं करना चाहिये । जब तुम एक वषतक यहाँ नियास

कर लोगे, तब मैं तुम्हारा हित साधन करूँगा” ॥ १९ २० ॥

तस्य तद् घचन ध्रुवा बुधस्याङ्घ्रिकमण ।

वात्साय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मादिना ॥ २१ ॥

‘पुण्यकमा बुधका यह वचन सुनकर उन ब्रह्मवादी

महामाने कथनानुसार राजाने यहाँ रहनेका निश्चय दिया ॥

इरायाँ श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकौनवतितम सर्ग ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वरामायण आर्जुनायक उत्तरकाण्डमें नवासीर्वाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

‘ध्यानेन्द्र इलेक ऐसा करनेपर बुधने उन्हें सात्वना देते

हुए अत्यंत अद्भुत बात कही—ध्यान् । तुम प्रकृतापूरक

यहाँ रहना स्वीकार करो । करमके महाबली पुत्र ! तुम्हें

छताप नहीं करना चाहिये । जब तुम एक वषतक यहाँ नियास

कर लोगे, तब मैं तुम्हारा हित साधन करूँगा” ॥ १९ २० ॥

तस्य तद् घचन ध्रुवा बुधस्याङ्घ्रिकमण ।

वात्साय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मादिना ॥ २१ ॥

‘पुण्यकमा बुधका यह वचन सुनकर उन ब्रह्मवादी

महामाने कथनानुसार राजाने यहाँ रहनेका निश्चय दिया ॥

विषयमे ऐषा काइ उपाय कीजिये, जिसमे इनका कल्याण हो' ॥
 तेया सप्रदतामेय छिन्न सह महामभि ।
 कर्मस्तु महातेजास्तदाग्रमुपागमत् ॥ ८ ॥
 'ये सब इस प्रकार बातचीत कर ही रह थे कि महाराम
 द्विजोके साथ महातेजस्वी प्रजापति कदम भी उस आभनपर
 आ पहुँच ॥ ८ ॥
 पुलस्त्यश्च मनुश्चैव उपद्रकारस्तयं च ।
 आश्रितश्च महातेजास्तमाग्रमुपागमत् ॥ ९ ॥
 'साम ही पुलस्त्य, ऋतु, वयङ्कार तथा महातेजस्वी आश्रित
 भी उस आभनपर पड़े ॥ ९ ॥
 ते सर्वे हृष्टमनस्त परस्परसमागमे ।
 द्वितैरिणो याह्निकपते पृथग्वाप्यान्यत्रागुत् ॥ १० ॥
 'परस्पर मिलनेपर व समी महरि प्रसन्नचित्त हो बाह्यिकदेवके
 स्वामी राजा इलका हित चाहते हुए भिन्न भिन्न प्रकारकी
 राय देने लगे ॥ १० ॥
 कर्मस्त्यब्रवीद् वान्य सुतार्थ परम हितम् ।
 द्विजा भृशुतमद्वाक्य यन्त्रेय पाथिरन्यहि ॥ ११ ॥
 'तब कदमने पुत्रक लिय अर्पण हितकर बात की—
 'ब्राह्मणो ! आपलोग मेरी बात सुनो, जा इस रागार लिये
 कल्याणकारिणी देण ॥ ११ ॥
 नान्य पद्यामि भैषज्यमन्तरा वृषभपञ्चम् ।
 नाश्वमेधात् परो यान् प्रियश्चैव महामन ॥ १२ ॥
 'मैं भगवान् चक्ररुके सिवा दूसरे किसीका ऐसा नहीं
 देखता, जो इस योगकी दवा कर सके तथा अश्वमेध करने
 वरकर दूसरा काइ ऐसा यज्ञ नहीं है, जो महाराम महादेवकी
 प्रिय हो ॥ १२ ॥
 तस्माद् यजामहे सर्वे पाथिराग्रे दुरासदम् ।
 कर्मैर्ननुवास्तु सर्व एव द्विजर्गभा ॥ १३ ॥
 रोचयन्ति स्म त यान् ऋत्रम्याराधन प्रति ।
 'अतः हम सब लोग रात्रि इलकालयउत्तरदुष्कर यान
 का अनुष्ठान करें ॥ कर्मके ऐसा करनेपर उन सभी श्रेष्ठ
 ब्राह्मणोंन भगवान् रुद्रकी आराधनाके लिये उस यज्ञका
 अनुष्ठान ही अच्छा समझा ॥ १३ ॥
 सप्रतम्य तु राजारि शिष्य परपुरजय ॥ १४ ॥
 मरुत इति निष्यातस्व यश्च समुपाहरत् ।
 'सबसे शिष्य तथा शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले
 सुरभिद राजारि मरुतने उस यज्ञका आयोजन किया ॥ १४ ॥
 ततो यशो महानासीद् युधाधमस्यमीपत ॥ १५ ॥
 यद्रथ परम तोयमाप्तागम महायदा ।
 'जिसे तो युद्धके आभनक निकट वह महान् यज्ञ सम्पन्न
 हुआ तथा उसने महानज्बी रुद्रदेवका यज्ञ सत्तय प्राप्त
 हुआ ॥ १५ ॥
 मय यजे समाते तु प्रीत परमया मुदा ॥ १६ ॥

उमापतिद्विजान् सर्गानुवाच इत्युत्तनिधौ ।
 'यान् समस्त हानिपर परमानन्दमे परिपूजित्त हुए
 भगवान् उमापतिने इलके पास ही उन सब ब्राह्मणोंसे
 कहा— ॥ १६ ॥
 प्रीतोऽसि हयमघेन भक्त्या च द्विजसत्तमा ॥ १७ ॥
 अस्य याह्निकेनैव किं करोमि प्रिय शुभम् ।
 'द्विजश्रेष्ठगण ! मैं तुम्हारी भक्ति तथा इस अश्वमेध
 यज्ञ अनुष्ठानने बहुत प्रसन्न हूँ । बन्नाभ, मैं कहिकुनराय
 इलका कीन-खा गुम एव प्रिय काय कर्म ॥ १७ ॥
 तथा यद्वति देवदो द्विजास्ते सुसमाहिता ॥ १८ ॥
 प्रसादयन्ति देवद यथा म्यात् पुरुरस्थिला ।
 'देवभर शिष्य ऐषा कहनेपर व सब ब्राह्मण एकाम्रचित्त
 हो उन देवाधिदेवका इस तरह प्रार्थना करनेकी चला करने
 लगे, जिसमे नारी इला सदान लिय पुण्य इल ॥ आप १८ ॥
 तन प्रीतो महादेव पुरुरस्थ यदौ पुन ॥ १९ ॥
 इत्ययं सुमहातेजा तत्त्वा चान्तरधीयन् ।
 'तब प्रथम हुए महानेज्बी महादेवकीने श्लाघो मशफ
 लिये पुरुरस्थ प्रदान कर दिया और ऐसा करक व वही
 अन्तधान हो गये ॥ १९ ॥
 निवृत्ते हयमेधे च गते चार्दनं हरे ॥ २० ॥
 यथागत द्विजा सर्वे तेऽग्न्यन् दीर्घदर्शिन ।
 'अश्वमेध यज्ञ समाप्त होनेपर जब महानेज्बी दगन दकर
 अटाय हो गये, तब व सब दीर्घदर्शी ब्राह्मण हैमे आय गे,
 बैसि लेगे ॥ २० ॥
 रात्रा तु याह्निकमुत्पन्न मध्यदेशे शत्रुसत्तमम् ॥ २१ ॥
 निवेद्यामास पुर प्रतिष्ठान यशस्करम् ।
 'रात्रि इलके याह्निक यज्ञका छद्मकर मध्यदेशे
 यशुनान् सगमके निकट) एक परम उत्तम एव यशस्वी नगर
 बसाया, जिसका नाम था प्रतिष्ठानपुर ॥ २१ ॥
 शशरि दुश्च शत्रुपिशाहिर परपुरजय ॥ २२ ॥
 प्रतिष्ठाने इले रात्रा प्रतापतिमुनो यला ।
 'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले राजारि शशरि दुश्च
 यज्ञका यज्ञ अग्न्य किया और प्रतापति कर्मक युध सत्तम
 राजा इल प्रतिष्ठानपुरन शापक हुए ॥ २२ ॥
 स काले प्रातर्गोहोर्कमिले प्रातमनुत्तमम् ॥ २३ ॥
 पेल्ल पुरुरथा रात्रा प्रनिष्ठानमरातगत् ।
 'सबय अनेकर राज्ञ इस क्षीर छद्मकर परम उत्तम
 ब्रह्मलक्षका प्राप्त हुए और इला पुत्र यश पुरुरवाले
 प्रतिष्ठानपुरका रात्र प्रात किया ॥ २३ ॥
 इदो हयमेधस्य प्रभाय पुरुरभ्यौ ।
 स्त्रीभूत पौर्य मे ये यथान्यदपि दुर्गमम् ॥ २४ ॥

१ प्रत्येक दूत गणेश वरुण वरुण दुष्टा वरुणान् इत्येवमेव
 नान् हो शरीरद्वयका प्रीतिगुत् ॥ १ ॥

‘पुरुषश्रेष्ठ भरत और लक्ष्मण ! अभ्यमेघ यज्ञका ऐसा यज्ञने प्रभावते पुरुषत्व प्राप्त कर लिया तथा और भी दुर्लभ ही प्रभाव है। जो स्त्रीरूप हो गये थे, उन राजा इन्होंने हथ वस्तुएँ हस्तगत कर लीं’ ॥ २४ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आयरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें नववाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितम सर्गः

श्रीरामके आदेशसे अश्वमेध यज्ञकी तैयारी

एतद्राज्याय काष्ठत्सो आह्वयाममितप्रभ ।

लक्ष्मण पुनरेवाह धर्मयुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥

अपने दोनों भाइयोंको यह क्या सुनाकर अमिततेजस्वी

श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे पुन यह धर्मयुक्त बात कही—

यत्किञ्च धामदेव च जागलमिध काश्यपम् ।

द्विजाश्च सर्वप्रदानभ्यमेवपुरस्कृतान् ॥ २ ॥

एतान् सर्वान् समानीय भद्रपित्या च लक्ष्मण ।

ह्य लक्ष्मणस्तस्मिन् विमोक्षयामि समाधिना ॥ ३ ॥

‘लक्ष्मण ! मैं अभ्यमेघयज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य

एव सर्वश्रेष्ठ वशिष्ठ, धामदेव, जाबालि और काश्यप आदि

सभी द्विजोंको बुलाकर और उनसे सलाह लेकर पूरी सावधानी

के साथ शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न घोड़ा छोड़ूँगा’ ॥ २ ॥

तद् वाक्य राघवेणोक्तं श्रुत्वा त्यक्तविप्रम् ।

द्विजान् स्वान् समाह्वय क्षयामास राघवम् ॥ ४ ॥

खुदायजीके कहे हुए इस वचनको सुनकर क्षीरमामी

लक्ष्मणने समस्त ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें श्रीरामचन्द्रजीसे

मिलाया ॥ ४ ॥

ते ह्य्वा देवस्तकाश कृतपादाभिवन्दनम् ।

राघव सुदुराधर्ममाशीर्षि समपूजयन् ॥ ५ ॥

उन ब्राह्मणोंने देवा, देवतुल्य तेजस्वी और अत्यन्त

दुःख श्रीराघवेन्द्र हमारे चरणोंमें प्रणाम करके खड़े हैं, सब

उन्होंने शुभ आशीर्वादोंद्वारा उनका शक्कर किया ॥ ५ ॥

प्राञ्जलिं स तदा भूत्या राघवो द्विजसत्तमान् ।

उवाच धर्मसयुक्तमभ्यमेधाधितं वच ॥ ६ ॥

उस समय खुदबूझपण श्रीराम हाथ जोड़कर उन श्रेष्ठ

ब्राह्मणोंसे अभ्यमेघ यज्ञने विषयमें धर्मयुक्त श्रेष्ठ वचन

बोले ॥ ६ ॥

तेऽपि रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्या धूपपञ्चम् ।

अभ्यमेघ द्विजा सर्वे पूजयन्ति स्म सयशः ॥ ७ ॥

वे सब ब्राह्मण भी श्रीरामकी यह बात सुनकर भगवान्

शर्करकी प्रणाम करके सब प्रकारसे अभ्यमेघ यज्ञकी सराहना

कते लगे ॥ ७ ॥

स तेषां द्विजमुप्याना यास्यमद्भुतदुःखानम् ।

अभ्यमेधाधितं धृष्ट्या मृदा प्रीतोऽभवत् तदा ॥ ८ ॥

अभ्यमेघ यज्ञ नियममें उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका अद्भुत

ज्ञानसे युक्त वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने बड़ी प्रसन्नता हुई ॥

विज्ञाय कम तत् तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।

प्रेपयस्व महाबाहो सुप्रीयाय महात्माने ॥ ९ ॥

यथा महर्द्धिर्हरिर्बहुभिश्च घनौकसाम् ।

सार्धमागच्छ भद्र ते अनुभोक्तुं महोत्सवम् ॥ १० ॥

उस कर्मक िये उन ब्राह्मणोंकी स्वीकृति जानकर श्रीराम

लक्ष्मणसे बोले—‘महाबाहो ! तुम महात्मा यानरराज सुप्रीवके

पास यह सवेष्ट भेज कि ‘कपिश्रेष्ठ ! तुम बहुत-से विशालकाय

वनवासी वानरोंके साथ यहाँ यज्ञ-महोत्सवका आनन्द लेनेके

लिये आओ । तुम्हारा कल्याण हो’ ॥ ९ ॥

विभीषणश्च रक्षाभिः फामनैवहृमिषुत ।

अभ्यमेघ महायज्ञमायात्यतुल्यिप्रम् ॥ ११ ॥

‘साथ ही अतुल्य-परामर्शी विभीषणको भी यह सूचना

दो कि ‘वे इच्छानुसार चलेनाले बहुत से राक्षसोंके साथ

हमारे महान् अभ्यमेघ यज्ञमें पधारें’ ॥ ११ ॥

राजानश्च महाभागा ये मे प्रियचिकीर्षवः ।

सानुगा क्षिप्रमायातु यज्ञ भूमिनिरीक्षका ॥ १२ ॥

‘इनके विवा मेरा प्रिय करनेकी इच्छावाले जो महाभाग

राजा हैं, वे भी यज्ञ भूमि देखनके लिये तेवकोंसहित शीघ्र

यहाँ आयें ॥ १२ ॥

देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिता ।

आमत्रयस्व तान् सयानभ्यमेधाय लक्ष्मण ॥ १३ ॥

‘लक्ष्मण ! जा धर्मनिष्ठ ब्राह्मण कायबरा दूधरे-दूधरे देशोंमें

चले गये हैं, उन सबको अपने अभ्यमेघ यज्ञने लिये

आमन्त्रित करो ॥ १३ ॥

श्रुपयश्च महाबाहो आहूयन्ता तपोधनाः ।

देशान्तरगता सर्वे सक्षराश्च द्विजातयाः ॥ १४ ॥

‘महाबाहो ! तपोधन ऋषियोंको तथा अन्य राज्योंमें रहने

वाले क्षियोंसहित समस्त ब्रह्मर्षियोंको भी बुला लो ॥ १४ ॥

तथैव तालावचरास्तथैव नटनर्तका ।

यज्ञवाटश्च सुमहान् गोमत्या नैमिषे वने ॥ १५ ॥

अष्टाप्यता महाबाहो तज्जि पुण्यमनुत्तमम् ।

‘महाबाहो ! ताल छेकर रगभूमिमें सचरण करनेवाले सूत्र

घार तथा नट और नर्तक भी बुला लिये जायें । नैमिवारण्यमें

गोमतीके तटपर विशाल यज्ञमण्डप बनानेकी आशा दो; क्योंकि

यह वन बहुत ही उत्तम और पवित्र स्थान है ॥ १५ ॥

शातयश्च महायाहो प्रवर्तन्ता समतत ॥ १६ ॥
वातदाश्चापि धर्मज्ञा फलमुख्यमनुत्तमम् ।

अनुभूय महायश नैमिषे रघुनन्दन ॥ १७ ॥

महाशत्रु रघुनन्दन ! वहाँ यशकी निर्विघ्नसमाप्तिके
लिये सत्र शान्ति-विधान प्रारम्भ करा दो । नैमिषारण्यमें
सैकड़ों धर्मज्ञ पुरुष उस परम उत्तम और श्रेष्ठ महायशकी
देखकर कृताभ हैं ॥ १६ १७ ॥

तुष्टं पुष्टं सर्वोऽसौ मानितश्च ययात्रिधि ।

प्रतिपास्यति धमश शीघ्रमामज्यता जन ॥ १८ ॥

महश लक्ष्मण ! शीघ्र लोगोंको आमन्त्रित करा और जो
लगा आइँ, वे सब विधिपूर्वक तुष्ट, पुष्ट एवं सम्मानित
हाकर बैठें ॥ १८ ॥

शत बाहसहस्राणा तण्डुलाना धपुष्पताम् ।

अयुत तिलमुद्रस्य प्रयात्वमे महाबल ॥ १९ ॥

चणकाना कुलित्याना मागणा लणस्य च ।

महाबली सुमित्राकुमार ! खलों बोझ डानेवाले पत्रु

खड़े दानेवाले चावल लेकर और दस हजार पत्रु तिल, मूँग,

चना, कुल्फी, उड़द और नमकके बोझ लेकर आगे चले ॥

अतोऽनुरूप स्नेह च गन्ध सक्षिप्तमेव च ॥ २० ॥

सुवर्णकोट्यो बहूला हिरण्यस्य शतोत्तरा ।

अप्रतो भरत कृत्वा गच्छत्वमे समाधिना ॥ २१ ॥

इसीके अनुरूप ची, तेल, दूध, दही तथा बिना पिते

हुए चन्दन और बिना पिते हुए सुगन्धित पदार्थ भी भेजे

जाने चाहिये । भरत सी करोड़ों भी अधिक सोने-चाँदीके

सिक्के साथ लेकर पहले ही जायँ और बड़ी शायगानीके साथ

यात्रा करें ॥ २० २१ ॥

अन्तरापणधीयश्च सर्वे च नटनर्तका ।

सूदा नार्यश्च यद्यो नित्य यौगनशालिन ॥ २२ ॥

मागमें आवश्यक वस्तुओंके वय-विक्रयके लिये जगह

जगह बाजारों भी लगनी चाहिये, अत इस्के प्रवर्तक बणिक्

एव व्यवसायीलगा भी जाना करें । समस्त नट और

नर्तक भी जायँ । बहुत-से रक्षार्थ तथा सदा युवावस्थति

होयों भीमदामायेन वाक्सीकीये आद्रिकाण्ये उत्तरकाण्डे एकनवतितम सर्ग ॥ ११ ॥

इम प्रश्नर धीरात्मैर्निर्निर्णय अचरामाण आद्रिकाण्ये उत्तरकाण्डे एकनवतितम सर्ग ॥ ११ ॥

दिनवतितमः सर्गः

धीरामके अश्वमेध-यज्ञमें दान मानकी नियेपता

तत् सर्वमखिलेनानु प्रस्थाप्य भरताग्रज ।

हय लणसमपन्नं कृष्णसार सुमोच ॥ १ ॥

इस प्रकार सब सामग्री वृष्णरूपसे भेजकर भरतक बड़े

भाद धीरामने उत्तम लण्डोंसे सम्पन्न तथा कृष्णवार मृगके

समान काल रंगवाले एक बड़ेकी छाड़ा ॥ १ ॥

श्रुतिगिर्भलक्ष्मण साधमरये च विनियुज्य च ।

सुगन्धित होनेवाली स्त्रियों भी यात्रा करें ॥ २२ ॥

भरतेन तु सार्धं ते यान्तु सैन्यानि चाग्रतः ।

नैगमान् याल्लुद्धाश्च छिन्नाद्य सुसमाहितान् ॥ २३ ॥

कमान्तिकान् वधकिन काशाध्यशश्च नैगमान् ।

मम मायुस्तथा सर्वा कुमारत पुराणि च ॥ २४ ॥

काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षाया साक्ष्य कमणि ।

अग्रतो भरत कृत्वा गच्छत्वमे महायश ॥ २५ ॥

भरतक साथ आगे आगे सेनाएँ भी जायँ । महायशसी

भरत शास्त्रबन्ता विद्वानों, बालों, बूढ़ों, एकाम वित्तवाल

ब्राह्मणों, काम करनेवाले नौकरों, वस्त्रियों, आराध्यों, वैदिकों,

मेरी सब माताओं, कुमारोंक अन्त पुरों (भरत आदिकी

स्त्रियों), मेरी पत्नीकी सुवर्णमयी प्रतिमा तथा यह नर्मकी

दीक्षाके जानकार ब्राह्मणोंको आगे करने पहले ही यात्रा करें ॥

उपकाया महाहाथ पाधिमाना महौजसाम् ।

सानुगाना नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महाबल ॥ २६ ॥

अन्नपानानि वस्त्राणि अनुगाना महात्मानाम् ।

तत्पश्चात् महाबली नरश्रेष्ठ धीरामने सैन्यसहित महा

तेजस्वी नरेशोंने ठहरनेके लिय बहूमूल्य वाद्यन्याय याने

(खेमे आदि लगाने) क लिये आदेश दिया तथा तैवकों

सहित उन महात्मा नरेशों लिये अन्न पान एव वस्त्र आदि

की भी व्यवस्था करायी ॥ २६ ॥

भरत स तदा यात शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ २७ ॥

यानराध्य महात्मान सुम्रीनसहितस्तदा ।

निग्राणा प्रनरा सर्वे चमुश्च परियेपणम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर शत्रुघ्नसहित भरतने नैमिषारण्यका प्रस्थान

किया । उस समय वहाँ सुम्रीनसहित महात्मा यानर जिनन भी

श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ उपस्थित थे, उन सबका रमाद पराधेना

काम करते थे ॥ २७ २८ ॥

निभीपणश्च रक्षोभि रतिभिश्च बह्मिवृत ।

श्रुयीणामुग्रतपसा पूजा चमे महात्मानाम् ॥ २९ ॥

स्त्रियों तथा बहुतने राक्षसोंक साथ निभीपण उग्र तपस्वी

महात्मा सुमियोंक स्वागत-स्तरापाय काम होमाते थे ॥ २९ ॥

ततोऽन्यगच्छत् काकुत्स्थ सद सैन्येन नैमिषम् ॥ ३० ॥

श्रुतिर्बोधित एवमाद्य उच अश्वमेध रक्षाद न्य निमुव

करके भीखुनापसी तेनक साथ नैमिषारण्यको गये ॥ २ ॥

यज्याद्य महापादद्वय परममद्भुतम् ।

प्रहृष्यन्तु लेमे धीमानिति च सोऽग्रणीत् ॥ ३ ॥

वहाँ बन हुए अत्यन्त अद्भुत पद-भटपदों देखकर

महाबाहु श्रीरामको अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई और वे बोले—
(बहुत सुन्दर है) ॥ ३ ॥

नैमिषे घसतस्तस्य सत्र पत्र नराधिपा ।

आनिन्युरूपहारश्च तान् राम प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥

नैमिषारण्यमें निरास करते समय श्रीरामचन्द्रजीने पास
भूमण्डलके सभी नरेश भौति भौतिवे उपहार ले आये और
श्रीरामचन्द्रजीने उन सबका स्वागत उत्तम किया ॥ ४ ॥

अन्नपानादियस्त्राणि सर्वोपकरणानि च ।

भरत सहशतान्को नियुक्तो राजपूजने ॥ ५ ॥

उन्हें अन्न, पान, वस्त्र तथा अन्य सब आवश्यक सामान
दिये गये । शतानुसहित भरत उन राजाओंके स्वागत-सत्कारमें
नियुक्त किये गये थे ॥ ५ ॥

यानरश्च महात्मान सुग्रीवसहितास्तदा ।

परिधेयण च विप्राणा प्रयत्ना सम्प्रचक्रिरे ॥ ६ ॥

सुग्रीवसहित महामनस्वी यानर परम पवित्र एव संयत
चित्र हो उस समय वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन परोसते थे ॥ ६ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिर्व्यदुभिः सुसमाहित ।

ऋषीणामुग्रतपसा स्निकर सम्पद्यत ॥ ७ ॥

बहुतेरे रक्षसोंने विरे हुए विभीषण अत्यन्त सावधान
रहकर उग्र तपस्वी ऋषियोंके सेवाकार्यमें लग्न थे ॥ ७ ॥

उपकार्या महाहाश्च पार्ष्णिना महात्मनाम् ।

साजुगाना नरश्रेष्ठो व्याधिदेश महाबल ॥ ८ ॥

महाबली नरश्रेष्ठ श्रीरामने सेवकोंसहित महामनस्वी
भूषालोंको ठहरानेके लिये बहुमूल्य वायस्वान (सेमे) दिये ॥
एव सुविहितो यशो ह्यश्वमेधो ह्यनर्तत ।

लक्ष्मणेन सुगुप्ता सा ह्यचया प्रवर्तत ॥ ९ ॥

इस प्रकार सुन्दर ढंगसे अश्वमेध यज्ञका काय प्रारम्भ
हुआ और लक्ष्मणके संरक्षणमें रहकर पांडेक भूमण्डलमें
भ्रमणका काय भी मलीमौति सम्पन्न हो गया ॥ ९ ॥

इदं राजसिंहस्य यज्ञप्रवरमुत्तमम् ।

नाम्यः शत्रोऽभयत् तत्र हयमेधे महात्मन ॥ १० ॥

छन्दो देहि देहीति यायत् तृण्यन्ति याचकाः ।

तायत् स्राणि दत्तानि ऋतुमुख्ये महारामन ॥ ११ ॥

त्रिभिधानि च गौडानि स्वाण्डवानि तथैव च ।

राजाओंमें सिंदके समान पराक्रमी महात्मा श्रीरघुनाथजी
का यह श्रेष्ठ यज्ञ इस प्रकार उत्तम विधिसे होने लगा । उस
अश्वमेध यज्ञमें वेगल एक ही बात सच और सुनायी पड़ती
थी—बसतक याचक सत्र न हों, तबतक उनकी इच्छाके
अनुसार सच वस्तुएँ दिये जाओ, इसके सिवा दूसरी बात
नहीं सुनायी देती थी । इस प्रकार महात्मा श्रीरामने श्रेष्ठ
यज्ञमें नाना प्रकारके गुड़के बने हुए खाद्य पदार्थ और
हृषार्थ श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिरमित आपरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बानवर्षी सप्त पूरा हुआ ॥ १२ ॥

खाण्डव आदि तबतक निरन्तर दिये जाते थे जबतक कि
पानेवाले पूर्णतः सन्तुष्ट होकर बस न कर दें ॥ १० ॥ ११ ॥

न नि स्रुतं भवत्योष्ठाद् घचन यात्रादधिनम् ॥ १२ ॥

तात्राद् यानररक्षोभिर्दत्तमेगम्यदृश्यत ।

जबतक यात्राओंमें मनकी यात्र ओठसे बाहर नहीं निकलने
पाती थी; तबतक ही राक्षस और यानर उन्हें उनकी अभीष्ट
वस्तुएँ दे देते थे । यह बात सजने देली ॥ १२ ॥

न कश्चि मलिनो यापि दीनो वाप्यथवा दृश ॥ १३ ॥

तस्मिन् यज्ञवरे राशो हृष्टपुष्टजनावृते ।

राजा श्रीरामचन्द्र उस श्रेष्ठ यज्ञमें हृष्ट पुष्ट मनुष्य भर हुए
थे, वहाँ कोई भी मलिन, दीन अथवा दुर्लभ नहीं दिखायी
देता था ॥ १३ ॥

ये च तत्र महारामानो मुनयश्चिरजीविन ॥ १४ ॥

नास्मरस्तादृश यज्ञ दानौघसमलष्टतम् ।

उस यज्ञमें जो चिरजीवी महात्मा मुनि पचारे थे, उन्हें
ऐसे किसी भी यज्ञका स्मरण नहीं था; जिसमें दानकी ऐसी
धूम रही ॥ १४ ॥ यह यज्ञ दानवादिसे पूर्णतः अलङ्कृत दिखायी
देता था ॥ १४ ॥

य दृश्यवान् सुवर्णेन सुवर्णं लभते सः सः ॥ १५ ॥

विचारार्थं लभते विच रत्नार्थं रत्नमेव च ।

जिते मुण्डर्षी आवश्यक्ता थी; वह सुवर्ण पाता था,
घन चाहनेवालेको घन मिलता था और रत्नकी इच्छावालेको
रत्न ॥ १५ ॥

हिरण्यानां सुवर्णानां रत्नानामथ वाससाम् ॥ १६ ॥

अनिश दीयमानानां राशिः समुपदृश्यते ।

वहाँ निरन्तर दिये जानेवाले चाँदी, सोने, रत्न और
वस्त्रोंके ढेर लगे दितायी देते थे ॥ १६ ॥

न शक्यं न सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ १७ ॥

ईदृशो हृष्टपूर्वो न एवमृच्छुस्तपोधना ।

वहाँ आये हुए तपस्वी मुनि कहते थे कि ऐसा यज्ञ तो
पदल कभी इन्द्र, वायु, यम और वरुणके वहाँ भी नहीं
देखा गया ॥ १७ ॥

सर्वथं यानरास्तस्य सत्रैव च राक्षसाः ॥ १८ ॥

यासोधनानां कामेभ्यः पूर्णहस्ता ददुश्चराम् ।

यानर और राक्षस सर्वत्र हाथोंमें देनेकी सामग्री लिये
खड़े रहते थे और वस्त्र, घन तथा यन्त्रकी इच्छा रखनेवाले
याचकोंको अधिक-से अधिक देते थे ॥ १८ ॥

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वित ।

सर्वस्वरमथो साम्र वसते न च हीयते ॥ १९ ॥

राजसिंह भगवान् श्रीरामका ऐसा सर्वगुणसम्पन्न यज्ञ एक
बर्षसे भी अधिक कालतक चलता रहा । उसमें कभी किसी
बातकी कमी नहीं हुई ॥ १९ ॥

उत्तरकाण्डे द्विनावतितम सप्त ॥ १२ ॥



त्रिनवतितमः सर्गः

श्रीरामके यज्ञमें महर्षि वाल्मीकिका आगमन और उनका रामायण
गानके लिये कुश और लवको आदेश

धर्ममाने तथाभूते यज्ञे च परमाद्भुते ।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्भगवानृषि ॥ १ ॥

इस प्रकार वह अत्यन्त अद्भुत यज्ञ जब चालू हुआ,
उस समय भगवान् वाल्मीकि मुनि अपने शिष्यों साथ उसमें
श्रीप्रवार्त्तक पधारे ॥ १ ॥

स इष्ट्वा दिव्यस्तकाशः यज्ञमद्भुतदर्शनम् ।
पकान्तं श्रुत्वाहाता चकार उदजाङ्गुभान् ॥ २ ॥

उन्होंने उस दिव्य प्रब अद्भुत यज्ञका दर्शन किया और
श्रुतियोंके लिये जो बाड़े बने थे, उनके पास ही उन्होंने अपने
लिये भी सुन्दर पर्णशालाएँ बनवायीं ॥ २ ॥

शकटाश्च बहून् पूजान् फलमूलाश्च शोभनान् ।
घाल्मीकिराटे रुचिरे स्थापयन्निरुदरतः ॥ ३ ॥

वाल्मीकिजीके सुन्दर बाड़ेके समीप अन्न आदिसे भरे
भूरे बहुतसे छकड़े लड़े कर दिये गये थे । साथ ही अच्छे
अच्छे फल और मूल भी रख दिये गये थे ॥ ३ ॥

आसीत् सुपूजितो राज्ञा मुनिभिश्चमहात्मभिः ।
घाल्मीकिः सुमहातेजा यज्ञसत् परमात्मवान् ॥ ४ ॥

राजा भीरम तथा बहुसंख्यक महारामा मुनियोंद्वारा
मलीमौलि पूजित एवं सम्मानित हो महातेजवी आत्मशान्ति
वाल्मीकि मुनिने बड़े सुखसे वहाँ निवास किया ॥ ४ ॥

स शिष्यान्प्रसीदधृष्टौ युवा गत्वा समाहितौ ।
हृत्स्नं रामायणं काव्यं गायता परया मुदा ॥ ५ ॥

उन्होंने अपने दृष्ट पुत्र दो शिष्योंके कहा—‘तुम दोनों
भाई एकप्रचिन्त हो छव और घूम फिरकर यड़े आनन्दके
साथ सम्पूर्ण रामायण-काव्यका गान करो ॥ ५ ॥

अपिग्राह्येषु पुण्येषु ब्राह्मणानसंघेषु च ।
रथ्यासु राजमागेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥ ६ ॥

‘श्रुतियों और ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानोंपर, गलियोंमें,
राजमार्गोंपर तथा राजाओंके बाहसानोंमें भी इस काव्यका
गान करना ॥ ६ ॥

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते ।
श्रुत्विजामप्रतश्चैत्र तत्र गेयं निदोषतः ॥ ७ ॥

‘भीरमचन्द्रजीका जो यह बना है, उससे दरवाजेपर,
जहाँ ब्राह्मणोंका यज्ञकाय कर रहे हैं, वहाँ तथा श्रुतिश्रौत
आगे भी इस काव्यका विशेषरूपसे गान करना चाहिये ॥ ७ ॥

इमानि च फलान्यत्र स्वाहूनि विधिधानि च ।
जातानि पर्वताग्रेषु आत्माघात्याद्य गायताम् ॥ ८ ॥

‘यहाँ पवन-शिखरोंपर नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं

मीठे फल लगे हैं, (भूज लगेनेपर) उनका स्वाद ल-लकर
इस काव्यका गान करने रहना ॥ ८ ॥

न यास्यथ अम वत्सी भक्षयित्वा फलान्यत्र ।
मूलानि च सुमृणानि न रागात् परिहास्यथ ॥ ९ ॥

‘बच्चो ! यहाँके सुमधुर फल-मूलोंका भक्षण करनेसे न
तो तुम्हें कभी थकावट होगी और न तुम्हारा गलकी मधुरता
ही नष्ट होने पायेगी ॥ ९ ॥

यदि शश्वदापयेद् राम भजनाय महीपति ।
श्रुतीनामुपगच्छाना यथायोगं प्रवर्तताम् ॥ १० ॥

‘यदि महाराज श्रीराम तुम दोनोंको गान सुननेके लिये
सुलावें तो तुम उनसे तथा वहाँ बैठे हुए श्रुति-मुनियोंमें यथा
योग्य त्रिनवर्ष बर्ताव करना ॥ १० ॥

दिशसे विज्ञाति सगा गेया मधुरया गिरा ।
प्रमाणैर्वहुभिस्तत्र ययोद्दिष्ट मया पुरा ॥ ११ ॥

‘मैंने पहले भिन्न भिन्न सख्यावाले लोकोंसे युक्त रामायण
काव्यके सगोंका विश्व तरह तुम्हें उपदेश दिया है, उद्यीने
अनुसार प्रतिदिन बीच-बीच सगोंका मधुर स्वरसे गान करना ॥

लोभश्चापि न कतव्यं स्वल्पेऽपि धनयाञ्छया ।
किं धनेनाधमस्थाना फलमूलादिना सदा ॥ १२ ॥

‘धनकी इच्छासे छोड़ा-या भी लोभ न करना, आभयमें
रहकर फल-मूल भोजन करनेवाले वनवासियोंको धनसे
क्या काम ? ॥ १२ ॥

यदि पृच्छेत् स काष्ठुत्स्यो युग कस्येति दारकौ ।
वाल्मीकिरथ शिष्यो ह्यौ व्रतमेव नराधिपम् ॥ १३ ॥

‘यदि श्रीरघुनाथजी पूछें—‘बच्चा ! तुम दोनों किस
पुत्र हो ?’ तो तुम दोनों महाराज्यमें इतना ही कह देना कि
हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकिके शिष्य हैं ॥ १३ ॥

इमास्त श्री सुमधुरा म्यानं चापूरदशनम् ।
मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायता विगतन्वरी ॥ १४ ॥

‘य वीणाके सात तार हैं । इनमें बड़ी मधुर आवाज
निकलती है । इसमें अगूरु स्वरोंका प्रस्थान करनेवाला य म्यान
बने हैं । इनके स्वरोंको झटून कर—मिलाकर सुमधुर
स्वरमें तुम दोनों भाई काव्यका गान करो और सगया
निम्नित रहो ॥ १४ ॥

आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चात्राप्य पार्थिवम् ।
पिता हि सञ्जयताना रात्रा भयति धमनः ॥ १५ ॥

‘आरम्भने ही इस काव्यका गान करना चाहिये । तुम
लेगे ऐल काई बड़ा न करना, जिसमें राक्षस भयमान हो
क्योंकि राजा धनकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका पिता होता है ॥

हे । इसमें आपके जीवनतककी सारी बातें आ गयी हैं ॥ २८ ॥
यदि बुद्धिः कृता राजञ्जुनाय महारथ ।
कर्मन्तरे क्षणीभूतस्तच्छृणुष्व सहाजुजः ॥ २९ ॥
'महारथी नरेण । यदि आपने इसे सुननेका विचार किया
हो तो यश-कर्मसे अवकाश मिलनेपर इसके लिये निश्चित समय
निकालिये और अपने भाइयोंके साथ बैठकर इसे नियमित
रूपसे सुनिये' ॥ २९ ॥

श्राद्धमित्यब्रवीद् रामस्तौ चानुशाप्य राघवम् ।
प्रहृष्टौ जग्मवुः स्थानं यथास्ते मुनिपुङ्गव ॥ ३० ॥
तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'बहुत अच्छा । हम इस
काव्यको सुनेंगे ।' तत्पश्चात् श्रीसुनायजीकी आज्ञा से दोनों
भाई कुश और लव प्रभनतापूर्वक उस स्थानपर गये, जहाँ
मुनिवर वाल्मीकिजी ठहरे हुए थे ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयं आदिकार्षे उत्तरकाण्डे चतुर्ववतितम सर्गः ॥ १५ ॥
इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषरामायण आदिकार्षे उत्तरकाण्डमें श्रीरामचरितं सप्त पूरा हुआ ॥ १५ ॥

पञ्चनवतितमः सर्गः

श्रीरामका सीतासे उनकी श्रद्धा प्रमाणित करनेके लिये शपथ करानेका विचार

रामो वह्न्यहान्येयं तद् गीत परम पुभम् ।
शुभ्राय मुनिभि सार्धं पार्थिवैः सह धारय ॥ १ ॥
इस प्रकार श्रीसुनायजी श्रुतिगो, राजाओं और जानकोंके
साथ कई दिनोंतक वह उत्तम रामायण-गान सुनते रहे ॥ १ ॥
तस्मिन् गीते तु विशाया सीतापुत्रौ कुशील्यौ ।
तस्या परिपद्यो मध्ये रामो यचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
कृताञ्छुद्धसमाचारानाह्वयात्ममनीषया ।
मद् यद्यो द्रुत गच्छच्छमितो भगवतोऽन्तिके ॥ ३ ॥
उस कथासे ही उन्हें यह मालूम हुआ कि 'कुश और
लव दोनों कुमार सीताके ही सुपुत्र हैं ।' वह जानकर समाके
बीचमें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीने शुद्ध आचार विचारवाले
दूतोंको बुलाया और अपनी बुद्धिसे विचारकर कहा—'प्रभु
योग्य यहाँसे भगवान् वाल्मीकिमुनिसे पास जाओ और उनसे
मेरा यह सदेश करो ॥ २ ॥

यदि शुद्धसमाचारा यदि या वीतकल्मषा ।
करोत्यिहात्मन शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥ ४ ॥
'यदि सीताका चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी
तरहका पाप नहीं है तो वे आप महाशुक्तिी अनुमति से यहाँ
आकर जनसङ्घायमें अपनी श्रद्धा प्रमाणित करें' ॥ ४ ॥
छन्द मुनेश्च विशाया सीतायाश्च मनोगतम् ।
प्रत्यय दातुकामायास्तत शसत मे लघु ॥ ५ ॥
'प्रभु इस विषयमें महर्षि वाल्मीकि तथा सीतासे भी
हार्दिक अभिप्रायको जानकर शीघ्र मुझ सूचित करो कि क्या
ये यहाँ आकर अपनी 'उद्विगा विश्वास' दिलाया चाहती हैं ॥

रामोऽपि मुनिभि सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभि ।
श्रुत्वा तद् गीतिमाधुर्यं कमशालामुपागमत् ॥ ३१ ॥
श्रीरामचन्द्रजी भी महात्मा मुनिगो और राजाओंके साथ
उस मधुर संगीतको सुनकर कमशाला (यशमण्डप) में चले
गये ॥ ३१ ॥

शुभ्राय तत्ताललयोपपन्नं
सर्गान्वित सुस्वरशब्दयुक्तम् ।
सत्रील्यव्यञ्जनयोगयुक्तं

कुशीलवाभ्या परिगीयमानम् ॥ ३२ ॥
इस प्रकार प्रथम दिन कतिपय शरीसे युक्त सुन्दर स्वर
एव मधुर शब्दोंसे पूरा, ताल और लयसे सम्पन्न तथा वीणा
के लयकी व्यञ्जनासे युक्त यह काव्यगान, बिते कुछ और
लपने गया था; श्रीरामने सुना ॥ ३२ ॥

श्व प्रभाते तु शपथ मैथिली जनकात्मजा ।
करोतु परिपमये शोधनार्थं ममैव च ॥ ६ ॥
'कल सवेरे मिथिलेशकुमारी जानकी भरी समामें आवें
और मेरा कलक दूर करनेके लिये शपथ करें' ॥ ६ ॥
श्रुत्वा तु राघवस्येतद् वच परममद्भुतम् ।
दृताः सप्रययुषोर्दं यत्र वै मुनिपुङ्गव ॥ ७ ॥
श्रीसुनायजीका यह अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर दूत
उस वाड़ेमें गये, जहाँ मुनिवर वाल्मीकि विराजमान थे ॥ ७ ॥
ते प्रणम्य महारामान ज्यलन्तममितप्रभम् ।
ऊचुस्ते रामवाक्यानि मृदूनि मधुराणि च ॥ ८ ॥
महात्मा वाल्मीकि अमित तेजस्वी थे और अपने तेजसे
अग्निसे समान प्र-वर्धित हो रहे थे । उन दूतोंने उन्हें प्रणाम
करके श्रीरामचन्द्रजीके वचन मधुर एवं कोमल शब्दोंमें कह
सुनाये ॥ ८ ॥

तेषां तद् भाषितं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम् ।
विज्ञाय सुमहातेजा मुनिर्वाक्यमथाधवीत् ॥ ९ ॥
उन दूतोंकी वह बात सुनकर और श्रीरामके हार्दिक
अभिप्रायको समझकर वे महातेजस्वी मुनि इस प्रकार बोले—
एव भवतु भद्र यो यया वदति राघव ।
तया करिष्यते सीता दैवत हि पति स्त्रिया ॥ १० ॥
'ऐसा ही होगा, तुम लोगोंका भला हो । श्रीसुनायजी
को आज्ञा देते हैं, सीता वही करेगी, क्योंकि पति स्त्रीके लिये
देवता है' ॥ १० ॥

तयोक्ता मुनिना सर्वे राजदूता महौजसम् ।

प्रत्येत्य राघव सर्वे मुनिनाम्य यभापिरे ॥ ११ ॥

मुनिः ऐसा कहनेपर ये सब राजदूत महातेजस्वी भी
रघुनाथजीके पास लौट आये । उन्होंने मुनिकी बड़ी हुई सारी
बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं ॥ ११ ॥

ततः प्रहृष्ट काकुत्स्थ श्रुत्वा चान्य महात्मन ।

अप्रीतिस्तत्र समेताश्च राजश्रैवाभ्यभाषत ॥ १२ ॥
महात्मा वाल्मीकिजी की बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीका बड़ी
प्रसन्नता हुई और उन्होंने वहाँ आये हुए श्रुषियों तथा
राजाओंसे कहा— ॥ १२ ॥

भगवन्तः सशिरसा चै सातुगाश्च नराधिपा ।

पदयन्तु सीताशपथ यश्चैवान्योऽपि काङ्क्षते ॥ १३ ॥

‘आप सन पूर्यपाद मुनि शिष्योंसहित समामें पधारें ।
सेवकोंसहित राजा लोग भी उपस्थित हों तथा दूसरा भी जो
कोई सीताजी शपथ सुनना चाहता हो, यह आ जाय । इस
प्रकार सब लोग एकत्र होकर सीताका शपथ ग्रहण देखें’ ॥ १३ ॥
तस्य तद् वचन श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।

सर्वेषामृषिमुत्थाना साधुनामो महानभूत् ॥ १४ ॥

महात्मा राघवेद्रका यह वचन सुनकर समस्त महर्षियों

हृत्वायें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषगमायण आदिकाण्ड उत्तरकाण्डमें पञ्चम सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

पणवतितम सर्ग

महर्षि वाल्मीकिद्वारा सीताकी शुद्धताका समर्थन

तस्या रजन्या ध्युगया यज्ञात् गतो नृपः ।

श्रुत्वा सर्वान् महातेजाः शब्दापयति राघव ॥ १ ॥

रात बीती, सबेरा हुआ और महातेजस्वी राजा भीराम
चन्द्रजी मरुतालमें पवारे । उस समय उन्होंने समस्त श्रुषियों
को बुलवाया ॥ १ ॥

पतिष्ठो यामदेवश्च जात्रालिरय कादयपः ।

विश्वामित्रो दीधतमा दुर्वासाश्च महातपा ॥ २ ॥

पुलस्त्योऽपि तथा दक्षिभार्गवश्चैव यामनः ।

माकण्डेयश्च दीघायुर्मौडिल्यश्च महायशः ॥ ३ ॥

गणश्च च्यवनश्चैव शतानन्दश्च धमनिवः ।

भरद्वाजश्च तजस्वी अग्निपुत्रश्च सुप्रभ ॥ ४ ॥

नारदः पर्यवतश्चैव गौतमश्च महायशः ।

कात्यायनः सुयशश्च ह्यगस्त्यस्तपसा निधिः ॥ ५ ॥

एत चान्ये च बहवो मुनयः सन्निवसन्तः ।

कौतूहलसमाविष्टा सन् एव समागताः ॥ ६ ॥

वसिष्ठः वामदेवः शारदाः, काश्यपः, विश्वामित्रः, दीर्घतामा,
महानन्दी दुवावा, पुलस्त्यः, दक्षः, भार्गवः, यामनः, दीनदीपी
माकण्डेयः, मरुतशर्मा मौडिल्यः, गणः, च्यवनः, धमज घनानन्दः,
तेजस्वी भरद्वाजः, अग्निपुत्र सुप्रभः, नारदः, पर्यवतः, महायशस्वी

के मुखसे महान् साधुवादकी ध्वनि गूँज उठी ॥ १४ ॥

राजानश्च महात्मानः प्रशंसति स राघवम् ।

उपपन्न नरश्रेष्ठ त्वय्येव भुवि नान्यतः ॥ १५ ॥

राजा लोग भी महात्मा रघुनाथजीकी प्रशंसा करते हुए

बोले—नरश्रेष्ठ ! इस पृथ्वीपर सभी उच्चत बातें केवल आपमें

ही सम्भव हैं; दूसरे किसीमें नहीं ॥ १५ ॥

एव चिन्तयित्वा कृत्वा गोभूत इति राघवः ।

विसर्जयामास तदा सर्वोत्ताम्युत्सुदन ॥ १६ ॥

इस प्रकार दूसरे दिन सीतासे शपथ लनेका निश्चय करके

शत्रुसुदन श्रीरामने उस समय सबको विदा कर दिया ॥ १६ ॥

इति सम्प्रतिचार्य राजर्षिह

श्वोभूते शपथस्य निधायम् ।

विसर्जय मुनीन् नृपाश्च सर्वान्

स महात्मा महतो महानुभावः ॥ १७ ॥

इस प्रकार दूसरे दिन सारे सीतासे शपथ लनेका निश्चय

करके महानुभाव महात्मा राजर्षि श्रीरामने उन सन मुनियों

और नरेशोंका अपने अपने स्थानपर जानेकी अनुमति

दे दी ॥ १७ ॥

हृत्वायें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषगमायण आदिकाण्ड उत्तरकाण्डमें पञ्चम सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

गौतमः, कात्यायनः, सुयश और तपोनिधि अगस्त्य—ये तथा

दूसरे कठोर व्रतका पालन करनेवाले सभी बहुदृष्ट्यक महर्षि

कौतूहलवश वहाँ एकत्र हुए ॥ २—६ ॥

राक्षसाश्च महारीषा यानराश्च महानराः ।

सर्व एव समानमुपमहात्मानः कुतूहलात् ॥ ७ ॥

महापण्डितों राक्षस और महाबली यानर—ये सभी महा

मना कौतूहलवश वहाँ आये ॥ ७ ॥

क्षत्रिया ये च द्राव्याश्च वैश्याश्चैव सहस्रशः ।

नानादेशगताश्चैव ब्राह्मणाः सन्निवसन्तः ॥ ८ ॥

नाना देशोंमें पवारे हुए तीक्ष्ण व्रतकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य और द्रष्ट सहस्रोंकी संख्यामें वहाँ उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

याननिष्ठा कमनिष्ठा योगनिष्ठास्तथापरे ।

सीताशपथवीक्षार्थं सन् एव समागताः ॥ ९ ॥

सीताजीका शपथ-ग्रहण देखनके लिये शननिष्ठ, कमनिष्ठ

और योगनिष्ठ सभी तरहसे लग पवारे ॥ ९ ॥

तदा समागत सप्तममभूमिमिश्रजलम् ।

श्रुत्वा मुनिरस्तूर्णं ससीत समुपागमत् ॥ १० ॥

राजसभामें एकत्र हुए सब लोग पत्थरकी मोर्ति निधन

हाकर बैठे हैं—यह सुनकर सुनितरवाल्मीकि सीताजीको साथ लेकर तुरत वहाँ आये ॥ १० ॥

तस्मिन् पृष्ठत सीता अन्वगच्छद्वाङ्मुखी ।

छुताङ्गलियापकला छत्वा राम मनोगतम् ॥ ११ ॥

महर्षि पठे छीता सिर छुवाये चलीआ रही थीं । उनके दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू सर रहे थे । वे अपने हृदयमरिचमें बैठे हुए श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं ॥ ११ ॥

ता दृष्ट्वा श्रुतिप्रायान्तीं ब्रह्माणमनुगामिनीम् ।

यारमीके पृष्ठत सीता साधुपाशे महानभूत् ॥ १२ ॥

बारमीकिये पीछे-पीछे आती हुई छीता ब्रह्मणीका अनुसरण करनेवाली श्रुतिसे समान जान पड़ती थीं । उन्हें देखकर वहाँ घन्य घन्यकी भारी आवाज गूँज उठी ॥ १२ ॥

ततो हल्हलाशब्द सर्वपाशेयमारभौ ।

दुःखजन्मविशालेन शोषेनाकुलितारमनाम् ॥ १३ ॥

उस समय समस्त दर्शकोंका हृदय दुःख देनेवाले महान् शोकसे व्याकुल था । उन सबका कोराहल उष और व्यास हो गया ॥ १३ ॥

साधु रामेति केचित् तु साधु सीतेति चापरे ।

उभाधेव च तत्राये प्रसूता सम्प्रसुक्तु ॥ १४ ॥

कोई कहते थे—‘श्रीराम । तुम घन्य हो’ दूसरे कहते थे—‘देवि सीते । तुम घन्य हो’ तथा वहाँ कुछ अन्य दर्शक भी ऐसे थे, जो सीता और राम दोनोंको उच्चस्तरसे साधुवाद दे रहे थे ॥ १४ ॥

ततो मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ।

सीतासहायो वाल्मीकिरिति होषाच राघवम् ॥ १५ ॥

तब उस जनसमुदायके बीचमें सीतसहित प्रवेश करके सुनितरवाल्मीकि श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार बोले—॥ १५ ॥

इय दाशारथे सीता सुमता धमचारिणी ।

अपवादाद् परित्यक्ता ममाधमसमीपत ॥ १६ ॥

‘दशरथनन्दन । यह सीता उत्तमव्रतका पालन करनेवाली और धर्मपरायणा है । आपने छोड़ापवादसे डरकर इसे मेरे आश्रममें समीप त्याग दिया था ॥ १६ ॥

लोकापरादभीतस्य तत्र राम महाप्रत ।

प्रत्यय वास्यत सीता तामनुज्ञातुमर्हसि ॥ १७ ॥

‘महान् व्रतधारी श्रीराम । लोकापवादसे डरे हुए आपको सीता अपनी शुद्धताका विश्वास दिखायेगी । इसका लिये आप इसे आशा दें ॥ १७ ॥

इमौ जानकीपुत्राद्युभौ च यमजातकौ ।

सुतौ तथैव बुधर्पा सन्त्यमेन्दु प्रवीमि ते ॥ १८ ॥

इस्यार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पण्णवतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

इम प्रभर श्रीरामाजीनिर्मित आश्रमामाषण आदिका यद् उत्तरकाण्डमें छानकों सग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

ये दोनों कुमार युद्ध और एत जानकीक गर्भसे जड़य पैदा हुए हैं । ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष और हैं, यह मैं आपको सची बात बत रहा हूँ ॥ १८ ॥

प्रचेतसोऽह दशम पुत्रो राघवनन्दन ।

न सराम्यनृत वाच्यमिमौ तु तत्र पुत्रकौ ॥ १९ ॥

‘रघुनन्दन । मैं प्रोता (वरुण) का दसवाँ पुत्र हूँ । मेरे मुँहसे कभी श्रुत जान निक्की हो, इसरी याद मुझे नहीं है । मैं सत्य कहना हूँ ये दोनों आपके ही पुत्र हैं ॥ १९ ॥

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।

नोपाशनीया फलसत्या दुष्टेय यदि मैथिली ॥ २० ॥

‘मैंने कई हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की है । यदि मिथिलेशकुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका फल न मिले ॥ २० ॥

मनसा कर्मणा पाचा भूतपूर्वं न किलियम् ।

तस्याह फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ॥ २१ ॥

‘मैंने मन, वाणी और कियारात्र भी पहले कभी कोई पाप नहीं किया है । यदि मिथिलेशकुमारी सीता निष्पाप हैं, तभी मुझे अपने उस पापादय पुण्यकर्मका फल प्राप्त हो ॥ २१ ॥

अह पञ्चसु भूतेषु मन पष्टेषु राघव ।

विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वननिर्गरे ॥ २२ ॥

‘रघुनन्दन । मैंने अपनी पाँचों इन्द्रियों और मन-बुद्धि के द्वारा सीताकी शुद्धताका भली-भाँति निश्चय करके ही इसे अपने संरक्षणमें लिया था । यह मुझे जगलमें एक सरनेके पास मिली थी ॥ २२ ॥

इय शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ।

लोकापरादभीतस्य प्रत्यय तत्र वास्यति ॥ २३ ॥

‘इसका आचरण सच्चा शुद्ध है । पाप इसे छू भी नहीं सका है तथा यह पतिको ही देवता मानती है । अतः लोकापवादसे डरे हुए आपको अपनी शुद्धताका विश्वास दिलायेंगी ॥ २३ ॥

तस्मादिय नरवरात्मज गुह्यभावा

दिव्येन दृष्टिविषयेण मया प्रविष्टा ।

लोकापरादकुपीकृतचेतसा या

त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदित्तापि शुद्धा ॥ २४ ॥

‘राघवकुमार । मैंने दिव्य दृष्टिसे यह जन लिया था कि सीताका भाव और विचार परम पवित्र है इसलिये यह मेरे आश्रममें प्रवेश पा सकी है । आपको भी यह प्राणोंसे अधिक प्यारी है और आप यह भी जानते हैं कि सीता सच्चा युद्ध है तथापि लोकापवादसे कष्टितचित्त होकर आपने इसका त्याग किया है’ ॥ २४ ॥

सप्तनवतितम सर्ग

सीताका शपथ-ग्रहण और रमातलमें प्रवेश

वाल्मीकिनैवमुचस्तु राघव प्रत्यभाषत ।
प्राञ्जलिजगतो मध्ये दृष्ट्वा ता वराणिनीम् ॥ १ ॥

महर्षि वाल्मीकिने ऐसा कहनेपर भीरुनायकी मुन्दरी
सीतादेवीकी ओर एक बार दृष्टि डालकर उस जनमुनायक
बीच हाथ बढ़कर बोले— ॥ १ ॥

पथमेत महाभाग यथा वदसि धमयित् ।
प्रत्ययन्तु मम प्रहस्तव धार्यरक्त्वमयै ॥ २ ॥

‘महाभाग ! आप धमक जाते हैं। सीता सन्धर्षमें
आप बैठा कह रहे हैं, वह सब ठीक है। प्रहस् ! आरक
इन निर्दोष बचनोंमें मुझे जनकनिदिनीकी पुढतापर पूरा
विश्वास हो गया है ॥ २ ॥

प्रत्ययस्य पुरा वृत्तो वैदेह्या सुरसनिधौ ।
शपथस्य हृत्तस्तत्र तेन घेदम प्रवेशिता ॥ ३ ॥

‘एक बार पहले भी देवताओंके समीप निदेशकुमारीकी
पुढताका विश्वास प्राप्त हो चुका है। उस समय सीताने
अपनी पुढक छिपे शपथ की थी, जिसके कारण मैंने इन्हें
अपने भवनमें स्नान दिया ॥ ३ ॥

लोकापराधो धलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली ।
सेष लोकाभयाद् ब्रह्मन्मपापेभ्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद् भगान् क्षन्तुमहनि ॥ ४ ॥

‘किंतु आपे चलकर फिर बड़े बेरबा लाकापवाद उठा,
जिससे विषय होकर मुझ मिथिलेशकुमारीका त्याग करना पड़ा।
ब्रह्मन् ! यह जानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप हैं,
मैंने केवल समाजक भयसे इन्हें छोड़ दिया था अतः आप
मेरे इस अपराधको क्षमा करें ॥ ४ ॥

जानामि चेमौ पुत्री मे यमजातौ कुशीलवौ ।
शुद्धाया जगतो मध्ये मैथिल्या प्रीतिरस्तु मे ॥ ५ ॥

‘मैं यह भी जानता हूँ कि ये पुत्र वे उत्तम हुए कुमार
कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं, तथापि जनमुनायकमें शुद्ध
प्रमाणित होनेपर ही मिथिलेशकुमारीमें भग्न प्रेम हो सकती है ॥

अभिप्राय तु विज्ञाय रामस्य सुरससत्तमा ।
सीताया शपथे तस्मिन् मोहेन्द्राया महौजस ॥ ६ ॥
पितामह पुत्ररूपेण सत्र पर समागता ।

भीरामचन्द्रजीक अभिप्रायध्वनितकर सीता शपथक
कमय मोहेन्द्र आदि सभी शुभ्य शुभ्य महातज्जनी देवन
नितामह ब्रह्मादीकी आगे करक क्यों आ गये ॥ ६ ॥

आदिग्या वसरो रुद्रा निदेवदेवा मरुद्रणा ॥ ७ ॥
साध्याश्च देवा सर्वे ते सर्वे च परमवयम् ।

नागा सुपणा मिन्दाश्च ते सर्वे हृष्माणसा ॥ ८ ॥
सीताशपथसम्मान्ता सर्व पर समागता ।

आदित्य, वयु, रुद्र, विन्वेदेव, मरुद्रा, समान नाय
देव, सभी महर्षि, नाग, गरुड और समूह मिदगा प्रसन्न
चित्त हैं। सीतानायक शपथ ग्रहणको देखनेक लिये पराय दृष्टि
ने वहाँ आ पहुँच ॥ ७-८ ॥

दृष्ट्वा देवान्परीधैव राघव पुनर्ग्रसीत् ॥ ९ ॥
प्रत्ययो मे सुरश्रेष्ठ भ्रातृवाच्यैरक्त्वमयै ।

शुद्धाया जगतो मध्ये वैदेह्या प्रीतिरस्तु मे ॥ १० ॥
देवताओं तथा ऋषियोंका उपस्थित दत्त श्रीरघुनाथजी

फिर बले—‘सुरश्रेष्ठ ! यद्यपि मुझ महर्षि वाल्मीकि
निर्दोष बचनोंसे ही पूरा विश्वास हो गया है, तथापि जन
समाजके बीच निदेशकुमारीकी शुद्धता प्रमाणित हो जानेपर
मुझे अधिक प्रसन्नता होगी’ ॥ ९-१० ॥

ततो धातु शुभ पुण्यो दियगधो मनोरम ।
त जनौध सुरश्रेष्ठो ह्याद्यामास सयत ॥ ११ ॥

तदनन्तर दिग्ग मुग्धने परीक्षण, मनन अनन्द देनेवाल
परम पवित्र एवं शुभकारक सुरश्रेष्ठ बापुदेव मन्दगनिमें
प्रवाहित ॥ सब ओरसे बहोंके जनमुदायको आह्लाद प्रदान
करने लगे ॥ ११ ॥

तद्भुतमिवाचिन्त्य निरक्षन्त समाहिता ।
मानवा सत्राष्ट्रेभ्य पूर्वं वृत्तयुगे यथा ॥ १२ ॥

समस्त राष्ट्रोंमें आपे हुए मनुष्योंमें एकप्रचित्त हो
प्राचीन कालक सन्धुगर्भी मौति यह अद्भुत और अचिन्त्य
की घटना अपनी आँखों देखी ॥ १२ ॥

सवान् समागतान् दृष्ट्वा सीता कायायशसिनी ।
अग्ररीत् प्राञ्जलिशक्यमधोदधिरवाङ्मुखी ॥ १३ ॥

उस समय सीताजी तपस्विनियों अनुकूल गेरुआ वस्त्र
धारण किये हुए थीं। नक्षत्र उपस्थित जनकर वे हाथ बढ़ा,
दृष्टि और मुक्कड़ नीच फिरो बली— ॥ १३ ॥

यथाह राघवादन्य मनसापि ॥ चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विरर दानुमहनि ॥ १४ ॥

‘मैं भीरुनायकी—मिना दूसरे किसी पुरुषका (सन्धु
त दूर रहा) मनने चिन्तन भी नहीं करती यदि यह सत्र
है तो भगवती पृष्ठादेवा मुझ अस्त्री गदमें स्नान दें ॥ १४ ॥

मनसा कमणा वाग यथा राम समग्रय ।
तथा मे माधवी देवी विरर दानुमहनि ॥ १५ ॥

‘यदि मैं मन, वाग और क्रियाके द्वारा राम भीरुनायकी
॥ आराधन करती हूँ तो भगवती पृष्ठादेवी मुझ अस्त्री गद
में स्नान दें ॥ १५ ॥

यथैतन् मन्यमुन मे चेन्नि रामान पान च ।
तथा मे माधवी देवी विरर दानुमहति ॥ १६ ॥

होकर गेते हैं—यह सुनकर मुनिवरवाल्मीकि सीताजीको धाय
लेकर तुरत वहाँ आये ॥ १० ॥

तमृषि पृष्ठन सीता अन्वगच्छद्वाङ्मुखी ।

दृताञ्जलियापकला श्रुत्वा राम मनोगतम् ॥ ११ ॥

मरुषिके पीछे सीता फिर हाथों चली आ रही थीं । उनके
दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू धार रहे थे । वे अपने
हृदयमन्दिरमें बैठे हुए श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं ॥ ११ ॥

ता दृष्ट्वा श्रुतिमार्थान्तीं ब्रह्माण्डमनुगमिनीम् ।

वाल्मीके पृष्ठत सीता साधुपादो महानभूत् ॥ १२ ॥

वाल्मीकिके पीछे-पीछे भारी हुई सीता ब्रह्माब्दीका अनु
सरण करनेवाली श्रुतिके समान जान पड़ती थीं । उन्हें देखकर
यहाँ धाय वन्यकी भारी आवाज गूँज उठी ॥ १२ ॥

ततो हलहलाशब्द सर्वपापेभ्यमावभौ ।

दुःप्रजमविशालेन शोकेनाकुलित्तात्मनाम् ॥ १३ ॥

उस समय समस्त दर्शकोंका हृदय दुःख देनेवाले महान्
शोकसे व्याकुल था । उन सबका शोकाहल उस ओर व्याप्त हो
गया ॥ १३ ॥

साधु रामेति केचित् साधु सीतेति चापरे ।

उभावेव च तत्रान्ये प्रेक्षका सम्यक्कुशु ॥ १४ ॥

कोई कहते थे—‘श्रीराम ! तुम धन्य हो।’ दूसरे कहते
थे—‘देवि सीते ! तुम धन्य हो।’ तथा यहाँ कुछ अन्य दर्शक
भी देखे थे, जो सीता और राम दोनोंको उच्चस्वरो से साधुवाद
दे रहे थे ॥ १४ ॥

ततो मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ।

सीतासहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम् ॥ १५ ॥

तब उस जनघनप्रदायके बीचमें सीतावहित प्रवेश करके
मुनिवरवाल्मीकि श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार बोले—॥ १५ ॥

इयं दाशरथे सीता सुयता धमचारिणी ।

अपवादात् परित्यक्ता ममाधर्मसमीपत ॥ १६ ॥

‘दाशरथनन्दन ! यह सीता उत्तमव्रतका पालन करनेवाली
और धर्मपरायणा है । आपने लोकापवादसे डरकर इसे मेरे
आश्रमके समीप त्याग दिया था ॥ १६ ॥

लोकापवादभीतस्य तत्र राम महायत ।

प्रत्यय दास्यते सीता तामनुकृतुमर्हसि ॥ १७ ॥

‘महान् व्रतधारी श्रीराम ! लोकापवादसे डरे हुए आपको
सीता अपनी शुद्धताका विश्वास दिखायी । इसकी छिये आप
इसे आशा दें ॥ १७ ॥

इमौ तु जानकीपुत्रावभौ च यमजातकौ ।

सुतो तस्यै दुर्धर्पा सत्यमेनद् गवींमि ते ॥ १८ ॥

इसपर श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पण्यवतितमः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वमेधायणे आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छाननेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

ये दोनों कुमार युद्ध और एव जानकीके गर्भसे उद्भव
पेदा हुए हैं । वे आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान
दुर्धर्ष वीर हैं, यह मैं आपकी सच्ची बात बता रहा हूँ ॥ १८ ॥

प्रचेतसोऽहं दशम पुत्रो राघवमन्दन ।

न स्मराम्यनुत चाप्यभिमी न तत्र पुत्रकौ ॥ १९ ॥

‘शुक्लनन्दन ! मैं प्रचेता (वरुण) का दशवाँ पुत्र
हूँ । मर मुझे कभी छूट बात निकली हा, इसकी याद मुझे
नहीं है । मैं उल्ट कहता हूँ ये दोनों आपके ही पुत्र हैं ॥ १९ ॥

शश्वत्सहस्राणि तपश्चया मया दृता ।

नोपादनीया फलतम्या दुष्टेय यदि मैथिली ॥ २० ॥

‘मैंने कइ हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की है । यदि
मिथिलेशकुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका
फल न मिले ॥ २० ॥

मनसा कर्मणा पादा भूतपूर्वं न क्लियिषम् ।

तस्याहं फलमदनामि मयापामैथिली यदि ॥ २१ ॥

‘मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा भी पहले कभी कोई
पाप नहीं किया है । यदि मिथिलेशकुमारी सीता निष्पाप हों,
तभी मुझे अपने उस पापशून्य पुण्यकर्मका फल प्राप्त हो ॥ २१ ॥

अहं पञ्चसु भूतेषु मन पठेसु राघव ।

विचिन्त्य सीता शुदेति जग्राह वननिघ्नरे ॥ २२ ॥

‘शुक्लनन्दन ! मैंने अपनी पाँचों हड्डियों और मन-बुद्धि
के द्वारा सीताकी शुद्धताका भली-भाँति निश्चय करके ही इसे
अपने संक्षणमें लिया था । यह मुझे जगलमें एक सरतके पास
मिली थी ॥ २२ ॥

इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ।

लोकापवादभीतस्य प्रत्यय तव दास्यति ॥ २३ ॥

‘इसका आचरण सरया शुद्ध है । पाप इसे छू भी नहीं
सका है तथा यह पतिको ही देवता मानती है । अतः लोका
पवादसे डरे हुए आपको अपनी शुद्धताका विश्वास दिखायी ॥

तस्मादियं नरवरारमजं शुद्धभावा

दिव्येन दृष्टिधिपयेण मया प्रविष्टा ।

लोकापवादकुलुपीकृतचेतसा या

त्यक्ता त्वया त्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥ २४ ॥

‘शुक्लकुमार ! मैंने दिव्य दृष्टिसे यह जान लिया था कि
सीताका भाव और विचार परम पवित्र है । इसलिये यह मेरे
आश्रममें प्रवेश पा सकी है । आपको भी यह माणोंसे अधिक
प्यारी है और आप यह भी जानते हैं कि सीता सरया
शुद्ध है तथापि लोकापवादसे कष्टवित्तित होकर आपने
इसका त्याग किया है ॥ २४ ॥

सप्तमवर्तितम सर्गः

सीताका शपथ ग्रहण और रसातलमें प्रवेश

वाल्मीकिनैरमुक्त्वा राघव प्रत्यभाषत ।
प्राञ्जलिर्जंगतो मध्ये दृष्ट्वा ता घरवर्णिनीम् ॥ १ ॥

महर्षि वाल्मीकिने ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजी सुन्दरी सीतादेवीकी ओर एक बार दृष्टि डालकर उस जनकमुदायके बीच हाथ जोड़कर बोले—॥ १ ॥

एवमेत महाभाग यथा वदसि धर्मवित् ।
प्रत्ययस्तु मम जगदस्तस्य चाप्यैरकारमयै ॥ २ ॥

‘महाभाग ! आप धर्मके ज्ञाता हैं । सीताके सम्बन्धमें आप वैसा कह रहे हैं, वह सब ठीक है । ब्रह्मन् ! आपके इन निर्दोष वचनोंसे मुझे जनकनन्दिनीकी शुद्धतापर पूरा विश्वास हो गया है ॥ २ ॥

प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्या सुरसनिधौ ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन चेष्टम प्रवेक्षिता ॥ ३ ॥

‘एक बार पहले भी देवताओंके समीप विदेहकुमारकी शुद्धताका विश्वास मुझे प्राप्त हो चुका है । उस समय सीताने अपनी छुट्टिके लिये शपथ की थी, जिसके कारण मैंने इन्हें अपने भवनमें स्थान दिया ॥ ३ ॥

लोकापवादो यल्लयान् येन त्यक्ता हि मैथिली ।
सेय लोकभयाद् ब्रह्मन्नापापेभ्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद् भवान् क्षनुमहति ॥ ४ ॥

‘किंतु आगे चलकर फिर बड़े जोरका लोकापवाद उठा, जिससे विवश होकर मुझे मिथिलेष्टकुमारीका त्याग करना पड़ा । ब्रह्मन् ! यह जानते हुए भी कि सीता स्वया निष्पाप हैं, मैंने केवल समाजके मयसे इन्हें छोड़ दिया था अतः आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें ॥ ४ ॥

जानामि चेमौ पुत्री मे यमजातौ कुशीलयौ ।
शुद्धाया जगतो मध्ये मैथिल्या प्रीतिरस्तु मे ॥ ५ ॥

‘मैं यह भी जानता हूँ कि ये ‘उड़के’ उत्पन्न हुए कुमार कुश और लव मेरी ही पुत्र हैं, तथापि जनकमुदायमें शुद्ध प्रमाणित होनेपर ही मिथिलेष्टकुमारीमें मेरा प्रेमदा सकृत् है ॥

अभिप्राय तु गिताय रामस्य सुरससत्तमा ।
सीताया शपथे तस्मिन् महेन्द्राया महौजस ॥ ६ ॥
पितामह पुरस्कृत्य सप्त एव समागता ।

श्रीरामचन्द्रजीने अभिप्रायको जानकर सीताके शपथके समय महेन्द्र आदि सभी मुख्य मुख्य महादेवकी देवता पितामह ब्रह्माजीके आगे करन वहाँ आ गये ॥ ६ ॥

आदित्या वसतो रुद्रा निदधेदेवा मरुद्गणा ॥ ७ ॥
साध्याश्च देवा सर्वे ते सर्वे च परमार्थय ।

नामाः सुगणा मित्राश्च मे सर्वे हृष्टमानसा ॥ ८ ॥
सीताशपथसम्भ्रान्ता सर्वे एव समागता ।

आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, समस्त साध्य देव, सभी महर्षि, नाग, गरुड और सगूण विद्वद्गण प्रसन्नचित्त हो सीताजीके शपथ ग्रहणको देखनेन लिये धवराय हुए से वहाँ आ पहुँचे ॥ ७ ८ ॥

दृष्ट्वा देवानृषींश्चैव राघव पुनरब्रवीत् ॥ ९ ॥
प्रत्ययो मे सुरश्रेष्ठ ऋषिवाग्भैरफलमयै ।

शुद्धाया जगतो मध्ये वैदेह्या प्रीतिरस्तु मे ॥ १० ॥
देवताओं तथा ऋषियोंको उपस्थित देख श्रीरघुनाथजी फिर बोले—

‘सुरश्रेष्ठगण ! यद्यपि मुझे महर्षि वाल्मीकि निर्दोष वचनोंसे ही पूरा विश्वास हो गया है, तथापि जन समाजके बीच विदेहकुमारीकी निशुद्धता प्रमाणित हो जानेपर मुझे अधिक प्रसन्नता होगी ॥ ९ १० ॥

ततो वायु शुभ पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरम ।
त जनौघ सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वत ॥ ११ ॥

तदनन्तर दिन सुगन्धसे परिपूर्ण, मनमोह आनन्द देनेवाला परम पवित्र एव शुभकारक सुरश्रेष्ठ वायुदेव मन्दगतिसे प्रगलित हो सब ओरसे वहाँके जनसमुदायको आह्लाद प्रदान करने लगे ॥ ११ ॥

तदद्भुतमिवाचिन्त्य निरैस्तन्त समाहिता ।
मानवा सर्वराष्ट्रेभ्य पूर्वं हृतयुगे यथा ॥ १२ ॥

समस्त राष्ट्रोंसे आये हुए मनुष्योंने एकामर्शित हो प्राचीन कालन सत्ययुगकी भाँति यह अद्भुत और अचिन्त्य की घटना अपनी आँखोंसे देखी ॥ १२ ॥

सवान् समागतान् दृष्ट्वा सीता कायायनासिनी ।
अग्रवीत् प्राञ्जलिभक्त्यमधोदधिरवाङ्मुखी ॥ १३ ॥

उस समय सीताजी तपस्विनियों अनुरूप गैहवा वस्त्र धारण किये हुए थीं । सभी उपस्थित जानकर वे हाथ जोड़े, दृष्टि और मुखको नीचे निते बालों—॥ १३ ॥

यथाह राघवादन्य मनसापि न जित्तये ।
तथा मे माधवी देवी त्रिर दानुमहति ॥ १४ ॥

‘मैं श्रीरघुनाथजीने बिना दूधरे बिनी पुरुषरा (स्वर्ण ता दूर रहा) मनमें चिन्तन भी नहीं करती यदि यह कल है तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझ अपनी गदमें स्थान दें ॥ १४ ॥

मनसा वमणा घात्रा यथा राम समरथ ।
तथा मे माधवी देवी त्रिर दानुमदति ॥ १५ ॥

‘यदि मैं मन, वाणी और क्रिया द्वारा करन भोतामकी आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझ अपनी गद में स्थान दें ॥ १५ ॥

यथैतत् सन्ध्यमुक्त मे धनि रामान पञ्च न च ।
तथा म माधवी देवी त्रिर दानुमदति ॥ १६ ॥

‘भगवान् श्रीरामको छोड़कर मैं दूसरे किसी पुरुषको नहीं जानती। मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें’ ॥ १६ ॥

तथा शपत्त्या वैदेह्या प्रादुरासीत् तदद्भुतम् ।
भूतलानुत्थित दिव्य सिंहासनमुत्तमम् ॥ १७ ॥

विदेहकुमारी सीताके इस प्रकार शपथ करते ही भूतलसे एक अद्भुत सिंहासन प्रकट हुआ। जो बड़ा ही सुन्दर और दिव्य था ॥ १७ ॥

धियमाण शिरोभिस्तु नागैरमितश्रमैः ।
दिव्य दिव्येन कपुपा दिव्यगन्तविभूषितैः ॥ १८ ॥

दिव्य रत्नोंसे विभूषित महापराक्रमी नागोंने दिव्य रूप धारण करके उस दिव्य सिंहासनको अपने सिरपर धारण कर रक्खा था ॥ १८ ॥

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्या गृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिन चैनामासने चोपवेशयत् ॥ १९ ॥

सिंहासनके साम ही पृथ्वीकी अविद्यात्री देवी भी दिव्य रूपसे प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे गोदमें उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनन्दन करके उन्हें उस सिंहासनपर बिठा दिया ॥ १९ ॥

तामासनगता हृष्टा प्रविशतीं रसातलम् ।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना द्रिया सीतामवाकिरत् ॥ २० ॥

सिंहासनपर बैठकर सब सीतादेवी रसातलमें प्रवेश करने लगीं, उस समय देवताओंने उनकी ओर देखा। फिर तो आकाशसे उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी लगातार वर्षा होने लगी। साधुकाश्च सुमहान् देवाना सहस्रोत्थित ।

साधुसाम्प्रिति पै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ॥ २१ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तमवतितमा सर्ग ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीवदनीक्रीनित आश्वामेय आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें सप्तमबर्वा सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमवतितमः सर्ग

सीताके लिये श्रीरामका खेद, ब्रह्माजीका उन्हें समझाना और उत्तरकाण्डका

शेष अष्ट सुननेके लिये प्रेरित करना

रसातल प्रविणया वैदेह्या सश्रधानरा ।

सुमुमु साधुसाध्वीति मुनयो रामसन्निधौ ॥ १ ॥

विदेहकुमारी सीताके रसातलमें प्रवेश कर जानेपर श्रीराम के समीप बैठे हुए सम्पूर्ण वानरवर्षा ऋषि मुनि कहने लगे—

‘आपकी सीते ! तुम धन्य हो’ ॥ १ ॥

दण्डकाष्ठमपष्टम्य यापय्यायुलितेक्षणः ।

अवाकिशारा क्षीनमना रामो ह्यासीत् सुदुःखितः ॥ २ ॥

किंतु स्वयं भगवान् श्रीराम बहुत दुखी हुए। उनका मन उदास हो गया और वे गूलरक दण्डका छहारा लिये लड़ हा फिर छपाये नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे ॥ २ ॥

देवताओंके मुँहसे सहसा ‘धन्य धन्य’ वा महान् शब्द प्रकट हुआ। वे कहने लगे—‘सीते ! तुम धन्य हो, धन्य हो। ब्रह्मारा शील-स्वभाव इतना सुन्दर और ऐसा पवित्र है’ ॥

एव बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगता सुराः ।

व्याजह्वहृष्टमनसो हृष्टा सीताप्रवेशनम् ॥ २२ ॥

सीताका रसातलमें प्रवेश देखकर आकाशमें खड़े हुए देवता प्रसन्नचित्त हो इस तरहकी बहुत-सी बातें कहने लगे ॥

यज्ञाटगताश्चापि मुनयः सर्वे एव ते ।

राज्ञानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे ॥ २३ ॥

यज्ञमण्डपमें उपारे हुए सभी मुनि और नरघेष्ठ नरेश

भी आश्चर्यसे भर गये ॥ २३ ॥

अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमा ।

दानयाश्च महाकाया पाताले पद्मगाधियाः ॥ २४ ॥

अन्तरिक्षमें और भूतलपर सभी चराचर प्राणी तथा

पातालमें विशालकाय दानव और नागराज भी आश्चर्यचकित

हो उठे ॥ २४ ॥

केचिद् विनेदु सहस्रण केचिद् ध्यानपरायणा ।

केचिद् राम निरीक्षन्ते केचिद् सीतामचेतसाः ॥ २५ ॥

कोई हर्षनाद करने लगे, कोई ध्यानमग्न हो गये, कोई

श्रीरामकी ओर देखने लगे और कोई हक्के बक्के से होकर

सीताकी ओर निहारने लगे ॥ २५ ॥

सीताप्रवेशन हृष्टा तेषामासीत् समागतम् ।

तमुद्धर्तमिवात्यर्थं सम सम्मोहित जगत् ॥ २६ ॥

सीताका भूतलमें प्रवेश देखकर वहाँ आये हुए सब लोग

हर्ष, शोक आदिमें डूब गये। दो घड़ी तक वहाँका सारा

जनमुदाय अत्यन्त मोहोच्छन्न-ख हो गया ॥ २६ ॥

सकृदित्वा चिर काल बहुशो याप्यमुत्सृजन् ।

क्रोधशोकसमाविष्टो रामो घञ्जनमग्रवीत् ॥ ३ ॥

बहुत देरतक रोकर बारबार आँसू बहाते हुए शोक

और शोकसे युक्त हो श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार बोले—॥ ३ ॥

अभूतपूर्वं शोक मे मनः स्मृष्टमिवेच्छति ।

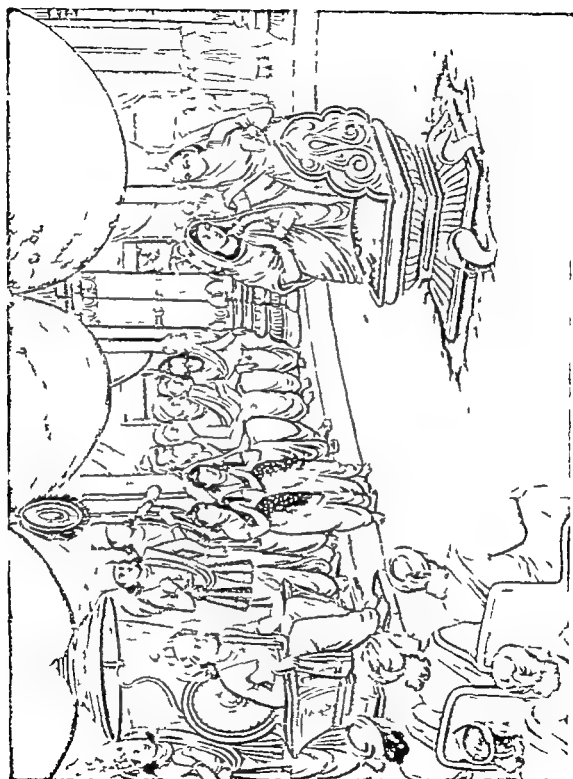
पश्यतो मे यथा नष्टा सीता क्षीरिच रूपिणी ॥ ४ ॥

‘आज मेरा मन अभूतपूर्व शोकमें डूबना चाहता है

क्योंकि इस समय मेरी आँसुओंके सामनेसे पूर्वमती लक्ष्मीके

समान सीता अदृश्य हो गयीं ॥ ४ ॥

सादृशान पुरा सीता लब्ध्वा पारे महोदधेः ।



ततश्चापि मयाऽऽनीना किं पुनर्यसुधातलात् ॥ ५ ॥

‘पहली बार सीता समुद्रके उस पार लङ्का में जाकर मेरी आँखोंसे ओझल हुई थी। किंतु जब मैं वहाँसे भी उठेँ छैटा लया। तब पृथ्वीके भीतरसे ले आना कौन बड़ी बात है?’ ॥ ५ ॥ वसुधे देवि भवति सीता नियात्यता मम।

दर्शयिष्यामि वा रोप यथा मामवगच्छसि ॥ ६ ॥

(यों कहकर वे पृथ्वीसे बोले—) ‘पूजनीये भगवति नमः । मुझे सीताको लौटा दो, अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊँगा । मेरा प्रभाव कैसा है ! यह तुम जानती हो ॥ ६ ॥ काम श्वभ्रूममैव त्वत्त्वत्सकाशात् तु मैथिली ।

कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धता पुरा ॥ ७ ॥

‘देवि ! वास्तवमें तुम्हीं मेरी माँ हो । राजा जनकदाय में फाल लिये तुम्हींको जोत रहे थे जिससे तुम्हारे भीतरसे सीताका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७ ॥

तस्मान्निर्वात्यता सीता विषय वा प्रयच्छ मे ।

पाताले नाकपृष्ठे वा वसेय सहितस्तया ॥ ८ ॥

‘अतः या ता तुम सीताको लौटा दो अथवा मेरे लिये भी अपनी गोदमें जगह दो क्योंकि पाताल ही या स्वर्ग, मैं सीताके साथ ही रहूँगा ॥ ८ ॥

आनय त्व हि ता सीता मघोऽह मैथिलीरुते ।

न मे दास्यसि चेत् सीता यथारूपा महीतले ॥ ९ ॥

सप्रवर्तयना दृष्ट्वा निधिमिष्यामि ते स्थितिम् ।

नाशयिष्याम्यह भूमिं सर्वमापो भवत्त्वह ॥ १० ॥

‘तुम मेरी सीताको लाओ ! मैं मिथिले गङ्गातीरे लिये मतवाला (वेनुघ) हो गया हूँ । यदि इस पृथ्वीपर तुम उसी रूपमें सीताको मुझे लौटा नहीं दागी तो मैं पर्वत और वन सहित तुम्हारी स्थितिमें नष्ट कर दूँगा। सारी भूमिका विनाश कर दारूँगा। फिर मले ही सबकुछ क्षयमय ही हो जाय’ ॥ ९ १० ॥

पय हुवाणे कान्तुत्ये मोधशोकसमन्विते ।

प्रह्ला सुरगणै साधमुवाच रघुनन्दनम् ॥ ११ ॥

भीरयुनायकी जब क्रोध और शोकसे युक्त हो इस प्रकार की बातें कहने लगे, तब देवताओंसहित प्रह्लाजीने उन रघुकुल नन्दन श्रीरामसे कहा— ॥ ११ ॥

राम राम न सताप क्तुमहसि सुव्रत ।

स्मर त्व पूर्वक भाव भव चामिच्छन्तः ॥ १२ ॥

‘उत्तम व्रतवा पालन करनेवाले भीराम ! आप मनमें सताप न करें। शत्रुवृन्द ! अपने पूर्व स्वप्नका स्मरण करें ॥

न खतु त्वा महाबाहो स्मारयेयमनुत्तमम् ।

इम मुहूर्ते दुर्धरं स्मर त्व जम विष्णवम् ॥ १३ ॥

‘महाबाह ! मैं आपको आपन परम उत्तम स्वरूपका स्मरण नहीं दिला रहा हूँ। दुर्धर वीर ! केवल यह अनुपपन्न कर रहा हूँ कि इस समय आप प्यारन द्वारा अपने

वेणव स्वरूपका स्मरण करें ॥ १३ ॥

सीता हि विमला साध्वी तव पूर्णपरायणा ।

नागलोक सुख प्रायात् त्वदाश्रयतपोयलात् ॥ १४ ॥

‘साध्वी सीता सर्वया पुद्गल हैं। वे पहलेसे ही आपके ही परायण रहती हैं। आपका आश्रय लेना ही उनका तपोबल है। उसके द्वारा वे सुखपूर्वक नागलोकके बहाने आपने परम काममें चली गयी हैं ॥ १४ ॥

स्वर्गे ते सगमो भूयो भविष्यति न सदाय ।

अस्यास्तु परिप मध्ये यद् व्रजीमि नियोध तत् ॥ १५ ॥

‘अब पुन साव्रतकाममें आपकी उनसे भेंट होगी, इसमें सदाय नहीं है। अब इस सभामें मैं आपने जो कुछ कहा हूँ, उसपर ध्यान दीजिये ॥ १५ ॥

एतदेव हि काव्य ते काव्यानामुत्तमं श्रुतम् ।

सर्वे विस्तरतो राम व्याख्यास्यति न सदाय ॥ १६ ॥

‘आपके चरित्रसे सम्बंध रखनेवाला यह काव्य, जिसे आपने सुना है, सब काव्योंमें उत्तम है। भीराम ! यह आपके सारे जीवन वृत्तका विस्तारसे ज्ञान करायेगा, इसमें सदेह नहीं है ॥ १६ ॥

जमप्रभृति ते वीर सुखदुःखोपसेजनम् ।

भविष्यदुत्तर चेह सर्वे वाहमीकिना वृतम् ॥ १७ ॥

‘वीर ! आविर्भावकालसे ही जा आपके द्वारा मुख दुःखों का (स्वेच्छासे) सेवन हुआ है, उसका तथा सीताके अन्तधान होनेका बाद जा भविष्यमें होनेवाली बातें हैं, उनका भी महर्षि वास्मीकिने इसमें पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया है ॥ १७ ॥

आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

नहान्योऽर्हति कायाना यशोभागं राघवावृते ॥ १८ ॥

‘भीराम ! यह आदिकाव्य है। इस सम्पूर्ण काव्यकी आधारशिला आप ही हैं—आपने ही जीवनवृत्तान्तको लेकर इस काव्यकी रचना हुई है। रघुकुल-लीलाका वर्णन आपने सिवा दूसरा कोई ऐसा यत्नाभी पुराण नहीं है, जो काव्योंका नायक होनेका अधिकारी हो ॥ १८ ॥

श्रुत ते पूर्वमेतदि मया सर्वं सुरै सह ।

दिध्यमद्भुतरूपं सत्यवाक्यमनावृतम् ॥ १९ ॥

‘देवताओं साथ मैंने पहले आरसे सम्बंधित इस सम्पूर्ण काव्यका अवगण किया है। यह दिव्य और अद्भुत है। इसमें कोई भी बात छिपायी नहीं गयी है। इनमें कभी गयी सारी बातें सत्य हैं ॥ १९ ॥

स त्व पुण्डरीकाक्ष धर्मेण सुसमादित ।

शेष भविष्य कानुत्स्य काव्य रामायणं भृशम् ॥ २० ॥

‘पुण्डरीकाक्ष रघुनन्दन ! आप धर्मपूर्वक एकाग्रचित्त हो भविष्यकी घटनाओंसे युक्त शेष रामायण काव्यको भी सुन लीजिये ॥ २० ॥

उत्तर नाम काव्यमय योगमय महापदा ।

सत्पुण्य महातेज आग्निं साधमुत्तमम् ॥ २१ ॥

‘महायगस्त्री एवं महातजस्वी श्रीराम । इस काव्यने
अंतिम भागका नाम उत्तरकाण्ड है । उस उत्तम भागको
आप श्रुषिषोऽं लभ्य सुनिये ॥ २१ ॥

न पल्लवयेन फाकुत्स्थ श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ।
परमश्रुषिणा धीरं स्वयैव रघुनन्दन ॥ २२ ॥

‘फाकुत्स्थवीर रघुनन्दन । आप सर्वोत्कृष्ट राजर्षि हैं ।
अतः पहले आपको ही यह उत्तम काव्य सुनना चाहिये, दूसरे
को नहीं ॥ २२ ॥

पताउदुभ्रत्या यच्चन ब्रह्मा त्रिमुचनेश्वरः ।
जगाम त्रिदिशं देवो देवैः सह सत्राघवैः ॥ २३ ॥

इतना कहकर तीनों लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी देवताओं
एव उनसे यष्टु गाचबोंके साथ अपने लोकको चले गये ॥

ये च तत्र महात्मानः श्रुष्यो ब्राह्मलौकिकाः ।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता न्यवर्तन्त महीजसः ॥ २४ ॥
उत्तर श्रोतुमनसो भविष्य यथा राघवे ।

वहाँ जो ब्रह्मलोकमें रहनेवाले महातजस्वी महात्मा श्रुषि
विद्यमान थे, वे ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर भावी वृत्तान्तोंसे
युक्त उत्तरकाण्डको सुननेकी इच्छासे लौट आये (उनके साथ
ब्रह्मलोकमें नहीं गये) ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डेऽष्टमवतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टमस्कन्ध उत्तरकाण्डमें अष्टमवर्तों का पूरा हुआ ॥ २५ ॥

एकोनशततमः सर्गः

सीताके रसातल प्रवेशके पश्चात् श्रीरामकी जीवनचर्या, रामरान्यकी स्थिति

तथा माताओंके परलोक-गमन आदिका वर्णन

रजत्या त्वं प्रभाताया समानीय महामुनीन् ।

गीयतामविशङ्काम्या राम पुत्राबुयाच ह ॥ १ ॥

रात बीतनेपर जब सवेरा हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने
बड़े-बड़े मुनियोंको बुलाकर अपने दोनों पुत्रोंसे कहा—‘अब
तुम निश्चङ्क होकर शीघ्र रामायणका गान आरम्भ करो’ ॥ १ ॥

ततः समुपविष्टेषु महर्षिषु महात्मसु ।

भविष्यदुत्तरं काव्यं जगत्तुम्ही कुशीलुनैः ॥ २ ॥

महात्मा महर्षियोंके यथास्थान बैठ जानेपर कुछ और
छवने भगवान्से भविष्य जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्तर
काण्डका, जो उस महाकाव्यका एक अंग था, गान आरम्भ
किया ॥ २ ॥

प्रदिग्मया त्वं सीताया भूतल सत्यसम्पदा ।

तस्यापसाने यद्वक्ष्य राम परमदुर्मना ॥ ३ ॥

इधर अपनी सत्यरूप सम्पत्तिने बलिसे सीताजीके रसातल
में प्रवेश कर जानेपर उस वृक्ष-अन्तर्गते भगवान् श्रीरामका
मन बहुत दुःखी हुआ ॥ ३ ॥

अपश्यमानो धेदुर्दो मेने शून्यमिदं जगत् ।

शोकने परमापस्तो न शान्तिं मनसागमत् ॥ ४ ॥

ततो गमन्नुभा वार्णा देवदेवस्य भाषिताम् ॥ २५ ॥

श्रुत्वा परमतेजस्वी वाल्मीकिमिदमब्रवीत् ।

तत्पश्चात् देवाधिदेव ब्रह्माजीकी वही हुई उस गुप्त
वाणीको याद करके परम तेजस्वी श्रीरामजीने महर्षि वाल्मीकिसे
इस प्रकार कहा— ॥ २५ ॥

भगवन् श्रोतुमनसः श्रुष्यो ब्राह्मलौकिका ॥ २६ ॥

भविष्यदुत्तरं यमे श्वोभूते सम्प्रवर्तताम् ।

‘भगवन् । ये ब्रह्मलोकके निवासी महर्षि मरे भावी
चरित्रोंसे युक्त उत्तरकाण्डका शीघ्र अथ सुनना चाहते हैं ।
अतः कल सरेसे ही उसका गान आरम्भ ही जाना
चाहिये’ ॥ २६ ॥

एव त्रिनिक्षयं कृत्वा सम्प्रगृह्य कुशीलुनैः ॥ २७ ॥

तं जनौघं त्रिखण्डाय पर्णशालामुपागमत् ।

तामेव शोचत सीता सा व्यतीता च शर्मरी ॥ २८ ॥

ऐसा निश्चय करके श्रीरघुनाथजीने जनसमुदायको विदा
कर दिया और कुशील तथा लवको साथ लेकर वे अपनी पत्नी
शालामें आये । वहाँ सीताका ही चिन्तन करते करते उन्होंने
रात व्यतीत की ॥ २७ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डेऽष्टमवतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टमस्कन्ध उत्तरकाण्डमें अष्टमवर्तों का पूरा हुआ ॥ २५ ॥

एकोनशततमः सर्गः

सीताके रसातल प्रवेशके पश्चात् श्रीरामकी जीवनचर्या, रामरान्यकी स्थिति

तथा माताओंके परलोक-गमन आदिका वर्णन

रजत्या त्वं प्रभाताया समानीय महामुनीन् ।

गीयतामविशङ्काम्या राम पुत्राबुयाच ह ॥ १ ॥

रात बीतनेपर जब सवेरा हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने
बड़े-बड़े मुनियोंको बुलाकर अपने दोनों पुत्रोंसे कहा—‘अब
तुम निश्चङ्क होकर शीघ्र रामायणका गान आरम्भ करो’ ॥ १ ॥

ततः समुपविष्टेषु महर्षिषु महात्मसु ।

भविष्यदुत्तरं काव्यं जगत्तुम्ही कुशीलुनैः ॥ २ ॥

महात्मा महर्षियोंके यथास्थान बैठ जानेपर कुछ और
छवने भगवान्से भविष्य जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्तर
काण्डका, जो उस महाकाव्यका एक अंग था, गान आरम्भ
किया ॥ २ ॥

प्रदिग्मया त्वं सीताया भूतल सत्यसम्पदा ।

तस्यापसाने यद्वक्ष्य राम परमदुर्मना ॥ ३ ॥

इधर अपनी सत्यरूप सम्पत्तिने बलिसे सीताजीके रसातल
में प्रवेश कर जानेपर उस वृक्ष-अन्तर्गते भगवान् श्रीरामका
मन बहुत दुःखी हुआ ॥ ३ ॥

अपश्यमानो धेदुर्दो मेने शून्यमिदं जगत् ।

शोकने परमापस्तो न शान्तिं मनसागमत् ॥ ४ ॥

निदेहकुमारीका न देखनेसे उन्हें यह सारा स्वार सृता
जान पड़ने लगा । शोकसे व्यथित होनेके कारण उनके मनको
शान्ति नहीं मिली ॥ ४ ॥

त्रिखण्डाय पार्थिवान् सवानुभयानरराक्षसान् ।

जनौघं त्रिप्रमुख्यानां त्रिपूर्वं त्रिखण्डाय च ॥ ५ ॥

एव समाप्य यज्ञं विधिवत् स त्वं राघव ।

ततो त्रिखण्डाय तान् सर्वान् रामो राजीयलोचनः ॥ ६ ॥

इति इत्यादि तत्र सीतामयोण्या प्रविशेत् ह ।

तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने सब राजाओंको, रीछों,
थानों और राक्षसोंको, जनसमुदायको तथा मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों
को भी धन देकर विदा दिया । इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञको
समाप्त करके कमलनयन श्रीरामने सबको विदा करनेपर पश्चात्
उस समय सीताका मन ही मन स्मरण करते करते हुए अवोण्यामें
प्रवेश किया ॥ ५ ६ ॥

इष्टयज्ञो नरपतिः पुत्रद्वयसमन्वितः ॥ ७ ॥

न सीतायाः परा भार्या यमे सरघुनन्दन ।

यद्ये यजे च पत्न्यर्थं जानकीं फाञ्जनीभवत् ॥ ८ ॥

यज्ञ पूरा करके रघुकुलनन्दन राजा भीराम अपने दोनों

पुत्रोंके साथ रहने लगे । उन्होंने सीताके सिवा दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह नहीं किया । प्रत्येक यज्ञमें जब-जब घमपत्नीकी आवश्यकता होती, श्रीरघुनाथजी सीताकी स्तनमयी प्रतिमा बना लिया करते थे ॥ ७८ ॥

दशवर्षसहस्राणि चाजिमेधानथाकरोत् ।

वाजोपेयान् दशगुणास्तथा यदुसुवर्णकान् ॥ ९ ॥

उन्होंने दस हजार वर्षोंतक यज्ञ किये । कितने ही अश्व मेघ यज्ञों और उनसे दसगुने याजोपेय यज्ञोंका अनुष्ठान किया, जिसमें अखण्ड स्तनमुद्राओंकी दक्षिणाएँ दी गयी थीं ॥ ९ ॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्या गोसयैश्च महापथैः ।

ईजे क्रतुभिरन्यैश्च स श्रीमानातदक्षिणैः ॥ १० ॥

भीमान् रामने पयात दक्षिणाओंमें युक्त अग्निष्टोम, अतिरात्र, गोसव तथा अन्य बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया, जिनमें अपार धनराशि खर्च की गयी ॥ १० ॥

एष स काल सुमहान् राज्यस्यस्य महात्मन ।

धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद् राज्यस्य च ॥ ११ ॥

इस प्रकार राज्य करते हुए महात्मा भगवान् श्रीरघुनाथ जीका बहुत बड़ा समय धर्मपालनके प्रयत्नोंमें ही बीता ॥ ११ ॥

श्रुद्धयानररक्षासि स्थिता रामस्य शासने ।

अनुरक्षन्ति राजानो ह्यहन्यहनि राज्यम् ॥ १२ ॥

रीछ, वानर और राक्षस भी श्रीरामजी के आज्ञाके अधीन रहते थे । भूमण्डलके सभी राजा प्रतिदिन श्रीरघुनाथजीको प्रसन्न रखते थे ॥ १२ ॥

काले वर्षति पर्जन्य सुभिन्न विमला दिश ।

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुर जनपदास्तथा ॥ १३ ॥

श्रीरामके राज्यमें मेघ समयपर बर्षा करते थे । सर्वा सुकाल ही रहता था—कभी अकाल नहीं पड़ता था । सम्यक् दिशाएँ प्रसन्न दिखायी देती थी तथा नगर और जनपद हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरे रहते थे ॥ १३ ॥

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधि प्राणिना तथा ।

नानर्थो निर्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ १४ ॥

श्रीरामने राज्यशासन करते समय किसीकी अकाल-मृत्यु

हृषार्थं श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे

इम प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आगरामायण आदिकाण्डे उत्तरकाण्डमें निम्नानुवच सा पूरा हुआ ॥ ९ ॥

नहीं होती थी । प्राणियोंका कोई रोग नहीं उगता था और सारासे कोई उपद्रव खड़ा नहीं होता था ॥ १४ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य राममाता यशस्विनी ।

पुत्रपौत्रैः परिवृता कालधममुपागमत् ॥ १५ ॥

इसके बाद दीर्घकाल यतीत होनेपर पुत्र पौत्रोंसे भरी हुई परम यशस्विनी श्रीराममाता कौस्तुभ कालधम (मृत्यु) को प्राप्त हुई ॥ १५ ॥

अन्वियाय सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी ।

धर्मे कृत्वा बहुविध त्रिश्रेये पर्यचम्यता ॥ १६ ॥

सर्वा प्रमुदिता स्वर्गे राजा दशरथेन च ।

समागता महाभागा सर्वधर्मे च लेभिरे ॥ १७ ॥

सुमित्रा और यशस्विनी ककयीन भी उद्दीर्घ पथना अनुसरण किया । ये सभी रानियाँ जीवनकालमें नाना प्रकारके धर्मका अनुष्ठान करके अन्तमें सार्वभौमको प्राप्त हुई और बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ राजा दशरथसे मिलीं । उन महा भागा रानियोंको सब धर्मोंका पूरा-पूरा फल प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

तासा रामो महादानं काले काले प्रयच्छति ।

मातृणामग्निशोषेण ब्राह्मणेषु तपस्विषु ॥ १८ ॥

श्रीरघुनाथजी समय समयपर अपनी सभी माताओंके निमिष बिना किसी भेदभावके तपस्वी ब्राह्मणोंको बड़े बड़े दान दिया करते थे ॥ १८ ॥

पियाणि ब्रह्मरत्नानि यज्ञान् परमदुस्तरान् ।

अकार रामो धर्मात्मा पितृन् देशान् विनियन् ॥ १९ ॥

धर्मोत्तमा श्रीराम आदर्श उपपाती उत्तमोत्तम यस्तुष्टे ब्राह्मणोंको देते तथा पितरों और देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिये बड़े-बड़े दुस्तर यज्ञों (विष्वात्मक पितृयज्ञ) का अनुष्ठान करते थे ॥ १९ ॥

एष वर्षसहस्राणि यहन्यथ ययु सुतम् ।

यज्ञैर्वहुविध धर्मे वर्धयानस्य सर्वदा ॥ २० ॥

इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा सदा विविध धर्मोंका पालन करते हुए श्रीरघुनाथजीका वह हजार वर्ष गुल्बनक बीत गये ॥ २० ॥

इत्यार्ष श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे

उत्तरकाण्डे षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १९ ॥

शततम सर्ग

कैकयदेशसे ब्रह्मर्षि गार्ग्यका भेंट लेकर आना और उनके मदशक अनुमार श्रीरामका आनासे

कुमारोंसहित भरतका गन्धर्वदेशपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान

कस्यचित् स्वयं कलस्य युधाजित् केकयो नृप ।

स्वगुरु प्रेरयामास रावजाय महात्मने ॥ १ ॥

गार्ग्यमद्भिरस पुत्रं ब्रह्मर्षिमितप्रभम् ।

उक्त कालसे पश्चात् कैकयदेशक राजा युधाजित्ने अपने

पुत्रोद्भूत अमित तेजस्वी ब्रह्मर्षि गार्ग्यसे, जो अद्भुत पुत्र

थे महात्मा श्रीरघुनाथकाक पाप भय ॥ १ ॥

दत्त चाप्यसहस्राणि प्रीतिदानमुत्तमम् ॥ २ ॥

कश्यपानि च रत्नानि चित्ररत्नमयोत्तमम् ।

रामाय प्रददौ राजा शुभान्याभरणानि च ॥ ३ ॥

उनके साथ श्रीराम व द्रौपदी को परम उत्तम प्रेमोपहारके रूपमें
अर्पण करनेके लिये उन्होंने दस हजार घोड़े, बहुत से कम्बल
(कालीन और शाल आदि), नाना प्रकारके रत्न, विचित्र
विचित्र सुन्दर वस्त्र तथा मनोहर आभूषण भी दिये थे ॥ २ ॥
श्रुत्वा तु राघवो धीमान् महर्षिं गार्ग्यमागतम् ।
मातुलस्याभ्यपतितः प्रहृतिं तमहाधनम् ॥ ४ ॥
प्रत्युद्गम्य च काकुत्स्थः क्रोशमात्रसहानुज ।
गार्ग्यं सम्पूजयामास यथा शम्भो बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥

परम बुद्धिमान् श्रीमान् राघवे द्रौपदी के साथ कि मामा
अश्वपति पुत्र सुधाजित् के भेजे हुए महर्षि गार्ग्य बहुतमूल्य
मैत्र-सामग्री लिये अयोध्यामें पधार रहे हैं, तब उन्होंने
भाइयोंके साथ एक कोस आगे बटकर उनकी अगवानी की
और वैसे इन्द्र बृहस्पतिकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार महर्षि
गार्ग्यका पूजन (स्वागत-सत्कार) किया ॥ ४ ॥
तथा सम्पूज्य तमूर्ध्नि तद् धनं प्रतिगृह्य च ।
पृष्ट्वा प्रतिपद सर्वं कुशलं मातुलस्य च ॥ ६ ॥
उपनिष्ट महाभाग राम प्रष्टुं प्रचक्रमे ।

इस प्रकार महर्षिका आदर स्तुति करके उस धनको
ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने उनका तथा मामाके घरका साथ
कुशल-समाचार पूछा । फिर जब वे महाभाग ब्रह्मर्षि सुन्दर
आत्मपर विराजमान हो गये, तब श्रीरामने उनसे इस प्रकार
पूछना आरम्भ किया— ॥ ६ ॥

किमाह मातुलो वाक्य यदर्थं भगवानिह ॥ ७ ॥
मातो वाक्यविदा श्रेष्ठ साक्षादिव बृहस्पति ।

‘ब्रह्मर्षे ! मेरे मामाने क्या संदेश दिया है, जिसके लिये
साक्षात् बृहस्पतिके समान वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आप पूज्यपाद
महर्षिने यहाँ पधारनेका कष्ट किया है’ ॥ ७ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा महर्षिं कार्यवित्तरम् ॥ ८ ॥
यत्कुमुद्वतसमाश राघवायोपचक्रमे ।

श्रीरामका यह प्रश्न सुनकर महर्षिने उनसे अद्भुत
काय विलासका वचन आरम्भ किया— ॥ ८ ॥

मातुलस्तं महाबाहो वाक्यमाह नरपथ ॥ ९ ॥
युधाजित् प्रीतिसयुक्तं श्रूयता यदि रोचते ।

‘महाबाहो ! आपके मामा नरपथ सुधाजित्ने जो प्रेम
पूर्ण संदेश दिया है, उसे यदि रुचिपर जान पड़े तो
सुनिये ॥ ९ ॥

अयं गार्धर्वविषय फलमूलोपशोभित ॥ १० ॥
सिन्धोरुभयत पादौ देशः परमशोभन ।

‘उन्होंने कहा है कि यह जो फल मूलोंसे सुशोभित
गार्धर्वदेश सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर बसा हुआ है, बड़ा
सुन्दर प्रदेश है ॥ १० ॥

स च रक्षति गार्धरा सायुधा युद्धकोविदा ॥ ११ ॥

शैल्यस्य सुता वीर तिस्रः कोट्यो महाबला ।

‘वीर खुन-दन ! गार्धर्वराज शैल्यारी सतानें तीन करोड़
महाबली गार्धर्व, जो युद्धकी कलामें कुशल और अत्यन्त शक्तिसे
सम्पन्न हैं, उस देशकी रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

तान् त्रिनिजित्य काकुत्स्थगार्धर्वनगरं शुभम् ॥ १२ ॥
निवेशय महाबाहो स्वे पुरे सुसमाहिते ।

अन्यस्य न गतिस्तत्र देश परमशोभन ।

रोचता ते महाबाहो नाह त्वामहितं धदे ॥ १३ ॥

‘काकुत्स्थ ! महाबाहो ! आप उन गार्धर्वोंको जीतकर
यहाँ सुन्दर गार्धर्वनगर बसाइये । अपने लिये उत्तम साधनोंसे
सम्पन्न दो नगरोंका निर्माण कीजिय । वह देश बहुत सुन्दर
है । वहाँ दूसरे किसीकी गति नहीं है । आप उसे अपने
अधिकारमें लेना स्वीकार करें । मैं आपको ऐसी सलाह नहीं
देता, जो अहितकारक हो’ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा राघव प्रीतो महर्षेमातुलस्य च ।

उयाच बादमित्येव भरत चाध्वैक्षत ॥ १४ ॥

महर्षि और मामाका वह कथन सुनकर श्रीरामतापजीको
बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने ‘बहुत अच्छा’ कहकर भरतकी
ओर देखा ॥ १४ ॥

सोऽप्रवीद राघव प्रीत साञ्जलिप्रग्रहो द्विजम् ।

इमौ कुमारी स वेश ब्रह्मर्षे विचरिष्यत ॥ १५ ॥

भरतस्यैवमजौ वीरौ तक्षः पुष्कलं पय च ।

मातुलेन सुगुप्तौ तु धर्मेण सुसमाहितौ ॥ १६ ॥

तदनन्तर श्रीराघवे द्रौपदी ने उन ब्रह्मर्षिसे प्रसन्नतापूर्वक हाथ
जोड़कर कहा— ‘ब्रह्मर्षे ! ये दोनों कुमार तक्ष और पुष्कल,
जो भरतने वीर पुत्र हैं, उस वेशमें विचरेंगे और मामासे
सुरक्षित रहकर धर्मपूर्वक एकत्रचित्त हो उस देशका शासन
करेंगे ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥

भरत चाग्रतं ह्त्वा कुमारी सयलानुगौ ।

निहत्य गार्धर्वसुतान् द्वे पुरे विभजिष्यतः ॥ १७ ॥

‘ये दोनों कुमार भरतको आगे करके तेना और तेवर्कोंके
साथ वहाँ जायेंगे तथा उन गन्धर्वपुत्रोंका संहार करके अलग-
अलग दो नगर बसावेंगे ॥ १७ ॥

निवेश्य ते पुरवरे आत्मजौ सनिवेश्य च ।

आगमिष्यति मे भूय सखाशमतिधार्मिक ॥ १८ ॥

‘उन दोनों श्रेष्ठ नगरोंको बसाकर उनमें अपने दोनों
पुत्रोंको स्थापित करके अत्यन्त धर्मात्मा भरत फिर मेरे पास
लौट आयेंगे’ ॥ १८ ॥

ब्रह्मर्षिमेवमुक्त्वा तु भरत सयलानुगम् ।

आशापयामास तदा कुमारी चाभ्यवेचयत् ॥ १९ ॥

ब्रह्मर्षिसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने भरतको वहाँ
तेनाके साथ जानेकी आज्ञा दी और दोनों कुमारोंका पहले
ही सन्ध्याभोजन कर दिया ॥ १९ ॥

नयत्रेण च सौम्येन पुरस्हन्याङ्गिर सुतम् ।
भरत सह सैन्येन कुमारस्या गिनिर्ययौ ॥ २० ॥
तत्पश्चात् सौम्य नयत्र (मृगशिरा) में अङ्गिराके पुत्र
महर्षि गार्ग्यको आगे करने सेना और कुमारोंके साथ भरतने
यात्रा की ॥ २० ॥
सा सेना शम्भुके नगरान्निर्ययावध ।
राघवानुगता दूर दुराधया सुरैरपि ॥ २१ ॥
इन्द्रद्वारा प्रति हुइ देवसेनाके समान वह सेना नगरसे
बाहर निकली । भगवान् श्रीराम भी दूरतक उसके साथ-साथ
गये । वह देवताओंके लिये भी दुःख्य थी ॥ २१ ॥
मासाशिनश्च ये सत्तारक्षसि सुप्रहान्ति च ।
अनुजमुर्हि भरत रुधिरस्य पिपासया ॥ २२ ॥
मासाहारी जन्तु और बड़े बड़े राक्षस युद्धमें रक्त

हृष्यौ श्रीमद्रामायणे बाह्यकीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे शततमः सर्ग ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित अष्टाध्याय्य अदिकाण्ड उत्तरकाण्डमें सीढ़ों सर पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकाधिकशततमः सर्ग

भरतका गन्धर्वोंपर आक्रमण और उनका सहार करके वहाँ दो सुन्दर नगर बसाने
अपने दोनों पुत्रोंको सौंपना और फिर अयोध्याको लौट आना

श्रुत्वा सेनार्पणं प्राप्त भरत केकयाधिप ।
युधाजिद् गाम्यसदित परा प्रीतिमुपागमत् ॥ १ ॥
केकयराज युधाजित्ने जब सुना कि महर्षि गार्ग्यक साथ
स्वयं भरत सेनापति होकर आ रहे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता
हुई ॥ १ ॥
स निययौ जनौघेन महता केकयाधिप ।
त्वत्प्राणोऽभिचमाम गन्धगन् कामरूपिण ॥ २ ॥
वे केकयनरेश भारी जनसमुदायक साथ निकले और
भरतसे मिलकर बड़ी उतावलीके साथ इच्छानुसार रूप धारण
करनेवाले गन्धर्वोंके देशकी ओर चले ॥ २ ॥
भरतश्च युधाजिश्च समेतौ लघुग्रिमौ ।
गन्धवनगर प्रातौ सयली सपदानुगौ ॥ ३ ॥
भरत और युधाजित् दोनोंने मिलकर बड़ी तीव्रगतिसे
सेना और सवारियोंके साथ गन्धर्वोंकी राजधानीपर यात्रा
किया ॥ ३ ॥

श्रुत्वा ॥ भरत प्राप्त गन्धवासने समागता ।
योद्धुकामा महावीर्या व्यनदस्ते समन्तत ॥ ४ ॥
भरतका आगमन सुनकर वे महायुद्धकी गन्धर्व युद्धकी
इच्छामें एकत्र हाँ उभर कर-जगमे गर्जना करने लगे ॥ ४ ॥
तत समभरदयुद्धं नुमुन् लोमहयणम् ।
सत्तरात्र महाभीम न चान्यतरयोन्मय ॥ ५ ॥
फिर तो दोनों आरक्षी सेनाओंमें बड़ा भयङ्कर और गैरमटे
खड़े कर देनेवाला युद्ध छिड़ गया । वह महाभयङ्कर सम्म

पानकी इच्छामें भरत पाड़े-पाड़े गये ॥ २२ ॥
भूतग्रामाश्च यद्वयो मासभक्षा सुदारुणा ।
गन्धर्वपुत्रमासानि भोक्तुकामा सहस्रा ॥ २३ ॥
अत्यन्त भयङ्कर बड़े हजार मासभक्षी भूतसमूह गन्धर्व
पुत्रोंका मास खानेके लिये उस सेनाकें साथ साथ गये ॥ २२ ॥
सिंहव्याघ्रघराहाणा खेनराणा च पक्षिणाम् ।
यद्वनि वै सहस्राणि सेनाया ययुरमृत ॥ २४ ॥
सिंह, बाघ, सूअर और आकाशचारी पक्षी बड़े हजार
की सख्यामें सेनाके आगे आगे चले ॥ २४ ॥
अप्यधमासमुपिता पयि सेना निरामया ।
हृष्टपुष्टजनाकीणा केक्य समुपागमत् ॥ २५ ॥
मार्गमें डेढ़ महीने बिताकर हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई
वह सेना कुशलपूर्वक केक्यदेशमें जा पहुँची ॥ २५ ॥

हृष्यौ श्रीमद्रामायणे बाह्यकीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे शततमः सर्ग ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीबाल्मीकिनिर्मित अष्टाध्याय्य अदिकाण्ड उत्तरकाण्डमें सीढ़ों सर पूरा हुआ ॥ १ ॥

ख्यानार मात यततक चलना रहा; परन्तु दोनोंमेंमें किसी भी
एक पक्षकी विजय नहीं हुई ॥ ५ ॥
खड्गराक्षिधनुग्राहा नद्य शोणितसञ्ज्ञया ।
नृकलेरुषाहिभ्य प्रवृत्ता सयतोदिशम् ॥ ६ ॥
चारों ओर खूनकी नदियाँ बह चलीं । तलवार, शक्ति
और धनुष उस नदीमें बिचरनेवाले प्राहोंर समान बान पड़ते
थे, उनही चारों ओर मनुष्योंकी लाशें बह जाती थीं ॥ ६ ॥
ततो रामानुजः क्रुद्ध काल्प्याग्नं सुदारुणम् ।
सर्वतः नाम भरतो गन्धर्वेष्वभ्यगोदयत् ॥ ७ ॥
तब रामानुज भरतने दुःखित हाथर गन्धर्वोंपर कालदेवाने
अत्यन्त भयङ्कर अन्धकार, जो सग्न नामने प्रसिद्ध है, प्रयोग
किया ॥ ७ ॥

ते यद्धा काल्प्यादेन सन्नैतं विदारिता ।
क्षणेनाभिहतस्तेन तिस्र कोट्यो महामना ॥ ८ ॥
इस प्रकार महात्मा भरतने क्षाभरमें तीन करोड़ गन्धर्वों
का सहार कर डाला । वे गन्धर्व काल्प्यादेन बद्ध हो सन्तान्न
से विदीर्ण कर बात गये ॥ ८ ॥
तद् युद्धं तादृशं घोरं न स्मरन्ति द्वितीयसः ।
निर्मेयान्तरमात्रेण तादृशानां महामनाम् ॥ ९ ॥
हतेषु तेषु सर्वेषु भरत केक्यामुन ।
नियेष्टायामास तशः समृद्धे दे पुरोत्तम ॥ १० ॥
ऐसा भयङ्कर युद्ध देवताओंने भी कभी देखा है; यह
उन्हें याद नहीं आता था । जल्द भारते मारने देन पराक्रमी

महामन्त्री समस्त गणवोका सगर हो जानेपर कैकेयीकुमार भरतने उस समय वहाँ दो समृद्धिदात्री सुन्दर नगर बसाये ॥९१०॥

तत्र तक्षशिलया पुष्कल पुष्कलावते ।
गन्धर्वदेशे रुचिरे गाधारविषये च सः ॥११॥

मनोहर गन्धर्वदेशमें तक्षशिला नामकी नगरी बसाकर उसमें उन्होंने तक्षको राजा बनाया और गाधारदेशमें पुष्कलावत नगर बसाकर उसका राज्य पुष्कलको सौंप दिया ॥११॥

धनरत्नौघसजीनों काननैरुपशोभिते ।
अन्योऽयसघपकृते स्पर्धया गुणविस्तरैः ॥१२॥

वे दोनों नगर धन धान्य एवं रत्नसमूहोंसे भरे थे । अनेकानेक कानन उनकी शोभा बढ़ाते थे । गुणविस्तारकी दृष्टिसे वे मानो परस्पर होड़ लगाकर सघनपूर्वक आगे बढ़ रहे थे ॥१२॥

उमे सुदधिरप्रणये व्ययहारैरकिञ्चिपैः ।
व्यानयानसम्पूर्णं सुविभक्त्यन्तराण्ये ॥१३॥

दोनों नगरोंकी शोभा परम मनोहर थी । दोनों व्यानोंका व्यवहार (व्यापार) निष्कपट, शुद्ध एवं सरल था । दोनों ही नगर उद्यान (वाग-वगीचों) तथा नाना प्रकारकी सवारियोंसे भरे हुए थे । उनके मीतर अलग-अलग कई बाजार थे ॥१३॥

उमे पुरवरे रभ्ये विस्तरैरुपशोभिते ।
शुद्धसुखैः सुदधिरैर्विमानैर्वहुभिर्वृत्ते ॥१४॥

दोनों श्रेष्ठ पुरोंकी रमणीयता देखते ही बनती थी ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये

इत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषारामायण आदिकाव्यके

अनेक ऐसे विस्तृत पदार्थ उनकी शोभा बढ़ाते थे, जिनका नाम अभीतक नहीं लिया गया है । सुन्दर श्रेष्ठ गृह तथा बहुत से सतमहले मकान वहाँकी श्रीवृद्धि कर रहे थे ॥१४॥

शोभिते शोभनीयैश्च देवायतनविस्तरैः ।
तालैस्तमालैस्तिरकैर्यवुल्लंरुपशोभिते ॥१५॥

अनेकानेक शोभागम्यन्त्र देवमंदिरों तथा ताल, तमाल, तिलक और मोलसिरी आदिक वृक्षोंसे भी उन दोनों नगरोंकी शोभा एवं रमणीयता बढ़ गयी थी ॥१५॥

निर्देय पञ्चभिर्वर्षभरतो राघवानुज ।
पुनरप्यामहाशानुरयोध्या वैकृतीसुत ॥१६॥

पाँच वर्षोंमें उन राजधानियोंका अष्टी तरह आयाद करके श्रीरामचंद्र छोट मार वैकृतीकुमार महाबाहु भरत विर अयोध्यामें लौट आये ॥१६॥

सोऽभिवाच महात्मान साक्षाद्धर्ममिवापरम् ।
राघव भरतः श्रीमान् ब्रह्माणमिव वात्सल्यः ॥१७॥

वहाँ पहुँचकर श्रीमान् भरतने द्वितीय धर्मराजने समान महारामा श्रीधुनाधजीको उसी तरह प्रणाम किया, जैसे इंद्र ब्रह्माजीको प्रणाम करते हैं ॥१७॥

शशस च यथावृत्त गन्धर्वयधुत्तमम् ।
निवेशन च देशस्य श्रुत्या प्रीतोऽस्य राघव ॥१८॥

तत्सम्प्रात् उन्होंने गणवोंसे वध और उस देशकी अच्छी तरह आगाद करनेका यथावत् समाचार कह सुनाया । सुनकर श्रीधुनाधजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए ॥१८॥

उत्तरकाण्डे पृक्काधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

इत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषारामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ पकड़ों सग पूरा हुआ ॥१०१॥

द्वयधिकशततम सर्गः

श्रीरामकी आज्ञासे भरत और लक्ष्मणद्वारा कुमार अङ्गद और चन्द्रकेतुकी

कारुण्य देशके विभिन्न राज्योंपर नियुक्ति

तत्पुत्रा एवमपेदे राघवो भ्रातृभि सह ।

याक्य चाद्रुमसकाश भ्रातृन् प्रोप्राच राघवः ॥ १ ॥

भरतके पुत्रोंमें गन्धर्वदेशका समाचार सुनकर भाईयोंसहित श्रीरामचंद्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई । तत्सम्प्रात् श्रीरामचंद्र अपने भाईयोंसे यह अद्भुत वचन बोले— ॥ १ ॥

इमो कुमारो लीमित्रे तव धर्मविशारदौ ।

अङ्गदश्च द्रुपेत्तुश्च राज्यार्थे हृदयिष्ये ॥ २ ॥

‘मुमिमानन्दन । तुम्हारे वे दोनों कुमार अङ्गद और चन्द्रकेतु धर्मके ज्ञाता हैं । इनमें रायकी रक्षाके लिये उपयुक्त हृदता और पराक्रम है ॥ २ ॥

इमो राज्येऽभियेक्ष्यामि देशः साधु विधीयताम् ।

रमणीयो दासम्याधो रमेता यत्र धन्विनी ॥ ३ ॥

‘अत मैं इनका भी राज्यधिकार करूँगा । तुम इनके

लिये किसी अच्छे देशका चुनाव करो जो रमणीय होनेके साथ ही विघ्न बाधाओंसे रहित हो और वहाँ वे दोनों धनुर्वीर वीर आनन्दपूरक रह सकें ॥ ३ ॥

न राजा यत्र पीडा व्याप्ताश्चमाणा विनाशनम् ।

स देशो दृश्यता सौम्य नापरार्ध्यामहे यथा ॥ ४ ॥

‘सौम्य । ऐसा देश देखो, वहाँ निराश करनेसे दूसरे राजाओंको पीडा या उद्वेग न हो, आभ्रमोंका भी नाश न करना पड़े और हमलोगोंको किसीकी दृष्टिमें अपराधी भी न बनना पड़े’ ॥ ४ ॥

तथोक्तचिति राम तु भरतः प्रत्युवाच ॥

अथ कारुण्यो देशो रमणीयो निरामय ॥ ५ ॥

श्रीरामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर भरतने उत्तर दिया—

आय । यद् वाक्पथ नामक देग बड़ा सुन्दर है । यहाँ किसी प्रकारकी राग-रगाधिका भय नहीं है ॥ ५ ॥

निरोक्ष्यता तत्र पुरमङ्गदस्य महामन ।
चन्द्रकेतो मुरुचिर चन्द्रकात निरामयम् ॥ ६ ॥

‘यहाँ महात्मा अङ्गदके लिये नयी राजधानी खसयी आय तथा चन्द्रस्तु (या चन्द्रकात) के रहनेके लिये ‘चन्द्र कान्त’ नामक नगरका निमाण कराया जाव, जो सुन्दर और आरोग्यरक्षक हो’ ॥ ६ ॥

तद् धाक्य भग्तेनोक्त प्रतिजप्ताह राघव ।
तत्र कृत्या उदो देशमङ्गदस्य न्यवेशयत् ॥ ७ ॥

भरतजी वही हुआ इस बातकी भीरघुनायकीने स्वीकार किया और वाक्पथ देशको अपने अधिकारमें करके अङ्गद को वहाँना राजा बना दिया ॥ ७ ॥

अङ्गदीया पुरी रम्याप्यङ्गदस्य निवेदिता ।
रमणीया सुगुप्ता च रमिणाङ्घ्रिपथमा ॥ ८ ॥

केशरहित कम करनेवाले भगवान् श्रीरामने अङ्गदके लिये ‘अङ्गदीया’ नामक रमणीय पुरी बसायी, जो परम सुन्दर होनेके नाम ही नर भरते सुरजित भी थी ॥ ८ ॥

चन्द्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्या निवेदिता ।
चन्द्रान्तेति त्रिपथात् दिवा स्वर्गपुरी यथा ॥ ९ ॥

चन्द्रकेतु अपने ‘उरीने मल्लर समान हुए हुए थे उनके लिये मल्ल देगमें ‘चन्द्रकान्ता’ नामसे विख्यात दिव्य पुरी बसायी गयी, जो स्वर्गकी अमरावती नगरीने समान सुन्दर थी ॥ ९ ॥

ततो नाम परा प्रीतिं लक्ष्मणो भरतस्तथा ।
यथुर्बुधे दुर्गाधरा अभिषेकं च चरित्रे ॥ १० ॥

इन्ने श्रीराम, लक्ष्मण और भरत तीनोंकी बड़ी प्रसन्नता हुई । उन सभी रणदुर्जेय वीरोंने स्वयं उन कुमारोंका अभिषेक किया ॥ १० ॥

अभिविज्य कुमारौ द्वौ प्रम्याप्य सुसमादितौ ।
अङ्गद पश्चिमा भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम् ॥ ११ ॥

एकाग्रचित्त तथा क्षात्रपान रहनेवाल उन दोनों कुमारों का अभिषेक करन अङ्गदका पश्चिम तथा चन्द्रकेतुका उत्तर दिशामें भेज गया ॥ ११ ॥

अङ्गद यापि सौमित्रिलक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
हृषार्थे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्य

इस प्रकार श्रीरामनिर्मित उत्तरकाण्ड अष्टाध्यायक उत्तरकाण्डे ८० श्लोकों में समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

अधिकशततम सर्ग

श्रीरामके यहाँ कालका आगमन और एक कठोर युद्धका साथ उनका वार्ताक लिये उद्यत होना

कम्यन्ति त्वय काव्य रामे धमपर स्थिते ।

फालस्तपसन्प्रेण राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥

तदनन्तर कुछ समय और शीत मानेकर जब कि भगवान्

चन्द्रकेतोस्तु भरत पाणिप्रदाहो यभूय ह ॥ १० ॥

अङ्गदर काय तो स्वयं मुमितानुमार लम्पण गये और

चन्द्रकेतुन महायक या पावन मरती हुए ॥ १० ॥

लक्ष्मणस्तङ्गदीयाया सप्तसरमोपित ।

पुत्रे स्थिते दुर्गाधरे बैयोध्या पुनरागमत् ॥ १३ ॥

लक्ष्मण अङ्गदीया पुरीमें एक वरतन रहे और उनका दुर्घर्ष पुत्र अङ्गद तत्र दृढतपूर्वक राख सँभालने लगा, तब व पुन अयोध्यामें लौट आये ॥ १३ ॥

भरतोऽपि तत्रोप्य सप्तसरमतोऽधिकम् ।

अयोध्या पुनरागम्य रामपादादुपास्त स ॥ १४ ॥

इसी प्रकार भरत भी चन्द्रकाता नगरीमें एक वरतने कुछ अधिक काव्यक ठहरे रहे और चन्द्रकेतुका राख बच हुआ हो गया, तब वे पुन अयोध्यामें आकर श्रीरामचन्द्रजीक चरणोंकी सेवा करने लगे ॥ १४ ॥

उभौ सामित्रिभरतौ रामपादादनुवर्तौ ।

काल गतमपि स्नेहाद्य ज्ञानाऽतिधामिकौ ॥ १ ॥

लक्ष्मण और भरत दोनोंका श्रीरामचन्द्रजीक चरणोंमें अनन्य अनुगम था । दोनों ही अत्यन्त धर्मात्मा थे । धीरगम की सेवामें रहते उन्हें बहुत समय शीत गया, फलु स्नेहाधिक्य कारण उनका कुछ भी शान न हुआ ॥ १५ ॥

पर यममन्त्राणि ददा तथा ययुस्तदा ।

धर्मे प्रयतमानाना पारकायेषु नियता ॥ १६ ॥

य तीनों भाई पुरखानियोंके कायमें सदा सत्पण रहते और यमपालनक लिय प्रयत्नशील रहा करते थे । इस प्रकार उनसे दन दगर वष शीत गय ॥ १६ ॥

ग्रिह्यत का परिपूषमानसा

धिया तृना धमपुते च सम्यिता ।

अथ समिद्धातिदीप्ततजसा

हृताग्नय साधुमहाप्यते अथ ॥ १७ ॥

यम साधनर व्यावभूत अपायापुरीमें बंधमग्नन ह रर रहते हुए १ तीनों भाई यथकमय धम फिरर प्रज्ञाती गेय भान ररत थ । उनर मारे मनरथ पूज हो गय थ तथा २ मगयममें आहुति पार प्ररगि हुए दीत तजम्बी गह आहवनीय और तजिग नामक विविध अग्निर्षो गहन प्रकाशित होये ॥ १७ ॥

उत्तरकाण्डे द्वाध्यायतम सर्ग ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीरामनिर्मित उत्तरकाण्ड अष्टाध्यायक उत्तरकाण्डे ८० श्लोकों में समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

अधिकशततम सर्ग

श्रीरामके यहाँ कालका आगमन और एक कठोर युद्धका साथ उनका वार्ताक लिये उद्यत होना

कम्यन्ति त्वय काव्य रामे धमपर स्थिते ।

फालस्तपसन्प्रेण राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥

तदनन्तर कुछ समय और शीत मानेकर जब कि भगवान्

श्रीराम धमपुत अपाया राखता पावन पर १६१,

भगवान् काल गम्या रूपमें राजमनस पावन भग ॥ १॥

सोऽग्रशीललक्ष्मण वाक्य धृतिमन्त यदास्मिन् ॥

मा निवेद्य रामाय सप्रसात कार्यगौरवात् ॥ २ ॥

उत्तरे द्वारपर खड्ग हुए धैर्यवान् एव यथास्वी लक्ष्मणसे
कहा—‘मैं एक भारी कायसे आया हूँ । तुम श्रीरामचन्द्रजीसे
मेरे आगमनकी सूचना दे दो ॥ २ ॥

दूतो ह्यतिरलस्याह महर्षेरमितौजस ।

राम दिदृशुरायात कार्येण हि महात्सल ॥ ३ ॥

‘महायली लक्ष्मण । मैं अमित तेजस्वी महर्षि अतिवलका
दूत हूँ और एक आवश्यक कार्यवश श्रीरामचन्द्रजीसे मिलने
आया हूँ ॥ ३ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयावित ।

न्यवेद्यत रामाय तापस त समागतम् ॥ ४ ॥

उसकी यह बात सुनकर सुमित्राकुमारलक्ष्मणने बड़ी उता
वलीके साथ भीतर जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे उस तापसने आग
मनकी सूचना दी— ॥ ४ ॥

जयस्य राजधर्मेण उभौ लोकौ महाद्युते ।

दूतस्त्वा द्रष्टुमायातस्तपसा भास्करप्रभ ॥ ५ ॥

‘महातेजस्वी महाराज । आप अपने राजधर्मके प्रभावसे
इहलोक और परलोकपर भी विजयी हों । एक महर्षि दूतने
रूपमें आपसे मिलने आये हैं । वे तपस्याजनित तेजसे सूर्यक
समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

तद् वाक्य लक्ष्मणोक्त वै श्रुत्वा राम उवाच ह ।

प्रवेद्यता मुनिस्तात महोनास्तस्य पाप्म्यभृक् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई यह बात सुनकर श्रीरामने कहा—
‘तात । उन महातेजस्वी मुनिका भीतर ल आओ’ जो कि
आने स्वामीके सदेश लेकर आये हैं ॥ ६ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेद्यशत त मुनिम् ।

ज्वलन्तमेव तेजोभि प्रदह तमिनाग्निभि ॥ ७ ॥

तब ‘जा आओ’ कहकर सुमित्राकुमार उन मुनिको भीतर
ल आये । वे तेजसे प्रज्वलित होते और अपनी प्रखर किरणोंसे
दग्ध करते हुए-से जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

सोऽभिगम्य ह्युधेष्ट दीप्यमान म्वतेजसा ।

श्रुतिमधुरया वाया यधस्वेत्याह राघवम् ॥ ८ ॥

अपने तेजसे दीप्तिमान् सुकुलितलक श्रीरामने पास
पहुँचकर श्रुतिने उनसे मधुर वाणीमें कहा—‘रघुनन्दन ।
आपका अमृदय हो’ ॥ ८ ॥

तस्मै रामो महातेजाः पूजामर्च्यपुरोगमाम् ।

वदौ कुशलमव्यग्र प्रष्टुं चैत्रोपचक्रमे ॥ ९ ॥

महातेजस्वी श्रीरामन उहाँ पास आप आदि पूजनोंप
चार समर्पित किया और दान्ताभावसे उनका कुशल-समाचार
पूचना आरम्भ किया ॥ ९ ॥

ह्यर्च्ये श्रीमद्रामायण शास्त्रीकाये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे श्रुतिप्रसूततमः सग ॥ १०३ ॥

इत प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टारामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें एक सौ तीनों सग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

पृष्ठश्च कुशल तेन रामेण वदता यत् ।

आसने काञ्चने दिव्ये निपस्ताद् महायशः ॥ १० ॥

श्रीरामके पृष्ठनेपर वत्ताओंमें श्रेष्ठ महायशस्वी मुनि कुशल
समाचार बनाकर दिव्य सुगन्धमय आसनपर निराजमान हुए ॥
तमुवाच ततो राम स्वागत ते महामते ।

प्रापयास्य च वाक्यानि यतो दूतस्समागत ॥ ११ ॥

तदनन्तर श्रीरामने उनसे कहा—‘महामते । आपका
स्वागत है । आप जिनके दूत होकर यहाँ पधारे हैं ; उनका
सदेश सुनाइये’ ॥ ११ ॥

चोदितो राजसिंहेन मुनिराक्यमभाषत ।

ह्रद्वे होतस् प्रयत्नय हित वै यद्यवेक्षसे ॥ १२ ॥

राजसिंह श्रीरामके द्वारा इस प्रकार प्रेरित होनेपर मुनि
बाले—‘यदि आप हमारे हितपर दृष्टि रखें तो जहाँ हम और
आप दो ही आदमी रहें, वहीं इस बातको कहना उचित है ॥
य शृणोति निरीक्षेद् वा स वध्यो भद्रिता तत ।

भवेद् वै मुनिमुखस्य वचन यद्यवेक्षसे ॥ १३ ॥

‘यदि आप मुनिश्रेष्ठ अतिवलके वचनपर ध्यान दें तो
आपका यह भी धोषित करना होगा कि जो कोई मनुष्य हम
दोनोंकी बातचीत सुन ले अथवा हमें यातालाप करते देख ले,
यह आप (श्रीराम) का वध्य होगा’ ॥ १३ ॥

तथेति च प्रतिपाद्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।

द्वारि तिष्ठ महायाहो प्रतिहार विसृजय ॥ १४ ॥

श्रीरामने ‘तथास्तु’ कहकर इस बातके लिये प्रतिज्ञा की
और लक्ष्मणसे कहा—‘महाबाहो । द्वारपालको निदा कर दो
और स्वयं कण्ठीपर खड़े होकर पहर दो ॥ १४ ॥

स मे वध्य खलु भवेद् वाच ह्रदसमीरितम् ।

श्रुयेमम च सौमित्रे पश्येद् वा शृणुयाद्य य ॥ १५ ॥

‘मुनिप्रानन्दन । जो श्रुति और मेरी—दोनोंकी कही हुई
बात सुन लगा या बात करते हमें देख लगा, यह मरदाप
मार जायगा’ ॥ १५ ॥

ततो निक्षिप्य काकुत्स्थो लक्ष्मण द्वारि सप्रहम् ।

तमुवाच मुने वान्म्य कथयस्सेति राघव ॥ १६ ॥

तत् त्वे मनीषित वान्म्य येन वासि समाहित ।

कथयस्तामिश्राङ्गस्त्य ममापि हृदि धनते ॥ १७ ॥

इस प्रकार अपनी बात प्रदण करनेवाले लक्ष्मणको दरवाजे
पर तेनात करव श्रीरघुनाथजीने समागत महर्षिसे कहा—
‘मुने । अब आप नि शङ्क होकर वह बात कहिये, जिसे कहना
आपको अभीष्ट है अथवा जिसे कहनेके लिये ही आप यहाँ
भेजे गये हैं । मैं हृदयमें भी उसे सुननेके लिये
उत्कण्ठा है’ ॥ १६ १७ ॥

चतुरधिकशततम सर्ग

कालका श्रीरामचन्द्रजीको ब्रह्माजीका सदेश सुनाना और श्रीरामका उसे स्वीकार करना

शृणु राजन् महासत्त्व यवर्थमहमागत ।
पितामहेन देवेन प्रेषितोऽसि महाबल ॥ १ ॥

महाबली महान् सत्वशाली महाराज । पितामह भगवान्
ब्रह्माने जिस उद्देश्यसे मुझे यहाँ भेजा है और जिसके लिये मैं
यहाँ आया हूँ वह सब बताता हूँ सुनिये ॥ १ ॥

तवाह पूर्वके भावे पुत्र परपुरजय ।
मायासम्भावितो वीर काल सर्गसमाहृत ॥ २ ॥

शत्रु-जगदीपर विजय पानेवाले वीर ! पूर्वावस्थामें अयात्
हिरण्यगर्भकी उत्पत्तिके समय मैं मायाद्वारा आपसे उत्पन्न
हुआ था; इसलिये आपका पुत्र हूँ । मुझे सर्गसंसारकारी काल
कहते हैं ॥ २ ॥

पितामहश्च भगवानाह लोकपति प्रभु ।
समयस्ते हत सौम्य लोकान् सम्परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥

लोकनाथ प्रभु भगवान् पितामहने कहा है कि 'सौम्य !
आपने लोकोंकी रक्षाके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हो
गयी ॥ ३ ॥

सक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि ।
महापते शयानोऽस्तु मा त्व पूर्वमजीजन ॥ ४ ॥

'पूर्वकालमें समस्त लोकोंको मायाके द्वारा स्वयं ही अपने
में लीन करके आपने महासमुद्रके जलमें शयन किया था ।
किर इस सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया ॥ ४ ॥

भोगयन्त ततो नागमनन्तमुदकेशयम् ।
मायया जनयित्वा त्व द्वौ च सत्तौ महारतौ ॥ ५ ॥

मधु च कैटभ चैव ययोरस्थिचयैर्वृता ।
इय परंतसम्पाधा मेदिनी चाभयत् तदा ॥ ६ ॥

'इसका बाद विद्याल पण और शरीरसे मुक्त एवं जलमें
शयन करनेवाले 'अनन्त' वृक्ष नागको मायाद्वारा प्रकट
करके आपने दो महान्सी जीर्णोंको जन्म दिया; त्रिशूना नाम
या मधु और कैटभ' इन्होंने अस्थि-समुहोंसे भरी हुई यह
पर्वतोंसहित पृथिवी तत्काल प्रकट हुई; जो 'मेदिनी'
कहलायी ॥ ५ ॥

पक्षे दिव्येऽक्षसज्जादो नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ।
प्राजापत्यं त्यया कम् मयि सर्वं निवेक्षितम् ॥ ७ ॥

'आपकी नाभिसे सूर्य-सुख्य तेजस्वी दिव्य कमल प्रकट
हुआ; जिसमें आपने मुझको भी उत्पन्न किया और प्रजापती
सृष्टि रचनेका सारा कार्यभार मुझपर ही रख दिया ॥ ७ ॥

सोऽह सत्यस्तभातो हि त्वामुपास्य जगत्पतिम् ।
रक्षा निधत्स्व भूतेषु मम तेजस्वरो भवान् ॥ ८ ॥

'जब मुझपर यह भार रख दिया गया; तब मैंने आप
भाग्यशस्त्री उपासना करके प्रार्थना की—'प्रभो ! आप

सम्पूर्ण भूतोंमें रहकर उनकी रक्षा कीजिये क्योंकि आप ही
मुझे तेज (शान और क्रिया शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं' ॥ ८ ॥

ततस्त्वमसि दुर्धर्मात् तस्माद् भ्राता सनातनात् ।
रक्षा निधास्यन् भूताना विष्णुत्वमुपजन्मिवान् ॥ ९ ॥

तब आप मेरा अनुरोध स्वीकार करके प्राणियोंकी रक्षाने
लिये अपरिमय सनातन पुरुषरूपसे जगत्पालक विष्णुके रूपमें
प्रकट हुए ॥ ९ ॥

अदिया वीरवान् पुत्रो भ्रातृणा वीरवर्धन ।
समुत्पन्नेषु कृत्येषु तेषां साहाय्य कृत्यसे ॥ १० ॥

'किर आपने ही अदिनिके गर्भसे परम पराक्रमी बामन
रूपमें अवतार लिया । तबसे आप अपने भाई इन्द्रादि देवताओं
की शक्ति बनाते और आवश्यक्ता पड़नेपर उनकी रक्षाके
लिये उद्यत रहते हैं ॥ १० ॥

स त्वमुज्जास्यमानासु प्रजासु जगता वर ।
रावणस्य यथाकाङ्क्षी मानुषेषु मनोऽदधा ॥ ११ ॥

'जगदीश्वर ! जब रावणका द्वारा प्रजाना विनाश होने
लगा; उस समय आपने उस निगाचरका वध करनेकी इच्छासे
मनुष्य शरीरमें अवतार लीनेका निश्चय किया ॥ ११ ॥

दशार्णसहस्राणि दशार्णशतानि च ।
कृत्वा वासस्य नियम स्वयमेवात्मना पुरा ॥ १२ ॥

'और स्वयं ही ग्यारह हजार बर्षोंतक मत्स्यलोकमें निवास
करनेकी अवधि निश्चित की थी ॥ १२ ॥

स त्व मनोमय पुत्रः पूणानुमानुपेयिह ।
कालोऽय ते नरभेष्ट समीपमुपरतिनुम् ॥ १३ ॥

'नरभेष्ट ! आप मनुष्य-लोकमें अपने वक्षस्वसे ही किसी
पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं । इस अवतारमें आपने अपनी कृतिने
समय तककी आयु निश्चित की थी; यह पूरी हो गयी; अतः
अब आपके लिये यह हमलागीक समीप आनेका समय है ॥

यदि भूयो महाराज प्रजा इच्छस्युपासितुम् ।
वस या वीर भद्र ते पद्यमाह पितामह ॥ १४ ॥

अयं या निनिगीषा ते सुरलोकाय राघव ।
सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वरा ॥ १५ ॥

'वीर महाराज ! यदि और अधिक कालतक यहाँ रहकर
प्रजावर्णोंका पालन करनेकी इच्छा हो तो आप रह सकते
हैं । आपका कल्याण हो । रघुनन्दन ! अथवा यदि परमेश्वर
में पधारनेका विचार हो तो अवश्य आर्य । आर विष्णुदयके
स्वधानमें प्रतिष्ठित होनेपर समूह देवता स्नाय एव निश्चित
हो जायें—ऐसा निनामहने कहा है' ॥ १४ ॥

श्रुत्वा पितामहेनोक्तं दाक्ष्य कालसमीरितम् ।
राघवः प्रहसन् दाक्ष्य सप्तसहस्रमप्रवीत् ॥ १६ ॥

मा निवेदय रामाय सम्प्राप्त कार्यगौरवात् ॥ २ ॥

उसने द्वारपर पड़े हुए चैयैवान् एय यशस्वी लक्ष्मणने कहा—'मैं एक भारी कायसे आया हूँ । तुम भीरामचन्द्रजीसे मेरे आगमनकी सूचना दे दो ॥ २ ॥

दूतो ह्यतिरत्नस्याह महर्षिरमितीजस ।

राम विहङ्गुरायातः कार्येण हि महावल् ॥ ३ ॥

'महावली लक्ष्मण ! मैं अमित तेजस्वी महर्षि अनिवलका दूत हूँ और एक आयस्कय कायवाग भीरामचन्द्रजीसे मिलने आया हूँ ॥ ३ ॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा सौमित्रित्यरप्यापित ।

न्यवेदयत रामाय तापस त समागतम् ॥ ४ ॥

उसकी वह बात सुनकर सुमित्राङ्गुमारलक्ष्मणने बढ़ी उठा बठीके साथ भीतर जाकर भीरामचन्द्रजीसे उस तापसने आग मनकी सूचना दी—॥ ४ ॥

जयस्य राजधर्मेण उभौ लोकौ महाद्युते ।

दूतस्या द्रष्टुमप्यातस्तपसा भास्करप्रभ ॥ ५ ॥

'महातेजस्वी महाराज ! आप अपने राजधर्मके प्रभारसे इहलोक और परलोकपर भी विजयी हों । एक महर्षि दूतके रूपमें आपसे मिलने आये हैं । वे तपस्याजनित तेजसे सूर्यसे समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

तद् वान्य लक्ष्मणोक्त वै श्रुत्वा राम उवाच ह ।

प्रवेक्ष्यता मुनिस्तात महोजास्तस्य चाक्यधृक् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई वह बात सुनकर भीरामने कहा—'तात ! उन महातेजस्वी मुनिका भीतर ले आओ, वो कि अपने स्वामीके सदेश लेकर आये हैं' ॥ ६ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्या प्रवेक्ष्यत त मुनिम् ।

ज्वलन्तमेव तेजोभि प्रदहन्तमिगानुभि ॥ ७ ॥

तप 'वो आशु' कहकर सुमित्राङ्गुमार उन मुनिको भीतर ले आये । वे तेजसे प्रचलित होते और अपनी प्रखर किरणोंसे दग्ध करते हुए से जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

सोऽभिगम्य रघुप्रेष्ठ दीप्यमान स्वतेजसा ।

श्रुपिर्मेधुरया वाचा पथस्थेत्याह राघवम् ॥ ८ ॥

अपने तेजसे दीप्तिमान् रघुकुलतिलक भीरामने पास पहुँचकर श्रुतिने उनसे मधुर याणीमें कहा—'ययुनन्दन ! आपका अभ्युदय हा' ॥ ८ ॥

तस्मै रामो महातेजा पूजामर्च्यपुरोगमाम् ।

ददौ कुशलमप्यग्र प्रष्टु चैवोपचक्रमे ॥ ९ ॥

महातेजस्वी भीरामने उन्हें पाषाण्य आदि पूजनोपचार समर्पित किया और शान्तभावसे उनका कुशल-समाचार पूछना आरम्भ किया ॥ ९ ॥

पृष्टश्च पुशल तेन रामेण वदता चर ।

आसने वाञ्छने दिव्ये निपसाद् महायया ॥ १० ॥

भीरामने पृष्ठनेपर बचाओंमें श्रेष्ठ महायशस्वी मुनि कुशल समाचार बताकर दिव्य सुवर्णमय आपनपर विराजमान हुए ॥ तमुवाच ततो राम स्वागत ते महामते ।

प्रापयास्य च चाक्ययानि यतो दूतस्त्वमागत ॥ ११ ॥

तदनन्तर भीरामने उनसे कहा—'महामते ! आपका स्वागत है । आप जिनके दूत होकर यहाँ पधार हैं, उनका सदेश प्रनाइये' ॥ ११ ॥

चोदितो राजसिंहेन मुनिगन्धमभागत ।

ब्रह्मे श्वेतस्त्र्यवकल्प्य हित वै यद्यवेक्षसे ॥ १२ ॥

राजसिंह भीरामने द्वारा इस प्रकार प्रेरित होनेपर मुनि बोले—'यदि आप हमारे हितपर दृष्टि रक्वें तो जहाँ हम और आप दो ही आदमी रहें, वहीं इस बातको कहना उचित है ॥

य शृणोति निरीक्षेद् वास यच्चो भजिता तव ।

भवेद् वै मुनिमुच्यस्य वचन यद्यवेक्षसे ॥ १३ ॥

'यदि आप मुनिश्रेष्ठ अतिबलके वचनपर ध्यान दें तो आपको यह भी घोषित करना होगा कि वो कोई मनुष्य हम दोनोंकी बातचीत सुन ले अपवा हमें वातालाप करते देख ले, वह आप (भीराम) का वच्य होगा' ॥ १३ ॥

तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।

द्वारि तित्थ महापादो प्रतिहार त्रिजय ॥ १४ ॥

भीरामने 'तथास्तु' कहकर इस बातके लिये प्रतिज्ञा की और लक्ष्मणसे कहा—'महापादो ! द्वारपालको बिदा कर दो और स्वयं खोदीपर खड़े होकर पहरा दो ॥ १४ ॥

स मे वच्य खलु भवेद् वाच ब्रह्मसमीरितम् ।

श्रुयेमम च सौमित्रे पश्येद् वा शृणुयाच्च य ॥ १५ ॥

'सुमित्रानन्दन ! वो श्रुति और मेरी—दोनोंकी कही हुई बात सुन लेगा या बात करते हमें देख लेगा, वह मेरेद्वारा माया जयगा' ॥ १५ ॥

ततो निक्षिप्य काशुस्त्यो लक्ष्मण द्वारि सप्रहम् ।

तमुवाच मुने चाक्य कथयत्येति राघव ॥ १६ ॥

तत् ते मनीषित चाक्य येन धास्ति समाहित ।

कथयस्वाग्निशङ्कस्त्य ममापि हृदि घतते ॥ १७ ॥

इस प्रकार अपनी बात प्रष्टन करनेवाले लक्ष्मणको दरवाजे पर तैनात करके भीरुधुनायजीने समागत महर्षिसे कहा—'मुने ! अब आप निःशङ्क होकर वह बात कहिये, जिसे कहना आपको अभीष्ट है अथवा जिसे कहनेके लिय ही आप यहाँ भेजे गये हैं । मेरे हृदयमें भी उसे सुननेके लिये उरकण्डा है' ॥ १६ १७ ॥

हृत्पार्थ श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आरामायण आदिकाव्य उत्तरकाण्डमें षष्ठ सी तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्धिकशततम सर्ग

कालका श्रीरामचन्द्रजीको ब्रह्माजीका संदेश सुनाना और श्रीरामका उसे स्वीकार करना

शृणु रामन् महासत्त्व यदर्थमहमागत ।

पितामहेन देवेन प्रेषितोऽसि महारत्न ॥ १ ॥

महाबली महान् सवशाली महाराज । नितामह भगवान्

ब्रह्माने जिस उद्देश्यसे मुझे यहाँ भेजा है और जिसके लिये मैं

यहाँ आया हूँ वह सब बनाता हूँ मुनिये ॥ १ ॥

तथाह पूर्वके भाये पुन परपुरजय ।

मायासम्भावितो वीर काल सर्वसमाहर ॥ २ ॥

शुन-नगरोंपर विजय पायेगल वीर । पूवावस्थामें अपात्

हिरण्यगमकी उत्पत्तिक समय मैं मायाद्वारा आपने उत्पन्न

हुआ था; इसलिये आकरा पुन हूँ । मुझे सर्वसमाहरारी काल

कहते हैं ॥ २ ॥

पितामहब्रह्म भगवानाह लोफपति प्रभु ।

समपत्नेष्टत सीम्यलोकान् सम्परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥

लोकनाथ प्रभु भगवान् निजामहने कहा है कि श्वोष्य !

आपने लोकोंकी रक्षाके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हो

गयी ॥ ३ ॥

सक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि ।

महार्णवे दायानोऽप्सु मा त्व पूर्वमजीजन ॥ ४ ॥

'पूर्वकालमें समस्त लोकोंको मायाके द्वारा स्वय ही अपने

में लीन करके आपने महासमुद्रके जलमें धुपन किया था ।

निर इस सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया ॥ ४ ॥

भोगरन्त ततो नागमनन्तमुदकेदायम् ।

मायया जनयित्वा त्व द्वी च सत्त्वी महारत्नी ॥ ५ ॥

मधु च कैटभ चैव ययोरस्थिचयैवृक्षा ।

इय परंतसम्प्राधा मेदिनी चाभवत् तदा ॥ ६ ॥

'इसके बाद विद्याल पण और शरीरमें मुक्त एव बलमें

धुपन करनेवाले 'अनन्त' सृष्टक नागको मायाद्वारा प्रकट

करके आपने दो महाबली जीकोंको जन्म दिया; जिनका नाम

था मधु और कैटभ' इहोके अस्थि-समुहोंसे भरी हुई वह

परंतोत्पत्ति पृथिवी उत्पन्न प्रकट हुई, जो 'मेदिनी'

कहलायी ॥ ६ ॥

पद्मे दिव्येऽवसकरो नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ।

प्राजापत्य त्वया कम मयि सर्व निवेशितम् ॥ ७ ॥

'आपकी नाभिमें भू-पुत्र्य तैजस्वी दिव्य कमल प्रकट

हुआ; जिसने आपने मुझको भी उत्पन्न किया और प्रजापती

सृष्टि रचनेका कार्यभार मुझपर ही रख दिया ॥ ७ ॥

सोऽह सन्यस्तभारो हि त्वामुपास्य जगत्पतिम् ।

रक्षा विधत्स भूतेषु मम तेनस्त्वरो भवान् ॥ ८ ॥

'बस मुझपर यह भार रख दिया गया; तब मैंने आप

सम्पूर्ण भूतोंमें रहकर उनकी रक्षा काजिये क्योंकि आप ही

मुझे तब (जान और किंवा शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

ततस्त्वमसि दुर्धर्गात् तस्माद् भगवात् सनातनात् ।

रक्षा विधास्यन् भूताना विष्णुत्वमुपनमिमान् ॥ ९ ॥

तब आप मया अनुरोध स्वीकार करके प्राणियोंकी रक्षाने

लिये अवरिग्य क्वातन पुरुषरूपसे जगत्पालक विष्णुके रूपमें

प्रकट हुए ॥ ९ ॥

अदित्या पीयशान् पुत्रो भ्रातृणा धीपराधन ।

समुत्पत्नेषु हृत्पेषु तेषा साद्याय कल्पसे ॥ १० ॥

'निर आपने ही अदितिक गर्भमें परम पराक्रमी बामन

रूपमें अवतार लिया । तबमें आप अपने माह इन्द्रादि देवताओं

की शक्ति बताते और आश्विनका पड़नेपर उनकी रक्षाके

लिय उद्यत रहते हैं ॥ १० ॥

स त्वमु-जाम्यमानारु प्रनस्तु जगता पर ।

रावणस्य वचाकाङ्क्षी मानुषेषु मनोऽदधा ॥ ११ ॥

'बगदीभर । जब रावण आप प्रबुद्धा निनाश होने

लगा; उस समय आपने उस निगाचरका वध करनेकी इच्छामें

मनुष्य-शरीरमें अवतार लेंकेला निश्चय किया ॥ ११ ॥

ददानर्यसदृशपि ददानर्यशतानि च ।

हृत्वा यासस्य नियम स्वयमेवात्मना पुरा ॥ १२ ॥

और स्वय ही मरह हजार वर्षोंके मत्स्यलोकमें निवास

करनेकी अवधि निश्चित की थी ॥ १२ ॥

स त्व मनोमय पुन पूणायुमानुषेप्यिह ।

कालोऽय ते नरध्रेष्ठ समीपमुपगतिनुम् ॥ १३ ॥

'नरध्रेष्ठ । आप मनुष्य-लोकमें अपने सकलमें ही किसीके

पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं । अब अवशामें आपने अपनी जितने

समय तककी आयु निश्चित की थी; वह पूरी हो गयी अब

अब आकरे लिये मैं हमलोगोंकी समीप आनेका समय है ॥

यदि भूयो महाराज प्रह इच्छस्युपासितुम् ।

यस या वीर भद्र ते परमाह पितामह ॥ १४ ॥

अथ या विनिगीया तं सुरलोकाय राघव ।

सनाथा विष्णुना देवा भयतु विगतचरा ॥ १५ ॥

वीर महाराज । यदि और अधिक कालतक यहाँ रहकर

प्रबलकोंका पालन करनेकी इच्छा हो तो आप रह सकते

हैं । अन्यथा कल्या हो । रघुनन्दन । अपना यदि परमपाप-

में पश्चात्तत्ता विचार हो तो आप अवश्य आँवें । आप विष्णुदेवके

स्वभाम्ने प्रतिष्ठित होनेपर सम्पूर्ण देवता आपा एव निश्चित

हो जाँवें—देवा निजामहने कहा है ॥ १४ १५ ॥

धुन्वा पितामहेनोक्तं पाश्य कालसमीरितम् ।

राघव प्रहसन् पाश्य सर्वसहायमग्रीम् ॥ १६ ॥

कालके मुखसे कहे गये पितामह ब्रह्माके सदेगो सुनकर
भीरघुनाथजी हैंते हुए उस सर्महारी कालसे बोले—॥१६॥
श्रुत्या मे देवदेवस्य वाम्य परममद्भुतम् ।

प्रोतिहि महती जाता तत्रागमनसम्भ्रज ॥ १७ ॥

‘काल ! देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह परम अद्भुत वचन
सुननेको मिला, इसलिये तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता
हुई है ॥ १७ ॥

त्रयाणामपि लोकानां कार्यायै मम सम्भ्रज ।

भद्र तेऽस्तु गमिष्यामि यत् पत्राहमागम ॥ १८ ॥

‘तीनों लोकोंके प्रयोजनकी सिद्धि के लिये ही मेरा यह

हृत्कार्य श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आदिकाव्ये

इस प्रकार श्रीबालमीनिर्मित आपरामायण आदिकाव्यक

अन्तार हुआ था, वह उद्देश्य अब पूरा हो गया इसलिये

तुम्हारा कल्याण हो अब मैं जहाँसे आया था वहीं चढ़ूँगा ॥

दृढतो ह्यसि सम्प्राप्तो न मे तत्र विचारणा ।

मया हि सर्ववृत्त्येषु देवानां पदार्जतना ।

स्थातव्य सर्वसहार यथा ह्याह पितामहः ॥ १९ ॥

‘काल ! मैंने मनसे तुम्हारा चिन्तन किया था । उठीक

अनुसार तुम यहाँ आये हो, अतः इस विषयका लज्ज मरे

मनमें कोई विचार नहीं है । सर्वसहाराकरी काल ! मुझे सभी

कार्योंमें सदा देवताओंका यशस्वी होकर ही रहना चाहिये,

जैसा कि पितामहका कथन है’ ॥ १९ ॥

उत्तरकाण्डे चतुर्थिकशततमं सर्ग ॥ १०४ ॥

उत्तरकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमः सर्गः

दुर्वामाके आपके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका

समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वामा मुनिको भोजन कराना

और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित होना

तथा तयो स्रवतोर्दुर्वासा भगवानृषि ।

रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपगमत् ॥ १ ॥

इन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि

दुर्वासा राजद्वारपर आ पहुँचे । वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिलना

चाहते थे ॥ १ ॥

सोऽभिगम्य तु सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तम ।

राम दशाय मे शीघ्रं पुरा मेऽप्योऽतिथयते ॥ २ ॥

उन मुनिश्रेष्ठने सुमित्राकुमार लक्ष्मणके पास जाकर

कहा—‘तुम शीघ्र ही मुझे श्रीरामचन्द्रजीसे मिला दो । उनसे

मिले बिना मेरा एक काम बिगड़ रहा है’ ॥ २ ॥

मुनेस्तु भाषित श्रुत्वा लक्ष्मण परवीरहा ।

अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

मुनिकी यह बात सुनकर शशुयीरोंका सहार करनेवाले

लक्ष्मणने उन महात्माको प्रणाम करके यह बात कही—॥३॥

किं कार्यं ब्रूहि भगवन् को ह्ययं किं करोम्यहम् ।

व्यस्रो हि राघवो ब्रह्मन् मुहूर्तं परिपाल्यताम् ॥ ४ ॥

‘भगवन् ! बताइये, आपका कौन सा काम है ? क्या

प्रयोजन है ? और मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ ? ब्रह्मन् ।

इस समय भीरघुनाथजी दूसरे कार्यमें सलस्य हैं अतः दो

बड़ीतक उनकी प्रतीक्षा कीजिये’ ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिशार्दूलं क्रोधेन फलुपीरुत ।

उपायं लक्ष्मणं वाक्यं निर्ब्रह्मिणं चक्षुषा ॥ ५ ॥

यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा रोसे तमतमा उठे और

लक्ष्मणकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो अपनी नेत्राग्नि

उन्हें भस्म कर डालेंगे । साथ ही उनसे इस प्रकार बोले—॥५॥

अस्मिन् क्षणे मा सौमित्रे रामाय प्रतिपेद्य ।

अस्मिन् क्षणे मा सौमित्रे न निपेद्यसे यदि ।

विषयं त्वा पुरं चैव शपिष्ये राघव तत्रा ॥ ६ ॥

भरतं चैव सौमित्रे गुप्ताय वा च स्तति ।

न हि शक्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि ॥ ७ ॥

‘सुमित्राकुमार ! इसी क्षण श्रीरामको मेरे आगमनकी

सूचना दो । यदि अभी-अभी उनसे मेरे आगमनका समाचार

नहीं निवेदन करोगे तो मैं इस राघवको, नगरको, तुमको,

श्रीरामको, भरतको और तुमलोगोंकी जो स्तति है, उसको

भी आप दे दूँगा । मैं पुनः इस श्लेषको अपने हृदयमें धारण

नहीं कर सकूँगा’ ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा घोरस्फाशं वाक्यं तस्य महात्मन ।

चित्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥ ८ ॥

उन महात्माका यह घोर वचन सुनकर लक्ष्मणने उनकी

बाणीसे जो निश्चय प्रकट हो रहा था, उसपर मन ही मन

विचार किया ॥ ८ ॥

पयस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत् स्वयंरिनाशनम् ।

इति बुद्ध्या विनिश्चिन्य राघवाय यवेद्यत् ॥ ९ ॥

‘अच्छेले मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है किंतु स्वका

विनाश नहीं होना चाहिये’ अपनी बुद्धिद्वारा ऐसा निश्चय

करके लक्ष्मणने भीरघुनाथजीसे दुर्वासाके आगमनका समाचार

निवेदन किया ॥ ९ ॥

लक्ष्मणस्य सच श्रुत्वा रामः कालं विरुज्य च ।

निःसृत्य त्वरितो राजा अश्वेः पुनर्यददा ॥ १० ॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर राजा श्रीराम गालकी विदा करके

उरत ही निकले और अविपुत्र दुर्वाणमे मिले ॥ १० ॥
 सोऽभिवाद्य महात्मान ज्वलन्तमिव तेजसा ।
 किं कार्यमिति काकुत्स्थ वृत्ताञ्जलिभाषत ॥ ११ ॥
 अपने तेवमे प्रचलितमे हते हुए महात्मा दुर्वाणको
 प्रणाम करके श्रीरघुनाथजीने हाथ कोङ्कर पूछा—महर्षे ।
 मेरे लिये क्या आश है ॥ ११ ॥
 तद् धाम्य राघयेणोक्त श्रुत्वा मुनिवर प्रभु ।
 प्रत्याह राम दुर्वाणा श्रूयता धर्मवत्सल ॥ १२ ॥
 श्रीरघुनाथजीकी यही हुई उस बातका सुनकर प्रभाव
 थाकी मुनिर दुर्वासा उनसे बोले—धर्मवत्सल । मुनिये ॥ १२ ॥
 अद्य वर्षसहस्रान्य समाप्तिमम राघव ।
 सोऽह भोजनमिच्छामि यथासिद्ध तवानघ ॥ १३ ॥
 'निष्पाय रघुनन्दन । मैंने एक हजार वर्षोंका उपवास
 किया । आज मेरे उस व्रतकी समाप्तिका दिन है, इसलिये इस
 समय आपके यहाँ जा भी भोजन तैयार हो, उसे मैं ग्रहण
 करना चाहता हूँ' ॥ १३ ॥
 तच्छ्रुत्वा वचन राजा राघव प्रीतमानस ।
 भोजन मुनिमुण्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १४ ॥
 यह सुनकर राजा श्रीरघुनाथजी मन ही-मन बड़े प्रसन्न
 हुए और उन्होंने उन मुनिभेदको तैयार भोजन परोखा ॥ १४ ॥
 स तु भुक्त्वा मुनिधेष्टस्तदन्नममृतोपमम् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाहमीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे पडधिकशततम सर्ग ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आश्वलायन आदिकाण्ड्यक उत्तरकाण्डमे पड साँ पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

पडधिकशततम सर्ग

श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर स्वर्गगमन

अवाङ्मुखमयो दीन दृष्ट्वा सोममिवाण्डुतम् ।
 राघव लक्ष्मणो वाक्य दृष्टो मधुरमग्रयीत् ॥ १ ॥
 श्रीरामचन्द्रजी राहुप्रसन्न चन्द्रमाक समान दीन हो गये
 ये, उन्हें तिर छद्ममे लेद करते देख लक्ष्मणने बड़े हर्षके
 साथ मधुर वाणीमें कहा— ॥ १ ॥
 न सताप महाबाहो मदर्थं कर्तुमर्हसि ।
 पूयनिमाणयद्वा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ २ ॥
 'महाबाहो । आपको मेरे लिये कष्टाप नहीं करना चाहिये,
 क्योंकि पूर्वक्रमक क्रमोत्ति बँधी हुई कालकी गति ऐसी ही है ॥
 जहि मा सौम्य निराश्रय प्रतिज्ञा परिपालय ।
 हीनप्रतिज्ञा काकुत्स्थ प्रयान्ति नरक नरा ॥ ३ ॥
 'सौम्य । आप निम्नित होकर मेरा वचन कर डालें और
 ऐसा करके अपनी प्रतिज्ञाका पाबन्धन करें । काकुत्स्थ ।
 प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले मनुष्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ३ ॥
 यदि प्रीतिमहाराज यचनुग्राहता मयि ।
 जहि मा निर्विघ्नाहस्त्य धर्मे धृष्य राघव ॥ ४ ॥

साधु गमेति सम्भाष्य स्वमाश्रममुपागमत् ॥ १५ ॥
 वह अमृतक समान अन्न ग्रहण करके दुर्वासा मुनि वृत्त
 हुए और श्रीरघुनाथजीको साधुनाद द अपने आश्रमपर चले
 आये ॥ १५ ॥
 तस्मिन् गते मुनिरे म्नाथम लक्ष्मणाग्रज ।
 सम्मृत्य कालायान्यानि ततो दु क्षमुपागमत् ॥ १६ ॥
 मुनिर दुर्वासाक अपने आश्रमको चले जानेपर लक्ष्मण
 क बड़े भाई श्रीराम नालक वचनोंका स्मरण करने दुखी
 हो गये ॥ १६ ॥
 दु खन च सुमतत स्मृत्वा तद्घोरदशनम् ।
 अवाङ्मुखो दानमना व्यावृत्तं न दाशक ह ॥ १७ ॥
 भयकर भागी भ्रातृवदगक दृश्यको दृष्टिपथमें लानेवाले
 कालक उस बान्धवपर निचार करके श्रीरामक मनमें बड़ा दुःख
 हुआ । उनका मुँह नीचेको झुक गया और वे कुछ बोल न
 सके ॥ १७ ॥
 ततो बुद्ध्या निनिश्चित्य कालायान्यानि राघव ।
 नैतदस्तीनि निश्चित्य तूष्णीमासी महायश ॥ १८ ॥
 तत्पश्चात् कालके वचनोंपर बुद्धिपूर्वक सोच निचार
 करके महायशस्वी श्रीरघुनाथजी इस नियमपर पहुँच कि
 'अब यह सब कुछ भी न रहेगा ।' ऐसा सोचकर वे चुप
 हो रहे ॥ १८ ॥

'महायश । यदि आपका मुसहर प्रम है और यदि आप
 मुझे कृपापात्र समझते हैं तो नि शङ्क दाकर मुझे प्रादण्ड दें ।
 रघुनन्दन । आप अपने वचनकी वृद्धि करें' ॥ ४ ॥
 लक्ष्मणेन तयोक्तस्तु राम प्रचलितेन्द्रिय ।
 मग्निषण समुपानीय तथैव च पुरोधसम् ॥ ५ ॥
 अग्रणीय तदा वृत्त तेषा मध्ये स राघव ।
 दुर्वासोऽभिगम चैव प्रतिज्ञा तापसस्य च ॥ ६ ॥
 लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर श्रीरामकी इतियाँ नखल हो
 उठी—वे धैर्यमे निचलित-स हो गये और मन्त्रियों तथा
 पुरोहितजीके बुलाकर ठा सवक बीचमें बस कर वृत्तान्त
 बताने लगे । श्रीरघुनाथजीने दुर्वासाके आग्रह और ताप-
 रूपकारी कालक समझ की हुई प्रतिज्ञाकी शठ भी पढ़ाई ॥
 तच्छ्रुत्वा मग्निषण सर्वसोपाण्याया समासत ।
 यतिष्ठन्तु महातता वाक्यमन्तदुवाच ह ॥ ७ ॥
 यह सुनकर सब मन्त्री और उपाध्यय सुरवर बैठ गए

कालके मुखसे कहे गये पितामह ब्रह्माके सदेशको मुनकर
श्रीरघुनाथजी हँसते हुए उस सर्वगहारी कालसे बोले—॥१६॥
श्रुत्या मे देवदेवस्य वाक्य परममद्भुतम् ।
मीतिहि महती जाता तत्रागमनसम्भवा ॥ १७ ॥

‘काल ! देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह परम अद्भुत वचन
मुनेने मिले इसलिये तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता
हुई है ॥ १७ ॥

प्रयाणामपि लोकानां कार्यायैवम सम्भज ।

भद्र तेऽस्तु गमिष्यामि यत् एवाहमागम ॥ १८ ॥

‘तीनों लोकोंके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये ही मेरा यह

इत्यायै श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये आदिकाये उत्तरकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित जयरामायण आदिकायके उत्तरकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमः सर्गः

दुर्वामाके शापके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका

समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वामा मुनिको भोजन कराना

और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित होना

तथा तयो साक्षतोर्दुवासा भगवानृषि ।

रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥

इन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि महर्षि
दुवासा राजद्वारपर आ पहुँचे । वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिलना
चाहते थे ॥ १ ॥

सोऽभिगम्य तु सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तम ।

राम दर्शय मे शीघ्रं पुरा मेऽर्थोऽतिवर्तते ॥ २ ॥

उन मुनिभेदने सुमित्राकुमार लक्ष्मणके पास जाकर
कहा—‘तुम शीघ्र ही मुझे भीरामचन्द्रजीसे मिलो दो । उनसे
मिले बिना मेरा एक काम बिगड़ रहा है’ ॥ २ ॥

मुनेस्तु भाषित श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ।

अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतमुवाच ॥ ३ ॥

मुनिकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले
लक्ष्मणने उन महात्माकी प्रणाम करके यह बात कही—॥३॥
किं कार्यं नृहि भगवन् को ह्यर्थं किं करोम्यहम् ।

व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन् मुहूर्तं परिपाल्यताम् ॥ ४ ॥

‘भगवन् ! बताइये, आपका कौन-सा काम है ? क्या
प्रयोजन है ! और मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ ? ब्रह्मन् !
इस समय श्रीरघुनाथजी वृद्धे कार्यमें सलग्न हैं, अतः दो
बड़ीतक उनकी प्रतीक्षा कीजिये’ ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिशार्दूलः क्रोधेन कलुषीरुत ।

उवाच लक्ष्मण वाक्यं निर्दहणैश्चक्षुषा ॥ ५ ॥

यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुवासा रोसे तमतमा उठे और
लक्ष्मणकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो अपनी नेत्राग्निसे
उन्हें भस्म कर डालेंगे । साथ ही उनसे इस प्रकार बोले—॥५॥

अत्रार हुआ था, वह उद्देश्य अब पूरा हो गया इसलिये
तुम्हारा क्याण हो, अब मैं जहाँसे आया था वहीं चूँगा ॥

हृत्ततो ह्यसि सम्प्राप्तो न मे तत्र विचारणा ।

मया हि सर्ववृत्त्येषु देवानां पदप्रतिना ।

स्थातव्य सर्वसंहार यथा ह्याह पितामह ॥ १९ ॥

‘काल ! मैंने मनसे तुम्हारा चिन्तन किया था । उसीके
अनुसार तुम यहाँ आने हो अतः इस विषयका लकर मेरे
मनमें कोई विचार नहीं है । सर्वसंहारकारी काल ! मुझे सभी
कार्योंमें सदा देवताओंका वधार्थ होकर ही रहना चाहिये,
जैसा कि पितामहका कथन है’ ॥ १९ ॥

उत्तरकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित जयरामायण आदिकायके उत्तरकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

अस्मिन् क्षणे मा सौमित्रे रामाय प्रतिवेद्य ।

अस्मिन् क्षणे मा सौमित्रे न निवेद्यसे यदि ।

विषयत्वा पुर चैन शपिष्ये राघव तथा ॥ ६ ॥

भरतस्यैव सौमित्रे युष्माकं वा च सतति ।

न हि शक्याम्यह मृत्यो मृत्यु धारयितुं हृदि ॥ ७ ॥

‘सुमित्राकुमार ! इसी क्षण भीरामको मेरे आगमनकी

ख़बरना दो । यदि अभी-अभी उनसे मेरे आगमनका समाचार

नहीं निवेदन करूँगे ॥ मैं इस राघवको, नगरको, तुमको,

भीरामको, भरतको और तुमलोगोंकी ओर सतति है, उसको

भी शाप दे दूँगा । मैं पुनः इस क्रोधको अपने हृदयमें धारण

नहीं कर सकूँगा’ ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा घोरसकाश वाक्यं तस्य महात्मनः ।

चित्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥ ८ ॥

उन महात्माका यह घोर वचन सुनकर लक्ष्मणने उसकी

वाणीसे जो निश्चय प्रकट हो रहा था, उसपर मन ही मन

विचार किया ॥ ८ ॥

एकस्य शरणं मेऽस्तु मा भूत् सर्वयिनाशनम् ।

इति बुद्ध्या विनिश्चित्य राघवाय न्यवेद्यत् ॥ ९ ॥

‘अकेले मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है किंतु सबका

विनाश नहीं होना चाहिये’ अपनी बुद्धिद्वारा ऐसा निश्चय

करने लक्ष्मणने भीरघुनाथजीसे दुर्वासाके आगमनका समाचार

निवेदन किया ॥ ९ ॥

लक्ष्मणस्य वचं श्रुत्वा राम काल विस्मृत्य च ।

निःसृत्य त्वरितो राजा अग्नेः पुत्र ददर्श ह ॥ १० ॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर राजा भीराम कालकी विदा करके

उरत ही निन्हे और अग्रिपुत्र दुवाषामे मिले ॥ १० ॥
 सोऽभिवाद्य महामान ज्वलन्तमिह तेजसा ।
 किं वायमिति काकुत्स्थः कृताञ्जलिभाषत ॥ ११ ॥
 अपने तेबने प्रचलितसे हते हुए महामा दुवाषाको
 प्रणाम करके श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर पूछा—महर्षे !
 मेरे लिये क्या आज्ञा है ? ॥ ११ ॥
 तद् वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा मुनिवर प्रभु ।
 प्रत्याह राम दुर्वासा श्रूयता धर्मशाल ॥ १२ ॥
 श्रीरघुनाथजीकी कही हुई उस बातका सुनकर प्रमान
 वाली मुनिवर दुवासा उनमें गीत—‘धर्मशाल’ मुनिये ॥ १२ ॥
 अद्य धर्मसहस्रान्य समाप्तिमम राघव ।
 सोऽह भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तथालभ्य ॥ १३ ॥
 ‘निर्वाण खनुन्दन ! मैंने एक हजार वर्षोंतक उपवास
 किया । आज मेरे उस मृतकी समाप्तिका दिन है, इसलिये इस
 समय आपने यहाँ जो भी भोजन तैयार हो, उन्में मैं ग्रहण
 करना चाहता हूँ’ ॥ १३ ॥
 तच्छ्रुत्वा वचनं रागा राघव प्रीतिमानस ।
 भोजनं मुनिमुखाय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १४ ॥
 यह सुनकर राजा श्रीरघुनाथजी मन ही-मन वड़े प्रसन्न
 हुए और उन्होंने उन मुनिभेष्टको तैयार भोजन परोखा ॥ १४ ॥
 स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तद्वधममृतोपमम् ।

हृत्पार्षे श्रीमद्रामायणे वास्नीकायें आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पट्टधिकशततम सर्ग ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीवल्कीकिर्मित आश्वलायण ऋषिकाव्यक उत्तरकाण्डे पट्टसं खचित्वा रा पुरा हुय ॥ १०५ ॥

पट्टधिकशततम सर्ग

श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणरा सशरीर स्वर्गगमन

अवाङ्मुखमयो दीन दृष्ट्वा सोममिषान्द्रुतम् ।
 राघव लक्ष्मणो वाक्यं दृष्ट्वा मधुरमजयीत् ॥ १ ॥
 श्रीरामचन्द्रजी राहुप्रसन्न चन्द्रमाक समान दान हो गये
 थे, उन्हें फिर हाथमें लेद करते देख लक्ष्मणने बड़ हर्षके
 साथ मधुर वाणीमें कहा— ॥ १ ॥
 न स्ताप महाबाहो मर्द्यं कतुमहसि ।
 पूर्वनिर्माणयद्वा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ २ ॥
 ‘महाबाहो ! आपकी मेरे लिये स्ताप नहीं करना चाहिये
 क्योंकि पूज्यभक्त कर्मसे वैसी हुई कालकी गति ऐसी ही है ॥
 जहि मा सौम्य विप्रश्च प्रतिज्ञा परिपालय ।
 हीनप्रतिज्ञा काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नरा ॥ ३ ॥
 ‘सौम्य ! आप निम्न होकर मेरा वध कर जाँ और
 ऐसा करके अपनी प्रतिज्ञाका पालन करें । काकुत्स्थ !
 प्रतिज्ञा भग्न करनेवाले मनुष्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ३ ॥
 यदि प्रीतिमहाराज ययनुप्राप्त्या मयि ।
 अहि मा निर्धिगद्वस्त्व धर्मं धर्षय राघव ॥ ४ ॥

साधु गमेति सम्भाष्य स्वमाश्रममुपागमत् ॥ १५ ॥
 वह अमनसे स्नान अन्न ग्रहण करने दुवासा मुनि वृत्त
 हुए और श्रीरघुनाथजीना साधुवाद द अपने आश्रमपर चले
 आये ॥ १५ ॥
 तस्मिन् गत मुनिवरे स्माश्रम लक्ष्मणाग्रज ।
 सत्कृत्य कालराक्ष्यानि ततो दु खमुपागमत् ॥ १६ ॥
 मुनिवर दुवा का अन आश्रमकी चले देनेपर लक्ष्मण
 के वड़े मई श्रीराम जालक वचनोंका स्मरण करने दुखी
 हो गये ॥ १६ ॥
 दु खेन च सुखतस्त स्मृत्या तद्घोरद्विषादम् ।
 अयादृशो दानमना व्याप्तुं न दायाक ह ॥ १७ ॥
 मयपर भागी श्राद्धदिग्गज हृष्यको हृत्विषमें लनेगले
 कालक उस चक्रपर चिन्तन करके श्रीरामक मनमें वड़ा दुःख
 हुआ । उनका मुँह नीचको झुक गया और वे कुछ बल न
 रखे ॥ १७ ॥
 ततो बुद्ध्या विनिश्चित्य कालराक्ष्यानि राघव ।
 नैतदस्तीति निश्चित्य तूष्णीमासीमहायशः ॥ १८ ॥
 तत्पश्चात् कालने वचनोंपर बुद्धिपूर्वक सच विचार
 करके मयाश्रमजी श्रीरघुनाथजी इस निश्चय पर पहुँच कि
 ‘अब यह सब कुछ भी न रहेगा’ । ऐसा सोचकर वे पुन
 हो रहे ॥ १८ ॥

‘महाबाह ! यदि आपका मुक्तिपर प्रस है और यदि आप
 मुझे कृपापात्र समझते हैं तो नि शङ्क शीकर मुझे प्रादण्ड दें ।
 खनुन्दन ! आप अपने धर्मकी वृद्धि करें’ ॥ ४ ॥
 लक्ष्मणेन तयोऽस्तु राम प्रयत्नितेन्द्रिय ।
 मग्निं सन्मुपानीय तथैव च पुरोधसम् ॥ ५ ॥
 अग्रणीय तदा वृत्तं तेषा मध्ये स राघव ।
 दुवासाऽऽभिगम दैव प्रतिज्ञा तापसस्य ॥ ६ ॥
 लक्ष्मणक ऐसा करनेपर श्रीरामजी हृत्पार्षे ‘ममत्वं श
 उठो—वे वैसी निश्चितसे श रूप और मन्त्रियों तथा
 पुरोहितजीका मुलाकर डा सपके बीचमें बह दरा वृत्तन्त
 दान लगे । श्रीरघुनाथजीने दुवासाके अग्रमन और लक्ष्म
 रूपकी कालर समझ की हुई प्रतिज्ञाकी वच भी वानी ॥
 तच्छ्रुत्वा मग्निं सन्मुपानीय सोपाध्याया समासत ।
 यतिष्ठन्तु महानेना वाक्यन्ततदुवाच ॥ ७ ॥
 यह सुनकर स मन्त्री और वाक्यन्त सुनकर बैठ रह

कालके मुन्यसे कहे गये पितामह ब्रह्मारे सदैवतो मुनकर
धीरघुनायजी हँसते हुए उस सर्पशरी कालसे बोले—॥१६॥

अत्र मे देवदेवस्य वाक्य परममद्भुतम् ।

प्रीतिदि महती जाता तत्रागमनसम्भवा ॥ १७ ॥

‘काल ! देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह परम अद्भुत वचन
मुनभेजे मिला इसलिये तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता
हुई है ॥ १७ ॥

प्रयाणामपि लोकानां कार्यायैवम सम्भय ।

भद्र तेऽस्तु नमिष्यामि यत् एतादृशमागत ॥ १८ ॥

‘हीनो गोकर्षे प्रयोजनकी तिद्धिने लिये ही मेरा यह

हृत्कार्ये धीमन्वात्मापणे वाल्मीकीये आदिकाये

इस प्रकार धीवात्मीकिनिर्मित आपरामायण आदिकायक

अन्तार हुआ था, यह उद्देश्य अब पूरा हो गया, इसलिये
तुम्हारा कल्याण हो अब मैं जहाँसे आया था वही चढ़ूँगा ॥

हृदतो ह्यसि सम्प्राप्तो न मे तत्र दिव्यारणा ।

मया हि सर्ववृत्त्येषु देवानां पश्यातिना ।

स्थानस्य सर्पसद्वार यथा ह्याह पितामह ॥ १९ ॥

‘काल ! मैंने मनसे तुम्हारा चिन्तन किया था । उभीक

अनुसार तुम यहाँ आये हो अतः इस नियमोत्तर मेरे

मनमें कोई विचार नहीं है । सर्वसद्वारकारी काल ! मुझे सभी

कार्योंमें सदा देवताओंका वृत्तार्त होकर ही रहना चाहिये,

जैसा कि पितामहका कथन है ॥ १९ ॥

उत्तरकाण्ड चतुरधिकशततमः सर्ग ॥ १०४ ॥

उत्तरकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमः सर्गः

दुर्वामाके शापके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका
समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वासा मुनिको भोजन कराना

और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित होना

तथा तयो सप्तदोर्दुर्वासा भगवानुवि ।

रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥

इन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि
दुर्वासा राजद्वारपर आ पहुँचे । वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिलना
चाहते थे ॥ १ ॥

सोऽभिगम्य तु सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तम ।

राम दृश्य मे शीघ्रं पुरा मेऽर्थोऽतिवर्तत ॥ २ ॥

उन मुनिभेष्टने सुमित्राकुमार लक्ष्मणके पास जाकर
कहा—‘तुम शीघ्र ही मुझे श्रीरामचन्द्रजीसे मिला दो । उनसे
मिले बिना मेरा एक काम बिगड़ रहा है ॥ २ ॥

मुनेस्तु भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परधीरहा ।

अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

मुनिकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले
लक्ष्मणने उन महात्माको प्रणाम करके यह बात कही—॥३॥
किं कार्यं ब्रूहि भगवन् को ह्यर्थः किं करोम्यहम् ।

व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन्मुहुर्न परिपाल्यताम् ॥ ४ ॥

‘भगवन् ! बताइये, आपका कौन सा काम है ! क्या
प्रयोजन है ! और मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ ! ब्रह्मन् !
इस समय धीरघुनायजी दूसरे कार्यमें संलग्न हैं अतः दो
परीतक उनकी प्रतीक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिदार्ढ्यं क्रोधेन वल्लुपीकृत ।

उवाच लक्ष्मण वाक्यं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ५ ॥

यह सुनकर मुनिभेष्ट दुर्वासा रोंसे तमतमा उठे और
लक्ष्मणकी ओर इस प्रकार देखने अगे मानो अपनी नेत्राग्निज
उन्हे मल्ल कर डालेंगे । वाय ही उनसे इस प्रकार बोले—॥५॥

अस्मिन् क्षणे मा सौमित्रे रामाय प्रतिवेद्य ।

अस्मिन् क्षणे मा सौमित्रे न निवेद्यमे यदि ।

विषयत्वा पुरं चैव शपिष्ये राघव तथा ॥ ६ ॥

भरत चैव सौमित्रे शुष्माक या च सततिः ।

न हि शक्याम्यहं भूयो मयु धारयितुं हृदि ॥ ७ ॥

‘सुमित्राकुमार ! इसी क्षण श्रीरामको मेरे आगमनकी

सूचना दो । यदि अभी-अभी उनसे मेरे आगमनका समाचार

नहीं निवेदन करोगे तो मैं इस राज्यको, नगरको, तुमको,

श्रीरामको, भरतको और तुमलोगोंकी जो सतति है, उसको

भी शाप दे दूँगा । मैं पुनः इस क्षणको अपने हृदयमें धारण

नहीं कर सकूँगा ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं वाक्यं तस्य महात्मनः ।

चिन्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥ ८ ॥

उन महात्माका यह घोर वचन सुनकर लक्ष्मणने उनकी

बाणीसे जो निश्चय प्रकट हो रहा था, उसपर मन ही मन

विचार किया ॥ ८ ॥

एकस्य मरण मेऽस्तु मा भूत् सद्यदिनाशनम् ।

इति मुदया विनिश्चिन्य राघवाय यवेद्यत् ॥ ९ ॥

‘अपेरे मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है, किंतु सबका

विनाश नहीं होना चाहिये अपनी बुद्धिद्वारा ऐसा निश्चय

करके लक्ष्मणने धीरघुनायजीसे दुर्वासाके आगमनका समाचार

निवेदन किया ॥ ९ ॥

लक्ष्मणस्य वचं श्रुत्वा रामः कालं त्रिचुष्य च ।

नि सृत्य त्वरितो राजा अग्रे पुनः ददर्श ह ॥ १० ॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर रामा धीराम पालको विदा करके

द्वरत ही निकले और अधिपुत्र दुर्वाससे मिले ॥ १० ॥
 सोऽभिवाय महात्मान ज्वलन्तमित्र तेजसा ॥ ११ ॥
 किं कार्यमिति काकुत्स्थ वृताञ्जलिर्भाषत ॥ ११ ॥
 अपने तेजसे प्रचलितसे होते हुए महात्मा दुर्वासको
 प्रणाम करके श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर पूछा—भाईये !
 मेरे लिये क्या आजा है ? ॥ ११ ॥
 तद् वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा मुनिवर प्रभु ।
 प्रत्याह राम दुर्गासा श्रूयता धमस्तसल ॥ १२ ॥
 श्रीरघुनाथजीकी वही हुई उस बातको सुनकर प्रभाव
 घाली मुनिवर दुर्गासा उनसे बोले—‘धर्मस्तल’ मुनिये ॥ १२ ॥
 अथ चर्यसहस्रस्य समाप्तिर्मम राघव ।
 सोऽह भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तजानघ ॥ १३ ॥
 ‘निष्पाप रघुनन्दन । मैंने एक हजार वर्षोंतक उपवास
 किया । आज मेरे उस प्रवशी समाप्तिका दिन है, इसलिये इस
 समय आपके यहाँ जो भी भोजन तैयार हो, उसे मैं ग्रहण
 करना चाहता हूँ’ ॥ १३ ॥
 तच्छ्रुत्वा धचन राजा राघव प्रीतमानस ।
 भोजनं मुनिमुप्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १४ ॥
 यह सुनकर राजा श्रीरघुनाथजी मन ही-मन बड़े प्रसन्न
 हुए और उन्होंने उन मुनिभेदको तैयार भोजन परोसा ॥ १४ ॥
 स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तद्वज्रममृतोपमम् ।

साधु नमेति सम्भाष्य स्वमाश्रममुपागमत् ॥ १५ ॥
 वह अमृतक समान अन्न ग्रहण करके दुर्गासा मुनि वृत्त
 हुए और श्रीरघुनाथजीसे साधुवाद द अपने आश्रमपर चले
 आये ॥ १५ ॥
 तस्मिन् गते मुनिश्रेष्ठे म्याधमं लक्ष्मणाग्रज ।
 सम्स्तुत्य कालान्तर्यानि ततो दुःखमुपागमत् ॥ १६ ॥
 मुनिवर दुर्गासा अपने आश्रमको चले जानेपर लक्ष्मण
 के बड़े भाई धीराम नालके वचनाका स्मरण करके दुःखी
 हो गये ॥ १६ ॥
 तु खेमं च सुखतमं स्मृत्या तद्घोरद्वन्द्वानम् ।
 अग्राङ्गुलतो दीनमना यातुं न दाशाक ह ॥ १७ ॥
 भयंकर भागी भ्रातृवियोगक दृश्यसे दृष्टियोग तानेवाले
 कालक उस वदनपर लिखार ररक धीरामने मनमें बड़ा दुःख
 हुआ । उनमें मुँह नीचेको छुट गया और वे कुछ बल न
 सके ॥ १७ ॥
 ततो बुद्ध्या निनिश्चित्य कालथाक्यानि राघव ।
 नैतदस्तीति निश्चित्य तूष्णीमासीमहायशा ॥ १८ ॥
 तत्पश्चात् कालके वचनोपर बुद्धिपूर्वक शोक निवार
 करके महायशस्वी श्रीरघुनाथजी इस निदयपर पहुँच कि
 ‘अब यह घर कुछ भी न रहेगा ।’ एसा शोककर वे चुप
 हो रहे ॥ १८ ॥

इत्यादि श्रीमद्रामायणे बालमीक्ये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पदधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥
 इस प्रकार श्रीबालमीकिनिर्मित आश्वमेधायन आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें पद सौ पाँचवाँ रा पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

पदधिकशततमः सर्गः

श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर स्वर्गगमन

अग्राङ्गुलमयो दीनं हृद्वा सोममिष्टानुत्तम ।
 राघवं लक्ष्मणो वाक्यं हृष्टो मधुरमब्रवीत् ॥ १ ॥
 श्रीरामचन्द्रजी राहुमल चन्द्रमाक समान दीन हो गये
 थे, उन्हें सिर झुकाये रोद करते देख लक्ष्मणने बड़े हर्षके
 साथ मधुर वाणीमें कहा— ॥ १ ॥
 न स्तथाप महाबाहो मदर्थं कर्तुमहसि ।
 पूर्वनिमाणयद्धा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ २ ॥
 ‘महाबाहो ! आपके भरे लिये स्तथाप नहीं करना चाहिये
 क्योंकि पूजकत्वके कर्ममें वैधी हुई कालकी गति ऐसी ही है ॥
 जदि मा सौम्य विस्मय प्रतिशः परिपाल्य ।
 हीनप्रतिशः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नरा ॥ ३ ॥
 ‘सौम्य । आप निश्चिन्त होकर मेरा वचन कर काटें और
 ऐसा करके अपनी प्रतिशका पालन करें । काकुत्स्थ !
 प्रतिशका भग्न करनेवाले मनुष्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ३ ॥
 यदि प्रीतिर्महाराज ययनुमावृता मयि ।
 अदि मा निर्विदाहस्त्य धर्मं धर्षय राघव ॥ ४ ॥

‘महाराज ! यदि आपका सुखपर प्रेम है और यदि आप
 मुझे कृपापात्र समझते हैं तो नि गद्गद हाँकर मुझे प्राणदण्ड दें ।
 रघुनन्दन ! आप अपने घमरी हृद्धि करें’ ॥ ४ ॥
 लक्ष्मणेन तथोक्तस्तु रामं प्रचलितेन्द्रिय ।
 मंत्रिणं समुपानीय तथैव च पुरोधसम् ॥ ५ ॥
 अग्रजीय तदा वृत्तं तेषां मध्ये स राघव ।
 दुर्वासोऽभिगमं चैव प्रतिशः तापसस्य च ॥ ६ ॥
 लक्ष्मणने एसा करनेपर श्रीरामजी इन्द्रियों चञ्चल हो
 उठे—वे वैश्वमे निचलितसे हो गये और मंत्रियों तथा
 पुरोहितोंको बुलाकर उठा सके वे बीचमें यह शरा वृत्तान्त
 बताने लगे । श्रीरघुनाथजीने दुर्गासाक आगमन और स्त्र-
 रूपधारी काठन समझ नी हुई प्रतिशकी बात भी पायी ॥
 तस्मिन्वा मंत्रिणं सर्वसोपाध्याया समागत ।
 वसिष्ठस्तु महातजा वाक्यमस्तदुवाच ॥ ७ ॥
 यह सुनकर सब मंत्री और उपाध्याय चुनचुन बैठे रह

गये (कोई कुछ बोल न सका) । तब महादेवजी वसिष्ठजीने यह बात कही—॥ ७ ॥

एष्टमेतमहागोक्ष्य ते रोमहर्षणम् ।

लक्ष्मणेन त्रियोगश्च तव राम महायश ॥ ८ ॥

‘महाबाहो ! महायशस्वी श्रीराम ! इस समय जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला त्रिक्त्र त्रिनाश आनेवाला है (तुम्हारे साथ ही बहुतने प्राणियोंका जो सबैत-गमन होनेवाला है) और लक्ष्मण साथ जो त्रियोग हो रहा है, यह सब मैंने तप बल-द्वारा पहलेसे ही देख लिया है ॥ ८ ॥

न्यजैन यत्नान् काले मा प्रतिष्ठा वृथा वृथा ।

प्रतिष्ठाया हि नष्टाया धर्मो हि त्रिलय प्रयोज् ॥ ९ ॥

‘काल बढ़ा प्रबल है । तुम लक्ष्मणका परित्याग कर दो । प्रतिष्ठा झूठी न करो, क्योंकि प्रतिष्ठाके नष्ट होनेपर धर्मका लोप हो जायगा ॥ ९ ॥

ततो धर्मे विनष्टे तु वैलोक्य सचराचरम् ।

सदेवविगण सर्गं त्रिन्द्येत् तु न सशय ॥ १० ॥

‘धर्मका लोप होनेपर चराचर प्राणियों, देवताओं तथा ऋषियोंसहित सारी जिलेकी नष्ट हो जायगी । इसमें शयय नहीं है ॥ १० ॥

स त्वं पुरुषशालू वैलोक्यस्याभिपालनात् ।

लक्ष्मणेन विना चाद्य जगत् स्वस्य कुटुम्ब ह ॥ ११ ॥

‘अतः पुरुषसिंह ! इस त्रिभुवनकी रक्षापर दृष्टि रखते हुए लक्ष्मणको त्याग दो और उनके विना अब धर्मपूर्वक स्थित रहकर सम्पूर्ण जगत्को स्वस्य एवं सुखी बनाओ ॥

तेषां तत् समवेतानां वाक्पथ धर्मार्थसहितम् ।

श्रुत्या परिपक्वो मध्ये रामो लक्ष्मणमग्रवीत् ॥ १२ ॥

वहाँ एकत्र हुए मन्त्री, पुरोहित आदि सब समासदोंकी उस समाके बीच बसिष्ठ मुनिकी कही हुई यह बात सुनकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—॥ १२ ॥

इत्यार्षे धीमद्वाम्नीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पक्षिध्वस्ततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वत्थामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पक्षी ध्वस्ततमः सर्ग पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः

वसिष्ठजीके कहनेसे श्रीरामका पुरवासियोंको अपने साथ ले जानेका विचार

तथा कुछ और लवका राज्याभिषेक करना

त्रिभुज्य लक्ष्मण रामो दुःखोक्तसमन्वितः ।

पुरोधस मन्त्रिणश्च नैगमाब्धेदमग्रवीत् ॥ १ ॥

लक्ष्मणका त्याग करने और राम दुःख शोकमें मग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और महाजनोंसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

अथ राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरत धमन्तस्तम् ।

अयोध्यायाः पतिं धीरं ततो यास्याम्यहं धनम् ॥ २ ॥

‘आब मैं अयोध्याके राज्यपर धर्मवत्सल वीर भाई

त्रिमूर्तये त्वा सौमित्रे मा भूद् धमधिपर्ययः ।

त्यागो न्योवा विहित साधूना ह्यभयं समम् ॥ १३ ॥

‘सुमित्रानन्दन ! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ, जिससे धर्मका लोप न हो । साधु पुरुषोंका त्याग किया जाय अथवा नष्ट—दोनों समान ही हैं ॥ १३ ॥

रामेन भाषिते वाक्पथे चाण्ययाकुलितेऽग्नये ।

लक्ष्मणस्त्वरितं प्रायात् स्वगृहं न त्रिवेश ह ॥ १४ ॥

श्रीरामके इतना कहते ही लक्ष्मणने नेत्रोंमें आँसू भर आये । वे तुरन्त वहाँसे चल दिये । अपने घर तक नहीं गये ॥ १४ ॥

स गत्वा सरयूतीरमुपस्पृश्य वृत्ताञ्जलि ।

निगृह्य सर्गंज्ञोतासि निश्वासं न मुमोच ह ॥ १५ ॥

सरयूने किनारे आकर उन्होंने आचमन किया और हाथ जोड़ सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके प्राणवायुको रोक लिया ॥ १५ ॥

अनिश्वासतं युक्तं सशक्ता साप्तरोगणा ।

देवा सापिगणा सर्वे पुष्पैरभ्यक्षिरस्तदा ॥ १६ ॥

लक्ष्मणने योगयुक्त होकर आस लेना बंद कर दिया है—यह देख इन्द्र आदि सब देवता, ऋषि और अप्सराएँ उस समय उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगी ॥ १६ ॥

अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम् ।

प्रगृह्य लक्ष्मणं शकलिविव सविशेष्टः ॥ १७ ॥

महाबली लक्ष्मण अपने शरीरके साथ ही सब मनुष्योंकी दृष्टिसे ओझल हो गये । उस समय देवगण इन्द्र उन्हें साथ लेकर स्वर्गमें चले गये ॥ १७ ॥

ततो विष्णोश्चतुर्भागमागतः सुरसत्तमा ।

हृष्टा प्रमुदिताः सर्वे पूजयन्ति स्म राघवम् ॥ १८ ॥

मगवान् विष्णुके चतुर्भुज लक्ष्मणको आया देख सभी देवता हर्षिते भर गये और उन सबने प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मणकी पूजा की ॥ १८ ॥

सत्तरकाण्डे पक्षिध्वस्ततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आष्वत्थामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पक्षी ध्वस्ततमः सर्ग पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः

वसिष्ठजीके कहनेसे श्रीरामका पुरवासियोंको अपने साथ ले जानेका विचार

तथा कुछ और लवका राज्याभिषेक करना

त्रिभुज्य लक्ष्मण रामो दुःखोक्तसमन्वितः ।

पुरोधस मन्त्रिणश्च नैगमाब्धेदमग्रवीत् ॥ १ ॥

लक्ष्मणका त्याग करने और राम दुःख शोकमें मग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और महाजनोंसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

अथ राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरत धमन्तस्तम् ।

अयोध्यायाः पतिं धीरं ततो यास्याम्यहं धनम् ॥ २ ॥

‘आब मैं अयोध्याके राज्यपर धर्मवत्सल वीर भाई

भरतका राजाके पदपर अभिषेक करूँगा । उसके बाद वनको चला जाऊँगा ॥ २ ॥

प्रवेशायत सम्भारान् मा भूत् कालात्ययो यथा ।

अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणं गता गतिम् ॥ ३ ॥

‘श्रीभू ही सब सामग्री बुटाकर ले आओ । अब अधिक समय नहीं बीतना चाहिये । मैं आज ही लक्ष्मणके पथका अनुसरण करूँगा ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा राज्यणोक्त सर्गं प्रष्टतयो मृशम् ।
मूढभि प्रणता भूमौ गतसत्त्वा इवाभवन् ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी की यह बात सुनकर प्रभावगर्न सभी लंग
परीतीरमाया टेककर पड़ गये और प्राणानन्ने हो गये ॥ ४ ॥
भरतश्च विसर्जोऽभूच्छ्रुत्वा राघवभाषितम् ।
राज्य विगर्हयामास वचन चेद्रममयीत् ॥ ५ ॥

श्रीरघुनाथजी की यह बात सुनकर भरतका लो हाथ ही
उड़ गया । वे राज्यकी निन्दा करने लगे और इस प्रकार
बोले— ॥ ५ ॥

सत्येनाह शपे राजन् स्वर्गभोगेन चैव हि ।
न कामये यया राज्यं त्वा पिना रघुनन्दन ॥ ६ ॥

‘रघवन् ! रघुनन्दन ! मैं स्वर्गकी शपथ खाकर कदा
हूँ कि आपके बिना मुझे राज्य नहीं चाहिये, स्वर्गका भोग भी
नहीं चाहिये ॥ ६ ॥

इमौ कुशीलवौ राज्ञन्नभिषिच्य नराधिप ।
कोशलेषु कुश वीरमुत्तरेषु तथा लभम् ॥ ७ ॥

‘रघवन् ! नरेन्द्र ! आप इन कुश और लक्ष्मणाय धर्मिक
कीजिये । दक्षिण काश्लने कुशरी और उत्तर काश्लने लक्ष्मण
को राजा बनाइये ॥ ७ ॥

राघुप्रस्य च गच्छन्तु त्वास्त्वरितक्रिमा ।
इदं गमनमस्माकं शीघ्रमाप्स्यातु मा विगम् ॥ ८ ॥

वेन चलनेवाले दूत शीघ्र ही रघुनाथक पास भी जायें
और उन्हें हमयोगोंकी इस महावाक्का वृत्तान्त सुनायें । इसमें
विलम्ब नहीं होना चाहिये’ ॥ ८ ॥

तच्छ्रुत्वा भरतेनोक्तं हृष्टा चापि राधोमुखान् ।
पौरान् तु देन सततान् वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

भरतकी बात सुनकर तथा पुरावर्षियोंका नीच मुख नय
हु खसे सतत होने देस महर्षि रसिष्ठने कहा— ॥ ९ ॥

वत्स राम इमा पदय धरणिं प्रहृनीगता ।
शास्त्रैरगामीप्सितं कार्यं मा वैया विप्रिय हृथा ॥ १० ॥

‘वत्स श्रीराम ! कृषीवर पद हुए इन प्रभावकोंकी धर
देला । इनका अभिप्राय जानकर इधीन अनुसार कार्य करो।
इनका इच्छाक विपरीत करके इन वचनोंका दिल न
खुलाओ’ ॥ १० ॥

वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्याप्य प्रहृतीजनम् ।
किं करोमीति काकुत्स्थ सवान् वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

वसिष्ठवर कदनेने श्रीरघुनाथजीने प्रवचनोंका ठगवा
और सबसे पूछा—‘मैं आपकीका कौन सा कार्य सिद्ध
करूँ ?’ ॥ ११ ॥

ततः सर्वा प्रष्टतयो राम वचनमब्रुवन् ।
गच्छन्तमनुगच्छामो यत्र राम गमिष्यमि ॥ १२ ॥

तब प्रभावक सभी लंग श्रीरामम कल—‘रघुनन्दन !

आप वहाँ भी जायेंगे, आपके पीछे-पीछ हम भी
चंगे ॥ १२ ॥

पारेषु यदि ते प्रीतियदि स्नेहो ह्यनुत्तम ।
सपुत्रदाय काकुत्स्थ सम गच्छाम सत्यधम् ॥ १३ ॥

‘काकुत्स्थ ! यदि पुरवास्वियपर आपका प्रेम है, म
हमपर आपका परम उत्तम स्नेह है तो हमें साथ चलनकी आ
दान्य । हम अपने स्त्री-पुत्रोंसहित आपके साथ ही समा
पर चलनको उचन हैं ॥ १३ ॥

तपोऽन वा दुर्गे वा नदीमम्भोनिधिं तथा ।
यय ते यदि न त्याज्या सनाथो नय इत्थर ॥ १४ ॥

‘स्वामिन् ! आप तपवनमें या किसी दुर्गम स्थान
अथवा नदी या समुद्रमें—जहाँ कहीं भी जायें, हम सबको साथ
ले चंगें । यदि आप हमें त्याग देने योग्य नहीं मानते हैं तो
एसा ही करें ॥ १४ ॥

यथा ऽ परमा प्रीतिरेव न परमो वर ।
हृष्टता न सदा प्रीतिस्तानुगमने नृप ॥ १५ ॥

य । हमारा ऊपर आपकी सने वड़ी हृथा होगी और
यों हमारा स्वि आपका परम उत्तम वर होगा । आपका पीछ
चलनेम हा हम सदा हार्दिक प्रहन्ता हंग ॥ १५ ॥

पौराणा दृढभरिं च वाढमित्येव सोऽब्रवीत् ।
स्मृतान् राजवक्ष्य तस्मिन्नाहनि राजन् ॥ १६ ॥

कोशलेषु कुश वीरमुत्तरेषु तथा लभम् ।
अभिषिच्य मन्त्रात्मानानुभौ राम कुशलरी ॥ १७ ॥

अभिषिक्त सुनायके प्रतिष्ठाप्य पुर तत ।
परिष्वन्य महायाहमूष्णुपाधाय आसहत् ॥ १८ ॥

पुरवासियोंकी दृढ भक्ति देख श्रीरामन ‘तयस्तु’ कहकर
उनका स्नाना अनुमदन किया और अपने वक्ष्यका निभय
करके श्रीरघुनाथजीने उधरी दिन दक्षिण काश्लन राज्यका

वीर ‘राघव’ जेरे उत्तर काश्लन राजसिंहासनपर लक्ष्मण
अभिषिक्त कर दिया । अभिषिक्त हुए अपने उन दोनों
महानमन्त्री पुत्र ‘राघव’ और लक्ष्मण गदने विगाजर उनका गन्त

अग्निद्वन करके महायाहू श्रीरामन बारबार उन दोनोंन प्रमक
सुँप फिर उहें अपनी अपनी राजधानीमें भजदिया १६-१८

रथाना तु सहस्राणि नागानामयुतानि च ।
दत्तानुनानि चाभ्यानामैकैकस्य धनं ददौ ॥ १९ ॥

उहोंने अपने एक एक पुत्रको पद इत्थर रथ, दस
हज़र हाथी और एक एक पद पद दिव ॥ १९ ॥

यदुरक्षा यदुधनी ह्यपुत्रपुत्रनायुतौ ।
न्य पुर प्रेययामास भ्रातरी तौ कुशीलवौ ॥ २० ॥

दोनों भद्र पुत्र और लक्ष्मण प्रचुर रत्न और धनने सम्प
दायक । य हूँ पुत्र मनुष्योंने फिर रहने लगे । उन दोनोंको
आगमने उठा । राजधानीमें भज दिया ॥ २० ॥

अभिषिच्य ततो धारी प्रम्याप्य मयुरतः ।

दूतान् सम्प्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ २१ ॥

अपने नगरमें भेजकर औरघुनाथजीने महात्मा शत्रुघ्नके पास

दूत भेजे ॥ २१ ॥

इत्याय श्रीमद्रामायण वा-मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तधिकशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें पर सो सप्तवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततम सर्गः

श्रीरामचन्द्रजीका भाइयों, सुग्रीव आदि वानरों तथा रीछोंके साथ परमधाम जानेका निश्चय

और विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मन्द एव द्विनिद्रको इस

भूतलपर ही रहनेका आदेश देना

ते दूता रामराज्येन चोदिता लघुविग्रहाः ।

अपने कुलका भयकर संहार उपस्थित हुआ मुनिकर

प्रजमुमधुरा शीघ्र चक्रुः ॥ १ ॥

रघुनन्दन शत्रुघ्ने समस्त प्रजा तथा काञ्चन नामक पुरोहित

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर शीघ्राभी दूत भी भी

को बुलाया और उनसे सब बातें बयावत कह सुनायी ॥ १७ ८ ॥

मधुरापुरीको चल दिये । उन्होंने मार्गमें कहीं भी पड़ाव नहीं

आत्मनश्च विप्रांस भविष्य भ्रातृभि न्ह ।

काला ॥ १ ॥

तत पुनश्च वीरः सोऽभ्यपिञ्चनराधिय ॥ २ ॥

तत्तत्रिभिरहोरात्रैः सम्प्राप्य मधुरामथ ।

उन्होंने यह भी बताया कि माइयोंक साथ मेरे शरीरका

शत्रुघ्नाय यथातत्त्वमाश्रयुः सज्जमेन तत् ॥ २ ॥

भी विशेष देनेवाग है । इससे बाद वीर राजा शत्रुघ्ने अपने

लगातार तीन दिन और तीन रात चलकर ये मधुरा

दोनों पुत्रोंका साथभियेन किया ॥ १ ॥

पहुँचे और अयेण्यारी शरीर बातें उन्होंने शत्रुघ्ने यथार्थत

सुशानुमधुरा लेभे शत्रुघाती च वैदिगम् ।

कह सुनायी ॥ २ ॥

छिन्ना कृत्वा तु ता सेना माधुरीं पुत्रयोद्वयो ।

लक्ष्मणस्य परित्याग प्रतिज्ञा राघवस्य च ।

धनं च युक्तं कृत्वा ये स्थापयामास पार्थिव ॥ १० ॥

पुत्रयोरभिषेकं च पौराणुगमनं तथा ॥ ३ ॥

मुवाहुने मधुराका साथपाया और शत्रुघातीने विदिशाना ।

कुन्त्य नगरी रम्या त्रिपथ्यतरोधसि ।

मधुराकी सेनाके दो भाग करके राजा शत्रुघ्ने दोनों पुत्रोंको

कुशास्तीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता ॥ ४ ॥

बोटा दिये तथा बोटनेके योग्य बनका भी विभाजन करके उन

श्रीरामकी प्रतिज्ञा, लक्ष्मणका परित्याग, श्रीरामके दोनों

दोनोंको दे दिया और उन्हें अपनी अपनी राजधानीमें स्थापित

पुत्रोंका साथभियेक और पुरवाणिगों का श्रीरामके साथ जानेका

कर दिया ॥ १० ॥

निश्चय आदि सब बातें बताकर दूतोंने यह भी कहा कि परम

शुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने कुन्त्यके लिये विष्णुपत्तने किनारे

कुशावती नामक रमणीय नगरीका निर्माण कराया है ॥ ३ ॥

शुवाहुने मधुराका साथपाया और शत्रुघातीने विदिशाना ।

श्रान्तस्तीति पुरी रम्या श्रायिता च लक्ष्म्यः ।

ययौ म्याप्य तद्वायोध्या रणेनेकेन राघवः ॥ ११ ॥

अयौध्या विजिता कृत्वा राघवो भगवत्तमः ॥ १ ॥

इस प्रकार मुवाहुने मधुरामें तथा शत्रुघातीका विदिगामें

व्यगस्य गमनोद्योग कृतस्ती महात्मी ।

स्थापित करके रघुनन्दन शत्रुघ्न एकमात्र रूपके द्वारा

एव सर्वे निवेद्यान् शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ६ ॥

न द्वादश महात्मान ज्वलन्तमिय पात्रकम् ।

त्रिमुस्ते ततो दूतास्त्वर गजेति चानुवन् ।

सूक्ष्मक्षीमाभ्यरधर मुनिभिः साधमन्यैः ॥ १२ ॥

इसी तरह लक्षके लिये आक्ली नामके प्रसिद्ध सुन्दरपुरी

यहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा महात्मा श्रीराम अपने तेज

बलानी है । औरघुनाथजी और भरतजी दोनों महात्मी वीर

में प्रशस्ति अग्निके समान उड़ीत हो रहे हैं । उनके शरीर

अयष्पात्र स्तुती करके सातेतधाममें जानेके लिये उद्योग कर

पर महीन देहामी बन्ध दोषा पा रहा है तथा वे अविनाशी

रहे हैं । इस प्रकार महात्मा शत्रुघ्नको शीघ्रनार्पक सब बातें

महर्षियोंक साथ निराग्रमान हैं ॥ १२ ॥

बतकर दूतोंने कहा—(पञ्चन । शीघ्रता कीजिये) इतना कहकर

सोऽभिप्राय ततो राम प्राङ्गलि प्रयतेद्विय ।

वे चुन हो गये ॥ ५-६ ॥

उत्राच वाक्त्रय धमस धममेरानुचिन्त्यन् ॥ १३ ॥

तद्भृत्या धोरसदास कुलस्यमुपस्थितम् ॥ ७ ॥

निष्ठा जा दास जोहकर उन्होंने औरघुनाथजीको प्रणाम

प्रदत्तान् समानीय काञ्चन च पुरोधसम् ।

किया और धर्मका चिन्तन करत हुए इन्द्रियोंको बाधमें करके

तेषा सर्वे यथावृत्तमर्वाद् रघुनन्दा ॥ ८ ॥

वे धर्मके ज्ञाना श्रीरामसे गले—॥ १३ ॥

वृत्ताभिपेक सुतयोर्द्वयो राघवनन्दन ।
तत्रानुगमने राजन् विद्धि मा वृत्तनिश्चयम् ॥ १४ ॥

‘सुखलनन । मैं अपने दोनों पुत्रों का य-याभिपेक करके
आया हूँ । राजन् ! आप मुझे भी अपने साथ चलनेके दृढ़
निश्चयसे सुख समझें ॥ १४ ॥

न चान्यदथ घञ्चयमतो वीर न शासनम् ।
विहयमानमिच्छामि मन्त्रिघेन विशेषत ॥ १५ ॥

‘वीर ! आज इससे विपरीत आप मुझसे और कुछ न
कहियेगा, क्योंकि उससे बदकर भरे लिये वृक्ष पर कोई दण्ड न
होगा । मैं नहीं चाहता कि किसीके विशेषत मुझ जैसे सेवक-
के द्वारा आपकी आज्ञा उल्टी हो ॥ १५ ॥

तस्य ता मुद्रिमहतीषा विशास्य रघुनन्दन ।
पादमित्येव शत्रुघ्न रामो वाक्यमुवाच ॥ १६ ॥

शत्रुघ्न का यह दृढ़ विचार जानकर भीष्मनाथजीने उनसे
कहा—‘बहुत अच्छा’ ॥ १६ ॥

तस्य वाक्यस्य वाक्यतांते धानरा कामरूपिण ।
ऋक्षराक्षससङ्घाच्च समापेनुत्तेकश ॥ १७ ॥

उनकी यह बात समाप्त होते ही इच्छानुसार रूप धारण
करनेवाले धानर, रीठ और राक्षसोंने समुदाय बहुत बड़ी
सङ्ख्यामें वहाँ आ पहुँचे ॥ १७ ॥

सुग्रीव ते पुरस्त्वैतत् सर्वं पय समागता ।
त राम द्रष्टुमनसः खगोयाभिमुख स्थितम् ॥ १८ ॥

आपके धामको जानेके लिये उघत हुए भीरुमके दर्शन
भी इच्छा मनमें लिये वे सभी धानर सुग्रीवको आगे करके
वहाँ पधार थे ॥ १८ ॥

देवपुत्रा ऋषिपुत्रा गन्धराणा सुतास्तथा ।
रामक्षय विदित्वा ते सर्वं पय समागता ॥ १९ ॥

ते राममभिगच्छन्तु सर्वे धानरराक्षसा ।
उनमेंसे कितने ही देवताओंके पुत्र थे, कितने ही
ऋषियों का क-के और कितने ही गन्धर्वोंके उत्पन्न हुए
थे । भीष्मनाथजीके लीलाखरणा समय धानर थे सब-
कुछ वहाँ आय थे । उक्त सभी धानर और राक्षस भीरुमको
प्रणाम करके बोले— ॥ १९ ॥

तत्रानुगमने राजन् सम्प्राप्ताः स समागता ॥ २० ॥
यदि राम विनास्माभिर्गच्छेत्स्व पुरुषोत्तम ।
यमदण्डमिषोद्यस्य त्वया स विनिपातिता ॥ २१ ॥

‘राघव ! हम भी आपके साथ चलनेका निश्चय लेकर
यहाँ आय हैं । पुरुषोत्तम भीरुम ! यदि आप हमें साथ लिये

बिना ही चले जायेंगे तो हम यह समझते हैं आपने यमदण्ड
उठाकर हमें मार गिराया है’ ॥ २० २१ ॥

एतस्मिन्नतरे यम सुमार्गोऽपि मदारत् ।
प्रणम्य त्रिभिर्द वीर विशास्यितुमुद्यत ॥ २२ ॥

इसी बीचमें महाबली सुग्रीव भी वीर भीरुमको त्रिभि-
पूजक प्रणाम करके अपना अभिप्राय निवेदन करनेके लिये
उद्यत हो बोले— ॥ २२ ॥

अभिपिच्छ्याद् वीरमागतोऽस्मि नरेभ्यः ।
तत्रानुगमने राजन् विद्धि मा वृत्तनिश्चयम् ॥ २३ ॥

‘नरेश्वर ! मैं वीर अन्नदकारा-याभिपेक करके आया हूँ ।
आप समझ लें कि मेरा भी आपके साथ चलनेका दृढ़
निश्चय है’ ॥ २३ ॥

तस्य तद् धचन श्रुत्वा रामो रमयता परा ।
बानरे द्रमयोवाच मैत्र तस्यानुविन्तयन् ॥ २४ ॥

उनकी यह बात सुनकर मनको रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ
भीरुमने धानरराज सुग्रीवकी मित्रताका विचार करके उनसे
कहा— ॥ २४ ॥

सखे शत्रुघ्न सुग्रीव न त्वयाह विनाहत ।
गच्छेय देवलोक या परम या पद महत् ॥ २५ ॥

‘सखे सुग्रीव ! मरी बाइ मुने । मैं तुम्हारे बिना देव
लोकमें और महान् परमपद या परमधाममें भी नहीं जा
सकता’ ॥ २५ ॥

तैरेयमुच-काकुत्स्थो पादमित्यग्रवीत् क्षयन् ।
त्रिभीषणमयोवाच राक्षसेन्द्र महाप्रदा ॥ २६ ॥

पूर्वक धानरों और राक्षसोंकी भी बात सुनकर महा-
यशस्वी भीष्मनाथजी ‘बहुत अच्छा’ कहकर मुस्कराये और
राक्षसराज त्रिभीषणसे बोले— ॥ २६ ॥

यावत् प्रजा धरिष्यन्ति तावत् त्व वै त्रिभीषण ।
राक्षसेन्द्र महावीर्यं लङ्कास्य स्य धरिष्यसि ॥ २७ ॥

‘महापराक्रमी राक्षसराज त्रिभीषण ! जबतक साराही
प्रजा जीवन धारण करेगी, तबतक तुम भी छद्ममें रहकर
अपने शरीरको धारण करोगे ॥ २७ ॥

यावत् प्रजा स्वपथ यावत् तिष्ठति मेदिनी ।
यावत् मन्त्रया लोके तावत् राज्यं तत्रास्विद ॥ २८ ॥

‘जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहेंगे, जबतक पृथ्वी रहेगी
और जबतक सगरामें मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तबतक
भूतलपर तुम्हारा राज्य बना रहेगा’ ॥ २८ ॥

शासितश्च सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम् ।

प्रजा सरक्ष धर्मेण नोत्तर वक्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

‘मैंने मित्रभावसे ये बातें तुमसे कही हैं । तुम्हें मेरी आज्ञा पालन करना चाहिये । तुम धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करो । इस समय मैंने जो कुछ कहा है, तुम्हें उसका प्रतिपाद नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥

किंचान्यद् वक्तुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महायत्न ।

आराधय जगन्नाथमिदं पादुकुलदैवतम् ॥ ३० ॥

आराधनीयमनिश देवैरपि सत्तासवैः ।

‘महाबली राक्षसराज ! इससे सिवा मैं तुमसे एक बात और कहना चाहता हूँ । हमारे इश्वरकुलके देवता हैं भगवान्, जगन्नाथ (श्रीशेषशायी भगवान्, विष्णु) । इन्द्र आदि देवता भी उनकी निरन्तर आराधना करते रहते हैं । तुम भी सदा उनकी पूजा करते रहना ॥ ३० ॥

तथेति प्रतिज्ञमाह रामवाक्य विभीषण ॥ ३१ ॥

राजा राक्षसमुख्यानां राघवाक्षामनुस्मरन् ।

राक्षसराज विभीषणने श्रीरघुनायजीके इस आज्ञाको अपने हृदयमें धारण किया और ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसका पालन स्वीकार किया ॥ ३१ ॥

तमेवमुक्त्वा काङ्क्षस्यो हनूमन्तमथाग्रवीत् ॥ ३२ ॥

जीविते हृतबुद्धिस्त्व मा प्रतिष्ठा घृणा कृणा ।

विभीषणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जीसे बोले—‘तुमने दीर्घकालतक जीवित रहनेका निश्चय किया है । अपनी इस प्रतिष्ठाको व्यर्थ न करो ॥ ३२ ॥

मत्कथा प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ॥ ३३ ॥

तावद् रमस्व सुमीतो मद्वाक्यमनुपालयन् ।

‘हरीश्वर ! जबतक सगरमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे,

तबतक तुम भी मेरी आज्ञा पालन करते हुए प्रकृतता-पूर्वक विचरते रहो’ ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा हनुमान् राघवेण महात्मना ॥ ३४ ॥

वाक्यं विश्रापयामास पर हर्षमनाप च ।

महात्मा श्रीरघुनायजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्जीको बड़ा हर्ष हुआ और ये इस प्रकार बोले— ॥ ३४ ॥

यावत् तव कथा लोके चिररिष्यति पावनी ॥ ३५ ॥

तावत् स्थास्यामि मेदिन्या तज्जामानुपालयन् ।

‘भगवन् ! सगरमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर ही रहूँगा’ ॥ ३५ ॥

जाम्बवन्त तपोभवा तु धृष्ट ब्रह्मसुत तदा ॥ ३६ ॥

मैन्द च द्विविद् चैव पञ्च जाम्बवता सह ।

यावत् कलिष्व सग्रासस्ताञ्जीवत सर्वदा ॥ ३७ ॥

इससे बाद भगवान्ने ब्रह्माजीके पुत्र बूढ़े जाम्बवान् तथा मैन्द और द्विविदसे भी कहा—‘जाम्बवान् सहित तुम पाँचों व्यक्ति (जाम्बवान्, विभीषण, हनुमान्, मैन्द और द्विविद) तबतक जीवित रहो, जबतक कि प्रलय एव कलियुग न आ जाय’ (इनमेंसे हनुमान् और विभीषण तो प्रलयकाल तक रहनेवाले हैं और शेष तीन व्यक्ति कलि और द्वापरकी अधिमं श्रीकृष्णवतारके समय मारे गये या मर गये) ॥ ३६ ॥

तानेवमुक्त्वा काङ्क्षस्य सर्वोस्तानुत्सवानरान् ।

उवाच बाद गच्छच्छ मया सार्धं यथोदितम् ॥ ३८ ॥

उन सबसे ऐसा कहकर श्रीरघुनायजीने शेष सभी रीजों और वानरोंसे कहा—‘बहुत अच्छा, तुम लोगोंकी बातें मुझे स्वीकार हैं । तुम सब अपने कथनानुसार मेरे साथ चलो’ ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाधिकशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ अठार्वी सर्ग पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमः सर्गः

परमभाम जानेके लिये निकले हुए थीरामके साथ समस्त अयोध्यावासियोंका प्रस्थान

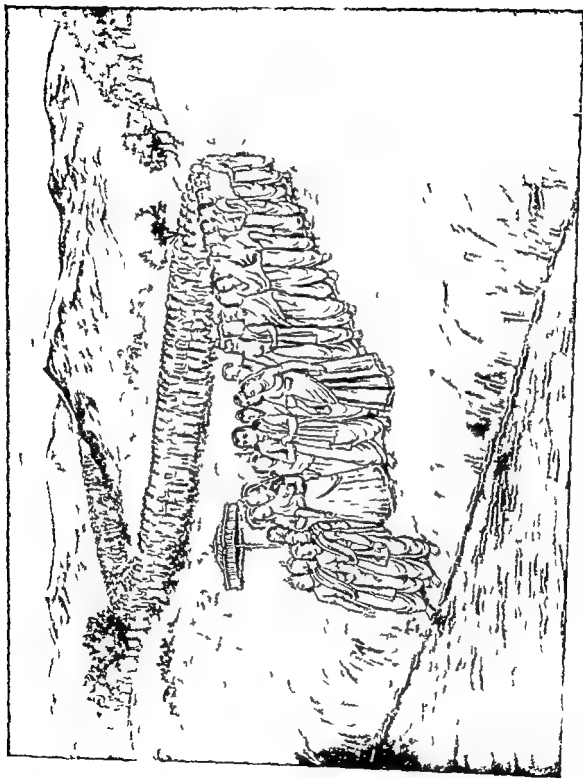
प्रभाताया ॥ शर्वर्यो पृथुवशा महायशाः ।

‘पम’ कमलपत्राक्ष पुरोधसमयाग्रधीत् ॥ १ ॥

तदनन्तर रात नीतनेपर जब सपेरा हुआ, तब विशाल

वध सलवाले महायशस्वी कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी पुरोहित से बोले— ॥ १ ॥

अग्निहोत्र यजत्यग्रे दीप्यमान सह द्विजैः ।



भगवान् श्रीरामकी महायात्रा

वाजपेयातपत्र च शोभमान महापथे ॥ २ ॥

भेरे अग्निहोत्रकी प्रचलित आग ब्राह्मणोंके साथ आगे आगे चले । महाप्रयाणके पथपर इस यात्राके समय भेरे वाजपेय यज्ञका सुन्दर छत्र भी चलना चाहिये ॥ २ ॥
ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वे निरवशेषतः ।

चकार विधिषड् धर्मं माहाप्रस्थानिक विधिम् ॥ ३ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर तेजस्वी वसिष्ठ मुनिने महाप्रस्थानकालके लिये उचित समस्त धार्मिक क्रियाओंका विधि पूर्वक पूर्णतः अनुष्ठान किया ॥ ३ ॥

तत सूक्ष्माभ्युपधरो ब्रह्ममावर्तयन् परम् ।

कुशान् गृहीत्वा पाणिभ्या सरयू प्रययावथ ॥ ४ ॥

फिर भगवान् श्रीराम सूक्ष्म वस्त्र धारण किये दोनों हाथोंमें कुछ लेकर परब्रह्मके प्रतिपादक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सरयूनदीके तटपर चले ॥ ४ ॥

अप्याहरन् क्वचित् किञ्चिन्निश्चेष्टो निःसुराः पथि ।

निर्जगाम गृहात् तस्माद् क्षीप्यमानो यथाशुमान् ॥ ५ ॥

उस समय वे वेदपाठके सिवा कहीं किसीसे और कोई बात नहीं करते थे । चलनेके अतिरिक्त उनमें कोई दूसरी चेष्टा नहीं दिखायी देती थी तथा वे लौकिक सुखका परित्याग करके देदीप्यमान सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते हुए धरते निकले थे और गतव्य पथपर बढ रहे थे ॥ ५ ॥

रामस्य दक्षिणे पादौ संपन्ना श्रीरुपाश्रिता ।

सख्येऽपि च मही देनी व्यग्रसायस्तथाग्रतः ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीरामके दाहिने पाँजमें कमल हाथमें लिये श्रीदेवी उपस्थित थीं । वामभागमें भूदेवी निपजमान थीं तथा आगे आगे उनकी 'ययमाय (संसार)-शक्ति' चल रही थी ॥
शरा नानाविधाध्यापि धनुरायत्तमुत्तमम् ।

तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरयश्चिह्नहा ॥ ७ ॥

नाना प्रकारके बाण, बिगल एवं उत्तम धनुष तथा दूसरे दूसरे अन्न शस्त्र—सभी पुरुष शरीर धारण करके भगवान् के साथ चल ॥ ७ ॥

येन ब्राह्मणरूपेण गायत्री सवरक्षिणी ।

बोद्धावोऽथ वयट्कार सर्वे राममनुग्रहा ॥ ८ ॥

चारों वेद ब्राह्मणका रूप धारण करके चल रहे थे । गायत्री र ग करनेवाली गायत्री देवी, ओंकार और वयट्कार सभी भक्ति भावने श्रीगणका अनुकरण करते थे ॥ ८ ॥

श्रुपयश्च महात्मान सर्व एव महीसुरा ।

अन्वगच्छन् महात्मान स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ ९ ॥

महात्मा श्रुति तथा समस्त ब्राह्मण भी ब्रह्मलोकके खुले द्वार द्वारस्वरूप परमात्मा श्रीरामके पीछे पीछे गये ॥ ९ ॥
त यान्तमनुगच्छन्ति ह्यन्तःपुरचरा स्त्रियः ।

सकृद्धवाल्दासीका सधर्षधरकिंकरा ॥ १० ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी बालकों, वृद्धों, दासियों, भोजों और सेवकोंके साथ निकलकर सरयूतटकी ओर जाते हुए श्रीरामके पीछे-पीछे जा रही थीं ॥ १० ॥

सात पुरश्च भरत शत्रुघ्नसहितो ययौ ।

राम गतिमुपागम्य साग्निहोत्रमनुग्रहा ॥ ११ ॥

भरत और शत्रुघ्न अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ अपने आश्रयस्वरूप भगवान् श्रीरामके, जो अग्निहोत्रके साथ जा रहे थे, पीछे-पीछे गये ॥ ११ ॥

ते च सर्वे महात्मान साग्निहोत्रा समागता ।

सपुत्रदारा काकुत्स्थमनुजग्मुर्महामतिम् ॥ १२ ॥

वे सब महामनस्वी श्रेष्ठ पुरुष एवं ब्राह्मण अग्निहोत्रकी अग्नि तथा स्त्री पुत्रोंके साथ इस महायात्रामें सम्मिलित हो परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीका अनुगमन कर रहे थे ॥ १२ ॥

मन्त्रिणो मृत्युवर्गाश्च सपुत्रपुत्राधवा ।

सर्वे सहानुगा राममन्वगच्छन् प्रहृष्टवत् ॥ १३ ॥

समस्त मन्त्री और मृत्युवर्ग भी अपने पुत्रों, पशुओं, वस्तुओं तथा अनुचरोंसहित हर्षपूर्वक श्रीरामके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥ १३ ॥

तत सर्वा प्रहृतयो हृष्टपुष्टजनाधृता ।

गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघव गुणरञ्जिता ॥ १४ ॥

तत सत्रीपुमासस्ते सपक्षिपशुयाधवा ।

राघवस्यानुगा सर्वे हृष्टा विगतक्लमया ॥ १५ ॥

हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए समस्त प्रजाजन भीरघुनाथजी के गुणोंपर मुग्ध थे इसलिये वे स्त्री, पुरुष, पशु-पक्षी तथा वस्तु-वाचवोंसहित उस महायात्रामें भीरमय अनुगामी हुए । उन सबके हृदयमें प्रसन्नता थी और वे सभी पारने रहित थे ॥ १४ १५ ॥

स्नाता प्रमुदिता सर्वे हृष्टपुष्टश्च यानरा ।

हृष्ट क्लृप्तिशायै सर्वे राममनुग्रहा ॥ १६ ॥

सम्पूर्णं दृष्ट पुष्ट धानरक्षणं भी स्नानं करके बड़ी प्रसन्नता
के साथ किलकारियों मारते हुए भगवान् श्रीरामके साथ जा
रहे थे, वह सारा समुदाय ही श्रीरामका भक्त था ॥ १६ ॥

नतम्रं कश्चिद्दीनो वा भीक्षितो वापि बुद्धितः ।
दृष्ट समुदितं सर्वं यभूत् परमाद्भुतम् ॥ १७ ॥

उनमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो दीन दुष्टी अथवा
छत्रित हो । वहाँ एकत्र हुए सब लोगोंके हृदयमें महान् हर्ष
था रहा था और इस प्रकार वह जनसमुदाय अत्यन्त आश्चर्य
जनक जान पड़ता था ॥ १७ ॥

ब्रह्मरामोऽयं निर्यान्तं रामं जानपदो जनः ।
यं प्राप्तं सोऽपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो जनः ॥ १८ ॥

जनपदके लोगोंमेंसे जो श्रीरामकी यात्रा देखनेके लिये
आये थे, वे भी यह सब समारोह देखते ही भगवान् के साथ
परमधाम जानेको तैयार हो गये ॥ १८ ॥

भक्षयान्तरासि जनाश्च पुरगासिनः ।
आगच्छन् परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥

घेठ, वानर, राक्षस और पुरवासी मनुष्य बड़ी भक्तिके

हर्यार्थ श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आषारामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें एक सौ नवौं सर्ग पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततम सर्गः

भाइयोंसहित श्रीरामका गिण्णुस्वरूपमें प्रवेश तथा साथ आये हुए
सब लोगोंको सतानक-लोरुकी प्राप्ति

अप्यर्थयोजनं गत्वा नदीं पश्चात्प्राप्तिताम् ।
सरयू पुण्यसलिला ददर्श रघुनन्दनः ॥ १ ॥

अप्राप्यसे वेद बोधन दूर जाकर रघुलुनन्दन भगवान्
श्रीरामने पक्षिमामिश्रण हो निकट प्राप्त हुई पुण्यसलिला
गरयूका दर्शन किया ॥ १ ॥

ता नदीमाकुलपत्नीं सर्वशानुसरन् नृपः ।
आगतः सप्रजो रामस्तु देशं रघुनन्दनः ॥ २ ॥

सरयूनदीमें सब ओर भँवरें उठ रही थीं । वहाँ सब ओर
घूम फिरकर रघुनन्दन राजा श्रीराम प्रजाओंके साथ एक
उत्तम स्थानपर आये ॥ २ ॥

अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।

सायं श्रीरामचन्द्रजीके पीछे पीछे एकाग्रचित्त होकर चले आ
रहे थे ॥ १९ ॥

यानि भूतानि नगरेऽप्यन्तधानगतानि च ।
राघव तान्यनुयसु स्वगाय समुपस्थितम् ॥ २० ॥

अयोध्यानगरमें जो अटस्य प्राणी रहते थे, वे भी सानेत
धाम जानेके लिये उद्यत हुए श्रीरघुनाथजीके पीछे पीछे चल
दिये ॥ २० ॥

यानि पश्यति काकुत्स्थः स्थावराणि चराणि च ।
सर्वाणि रामगमने अनुजगमुर्हि ता यपि ॥ २१ ॥

चराचर प्राणियोंमेंसे जो जो श्रीरघुनाथजीको काते देखत
थे, वे सभी उस यात्रामें उनके पीछे-पीछे चर देते थे ॥ २१ ॥

नोऽन्वयस्तत्तदयोध्याया सुसुक्ष्ममपि दृश्यते ।
तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुमताः ॥ २२ ॥

उस समय उस अयोध्यामें सँव लेनेवाला फोड़ छाटे-से
छोटा प्राणी भी रह गया हो, ऐसा नहीं देखा जाना था ।
तिर्यग्योनिके समस्त जीव भी श्रीराममें भक्तिभाव रखकर उनके
पीछे-पीछे चले जा रहे थे ॥ २२ ॥

सर्वे परिवृतो देवैश्चर्याभिः महामभिः ॥ ३ ॥

आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः ।
निमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसन्वृतः ॥ ४ ॥

उसी समय लोचयितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं तथा
महात्मा श्रुति मुनियोंसे घिरे हुए उस स्थानपर आ पहुँचे,
जहाँ श्रीरघुनाथजी परमधाम पधारनेके लिये उपस्थित थे ।
उनके साथ करोड़ों दिव्य विमान गोभा पा रहे थे ॥ ३ ॥ ४ ॥

दिव्यतेजोवृत्तं ध्योम ज्योतिर्भूतमनुचमम् ।
स्य यमैः स्वतेजोभिः स्वर्गैर्भिः पुण्यकर्मभिः ॥ ५ ॥

सारा आकाशमण्डल दिव्य तेजसे घ्यात हो अत्यन्त उत्तम
ज्योतिमय हो रहा था । पुण्यकर्म करनेवाले स्वर्गाधी स्वयं

प्रकाशित होनेवाले अपने तेजसे उस स्थानको उद्भासित कर रहे थे ॥ ५ ॥

पुण्या वाता चक्षुष्यैव गन्धन्त सुखप्रदा ।

पपात पुण्यवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता महौघवत् ॥ ६ ॥

परम पवित्र, सुगन्धित एवं सुखदायिनी हवा स्वयं लयी । देवताओंद्वारा गिराये गये गन्धि-गन्धिदिग् पुष्पोंकी भांति बरस होने लगी ॥ ६ ॥

हस्मिन्सूर्यदातै कौणै गन्धर्वाप्सरसकुले ।

सरयूखलिल राम पद्म्या समुपचक्रमे ॥ ७ ॥

उस समय सैरुहों प्रकाशके बाने बजने लगे और गन्धर्वों तथा अप्सराओंसे बहोंका स्थान भर गया । इतनेमें ही श्री रामचन्द्रजी सरयूके किनमें प्रवेश करनेके लिये दोनों पैरोंसे आगे बढ़ने लगे ॥ ७ ॥

ततः पितामहो धार्णी त्वन्तरिक्षाद्भाषत ।

आगच्छ विष्णोभद्र ते दिष्टया प्रातोऽसि राघव ॥ ८ ॥

तब ब्रह्माजी आकाशसे ही बोले—‘श्रीविष्णुस्वरूप धृष्ट नन्दन ! आइये, आपका कल्याण हो । हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो आप अपने परमधामको पधार रहे हैं ॥ ८ ॥

भ्रातृभि सह देवाभै प्रविशस्व स्विका तनुम् ।

यामिच्छसि महायाहोता तनु प्रविशस्विकाम् ॥ ९ ॥

‘महायाहो ! आप देवतुल्य तेजस्वी भाइयोंके साथ अपने मन्दिरभूत लोकमें प्रवेश करें । आप जिस स्वरूपमें प्रवेश करना चाहें, अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें ॥ ९ ॥

वैष्णवीं ता महानेनो यद्वाऽऽकाश सनातनम् ।

त्य हि लोकगतिर्देव न त्वा केचित्प्रजानते ॥ १० ॥

श्रुते माया विशालार्क्षी तत्र पूर्वपरिग्रहाम् ।

त्वामचिन्त्य महद् भूतममय चानर तथा ।

यामिच्छसि महानेजस्ता तनु प्रविश स्वयम् ॥ ११ ॥

भगवतेजस्वी परमेश्वर ! आपकी इच्छा हो तो चतुर्मुख विष्णुस्वरूपमें ही प्रवेश करें अथवा अपने म्नातन आकाशमय अम्यक्त ब्रह्मरूपमें ही विराजमान हों । देव ! आप ही सम्पूर्ण क्षेत्रज्ञ आश्रय हैं । आपकी पुरातन पत्नी दशमया (हस्तिनी) जिक्र-स्वरूपा जो विशाल-नेत्रा सीतादेवी हैं, उनसे सह-हृदय दूसरे कोई आकाश-वर्णरूपमें नहीं जानते हैं, क्योंकि आप अचिन्त्य, अविनाशी तथा सर्व आदि

अवस्थाओंसे रहित परब्रह्म हैं, अतः महातेजस्वी राघवेन्द्र ! आप जिसमें चाहें, अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें (प्रतिष्ठित हों) ॥ १०-११ ॥

पितामहवच ध्रुवा विनिश्चित्य महामति ।

विवेदा वैष्णव तेज सशरीर सहाजुज ॥ १२ ॥

पितामह ब्रह्माश्रीजी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीधुनापत्नीने कुछ निश्चय करके भाइयोंके साथ शरीरसहित अपने वैष्णव तेजमें प्रवेश किया ॥ १२ ॥

ततो विष्णुमय देव पूजयन्ति स देवता ।

साध्या मदृणाञ्चैव सेन्द्रा सामिपुत्रोगमा ॥ १३ ॥

निरता इन्द्र और अग्नि आदि सब देवता, साध्या तथा मदृणा भी विष्णुस्वरूपमें स्थित हुए भगवान् श्रीरामजी पूजा (स्तुति प्रशंसा) करने लगे ॥ १३ ॥

ये च दिवा श्रग्विगणा गन्धर्वाप्सरसश्च वा ।

सुपर्णनागायक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसा ॥ १४ ॥

तदनन्तर जो दिव्य ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, गन्धर्वा, नाग, यक्ष दैत्य, दानव और राक्षस थे, वे भी भावात्का गुणगन करने लगे ॥ १४ ॥

सर्वे पुष्ट प्रमुदित सुसम्पूजमनोरथम् ।

साधुसाध्विति तैर्देवैरिन्द्रिय गतकल्मषम् ॥ १५ ॥

(वे बाने—) प्रभो ! यों अन्दर पदार्थ करनेसे देववृक्षवासियोंका यह सरा सद्गुण सारजन्यरूप होनेके कारण हुए पुष्ट एवं आनन्दमग्न हो गया है । सबके पाप-ताप नष्ट हो गये हैं । प्रभो ! आपका हमारा दाया स्तुत्यार्थ है ।’ ऐसा उन देवताओंने कहा ॥ १५ ॥

अथ विष्णुमहानेना पितामसुराग्रह ।

एषा लोक जनीघाना क्षनुमहसि सुमन ॥ १६ ॥

तत्त्वभात् विष्णुस्वरूपने शिरःत्रयान् मणितेजस्वी श्रीराम ब्रह्माश्रीसे बले—‘उत्तम मन्त्रों पढ़ने करनेसे शिरःत्रयान् इत सम्पूर्ण जगत्समुदायको भी आप उनमें लोक प्रदान करें । हमें हि सर्व स्नेहानाममुयाता यशस्विन ।

भक्ता हि भवितव्याश्च त्वयामानन्द मर्तने ॥ १७ ॥

‘य सब लोग स्नेहयुक्त मन पीछे आये हैं । दम्पत्ये सब दशमी और मरे मृत हैं । इन्होंने मरे पिप अपने ऐकिक सुगोंका परित्याग कर दिया है, अतः वे स्वयं मरे अनुमरक पथ हैं ॥ १७ ॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुपुत्रं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः ।

लोकान् संतानकान् नामयास्यन्तीमे समागता ॥ १८ ॥

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर लोकगुरु भगवान् ब्रह्माजी बोले—भगवन् । यहाँ आये हुए ये सब लोग 'संतानक' नामक लोकोंमें आयेगे ॥ १८ ॥

यश्च तिर्यंगतं विंचित् स्वामेयमुचिन्तयत् ।

प्राणास्त्यक्त्यति भक्त्या तत् सतानेषु निवत्स्यति ॥ १९ ॥

सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनुन्तरे ।

'पुनर्विद्योकी योनिमें पड़े हुए भीनोंमेंसे भी जो कोई आपका ही भक्तिभावसे चित्त करता हुआ प्राणोंका परित्याग करेगा, वह भी सतानक-लोकोंमें ही निवास करेगा । यह संतानक-लोक ब्रह्मलोकके ही निकट है (जैसा कि धामका ही अङ्ग है) । वह ब्रह्माके उत्पन्न-सकलत्व आदि सभी उत्तम गुणोंमें युक्त है । उहीमें ये आपका भक्तजन निवास करेंगे' ॥ १९ ॥

यानराश्च स्त्रिका योनिमृक्षाध्वेन तथा ययु ॥ २० ॥

येभ्यो यिनि सृता सर्वे सुरेभ्य सुरसम्भवा ।

तेषु प्रथिविषे चैव सुभीन सूर्यमण्डलम् ॥ २१ ॥

पश्यता सर्वदधाना स्वान् पितृन् प्रतिपेदिरे ।

जिन वानरों और रीछोंकी देवताओंसे उत्पत्ति हुई थी, वे अपनी अपनी योनिमें ही मिल गये—जिन जिन देवताओंसे प्रकट हुए थे, उहीमें प्रविष्ट हो गये । सुभीनसे सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया । इसी प्रकार अन्य वानर भी सब देवताओंके देखते देखते अपने अपने पिताके स्वरूपको प्राप्त हो गये ॥ २० ॥ २१ ॥

तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपागता ॥ २२ ॥

भेजिरे सरयू सर्वे हर्षपूर्णाश्रुविह्वला ।

देवेश्वर ब्रह्माजीने जब सतानक-लोकोंकी प्राप्तिकी घोषणा की, तब सरयूके गोप्रतारघाटपर आये हुए उन सब

इत्यादि श्रीमद्भगवत्पुत्र आदिवाक्ये उत्तरकाण्डे इत्यादिस्मात्ततः सर्गः ॥ ११० ॥

इत प्रकार धावाल्मीकिनिर्मित अर्षारामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः

रामायण काव्यका उपमहार और इसकी महिमा

एताथदेतदाख्यान सोत्तर ब्रह्मपूजितम् ।

रामायणमिति ख्यान मुख्य वाल्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥

(कुछ और २५ कहते हैं—) महर्षि वाल्मीकिद्वारा

छोगोंने आनन्दसे आँसू बहाते हुए सरयूके जलमें डुबकी लगायी ॥ २२ ॥

अवगाहान्पु यो यो वै प्राणास्त्यक्त्या प्रहृष्टवत् ॥ २३ ॥

मानुष वेदमुत्सृज्य विमान सोऽध्यरोहत ।

जिसने जिसने जलमें गोता लगाया, वही-वही बड़े हर्षके साथ प्राणों और मनुष्य शरीरको त्यागकर विमानपर आ बैठा ॥ २३ ॥

तिर्यग्योनिगताना च शतानि सरयूजलम् ॥ २४ ॥

सम्प्राप्य विदिव जग्मु प्रभासुरयपूषि तु ।

दिव्या दिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ॥ २५ ॥

पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए वैकुण्ठों प्राणी सरयूके जलमें गोता लगाकर तेजस्वी शरीर धारण करके दिव्यलोकमें जा पहुँचे । वे दिव्य शरीर धारण करके दिव्य अवस्थामें स्थित हो देवताओंके समान दीप्तिमान् हो गये ॥ २४ ॥ २५ ॥

गत्वा तु सरयूतोयं स्थावरणि चराणि च ।

प्राप्य तत्तोयविहङ्गे देवलोकासुपागमन् ॥ २६ ॥

सावर और जङ्गम सभी तरहके प्राणी सरयूके जलमें प्रवेश करके उस जलमें अपने शरीरको भिगोकर दिव्य लोकमें जा पहुँचे ॥ २६ ॥

तस्मिन् येऽपि समापन्ना ऋक्षवानरराक्षसाः ।

तेऽपि सर्गे प्रविशिशुद्धैर्हान् निक्षिप्य चाभ्यसि ॥ २७ ॥

उस समय जो कोई भी रीछ, वानर या राक्षस वहाँ आ गये, वे सभी अपने शरीरको सरयूके जलमें डालकर भगवान्के परमचाममें जा पहुँचे ॥ २७ ॥

तत समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरादिविच ।

हृष्टै प्रमुदितैर्द्वैजैर्जगाम विदिव महत् ॥ २८ ॥

इस प्रकार वहाँ आये हुए सब प्राणियोंको सतानक-लोकों में स्थान देकर लोकगुरु ब्रह्माजी हृष्ट और आनन्दसे भरे हुए देवताओंके साथ अपने महान् धाममें चले गये ॥ २८ ॥

येन ध्यातमिद् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २ ॥

इस प्रकार मगवान् भीरुम पहलेकी ही मूर्ति अपने विगुलस्पर्श परमचामने प्रतिष्ठित हुए । उनके द्वारा चराचर प्राणियोंसहित यह समस्त त्रिलोकी व्याप्त है ॥ २ ॥

ततो देवा सगंधरा सिद्धाश्च परमरम्य ।

नित्य शृण्वन्ति सहस्रा काय रामायणं दिनि ॥ ३ ॥

तब मगवान्के पावन चरित्रसे युक्त होनेके कारण देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि सदा प्रसन्नतापूर्वक देवलोकमें इस रामायणकाव्यका भवग करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रमाय्यानमायुष्य सौभाग्यं पापनाशनम् ।

रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु भावयेद् बुध ॥ ४ ॥

यह प्रबन्धकाव्य आयु तथा सौभाग्यको बढ़ाता और पापोंका नाश करता है । रामायण वेदके समान है । विद्वान् पुरुषको भादोंमें इसे पढ़कर सुनाना चाहिये ॥ ४ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ।

सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य य पठेत् ॥ ५ ॥

इसने पाठसे पुत्रहीनका पुत्र और धनहीनको धन मिलता है । जो प्रतिदिन इसके लोकेके एक चरणका भी पाठ करता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ५ ॥

पापान्यपि च य क्षुपाद्दृश्यन्महान् मानव ।

पठत्येकमपि श्लोकं पापात् स परिमुच्यते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन पाठ करता है, वह भी यदि इसके एक श्लोकका भी नित्य पाठ करे तो वह सभी पापोंसहित छुट हो जाता है ॥ ६ ॥

वाचकाय च दातव्यं यत्नं घेनुहिरण्यकम् ।

वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सचदेवता ॥ ७ ॥

इसकी कथा सुनानेवाल् वाचकको वज्र, गौ और भुवणकी दक्षिणा देनी चाहिये । वाचकके सन्तुष्ट होनेपर सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

एतद्वाय्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नर ।

सपुत्रपौत्रो लोकेऽस्मिन् प्रेत्य चेह महीयते ॥ ८ ॥

यह रामायण नामक प्रबन्धकाव्य आयुकी वृद्धि करने वाला है । जो मनुष्य प्रतिदिन इसका पाठ करता है, उसे इस लोकमें पुत्रपौत्रकी प्राप्ति होती है और मृत्युके पश्चात् परलोकमें भी उसका बड़ा सम्मान होता है ॥ ८ ॥

रामायणं गोविन्दं मध्याह्ने वा समाहितम् ।

सायाह्ने चापराह्णे च वाचयन् नापसीदति ॥ ९ ॥

जो प्रतिदिन एकप्रचित्त हो प्रातः काल, मध्याह्न, अपराह्न अथवा सायंकालमें रामायणका पाठ करता है, उसे कभी कोई दुःख नहीं होता है ॥ ९ ॥

अयोध्यायि पुरीरम्या शून्या वर्णगणान् यद्वृन् ।

शृणुष्व प्राप्य राजानं नित्यसमुपयास्यति ॥ १० ॥

(भीष्मनायकीक परमवान् पणालेक पश्चात्) रानीय अयोध्यापुरी भी बहुत वर्णोंके स्त्री पढ़ी रहेगी । फिर राजा शृणुष्वके समय यह आवाद होगी ॥ १० ॥

एतद्वाय्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम् ।

कृतवान् प्रवेतसं पुत्रस्तद् ब्रह्माप्यन्यमन्यत ॥ ११ ॥

प्रवेतके पुत्र महर्षि बाल्मीकिजीने अभिमन्त्रणकी समाप्तिके बादकी कथा एवं उत्तरकाण्डसहित रामायण नामक इस ऐतिहासिक काव्यका निमाण किया है । ब्रह्माजीने भी इसका अनुमोदन किया था ॥ ११ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य राजपेयायुतस्य च ।

लभते अरणादेयं सर्गस्यैकस्य मानय ॥ १२ ॥

इस काव्यके एक सर्गका भवग करनेमात्रेण ही मनुष्य एक हजार अभ्येय और दस हजार वाक्पेय यज्ञोंका फल पा लेता है ॥ १२ ॥

प्रयागादीनि तीर्थानि गङ्गाया सरितस्तथा ।

नैमियादीन्यरण्यानि कुरुक्षेत्रादिकान्यपि ॥ १३ ॥

गतानि तेन लोकेऽस्मिन् येन रामायणं श्रुतम् ।

विद्वान् इव लोकमें रामायणकी कथा सुन ली, उन्ने माने प्रयाग आदि तीर्थों, गङ्गा आदि पवित्र नदियों, नैमिषारण्य आदि वनों और कुरुक्षेत्र आदि पुन्यधर्मोंकी यात्रा पूरी कर ली ॥ १३ ॥

हेमभार कुरुक्षेत्रे प्रसन्ने भानौ प्रयच्छति ॥ १४ ॥

यश्च रामायणं लोके शृणोति सहस्राक्षुभी ।

जो सूर्यप्रदणके समय कुरुक्षेत्रमें एक बार सूर्यका दान करता है और जो लोकमें प्रतिदिन रामायण सुनता है, वे दोनों समान पुन्यके प्राप्ति होते हैं ॥ १४ ॥

सम्यक्भज्जसमायुक्तं शृणुने राधर्षी ययाम् ॥ १५ ॥

सर्वपापात् प्रमुच्येत बिष्णुलोकं स गच्छति ।

जो उत्तम भद्रासे सम्पन्न हो श्रीरघुनाथजीकी कथा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और विष्णुलोकमें जाता है ॥ १५३ ॥
आदिका यमिद त्वार्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ १६ ॥
य शृणोति सदा भक्त्या स गच्छेद् वैष्णवीं तनुम् ।

जो पृथक्कालमें वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस आयरामायण आदिका यका गदा भक्तिभावसे भजन करता है, वह भगवान् विष्णुका स्वरूप प्राप्त कर लेता है ॥ १६३ ॥

पुत्रदापञ्च वर्धते सम्पद सततस्तिथा ॥ १७ ॥
सत्यमेतद् विदित्वा तु श्रोतव्यं नियतात्मभि ।
गायत्र्याश्च स्वरूप तद् रामायणमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

इसके भजनसे छी पुत्रोषी प्राप्ति होती है, धन और सति बढ़ती है । इसे पूर्णतः छल समझकर मनको यशमें रखते हुए इसका भजन करना चाहिये । यह परम उत्तम रामायणकाम्य गायत्रीका स्वरूप है । ॥ १७ १८ ॥

य पठेच्छृणुयादित्य चरितं राघवस्य ह ।
भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ १९ ॥

जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिभावसे श्रीरघुनाथजीके इस चरित्रको सुनता या पढ़ता है, वह निष्पाप होकर दीर्घ आयु प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

विन्त्येद् राघव नित्यं श्रेयं प्राप्नुय इच्छति ।
आययेद्विद्वामप्यान ग्राहणेभ्यो दिने दिने ॥ २० ॥

जो कल्याण प्राप्ति की इच्छा रखता है, उसे नित्य निरन्तर श्रीरघुनाथजीका चितन करना चाहिये । ब्राह्मणोंको प्रतिदिन यह प्रवचकाव्य सुनाना चाहिये ॥ २० ॥

यस्तिवद् रघुनाथस्य चरितं सकलं पठेत् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे एकादशाधिकतमम सप्तमः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आयरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें एक सौ ग्यारहवों का पूरा हुआ ॥ १११ ॥

मरणात् = नष्ट
५१ १११
२१०

उत्तरकाण्ड सम्पूर्णम्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सम्पूर्णम्

सोऽसुक्षये विष्णुलोऽ गच्छत्येव ॥ २१ ॥

जो इस श्रीरघुनाथ चरित्रका पाठ पूर्ण कर लेता है, वह प्राणात् होनेपर भगवान् विष्णुके ही धाममें जाता है इसमें शक्य नहीं है ॥ २१ ॥

पिता पितामहस्तस्य तथैव प्रपितामह ।

तत्पिता तत्पिता चैव विष्णुयान्ति ॥ २२ ॥

इतना ही नहीं, उसके पिता, पितामह, प्रपितामह, बृद्ध प्रपितामह तथा उनके भी पिता भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेते हैं, इन्हें शक्य नहीं है ॥ २२ ॥

चतुर्धर्मप्रदं नित्यं चरितं राघवस्य तु ।

तस्माद् यदावता नित्यं श्रोतव्यं परमं सदा ॥ २३ ॥

श्रीराघवेन्द्रका यह चरित्र उदा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला है । इसलिये प्रतिदिन यत्नपूर्वक निरन्तर इस उत्तम काम्यका भजन करना चाहिये ॥ २३ ॥

शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पाद पदमेव वा ।

स याति ब्रह्मण स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥ २४ ॥

जो रामायणकाम्यक श्लोकके एक चरण या एक पदका भक्तिभावसे भजन करता है, वह ब्रह्मजीके धाममें जाता है और वहां उनके द्वारा पूजित होता है ॥ २४ ॥

एवमेतत् पुराष्टुतमाख्यानं भद्रमस्तु यः ।

प्रव्याहरत विद्वन्ध यत्न विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार इस पुरातन आख्यानका आपलोग विचार पूर्वक पाठ करें । आपका कल्याण हो और भगवान् विष्णुके शर्की वय हो ॥ २५ ॥

१११

जो उत्तम भद्रासे सम्पन्न हो श्रीरघुनाथजीकी कथा सुनता है, यह सब पापोंसे मुक्त होता और विष्णुलोकमें जाता है ॥ १५ ॥
आदिका यमिदं त्वार्यं पुरा धास्मीकिना हृतम् ॥ १६ ॥
य ऋणोनि सदा भक्त्या स गच्छेद् वैष्णवीं तनुम् ।

जो पृथक्कालमें वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस आर्यरामायण आदिकाधका सदा भक्तिभावसे श्रवण करता है, यह भगवान् विष्णुका वाक्य प्राप्त कर लेता है ॥ १६ ॥

पुत्रदाराश्च वर्धते सम्पदः स्वतस्त्रिधा ॥ १७ ॥
सत्यमेतद् विदित्वा तु श्रोतव्यं नित्यतामभिः ।

गायत्र्याश्च स्वरूपं तद् रामायणमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

इसके श्रवणसे स्त्री पुत्रोंकी प्राप्ति होती है, धन और स्वतन्त्रता बढ़ती है । इसे पूर्णतः स्वयं समझकर मनको वशमें रखते हुए इसका श्रवण करना चाहिये । यह परम उत्तम रामायणका व्यवसायीका स्वरूप है । १७ १८ ॥

य पठेच्छृणुयादित्य चरितं राघवस्य ह ।
भक्त्या निष्कर्मणो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ १९ ॥

जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिभावसे श्रीरघुनाथजीके इस चरित्रको सुनता या पढ़ता है, वह निष्पाप होकर दीर्घ आयु प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

चिन्तयेद् राघवं नित्यं श्रेयः प्राप्नुय इच्छति ।
श्रावयेद्विद्वामाख्यानं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने ॥ २० ॥

जो कल्याण प्राप्तिकी इच्छा रखता है, उसे नित्य निरंतर श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करना चाहिये । ब्राह्मणोंको प्रतिदिन यह प्रवचनकाव्य सुनाना चाहिये ॥ २० ॥

यस्मिन् रघुनाथस्य चरितं सक् पठेत् ।

इत्यार्ये धीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चशतधिकशततमं सर्गः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्यरामायण आदिकाव्यक उत्तरकाण्डमें एक सौ आठहत्तीं सर्ग पूरा हुआ ॥ १११ ॥

भारतीय वास्तुशिल्प
४१ ११९७
२१९७

उत्तरकाण्ड सम्पूर्णम्

श्रीमद्रास्मीकीयरामायण सम्पूर्णम्

सोऽस्तु श्रेये विष्णुलोकं गच्छत्येव । सदाय ॥ २१ ॥

जो इस श्रीरघुनाथ चरित्रका पाठ पूर्ण कर लेता है, वह प्राणांत होनेपर भगवान् विष्णुके ही घाममें जाता है, इसमें शक्य नहीं है ॥ २१ ॥

पिता पितामहस्तस्य तथैव प्रपितामह ।
तत्पिता तत्पिता चैव विष्णुयान्ति । सदाय ॥ २२ ॥

इतना ही नहीं, उसके पिता, पितामह, प्रपितामह, बृद्ध प्रपितामह तथा उनके भी पिता भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेते हैं, इसमें शक्य नहीं है ॥ २२ ॥

चतुर्वर्गप्रदं नित्यं चरितं राघवस्य तु ।
तस्माद् यज्ञवता नित्यं श्रोतव्यं परमं सदा ॥ २३ ॥

श्रीराघवचरित्र यह चरित्र सदा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है । इसलिये प्रतिदिन यत्नपूर्वक निरंतर इस उत्तम काव्यका श्रवण करना चाहिये ॥ २३ ॥

ऋग्वन् रामायणं भक्त्या यः पठे पठेत्तथा ।
स याति ब्रह्मण स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥ २४ ॥

जो रामायणकाव्यके श्लोकके एक करण या एक पदका भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह ब्रह्माजीके घाममें जाता है और सदा उनका श्राव्य पूजित होता है ॥ २४ ॥

एवमेतत् पुराष्टुतमाख्यानं भद्रमस्तु य ।
प्रयाहरत विस्मयं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार इस पुरातन आख्यानका आवरण विस्मयपूर्ण पाठ करें । आपका कल्याण हो और भगवान् विष्णुके बलकी वृद्धि हो ॥ २५ ॥

